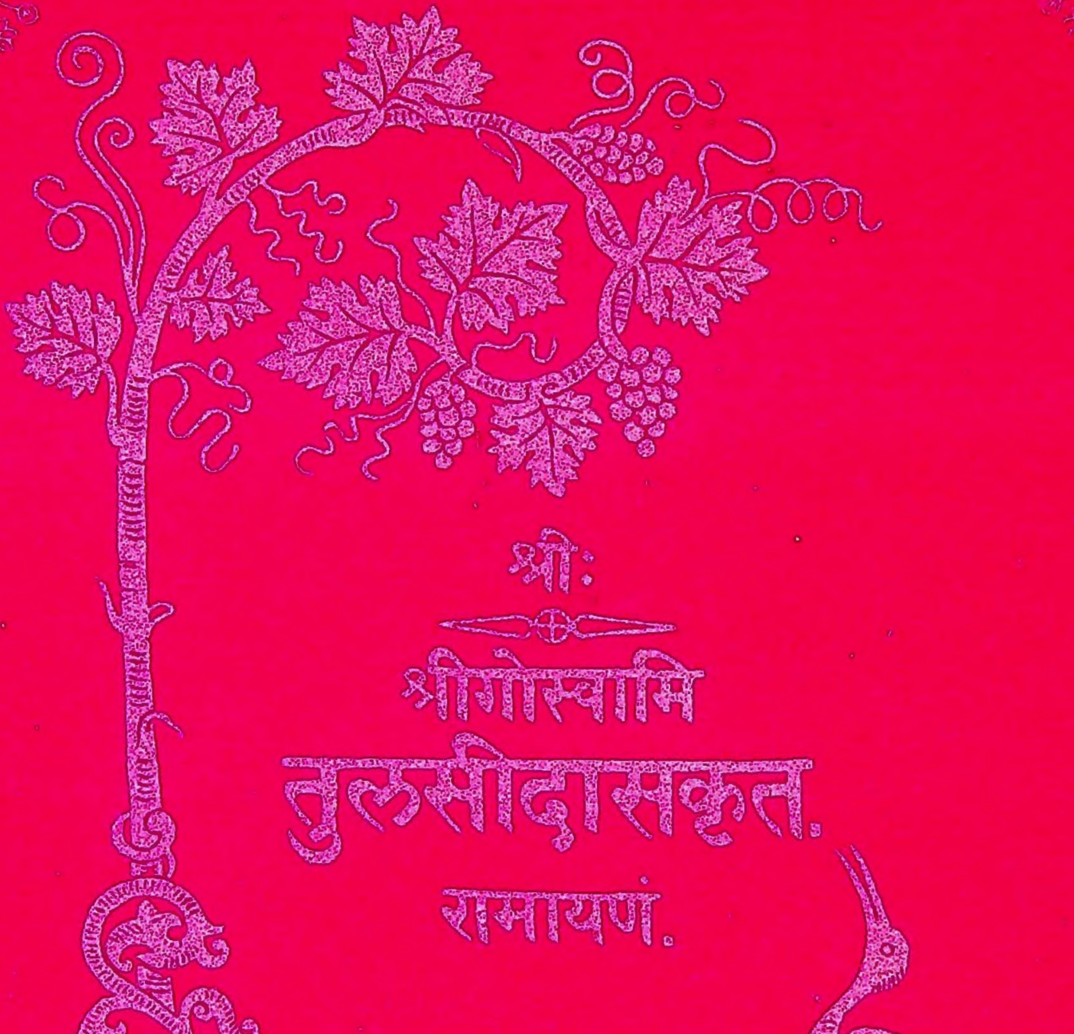


श्रीः

श्रीगोस्वामि

तुलसीदासकृत.

रामायणं.

श्रीगोस्वामितुलसीदासजीकृत-

रामायण

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत

संजीवनीटीकासहित ।

मूल पाठकी शुद्धतापूर्वक प्रत्येक चौपाई, दोहा, सोरठा, छन्दोंका अर्थ और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण क्षेपक कथाओंका भी तिलक, गूढार्थ, शंका-समाधान, प्रसंगानुसार सम्पूर्ण इतिहास, माहात्म्य, तुलसीदासजीका जीवनचरित्र, श्रीरामचन्द्रजीके वनवासका तिथिपत्र, रामाश्वमेध-अष्टम लवकुशकाण्ड और कोशसे अलंकृत।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर"-स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संस्करण : सितंबर २०१९, संवत् २०७६

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS, BOMBAY.

राजसंस्करण अधिकतम सूची मूल्य १८०० रुपये मात्र।

Edition : September 2019
संस्करण : सितंबर २०१९, सम्वत् २०७६

Price : Rs. 1800/-
मूल्य: १८०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004
at their Shri Venkateshwar Press,
22, Chintamani Industrial Estate, Ramtekdi, Pune-411013.

श्रीरामपञ्चायतन



(Copy rights reserved)

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

मुद्रक व प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास

अध्यक्ष- 'श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम्-प्रेस, बम्बई-४.

रामायण के यशस्वी टीकाकार



विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र

मुरादाबाद—निवासी

प्रथमावृत्तिकी भूमिका

श्रीपूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीमहाराज रामचन्द्रजीके चरित्र श्रवण करनेको कौन ऐसा पुरुष है कि जिसका चित्त न चाहता हो ? यह एक ऐसा मनोहर वर्णन है कि जिसके श्रवण करनेकी कौन इच्छा न रखता होगा ? इसक श्रवण करनेको विश्वभरके मनुष्य क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी उत्कंठित रहते हैं; यह राम वह नाम है कि जिसको प्रत्येक मनुष्य बड़े प्रेमसे उच्चारण करता है, इस रामचरित्रको रामायण नामसे महात्मागण कथन करते हैं. "रामायण" बाल्मीकिसे आरम्भ कर व्यासजी पर्य्यन्त ऋषि मुनियों ने संस्कृतमें वर्णन की है, जिसके स्वादको तबतक संस्कृतके ही विद्वान् लेते रहे परन्तु संस्कृत विद्या अतिपरिश्रमसाध्य है, इस कारण भाषा जाननेवाले इस स्वादसे अनभिज्ञ रहते थे, केवल श्रवणमात्रसे ही तृप्ति करते थे, सो भी प्रथम छापा न होनेसे पुस्तकें दुष्प्राप्य थीं, केवल कहीं कहीं रामायणकी कथा होती थी. पश्चात् इस कलियुगमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी (जो श्रीरघुनाथजीके भक्तोंमें अग्रगण्य हैं) जन्म लेकर रघुनाथजीके प्रेममें ऐसे मग्न हुए कि वह प्रेम भाषारूप हो करके संवत् १६३१ में निर्गत हो "तुलसीकृत रामायण" इस नामसे जगत्में फैलकर विख्यात हुआ । यह ग्रन्थ बहुधा तो शिवजीकृत "अध्यात्मरामायणसे" उद्धृत है परन्तु तो भी कहीं कहीं और और रामायणोंसे संग्रह किया गया है. और कहीं कहीं चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, उपनिषद् नाटक आदिके सार ग्रहण कर रचा गया है और भाषा इसकी ऐसी मनोहारिणी है कि अद्यपर्य्यंत तो भाषामें ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं हुआ है और निश्चयसे कहते हैं कि न होगा और इसका प्रचार भी ऐसा ही हुआ है कि चारों वर्णोंमें कोई भी मनुष्य ऐसा न होगा कि, जिसने देवनागरी पढ़कर इस "तुलसीकृत रामायण" को ग्रहण न किया हो । यहांतक कि विद्वान् यूरोपियनोंने भी इसका भाषान्तर अंग्रेजी (English) में करके इसका स्वाद पाया है और इसके आशय ऐसे गम्भीर और सरल हैं कि विद्वान्से लेकर बारहखड़ी तकके पढ़े हुए अपनी २ रुचिके अनुसार इसका आनंद लूटते हैं और विद्वान् इसका जितना खोज और विचार करते हैं उतना ही इसके आशय गम्भीर और शास्त्र पूरित दृष्टि आते हैं. सच तो यह है कि "जेहिके रही भावना जैसी । प्रभुमूरति देखी तिन तैसी" ऐसे तो श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्ति जनकपुरमें नरेशोंको भावनानुकूल दिखायी दी, परन्तु गुणी और गुणमें कोई विशेष भिन्नता नहीं होती, यह रामचरित्र रामका गुण होनेसे उनसे भिन्न दृष्टि नहीं आता और सबको आनन्ददायक है । इस ग्रन्थपर बड़े बड़े प्रेमी महात्माओंने तिलक भी रचे हैं, और उनमें यथाशक्ति अपनी प्रीति भी झलकायी है, परन्तु अब कालक्रमसे इस पुस्तकमें क्षेपक भी बहुत ही मिश्रित होगये हैं और उनका भी ऐसा प्रचार इसके सग होनेसे हो गया है कि जिस रामायणमें क्षेपक कथा नहीं होती उसको बहुत ही कम मनुष्य लेना अंगीकार करते हैं और बहुधा रामायण जो तिलक सहित हैं उनमें क्षेपक छोड़कर मुख्य कथाकी ही महात्माओंने टीका रची है जिससे कि क्षेपक न होनेसे लोग उसके ग्रहण करनेमें हिचकिचाते हैं, इस कारण मेरा बहुत दिनोंसे यह विचार था कि, तुलसीकृत रामायणके तिलककी रचना इस प्रकारसे की जाय, जिसमें सम्पूर्ण क्षेपककी कथाओंकी भी तिलक रचना हो और फिर उस टीकामें किसी बातकी अपेक्षा न रहे । परन्तु यह क़ाय बड़ा दुःसाध्य प्रतीत होता था और चित्त भयभीत रहता था, कि जबतक कोई गुणग्राही सज्जन इसके छापनेका भार न उठा लें तब तक इस कार्यमें परिश्रम करना विशेष उपकारक नहीं, परन्तु रघुनाथजीकी प्रेरणासे मेरा परिश्रम "परमगुणग्राहक विद्याप्रचारक वैश्यकुलकमलदिवाकर श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजी"से सफल हुआ. इन्होंने प्रथम अपने यहांकी रामायण मुझे शुद्ध करनेको भेजी. मैंने उसको यथासाध्य प्राचीन पुस्तकोंसे शोधन कर और सम्पूर्ण इतिहास और कहीं कहीं तिलक कर उनके पास भेजी और वह छपते ही हाथोंहाथ बिकी और किसी किसी छापनेवालेने लोभके वशीभूत होके उसकी नकल अपने यहां छापी । पुनः उक्त महाशयने रामायणका सम्पूर्ण तिलक छापनेके भारको ग्रहण कर मुझे इसका तिलक रचनेकी प्रेरणा की. मैंने उस आज्ञाको शिरोधार्य कर इसका तिलक "सञ्जीवनी" नामक किया है. इस रामायणके तिलकमें वेदशास्त्रका जहां जो आशय आया है वह सप्रमाण संस्कृत वाक्य लिखकर लिखा है और प्रत्येक चौपाईका तिलक उसके नीचे ही लिखा है जिसमें पढ़नेवालोंको भ्रम न रहे । प्रत्येक चौपाईका अक्षरार्थ और जहां भावार्थकी आवश्यकता देखी वहां भावार्थ भी लिख दिया है और इस तिलकको इतना नहीं बढ़ाया है कि मूल अर्थ खो जाय और समझमें न आवे, जितने राजाओंका नाम वा चरित्रोंके संकेत रामायणमें आये हैं उनके इतिहास इस ग्रन्थमें वर्णन किये हैं और सम्पूर्ण क्षेपक कथा जो कि वाल्मीकीय आदि रामायणमें विद्यमान हैं इसमें जहां उचित जाना है वहां मिश्रित कर दी गयी हैं और उनका भी तिलक कर दिया है, यद्यपि इसके मिलानेसे विद्वान् पंडित कहेंगे कि मिलाकर इस ग्रन्थमें यह कैसे विदित रहेगा कि कौनसी कविता तुलसीदासजीकी है और कौनसी मिलायी हुई है ? इसके निश्चय करनेमें बड़ी गड़बड़ होगी सो यह दोष भी इसमेंसे निकाल दिया है कि जो चौपाई क्षेपक हैं प्रत्येकके पीछे तिलकमें लिख दिया है कि यह चौपाई क्षेपक है जिससे क्षेपक कथा जाननेमें किसीको श्रम नहीं होगा, परन्तु क्षेपक कथा भी वही लिखी है जो कि शास्त्रानुसार बुद्धि तथा युक्तिसे भी सिद्ध हो सकती है और उसमें यह नियम रख दिया है कि यह क्षेपक कथाके शंका समाधान करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, केवल गोस्वामीजीने उत्तरकाण्ड मूलरामायणमें जो लिखा है उसके विस्तारमें जितने प्रश्नोत्तर आये हैं उन्हींकी पूर्तिके हेतु "क्षेपक-कथा" है—कुछ क्षेपक कथाके शंका समाधानकी उत्तरदाता गोस्वामीजीकी रामायण नहीं है, पर क्षेपक उसकी पूर्तिके करनेवाला और उस रामायणकी शंकाके कहीं २ उत्तरदाता हैं, यह नियम इस तिलकमें सर्वत्र ही जानना, इस नियमके अनुसार कोई शंका समाधान इस ग्रन्थमें शेष नहीं रहेगा और क्षेपक कथा मिलनेसे कुछ दोष न आवेगा, मैंने इस तिलकरचनामें कोई कथा कपोलकल्पित नहीं लिखी है, किन्तु और २ संस्कृत ग्रन्थोंको देखकर और उस आशयको दोहा चौपाइयोंमें बनाकर लिख दिया है और जो भाषामें मिला उसको भाषामें ही लिख दिया है, और टीका करनेमें इस बातका भी अधिक ध्यान रखा है कि जहांतक हो सके इस तिलकमें सरल वाक्य आवें; जिससे थोड़े पढ़े भी यथावत् समझ सकें, मैं आशा करता हूं कि सज्जन महात्मा इस ग्रन्थको पढकर हंसके समान गुणग्राही हो मेरा परिश्रम सफल करेंगे ।

चिरपरिचित–

—पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र

द्वितीयावृत्तिकी भूमिका

सम्पूर्ण सज्जन महाशयोंको विदित है कि, रामचरित्रामृतके समान इस समय कोई भी वस्तु मनोरम नहीं, बाल, वृद्ध, वनिता, युवा सब ही इसका पान करते हैं, इसकी एक एक बूंदमें ऐसा स्वाद है कि मनुष्य ब्रह्मानन्दमें मग्न हो जाता है, यद्यपि रामचरितका अनेक प्रकारसे महात्माओंने वर्णन किया है परन्तु जैसा गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है उसकी तुलना आज दिन किसीसे नहीं की जाती, सारा संसार आज दिन उनकी बनायी रामायणसे प्रेम रखता है। स्थान स्थान पर यह पुस्तक मुद्रित होती है परन्तु कहीं अक्षर, कहीं कागज, कहीं शुद्धता, कहीं उपयोगी कथा, कहीं शङ्का, समाधानादिकी कुछ न कुछ कसर रहती ही है, इन सब अभावोंको दूर कर सम्यक्प्रकार संशोधन कर जब यह ग्रन्थ बम्बई "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयमें श्रीयुत-सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी महाशयके यहां मुद्रित हुआ तबसे यह अमूल्य रत्न ऐसा प्रचलित हुआ कि सहस्रों पुस्तकें हाथों हाथ बिकीं और तीन चार वर्षोंमें ही कई आवृत्ति छप चुकी है और उसपर यह भी हुआ कि कई यन्त्रालयोंके कर्ताओंने इसकी नकल नमूनामें कुछ फेरफार कर छापी और लाभ उठाया, परन्तु परिश्रम करने पर भी इसकी समता न प्राप्त हुई. उसी समय बहुत सज्जनोंकी यह इच्छा हुई कि सटीक रामायण छापी जावे. तब हमने गुणग्राहक परम उदार उक्त सेठजीकी आज्ञासे प्रमाण सहित इसकी टीका की, क्योंकि उस समयतक बम्बईमें कोई टीका नहीं छपी थी, इस टीकाकी उत्तमता देखनेवाले तो जानते ही हैं, पर यह भी कह देना अत्युक्ति नहीं है कि वर्ष पूरा न होते २ सब पुस्तकें बिक गयीं और दूसरी बार इसके छापनेकी शीघ्रतासे आवश्यकता हुई. अबकी बार फिर अच्छे प्रकारसे संशोधन कर और कई रोचक कथा मिलाकर "अर्थात् रावण-बाणासुर संवाद, रामकलेवा, महासङ्कल्प, वशिष्ठजीका तेरह राजाओंका इतिहास कहना, जानकीका महावीरसे पश्चात्ताप, रावणका सभामें विचार, धूम्राक्षादिका मरण, मेघनादको शक्ति और सुलोचना मिलनेकी कथा तथा लवकुशकाण्ड और माहात्म्यकी भी टीका व कोश तथा रामशलाकाप्रश्न, संसारवृक्ष, महावीरकी सभन्त्र मूर्त्ति और रामायणके उपदेश" मिलाकर इसकी शोभा दुगुनी बढ़ा दी है. टीका लिखनेमें इस बातका भी विचार रक्खा है कि चौपाईके पदोंके क्रमसे भी टीका रहे जिससे यह विदित होजाय कि यह इस पद वाक्यकी टीका है, इससे कहीं २ वाक्यरचनामें शिथिलता होती है पर पढ़नेवालोंके अधिक लाभके निमित्त ऐसा किया है. अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है, हमारी टीकाको देखकर और भी सटीक रामायण बम्बईमें छपी हैं पर उनमें गूढ़ार्थका लेश भी नहीं, आधी हिन्दी आधी उर्दू टीकामें मिलाकर ढाई चावलकी खिचड़ी पकायी है. जब नयी बात नहीं सूझी तो अन्तमें हमारे अर्थको उर्दूके शब्दोंमें बदल कर इसकी पूर्ति करायी है, महात्मा सज्जन देखकर ही ऐसे आशयोंको समझ जाते हैं, नकली मालकी बात देखते ही खुल जाती है, पर हम उनके साहसको देखकर धन्यवाद देते हैं. उन्होंने वही कहावत की है कि "मेरेहीसे आग लाये नाम धरा वैसन्दर" हमारी ही टीका उतारी, कुछ अर्थ चौपाईके नीचे लिखा, जो शेष रहा वह टिप्पणीमें टांक दिया और झट कह दिया हमारा अर्थ अलगही है, क्या विज्ञ पाठक इस बातको नहीं जानते. विद्वानोंसे क्या छिपा है ? पर जिनको इस बातका विवेक नहीं, वे इस प्रसंगमें कब लजानेवाले हैं। हम कई बार देख चुके हैं कि जहां हमारा कोई ग्रंथ निकला कि नक्कालोंने उसकी नकल उड़ानेका मंसूबा बांधा और दो चार शब्दोंका उलट फेर कर टीकाकारोंमें नाम धराने लगे पर "उघरहि अन्त न होय निबाहू" अन्तमें भेद खुलता ही है। शेषमें पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि आप इस ग्रन्थका अवलोकन कर मुझे कृतकृत्य करें, अवश्य आप इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे, यह मुझे पूर्ण आशा है।

इस रामायणके पाठक महाशयोंने हमारे पास बहुतसे प्रशंसापत्र भेजे हैं, यदि हम उन सबको लिखें तो और एक पुस्तक तैयार हो जाय, इस कारण पृथक् २ सबका नाम न लिखकर अन्तःकरणसे धन्यवादपूर्वक उनके प्रेषित पत्रोंको स्वीकार कर उनसे सदा इसी प्रकार अनुग्रहकी आशा करते हैं।

तृतीयावृत्तिसे त्रयोदशावृत्ति तककी भूमिका

पाठक महाशय ! श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायणका महत्त्व आपसे छिपा नहीं है. प्रतिवर्ष सहस्रों प्रतियां यन्त्रालयोंसे बाहर हो जाती हैं. आजदिन भारतवर्षमें ही आर्यजातिके घर घरमें नहीं किन्तु अन्यदेशोंमें भी रामायणकी ज्योति जगमगा रही है। इस समय चारों पदार्थोंकी देनेवाली यह रामायण ही कलिकालमें सुरधेनु, कल्पवृक्ष वा चिन्तामणि है, आबालवृद्ध सबके ही मुखसे रामायणकी चर्चा नगर २ गांव गांवमें सुनायी देती है. इस ग्रन्थमें यह बड़ी विचित्रता है कि विद्वान्से लेकर अल्पज्ञतक रुचिअनुसार इसका पाठ कर अर्थ विचारकर प्रेममें मग्न होते हैं परन्तु सर्वथा अर्थ विषय साधारण पुरुषोंकी समझमें नहीं आता इस कारण संवत् १९४८ में मैंने इसकी टीका रचकर जगविख्यात श्रीयुत परमोदार सेठजी खेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्षको समर्पण किया जिन्होंने अपने यन्त्रालयमें बहुत उत्तमतापूर्वक इस ग्रंथका प्रकाशन किया, और हमारे सज्जन रामभक्तिपरायण महात्माओंने इसे रुचिसे स्वीकार किया कि पांचवें वर्षमें पाँचवीं बार छापी गयी परंतु न्यौछावर अधिक होनेसे धनहीन पुरुष और बड़ी जिल्द होनेसे देशाटन करनेवाले इसके स्वादसे वञ्चित रहते थे इस कारण तृतीयावृत्तिमें इसको दो प्रकारसे एक यह और एक सुन्दर नवीन बारीक अक्षरोंमें उत्तमोत्तम छापा है, साधारण तथा यात्री मनुष्योंके निमित्त बारीक अक्षरोंमें और सामर्थ्यवानोंको बड़े अक्षरोंमें सुलभ है। इस आवृत्तिमें अर्थोंका और भी अधिक विस्तार कर दिया गया. दो चार कथा वाल्मीकीय आदि ग्रन्थोंसे निकालकर मिला दी गयी तथा "गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका, रामरसायन" आदिके पद कवित्त उचित २ स्थानोंपर लगा दिये. पहले मुख्य अर्थका नियम रखा है, पीछे गौण अर्थ लिखे हैं सर्वत्र यह नियम रक्खा गया है. षष्ठावृत्तिमें कंक राजका भरत-शत्रुघ्नको घर ले जाने और खरमुखकेतुका उनके हाथसे वध करानेकी कथा अधिक बढ़ाई गयी, सो भी हाथों हाथ बिक गयी, तत्पश्चात् सप्तमावृत्ति छापी गयी जिसको ग्राहक गणोंने बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया, तब पाठकोंकी अधिक रुचि देखकर अत्यन्त शुद्ध और सुन्दरतापूर्वक अष्टमावृत्ति, नवमावृत्ति, दशमावृत्ति. एकादशावृत्ति एवं द्वादशावृत्ति छापी गयी हैं। दिनोंदिन इसपर अधिक रुचि देख अबकी बार अति शुद्धता और उत्तमतासे त्रयोदशावृत्ति छापी गयी, इसकी उत्तमताका निर्णय आपपर ही निर्भर है इससे अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, आशा है कि आप इस परमोत्तम त्रयोदशावृत्तिको स्वीकार कर मेरे परिश्रमको सफल करेंगे।

सज्जनोंका कृपाकांक्षी-पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद.

नवीन संस्करणकी भूमिका

प्रिय पाठकवृन्द ! यद्यपि इसके पूर्व १३ संस्करण तो टीकाकार मेरे पूज्य पिताजीके जीवन कालमें ही सं० १९७३ तक हो चुके थे, जैसा कि उनकी स्वलिखित भूमिकाओंसे सूचित है। तदनंतर और बहुसंख्यक आवृत्तियां इतनी हो चुकी हैं कि जिनकी यथार्थ संख्याका निर्धारण करना भी इस समय कठिन हो रहा है तथापि परमेश्वरकी कृपासे आज मुझे यह सूचित करते बड़ा हर्ष होता है कि १६ जौलाई १९२८ चन्द्रवारको जब मैं बम्बई आया तब श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेसाध्यक्षने मुझे आदेश किया कि, आप अपने पूज्य पिताजीकृत सटीक रामायणका पुनः संशोधन तथा परिमार्जन कर उसे जनसाधारणके लिये और भी उपादेय बना दें।

मैंने भी श्रीमान् परमहितैषी सेठजीकी इस आज्ञाको जनताके लिये बहुत हितकर समझा और इसीलिये, समग्र ग्रन्थको आद्योपान्त अवलोकन कर इसमें जहां जो कुछ अपेक्षित पदार्थ शेष रहा था उसे वहां समुचित योजना पूर्वक सुधार देनेके लिये ता. १३ अगस्त १९२८ चन्द्रवारसे रामायणके संशोधनका भार अपने हाथमें लिया।

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत रामायणकी भिन्न भिन्न टीकाकारों द्वारा बहुत सी टीकाएं हुई हैं, उनका प्रचार जन साधारणमें कितना हुआ और हमारी इस टीकाको जनताने किस प्रकार अपनाया, यह इसीसे सिद्ध हो जाता है कि जहां अन्यान्य टीकाओंके ४।५ अथवा ८।१० संस्करण हुए होंगे वहां हमारी इस संजीवनी टीकाकी पचासों आवृत्तियां हो गयी हैं, जिनके पश्चात् पुनः इसका यह नूतन संस्करण किया गया है। इस संस्करणमें जहां कहीं प्राचीन भाषा अथवा प्राचीन शैली होनेके कारण आधुनिक पाठकगणोंको जो अरोचकता विदित होती थी, उसे पूर्णतया दूर कर दी गई है। मुझे तो पूर्ण आशा है कि इस प्रस्तुत संस्करणका अवलोकन कर मेरे सुज्ञ पाठक गण विना प्रसन्न हुए न रह सकेंगे।

पूज्य पिता (विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र) कृत हमारी यह संजीवनी टीका केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बरन् देश देशान्तरोंमें भी जैसे फिज्जी (Fiji) ब्रिटिश गायना (British Guiana) दक्षिण आफ्रिका (South Africa) आदि आदि स्थानोंमें भी आदर पारही है, इससे मेरा उत्साह और भी बढ़ा और मैंने यह संकल्प किया कि इस संजीवनी टीकाको हर प्रकारसे सर्वाङ्गपूर्ण करके ऐसा सामयिक (Up-to-date) बनानेकी चेष्टा करूं कि जिसके अवलोकनमात्रसे पाठकोंकी रामायणके विषयमें और कोई आवश्यकता शेष न रह जाय। ऐसा ही मैंने उद्योग किया और परम दयालु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अनुकम्पासे अपने इस उद्योगमें बहुत कुछ सफलता भी हुई।

उपसंहारमें श्रीवेंकटेश्वर प्रेसाध्यक्ष श्रीमान् रावसाहब सेठ श्रीरङ्गनाथजी तथा सेठ श्रीनिवासजीको मैं कोटिशः हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि जो जन साधारणके उपकारार्थ ग्रन्थोंके प्रकाशन तथा उन्हें परमोपयोगी बनाने आदिमें कोई बात उठा नहीं रखते हैं। इस बार इस रामायणको और भी सर्वाङ्गसुन्दर बनाकर सोनेमें सुगन्धवाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ की है।

अतः हमें आशा है कि रामायण प्रेमी पाठक जन हमारी इस संजीवनी टीका रामायणको ग्रहण कर हमारे इस उद्योग और प्रकाशकके अद्वितीय उत्साहको सफल करेंगे।

यह जो नया संस्करण आपके सम्मुख उपस्थित है इसके विषयमें अधिक कहना मानों सूर्यको दीपक दिखाना है, क्योंकि इसके अवलोकनसे स्वयम् पता लग जायगा कि इसमें क्या क्या नवीनताएं समाविष्ट की गयी हैं, अमृतके गुण वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, उसका पान करनेसे ही उसका अलौकिक गुण प्रगट होता है, बस, इसी प्रकार इस नवीन संस्करणको भी समझिये।

तथापि अन्तमें मैं आप महानुभावोंसे प्रार्थना करता हूं कि जहां कहीं, मेरे संशोधनमें दृष्टिदोष आदिसे कोई त्रुटि रह गयी हो अथवा कोई मात्रा अनुस्वारादि चिह्न इधरके उधर लग गये हों तथा छापेकी भूलसे त्रुटि रह गयी हो तो उसको सुधार कर अनुगृहीत करें।

बम्बई.
शिवरात्रि ९ मार्च १९२९

कृपापात्र—
जगदीशप्रसाद मिश्र, मुरादाबाद.

नवीन संस्करण पर दो शब्द

प्रिय पाठको ! यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि महात्मा तुलसीदासजीकी "मानस रामायण" हिन्दुओंका एक अमूल्य धार्मिक धन है। रामायणमें उन धर्मोका पूर्णतया विकास है जो एक गृहस्थके लिये उपयोगी है और एक योगीके लिये वाञ्छनीय है। तुलसीकृत रामायणमें आदर्श गुरु, आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श मित्र, आदर्श स्त्री, आदर्श भृत्य और आदर्श स्वामीका जीता जागता सजीव चित्र तथा उदाहरण है, जो मनके विकारोंको दूर कर हृदयमें आत्मविकास उत्पन्न करता है। हतोत्साहीका बल, दुःखीको साहस और भक्तको ज्ञान देता है। जो मनुष्य नित्य रामायणका पाठ करते हैं उनके हृदयको पवित्र बनानेके लिये यह अमृत संजीवनी है।

हम इस समय अधिक कुछ न कहकर सिर्फ दो शब्द कह देना चाहते हैं, कि इस नवीन संस्करणको सर्वोत्तम और समयानुसार बनानेका पूर्णतया प्रयत्न किया गया है। आशा है पूर्ववत् रामायण-प्रेमी इस संस्करणको भी अपनाकर हमें और प्रकाशकको उत्साहित करेंगे जिससे हम भविष्यमें इससे भी सुन्दर संस्करण प्रकाशित कर सकें।

बम्बई.
शिवरात्रि १५ फरवरी १९३१

विनीत—
जगदीशप्रसाद मिश्र मुरादाबाद.

पारायण-विधि

बहुतसे सज्जन महाशय इस बातको पूछा करते हैं कि रामायण-पारायण जो नौ दिनमें होता है उसके विश्रामकी अवधि कहां तक हैं ? सबके जाननेके निमित्त हम दो प्रकारके विश्राम लिखते हैं एक क्षेपकसहित, और एक क्षेपकरहित; पहिचानको काण्ड और दोहेका अंक भी लिखते हैं जो हमारी शोधी सब रामायणोंमें लिखा रहता है और इस सटीकमें भी है।

दिन. क्षेपकसहित रामायणका पारायण

१. यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहेउ वृषकेतु। भरद्वाज सुनु अपर पुनि, रामजन्मकर हेतु ॥ (बा० दो० १५८)
२ देखहु रामहिं नयन भरि,तजि ईर्षा मद मोहु। लषण रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु ॥ (बा० दो० ३१०)
३ मंगल समय सनेह वश, शोच परिहरिय तात। आयसु दीजिय हर्षि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥ (अ० दो० ७७)
४ तेहि वासर बसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ। रामदरसकी लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥ (अ० दो० २५५)
५ हारि परा खल बहुत विधि, भय अरु प्रीति दिखाय। तब अशोक-पादप तरे, राखेसि जतन कराय ॥ (आ० दो० ५०)
६ सुन्दरकाण्डकी पूर्ति.
७ देत अनल ज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगि जाय। लखी न काहू जात सो, सुरपुर पहुँची धाय ॥ (लं० दो० १३७)
८ लंकाकाण्डकी पूर्ति.
९ उत्तरकाण्डकी पूर्ति.

क्षेपकरहित रामायणका पारायण

१ हिय हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान। बहु विधि उमहि प्रशंसि तब,बोले कृपानिधान ॥ (बा०) प्रारंभसे यहांतक
२ शतानन्दपद वंदि प्रभु, बैठे गुरुपहँ जाय। चलहू तात मुनि कह्यो तब, पठवा जनक बुलाय ॥ (बा०) "
३ कीन शौच सब सहज शुचि, सरित पुनीत नहाय। प्रातक्रिया करि तातपहँ, आये चारिउ भाय ॥ (बा०) "
४ श्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुखमा ऐन। शरद-शर्वरी-नाथ मुख, शरद-सरोरुह नैन ॥ (अ०) "
५ रामशैल शोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम। तापस तप फल पाय जिमि, सुखी सिराने नेम ॥ (अ०) "
६ हारि परा खल बहुत विधि, भय अरु प्रीति दिखाय। तब अशोक पादपतरे, राखेसि जतन कराय ॥ (आ०) "
७ कह मारुतसुत सुनहु प्रभु,शशि तुम्हार प्रियदास। तव मूरति तेहि उर बसति, सोइ श्यामता भास ॥ (लं०) "
८ जहँ तहँ धावन पठै पुनि, मंगल द्रव्य मँगाय। हर्षसमेत वसिष्ठपद पुनि शिर नायउ आय ॥ (उ०) "
९ कामिहि नारिपियारिजिमि,लोभिहि प्रियजिमिदाम। तिमि रघुनाथनिरंतर प्रियलागहु मोहिराम ॥ (उ०) "

क्षेपकरहित दोहे चौपाई आदिकी गिनती

काण्ड.	श्लोक.	चौपाई	छन्द.	दोहा	सोरठा.
बाल.	७	१४८६	५२	३५८	३६
अयोध्या	३	१३०४	१३	३१४	१३
आरण्य	२	२५८	३२	४९	८
किष्किन्धा	२	१४६	३	३१	३
सुन्दर	३	२६३	६	६२	१
लंका	३	५५२	६६	१४७	९
उत्तर	७	५९७	३५	२०६	१६
जोड	२७	४६०६	२०७	११६७	८६ (ग्रन्थसंख्या श्लोकरूपसे १०००१ है)

टीकाकारस्य वंशपरिचयः

आसीत्पुरा धर्मभृतां वरिष्ठः कात्यायनो नाम मुनिर्महातपाः ॥ गोत्रे तदीये गुरुभक्तियुक्तश्चिम्मन्माणीर्मिश्र इति प्रसिद्धया ॥ १ ॥ तस्य सर्वगुणोपेतः सर्वलक्षणलक्षितः। विद्याविनयसम्पन्नश्शीलाचारपरायणः ॥ २ ॥ तेजस्वी नीतिमान्वाग्मी विज्ञानी भ्रातृवत्सलः। भ्राता शास्त्रेषु निपुणो मोनीमणिरुदारधीः ॥ ३ ॥ सुठियांयवासी विद्वान्सोदरेण व संगतः। ग्रामं त्यक्त्वा ह्युदारात्मा पाटलीपुत्रमागतः ॥ ४ ॥ तत्राम्रपनसैः पूगैर्लवलीकोलिदाडिमैः। जम्बूदुम्बरजम्बीरैः पिचुमन्दहलिप्रियैः ॥५॥ शिरीषपीलुमन्दारैः प्रियालसरलासनैः। नानापुष्पलतायोषिदालिङ्गनविजृम्भितैः ॥ ६ ॥ भ्रमद्भ्रमरझङ्कारैः कूजत्कोकिलसेवितैः। नानापक्षिकुलाकीर्णैर्नृत्यद्बर्हिणमण्डलैः ॥ ७ ॥ फलैः प्रत्यग्रकुसुमैर्विहितातिथिसत्क्रियैः। चम्पकाद्यैश्च तरुभिः समन्तात्परिवारिते ॥ ८ ॥ विद्वज्जनसमाकीर्णे धनधान्यसमन्विते। भासुरे प्रमदारत्नरम्यवेश्मविभूषिते ॥ ९ ॥ प्रभाते गोपुरन्ध्रीणां घटोध्नीनां सहस्रशः। स्तन्यपानेच्छुवत्सानां हम्भारावसमाकुले ॥ १० ॥ छात्राणां पर्णशालायां

नानाशास्त्रेष्वधीतिनाम् । युक्तैः परस्परालापैर्मुखरीकृतदिङ्मुखे ॥ ११ ॥ न्यवसत्पाटलीपुत्रे नगरे स्वर्गसन्निभे । गुणवान्धनवान्वाग्मी विप्रवंशसमुद्भवः ॥ १२ ॥ कान्यकुब्जो महातेजा मिश्रचिम्मन्मणिर्महान् । देवदेवं महादेवं पूजयन्पार्वतीपतिम् ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रो महाप्राज्ञो गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । वैद्यशिवदयालुर्वै विक्रमार्जितसद्यशाः ॥ १४ ॥ सुशासकैर्महाप्राज्ञै राजपुंभिश्च संगतः । त्यक्त्वा स्वनगरं दिव्यं सभार्यो मित्रवान्गुणी ॥ १५ ॥ प्राप्तो रम्यतमं स्थानं मुरादाबादपत्तनम् । जनयामास पुत्रांस्त्रीन्सद्गुणालंकृतान्वशी ॥ १६ ॥ ज्येष्ठो हरदयालुश्च सुखानन्दश्च मध्यमः । कनिष्ठो झब्बिलालश्च शास्त्रविन्निपुणः कविः ॥ १७ ॥ यं सर्वविद्या विशदाः कलाश्च विपुलाशयम् । विविशुः सरसोदारा महोदधिमिवापगाः ॥ १८ ॥ मिश्रः सुखानन्दबुधो वरिष्ठो जातः स येनात्र धरासुरेषु ॥ लब्धः प्रभावेण निजेन मानः काश्मीरपुञ्जाधिपतिप्रदत्तः ॥ १९ ॥ लब्ध्वा पुना रामपुरेशदत्तं मानं स्वयं चादृतवान्द्विजान्यः ॥ रामायणं भागवतं च गायन्हरिप्रियोऽभूत्स विशुद्धबुद्धिः ॥ २० ॥ ज्येष्ठः सुतस्त्वहं तस्य पुण्यपुञ्जस्य धीमतः । नाम्ना ज्वालाप्रसादो वै रामायणपरायणः ॥ ॥ २१ ॥ कनीयानात्मजस्त्वस्य बलदेवप्रसादकः । सर्वविद्यासु निपुणः कन्हैयालाल इत्यपि ॥ २२ ॥

श्रीमज्ज्वालाप्रसादस्य विद्यावार्धेरथात्मजः । ज्येष्ठोऽहं जगदीशाख्यो महावीरो ममानुजः ॥ २३ ॥ जगदीशप्रसादोऽहं पितृभक्तिपरायणः । नित्यं रामायणाभ्यासी सदाराधनतत्परः ॥ २४ ॥ बलदेवप्रसादस्य कन्यैका शुभलक्षणा । "वीरबालेति" सञ्जाता विदुषी गुणसुन्दरी ॥ २५ ॥ कन्हैयालालदौहित्रो नाम्ना श्रीनन्दलालकः । बुद्धिमान् गुणवान् वाग्मी सर्वेषां हितकारकः ॥ २६ ॥ महावीर प्रसादस्य, कुलदेव प्रसादतः । पुत्रः शिवकुमाराख्यः, संजातो वंश वर्द्धनः ॥ २७ ॥

गोस्वामीजीका लोकोपकार और आजकलके महात्माओंकी कृतज्ञता

जैसी धार्मिक शिक्षा और सद्गृहस्थका बर्ताव, माता पिता कुटुम्बीजनोंके साथ सहृदयता, मर्यादाकी स्थापना, आदर्श मनुष्य बननेका विज्ञान इस समय इस रामायणसे प्राप्त हो रहा है वैसा ग्रन्थ आज भारतमें दूसरा नहीं है. संपूर्ण सद्गुणोंकी शिक्षा इसके द्वारा प्राप्त हो सकती है, बहुत कहनेसे क्या है जितना देशका सुधार, मर्यादाकी स्थिति और धर्मस्थापनका कार्य इस रामायणके द्वारा हो रहा है वह कार्य इस समय एक करोड शिक्षित सभ्य भी सम्पादन नहीं कर सकते, सत्य तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदासका भारतवर्ष ऋणी है और होना भी चाहिये, जो भारतमाताके सच्चे सपूत हैं वह ऐसा ही मानते हैं और इस बातको ज्ञाता लोग मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं कि भारतवर्षमें गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी हिन्दी–भाषा–प्रचारके लिये सूर्य और चन्द्रमा हैं गोस्वामीजीने पूर्वी भाषामें रामचरितामृतकी सरिता बहाई है और महात्मा सूरदासजीने अतिमधुर व्रजभाषामें कृष्णचरितामृत पिलाकर जिज्ञासुओंका लोक परलोक बना दिया है, सहस्रों कवि इनका अनुकरण करके अपनी वाणीको चरितार्थ कर चुके हैं । इतना सब कुछ होनेपर भी कुछ लोगोंके मस्तिष्कमें इन महात्माओंकी शिरमौरता खटकती है. यद्यपि गुसाईंजीको इस बातका पूरा अनुभव था और उन्होंने बन्दनाके चौथे दोहेके उपरान्त ही इस बातका परिचय दे दिया है कि मेरी कवितामें भी बहुतसे लोग दोष देखेंगे मेरे उद्देश्यपर विचार नहीं करेंगे, यह बात इस समय ठीक ही दिखाई दे रही है, इस समय कुछ लोग हिन्दी भाषाकी ठेकेदारी कर रहे हैं. उनका ढंढोरा है कि हमारे सिवाय कोई हिन्दीकी बात करेगा तो बेतरह धरा जायेगा हम, हमारे कुटुम्बी मित्रोंके सिवाय कोई इस मामलेमें दखल न देना. हम भाषाके तो क्या वरन् संस्कृतके जगन्मान्य कवियोंकी मट्टी खराब कर सकते हैं, व्रजभाषा तोड़ फोड़ कर निकाल दी जायगी, पूर्वी भाषाका ध्वंस किया जायगा खड़ी बोली खड़ी की जायगी. जो इसमें सम्मत न होंगे उनसे खड़े खड़े बात होगी । " तुलसीदासकी कविता " बड़ी भोंड़ी है, वह संस्कृतके बड़े पण्डित नहीं थे. वह पहले दर्जेके कवि नहीं हो सकते वही दशा सूरदासजीकी है. उनके भी बहुतसे पद बड़े भद्दे हैं, पहले दरजेके कवि नहीं हो सकते. कोई २ तो रामायणपर ऐसे बिगड़े हैं कि " काकभुशुण्डिजीकी वाणीसे मनुष्योंको क्या लाभ " यहांतक कह उठे हैं.वह कविता ठीक नहीं है. हमारे अक्षर पद ही संसार भरमें सबसे सरस निर्दोष और अलंकारसम्पन्न हैं. शेष सबकी वाणी सदोष हैं. यह कलिकालका रंग नहीं तो और क्या है ? यही रीति पुरातन कवियों और महात्माओंके ऋण चुकानेकी है ? इसी प्रकारसे इन लोगोंकी कलँगी बढ़ेगी यही इनकी कृतज्ञता है जिन्होंने कभी पचास पदोंकी निर्दोष रचना नहीं की. जिन्होंने सौ दोसौ चौपाई भी नहीं लिखीं, जिनकी कविता गुसाईंजी और महात्मा सूरदासजीके एक पदकी भी समता नहीं कर सकती वह आज बड़े २ हरिभक्त महात्माओंकी कविताकी समालोचना कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि ऐसा करनेसे और जगह नहीं तो अपने मित्रमण्डलमें तो इन कवियोंसे हम बड़े गिने जायँगे और समालोचना भी कैसी कि दोष ही दोष दिखाये जायँ, गुण तो मानो है ही नहीं, धन्य न्याय ! तुम भी चरितार्थ हुए, यही दशा कविकुलगुरु कालिदासजीकी कविताके विषयमें देखी जाती है, जिनकी कविता विश्वमोहनी है यदि उनके दोषोंका भण्डार देखना हो तो सरस्वती देवीके सन् १९११ के वेषको देखिये कि उनके श्वेत वस्त्रोंपर कालिदासके दोषोंकी कालिमा कितनी बढ़ गयी है कि सफेदी बहुत ही कम है और प्रतिमास बढ़ती ही जाती है और वाग्देवीका अब स्वभाव भी संगतिके कारण ऐसा बदल गया है कि, पुरातन महात्मा स्वदेशानुरागी कविजनोंके दोषोद्घाटनके सिवाय मानों अब उनके मस्तिष्कमें और कुछ है ही नहीं, सत्य बात कहनेसे बहुतोंके मन बिगड़ उठते हैं इसलिये गुसाईंजीने अपने अनुभवको लिखकर प्रार्थना कर ली है कि,–

जानु पाणि युग जोरकर, विनती करहुँ सप्रीति ॥

कृपाभाजन–पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र.

विज्ञप्ति

सर्व सज्जन महाशयोंको विदित हो कि, यह "रामायणकी" टीका अनेक ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे की गयी है कोई अर्थ अपनी युक्ति मिलाकर ऐसा नहीं किया गया है कि जिसका आशय मूल ग्रन्थमें विद्यमान न हो, जो जो आशय वेदादि शास्त्रोंके इसमें आये हैं, उन सबका विवरण विशेषतासे लिख दिया है, भाषा ऐसी रक्खी है जो प्रत्येक मनुष्यकी समझमें आ जाय, आज दिन जितनी टीकायें तुलसीदासकृत रामायणकी विद्यमान हैं इससे अधिक प्रायः उनमें अर्थ नहीं मिलेगा, कारण कि इसमें ऐसी रीतिसे लिखा है कि जितने अर्थ हैं वे संक्षेपसे सब ही दिखला दिये हैं, बहुत कहनेसे क्या है, जो रामायणसम्बन्धी कथायें हैं वे सब इसी में मिल सकती हैं और टीकाओंमें नहीं मिलेंगी, अब तक जो टीकायें महात्माओंने छापकर प्रसिद्ध की हैं मैं उन सब महात्माओंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देता हूं, कि उन्होंने रामभक्तिको जगतभरमें विस्तारित करके यश लाभ किया है, और यह टीका गोसाईं तुलसीदासजीकी हस्तलिखित राजापुरकी पुस्तकानुसार छपी हुई पुस्तकें और कई प्रकारके मूल तथा सटीक प्राचीन लिखित पुस्तकें एकत्रित कर क्षेपकों समेत रची हैं, जिससे तुलसीकृत रामायणकी यथार्थता सम्यक् प्रकारसे विदित होती है; परन्तु विशेष आश्चर्य श्रीशुकदेवप्रसादजीकी सटीक रामायण देखनेसे होता है कि उन्होंने गणितको काममें लाकर तुलसीदासकृत रामायणकी सैकड़ों चौपाई जो यथार्थ तुलसीदासकृत हैं सो निकाल डालीं और लिखा है कि यह क्षेपक हैं, यह वार्ता गोसाईंजीकी लिखित रामायण रहते कैसे इनकी बुद्धिमें समायी जिससे अनेक मनुष्य भ्रममें पड़ रहे हैं, इसके सिद्ध करनेको तुलसीदासजीकी रामायणके क्षेपक दूर कर देखो, ऐसी टीका करनेसे ग्रन्थकारने क्या लाभ समझा है सो विदित नहीं होता।

शेषमें सब सज्जन महात्माओंसे प्रार्थना है कि यदि इस टीकामें कोई वार्त्ता रह गयी हो तो सूचित कर दें, वह पुनः सुधार दी जायगी। आप सज्जन महाशय भक्तिपक्ष अवलम्बन कर इसे पढ़ेंगे तो इसका गुण विदित हो जायगा और जो काव्यरीतिसे पढ़ेंगे उन्हें छन्दप्रबन्ध और रचनाका गुण प्रकट होगा, बहुत क्या भावानुसार यह सब कुछ फल दे सकती है।

महात्माओंका चरणरेणु–पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र

धन्यवादाः

सन्तु बहवो धन्यवादाः समस्तभक्तजनसाहाय्यकराय आदिकवये वाल्मीकये श्रीमते गोस्वामितुलसीदासाय च, श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासवदनारविन्दसंचरच्छुद्धश्रीसीतारामचन्द्रविमलगुणगणवर्णनपरायणसरस्वतीसारसर्वस्वनर्मविदे मुरादाबादनगरनिवासिने ज्वालाप्रसादमिश्रशर्मणे पण्डिताय सकलसद्गुणमण्डिताय च यत् श्रीतुलसीदासकृतं छन्दोदोधकसपादीचतुष्पादीसोरठाप्रभृतिचित्रवृत्तनिबद्धं रामायणमितः पूर्वं समस्तवाचकसद्भक्तासाधारणजनानामर्थज्ञाने दुर्बोधमासीत् तदेतत् श्रीरामायणमनेन सर्वेषां सुखबोधाय सरलया सुबोधया, समलंकृत्यास्माकं समीपे मुद्रणार्थं प्रेषितम्। सर्वोऽप्यधिकारश्चास्मभ्यं दत्तः। तदस्माभिर्बहुमानपुरस्सरं स्वीकृत्य आस्माकीने "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्। अनेन सविस्तरभाषाटीकासमन्वितेन श्रीतुलसीदासगोस्वामिविरचितेन श्रीरामायणेन सर्वेऽपि सद्गृहस्थाः सद्भक्ताश्च सुखेन श्रीरामचरितं जानीयुः भक्तिं च पोषयेयुः, आनन्दरसं च लभेरन्। इत्येषा हि सर्वजनोपकारपरंपराऽनेन पण्डितेन मनोवाक्कायकर्मभिराचरिता अतो भगवान्रामचन्द्र एनं पूर्णमनोरथं दीर्घायुषं शश्वदनेकलोकोपकारकं च विदध्यादित्याशासे।

कोटिशः धन्यवाद आह्लादसे उस परब्रह्म परमेश्वर सच्चिदानन्द आनन्दकन्द जगद्वंद्यको है कि जिसकी लवलेशमात्र कृपाकटाक्षसे इस असार संसारमें यह सर्व सुजनहितकार भवसागरपारकरनहार रामभक्तिस्वरूपमुक्तिपरायण श्रीमद्रामायणग्रंथ वाल्मीकिमहामुनिके द्वारा इस जगत्में प्रकट हुआ. इसके पश्चात् इस कलिकालके लोगोंका उद्धार करनेके हेतु वाल्मीकिमुनिके अवतारभूत श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने सुन्दर ललित वृत्तोंमें भाषारामायण प्रसिद्ध किया, तो भी इस भाषाको अच्छी रीतिसे नहीं समझनेवाले सर्व भगवद्भक्त भाविक सर्व सद्गृहस्थ लोगोंके वास्ते गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायणके सुन्दर सुखद पद–पदका भाषातिलक मुरादाबादनिवासी श्रीमद्विद्वद्वर विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रजीने अत्यन्त सुमधुर सरल भाषामें हमारी सफल प्रार्थना अंगीकार कर किया है और श्रीमान्ने रजिस्टरीका हक भी हमको सदाके लिये प्रदान कर दिया है। यद्यपि यह ग्रंथ स्वतः ही सुहावन मनभावन सुखउपजावन त्रयतापनशावन रामयशविमलपावन है, तो भी श्रीयुक्त पंडितवरने अपनी सुबुद्धिद्वारा हरिभजन भक्तोंकी मुक्तिकी निसैनी लगाई है, पाठकवर्ग! "हाथ आईनाको आरसी क्या है, कलिमल धो जावे बात सच्ची तो यह है" विद्वद्वर पंडितजीने मूलभूत संस्कृत श्रीवाल्मीकीय रामायण समग्र ग्रंथकी भी शुद्ध, सरल, सुबोध और पौराणिकोपयोगी भाषाटीका निर्माण की है, जो कि सांप्रत हमारे **"श्रीवेङ्कटेश्वर"** यन्त्रालयमें छपके तैयार हुई है, ऐसे ऐसे इनके अतिप्रशंसनीय कार्य सर्व जगत्के महोपकारक हैं, अब विशेष प्रशंसा करना श्लाघामात्र है। ग्राहकगण शीघ्र इस अमूल्य ग्रन्थको लेकर सफलता प्राप्त करें, इसमें और भी बहुत से मनोहर मनोविलासिनी सुन्दर क्षेपक कथायें प्रकाशित की गयी हैं। छत्रबन्धादि चित्र प्रश्नावली व माहात्म्य कथा तथा रामाश्वमेध लवकुशकांडका सुन्दर अर्थ किया गया है. इसके सिवाय शब्दार्थकोष, रामपञ्चायतन व तुलसीदास व रामजन्म बाललीलाके चित्र फोटोग्राफानुसार अत्यन्त सुन्दर लगाये गये हैं, अब ग्रन्थकी उत्तमता हम क्या कहें? ग्रन्थ ही आपके सम्मुख है, देख लीजिये और ईश्वर इस सुयोग्य कार्यकर्ताको अतुलकीर्तिसे परिपूर्ण कर दीर्घकाल तक चिरायु करे जिससे इसी तरह सदा ही लोकोपकार होता रहे-दर्शकोंके दर्शनार्थ श्रीमान् मिश्रजीका दर्शनीय चित्र भी दरसाया गया है।

विद्वज्जन कृपाकांक्षी--खेमराज श्रीकृष्णदास.

श्रीतुलसीदासजीकृत रामायणके उपदेश

पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द राम घनश्यामने अवतार धारण कर जगत्के समस्त जनोंके उद्धारके निमित्त अनेक सारगर्भित उपदेश किये हैं. उनमेंसे थोड़ेसे उपदेश दिग्दर्शनमात्रके लिये दिखाये जाते हैं ।

राजा दशरथकी रानियोंका व्यवहार कैसा था और राजा दशरथका व्यवहार कैसा था कि, दिव्यपायसका यथायोग्य विभाग अपनी तीनों रानियोंको कर दिया तथा समयपर अपने बालकोंके संस्कार किये, फिर विश्वामित्रके आगमनमें उनका पूरा शिष्टाचार किया यथा–"**मुनि-आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लै विप्रसमाजा**" विश्वामित्रकी शुश्रूषा, विवाहके नियम समधियोंका मिलन और बर्त्ताव जैसा होना चाहिये यह सब बालकाण्डमें दिखाया है ।

दशरथजीकी कैसी सत्य प्रतिज्ञा थी कि "**रघुकुलरीति सदा चलि आई । प्राण जाहिं पर बचन न जाई**" । पुत्रोंपर जो स्नेह था सो किस प्रकार प्रकट करते हैं–" **सब दुख दुसह सहावहु मोहीं । लोचन ओट राम जनि होहीं**" रघुनाथजीका वियोग होते ही प्राण त्याग दिये, श्रीरामचन्द्रजीके समान भावसे पिता तथा माताओंमें और भाइयोंमें कैसी भक्ति थी सो आप कहते हैं "**सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु-मातु-वचन अनुरागी ॥ भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू । विधि सबविधि मोहिं सम्मुख आजू ॥ आयसु पालि जन्म–फल पाई । अइहौं वेगहि होब रजाई ॥ मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होइँ दुख दीन। सोइ उपाय तुम करहु सब, पुरजन परमप्रवीन ।**" पतिके चरणोंमें स्त्रीको जैसा प्रेम करना चाहिये वह जानकीके वचनोंसे देखिये–"**जहँलगि नाथ नेह औ नाते । पिय बिनु तियहि तरणिते ताते ॥ तनु धन धाम धरणि पुरराजू । पतिविहीन सब शोक-समाजू ॥ दोहा–प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान । तुम बिनु रघुकुल–कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान**" इधर कौशल्याजीका धैर्य और सौतोंसे बर्त्तावका उदाहरण देखिये, रामके वन जानेपर कहती हैं–" **जो केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥ जो पितु मातु कहेउ वन जाना । तो कानन शत अवध समाना ॥ राखौं सुतहि करौं अनुरोधू । धर्म जाय अरु बंधुविरोधू ॥**" बहुओंपर सासकी प्रीति कैसी होनी चाहिये इसका उदाहरण–"**जिवनमूरि जिमि जुगवत रहेऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहेऊँ ॥ कल्पबेलि जिमि बहु विधि लाली । सींचि सनेह सुधा प्रतिपाली**" ऐसी बहूको वन भेजा, इस धैर्यका क्या ठिकाना है । उधर सुमित्राका लक्ष्मणपर जो असाधारण प्रेम था और जो रामसीतामें प्रीति थी सो देखिये "**पुत्रवती युवती जग सोई । रघुवरभक्त जासु सुत होई ॥ तुम्हरे हि भाग राम वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥ तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सब भांति सनेही ॥ जो पै सीय राम वन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥ जेहि न राम वन लहहिं कलेशू । सुत सोइ करहु यहै उपदेशू ।**" क्रोधमुखी स्त्री क्रोधके वशीभूत किस प्रकार अपना और कुटुम्बका नाश करती हैं तथा सिखानेसे कैसी दशाको प्राप्त हो जाती है इसका उदाहरण कैकेयी स्पष्ट है जो कहती है, **दोहा–" होत प्रात मुनिवेष धरि, जो न राम वन जाहिं । मोर मरण राउर अयश, अस गुनिये मनमाहिं ।**" लक्ष्मणजीकी सेवकाई और प्रेम कैसा विचित्र है । वन जानेके समय कहते हैं कि "**गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू ॥ मोरे सबै एक तुम स्वामी । दीनबंधु उर अन्तरयामी ॥**" यह जैसे रामके ऊपर प्राण निछावर करनेवाले थे सो शक्तिके लगनेमें स्पष्ट है। शत्रुघ्नजीका स्वभाव सरल और भरतजीका अनुगमन करना ही इनको इष्ट था, अब भरतकी महामहिमा कौन कह सके **न भूतो न भविष्यति**' गोस्वामीजी कहते हैं " **जो न होत जग जन्म भरतको । सकल धर्मधुर धरणि धरत को ॥**" रामको वनसे फेरनेमें कहते हैं "**कानन करहुँ जन्मभरि वासू । इहिते अधिक न मोर सुपासू ॥** " उपस्थित राज्यको त्याग श्रीरामचन्द्रजीकी खड़ाऊंको राज्यका प्रतिनिधि करके आप तपस्यामें निरत रहे और चौदहवर्षतक जैसा आचरण किया वह अलौकिक कार्य उनके सिवाय किसी इतिहासमें भी सुननेमें न आया ।

आरण्यकाण्डमें ऋषियोंका मिलन तथा प्रतिज्ञापालनका वर्णन है,सुग्रीवजीसे मित्रताके निर्वाहमें आप कहते हैं "**जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।तिन्हैं विलोकत पातक भारी॥**"और इसीके अनुसार वालिको मार सुग्रीवको राज्य दिया,और सुग्रीवजीने अठारह पद्म वानरोंकी सेना लेकर लंकामें घनघोर चढ़ाई की, और रघुनाथजी दिखाते हैं कि आपत्कालमें क्या क्या नहीं किया जाता अंगदकी स्वामिभक्ति और लंकामें रावणसे कथोपकथन और दौत्यकर्म कैसा अद्भुत है, सो देखनेसे ही विदित होता है ।

महावीरजीके विषयमें वर्णन करना बाहुल्यमात्र है, सेवाधर्म और जितेन्द्रियताकी पराकाष्ठा है, सागरका लंघन, रावणके अन्तःपुरमें विरक्ततासे रावणकी स्त्रियोंमें सीताकी खोज, जानकीको धैर्य देना, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर रात्रिमें ही संजीविनी लाना इत्यादि इनके कार्य अलौकिक साहस के हैं और स्वामी सेवक भावकी पूर्णताके लिये हुए हैं । इनके कार्यसे सातिशय सन्तुष्ट हो श्रीरामचन्द्रजी कहते

हैं–"सुनु कपि तोहिं समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥ प्रति उपकार करौं का तोरा के सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥ प्रभुपद पंकज कपिकर शीशा। सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा॥" आगे जो महावीरजीने मांगा है सो देखिये-"नाथ भक्ति तव अति अनपायिनि। देहु दया करि शिवमनभायिनि॥" उधर जानकीका आशीर्वाद है कि "अजर अमर गुणनिधि सुत होहू। करहिं सदा रघुनायक छोहू॥" इसीसे राममंदिरमें महावीरजी अवश्य स्थापित रहते हैं।

रघुनाथजीने प्रेम जानकर शबरीके यहां फलाहार किया, जटायुको सुगति दी तथा शंकरकी भक्तिमें निर्विवाद आप कह उठे हैं कि "करिहौं इहां शंभुथापना। मोरे हृदय परम कल्पना॥ दोहा–शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास। ते नर करहिं कल्पभर, घोरनरकमहँ वास॥ जो रामेश्वरदर्शन करिहैं। सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं॥ जो गंगाजल आनि चढ़ाई। सो सायुज्यमुक्ति नर पाई॥" सागरमें पुल पांच दिनमें बँधा लेना, विभीषणको शरण देना, जानकीको शुद्ध जानकर भी सबके सम्मुख अग्निमें रखकर शुद्ध करना, अन्तमें अयोध्यावासियोंको अपने साथ साकेत लोकको लेजाना। लक्ष्मणके निमित्त विलाप करते हुए कहना "अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता॥" और लक्ष्मणके जागनेपर अद्भुत प्रसन्नता, विभीषणके ठहरनेको कहनेपर भी भरतकी यादमें ठहरनेकी इच्छा न करना, इत्यादि जो कुछ रामचन्द्रजीके वचन और कर्तव्य हैं सो सब ही दूसरोंको शिक्षाके निमित्त हैं। लक्ष्मणने माताकी शिक्षाको कैसा निबाहा कि-जब रामचन्द्रजी सुग्रीवके दिये जानकीके भूषण वस्त्र दिखाकर लक्ष्मणसे पहँचवाने लगे तब लक्ष्मणजी बोले, श्लोक–"केयूरे नैव जानामि नैव जानामि कुण्डले। नूपुरौ तु विजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥" महाराज! मैं जानकीजीके बाजूबन्द, कुण्डल नहीं जानता, मैंने कभी महारानीकी ओर देखा ही नहीं, मैं केवल उनके चरण भूषणको पहचानता हूँ, जो कि चरणोंके प्रणाम करते समय मैंने देखे हैं। रावणका कार्य सर्वसाधारणको निन्दनीय प्रतीत होता है, पर यह कार्य उसने तरनेके ही लिये किया था-"तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पदसरोज मनमाहीं॥ सुररञ्जन भञ्जन महिभारा। जो जगदीश लीन्ह अवतारा॥ तो मैं जाय वैर हठि करिहौं। प्रभुशरप्राण तजे भव तरिहौं॥" और जानकीहरणमें–"सुनत वचन दशशीश लजाना। मनमहँ चरण वंदि सुख माना॥" कारण कि इसका कुल उत्तम था, जैसा कहा है–"उत्तम कुल पुलस्त्यकर नाती। शिव विरंचि पूजे बहुभांती॥" इसने अपने शिर काटकर शंकरको चढ़ाकर प्रसन्न किया। जानकीको अपने घरसे अलग अशोकवाटिकामें स्थापित किया था, बुद्धिमानी और शूरता इतनी थी कि, घर बैठे रामचन्द्रजीको बुलाकर अपने सब परीवारको मुक्त कराकर पीछे आप भी मुक्त हो गया।

महात्मा विभीषणने यह बात अपने चारित्रसे विदित कर दी कि, जो अनीति करे, चाहे अपना भाई भी हो उसे त्याग दे और जहाँ हरिभजन प्राप्त हो वहां ही गमन करे इत्यादि। विशेष बढ़ानेकी आवश्यकता क्या है? इतना ही कहना बहुत है कि रामायणका प्रत्येक पद ही उपदेशसे भरा पड़ा है। इसके अनुसार थोड़ा भी आचरण करनेसे मनुष्य चार पदार्थोंका भागी होता है, यह सब चारित्र गोसाईजीने इस प्रकारसे लिखे हैं कि पाठ करनेमें वह सब बातें नेत्रोंके सामने दिखायी देती हैं और सहस्र बार पढ़नेसे मन यही चाहता है कि बराबर पाठ करते ही रहें। इसमें सरलता भी इतनी है कि प्रत्येक मनुष्य सरलतासे इसका अर्थ जान सकता है और गम्भीरता और गूढ़ार्थता भी इतनी है कि विद्वानोंके छक्के छूट जाते हैं।

इस टीकामें सरलार्थके सिवाय चतुर और विद्वानोंके मनोरंजन और ग्रंथकी गौरव-रक्षाके निमित्त रसभावपूर्ण गूढ़ार्थ इत्यादिको भी खोला है, जिसको देखकर सहस्रों महोदयोंने प्रशंसा की है। जैसे और ग्रंथोंको गुरुसे पढ़नेकी आवश्यकता होती है इसी प्रकार यह रामायण भी गुरुमुखसे पढ़ने योग्य है, तभी इसका चमत्कारिक अर्थ जाना जाता है। मैंने महात्माओंसे पढ़कर ही इसमें अर्थ लिखे हैं और यही कारण है कि जिन्होंने कभी सत्संग नहीं किया, गुरुसे रामचरित्र नहीं पढ़ा, केवल दूसरोंके टीके देखकर नकल उतारी हो, वे किस प्रकार गंभीर और गूढ़ार्थको जान सकते हैं फिर उनकी समझमें वह भाव न आवे तो क्या आश्चर्य है? हां ऐसे पुरुषोंकी यही मसल है कि अंगूर हाथ न लगे तो खट्टे बता दिये। और जो सब अर्थ सञ्जीवनी टीकाके लें तो पूरी नकल हो जाती है. उधर ग्रंथ बढ़ा जाता है तब क्या अन्तमें, खट्टे अंगूरोंकी कहावतसे ही पीछा छुड़ा लिया। कहा भी है-"परहितघृत जिनके मन माखी" इत्यादि ऐसे नकल करनेवालोंके निमित्त विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं, केवल इतना कहना ही बहुत है कि रामचारित्ररसामृत-सिन्धुमें गोता लगानेवाले ऐसे अधूरे अनुवादकोंसे सावधान रहें।

Pt. Jwala Prasad Missra,
Dindarpura
Moradabad
U. P.

सज्जनोंका कृपाकांक्षी–
ज्वालाप्रसाद मिश्र,
दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

श्रीगणेशाय नमः

तुलसीकृत रामायणकी विषयानुक्रमणिका

इति ।

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृत रामायणके चित्रोंका सूचीपत्र

श्रीमग्दोस्वामि तुलसीदासजी द्वारा रामायण - प्रवचन

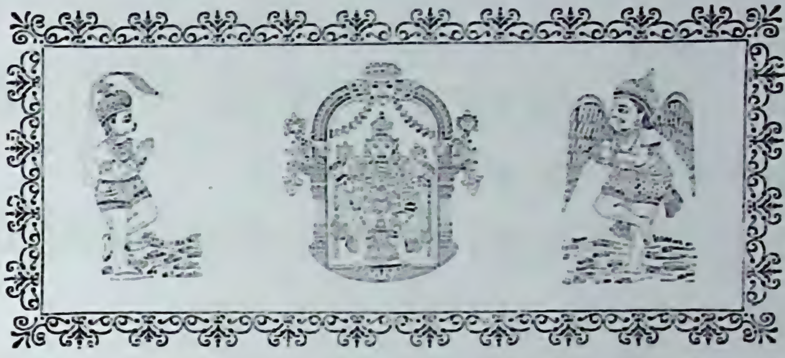


सादर शिवहिं नाय माथा । वरणौं विशद राम गुण-गाथा ।।
सम्वत् सोरह सौ इकतीसा । कहौ कथा हरिपद धरि सीसा ।।
(प्रश्नावली पृ. १)

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा रामायण प्रवचन (फा. २ जी.च)

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

श्रीमद्वेङ्कटेश्वराय नमः



प्रश्नावली

दोहा–रामचन्द्रको नाम ले, सकल सुमंगल सार ।
विविध विषयके प्रश्न सब, यासे लेहु निकार ॥

विधि–जिसको अपनी कार्यसिद्धिके विषयमें प्रश्न करना हो, वह श्रीरामचन्द्रका स्मरण कर किसी कोठेमें हाथ धरे और उस अक्षरको छोड़कर आगे नौवें कोठेके अक्षरको लिखे फिर नौवें कोठेके अक्षरको लिखे, इसी प्रकार सम्पूर्ण नौवें कोठेके अक्षरोंको लिखनेसे चौपाई बन जायगी, फिर जो उस चौपाईका अर्थ हो वही प्रश्नका उत्तर जानना । शुभमस्तु ।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ॥
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥१॥
श्रीरामरामरामेति ये जपन्ति च सर्वदा ॥
तेषां भुक्तिश्चमुक्तिश्च भवत्येव न संशयः॥२॥

सु	प्र	उ	बि	हु	मु	ग	ब	सु	नु	बि·	घ	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रे	बस	हैं	मं	ल	ण	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	इ	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जै	य	ग	म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	र	स	इ	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	ा	र	र	म	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	हीं	ा	ा
ता	रा	रे	री	हृ	का	फणि	खा	जु	ई	र	रा	पू	द	ल
मणि	को	जो	गो	ण	म	ज	य	ने	स	क	ज	प	स	ल
हि	रा	मि	म	रि	ग	द	नू	प	म	खि	जि	नि	त	जं
सिं	सु	ण	न	को	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	निं	म	ल	ा	ण	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढ़ा	र	ल	का	ये	तु	र	ण	नु	व	थ
सि	हु	सु	म्ह	र	र	स	हि	र	त	न	ख	ा	ा	ा
र	सा	ा	ला	धी	ा	री	जा	हू	हीं	खा	जू	ई	रा	रे

रामनामपरा ये च घोरेकलियुगे द्विजाः ॥
त एव कृतकृत्याश्च तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥३॥
रामनाम जपतां कुतो भयं,
सर्वतापशमनैकभेषजम् ॥
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ,
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥४॥

प्रश्न करने पर जो चौपाई निकलती है सो कहते हैं और फल भी लिखते हैं–

सुनु सिय सत्य अशीश हमारी । पूजहि मन कामना तुम्हारी ॥१॥
प्रश्न उत्तम है कार्य सिद्ध होगा ।

प्रविशि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥२॥
भगवान् का स्मरण कर कार्य आरम्भ करो, सिद्ध होगा ।

उघरे अंत न होय निबाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥३॥
मध्यम फल; इस कार्य के अन्तमें भलाई नहीं है ।

विधिवश सुजन कुसंगति परहीं । फणिमणिसम निजगुण अनुसरहीं ॥४॥
खोटे मनुष्यों का संग छोड़ो, तो विलम्बसे कार्य होगा ।

हुइहै सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावहि शाखा ॥५॥
भगवान्के ऊपर कार्य छोड़ो, होने में सन्देह है ।

मुद मङ्गलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथ राजू ॥६॥
प्रश्न अच्छा है कार्य बनेगा ।

गरल सुधा रिपु करै मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥७॥
प्रश्न उत्तम है शत्रुसे जय होगी ।

वरुण कुबेर सुरेश समीरा । रणसन्मुख धरि काहु न धीरा ॥८॥
फल मध्यम है, कार्यसिद्धिमें संदेह है ।

सुफल मनोरथ होइ तुम्हारे । राम लषण सुनि भये सुखारे ॥९॥
प्रश्न अच्छा है, मनोरथ सिद्ध होंगे, धनकी प्राप्ति होगी ।

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, खेतवाड़ी, बम्बई.
Khemraj Shrikrishnadas,
Proprietor "Shri Venkateshwar" Steam Press, Khetwadi BOMBAY

मंगलाचरण

दोहा-जिहिके सुमिरण ध्यानते, बनत सकल शुभ काज ।
सो गणेश वाणी सहित, ज्ञान दीजिये आज ॥१॥
सिद्धिसदन आनँदकरन, मंगल मोद निधान ।
लक्ष्मण अरु सीता सहित, रामचन्द्र भगवान ॥२॥
भरत शत्रुसूदन सहित, द्रवहु सो कृपा-अगार ।
चरण कमल अति प्रेमसों, वन्दौं वारंवार ॥३॥
वन्दौं पद धरि धरणि शिर, महावीर हनुमान ।
बल बुधि विद्या दीजिये, निज जन मन अनुमान ॥४॥
रामायणके तिलकमें, होहु सहायक आय ।
चूक परै जो अर्थमें, दीजै आप बताय ॥५॥
कविता तुलसीदासकी, गूढ़ विचित्र महान ।
निजमतिसों टीका करहुँ, आदर करहिं सुजान ॥६॥
रामायणके तिलक हैं, यद्यपि बहुत अनूप ।
तद्यपि मैं निज प्रीतिवश, लिखौं बुद्धि अनुरूप ॥७॥
जो पदार्थ भावार्थ अरु, गूढ़ यथामति पाय ।
सो वर्णत सब तिलकमें, लखहु सुजन चितलाय ॥८॥
मिश्र सुखानँदको सुवन, मैं ज्वालापरसाद ।
दीनदयालुपुरे बसत, नगर मुरादाबाद ॥९॥
श्रीकृष्णदासात्मज, क्षेमराज सुखदान ।
तिनको कीनी भेंट यह, अनुपम ग्रन्थ महान ॥१०॥
यह टीका संजीवनी, सुख उपजावनहारि ।
पढ़ै सुनै जो प्रेमसे, पावहिं सो फल चारि ॥११॥

श्लोक-श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं लोके प्रसिद्धं परं,
भक्तानामभयप्रदं शिवमतं तापत्रयोन्मूलनम् ॥
नानाच्छन्दविचित्रभावसहितं मुक्तिप्रदं शाश्वतं,
तस्यातीवमनोहरा सुललिता व्याख्या मया तन्यते ॥

गूढ़ार्थ

अवस्था ४–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, इनके विभु ये हैं-जाग्रतका विश्व, स्वप्नका तैजस, सुषुप्तिका प्राज्ञ, तुरीयका ब्रह्म ।

अंग–वेदके अंग छः हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष । वेदके पढ़नेकी विधिको शिक्षा कहते हैं । कल्प उसे कहते हैं जिससे सब कर्मों के करनेकी रीति लिखी है । व्याकरण उसे कहते हैं जिससे शब्दोंकी शुद्धताका ज्ञान हो । जिसमें वेदके कठिन शब्दोंका अर्थ निरुक्तसहित लिखा हुआ है उसे निरुक्त कहते हैं । जिसमें अक्षर-मात्रा-वृत्तका ज्ञान हो उसे छंद कहते हैं । जिससे भूत-भविष्य-वर्तमान काल का ज्ञान हो उसे ज्योतिष कहते हैं ।

आश्रम चार हैं; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास.

आकर चार हैं; पिंडज अर्थात् जो देहके साथ-साथ उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य पशु आदि; अंडज, अंडेसे होते हैं जैसे पक्षी, सांप आदि; स्वेदज, जो पसीनेसे उत्पन्न होते हैं जैसे चीलर ढील आदि; उद्भिज्ज पृथ्वीको फोड़कर आते हैं जैसे वृक्ष आदि.

आभरण–बारह हैं; नूपुर, किंकिणी, हार, चूरी, मूँदरी, कंकण, बाजूबंद, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका, शिरफूल.

उपवेद–सामवेदका गांधर्ववेद अर्थात् संगीत, ऋग्वेदका आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक, यजुर्वेदका धनुर्वेद, अथर्ववेदका शिल्प विद्या वास्तु.

ऋतु–छः हैं–वसंत-चैत्र वैशाख । ग्रीष्म-जेष्ठ आषाढ़ । पावस (वर्षा)-श्रावण भाद्रपद । शरद-क्वार कार्तिक । हेमन्त–अगहन पूष । शिशिर–माघ फाल्गुन ।

कल्प–चारों युगको चौकड़ी कहते हैं और हजार चौकड़ी का एक कल्प होता है ।

गुण–तीन हैं; सत, रज, तम, राजाके चार गुण–साम, दाम, भेद, दंड.

चतुरंगिणी सेना-जिस सेनाके चार अंग हैं–हाथी-घोड़ा-रथ-पैदल.

तत्त्व पांच हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश.

त्रिताप–तीन प्रकार का दुःख, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक.

त्रिदेव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश.

त्रिविधकर्म-सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण.

दिक्पाल–पूर्वदिशाके इंद्र, आग्नेयके अग्नि, दक्षिणके यम, नैर्ऋत्यके निर्ऋति, पश्चिमके वरुण, वायव्यके वायु, उत्तरके कुबेर, ईशानके ईशान.

पुराण–जिसमें पांच वस्तुओं (सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित्र) का वर्णन हो अठारह-हैं, जिसमें दश लक्षण हों महापुराण जैसे–भागवत.

भक्त चार प्रकारके होते हैं-आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञाननिवास.

भक्ति नव प्रकार की होती है–श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, चरण सेवा, अर्चन, वन्दन, आत्मनिवेदन, दासत्व, सख्य.

युग–चार हैं–सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग.

योनि–चौरासी लाख योनि हैं, नव लाख जलचर, सत्ताईस लाख स्थावर, ग्यारह लाख कृमि, दश लाख पक्षी, तेईस लाख चौपाये और चार लाख मनुष्य.

राम–तीन हैं परशुराम, बलराम, श्रीरामचन्द्र.

विद्या–ईश्वरकी सर्वज्ञताको विद्या कहते हैं.

शास्त्र–छः हैं–वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक.

शृङ्गार–सोलह प्रकारका शृङ्गार है, अङ्गसुचि–मज्जन, अमल वसन पहरना, यावक केश सँवारना, मांगमें सेंदुर लगाना, भालमें तिलक, चिबुकपर तिल बनाना, मेहँदी लगाना, अरगजा अंगमें लगाना, भूषण, पुष्प, सुगंध लगाना, मुखराग, दांत रँगना, अधरराग, काजल लगाना.

सप्तऋषि–कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम.

समीर–तीन प्रकारका है–शीतल, मन्द, सुगन्ध.

सिद्धि–आठ हैं; अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व.

अक्षौहिणीकी संख्याका प्रमाण वर्णन ॥

संज्ञा.	रथ.	हाथी.	अश्व.	पदचर.	जोड़.
पत्ती.	१	१	३	५	१०
सेनामुख.	३	३	९	१५	३०
गुल्म.	९	९	२७	४५	९०
गुण.	२७	२७	८७	१३५	२७०
वाहनी.	८१	८१	२४३	४०५	८१०
प्रतिना.	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
चमू.	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
अनीकिनी	२१८७	२१८१	६५६१	१०९३५	२१८७०
अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००

प्रभाती

जागिये कृपानिधान जनराय रामचन्द्र, जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे ॥
राजीव लोचन विशाल पीत वापिका मराल, ललित कमल बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुण उदित विगत शर्वरी शशांक किरण हीन, दीन दीप ज्योति मलिन श्रुति समूह तारे ॥
मानो ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भव विलास, आस त्रास तिमिर तोष तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुकर प्रतीत सुनो. श्रवण प्राणजीव धन मेरे तुम वारे ॥
भनैं वेद बन्दीजन सूतवृन्द मागधादि, विरद वरद जय जय जय जय कैटभारे ॥
विकसत कमलावली चले सुपुञ्जचञ्चरीक, गुञ्जत कल कोकिल ध्वनि त्यागि कुञ्ज न्यारे ॥
मनोविराग पाय सलिल शोक कूप गृह विहाय, भृत्य प्रेममत्त फिरत गुणत गुण तिहारे ॥
सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिशय दयाल, भागे जञ्जाल विमल दुख कदम्ब टारे ॥
तुलसिदास अति अति अनन्द देखके मुखारविंद, छूटे भ्रम परम फन्द मन्द द्वन्द्व भारे ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो जयति

अथ श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदासजीका

जीवनचरित्र सटीक

दोहा–वेंकटेशपदपद्म नमि, उर धर तुलसीदास ॥
जन्मचरित वर्णन करूँ, सुनत होत दुखनाश ॥१॥

श्रीवेङ्कटेशजीके चरण कमलोंको नमस्कार कर हृदयमें तुलसीदासजीको धारण कर गोस्वामीजीका जीवनचरित्र वर्णन करता हूँ, जिसके सुनते ही दुखोंका नाश होता है ॥ १ ॥

सोरठा–वन्दौं सीताराम, विमल चारु पद कमलयुग ।
जेहि प्रभाव त्रय धाम, पूरित तुलसीके चरित ॥ १ ॥

सीतारामके उज्ज्वल चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिसके प्रभावसे तीन लोकमें तुलसीदासजीके चरित्र पूर्ण हो रहे हैं ॥ १ ॥

जगत भयो नहिं कोय, गोस्वामी तुलसी सरिस ।
दियो अधर्महिं खोय, रामायण रचि सुरसरी ॥ २ ॥

गोस्वामी तुलसीदासजीके समान जगत्‌में कोई नहीं हुआ, जिन्होंने गंगारूपी रामायण रचकर अधर्मको खो दिया ॥ २ ॥

आदि अन्त लगि तासु, तुलसीदास चरित्र को ।
रसना करन विकासु, मेरे शक्ति कछू नहीं ॥ ३ ॥

तुलसीदासजीका चरित्र आदिसे अंततक लिखूँ और प्रकाश करूँ इतनी शक्ति मुझमें नहीं है ॥३॥

पै विंशति इतिहास, प्रियादास नाभा कथित ।
सतमुख कछुक प्रकाश, तौन रीति वर्णन करौं ॥ ४ ॥

परन्तु उनके सम्बन्धमें प्रियादास और नाभाजीके कहे बीस इतिहास हैं जो उन्होंने वर्णन किया सोई मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥

राजापुर यमुनाके तीरा ❋ तुलसी तहां बसै मतिधीरा ॥१॥
पंडित सकल शास्त्र विज्ञाता ❋ विद्या में विश्वास अघाता ॥२॥

राजापुर यमुनाके किनारे तुलसीदासजीकी जन्मभूमि थी, यह मतिधीर वहां के थे ॥१॥ सब प्रकार शास्त्रमें कुशल और विद्यामें विश्वास पूर्ण थे ॥ २ ॥

भा विवाह आई जब नारी * तासों अतिशय नेह पसारी ॥३॥
आयो तियहि लिवावन भाई * करी न तुलसी तियहिं बिदाई ॥४॥

जब विवाह हो गया घरमें स्त्री आयी तो उससे बड़ा स्नेह किया ॥३॥ जब उसका भाई उसे बुलाने आया तब तुलसीदासजीने उसकी बिदाई नहीं की ॥ ४ ॥

नैहर हित तिरिया बिरुझानी * तदपि न कही तासु कछु मानी ॥५॥
आप गये कछु काज बजारा * तब भाई लै भगिनि सिधारा ॥६॥

स्त्रीने माता के यहां जानेका हठ किया तो भी उन्होंने कुछ न माना ॥ ५ ॥ जब वह किसी कामको बाजार गये तब पीछे भाई अपनी बहनको ले गया ॥ ६ ॥

आयो पुनि तुलसी जब गेहू * विकल भयो तिय बिनवश नेहू॥७॥
वर्षन लगो मेह अधराता * बाढ़्यो यमुन प्रवाह अघाता ॥८॥

जब तुलसीदास घर आये तब स्त्रीको न देख प्रेमके वश हो बहुत दुःख पाया ॥ ७ ॥ इस समय शोच करते आधीरात हो गयी मेघ वर्ष रहा था, यमुना बढ़ रही थी ॥ ८ ॥

भई विभावरि भूरि अँधेरी * करहु पसारे परत न हेरी ॥ ९ ॥
अर्धरात तेहि काम सतायो * चल्यो श्वशुरगृह तियमनलायो॥१०॥

रात ऐसी अँधेरी थी कि हाथ पसारा नहीं सूझता ॥ ९ ॥ उस समय कामने इन्हें बहुत व्याकुल किया सो उसी समय स्त्रीको मनमें स्मरण करते हुए श्वशुरके घर को चले ॥ १० ॥

बढ्यौ यमुनकर बड़ो प्रवाहा * पेरि पर्यो नहिं भय उरमांहा ॥११॥
अर्ध निशा गो श्वशुर दुवारा * लगे रहे चहुँ ओर किवाँरा ॥१२॥

यमुना जलसे भरी जाती थी उसमें कूद पड़े और तैरने लगे, मनमें भय न किया ॥११॥ अर्द्धरात्रिमें ही श्वशुर के द्वारे पहुँचे, उस घरके सब ओर किवाड़ बंद थे ॥ १२ ॥

दोहा-गयो पछीती चढ़न हित, झूलत रहै भुजंग ॥
ताहि पकरि ऊपर गयो, रँग्यो कामके रंग ॥ २ ॥

पीछेकी दीवालपर एक सर्प लटक रहा था उसे रस्सी समझकर पूँछ पकड़ काममदमें रंगे (अर्थात कामातुर हो) ऊपर गये ॥ २ ॥

जाय नारि ढिग दियो जगाई * प्रथमै नारि रही चौआई ॥ १ ॥
चीन्हि बहुरि शंका अति कीन्ही * गिरा बाणसम सो हनि दीन्ही॥२॥

स्त्रीके पास जाकर जगाया प्रथम वह चौकन्नी हो गयी ॥ १ ॥ फिर पहिचान कर बड़ी शंका की और बाणके समान वाणी बोली ॥ २ ॥

धिग धिग धिग तोहिं प्राण पियारे * चाम हाड़ अति निरस हमारे ३॥
ऐसो मन जो लागत रामै * तो सुधरत तिहरे सब कामै ॥४॥

हे प्रीतम ! तुमको धिक्कार है जो हमारा चाम-हाड़का बना नीरस शरीर है उसमें ऐसा मन लगाया ॥ ३ ॥ यदि रामजीमें ऐसी प्रीति करते तो तुम्हारा सब काम बन जाता ॥ ४ ॥

नारि बैन शर सम उर लागे * पूरब सकल पुण्य फल जागे ॥५॥
तुलसिदास कह मानि गलानी * है सति है सति तिय तव बानी॥६॥

स्त्रीके ये वचन बाणके समान लगे मानो पूर्व जन्मके सब पुण्य जागे ॥ ५ ॥ तब ग्लानि मानकर तुलसीदासजीने कहा—हे प्रिये ! तुम्हारी वाणी सत्य है ॥ ६ ॥

बहुरे तुरत मूककी नाईं ❀ गे काशी तजि भवन गुसाईं ॥७॥
विनती किय विश्वेश्वर पाहीं ❀ रामभक्ति दीजै मोहिं काहीं ॥८॥

यह कहकर मूकसे हो गोसाईंजी वहांसे चले और घर छोड़ काशीमें आये ॥ ७ ॥ विश्वेश्वरनाथ से विनय की कि हे भगवन् ! मुझे रामकी भक्त दीजिये ॥ ८ ॥

सूकर क्षेत्र गयो पुनि सोई ❀ गुरू कियो तहँ अति मुद मोई ॥९॥
गुरुकी अति सेवा तहँ ठायो ❀ रामायण अध्यात्महिं पायो ॥१०॥

फिर वाराहक्षेत्रको गये, वहां एक गुरु किया ॥ ९ ॥ और गुरुकी अत्यन्त सेवा करके अध्यात्म रामायण पायी ॥ १० ॥

तुलसीदास आये पुनि काशी ❀ भे अनन्य रघुनाथ उपासी ॥११॥
भजन करत बीत्यो बहुकाला ❀ भे प्रसन्न तापर शशिभाला ॥१२॥

और फिर काशीमें आये रघुनाथजीके अनन्य भक्त हुए ॥ ११ ॥ भजन करते बहुत समय बीत गया तब शिवजी प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

दोहा—रामायण जहँ होय तहँ, सुनन हेतु नित जायँ ॥
कथा समापत ह्वै गये, तहां न पुनि ठहरायँ ॥ ३ ॥

जहां रामायण हो वहां नित्य सुननेको जायँ, कथा समाप्त होते ही फिर वहां नहीं ठहरते थे ॥ ३ ॥

बहिर्भूमि हित दूरिहि जाहीं ❀ लिये कमंडलु इक करमाहीं ॥ १ ॥
शौचक्रिया करि बचे जो नीरा ❀ बदरी तरु डारैं मतिधीरा ॥ २ ॥

हाथमें कमण्डलु लिये शौच करनेको नगरके बाहर जाते थे ॥ १ ॥ शौचक्रियासे जो जल बच जाता उसे एक बेरीके वृक्षके नीचे डाल देते थे ॥ २ ॥

रहै एक तहँ प्रेत पुरानै ❀ अशुचि नीर लहि सो सुख मानै ॥३॥
यहि विधि बीति गये कछु काला ❀ एक दिन बोल्यो प्रेत कराला ॥४॥

वहां एक पुराना प्रेत रहता था, सो उस अपवित्र जलसे सदा सुख मानता था ॥ ३ ॥ जब ऐसे कुछ समय बीत गया तब एक दिन वह कराल प्रेत बोला ॥ ४ ॥

तोपर अहौं प्रसन्न गोसाईं ❀ मांगै सब अपनी मन भाईं ॥५॥
तब सुनि तुलसिदास कह बानी ❀ अहो कौन तुम परै न जानी ॥६॥

हे गोसाईंजी ! मैं अब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ जो मन भावे मांग लो ॥ ५ ॥ यह सुन तुलसीदास बोले—तुम कौन हो जान नहीं पड़ता ॥ ६ ॥

सो भाष्यो जानहु मोहि प्रेता ❀ यहि बदरीतरु मोर निकेता ॥७॥
यहि पर जौन सलिल तुम डारयो ❀ मैं निज सेवा ताहि विचारयो ॥८॥

तब उसने कहा—मैं प्रेत हूँ, इस बदरीतरुके नीचे मेरा स्थान है ॥ ७ ॥ इस पर जो तुमने जल डाला है मैंने उसे अपनी सेवा विचारी है ॥ ८ ॥

तुलसीदास कहा तुम प्रेता ❋ प्रेत कहा मनुजन कहँ देता ॥९॥
जानन चहो जो मम मन केरी ❋ तौ सुनिये मैं कहौं निबेरी ॥१०॥

तुलसीदासजीने कहा–तुम प्रेत हो, प्रेत मनुष्योंको क्या दे सकता है ? ॥ ९ ॥ जो मेरे मनकी जानना चाहते हो, तो मैं जो कहूँ सुनिये ॥ १० ॥

जौ रघुवीर दरश मैं पाऊँ ❋ जियत प्रयन्त तोर यश गाऊँ॥११॥
और कछु मेरे नहिं आशा ❋ कह्यो प्रेत तब भरो हुलासा ॥१२॥

जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन पाऊँ तो जीतेजी तुम्हारे गुण गाऊँ ॥ ११ ॥ मुझे और कुछ इच्छा नहीं है। यह सुनकर प्रेत प्रसन्न हो बोला ॥ १२ ॥

दोहा–रामदरश करवाय दो, मोर जोर कछु नाहिं ॥
पै सहाय हित कछु कहौं, यह उपाय तुम काहिं ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करानेकी तो मुझे सामर्थ्य नहीं है,परन्तु सहायतारूप एक उपाय तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥

जहँ रामायण सुनन सिधारो ❋ सबके पाछे जाय निहारो ॥१॥
अति निरधनी दुखी अतिदीना ❋ पूरित रोग नयनते हीना ॥२॥

जहां तुम रामायण सुननेको जाते हो वहां सबके पीछे जाकर देखो ॥ १ ॥ बड़े निर्धनी, दुःखी, दीन वेष बनाये, रोगी, नेत्र दुखतेसे किये ॥ २ ॥

उठै सकल श्रोतनके पाछे ❋ मंद चलत चिरकुट कटि काछे ॥३॥
सो है साँचो पवनकुमारा ❋ तेहि रामायण सुनन अधारा ॥४॥

जो सबसे पहले आते और सब श्रोताओंके पीछे उठते हैं; सहजमें चलते, कमरमें फटा दुपट्टा लपेटे हैं ॥ ३ ॥ उनको तुम सत्य महावीर जानो। उन्हें रामायण सुननेका बड़ा प्रेम है ॥ ४ ॥

नेम पवनसुत अस नित धरहीं ❋ श्रवण सदा रामायण करहीं ॥५॥
मिलैं तुम्हैं कौनहूँ उपाई ❋ राम दरशकी करैं सहाई ॥६॥

महावीरजीका यह नियम है कि सदा रामायण सुनते हैं ॥ ५ ॥ वे तुम्हें किसी उपायसे मिले जायँगे तो रामदर्शन करा देंगे ॥ ६ ॥

प्रेत वचन सुनि तुलसीदासा ❋ उरमें उमँग्यो अमित हुलासा ॥७॥
ताहि गुरू गुनि भवन सिधारे ❋ कथा सुनन हित तुरत पधारे ॥८॥

प्रेतका वचन सुनकर तुलसीदासजीके मनमें बड़ा आनन्द हुआ ॥ ७ ॥ उसे गुरु जानकर घर गये और कथा सुननेको तुरत सिधारे ॥ ८ ॥

कथा सुनत तहँ लख्यो प्रवीना ❋ अतिकुरूप तनुछाम मलीना ॥९॥
दूरहिं बैठो आँधर ऐसो ❋ नयनों लख्यो प्रेत कह जैसो ॥१०॥

कथा सुनतेमें उन्होंने महावीरजीको महा मलिन टूटे-फूटे वेषमें महा कुरूप देखा ॥ ९ ॥ और नेत्रविहीनके समान दूर ही बैठे थे, जैसे प्रेतने कहा था ॥ १० ॥

ह्वैगै कथा समापत जबहीं ❋ श्रोता चले भवन कहँ तबहीं ॥११॥
रहे बार कछु बैठ गोसाईं ❋ चल्यो पवन सुत जड़की नाईं ॥१२॥

जब कथा समाप्त हो गई तब श्रोता अपने-अपने घरोंको गये ॥ ११ ॥ गोसाईंजी कुछ समय-तक बैठे रहे और महावीरजी जड़ मूर्खकासा आकार किये चले ॥ १२ ॥

दोहा—तुलसिदास एकान्त लहि, दौरि गह्यो पद जाय ॥
छोड़ छोड़ मोहिं मति छुवै, सो अस कह्यो सुनाय ॥ ५ ॥

तब एकान्त देख तुलसीदासजीने दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये, तब उन्होंने ऐसा कहा कि अरे छोड़ ! छोड़ ! मुझे मत छू ॥ ५ ॥

तुलसी कह्यो छुटन ना पैहो ❋ लैहो प्राण दरश की दैहो ॥१॥
कियो छोड़ावन विविध उपाई ❋ चपरि गह्यो तुलसी बरियाई ॥२॥

तुलसीदास बोले—अब तुम नहीं छूट सकते, या तो दर्शन दो या प्राण लो ॥ १ ॥ महावीर जीने छुड़ानेके बहुत उपाय किये परन्तु तुलसीदासजीने दृढ़ता से ग्रहण कर लिया ॥ २ ॥

भे प्रसन्न तब पवनकुमारा ❋ माँगु माँगु अस वचन उचारा ॥३॥
तुलसिदास कह रूप देखावहु ❋ मेरे शीश पाणि निज लावहु ॥४॥

तब महावीरजी प्रसन्न हो बोले-जो इच्छा हो सो वर मांगो ॥ ३ ॥ तुलसीदासजी बोले—अपना रूप दिखाओ और मेरे शिरपर अपना हाथ धरो ॥ ४ ॥

मेरे और कछू नहिं आसा ❋ होन चहौं रघुपतिकर दासा ॥५॥
रामदरश मोहिं देहु कराई ❋ तुम समर्थ सब विधि कपिराई ॥६॥

मुझे और कुछ इच्छा नहीं केवल रघुनाथजीका दास होना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ मुझे रामचन्द्र-जीका दर्शन करा दो, कारण कि तुम सब प्रकारसे समर्थ हो ॥ ६ ॥

तब मारुति निज रूप दिखायो ❋ तुलसिदास कहँ वचन सुनायो ॥७॥
चित्रकूट कहँ चलहु प्रवीना ❋ पैहो रामदरश सुख भीना ॥८॥

तब महावीरजीने अपना रूप दिखाया और तुलसीदासजीसे कहा ॥ ७ ॥ कि हे प्रवीण ! चतुर (तुलसीदास) चित्रकूटको चलो, वहां तुमको सुखमय रामका दर्शन होगा ॥ ८ ॥

अस कहि कपि निज रूप दुराये ❋ तुलसिदास निज आश्रम आये ॥९॥
कछु दिनमें मनमहँ अस भयऊ ❋ अबै न शिव दर्शन ह्वै गयऊ ॥१०॥

यह कह महावीरजीने अपना रूप छिपा लिया, तुलसीदासजी अपने आश्रममें आये ॥९॥ और कुछ दिनमें विचार किया कि अभी शिवजीका दर्शन नहीं हुआ ॥ १० ॥

गयो विश्वेश्वरनाथ मन्दिरै ❋ लखन रूप चह चूडचंदिरै ॥११॥
पै नहिं दर्शन दियो पुरारी ❋ तुलसिदास तजि आस सिधारी ॥१२॥

तब विश्वेश्वरनाथके मंदिरमें गये और वहां उनके दर्शन की इच्छा की ॥ ११ ॥ परन्तु तुलसीदासजीको शिवने दर्शन नहीं दिया, तब तुलसीदासजी आशा छोड़कर चले ॥ १२ ॥

दोहा-चित्रकूट कहँ चढ़ चल्यो, पुरके बाहिर आइ ॥
मिल्यो एक महिसुर तहां, बोल्यो वचन बुलाइ ॥ ६ ॥

जब चित्रकूटको चले, पुरके बाहर आये तो एक ब्राह्मण आया और इनको बुलाकर ऐसे वचन बोला ॥ ६ ॥

काशी छोड़ि अनत मति जाहू ❋ इतते गये न तोर निवाहू ॥१॥
तुलसिदास कह किय सेवकाई ❋ भे प्रसन्न नहिं शंभु गोसाँई ॥२॥

काशीको छोड़कर दूसरे स्थानमें मत जाओ, यहांसे और स्थानमें जाने पर तुम्हारा निर्वाह न होगा ॥ १ ॥ यह सुन तुलसीदासजी बोले-हमने शिवजीकी सेवा की तथापि वे हमपर प्रसन्न न हुए इससे जाते हैं ॥ २ ॥

सो कह सत्य शंभु मैं अहहूँ ❋ काशी छोड़ि अनत नहिं रहहूँ ॥३॥
अस कहि हर निज रूप दिखायो ❋ तुलसिदास चरणन शिरनायो ॥४॥

तब वह ब्राह्मण बोला-मैं ही शिव हूँ, काशीको छोड़कर दूसरे स्थानमें नहीं रहता हूँ ॥३॥ ऐसा कह शिवजीने अपना रूप दिखाया तब तुलसीदाजीने चरणोंमें शिर नवाया ॥ ४ ॥

बहुरि वचन बोल्यो कृतवासा ❋ चित्रकूट चलु तुलसीदासा ॥५॥
कह्यो पवन सुत है सत सोई ❋ रामदरस पैहै मुद मोई ॥६॥

फिर शिवजी बोले-हे तुलसीदासजी ! तुम चित्रकूटको चलो ॥ ५ ॥ जो महावीरजीने कहा है सो सब सत्य होगा, श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन प्रसन्नता पूर्वक मिलेंगे ॥ ६ ॥

रचि है रामायण सुख श्रेणी ❋ अधम उधारण यथा त्रिवेणी ॥७॥
तुलसिदास तब भयो निहाला ❋ चल्यो चित्रकूटहिं तेहि काला ॥८॥

और अधमोंका उद्धार करनेवाली त्रिवेणीके समान तुम रामायण रच सकोगे ॥७॥ यह सुन तुलसीदासजी निहाल हो गये और तत्काल ही चित्रकूटको चले ॥ ८ ॥

शंकर अपनो रूप छिपायो ❋ तुलसी चित्रकूट कहँ आयो ॥९॥
फटिक शिलापर बैठे जाई ❋ राम लषण लालसा बढ़ाई ॥१०॥

शिवजीने अपना रूप छिपा लिया, तुलसीदासजी चित्रकूटमें आये ॥ ९ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके दर्शनकी इच्छा कर स्फटिक शिलापर जाकर बैठे ॥ १० ॥

ताहि समय तुरंग सवारे ❋ कढे शिकारी द्वै धनु धारे ॥ ११ ॥
रपटत मृगन शरन कहँ मारे ❋ हरित वसन सुन्दर तनु धारे ॥१२॥

उसी समय घोड़ेके ऊपर धनुष बाण लिये दो शिकारी प्रादुर्भूत हुए अर्थात् प्रगट हुए ॥ ११ ॥ बाण धरे मृगके पीछे धावमान हो रहे थे, हरे वस्त्र सुन्दर शरीरपर धारे थे ॥ १२ ॥

दोहा-जानि शिकारी भूपसुत, राम राम कहि बैन ॥
तुलसिदास पछितायके, मूंद लियो दोउ नैन ॥ ७ ॥

तुलसीदासजीने उन दोनोंको कोई शिकार खेलनेवाले भूपसुत जाना और राम राम कह पछताकर अपने नेत्र मूँद लिये ॥ ७ ॥

निकसि गये जब युगल सवारा ❋ आय कह्यो तब पवन कुमारा ॥१॥
प्रभु दर्शन पायो की नाहीं ❋ दोऊ राम लषन ते आहीं ॥२॥

जब दोनों कुमार चले गये तब पीछे हनुमान्‌जीने आकर कहा ॥ १ ॥ प्रभुका दर्शन पाया कि नहीं ? वे दोनों राम लक्ष्मण ही थे ॥ २ ॥

तुलसिदास कह जानि शिकारी ❋ हाय नयन मूँदे अविचारी ॥३॥
अबै न पूर भई अभिलाषा ❋ जैसी पवनतनय तुम भाषा ॥४॥

तुलसीदासजीने कहा—हाय ! मैंने उन्हें शिकारी जान विना विचारे ही नेत्र मूँद लिये थे ॥३॥ हे महावीर ! अभी मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई जैसा तुमने कहा था सो पूर्ण करो ॥ ४ ॥

तब हनुमान कह्यो अस बानी ❋ रामघाट चलु काल्हि विज्ञानी ॥५॥
भोर भये तब तुलसीदासा ❋ रामघाट गो भरो हुलासा ॥६॥

तब महावीरजी बोले कि, हे विज्ञानी ! कल रामघाटको चलो ॥५॥ तब प्रातःकाल होते ही तुलसीदासजी आनन्दपूर्वक रामघाटको गये ॥ ६ ॥

गारन लग्यो न्हाय तहँ चन्दन ❋ आइ गयेदोउ दशरथ नन्दन ॥७॥
कह्यो देउ चन्दन मोहिं बाबा ❋ तुलसिदास तब सहजहिं गावा ॥८॥

वहां स्नान कर चंदन घिस रहे थे कि वे दोनों दशरथ कुमार आ गये ॥ ७ ॥ और बोले बाबा ! हमें चन्दन दीजिये, तब तुलसीदासजीने सहज स्वभावसे कहा ॥ ८ ॥

चन्दन देहुँ चरचि अँगमाहीं ❋ राम लषण तुम हो की नाहीं ॥९॥
बालक कहे साधु जग जेते ❋ राम लषणको मूरति तेते ॥१०॥

चन्दन मैं तुम्हारे अंगमें लगाये देता हूँ, तुम राम लक्ष्मण हो कि नहीं ? ॥ ९ ॥ तब वे बालक बोले—जितने साधु जगत्‌में हैं वे सब राम लक्ष्मण की मूर्ति हैं ॥ १० ॥

लै चन्दन दोउ बाल सिधारे ❋ पाछे पवन कुमार पधारे ॥११॥
बोले वचन दरश तुम पाये ❋ तुलसिदास यह दोहा गाये ॥१२॥

चन्दन ले दोनों कुमार चले गये, पीछेसे महावीरजी आये ॥ ११ ॥ और बोले तुमने दर्शन पाया ? तब तुलसीदासजीने यह दोहा गाया ॥ १२ ॥

दोहा—चित्रकूट के घाट पै, भइ साधुनकी भीर ॥
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक करैं रघुवीर ॥ ८ ॥

चित्रकूटके घाटपर साधुओंकी भीड़ हुई, तुलसीदास चन्दन घिसते हैं और श्रीरघुनाथजी तिलक लगाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—बहुरि कह्यो कर जोरिकै, सुनिये पवनकुमार ॥
देखौं चारौं बन्धुको, सहित राज संभार ॥ ९ ॥

और फिर हाथ जोड़कर बोले—हे पवन कुमार ! सुनो मैं राजसमाज सहित चारों कुमारों को देखना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

पवनतनय कह कलियुग माहीं ❋ अस दर्शन होते कहुँ नाहीं ॥१॥
तुलसिदास कह कृपा तिहारी ❋ मोहिं न अचरज परत निहारी ॥२॥

महावीरजी बोले—कलियुगमें ऐसे दर्शन किसीको नहीं होते ॥ १ ॥ तुलसीदासने कहा—तुम्हारी कृपासे मुझे कुछ अचरज नहीं है ॥ २ ॥

कह कपीश कामदा सिधारी ❋ बैठहु काल्हि राम उर धारी ॥३॥
अस कहि कपि अंतर्हित भयऊ ❋ भोर होत तुलसी तहँ गयऊ ॥४॥

तब महावीरजी बोले—कल कामनाथमें जाकर श्रीरामजीको हृदयमें धारण कर बैठो ॥३॥ यह कह महावीरजी अन्तर्हित हुए, प्रातःकाल होते ही तुलसीदास वहां गये ॥ ४ ॥

बैठ्यो युगल पहर पर्यन्ता ❋ आयो दरश देन सियकन्ता ॥५॥
धनद दिशा रहि धूरि सुपूरी ❋ भो प्रकाश दश आशहु भूरी ॥६॥

और दो पहर तक बैठे रहे, तब सीता पति दर्शन देने आये ॥ ५ ॥ उस समय उत्तर दिशामें धूल छा गई थी, फिर दशों दिशाओंमें प्रकाश छा गया ॥ ६ ॥

अगणित मत्त मतंग तुरंगा ❋ सो तहँ विविध भांति रथ संगा ॥७॥
बोलत बहु नकीब गण सोरा ❋ जय जय कोशलकंत किशोरा ॥८॥

अनगिनत मतवाले हाथी, घोड़े और विविध भांतिके रथ उनके साथ थे ॥ ७ ॥ उस समय अनेक बंदी बिरुदावली पढ़ते थे, बड़ा शब्द हो रहा था कि कौशलपतिकी ज़य हो ॥ ८ ॥

रथ सवार प्रभु चारिहु भाई ❋ करत पवन सुत पद सेवकाई ॥९॥
तुलसिदास तब आरति साजा ❋ लख्यो नयनभरि रघुकुलराजा ॥१०॥

रथमें चारों भाई सवार थे, महावीरजी चरणोंकी सेवा करते थे ॥ ९ ॥ तब तुलसीदासजीने नेत्रभर रघुकुलराज (रामचन्द्रजी) को देखकर आरती सजाई ॥ १० ॥

दै परिदक्षिण विह्वल भयऊ ❋ रघुपति करपंकज शिरदयऊ ॥११॥
यहि विधि प्रगट दरश तब पायो ❋ औरनको नहिं भेद लखायो ॥१२॥

प्रदक्षिणा करके विह्वल हो गये तब तुलसीदासके शिरपर भगवान्‌ने हाथ धरा ॥ ११ ॥ इस प्रकार प्रगट दर्शन पाया परंतु यह भेद किसीको विदित नहीं हुआ ॥ १२ ॥

दोहा—यहि विधि तुलसिदास प्रभु, श्री हनुमान सहाय ॥
राम दरश पायो प्रगट, रह्यो सुयश जग छाय ॥ १० ॥

इस प्रकार तुलसीदासजीने महावीरजीकी सहायतासे प्रत्यक्ष श्रीरामजीका दर्शन पाया और जगत्‌में सुयश छा गया ॥ १० ॥

दोहा—राम उपासक अति अमल, नाशक जग जनत्रास ॥
हिय हुलसीके वास किय, काशी तुलसीदास ॥११॥

फिर रामचंद्रके उपासक बहुत निर्मल, जगत्के जनोंका त्रास मेटनेवाले तुलसीदासजी मनमें प्रसन्न हो काशीमें वास करनेके निमित्त आये ॥ ११ ॥

दोहा-प्रगट्यो महा महत्त्व तहँ, जुरै रोज जन भीर ॥
परयो रहै चरणन नृपति, आवैं बुधमति धीर ॥ १२ ॥

वहां इनका महामहत्व प्रगट हुआ, प्रतिदिन मनुष्योंकी भीर जुड़ने लगी, राजा भी चरणोंमें पड़े रहे और पंडित भी आवें ॥ १२ ॥

कछु दिन किय काशीमहँ बासा ❋ गये अवधपुर तुलसीदासा ॥१॥
तहँ अनेक कीन्हो सतसंगा ❋ निशदिन रँगे रामरतिरंगा ॥२॥

कुछ दिन काशीमें रहकर फिर तुलसीदास अयोध्याजीमें आये ॥ १ ॥ वहां अनेक सत्संग किये और (निशिदिन) रामचंद्रके रंगमें रंगे रहे ॥ २ ॥

सुखद रामनौमी जब आई ❋ चैत्रमास अति आनंद पाई ॥३॥
संवत् सोरहसै इकतीसा ❋ सादर सुमिरि भानुकुलईशा ॥४॥

जब सुंदर रामनौमी आयी, तब चैत्र मास अत्यंत आनंददायक पाकर ॥ ३ ॥ संवत सोलहसौ इकतीसमें भानुकुलके ईश जो श्रीरामचंद्रजी उनका स्मरण कर ॥ ४ ॥

वासर भौम सुखित चितचायन ❋ किय आरम्भ तुलसीरामायन ॥५॥
बालकाण्ड तहँ पूरण करिकै ❋ आये पुनि काशी सुख भरिकै ॥६॥

मंगलके दिन तुलसीदासजीने प्रसन्न हो रामायणका प्रारम्भ किया ॥५॥ वहां बालकाण्ड पूरा करके फिर प्रसन्नतापूर्वक काशीजीमें आये ॥ ६ ॥

विनय आदि गीतावलि ग्रंथा ❋ रचे रुचिर सूचक श्रुति पंथा ॥७॥
वाराणसी बस्यो सुख छायो ❋ एक प्रबल पंडित तब आयो ॥८॥

विनयपत्रिका, गीतावली, आदि वेदमार्गसूचक बहुत सुंदर ग्रंथ बनाये ॥ ७ ॥ महासुख मान काशीजीमें ही रहे तब वहां एक बड़ा पंडित आया ॥ ८ ॥

काशी जीतनको मन कीने ❋ बजवावत दुंदुभी प्रवीने ॥९॥
काशिराज तब सभा बुलायो ❋ सब पंडितन समाज करायो ॥१०॥

वह काशीके जीतनेकी इच्छा मनमें किये नगाड़े बजवाते आया ॥ ९ ॥ तब काशीराजने समाज किया और सब पंडितोंको बुलाया ॥ १० ॥

तब जो काशी जीतन आयो ❋ सो पंडित अस वचन सुनायो ॥११॥
एक मुख्य सबमें करि दीजै ❋ हार जीत ताके शिर कीजै ॥१२॥

तब जो पंडित काशी जीतने आया था उसने सब पंडितोंसे कहा ॥ ११ ॥ कोई एक इन सबमें मुख्य कर दो, उसके शिर हार जीत होगी ॥ १२ ॥

दोहा-पंडित की अस बैन सुनि, काशीवासी विप्र ॥
मानि महाभ्रम चित्तमें, कहे वचन अति छिप्र ॥ १३ ॥

पंडितके यह वचन सुनकर काशीवासी ब्राह्मण चित्तमें महा भ्रम मानकर बहुत शीघ्र बोले ॥१३॥

उत्तर देव कालिह यहि केरो ❋ अस कहिगे द्विज निज निज डेरो ॥१॥
कियो ध्यान विश्वेश्वर अयना ❋ मर्यादा तुव हाथ त्रिनयना ॥२॥

इसका उत्तर हम कल देंगे यह कह ब्राह्मण अपने-अपने स्थानोंको गये ॥ १ ॥ और शिव जीका ध्यान कर कहा—हे त्रिलोचन ! तुम्हारे हाथ निर्वाह है ॥ २ ॥

राति स्वप्न शंकर अस भाषो ❋ तुलसी शीश अजय जय राषो ॥३॥
पंडित मुदित भूप गृह आये ❋ सो पंडित सों वचन सुनाये ॥४॥

तब रातको स्वप्नमें शिवजीने कहा—कि तुलसीदासजीके शिर हार जीत रखो ॥ ३ ॥ तब प्रसन्न हो पंडित राजसभामें आये और राजासे तथा उस पंडितसे कहा ॥ ४ ॥

तुलसीदास सबमाहिं प्रधानो ❋ जयहु पराजय तेहि शिर आनो ॥५॥
भूप कह्यो किमि सकै बुलाई ❋ तुलसिदास गृह चलो सिधाई ॥६॥

तुलसीदास सबमें प्रधान हैं, उनके हाथ हमारी जय पराजय है ॥ ५ ॥ राजा बोले हम उन्हें कैसे बुला सकते हैं ? चलो तुलसीदासके घर चलें ॥ ६ ॥

यह कहि लै पंडितन समाजा ❋ आयो तुलसिदास-गृह राजा ॥७॥
सबनि कियो सत्कार गोसाँई ❋ एक शिष्यको कह्यो बुलाई ॥८॥

तब सब पंडितोंका समाज ले राजा तुलसीदासके घर आये ॥ ७ ॥ गोसाईंजीने सबका सत्कार किया और बुलाकर एक शिष्यसे कहा ॥ ८ ॥

ये ताम्बूल पांच ले जाहू ❋ देहु मुदित पंडित सब काहू ॥९॥
शिष्य तुरत ताम्बूलहि बाँटा ❋ बचे पांच केहु परयो न घाटा ॥१०॥

यह पांच ताम्बूल ले जाओ और प्रसन्नतासे सब पंडितोंको जाकर दो ॥ ९ ॥ शिष्यने सब पंडितोंको ताम्बूल बांट दिये तो भी पांच बच रहे कम नहीं हुए ॥ १० ॥

यह प्रभुता लखि पंडित सोई ❋ वाद करनकी आश्रय खोई ॥११॥
तुलसिदास पंडितहि बुलाई ❋ दै रामायण कह्यो बुझाई ॥१२॥

यह प्रभुताई देख पंडितने विवाद करनेकी इच्छा त्याग दी ॥ ११ ॥ तब तुलसीदासने उस पंडितको बुलाय रामायण देकर यह बात कही ॥ १२ ॥

दोहा-खण्डन मण्डन पक्ष जो, सो देखहु यहि माहिं ॥
जो न होय तो आय इत, वाद करहु हमपाहिं ॥ १४ ॥

जो खण्डन मण्डन पक्ष है जो सब इसमें देख लो जो इसमें न मिले तब आकर हमसे शास्त्रार्थ करना ॥ १४ ॥

पंडित रामायण लै लीन्हो ❋ डेरा चलि अवलोकन कीन्हो ॥१॥
सम्मत शास्त्र पुराणन केरो ❋ रामायण महँ पंडित हेरो ॥२॥

पंडितने रामायण ले ली और अपने डेरे पर आकर अवलोकन किया ॥१॥ उस पंडितने रामायणमें शास्त्र पुराणोंका निर्णय पाया ॥ २ ॥

जौन पक्ष पंडित मन भयऊ * समाधान तेहि महँ मिलि गयऊ॥३॥
जौन श्लोक वंदना माहीं * ताकी हानि भई कछु नाहीं ॥४॥

और उस पंडितको जिस पक्षमें विवाद करने की इच्छा थी, उसका समाधान भी उसमें मिल गया ॥ ३ ॥ वह जो श्लोक वंदनामें है कि इस रामायणमें सबका सार है उसकी कुछ हानि नहीं हुई अर्थात् सब कुछ इसमें मिलता है यह सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

श्लोक-नाना पुराणनिगमागमसंमतंयद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ॥
स्वांतःसुखायतुलसीरघुनाथगाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति॥१॥

इस रामायणमें १८ पुराण, ४ वेद, ६ शास्त्रका सम्मत कहा है और कहीं कुछ अपने अनुभवसे भी तुलसीदास अपनी मति उज्ज्वल करनेको भाषामें रघुनाथजीकी कथा विस्तार करते हैं॥१॥

पंडित गृह परिकम्र्मा कऱ्यऊ * तुलसिदासपदरज शिर धऱ्यऊ॥५॥
निज अपराधहि क्षमा करायो * सभा मध्य सुश्लोक सुनायो ॥६॥

उस पंडितने गृहकी परिक्रमाकी तुलसीदास की चरणरज अपने शिरपर रखी ॥ ५ ॥ अपना अपराध उस पंडितने क्षमा कराया और सभाके बीचमें यह श्लोक सुनाया ॥ ६ ॥

श्लोक-आनन्दकानने कोऽपि तुलसी जंगमस्तरुः ॥
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥ २ ॥

इस आनन्दकाननमें कोई तुलसीदासरूपी जंगमवृक्ष है, जिसकी काव्यरूपी मंजरी रामरूपी भ्रमरसे भूषित है ॥ २ ॥

तुलसी शिष्य भयो पुनि सोई * अरप्यो सकल वस्तु बहुतोई ॥७॥
रामभक्तिको करि उपदेशा * गयो गर्व तजि कोशल देशा ॥८॥

फिर वह पंडित तुलसीदासजीका शिष्य हुआ और सब वस्तु उनको समर्पण कर दी ॥७॥ तब गोस्वामीजीने उनको रामभक्तिका उपदेश किया, वह सब गर्व त्यागकर कोशल देशमें चला गया ॥ ८ ॥

पुनि चेटकी एक तहँ आयो * इक यक्षिणी सिद्धकरि ल्यायो ॥९॥
तेहि बल सब थल नगर पुजायो * महा महत्व जनन सों पायो ॥१०॥

फिर वहां एक चेटकी आया जो एक यक्षिणी सिद्ध कर लाया था ॥ ९ ॥ उसके बलसे उसकी सब नगरमें पूजा हुई और मनुष्योंमें महामहत्त्व हुआ ॥ १० ॥

इक वैष्णव कोउ गयो सकामा * राख्यो सिद्ध ताहि निज धामा॥११॥
सिद्ध नारिसों भई मिताई * साधु गयो लै ताहि पराई ॥१२॥

कोई सकाम वैष्णव वहां गया, सिद्धने उसे अपने स्थानमें रख लिया ॥११॥ उस सिद्ध की स्त्री से उसकी मित्रता हो गई और वह वैष्णव उसकी स्त्रीको लेकर चला गया ॥ १२ ॥

दोहा-उठ्यो चेटकी भोर तब, लख्यो नारि नहिं धाम ॥
बोलि यक्षिणीको तुरत, कीन्हो कोप अछाम ॥ १५ ॥

प्रातःकाल चेटकीने उठकर देखा कि घरमें स्त्री नहीं है तब यक्षिणीको बुलाकर महाकोप किया ॥ १५ ॥

यहि क्षण नगर भूप गहि ल्यावै ❋ साधु नारि ले जान न पावै ॥१॥
सुनि यक्षिणी तुरंतहि धाई ❋ युत पर्यंक भूप गहि ल्याई ॥२॥

इसी समय नगरके राजाको पकड़ ला और वह साधु मेरी स्त्रीको ले जाने न पावे ॥ १ ॥ सुनते ही यक्षिणी तुरन्त दौड़ी और पलंगसहित राजाको उठा लाई ॥ २ ॥

कह्यो यक्षिणी भूपहि बैना ❋ काशीमहँ कोउ साधु रहै ना ॥३॥
तिलक धोवाय माल सब तोरी ❋ धरि दीजै मम कुण्ड बटोरी ॥४॥

और यक्षिणीने राजासे कहा, काशीमें कोई साधु न रहने पावे ॥ ३ ॥ सबके तिलक धुलाय और सब माला बटोरकर मेरे कुण्डमें धर दीजिये ॥ ४ ॥

जो अस करिहो नरपति नाहीं ❋ तो जानो घर यमपुर माहीं ॥५॥
नरपति कह्यो भवन पहुँचावहु ❋ काल्हिहिते निज हुकुम करावहु॥६॥

हे राजन् ! जो यह न करोगे तो जान लो कि तुम्हारा घर यमपुरमें होगा ॥ ५ ॥ राजाने कहा-घर पहुँचा दो कल ही मैं ऐसी आज्ञा करा दूँगा ॥ ६ ॥

तुरत भवन भूपहि पठवायो ❋ भोर भूप शासन प्रगटायो ॥७॥
साधुन गल कंठी सब तोरी ❋ धोय तिलक करिकै बरजोरी ॥८॥

राजाको तुरन्त घर पहुँचाया, तब प्रातःकाल ही राजाने अपनी आज्ञा दी ॥ ७ ॥ कि सब साधुओंकी माला बटोर लो, उनके तिलक जबरदस्ती धुलवा डालो ॥ ८ ॥

सिद्ध कुंठ दीजै पहुँचाई ❋ और बात नहिं बनै बनाई ॥९॥
यह सुनि नृपदल कियो तयारी ❋ धोवन लगे तिलक लै वारी ॥१०॥

वे सब माला सिद्धके कुण्डपर पहुँचा दो और कोई बात बनाये नहीं बनेगी ॥ ९ ॥ यह सुनकर राजाकी सेना चली और जल लेकर उनके तिलक धोने लगी ॥ १० ॥

तोरि तोरि कण्ठी बहुतेरी ❋ भरयो सिद्धके कुंडहि ढेरी ॥११॥
हाहाकार मच्यो तब काशी ❋ भये संत सब जीव निराशी ॥१२॥

बहुतेरोंकी माला तोड़कर सिद्धका कुण्ड भर दिया ॥ ११ ॥ तब काशीमें हाहाकार मच गया; सब सन्त और जीव दुःखी हुए ॥ १२ ॥

दोहा-कह्यो धूर्त कोउ जायकै, तुरत चेटकी पाहिं ॥
तुलसिदास माला तिलक, तुम तोरौ कस नाहिं ॥ १६ ॥

तब किसी धूर्तने जाकर चेटकीसे कहा, तुम तुलसीदासकी माला और तिलक क्यों नहीं तुड़वाते हो ॥ १६ ॥

सुनि चेटकी सैन सब साजे ❋ चल्यो कोपि बजवावत बाजे ॥१॥
नगर लोग सब देखन धाये ❋ कोउ वैष्णव तुलसी ढिग आये॥२॥

सुनकर चेटकी सब सेना लिये क्रोधकर बाजे बजवाता चला ॥ १ ॥ सब नगरके लोग देखने दौड़े, इधर किसी वैष्णवने तुलसीदासजीके पास आकर कहा ॥ २ ॥

माला कण्ठी तोरन हेतू * आवत किये चेटकी नेतू ॥३॥
तुलसिदास तब गिरा बखानी * जाकर माल तिलकसो जानी ॥४॥

कि तुम्हारी माला कण्ठी तोड़नेको चेटकी आता है ॥ ३ ॥ तुलसीदासजीने कहा कि, जिसकी यह माला तिलक है वही इस बातको जाने ॥ ४ ॥

जब चेटकी कुटी नियरायो * तब एक घोर बडेरर आयो ॥५॥
परी फौज उड़ि सुरसरिमाहीं * रही चेटकी तनु सुधि नाहीं ॥६॥

जब चेटकी कुटीके निकट आया तब एक बड़ी आंधी आई ॥ ५ ॥ सब सेना उड़कर गंगामें गिरी, चेटकी को भी शरीरकी सुधि न रही ॥ ६ ॥

रुधिर वमत बूडत मधि धारा * जस तसकै सो लग्यो किनारा ॥७॥
त्राहि कहत तुलसी पद गिरेऊ * मैं अजान सन्तनसों भिरेऊ ॥८॥

उसके मुखसे रुधिरकी धार निकलने लगी और जलमें डूबने लगा, ज्यों त्यों करके किनारेपर आया ॥ ७ ॥ और 'रक्षा करो रक्षा करो' ऐसा कह तुलसीदासके चरणोंमें गिरा कि मैं अजान हूँ अपराध किया जो संतोंसे भिड़ा ॥ ८ ॥

क्षमा करहु अपराध हमारा * तुलसी करुणा पारावारा ॥९॥
वचन कह्यो मुसकाइ गोसाईं * संत सेउ लघु जनकी नाईं ॥१०॥

हमारा अपराध क्षमा करो, तुलसीदासजी करुणाके स्थान हैं ॥ ९ ॥ तब गुसाईंजीने मुसकाकर कहा सन्तोंकी तुम दासके समान सेवा करो ॥ १० ॥

खाहु वर्ष भरि साधुन जूँठो * तब हैहौ शुचि है नहिं झूठो ॥११॥
कियो चेटकी तैसेहि आयी * तरी यक्षिणी संगति पायी ॥१२॥

और एक वर्ष तक साधुओंकी जूठन खाओ तब पवित्र होगे इसमें असत्य नहीं है ॥११॥ चेटकीने यही किया, संगति पाकर यक्षिणी भी पवित्र हुई ॥ १२ ॥

दोहा-संतचरण-जलपान करि, साधु जूंठ नित खाय ॥
भयो चेटकी रामको, दास सुवास विहाय ॥ १७ ॥

सन्तोंके चरणोंका जल पान करके नित्य साधुओंका जूँठन खाय, इस प्रकार वह चेटकी श्रीरामचन्द्रजीका दास हो गया और घर बार छोड़ दिया ॥ १७ ॥

भई राम-नौमी इक काला * जुरी कुटीमहँ सन्तन माला ॥१॥
उत्सव किये महा सुख छायो * सिगरी राज्य विभूति बुलायो ॥२॥

एक समय रामनौमीको कुटीमें सन्तोंका समूह एकत्रित हुआ ॥१॥ उत्सव करके महासुख पाया और सब राज-ऐश्वर्यको बुलाया ॥ २ ॥

भई भीर भारी तेहि ठामा * छाय रह्यो इक रामहि नामा ॥३॥
तहँ एक डोम अवधपुर केरो * आयो तुरत उछाह घनेरो ॥४॥

उस स्थान पर बहुत भीड़ हुई और सबके मुखपर रामका नाम छा रहा था ॥ ३ ॥ तहां एक अयोध्याका डोम आया जो अनेक प्रकारसे प्रसन्न हो रहा था ॥ ४ ॥

महाभीर वश दरश न पायो * जन्म मनोरथ बोलि सुनायो ॥५॥
तुलसिदास पहँ कोउ कह आई * तुरत गये प्रभुकाज बिहाई ॥६॥

बहुत भीड़ होनेके कारण उसको दर्शन न हो सका तब उसने जन्म मनोरथ बोलके अर्थात् पुकारके सुनाया कि मुझे तुलसीदासजीका दर्शन न हुआ ॥५॥ तब किसीने तुलसीदाससे आकर कहा वे उसी समय प्रभुका काज त्याग उस स्थान पर गये ॥ ६ ॥

पूछ्यो है तू कहँको वासी * सो कह कोशलनगर निवासी ॥७॥
अवधनिवासी सुनत कृपाला * भरि आये दोउ नयन विशाला॥८॥

और उससे पूछा कि तुम कहांके निवासी हो ? उसने कहा-मैं कोशलपुरका रहनेवाला हूँ ॥ ७ ॥ उसे अयोध्या का रहनेवाला सुनकर तुलसीदासजीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८ ॥

उर लगाय मिलि कुटि लै आई * बार बार तेहि कह्यो बुझाई ॥९॥
यहि विभूति की प्रभु रघुराई * जनि भाषियो अवधपुर जाई ॥१०॥

हृदयसे लगाकर उसे कुटीमें ले आये और बारंबार उसको समझाकर कहा ॥ ९ ॥ अयोध्यामें जाकर रघुराजसे इस विभूति का वर्णन मत करना ॥ १० ॥

मैं चेरो रघुपतिपद-केरो * वाराणसी बसौं करि डेरो ॥११॥
ऐसी है तुलसी परभाऊ * कहे मोहिं नहिं होत अघाऊ॥१२॥

मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका सेवक हूँ, वाराणसीमें रहता हूँ ॥ ११ ॥ तुलसीदासका ऐसा प्रभाव है कि कहते मेरा मन नहीं अघाता ॥ १२ ॥

दोहा-एक समय श्री अवधको, ले संग सन्त समाज ॥
नावहि नावहि चलत भे, नाव भरायो साज ॥१८॥

एक समय तुलसीदासजी नावमें सब सामग्री रखकर सन्तोंके सहित नावमें बैठ जलके मार्गसे अयोध्याको चले ॥ १८ ॥

सरयू गंगा संगम जहँई * पहुँचे जब गोसांई तहँई ॥१॥
भूपघाट घाटी अनुग्रामा * पूछ्यो तुलसी चारिहु नामा ॥२॥

जहां सरयू और गंगाका संगम है जब गोसाईंजी वहां जाकर पहुँचे ॥ १ ॥ राजघाट और घाटी तथा उसके निकट जो ग्राम थे तुलसीदासजीने उन चारों का नाम पूछा ॥ २ ॥

कहे लोग चलिकै शिर नावत * रामसिंग इत नृपति कहावत ॥३॥
रामदास घाटी-कर नाँऊ * तथा रामपुर बाजत गाँऊ ॥४॥

तब लोगोंने आय शिर नवाकर यह बात कही कि, यहाँ के राजा रामसिंह हैं ॥ ३ ॥ इस घाटीका नाम रामदास है और यह गांव रामपुर कहलाता है ॥ ४ ॥

रामघाट यह सुनो गोसाईं * लगत जगात इते बरिआईं ॥५॥
बिन कर दै कोउ जान न पावै * तुमको देव उचित चित भावै ॥६॥

हे गोसाईं ! सुनो, यह रामघाटी है यहां कर लगता है ॥ ५ ॥ बिना कर दिये यहांसे कोई जाने नहीं पाता है और तुम भी कुछ दो, जो तुम्हारी इच्छा हो ॥ ६ ॥

राममय गुणि नाम सबनके ❋ सजल कोरभे प्रभु नयननके ॥७॥
तुलसिदास बोले मुसुकाई ❋ दै जगात है मोर जवाई ॥८॥

तुलसीदासजीने जब स्थानोंके नाम राममय सुने तब नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ७ ॥ तब तुलसीदासजीने हँसकर कहा, कर देकर शीघ्र ही चलते हैं ॥ ८ ॥

सुन्यो गोसाईं आगम राजा ❋ आयो तुरतहिं सहित समाजा ॥९॥
वंद्यो तुलसिदास पदकंजन ❋ लिय उपदेशकुमतिदृग अंजन॥१०॥

इधर राजा तुलसीदासजीका आगमन सुनकर सब समाजसहित उनके दर्शनको आया ॥ ९ ॥ और तुलसीदासजीके चरणोंको प्रणाम कर, कुमति रूप दोषोंको दूर करनेवाला व नेत्रदोष दूर करनेवाला उपदेशरूप अंजन लिया ॥ १० ॥

विनय कियो भरि आनँद भारा ❋ होय नाथ इतही भंडारा ॥११॥
मेरे कंठ देहु प्रभु कंठी ❋ कीजै मोहि बसिद विकुंठी ॥१२॥

बड़े आनंदको प्राप्त हो विनय की और कहा–हे स्वामिन् ! यहीं भंडारा हो तो भला है ॥ ११ ॥ हे प्रभु ! मुझे कण्ठी दीजिये जिससे मैं वैकुण्ठवासी हो जाऊँ ॥ १२ ॥

दोहा–तुलसिदास करिकै कृपा, भंडारा तहँ कीन ॥
भूपहु द्रव्य लगायके, अति उत्सव तहँ कीन ॥ १९ ॥

तब तुलसीदासने कृपा करके वहां भण्डारा किया और राजाने बहुत द्रव्य लगाकर वहां उत्सव किया ॥ १९ ॥

दोहा–तुलसिदास उपदेशते, भूप सहित सब देश ॥
रघुपतिभक्ति अनन्य भो, सेयो सन्त हमेश ॥ २० ॥

तुलसीदासजीके उपदेशसे राजाके सहित वह देश रघुनाथजीका अनन्य भक्त हो गया और सदा सन्तोंकी सेवा करने लगा ॥ २० ॥

दोहा–तुलसिदासकी पादुका, धरयो भूप गृहमाहि ॥
इष्ट देव सम पूजिकै, पायो मोद सदाहि ॥ २१ ॥

राजाने घरमें तुलसीदासजीकी खड़ाऊं रख ली, इष्टदेवके समान पूजा कर सदा आनंद पाया ॥ २१ ॥

एक दिना निवसत तेहि काशी ❋ एक चरित्र भयो सुखराशी ॥१॥
भैरवनाथ प्रभाव अपारा ❋ सो मनमें अस कियो विचारा॥२॥

काशीमें निवास करते-करते एक समय एक बड़ा ही सुखदायक चरित्र हुआ ॥ १ ॥ भैरवनाथका काशीमें प्रभाव है, ऐसा उन्होंने विचार किया ॥ २ ॥

मोहिं गोसाईं पूजत नाहीं ❋ दरशाऊँ प्रभाव यहि काहीं ॥३॥
अस गुनि तुलसिदासके बाहू ❋ दुसह पीर प्रगटयो प्रद दाहू ॥४॥

कि, मुझे गोसाईं पूजते नहीं हैं; मैं कुछ इनको अपना प्रभाव दिखलाऊंगा ॥ ३ ॥ यह विचार कर तुलसीदासजीकी भुजामें महापीड़ा उत्पन्न कर दी ॥ ४ ॥

होत भई अति पीर तहाँहीं ❋ छूटत जान्यो निज तनु काहीं ॥५॥
जतन कोटि कीन्हे मति धीरा ❋ तबहुँ न मिटी बाहुकी पीरा ॥६॥

और ऐसी पीड़ा हुई कि गोसाईंजीने समझा कि शरीर छूट जायगा ॥ ५ ॥ करोड़ों यत्न किये परन्तु बाहुकी पीड़ा न मिटी ॥ ६ ॥

तब बाहुकको रच्यो गोसाईं ❋ मिटि गइ पीर स्वप्नकी नाईं ॥७॥
भैरव पर कोप्यो हनुमाना ❋ भैरवसों शिव वचन बखाना ॥८॥

तब गोसाईंजीने "हनुमानबाहुक" बनाया जिससे सब पीड़ा स्वप्नकी नाईं मिट गयी ॥ ७ ॥ हनुमान्‌जीने भैरव पर क्रोध किया, तब शिवजीने भैरवनाथसे कहा ॥ ८ ॥

देहिं रामदासन दुख नाहीं ❋ ते मोहि प्रिय प्राणहुँते आहीं ॥९॥
स्वप्ने तुलसीसों शिव भाष्यो ❋ मैं भैरवहिं मुख्य गण राख्यो ॥१०॥

जो रामभक्तोंको दुःख नहीं देते वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं ॥ ९ ॥ स्वप्नमें तुलसीदासजीसे शिवजीने कहा—मैंने भैरवनाथको मुख्य गण रख छोड़ा है ॥ १० ॥

इनहूँको वंदन तुम कीजै ❋ मोरि प्रीति अतिशय गुण लीजै ॥११॥
तुलसिदास तब आनँद पायी ❋ भैरवकी वंदना बनायी ॥१२॥

तुम इनकी भी वंदना करो इससे मेरी बहुत प्रीति होगी ॥ ११ ॥ तुलसीदासजीने आनन्द पाकर भैरवकी वंदना बनायी ॥ १२ ॥

दोहा—रच्यो कवित्त उदग्र अति, बाहुक चौआलीस ॥
तासु प्रभाव प्रत्यक्ष अति, अबलौं आँखिन दीस ॥ २२ ॥

बाहुकमें चौवालिस प्रतापयुक्त कवित्त हैं, जिनका महाप्रभाव है जो अब तक प्रत्यक्ष दीखता है ॥ २२ ॥

दोहा—जो चौवालिस दिवस लगि, हनुमत मंदिर जाय ॥
पाठ करै बाहुक सुचित, बैठि सनेम सुहाय ॥ २३ ॥

जो हनुमान्‌के मंदिरमें जाकर चौवालिस दिनतक हनुमान् बाहुकका नियमसे बैठकर पाठ करे ॥ २३ ॥

दोहा—तासु प्रेत बाधा सकल, तनकी मनकी पीर ॥
मेटि देत मारुतसुवन, यह भाषैं मतिधीर ॥ २४ ॥

उसकी सब प्रेतबाधा, तन-मनकी सब पीड़ा महावीरजी मेट देतेहैं, यह मतिधीर कहते हैं ॥ २४ ॥

एक समय तुलसी भण्डारे ❋ जुरी भेंट जन दिये अपारे ॥१॥
चोर चुरावनके हित आये ❋ अर्ध निशा निज घात लगाये ॥२॥

एक समय तुलसीदासजीके भण्डारेमें बहुत भेंट मिलीं, अधिक मनुष्य एकत्र हुये ॥ १ ॥ उस समय चोर चोरी करनेको आये और आधी रातको उन्होंने घात लगाया ॥ २ ॥

जबहीं चोर चुरावन आवैं ❋ द्वै बालक धनुशर लै धावैं ॥३॥
यहि विधि सिगरो राति सिरानी ❋ चोरन उतरे कुमति परानी ॥४॥

जबही चोर चुराने आवें तभी दो बालक धनुष बाण लिये सम्मुख उपस्थित हों ॥ ३ ॥ इस प्रकार सारी रात बीत गयी, भगवान्‌के दर्शनसे कुमति जाती रही ॥ ४ ॥

दौरि चोर तुलसीके पाँयन ❀ परे आय चितमें अतिचायन ॥५॥
पूँछ्यो को बालक प्रभु दोऊ ❀ इतै न आवन पावत कोऊ ॥६॥

और दौड़ कर तुलसीदासजीके पाँवपर बड़े प्रेमसे पड़े ॥ ५ ॥ पूँछा कि हे प्रभु ! वे दो बालक कौन हैं जिनके भयसे कोई नहीं आने पाता ॥ ६ ॥

तुलसिदास पूँछ्यो वृत्तांता ❀ चोर कह्यो सिगरे ह्वै शांता ॥७॥
धन्य धन्य कहि पुलकि गोसाईं ❀ गहे चोर पांयन बरिआईं ॥८॥

तुलसीदासजीने वृत्तांत पूछा चोरोंने शान्त होकर सब कहा ॥ ७ ॥ गोसाईंजी पुलकित होकर धन्य धन्य कह चोरोंके पांव पड़ गये ॥ ८ ॥

ह्वैगे शिष्य तुरतहि चोरा ❀ तुलसिदास उर भो दुख मोरा ॥९॥
संपति धरब उचित इत नाहीं ❀ राम लषण ताकैं धनकाहीं ॥१०॥

चोर तत्काल शिष्य हो गये और तुलसीदासजीके मनमें दुःख हुआ ॥ ९ ॥ यहां सम्पत्ति रखनी उचित नहीं, क्योंकि धनसे श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण को दुःख होता है ॥ १० ॥

धिग तेहि जेहि प्रभु परिश्रम भयऊ❀अबलौं मोर कपट नहिं गयऊ॥११॥
असग्नि संपति दियो लुटाई ❀ कर करवा कौपीन बिहाई ॥१२॥

उसे धिक्कार है जिसके कारणसे प्रभुको परिश्रम हुआ और मेरा कपट अब तक नहीं गया ॥११॥ऐसा सोचकर सम्पूर्ण सम्पत्ति लुटा दी केवल हाथमें करवा और कौपीन रहने दिये ॥१२॥

दोहा—काशीमें पुनि इक समय, मर्‌यो विप्र कोउ एक ॥
सती होन हित तासु तिय, बांध्यो जतन अनेक ॥ २५ ॥

एक समय काशीमें कोई ब्राह्मण मर गया, उसकी स्त्रीने सती होनेके निमित्त अनेक यत्न किये ॥ २५ ॥

न्हाय पहिरि पट नरियल लैंके ❀ चली देवदर्शन सुख छैके ॥१॥
तुलसिदास आश्रमहूँ गवनी ❀ वंद्यो चरण विप्रकी रमनी ॥२॥

वह स्नान कर वस्त्र पहन नारियल हाथमें लेकर देवता का दर्शन करने चली ॥१॥ मार्गमें तुलसीदासजीका आश्रम मिला, उस ब्राह्मणकी स्त्रीने उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥

ध्यान करत तहँ रहे गोसाईं ❀ बोले वचन सहज की नाईं ॥३॥
हो सौभाग्यवती तैं नारी ❀ सुनि सहगामिनि गिरा उचारी ॥४॥

उस समय गोसाईंजी ध्यान करते थे, इससे सहज स्वभावसे बोल उठे ॥ ३ ॥ हे स्त्री ! सौभाग्यवती हो, यह सुनकर उस सहगामिनी स्त्रीने बाणी उच्चारण की ॥ ४ ॥

(साखी) दोहा-तुलसी आवत देखकरि, सती नवायो शीश ॥
जब तुलसी ऐसे कह्यो, अमर चूड़ आशीश ॥ २६ ॥

तुलसीदासजीको आते देखा और सतीने शिर नवाया। उस समय तुलसीदासने कहा तेरा सौभाग्य अचल रहे ॥ २६ ॥

दोहा-पती हमारे चलि गये, हमहूँ चलत विहाल ॥
तुलसि तुम्हारे वचनको, होसी कौन हवाल ॥ २७ ॥

तब वह बोली-भगवन्! मेरा पति मर गया और मैं भी सती होने जाती हूँ! हे गोसाईं तुम्हारे वचनकी अब क्या दशा होगी ॥ २७ ॥

सत्य करो अपनी प्रभु बानी ❋ सती होन हित अहौं पयानी ॥१॥
लख्यो गोसाईं नयन उघारी ❋ किये हुती तिय सती तयारी ॥२॥

हे प्रभु! अपनी वाणी सफल करो, मैं तो सती होने जाती हूँ ॥ १ ॥ तब गोसाईंजीने नेत्र खोलकर देखा कि वह सती होनेकी तैयारी कर चुकी थी ॥ २ ॥

अपने वचन सत्यके हेतू ❋ गये जहां मृत दाहन नेतू ॥३॥
नयन मूँदि दोउ भुजा पसारहु ❋ जय जय सीताराम उचारहु ॥४॥

तब गोसाईंजी अपने वचनकी सत्यताके निमित्त उस मृतकके समीप गये ॥ ३ ॥ और कहा हे स्त्री! नेत्र मूँदकर दोनों भुजाकर पसार अपने स्वामीसे मिलो और जयजय सीताराम उच्चारण करो ॥ ॥ ४ ॥

मृतक ओर चितये जो कोई ❋ आंधर सो विशेषके होई ॥५॥
जन समाज तैसहि सब कीन्हे ❋ सीताराम मुदित कहि दीन्हे ॥६॥

इस समय कोई मृतककी ओर न देखे, जो देखेगा सो अन्धा हो जायेगा ॥ ५ ॥ सब समाजने वैसे ही किया और प्रसन्न हो सीतारामका उच्चारण किया ॥ ६ ॥

जब सब बोले राम दोहाई ❋ मृतकहु बोल्यो हाथ उठाई ॥७॥

जब सबने रामदुहाई बोली, तब मृतक भी हाथ उठाकर बोला ॥ ७ ॥

दोहा-तुलसी राम बोलाइकै, मस्तक धारचो हाथ ॥
हम तो कछु जानैं नहीं, तुम जानो रघुनाथ ॥ २८ ॥

तब तुलसीदासजीने राम शब्दको मृतकसे उच्चारण कराकर उसके ऊपर हाथ रखा और बोले हम तो कुछ जानते नहीं, हे रघुनाथजी! सब तुम ही जानते हो ॥ २८ ॥

दोहा-दौरि गह्यो तुलसी चरण, जै जै माच्यो शोर ॥
कोइक मूँद्यो नयन नहिं, भयो अंध तेहि ठौर ॥ २९ ॥

मृतक जी उठा और दौड़कर तुलसीदासजीके चरण पकड़ लिये और जयजयकारका शोर मच गया। किसी एकने नेत्र नहीं मूँदा था सो उसी समय वहां अन्धा हो गया ॥ २९ ॥

गह्यो आय पद ताकी नारी ❋ हरहु नाथ यक आँखि हमारी ॥१॥
एक आँखि पतिकी प्रभु दीजै ❋ अपनो वचन सत्य करि लीजै ॥२॥

उसकी स्त्रीने आकर चरण पकड़ लिये और बोली, हे भगवन् ! आप हमारी एक आंख ले लो ॥ १ ॥ और एक आंख हमारे पतिको दे दो, अपना वचन सत्य करो ॥ २ ॥

एवमस्तु कहि दियो गोसाईं ❋ तैसहि भयो तुरत तेहि ठाईं ॥३॥
पुनि काशीमहँ कौनेहु काला ❋ गोहत्या केहु लगी कराला ॥४॥

गोसाईंजीने 'ऐसा ही हो' यह वचन कहा और ऐसा ही होगया । उसको एक आंखसे दीखने लगा ॥ ३ ॥ फिर काशीमें किसीको गोहत्या लगी ॥ ४ ॥

दियो कुटुम्ब तासु तब त्यागी ❋ आयो सो तुलसी पद लागी ॥५॥
कह्यो जोरि कर सुनहुँ उदारा ❋ लखैं लोग नहिं बदन हमारा ॥६॥

उसके कुटुम्बियोंने उसका त्याग कर दिया सो तुलसीदासके चरणोंमें आ पड़ा ॥ ५ ॥ और हाथ जोड़कर बोला-हे भगवन् ! कोई भी हमारा मुख नहीं देखता ॥ ६ ॥

तुलसिदास बोले तब बैना ❋ राम कहे तनु पाप रहै ना ॥७॥
हम कुटुम्ब सब देब मिलाई ❋ राम राम तैं कहु रट लाई ॥८॥

तब तुलसीदासजी बोले राम नाम का उच्चारण करनेसे तुम्हारे शरीरमें पाप नहीं रहेगा ॥ ७ ॥ हम सब कुटुम्बियोंमें मिला देंगे तू राम नामका जप कर ॥ ८ ॥

तेहि मुख राम राम रट लागी ❋ तनुते गोहत्या द्रुत भागी ॥९॥
तुलसी तासु कुटुम्ब मिलायो ❋ मंजुल वचन सबनसों गायो ॥१०॥

उसके मुखसे रामकी रट लगी और शरीरसे गोहत्या शीघ्र दूर भाग गयी ॥ ९ ॥ तुलसीदासजीने उसके सब कुटुम्बको बुलाया और सबसे मनोहर वचन कहा ॥ १० ॥

राम कहत गोवध अब भाग्यो ❋ याको वृथा सबै तुम त्याग्यो ॥११॥
जेहि प्रतीत अब होहिं तिहारी ❋ सो करि लेहु परीक्षा भारी ॥१२॥

राम कहते ही इसका अब गोवधका पाप भाग गया, इसे तुमने वृथा क्यों त्याग दिया ॥ ११ ॥ जिससे विश्वास प्रतीत हो सो तुम कठिन परीक्षा कर लो ॥ १२ ॥

दोहा-कह्यो कुटुम्बी तासु सब, जो नंदी शिव भौन ॥
याके करको खायँ कछु, तौ सन्देह है कौन ॥ ३० ॥

तब उसके कुटुम्बी बोले-जो शिवजीके भवनका नंदिया उसके हाथका कुछ भोजन कर ले तो हमें सन्देह नहीं है, इससे पवित्र मान लेंगे ॥ ३० ॥

तब विश्वेश्वर मंदिर-माहीं ❋ गये गोसाईं लै तेहि काहीं ॥१॥
नन्दीश्वरसों विनय सुनायो ❋ नाम प्रभाव तुम्ही सब गायो ॥२॥

तब गोसाईंजी उसको लेकर विश्वेश्वरनाथके मन्दिरमें गये ॥ १ ॥ नंदीश्वरसे प्रार्थना की कि, नाम का प्रभाव तो सब तुमने ही गाया है ॥ २ ॥

राम नामको यथा प्रभाऊ ❋ तुम समान कोउ जानन काऊ ॥३॥
राम कहत जो अघ रहि जावै ❋ तौ यहि कर प्रभु कछु न पावै ॥४॥

राम नामका प्रभाव तुम्हारे समान कोई जानने वाला नहीं ॥ ३ ॥ राम कहनेसे भी जो पाप रह जाय तो हे प्रभु ! आप इसके हाथका भोजन मत करो ॥ ४ ॥

अस कहिकर द्विजकर कृत पेरा ❋ धरि दीन्हो नन्दीश्वर नेरा ॥५॥
दे किवाँर बाहर प्रभु बैठे ❋ कौतुक लखन जुरे जन तैठे ॥६॥

यह कह ब्राह्मणके हाथका पेड़ा नन्दीश्वरके आगे धर दिया ॥ ५ ॥ किवाँड़ बन्दकर आप बाहर आ बैठे और यह चरित्र देखनेको इकट्ठे हुए ॥ ६ ॥

लखे किवाँर खोलि जब जाई ❋ लीन्हो नन्दी पेड़ा खाई ॥७॥
यक मुखमहँ प्रतीति हित राख्यो ❋ काशीवासी जय जय भाष्यो ॥८॥

और जब किवाँड़ खोलकर देखा तो नन्दीश्वरने पेड़ा खा लिया ॥ ७ ॥ और प्रतीतिके निमित्त एक मुखमें रख लिया। काशीवासी जनोंने जय जयकार किया ॥ ८ ॥

लिय कुटुम्ब सब ताहि मिलाई ❋ तुलसिदास महिमा मुखगाई ॥९॥
एक समय पुनि तुलसीदासा ❋ कछु दिन किये अवध पुरवासा ॥१०॥

उसके सब कुटुम्बवालोंने उसे मिला लिया। तुलसीदासजी की महिमा मुखसे गाई ॥९॥ फिर एक समय तुलसीदासजी कुछ दिन तक अयोध्यामें रहे ॥ १० ॥

एक विप्र बालक तहँ मरेऊ ❋ तुलसी चरण आय सो गिरेऊ ॥११॥
लोक रीति तुलसी समझायो ❋ ताके मनमें कछु न आयो ॥१२॥

एक ब्राह्मणका बालक वहां मर गया सो उसका पिता आकर तुलसीदासजीके चरणोंमें गिरा ॥ ११ ॥ लोकरीतिसे तुलसीदासजीने उसको बहुत समझाया परंतु उसके ध्यानमें कुछ न आया ॥ १२ ॥

दोहा-लोथि तहां धरि सो गयो, तुलसिदासके द्वार ॥
खान पान संध्या न किये, तुलसी कियो खँभार ॥ ३१ ॥

सो वह तुलसीदासके द्वार उसको लोथ (लाश) को डालकर चला गया, उस समय तुलसीदासजीने खान पान सन्ध्यादिक न किये, एकाएक व्याकुलता छा गयी ॥ ३१ ॥

सुमिरण कीन्हो पवन-कुमारा ❋ अहो नाथ तुम मोहिं अधारा ॥१॥
हनूमान कह स्वप्ने आई ❋ यहि पर यम कीन्हे जबराई ॥२॥

तब महावीरजीका स्मरण किया और कहा-हे नाथ ! तुम ही मुझे आधार हो ॥१॥ तब उसी समय स्वप्नावस्थामें महावीरजी बोले-यमराजने इसपर जबराई की है ॥ २ ॥

पै याको हम अवशि जिऐ हैं ❋ राम भक्तको शोक मिटैहैं ॥३॥
अस कहि यमपुर गयो कपीशा ❋ यम बोल्यो पद नावत शीशा ॥४॥

परन्तु हम इसको अवश्य जिला देंगे, राम भक्तका शोक मिटा देंगे ॥ ३ ॥ यह कहकर महावीरजी यमलोकको गये, यमराजने माथा नवाकर कहा ॥ ४ ॥

यमपुर विप्रबाल जिय नाहीं ❋ खोजि लेहु सिगरे पुरमाहीं ॥५॥
खोज्यो कपि पायो नहिं जीवा ❋ तब यमपुर करि कोप अतीवा ॥६॥

बालक यमपुरमें नहीं है, तुम सब स्थानोंमें खोज करके देख लो ॥ ५ ॥ ढूँढ़नेपर महावीरजीने बालकको नहीं पाया तब यमलोक पर बड़ा क्रोध किया ॥ ६ ॥

सुमिरि रामपद महिमा सिगरी * लियो लपेट लँगूरसों नगरी ॥७॥
बोल्यो यमसे पवन कुमारा * देहु जियाइ विप्रको बारा ॥८॥

रामचन्द्रके चरणोंकी महिमा स्मरण कर सब पुरीको पूँछमें लपेट लिया ॥ ७ ॥ और यह वचन कहे कि ब्राह्मणके बालकको जिला दो ॥ ८ ॥

नहिं तो तेहि संग यमपुर जैहैं * मम प्रभु तुव सम और बनैहैं ९॥
तब यम भभरि कह्यो कर जोरी * भाग्यमिटावन शक्ति न मोरी ॥१०॥

नहीं तो बालकके संग यमपुरी नष्ट हो जायेगी। हमारे प्रभु दूसरा यम और बनावेंगे ॥ ९ ॥ तब यमराजने हाथ जोड़कर कहा–भाग्य मिटानेकी मेरी शक्ति नहीं है ॥ १० ॥

श्लोक–लिखिता चित्रगुप्तेन ललाटेऽक्षरमालिका ॥
सा न चालयितुं शक्या ह्यसुरैस्त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

जो चित्रगुप्तने मस्तकमें अक्षरमाला लिख दी उसे देवता, असुर कोई भी नहीं मिटा सकता ॥३॥

वायुसुवन तब कह मुसुकाई * यह सति रघुपतिभक्त विहाई ॥११॥
तामें सुन यमराज प्रमाना * कियो सनातन वेद बखाना ॥१२॥

महावीरजी हँसकर बोले–यह नियम रामभक्तिहीन मनुष्योंके निमित्त है ॥ ११ ॥ इसमें तुम प्रमाण सुनो, यह सनातन वेदने बखान कर कहा है ॥ १२ ॥

श्लोक–यद्धात्रा लिखितं भाले तन्मृषा नैव जायते ॥
ऋते श्रीरामदासानां प्रेमनिर्भरचेतसाम् ॥ ४ ॥

जो विधाताने मस्तकमें लिख दिया है वह झूँठा नहीं होता, परन्तु परम प्रेमी रामदासोंको छोड़कर दूसरोंको यह नियम लगता है ॥ ४ ॥

दोहा–तब यमराज डरायके, ले द्विज बालक प्रान ॥
अरप्यो आइ कपीशको, राख्यो अपनो थान ॥ ३२ ॥

तब यमराजने डरकर ब्राह्मणके बालकका प्राण लेकर महावीरजीको दिया, जिसे अपने स्थानमें रख लिया था ॥ ३२ ॥

दिय कपीश द्विजपुत्र जियाई * सकल अवधपुर बजी बधाई ॥१॥
तुलसिदास अति आनँद पायो * तहां वसत कछुकाल बितायो ॥२॥

तब यमराजने ब्राह्मणके पुत्रको जीवित किया और सम्पूर्ण अयोध्यामें बधाई बाजी ॥ १ ॥ तुलसीदासजीने महा आनन्द पाया और कुछ दिनों तक वहां रहे ॥ २ ॥

आयो एक वणिक पुनि कोऊ * राम दरश लालच अति सोऊ ॥३॥
तुलसिदाससों विनय सुनायो * श्री रघुवीर दरश चित चायो ॥४॥

फिर वहां रामके दर्शनकी इच्छासे कोई वैश्य आया ॥ ३ ॥ तुलसीदाससे विनय की कि, मुझे रामचन्द्रके दर्शनकी इच्छा है ॥ ४ ॥

तुलसिदास तब कह मुसकाई * यह तो बात महाकठिनाई ॥५॥

सहजहि रामदरश नहिं होई * कोटिन जनम जात हैं खोई ॥६॥

तब तुलसीदासने हँसकर कहा कि यह बात तो महाकठिन है ॥ ५ ॥ सहजमें श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन नहीं होता, इसमें करोड़ों जन्म बीत जाते हैं ॥ ६ ॥

वणिक कह्यो है कौन उपाई * तुलसिदास तब कह्यो बुझाई ॥७॥
बरछी गाड़ि भूमिमहँ देहू * तापर कूदहु तजि तनुनेहू ॥८॥

वणिक बोला-कोई तो उपाय कहो ? तुलसीदासजीने समझाकर कहा ॥ ७ ॥ पृथ्वीमें एक बरछी गाड़कर उसके ऊपर कूद पड़ो और शरीरका स्नेह छोड़ दो ॥ ८ ॥

यहि विधि दरश होइ तौ होई * और जतन कछु परै न जोई ॥९॥
वणिक कह्यो यह तो न असति है *तुलसिदासकहसतिसतिसति है॥१०॥

कदाचित् इस प्रकार दर्शन हो तो हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ वैश्यने कहा-यह असत्य तो नहीं है ? तुलसीदासजी बोले-सत्य है, सत्य है, सत्य है ॥ १० ॥

वणिक गाड़ि बरछी महिमाहीं * चढ़यो जाइ तरु कूदनकाहीं ॥११॥
मरण भीत कूद्यो नहिं जाई * बनिया बार बार पछिताई ॥१२॥

बनियाने पृथ्वीमें बरछी गाड़कर वृक्षके ऊपर चढ़ कूदनेकी इच्छा की ॥ ११ ॥ परन्तु मरनेके डरसे कूदा न गया उस समय वह वैश्य बार बार पछताया ॥ १२ ॥

दोहा-कोउ क्षत्रिय तेहि पंथ है, लख्यो तमाशो जाइ ॥
कह्यो वणिक सों काह यह, वैश्य कह्यौ सब गाइ ॥ ३३ ॥

किसी क्षत्रियने मार्गमें यह कौतुक देखा और पूछा यह क्या करते हो ? तब वैश्यने सब कथा कही ॥ ३३ ॥

क्षत्रिय कह्यो उतरि तुम आवहु * कौन हेतु तनु वृथा गँवावहु ॥१॥
मोसों लेहु कछुक धन भाई * करहु जाय रोजगार बनाई ॥२॥

क्षत्रिय बोले-तुम उतर आओ, क्यों वृथा अपना शरीर नष्ट करते हो ? ॥ १ ॥ मुझसे कुछ धन लो और जाकर रोजगार करो ॥ २ ॥

वणिक मानि क्षत्रियके बैना * ले धन तुरत गयो निज ऐना ॥३॥
क्षत्रिय लियो मनहिं अनुमानी * मृषा न तुलसिदासकी बानी ॥४॥

वैश्य क्षत्रियके वचन मान धन ले शीघ्र अपने स्थानको गया ॥ ३ ॥ क्षत्रियने मनमें जान लिया कि तुलसीदासके वचन असत्य नहीं होते ॥ ४ ॥

तरुपर चढ़ि कूद्यो बरछीपर * उपरहि रोंकि लियो तेहि रघुबर॥५॥
बजे नगर दुन्दुभी अपारा * भयो सुयश सिगरे संसारा ॥६॥

वृक्षपर चढ़कर बरछीपर कूद पड़ा तुरन्त ही रामचन्द्रने ऊपर रोक लिया ॥ ५ ॥ नगरमें दुन्दुभी बजने लगी सब संसारमें यश छा गया ॥ ६ ॥

तहां प्रमाण गोसाईंजीको * मैं लिखि देहौं सोई नीको ॥७॥

कौनिहु सिद्धिकि विन विश्वासा ❋ विनहरि भजन न भव भय नाशा ॥८॥

उसपर जो गोसाईंजीने प्रमाण कहा सो मैं लिखे देता हूँ ॥ ७ ॥ विना विश्वासके कोई सिद्धि नहीं होती और हरिभजनके विना संसारका भय नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥

यक दिन गुरुजू गये नहाने ❋ मज्जन हित जब नीर समाने ॥९॥
तहँ इक तिय बिन वसन नहाती ❋ कह्यो लाज भरिसो विलखाती ॥१०॥

एक दिन जब तुलसीदास स्नान करने गये और स्नान करनेको जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥ तब वहां एक स्त्री नग्न स्नान कर रही थी, उसने लज्जासे व्याकुल होकर कहा ॥ १० ॥

करि मम ओर पीठि यहि ठांई ❋ ठाढो रहु तोहिं राम दुहाई ॥११॥
तिय मज्जन करिके घर आई ❋ तुलसिदास सुनि राम दोहाई ॥१२॥

तुम्हें रामकी दुहाई है ? मेरी ओरको पीठ करके खड़े रहो ॥११॥ स्त्री तो मज्जन कर घर चली आयी और तुलसीदासजी रामदुहाई सुन कर ॥ १२ ॥

रहे ठाढ़ सोइ दिन सोइ ठांई ❋ शपथ बहोरब तिय बिसराई ॥१३॥
भयो शोर सिगरे पुर माहीं ❋ आई सो तिय बहुरि तहाहीं ॥१४॥

खड़े रहे और दिन भर बीत गया, स्त्री शपथ लौटानी भूल गई ॥ १३ ॥ सब नगरमें शोर मच गया तब स्त्री वहां आयी ॥ १४ ॥

दोहा-तुलसिदाससौं वचन कह, राम शपथ तुमकाहिं ॥
जाहु आपने भवनको, इतै काज कछु नाहिं ॥ ३४ ॥

तुलसीदाससे बोली-तुम्हें रामकी सौगन्ध है, अब तुम अपने स्थानमें जाओ, तुम्हारा यहां कुछ काम नहीं है ॥ ३४ ॥

दोहा-तुलसिदास जलते निकसि, तब आयो निज भौन ॥
जलचर पगपल नोच लिय, कियो न इक पद गौन ॥ ३५ ॥

तब तुलसीदासजी जलसे निकलकर अपने स्थानमें आये, खड़े-खड़े जलजन्तुओंने मांस नोंच लिया था, तो भी एक पग न चले ॥ ३५ ॥

दोहा-रामशपथ यहि भांतिकी, ताहि मंदमति लोग ॥
रामद्रोह भाषत रहैं, करिकैं मृषा प्रयोग ॥ ३६ ॥

इस प्रकारकी रामकी शपथ है,मन्दमति पुरुष द्रोहसे अन्यथा अनेक शपथ करते हैं और झूठी दुहाई करते हैं ॥ ३६ ॥

तुलसिदासकर बढ़्यो प्रभाऊ ❋ भयो विदित पुहुमी सब ठांऊ ॥१॥
बादशाह दिल्लीको वासी ❋ सुनि कीरति अति आनँद राशी ॥२॥

जब तुलसीदासजी का प्रभाव बढ़कर पृथ्वीमें फैला ॥ १ ॥ तब दिल्लीके बादशाहने यह सब चरित्र सुनकर अत्यन्त आनंदित हो ॥ २ ॥

निज नायकको कह्यो बुझाई ❋ तुलसिदासको ल्याइये लिवाई ॥३॥
नायक चल्यो बनारस आयो ❋ तुलसिदासके पद शिर नायो ॥४॥

अपने नायकसे कहा कि तुलसीदासको बुलाकर लाओ ॥ ३ ॥ तब वह बनारस आये और तुलसीदासके चरणोंमें शिर नवाया ॥ ४ ॥

हजरत तुम्हैं बुलायो साईं ❋ चल्यो दूत कहिकै तेहि ठाईं ॥५॥
तुलसिदास तब कियो विचारा ❋ कौन शाहते हेत हमारा ॥६॥

और बोला-हे स्वामिन् ! तुम्हें बादशाहने बुलाया है, यह कह कर दूत चला गया ॥५॥ तुलसीदासजीने विचार किया, हमारा बादशाहसे क्या काम है ? ॥ ६ ॥

पै जो हम दिल्ली नहिं जैहैं ❋ शाह अवशि दर्शनहित ऐहैं ॥७॥
तो जीवनको अति दुख होई ❋ उचित परै चलिबे मोहि सोई ॥८॥

परन्तु जो हम दिल्ली नहीं जायँगे तो वह दर्शनको आवेगा ॥ ७ ॥ तो यहांके तथा मार्गके प्राणियोंको कष्ट होगा इससे चलना ही भला है ॥ ८ ॥

तुलसिदास लै साधु समाजा ❋ दिल्ली गये सुमिरि रघुराजा ॥९॥
शाह कियो आदर सत्कारा ❋ पुनि बोल्यो अपने दरबारा ॥१०॥

तब तुलसीदास साधुसमाजको साथ ले श्रीरामचन्द्रका स्मरण कर दिल्लीको चले ॥ ९ ॥ बादशाहने बहुत सत्कार किया और दरबारमें बुलाकर कहा ॥ १० ॥

तुमहिं सुन्यो साहेबहि मिलापी ❋ अजमत देहु दिखाय प्रतापी ॥११॥
तुलसी कह्यो राम हम जानैं ❋ दूसर साहेब और न मानैं ॥१२॥

हमने सुना है कि तुम भगवान् से मिले हो, कुछ प्रताप हमें भी दिखाओ ॥ ११ ॥ तुलसीदासजी बोले-हम केवल रामनाम जानते हैं, और किसीको नहीं मानते ॥ १२ ॥

दोहा-अजमत देखन हेत तहँ, कीन्हों हठ शठ शाह ॥
तुलसिदास अजमत करन, कियो न मनमें चाह ॥ ३७ ॥

तब शठबादशाहने सिद्धि देखनेके निमित्त हठकी, परंतु तुलसीदासजीकी इच्छा न हुई॥३७॥

शाह सकोपि कह्यो तब बानी ❋ तू खिलाफ अजमत अभिमानी॥१॥
कारागार कैद यहि कीजै ❋ राम करत का सो लखि लीजै॥२॥

तब बादशाहने क्रोधकर कहा कि तुम अभिमानी हो और तुम्हारी झूठी बड़ाई है ॥१॥ इसे कारागारमें भेज दो, देखो इनका राम क्या करता है ? ॥ २ ॥

सुनत शाह शासन मजबूता ❋ कारागार गये लै दूता ॥३॥
तुलसिदास तब कियो विचारा ❋ मोर सहायक पवनकुमारा ॥४॥

बादशाहकी दृढ़ आज्ञा सुनकर दूत कारागारमें ले गये ॥ ३ ॥ तब तुलसीदासजी ने विचार किया कि, मेरे सहायक पवन कुमार हैं ॥ ४ ॥

सुमिरयो पद रचिकै हनुमाना ❋ सो पद श्रोता सुनहु सुजाना ॥५॥

एक पद महावीरजी का स्मरण कर, हे सुजान श्रोताओ ! उसे सुनो ॥ ५ ॥

पद-ऐसी तोहिं न बूझिए हनूमान हठीलै ॥
साहब कहूँ न रामसे तोसे न वसीलै ॥ *

हे महावीर हठीले! ऐसा तुम्हें न चाहिये, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई स्वामी नहीं है और न आपके समान दूसरा वसीला (सहायक) कोई है इत्यादि ॥

तुलसिदास यह पद रचि गायो * तब हनुमत उर अमरष आयो ॥६॥

तुलसीदास ने जब यह पद गाया तब महावीरजीको क्रोध हुआ ॥ ६ ॥

होत भोर दिल्ली पुर-माहीं * कोटिन मर्कट विकट देखाहीं ॥७॥
कोट कंगूरन और हबेली * कलशा दिये अनेकन ठेली ॥८॥

प्रातःकाल होते ही दिल्लीमें करोड़ों वानर दीखने लगे ॥ ७ ॥ कंगूरे और हबेलीपर वानर ही वानर दीखने लगे और कलशे जहां-तहां ढहा दिये ॥ ८ ॥

शाखा मृग यक यक घरमाहीं * प्रविशत लाखन तुरत दिखाहीं ॥९॥
लाल किलामधि शाह मखाना * तहुँ बाँदर प्रगटे सहसाना ॥१०॥

एक-एक घरमें लाख-लाख वानर प्रवेश करते दीखने लगे ॥ ९ ॥ बादशाहके लाल किलेमें भी अनेक वानरोंने प्रवेश किया ॥ १० ॥

तोपन तुपकन यद्यपि मारा * तदपि कीश नहिं हटे हजारा ॥११॥
घुसैं कीस बहु शाहि जनाने * पकरि बेगमनको अनखाने ॥१२॥

यद्यपि अनेक तोपें-बन्दूकें छोड़ी गयीं तथापि वानर हटे नहीं ॥ ११ ॥ बादशाहके जनानेमें घुस गये और बेगमोंको पकड़ कर परेशान करने लगे ॥ १२ ॥

दोहा-फारि बसन पटहीन किय, चीथि चीथि सब अंग ॥
हाहाकार मचाय दिय, रँगे कोपके रंग ॥ ३८ ॥

उनके वस्त्र फाड़कर उन्हें वस्त्रहीन कर दिया और वानरोंने ऐसा कोप किया कि हाहाकार मच गया ॥ ३८ ॥

रहे जौन दिल्ली के वासी * भये सकल ते जीव निरासी ॥१॥
लखि दुर्दशा शाह घबराना * सकल वजीरनको द्रुत आना ॥२॥

जो दिल्लीके निवासी थे वे सब महाव्याकुल हो गये ॥ १ ॥ यह दुर्दशा देख बादशाहने व्याकुल हो मन्त्रियोंको बुलाया ॥ २ ॥

शासन दीन्हों करहु विचारा * केहि हित मार्च्यो जुलुम अपारा ॥३॥
हाफिज वृद्ध रहो तहँ एका * सो कह कीन्हों अतिअविवेका ॥४॥

और आज्ञा दी इसका विचार करो यह दुःख कहांसे उपस्थित हुआ? ॥ ३ ॥ वहां एक वृद्ध हाफिज रहता था, उसने कहा आपने बड़ी अनीति की है ॥ ४ ॥

* ऐसी तोहिं न बूझिये हनुमान हठीले। साहब कहूं न रामसे तोसे न वसीले। तेरे देखत सिंहके शिशु मेंढक लीले। जानत हौं कल तेरेऊ मन गुणगण कीले ॥ हांक सुनत दशकंध के भये बंधन ढीले। सो बल गये किधौं भये अब गर्वगहीले। सेवकको परदा फटे तुम समरथ सीले। अधिक आपते आपनो सनिमान भहीले। सांसति तुलसिदासकी सुनि सुयश तुम्ही ले। तिहूं काल तिनको भलो जे राम रंगीले ॥ (विनयपत्रिका)

यक फकीरको कैद करायो * सो अपनी अजमत दरशायो ॥५॥
करत शाहके यही विचारा * दिल्ली माच्यो हाहाकारा ॥६॥

जो उस फकीरको कैद कर लिया है उसने यह अपनी करामात दिखायी ॥ ५ ॥ यही विचार बादशाहके सम्मुख हुआ और सब दिल्ली में हाहाकार मच गया ॥ ६ ॥

यक यक पुरुष नारि परकीशा * लाखन लपट गये करि रीशा ॥७॥
भागीं बेगम बिना सुथनियाँ * कहत खुदा विन पद पैजनियाँ ॥८॥

एक-एक पुरुष स्त्रीपर लाख-लाख वानर क्रुद्ध हो लिपट गये ॥ ७ ॥ बिना सुथनी वस्त्रोंके बेगमें भागीं और खुदा-खुदा पुकारने लगीं, पैरोंकी पैजनी त्याग दीं ॥ ८ ॥

नोचहिं नारिन केशन कीशा * भागत गिरीं फूटिगे शीशा ॥९॥
मातु सुता पितु सुत तजि भागे * कोउ कोउ संग न लिय भयपागे॥१०॥

वानर स्त्रियोंके बाल खींचने लगे, वे भागती थीं गिरकर उनके शिर फूट जाते थे ॥ ९ ॥ माता पिता पुत्री और पुत्रोंको छोड़कर भागने लगे, डरसे किसीने किसीको साथ न लिया॥ १०॥

दिल्ली प्रलय होतिसी दीसै * हल्ला कियो मुहल्ला कीसै ॥११॥
कारागार जाय तब शाहा * गिरचो तुरत तुलसी पदमाहा ॥१२॥

उस समय दिल्लीमें प्रलयसी दीखने लगी, वानरोंने गली गलीमें हल्ला मचा दिया॥ ११॥ तब बादशाह कारागारमें जाकर तुलसीदासके चरणोंमें गिरे ॥ १२ ॥

दोहा—विनय कियो करजोर कर, अजमत लीन्हीं देखि ॥
अब बानरन समेटिये, प्रलय होतसी लेखि ॥ ३९ ॥

और हाथ जोड़कर बोले कि मैंने आपकी करामात देख ली, अब वानरोंको समेटो, नहीं तो दिल्लीमें प्रलय होती है ॥ ३९ ॥

तुलसीदास कह अजमत देखो * रामचरित्र सकल जिय लेखो ॥१॥
जो चाहो आपनी भलाई * तौ फेरहु पुर राम दोहाई ॥२॥

तुलसीदासजी बोले-यह अजमत (करामात) सबही रामका चरित्र है ॥ १ ॥ अब जो अपनी भलाई चाहो तो राम दुहाई फेर दो ॥ २ ॥

यह दिल्ली भो हनुमत-थाना * बसहु जाय रचि द्वितिय मकाना॥३॥
शाह मानि शासन शिर नाई * दिल्ली फेरी राम-दोहाई ॥४॥

यह दिल्ली वानरोंका स्थान हो गया, तुम किसी दूसरे स्थानमें अपने रहनेका विचार करो ॥ ३ ॥ तब बादशाहने आज्ञा मान दिल्लीमें राम दुहाई फेर दी ॥ ४ ॥

बंदर बन्द भये तेहि कालै * तुलसीको ल्याये निज आलै ॥५॥
कियो गोसाईंको सतकारा * दिल्ली दूसर रच्यो भुवारा ॥६॥

उसी समय वानरोंका उपद्रव बन्द हो गया, तुलसीदासको अपने स्थानमें लाये ॥ ५ ॥ गोसाईंजीका सत्कार कर बादशाहने दूसरी दिल्ली रची ॥ ६ ॥

रामघाट रचि यमुनामाहीं * दिल्ली अरपी तुलसी काहीं ॥७॥

बस्यो सुचित मन बादशाह तहँ * तुलसीको राख्यो तेहि पुरमहँ ॥८॥

यमुनामें राम घाट बनवाया, दिल्ली तुलसीदासजीको दे दी ॥७॥ दूसरी दिल्ली बसायी वहां बादशाह प्रसन्नतासे रहने लगा, उस पुरमें तुलसीदासजीको रखा ॥ ८ ॥

सुन्यो सूर-कीरति तेहि भांती * दर्शन अभिलाषा अधिकाती ॥९॥
पठै बुद्धिमानन ब्रजकाहीं * आन्यो सूरदास पुरमाहीं ॥१०॥

इसी प्रकार उस समय सूरदासजीकी कीर्ति फैल रही थी, बादशाहने उनके दर्शनकी इच्छा की ॥ ९ ॥ बुद्धिमानोंको ब्रजमें भेजकर सूरदासको बुलाया ॥ १० ॥

तुलसी सूर समागम भयऊ * रामकृष्णमय पुर है गयऊ ॥११॥
दोऊ गये शाह-दरबारा * बादशाह किय अतिसत्कारा ॥१२॥

जिस समय सूरदासजी और तुलसीदासजीका समागम हुआ सब पुर रामकृष्णमय हो गया ॥ ११ ॥ दोनों बादशाहके दरबारमें गये, बड़ा आदर-सत्कार हुआ ॥ १२ ॥

दोहा-शाह कही तब सूरसों, दीजै चरित देखाय ॥
सूर कह्यो तुलसी चरित. लखि नहिं गयो अघाय ॥ ४० ॥

तब बादशाहने सूरदाससे कहा-कुछ करामात दिखाओ, तब सूरदासने कहा कि तुलसीदासकी करामतसे पेट नहीं भरा ? ॥ ४० ॥

बेटी तुव जो बसे जनाने * तासु चरित सुनिए दो काने ॥१॥
कृष्ण रासकी सखी सोहाई * कौनेहु पाप भवन तव आई ॥२॥

तुम्हारे जनानेमें जो तुम्हारी पुत्री है उसका चरित्र दोनों कानोंसे सुनो ॥१॥ यह कृष्णके रासकी सखी है, किसी पापके कारण तुम्हारे यहां जन्म लिया है ॥ २ ॥

ताहि पठावहु ब्रजै तुरंता * रास करत जहँ राधाकन्ता ॥३॥
जो परतीति होय नहिं तेरे * तौ मानिये वचन अस मेरे ॥४॥

इसे ब्रजको अभी भेज दो, जहां राधा रमण रास करते हैं ॥ ३ ॥ विश्वास न हो तो मेरे ये वचन मानो ॥ ४ ॥

तासु बाम जंघा तिल होई * मूरति श्याम कपोलहि जोई ॥५॥
शाह सुनत उठि गयो जनाने * बेटी सों सो वचन बखाने ॥६॥

उसके कपोलोंमें कृष्णकी मूर्ति दीखती है और वाम जंघा पर तिल है ॥ ५ ॥ बादशाह उठ कर जनानेमें गया और बेटीसे सब सूरदासकी बातें कह दीं ॥ ६ ॥

सुनतहि सुता सूरढिग आई * दै तल मुख तनु दियो बिहाई ॥७॥
तासु जंघ तिल लख्यो अमोला * श्याम स्वरूपहु लख्यो कपोला॥८॥

पुत्री सुनते ही सूरदासके समीप आयी मुखपर तल प्रहार कर शरीर छोड़ दिया ॥ ७ ॥ उसकी जंघापर अनुपम तिल देखा और कपोलोंमें कृष्णजीकी मूर्ति दीखती थी ॥ ८ ॥

अचरज गुणि पूछ्यो तब सूरै * हेतु बखानि हरहु भ्रम पूरै ॥९॥
सूर कह्यो यह सखी रासकी *मान कियो पिय मिलन आसकी॥१०॥

बादशाहने अचरज मानकर सूरदाससे इसका कारण पूछा कि यह बात बताकर हमारा श्रम हरो ॥९॥ सूरदास बोले कि यह रासकी सखी है पियाके न मिलनेसे एक दिन रूठकर बैठी थी॥१०॥

मैं ही गयो मनावन याको * मान्यो नहिं मनायकै थाको ॥११॥
तब मैं कह्यो वियोगिन ह्वैहै * सोउ कह तुहूँ वियोगहि पैहे ॥१२॥

मैं ही इसे मनाने गया था, परन्तु मनाते-मनाते हार गया, यह न मानी ॥ ११ ॥ तब मैंने कहा तू वियोगिनी होगी, उसने कहा, यही दशा तुम्हारी भी होगी ॥ १२ ॥

दोहा–आय गये इहँ मिलनहित, तुरतहि, मदनगोपाल ॥
कर गहि जंघा धरि छरी, चूम कपोल विशाल ॥ ४१ ॥

तब स्वयं श्रीकृष्णजी उसे मनाने आ गये और जङ्घापर अपनी छड़ी रख, हाथ पकड़ उसके कपोल चूमे ॥ ४१ ॥

लियो लेवाय मनाय प्रियाको * जानो सब वृत्तांत तहांको ॥१॥
मोहिं कह्यो तैं प्रकट जगतमें * तारै जनन विराजि भगतमें ॥२॥

और उसे मनाकर लिवा ले गये यह वहांका वृत्तांत है ॥ १ ॥ मुझे कहा तुम जगत्‌में जाय भक्ति दृढ़ाय, प्राणियोंको तारो ॥ २ ॥

सखी होयगी शाह कुमारी *तोहि मिलिहै तब तनु तजि डारी॥३॥
सो अमरषवश मोहि तल मारयो * तनुतजियदुपतिधामसिधारयो ॥४॥

यह सखी शाहकी कुमारी होगी, तुम्हारे मिलनेसे इसका शरीर छूट जायगा ॥ ३ ॥ उसने जो क्रोधसे मेरे तल प्रहार किया सो शरीर त्याग यदुपतिके धामको गई ॥ ४ ॥

छरी चिह्न जंघा तिल सोई * चुम्बन कीन्ह कपोलहि जोई ॥५॥
शाह सत्यगुणि अचरज त्यागा * बारहिं बार सूर पग लागा ॥६॥

जङ्घापर छड़ी रखी थी इसीसे जङ्घापर तिल हो गया और चुम्बन किया इससे मूर्ति कपोलोंमें बसी ॥ ५ ॥ बादशाहने यह सुनकर अचरजको त्याग वारंवार सूरदासके चरणोंमें शिर नवाया ॥ ६ ॥

रहे बहुत दिन सूर गोसांई * करि सतसंग न मोद अघाई ॥७॥
यक दिन दोउ बजारमहँ बैठे * करि सतसंग मोद रस पैठे ॥८॥

सूरदास और तुलसीदास वहां बहुत दिन रहे और महाप्रसन्न हो सत्संगका सुख लिया ॥ ७ ॥ एक दिन दोनों बाजारमें बैठ सत्संगका महासुख ले रहे थे ॥ ८ ॥

शाह मत्त मातंग महाना * आवत चलो दुहुन दरशाना ॥९॥
लोगन कह्यो पराव तुरंता * ना तो करन चहत गज अंता॥१०॥

उस समय बादशाहका मतवाला हाथी बाजारमें आते देखा ॥ ९ ॥ लोग बोले-भागो नहीं तो यह मार डालेगा ॥ १० ॥

सूर कह्यो मैं जाहुँ गोसांई * मैं रहि सकौं न अटयहि ठांई ॥११॥
मेरे नन्दलाल अति बालक * किमि ह्वैहैं दुर्धर गज घालक ॥१२॥

सूरदासजी बोले-हे गोस्वामी ! मैं यहांसे भागता हूँ, अब नहीं ठहर सकता ॥ ११ ॥ मेरे नंदलाल बहुत बालक हैं, वे दुर्धर्ष हाथीको कैसे मार सकेंगे ? ॥ १२ ॥

तू बैठे तौ बैठ भलाई ❋ धनुधर तेरो नाथ गोसांई ॥१३॥

तुम्हारी बैठनेकी इच्छा हो तो बैठ जावो, क्योंकि तुम्हारे स्वामी धनुषधारी हैं ॥ १३ ॥

दोहा-भागे सूर अस कहि तहां, लीन्हे अंक गोपाल ॥
तुलसिदास मुसकाइ कै, बैठ सुमिरि रघुलाल ॥ ४२ ॥

सूरदास गोपालको गोदीमें लेकर भाग चले और तुलसीदास रघुनंदनका स्मरण कर बैठे रहे ४२

धायो तुलसी सम्मुख नागा ❋ अकस्मात शीश शर लागा ॥१॥
मर्‍यो नाग करि घोर चिकारा ❋ भौ वृत्तांत विदित संसारा ॥२॥

तब वह हाथी तुलसीदासके सम्मुख दौड़ा, अकस्मात् उसके शिरमें बाण लगा ॥ १ ॥ तब वह हाथी घोर चिक्कार कर मर गया, सब जगत्में शोर मच गया ॥ २ ॥

तुलसी सूर समागम करिकै ❋ काशी आवत भे मुद भरिकै ॥३॥
एक समय नाभाजू ज्ञानी ❋ जिन यह भक्तमाल निरमानी ॥४॥

इस प्रकार सूरदासका तुलसीदासजी समागम कर और प्रसन्न हो काशीमें आये ॥ ३ ॥ एक समय महाज्ञानी नाभाजी जिन्होंने यह भक्तमाल बनाया है ॥ ४ ॥

ते सब संतन नेवता दीन्हों ❋ सिगरे संत पयानो कीन्हों ॥५॥
तुलसिदासको न्योता आयो ❋ तब मनमें विचार अस ल्यायो ॥६॥

उन्होंने सब सन्तोंको न्योता दिया और सब संत चले ॥ ५ ॥ तुलसीदासजीको भी न्योता आया, तब उन्होंने मनमें ऐसा विचार किया ॥ ६ ॥

पंगतिमें कच्चा पकवाना ❋ द्विजको खाबो उचित न जाना ॥७॥
यह विचार करि तहां न गयऊ ❋ पवनसुवन तासों कहि दयऊ ॥८॥

कि, पंगतमें बैठकर कच्चा पकवान जीमना ब्राह्मणोंको उचित नहीं है ॥ ७ ॥ यह विचार कर वहां न गये, महावीरजीने तुलसीदासजीसे कहा ॥ ८ ॥

भक्तराज नाभाको जानो ❋ तुरतहि तहँको करो पयानो ॥९॥
हनुमत शासन सुनत गोसांई ❋ चले तुरत भिक्षुककी नाईं ॥१०॥

नाभाजी भक्तोंके शिरताज हैं, वहां अवश्य जाओ ॥ ९ ॥ हनुमानजी की आज्ञा सुनते ही गोस्वामीजी भिक्षुकके समान शीघ्र चले ॥ १० ॥

नगर ओरछा ढिग जब गयऊ ❋ कौतुक तहां माचि यह रहेऊ ॥११॥
तहँका इन्द्रजीत जो राजा ❋ सो जोर्‍यो बहुकविनसमाजा ॥१२॥

जब ओरछा नगरके निकट पहुँचे तब वहां यह कौतुक देखा ॥ ११ ॥ वहांके इंद्रजीत राजाने सब कवियोंका समाज एकत्र किया था ॥ १२ ॥

दोहा-कवि समाज शिरताज किय, श्रीकवि केशवदास ॥
रामचन्द्रिका जो विमल, कीन्ही जगत प्रकाश ॥ ४३ ॥

वहां केशवदास कविको सब कवियोंका शिरताज किया था, जिन्होंने जगत्में उज्ज्वल "रामचन्द्रिका" निर्माण की है ॥ ४३ ॥

कवि-मण्डली विलोकि नरेशा * दीन्हे विप्रन नवल निदेशा ॥१॥
यह सब कवि मण्डली सदाहीं * रहै कौन विधि मम ढिग पाहीं॥२॥

राजाने कविकी मंडलीको देखकर यह आज्ञा दी कि ॥ १ ॥ किसी प्रकारसे यह कवि-मण्डली सदा मेरे निकट रह सकती है ॥ २ ॥

मन्त्र-शास्त्र विधि कह असवानी * प्रेत-यज्ञ कीजै विधि ठानी ॥३॥
यहि विधिते यह कविन समाजा * रहे सहस वर्षहु लगि राजा ॥४॥

तब किसीने कहा- मन्त्रशास्त्रके अनुसार प्रेतयज्ञ करो ॥ ३ ॥ तो सहस्र वर्षतक कवियोंका समाज तुम्हारे निकट रह सकता है ॥ ४ ॥

इन्द्रजीत तब अति सुख पायो * प्रेत-यज्ञ विधि सहित करायो ॥५॥
सो कवि-मण्डल-युत नरनाथा * भये प्रेत तनु तजि एक साथा ॥६॥

राजाने यह सुनकर महासुख पाया और विधिपूर्वक प्रेतयज्ञ करवाया ॥ ५ ॥ तब वह राजा सब कविमण्डलीके सहित शरीर त्याग प्रेत हुआ ॥ ६ ॥

रामचन्द्रिका केशव कीन्हो * पूरण भई न तनु तजि दीन्हो ॥७॥
यह वृत्तांत सकल कोउ पाई * तुलसिदासको दियो सुनाई ॥८॥

केशवदासने रामचन्द्रिकाकी रचना की थी वह पूरी न होने पायी की, शरीर छूट गया ॥ ७ ॥ किसीने तुलसीदासको यह वृत्तान्त सुनाया ॥ ८ ॥

सोइ कवि केशव बट तरु माहीं * अबलौं करत पुकार सदाहीं ॥९॥
"रामचन्द्रिका" कोइ ले जाई * ल्यावैं तुलसीसों शोधवाई ॥१०॥

कि, वह केशव कवि वटके ऊपर अबतक सदा पुकार करते हैं ॥ ९ ॥ कि कोई "रामचन्द्रिका" तुलसीदासजीसे शुद्ध करा लावे ॥ १० ॥

यह सुनि तुलसिदास तहँ गयऊ * केशव कहत पुकारत भयऊ ॥११॥
केशव तरुते उतरि तुरन्ता * तुलसीपद पकरचो हरषंता ॥१२॥

यह सुनकर वहां तुलसीदासजी गये और 'केशव केशव' कहकर पुकारने लगे ॥ ११ ॥ तब केशव तत्काल वृक्षके ऊपरसे उतर कर प्रसन्न हो तुलसीदासजीके चरणोंमें गिरे ॥ १२ ॥

दोहा-नाथ उधारो मोहि अब, ग्रन्थ सुधारो सोय ॥
नहिं बांच्यो मम कोउ कुमति, हारचो बहु विधि रोय ॥४४॥

हे नाथ! मेरा उद्धार कर ग्रंथका उद्धार करो, किसी भी कुमतिने मेरा ग्रंथ नही बांचा मैं बहुत रोकर हार गया। (यहां बात न सुननेके कारण 'कुमति' कहा है) ॥ ४४ ॥

तुलसी कह्यो विहँसि असि बानी * रामचन्द्रिका पढ़ सुखमानी ॥१॥
केशव रामचन्द्रिका पढ़ेऊ * तुलसी सुनि शोधत मुद बढ़ेऊ ॥२॥

तब तुलसीदासने हँसकर कहा कि तुम सुखकी खान रामचन्द्रिका पढ़ो ॥ १॥ केशवदास पढ़ने लगे और तुलसीदास सुनकर प्रसन्न हो शुद्ध करने लगे ॥ २ ॥

रामचन्द्रिका पूरी जबहीं * केशव तरचो जयति कहि तबहीं॥३॥
नाभा निकट गोसाईं गमने * पंगति समय पहुँचि सुखसमने॥४॥

जब रामचन्द्रिका पूरी हो गयी तब ही जय शब्द करके केशवदास प्रेतत्वसे मुक्त हुये ॥ ३ ॥ गोसाईंजी नाभाके निकट प्रसन्न होकर गये पंगतके समय पहुँचे ॥ ४ ॥

लखि नाभा कछु कह्यो न बानी *लखनरीति तेहि सुमति लुभानी॥५॥
तुलसी बैठे पंगति छोरा * परी पातरी नीचे ठोरा ॥६॥

देखकर नाभाजीने कुछ न कहा और अपने प्रेमके कारण उनकी मति मोहित हो रही थी ॥ ५ ॥ तुलसीदास पंगतको छोडकर बैठे जहां नीचे पत्तल पड़ी थी ॥ ६ ॥

साधु उपानह पातरी नीचे *धरि कीन्हो सम अतिसुख सींचे॥७॥
नाभा निरखि भाव अस ताको * मिल्यो जाय करगहि सुखछाको॥८॥

वहां साधुओंके उपानह (जूते) पड़े थे, उन्हें पत्तलके नीचे धर समान स्थान किया और महाप्रसन्न हो गोसाईंजी जीमने बैठे ॥ ७ ॥ नाभाजीने उनका यह भाव देखकर महाप्रसन्न हो हाथ पकड़ सुख पाया ॥ ८ ॥

ताहि मध्य पंगति बैठायो * बारबार चरणन शिर नायो ॥९॥
कछु दिन कीन्हो तहाँ निवासा * करिसतसंगहि लह्यो हुलासा ॥१०॥

उन्हें पंगतिके मध्यमें बैठाया और बारंबार चरणोंमें शिर नवाया ॥ ९ ॥ कुछ दिनतक वहां गोस्वामीजी रहे और सत्संगति कर महासुख माना ॥ १० ॥

नाभा तासु विमल मति हेरा * भक्तमालमहँ कियो सुमेरा ॥११॥
पुनि व्रज मण्डल यात्रा करने * तुलसिदास गमने सुख भरने ॥१२॥

नाभाजीने इनकी ऐसी उज्ज्वल मति देखकर भक्तोंका सुमेरु (शिरोमणि) अपने भक्त-माल नाम ग्रंथमें लिखा ॥ ११ ॥ फिर व्रज मंडल की यात्रा करनेको तुलसीदाजीके साथ प्रसन्न हो चले ॥ १२ ॥

दोहा-नाभाजू छप्पय लिख्यो, भक्तमालमें जौन ॥
सो मैं इत लिखि देत हौं, श्रोता समझो तौन ॥ ४५ ॥

नाभाजीने जो भक्तमालमें छप्पय लिखा है सो मैं यहां लिखता हूँ श्रोतागण उसे समझें॥४५॥

छप्पय-त्रेता काव्य निबन्ध कियो शत कोटि रमायण ॥
यक अक्षर उचरे ब्रह्महत्यादि परायण ॥
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी ॥
रामचरण रस मत्त रहत अहनिशि व्रत धारी ॥
संसार अपारके पारको सुगमरूप नौका लयो ॥
कलि कुटिल जीवनिस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो ॥ १ ॥

जिन्होंने त्रेतामें सौ करोड़ श्लोकमें रामायण काव्य किया है, जिसके एक अक्षरके पढ़नेसे ब्रह्महत्या जाती है, अब भक्तोंके सुख देनेको फिर लीलाका विस्तार किया, जो व्रत धारण

किये रामचन्द्रजीके चरणोंके रसमें मत्त रहते हैं, जिन्होंने संसारके पार करनेको सुगम नौका रूप रामायण रची, वे ही कलिके कुटिल जीवोंके निस्तार हित वाल्मीकि ही तुलसीदास हुए हैं ॥ १ ॥

दोहा–तुलसीदास यात्रा करी, ब्रज चौरासी कोश ॥
रामकृष्ण वपु भेद बिन, भरि आनन्द उर कोश ॥ ४६ ॥

तुलसीदासजीने चौरासी कोस ब्रजकी यात्रा की, राम-कृष्णमें अभेद भक्तिके कारण हृदयकोशमें आनंद भर गया ॥ ४६ ॥

बहुरि जबै वृन्दावन आये ❋ घाट घाट मज्जन करि भाये ॥१॥
सब मंदिरन दर्श करि लीन्हो ❋ ज्ञान गूदरी डेरा कीन्हो ॥२॥

फिर जब वृन्दावनमें आये तब प्रत्येक घाटमें स्नान किया ॥ १ ॥ सब मंदिरके दर्शन किये और ज्ञान गूदरीमें डेरा किया ॥ २ ॥

परशुराम तहँ रह्यो महंता ❋ कृष्ण उपासक भाव करंता ॥३॥
लख्यो गोसांईकी सब रीती ❋ बढ़ी करत सतसंगहि प्रीती ॥४॥

वहां एक परशुराम महंत रहते थे, वे कृष्णके अनन्य उपासक थे ॥ ३ ॥ गोसाईंजीकी रीति उन्होंने देखकर सत्संगति की और बहुत प्रीति बढ़ी ॥ ४ ॥

तुलसिदाससों करि सतसङ्गा ❋ नव नव बढ़त प्रेम रस रङ्गा ॥५॥
परशुरामके मन्दिर माहीं ❋ कृष्णरूप श्रीनाथ सोहाहीं ॥६॥

तुलसीदासके सत्संगसे नित्य नया प्रेम बढ़ने लगा ॥ ५ ॥ परशुरामके मंदिरमें कृष्णरूपी लक्ष्मीपति शोभित थे ॥ ६ ॥

वंशी लकुट काछनी काछे ❋ मुकुट माथ माला उर आछे ॥७॥
सोहति मूरति ललित त्रिभंगी ❋ हरणहार हिय राधा संगी ॥८॥

वंशी लकुट काछनी काछे माथेपर मुकुट हृदयमें माला धारे ॥ ७ ॥ त्रिभंगी छबि किये भक्तोंके हृदय मोहनेवाले राधाके समीप शोभित थे ॥ ८ ॥

यक दिन तहँ सब दिनकी नाईं ❋ दरश हेत चलि गये गोसाईं ॥९॥
परशुराम तहँ रह्यो महंता ❋ तासु परीक्षा चह्यो करंता ॥१०॥

एक दिन वहां सब दिनके समान दर्शन करनेको तुलसीदासजी गये ॥ ९ ॥ उस समय परशुराम महंतने इनकी परीक्षा लेनी चाही ॥ १० ॥

तुलसी करन दण्डवत लागे ❋ तब महंत बोल्यो अनुरागे ॥११॥
मेरे वचन कछु सुनि लेहू ❋ फेरि द्वार दण्डवत करेहू ॥१२॥

जब तुलसीदासजी दंडवत करने लगे तब महंतने कहा ॥ ११ ॥ पहले मेरे वचन कुछ सुन लो फिर पीछे दंडवत करना ॥ १२ ॥

दोहा–अपने अपने इष्ट को, नमन करैं सब कोय ॥
परशुराम बिन इष्टके, नवै सो मूरख होय ॥ ४७ ॥

सब कोई अपने-अपने इष्टको प्रणाम करते हैं, परशुराम कहते हैं, कि विना इष्टके जो नमन करता है वह मूर्ख है ॥ ४७ ॥

दोहा-परशुरामके वचन सुनि, मानत हिए हुलास ॥
सीतारमण सँभारिकै, बोल्यो तुलसीदास ॥ ४८ ॥

परशुरामके वचन सुन मनमें प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान धर तुलसीदासजी बोले ॥ ४८ ॥

दोहा-काह कहौं छबि आजुकी, भले बने हो नाथ ॥
तुलसी मस्तक जब नवै, धरो धनुषशर हाथ ॥ ४९ ॥

हे नाथ। आजकी छबि क्या कहूँ! भले बने हो, परन्तु जब धनुषबाण हाथ में धरोगे तभी तुलसीदासका मस्तक नवेगा (इस बातमें संदेह है कि, जो गोस्वामी " सीय राममय सब जग जानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥" ऐसा कहते हैं तो उनका कृष्णके निमित्त हठ करना सम्भव नहीं, हां रामरूपके ध्यानसे प्रणाम किया, भगवान्‌ने उनके प्रेमानुसार दर्शन दिया, यह दोहा गोसाईंजी कृत विदित नहीं होता) ॥ ४९ ॥

दोहा-मुरली लकुट दुरायकै, धरयो धनुष शर हाथ ॥
तुलसी लखि रुचि दासकी, नाथ भयो रघुनाथ ॥ ५० ॥

तब कृष्णने मुरली और लकड़ी छिपाकर धनुषबाण हाथमें लिया। तुलसीदास कहते हैं भक्तकी रुचि देख नाथ रघुनाथ हुए ॥ ५० ॥

यह प्रत्यक्ष लख्यो संसारा ❋ वृंदावन माच्यो जयकारा ॥१॥
परशुराम तुलसी पद गहेऊ ❋ धन्य धन्य कहिआनन्द लहेऊ ॥२॥

सब लोगोंने यह बात प्रत्यक्ष देखी तो वृन्दावनमें जयजयकार मच गया ॥ १ ॥ परशुरामने तुलसीदासके चरण पकड़ लिए और धन्य-धन्य कहकर महा आनन्द पाया ॥ २ ॥

इक दिन ज्ञान गूदरी माहीं ❋ होती हरिकी कथा सदाहीं ॥३॥
गये गोसाईं श्रवण उमाहा ❋ निरखे संत महन्तन काहा ॥४॥

ज्ञान गूदड़ीमें नारायणकी कथा सदा होती थी, एक दिन ॥ ३ ॥ प्रसन्नतासे गोसाईंजी सुनने गये, वहां बड़े सन्त महंतोंको देखा कि ॥ ४ ॥

कोउ गद्दीमहँ बैठ महंता ❋ कोउ उच्चासन महँ विलसंता ॥५॥
गद्दी महँ बैठावन लागे ❋ भू महँ बैठ गये अनुरागे ॥६॥

कोई संत गद्दी पर और कोई महंत ऊँचे सिंहासन पर बैठे हैं ॥ ५ ॥ इन्हें भी गद्दी पर बैठाने लगे, परंतु तुलसीदासजी प्रेमसे पृथ्वीपर बैठ गये ॥ ६ ॥

कह्यो गोसाईं सबन सुनाई ❋ कथा श्रवणके दोष गनाई ॥७॥
कथा सुनत बीरा जे खाहीं ❋ ते मल भक्षत नरकन माहीं ॥८॥

तब गोसाईंजीने कथा सुननेके दोष सबको सुनाकर कहे ॥ ७ ॥ जो कथा सुनते पान खाते हैं उन्हें नरकमें मल भक्षण करना पड़ता है ॥ ८ ॥

कथा सुनत बैठे उच्चासन * ते अर्जुन तरु होय पापसन ॥९॥
कथा सुनहिं जे विना प्रणामा * ते विषवृक्ष होत अघधामा ॥१०॥

जो कथा सुननेमें सबसे ऊँचे सिंहासन पर बैठते हैं वे पापी अर्जुनके पेड़ होते हैं ॥ ९ ॥ जो विना प्रणाम किये कथा सुनते हैं वे पापी विष वृक्ष हो जाते हैं ॥ १० ॥

कथा सुनत जे सोवत प्रानी * ते अजगर होवैं अभिमानी ॥११॥
जे वाचक सम आसन बैठैं * ते गुरुतल्प पापफल पैठैं ॥१२॥

जो कथा सुननेमें सोते हैं वे अभिमानी अजगर होते हैं ॥ ११ ॥ जो बांचनेवालेके आसनके समान आसनपर बैठते हैं उन्हें गुरु दाराभोगका पातक लगता है ॥ १२ ॥

दोहा-जे निंदैं रघुपति कथा, अघहरनी मनहारि ॥
ते शतजन्म प्रयंत शठ, श्वान होत दुखकारि ॥ ५१ ॥

जो पापहारिणी मनमोहिनी नारायणकी कथाकी निंदा करते हैं वे शठ सौ जन्मतक दुःखदाई श्वान होते हैं ॥ ५१ ॥

कथा होत जे करैं विवादा * ते खर सरट होत मरयादा ॥१॥
जे हरिकथा सुनत शठ नाहीं * होत नरकलहि कोल बनाहीं ॥२॥

जो कथा होतेमें विवाद करते हैं वे गदहे और सरट (गिरगिट) होते हैं॥१॥ जो मूर्ख नारायणकी कथा नहीं सुनते हैं उन्हें वनमें सूकरका शरीर मिलता है और नरकमें भी जाते हैं ॥२॥

कथा विघ्न करते जे द्रोहीं * नरक भोग पुनि शूकर होहीं ॥३॥
ये दश दोष तुरंत बिहाई * श्रीहरिकथा सुनहु सब भाई ॥४॥

जो द्रोही कथामें विघ्न करते हैं, वे भी नरक भोग कर सूकर होते हैं ॥ ३ ॥ हे भाई ! यह दश दोष छोड़कर नारायणकी कथा सुनना उचित है ॥ ४ ॥

सुनिके तुलसिदासके बैना * भरि आये जल प्रेमिन नैना ॥५॥
तुंगासन सब दिये बिहाई * बैठे भूमि कथा शिर नाई ॥६॥

यह तुलसीदासजीके वचन सुन प्रेमियोंके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ५ ॥ सबने ऊँचे आसन त्याग दिये और शिर नवाकर भूमिपर बैठ कर कथा सुनने लगे ॥ ६ ॥

हैगे कथा समापत जबहीं * बोले संत एक अस तबहीं ॥७॥
षोडश कला कृष्ण सुखसारा * द्वादश कला राम अवतारा ॥८॥

जब कथा समाप्त हुई तब एक संतने इस प्रकार वचन कहे ! ॥ ७ ॥ कृष्णका अवतार षोडश कलाका है; रामावतार बारह कलाका है ॥ ८ ॥

षोडश तजि द्वादश कस भजहू * समाधान करु नहिं घर ब्रजहू ॥९॥
यहि सुनि तुलसिदास सुख छाके * भये मिलनहारे वसुधाके ॥१०॥

सोलह कलाको छोड़ बारह कलाका भजन क्यों करते हो ? समाधान करो नहीं तो घर जाओ ॥ ९ ॥ यह सुनकर तुलसीदासजीने महाप्रसन्न हो ! भगवत्-ध्यानमें छक गये ॥ १० ॥

रही दण्ड द्वै लगि सुधि नाहीं * सींचे संत सलिल तिन काहीं ॥११॥
भई खबरि तब उठे गोसांईं * पूछे संत भेद बरियांईं ॥१२॥

दो घड़ी तक सुधि नहीं रही, तब सन्तोंने उनके ऊपर जल छिड़का ॥ ११ ॥ जब सुधि आयी तब गोसाईंजी उठे और सब सन्तोंने इसका भेद पूछा ॥ १२ ॥

दोहा-तुलसिदास बोल्यो वचन, यदपि कहब नहिं योग ॥
तदपि कहहुँ परसंग वश, सुनहु भेद सब लोग ॥ ५२ ॥

तुलसीदासजी बोले कि यद्यपि यह बात कहने योग्य नहीं है, तो भी प्रसंगवश कहता हूँ तुम सब लोग भेदको सुनो ॥ ५२ ॥

रामहिं जान्यों मैं लगि आजू * अति कृपालु कोशल महराजू ॥१॥
तुम तौ बारह कला बताये * ईश्वरको अतिभाव दृढ़ाये ॥२॥

आजतक मैं रामचन्द्रको अति कृपालु कोशलपुरका राजा जानता था ॥ १ ॥ तुमने उनको बारह कलाका ईश्वरका अवतार वर्णन किया है और ईश्वरता प्रतिपादन करके मेरा भाव और दृढ़ कर दिया ॥ २ ॥

महाराज पुनि ईश्वर रामा * अब किमि तजौं तासु मैं नामा ॥३॥
यह सुनि जान अनन्य उपासी * गहे चरण सब सन्त हुलासी ॥४॥

श्रीरामचन्द्र ईश्वर और महाराज हैं तो मैं उनका नाम त्याग कैसे सकता हूँ ॥ ३ ॥ यह वचन सुनकर तुलसीदासजीको अनन्य उपासी जानकर सब सन्तोंने उनके चरण पकड़े ॥४॥

यहि विधि करत विविध सतसंगा * तुलसी विपिन वसे रति रंगा ॥५॥
पुनि कछु काल माह चलि काशी * तुलसिदास आये सुख राशी ॥६॥

इस प्रकार अनेक सत्संग करते हुए तुलसीदासजी प्रेमपूर्ण हो वृन्दावनमें रहे ॥ ५ ॥ फिर कुछ दिन उपरांत वहांसे चलकर सुखधाम तुलसीदासजी काशीमें आये ॥ ६ ॥

विनयपत्रिका जौन बनायो * ताको मंदिर मध्य धरायो ॥७॥
विनय कियो संमुख कर जोरी * सत्य होय विनती सो मोरी ॥८॥

और जो 'विनय पत्रिका' ग्रंथ बनाया उसे मंदिरमें पधराया ॥ ७ ॥ और हाथ जोड़कर कहा कि मेरा विनय सत्य हो ॥ ८ ॥

जो यहि माहिं सही परिजावै * मोर दुसह दुख द्रुतमिट जावै ॥९॥
अस कहि कीन्हो बंद किवाँरा * गयो बहुरि जब भो भिनसारा ॥१०॥

जो इसमें आपके हस्ताक्षर हो जावें तो इससे मेरे सब दुःख शीघ्र मिट जायँगे ॥ ९ ॥ यह कह कर किवाड़ बन्द कर दिये, प्रातःकाल किवाँड़ खोलकर देखने लगे ॥ १० ॥

तुलसी पुस्तक गहि जब हेरी * मिली सही रघुपति कर केरी ॥११॥
विनयमाहँ तब पद यह कीन्हो * सो मैंइतने टुकलिखि दीन्हो॥१२॥

जब पुस्तकमें देखने लगे तो उसमें भगवान्की सही थी ॥ ११ ॥ तब अपनी विनय पत्रिका में यह पद किया, उसे मैं यहां किंचित् लिखता हूँ ॥ १२ ॥

पद-तुलसी अनाथकी परी रघुनाथ हाथ सही है ॥

अनाथ तुलसीके ग्रंथपर रघुनाथजीके हाथकी सही है ॥

दोहा-पुनि अतिदुस्तर काल लखि, राम धामको जान ॥
तुलसीदास विचार किय, बोल्यो सबन सुजान ॥ ५३ ॥

फिर कालको अति दुस्तर जानकर राम धाम को जानेका तुलसीदासने विचार किया तब सब सन्तोंसे बोले ॥ ५३ ॥

दोहा-सहि न जात रघुपति विरह, जान चहौं हरिधाम ॥
यह सुनिके अतिव्यथित भे,-सकल सन्तमतिधाम ॥ ५४ ॥

अब रघुनाथजीका विरह नहीं सहा जाता, मैं उनके धामको जाना चाहता हूँ, यह सुनकर सब सन्त उनके वियोगमें व्याकुल हो गये ॥ ५४ ॥

दोहा-तिनहिं दियो उपदेश मम, ग्रन्थ वेदमरयादि ॥
रामायण गीतावली, विनयपत्रिका आदि ॥ ५५ ॥

तुलसीदासने उन्हें उपदेश दिया कि मेरे रामायण, गीतावली और विनयपत्रिका आदि ग्रन्थ वेदमर्यादासे पूर्ण हैं ॥ ५५ ॥

दोहा-तिनहिं सुनहु समुझहु सुरुचि, चलहु ग्रन्थ-अनुसार ॥
अन्त समय हठि मिलहिंगे, दशरथ राजकुमार ॥ ५६ ॥

उन्हें सुनो, समझो और उन्हींके अनुसार चलो अन्त समय भगवान् दशरथकुमार (श्री रामचन्द्रजी महाराज) अवश्य मिलेंगे ॥ ५६ ॥

दोहा-अस कहि सहजहि आयके, असीवरुणके तीर ॥
नयन मूँद तन अचल किय, भइ सन्तनकी भीर ॥ ५७ ॥

यह कह श्रीवरुणगंगाके किनारे आकर नेत्र मूँद शरीर अचल कर दिया तब साधुओंकी बड़ी भीड़ हुई ॥ ५७ ॥

दोहा-बजे नगारे गगनमें, देखो परो विभास ॥
दामिनिसों चहुँ ओरमें, चमक्यो चपल प्रकाश ॥ ५८ ॥

आकाशमें दुन्दुभी बजी और प्रकाश दीखा और चारों ओर बिजलीसी चमकी ॥ ५८ ॥

दोहा-संवत सोलहसै असी, असीगंगके तीर ॥
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥ ५९ ॥

सवंत् सोलह सौ अस्सी (१६८०) में अस्सी घाटपर श्रावण शुक्ला सप्तमीको तुलसीदास जीने शरीर त्याग दिया ॥ ५९ ॥

दोहा-भवसागरमें नावसम, विरचि ग्रन्थ मतिधीर ॥
चढ़ि विमान गमनत भयो, जहँ निवसत रघुवीर ॥ ६० ॥

वे बुद्धिमान् भवसागर पार करनेको नावके समान ग्रन्थ रच, विमानमें चढ़ श्रीरामचन्द्र-जीके धाम (साकेत लोक) को चले गये ॥ ६० ॥

दोहा-तुलसी जीवन चरितको, है अति ही बिस्तार ॥
करि समास भाषा कह्यो, अपनी मति अनुसार ॥ ६१ ॥

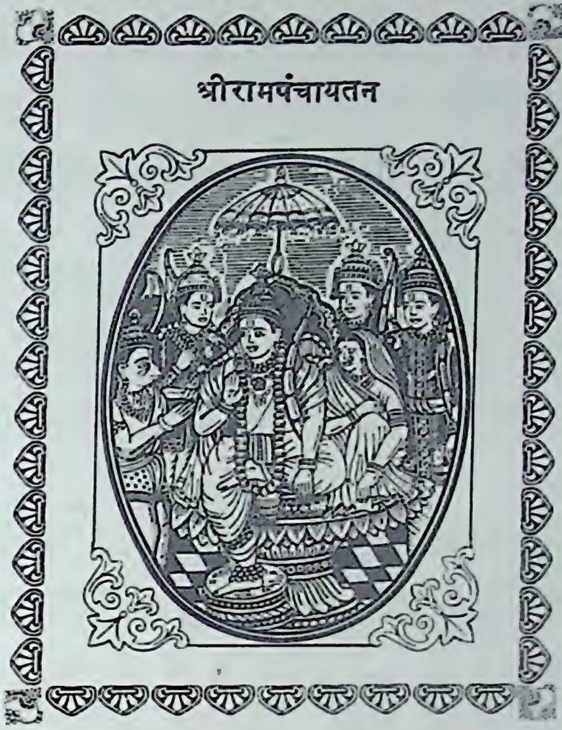
तुलसीदासजीके जीवनचरित्रका बड़ा विस्तार है अतः भाषामें संक्षेपसे अपनी मतिके अनुसार कहा है ॥ ६१ ॥

दोहा-भक्तजननके मोद-हित, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥
भाषाटीका करि कह्यो, पावहिं सुनि अहलाद ॥ ६२ ॥

भक्तजनोंके आनन्दके निमित्त ज्वालाप्रसादमिश्रने इसकी भाषाटीका की है, सुनकर भक्तजन प्रसन्न होंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीगोस्वामीतुलसीदासजीका जीवनचरित्र स० सम्पूर्ण

श्रीरामपंचायतन



अथ रामायण माहात्म्य सटीक

दोहा-श्री रघुपति पदपद्म गहि, अति हित बारम्बार।
तिलक करूँ माहात्म्यका, कछु निज मति अनुसार॥

दोहा-गुरु हरि हर गणईश धी, सुमिरौं तुलसीदास॥
करत गोपाल माहात्म्य श्री, रामायण सुखरास॥ १॥

मैं गोपालदास; गुरु, विष्णु, शिव, गणेश, सरस्वती तथा तुलसीदासजीको स्मरण कर सुखकी राशि श्रीरामायणका "माहात्म्य" निर्माण करता हूँ॥ १॥

रामायण सुरतरु की छाया * दुख भये दूर निकट जो आया॥१॥
सप्त काण्ड स्तम्भ सुहाई * दोहा लघु शाखा छबि छाई॥२॥

यह रामायण कल्पवृक्षकी छाया है, जो इसके निकट आया उसके दुःख दूर हो गये॥१॥ सात काण्ड ही इस कल्पवृक्षके सात स्तंभ हैं; दोहे सुंदर छोटी-छोटी शाखाएँ हैं॥ २॥

शुचि सोरठा सीठका कोई * पत्री बहु चौपाई जोई॥३॥
छन्दनकी शोभा अतिरूरी * जनु नवीन अंकुर छबि पूरी॥४॥

अच्छे सोरठे डाली हैं और चौपाई कल्पवृक्षके अनेक पत्ते हैं॥ ३॥ छन्दोंकी शोभा अधिक है, मानो छबिसे भरे गये अंकुर हैं॥ ४॥

अक्षर सुमन रहे गहगाई * अति अद्भुत सुगन्ध कविताई॥५॥
विविध प्रकार अर्थ सोई फल * श्रोता सुमति स्वादु जानै भल॥६॥

और इसके अक्षर ही मानो गहगहे घने इस कल्पवृक्षके फूल हैं, कविताई अति अद्भुत सुगंध है॥५॥ अनेक प्रकारके अर्थ ही इसके फल हैं, श्रेष्ठ बुद्धि वाले श्रोता इसके स्वादको जान सकते हैं॥ ६॥

भक्ति ज्ञान वैराग्य सरस रस * बीज दोय निर्गुण सहगुण अस॥७॥

मुनि भुशुंड शिव प्रथमहि गाई * सोइ गाई जगहेतु गोसांई ॥८॥

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इसका सुन्दर रस है, निर्गुण और सगुण यह दो इसके बीज हैं ॥ ७ ॥ जो कथा जगत्के निमित्त शिवजी, मुनि और काकभुशुण्डजीने प्रथम गायी थी वही जगत्के निमित्त गोसाईंजीने गायी ॥ ८ ॥

दोहा-तुलसिदास रामायण, नहिं करते परचार ॥
कुलिके कटिल जीव ये,को करतो निस्तार ॥ २ ॥

जो गोसाईं तुलसीदासजी रामायण प्रचार नहीं करते तो कलियुगके कुटिल जीवोंका कौन निस्तार करता ? ॥ २ ॥

रामायण सुर-धेनु-समाना * दायक अभिमत फल कल्याना ॥१॥
गुण समूह कवि सकै कौन गनि * जासु प्रभाव सरिस चिंतामनि ॥२॥

यह रामायण कामधेनुके समान है, जो सेवा करने वालेको इच्छित फल देती है ॥ १ ॥ इस रामायणके गुणकी गणना कौन कर सके ? जिसका प्रभाव चिन्तामणिके समान है ॥ २ ॥

राम अयन रामायण आही * वरणि पार पावै को ताही ॥३॥
रामायण अद्भुत फुलवारी * राम भ्रमर भूषित रुचि भारी ॥४॥

रामायणमें रामका स्थानही है, फिर इसका वर्णन कर कौन पार पा सकता है ॥ ३ ॥ यह रामायणमें अद्भुत फुलवारी है, जिसके ऊपर रामरूपी अति सुन्दर भौंरा आकर बैठता है॥४॥

श्रीरामायण जिहि घर माहीं * भूतप्रेत तहँ भूलि न जाहीं ॥५॥
नहिं गति तहां दरिद्रहु केरी * तहँ श्रीमहावीर की फेरी ॥६॥

जिस घरमें रामायण रहती वहां भूत-प्रेत भूलकर भी नहीं जाते ॥ ५ ॥ वहां दरिद्र भी नहीं रहता है और महावीरजीकी फेरी वहां रहती है ॥ ६ ॥

यन्त्र मन्त्र सगुनौती जेती * रामायणमहँ जानिय तेती ॥७॥
प्रीति करै रामायण-माहीं * तेहि सम भाग्यवंत कोउ नाहीं॥८॥

जितने यन्त्र मन्त्र सगुनौती हैं वे सब रामायणमें विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ जो रामायणमें प्रीति करता है उसके समान कोई बड़भागी नहीं है ? ॥ ८ ॥

दोहा-रामायण सम कोउ नहिं, सब उपमा उपमेय ॥
उपमा भाषा और की, कैसे, कोउ कवि देय ॥ ३ ॥

रामायणके समान और कोई ग्रन्थ नहीं है, यह सब उपमाओंकी उपमेय है, और भाषाकी उपमा कैसे कोई कवि दे सकता है ? ॥ ३ ॥

त्रेतामें भये वाल्मीकि मुनि * ते कलियुग भये तुलसिदास पुनि ॥१॥
शत करोर रामायण भाखी * इन मथि सार सुसूक्षम राखी ॥२॥

त्रेतामें वाल्मीकि मुनि हुए वही फिर कलियुगमें तुलसीदास हुए ॥ १ ॥ वाल्मीकिजीने सौ करोड़ रामायण कही, इन्होंने उसे मथ सार भाग ले सूक्ष्म कर बनाया ॥ २ ॥

प्रथम काण्ड है बाल रसीला * जन्म विवाह रामकी लीला ॥३॥
द्वितिय अयोध्याकाण्ड प्रकाशा * पितु आज्ञा रघुवर वनवासा ॥४॥

इसमें प्रथम बालकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजीका जन्म और ब्याहकी लीलाका वर्णन है ॥ ३ ॥ दूसरे अयोध्याकाण्डमें पिताकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीका वनवास कहा है ॥ ४ ॥

पुनि अरण्य किष्किधा भाखे ❋ तहँ सुग्रीव शरणमहँ राखे ॥५॥
सुन्दर सुन्दरकाण्ड सुहावन ❋ युद्धकाण्डमें मार्यो रावन ॥६॥

फिर अरण्य और किष्किधाकांड है, जिसमें खरदूषणका वध और सुग्रीवका शरण रखना कहा है ॥ ५ ॥ पांचवा मनोहर सुन्दरकांड है जिसमें महावीरजी जानकीकी सुधि लाये। लङ्काकांडमें रावणके मारनेकी कथा है ॥ ६ ॥

सप्तम उत्तर परम अनूपा ❋ उत्सव प्रभु कोशलपुर भूपा ॥७॥
तुलसीकृत रामायण येती ❋ विविध प्रकार कथा है केती ॥८॥

अति अनुपम सातवां उत्तरकांड है जिसमें रघुनाथजीको राज्य मिला उसकी कथा है ॥ ७ ॥ बस, इतनी ही तुलसीकृत रामायणमें अनेक प्रकारसे कथा वर्णित है ॥ ८ ॥

दोहा-जग वारिधिको पार नहिं, ऐसो है फैलाव ॥
तुलसीदास कृपा करि, रचि रामायण नाव ॥ ४ ॥

संसारसागरका पार नहीं ऐसा फैलाव है, अतःतुलसीदासजीने कृपा करके पार उतारनेको रामायणरूपी नाव रची है ॥ ४ ॥

श्रीरामायण स्वर्ग-निसेनी ❋ भक्तजनन कहँ आनँद देनी ॥१॥
श्रीरामायण सद्गुण माता ❋ अज्ञ जाहि पढ़ि होहि सुज्ञाता ॥२॥

यह रामायण स्वर्गलोककी सीढ़ी है, जो भक्तोंको आनन्द देनेवाली है ॥ १ ॥ श्रीरामायण श्रेष्ठ गुणोंकी माता है, जिसको मूर्ख भी पढ़कर ज्ञानी हो जाता है ॥ २ ॥

पाप-समूह तूलकी रासी ❋ रामायण धनंज्य-कनकासी ॥३॥
मोहपुञ्ज तम किरण तमारी ❋ काम अग्निकहँ शीतल वारी ॥४॥

पापसमूह रूईके ढेरको जलानेके निमित्त रामायण आगकी चिनगारी है ॥ ३ ॥ यह अज्ञानके अन्धकार दूर करनेको सूर्य है, काम अग्नि शांत करनेको शीतल जल है ॥ ४ ॥

रामायण शशिकिरन सुहाई ❋ सन्त चकोरन कहँ सुखदाई ॥५॥
धन्य धन्य श्रीतुलसिदास धनि ❋ जगहित रामायण राची भनि ॥६॥

यह रामायण सुन्दर चन्द्रमाकी किरण है और संतरूपी चकोरोंको सुख देती है ॥ ५ ॥ तुलसीदास को अनेक धन्यवाद है जिन्होंने जगत् उपकारको रामायण बनायी ॥ ६ ॥

नीच ऊँच जेते नर नारी ❋ श्रीरामायण सब कहँ प्यारी ॥७॥
श्रीरामायण सों नेह लगावे ❋ अधन अपत्य सो बितसुत पावै ॥८॥

नीचे ऊँचे जितने नरनारी हैं सबको रामायण प्यारी है ॥ ७ ॥ रामायणसे प्रेमकरनेवाला निर्धन और सन्तान रहित हो धन तथा पुत्र पाता है ॥ ८ ॥

दोहा-रामायण सों नेह किय, सिद्ध होत सबकाम ॥
है सबको कल्याणदा, पढ़ि सुनि लो विश्राम ॥ ५ ॥

रामायणमें प्रेम करनेसे सब काम सिद्ध होते हैं, यह सबकी कल्याण देनेवाली है, इसे पढ़कर सुनकर विश्राम लीजिये ॥ ९ ॥

निगमादिक होइ ब्रह्म कमंडल * रामायण सुस्थित गंगाजल ॥१॥
भागीरथ सम तुलसिदास पुनि * भाषा प्रचुर कीन जनु सुरधुनि ॥२॥

वेद शास्त्र ही ब्रह्माका कमण्डलु है, उसमें रामायण गङ्गाजलके समान स्थित है ॥ १ ॥ तुलसीदासजी भागीरथीके समान हैं जिन्होंने गङ्गाजीके समान इसका भाषामें प्रचार किया है॥२॥

होति रहै इक ठांव रमायण * तेहि मग आवत पापपरायण ॥३॥
कछुक कानमें पर गई बाता * चलन पंथ कहुं भयो निपाता ॥४॥

एक स्थानपर रामायणकी कथा होती थी, एक पापी वहां आया ॥ ३ ॥ उसके कानमें कुछ रामायणकी बात पड़ गयी, सो सुनते ही चला और मार्गमें गिर गया ॥ ४ ॥

गिरतहिं तुरत छूटि तनु गयऊ * तहँ अद्भुत इक अचरज भयऊ॥५॥
ताहि लेन आये यमदूता * निजपाशन बाँध्यो मजबूता ॥६॥

गिरते ही उसका शरीर छूट गया तब वहां एक अद्भुत आश्चर्य हुआ ॥ ५ ॥ उसे लेनेके निमित्त यमराजके दूत आये और अपने पाशोंमें मजबूत बांधा ॥ ६ ॥

अति आतुर हरिजन तहँ आये * छीन लीन बहु त्रास दिखाये ॥७॥
रामायण जो सुनि यह काना * लै जैहैं बैठारि विमाना ॥८॥

उसी समय नारायण के पार्षद वहां आये और यमराजके दूतोंको धमकाकर छीन लिये॥७॥ और बोले जो इसने रामायण कानोंसे सुनी है अतःहम इसे विमानमें बैठाकर ले जायँगे ॥८॥

दोहा-रामायण परतापसों, गयो पार्षदन साथ ॥
दूत चले यमके सदन, खीजत मींजत हाथ ॥ ६ ॥

रामायणके प्रतापसे वह पापी पार्षदोंके साथ बैकुण्ठको गया और यमराजके दूत खिसियाकर हाथ मलते यमराजके पास चले ॥ ६ ॥

निजदूतन देखेउ बिलखाता * पूछी भानुतनय कुसलाता ॥१॥
किन तुमको दीनो दुःख भाई * चार चतुर तुम देहु बताई ॥२॥

अपने दूतोंको व्याकुल देख यमराजने कुशल पूछी ॥ १ ॥ हे चतुर दूतो ! बताओ तो तुम्हें किसने दुःख दिया है ॥ २ ॥

कहा कहैं तुमसे महराजा * पूछत तुमहि न आवति लाजा॥३॥
कोउ यक मृत्युलोक बड़भागी * तुलसीदास भयो वैरागी ॥४॥

दूत बोले-महाराज ! हम तुमसे क्या कहें ? तुम्हें ? पूछने से लाज नहीं आती, जानकर पूछते हो ॥ ३ ॥ कोई मृत्युलोकमें बड़भागी वैरागी तुलसीदास हुए हैं ॥ ४ ॥

रामकथा रामायण भाखी * सो लोगन घर घर धरि राखी ॥५॥
जे जे विविध भांतिके पापी * मांसाहारी और सुरापी ॥६॥

उन्होंने राम कथा रामायण रची है, सो लोगोंने घर-घर रख छोड़ी है ॥ ५ ॥ जो अनेक प्रकारके मांस खानेवाले, सुरा पीनेवाले पापी हैं ॥ ६ ॥

ते सब मिलि रामायण सुनिहैं * कहिहैं लिखिहैं पढ़िहैं गुनिहैं ॥७॥
ते नहिं ऐहैं सदन तुम्हारे * सत्य सत्य नृप वचन हमारे ॥८॥

वे सब मिलकर रामायण सुनेंगे, कहेंगे, लिखेंगे, पढ़ेंगे और गुनेंगे ॥ ७ ॥ वे कोई भी तुम्हारे स्थानमें नहीं आवेंगे, हे राजन्! हमारे ये वचन सत्य हैं, सत्य हैं ॥ ८ ॥

दोहा-लेहु पाश ये आपनो, राखहु अपने पास ॥
अमल तुम्हारो अब उठो, सुनि यम भये उदास ॥ ७ ॥

लो, यह पाश लेकर अपने पास रखो, तुम्हारा अमल उठ गया। यह सुन कर यमराज उदास हुए ॥ ७ ॥

अपनी व्यथा कहे नहिं पाये * तब लगि दूत और तहँ आये ॥१॥
कहन लगे रविसुतसों रोई * तव चाकरी न हमते होई ॥२॥

अपनी वे सब व्यथा कह भी नहीं पाये कि तब तक वहां और दूत आये ॥ १ ॥ रोकर यमराजसे बोले कि तुम्हारी नौकरी हमसे नहीं होगी ॥ २ ॥

जगमें कहूँ न हुकुम तिहारो * यह सुनि यम चकि रहे विचारो ॥३॥
अहो दूत मोहिं कहो बुझाई * जिन दीन्हो मम हुकुम उठाई ॥४॥

संसारमें कहीं तुम्हारा हुक्म नहीं रहा, यह सुनकर विचार कर यमराज चकित हुए ॥ ३ ॥ और बोले-दूतो! मुझे समझाकर कहो मेरा हुक्म किसने उठाया? ॥ ४ ॥

कहा कहैं कछु कही न जाई * तुलसिदास इक भयो गोसांई ॥५॥
तिनकी रामायण जग व्यापी * तेइ कीने पवित्र सब पापी ॥६॥

दूत बोले-क्या कहें, कुछ कहा नहीं जाता; एक कोई तुलसीदास गोसाईं हुए हैं ॥ ५ ॥ उनकी रामायण जगत्‌में व्याप गयी, जिसने सब पापियोंको पवित्र कर दिया है ॥ ६ ॥

गये हम एक अधम गृह माहीं * अति दुखभयो जात कहि नाहीं ॥७॥
तहँ देखहुँ इक कपि बलवाना * उग्र सरूप सदृश हनुमाना ॥८॥

आज हम एक महापापीके घर गये सो वहां जो दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाता ॥ ७ ॥ वहां एक बलवान वानर तीक्ष्णरूप हनुमानके समान देखा ॥ ८ ॥

दोहा-प्राणनको गाहक भयो, तब हम भे अति दीन ॥
शरण शरण तव शरण हैं, अस्तुति बहुविधि कीन ॥ ८ ॥

हम तो पापीके प्राण लेने गये थे, पर वह वानर हमारे प्राणोंका ग्राहक हुआ तब हमने शरण हैं २ ऐसा कहकर महादीन हो उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की ॥ ८ ॥

तब तौ है प्रसन्न कपिराई * हमसन पुनि परतीति कराई ॥१॥
धरी होय रामायण जहवाँ * कबहूँ भूलि न जायहु तहवाँ ॥२॥

तब उन कपिराजने प्रसन्न होकर हमसे ऐसी शपथ कराई कि ॥ १ ॥ जहां रामायण धरी हो वहां भूलकर मत जाओ ॥ २ ॥

जे श्रोता वक्ता रामायण * कबहूँ मति जायहु तेहि आयन ॥३॥
अस हमसों कपि शपथ कराई * तब छूटन पाये सुनु राई ॥४॥

जो रामायणके कहने सुनने वाले हैं उनके स्थानमें कभी भूलकर भी मत जाओ ॥ ३ ॥ जब कपिने हमसे ऐसी सौगन्ध कराई तब महाराज ! हम छूटे हैं ॥ ४ ॥

सुनि यमराज बहुत घबराये ❋ निकट बुलाय दूत समुझाये ॥५॥
नाम रूप गुण कथा रामकी ❋ कियउ न फेरी तौन धामकी ॥६॥

यह सुनकर यमराज बहुत घबड़ाये और निकट बुलाकर दूतोंको समझाया ॥ ५ ॥ जहां-जहां भगवान्‌के नाम-रूप गुणकी कथा होती है उस धामकी तुम फेरी न करना ॥ ६ ॥

अजामीलकी सुरति करो जू ❋ और न कछु चित मांझ धरो जू ॥७॥
थकि सो रहे दूत सुनि बानी ❋ धन्य श्रीरामायण महरानी ॥८॥

तुम अजामिलकी कथा स्मरण करो और कुछ मनमें मत लाओ कि वह नामसे ही तर गया (अजामिल महापापी था मरते समय यमदूतको देख भय पा अपने पुत्र नारायण नामवालेको उसने पुकारा उसी नामके पुण्यसे भगवान्‌के पार्षद वैकुण्ठको ले गये) ॥ ७ ॥ दूत यह वाणी सुनकर थक रहे और बोले—श्रीरामायण महारानी धन्य है ॥ ८ ॥

दोहा—रामायण तेजस्विनी, सत भाषा शिर मौर ॥
यमपुर जाको शोर है, समताको नहिं और ॥ ९ ॥

रामायण बड़ी तेजस्विनी और श्रेष्ठ भाषाओंकी शिरमौर है जिसका यमपुरमें भी शोर है, उसकी समताको कौन प्राप्त हो सकता है ? ॥ ९ ॥

पातक महा लग्यो किन कोई ❋ रामायण सुनि रहै न कोई ॥१॥
चाहैं चारों फलको साधन ❋ करु रामायणको अवराधन ॥२॥

चाहे कैसा ही पातक लगा हो रामायणके सुननेसे नहीं रह जाता ॥ १ ॥ जो चारों फलके पानेकी इच्छा हो तो रामायणकी आराधना करना उचित है ॥ २ ॥

रामायण सुनि पाप परावैं ❋ जिमिहिमऋतुमह मसक नसावैं ॥३॥
कलियुग तरन उपाय न कोई ❋ राम-भजन रामायण दोई ॥४॥

रामायणके सुननेसे पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे हिमऋतुमें मसक (मच्छर) नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥ कलियुगमें तरनेका दूसरा उपाय नहीं है; केवल दो ही उपाय हैं एक-रामका भजन और दूसरी रामायण ॥ ४ ॥

कथा रमायणकी जहँ होई ❋ सो घर घर मति जानै कोई ॥५॥
सो घर तीर्थरूप सम भाषैं ❋ तहाँ गये सब पातक नाशैं ॥६॥

जहां रामायणकी कथा होती है उस घरको कोई केवल घर ही मत जाने ॥ ५ ॥ वह घर तीर्थके समान है, वहां जानेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

पाप-वास देहीमहँ तब लग ❋ श्रीरामायण सुनै न जब लग ॥७॥
उदय पुरानो पुण्य होय जब ❋ रामायण महँ मन लागे तब ॥८॥

तभी तक देहमें पाप वास करता है, जबतक रामायण न सुनी हो ॥ ७ ॥ जब पूर्व पुण्य उदय होते हैं तब रामायणमें मन लगता है ॥ ८ ॥

दोहा—रामायणको सुनत ही, छूट जाय प्रेतत्व ॥
जाके पढ़े सुनेते, सूझत है परतत्व ॥ १० ॥

रामायणके श्रवण करनेसे प्रेतत्व भी छूट जाता है, पढ़ने और सुननेसे परतत्त्व (परमात्माका ज्ञान) हो जाता है ॥ १० ॥

को जानै रामायणको रस * यह तो है सन्तनको सरबस ॥१॥
वनज सनेही अलिगण जैसे * भक्तन प्रिय रामायण तैसे ॥२॥

रामायणका रस कौन जाने ! यह तो सन्तोंका सर्वस्व है ॥ १ ॥ जैसे कमलोंके सनेही भौंरे हैं वैसे भक्तोंको रामायण प्यारी है ॥ २ ॥

त्यागि भक्तजन ग्रन्थ अनेकू * धारण किय रामायण एकू ॥३॥
भक्तन कहँ है भक्ति अनूपा * रसिक जनन कहँ है रस रूपा ॥४॥

भक्तजनोंने अनेक ग्रन्थोंको छोड़कर रामायणको ही धारण किया ॥ ३ ॥ भक्तोंको अनुपम भक्तिरूप रसिकजनोंको रसरूप है ॥ ४ ॥

ज्ञानमयी तिनकहँ जे ज्ञानी * तुलसी तारण तरण बखानी ॥५॥
काम क्रोध रुज वश संसारा * औषध रामायण अनुसारा ॥६॥

तुलसीदासजीने ज्ञानियोंको रामायण ज्ञानरूप और तारण तरण रूप कहा है ॥ ५ ॥ संसार, काम-क्रोध रूपी रोगके वश है उसकी औषधि रामायण ही है ॥ ६ ॥

रामायणमहँ नेह न जाको * जीवत शवसम जानिय ताको ॥७॥
रामायण जा कहँ प्रिय नाहीं * वृथा जन्म ताको जगमाहीं ॥८॥

जिसका रामायणमें प्रेम नहीं वह जीवित ही मृतक है ॥ ७ ॥ जिसको रामायण प्यारी नहीं उसका जगत्में जन्म वृथा है ॥ ८ ॥

दोहा-रामायण-अमृत कथा, लेत न ताको स्वाद ॥
तिनको निश्चय जानिये, हैं पूरे मनुजाद ॥ ११ ॥

इस रामायणकी अमृत कथा का जो स्वाद नहीं लेते हैं उनको पूरा निशाचर जानना उचित है ॥ ११ ॥

रामायण विधि कहौं विशारद * सनत्कुमारसों भाषी नारद ॥१॥
सहित विधान सुने जो कोई * सहज मुक्ति पावै नर सोई ॥२॥

अब इस रामायणके सुननेकी विधि कहते हैं-जो सनत्कुमारसे नारदजीने कही है ॥ १ ॥ जो मनुष्य इसे विधानसे सुनते हैं, वे निश्चय मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

कार्तिक माघ चैत चित लाई * नव दिन कहै कथा सुखदाई ॥३॥
ब्राह्म मुहूर्त समय हो जबहीं * कर्म करै शौचादिक तबहीं ॥४॥

कार्तिक,माघ और चैत्रके महीनेमें चित्त लगाकर सुखदाई कथाको नवदिन पर्यन्त कहे (वा सुने)॥३॥ ब्राह्ममुहूर्तका समय हो तब उठकर शौचादिक कर्म करे (दोघटी रात शेष रहे उठे)॥४॥

करै दंत धावन लटजीरा * मज्जन करै धरै मनधीरा ॥५॥
पुनि रामायण पुस्तक अरचै * प्रेमसहित गन्धादिक चरचै ॥६॥

लटजीरा द्वारा दन्तधावन कर्मको कर मनमें धीर धारण करके स्नान करे ॥ ५ ॥ फिर सन्ध्या कर रामायणकी पुस्तकका पूजन करके प्रेमसे चन्दनादि चढ़ावे ॥ ६ ॥

ॐ नमो नारायण मन्त्र भनीजै ❋ तीन आहुतीं होम करीजै ॥७॥
मन वच कर्म पाप तनु केरे ❋ छूटि जात नहिं आवत नेरे ॥८॥

"ॐ नमो नारायणाय" यह मन्त्र पढ़कर तीन आहुति दे होम करे ॥७॥ तो निश्चय मन वचन कर्म कृत सब पाप छूट जाते हैं निकट नहीं आते ॥ ८ ॥

दोहा-या विधि रामायण विधिहिं, जे करिहैं चित्त लाय ॥
रामधाम ते जाइहैं, संसृति-दुखहिं मिटाय ॥ १२ ॥

इस प्रकार जो रामायणकी विधिको मन लगाकर करते हैं वे संसारके आवागमन दुःख मिटाकर रामधामको प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

जो कछु कारजकहँ कोइ जाई ❋ सुमिर चलै सो यह चौपाई ॥१॥
प्रविशि नगर कीजै सब काजा ❋ हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥२॥

जो कोई किसी कार्य को जाय तो (प्रविश०)चौपाईका स्मरण कर चले तो उसका कार्य हो ॥ १ ॥ नगर प्रवेशकर हृदयमें कोशलपुरके राजाको धारण कर सब कार्य करो ॥ २ ॥

जो विदेशमहँ चह कुशलाई ❋ तौ यह सुमिरि चलै चौपाई ॥३॥
रथ चढ़ि सियासहित दोउ भाई ❋ चले वनहि अवधहिं शिरनाई ॥४॥

जो विदेशमें कुशल चाहे तो (रथ०) इस चौपाईका स्मरण कर चले ॥३॥ सियासहित दोनों भाई रथके ऊपर चढ़कर अयोध्याको शिर नवाके वनको चले ॥ ४ ॥

भूत पिशाच जाहि जब लागैं ❋ यहु सोरठा पढ़ैं सो भागैं ॥५॥

जिसे भूत पिशाच लगें वह इस सोरठाको पढ़े तो वे भाग जाते हैं ॥ ५ ॥

सोरठा-बन्दौं पवनकुमार, खलवनपावक ज्ञानघन ॥
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धरि ॥ १ ॥

उन महावीरजीको दंडवत् करता हूँ जो दुष्टरूपी वनके जलानेको अग्निके समान हैं जिनके हृदयरूपी घरमें रघुनाथजी शर और चाप धारण कर रहते हैं ॥ १ ॥

शत्रु निवारण चहो जो भाई ❋ भाव सहित जपु यह चौपाई ॥१॥
जाके सुमिरण ते रिपु नाशा ❋ नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ॥२॥

जो शत्रुओंका निवारण करना चाहे वह प्रेमसे (जाकेसु०) यह चौपाई जपे ॥ १ ॥ स्मरण करते ही शत्रुओंका नाश हो उनको शत्रुघ्न कहते हैं यह नाम वेदमें प्रकाशित है ॥ २ ॥

यह चौपाई जपे जो कोई ❋ अन्न आदि दुख ताहि न होई ॥३॥
विश्व भरण पोषण कर जोई ❋ ताकर नाम भरत अस होई ॥४॥

और जो (विश्व भ०) यह चौपाई पढ़े उसे अन्न आदिका दुःख नहीं होता ॥ ३ ॥ जो संसारके भरण पोषण करने वाले हैं उनका नाम भरत होगा ॥ ४ ॥

जो उत्सव चह विविध प्रकारा ❋ करु यह चौपाई अनुसारा ॥५॥
जबते राम ब्याहि घर आये ❋ नित नव मंगल मोद बधाये ॥६॥

जो अनेक प्रकारसे उत्सव चाहे वह (जबते०) यह चौपाई पढ़े ॥५॥ जबसे श्रीरामचंद्रजी ब्याह कर घर आये तबसे नित्य नये मंगल और बधाये होने लगे ॥ ६ ॥

जो चाहौ जगमें जय भाई * सुस्थिर ह्वै जपु यह चौपाई ॥७॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके * जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥८॥

हे भाई ! जो जगत्में जीत चाहते हो तो सुस्थिर होकर (सखा०) इस चौपाईको जपो ॥ ७ ॥ हे सखा ! जिस पुरुषका ऐसा धर्ममय रथ है उसे कोई शत्रु जीतनेको शेष नहीं अर्थात् वह सबको जीत चुका ॥ ८ ॥

है बहु भांति कार्य जगमाहीं * रामायणसौं सब ह्वै जाहीं ॥९॥

संसारमें अनेक प्रकारके कार्य हैं परन्तु रामायणसे सब हो जाते हैं ॥ ९ ॥

दोहा--सकल भाँति मनकामना, यह दोहा दातार ॥
रामायणमहँ खोजिकर, करु याको अनुसार ॥ १३ ॥

संपूर्ण प्रकारकी मनोकामनाओंका यह दोहा देनेवाला है, रामायणमें खोज कर इसके अनुसार कार्य करो ॥ १३ ॥

दोहा–यह शोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेश ॥
बरणै शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश ॥ १४ ॥

काकभुशुण्डिजी बोले–हे गरुड़जी ! श्रीरामजीके राज्यकी शोभा, समाज और सुखका वर्णन नहीं हो सकता ! शेष सरस्वती और वेद वर्णन करते हैं शिवजी उस रसको विशेष जानते हैं ॥ १४ ॥

बरणौं एक रुचिर इतिहासा * तुलसिदास जो कीन्ह तमासा ॥१॥
द्राविड़ अरु काशी महिपाला * दोउ एकत्र रहे कछु काला ॥२॥

एक सुन्दर इतिहास वर्णन करता हूँ, जो तुलसीदासने आश्चर्य किया है ॥१॥ द्रविड़ और काशीके राजा कुछ समयतक एक स्थानमें रहे ॥ २ ॥

अतिशय प्रीति बढ़ी दोउ माहीं * मनमें कपटलेश कछु नाहीं ॥३॥
गर्भवती दोऊ नृप-नारी * चली बात दुनहुँन करि डारी ॥४॥

दोनोंमें अधिक प्रीति बढ़ी, मनमें कपटका लेश नहीं था ॥ ३ ॥ दोनों राजाओंकी रानी गर्भवती थीं, दोनों प्रसंगवश कहने लगे ॥ ४ ॥

द्राविड़ कही बात सुखराशी * सुनहु नृपति काशीके वासी ॥५॥
जन्मै तव सुत सुता हमारे * अथवा ममसुत सुता तुम्हारे ॥६॥

द्राविड़ देशके पतिने सुखदायक वार्त्ता कही, हे काशीके राजा ! सुनो ॥ ५ ॥ तुम्हारे पुत्र मेरे कन्या हो अथवा मेरे पुत्र तुम्हारे कन्या हो ॥ ६ ॥

अस संयोग होय जो नाहू * हम तुम करहिं विवाह उछाहू ॥७॥
सोहैं करि यह बात दृढ़ाई * सन्तत प्रीति रही अब भाई ॥८॥

हे राजन् ! जो ऐसा संयोग हो तो हम तुम परस्पर विवाहका उत्सव करें ॥ ७ ॥ यह बात सौगंध दे परस्पर दृढ़ की और कही अब निरन्तर प्रीति रही ॥ ८ ॥

सुखद समय आयो जब कोऊ * निज निज भवन गये नृप दोऊ ॥९॥

फिर किसी अच्छे समयमें दोनों राजा अपने-अपने घर गये ॥ ९ ॥

सोरठा—कन्या भईं दुहुँ ओर, जानी जाति न देव गति ॥
कहि पठायो सुत मोर, द्रविड़ दूत काशी गयो ॥ २ ॥

परमात्माकी गति जानी नहीं जाती, दोनों ओर कन्या हुई किन्तु द्राविड़ देशके राजाने दूतको काशी भेजा कि मेरे पुत्र प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥

यह छल होत भयो जिहि लाई * सो वह हेतु कहौं मैं गाई ॥१॥
द्राविड़पति निज गृह आयो जब * रानीसों अस कहत भयो तब ॥२॥

वह छल जिस कारणसे हुआ मैं वह भी कारण कहता हूँ ॥ १ ॥ द्राविड़ देशका राजा जब अपने घर आया तब रानीसे यह बात कही ॥ २ ॥

जौ होई कन्या दुहुँ ओरा * तो मैं प्राण तजब बरजोरा ॥३॥
सुनि रानी राजा मुख बानी * मनमें बहुत भाँति भय मानी ॥४॥

जो दोनों ओर कन्या हुई तो मैं निश्चय ही अपना प्राण त्याग करूँगा ॥ ३ ॥ रानीने राजाके मुखसे यह बात सुनी तो बड़ा भय माना ॥ ४ ॥

उपरोहित को लिहिसि बुलाई * नृप दुराय यह बात बुझाई ॥५॥
मम अहिवात तुम्हारे हाथा * नहिं तौ प्रभु मैं होब अनाथा ॥६॥

अपने पुरोहितको बुलाया राजासे छिपाकर यह बात कही ॥ ५ ॥ कि मेरा सुहाग तुम्हारे हाथमें है, नहीं तो मैं अनाथ होती हूँ, यह कन्याकी बात छिपाओ ॥ ६ ॥

रानी द्रव्य दीन नहिं थोरी * भइ मायावश द्विजमति भोरी ॥७॥
सेवक सेवकायनि वश कीन्हेसि * आदर मान दान बहु दीन्हेसि ॥८॥

रानीने उसे बहुत द्रव्य दिया, अतः लोभवश पुरोहितकी मति बौरा गयी ॥ ७ ॥ तब सेवक दासियोंको द्रव्य देकर वशमें किया और आदर मानसे बहुत दान दिया ॥ ८ ॥

दोहा—सेवक एक दिवस तब, वाराणसी पठाय ॥
तेहिते पाइसि खबरि सब, तब यह किहसि उपाय ॥ १९ ॥

और एक सेवक काशीजी भेज दिया उससे समाचार पाकर कि वहां कन्या हुई है तब यह उपाय किया ॥ १९ ॥

पुत्र नाम धरि गुप्त रखायो * द्वादश वर्ष न द्वार दिखायो ॥१॥
विदुषन कहेउ न कोऊ पेखे * ब्याह समय सब कोऊ देखे ॥२॥

पुत्रका नाम गुप्त रखाया और बारह वर्षतक द्वार न दिखाया ॥ १ ॥ पंडित बोले—इसे बारह वर्षतक राजादिक कोई पुरुष न देखे सब कोई ब्याह समयमें देखें ॥ २ ॥

मित्र मिलनहित चित अनुराग्यो * नेगी पठै ब्याह पुनि मांग्यो ॥३॥
अति आनन्द चले मग वेगी * काशी-नृप पहँ आये नेगी ॥४॥

इधर राजाका मित्रसे मिलने के निमित्त चित्त उत्कंठित हुआ और बारहवें वर्षमें नेगीको भेजकर ब्याह माँगा ॥३॥ बड़े आनन्दसे चलते-चलते नेगी काशीके राजाके यहां आये॥४॥

नृप मन मुदित पत्रिका बांची * ले आवो बरात रंगराची ॥५॥
आयो ब्याहन द्राविड़ राजा * खुली बात उपजी अति लाजा ॥६॥

राजाने उससे पत्री ले बांचकर कहा कि, सुन्दर बरात लाओ ॥ ५ ॥ जब द्राविडका राजा ब्याहने आया तब बात खुली कि; "यह वर पुरुष नहीं है" बड़ी लाज लगी ॥ ६ ॥

क्रोधातुर काशी अवनीशा * कह कटिहौं द्राविड़ करशीशा ॥७॥
यह सुनि द्राविड़ अधिक डराने * निजछल समुझि-समुझि पछिताने॥८॥

काशीके राजाने क्रोधकर कहा कि मैं द्राविड़के राजाका शिर कटवा लूँगा ॥ ७ ॥ यह सुनकर द्राविड़के राजा बहुत डरे और अपने यहांका छल जान पछताने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-अति सभीत अति दीन ह्वै, गे जहँ तुलसीदास ॥
पाहि पाहि कहि पांय परि, कहेउ करौ दुखनाश ॥ १६ ॥

फिर बड़े दीन हो द्राविड़के राजा तुलसीदासके पास गये और रक्षा करो, रक्षा करो, दुःख नाश करो यह कहकर पावोंमें गिर पड़े ॥ १६ ॥

तब काशी नृप कहँ बुलवायो * तुलसिदास हितकर समुझायो ॥१॥
सुत कहि सुता जो ब्याहन आयो * होय पुत्र तौ होय बधायो ॥२॥

तब तुलसीदासने काशीके राजाको बुलाकर प्रेमसे समझाया ॥ १ ॥ कि, यह पुत्र कहके पुत्रीका ब्याह करने आये हैं, यदि यह पुत्र हो जाय तब ब्याह होगा ? ॥ २ ॥

जौ यह पुत्र होय महराजा * करहिं विवाह साजि सब साजा ॥३॥
तुलसीदास वेदि विरचायी * तहँ गणेश गौरी पधरायी ॥४॥

काशीनृप बोले-महाराज ! जो यह पुत्र हो तो हम साज सजाय ब्याह करेंगे ॥ ३ ॥ तब तुलसीदासजीने वेदी रचाय गणेश गौरी पधराय ॥ ४ ॥

सिंहासनपै धरि रामायण * नवदिनभर कीन्ही पारायण ॥५॥
जो कन्या वर भेष बनायो * ताहीको सन्मुख बैठायो ॥६॥

सिंहासनपर रामायण धर नौ दिनतक पारायण की अर्थात् बांची ॥ ५ ॥ जिस कन्याने वरका वेष बनाया था उसीको सम्मुख बैठाया ॥ ६ ॥

वक्ता आप सो श्रोता भयी * दुनियां तहँ देखन सब गयी ॥७॥
कथा सकल जब बांचि सुनाई * तासु शीश कर धरेउ गोसांई ॥८॥

आप वक्ता हुए वह श्रोता हुई, सब दुनियाँ वहां देखनेको आयी ॥ ७ ॥ जब सब कथा बांचकर सुनायी तब गोसाईं तुलसीदासजीने उसके शिरपर हाथ धरा ॥ ८ ॥

दोहा-अरु यह चौपाई पढ़ी, रामहिं सुमिरि प्रसन्न ॥
तिहि अवसर वर ह्वै गयो, श्रीरामायण धन्य ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर और प्रसन्न होकर यह अगली चौपाई (मन्त्र) पढ़ी और उसी अवसरमें वह कन्या वर हो गई, रामायणकी बड़ी महिमा हुई और बड़े आनन्दसे द्रविड़ नृप ब्याहकर अपने घर गये ॥ १७ ॥

मन्त्र महामणि विषय व्यालके * मेटत कठिन कुअंक भालके ॥१॥
रामायण जब कही गोसाईं * प्रगटन हित काशी फिर आईं ॥२॥

वह चौपाई यह है (मन्त्र) "रामका नाम विषयरूपी सर्पका विष दूर करनेको महामणि है और यह रामनाम प्रारब्धके कठिन कुअंक मेट देता है ॥ १ ॥ " जब गोसाईंजीने रामायण कही तो प्रकट होनेके निमित्त काशीमें फिर आयी ॥ २ ॥

आदर कीन्ह न पंडित काऊ * कह जो हम सो करो उपाऊ ॥३॥
जहँ स्थान कहौं तहँ जाहू * पोथी अब न देखावहु काहू ॥४॥

किसी पंडितने आदर नहीं किया और बोले कि जो हम कहें सो उपाय करो ॥३॥ जिस स्थानपर कहें वहां जाओ और किसीको पोथी मत दिखाओ ॥ ४ ॥

श्रीआनन्द-कान्ह ब्रह्मचारी * हम शिरमौर सुमहिमा भारी ॥५॥
जौ याको वे आदर करिहैं * तौ हम सब लै शीशहि धरिहैं ॥६॥

एक श्री आनन्दकान्ह ब्रह्मचारी हमारे सबके शिर मौर हैं उनकी बड़ी महिमा है ॥ ५ ॥ जो वे इसका आदर करेंगे तो हम सब शिरपर धरेंगे ॥ ६ ॥

गये आनन्दकान्ह पहँ तत्पर * करत प्रशंस प्रसन्न परस्पर ॥७॥
पोथीकी चर्चा पुनि कीन्ही * देखन हेतु सो लै धरि लीन्ही ॥८॥

गोसाईं तत्काल आनन्दकान्हके पास गये परस्पर एक दूसरेकी प्रशंसा की ॥ ७ ॥ फिर गोसाईंजीने पोथीकी चर्चा की सो उन्होंने देखनेके निमित्त रख ली ॥ ८ ॥

कुछ दिन पढ़ी सहित अनुरागन * गये गोसाईं पोथी माँगन ॥९॥

कुछ दिन प्रेम और अनुरागसे पढ़ी पीछे गोसाईंजी पोथी मांगने गये ॥ ९ ॥

दोहा-पोथी दइ अरु अस कहेउ, होइहै आदर लोक ॥
निज प्रमाण करि लिखि दियो, यह अद्भुतसुश्लोक ॥ १८ ॥

पोथी दी और कहा कि इसका लोकमें आदर होगा और फिर अपने प्रमाणके निमित्त एक अद्भुत श्लोक लिख दिया ॥ १८ ॥

श्लोक–आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः ॥
कविता–मञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥ १ ॥

इस आनन्द-काननमें तुलसीदास जङ्गम तुलसी वृक्ष हैं, जिसकी कवितारूपी मञ्जरी रामरूपी भ्रमरसे भूषित है ॥ १ ॥

छन्द–धनि धन्य तुलसीदास, जिन जनहेतु रामायण भनी ।
माहात्म्य अमित न कहि सकौं, रसविषयमहँ मो मतिसनी ॥
निज बुद्धिके अनुसार कहि, गोपाल सद्‌गुरुकी दया ।
रघुवीर यशकी अधिकता, श्रीसन्तजन करिहहिं मया ॥ १ ॥

तुलसीदासजीको धन्य है, जिन्होंने जगत्‌के हेतु रामायण रची है । मैं रामायणका माहात्म्य कहनेको समर्थ नहीं हूँ क्योंकि मेरी मति तो विषय रसमें सनी रहती है, गोपालदासने सद्‌गुरु की दयासे अपनी बुद्धिके अनुसार माहात्म्य वर्णन किया है, रघुनाथजीके यशकी अधिकाई इसमें कही है, सो सन्तजन कृपा कर स्वीकार करेंगे ॥ १ ॥

दोहा–श्रीमत् तुलसीदासजी, ह्वै प्रसन्न वरदेहु ॥
रामायण-माहात्म्यसों, हरिजन करहिं सनेहु ॥ १९ ॥

हे श्री तुलसीदासजी महाराज ! अब प्रसन्न होकर वरदान दो कि रामायणमाहात्म्यसे हरिभक्त प्रेम करें ॥ १९ ॥

संवत वसु नभ नन्द विधु, मार्ग शुक्ल गुरुवार ॥
एकादशिकहँ कीन्ह है, अपनी मति-अनुसार ॥ २० ॥

संवत् १९०८ मार्ग शुक्ल एकादशी बृहस्पतिके दिन अपनी मतिके अनुसार माहात्म्य पूर्ण किया ॥ २० ॥

रामकोट श्रीअवधपुर, स्वामी रामप्रसाद ॥
तिनकी महिमाको कहै, विश्वविदित मरयाद ॥ २१ ॥

अवधके निकट रामकोटमें स्वामी रामप्रसादजी रहते थे, उनकी महिमा कौन कहे ? उनकी मर्यादा विश्वमें विदित है ॥ २१ ॥

तिनते गादी पाँचई, सो स्वामी मैं दास ॥
लषणपुरी मम जन्म क्षिति, रामनगरके पास ॥ २२ ॥

उनके पांचवीं गद्दीपर वे स्वामी हैं, मैं दास हूँ रामनगर निकट लक्ष्मण पुरीमें मेरा जन्म है ॥ २२ ॥

भोजनगर परसिद्ध द्विज, उत्तम पूरण दास ॥
तस्यात्मज गोपाल कृत, यह माहात्म्य इतिहास ॥ २३ ॥

अब भोजनगरमें जो सिद्ध ब्राह्मण श्रेष्ठ पूरणदासजी रहते हैं उनके पुत्र गोपालदासजीने इस माहात्म्यका निर्माण किया है ॥ २३ ॥

यह ज्वालाप्रसादने, भाष्यौ तिलक बनाइ ॥
पढ़िये सुनिये प्रेमसे, जन्मसफल हो जाइ ॥ २४ ॥

ज्वालाप्रसादमिश्रने माहात्म्यकी टीकाका निर्माण किया है, प्रेमसे पढ़ने सुननेवालोंके जन्म सफल हो जाते हैं ॥ २४ ॥

इति रामायण माहात्म्य सम्पूर्ण

❋ एकश्लोकीरामायण ❋

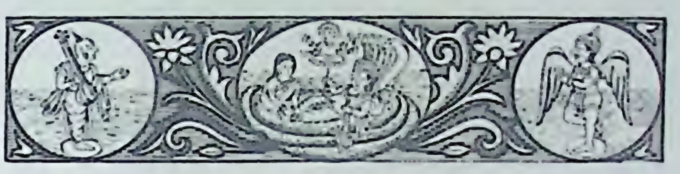
आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वामृगं काञ्चनं,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसंभाषणम् ।
वालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनं,
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥ १ ॥

रघुनाथजीका जन्म और ब्याह होना तपोवनमें जाकर सुवर्णके मृगको मारना, फिर सीताका हरण, जटायुका मरण, सुग्रीवसे भेंट, वालिका मरण, महावीरजीका सागरको लांघ लंकाको जला कर सुध लाना, पीछे रामचन्द्रसे रावण-कुम्भकरण का मारा जाना, फिर अयोध्याका राज्य पाना, बस इतनी ही रामायण है ॥ १ ॥

दोहा-एक श्लोक जो नित्यप्रति, पढ़े प्रेम मन लाय ॥
मिश्र सदा सुख पावही, जन्म सुफल हो जाय ॥ १ ॥

॥ इति शुभम् ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत

रामायण

बालकाण्डम् १.

विद्यावारिधि-

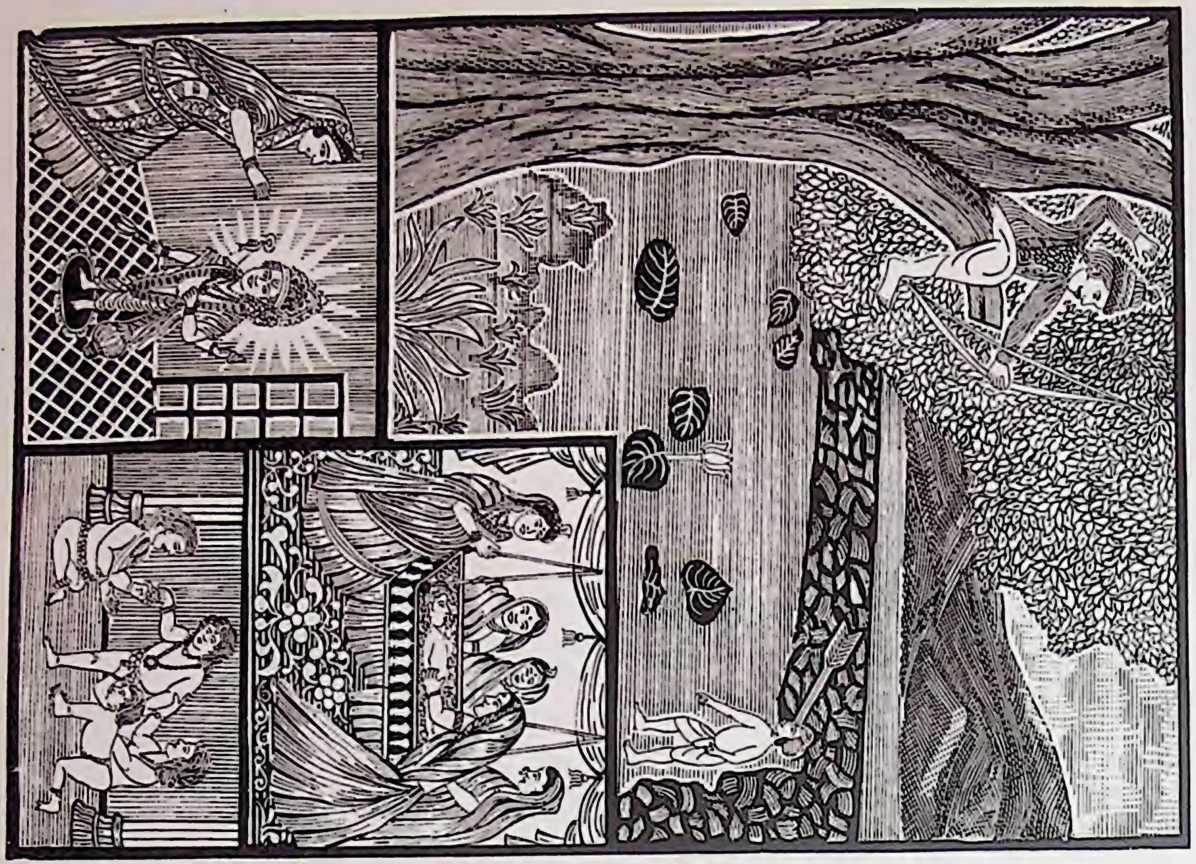
श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदासमार्ग बम्बई.

दोहा-रामचरण रति जो चहै, अथवा पद निर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा, करे श्रवणपुटपान ॥



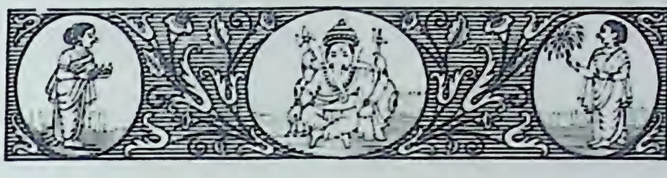
चौपाई-मनकामना सिद्धि नर पावै । जो यह कथाकपट तजि गावै ।
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥

बालकाण्डम् १.



श्रीरामपञ्चायतन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

बालकाण्डम् १.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

(मन्त्रः)

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि ॥
सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु
माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥१॥

अथ प्रथमसोपान प्रारभ्यते

मंगलाचरणम्

श्लोक—वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिके हेतु मंगलाचरणरूप गणेश और सरस्वतीकी प्रार्थना करते हैं-वर्णानामिति । अक्षरोंके अनेक प्रकार, अर्थोंके समूह अर्थात् मिलाप और शृङ्गारादि नव रस तथा अनेक प्रकारके छन्द[1] और सर्व प्रकारके मङ्गल करने वाले गणेश तथा सरस्वतीजीकी मैं वन्दना करता हूँ । इनमें अक्षरोंकी अनेक प्रकार मैत्री, परस्पर मिलाप और शृंङ्गार मंगलकी कर्त्री वाणी अर्थात् सरस्वती हैं और अक्षरोंके अनेक प्रकारके अर्थ और

१ गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्यी, याजुषी, यामी, प्राची, ब्राह्मी आदि वैदिक छन्द हैं। अनुष्टप् चम्पकमाला, वसन्ततिलका, आदि लौकिक छन्द हैं। इसी प्रकार दोहा, सोरठा, चौपाई आदि भाषा छंद हैं।

अनेक प्रकारके छंद, विविध मङ्गलके कर्ता श्री गणेशजी हैं। इस श्लोकमें मगण पड़ा है मनौ तु गुरुलाघवम्। जिसके तीनों अक्षर गुरु हों वह मगण और तीनों लघु होनेसे नगण कहलाता है, यहां भी "संयुक्ताद्यं दीर्घम्। संयोगके आदिको गुरु होता है"। मगणका पृथ्वी देवता है। श्रीका देनेवाला है "मो भूमिः श्रियमातनोति०" ॥ १ ॥

भवानी-शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

भवानीति। (अहम्) मैं (भवानीशंकरौ) पार्वती और शिवजीको (वंदे) प्रणाम करके स्तुति करता हूँ। वे कैसे भवानी शंकर हैं? (श्रद्धाविश्वासरूपिणौ) श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं। (सिद्धाः याभ्यां विना) सिद्ध पुरुष भी जिन शिवपार्वतीकी कृपाके विना (स्वान्तस्थमीश्वरम्) अपने हृदयमें स्थित ईश्वरको (न पश्यन्ति) नहीं देखते हैं। यहां पार्वतीको श्रद्धा और शिवको विश्वासका रूप कहा है। संसारमें पड़े हुए जीवोंकेउद्धार करनेको ईश्वरमें उनकी श्रद्धा दृढ़ करनेको प्रश्न कर पार्वतीने जीवोंकी श्रद्धा ईश्वरमें कराई और शिवजीने ईश्वर में जीवोंका दृढ़ विश्वास हो जानेके अर्थ स्वयं विश्वास रूप होकर अपने उपदेशमें प्रवेश किया। आशय यह है कि जो इस शिवपार्वतीके संवादरूप कथनको श्रवण करेगा उसे श्रद्धा और विश्वास दोनों प्राप्त होंगे-जिनसे परमपदका अधिकारी होगा ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

अब श्री गोस्वामीजी अपने गुरुकी वंदना करते हैं कि (अहम्) मैं (गुरुम्) अपने गुरुकी (वंदे) वंदना करता हूँ, कैसे गुरु महाराज हैं (बोधमयम्) विज्ञान स्वरूप। फिर कैसे हैं कि (नित्यम्) नित्य हैं—जरा मरण रहित वेदान्तनिष्ठ हैं और (शंकररूपिणम्) "शंकरोतीति शंकरः" कल्याणरूप हैं-साक्षात् शिवरूप हैं! (हि यमाश्रितः) निश्चय जिनके आश्रित होकर (वक्रः चन्द्रोऽपि) टेढ़ा चन्द्रमा भी (सर्वत्र वन्द्यते) सब स्थानोंमें वन्दनीय हो जाता है। आशय यह है कि द्वितीयाका चन्द्रमा यद्यपि वक्र है, परन्तु शिवजीने जो मस्तक पर धारण कर लिया है इस कारण उसे सब नमस्कार करते हैं। ऐसे ही गोस्वामीजी कहते हैं कि यह मेरी कविता टेढ़ी भी है, परन्तु गुरुके आश्रित होनेसे वंदनीय होगी। गुरुजीको शंकररूप इस कारण कहा कि रामकथाके प्रकाशक शंकरजी ही हैं ॥ ३ ॥

सीताराम गुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

गुरुवंदनानंतर महर्षि वाल्मीकि और महावीरजीकी वंदना करते हैं। सीतारामेति-(अहं कवीश्वरकपीश्वरौ वंदे) मैं महर्षि वाल्मीकि और महावीरजीकी वंदना करता हूँ। कैसे ये दोनों महात्मा हैं (सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ) महाराज रामचन्द्र और जानकीके जो अपार चरित्रोंका पवित्र वन है उसमें विहारकरनेवाले हैं और (विशुद्धविज्ञानौ) अत्यन्त पवित्र विज्ञानयुक्त हैं अर्थात् रामचन्द्रके चरित्र कथन करनेसे बुद्धिप्रवर्तक हैं ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ॥
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

अब श्रीजानकीजीकी वन्दना करते हैं-उद्भवेति (उद्भव) अपनी भ्रुकुटीसे संसारको उत्पन्न करनेवाली, (स्थिति) पालन कर स्थिति करनेवाली (संहारकारिणीम्) प्रलयमें भगवान् की इच्छासे संहार करनेवाली (सर्वश्रेयस्करीम्) सम्पूर्ण कल्याण तथा मोक्षसुख देनेवाली, (रामवल्लभाम्) रामचन्द्रकी प्यारी (सीताम्) जानकी महारानीको (अहम्) मैं (नतः) नमस्कार करता हूँ । यदि विचार किया जाता है तो रामायणकी प्रवृत्ति रावणादिवध सब जानकीजीके ही कारणसे हुए तथा गृध्र और दैत्य राक्षस सहस्रोंकी मुक्ति जानकीजीके कारणसे हुई विशेषतः लंकावासियोंकी कथाके प्रचारसे भक्तोंकी गति हुई इसी कारणसे 'सर्वश्रेयस्करीम्' पद दिया है । ऐसा ही ऋग्वेदमें वर्णन किया है-"अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ॥ परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिमा संबभूवेति" अर्थ-सब भुवनोंको उत्पन्न करती मैं ही वायुके समान चलती हूँ, स्वर्गसे परे और इस पृथ्वीसे परे जो महापुरुष हैं अर्थात् रामचन्द्र उतनी ही और उनसे संयुक्त मैं महिमासे नानारूपवाली हुई हूँ ॥५॥

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाऽसुरा,
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
यत्पादः प्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां,
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

श्री गोस्वामीजी अब श्री महाराज रामचन्द्रजीको नमस्कार करते हैं-यन्मायेति ॥ (अहम्) मैं (रामाख्यमीशम् (रामनामयुक्त ईश्वरको (वंदे) नमस्कार करता हूँ, कैसे वे हैं ? (ब्रह्मादिदेवासुराः अखिलं विश्वं यन्मायावशवर्ति) ब्रह्मा आदि सब देवता, दैत्य और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनकी मायाके वशवर्ती हैं, (यत्सत्त्वात्) जिनकी सत्तासे (सकलम् अमृषेव भाति) सब संसार सत्य जान पड़ता है, (यथा रज्जौ अहेर्भ्रमः) जैसे रज्जुमें सर्पका भ्रम सत्य ही प्रतीत होने लगता है, (भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्) संसारसागरसे तरनेवालोंको (यत्पाद एक एव हि प्लवः) जिसके चरण ही एक नौका है दूसरा कोई उपाय नहीं, यथा-"तमेवविदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनायेति" उसीको जाने तो मुक्ति होती है, उसके विना दुःख छूटनेका और उपाय नहीं है, (तम् अशेषकारणम्) उस सम्पूर्ण कारणोंसे परे (हरिम्) दुःख हरने वाले ईश्वरको नमस्कार करता हूँ । वह सम्पूर्ण कारणोंसे परे है उससे कोई परे नहीं । उसे किसी कार्य कारणकी अपेक्षा नहीं " न तस्य कार्यं करणं च विद्यते " इति उपनिषद्वचनात् ॥ ६ ॥

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ॥
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७ ॥

नानापुराणेति । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि (यद्रामायणे निगदितम्) जो अध्यात्मरामायणमें शिवजीने कहा है वह, (नानापुराण) अष्टादशपुराण पद्म, स्कन्द,

गरुड, मत्स्य, वायु, ब्रह्माण्ड, लिङ्ग, अग्नि, कूर्म, वामन, नारद, विष्णु, भविष्योत्तर, मार्कण्डेय, वाराह, ब्रह्मवैवर्त्त, श्रीमद्भागवत, शिव, ये और (निगम) चार वेद--ऋक्, यजुष, साम, अथर्व, (आगम) छः शास्त्र-मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, वेदान्त इनका जो (सम्मतम्) सम्मत है उसका सार लेकर और (क्वचित्) कहीं-कहीं (अन्यतःअपि) उपपुराणादि ग्रन्थों से लेकर वा अपने अनुभवसे लेकर (तुलसी स्वान्तःसुखाय) मैं तुलसीदास अपने अन्तःकरणके सुखके निमित्त (रघुनाथ गाथा-भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति) श्रीरामचन्द्रकी कथाको अति उज्ज्वल भाषानिबन्धमें करता हूँ, अथवा १८ पुराण, ४ वेद ६ शास्त्रका-सम्मत जो वाल्मीकीय रामायणमें कहा है उसको तथा और ग्रन्थोंमें जो कुछ रामचरित्र वर्णित है उसे देखकर मैं (तुलसीदास) अपने हृदयके सुखके निमित्त उज्ज्वल भाषाप्रबन्ध निर्माण करता हूँ। लक्ष्य; वेद-"सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा" और 'पदपातालशीश अजधामा।' न्यायवैशेषिक-पंचतत्व यह अधम शरीरा।' वेदान्त; दोहा-'रजत सीपमहँ भास जिमि यथा भानुकर वारि। यदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि॥' मीमांसा; चौपाई-'ताकर भेदसुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥ करै जो कर्म धर्म मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी' "अथातो धर्मजिज्ञासा" योग "जपतप व्रत यम नियम अपारा। जेश्रुति कहे सुधर्म अचारा॥" दोहा-'योग अग्नि कर प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाय। बुद्धिसिरावै ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाय॥' इत्यादि विषय योगशास्त्रके हैं। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तकी वृत्तियोंकेरोकने का नाम योग है। इस आशयका आगे विस्तारसे वर्णन करेंगे ॥ ७ ॥ अग्रे भाषापदप्रारंभः-

सोरठा-जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरवदन॥
करौ अनुग्रह सोय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन॥ १॥

जिन गणेशजी महाराजके स्मरण करते ही सिद्धि हो जाती है, शिवजीके सम्पूर्ण गणोंके नायक हैं जिनका गजकासा श्रेष्ठमुख है, सो मेरे ऊपर कृपा करो, जो बुद्धिके राशि अर्थात् भंडार और अच्छे गुणोंके घर हैं। यदि कोई शंका करे कि, निज इष्ट देवको छोड़ गणेशजीका क्यों स्मरण किया? वहाँ यह उत्तर है कि गोस्वामी तुलसीदासजी शास्त्र और नामकी मर्यादा रखते हैं कि नामके प्रतापसे गणेशजी प्रथम पूज्य हुए, उनका नाम ग्रहण करनेसे मेरी पुस्तक भी प्रथम पूज्य होगी॥ यथा चौ०-नाम प्रभाव जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥ दूसरा अर्थ यह है कि, (जेहि सुमिरत) जिन रामचन्द्रजी महाराजके नाम स्मरण करते ही गजानन सिद्ध हो गये, शिवने प्रथम पूज्यता दी और गणोंका नायक बनाया, वे महाराज रामचन्द्रजी बुद्धिके राशि अर्थात् बुद्धिके ढेर, जिनमें अधिक बुद्धि और शुभ गुण वास करते हैं, मेरे ऊपर कृपा करें। अथवा जो सुमिरत अर्थात् जिन श्रीरामचन्द्रके स्मरण करने से (सी) सीताको (धी) धीरज हुआ जैसे-'तौ भगवान् सकल उरवासी। करहिं मोहिं रघुपतिकी दासी।' सो (गणनायक) चराचरके पति (करिवर) भलाई करके (वदन) मुखपर न लानेवाले अनुग्रह करके मुझे बुद्धिकी राशि और शुभगुणोंका घर दो, कोई यह अर्थ करते हैं, परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना है॥ १॥

सोरठा-मूक होहिं वाचाल, पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन॥
जासु कृपा सु दयाल, द्रवौ सकल कलिमलदहन॥ २॥

मूक (गूँगे) चार प्रकारके होते हैं-वदनमूक, अज्ञानमूक, धर्ममूक, ज्ञानमूक । यह चारों प्रकारके मूक (होहिं वाचाल) बहुत बोलनेवाले हो जाते हैं, पंगु अर्थात् लंगड़े—ये भी तीन प्रकारके होते हैं-पदपंगु, कर्मपंगु, सुमतिपंगु (चढ़ै गिरिवर गहन) जहां बड़े गहनपर्वत हैं उन पर चढ़ जाते हैं, वे कौनसे हैं कि (जासु कृपा सुदयालु) जिनके ऊपर महाराजकी सम्पूर्ण कृपा और दया होती है । सो (कलिमलदहन) कलियुगके पाप नाश करनेवाले मेरे ऊपर द्रवौ (कृपा करो) । श्रीतुलसीदासजी रामचरित्र-वर्णनमें अपनेको मूक समझते हैं सो अपनेको वाणीकी प्रवृत्तिकी इच्छा प्रगट करते हैं, अज्ञानमूक जैसे बालक ध्रुव प्रह्लाद बाल अवस्थामें ही तत्वके वक्ता हुए धर्ममूक जो कभी भी किसीसे अपनी वार्ता नहीं करते, पर भगवतकी कृपा हो तो परमार्थ कथन करने लगते हैं, ज्ञानमूक परमेश्वरके तत्वको जान-कर मौन धारण किये अन्यथा नहीं बोलते, जैसे-जनक, दत्तात्रेय, परन्तु रामकृपासे परमार्थ कथन करने लगते हैं, रामचंद्रकी कृपा हो तो पदपंगु पर्वतपर चढ़ जाय,यथा-गृद्ध,शबरी,कोल भिल्ल । यहां तुलसीदासजी रामचरित्रको गहन पर्वत और अपनी कविताको पंगु जान प्रार्थना करते हैं । कर्मपंगु वे हैं जिन्होंने स्वप्नमें भी सुकर्म नहीं किये वे भी रामकृपासे भवसागर पार हो गये । सुमतिपंगु वे हैं जो रामस्वरूपको प्राप्त होकर बुद्धिको पंगु किये बैठे हैं । किसी विषयमें भी जिनकी बुद्धि नहीं चलायमान होती है;क्योंकि वह रामस्वरूप पर्वत पर चढ़ गयी है, श्लोक-'मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्, यत्कृपा तमहं वंदे परमानंदमाधवम्' ॥ २ ॥

सोरठा-नीलसरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन ॥
करौ सो मम उर धाम, सदा क्षीरसागर शयन ॥ ३ ॥

नील कमलके समान श्याम शरीरवाले, तुरंत खिले लाल कमलसे जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागरमें शयन करते हैं वे विष्णु भगवान् मेरे हृदयमें अपना धाम (स्थान) करें विष्णु भगवान् और राममें कुछ भेद नहीं है जो सबमें व्यापक वे विष्णु और जो सबमें रमण करते हैं वे राम हैं और अर्थ यह भी है कि जिस प्रकार भगवान् सदा क्षीरसागरमें शयन करते हैं इसी प्रकार सदा मेरे हृदयमें घर बनावें, अथवा जैसे क्षीर सागरमें शयन करने वाले मेरे हृदय में वास करें, अथवा जैसे क्षीरसागरमें शेष लक्ष्मी सहित विराजते हैं इसी प्रकार लक्ष्मण और सीता सहित राम मेरे हृदयमें विराजें ॥ ३ ॥

सोरठा-कुन्द इन्दु सम देह, उमा-रमणकरुणा-अयन ॥
जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥

कुन्द (कुन्दके फूल) और इन्दु (चन्द्रमा) के समान उज्ज्वल जिनका देह (शरीर)है, उमारमण (पार्वतीके संग विहार करने वाले) करुणा-अयन (दयाके स्थान) जिनका दीनोंके ऊपर अधिक स्नेह है, वे मर्दन मयन (कामदेवके मारनेवाले) शिवजी महाराज मेरे ऊपर कृपा करें । भक्तोंके ऊपर दया कर शिवजीने रामायणका प्रचार किया है, जिससे कामादि द्वन्द्व मिट जाते हैं उनकी प्रार्थना भक्ति प्राप्त होनेको करते हैं, प्रमाण-विनयपत्रिका "विनु शिव कृपा रामपदपंकज सपनेहु भक्ति न होई" ॥ ४ ॥

सोरठा–वन्दौं गुरुपदपंकज, कृपासिंधु नररूप हरि ॥
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥ ५ ॥

(गुरुपदपंकज) गुरुके चरण कमलोंको (वंदौ) नमस्कार करता हूँ कैसे गुरु हैं (कृपासिन्धु) दयाके समुद्र हैं (नररूप हरि) मनुष्यरूप धारण किये साक्षात् विष्णु भगवान् हैं वा (नरहरि) सिंह अर्थात् विद्यामें मनुष्योंमें सिंह हैं वा कोई कहते हैं नृसिंह तुलसीदासजी के गुरुका नाम है । (महामोह तमपुंज) अधिक अज्ञानके अन्धकारके ढेरको (जासुवचन) जिन गुरुजी महाराज का वचन (रविकर) सूर्यकी किरणोंका (निकर) समूह है जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार मिट जाता है, इसी प्रकार गुरुके वचनसे हृदयमें जो अज्ञानरूप अन्धकार है वह दूर हो जाता है । अथवा गुरुदेवको नमस्कार करता हूँ जो कृपाके सागर हैं और नररूप में हैं पापोंके हर्ता हैं तथा मोह अन्धकार दूर करने के लिए जिनके वचन सूर्यकी किरण हैं ॥ ५ ॥

वन्दौ गुरु पद पद्मपरागा ❋ सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥१॥
अमिय मूरिमय चूरण चारू ❋ शमनसकल भवरुज परिवारू ॥२॥

गुरुके चरण कमल पराग (धूर) की वन्दना करता हूँ । इस रजमें जो तत्वगुणी सुन्दर रुचि है वह सुगंध और (अनुराग),प्रीति जो है वही सुन्दर रस है,शिष्यकी रुचि जो चरणोंमें है वही कमलका मकरन्द है, शिष्यकी गुरुचरणमें जैसी भावना होगी उसीके अनुसार फल मिलेगा ॥ १ ॥ वही गुरुके चरणकमलका सुन्दर चूर्ण है (अमिय मूरिमय) अमृत की जड़ उसका नाम है, (भव) संसारके जन्म मरणादि सम्पूर्ण रोगोंको शांत कर देता है यह उसका गुण है वैद्यकमें रोगोंके प्रकारोंको परिवार कहते हैं । यह अनेक प्रकारके सम्पूर्ण रोगोंका नाश कर देता है । प्रश्न- तुलसीदासजी अनेक प्रसङ्ग छोड़ वैद्यकशास्त्रमें क्यों प्रवृत्त हुए ? उत्तर–गोसांईजी रामचरित्र बनानेमें अपनेको निर्बल जानकर बुद्धिके अर्थ वैद्यकशास्त्रके प्रसङ्गमें प्रवृत्त हुए जिससे संसाररूपी रोग मिट जाय ॥ २ ॥

सुकृत शंभु तन विमल विभूती ❋ मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥३॥
जन मन मंजु मुकर मलहरणी ❋ किये तिलक गुणगणवश करणी॥४॥

वही रज पुण्यरूप शिवजीके शरीरकी उज्ज्वल विभूतिके समान है अर्थात् सुकृत जो है वही शिवरूप है उसके तनुकी निर्मल विभूति है और (मंजुल) निर्मल और मोद आनन्दकी (प्रसूती) उत्पन्न करनेवाली है ॥ ३ ॥ फिर वही रज श्रेष्ठ पुरुषोंके उज्ज्वल दर्पण रूपी मनपर आये मैलको हरनेवाली है, दर्पनका मल रजसे जाता है और जो इस रजका तिलक करे तो गुणोंके समूहको वश करनेवाली है प्रमाण "जो नर गुरु आयसु अनुसरहीं । ते जन सकल विभव वश करहीं" ॥ ४ ॥

श्रीगुरुपदनख मणिगण ज्योती ❋ सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती ॥५॥
दलन मोह तमसो सुप्रकासू ❋ बड़े भाग्य उर आवहि जासू ॥६॥

गुरुके चरणोंके नखोंकी मणियोंके समान ज्योति है जिस ज्योतिके स्मरण करते ही हृदयमें (दिव्य दृष्टि) गुप्त वस्तुओंका जाननेका प्रकाश हो जाता है ॥ ५ ॥ उसका प्रकाश

मोहरूपी अन्धकारको दूर करता है जिसके हृदयमें आवे उसके बड़े भाग्य हैं अथवा जिसके बड़े भाग्य हैं उसके हृदयमें वह दिव्य दृष्टि होती है ॥ ६ ॥

उघरहिं विमल विलोचन हीके ❋ मिटहिं दोष दुख भव रजनीके ॥७॥
सूझहिं रामचरित मणि माणिक ❋ गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥८॥

और हृदयमें आते ही हृदयके नेत्र खुलजाते हैं और संसाररूपी रात्रिके (जन्म-मरणादि) दुःख मिट जाते हैं ॥ ७ ॥ जब प्रकाश होता है तो ढकी धरी सब वस्तु दृष्टि आ जाती है, यह प्रकाश हृदयमें होते ही रामचन्द्रके जो मणि और माणिकरूप गुप्त और प्रगट चरित हैं वे सब दीखने लगते हैं। प्रगट तो सब जानते ही हैं पर गुप्त यह हैं, दोहा-"मास दिवसका दिवस भा, मर्म न जाने कोय ॥" अथवा-चौ॰ "लक्ष्मणहू यह मर्म न जाना । जो कछु चरित रचेउ भगवाना ॥" और "क्षणमें सबहि मिले भगवाना । उमा मर्म यह काहु न जाना" इत्यादि ॥८॥

दोहा-यथा सुअञ्जन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ॥
कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

चतुर साधक जिस प्रकार सुन्दर सिद्धताका अंजन नेत्रोंमें लगाकर सिद्ध हो जाते हैं और उससे शैल (पहाड़), जंगल, भूतल (पृथ्वी) में जो बहुतसे कौतुक पत्र हैं उनमें कौतुक देखते हैं, इसी प्रकार इस गुरुपदरज अंजनको नेत्रोंमें लगाकर सुजान साधक सिद्ध हो जाते हैं और शैल पर्वत वन पृथ्वी इन सबमें वे कौतुक देखते हैं; यह सब उन्हें कौतुक (खेल) सा दृष्टि आता है । अथवा सम्पूर्ण वेद-पुराणादि वन संसार और भूतल संत समाज और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भगवान्‌के कौतुकसे दीखते हैं ॥ १ ॥

गुरुपदरज मृदु मंजुल अञ्जन ❋ नयन अमिय दृग दोष विभञ्जन॥१॥
तेहि करि विमल विवेक विलोचन ❋ वरणौं रामचरित भवमोचन ॥२॥

गुरुके चरणकमलकी रज सुन्दर कोमल अञ्जन है, 'नयनामृत' उसका नाम है, नेत्रोंको अमृतरूप है और उसका गुण यह है कि, नेत्रोंके रोगोंको नष्ट करता है ॥ १ ॥ उस अञ्जन को लगा अपने नेत्रोंको उज्ज्वल अर्थात् अच्छी परखवाले करके रामचरित्रका वर्णन करता हूँ जो संसारका जन्म-मरण दूर करता है ॥ २ ॥

वन्दौं प्रथम महीसुर चरणा ❋ मोहजनित संशय सब हरणा ॥३॥
सुजन समाज सकल गुणखानी ❋ करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥४॥

अब स्वर्गवासियोंकी वन्दनाके अनंतर भूलोकवासियोंकी वन्दनामें प्रथम ब्राह्मणोंके चरण कमलकी वंदना करते हैं ! गुरुको देवस्वरूपसे देवताओंने प्रणाम किया है, ब्राह्मण पृथ्वीके देवता हैं, इसी कारण प्रथम शब्दका प्रयोग किया है कि पहिले ब्राह्मणोंके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ । कैसे वे चरणकमल हैं कि अज्ञानसे उत्पन्न हुए संशयोंको हर लेते हैं ॥ ३ ॥ सत्पुरुषोंका समाज सम्पूर्ण गुणोंकी खानि है (जो उसमें जाकर बैठता है उसके पास सद्गुण आ जाते हैं) उन महात्माओंके समाजको प्रीतिपूर्वक अच्छी वाणीसे प्रणाम करता हूँ ॥४॥

साधुचरित शुभ सरिस कपासू ❋ निरस विशद गुणमय फलजासू ॥५॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ❋ वन्दनीय जेहि जग यश पावा ॥६॥

साधुपुरुषोंका चरित्र कपासके समान कल्याणकारी है,वह चरित्र है तो रसरहित परंतु उसका फल बड़ा गुणयुक्त है,जिस प्रकार कपासमें रस तो कुछ नहीं,परंतु उसका फल गुण(डोरा) युक्त है जिसमें वस्त्र रहता है इसी प्रकार साधु समाजमें वैराग्य पदार्थ निरस है जिसमें संसारके रस नहीं हैं परंतु विज्ञानसे निर्मल और ज्ञान वैराग्य नियमयुक्त है वही विषय आगे चौपाईमें कहते हैं॥५॥कपास आप दुःख सहकर पराये छिद्र छिपाता है इसीसे नमस्कारके योग्य इसने संसारमें यश पाया है । इसी प्रकार महात्मा होते हैं, जो आप दुःख उठाकर पराया भला करते हैं । कपासके दुःख ये हैं-गर्मी, शीत, वर्षा सहकर वनमें उत्पन्न होती है, सूखकर शरीर चरखीमें ओटा जाता, धुना जाता, चरखोंमें सूत काता जाता, कपड़ा बन धोबीके यहां कुटता, दरजी टुकड़े करता, सुइयोंसे शरीर छिदता, ऐसे दुःख उठाकर भी वस्त्ररूपमें मनुष्योंके शरीरकी रक्षा करता है, ऐसे ही गुण साधुओंमें होते हैं ॥ ६ ॥

मुद मंगलमय संत समाजू ❋ जो जग जंगम तीरथ राजू ॥७॥
रामभक्ति जहँ सुर-सरि धारा ❋ सरस्वति ब्रह्म विचार प्रचारा ॥८॥

सन्तोंका समाज आनंद मङ्गलरूप है, जो संसारमें जंगम (चलता-फिरता) प्रयागराज है ॥ ७ ॥ प्रयागराजमें, गंगा, यमुना, सरस्वती, त्रिवेणी, अक्षय वट है वही इन महात्माओंके समाजमें भी वर्णन करते हैं । इन सन्तोंके समाजमें तीन धारायें हैं, उनमें श्रीरामचन्द्रकी भक्ति गङ्गा की धारा है और ब्रह्म विचारका प्रचार सरस्वती हैं ॥ ८ ॥

विधिनिषेधमय कलिमलहरणी ❋ कर्मकथा रविनंदनि वरणी ॥९॥
हरिहर-कथा विराजति बेनी ❋ सुनत सकलमुद-मङ्गलदेनी ॥१०॥

विधिवाक्य जैसे'अहरहः संध्यामुपासीत' प्रतिदिन संध्या करो ! निषेध जैसे'सुरां न पिबेत्' मदिरा मत पियो इस प्रकारके कर्मोंकी कथाका वर्णन कलिके पापोंको हरनेवाली यमुना नदी है ॥ ९ ॥ विष्णु और शिवकी कथारूपी धरातल पर यह भक्तिज्ञान और कर्मरूपी त्रिवेणी (संगम) हुई है; जो सुनते ही आनंदमंगलकी देनेवाली है ॥ १० ॥

वट विश्वास अचल निज धर्मा ❋ तीरथराज समाज सुकर्मा ॥११॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा ❋ सेवत सादर समन कलेशा ॥१२॥

अपना जो विश्वास वही अक्षयवट वृक्ष है,अपना धर्म इस प्रयागक्षेत्रकी अचलता है और अनेक जो श्रेष्ठ कर्मवाले हैं वे तीर्थराजके समाजी हैं ॥ ११ ॥ वह प्रयागराज तो अपने देशमें स्थित है और विशेषकर मकरसंक्रांति पर ही सुलभ होता है, परन्तु यह साधुसमाजरूप जो प्रयाग है वह पुरुषोंको सब दिन और देशोंमें प्राप्त हो सकता है, क्योंकि साधु महात्मा सब देशोंमें रहते हैं और जो इस साधुसमाज प्रयागराजको आदरसे सेवते हैं उनके जन्ममरणादि सब क्लेश छूट जाते हैं ॥ १२ ॥

अकथ अलौकिक तीरथराऊ ❋ देय सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥१३॥

यह साधुसमाज तीर्थराज अकथ (कहनेमें नहीं आता) और अलौकिक ऐसा लोकमें दूसरा नहीं है; क्योंकि तत्काल फल देता है । यह प्रभाव जगत्में प्रगट है कि प्रयागराज जन्मांतरमें फल देता है ॥ १३ ॥

दोहा–सुनि समुझहिं जन मुदितमन, मज्जहिं अति अनुराग ॥
लहहिं चारिफल अछत तनु, साधुसमाज प्रयाग ॥ २ ॥

इस साधुसमाज प्रयागके स्नानकी तीन सीढ़ी लिखते हैं-सुनना ही तटपर पहुँचना है, समझना धारामें प्राप्त होना है जो अत्यन्त अनुराग है वही स्नान करना है । इस प्रकार साधुओंके सत्सङ्गरूपी प्रयागमें जो प्रसन्नमन तथा अत्यन्त प्रेमसे गोता लगाते हैं वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंको इसी शरीरसे पाते हैं ॥ २ ॥

मज्जन फल देखिय ततकाला ❋ काक होहिं पिक बकहु मराला ॥१॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई ❋ सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥२॥

मज्जनफल (स्नान करनेका फल) तुरंत मिल जाता है, कौवा गोता लगावे तो कोकिल और बक (बकुला) गोता लगावे तो हंस होके निकलता है अर्थात् मूर्ख धूर्त भी महात्माओं की संगतिसे पंडित महात्मा हो जाते हैं ॥ १ ॥ काक पिककी बातको सुनकर कोई आश्चर्य नहीं करे क्योंकि सत्संगतिकी महिमा छिपी नहीं है ॥ २ ॥

वाल्मीकि नारद घटयोनी ❋ निज निज मुखन कही निज होनी ॥३॥
जलचर थलचर नभचर नाना ❋ जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥४॥

वाल्मीकि, नारद, अगस्त्यजीने अपने मुँहसे अपनी-अपनी होनी कही है ॥ ३ ॥ जलचर (जलमें फिरनेवाले) थलचर (पृथ्वीमें फिरनेवाले) और नभचर (आकाशमें उड़नेवाले) पक्षी आदि जोजड़ चेतन जहानमें जीव हैं ॥ ४ ॥

मति कीरति गति भूति भलाई ❋ जो जेहि जतन जहां जब पाई ॥५॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ❋ लोकहु वेद न आन उपाऊ ॥६॥

---

१. वाल्मीकिजीने रामजीसे कहा कि मै पहले व्याधका काम करता था, अनेक जीवों का घात किया करता और उनका द्रव्य हरण करके अपने कुटुंबका पालन करता । एक दिन सप्तर्षियोंसे अकस्मात् मार्गमें भेंट हुई तो उनका जीवघात करनेको मैं तत्पर हुआ; तब वे बोले–जिन्होंने तुमको इस घोर कर्ममें प्रवृत्त किया है, वे तेरे पापमें भी साक्षी हैं कि नहीं ? तब मैं यह वाणी सुन कुटुंबके लोगोंसे पूछने गया । उन्होंने कहा हम पापमें साझी नहीं, तब मैं बड़ा दुखी हो ऋषियोंके पास गया । उन्होंने मुझे अत्यंत आतुर समझकर शिक्षा दी, उनके उपदेश से तुम्हारा नाम "मरा मरा" जपते-जपते मैं इस स्वर्गधर्मगतिको प्राप्त हुआ कि आप साक्षात् ईश्वर मेरे स्थान पर पधारे । इति आनन्द रामायणे ।

२. जब वेद व्यास पुराणोंका संकलन कर चुके और उन्हें संतोष न आया तब यह बात नारदसे पूछी । तब नारदजीने कहा सुनो—पूर्वमें मैं दासीपुत्र था परंतु मेरी माता जिनके यहां काम करती थी वे साधुसेवी थे । उनके स्थानमें साधु नित्यप्रति आवें, जो उनका उच्छिष्ट बचे सो मैं भोजन करूं, इससे मेरी बुद्धि ऐसी निर्मल हुई और माताके परलोक जानेके अनन्तर वनमें तप करने चला गया, अंतमें शरीर त्यागकर इस गति को पहुंचा कि ब्रह्माका पुत्र हुआ, यह सत्संगतिका ही प्रभाव है । इससे अब तुम कुछ भगवद्यश कहो तो संतोष होगा, तब व्यासजीने श्रीमद्भागवत बनायी ।

३. अगस्त्यजीने महादेवजीसे कहा कि मेरे पिता मित्रावरुण तप करते थे, कि आकाश मार्गमें रम्भा शृंङ्गार किये जाती थी । जब उनकी दृष्टि उसपर पड़ी तब काम उत्पन्न हुआ, तब मित्रावरुण ने वीर्यको घटमें रख दिया उससे मेरी उत्पत्ति हुई और 'घटज' नाम पड़ा, तो ऐसी निकृष्ट बुद्धि और नीच स्थानमें जन्म हुआ, परंतु सत्संगतिसे इस दशाको प्राप्त हुआ कि आपका समागम प्राप्त है ।

४. राघव मत्स्यकी मतिमें आया कि जब राक्षसेन्द्र रावण कौशल्याको समुद्रमें सौंप गया उसने उसके पिताको सौंप दिया और उसीसे रावणका नाश हो गया ।

५. जलचरमें गजेन्द्रकी कीर्ति भागवतमें प्रसिद्ध है ।

६. नभचरमें जटायुकी गति रामकी सहायता करनेसे हुई ।

७. जड़में अहिल्या है जो रामचरणकी धूलि लगनेसे पवित्र हो पति के ऐश्वर्यको प्राप्त हुई ।

८. चैतन्यमें सुग्रीव माहावीरादिको इतनी बड़ाई प्राप्त हुई कि रामचन्द्रने अपनेको उनका ऋणी माना । यथा चौ० "सुन सुत तोहि उऋण मैं नाहीं, करि विचार देखेहुं मनमाहीं ।"

मति (बुद्धि), कीर्ति (बड़ाई), गति, भूति (ऐश्वर्य) और भलाई जब जिसने यत्नसे पायी है, सत्संगतिसे ही पायी है ॥ ५ ॥ वही पुरुष सत्संगतिका प्रभाव जानता है जिसने किया है मनुष्य सुधारके लिए लोक, शास्त्र वेदमें और उपाय नहीं है ॥ ६ ॥

बिनु सत्संग विवेक न होई ❋ रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥७॥
सत्संगति मुद मंगल मूला ❋ सोइ फल सिधिसब साधन फूला॥८॥

बिना सत्संग किये ज्ञान नहीं होता और वह सत्संग रामकी कृपाके बिना प्राप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ साधुसंगति जो आनंद और मङ्गलकी मूल है; वही सब साधना, दान,तप,आदिका सिद्ध फल है । अथवा सत्संगति आनंदवृक्षकी मूल है; महात्माओंका सिद्धांत इसका फल, शम-दमादि साधना इसके फूल हैं वा संयम, नियम वैराग्य साधन फूल हैं । सिद्धि मोक्ष प्राप्तिका ज्ञान और भक्ति प्राप्तिके निमित्त प्रेम फल है । अथवा मुद मङ्गल मूल सत्संग रामकृपा है । यम, नियम, साधन मूल का सींचना है ब्रह्मज्ञान मुक्तिकी प्राप्तिका फूल है । सिद्धि भक्ति उसका फल है ॥ ८ ॥

शठ सुधरहिं सतसंगति पाई ❋ पारस परसि कुधातु सुहाई ॥९॥
विधिवश सुजन कुसंगति परहीं ❋ फणिमणिसमनिजगुणअनुसरहीं॥१०॥

शठ (समझानेसे जो समझ सकें वे) सत्संगति पाके सुधर जाते हैं, जैसे कि पारसको छूकर लोहा सोना हो जाता है लोहेमें द्रवताका गुण है, अग्निपर रखनेसे पिघल जाता है, परन्तु पत्थर नहीं पिघलता इसी कारण उसे पारसकी संगतिका फल नहीं प्राप्त होता है, ऐसे ही जड़ मूर्ख जानो, जो समझानेसे न समझे वह मूर्ख जैसा कहा जाता है–"मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहि विरंचि-सम" । अथवा पारसके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है पारस नहीं होता, परंतु सन्त तो अपने समान कर देते हैं ॥ ९ ॥ प्रारब्धवश अच्छे भी पुरुष कुसंगतिको प्राप्त होते हैं, जैसे सांपकी मणि सर्पके पास रह कर भी अपने विष हरनेके गुणको नहीं छोड़ती, वैसे ही पुरुष अपने गुणोंको नहीं छोड़ते, जैसे लंकामें विभीषण रावणके संग रहा पर अपने गुण न छोड़े ॥ १० ॥

विधि हरिहर कवि कोविद बानी ❋ कहत साधु महिमा सकुचानी ॥११॥
सो मोसन कहि जात न कैसे ❋ शाकवणिक मणिगणगुण जैसे॥१२॥

विधि (ब्रह्मा), हरि भगवान् (विष्णु), हर (शिवजी), कवि (कवीश्वर), कोविद (पंडित), इनकी वाणी अर्थात् सरस्वती (गीर्वाग्वाणी सरस्वतीत्यमरः) साधुओंकी महिमाको कहते सकुचाती है । वा इन देवताओंसहित सरस्वती भी महात्माओंकी महिमा कहते सकुचाती है ॥ ११ ॥ सो महिमा मुझसे कैसे नहीं कही जाती जैसे तरकारी (साग) का बेचनेवाला मणियोंके गुणोंको नहीं जानता, ऐसे मैं वर्णन नहीं कर सकता ॥ १२ ॥

दोहा–वन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोय ॥
अंजलिगतशुभ सुमनजिमि, सम सुगन्ध कर दोय ॥ ३ ॥

संत महात्माओंका समान चित्त है और हित अहित जिनके कोई नहीं है ऐसे साधुओंकी वन्दना करता हूँ,जैसे अञ्जलिमें पुष्प लेनेसे दोनों हाथोंमें पुष्प बराबर सुगन्ध करदेते हैं,वाम दक्षिणका विवेक नहीं करते । अथवा जिस हाथसे तोड़ा है उसपर क्रुद्ध हो सुगंध नहीं देते यह

नहीं, किन्तु देते ही हैं ऐसा ही स्वभाव संतोंका है ॥ चौ-"उमा सन्तकी यहै बड़ाई। मन्द करत जो करै भलाई" ॥ ३ ॥

दोहा-सन्त सरलचित जगतहित, जानि स्वभाव सनेहु ॥
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरण रति देहु ॥ ४ ॥

जगत्का भला करनेमें महात्माओंका सदा सरल चित्त रहता है, उनके स्वभाव और स्नेहको जानकर कहता हूँ कि, मुझ बालककी विनती सुनकर रामके चरणोंमें प्रीति दो, अथवा मेरे स्वभाव और स्नेहको जानकर हरिचरणोंमें ही प्रीति दो, सन्तोंकी बड़ाई कर खलोंका कर्त्तव्य व्याजस्तुतिसे दिखाते हैं ॥ ४ ॥

बहुरि बंदि खलगण सति भाये ❋ जो बिनु काज दाहिने बांये ॥१॥
परहित हानि लाभ जिन केरे ❋ उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥२॥

अब मैं दुष्ट गणकी बंदना सरल भावसे करता हूँ, जो विना प्रयोजन ही दाहिनेसे बांयें हो जाते हैं ॥ १ ॥ जो खल पुरुष हैं वे पराये हितकी हानिमें अपना लाभ समझते हैं उजड़नेसे प्रसन्न और बसनेसे दुःखी होते हैं ॥ २ ॥

हरि हर यश राकेश राहुसे ❋ पर अकाज भट सहस बाहुसे ॥३॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी ❋ परहित घृत जिनके मनमाखी ॥४॥

विष्णु भगवान और शिवका जो यश अर्थात् कथा है, वही चन्द्रमा है,उसे ग्रहण करनेको खल राहु के समान हैं। यदि कहीं कथा में दुष्टजन प्रवेश करें तो कुतर्क वाक्योंसे कथामें विघ्न डालते हैं, जितनी देर कथा बन्द रहे वही मानो ग्रहण है और पर-अकाज (दूसरेके काम) बिगाड़नेको सहस्रबाहु राजाके समान वा सहस्र भुजके समान बलयुक्त भट (योद्धा) हैं ॥ ३ ॥ जो पराये दोषको हजार नेत्रोंके समान वा साक्षी सहित देखते हैं, पराया हित जो घीके समान है उसे बिगाड़ने को उनका मन मक्खीके समान पड़ जाता है ॥ ४ ॥

तेज कृशानु रोष महिषेशा ❋ अघ अवगुण धनधनिक धनेशा॥५॥
उदयकेतु समहित सबहीके ❋ कुम्भकर्ण सम सोवत नीके ॥६॥

खलोंका तेज अग्नि, क्रोध महिषासुरके समान होता है, पाप और अवगुणरूपी धनके धनी कुबेरके समान हैं,अर्थात् जैसे कुबेरके पास धन है वैसे ही इनके पास पाप और अवगुण रहते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार केतुके समान तारा उदय होकर सबका अहित करता है उसी प्रकार यह भी उदय होकर अहित करते हैं। केतु के उदय होने से प्रजामें भय अनिष्ट होता है, इन दुष्टोंके आगमन से लोग भयभीत हो जाते हैं, इससे तो कहते हैं कि, ये कुम्भकर्ण के समान सोते रहें तो अच्छे हैं ॥ ६ ॥

पर-अकाज लगि तनु परिहरहीं ❋जिमिहिम उपल कृषीदल गरहीं॥७॥
वंदौ खल जस शेष सरोषा ❋ सहस वदन वरणै परदोषा॥८॥

पराया कार्य बिगाड़ने को अपना शरीर तक त्यागकर देते हैं, जैसे ओले आप तो गलते ही हैं पर खेतीका भी नाश कर ही देते हैं यही दशा खलोंकी है ॥ ७ ॥ खलोंको सरोष शेषजीके

समान वन्दना करता हूँ जो शूरतासे सहस्र मुँहसे पराया दोष वर्णन करते हैं । जैसे शेषजी सहस्रमुखोंसे रामनाम उच्चारण करते हैं वैसे ही खल सहस्र मुखके समान बुराई करते हैं ॥८॥

पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना ❋ पर अघ सुनै सहसदस काना ॥९॥
बहुरि शक्रसम विनवौं तेही ❋ संतत सुरानीक हित जेही ॥१०॥

इन खलोंकी राजा पृथुके समान वंदना करता हूं, क्योंकि ये दुष्ट पराया पाप दश हजार कानोंसे सुनते हैं राजा पृथुने यह वर मांगा था कि जहां कहीं भगवत्कथा हो वह हमको हजारों कानोंके बराबर सुननेमें आवे। दुष्ट जन बुराईमें अपने दोनों कान पृथुनृपके समान लगा देते हैं । ॥ ९ ॥ पुनः इन्द्रके समान दुष्टोंकी विनय करता हूँ जिस प्रकार इन्द्रको सुरानीक (देवसैन्य) सदैव प्यारी है इसी प्रकार इनको सुरा (मदिरा) नीक (नीकी) लगती है, वा जैसे इन्द्रको राज मद है वैसे इनको मदिराका मद प्यारा है वा विकारका मद प्यारा है ॥ १० ॥

वचन वज्र जेहि सदा पियारा ❋ सहसनयन परदोष निहारा ॥११॥

जिस प्रकार इन्द्रको वज्र प्रिय है ऐसे ही कठोर वचन प्यारे हैं, जैसे इन्द्र सहस्र नेत्रोंसे पराया मङ्गल निहारते हैं वैसे ही ये दोनों नेत्रोंसे पराया दोष देखते हैं ॥ ११ ॥

दोहा–उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खलरीति ॥
जानु पाणियुग जोरि जन, विनती करउँ सप्रीति ॥ ५ ॥

ये खल उदासीन रहते अर्थात् किसीके नहीं होते और अरि (शत्रुता) रखते हैं औरकी तो कौन कहे, अपने मित्रोंका भी हित सुनके जलते हैं यह खलोंकी रीति है। अथवा मध्यस्थ, शत्रु मित्र इन सबका हित सुनकर जलते हैं वा उदासीन जो शिव उनका शत्रु उसके हितकारी भगवान्का यश सुनते ही जलने लगते हैं । अथवा यह दुष्ट उदासीनोंके भी शत्रु होते हैं मैं इनको जानु (चरण पाणि) दोनों हाथ जोड़कर जन-मैं तुलसीदास सप्रेम विनती करता हूं। अथवा मैं उनको जानता हूं हाथ जोड़ता हूं यह व्यंग है जाननेके अर्थमें (जानु) पाठ है ॥ ५ ॥

मैं आपनि दिशि कीन्ह निहोरा ❋ तिन निज ओर न लाउब भोरा ॥१॥
वांयस पालिय अति अनुरागा ❋ होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥२॥

मैं अपनी ओरसे प्रार्थना करता हूं पर वे स्वभावसे न चूकेंगे वा अपनी ओरसे भोलापन न लावेंगे ॥ १ ॥ कौओंको कितने ही अनुरागसे क्यों न पालो पर वे क्या कभी मांस खाना छोड़ देंगे ? ॥ २ ॥

बंदौं संत असज्जन चरणा ❋ दुखप्रद उभय बीच कछु बरणा ॥३॥
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं ❋ मिलत एक दारुण दुख देहीं ॥४॥

अब संत और असंतोंको एक कोटिमें कर विभाग करते हैं कि संत (महात्मा) और असज्जन (दुष्ट) दोनोंके चरणोंकी वंदना करता हूं, दुःखदाता दोनों हैं, कुछ थोड़ासा अंतर है ॥३॥ साधु पुरुष जब मिलकर बिछुड़ने लगते हैं तब प्राण लेते हैं, अर्थात् महात्माओंका वियोग असह्य होता है । यथा चौ०-"कहु कपि केहि विधि राखौं प्राणा । तुमहू तात कहत हौ जाना ॥ तुमहि देख सीतल भइ छाती । पुनि मोकहँ सोइ दिन सोइ राती" और दुष्ट मिलते ही छापा मारते हैं, छल बल कर प्राण लेते हैं यथा–"दुष्ट संग जनि देइ विधाता" ॥ ४ ॥

१. किसी पुस्तकमें 'पायस' यह भी पाठ है–वहां खीर खिलाकर कितना ही पाला जाय इत्यादि अर्थ समझना चाहिये ।"

उपजहिं एक संग जग माहीं * जलजजोकजिमिगुणबिलगाहीं॥ ५॥
सुधासुरा सम साधु असाधू * जनक एक जग जलधि अगाधू ॥६॥

यद्यपि जगत्में कमल और जोंक एक ही संग उत्पन्न होते हैं, पर उनके गुणअलग-अलग होते हैं इसी प्रकार साधु असाधुओंके गुण पृथक्-पृथक् होते हैं ॥५॥ अमृतके और मदिराके समान साधु और असाधु हैं पिता दोनोंका एक ही है-अमृत और मदिराका अथाह समुद्र, साधु असाधुका अथाह जगत् है ॥ ६ ॥

भल अनभल निज निज करतूती * लहत सुयस अपलोक विभूती ॥७॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू * गरल अनलकलिमलसरिब्याधू ॥८॥
गुण अवगुण जानत सब कोई * जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥९॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करनीसे यश और अपयश दोनों लेते हैं, धन कोटिमें दोनों समान हैं॥ ७ ॥ साधुजन, अमृत, चन्द्रमा और गंगा समान हैं, जिनके गुण अमरता, शीतलता और पापरहित कर देना है और व्याध जो खल हैं वे विष, आग और कर्मनाशा नदीके समान हैं, जिनके गुण मरण, जलाना और कर्मोंका नाश करना है ॥ ८ ॥ अच्छे बुरोंके गुण अवगुणोंको सब कोई जानता है' पर जो जिसे भावे वही उसे अच्छा है क्योंकि देखा भी जाता है, असत्य बोलना बुरा है पर बोलते हैं; चोरी करनी बुरी जानते हैं पर करते हैं ॥९॥

दोहा--भलो भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच ॥
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥ ६ ॥

परन्तु जो भले पुरुष हैं वे भलाई करनेसे बड़ाई पाते हैं नीच निचाई करनेसे सराहे जाते हैं, सुधा सेवनसे अमरता, विष सेवनसे मृत्यु होती है, अपने-अपने गुणोंमें दोनों सराहे जाते हैं॥६॥

खल अघ अगुण साधुगुण गाहा * उभय अपार उदधि अवगाहा ॥१॥
तेहिते कछु गुण दोष बखाने * संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥२॥

फिर भी साधु महात्माओंका विभाग दिखलाते हैं कि खल जो दुष्ट हैं वे पाप और अवगुणको ग्रहण करते हैं, साधु गुणोंको ग्रहण करते हैं दोनों अपार गहरे समुद्र हैं॥ १ ॥ इसी कारण कुछ गुण और दोषोंका वर्णन किया है, पहिचाने बिना संग्रह और त्याग नहीं बनता ॥ २ ॥

भलेउ पोच सब विधि उपजाये * गनि गुण दोष वेद विलगाये ॥३॥
कहहिं वेद इतिहास पुराना * विधि प्रपंच गुण अवगुण साना ॥४॥

अच्छे बुरे सब विधाताने उपजाये हैं, गुण दोष कथन कर वेदने विभाग कर दिया है ॥ ३ ॥ यह बात वेद, इतिहास (महाभारत), पुराण (भागवतादिक) कहते हैं कि विधि (ब्रह्मा) का बनाया हुआ जो यह प्रपञ्च (संसार) है वह गुण अवगुणसे सना (मिला) हुआ है । विधाताका प्रपञ्च क्या है, उसे कहते हैं ॥ ४ ॥

दुख सुख पाप पुण्य दिन राती * साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥५॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू * अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥६॥

दुःख, सुख, पाप, पुण्य, दिन, रात, अच्छा, बुरा, सुजाति, कुजाति, ॥ ५ ॥ दानव, देव, ऊँच, नीच, जिलानेवाला अमृत, मारनेवाला विष है ॥ ६ ॥

माया ब्रह्म जीव जगदीशा * लक्ष अलक्ष रंक अवनीशा ॥७॥
काशी मग सुरसरि क्रमनाशा * मरु मालव महिदेव गवाशा ॥८॥
स्वर्ग नरक अनुराग विरागा * निगमागमगुण दोष विभागा ॥९॥

माया, ब्रह्म, जीव और जगदीश अर्थात् लोकपाल, लक्ष्मीवान्, विना लक्ष्मीका अर्थात् गरीब, दरिद्र, राजा ॥ ७ ॥ काशी, मगधदेश, गङ्गा, कर्मनाशा, मरुदेश, मालवादेश, ब्राह्मण, कसाई ॥ ८ ॥ स्वर्ग, नरक, अनुराग, प्रेम, वैराग्य इन सबको इकट्ठा कर रखा है अर्थात् भला बुरा एकत्र सब मिल रहे हैं परन्तु वेदशास्त्रने गुण दोष दिखाकर इनका विभाग कर दिया है, मायाके कार्य अवगुण, ईशके चैतन्य ॥ ९ ॥

दोहा–जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ॥
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥ ७ ॥

जड़ (जो चले नहीं), चेतन (जो चले) गुण दोषयुक्त ब्रह्माने जगत्की रचना की है, उन्हें अलग करनेको इसमें हंसरूप जो श्रेष्ठ महात्मा हैं वे गुणरूपी दूधको ग्रहण कर दोषरूपी जलका विकार त्याग कर देते हैं । मनुष्योंको योग्य है कि जिससे मिलें उसके गुण ग्रहण करें अवगुणको छोड़ दें ॥ ७ ॥

अस विवेक जब देइ विधाता * तब तजि दोष गुणहिं मनराता ॥१॥
काल स्वभाव कर्म वरिआई * भलेहु प्रकृतिवश चुकइ भलाई ॥२॥

जब विधाता ऐसा गुण और दोषका ग्रहण त्याग आदिका ज्ञान दें तो दोषोंको छोड़ गुणोंमें मन लगे ॥ १ ॥ समय, स्वभाव और कर्मकी प्रबलतासे मायाके वश होकर भले भी भलाई चूक जाते हैं ॥ २ ॥

सो सुधारि हरिजन इमि लेहीं * दलि दुख दोष विमल यश देहीं ॥३॥
खलहु करहिं भल पाय सुसंगू * मिटहि न मलिन स्वभाव अभंगू ॥४॥

सो हरिजन (भक्त) ऐसे सुधार लेते हैं कि दुःख और दोषोंको मिटाकर उज्ज्वल यश देते हैं या उन भलाईसे चूके हुओंको हरि (भगवान्) जन इमि (भक्तोंके समान) सुधार लेते हैं; दुःख और दोष दूर करते और उज्ज्वल यश देते हैं । जैसे–नारदजी मोहित हो ब्याह करने की इच्छा करने लगे तब नारायणने उनकी सहायता कर संकटसे बचाया; दोष दूर किये॥३॥दुष्ट भी अच्छी संगति पाकर भला करने लगते हैं परंतु उनका अभंग मलिन स्वभाव नहीं मिटता॥४॥

लखि सुवेष जग वंचक जेऊ * वेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥५॥
उघरहिं अन्त न होय निबाहू * कालनेमि जिमि रावण राहू ॥६॥

जो जगत्के ठगहैं वेभी अच्छा वेष दिखाकर वेषके प्रतापसे पूजे जाते हैं ॥५॥ परंतु सदा

१. कथा कालनेमिकी–कालनेमि राक्षस कपटसे वेष बना जंगलमें जा बैठा और जब महावीरजी संजीवनी बूटी लेने चले तो इसने कथाके मिषसे महावीरजीको रोका; पीछे मकरीसे उसका वृत्तान्त सुन महावीरजीने उसे मार अपना कार्य किया । २. कथा रावणकी-रावणने यतीका वेष बनाकर जानकीके पास आकर भीख मांगी परंतु पीछे बात खुल गयी । ३. कथा राहुकी–जब समुद्रमेंसे अमृत निकला तब मोहनीरूप भगवान् देवताओं व–

कपट नहीं ठहरता अन्तमें निर्वाह नहीं होता और खुल जाता है, जैसे—कालनेमि, रावण, राहु। दूसरा अर्थ जो अन्तमें न उघरे तो निर्वाह हो जाता है, जैसे कालनेमि, रावण, राहु जबतक प्रगट नहीं हुए तबतक निर्वाह हुआ ॥ ६ ॥

किये कुवेश साधु सनमानू * जिमि जग जामवन्त हनुमानू ॥७॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू * लोकहु वेद विदित सब काहू ॥८॥

और जो साधु महात्मा हैं वे चाहे कुवेषमें पड़े रहें परंतु साधुओंका सम्मान होता है, जैसे जगत्में जामवन्त और हनुमान् ॥ ७ ॥ कुसंगतिसे हानि और सुसंगतिसे लाभ है, यह वार्ता संसार और वेदमें प्रगट है, सब कोई जानते हैं ॥ ८ ॥

गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा * कीचहिं मिलइ नीच जलसंगा ॥९॥
साधु असाधु सदन शुक सारी * सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी ॥१०॥

पवनके प्रसंगसे रज आकाशमें जाती है, परन्तु वही नीचगामी जलका सङ्ग करनेसे कीचड़ हो जाती है ॥ ९ ॥ साधुओंके घरमें तोता मैना राम- राम कहते और असाधुओंके घरके तोता-मैना गिन-गिनके गाली बकते हैं ॥ १० ॥

धूम कुसंगति कारिख होई * लिखिय पुराण मंजु मसि सोई ॥११॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता * होय जलद जग जीवनदाता ॥१२॥

जो धूम कुसंगतिसे काला कहलाता है वही विद्यार्थियोंके संगसे उज्ज्वल स्याही बन पुराण लिखनेके कार्यमें आता है ॥ ११ ॥ वही धुआं जल अग्नि पवनके सङ्गसे संसारको जिलाने वाला बादल हो जाता है ॥ १२ ॥

दोहा—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाय कुयोग सुयोग ॥
होय कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग ॥ ८ ॥

ग्रह—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु, केतु, भेषज (औषधी), जल, वायु पट (वस्त्र) ये अच्छे और बुरेके योग पाकर संसारमें अच्छे बुरे फलदाता हो जाते हैं जिसे, सुलक्षण (चतुर लोग) देखते हैं। सूर्यादि तीसरे स्थानके योगसे शुभ, अष्टम चतुर्थादि स्थानमें अनिष्ट हो जाते हैं दवाईसे रोगी अच्छा हो गया तो अमृत कहलाती है, मरण हो गया तो विष कहलायी। जल यदि गङ्गामें डालो तो सब गङ्गाजल है जो नालीमें डालो तो त्याज्य हो जाता है। पवन सुगंधसनी हो तो सब प्रसन्न होते हैं और दुर्गन्ध पवनके निकट नहीं ठहरते। वस्त्र यदि भगवान्की मूर्तिका प्रसाद हो तो सब धारण करेंगे, मृतकके ऊपर दुशाला डालनेसे वह किसी अर्थका नहीं रहता, इत्यादि योगसे कुवस्तु हो जाती है ॥ ८ ॥

दोहा—सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ॥
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह ॥ ९ ॥

दैत्योंके क्लेश मिटाने को स्वयं अमृत बांटने लगे। जब देवताओं को अमृत बँट रहा था, तब सूर्य चन्द्रमाके बीचमें राहु छलकर सुन्दर वेष बना आ बैठा, पीछे चन्द्रमा व सूर्यने लक्षणोंसे उसको राक्षस जान विष्णु भगवानसे कहा, उन्होंने सुदर्शन चक्र मार उसका शिर अलग कर दिया, परंतु वह अमृत पीने के कारण नहीं मरा और शिरका नाम राहु, धड़का केतु हुआ, तब भगवान्ने नवग्रहमें मिला दिया। (भागवते)

कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष इन दोनों पखवारोंमें उजाला बराबर है, पर विधाताने नाम भेद कर दिया है, एक शशिपोषक (चन्द्रमाका बढ़ानेवाला) है इससे शुक्लपक्ष है और दूसरा शशि-शोषक (चन्द्रमाका सोखनेवाला) है इससे कृष्णपक्ष है इस प्रकार जगत्‌ने यश और अप-यश दिया है ॥ ९ ॥

दोहा–जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि ॥
वंदौं सबके पद कमल, सदा जोरि युग पानि ॥ १० ॥

जगत्‌में जितने जड़ चेतन जीव हैं वे सब राममय हैं अर्थात् रामसे उत्पन्न हैं, इसी कारण मैं सदा सबके चरणकमलोंको हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥

दोहा–देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व ॥
वंदौं किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व ॥ ११ ॥

देवता, दनुज, (दैत्य), मनुष्य, नाग (सर्प), प्रेत, पितर, गन्धर्व (गानेवाले देवता), किन्नर रजनीचर इत्यादिकी मैं वंदना करता हूँ, अब आप सब कोई मेरे ऊपर कृपा करो॥ ११॥

आकर चारि लाख चौरासी * जातिजीव नभ जल थल वासी ॥१॥
सीयराममय सब जग जानी * करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥२॥

आकर अर्थात् खानि चार हैं और चौरासी लाख उनके भेद हैं । यह जीव कर्मानुसार आकाश, जल, थलमें, वास करने जाता है चार खानि-स्वेदज जो देहके साथ पसीनेसे उत्पन्न होते हैं जैसे जूं आदि; अण्डज जो अण्डेसे होते हैं जैसे पक्षी सांप आदि; पिण्डज जो देहके साथ उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य, पशु आदि; उद्‌भिज जो पृथ्वीको फोड़कर ऊपर निकलते हैं जैसे वृक्ष आदि । उनमें प्रत्येक न्यूनाधिक भेदवाले हैं एवं चार प्रकारके मिलकर ८४०००००से चौरासीलाख हैं॥ १॥सब जगत्‌को सीताराममय जानकर (अर्थात् सब जगत् में राम रमे हैं, रामका रूप जगत् है) प्रेमपूर्वक अच्छी वाणीसे प्रणाम करताहूँ ॥ २ ॥

जानि कृपा कर किंकर मोहू * सब मिलि करहु छांड़ि छलछोहू ॥३॥
निज बुद्धिबल भरोस मोहिं नाहीं * ताते विनय करहुँ सब पाहीं ॥४॥

मुझको अपना दास जानकर सब मिलकर छल छोड़कर कृपा करो अथवा मुझको अपनी कृपाका किंकर जान दया करो ॥ ३ ॥ अपनी बल बुद्धिका मुझको भरोसा नहीं है इसलिए सबसे बिनती करता हूँ ॥ ४ ॥

करन चहौं रघुपति गुणगाहा * लघुमति मोरि चरित अवगाहा ॥५॥
सूझ न एकौ अंग उपाऊ * मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥६॥

श्रीरामचन्द्रके गुणोंकी कथा बनाना चाहता हूँ, परन्तु मति मेरी थोड़ी और चरित्र बड़ा

---

१. गन्धर्व जाति ब्रह्माकी कांतिसे उत्पन्न हुई है, वे गुह्यकलोक और विद्याधर लोकके मध्यमें रहते हैं । इनके ग्यारहगण हैं–अभ्राज, अंगारि रंगभारि, सूर्यवर्चा, कृधू, हस्त, समस्त, मूर्यवान, महामना, विश्वावसु, कृशानु । (विष्णुपुराणे)

२. किन्नर जाति की तुरंगमुखी गीत प्रिय होती है ?

३. चौ०—बीस लाख स्थावर सब जानो । नोई लाख सब जलचर मानो ।। ग्यारह लक्ष कूर्मके गाये । पक्षीगण दश लाख बताये । तीन लक्ष पशु जानहु राई । चार लक्ष वानर समुदाई । जब यह चौरासी घट जावे । तब मनुष्यके तन कहँ पावे ।।

गहरा है ॥ ५ ॥ कविताका एक भी अंग और उपाय नहीं सूझता । मन बुद्धि तो रंक (कंगाल) है; मनोरथ (मनकी इच्छा) राजा है ॥ ६ ॥

मति अतिनीच ऊँच रुचि आछी * चहिय अमिय जगजुरै न छाछी ॥७॥
क्षमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई * सुनिहहिं बाल बचन मनलाई ॥८॥

बुद्धि तो बहुत नीच है रुचि (प्रीति ऊँची और अच्छी है, इस रामचन्द्रके चरित्र रचनेको अमृत चाहिये और जगत्में छाछ (मट्टा) भी नहीं मिलता ॥ ७ ॥ यह जो भाषामें श्रीरामचन्द्रका चरित्र बनाता हूँ इस मेरी ढिठाईको सज्जन क्षमा करेंगे और बालवचनकी नांई मन लगाकर मेरे वचनको सुनेंगे ॥ ८

ज्यों बालक कह तोतरि बाता * सुनहिं मुदितमन पितु अरु माता ॥९॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी * जे परदूषण भूषणधारी ॥१०॥

जैसे बालक तोतरी बात करते हैं और माता-पिता वे बातें मनमें प्रसन्न होकर सुनते हैं, ऐसे ही मेरी कविताको बालकके वचनके समान प्रीतिसे सुनेंगे ॥ ९ ॥ परंतु कूर (खोटे), कुटिल (टेढ़े), कुविचारी (बुरे विचार वाले) पुरुष तो हँसेंगे ही; क्योंकि वे तो पराये दोषके ही भूषण (गहने) धारण करते हैं अर्थात् बुराई करते हैं ॥ १० ॥

निज कवित्त केहि लाग न नीका * सरस होउ अथवा अतिफीका ॥११॥
जे पर भणित सुनत हरषाहीं * ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥१२॥

अपनी बनाई कविता किसको अच्छी नहीं लगती अर्थात् सबहीको अच्छी लगती है, चाहे वह रसीली हो या फीकी हो ॥ ११ ॥ जो दूसरोंकी बनाई हुई कविताको सुनकर प्रसन्न होते हैं, वे अच्छे पुरुष जगत्में बहुत नहीं हैं थोड़े हैं ॥ १२ ॥

जग बहु नर सरि सर सम भाई * जे निज बाढ़ बढ़हिं जलपाई ॥१३॥
सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई * देखि पूरविधु बाढ़हिं जोई ॥१४॥

जगत्में बहुतसे मनुष्य नदी और तालाबके समान हैं जो मेघका जल पाकर अपनी मर्यादा से बढ़ते हैं॥१३॥पुण्यात्मा और अच्छे पुरुष समुद्रके समान कोई-कोई होते हैं जो दूसरेको बढ़ा देखते हैं तो आप भी बढ़ते हैं । जैसे समुद्र पूर्ण चन्द्रमाको देखकर बढ़ता है ॥ १४ ॥

दोहा—भाग्य छोट अभिलाष बड़, करहुँ एक विश्वास ॥
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास ॥ १२ ॥

मेरा भाग्य तो छोटा है, परन्तु अभिलाषा रामचन्द्रके चरित्र बनानेकी बड़ी है परन्तु एक मुझे विश्वास अर्थात् भरोसा है कि, इसको सुनकर श्रेष्ठ महात्मा सुख पावेंगे और खल (दुष्टजन) हँसी करेंगे ॥ १२ ॥

खल परिहास होय हित मोरा * काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥१॥
हँसहिं बक दादुर चातकही * हँसहिं मलिनखल बिमलबतकही ॥२॥

दुष्ट पुरुषोंके हँसनेसे भी मेरा हित होगा; कारण कि उनके मुखसे रामका नाम नहीं निकलता परंतु इसे देखकर रामका नाम लेंगे यही हित है;जैसे कि काक कहते हैं कि कोकिलाका कंठ कठोर होता है ॥ १ ॥ हंसके ऊपर जैसे बगला, पपीहे पर मेढक जैसे हँसता है वैसे ही मलिन खल (बुद्धिरहित दुष्ट) पुरुष अच्छी उज्ज्वल बात कहनेवाले पर हँसते हैं ॥ २ ॥

कवित रसिक न रामपद नेहू ❋ तिन्हको सुखद हासरस येहू ॥३॥
भाषा भणित मोरि मति थोरी ❋ हँसबे योग हँसे नहिं खोरी ॥४॥

जो कविताके रसिक हैं और उनका रामके चरणोंमें प्रेम नहीं है वे इस कविताको देखकर हँसेंगे तो भी उनको यह मेरा काव्य हास्यरस संयुक्त होकर सुख देगा ॥ ३ ॥ एक तो यह भाषाकी कविता फिर मति थोड़ी (कुछ बहुत नहीं) है इससे हँसनेही योग्य है, हँसने में कुछ बुराई नहीं है ॥ ४ ॥

प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी ❋ तिनहिं कथासुनि लागहि फीकी॥५॥
हरिहरपदरति मति न कुतरकी ❋ तिनकहँ मधुर कथा रघुवरकी ॥६॥

जिनका ईश्वरके चरणोंमें प्रेम नहींहै और जिनकी समझ ठीक नहीं है उनको यह कथा फीकी लगेगी॥५॥विष्णु भगवान् और शिवजीके चरणोंमें जिनकी प्रीति है और बुद्धिमें किसी प्रकारकी कुतर्कना(द्रोह)नहीं है और उनको रामचन्द्रजीकी कथा बहुत मधुर अर्थात् मीठी है ॥ ६ ॥

रामभक्ति भूषित जियजानी ❋ सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥७॥
कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना ❋ सकल कला सब विद्या हीना ॥८॥

यह मेरी रचना महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिसे युक्त है, ऐसा मनमें विचार कर महात्मा अच्छी वाणीसे इसकी सराहना करते हुए सुनेंगे ॥ ७ ॥ मैं कुछ कवि नहीं हूँ चतुर नहीं हूँ सम्पूर्ण कला और विद्याओंसे रहित हूँ ॥ ८ ॥

आखर अर्थ अलंकृत नाना ❋ छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥९॥

अक्षरोंके अनेक प्रकार अर्थ और विविध प्रकारके अलंकार, छन्द और प्रबन्धके अनेक विधान, अलंकारोंमें पूर्णोपमालंकार, लुप्तोपमालंकारादि अनेक भेद हैं, जैसे'हरिपदकोमलकमलसे' यह पूर्णोपमालंकारादि है ऐसे ही और भी जानो । छन्दोंमें प्रथम ही आठ गण हैं, दो प्रस्तार एक मात्राप्रस्तार, एक वर्णप्रस्तार, इत्यादिक, केवल मात्राप्रस्तार में छन्दोंकी जाति ब्यानवे लाख सत्ताइस हजार चारसौ बासठ हैं। वर्णप्रस्तारमें इनसे अधिक है; यथा दोहा—"दुइ कलते बत्तीस लग, छन्द ब्यानवे लाख । सहस सत्ताइस चारसौ, बासठ पिंगल भाख ।" और बहुत अर्थको थोड़े अक्षरोंमें करे उसे प्रबंध कहते हैं । अथवा बहुत छन्दोंको एक जगह करना ॥ ९ ॥

गण	देवता	फल	ऽऽऽ
मगण	मही	लक्ष्मी	गैवरु
नगण	स्वर्ग	बुद्धि	।।।
भगण	शशि	यश	ऽ।।
यगण	जल	आयु	।ऽऽ
जगण	रवि	रुज	।ऽ।
रगण	अग्नि	दाह	ऽ।ऽ
सगण	वायु	विदेश	।।ऽ
तगण	नभ	शून्य	ऽऽ।

भावभेद रसभेद अपारा ❋ कवित दोषगुण विविध प्रकारा ॥१०॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे ❋ सत्य कहौं लिख कागद कोरे॥११॥

---

१. गीतादि ६४ कला हैं। २–१४ विद्या ब्रह्मज्ञान १ रसायन २ सप्तस्वर जानना ३ वेद पढ़ना ४ ज्योतिष ५ व्याकरण ६ धनुषविद्या ७ जलतरण ८ वैद्यक ९ कृषी १० कोक ११ घुड़सवारी वाहन १२ नटनृत्य १३ चातुरी संबोधन १४। यथा श्लोक :– 'ब्रह्मज्ञानरसायने स्वरगतिर्वेदास्तथा ज्योतिषं ह्येवं व्याकरणं धनुर्धरजलतरणं वैद्यकं च कृष्यापरम् । कोको वाहनवाजिनृत्यनटनं, सम्बोधनं चातुरी विद्यानाम चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।

भाव (स्थायी, संचारी आदि), रस शृंगारादिकोंका भेद अपार है और कविताके दोष-गुण अनेक प्रकारके होते हैं ॥ १० ॥ मुझमें कविताका ज्ञान एक भी नहीं है । केवल 'राम-कथा पर रुचि मनमाहीं' यह वार्त्ता सत्य ही कोरे कागजपर लिखकर कहता हूँ ॥ ११ ॥

दोहा–भणित मोरि सब गुण रहित, विश्व विदित गुण एक ॥
सो विचारि सुनिहैं सुमति, जिनके विमल विवेक ॥ १३ ॥

मेरी कवितामें कोई गुण नहीं है केवल एक गुण है जिसको संसार जानता है, वही विचार कर बुद्धिमान् इस कथाको सुनेंगे जिनके उज्ज्वल ज्ञान हैं । वही गुण अगली चौपाईमें कहते हैं ॥ १३ ॥

इहि महँ रघुपति नाम उदारा ❋ अतिपावन पुरान श्रुति सारा ॥१॥
मंगल भवन अमंगल हारी ❋ उमा सहित जेहि जपु त्रिपुरारी ॥२॥

इस ग्रन्थमें श्रीरामचन्द्रजीका उदार नाम वर्णन किया है, जो अति पवित्र पुराण और वेदोंका सार है ॥ १ ॥ कैसा वह नाम है कि मंगलका स्थान अमंगल जो दुःख उसको हरनेवाला है जिसको पार्वती सहित शिवजी जपते हैं ॥ २ ॥

भणित विचित्र सुकविकृत जोऊ ❋ राम नाम विनु सोह न सोऊ ॥३॥
विधुवदनी सब भाँति सँवारी ❋ सोह न वसन बिना वर नारी ॥४॥

कविता अति सुन्दर अच्छे कविकी बनाई हुई हो यदि उसमें रामका नाम न हो तो वह शोभा नहीं पाती, जैसे कि ॥ ३ ॥ चन्द्रमाकेसे मुखवाली सब प्रकारके गहने पहने हुए सुन्दर स्त्री वस्त्रोंके बिना शोभा नहीं पाती ॥ ४ ॥

सब गुण रहित कुकविकृत बानी ❋ राम नाम यश अंकित जानी ॥५॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही ❋ मधुकर सरिस संत गुणग्राही ॥६॥

कोई गुण न हो, बुरे कविकी बनायी हो यदि उसमें राम नामका यश वर्णन किया गया हो तो यह जानकर ॥ ५ ॥ पंडित लोग उसको आदरसे कहते और सुनते हैं क्योंकि संत तो भौंरोंकी तरह गुणग्राही अर्थात् राम नामसे प्रयोजन रखते हैं ॥ ६ ॥

यदपि कवित रस एकहु नाहीं ❋ राम प्रताप प्रगट यहि माहीं ॥७॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा ❋ को न सुसंग बड़प्पन पावा ॥८॥

यद्यपि इस ग्रंथमें कविताका रस एक भी नहीं है परन्तु रामका प्रताप तो प्रकट है ॥७॥ वही भरोसा मेरे मनमें आया है कि सत्संग करनेसे किसने बड़प्पन नहीं पाया है अर्थात् सबने पाया है ॥ ८ ॥

धूमौ तजै सहस करुआई ❋ अगर-प्रसंग सुगंध बसाई ॥९॥
भणित भदेश वस्तु भलि बरणी ❋ रामकथा जग मंगल करणी ॥१०॥

---

१. स्तम्भ, पसीना, आना, रोयें, खड़े हो जाना, स्वरभङ्ग होना, कांपना, विवर्ण आंसू निकलना, प्रलाप करना ये आठ भाव हैं । २ शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक बीभत्स, अद्‌भुत, और शांत ये नव रस हैं ।

धुएँको यदि अगरके वा किसी और सुगंधके साथमें करो वह सहजमें ही कडुवापन छोड़ देता है ॥ ९ ॥ कविता तो भद्दी है पर रामचन्द्रजीकी कथा जगत्की मङ्गल करनेवाली उत्तम वस्तु वर्णन की है ॥ १० ॥

हरिगी० छन्द–मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथकी।
गति क्रूर कविता सरिसकी ज्यों परम पावन पाथकी ॥
प्रभु सुयशसंगति भणित भलि होइहि सुजनमन भावनी।
भव अंग भूत मशानकी सुमिरत सुहावनि पावनी ॥ १ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मङ्गलकी करनेवाली, कलियुगके पापोंको हरनेवाली (पाप विशेष कलियुगमें ही होते हैं) रामकी कथा है। कवितारूपी नदीकी गति टेढ़ी है किंतु परम पावन गंगाकी तरह है अर्थात् यह कथा टेढ़ी चली है अयोध्यासे जनकपुर फिर अयोध्या फिर चित्रकूट फिर काश्मीर फिर अयोध्यासे चित्रकूट भरतका जाकर अयोध्याको लौटना फिर रामचन्द्रजीका लंकासे लौटना इसी प्रकार गंगाजी टेढ़ी बही हैं; पर जल उज्ज्वल है रामके सुयशके संग यह कथा सत्पुरुषोंको मनभावनी होगी जिस प्रकार शिवजीके अंगमें लगी हुई मशानकी धूल स्मरण करने योग्य पवित्र होती है ॥ १ ॥

दोहा–प्रिय लागहि अति सबहि मम, भणित रामयश संग ॥
दारु विचारु कि करहि कोउ, वंदिय मलय प्रसंग ॥ १४ ॥

रामके यशके साथ मेरी कविता सबको प्यारी लगेगी, चन्दनके संगमें वंदना करनेसे लकड़ीका विचार नहीं होता। जब चन्दनकी वायु और वृक्षोंमें लगती है तब वे सुगंध पाकर चन्दन हो जातेहैं, उन्हें, लकड़ी कोई नहीं कहता, चन्दन कहकर आदर करते हैं * ॥१४॥

दोहा–श्याम सुरभि पय विशद अति, गुणद करहिं सब पान ॥
गिराग्राम सिय राम यश, गावहिं सुनहिं सुजान ॥ १५ ॥

काली गौका जो दूध होता है वह अत्यंत उज्ज्वल और गुणदायक होता है, उसे सब कोई पान करते हैं, ग्रामीण बोलीमें श्रीरामका यश गाया जाता है इसे सुजान लोग गायेंगे सुनेंगे, क्योंकि दूधसे मतलब है चाहे काली गौ हो वा गोरी ॥ १५ ॥

मणि माणिक मुक्ता छबि जैसी * अहि गिरिगज शिर सोह न तैसी ॥१॥
नृप किरीट तरुणी तनु पाई * लहहिं सकल शोभा अधिकाई ॥२॥

मणि; माणिक और मोतियोंकी जैसी छबि है वह सर्प, पर्वत और हाथी के सिरमें वैसी शोभित नहीं होती। मणि सर्पके शिरमें माणिक पर्वतमें, मुक्ता हाथीके शिरमें होता है ॥१॥ राजाओंके मुकुट और स्त्रीके शरीरमें वे सब माणिक और मोती अधिक शोभा पाते हैं॥२॥

* "किंतेनहेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यमाश्रिताश्चतरवस्तरवस्त एव ॥ मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोलनिम्बकुटजाः अपि चन्दनाः स्युः ॥" अर्थ-उस सोने और चांदीके पर्वतसे हमें क्या है जिसके आश्रित वृक्ष सदा जैसे तैसे बने रहते हैं हम तो मलयाचलको ही श्रेष्ठ मानते हैं जिसके आश्रयसे कंकोल, नीम और कुटजादि सब चन्दन हो जाते हैं।

तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं * उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं ॥३॥
भक्ति हेतु विधि-भवन विहाई * सुमिरत शारद आवत धाई ॥४॥

इसी प्रकार पंडितजन सुकविकी कविताको कहते हैं कि और जगह उपजती और अन्य जगहमें शोभित होती है ॥ ३ ॥ भक्तिके कारण ब्रह्माके घरको छोड़कर स्मरण करते ही सरस्वती आती है ॥ ४ ॥

रामचरित सर बिनु अन्हवाये * सो श्रमजाय न कोटि उपाये ॥५॥
कवि कोविद अस हृदय विचारी * गावहिं हरियश कलिमलहारी ॥६॥

रामचन्द्रके चरित्ररूपी सरोवरमें स्नान कराये विना सरस्वतीके आनेका वह श्रम नहीं जाता चाहे करोड़ उपाय करो ॥ ५ ॥ कवि और पंडित ऐसा हृदयमें विचारकर पाप दूर करनेवाले नारायणके यशको गाते हैं ॥ ६ ॥

कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना * शिरधुनिगिरालगति पछिताना ॥७॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना * स्वाती शारद कहहिं सुजाना ॥८॥
जौ बरषे वर वारि विचारू * होहिं कवित मुक्तामणि चारू ॥९॥

प्राकृत (साधारण) जनोंके गुण गानेसे सरस्वती शिर धुनकर पछताने लगती है ॥ ७ ॥ हृदय तो समुद्र; मति (बुद्धि) सीपीके समान है और सरस्वती स्वाति जल है ऐसा सुजान कहते हैं ॥ ८ ॥ जो अच्छे विचाररूपी जल बरसे तो मुक्ता मणिरूपी मनोहर कवित्त उपजें ॥ ९ ॥

दोहा-युक्ति बेधि पुनि पोहिये, राम चरित वर ताग ॥
पहिरहिं सज्जन विमल उर, शोभा अति अनुराग ॥ १६ ॥

उन कवित्तरूपी मोतियोंमें युक्तिसे छेदकर रामके चरित्ररूपी तागेमें गूँथिये और उस राम चरित्र मालाको निर्मल हृदयमें सज्जन पहनते हैं जो अत्यन्त अनुराग है वही शोभा है॥१६॥

जे जनमे कलिकाल कराला * करतब वायस वेष मराला ॥१॥
चलत कुपंथ वेद मग छांड़े * कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥२॥

जो इस कलियुगमें जन्म लेते हैं उनका काम तो कौओंकासा और वेष हंसोंकासा होता है ॥ १ ॥ वेदका मार्ग छोड़कर कुपंथमें चलते हैं, कपटका शरीर कलियुगके पापके बर्तन होते हैं ॥ २ ॥

वंचक भक्त कहाय रामके * किंकर कंचन कोह कामके ॥३॥
तिनमें प्रथम रेख जग मोरी * धिक धर्मध्वज धंधक धोरी ॥४॥

ठग रामके भक्त कहलाते हैं जो कि कञ्चन (सोना) क्रोध और कामके किंकर (दास) हैं ॥ ३ ॥ उनमें जगत्‌के बीच मैं भी हूं, धिक और धर्मध्वजी पुरुषोंमें मैं वीर, अर्थात् उनसे अधिक हूँ, धर्मकी ध्वजा दिखाकर ठगनेवालेको धर्मध्वजी कहते हैं अथवा धर्मकी ध्वजा उठाये और उसके धंधेमें फँसा रहे उसे धिक्कार है ॥ ४ ॥

जो अपने अवगुण सब कहहूँ * बाढ़ै कथा पार नहिं लहहूँ ॥५॥
ताते मैं अति अल्प बखाने * थोरे महँ जानिहहिं सयाने ॥६॥

मैं जो अपने सब अवगुण कहूँ तो कथा बढ़ जायगी और पार नहीं मिलेगा ॥ ५ ॥ इस कारण मैंने अति थोड़ेमें बखान किये हैं चतुर पुरुष थोड़ेमें ही जान लेंगे ॥ ६ ॥

समुझि विविधविधि विनती मोरी * कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ॥७॥
एतेहु पर करिहहिं जे शंका * मोहिंते अधिकते जड़मति रंका ॥८॥

अनेक प्रकारसे मेरी विनयको विचार कोई कथा सुनकर मुझे दोष मत दे ॥७॥ इतने पर भी जो संदेह करेंगे वे मुझसे भी मतिहीन हैं,इस कारण मेरे ग्रंथमें शंका करना योग्य नहीं ॥८॥

कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ * मति-अनुरूप राम गुण गाऊँ ॥९॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा * कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥१०॥

मैं कवि नहीं हूँ और चतुर भी नहीं हूँ, यथामति रामका गुण गाता हूँ ॥ ९ ॥ कहां तो रामचन्द्रके अपार चरित्र और कहां संसारमें फँसी हुई मेरी मति ॥ १० ॥

जेहि मारुत गिरिमेरु उड़ाहीं * कहौ तूल केहि लेखे माहीं ॥११॥
समुझत अमित राम-प्रभुताई * करत कथामन अति कदराई ॥१२॥

जिस पवनसे सुमेरु पर्वत उड़ जाते हैं वहां फिर रूई किस गिनतीमें है अर्थात् जिस विषयमें मुनिगणोंकी बुद्धि थकित हो जाती है छोटोंकी क्या गिनती है ? ॥ ११ ॥ रामचन्द्रकी अपार प्रभुता समझ कर कथा करते मन डरता है ॥ १२ ॥

दोहा--शारद शेष महेश विधि, आगम निगम पुरान ॥
नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान ॥ १७ ॥

सरस्वती, शेष, महेश, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण "नेति नेति"–इस प्रकारका नहीं, इस प्रकारका नहीं, ऐसा कहकह जिसका गुण गाते हैं ॥ १७ ॥

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई * तदपि कहे बिन रहा न कोई ॥१॥
इहाँ वेद अस कारण राखा * भजन प्रभाव भांति बहु भाखा ॥२॥

इस प्रभुकी बड़ाईको सब जानते हैं कि, हम उनको यथार्थ नहीं जानते तो भी कहे विना कोई नहीं रहा, यथाशक्ति सबने कहा है ॥ १ ॥ यहां वेदने ऐसा कारण रखा है कि, भजनका प्रभाव बहुत प्रकारसे कहा है ॥ २ ॥

एक अनीह अरूप अनामा * अज सच्चिदानन्द परधामा ॥३॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना * तेहि धरिदेह चरितकृत नाना ॥४॥

वह अनीह (इच्छारहित), अरूप (रूपरहित),अनामा (नामरहित) ईश्वर एक है, माया रहित सत् चित् आनन्द स्वरूप है, जिसका सबसे परे धाम है अर्थात् इन्द्रियोंसे परे है ॥३॥

जो सबमें व्यापक विश्वरूप ऐश्वर्ययुक्त है वही निज इच्छा से देह धारण करके अनेक चरित्र करता है। एकं रूपं बहुधा यः करोति। छान्दोग्योपनिषद् ॥ ४ ॥

सो केवल भक्तन हित लागी ❋ परमकृपालु प्रणत अनुरागी ॥५॥
जेहि जनपर ममता अरु छोहू ❋ तेहि करुणाकर कीन्ह न कोहू ॥६॥

वह ईश्वर केवल भक्तोंके लिये परमदयालु दीनोंके ऊपर प्रेम करनेवाला है ॥ ५ ॥ जिसकी भक्तोंके ऊपर ममता और मोह रहता है उस करुणानिधिने क्रोध नहीं किया ॥ ६ ॥

गई बहोरि गरीब-निवाजू ❋ सरल सबल साहिब रघुराजू ॥७॥
बुध वर्णहिं हरियश अस जानी ❋ करहिं पुनीत सुफल निजबानी ॥८॥

गयीको बहोरनेवाले अर्थात् फेर लाने वाले दीनोंके दयालु हैं,सुग्रीवका गया राज्य फिरवा दिया, सरल (सीधे) बलवान् साहब रघुराज हैं ॥ ७ ॥ पंडितलोग ऐसा जानकर नारायणका यश वर्णन करके अपनी वाणी पवित्र तथा सफल करते हैं ॥ ८ ॥

तेहि बल मैं रघुपति गुण गाथा ❋ कहिहौं नाय रामपद माथा ॥९॥
मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई ❋ तेहिमगुचलतसुगम मोहिभाई॥१०॥

उसी बलसे मैं भी रामचन्द्रजीके चरणोंमें माथा नवाके रामजीके गुणोंकी कथा कहूँगा ॥ ९ ॥ वाल्मीकि आदि मुनियोंने पहले रामचन्द्रजीकी कीर्ति गाई, उसी मार्गमें चलनेसे मुझे सुगमता होगी, क्योंकि मार्ग तो बनाही गये हैं ॥ १० ॥

दोहा-अति अपार जे सरितवर, जौ नृप सेतु कराहिं ॥
चढि पिपीलिका परमलघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥ १८ ॥

अति अपार जो बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, उनमें राजा पुल बँधवा देते हैं तो छोटी छोटी चींटियाँ भी विना परिश्रम पार उतर जाती हैं, इसी प्रकार पूर्व कवियोंके कथन पर मैं विना परिश्रम चल सकूँगा ॥ १८ ॥

यहि प्रकार बल मनहि दृढ़ाई ❋ कहिहौं रघुपति कथा सुनाई ॥१॥
व्यास आदि कविपुंगव नाना ❋ जिन सादर हरि चरित बखाना ॥२॥

इस प्रकार बलसे मनको दृढ़ करके रामचन्द्रजीकी शोभायमान कथा कहूँगा ॥ १ ॥ व्यास वाल्मीकि आदि जो बड़े-बड़े कवीश्वर हैं, जिन्होंने आदर पूर्वक भगवान्‌का चरित्र वर्णन किया है ॥ २ ॥

चरण-कमल वन्दौं तिन केरे ❋ पुरवहु सकल मनोरथ मेरे ॥३॥
कलिके कविन करौं परणामा ❋ जिन वरणे रघुपतिगुणग्रामा ॥४॥

उनके चरण कमलोंको नमस्कार करता हूँ, मेरे सब मनोरथोंको पूरा करें ॥ ३ ॥ कलियुगके भी उन कवियोंको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने रामचन्द्रजीके अनेक गुण वर्णन किये हैं ॥ ४ ॥

जे प्राकृत कवि परमसयाने ❋ भाषा जिन हरिचरित बखाने ॥५॥
भये जे अहहिं जे हैहैं आगे ❋ प्रणवौं सबहिं कपट छल त्यागे ॥६॥

जो प्राकृत साधारण कवीश्वर परम चतुर हैं जिन्होंने भाषामें भगवान्‌के चरित्र वर्णन किये हैं॥५॥जो हुए हैं,और जो आगे होंगे,उन सबको मैं कपट छल छोड़कर नमस्कार करता हूँ॥६॥

होउ प्रसन्न देउ बरदानू * साधु समाज भणित सन्मानू ॥७॥
जो प्रबन्ध नहिं बुध आदरहीं * सो श्रम वादि बालकवि करहीं ॥८॥

प्रसन्न होकर यह वरदान दो कि, सज्जनोंके समाजमें मेरी कविताका सम्मान अर्थात् आदर हो क्योंकि ॥ ७ ॥ जिस कविताका पंडित जन आदर नहीं करते वह श्रम वृथा बालकवि (मूर्ख कवि) करते हैं ॥ ८ ॥

कीरति भणिति भूति भल सोई * सुरसरि सम सबकर हित होई ॥९॥
राम सुकीरति भणिति भदेशा * असमंजस अस मोहिं अंदेशा ॥१०॥

कीर्ति अर्थात् बड़ाई, कविता और ऐश्वर्य वही अच्छा है जो गङ्गाजीके समान सबका हित करने वाला हो ॥९॥ रामचन्द्रजीकी तो श्रेठ कीर्ति है और मेरी कथन भद्दी है इससे मुझे अंदेशा होता है और असमंजस अर्थात् दुविधा है कि कहूँ या न कहूँ ॥ १० ॥

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे * सिअनिसुहावनि टाट पटोरे ॥११॥
करहु अनुग्रह अस जिय जानी * विमल यशहि अनुहरै सुबानी ॥१२॥

वह तुम्हारी कृपासे मुझे सुलभ हो जायेगी, वा टाटमें टाटकी सीवन शोभित होती है और पटोरमें पटोरकी, पटोर (रेशम); सो मेरी टाट भाषामें रामचंद्र के चरित्रकी जो सीवन पड़ी है वही शोभित कर देगी। अथवा रामायणरूपी रेशमसे मिलकर मेरी टाटरूपी कविता भी शोभित हो जायगी ॥ ११ ॥ ऐसा जीमें जानके अनुग्रह करो जिससे मेरी वाणी रघुनाथ-जीके विमल यश कहनेके योग्य हो ॥ १२ ॥

दोहा–सरल कवित्त कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान ॥
सहज वैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥ १९ ॥

सीधी तो कविता हो; उज्ज्वल कीर्ति हो, तो चतुर उसका आदर करते हैं जिसको सुनकर स्वाभाविक वैर करने वाले शत्रु भी वैरको छोड़कर सराहना करते हैं ॥ १९ ॥

दोहा–सो न होय बिनु विमलमति, मोहिं मतिबल अति थोर ॥
करहु कृपा हरियश करौं, पुनि पुनि करहुँ निहोर ॥ २० ॥

यह बात विना उज्ज्वल मतिके नहीं होती और मुझे मतिका बल बहुत थोड़ा है, इससे कृपा करो नारायणका यश कहता हूँ वारंवार निहोरा करता हूँ ॥ २० ॥

दोहा–कवि कोविद रघुवर–चरित, मानस मंजु मराल ॥
बालविनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥ २१ ॥

रामचन्द्रजीका चरित्र निर्मल मानसरोवर है, कवि और पंडित उसमें हंस हैं, मैं हंसका बच्चा हूँ, इस लिये मुझ बालककी विनती सुन और प्रीति देखकर मेरे ऊपर कृपालु हो ॥ २१ ॥

सोरठा–वन्दौं मुनि पद कञ्ज, रामायण जिन निर्मयउ ॥
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित ॥ ६ ॥

अब मैं उन मुनियोंके चरण कमलकी वन्दना करता हूँ जिन्होंने रामायण बनायी है, कैसी रामायण है कि खरदूषण राक्षसके चरित्रसहित होकर भी सुन्दर सुकोमल है अर्थात् वर्णन तो खरदूषण दैत्यका है परंतु उनकी कठोरता उसमें नहीं आयी । रामायणके कर्ता मुनियोंके चरणोंकी

वंदना करता हूं जो चरण कोमल और उज्ज्वल हैं दोष रहित हैं, और कमल कांटेके दूषण सहित हैं। अथवा सखर अर्थात् मक्खनके समान वे चरण कोमल और कमलसे उज्ज्वल हैं परन्तु उस कमलके कांटेरूपी दूषण सहित हैं। अथवा वे चरण मक्खनसे कोमल उज्ज्वल और दोषरहित हैं और दूषण अर्थात् खड़ाऊँ सहित हैं ॥ ६ ॥

सोरठा–वन्दौं चारों वेद, भव वारिधि बोहित सरिस ॥
–जिन्हैं न स्वप्नेहु खेद, वर्णत रघुपति विशद यश॥ ७ ॥

मैं ऋक्,यजु,साम, अथर्व इन चारों वेदोंकी वंदना करता हूँ जो संसारसागरके पार करनेको जहाजरूप हैं और जिनको ईश्वरके विमल यश वर्णन करते स्वप्नमें भी खेद नहीं होता ॥ ७ ॥

सोरठा–वन्दौं विधिपद–रेनु, भवसागर जिन कीन्ह यह ॥
सन्त सुधा शशि धेनु, प्रगटे खल विष वारुणी ॥ ८ ॥

ब्रह्माके चरणकमलकी धूरीको नमस्कार करता हूँ जिसने यह संसारसागर बनाया है;जिसमें संत-अमृत, चन्द्रमा, कामधेनु होकर और दुष्ट-विष, वारुणी होकर प्रकट हुए हैं ॥ ८ ॥

दोहा–विबुध विप्र बुध गुरु चरण, वन्दि कहौं कर जोरि ॥
ह्वै प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि ॥ २२ ॥

मैं देवता, ब्राह्मण, पंडित और गुरुके चरणकमलको हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूं कि प्रसन्न होकर मेरा उज्ज्वल मनोरथ पूर्ण करो ॥ २२ ॥

पुनि वन्दौं शारद सुरसरिता ❋ युगल पुनीत मनोहर चरिता ॥१॥
मज्जन पान पाप हर एका ❋ कहत सुनत यक हर अविवेका॥२॥

फिर सरस्वती और गंगाजीको नमस्कार करता हूँ दोनों पवित्र और मनोहरचरित्रवाली हैं ॥ १ ॥ उन दोनोंमें एक गंगा तो मज्जन अर्थात् स्नान और जलपानसे पाप हर लेती है और सरस्वती कहने, सुनने, विचारनेसे अज्ञान हर लती है ॥ २ ॥

गुरु पितु मातु महेश भवानी ❋ प्रणवउँ दीनबन्धु दिनदानी ॥३॥
सेवक स्वामी सखा सिय पीके ❋ हित निरूप सब विधि तुलसीके॥४॥

गुरु, पिता, माता तुल्य जो शिव-पार्वती उनको प्रणाम करता हूँ जो गुरु होके दीनबन्धु और माता हो दिनदानी अर्थात् नित्य पालन करनेवाले हैं॥ ३ ॥ जो कि शिवजी महाराज रामचन्द्रजीके सेवक, स्वामी और सखा हैं और तुलसीदासके सबप्रकार हित करने वाले हैं। सेवकका लक्ष्य ॥ चौ० ॥ 'सो प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुवर सब उर अन्तर्यामी' ॥ स्वामी-पूजि पार्थिव नायउ माथा। सखा-शंकर प्रिय मम द्रोही, इति । जिस समय महाराज रामचन्द्रजीने रामेश्वरकी स्थापना की और प्रतिष्ठार्थ मुनिगणोंको बुलाया उस समय मुनियोंने कहा–महाराज ! इस स्थानका नाम रामेश्वर होगा, रामचन्द्रजीने कहा कि अर्थ इसका क्या ? मुनियोंने कहा कि, राम और ईश्वर तब रामचन्द्रजीने कहा कि ऐसा अर्थ करो कि, रामके ईश्वर, तब मूर्ति में से शब्द हुआ कि राम हैं ईश्वर जिनके यह अर्थ रामेश्वरका है, इनमें सेवक-स्वामी-सखा तीनों वार्ता निभाई हैं ॥ ४ ॥

कलिबिलोकिजगहितहरगिरिजा ❋ साबर मन्त्रजाल जिन सिरिजा ॥५॥
अनमिल आखर अर्थ न जापू ❋ प्रगट प्रभाव महेशप्रतापू ॥६॥

कलियुगकी प्रवृत्ति देख शिव पार्वतीने संसारके कल्याणके लिये शाबरमन्त्रजाल ग्रन्थ बनाया जिसमें मन्त्रोंका वर्णन है ॥ ५ ॥ जिसमें मन्त्रोंके अक्षर अनमोल हैं और अर्थ भी कुछ नहीं है; केवल जप करनेसे शिवजीका प्रभाव प्रगट होता है, अर्थात् सिद्ध होता है अथवा अनमिल अक्षर हैं, अर्थ जप कुछ नहीं है । महेशका प्रभाव प्रगट है ऐसेही शिवजी की कृपासे मेरी भद्दी कविता प्रभावशाली होगी ॥ ६ ॥

सो महेश मोपर अनुकूला ❋ करौं कथा मुद मंगल मूला ॥७॥
सुमिरि शिवा शिव पाय पसाऊ ❋ वर्णहुँ रामचरित चित चाऊ ॥८॥

अतः शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों, आनन्द मङ्गल की मूल कथाका वर्णन करता हूँ॥७॥ शिव पार्वतीको स्मरण कर उनकी प्रसन्नता पाकर रामचन्द्रजीके चरित्र को वर्णन करूँगा मेरे चित्तमें बड़ी अभिलाषा है ॥ ८ ॥

भणित मोरि शिवकृपा विभाती ❋ शशिसमाज मिलि सोह सुराती ॥९॥
जो यह कथा सनेह समेता ❋ कहिहहिंसुनिहहिंसमुझिसचेता ॥१०॥

मेरी कविता शिवकी दयासे ऐसी सुशोभित होगी जैसे चन्द्रमाके समाजसे रात शोभित होती है ॥ ९ ॥ जो इस कथाको ध्यान धर प्रेमसमेत कहेंगे, सुनेंगे, समझेंगे ॥ १० ॥

होइहहिं रामचरण-अनुरागी ❋ कलिमलरहित सुमंगल भागी॥११॥

वे रामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम करनेवाले होंगे कलियुगके पापोंसे रहित हो आनंद मङ्गलके भागी होंगे ॥ ११ ॥

दोहा-सपनेहु सांचेउ मोहिंपर, जो हर गौरि पसाउ ॥
तो फुर होउ जो कहहुँ सब, भाषाभणित प्रभाउ ॥ २३ ॥

जो स्वप्नमें भी मेरे ऊपर शिव पार्वतीकी प्रसन्नता हो तो जो कुछ कहूँ वह यह भाषा कविताका प्रभाव सत्य हो ॥ २३ ॥

वन्दौं अवधपुरी अति पावनि ❋ सरजू सरि कलिकलुष नशावनि॥१॥
प्रणवौं पुर नर नारि बहोरी ❋ ममता जिनपर प्रभुहि न थोरी ॥२॥

अति पवित्र अयोध्याजीको नमस्कार करता हूँ कि जहां कलिमलहरणी सरयू बहती है ॥ १ ॥ फिर पुरके नर नारियोंको नमस्कार करता हूँ जिनके ऊपर प्रभुकी प्रीति थोड़ी नहीं है अर्थात् अत्यन्त है ॥ २ ॥

सिय निंदक अघ ओघ नशाये ❋ लोक विशोक बनाय बसाये ॥३॥
वन्दौं कौशल्या दिशि प्राची ❋ कीरति जासु सकल जग माची ॥४॥

सीताजी की निन्दा करनेवालोंके पाप दूर करके साकेतलोक का वाश दिया "कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता" और "स्तुवन्ति पौराश्चरितम् त्वदीयम्" इत्यादि वाक्योंसे यह बात प्रतीत होती है कि बहुत लोगोंने जानकीजीकी निंदा की थी परंतु कोई-कोई कहते हैं कि धोबीके वाक्योंसे

महाराजने जानकीजीका त्याग किया, सो वह भी कथा लिखते हैं-एक रजककी स्त्री पतिकी आज्ञा विना पिताके भवनको चली गई;जब वह पिताके घर से आई तब धोबीने कहा "तू यहांसे जा, मैं तुझको घरमें नहीं रखूँगा, मैं रामचन्द्र नहीं हूँ कि सीता ११ महीना रावणके घरमें रही फिर उसे अपने घरमें रख लिया" ऐसा व्यंग वचन कहकर स्त्रीको निकाल दिया, इस बातको सुन रामचन्द्रजीने जानकीजीको तपोवनमें भेज दिया और अयोध्यापुरीमें बसनेसे रजकको सीताकी निंदाके पापसे क्षमा करके परम धाम दिया ॥३॥ जो कौशल्या पूर्व दिशाके तुल्य हैं और जिनकी कीर्ति सब जगत्में फैल रही है उनको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

प्रगटेउ जहँ रघुपति शशिचारू ❋ विश्वसुखद खल-कमल तुषारू ॥५॥
दशरथ राउ सहित सब रानी ❋ सुकृत सुमंगल मूरति जानी ॥६॥

जिसमेंसे चन्द्रमारूप रामचन्द्रजी संसारको सुख देने वाले और दुष्ट कमलोंको पालेकी नाईं दुःख देनेवाले प्रगट हुए ॥५॥ महाराज दशरथ समेत सब रानी जो पुण्य और मंगलकी मूर्ति हैं ऐसा जानकर ॥ ६ ॥

करहुँ प्रणाम कर्म मन बानी ❋ करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥७॥
जिनहिं बिरचि बड़ भयउ विधाता ❋ महिमा अवधि राम पितु माता ॥८॥

कर्म, मन, वचनसे प्रणाम करता हूँ मुझे अपने पुत्रका दास जानकर कृपा करो ॥ ७ ॥ जिनके शरीरोंकी रचना कर विधाताको भी बड़ाई प्राप्त हुई । रामके पिता माता महिमाकी मर्यादा हैं । रामके पिता माता होना क्या थोड़ी महिमाकी बात है ? ॥ ८ ॥

सोरठा-वन्दौं अवध भुवाल, सत्य प्रेम जेहि राम पद ॥
❋ बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ ॥ ९ ॥

अवधके राजा दशरथजीको नमस्कार करता हूँ, जिनका रामचन्द्रजीके चरणोंमें सत्य प्रेम था । जिन्होंने दीनदयालु-रामजीके बिछुड़ते ही प्यारा शरीर तिनकेके समान त्याग कर दिया । दीनदयालु कहनेका आशय यह है कि मनुके तपमें बड़ी दयालुता दिखाई जो आप आकर पुत्र हुए ॥ ९ ॥

प्रणवौं परिजन सहित विदेहू ❋ जाहि रामपद गूढ़ सनेहू ॥१॥
योग भोग महँ राखेउ गोई ❋ राम विलोकत प्रगटेउ सोई ॥२॥

जनकजीको कुटुम्बसहित प्रणाम करता हूँ जिनका रामचन्द्रजीके चरणोंमें गुप्त स्नेह था ॥१॥ जिन्होंने रामचन्द्रके स्नेहको योग भोगमें छिपा रखा था । अथवा जिन्होंने योगको भोगमें छिपा रक्खा था; परन्तु वह रामचन्द्रजीके दर्शनसे प्रकट हो गया था ।। चौ० "सहजविरागरूप मन मोरा । थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा ॥ इनहिं देखि मन अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा" ॥ २ ॥

वन्दौं प्रथम भरतके चरणा ❋ जासु नेम व्रत जाय न वरणा ॥३॥
रामचरण पंकज मन जासू ❋ लुब्ध मधुप इव तजैं न पासू ॥४॥

तीनों भ्राताओंमें प्रथम भरतके चरणोंको नमस्कार करता हूँ, कि, जिन भरतजीके नेम और व्रतका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ जिनका मन लोभी भौंरेके समान कभी रामचन्द्रजीके चरणकमलकी (पासू) निकटता नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥

वन्दौं लछिमन पद-जलजाता ❋ शीतल सुभग भक्त सुखदाता ॥५॥
रघुपति कीरति विमल पताका ❋ दण्ड समान भयो यश जाका ॥६॥

लक्ष्मणजीके चरण-कमलोंको नमस्कार करता हूँ कि, जो चरण शीतल मनोहर भक्तोंको सुख देनेवाले हैं ॥ ५ ॥ जिन लक्ष्मणने श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्तिरूपी पताकाको अपने यश-रूपी दण्डसे ऊँचा कर दिया है, जैसे कि रावणके युद्धमें इन्द्रजीतको मार जय पायी ॥६॥

शेष सहस्र शीश जग कारण ❋ जो अवतरेउ भूमि भयतारण ॥७॥
सदा सो सानुकूल रहु मोपर ❋ कृपासिंधु सौमित्र गुणाकर ॥८॥

जो कि, सहस्र (हजार) शिर साक्षात् शेषजी महाराज जगत्के कारण अर्थात् आधार-भूत पृथ्वीका भय निवारण करनेको अवतार लिए ॥ ७ ॥ सो सुमित्राके पुत्र कृपाके समुद्र गुणोंकी खान लक्ष्मणजी सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहें ॥ ८ ॥

रिपुसूदन-पद-कमल नमामी ❋ शूर सुशील भरत अनुगामी ॥९॥
महावीर विनवौं हनुमाना ❋ राम जासु यश आपबखाना ॥१०॥

शत्रुघ्नके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ जो शूर सुशील भरतके संग रहते हैं॥९॥इसके उपरांत महाबलवान् हनुमानजीको नमस्कार करता हूँ जिनका यश रामचन्द्रने श्रीमुखसे वर्णन किया है, यथा चौ०—"सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी"॥१०॥

सोरठा—वन्दौं पवनकुमार, खल बन पावक ज्ञान घन ॥
जासु हृदय आगार, वसहिं राम शर चापधर ॥ १० ॥

उन महावीरजीकी वंदना करता हूँ जो कि, दुष्टरूपी वनको अग्नि हैं और बड़े ज्ञानी हैं जिनके हृदयरूपी घरमें रामचन्द्रजी धनुष बाण लिए वास करते हैं ॥ १० ॥

कपिपति ऋक्ष निशाचर राजा ❋ अंगदादि जे कीश समाजा ॥१॥
वन्दौं सबके चरण सुहाये ❋ अधम शरीर राम जिन पाये ॥२॥

सुग्रीव, जाम्बवन्त, विभीषण और अंगद आदि जो बंदरोंके समाज हैं ॥ १ ॥ सबके शोभायमान चरणोंको नमस्कार करता हूँ-जिनका कि (अधम) निकृष्ट शरीर था, परन्तु रामचन्द्रजीका दर्शन पाया इस कारण नमस्कार करने योग्य हैं ॥ २ ॥

रघुपति चरण उपासक जेते ❋ खग मृग सुर नर असुर समेते ॥३॥
वन्दौं पद सरोज सब केरे ❋ जे बिनु काम रामके चेरे ॥४॥

पक्षी, मृग, देवता, मनुष्य, असुरोंमें जितने रामचन्द्रजीके चरणकमलोंके उपासक हैं॥३॥ उन सबके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ जो विना कामना रामचन्द्रजीके चेरे हैं ॥ ४ ॥

शुक सनकादि व्यास मुनि नारद ❋ जे मुनिवर विज्ञान विशारद ॥५॥

प्रणवौं सबहिं धरणि धरि शीशा ❋ कृपा करहु जन जानि मुनीशा ॥६॥

शुकदेव, सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, व्यास, नारद जो बड़े-बड़े मुनि विज्ञानी हैं ॥ ५ ॥ सबको पृथ्वीमें शिर रख कर प्रणाम करता हूँ, हे मुनीश्वरो ! मुझे अपना दास जानकर कृपा करो ॥ ६ ॥

जनकसुता जगजननि जानकी ❋ अतिशयप्रिय करुणा निधानकी ॥७॥
ताके युग पद कमल मनाऊँ ❋ जासु कृपा निर्मल मति पाऊँ ॥८॥

महाराज जनकजीकी पुत्री जगतको उत्पन्न करनेवाली करुणानिधान रामचंद्रजीकी अधिक प्यारी जानकीजी महारानी हैं ॥ ७ ॥ उनके दोनों चरणकमलोंको मनाता हूँ जिनकी कृपासे उज्ज्वल मति मिले। जानकी रामचन्द्रजी की शक्ति होनेसे रामचन्द्रजीके भेद जानती हैं इस कारण उन्हींसे निर्मल मतिकी याचना की ॥ ८ ॥

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक ❋ चरण कमल वन्दौं सब लायक ॥९॥
राजिव नयन धरे धनु सायक ❋ भक्तविपद भंजन सुखदायक ॥१०॥

फिर मन वाणी कर्मसे रामचन्द्रजीके चरणकमलकी वंदना करता हूँ जो सबकेयोग्य हैं॥९॥ कमलके समान नेत्र, धनुष बाण धारण किये, भक्तोंका दुःख दूर कर सुखके देनेवाले हैं॥१०॥

दोहा–गिरा अर्थ जलबीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ॥
वन्दौं सीताराम-पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥ २४ ॥

जिस प्रकार वाणी और उसका अर्थ, जल और जलकी लहर कहने मात्रको दो हैं किन्तु वास्तवमें दो नहीं इसी प्रकार सीता और राम एक ही हैं दो शब्द अर्थकी तरह दो प्रतीत होते हैं; उनके चरणोंको नमस्कार है जिनको दीन दुःखी बहुत प्यारे हैं ॥ २४ ॥

वन्दौं राम नाम रघुवरके ❋ हेतु कृशानु भानु हिमकरके ॥१॥

श्रीरामचन्द्रजीके रामनामकी वंदना करता हूँ जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य), हिमकर (चन्द्रमा) इनके हेतु हैं, कृशानुमें रकार, भानुमें अकार, हिमकरमें मकार यदि न हो तो यह सब निरर्थक हो जायँ। कृशानुका गुण जलाना रकार शुभाशुभ कर्मोंको भस्मकर मोक्षका अधिकारी करता है-क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । भानु अन्धकारका नाश करता है, अकार मोहांधकारका नाश करता है। चन्द्रमा ताप दूर करता है, हिमकरमें मकार तापनाशक है। बिना इन बीज अक्षरोंके कृशानु-भानु-हिमकर शक्ति रहित हो जायँगे। तात्पर्य यह है कि सबमें रामकी सत्ता है। अथवा कृशानु अग्नि वंशमें परशुराम, सूर्यवंशमें राम, चन्द्रवंशमें बलरामने इसी नामसे बड़ाई पायी अथवा कृशानु ३ भानु १२ चन्द्रमा १ सब सोलह हुए, इस सोलह कलायुक्त रामकी वंदना करता हूं ॥ १ ॥

विधि हरि हर मय वेद प्रानसो ❋ अवगुण अनूपम गुणनिधान सो॥२॥

---

१. "रफारोऽनलबीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादयः ॥ कृत्वा मनोमलंसर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अकारो भानुबीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकः ॥ नाशयत्येव सा दीप्त्या याविद्याहृदय तमः ॥ २ ॥
मकारश्चन्द्रबीजं स्याद्यवपां परिपूरणम् ॥ त्रिपापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च"इति॥ ॥ ३ ॥

महामन्त्र जोइ जपत महेशू * काशी मुक्ति हेतु उपदेशू ॥३॥

चन्द्रमा विधिमय है उत्पत्तिकर्ता और भानु हरिमय है पोषणकर्ता, रकार अग्नि हरमय है संहारकर्ता, फिर अगुण, उपमारहित और गुणनिधान है ॥ २ ॥ जिस राम नाम महामन्त्रको शिवजी जपते हैं जो काशीके जीवोंकी मुक्तिका कारण है ॥ ३ ॥

महिमा जासु जान गणराऊ[1] * प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥४॥
जानि आदि कवि नाम प्रतापू * भयउ सिद्ध करि उलटा जापू ॥५॥

जिस रामनामकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, नामके प्रभावसे प्रथम जिनका पूजन होता है ॥ ४ ॥ वाल्मीकिजी भी नामके प्रभावको अच्छी तरह जानते हैं जो उलटा जप करनेसे सिद्ध हो गये ॥ ५ ॥

सहस नाम सम सुनि शिव बानी * जपि जेईं पिय संग भवानी ॥६॥
हरषे हेतु हेरि हर हीको * किय भूषण तिय भूषण तीको ॥७॥

सहस्र नामके समान शिवजीकी वाणी सुनकर पार्वतीजीने रामका नाम ले शिवजीके संग भोजन किया ॥ ६ ॥ यह नाम विषयक हृदयकी प्रीति देख शिवजीने प्रसन्न हो स्त्रियोंकी भूषण जो सरस्वती आदि तिनका भूषण बना पार्वतीको अर्धांगमें धारण किया । अथवा जो शिव विरक्त हैं उन्होंने पार्वतीको अपना भूषण किया। अथवा स्त्री के भूषण आप थे उन्होंने स्त्रीको अपना भूषण किया ॥ ७ ॥

नाम-प्रभाव जान शिवनीके * कालकूट फल दीन अमीके ॥८॥

नामका प्रभाव शिवजी अच्छी तरह जानते हैं जिनके प्रभावसे विषने अमृतका फल दिया

---

१. कथा गणेशजीकी-ब्रह्माने सब देवताओंसे कहा, प्रथम पूजाके योग्य कौन है ? यह सुन सब देवता आपसमें कलह करन लगे, ब्रह्माजी बोले तुमसबमेंसे पृथिवीकी परिक्रमा करके जो मेरे पास पहले आवेगा उसीको प्रथमपूज्य पद हम देवेंगे तब सब देवता अपने-अपने वाहनपर चढ़ दौड़े पर गणेशजी मूषक वाहन होनेसे पीछे रह गये और व्याकुल हुए, तब नारदजी उनको मिले और इनके परितापका कारण सुनकर कहा कि तुम पृथ्वीमें रामका नाम लिखकर प्रदक्षिणा करो और ब्रह्माके पास चले जाओ। तब गणेशजी वैसा ही कर ब्रह्माके पास गये, तब ब्रह्मा आदि सब देवताओंने मिलकर श्रीरामनामकी महिमा समक्ष गणेशजीको प्रथम पूज्य पद दिया ऐसी रामनामकी महिमा है। दूसरी कथा महादेवजीने स्वामीकार्तिकेय और गणेशजी दोनों पुत्रोंसे कहा कि पृथिवीकी परिक्रमा करके तुम दोनों में से प्रथम जो हमारे पास आवेगा हम प्रथम पूज्य पद उसीको देंगे, सो सुन कार्तिकेय मोरपर बैठ आगे गये और गणेशजी मूषक वाहन होनेसे रह गये ।तब अपने को हारा मान नारदके उपदेशसे रामनामकी परिक्रमा कर महादेवजीके पास गये । तब शिवजीने ध्यानपूर्वक श्रीराम नामकी महिमा का विचारकर गणेशजीको प्रथम पूज्य पद दिया ।

शिवपुराणमें लिखा है कि, गणेशजीने शिवको पार्वतीके मंदिरमें न जाने दिया तब गणोंसे पार्वतीनंदनका महायुद्ध हुआ तब शिवजीने गणेशजीका शिर छेदन कर दिया इसपर पार्वती महाक्रोधकर प्रलय करने लगीं तब देवताओंकी प्रार्थना सुनकर पार्वतीने कहा कि मेरा पुत्र जगद् पूज्य हो और जीवे तब मैं क्रोध शांत करूं । तब देवताओं ने स्वीकार किया और शिवजीने गणेशजीको जीवित कर प्रथम पूज्य किया ।

२. एक समय शिवने पाक बना थालमें परोस पार्वतीको पुकारा प्रिये आओ भोजन करो, तब पार्वती बोलीं कि मैं विष्णु सहस्रनामका पाठकर तब प्रसाद पाती हूं सो अभी नहीं किया तब महादेवजी बोले कि पार्वती ! श्रीराम एक यही नाम सहस्र नामके तुल्य है, सो एकबार रामनाम उच्चारण कर आकर भोजन करो, तब पार्वतीजीने वैसा ही किया। महादेव इनके मनकी प्रीति निश्चय और अपने वचनका विश्वास देखकर अति प्रसन्न हो इन्हें पतिव्रताओंकी शिरोमणि किया और ऐसा भी है कि, गौरीशंकर अर्धांगस्वरूप तभीसे हुआ ।। तथा–"राम रामेति रामेति रमे रामेमनोरमे । सहस्र नाम तत् तुल्य रामनाम बरानने ।"

यथा-जब विष्णुने कच्छपावतार लेकर समुद्रको मथा तब उसमेंसे चौदह रत्न निकले सो सब देवताओंने प्रसन्न हो अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार तेरह रत्न बांट लिये और चौदहवां रत्न कालकूट अर्थात् हलाहल विषके निमित्त सब देवता महादेवजीका स्मरण कर उनसे कहने लगे कि महाराज! इससे बचाइये; नहीं तो यह विष अपनी ज्वालासे त्रिलोकीको भस्म कर देगा। तब महादेवजीने विचार कर "श्रीराम" यह शब्द उच्चारण कर विष पानकर कण्ठमें धारण किया उसी नामके प्रतापसे विषने अमृतका फल दिया और तभीसे उनका 'नीलकंठ' नाम हुआ॥८॥

दोहा—वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी शालि सुदास ॥
रामनाम वर वर्ण युग, श्रावण भादों मास ॥ २९ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजीकी भक्ति वर्षा ऋतु है, श्रेष्ठ दास धान हैं और रामनामके दोनों श्रेष्ठ अक्षर आनन्ददाता श्रावण और भादों महीने हैं ॥ २९ ॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ * बरन विलोचन जन जिय जोऊ॥१॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू * लोक लाहु परलोक निबाहू ॥२॥

दोनों राम नामसे अक्षर मधुर और मनोहर हैं, बाणोंके नेत्र और भक्तोंके हृदयके जीवन हैं ॥ १ ॥ सुमिरनमें सबको सुलभ और सुख देनेवाले हैं, लोकमें लाभ और परलोकमें निर्वाह करते हैं ॥ २ ॥

कहत सुनत समुझत सुठि नीके * राम लषण सम प्रिय तुलसीके ॥३॥
वर्णत वरण प्रीति बिलगाती * ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती ॥४॥

कहने-सुनने-समझनेमें अधिक अच्छे हैं वही दोनों अक्षर तुलसीदासजीको राम लक्ष्मणके समान प्यारे हैं ॥ ३ ॥ दोनों अक्षरोंके वर्णन करनेमें प्रीति अलग-अलग प्रतीत होती है, पर वे ब्रह्म जीवके समान स्वभावसे संघाती हैं (साथ रहनेवाले हैं-एक ही हैं) ॥ ४ ॥

नर नारायण सरिस सुभ्राता * जग पालक विशेष जनत्राता ॥५॥
भक्ति सुतिय कल कर्ण विभूषण * जगहित हेतु विमल विधु पूषण ॥६॥

यह दोनों अक्षर नर-नारायणके समान श्रेष्ठ भाई हैं, जगत् पालक विशेषकर भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ भक्तिरूपी स्त्रीके श्रेष्ठ कानोंके (भूषण) कर्णफूल हैं, जगत्के पालनेके लिये उज्ज्वल चन्द्रमा और सूर्य हैं ॥ ६ ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधाके * कमठ शेष सम धर वसुधाके ॥७॥
जनमन कंज मंजु मधुकरसे * जीह यशोमति हरि हलधरसे ॥८॥

मुक्ति रूपी अमृतके स्वाद और संतोषके तुल्य दोनों अक्षर हैं जैसे अमृतमें स्वाद होता है ऐसे रकारके कहनेसे मुख खुलता है वही स्वाद है और अमृत पीनेसे जैसे मनुष्य अघा जाता है वैसे ही मकारके उच्चारणमें मुख बन्द हो जाना संन्तोष है, कमठ शेषके समान दोनों वसुधाको धारण करनेवाले हैं रकार ब्रह्मरूप कमठ है और मकार जीवरूप शेष है॥७॥ भक्तोंके मनकमलको दोनों अक्षर मधुकर भौंरे अथवा मधु अथवा मधु जल और कर सूर्यकी किरण हैं, जिह्वा-रूपी यशोदाको दोनों अक्षर श्रीकृष्ण बलरामके समान प्यारे हैं ॥ ८ ॥

१. दोहा—"तुलसी राके कहत ही, निकसत पाप पहार । फिरि आवन पावत नहीं, देत मकार किवांर ।"

दोहा-एकछत्र इक मुकुटमणि, सब वर्णन पर जोउ ॥
तुलसी रघुवर नामके, वर्ण विराजत दोउ ॥ २६ ॥

सब वर्णोंके ऊपर रकार छत्र (ॅ) और मकार मुकुटमणि बिंदु (ँ) होकर विराजते हैं यह राम नामके दो अक्षर हैं ॥ २६ ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी ❋ प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ॥१॥
नामरूप दोउ ईश उपाधी ❋ अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥२॥

समझनेमें नाम और नामी बराबर हैं, परस्पर प्रीति रखने वाले हैं, प्रभुके पीछे सेवकके समान गमन करने वाले हैं। अथवा सेवक और प्रभुके समान परस्पर प्रीतिवाले हैं ॥ १ ॥ नाम और रूप यह दोनों ईश्वरकी माया है। नाम अकथ है, रूप अनादि है ऐसा श्रेष्ठ बुद्धिमान कहते हैं अथवा नाम और रूप यह दोनों ईश्वर उपाधि है, ईश्वर तो अकथ अनादि है अथवा नाम और रूप यह दोनों ईश्वरके उप अर्थात् समीप अधि अर्थात् मिला देनेवाले हैं, नाम और रूपका ध्यान करनेसे भी उसकी प्राप्ति होती है । यह कथा कहनेमें नहीं आती इसको ज्ञानी जानते हैं ॥ २ ॥

को बड़ छोट कहत अपराधू ❋ सुनि गुण भेद समुझिहहिं साधू ॥३॥
देखिय रूप नाम आधीना ❋ रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना ॥४॥

बड़ा नाम है या नामी है ? इसमें बड़ा-छोटा कहनेसे दोष होगा, साधु गुण सुनकर बड़े छोटेका भेद समझ लेंगे ॥ ३ ॥ विचार कर देखिये तो रूप नामके आधीन है, क्योंकि नामके विना रूपका ज्ञान नहीं होता ॥ ४ ॥

रूपविशेष नाम बिनु जाने ❋ करतलगत न परहि पहचाने ॥५॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे ❋ आवत हृदय सनेह बिशेषे ॥६॥

रूप विशेष नामके विना जाने यदि हाथमें भी वस्तु हो तो पहिचानी नहीं जाती॥५॥रूपके विना देखेही नामका स्मरण करें तो वह भी हृदयमें भासने लगता है और प्रीति अधिक होती है॥६॥

नामरूप अति अकथ कहानी ❋ समुझत सुखद न परत बखानी ॥७॥
अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी ❋ उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥८॥

नाम रूपकी कथा अकथनीय है कहनेमें नहीं आती, समझनेमें सुखदायक है पर कही नहीं जाती ॥ ७ ॥ निर्गुण सगुणके बीचमें नामही साक्षी है, नामसे ही दोनों जाने जाते हैं दोनोंका समझाने वाला यह चतुर दुभाषिया है, अर्थात् राम शब्द रमनेवाला और रमानेवालेका अर्थ देता है । रमनेवाला निर्गुण और रमानेवाला अर्थ सगुणका प्रबोधक है ॥ ८ ॥

दोहा-राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ॥
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहत उजियार ॥ २७ ॥

हे तुलसी! जो भीतर बाहर उजालेकी इच्छा हो तो रामनामके मणिरूप दियेको जिह्वारूपी देहरीके द्वारपर रखना चाहिये, मणि इस कारण कहा कि उसमें वायु बाधा नहीं कर सकती ॥२७॥

नाम जीह जपि जागहिं योगी ❋ विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥१॥
ब्रह्मसुखहिं अनुभवहिं अनूपा ❋ अकथ अनामय नाम न रूपा ॥२॥

योगी लोग जिह्वासे नाम जपकर सिद्ध हो जाते हैं। जो ब्रह्माके प्रपंचको छोड़कर वैराग्य धारण करते हैं ॥ १ ॥ वे सब अनुपम ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं जो कथनमें नहीं आता जो रोगरहित (कल्याण रूप) नाम रूप रहित है ॥ २ ॥

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ ❋ नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥३॥
साधक नाम जपहिं लय लाये ❋ होहिं सिद्ध अणिमादिक पाये ॥४॥

जो गूढ़ गति जानना चाहते हैं वे नामका ही जप करते हैं ॥ ३ ॥ जो साधक मन लगाकर नाम जपते हैं उनको अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और वे सिद्ध हो जाते हैं ॥४॥

जपहिं नाम जन आरत भारी ❋ मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥५॥
राम भक्त जग चारि प्रकारा ❋ सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥६॥

जो मनुष्य किसी भारी दुःखमें नामको जपते हैं उनके दुःख मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं ॥ ५ ॥ रामके भक्त जगत्में चार प्रकार (अर्थात् जिज्ञासु, साधक, आर्त, ज्ञानी) के होते हैं, चारों पुण्यात्मा पाप रहित और उदार होते हैं ॥ ६ ॥

चहुँ चतुरनको नाम अधारा ❋ ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा ॥७॥
चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ ❋ कलि विशेष नहिं आन उपाऊ ॥८॥

चारों चतुरोंको नामका आधार है इनमें ज्ञानी प्रभुको विशेष प्यारा है ॥ ७ ॥ चारों युग सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि और चारों वेदोमें नामका प्रभाव प्रकट है कलियुगमें विशेष करके और उपाय नहीं है। (यस्य नाम महद्यशः । यजुः) ॥ ८ ॥

दोहा-सकल कामनाहीन जे, रामभक्त रस लीन ॥
नाम सुप्रेम पियूषह्रद, तिनहुँ किये मन मीन ॥ २८ ॥

जो सम्पूर्ण कामानाओंसे हीन राम भक्तिके रसमें लीन हो गये हैं उन्होंने भी रामके प्रेमरूपी अमृतकुण्डमें अपना मन मीन बना रक्खा है ॥ २८ ॥

अगुण सगुण दोउ ब्रह्म स्वरूपा ❋ अकथ अनादि अगाध अनूपा ॥१॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँते ❋ किये जे युग निजवश निजबूते ॥२॥

निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्मके स्वरूप हैं, जो कि अकथ-कहनेमें नहीं आते, अनादि, गम्भीर और अनुपम हैं ॥ १ ॥ मेरे मतमें दोनों से नाम बड़ा है जिसने निर्गुण सगुण दोनों अपने बलसे वश किये हैं ॥ २ ॥

प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जनकी ❋ कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥३॥
एक दारु गत देखिय एकू ❋ पावक युग सम ब्रह्म विवेकू ॥४॥

चतुर जन जनोंके मनको जानते हैं; मैं अपने मनके विश्वासकी, प्रीतिकी रुचि कहता हूँ

१-"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ॥ आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ॥ प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ २ ॥" (गीता)

अर्थात् समस्त चतुरोंकी रुचि कहता हूँ ॥ ३ ॥ एक अग्नि तो काठके भीतर और एक प्रगट इन दोनों अग्नियोंके समान निर्गुण सगुण ब्रह्मका ज्ञान है एक प्रगट और एक गुप्त है ॥ ४ ॥

उभय अगम युग सुगम नामते ❋ कहहुँ नाम बड़ ब्रह्म रामते ॥५॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी ❋ सत चेतन घन आनन्दराशी ॥६॥

दोनों अगम हैं पर नामसे सुगम हैं पर मैं तो ब्रह्मसे नामको बड़ा कहता हूँ ॥ ५ ॥ वह सत्-चित घन-आनन्दकी राशि, व्यापक, अविनाशी ईश्वर एक है ॥ ६ ॥

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी ❋ सकल जीव जग दीन दुखारी ॥७॥
नाम निरूपण नाम जतनते ❋ सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनते ॥८॥

ऐसे विकाररहित ईश्वर हृदयमें विद्यमान हैं तो भी जगतके सब जीव दुःखी रहते हैं ॥७॥ नामका जो अर्थ है सो नामके यत्नसे प्रगट होता है जैसे मोल रत्नसे प्रगट होता है भाव यह है जैसे प्रयत्न करने से रत्नसे मोल प्रगट होता है, इसी प्रकार नामके जपनेसे वह ब्रह्म हृदयमें प्रगट हो जाता है; तब जीव माया रहित हो अपने स्वरूपको पाता है ॥ ८ ॥

दोहा--निर्गुणते इहि भांति बड़, नाम प्रभाव अपार ॥
कहहुँ नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार ॥ २९ ॥

निर्गुणसे इस प्रकार नामका प्रभाव बड़ा है, अब अपने विचारके अनुसार रामसे नामको बड़ा कहता हूँ; यहां, नामकी महिमाका वर्णन किया है ॥ २९ ॥

राम भक्त हित नर तनुधारी ❋ सहि संकट किय साधु सुखारी ॥१॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा ❋ भक्त होहिं मुद मंगल वासा ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके लिये मनुष्य शरीर धारण कर अनेक दुख सहकर साधुओंको सुखी किया ॥ १ ॥ परन्तु जो भक्त नामको प्रेमपूर्वक जपते हैं वे विना परिश्रम आनन्द मङ्गलके स्थान हो जाते हैं ॥ २ ॥

राम एक तापस तिय तारी ❋ नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥३॥
ऋषिहित राम सुकेतु सुताकी ❋ सहित सेन सुत कीन्ह बेबाकी ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने तो एकही अहिल्या तारी, नामने करोड़ों दुष्टोंकी कुमति सुधारदी ॥३॥ विश्वामित्र ऋषिके लिये श्रीरामचंद्रजीने तो ताड़का और उसके पुत्रको सेनासहित निःशेष कर दिया ॥४॥

सहित दोष दुख दास दुराशा ❋ दलइ नाम जिमि रविनिशिनाशा ॥५॥
भंजेउ राम आप भवचापू ❋ भवभय भंजन नाम प्रतापू ॥६॥

दुःख दोष सहित दासोंकी दुराशाको नाम इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारका नाश कर देता है ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं शिवजीका धनुष तोड़ा और नामका प्रताप संसाररूप भयका नाश करनेवाला है ॥ ६ ॥

दंडकवन प्रभु कीन्ह सुहावन ❋ जनमन अमित नाम किय पावन ॥७॥
निशिचर निकर दले रघुनंदन ❋ नाम सकल कलिकलुष निकंदन ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने दंडकवनको पवित्र किया, नामने बहुत जनोंके मन पवित्र कर दिये ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीने बहुत राक्षस मारे और नाम कलियुगके सारे पापोंका नाश करनेवाला है ॥८॥

दोहा–शबरी गीध सुसेवकन, सुगति दीन रघुनाथ ॥
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुणगाथ ॥ ३० ॥

शबरी (भीलनी), गृध्रराज और अच्छे सेवकोंको श्रीरामचन्द्रजीने मुक्ति दी, नामने अनेक पापियोंका उद्धार कर दिया, यह गुणोंकी कथा वेदमें विदित है ॥ ३० ॥

राम सुकंठ विभीषण दोऊ ❋ राखे शरण जान सब कोऊ ॥१॥
नाम अनेक गरीब निवाजे ❋ लोक वेद वर विरद विराजे ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीव, विभीषण दोनोंको शरण रखा यह बात सब कोई जानते हैं॥१॥ नामने अनेक गरीबोंको तार दिया, जिसकी बड़ाई लोक और वेदोंमें सुशोभित है ॥ २ ॥

राम भालु कपि कटक बटोरा ❋ सेतु हेतु श्रम कीन न थोरा ॥३॥
नाम लेत भव-सिंधु सुखाहीं ❋ करहु विचार सुजन मनमाहीं ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने रीछ और बानरोंकी सेना इकट्ठी कर पुल बांधनेमें बहुत श्रम किया॥३॥ परन्तु नाम लेते संसार सागर सूख जाता है, हे महात्माओ ! मनमें विचार करो ॥ ४ ॥

राम सकुल रण रावण मारा ❋ सीय सहित निजपुर पगु धारा ॥५॥
राजा राम अवध रजधानी ❋ गावत गुण सुर मुनिवर बानी ॥६॥

रामने रावणको संग्राममें कुलसहित मारा, फिर सीता सहित अपने नगरको आये ॥ ५ ॥ राजा राम और उनकी राजधानी अयोध्या जिसके गुण देवता और मुनि अच्छी वाणीसे गाते हैं ॥ ६ ॥

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती ❋ विनु श्रम प्रबल मोहदल जीती ॥७॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने ❋ नाम प्रसाद शोच नहिं सपने ॥८॥

जो सेवक प्रीतिसे नामका स्मरण करते हैं वे विना श्रम प्रबल मोहकी सेनाको जीतते हैं ॥७॥और प्रेममें लीन हो अपने आनंदसे विचरते हैं नामके प्रसादसे स्वप्नमें भी शोच नहीं होता ॥८॥

दोहा–ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदानि ॥
रामचरित शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि ॥ ३१ ॥

ब्रह्म और रामसे नाम बड़ा है, वर देनेवालोंको भी वर देनेवाला है; यह जीमें जान कर सौ करोड़ रामायणमें शिवजीने दो अक्षरोंको निकाल लिया है। सौ करोड़में तीनका भाग दिया तो एक करोड़ बचे, उसे भी तीनका भाग दिया तो एक लाख बचे, फिर उसे तीनसे भाग देनेसे एक हजार बचे,फिर तीनसे भाग देनेसे१००बचे,फिर तीनसे भाग देनेसे एक श्लोक बचा, जिसके ३२ अक्षर होते हैं इसको भी तीनसे भाग दिया, तो केवल दो अक्षर रकार मकार रहे; वही शिवजीने सार जान ग्रहण किया। यह भाग देवलोक, पाताललोक और मुनिजनों के पास गये । शिवजीने दो अक्षर रखे तीनों लोक वासियोंने शिवजीसे रामायण मांगी थी ॥ ३१ ॥

नाम प्रभाव शंभु अविनाशी ❋ साज अमंगल मंगल राशी ॥१॥
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी ❋ नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी ॥२॥

नामके प्रभावसे शिवजी अविनाशी हैं, जो अमंगलका साज सजाये हैं और मंगलके ढेर हैं ॥१॥शुकदेव, सनकादिक, सिद्ध, मुनि योगी नामके प्रसादसे ब्रह्म सुखका भोग करते हैं ॥२॥

नारद जानेउ नाम-प्रतापू ❋ जगप्रियहरि हरिहर प्रिय आपू ॥३॥
नाम जपत प्रभुकीन प्रसादू ❋ भक्त-शिरोमणि भये प्रहलादू ॥४॥

नारदजीने नामका प्रताप जाना; जगत्को शिव विष्णु प्यारे हैं और आप शिव विष्णु भगवान्को प्यारे हैं ॥ ३ ॥ नाम जपते ही प्रभुने ऐसी दया की कि, प्रह्लादजी भक्तोंमें मुकुट-मणि हो गये। इस राम नामके प्रतापसे संकटोंसे बचे, पिताने नानाविधिके दुःख दिये परन्तु कुछ बल न चल सका। सो प्रह्लादकी कथा जगत्प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

ध्रुव[1] सगलानि जपेउ हरिनामू ❋ पायउ अचल अनूपम ठामू ॥५॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू ❋ अपने वश करि राखेउ रामू ॥६॥

ध्रुवजीने दुःख पाके भी रामका नाम जपा; अतः जो चलायमान न हो ऐसा उपमारहित स्थान पाया ॥ ५ ॥ महावीरजीने इसी पवित्र नामका स्मरण कर रामको अपने वशमें कर रखा है। यथा चौ० "प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख ह्वै न सकत मन मोरा" ॥ ६ ॥

अपर अजामिल गज गनिकाऊ ❋ भये मुक्त हरि नाम प्रभाऊ ॥७॥
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई ❋ राम न सकैं नाम गुण गाई ॥८॥

और भी अजामिल, गजेन्द्र[3], पिंगला[4], वेश्या भगवान्के नामके प्रभावसे मुक्त हो गये ॥७॥ नाम की बहुत बड़ाई क्या करूँ ? रामजी भी तो अपने नामके गुण नहीं गा सकते ॥ ८ ॥

दोहा-राम नामको कल्पतरु, कलि कल्याण निवास ॥
जो सुमिरत भये भांग ते, तुलसी तुलसीदास ॥ ३२ ॥

रामनामका कल्पवृक्ष कलियुगमें कल्याणका घर है जिसके सुमिरतेही भांगका विरवा तुलसी तुलसीदास हो गये। अथवा (जेहि सुमिरत भये भांगसे) जिसके सुमिरतेही भांगका विरवा तुलसी-दास तुलसीका विरवा होगया। अथवा जो तुलसी हरिको प्यारी है उसका दास हो गये॥३२॥

---

१. कथा-स्वायम्भुव मनु और शतरूपा इनके पुत्र राजा उत्तानपादके दो स्त्रियां थीं, उनमें बड़ी रानीके पुत्र ध्रुव हुए। एक समय राजाकी छोटी रानी जिसपर उनकी अधिक प्रीति थी उनके पास बैठी थी, उस समय ध्रुव जाके पिताजीकेगोद में बैठ गये, तबछोटी रानीने ध्रुवजीको गोदसे उतार यह कहा कि मेरे पेटसे जन्म लेते तब इस गद्दीके अधिकारी होते, इसको सुन ध्रुव ग्लानिसे अपनी मातासे कहके तप करनेको चले, तब राजाने ध्रुवको बहुत समझाया, राज्य देनेको कहा परंतु वे नहीं फिरे। मार्गमें नारदजीने उपदेश दिया, सो मंत्र जपकर ध्रुव अचल लोकके अधिकारी हुए।

२. अजामिल बड़ा पापी था, एक दिन उसके घर साधु आगये, वह घरमें नहीं था, उसकी स्त्रीने साधुओंकी बड़ी सुश्रूषा की, साधु उसे गर्भवती देख चलते समय कह गये कि तुम्हारे पुत्र होगा, तुम नारायण उसका नाम रखना. उसने पुत्रहोने पर वैसाही किया अजामिल पुत्रको बहुत प्यार करता था जब अजामिलका अन्त समय आया तब यमदूतोंको देख डरकर उसने अपने पुत्र नारायणको पुकारा, नारायणका नाम लेनेसे विष्णुभगवानके दूत आगये और इसको अच्छी गति प्राप्त हुई !

३. गजेन्द्रको जब ग्राहने पकड़ा और बहुत कालतक युद्ध होता रहा और उसके सब साथी छोड़कर चले गये। ग्राह गजेन्द्रको जलमें निमग्न करने लगा और थोड़ी सी सूंड जलके ऊपर रही उस समय एक कमलका फूल तोड़ ईश्वर के निमित्त कर गजेन्द्रने भगवानको पुकारा कि झट आकर भगवान्ने छुड़ाया। 'रा कह्यो रदनमें म कह्यो मगनमें।

४. पिंगला गणिका राततक शृंगार किये बैठी रही पर कोई पुरुष उसके पास न आया तब खाटपर जा लेट रही और विचारने लगी कि यदि इतना भगवान्का स्मरण करती जितना कि विषयी पुरुषकेहेतु मन लगाया तो संसार से पार हो जाती। इस प्रकार दत्तात्रेयके दर्शनसे ज्ञान प्राप्त होनेसे पार हो गई।

चहुँ युग तीन काल तिहुँ लोका * भये नाम जपि जीव विशोका ॥१॥
वेद पुराण संत मत एहू * सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥२॥

चारों युग, भूत, भविष्य, वर्तमान तीन काल तीनों लोकोंमें नामका जप करके जीव शोक रहित होते हैं॥१॥ वेद, पुराण, सन्तोंका मत यही है कि सब पुण्योंका फल राममें स्नेह करना है ॥२॥

ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे * द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥३॥
कलि केवल मल मूल मलीना * पाप पयोनिधि जनमन मीना ॥४॥

सतयुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ, द्वापरमें पूजासे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ कलियुग केवल पापका मूल है पापोंके समुद्रमें मनुष्यके मन मीन अर्थात् मच्छी हो रहे हैं ॥ ४ ॥

नाम कामतरु काल कराला * सुमिरत शमन सकल जग जाला ॥५॥
राम नाम कलि अभिमत दाता * हित परलोक लोक पितु माता ॥६॥

भीषण कलियुगमें नाम कल्पवृक्ष है, जो स्मरण मात्रसे ही सब जगजालको शांत कर देता है ॥ ५ ॥ रामका ही नाम कलियुगमें इच्छित मन फलका देनेवाला है; परलोकमें हितकारक, इस लोकमें पिता माताके समान हित करनेवाला है ॥ ६ ॥

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू * राम नाम अवलम्बन एकू ॥७॥
कालनेमि कलि कपट निधानू * नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥८॥

कलियुगमें शुभ कर्म, भक्ति, ज्ञान कुछ नहीं है, केवल राम नामका सहारा है ॥ ७ ॥ कलियुगमें तो कालनेमि रूप कपटनिधान-राक्षस है उसे मारनेको नाम सुन्दर मतिमान हनुमान्‌जीके समान समर्थ है ॥ ८ ॥

दोहा–रामनाम नर केशरी, कनककशिपु कलि काल ॥
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालहि दलि सुर साल ॥ २२ ॥

रामनाम नृसिंह है, कलियुग हिरण्यकशिपु है, नामके जपनेवाले प्रह्लाद हैं जो नाम राक्षसोंको मार भक्तोंका पालन करता है ॥ २२ ॥

भाव कुभाव अनख आलसहूँ * नाम जपत मंगल दिशि दशहूँ ॥१॥
सुमिरि सो नाम रामगुणगाथा * करौं नाय रघुनाथहिं माथा ॥२॥

प्रीतिसे, वैरसे, अनख अर्थात् ईर्षासे, आलस्यसे सब कोई नाम जपते हैं जो दशों दिशाओंमें मंगलका करनेवाला है ॥ १ ॥ उसी नामका स्मरण कर श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा श्रीरामचन्द्रजीको माथा नवाकर वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥

मोर सुधारहिं सो सब भाँती * जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥३॥
राम सुस्वामि कुसेवक मोसे * निज दिशि देखि दयानिधि पोसे ॥४॥

सो भगवान् मेरी सब प्रकार सुधारेंगे जिनकी दया दीनोंपर दया करनेसे नहीं अघाती है ॥ ३ ॥ श्रीरामचंन्द्रजीसे अच्छे स्वामी और मुझसेसे बुरे सेवक कहां निभै ? परन्तु अपनी ओर देखकर दयानिधानने कृपा की ॥ ४ ॥

लोकहु वेद सुसाहब रीती * विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥५॥

गनी गरीब ग्राम-नर नागर ❋ पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥६॥

वेद शास्त्रमें लिखा है कि अच्छे स्वामियोंकी यह रीति है विनय सुनकर प्रीति पहिचानते हैं ॥ ५ ॥ धनी, कङ्गाल, ग्रामके मनुष्य, नगरनिवासी, चतुर, पंडित, मूर्ख, मलीन, उजागर (प्रख्यात) जो जगत्में प्रसिद्ध हो रहे हैं ॥ ६ ॥

सुकवि कुकवि निजमति अनुसारी ❋ नृपहि सराहत सब नरनारी ॥७॥
साधु सुजान सुशील नृपाला ❋ ईश अंश भव परम कृपाला ॥८॥

अच्छे कवि, बुरे कवि, अपनी-अपनी मतिके अनुसार क्या स्त्री क्या पुरुष सभी राजाकी सराहना करते हैं ॥ ७ ॥ राजा, महात्मा, चतुर और सुशील होते हैं; क्योंकि ईश्वरके अंशसे उत्पन्न होते हैं; अत्यन्त कृपालुता उनमें वास करती है । मनुस्मृतिमें लिखा है कि राजाके शरीरमें आठ लोकपाल वास करते हैं ॥ ८ ॥

सुनि सन्मानहिं सबहिं सुबानी ❋ भणिति भक्ति नति गति पहिचानी ॥९॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ ❋ ज्ञान शिरोमणि कौशलराऊ ॥१०॥

वे राजा (प्रशंसा) सुनकर और कथन, प्रीति, नम्रता तथा (पहुँच) को पहिचान सुन्दर वाणीसे सबका सम्मान करते हैं ॥ ९ ॥ यह तो साधारण राजाओंका स्वभाव होता है, महाराज कौशलपति तो ज्ञानियोंमें शिरोमणि हैं ॥ १० ॥

रीझत राम सनेह निसोते ❋ को जग मंद मलिन मन मोते ॥११॥

वे राम तो केवल प्रेमसे रीझते हैं पर मेरे समान मंद मलिन मन वाला जगत्में कौन है॥११॥

दोहा—शठ सेवककी प्रीति रुचि, रखिहहिं रामकृपालु ॥
उपल किये जलयान जेहि, सचिव सुमति कपिभालु ॥ ३४ ॥

मुझ मूर्ख दासकी प्रीति और रुचि रामचन्द्र रखेंगे; कारण यह है कि वे कृपालु हैं जिन्होंने पत्थर तो जलमें तैरनेवाले किये और रीछ बन्दरोंको बुद्धिमान मन्त्री बनाये ॥ ३४ ॥

दोहा—हौंहु कहावत सब कहत, राम सहत उपहास ॥
साहब सीता नाथसे, सेवक तुलसीदास ॥ ३५ ॥

मैं भी (रामभक्त) कहलाता हूँ सब कोई कहते हैं और यह हँसी श्रीरामचन्द्रजी सहन करते हैं कि सीतापतिसे स्वामी और तुलसीदाससे सेवक ॥ ३५ ॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी ❋ सुनि अघ नरकहुँ नाक शिकोरी॥१॥
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने ❋ सो सुधि राम कीन्ह नहिं सपने॥२॥

मेरी ढिठाई और दोष इतना बड़ा है कि जिसे सुन पाप और नरक भी नाक सिकोड़ता है ॥ १ ॥ उस अपनी करनीको यादकर मुझे बड़ा डर होता है परन्तु वह सुधि श्रीरामचन्द्रजीने स्वप्नमें भी नहीं की ॥ २ ॥

सुनि अवलोकि सुचित चखुचाही ❋ भक्ति भोरि मति स्वामि सराही ॥३॥
कहत नशाइ होइ हिय नीकी ❋ रीझत राम जानि जन जीकी ॥४॥

सुनकर अच्छे प्रकार विचार देखकर स्वामीने भोली भक्ति और मतिको सराहा॥३॥कहनेमें चाहे बुरी हो मनमें अच्छी हो तो श्रीरामजी सेवकके मतिकी बातको विचारके रीझते हैं॥४॥

रहत न प्रभु चित चूक कियेकी * करत सुरति सौ बार हियेकी ॥५॥
जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली * फिर सुकंठ सोइ कीन कुचाली ॥६॥

भलोंसे जो चूक अनजाने बनजाती है प्रभु उसको अपने जीमें नहीं लाते किंतु उनके हृदय को (अनन्य भक्तिकी) सौ वार सुरत करते हैं॥५॥ जिस पापसे व्याधकी नाईं बालिको मारा फिर वही कुचाल सुग्रीवने की कि बालिकी स्त्रीको ग्रहणकर लिया, यह कोई विधि नहीं है, न यह मानुषी विधान है, न इन दोनोंने अपनी इच्छासे स्वीकार किया, किंतु यह स्वयं ही उपस्थित हुई थी॥६॥

सोइ करतूति विभीषण केरी * सपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥७॥
ते भरतहिं भेंटत सन्माने * राज-सभा रघुवीर बखाने ॥८॥

वही करनी विभीषणने की, कि रावणकी स्त्रीको अपनी रानी बना लिया, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने स्वप्नमें भी उसका ध्यान अपने मनमें नहीं किया ॥ ७ ॥ बल्कि भरतजीसे प्रेमपूर्वक मिलते समय श्रीरामचन्द्रजीने उनकी राजसभामें सम्मान कर बड़ाई की है ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु तरुतर कपि डारपर, ते किय आपु समान ॥
तुलसी कहूँ न रामसे, साहब शील निधान ॥ ३६ ॥

प्रभु श्रीरामचंद्रजी तो वृक्ष के नीचे और बन्दर डालियोंके ऊपर उन्हें अपने समान बनाये। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामचंद्रजीसे शील निधान स्वामी और कहीं नहीं हैं ॥ ३६ ॥

दोहा-राम निकाई रावरी, है सबहीको नीक ॥
जौं यह सांची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥ ३७ ॥

हे रामचन्द्रजी ! यदि आपकी अच्छाई सबहीके लिए भली है ब्रह्मा शिव शुक सनकादिक जो श्रेष्ठ और शबरी गीध आदिक जो नीच हैं उन सबको राम निकाई एकरस नीकी है और यदि सदा यह सच्ची है तो (विश्वास है कि) तुलसीदासका भी अच्छा ही होगा ॥ ३७ ॥

दोहा-यहि विधि निजगुण दोष कहि, सबहि बहुरि शिर नाय ॥
वरणौं रघुवर विशद यश, सुनि कलि कलुष नशाय ॥ ३८ ॥

इस प्रकार अपने गुण दोष कहकर और फिर सबको शिर नवाकर श्रीरघुनाथका निर्मल यश वर्णन करता हूँ; जिसे सुनकर कलियुगके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई * भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई ॥१॥
कहिहौं सोइ संवाद बखानी * सुनहु सकल सज्जन सुखमानी॥२॥

याज्ञवल्क्यजीने जो शोभायमान कथा मुनियोंमें श्रेष्ठ भरद्वाजजीको सुनाई है ॥१॥ उन्हीं दोनों ऋषियोंकी वार्ता बखानकर कहता हूँ सब सज्जन पुरुषो ! सुखमानकर सुनो ॥ २ ॥

शम्भु कीन्ह यह चरित सुहावा * बहुरि कृपाकरि उमहि सुनावा ॥३॥
सो शिव काक भुशुण्डिहि दीन्हा * राम भक्ति अधिकारी चीन्हा ॥४॥

यह शोभायमान कथा महादेवजीने रची और फिर दया पूर्वक पार्वतीजीको सुनाई ॥ ३ ॥ वही शिवजीने काकभुशुण्डिजीको श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिके योग्य जानकर सुनाई ॥ ४ ॥

तेहिसन याज्ञवल्क्य पुनि पावा * तिन पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥५॥
ते श्रोता वक्ता सम-शीला * समदर्शी जानहि हरि लीला ॥६॥

तिनसे यह चरित्र याज्ञवल्क्य ऋषिने पाया, उन्होंने फिर भरद्वाज ऋषिसे वर्णन किया॥५॥ यही ऋषि कहने सुननेवाले समान शीलगुणयुक्त समदर्शी भगवान्‌की लीला जाननेवाले हैं, क्योंकि॥६॥

जानहिं तीन काल निज ज्ञाना * करतलगत आमलक समाना ॥७॥
औरौ जे हरि भक्त सुजाना * कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना॥८॥

जो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंको अपने ज्ञानसे इस प्रकार जानते हैं कि जैसे आमला किसीके हाथमें हो ॥ ७ ॥ और भी जो नारायण के चतुर भक्त हैं जो भगवान् की कथा अनेक प्रकारसे सुनते तथा समझते हैं वे भी गुणयुक्त हैं ॥ ८ ॥

दोहा–मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत ॥
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥ ३९ ॥

मैंने फिर यह कथा बाराहक्षेत्रमें अपने गुरुजी से सुनी थी; परंतु तब मैं बालक था चेत नहीं था इससे यथार्थ मैंने समझा नहीं ॥ ३९ ॥

दोहा--श्रोता वक्ता ज्ञान-निधि, कथा रामकी गूढ़ ॥
किमि समझौं मैं जीव जड़, कलिमल ग्रसित विमूढ़ ॥ ४० ॥

यह रामकी कथा बड़ी गूढ़ अर्थात् गम्भीर है, इसके कहने-सुननेवाले ज्ञानके समुद्र होने चाहिए, मैं महामूर्ख जड़जीव जो कलियुगके पापोंमें फँसा हुआ हूँ कैसे समझूँ ? ॥ ४० ॥

तदपि कही गुरु बारहिंबारा * समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥१॥
भाषा--बद्ध करब मैं सोई * मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥२॥

तो भी गुरुजीने बारम्बार वर्णनकी, कुछ मतिके अनुसार समझमें आयी अर्थात् जैसी मेरी बुद्धि थी वैसी ही समझमें आयी ॥ १ ॥ उसको मैं भाषाछन्दोंमें वर्णन करता हूँ जिससे कुछ मेरे मनमें ज्ञान हो, गुरुके कहे तत्त्वको भूल न जाऊँ इस कारण भाषामें लिखता हूँ॥२॥

जस कछु बुद्धि विवेक बल मेरे * तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे ॥३॥
निज संदेह मोह भ्रम हरणी * करौं कथा भवसरिता तरणी ॥४॥

जैसा कुछ मुझे बुद्धिका बल और ज्ञान है वैसा ही हृदयमें भगवान्‌की प्रेरणासे कहूँगा॥३॥ अपना संदेह, मोह और भ्रम हरनेवाली संसार रूप नदीको नौकारूप श्रीरामकथा रचता हूँ॥४॥

बुध विश्राम सकल जन रंजनि * रामकथा कलिकलुष विभंजनि॥५॥
राम कथा कलि पन्नग भरणी * पुनि विवेक पावक कहँ अरणी॥६॥

पंडितोंको विश्राम देनेवाली, सब जनोंको आनंददायक, कलियुगके पाप हरनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी कथा है ॥ ५ ॥ यह राम कथा कलियुग रूपी सर्पको महामंत्र है, भरणी सर्पके विष उतारनेका एक मंत्र है । अथवा भरणी एक पक्षीका नाम है वह जब सर्पको देखता है तब सिकुड़ जाता है जब सर्प उसे मुँहमें धर लेता है, तब उसके पंख फैलाने पर सर्प का शिर फट जाता है और वह निकल आता है, तथा ज्ञानरूपी अग्निके बढ़ानेको अरणी नाम लकड़ी है, अरणी वह काष्ठ है जो यज्ञमें अग्नि निकालनेके काममें आता है ॥ ६ ॥

राम कथा कलि कामद गाई * सुजन संजीवन मूरि सुहाई ॥७॥
सोइ वसुधातल सुधातरंगिनि * भवभंजनि भ्रमभेकभुवंगिनि ॥८॥

श्रीरामजीकी कथा कलियुगमें कामधेनु और महात्माओंको सुंदर सञ्जीवनी जड़ी है ॥७॥ सोई पृथ्वीतलमें अमृतकी नदी है; जो संसारका भय दूर करनेवाली भ्रमरूप मेढक के खानेको सर्पिणी है ॥ ८ ॥

असुर सेन सम नरक निकंदिनि ❋ साधुविबुधकुलहितगिरिनंदिनि॥९॥
सन्त-समाज पयोधि रमा सी ❋ विश्वभार धर अचलक्षमा सी॥१०॥

असुर (राक्षसोंकी) सेनाके समान नरककी नाश करनेवाली गंगा है और साधु तथा देवताओंके कुलको पालनेको पार्वती है। जिस प्रकार पार्वती दुर्गास्वरूप होकर राक्षसोंका संहार और देवताओंका हित करती है, वैसे यह रामकथा है जो नरकके दुःख नाश कर साधुओंका हित करती है। वा असुर सेन राक्षसके समान (जिसकी पीठपर गयामें पिंड दिये जाते हैं) नरकको दूर करनेवाली है। कोई यह अर्थ करते हैं ॥ ९ ॥ महात्माओंका समाज जो समुद्ररूप है उसमें यह लक्ष्मीके समान है और संसारका बोझ धारण करनेको अचल पृथ्वी सी है ॥ १० ॥

यमगण मुँह मसि जगयमुनासी ❋ जीवन मुक्ति हेतु जनु काशी॥११॥
रामहि प्रिय पावन तुलसी सी ❋ तुलसिदास हितहिय हुलसीसी॥१२॥

संसार में यह कथा यमदूतोंके मुखमें स्याही लगानेको यमुना सी है और जीते ही मुक्ति देनेको काशीके समान है ॥ ११ ॥ श्रीरामजीको यह कथा पवित्र तुलसीकी नाईं प्यारी है और तुलसीदासके हृदयमें हित करनेको माता हुलसीकी नाईं है ॥ १२ ॥

शिवप्रिय मेकलशैलसुता सी ❋ सकल सिद्धिप्रद संपतिरासी ॥१३॥
सद्गुण सुरगण अम्बअदिति सी ❋ रघुवर भक्ति प्रेम परमितिसी ॥१४॥

शिवजीको यह कथा नर्मदाके समान प्रिय है और सब सिद्धि देनेवाली संपत्तिकी खान है ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ गुणरूपी देवताओंकी माता अदितिके समान (हितकारिणी) है और श्रीरामजीके प्रेम भक्तिकी सीमाके समान है ॥ १४ ॥

दोहा-रामकथा मन्दाकिनी, चित्रकूट चित चारु ॥
तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुवीर विहारु ॥ ४१ ॥

रामकी कथा तो मंदाकिनी है और चित्त सुन्दर चित्रकूट है; स्नेहरूपी सुन्दर वन है, उसमें सीता राम विहार करते हैं ॥ ४१ ॥

राम चरित चिन्तामणि चारू ❋ सन्त सुमति तिय सुभग सिंगारू॥१॥
जग मंगल गुणग्राम रामके ❋ दानि मुक्ति धन धर्म धामके ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र सुन्दर चिंतामणि हैं, सन्तोंकी सुमतिरूप स्त्रीके सुन्दर शृङ्गार हैं॥१॥ रामके गुण-समूह जगत्में मंगलके हेतु हैं, और मुक्ति, धन, धर्म, धामके दाता हैं ॥२ ॥

सद्गुरु ज्ञान विराग योगके ❋ विबुध वैद्य भव भीम रोगके ॥३॥
जननि जनक सियराम प्रेमके ❋ बीज सकल व्रत धर्म नेमके ॥४॥

ज्ञान, वैराग्य योगके सद्गुरु हैं और संसाररूपी भयंकर रोगके दूर करनेको देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं॥३॥सीतारामके प्रेमके माता पिता हैं और सब व्रत, धर्म नियमके बीजहैं॥४॥

शमन पाप सन्ताप शोकके ❋ प्रिय पालक परलोक लोकके ॥५॥

सचिव सुभट भूपति विचारके ❋ कुंभज लोभ उदधि अपारके ॥६॥

पाप दुःख और शोकके शांत करनेवाले इस लोक और परलोकके प्रिय पालने वाले हैं॥५॥ विचाररूपी राजाके बलवान् मंत्री हैं और लोभरूपी अपार समुद्र सोखनेको अगस्त्य हैं ॥ ६ ॥

काम क्रोध कलिमल करिगनके ❋ केहरि शावक जनमन वनके ॥७॥
अतिथि पूज्य प्रीतम पुरारिके ❋ कामद घन दारिद दवारिके ॥८॥

कलिके पापरूप काम क्रोधरूपी हाथियोंके समूहोंको भक्तोंके मनरूपी बनैले सिंहके बच्चे हैं ॥ ७ ॥ शिवजीके अतिथिके समान अत्यन्त प्यारे और पूज्य हैं तथा दरिद्ररूप अग्निके शांत करनेको (कामद घन) इच्छित जल दाता बादल हैं ॥ ८ ॥

मन्त्र महामणि विषय व्यालके ❋ मेटत कठिन कुअंक भालके ॥९॥
हरण मोह तम दिनकर करसे ❋ सेवक शालिपाल जलधरसे ॥१०॥

विषयरूपी सर्पका विष दूर करनेको महामणि मंत्र हैं, जो कि मस्तकके कठिन (खोटे) अङ्क भी मेटते हैं ॥ ९ ॥ मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए सूर्यकी किरण हैं और धानरूपी दासों के पालनेको बादलकी नाईं हैं ॥ १० ॥

अभिमत दानि देव तरुवरसे ❋ सेवत सुलभ सुखद हरिहरसे ॥११॥
सुकवि शरद नभ मन उडुगणसे ❋ राम भक्त जन जीवन धनसे ॥१२॥

इच्छित दान देनेमें कल्पवृक्षके समान हैं और सेवा करनेवालेको सुलभ सुखदाता शिव और भगवान्‌की नाईं ॥ ११ ॥ अच्छे कवियोंको शरद् ऋतुके आकाशरूपी मनमें रामचरित तारागणके समान हैं और रामजीकी भक्ति रखनेवाले दासोंको जीवन धनके समान हैं ॥१२॥

सकल सुकृत फल भूरि भोगसे ❋ जगहित निरुपधि साधुलोगसे॥१३॥
सेवक मन मानस मरालसे ❋ पावन गंग तरंग मालसे ॥१४॥

सम्पूर्ण पुण्य यज्ञादिके फलोंके बड़े भोगके समान हैं और जगत्‌के हित करनेको छलरहित (हितकारी) साधुलोगों के समान हैं ॥ १३ ॥ भक्तोंके मन जो मानससरोवर हैं उनमें यह रामचरित्र हंसके समान हैं और पवित्र करनेको गंगाजीकी लहरोंकी मालाके समान हैं ॥ १४ ॥

दोहा—कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखण्ड ॥
दहन रामगुण ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचण्ड ॥ ४२ ॥

खोटे मार्ग, बुरी तर्कना, कुचाल और जो कलियुगमें कपट, दंभ, पाखंड हैं वे तो ईंधन हैं और रामजीके गुणोंका समूह उसे जलानेको प्रचण्ड अग्नि है ॥ ४२ ॥

दोहा—राम चरित राकेश कर, सरिस सुखद सब काहु ॥
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेष बड़ लाहु ॥ ४३ ॥

श्रीरामजीका चरित्र राकेशकर अर्थात् चन्द्रकिरण समान है जो सबको समान सुख देता है परंतु कुमुद (बघूले) और चकोर चित्तवाले सज्जनोंको विशेष हित और बड़ा लाभकारी है॥४३॥

कीन्ह प्रश्न जेहि भाँति भवानी ❋ जेहि विधि शंकर कहा बखानी॥१॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई ❋ कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥२॥

जिस प्रकार पार्वतीजीने प्रश्न किये और जिस प्रकार शिवजीने उनका उत्तर बखान कर कहा है॥१॥वेसब कारण गाकर कहूँगा और कथा प्रबंध विचित्र रीतिसे बनाकर वर्णन करूँगा ॥२॥

जिन यह कथा सुनी नहिं होई ❀ जनि आश्चर्य करहिं सुनि सोई ॥३॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी ❀ नहिं आश्चर्य करहिं अस जानी ॥४॥

जिन्होंने यह कथा नहीं सुनी है वे इसे सुनकर अचम्भा न करें, क्योंकि ॥ ३ ॥ अलौकिक (वैदिक) कथाको जो ज्ञानी सुनते हैं वे ऐसा जानकर अचम्भा नहीं करते, कि ॥ ४ ॥

राम कथा की मिति जग नाहीं ❀ अस प्रतीति तिनके मनमाहीं ॥५॥
नाना भाँति राम अवतारा ❀ रामायण शत कोटि अपारा ॥६॥

रामकथाकी मिति वा सीमा जगत्में नहीं है कि, यह इस युगकी है आगे कभी नहीं हुई वा इतनी ही है। वे अपने मनमें ऐसा विश्वास रखें कि ॥५॥ विविध प्रकारसे रामके अवतार युग युगमें हुए हैं; और रामायण भी सौ करोड़ अपार हैं ॥ ६ ॥

कल्पभेद हरिचरित सुहाये ❀ भांति अनेक मुनीशन गाये ॥७॥
करिय न संशय अस उर आनी ❀ सुनिय कथा सादर रतिमानी ॥८॥

कल्पभेदोंसे रामजीके विविध प्रकारके सुन्दर चरित्र हैं; जिनका मुनियोंने अपने ग्रन्थोंमें अनेक प्रकारसे वर्णन किया है। ब्रह्माके एक दिनका नाम कल्प है और एक कल्पमें १४ मन्वन्तर और १४ इंद्र बीत जाते हैं। इकहत्तर चौकड़ी युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) का एक मन्वंतर होता है। सतयुग संख्या १७२८०००, त्रेतायुग १२९६०००, द्वापर ८६४०००, कलियुग ४३२००० इस प्रकार चौकड़ी चारों युगोंकी होती है। सब मिलकर ४३२००००, वर्ष हुए इस प्रकार एक मन्वंतरके ३०६७२०००० वर्ष होते हैं तथा ब्रह्माका एक दिन जिसको कल्प कहते हैं। उसको वर्ष ४२९४०८०००० चार अरब उन्तीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार होते हैं, इतने वर्षोंके उपरांत ब्रह्माका दिन समाप्त होकर प्रलय हो, जाती है, इतनी ही रात्रि होती हैं, अबकी सृष्टिको उत्पन्न हुए संवत् १९४६ तक इसमें १९६०८५२९९१ एक अरब छानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नौसौ इक्यानवे वर्ष हुए इसमें प्रभातकी संध्याके छः चौकड़ी युगके वर्ष २५९२०००० मिलनेसे १९८६७७२९९१ एक अरब अट्ठानवे करोड़ सरसठ लाख बहत्तर हजार नौसौ इक्यानवे वर्ष होते हैं, बाकी प्रलयमें छः चौकड़ी युगोंके वर्ष मिलाकर २३५९१४७००९ दो अरब पैंतीस करोड़ इक्यानवे लाख सैंतालीस हजार नौसौ वर्ष शेष रहे हैं दिन रातके वर्ष ८६४०००००००० संध्या संध्यांशके सहित आठ अरब चौंसठ करोड़ होते हैं, छः मन्वंतर बीत चुके हैं सातवां वर्तमान है, अट्ठाइस चौकड़ी युग बीत चुके हैं। यह अट्ठाइसवां कलियुग है जिस कलियुगके सं० १९४६ तक ४९९१ वर्ष बीत चुके हैं ॥७॥ ऐसा विचार कर सन्देह नहीं करना चाहिये और आदर तथा प्रेमसे कथा सुननी योग्य है और भी हेतु कहते हैं ॥८॥

दोहा-राम अनन्त अनन्तगुण, अमित कथा विस्तार ॥
सुनि आश्चर्य न मानिहहिं, जिनके विमल विचार ॥ ४४ ॥

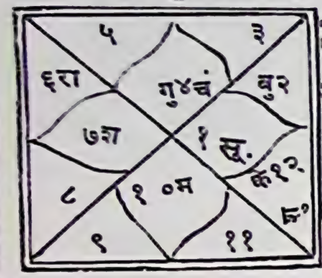
रामजी अनंत हैं अर्थात् उनका अन्त नहीं है और उनके गुण अपार हैं, इसी कारण कथाओंका भी अमित (बडा) विस्तार है, इसको सुनकर वे (बड़भागी) अचम्भा नहीं करेंगे जिनका विचार निर्मल है ॥ ४४ ॥

इहि विधि सब संशय करि दूरी ❀ शिर धरि गुरुपद पंकज धूरी ॥१॥
पुनि सबही विनवौं करि जोरी ❀ करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥२॥

इस प्रकार सब सन्देह दूर करके और गुरुके चरण कमलकी धूरि शिर पर धारण कर ॥१॥ और भी सबको हाथ जोड़कर विनती करता हूँ जिससे कथा करते कुछ दोष न लगे ॥ २ ॥

सादर शिवहिं नाय अब माथा ❀ वरणौं विशद राम गुणगाथा ॥३॥
संवत सोरहसौ इकतीसा ❀ करौं कथा हरिपद धरि सीसा ॥४॥

आदरसे अब शिवजीको माथा नवाकर श्रीरामचंद्रजीके उज्ज्वल गुणोंकी गाथा वर्णन करता हूँ ॥३॥ संवत् १६३१ में यह कथा भगवान्‌के चरणोंमें शिर धरकर वर्णन करता हूँ। रामायणके जन्मकी कुंडली पुनर्वसुका चतुर्थ चरण हितकारी नाम लोकप्रिय, सर्वमान्य फल मुक्तिदाता॥४॥



नौमी भौमवार मधुमासा ❀ अवधपुरी यह चरित प्रकाशा॥५॥
जेहिदिनरामजन्मश्रुतिगावहिं ❀ तीरथसकलतहांचलिआवहिं॥६॥

नवमी मंगलवार चैत्र महीनेमें अयोध्याजीमें इस चरित्रके बनानेका आरम्भ किया है ॥ ५ ॥ जिस दिन रामचन्द्रजीका जन्म वेद गाते हैं वहां सब तीर्थ आकर उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥

असुर नाग खग नर मुनि देवा ❀ आय करहिं रघुनायक सेवा ॥७॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना ❀ करहिं राम कल कीरतिगाना ॥८॥

असुर, नाग, खग, (पक्षी) मनुष्य, देवतादि आकर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करते हैं ॥ ७॥ वे चतुर जन्मका महा आनंद विधान करते हैं और रामजीकी सुन्दर बड़ाई गाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-मज्जहिं सज्जन वृन्द बहु, पावन सरयू नीर ॥
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर श्यामशरीर ॥ ४५ ॥

बहुतसे महात्मा सज्जन सरयूके पवित्र जलमें स्नान करते हैं और हृदयमें ध्यान धर श्रीरामचन्द्रजीका जप करते हैं जिनका सुन्दर श्याम शरीर है ॥ ४५ ॥

दरश परश मज्जन अरु पाना ❀ हरै पाप कह वेद पुराना ॥१॥
नदी पुनीतअमितमहिमा अति ❀ कहिनसकहिशारदा बिमलमति ॥२॥

दर्शनसे, छूनेसे, स्नान और जलपान करनेसे पाप हर लेती हैं, ऐसा वेद और पुराण कहते हैं यह सरयूकी बड़ाई है ॥ १ ॥ यह नदी बड़ी पवित्र और बड़ी महिमा वाली है, जिसको उज्ज्वल मतिवाली सरस्वती भी नहीं कह सकती ॥ "मन्वंतरसहस्रेषु काशीवासेन यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते" (पद्मपुराणे) ॥ २ ॥

रामधामदा पुरी सुहावनि ❀ लोकसमस्त विदित जगपावनि॥३॥
चार खान जग जीव अपारा ❀ अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥४॥

यह शोभायमानपुरी रामजीके धामकी देनेवाली है जो कि सब लोकोंमें प्रगट और जगत्‌को पवित्र करनेवाली है॥३॥जगत्‌के अपार जीव चार प्रकारके हैं(अंडज-पिंडज-जरायुज-स्वेदज) जिसका अयोध्यामें शरीर छूटता है वह फिर संसारमें नहीं आता अर्थात् मुक्त हो जाता है॥४॥

सब विधि पुरी मनोहर जानी ❀ सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥५॥
विमल यथाकर कीन्ह अरम्भा ❀ सुनत नशाय काम मद दम्भा ॥६॥

सब प्रकार पुरी को मनोहर और सर्वसिद्धि देनेवाली मंगलकी खान जानकर ॥ ५ ॥ उज्ज्वल कथाका प्रारंभ किया जिसके सुननेसे काम, मद, और दंभ मिट जाते हैं ॥ ६ ॥

रामचरित मानस यहि नामा ❀ सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥७॥
मन करि विषय अनल वनजरई ❀ होय सुखी जो इहि सर परई ॥८॥

इसका नाम रामचरितमानस है जिसे कानों से सुनतेही प्राणी विश्राम पाते हैं॥७॥ मनरूपी हस्ती विषयरूपी अग्निके वनमें जलता है, पर जो इस सरोवर में आ पड़े तो वह सुखी हो जाय॥८॥

रामचरित मानस मुनि भावन * विरचेउ शम्भु सुहावन पावन ॥९॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन * कलिकुचालकलिकलुषनशावन॥१०॥

मुनियोंको भावनेवाला शोभायमान पवित्र रामचरितमानस शिवजीने रचा है ॥ ९ ॥ जो तीन प्रकारके दोष—मन, वचन, कर्मके अथवा दैहिक, दैविक, भौतिक और दरिद्रताका नाश करनेवाला है कलियुगकी कुचाल तथा सब पापोंका नाशक है ॥ १० ॥

रचि महेश निज मानस राखा * पाय सुसमय शिवासन भाखा ॥११॥
ताते रामचरितमानस वर * धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ॥१२॥

शिवजीने इसको बनाकर अपने मनमें रखा, समय पाकर पार्वतीसे वर्णन किया ॥११॥ इस कारण शिवजीने हृदयमें विचार प्रसन्न होकर इसका सुन्दरनाम रामचरितमानस रखा॥१२॥

कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई * सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥१३॥

सोई सुखदेनेवाली शोभायमान कथा कहता हूँ; हे श्रेष्ठ महात्माओ! मन लगाकर आदरसे सुनो॥१३॥

दोहा—जस मानस जेहि विधि भयो, जग प्रचार जेहि हेतु ॥
अब सोइ कहौं प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥ ४६ ॥

यह मानस जिस प्रकार हुआ और जिस कारण इसका जगत्में प्रचार हुआ अब सोई सब कथा शिव-पार्वतीको स्मरण करके कहता हूँ ॥ ४६ ॥

शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी * रामचरित मानस कवि तुलसी ॥१॥
करहुँ मनोहर मति अनुहारी * सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥२॥

महादेवजीकी प्रसन्नता हृदयमें श्रेष्ठ मतिका प्रकाश हुआ जिससे कि रामचरितमानसके तुलसीदास कवि हुए ॥ १ ॥ उसे मतिके अनुसार तो सुन्दर वर्णन करता हूँ तथापि जो कहीं भूल चूक हो तो हे सज्जनो ! सावधानीसे सुनकर सुधार लीजिये ॥ २ ॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू * वेद पुराण उदधि घन साधू ॥३॥
वर्षहिं राम सुयश वर वारी * मधुर मनोहर मंगलकारी ॥४॥

अच्छी बुद्धि पृथ्वी है, हृदय गहरा स्थल है, वेद पुराण समुद्र और साधुजन बादल हैं। जैसे बादल सागरसे जल लाकर पृथ्वी पर बरसाते हैं और वह जल थलमें एकत्र होता है; इसी प्रकार महात्मा वेदपुराणोंसे भगवद्यश लाकर सुमति पर बरषाते हैं; वह यश हृदयमें एकत्र होता है । अथवा सुमति भूमि है हृदय गहराई है ॥३॥ रामका जो सुयशरूपी जल है उसको वे साधुरूप बादल बरसाते हैं, वह जल मीठा, मनहरण और मंगलका करनेवाला है॥४॥

लीला सगुण जो कहहिं बखानी * सोइ स्वच्छता करै मलहानी ॥५॥
प्रेम भक्ति जो वरणि न जाई * सोइ मधुरता सुशीतलताई ॥६॥

जो सगुण लीला बखानकर कहते हैं सोई मैल दूर करनेवाली इस जलकी स्वच्छता है॥५॥ प्रेमभक्ति जो कहनेमें नहीं आती वही इस जलकी मधुरता और सुन्दर शीतलता है ॥ ६ ॥

सो जल सुकृति शालि हित होई * राम भक्त जन जीवन सोई ॥७॥
मेधा महिगत सो जल पावन * सिमिटिश्रवणमगचलेउ सुहावन॥८॥

सो जल पुण्यात्मा धानरूप जो भक्त हैं उनका हितकारक है और वही राम भक्तजनोंका जीवन है॥७॥वह सुन्दर पवित्र जल बुद्धिरूप पृथ्वीमें प्राप्त हो सिमिट कर कानोंके मार्गको चला॥८॥

भरेउ सो मानस सुथल थिराना * सुखद शीत रुचि चारु चिराना॥९॥

सो रामयशरूपी जलसे सुन्दर मानस स्थल (हृदयमें) पूर्ण हुआ और स्थिर हो रुचि रूपी सुन्दर शरदऋतुको पाकर पुराना हो सुखदायी हुआ ॥ ९ ॥

दोहा–सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचेउ बुद्धि विचारि ॥
तेइ यहि पावन सुभग सुर घाट मनोहर चारि ॥ ४७ ॥

अत्यन्त सुन्दर जो चार श्रेष्ठ संवाद हैं (शिव पार्वतीका, काकभुशुण्डी गरुड़का, याज्ञवल्क्य भरद्वाजका और गोसाईंजी भक्तोंका) बुद्धिपूर्वक विचार कर रचे हैं वे ही इस पवित्र सुन्दर सरोवरके चार मनोहर घाट हैं ॥ ४७ ॥

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना * ज्ञान नयन निरखत मन माना॥१॥
रघुपति महिमा अगुण अबाधा * वरणब सोइ वर वारि अगाधा॥२॥

सात कांड इनकी सात सुन्दर सीढ़ियां हैं जो कि ज्ञान नेत्रोंके देखनेसे मनमें आती हैं॥१॥ रामचंद्रजीकी जो तीनों गुणोंसे परे रहित महिमा वर्णन करूँगा सोई इस उत्तम जलकी गहराई है।२।

रामसीय यश सलिल सुधासम * उपमा वीचि बिलास मनोरम ॥३॥
पुरइन सघन चारु चौपाई * युक्ति मंजु मणि सीप सुहाई ॥४॥

रामचन्द्रजीके तथा सीताजीके यशरूपी जलका स्वाद अमृतकी नाईं है और इसमें उपमानरूपी तरंगें उठती हैं जो मनको रमानेवाली आनन्द रूप हैं ॥ ३ ॥ सुन्दर चौपाई घनी पुरइनि हैं, मनोहर कविताकी युक्ति उज्ज्वल मोतियोंकी सीपी है ॥ ४ ॥

छन्द सोरठा सुन्दर दोहा * सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा ॥५॥
अर्थ अनूप सुभाव सुभासा * सोइ पराग मकरन्द सुवासा ॥६॥

छन्द, सोरठा, शोभायमान दोहा ये ही अनेक प्रकारके बहुरंगे सुन्दर कमलसमूह हैं (पुरइन बहुत और कमल थोड़े होते हैं इस कारण चौपाई पुरइन, सोरठा दोहा थोड़े होनेसे कमल)॥५॥ सुन्दर उपमा रहित अर्थ सुन्दर भाव सुन्दर भाषा सोई पराग, मकरंद (रस) और सुगंध है॥६॥

सुकृति पुंज मंजुल अलि माला * ज्ञान विराग विचार मराला ॥७॥
धुनि अवरेब कवित गुण जाती * मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥८॥

पुण्यात्माओंके समूह भौंरे हैं, ज्ञान, वैराग्य, विचार हंस हैं॥ ७ ॥ धुनि अवरेब गुण और जाति चार प्रकार के कवित्त मनोहर अनेक प्रकार की मछली हैं, धुनि पाठीन मच्छ सबसे बड़ा जलके भीतर अलक्ष्य रहता है अवरेब नाम मीन उलटके चलती है शिर पूछमें लगे और काव्य गुण चेल्हा मीन है चमक बड़ी और पृथक् रहती है और जाति सरहरी मछली है जो वृन्दकी वृन्द चलती है, इसी प्रकार कवित्तोंके गुणोंमें लगा लेना। दो तीन चार अक्षरके पदसे ध्वनि जहां कई अर्थ हों यथा–"बंदौं रामनाम रघुवरके" वा "सखर सकोमल मंजु" अवरेब अक्षर उलटकर अर्थ हों, यथा–"रामकथा कलि विटप कुठारी" सर्प समान चलनेवाली मछली यमक आदि गुण "भवभवविभव पराभवकारिणि" प्रसिद्ध अर्थ जाति काव्य है यथा–"मन जाहि राचों मिलहि सो वर सहज सुन्दर सांवरो" ॥ ८ ॥

धर्म अर्थ कामादिक चारी ❋ कहब ज्ञान विज्ञान बिचारी ॥९॥
नव रस जप तप योग विरागा ❋ ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥१०॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो चार फल हैं और ज्ञान, विज्ञानका विचार ॥ ९ ॥ नौ रस, जप, तप, योग, वैराग्य सब इस रम्य सरोवरके जलचर जीव हैं ॥ १० ॥

सुकृती नाम साधु गुण गाना ❋ ते विचित्र जल विहग समाना॥११॥
संत सभा चहुँदिशि अँबराई ❋ श्रद्धा ऋतु वसंत सम गाई॥१२॥

और जो पुण्यात्मा कर्मकांडी साधु हैं उनके नामगुणका जो गान है वही अनेक रंगके जल पक्षी हैं॥११॥ संतोंकी सभा चारों तरफ आमके बाग हैं और श्रद्धा वसंतऋतुके समान कही है ॥१२॥

भक्ति निरूपण विविध विधाना ❋ क्षमा दया द्रुम लता बिताना॥१३॥
संयम नियम फूल फल ज्ञाना ❋ हरिपद रति रस वेद बखाना॥१४॥

अनेक प्रकार भक्तिका विचार निश्चय, क्षमा और दया यह सब उन वृक्षोंपर बेलें फैली हुई हैं ॥ १३ ॥ संयम (विषयका त्याग) और नियम (सुकर्मका ग्रहण सोई फूल हैं। ज्ञान (अपने स्वरूपको यथावत् जानना) यही फल है और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी प्रीति रस है, ऐसा वेद कहते हैं ॥ १४ ॥

औरौ कथा अनेक प्रसंगा ❋ ते शुक पिक बहु बरन विहंगा॥१५॥

और भी प्रसंग पाकर जो अनेक कथाएं वर्णन की हैं वेही तोते कोकिल आदि बहुत रंगके पक्षी हैं ॥ १५ ॥

दोहा-पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुविहंग विहारु ॥
❋ माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥ ४८ ॥

प्रसन्नतासे शरीरका पुलकायमान होना फूलवाटिका है, श्रवण बाग है और श्रवण करने में अपनेको भूल जाना ही वन है उसमें सुखरूपी सुन्दर पक्षी विहार करता है, सुन्दर मन माली स्नेह जलसे नेत्र सींचनेको नेत्र अच्छे घड़े हैं ॥ ४८ ॥

जे गावहिं यहि चरित सँभारे ❋ ते यहि ताल चतुर रखवारे ॥१॥
सदा सुनहि सादर नरनारी ❋ तेइ सुरबर मानस अधिकारी ॥२॥

जो इस चरित्रको सम्भालकर गाते हैं वे इस तालाबके चतुर रखवाले हैं रक्षा यही-कि कहीं कोई उपमा अलंकार अशुद्ध न होने पावे; चतुर कहनेसे चारका बोध होता है ज्ञान, उपासना कर्म और दैन्य यह क्रमसे चार रखवाले हैं। शिव, कागभुशुण्ड, याज्ञवल्क्य, गोसाईंजी ॥१॥ जो नर नारी इसको आदरसे सदा सुनते हैं। वेही देवताओंमें श्रेष्ठ मानसरोवरके अधिकारी हैं॥२॥

अति खल जे विषयी बक कागा ❋ इहि सर निकट न जायँ अभागा॥३॥
शंबुक भेक सिवार समाना ❋ इहाँ न विषय कथा रस नाना॥४॥

अतिदुष्ट जो विषयी बगुले कौवे हैं वे अभागे इस तालाबके निकट नहीं जाने पाते; वे खल कौवे हैं जो कथाके समय बकते हैं और विषयी बगुले हैं जिनका मन तो मछली और मेघोंमें है किन्तु देखनेमें साधु बने बैठे हैं ॥ ३ ॥ शम्बुक (घोंघा), भेक (मेंढक) और सिवार छोटे-छोटे कीड़ोंके समान इसमें नाना रसोंकी विषय कथा नहीं है ॥ ४ ॥

तेहि कारण आवत हिय हारे * कामी काक बलाक बिचारे ॥५॥
आवत इहि सर अति कठिनाई * रामकृपा बिनु आइ न जाई ॥६॥

इसी कारण विचारे कामी कौवे, बगुले जिनका चारा इस सरोवरमें नहीं है हृदयमें हारकर यहां नहीं आते ॥५॥ इस सरोवर में आते हुए बड़ी कठिनता है रामकृपा विना आया नहीं जाता ॥ ६ ॥

कठिन कुसंग कुपंथ कराला * तिनके वचन व्याघ्र हरि व्याला ॥७॥
गृहकारज नाना जंजाला * तेइ अतिदुर्गम शैल विशाला ॥८॥

बड़े कठिन जो बुरे संग हैं वे ही तीक्ष्ण खोटे मार्ग हैं और उन्हीं लोगोंके वचन बाघ, सिंह और सर्प हैं ॥ ७ ॥ घरके जंजालके काम ही बड़े-बड़े दुर्गम विशाल पर्वत हैं ॥ ८ ॥

वन बहु विषम मोहमद माना * नदी कुतर्क भयंकर नाना ॥९॥

उस मार्गमें मोह, मद और अभिमानका बड़ा भीषण जङ्गल है, नाना प्रकारकी कुतर्कना भयंकर नदी है ॥ ९ ॥

दोहा—जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन कर साथ ॥
तिनकहँ मानसअगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ ॥ ४९ ॥

जो श्रद्धारूपी खर्चसे रहित हैं और सन्तोंका संग भी नहीं है तथा जिनको श्रीरामचन्द्रजी प्रिय नहीं हैं, उनको यह मानस अत्यन्त दुर्गम है ॥ ४९ ॥

जो करि कष्ट जाय पुनि कोई * जातहि नींद जुड़ाई होई ॥१॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा * गयउ न मज्जन पाव अभागा ॥२॥

फिर कष्ट करके कोई जाय भी तो जाते ही निद्रारूपी जूड़ी (शरदी) आ जाती है ॥ १ ॥ या मूर्खताका कठिन जाड़ा हृदयमें लगता है जिससे कि जाने पर भी अभागा स्नान करने नहीं पाता ॥ २ ॥

करि न जाय सर मज्जन पाना * फिरि आवै समेत अभिमाना ॥३॥
जो बहोरि कोउ पूछन आवा * सर निंदा करि ताहि सुनावा ॥४॥

सरोवरमें स्नान पान नहीं किया जाता, अभिमान समेत फिर आता है ॥३॥ जो कोई पूछने आया तो उसको सरोवरकी निंदा करके सुना दी कि अजी ! क्या है, कुछ कथा नहीं है ॥ ४ ॥

सकल विघ्न नहिं व्यापहिं तेहीं * राम कृपा करि चितवहिं जेहीं ॥५॥
सोइ सादर सर मज्जन करहीं * महाघोर त्रैताप न जरहीं ॥६॥

यह सब विघ्न उसको नहीं व्यापते जिसको श्रीरामचन्द्रजी कृपा दृष्टिसे देखते हैं ॥५॥ सोई आदर पूर्वक इस सरोवरमें मज्जन करते हैं और महाघोर जो तीनताप हैं दैहिक अर्थात् ज्वरादिक, दैविक अर्थात् अचानक वज्रपात आदि, भौतिक सर्प पशु आदि बाधाएँ हैं उनमें नहीं जलते ॥६॥

ते नर यह सर तजहिं न काऊ * जिनके रामचरण भल भाऊ ॥७॥
जो नहाय चह इहि सर भाई * सो सत्संग करौ मन लाई ॥८॥

वे मनुष्य इस सरोवरको कभी नहीं छोड़ेंगे जिनका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें भला भाव है ॥ ७ ॥ हे भाई ! जो इस सरोवरमें स्नान किया चाहो तो मन लगाकर सत्संग करो ॥ ८ ॥

अस मानस मानस चखु चाही * भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ॥९॥

भयो हृदय आनंद उछाहू ❋ उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥१०॥

ऐसा मानसके देखनेको हृदयके नेत्र चाहिये, इन्हीं नेत्रोंसे देखके कवि बुद्धि स्नान कर विमल अर्थात् शुद्ध हुई ॥९॥ हृदयमें आनंद और प्रसन्नता हुई, प्रेमके प्रमोदकी धारा उमड़ी ॥१०॥

चली सुभग कविता सरितासों ❋ रामविमलयशजल भरितासों ॥११॥
सरजू नाम सुमंगल मूला ❋ लोक वेद मत मंजुल कूला ॥१२॥

उस मानसमें सुन्दर कविता रूपी नदी चली; जिसमें रामयशका उज्ज्वल जल भरा है ॥ ११ ॥ इस कवितारूपी नदीका नाम सुमंगल मूल सरयू है; लोक और वेदका मत दोनों मनोहर किनारे हैं ॥ १२ ॥

नदी पुनीत सुमानस नन्दिनि ❋ कलिमलतटतरुमूलनिकंदिनि ॥१३॥

यह सुन्दर मानस नदी पवित्र (सरयू) नदी है कलिके पाप मानो तट के वृक्ष हैं उनको जड़से उखाड़नेवाली है ॥ १३ ॥

दोहा—श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहु कूल ॥
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल ॥ ५० ॥

मुक्त, मुमुक्षु, विषयी तीन प्रकार के श्रोताओंके समुदाय पुर, ग्राम नगर दोनों किनारे हैं उसमें विषयी जिनकी बहुलता है—नगर हैं, उनसे कम मुमुक्षु पुर हैं और बहुत थोड़े जो मुक्त हैं वह ग्राम हैं और यह कवितारूपी नदीके दोनों किनारे बसे हैं, उनमेंसे अनुपम जो संतोंकी सभा है वही सकल शुभ मंगलकी मूल श्रीरघुनाथजीकी जन्मभूमि अयोध्या है (पांचसे सौ घर तक पुर हैं, हजारतक ग्राम फिर हजारसे आगे नगर संज्ञा है) ॥ ५० ॥

रामभक्ति सुरसरि तहँ जाई ❋ मिली सुकीरति सरयु सुहाई ॥१॥
सानुज राम समर यश पावन ❋ मिलेउ महानद शोण शुहावन ॥२॥

रामभक्तिरूपी गंगाजीमें जाकर यह शोभायमान बड़ाई योग्य सरयू मिली है ॥१॥ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र शुद्ध यश है सोई शोणभद्र महानद मिला है ॥ २ ॥

युग बिच भक्ति देवधुनि धारा ❋ सोहति सहित सुविरति विचारा ॥३॥
त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी ❋ रामस्वरूप सिंधु समुहानी ॥४॥

इन दोनोंके बीचमें भक्तिरूपी गंगा की धारा शोभित होती है, (विरति) विशेष प्रीतिरूप सरयू और विचाररूप शोणभद्र सहित शोभित है ॥ ३ ॥ तीन प्रकारके ताप दूर करनेको तीन मुँहवाली होकर रामचन्द्रके स्वरूप रूपी समुद्रको चली ॥ ४ ॥

मानस मूल मिली सुरसरिही ❋ सुनत सुजन मन पावन करिही ॥५॥
बिच बिच कथा विचित्र विभागा ❋ जनु सरि तीर तीर वन बागा ॥६॥

एक तो इसकी जड़ मानस, दूसरे इसमें गंगाजी मिली जो सुनते ही सुजनके मनको पवित्र कर देती है ॥५॥ इसके बीच-बीचमें जो और पवित्र कथा हैं वे मानो नदीके किनारे वनबाग हैं ॥६॥

उमा महेश विवाह बराती ❋ ते जलचर अगणित बहुभाँती ॥७॥
रघुवर जन्म अनन्द बधाई ❋ भँवर तरंग मनोहरताई ॥८॥

शिव पार्वतीके विवाह के जो बराती हैं वे इस नदीके अनगिनत भांतिके जलचर हैं ॥ ७ ॥ रामचंद्रजीके जन्मकी जो आनंद बधाई है सोई इस नदीके भँवर और मनोहर तरंग हैं ॥८॥

दोहा-बालचरित चहुँ बन्धुके, वनज विपुल बहुरंग ॥
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर वारिविहंग ॥ ५१ ॥

चारों भाइयोंके जो बालचरित्र हैं सोई बहुत रंगके कमल हैं, राजा, रानी और कुटुम्बी-जनोंके जो पुण्य हैं, वह सब भ्रमर और जलक पक्षी हैं ॥ ५१ ॥

सीय स्वयंबर कथा सुहाई * सरितसुहावनि सो छबिछाई ॥१॥
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका * केवट कुशल उतर सविवेका ॥२॥

जानकीजीके स्वयँबरकी शोभायमान कथा इस नदीकी सुन्दर छबि है ॥ १ ॥ इस कविता रूपी नदीमें जो छल रहित अनेक प्रश्न हैं वे ही नाव हैं, विवेक सहित जो उत्तर हैं वेही चतुर केवट हैं ॥ २ ॥

सुनि अनुकथन परस्पर होई * पथिक समाज सोह सरि सोई ॥३॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी * घाट सुबद्ध राम वर बानी ॥४॥

कथा सुनकर जो पीछे वार्ता होती है वही नदीके किनारेके पथिक (मार्ग चलनेवाले) समाज शोभित हैं ॥ ३ ॥ परशुरामका क्रोध घोर धार है और जो श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर वाणी है सोई दृढ़ मनोहर घाट है ॥ ४ ॥

सानुज राम विवाह उछाहू * सो शुभ उमग सुखद सब काहू॥५॥
कहत सुनत हरषहि पुलकाहीं * ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥६॥

भाइयों सहित जो श्रीरामचंद्रजीके विवाहका उत्सव है वही सबकी सुखदायी नदीकी मङ्गलकारी तरंग है ॥ ५ ॥ कह सुनकर जो प्रसन्न हो पुलकायमान होते हैं वे ही पुण्यात्मा मनमें प्रसन्न हो स्नान करते हैं ॥ ६ ॥

राम तिलक हित मंगल साजा * पर्व योग जनु जुरेउ समाजा ॥७॥
काई कुमति केकयी केरी * परी जासु फल विपति घनेरी ॥८॥

श्रीरामचंद्रजीके हेतु जो मङ्गल सजाना है सोई मानो पर्वयोग पर समाज जुड़ा है ॥७॥ केकयीकी कुमति इस कवितारूपी सरयू नदीकी काई है, जिसके फलसे बड़ी विपत्ति पड़ी॥८॥

दोहा-शमन अमित उत्पात सब, भरत चरित जप याग ॥
कलिअघखल अवगुण कथन, ते जलमल बककाग ॥ ५२ ॥

भरतजीके चरित्र जप यज्ञरूपी हैं जो बेपरिमाण सब उत्पातोंको शांत करने वाले हैं और कलिके पाप तथा खलोंके अवगुणोंका कथन ही जलके मैल बगले और कौवे हैं ॥ ५२ ॥

कीरति सरित छहों ऋतु रूरी * समय सुहावन पावन भूरी ॥१॥
हिम हिमशैल सुता शिव व्याहू * शिशिर सुखद प्रभु जन्म उछाहू॥२॥

यह कीर्तिरूपी नदी छहों ऋतुओंमें भरी रहती है और समयपर शोभा पवित्रता अधिक हो जाती है ॥ १ ॥ शिवपार्वतीजीका व्याह हिम ऋतु है, श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उछाव शिशिर ऋतु है, हिमऋतुमें शिवजीने त्रिलोकी कँपा दी, यथा-"भयउ कोप कम्पेउ त्रयलोका" ॥२॥

वरणब राम-विवाह समाजू * सो मुद मंगलमय ऋतुराजू ॥३॥
ग्रीषम दुसह राम वन गवनू * पंथ कथा खर आतप पवनू ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका समाज आनंद मंगलयुक्त वसंत ऋतु है॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीका वनगमन कठिन ग्रीष्म ऋतु है; मार्गकी कथा तीक्ष्ण धूप और पवन है ॥ ४ ॥

वर्षा घोर निशाचर रारी * सुर कुल शालि सुमंगलकारी ॥५॥
रामराज सुख विनय बड़ाई * विशद सुखद सोइ शरद सुहाई ॥६॥

राक्षसोंकी बड़ी लड़ाई वर्षा ऋतु है जो कि देवकुलरूपी धानोंको सुन्दर मङ्गल करनेवाली है॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीके राज्यका सुख, नीति बड़ाई ही, अत्यन्त सुखदाता सुन्दर शरद ऋतु है॥६॥

सतीशिरोमणि सियगुण गाथा * सोइ गुण अमल अनूपम पाथा ॥७॥
भरत स्वभाव सुशीतलताई * सदा एकरस वरणि न जाई ॥८॥

सती स्त्रियोंकी शिरमौर जानकीजी की कथा इस जलकी निर्मलता और उपमारहित गुण है ॥ ७ ॥ भरतजीका स्वभाव ही जलकी सुन्दर शीतलता है जो वर्णी नहीं जाती; सदा एकरस रहती है ॥ ८ ॥

दोहा—अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास ॥
भायप भलि चहुँ बन्धुकी, जल माधुरी सुवास ॥ ५३ ॥

देखना, बोलना, मिलना, परस्पर हँसना, चारों भाईयोंका सुन्दर भाईपन इस जलकी मधुरता और सुगन्ध है ॥ ५३ ॥

आरति विनय दीनता मोरी * लघुता ललित सुवारि न खोरी ॥१॥
अद्भुत सलिल सुनत गुणकारी * आस पियास मनोमल हारी ॥२॥

मेरी व्याकुलता, विनय और दीनता इस जलकी हलकाई है सो ललित अर्थात् गुण और शोभा है दोष नहीं है ॥१॥ यह जल ऐसा अद्भुत है कि सुनने से गुण करता है और आशारूपी प्यासका कारण जो मनोमल है उसे हर लेता है ॥ २ ॥

राम सुप्रेमहिं पोषत प्रानी * हरत सकल कलिकलुष गलानी ॥३॥
भव श्रम शोषक तोषक तोषा * शमन दुरित दुख दारिद दोषा ॥४॥

यह पानी श्रीरामजीके प्रेम को पुष्ट करता है और सब कलिके पापकी ग्लानि हरता है ॥ ३ ॥ जो संसारकी वासनाका रोगी जन्म मरणरूपी भव श्रमसे थका हुआ है वैसे उसके श्रमको यह जल शोष लेता है, और जैसे रोगीको भोजनसे संतुष्टता होती है वैसे ही भव-रोगीको सांसारिक व्यवहारमें संतोष देता है पुष्ट कर देता है और दुरित अर्थात् अपथ्यकी चाह उससे जो होती है तथा दोष, दरिद्र; दुःख, इन सबके दोष हर लेता है ॥ ४ ॥

काम क्रोध मद मोह नशावन * विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥५॥
सादर मज्जन पान कियेते * मिटहि पाप परिताप हियेते ॥६॥

काम, क्रोध, मद, मोहका नाश करनेवाला उज्ज्वल ज्ञान वैराग्यका बढ़ाने वाला है ॥ ५ ॥ आदर प्रेमसे स्नान पान करने पर पाप और दुःख हृदय से मिट जाते हैं ॥ ६ ॥

जिन्ह यहि वारि न मानस धोये * ते कायर कलिकाल बिगोये ॥७॥
तृषित निरखि रबिकर भवबारी * फिरहिं मृगा जिमि जीव दुखारी॥८॥

जिन्होंने इस जलसे अपने मानसको नहीं धोया, उन कायरों को कलिकाल रोगने नष्ट कर दिया है, कायर वे हैं जो जानकर अन्याय करते हैं॥७॥जैसे प्यासे मृग सूर्यकी किरण पड़नेसे रेतमें जल जानकर भटकते फिरते हैं ऐसे ही भटकते-भटकते वे कायर दुःखी होंगे ॥ ८ ॥

दोहा–मति अनुहारि सुवारि गुण, गुणगण मन अन्हवाय ॥
सुमिरि भवानी शंकरहि, कह कवि कथा सुहाय ॥ ५४ ॥

मतिके अनुसार सुन्दर गुणयुक्त जलमें गुणसमूहयुक्त मनको स्नान कराके शिव पार्वतीको स्मरण कर कवि सुन्दर कथा प्रारम्भ करते हैं ॥ ५४ ॥

दोहा–अब रघुपति पदपंकरुह, हिय धरि पाय प्रसाद ॥
कहौं युगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद ॥ ५५ ॥

अब रामचन्द्रजीके चरण कमल हृदयमें धारण कर और उनकी प्रसन्नता पाकर दोनों मुनिश्रेष्ठोंके मिलने का सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ ॥ ५५ ॥

दोहा–भरद्वाज जिमि प्रश्न किय, याज्ञवल्क्य मुनि पाय ॥
प्रथम मुख्य संवाद सोइ, कहिहौं हेतु बुझाय ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार भरद्वाज ऋषिने याज्ञवल्क्य मुनिको पाकर प्रश्न किया प्रथम वही मुख्य संवाद कारण सहित कहता हूँ (यह दोहा क्षेपक है) ॥ ५६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने बालकांडान्तर्गत विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसादजो मिश्रकृत-व्याख्यायां प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

❋ अथ कथा प्रारम्भ ❋

दोहा–यहि दूजे विश्राममें, पार्वती-शिव ब्याह ॥
वर्णहुँ प्रेम समेत जन, दायक अमित उछाह ॥ २ ॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा ❋ जिनहिं रामपद अति अनुरागा ॥१॥
तापस सम दम दया निधाना ❋ परमारथ पथ परम सुजाना ॥२॥

भरद्वाज मुनि प्रयाग में बसते हैं जिनका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अधिक प्रेम है ॥१॥ तपस्वी, शांतस्वभाव, इन्द्रियजित, दयाके घर और पारलौकिक मार्गमें परम चतुर हैं ॥२॥

माघ मकरगत रवि जब होई ❋ तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥३॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेणी ❋ सादर मज्जहिं सकल त्रिवेणी ॥४॥

माघके महीनेमें मकरकी संक्रांति होती है तो उस समय सब कोई तीर्थराज (प्रयाग) में स्नानको आते हैं ॥ ३ ॥ देवता, राक्षस, किन्नर और मनुष्योंके झुण्ड सभी आदरपूर्वक त्रिवेणीमें स्नान करते हैं ॥ ४ ॥

पूजहिं माधव पद जलजाता ❋ परसि अछयवट हर्षित गाता ॥५॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन ❋ परम रम्य मुनिवर मनभावन ॥६॥

वेणीमाधवके चरणकमलका पूजन करते हैं और प्रसन्नचित होकर अक्षयवटका स्पर्श करते हैं ॥ ५ ॥ तहां भरद्वाज का पवित्र आश्रम है जो कि परम मनोहर और मुनी जनोंके मनको रमानेवाला है ॥ ६ ॥

तहाँ होय मुनि ऋषय समाजा ❋ जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥७॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा ❋ कहहिं परस्पर हरिगुण गाहा ॥८॥

तहां ऋषि मुनियोंका समाज होता है जो कि तीर्थराज (प्रयाग) मे स्नान करने जाते हैं ॥ ७ ॥ प्रातःकाल प्रसन्नतासे स्नान करते हैं और परस्पर भगवान्‌के गुण गाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–ब्रह्म निरूपण धर्मविधि, वर्णहिं तत्त्वविभाग ॥
कहहिं भक्ति भगवन्तकी, संयुत ज्ञान विराग ॥ ५७ ॥

(ब्रह्मनिरूपण) वेदान्त, (धर्मविधि) कर्मकांडमीमांसा, (तत्वविभाग) सांख्यशास्त्र, (भगवान्‌की भक्ति) उपासना ज्ञान-वैराग्ययुक्त वर्णन करते हैं ॥ ५७ ॥

इहि प्रकार भरि माघ नहाहीं * पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥१॥
प्रति संवत अस होय अनन्दा * मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा ॥२॥

इस प्रकार माघभर स्नान करते हैं फिर सब अपने-अपने आश्रमको जाते हैं ॥ १ ॥ प्रतिवर्ष ऐसा ही आनंद होता है; मकर स्नान कर मुनि समूह चले जाते हैं ॥ २ ॥

एक बार भरि मकर नहाये * सब मुनीश आश्रमन सिधाये ॥३॥
याज्ञवल्क्य मुनि परम विवेकी * भरद्वाज राखेउ पद टेकी ॥४॥

एक समय मकरभर स्नानकर मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमको गये ॥ ३ ॥ उनमें एक याज्ञवल्क्य मुनि बड़े ज्ञानी थे, उनको भरद्वाजने चरणोंमें गिरकर टिकाया ॥ ४ ॥

सादर चरण सरोज पखारे * अति पुनीत आसन बैठारे ॥५॥
करि पूजा मुनि सुयश बखानी * बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥६॥

आदर सहित चरणकमल धोकर अत्यन्त पवित्र आसन पर बैठाया ॥ ५ ॥ फिर पूजाकर मुनिकी बड़ी प्रशंसा करके अत्यन्त पवित्र कोमल वाणी बोले ॥ ६ ॥

नाथ एक संशय बड़ मोरे * करतल वेद तत्त्व सब तोरे ॥७॥
कहत मोहिं लागत भय लाजा * जौ न कहौं बड़ होय अकाजा ॥८॥

स्वामिन्! मुझे एक बड़ा सन्देह है और वेदका तत्व सब तुम्हारे हाथमें है ॥ ७ ॥ मुझे उसके कहनेमें डर और लज्जा लगती है, जो न कहूँ तो बड़ा अकाज होगा भय इस हेतुसे कि यह न जाने कि हमारी परीक्षा लेते हैं और लाज यह कि बूढ़े होकर इतना भी नहीं जानते ॥८॥

दोहा–संत कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण मुनि गाव ॥
होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव ॥ ५८ ॥

हे प्रभो! सन्त ऐसी नीति कहते हैं और वेद पुराण तथा मुनि भी गाते हैं कि गुरुसे छिपाव करने पर हृदयमें उज्ज्वल ज्ञान नहीं होता ॥ ५८ ॥

अस विचारि प्रगटौं निज मोहू * हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥१॥
राम नामकर अमित प्रभावा * सन्त पुराण उपनिषद गावा ॥२॥

ऐसे विचारकर मैं अपने अज्ञानको आपसे प्रकट करता हूँ, आप दासके ऊपर कृपा कर उसे दूर कीजिये ॥१॥ रामके नामका बड़ा प्रभाव संत, पुराण और उपनिषदोंने गाया है ॥२॥

संतत जपत शंभु अविनाशी * शिव भगवान ज्ञानगुण राशी ॥३॥
आकर चार जीव जग अहहीं * काशी मरत परमपद लहहीं ॥४॥

जिसको अविनाशी कल्याणस्वरूप शिवजी भगवान् जो ज्ञान और गुणोंके ढेर हैं सदा जपते हैं ॥ ३ ॥ चार खानिके जीव जो संसारमें हैं सो काशीमें मरकर परमपदके अधिकारी उसी नामके प्रभावसे होते हैं ॥ ४ ॥

सोपि राम-महिमा मुनिराया ❀ शिव उपदेश करत करि दाया ॥५॥
राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं ❀ कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं ॥६॥

सो श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा है, हे मुनिराज ! जिसको दया करके शिवजी उपदेश करते हैं ॥५॥ वे राम कौन हैं ? स्वामी ! तुमसे पूछता हूँ, हे दया निधान ! समझाकर कहिये ॥६॥

एक राम अवधेश कुमारा ❀ तिनकर चरित विदित संसारा ॥७॥
नारि विरह दुख सहेउ अपारा ❀ भयउ रोष रण रावण मारा ॥८॥

एक राम तो अवधेश (दशरथके) पुत्र थे जिनका चरित्र सब संसार जानता है ॥ ७ ॥ स्त्रीके वियोगमें अपार दुःख सहा और जब क्रोध हुआ तो युद्धमें रावणको मारा ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि ॥
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि ॥ ५९ ॥

हे प्रभो ! सोई राम (परमात्मा) हैं या और कोई हैं जिनको शिवजी जपते हैं तुम सत्यके धाम सर्वज्ञ हो, ज्ञानसे विचार कर कहो ॥ ५९ ॥

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी ❀ कहौ सो कथा नाथ विस्तारी ॥१॥
याज्ञवल्क्य बोले मुसकाई ❀ तुमहिं विदित रघुपति प्रभुताई ॥२॥

जैसे मेरा भारी संदेह और अज्ञान मिटे सो कथा हे नाथ ! विस्तार सहित कहिये ॥१॥ यह वचन याज्ञवल्क्य सुनकर हँसते हुए बोले कि तुमको श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई प्रगट है॥२॥

राम भक्त तुम मन क्रम बानी ❀ चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥३॥
चाहहु सुनै राम-गुन गूढ़ा ❀ कीन्हेउ प्रश्न मनहु अतिमूढ़ा ॥४॥

तुम मन, वचन,कर्मसे श्रीरामचन्द्रके भक्त हो,मैंने तुम्हारी चतुराई जानी॥३॥तुम श्रीरामचन्द्रजीके गंभीर गुण सुनना चाहते हो और प्रश्न ऐसे किया है जैसे कोई महामूर्ख हो ॥४॥

तात सुनहु सादर मन लाई ❀ कहौं रामकी कथा सुहाई ॥५॥
महामोह महिषेश विशाला ❀ राम कथा कालिका कराला ॥६॥

हे मित्र ! मन लगाकर आदरसे सुनो, श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर कथा वर्णन करता हूँ ॥५॥ अत्यन्त अज्ञान एक भयंकर महिषासुर है, उनके मारनेको रामजीकी कथा कराल कालिका अर्थात् दुर्गा देवी है ॥ ६ ॥

राम कथा शशि-किरण समाना ❀ संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥७॥
ऐसे संशय कीन्ह भवानी ❀ महादेव तब कहा बखानी ॥८॥

यह राम कथा चन्द्रमाकी किरणोंके समान है, जिसको संत चकोर पान करते हैं ॥ ७ ॥ ऐसे ही संदेह पार्वतीने किया था, तब महादेवजीने बखान कर कहा था ॥ ८ ॥

दोहा-कहौं सो मति अनुहार अब, उमा शंभु संवाद ॥
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटहि विषाद ॥६०॥

सो अब मतिके अनुसार शिव पार्वतीका संवाद वर्णन करता हूँ, जिस समय जिस कारणसे हुआ सो हे मुनि ! श्रवणसे दुःख मिट जायँगे ॥ ६० ॥

एक बार त्रेता युग माहीं ❋ शंभु गये कुम्भज ऋषिपाहीं ॥१॥
संग सती जगजननि भवानी ❋ पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी ॥२॥

एक समय त्रेता युगमें शिवजी अगस्त्यजीके पास गये ॥ १ ॥ संगमें दक्षप्रजापतिकी कन्या सती जगकी माता भवानी थीं ऋषिने संसारके ईश्वर जानकर शिवजीकी पूजाकी ॥२॥

राम कथा मुनिवर्य बखानी ❋ सुनी महेश परमसुख मानी ॥३॥
ऋषि पूछी हरि-भक्ति सुहाई ❋ कही शंभु अधिकारी पाई ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा मुनिने वर्णनकी जिसको शिवजीने परमसुख मानकर सुना ॥ ३ ॥ तब ऋषिने शिवजीसे श्रीहरिकी सुन्दर भक्तिको पूछा और शिवजीने अधिकारी पाकर वर्णन किया ॥ ४ ॥

कहत सुनत रघुपतिगुण-गाथा ❋ कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥५॥
मुनिसन बिदा माँगि त्रिपुरारी ❋ चले भवन सँग दक्षकुमारी ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणानुवाद कहते-सुनते कुछ दिन शिवजी वहां रहे ॥ ५ ॥ मुनिसे बिदा मांगकर त्रिपुरासुरके वैरी महादेवजी घरको चले; संगमें दक्षकी कन्या सती थीं ॥ ६ ॥

तेहि अवसर भंजन महिभारा ❋ हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा ॥७॥
पिता वचन तजि राज उदासी ❋ दंडक वन विचरत अविनाशी ॥८॥

उसी समय पृथ्वीका भार दूर करनेको भगवान् श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था ॥ ७ ॥ पिताके वचन मान राज्य त्यागकर उदासी हो अविनाशी श्रीरामचन्द्रजी दंडकवनमें विचरते थे ॥ ८ ॥

दोहा-हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होय ॥
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गये जान सब कोय ॥ ६१ ॥

शिवजी मन में विचारते जाते हैं कि किस प्रकारसे दर्शन हो ? क्योंकि प्रभुने गुप्तरूप से अवतार लिया है और मेरे जानेसे सब कोई जान जायँगे कि, ये ब्रह्म हैं ॥ ६१ ॥

सोरठा-शंकर मन अति क्षोभ, सती न जानहिं मर्म सोइ ॥
तुलसी दर्शन लोभ, मन डर लोचन लालची ॥ ११ ॥

शिवजीके मनमें बड़ा क्षोभ है, दर्शन करनेको अन्तःकरण चलायमान हुआ है परंतु मन इस कारणसे डरता है कि कोई जान न ले, नेत्र दर्शनके लालची हैं, सती इस भेदको नहीं जानतीं॥११॥

रावण मरण मनुजकर जाँचा ❋ प्रभु विधिवचन कीन्ह चह साँचा॥१॥
जौं नहिं जाउँ रहै पछतावा ❋ करत विचार न बनत बनावा॥२॥

रावणने अपना मरना मनुष्यके हाथ मांगा था, इस कारण प्रभु ब्रह्माके वचन सत्य करना चाहते हैं॥ १॥जो नहीं जाऊँ तो पछतावा बना रहेगा, विचार करते हैं पर बनाव नहीं बनता ॥२॥

यहि विधि भये शोचवश ईशा ❋ ताही समय जाय दशशीशा ॥३॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा ❋ भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा ॥४॥

इस प्रकार शिवजी विचार करते ही थे कि उसी समय रावण गया ॥ ३ ॥ उस नीचने मारीचको साथ लिया जो कपटका हरिण बन गया ॥ ४ ॥

करि छल मूढ हरी वैदेही ❀ प्रभु प्रभाव तस विदित न तेही ॥५॥
मृग वधि बन्धुसहित प्रभु आये ❀ आश्रम देखि नयन जल छाये ॥६॥

मूर्खने छल करके जानकी हरी, श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा वह मूर्ख नहीं जानता है ॥ ५ ॥ मारीचको मारकर भाई सहित रामचन्द्रजी फिर आये और आश्रमको देखकर नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ६ ॥

विरह-विकल नर इव रघुराई ❀ खोजत विपिन फिरत दोउ भाई॥७॥
कबहूँ योग वियोग न जाके ❀ देखा प्रगट दुसह दुख ताके ॥८॥

जानकीजीके वियोगमें श्रीरामचंद्रजी मनुष्योंकी नाई व्याकुल हुए फिर दोनों भाई वनमें ढूँढते हुए फिरने लगे ॥ ७ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीको कभी (जानकीजीके) योगका वियोग नहीं उनमें यह प्रकट असह्य दुःख देखा (यह लीला मात्र है) ॥ ८ ॥

दोहा--अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान ॥
ते मतिमन्द जे मोहवश, हृदय धरहिं कछु आन ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र अति विचित्र हैं उनको परम चतुर ही जानते हैं, (विचित्र) अनेक रंगोंके तपस्वीवेष शांतरस उज्ज्वल है, धनुष बाण धरे वीररस लाल है, प्रिया संगमें लिये शृंगाररस श्याम है और मारीच बध रौद्ररस काला है, जानकीका विरह करुणारस पीला है, विरहसे विकल होना बीभत्स खाकी रंग है ऐसे श्रीरामचंद्रजीके चरित्रोंको परम चतुर शिवजी जानते हैं वे बड़े मतिहीन हैं जो अज्ञानके वश होकर हृदयमें कुछ और धरते हैं ॥ ६२ ॥

शम्भु समय तेहि रामहिं देखा ❀ हिय उपजा अतिहरख बिसेखा ॥१॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी ❀ कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥२॥

शिवजीने उस समय श्रीरामचन्द्रजीको देखा तो हृदयमें बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ छबिके समुद्रको देखा किंतु बुरा समय विचारकर कुछ चिन्हारी नहीं की (छबिसमुद्र इस कारण कहा कि जिनको देखकर सतीकी मति डोल गयी ! कुसमयका भाव यह है कि, रामचन्द्रजीके बाणोंके सम्मुख इस समय मेघनाद, रावणादि आ पड़े हैं सो शिवजी विचारते हैं कि हमारे जानेसे कहीं वे भाग न जाँय) ॥ २ ॥

जय सच्चिदानन्द जगपावन ❀ अस कहि चलेउ मनोजनशावन॥३॥
चले जात शिव सती समेता ❀ पुनि पुनि पुलकित कृपानिकेता ॥४॥

हे प्रभु ! आपकी जय हो ! आप सत् (समीचीन एक रस रहने वाले), चित्त प्रकाश चैतन्य, आनंदरूप हो जगपावन अर्थात् यह चरित्र जगत्के पवित्र करनेके हेतु करते हो, ऐसा कहकर कामदेवके मारनेवाले शिवजी चले ॥ ३ ॥ शिवजी सती समेत चले जाते हैं और कृपासागर वारंवार पुलकायमान होते हैं ॥ ४ ॥

सती सो दशा शम्भुकी देखी ❀ उर उपजा सन्देह बिसेखी ॥५॥
शंकर जगतवंद्य जगदीशा ❀ सुरनर मुनि सब नावत शीशा ॥६॥

सतीने जब यह दशा शिवजीकी देखी तो हृदयमें बड़ा सन्देह उपजा ॥ ५ ॥ पहले प्रणाम करनेसे ही सतीको सन्देह हुआ किंतु अब पुलकित देख विशेष सन्देह कह कहने लगीं कि शिवजी जगत्के नमस्कार करने योग्य हैं क्योंकि इनको सुर नर मुनि सब शिर नवाते हैं ॥६॥

तिन नृप-सुतहिं कीन्ह परणामा ❋ कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥७॥
भये मगन छबि तासु विलोकी ❋ अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥८॥

उन शिवजीने राज पुत्रोंको सच्चिदानन्द परमधाम कहकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ उनकी छबि देखकर मग्न हो रहे हैं अब भी प्रीति हृदयमें रोकनेसे नहीं रुकती ॥ ८ ॥

दोहा-ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद ॥
सो कि देह धरि होय नर, जाहि न जानत वेद ॥६३॥

जो ब्रह्म ब्रह्माण्ड व्यापक, विरज, (संसार रोग रहित-मायारहित) अजय अर्थात् जन्म-और कलासे रहित (जो घटता बढ़ता नहीं), अनीह (इच्छासे रहित) अभेद (जिसका भेद कोई नहीं जानता) वह देह धरके क्यों मनुष्य होगा ? कि जिसको वेद भी नहीं जानते ॥ ६३ ॥

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी ❋ सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी ॥१॥
खोजत सो कि अज्ञ इव नारी ❋ ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी ॥२॥

और जो विष्णु भगवान् देवताओंके हेतु शरीर धारण करते तो ऐसे सर्वज्ञ होते जैसे मेरे स्वामी त्रिपुरारी हैं ॥ १ ॥ वे क्या अज्ञानियोंकी नाईं अपने स्त्रीको ढूंढ़ते फिरते ? लक्ष्मीपति तो ज्ञानके स्थान और राक्षसोंके मारनेवाले (सर्वत्र) हैं ॥ २ ॥

शम्भु गिरा पुनि मृषा न होई ❋ शिव सर्वज्ञ जान सब कोई ॥३॥
अस संशय मन भयउ अपारा ❋ होय न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥४॥

फिर शिवजीकी वाणी भी झूठी नहीं हो सकती, क्योंकि शिवजी सर्वज्ञ हैं ऐसा सब कोई जानते हैं ॥ ३ ॥ ऐसा संदेह मनमें बहुत हुआ हृदयमें ज्ञानका प्रचार नहीं होता है ॥ ४ ॥

यद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी ❋ हर अन्तर्यामी सब जानी ॥५॥
सुनहु सती तव नारि स्वभाऊ ❋ संशय अस न धरौ मन काऊ ॥६॥

यद्यपि यह बात सतीने प्रगट नहीं कही पर अन्तर्यामी शिवजीने सब जानली (और बोले) ॥५॥ सुनो सती ! तुम्हारा स्त्रियोंका स्वभाव है; ऐसा सन्देह कभी मनमें नहीं करना ॥ ६ ॥

जासु कथा कुंभज ऋषि गाई ❋ भक्ति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥७॥
सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा ❋ सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥८॥

जिसकी कथा अगस्त्यजीने कही और जिसकी भक्ति मुनिको मैंने सुनायी॥७॥ वे ही ये मेरे परमपूज्य इष्टदेव महाराज श्रीरामचंद्रजी हैं, जिनकी बड़े धीर धारी मुनि सदा सेवा करते हैं ॥८॥

छन्द-मुनिधीर योगी सिद्ध सन्तत, विमल मन जेहि ध्यावहीं ॥
कहि नेति निगम पुराण आगम, जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन, निकायपति मायाधनी ॥
अवतरेउ अपने भक्तहित, निजतन्त्र नित रघुकुलमनी ॥२॥

मुनि, धीर, योगी और सिद्ध निरंतर उज्ज्वल मनसे जिनका ध्यान करते हैं और वेद शास्त्र (न इति) 'इस प्रकार नहीं' ऐसा कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, वे ये राम सबमें व्यापक ईश्वर सब संसारके पति, मायाके धनी इच्छासे भक्तोंके हेतु अवतार धारण करते हैं, रघुकुलके चूडामणि हैं ॥ २ ॥

सोरठा-लाग न उर उपदेश, यदपि कहेउ शिव बार बहु ॥
बोले विहँसि महेश, हरि मायाबल जानि जिय ॥ १२ ॥

हृदयमें कोई उपदेश नहीं लगा, यद्यपि शिवजीने बहुत बार कहा, तब शिवजी भगवान्‌की मायाका बल जीमें जानकर हँसते हुए बोले ॥ १२ ॥

जौ तुम्हरे मन अति सन्देहू * तौ किन जाय परीक्षा लेहू ॥१॥
तब लगि बैठ रहौं वटछाहीं *जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं॥२॥

जो तुम्हारे मनमें अधिक सन्देह है तो फिर जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती ? ॥ १ ॥ तब तक मैं वटकी छायामें बैठा रहूँगा जब तक तुम मेरे पास न आओगी ॥ २ ॥

जैसे जाय मोह भ्रम भारी * करहु सो यतन विवेक विचारी ॥३॥
चली सती शिव आयसु पाई * करहि विचार करउँ का भाई ॥४॥

जैसे तुम्हारा अज्ञान और भारी भ्रम जाय, वह यत्न करो; परन्तु ज्ञान और विचारसे करना ॥ ३ ॥ सती शिवजीकी आज्ञा पाकर चलीं और विचार करने लगीं कि भाई ? क्या यत्न करूँ ! ॥ ४ ॥

इहां शम्भु अस मन अनुमाना * दक्षसुता कर नहिं कल्याना ॥५॥
मोरेहु कहे न संशय जाहीं * विधि विपरीत भलाई नाहीं ॥६॥

यहां शिवजीने मनमें यह विचार किया कि, सतीकी भलाई नहीं होगी ॥ ५ ॥ क्योंकि जब मेरे कहनेसे भी सन्देह नहीं गया तो विधि विपरीत है; कल्याण नहीं होगा ॥ ६ ॥

होइहै सो जो राम रचि राखा * को करि तर्क बढ़ावै शाखा ॥७॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा * गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥८॥

होगा वही जो रामजीने रच रखा है तर्कना करके कौन विस्तार करे वा शाखा बढ़ावे॥७॥ ऐसा कहकर भगवान्‌का नाम जपने लगे और सती वहां गयी, जहां सुखधाम श्रीरामचन्द्रजी थे॥८॥

दोहा-पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीताकर रूप ॥
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नर भूप ॥ ६४ ॥

बार बार हृदयमें विचार जानकीजीका रूप धारण किया और मार्गके आगे होकर चलीं जिधरसे मनुष्येश्वर श्रीरामचन्द्रजी आते थे ॥ ६४ ॥

लक्ष्मण दीख उमाकृत वेषा *चकित हृदय भ्रम भयउ विशेषा ॥१॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा * प्रभु प्रभाव जानत मतिधीरा ॥२॥

लक्ष्मणजीने जब सतीका बना हुआ रूप देखा तो मनमें आश्चर्य और भ्रम अधिक हुआ कि पहले अवतारमें जानकीजी रावणके मारनेके पीछे मिली थीं, अबकी पहले ही कहांसे

आयीं ? ॥ १ ॥ अति गम्भीर और मतिधीर हैं प्रभु प्रताप जानकर कुछ कह नहीं सकते और यह कि प्रभु आप ही देखते हैं मैं क्या कहूँ ॥ २ ॥

सती कपट जानेउ सुरस्वामी ❋ समदर्शी सब अन्तरयामी ॥३॥
सुमिरत जाहि मिटैं अज्ञाना ❋ सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना ॥४॥

सतीका कपट देवताओंके स्वामी रामचन्द्रजीने जाना, क्योंकि वे समानदेखनेवाले सबके अन्तरका भाव जानते हैं ॥ ३ ॥ जिनके स्मरण करते ही अज्ञान मिट जाता है ये वे ही सब कुछ जानने वाले श्रीरामजी भगवान् हैं ॥ ४ ॥

सती कीन्ह चह तहउँ दुराऊ ❋ देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ ॥५॥
निज माया बल हृदय बखानी ❋ बोले विहँसि राम मृदुबानी ॥६॥

वहां भी सती छिपाव करना चाहती है, यह स्त्रीके स्वभावका प्रभाव तो देखो ॥ ५ ॥ अपनी मायाका बल हृदयमें विचारकर श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले ॥ ६ ॥

जोरि पाणि प्रभु कीन्ह प्रणामू ❋ पिता समेत लीन्ह निजनामू ॥७॥
कहेउ बहोरि कहां वृषकेतू ❋ विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥८॥

हाथ जोड़कर प्रभुने प्रणाम किया और पिता समेत अपना नाम लिया ॥ ७ ॥ फिर यह कहा कि शिवजी कहां हैं ? और वनमें अकेली क्यों फिरती हो ? (यह वचन गूढ़ है) कि शंकरको वृषकेतु कहा "वृषकेतु" धर्मकी पताका पतिको छोड़कर अकेली वनमें फिरती हो इसका हेतु क्या है ? अथवा जो आप पति देवता धर्मकी ध्वजा लिए रहीं सो कहा है ? क्योंकि पतिव्रता स्त्रीको पतिका सङ्ग छोड़कर कहीं अकेली न रहना चाहिये और तुम वनमें फिरती हो आगे सुज्ञजन जानें ॥ ८ ॥

दोहा—राम वचन मृदुगूढ़ सुनि, उपजा अति संकोच ॥
सती सभीत महेशपहँ, चली हृदय बड़ शोच ॥ ६५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन कोमल और गूढ़ सुनकर हृदयमें अत्यन्त लज्जा हुई और सती डरती हुई शिवजीके पास चलीं; हृदयमें बड़ा शोच है ॥ ६५ ॥

मैं शंकर कर कहा न माना ❋ निज अज्ञान रामपहँ आना ॥१॥
जाय उतर अब दैहौं काहा ❋ उर उपजा अति दारुण दाहा ॥२॥

मैंने शिवजीका कहना नहीं माना और अपनी मूर्खतासे रामजीके पास चली आयी ॥१॥ जाकर उनको अब क्या उत्तर दूँगी ? यह समझकर मनमें बड़ा दारुण दाह उत्पन्न हुआ ॥२॥

जाना राम सती दुखपावा ❋ निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा ॥३॥
सती दीख कौतुक मग जाता ❋ आगे राम सहित सिय भ्राता ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने जाना कि, सतीको दुःख हुआ, तब अपना प्रभाव कुछ प्रत्यक्ष दिखाया ॥३॥ सतीने मार्गमें जाते हुए कौतुक देखा कि आगे सीता लक्ष्मण सहित रामजी जा रहे हैं ॥४॥

फिर चितवा पाछे प्रभु देखा ❋ सहित बन्धु सिय सुन्दर बेखा ॥५॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना ❋ सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रवीना ॥६॥

फिरकर पीछेको देखा तो उधर भी श्रीरामचन्द्र ही बन्धु सीता सहित सुन्दर वेषमें दिखाई दिये ॥ ५ ॥ जहां देखती हैं वहां प्रभु बैठे हैं और प्रवीण मुनीश तथा सिद्ध सेवा करते हैं ॥ ६ ॥

देखे शिव विधि विष्णु अनेका * अमित प्रभाव एकते एका ॥७॥
वन्दत चरण करत प्रभु सेवा * विविध वेष देखे सब देवा ॥८॥

शिव, ब्रह्मा, विष्णु अनेक देखे, एकसे एक अमित प्रभाव वाले हैं॥७॥ और देखा कि सब देवता विविध अर्थात् भांति-भांतिके रूप धारण किये हुए प्रभुकी चरण वंदना और सेवा करते हैं॥८॥

दोहा-सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप ॥
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तनु अनुरूप ॥ ६६ ॥

सतीने अनेक और अनुपम विधात्री (सरस्वती) और इंद्रिरा (लक्ष्मी) को देखा, जो जो वेष ब्रह्मादि देवताओंके हैं उन्हींके शरीरोंके रूपोंके अनुरूप शक्तियां दिखाई पड़ीं ॥ ६६ ॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते * शक्तिन सहित सकल सुर तेते ॥१॥
जीव चराचर जे संसारा * देखे सकल अनेक प्रकारा ॥२॥

जानकीजी सहित श्रीरामचन्द्रजी जहां-तहां जितने देखे शक्तियोंके सहित उतने ही देवता देखे ॥ १ ॥ चर और अचर जो संसारके जीव हैं वे सब अनेक प्रकारसे देखे ॥ २ ॥

पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेखा * रामरूप दूसर नहिं देखा ॥३॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे * सीता सहित न वेष घनेरे ॥४॥

देवता प्रभुको बहुत वेष धारण किये पूजते हैं पर श्रीरामचन्द्रजीका रूप दूसरा नहीं देखा वह एक ही रूप देखा ॥३॥ जानकीजी सहित श्रीरामचन्द्रजीको बहुत प्रकारसे देखा परन्तु वेष एक ही देखा ॥ ४ ॥

सोइ रघुवर सोइ लक्ष्मण सीता * देखि सती अति भई सभीता ॥५॥
हृदय कंप तनु सुधि कछु नाहीं * नयन मूँदि बैठी मगमाहीं ॥६॥

वही श्रीरामचन्द्रजी और वही लक्ष्मण तथा जानकीको देखकर सती बहुत डरीं (तुलसीदासजीने प्रथम श्रीरामचन्द्रको एक रूप कहा, फिर, सीता सहित कहा फिर लक्ष्मण सहित कहा इसका भाव यह है कि तीन मत-अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत इन तीनोंको इस रामायणके अनुकूल रखा है। प्रथम एक राम नित्य, फिर माया-सीता सहित नित्य फिर जीव लक्ष्मण नित्य)॥५॥ हृदय कांप गया, शरीरकी सुधि न रही, आंखें मीचकर मार्गमें बैठ गयीं ॥ ६ ॥

बहुरि विलोकेउ नयन उघारी * कछु न दीख तहँ दक्ष कुमारी ॥७॥
पुनि पुनि नाय राम पद शीशा * चली तहाँ जहँ रहे गिरीशा ॥८॥

फिर जब आंखें खोलकर देखा तो सती को वहां कुछ नहीं दिखाई दिया (केवल राम-लक्ष्मण ही देखे) ॥ ७ ॥ बार बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें शिर नवाकर वहांको चली जहां श्रीमहादेवजी थे ॥ ८ ॥

दोहा-गईं समीप महेश तब, हँसि पूछी कुशलात ॥
लीन्ह परीक्षा कवनि विधि, कहहु सत्य सब बात ॥ ६७ ॥

जब शिवजीके पास गयीं तो उन्होंने हँसकर कुशल पूछी (और बोले कि) तुमने किस प्रकार परीक्षा ली, वह सब बात सत्य कहो ॥ ६७ ॥

सती समुझि रघुबीर-प्रभाऊ ❋ भयवश शिवसन कीन्ह दुराऊ ॥१॥
कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाईं ❋ कीन्ह प्रणाम तुम्हारिहि नाईं ॥२॥

सतीने श्रीरामचन्द्रजीका प्रभाव समझकर डरके मारे शिवजीसे छिपाव किया ॥ १ ॥ (और बोलीं) स्वामी ! कुछ परीक्षा नहीं ली, केवल आपकी ही नाईं प्रणाम किया ॥२॥

जो तुम कहा सो मृषा न होई ❋ मोरे मन प्रतीति अस सोई ॥३॥
तब शंकर देखेउ धरि ध्याना ❋ सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥४॥

क्योंकि आपने जो कहा वह झूठ नहीं होता; ऐसा मेरे मनमें विश्वास है ॥ ३ ॥ तब शिव जीने ध्यान धरकर देखा तो जो कुछ सतीने चरित्र किया वह सब जान लिया ॥ ४ ॥

बहुरि राम मायहि शिर नावा ❋ प्रेरि सती जेहि झूठ कहावा ॥५॥
हरि इच्छा भावी बलवाना ❋ हृदय विचारत शम्भु सुजाना ॥६॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको शिर नवाया कि जिसने प्रेरणाकर सतीसे झूठ कहलाया ॥५॥ नारायणकी इच्छा, होनहार बलवान् है हृदयमें अन्तर्यामी शिवजी विचार करने लगे ॥६॥

सती कीन्ह सीताकर वेषा ❋ शिव उर भयउ विषाद विशेषा ॥७॥
जो अब करउँ सतीसन प्रीती ❋ मिटै भक्तिपथ होय अनीती ॥८॥

सतीने सीताका वेष किया यह विचार कर शिवजीके मनमें अधिक दुःख हुआ (प्रथम अपने उपदेशमें सामान्य विषाद हुआ था) ॥ ७ ॥ सोचा कि, जो मैं अब सतीसे प्रीति करूँ तो भक्तिका मार्ग मिट जाय और अनीति (प्रगट) होगी ॥ ८ ॥

दोहा–परम प्रेम नहिं जाय तजि, किये प्रेम बड़ पाप ॥
प्रगट न कहत महेश कछु, हृदय अधिक संताप ॥ ६८ ॥

अधिक प्रेम होनेके कारण सती त्यागी नहीं जाती और प्रेम करनेसे बड़ा पाप है, अतः शिवजी प्रगट कुछ नहीं कहते परन्तु हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा है ॥ ६८ ॥

तब शंकर प्रभुपद शिर नावा ❋ सुमिरत राम हृदय अस आवा ॥१॥
इहि तनु सतिहि भेंट मोहि नाहीं ❋ शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं ॥२॥

तब शिवजीने प्रभु रामचन्द्रजीके चरणोंमें शिर नवाया और उनको स्मरण करते ही हृदयमें यह बात आयी कि ॥ १ ॥ इस शरीरसे सतीकी मुझसे भेंट नहीं होगी शिवजीने मनमें संकल्प किया ॥ २ ॥

अस विचारि शंकर मतिधीरा ❋ चले भवन सुमिरत रघुवीरा ॥३॥
चलत गगन भइ गिरा सुहाई ❋ जय महेश भलि भक्ति दृढ़ाई ॥४॥

यह विचार शिवजी; जिनकी मति बड़ी धीर युक्त है, श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करते हुए घरको चले ॥ ३ ॥ चलते हुए आकाशसे वाणी हुई कि शिवजी आपकी जय हो, आपने अच्छी दृढ़ भक्ति की ॥ ४ ॥

अस प्रण तुम विन करै को आना ❀ राम भक्त समरथ भगवाना ॥५॥
सुनि नभगिरा सती उर शोचू ❀ पूछा शिवहि समेत सँकोचू ॥६॥

ऐसा प्रण तुम्हारे विना दूसरा कौन करे ! तुम रामके भक्त समर्थ भगवान् हो ॥ ५ ॥ ऐसी आकाशवाणी सुनकर सतीके मनमें शोच हुआ और लजाती हुई शिवजीसे पूछने लगी ॥६॥

कीन्ह कवन प्रन कहहु कृपाला ❀ सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥७॥
यद्यपि सती पूछा बहु भाँती ❀ तदपि न कहेउ त्रिपुर-आराती ॥८॥

हे दयासागर! कहिये कौनसा प्रण किया है ? हे प्रभु! आप सत्यके धाम दीनदयालु हो॥७॥ यद्यपि सतीने बहुत प्रकारसे पूछा पर तो भी त्रिपुरके मारने वाले शिवजीने नहीं कहा ॥८॥

दोहा–सती हृदय अनुमान किय, सब जाना सर्वज्ञ ॥
कीन्ह कपट मैं शम्भु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ ॥ ६९ ॥

तब सतीने मनमें विचार किया कि, शिवजीने सब जान लिया मैंने शिवजीसे कपट किया; मैं स्त्री होनेसे स्वाभाविक मूर्ख अज्ञानी हूँ ॥ ६९ ॥

सोरठा–जल पय सरिस बिकाय, देखहु प्रीतिकि रीति भली ॥
बिलग होय रस जाय, कपट खटाई परत ही ॥ १३ ॥

जल दूधके समान ही विकता है, देखिये–प्रीतिकी रीति ऐसी भली होती है और कपट-रूपी खटाईके पड़ने पर अलग होते ही रस जाता रहता है ॥ १३ ॥

हृदय शोच समुझत निजकरणी ❀ चिंता अमित जाय नहिं बरणी॥१॥
कृपा सिंधु शिव परम अगाधा ❀ प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥२॥

अपनी करनीको समझकर हृदयमें सोच हुआ, ऐसी अपार चिंता हुई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥ सोचा कि कृपाके समुद्र शिवजी अत्यन्त गम्भीर हैं मेरा अपराध प्रगट नहीं कहा ॥ २ ॥

शंकर रुख अवलोकि भवानी ❀ प्रभु मोहिं तजेउ हृदय अकुलानी॥३॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई ❀ तपै अवाँ इव उर अधिकाई ॥४॥

---

१. श्लोक–क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः, क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं, युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ १ ॥

जिस समय जलमें दूध मिला तो उस दूधने अपना सब गुण और रूप जलरूपी मित्रको दे दिया । फिर दूधमें ताप देखकर जलनेसे पहले अपना शरीर अग्निमें होम दिया, (दूधको आंचपर रखो तो नियम है कि पहले पानी जलता है) फिर दूधने मित्रको इस आपत्तिमें देखकर अग्निमें गिरना चाहा, परंतु जलके छींटे पाकर अपने मित्रको आया जान ठंडा हो बैठ गया; सत्पुरुषोंकी मैत्री ऐसी ही होती है ।

फिर जब शिवजीका रुख सतीजीने देखा तो जान लिया कि प्रभुने मुझे त्याग दिया और इसी कारण हृदयमें बहुत घबड़ाईं ॥ ३ ॥ अपना पाप समझकर कुछ कहा नहीं जाता अवेंकी नाईं हृदय अधिक तपता है ॥ ४ ॥

सती सशोच जानि वृषकेतू ❋ कहेउ कथा सुन्दर सुख हेतू ॥५॥
वर्णत पंथ विविध इतिहासा ❋ विश्वनाथ पहुँचे कैलाशा ॥६॥

सतीके चित्तमें शोच जानकर शिवजीने सुन्दर सुखदायक कथा कहनी प्रारंभ की ॥ ५ ॥ इस प्रकार मार्गमें अनेक कथा वर्णन करते हुए विश्वनाथ शिवजी कैलासमें पहुँच गये ॥ ६ ॥

तहँ पुनि शम्भु समुझि प्रण आपन ❋ बैठे वटतर करि कमलासन ॥७॥
शंकर सहज स्वरूप सँभारा ❋ लागि समाधि अखंड अपारा ॥८॥

वहाँ फिर शिवजी अपना प्रण स्मरण कर वट वृक्षके नीचे कमलासन लगाकर बैठे ॥७॥ शिवजीने अपना स्वाभाविक स्वरूप सँभाला और अखण्ड अपार समाधि लगायी ॥ ८ ॥

दोहा–सती बसहिं कैलास तब, अधिक शोच मनमाहिं ॥
मर्म न कोऊ जान कछु, युग सम दिवस सिराहिं ॥ ७० ॥

तब सती कैलासमें वास करने लगीं; मनमें बड़ा शोच है, इस भेदको कोई कुछ नहीं जानता युगके समान दिन जाते हैं ॥ ७० ॥

नित नव शोच सती उर भारा ❋ कब जैहौं दुखसागर पारा ॥१॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना ❋ पुनि पतिवचन मृषाकरि जाना ॥२॥

नित्य नया शोच सतीके मनमें भारी होता है और कहती हैं कि इस दुःख सागरसे पार कब जाऊँगी ? ॥ १ ॥ मैंने श्रीरामचन्द्रजीका अपमान किया और फिर पतिका वचन झूठा करके जाना ॥ २ ॥

सो फल मोहिं विधाता दीन्हा ❋ जो कछु उचित रहा सो कीन्हा ॥३॥
अब विधि अस बूझिय नहिं तोहीं ❋ शंकर विमुख जिआवहु मोहीं ॥४॥

वही फल मुझे विधाताने दिया और जो कुछ उचित था वह किया ॥ ३ ॥ हे विधाता ! अब तुझे ऐसा योग्य नहीं जो शंकरसे विमुख मुझको जिलाता है ॥ ४ ॥

कहि न जाय कछु हृदय गलानी ❋ मनमहँ रामहिं सुमिरि सयानी ॥५॥
जौं प्रभु दीन दयालु कहावा ❋ आरति हरण वेद यश गावा ॥६॥

हृदयका दुःख कुछ कहा नहीं जाता मनमें श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करके चतुर सतीने यह निश्चय किया कि ॥ ५ ॥ प्रभु दीन दयालु कहाते हैं और दुःख हरनेवाले हैं ऐसा वेद यश गाते हैं ॥ ६ ॥

तौं मैं विनय करउँ कर जोरी ❋ छूटै बेगि देह अब मोरी ॥७॥

---

१. मत्स्यपुराणमें लिखा है, नानारत्नमय भृङ्गयुक्त हिमशैलके पृष्ठपर देवाधिदेव महादेवका निवासस्थान है, उसके दक्षिणमें ऐलाश्रम, उत्तरमें सौगन्धिक पर्वत, दक्षिणमें शिवगिरी, पश्चिममें ककुद्मान तथा पूर्वमें अरुण नाम पर्वत है ? कैलास पर्वतके पदस्थानसे मन्दोदक सरोवर प्रादुर्भूत हुआ है गंगा उसी सरोवरसे निकल कर बहती है, उसीके तटपर मनोहर नन्दन बन है कुबेर यक्षों सहित वहाँ रहते हैं, म० पु० अ० २१४, कैलास, तिब्बत देशमें स्थित मानसरोवरके निकट काश्मीरके उत्तरपूर्व भागमें स्थित है, इससे सिन्धु, शतलज और ब्रह्मपुत्र, निकले हैं, भोटिये इसे तिसि कहते हैं। गंगारिगण पर्वत रजताद्रि कैलासके पर्याय हैं (वि० को०)

जौ मोरे शिवचरण सनेहू ❋ मन क्रम वचन सत्य व्रत एहू ॥८॥

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि शीघ्र ही मेरी यह देह छूटे ॥ ७ ॥ जो मेरा शिवजीके चरणोंमें प्रेम है और मन, कर्म, वचनसे यह सत्य प्रतिज्ञा है ॥ ८ ॥

दोहा–तौ समदर्शी सुनिय प्रभु, करउ सो वेगि उपाय ॥
होय मरण जेहि विनहि श्रम, दुस्सह विपत्ति विहाय ॥ ७१ ॥

तो हे समदर्शी प्रभु! मेरी विनती सुनकर शीघ्र ही वह उपाय कीजिये जिससे विनाही श्रम मरण हो और कठिन दुःख मिटे ॥ ७१ ॥

इहि विधि दुखित प्रजेशकुमारी ❋ अकथनीय दारुण दुख भारी ॥१॥
बीते संवत सहस सतासी ❋ तजी समाधि शम्भु अविनाशी ॥२॥

इस प्रकार से दक्षप्रजापतिकी कन्या दुःखी और उसका दुख ऐसा कठिन था कि वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥ (इसी प्रकार) सतासी ८७००० हजार वर्ष बीत गये; तब अविनाशी सदाशिवजीने समाधि त्याग दी ॥ २ ॥

राम नाम शिव सुमिरन लागे ❋ जानेउ सती जगत पति जागे ॥३॥
जाय शम्भु पद बंदन कीन्हा ❋ सन्मुख शंकर आसन दीन्हा ॥४॥

रामका नाम शिवजी स्मरण करने लगे, तब सतीने जाना कि जगत्पति जागे ॥ ३ ॥ जाकर शिवजीके चरणोंमें नमस्कार किया, सन्मुख शंकरने आसन दिया ॥ ४ ॥

लगे कहन हरि कथा रसाला ❋ दक्ष प्रजेश भये तेहि काला ॥५॥
देखा विधि विचारि सब लायक ❋ दक्षहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥६॥

भगवान् शिवजी कुछ नारायणकी श्रेष्ठ कथा वर्णन करने लगे। उसी समयमें दक्षजीको प्रजापतिकी पदवी मिली ॥ ५ ॥ विधाता अर्थात् ब्रह्माजीने जब विचार कर देखा कि यह सब लायक है तब दक्षजीको प्रजापतिकी पदवी दी ॥ ६ ॥

बड़ अधिकार दक्ष जब पावा ❋ अति अभिमान हृदय तब आवा ॥७॥
नहिं कोउ अस जन्मा जगमाहीं ❋ प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ॥८॥

दक्षने जब बड़ी पदवी पायी तब हृदयमें बड़ा अभिमान आया ॥ ७ ॥ कोई ऐसा जगत्में नहीं जन्मा, जिसको अधिकार पाकर घमण्ड न हुआ हो ॥ ८ ॥

दोहा–दक्ष लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ याग ॥
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥ ७२ ॥

दक्षने मुनियोंको बुलाया और एक बड़ा यज्ञ करने लगे और जो यज्ञमें भाग पाते हैं उन सब देवताओंको आदरसे न्योता दिया ॥ ७२ ॥

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा ❋ वधुन समेत चले सुर सर्वा ॥१॥
विष्णु विरंचि महेश विहाई ❋ चले सकल सुर यान बनाई ॥२॥

किन्नर, नाग, सिद्ध और और गन्धर्व अपनी स्त्रियों समेत सब देवता चले ॥ १ ॥ विष्णु ब्रह्मा, शिवजीको छोड़कर सब देवता विमान सजाकर चले ॥ २ ॥

सती बिलोकेउ गगन बिमाना * जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥३॥
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना * सुनत श्रवण छूटहिं मुनि ध्याना ॥४॥

सतीने आकाशमें देखा कि अनेक सुन्दर-सुन्दर विमान चले जा रहे हैं ॥३॥ देवताओंकी स्त्रियां सुन्दर गान कर रही हैं, जिसको कानोंसे सुनकर मुनियोंके ध्यान छूटते हैं ॥ ४ ॥

पूछेउ तब शिव कहेउ बखानी * पिता यज्ञ सुनि कछु हर्षानी ॥५॥
जौं महेश मोहिं आयसु देहीं * कछु दिन जाय रहहुँ मिस एहीं ॥६॥

पूछनेपर शिवजीने बखान कर कहा, तब उनके कहनेसे पिताके यहां, यज्ञ सुन सती कुछ प्रसन्न हुईं (और विचार करने लगीं) ॥ ५ ॥ जो शिवजी मुझे आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी बहाने से जा रहूँ ॥ ६ ॥

पति परित्याग हृदय दुख भारी * कहै न निज अपराध बिचारी ॥७॥
बोली सती मनोहर बानी * भय संकोच प्रेम रस-सानी ॥८॥

पतिके त्याग करनेका दुःख हृदयमें भारी है, अपना अपराध विचार कर कहती नहीं ॥ ७ ॥ फिर सती ऐसी मनोहर वाणी बोलीं जो डर, लज्जा और प्रीतिसे युक्त थी ॥ ८ ॥

दोहा—पिताभवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होय ॥
तौ मैं जाऊँ कृपायतन, सादर देखन सोय ॥ ७३ ॥

हे दयासागर स्वामी ! पिताके घरमें बड़ा उत्सव है, जो प्रभुकी आज्ञा हो तो मैं भी उसको आदर पूर्वक देखने जाऊँ ॥ ७३ ॥

कहेउ नीक मोरे मन भावा * यह अनुचित नहि नेवत पठावा ॥१॥
दक्ष सकल निज सुता बुलाई * हमरे बैर तुमहिं बिसराई ॥२॥

(शिवजी बोले) तुमने अच्छी बात कही और मेरे मनको भी भली लगी, पर यह एक अयोग्य वार्ता है कि उन्होंने बुलावा नहीं भेजा ॥ १ ॥ दक्षने अपनी सब कन्याएँ बुलाई पर हमारे वैरसे तुम्हें भी भुला दिया, यह विपरीत है, चाहिये था कि सतीकी प्रीतिसे शंकरका वैर बिसर जाता ॥ २ ॥

ब्रह्मसभा हमसन दुख माना * तेहिते अजहुँ करहिं अपमाना ॥३॥
जौं बिनु बोले जाहु भवानी * रहै न शील सनेह न कानी ॥४॥

ब्रह्माकी सभामें हमसे दुख माना है, इससे अब भी निरादर करते हैं । हम एक समय ब्रह्माकी सभामें विष्णु आदि सब देवताओंके साथ बैठे थे, उस समय दक्ष-तुम्हारे पिता आये सो उनको देखकर सब देवता उठे परन्तु हम और ब्रह्माजी नहीं उठे, विष्णुजी भी बैठे रहे तब दक्षजीने क्रोधकर हमको शाप दिया और कहा यज्ञमें तुमको आजसे भाग नहीं मिलेगा इसीसे द्वेष कर आप यज्ञ करते हैं। और हमको निमंत्रण नहीं दिया ॥ ३ ॥ हे सती जो तुम विना बुलाये जाओगी तो शील, सनेह और कानि (मर्यादा) नहीं रहेगी ॥ ४ ॥

यदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा * जाइय बिन बोले न सँदेहा ॥५॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई * तहाँ गये कल्यान न होई ॥६॥

यद्यपि मित्र, प्रभु, पिता और गुरुके घर विना बुलाये भी निःसन्देह जाय ॥ ५ ॥ तो भी जहां कोई अपनेसे वैर रखता हो वहां जानेसे कल्याण नहीं होता ॥ ६ ॥

भांति अनेक शम्भु समुझावा * भावीवश न ज्ञान उर आवा ॥७॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहि बुलाये * नहिं भलि बात हमारे भाये ॥८॥

अनेक भांतिसे शिवजीने समझाया, पर होनी बलवान थी कुछ ज्ञान मनमें न आया॥७॥ शिवजीने कहा जो विना बुलाये जाओगी तो हम इस बातको अच्छा नहीं मानते ॥ ८ ॥

दोहा-कहि देखा हर यत्न बहु, रहै न दक्षकुमारि ॥
दिये मुख्य गण संग तब, किये बिदा त्रिपुरारि ॥ ७४ ॥

शिवजीने बहुत यत्नसे कह देखा पर दक्षकुमारीने रहना नहीं विचारा, तब शिवजीने अपने मुख्य गण संग देकर बिदा किया ॥ ७४ ॥

पिता-भवन जब गईं भवानी * दक्षत्रास काहू न सन्मानी ॥१॥
सादर भलेहि मिली इक माता * भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता॥२॥

जब पिताके घरमें सती गयीं तब दक्षके डरसे किसीने आदर नहीं किया ॥ १ ॥ एक माता तो अवश्य आदरसे मिली और बहनें बहुत ही हँसती मिलीं ॥ २ ॥

दक्ष न कछु पूछी कुशलाता * सतिहिं बिलोकि जरे सब गाता॥३॥
सती जाय देखेउ तब यागा * कतहुँ न दीख शम्भु करभागा ॥४॥

दक्षजीने कुछ कुशलता नहीं पूछी बरन् सतीको देखकर सब शरीर जलने लगा ॥ ३ ॥ तब सतीने जाकर यज्ञ देखा तो उनको शिवजीका भाग कहीं दिखायी न दिया ॥ ४ ॥

तब चित चढ़ेउ जो शंकर कहेऊ * प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥५॥
पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा * जस यह भयउ महापरितापा ॥६॥

तब जो कुछ शिवजीने कहा था वह चित्तमें चढ़ा और स्वामीका अपमान समझकर हृदय जलने लगा ॥५॥ पिछला दुःख ऐसा हृदयमें नहीं व्यापा जैसे कि यह महादुःख हुआ ॥६॥

यद्यपि जग दारुण दुख नाना * सबते कठिन जाति अपमाना ॥७॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा * बहुविधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥८॥

यद्यपि जगत्में बड़े-बड़े अनेक कठिन दुःख हैं पर जातिका निरादर सबसे कठिन है ॥७॥ यही समझकर सतीको बड़ा क्रोध हुआ; किंतु माताने बहुत प्रकारसे समझाया तो भी ॥८॥

दोहा-शिव अपमान न जाय सहि, हृदय न होत प्रबोध ॥
सकल सभहिं हठि हटकि कर, बोलीं वचन सक्रोध ॥७५॥

शिवजीका निरादर सहा नहीं जाता, हृययमें ज्ञान नहीं होता इस लिये सब सभाको हठपूर्वक हटककर क्रोध सहित वचन बोलीं ॥ ७५ ॥

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा * कही सुनी जिन शंकर निंदा ॥१॥
सो फल तुरत लहब सब काहू * भली भांति पछिताब पिताहू ॥२॥

हे सभाके सब मुनीश्वरो ! सुनो-जिन्होंने शिवजीकी निन्दा कही, सुनी है (मुनिंदा यह वचन लघुता सूचक है) ॥ १ ॥ सो उसका फल तुरन्त सब कोई पाओगे और मेरा पिता भी अच्छी तरह पछतायगा ॥ २ ॥

सन्त शम्भु श्रीपति अपवादा ❋ सुनिय जहां तहँ असि मर्यादा ॥३॥
काटिय तासु जीभ जु बसाई ❋ श्रवण मूँदि नहिं चलिय पराई ॥४॥

जहां कहीं महात्मा शिव और भगवान्की निंदा सुने तो ऐसी मर्यादा है कि ॥ ३ ॥ जो वश चले तो उसकी जीभ काट ले और नहीं तो कान मूँदकर वहाँसे चला जाय ॥ ४ ॥

जगदात्मा महेश त्रिपुरारी ❋ जगत जनक सबके हितकारी ॥५॥
पिता मन्दमति निंदत तेही ❋ दक्षशुक्र-संभव यह देही ॥६॥

शंकर जगत्के आत्मा अर्थात् जगत्के चैतन्य करने वाले और महान् ईश हैं त्रिपुरासुर के शत्रु और जगत्के माता-पिता सबके हितकारी हैं ॥ ५ ॥ हमारे पिता मन्दमति हैं, जो उनकी निंदा करते हैं । यह मेरी देह दक्षके वीर्यसे उत्पन्न है ॥ ६ ॥

तजि हौं तुरत देह तेहि हेतू ❋ उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू ॥७॥
अस कहि योग अग्नितनु जारा ❋ भयउ सकल मख हाहाकारा ॥८॥

इसी कारण यह देह त्याग दूँगी; हृदयमें उन स्वामीको धारण करती हूँ, जिनके माथेपर चन्द्रमा है स्वयं धर्मकी ध्वजा है (चन्द्रमौलि कहनेका हेतु यह है कि वे हमें फिर जिला लेंगे और वृषकेतु कहनेका यह आशय है कि हमारे अपराध क्षमा करेंगे) ॥ ७ ॥ ऐसा कह कर योगकी अग्निमें शरीर जला दिया और सारे यज्ञमें हाहाकार मच गया ॥ ८ ॥

दोहा-सतीमरन सुनि शम्भुगण, लगे करन मख खीश ॥
यज्ञ विध्वंस विलोकि भृगु, रक्षा कीन्ह मुनीश ॥ ७६ ॥

सतीका मरना सुनकर शिवजीके गण यज्ञ विध्वंस करने लगे, यज्ञ विध्वंस देखकर भृगुने उस यज्ञकी रक्षाकी, (भृगु ऋषिने मन्त्र द्वारा एक राक्षसी उत्पन्न की, उसने शिवजीके गणोंको मारकर भगा दिया) ॥ ७६ ॥

समाचार जब शंकर पाये ❋ बीरभद्र करि कोप पठाये ॥१॥
यज्ञ विध्वंस जाय तिन कीन्हा ❋ सकल सुरन विधिवत फल दीन्हा ॥२॥

जब शिवजी समाचार पाये तो वीरभद्रको बड़ा कोप करके भेजा (समाचार नारदजी पहुँचाये थे) ॥१॥ वीरभद्रने जाकर यज्ञ विध्वंस किया और सब देवताओंको विधिवत् फल दिया ॥२॥

भइ जग विदित दक्ष गति सोई ❋ जस कछु शम्भु-बिमुखकी होई ॥३॥
यह इतिहास सकल जगजाना ❋ ताते मैं संक्षेप बखाना ॥४॥

दक्षकी वही संसार विदित गति हुई जैसी कुछ शिवजीके प्रतिकूलोंकी होनी चाहिए ॥३॥ यह इतिहास सब जगत् जानता है इसी कारण मैंने संक्षेपसे बखान किया ॥ ४ ॥

सती मरत हरिसन वर माँगा ❋ जन्म-जन्म शिवपद अनुरागा ॥५॥
तेहि कारण हिमगिरि गृह जाई ❋ जनमी पारवती तनु पाई ॥६॥

सतीने मरते समय भगवान्से यही वर मांगा कि जन्मजन्मान्तर शिवजीके चरणोंमें प्रेम रहे ॥५॥ इसी कारण हिमालयके घर जाकर पार्वतीका शरीर पाय जन्म लिया । तेहि कारण कहनेका यह आशय है कि जो योगाग्निसे जलता है वह जन्म नहीं पाता, सतीने वर मांगा था

१. यह वीरभद्र ज्वररूपसे विख्यात है।

इससे जन्म पाया । दूसरा आशय यह है कि योगाग्नि द्वारा जली हैं, शीतलताको प्राप्त होनेके निमित्त हिमगिरिकी पुत्री हुई ॥ ६ ॥

जबते उमा शैलगृह आई ❋ सकल सिद्धि संपति तहँ छाई ॥७॥
जहँ तहँ मुनिन सुआश्रम कीन्हे ❋ उचित वास हिम भूधर दीन्हे ॥८॥

जबसे पार्वती हिमालयके घर आयीं तबसे वहां समस्त सिद्धि सम्पति छा गयी॥७॥जहां-तहां मुनियोंने अच्छे आश्रम किये, हिमालयने अच्छे-अच्छे स्थान उन महात्माओंको दिये ॥८॥

दोहा-सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति ॥
प्रगटे सुन्दर शैलपर, मणि आकर बहु भाँति ॥ ७७ ॥

नाना प्रकारके वृक्ष फूल फल सहित सब हो गये और बहुत प्रकारसे पर्वतपर मणियोंकी खानि प्रगट हो गई ॥ ७७ ॥

सरिता सब पुनीत जल बहईं ❋ खग मृग मधुप सुखी सब रहईं ॥१॥
सहज वैर सब जीवन त्यागा ❋ गिरि पर सकल करहिं अनुरागा ॥२॥

सब नदियाँ पवित्र जल बहानेवाली हुईं और खग, मृग, भौंरे सब सुखी रहने लगे ॥१॥ सब जीवोंने स्वाभाविक वैर छोड़ दिये, पर्वतपर आनन्द करने लगे ॥ २ ॥

सोह शैल गिरिजा गृह आये ❋ जिमि नर राम भक्तिके पाये ॥३॥
नित नूतन मंगल गृह तासू ❋ ब्रह्मादिक गावहिं यश जासू ॥४॥

पार्वतीके घरमें आनेसे हिमालय ऐसा शोभित हुआ जैसे मनुष्य रामकी भक्तिको पाकर शोभित होते हैं॥३॥उसके घरमें नित नया मंगल होने लगा जिसका यश ब्रह्मादिक गाते हैं ॥४॥

नारद समाचार सब पाये ❋ कौतुक हिमगिरि गेह सिधाये ॥५॥
शैलराज बड़ आदर कीन्हा ❋ चरण पखारि बरासन दीन्हा ॥६॥

यह सब समाचार नारदजी पाये तो कौतुकसे हिमालयके घर गये ॥ ५ ॥ शैलराजने बड़ा आदर किया और चरण धोकर सुन्दर आसन दिया ॥ ६ ॥

नारिसहित मुनि पद शिर नावा ❋ चरण सलिल सब भवन सिंचावा ॥७॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि वरणा ❋ सुता बोलि मेलि मुनि चरणा ॥८॥

स्त्री समेत मुनिके चरणोंमें शिर नवाया और चरणोंके जलसे सब घर पवित्र किया अर्थात् जलको छिड़कवाया ॥ ७ ॥ हिमालयने अपना भाग्य बहुत वर्णन किया और कन्याको बुलाकर मुनिके चरणोंमें डाला (और कहा) ॥ ८ ॥

दोहा-त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि ॥
कहौ सुताके दोष गुण, मुनिवर हृदय विचारि ॥ ७८ ॥

हे मुनि श्रेष्ठ नारदजी महाराज ! आप तीनों कालके जाननेवाले सर्वज्ञ हैं आपकी गति भी सब स्थानमें है अतएव इस मेरी कन्याके गुण-दोष तो मनमें विचार कर कहिये ॥ ७८ ॥

---

१. हिमालयका अर्थ हिमालयकी देवतारूप शक्तिका है। प्रत्येक पर्वत नदी आदिमें उनके अधिदेवता कामरूपधारी निवास करते हैं।

कह मुनि विहँसि गूढ़ मृदु बानी ❋ सुता तुम्हारि सकल गुणखानी ॥१॥
सुन्दर सहज सुशील सयानी ❋ नाम उमा अम्बिका भवानी ॥२॥

नारदजी हँसकर गम्भीर कोमल वाणीसे बोले-तुम्हारी पुत्री सब गुणोंकी खान है (जो रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, शिवकी उत्पत्ति है वही तुम्हारी पुत्री है; यही गूढ़ वाणी है, अथवा तुम्हारी सुता उन सब गुणोंसे जो स्त्रियोंको चाहिये, भरी है) ॥ १ ॥ यह विना शृङ्गार के स्वभावसे सुन्दर शीलवती और चतुर होगी और नाम अनेक हैं पर इस समय उमा, अम्बिका और भवानी नाम होंगे ॥ २ ॥

सब लक्षण सम्पन्न कुमारी ❋ होइहि सन्तत पियहिं पियारी ॥३॥
सदा अचल यहिकर अहिवाता ❋ इहिते यश पैहहिं पितु माता ॥४॥

यह जगत्के उत्पत्ति आदि सब लक्षणोंसे सम्पन्न अर्थात् भरी है और सदा अपने पियाको प्यारी होगी॥३॥इसका सौभाग्य सदा अचल रहेगा और इससे पिता-माताको यश मिलेगा ॥४॥

होइहै पूज्य सकल जगमाहीं ❋ यहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥५॥
इहिकर नाम सुमिरि संसारा ❋ तियचढ़िहहिं पतिव्रतअसिधारा॥६॥

यह सब जगत्में पूज्य होगी और इसकी सेवा करनेसे कुछ दुर्लभ नहीं रहेगा ॥ ५ ॥ इसका नाम संसारमें सुमिरन करके स्त्रियाँ पातिव्रतरूपी तलवारकी धार पर चढ़ेंगी ॥ ६ ॥

शैल सुलक्षणि सुता तुम्हारी ❋ सुनहु जे अब अवगुण दुइचारी॥७॥
अगुण अमान मातु पितु हीना ❋ उदासीन सब संशय छीना ॥८॥

हे शैल ! तुम्हारी, पुत्री ऐसी सुलक्षणी है; पर इसमें दो चार अवगुण भी हैं वह भी सुनो ॥ ७ ॥ गुणोंसे रहित, अमान, माता-पितासे रहित, उदासीन, सब संदेहोंसे क्षीण ॥ ८ ॥

दोहा-योगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल भेख ॥
अस स्वामी इहिको मिलहि, परी हस्त अस रेख ॥ ७९ ॥

योगी, जटा वाला, कामना रहित, नंगा, अमंगल वेष ऐसा स्वामी इसको मिलेगा, क्योंकि हाथमें ऐसी रेखा पड़ी है । (अपने रूपको निरंतर योगमें जो मिलावे वह योगी; अनादि कालसे जिसकी जटा बढ़ी है और जिसका कामनारहित मन है और नगन अर्थात् नहीं है समूहता जिनके निकट अर्थात् अकेले रहनेवाले,अमंगल अर्थात्(अ)अतिशय है मंगलवेष जिसका! अकारका अतिशय अर्थ किष्किंधाकांडमें लिखा है, यथा चौ०-"बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खलके वचन सन्त सह जैसे" । अघातका अर्थ अतिशय घात है । शेष पूर्ववत् ॥ ७९ ॥

सुनि मुनिगिरा सत्य जिय जानी ❋ दुख दंपतिहि उमा हरषानी ॥१॥
नारदहूँ यह भेद न जाना ❋ दशा एक समुझत बिलगाना ॥२॥

मुनिकी वाणी सुन और मनमें सच्ची जानकर दोनों (स्त्री पुरुषों) को दुःख हुआ किन्तु पार्वती गुण समझकर प्रसन्न हुई ॥१॥ इस भेदको नारदजीने भी नहीं जाना, क्योंकि सबकी एक ही दशा हुई परन्तु समझनेमें पृथक् थी । माता पिताके नेत्रोंमें दुःखसे और पार्वतीके नेत्रोंमें आनन्दसे जल भरा था, परन्तु समझनेमें बात अलग-अलग थी सो आगे लिखते हैं किसीके नेत्रोंमें आनन्दका और किसीके नेत्रोंमें दुःख का जल था ॥ २ ॥

सकल सखी गिरिजा गिरि मयना ❋ पुलक शरीर भरे जल नयना ॥३॥
होय न मृषा देव ऋषि भाषा ❋ उमा सो वचन हृदय धरि राखा॥४॥

सब सखी, पार्वती, हिमालय, मयना इनके शरीर पुलकायमान हो गये; नेत्रोंमें जल भर आये यही एक दशा का रूप है, परन्तु पार्वतीकी यह दशा हर्षकी तथा औरोंकी दुःखकी हुई ॥ ३ ॥ नारदजीका कहा झूठा नहीं होगा, पार्वतीजीने यह वचन मनमें धर रखा ॥ ४ ॥

उपजेउ शिवपद-कमल सनेहू ❋ मिलन कठिन मन भा सन्देहू ॥५॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई ❋ सखी उछंग बैठि पुनि जाई ॥६॥

शिवजीके चरणकमलोंमें प्रीति उपजी परन्तु मिलना कठिन है यह मनमें सन्देह हुआ॥५॥ असमय जानकर प्रीति छिपायी और फिर सखीकी गोदमें जा बैठी ॥ ६ ॥

झूठि न होय देव ऋषि बानी ❋ सोचहि दंपति सखी सयानी ॥७॥
उर धरि धीर कहै गिरिराऊ ❋ कहो नाथ का करिय उपाऊ ॥८॥

नारदजीकी वाणी झूठी नहीं होगी, यह बात पार्वतीके माता-पिता और चतुर सखी सोचने लगीं ॥७॥ मनमें धीरज धरकर हिमालयने कहा-हे नाथ ! कहिये तो क्या उपाय करें ?॥८॥

दोहा-कह मुनीश हिमवन्त सुनु, जो विधि लिखा लिलार ॥
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटन हार ॥ ८० ॥

नारदजीने कहा-सुनो हिमवान् ! जो कुछ विधाताने ललाटमें लिख दिया है, उसको देव, राक्षस, नर, नाग, (सर्प), मुनि कोई मेटनेवाला नहीं है ॥ ८ ॥

तदपि एक मैं कहौं उपाई ❋ होय करै जौ दैव सहाई ॥१॥
जस वर मैं वरणेउँ तुम पाहीं ❋ मिलहि उमहिं कछु संशय नाहीं॥२॥

तो भी एक मैं उपाय बताता हूँ जो ईश्वर सहाय करें तो हो जायगा ॥ १ ॥ जैसा वर मैंने तुमको वर्णन किया है वैसा पार्वती को मिलेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं, परन्तु ॥ २ ॥

जे जे वरके दोष बखाने ❋ ते सब शिवपहँ मैं अनुमाने ॥३॥
जो विवाह शंकरसन होई ❋ दोषौ गुणसम कह सब कोई ॥४॥

जो जो वरके दोष बखान किये हैं वे सब मैंने शिवजीमें अनुमान किये हैं ॥ ३ ॥ जो विवाह शिवजीसे हो तो दोष भी गुण के समान सब कोई कहेंगे ॥ ४ ॥

जो अहि सेज शयन हरि करहीं ❋ बुध कछु तिन कहँ दोष न धरहीं ॥५॥
भानु कृशानु सर्व रस खाहीं ❋ तिन कहँ मन्द कहत कोउ नाहीं ॥६॥

जो भगवान् विष्णु सर्पके सेजपर शयन करते हैं, तो पंडित उनको कोई कुछ दोष नहीं देते ॥ ५ ॥ सूर्य और अग्नि सर्व रस खाते हैं, परन्तु उनको कोई बुरा नहीं कहता ॥ ६ ॥

शुभ अरु अशुभ सलिल सब बहहीं ❋ सुरसरि कोउ न अपावन कहहीं ॥७॥
समरथको नहिं दोष गुसाईं ❋ रवि पावक सुरसरिकी नाईं ॥८॥

अच्छे और बुरे सब प्रकारके जल बहते हैं परन्तु गङ्गाजीको कोई अपवित्र नहीं कहता ॥ ७ ॥ सूर्य, अग्नि और गङ्गाजीके समान सामर्थ्यवान् को दोष नहीं होता है ॥ ८ ॥

दोहा-जो अस हिसिका करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान ॥
परहिं कल्पभरि नरक महँ, जीव कि-ईश-समान ॥ ८१ ॥

जो मनुष्य ईश्वरके कर्म देख वैसी ही ईर्षा (मनोरथ) करते हैं वे कल्पभर नरकमें पड़ते हैं क्योंकि जीव ईश्वरके समान नहीं, जबतक कि कर्म बन्धन पंचतत्त्व युक्त हैं ॥ ८१ ॥

सुरसरि जलकृत वारुणि जाना * कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना ॥१॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे * ईश अनीशहि अन्तर तैसे ॥२॥

गङ्गा जलकी बनी वारुणी जानकर भी सन्त उसको कभी पान नहीं करते, इसी प्रकार ईश्वरका अंश ही जीव देहमें होनेपर भी ईश्वर नहीं कहला सकता, परन्तु ॥ १ ॥ गङ्गाजीमें ही वही वारुणी मिलने पर गंगा जल जैसा होता है इसी प्रकार यह जीव ईश्वरको प्राप्त होकर ईश्वर ही हो जाता है; बस ईश्वर और जीवमें इतना ही अन्तर है ॥ २ ॥

शम्भु सहज समरथ भगवाना * इहि विवाह सब विधि कल्याना ॥३॥
दुराराध्य पै अहहिं महेशू * आशुतोष पुनि किये कलेशू ॥४॥

शिवजी स्वाभाविक समर्थ भगवान् हैं, अतः इस विवाहमें सब प्रकारसे भलाई है ॥ ३ ॥ परन्तु शिवजी दुराराध्य हैं अर्थात् उनका दुःखसे आराधन होता है, अथवा दूर है आराधन जिनका, तो भी फिर क्लेश करनेसे शीघ्र ही, प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४ ॥

जो तप करै कुमारि तुम्हारी * भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥५॥
यद्यपि वर अनेक जगमाहीं * इहिकहँ शिव तजि दूसर नाहीं ॥६॥

जो तुम्हारी कन्या तप करे तो शिवजी होनहारको भी मेट सकते हैं क्योंकि तपसे कर्म क्षय हो जाते हैं ॥५॥ यद्यपि जगत्में अनेक वर हैं पर इसको शिवजीके विना दूसरा नहीं है ॥६॥

वरदायक प्रणतारति भंजन * कृपासिंधु सेवक मनरंजन ॥७॥
इच्छित फल बिनु शिव आराधे * लहइ न कोटि योग जप साधे ॥८॥

वरके देनेवाले, दुखियोंके दुःख दूर करनेवाले, कृपाके समुद्र, सेवकका मन प्रसन्न करने वाले हैं ॥ ७ ॥ यथेच्छ मनोरथ विना शिवजीकी आराधना किये करोड़ भांति जप साधनसे भी नहीं मिलता ॥ ८ ॥

दोहा-अस कहि नारद सुमिर हरि, गिरिजहि दीन्ह अशीश ॥
होइहि यहि कल्याण अब, संशय तजहु गिरीश ॥ ८२ ॥

ऐसा नारदजी भगवान्को स्मरण कर पार्वतीको आशीष दी और कहा-हे गिरीश ! तुम संदेह त्याग करो; अब इसका कल्याण होगा ॥ ८२ ॥

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ * आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥१॥
पतिहि इकान्त पाय कह मैना * नाथ न मैं समुझेउँ मुनि वैना ॥२॥

ऐसा कहकर मुनि नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये; अब अगली कथा जैसे हुई वह सुनो ॥ १ ॥ पतिको एकांतमें पाकर मैनाने कहा; स्वामी ! मैंने मुनिके वचन नहीं समझे ॥ २ ॥

जो घर वर कुल होय अनूपा * करिय विवाह सुता-अनुरूपा ॥३॥

नतु कन्या वरु रहइ कुमारी ❋ कन्त उमा मम प्राण पियारी ॥४॥

जो घर, वर और कुल श्रेष्ठ हो तो कन्याके अनुरूप विवाह कीजिये ॥ ३ ॥ नहीं तो चाहे बेटी कुमारी रहे पर हीन ठौर विवाह नहीं करूँगी; हे कन्त ! उमा मुझे प्राणोंके समान प्यारी है ॥ ४ ॥

जौ न मिलहि वर गिरजहि योगू ❋ गिरिजड़ सहज कहहिं सब लोगू ॥५॥
सो विचारि पति करहु विवाहू ❋ जेहि न बहोरि होइ उर दाहू ॥६॥

जो पार्वतीके योग्य वर नहीं मिलेगा तो लोग कहेंगे कि हिमालय स्वभावसे ही मूर्ख है॥५॥ सो हे स्वामी ! यही विचार कर विवाह कीजिये जिससे फिर मनमें पश्चाताप न हो ॥ ६ ॥

अस कहि परी चरण धरि शीशा ❋ बोले सहित सनेह गिरीशा ॥७॥
बरु पावक प्रगटे शशि माहीं ❋ नारद वचन अन्यथा नाहीं ॥८॥

ऐसा कह कर मयनाने चरणोंमें शिर रख दिया, तब हिमालय प्रीतिपूर्वक बोले ॥ ७ ॥ चाहे चंद्रमासे आग निकले पर नारदजीका वचन झूठा नहीं होगा ॥ ८ ॥

दोहा–प्रिया शोच परिहरहु सब, सुमिरहु श्री भगवान ॥
❋ पारवती जिन निर्मयउ, सोइ करिहहिं कल्यान ॥ ८३ ॥

हे प्यारी ! सब सोच त्याग दो और श्री भगवान्‌का भजन करो, जिन्होंने पार्वतीको बनाया है वे सब अच्छा करेंगे ॥ ८३ ॥

अब जौ तुमहिं सुता पर नेहू ❋ तौ अस जाय सिखावन देहू ॥१॥
करै सो तप जेहि मिलहिं महेशू ❋ आन उपाय न मिटहिं कलेशू ॥२॥

अब जो तुम्हारा पुत्रीके ऊपर स्नेह है तो जाकर ऐसी शिक्षा दो कि ॥ १ ॥ तप करे जिससे शिवजी मिलें और किसी उपायसे क्लेश नहीं मिटेगा ॥ २ ॥

नारद वचन सगर्भ सहेतू ❋ सुन्दर सब गुणनिधि वृषकेतू ॥३॥
अस विचारि तुम तजि सब शंका ❋ सबहि भाँति शंकर अकलंका ॥४॥

जो कोई हेतु अर्थात् जगत्‌की उत्पत्तिके साथ बीज सहित हैं वे नारदजीके वचनके गर्भ हैं अथवा नारदजीके वचन हेतु और गूढ़ता युक्त हैं; शिवजी सब सुन्दर गुणोंके समुद्र हैं ॥३॥ ऐसा विचार कर तुम सब सन्देह त्याग दो, शिवजी सब प्रकारसे कलंक रहित हैं ॥ ४ ॥

सुनि पति वचन हर्षि मनमाहीं ❋ गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥५॥
उमहि विलोकि नयन भरि बारी ❋ सहित सनेह गोद बैठारी ॥६॥

मयना पतिके वचन सुनकर मनमें प्रसन्न हुई, उठकर तुरन्त पार्वती के पास गयी ॥ ५ ॥ पार्वतीको देखकर नेत्रोंमें जल भर आया और प्रीतिसे गोदमें बैठाया ॥ ६ ॥

बारहि बार लेति उर लाई ❋ गद्गद कण्ठ न कछु कहि जाई ॥७॥
जगत मातु सर्वज्ञ भवानी ❋ मातु सुखद बोलीं मृदुबानी ॥८॥

बारंबार हृदयसे लगा लेती हैं, प्रेमके आंसुओंसे गला भर रहा है, कुछ कहा नहीं जाता ॥७॥ जगत्‌की माता, सब जाननेवाली पार्वतीजी माताको सुख देनेवाली वाणी बोलीं ॥ ८॥

दोहा—सुनहु मातु मैं दीख अस, स्वप्न सुनावउँ तोहिं ॥
सुन्दर गौर सुविप्र वर, अस उपदेशेउ मोहिं ॥ ८४ ॥

सुनो माता ! मैंने एक स्वप्न देखा है उसे तुम्हें सुनाती हूँ; एक सुन्दर गोरा ब्राह्मण मुझे यों समझाता है ॥ ८४ ॥

करहु जाय तप शैल कुमारी * नारद कहा सो सत्य विचारी ॥१॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा * तप सुखप्रद दुख दोष नशावा ॥२॥

हे पार्वती ! जाकर तप करो, नारदजीने जो कहा है उसको सत्य विचारो ॥ १ ॥ फिर तुम्हारे माता-पिताको भी अच्छा लगा है कि तप सुख देनेवाला और दुःख-दोषका नाश करने वाला है (सो मैया ! इसमें तुम्हारा और पिताजीका भी मत है ?) ॥ २ ॥

तपबल रचैं प्रपञ्च विधाता * तपबल विष्णु सकल जगत्राता ॥३॥
तपबल शम्भु करहिं संहारा * तपबल शेष धरहिं महि भारा ॥४॥

(फिर कहा कि) तपके बलसे ही ब्रह्माजी संसार रचते हैं और तपके बलसे ही विष्णु सब जगत्‌की रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥ तपके बलसे ही शिवजी संहार करते और तपके बलसे ही शेष पृथ्वीका बोझा उठाते हैं ॥ ४ ॥

तप अधार सब सृष्टि भवानी * करहु जाय तप अस जिय जानी ॥५॥
सुनत वचन विस्मित महतारी * स्वप्न सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥६॥

हे पार्वती ! (बहुत क्या कहूँ) तपके आधार ही सारी सृष्टि है ऐसा जीमें समझ लो और जाकर तपस्या करो। (मैंने इतना स्वप्न देखा सो कह दिया) ॥ ५ ॥ यह वचन सुनते ही मयना बड़े अचम्भेमें हुई और हिमालयको बुलाकर स्वप्न सुनाया ॥ ६ ॥

मातु पितहि बहुविधि समुझाई * चली उमा तपहित हरषाई ॥७॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता * भये विकल मुख आव न बाता ॥८॥

माता पिताको बहुत प्रकारसे समझाकर पार्वती प्रसन्न हो तप करनेके लिये चलीं और माताने जो कहा (उ) हे पुत्री ! (मा) तप करने मत जाय तभीसे 'उमा' नाम सिद्ध हुआ इसी कारण यहां उमा पद दिया है ॥ ७ ॥ प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हुए मुखसे बात नहीं आयी ॥ ८ ॥

दोहा—वेदशिरा मुनि आय तब, सबहि कहा समुझाय ॥
पारवती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाय ॥ ८५ ॥

तब वेदशिरा मुनिने आकर सबको समझाया कि (पार्वती जगत्‌की माता है) यह पार्वतीकी महिमा सुनकर सबको ज्ञान हुआ ॥ ८५ ॥

उर धरि उमा प्राणपति चरणा * जाय विपिन लागीं तप करना ॥१॥
अतिसुकुमारि न तनु तपयोगू * पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू ॥२॥

पार्वती प्राणपति शिवके चरण हृदयमें धारण कर वनमें जाकर तप करने लगीं ॥ १ ॥ यद्यपि बहुत सुकुमारी थीं और शरीर तपके योग्य नहीं था तो भी पति (शिवजी) के चरणोंका स्मरण कर सब भोग त्याग दिये ॥ २ ॥

नित नव चरण उपज अनुरागा ❋ बिसरी देह तपहि मन लागा ॥३॥
संवत सहस मूल फल खाये ❋ शाक खाय शत वर्ष गमाये ॥४॥

नित नया चरणोंमें प्रेम उपजता था, देहकी सुधि भूल गयी, तपमें ही मन लग गया॥३॥ हजार वर्षतक मूल फल खाये और शाकपात खाकर सौ वर्ष बिताये ॥ ४ ॥

कछु दिन भोजन वारि बतासा ❋ किये कठिन कछु दिन उपवासा॥५॥
बेल पात महि परै सुखाई ❋ तीनि सहस संवत सोइ खाई ॥६॥

कुछ दिन जल व बतास (पवन) का ही भोजन किया और कुछ दिन कठिन उपवास किया अर्थात् पवनको भी त्याग दिया ॥ ५ ॥ जो बेलके पत्ते पृथ्वीपर सूखकर गिर पड़ते हैं सो तीन हजार वर्षतक खाये ॥ ६ ॥

पुनि परिहरेउ सुखानेउ पर्णा ❋ उमा नाम तब भयउ अपर्णा ॥७॥
देखि उमहि तप क्षीण शरीरा ❋ ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा ॥८॥

फिर सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये तब पार्वतीका नाम 'अपर्णा' हुआ ॥ ७ ॥ पार्वतीका शरीर तपसे क्षीण हो गया, यह देख आकाशसे गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई ॥ ८ ॥

दोहा–भयउ मनोरथ सफल तव, सुनु गिरिराज कुमारि ॥
परिहरु दुसह कलेश सब, अब मिलहहिं त्रिपुरारि ॥ ८६ ॥

हे गिरिराजकुमारी ! तेरा मनोरथ सफल हुआ, इस कारण सुन, सब कठिन क्लेश छोड़ दे, अब शिवजी मिल जायँगे ॥ ८६ ॥

अस तप काहु न कीन्ह भवानी ❋ भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥१॥
अब उर धरउ ब्रह्म वर बानी ❋ सत्य सदा सन्तत शुचि जानी ॥२॥

हे पार्वती ! ऐसा (कठिन) तप किसीने नहीं किया, यद्यपि अनेक धीरमुनि ज्ञानी हुए हैं॥१॥ अब यह ब्रह्माकी श्रेष्ठ वाणी मनमें धारण करो, इसे सदा सच्ची और पवित्र जानना ॥ २ ॥

आवहिं पिता बुलावन जबहीं ❋ हठ परिहरि घर जायहु तबहीं ॥३॥
मिलहिं तुमहिं जब सप्तऋषीशा ❋ जानेउ तब प्रमाण वागीशा ॥४॥

जबहीं तुम्हारे पिता बुलाने आवें तबहीं हठ छोड़कर घरको चली जाना॥ ३ ॥ फिर जब तुमको सात ऋषि मिलें तब उस वाणीका प्रमाण जानना ॥ ४ ॥

सुनत गिरा विधि गगन बखानी ❋ पुलकगात गिरिजा हरषानी ॥५॥
उमा–चरित मैं सुन्दर गावा ❋ सुनहु शम्भुकर चरित सुहावा ॥६॥

ब्रह्मासे उच्चारण की हुई इस आकाशवाणीको सुनकर पार्वतीका शरीर पुलकायमान हो गया और वह प्रसन्न हुई ॥ ५ ॥ मैंने पार्वतीका सुन्दर चरित्र गाया, अब शिवजीका शोभायमान चरित्र सुनिये (यह याज्ञवल्क्यका वचन है) ॥ ६ ॥

जबते सती जाय तनु त्यागा ❋ तबते शिवमन भयउ विरागा ॥७॥
जपहिं सदा रघुनायक–नामा ❋ जहँ तहँ सुनहिं राम गुणग्रामा ॥८॥

जबसे सतीने अपना शरीर त्यागा तबसे शिवजीके मनमें (विशेष) वैराग्य हुआ ॥७॥ उस दिनसे सदा रामका नाम जपते और जहाँ-तहाँ श्रीरामचंद्रके गुणानुवाद सुनते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-चिदानन्द सुखधाम शिव, विगत मोह मद काम ॥
विचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम ॥ ८७ ॥

वे शिव, जिनका आनन्द सदा चैतन्य है तथा सुखके धाम हैं और विशेषकर दूर है मोह, मद और काम जिनका, हरिको हृदयमें धारण किये हुए सतीके वियोगसे पृथ्वीमें घूमते हैं जो सम्पूर्ण लोकोंके अभिराम अर्थात् आनन्दरूप हैं (धरतीपर शिवजीके विचरनेका कारण यह है कि सतीके वियोगमें सतीका स्थल कैलास देखकर उनका स्मरण अधिक होता है) ॥८७॥

कतहुँ मुनिन उपदेशहिं ज्ञाना * कतहुँ राम गुण करहिं बखाना ॥१॥
यदपि अकाम तदपि भगवाना *भक्त विरह दुख दुखित सुजाना ॥२॥

कहीं मुनियोंको ज्ञान उपदेश करते हैं, कहीं आप रामजीके गुण बखान करते हैं ॥ १ ॥ यद्यपि कामना रहित हैं तो भी भगवान् अर्थात् शिवजी भक्तके विरहदुःखसे दुःखित हैं क्योंकि सुजान हैं अतः सतीके दुःखसे दुखी हैं ॥ २ ॥

इहि विधि गयउ काल बहु बीती * नित नव होय राम पद प्रीती ॥३॥
नेम प्रेम शङ्कर-कर देखा * अविचल हृदय भक्तिकी रेखा ॥४॥

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया, नित नयी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति होती है ॥ ३ ॥ नेम और प्रेम शिवजीका देखा कि, भक्तिकी रेखा हृदयमें अचल है ॥ ४ ॥

प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला * रूपशील निधि तेज विशाला ॥५॥
बहु प्रकार शंकरहि सराहा * तुम विन अस व्रतको निरवाहा ॥६॥

कृतके ज्ञाता और कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्रगट हुए रूपशीलके निधान जिनका बड़ा तेज है ॥५॥ बहुत प्रकारसे शिवजीकी सराहना की, कि आपके विना ऐसे व्रतको कौन निबाहे ? ॥६॥

बहु विधि राम शिवहि समुझावा * पारवती कर जन्म सुनावा ॥७॥
अति पुनीति गिरिजा की करणी * विस्तरसहित कृपानिधि वरणी ॥८॥

अनेक प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीको समझाया और पार्वतीका जन्म सुनाया ॥७॥ अति पवित्र पार्वती के कर्म विस्तारसहित कृपासागर भगवान्ने वर्णन किये (और बोले) ॥८॥

दोहा-अब विनती मम सुनहु शिव, जो मोपर निज नेहु ॥
जाय विवाहहु शैलजहिं, यह मोहि माँगे देहु ॥ ८८ ॥

अब हे शिवजी ! मेरी विनती सुनिये मेरे ऊपर आपका स्नेह है तो जायकर पार्वती को विवाहो, यह बात मुझे माँगने पर दो ॥ ८८ ॥

कह शिव यदपि उचित अस नाहीं * नाथ वचन पुनि मेटि न जाहीं ॥१॥
शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा * परम धर्म यह नाथ हमारा ॥२॥

शिवजीने कहा यद्यपि यह बात उचित नहीं है, जो आपने कहा कि-"अब विनती मम सुनहु शिव" तो भी हे स्वामी ! आपकी आज्ञा मेटी नहीं जाती है ॥ १ ॥ हे नाथ ! आपकी आज्ञा शिरपर धारण करके कार्य करें यही परम धर्म है ॥ २ ॥

मातु पिता गुरु प्रभुकै बानी ❋ बिनहिं विचार करिय शुभजानी ॥३॥
तुम सब भाँति परम हितकारी ❋ आज्ञा शिरपर नाथ तुम्हारी ॥४॥

माता, पिता, गुरु और प्रभुकी वाणी विना ही विचारे अच्छी जानकर करनी चाहिये ॥ ३ ॥ फिर हे नाथ ! आप तो सभी प्रकार हमारे परम हित करने वाले हैं, अतएव आज्ञा शिरपर धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

प्रभु तोषेउ मुनि शंकर वचना ❋ भक्ति विवेक धर्मयुत रचना ॥५॥
कह प्रभु हर तुम्हार प्रण रहेऊ ❋ अब उर राखहु जो हम कहेऊ॥६॥

भगवान् शिवजीकी बातें सुनकर प्रसन्न हुए, क्योंकि वह भक्ति, ज्ञान और धर्म युक्त बातें थीं "शिर धरि आयसु" यह भक्ति और "परम धर्म" यह धर्मका लक्ष्य है ॥५॥ भगवान्ने कहा कि शिवजी ! तुम्हारा प्रण रह गया अब जो हमने कहा है वह मनमें धारण कीजिये॥६॥

अन्तर्धान भये अस भाखी ❋ शंकर सोइ मूरति उर राखी ॥७॥
तबहिं सप्तऋषि शिवपहँ आये ❋ बोले प्रभु अति वचन सुहाये ॥८॥

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये, शिवजीने उसी मूर्तिको मनमें धारण कर रखा ॥७॥ उसी समय सप्तऋषि शिवजीके समीप आये, उनसे शिवजीने अत्यन्त सुन्दर वचन कहे । (सप्तऋषि-कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि और गौतम) ॥८॥

दोहा-पारवती पहँ जाय तुम, प्रेम-परीक्षा लेहु ॥
गिरिहि प्रेरि पठवहु भवन, दूरि करहु सन्देहु ॥ ८९ ॥

पार्वतीके पास जाकर तुम उनके प्रेमकी परीक्षा लो और फिर हिमालयको प्रेरणा करो कि वह सन्देह दूर करके पार्वतीको घर ले जाय ॥ ८९ ॥

सुनि शिव वचन परम सुख मानी ❋ चले हर्षि जहँ रहीं भवानी ॥१॥
ऋषिन गौरि देखी तहँ कैसी ❋ मूरतिमन्त तपस्या जैसी ॥२॥
बोले मुनि सुनु शैलकुमारी ❋ करहु कवन कारण तप भारी ॥३॥

शिवजीके वचन सुनकर उन्होंने परम सुख माना और फिर हर्षित होकर वहांको चले जहां पार्वतीजी थीं ॥ १ ॥ ऋषियोंने वहां जाकर पार्वतीजीको इस प्रकार देखा जैसे मूर्तिवाली तपस्या हो ॥२॥ मुनि बोले-हे पार्वती ! सुनो, क्या कारण है जो भारी तपस्या करती हो ? ॥३॥

केहि आराधहु का तुम चहहू ❋ हमसन सत्यमर्म सब कहहू ॥४॥
सुनत ऋषिनके वचन भवानी ❋ बोलीं गूढ़ मनोहर बानी ॥५॥

किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो ? हमसे यह भेद सत्य कहो ॥ ४ ॥ यह ऋषियोंके वचन सुनतेही भवानी (पार्वती) गम्भीर और मनोहर वाणी बोलीं ॥ ५ ॥

कहत मर्म मन अति सकुचाई ❋ हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥६॥
मन हठ परा न सुनै सिखावा ❋ चहत वारिपर भीति उठावा ॥७॥

मर्म कहने में मन बहुत लजाता है; तुम हमारी मूर्खताको सुनकर हँसोगे ॥६॥ मनमें हठ पड़ गया है, सिखानेसे नहीं मानता और जलके ऊपर भीति(दिवार)बनाया चाहता है ॥७॥

नारद कहा सत्य सोइ जाना * विनु पंखन हम चहहिं उड़ाना ॥८॥
देखहु मुनि अविवेक हमारा * चाहत पति शंकर अविकारा ॥९॥

नारदजीने जो कहा उसीको सत्य जानकर हम विना पंखोंके ही उड़ना चाहते हैं ॥ ८ ॥ देखिये मुनियो ! हमारे अज्ञानको कि हम विकार रहित शिवजीको पति बनाना चाहती हैं॥९॥

दोहा-सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरिसंभव तव देह ॥
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु बसेहु केहि गेह ॥ ९० ॥

यह वचन सुनते ही ऋषि हँसे (और कहा कि) तुम्हारी देह पर्वतसे उत्पन्न है, नारदजीका उपदेश सुनकर बताओ तो किसीका घर बसा है ? अथवा कौन घर बसा है ? ॥ ९० ॥

दक्ष सुतन्ह उपदेशिन जाई * तिन फिर भवन न देखा आई ॥१॥
चित्रकेतु कर घर उन घाला *कनककशिपुकर पुनि अस हाला॥२॥

उन्होंने जाकर दक्षके पुत्रोंको उपदेश दिया; जिससे कि उन्होंने आकर फिर घर न देखा। दक्षप्रजापतिने प्रथम बहुतसे पुत्र उत्पन्न करके आज्ञा दी कि सृष्टि उत्पन्न करो, तब वे सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये तपस्या करनेको गये, वहां नारदजीने उन सबों को ऐसा ज्ञान दिया कि वे सबके सब विरक्त हो वनमें तप करने गये, फिर घरको नहीं आये ! तब दक्षने कन्या उत्पन्न करके सृष्टिको बढ़ाया और नारदजीको शाप दिया कि तुम दो घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकोगे। बस; जब ऐसोंको भी नारदजीने भिखारी कर दिया तो तुम क्या हो ? ॥ १ ॥ चित्रकेतुका घर नारदजीने ही चौपट कर दिया और यही दशा हिरण्याक्षकी भी की। चित्रकेतु के करोड़ रानी थीं; (यह बहुवाची शब्द है) परन्तु पुत्र एकके भी नहीं था पीछे किसी मुनिके आशीर्वादसे छोटी रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ,जब वह बालक वर्ष दिनका हुआ तब अन्यान्य रानियोंने उसको विष देकर मार डाला, कारण कि राजा छोटी रानीको अधिक प्यार करते थे। तब उस मृत पुत्रको गोदमें लेकर राजा विलाप करने लगा तो इसी अवसरमें नारदजी आकर राजाको ज्ञानोपदेश दिया परन्तु राजाको ज्ञान न हुआ। तब नारदजीने उस बालककी आत्माको बुलाकर उससे कहा' देखो राजा तुम्हारे शरीर त्यागनेसे बहुत व्याकुल हैं, इसलिए तुम शरीरमें आओ, तब वह आत्मा नारदजीके योगबलसे बोला कि कैसा पुत्र और कौन पिता? यह झूठा जञ्जाल है; संसार कर्मानुसार है सुनो-पहले जन्ममें मैं भी राजा था;राज्यसे विरक्त होकर वनमें वास करने लगा। एकदिन मैं नगरमें गया तो एक स्त्रीने मुझे गोला गोइंठा दिया,उसके भीतर चींटी थीं मैंने उसे अग्नि पर रखा तब अग्निके संयोगसे सब चींटियां मर गयीं, वही चींटियां यह तुम्हारी स्त्री हैं ? जिसने गोला गोइंठा दिया वही यह मेरी माता है मैंने उस पापसे इसके उदरमें जन्म लिया है और इन चींटीरूप स्त्रियोंने आकर अपना बदला लिया है। यह कहकर वह बालक मर गया और चित्रकेतु राज्य छोड़कर वनमें तप करनेके लिये चला गया।

कनककशिपुकी स्त्री कयाधू जब गर्भवती थी तब नारदजीने उसको ज्ञानोपदेश दिया, सो गर्भमें ही प्रह्लादको ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसी प्रह्लादके ज्ञानसे विष्णु भगवान्ने नृसिंहरूप धारण करके प्रह्लादका उद्धार कर हिरण्यकशिपुको मार डाला । नारदजीके उपदेशसे ही दैत्यकुलका नाश हुआ ॥ २ ॥

नारदसिख जे सुनहिं नर नारी *अवसि भवन तजि होहिं भिखारी॥३॥

मन कपटी तनु सज्जन चीन्हा ❋ आप सरिस सबही चह कीन्हा ॥४॥

जो स्त्री पुरुष नारदकी शिक्षा सुनते हैं निश्चय घर त्यागकर भिखारी हो जाते हैं॥३॥ वे मनमें कपटी ऊपरसे सज्जन वेष बनाये रहते हैं और अपने समान ही सबको करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

तेहि के वचन मानि विस्वासा ❋ तुम चाहति पति सहज उदासा ॥५॥
निर्गुण निलज कुवेष कपाली ❋ अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली ॥६॥

उस कपटी नारदकी बातोंमें विश्वास करके तुम स्वाभाविक उदासीन पति चाहती हो॥५॥ जिनमें कोई श्रेष्ठ गुण नहीं, लज्जाहीन, बुरा वेष, कपाल हाथमें धारण करनेवाले, कुल और घरसे रहित, दिगम्बर अर्थात् दिशा ही है वस्त्र जिनके और सर्पोंके गहने पहने हैं ॥ ६ ॥

कहहु कवन सुख अस बर पाये ❋ भल भूलिउ ठगके बौराये ॥७॥
पंच कहे शिव सती विवाही ❋ पुनि अवडेरि मराइन ताही ॥८॥

बताओ तो ऐसा वर पानेसे क्या सुख है ? ठगके बहकानेसे अच्छा बहक गयी हो ॥७॥ पंच कहते हैं कि शिवजीने सतीसे विवाह किया परंतु फिर उसको त्यागकर मरवा डाला॥८॥

दोहा-अब सुख सोवत सोच नहिं, भीख मांगि भव खाहिं ॥
❋ सहज एकाकिनके भवन, कबहुं कि नारि खटाहिं ॥ ९१ ॥

अब सुखसे सोते हैं, कुछ सोच नहीं, संसारमें भीख मांगकर खाते हैं, कहीं स्वाभाविक अकेले रहनेवालेके घरमें स्त्रियां ठहरती हैं ? अर्थात् नहीं ठहर सकतीं ? ॥ ९१ ॥

अजहूँ मानहु कहा हमारा ❋ हम तुम कहुँ वर नीक विचारा ॥१॥
अति सुन्दर शुचि सुखदसुशीला ❋ गावहिं वेद जासु यश लीला ॥२॥

अब भी हमारा कहना मानो हमने तुमको अच्छा वर विचारा है ॥ १ ॥ अति सुन्दर पवित्र, सुखदायक, सुशील और वेद जिसके यशकी लीला गाते हैं ॥ २ ॥

दूषण रहित सकल गुणरासी ❋ श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी ॥३॥
अस वर तुमहि मिलाउब आनी ❋ सुनत बिहँसि कह वचन भवानी ॥४॥

दोषोंसे रहित, सम्पूर्ण गुणोंकी राशि, लक्ष्मीजीके पति, विष्णु भगवान् जो वैकुण्ठके रहनेवाले हैं॥३॥ ऐसा वर हम लाकर तुम्हें मिला देंगे, यह वचन सुनते ही पार्वतीने हँसकर कहा॥४॥

सत्य कहहु गिरि भवतनु एहा ❋ हठ न छूट छूटइ बरु देहा ॥५॥
कनकउ पुनि पषाणते होई ❋ जारेउ सहज न परिहर सोई ॥६॥

हे मुनियो ! यह तुमने सत्य कहा; किंतु यह शरीर पर्वतसे उत्पन्न है इस लिये तो हठ नहीं छूटेगा चाहे देह छूट जाय ॥५॥ सोना पहाड़से होता है उसको कोई हजार बार जारे तो भी यह अपने स्वभावको नहीं छोड़ता; अथवा पत्थरका किनका भी अपने स्वभावको नहीं त्यागता॥६॥

नारद वचन न मैं परिहरऊँ ❋ बसौं भवन उजरौ नहिं डरऊँ ॥७॥
गुरुके वचन प्रतीति न जेही ❋ सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ॥८॥

नारदजीके वचनको मैं नहीं त्यागूँगी; चाहे घर बसे या उजरे इससे नहीं डरती॥७॥ क्योंकि जिसको गुरुके वचनमें प्रतीति नहीं है उसको स्वप्नमें सुख और सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥

दोहा—महादेव अवगुण भवन, विष्णु सकल गुणधाम ॥
जेहि कर मन रम जाहिसन, ताहि ताहिसन काम ॥ ९२ ॥

महादेव चाहे अवगुणके घर और विष्णु गुणोंके धाम हों; पर मुझे शिवजी ही प्यारे हैं क्योंकि जिनका मन जिससे रमता है उसको उसीसे काम है और वही उसको सुन्दर लगता है अथवा अवगुणके अर्थ तीनों गुणोंसे रहित है ॥ ९२ ॥

जौं तुम मिलतेउ प्रथम मुनीशा * सुनतिउँ शिख तुम्हारि धरि शीशा ॥१॥
अब मैं जन्म शम्भुहित हारा * को गुण दूषण करै विचारा ॥२॥

हे मुनियो ! जो तुम पहले मिलते तो तुम्हारी शिक्षा सुनती और उसको शिरपर चढ़ाती ॥ १ ॥ पर अब तो मैंने अपना जन्म शिवजीके लिये हार दिया है, (ऐसी दशामें) गुण-दोष का कौन विचार करे ॥ २ ॥

जौं तुम्हरे हठ हृदय विशेषी * रहि न जाय विनु किये बरेषी ॥३॥
तौ कौतुकियन आलस नाहीं * वर कन्या अनेक जगमाहीं ॥४॥

और जो तुम्हारे मनमें विवाह करनेका बहुत ही हठ है और विना सगाई (ब्याह) कराये रहा ही नहीं जाता ॥ ३ ॥ तो तुमसे ऐसे कौतुकी पुरुषोंको आलस्य नहीं होता, जगत्में वर कन्या अनेक हैं ब्याह कराओ ॥ ४ ॥

जन्म कोटि लगि रगर हमारी * वरउँ शम्भु नतु रहउँ कुमारी ॥५॥
तजउँ न नारदकर उपदेशू * आप कहहिं शत बार महेशू ॥६॥

पर हमारी तो करोड़ों जन्मतक यही रगड़ है कि या तो शिवजीको वरूँगी या क्वारी रहूँगी ॥५॥ नारदजीका उपदेश नहीं त्याग करूँगी, चाहे शिवजी आप भी सौ वार कहें॥६॥

मैं पाँ परउँ कहइ जगदम्बा * तुम गृह गवनहु भयउ विलंबा॥७॥
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी * जय जय जय जगदम्ब भवानी॥८॥

जगन्माता पार्वतीने कहा-तुम्हारे पायँ पड़ती हूँ तुम अब घरको जाओ तुम्हें देर बहुत हुई ॥७॥ यह प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले-जगत्की माता ! तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो॥८॥

दोहा—तुम माया भगवान शिव, सकल जगत पितु-मात ॥
नाय चरण शिर मुनि चले, पुनि पुनि पुलकित गात ॥ ९३ ॥

शिवजी भगवान् हैं और तुम उनकी माया हो दोनों सब जगत्के पिता-माता हो ऐसे कह चरणोंमें शिर नवाकर मुनि चले; उनका शरीर बार बार पुलकित होता है ॥ ९३ ॥

जाय मुनिन हिमवन्त पठाये * करि विनती गिरिजहि घर लाये॥१॥
बहुरि सप्तऋषि शिव पहँ जाई * कथा उमाकी सकल सुनाई ॥२॥

मुनियोंने जाकर हिमालयको वहां भेजा वह विनती कर पार्वतीको घर लाये ॥ १ ॥ फिर उन्हीं सात ऋषियोंने शिवजीके पास जाकर पार्वतीकी सब कथा सुनायी कि पार्वतीकी आप से अटल प्रीति है ॥ २ ॥

भये मगन शिव सुनत सनेहा * हरषि सप्तऋषि गवने गेहा ॥३॥
मन थिर करि तब शम्भु सुजाना * लगे करन रघुनायक ध्याना ॥४॥

शिवजी पार्वतीका स्नेह सुनकर बहुत मग्न हुए, पुनः सातों ऋषि प्रसन्न हो गये ॥ ३ ॥ सुजान शिवजी अपना मन स्थिर करके श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥

तारक असुर भयउ तेहि काला ❋ भुजप्रताप बल तेज विशाला ॥५॥
तेइ सब लोक लोकपति जीते ❋ भये देव सुख संपति रीते ॥६॥

उसी समय एक तारक नामक राक्षस उत्पन्न हुआ, जिसकी भुजाओंका प्रताप, बल और तेज अधिक था ॥ ५ ॥ उसने सब लोक और लोकोंके देवताओंको जीता, जिससे देवता सुख सम्पत्तिसे रहित हो गये ॥ ६ ॥

अजर अमर सो जीति न जाई ❋ हारे सुर करि विविध लराई ॥७॥
तब विरंचिसन जाय पुकारे ❋ देखे विधि सब देव दुखारे ॥८॥

वह बुढ़ापेसे रहित, मरणसे रहित, किसीसे जीता नहीं जाय, देवता अनेक लड़ाई करके हार गये ॥७॥ जब ब्रह्माजीको जाकर पुकारे तब ब्रह्माजीने सब देवताओंको दुःखी देखकर॥८॥

दोहा-सब सन कहा बुझाय विधि, दनुज निधन तब होइ ॥
शंभुशुक्र-संभूत सुत, इहि जीते रण सोइ ॥ ९४ ॥

ब्रह्माजीने सबसे यह समझाकर कहा-कि, इस राक्षसका मरण तब होगा जब शिवजीके वीर्यसे पुत्र उत्पन्न होकर इससे युद्ध करे ॥ ९४ ॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई ❋ होइहि ईश्वर करहि सहाई ॥१॥
सती जो तजी दक्षमख देहा ❋ जन्मी जाय हिमाचल गेहा ॥२॥

मेरी बात सुनकर उपाय करो; जो ईश्वर सहाय करेगा तो काम हो जायगा ॥ १ ॥ सतीने जो दक्षके यज्ञमें देह त्याग किया है, अब वह हिमालयके घर जाकर जन्मी है ॥ २ ॥

तेइ तप कीन्ह शम्भुपति लागी ❋ शिव समाधि बैठे सब त्यागी ॥३॥
यदपि अहै असमञ्जस भारी ❋ तदपि बात इक सुनहु हमारी ॥४॥

उस, (पार्वती) ने शिवजीको पति बनानेके हेतु तप किया है और शिवजी सब त्याग कर समाधि लगाये बैठे हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि बड़ी दुविधाकी बात है तो भी हमारी बात सुनो (एक तो समाधिका छूटना कठिन है, दूसरे छूटे तो कामका वचना कठिन है यही दुविधा है)॥४॥

पठवहु काम जाय शिव पाहीं ❋ करइ क्षोभ शंकर-मन माहीं ॥५॥
तब हम जाय शिवहि शिरनाई ❋ करवाउब विवाह बरियांई ॥६॥

कामदेवको भेजो, वह शिवजीके पास जाय और उनके मनमें क्षोभ उत्पन्न करे ॥ ५ ॥ तो हम जाकर और शिवजीको शिर नवा कर बलपूर्वक विवाह करवायेंगे ॥ ६ ॥

इहि विधि भलेहि देवहित होई ❋ मति अतिनीक कहा सब कोई॥७॥
अस्तुति सुरन कीन्ह अतिहेतू ❋ प्रगटेउ विषमबाण झषकेतू॥८॥

इस प्रकार भली भांति देवताओंका हित होगा; यह मति अच्छी है ऐसा सब किसीने कहा ॥ ७ ॥ अति प्रेमसे देवताओंने स्तुति की तब झषकेतु (कामदेव) "प्रद्युम्नो मीनकेतनः" इत्यमरः । वनमें प्रगट हुआ जिसके बाण-विषम अर्थात् पांच हैं ॥ ८ ॥

दोहा–सुरन कही निज विपति तब, सुनि मन कीन्ह विचार ॥
शम्भु विरोध न कुशल मोहिं, विहँसि कहेउ अस मार ॥९५॥

जब देवताओंने अपनी विपत्ति कही तब कामदेवने सुनकर विचार किया और हँसते हुए कहा कि शिवजीसे विरोध करनेमें हमारी कुशल नहीं अर्थात् निश्चय मरण होगा (हँसनेका प्रयोजन यह कि देवता अपनी रक्षा और हमारी मृत्यु चाहते हैं) ॥ ९५ ॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा ❋ श्रुति कह परम धर्म उपकारा ॥१॥
परहित लागि तजै जो देहीं ❋ सन्तत सन्त प्रशंसहिं तेहीं ॥२॥

तो भी मैं तुम्हारा कार्य करूँगा, क्योंकि वेद कहता है पराया भला करना परम धर्म है ॥ १ ॥ पराये हित जो शरीर त्याग करता है उसकी सन्त सदा बड़ाई करते हैं ॥ २ ॥

अस कहि चलेउ सबहिं शिरनाई ❋ सुमन धनुष करसहित सहाई ॥३॥
चलत मार अस हृदय विचारा ❋ शिव विरोध ध्रुव मरण हमारा ॥४॥

ऐसा कर सबको शिर नवाकर और हाथमें फूलोंका धनुष धारण किये हुए अपने सहायकों सहित चला । पाठांतरमें 'कर' के स्थानमें 'शर' भी है सो बाणके अर्थ है फूलोंके ही धनुष, बाणमें कोई शंका करे कि एक ही वस्तुका धनुष बाण नहीं होता "लव निमेष परमाणुयुग" इस दोहेमें कालका ही धनुष बाण कथन किया है ॥ ३ ॥ चलते हुए कामदेवने मनमें विचारा कि शिवजीके विरोधसे हमारा निश्चय मरण होगा ॥ ४ ॥

तब आपन प्रभाव विस्तारा ❋ निज वश कीन्ह सकल संसारा ॥५॥
कोपेउ जबहिं वारिचर-केतू ❋ क्षणमहँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥६॥

तब अपने प्रभाव का विस्तार किया और सब संसारको अपने वशमें किया ॥ ५ ॥ जब ही कामदेवने क्रोध किया तब क्षणमात्रमें सब वेद शास्त्रकी मर्यादा मिट गयी ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्य व्रत संयम नाना ❋ धीरज धर्म ज्ञान विज्ञाना ॥७॥
सदाचार जप योग विरागा ❋ सभय विवेक कटक सब भागा ॥८॥

ब्रह्मचर्य[1], अनेक प्रकारके व्रत, संयम और धीरज, धर्म ज्ञान विज्ञान ॥७॥ अच्छे आचरण जप, योग और विरागसहित डरता हुआ ज्ञानका कटक सब भाग गया ॥ ८ ॥

छन्द–भागेउ विवेक सहाय सहित सो सुभट संयुग महि मुरे ।
सद्ग्रन्थ पर्वत कन्दरन महँ जाय तेहि अवसर दुरे ॥
होनहारका करतारको रखवार जग खरभर परा ।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनुशर धरा ॥ ३ ॥

ज्ञान अपने साधन सहित भाग गया और जो उसके योद्धा थे वे समर भूमिसे भाग गये, संयमादि भागकर सद्ग्रंथरूपी पर्वतोंकी कंदराओंमें जा छिपे, अथवा अच्छे ग्रन्थ उस समय पहाड़के खोहोंमें जा छिपे । अर्थात् कहीं पर्वतकी कंदराओंमें कोई शास्त्रका विचार भले ही

१. आठ प्रकारके मैथुनोंसे रहित होनेपर ब्रह्मचारी होता है । यथा "स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः" ॥ १ ॥ स्मरण, कीर्तन, विहार, देखना, एकान्तवार्ता, संकल्प, ध्यान, क्रियासिद्धि यह आठ प्रकारके मैथुन हैं ॥ (शब्दकल्पद्रुमे)

करता रहा हो। न जाने क्या होनहार है ? ईश्वर ही रखवार हैं; जगत्में खलबली पड़ रही है, एकमाथवाले तो सब इसके वशमें है किंतु अब दो माथवाला कौन उत्पन्न हुआ ? जिसके कारण क्रोध कर कामदेवने हाथमें धनुष बाण उठाया है ॥ ३ ॥

दोहा-जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम ॥
ते निज निज मर्याद तजि, भये सकल वश काम ॥ ९६ ॥

जो प्राणी जगत्में चर और अचर, नारी पुरुष नामवाले हैं; वे सब अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़ कामदेवके वशमें हो गये ॥ ९६ ॥

सबके हृदय मदन अभिलाखा * लता निहारि नवहिं तरु शाखा ॥१॥
नदी उमँगि अम्बुधि कहँ धाई * संगम करहिं तलाव तलाई ॥२॥

सबके मनमें ऐसी काम चेष्टा हुई कि बेलोंको देखकर वृक्षोंकी शाखाएँ झुक गयीं ॥ १ ॥ नदियाँ उमड़कर वेगसे समुद्रमें चलीं और तालाब तलैयां संगम करने लगे ॥ २ ॥

जहँ असि दशा जड़नकी बरणी * को कहि सकइ सचेतन करणी ॥३॥
पशु पक्षी नभ जल थल चारी * भये कामवश समय बिसारी ॥४॥

जहां जड़ोंकी यह दशा वर्णन की है वहां चैतन्योंकी करणी कौन कह सकता है ? ॥ ३ ॥ पशु, पक्षी,आकाश,जल पृथ्वीके रहनेवाले सब समय त्यागकर कामदेवके वशमें हो गये ॥४॥

मदन-अन्ध व्याकुल सब लोका *निशिदिन नहिं अवलोकहिं कोका॥५॥
देव दनुज नर किन्नर व्याला * प्रेत पिशाच भूत वैताला ॥६॥

कामदेवके मदसे सब लोक अन्धे हो रहे हैं; चकवा चकई रात दिनको नहीं देखते हैं ॥५॥ देवता, राक्षस, किन्नर (देवजाति) "यक्षोगंधर्वकिन्नराः" इत्यमरः । सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, वैताल ॥ ६ ॥

इनकी दशा न कहेउँ बखानी * सदा कामके चेरे जानी ॥७॥
सिद्ध विरक्त महामुनि योगी * तेपि कामवश भये वियोगी ॥८॥

इनकी दशा तो कुछ कहता ही नहीं हूँ क्योंकि ये तो सदा कामदेवके शिष्य (चेले) हैं ॥७॥ सिद्ध पुरुष, वैराग्यवान् और बड़े योगी मुनि भी तो कामदेवके वशमें होकर योगसे वियोगी हो गये अर्थात् उनका योग छूट गया ॥ ८ ॥

छन्द-भये कामवश योगीश तापस पामरनकी को कहे ।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबला मयम् ।
दुइ दण्डभरि ब्रह्माण्ड भीतर काम--कृत कौतुक अयम् ॥ ४ ॥

योगी और तपस्वी कामके वशमें हो गये और नीचोंकी कौन कहे? वेदान्त जाननेवाले इस जगत्को ब्रह्ममय देखते थे"सर्वखल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः" यह सब ब्रह्म ही है, वे स्थावर जङ्गमात्मक सब जगत् स्त्रीमय देखने लगे; स्त्रियां संसारको पुरुषरूप देखने लगीं और पुरुष विश्वभरको स्त्रीरूप देखने लगे, इस प्रकार पृथ्वीपर यह कामदेवका कौतुक दो घड़ी रहा ॥ ४ ॥

सोरठा–धरा न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे ॥
जेहि राखे रघुवीर, ते उबरे तेहि कालमहँ ॥ १४ ॥

किसीने धीरज नहीं धारण किया, सबके मन कामदेवने हर लिये वा मार डाले, जिनको श्रीरामचन्द्रजीने रखा वे ही उस कालमें उबरे हैं । (ज्ञान, कर्म तो प्रथम ही पलायन कर गये थे केवल उपासना बची थी) ॥ १४ ॥

उभय घरी अस कौतुक भयऊ * जब लगि काम शम्भु पहँ गयऊ ॥१॥
शिवहिं विलोकि सशंकेउ मारू * भयउ यथाथिति सब संसारू ॥२॥

यह सब कौतुक दो घड़ी तक हुआ, जब तक कि कामदेव शिवजीके पास गया, विदित होता है कि, यह कार्य घड़ीभर दिनसे घड़ीभर रात गये तक रहा; जैसे लिखा कि "निशि-दिन नहिं अवलोकहिं कोका" अर्थात् चकवा चकवी रात दिन नहीं देखते ॥ १ ॥ शिवजी को देखके कामदेव भयभीत हुआ और फिर सब संसार ज्योंका त्यों हो गया ॥ २ ॥

भये तुरत जग जीव सुखारे * जिमि मद उतरि गये मतवारे ॥३॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना * दुराधर्ष दुर्गम भगवाना ॥४॥

तुरत जगत्के जीव सुखी हुए, जैसे मतवालोंका मद उतर जाता है ॥३॥ शिवजीको देखकर कामदेवने डर माना । (दुराधर्ष) पकड़नेके अयोग्य; (दुर्गम) दुःख करके प्राप्त होते हैं, (भगवान्) षडैश्वर्य संपन्न हैं, पापियोंको उनके कर्मफल देखकर रुलानेसे शिवजीका नाम रुद्र है, स्थाणू रुद्र उमापतिः इत्यमरः । "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरितः ॥ उत्पत्तिः प्रलयश्चैव भूतानां गतिमागतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ " अर्थ–सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन छः पदार्थोंका नाम भग है । उत्पत्ति, नाश, प्राणियोंका आना जाना, विद्या, अविद्याको जो जानता हो उनका नाम भगवान् है ॥ ४ ॥

फिरत लाज कछु कहि नहिं जाई * मरण ठानि मन रचेसि उपाई ॥५॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा * कुसुमित नवतरु राज विराजा ॥६॥

फिरते हुए लज्जा वर्णी नहीं जाती, मरना विचार कर मनमें उपाय रचा ॥५॥ परंतु सुन्दर बसन्त ऋतु प्रगट हुई नवीन-नवीन वृक्षोंपर फूल आगये और विशेष शोभाको प्राप्त हुए ॥६॥

बन उपवन वापिका तड़ागा * परम सुभग सब दिशा विभागा ॥७॥
जहँ तहँ जनु उँमगत अनुरागा * देखि मुयहु मन मनसिज जागा ॥८॥

वन; बाग, बावड़ी, सरोवर, सब दिशाओंके विभाग स्वच्छ निर्मल शोभा दे रहे थे ॥७॥ जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मृतप्राय (बुड्ढे) के मनमें भी कामकी लहरें उठती हैं ॥ ८ ॥

छन्द–जागेउ मनोभव मुए मन वन सुभगता न परै कही ।
शीतल सुगन्ध सुमन्द मारुत मदन अनल सखा सही ॥
विकसे सरनि बहुकंज गुञ्जत पुञ्जमंजुल मधुकरा ।
कलहंस पिक शुकसरस रवकरि गान नाचहिं अप्सरा ॥ ५ ॥

उस वनकी शोभा कही नहीं जाती, जिससे मृतप्राय (बुड्ढे) के मनमें काम जागा और ठंढी सुगन्धसनी मन्द-मन्द पवन-जो कामदेवकी अग्नि बढ़ानेमें उसकी मित्रता करती है चलने लगी, तालाबोंमें अनेक प्रकारके कमल खिल गये और मंजुल (उज्ज्वल) मधुकर (भौंरोंके) पुञ्ज (समूह) गुंजारने लगे, कल (सुन्दर) हंस, पिक (कोयल) शुभ-तोते रसीले शब्द करते थे और अप्सरा गीत गाकर नृत्य करती थीं ॥ ९ ॥

दोहा-सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत ॥
चली न अचल समाधि शिव, कोपेउ हृदय निकेत ॥ ९७ ॥

सब कला अनेक प्रकारसे करके सेना समेत हार गया, परन्तु शिवजीकी अचल समाधि नहीं चलायमान हुई तब हृदय निकेत (कामदेव) ने बहुत क्रोध किया ॥ ९७ ॥

देखि रसाल विटप बर शाखा * तेहि पर चढ़ेउ मदनमन माखा ॥१॥
सुमन चाप निज शर सन्धाने * अति रिसताकि श्रवण लगिताने ॥२॥

आमके वृक्षकी शाखा देख उस पर (कामदेव) बड़ा क्रोध कर चढ़ा ॥ १ ॥ फूलोंके धनुषपर अपना बाण चढ़ाया क्रोधसे कानतक धनुष खींचा ॥ २ ॥

छाँड़े विशिख विषम उर लागे * छूटि समाधि शम्भु तब जागे ॥३॥
भयउ ईश मन क्षोभ बिसेखी * नयन उघारि सकल दिशि देखी ॥४॥

कठिन पांच बाड़ छोड़े शिवजीके हृदयमें लगे, तब समाधि छूट गयी और शिवजी जागे ॥ ३ ॥ शिवजीका मन बहुत चलायमान हुआ, आंख खोलकर सब ओर देखा ॥ ४ ॥

सौरभ पल्लव मदन बिलोका * भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका ॥५॥
तब शिव तीसर नयन उघारा * चितवत काम भयउ जरि छारा ॥६॥

जब आमके पत्तोंमें कामदेवको देखा तो ऐसा क्रोध किया कि त्रिलोकी कांप उठी ॥ ५ ॥ तब शिवजीने अपना तीसरा नेत्र उघारा और देखते ही काम जलकर राख हो गया। (यही कुमारसम्भवमें लिखा है कि-"क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति। तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥" हे प्रभु! क्रोध शांत करो, शांत करो, जब तक देवता आकाशसे कहते ही रहे कि तबतक उस अग्निने जो शिवजीके नेत्रसे उत्पन्न हुई थी कामदेवको भस्म कर दिया ॥ ६ ॥

हाहाकार भयउ जग भारी * डरपे सुर भये असुर सुखारी ॥७॥
समुझि काम सुख सोचहिं भोगी * भये अकंटक साधक योगी ॥८॥

जगत्में भारी हाहाकार हुआ, देवता डरे और राक्षस सुखी हुए ॥ ७ ॥ कामका सुख स्मरण कर स्त्रियोंके भोगी सोचने लगे और साधक योगी निर्भय हुए कि अब तपस्या करके हम शीघ्र सिद्ध हो जायँगे ॥ ८ ॥

छन्द-योगी अकंटक भये पतिगति सुनत रति मूर्छित भई।
रोदति बदति बहुभाँति करुणा करति शंकर पहँ गई ॥
अतिप्रेम करि विनती विविध विधि जोरिकर सन्मुख रही।
प्रभु आशुतोष कृपालु शिव अबला निरखि बोले सही ॥६॥

योगी निर्भर हुए पतिकी गती सुनकर रति मूर्छित हुई, रोती और दुखी होकर पतिके प्रतापको कहती हुई शिवजीके पास गई और अधिक प्रीतिसे अनेक प्रकारकी विनती कर हाथ जोड़के सम्मुख खड़ी हुई तब (आशुतोष) अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी उस अबलाको देखकर बोले ॥ ६ ॥

दोहा-अबते रति तव नाथकर, होइहि नाम अनंग ॥
बिनुवपु व्यापहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंग ॥ ९८ ॥

हे रति (कामदेवकी स्त्री !) अबसे तेरे स्वामीका नाम अनङ्ग (शरीर रहित) होगा और विना शरीरके ही सबको व्यापेगा अब जिस प्रकार तुझे मिलेगा उस अपने मिलनेकी बात सुन॥९८॥

जब यदुवंश कृष्ण अवतारा * होइहि हरण महा महि भारा ॥१॥
कृष्णतनय होइहि पति तोरा * वचन अन्यथा होइ न मोरा ॥२॥

जब यदुवंशियोंमें कृष्णावतार पृथ्वीका महाभार हरनेको होगा ॥ १ ॥ तब कृष्णका पुत्र (प्रद्युम्न) तेरा पति होगा मेरा वचन अन्यथा नहीं होगा ॥ २ ॥

रति गवनी सुनि शंकर बानी * कथा अपर अब कहहुँ बखानी ॥३॥
देवन समाचार सब पाये * ब्रह्मादिक वैकुण्ठ सिधाये ॥४॥

रति शिवजीकी वाणी सुनकर चली गयी, अब आगे दूसरी कथा कहते हैं ॥ ३ ॥ देवताओंने जब समाचार पाये तब ब्रह्मादिक सब देवता वैकुण्ठको गये ॥ ४ ॥

सब सुर विष्णु विरंचि समेता * गये जहां शिव कृपा निकेता ॥५॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रशंसा * भये प्रसन्न चन्द्र-अवतंसा ॥६॥

फिर सब देवता-विष्णु, ब्रह्मा समेत जहां शिवजी थे वहां गये ॥५॥ अलग-अलग सबने शिवजीकी प्रशंसा की और माथेपर चन्द्रमाधारी शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

बोले कृपा-सिन्धु वृषकेतू * कहहु अमर आयहु केहि हेतू ॥७॥
कह विधि प्रभु तुम अन्तर्यामी * तदपि भक्तिवश विनवउँ स्वामी॥८॥

तब कृपाके समुद्र शिवजी बोले-कहो देवताओ ! कैसे आये ! ॥ ७ ॥ ब्रह्माने कहा स्वामी आप तो अन्तर्यामी हो तो भी भक्तिके वश विनती करता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-सकल सुरनके हृदय अस, शंकर परम उछाह ॥
निज नयनन देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह ॥ ९९ ॥

हे स्वामी ! शिव ! देवताओंके मनमें बड़ा हर्ष है वे अपने नेत्रोंसे आपका विवाह देखना चाहते हैं ॥ ९९ ॥

यह उत्सव देखिय भरि लोचन * सो कछु करिय मदन मद मोचन॥१॥
काम जारि रति कहँ वर दीन्हा * कृपासिंधु यह अतिभल कीन्हा॥२॥

यह उत्सव नेत्र भरकर देखें सो कुछ ऐसा ही कीजिये, हे कामदेवके मद चूर्ण करनेवाले ॥ १ ॥ कामदेवको जलाकर रतिको वर दिया, हे दयासागर ! यह बहुत अच्छा किया ॥२॥

शासति करि पुनि करहिं पसाऊ * नाथ प्रभुनकर सहज सुभाऊ ॥३॥
पारवती तप कीन्ह अपारा * करहु तासु अब अंगीकारा ॥४॥

स्वामी शासन कर फिर कृपा करते हैं, यह बड़ोंका स्वभाव ही है ॥ ३ ॥ पार्वतीने अपार तप किया है उसको अंगीकार (स्वीकार) कीजिए ॥ ४ ॥

सुनि विधि वचन समुझि प्रभुबानी * ऐसेइ होउ कहा सुखमानी ॥५॥
तब देवन दुन्दुभी बजाई * बरषि सुमन जयजय सुरसाँई ॥६॥

शिवजीने ब्रह्माजीका वचन सुनकर सुख माना और भगवान्‌की वाणी स्मरण करके कहा कि ऐसा ही हो ॥ ५ ॥ तब देवताओंने दुदुंभी बजाई और फूल वर्षाकर कहा-हे देवताओंके स्वामी ! आपकी जय हो जय हो ! ! ॥ ६ ॥

अवसर जानि सप्तऋषि आये * तुरतहि विधि गिरि भवन पठाये॥७॥
प्रथम गये जहँ रहीं भवानी * बोले मधुर वचन छल सानी ॥८॥

समय जानकर सप्तऋषि आये और तुरंत ही ब्रह्माने उनको हिमालयके घर भेज दिया ॥ ७ ॥ पहले जहां पार्वती थी, वहां गये और मीठे छल युक्त वचन बोले ॥ ८ ॥

दोहा-कहा हमार न सुनेहु तब, नारद कर उपदेश ॥
अब भा झूठ तुम्हार प्रण, जारेउ काम महेश ॥ १०० ॥

ऋषियोंने कहा-हे पार्वती ! तब तुमने हमारा कहना नहीं सुना और नारदका ही उपदेश माना; लो अब तुम्हारा प्रण झूठा हुआ, शिवजीने कामदेवको भस्म कर दिया ॥ १०० ॥

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी * उचित कहेउ मुनिवर विज्ञानी ॥१॥
तुम्हरे जान काम हर जारा * अब लगि शम्भु रहे सविकारा॥२॥

यह सुनकर पार्वती हँसती हुई बोलीं-हे मुनिवर ! आपने सत्य कहा ॥ १ ॥ तुम्हारे जान कामको शिवजीने जलाया, अबतक शिवजी क्या विकारी रहे ! ॥ २ ॥

हमरे जान सदा शिव योगी * अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥३॥
जो मैं शिव सेयउँ अस जानी * प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥४॥

हमारे जान तो शिवजी सदा योगी हैं जो जन्म और माया रहित,दूषण रहित; भोग रहित हैं ॥ ३ ॥ जो मैंने ऐसा जानकर प्रीति समेत मन-कर्म-वाणीसे शिवजीकी सेवा की है ॥४॥

तौ हमार प्रण सुनहु मुनीशा * करिहहिं सत्य कृपानिधि ईशा ॥५॥
तुम जो कहा हर जारेउ मारा * सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा ॥६॥

तो हे मुनीश्वरो ! सुनो, हमारी प्रतिज्ञा कृपाके समुद्र शिवजी पूर्ण करेंगे ॥ ५ ॥ तुमने जो कहा शिवजीने कामदेवको जलाया सो तुम्हारा बड़ा अज्ञान है ॥ ६ ॥

तात अनलकर सहज सुभाऊ * हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ॥७॥
गये समीप सो अवसि नसाई * असि मनमथ महेशकी नाई ॥८॥

हे महात्माओ ! अग्निका सहज स्वभाव है कि उसके निकट कभी ठण्ड नहीं जा सकती ॥ ७ ॥ और जो गयी तो निश्चय नष्ट हो जायगी, इसी, प्रकार कामदेव शिवजी के निकट जानेसे नष्ट हो गया ॥ ८ ॥

दोहा—हिय हरषे मुनि वचन सुनि, देखि प्रीति विश्वास ॥
चलेभवानिहिं नाइ शिर, गए हिमाचल पास ॥ १०१ ॥

मुनीश्वर पार्वतीकी वार्ता सुनकर और हृदयमें प्रीति तथा विश्वास देखकर प्रसन्न हुए फिर पार्वतीको शिर नवा कर चले और हिमालयके पास गए ॥ १०१ ॥

सब प्रसंग गिरिपतिहिं सुनावा * मदनदहन सुनि अतिदुख पावा ॥१॥
बहुरि कहेउ रतिकर बरदाना * सुनि हिमवंत बहुत सुख माना ॥२॥

सब कथा हिमालयको सुनायी, उन्होंने कामदेवका भस्म होना सुनकर अधिक दुःख पाया ॥ १ ॥ फिर रतिके वरदानकी बात कही जिसको सुनकर हिमालयने बहुत सुख माना ॥ २ ॥

हृदय बिचारि शम्भु-प्रभुताई * सादर मुनिवर लिये बुलाई ॥३॥
सुदिन सुनखत सुघरी सुहाई * वेगि वेद विधि लगन धराई ॥४॥

शिवजीकी महिमा मनमें स्मरण करके आदरसे श्रेष्ठ मुनियोंको बुलाया ॥ ३ ॥ अच्छा दिन, अच्छा नक्षत्र, अच्छी घड़ीमें शीघ्र वेदविधिसे लग्न धरायी ॥ ४ ॥

पत्री सप्तऋषिन सोइ दीन्हीं * गहिपद विनय हिमाचल कीन्हीं ॥५॥
जाय विधिहि तिन दीन्ह सो पाती * बांचत प्रीति न हृदय समाती ॥६॥

वह लग्नपत्रिका सप्त ऋषियोंको दी और चरण पकड़ कर हिमालयने विनती की ॥ ५ ॥ उन्होंने वह पत्री जाकर ब्रह्माको दी, उसके बांचनेसे हृदयमें प्रीति नहीं समाती ॥ ६ ॥

लगन बाँचि अज सबहिं सुनाई * हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥७॥
सुमनवृष्टि नभ बाजन बाजे * मंगल कलश दशहुँ दिशि साजे ॥८॥

लग्न बांचके ब्रह्माजीने सबको सुनाई सुनकर सब ऋषि मुनि तथा देवसमूह प्रसन्न हुए ॥७॥ फूलोंकी वर्षा हुई, आकाशमें बाजे-बजे और मङ्गल कलश दशों दिशाओंमें सजाये ॥ ८ ॥

दोहा—लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान ॥
होहिं शकुन मंगल सुभग, करहिं अप्सरा गान ॥ १०२ ॥

सब देवता अनेक प्रकारसे अपने बाहन और विमान सुधारने लगे, सुन्दर मांगलिक शकुन हुए और अप्सरा गान करने लगीं ॥ १०२ ॥

शिवहिं शम्भुगण करहिं सिंगारा * जटा मुकुट अहि मौर सँवारा ॥१॥
कुण्डल कंकण पहिरे ब्याला * तन विभूति पट केहरि छाला ॥२॥

उधर शिवजीके गण शिवजीका शृङ्गार करने लगे, जटाओंका मुकुट, सर्पोंका मोर सँवारा ॥ १ ॥ कानोंमें कुंडल और कंकण सर्पोंके पहरे, शरीरमें भस्म और शेरकी खालके वस्त्र धारण किये ॥२॥

शशि ललाट सुन्दर शिर गंगा * नयन तीनि उपवीत भुजंगा ॥३॥
गरल कण्ठ उर नर शिरमाला * अशिव वेष शिवधाम कृपाला ॥४॥

माथेपर चन्द्रमा, शिरके ऊपर सुन्दर गंगा, तीन नेत्र, सर्पोंका यज्ञोपवीत पहने हुए ॥३॥ विष कण्ठमें, हृदयमें मनुष्योंके शिरकी माला; (वीर पुरुषका शिर शिवजी अपनी मालामें धारण कर लेते हैं) वेष तो ऐसा भयानक, परंतु यह कृपालु कल्याणके घर हैं ॥ ४ ॥

कर त्रिशूल अरु डमरु विराजा * चले वृषभ चढ़ि बाजहिं बाजा ॥५॥
देखि शिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं * वरलायक दुलहिन जग नाहीं ॥६॥

हाथमें त्रिशूल और डमरू विराजमान है, बैल पर चढ़कर चले; बाजे बजने लगे ॥ ५ ॥ शिवको देखकर देवताओंकी स्त्रियाँ हँसी कि वरके योग्य जगत्‌में दुलहिन नहीं है ॥ ६ ॥

विष्णु विरंचि आदि सुरत्राता * चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥७॥
सुर-समाज सब भाँति अनूपा * नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥८॥

विष्णु ब्रह्मादिका देवसमूह अपने-अपने बाहनों पर चढ़-चढ़ बरातको चले ॥ ७ ॥ देवताओंका समाज सब प्रकार श्रेष्ठ था, परंतु दूलहके अनुरूप यह बरात नहीं थी ॥ ८ ॥

दोहा–विष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिशिराज ॥
बिलग बिलग ह्वै चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥ १०३ ॥

तब विष्णु भगवान्‌ने दिशाओंके देवताओंको बुलाकर हँसते हुए कहा कि, सब अपने-अपने समाज सहित अलग होकर चलो ॥ १०३ ॥

वर अनुहार बरात न भाई * हँसी करैहहु परपुर जाई ॥१॥
विष्णु वचन सुनि सुर मुसकाने * निज निज सेन सहित बिलगाने ॥२॥

भाई ! वरके अनुसार बरात नहीं है, क्या पराये पुरमें जाकर हँसी कराओगे ॥ १ ॥ विष्णु भगवान्‌के वचन सुनकर देवता हँसे, अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गये ॥ २ ॥

मनही मन महेश मुसुकाहीं * हरिके व्यंग वचन नहिं जाहीं ॥३॥
अति प्रिय वचन सुनत प्रिय केरे * भृंगी प्रेरि सकल गण टेरे ॥४॥

मनहीमन शिवजी मुसकाये कि नारायणके हास्यरसके वचन नहीं जाते ॥३॥ प्रिय भगवान्‌के अधिक प्यारे वचन सुनकर शिवजीने अपने भृङ्गीगणके द्वारा सब गणोंको बुलाया ॥४॥

शिव अनुशासन सुनि सब आये * प्रभुपद जलज शीश तिन नाये ॥५॥
नाना वाहन नाना बेखा * बिहँसे शिव समाज निज देखा ॥६॥

शिवजी की आज्ञा सुनकर सब आये और शिवके चरण कमलमें सिर नवाया ॥५॥ जब अनेक प्रकारके वाहन और विविध प्रकारके वेषका अपना समाज देखा तो शिवजी मुसकाये॥६॥

कोउ मुखहीन विपुलमुख काहू * बिनु पद कर कोउ बहुपद बाहू ॥७॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना * हृष्ट पुष्ट कोउ अति तनु छीना ॥८॥

किसीके मुख ही नहीं, किसीके बहुत मुख, किसीके हाथ पैर न थे और किसीके बहुत हाथ पैर थे ॥ ७ ॥ किसीके बहुत नेत्र, किसीके एक भी नहीं; कोई बड़ा मोटा ताजा और कोई बड़ा दुबला है ॥ ८ ॥

छन्द–तनु छीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन तनु धरे ।
भूषण कराल कपाल कर सब सद्य शोणित तनु धरे ॥
खर श्वान सुअर शृगाल मुख गण वेष अगणित को गनै ।
बहुजिनिस प्रेत पिशाच योगि जमाति वर्णत नहिं बनै ॥७॥

कोई दुर्बल, कोई बलवान्, कोई पवित्र, कोई अपवित्र शरीर धारण किये गहने बड़े तीक्ष्ण, हाथमें खोपड़ी, जिसमें तुरतका रुधिर भरा और शरीरमें लिपटा हुआ, गदहे, कुत्ते, सूकर गीदड़के मुखवाले गणोंके अनगिन्ती वेष कौन गिने ? बहुत प्रकारके प्रेत, पिशाच और योगिनियोंकी जमातका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

सोरठा—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब ॥
देखत अति विपरीत, बोलत वचन विचित्र विधि ॥ १९ ॥

नाचते हैं, गीत गाते हैं, सब भूत बड़े तरंगी हैं, देखनेमें तो विपरीत अर्थात् बुरी सूरत परंतु वचन बड़े विचित्र अर्थात् अद्भुत और विधिपूर्वक बोलते हैं ॥ १९ ॥

जस दूलह तस बनी बराता * कौतुक विविध होहिं मगजाता ॥१॥
इहां हिमाचल रचेउ बिताना * अति विचित्र नहिं जाय बखाना ॥२॥

अब जैसा दूलहा था वैसी ही बारात बन गयी और मार्गमें जाते हुए अनेक प्रकारके कौतुक होने लगे ॥ १ ॥ यहां हिमाचलने अत्यन्त विचित्र बितान (शामियाना) बनाया जो कि वर्णन नहीं हो सकता ॥ २ ॥

शैल सकल जहँ लगि जगमाहीं * लघु विशाल नहिं वरणि सिराहीं ॥३॥
वन सागर सब नदी तलावा * हिमगिरि सब कहँ न्यौति पठावा ॥४॥

जहां तक पर्वत हैं जगत्में छोटे बड़े जो बरणे नहीं जाते ॥ ३ ॥ वन, पर्वत, नदी, तालाब सबको हिमालयने न्यौत बुलाया ॥ ४ ॥

कामरूप सुन्दर तनु धारी * सहित समाज सहित निजनारी ॥५॥
गये सकल तुहिनाचल गेहा * गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥६॥

इच्छानुसार रूप, सुन्दर शरीर धारण किये, अपने समाज स्त्रियों सहित ॥ ५ ॥ हिमालयके घर गये और प्रेमपूर्वक मङ्गल-गान गाने लगे ॥ ६ ॥

प्रथमहिं गिरि बहुँ गृह सँवराये * यथायोग्य जहँ तहँ सब छाये ॥७॥
पुर शोभा अवलोकि सुहाई * लागै लघु विरंचि निपुणाई ॥८॥

न्यौतहरियोंके आनेसे पहले ही हिमाचलने बहुत घर सँभलवा रखे थे। यथायोग्य जहाँ तहाँ सब ठहरे ॥ ७ ॥ नगरकी सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्माजीकी रचना छोटी लगती है ॥८॥

छन्द—लघु लागि विधिकी निपुणता अवलोकि पुर शोभा सही ।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही ॥
मंगल विपुल तोरण पताका केतु गृह गृह सोहहीं ।
वनिता पुरुष सुन्दर चतुर छबि देखि मुनिमन मोहहीं ॥८॥

सत्य ही नगर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्माजीकी रचना छोटी जान पड़ी; वन, बाग, कुएँ, तलाब, नदी इनकी शोभा कौन कह सके ? अनेक प्रकारके मङ्गलचिह्न, तोरण, झंडी आदि घर-घर शोभित हो रही हैं। स्त्री पुरुष ऐसे सुन्दर हैं जिनकी छबि देखकर मुनियोंके भी मन मोहित हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-जगदम्बा जहँ अवतरीं, सो पुर वरणि न जाय ॥
ऋद्धि सिद्धि संपति सकल, नित नूतन अधिकाय ॥ १०४ ॥

जहां जगन्माताने अवतार लिया है उस पुरका वर्णन नहीं हो सकता, कारण कि जहाँ ऋद्धि-सिद्धि द्वारा अनेक प्रकारकी सम्पत्ति नित्य नयी बढ़ती हैं ॥ १०४ ॥

नगर निकट बरात जब आई * पुर खरभर शोभा अधिकाई ॥१॥
करि बनाव सजि वाहन नाना * चले लेन सादर अगवाना ॥२॥

नगरके समीप जब बरात आयी तो नगरमें सब खलबली पड़ गयी और शोभा अधिक बढ़ी ॥१॥ बनाव करके अपने अपने वाहन सजाकर आदरसे अगवानी करके बरात लेने चले ॥ २ ॥

हिय हरषे सुरसेन निहारी * हरिहि देखि अति भये सुखारी ॥३॥
शिवसमाज जब देखन लागे * बिडरि चले वाहन सब भागे ॥४॥

देवताओंकी सेना देखकर मनमें सब प्रसन्न हुए और नारायणको देखकर तो अत्यन्त ही सुखी हुए ॥३॥ परंतु जब शिवजीके समाजको देखने लगे बिडरिके सारे वाहन (सवारी) भागने लगे ॥ ४ ॥

धरि धीरज तहँ रहे सयाने * बालक सब लै जीव पराने ॥५॥
गये भवन पूछहिं पितु माता * कहहिं वचन भय कंपित गाता ॥६॥

धीरज धारण कर वहाँ चतुर पुरुष तो रहे परन्तु बालक सब अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये ॥ ५ ॥ घर गये तो पिता-माता पूछने लगे; वे डरसे कांपते हुए बोले ॥ ६ ॥

कहिय कहा कहि जाय न बाता * यम कर धार किधौं बरि आता ॥७॥
वर बौराह वरद असवारा * व्याल कपाल विभूषण छारा ॥८॥

क्या कहें, कुछ बात कही नहीं जाती, यह यमकी धार है या बरात है ? (यमकरधार-यमकी सेना) ॥ ७ ॥ बावला दूलह है, बैल पर चढ़कर आया है और सर्प कपाल धारण किये विभूति लपेटे है, बस यही गहने हैं ॥ ८ ॥

छन्द-तनुछार व्याल कपाल भूषण नगन जटिल भयंकरा।
संग भूतप्रेत पिशाच योगिन विकट मुख रचनीचरा ॥
जो जियत रहहिं बरात देखत पुण्य बड़ तिनकर सही।
देखहिं सो उमा विवाह घर घर बात असलरिकन कही ॥९॥

शरीरमें विभूति, सर्प, कपाल यही भूषण धारण किये शरीर नङ्गा जटाधारी, भयावनी सूरत; सङ्गमें भूत, प्रेत, पिशाच योगिनी बड़े टेढ़े मुखके राक्षस हैं, जो इस बरातको देखकर जीता रहे उसका बड़ा पुण्य है और वही पार्वतीका विवाह भी देखेंगे यह लड़कोंने घरमें कही ॥ ९ ॥

---

१. ऋद्धि-सिद्धि-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता यह आठ सिद्धि परमात्मा सम्बंधी हैं और अनुमित्व, दूरकी बात सुनना, दूरका देखना मनके समान वेग होना, इच्छानुसार रूप बना लेना, परकायमें प्रवेश करजाना, स्वाधीन मृत्यु, देवताओंके साथ क्रीडा, संकल्प-सिद्धि, स्वच्छन्दगति, त्रिकालज्ञान, प्रपञ्चका अभाव, दूसरेके चित्तकी बात जानना, अग्नि, सूर्य, जल, विषादिको रोक देना, कहीं न हारना यह सब ऋद्धि सिद्धि हैं।

दोहा-समुझि महेश समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं ॥
बाल बुझाये विविध विधि, निडर होहु डर नाहिं ॥ १०५ ॥

यह सब शिवजीका समाज समझकर बालकोंके माता-पिता हँसे और बालकोंको अनेक प्रकार से समझाया कि डर छोड़ दो, डरनेकी कुछ बात नहीं है ॥ १०५ ॥

लै अगवान बरातहि आये ❋ दिये सबहि जनवास सुहाये ॥१॥
मैना शुभ आरती सँवारी ❋ सँग सुमंगल गावहिं नारी ॥२॥

अगवानी बरातको लेकर आये और सबको सुन्दर जनवासा दिया ॥ १ ॥ मैनाने सुन्दर आरती सँवारी; संगमें स्त्रियाँ सुन्दर मंगल गाने लगीं ॥ २ ॥

कञ्चन थार सोह वर पानी ❋ परिछन्न चलीं हरहिं हर्षानी ॥३॥
विकट वेष जब रुद्रहि देखा ❋ अबलन उर भय भयहु विसेखा ॥४॥

सोनेका थार हाथमें शोभित है, रानियाँ प्रसन्न होकर आरती करने चलीं ॥ ३ ॥ भयंकर वेष जब शिवजीका देखा तब स्त्रियोंके मनमें बड़ा भय हुआ ॥ ४ ॥

भागि भवन पैठीं अतित्रासा ❋ गये महेश जहां जनवासा ॥५॥
मयना-हृदय भयउ दुख भारी ❋ लीन्ही बोलि गिरीशकुमारी ॥६॥

भागकर घरमें बड़े दुःखसे बैठ गयीं और शिवजी जहां जनवासा था वहां गये ॥ ५ ॥ मयनाके चित्तमें बड़ा दुःख हुआ और उसने पार्वतीको बुलाया ? ॥ ६ ॥

अधिक सनेह गोद बैठारी ❋ श्याम सरोज नयन भरि वारी ॥७॥
जेहि विधि तुमहि रूप अस दीन्हा ❋ तेहि जड़वर बाउर कस कीन्हा ॥८॥

बड़े प्रेमसे गोदमें बैठाकर नीलकमलसे नेत्रोंमें जल भरकर कहा ॥ ७ ॥ जिस विधाताने तुमको ऐसा रूप दिया उस मूर्खने वरको कैसा बावला कर दिया ? ॥ ८ ॥

छन्द-कस कीन्ह बर बौराह विधि जेहि तुमहिं सुन्दरता दई ।
जो फल चहिय सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई ॥
तुम सहित गिरिते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महँ परौं ।
घर जाउ अपयश होउ जग जीवत विवाह न हौं करौं ॥१०॥

विधाताने बावला वर क्यों कर दिया ? जिसने तुम्हें ऐसी सुन्दरता दी; जो फल कल्पवृक्षमें लगना चाहिए सो बरबस बबूरमें लगेगा क्या ? बेटी ! तुम्हारे संग पहाड़से गिर पड़ूँगी, समुद्रमें कूद पड़ूँगी, अग्निमें जल जाऊँगी चाहे घर जाता रहे जगमें अपयश हो; पर मैं जीतेजी विवाह नहीं करूँगी ॥ १० ॥

दोहा-भईं विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि ॥
करि विलाप रोदति वदति, सुता सनेह सँभारि ॥ १०६ ॥

मयनाको दुःखी देखकर सब स्त्रियाँ दुखित हुईं और पुत्रीके स्नेह से विलाप करके मयना कहने लगी ॥ १०६ ॥

नारदकर मैं काह बिगारा ❋ भवन मोर जिन बसत उजारा ॥१॥
अस उपदेश उमहि जिन दीन्हा❋ बौरे बरहि लागि तप कीन्हा ॥२॥

मैंने नारदका क्या बिगाड़ा है ? जिन्होंने मेरा बसा घर उजाड़ दिया ॥ १ ॥ ऐसा उपदेश जिन्होंने पार्वतीको दिया, जो बावले वरके लिए तप किया ॥ २ ॥

सांचेहु उनके मोह न माया ❋ उदासीन धन धाम न जाया ॥३॥
परघर घालक लाज न भीरा ❋ बाँझ कि जान प्रसवकी पीरा ॥४॥

सच ही उनके मोह और माया नहीं है, कारण कि उदासीन रहते हैं, धन, स्थान, स्त्री तो है ही नहीं ॥ ३ ॥ पराये घरके बिगाड़नेवाले उन्हें कुछ लाज भय तो है ही नहीं; बांझ स्त्री बालकके उत्पन्न होनेकी पीड़ा क्या जाने ? ॥ ४ ॥

जननिहिं विकल विलोकि भवानी❋ बोलीं युत विवेक मृदुबानी ॥५॥
अस विचारि शोचहु मति माता ❋ सो न टरै जो रचइ विधाता ॥६॥

पार्वती माताको व्याकुल देखकर ज्ञानयुक्त कोमल वाणी बोलीं ॥ ५ ॥ ऐसा विचार कर हे माता ! सोच मत करो, जो विधाता रचता है वह नहीं मिटता ॥ ६ ॥

कर्म लिखा जो बाउर नाहू ❋ तौ कत दोष लगाइय काहू ॥७॥
तुमसन मिटहिं कि विधिके अंका ❋ मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥८॥

जो हमारे कर्ममें बावला स्वामी लिखा है तो किसको क्यों दोष लगाया जाय ? ॥ ७ ॥ मैया ! क्या तुमसे विधाताके अंक मिट जायँगे ! वृथा कलंक मत लो ॥ ८ ॥

छन्द–जनि लेहु मातु कलंक करुणा परिहरहु अवसर नहीं ।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमावचन विनीत कोमल सकल अबला शोचहीं ।
बहुभाँति विधिहि लगाय दूषन नयन बारि विमोचहीं ॥ ११ ॥

मैया ! कलंक मत लो, दुःख छोड़ो; यह समय नहीं है, दुःख-सुख जो हमारे माथे पर लिखा है वह जहां जाऊँगी वहां ही पाऊँगी। पार्वतीके ऐसे नम्रतायुक्त कोमल वचन सुनकर सब स्त्रियाँ सोचने लगीं और बहुत प्रकारसे विधाता को दोष लगाकर नेत्रोंसे जल छोड़ने लगीं ॥ ११ ॥

दोहा–तेहि अवसर नारद ऋषय, औ ऋषि सप्त समेत ॥
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत ॥ १०७ ॥

उसी समय नारदजी और सप्तऋषि सहित यह समाचार सुनकर तुरन्त हिमाचलके घर आये ॥ १०७ ॥

तब नारद सबही समुझावा ❋ पूरब कथा प्रसंग सुनावा ॥१॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी ❋ जगदम्बा तव सुता भवानी ॥२॥

तब नारदजीने सबको ही समझाया और पहली कथाका प्रसङ्ग सुनाया ॥ १ ॥ मयना ! हमारी सच्ची बात सुनो, तुम्हारी कन्या जगत की माता है ॥ २ ॥

अजा अनादिशक्ति अविनाशिनि * सदा शम्भु-अर्धंग निवासिनि ॥३॥
जग सम्भव पालन लय कारिणि * निज इच्छा लीलावपुधारिणि ॥४॥

जन्मरहित, अनादिशक्ति, अविनाशिनी है और सदाशिवजीके आधे अङ्गमें निवास करनेवाली है ॥ ३ ॥ जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा नाश करनेवाली, अपनी इच्छा और लीलासे शरीर धारण करने वाली है ॥ ४ ॥

जन्मी प्रथम दक्षगृह जाई * नाम सती सुन्दर तनु पाई ॥५॥
तहँउँ सती शंकरहिं बिवाहीं * कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥६॥

पहले दक्षके घर जन्म लिया था सुन्दर शरीर और सती नाम था ॥ ५ ॥ वहां भी सती शिवजीको ही ब्याही गयी थीं यह कथा सब जगत्में प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥

एकबार आवति शिव-संगा * देखेउ रघुकुल कमल-पतंगा ॥७॥
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा * भ्रमवश वेष सीयकर लीन्हा ॥८॥

एक बार शिवजीके सङ्ग आती हुई महाराज श्रीरामचन्द्रजीको देखकर॥७॥ऐसी मोहवश हुईं कि शिवजीका कहना न किया और भ्रमसे जानकीजीका वेष (परीक्षा लेनेको) बनाया॥८॥

छन्द–सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी ।
हर-विरह जाय बहोरि पितुके यज्ञ योगानल जरी ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुण तप किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा शंकर–प्रिया॥ १२॥

सीताजीका वेष जो सतीने किया इसी अपराध पर शिवजीने त्याग किया, शिवजीके वियोगसे पिताके यज्ञमें जाकर योगाग्नि द्वारा शरीर त्याग किया, अब तुम्हारे घरमें जन्म लेकर अपने पतिके लिये कठिन तप किया ऐसा जानकर संदेह त्याग दो, क्योंकि पार्वती तो सदा शिवजीकी प्यारी हैं ॥ १२ ॥

दोहा–सुनि नारदके वचन तब, सबकर मिटा विषाद ॥
क्षण महँ व्यापे सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥ १०८ ॥

तब नारदजीके वचन सुनकर सब दुःख मिट गया और थोड़ी ही देरमें यह समाचार नगरमें घर-घर व्याप गया ॥ १०८ ॥

तब मयना हिमवंत अनन्दे * पुनि पुनि पारवती पद वन्दे ॥१॥
नारि पुरुष शिशु युवा सयाने * नगर लोग सब अति हरषाने ॥२॥

तब मैना और हिमवान् प्रसन्न हुए और उन्होंने बारंबार पार्वतीके चरणोंको नमस्कार किया ॥ १ ॥ स्त्री, पुरुष, बालक, तरुण और नगरके सब चतुर लोग बड़े प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

लगे होन पुर मंगल गाना * सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥३॥
भाँति अनेक भई जेवनारा * सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ४॥

नगरमें मङ्गल गान होने लगे,सबने सोनेके अनेक कलशे सजाये॥३॥अनेक भांतिसे ज्योनार हुई जैसा कुछ सूप शास्त्रका व्यवहार है; (रसोई बनानेके शास्त्रको सूपशास्त्र कहते हैं) ॥ ४ ॥

सो जेवनार कि जाय बखानी * बसहिं भवन जेहि मातु भवानी ॥५॥
सादर बोले सकल बराती * विष्णु विरंचि देव सब जाती ॥६॥

वह जेवनार क्या बखानी जा सकती है कि जिस घरमें माता भवानी वास करती हैं॥५॥ हिमाचलने आदरसे सब बरातियोंको बुलाया। विष्णु, विरंचि और देवताओंकी गंधर्वादि सब जाति॥६॥

विविध पाँति बैठी जेवनारा * लगे परोसन निपुण सुआरा ॥७॥
नारिवृन्द सुर जेवत जानी * लगीं देन गारी मृदु बानी ॥८॥

पांतिकी पांति लोग जीमने बैठे और चतुर रसोइये परोसने लगे ॥ ७ ॥ स्त्रियाँ देवताओंको जीमता जानकर कोमल वाणीसे गारी देने लगीं ॥ ८ ॥

छन्द–गारी मधुर स्वर देहिं सुन्दरि व्यङ्ग वचन सुनावहीं ।
भोजन करहिं सुर अतिबिलम्ब विनोद सुनि सुख पावहीं ॥
जेंवत जो बढ़्यो अनन्द सो मुख कोटिहूं न परै कह्यो ।
अँचवाय दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यो ॥ १३ ॥

गारी मीठे स्वरसे सुन्दरी देती हैं और हँसीके वचन सुनाती हैं, इसी कारण देवता विलम्बसे भोजन करते है और आनन्द प्राप्त करते हैं। जो आनन्द जीमतेमें बढ़ा वह करोड़ मुखसे भी नहीं कहा जाता,(अन्तमें)हाथ मुँह धुलाकर पान दिये और फिर जहाँ जिनका निवास था वहां गये ॥ १३॥

दोहा–बहुरि मुनिन हिमवंत कहँ, लगन सुनाई आय ।
समय विलोकि विवाह कर, पठये देव बुलाय ॥ १०९ ॥

फिर मुनियोंने हिमालय को आकर लग्नका समय बताया और विवाहका समय देखकर देवताओंको बुला भेजा ॥ १०९ ॥

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे * सबहिं यथोचित आसन दीन्हे ॥१॥
वेदी वेद विधान सँवारी * सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥२॥

सब देवताओंको आदरसे बुलाया सबको यथायोग्य आसन दिये ॥ १ ॥ वेदकी विधिसे वेदी बनायी, नारी सुन्दर सुमङ्गल गाने लगीं ॥ २ ॥

सिंहासन अति दिव्य सुहावा * जाय न बरणि विरंचि बनावा ॥३॥
बैठे शिव विप्रन शिर नाई * हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥४॥

सिंहासन अत्यन्त मनोहर शोभायमान था जो वर्णा नहीं जाता क्योंकि उसको ब्रह्माने स्वयं बनाया था ॥३॥ महादेवजी ब्राह्मणोंको शिर नवाकर मनमें अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र जीका स्मरण कर उस सिंहासन पर बैठे ॥ ४ ॥

बहुरि मुनीशन उमा बुलाई * करि शृंगार सखी लै आई ॥५॥
देखत रूप सकल सुर मोहे * बरणै छबि अस जग कवि को है ॥६॥

फिर मुनियोंने पार्वतीको बुलाया, उन्हें शृंगार करके सखी ले आयीं ॥ ५ ॥ उनका रूप देखते ही सब देवता मोहित हो गये, छबि वर्णन करनेवाला जगत्में कौन कवि है ? ॥ ६ ॥

जगदम्बिका जानि भव वामा * सुरन मनहि मन कीन्ह प्रणामा ॥७॥

सुन्दरता मर्याद भवानी ❋ जाय न कोटिहुं वदन बखानी ॥८॥

जगत्की माता और शिवजीकी स्त्री जानकर देवताओंने मन ही मन प्रणाम किया ॥७॥ पार्वती सुन्दरताकी मर्यादा हैं; करोड़ मुखोंसे भी बखानी नहीं जातीं ॥ ८ ॥

छन्द-कोटिहु बदन नहिं बनै वर्णत जगजननि शोभा महा ।
सकुचहिं कहत श्रुति शेष शारद मन्दमति तुलसी कहा ॥
छबि खानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप शिव जहाँ ।
अवलोकि सकहिं न सकुचि पतिपद कमलमनमधुकर तहाँ ॥१४॥

अनेक मुखोंसे भी वरणी नहीं जाती, ऐसी जगन्माताकी अपार शोभा है; जिस शोभाको कहते हुए शेषजी, वेद, सरस्वती आदि सकुचाते हैं, तो भी मन्दमति तुलसीदासजी क्या है; जो उसको वर्णन करे ? छबिकी भंडार माता भवानी बीच मण्डपमें जहाँ शिवजी थे वहां, सकुचके मारे ऊपरको नहीं देख सकतीं, पतिके चरणकमलमें मन मधुकर (भौंरा) हो रहा है ॥ १४ ॥

दोहा-मुनि अनुशासन गणपतिहि, पूजे शम्भु भवानि ॥
कोउ सुनि संशय करै जनि, सुर अनादि जिय जानि ॥ ११० ॥

मुनिकी आज्ञासे गणेशजीका शिव पार्वतीजीने पूजन किया, यह सुनकर कोई शंका नहीं करे कि गणेशजी तो शिवजी के पुत्र हैं देवता अनादिकालसे चले आते हैं। यथा "गणानां त्वागणपतिमित्यादि" जैसे राम अनादिकालसे हैं ऐसे ही गणेशजी अनादिकालसे चले आते हैं वा "गण संख्याने" धातुसे गणशब्द हुआ, उसके पति (गणपति) जो संसारके सब पदार्थों की संख्या को जानता है वह ईश्वर ही गणपति हैं। अस्तु-उस निजरूपका पूजन किया। अथवा गणपति एक पदवी है जो शिवके अनुचरोंको प्राप्त है ॥ ११० ॥

जस विवाहकी विधि श्रुति गाई ❋ महामुनिन सो सब करवाई ॥१॥
गहि गिरीश कुश कन्यापानी ❋ शिवहि समर्पी जानि भवानी ॥२॥

जैसे विवाहकी विधि वेदोंमें लिखी है वह महामुनियोंने सब करवायी ॥ १ ॥ फिर हिमाचलने कुशले और कन्याका हाथ पकड़ कर शिवजीको सौंप दिया, सदैव कालसे शिवजीकी सनातन शक्ति जानकर दान दिया ॥ २ ॥

पाणि ग्रहण जब कीन्ह महेशा ❋ हिय हरषे तब सकल सुरेशा ॥३॥
वेद मन्त्र मुनिवर उच्चरहीं ❋ जय जय जय शंकर सुर करहीं ॥४॥

जब शिवजीने पाणि ग्रहण किया तब सब देवता मनमें प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ मुनि गण वेद मंत्र उच्चारण करते हैं और देवता शिवजीकी जय जय करते हैं ॥ ४ ॥

बाजहिं बाजन विविध विधाना ❋ सुमन वृष्टि नभ भइ विधि नाना ॥५॥
हर-गिरिजाकर भयउ विवाहू ❋ सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥६॥

अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा अनेक प्रकारसे हुई ॥ ५ ॥ शिव पार्वतीका विवाह हुआ यह उत्साह समस्त संसारमें भर गया ॥ ६ ॥

दासी दास तुरँग रथ नागा ❋ धेनु वसन मणि वस्तु विभागा ॥७॥
अन्न कनक भाजन भरियाना ❋ दायज दीन्ह न जाय बखाना ॥८॥

दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी और धेनु, वस्त्र, मणि, अनेक प्रकारकी वस्तुओंका विभाग ॥ ७ ॥ अन्न सोनेके वर्तनोंमें बहँगियों और छकड़ोंमें भर कर अनेक प्रकारसे दहेज दिया जो बखाना नहीं जाता ॥ ८ ॥

छन्द–दायज दियो बहुभाँति पुनिकर जोरि हिमभूधर कह्यो ।
का देउँ पूरण काम शंकर चरण पंकज गहि रह्यो ॥
शिवकृपासागर श्वसुरकर परितोष सब भांतिन्ह कियो ।
पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम-परिपूरण हियो ॥ १९ ॥

दहेज बहुत प्रकारसे दिया फिर हाथ जोड़कर हिमाचलने कहा–हे पूर्णकाम शिवजी ! आपको क्या दूँ ऐसा कहकर चरणकमल पकड़ कर रह गये, कृपाके समुद्र शिवजीने श्वसुरका सब भाँतिसे सन्तोष किया, फिर मयनाने चरणकमल पकड़ लिये, मनमें पूर्ण प्रेम भर रहा है और कहा–॥ १९ ॥

दोहा–नाथ उमा मम प्राणसम, गृहकिंकरी करेहु ॥
क्षमहु सकल अपराध अब, ह्वै प्रसन्न वर देहु ॥ १११ ॥

हे नाथ ! पार्वती मुझे प्राणोंके समान प्यारी है, इसे घरकी दासी कीजिये और अब सब अपराध क्षमा कर प्रसन्नता पूर्वक यही वर दीजिये ॥ १११ ॥

बहु विधि शम्भु सासु समुझाई ॐ गवनी भवन चरण शिर नाई ॥१॥
जननी उमा बोलि तब लीन्ही ॐ लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही ॥२॥

बहुत प्रकारसे शिवजीने सासुको समझाया फिर वह चरणोंमें शिर नवाकर घरको चली गयी ॥ १ ॥ तब माताने पार्वतीको बुलाया और गोदीमें बैठाकर सुन्दर सीख दी ॥ २ ॥

करेहु सदा शंकर पद-पूजा ॐ नारि-धर्म पतिदेव न दूजा ॥३॥
वचन कहत भरि लोचन वारी ॐ बहुरि लाय उर लीन्ह कुमारी॥४॥

सदा शिवजीके चरणकमलकी पूजा करना; स्त्रियोंका धर्म है कि पति ही देवता है दूसरा नहीं, धर्म शास्त्रमें लिखा है–"पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्" ॥ ३ ॥ यह वचन नेत्रोंमें जल भर कर कहा और कुमार अवस्था युक्त पुत्रीको हृदयसे फिर लगा लिया ॥ ४ ॥

कत विधि सृजी नारि जगमाहीं ॐ पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ॥५॥
भइ अति प्रेम विकल महतारी ॐ धीरज कीन्ह कुसमय विचारी॥६॥

विधाताने जगत्‌में नारी क्यों बनायी ? जो सदा पराधीन रहने से स्वप्नमें भी सुख नहीं पाती (यह प्रेम है) ॥५॥ महतारी प्रेमसे अत्यन्त व्याकुल हो गयी; किन्तु फिर कुसमय विचार कर धीरज किया ॥ ६ ॥

पुनि पुनि मिलत परत गहिचरणा ॐ परम प्रेम कछु जाय न वरणा ॥७॥
सब नारिन मिलि भेंट भवानी ॐ जाय जननि उर पुनि लिपटानी॥८॥

बार बार मिलती है और चरणोंमें पड़ती है, परम प्रेम ऐसा है कि कुछ वरणा नहीं जाता (पुत्रीके भावसे गोदमें लेना और जगन्माता जानकर चरणोंपर गिरना यही परम प्रेम है) ॥ ७ ॥ सब नारियोंसे पार्वती मिल भेंटकर माताके हृदयसे जाकर फिर लिपट गयीं ॥८॥

छन्द--जननिहिं बहुरि मिलि चलीं उचित अशीश सब काहू दई ।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लै शिवपहँ गई ॥
याचक सकल सन्तोषि शंकर उमा सह भवनहिं चले ।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजहिं भले ॥१६॥

मातासे फिर मिलकर चलीं और सब किसीने उचित आशीष दी, बारंबार माताके शरीर की ओर देखती हैं, तब सखियाँ लेकर शिवजीके पास गयीं, सब मँगताओंको सन्तोष करके शिवजी पार्वती समेत घरको चले, तब देवता प्रसन्न हो गये और फूल वर्षाकर आकाश में निसान बजाने लगे ॥ १६ ॥

दोहा–चले संग हिमवंत तब, पहुँचावन अतिहेतु ॥
विविध भाँति परितोष करि, विदा कीन्ह वृषकेतु ॥ ११२ ॥

तब हिमवान् संगमें बड़े प्रेमसे पहुँचानेको चले फिर अनेक प्रकारसे समझाकर शिवजीको बिदा कर दिया ॥ ११२ ॥

तुरत भवन आये गिरिराई ❋ सकल शैल सर लिये बुलाई ॥१॥
आदर दान विनय बहु माना ❋ सब कहुँ बिदा कीन्ह हिमवाना ॥२॥

हिमाचल तुरन्त घर आये; सब पर्वत, नदी तालाबोंके अधिष्ठात्रि देवताओंको बुलाये ॥ १ ॥ हिमाचलने आदर, दान, विनती और बहुत मान करके सबको बिदा किया ॥ २ ॥

जबहि शम्भु कैलासहि आये ❋ सुर सब निज निज लोक सिधाये ॥३॥
जगत मातु पितु शम्भु भवानी ❋ तेहि शृंगार न कहउँ बखानी ॥४॥

जब ही शिवजी कैलासमें आये तब देवता अपने-अपने लोकको चले गये ॥ ३ ॥ शिव पार्वती जगत्‌के माता पिता हैं इस कारण उनका श्रृंगार नहीं कहता हूँ ॥ ४ ॥

करहिं विविधविधि भोग विलासा ❋गणन समेत बसहिं कैलासा॥५॥
हर गिरजा विहार नित नयऊ ❋इहि विधि विपुलकाल चलिगयऊ॥६॥

विविध प्रकारके भोग विलास करते हुए गणों समेत कैलासमें बसते हैं ॥ ५ ॥ शिव पार्वतीका नित्य नया विहार होते हुए इसी प्रकार बहुत समय बीत गया ॥ ६ ॥

तब जन्मेउ षटवदन कुमारा ❋ तारक असुर समर जेहि मारा ॥७॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ❋ षटमुख जन्म कर्म जग जाना ॥८॥

तब कुमार षण्मुख (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ जिन्होंने तारक नाम राक्षसको युद्धमें मारा ॥७॥ वेद, शास्त्र, पुराणोंमें प्रगट है,स्वामि कार्तिकका जन्म कर्म जगत् जानता है॥८॥

छन्द–जग जान षटमुख जन्म कर्म प्रताप पुरुषारथ महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुतकर चरित संक्षेपहि कहा ॥
यह उमा शम्भु विवाहजे नर नारि सुनहिं जे गावहीं ।
कल्याण काज विवाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं ॥ १७ ॥

स्वामिकार्तिकके जन्म-कर्मको जगत् जानता है कि जैसे उनमें प्रताप और महापुरुषार्थ है, इसी कारण मैंने शिवजीके पुत्रका चरित्र संक्षेपसे कहा है यह शिव पार्वतीका विवाह जो नर नारी सुनेंगे वे मनुष्य श्रेष्ठ कार्य, विवाह मङ्गलमें सदा सुख पायेंगे ॥ १७ ॥

दोहा-चरित सिन्धु गिरिजारमण वेद न पावहिं पार ॥
बरणै तुलसीदास किमि, अति मतमन्द गँवार ॥ ११३ ॥

गिरिजारमण (शिवजी महाराज) के चरित्र समुद्र हैं, उनका पार वेद नहीं पाते तब फिर उनको मैं तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकूँ ? क्योंकि मैं अतिमतिमन्द गँवार हूँ ॥११३॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने बालकाण्डान्तर्गत-विद्यावारिधि-पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतव्याख्यायां द्वितीयो विश्रामः ॥२॥

दोहा-यह तृतीय विश्राममें, रामजन्मकर हेतु ॥
वर्णन करत सुभक्तिसे, भवसागर कहँ सेतु ॥ ३ ॥

शम्भु चरित सुनि सरस सुहावा * भरद्वाज मुनि अति सुख पावा ॥१॥
बहु लालसा कथापर बाढ़ी * नयननीर रोमावलि ठाढ़ी ॥२॥

शिवजीका चरित्र रसयुक्त शोभायमान सुनकर भरद्वाज मुनिने अति सुख पाया ॥ १ ॥ कथा-पर बहुत इच्छा बढ़ी नेत्रोंमें जल भर आया और रोमांच हो गये ॥ २ ॥

प्रेम-विवश मुख आव न बानी * दशा देखि हरषे मुनि ज्ञानी ॥३॥
अहो धन्य तव जन्म मुनीशा * तुमहिं प्राण सम प्रिय गौरीशा ॥४॥

प्रेमके मारे मुखसे वाणी नहीं आयी; यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि (याज्ञवल्क्य) प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ और बोले-हे मुनीश ! आपका जन्म धन्य है ? क्योंकि आपको शिवजी प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ४ ॥

शिवपदकमल जिनहिं रतिनाहीं * रामहिं ते सपनेहु न सुहाहीं ॥५॥
बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू * राम-भक्तकर लक्षण एहू ॥६॥

शिवजीके चरणकमलोंमें जिनकी प्रीति नहीं वे मनुष्य रामको स्वप्नमें भी नहीं सुहाते॥५॥ क्योंकि विना छल शिवजीके चरणोंमें प्रीति करना; यही भक्तोंका लक्षण है ॥ ६ ॥

शिवसम को रघुपतिव्रत धारी * बिनु अघ तजी सती असनारी ॥७॥
प्रण करि रघुपति भक्ति दृढ़ाई * को शिवसम रामहि प्रिय भाई॥८॥

शिवजीके समान श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति धारण करनेवाला कौन है ? जिन्होंने बिना ही अपराध सतीसी स्त्रीको त्याग दिया (सतीने मोहवश होकर परीक्षाके निमित्त जानकीजीका वेष किया था इसी लिए वह अपराध नहीं है) अथवा "बिनुअघ" शिवजीका विशेषण है कि जिन पाप रहित शिवजीने सती स्त्रीको त्याग दिया अथवा "बिनु अघ" अर्थात् विना दुःखके सतीको त्यागा है ॥ ७ ॥ और प्रतिज्ञा करके श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको दृढ़ किया, अतः रामजीको शिवजीके समान कौम प्यारा है ? ॥ ८ ॥

दोहा-प्रथमहिं मैं कहि शिव चरित, बूझा मर्म तुम्हार ॥
शुचि सेवक तुम रामके, रहित समस्त विकार ॥ ११४ ॥

पहले मैंने शिवजी के चरित्र कथन कर आपका मर्म (भेद) लिया जिससे जान पड़ा कि आप श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र सेवक हैं और भेद भाव विकारसे रहित हैं ॥ ११४ ॥

मैं जाना तुम्हार गुण शीला ❋ कहहुँ सुनहुँ अब रघुपति लीला ॥१॥
सुनि मुनि आजु समागम तोरे ❋ कहि न जाय जस सुख मन मोरे ॥२॥

मैंने आपका गुण, शील जान लिया, अब सुनिये श्रीरामचन्द्रजीकी लीला कहता हूँ ॥ १ ॥ सुनो मुनि ! आज आपके समागमसे जैसा मुझको सुख हुआ है यह कहा नहीं जाता ॥२॥

रामचरित अति अमित मुनीशा ❋ कहि न सकहिं सतकोटि अहीशा ॥३॥
तदपि यथा श्रुति कहहुँ बखानी ❋ सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र बहुत विस्तार हैं, हे मुनीश ! सौ करोड़ शेष भी उन अपार चरित्रोंको नहीं कह सकते ॥ ३ ॥ तो भी जैसा कुछ सुना है वह वाणीके पति समर्थ धनुषधारी श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण करके कहता हूँ ॥ ४ ॥

शारद दारुनारि सम स्वामी ❋ राम सूत्रधर अन्तर्यामी ॥५॥
जेहिपर कृपा करहिं जन जानी ❋ कविउर अजिर नचावहिं बानी ॥६॥

सरस्वती काठकी पुतलीके समान है और अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजी उसके सूत्र धारण करनेवाले हैं (जैसा कि नट डोरसे कठपुतलीको नचाता है) ॥ ५ ॥ जिसके ऊपर दास जानकर वे कृपा करते हैं उस कविके हृदयरूपी आंगनमें पुतलीरूप सरस्वतीको नचाते हैं ॥ ६ ॥

प्रवणउँ सोइ कृपालु रघुनाथा ❋ वरणउँ विशद जासु गुणगाथा ॥७॥
परम रम्य गिरिवर कैलासू ❋ सदा जहाँ शिव उमा निवासू ॥८॥

दंडवत् करता हूँ उन्हीं दयालु श्रीरामचन्द्रजीको कि, जिनके उज्ज्वल गुणानुवादोंको वर्णन करता हूँ ॥७॥ वह कैलाशपर्वत परमशोभायमान है, जहाँ शिव पार्वतीका सदा निवास है ॥८॥

दोहा-सिद्ध तपोधन योगिजन, सुर किन्नर मुनिवृन्द ॥
बसहिं तहां सुकृती सकल, सेवहिं शिव सुखकन्द ॥ ११५ ॥

सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता किन्नर मुनियोंके समूह यह सब पुण्यात्मा वहां बसते और सुखदाता शिवजीकी सेवा करते हैं ॥ ११५ ॥

हरिहर विमुख धर्म-रति नाहीं ❋ ते नर तहाँ न सपनेहु जाहीं ॥१॥
तेहि गिरिपर वट विटप विशाला ❋ नित नूतन सुन्दर सब काला ॥२॥

श्रीभगवान्, या शिवजीसे जो विमुख हैं तथा जिनकी धर्ममें प्रीति नहीं है वे मनुष्य वहां स्वप्नमें भी नहीं जा सकते ॥ १ ॥ उस पर्वत पर एक बड़ा वटका वृक्ष है, जो नित्य नया सब कालमें सुन्दर है ॥ २ ॥

त्रिविध समीर सुशीतल छाया ❋ शिव विश्राम विटप श्रुति गाया ॥३॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ ❋ तरु विलोकि उर अतिसुख भयऊ ॥४॥

शीतल, मंद, सुगंध तीन प्रकारकी पवन चलती, ठंडी छायावाला वह वृक्ष शिवजीके विश्रामका है ऐसा वेदोंने गाया है ॥ ३ ॥ एक समय शिवजी उसके नीचे गये और वृक्षको देखकर मनमें बड़ा हर्ष हुआ ॥ ४ ॥

निज कर डासि नागरिपुछाला ❀ बैठे सहजहि शम्भु कृपाला ॥५॥
कुन्द इंदु दर गौर शरीरा ❀ भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ॥६॥

अपने हाथसे सिंहकी छाल (चर्म) को बिछाकर स्वभावसे ही कृपालु शिवजी बैठे ॥५॥ कुन्द, चन्द्रमा और शंखके समान जिनका गोरा शरीर है, भुजा लम्बी, मुनिवस्त्र अर्थात भोजपत्रादि धारण किये हैं ॥ ६ ॥

तरुण अरुण अम्बुजसम चरणा ❀ नखद्युति भक्त हृदयतमहरणा ॥७॥
भुजग भूति भूषण त्रिपुरारी ❀ आनन शरदचन्द्र छबिहारी ॥८॥

तुरतके खिले हुए लालकमलके समान जिनके चरण हैं और नखोंकी कान्ति भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर कर देती है ॥ ७ ॥ सर्प और विभूति यही शिवजीके गहने हैं मुख शरदके चन्द्रमाकी छबि हरता है ॥ ८ ॥

दोहा-जटा मुकुट सुरसरित शिर, लोचन नलिन विशाल ॥
नील कण्ठ लावण्यनिधि, सोह बाल विधु भाल ॥ ११६ ॥

जटाओंका मुकुट, शिरपर गंगा, कमलके समान बड़े नेत्र, नीलकण्ठ, शोभाके समुद्र जिनके माथेपर बाल (द्वितीयाका) चद्रमा शोभित होता है ॥ ११६ ॥

बैठे सोह काम-रिपु कैसे ❀ धरे शरीर शान्त रस जैसे ॥१॥
पारवती भल अवसर जानी ❀ गई शम्भु पहँ मातु भवानी ॥२॥

कामदेवके शत्रु शिवजी बैठे हुए कैसे शोभित हो रहे हैं जैसे शांत रस शरीर धरे हो ॥ १ ॥ तब जगदम्बा पार्वती अच्छा समय जानकर शिवजीके पास गयीं ॥ २ ॥

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा ❀ वाम भाग आसन हर दीन्हा ॥३॥
बैठी शिव समीप हरषाई ❀ पूरब जन्म कथा चित आई ॥४॥

शिवजीने प्रिया (प्यारी) जानकर बहुत आदर किया और बाईं ओर आसन दिया अथवा जो आसन हर लिया था सो दिया, यथा-'संमुख शंकर आसन दीन्हा' ॥ ३ ॥ शिवजीके समीप प्रसन्न होकर बैठीं और पहले जन्मकी कथा मनमें स्मरण हो आयी ॥ ४ ॥

पतिहिय हेतु अधिक अनुमानी ❀ विहँसि उमा बोली प्रियबानी ॥५॥
कथा जो सकल लोक हितकारी ❀ सोइ पूछन चह शैल कुमारी ॥६॥

स्वामीका प्रेम अपनेमें अधिक जानकर पार्वती हँसती हुई प्यारी वाणी बोलीं ॥ ५ ॥ जो कथा सब लोगोंकी हितकारक है वही पार्वती पूछना चाहती हैं ॥ ६ ॥

विश्वनाथ मम नाथ पुरारी ❀ त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी ॥७॥
चर अरु अचर नाग नर देवा ❀ सकल करहिं पद-पंकज सेवा ॥८॥

हे जगत् स्वामी ! मेरे स्वामी शिवजी ! तीनों भुवनोंमें आपकी महिमा विदित है ॥ ७ ॥ जंगम, स्थावर, नाग मनुष्य, देवता सब आपके चरण कमलकी सेवा करते हैं (नाग पातालवासी, मनुष्य भूलोकवासी, चर चैतन्य, अचर जड़) ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु समर्थ सर्वज्ञ शिव, सकल कलागुण धाम ॥
योग ज्ञान वैराग्य निधि, प्रणत कल्पतरु नाम ॥ ११७ ॥

हे प्रभु ! आप समर्थ अर्थात् सब अर्थ साधने योग्य ! सर्वज्ञ (सबकी गति जाननेवाले) शिव (कल्याणरूप) सम्पूर्ण कला[१] और गुणों[२]के घर हो, क्योंकि सम्पूर्ण विद्या आपसे ही उत्पन्न हुई है योग, ज्ञान, वैराग्यके समुद्र हो, यहां तक रूपका वर्णन हुआ । अब नामकी महिमा कहते हैं "प्रणति कल्पतरू नाम" जो कोई नाम जपकर शरण आवे उसको कल्पवृक्ष हो ॥ ११७ ॥

जौ मोपर प्रसन्न सुख रासी ❋ जानिय सत्य मोहि निज दासी ॥१॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना ❋ कहि रघुनाथ कथा विधिनाना ॥२॥

हे सुखके राशि ! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न और मुझको सत्य ही अपनी दासी जानते हो ॥ १ ॥ तो हे स्वामी ! श्रीरामचन्द्रजीकी अनेक प्रकारसे कथा कहकर मेरा अज्ञान हरण कीजिये ॥ २ ॥

जासु भवन सुरतरु तर होई ❋ सह कि दरिद्रजनित दुख सोई ॥३॥
शशिभूषण अस हृदय विचारी ❋ हरहु नाथ मम मतिभ्रमभारी ॥४॥

जिसका घर कल्पवृक्षके नीचे हो वह भला दरिद्रतासे उत्पन्न दुःख कैसे सह सकता है ? ॥ ३ ॥ हे चन्द्रमाका भूषण धारण करनेवाले स्वामी ! ऐसे हृदयमें विचारकर मेरे मतिका भ्रम दूर कीजिए ॥ ४ ॥

प्रभु जे मुनि परमारथवादी ❋ कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी ॥५॥
शेष शारदा वेद पुराना ❋ सकल करहिं रघुपतिगुण गाना ॥६॥

हे प्रभु ! जो मुनि मोक्षमार्गके कथन करने वाले हैं वे श्रीरामचन्द्रजीको अनादि ब्रह्म कहते हैं ॥ ५ ॥ शेषजी, सरस्वती, वेद-पुराण, सब श्रीरामचन्द्रजीके गुणानुवाद गाते हैं ॥ ६ ॥

---

१. कलाओंके नाम-गाना, बजाना, नाचना, नाटक करना, चित्रादि लिखना, हीरेको बेधना, चावल पुष्पादिका रंग निकालना, फूल बिछाना, दांत वस्त्र और अंगोंका रंगना, मणियोंकी पृथ्वी रचना, जलतरंग बजाना, जल ताड़न कर बजाना, चित्र उतारना, माला गूंथना मुकुट आदि बनाना, नेपथ्य रचना, कानमें भूषण धारण, पुष्पोंकी गंधका तेल बनाना, भूषण योजना, इन्द्रजाल, बहुरूपिया रन, रूप धरना, पटा गदाका खेलना, रसोई बनाना, पीनेके पदार्थ शर्बत आदि बनाना, सीना, लक्ष्य भेद करना, सूत्र क्रीड़ा, वीणा डमरू बजाना, कहानी कहना, दूसरेकी बोली बनाकर बोलना, छल करना, पुस्तक बांचना, नाटक आख्यायिका देखना, काव्यचातुरी, समस्यापूर्ति, निवार डोरी आदि बुनना, तक्षककर्म-बढ़ईका कार्य धवईका कार्य, रत्नपरीक्षा, स्वर्णकारका कार्य जानना, मंत्रियोंके रूपका ज्ञान, वृक्षोंकी चिकित्सा, मेष-कुक्कुट-बटेरादिका युद्ध करना, तोते मैनेका प्रलाप, बैरीका तिरस्कार, केश धोना, मुट्ठी की वस्तु बता देना, म्लेच्छकी भाषा और यन्त्रका जानना, देशभाषाका ज्ञान, फूलोंके वाहनादि बनाना, कठपुतली नचाना, धारणा और वाणीमें प्रवीणता, दूसरेके चित्तकी बात जान लेना, मनमें काव्य निर्माण करना, अभिधानकोष जानना छंदका ज्ञान, अनेक उपायोंसे कार्यकी सिद्धि करना, छलके योग, वस्त्र छिपाना, द्यूत विधान, आकर्षण क्रीड़ा, बालकों के खेल जानना, विनयसे राजादिकोंको प्रसन्न करना, विजयका विचार वा देवताओं को वशमें करना, पुराण, इतिहासका ज्ञान होना; बस यही ६४ कला हैं।

२. गुण यह है—सत्य बोलना, शुद्ध रहना, पराया दुःख सहना, क्रोध जीतना, याचकको दान देना, संतुष्ट रहना, कुटिलताका त्याग, मनमें निश्चलता, बाह्येंद्रियको वशीभूत करना, स्वधर्म में आरूढ़ रहना शत्रु मित्रपर समान दृष्टि रखना, अपराध सहना, लाभमें उदासीनता, सच्छास्त्रका विचार, परमेश्वरको मानना, तृष्णाका त्याग, आस्तिकता, संग्राममें उत्साह प्रभाव रखना, चतुरता कर्तव्यका स्मरण, स्वाधीनता, क्रियामें निपुणता, सुन्दरता, धीरता, कोमलता, बुद्धिका प्रकाश, विजयता, सुन्दर स्वभाव होना, ग्रहण शक्ति, पराक्रम, देहमें बल होना, सब भोगना, गंभीर रहना, चंचलता का त्याग, श्रद्धा, यज्ञका कार्य करना, बड़ाईके कार्य और अभिमानका त्याग यही ३८ गुण हैं।

तुम पुनि राम नाम दिन राती * सादर जपहु अनंग-अराती ॥७॥
राम सो अवधनृपति-सुत सोई * की अज अगुन अलख गति कोई॥८॥

और फिर आप रामनाम दिन रात आदरसे जपते रहते हैं, हे अनंगअराति अर्थात् कामदेवके मारनेवाले ! ॥ ७ ॥ जो राम ऐसे हैं कि-शेष, शारदा, वेद पुराण और आप उनके गुण गाते रहते हैं तो वे यही अवधपतिके पुत्र हैं वा कोई और जन्मरहित, गुणरहित, अलख गतियुक्त हैं ॥ ८ ॥

दोहा-जौ नृप तनय तौ ब्रह्म किमि, नारिविरह मति भोरि ॥
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥११८॥

जो वे राजपुत्र हैं तो फिर ब्रह्म कैसे नारीके विरहमें उनकी क्यों मति भोरी हो गयी ? मैंने उनका चरित्र ऐसा देखा और उनकी महिमा आप और शेषादिकसे वैसी सुनती हूँ; बस इस कारण मेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रम रही है ॥ ११८ ॥

जौ अनीह व्यापक विभु कोऊ * कहहु बुझाय नाथ मोहि सोऊ ॥१॥
अज्ञ जानि रिस जनि उर धरहू * जोहि विधि मोह मिटइ सोइ करहू॥२॥

जो अनीह (उद्यम रहित), व्यापक (विश्वव्यापक जैसे-तिलमें तेल व्याप्त है), विभु (समर्थ), कोई और हों तो मुझको यह भी समझाकर कहिये ? ॥ १ ॥ मुझको अज्ञ समझकर मनमें क्रोध मत करिये, वरन् जिस प्रकार मोह मिटे वही कीजिये ॥ २ ॥

मैं बन दीख राम प्रभुताई * अतिभय विकल न तुमहि सुनाई॥३॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा * सो फल भली भाँति मैं पावा ॥४॥

मैंने वनमें रामकी प्रभुताई देखी है किंतु अत्यन्त डरसे व्याकुल होकर तब आपको नहीं सुनायी ॥ ३ ॥ तो भी मेरा मलिन मन था ज्ञान नहीं हुआ, सो वह फल मैंने अच्छी तरह पाया ॥ ४ ॥

अजहूँ कछु संशय मन मोरे * करहु कृपा विनवहुँ कर जोरे ॥५॥
प्रभु तब मोहिं बहुभांति प्रबोधा * नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥६॥

अब भी कुछ मेरे मनमें संदेह है सो मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! उस काल आपने मुझको बहुत भाँतिसे समझाया था, वह बात समझकर आप क्रोध न करना ॥ ६ ॥

तबकर अस विमोह मोहिं नाहीं * राम कथापर रुचि मनमाहीं ॥७॥
कहहु पुनीत रामगुण गाथा * भुजगराज-भूषण सुरनाथा ॥८॥

अब तबके सा मुझको अज्ञान नहीं है और श्रीरामचंद्रजीकी कथा पर प्रेम है ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पवित्रगुणोंकी कथा कहिये। सर्पोंके राजाके भूषणधारी ! हे देवताओंके स्वामी !॥८॥

दोहा-वन्दउँ पदधरि धरणि शिर, विनय करउँ कर जोरि ॥
वर्णहु रघुवर विशद यश, श्रुति सिद्धान्त निचोरि ॥ ११९ ॥

पृथ्वीमें शिर रखकर आपके चरणोंकी बंदना करती हूँ हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीका उज्ज्वल यश वेदोंका सिद्धांत निचोड़ कर वर्णन कीजिये ॥ ११९ ॥

यदपि योषिता अन अधिकारी * दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ॥१॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं * आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥२॥

यद्यपि मैं स्त्री हूँ, और मेरा इसमें अधिकार नहीं है तो भी मन-वचन-कर्मसे आपकी दासी हूँ ॥ १ ॥ महात्मा लोग गुप्त तत्वको भी वहां नहीं छिपाते जहां दुःखी और अधिकारी पाते हैं। (संसारके जन्म-मरण दुःखसे व्याकुल मनुष्य आर्त कहाते हैं) ॥ २ ॥

अति आरत पूछउँ सुरराया * रघुपति कथा कहहु करि दाया॥३॥
प्रथम सो कारण कहहु बिचारी * निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी ॥४॥

हे देवताओंके स्वामी! बड़ी व्याकुलतासे प्रश्न करती हूँ श्रीरामचंद्रजीकी कथा दया करके कहिये ॥३॥पहले तो वह कारण विचार कर कहिये कि निर्गुण ब्रह्मने सगुण शरीर धारण क्यों किया॥४॥

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा * बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥५॥
कहहु कथा जानकी विवाहा * राज तजा सो दूषण काहा ॥६॥

फिर हे नाथ! श्रीरामचन्द्रजीका अवतार कहिये और इसके पीछे उदार बालचरित्र वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ जैसे जानकीजीका विवाह हुआ कहिये, फिर श्रीरामचन्द्रजीने राज्य त्यागा सो क्या कारण? किस दोषसे? ॥ ६ ॥

वन बसि कीन्हेउ चरित अपारा * कहहु नाथ जिमि रावण मारा ॥७॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला * सकल कहहु शंकर सुखशीला ॥८॥

वनमें रहकर अनेक चरित्र किये, फिर जैसे हे नाथ! रावण को मारा वह कहिये॥७॥ राज्यपर बैठकर जिस प्रकार बहुत लीलाएँ कीं सो हे शिवजी! सुख शीलयुक्त आप कृपा कर सब कहिये॥८॥

दोहा-बहुरि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम ॥
प्रजा-सहित रघुवंशमणि, किमि गवने निज धाम ॥ १२० ॥

फिर हे कृपा सागर! श्रीरामचन्द्रजीने जो अचरज किया और प्रजासहित अपने लोक को गये, वह वर्णन कीजिये कि यह चरित्र कैसे हुआ? ॥ १२० ॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी * जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी ॥१॥
भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा * पुनि सब वर्णहु सहित विभागा ॥२॥

हे प्रभु! फिर वह तत्व विचार कर कहिये जिस विज्ञानमें मुनि और ज्ञानी मग्न रहते हैं ॥१॥ फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य और मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान पृथक्-पृथक् वर्णन कीजिये ॥२॥

अवरउ रामरहस्य अनेका * कहहु नाथ अतिविमल विवेका ॥३॥
जो प्रभु मैं पूँछा नहिं होई * सोउ दयालु राखहु जनि गोई ॥४॥

हे स्वामी! और भी जो श्रीरामचन्द्रजीके अनेक गुप्त चरित्र हैं वे अत्यन्त उज्ज्वल और ज्ञानके भरे चरित्र कहिये ॥ ३ ॥ हे प्रभु! जो बात मैंने पूछी नहीं हो, सो दया करके वह भी कह दीजिये छिपाइये मत ॥ ४ ॥

तुम त्रिभुवन-गुरु देव बखाना * आन जीव पामर का जाना ॥५॥
प्रश्न उमाके सहज सुहाये * छल विहीन सुनि शिवमन भाये॥६॥

यह वेद कहता है कि आप तीनों भुवनके गुरु हैं दूसरे निकम्मे जीव इस बातको क्या जानें॥५॥ पार्वतीके प्रश्न जो स्वभावसे सुन्दर छलरहित थे; सुनकर शिवजीके मनको अच्छे लगे ॥ ६ ॥

हरहिय रामचरित सब आये * प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥७॥
श्रीरघुनाथ-रूप उर आवा * परमानंद अमित सुख पावा ॥८॥

शिवजीके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र सब आ गये और प्रेमसे पुलकित होकर नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ७ ॥ तब ही श्रीरामचन्द्रजीका रूप मनमें आया, जिससे अधिक आनंद और बड़ा सुख पाया ॥ ८ ॥

दोहा-मगन ध्यान रस दंड युग, पुनि मन बाहर कीन्ह ॥
रघुपति-चरित महेश तब, हर्षित वरणै लीन्ह ॥ १२१ ॥

दो घड़ी तक ध्यानके रसमें मग्न होगये फिर मनको बाहर किया, तब प्रसन्न होकर शिवजी श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंको वर्णन करने लगे ॥ १२१ ॥

झूँठउ सत्य जाहि बिनु जाने * जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥१॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई * जागे यथा स्वप्न-भ्रमजाई ॥२॥

जिनके विना जाने झूठा संसार सत्य जान पड़ता है, जैसे रस्सीके विना जाने सर्प जान पड़ता है ॥ १ ॥ जिनके जाननेसे जगत् ऐसे मिथ्या प्रतीत होने लगता है जैसे जागने पर स्वप्नका भ्रम जाता रहता है ॥ २ ॥

बन्दौं बालरूप सोइ रामू *सब विधि-सुलभ जपत जिस नामू॥३॥
मंगल भवन अमंगल हारी * द्रवौ सो दशरथ अजिर विहारी ॥४॥

बालक रूप उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करता हूँ, जिनका नाम जपना सब प्रकारके कार्योंको सुलभ कर देता है। अथवा जिनके नाम जपने से सब विधि सुलभ हो जाती हैं वा जो जपनेसे सब प्रकार सुलभ है ॥ ३ ॥ मङ्गलके घर, अमङ्गलके हरने वाले, दशरथके आंगनमें खेलनेवाले ! मेरे ऊपर कृपा करो ॥ ४ ॥

करि प्रणाम रामहिं त्रिपुरारी * हरषि सुधासम गिरा उचारी ॥५॥
धन्य धन्य गिरिराज-कुमारी * तुम समान नहिं कोउ उपकारी॥६॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके शिवजीने प्रसन्न हो अमृतके समान वाणी उच्चारण की ॥ ५ ॥ हे पार्वती ! धन्य हो ! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है ॥ ६ ॥

पूछेहु रघुपति-कथा प्रसंगा * सकल लोक जग पावनि गङ्गा॥७॥
तुम रघुवीर चरण अनुरागी * कीन्हेउ प्रश्न जगत हित लागी॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथाका ऐसा प्रसंग पूछा है जो सब लोगोंको गङ्गाके समान पवित्र करनेवाला है ॥ ७ ॥ तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति करनेवाली हो, प्रश्न तो तुमने जगत्के हितके अर्थ किये हैं ॥ ८ ॥

दोहा-रामकृपाते पारवति, सपनेहु तव मनमाहिं ॥
शोक मोह सन्देह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं ॥ १२२ ॥

हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे तुम्हारे मनमें स्वप्नमें भी शोक, मोह, सन्देह, भ्रम कुछ भी मेरे विचारसे नहीं है ॥ १२२ ॥

तदपि अशंका कीन्हेउ सोई * कहत सुनत सबकर हित होई ॥१॥
जिन हरि कथा सुनी नहिं काना * श्रवणरन्ध्र अहि भवन समाना ॥२॥

तो भी यह ऐसी विना शंका की शंका है कि जिसके कहनेसे सबका हित होगा ॥ १ ॥ जिन्होंने कानोंसे भगवान्‌की कथा नहीं सुनी उनके छेद सर्पोंके भट्ठोंके समान हैं ॥ २ ॥

नयनन सन्त-दरश नहिं देखा * लोचन मोर पंखकर लेखा ॥३॥
ते शिर कटु तूमरि सम तूला * जे न नमत हरि-गुरु-पद-मूला ॥४॥

जिन नेत्रोंने सन्तोंका दर्शन नहीं किया वे आंखें मोर पङ्खके समान हैं ॥ ३ ॥ वे शिर कड़वी तुमड़ीके समान हैं जो भगवान् और गुरुके चरणोंमें नहीं झुकते ॥ ४ ॥

जिन हरि भक्ति हृदय नहिं आनी * जीवत शव समान ते प्रानी ॥५॥
जे नहिं करहिं राम-गुण गाना * जीह सो दादुर जीह समाना ॥६॥

जिन्होंने मनमें ईश्वरकी भक्ति नहीं धारण की वे प्राणी जीते हुए ही मुर्देके समान हैं ॥ ५ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजीके गुण नहीं गाते उनकी जीभ मेंढकोंके समान है ॥ ६ ॥

कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती * सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥७॥
गिरिजा सुनहु रामकर लीला * सुरहित दनुज विमोहन शीला ॥८॥

वह छाती वज्रके समान कठोर निठुर है जो भगवान्‌के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होती ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीकी लीला सुनो, जो देवताओंको हितकर और दैत्योंको मोहनेवाली है ॥ ८ ॥

दोहा-रामकथा सुर धेनु सम, सेवत सब सुख दान ॥
सन्तसभा सुरलोक सम, को न सुनै अस जान ॥ १२३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान है;जो सेवा करनेसे सब सुख देती है,सन्तोंकी सभा वैकुंठलोक है जहां कामधेनु रहती है ऐसा जानकर कौन इसको न सुने?अर्थात् सब सुनेंगे॥१२३॥

रामकथा सुन्दर करतारी * संशय विहग उड़ावन हारी ॥१॥
रामकथा कलि विटप-कुठारी * सादर सुनु गिरिराज कुमारी ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हाथोंकी सुन्दर ताली है(हथेलीका बजाना ताली कहलाती है)जिस प्रकार तालीबजानेसे पक्षी उड़ जाते हैं इसी प्रकार यह भी संशयरूपी पक्षीको उड़ानेवाली है॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कलियुगरूपी वृक्षके काटनेकी कुल्हाड़ी है हे पार्वती!इसे आदरसे सुनो॥२॥

रामनाम गुण चरित सुहाये * जन्म कर्म अगणित श्रुति गाये॥३॥
यथा अनंत राम भगवाना * तथा कथा कीरति गुण नाना ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण चरित्र, जन्म और कर्म अनगिनत वेदोंने गाये हैं ॥ ३ ॥ जिस प्रकार राम भगवान् अनंत हैं जिनका कोई पार नहीं पा सकता ऐसे ही उनके चरित्र हैं, कीर्ति और गुण भी अनंत हैं ॥ ४ ॥

तदपि यथा श्रुति जस मति मोरी * कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी ॥५॥
उमा प्रश्न तव सहज सुहाये * सुखद सन्त-संमत मोहि भाये ॥६॥

तो भी जैसा वेद, शास्त्रोंमें है और मेरी मति है तुम्हारी अधिक प्रीति देख कर कहूँगा

॥ ५ ॥ हे पार्वती ! तुम्हारा यह प्रश्न स्वभावसे ही श्रेष्ठ सुखदायक और श्रेष्ठोंका सम्मत है कारण मुझको अच्छा लगता है ॥ ६ ॥

एक बात नहिं मोहिं सुहानी * यदपि मोहवश कहेउ भवानी ॥७॥
तुम जो कहा राम कोउ आना * जेहि श्रुतिगाव धरहिं मुनि ध्याना ॥८॥

पर एक बात मुझको अच्छी नहीं लगी, यद्यपि प्रिये ! तुमने मोहसे कही है॥७॥ यह बात यह है, जो तुमने कहा कि राम कोई और हैं जिनको वेद गाते और मुनि ध्यान करते हैं॥८॥

दोहा-कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिशाच ॥
पाखण्डी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥१२४॥

प्यारी ! ऐसा तो नीच पुरुष कहते हैं जिनको अज्ञानरूप भूत चिपटा होता है, वे पाखण्डी भगवान्‌के चरणोंसे विमुख झूठ सत्य कुछ नहीं जानते ॥ १२४ ॥

अज्ञ अकोविद अन्ध अभागी * काई विषय मुकुर मन लागी ॥१॥
लंपट कपटी कुटिल विसेखी * सपनेहु सन्तसभा नहिं देखी ॥२॥

जो अज्ञानी, शास्त्रसे अन्धे, अभागे, जिनके मनरूपी दर्पणमें विषयरूपी काई लग रही है ॥ १ ॥ वे कामी, ठग, कपटी और बड़े खोटे होते हैं क्योंकि उन मूर्खोंने महात्माओंकी सभा स्वप्नमें भी कभी नहीं देखी ॥ २ ॥

कहहिं ते वेद-असंमत बानी * जिनहिं न सूझ लाभ नहिं हानी॥३॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना * राम रूप देखहिं किमि दीना ॥४॥

वे पाखण्डी वेदविरुद्ध यह बात कहते हैं (मूर्ति मत पूजो। अवतार नहीं होता) कि, जिनको अपना लाभ और हानि नहीं सूझती ॥ ३ ॥ उनके मनरूपी दर्पण मलिन और फिर वे शास्त्ररूपी नेत्रोंसे रहित हैं, ऐसी दशामें वे दीन श्रीरामचन्द्रजीको कैसे देख सकते हैं ॥४॥

जिनके अगुण न सगुण विवेका * जल्पहिं कल्पित वचन अनेका ॥५॥
हरिमाया वश जगत भ्रमाहीं * तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥६॥

जिनके सगुण-निर्गुणका कुछ ज्ञान नहीं है वे ही अनेक कपोल कल्पित वचन कहते हैं(जल्पना बकवाद) ॥ ५ ॥ भगवान्‌की मायासे जो जगत्‌में ही भ्रम रहे हैं उनके कहनेका कुछ आश्चर्य है ! अथवा जो परमात्माकी मायासे जगत् ही भ्रम रहा है तो उनके वचनोंका क्या ठिकाना॥६॥

वातुल भूत-विवश मतवारे * ते नहिं बोलहिं वचन सँभारे ॥७॥
जिन कृत महामोह मद पाना * तिनकर कहा करिय नहिं काना ॥८॥

जो वातुल(सन्निपात),भूतके विशेष वशमें पड़े हुए मतवाले बुद्धि रहित हो रहे हैं वे संभाल कर वचन नहीं बोलते॥७॥जिन्होंने महामोह मद पान किया उनका कहना सुनने योग्य नहीं॥८॥

सोरठा-अस निज हृदय विचारि, तजि संशय भजु रामपद ॥
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रमतम रविकर वचन मम ॥ १६॥

ऐसा अपने मनमें विचार संदेह त्याग श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति करनी चाहिये। पार्वती ! सुनो, तुम्हारे भ्रमरूपी अन्धकारको दूर करनेको मेरा वचन सूर्यकी किरण है ॥१६॥

सगुणहिं अगुणहिं नहिं कछु भेदा * गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ॥१॥
अगुण अरूप अलख अज जोई * भक्त-प्रेम-वश सगुण सो होई ॥२॥

निर्गुणमें सगुणमें भेद नहीं है यह बात मुनि, पुराण, पंडित, वेद गाते हैं॥ १॥जो संसारी गुणोंसे रहित, रूपरहित और जन्म रहित ईश्वर है वही भक्तोंके प्रेमवश सगुण होता है ॥२॥

जो गुण रहित सगुण सो कैसे * जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥३॥
जासु नाम भ्रम-तिमिर-पतंगा * तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा॥४॥

जो गुणोंसे रहित है वह सगुण कैसे होता है ? जैसे बरफ और ओले यह जलसे पृथक् नहीं किंतु भिन्न कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकारको सूर्य है वहां मोहकी कथा कैसे ? अर्थात् वहां मोह भ्रम कुछ नहीं है ॥ ४ ॥

राम सच्चिदानन्द दिनेशा * नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा॥५॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना * नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना॥६॥

राम सच्चिदानंद सूर्य हैं; वहां मोहरूपी रात्रिका लवलेश नहीं है ॥ ५ ॥ भगवान् सहज हीं प्रकाशरूपी हैं फिर वहां विज्ञानका बिहान नहीं, क्योंकि जो मोहरूपी रात्रि होती तो इस बिहानका होना सम्भावित होता । बिहान-प्रातःकाल तो तब होता जब रात होती राम तो सदा ही प्रकाशरूप हैं ॥ ६ ॥

हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना * जीवधर्म अहमिति अभिमाना॥७॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना * परमानन्द परेश पुराना ॥८॥

प्रसन्नता, दुःख, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार अभिमान ये जीवके धर्म हैं ॥७॥ और ईश्वर सर्वव्यापक है यह जगत् जानता है । परमानन्द स्वरूप सबसे पुराण पुरुष है(पुराण-सनातन)॥८॥

दोहा-पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रगट परावरनाथ ॥
रघुकुल मणि मम स्वामि सोइ, कहि शिव नायउ माथ ॥ १२५ ॥

जो प्रसिद्ध पुरुष और प्रकाशके समुद्र, पर (माया) अवतार (जीव) के नाथ रघुकुलमें मणि होकर प्रगट हुए हैं वे ही हमारे नाथ हैं ऐसा कहकर शिवजीने माथा नवाया (और कहा)॥१२५॥

निजभ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी * प्रभुपर दोष धरहिं जड़ प्रानी ॥१॥
यथा गगन घनपटल निहारी * झंपेउ भानु कहहिं कुविचारी ॥२॥

अज्ञानी मनुष्य अपना तो भ्रम समझते नहीं, भगवान् पर दोष धरते हैं ॥ १ ॥ जैसे आकाशमें बादलोंके समूह देखकर अज्ञानी कहते हैं कि सूर्य छिप गया, किन्तु यथार्थमें छिपता नहीं ॥ २ ॥

चितव जो लोचन अंगुलि लाये * प्रगट युगल शशि तेहिके भाये॥३॥
उमा राम विषयक अस मोहा * नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥४॥

जो नेत्रोंपर अंगुली लगाकर देखता है उसको दो चन्द्रमा विदित होते हैं ॥ ३ ॥ हे उमा ! रामविषयक यह मोह ऐसा है जैसे आकाशमें अन्धकार हुआ और धूल, जो आकाशमें नहीं होते हैं किन्तु देखनेवालेके निकट हैं, वास्तविक आकाश तो निर्मल है ॥ ४ ॥

विषय करणसुर जीव समेता * सकल एकते एक सचेता ॥५॥
सबकर परम प्रकाशक जोई * राम अनादि अवधपति सोई ॥६॥

विषय और इन्द्रिय, उनके देवता, जीव यह सब एकसे एक सचेत हैं जैसे दिया विषय है। आँख इंद्रिय है, सो वह दिया आँखसे सचेत है, आँख सूर्यसे सचेत है और सूर्य जीवसे सचेत है ॥ ५ ॥ किन्तु जो सबका परमप्रकाश करने वाले हैं वे ही ब्रह्म राम अयोध्यापति हैं जिनका आदि नहीं ॥ ६ ॥

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू * मायाधीश ज्ञान गुण धामू ॥७॥
जासु सत्यता ते जड़ माया * भास सत्य इव मोह सहाया ॥८॥

जगत् प्रकाशित होने वाला और राम उसके प्रकाश करनेवाले, मायापति ज्ञान और गुणके धाम हैं ॥७॥ जिनकी सत्यतासे जड़रूप माया सत्यसी विदित होती है जो मोहकी सहायक है ॥८॥

दोहा–रजत सीपमहँ भासजिमि, यथा भानुकर वारि ॥
यदपि मृषा तिहुँकाल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥१२६॥

सन्देह यह है कि और सत्यतासे कोई झूठी वस्तु सत्य कैसे दीखती है। उसके निमित्त यह दृष्टांत है कि, जैसे सीपीमें चाँदीका आभास पड़ा है, सूर्यकी किरणोंमें जलका आभास पड़ा है, यद्यपि सीपीमें चाँदी और सूर्यकी किरणोंमें जलका होना तीनों कालमें झूठा है तथापि उसका भ्रम कोई नहीं टाल सकता ॥ १२६ ॥

एहि विधि जग हरि-आश्रित रहई * यदपि असत्य देत दुख अहई ॥१॥
जो सपने शिर काटै कोई * बिन जागे दुख दूरि न होई ॥२॥

इस प्रकार जगत् परमेश्वरके आश्रित रहता है, यद्यपि यह असत्य है, किन्तु दुःख देता है ॥१॥ जो यह जगत् असत्य है, किन्तु तो फिर उसका दिया हुआ दुःख कैसे प्राप्त होता है ? उसपर कहते हैं कि जैसे कोई स्वप्नमें शिर काट ले तो उसका दुःख विना जागे दूर नहीं होता, इसी प्रकार संसारसे जागे विना संसारके व्यवहार सत्य प्रतीत होते हैं ॥ २ ॥

जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई * गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ॥३॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा * मति अनुमान निगम अस गावा ॥४॥

हे पार्वती ! जिनकी कृपासे भ्रम मिट जाता है वे दयालु श्रीरामचन्द्र हैं ॥३॥ जिनका आदि अन्त किसीने नहीं पाया, मति–अनुसार अनुमानसे वेदने ऐसा गाया है। कार्यको देखकर कारणका ज्ञान होना अनुमान है, जैसे धुआँ देखकर विदित होता है आग यहां होगी ॥ ४ ॥

विनु पद चलै सुनै बिनु काना * कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥५॥
आनन रहित सकल रस भोगी * बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी ॥६॥

विना पगके चलता है, विना कानके सुनता है और विना हाथके अनेक प्रकारके कर्म करता है ॥५॥ विना मुखके सबका भोग करता है और विना वाणीके बहुत कहनेवाला तथा योगी है ॥६॥

तनु बिनु परश नयन बिनु देखा * गहै घ्राण बिनु वास अशेखा ॥७॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी * महिमा जासु जाय नहिं बरणी ॥८॥

विना शरीरके सबको छूता है, नेत्रोंके विना देखता और नासिकाके विना सम्पूर्ण सुगंधको ग्रहण करता है। इस पर श्रुति भी है–"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥" अर्थ ऊपरकी चौपाइयोंका ही है ॥७॥ ऐसी सब प्रकार अलौकिक करनी है, जिसकी महिमा वरणी नहीं जाती ॥ ८ ॥

दोहा–जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ॥
सोइ दशरथसुत भक्त हित, कोशल पति भगवान ॥ १२७ ॥

जिसको वेद और पंडित इस प्रकारसे गाते हैं तथा जिनका मुनि ध्यान धरते हैं वे ही दशरथके पुत्र भक्तोंके हितकारी कोशल देशके राजा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ १२७ ॥

काशी मरत जन्तु अवलोकी * जासु नाम बल करउँ विशोकी॥१॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी * रघुवर सब उर अन्तर्यामी ॥२॥

काशीमें मरते हुए जन्तुओंको देखकर जिस रामनामके बलसे सबको मुक्ति देता हूँ ॥१॥ वे ही प्रभु मेरे चर और अचरके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सबके हृदयको जाननेवाले हैं ॥२॥

विवशहु जासु नाम नर कहहीं * जन्म अनेक रचित अघ दहहीं॥३॥
सादर सुमिरण जे नर करहीं * भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥४॥

विवश अर्थात् व्यथा विपत्ति आदिके वश होकर भी जो मनुष्य उन (श्रीरामचन्द्रजी) का नाम लेते हैं, उनके अनेक जन्मके संचित पाप जल जाते हैं ॥ ३ ॥ फिर जो मनुष्य आदरसे सुमिरण करते हैं वे संसार सागरको गौके पदकी नांई तर जाते हैं ॥ ४ ॥

राम सो परमातमा भवानी * तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी॥५॥
अस संशय आनत उरमाहीं * ज्ञान विराग सकल गुणजाहीं॥६॥

हे पार्वती! वे ही राम परमात्मा हैं, वहां भ्रम करना अति अयोग्य है ॥ ५ ॥ ऐसा सन्देह मनमें करते ही ज्ञान और वैराग्य आदि सब गुण जाते रहते हैं ॥ ६ ॥

सुनि शिवके भ्रमभंजन वचना * मिटि गइ सब कुतर्ककी रचना ॥७॥
भइ रघुपति–पद प्रीति प्रतीती * दारुण असंभावना बीती ॥८॥

शिवजीके भ्रमभञ्जन करनेवाले वचन सुनकर सब कुतर्कना मिट गयी ॥७॥ श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रीति और विश्वास हुआ तथा कठिन टेढ़ी दुर्भावना दूर हो गई ॥ ८ ॥

दोहा–पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि ॥
बोली गिरिजा वचन वर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥१२८॥

बार बार प्रभु (शिवजीके) चरणकमलको पकड़ कर हाथ जोड़ पार्वती प्रेमरससे सने हुए सुन्दर वचन बोलीं ॥ १२८ ॥

शशिकरसम सुनि गिरा तुम्हारी * मिटा मोह शरदातप भारी ॥१॥
तुम कृपालु सब संशय हरेऊ * रामस्वरूप जानि मोहिं परेऊ ॥२॥

चंद्रकिरणसम आपकी वाणी सुनकर शरदातप (क्वारकी धूप) के समान मेरा भारी मोह मिट गया ॥ १ ॥ हे कृपालु! आपने सब सन्देह हर लिया अब रामका स्वरूप मुझको जान पड़ा ॥ २ ॥

नाथ कृपा अब गयउ विषादा * सुखी भइउँ प्रभु चरण प्रसादा॥३॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी * यदपि सहज जड़ नारि अयानी॥४॥

हे नाथ ! आपकी कृपाने मेरा दुःख मिटा दिया और आपके चरणप्रसादसे सुखी हुई ॥ ३ ॥ अब आप मुझको अपनी दासी जानिये, यद्यपि मैं स्वभावसे मूर्ख स्त्री हूँ ॥ ४ ॥

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू * जौं मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥५॥
राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी * सर्वरहित सब उर-पुरवासी ॥६॥

हे स्वामी ! जो मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो पहले जो मैंने पूछा था वह कहिये ॥५॥ यदि राम ब्रह्म, आनन्दस्वरूप अविनाशी, सबसे रहित और सबके हृदयमें वास करने वाले हैं तो ॥६॥

नाथ धरेउ नरतन केहि हेतू * मोहिं समुझाय कहहु वृषकेतू ॥७॥
उमा-वचन सुनि परम विनीता * राम कथा पर प्रीति पुनीता ॥८॥

हे स्वामी ! उन्होंने मनुष्य शरीर क्यों धारण किया ? यह आप मुझको समझाकर कहिये ॥ ७ ॥ पार्वतीके परम पवित्र वचन सुने जो कि परम विनीत अर्थात् राजनीतिके थे और श्रीरामचन्द्रजीकी कथा पर पवित्र प्रीति थी । विनीत अर्थात् नम्रता युक्त थे ॥ ८ ॥

दोहा-हिय हरषे कामारि तब, शंकर सहज सुजान ॥
बहु विधि उमहि प्रशंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥ १२९ ॥

तब कामदेवके शत्रु शिवजी जो स्वभावसे ही चतुर हैं, वे कृपासागर प्रसन्न हो बहुत प्रकारसे पार्वतीकी बड़ाई करते हुए बोले ॥ १२९ ॥

सोरठा-सुनि शुभ कथा भवानि, रामचरित-मानस विमल ॥
कहा भुशुण्डि बखानि, सुना विहगनायक गरुड़ ॥ १७ ॥

हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र मान सरोवरके समान उज्ज्वल हैं जिनको काकभुशुंडिने बखान कर कहा और पक्षियोंके स्वामी गरुड़ने सुना वा उज्ज्वल रामचरित मानस सुनो॥ १७॥

सोरठा-सोइ संवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब ॥
सुनहु राम-अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥ १८ ॥

वह काकभुशुण्डि और गरुड़का संवाद जिस प्रकार हुआ सो आगे (उत्तरकांडमें) वर्णन करेंगे परंतु अब रामावतारके सुन्दर पापरहित चरित सुनो ॥ १८ ॥

सोरठा-हरिगुण नाम अपार, कथारूप अगणित अमित ॥
मैं निजमति-अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥ १९ ॥

परमेश्वरके गुण और नाम अपार हैं; कथा और रूप भी अगणित हैं; अपनी मतिके अनुसार कहता हूँ तुम आदरसे सुनो ॥ १९ ॥

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाये * विपुल विशद निगमागम गाये॥१॥
हरि-अवतार हेतु जेहि होई * इदमित्थं कहि जाय न सोई ॥२॥

सुनो पार्वती ! भगवान्के सुन्दर चरित्र जो कि उज्ज्वल हैं और बहुतसे वेद शास्त्र पुराणोंमें गाये हैं ॥ १ ॥ परमेश्वरका अवतार जिस लिये होता है उसके विषयमें कहना कि यह इसी कारण होता है, यह नहीं कहा जा सकता ॥ २ ॥

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी * मत हमार अस सुनहु भवानी॥३॥
तदपि सन्त मुनि वेद पुराना *जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥४॥

श्रीरामचन्द्रजी बुद्धि, मन और वाणीसे अतर्क्य (तर्कनारहित वा परे) हैं हे पार्वती हमारा तो यह मत है॥३॥ तो भी संत, मुनि, वेद, पुराण, जैसा कुछ अपनी मति अनुसार वर्णन करते हैं॥४॥

तस मैं सुमुखि सुनावहुँ तोहीं * समुझि परै जस कारण मोहीं॥५॥
जब जब होय धर्मकी हानी * बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥६॥

वैसा ही हे श्रेष्ठ मुखवाली ! मैं सुनाता हूँ, जैसा कारण मुझे समझ पड़ता है॥५॥ जब जब धर्मकी हानि होती है और राक्षस नीच अभिमानी बढ़ जाते हैं॥६॥

करहिं अनीति जाइ नहिं वरणी * सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी॥७॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा * हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥८॥

वे ऐसी अनीति करते हैं जो वरणी नहीं जाती और ब्राह्मण, गौ, देवता, पृथ्वीको दुःख देते हैं॥७॥ तब तब भगवान् अनेक प्रकारके शरीर धारण कर भक्तोंके दुःख हरते हैं, यही गीतामें कहा है-"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥१॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥ धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥२॥" श्रीकृष्णजी कहते हैं-हे अर्जुन। जब-जब धर्मकी हानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है तब-तब मैं (धर्मोद्धारके लिये) शरीर धारण करता हूँ। साधुओंकी रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेको मैं युग-युगमें अवतार लेता हूँ॥८॥

दोहा--असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज--श्रुति-सेतु॥
जग विस्तारहिं विशद यश, राम जन्म-कर हेतु॥१२०॥

राक्षसोंको मार देवताओंकी स्थिति और वेदोंकी मर्यादा रखनेके लिये श्रीरामचंद्रजीका अवतार होता है; जो कि जगत्में बड़ा यश विस्तार करता है यही श्रीरामजीके जन्मका हेतु है॥१२०॥

सोइ यश गाय भक्त भव तरहीं * कृपासिन्धु जनहित तनु धरहीं॥१॥
रामजन्मके हेतु अनेका * परम विचित्र एकते एका॥२॥

यही भगवान्का यश गाकर भक्तजन संसार सागरसे तर जाते हैं, कृपासागर श्रीभगवान् अपने भक्तोंके हेतु शरीर धारण करते हैं॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके अनेक कारण हैं जो कि एकसे एक परम विचित्र हैं॥२॥

जन्म एक दुइ कहउँ बखानी * सावधान सुनु सुमति भवानी॥३॥
द्वारपाल हरिके प्रिय दोऊ * जय अरु विजय जान सब कोऊ॥४॥

एक दो जन्म कहता हूँ सो हे श्रेष्ठ बुद्धिमती पार्वती ! सावधान होकर सुनो॥३॥ वैकुंठमें नारायणके दो द्वारपाल जय और विजय थे, जिनको सब कोई जानते हैं कि नारायणके प्यारे थे॥४॥

विप्र--शापते दूनउ भाई * तामस असुर देह तिन पाई॥५॥
कनककशिपु अरु हाटकलोचन * जगत विदित सुरपति मद मोचन॥६॥

एक समय सनकादिक ऋषि वैकुंठमें भगवानका दर्शन करने गये, वहां इन दोनों द्वारपालोंने अभिमानसे ऋषियोंको जाने नहीं दिया और कहा कि हम भगवान्से पहले पूछ लें तब आज्ञा

होनेपर भीतर जा सकोगे, इसपर ऋषियोंने शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओ और तीसरे जन्ममें तुम्हारी मुक्ति होगी ब्राह्मणोंके इस शापसे दोनोंने राक्षसी देह पायी॥५॥ एक उनमेंसे हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष हुआ इनको जगत् जानता है कि ये इन्द्रका मद तोड़नेवाले थे ॥६॥

विजयी समर वीर विख्याता ❋ धरि वराहवपु एक निपाता ॥७॥
होइ नरहरि पुनि दूसर मारा ❋ जन प्रह्लाद सुयश विस्तारा ॥८॥

यह बड़े विजयी युद्धके वीर प्रसिद्ध हुए, उनमें एक हिरण्याक्षको तो वराह अवतार धारण कर भगवान्‌ने मारा। "पृथ्वीं वरतीति वराहः" जो पृथ्वीका उद्धार करे उसका नाम वराह जलसे पृथ्वीका उद्धार करने पर भगवान्‌का नाम वराह है ॥७॥ फिर नृसिंह अवतार लेकर दूसरे हिरण्यकशिपुको भी मारा और अपने प्रह्लाद भक्तका जगत्‌में सुन्दर यश फैलाया यह कथा जगत्प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

दोहा-भये निशाचर जाय ते, महावीर बलवान ॥
कुम्भकरण रावण सुभट, सुर विजयी जगजान ॥ १३१ ॥

वेही दोनों दूसरे जन्ममें भी जाकर महाबली राक्षस कुम्भकर्ण और रावण हुए; जिन्होंने देवताओंको जीता यह बात जगत् जानता है ॥ १३१ ॥

मुक्त न भये हतेउ भगवाना ❋ तीन जन्मद्विज वचन प्रमाना ॥१॥
एक बार तिनके हित लागी ❋ धरेउ शरीर भक्त अनुरागी ॥२॥

यद्यपि भगवान्‌ने मारा पर मुक्ति न हुई क्योंकि ब्राह्मणोंका शाप था कि तीसरे जन्ममें मुक्ति होगी॥ १॥ एकबार तो इनके हेतु भगवान्‌ने शरीर धारण किया भक्तके ऊपर प्रेमसे अनुग्रह किया॥२॥

कश्यप अदिति तहां पितु माता ❋ दशरथ कौशिल्या विख्याता ॥३॥
एक कल्प इहि विधि अवतारा ❋ चरित पवित्र किये संसारा ॥४॥

एक समय कश्यप और अदिति पिता-माता थे जो दशरथ कौशल्या नामसे प्रसिद्ध थे ॥३॥ एक कल्पमें तो इसी प्रकारसे अवतार लिया और संसारमें पवित्र चरित्र किये (और उन दोनोंने कृष्णजीके हाथसे मुक्ति पायी, जो शिशुपाल और दंतवक्त्र दोनों हुए हैं)॥४॥

एक कल्प सुर देखि दुखारे ❋ समर जलंधरसन सब हारे ॥५॥
शम्भु कीन्ह संग्राम अपारा ❋ दनुज महाबल मरै न मारा ॥६॥

एक कल्पमें जलंधर दैत्यसे युद्धमें देवता हार गये और दुःखी हुए यह देखकर ॥ ५ ॥ शिवजीने अपार संग्राम किया परंतु वह महाबली राक्षस नहीं मरा ॥ ६ ॥

परम सती असुराधिप-नारी ❋ तेहि बल ताहि न जीत पुरारी॥७॥

उस राक्षसराजकी स्त्री परम सती थी, इसी बलसे शिवजी उसे नहीं जीत सके ॥ ७ ॥

दोहा-छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह ॥
जब तेइ जानेउ मर्म तब, शाप कोप करि दीन्ह ॥१३२॥

भगवान्‌ने उसका सतीत्व छलसे छुड़ाया और देवताओंका कार्य किया, परंतु जब उसने यह भेद जाना तब क्रोधकर शाप दिया। यह कथा इस प्रकार है-कि विष्णु भगवान् जलन्धरको स्त्रीके सतीत्त्वसे अजित जानकर उसके द्वारे साधु बनकर बैठ गये। उसकी स्त्रीने इनसे युद्धका समाचार पूछा कि इतनेमें उसके स्वामीके चरण, हस्त, शिर आदि सम्मुख आकर

गिरे, तब वह महाविलाप करने लगी। उस समय साधुने कहा-तू तो सती है हाथ, पैर, शिर, जोड़ दे तेरे सतसे तेरा स्वामी जी जायगा उसके वैसा ही करने पर उसके स्वामीके तनमें प्राण आगये वृन्दा प्रेमसे चरण दबाने लगी, परपतिका अंगस्पर्श होते ही सतीत्व छूटा और शिवजीने उस राक्षस को मारा। उसके मरते ही साधु और कृत्रिम पुरुष जलंधरके रूपका अन्तर्धान हो गया। वृन्दाने तब यह भेद जानकर शाप दिया कि, तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होगे, मेरा स्वामी तुम्हारी स्त्रीको हरेगा, परंतु यह छल इस कारण हुआ कि युद्धके समय शिवजीका रूप धर जलंधर पार्वतीके पास गया, भगवतीने यह भेद जानकर विष्णुको उसकी स्त्रीके छलनेकी प्रेरणा की ॥ १३२ ॥

तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना ❋ कौतुक निधि कृपालु भगवाना॥१॥
तहां जलंधर रावण भयऊ ❋ रण हति राम परम पद दयऊ॥२॥

भगवान्ने उसका शाप प्रमाण किया जो हरि कौतुकके समुद्र दयालु हैं ॥ १ ॥ वहां जलंधर रावण हुआ, जिसको श्रीरामचन्द्रजीने रणमें मारकर मुक्ति दी ॥ २ ॥

एक जन्म कर कारण येहा ❋ जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥३॥
प्रति-अवतार कथा प्रभु केरी ❋ सुनि मुनि वरणी कविन घनेरी ॥४॥

एक जन्ममें यही अवतार धारणका कारण है कि जिस हेतु भगवान्ने मनुष्य देह धारण किया ॥३॥ प्रत्येक अवतारकी कथा मुनियोंसे सुनकर कवियोंने विस्तार पूर्वक वर्णन की है ॥ ४ ॥

नारद शाप दीन्ह एक बारा ❋ कल्प एक तेहि लगि अवतारा ॥५॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी ❋ नारद विष्णुभक्त पुनि ज्ञानी ॥६॥

एक समय नारदने शाप दिया था, सो एक कल्पमें उसी कारण अवतार हुआ ॥५॥ यह बात सुनकर पार्वती चकित हुई और-नारद तो विष्णु भगवान्के भक्त और ज्ञानी हैं ॥ ६ ॥

कारण कवन शाप मुनि दीन्हा ❋ का अपराध रमापति कीन्हा ॥७॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी ❋ मुनिमन मोह सो अचरज भारी॥८॥

नारदजीने क्यों शाप दिया ? लक्ष्मी पति भगवान्ने क्या अपराध किया था ? ॥ ७ ॥ हे शिवजी ! यह कथा मुझसे कहिये, मुनिके मनमें मोह होना बड़े अचरजकी बात है ॥ ८ ॥

दोहा—बोले बिहँसि महेश तब, ज्ञानी मूढ़ न कोय ॥
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि क्षण होय ॥ १३३ ॥

तब शिवजी हँसके बोले कि कोई ज्ञानी, मूर्ख नहीं होता, जिसको जब रामचन्द्रजी जैसा करते हैं वह उस समय वैसा ही हो जाता है ॥ १३३ ॥

सोरठा—कहउँ राम गुणगाथ, भरद्वाज सादर सुनहु ॥
भवभंजन रघुनाथ, भज तुलसी तजि मान मद ॥ २० ॥

याज्ञवल्क्यजी कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीके गुणकी कथा कहता हूँ, हे भरद्वाजजी ! आप आदरसे सुनिये, जो श्रीरामचन्द्रजी संसारका दुख दूर करने वाले हैं, हे तुलसी ! मान मद छोड़ उनका भजन कर ॥ २० ॥

हिमिगिरि गुहा एक अति पावनि ❋ बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥१॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा ❋ देखि देवऋषि मन अति भावा ॥२॥

हिमालय पर्वतकी एक पवित्र गुफा; जिसके निकट शोभायमान गंगाजी बहती हैं ॥ १ ॥ वहां अत्यन्त पवित्र आश्रम था, जिसको देखकर देवर्षि नारदजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

निरखि शैल सरि विपिन विभागा ❋ भयउ रमापतिपद अनुरागा ॥३॥
सुमिरत हरिहि शापगति बांधी ❋ सहज विमल मनलागि समाधी ॥४॥

पर्वत नदी और वनविभाग देख कर भगवान्के चरणोंमें (अधिक) प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ भगवान्को सुमिरण कर शापकी गति बांधी, जो दक्षप्रजापतिका शाप था कि तुम दो घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकोगे वह उस समय जाता रहा और सहज ही निर्मल मनसे समाधि लगाई कहीं 'श्वासगति बांधी' यह पाठ है तो उसका अर्थ इस प्रकार जानना कि श्वास रोक लिया ॥४॥

मुनि गति देखि सुरेश डराना ❋ कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥५॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू ❋ चलेउ हर्षि हिय जलचर केतू ॥६॥

मुनिकी दशा देखकर इन्द्र डरा और कामदेवको बुलाकर आदरसे बोला ॥ ५ ॥ मेरे कारण सेना सहित नारदजीके पास जाओ यह सुन कामदेव मनमें प्रसन्न होकर चला ॥ ६ ॥

सुनासीर मनमहँ अति त्रासा ❋ चहत देवऋषि मम पुर वासा ॥७॥
जे कामी लोलुप जगमाहीं ❋ कुटिल काक इव सबहिं डराहीं ॥८॥

इन्द्रके मनमें बड़ा दुःख कि नारदजी मेरी अमरावतीका अधिकार चाहते हैं ॥७॥ जगत् में जो कामी और लोभी हैं वे कुटिल कौएकी नाईं सबसे ही डरते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सूख हाड लै भाग शठ, श्वान निरखि मृगराज ॥
छीन लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१३४॥

जैसे सूखे हाड़को लेकर शठ श्वान सिंहको देखकर भागता है कि कहीं छीन न ले, इसी प्रकार इन्द्रको लाज नहीं आती नारदरूपी सिंहके डरसे इन्द्र अपने ऐश्वर्यको लिये फिरता है यह लाज नहीं आती कि मैं क्या करता हूँ ॥ १३४ ॥

तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ ❋ निज माया बसन्त निर्मयऊ ॥१॥
कुसुमित विविध विटप बहुरंगा ❋ कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृङ्गा ॥२॥

उस आश्रममें जब कामदेव गया तो अपनी मायासे वसन्त ऋतु बनाई ॥ १ ॥ अनेक प्रकारसे बहुत रङ्गके वृक्ष फूल गये; कोकिला शब्द करने लगीं और भौंरे गुंजारने लगे ॥२॥

चली सुहावनि त्रिविध बयारी ❋ काम कृशानु बढ़ावन हारी ॥३॥
रंभादिक सुरनारि नवीना ❋ सकल असमशर कला प्रवीना ॥४॥

कामदेव-रूपी ज्वाला बढ़ानेवाली शीतल, मंद, सुगंध वायु चलने लगी ॥ ३ ॥ रंभा आदि जो देवताओंके लोककी सब नवीन स्त्री कामदेवकी कलामें प्रवीण हैं ॥ ४ ॥

करहिं गान बहु तान तरंगा ❋ बहुविधि क्रीडहिं पानि पतंगा ॥५॥
देखि सहाय मदन हरषाना ❋ कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधि नाना ॥६॥

वे अनेक प्रकारकी तान तरंगों से गान करने लगीं और बहुत प्रकारसे हाथ उँचा कर गेंद उछालती हुई नाचने लगीं, जिससे अङ्ग दीखे अथवा पतंग नृत्य करती हैं, हाथोंमें गेंद उछाल-उछाल कर क्रीड़ा करती हैं ॥ ५ ॥ अपनी सहायता देखकर कामदेव (अति) प्रसन्न हुआ और फिर अनेक प्रपंच किये ॥ ६ ॥

कामकला कछु मुनिहि न व्यापी ❋ निजभय डरो मनोभव पापी ॥७॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू ❋ बड़ रखवार रमापति जासू ॥८॥

कामदेवकी माया कुछ मुनिको नहीं व्यापी; तब अपने डरसे ही कामदेव डरा ॥ ७ ॥ उसकी मेड़ कौन दबा सकता है ? जिसके बड़े रखवारे रमापति भगवान् हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन ॥
गहेसि जाय मुनिवर चरण, कहि सुठि आरत बैन ॥ १३५ ॥

अपनी सहायता समेत अत्यन्त डरकर और मनमें हार मानकर कामदेवने मुनिके निकट जाय बहुत ही आरतपूर्ण वचन कहते हुए उनके चरण पकड़ लिये ॥ १३५ ॥

भयउ न नारद मन कछु रोषा ❋ कहि प्रिय वचन काम परितोषा ॥१॥
नाइ चरण शिर आयसु पाई ❋ गयउ भवन तब सहित सहाई ॥२॥

नारदजीके मनमें कुछ क्रोध नहीं हुआ और उन्होंने मीठे वचन कहकर कामदेवको सन्तुष्ट किया ॥१॥ वह चरणोंमें शिर नवाया, आज्ञा पाय सहाय सहित देवलोकको चला गया ॥२॥

मुनि सुशीलता आपनि करणी ❋ सुरपति सभा जाय सब वरणी ॥३॥
सुनि सबके मन अचरज आवा ❋ मुनिहि प्रशंसि हरिहि शिर नावा ॥४॥

और मुनिकी सुशीलता तथा अपनी करणी सब इन्द्रकी सभामें जाकर वर्णन की ॥ ३ ॥ यह सुनकर सबके मनमें आश्चर्य हुआ, मुनिकी प्रशंसा करके नारायणको शिर नवाया ॥ ४ ॥

तब नारद गवने शिव-पाहीं ❋ जीतकाम अहमिति मनमाहीं ॥५॥
मार-चरित शंकरहि सुनावा ❋ अतिप्रिय जानि महेश सिखावा ॥६॥

तब नारदजी शिवजीके पास गये, कामदेवके जीतनेका मनमें अभिमान हो रहा है॥५॥कामदेवके चरित्र शिवजीको सुनाये; तब अपना परम प्रिय जानकर उनको शिवजीने सिखाया ॥६॥

बार बार विनवउँ मुनि तोहीं ❋ जिमि यह कथा सुनावहु मोहीं ॥७॥
तिमि जनि हरिहिं सुनायहु कबहूँ ❋ चलेउ प्रसंग दुरायहु तबहूँ ॥८॥

हे मुनि ! मैं बारंबार आपसे विनती करता हूँ कि जैसे यह चरित्र आपने मुझे सुनाया है ॥ ७ ॥ ऐसे भगवान् को कभी मत सुनाना, वरन् प्रसंग चलने पर भी छिपा लेना ॥ ८ ॥

दोहा-शम्भु दीन्ह उपदेश हित, नहिं नारदहि सुहान ॥
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि-इच्छा बलवान ॥ १३६ ॥

शिवजीने हितकारी उपदेश दिया परंतु नारदजीको अच्छा नहीं लगा, हे भरद्वाज ! अब कौतुक सुनिये, भगवान्‌की इच्छा बलवती है ॥ १३६ ॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई ❋ करइ अन्यथा अस नहिं कोई ॥१॥
शम्भु वचन मुनिमन नहिं भाये ❋ तब विरंचिके लोक सिधाये ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं, वही होता है, उसके विरुद्ध करे ऐसा कोई नहीं है ॥१॥ शिवजीकी बात नारदजीके मनको अच्छी नहीं लगी तब वे ब्रह्माके लोकको चले गये ॥ २ ॥

एक बार करतल कर वीणा ❋ गावत हरि गुण परम प्रवीणा ॥३॥
क्षीर सिन्धु गवने मुनि नाथा ❋ जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥४॥

एक समय परम प्रवीण नारदजी वीणा हाथमें लिये हुए भगवान्के गुणानुवाद गाते हुए ॥ ३ ॥ क्षीरससुद्रको गये; जहाँ वेदोंके स्वामी लक्ष्मीपति निवास करते थे ॥ ४ ॥

हरषि मिले उठि रमा-निकेता ❋ बैठे आसन ऋषिहिं समेता ॥५॥
बोले बिहँसि चराचर राया ❋ बहुत दिनन कीन्ही मुनिदाया ॥६॥

लक्ष्मीपति प्रसन्न हो मिले और पुनः ऋषिसमेत आसन पर बैठे ॥ ५ ॥ चराचर जगत्के ईश्वर हँसकर बोले-मुनिराज ! बहुत दिनोंमें दया की है (कहाँ थे !) ॥ ६ ॥

कामचरित नारद सब भाखे ❋ यद्यपि प्रथम वरजि शिवराखे ॥७॥
अति प्रचण्ड रघुपतिकी माया ❋ जेहि न मोह अस को जग जाया ॥८॥

नारदजी ने कामदेवका संपूर्ण चरित्र वर्णन किया, पहले यद्यपि शिवजीने निषेध (मना) कर दिया था ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी माया बड़ी प्रबल है, जिसको नहीं मोहे ऐसा जगत्में कौन उत्पन्न हुआ है ? ॥ ८ ॥

दोहा-रूख वदन करि वचन मृदु, बोले श्रीभगवान ॥
तुम्हरे सुमिरण ते मिटहिं, मोह मार मद मान ॥ १३७ ॥

रूखा मुख करके कोमल वचन श्रीरामभगवान् बोले-हे नारदजी ! अज्ञान, काम बाधा, अभिमान यह तो आपके स्मरण मात्र से ही मिट जाते हैं ॥ १३७ ॥

सुनु मुनि मोह होय मन ताके ❋ ज्ञान विराग हृदय नहिं जाके ॥१॥
ब्रह्मचर्य व्रत रत मतिधीरा ❋ तुमहि कि करै मनोभव पीरा ॥२॥

सुनिये मुनिराज मोह तो उसके मनमें होता है जिसके हृदयमें ज्ञान और वैराग्य नहीं होता ॥१॥ आप ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करनेवाले धीरमति हैं तो कामदेव क्या पीड़ा करेगा ? ॥२॥

नारद कहेउ सहित अभिमाना ❋ कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥३॥
करुणानिधि मन दीख विचारी ❋ उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी ॥४॥

नारदजीने अभिमान से यह कहा-भगवन् आपकी ही सब कृपा है ॥३॥ करुणा निधान भगवान्ने मनमें विचारा कि नारदजीके मनमें गर्वरूप वृक्षका दृढ़ अंकुर जम गया ॥ ४ ॥

बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी ❋ प्रण हमार सेवक हितकारी ॥५॥
मुनिवर हित मम कौतुक होई ❋ अवशि उपाय करब मैं सोई ॥६॥

सो उसको मैं शीघ्र ही उखाड़ डालूँगा। क्योंकि हमारा प्रण सेवक पर हित करनेका है ॥ ५ ॥ मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो वह उपाय मैं निश्चय ही करूँगा ॥ ६ ॥

तब नारद हरि-पद शिर नाई ❋ चले हृदय अहमिति अधिकाई ॥७॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी ❋ सुनहु कठिन करणी तेहि केरी ॥८॥

तब नारदजी भगवान्के चरणोंमें शिर नवाकर चले, मनमें बड़ा अभिमान हो रहा है ॥ ७ ॥ तब भगवान्ने अपनी माया को भेजा, अब उसकी कठिन करनी भी सुनिये ॥ ८ ॥

दोहा-विरचेउ मगमहँ नगर तेहि, शत योजन विस्तार ॥
श्रीनिवास पुरते अधिक, रचना विविध प्रकार ॥ १३८ ॥

मार्गमें उसने एक नगर बनाया, जिसका विस्तार सौ योजनका था और उसमें अनेक प्रकारकी रचना वैकुण्ठसे भी अधिक थी ॥ १३८ ॥

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी ❋ जनुबहु मनसिज रति तनुधारी ॥१॥
तेहि पुर बसइ शीलनिधि राजा ❋ अगणित हय गय सेन समाजा ॥२॥

उस नगरमें सुन्दर नर-नारी वास करते हैं, मानो बहुत कामदेव और उनकी स्त्री रतिने शरीर धारण किया है ॥ १ ॥ उस पुरका शीलनिधि नामक राजा था; जिसके यहां अनगिनत हाथी घोड़े और सेना का समाज था ॥ २ ॥

शत सुरेश सम विभव विलासा ❋ रूपतेज बल नीति निवासा ॥३॥
विश्वमोहिनी तासु कुमारी ❋ श्रीविमोह जेहि रूप निहारी ॥४॥

सौ इन्द्रके समान उसका ऐश्वर्य था तथा रूप तेज बल और नीति का निवास था ॥३॥ उसकी कन्याका नाम विश्वमोहिनी (संसारको मोहनेवाली) थी; जिसका रूप देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाय ॥ ४ ॥

सो हरिमाया सब गुण खानी ❋ शोभा तासुकि जाय बखानी ॥५॥
करै स्वयंवर सो नृप बाला ❋ आये तहँ अगणित महिपाला ॥६॥

वह गुणोंकी खान नारायणकी माया थी शोभा कैसे बखानी जा सकती है ? ॥ ५ ॥ वह राजा अपनी कन्याका स्वयंवर करता था; इस कारण वहां अनगिन्त राजा आये ॥ ६ ॥

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ ❋ पुरवासिन सन बूझत भयऊ ॥७॥
सुनि सब चरित भूपगृह आये ❋ करि पूजा नृप मुनि बैठाये ॥८॥

कौतुकी मुनि (नारदजी) उस नगरमें गये और पुरवासियोंसे वृत्तांत पूछने लगे ॥ ७ ॥ उनसे सब वृत्तांत सुनकर राजाके घर आये, तब पूजा करके राजाने मुनिको बैठाया ॥ ८ ॥

दोहा-आनि दिखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि ॥
कहहु नाथ गुण दोष सब, इहिकर हृदय विचारि ॥ १३९ ॥

राजाने अपनी कन्याको बुलाकर नारदजीको दिखायी और यह कहा-स्वामिन् ! इसके सब गुण दोष हृदयमें विचार कर कहिये ॥ १३९ ॥

देखि रूप मुनि विरति विसारी ❋ बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥१॥
लक्षण तासु विलोकि भुलाने ❋ हृदय हर्ष नहिं प्रगट बखाने ॥२॥

रूप देखते ही मुनि नारदजी वैराग्य भूल गये, और बड़ी देर तक (इकटक) देखते रहे ॥ १ ॥ उसके लक्षण देख कर भूल गये, मनमें प्रसन्न हुए किंतु प्रगट नहीं कहा ॥ २ ॥

जो यहि वरै अमर सो होई ❋ समर भूमि तेहि जीत न कोई ॥३॥
सेवहिं सकल चराचर ताही ❋ वरइ शीलनिधि कन्या जाही ॥४॥

नारदजी यहां भूल गये अर्थात् मति विपरीत होनेसे उलटा समझ गये, समझना तो यह था कि जो अजर और अमर है; जिसको चराचरमें कोई नहीं जीत सकता उसकी यह पत्नी होगी, वही वरेगा और समझे यह कि जो इसे वरेगा उसमें ये गुण हो जायँगे ॥३॥ उसकी सब संसार सेवा करेगा यह शीलनिधि की कन्या जिसको वरेगी यह भी उलटा ही समझा ॥ ४ ॥

लक्षण सब बिचारि उर राखे ❋ कछुक बनाय भूपसन भाखे ॥५॥
सुता सुलक्षणि कहि नृपपाहीं ❋ नारद चले शोच मन माहीं ॥६॥

सब लक्षण विचार कर मनमें रख लिये और राजासे कुछ बनाकर कह दिये ॥ ५ ॥ राजासे कन्याको सुलक्षणी बताकर नारदजी चले, मनमें बड़ा शोच है ॥ ६ ॥

करउँ जाई सोइ यतन विचारी ❋ जेहि प्रकार मोहिं वरइ कुमारी॥७॥
जप तप कछु न होय इहिकाला ❋ हे विधि मिलइ कवन विधि बाला॥८॥

जाकर वही यत्न विचार कर करूं, जिस प्रकार मुझे कन्या वर ले ॥ ७ ॥ इस समय (शीघ्रतामें) कुछ जप तप तो हो नहीं सकता, हे विधाता ! यह कन्या मुझको कैसे मिले ? (जब नारी का ध्यान होता है जप तप भूल जाते हैं) ॥ ८ ॥

दोहा–इहि अवसर चाहिय परम, शोभा रूप विशाल ॥
जो विलोकि रीझइ कुँवरि, तौ मेलइ जयमाल ॥ १४० ॥

इस अवसरमें परम शोभा और बड़ा सुन्दर रूप चाहिये, जिसको कुमारी देखकर रीझ जाय और (गलेमें) जयमाल डाल दे ॥ १४० ॥

हरिसन माँगउँ सुन्दरताई ❋ होइहि जात गहरु अति भाई ॥१॥
मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ ❋ इहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥२॥

भगवान्से सुन्दरता मांगूँ, परन्तु भाई ! जानेमें अधिक विलम्ब होगा ॥ १ ॥ मेरा हित करनेवाला भगवान्के समान कोई नहीं है, इस समयमें वे ही मेरे सहायक हों ॥ २ ॥

बहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला ❋ प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥३॥
प्रभु विलोकि मुनि नयन जुड़ाने ❋ होइहि काज हिये हरषाने ॥४॥

उस समय नारदजीने वहां ही बहुत प्रकारसे विनती की, तब भगवान् कौतुकी अर्थात् राजा रूप हो प्रकट हुए, क्योंकि वहां राजाओंकी सभा है कृपालु अर्थात् देवताओं पर कृपा करते हुए, क्योंकि उनके हेतु–अवतार लेनेवाले हैं ॥ ३ ॥ भगवान्को देखकर मुनिके नेत्र ठंडे हुए और मनमें प्रसन्न हुए कि अब कार्य सिद्ध होगा ॥ ४ ॥

अति आरति कहि कथा सुनाई ❋ करहु कृपा प्रभु होहु सहाई ॥५॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही ❋ आन भाँति नहिं पावउँ वोही ॥६॥

बड़ी व्याकुलतासे सब कथा कह सुनाई और कहा–प्रभु ! कृपा करके सहायता कीजिये ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! अपना रूप मुझे दीजिये क्योंकि और भाँतिसे उसको नहीं पा सकते॥६॥

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा ❋ करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥७॥
निज माया बल देखि विशाला ❋ हिय हँसि बोले दीन दयाला ॥८॥

बहुत क्या ? हे नाथ ! जिस प्रकार मेरा हित हो वही शीघ्र कीजिये, मैं तुम्हारा दास हूँ ॥ ७ ॥ अपनी मायाका बड़ा बल देखकर दीनदयालु भगवान् मनमें हँसते हुए बोले ॥ ८ ॥

दोहा-जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ॥
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ॥ १४१ ॥

हे नारदजी ! सुनिये-जिस प्रकार आपका परमहित (अभिमानरहित होना, मायासे छूटना) होगा वही हम करेंगे और कुछ नहीं, हमारा वचन असत्य नहीं है ॥ १४१ ॥

कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी * वैद्य न देइ सुनहु मुनि योगी ॥१॥
इहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ * कहि अस अन्तर्हित प्रभु भयऊ ॥२॥

हे मुनियोगी ! सुनिये-जैसे रोगसे व्याकुल रोगी कुपथ्य मांगता है और उसको वैद्य नहीं देता है (रोगसे व्याकुल मुनिको योगीका कहना व्यंग है) ॥ १ ॥ उसी प्रकारसे मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥ २ ॥

माया-विवश भये मुनि मूढ़ा * समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा ॥३॥
गवने तुरत तहाँ ऋषिराई * जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई ॥४॥

नारदजी मायाके वश ऐसे अज्ञानी हो रहे थे कि भगवान्की अति गम्भीर वाणी नहीं समझी ॥३॥ फिर ऋषिराज (नारदजी) तुरंत वहां गये जहां स्वयंवरकी भूमि बनायी गयी थी॥४॥

निज निज आसन बैठे राजा * बहु बनाव करि सहित समाजा ॥५॥
मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे *मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥६॥

अपने-अपने आसनोंपर राजा समाजसहित बहुत बनाव करके बैठे हुए थे ॥ ५ ॥ नारदजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई मुझमें बड़ा रूप है अतः मुझको छोड़कर कन्या औरको भूलसे भी नहीं वरेगी ॥ ६ ॥

मुनिहित-कारण कृपानिधाना * दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥७॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा * नारद जानि सबहिं शिर नावा ॥८॥

इधर मुनिके हित करनेको कृपानिधानने (उन्हें) ऐसा कुरूप (बंदरका रूप) दिया कि जो बखाना नहीं जाता ॥७॥ वह चरित्र किसीने नहीं जाना और सब लोगोंने नारद जानकर शिर नवाया । नारदजीके तीन रूप हो गये, नारदजीको अपना विष्णुरूपही दीखता था राजाओंको नारद दृष्टि आये और राजकन्याको बूढ़े बंदरके समान रूप दिखायी दिया) ॥ ८ ॥

दोहा-रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ ॥
विप्र रूप देखत फिरहिं, परमकौतुकी तेउ ॥ १४२ ॥

वहां शिवजीके दो गण थे (जिनको महादेवजीने उस दिनसे अर्थात् जबसे नारदजीने महादेवजीके उपदेशको नहीं माना गुप्त रूपसे उनके साथ कर दिया था) वे सब भेद जानते थे । जो परम कौतुकी ब्राह्मणका रूप धारण किये सब देखते फिरते थे ॥ १४२ ॥

जेहि समाज बैठे मुनि जाई * हृदय रूप अहमिति अधिकाई ॥१॥
तहँ बैठे महेश गण दोऊ * विप्र वेष गति लखइ न कोऊ ॥२॥

जिस समाजमें मुनि जाकर बैठे थे; और हृदयमें रूपका अहंकार अधिक था ॥१॥ वहां ही शिवके दोनों गण भी ब्राह्मण वेषमें बैठे थे; जिनको वहां किसीने नहीं पहचाना ॥ २ ॥

करहिं कूट नारदहि सुनाई ❋ नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई ॥३॥
रीझहि राजकुँवरि छबि देखी ❋ इनहिं वरहिहरि जानि विशेखी ॥४॥

वे नारदजीको सुनाकर गूढ़ार्थ ठट्ठा करते हैं कि भगवान्‌ने अच्छी सुन्दरता दी है। दूसरा अर्थ यह है कि हरि अर्थात् बंदर उसकी नीकी सुन्दरताई अर्थात् वृद्ध बंदरका रूप दिया है। तीसरे यह है कि हरि प्रत्येककी नीकी सुन्दरताई—विष्णुकी नारदजीकी और बन्दरकी ॥ ३ ॥ राजकुमारी इस छबिको देखकर रीझेगी और विशेषतः इन्हींको हरि भगवान् जानकर वरेगी, दूसरा अर्थ यह कि ऐसी छबि देखकर रीझेगी नहीं, (हरि) अर्थात् बंदर जानकर (बरिहि) अन्तःकरणसे जल जायगी ॥ ४ ॥

मुनिहि मोह मन हाथ पराये ❋ हँसहिं शम्भुगण अति सचुपाये ॥५॥
यदपि सुनहिं मुनि अटपट बानी ❋ समुझि न परइ बुद्धि भ्रमसानी ॥६॥

मुनिका मन तो पराये हाथमें होनेसे मोहित हो गया और शिवजीके गण समय पाकर हँसने लगे ॥५॥ यद्यपि मुनि अटपटी बानी सुन रहे हैं परंतु बुद्धि ऐसी भ्रममें हुई कि समझी नहीं जाती ॥६॥

काहु न लखा सो चरित विशेखा ❋ सो स्वरूप नृप कन्या देखा ॥७॥
मर्कट-वदन भयंकर देही ❋ देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥८॥

वह विशेष चरित्र किसीने नहीं जाना, परन्तु कन्याने मुनिका वह रूप देखा ॥ ७ ॥ बन्दरकासा मुख, भयंकर शरीर देखते ही उस राजकन्याको क्रोध हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-सखी संग लै कुँवरि तब, चलि जनु राजमराल ॥
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल ॥ १४३ ॥

तब कुमारी सखियोंको साथ लेकर राजहंसकी गतिसे चली, सब राजाओंको देखती फिरती है और कमल जैसे हाथोंमें जयमाला शोभित है ॥ १४३ ॥

जेहि दिशि बैठे नारद फूली ❋ सो दिशि तेहिन विलोकी भूली ॥१॥
पुनि पुनिमुनि उकसहिं अकुलाहीं ❋ देखि दशा हरगण मुसुकाहीं ॥२॥

जिस ओर नारदजी फूले हुए बैठे थे उस दिशामें उसने भूलकर भी नहीं देखी-या उसका देखना भूल गयी ॥ १ ॥ बारंबार मुनि ऊपरको उचकते हैं और व्याकुल होते हैं उनकी यह दशा देखकर शिवजीके गण हँसते हैं ॥ २ ॥

धरि नृप तनु तहँ गयउ कृपाला ❋ कुँवरि हर्षि मेली जयमाला ॥३॥
दुलहिन लै गये लक्ष्मि-निवासा ❋ नृप समाज सब भयउ निराशा ॥४॥

भगवान् वहां राजाका शरीर धारण कर गये और राजकन्याने प्रसन्न होकर इनके गलेमें जयमाला डाल दी ॥ ३ ॥ लक्ष्मीनिवास (वैकुण्ठनाथ) दुलहिनको ले गये यह देखकर राजसमाज निराश होगया ॥ ४ ॥

मुनि अतिविकल मोहमति नाठी ❋ मणि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥५॥
तब हरगण बोले मुसुकाई ❋ निजमुख मुकुर विलोकहु जाई ॥६॥

नारदजी बहुत व्याकुल हुए, क्योंकि बुद्धि तो मोहमें नष्ट हो रही है ऐसी दशा हुई जैसे किसीकी मणि गांठसे छूटकर गिर जाय ॥ ५ ॥ तब शिवजी के गण मुसकराकर बोले- अजी नारदजी महाराज ! जरा अपना मुख तो दर्पणमें देखिये ॥ ६ ॥

अस कहि दोउ भागे भय भारी ❋ वदन दीख मुनि वारि निहारी ॥७॥
वेष विलोकि क्रोध अति बाढ़ा ❋ तिनहिं शाप दीन्हा अतिगाढ़ा ॥८॥

ऐसा कहकर दोनों अत्यन्त डरते हुए भागे और इधर नारदजीने जलमें अपना रूप देखा ॥ ७ ॥ वेष देखकर बड़ा क्रोध बढ़ा और उनको महाकठिन शाप दिया ॥ ८ ॥

दोहा-होहु निशाचर जाय तुम, कपटी पापी दोउ ॥
हँसेउ हमहिं सो लेउ फल, बहुरि हँसेउ मुनि कोउ ॥१४४॥

तुम दोनों कपटी पापी हो अतः जाकर निशाचर हो, हमारे ऊपर हँसे उसका यह फल लो फिर और किसी मुनिको हँसना ! ॥ १४४ ॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा ❋ तदपि हृदय संतोष न आवा ॥१॥
फरकत अधर कोप मनमाहीं ❋ सपदि चले कमलापति-पाहीं ॥२॥

फिर जलमें देखा तो अपना रूप पाया; तो भी हृदयमें सन्तोष नहीं आया ॥ १ ॥ होठ फड़कने लगे; मनमें (बड़ा) क्रोध हुआ और शीघ्र भगवान्‌के पास चले ॥ २ ॥

देइहउँ शाप कि मरिहउँ जाई ❋ जगत मोर उपहास कराई ॥३॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी ❋ संग रमा सोइ राजकुमारी ॥४॥

या तो शाप दूँगा या मारूँगा मेरी जगत्में हँसी करायी ॥ ३ ॥ बीच मार्गमें ही राक्षसोंके मारनेवाले भगवान् मिले, संगमें लक्ष्मी और वही राजकन्या है । (मिले इस कारण कि उनको शाप लेकर अवतार धारण करना अङ्गीकार है) ॥ ४ ॥

बोले मधुर वचन सुरसाईं ❋ मुनि कहँ चले विकलकी नाईं ॥५॥
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा ❋ मायावश न रहा मन बोधा ॥६॥

देवताओंके ईश्वर कोमल वचन बोले-हे मुनि ! आप व्याकुल हुएके समान कहां जा रहे हो? ॥५॥ वचन सुनते ही बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ । मायाके वशमें होनेसे मनमें ज्ञान नहीं रहा ॥६॥

परसंपदा सकहु नहिं देखी ❋ तुम्हरे ईर्षा कपट विसेखी ॥७॥
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायहु ❋ सुरन प्रेरि विषपान करायहु ॥८॥

(और बोले) पराया धन-ऐश्वर्य आप नहीं देख सकते; आपको ईर्षा, कपट अधिक है ॥ ७ ॥ समुद्र मथनेके समय शिवजीको बौरा दिया, देवताओंको भेजकर विष पिलाया (समुद्रसे विष निकला था, जो कि पहले महादेवजीको ही दिया) ॥ ८ ॥

दोहा-असुर सुरा विष शंकरहि, आप रमा मणि चारु ॥
स्वारथ साधक कुटिल तुम, सदा कपट व्यवहारु ॥१४५॥

(समुद्रसे निकली हुई) वारुणी असुरोंको तथा विष शिवजीको दिया और अपने आप लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि ली । तुम सदा अपना स्वार्थ सिद्ध करते हो; क्योंकि टेढ़े हो और कपटका व्यवहार रखते हो ॥ १४५ ॥

परम स्वतंत्र न शिर पर कोई ❀ भावइ मनहि करहु तुम सोई ॥१॥
भलेहि मंद मन्दहि भल करहू ❀ विस्मय हर्ष न हिय कछु धरहू ॥२॥

परम स्वाधीन हो, आपके शिरपर कोई नहीं जो तुमको अच्छा लगता है वही करते हो॥१॥ अच्छे को बुरा बुरेको अच्छा कर देते हो विस्मय और प्रसन्नता मनमें कुछ नहीं रखते ॥२॥

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू ❀ अति अशंक मन सदा उछाहू ॥३॥
कर्म शुभाशुभ तुमहिं न बाधा ❀ अब लगि तुम्हैं न काहू साधा ॥४॥

छांट छांटकर सबको आपने ठगा है, बड़े निडर हो, इसीसे मनमें सदा उत्साह बना रहता है ॥ ३ ॥ अच्छे बुरे कर्मकी भी आपको बाधा नहीं और न अबतक आपको किसीने सीधा ही किया ॥ ४ ॥

भले भवन अब बायन दीन्हा ❀ पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥५॥
बंचेहु मोहिं जवन धरि देहा ❀ सोइ तनु धरहु शाप मम एहा ॥६॥

परन्तु अब अच्छे घर बायन दिया है, वह अपना किया फल पाओगे ॥ ५ ॥ आपने जो देह धारण करके मुझको ठगा है वही देह आप धारण कीजिये, बस यही मेरा शाप है॥६॥

कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी ❀ करिहहिं कीश सहाय तुम्हारी ॥७॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी ❀ नारि विरह तुम होब दुखारी ॥८॥

बन्दरकी सूरत आपने हमारी की इससे आपकी बन्दर ही सहायता करेंगे ॥ ७ ॥ आपने मेरा बड़ा अनभल (निरादर) किया इससे स्त्रीके वियोगमें आप भी दुखी होंगे ॥ ८ ॥

दोहा--शाप शीश धरि हर्षि हिय, प्रभु सुर कारज कीन्ह ॥
निज मायाकी प्रबलता, कर्षि कृपानिधि लीन्ह ॥ १४६ ॥

शाप शिरपर धारण कर मनमें प्रसन्न हो प्रभुने देवताओंका कार्य किया और कृपासिंधुने अपनी मायाका सब वेग खींच लिया ॥ १४६ ॥

जब हरि माया दूरि निवारी ❀ नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥१॥
तब मुनि अति सभीत हरिचरणा ❀ गहे पाहि प्रणतारति हरणा ॥२॥

जब भगवान्ने वह माया निवारण कर दी तब वहां न लक्ष्मी रही और न राजकुमारी ॥ १ ॥ तब नारदजीने बड़े भयसे भगवान्के चरण पकड़ कर कहा कि हे दीनोंके दुःख हरनेवाले रक्षा कीजिये ॥ २ ॥

मृषा होउ मम शाप कृपाला ❀ मम इच्छा कह दीनदयाला ॥३॥
मैं दुर्वचन कहेउँ बहुतेरे ❀ कह मुनि पाप मिटहि किमि मेरे ॥४॥

हे दयालु ! मेरा शाप झूठा हो, भगवान्ने कहा मेरी इच्छा यही थी ॥ ३ ॥ मुनि बोले— महाराज ! मैंने बहुत बुरे वचन कहे हैं, मेरे ये पाप कैसे मिटेंगे ? ॥ ४ ॥

जपहु जाय शंकर शत नामा ❀ होइहि हृदय तुरत विश्रामा ॥५॥
कोउ नहि शिव समान प्रिय मोरे ❀ असि प्रतीति त्यागेहु जनि भोरे ॥६॥

(भगवान्ने कहा) शिवजी के सौ नाम जाकर जपो; मनमें तुरन्त विश्राम हो जायगा। (शिवशत नाम जपनेको इस कारण कहा कि नारदजीने शिवजीका उपदेश नहीं माना था) ॥ ५ ॥ शिवजीके समान मुझको कोई प्यारा नहीं है, यह विश्वास भूलकर भी न छोड़ना॥६॥

जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी * सो न पाव मुनि भक्ति हमारी ॥७॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई * अब न तुमहिं माया नियराई ॥८॥

हे मुनि ! जिसपर शिवजी कृपा नहीं करते वह हमारी भक्ति नहीं पाता ॥ ७ ॥ ऐसा हृदयमें विचार पृथ्वीमें जाकर विचरण कीजिये, अब आपके निकट माया नहीं जायगी॥८॥

दोहा-बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भये अन्तर्धान ॥
सत्यलोक नारद चले, करत रामगुण-गान ॥ १४७ ॥

बहुत प्रकारसे मुनिको समझाकर तब भगवान् अन्तर्धान हो गये और नारदजी श्रीरामचन्द्र जीके गुण गाते हुए सत्यलोक को चले ॥ १४७ ॥

हरगण मुनिहि जात पथ देखा * विगत मोह मनहर्ष बिसेखा ॥१॥
अति सभीत नारदपहँ आये * गहि पद आरत वचन सुनाये ॥२॥

शिवजीके गणोंने मार्गमें नारदजीको देखा कि अब मनमें अहंकार नहीं है और प्रसन्नतासे चले जाते हैं ॥ १ ॥ तब वे बहुत डरते हुए नारदजीके पास आये और चरण पकड़कर कातर वचन बोले ॥ २ ॥

हरगण हम न विप्र मुनिराया * बड़ अपराध कीन फल पाया ॥३॥
शाप अनुग्रह करहु कृपाला * बोले नारद दीन-दयाला ॥४॥

हे मुनिराज ! हम शिवजीके गण हैं, ब्राह्मण नहीं, बड़ा अपराध किया जिसका फल पाया॥३॥ हे कृपासागर! अब शापका अनुग्रह कीजिये, दीनोंके ऊपर दया करनेवाले नारदजी बोले॥४॥

निशिचर जाय होहु तुम दोऊ * वैभव विपुल तेज बल होऊ ॥५॥
भुजबल विश्व जितव तुम जबहीं * धरिहैं विष्णु मनुज तनु तबहीं ॥६॥

राक्षस तुम दोनों होगे ही, परन्तु ऐश्वर्य, तेज, बल अधिक होगा ॥ ५ ॥ जब तुम अपनी भुजाओंके बलसे संसार जीतोगे तब विष्णु भगवान् मनुष्य शरीर धारण करेंगे ॥ ६ ॥

समर मरण हरिहाथ तुम्हारा * होइहि मुक्ति न पुनि संसारा ॥७॥
चले युगल मुनिपद शिर नाई * भये निशाचर कालहि पाई ॥८॥

युद्धमें भगवान्के हाथसे तुम्हारा मरण होगा और तुम मुक्त होकर फिर संसारमें नहीं आओगे ॥७॥ दोनों नारदके चरणोंमें शिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए ॥८॥

दोहा-एक कल्प इहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार ॥
सुररञ्जन सज्जनसुखद, हरि भञ्जन भुवि-भार ॥ १४८

एक कल्पमें भगवान् ने इसी कारणसे मनुष्य-अवतार लिया । देवताओंको प्रसन्न करने, सज्जनोंको सुख देने और पृथ्वीका भार दूर करनेको प्रगट हुए ॥ १४८ ॥

इहि विधि जन्म कर्म हरि केरे * सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे ॥१॥
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं * चारुचरित नानाविधि करहीं ॥२॥

इस प्रकारसे भगवान्के अनेक जन्म कर्म हैं जो सुन्दर चरित्र देनेवाले और आश्चर्ययुक्त हैं ॥ १ ॥ कल्प-कल्पमें प्रभु अवतार लेते हैं और अनेक प्रकारसे सुन्दर चरित्र करते हैं ॥ २ ॥

तब तब कथा मुनीशन गाई ❋ परम विचित्र प्रबन्ध बनाई ॥३॥
विविध प्रसंग अनूप बखाने ❋ करहिं न सुनि आश्चर्य सयाने ॥४॥

तब तबकी कथा मुनीश्वरोंने अति विचित्र प्रबंध बनाकर गायी है ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारसे सुन्दर उपमा हीन प्रसंग वर्णन किये हैं, उनको सुनकर चतुर जन आश्चर्य नहीं करते ॥ ४ ॥

हरि अनन्त हरि-कथा अनन्ता ❋कहहिं सुनहिं बहुविधि श्रुति संता॥५॥
रामचन्द्रके चरित सुहाये ❋ कल्पकोटि लगि जाहिं न गाये ॥६॥

जैसे भगवान् अनन्त हैं, इसी प्रकार उनकी कथा भी अनन्त है, वेद और संत अनेक प्रकार से कहते सुनते हैं ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके सुंदर चरित्र सौ कल्पमें भी नहीं गाये जा सकते ॥ ६ ॥

यह प्रसंग मैं कहा भवानी ❋ हरिमाया मोहहिं मुनि ज्ञानी ॥७॥
प्रभु कौतुकी प्रणत हितकारी ❋ सेवत सुलभ सकल दुखहारी ॥८॥

हे पार्वती ! यह प्रसङ्ग मैंने कहा और भगवान्की मायासे बड़े ज्ञानी मुनि भी मोहे जाते हैं ॥ ७ ॥ प्रभु कौतुकी और दीनोंपर दया करनेवाले हैं, जो सेवा करनेवाले को सुलभ और सब दुःख हरनेवाले हैं ॥ ८ ॥

सोरठा-सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल ॥
अस विचारि मनमाहिं, भजिय महामायापतिहि ॥ २१ ॥

देवता, मनुष्य, मुनियोंमें ऐसा कोई नहीं जिसको प्रबल मायाने न मोहा हो, ऐसा मनमें विचार कर महामायापति भगवान्का भजन करना चाहिये ॥ २१ ॥

अपर हेतु सुनु शैलकुमारी ❋ कहउँ विचित्र कथा विस्तारी ॥१॥
जेहि कारण अज अगुण अरूपा ❋ ब्रह्म भये कोशलपुर भूपा ॥२॥

हे पार्वती ! दूसरा भी कारण अवतार होनेका सुनो, विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ ॥ १ ॥ जिस कारणसे जन्मरहित, गुणरहित रूप रहित ब्रह्म कौसलपुरीके राजा हुए ॥२॥

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा ❋ बन्धु समेत किये मुनि बेखा ॥३॥
जासु चरित अवलोकि भवानी ❋ सती शरीर रहिउ बौरानी ॥४॥

भाई सहित सुन्दर मुनिवेष किये जिस प्रभुको तुमने वनमें फिरते हुए देखा ॥ ३ ॥ जिनके चरित्रको देखकर, हे पार्वती ! तुम सतीके शरीरमें बौराय गयी थीं ॥ ४ ॥

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी ❋ तासु चरित सुनु भ्रमरुजहारी ॥५॥
लीला कीन्ह जो तेहि अवतारा ❋ सो सब कहिहहुँ मति अनुसारा॥६॥

और अब भी तुम्हारी (भ्रमरूपी) छाया नहीं मिटती, उनके चरित्र जो भ्रमरूपी रोगको दूर करते हैं; सुनो ॥ ५ ॥ जो कुछ इस अवतारमें लीला की सो सब मतिके अनुसार कहूँगा॥६॥

भरद्वाज सुनि शंकर बानी ❋ सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥७॥
लगे बहुरि बरणै वृषकेतू ❋ सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥८॥

(याज्ञवल्क्यजी बोले-कि) हे भरद्वाज ! यह शिवजीकी वाणी सुन प्रेमसे सकुचाकर पार्वती मुसुकायीं ॥ ७ ॥ फिर शिवजी वर्णन करने लगे, सो अवतार जिस कारण हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-सो मैं तुम सन कहहुँ सब, सुनु मुनीश मन लाय ॥
राम कथा कलिमल हरनि, मंगल करनि सुहाय ॥ १४९ ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले हे मुनीश! वही मैं आपसे सब कहता हूँ मन लगाकर सुनिये, श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कलियुगके पापोंको दूर करनेवाली और सुन्दर मंगलदाता है ॥ १४९ ॥

स्वायम्भुव मनु अरु शतरूपा * जिनते भइ नर सृष्टि अनूपा ॥१॥
दंपति धर्म आचरण नीका * अजहुँ गाव श्रुति जिनकी लीका ॥२॥

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा जिनसे उत्तम मनुष्यकी सृष्टि प्रचलित हुई है ॥१॥ दोनों स्त्रीपुरुषोंका आचरण और धर्म अच्छा था, अब भी वेद जिनकी मर्यादा कथन करते हैं ॥२॥

नृप उत्तानपाद सुत तासू * ध्रुव हरिभक्त भयो सुत जासू ॥३॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही * वेद पुराण प्रशंसत जाही ॥४॥

उनके पुत्रका नाम उत्तानपाद, जिनके पुत्र हरिभक्त महात्मा ध्रुव हुए ॥ ३ ॥ (स्वायम्भुव मनुके) छोटे पुत्रका नाम प्रियव्रत था, जिनकी वेद बड़ाई करते हैं ॥ ४ ॥

देवहूति पुनि तासु कुमारी * जो मुनि कर्दमकी प्रिय नारी ॥५॥
आदिदेव प्रभु दीन-दयाला * जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला ॥६॥

स्वायम्भुव मनुकी कन्याका नाम देवहूति था, जो कर्दम ऋषिकी प्यारी नारी थी ॥५॥ आदिदेव दीन दयालु भगवान्‌ने जिनके उदर द्वारा कपिलदेव नामसे जन्म लिया ॥ ६ ॥

सांख्यशास्त्र जिन प्रगट बखाना * तत्व विचार निपुण भगवाना ॥७॥
तेहिं मनु राज्य कीन्ह बहुकाला * प्रभु आयसु बहुविधि प्रतिपाला ॥८॥

जिन्होंने सांख्य शास्त्र बनाया, जिसमें तत्वों का विचार भगवान्‌ने बड़ी चतुरतासे लिखा है ॥७॥ उन मनुजीने बहुत कालतक राज्य किया और भगवान्‌की आज्ञा बहुत प्रकारसे पाली ॥८॥

सोरठा-होय न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन ॥
हृदय बहुत दुख लाग, जन्म गयउ हरिभक्ति बिन ॥ २२ ॥

(मनुजी विचारने लगे) विषयवासनासे वैराग्य नहीं होता, घरमें रहते चौथापन आ गया, मनमें बड़ा दुःख हुआ कि भगवान् की भक्तिके विना ही जन्म बीत गया ॥ २२ ॥

बरबस राज्य सुतहि तब दीन्हा * रानि समेत गवन वन कीन्हा ॥१॥
तीरथ वर नैमिष विख्याता * अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥२॥

तब पुत्रको बलात (जबरदस्ती) राज्य देकर रानी समेत वनको गये ॥ १ ॥ तीर्थोंमें श्रेष्ठ और प्रसिद्ध नैमिषारण्य जो कि अति पवित्र और साधक को सिद्धि देनेवाला है ॥२॥

बसहिं जहां मुनि सिद्ध समाजा * तहँ हिय हर्षि चले मनु राजा ॥३॥
पंथ जात सोहहिं मति धीरा * ज्ञान भक्ति जनु धरे शरीरा ॥४॥

जहां मुनियों और सिद्धोंके समाज बसते हैं, राजा मनु मनमें प्रसन्न होकर वहां चले ॥३॥ यह धीर मतिवाले दोनों स्त्री पुरुष मार्गमें जाते हुए ऐसे शोभायमान होते हैं जैसे ज्ञान और भक्ति शरीर धारण किये हों ॥ ४ ॥

पहुँचे जाय धेनुमति-तीरा * हर्षि नहाने निर्मल नीरा ॥५॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी * धर्मधुरंधर नृप ऋषि जानी ॥६॥

गोमती नदीके तटपर जा पहुँचे और प्रसन्न होकर निर्मल जलमें स्नान किया ॥ ५ ॥ सिद्ध मुनि ज्ञानी, राजर्षि मनुको धर्मात्मा जानकर मिलने आये ॥ ६ ॥

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये * मुनिन सकल सादर करवाये ॥७॥
कृश शरीर मुनि पट परिधाना * सन्त सभा नित सुनहिं पुराना ॥८॥

जहां तहां सुन्दर तीर्थ थे, मुनियोंने राजाको आदर और प्रेमपूर्वक सबके दर्शनादि कराये ॥ ७ ॥ राजाका शरीर दुर्बल हो रहा है, मुनियोंके वस्त्र धारण किये सन्तोंकी सभामें नित्य कथा सुनते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-द्वादश अक्षर मन्त्रवर. जपहिं सहित अनुराग ॥
वासुदेव-पदपंकरुह, दम्पति मन अति लाग ॥ १५० ॥

बारह अक्षरका श्रेष्ठ मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) प्रेमसे जपने लगे, वासुदेव भगवान्‌के चरण कमलोंमें दोनों स्त्री पुरुषोंका मन पूर्णतया लग गया ॥ १५० ॥

करहिं अहार शाक फल कंदा * सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ॥१॥
पुनि हरिहेतु करन तप लागे * वारि अहार मूल फल त्यागे ॥२॥

शाक और कंदका भोजन करते हुए सच्चिदानन्द ब्रह्मको स्मरण करने लगे ॥ १ ॥ फिर भगवान्‌के निमित्त तप करने लगे। जल ही भोजन है, मूल फल त्याग दिये ॥ २ ॥

उर अभिलाष निरंतर होई * देखिय नयन परम प्रभु सोई ॥३॥
अगुण अखण्ड अनंत अनादी * जेहि चिंतहिं परमारथ वादी ॥४॥

हृदयमें सदा यही इच्छा रहती है कि परमप्रभु भगवान्‌का दर्शन नेत्रोंसे करें ॥ ३ ॥ गुणरहित, खण्ड रहित, जिसका अन्त नहीं और आदि नहीं कि कब प्रादुर्भूत हुआ, मोक्षके चाहनेवाले जिसका चिंतन करते हैं ॥ ४ ॥

नेति नेति जेहि वेद निरूपा * चिदानन्द निरुपाधि अनूपा ॥५॥
शंभु विरंचि विष्णु भगवाना * उपजहिं जासु अंशते नाना ॥६॥

जिसको वेद नेति-नेति कहकर निरूपण करते हैं जो आनन्दरूप, उपाधिरहित और अनूप हैं ॥ ५ ॥ शिव, ब्रह्मा, विष्णु भगवान् जिस ब्रह्मके अंशसे अनेक उपजते हैं ॥ ६ ॥

ऐसे प्रभु सेवक वश अहहीं * भक्तहेतु लीला तनु गहहीं ॥७॥
जो यह वचन सत्य श्रुति भाषा * तौ हमार पूजहि अभिलाषा ॥८॥

ऐसे भगवान् सेवकके वशमें हैं और भक्तोंके हेतु लीलासे शरीर धारण करते हैं ॥७॥ जो यह भक्तोंके ऊपर कृपा करनेका वचन वेदोंमें सत्य है तो प्रभु हमारी इच्छा पूर्ण करेंगे ॥ ८ ॥

दोहा-इहि विधि बीते वर्ष षट, सहस वारि आहार ॥
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥ १५१ ॥

इस प्रकार छः हजार वर्ष जलके आहारसे ही बीत गये और फिर सात हजार वर्ष पवन के आधारसे रहे ॥ १५१ ॥

वर्ष सहस दश त्यागेउ सोऊ * ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥१॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा * मनु समीप आये बहु बारा ॥२॥

दश हजार वर्षतक पवन भी त्याग कर एक चरणसे दोनों खड़े रहे ॥ १ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, और महेश बड़ा तप देखकर मनुजीके समीप बहुत बार आये ॥ २ ॥

माँगहु वर बहु भाँति लुभाये * परम धीर नहिं चलहिं चलाये ॥३॥
अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा * तदपि मनाग मनहिं नहि पीरा ॥४॥

'वर मांगो' इत्यादि बहुत भांतिसे लुभाया, परंतु वे परम धीर चलायेसे नहीं चले ॥ ३ ॥ शरीर केवल अस्थिमात्र रह गया है तो भी मनमें किंचित् पीड़ा नहीं गिनते ॥ ४ ॥

प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी * गति अनन्य तापस नृप रानी ॥५॥
माँगु माँगु वर भइ-नभ बानी * परम गँभीर कृपामृत-सानी ॥६॥

सर्वज्ञ ईश्वरने राजा रानीको अपना अनन्य भक्त जाना (अनन्य-दूसरा नहीं) ॥५॥ तो 'वर मांगो' 'वर मांगो' ऐसी बड़ी गम्भीर और कृपासे अमृतमें सनी-आकाशवाणी हुई ॥६॥

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई * श्रवणरन्ध्र होइ जब उर आई ॥७॥
हृष्ट पुष्ट तनु भये सुहाये * मानहु अबहिं भवन ते आये ॥८॥

मुर्देको जीवनदान देनेवाली वाणी कानोंके मार्गमें प्रवेश करके जब हृदयमें आयी ॥ ७ ॥ तब उसी समय शरीर सुन्दर मोटा ताजा हो गया; मानो अभी ही घरसे आये हैं ॥ ८ ॥

दोहा-श्रवण सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात ॥
बोले मनुकरि दंडवत, प्रेम न हृदय समात ॥ १५२ ॥

कानोंसे अमृत वचन सुनते ही शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया तब मनुजी दण्डवत् करके बोले जिसका प्रेम मनमें नहीं समाता है ॥ १५२ ॥

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू * विधि हरि हर वंदित पदरेनू ॥१॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक * प्रणतपाल सचराचर नायक ॥२॥

हे दासोंको इच्छित फल देनेके लिये कल्पवृक्ष ! हे कामधेनु ! सुनिये; आपके चरणकमल की धूरिको ब्रह्मा, विष्णु और महादेव नमस्कार करते हैं ॥१॥ हे सेवा करनेसे मिलनेवाले ! हे सबके सुखदाता, हे दीनोंके पालनेवाले, चर और अचरके स्वामी ! ॥ २ ॥

जौ अनाथहित हमपर नेहू * तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥३॥
जो स्वरूप बस शिव मन माहीं * जेहि कारण मुनि यतन कराहीं ॥४॥

हे अनाथोंके हित करनेवाले ! यदि हमारे ऊपर स्नेह है तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिये ॥३॥ जो स्वरूप शिवजीके मनमें बसता है और जिनके कारण मुनिलोग अनेक यत्न करते हैं ॥ ४ ॥

जो भुशुण्डि मन मानसहंसा * सगुण अगुण जेहि निगम प्रशंसा ॥५॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन * कृपा करहु प्रणतारति-मोचन ॥६॥

और जो भुशुंडिके मनरूपी मानसरोवरका हंस है, जिनके वेद निर्गुण सगुण नामसे बड़ाई करते हैं ॥५॥ वही आपका रूप हम नेत्र भरकर देखें, हे दुखियोंके दुःख छुड़ानेवाले कृपा कीजिये ॥६॥

दंपति वचन परम प्रिय लागे ❀ मृदुल विनीत प्रेमरस-पागे ॥७॥
भक्तवछल प्रभु कृपा-निधाना ❀ विश्ववास प्रगटे भगवाना ॥८॥

दोनों स्त्री पुरुषोंके वचन भगवान्‌को बहुत प्यारे लगे, क्योंकि कोमल नीतिसे भरे हुए और प्रेमरसमें पगे थे ॥७॥ भक्तोंके ऊपर ऐसी कृपा करने वाले जैसे बच्चे पर गौ, कृपाके निधान जिनमें विश्व बसता है अथवा जो विश्वमें बसते हैं वे भगवान् प्रगट हुए ॥ ८ ॥

दोहा-नील सरोरुह नील मणि, नील नीरधर श्याम ॥
लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम॥ १५३ ॥

(कैसा स्वरूप है कि) नील कमल, नील मणि और नीले बादलके समान जिनके शरीर की श्याम शोभा देखकर करोड़-करोड़ कामदेव लज्जित होते हैं ॥ १५३ ॥

शरद मयंक वदन छबि सींवा ❀ चारु कपोल चिबुक दरग्रीवा ॥१॥
अधर अरुण रद सुन्दर नाशा ❀ विधुकरनिकर विनिंदक हासा ॥२॥

शरदकालके चन्द्रमाके समान मुख शोभाकी सींव (मर्यादा) है और सुन्दर कपोल, ठोढ़ी और शंखके समान कण्ठ है ॥ १ ॥ होठ लाल, सुन्दर दांत और नासिका है जिनका हँसना चन्द्रमाकी किरणोंको भी लजाता है ॥ २ ॥

नव अम्बुज अम्बक छबि नीकी ❀ चितवनि ललित भावती जीकी ॥३॥
भृकुटि मनोज चाप छबिहारी ❀ तिलक ललाट पटल द्युतिकारी ॥४॥

नवीन कमलके समान शोभित जिनके नेत्र हैं, उन्हीं नेत्रोंकी सुन्दर चितवन जीको अच्छी लगती है (वरणी नहीं जाती) ॥ ३ ॥ भौंह-कामदेवके धनुष की छबि हरती है और ललाट के तिलकने बादलकी बिजली युक्त छबिको हर लिया है। अथवा तिलक जो है सो पटल दामिनीकी दो रेखाओंकी शोभाको हरता है वा कांतिका समूह करनेवाला है ॥ ४ ॥

कुण्डल मकर मुकुट शिर भ्राजा ❀ कुटिल केश जनुमधुप समाजा ॥५॥
उर श्रीवत्स रुचिर वन माला ❀ पदिकहार भूषण मणिजाला ॥६॥

मकराकार कुण्डल कानोंमें, शिरमें मुकुट शोभित है और घुँघराले बाल मानो भौंरोंका समाज है ॥ ५ ॥ हृदयमें श्रीवत्स चिह्न और रुचिर (प्रकाशमान) वनमाला है; (पदिक) हीरोंका हार चौकोन जटित और मणिके गहनोंका समूह शोभित है ॥ ६ ॥

केहरि कंधर चारु जनेऊ ❀ बाहु विभूषण सुन्दर तेऊ ॥७॥
करिकर सरिस सुभग भुजदंडा ❀ कटि निषंग कर शरकोदंडा ॥८॥

सिंहके समान कन्धे ऊँचे, सुन्दर यज्ञोपवीत, बाहोंमें सुन्दर गहने पहरे हुए ॥ ७ ॥ हाथीके सूण्डके समान जिनकी सुन्दर भुजाएँ हैं, कमरमें तरकस और हाथमें धनुषबाण लिये हैं ॥ ८ ॥

दोहा-तडित विनिंदक पीत पट, उदर रेखवर तीन ॥
नाभि मनोहर लेत जनु, यमुन भँवर छबि छीन ॥ १५४ ॥

जिनका पीला दुपट्टा बिजलीकी कांतिको लज्जित करता है, त्रिवलीयुक्त मनहरनी नाभि ऐसी गम्भीर है जो यमुनाके भँवरकी भी छबि छीनती है ॥ १५४ ॥

पद राजीव वरणि नहिं जाहीं ❀ मुनिमन मधुप बसहिं जेहि माहीं ॥१॥

बाम भाग शोभित अनुकूला ❀ आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला ॥२॥

चरणकमलकी शोभा वरणी नहीं जाती, जिनमें मुनियोंके मन भौंरेकी नाईं रहते हैं ॥१॥ बाईं ओर आदि शक्ति, छबिकी खान, जगत्की कारण स्वरूपा शोभित हैं ॥ २ ॥

जासु अंश उपजहिं गुणखानी ❀ अगणित उमा रमा ब्रह्मानी ॥३॥
भ्रुकुटि विलास जासु जग होई ❀ राम बाम दिशि सीता सोई ॥४॥

जिनके अंशसे गुणोंकी खान अनगिन्त पार्वती, लक्ष्मी, ब्रह्माणी, उत्पन्न होती हैं॥३॥ जिनके भौंह फेरनेसे जगत् उत्पन्न हो जाता है वही सीताजी रामजीके बाईं ओर शोभित होती हैं ॥ ४ ॥

छबि समुद्र हरि-रूप विलोकी ❀ इक टक रहे नयनपट रोकी ॥५॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा ❀ तृप्ति न मानहिं मनु शतरूपा ॥६॥

शोभाके समुद्र भगवान्का रूप देखकर नेत्रोंमें पलक लगाना बन्द करके इकटक देखने लगे ॥ ५ ॥ आदरसे सुन्दररूप देखते हुए मनु और शतरूपा तृप्ति नहीं मानते हैं ॥ ६ ॥

हर्ष-विवश तनु-दशा भुलानी ❀ परे दंड इव गहि पद पानी ॥७॥
शिर परसे प्रभु निज कर कंजा ❀ तुरत उठाये करुणापुंजा ॥८॥

प्रसन्नतासे शरीरकी दशा भूल गये और हाथोंसे चरण पकड़कर दंडके समान गिर पड़े अर्थात् साष्टांग दंडवत् की ॥ ७ ॥ तब कृपाके पुञ्ज प्रभुने हस्तकमलसे उनका शिर छुआ और उनको तुरंत उठाया ॥ ८ ॥

दोहा-बोले कृपानिधान पुनि, अति प्रसन्न मोहिं जानि ॥
मांगहु बर जोइ भाव मन, महा-दानि अनुमानि ॥ १५५ ॥

फिर कृपानिधि भगवान् बोले-मैं बहुत प्रसन्न हूँ जो इच्छा हो वह वरदान मुझको महादानी समझकर मांगो। और तीन पदार्थ देते हैं किंतु मैं चार पदार्थ देता हूँ यह महादानी से जताया॥१५५॥

सुनि प्रभु वचन जोरि युग पानी ❀ धरि धीरज बोले मृदु बानी ॥१॥
नाथ देखि पदकमल तुम्हारे ❀ अब पूजे सब काम हमारे ॥२॥

भगवान्के वचन सुन, दोनों हाथ जोड़कर धीरज धर मुनिराज कोमल वाणी बोले ॥१॥ स्वामी ! आपके चरणकमलोंको देखकर अब हमारे सब काम पूरे हो गये ॥ २ ॥

एक लालसा बड़ि मनमाहीं ❀सुगम अगम कहिजात सो नाहीं॥३॥
तुमहिं देत अति सुगम गुसांई ❀अगम लाग मोहि निज कृपणाई॥४॥

तो भी एक मनमें बड़ी इच्छा है परंतु वह (सुगम) सरल और (अगम) कठिन है इस कारण कही नहीं जाती ॥ ३ ॥ हे गुसाईं ! आपको देनेमें तो बहुत सहज है; पर मुझको अपनी कृपणतासे कठिन जान पड़ती है ॥ ४ ॥

यथा दरिद्र विबुध-तरु जाई ❀ बहु संपति माँगत सकुचाई ५॥
तासु प्रभाव न जानइ सोई ❀ तथा हृदय मम संशय होई ॥६॥

जैसे दरिद्र कल्पवृक्षके नीचे जाकर धन मांगते सकुचाता है ॥५॥ और उस वृक्षका प्रभाव (मन इच्छित पदार्थ देनेवाला) वह नहीं जानता है ऐसे ही मेरे मनमें सन्देह होता है॥ ६ ॥

सो तुम जानहु अन्तर्यामी ❀ पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥७॥
सकुच बिहाय मांगु नृप मोहीं ❀ मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं ॥८॥

हे अन्तर्यामी! वह आप जानते ही हैं अतएव मेरा मनोरथ पूरा कीजिये ॥ ७ ॥ भगवान् बोले–राजन्! सकुच छोड़कर मुझसे मांगिये, वा मुझको ही मांगो, मेरे कोई वस्तु ऐसी नहीं जो देने योग्य न हो ॥ ८ ॥

दोहा–दानि शिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतभाव ॥
चाहउँ तुमहि समान सुत, प्रभु–सन कवन दुराव ॥ १५६ ॥

मनु बोले–हे दानियोंमें शिरोमणि! कृपानिधान! सत्य भावसे यही वर चाहता हूँ कि आपके समान पुत्र हो, मैं प्रभुसे क्या छिपाऊँ? ॥ १५६ ॥

देखि प्रीति मुनि वचन अमोले * एवमस्तु करुणानिधि बोले ॥१॥
आप सरिस खोजउँ कहँ जाई * नृप तव तनय होब मैं आई ॥२॥

प्रीति देख अमोल वचन सुन भगवान्ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) यह वचन कहा ॥ १ ॥ राजन्! अपने समान कहां जाकर ढूँढ़ता फिरूँगा अतः आपका पुत्र मैं ही आकर हूँगा ॥२॥

शतरूपहि विलोकि कर जोरे * देवि माँगु वर जो रुचि तोरे ॥३॥
जो वर नाथ चतुर नृप माँगा * सो कृपालु मोहि अतिप्रिय लागा ॥४॥

फिर शतरूपाको हाथ जोड़े हुए देखकर बोले–हे देवी! जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो वह तुम भी माँगो ॥ ३ ॥ (शतरूपा बोली) हे कृपालु! हे नाथ! जो वर चतुर राजाजीने मांगा है वही मुझे भी अच्छा लगता है ॥ ४ ॥

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई * यदपि भक्तिहित तुमहिं सुहाई ॥५॥
तुम ब्रह्मादि सकल जगस्वामी * ब्रह्म सकल उर अन्तर्यामी ॥६॥

हे प्रभु! यद्यपि भक्तिपक्षसे आपको सुहाती है तो भी यह बड़ी ढीठता होती है ॥ ५ ॥ क्योंकि आप ब्रह्मादि सब जगत्के स्वामी हैं साक्षात् ब्रह्म सब जगत्के अन्तर्यामी हैं ॥ ६ ॥

अस समुझत मन संशय होई * कहा जो प्रभु प्रमाण पुनि सोई ॥७॥
जे निज भक्त नाथ तव अहहीं * जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥८॥

ऐसा मनमें समझ कर सन्देह होता है जो कुछ आपने कहा वह सप्रमाण है॥७॥हे नाथ! आपके निरन्तर प्रीति करनेवाले जो भक्त हैं वे जो सुख पाते और जिस गतिको प्राप्त होते हैं॥८॥

दोहा–सो सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निजचरण सनेहु ॥
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, मोहि कृपा करिदेहु ॥ १५७ ॥

वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणोंका प्रेम, वही ज्ञान, वही रहना, हे प्रभु! कृपा कर मुझको दीजिये ॥ १५७ ॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर वचना * कृपासिन्धु बोले मृदु वचना ॥१॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मनमाहीं * मैं सो दीन्ह सब संशय नाहीं ॥२॥

शतरूपाके इस प्रकार कोमल सुन्दर गूढ़ वचन सुनकर कृपासिंधु मधुर वचन बोले ॥१॥ जो कुछ तुम्हारे मन में इच्छा है वह मैंने सब दिया; इसमें सन्देह नहीं ॥ २ ॥

मातु विवेक अलौकिक तोरे * कबहुँ न मिटहि अनुग्रह मोरे ॥३॥
बन्दि चरण मनु कहेउ बहोरी * अपर एक विनती प्रभु मोरी ॥४॥

हे माता ! तेरा लोकोत्तर ज्ञान मेरे अनुग्रहसे कभी नहीं मिटेगा ॥ ३ ॥ फिर मनुने चरणोंको नमस्कार करके कहा—नाथ ! एक विनती मेरी और है ॥ ४ ॥

सुत-विषयक तव पद रति होऊ ❋ मोहि बरु मूढ़ कहै किन कोऊ ॥५॥
मणिबिनु फणि जिमि जल बिनु मीना ❋ मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना ॥६॥

लौकिक पुत्र सम्बन्धी आपके चरणोंमें प्रीति हो; चाहे मुझको कोई मूर्ख ही क्यों न कहे ॥ ५ ॥ जैसे मणिके विना साँप और जलके विना मछली व्याकुल होती है ऐसा ही मेरा जीवन आपके आधीन रहे ॥ ६ ॥

अस बर मांगि चरण गहि रहेऊ ❋ एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ ॥७॥
अब तुम मम अनुशासन मानी ❋ बसहु जाय सुरपति रजधानी ॥८॥

ऐसा वर मांगकर चरणोंमें पड़ गये, भगवान्‌ने एवमस्तु (ऐसा ही हो) कहा ॥ ७ ॥ अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्रलोकमें जाकर बास करो ॥ ८ ॥

सोरठा—तहँ करि भोग विशाल, तात गये कछु काल पुनि ॥
होइहहु अवध-भुवाल, तब मैं होब तुम्हार सुत ॥ २३ ॥

इन्द्रलोकमें अधिक सुख भोगकर जब कुछ काल बीत जायगा तब आप अयोध्याके राजा होंगे उस समय मैं आपका पुत्र हूँगा ॥ २३ ॥

इच्छामय नर-वेष सँवारे ❋ होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥१॥
अंशन सहित देह धरि ताता ❋ करिहउँ चरित भक्त सुखदाता ॥२॥

अपनी इच्छासे मनुष्यका वेष बनाये हुए आपके घरमें प्रगट हूँगा ॥ १ ॥ अंशों सहित देह धारण कर भक्तोंके सुखदायक चरित्र करूँगा । (अंश) जिस अंशसे पृथ्वीको थामते हैं, जिस अंशसे असुरोंको मारते हैं; जिस अंशसे संसारका पालन करते हैं वे ही अंश हैं ॥ २ ॥

जेहि सुनि सादर नर बड़भागी ❋ भव तरिहैं ममता मद त्यागी ॥३॥
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया ❋ सोउ अवतरहि मोरि यह माया ॥४॥

जिन चरित्रोंको सुनकर भाग्यवान् मनुष्य अहंकार मोह त्यागकर संसार सागरको तर जायँगे ॥३॥ आदिशक्ति जिसने जगत् उपजाया है वह मेरी माया भी अवतार लेगी ॥४॥

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा ❋ सत्य सत्य प्रण सत्य हमारा ॥५॥
पुनि पुनि अस कहि कृपा निधाना ❋ अन्तर्धान भये भगवाना ॥६॥

मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा; यह हमारी प्रतिज्ञा सत्य है सत्य है ॥ ५ ॥ बारंबार ऐसा कहकर कृपानिधान अन्तर्धान हो गये ॥ ६ ॥

दंपति उर धरि भक्ति कृपाला ❋ तेहि आश्रम निवसे कछु काला ॥७॥
समय पाय तनु तजि अनयासा ❋ जाय कीन्ह अमरावति वासा ॥८॥

दोनों स्त्री पुरुष भगवान्‌की भक्ति मनमें धारण करके उस आश्रममें कुछ कालतक बसे ॥ ७ ॥ फिर समय पाकर विना ही दुःख शरीर त्याग स्वर्गलोकमें जाकर वास किया ॥८॥

दोहा—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहेउ वृषकेतु ॥
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जन्म कर हेतु ॥ १५८ ॥

यह परम पवित्र इतिहास (कथा) पार्वतीसे शिवजीने कहा है, हे भरद्वाज ! अब श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका और भी कारण सुनिये ॥ १५८ ॥

सुनि मुनि कथा पुनीत पुरानी ❀ जो गिरिजा प्रति शंभु बखानी ॥१॥
विश्व विदित इक केकय देशू ❀ सत्यकेतु तहँ बसइ नरेशू ॥२॥

याज्ञवल्क्यजी बोले– हे मुनि! पवित्र प्राचीन कथा सुनिये, जो शिवजीने पार्वतीसे कही है ॥१॥ एक केकय अर्थात् काश्मीर देश संसारमें प्रसिद्ध है, वहांका राजा सत्यकेतु था ॥२॥

धर्म धुरंधर नीति निधाना ❀ तेज प्रताप शील बलवाना ॥३॥
तेहिके भये युगल सुत वीरा ❀ सब गुणधाम महा रणधीरा ॥४॥

जो धर्मकी धुरी धारण करनेवाला, नीतिमान, तेजस्वी, प्रतापी, बली, शीलवान् था ॥ ३ ॥ उसके दो पुत्र थे, जो बड़े वीर सब गुणोंके घर युद्धमें धीरता रखनेवाले थे ॥ ४ ॥

राजधनी जो जेठ सुत आही ❀ नाम प्रतापभानु अस ताही ॥५॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा ❀ भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥६॥

राजधनी राजाका जो बड़ा पुत्र था उसका नाम प्रतापभानु था ॥५॥ दूसरे पुत्रका अरिमर्दन नाम था, जिसकी भुजाओंमें अतुलित बल था और संग्राममें चलायमान नहीं होता था॥६॥

भाइहि भाइहि परम समीती ❀ सकल दोष छलवर्जित प्रीती ॥७॥
जेठे सुतहि राजनृप दीन्हा ❀ हरिहित आप गवन बन कीन्हा ॥८॥

दोनों भाइयोंमें मेल था और सब दोष छलोंसे रहित प्रीति थी ॥ ७ ॥ राजाने अपने बड़े पुत्रको राज्य दिया और आप भगवान्का तप करनेके लिये वनको चले गये ॥ ८ ॥

दोहा–जब प्रतापरवि भयउ नृप, फिरी दुहाई देश ॥
प्रजापाल अति वेदविधि, कतहुँ नहीं अघलेश ॥ १५९ ॥

जब प्रतापभानु राजा हुआ तब देशमें दुहाई फिरी, प्रजाको वेदकी विधिसे पालने लगे कहीं पापका लेश भी नहीं था ॥ १५९ ॥

नृपहितकारक सचिव सुजाना ❀ नाम धर्मरुचि शुक्र समाना ॥१॥
सचिव सयान बन्धु बलवीरा ❀ आप प्रतापपुंज रणधीरा ॥२॥

राजाका हितकारी मंत्री चतुर जिसका नाम धर्मरुचि और शुक्रके समान बुद्धिमान् था ॥ १ ॥ एक तो मन्त्री चतुर, दूसरा भाई बलवान् तीसरे आप प्रतापी और रणधीर ॥ २ ॥

सेन संग चतुरंग अपारा ❀ अमित सुभट सब समर जुझारा ॥३॥
सेन विलोकि राउ हरषाना ❀ अरु बाजे गहगहे निशाना ॥४॥

रथी, अश्वसवार, गजारोही, पदचर यह चार प्रकारकी सेना थी और लड़ाई जाते हुए संगमें सब योद्धा थे ॥ ३ ॥ सेना देखकर राजा प्रसन्न हुए और गहगहे बाजे बाजे ॥ ४ ॥

विजय हेतु कटकई बनाई ❀ सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥५॥
जहँ तहँ परीं अनेक लड़ाई ❀ जीते सकल भूप बरिआँई ॥६॥

दिग्विजयके लिए अपना कटक बनाकर अच्छी घड़ी मुहूर्त विचार कर राजा चले ॥५॥ जहां-तहां अनेक लड़ाइयाँ हुईं, परन्तु सब राजाओंको बलपूर्वक जीते ॥ ६ ॥

सप्त द्वीप भुजबल वश कीन्हा ❋ लै लै दंड छांड़ि नृप दीन्हा ॥७॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला ❋ एक प्रतापभानु महिपाला ॥८॥

सात द्वीप अपनी भुजाओंके बलसे वशमें कर दंड ले ले सबको छोड़ दिया ॥ ७ ॥ उस समय सब पृथ्वीमंडलमें एक प्रतापभानु ही राजा था ॥ ८ ॥

दोहा—स्ववश विश्व करि बाहुबल, निजपुर कीन्ह प्रवेश ॥
धर्म अर्थ कामादि सब, सेवहि समय नरेश ॥ १६० ॥

संसारको अपने बाहुबलसे विजय कर अपने नगरमें प्रवेश किया, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब राजाको प्राप्त हुए अर्थात् समय-समय पर राजा इनको सेवता है ॥ १६० ॥

भूप प्रतापभानु बल पाई ❋ कामधेनु भइ भूमि सुहाई ॥१॥
सब दुख वर्जित प्रजा सुखारी ❋ धर्मशील सुन्दर नरनारी ॥२॥

प्रतापभानु राजाका बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हुई जिस वस्तुकी इच्छा करी वही मिले। अथवा अन्नादि अधिक उत्पन्न होने लगे ॥ १ ॥ सम्पूर्ण दुखोंसे रहित प्रजा सुखी थी, नर-नारी धर्मात्मा सुन्दर सुशील थे ॥ २ ॥

सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीती ❋ नृपहित हेतु सिखावत नीती ॥३॥
गुरु सुर सन्त पितर महिदेवा ❋ करै सदा नृप सबकी सेवा ॥४॥

राजाका मन्त्री धर्मरुचि भगवान्‌की भक्ति धारण करने वाला हितकारक नीति सिखाता था ॥ ३ ॥ गुरु, देवता, साधु, पितर, ब्राह्मण इनकी सेवा राजा करता था ॥ ४ ॥

भूप-धर्म जे वेद बखाने ❋ सकल करै सादर सुख माने ॥५॥
दिन प्रति देइ विविध विधिदाना ❋ सुनै शास्त्र वरवेद पुराना ॥६॥

जो वेदोंमें राजाओंके धर्म लिखे हैं वह सब राजा सुख मानकर करता था ॥ ५ ॥ दिन-दिन अनेक प्रकारके दान देता और शास्त्र तथा वेद पुराण सुनता था ॥ ६ ॥

नाना वापी कूप तड़ागा ❋ सुमन वाटिका सुन्दर बागा ॥७॥
विप्र भवन सुरभवन सुहाये ❋ सब तीरथन विचित्र बनाये ॥८॥

अनेक बावड़ी, कुएँ, फुलवाड़ी, सुन्दर बाग ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंके घर, देवताओंके मन्दिर और सब तीर्थ सुन्दर बना दिये अर्थात् सुन्दर स्थान तीर्थों पर मनुष्योंके हेतु बनवाये ॥८॥

दोहा—जहँ लगि कहे पुराण श्रुति, एक एक सब याग ॥
बार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग ॥ १६१ ॥

जहां जहां वेद पुराणोंमें एक-एक यज्ञ करना कहा है वहां राजाने प्रीतिपूर्वक सहस्र-सहस्र (हजार-हजार) किये ॥ १६१ ॥

हृदय न कछु फल अनुसंधाना ❋ भूप विवेकी परम सुजाना ॥१॥
करइ जो धर्म कर्म मन बानी ❋ वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी ॥२॥

मनमें कुछ भी फल नहीं चाहा, क्योंकि राजा ज्ञानी और परम चतुर था ॥१॥ वह ज्ञानी राजा जो कुछ धर्म कर्म मन वचनसे करता था उसे भगवान्‌को अर्पण कर देता था ॥ २ ॥

चढ़ि वर वाजि वार इक राजा ❀ मृगया कर सब साजि समाजा ॥३॥
विन्ध्याचल गँभीर वन गयऊ ❀ मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥४॥

एक समय राजा अच्छे घोड़े पर चढ़ और आखेटका सब साज सजाकर ॥ ३ ॥ विंध्याचलके गम्भीर वनमें गया और बहुत से पवित्र मृग मारे ॥ ४ ॥

फिरत विपिन नृप दीख बराहू ❀ जनुवन दुरेउ शशिहि ग्रसि राहू ॥५॥
बड़ विधु नहिं समात मुखमाहीं ❀ मनहुँ क्रोधवश उगिलत नाहीं ॥६॥

वनमें फिरते राजाने एक वराह (शूकर) को देखा, उसके दातोंकी छबि ऐसी थी की मानो चन्द्रमाको पकड़ कर राहु वनमें छिपा है ॥ ५ ॥ मानो बड़ा चन्द्रमा मुखमें नहीं समाता किन्तु क्रोधके मारे उगिलता नहीं ॥ ६ ॥

कोल कराल दसन छबि गाई ❀ तन विशाल पीवर अधिकाई ॥७॥
घुरघुरात हय आरव पाये ❀ चकित विलोकत कान उठाये ॥८॥

ऐसे उस शूकरके तीक्ष्ण दातोंकी छबि थी, शरीर बड़ा अधिक मोटा था ॥ ७ ॥ घोड़ेकी आहट पाकर घुरघुराने लगा और कान उठाये चौकन्ना होकर देखने लगा ॥ ८ ॥

दोहा–नील महीधर शिखर सम, देखि विशाल बराह ॥
चपरि चले हय सुटुकि नृप, हांकि न होय निबाह ॥ १६२ ॥

काले पहाड़की चोटीके समान बड़ा बराह देख, घोड़ेको दबा कोड़ा मार राजाने सुअरको ललकारा कि तू अब नहीं बच सकता ॥ १६२ ॥

आवत देखि अधिक रव बाजी ❀ चला बराह मरुत गति भाजी ॥१॥
तुरत कीन्ह नृप शर संधाना ❀ महि मिलि गयेउ बिलोकत बाना ॥२॥

घोड़ेको शब्द करते हुए आता देखकर वराह पवन वेगसे भाग चला ॥ १ ॥ राजाने तुरंत धनुषके ऊपर बाण चढ़ाया; किन्तु बाण देखते ही वह वराह पृथ्वीमें लोप हो गया ॥ २ ॥

तकि तकि तीर महीश चलावा ❀ करि छल सुअर शरीर बचावा ॥३॥
प्रगटत दुरत जाय मृग भागा ❀ रिसिवश भूप चलेउ संग लागा ॥४॥

राजाने तक-तक कर तीर चलाये, परन्तु छल करके सुअरने अपना शरीर बचाया ॥३॥ प्रगट होता छुपता हुआ मृग भाग जाता है और राजा भी क्रोधवश संग लगा ही चला गया ॥ ४ ॥

गयउ दूरि बन गहन बराहू ❀ जहां नाहिं गज वाजि निवाहू ॥५॥
अति अकेल वन बहुत कलेशू ❀ तदपि न मृग मग तजइ नरेशू ॥६॥

पुनः वराह ऐसे गम्भीर वनमें दूर चला गया जहां हाथी घोड़ेकी गति नहीं ॥ ५ ॥ एक तो राजा अकेला था क्योंकि सेनासे बिछुड़ गया था, दूसरे वनमें बहुत क्लेश होते हैं तो भी राजाने मृग (पशु) का मार्ग नहीं छोड़ा ॥ ६ ॥

कोल विलोकि भूप बड़ धीरा ❀ भागि पैठ गिरि गुहा गँभीरा ॥७॥
अगम देखि नृप अति पछिताई ❀ फिरे महावन परेउ भुलाई ॥८॥

सुअरने राजाको बड़ा धीरजवान् देखा तो भागकर एक पर्वतकी गम्भीर गुफामें घुस गया ॥ ७ ॥ दुस्तर मार्ग देखकर राजा बहुत पछताया और लौटते ही महावनमें भूल गया ॥८॥

दोहा-खेद खिन्न क्षुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत ॥
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत ॥ १६३ ॥

राजा घोड़े सहित दुःखी, दुर्बल, प्यासा भूखा हो घबड़ाकर नदी-तालाब ढूँढ़ने लगा और जलके विना अचेत हो गया ॥ १६३ ॥

फिरत विपिन आश्रम इक देखा * तहँ बस नृपति कपट मुनि बेखा ॥१॥
जासु देश नृप लीन्ह छुड़ाई * समर सेन तजि गयउ पराई ॥२॥

फिरते हुए वनमें एक आश्रम देखा, वहाँ एक राजा कपटसे मुनिका वेष बनाये वास करता था ॥१॥ जिसका देश राजाने छीन लिया था और युद्धमें सेना छोड़कर भाग गया था ॥२॥

समय प्रतापभानु कर जानी * आपन अति असमय अनुमानी ॥३॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी * मिला न राजहिं नृप अभिमानी ॥४॥

प्रतापभानुका शुभ समय जान और अपना अत्यन्त असमय जानकर ॥ ३ ॥ घरमें लज्जाके मारे नहीं गया और राजासे वह नृप अभिमानके मारे नहीं मिला ॥ ४ ॥

रिस उर मारि रंक जिमि राजा * विपिन बसै तापसके साजा ॥५॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा * यह प्रताप रवि तेहि तब चीन्हा ॥६॥

क्रोधको मनमें मार निर्धनोंकी तरह तपस्वी हो राजा वनमें रहने लगा ॥५॥ इसके निकट राजाने गमन किया, उसने देखते ही जान लिया कि यह प्रतापभानु है ॥ ६ ॥

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना * देखि सुवेष महामुनि जाना ॥७॥
उतरि तुरंगते कीन्ह प्रणामा * परमचतुर न कहेउ निज नामा ॥८॥

राजा प्यासा था उसको नहीं पहिचाना, बल्कि अच्छा वेष देखकर महामुनि जाना ॥७॥ घोड़ेसे उतरकर प्रणाम किया, और अत्यन्त चतुर था इसलिये अपना नाम नहीं बताया ॥८॥

दोहा-भूपति तृषित विलोकि तेहि, सरवर दीन्ह दिखाय ॥
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाय ॥ १६४ ॥

राजाको प्यासा देखकर मुनिने सरोवर दिखाया और राजा प्रसन्न होकर स्नान कर घोड़ा सहित जलपान किया ॥ १६४ ॥

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ * निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥१॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी * पुनि तापस बोला मृदु बानी ॥२॥

जब श्रम गया तो राजा सुखी हुआ, तब वह कपटी मुनि राजाको अपने आश्रममें ले गया ॥१॥ सूर्यका अस्त जानकर आसन दिया और फिर तपस्वी कोमल वाणी बोला ॥२॥

को तुम कस वन फिरहु अकेले * सुन्दर युवा जीव पर हेले ॥३॥
चक्रवर्तिके लक्षण तोरे * देखत दया लागि अति मोरे ॥४॥

तुम कौन हो वनमें अकेले कैसे फिरते हो; सुन्दर जवानी अवस्थामें जीवनका अनादर किये कैसे फिरते हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे लक्षण चक्रवर्तीकेसे दृष्टि आते हैं, सो देखकर मुझे बहुत दया लगती है ॥ ४ ॥

नाम प्रतापभानु अवनीशा ❋ तासु सचिव मैं सुनहु मुनीशा ॥५॥
फिरत अहेरहिं परेउ भुलाई ❋ बड़े भाग्य देखेउँ पग आई ॥६॥

राजाने कहा—हे मुनीश ! सुनिये, एक प्रतापभानु राजा है मैं उसका मन्त्री हूँ ॥ ५ ॥ आखेट खेलते-खेलते मार्ग भूल गया, बड़े भाग्य जो आपके चरण देखे ॥ ६ ॥

हमकहँ दुर्लभ दरश तुम्हारा ❋ जानत हौं कछु भल होनिहारा ॥७॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा ❋ योजन सत्तर नगर तुम्हारा ॥८॥

हमको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, मैं जानता हूँ कि कुछ मेरा भला होनेवाला है ॥ ७ ॥ मुनिने कहा—हे तात ! अब अँधेरा हो गया तुम्हारा घर यहांसे सत्तर योजन (२८० कोस) दूर है ॥८॥

दोहा--निशा घोर गम्भीर बन, पंथ न सूझ सुजान ॥
बसहु आज अस जानि तुम, जायहु होत बिहान ॥ १६५ ॥

हे चतुर ! रात्रि घोर है, वन गम्भीर है, मार्ग सूझता नहीं ऐसा जानकर तुम आज यहां रहो, सबेरा होते ही चले जाना ॥ १६५ ॥

दोहा--तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलहि सहाय ॥
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥ १६६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं-जैसी होनहार होती है वैसी ही सहायता मिल जाती है, आप उसपर आती नहीं किंतु उसे वहां ले जाती है ॥ १६६ ॥

भलेहि नाथ आयसु धरि शीशा ❋ बांधि तुरंग तरु बैठ महीशा ॥१॥
नृप बहु भाँति प्रशंसेउ ताही ❋ चरण बन्दि निज भाग्यसराही ॥२॥

'बहुत अच्छा महाराज!' ऐसा कह आज्ञा शिरपर धर घोड़ा वृक्षसे बांधकर राजा बैठ गया ॥१॥ राजाने बहुत भांतिसे उसकी प्रशंसा की और चरणोंको नमस्कार कर अपना भाग्य सराहा ॥२॥

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई ❋ जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई ॥३॥
मोहिं मुनीश सुत सेवक जानी ❋ नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥४॥

फिर राजा सुन्दर कोमल वाणीसे बोला—हे प्रभु ! आपको पिता जानकर ढीठता करता हूँ ॥३॥ हे मुनीश ! मुझको अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम बखान कर कहिये ॥४॥

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना ❋ भूप सुहृदय सो कपट सयाना ॥५॥
वैरी मुनि क्षत्रिय पुनि राजा ❋ छलबल कीन्ह चहै निज काजा ॥६॥

उसको राजाने नहीं जाना और वह राजाको पहिचान गया, राजा सरलचित और वह कपटी राजा मित्रोंमें सयाना और वह कपटमें चतुर ॥ ५ ॥ वैरी मुनि; क्षत्रिय और राजा छलबलसे अपना कार्य साधन करते हैं, यहां तीनों मिलकर एकही हो गये ॥ ६ ॥

समुझि राजसुख दुखित अराती ❋ आवाँ अनल इव सुलगै छाती ॥७॥
सरल वचन नृपके सुनि काना ❋ वैर सँभारि हृदय हरषाना ॥८॥

यह शत्रु राज्यका सुख समझ कर दुःखी है अवेंके आगकी नाईं छाती सुलगती है ॥ ७ ॥ राजाके सीधे वचन कानोंसे सुन वैर सँभालकर मनमें प्रसन्न हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-कपट बोरि वाणी मृदुल, बोलेउ युक्ति समेत ॥
नाम हमारि भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥ १६७ ॥

कपट सनी हुई कोमल वाणी युक्तिपूर्वक बोला कि अब तो हमारा नाम भिखारी है, निर्धन हैं और घरबार नहीं है 'अब' कहनेसे यह सूचित होता है कि पहले सब कुछ था ॥ १६७ ॥

कह नृप जे विज्ञान-निधाना ❋ तुम सारिखे गलित अभिमाना॥१॥
सदा अपनपौ रहहिं दुराये ❋ सब विधि कुशल कुवेश बनाये॥२॥

राजाने कहा—जो ज्ञानवान् हैं वे आपके समान ही अभिमान रहित होते हैं ॥ १ ॥ सदा अपने आपको छिपाये रहते हैं और सब विधि चतुर होनेपर भी बुरा वेष बनाये रहते हैं ॥२॥

तेहिते कहहिं सन्त श्रुति टेरे ❋ परम अकिंचन प्रिय हरिकेरे ॥३॥
तुमसम अधन भिखारि अगेहा ❋ होत विरंचि शिवहिं सन्देहा ॥४॥

इसी कारण वेद और सन्त यह कहते हैं कि जो लोभी नहीं वे भगवान्के प्यारे हैं॥३॥आपके समान धन रहित भिखारी विना घर वालोंको देखकर ब्रह्मा, शिवको भी सन्देह होता है ॥४॥

जोसि सोसि तव चरण नमामी ❋ मोपर कृपा करिय अब स्वामी ॥५॥
सहज प्रीति भूपतिकी देखी ❋ आपविषे विश्वास विसेखी ॥६॥

जो कुछ भी हो आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। स्वामी! अब मुझपर कृपा कीजिये ॥ ५ ॥ कपटी मुनि राजाकी स्वाभाविक प्रीति और अपनेमें अधिक विश्वास देख ॥ ६ ॥

सब प्रकार राजहिं अपनाई ❋ बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥७॥
सुनु सतिभाव कहौं महिपाला ❋ इहाँ बसत बीते बहु काला ॥८॥

सब प्रकारसे राजाको अपनाकर बड़ा स्नेह दिखाकर बोला ॥ ७ ॥ सुन राजा! यह बात सत्य भावसे कहता हूँ कि मुझे यहां रहते बहुत दिन बीत गये ॥ ८ ॥

दोहा-अब लगि मोहिं न मिलेउ कोउ, मैं न जनायउँ काहु ॥
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥ १६८ ॥

अबतक मुझको कोई नहीं मिला और मैंने भी किसीसे यह बात नहीं जनाई, लोककी बड़ाई तपस्यारूपी वनको जला देती है, इसी कारण वनमें तप करता हूँ ॥ १६८ ॥

सोरठा-तुलसी देखि सुवेष, भूलइ मूढ़न चतुर नर ॥
सुंदर केकिहि पेख, वचन सुधासम अशन अहि ॥ २४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अच्छा वेष देखकर मूढ ही नहीं; किन्तु चतुर मनुष्य भी ठगाईमें आ जाते हैं, परन्तु वे वेष बनाये हुए मोरके समान होते हैं,। कि देखनेमें सुन्दर और बोल अमृतके समान हैं परन्तु भोजन देखो तो सर्पोंका करते हैं। अथवा सुवेष देखकर मूढ़ भूलते हैं, चतुर नहीं भूलते क्योंकि वे सुन्दर मयूरके वेषको देखकर जान लेते हैं कि यह सुवेषधारी मीठे वचन बोलता है, पर सर्प खाता है। चतुर, बोलने वालेकी कुछ दिनों प्रतीक्षा करके तब फिर प्रतीति करते हैं, (राजा भावीवश मूढ़ हो गये हैं) ॥ २४ ॥

तातें गुप्त रहउँ जगमाहीं ❀ हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥१॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये ❀ कहहु कवन सिधि लोक रिझाये ॥२॥

इस कारण जगत्‌में गुप्त रहता हूँ; भगवान्‌को छोड़कर और कुछ भी प्रयोजन नहीं ॥१॥ भगवान् विना जनाये ही सब जानते हैं, कहो संसारके रिझानेसे क्या सिद्धि है! ॥ २ ॥

तुम शुचि सुमति परमप्रिय मोरे ❀ प्रीति प्रतीति मोहिं पर तोरे ॥३॥
अब जौं तात दुरावउँ तोहीं ❀ दारुण दोष लगै अति मोहीं ॥४॥

तुम पवित्र, बुद्धिमान्, मेरे अधिक प्यारे हो; तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा विश्वास और प्रीति है ॥ ३ ॥ हे तात! अब जो मैं तुमसे छिपाऊँ तो मुझे बड़ा कठिन दोष लगेगा ॥ ४ ॥

जिमि जिमि तापस कथै उदासा ❀ तिमि तिमि नृपहि उपज विश्वासा ॥५॥
देखा स्ववश कर्म मन बानी ❀ तब बोला तापस बक ध्यानी ॥६॥

जैसे-जैसे तपस्वी उदासीन बातें करे वैसे-वैसे राजाको विश्वास बढ़े ॥५॥ जब राजाको कर्म, मन, वाणीसे अपने वशमें देखा तब वह तपस्वी बगलेके समान ध्यान करनेवाला बोला, (बगलाभक्त सरोवरके किनारे एक टांग उठाकर बैठता है जहां मछली आयी की गड़प लिया ॥६॥

नाम हमार एकतनु भाई ❀ सुनि नृप बोलेउ पुनि शिर नाई ॥७॥
कहहु नामकर अर्थ बखानी ❀ मोहिं सेवक अति आपन जानी ॥८॥

भाई! हमारा नाम एकतनु है, राजा शिर नवाकर फिर बोला ॥ ७ ॥ महाराज! मुझको अपना सेवक जानकर नामका अर्थ कहो (तब कपटी मुनि बोला) ॥ ८ ॥

दोहा-आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भइ मोरि ॥
नाम एक तनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि ॥ १६९ ॥

जब आदि सृष्टि उपजी तब मेरी उत्पत्ति हुई थी, और एकतनु नाम इस कारण हुआ कि फिर दूसरी देह मैंने धारण नहीं की ॥ १६९ ॥

जनि आश्चर्य करहु मन माहीं ❀ सुत तपते दुर्लभ कछु नाहीं ॥१॥
तपबलते जग सृजै विधाता ❀ तप बल विष्णु भये परित्राता ॥२॥

हे पुत्र! मनमें आश्चर्य मत करो, तपसे कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ १ ॥ तपके बलसे ब्रह्माजी जगत्‌की उत्पत्ति करते और तपके बलसे ही विष्णु उसके पालक हुए हैं ॥ २ ॥

तप-बल शम्भु करहिं संहारा ❀ तप ते अगम न कछु संसारा ॥३॥
भयहु नृपहि सुनु अति अनुरागा ❀ कथा पुरातन कहै सो लागा ॥४॥

तपके बलसे ही शिवजी संहार करते हैं, तपसे संसारमें कुछ भी अगम नहीं है ॥ ३ ॥ राजाको सुनकर बड़ा प्रेम हुआ, फिर मुनि कुछ पुरानी कथा कहने लगा ॥ ४ ॥

कर्म धर्म इतिहास अनेका ❀ करइ निरूपण विरति विवेका ॥५॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी ❀ कहेसि अमित आश्चर्य बखानी ॥६॥

कर्म, धर्म, अनेक प्रकारके इतिहास और ज्ञान वैराग्यको निरूपण करने लगा ॥ ५ ॥ उत्पत्ति, पालन और प्रलयकी कहानी तथा अनेक आश्चर्यकी वार्ता बखान कर कही ॥ ६ ॥

सुनि महीश तापस वश भयऊ ❋ आपन नाम कहन तब लयऊ ॥७॥
कह तापस नृप जानउँ तोही ❋ कीन्हेउ कपट लाग भल मोही ॥८॥

सुनकर राजा तपस्वीके वशमें हुआ और तब अपना नाम कहने लगा ॥ ७ ॥ तपस्वी बोला–राजा ! मैं तुझको जानता हूँ तैने कपट किया सो मुझको अच्छा लगा ॥ ८ ॥

सोरठा–सुनु महीश असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ॥
मोहिं तोहि पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव ॥ २६ ॥

सुन राजा ! यह नीति है; कि राजा जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते, मेरी तुझपर अधिक प्रीति है, तेरी परम चतुरता देखकर ॥ २६ ॥

नाम तुम्हार प्रताप दिनेशा ❋ सत्यकेतु तव पिता नरेशा ॥१॥
गुरुप्रसाद सब जानिय राजा ❋ कहिय न आपन जानि अकाजा ॥२॥

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और तुम्हारे पिताका नाम राजा सत्यकेतु है ॥ १ ॥ गुरुके प्रसादसे सब जानता हूँ, अपना अकाज जानकर किसीसे हम नहीं कहते ॥ २ ॥

देखि तात तव सहज सुधाई ❋ प्रीति प्रतीति नीति निपुणाई ॥३॥
उपजि परी ममता मन मोरे ❋ कहउँ कथा निज बूझे तोरे ॥४॥

हे तात ! तुम्हारा सहजसेही सूधापन, प्रीति, प्रतीति और चतुरता देखकर ॥ ३ ॥ मेरे मनमें प्रीति उपज पड़ी है, इससे तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कही है ॥ ४ ॥

अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं ❋ माँग जो भूप भाव मनमाहीं ॥५॥
सुनि सुवचन भूपति हर्षाना ❋ गहि पद विनय कीन्ह विधिनाना ॥६॥

अब मैं प्रसन्न हूँ कुछ संशय नहीं, जो तेरे मनमें इच्छा हो वह माँग ॥ ५ ॥ यह सुन्दर वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ चरण पकड़ कर अनेक विनती की ॥ ६ ॥

कृपासिंधु मुनि दर्शन तोरे ❋ चारि पदारथ करतल मोरे ॥७॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी ❋ मांगि अगम वर होउँ विशोकी ॥८॥

हे कृपासिन्धु मुनि ! आपके दर्शनसे मेरे हाथमें चारों पदार्थ हैं ॥ ७ ॥ तो भी प्रभुको प्रसन्न देख अगम वर मांग कर शोक रहित हो जाऊँ ॥ ८ ॥

दोहा–जरा मरण दुख रहित तनु, समर न जीतै कोउ ॥
एक छत्र रिपुहीन महि, राज्य कल्प शत होउ ॥ १७० ॥

बुढापा और मरण आदिके दुःखसे रहित शरीर हो और कोई मुझको युद्धमें न जीत सके–एक छत्र, शत्रुहीन पृथ्वीमें सौ कल्प तक मेरा राज्य हो ॥ १७० ॥

कर तापस नृप ऐसेइ होऊ ❋ कारण कठिन एक सुनु सोऊ ॥१॥
कालहु तव पद नाइहि शीशा ❋ एक विप्र कुल छांड़ि महीशा ॥२॥

तपस्वी बोला–ऐसा ही होगा परंतु एक कारण कठिन है सो वह भी सुन ॥ १ ॥ हे राजन् ! तेरे चरणमें काल भी शिर नवायेगा, परंतु एक ब्राह्मणकुल छोड़कर ॥ २ ॥

तप बल सदाविप्र बरिआरा ❋ तिनके कोप न कोउ रखवारा ॥३॥
जो विप्रन वश करहु नरेशा ❋ तौ तव वश विधि विष्णु महेशा ॥४॥

(क्योंकि) तप बलसे ब्राह्मण सदा बलवान् हैं, उनके कोप करने पर कोई रखनेवाला नहीं ॥३॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मणोंको वशमें करलो तो तुम्हारे वशमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो जायँगे ॥४॥

चल न ब्रह्मकुलसन बरिआई ❁ सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥५॥
विप्र शाप बिनु सुनु महिपाला ❁ तोर नाश नहिं कवनेउ काला ॥६॥

ब्राह्मणकुलसे जबरदस्ती नहीं चल सकती, दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ ॥ ५ ॥ राजन् ! सुन ब्राह्मणोंके शाप विना तेरा किसी समय नाश नहीं होगा ॥ ६ ॥

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू ❁ नाथ न होय मोर अब नासू ॥७॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना ❁ मो कहँ सर्वकाल कल्याना ॥८॥

राजा उसके वचन सुनकर प्रसन्न हुए और बोले–हे नाथ ! अब मेरा नाश नहीं होगा ॥७॥ हे प्रभु कृपानिधान ! आपके प्रसादसे मुझको सब समय कल्याण है ॥ ८ ॥

दोहा–एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि ॥
मिलब हमार भुलाब निज, कहहु तो हमहिं न खोरि ॥ १७१ ॥

ऐसा ही हो, यह कहकर कपटी मुनि कुटिलाईसे फिर बोला कि, हमारा मिलना और अपना बनमें भूल जाना जो किसीसे कहोगे तो हमारा दोष नहीं ॥ १७१ ॥

ताते मैं तोहि बरजेउँ राजा ❁ कहे कथा तव परम अकाजा ॥१॥
छठे श्रवण यह परत कहानी ❁ नाश तुम्हार सत्य मम बानी ॥२॥

इससे राजा ! तुझको बरजता हूँ कि यह कथा जो तू किसीसे कहेगा तो तेरा परम अकाज होगा ॥१॥ छठे कानमें पड़ते ही तेरा नाश हो जायेगा यह हमारी सत्य बात है ॥२॥

यह प्रगटे अथवा द्विज शापा ❁ नाश तोर सुनु भानु प्रतापा ॥३॥
आन उपाय निधन तव नाहीं ❁ जौ हरि हर कोपहिं मनमाहीं ॥४॥

प्रतापभानु ! सुन, यह कहना प्रगट हो या ब्राह्मणके शापसे तेरा नाश होगा ॥ ३ ॥ और किसी भी उपायसे तेरा मरना नहीं होगा चाहे विष्णु शिव भी मनमें क्रोध करें ॥ ४ ॥

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा ❁ द्विज गुरुकोप कहहु को राखा ॥५॥
राखहि गुरु जौ कोप विधाता ❁ गुरु विरोध नहिं कोउ जगत्राता ॥६॥

सत्य है स्वामी ! चरण पकड़ कर राजाने कहा कि ब्राह्मण और गुरुके कोपसे कौन रक्षा कर सकता है ? ॥ ५ ॥ जो विधाता कोप करे, तो गुरु रक्षा कर लेता है, परंतु गुरुके क्रोध करने पर जगत्में कोई रक्षक नहीं ॥ ६ ॥

जौ न चलब हम कहे तुम्हारे ❁ होय नाश नहि शोच हमारे ॥७॥
एकहि डर डरपत मन मोरा ❁ प्रभु महिदेव शाप अति घोरा ॥८॥

जो हम आपके कहने पर चलेंगे और नाश हो जायगा तो हमको फिर शोच नहीं ॥७॥ स्वामी ! एकही डरसे मेरा मन डरता है। ब्राह्मणोंका शाप भयंकर होता है ॥ ८ ॥

दोहा–होहिं विप्र वश कवनि विधि, कहहु कृपा करि सोउ ॥
तुम तजि दीन दयालु निज, हितू न देखउँ कोउ ॥ १७२ ॥

ब्राह्मण वशमें किस प्रकारसे हों सो कृपा करके कहिये। हे दीनदयालु ! आपके अतिरिक्त मैं किसीको अपना हितू नहीं देखता ॥ १७२ ॥

सुनु नृप विविध जतन जगमाहीं * कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं॥१॥
अहै एक अति सुगम उपाई * तहाँ परन्तु एक कठिनाई ॥२॥

मुनि बोला—सुन राजा ! जगत्में अनेक यत्न हैं परन्तु वे कष्ट साध्य हैं अर्थात् उनके सिद्धि करनेमें बड़ा कष्ट होता है इसपर भी सिद्ध हों वा न हों ॥ १ ॥ एक अत्यन्त सहज उपाय है उसमें भी एक कठिनता है ॥ २ ॥

मम आधीन युक्ति नृप सोई * मोर जाब तव नगर न होई ॥३॥
आजु लगे अरु जबते भयउँ * काहूके गृह ग्राम न गयऊँ ॥४॥

राजन् ! वह युक्ति (उपाय) मेरे अधीन है, पर मेरा जाना तेरे नगरमें नहीं होगा ॥३॥ आजतक जबसे हुआ हूँ किसीके घर और गांवमें नहीं गया ॥ ४ ॥

जो न जाब तव होय अकाजू * बिना आइ असमंजस आजू ॥५॥
सुनि महीप बोले मृदु बानी *नाथ निगम असि नीति बखानी॥६॥

जो नहीं जाऊँ तो तुम्हारा काम बिगड़ जायगा, यह आज बड़ी दुविधा आ बनी है ॥ ५ ॥ सुनकर राजा कोमल वाणी बोले—हे नाथ ! शास्त्रमें ऐसी नीति कही है ॥ ६ ॥

बड़े सनेह लघुन पर करहीं *गिरि निज शिरन सदा तृण धरहीं॥७॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू * संतत धरणि धरत शिर रेनू ॥८॥

बड़े मनुष्य छोटोंपर सदा प्रीति रखते हैं; पर्वत अपने शिर सदा तृणको धरते हैं ॥ ७ ॥ समुद्र इतना गहरा है परंतु मस्तक पर फेन बहता है; पृथ्वी शिरपर धूरि धारण करती है ॥ ८ ॥

दोहा—अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपाल ॥
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥ १७३ ॥

ऐसा कहकर राजाने चरण पकड़ लिये (और कहा) स्वामी ! अब मुझपर दयाकर मेरे कारण दुःख सहिये, क्योंकि आप महात्मा और दीनोंपर दया करने वाले हैं ॥ १७३ ॥

जानि नृपहि आपन आधीना * बोला तापस कपट प्रवीना ॥१॥
सत्य कहउँ भूपति सुन तोहीं * जगमहँ नहिं दुर्लभ कछु मोहीं ॥२॥

राजाको अपने आधीन जानकर वह कपटी तपस्वी बोला ॥ १ ॥ सुन राजा ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ जगत्में मुझे कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ २ ॥

अवशि काज मैं करिहउँ तोरा * मन क्रमवचन भक्त तैं मोरा ॥३॥
योग युक्ति तप मन्त्र प्रभाऊ * फलै तबहि जब करिय दुराऊ ॥४॥

तुम्हारा काम निश्चय करूँगा (क्योंकि) तू मन, वचन, कर्मसे मेरा भक्त (दास) है ॥ ३ ॥ योग, युक्ति, तप और मन्त्रका प्रभाव तब ही फलता है जब छिपाया जाय। अथवा जब इन चारोंको छिपाओ तब ही यह फलते हैं ॥ ४ ॥

जो नरेश मैं करहुँ रसोई * तुम परसो मोहि जान न कोई ॥५॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई * सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई ॥६॥

राजन्! जो मैं रसोई करूँ और तुम परसो, किंतु मुझे कोई न जाने ॥ ५ ॥ तो उस अन्नको जो जो भोजन करेगा वह तुम्हारे वशमें होगा अर्थात् तुम्हारी आज्ञा पालन करेगा ॥ ६ ॥

पुनि तिन्हके गृह जेंवइ जोई ❋ तव वश होय भूप सुन सोई ॥७॥
जाय उपाय रचहु तुम एहू ❋ संवत भरि संकल्प करेहू ॥८॥

हे राजा! सुन, फिर उनके भी घर जो भोजन करेगा वह भी तेरे वशमें होगा ॥ ७ ॥ जाकर तुम यही उपाय करो और एक वर्षतक यह संकल्प करो ॥ ८ ॥

दोहा–नित नूतन द्विज सहसशत, वरउ सहित परिवार ॥
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहिं करब जेंवनार ॥ १७४ ॥

नित्य नवीन एक लक्ष ब्राह्मण कुटुम्बसहित न्योता दो और मैं तुम्हारे संकल्पके अर्थ दिनप्रति ज्योंनार करूँगा अर्थात् जबतक संकल्प रहेगा, दिनमें ज्योंनार करूँगा वा संकल्पके दिनतक (एक वर्षतक) ज्योंनार करूँगा। अथवा तुम्हारे संकल्पको पूरा करनेके लिये मैं दिनहीमें ज्योंनार तैयार कर दूँगा ॥ १७४ ॥

इहि विधि भूप कष्ट अति थोरे ❋ होइहहिं सकल विप्र वश तोरे ॥१॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा ❋ तेहि प्रसंग सहजहिं वश देवा ॥२॥

हे राजन्! इस प्रकार बहुत थोड़े कष्टमें ही सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायँगे ॥ १ ॥ ब्राह्मण होम, यज्ञ, सेवा करते हैं इससे देवता उनके वशमें रहते हैं ॥ २ ॥

अउर एक मैं कहउँ लखाऊ ❋ मैं यहि वेष न आउब काऊ ॥३॥
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया ❋ हरि आनब मैं करिनिज माया ॥४॥

और एक बात मैं तुझसे कहता हूँ कि मैं इस वेषसे तुम्हारे पास नहीं आऊँगा ॥ ३ ॥ बलिक राजन्! मैं तुम्हारे पुरोहितको अपनी माया करके हर लाऊँगा ॥ ४ ॥

तपबल तेहिकर आपु समाना ❋ रखिहहुँ इहाँ वर्ष परमाना ॥५॥
मैं धरि तासु वेष सुनु राजा ❋ सब विधि तोर सँवारब काजा ॥६॥

तपके बलसे उसको अपने समान करके यहां एक वर्षतक रखूंगा ॥ ५ ॥ सुन राजा! मैं उसका वेष धरकर सब प्रकार तुम्हारा काम सम्भालूँगा ॥ ६ ॥

गइ निशि बहुत शयन अब कीजे ❋ मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥७॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता ❋ पहुँचैहौं सोवतहि निकेता ॥८॥

अब बहुत रात गयी शयन करो। राजन्! मैं तुमसे तीसरे दिन मिलूँगा ॥ ७ ॥ मैं तपके बलसे तुझको घोड़े समेत सोते ही घर पहुँचा दूँगा ॥ ८ ॥

दोहा–मैं आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेउ तब मोहि ॥
जब एकान्त बुलाइ सब, कथा सुनाऊँ तोहि ॥ १७५ ॥

मैं वही पुरोहितका वेष धारण करके आऊँगा। तब मुझे पहचान लेना; जब मैं एकान्त में बुलाकर सब कथा तुमको सुनाऊँ ॥ १७५ ॥

शयन कीन्ह नृप आयसु मानी ❋ आसन जाय बैठ छल ज्ञानी ॥१॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई ❋ सो किमि सोव शोच अधिकाई ॥२॥

मुनिकी आज्ञा मानकर राजा सो गया और छली आसन पर जा बैठा ॥ १ ॥ राजा तो थका हुआ था, नींद आ गयी; परंतु वह कैसे सोवे ! उसको तो बड़ा शोच हो रहा था कि राक्षस न आया तो क्या करूँगा ? ॥ २ ॥

कालकेतु निशिचर तहँ आवा ❋ जेहि सूकर होइ नृपति भुलावा ॥३॥
परम मित्र तापस नृप केरा ❋ जानै सो अति कपट घनेरा ॥४॥

वहाँ कालकेतु राक्षस आया जिसने शूकर होकर राजाको भुला दिया था ॥ ३ ॥ यह तपस्वी राजाका परम मित्र था और कपट छल बहुत जानता था ॥ ४ ॥

तेहिके शत सुत अरु दश भाई ❋ खल अति अजय देव दुखदाई ॥५॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे ❋ विप्र संत सुर देखि दुखारे ॥६॥

उसके सौ पुत्र दश बड़े भाई थे; जो जीते न जायँ, देवताओंको दुःख दें ॥ ५ ॥ पहले ही राजाने ब्राह्मण, सन्त, देवताओंको दुःखी देखकर युद्धमें उन सबको मार दिया था ॥६॥

तेहि खल पाछिल वैर सँभारा ❋ तापस नृप मिलि मंत्र विचारा ॥७॥
जेहि रिपुक्षय सोइ रचेउ उपाऊ ❋ भावी-वश न जान कछु राऊ ॥८॥

उस दुष्टने पिछला वैर संभाला और तपस्वी राजासे मिलकर विचार किया ॥ ७ ॥ जैसे वैरीका नाश हो वही उपाय रचा और होनहारके वश होकर राजाने कुछ भी नहीं जाना ॥८॥

दोहा-रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु ॥
अजहुँ देत दुख रवि शशिहिं, शिर-अवशेषित राहु ॥ १७६ ॥

तेजस्वी शत्रु जो अकेला भी हो तो उसे छोटा न जाने; दृष्टांत यह है कि राहु यद्यपि शिर मात्र रह गया है तथापि अबतक सूर्य और चन्द्रमाको दुःख देता है ॥ १७६ ॥

तापस नृप निज सखहि निहारी ❋ हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥१॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई ❋ यातुधान बोला सुख पाई ॥२॥

तपस्वी राजाने अपने मित्रको देखा तो प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ ॥१॥ कपटी राजाने अपने मित्रको राजाकी सब कथा सुनायी; यह सुन कालकेतु राक्षस सुख पाकर बोला ॥२॥

अब साधउँ रिपु सुनहु नरेशा ❋ जौ तुम कीन्ह मोर उपदेशा ॥३॥
परिहरि सोच रहहु तुम सोई ❋ विनु औषधहि व्याधि विधि खोई ॥४॥

हे राजन् ! अब मैं शत्रुनाशको सिद्ध कर चुका, जो आपने मेरा कहना माना ॥३॥ आप सब शोच त्याग कर सो रहिये, अब विधाताने औषधके विना ही रोग शांत कर दिया ॥ ४ ॥

कुल समेत रिपु मूल बहाई ❋ चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥५॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी ❋ चला महा कपटी अतिरोषी ॥६॥

कुलसमेत शत्रुका जड़से नाश करके मैं चौथे दिन आकर मिलूँगा ॥५॥ तपस्वी राजाको बहुत प्रकारसे समझा-बुझाकर वह महाकपटी और अति क्रोधी राक्षस चला ॥ ६ ॥

भानु प्रतापहि बाजि समेता ❋ पहुँचायसि सोवतहि निकेता ॥७॥
नृपहि नारि ढिग शयन कराई ❋ हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई ॥८॥

राजा प्रतापभानुको सोते हुए ही घोड़े सहित उसके घरमें पहुँचा दिया ॥ ७ ॥ राजाको रानीके ढिग (निकट) शयन करा दिया और घोड़ा घुड़शालमें सँभाल कर बांध दिया ॥८॥

दोहा-राजाके उपरोहितहिं, हरि लै गयो बहोरि ॥
लै राखेसि गिरि खोहमें, माया करि मति भोरि ॥ १७७ ॥

फिर राजाके पुरोहितको हरकर ले गया और पहाड़की खोहमें मायासे मति भोरी करके रखा। १७७।

आप विरचि उपरोहित रूपा ❀ परा जाय तेहि सेज अनूपा ॥१॥
जागे नृप अनभयउ बिहाना ❀ देखि भवन अति अचरज माना ॥२॥

और आप पुरोहितका रूप धारण कर उसकी सेज पर जा सोया ॥१॥ राजा विना प्रातः-काल ही जागे और अपनेको घरमें देख कर बड़ा आश्चर्य माना ॥ २ ॥

मुनि महिमा मनमहँ अनुमानी ❀ उठे गवँहि जेहि जान न रानी ॥३॥
कानन गयउ वाजि चढ़ि तेही ❀ पुर नर नारि न जानेउ केही ॥४॥

मुनिकी महिमा मनमें विचार कर जानेको उठे; जिसे रानीने नहीं जाना ॥ ३ ॥ उसी घोड़े पर चढ़कर वनको गये, यह बात किसी नारी पुरुषने नहीं जानी जो उस नगरमें रहते थे ॥४॥

गये याम युग भूपति आवा ❀ घर घर उत्सव बाजु बधावा ॥५॥
उपरोहितहि दीख जब राजा ❀ चकित विलोकि सुमिरि सोइ काजा ॥६॥

दो पहर गये राजा आया और घर-घर उत्सव हुआ तथा आनन्दके बाजे बजे ॥ ५ ॥ जब पुरोहितको राजाने देखा तो चकित हो उस कार्यको स्मरण करने लगा ॥ ६ ॥

युग सम नृपहि गये दिन तीनी ❀ कपटी मुनिपद रह मतिलीनी ॥७॥
समय जानि उपरोहित आवा ❀ नृपहिमते सब कहि समुझावा ॥८॥

राजाको तीन दिन युगके समान बीते, कपटी मुनिके चरणोंमें मति लीन थी ॥७॥ समय जानकर पुरोहित आया और राजाको एकांतमें सब सम्मति समझा दी ॥ ८ ॥

दोहा-नृप हरखे पहिचानि गुरु, भ्रमवश रहा न चेत ॥
वरे तुरत शत सहस वर, विप्र कुटुम्ब समेत ॥ १७८ ॥

राजा गुरुको पहचानकर प्रसन्न हुए, किन्तु भ्रमके वश हो गये, कुछ चेत नहीं रहा और एक लक्ष उत्तम ब्राह्मण कुटुम्बसहित तुरंत न्योत दिया ॥ १७८ ॥

उपरोहित जेवनार बनाई ❀ छरस चारि विधि जस श्रुतिगाई ॥१॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई ❀ व्यंजन बहुगनि सकै न कोई ॥२॥

पुरोहितने ज्योनार बनायी, छः रस-कटु १, तिक्त २, अम्ल ३, मधुर ४, कषाय५, लवण ६। चारि विधि-भक्ष्य १, भोज्य २, लेह्य ३, चोष्य ४, जैसा शास्त्रमें विधान है ॥ १ ॥ उसने मायाकी रसोई की और इतने अधिक व्यञ्जन बनाये कि कौन गिन सके ॥ २ ॥

विविध मृगनकर आमिष राँधा ❀ तेहिमहँ विप्र मांस खल साँधा ॥३॥
भोजन कहँ सब विप्र बुलाये ❀ पद पखारि सादर बैठाये ॥४॥

अनेक मृगोंका आमिष (मांस) रांधा और उसमें दुष्टने ब्राह्मणोंका मांस मिला दिया ॥३॥ भोजन करनेके लिये सब ब्राह्मणोंको बुलवाया और चरण धोकर आदरसे बैठाया ॥ ४ ॥

परसन जबहिं लाग महिपाला ❋ भइ अकाशवाणी तेहि काला ॥५॥
विप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू ❋ है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू ॥६॥

जब ही राजा परसने लगा तब ही आकाशवाणी हुई कि ॥५॥ हे ब्राह्मणो ! उठ उठकर घर जाओ, बड़ी हानि है अन्न मत खाओ ॥ ६ ॥

भयउ रसोई भूसुर माँसू ❋ सब द्विज उठे मानि विश्वासू ॥७॥
भूप विकल मति मोह भुलानी ❋ भावी-वश न आव मुखबानी ॥८॥

इस रसोईमें ब्राह्मणोंका मांस है, विश्वास मान ब्राह्मण उठ खड़े हुए ॥ ७ ॥ राजाको ऐसी व्याकुलता हुई कि मोहसे मति भूल गयी और होनहारके वश कुछ भी मुखसे वाणी नहीं आयी ॥ ८ ॥

दोहा--बोले विप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह विचार ॥
जाइ निशाचर होउ नृप, मूढ़ सहित परिवार ॥ १७९ ॥

तब ब्राह्मण क्रोधकर बोले, कुछ विचार नहीं किया, हे मूर्ख राजा ! तू कुटुम्ब सहित राक्षस हो जा ॥ १७९ ॥

क्षत्र-बन्धु तैं विप्र बुलाई ❋ घाले लिये सहित समुदाई ॥१॥
ईश्वर राखा धर्म हमारा ❋ जइहसि तैं समेत परिवारा ॥२॥

हे क्षत्रियाधम ! तूने ब्राह्मणोंके समुदाय (समूह) को बिगाड़नेके लिये बुलाया है ॥१॥ ईश्वरने हमारा धर्म रखा, तू परिवार सहित जायगा अर्थात् नष्ट होगा ॥ २ ॥

संवत मध्य नाश तव होऊ ❋ जलदाता न रहहि कुलकोऊ ॥३॥
नृप सुनि शाप विकल अतित्रासा ❋ भइ बहोरि वर गिरा अकाशा ॥४॥

संवत्के बीचमें तेरा नाश हो जायगा और कुलमें कोई जल देने वाला न रहेगा ॥ ३ ॥ राजा शाप सुनकर दुःखसे अति व्याकुल हुआ, तब फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई ॥ ४ ॥

विप्रहुशाप विचारि न दीन्हा ❋ नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥५॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी ❋ भूप गये जहँ भोजन खानी ॥६॥

ब्राह्मणो ! आपने भी शाप विचार कर नहीं दिया,राजाने कुछ अपराध नहीं किया है ॥५॥ आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण सब चकित हुए और राजा जहां भोजन बनवाया था वहां गया ॥६॥

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा ❋ फिरेउ राउ मन शोच अपारा॥७॥
सब प्रसंग महिसुरन सुनाई ❋ त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ॥८॥

वहाँ न तो भोजन है और न ब्राह्मण रसोइया है, राजा मनमें बड़ा शोच करते हुये रसोई घरसे लौट आये ॥ ७ ॥ और सब प्रसंग ब्राह्मणोंको सुनाकर व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े (तब ब्राह्मण बोले) ॥ ८ ॥

दोहा–भूपति भावी मिटइ नहिं, यदपि न दूषण तोर ॥
किये अन्यथा होय नहिं, विप्र शाप अति घोर ॥ १८० ॥

राजन् ! होनी नहीं मिटती, प्रारब्ध बलवान् है, यद्यपि तेरा कुछ दोष नहीं है, परंतु जो किया है सो नहीं मिटेगा, ब्राह्मणोंका शाप महा कठिन होता है ॥ १८० ॥

अथ क्षेपक

जो करि कपट छलै जग काहू * देइहि ईश अधम गति वाहू ॥१॥
विप्र वचन सुनि नृप अकुलाना * उठिपुनि विनय कीन्ह विधिनाना॥२॥

जो कोई कपटसे किसीको जगत्में छलता है तो ईश्वर उसको नीच गति देता है ॥१॥ ब्राह्मणोंके वचन सुनकर राजा व्याकुल हुआ और उठकर फिर अनेक प्रकारसे विनती की ॥२॥

पुनि पुनि पद गहि कहेउ भुवाला * शाप अनुग्रह कहहु कृपाला ॥३॥
जब तुम होब निशाचर जाई * ब्रह्मवंश तामस तनु पाई ॥४॥

वारंवार चरण पकड़ कर राजाने कहा—कृपालु ! आप कृपा कर यह तो कहिये कि शाप कब दूर होगा ? तब ब्राह्मण बोले ॥ ३ ॥ जब आप जाकर राक्षस होंगे और ब्राह्मण वंशमें तामस शरीर पाकर उत्पन्न होंगे ॥ ४ ॥

अजर अमर अतुलित प्रभुताई * जग विख्यात वीर दोउ भाई ॥५॥
होइहि जबहि पराभव चारी * तब तुम सेउब देव पुरारी ॥६॥

बुढ़ापे और मरण रहित बड़ी प्रभुता युक्त जगत्में दोनों भाई वीरतासे विख्यात होंगे ॥५॥ जब चार स्थानमें पराभव होगा तब जगत्में आप शिवजीका पूजन करना ॥ ६ ॥

शिवप्रसाद वर पाय बहोरी * होइहै सब जग प्रभुता तोरी ॥७॥
मिलहिं तोहि जब सनतकुमारा * तब तुम समुझब शाप हमारा ॥८॥

शिवजीसे फिर वरदान पाकर सब जगत्में आपकी बड़ाई होगी ॥ ७ ॥ जब आपको सनत्कुमार मिलेंगे तब हमारा शाप समझें ॥ ८ ॥

दोहा--तुम पूछब निस्तार निज, सादर सुनहु नरेश ॥
सब परिवार उधार तब, होइहै मुनि उपदेश ॥ १८१ ॥

आप मुनिसे अपना निस्तार पूछेंगे तब उनके उपदेशसे आपका सब परिवार सहित उद्धार होगा ॥ १८१ ॥

(इति क्षेपक)

अस कहि सब महिदेव सिधाये * समाचार पुरलोगन पाये ॥१॥
सोचहिं दूषण दैवहि देहीं * विरचत हंस काक किय जेहीं ॥२॥

ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये तब नगरवासियोंने समाचार पाये ॥ १ ॥ वे सोचने लगे और विधाताको दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते काक कर दिये ॥ २ ॥

उपरोहितहि भवन पहुँचाई * असुर तापसहि खबरि जनाई ॥३॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये * सजि सजि सेन भूप सब आये ॥४॥

पुरोहितको घर पहुँचाकर उस राक्षसने तपस्वीको खबर सुनायी ॥ ३ ॥ उस दुष्टने जहां तहां पत्र भेज दिये और सेना सजाकर सब राजा आ गये ॥ ४ ॥

घेरनि नगर निशान बजाई * विविध भाँति नित होत लराई ॥५॥
जूझे सकल सुभट करि करणी * बंधु समेत परेउ नृप धरणी ॥६॥

बाजे बजा बजाकर नगर घेर लिया, अनेक भाँतिसे नित्य युद्ध होता रहा ॥५॥ सब योद्धा बीरोंकी करनी करके जूझ गये और राजा भी भाई सहित पृथ्वीमें गिरे अर्थात् वीरगतिको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥

सत्यकेतु कुल कोउ न बाँचा * विप्र शाप किमि होय असाँचा ॥७॥
रिपुहि जीति नृप नगर बसाई * निज निज पुर गये जय यश पाई ॥८॥

सत्यकेतुके कुलमें कोई न बचा; ब्राह्मणका शाप कैसे झूठा हो सकता है ॥ ७ ॥ शत्रुको जीत और अपनी ओरसे नगर बसाकर राजा जय यश पाकर अपने घर गये ॥ ८ ॥

दोहा—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होय विधाता बाम ॥
धूरि मेरुसम जनक यम, ताहि व्याल समदाम ॥ १८२ ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भरद्वाज ! सुनिये—जब जिससे विधाता वाम (टेढ़ा) हो जाता है, उसको धूरि पर्वतके समान, माता-पिता यमके समान और रस्सी सर्पके समान गुण करती है। ये सब बातें राजा; कपटी मुनि और निशाचरमें घटती हैं ॥ १८२ ॥

काल पाइ पुनि सुनु सोइ राजा * भयउ निशाचर सहित समाजा ॥१॥
दशशिर ताहि बीस भुजदंडा * रावण नाम बीर बरबंडा ॥२॥

हे मुनि ! सुनिये; वही राजा प्रतापभानु समय पाकर समाज सहित राक्षस हो गया ॥१॥ दश शिर और बीस भुजा वाला 'रावण' नाम बड़ा बांका वीर हुआ ॥ २ ॥

भूप अनुज अरिमर्दन नामा * भयउ सो कुंभकरण बलधामा ॥३॥
सचिव जो रहा धर्मरुचि जासू * भयउ विमात्र बंधु लघु तासू ॥४॥

राजाका छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था वही महाबली कुंभकर्ण हुआ ॥३॥ और जो धर्मरुचि मन्त्री था, वह दूसरी मातासे उत्पन्न हो रावणका भाई हुआ ॥ ४ ॥

नाम विभीषण जेहि जग जाना * विष्णु भक्त विज्ञान निधाना ॥५॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे * भये निशाचर घोर घनेरे ॥६॥

जिसका नाम विभीषण था, यह जगत् जानता है कि वह विष्णुका भक्त और ज्ञानका घर था ॥ ५ ॥ और जो राजाके पुत्र तथा सेवक थे वे सब जाकर घोर राक्षस हुए ॥ ६ ॥

कामरूप खल जिनिस अनेका * कुटिल भयंकर विगत विवेका ॥७॥
कृपारहित हिंसक सब पापी * वरणि न जाय विश्व-परितापी ॥८॥

उन राक्षसोंका इच्छानुसार रूप कि चाहे जैसे शरीर धारण कर लें, खोटे और जिनके दर्शनसे भय लगे, ज्ञानशून्य ॥ ७ ॥ जिनके दया तनिक भी नहीं; हत्या करनेवाले सब पापी संसारके दुःख दाता, जिनकी दुष्टताका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

दोहा—उपजे यदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप ॥
तदपि महीसुर शापवश, भये सकल अघरूप ॥ १८३ ॥

---

१. एक समय विश्रवा जप तप करके अपनी स्त्रीसे कुछ बातें करने लगे, तो उसने प्रसंगवश कहा कि महाराज ! जितने, दिनों तक आपने तप किया, उतने दिनोंमें मेरे दश पुत्र हो जाते । यह सुनकर विश्रवा बोले – "एक पुत्र तुमको ऐसा दूंगा जो दश पुत्रोंके समान बलवान् हो, उसने अंगीकार किया, तब यह रावण जन्मा ।

ऐसे वे यद्यपि पुलस्त्यकुलमें उत्पन्न हुए, जो कि पवित्र पाप रहित सुन्दर है; तो भी ब्राह्मणोंके शापसे (ब्राह्मण शरीर पाकर भी) सब पापरूपी हुए ॥ १८३ ॥

कीन्ह विविध तप तीनिउ भाई * परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥१॥
गयउ निकट तब देखि विधाता * माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता ॥२॥

और तीनों भाइयोंने भाँति-भाँतिसे ऐसी उग्र (कठिन) तपस्याकी जो वर्णन नहीं हो सकती ॥१॥ ब्रह्माजी उनका तप देखकर उनके निकट गये और बोले-वर माँगो, मैं प्रसन्न हूँ ॥ २॥

करि विनती पद गहि दशशीशा * बोलेउ वचन सुनहु जगदीशा ॥३॥
हम काहू के मरहिं न मारे * वानर मनुज जाति दुइ बारे ॥४॥

रावण चरण पकड़ विनय करके बोला-हे जगदीश! सुनिये॥३॥ हम किसीके मारनेसे न मरें एक बन्दर और मनुष्य छोड़ दीजिये, कारण कि इनके मारनेको तो विना ही वर मिले मैं समर्थ हूँ ॥४॥

एवमस्तु तुम बड़ तप कीन्हा * मैं ब्रह्मा मिलि तोहि बर दीन्हा ॥५॥
पुनि प्रभु कुंभकरण पहँ गयऊ * तेहि विलोकि मन विस्मय भयऊ ॥६॥

ब्रह्माजी बोले-'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया, इसी कारण मैंने तुम्हें दर्शन देकर वर दिया ॥५॥ फिर ब्रह्माजी कुम्भकर्णके पास गये और उनको देखकर मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ६ ॥

जौ यह खल नित करब अहारा * होइहि सब उजार संसारा ॥७॥
शारद प्रेरि तासु मति फेरी * माँगेसि नींद मास षट केरी ॥८॥

जो यह दुष्ट नित्य भोजन करेगा तो संसार उजाड़ हो जायेगा ॥ ७ ॥ कुम्भकर्णकी यह इच्छा थी कि छः महीने जागूँ और एक दिन सोऊँ किन्तु ब्रह्माजी उसकी यह इच्छा पूर्ण होनेसे संसारका दुःखी होना जान सरस्वतीको प्रेरणा कर (भेजकर) उसकी मति फेर दी,

---

१. ब्रह्माके पुत्र पुलस्त्यजी हुए । जब वह मेरुपर तप करने गये तो वहां तृणबिंदु ऋषिके आश्रममें तप करने लगे । उस समय अनेक देवता ऋषियों की कन्या आकर कलकल करती थीं, तब ऋषि पुलस्त्यने कहा जो कन्या हमारे संमुख आवेगी वह गर्भवती हो जायगी । इसको सुन फिर कोई कन्या वहां न आती परंतु भूलसे तृणविन्दुकी कन्या उनके सम्मुख आतेही गर्भवती हो गई ! तब तृणबिन्दुने वह कन्या पुलस्त्यजीको दे दी । उससे महाज्ञानी विश्रवा नामक पुत्र जन्मा, भरद्वाज मुनिने उसको अपनी कन्या दे दी । उस कन्यासे वैश्रवण अर्थात् कुबेरजी हुए। कुबेरके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसको पुष्पक विमान देकर निधिपति किया। कुबेरजीने पितासे वृत्तांत कहा और विश्रवाने प्रसन्न होकर लंकापुरी इनके रहनेको दी जो कि राक्षसोंके पातालमें चलेजानेसे खाली पड़ी थी, कुबेरजी उसमें निवास करने लगे । उसी समय सुमाली राक्षस अपनी परम सुन्दरी कन्या कंकसीको लिये विचरता था कि किसी योग्य वरसे इसका विवाह करूं ? उस समय पुष्पक विमानपर बैठे हुए कुबेरको देखकर विचारा कि ऐसा ही पुत्र मेरी कन्याको हो तो अच्छा है । यह विचार कर कन्यासे कहा कि विश्रवा मुनिको वरण कर, फिर पिताकी आज्ञासे वह मुनिके समीप स्थिर हुई । ऋषिने उसके मनका अभिप्राय जानकर कहा तू घोर संध्या समय पुत्रकी इच्छासे आयी है, इससे तेरे राक्षस पुत्र होंगे । कन्याने कहा आपके वीर्यसे भी राक्षस पुत्र होंगे ? तब ऋषि बोले एक महात्मा होगा इसीलिये रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और दूसरीसे विभीषणकी उत्पत्ति हुई ।

२. एक समय रावण अपने पिताके समीप बैठा था, उस समय कुबेरजी आये, पिताने उनका सम्मान किया और निकट बैठाया, किंतु रावणादिकोंको दुष्टतासे उनका वैसा आदर नहीं करते थे, यह देखकर रावण सुमाली दैत्यकी कंकसी अपनी मातासे कहने लगा कि यह कौन है जिसका पिताने बड़ा संमान किया और विमानपर चढ़कर आया । यह सुनकर माता बोली पुत्र यह तेरा भ्राता है, और तपस्या करके देवता हो गया है तेरा जन्म तो वृथा हो है तू आलसी घरमें पड़ा हुआ है, रावणको यह बात लग गयी और कुंभकर्ण, विभीषणको संग लेकर तप करने के लिये चला गया ।

तब कुम्भकर्णने छः महीनेकी नींद और एक दिनका जागना माँगा। ब्रह्माजी बोले–ऐसाही होगा; परंतु जब कोई तुमको असमय जगायेगा तब जान लेना कि अब मृत्यु निकट है ॥८॥

दोहा–गयेउ विभीषण पास तब, कहा पुत्र वर माँग ॥
तेहि मांगेउ भगवन्त पद, कमल अमल अनुराग ॥ १८४ ॥

तब ब्रह्माजी विभीषणके पास गये और कहा कि पुत्र वर मांग, उसने भगवान्के चरण-कमलमें निर्मल प्रीति मांगी ॥ १८४ ॥

तिनहि देइ वर ब्रह्म सिधाये ❋ हर्षित ते अपने गृह आये ॥१॥
मयतनया मन्दोदरि नामा ❋ परम सुन्दरी नारि ललामा ॥२॥

उनको वर देकर ब्रह्माजी चले गये और वे प्रसन्न हो घर आये ॥ १ ॥ मयदानवकी कन्या जिसका नाम मन्दोदरी (सूक्ष्म कटिवाली) जो कि परम सुन्दरी और श्रेष्ठ स्त्री थी ॥ २ ॥

सोइ मय दीन्ह रावणहि आनी ❋ होइहि यातुधानपति जानी ॥३॥
हर्षित भयउ नारि भलि पाई ❋ पुनि दोउ बन्धु बिवाहेसि जाई॥४॥

वही मयदानवने आकर रावणको दी, जो कि राक्षसराज रावणकी रानी होगी ॥ ३ ॥ रावण सुन्दर स्त्री पाकर प्रसन्न हुआ और जाकर दोनों भाइयोंका विवाह किया ॥ ४ ॥

अथ क्षेपक

दोहा–वैरोचनकी धैवती, वज्रज्वाल जेहि नाम ॥
कुम्भकरणको तासु सँग, किये ब्याह सुखधाम ॥ १ ॥

वैरोचनकी धैवती वज्रज्वालाके सङ्ग रावणने प्रसन्न होकर कुम्भकर्णका ब्याह किया ॥ १ ॥

दोहा–शैलूषहि गन्धर्वकी, सरमा सुता सयानि ॥
ब्याह बिभीषणको कियो, ताके सँग सुखमानि ॥ २ ॥

शैलूष नामक गंधर्वकीसरमा[1] नामक कन्याके साथ महासुख मानकर विभीषणका ब्याह कर दिया ॥ २ ॥

इति क्षेपक

गिरि त्रिकूट इक सिंधु मझारी ❋ विधि निर्मित दुर्गम अतिभारी ॥५॥
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा ❋ कनक रचितमणि भवन अपारा॥६॥

एक त्रिकूट पर्वत समुद्रमें ब्रह्माका बनाया हुआ बड़ा दुर्गम गढ़ था; जहां कोई जा न सके ॥ ५ ॥ उसीको मय दानवने फिर सँवारा, जहांके सब घर सुवर्ण मणियोंके जड़े थे ॥ ६ ॥

भोगवती जस अहिकुल वासा ❋ अमरावति जस शक्र निवासा ॥७॥
तिन्हते अधिक रम्य अतिबंका ❋ जगविख्यात नाम तेहि लंका ॥८॥

जैसी सर्पोंके रहनेकी भोगवती नगरी और इन्द्रके रहनेकी जैसी अमरावती ॥ ७ ॥ उससे भी अधिक मनोहर अति बांका गढ़ जगत्में विख्यात जिसका लंका नाम था ॥ ८ ॥

---

१. मानसरोवरके तटपर सरमाका जन्म हुआ, जब वर्षाकाल में सरोवर जब बढ़ने लगा तब वह कन्या रुदन करने लगी। उसे रोती देखकर उसकी माताने कहा – "सरो मा वर्धस्व" सरोवर मत बढ़ इसी कारण उसका नाम 'सरमा' हुआ।

दोहा-खाईं सिंधु गँभीर अति, चारिहुं दिशि फिर आव ॥
कनक कोट मणिखचित दृढ़, वरणि न जाय बनाव ॥ १८५ ॥

जिनके चारों ओर समुद्र बड़ा गम्भीर, सोनेका कोट उससे मणियाँ जड़ी हुई हैं जिनके बनावका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १८५ ॥

दोहा-हरि प्रेरित जेहि कल्प जोइ, यातुधानपति होय ॥
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत वश सोय ॥ १८६ ॥

भगवान्‌की प्रेरणासे जिस कल्पमें जो राक्षसोंका स्वामी हो वही शूरमा, प्रतापी दलसमेत इसमें बसे (यह बात उसके द्वारपर लिखी हुई थी) ॥ १८६ ॥

रहे तहाँ निशिचर भट भारे ❋ ते सब सुरन समर संहारे ॥१॥
अब तहँ रहहिं शक्रके प्रेरे ❋ रक्षक कोटि यक्षपति केरे ॥२॥

पहले वहां जो बड़े-बड़े राक्षस थे उन्हें देवताओंने युद्धमें मार डाला ॥ १ ॥ अब वहां इन्द्रके कहनेसे कुबेरके एक करोड़ यक्ष रहते हैं ॥ २ ॥

दशमुख कबहुँ खबरि असि पाई ❋ सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई ॥३॥
देखि विकट भट बड़ि कटकाई ❋ यक्ष जीव लै गये पराई ॥४॥

रावणने कभी यह खबर पायी तो सेना सजाकर गढ़ जा घेरा (यह सेना सब जहाजमें गयी थी) ॥ ३ ॥ बड़े योद्धा और बड़ी सेना देखकर यक्ष जीव लेकर भाग गये ॥ ४ ॥

फिरि सब नगर दशानन देखा ❋ गयउ शोच सुख भयउ विशेखा॥५॥
सुन्दर सहज अगम अनुमानी ❋ कीन्ह तहाँ रावण रजधानी ॥६॥

रावणने फिर कर सब नगर देखा तो शोच मिट गया और सुख अधिक हुआ ॥५॥ उसे स्वाभाविक सुन्दर और शत्रुओंसे अगम जानकर वहां रावणने अपनी राजधानी बनायी ॥६॥

जेहि जस योग बाँट गृह दीन्हे ❋ सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥७॥
एक बार कुबेर पहँ धावा ❋ पुष्पक यान जीतिलै आवा ॥८॥

जो जिसके योग्य था वह घर उसे बांट दिया और सब राक्षस सुखी किये॥७॥एकबार (अलकापुरीमें) कुबेर पर चढ़ गया और (पूर्व वैरके कारण) पुष्पक विमान युद्ध करके छीन लाया॥८॥

दोहा-कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाय उठाय ॥
मनहुँ तौलि निज बाहुबल, चला बहुत सुखपाय ॥ १८७ ॥

फिर एक समय खेलते ही कैलाश पर्वत जाकर उठा लिया (तब पार्वती घबड़ा कर शिवजीके पास आ बैठीं, उन्हें व्याकुल देखकर शिवजीने पर्वतको दबाया; रावणके हाथ पिच गये और वह व्याकुल होकर रोने लगा, इसके रोनेसे सब लोग घबड़ाये, तबसे इसका नाम 'रावण' हुआ पीछे बहुत विनय करने पर शिवजीने छोड़ दिया) कैलाश उठाकर रावणने मानो अपनी भुजाओंका बल तौल बहुत सुख पाया और चला गया। (पहले उसका नाम दशकंधर था) ॥ १८७ ॥

सुख संपति सुत सेन सहाई ❋ जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥१॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई ❋ जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥२॥

---

१. रावणके आनेकी खबर सुनकर कुबेरने लंका खालीकर दी और कैलासपर जाकर रहे, वहां अलकापुरी बसाया।

सुख, सम्पत्ति, सेना, सहाय, जीत, प्रताप, बल, बुद्धि, बड़ाई ॥ १ ॥ नित नयी सब प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं, जैसे नित्य लाभसे लोभ बढ़ता है ॥ २ ॥

अतिबल कुम्भकरण अस भ्राता ❀ जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जगजाता ॥३॥
करइ पान सोवइ षट मासा ❀ जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥४॥

जिसका कुम्भकर्ण जैसे अत्यन्त बलवान् भाई, जिसके समान कोई योद्धा जगत्में उत्पन्न हुआ ही नहीं ॥ ३ ॥ वह मदिरा पान करके छः महीने सोता था और जागते ही त्रिलोकीमें भय उत्पन्न होता था ॥ ४ ॥

जो प्रतिदिन अहार कर सोई ❀ विश्व वेगि सब चौपट होई ॥५॥
समर धीर नहिं जाय बखाना ❀ तेहिसम अधिक न कोउ बलवाना ॥६॥

जो यह प्रति दिन भोजन करता तो शीघ्र ही सारा संसार चौपट हो जाता ॥५॥ समरमें ऐसा धीरतायुक्त था कि वर्णन नहीं हो सकता, सारांश यह है कि उसके समान कोई बलवान् नहीं था ॥६॥

वारिदनाद जेठ सुत तासू ❀ भटमहँ प्रथम लीक जगजासू ॥७॥
जेहि न होय रण सम्मुख कोई ❀ सुरपुर नितहि परावन होई ॥८॥

उसका बड़ा पुत्र मेघनाथ था; जिसकी संसारमें वीरताकी पहली रेखा है ॥ ७ ॥ जिसके सामने कोई लड़ाईमें होता ही नहीं था और देवलोकमें तो नित्य परावना (भागना) होता था (एक राजाके राज्यसे दूसरे राजमें जा बैठना इसका ही नाम 'परावना' है ॥ ८ ॥

दोहा–कुमुख अकम्पन कुलिशरद, धूम्रकेतु अतिकाय ॥
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥ १८८ ॥

कुमुख, अकंपन, कुलिशरद, धूम्रकेतु, अतिकाय इत्यादि एक-एक जगत्के जीतनेमें समर्थ ऐसे बहुत योद्धा थे ॥ १८८ ॥

कामरूप जानहिं बहु माया ❀ सपनेहुँ जिनके धरम न दाया ॥१॥
दशमुख बैठ सभा एक बारा ❀ देखि अमित आपन परिवारा ॥२॥

सब राक्षस इच्छानुरूप शरीरधारी बड़े मायावी (छली) थे, स्वप्नमें भी जिनके धर्म और दया नहीं थी ॥ १ ॥ रावणने एक समय सभामें बैठकर अपना अगणित कुटुंब देखा ॥ २ ॥

सुत समूह जन परिजन नाती ❀ गनैको पार निशाचर जाती ॥३॥
सेन विलोकि सहज अभिमानी ❀ बोला वचन क्रोध मद सानी ॥४॥

पुत्रोंका समूह, जन कुटुंबी, नाती (पोते) आदि निशाचर-जातिको गिनकर कौन पार पा सकता है ? ॥३॥ वह स्वाभाविक अभिमानी अपनी सेना देखकर क्रोध और अहंकार युक्त वचन बोला कि ॥४॥

सुनहु सकल रजनीचर-यूथा ❀ हमरे वैरी विबुध-बरूथा ॥५॥
ते सन्मुख नहिं करहिं लराई ❀ देखि सकल रिपु जाहिं पराई ॥६॥

हे सम्पूर्ण राक्षसोंके यूथपो ! सुनो–हमारे वैरी देवताओंके समूह हैं ॥ ५ ॥ वे सामने तो लड़ाई करते नहीं बल्कि शत्रुको बलवान् देखकर भाग जाते हैं ॥ ६ ॥

तिनकर मरण एक विधि होई ❀ कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई ॥७॥
द्विज भोजन मख होम सराधा ❀ सब कर जाय करहु तुम बाधा ॥८॥

अब उनका मरण एक प्रकारसे होगा; वह मैं समझाकर कहता हूँ सुनो ॥ ७ ॥ अर्थात् ब्राह्मणोंके भोजन, यज्ञ, होम, श्राद्ध सबमें जाकर तुम बाधा डालो ॥ ८ ॥

दोहा-क्षुधाक्षीण बलहीन सुर, सहजहि मिलिहहिं आय ॥
तब मारिहौं की छांड़िहौं, भली भाँति अपनाय ॥ १८९ ॥

भूखसे क्षीण (व्याकुल) बलहीन देवता सहजमें ही आ मिलेंगे तब उनको अच्छे प्रकार अपनाकर मारूंगा या छोड़ दूंगा ॥ १८९ ॥

मेघनाद-कहँ पुनि हँकरावा ❋ दीन्ह सीख बल वैर बढ़ावा ॥१॥
जे सुर समर धीर बलवाना ❋ जिनके लरिबेको अभिमाना ॥२॥

फिर मेघनादको बुलाया और बल पूर्वक वैर बढ़ानेकी शिक्षा दी ॥ १ ॥ जो देवता युद्धमें धीर बलवान् हैं और जिनके (चत्तमें) लड़नेका अभिमान है ॥ २ ॥

तिनहिं जीतिरण आनेसि बाँधी ❋ उठि सुत पितु अनुशासन साधी ॥३॥
इहि विधि सबहीं आज्ञा दीन्हीं ❋ आपुन चलेउ गदाकर लीन्हीं ॥४॥

हे पुत्र ! उनको जीतकर बाँध लाओ, यह सुन पुत्रने उठकर पिताकी आज्ञाका पालन किया ॥३॥ इस प्रकार सबको ही आज्ञा दी और आप भी हाथमें गदा लेकर चला ॥ ४ ॥

चलत दशानन डोलति अवनी ❋ गर्जत गर्भ स्रवत सुर-रवनी ॥५॥
रावण आवत सुनेउ सकोहा ❋ देवन तके मेरु गिरि खोहा ॥६॥

रावणके चलनेमें पृथ्वी डोलती है और गर्जना सुनकर देवताओंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं॥५॥ रावणको क्रोध किये आता हुआ सुनकर देवताओंने सुमेरु पर्वतकी खोह (कंदरा) ताकी॥६॥

दिक्पालनके लोक सिधाये ❋ सूने सकल दशानन पाये ॥७॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी ❋ देइ देवतन गारि प्रचारी ॥८॥

जब रावण दिक्पालोंके लोकको गया और वह सब सूना पाया ॥ ७ ॥ तो वारंवार बड़ा सिंहनाद करते देवताओंको ललकार कर गारी देने लगा ॥ ८ ॥

रण-मदमत्त फिरै जग धावा ❋ प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ॥९॥

रणके मद (घमण्ड) से मतवाला हो जगत्में अपने समान योद्धा (लड़नेके लिये) खोजता फिरता है परन्तु कहीं मिलता नहीं ॥ ९ ॥

अथ क्षेपक

दोहा-सप्त द्वीप नवखण्ड लगि, सप्त पताल अकास ॥
कंपमान धरणी धँसत, सरितपतिनमनत्रास ॥ १९० ॥

सप्तद्वीप, नवखण्ड, आकाश, सातों पाताल तथा पृथ्वी (नीचेको) धसकने लगी, सब काँपने लगे और समुद्रोंके मनमें घबराहट हो गयी ॥ १९० ॥

नारद मिले कहेसि मुसुकाई ❋ देव कहां मुनि देहु दिखाई ॥१॥

---

१. दिक्पाल ये हैं-इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, मरुत, कुबेर, ईशान, क्रमसे पूर्वादि दिशाओंके स्वामी हैं।
२. जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर, यह सात द्वीप हैं।
३. इलावृत, रम्यक्, हिरण्मय, कुरु, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष ये नौ वर्ष वा खण्ड कहलाते हैं।
४. तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल ये सात पाताल हैं।

नारदजी कहीं मार्गमें रावणको मिले तो पूछने लगा हे मुनि ! देवता कहां हैं दिखा दो ॥ १ ॥

सुनत अनख नारदहि न भावा * श्वेतद्वीप तेहि तुरत पठावा ॥२॥
सागर उतरि पार सो गयऊ * नारिवृन्द तहँ देखत भयऊ ॥३॥

यह बात सुनकर नारदजीको अच्छी नहीं लगी और उन्होंने अनखाय कर तुरन्त रावणको श्वेतद्वीपमें भेज दिया ॥२॥ वह समुद्र उतर कर पार गया और वहां बहुतसी स्त्रियाँ देखी॥३॥

तिनसन कहा पतिनपहँ जाहू * कहौ कि आव निशाचरनाहू ॥४॥
तब मैं तिनहिं जीत संग्रामा * लै जैहौं तुमको निजधामा ॥५॥

उसने कहा तुम अपने पतियोंके पास जाओ और कहो राक्षसोंका राजा आया है ॥४॥ तब मैं उनको संग्राममें जीतकर तुम्हें अपने स्थानको ले जाऊँगा ॥ ५ ॥

सुनत वचन एक जठर रिशानी * धाय चरण गहि गगन उड़ानी ॥६॥
गई दूरि धरि धरि झकझोरा * डारा सिंधु मध्य अति जोरा ॥७॥

यह वचन सुनकर एक बूढ़ीने बड़ा क्रोध किया और रावणका चरण पकड़ कर आकाशको उड़ गयी ॥ ६ ॥ दूरतक ले गयी और पकड़-पकड़ कर अधिक झटके दिये, फिर बड़े जोरसे समुद्रमें डाल दिया ॥ ७ ॥

दोहा-गयो पताल अचेत होइ, मरा न विप्र प्रसाद ॥
सावधान उठि गर्जे पुनि, हिये न हर्ष विषाद ॥ १९१ ॥

तब रावण अचेत होकर पातालको चला गया; परन्तु ब्राह्मणके वरसे मरा नहीं और फिर सावधान हो उठकर गर्जा, उसके मनमें दुःख और प्रसन्नता कुछ भी नहीं हुई ॥ १९१ ॥

जीतेसि नाग नगर सब झारी * गयो बहुरि बलिलोक सुरारी ॥१॥
वैरोचन-सुत आदर दयऊ * कुशल बूझि तब बोलत भयऊ ॥२॥

फिर रावण सम्पूर्ण नागोंके नगर जीतकर राजा बलिके नगरको गया ॥ १ ॥ वैरोचनके पुत्र राजा बलिने बड़ा आदर किया और कुशल पूछी, तब रावणने कहा ॥ २ ॥

तुमहू निज शत्रुहिं गहि लीजै *चलि महिलोक राज्य अब कीजै॥३॥
कह बलि कनककशिपुके मंडन *पहिरि लेउ तुम सुख दुखखंडन ॥४॥

अब तुम भी चलकर अपने शत्रुको पकड़ लो और इस पृथ्वी पर राज्य करो ॥ ३ ॥ राजा बलि बोले-(जीतना पीछे) पहले हमारे पितामहके पहरनेके यह आभूषण तो उठा लो और इनको तुम सुखपूर्वक पहन लो तो सब दुःख दूर हो जायँगे ॥ ४ ॥

लाग उठावन उठा न कोई * याही पौरुष ते जय होई ॥५॥
जिन भूषण यह अंगन धारे * ते भट गये इक क्षणमें मारे ॥६॥

यह सुनकर रावण बल करके उठाने लगा परन्तु उठानेको समर्थ नहीं हुआ, तब बलि बोला-बस, इसी, पुरुषार्थसे जयकी इच्छा करते हो ? ॥ ५ ॥ (अरे मूर्ख !) जिन्होंने यह आभूषण अपने शरीरमें धारण किये थे वे भी क्षणमें मारे गये तो तू क्या है ॥ ६ ॥

तेहि ते भवन जाहु लै प्राना * चला तुरत मनमाहिं लजाना ॥७॥
वामन रावन आवत जाना * किये देवऋषिसन अभिमाना ॥८॥

इससे तुम प्राणोंको लेकर घर चले जाओ, तब रावण लजाकर तुरंत चल खड़ा हुआ ॥ ७ ॥ वामन भगवान्‌ने जब रावणको आता हुआ देखा तो मनमें विचारा कि नारदजीसे अभिमानके वचन कहकर आ रहा है ॥ ८ ॥

खेलत रहे नगर शिशु नाना * निजबल तिनहिं दीन भगवाना ॥९॥
धाइ धरा तिन पुर लै आये * नगर नारि नर देखन धाये ॥१०॥

उसी स्थानमें कुछ थोड़ेसे नगरके बालक खेल रहे थे, भगवान्‌ने उनको अपना बल दे दिया ॥ ९ ॥ उन्होंने रावणको दौड़कर पकड़ा और नगरमें ले आये, जिसका कौतुक नगरके सब नर नारी देखनेको आये ॥ १० ॥

बीस बाहु दश कंधर भाई * विधि यह गढ़नि कहांकी आई॥११॥
राखिन्हि बांधि खिजावहिं भारी * नाम न कहै सहै वरु मारी ॥१२॥

हे विधाता ! जिसके बीस भुजा और दश शीश हैं यह गढ़न कहांकी आयी ? ॥ ११ ॥ बांध रखा और अनेक प्रकारसे खिजाने लगे किन्तु नाम नहीं कहता और मार सहता है॥१२॥

वामन दीख बहुत सकुचाना * तब छुड़ाय दिय कृपानिधाना ॥१३॥
चला तुरंत निशाचर नाहा * लाज शंक नहिं कछु मनमाहा ॥१४॥

वामनजीको देखकर बहुत लज्जा हुई। तब कृपानिधान भगवान्‌ने छुड़ा दिया ॥ १३ ॥ तुरंत रावण वहांसे चला मनमें कुछ लाज और शंका न आयी ॥ १४ ॥

दोहा-अति निर्लज्ज दयारहित-हिंसापर अति प्रीति ॥
रामविमुख दशकंठ शठ, तापर चाहत जीति ॥ १९२ ॥

दया और लज्जा रहित जिसकी जीवोंके मारनेमें अति प्रीति है, रामसे विमुख होकर मूर्ख रावण जीत चाहता है तो कैसे मिल सकती है ॥ १९२ ॥

दोहा-भरद्वाज सुनु जाहि जब, होत विधाता वाम ॥
मणिहु कांच हुइ जात तब, लहे न कौड़ी दाम ॥ १९३ ॥

हे भरद्वाजजी ! सुनो, जब जिसको विधाता टेढ़ा हो जाता है तब मणि भी उसे कांचके सदृश हो जाती है, जिसका दाम एक कौड़ी भी नहीं मिलती ॥ १९३ ॥

जहँ कहुँ विप्र देव द्विज पावै * दण्ड लेइ बहु त्रास दिखावै ॥१॥
इहि आचरण करै दिनराती * महामलिन मन खल उतपाती ॥२॥

जहां कहीं देवता, ब्राह्मणको फिरता देखे, दंड ले और बहुत दुःख दिखावे ॥ १ ॥ इसी आचरणसे यह महामलिन दुष्ट उत्पाती दिन रात घूमता फिरता था ॥ २ ॥

बहुरि तुरत पंपापुर आवा * बालिनाम कपिपति जेहि ठावा ॥३॥
अवलोकेसि तेहि सरवर शोभा * जेहि लखि महामुनिन मन लोभा॥४॥

फिरते-फिरते तुरंत पम्पासरोवरके किनारे आया, जहां वालि नामक बन्दरोंका राजा था और इसी सरोवरके नामसे इस नगरीका नाम पंपापुर था ॥ ३ ॥ उस सरोवरकी सुन्दर शोभा निहारने लगा जिसे देखकर बड़े मुनियोंका भी मन लुभा जाता था ॥ ४ ॥

तहाँ कपीश करै निज ध्याना ❋ दशकंधरहि देखि मुसुकाना ॥५॥
जाय ठाढ़ तहँ भा रजनीशा ❋ ठोकि बाहु गर्जित भुजबीसा ॥६॥

वहां वालि अपना ध्यान करता था, रावणको देखकर मुसकाया ॥ ५ ॥ रावण वहां जाकर खड़ा हुआ और बाहें ठोक कर गर्जने लगा ॥ ६ ॥

तब रावण बोला करि क्रोधा ❋ वकध्यानी कपिशठ सुनु बोधा ॥७॥
नाम तोर सुनि आयउँ धाई ❋ रे कपि युद्ध छांड़ि कदराई ॥८॥

तब रावण क्रोधकर बोला अरे बगलाका सा ध्यान करने वाला मूर्ख कपि ! सुन ॥ ७ ॥ मैं तेरा नाम सुनकर दौड़के आया हूँ, रे बन्दर ! भय छोड़ मुझसे युद्ध कर ॥ ८ ॥

दोहा–मोहिं जीते विनु समर महँ, वृथा ध्यान तव कीश ॥
❋ कटकटाय कह रजनिचर, रदन तीन सौ बीस ॥ १९४ ॥

हे वालि ! मुझसे युद्धमें विना जीते तुम्हारा ध्यान करना वृथा है, यह बात रावणने तीनसौ बीस दांतोंको कटकटा कर कही ॥ १९४ ॥

तब वाली बोला मुसुकाई ❋ बल तुम्हार ऐसे ही भाई ॥१॥
रवि अंजलि मैं देउँ सप्रीती ❋ ठाढ़ रहो मोहिं जायहु जीती ॥२॥

तब वालि हँसकर बोला–भाई तुम्हारा बल ऐसा ही है ॥ १ ॥ अच्छा, प्रीतिपूर्वक सूर्यको अर्घ्य दे लूं तो तुम मुझको जीतकर जाना (इतने समय तक खड़े रहो) ॥ २ ॥

बाली तब मनमाहिं विचारा ❋ शिव वर दीन्ह मरै नहिं मारा ॥३॥
दशकंधर घर जाहु विचारी ❋अजय तुम्हारि सुनी विधि चारी॥४॥

फिर वालिने अपने मनमें विचारा कि इसे शिवजीने वर दिया है, मारनेसे तो मरेगा नहीं ॥ ३ ॥ (वालिने कहा) रावण ! घर जाओ; हमने तुम्हारी चार प्रकारसे हार सुनी है ॥४॥

दशकंधरहि बहुत समुझावा ❋ कौनिहुँ भाँति बोध नहि आवा ॥५॥
तब सकोप उठ झपटि कपीशा ❋ दृढ़ गहि कांख दाब दशशीशा ॥६॥

वालिने रावणको बहुत समझाया परंतु किसी प्रकारसे उसकी समझमें नहीं आया ॥ ५ ॥ तो वालि क्रोधित हो झपट उठा और रावणको बलपूर्वक कांखमें दबा लिया ॥ ६ ॥

अंजलि दीन्ह रविहि सन्मानी ❋ अँचयेउ सप्त उदधिकर पानी ॥७॥
जपेउ नाम शंकर मन बानी ❋ तेहि क्षण संध्यावंदि सिरानी ॥८॥

सूर्यको आदरसे अर्घ्य दिया और सातों समुद्रोंके तटपर सन्ध्या की (वाली पांच घड़ीमें समुद्रके तटपर सन्ध्या कर आता था और इतनेही देर रावण कांखमें रहा, छः महीने से कांखसे छोड़नेकी कथा किसी ग्रंथमें नहीं देखी जाती, वालमीकिजीने पांच घड़ी लिखी है) ॥ ७ ॥ शिवजीके मन, वचन तथा कर्मसे नाम जपे और सन्ध्यावंदन समाप्त किया ॥ ८ ॥

दोहा-आवा घरहि कपीश तब, कांख रहा लंकेश ॥
इहि विधि बीते माष षट, पावा बहुत कलेश ॥ १९५ ॥

तब सुग्रीवका भ्राता वालि घर आया, रावण कांखमें दबा रहा इस प्रकार छः महीने बीत गये और बहुत क्लेश पाया (दिनमें वालि कांखमें दबा लेता था रातको बांध रखता था)॥१९५॥

नित कलेश-बस करै उपाई * तहँ न चलै कछु आतुरताई ॥१॥
बहु प्रस्वेद कखरी महँ जामा * अधिक कुवास कीन्ह तहँ धामा ॥२॥

नित्य क्लेशवश होकर निकलनेके उपाय करता है परंतु वहां कुछ वश नहीं चलता था ॥ १ ॥ कांखमें बहुत पसीना जम गया और अत्यन्त दुर्गंध हो गयी ॥ २ ॥

कलमलाइ रिसि दशनन काटा * कचकर जीव मनहुँ भ्रम चाटा ॥३॥
एक दिवस रवि अंजलि साजा * कांखते निकरि दशानन भाजा ॥४॥

क्रोध करके दांतोंसे काटा, तब वालिने जाना कि बालोंमें कीड़े (जूँ) हो गये ॥ ३ ॥ एक दिन वालि सूर्यको अर्घ्य दे रहा था कि कांखसे निकल कर रावण भागा ॥ ४ ॥

तब पुनि धरि कपीश सो बाँधा * लै आयो अंगदके साँधा ॥५॥
बीस भुजा दशशीश सुधारा * चरण दोउ पुनि पुनि तेहि मारा ॥६॥

तब फिर वालिने उसे बांध लिया और अङ्गदको खेलनेको ले आया ॥ ५ ॥ बीस भुजा और दश शिर देखकर अङ्गदने बारंबार लातें मारीं ॥ ६ ॥

धरि समेटि झूमरि सम कीन्हा * बाँधि सेजपर शोभा दीन्हा ॥७॥
अंगद खेलि लात शिर मारा * किलकिलाय किलकै किलकारा ॥८॥

वालिने रावणको गोलाकार बांध सेजपर डाल दिया ॥ ७ ॥ अङ्गदने खेलते हुए शिरमें लातें मारी और किलकारी मारने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-तारा चीन्हेउ रावणहिं, तेहि क्षण दीन्ह छुड़ाय ॥
जाहु तुरत लंकेश गृह, बहुरि धरहिं कपिराय ॥ १९६ ॥

ताराने रावणको पहिचानते ही छुड़ा दिया और कहा कि रावण ! तुम घरको शीघ्र जाओ नहीं तो कपिराय फिर पकड़ लेंगे ॥ १९६ ॥

पुनि रावण आवा तेहि ठाँई * सहसबाहु जहँ रास बनाई ॥१॥
जल क्रीडा करतीं सब नारी * विविध भाँति शोभा अति भारी ॥२॥

फिर रावण वहां आया जहां सहस्रबाहुने रास बनाया था ॥ १ ॥ सब स्त्रियाँ जलक्रीड़ा कर रही थीं; जिनकी अनेकों प्रकारकी बड़ी शोभा थी ॥ २ ॥

पास रास मण्डल जहँ रेवा * सुर नर नाग करहिं तहँ सेवा ॥३॥
जाय दीख रावण सुख नाना * देखि हृदय अतिशय दुखमाना ॥४॥

रेवा नदीके कूलमें रास मण्डल हुआ था, जहां श्रेष्ठ देवता मनुष्य सेवा करते थे ॥ ३ ॥ रावणने वहां जाकर-भांति भांतिके सुखको देखकर मनमें अत्यन्त दुःख माना ॥ ४ ॥

तहां शंभु करमंदिर सोहा * जेहि लखि महामुनिन मन मोहा ॥५॥
तुलसी कमलपत्र तहँ आना * विल्वपत्र अरु पुष्प प्रमाना ॥६॥

वहां शिवजीका शोभायमान मन्दिर था; जिनको देखकर महामुनिका मन मोहित होता था ॥ ५ ॥ तुलसीपत्र, कमलपत्र, बिल्वपत्र पुष्पादिक सब सामग्री विद्यमान थीं ॥ ६ ॥

जाकर जल क्षोभेउ दशशीशा * पढ़ेउ मन्त्र सुमिरे जगदीशा ॥७॥
निर्लज निशंक गयो पुनि तहवाँ * कर जलकेलि सहजभुज जहवाँ ॥८॥

रावणने जाकर जल क्षोभित किया अर्थात् रोक लिया शिवजीका मन्त्र पढ़कर स्मरण किया॥७॥यह निर्लज्ज निश्शंक उस स्थान पर गया जहां सहस्रबाहु जलक्रीडा करता था॥८॥

दोहा-क्षोभेउ जल भुजबीस बल, बूड़न लगी समाज ॥
सहसबाहु अतिक्रोध मन, मोहि सम आन को आज॥ १९७ ॥

बीसों भुजाओंके बलसे रावणने जलका प्रवाह रोक लिया, तो समाज डूबने लगी, सहस्र बाहुने बड़ा क्रोध किया कि मेरे समान आज दूसरा कौन है? ॥ १९७ ॥

जाय दीख तहँ रावण ठाढ़ा * जासु विपुल भुजबल जल बाढ़ा ॥१॥
धावा प्रबल महाबल भारी * लंकेश्वरको धरेसि प्रचारी ॥२॥

उठकर देखा तो रावण खड़ा है, जिसकी भुजाओंके बलसे जल बढ़ गया है ॥ १ ॥ वह महाबली सहस्रबाहु दौड़ा और ललकार कर पकड़ लिया ॥ २ ॥

निरखि तियन आचरज विशाला * बांधि राख कुछ दिन हयशाला ॥३॥
लज्जित दुष्ट मष्ट करि रहई * रिस उर मारि कष्ट बहु सहई ॥४॥

यह देखकर स्त्रियोंको बड़ा अचम्भा हुआ; कुछ दिन घुड़सालमें बांध रखा ॥ ३ ॥ यह दुष्ट लज्जित हो चुप रहा क्रोधको मनमें मारकर अत्यन्त कष्ट सहन करता रहा ॥ ४ ॥

सकल आय देखहिं नर नारी * मारहिं लात हँसैं दै तारी ॥५॥
नाम न कहे रहे सकुचाना * बहुविधि पूछे नृपति सुजाना ॥६॥

सब नर-नारी आकर देखते और लात मार ताली बजाकर हँसते हैं ॥ ५ ॥ चतुर राजाने अनेक प्रकारसे पूछा पर नाम नहीं बताया और सकुचा कर रहता है ॥ ६ ॥

नृत्य करैं रम्भादिक नारी * दशो माथ दश दीपक बारी ॥७॥
मुनि पुलस्त्य तब जाय छुड़ावा * पुनि नल शाप आइ तेहि पावा ॥८॥

रंभादिक नारी उसके दशों माथोंपर दशदीपक बार कर नृत्य करती हैं ॥ ७ ॥ तब पुलस्त्य मुनिजीने जाकर छुड़ाया, फिर आकर नलसे शाप पाया ॥ ८ ॥

दोहा-मारग जातहि दीख अति, अनुपम सुन्दर नारि ॥
चन्दन पुष्प रु पत्रकर, पूजन चली पुरारि ॥ १९८ ॥

मार्गमें जाते हुए रावणने एक अनुपम अति सुन्दरी स्त्री देखी कि चंदन, फूल, पत्र; हाथमें लिये शिवजीको पूजने चली है ॥ १९८ ॥

देखि उर्वशी मन सकुचानी * तब रावण बोला मृदु बानी ॥१॥
को तुम नारि गमन कहँ कीन्हा * लज्जावश तेहि उतर न दीन्हा ॥२॥

उर्वशी दशाननको देख कर मनमें सकुचाई, तब रावण कोमल वाणी बोला ॥ १ ॥ तुम किसकी स्त्री हो ? कहां जाती हो ? उसने लज्जाके वश होकर उत्तर नहीं दिया ॥ २ ॥

मन मदमत्त विचार न करऊ * धनपति पुत्र बधू कर धरऊ ॥३॥
चीन्ह ताहि अति शंका आई * घाटि कर्म कीन्हे पछिताई ॥४॥

रावण ऐसा मतवाला हो गया था कि विचार नहीं किया और कुबेरके पुत्रकी बहूका हाथ पकड़ा (यद्यपि अप्सरा है तथापि उस दिन नलकूबर के निकट जाती थी,इससे उसकी स्त्री कहलायी)॥३॥फिर उसे पहचान बड़ी शङ्का हुई कि बुरा कर्म किया यह कह बहुत पछताया॥४॥

मन पछिताय शोच उर भयऊ * लंकेश्वर लंकामहँ गयऊ ॥५॥
विकल उर्वशी अलकहि आई * नलकूबर सन बात जनाई ॥६॥

मनमें पछताया और बड़ा शोचकर लंकेश्वर रावण लंकाको गया॥५॥उर्वशी व्याकुल होकर कुबेरकी नगरी अलकापुरीमें आयी और नलकूबरको जो कुबेरके पुत्र हैं सब बात सुनाई॥६॥

दीन्ह शाप तिन्ह क्रोध अपारा * रावणवंश होय क्षय कारा ॥७॥
आयो शाप लंकमें धाई * दशकन्धर बैठा जेहि ठाँई ॥८॥

नलकूबरने अपार क्रोध कर शाप दिया, कि रावणका वंश क्षय हो जाय ॥ ७ ॥ शाप मूर्ति धारण कर लंकामें जहां रावण बैठा था वहां आया ॥ ८ ॥

आगे आय ठाढ़ भा शापा * निरखि दशानन अति भय कांपा॥९॥

जब शाप आकर सामने खड़ा हुआ तो रावण देखकर अत्यन्त भयसे कांप गया ॥९॥

दोहा–शापहि अंगीकार करि, मन महँ कीन्ह विचार ॥
दण्ड ऋषिन्हते लीन्ह नहिं, रोषेउ लंकभुवार ॥ १९९ ॥

फिर शापको अंगीकार कर रावणने मनमें विचारा कि ऋषियोंसे दंड नहीं लिया है, यह विचार क्रोधित हो ॥ १९९ ॥

दूत चार पठये ऋषि आश्रम * निरखि बिसरि गे मुनि अध्यातम॥१॥
तिनसन तब पूछहि मुनि हाला * कहहु कुशल लंकेश भुवाला ॥२॥

चार दूत ऋषियोंके आश्रममें भेजे, जिनको देखते ही मुनि अपनी अध्यात्म विद्या भूल गये ॥ १ ॥ तब उनसे मुनि पूछने लगे कि कहो रावण कुशलपूर्वक है ॥ २ ॥

कुशल तासु यह सुनहु मुनीशा * कर तुमसन चाहत दशशीशा ॥३॥
सुनि सो वचन महाभय पाई * करहिं विचार विरति बिसराई ॥४॥

दूत बोले–हे मुनीश्वरो ! अब यह कुशल है कि तुम सुनो,रावण तुमसे भी कर लेनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥ यह वचन सुन महाभय पाय वैराग्य विसार ऋषि विचार करने लगे ॥४॥

जेहि दरबार नीति नहिं भाई * खल मंडली जुरी तहँ आई ॥५॥
कछुबिन दिये नहीं गति आछी * घट भरि रुधिर दिये तनु पाछी॥६॥

भाई ! जिस दरबारमें नीति नहीं है और खलमण्डली जुरी है ॥५॥ वहां कुछ विना दिये बनेगी नहीं, इस कारण शरीरसे रुधिर निकाल कर एक घड़ा भर दिया ॥ ६ ॥

दूतन सौंपि कहा मुनि ज्ञानी * भूपहिं कहेउ जाय यह बानी ॥७॥
दूतोंको सौंपकर ज्ञानी मुनियोंने कोमलवाणीसे कहा कि रावणको यह घड़ा देकर कहना ॥७॥

दोहा-घट उघरत क्षय होइहैं, सहित सकल परिवार ॥
दूत तुरत घट ले गये, लंकापति दरबार ॥ २०० ॥

घट उघड़ते ही परिवार सहित तुम्हारा नाश हो जायगा, दूत तुरन्त रावणके दरबारको घट ले गये ॥ २०० ॥

रावण घट लखि परम हुलासा * तब दूतन मुनि वचन प्रकाशा ॥१॥
सुनि मुनि-शाप उपजा उरदाहू * बोला घट लै उत्तर जाहू ॥२॥
रावण घड़ेको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, तब दूतोंने कहा महाराज ! यह घट उघड़ते ही आपका वंश न रहेगा ॥ १ ॥ मुनियोंका शाप सुनके मनमें दुःखी हो बोला कि यह घट लेकर उत्तर दिशामें जाओ ॥ २ ॥

यत्न समेत धरनि धरि एहू * जान न पाव बात यह केहू ॥३॥
शम्भु-सभा श्रुतिवाद-मँझारा * प्रथमै रहा जनकसन हारा ॥४॥
यत्न पूर्वक पृथ्वीके नीचे दाब देना, जिससे यह बात कोई न जाने (तुम जनकराजके नगरके निकट गाड़ना, रावणने यह विचारा कि जिस राज्यमें यह उघरेगा उसीका नाश होगा) ॥ ३ ॥ शिवजीकी सभामें वेदान्त विचारमें रावण जनकजी से पहले हार गया था ॥ ४ ॥

तेहि रिसते तहँ कुम्भ पठावा * दूतनसों सब मर्म बुझावा ॥५॥
लै घट जनक नगर ते गये * गाड़त क्षेत्र-मध्य तहँ भये ॥६॥
उसी क्रोध से वहां घड़ा भिजवाया और दूतोंसे सब भेद कहकर समझा दिया ॥ ५ ॥ वे दूत घड़ा लेकर जनकके नगरमें गये और उसको एक खेतमें गाड़ दिया ॥ ६ ॥

हरि इच्छा तहँ पर्‍यो दुकाला * बिनजल भै सब जीव विहाला ॥७॥
जनक यज्ञ रचना तहँ ठयऊ * चामीकर हल कर्षत भयऊ ॥८॥
भगवत्की इच्छासे वहां एक समय दुर्भिक्ष पड़ा और विना जलके सब जीव बेहाल हुए ॥७॥ जनकजीने वहां वृष्टि होनेके लिये यज्ञ किया और सुवर्णका हल अपने हाथसे चलाया ॥८॥

दोहा-भूमि विदारण होत ही, जग मंगल-दातार ॥
प्रगट्यो सिंहासन सुभग, अद्भुत तेज अपार ॥ २०१ ॥

पृथ्वी विदीर्ण होतेही जगत्को आनन्ददायक सुन्दर सिंहासन प्रगट हुआ, जिसका अपार अद्भुत तेज था ॥ २०१ ॥

दोहा-चारि सखी चारों तरफ, लीन्हे मुरछल हाथ ॥
मध्य विराजति भूमिजा, पावन जेहि गुणगाथ ॥ २०२ ॥

चार सखी चारों तरफ मुरछल हाथमें लिये विराजमान हो रही थीं, मध्यमें भूमिजा (भूमिपुत्री) शोभायमान थीं, जिसके गुणोंकी कथा पवित्र है ॥ २०२ ॥

देखि विदेह विनय तब ठानी * भई तुरत कन्या सुखदानी ॥१॥
सखिनसहित सिंहासन सोई * अन्तर भयो चकित सब कोई ॥२॥

तब यह देखकर जनकजीने विनती की और भूमिजा तुरत सुखदायक कन्या हो गयी॥१॥ फिर वह सिंहासन सखियों सहित अन्तर्द्धान हो गया और सब कोई चकित हो गये ॥ २ ॥

रोदन सुनत सुनैना रानी ❋ लीन्ह उठाय गोद सुखमानी ॥३॥
नाम जानकी धरयो पुनीता ❋ नारद आइ कह्यो तब सीता ॥४॥

उसका रोना सुनकर सुनैना रानीने सुख मान गोदमें उठा लिया ॥ ३ ॥ अतिपवित्र जानकी नाम रखा और नारदजीने आकर सीता[1] कहा ॥ ४ ॥

सकल लोकपति प्रभु सुखराशी ❋सो मिलि हैं वर नित अविनाशी॥५॥
जनकसुता नित बाढ़ति कैसे ❋ शुल्ल पक्षकर चन्दा जैसे ॥६॥

और नारदजी बोले-जो सब संसारके पति सुखकी राशि अविनाशी नित्यस्वरूप हैं वे इसको वर मिलेंगे । (यह कहकर नारदजी चले गये) ॥ ५ ॥ और जानकी शुक्लपक्षके चन्द्रमाके के समान नित्य प्रति बढ़ने लगी ॥ ६ ॥

बाल वृद्ध यौवन नर नारी ❋ लागहि सबै प्राणते प्यारी ॥७॥
पुनि नृप निपुण पढ़न बैठाई ❋ अचिर काल सब विद्या पाई ॥८॥

जो स्त्री, पुरुष, बालक, बुड्ढे और जवान हैं उन सबको प्राणसे अधिक प्यारी लगती हैं ॥७॥फिर चतुर राजाने पढ़नेको बैठायी और थोड़े दिनोंमें ही सब विद्या पायी ॥ ८ ॥

दोहा-एक समय मिथिलेश अति, शंकर कर तप ठान ॥
आय कह्यो वर मांग शिव, तब नृप विनय बखान ॥ २०३ ॥

(पहले)एक समय जनकजीने शिवजीका बड़ा तप किया था, तब शिवजीने आकर कहा वर माँगो, तब राजाने हाथ जोड़ विनती कर कहा ॥ २०३ ॥

दोहा-नाथ जपहु दिन रैनि जेहि, श्रुति जेहि नेति बखान ॥
तेहि देखौं निज नयन मैं, यह वरदान न आन ॥ २०४ ॥

हे स्वामी ! तुम जिनका रात दिन जप करते हो और जिनको वेद 'नेति नेति' कह कर बखान करते हैं, उन ईश्वरको हम प्रत्यक्ष देखें यही वर दीजिये और कुछ नहीं ॥ २०४ ॥

दोहा-सुनि शिव दीन्हो धनुष पुनि, कही बात समुझाय ॥
पूजन याको नेम करि, मिलिहैं भगवत आय ॥ २०५ ॥

यह वार्ता सुनकर शिवजीने एक धनुष दे समझाकर कहा कि इसका विनयपूर्वक पूजन करना तो तुमको भगवान् यहीं आकर मिलेंगे ॥ २०५ ॥

सुनि विदेह प्रभु हित अनुरागे ❋ नित्त नेम करि पूजन लागे ॥१॥
एक दिन सिय सेवा ढिग जाई ❋ लीलहि लीन्हों धनुष उठाई ॥२॥

यह सुन राजा जनक प्रसन्न हो उस धनुषको नित्य नियमसे पूजने लगे ॥ १ ॥ एक दिन सीताजीने सेवाके निकट जाकर खेलसे धनुष उठा लिया ॥ २ ॥

देखि जनक अति अचरज माना ❋तेहि छन तहां कठिन प्रण ठाना ॥३॥

१· हल—जोतनेसे जो पृथ्वीमें लकीर होती है उसका नाम सीता (कुंड) है, उसमें उत्पन्न होने का कारण 'सीता' नाम हुआ हलके फलका नाम भी 'सीता' है।

जो यह शिव को चाप चढ़ावे ❋ सोई जनक सुता कहँ पावे ॥४॥

जनकजीने देखकर बड़ा आश्चर्य माना और उसी क्षण यह कठिन प्रण किया ॥ ३ ॥ जो कोई यह शिवजीका धनुष चढ़ावेगा वही मेरी कन्या पावेगा ॥ ४ ॥

सुनहु कथा अब रावण केरी ❋ गये दूत घट राखि सबेरी ॥५॥
चारि ठाँव हारा लंकेशा ❋ देवन को बहु देत कलेशा ॥६॥

अब रावणकी कथा सुनो—दूत घट गाड़कर चले आये और रावणसे निवेदन कर दिया ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले—हे भरद्वाज ! रावण चार स्थानमें हारा और देवताओंको दुःख दिये ॥ ६ ॥ (इति क्षेपक)

रवि शशि पवन वरुण धनुधारी ❋ अग्नि काल यम सब अधिकारी ॥७॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुरनागा ❋ हठि सबहींके पंथहि लागा ॥८॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, धनुषधारी, अग्नि, काल, यम, सब अधिकारी (रावणकी आज्ञा में रहे)॥७॥ किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, सुर, नाग हठपूर्वक सबके पीछे ही पड़ गया॥ ८॥

ब्रह्म-सृष्टि जहँ लगि तनुधारी ❋ दशमुख वशवर्ती नरनारी ॥९॥
आयसु करहिं सकल भयभीता ❋ नवहिं आय नित चरण विनीता ॥१०॥

ब्रह्माकी सृष्टिमें जहां तक शरीरधारी हैं सब नर, नारी रावणके वशमें वर्तने लगे ॥ ९ ॥ सब कोई भयभीत हुए रावणकी आज्ञा मानते हैं और नित्य आकर नम्रतापूर्वक चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥

दोहा—भुजबल विश्व वश्यकरि, राखेसि कोउ न स्वतंत्र ॥
मण्डलीक मणि रावण, राज्य करै निज मन्त्र ॥ २०६ ॥

अपनी भुजाओंके बल संसारको वशमें कर किसीको स्वतन्त्र नहीं रखा, सब राजाओं का मुकुट मणि रावण अपने विचारसे राज्य करने लगा २०६ ॥

दोहा—देव यक्ष गन्धर्व नर, किन्नर नाग कुमारि ॥
जीति वरीं निज बाहुबल, बहु सुन्दरि वर नारि ॥ २०७ ॥

देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर, और नागोंकी अनेक कन्यायें अपने बाहुबलसे जीतकर ब्याह लीं जो कि बड़ी सुन्दर थीं ॥ २०७ ॥

इन्द्रजीत-सन जो कछु कहेऊ ❋ सो सब जनु पहलेहि करि रहेऊ ॥१॥
प्रथमहि जिनको आयसु दीन्हा ❋ तिन्हकर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥२॥

जो कुछ इन्द्रजीतसे कहा वह सब उसने मानो पहले ही कर रखा है ॥ १ ॥ पहले जिसको आज्ञादी उनका चरित्र सुनो जो किया ॥ २ ॥

१· जिस समय रावण अनीति करने लगा तब कुबेरने अपना दूत उसके पास भेजकर कहलाया कि अनीति मत करो। यह सुनकर रावण कुबेर पर चढ़ गया और उसको जीतकर यमराजसे युद्ध करने गया। यमराज उसकी आयु विचार कर देवताओंके कहने पर उसके सामनेसे अन्तर्धान हो गये,तब वहां से यह इन्द्र लोकको गया और वहाँ घोर संग्राम हुआ। तब इन्द्रने रावणको बांधा। यह सुन मेघनाद स्वर्ग में गया और महाघोर युद्ध कर अपने पिताको छुड़ा इन्द्रको पकड़ लाया तब ब्रह्माजीने लंकामें जाकर इन्द्रजीतको अनेक वर तथा अमोघ शक्ति देकर इन्द्रको छुड़ाया।

देखत भीमरूप सब पापी ❋ निशिचर निकर देव परितापी ॥३॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया ❋ नानारूप धरहिं करि माया ॥४॥

सब राक्षस समूह देखनेमें भयंकर रूप, पापी और देवताओंको दुःख देने वाले हैं ॥ ३ ॥ वे राक्षसगण उपद्रव करते हैं और माया करके अनेक रूप धरते हैं ॥ ४ ॥

जेहि विधि होय धर्म निर्मूला ❋ सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ॥५॥
जेहि जेहि देश धेनु द्विज पावहिं ❋ नगर ग्राम पुर आगि लगावहिं ॥६॥

जिस प्रकारसे धर्म निर्मूल हो वही सब वे राक्षस वेद प्रतिकूल उपाय करने लगे ॥ ५ ॥ जिस देशमें गो ब्राह्मण पाते हैं उस नगर-गाँव-पुरमें आग लगा देते हैं ॥ ६ ॥

शुभ आचरण कतहुँ नहिं होई ❋ वेद विप्र गुरु मान न कोई ॥७॥
नहिं हरिभक्ति यज्ञ तप दाना ❋ सपनेहुँ सुनिय न वेद पुराना ॥८॥

अच्छे आचरण कहीं नहीं होते। वेद, ब्राह्मण और गुरुको कोई नहीं मानता ॥ ७ ॥ भगवान्‌की भक्ति, यज्ञ, जप, दान नहीं होते। और स्वप्नमें भी पुराण सुनायी नहीं देते हैं ॥८॥

छन्द–जपयोग विरागा तप मख भागा श्रवण सुनै दशशीशा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीशा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासै देश निकासै जो कहै वेद पुराना ॥१८॥

रावण जहां कहीं जप, वैराग्य, तप, यज्ञका भाग सुनता तो आप उठ दौड़ता था, रहने नहीं देता था, सब यज्ञ विध्वंस कर देता था ऐसा भ्रष्ट आचार संसारमें हुआ कि धर्म कानोंसे सुनाई नहीं दे और उसे बहुत प्रकारसे डराता था जो पुराण कहे ॥ १८ ॥

सोरठा-वरणि न जाय अनीति, घोर निशाचर जो करहिं ॥
हिंसापर अति प्रीति, तिनके पापहिं कवन मिति ॥ २६ ॥

दुष्ट राक्षस जो अनीति करते थे वह वरणी नहीं जाती, क्योंकि जिनकी हिंसापर अत्यन्त प्रीति है उनके पापोंका क्या ठिकाना है ? ॥ २६ ॥

बाढ़े खल बहु चोर जुवारा ❋ जे लम्पट परधन पर दारा ॥१॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा ❋ साधुनसन करवावहिं सेवा ॥२॥

बहुतसे खल, चोर और जुआरी बढ़ गये; जो पराया धन और परायी स्त्रियोंके ठगनेवाले थे ॥ १ ॥ माता, पिता, देवताओंको नहीं मानते और साधुओंसे सेवा कराते हैं ॥ २ ॥

जिनके यह आचरण भवानी ❋ ते जानहु निशिचर सम आनी ॥३॥
अतिशय देखि धर्मकी हानी ❋ परम सभीत धरा अकुलानी ॥४॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! जिनके यह आचरण हैं उन प्राणियोंको भी राक्षसोंके समान जानो ॥ ३ ॥ धर्मकी बहुत हानि देखकर अत्यन्त भयभीत हो पृथ्वी व्याकुल हो गयी ॥ ४ ॥

गिरि सरि सिन्धु भार नहिं मोही ❋ जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥५॥
सकल धर्म देखहिं विपरीता ❋ कहि न सकैं रावण भयभीता ॥६॥

और कहने लगी कि पहाड़ नदी, समुद्रका मुझ पर ऐसा भार (बोझ) नहीं है जैसे उन पर पराया द्रोह करनेवालोंका है ॥ ५ ॥ सभी धर्म विपरीत देखते हैं पर रावणके डरसे कोई नहीं कह सकता ॥ ६ ॥

धेनु रूप धरि हृदय बिचारी ❋ गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥७॥
निज संताप सुनायसि रोई ❋ काहूते कछु काज न होई ॥८॥

गौका रूप धारण कर मनमें विचार जहाँ सम्पूर्ण देवता मुनि थे वहाँ गयी ॥ ७ ॥ अपना दुःख रोकर सुनाया इस पर किसीसे कोई काम नहीं हो सका ॥ ८ ॥

छन्द–सुर मुनि गंधर्वा मिलकर सर्वा गये बिरंचिके लोका ।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय शोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मेरी कछु न बसाई ।
जाकरि तैं दासी सो अबिनाशी हमरउ तोर सहाई ॥१९॥

देवता मुनि, गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माके लोकको गये, संगमें गौका रूप धारण किये विचारी भूमि शोकभयसे व्याकुल थी, (भय रावणका और शोक पापके भारका था) वह सब ब्रह्माजीने जाना और मनमें विचार कर रहा कि, मेरा कुछ वश नहीं, जिनकी तु दासी है वही अविनाशी हमारी तुम्हारी सहायता करेंगे । हमारी सहायता यह कि, हमारे वरके अनुसार मनुष्य होकर रावणका वध करें और उसी वधसे तेरी भी सहायता है । अविनाशी इस लिये कहा कि जितने नाशवान हैं वे रावणके निकट खड़े न होंगे ॥ १९ ॥

सोरठा–धरणि धरहु मन धीर, कहँ बिरंचि हरिपद सुमिरि ॥
जानत जनकी पीर, प्रभु भंजहिं दारुण बिपति ॥ २७ ॥

ब्रह्माजीने भगवान्‌को स्मरण करके कहा कि हे पृथ्वी ! मनमें धीर धारण करो, वे भगवान् भक्तोंका दुःख जानते और बड़ी विपत्ति दूर करते हैं ॥ २७ ॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा ❋ कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा ॥१॥
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई ❋ कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥२॥

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभुको कहाँ पावें जो पुकार करें ? ॥ १ ॥ किसीने कहा वैकुण्ठमें हैं वहाँ जाओ, किसीने कहा प्रभु क्षीरसमुद्रमें बसते हैं ॥ २ ॥

जाके हृदय भक्ति जस प्रीती ❋ प्रभु तहँ प्रगट सदा यह रीती ॥३॥
तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ ❋ अवसर पाय वचन इक कहेऊँ ॥४॥

जिसके हृदयमें जैसी भक्ति और प्रीति है वहाँ प्रभुजी उसी अनुसार प्रगट होते हैं, यह सदाकी रीति है ॥ ३ ॥ शिवजी बोले कि हे पार्वती ! उस समाजमें मैं था और समय पाकर मैंने एक वचन कहा ॥ ४ ॥

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ❋ प्रेमते प्रगट होहिं मैं जाना ॥५॥
देश काल दिशि बिदिशिहु माहीं ❋ कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥६॥

परमेश्वर सर्व व्यापक सर्वत्र समान हैं और प्रेमसे प्रकट होते हैं यह जानता हूँ ॥ ५ ॥ देश, काल, दिशा, विदिशामें कहो वह कौनसा स्थान है जहाँ प्रभु नहीं हैं ? ॥ ६ ॥

अगजगमय सब रहित बिरागी * प्रेमते प्रभु प्रगटैं जिमि आगी ॥७॥
मोर वचन सबके मन माना * साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना ॥८॥

अग अर्थात् अचल वृक्ष पर्वतादिक और जग अर्थात् जंगम मनुष्य पशु आदिक सबमें व्यापक हैं और सबसे विरागी और रहित हैं, परंतु प्रेमसे प्रकट होते हैं; जैसे काठसे आग प्रकट होती है ॥ ७ ॥ मेरा वचन सबके मनको भाया और ब्रह्माने साधु ! साधु ! अर्थात् सत्य सत्य कहके बखाना । (रामायणमें चार कल्पोंके रामावतारका प्रसंग कहा है, सो उन्होंने यह कहा कि प्रभु वैकुण्ठमें हैं उन्होंने उन दो कल्पोंके अवतार कहे जिनमें जलंधर रावण और जय विजय रावणके वधके हेतु वैकुण्ठ से हुए थे और जिन देवताओंने यह कहा कि, प्रभु क्षीरसागरमें हैं उन्होंने उस अवतारको कहा जो नारदके शापसे रुद्रगण रावण हुए और उनके हितकारण क्षीर समुद्रमें अवतार हुआ, चौथे कल्पका अवतार जिसमें भगवान्‌ने स्वायंभुव मनु और शतरूपाको वर दिया कि वे सर्वज्ञ तुम्हारे पुत्र होंगे और प्रतापभानु रावण हुआ है, उसीको शिवजी महाराज कहते हैं कि, वह सर्वज्ञ समान व्यापक हैं) ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि बिरंचि मन हर्ष तनु, पुलक नयन बह नीर ॥
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति धीर ॥२०८॥

शिवजीने यह जो कहा कि "हरि व्यापक सर्वत्र समाना" यह वचन सुनकर ब्रह्माजीके मन में अतिहर्ष हुआ, शरीर पुलकित हो गया और नयनोंसे नीर बहने लगा (सो प्रेममें कुछ काल मग्न रहे) फिर सावधान हो मतिमें धैर्य धारण कर हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ २०८ ॥

छन्द-जय जय सुरनायक जनसुखदायक, प्रणतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता--प्रियकन्ता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानै कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई ॥२०॥

इस छन्दमें ब्रह्माजी अपना सम्पूर्ण हेतु कहते हैं-हे सुरनायक ! आपकी जय हो, सुरनायक कहनेसे प्रयोजन है कि, आप देवताओंके रक्षक, मनुष्योंके सुखदायक, दीनोंके पालन करनेवाले और गौ-ब्राह्मणोंके रक्षक हितकारी हैं इधर यह सब विपत्तिमें असुरोंके हाथमें पड़े हैं जिनके आप शत्रु हैं और आप सिन्धुसुता अर्थात् लक्ष्मीके पति हैं सो वे असुरोंके हाथमें पड़ गयी हैं । यह सब बातें विपरीत हो रही हैं । आप भगवान् हैं, हमारी सहायता कीजिये, आपकी जय हो । जो यह शंका कि आप तो समदर्शी हैं, विषम कैसे हों ? देवता और पृथ्वीके पालनार्थ आपकी करणी अद्भुत है, जिसका कोई मर्म नहीं जानता और यह समझा जाय कि आपकी आकांक्षा पूजा और स्तुति मान आदिकी है तो आप सहज कृपालु और दीनदयालु हैं सो वही दीनदयालुता सँभालकर हम पर कृपा कीजिये ॥ २० ॥

छन्द-जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
अविगत गोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा ।
निशिवासर ध्यावहिं हरिगुण गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥२१॥

हे अविनाशी, आपकी जय हो! अविनाशी कहनेका आशय यह है कि आपको असुरोंके हाथसे नाश होनेका भय नहीं जिनसे हम सब डरते हैं और सब, घटवासी कहनेका अर्थ यह है कि आप सबके घटमें विराजमान हैं, असुरोंकी मतिको फेर दीजिये,जिससे वह शत्रुभावको छोड़ दें और परमानन्द कहनेका प्रयोजन यह है कि पृथ्वीको आनन्दमय करते हो। आपकी अद्वितीय गति है, दूसरेसे नहीं बन पड़ती जिसको पुकारें और आप इंद्रियोंसे भिन्न हैं किसी विषयका भी लवलेश नहीं तथा आप जो चरित्र करेंगे उससे पृथ्वी जो राक्षसोंसे मिलन हो गयी है वह पवित्र हो जायगी। आपके निकट मायाकी भी गति नहीं है, आप मुकुन्द अर्थात् मोक्षदायक हैं हमको विपत्तिसे छुड़ाओ, जिनकी प्राप्तिके निमित्त बड़े वैराग्ययुक्त महामुनियोंके समूह मोहको त्याग कर प्रेमसे रात-दिन ध्यान करते हैं और आपके गुण गाते हैं ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप आपकी जय हो?॥ २१ ॥

छन्द-जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥
जो भवभय भंजन मुनि मनरंजन भंजन विपति बरूथा।
मनक्रम वच बानी छांड़ि सयानी शरण सकल सुरयूथा॥२२॥

यह आपने तीन प्रकारकी सृष्टि बनाई जो कि सत्त्व, रज, तम त्रिगुणात्मक है और उसके अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे उत्पत्ति-पालन-नाश होता है और आपके संगमें दूसरा सहायक नहीं अतएव हे पापनाशक! असुरोंके नष्टकरनेवाले! हमारी चिंता (स्मरण) कीजिये हम न तो भक्ति जानते हैं न पूजा जानते हैं, केवल आपही सताये हुए संसारके भयको सदा तोड़ते और मनुष्योंके मनको सुख देते,विपत्ति समूहको नाश करते आये हैं आपकी शरणमें वे सब देवता मन वचन कर्मसे चतुराईकी आदत छोड़कर प्राप्त हैं। अथवा संसारके भयदूर करनेवाले विपत्ति मिटानेवाले यह विशेषण भगवान्में भी लगाना॥ २२ ॥

छन्द-शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जा कहँ कोउ न जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भववारिधि मंदर सब विधि सुन्दर गुण मंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥२३॥

सरस्वती, वेद, शेष और सब ऋषि जिनको कोई नहीं जानते, जिनको दीन दुःखी प्यारे हैं ऐसा वेद कहता है, वे भगवान् हमारे ऊपर कृपा करें, संसाररूपी समुद्रको आप मन्दराचल पर्वत हैं सब प्रकार सुन्दर गुणोंके घर और सुखके ढेर हैं; यह सिद्ध मुनि देवता सब परम व्याकुल होकर आपके चरण कमलको नमस्कार करते हैं॥ २३ ॥

दोहा-जानि सभय सुरभूमि सुनि, वचन समेत सनेह॥
गगन गिरा गम्भीर भइ, हरनि शोक सन्देह॥२०९॥

देवता, पृथ्वीको डरी जान और उनके प्रीतियुक्त वचन सुन आकाशसे गम्भीर वाणी सन्देहकी हरने वाली हुई, शोक रावणके दुःख देनेका सन्देह यह है कि प्रार्थना अंगीकार हो या न हो॥ २०९ ॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा * तुमहि लागि धरिहउँ नरवेशा ॥१॥
अंशन सहित मनुज अवतारा * लेइहउँ दिनकर वंश उदारा ॥२॥

हे देवता मुनि सिद्ध लोगो ! तुम मत डरो, मैं तुम्हारे हेतु मनुष्य अवतार धारण करूँगा ॥ १ ॥ अंशोंके सहित मनुष्यका अवतार सूर्य वंशमें लूँगा ॥ २ ॥

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा * तिनकहँ मैं पूरब वर दीन्हा ॥३॥
ते दशरथ कौशल्या रूपा * कोशलपुरी प्रकट नर भूपा ॥४॥

कश्यप अदितिने बड़ा तप किया और उनको मैं पहले वर दे चुका हूँ ॥ ३ ॥ वे ही दशरथ कौशल्याके रूपसे मनुष्योंके राजा अयोध्यामें प्रगट हुए हैं ॥ ४ ॥

तिनके गृह अवतरिहउँ जाई * रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥५॥
नारद वचन सत्य सब करिहौं * परमशक्ति समेत अवतरिहौं ॥६॥

उनके ही घर जाकर अवतार लूँगा, रघुकुलमें तिलक हम चार भाई होंगे ॥ ५ ॥ नारद जीके सब वचन सत्य करूँगा और परम शक्ति समेत अवतार लूँगा ॥ ६ ॥

हरिहौं सकल भूमि गरुआई * निर्भय होहु देव समुदाई ॥७॥
गगन ब्रह्मवाणी सुनिकाना * तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥८॥

सब पृथ्वीका भार हरूँगा, हे देवताओ ! निर्भय हो जाओ ॥ ७ ॥ आकाशसे ईश्वरकी वाणी कानोंसे सुन देवता मनमें प्रसन्न होकर तुरन्त लौटे ॥ ८ ॥

तब ब्रह्मा धरणिहि समुझावा * अभय भई भरोस जिय आवा ॥९॥

तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया, वह निडर हुई और मनमें भरोसा हो गया ॥ ९ ॥

दोहा-निज[1] लोकहि विरंचि गये, देवन इहहि सिखाय ॥
वानर तनु धरि धरणि महँ, हरिपद सेवहु जाय ॥ २१० ॥

ब्रह्माजी देवताओंको शिक्षा दे अपने लोकको चले गये कि तुम सब वानरका शरीर धारण कर पृथ्वीमें भगवान्‌की सेवा करो ॥ २१० ॥

गये देव सब निज निज धामा * भूमि सहित मनमहँ विश्रामा ॥१॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा * हर्षे देव विलम्ब न कीन्हा ॥२॥

सब देवता अपने-अपने स्थानको चले गये पृथ्वी सहित मनमें विश्राम पाया ॥ १ ॥ जो कुछ ब्रह्माजीने आज्ञा दी देवता प्रसन्न हो करनेको उद्यत हुए देर नहीं की ॥ २ ॥

वनचर देह धरी क्षितिमाहीं * अतुलितबल प्रताप तिनपाहीं ॥३॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा * हरि मारग चितवहिं रणधीरा ॥४॥

---

१ संपूर्ण देवता, तो ब्रह्मलोकको गये और अब लिखा कि–"निजलोकहि विरंचि गये" उत्तर––ब्रह्माजीके दो लोक हैं, एक निज लोक दूसरा सुमेरु पर्वत पर सभास्थान, सो देवता सभास्थानमें गये थे, वहां से ब्रह्माजी अपने लोकको गये । अथवा ब्रह्माजीने देवताओं से कहा कि तुम वानरका शरीर धारण करो और "निज लोकहिं" अर्थात् अपनेको कहा कि मैं भी अवतार लूंगा सो जांबवानका अवतार ब्रह्माजीके अंशसे हुआ ।

पृथ्वीमें वनचरका देह धारण किया, जिनमें बड़ा बल और प्रताप है ॥ ३ ॥ सब वीरोंके पर्वत, वृक्ष, नख यही सब आयुध हैं, परमात्माका मार्ग जोहने लगे कि कब अवतार लें और वे वनचर सब रणधीर हैं ॥ ४ ॥

गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी ❋ रहे निज निज अनीक रुचिरूरी॥५॥
यह सब चरित सुना विबुधारी ❋ जनमत ही हत करन विचारी ॥६॥

पहाड़, वन,जहां-तहां अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर रहने लगे और यह स्थान बन्दरोंसे पूर्ण हो गये॥५॥यह समाचार रावणने सुना और विचारा कि जन्म लेते ही मार दूँगा॥६॥

अथ क्षेपक

वसत सकल मम वश रघुवंशी ❋ ते किमि सकहिं मोहिं विध्वंशी॥७॥
तदपि सजग रहिये का हानी ❋ दिये असुर करि कछु तहँ थानी॥८॥

सब सूर्यवंशी तो मेरे वशमें रहते हैं; वे मुझको क्या मार सकेंगे ? ॥ ७ ॥ तो भी सजग रहनेमें क्या हानि है ? राक्षस वहां नियत कर दिये, थाना बना दिया ॥ ८ ॥

दोहा-उत्पति और मरण जब, जाकर जिहि विधि होय ॥
कर समेत वृत्तांत सो, पहुँचावै सब मोय ॥ २११ ॥

जब जिसका जिस प्रकार उत्पत्ति व मरण हो वह वृत्तांत हमको पहुँचावे और कर पहुँचावे॥२११॥

भये दिलीप भूप जब आई ❋ जानि असुर फिरि दिये उठाई ॥१॥
सुनि रावण बल देखन आवा ❋ द्विज लखि सब रानिन बैठावा ॥२॥

जब राजा दिलीप हुये तब उन्होंने सब राक्षसोंको निकाल दिया ॥ १ ॥ यह बात सुन कर रावण बल देखने आया और ब्राह्मण जानकर सब रानियोंने बैठाया (राजा स्थानपर नहीं थे, ब्राह्मणोंकी रोक टोक नहीं थी, इस कारण निवासमें चला गया) ॥ २ ॥

पद पूजत निजरूप दिखावा ❋ भागीं रानि परम भय पावा ॥३॥
पुनि रावण सरजू तट आयो ❋ अर्चत तंदुल नृपति चलायो ॥४॥

जब रानी चरण पूजने लगीं तब रावणने अपना रूप दिखाया; जिसके देखते ही भयभीत होकर सब रानी घरोंमें भाग गयीं ॥ ३ ॥ फिर रावण सरयूके किनारे आया, राजाने पूजा करते-करते कुछ चावलके दाने फेंके ॥ ४ ॥

पूछेसि लोगन कहेउ बखानी ❋ सिंह गाय पकरी वन आनी ॥५॥
तेहिते शालि शीघ्र मैं प्रेरे ❋ शतशर सम लागे हरिकेरे ॥६॥

लोगोंने जब चावल फेंकनेका कारण पूछा तो कहा कि एक सिंहने वनमें गाय पकड़ी है ॥ ५ ॥ इस कारण मैंने यह चावल फेंके सो सौ तीरके समान लगे हैं ॥ ६ ॥

सुनि दश मुख मन अचरज आवा ❋ देखा जाय मृतक वन पावा ॥७॥
समुझि प्रताप गयो निज धामा ❋ नृपते चरित कह्यो नृपवामा ॥८॥

रावण वह सुनकर बड़े आश्चर्यमें हुआ और जाकर देखा तो वनमें मृतक सिंह पड़ा है ॥७॥ रावण वह प्रताप समझकर अपने घरको गया । जब राजा दिलीप महलोंमें आये तब रानियोंने सब चरित्र उनसे कह सुनाया ॥ ८ ॥

दोहा-रावण कृत सुनि अवधिपति, चंगुलभरि जल लीन्ह ॥
पवनमंत्र पढ़ि क्रोधयुत, दक्षिण दिशि तजि दीन्ह ॥ २१२ ॥

रावणका व्यवहार सुनकर महाराज दिलीपने अंजलिमें जल ग्रहण किया और पवनमन्त्र पढ़कर क्रोधित हो दक्षिण दिशामें छोड़ दिया ॥ २१२ ॥

दोहा-भयो विशिख दशलक्ष तब, कह नृप लंकहि जाहु ॥
सहित त्रिकूट समुद्रमें, बोरि फिरहु तेहि नाहु ॥ २१३ ॥

उस मन्त्रयुक्त जलसे दशलक्ष बाण हुए, तब राजाने कहा कि लंकामें तुम जाओ त्रिकूट पर्वतको उसके स्वामी सहित समुद्रमें डुबा दो ॥ २१३ ॥

चले सो विशिख पवनगति मोरी * उलटन लगे नगर चहुँ ओरी ॥१॥
मयतनया दोउ कर तब जोरी * कीन्ही विविध विनय नहिं थोरी ॥२॥

पवनकी गतिको तिरस्कार कर वे श्रेष्ठ बाण चले और चारों ओरसे नगरको उलटने लगे ॥ १ ॥ तब मन्दोदरी दोनों हाथ जोड़कर बहुत प्रकारसे विनती की ॥ २ ॥

दइ दुहाइ नृप बोली ऐसे * यहँ नहिं नृपति लरत तुम कैसे ॥३॥
बाण चले दिलीप पहँ आये * समुझि सोचि ते रहे चुपाये ॥४॥

राजा दिलीपकी दुहाई देकर बोली-यहां कोई राजा नहीं तुम कैसे और किससे लड़ते हो ॥ ३ ॥ बाण राजा दिलीपके पास फिर आये, तब राजा समझ सोचकर चुप हो रहे ॥ ४ ॥

इहि विधि बहुत गयो जब काला * कोशलपुर रघु भयो नृपाला ॥५॥
मारुत बाण लंक गृह ढाये * वनिता विनय वचन सुनि आये ॥६॥

इस प्रकार जब बहुत समय बीत गया तब राजा रघु अयोध्या के राजा हुये ॥ ५ ॥ जब रावणने कर मांगा तो पवनबाणसे लंकाके बहुत घर ढहाये और मन्दोदरीके विनय पूर्वक वचनसे बाण लौट आये ॥ ६ ॥

पुनि राजा अज भे बल भारी * मच्यो युद्ध रावणसों भारी ॥७॥
अनिल शस्त्रते कटक समेता * दीन्ह ताहि पहुँचाइ निकेता ॥८॥

फिर जब महाबलवान् अज राजा हुये तो इनसे और रावणसे बहुत युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ पवन अस्त्रसे सेना सहित रावणको लंकामें पहुँचा दिया ॥ ८ ॥

तेजवान लखि रहा चुपाई * तेहि पाछे भे दशरथ आई ॥९॥

इनको तेजस्वी देखकर रावण चुप रहा; फिर आकर दशरथजीने[१] जन्म लिया ॥ ९ ॥

दोहा-दश सहस्र रविकर लखे, दशो दिशा रथ जाहि ॥
दशशिर रिपु प्रगटे सुवन, कहिये दशरथ ताहि ॥ २१४ ॥

दश हजार सूर्यकी किरणोंके समान दशों दिशाओंमें जिनका रथ जाय और जिसका पुत्र दश शिर वाले पुरुषका बैरी हो उसको 'दशरथ' कहते हैं, वा जिसमें दश रथियोंके समान बल हो उसको भी दशरथ कहा जाता है ॥ २१४ ॥

---

१. यह मुख्य राजाओंका वर्णन किया है परंपरा नहीं है कुल वर्णन आगे लिखेंगे।

दोहा-सुनि रावण निज दूत मुख, मांगि पठायो दण्ड ॥
हरिशर प्रेरे भूप कहि, जड़्यो कपाट प्रचण्ड ॥ २१५ ॥

रावणने यह सुनते ही दूतोंको अपना कर मांगने भेजा; राजाने अपने बाणोंसे लंकाके द्वार मूँद दिये और कहा ॥ २१५ ॥

जो रावण पट लेइ उघारी * तो हम कर देवहिं बिनरारी ॥१॥
मन्दिर द्वार मूँदि सब गये * रावणसे नहिं उघरत भये ॥२॥

जो रावण यह किवाड़ खोल ले तो विना युद्ध किये ही कर देंगे ॥१॥ मन्दिरके दरवाजे सब बन्द हो गये और रावणसे नहीं खुले ॥ २ ॥

उघरे नहीं पराजय मानी * गये बाण फिरि नृप रजधानी ॥३॥
तब रावण नभ बात विचारी * विपिन जाय कीन्हेसि तप भारी ॥४॥

जब वे नहीं उघरे तब रावण ने हार मानी; बाण फिर दशरथकी राजधानीको गये॥३॥तब रावणने आकाशवाणी और ब्रह्माके वरदानकी बात विचार वनमें जाय बड़ा तप किया ॥४॥

वरं ब्रूहि ब्रह्मा जब भाषा * बोला तब दशमुख अभिलाषा ॥५॥
दशरथ नृपति वीर्यते कोई * जगमें पुत्र प्रकट नहिं होई ॥६॥

जब ब्रह्माने कहा वर मांगो तब रावण अपनी अभिलाषा बोला कि ॥ ५ ॥ राजा दशरथके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हो ॥ ६ ॥

सुनि स्रष्टा मनमें दुख माना * एवमस्तु कहि कीन्ह पयाना ॥७॥
तब दशमुख कोशलपुर गयऊ * कौशल्यहि हरि लावत भयऊ ॥८॥

ब्रह्माजी सुन और दुःख मान वरदान दे चले गये ॥ ७ ॥ तब रावण कोशलपुरीमें जाकर कौशल्याको चुरा लिया ॥ ८ ॥

सहित मँजूसा सागर जाई * राघौ मच्छ दिहिसि सौंपाई ॥९॥

मंजूषा (पिटारी) सहित ले जाकर समुद्रमें राघव मच्छको सौंप दी ॥ ९ ॥

दोहा-चतुरानन धरि रूप तब, रावणको तहँ जाय ॥
सुता माँगि लाये तुरत, राखी वनमें लाय ॥ २१६ ॥

ब्रह्मा रावणका रूप धर वह पुत्री मांग लाये और वनमें धर दी ॥ २१६ ॥

वनमें धरि विधि गे निज लोका * तहँ सुमन्त पट खोलि विलोका ॥१॥
कन्याते बोले मृदुवानी * तुमहो किनकी सुता सयानी ॥२॥

ब्रह्माजी वनमें धरके अपने लोकको चले गये, वहां सुमन्तने आके पट खोलकर देखा ॥ १ ॥ और कन्यासे कोमल वाणी बोले-तुम किसकी कन्या हो ? ॥ २ ॥

तब कौशल्या गिरा उचारी * हम हैं कोशल राज कुमारी ॥३॥
नहिं जाना को वनमें लावा * सुनि सुमन्त हिय अतिसुख पावा॥४॥

तब कौशल्याने वाणी उच्चारण की कि हम कोशल राजा की कन्या हैं ॥ ३ ॥ यह नहीं जानती कौन वनमें लाया ? यह सुन सुमन्त मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ४ ॥

लै आये कोशलपुर ठामा ❀ रोदन होत रहा नृपधामा ॥५॥
जाय मँजूषा भूपहि दीन्हा ❀ जेहि विधि मिली सो वर्णन कीन्हा॥६॥

फिर उसको कोशलपुर ले आये, जहां राजाके यहां रोदन हो रहा था ॥ ५ ॥ राजाको जाकर पिटारी युक्त कन्या दी और जिस प्रकार मिली सो कहा ॥ ६ ॥

बोले नृप तुमको हौ ताता ❀ कह सुमंत सुनियो प्रभु बाता ॥७॥
अवधपुरी नृप दशरथ नामा ❀ धर्मधुरंधर सब गुण धामा ॥८॥

राजाने सुमन्तसे कहा-हे तात ! तुम कौन हो ? तब सुमन्त बोले-हे प्रभु ! सुनिये ॥ ७ ॥ एक अयोध्यापुरीके दशरथ नाम बड़े धर्मात्मा और सब गुणोंके धाम राजा हैं ॥ ८ ॥

दोहा-तासु सचिव मैं सुनहु नृप, सुनि अति भयउ उछाह ॥
❀ कह्यो कि अब यहि सुताकर, करिहौं तिन सँग ब्याह ॥२१७॥

हे राजन् ! मैं उनका मन्त्री हूँ । यह बात सुन कौशल्याके पिताने कहा कि हम अपनी कन्याका तुम्हारे राजाके साथ ब्याह कर देंगे ॥ २१७ ॥

तुरतै नेगी विप्र पठावा ❀ नृपको टीका जाय चढ़ावा ॥१॥
चली बरात विपुल नरनाहा ❀ बड़ी धूमसे भयउ विवाहा ॥२॥

तुरत ही नेगी और ब्राह्मणोंको भेज दिया, उन्होंने जाकर राजाके यहां टीका चढ़ाया॥१॥ राजाकी बड़ी बरात चली और बड़ी धूम धामसे ब्याह हुआ ॥ २ ॥

विरधासनकी सुता सयानी ❀ सो सुमन्त ब्याही सुखदानी ॥३॥
ब्याह कीन पुनि घर फिरि आये ❀ नगर नारि नर अति सुख पाये॥४॥

विरधासनकी सयानी तथा सुख देनेवाली कन्या सुमन्तको ब्याही गयी ॥ ३ ॥ ब्याह करके घर आये और नगरके नारीनर सब प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

पुनि कैकेयी सुमित्रा रानी ❀ ब्याही दशरथ सुघर सयानी ॥५॥

फिर काश्मीरसे चतुर और श्रेष्ठ कैकेयीको ब्याह करके लाये; फिर सुमित्रासे ब्याह किया॥५॥

इति क्षेपक

यह सब रुचिर चरित मैं भाखा ❀ अब सो सुनहु जो बीचहि राखा ॥६॥

यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा, अब वह सुनो जो बीचमें ही शेष रखा है ॥ ६ ॥

अवधपुरी रघुकुल-मणि राऊ ❀ वेद विदित तेहि दशरथ नाँऊ ॥७॥
धर्मधुरंधर गुणनिधि ज्ञानी ❀ हृदय भक्ति मति शारँग पानी ॥८॥

अयोध्यापुरीके यही राजा दशरथ जिनका यश शास्त्रोंमें विदित है॥७॥बड़े धर्मात्मा,गुणोंके समुद्र, ज्ञानी, मनमें जिनके भगवान्की भक्ति थी । (अवधमण्डल के निवासियोंकी संख्या देवस्थान सात लाख, ब्राह्मण ३९१६७००, क्षत्रिय ८१५१२००, वैश्य १७८६५०००, शूद्र १२४७१६९२८,,बावड़ी कूप तालाव आदि १३००००० ,मुनिआश्रम २२५००००)॥८॥

दोहा-कौशल्यादिक नारि प्रिय, सब आचरण पुनीत ॥
❀ पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरिपदकमल विनीत ॥ २१८ ॥

कौशल्यादि प्यारी स्त्रियाँ जिनके आचरण बड़े पवित्र सदा पतिके अनुकूल हैं, जिनका परमेश्वरके चरणकमलमें बड़ा प्रेम था वही राजा दशरथ वरदान पाकर अयोध्याके राजा हुए, जिनको भगवान्ने कहा कि हम तुम्हारे पुत्र होंगे इस प्रकार रामके जन्मके अनेक कारण हुए, यहां तक पार्वतीका पहला प्रश्न पूर्ण हुआ जो पूछा था—"प्रथम सो कारण कहहु विचारी । निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी" ॥ २१८ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद-निवासी पं० सुखानंद-मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां बालकाण्डान्तर्गतस्तृतीयो विश्रामः ।। ३ ।।

दोहा—यहि चतुर्थ विश्राममें, रामजन्म सुख मूल ॥
सुख छायो त्रैलोकमें, मिटा, मोहकर शूल ॥ १ ॥

एक बार भूपति मनमाहीं ❋ भई गलानि मोरे सुत नाहीं ॥१॥
गुरु गृह गये तुरत महिपाला ❋ चरण लागिकर विनय विशाला ॥२॥

जब राजा दशरथको राज्य करते कई सहस्र वर्ष बीत गये मनमें बड़ी चिन्ता हुई कि हमारे पुत्र नहीं है ॥ १ ॥ तुरंत राजा गुरुके घर गये और चरण पकड़ बहुत विनती की ॥२॥

निजदुखसुख नृप गुरुहिं सुनायउ ❋ कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझायउ ॥३॥
धरहु धीर होइहैं सुत चारी ❋ त्रिभुवन विदित भक्तभयहारी ॥४॥

अपना दुःख-सुख राजाने गुरुको सुनाया, तब मुनि समझाते हुए बोले (दुःख पुत्रका न होना सुख राज्यका) ॥ ३ ॥ वसिष्ठने कहा-धीरज धरो, चार पुत्र होंगे, तीनों लोक जिनको जानेंगे भक्तोंका भय दूर करने वाले होंगे ॥ ४ ॥

शृंगी ऋषिहि वसिष्ठ बुलावा ❋ पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा ॥५॥
भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हे ❋ प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ॥६॥

शृंगी ऋषिको वसिष्ठजी बुलाया और पुत्रके हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ कराया ॥ ५ ॥ मुनिने भक्ति पूर्वक आहुति दी तब अग्निदेव खीर हाथमें लिये प्रगट हुए ॥ ६ ॥

जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा ❋ सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा ॥७॥
यह हवि बांटि देहु नृप जाई ❋ यथायोग्य जेहि भाग बनाई ॥८॥

और कहा कि राजा ! वसिष्ठने जो कुछ मनमें विचारा था वह तुम्हारा सब काम सिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ यह खीर ले जाकर यथायोग्य भाग बनाकर बांट दो ॥ ८ ॥

---

१. राजा दशरथकी एक शान्ता कन्या थी । अंगदेशके राजा रोमपादने शांताको राजा दशरथसे मांग लिया था, दोनों की मित्रता थी राजाने दे दी । रोमपादने कन्याके समान पालन की । एक समय अंगदेशमें काल पड़ा तब महात्माओंने कहा कि विभाण्डक ऋषिके पुत्र ऋष्यशृंग आवें तो वर्षा हो, उनके पिताके डरसे कोई उन्हें न ला सका, तब वेश्याओंने वहां, जाने की इच्छा की और जिस समय उनके पिता आश्रमपर नहीं थे तब उनके पास गयीं और ऋष्यशृङ्ग उन्हें तपस्वी जानकर उनके डेरेपर गये । तब वे नावपर चढ़ा छलसे अंगदेशमें लायीं तो वर्षा हुई । तब राजाने उनका व्याह शांता कन्यासे कर दिया, पिता भी ज्ञानसे जान चुप रहे तबसे यह वहीं है जब दशरथने अंगदेशसे उन्हें बुलाया, ऋषिने पहले अश्वमेध यज्ञ कराकर फिर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया ।

दोहा-तब अदृश्य पावक भये, सकल समहिं समुझाय ॥
परमानन्द मगन नृप, हर्ष न हृदय समाय ॥ २१९ ॥

तब सब सभाको समझाकर अग्निदेव अन्तर्द्धान हुए और राजा ऐसे आनन्दित हुए कि मनमें प्रसन्नता नहीं समाती ॥ २१९ ॥

तबहिं राउ प्रिय नारि बुलाईं * कौशल्यादि तहां चलि आईं ॥१॥
अर्द्धभाग कौशल्यहिं दीन्हा * उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥२॥

तब राजाने प्यारी नारियाँ बुलायीं; कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आयीं ॥१॥ उस सम्पूर्ण खीर मेंसे आधा भाग कर कौशल्याको, दिया और जो आधा बचा उसके फिर दो भाग किये ॥ २ ॥

कैकेयी कहँ सो नृप दयऊ * रहे सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥३॥
कौशल्या कैकेयी हाथ धरि *दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥४॥

सो राजाने कैकेईको दिया और जो चौथाई बचा उसके दो भाग किये ॥ ३ ॥ कौशल्या और कैकेईके हाथमें दोनों भाग रख मनमें प्रसन्न हो सुमित्राको दिये अर्थात् दोनों रानियोंसे सुमित्राको दिलाया उसका गौरव रखनेको ऐसा किया ॥ ४ ॥

इहिविधि गर्भ सहित सब नारी * भयउ हृदय हरषित सुख भारी ॥५॥
जा दिनते हरि गर्भहि आये * सकल लोक सुख संपति छाये ॥६॥

इस प्रकारसे सब रानी गर्भवती हुईं और मनमें बड़ा सुख हुआ ॥५॥ जिस दिनसे भगवान् गर्भमें आये तभीसे सब लोकोंमें सुख सम्पत्ति जो राक्षसोंके डरसे उजड़ गई थी छा गयी ॥६॥

मंदिर महँ सब राजहिं रानी * शोभा शील तेज गुणखानी ॥७॥
सुखयुत कछुक काल चलि गयऊ * जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥८॥

सब रानी मन्दिरमें विराजमान रहती हैं, जो शोभा शील तेज गुणोंकी खान हैं ॥ ७ ॥ सुख पूर्वक कुछ समय बीत गया, जब प्रभु प्रकट होनेको हुये वह समय आया ॥ ८ ॥

दोहा-योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल ॥
चरु अरु अचर हर्षयुत, राम जनम सुखमूल ॥ २२० ॥

योग, लग्न, नवग्रह, वार और तिथि और यह सब ही श्रेष्ठ थे उस समय चर और अचर सब प्रसन्न हुए कारण कि रामका जन्म सुखमूल था ॥ २२० ॥

नवमी तिथि मधुमास पुनीता * शुक्लपक्ष अभिजित हरि प्रीता ॥१॥
मध्यदिवस अति शीत न घामा * पावन काल लोक विश्रामा ॥२॥

नवमी तिथि, चैत्रका महीना, शुक्ल पक्ष, अभिजित् (उपनक्षत्र) अर्थात् अभिजित मुहूर्त पुनर्वसु नक्षत्र और प्रीतियोग था ॥ १ ॥ दुपहरका समय बहुत शीत और घाम नहीं अथवा रातदिन बराबर था और लोकके विश्रामका पावनकाल है क्योंकि दुपहरके समय सब विश्राम पाते हैं ॥ २ ॥

शीतल मन्द सुरभि वह वाऊ * हर्षित सुर सन्तन मन चाऊ ॥३॥
बन कुसुमित गिरिगण मणियारा * स्रवहिं सकल सरितामृतधारा ॥४॥

ठण्डी-ठण्डी सुगंधियुक्त मन्द पवन चलने लगी, देवता प्रसन्न हुए, संतोंके मनमें बड़ा चाव था ॥ ३ ॥ वन फूल गये, पर्वतोंपर मणियाँ निकल आयीं, सम्पूर्ण नदियाँ अमृतके समान स्वच्छ जलवाली हो गयीं ॥ ४ ॥

सो अवसर विरंचि जब जाना * चले सकल सुर साजि विमाना ॥५॥
गगन विमल संकुल सुरयूथा * गावहिं गुण गंधर्व वरूथा ॥६॥

सो समय जब ब्रह्माजीने जाना तब सब देवता विमान सजाकर चले ॥ ५ ॥ आकाश निर्मल देवताओंसे भरपूर हो गया, गंधर्व बहुतसे गुण गाने लगे ॥ ६ ॥

वर्षहिं सुमन सुअंजलि साजी * गह गह गगन दुन्दुभी बाजी ॥७॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा * बहुविधि लावहिं निज निज सेवा ॥८॥

अञ्जलिमें फूल ये बरसने लगे, आकाशसे गहगहे बाजे बजने लगे ॥ ७ ॥ नाग मुनि, देवता स्तुति करने लगे, बहुत प्रकारसे अपनी अपनी सेवा जताने लगे ॥ ८ ॥

दोहा–सुरसमूह विनती करी, पहुँचे निज निज धाम ॥
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ॥ २२१ ॥

देवताओंके समूह विनती करके अपने-अपने स्थानको गये, उस अवसरमें जगन्निवास जो सम्पूर्ण जगत्में वास करते हैं, वा जिसमें सब जगत् वास करता है वे भगवान् प्रगट हुए जो सम्पूर्ण लोकोंके आनन्दरूप हैं ॥ २२१ ॥

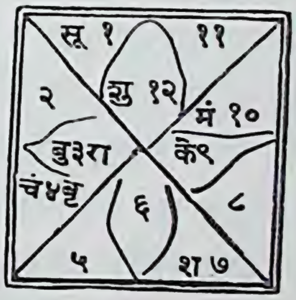
श्रीरामचन्द्रजीकी कुंडली



श्रीलक्ष्मणजीकीकुंडली



श्रीभरतजीकीकुंडली



श्रीशत्रुघ्नजीकीकुंडली



अथ क्षेपक

कुंडलीवर्णन–घनाक्षरी (कवित्त)

चैत सित नौमी सोम नखत पुनर्वसु है, शूल योग कौलव करण शुभकारी है।
कर्क हैं लगन तहां सौहैं गुरुचन्द्र दोऊ शनि हैं तुलाके धन केतु रिपुहारी है ॥
भौम है मकर मीन कर्क मेष भानु देख मिथुन परो है बुध साथ सुखभारी है।
रसिक विहारी रामकुंडली अनूप ऐसी, विशद विचित्र या विधाता निरधारी है॥१॥

जन्मनाम हिरण्यगर्भ पुनर्वसुका चतुर्थ चरण चतुःसागर योग्य है, इससे त्रिलोकीका अधिपति त्रिलोकीमें पूजित होता है, पांच ग्रह उच्चके हैं, सबसे उच्च हो शनिसुख न प्राप्त होने दे ॥१॥

दोहा–भरत जन्म ग्रह रामते, ध्रुव न्यारे ध्रुव एक ॥
यह विभेद सो जानि हैं, जिनके विमल विवेक ॥ २ ॥

चैत शुक्ल दशमी नखत, पुष्य भौम दिन जान ॥
गंड योग तैतिल करण, भरत सुजन्म प्रमान ॥ ३ ॥
राम धर्म सो भरत तन, खेचर एक समस्त ॥
भरत कुंडली कुल कलित, विधि इमि लिखी प्रसस्त॥ ४ ॥
पुनि लक्ष्मण रिपुदमनको, जन्म एकही सँग ॥
याते एकही लग्न ग्रह, एक पांचहू अंग ॥ ५ ॥
चैत शुक्ल एकादशी, आश्लेशा बुधवार ॥
वृद्धियोग गज करण मैं दुहू जन्म निरधार ॥ ६ ॥
लषण शत्रुहन लग्न ग्रह, राम सरिस सब ठान ॥
चहूँ कुंडली यहि विधि, विधि-विरचित शुभदान ॥ ७ ॥
विधि विरचित वर पत्रिका, विशद विचित्र ललाम ॥
लखि वसिष्ठ सुर गुरु सहित, मुदित सुमिरि उर राम॥ ८ ॥ इति क्षेपक

छन्द-भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी ।
हर्षित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनुघनश्यामा निजआयुधभुजचारी।
भूषण वनमाला नयन विशाला शोभा सिंधु खरारी ॥ २४ ॥

जब यह कृपालु दीनोंके ऊपर दया करने वाले कौशल्याके हितकारक प्रगट हुए तो महतारी मुनियोंका मनहरनेवाला सुन्दर रूप देखकर बड़ी प्रसन्न हुई, जिनके नेत्र सुन्दर सांवला शरीर चार भुजा, शंख चक्र गदा पद्म धारण किये वा निज आयुध धनुष बाणको जिनकी भुजा खींचे हुए हैं, जो पांवतक लम्बायमान ऐसे वनमाला और अनेक गहने पहने, जिनके नेत्र बड़े शोभाके समुद्र हैं, जो खर राक्षसके मारनेवाले हैं ॥ २४ ॥

छन्द-कह दुहुँ करजोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनंता।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनंता ॥
करुणासुखसागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता ॥२५॥

दोनों हाथ जोड़कर बोली हे अनन्त ! आप आदि अन्त रहित अनंतरूप हो तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकारसे करूँ ? माया, सत्व रज, तम तीन गुण और ज्ञानसे भिन्न और मान रहित हो ऐसा वेद पुराण कहते हैं । हे करुणा और सुखके समुद्र ! हे लक्ष्मीपति ! सब गुणोंमें श्रेष्ठ जिनको वेद कहता है सो मेरे हेतु भक्तोंके ऊपर कृपा करनेको तुम प्रगट हुए हो ॥ २५ ॥

छन्द-ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रतिवेद कहै ।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै ॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै ॥ २६ ॥

मायासे बनाये हुए ब्रह्माण्ड जिसके रोम-रोममें लगे हैं ऐसा वेद कहता है, वह मेरे उदरमें रहे यह बड़ी हँसी की बात है; इस बातको सुनकर धीरोंकी भी मति स्थिर नहीं रहेगी अर्थात् नहीं ठहरेगी; जब ऐसा ज्ञान बढ़ने लगा तब उस ज्ञानको मन्द करनेको भगवान् हँसे और यही इनकी माया है; कारण कि, इनको अनेक चरित्र करने थे पूर्वजन्मकी कथा माता-पिताकी प्रभुने सुनायी जिससे पुत्रका प्रेम पावें ॥ २६ ॥

छन्द–माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥ २७॥

माता फिर बोली और पहले ज्ञानकी मति डोली कि हे तात ! इस रूपका त्याग करो और बाल लीला करो, यही अति प्यारी है और यही सुख परम श्रेष्ठ है कि हमको माता होनेका सुख मिले । यह वचन सुनकर सुजान भगवान्ने बालरूप होकर रोना प्रारंभ किया । इस चरित्रको जो गावेंगे वे भगवान्के लोकको जायँगे और संसारकूपमें नहीं पड़ेंगे ॥ २७ ॥

दोहा–विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ॥
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ॥ २२२ ॥

प्रभुने ब्राह्मण, गौ, देवता और संतोंके हेतु अवतार लिया है; जो मायासे, गुणोंसे और इंद्रियोंसे परे हैं उन्होंने अपनी इच्छासे शरीर धारण किया है, (यह पार्वतीका दूसरा प्रश्नोत्तर पूर्ण हो गया) ॥ २२२ ॥

सुनि शिशुरुदन परमप्रिय बानी ❋ सम्भ्रम चलि आईं सब रानी ॥१॥
हर्षित जहँ तहँ धाईं दासी ❋ आनँद मगन सकल पुरवासी ॥२॥

बालकका रोना सुनकर जिसकी प्यारी वाणी है, ऐसी सब रानियाँ जल्दीसे चली आयीं ॥ १ ॥ प्रसन्न होके जहां तहां दासी दौड़ीं और सब पुरवासी आनन्दमें मग्न हो गये ॥ २ ॥

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना ❋ मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना ॥३॥
परम प्रेम मन पुलक शरीरा ❋ चाहत उठत करत मतिधीरा ॥४॥

दशरथजी पुत्रका जन्म श्रवण करते ही जैसे ब्रह्मानन्दमें समा गये ॥ ३ ॥ मनमें बड़ा प्रेम हुआ; शरीर पुलकायमान हो गया, उठना चाहते हैं पर उठा नहीं जाता, फिर बुद्धिको सावधान करके बोले ॥ ४ ॥

जाकर नाम सुनत शुभ होई ❋ मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥५॥
परमानन्द पूरि मन राजा ❋ कहा बुलाय बजावहु बाजा ॥६॥

जिसका नाम सुननेसे शुभ होता है वे ही प्रभु मेरे घर आये हैं ॥ ५ ॥ राजाका मन आनन्दसे परिपूर्ण हो गया और (सेवकोंको) बुलाकर बोला कि बाजे बजाओ ॥ ६ ॥

गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा ❋ आये द्विजन सहित नृप द्वारा ॥७॥
अनुपम बालक देखि न जाई ❋ रूपराशि गुण कहि न सिराई ॥८॥

गुरु वसिष्ठजीको बुलाया गया; वे अनेक ब्राह्मणोंके संग राजद्वार पर आये ॥ ७ ॥ जो अनुपम (उपमारहित और रूपकी राशि है उस बालकको देखा; जिसका गुण कहनेसे नहीं होता अथवा कांतिकी अधिकतासे बालक देखा नहीं जाता ॥ ८ ॥

दोहा–तब नांदीमुख श्राद्ध करि, जात कर्म सब कीन्ह ॥
हाटक धेनु बसन मणि, नृप विप्रन कहँ दीन्ह ॥ २२३ ॥

तब नांदीमुख श्राद्ध (जो पुत्र होनेके समय करते हैं) करके सब जातकर्म किये और राजाने सुवर्ण, गौ, वस्त्र, मणियाँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ २२३ ॥

ध्वज पताक तोरण पुर छावा * कहि न जाय जेहि भांति बनावा ॥१॥
सुमन वृष्टि आकाशते होई * ब्रह्मानंद मगन सब कोई ॥२॥

ध्वजा, पताका, तोरण सारे पुरमें छा गयीं, उन्हें किस प्रकार बनाया वह कहा नहीं जाता ॥ १ ॥ आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और सब ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गये ॥ २ ॥

वृन्द वृन्द मिलि चलीं लुगाई * सहज शृंगार किये उठि धाईं ॥३॥
कनक कलश मंगल भरि थारा * गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥४॥

झुण्डके झुण्ड मिलके लुगाइयाँ चलीं; वे स्वाभाविक शृङ्गार किये उठ दौड़ीं ॥ ३ ॥ सोनेके कलश, मङ्गलकी सामग्री–हलदी, दूब दही थारमें धरकर गाती हुई राजमंदिरमें आयीं॥४॥

करि आरती निछावरि करहीं * बार बार शिशु चरणन परहीं ॥५॥
मागध सूत बंदि गण गायक * पावन यश गावहिं रघुनायक ॥६॥

आरती करके निछावर करती हैं बार बार बालकके चरणोंमें पड़ती हैं॥५॥ मागध (जागा), सूत (पौराणिक), बन्दी जन (भाट), गायक (गानेवाले) रघुनाथजीका पवित्र यश गाने लगे॥६॥

सर्वस दान दीन्ह सब काहू * जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥७॥
मृगमद चन्दन कुंकुम सींचा * मची सकल वीथिन बिच कीचा ॥८॥

सब किसीने सर्वदान अर्थात् जो जिसके पास था सो दे दिया और जिसने पाया उसने भी पास नहीं रखा औरोंको दे दिया॥७॥मृगमद (कस्तूरी), चंदन, कुंकुमकी गलियोंमें कीच हो गयी ॥८॥

दोहा–गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगट भये सुखकन्द ॥
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द ॥ २२४ ॥

घर घर आनन्दके बाजे बजने लगे कि सुखमूल भगवान् प्रगट हुए हैं, जहां तहां नगरके स्त्री, पुरुषोंके समूह प्रसन्न हुए (फिरते) हैं ॥ २२४ ॥

केकय सुता सुमित्रा दोऊ * सुन्दर सुत जन्मत भईं सोऊ ॥१॥
वह सुख संपति समय समाजा * कहि न सकैं शारद अहिराजा ॥२॥

केकयी और सुमित्रा इनके भी पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उसी समयका सुख सम्पति साज समाज सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ २ ॥

अवधपुरी सोहै इहि भाँती * प्रभुहिं मिलन आई जनु राती ॥३॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी * तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥४॥

अयोध्याजी इस प्रकार शोभायमान हो रही थी मानो प्रभुसे रात मिलने आयी ॥ ३ ॥ परन्तु सूर्यके सम्मुख रात कहां रह सकती है, सो रात्रि सूर्यको देखकर सकुचायी तथापि अनुमानसे सन्ध्या हो गयी (ऐसा दीख पड़ा) ॥ ४ ॥

अगर धूप जनु बहु अँधियारी * उड़ै अबीर मनहुँ अरुणारी ॥५॥
मंदिर मणिसमूह जनु तारा * नृप गृह कलश सो इन्दु उदारा ॥६॥

अगर और धूपके धुएंसे अँधियारी हो गयी, अबीर जो उड़ता था वही मानो सन्ध्या समयकी लाली जान पड़ी ॥ ५ ॥ मन्दिरमें जो बहुत मणि जड़ रही थीं वे तारेसी चमकती थीं और राजाके मन्दिरका ऊँचा कलश चन्द्रसम शोभित होता है ॥ ६ ॥

भवन वेदध्वनि अति मृदुबानी * जनुखगमुखर समय सुख सानी ॥७॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना * एकमास तेहि जात न जाना ॥८॥

राजमन्दिरमें जो कोमल वेदध्वनि होती है वही मानो पक्षी बसेरेमें आके सुखसानी वाणी को बोलते हैं ॥ ७ ॥ यह कौतुक देखकर सूर्य भूल गये और एक महीना जाते नहीं जाना, एक मास पर्यंत सूर्य भूलकर खड़े रह गये सब खगोलकी गति रुक गयी ॥ ८ ॥

दोहा–मास दिवसका दिवस भा, मर्म न जानै कोइ ॥
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कवनि विधि होइ ॥ २२५ ॥

एक महीनेका दिन हुआ यह भेद किसीने नहीं जाना, रथ समेत सूर्य ठहर गया तो रात्रि कैसे हो ? (प्रश्न) जो किसीने नहीं जाना तो गोसाईंजीने कैसे जाना ? (उत्तर) यह गुरुकी कृपासे जाना; जैसा पूर्वमें लिखा है कि–" सूझहिं राम चरित मणि मानिक । गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक" गुरुकी कृपासे सब कुछ गुप्त चरित्र भी प्रगट होते हैं अथवा एक मास बीत गया सबने एक दिन जाना ॥ २२५ ॥

यह रहस्य काहू नहिं जाना * दिनमणि चले करत गुणगाना ॥१॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा * चले भवन वर्णत निज भागा ॥२॥

यह गुप्त चरित किसीने नहीं जाना, सूर्य भगवान् गुण गाते हुए चले (कारण कि उनके) वंशमें श्रीरामचन्द्रजीने जन्म लिया) ॥ १ ॥ यह महा उत्सव आनंद देखकर देवता, मुनि और नाग अपना-अपना भाग्य वर्णन करते हुए घरको चले ॥ २ ॥

औरौ एक कहौं निज चोरी * सुनु गिरिजा अतिदृढ़मति तोरी ॥३॥
काकभुशुण्डि संग हम दोऊ * मनुजरूप जानै नहिं कोऊ ॥४॥

और एक छिपी बात कहता हूँ हे गिरिजे ! तुम्हारी बड़ी दृढ़ मति है, सुनो ! (गिरिजा कहनेका भाव यह है कि तुम पर्वतकी पुत्री हो; पर्वत सम तुम्हारी बड़ी दृढ़ मति है तुमने कहा था जो हमने नहीं पूछा वह भी कहना, इस कारण तुमसे कहते हैं) ॥ ३ ॥ कागभुशुंडिके संग हम अयोध्यामें प्रेमरस लेनेको मनुष्यरूप धारण कर गये थे इसे कोई नहीं जानता ॥ ४ ॥

परमानन्द प्रेम सुख फूले * बीथिन फिरहिं मगन मन भूले ॥५॥
यह सब चरित जान पै सोई * कृपा रामकी जापै होई ॥६॥

और प्रेमरसमें जो परमानंद प्राप्त हुआ उससे फूलकर गलीमें मगनमन भूले फिरते थे; कारण कि घर-घर बधाई बाज रही थी ॥ ५ ॥ इस हमारे आनेके चरित्रको वही जानेगा जिसपर रामचन्द्रजीकी दया होगी ॥ ६ ॥

तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा ❋ दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ॥७॥
गज रथ तुरंग हेम गो हीरा ❋ दीन्हे नृप नाना विधि चीरा ॥८॥

इस अवसरमें जो जिस प्रकार आया था और जिसने जो मांगा उसे वही राजाने दिया ॥ ७ ॥ राजाने हाथी, घोड़े, रथ, सोना, गौ, हीरा, और अनेक प्रकारके वस्त्र दिये ॥ ८ ॥

दोहा-मनसन्तोषे सबनके, जहँ तहँ देत अशीश ॥
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसीदासके ईस ॥ २२६ ॥

सबके मनमें सन्तोष हुआ, जहाँ तहाँ सब आशीष देने लगे कि ये चारों बालक बहुत कालतक जियें जो तुलसीदासजीके स्वामी हैं ॥ २२६ ॥

कछुक दिवस बीते इहि भाँती ❋ जात न जानहिं दिन अरु राती ॥१॥
नाम करण कर अवसर मानी ❋ भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी ॥२॥

कुछ दिन इस प्रकारसे बीते, रात-दिन जाते नहीं जाने जाते ॥ १ ॥ जब ग्यारहवें दिन नामकरणका समय आया तब राजाने ज्ञानी वसिष्ठजीको बुला भेजा (वे आये) ॥ २ ॥

करि पूजा भूपति अस भाखा ❋ धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ॥३॥
इनके नाम अनेक अनूपा ❋ मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥४॥

पूजा करके राजाने कहा महाराज ! जो विचार रखा है वह नाम धरिये ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि इनके उपमा रहित अनेक नाम हैं, उन्हें अपनी मतिके अनुसार मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥

जो आनन्द-सिंधु सुखरासी ❋ सीकरते त्रैलोक्य सुपासी ॥५॥
सो सुखधाम राम अस नामा ❋ अखिल लोकदायक विश्रामा ॥६॥

जो आनंदके समुद्र, सुखकी राशि हैं उन्हींकी सीकरते त्रैलोक्यका सुपास अर्थात् सुख होता है (सीकर उन कणोंको कहते हैं जो सींकको जलमें डुबोकर धरतीमें पटकनेसे उड़े) ॥ ५ ॥ सो ऐसे सुखके जो धाम वा ऐसा सुख जिसका धाम है उनका नाम 'राम' है और ये सम्पूर्ण लोकमें विश्राम देने वाले हैं ॥ ६ ॥

विश्वभरण पोषण कर जोई ❋ ताकर नाम भरत अस होई ॥७॥
जाके सुमिरणते रिपुनाशा ❋ नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा ॥८॥

जो संसारका पालन पोषण कर सकते हैं उनका नाम 'भरत' होगा ॥७॥ जिनके सुमिरते ही शत्रुओंका नाश हो जाता है उनका नाम वेदोंमें 'शत्रुहन' प्रगट हैं ॥ ८ ॥

दोहा-लक्षणधाम रामप्रिय, सकल जगत आधार ॥
गुरु वसिष्ठ तेहि राखेउ, लक्ष्मण नाम उदार ॥ २२७ ॥

जो सम्पूर्ण लक्षणोंके धाम और श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय, सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत हैं गुरु वसिष्ठजीने उनका उदार अर्थात् परिपूर्ण 'लक्ष्मण' नाम रखा। परिपूर्ण कहनेका आशय है

कि, श्रीरामजीमें विश्वको विश्राम देना; भरतमें विश्वका पोषण, शत्रुहनजीमें शत्रुसे रक्षा करना, लक्ष्मणजीमें इन तीनोंसे विशेष जगत्का आधार होना चौथा गुण परिपूर्ण हुआ है) ॥२२७॥

धरे नाम गुरु हृदय विचारी ❋ वेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ॥१॥
मुनि धन जन सर्वस शिव प्राना ❋ बाल केलि रस तेहि सुखमाना ॥२॥

गुरुजीने नाम धर मनमें विचार कर कहा कि हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदोंके तत्त्व अर्थात् प्राण हैं ॥१॥ मुनियोंके और भक्तोंके सर्वस्व धन, शिवजीके प्राण हैं, और बालकेलिके सुख माननेवाले भुशुण्डिजी वा शिवजीके प्राण हैं, यह सुन दशरथजीने सुख माना ॥ २ ॥

बारहिते निज हित पति जानी ❋ लक्ष्मण रामचरण रति मानी ॥३॥
भरत शत्रुहन दोनों भाई ❋ प्रभु सेवक जस प्रीति बढ़ाई ॥४॥

बाल अवस्थासे ही लक्ष्मणजीने अपना हित और स्वामी जानकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति की ॥ ३ ॥ भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयोंमें प्रभुने सेवककी नाईं प्रीतिको बढ़ाया (हव्यका जो अंश जिसमें युक्त होने योग्य था वह उससे मिल गया, कौशल्याने अपने हाथसे दिया उससे लक्ष्मण हो श्रीरामजीसे मिले जो कैकेयीने अपने हाथसे दिया उससे शत्रुघ्नजी हो भरतजीसे मिले ॥ ४ ॥

श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी ❋ निरखहिं छबि जननी तृणतोरी ॥५॥
चारिउ शील रूप गुण धामा ❋ तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥६॥

साँवली और गोरी दोनोंकी सुन्दर जोड़ी जिनकी छबि देखकर माता तिनका तोड़ती है कि (दृष्टि न लगे) ॥ ५ ॥ यद्यपि चारों भाई शील, रूप और गुणोंके घर थे तो भी श्रीरामचन्द्रजी अधिक सुखके समुद्र थे ॥ ६ ॥

हृदय अनुग्रह इंदु प्रकाशा ❋ सूचत किरण मनोहर हासा ॥७॥
कबहुँ उछंग कबहुँ वर पलना ❋ मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीके मनमें अनुग्रह अर्थात् करुणा चन्द्र होकर प्रकाश किया है सो उसकी किरणें मनोहर हँसनेसे देख पड़ती हैं ॥ ७ ॥ कभी गोदी और पालनेमें माता झुलाकर प्यारे लल्लन ऐसा कह प्यार करने लगी ॥ ८ ॥

दोहा—व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण विगत विनोद ॥
सो प्रभु प्रेम भक्तिवश, कौशल्याके गोद ॥ २२८ ॥

जो सर्वत्र व्यापक, निरंजन (मायारहित), गुणरहित और क्रीडारहित जन्मरहित) हैं वे ही प्रभु भक्तिके वशमें होकर कौशल्याजीकी गोदमें आये हैं ॥ २२८ ॥

काम कोटि छबि श्याम शरीरा ❋ नील कंज वारिद गम्भीरा ॥१॥
अरुण चरण पंकज नख ज्योती ❋ कमलदलन बैठे जनु मोती ॥२॥

श्रीरामजीके श्यामशरीरमें कोटि कामकी छबि और कोटि नीलकमल और गंभीर नीलबादलोंकी छबि है॥१॥लाल चरणकमलोंमें नखोंकी ज्योति ऐसी शोभित है मानों कमलोंके पत्तोंमें मोती बैठे हैं, वा अरुणकमल चरणके आश्रय जो अंगुलियोंके नखोंकी ज्योति है वह अरुण दीखती है, जैसे लाल कमलके दलोंपर बैठकर मोती लाल दीखते हैं (यह तद्गुणालंकार है) ॥२॥

रेख कुलिश ध्वज अंकुश सोहे ❋ नूपुर ध्वनि सुनि मुनि मन मोहे ॥३॥
कटि किंकिणी उदर त्रय रेखा ❋ नाभि गँभीर जान जेहि देखा ॥४॥

उसी चरणतलमें कुलिश, वज्र ध्वज और अंकुशकी रेखा शोभित होती हैं, नूपुर अर्थात् पांवटोंकी ध्वनि सुनके मुनियोंके मनमोह जाते हैं॥३॥कमरमें तगडी पहने हुए उदरमें त्रिवली रेखा शोभित नाभिकी गंभीरता वही जाने जिसने देखी है अर्थात् ब्रह्मा जो नाभिकमलसे उत्पन्न होकर अनेक वर्ष पर्यंत ऊपरसे नीचेको गये थे और अंत न पाया उन्हींको गोसाईंजी साक्षी देते हैं ॥४॥

भुज विशाल भूषण-युत भूरी ❋ हिय हरिनख शोभा अतिरूरी ॥५॥
उर मणिहार पदिककी शोभा ❋ विप्रचरण देखत मन लोभा ॥६॥

बड़ी-बड़ी भुजाएँ बहुत गहनोंसे शोभायमान हैं। अथवा वीरोंकी भुजाका भूषण जो विश्वविजय उससे परिपूर्ण है और हृदय पर सिंहके नख जो कठलेमें लगे हैं उनकी शोभा अति बड़ी है॥५॥ छातीमें मणियोंका हार और पदिक हीरोंका हार,वा चौकोने चहुँफेर मोती मणियां जटित हैं और भृगुलता शोभित है,जिस विप्र चरणके देखनेसे मनलोभित होता है कि उपास्य योग्य है ॥६॥

कंबुकण्ठ अति चिबुक सुहाई ❋ आनन अमित मदन छबि छाई ॥७॥
दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे ❋ नासा तिलक को वरणै पारे ॥८॥

शंख जैसा त्रिरेखा युक्त कंठ और अत्यन्त शोभायमान ठोढी और अपार कामोंकी छबि मुखपर छा रही है ॥७॥ दो-दो दांत और लाल होंठ और नासिका और तिलककी शोभाके वर्णनमें कौन पार पा सकता है ? ॥ ८ ॥

सुन्दर श्रवण सुचारु कपोला ❋ अतिप्रिय मधुर सुतोतरि बोला॥९॥
नील कमल दोउ नैन विशाला ❋ विकट भृकुटि लटकन वरमाला॥१०॥

सुंदर कान सुंदर जिनके गाल हैं और अतिप्यारे मीठे सुन्दर तोतरे बोल हैं ॥९॥ नीलकमलके समान (काजलयुक्त) दोनों बड़े नेत्र हैं और टेढ़ी भौं; माथेपर सुन्दर बाल लटक रहे हैं॥१०॥

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे ❋ बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥११॥
पीत झँगुलिया तन पहिराई ❋ जानुपाणिविचरनि मोहि भाई ॥१२॥

चिकने बाल जो घुँघरवाले और गर्भके जमे हुए हैं जिन्हें माताओंने बहुत प्रकारसे सवाँरा है ॥ ११ ॥ पीली झँगुलियाँ माताओंने पहना दी है घुटनों और हाथोंसे चलना मुझको बहुत अच्छा लगता है ॥ १२ ॥

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेखा ❋ सो जानै स्वपनेहु जिन देखा ॥१३॥

वेद और शेष जिस रूपको नहीं कह सकते उसे हम क्या कहें, जिसने स्वप्नमें भी देखा तो वह जाने ॥ १३ ॥

दोहा-सुख सन्दोह मोर पर, ज्ञान गिरा गोतीत ॥
दंपति परम प्रेम वश, कर शिशु चरित पुनीत ॥ २२९ ॥

जो सुखके पात्र, मोहके परे ज्ञान, वचन इन्द्रियोंसे पृथक् हैं वे श्रीरामचन्द्रजी दशरथ और कौशल्याके वश होकर पवित्र बाललीलाको करते हैं ॥ २२९ ॥

इहि विधि राम जगत पितुमाता * कोशलपुर-वासिन सुखदाता ॥१॥
जिन रघुनाथ चरण रति मानी * तिनकी यह गति प्रगट भवानी ॥२॥

इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी जगत्के माता पिता अयोध्यापुर वासियोंको सुख देनेवाले हैं ॥१॥ जिन्होंने श्रीरामचंद्रके चरणोंमें प्रेम किया है हे पार्वती ! उनकी यह गति प्रगट है ॥ २ ॥

रघुपति विमुख जतनकर कोरी * कवन सकै भवबंधन छोरी ॥३॥
जीव चराचर वश कै राखे * सो माया प्रभुसों भय भाखे ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीसे विमुख हो करोड़ों यत्न करो पर संसार बंधनको कौन छुड़ा सकता है?॥३॥ मायाने चर और अचर जीवोंको अपने वशमें किया है, वह माया प्रभुसे भयसहित बोलती है॥४॥

भृकुटि विलास नचावै जाही * अस प्रभुछांड़ि भजिय कहु काही॥५॥
मन क्रम वचन छांड़ि चतुराई * भजत कृपा करिहैं रघुराई ॥६॥

जो भगवान् भौंहको फेरनेसे मायाको नचा देते हैं ऐसे प्रभुको छोड़कर किसका भजन करे॥५॥ जो मन, कर्म, वचनसे चतुरता छोड़ भजन करता है उसपर भगवान् कृपा करते हैं ॥ ६ ॥

यहि विधि शिशुविनोद प्रभु कीन्हा * सकल नगरवासिन सुख दीन्हा ॥७॥
लै उछङ्ग कबहूँ हलरावैं * कबहुँ पालने घालि झुलावैं ॥८॥

इस प्रकार भगवान्ने बाललीला कर नगरवासियोंको सुख दिया ॥७॥ उन्हें कभी गोदीमें ले खिलावें कभी पालनेमें पौढ़ाकर झुलावें ॥ ८ ॥

दोहा-प्रेम मगन कौशल्या, निशि दिन जात न जान ॥
सुत सनेहवश मातु सब, बालचरित कर गान ॥ २३० ॥

कौशल्या ऐसी प्रेममें मग्न हैं कि रातदिन जाते नहीं जानतीं और माताएँ पुत्रोंके स्नेहवश हो बाल चरित्रोंके गीत बनाकर गाती हैं ॥ २३० ॥

एक बार जननी अन्हवाये * करि शृंगार पलना पौढ़ाये ॥१॥
निजकुल इष्ट देव भगवाना * पूजा हेतु कीन्ह पकवाना ॥२॥

एक बार माताने स्नान कराया, शृङ्गार कर पलनामें रामचन्द्रजीको लिटाय दिया ॥१॥ अपने कुलके इष्टदेव भगवान्की पूजाके हेतु पकवान बनाया ॥ २ ॥

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा * आप गई जहँ पाक बनावा ॥३॥
बहुरि मात तहवाँ चलि आई * भोजन करत दीख सुत जाई ॥४॥

पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और जहां पाक बनाया था वहां आप गयीं ॥ ३ ॥ फिर जब माता वहां गयीं तो अपने पुत्र रामको भोजन करते देखा ॥ ४ ॥

गई जननि शिशुपहँ भयभीता * देखा बाल तहां पुनि सूता ॥५॥
बहुरि आय देखा सुत सोई * हृदय कंप मन धीर न होई ॥६॥

माता डरती हुई पालनेमें देखने गयी तो वहां श्रीरामचन्द्रजीको सोते देखा॥५॥ फिर पाकशालामें आकर भी अपने पुत्रको देखा; तब हृदय काँप गया मनमें धीर नहीं होता है ॥६॥

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा ❀ मतिभ्रम मोरि कि आन विशेखा॥७॥
देखि राम जननी अकुलानी ❀ प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥८॥

यहां भी राम; वहां भी राम ऐसे दो बालकोंको देख कौशल्याजी कहने लगीं मेरी-मतिमें भ्रम है कि यह कोई और है ॥ ७ ॥ जब रामचन्द्रजीने देखा कि माता व्याकुल है तो मधुर मुसकानसे हँस दिये ॥ ८ ॥

दोहा-दिखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड ॥
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥ २३१ ॥

माताको अपना आश्चर्ययुक्त अखण्डरूप दिखाया जिसके रोम रोममें कोटि कोटि ब्रह्मांड (जगत्) लगे हैं ॥ २३१ ॥

अगणित रवि शशि शिव चतुरानन ❀ बहु गिरिसरित सिंधुमहिकानन॥१॥
काल कर्म गुण दोष स्वभाऊ ❀ सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥२॥

अनगिन्त सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी, वन ॥ १ ॥ काल,कर्म-गुण, दोष और स्वभाव देखे; जो कभी भी सुने नहीं थे ॥ २ ॥

देखी माया सब विधि गाढ़ी ❀ अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥३॥
देखा जीव नचावै जाही ❀ देखी भक्ति जो छोरै ताही ॥४॥

और सब प्रकार प्रबल माया देखी, जो डरसे हाथ जोड़े खड़ी थी ॥ ३ ॥ जीवको, नचाने वाली माया (अविद्या) को और उसे छुड़ाने वाली भक्तिको देखा । सोते हुए जो श्रीरामचन्द्रजीको देखा तो शांतरूप माया गुण ज्ञानसे भिन्न है, भोजन करते जो देखा तो करुणा और सुखोंका समुद्र, गुणोंकी खान है और यह तीसरा विराट रूप है जिन तीनों रूपोंकी स्तुति कौशल्याजीने जन्म समयकी थी वही ये तीनों रूप दिखाये ॥ ४ ॥

तनु पुलकित मुख वचन न आवा ❀ नयन मूँदि चरणन शिर नावा ॥५॥
विस्मयवन्त देखि महतारी ❀ भये बहुरि शिशु रूप खरारी ॥६॥

कौशल्याका शरीर पुलकायमान हो गया, मुखसे वचन नहीं निकला;नेत्रमूँद चरणोंमें शिर नवाया ॥ ५ ॥ माताकी बुद्धि आश्चर्य युक्त देखकर श्रीरामचन्द्रजी फिर बालरूप हो गये॥६॥

अस्तुति करि न जाय भय माना ❀ जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥७॥
हरि जननिहिं बहुविधि समुझाई ❀ यह जनि कतहुँ कहेसि सुनु माई॥८॥

कौशल्यासे स्तुति नहीं की जाती, भयभीत हो गयी कि मैंने जगत् पिताको पुत्र करके जाना ॥ ७ ॥ भगवान्ने माताको बहुत प्रकारसे समझाया और कहा-माता ! यह बात कहीं नहीं कहना ॥ ८ ॥

दोहा-बार बार कौशल्या, विनय करै कर जोरि ॥
अब जनि कबहूँ व्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि ॥ २३२ ॥

वारंवार कौशल्या हाथ जोड़ विनती करने लगी-हे प्रभु ! अब तुम्हारी माया मुझे कभी न व्यापे ॥ २३२ ॥

अहिल्योद्धार



गौतम नारी शाप वश, उपल देह धरि धीर ।
चरण - कमल - रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर ॥

वालकाण्ड पृ० २९०

बालचरित हरि बहुविधि कीन्हा ❋ अति अनंद दासन कहँ दीन्हा ॥१॥
कछुक काल बीते सब भाई ❋ बड़े भये परिजन सुखदाई ॥२॥

भगवान्‌ने बहुत प्रकारके बालचरित्र किये और दासोंको बहुत आनन्द दिया ॥ १ ॥ कुछ दिन बीतने पर सब भाई बड़े हुए और अपने सब कुटुम्बको सुख देने लगे ॥ २ ॥

चूड़ाकरण कीन्ह गुरु जाई ❋ विप्रन बहुत दक्षिणा पाई ॥३॥
परम मनोहर चरित अपारा ❋ करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥४॥

(कोई कहते हैं चूड़ाकरण शब्दसे जो मुण्डनका अर्थ लें चक्रवर्ती राजाओंके सिरपर छूरा चलानेकी रीति नहीं पायी जाती; इसलिए चूड़ा पहनानेका सम्बन्ध है) गुरु जाकर चूड़ाकरण किये और ब्राह्मणोंने बहुतसी दक्षिणा पायी, यथार्थमें मुण्डन किया, कारण कि यह वैदिक संस्कार है जो गर्भसे पहले वा तीसरे वर्षमें होता है, उससे वीर्यदोष जाता रहता है) ॥३॥ अत्यन्त मनोहर अपार चरित्र चारों भाई करते फिरते हैं ॥ ४ ॥

मन क्रम वचन अगोचर जोई ❋ दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई ॥५॥
भोजन करत बोल जब राजा ❋ नहिं आवत तजि बालसमाजा ॥६॥

जो मन वचन कर्मसे परे हैं वे ही प्रभु दशरथके आँगनमें विचरते हैं ॥ ५ ॥ भोजन करते समय जब राजा बुलावें तो बालकोंका समाज छोड़कर नहीं आवें ॥ ६ ॥

कौशल्या जब बोलन जाई ❋ ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई ॥७॥
निगम नेति शिव अन्त न पावा ❋ ताहि धरै जननी हठि धावा ॥८॥

जब कौशल्या बुलाने जाती हैं तब प्रभु ठुमुक ठुमुक कर भाग जाते हैं ॥७॥ वेद जिसको 'नेति नेति' कहकर वर्णन करें और जिसका शिवजी भी अन्त नहीं पाते उसको माता हठसे पकड़नेके लिए दौड़ती हैं ॥ ८ ॥

धूसर धूरि भरे तनु आये ❋ भूपति बिहँसि गोद बैठाये ॥९॥

उन्हें धूरिसे भरे हुए शरीरमें आया देख राजाने हँसकर गोदमें बैठाया ॥ ९ ॥

दोहा—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय ॥
भाजि चलत किलकात मुख, दधि ओदन लपटाय ॥ २३३ ॥

चंचल चित्तसे भोजन करते हैं, इधर उधरसे देखते हुए समय पाकर किलकारी मारते हुए भाग चलते हैं मुखसे दही भात लिपट रहा है ॥ २३३ ॥

बाल चरित अति सरल सुहाये ❋ शारद शेष शम्भु श्रुति गाये ॥१॥

बाल चरित्र अतिशोभायमान सरल हैं जो शारदा, शेष, शिव और वेदोंने गाये हैं ॥ १ ॥

अथ क्षेपक

इक दिन एक सलूका आवा ❋ नृपके द्वारे कीश नचावा ॥१॥

एक दिन एक मदारीने राजाके द्वारे बन्दर नचाया ॥ १ ॥

---

१. सवैया — "तनुकी द्युति श्याम सरोरुह लोचन कञ्जकी मंजलताई हरैं। अति सुन्दर सोहत धूरि भरी छवि भूरि अनंगकी दूरि टरैं। दमकैं दँतिया द्युति दामिनिसी किलकैं कल बाल विनोद करैं। अवधेशके बालक चारि सदा तुलसी–मनमंदिरमें बिहरैं ।।१।। कबहूँशशि मांगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं। कबहूं करताल बजायके नाचत मातु सबै मन मोद भरैं। कबहूँ रिसिआय कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं। अवधेशके बालक चारि सदा तुलसीमनमंदिरमें बिहरैं ।। २ ।।"

देखि राम ठानी मचलाई ❋ कहैं मोहि कपि देहु मँगाई ॥२॥
भूप मँगाय देन बहु लागे ❋ तदपि न लेत रूदन पुनि आगे ॥३॥

श्रीरामचन्द्रजी देखकर मचल गये कि बन्दर लूँगा, मँगा दो ॥ २ ॥ राजा मँगाकर अनेक बन्दर देने लगे परन्तु रामजीने नहीं लिया और रुदन करने लगे ॥ ३ ॥

तब वसिष्ठ बोले मुसुकाई ❋ सुनहु नृपति अब यह मन लाई ॥४॥
नृप सुग्रीव निकट कपिराई ❋ किष्किन्धामें रहत सदाई ॥५॥

तब वसिष्ठजी हँसकर बोले कि हे राजन्! अब आप मन लगाकर सुनिये ॥ ४ ॥ राजा सुग्रीवके निकट एक कपि सर्वदा किष्किन्धामें रहता है ॥ ५ ॥

तासु निकट तुम दूत पठावहु ❋ आदरसे नृप ताहि बुलावहु ॥६॥
सुनत भूप भट भूरि पठाये ❋ सकल सुकण्ठ पास चलि आये ॥७॥

उसके निकट आप दूत भेज दीजिये और आदरसे उसको यहां बुलवाइये ॥ ६ ॥ वसिष्ठजीका वचन सुनकर राजाने बहुत योद्धा दूत भेजे और वे सब सुग्रीवके पास गये ॥ ७ ॥

जो नृप कह्यो सो वर्णन कीन्हा ❋ सुनि सुकंठ तुरंत कपि दीन्हा ॥८॥
लै आये मन्दिर हर्षाई ❋ देखि राम उर लीन्ह लगाई ॥९॥

जो कुछ राजाने कहा था वह दूतने वर्णन किया, सुग्रीवने सुनते ही तुरंत महावीरजीको भेज दिया ॥ ८ ॥ वे महावीरजीको प्रसन्नमन हो मंदिरमें लाये और श्रीरामजीने उन्हें देखकर हृदयमें लगा लिया ॥ ९ ॥

जहँ जहँ खेलहिं राम पतंगा ❋ तहँ तहँ कपि राखहिं निजसंगा ॥१०॥
एक दिन राम पतंग उड़ाई ❋ देवलोक सो पहुँची जाई ॥११॥

जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजी खेलते थे वहाँ-वहाँ कपिको अपने संगमें रखते थे, (हनुमान्जीने छोटासा रूप बना लिया था) ॥ १० ॥ एक दिन श्रीरामचन्द्रने पतंग उड़ाई जो कि इन्द्रलोकमें जा पहुँची ॥ ११ ॥

तहँ हरि-सुत जयन्तकी नारी ❋ अतिविचित्र सो चंग निहारी ॥१२॥

वहाँ इन्द्रके पुत्र जयन्तकी स्त्रीने यह अत्यन्त अद्भुत चंग (पतंग) देखकर ॥ १२ ॥

दोहा—मनमें कीन्ह विचार इमि, जासु गुड़ी अस आहि ॥
सो पुरुष कस होय धौं, हँसि गहि लीन्हेसि ताहि ॥ २३४ ॥

मनमें यह विचार किया कि जिसका पतंग ऐसा है वह पुरुष कैसा होगा ? यह विचार कर उसने हँसके पतंग पकड़ ली ॥ २३४ ॥

तब प्रभु हनूमानते भाखी ❋ देखौ किन पतंग गहि राखी ॥१॥
तुरत पवन सुत जाय निहारी ❋ देहि छाँड़ि पुनि गिरा उचारी ॥२॥

तब श्रीरामजीने हनुमान्जीसे कहा कि देखो पतंग किसने पकड़ी है ? ॥ १ ॥ महावीरजीने तुरंत जाकर देखा और उससे कहा कि इसे छोड़ दो ॥ २ ॥

बोली जासु चंग यह नीकी ❋ दर्शन करहुँ आस यह जीकी ॥३॥
ताहीते मैं याको गहेऊँ ❋ आइ अनिल सुत प्रभुते कहेऊँ ॥४॥

जयन्तकी स्त्रीने कहा जिसकी यह सुन्दर चंग है उसका दर्शन करूँगी यह मनमें इच्छा है ॥ ३ ॥ इसी कारणसे मैंने इसे पकड़ा है, महावीरजीने आकर प्रभुसे सब हाल कहा ॥ ४ ॥

सुनि हरि कह्यो कहो तुम जाई ❋ चित्रकूट महँ देव दिखायी ॥५॥
हनूमान चलि तासों भाषा ❋ दिहेसि छांड़ि करि मन अभिलाषा ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले कि तुम जाकर कहो कि चित्रकूटमें हमारे दर्शन होंगे ॥५॥ हनूमान्‌ने उससे जाकर कहा और उस नारीने मनमें दर्शनकी इच्छा धर पतंग छोड़ दी ॥ ६ ॥

तब रघुनाथ खैंचि सो लीन्ही ❋ निशि गृह आय बियारू कीन्ही ॥७॥

तब रघुनाथजीने वह चंग खैंच ली और रात्रिमें घर आकर भोजन किया ॥ ७ ॥

दोहा—विविध चरित रघुनाथके, को कवि पावै पार ॥
वर्णन कीन्हे सिद्ध मुनि, निज निज मति अनुसार ॥ २३५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र अपार हैं उनका पार कौन कवि पा सकता है, सिद्ध मुनियोंने अपनी-अपनी मतिके अनुसार वर्णन किये हैं ॥ २३५ ॥

एक दिवस इक बानिक आवा ❋ बेचन हित नग नृपहि दिखावा ॥१॥
लै रघुनाथ कूपमें डारा ❋ देव वहै हँसि भूप उचारा ॥२॥

एक दिन एक व्यापारी आया, उसने बेचनेके लिए नग राजाको दिखाये ॥ १ ॥ उसको लेकर श्रीरामचन्द्रजीने कुएँमें डाल दिया, तब राजाने हँसकर कहा वही नग लाकर दो ॥२॥

तुरतै वृक्ष कूप ते जामा ❋ लागे लाल अमोलक तामा ॥३॥
फरत झरत पुनि लागत भारी ❋ लै लै जात सकल नरनारी ॥४॥

तत्काल कूपसे वृक्ष उत्पन्न हुआ और उसमें अमोल लाल लगे ॥ ३ ॥ फलकर गिरने लगे और फिर लगने लगे, नर नारी लेकर जाने लगे ॥ ४ ॥

सात दिवस भइ लूट विसेखी ❋ पुनि सो विटप परा नहिं देखी ॥५॥
इक दिन एक बधिक चलि आवा ❋ अद्भुत पक्षी नृपहि दिखावा ॥६॥

यह लूट सात दिन तक अधिक रही; फिर वृक्ष नहीं दीख पड़ा ॥५॥ एक दिन एक व्याध आया और एक अद्भुत पक्षी राजा को दिखाया ॥ ६ ॥

देखि राम सो दीन्ह उड़ाई ❋ बोला खग सो देहु मँगाई ॥७॥
सुनि प्रभु तासु पक्ष महि गारा ❋ भा तरु तुरत, जमै जल डारा ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने देखकर उसको उड़ा दिया तब उसने कहा मेरा वही पक्षी मँगाकर दो ॥७॥ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने पृथ्वीमें उसका पंख गाड़ दिया और उसका तुरंत वृक्ष जमा ॥८॥

दोहा—लगत फूल फूटत तुरत, निकसत उड़त विहंग ॥
बैठत महलन घरनपर, धावत बालक संग ॥ २३६ ॥

फूल लगने लगे और फूटकर उसमें पक्षी निकल-निकल कर उड़ने लगे। वे महलों पर बैठने और बालकोंके संग दौड़ने लगे ॥ २३६ ॥

दोहा-पुरवासिन पाले सकल, देखि विहँग अनूप ॥
सुनि सुनि तहँ लै लै गये, देश देशके भूप ॥ २३७ ॥

पुरवासियोंने यह सुन्दर पक्षी पाले और भी देश-देशके राजा सुनकर पक्षी ले गये ॥२३७॥

एक दिवस इक सूकर आवा * घुरघुराय प्रभु सम्मुख धावा ॥१॥
गहि पद पटक्यो भूमि भुजासू * छूटत भयो दिव्य वपु तासू ॥२॥

एक दिन एक शूकर घुरघुराता हुआ और रामजीके सम्मुख दौड़ा ॥ १ ॥ श्रीरामजीने उसका चरण पकड़कर पृथ्वी पर दे पटका। तत्काल उसका दिव्य शरीर हो गया ॥ २ ॥

अस्तुति करि निज कथा सुनाई * हरिभक्तन नहिं शीश नवाई ॥३॥
नृपते सूकरको तनु पायो * लखि तव दरश भयो मन भायो ॥४॥

उसने स्तुति करके अपनी कथा सुनाई कि मैंने हरि भक्तोंको शिर नहीं नवाया था॥३॥इससे राजाके शरीरसे शूकरका शरीर पाया था, अब आपके दर्शनसे मेरा मनोभिलषित कार्य बना॥४॥

इक दिन एक सिंहने धाई * गही सुब्राह्मणकी शुभ गाई ॥५॥
पांच बाण मारे प्रभु पावन * लागत भयो गंधर्व सुहावन ॥६॥

एक दिन एक शेरने झपटकर ब्राह्मणकी उत्तम गऊ पकड़ी ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उसके पांच बाण मारे जिनके लगते ही वह सुन्दर गन्धर्व हो गया ॥ ६ ॥

पाय रूप निज कथा सुनाई * नारद हास्य देह अस पाई ॥७॥
प्रभुके दरश मिटे दुख भारे * कहि अस गयो लोक निज सारे॥८॥

अपना रूप पाकर उसने कथा सुनाई कि मैं गन्धर्व था; मैंने नारदकी हँसी की थी उनके शापसे यह देह पायी ॥ ७ ॥ आपके दर्शनसे सब दुःख मिट गये, ऐसा कहकर वह अपने लोकको गया ॥ ८ ॥

एक दिवस प्रभु सरयूमाहीं * अनुज सखनयुत मुदित नहाहीं॥९॥
असुर एक रावण कर प्रेरा * मगररूप धरि मुख में गेरा ॥१०॥

एक दिन प्रभु सरयूमें अनुज सखा सहित प्रसन्नतासे स्नान करते थे ॥ ९ ॥ उसी समय रावणका भेजा एक राक्षस मगर रूप धारण कर उनको निगल गया ॥ १० ॥

निकसे सपदि ताहि प्रभु मारी * सुनि पुरजन सब भये सुखारी ॥११॥
एक दिन सखन सहित रघुवीरा * खेलत भे सरयूके तीरा ॥१२॥

उसको मारकर प्रभु शीघ्र निकल आये, यह सुनकर पुरवासी सब सुखी हुए ॥११॥ एक दिन सखाओं सहित श्रीरामचन्द्रजी सरयूके किनारे खेलते थे ॥ १२ ॥

विहँग रूप धरि रावण आवा * घात पाय शठ चहत उठावा ॥१३॥
जानि राम विनु फर शर मारा * गिरा जाय निज लंक मँझारा ॥१४॥

पक्षीका रूप धारण कर रावण आया और घात पाकर वह दुष्ट इनको उठाना चाहता था कि ॥१३॥ रामजीने यह जानकर विना फरका वाण मारा; जिससे रावण अपनी लंकामें जा गिरा ॥१४॥

सात दिवस पर मूर्छा जागी * समुझि प्रताप लाज उर लागी॥१५॥

सात दिनमें मूर्छासे जागा। यह प्रताप समझकर बड़ी लाज लगी ॥ १५ ॥ (इति क्षेपक)

जिंनकर मन इनसन नहिं राता ❋ ते जन वंचित किये विधाता ॥२॥
भये कुमार जबहिं सब भ्राता ❋ दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥३॥

जिनका मन इन चरित्रोंमें नहीं लगा वे जन विधातासे वंचित किये (ठगे) गये हैं ॥२॥ जब सब भाई कुमार अर्थात् १२ वर्षके हुए तब गुरु पिता माताने जनेऊ कर दिया ॥ ३ ॥

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई ❋ अल्प काल विद्या सब आई ॥४॥
जाकी सहज श्वास श्रुति चारी ❋ सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥५॥

श्रीरामचन्द्रजी गुरुके घर पढ़ने गये और थोड़े समयमें ही सब विद्या आ गयीं ॥ ४ ॥ जिनके चारों वेद स्वाभाविक श्वास हैं वे हरि पढ़ें यह बड़े कौतुककी बात है ॥ ५ ॥

विद्या विनय निपुण गुण शीला ❋ खेलहिं खेल सकल नृप लीला ॥६॥
करतल बाण धनुष अति सोहा ❋ देखत रूप चराचर मोहा ॥७॥

सब विद्या विनयमें निपुण-चतुर, गुणशील-युक्त राजाओंकी लीलाका खेल खेलते हैं ॥६॥ हाथमें धनुष बाण अत्यन्त शोभित है, जिनकारूप देखकर चराचर मोहित होते हैं ॥ ७ ॥

जिन वीथिन विहरहिं सब भाई ❋ थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥८॥

जिन गलियोंमें सब भाई खेलते हैं, वहांके सब लोग लुगाई थकित हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—कोशलपुरवासी नर, नारि वृद्ध अरु बाल ॥
प्राणहुँते प्रिय लागत, सब कहँ राम कृपाल ॥ २३८ ॥

अयोध्याके रहने वाले स्त्री पुरुष बुड्ढे और बालक सबको कृपालु श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे भी अधिक प्यारे लगते हैं ॥ २३८ ॥

बन्धु सखा सब लेहिं बुलाई ❋ वन मृगया नित खेलहिं जाई ॥१॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी ❋ दिन प्रति नृपहि दिखावहिं आनी ॥२॥

भाई, सखा सबको बुलाकर नित्य प्रति वनमें आखेटको जाते हैं, (सुन्दर, शेखर, वीरमणि भद्र, तेजरूप, रसिकेश, बाणरूप, रसराज आदि रामके । रसिकरसाल, सुभद्र कमलाकर, कुशल, जटाधरादि भरतजीके । वज्रशाल, रसमत्त, वातप, मण्डल, विहारी आदि लक्ष्मणके । सनातक, दमन, राजरञ्जन, चामीकरादि शत्रुघ्नके सखा हैं) ॥ १ ॥ जियमें जानकर पवित्र मृग मारते हैं और नित्यप्रति राजाको लाकर दिखावें । जियमें जाननेका अर्थ यह कि जिनके बहुत पुण्य थे उनको मारकर स्वर्ग दिया ॥ २ ॥

जे मृग राम बाणके मारे ❋ ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥३॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं ❋ मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ॥४॥

जो मृग रामबाणके मारे हुए थे वे शरीर छोड़कर वैकुंठको गये ॥ ३ ॥ छोटे भाई और मित्रोंके संग भोजन करें माता-पिताकी आज्ञा मानें ॥ ४ ॥

जेहि विधि सुखी होहिं पुरलोगा ❋ करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा ॥५॥

---

१. सवैया – पदकंजनि मंजु वनो पनही धनुही, शर पंकज पाणि लिये। लरिका संग डोलत हैं, सरयूतट चौहट हार हिये ।। तुलसी अस बालकसों नहिं, नेह, कहा जप योग समाधि किये । नर ते खर शूकर श्वान समान, कहो जगमें फल कौन जिये ।। १ ।। सरयू वर तीरहि तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु वीर सबै । धनु ही कर तीर निषङ्ग कसे, कटि पीत दुकूल नवीन फबै ।। तुलसी तेहि औसर लावनता, वश चारि तौ तीन इकीस सबै । मति भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न फबै ।। २ ।।

वेद पुराण सुनहिं मन लाई ❋ आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥६॥

जिस प्रकारसे सब पुरवासी प्रसन्न हों कृपासिंधु वही विधान करें ॥ ५ ॥ वेद पुराण मन लगाकर सुनें और आप छोटे भाइयोंको समझाकर कहें ॥ ६ ॥

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा ❋ मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥७॥
आयसु मांगि करहिं पुरकाजा ❋ देखि चरित हर्षहिं मन राजा ॥८॥

सबेरे उठकर श्रीरामचन्द्रजी माता-पिता और गुरुको माथा नवावें ॥ ७ ॥ आज्ञा माँगकर नगरका काम करें । यह चरित्र देखकर राजा मनमें बहुत प्रसन्न होयँ ॥ ८ ॥

दोहा-व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप ॥
भक्त हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप ॥ २३९ ॥

जो सबमें व्यापक, कालरहित, इच्छारहित, अजन्मा, निर्गुण, जिनके नाम रूप भी नहीं वे ही भक्तोंके हेतु अनेक प्रकारसे सुन्दर चरित्र करते हैं (यहाँ तक पार्वतीजीका यह तीसरा प्रश्न "बालचरित पुनि कहहु उदारा" पूरा हुआ) ॥ २३९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे बालकाण्डान्तर्गत भाषाटीकायां रामजन्मवर्णनं नाम चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

दोहा-गाधिसुवनको आगमन, यहि पंचम विश्राम ॥
वध सुबाहुको कीन्ह जिमि, पूरे सब मनकाम ॥ ५ ॥

यह सब चरित कह्यौं मैं गाई ❋ आगिल कथा सुनहु मनलाई ॥१॥
विश्वामित्र महा मुनि ज्ञानी ❋ बसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी ॥२॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भरद्वाज ! यह सब चरित्र मैंने कहा; अब अगली कथा मन लगाकर सुनिये ॥ १ ॥ महर्षि विश्वामित्र महाज्ञानी वनमें सिद्ध पीठ आश्रममें वास करते थे ॥ २ ॥

जहँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं ❋ अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥३॥
देखत यज्ञ निशाचर धावहिं ❋ करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥४॥

जहां जप, यज्ञ, योग मुनि करें; परन्तु मारीच और सुबाहु राक्षससे बहुत डरें ॥ ३ ॥ यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ें और अनेक उपद्रव करें; जिसमें मुनि दुःख पावें ॥ ४ ॥

गाधि तनय मन चिंता व्यापी ❋ हरि बिन मरहिं न निशिचर पापी ॥५॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा ❋ प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ॥६॥

विश्वामित्रजीके मनमें चिंता हुई कि विना नारायणके यह पापी राक्षस नहीं मरेंगे ॥५॥ तब विश्वामित्रजीने विचार किया कि प्रभु पृथ्वीका भार दूर करनेको अवतार लिया है ॥ ६ ॥

यहि मिस देखेउँ प्रभुपद जाई ❋ करि विनती आनउँ दोउ भाई ॥७॥
ज्ञान विराग सकल गुण अयना ❋ सो प्रभु मैं देखब भरिनयना ॥८॥

इसी बहाने भगवान्के चरणोंका दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयोंको ले जाऊँ (यद्यपि विश्वामित्रजी अपने तपके प्रभावसे उन राक्षसोंको मारनेमें समर्थ थे परन्तु द्वादश वर्षसे यज्ञ कर रहे थे, जिसमें कि क्रोध करना वर्जित था-इसी कारण उन्होंने स्वयं क्रोध नहीं किया) ॥ ७ ॥ जो ज्ञान वैराग्य सब गुणोंके घर हैं, मैं उन प्रभुको नेत्रोंसे देखूँगा ॥ ८ ॥

दोहा-बहु विधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार ॥
करि मज्जन सरयू सलिल, गये भूप दरबार ॥२४० ॥

इस प्रकारसे अनेक मनोरथ करते चले और जाते हुए उन्हें अधिक देर नहीं लगी; सरयू स्नान करके राजा दशरथजीके दरबारमें गये ॥ २४० ॥

मुनि आगमन सुना जब राजा ❋ मिलन गयउ लै विप्र समाजा ॥१॥
करि दंडवत मुनिहिं सन्मानी ❋ निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥२॥

मुनिका आगमन, जब राजाने सुना तब ब्राह्मणोंके समाज सहित मिलने गये। (यदि मुनि पहले ही दरबारमें पहुँच जाते तो मुनिका आना, सुनना, देखना, नहीं बनता; या जब मुनि दरबारमें गये तब राजा रनिवासमें थे, मुनिका आगमन सुनकर मिलने गये) ॥१॥ दंडवत् कर मुनिका सम्मान किया और अपने आसनपर लाकर बैठाया ॥ २ ॥

चरण पखारि कीन्ह अति पूजा ❋ मो सम आज धन्य नहिं दूजा ॥३॥
विविध भाँति भोजन करवावा ❋ मुनिवर हृदय हर्ष अति पावा ॥४॥

चरण धोकर राजाने बहुत पूजाकी और कहा मेरे समान दूसरा कोई आज धन्य नहीं है ॥३॥उसके पीछे अनेक प्रकारसे भोजन कराये,जिससे मुनिके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई॥४॥

पुनि चरणन मेले सुत चारी ❋ राम देखि मुनि देह बिसारी ॥५॥
भये मगन देखत मुख शोभा ❋ जनु चकोर पूरन शशि लोभा ॥६॥

फिर चारों पुत्रोंको चरणोंमें डाल दिया और श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुनिको देहकी सुध बिसर गयी ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके मुखकी शोभा देखकर ऐसे मग्न हुए जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर चकोर लुभा जाता है ॥ ६ ॥

तब मन हरषि वचन कह राऊ ❋ मुनि असिकृपा न कीन्हेउ काऊ ॥७॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा ❋ कहहु सो करत न लाउब बारा ॥८॥

तब मनमें प्रसन्न होकर राजा बोले कि हे मुनि ! कभी पहले तो आपने ऐसी कृपा नहीं की थी ॥ ७ ॥ महाराज आपका आना कैसे हुआ, कहिये, ! जिसको करते मैं देर न करूँ ॥ ८ ॥

असुर समूह सतावहिं मोहीं ❋ मैं याचन आयउँ नृप तोहीं ॥९॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा ❋ निशिचर बध मैं होब सनाथा ॥१०॥

विश्वामित्रजी बोले मुझे राक्षस बहुत सताते हैं,अतः हे राजन् ! मैं आपसे कुछ मागने आया हूँ॥९॥लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजीको मुझे दो,राक्षसोंके मारनेसे-हम सनाथ हो जायँगे॥१०॥

दोहा—देहु भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान ॥
धर्म सुयश नृप तुम कहँ,इन कहँ अति कल्याण॥ २४१ ॥

हे राजन् ! मनमें प्रसन्न हो अपने पुत्रोंको दो और यह कैसे राक्षसोंको मारेंगे यह मोह अज्ञान छोड़ दो, आपको इसमें धर्म और यश मिलेगा तथा इनको भी कल्याण अर्थात् विजय और पत्नी मिलेगी ॥ २४१ ॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी ❋ हृदय कम्प मुखद्युति कुम्हिलानी ॥१॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी ❋ विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी ॥२॥

---

१. "राजन् ! राम लषण जो दीजै। यश रावरो लाभ ढोढ़नहूं, मुनि सनाथ सब कीजै। डरपत हो सांचेहु सनेह वश, सुत प्रभाव बिनु जाने बूझिय वामदेव, अरु, कुलगुरु, तुम पुनि परम सयाने ।। रिपु रन दलि मख राखि कुशल अति अल्प दिननि घर अइहैं। तुलसीदास रघुवंश-तिलककी, कविकुल कीरति गइ हैं।"

राजाने ज्योंही यह अप्रिय वाणी सुनी त्योंही हृदय कांप गया और मुखकी कांति कुम्हला गई ॥१॥ (और बोले) चौथेपनमें चार पुत्र पाये हैं; हे विप्र ! आपने विचार कर वचन नहीं कहे ॥२॥

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा * सर्वस देउँ आजु सह रोषा ॥३॥
देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं * सोउ मुनिदेउँ निमिष एकमाहीं॥४॥

पृथ्वी, गौ, धन, खजाना, मांग लो, शूरतासहित वा सत्य संकल्प से कहता हूँ आज सब दे सकता हूँ ॥३॥ देह और प्राणसे प्यारा कुछ नहीं है वह भी हे मुनि ! एक पलमें दे सकता हूँ॥४॥

सब सुत प्रिय मोहिं प्राणकि नाईं * राम देत नहिं बनै गुसाईं ॥५॥
कहँ निशिचर अति घोर कठोरा * कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा ॥६॥

हे मुनि ! सब सुत मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं, पर रामको तो देते ही नहीं बनता ॥ ५ ॥ कहां तो राक्षस अत्यन्त घोर कठोर और कहां मेरे परम सुन्दर छोटी अवस्थाके पुत्र ? ॥६॥

सुनि नृप गिरा प्रेमरस सानी * हृदय हर्ष माना मुनि ज्ञानी ॥७॥
तब वसिष्ठ बहुविधि समुझावा * नृप-संदेह नाश कहँ पावा ॥८॥

प्रेमरसमें सनी हुई राजाकी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनिने मनमें बहुत सुख पाया ॥७॥ तब वसिष्ठजीने बहुत भांतिसे समझाया (कि श्रीरामचन्द्रजी तो पृथ्वीका भार उतारने को प्रगट हुए हैं, विश्वामित्रजीके तपका प्रभाव और राजाकी यह प्रतिज्ञा थी कि–"कहहु सो करत न लावहुँ वारा" पुनः "रघुकुलरीति सदा चलि आई प्राण जाय बरु वचन न जाई ॥" कुलकी रीति समझायी) जिससे कि राजाका संदेह दूर हुआ ॥ ८ ॥

अति आदर दोउ तनय बुलाये * हृदय लाय बहु भाँति सिखाये ॥९॥
मेरे प्राण नाथ सुत दोऊ *तुममुनि पिताआन नहिं कोऊ ॥१०॥

तब राजाने अति आदरसे दोनों बेटे बुलाये और हृदयमें बहुत भांति सिखाया ॥ ९ ॥ हे नाथ। यह दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं । अथवा हे मुनि ! ये मेरे प्राणोंके स्वामी हैं पर अब इनके पिता आप हो और कोई नहीं ॥ १० ॥

दोहा–सौंपे भूप ऋषिहिं सुत, बहुविधि देइ अशीश ॥
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीश ॥ २४२ ॥

राजाने दोनों पुत्र विश्वामित्रजीको सौंप दिये, बहुत प्रकारसे आशीश दी; तब भगवान् माताके घर गये और चरणोंमें शिर नवाकर चले ॥ २४२ ॥

सोरठा–पुरुषसिंह दोउ वीर, हर्षि चले मुनिभय-हरण ॥
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल विश्व कारण करण ॥ २८ ॥

पुरुषोंमें सिंहके समान दोनों वीर मुनियोंके भय दूर करनेको प्रसन्नतासे चले, जो कृपाके समुद्र, मतिके धीर तथा समस्त संसारके साधन हैं ॥ २८ ॥

"चलत विदा कीन्हे हनुमाना * मिलिहौं वनहिं कह्यो भगवाना" ॥१॥
अरुण नयन उर बाहु विशाला * नीलजलज तनु श्याम तमाला ॥२॥

चलनेके समय भगवान्ने महावीरजीको बिदा किया और कहा कि मैं वनमें आ मिलूँगा (यह चौपाई क्षेपक है) ॥ १ ॥ लाल नेत्र, हृदय और बड़ी बाहें नीलकमलके समान और तमालसम श्याम शरीर है ॥ २ ॥

कटि पट पीत कसे वर भाथा ❋ रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥३॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई ❋ विश्वामित्र महानिधि पाई ॥४॥

कमरमें पीला दुपट्टा कसे, सुन्दर तरकस कसे तथा शोभायमान धनुष बाण दोनों हाथोंमें हैं ॥३॥ श्याम और सुन्दर तनुके दोनों भाई हैं, ऐसी विश्वामित्रने महा संपत्ति पायी ॥४॥

प्रभु ब्रह्मण्य-देव मैं जाना ❋ मो-हित पिता तजेउ भगवाना ॥५॥
चले जात मुनि दीन्ह दिखाई ❋ सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥६॥

मुनि विचारने लगे कि प्रभु ब्राह्मणोंके हितकारी साक्षात् ईश्वर हैं यह मैंने जाना, क्योंकि मेरे कारण भगवान्‌ने पिताको छोड़ दिया ॥ ५ ॥ मार्गमें जाते हुए मुनिने ताड़का[1] राक्षसी दिखायी जो देखते ही क्रोध कर दौड़ी (मुनिके नाम लेते ही ताड़काने सुन लिया था)॥६॥

एकहिं बाण प्राण हरि लीन्हा ❋ दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा॥७॥
तब ऋषि निज नाथहि जिय चीन्ही ❋ विद्यानिधि कहँ विद्या दीन्ही ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने एक ही बाणसे उसका प्राण हर लिया और दीन जानकर उसको अपना पद दिया। (क्वार कृष्ण पड़वाको ताड़का मरी) ॥ ७ ॥ तब ऋषिने अपने नाथ रामको जाना, इससे ज्ञात होता है कि पहले श्री रघुनाथको ईश्वर जाननेमें कुछ सन्देह था सो सब निश्चय जानकर विद्यानिधिको विद्या सिखाने लगे ॥ ८ ॥

जाते लाग न क्षुधा पिपासा ❋ अतुलित बल तनुतेज प्रकाशा ॥९॥

(बला अतिबला विद्या सिखायी) जिससे भूख प्यास न लगे और शरीरमें बड़े बल तथा तेजका प्रकाश हो ॥ ९ ॥

दोहा-आयुध सर्व समर्पिकै, प्रभु निज आश्रम आनि ॥
कन्दमूल फल भोजन, दीन्ह भक्तहित जानि ॥ २४३ ॥

सम्पूर्ण आयुध[2] श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण कर ऋषि उनको अपने आश्रममें ले आये और भक्ति हितकारी जान कंद; मूल फल भोजन करनेको दिये ॥ २४३ ॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई ❋ निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ॥१॥
होम करन लागे मुनि झारी ❋ आप रहे मखकी रखवारी ॥२॥

प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजीने मुनिसे कहा कि अब आप जाइये और निर्भय होकर यज्ञ कीजिये ॥ १ ॥ मुनिगण होम करने लगे और आप यज्ञकी रखवालीमें नियुक्त रहे ॥ २ ॥

सुनि मारीच निशाचर कोही ❋ लै सहाय धावा मुनि द्रोही ॥३॥
बिनु फर बाण राम तेहि मारा ❋ शत योजन गा सागर पारा ॥४॥

---

१. यह ताड़का सुकेतु यक्ष की कन्या थी। इसने ब्रह्माणीको तपसे सन्तुष्ट कर दश हजार हाथियोंका बल पाया, जंभके पुत्र सुन्दसे इसका विवाह हुआ था, जिससे मारीचकी उत्पत्ति हुई, महर्षि अगस्त्यजीने जब अनिष्ट करनेके कारण सुन्दको मारा तब ये दोनों मां-बेटे ऋषिके खानेको दौड़े, तब ऋषिने शाप दिया कि तुम दोनों राक्षस हो जावोगे। बस उस दिनसे ही ये राक्षस हो सबको शून्य करने लगे। (वाल्मीकि)

२. जो आयुध और अस्त्र दिये उनके नाम वाल्मीकीयरामायणके बालकाण्डके सताइसवें सर्गमे देखो। दंडकचक्र, धर्मचक्र, काल चक्र, विष्णु चक्र, ऐंद्रचक्र, वज्रास्त्र, ब्रह्मशिर, ऐषिक ब्रह्मास्त्र धर्मशास्त्र, वरुणास्त्र, शुष्क, आर्द्र, वज्र, पैनाकास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, मोहन, प्रस्थापन, सौम्यवरण, सन्तापन, विलापन, गंधर्वास्त्र, मानवास्त्र, त्वाष्ट्र, शिहिर इत्यादि हैं।

यह सुन मारीच क्रोधी निशाचर सेना सहाय लेकर दौड़ा, वह मुनियोंका वैरी था ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने विना फरका बाण उसके मारा, वह समुद्र पार लंकामें चारसौ कोशपर जा गिरा (यह चारसौ कोश समुद्रका पार जानना पृथ्वी पृथक् रही ॥ ४ ॥

पावक शर सुबाहु पुनि मारा ❋ अनुज निशाचर कटक सँहारा ॥५॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी ❋ अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ॥६॥

फिर अग्निबाणके द्वारा सुबाहुको मारा और लक्ष्मणजीने राक्षसोंके कटकका संहार किया ॥५॥ राक्षसोंको मारकर ब्राह्मणोंको निर्भय किया, तब सब देवता और मुनि स्तुति करने लगे ॥६॥

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया ❋ रहे कीन्ह विप्रन पर दाया ॥७॥
भक्ति हेतु बहु कथा पुराना ❋ कहहिं विप्र यद्यपि प्रभुजाना ॥८॥

फिर वहां कुछ दिन श्री रामचन्द्रजी रहे और ब्राह्मणोंपर दया की ॥ ७ ॥ यद्यपि श्रीरामचन्द्र सब जानते हैं तो भी भक्तिके कारण अनेक कथा पुराण ब्राह्मण कहते हैं ॥ ८ ॥

तब मुनि सादर कहा बुझाई ❋ चरित एक प्रभु देखिय जाई ॥९॥
धनुष यज्ञ सुनि रघुकुल-नाथा ❋ हर्षि चले मुनिवरके साथा ॥१०॥

तब विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीसे आदरपूर्वक समझाकर कहा– हे नाथ ! एक चरित्र चलकर देखिये ॥ ९ ॥ राजा जनकजीके यहाँ धनुष यज्ञ सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो विश्वामित्रके सङ्ग चले ॥ १० ॥

आश्रम एक दीख मग माहीं ❋ खग मृग जीव जंतु जहँ नाहीं ॥११॥
पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी ❋ सकल कथा मुनि कही विसेखी ॥१२॥

मार्गमें एक आश्रम देखा; जहां कोई खग मृग जीव जन्तु नहीं थे ॥११॥ वहां एक शिला पड़ी हुई देखकर प्रभुने विश्वामित्रसे पूछा, तब ऋषिने सम्पूर्ण कथा विशेषरूपसे वर्णनकी ॥ १२ ॥

दोहा-गौतम नारी शापवश, उपलदेह धरि धीर ॥
चरण कमल रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर ॥ २४४ ॥

यह गौतमकी स्त्री[1] शापवश हो पत्थरका शरीर धारण किये धैर्य धरकर आपके चरण कमलकी रज चाहती है, हे रघुवीर ! आप कृपा कर इसपर चरण छुवाइये ॥ २४४ ॥

---

१. एक समय ब्रह्माजीने अहल्याको परम सुन्दरी उत्पन्न कर गौतमजीको धरोहरकी नाईं सौंप दिया, इन्द्रादिक इस इच्छामें रहे कि ब्रह्माजी हमको देंगे । कुछ दिन ब्रह्माजीने गौतम की परीक्षा की । एक दिन अहल्या को देखने गये तो उसको यथावत् देखकर वह कन्या गौतमको ही देदी, तब एक दिन इन्द्रने गौतमका रूप धर उसके पास आ विहार किया उस समय गौतम जी घरमें नहीं थे, जब लौटकर घर आये तब इन्द्र आश्रमसे निकला । इन दोनोंकी यह दुष्टता विचार ऋषिने इंद्रको शाप दिया कि तेरे शरीरमें सहस्र गुप्तांगके चिन्ह हो जायेंगे, (पीछे इन्द्रके यज्ञ करनेपर वे नेत्रहो गये) अहल्याको शाप दियाकि तू पत्थरकी शिला हो जा । श्रीरामचंद्रजीके छूनेसे तेरा उद्धार होगा, यह अनुग्रह किया, अहल्याने भी इंद्रके संग जानकर विहार कियाथा, इससे अपराधिनी हुई ।

अहल्या भी कई हैं; विष्णुपुराणमें लिखा है, मुद्गलसे मौद्गल गोत्रीय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई, मुद्गलके पुत्र वृद्धश्रवा हुए, उनके दिवोदास और अहल्या कन्या हुई शरद्वान्के औरससे अहल्याके गर्भसे शतानंद हुये जो जनकरायके पुरोहित हैं । कुमारिल भट्टने लिखा है कि अहल्या और इंद्रका वृत्तांत रूपक है । इत्यादि । योगवाशिष्ठमें दूसरी अहल्याका वृत्तांत है । एक अप्सराका नाम भी अहल्या है । गौतम पत्नी अहल्याका वृत्तांत वाल्मीकिने विस्तारसे लिखा है उससे इतना भेद है कि ऋषिने इन्द्रको नपुंसक होने का शाप दिया, तब पितरोंने मेढ़के अंडकोशसे इन्द्रकी चिकित्सा की ।

अहल्योद्धार



छन्द–परसत पद पावन शोक–नशावन प्रगट भई तप पुञ्ज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुख नहिं आवै वचन कही।
अतिशय बड़ भागी चरणन लागी युगल नयन जलधार बही॥२८॥

श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र चरण जो शोक दूर करने वाले हैं उनको छूते ही तपकी पुञ्ज प्रकट हो गयी और श्रीरामचन्द्रजीको देखकर जो भक्तोंको सुख देने वाले हैं सामने हाथ जोड़ खड़ी हुई, प्रेमसे अधीर हो गयी; शरीर पुलकायमान हो गया, मुखसे वचन नहीं कहा जाता बड़ी भाग्य-वाली है, श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिरी और दोनों नेत्रोंसे जलकी धारा बहने लगी॥२८॥

छन्द–धीरज मन कीन्हा प्रभुकहँ चीन्हा रघुपति कृपा भक्ति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ज्ञान गम्य जय जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावण–रिपु जन–सुखदाई।
राजीव विलोचन भव भयमोचन पाहि पाहि शरणहि आई॥ २९॥

मनमें धीरज कर भगवान्को पहचाना और उन्हींकी कृपासे भक्ति पायी, और उज्ज्वल वाणी से स्तुति करने लगी, हे राम! आप ज्ञानसे जाने जाते हैं, आपकी जय हो! मैं अपवित्र नारी और आप जगत्के पवित्र करने वाले, रावणके शत्रु, जगत्के सुखदाता हैं, हे कमल नेत्र! संसारके भय दूर करनेवाले भगवन्! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये मैं आपकी शरणमें आयी हूँ॥ २९॥

छन्द–मुनि शाप जो दीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव–मोचन यहै लाभ शंकर जाना॥
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मांगउँ वर आना।
पदकमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना॥३०॥

हे भगवन्! मुनिने जो शाप दिया वह बहुत अच्छा किया, मैंने अनुग्रह माना क्योंकि नेत्रभरकर संसारके भय छुड़ाने वाले हरिको देखा, जिनके दर्शनको शिव भी परम लाभ मानते हैं। हे प्रभु! मेरी विनती है कि मैं मतिकी भोरी हूँ और कुछ वर नहीं मांगती, हे नाथ केवल आपके चरण कमलके परागको मेरा भौंरारूपी मन प्रेमसे पान करता रहे॥ ३०॥

छन्द-जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी॥
इहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरण परी।
जो अति मनभावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनन्द भरी॥३१॥

जिन चरणकमलोंसे परम पवित्र गंगाजी प्रकट हुई और शिवजीने अपने शिरपर धारण कीं वे ही चरण कमल जिनका ब्रह्माजी पूजन करते हैं, दया सागर हरिने मेरे शिर पर रखे इस प्रकार गौतमकी स्त्री बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिरी, जो मनको बहुत अच्छा लगा वही वर मांगा और आनन्दमें मग्न होकर पतिके लोकको चली गयी, (जब हरिने बलिको छला और दूसरा चरण ब्रह्मलोकमें पहुँचा तब विरजानदीसे जल भर ब्रह्माजीने हरि चरण धोया, वही गंगा जल विख्यात है और उन्हीं चरणोंका स्पर्श करके शुद्ध हुई)॥ ३१॥

दोहा--अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारण रहित कृपाल॥
तुलसिदास शठ ताहि भज, छांड़ि कपट जंजाल॥ २४५॥

ऐसे दीनोंके बन्धु हरि विना ही कारण भक्तोंपर दया करते हैं; तुलसीदासजी कहते हैं कि रे मन मूर्ख ! सब कपट जञ्जाल छोड़ उस भगवान्का ही भजन कर॥ २४५॥

चले राम लछिमन मुनि संगा ❋ गये जहाँ जगपावनि गंगा॥१॥
अनुज सहित प्रभु कीन्ह प्रणामा ❋ बहु प्रकार सुख पायउ रामा॥२॥

फिर श्रीलक्ष्मणजी मुनिके सङ्ग चले और जहां जगत् पवित्र करनेवाली गंगा हैं वहां आये॥ १॥ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रने प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे सुख पाया॥ २॥

अथ क्षेपक

पुनि सुरसरि उतपति रघुराई ❋ कौशिकसन पूछा शिर नाई॥१॥
कह मुनि प्रभु तव कुल एक राजा ❋ नाम सगर तिहुँ लोक विराजा॥२॥

पुनः गंगाकी उत्पत्ति श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रसे शिर नवाकर पूछी॥ १॥ मुनि बोले रामजी ! आपके कुलमें ही एक राजा थे; जिनका नाम सगर तीनों लोकमें विख्यात है॥२॥

तेहिके युग भामिनि सुकुमारी ❋ नाम केशिनी सुमति पियारी॥३॥
सब प्रकार सुख सम्पति भ्राजा ❋ सुत विहीन मन विस्मय राजा॥४॥

उनके दो रानी बड़ी सुकुमार, केशिनी और सुमति नामवाली थीं॥३॥ सब प्रकारसे सुख सम्पत्ति विराजमान थी, परंतु पुत्र नहीं होनेके कारण राजा मनमें दुःखी थे॥ ४॥

एक समय भामिनि दोउ साथा ❋ गे वन तनय-हेतु रघुनाथा॥५॥
सघन कल्पतरु सुन्दर नाना ❋ जहँ भृगुमुनि तपतेज निधाना॥६॥

हे रामजी एक समय दोनों स्त्रियोंको साथ लेकर पुत्रके हेतु राजा वनमें गये॥ ५॥ जहां अनेक प्रकारके सघन सुन्दर फलवाले वृक्ष हैं, उसी स्थानमें मुनिवर भृगुजीका आश्रम था; जो कि बड़े तपस्वी और तेज निधान हैं॥ ६॥

दोहा-सहित नारि नृप मुदित मन, रहे वर्षशत एक॥
कीन्हे तप बल देखि भृगु, अस्तुति कीन्ह अनेक॥ २४६॥

राजा उस वनमें प्रसन्न मनसे (१००) सौ वर्ष तक तप करते रहे और भृगुजीकी अनेक स्तुति की, तब वे प्रसन्न होकर बोले-वर माँगो ॥ २४६ ॥

कहि निज दुख प्रणाम नृप कीन्हा ❋ दै अशीश तब मुनि वर दीन्हा ॥१॥
नृपरानिनसन मुनि अस भाषा ❋ लेहि सो वर जो जेहि अभिलाषा॥२॥

अपना दुःख कहकर राजाने प्रणाम किया, तब मुनिने आशीष देकर वर दिया ॥ १ ॥ मुनिने रानियोंसे कहा तुममेंसे जो जिसकी इच्छा हो वर ले लो ॥ २ ॥

सुनि मुनि वचन शीश तिन नावा ❋ देहु नाथ जो अति मन भावा ॥३॥
एकहि कह्यो एक सुत होना ❋ दूसरि शाठ सहस गुण लोना ॥४॥

मुनिके वचन सुनकर रानियोंने शिर नवाया और कहा, महाराज ! जो मनभावना वर है वह दीजिए ॥ ३ ॥ एक (केशिनी) ने एक पुत्र होनेका वर मांगा और सुमतिने कहा मेरे साठ हजार पुत्र हों (मुनिने तथास्तु कहा) ॥ ४ ॥

हर्षित भयो सुभग वर पाई ❋ पाणि जोरि चरणन शिर नाई॥५॥
सहित भामिनी अवधहि आये ❋ हर्ष सहित कछु दिवस गँवाये ॥६॥

राजा सुन्दर वर पाकर प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर चरणोंमें शिर नवाया ॥ ५ ॥ फिर स्त्री सहित अयोध्यामें आये और प्रसन्नता सहित कुछ दिन विताये ॥ ६ ॥

जानि सुघरि सुन्दर सुखदाई ❋ नाम केशि असमंजस जाई ॥७॥
सुमति प्रसव एक तूमरि सोई ❋ भये सुत प्रगट कहे मुनि जोई ॥८॥

अच्छी सुन्दर घड़ीमें केशिनीने असमंजस नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ सुमतिने एक तूम्बी प्रसवकी, उसमें मुनिके कथनानुसार अत्यन्त छोटे-छोटे साठ हजार पुत्र थे ॥ ८ ॥

निरखे सुत हर्षित सब होई ❋ मंगलचार किये सब कोई ॥९॥
हर्ष सहित दिये दान नरेशू ❋ पूजि विप्र गुरु गौरि गणेशू ॥१०॥

पुत्रोंको देखकर सब प्रसन्न हुए और सबने ही मङ्गलाचार किया ॥ ९ ॥ प्रसन्नता सहित राजाने दान दिया और विप्र, गुरू, पार्वती, गणेशजीको पूजा ॥ १० ॥

घृत घट सुन्दर विविधि मँगाये ❋ ते सब सुत नृप तिन महँ नाये॥११॥

राजाने बहुतसे सुन्दर घृतके घड़े मँगाये और उन सब पुत्रोंको उनमें रखा ॥ ११ ॥

दोहा–यहि विधि भये सकल सुत, पूजे सब मन काम ॥
❋ जाय दिवस निशि हर्षवश, सुनहु राम घनश्याम ॥ २४७ ॥

हे घनश्याम ! हे राम ! सुनिये; इस प्रकार सब पुत्र हुए और मनकी समस्त कामना पूरी हुई, रात दिन आनंदपूर्वक बीतने लगे ॥ २४७ ॥

पुरजन घर सब घरनि नरेशू ❋ अति आनँद तनु मिटा कलेशू ॥१॥
बालकेलि करि भये कुमारा ❋ लीला करहिं अगम संसारा ॥२॥

पुरवासी सब घर-घर और राजा आनंदित हुए और सब शरीरके क्लेश मिट गये ॥ १ ॥ बाललीला करके जब वे कुमार हुए तो संसारमें अनेक खेल खेलने लगे ॥ २ ॥

होय सुकाज सकल मन चीते ❋ यहि सुख बसत बहुत दिन बीते ॥३॥

सरयू नदी अवध जो अहई * विमल सलिल उत्तर तट बहई ॥४॥

इस शुभ कार्यसे सबके मनकी अभिलाषा पूर्ण हुई और आनंदमें बहुत दिन बीत गए ॥३॥ सरयू नदी जो अयोध्यामें है, निर्मल जलवाली उत्तरकी ओर बहती है ॥ ४ ॥

प्रजा लोगके बालक नाना * नित उठि तहां करहिं अस्नाना ॥५॥
असमंजस तहँ तरनी आनी * तिनहिं चढ़ाय बोर निजपानी ॥६॥

प्रजाओंके अनेक बालक वहां उस सरयूमें नित्य स्नान करते हैं ॥५॥ असमंजस वहां नाव लाया और उन बालकोंको चढ़ाकर फिर अपने हाथसे पानीमें बोर दिया अर्थात् डुबा दिया ॥६॥

भये प्रजा सब परम दुखारी * बालकवध सुनि सुनहु खरारी ॥७॥
सकल गये जहँ बैठ नृपाला * बोले वचन नाय पद भाला ॥८॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! बालकोंका वहां वध सुनकर सब पुरवासी महादुःखी हुए ॥ ७ ॥ और जहां महाराज बैठे थे वहां सब गये और चरणोंमें शिर नवाकर बोले ॥ ८ ॥

तुम नृप चहहु प्रजापति पाला * सुत तुम्हार भा सब कर काला ॥९॥
तजब देश हम सुनहु नरेशू * विना तजे नहिं मिटहिं कलेशू ॥१०॥

हे राजन् ! आप तो प्रजापालक हैं, पर आपका पुत्र सबका काल होगया है ॥ ९ ॥ राजन् ! सुनिये हम देश त्याग देंगे क्योंकि विना त्यागे क्लेश नहीं मिटेंगे ॥ १० ॥

दोहा-तव सुत कीन्हे पाप नृप, मारे बालक वृन्द ॥
तुम कहँ प्राण समान यह, सकल प्रजन कहँ मंद ॥ २४८ ॥

आपके पुत्रने बड़े पाप किये बहुतसे बालक पुरवासियोंके मारे आपको तो यह प्राणोंके समान प्यारा है किन्तु सब प्रजाका शत्रु है ॥ २४८ ॥

प्रजा गिरा सुनि धीरज दीन्हा * सुतहिं देशते बाहर कीन्हा ॥१॥
तासु तनय जग विदित प्रभाऊ * गुणनिधि अंशुमान तेहि नाऊ ॥२॥

प्रजाकी वाणी सुनकर राजाने धीरज दिया और पुत्रको देशसे बाहर किया (यह योगी था नगरसे निकलते ही यह कार्य किया कि चलते समय योग बलसे सबके बालक दे दिया) ॥१॥ उसके एक पुत्र जिसका जगत्में प्रभाव विदित था जो गुणका समुद्र अंशुमान् नाम वाला था ॥२॥

वसत हृदय नृपके सो कैसे * मुनिमन मीन सलिल रह जैसे ॥३॥
गये प्रजा सब निज निज धामा * भे विलोकि गुन मन विश्रामा ॥४॥

याज्ञवल्क्यजीने कहा-हे भरद्वाज ! वह राजाके हृदयमें ऐसा वास करता था जैसे मछलीके मनमें जल ॥३॥ सब प्रजा अपने २ घर गयी और राजाके गुण देखकर मनमें विश्वास हुआ ॥४॥

बहुरि नृपति मन कीन्ह विचारा * आय गयउ पन चौथ हमारा ॥५॥
हित मंत्री गुरु सुतहि बुलाये * हिमगिरि विंध्य मध्य तब आये ॥६॥

फिर राजाने मनमें विचार किया कि हमारा चौथापन (बुढ़ापा) आ गया ॥ ५ ॥ अपने हितकारी मन्त्री, गुरु, और पुत्र बुलाये, तब हिमालय विंध्याचलके मध्य स्थानमें आये ॥६॥

रुचिर वेदिका एक बनाई * देखत बनै वरणि नहिं जाई ॥७॥
मख अरंभ करि छांड़ेउ तुरगा * वेगवंत जिमि देखिय उरगा ॥८॥

एक सुन्दर वेदी बनायी जो देखते बने और बरणी नहीं जाती ॥ ७ ॥ यज्ञ आरम्भ कर घोड़ा छोड़ा, जो कि सर्पके समान वेगवान् दिखायी देता था ॥ ८ ॥

दोहा-सुरपति सुन भय दारुणहिं, मनमहँ करि अनुमान ॥
आनि तुरँग तब लीन्हेउ, मर्म न काहू जान ॥ २४९ ॥

तब इन्द्रने सुनते ही महाभय मान मनमें विचार घोड़ा आकर ले लिया और इस भेदको किसीने नहीं जाना ॥ २४९ ॥

राखेउ आनि कपिल मुनिपाहीं * कोउ न जान काहुहि गमनाहीं ॥१॥
जुगवत रहे जे सुभट सयाने * लै तुरङ्ग रहे तिनहुँ न जाने ॥२॥

कपिलदेवजी के पास आकर घोड़ा बांध दिया; इस बातको किसीने नहीं जाना और न किसीने ले जाते देखा ॥ १ ॥ जो चतुर योद्धा रखवाली करते थे उन्होंने भी न जाना कि कौन घोड़ा ले गया ॥ २ ॥

तिन सब आनि कही नृपपाहीं * महाराज हम कहत डराहीं ॥३॥
लीन्ह तुरंग जान न कोई * कहा करिय जो आयसु होई ॥४॥

उन सबोंने आकर कहा—महाराज ! हम कहते हुए डरते हैं ॥ ३ ॥ कौन घोड़ा ले गया यह कोई नहीं जानता, क्या करें अब जो आज्ञा हो ? ॥ ४ ॥

सुनत वचन नृप विस्मय पाये * सकल सुतन कहँ तुरत बुलाये ॥५॥
जाहु तुरग तुम हेरहु जाई * सकल चले चरणन सिर नाई ॥६॥

वचन सुनकर राजा बड़े विस्मित हुए और सब पुत्रोंको तुरंत बुलाया ॥ ५ ॥ जाओ तुम घोड़ा देखो, (यह सुन) सब चरणों में शिर नवाकर चले ॥ ६ ॥

सुरपति सम देखिय सब वीरा * सकल धनुर्धर अति रण धीरा ॥७॥
तिनहिं चलत धरणी अकुलाई * बलि पशु जीव भये सब आई ॥८॥

सब वीर इन्द्रके समान बलवान् बड़े धनुर्धर और रणमें अत्यन्त धीरता रखने वाले हैं ॥ ७ ॥ इनके चलनेसे पृथ्वी व्याकुल हो गयी और बहुत जीव आकर बलिपशु हुए ॥ ८ ॥

सुमन वाटिका उपवन बागा * सरित वापिका कूप तड़ागा ॥९॥
नगर गाँव मुनीश-थल नाना * गिरिकन्दर कानन अस्थाना ॥१०॥

फूलवाटिका, उपवन, बाग, नदी, बावड़ी, कुएँ, तालाब ॥ ९ ॥ नगर, गांव, मुनियोंके स्थान, पहाड़की कंदरा, वन और अनेक स्थान ॥ १० ॥

दोहा-यहि विधि खोजेउ तुरँग तिन, आये भूपति पाहिं ॥
चरणन माथहि नाय कह, खोज अश्वकर नाहिं ॥ २५० ॥

इस प्रकार वे घोड़ा ढूँढकर राजाके पास चले आये और चरणोंमें शिर नवाकर कहा—महाराज घोड़ा कहीं नहीं मिलता ॥ २५० ॥

खोदहु महि सुत सबहि पठाये * चले सकल पूरब दिशि आये ॥१॥
तिनके कर नख कुलिश समाना * योजन भरि खोदहिं बलवाना ॥२॥

तब राजाने पुत्रोंसे कहा पृथ्वी खोदो, यह सुन कर वे पुत्र पूर्वकी दिशामें आये ॥ १ ॥ उनके हाथ वज्रके समान थे, वे बलवान् एक योजन भर पृथ्वी खोदते थे ॥ २ ॥

देखि अतुल बल देव डराने * मरिहैं कहिं विरंचि सन्माने ॥३॥
शोधत महि पताल सब आये * दिग्गज देखि एक शिर नाये ॥४॥

अतुल बल देखकर देवता डरे, तब ब्रह्माजीने सबको समझाया कि यह सगरके पुत्र नष्ट होंगे ॥३॥ पृथ्वी शोधते हुए सब पातालमें आये फिर एक दिग्गजको देखकर शिर नवाया ॥४॥

तिन पूछा सब कथा सुनाये * बहुरि सकल दक्षिण दिशि आये ॥५॥
इहि विधि पुनि दूसर गज देखा * अति उतंग सो विमल बिसेखा ॥६॥

उसके पूछनेसे सब कथा सुनायी और फिर सब दक्षिण दिशामें आये ॥५॥ इस प्रकारसे फिर दूसरा दिग्गज देखा जो कि बहुत ऊँचा और अधिक उज्ज्वल था ॥ ६ ॥

ताहू बहु प्रणाम पुनि कीन्हे * चले तुरत पश्चिम चित दीन्हे ॥७॥
तीसर देखि प्रदक्षिण कीन्हा * पुनि उत्तर दिशि सोधहि लीन्हा ॥८॥

उसको देखकर बहुत प्रणाम कर चले और शीघ्रही पश्चिममें आये ॥७॥ तीसरा दिग्गज देख कर परिक्रमा की और फिर उत्तर दिशामें ढूँढने लगे (जहांसे भूमि खोदना आरंभ किया, वहांसे ही दिशा लगायी है ॥ ८ ॥

दिग्गज श्वेत निरखि सुख पाये * सकल कपिल मुनि पहँ पुनि आये ॥९॥
खोजत मही पार नहिं पावा * शोभा चहुँ दिशि जलधि सुहावा ॥१०॥

वहां श्वेत दिग्गज देखकर सुख पाया और फिर सब कपिल मुनिके पास आये ॥ ९ ॥ पृथ्वी ढूँढतेमें पार नहीं पाया चारों ओर सुंदर सागर शोभित हैं ॥ १० ॥

दोहा-देखिनि आय तुरंत तब, बाँधा मुनिवर पास ॥
बोले वचन सकोप करि, भा चह सब कर नाश ॥ २५१ ॥

उन्होंने आकर अपना घोड़ा देखा कि मुनिके पास बँध रहा है तब वे क्रोधकर बोले क्योंकि सबका नाश होना चाहता है ॥ २५१ ॥

शोधा महि हम चारिउ कोंधा * रे रे दुष्ट बहुत तोहि शोधा ॥१॥
कोउ कह चोर दीख बहु होई * यहि समछली अवर नहिं कोई ॥२॥

हमने पृथ्वी चारों कोनोंमें ढूँढी, अरे दुष्ट ! तुझको बहुत खोजते रहे ॥ १ ॥ किसीने कहा कि चोर तो बहुत देखे पर इसके समान दूसरा छली नहीं होगा ॥ २ ॥

परधन लै पताल पुनि आयो * तस्कर मुनिवर वेष बनायो ॥३॥
कोउ कहहिं यह मुनिवर नाहीं * समुझि देखि लक्षण मन माहीं ॥४॥

पराया धन लेकर फिर पातालमें आ बैठा; इस चोरने श्रेष्ठ मुनिका वेष बनाया है ॥ ३ ॥ किसीने कहा, यह मुनिवर नहीं है; क्योंकि इसके लक्षण देखकर ही मनमें समझ लो ॥ ४ ॥

कोउ कह बक तप कीन्ह अपारा * अहो दुष्ट लै तुरँग हमारा ॥५॥

---

१. पूर्वादि आठ दिशाओंके आठ दिग्गज हैं, यथा-ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक ।

सुनत वचन मुनि चितवा जबहीं ❋ भये भस्म सब क्षणमें तबहीं ॥६॥

किसीने कहा—अरे दुष्ट ! तूने हमारा घोड़ा लेकर बगलेके समान बहुत तप किया है ॥ ५ ॥ वह वचन सुनकर मुनिने ज्यों देखा कि वे उसी क्षण भस्म हो गये ॥ ६ ॥

उमा वचन जेहि समुझि न बोला ❋ सुधा होइ विष तिक्तसु ओला ॥७॥
पावक जान धरहिं कर प्रानी ❋ जरहिंकाहनहिंअतिअभिमानी॥८॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! जिसने समझकर वचन नहीं बोले उसको अमृत विष और ओला कड़ुवा हो जाता है ॥ ७ ॥ जो जीव जानबूझ कर अग्निमें हाथ रखते हैं वे अतिशय अभिमानी क्यों न जलेंगे ॥ ८ ॥

जानि गरल जे संग्रह करहीं ❋ सुनहु रामते काह न मरहीं ॥९॥
क्रोध कीन्ह विन किये विचारा ❋ भये सकल तेहिते जरि क्षारा ॥१०॥

सुनो रामजी ! जो जानबूझकर विषसंग्रह अर्थात् विषभक्षण करें वे क्यों न मरें ॥ ९ ॥ विना विचारे उन सबने क्रोध किया, इसी कारण सब जलकर क्षार हो गये ॥ १० ॥

इहाँ नृपति अँशुमान बुलाये ❋ नहिं आये तब तिनहिं पठाये ॥११॥

यहां राजाने अंशुमान्‌को बुलाया और कहा वे पुत्र तो नहीं आये, तुम जाकर ढूँढो ॥११॥

दोहा—दीन्ही नृपति अशीष तब, अतिहित बारहि बार ॥
❋ बेगि फिरौ लै तुरंग सुत, मेरे प्राण अधार ॥ २५२ ॥

तब राजाने बड़े प्रेमसे वारंवार आशीश दी और कहा, घोड़ेको और मेरे प्राणके आधार पुत्रोंको शीघ्र लेकर फिरो,अथवा हे मेरे प्राणाधार पुत्र ! घोड़ा लेकर शीघ्र आओ ॥२५२॥

चले नाइ पद शीश कुमारा ❋ विष्णु भक्तहित कुल उजियारा ॥१॥
जहँ तहँ देख मुनिनके धामा ❋ पूछि खबर करि दंड प्रणामा ॥२॥

कुमार चरणोंमें शिर नवाकर चले, यह विष्णुके भक्त और कुलके दीपक थे ॥ १ ॥ जहां-जहां मुनियोंके स्थान देखे वहां-वहां दण्डवत् प्रणाम कर समाचार पूछे ॥ २ ॥

पन्नग अहिसन पाय अशीशा ❋ चहुँदिग्गज कहँ नायउ शीशा ॥३॥
यहि विधि शोधत मगमहँ जाता ❋ मिले गरुड़ सुमती कर भ्राता ॥४॥

पन्नगनागसे आशीष पायी और चारों दिग्गजोंको शीश नवाया ॥३॥ इस प्रकार मार्गमें ढूँढते चले। उस समय सुमतिके भाई गरुड़जी मिले जोकि अंशुमानके मामा थे ॥ ४ ॥

चरण परत तब आशिष दयऊ ❋ जरे सकल जेहि विधि सो कहऊ॥५॥
सुनतहि वचन शोच भयो भारी ❋ दिये खगेश दिखाय सुवारी ॥६॥

गरुड़ने चरण पकड़ते ही अंशुमान्‌को आशीष दी और सबके भस्म होनेका वृत्तांत सुनाया ॥५॥ यह सुनकर अंशुमान्‌को बड़ा शोच हुआ, तब गरुड़जीने जलाशय दिखा दिया ॥ ६ ॥

अंशुमान तहँ मज्जन कीन्हा ❋ क्रमक्रम सबहि जलांजलि दीन्हा ॥७॥
बहुरि गरुड़ बोले सुनु ताता ❋ मैं तोहि कहौं करिय इक बाता ॥८॥

अंशुमान्‌से वहां मज्जन कर क्रम क्रमसे सबको जलाञ्जलि दी ॥७॥ फिर गरुड़जी बोले—हे सुत! मैं तुझसे एक बात कहता हूँ वही करो ॥ ८ ॥

सोरठा—करु सुत सोइ उपाय, गंगा आवहि अवनिमहँ ॥
दर्शनते अघ जाय, मज्जन कीन्हे परम सुख ॥ २९ ॥

हे पुत्र! वही उपाय करो जिसमें गंगाजी पृथ्वीमें आ जायँ; जिनके दर्शनसे पाप छूट जाते हैं और स्नान करनेसे परम सुख होता है ॥ २९ ॥

षष्टि सहस तरिहैं एही विधि * गंगा पाय परम पावनि निधि ॥१॥
सुनि अस वचन हृदय मन भाये * सहित गरुड़ मुनिवर पहँ आये ॥२॥

इस प्रकार परम पवित्र गंगाजी पृथ्वीमें प्राप्त हो ये साठ सहस्र तर जायँगे ॥ १ ॥ यह वचन सुनकर मनमें प्रसन्न हो गरुड़ सहित अंशुमान् कपिलदेवजीके निकट आए ॥ २ ॥

तब खगेश मुनि चरणन नायउ * पूरब कथा सकल मुनि गायउ ॥३॥
आयसु दई तुरँग मुनि दीन्हा * हर्षि हृदय निज अश्वहि चीन्हा ॥४॥

तब गरुड़जी मुनिके चरणोंमें पड़े और पहली कथा सब मुनिने कही ॥ ३ ॥ आज्ञा देकर मुनिने घोड़ा दिया तब अंशुमान् अपना घोड़ा पहचानकर मनमें प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

नगर समीप गरुड़ पहुँचाई * गये भवन तब निज रघुराई ॥५॥
इहां तुरँग लै नृप शिर नाई * षष्टि सहस मुनि कथा सुनाई ॥६॥

हे रामजी! नगरके निकट तक गरुड़जी पहुँचाकर तब अपने घरको गये ॥ ५ ॥ इधर अंशुमान् घोड़ा ले राजाके सम्मुख आकर शिर नवाया और साठ हजारके भस्म होने का चरित्र सुनाया तथा जिस प्रकार मुनिने घोड़ा दिया था वह भी कहा ॥ ६ ॥

विस्मय हर्ष विवश नृप भयऊ * कीन्हो यज्ञ दान बहु दयऊ ॥७॥
बहुविधि नृपतिराज्य पुनि कीन्हा * प्रजालोग कहँ अतिसुख दीन्हा॥८॥

राजा प्रसन्नता और दुःखके वश हुए (घोड़ेका मिलना सुख पुत्रोंका मरण दुःख है) और यज्ञ कर बहुत दान दिया ॥ ७ ॥ फिर राजाने बहुत प्रकार राज्य किया और प्रजा लोगोंको अत्यन्त सुख दिया ॥ ८ ॥

दोहा—अंशुमान हित राज्य दै, मन हरिपद निज लाग ॥
गयउ सगर तप काज वन, हृदय अधिक अनुराग ॥ २५३ ॥

फिर राजा सगर अंशुमान्‌को राज्य दे आप भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति करते हुए तप करनेके लिए वनको चले गये जिनके मनमें बड़ा प्रेम है ॥ २५३ ॥

तासु तनय दिलीप नृप भयऊ * बन तप हेतु उतर दिशि गयऊ ॥१॥
तहाँ अगम तप कीन्ह कृपाला * भये कालवश गये कछु काला ॥२॥

अंशुमान्‌का बेटा दिलीप हुआ, दिलीपको राज्य दे अंशुमान् भी उत्तरकी ओर वनमें तप करने गया ॥ १ ॥ वहां राजा अंशुमान्‌ने बड़ा कठिन तप किया और कुछ समय बीतने पर शरीर त्याग दिया ॥ २ ॥

कहउँ कवन दिलीप प्रभुताई ❋ सेवहिं सकल भूप जेहि आई॥३॥
जुगवत जेहि नित सुरपति रहई ❋ कवि महिमा तेहि केहि विधि कहई॥४॥

राजा दिलीप की क्या प्रभुता वर्णन करूँ ? जिनकी सब राजा आकर सेवा करते थे ॥३॥ जिस राजाको(सदा)इन्द्र देखता रहता था, उनकी महिमा कोई कवि कैसे कह सकता है?॥४॥

नाम भगीरथ सुत भयो जासू ❋ पितुसम प्रीति अधिक हियतासू ॥५॥
तिनहिं बोलि नृप दीन्हेउ राजू ❋ आप चले उठि तपके काजू ॥६॥

जिसके भगीरथ नामका लड़का पुत्र हुआ,जिसके हृदयमें पिताके समान ही अधिक प्रीति है ॥५॥ राजा उसको बुलाकर राज्य दिया और आप उठकर तप करनेको चल दिए ॥ ६ ॥

मनमहँ करत पंथ अनुमाना ❋ सुरसरि आव तजहुँ नतु प्राणा ॥७॥
पितुमन तन दीन्हेउ तिमि देऊँ ❋ फिर निज नगरक नाम न लेऊँ ॥८॥

मार्गमें मनमें विचार करते चले;कि या तो गंगाजी आवेंगी नहीं तो प्राण त्याग करूँगा॥७॥ जैसे पिताने अपना मन और तन सब इन्हींको अर्पण किया था वैसे मैं भी करूँगा (और जो गंगाजीको न लाऊँ तो) फिर अपने नगरका नाम भी नहीं लूँगा ॥ ८ ॥

सोरठा—यहि विधि करत विचार, नृप कीन्हे तब प्रबल तप ॥
बीतेउ समय अपार, देह तजी कोउ प्रगट नहिं ॥ ३० ॥

राजा इस प्रकारसे विचार कर तप करनेको चले गये और वहाँ बहुत समय तक उग्र तप किया, अधिक काल बीतने पर देह त्याग दिया, परन्तु कोई (देवता) प्रकट नहीं हुआ॥३०॥

जेहि सुरसरि लगि तनु तज भूपा ❋ सो तजि मूढ़ पियहिं जलकूपा ॥१॥
इहां भगीरथ अस मन भयऊ ❋ पितु नआव बहु दिन चलि गयऊ॥२॥

जिन गंगाजीके हित राजाओंने शरीर त्याग दिया और उनके जलको छोड़कर मूर्ख कुएँका जल पीते हैं॥१॥ इस ओर भगीरथने यों मनमें विचारा कि बहुत दिन बीत गए पिताजी न आये॥२॥

सुत काकुत्स्थनाम इक रहेऊ ❋ दीन्हो राज्य नीति बहु कहेऊ ॥३॥
कहि सब कथा पूर्व सुतपाँहा ❋ दीन्ह अशीश चले नर नाहा ॥४॥

भगीरथके काकुत्स्थनाम एक पुत्र था,उसको राज्य दिया और उसे भगीरथने बहुत राज्यनीति समझायी॥३॥ पहली कथा (गङ्गाजीके लानेकी) पुत्रसे वर्णन कर आशीष दे राजा चले ॥४॥

निकसत नगर शकुन भल पाये ❋ अतिहि निबिड़ वनमहँ नृप आये॥५॥
देखि भगीरथ वन सुख पावा ❋ सुरसरि हित तपकहँ मन लावा ॥६॥

नगरसे निकलते ही अच्छे शकुन मिले और राजा बड़े गम्भीर वनमें आये ॥५॥ भगीरथ वन देखकर सुखी हुए और गङ्गाजीके लानेको तपमें मन लगा दिया ॥ ६ ॥

एक चरण दो भुजा उठाये ❋ रविसम्मुख चितवहिं मन लाये ॥७॥
वर्ष सहस बीते इहि भाँती ❋ जात न जाने दिन अरुराती ॥८॥

एक चरणसे खड़े हो दोनों भुजा उठाए हुए सूर्यके समान मन लगाकर देखने लगे ॥७॥ इस प्रकार हजार वर्ष बीत गए वे दिन और रात जाते नहीं जाने ॥ ८ ॥

देखि उग्र तप अज चलि आये * बोले वचन नृपहिं मन भाये॥९॥
चहहि नृपति जो लै बरदाना * करि प्रणाम कह नृपति सुजाना॥१०॥

तब बड़ा भारी तप देखकर ब्रह्माजी आये और राजासे मनोहर वचन बोले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! जो चाहो सो वरदान लो, तब चतुर राजा प्रणाम कर ब्रह्माजीसे बोले ॥ १० ॥

जो माँगौं सो जानत अहहू * मोसन माँगन प्रभु किमि कहहू ॥११॥

जो माँगना चाहता हूँ आप जानते ही हैं, हे प्रभु ! फिर मुझसे माँगनेको क्यों कहते हो?॥ ११॥

दोहा-तदपि कहौं प्रभु देहु वर, सब संतन कहँ वृद्धि ॥
दूसर मांगौ जोरि कर, गङ्गा आवहिं सिद्धि ॥ २५४ ॥

तो भी कहता हूँ प्रभु ! वह वर दीजिए कि सब सन्तोंकी वृद्धि हो और दूसरा वह हाथ जोड़कर यह मांगता हूँ कि सिद्धिकी दाता गंगाजी भूतल में आवें ॥ २५४ ॥

एवमस्तु कहि पुनि विधि कहही * सुरसरि देहुँ राखि को सकही ॥१॥
छूटि जाय पुनि तुरत रसातल * फिरहि न नृपति बहुरि सुत भूतल ॥२॥

ब्रह्माजी "ऐसा ही होगा" कहकर फिर बोले कि गंगाजीको तो ला दूँगा, पर उसे धारण कौनकर सकेगा?॥ १॥ हे राजन्! छूटते ही तुरंत पातालमें चली जायँगी तो फिर पृथ्वीमें नहीं लौटेंगी ॥ २ ॥

तेहिते एक कहौं तोहि पाहीं * अति दयालु शंकर जगमाहीं ॥३॥
सोइ शिव रखहिं देवसरि आजू * उनहिं जपे तब होइहैं काजू ॥४॥

हे राजन् ! इस कारण एक बात कहता हूँ कि जगत्में शिवजी महाराज बड़े दयालु हैं ॥ ३ ॥ आज वे ही शिवजी गंगाजीको धारण कर सकते हैं, अतः उनके नाम जपनेसे ही आपका काम होगा ॥ ४ ॥

अस कहि विधि अंतरहित भये * बहुरि भगीरथ शिवपहँ गये ॥५॥
विबुध वर्ष अंगुष्ठ अधारा * बार बार शिव नाम उचारा ॥६॥

ऐसा कह कर ब्रह्माजी अन्तर्धान हुए और फिर भगीरथ शिवजीके पास गए ॥५॥ देवताओंके वर्षतक अँगूठेके आधार खड़े रहे और वारंवार शिवजीका नाम उच्चारण किया ॥ ६ ॥

शिव दयालु प्रगटे तब आई * हाथ जोरि नृप विनय सुनाई ॥७॥
मैं राखब सुरसरि कह ईशा * बहुरि रमापति ध्यान करीशा ॥८॥

जब दयालु शिवजी आकर प्रगट हो गये, तब राजाने हाथ जोड़ बिनती की ॥ ७ ॥ "मैं गंगाजीको धारण करूँगा" यह शिवजी बोले और फिर भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-उहाँ देवसरि शिव वचन, सुनि मन कीन्ह विचार ॥
जाउँ रसातल शिव सहित, जात न लावउँ बार ॥ २५५ ॥

ब्रह्मलोकमें गंगाजीने शिवजीके वचन सुनकर यह विचार किया कि मैं शिवजी सहित पातालको चली जाऊँगी ॥ २५५ ॥

अन्तर्यामी शिवहि उपाई * निज शिर जटा सो अगम बनाई ॥१॥
इहाँ भगीरथ अस्तुति कीन्ही * सुनि मृदु गिरा छाँड़ि विधि दीन्ही ॥२॥

अन्तर्यामी शिवजीने यह उपाय किया अपने शिरपर अगम जटा बनाया ॥ १ ॥ यहाँ भगीरथने स्तुति की कोमल वाणी सुनकर ब्रह्माजीने गङ्गाजीको छोड़ दिया ॥ २ ॥

छूटे शोर भयउ जगभारी ❋ चकितदेव अहि दिग्गज चारी ॥३॥
सुरसरि पुनि हर-जटा समानी ❋ वर्ष एक तहँ रहीं भुलानी ॥४॥

गंगजीके छूटने पर जगत्में बड़ा शोर हुआ; शेषजी देवता और चारों दिग्गज चकित हो गये ॥ ३ ॥ गङ्गाजी फिर शिवजीकी जटामें समायीं और एक वर्ष तक जटामें ही भूली रहीं (यह भी एक प्रकारसे श्रेष्ठ शिव पत्नी ही हैं) ॥ ४ ॥

कौतुक देखि सकल सुर हर्षे ❋ कहि जय जयति सुमन बहुवर्षे ॥५॥
बहुरि भगीरथ सुमिरण कीन्हा ❋ डारि जटा शिव बुन्दक दीन्हा ॥६॥

यह कौतुक देखकर सब देवता प्रसन्न हुए और 'जय जय' कहकर बहुतसे फूल बरसाये॥५॥ फिर भगीरथने शिवजीका स्मरण किया, तब शिवजीने जटामेंसे गङ्गाजीकी एक बूँद छोड़ दी॥६॥

तेहिते भईं तीन पुनि धारा ❋ एक गई नभ एक पतारा ॥७॥
गई नभ सोइ कि अघकी नाशिनि ❋ देवन धरा नाम मंदाकिनि ॥८॥

उस बूँदसे फिर तीन धाराएँ प्रकट हुईं, एक आकाश और एक पातालको गई ॥७॥ पापकी नाश करनेवाली एक धारा जो आकाशको गई, देवताओंने उसका नाम 'मन्दाकिनी' रखा॥८॥

सोरठा—दूसरि गई पताल, नाम प्रभावति हरण दुख ॥
तीसरि गंग विशाल, सब सन्तनको करन सुख ॥ ३१ ॥

दूसरी पातालमें गई, जिसका नाम दुःख हरने वाली 'प्रभावती' हुआ और तीसरी गंगा हुई जो कि सब सन्तोंको सुख देनेवाली है ॥ ३१ ॥

दोहा—सलिल प्रभाव विलोकि नृप, उर अति भयउ अनंद ॥
जैसे उमड़त सिंधु तब, पूर्ण कला लखि चन्द ॥२५६॥

जलका प्रवाह देखकर राजाके मनमें बड़ा आनन्द हुआ, जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्र उमड़ता है ॥ २५६ ॥

आय भगीरथ पुनि शिर नाये ❋ बोली सुरसरि वचन सुहाये ॥१॥
वेगवन्त नृप रथ लै आनू ❋ सुभग तुरँग शुभगति जिमि भानू ॥२॥

भगीरथने आकर फिर शिर नवाया, तब गंगाजी राजासे सुन्दर वचन बोलीं॥१॥ हे राजन् ! वेगवन्त रथ सुन्दर घोड़े युक्त ले आओ, जिसकी गति सूर्यके घोड़ों सरीखी श्रेष्ठ हो ॥ २ ॥

तेहि रथ चढ़ि नृप चलु मम आगे ❋ चलिहौं मैं तव पाछे लागे ॥३॥
सुनि नृप दिव्य तुरँग रथ आना ❋ चले हृदय सुमिरत भगवाना ॥४॥

हे राजन् ! उस रथमें चढ़कर आप मेरे आगे चलिए और मैं आपके पीछे चलूँगी॥३॥ सुनते ही राजा तुरन्त सुन्दर घोड़े वाला रथ लाये और मनमें भगवान्का स्मरण करते चले॥४॥

चली अग्रकरि नृपहि सुरसरी ❋ देवन मुदित सुमन झरि करी ॥५॥
चलत तेज कछु वरणि न जाई ❋ टूटहिं गिरि तरु शैल सोहाई ॥६॥

राजाको आगेकर गङ्गाजी चलीं और देवताओंने प्रसन्न हो फूल बरसाये ॥ ५ ॥ चलतेमें उनके तेजका कुछ वर्णन नहीं हो सकता, पर्वत वृक्ष और छोटी शिला टूटती हैं ॥ ६ ॥

करै कुलाहल विधि बहु भाँती ❋ कमठ नक्र झष व्यालसो माती ॥७॥
मज्जन करहिं देव तहँ आई ❋ सुनि गति सिद्ध रहे सब छाई ॥८॥

कछुये, मगर, मछली, सर्प मतवाले होकर अनेक प्रकारके कोलाहल (शब्द) कर रहे हैं ॥ ७ ॥ वहां देवता आकर मज्जन करते हैं और ऐसी गंगाजीकी गति (महिमा) सुनकर सब सिद्धोंने तटपर आश्रम बनाए ॥ ८ ॥

सोरठा—तर्पण कर मन लाय, हर्ष हृदय नहिं जात कहि ॥
दर्शन ते अघ जाय, तरै तुरत मुनि जन कहैं ॥ ३२ ॥

जो मन लगाकर तर्पण करे उसके मनमें बड़े आनंदकी गति प्राप्त होती है—जो कहा नहीं जाता और पाप तो दर्शनमात्रसे ही छूट जाते हैं, शीघ्र ही तर जाते हैं ऐसा मुनिजन कहते हैं ॥३२॥

सोरठा—मज्जन कर हरषाय, सुर अजादि सनकादि ऋषि ॥
पान करत अघ जाय, अस मत सब कोऊ कहैं ॥ ३३ ॥

प्रसन्न होकर देवता, ब्रह्मा, सनकादिक, ऋषि, मुनि कहते हैं और जल पीते ही सबके पाप दूर होते हैं ऐसा मत सब कोई कहते हैं ॥ ३३ ॥

करै जो मज्जन जप मन लाई ❋ तिनकी महिमा कहि न सिराई ॥१॥
रथपर जात सोह नृप कैसे ❋ तेजवन्त रवि देखिय जैसे ॥२॥

जो मन लगाकर स्नान, जप करते हैं उनकी महिमा कहीं नहीं जाती ॥ १ ॥ रथपर जाते हुए राजा कैसे शोभायमान होते हैं जैसे तेजवन्त सूर्य देख पड़े ॥ २ ॥

लाँघत शैल सुहावन देशा ❋ पाछे सुरसरि अग्र नरेशा ॥३॥
हरिद्वार समीप जब आये ❋ तीर्थ देखि सुरसरि मन भाये ॥४॥

पहाड़ और सुन्दर देश लाँघते हुए आगे राजा पीछे गंगाजी चली आती हैं ॥ ३ ॥ जब हरिद्वारके निकट आए तब तीर्थ भूमि देखकर गंगाजीका मन प्रसन्न हो गया ॥ ४ ॥

तीर्थ निरखि मन भयो सुखारी ❋ आदि प्रयाग पहुँचि अघहारी ॥५॥
तहँ मज्जन कीन्हे दुख जाई ❋ बहुरि देवसरि काशी आई ॥६॥

तीर्थको देख मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर पाप हरनेवाली आदि प्रयागमें पहुँचीं ॥ ५ ॥ वहां स्नान करनेसे दुःख छूट जाते हैं। फिर गंगाजी काशीमें आयीं ॥ ६ ॥

सो शिवपुरी सहज सुखदाई ❋ वरणि न जाय मनोहरताई ॥७॥
औरौ तीर्थ विविध विधि जानी ❋ गई तहाँ किमि कहौं बखानी ॥८॥

१—प्रमाण—"सितासिते सरिते यत्र संगमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते ॥

अर्थात् — जहां गंगा यमुना संगम है, ये स्वर्गीय दोनों नदी जिस स्थानमें मिलती हैं उसको प्रयाग कहते हैं, जो वीर पुरुष उस स्थानमें शरीर त्याग करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। (श्रुति)

वह काशी शिवजीकी शोभायमान सुखदायी पुरी है जिसकी मनोहरता वर्णी नहीं जाती॥७॥ और भी अनेक प्रकारके तीर्थ जानकर गंगाजी वहाँ-वहाँ गयीं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता॥८॥

मग लोगनको करत सनाथा ❋ जाइँ चली इहि विधि रघुनाथा ॥९॥

हे रघुनाथजी! श्रीरामचंद्रजी! इस प्रकार मार्गके लोगोंको सनाथ करती हुई गंगाजी चली जाती हैं९॥

दोहा–मिलीं जाय पुनि उदधि महँ सिंधु हृदय सुखमान ॥
लागे कहन भागीरथहि, तुम सम धन्य न आन ॥ २५७ ॥

इस प्रकारसे फिर समुद्रमें जाकर मिलीं, तब समुद्र मनमें प्रसन्न होकर भागीरथीकी बड़ाई करने लगा कि आपके समान दूसरा धन्य नहीं है ॥ २५७ ॥

कीन्ही अस जस करहि न कोई ❋ तप महिमा बल कस नहिं होई॥१॥
सगर सो तनय तरे तत्काला ❋ हर्षवंत तब भयो नृपाला ॥२॥

आपने ऐसा किया कि जैसा कोई नहीं करेगा तपकी महिमा बल ऐसा क्यों न हो ? ॥ १ ॥ सगरके पुत्र तो उसी समय तर गये, तब राजा बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

अबलौं रहे जो कुलमें कोऊ ❋ तिनके संग तरे अब सोऊ ॥३॥
तुम समान नृप और न भयऊ ❋ जग विख्यात अचल यश लयऊ॥४॥

और जो अबतक कोई कुलमें तारनेसे शेष रहे उनके संगमें अब वे भी तर गये ॥ ३ ॥ आपके समान और राजा नहीं हुआ, आपने जगत्में विख्यात अचल यश प्राप्त किया ॥ ४ ॥

सकल सुरन तहँ संग विधाता ❋ नृपसन आय कही सब बाता ॥५॥
धन्य भगीरथ जग यश लयऊ ❋ तुम समान नृप और न भयऊ ॥६॥

वहां सब देवताओंको सङ्ग लेकर ब्रह्माजी आये और राजासे यह सब बात कही ॥ ५ ॥ धन्य हो भगीरथ ! जगत्में बड़ा यश पाया आपके समान और कोई राजा नहीं हुआ ॥ ६ ॥

आपनि सत्य प्रतिज्ञा कियऊ ❋ सम्मत वेद जनन सुख दयऊ ॥७॥
गंगासागर सब कोई कहहीं ❋ अघ उलूक देखत रवि डरहीं ॥८॥

अपनी प्रतिज्ञा सत्य की और वेद माननेवाले जनोंको सुख दिया ॥ ७ ॥ इनको सब कोई गंगासागर कहेंगे, पापरूपी उलूक सूर्यसमान गंगासागरको देखकर डरेंगे ॥ ८ ॥

भागीरथी नाम अरु कहहीं ❋ मुनिसुर सिद्ध नाग यश लहहीं ॥९॥
कहि विधि अस निजलोक सिधाये ❋ यहां भगीरथ अतिसुख पाये ॥१०॥

और गंगाजीका 'भागीरथी' भी नाम कहेंगे जिनको सुनकर देवता, सिद्ध और नाग यश प्राप्त करेंगे॥९॥इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको गये और वहां भगीरथने बड़ा सुख पाया॥१०॥

छन्द–पायो अमित सुख बहुरि पूजो सुरसरि मन लायकें ।
तब दीन्ह आशिष मुदित गंगा नृप गये सुख पायकें ॥
इहि भाँति सुनि गंगा-कथा तब राम मुनि चरणन नये ।
कह दास तुलसी राम लषणहि महामुनि आशिष दये ॥ २३ ॥

---

१. मार्गमें आते समय गंगाजीने जह्नु, ऋषिकी सामग्री बहादी, इससे वे क्रुद्ध हो उन्हें पानकर गये, तब बड़ी स्तुति करने से उन्होंने गंगाजीको जांघ के द्वारा निकाला, तबसे इनका 'जाह्नवी' भी नाम हुआ ।

तब भगीरथने बहुत सुख पाया और मन लगाकर गंगाको फिर पूजा, तब गंगाजीने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया और राजा आशीर्वाद पाकर सुख पूर्वक घरको गये। इस प्रकार गंगाजीकी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुनिके चरणोंमें शिर नवाने लगे, लक्ष्मणजीने दण्ड-वत् किया, तब विश्वामित्रजीने आशीर्वाद दिया ॥ २३ ॥

दोहा—कौशिक आशिष अमिय सम, पाय हर्ष रघुराज ॥
प्रभुसंशय सब इमि गये, लवा निरखि जिमि बाज ॥ २५८ ॥

विश्वामित्रजीका अमृतके समान आशीर्वाद पाकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और उनके सब संशय ऐसे जाते रहे जैसे बाजको देखकर बटेर उड़ जाते हैं ॥ २५८ ॥

दोहा—आशिष सुधा-समान सुनि, हरषे श्रीरघुनाथ ॥
प्रभु सुख पाय कह्यो पुनि, वेगि चलिय मुनिनाथ॥ २५९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अमृतके समान आशीष सुनकर प्रसन्न हुए और फिर सुख पाकर बोले—हे मुनिनाथ! शीघ्र चलिये ॥ २५९ ॥

रामनामते संशय जाई * देह धरे कर यह फल भाई ॥१॥
गाधिसुवन सब कथा सुनाई * जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥२॥

रामके नामसे संशय जाता रहता है, भाई! देह धारण करनेका फल यही है (यहां तक क्षेपक कथा है)॥१॥ विश्वामित्रजीने सब कथा सुनायी कि जिस प्रकार गंगाजी पृथ्वीमें आयीं ॥२॥

तब प्रभु ऋषिन समेत अन्हाये * विविध दान महिदेवन पाये ॥३॥
हरषि चले मुनिवृन्द सहाया * वेगि विदेह नगर नियराया ॥४॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने ऋषियों समेत स्नान किया और ब्राह्मणोंने अनेक प्रकार दान पाये॥३॥ मुनिवृन्दों सहित प्रसन्न हो चले और शीघ्र ही जनक नगरके समीप आ पहुँचे ॥ ४ ॥

पुर रम्यता राम जब देखी * हर्षे अनुज समेत बिसेखी ॥५॥
वापी कूप सरित सर नाना * सलिलसुधासम मणि सोपाना ॥६॥

जब श्रीरामचंद्रजीने जनकपुरीकी शोभा देखी तो लक्ष्मणसहित विशेष प्रसन्न हुए॥५॥जहां बावडी कुएँ, नदी अनेक तालाब हैं उनमें अमृतके समान जल और मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं॥६॥

गुञ्जत मंजु मत्त रसभृङ्गा * कूजत कल बहु बरण विहंगा ॥७॥
बरण बरण विकसे जलजाता * त्रिविध समीर सदा सुखदाता ॥८॥

रससे मतवाले भौंरे सुन्दर गुञ्जार रहे हैं और बहुत वर्णके पक्षी कल अर्थात् मनोहर शब्द कर रहे हैं॥७॥रंग-रंगके कमल खिल रहे हैं और शीतलमंदसुगंध सदा सुखदायक पवन बह रही है॥८॥

दोहा—सुमन वाटिका बाग वन, विपुल विहंग निवास ॥
फूलत फलत सुपल्लवित सोहत पुर चहुँ पास ॥ २६० ॥

पुरके चारों ओर फूलवाटिका लगी हुई हैं, सो फूल रही हैं, उसके पीछे बाग लगे हैं जो फल रहे हैं, पीछे वन हैं जो सुपल्लवित अर्थात् सुन्दर पत्तोंसे शोभित हो रहे हैं, जिनमें अनेक पक्षी निवास करते हैं ॥ २६० ॥

बनै न वर्णत नगर निकाई * जहां जाय मन तहँ लुभाई ॥१॥
चारु बजार विचित्र अँवारी * मणिमय विधि जनुस्वकर सँवारी॥२॥

नगरकी शोभा वर्णन करते नहीं बनती क्योंकि वर्णन करनेवाला मन जहां जाता है वहीं लुभा जाता है इससे वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥ सुन्दर बाजार और विचित्र मणिमय अँवारीं (रंग-रंगकी पंक्ति) मानो ब्रह्माने अपने हाथोंसे सँवारी हैं (कहीं अँवारीके स्थानमें अँटारी भी पाठ है) ॥ २ ॥

धनिक वनिक वर धनद समाना ❋ बैठे सकल वस्तु लै आना ॥३॥
चौहट सुन्दर लगी सुहाई ❋ संतत रहहिं सुगन्ध सिंचाई ॥४॥

धनिक (बेचनेवाले) और वणिक (लेनेवाले) दोनों श्रेष्ठ कुबेरके समान हैं अर्थात् न उनकी वस्तु चुके, न उनका धन चुके, अनेक प्रकारकी वस्तु लिए बैठे हैं ॥३॥ सुन्दर चौहटे और गलियाँ बहुत शोभित हैं कारण कि सदा सुगन्धसे छिड़की रहती हैं ॥ ४ ॥

मंगल मय मन्दिर सब केरे ❋ चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥५॥
पुर नर नारि सुभग शुचि संता ❋ धर्मशील ज्ञानी गुणवंता ॥६॥

सबके मन्दिर मङ्गल रूप हैं मानो उनमें कामदेवने चित्रकारी की है ॥५॥ पुरके नर नारी सुन्दर, पवित्र और शांतरससे युक्त, धर्मशील, ज्ञानी और गुणवाले हैं ॥ ६ ॥

अति अनूप जहँ जनक निवासू ❋ विथकहिं विबुध विलोकि विलासू ॥७॥
होत चकित चित कोट विलोकी ❋ सकल भुवन शोभा जनु रोकी ॥८॥

जनकजीका निवास संपूर्ण नगरसे भी अधिक उपमा रहित था, जिसके विलास अर्थात् ऐश्वर्योंके भोग देखकर देवता भी विशेषरूपसे थक जाते हैं ॥ ७ ॥ किलेको देखकर चित्त चकित हो जाता है मानो सब भुवनोंकी शोभा उस कोटमें ही रोककर रखी गयी है ॥ ८ ॥

दोहा–धवल धाम मणि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति ॥
सिय निवास सुन्दर सदन, शोभा किमि कहि जाति ॥ २६१ ॥

उज्ज्वल राजमन्दिर उनपर सोनेकी पटली नानाभांतिके मणियोंसे सुन्दर जड़ी हुई हैं, वा मणिजटित किवाड़ लगे हैं जो सीताजीके निवासका सुन्दर घर है उसकी शोभा कैसे कही जाय ? ॥ २६१ ॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा ❋ भूप भीर नट मागध भाटा ॥१॥
वनी विशाल वाजि-गजशाला ❋ हय गय रथ संकुल सब काला ॥२॥

सुन्दर दरवाजे सबमें वज्र अर्थात् हीरे जड़े किवाड़ लगे हुए हैं। अथवा वज्रके समान दृढ़ किवाड़ लगे हुए हैं और राजाके दरवाजे पर नट (नाचनेवाले), मागध (वंशकी प्रशंसा करनेवाले) और भाट इन सबकी भीड़ लगी रहती है ॥ १ ॥ घुड़शाला और हाथियोंके रहनेके बड़े-बड़े स्थान बने हैं जिनमें घोड़े, हाथी और रथोंके समूह सर्वदा रहते हैं ॥ २ ॥

शूर सचिव सेनप बहुतेरे ❋ नृप गृह सरिससदन सब केरे ॥३॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा ❋ उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा ॥४॥

शूर, मन्त्री, सेनापति बहुतसे और राजाके घरके समान ही उन सबके भी घर हैं ॥ ३ ॥ पुरके बाहर ताल और नदीके निकट जहां-तहां राजा टिके हुए हैं ॥ ४ ॥

देखि अनूप एक अँबराई ❋ सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥५॥
कौशिक कहेउ मोर मनमाना ❋ इहां रहिय रघुवीर सुजाना ॥६॥

एक सुन्दर बगीचा देखकर; जो कि सब प्रकारसे विश्रामदायक और शोभायमान था ॥५॥ विश्वामित्रजीने कहा-मेरा मन इस स्थानमें रमता है, हे सुजान रामजी ! यहां ही रहिये ॥६॥

भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता ❋ उतरे तहँ मुनिवृन्द समेता ॥७॥
विश्वामित्र महामुनि आये ❋ समाचार मिथिलापति पाये ॥८॥

'बहुत अच्छा महाराज !' ऐसा कहकर मुनियोंके वृन्दसमेत श्रीरामचन्द्रजी वहां टिके ॥ ७ ॥ महामुनि विश्वामित्रजी आये हैं, यह समाचार जनकजी पाये ॥ ८ ॥

दोहा-संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुरवर गुरु ज्ञाति ॥
❋ चले मिलन मुनि नायकहि, मुदित राउ इहि भाँति ॥ २६२ ॥

तब उत्तम मन्त्री, बड़े-बड़े योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु और जातिके लोगोंको संग लेकर इस प्रकार मुनियोंके नायक विश्वामित्रजीसे मिलनेको राजा जनकजी प्रसन्न होकर चले ॥२६२॥

कीन्ह प्रणाम चरण धरि माथा ❋ दीन्ह अशीश मुदित मुनिनाथा ॥१॥
विप्रवृन्द सब सादर वंदे ❋ जानि भाग्य बड़राउ अनन्दे ॥२॥

चरणोंमें शिर रखकर राजाने प्रणाम किया और प्रसन्न हो मुनिनाथने आशीष दी ॥ १ ॥ सब ब्राह्मणोंको आदर पूर्वक प्रणाम किया और राजाने अपना बड़ा भाग्य जान आनंदित हुए ।२।

कुशल प्रश्न कहि बारहि बारा ❋ विश्वामित्र नृपहि बैठारा ॥३॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई ❋ गये रहे देखन फुलवाई ॥४॥

बार-बार कुशल पूछकर विश्वामित्रजीने राजाको बैठाया ॥ ३ ॥ उसी समय श्रीराम और लक्ष्मणजी दोनों भाई आये, जो कि फूलवाटिका देखने चले गये थे ॥ ४ ॥

श्याम गौर मृदु बयस किशोरा ❋ लोचन सुखद विश्वचित चोरा ॥५॥
उठे सकल जब रघुपति आये ❋ विश्वामित्र निकट बैठाये ॥६॥

श्याम और गौर शरीर कोमल और किशोर अवस्था, नेत्रोंके देनेवाले संसारके चित्तचोर ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजी जब आये तब सब उठे और विश्वामित्रजीने उनको निकट बैठाया (यहां विश्वामित्रजीने चक्रवर्ती राजा दशरथजीकी मर्यादा रखी कि उनके कुँवरको देखकर सब खड़े हुए और जनकके आगमनमें रघुराज फुलवाड़ी देखने चले गए थे) ॥ ६ ॥

भे सब सुखी देखि दोउ भ्राता ❋ वारि विलोचन पुलकित गाता ॥७॥
मूरति मधुर मनोहर देखी ❋ भयउ विदेह विदेह विसेखी ॥८॥

दोनों भाइयोंको देखकर सब सुखी हुये;नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर पुलकित हो गया ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी मधुर मनोहर मूर्ति देखकर विदेह (जनकजी) विदेह अर्थात् जनकजीका विदेह नाम विशेषकर सार्थक हुआ, देहकी सुधि भूल गए । अथवा रामकी मूर्ति देखकर देही हो गए प्रेममें मग्न हो गए वैराग्य जाता रहा (क्वार शुक्ल द्वादशीको दर्शन हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-प्रेम मगन मन जानि नृप, करि विवेक धरि धीर ॥
❋ बोले मुनिपद नाइ शिर, गद्गद गिरा गँभीर ॥ २६३ ॥

प्रेमसे राजाका मन डूब गया, अतः विवेककर अपनी मतिको धीरज दे मुनिके चरणमें शिर नवाकर गम्भीर स्वरसे बोले ॥ २६३ ॥

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक * मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥१॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा * उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥२॥

कहिये नाथ ! सुन्दर दोनों बालक मुनिकुलके तिलक हैं, कि राजकुलके पालन करनेवाले हैं ! ॥ १ ॥ अथवा वेदने जिस ब्रह्मको 'नेति नेति' ऐसा कहकर गाया है, क्या वे ही यह दो वेष धारण करके आये हैं ? ॥ २ ॥

सहज विराग रूप मन मोरा * थकित होत जिमि चंदचकोरा ॥३॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ * कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥४॥

स्वाभाविक वैराग्य रूप मेरा मन इनको देखकर ऐसा थकित होता है जैसे चंद्रमाको देखकर चकोर थकित होता है ॥ ३ ॥ इस कारण हे प्रभु ! हे नाथ ! मैं सद्भावसे पूछता हूँ आप कहिये, छिपाव मत कीजिये ॥ ४ ॥

इनहिं बिलोकत अति अनुरागा * बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ॥५॥
कह मुनि बिहँसि कहेउ नृप नीका * वचन तुम्हार न होय अलीका ॥६॥

इनके दर्शनमात्रसे ऐसा अधिक अनुराग होता है कि बरजोरी मेरा मन ब्रह्मसुखका त्याग करता है ॥ ५ ॥ विश्वामित्रजी हँसकर बोले-राजन् ! अच्छी बात कही। आपका वचन मर्यादारहित (मिथ्या) नहीं होता ॥ ६ ॥

ये प्रिय सबहि जहां लगि प्रानी * मनमुसुकाहि राम सुनि बानी ॥७॥
रघुकुल-मणि दशरथके जाये * मम हित लागि नरेश पठाये ॥८॥

ये जहां तक प्राणी हैं सबको प्यारे हैं, श्रीरामचन्द्रजी यह वाणी सुनकर मनमें मुसंकराने लगे (तब मुनिने कहा) ॥ ७ ॥ ये रघुकुलमणि दशरथजीके पुत्र हैं मेरे हितके लिये राजाने भेज दिये हैं ॥ ८ ॥

दोहा-राम लखन दोउ बंधुवर, रूप शील बल धाम ॥
मख राखेउ सब साखि जग, जीति असुर संग्राम ॥ २६४ ॥

इन दोनोंका नाम राम और लक्ष्मण है। ये दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील, बलके धाम हैं और बड़े-बड़े राक्षसोंको युद्धमें मारकर इन्होंने मेरे यज्ञकी रक्षाकी इस बातको सब कोई जानते हैं वा इन्होंने जगत्‌की साख रखी हैं ॥ २६४ ॥

मुनि तव चरण देखि कह राऊ * कहि न सकउँ निजपुण्य प्रभाऊ ॥१॥
सुन्दर श्याम गौर दोउ भ्राता * आनँदहूके आनँद-दाता ॥२॥

राजा बोले-हे मुनि ! आपके चरणोंको देखकर मैं अपने पुण्यका प्रभाव वर्णन नहीं कर सकता ॥ १ ॥ सुन्दर साँवले गोरे ये दोनों भाई आनन्दके भी आनन्द देनेवाले हैं ॥ २ ॥

---

१. मुसकानेका कारण यह है कि राजाने कहा – "ब्रह्म जो निगम" इत्यादिक उसके उत्तरमें ऋषिने कहा – 'वचन तुम्हार न होय अलीका और 'ये प्रिय सबहि' आगे ब्रह्म कहने को थे कि श्रीरामचन्द्रजी मुसकाये, क्योंकि बहुत चरित्र किया चाहते हैं।

इनकी प्रीति परस्पर पावनि * कहि न जाय मनभाव सुहावनि ॥३॥
सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू * ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥४॥

इनकी प्रीति परस्पर पवित्र है; कही नहीं जाती मनभावनी और सुन्दर है ॥ ३ ॥ जनकजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि सुनिये महाराज! इनका ब्रह्मजीवके समान स्वाभाविक स्नेह है ॥४॥

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू * पुलकि गात उर अधिक उछाहू ॥५॥
मुनिहि प्रशंसि नाइ पद शीशा * चलेउ लिवाय नगर अवनीशा ॥६॥

राजा वारंवार श्रीरामचन्द्रजीको देखने लगे, शरीर पुलकायमान, मनमें बड़ा उत्साह हुआ ॥ ५ ॥ मुनिकी बड़ाई कर चरणोंमें शिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी और मुनिजीको संग ले नगरको आये ॥ ६ ॥

सुन्दर सदन सुखद सब काला * तहाँ बास ले दीन भुवाला ॥७॥
करि पूजा सब विधि सेवकाई * गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥८॥

सुन्दर स्थान जो सबको सब कालमें सुखदायक हो; वहां राजाने (ठहरानेको मुनिसे कहा और वहीं) टिकाया ॥७॥ पूजा और सेवा सब प्रकारसे कर राजा बिदा हो घरको गये ॥८॥

दोहा-ऋषय संग रघुवंशमणि, करि भोजन विश्राम ॥
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि याम ॥ २६५ ॥

ऋषि, यहां मुख्य हैं, रघुनाथ गौण हैं अर्थात् ऋषिके साथ भोजन विश्राम कर लक्ष्मण सहित बैठे। दूसरा अर्थ यह है कि; रघुवंशमणि होकर ऋषियोंके संग भोजन और विश्राम किया। तीसरा अर्थ यह है कि, जब रघुनाथजीने यज्ञ रक्षा करने और राक्षसोंके मारनेके निमित्त ऋषियोंका पक्ष लिया तबसे ऋषियोंके सङ्ग भोजन विश्राम करनेका अवसर अब मिला, सो करके लक्ष्मण सहित बैठे। इस दोहेमें चार उपशास्त्रोंका उपयोग है, ऋषयः शब्द बहुवचन है जो व्याकरणसे सिद्ध होता है, दूसरे शब्दमें वैद्यक शास्त्रका उपयोग है, क्योंकि भोजन करके विश्राम करनेसे आरोग्य होता है, तीसरे पदमें नीति है और चौथे पदमें यामभर दिन रहना ज्योतिष शास्त्र है ॥ २६५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने बालकाण्डान्तर्गत-विद्यावारिधि-
पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतव्याख्यायां पञ्चमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा-सुभग छठे विंश्राममें, नगर विलोकन राम ।
जनक सुताको वाटिका, मिलन सफल मनकाम ॥ ६ ॥

लषण हृदय लालसा विसेखी * जाय जनकपुर आइय देखी ॥१॥
प्रभुभय बहुरि मुनिहिं सकुचाहीं * प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥२॥

लक्ष्मणजीके मनमें यह बड़ी इच्छा थी कि जनकपुर जाकर देख आवें। विशेष शब्दके कहनेसे जाना गया कि रघुनाथजीको भी लालसा है, परंतु लक्ष्मणजीको विशेष है। अथवा पहले सामान्य देखा अब विशेष देखनेकी लालसा है। अथवा विशेषका भाव यह है कि अवश्य देख आवें ॥ १ ॥ श्रीरामजीका भय और फिर मुनिसे कहते सकुच लगती है, इस लिये प्रगट नहीं कहते मनमें ही मुसकाते हैं ॥ २ ॥

राम अनुज-मनकी गति जानी * भक्तवछलता हिय हुलसानी ॥३॥

परम विनीत सकुचि मुसुकाई ❋ बोले गुरु अनुशासन पाई ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके मनकी बात जान ली और भक्तोंके ऊपर कृपा करनेकी बात हृदयमें अधिक प्रगट हुई। भक्तवत्सलता अर्थात् भक्तके पीछे चलनेकी इच्छा हृदयमें हुलसि आयी। दूसरा अर्थ यह है कि मिथिलापुरवासी भक्त जो बछड़ेके समान रस्सीमें बँधे हुए रघुनाथजीके दर्शनरूपी दूधके अभिलाषी हैं उनकी तृप्ति करनेकी इच्छा हृदयमें हुलसि ॥ ३ ॥ परम कहने का भाव यह कि और दिनसे अधिक नम्रता, सकुच और मुसकाना विशेष कर दिया और गुरुकी आज्ञा पाकर बोले ॥ ४ ॥

नाथ लषण पुर देखन चहहीं ❋ प्रभु सँकोच डर प्रगट न कहहीं ॥५॥
जो राउर आयसु मैं पाऊँ ❋ नगर दिखाय तुरत लै आऊँ ॥६॥

हे स्वामी! लक्ष्मणजी नगर देखना चाहते हैं; पर आपके संकोच और डरसे प्रकट नहीं कहते ॥ ५ ॥ जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो नगर दिखाकर तुरन्त ले आऊँ ॥ ६ ॥

सुनि मुनीश कह वचन सप्रीती ❋ कस न राम तुम राखहु नीती ॥७॥
धर्म सेतु पालक तुम ताता ❋ प्रेम विवश सेवक सुख दाता ॥८॥

यह बात सुन मुनि प्रीति पूर्वक बोले—हे श्रीरामचन्द्रजी! आप क्यों न ऐसी नीति पालन करेंगे? प्रीतिसहित कहनेका आशय यह कि रघुनाथजीने जानेकी जो आज्ञा मांगी उसमें वियोग जान प्रीतिसे भर गये और आज्ञाका मांगना यही नीति है ॥ ७ ॥ हे तात! आप धर्म की मर्यादा पालन करनेवाले प्रेमके वश हो सेवकोंको सुख देते हैं, धर्मसेतु इस कारण कहा कि मुनिसे आज्ञा मांगी और सेवक सुखदाता इस कारण कहा कि लक्ष्मणजीकी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा है ॥ ८ ॥

दोहा—जाय देखि आवहु नगर, सुख निधान दोउ भाइ ॥
करहु सफल सबके नयन, सुन्दर वदन दिखाइ ॥२६६॥

सुखके निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ और सुन्दर मुख दिखाकर सबके नेत्र सफल करो। 'जाय' शब्दसे वियोगको प्राप्त हो नगरका कहना भूल गये, जब 'आवहु' शब्दसे संयोग कर लिया नगर कहने की सुध हुई और सुखनिधान कहने का आशय यह कि आपके जानेसे हमको दुःख होगा इससे शीघ्र आना, दूसरा अर्थ यह कि नगर आप दोनों भाइयोंके सुखका निधान है, क्योंकि उसमें जानकीजी उर्मिला आदि हैं तीसरी वार्ता यह है कि आप दोनों भ्राता नगरके सुख निधान हो अर्थात् धनुष टूटनेसे सबको सुख होगा और जो आपने कहा कि हम नगर देख आवें सो यह उलटी बात है, आप अपने सुन्दर वदन दिखाकर सबके नयनोंको सफल कीजिये (वा) सुख दीजिये; एक यह कि अनेक राजाओंका वदन देखना निष्फल होगा, सो आप धनुषको तोड़ अपने वदनको सफल कीजिये ॥२६६॥

मुनिपद कमल वंदि दोउ भ्राता ❋ चले लोक लोचन सुखदाता ॥१॥
बालकवृन्द देखि अति शोभा ❋ लगे संग लोचन मन लोभा ॥२॥

मुनिके चरणकमलोंको दोनों भाई प्रणाम कर नगरवासियोंके नेत्रोंको सुख देने चले ॥१॥ बालकोंके समूह श्रीरामचन्द्रजीकी अधिक शोभा देखकर संग उठ चले, नेत्र तो उनका शृंगार रस देखकर लोभी और मन उनके वचन सुननेके लोभी हुए ॥ २ ॥

पीत बसन परिकर कटि भाथा * चारु चाप सर सोहत हाथा ॥३॥
तनु अनुहरत सुचन्दन खोरी * श्यामल गौर मनोहर जोरी ॥४॥

पीला दुपट्टा और तरकस कमरमें है, सुन्दर धनुष बाण हाथमें शोभित है। शृंगार रसका वर्णन शिरसे और शान्त करुणाका पगसे होता है किन्तु यहां वीररस प्रधान है, अतएव उन दोनोंको छोड़कर कटिसे वर्णनका आरंभ कर शृंगारतक जायँगे ॥ ३ ॥ अच्छे चंदनकी खोर शरीरमें शोभित है, सांवली और गोरी मनोहर जोरी है। यहां किसी तिलकका नियम नहीं कहा क्योंकि मतकी विरुद्धता पायी जाती, परन्तु जब यह कि श्यामल और गौर मनोहर जोरी तनु अनुहरत है,तो इससे लाल चन्दन पाया गया, क्योंकि वह श्याम और गौर दोनों अङ्गमें शोभित होता है, लालचन्दनका तिलक वाल्मीकिने भी लिखा है ॥ ४ ॥

केहरि कन्धर बाहु विशाला * उर अति रुचिर नागमणिमाला ॥५॥
सुभग श्रवण सरसीरुह लोचन * वदन मयंक तापत्रय मोचन ॥६॥

सिंहके समान ऊँचे कंधे, बड़ी-बड़ी बाँहें; हृदयमें अतिशोभायमान नागमणि अर्थात् जो मणि हाथीके शिरमें मोतीके समान होती है उसकी माला ॥ ५ ॥ सुन्दर कान, कमलसे नेत्र चन्द्रमाके समान मुख तीनों तापोंको दूर करनेवाला, तापत्रय (दैहिक-दैविक-भौतिक) राजा जनकजीका प्रण दैहिक ताप है, जो उन्हींसे उत्पन्न हुआ है दैविक परशुरामका आना और भौतिक यह सब राजा धनुष टूटने पर युद्धके लिये कटिबद्ध थे ॥ ६ ॥

कानन कनक फूल छबि देहीं * चितवत चितहिं चोरि जनु लेहीं ॥७॥
चितवनि चारिभ्रुकुटिवर बाँकी * तिलक रेख शोभा जनु चाँकी ॥८॥

कानोंमें सुवर्णके फूल शोभा देते हैं, मानों देखते ही चित्त चुरा लेते हैं। दूसरा अर्थ यह कि कानन नाम वनका है सो रघुनाथजीका शरीर है और कनकफूल धतूरेके फूल हैं, वह छबि रघुनाथजीकी छबि देखनेवालोंको मतवाला कर उनके चित्तकी पूँजीको चुरा लेती है ॥७॥ चितवन मनोहर और भ्रुकुटी बाँकी है और तिलककी रेखाने तो मानो शोभाकी राशिको ही घेर लिया है, जिससे (टोना) न लगे। दूसरा अर्थ चाकीका चकबक हो जाता है भाव यह कि तिलककी रेखा ऐसी है मानो आप आकर चकबक हो खड़ी हुई है ॥ ८ ॥

दोहा-रुचिर चौतनी सुभग शिर, मेचक कुंचित केश ॥
नख शिर सुंदर बंधु दोउ, शोभा सकल सुदेश ॥ २६७ ॥

प्रकाशमान चौतनी अर्थात् चार कोनकी टोपी सुन्दर शिरपर लगी है और मेचक अर्थात् अतिश्याम कुञ्चित टेढ़े केश हैं, दोनों भाई नखशिखसे सुन्दर हैं और सकल शोभा जो मूर्तिमान् है वह औरोंके अङ्गमें मानो कालदेशमें पड़ी हुई थी, किन्तु इनके अंगसुदेशमें आकर मोटे हो गये हैं ॥ २६७ ॥

देखन नगर भूपसुत आये * समाचार पुरवासिन पाये ॥१॥
धाये धाम काम सब त्यागे * मनहुँ रंग निधि लूटन लागे ॥२॥

'राजकुमार नगर देखने आये हैं' यह समाचार नगर निवासियोंने पाये ॥ १ ॥ मनुष्य अपना घर और सब काम छोड़कर दौड़ पड़े मानो निर्धन धन लूटनेको दौड़े हों। यदि कोई कहे कि नगरके वासी निर्धन कैसे ? तो उत्तर है कि वह योगी राजा जनककी प्रजा रघुवंशके ऐश्वर्यकी दरिद्र थी ॥ २ ॥

निरखि सहज सुन्दर दोउ भाई ❋ होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥३॥
युवती भवन झरोखन लागीं ❋ निरखहिं रामरूप अनुरागीं ॥४॥

स्वभावसे ही सुन्दर दोनों भाइयोंको देखकर नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं ॥३॥ प्रथम रघुनाथजीकी शोभा सुनकर जो युवा स्त्रियोंको अनुराग हुआ था वह अब इधर आना सुनकर और भी अधिक हुआ इसलिये घरके झरोखोंसे श्रीरामजीके रूपको देखती हैं भवन का अर्थ घर है उसमें प्रकाश मय जो मणिमय झरोखे हैं उनसे लगकर देखती हैं ॥ ४ ॥

कहहिं परस्पर वचन सप्रीती ❋ सखि इन कोटिकाम छबि जीती ॥५॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं ❋ शोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं ॥६॥

परस्पर और प्रीतिसहित यह वचन कहती हैं सखि ! इन्होंने तो करोड़ों कामदेवकी छबि जीत ली है, परस्पर और प्रीतिसहित कहनेका भाव यह है कि सब ऐसे प्रेमसे भर गयी हैं कि कहनेके सिवाय यह ज्ञान नहीं रहा कि किससे कहती हैं और कौन सुनता है और यह कहती हैं कि इन्होंने करोड़ों कामदेवको जीत छबिको ले लिया है; वा यह है कि हे सखि ! इनकी छबिने करोड़ों कामोंको जीत लिया, किंतु वे यह नहीं कह सकतीं कि हमारी कामना को जीत लिया है, उन करोड़ों कामके बहानेसे अपनी कामनाको जताती हैं ॥ ५ ॥ देवता मनुष्य, राक्षस, नाग, मुनियोंमें ऐसी शोभा कहीं नहीं सुनी। सुनना यह है की युवा स्त्रियाँ घरकी बैठनेवाली थीं वे देखकर कैसी कह सकती थीं ? ॥ ६ ॥

विष्णु चारिभुज विधि मुखचारी ❋ विकट वेष मुख पंच पुरारी ॥७॥
अपर देव अस कोउ न आही ❋ इहि छबि सखि पटतरिये जाई ॥८॥

हे सखि ! विष्णुके चार भुजा, ब्रह्माके चार मुख और शिवके विकट पांच मुख हैं ये तो इनमें दोष ठहरे ॥७॥ हे सखि ! और देवता ऐसा कोई नहीं है जिसको इनकी छबिसे उपमा दें ॥८॥

दोहा–वय किशोर सुषमा सदन, श्याम गौर सुखधाम ॥
अंग अंग पर वारिये, कोटि कोटि शत काम ॥ २६८ ॥

किशोर अवस्था, सुषमा अर्थात् शोभाके घर साँवरे, गोरे, सुख निधान इनके अङ्ग-अङ्ग पर करोड़ों काम बलिहारी कीजिये ॥ २६८ ॥

कहहु सखी अस को तनुधारी ❋ जो न मोह यह रूप निहारी ॥१॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी ❋ जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥२॥

कहो तो सखी ! ऐसा कौन शरीरधारी है जो इस रूपको देखकर न मोह जाय ? इसके कहनेसे वे अपना मोह जतलाती हैं ॥ १ ॥ कोई प्रेमपूर्वक कोमल वाणी बोली–हे सयानी ! जो मैंने सुना है कि वह (कहती हूँ) सुनो ॥ २ ॥

ये दोउ नृप दशरथके ढोटा ❋ बाल मरालनके कल जोटा ॥३॥
मुनि कौशिक मखके रखवारे ❋ जिन रण अजिर निशाचर मारे ॥४॥

ये दोनों राजा दशरथजीके पुत्र हैं, मानो (कल) शोभायमान हंसोंका जोड़ा है ॥३॥ ये मुनि विश्वामित्रजीके यज्ञके रखवाले हैं इन्होंने रणाङ्गणमें राक्षसोंको मारा है ॥ ४ ॥

श्याम गात कलकञ्ज विलोचन ❋ जो मारीच सुभुज मदमोचन ॥५॥
कौशल्या-सुत सो सुखखानी ❋ नाम राम धनु सायक पानी ॥६॥

जिनका श्याम शरीर, सुन्दर कमलसे नेत्र हैं जो मारीच और सुबाहु दैत्यका मद चूर्ण करने वाले हैं॥५॥ये सुखकी खान, कौशल्याजीके पुत्र हैं इनका नाम राम है धनुष बाण हाथमें है ॥६॥

गौर किशोर वेष वर काछे ❋ कर शर चाप रामके पाछे ॥७॥
लक्ष्मण नाम राम लघु भ्राता ❋ सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥८॥

जिनका गोरा शरीर, किशोर अवस्था, सुन्दर वेष है और हाथमें धनुष बाण लिए रामके पीछे हैं ७ ॥ इनका लक्ष्मण, नाम और ये रामके छोटे भाई हैं हे सखि ! सुनो; इनकी सुमित्रा माता है ॥ ८ ॥

दोहा-विप्रकाज करि बन्धु दोउ, मग मुनिवधू उधारि ॥
आये देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि ॥ २६९ ॥

ब्राह्मण की यज्ञरक्षाका काज करके दोनों भाई मार्गमें मुनिकी स्त्री अहिल्याका उद्धार कर अब धनुषयज्ञ देखने आए हैं, यह सुनकर सब नारियाँ प्रसन्न हुई स्त्रियोंके हर्षित होनेका यह आशय है कि उन्होंने रघुनाथजीको स्त्रियोंका उपकार जाना, क्योंकि विप्र की जो ब्रह्मेष्टि थी उसका और मुनिकी पत्नीका उद्धार किया तथा अब धनुषयज्ञकी प्रतिज्ञामें उरझी हुई जो जानकीजी हैं उनके उद्धारके लिए आए हैं यह वाक्य एक स्त्री जो अयोध्याकी व्याही जनकपुरमें रहती थी उसने कहा था ॥ २६९ ॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई ❋ योग्य जानकी यह वर अहई ॥१॥
जौ सखि इनहिं देख नर नाहू ❋ प्रण परिहरि हठि करइ विवाहू ॥२॥

रामकी छबि देखकर कोई बोली कि, जानकीजीके योग्य तो यही वर है ॥ १ ॥ हे सखि ! जो इनको राजा देख लें तो प्रण छोड़ कर विवाह कर दें । नरनाहु कहनेका भाव यह कि राजा अपने अर्थके हेतु धर्मको नहीं मानते इस कारण प्रण छोड़ देंगे ॥ २ ॥

कोउ कह ए भूपति पहिचाने ❋ मुनि समेत सादर सनमाने ॥३॥
सखि परंतु प्रण राउ न तजई ❋ विधिवश हठि अविवेकहि भजई॥४॥

कोई बोली इनको राजा जानते हैं और मुनि समेत आदर सम्मान कर चुके हैं ॥ ३ ॥ हे सखि ! परंतु राजा अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे और होनहारके वश अज्ञानमें ही रहेंगे ॥ ४ ॥

कोउ कह जौ भल अहइ विधाता❋सब कहँ सुनिय उचित फलदाता ॥५॥
तौ जानकिहि मिलिहि वर एहू ❋ नाहिं न आलि इहाँ संदेहू ॥६॥

कोई बोली-जो विधाता भला है और सबको उचित फल देनेवाला सुना जाता है ॥ ५ ॥ तो जानकीजी को यही वर मिलेगा, हे सखि ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

जौ विधि वश अस बनै संयोगू ❋ तौ कृतकृत्य होंय सब लोगू ॥७॥
सखि हमरे अति आरति ताते ❋ कबहुँक ये आवैं इहि नाते ॥८॥

जो विधिवश ऐसा संयोग बन जाय तो सब लोग कृतकार्य हो जाएँ ॥७॥ हे सखि ! हम इस कारण अति व्याकुल हैं कि कभी यह नाता समझकर यहां आया करेंगे, और तो सब इनको अवध में जा कर देख सकते हैं किंतु हम घरकी रहनेवाली तभी देख सकती हैं जब कि यह इस नातेसे फिर यहां आवें ॥ ८ ॥

दोहा-नाहिंत हम कह सुनहु सखि, इनकर दर्शन दूरि ॥
यह संघट तब होय जब, पुण्य पुराकृत भूरि ॥ २७० ॥

नहीं तो सुनो सखि ! हमको इनका दर्शन दूर है और यह संघट-अर्थात् मिलना तो तभी हो जब कोई पूर्वके बड़े पुण्य हों ॥ २७० ॥

बोली अपर कहेउ सखि नीका * यह विवाह सम्मत सबहीका ॥१॥
कोउ कह शंकर चाप कठोरा * यह श्यामल मृदुगात किशोरा ॥२॥

और कोई बोल उठी, सखि ! अच्छी (और सच्ची) कही, इस विवाहमें सभीकी सम्मति है॥१॥ कोई बोली शिवजीका धनुष कठिन और यह कोमलशरीर किशोर अवस्था युक्त है कैसे होगा॥२॥

सब असमंजस अहै सयानी * यह सुनि अपर कहै मृदुबानी ॥३॥
सखि इन कहँ कोउ कोउ अस कहहीं * बड़ प्रभाव देखत लघु अहहीं ॥४॥

हे सखि ! सब दुविधाकी बात है क्योंकि जानकीजीके जयमाला पहिनानेमें पिताका प्रण रोकता है और पिताके देनेमें उनकी प्रतिज्ञा रोकती है तथा धनुषके तोड़नेमें इनकी कोमलता असमंजस है, टूटे या न टूटे ! यह सुन कोई दूसरी सखि कोमल वाणी बोली॥३॥हे सखि ! इनको कोई कोई कहते हैं कि इनका प्रभाव बड़ा है परन्तु देखनेमें छोटे हैं ॥ ४ ॥

परशि जासु पद पंकज धूरी * तरी अहिल्या कृत अघ भूरी ॥५॥
सो कि रहैं बिनु शिव धनु तोरे * यह प्रतीति परिहरिय न भोरे ॥६॥

जिनके चरणोंकी धूरि छूकर जो बड़े पापयुक्त अहिल्या थी वह तर गयी ॥ ५ ॥ वे क्या विना शिवजीका धनुष तोड़े रहेंगे ? ऐसी प्रतीति भोलेपनसे भी न छोड़नी ॥ ६ ॥

जेहि विरंचि रचि सीय सँवारी * तेइ श्यामल वर रचेउ विचारी॥७॥
तासु वचन सुनि सब हरषानी * ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी ॥८॥

जिस ब्रह्माने जानकीको सँवार कर बनाया है उसीने विचार कर यह साँवरा वर भी बनाया है ॥७॥ उसके वचन सुनकर सब प्रसन्न हुई और कोमल वाणीसे बोलीं कि ऐसा ही हो ॥ ८ ॥

दोहा-हिय हर्षहिं वर्षहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द ॥
जाहि जहाँ जहँ बन्धु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द ॥ २७१ ॥

हृदयमें प्रसन्न सुन्दर मुख और नेत्रों वाली स्त्रियां फूलोंकी वर्षा इस कारण करती हैं कि श्रीरघुनाथके चरण अति कोमल हैं; कठोर पृथ्वीको न सहेंगे ! दूसरा अर्थ यह है कि, फूलोंकी वर्षा मंगलकारी होती है, इनको फल दायक हो। तीसरा यह है कि रघुनाथजी किसीकी ओर दृष्टि नहीं करते हैं सो फूलोंके गिरनेसे ऊपरको दृष्टि करेंगे और हम उनके कटाक्षको देखेंगी। चौथा यह कि वे अपने सुन्दर मनको जो रघुनाथजीकी ओर लगाये हैं वर्षा रही हैं कि फूल भी उनके कोमल वदनको कठोर लगेंगे। हमारा मन हमारे आधीन है, हम उसको बहुत

कोमल करके बिछाती हैं इस कारण कि उसपर इनका पद पड़े और सुमुखि इस कारण कहाकि अपने मुखसे रघुनाथजीकी प्रशंसा करती हैं सुलोचनि इस कारण कहा कि रामचन्द्र को नखसे शिखतक देख रही हैं, अतएव जहां-जहां दोनों भाई जाते हैं वहां-वहां ऐसा ही परमानन्द होता है । दूसरा अर्थ यह है कि-दोनों भाई अपनेको परमानन्द जानते हैं, परंतु यहां जानकीजीके प्रभावसे जहां-जहां जाते हैं वहां गली गलीमें परमानंदरूप भरा है तीसरा अर्थ-परमहंस परमानंद जो योगी जनककी पुरीमें बसता था वह रघुनाथजीके शृङ्गारानंदसे पराजित हो जहां-जहां वे जाते हैं पीछे-पीछे फिरता है और स्त्रियोंकी विचित्र दशा थी ॥ २७१ ॥

पुनि पूरब दिशि गये दोउ भाई ❋ जहँ धनुमख हित भूमि बनाई ॥१॥
अति विस्तार चारु गच ढारी ❋ विमल वेदिका रुचिर सँवारी ॥२॥

नगरके पूर्वकी ओर दोनों भाई गये, जहां धनुष यज्ञके लिए भूमि बनायी गयी थी ॥१॥ बड़ी विस्तारवाली हरित मणियोंसे जड़ी हुई और विमल अर्थात् चांदीकी गचढार वेदिका प्रकाशमान संवारी गयी है ॥ २ ॥

चहुँ दिशि कंचन मंच विशाला ❋ रचे जहां बैठहिं महिपाला ॥३॥
तेहि पीछे समीप चहुँ पासा ❋ अपर मंच मंडली विलासा ॥४॥

राजाओंके बैठनेके लिए चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मञ्च बने हुए हैं ॥ ३ ॥ उनके पीछे निकट ही चारों ओर अन्य छोटे-छोटे मञ्चानोंकी मंडली शोभित है ॥ ४ ॥

कछुक ऊँच सब भाँति सुहाई ❋ बैठहिं नगर लोग जहँ जाई ॥५॥
तिनके निकट विशाल सुहाये ❋ धवल धाम बहु बरण बनाये ॥६॥

कछुक ऊँचा सब प्रकार शोभायमान जहां जाकर नगर निवासी बैठें ॥ ५ ॥ उन्हींके समीप बड़े और शोभायमान अनेक रंगके ऊँचे घर हैं ॥ ६ ॥

जहँ बैठे देखहिं नर नारी ❋ यथायोग्य निजकुल अनुहारी ॥७॥
पुर बालक कहि कहि मृदु वचना ❋ सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना ॥८॥

जहां यथायोग्य पुरकी नर नारियाँ अपने कुलानुसार बैठकर देखें ॥ ७ ॥ नगरके बालक कोमल वचन कह-कर आदरसे श्रीरामचन्द्रजीको रचना दिखाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सब शिशु ईहि मिस प्रेमवश, परसि मनोहर गात ॥
तनु पुलकहि अति हर्ष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात ॥ २७२ ॥

सब बालक प्रेमसे इसी बहाने मनोहर शरीरको स्पर्श कर शरीरसे पुलकित और मनमें परम प्रसन्नतासे दोनों भ्राताओंको देखकर सुख पाते हैं ॥ २७२ ॥

सब शिशु राम प्रेमवश जाने ❋ प्रीति समेत निकेत बखाने ॥१॥
निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई ❋ सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥२॥

सब बालकोंने रामचन्द्रजीको प्रेमवश जानकर प्रीतिसे (अपने-अपने) घर बतलाये ॥ १ ॥ अपनी रुचिसे सब बुला लेते हैं और प्रीति सहित दोनों भाई जाते हैं ॥ २ ॥

दोहा – अनव्याही संशय करें, व्याही लेहि उसांस । गौनेकी मौने रहीं, देखि राम मृदु हास ।। फिरकी सी थिरकी फिरें खिरकिन प्रति नव नारि ।। सिरिकिन तजि रघुनाथ छवि, निरखें पलक बिसारि ।।

राम दिखावहिं अनुजहि रचना * कहि मृदु मधुर मनोहर वचना ॥३॥
लव निमेष महँ भुवन निकाया * रचइ जासु अनुशासन माया ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको रचना दिखाते और कोमल मधुर मनोहर वचन कहते हैं (यहां तक मनुष्य भाव वर्णन करके ईश्वरता दिखाते हैं) ॥ ३ ॥ हे पार्वती ! एक लव या निमेषके पूरे होने तक भुवनोंका समूह जिसकी आज्ञासे माया रच देती है ॥ ४ ॥

भक्त हेतु सोइ दीनदयाला * चितवत चकित धनुषमखशाला ॥५॥
कौतुक देखि चले गुरुपाहीं * जानि विलम्ब त्रास मनमाहीं ॥६॥

वे ही दीनोंके ऊपर दयालु भक्तोंके हेतु धनुषयज्ञकी रंगभूमिको चकित होकर देखते हैं ॥ ५ ॥ यह कौतुक देख, देर हुई जानकर मनमें डरते हुए गुरुके निकट चले ॥ ६ ॥

जासु त्रास डर-कहँ डर होई * भजन प्रभाव दिखावत सोई ॥७॥
कहि बातैं मृदु मधुर सुहाई * किये बिदा बालक बरिआँई ॥८॥

कहो ! जिसके डरसे डरको भी डर लगे वह भक्तोंसे डरे, यह भजनका प्रभाव दिखाया है ॥ ७ ॥ तब रघुनाथजीने कोमल मीठी सुन्दर बातें कहकर बालकोंको हठसे विदा किया (उनकी इच्छा तो संग ही जानेकी थी) ॥ ८ ॥

दोहा-सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ ॥
गुरुपद-पंकज नाय शिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २७३ ॥

भय-नगरमें देर लग जानेका, प्रेम-बालकोंका और विनीत अर्थात् नम्रता अपने अंगोंकी सकुच यह कि मुनिका संग छोड़कर नगर देखने गये, दोनों भाई गुरुके चरण कमलमें शिर नवाया आज्ञा पाकर बैठ गये ॥ २७३ ॥

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा * सबही सन्ध्या वन्दन कीन्हा ॥१॥
कहत कथा इतिहास पुरानी * रुचिर रजनि युग याम सिरानी ॥२॥

जब रात्रि होनेको आई तब मुनिने आज्ञा दी और सबने सन्ध्या बंदन किया ॥१॥ पुराण और इतिहासकी कथा कहते हुए सुन्दर दो प्रहर रात्रि बीत गई । दूसरा अर्थ यह है कि जो इतिहास मुनिने कहा वह शांतरस युक्त था और अब रघुनाथजीके चित्तमें मिथिलापुरका शृंगार रस भर गया है, इससे वह कथा पुरानी लगी, सुन्दर रात्रि इसलिए कहा कि मिथिलापुरीमें पहुँचने की पहली रात्रि थी। अथवा नगरके बालकोंसे सुन आये थे कि राजपुत्री प्रातःकाल गौरी पूजनको जाती है, सो उसको देखनेकी अभिलाषामें शेष दो प्रहर रात्रि कठिन हो जायगी उसकी अपेक्षामें कहते हैं कि यह दो प्रहर रात्री कथाके सुननेमें सुन्दर बीती ॥ २ ॥

मुनिवर शयन कीन्ह तब जाई * लगे चरन चापन दोउ भाई ॥३॥
जिनके चरण सरोरुह लागी * करत विविध जप योग विरागी ॥४॥

तब विश्वामित्रजीने जाकर शयन किया और दोनों भाई चरण दबाने लगे। (चरण सेवा करनेका कारण यह है कि, मुनिका साथ छोड़ नगरमें जाकर विलम्ब करने और कथामें चित्त न देनेका अपराध क्षमा करनेके हेतु चरण सेवा करने लगे) ॥ ३ ॥ जिनके चरण-कमलकी सेवा करनेको योगी वैरागी अनेक प्रकारके योग करते हैं ॥ ४ ॥

ते दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते * गुरुपद कमल पलोटत प्रीते ॥५॥
बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही * रघुवर जाय शयन तब कीन्ही ॥६॥

वे दोनों भाई मानो प्रेमको जीत लिये हैं, गुरुके चरण कमल प्रेमसे दबाते हैं ॥ ५ ॥ जब, बार-बार मुनिने आज्ञा दी तब श्रीरामचन्द्रजी जाकर शयन किया (तीन स्थानोंमें एक बार कहनेसे गुरुकी आज्ञा मानना उचित नहीं है, एक सेवा; दूसरे दान और तीसरे भोजन समय इससे मुनि बारंबार आज्ञा देते हैं) ॥ ६ ॥

चापत चरण लषण उर लाये * सभय सप्रेम परमसुख पाये ॥७॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता * पौढे धरि उर पद जल जाता ॥८॥

फिर लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके चरण दबाने लगे तो श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे लगा भय नींदके उचट जानेका और कोमल पदको कड़े हाथसे कसक पहुँचानेका तथा प्रेम चरण अब सेवनेका, लक्ष्मणजीका जान परम सुख पाया ॥ ७ ॥ बारंबार श्रीरामचन्द्रजीने कहा-भाई अब सो रहो, तब चरणकमल हृदयमें धारण कर पौढ़े (लेट रहे) सोये नहीं ॥ ८ ॥

दोहा--उठे लषण निशि विगत सुनि, अरुण शिखा धुनि कान ॥
गुरुते पहले जगतपति, जागे राम सुजान ॥ २७४ ॥

जैसे स्वामी–सेवकके सोनेकी रीति लिखी है वैसे ही उठनेमें भी कहते हैं कि लक्ष्मणजी जो सबसे पीछे पौढ़े थे वे अरुण शिखा अर्थात् मुर्गेका शब्द सुनते ही उठे और जगत्पति श्रीरामचन्द्रजी गुरुसे पहले जगे ॥ २७४ ॥

सकल शौच करि जाय नहाये * नित्य निबाहि मुनिहिं शिर नाये ॥१॥
समय जानि गुरु आयसु पाई * लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥२॥

सब शौचसे निवृत्त होकर स्नान किया और नित्य क्रियासे निश्चिन्त हो मुनिको शिर नवाया ॥ १ ॥ पूजा हेतु फूल लानेका समय जान और गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेनेके लिए चले ॥ २ ॥

भूप-बाग वर देखेउ जाई * जहँ वसंत ऋतु रही लुभाई ॥३॥
लागे विटप मनोहर नाना * बरण बरण बर बेलि विताना ॥४॥

राजाके सब बागोंमें जो वर अर्थात् श्रेष्ठ बाग था उसको देखा। अथवा श्रेष्ठ बागों अर्थात् देवताओंके बागोंका भूप जो बाग है वा श्रेष्ठ भूप जो राजा जनक, उनका बाग देखा (जनक जीको 'वर भूप इस कारण कहा कि उनको पृथ्वीने अपना सत्य पति जानकर कन्या दी और वसंतऋतु उस बागमें लुभायी अर्थात् मान रहित पड़ी है ॥ ३ ॥ एक एक वृक्ष जिस बागका मनोहर और नाना प्रकारके हों तो वसंत क्यों न लुभाय ? और जिस वृक्षपर जिस रंगकी हरी बेल शोभित होती है उसपर वह छा रही है, श्यामपर लाल, श्वेत पीलेपर हरी। यहां शृङ्गार रसकी अधिकता शांत रसके भीतर कही है शृङ्गारके समय नायिका नायक पर प्रबल रहती है वैसे ही बेलीरूपी नायिकाने विटपरूपी नायकको लपेट लिया है ॥ ४ ॥

नव पल्लव फल सुमन सुहाये * निज संपति सुररूख लजाये ॥५॥
चातक कोकिल कीर चकोरा * कूजत विहँग नचत कल मोरा ॥६॥

नये पत्र-फल-फूलसे वृक्ष शोभित हैं वा पत्ते और फूल फलके भारसे झुककर सुहावने हो गये हैं निज सम्पत्तिके अर्थात् फूल फलसे सुररूख (कल्पवृक्षादि) को लज्जित करते हैं । वे राम जानकी, जो जीवनकी निज अर्थात् मुख्य संपत्ति हैं, सो उनके विहारसे ऐसे शोभायमान हैं कि सुरपुरके वृक्ष लजाकर रूखे पड़ गये हैं॥५॥ यद्यपि उस बागमें अनेक भांतिके पक्षी हैं परन्तु यहां पांच पक्षी शृङ्गारके उद्दीपक हैं, इस कारण पपीहा, कोकिला, तोता, चकोर, मोर इनका नाम लिखा । दूसरे यह कि पांचों तीन ऋतुके भोगी हैं-वसंत' वर्षा शरद सो अपनी अपनी ऋतुके क्रमसे सदा उसमें बसे रहते हैं । आशय यह है कि, इस बागमें तीन ऋतु रहती हैं । बसंत ऋतु जो उसमें सदैव रही है इससे उसके भोगी कीर, कोकिल, उसमें सदा रहते हैं ! वर्षाऋतुका उसमें सदैव रहना इस प्रकारसे है कि जो वृक्षके कुछ पुराने काले-काले पत्ते काली घटाके समान हैं, श्वेत फूलोंकी पंक्ति बक समान है, पीले फूलोंकी पंक्तियों का लहराना बिजली है; लाल पीले हरे फूलोंकी पंक्तिका मेल इन्द्रधनुषके समान है, पवनका कुञ्जोंमें प्रवेश करना बादलकी गर्जन है और फूलोंकी रसना सदैव टपकते रहना वर्षा है, जिसके कारण मोर सदैव नृत्य करते हैं; शरद भोगी बागमें चातक चकोर शरद ऋतुको सदैव इस रीतिसे भोगते हैं; कि श्यामलों कि सघनता को अमल आकाश और अनेक रंगके फूलोंको नखत तथा जानकीजीके गौर वदनको शरद पूर्ण चन्द्रमा मानते हैं ॥ ६ ॥

मध्यबाग सर सोह सुहावा ❋ मणि सोपान विचित्र बनावा ॥७॥
विमल सलिल सरसिज बहुरंगा ❋ जल खग कूजत गुञ्जत भृङ्गा ॥८॥

'सोह' और 'सुहावा' एक अर्थके दो शब्द लिखना पुनिरुक्ति दोष है, परंतु यहां दोनों शब्द दो स्थानमें होकर अन्योन्यालंकार अर्थ करते हैं, सोह सरसे सुहावा बागसे लगता है अर्थात् बागको शोभित करनेवाला सर मध्य बागमें सोहता है और उसमें रंग-रंगके मणियोंकी विचित्र बनी हुई सीढ़ियां हैं वा मध्य बागमें सुहावना तालाब शोभित हो रहा है॥७॥ विमल जलमें बहुरंगके कमल खिले हैं, और जलके पक्षी कूज रहे हैं, और भृंग गूँज रहे हैं; बहुरंगका शब्द सबसे लगता है, कमल और पक्षियोंके बोलका बहुरङ्ग होना प्रत्यक्ष है; रंग और बहुरंग इससे हुए की जिस रंगके कमलपर बैठे उसकी रजसे उसी रंगके हो गये ॥ ८ ॥

दोहा—बाग तड़ाग विलोकि प्रभु, हर्षे बन्धु समेत ॥
परमरम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत ॥ २७५ ॥

बाग और तालाबको देख, दूसरे यह कि बागमें तालाबको देखा तो भाईके सहित प्रसन्न हुए । यह आराम अर्थात् बाग जो रामजीको सुख देता है सो परम रम्य है; क्योंकि रामजी जगत्के रमनेवाले हैं और जब बाग रामजीको सुख देनेवाला ठहरा तो परम रम्य हुआ । दूसरा अर्थ यह है कि परम रम्य जो वस्तु है उसको यह बाग आराम देनेवाला अर्थात् वह वस्तु इसमें विश्राम करती है और 'देत' शब्द तीनों कालका बोधक है, उसका लक्ष्य यह है कि ' बाग तड़ाग विलोकि' आदि यह भूतकाल हुआ और 'लगे लेन दल फूल' यह वर्तमान हुआ और 'तेहि अवसर सीता तहँ आई' यह भविष्यकाल होता है ॥ २७५ ॥

चहुँ दिशि चितै पूछि मालीगन ❋ लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥१॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई ❋ गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥२॥

चारों ओर देख मालियोंसे पूछकर प्रसन्न मनहो फूल तोड़ने लगे। 'मुदितमन' कहनेसे यह जाना जाता है कि उससे पहले विमन हो गये थे सो इससे प्रगट है कि रघुनाथजीने चारों ओर देखा कि राजपुत्री आती हुई दृष्टि पड़े, जब न देखा तो मालीसे पूछा, उन्होंने कहा यह समय सीताके आनेका है, यह सुन मुदित मन हुए और फूल लेने लगे ॥ १ ॥ उसी समय जानकीजी वहां आयीं, पार्वतीजीके पूजन करनेको माताने भेजा था, अतः माताकी आज्ञासे देव पूजनको जानकीजीका आना लोक विरुद्ध नहीं है ॥ २ ॥

सङ्ग सखी सब सुभग सयानी ❋ गावहिं गीत मनोहर बानी ॥३॥
सर समीप गिरजा-गृह सोहा ❋ बरणि न जाय देखि मन मोहा ॥४॥

संगमें सखी सब सुन्दर और चतुर हैं मनोहर वाणीसे गीत-गाती हैं, सुभगता यह है कि रूप भूषण समानतासे मनोहर, जिसकी सहजवाणी है गीत गाती हैं इससे अधिक मनोहरता सूचित हुई। अथवा ऐसे गीत गाती हैं कि वाणी जो सरस्वती हैं उनके मनको हरे, साक्षात् वाणी मनोहर गीत गा रही हैं ॥ ३ ॥ (सर) तालाबके समीप पार्वतीका मन्दिर शोभित है जिसका वर्णन नहीं हो सकता, देखते मनमोहित हो जाता है (यह वह सर नहीं है जिसके निकट श्रीरामचन्द्रजी हैं, क्योंकि वहां मंदिरका होना वर्णन नहीं किया। यह यदि वह सर होता तो जानकीजी सखियों सहित उसमें मज्जन कैसे करतीं) और आगे लिखा है-"गई रही देखन फुलवाई" एक सखीने जाकर देखा और "चली अग्रकरि प्रियसखि सोई"(गिरजा इस कारण कहा कि यहां आप कुमारी हैं और नाम भी कुमारी कन्याका है; जब आगे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रख फूलवाटिकामें जायँगी तब भवानी कहेंगी पतियुक्त ॥ ४ ॥

मज्जन करि सर सखिन समेता ❋ गई मुदित मन गौरि निकेता ॥५॥
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा ❋ निज अनुरूप सुभग वर मांगा ॥६॥

सरोवरमें सखियों सहित स्नान कर प्रसन्न हो पार्वतीके मंदिरमें गयीं ॥ ५ ॥ बड़े प्रेमसे पूजाकर अपने अनुरूप सुन्दर वरदान मांगा (वरसे पतिका अर्थ करना मर्यादारहित है विशेष पूजा और प्रेमका कारण यह है कि, धनुष टूटनेका जो एक वर्षका प्रण किया था उसमें एकही दिन रह गया; इस कारण जानकीजीको व्याकुलता प्राप्त हुई) ॥ ६ ॥

एक सखी सिय संग विहाई ❋ गई रही देखन फुलवाई ॥७॥
तेइँ दोउ बन्धु विलोकेउ जाई ❋ प्रेम विवश सीता पहँ आई ॥८॥

एक सखी अर्थात् सबसे प्रधान, उसका जाना भूलसे वा अपने मनसे नहीं पाया जाता क्योंकि पहले कहा है कि सब सखी सुभग सयानी हैं सो भूलना और मनसे चली जाना सयानीका नाम नहीं इससे विदित होता है कि राजपुत्रीने सदासे उसे आज्ञा दी थी कि जाकर देख कोई पुरुष वाटिकामें न रहे। वा यह कि राजकुमारोंका फूलवाटिकामें आना सुन रखा था सो उनको देखनेको भेजा ॥ ७ ॥ उसने जाकर दोनों भाइयोंको देखा और प्रेमवश हो सीताजीके निकट आयी (बंधु कहनेका भाव यह कि दोनों भाई परस्पर प्रीतिसे बँधे हुए हैं अथवा उन्होंने उस सखीका बोल बन्द कर दिया और सीताके निकट आयी। आयीका भाव यह है कि जब राजपुत्रोंको देखा और सीताका मनोरथ पाके यह समाचार सुननेको आयी अथवा उन राजपुत्रोंके शृङ्गार को देखकर ऐसी प्रेमवश हो गयी कि बोल बन्द हो गया; सो यह बात जानकीजीसे कहने चली आयी) ॥ ८ ॥

दोहा—तासु दशा देखी सखिन, पुलक गात जल नैन ॥
कहु कारण निज हर्षकर, पूछहिं सब मृदु बैन ॥ २७६ ॥

सखियोंने उसकी यह दशा देखी कि शरीर पुलकित और नेत्रोंमें जल है तब सब कोमल वचनसे पूछने लगीं—सखि अपने प्रसन्न होनेका कारण कहो ? मृदु बैनसे पूछनेका कारण यह कि सीता जी इसे देखकर व्याकुल न हों। अथवा सीताजी मंदिरमें ध्यान किये बैठी हैं सो उनके ध्यानमें विक्षेप न हो। तीसरे यह कि—सखी की दशा देख आप भी पुलकगात और नयन जलभरे हो गयीं, इससे बोल मृदु हो गया ॥ २७६ ॥

देखन बाग कुंवर दोउ आये * वय किशोर सब भाँति सुहाये ॥१॥
श्याम गौर किमि कहउँ बखानी * गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥२॥

वह बोली—बाग देखनेको राजकुमार आये हैं, जिनकी किशोर अवस्था है, सब प्रकार अच्छी शोभा है। राजपुत्र फूल तोड़नेमें लगे थे उस समय देखा परंतु सीताजीसे चतुराई सहित यह नहीं कहती कि फूल तोड़ने आये; क्योंकि उससे राजकुमारतामें अन्तर पड़ता, इस कारण बाग देखने आना कहती हैं जिससे राजपुत्र होना प्रकट हो और फिर अवस्था शोभा वर्णन कर सम्पूर्ण सामुद्रिक राज लक्षणोंसे भरे हुए कथन करती हैं ॥१॥ उनके श्याम और गोरे रंगका बखान कैसे हो, क्योंकि वाणी विना नयन और नयन विना वाणीके हैं जिसे कहनेकी सामर्थ्य है उसे देखनेकी नहीं और जिन्हें देखनेकी है उन्हें कहनेकी नहीं। भाव यह है कि नेत्रोंसे देखने ही योग्य हैं ॥ २ ॥

सुनि हरषीं सब सखी सयानी *सिय हिय अति उत्कण्ठा जानी॥३॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली * सुने जे मुनिसंग आये काली॥४॥

सुनके सब सखी प्रसन्न हुईं और जानकीजीके मनमें बहुत उत्कण्ठा जानी, सब सखियों को जितनी इच्छा उनके देखने की थी जानकीजीको उससे अधिक थी, कारण अति उत्कण्ठा कहा ॥३॥ एक कहने लगी—सखि ! वे ही राजपुत्र हैं जो सुना है कि कल मुनिके संग आये हैं। 'आये मुनिसँग' कहनेका भाव यह है कि मुनि सरीखे उनके शृंगार वेष किये संग २ फिरते हैं। अथवा यह कि मुनि संग आये शांतरस भरे मर्यादा सहित हैं ॥ ४ ॥

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी * कीन्हे स्ववश नगर नर नारी ॥५॥
वर्णत छबि जहँ तहँ सब लोगू * अवशि देखिये देखन योगू ॥६॥

जिन्होंने अपने रूपकी ऐसी मोहनी डारी है कि मूर्खोंको नहीं बरन नगरके चतुर नरनारियोंको वशमें कर लिया है। दूसरा अर्थ मोहनीरूपको उन्होंने डार दिया है उसीने उसको स्ववश कर लिया और उनको प्रसन्न कर अंगमें रखा हो उसको क्या कहना ? ॥ ५ ॥ सब लोग अर्थात् जिनको उचित है और जिनको उचित नहीं है अर्थात् पतिव्रता स्त्रियोंको कि वह भी अपनी मर्यादा छोड़ उनकी छबिका वर्णन कर रही हैं सो ऐसे राजपुत्र देखने ही योग्य हैं॥६॥

तासु वचन अति सियहि सुहाने * दरश लागि लोचन अकुलाने ॥७॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई * प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥८॥

उनके वचन जानकीजीको पहली सखीसे भी अधिक प्रिय लगे और मर्यादाकी जो बड़ी सखी हैं जब उन्होंने मार्ग कर दिया तो दर्शनको नेत्र अकुलाने लगे ॥ ७ ॥ जो सखी पहले राजपुत्रोंको देखकर आयी थी उसी प्रिय सखीको आगे करके चली, जो अनादि प्रीति है उसे किसीने नहीं जाना और जानकीजीके मनमें यह संकोच हुआ कि, जिस प्रीतिसे तनु भर गया है, उसे कोई न लखे तीसरा अर्थ यह है कि जो सखी आगे चली सोई पुरातन प्रीति है, परंतु उसे कोई लख नहीं सकता ॥ ८ ॥

दोहा–सुमिर सीय नारद–वचन, उपजी प्रीति पुनीत ॥
चकित विलोकत सकल दिशि, जनु शिशु मृगी सभीत ॥ २७७ ॥

नारदजीका वचन स्मरण कर जानकीजीके मनमें पवित्र प्रीति उपजी नारदजी यह कह गये थे कि तुम्हारा रघुनाथसे फूलवाटिकामें प्रथम दृष्टि मिलाप होगा, फिर ब्याह होगा सो बीज तो प्रीतिका नारदजी ही बो गये थे अब जानकीजीको निश्चय हुआ कि यही हमारे पति होंगे इससे प्रीति करना पुनीत हुआ, इस प्रीतिको सखियोंसे छिपानेके हेतु चकित हो चारों दिशाओंमें उनकी दृष्टिकी ओर ऐसी देखती हैं जैसे बचपनमें हरिनी चारों ओर भयसे देखती है। अथवा सखियोंके मुखसे राजपुत्रोंका आना सुन चकित हो चारों ओर देखती हैं। "शिशु मृगी सभीत" का भाव यह है कि जैसे शिशु मृगीको फांसनेवालोंका भय है ऐसा उनको सखियोंके लखनेका भय है ॥ २७७ ॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि * कहत लखनसन राम हृदयगुनि ॥ १ ॥
मानहुँ मदन दुन्दुभी दीन्हीं * मनसा विश्व विजय कहँ कीन्हीं ॥ २ ॥

कंकन, किंकिणी आदि नूपुरोंकी ध्वनि सुनकर हृदयमें विचार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ मानों कामदेवका नगाड़ा बजा और उसने संसार जीतनेकी इच्छा की ॥ २ ॥

असकहि फिरि चितये तेहि ओरा * सियमुख शशि भये नयन चकोरा ॥ ३ ॥
भये विलोचन चारु अचञ्चल * मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल ॥ ४ ॥

ऐसे कहते हुए जिधरसे शब्द हुआ उस ओर देखने लगे और सीताजीके मुखचंद्रपर चकोरकी नाईं नयन लग गये ॥ ३ ॥ सुन्दर नेत्र जो जानकीजीके ढूँढ़नेमें चञ्चल थे अपने स्थान को पाकर अचञ्चल हो गये, मानो निमि महाराज जनकके पुरुषा जिनका वास पलक पर है (वर मांगनेसे) उन्होंने अपने सन्तानोंका शृंगार स्थल देख सकुचकर पलकको छोड़ दिया जिसमें पलक गिरनेसे रह गये ॥ ४ ॥

देखि सीय शोभा सुख पावा * हृदय सराहत वचन न आवा ॥ ५ ॥
जनु विरंचि सब निज निपुणाई * बिरचि विश्वकहँ प्रगट दिखाई ॥ ६ ॥

---

१. राजा निमिने यज्ञ करनेकी इच्छासे वसिष्ठजीको बुलाया; परंतु वे वहाँ न जाकर इन्द्रके यहाँ यज्ञ कराने चले गये इस कारण निमिने, और पुरोहित द्वारा यज्ञ किया जब वसिष्ठ लौटे तब राजाने उनके आनेपर भी भेंट नहीं की और कहा तुम मेरा यज्ञ छोड़ दूसरेके यज्ञमें कैसे गये ? इसी कहा सुनीमें दोनोंने परस्पर शाप दिया कि शरीर न रहे, इसपर वसिष्ठजीने शरीर छोड़ पुनः दूसरा शरीर धारण किया; निमिराजके पुरोहितने भी पुनः जीवित करनेका यत्न किया तब निमिने योग मार्गमें स्थिर हो पुनः शरीर धारण करने में अनिच्छा प्रकट की और कहा कि मैं मनुष्योंकी पलकोंपर रहूं यह वर मिले, ऋषियोंने 'तथाऽस्तु' कहा तब वे पलकों पर रहने लगे।

रघुनाथजीने सीताजीकी शोभा देखकर सुख पाया, हृदयमें सराहने लगे मुखसे बोल नहीं निकला। आशय यह है कि, जिस सुखको ढूँढ़ते थे उसको पाया वह कैसा सुख है-जिसको हृदयमें सराहता है किंतु मुँहसे कुछ नहीं निकलता ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीने अपनी सब निपुणता विश्वको जो पहले नहीं दिखायी थी वह विशेष रचकर प्रगट दिखायी शंका–आगे कह चुके हैं कि–"विधिहि भयो आश्चर्य बिसेखी। जिन करनी कछु कतहुँ न देखी" जब ब्रह्माजीने सब मिथिलापुरीकी प्रजाके घरोंमें भी अपनी कर्तव्यता न देखी तो जानकीजीका बनाना कैसे सम्भव होता है? तो उसका यह अर्थ है कि मानो वह जानकीजी जो अपनी निपुणतासे सब विरंचोंको रचती हैं वह विश्वको प्रगट दिखायी दीं ॥ ६ ॥

सुन्दरता–कहँ सुन्दर करई ❋ छविगृह दीपशिखा जनु बरई ॥७॥
सब उपमा कहि रहे जुठारी ❋ केहि पटतरउ विदेहकुमारी ॥८॥

विरंचिकी की हुई जो सुन्दरता है उसकी भी सुन्दरता करनेवाली है; जैसे अनेक छबियुक्त सुन्दर घरको दीपशिखा शोभित कर देती है, अर्थात् विरंचि-रचित सुन्दरतामें अंधेरी पड़ी थी उसको उन्होंने अपने रूपसे प्रकाश कर शोभित कर दिया ॥७॥ जो उपमा कवियों करके देही (प्राकृत) कुमारियोंसे लगाकर जूठी हो गई है उसको विदेह कुमारीमें कैसे लगाऊँ? ॥ ८ ॥

दोहा–सिय शोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दशा विचारि ॥
बोले शुचिमन अनुजसन, वचन समय अनुहारि ॥ २७८ ॥

सीताकी शोभा श्रीरामचन्द्रजी मनमें वर्णन कर और फिर अपनी दशा विचार कर पवित्र मन द्वारा लक्ष्मणजीसे समय अनुसार वचन बोले। (शुचिमन कहनेका भाव है कि जो वार्ता लक्ष्मणजीसे कहने योग्य न थी वह भी कही) ॥ २७८ ॥

तात जनक–तनया! यह सोई ❋ धनुष यज्ञ जेहि कारण होई ॥१॥
पूजन गौरि सखी लै आई ❋ करत प्रकाश फिरति फुलवाई ॥२॥

हे लक्ष्मणजी! यह वही जानकी है (जो तात अर्थात् पिताके प्रणोंको उत्पन्न करनेवाली है) जिसके कारण धनुष यज्ञ हो रहा है ॥ १ ॥ सखियें इसको गौरीका पूजन करनेके लिये ले आयी हैं और यह अपना प्रकाश करती हुई फुलबगियामें फिर रही है ॥ २ ॥

जासु विलोकि अलौकिक शोभा ❋ सहज पुनीत मोर मन क्षोभा ॥३॥
सो सब कारण जान विधाता ❋ फरकहिं सुभग अंग सुन भ्राता ॥४॥

जिसकी अलौकिक अर्थात् जिन शोभाओंको ब्रह्माजीने बनाया उनसे बाहर ऐसी शोभा देखकर स्वाभाविक पवित्र जो मेरा मन है वह क्षोभको प्राप्त (चलायमान) हो गया ॥ ३ ॥ सब कारण तो विधाता ही जाने, पर सुनो भाई! ऐश्वर्य देनेवाले अंग फड़कते हैं ॥ ४ ॥

रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ ❋ मन कुंपथ पग धरै न काऊ ॥५॥
मोहि अतिशय प्रतीति मनकेरी ❋ जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ॥६॥

रघुवंसियोंका यह सहज स्वभाव होता है कि मनसे भी कदापि कुपंथमें पग नहीं रखते॥५॥ फिर मुझको तो जीका अत्यन्त विश्वास है जिसने स्वप्नमें भी परायी नारी नहीं देखी; (फिर क्या कारण जो चित्तमें क्षोभ हुआ? और अंग फड़कनेसे मनोरथ सिद्धि सूचित होती है) ॥ ६ ॥

जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी ❋ नहिं लावहिं परतिय मन दीठी ॥७॥
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं ❋ ते नरवर थोरे जगमाहीं ॥८॥

जिसके शत्रु युद्धमें जिनकी पीठ नहीं पाते और जो परायी स्त्रीकी ओर मन तथा दृष्टि कभी नहीं देते ॥७॥ मँगता (याचक) जिनके यहां 'नहीं' शब्द नहीं पाते वे श्रेष्ठ मनुष्य जगत् में थोड़े हैं इधर चौपाइयोंसे लक्ष्मणजीकी प्रशंसा की है ये तीनों गुण उनमें हैं क्योंकि काम शत्रुने लक्ष्मणजीका चित्त चलायमान न किया। परनारी-सीताजीकी सखी आदिको भी न देखा और जो विश्वामित्रादि तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाके मांगने वाले हैं उनको पूर्ण करनेमें नाहीं नहीं की ॥ ८ ॥

दोहा–करत बतकही अनुजसन, मन सिय रूप लुभान ॥
मुख सरोज मकरंदछबि, करइ मधुप इव पान ॥ २७९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बात करते हैं किन्तु मन सीताके रूपमें लुभा रहा है, इसको दृष्टांतसे पुष्ट करते हैं कि सीताके मुखवर्णनमें मुखकी उपमा कमलसे देते हैं, और छबिको मकरंद कहते हैं जैसे कमलोंमें मकरंद रहता है ऐसे ही मुखमें छबि है, जैसे भौंरा मकरंद पान करता है ऐसे रघुनाथजीका मन उस छबिमें लुभा रहा है और भौंरा जब कमलपर बैठा है तो मकरंद पान करते समय शब्द नहीं करता फिर कुछ समय उपरांत उसीके पास गूँजता फिरता है, ऐसेही श्रीरामचन्द्रजी एकबार लक्ष्मणजीसे बात करते हैं और एकबार सीताके मुखकी छबि निहारते हैं। (शंका) श्रीरामचन्द्रजी एकटक क्यों नहीं निहारते ? (उत्तर) भँवरा जो फूल पर बैठा तो फूलको उससे खेद होता है, इसी कारण श्रीरघुनाथजी अपनी दृष्टि पड़नेसे मुखसरोजकी छबिको खेदित होना जान लक्ष्मणजीसे बातें करने लगते हैं ॥ २७९ ॥

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता ❋ कहँ गये नृप किशोर मनचीता ॥१॥
जहँ विलोकि मृगशावक नैनी ❋ जनु तहँ वरष कमलसित श्रेनी ॥२॥

जहां सीताजीका प्रसंग छोड़ा था वहांसे फिर कहते-हैं सीता चकित हो चारों ओर देख कहने लगीं कि राजपुत्र कहां गये ? और उनमें चिंता हुई। नृप किशोर कहनेसे उनकी स्वाधीनता जनाती हैं दो भांतिसे एक नृप दूसरे किशोर अवस्था, जिसमें मन चंचल हुआ करता है चीता शब्द चिंताका अपभ्रंश है वह चिंता तीन प्रकारकी है-प्रथम यह है कि, चले गये, दूसरी यह कि मनकी प्रीति न जाय, तीसरी पिताके प्रणकी ॥१॥ सीताके चकित विलोकनसे मृग शावक नयनी कहा है, मृगशावकके अर्थ हरिनके बच्चे हैं इसका हेतु यह है कि नयी-नयी जलभरी आखें हैं उन हरिनके बच्चोंकी आंखोंके समान आंखोंवाली सीताजी जिस ओर देखती हैं वहां मानो श्वेतकमलके समूहकी वर्षा होती है अर्थात् जिधर जानकीजी देखती हैं उधर सब सुखोंका समूह दीखने लगता है और आखें सुन्दरतामें श्याम वा लाल कही जाती है। श्वेत कहनेका प्रयोजन यह है कि राजपुत्री सखियों समेत श्रृङ्गार किए हुए नहीं जाती हैं, इससे आंखें श्वेत हैं दूसरा अर्थ यह है कि श्वेत लोचन अर्थात् मित्रताका भाव है श्यामलोचन विष अर्थात् शत्रुताका भाव है। लाल लोचन मद अर्थात् मध्यस्थताका भाव है और नेत्रों द्वारा सब वस्तु उन्हीं तीनों भावोंसे देखी जाती हैं, यथा दोहा-"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार" ॥ २ ॥

लता ओट तब सखिन लखाये ❀ श्यामल गौर किशोर सुहाये ॥३॥
देखि रूप लोचन ललचाने ❀ हर्षे जनु निज निधि पहिचाने ॥४॥

तब लताकी ओटमें सखियोंने दिखाया, जो किशोर अवस्थायुक्त श्याम गौर शरीरसे शोभायमान हैं। विटप ओट बीर रस है, जैसे-विटप ओट देखहिं रघुराई" किन्तु यहां शृंगार है इस लिये लता ओट कहा है सब सखियाँ राजपुत्रोंको देखने और उन्हें जानकीको देखनेकी अभिलाषिणी हैं, इस कारण सबको एक ही समय दिखायी दिये, सो सब लखती और सैनसे बताती हैं, क्योंकि श्यामल और किशोर पूर्वसे सुनकर राजपुत्रोंको सुहाये हुए हैं ॥ ३ ॥ रूप देखकर नेत्र ललचा गये। कारण कि इतना सुना नहीं जितना देखा और जैसे कोई अपनी खोई वस्तुको पहचान कर हर्षित होता है ऐसे ही नेत्र हर्षित हुए ॥ ४ ॥

थके नयन रघुपति छबि देखी ❀ पलकनहूँ परिहरी निमेखी ॥५॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी ❀ शरदशशिहिं जनु चितव चकोरी ॥६॥

श्री रामचन्द्रजीकी छबि देखकर नयन थक गये कारण कि बड़ी देरसे हेर रहे थे। दूसरा अर्थ यह कि छबि पर ठहर गये, तीसरा यह कि महाराजकी छबिका इतना विस्तार है कि उसमें फँस गये उससे पार हो अंगों तक न पहुँचे। जैसे सूर्य की आभासे पार होकर सूर्य तक किसीकी दृष्टि नहीं पहुँचती और पलकोंने भी निमेषी अर्थात् पलक लगाना छोड़ दिया॥५॥ जबतक समान स्नेह था तबतक देहको सँभाले रहीं; किंतु जब सुने हुएसे भी विशेष रूप देखा तब अधिक स्नेहसे देहकी सुधि जाती रही। जैसे शरदऋतुके चन्द्रमाको देखकर चकोरी भोरी हो जाती है। अथवा शरदघामकी तपी चकोरीको शरद चन्द्रकी शीत किरणोंका स्पर्श होनेसे देहकी सुध नहीं रहती ऐसे ही पिताके भानुरूपी प्रणसे तपी राजपुत्रीको राजपुत्ररूपी शरद-चन्द्रके रूपकिरणको देख शीतल होनेसे शरीरकी सुधि जाती रही ॥ ६ ॥

लोचन मगु रामहिं उर आनी ❀ दीन्हे पलक कपाट सयानी॥७॥
जब सिय सखिन प्रेमवश जानी ❀ कहि न सकइ कछु मन सकुचानी॥८॥

नेत्रोंके मार्गसे श्रीरामचन्द्रजीका रूप हृदयमें ग्रहण कर चतुर जानकीजीने पलकरूप किवाड़ बन्द कर लिये ॥ ७ ॥ जब सखियोंने जानकीजीको प्रेमके वश जाना तो मनमें बहुत सकुचायीं कुछ कह न सकीं ॥ ८ ॥

दोहा-लता भवनते प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ ॥
निकसे जनु युग विमल विधु, जलदपटल विलगाइ ॥ २८० ॥

उसी समय दोनों भाई लता भवनसे ऐसे प्रगट हुए मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलको चीरकर निकले हों। विलगाइ कहनेका तात्पर्य यह है जानकीजीको देखनेकी अभिलाषा में लताओंको चीरकर निकल आये और आतुरताके कारण मार्गतक न गये। यदि कोई कहे कि श्याम शरीरकी चन्द्रमासे उपमा कैसे दी जा सकती है? तो इसका उत्तर यह है कि लक्ष्मणजी चन्द्रवर्णसे और रामजी मेघके समान लताभवन चीरकर निकले॥ २८० ॥

शोभा-सींव सुभग दोउ बीरा ❀ नील पीत जलजात शरीरा ॥१॥
मोरपंख शिर सोहत नीके ❀ गुच्छ बीच बिच कुसुमकलीके ॥२॥

दोनों सुन्दर वीर शोभाकी सीमा हैं और नीले-पीले कमलके समान शरीर वाले हैं ॥१॥ शिरपर मोरपंख नीके (अच्छी तरह) शोभायमान हैं बीचमें कुसुमकलीके गुच्छे गुथ रहे हैं।

कहीं 'काकपक्ष' पाठ है तो उसका अर्थ यह होगा कि काकभुशुण्डि और उनका पक्ष अर्थात् उपासना राजपुत्रोंके शिर पर शोभित है अर्थात् शिरपर लिये हैं ॥ २ ॥

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाये ❋ श्रवण सुभग भूषण छबि छाये ॥३॥
विकट भृकुटि कच घूँघुरवारे ❋ नवसरोज लोचन रतनारे ॥४॥

माथेपर तिलक कुछ पसीनेकी बूंदोंसे शोभायमान है और कानोंमें सुन्दर गहने पहने हुए हैं। सुहायेका भाव यह है कि माथे पर सुहाते तिलक लगाये हैं, श्रम बिन्दुसे कोमलता दिखायी है कि थोड़ेही श्रमसे पसीना आ गया, तीसरे यह कि पसीने का आना सुहाया क्योंकि जानकीजीको देख वह श्रम सफल हुआ ॥ ३ ॥ टेढ़ी भौंहै घुँघराले बाल और नये कमल के समान जिनके नेत्र अरुण हैं ॥ ४ ॥

चारु चिबुक नासिका कपोला ❋ हास विलास लेत मन मोला ॥५॥
मुखछबि कहि न जाय मोहिं पाहीं ❋ जो विलोकि बहु काम लजाहीं ॥६॥

सुन्दर ठोढी, नासिका और कपोल है और हँसनेका विलास तो (मानो) मनको मोलही लिए लेता है ॥५॥ मुखकी छबि तो मुझसे कही नहीं जाती, जिसको देख बहुत काम लजाते हैं ॥६॥

उर मणिमाल कम्बु कल ग्रीवा ❋ काम कलभकर भुजबल सींवा ॥७॥
सुमन समेत बाम कर दोना ❋ सांवर कुँवर सखी सुठि लोना ॥८॥

हृदयमें मणियोंकी माला और शंखके समान शोभित गला है और काम जो कलभ अर्थात् हाथीका बच्चा है उसकी सूँड़के समान आकारवाली बलकी मर्यादा भुजाएँ हैं (उरमाला) उसे कहते हैं जो नाभीतक लम्बी हो) ॥ ७ ॥ फूलों समेत बायें हाथ दोना लिए जो साँवरे कुँवर हैं सो हे सखि ! विशेष सुन्दर सलोने हैं। सुमनका अर्थ अच्छे मन और वामका अर्थ स्त्री भी होता है, भाव यह है कि जो स्त्री अच्छा मन दिये हैं उनके मनका आदर किये पातके दोनोंमें हाथपर लिए हैं जो कहो ? कि वे वाम कैसी हैं कि जिनके मनका आदर करते हैं और वे मनको देती हैं इसका कारण है कि रघुनाथजीकी विशेष सुन्दरताका ऐसा जाल है कि उनका मन अवश्य ही फँस जाता है ॥ ८ ॥

दोहा—केहरि कटि पट पीतधर, सुषमा शील निधान ॥
देखि भानुकुल भूषणहि, बिसरा सखिन अपान ॥ २८१ ॥

सिंहके समान कमर पर पीला वस्त्र धारण किये हुए शोभा और शीलके घर ऐसे सूर्यकुल भूषण रघुनाथजीको देखकर सखियोंको अपने आपकी सुध भूल गयी (इस प्रकरणका आरम्भ शृङ्गारसे है जहां कहा है कि ' मोरपक्ष' शिर सोहत नीके' और विश्राम वीररसपर किया जो इस समय मुख्य है और इसी दोहेसे उसका आरम्भ होता है) ॥ २८१ ॥

धरि धीरज एक सखी सयानी ❋ सीतासन बोली गहि पानी ॥१॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू ❋ भूप किशोर देखि किन लेहू ॥२॥

एक चतुर सखी धीरज धर जानकीजीका हाथ पकड़ कर बोली। 'सयानी' इस कारण कहा कि उसने आपको भूलकर फिर धीरज रखा और एकके कहनेसे उसकी प्रधानता पायी जाती है ! हाथ पकड़नेका भाव यह है कि सीता नेत्र मूँदे हैं, आंखोंसे संकेत करनेका अवसर नहीं है। और बात भी नहीं कर सकतीं, क्योंकि राजपुत्र सम्मुख खड़े हैं ॥१॥ वह सखी कहती है कि तुमको गौरीका ध्यानका क्या अभ्यास ही हो गया है जो फिर वही ध्यान करने लगी भाव यह

कि राजपुत्रोंके प्रेमकी विकलता न जान पड़े, अथवा तुम जो ध्यान करती हो तो यहांसे चलकर फिर कर लेना; अथवा यह कि तुम जो गौरीका ध्यान करती थीं उसका यह फल है कि राजपुत्र सम्मुख खड़े हैं उनको क्यों नहीं देख लेती हो? भूप किशोरका भाव ऐसा है कि ये भूप हैं किशोर हैं, अतः किसीके बन्धनमें नहीं हैं यहांसे चले जायँगे, दूसरा आशय यह है कि भूपसे जाति सम्बन्ध और किशोरसे अवस्थाका सम्बन्ध जताया है ॥ २ ॥

सकुचि सीय तब नयन उघारे * सन्मुख दोउ रघुसिंह निहारे॥३॥
नखसिख देखि रामकी शोभा * सुमिरि पिता प्रण मन अतिक्षोभा॥४॥

तब (सखीके व्यंग्य युक्त वचन सुन) सीताने सकुचाकर नेत्र खोल दिये और जाना कि मेरा प्रेम सखीने जान लिया। दूसरा अर्थ यह कि सीताने सकुचे हुए नयन उघारे, पूरे नहीं खोले सामने दोनों रघुवंशमें सिंहरूपों को देखा (रघुसिंह कहनेका भाव यह है कि सीताको धनुष टूटनेकी आकांक्षामें कारण वीरता है) ॥ ३ ॥ नखसे शिख (एड़ीसे चोटी) तक श्रीरामजीकी शोभाको देख पिताके प्रण (धनुर्भंग) का स्मरण कर सीताजीका मन बड़ा दुःखी हुआ ॥४॥

परवश सखिन लखी जब सीता * भई गहरु सब कहहिं सभीता ॥५॥
पुनि आउब इहि बिरियां काली * असकहि मन बिहँसी एक आली॥६॥

जब सखियोंने जाना कि अब सीता परवश हैं, घर जानेका समय बिता दिया और सुध न रही तो सब आपसमें सभीत हो कहती हैं कि बिलंब हुआ और सीता इस कारण कहा कि वह इस समय शीतल हो रही हैं जो चेताती हैं तो शीतलतामें विघ्न पड़ेगा ॥५॥ 'पुनि आउब' आदि कहकर गोसाईंजी कहते हैं कि-"गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी" प्रत्यक्षमें तो ऊपरकी चौपाई सुगम है फिर किस गूढ़ताको वे उस वचनमें कहते हैं यह देखना चाहिए वही एक सखी कहती है (पुनि आउब) अर्थात् अब चलो कल फिर इसी समय आवेंगे राजपुत्रीका प्रेम राजपुत्रोंकी ओर देख 'चलना' जो वियोग-सूचक शब्द है उसे नहीं कह सकती, इससे वियोगको संयोगसे ढककर कहती हैं कि इसी समय कल फिर आवेंगी इससे जानकीजीको सूचित करती हैं कि तुम्हारा मन राजपुत्र पर मोहित है किंतु उसको प्रगट नहीं कहती, मनमें हँसती हैं जिससे सीताको प्रगटमें संकोच न हो। गूढ़ता यह कि बिलंब होना जताती हैं और किसीसे यह नहीं कहती 'अब जाओ' परंतु जानेकी ध्वनि निकलती है अथवा जानकीजीसे कहती हैं कि अब चलो, कल फिर इसी समय आवेंगी। अथवा राजपुत्रोंसे कहती हैं कि कल इसी समय फिर आना और तीसरा अर्थ यह कि सखियाँ जानकीजीसे कहती हैं कि तुमने जो आज इतना बिलम्ब किया इससे कल नहीं आने पावेगी। ऐसे श्रीरामचन्द्रजीकी ओर भी कहती हैं कि आज इतना बिलम्ब करनेसे कल आपके गुरु आने न देंगे। चौथा अर्थ यह है कि अब तो चलो, कल इसी समय फिर मिलनेको आवेंगी ॥ ६ ॥

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी * भयउ बिलंब मातु भयमानी ॥७॥
धरि बड़ि धीर राम उर आनी * फिरी अपनपौ पितुवश जानी ॥८॥

यह (सखीका व्यंग भरी) गूढ़ बानी सुनकर जानकीजी सकुचायीं और देर होनेके कारण माताका भय माना, वा माता भय करती होंगी कि अभीतक पुत्री नहीं आयी ॥७॥ बड़ा धीरज

धरकर श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारण किये हुए फिरी और सोचने लगीं मेरा शरीर तो पिताके अधीन है वे चाहे जिसको दें ॥ ८ ॥

दोहा-देखन मिसु मृग बिहँग तरु, फिरति बहोरि बहोरि ॥
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बढ़इ प्रीति न थोरि ॥ २८२ ॥

मृग, पक्षी, वृक्षोंको देखनेके बहाने (पीछेको) बार बार फिरती हैं और श्रीरामचंद्रजीकी छबि देख-देखकर अधिक प्रीति बढ़ती है जानकीजीने जो श्रीरामचन्द्रजीकी वीरता, यज्ञ रक्षा आदिसे सुनी थी और कोमलता देखी इससे निरखि २ कर वीरताकी छबि देखती हैं, क्योंकि इस समय उसीसे प्रयोजन है (इसी कारण यहाँ रघुवर ऐसा पद दिया है और प्रीतिके बढ़नेका भाव यह है कि वीरता कि छबि ढूँढ़ती हैं पायीं, इससे प्रीति बढ़ी और जो न पातीं तो प्रीति बढ़नेका कारण न था अथवा श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें मन पड़नेसे देखती हैं ॥ २८२ ॥

जानि कठिन शिवचाप बिसूरति * चली राखि उर श्यामल मूरति ॥१॥
प्रभु जब जात जानकी जानी * सुख सनेह शोभा गुणखानी ॥२॥

शिवजीके धनुषको कठिन जानकर विसूरती हैं फिर मनमें सांवली मूर्ति धरकर चलीं। शंका–जब धनुषको कठिन जाना तो हृदयमें मूर्ति धारण करनेसे धर्मकी सामान्यता पाई जाती है ? उत्तर–इसका अर्थ यह है कि जो शिवजीका कठिन धनुष था, जिसको रावण वाणासुरादि देखकर हार गये थे, उसको विगत सूरतका वा टूटा हुआ जाना। अथवा श्रीरघुनाथजीकी वीरतासे सामने चापको विसूरत पाया; इसी कारण रामजीकी श्याम मूर्ति धारण कर चलीं ॥१॥ जब जानकीजी चलीं तब प्रभुने उनको जाना, पहले उनकी ओर निहार कर ऐसे चकित हो गये थे, कि जैसे मृग दीपकको देखकर हो जाता है। जानकीजीको अब जैसे जाना वह आगे लिखते हैं अर्थात् सुख, स्नेह, शोभा और गुणकी खान यह चारों बातें दृष्टि मिलापके समय उनमें पायी थीं, परन्तु अब जानि पड़ी जैसे ऊपर कह आये हैं सुखकी खान इस चौपाईमें कहा–"देखि सीय शोभा सुख पाया" स्नेहकी खान–"अधिक स्नेह देह भइ भोरी" शोभाकी खान–"सुन्दरता कहँ सुन्दर करई" गुणकी खान–"देखन मिस मृग विहँग तरु फिरति बहोरि बहोरि" यह अर्थ चतुराई और गुणका है ॥ २ ॥

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं * चारु चित्रभीती लिखि लीन्हीं ॥३॥
गई भवानी-भवन बहोरी * वंदि चरण बोली कर जोरी ॥४॥

परम प्रेमकी मसि अर्थात् स्याही बनाई और वह भी कोमल; यह विशेषता प्रेमकी है। राजपुत्रीके अंगोंकी कोमलता है क्योंकि जो स्याहीमें किसी प्रकारकी कठोरता रहेगी तो कोमल अङ्गोंको खेद करेगी, अतः ऐसी स्याहीमें जानकीजीके सुन्दर चित्रको अन्तःकरणरूपी भीतपर लिख लिया। ऊपर जो कहा–"चली राखि उर श्यामल मूरति" इसमें न्यूनता है चित्रको अन्तःकरणमें लिखनेसे विशेषता है, क्योंकि जानकीजीको धनुषके टूटनेमें संशय है किंतु श्रीरघुनाथजीको तोड़नेका निश्चय है। अथवा नीतिपूर्वक स्त्री पुरुषको ऐसे बंधनमें नहीं कर सकती है जैसे पुरुष स्त्रीको कर सकता है इस कारण मनसे रखना और चित्र लिखना कहा है ॥३॥ सीताजी फिर भवानीके मंदिरमें गयीं। पहले गौरी कहा था, क्योंकि वहां कन्यापनसे गयीं थीं और यहाँ रघुनाथजीको हृदयमें रख लिया तो पार्वतीको भवानी अर्थात् पतिसंयुक्ता कहा और चरणोंमें हाथ जोड़कर बोलीं ॥ ४ ॥

जय जय जय गिरिराज-किशोरी ❋ जय महेश मुखचन्द्र चकोरी॥५॥
जय गजवदन षडानन माता ❋ जगतजननि दामिनि द्युतिगाता॥६॥

हे गिरिराज किशोरी ! आपकी जय हो, जय हो, शिवजीके मुखचन्द्रको आप चकोरी हो आपकी जय हो ! गिरिराज किशोरीसे उदारता और परोपकारिता कथन करती है कि गिरिराज परोपकारी हैं उनकी आप पुत्री हो। जैसे कहा-'सन्त विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबनकी करनी' तो फिर आप क्यों न उपकार करोगी ? और जो महाईश हैं उनकी आप पत्नी हो, इस कारण सब कुछ कर सकती हो ॥ ५ ॥ गजवदन गणेशजी जो सिद्धि के देनेवाले हैं उनकी आप माता हो, आपकी जय हो, आपको सिद्धि देना क्या बड़ी बात है ? और षडानन जिन्होंने तारकासुरको मारकर देवताओंको उनके स्थानमें बैठाया, उनकी आप माता हो, सो आप धनुषको जो तारकासुरके स्थानमें है, तोड़कर हमको मनोरथ स्थान में स्थापित कर सकती हैं और जो कहो कि तुम्हारा हमसे क्या नाता है ? तो आप जगत् की माता होनेसे हमारी भी माता ठहरीं और बिजलीके समान आपके शरीरकी कांति है ॥ ६ ॥

नहिं तव आदि मध्य-अवसाना ❋ अमित प्रभाव वेद नहिं जाना॥७॥
भव भव विभव पराभव कारिणि ❋ विश्वविमोहनिस्ववश विहारिणि॥८॥

आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है किन्तु अमित प्रभाव है जिसको वेद नहीं जानते गिरिराजके यहां उत्पन्न होनेसे पूर्व भी आप थीं और सदा रहेंगी ॥७॥ आप भव अर्थात् उत्पन्न करती हैं; विभव (ऐश्वर्य) देती हैं पालन करती हैं हमको ऐश्वर्य प्राप्त कराइये, और संहार करनेवाली हो अतः हमारे यदि दुष्कृत हों तो उनको नष्ट कर दीजिये और धनुष तोड़ देना क्या बड़ी बात है ? आप विश्वकी विशेष मोहनेवाली हो हमारे पिताकी मति फेर देना क्या बड़ी बात है ? और स्वेच्छा विहारिणी हो, अतएव हमारी कर्मरेखा भी मेट सकती हो ॥ ८ ॥

दोहा-पतिदेवता सुतीय-महँ, मातु प्रथम तव रेख ॥
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेष ॥ २८३ ॥

हे माता ! पतिव्रता स्त्रियोंमें आपकी प्रथम रेखा है। यह मार्ग आपका ही किया हुआ है इसकी प्राप्ति मैं भी चाहती हूँ आपकी महिमा अमित है, हजारों सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते ॥ २८३ ॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी ❋ वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी ॥१॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे ❋ सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥२॥

आपकी सेवासे चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्षका लाभ होता है; सुखपूर्वक उसकी प्राप्तिमें खेद नहीं होता और वरकी दाता हो, हे शिवजीकी प्यारी ! आप तीन पुरवालेके शत्रु महादेवजीकी प्यारी हो, मेरे भी तीन ही दुःखरूपी शत्रु हैं अर्थात् रामका वियोग, धनुषभँगप्रण और धनुषकी कठोरता, सो ये मेरे दुःख दूर हों ऐसा वर दीजिये ॥ १ ॥ हे देवि आपके चरणकमलों की पूजा करनेसे देवता अर्थ, मनुष्य काम और सब मुनि मोक्ष प्राप्त कर सुखी होते हैं ॥२॥

मोर मनोरथ जानहु नीके ❋ वसहु सदा उर पुर सबहीके ॥३॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेही ❋ अस कहि चरण गहे वैदेही ॥४॥

आप मेरे मनोरथको भी अच्छी प्रकार जानती हैं अर्थात् धर्म जो चार फलमें शेष रह गया है उसके हेतु मैं सेवामें उपस्थित हूँ जो कि आपके पास है, उसको भली भांति जानती हो और आप सबके हृदयमें बास करती हो ॥ ३ ॥ इसी कारण मैंने अपना मनोरथ प्रकट नहीं किया ऐसे कहकर जानकीजीने चरण पकड़ लिये उस पतिव्रत धर्मको मुझे दो। अथवा जैसे आपने शिवको पति पाया उसी प्रकार मुझको भी श्रीरामचन्द्रजी पति मिलें ॥ ४ ॥

विनय प्रेमवश भई भवानी ❀ खसी माल मूरति मुसुकानी ॥५॥
सादर सिय प्रसाद शिर धरेऊ ❀ बोली गौरि हर्ष उर भरेऊ ॥६॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भरद्वाज! भवानी सीताकी विनयसे ऐसी प्रेम वश हुई कि तनकी सँभार न रही, इससे प्रसादमाला जिसके देनेका मनोरथ किया था, हाथमें खसक पड़ी; सो इस कारण भवानी मुसकायीं और देवतासे फूलका गिरना मनोरथकी सिद्धको शुभ है। एक यह कारण भी मालाके गिरनेका हुआ मुसकानेका कारण यह कि अच्छा प्रसाद देनेके हेतु प्रसन्न वचन करनेवाली हैं; अथवा मुसकानेसे यह जाना कि जैसा तुमको हम जानती हैं "उपजहिं जासु अंश गुणखानी। अगणित उमा रमा ब्रह्माणी, खसीमाल जो पत्थर है उसकी मूर्ति मुसकायी। अथवा जानकीजी जो माला विनय करके पहनाती थीं, प्रेमके मारे वह हाथसे छूट पड़ी तब मूर्ति मुसकायी अथवा 'खसी' नाम आकाशवत्-श्याम पुष्पोंकी माला देखकर सीताका मनोरथ श्याम वर पानेका जान पार्वती मुसकायीं अथवा पार्वती अर्धांगी थी इससे जानकीजी उन्हींके गलेमें माला पहराती थी इससे गिर पड़ी इस गूढ़ प्रेमको देखकर मूर्ति मुसकायी या शुभ वचन कहा चाहती है इससे मुसकायी किन्तु मूर्तिका मुसकाना राजाको अच्छा नहीं होता यह बात यहां नहीं जानना क्योंकि अकस्मात् मूर्तिके मुसकानेसे ऐसा होता है अथवा यहां भी राजा जनकको मूर्तिका मुसकाना अशुभ हुआ। कारण उनके पुण्यकी मूर्ति जनकपुरसे अयोध्या को चली गयी, जैसा लिखा है-'जनकसुकृत मूरति वैदेही'॥५॥ तब सीताजीने प्रसाद मालाको आदरपूर्वक शिरपर धारण किया उस समय पार्वती हृदयमें हर्षित होकर बोली ॥ ६ ॥

सुनि सिय सत्य अशीश हमारी ❀ पूजहिं मनकामना तुम्हारी ॥७॥
नारद वचन सदा शुचि साँचा ❀ सो वर मिलहि जाहि मन राचा॥८॥

हे सीताजी! हमारी आशीष सत्य है उसको सुनो। तुम्हारे मनकी कामना पूरी होगी ॥७॥ नारदजीका वचन सदा पवित्र और सच्चा है, सदा इस कारण कहा कि पार्वतीजी भी नारदजीके वचन की परीक्षा कर चुकी हैं, तुमको वह वर मिलेगा जो तुम्हारे मनको रुच रहा है इससे जानकीजीका वह वाक्य सत्य हुआ कि-"मोर मनोरथ जानहु नीके" ॥ ८ ॥

छन्द-मन जाहि राचेउ मिलहिं सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो॥
इहि भाँति गौरि अशीश सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ॥३३॥

जिस ओर तुम्हारा मन लगा है वह स्वभावसे सुन्दर साँवरा वर तुम्हें अवश्य मिलेगा और वे राम स्वयं करुणाके निधान चतुर हैं, तुम्हारे शील स्नेहको जानते हैं; इस भांति पार्वतीजीकी आशीष सुन सीता सखियों सहित मनमें प्रसन्न हुई तुलसीदास कहते हैं; फिर बारंबार पार्वतीका पूजन कर प्रसन्न हो मंदिरको चलीं ॥ ३३ ॥

सोरठा–जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जात कहि ॥
मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे ॥ ३३ ॥

पार्वतीको अनुकूल जानकर जो कुछ जानकीजीके मनमें प्रसन्नता हुई सो वरणी नहीं जाती, आनन्दके दाता बायें अंग फड़कने लगे ॥ ३३ ॥

हृदय सराहत सीय लुनाई * गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥१॥
राम कहा सब कौशिक पाहीं * सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीकी शोभाको हृदयमें सराहते हुए लक्ष्मणजी सहित गुरुजीके पास गए जैसे जानकीजीने अपना मनोरथ पार्वतीसे सुनाया ऐसे यह गुरुजीके पास गए ॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीने गुरुजीसे सीधे स्वभावसे सब वृत्तान्त कह दिया; जिसमें छल छू भी नहीं गया था। (यद्यपि यह बात कहने योग्य न थी) ॥ २ ॥

सुमन पाय मुनि पूजा कीन्हीं *पुनि अशीश दोउ भाइन दीन्हीं॥३॥
सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे * राम लषण सुनि भये सुखारे ॥४॥

फूल पाकर मुनिने पूजाकी और फिर दोनों भाइयोंको आशीष दी ॥ ३ ॥ तुम्हारे मनोरथ सफल हों यह सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए ॥ ४ ॥

करि भोजन मुनि वर विज्ञानी * लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥५॥
विगत दिवस मुनि आयसु पाई * संध्या करन चले दोउ भाई ॥६॥

भोजन करके मुनि ज्ञानी पुरानी कथा कहने लगे ॥ ५ ॥ जब दिन व्यतीत हुआ तब मुनिकी आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या करने चले ॥ ६ ॥

प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा * सियमुख सरिस देख सुखपावा ॥७॥
बहुरि विचार कीन्ह मनमाहीं * सीय वदन सम हिमकर नाहीं ॥८॥

पूर्व दिशामें चन्द्रमा पूर्ण उदय हुआ, उसको जानकीजीके मुखके समान देखकर सुख पाया। जो जानकीजीके मुख देखनेसे सुख हुआ था अब चन्द्रको देखकर उसके समान ही सुख पाया ॥ ७ ॥ फिर मनमें बिचार किया कि सीताके मुखके समान चन्द्रमा नहीं है, क्योंकि जानकीजी महलमें रहती हैं और यह प्रकट दिखायी देता है, सीता सखियों समेत है यह अकेला है, और शीतलता देनेवाली वे हैं ऐसा चन्द्रमा नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा–जन्म सिंधु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक ॥
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र वापुरो रंक ॥ २८४ ॥

उत्तमता तीन स्थानमें देखी जाती है। जन्मस्थान–संग और अंगसे। चन्द्रमाका जन्मस्थान तो समुद्र, संग विषका–जो उसके साथ समुद्रसे उत्पन्न हुआ है और अंग उसका दिनमें मलिन होता है; ललाटमें कलंक है सो यह शोभाका दरिद्री उनके मुखकी समता कैसे पावे ? ॥ २८४ ॥

घटै बढ़ै विरहिन दुखदाई * ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई ॥१॥
कोक शोकप्रद पंकज द्रोही * अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही ॥२॥

घटता बढ़ता और विरही जन (वियोगी) को दुःख देता है, अपनी संधि पाकर राहु

इसको ग्रास करता है किंतु जानकीका मुख सदा एक रस है घटता बढ़ता नहीं किसीको दुःख नहीं देता । तथा उनका कोई शत्रु नहीं ॥१॥ चकवा चकईको दुःख देने वाले कमलोंसे द्रोह करने वाले हे चन्द्रमा ! तुझमें तो बहुत अवगुण हैं ॥ २ ॥

वैदेही मुख पटतर दीन्हे ❋ होय दोष बड़ अनुचित कीन्हे ॥३॥
सियमुख छबि बिधु व्याज बखानी❋ गुरु पहँ चले निशा बड़ि जानी ॥४॥

जानकीजीके मुखकी उपमा देनेमें दोष और अनुचित है अथवा कहते हैं कि हे चन्द्रमा ! हम प्रतिदिन तुझको देखते रहे, कभी दूषण नहीं दिया, परंतु जानकीजीकी समता तेरे साथ की इससे बड़ा दोष हुआ ॥३॥ विधुका अर्थ चंद्रमा व्याज मूलधनसे उपलब्धि जानकीजीके मुखकी छबिका चन्द्रमा व्याज बखानकर रात अधिक गयी जानकर गुरुके पास चले । दूसरा अर्थ यह है कि सखीने कहा था 'कल फिर इसी समय आना' सो रात बीचमें पड़-कर ऐसी बड़ी हो गयी कि उसपर बिहान का आना दुर्लभ होगया तब निशाको बड़ी जान-गुरुके निकट चले कि वह समर्थ हैं रातका दिन कर देंगे । तीसरा अर्थ यह कि रघुनाथजीके गुरु सूर्य हैं सो रातको बड़ी जानकर सूर्यके निकट इस कारण चले (मनसे) कि; वह शीघ्र प्रकट हों और रात जाती रहे । चौथा भाव यह कि बड़ी अर्थात् श्रेष्ठ रात है और गुरुकी कृपासे प्राप्त हुई है ऐसा जानकर गुरुकी सेवाको चले ॥ ४ ॥

करि मुनि-चरणसरोज प्रणामा ❋ आयसु पाय कीन्ह विश्रामा ॥५॥
विगत निशा रघुनायक जागे ❋ बन्धु विलोकि कहन अस लागे ॥६॥

मुनिके चरण कमलमें प्रणामकर आज्ञा पाय विश्राम किया ॥ ५ ॥ जब रात बीत चुकी तब श्रीरामचन्द्रजी जगे ! जानकीजीके विचारमें अधिक जगे थे,उससे पिछली रातसे अधिक नींद आ गयी कि रात बीतने पर जगे । अथवा उस रातको अच्छी जान सुखसे अधिक सोये अथवा रामके जगते ही रात बीत गयी। प्रातःकाल होने पर भाई (लक्ष्मण) को उठा हुआ देखकर बोले ॥ ६ ॥

उयेउ अरुण अवलोकहु ताता ❋ पंकज कोक लोक सुख दाता ॥७॥
बोलेउ लषण जोरि युग पानी ❋ प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी ॥८॥

हे तात ! देखो सूर्य उदय हो गया; जो कमल,चकवा-चकई और सब जगत्को सुखदाता है ॥७॥ लक्ष्मणजी हाथ जोड़के श्रीरामचन्द्रजीके प्रभावकी कहने वाली कोमलवाणी बोले। लषण शब्दमें श्लेष है अर्थात् लक्ष्मण यह बात लख चुके थे कि श्री रघुनाथजी आज धनुष तोड़ेंगे॥८॥

दोहा-अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडुगण ज्योति मलीन ॥
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ॥ २८५ ॥

सूर्यके उदय होनेसे कुमुद (कीकाबेरी) सकुच गये; तारागणोंकी ज्योति मलिन हो गयी; ऐसे ही आपका आगमन सुनकर राजा बलहीन हो गये ॥ २८५ ॥

नृप सब नखत करहिं उजियारी ❋ टारि न सकहिं चाप तम भारी ॥१॥
कमल कोक मधुकर खग नाना ❋ हरषे सकल निशा अवसाना ॥२॥

राजारूपी समस्त तारे उजाला करते हैं परंतु धनुषरूपी घोर अँधेरा नहीं टाल सकते ॥ १ ॥ अनेक कमल चकवा-चकई, भौंरे, अनेक पक्षी रात बीतनेसे प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

ऐसेहि प्रभु सब भक्त तुम्हारे ❋ होइहिं टूटे धनुष सुखारे ॥३॥
उगेउ भानु बिनु श्रम तम नाशा ❋ दुरे नखत जग तेज प्रकाशा ॥४॥

हे प्रभु ! ऐसे ही आपके सब भक्त धनुष टूटनेसे सुखी होंगे । भक्त चार प्रकारके हैं, आर्त कोटिमें जानकीजी; यथा-'सखि हमरे अति आरति ताते' जिज्ञासुमें विश्वामित्रके साथी और लक्ष्मणादि, अर्थी कोटिमें जनकजी और उनके सम्बन्धी; ज्ञानी कोटिमें विश्वामित्रादि मुनि हैं ॥ ३ ॥ जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकारका नाश विना ही श्रम हो जाता है और तेजके प्रकाशसे तारे, छिप जाते हैं, ऐसे ही विना श्रम धनुष टूट जायगा ॥ ४ ॥

रवि निज उदय व्याज रघुराया ❋ प्रभुप्रताप सब नृपन दिखाया ॥५॥
तव भुजबल महिमा उदघाटी ❋ प्रगटी धनु विघटन परिपाटी ॥६॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! सूर्यने अपने उदय होनेके बहानेसे सब राजाओंको आपका प्रताप प्रकट दिखाया है कि, जैसे अकेले मैंने अन्धकारका नाश कर दिया, तारासमूहने नहीं, इसी प्रकार एक श्रीरामचन्द्रजी ही धनुष तोड़ देंगे ॥ ५ ॥ आपके भुजबलकी महिमाका उद्घाटन करनेवाली अर्थात् उसको खोलकर प्रकासित करनेवाली यह धनुषके विघटन (टूटने) की परिपाटी (रीति) प्रगट हुई है । भाव यह कि इस धनुर्भंगने प्रगट होकर आपके गुप्तभुजबलके अप्रतिम महत्त्वको खोलकर प्रकाशित कर दिया ॥ ६ ॥

बन्धु-वचन सुनि प्रभु मुसकाने ❋ होइ शुचि सहज पुनीत नहाने ॥७॥
नित्य क्रिया करि गुरुपहँ आये ❋ चरण सरोज सुभग शिर नाये ॥८॥

भाईके वचन सुनकर मुसकाये और स्वभावसे ही पवित्र श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र होकर स्नान किया ॥७॥ नित्य क्रिया कर गुरुके पास आये और उनके सुन्दर चरणकमलमें शिर नवाया॥८॥

शतानंद तब जनक बुलाये ❋ कौशिक मुनिपहँ तुरत पठाये ॥९॥
जनक विनय तिन आय सुनाई ❋ हरषे बोलि लिये दोउ भाई ॥१०॥

तब जनकजीने अपने पुरोहित शतानंदजीको बुलाया और विश्वामित्रजीके बुलानेको तुरंत ही भेजा । तुरंतका आशय यह कि प्रणका यही दिन शेष रह गया था ॥ ९ ॥ जनककी विनती उन्होंने आकर सुनायी और प्रसन्न होकर मुनिने दोनों भाइयोंको बुलाया ॥ १० ॥

दोहा-शतानंद पद वंदि प्रभु, बैठे गुरुपहँ जाय ॥
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाय ॥ २८६ ॥

शतानन्दजीके चरणोंमें प्रणाम करके प्रभु गुरुके पास जा बैठे; तब मुनि बोले-हे तात ! चलिये राजा जनकजीने बुलाया है ॥ २८६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे बालकाण्डान्तर्गत पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतव्याख्यायां षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

दोहा-धनुषभंग कृत राम जिमि, सो सप्तम विश्राम ॥
कहत सुनत समुझत सुमति, पावत सब मन काम ॥ ७ ॥

सीय स्वयंवर देखिय जाई ❋ ईश काहि धौं देइ बड़ाई ॥१॥
लषण कहा यश भाजन सोई ❋ नाथ कृपा तव जापर होई ॥२॥

चलकर जानकीका स्वयंवर देखिये न जाने ईश्वर किसको बड़ाई दे ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी बोले-नाथ ! यशका पात्र तो वही होगा जिस पर आपकी कृपा होगी। यह लक्ष्मणजीका कहना

ध्वनियुक्त है अर्थात् ऋषिराजसे कहते हैं कि रामजी पर आपकी कृपा है, जैसे लिखा है—"सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे" ॥ २ ॥

हर्षे मुनि सब सुनि वर बानी ❋ दीन्ह अशीश सबहिं सुखमानी॥३॥
पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला ❋ देखन चले धनुष मखशाला॥४॥

सब मुनि यह सुन्दर वाणी सुनकर प्रसन्न हुए और सबने ही सुख मानकर आशीष दी ॥ ३ ॥ फिर मुनियोंके वृन्दसहित श्रीरामचन्द्रजी धनुषयज्ञशाला देखने चले ॥ ४ ॥

रंग भूमि आये दोउ भाई ❋ अस सुधि सब पुरवासिन पाई ॥५॥
चले सकल गृहकाज बिसारी ❋ बालक युवा जरठ नर नारी ॥६॥

जब दोनों भाई रंग भूमिमें आये तो यह सुध सब पुरवासियोंने पायी ॥५॥ तब बालक ज्वान बूढ़े नर-नारी सब अपने घरका काम छोड़कर चले ॥ ६ ॥

देखी जनक भीर भइ भारी ❋ शुचि सेवक सब लिये हँकारी ॥७॥
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू ❋ आसन उचित देहु सब काहू ॥८॥

जब जनकजीने देखा कि भारी भीड़ हुई तब अपने पवित्र विश्वासी सब सेवकोंको बुलाकर कहा ॥७॥ अभी सब लोगोंके पास जाओ और सबको उचित (यथायोग्य) आसन दो॥८॥

दोहा—कहि मृदु वचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि ॥
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥ २८७ ॥

उन विश्वासी सेवकोंने बड़े कोमल नीतिके वचन कहकर नर-नारियोंको बैठाया और उत्तम, मध्यम, नीच छोटे पुरुष अपने-अपने योग्य स्थलपर बैठे ॥ २८७ ॥

राज कुँवर तेहि अवसर आये ❋ मनहुँ मनोहरता तन छाये ॥१॥
गुनसागर नागर वर वीरा ❋ सुन्दर श्यामल गौर शरीरा ॥२॥

उसी समय राजकुमार भी आये; मानो मनोहरता शरीरमें छा रही है ॥ १ ॥ गुणोंके समुद्र चतुर अच्छे वीर, सुन्दर सांवले और गोरे शरीर वाले हैं ॥ २ ॥

राज-समाज विराजत रूरे ❋ उडुगणमहँ जनु युग विधु पूरे ॥३॥
जिनकी रही भावना जैसी ❋ प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥४॥

राजसभामें दोनों भाई ऐसे शोभित होते हैं जैसे तारागणोंमें दो पूरे चन्द्रमा हों ॥ ३ ॥ जिनके मनमें जैसी भावना थी उन्होंने उसी प्रकार प्रभुकी मूर्ति देखी ॥ ४ ॥

देखहिं भूप महा-रण-धीरा ❋ मनहुँ वीररस धरे शरीरा ॥५॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी ❋ मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥६॥

बड़े रणधीर योद्धा राजा जब श्रीरघुनाथजीको देखने लगे तो उनको ऐसा ज्ञात हुआ कि मानो वीररस शरीर धारण करके आया है। यह "वीररस" है ॥ ५ ॥ खोटे राजा प्रभुको देखकर डरे, उनको यह मूर्ति बड़ी डरावनी दृष्टि आयी। यह "भयानक रस" है ॥ ६ ॥

रहे असुर छल छोनिप वेखा ❋ तिन प्रभु प्रकट कालसम देखा ॥७॥
पुरवासिन देखे दोउ भाई ❋ नर भूषण लोचन सुखदाई ॥८॥

जो राक्षस छलसे राजाका शरीर धारण कर आये उन्होंने प्रभुको कालके समान देखा इसमें "रौद्ररस" है ॥ ७ ॥ पुरवासियोंने दोनों भाइयोंको मनुष्योंमें भूषण और नेत्रोंको सुख देने वाला देखा। इस चौपाईमें "शृङ्गाररसकी कली" है, आगेके दोहेमें इसका विकास है ॥८॥

दोहा–नारि विलोकहिं हर्षि हिय, निज निज रुचि अनुरूप ॥
जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप ॥ २८८ ॥

स्त्रियाँ प्रसन्न हो अपनी-अपनी रुचिके अनुसार देखने लगीं; मानो शृङ्गाररस ही परम मनोहर मूर्ति धारण करके शोभित है ॥ २८८ ॥

विदुषन प्रभु विराटमय दीशा * बहु मुखकर पद लोचन शीशा ॥१॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे * सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥२॥

पंडितोंने प्रभुको विराटस्वरूप देखा, क्योंकि उनकी उपासनाका यही रूप है कि, बहुत मुख, हाथ, पांव, लोचन और शिर, जैसा यजुर्वेद में लिखा है–सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" अर्थात् विराट् पुरुषके सहस्रों शिर, नेत्र और चरण हैं, यह बीभत्स रस है ॥१॥ जनककी जातिके लोग ऐसे देखते हैं जैसे अपने सम्बन्धी प्यारे होते हैं ॥ २ ॥

सहित विदेह विलोकहिं रानी * शिशु समप्रीति न जाय बखानी ॥३॥
योगिन परम तत्त्वमय भासा * शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशा ॥४॥

राजा जनकजीके सहित रानी इस प्रकारसे देखती हैं जैसे गोदके पुत्रसे माता-पिता प्रेम करते हैं वह प्रेमसे कहा नहीं जाता यह "करुणारसकी कली" है ॥३॥ योगियोंको परमतत्त्व मय दिखाई दिये, शांतरस कैसा कि शुद्ध जिसमें किसी और रसका मिलाप नहीं तथा सम अर्थात् बराबर और स्वयं प्रकाशरूप है ॥ ४ ॥

हरि-भक्तन देखे दोउ भ्राता * इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥५॥
रामहिं चितव भाव जेहिं सीया * सो सनेह मुख नहिं कथनीया ॥६॥

हरिभक्तोंने दोनों भाइयोंको इष्टदेवके समान सबको सुख देनेवाला देखा ॥५॥ जानकीजी ने जिस भावसे श्रीरामचन्द्रजीको देखा वह स्नेह मुखसे नहीं कहा जाता ॥ ६ ॥

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ * कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ॥७॥
इहि विधि रहा जाहि जस भाऊ * तेहि तस देखेउ कोशल राऊ ॥८॥

जो भाव और स्नेह जानकीजीके हृदयमें है उसके कहनेका उन्हें भी सामर्थ्य नहीं है, मनमें ही अनुभव करती हैं। तब फिर कोई कवि उसको कैसे कहे ? ॥७॥ इस प्रकार जिसके हृदयमें जैसी भावना रही उसने वैसा ही श्रीरामचन्द्रजीको देखा ॥ ८ ॥

दोहा–राजत राज समाजमें, कोशल राज किशोर ॥
सुन्दर श्यामल गौर तनु, विश्व विलोचन चोर ॥ २८९ ॥

राजसमाजमें अयोध्याके राजाके पुत्र विराजते हैं जिनकी अवस्था थोड़ी है, सुन्दर श्याम और गोरे शरीरवाले हैं जो संसारके नेत्रोंको चुरानेवाले हैं। चोर-विद्याका तो इस दोहेमें

तलीझार वर्णन है चोरकी सबसे अधिक बड़ाई यह कि आंखोंका काजल चुरा ले, सो यह उससे बढ़कर है; क्योंकि विश्वकी आंखोंको चुरा लेते हैं। सो जब यह चोर विद्याकी निपुणता इनको किशोर अवस्थामें प्राप्त है तो न जाने आगे क्या करेंगे? और चोर छिपकर रातके समय राजसेवकोंसे डरा हुआ मूर्खोंके यहां चोरी करता है, यह ऐसे निपुण चोर हैं कि बड़ी सभामें दिनहीमें राजाओंके समाजमें निडर हो उनमें बड़ी वस्तु अर्थात् सम्पूर्ण विश्वकी चोरी की। चोरी करते हैं कि आंखोंसे देखकर चोर पकड़ा जाता है, सो यह उनको भी चुरा लेते हैं अब कौन देखे और कौन पकड़े? ॥ २८९ ॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ ❋ कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥१॥
शरदचन्द निन्दक मुख नीके ❋ नीरज नयन भावते जीके ॥२॥

यह दोनों मूर्ति सहजसे ही मनको हरनेवाली है कि करोड़ कामदेव की भी उपमा दी जाय तो वह भी थोड़ी है ॥ १ ॥ शरद (क्वार कार्तिकके) चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख हैं, कमलसे नेत्र मनभावने हैं ॥ २ ॥

चितवनि चारु मार मद हरनी ❋ भावत हृदय जाय नहिं बरनी॥३॥
कल कपोल श्रुतिकुण्डल लोला ❋ चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला॥४॥

जिनका सुंदर देखना कामका मद हरता है, जो मनको अच्छा लगे वर्णन नहीं होता ॥ ३ ॥ सुन्दर गाल, कानोंमें लटकते हुए कुंडल, दाढ़ी और होंठ सुंदर कोमलवाणी मन हरनेवाले हैं॥४॥

कुमुदबन्धु कर निन्दक हासा ❋ भृकुटी विकट मनोहर नासा ॥५॥
भाल विशाल तिलक झलकाहीं ❋ कचविलोकिअलिअवलिलजाहीं॥६॥

इनकी हँसी कुमुदबंधुकर अर्थात् चन्द्रमाकी किरणोंको निंदा करनेवाली हैं, भौहें टेढ़ी नासिका मन हरनेवाली है॥५॥ बड़े माथेपर तिलकझलक रहा है, बालोंकी श्यामलता देखकर भौंरे लजाते हैं।६।

पीत चौतनी शिरन सुहाई ❋ कुसुम कली बिच बीच बनाई ॥७॥
रेखा रुचिर कम्बुकल ग्रीवा ❋ जनु त्रिभुवन शोभाकी सीवा ॥८॥

पीली चौकोनी टोपी शिर पर शोभित है, बीच-बीचमें कुसुमकी कलियां लगाई है ॥७॥ शंखके समान शोभित गलेमें सुन्दर तीन रेखायें पड़ी हैं, मानो तीन लोककी परमशोभाकी सीमा हैं ॥८॥

दोहा—कुञ्जरमणि कण्ठा कलित, उर तुलसीकी माल ॥
वृषभकन्ध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु विशाल ॥ २९० ॥

सुन्दर मणि जो कुञ्जरमणि गजमुक्ता (हाथीके शिरमें होता है) उसका कंठा गलेमें पहने हैं और तुलसीकी माला हृदयमें धारण किये हैं आशय यह कि गजमुक्तासे राजपुत्र होना तुलसीकी मालासे मुनिका चेला होना प्रकट है। वृषके समान ऊँचे कन्धे, सिंहके सदृश चाल, बलके समुद्र, जिनकी बाहें बड़ी हैं ॥ २९० ॥

कटि तूणीर पीत पट बांधे ❋ कर शर धनुष वाम बर कांधे ॥१॥
पीत यज्ञ उपवीत सुहाये ❋ नखशिख मंजु महाछबि गाये ॥२॥

१. सवैया—"बरदन्तकि पंगति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलनकी। चपला चमकं घन बिज्जु जगं छबि मोतिन माल अमोलन की। घुंघरारि लटं लटकं मुख ऊपर कुण्डललोल कपोलनकी। निवछावर प्राण करे तुलसी बलिजाऊं लला इन बोलन की।

कमरमें तरकस और पीला पट बांधे हैं,हाथमें बाण श्रेष्ठ धनुष बांयें कांधेपर शोभित है यही शृंगार रस और वीर रससे प्रयोजन है, इस कारण नीचे का वर्णन नहीं किया॥ १॥पीला जनेऊ शोभायमान है; नखसे शिखा तक अधिक छबि छा रही है । वस्त्र महीन थे, इससे यज्ञोपवीत चमक रहा था ॥ २ ॥

देखि लोग सब भये सुखारे ❋ इकटक लोचन टरत न टारे ॥३॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई ❋ मुनिपद-कमल गहे तब जाई ॥४॥

देखकर सब लोग सुखी हुए,पलक बिसार नेत्रोंसे ऐसे देखने लगे कि नेत्र टारे नहीं टरते॥३॥ जनकजी दोनों भाइयोंको देखकर प्रसन्न हुए और तब जाकर विश्वामित्रके चरण पकड़े ॥४॥

करि विनती निज कथा सुनाई ❋ रंग अवनि सब मुनिहि दिखाई ॥५॥
जहँ जहँ जायँ कुँवर वर दोऊ ❋ तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ॥६॥

विनती करके सब अपनी कथा सुनायी और सब रंग भूमि मुनिको दिखायी । (कथा एक समय राजा जनक इस धनुषकी पूजा कर रहे थे तो जानकी भी उनके सङ्ग चली गयी थीं । मनमें विचारा कि; पिता इसी कारण यहां पूजन करने आते हैं; बड़ा श्रम होता है; अतः धनुष उठाकर घर ले आयीं । दूसरे कल्पकी कथा-जहाँ धनुष रखा था वहाँ पूजाके स्थानमें जानकीजीकी माता लीपा करती थीं; एक कोनेमें धनुष रहता था इस कारण तीन कोने लीपे जाते थे। एक दिन वे कुछ कार्य वश न जा सकीं; जानकीजी लीपने को गयीं उन्होंने धनुष उठाकर चारों कोनेमें लीप दिया । तीसरे कल्पकी कथा-सीता लड़कियोंके सङ्ग चाई--माई खेल रही थीं; हाथका झटका लगनेपर धनुष अपने स्थानसे हट गया, तब राजाने अचभित हो यह प्रण किया कि जो धनुष तोड़ेगा उसको कन्या ब्याह दूँगा । जनकजीने विश्वामित्र-जीसे यह कहा कि महाराज ! एक वर्षका प्रण किया था,कि वर्षमें जो धनुष तोड़ेगा उसको सीता ब्याह दूँगा उसमें केवल यही आजका दिन शेष है ॥ ५ ॥ जहाँ-जहाँ दोनों सुन्दर कुमार जाते हैं वहाँ-वहाँ सब कोई चकित हो देखने लगते हैं ॥ ६ ॥

निज निज रुचि रामहिं सब देखा ❋ कोउ न जान कछु मर्म बिसेखा॥७॥
भलि रचना मुनि नृपसन कहेऊ ❋ राजा मुदित महासुख लहेऊ ॥८॥

अपनी-अपनी रुचिसे रामजीको सबने देखा; परंतु इसका विशेष मर्म किसीने नहीं जाना ॥ ७ ॥ जब विश्वामित्रजीने राजासे कहा कि आपने अच्छी रचनाकी है तब राजा ऐसे शुभ शब्द सुनकर महासुखको प्राप्त हुए । (यह जाना कि धनुषको श्रीरामचन्द्रजी तोड़ देंगे)॥८॥

दोहा-सब मञ्चनते मंच इक, सुन्दर विशद विशाल ॥
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥ २९१ ॥

सब सिंहासनोंमें एक सिंहासन जो कि सुन्दर, उज्वल और सबसे बड़ा था, मुनि सहित दोनों भाइयोंको राजाने वहां बैठाया ॥ २९१ ॥

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे ❋ जनु राकेश उदय भये तारे ॥१॥
असि प्रतीति सबके मनमाहीं ❋ राम चाप तोरब शक नाहीं ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सब अपने मनमें हार गये जैसे शरदमें पूर्ण चन्द्रमाके उदय होने पर तारे हार जाते हैं ॥ १ ॥ सबके मनमें ऐसा विश्वास हुआ कि श्रीरामचन्द्रजी निस्सन्देह धनुष तोड़ देंगे अथवा न भी तोड़ें तो भी ॥ २ ॥

बिनु भंजेउ भव धनुष विशाला ❋ मेलिहिं सीय राम उर माला ॥३॥
अस विचारि गवनहु घर भाई ❋ जय प्रताप बल तेज गँवाई ॥४॥

बिना शिवजीका विशाल धनुष तोड़े हुए भी जानकीजी श्रीरामचन्द्रजी के गलेमें जयमाला डाल देंगी ॥३॥ ऐसा विचार भाइयो ! जय,प्रताप,बल, तेज गँवाकर घरको चले जाओ॥४॥

बिहँसे अपर भूपसुनि बानी ❋ जे अविवेक अन्ध अभिमानी॥५॥
तोरेउ धनुष व्याह अवगाहा ❋ बिनु तोरे को कुँवरि विवाहा ॥६॥

यह वाणी सुनकर दूसरे राजा हँसे,जो अज्ञानसे अन्धे और अभिमानी हैं वे फिर बोले॥५॥ धनुष तोड़ कर भी व्याह होना कठिन है तो विना तोड़े कुमारी को कौन व्याह सकेगा?॥६॥

एक बार कालहु किन होऊ ❋सियहित समर जितब हम सोऊ॥७॥
यह सुनि अपर भूप मुसकाने ❋ धर्म शील हरिभक्त सयाने ॥८॥

एक बार तो काल भी क्यों न हो जानकीजीके हेतु हम उसको युद्धमें जीतेंगे ॥ ७ ॥ यह सुनकर और राजा मुसकाये, जो धर्मशील नारायणके भक्त और चतुर थे ॥ ८ ॥

सोरठा-सीय विवाहब राम, गर्व दूर करि नृपनको ॥
❋ जीति को सक संग्राम, दशरथके रन बांकुरे ॥ ३४ ॥

वे बोले सीताजी को तो राजाओंका घमण्ड दूर कर श्रीरामचन्द्रजी ही विवाहेंगे; इनको कौन समरमें जीत सकता है ? यह महाराज दशरथजीके पुत्र रणमें बड़े बाके हैं ॥ ३४ ॥

वृथा मरहु जनि गाल बजाई ❋ मन मोदक नहिं भूख बुताई ॥१॥
सिख हमारि सुन परम पुनीता ❋ जगदम्बा जानहु जिय सीता ॥२॥

वृथा गाल बजाकर मत मरो। मनके मोदकोंसे भूख नहीं बुझती ॥ १ ॥ हमारी परम पवित्र शिक्षा सुनो। जानकीजीको जगन्माता जीमें जानो ॥ २ ॥

जगत पिता रघुपतिहि विचारी ❋ भरिलोचन छबि लेहु निहारी ॥३॥
सुन्दर सुखद सकल गुणरासी ❋ यह दोउ बन्धु शंभु उरवासी ॥४॥

और जगतके पिता श्रीरामचन्द्रजीको विचार नेत्र भरकर छबि देख लो ॥ ३ ॥ सुन्दर और सुख देनेवाले सब गुणोंकी राशि ये दोनों शिवजीके हृदयमें बसनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सुधा-समुद्र समीप बिहाई ❋मृग जल निरखि मरहु कत धाई॥५॥
करहु जाय जाको जोइ भावा ❋ हम तो आज जन्म फल पावा॥६॥

अमृत समुद्रके निकटमें छोड़ मृगतृष्णाका जल देखकर क्यों मरते हो ? ॥ ५ ॥ जिसको जो अच्छा लगे वही जाकर करे; हमने तो आज जन्मका फल पा लिया ॥ ६ ॥

अस कहि भले भूप अनुरागे ❋ रूप अनूप विलोकन लागे ॥७॥
देखहिं सुर नर चढ़े विमाना ❋ वर्षहिं सुमन करहिं कल गाना॥८॥

ऐसा कहकर भले राजा बड़े प्रेमसे श्रीरामचन्द्रजीका उपमारहित रूप देखने लगे ॥ ७ ॥ विमानोंमें चढ़े हुए आकाशसे देवता देखते हैं और फूल बरषाकर सुन्दर गान करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बुलाय ॥
चतुर सखी सुन्दरि सकल, सादर चलीं लिवाय ॥ २९२ ॥

तब अच्छा अवसर जानकर जनकजीने सीताको बुला भेजा और सब चतुर सखियाँ जो सुन्दर भी हैं वे जानकीजीको आदरसे लिवा ले चलीं ॥ २९२ ॥

सिय शोभा नहिं जाय बखानी * जगदंबिका रूप गुणखानी ॥१॥
उपमा सकल मोहिं लघु लागी * प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥२॥

जानकीजीकी शोभा बखानी नहीं जाती जगत्‌की माता रूप गुणकी खान हैं ॥ १ ॥ गोसाईंजी कहते हैं-मुझको सब उपमा छोटी लगती हैं क्योंकि वे प्राकृत स्त्रियोंके अंगोंमें अनुराग किये हैं अर्थात् कवियोंने वह साधारण स्त्रियोंको दी हैं ॥ २ ॥

सीय वरणि जेहि उपमा देई * कुकवि कहाय अयश को लेई ॥३॥
जो पटतरिय तीय सम सीया * जग अस युवति कहाँ कमनीया ॥४॥

सीताके वर्णनमें उस उपमाको देखकर अधम कवि नाम कहाकर कौन अपयश ले ॥ ३ ॥ जो जानकीजी की उपमाको किसी स्त्रीसे दें तो जगत्‌में ऐसी सुन्दर स्त्री कौन है ? ॥ ४ ॥

गिरा मुखर तन अर्ध भवानी * रति अति दुखित अतनुपति जानी ॥५॥
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही * कहिय रमा सम किमि वैदेही ॥६॥

सरस्वती मुखर अर्थात् बहुत बोलनेसे दोषयुक्त है; भवानीको अर्धांगका दोष है और रति (कामकी स्त्री) अति दुःखित है; क्योंकि उसका पति अंगरहित है अतः वियोगिनी है॥५॥ जिन लक्ष्मीके विष और मदिरा दोनों प्यारे भ्राता हैं, उनके समान जानकीजीको कैसे कहें ? समुद्रसे विष, वारुणी और लक्ष्मी निकली हैं और जहां लक्ष्मी होती हैं वहां मादक द्रव्य स्वयं आ जाते हैं यदि कोई तर्क करे कि स्त्रीलिंग होनेसे वारुणी बन्धु नहीं हो सकती तो यह अर्थ है कि जिस लक्ष्मीका विष बन्धु है, जिससे वारुणी प्रिय है उसको सीताजीके समान कैसे कहें ? अथवा वारुणीका प्रिय बन्धु विष जिसको प्यारा है उस लक्ष्मीके समान जानकीजीको कैसे कहें ? ॥६॥

जो छबि सुधा पयोनिधि होई * परमरूपमय कच्छप सोई ॥७॥
शोभा रजु मंदर श्रृंगारू * मथै पाणि पंकज निज मारू ॥८॥

जो छबि सुधाका समुद्र हो और उसमें परम रूप कच्छप हो ॥७॥ शोभाकी रज्जु अर्थात् रस्सी हो और शृङ्गार मंदर (पर्वत-मथानी हो और काम अपने करकमलसे मथे) ॥ ८ ॥

दोहा-इहि विधि उपजै लक्ष्मि जब, सुन्दरता सुखमूल ॥
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥ २९३ ॥

इस प्रकारसे जब लक्ष्मी सुन्दरता और सुखकी मूल उपजे तो भी सीताजी को लक्ष्मीके समान कहने में अर्थात् सीताजीको उपमेयके स्थानमें और उस लक्ष्मीको उपमाके स्थानमें रखनेसे कविको सँकोच होता है ॥ २९३ ॥

चलीं संग लै सखी सयानी * गावत गीत मनोहर बानी ॥१॥
सोह नवल तनु सुन्दर सारी * जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥२॥

सभाकी रीति जाननेवाली चतुर सखी जानकीजीको संग लेकर चलीं और मनोहर वाणीसे गीत गाने लगीं॥१॥ नवल अर्थात् नवीन शरीरपर सुन्दर सारी शोभित है और जगत्‌की माता

अतुलित छबिसे भरी हैं। यहां चौपाईके एकपल्लेमें शृङ्गार रस और दूसरेमें शांतरस है इसको "विरोधाभास" कहते हैं क्योंकि शृङ्गारसे और शांतमें विरोध है परंतु यहां दोनोंके इकट्ठा कर देनेका प्रयोजन यह कि; शृङ्गारसे जो कहने वा सुननेवालेका चित्तरूपी पत्ता उड़े तो शांत रसके अतुलित भारी पहाड़से दब जाय। दूसरा अर्थ यह कि तनुसे जो भारी नूतन और तन अर्थात् बड़ी है जगज्जननी अतुलित छबिसे भर गयी हैं, वह शोभा समान है, तीसरा अर्थ यह कि, इसी मूल तनुसे सारी सुन्दर रतिरंभादि शोभा पाती हैं, और अतुलित भारी जो जगज्जननी पार्वती लक्ष्मी, सरस्वती आदिक हैं वे इसी नवलतनुसे शोभित हुई हैं, चौथा अर्थ यह जो सब सखियां ऐसी हैं कि, उनका तनु जगज्जननी की अतुलित और भारी छबिसे भर गया है वे शोभित हैं। अथवा भारी अर्थात् सब नवीन तनुवाली युवा अवस्था में प्राप्त हैं और सुन्दर हैं परंतु जगन्माताकी छबि अतुलित है अथवा जगत्में अतुलित छबि जो भारी है उसकी जननी सारी है वही नवीन तनुपर शोभित है इससे शृङ्गार रस ही पूर्ण है ॥ २ ॥

भूषण सकल सुदेश सुहाये ❋ अंग अंग रचि सखिन बनाये ॥३॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी ❋ देखि रूप मोहे नर नारी ॥४॥

सब गहने जो रंभादिकके अंग कालदेशमें पड़कर दुबले हो गये थे वे श्री जानकीजीके अङ्ग सुदेशमें आकर मोटे हो गए और अङ्गसे शोभाको प्राप्त हुए, उनको एक-एकके अनु-सार रचकर सखियों ने बनाया ॥३॥ जब रंग भूमिमें जानकीजीने पग धारण किया तो रूप देखकर नरनारी मोहित हो गए। अथवा जब जानकीजीने पग धारण किया तो रूप देखकर नरनारी मोह हो गये, नारियोंके मोहनेमें सन्देह नहीं करना, क्योंकि जानकीजी प्राकृत नारी नहीं हैं वा मोहित हो मनुष्योंने गर्दनें झुका लीं ॥ ४ ॥

हर्षि सुरन दुन्दुभी बजाई ❋ वर्षि प्रसून अपसरा गाई ॥५॥
पाणि सरोज सोह जयमाला ❋ औचक चितये सकल भुवाला ॥६॥

(गंधर्वनामक) देवताओंने प्रसन्न हो बाजे बजाये और फूल वर्षाकर अप्सराओंने गाया ॥५॥ जिन जानकीजीके कमलसे हाथमें जयमाला शोभित है उन्होंने औचक हो सब राजाओंको देखा॥६॥

सीय चकित चित रामहिं चाहा ❋ भये मोह वश सब नर नाहा ॥७॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई ❋ लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥८॥

फिर सीताजीने चकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीकी इच्छा की, यह देखकर सब राजा मोहके वश हो गये ॥ ७ ॥ मुनियोंके समीप दोनों भाइयोंको देखा वा जिन दोनों भाइयोंके समेत तदीय शृङ्गारकी प्रबलताके अधीन हो मुनि बैठे हैं उनको जानकीजीके लोचन (अपनी निधि पाई) अर्थात् ललक कर देखने लगे। जैसे खोई हुई वस्तु पाता है और ललक कर उसकी ओर देखता है ॥ ८ ॥

दोहा-गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि ॥
लगी विलोकन सखिन तनु, रघुवीरहि उर आनि ॥ २९४ ॥

गुरुजनोंका बड़ा समाज देख बड़ी लाजसे लज्जित हो जानकीजी सकुचायीं। सीय और रघुवीर नाम अर्थानुकूल है। सीताजीको शीतलता हुई और रघुवीर इसलिए कहा कि वीरता प्रगट करनेका समय है, अतः रामजीको हृदयमें धारणकर सखियोंकी ओर देखने लगीं ॥२९४॥

राम-रूप अरु सिय छबि देखी * नर नारिन परिहरी निमेखी ॥१॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं * विधिसन विनय करहिं मनमाहीं ॥२॥

श्रीरामचंद्रजीका रूप और जानकीजीकी छबि देखकर नरनारी एकटक रह गये पलक गिराना छोड़ दिया॥१॥सब सोचने लगे और कहनेमें सकुचाये, विधातासे विनती मनमें ही करने लगे॥२॥

हरु विधि वेगि जनक जड़ताई * मति हमारि असि देहु सुहाई ॥३॥
विन विचार प्रण तजि नर नाहू * सीय रामकर करहिं विवाहू ॥४॥

हे विधाता ! जनककी जड़ता शीघ्र हर लो और हमारी ऐसी सुन्दर मति दो। विधि इससे कहा कि, जनक अविधि करते हैं ॥ और वेगि कहनेका प्रयोजन कि आजका ही समय है, कल न रहेगा॥३॥विना विचारे प्रण त्यागकर राजा जानकीजीके सङ्ग श्रीरामचंद्रजीका व्याह कर दें। नरनाहू (नरोंके स्वामी) जनकजीको इस कारण कहा कि, उनको अर्थपर दृष्टि चाहिये क्योंकि राजाओंका यह धर्म है दूसरा यह कि नरनाह धर्म नरोंका पालना है सो जो बिना विचारे किया, उसके छोड़नेसे नरोंका पालन होता है और सीयरामका विवाह होता है अतः यह प्रण इन अर्थोंके विरुद्ध है ॥ ४ ॥

जगभल कहहिं भाव सब काहू * हठ कीन्हे अन्तहुं उर दाहू ॥५॥
यहि लालसा मगन सब लोगू * वर सांवरो जानकी-योगू ॥६॥

जगत् भला कहेगा और सब किसीको अच्छा लगेगा, हठ करनेसे अन्तमें हृदयको दाहही होगा ॥५॥ इसी लालसामें सब लोग मग्न हैं कि यह साँवरा वर जानकीके योग्य है ॥ ६ ॥

अथ क्षेपक

रावण बाणासुर तब आये * देखि लोग अतिशय भयपाये ॥१॥
सकल परस्पर करहिं विचारा * अब धौं कहा करहिं करतारा ॥२॥

उसी समय वहां रावण और बाणासुर आये; उनको देखकर सब लोग बहुत डरे ॥ १ ॥ और परस्पर सब विचार करने लगे कि न जाने अब ईश्वर क्या करेगा ॥ २ ॥

क०-याके दशशीश बीसबाहु डोलै शैल मानो याके एकशीशबाहू दीरघ हजार हैं।
दोनों लाल चंदनको दीन्हे हैं त्रिपुंड़ भाल पहरे रुद्राक्ष माल छाये तनु छार हैं ॥
दोनों अतिबली भायो दोनों जग जीत पायो दोनों भय देत देखे तनु विकरार हैं।
दोनों धनु तोरैं ताको कौन है उपाय हाय शोकते उधारको उधार करतार हैं॥१॥

सभाके लोग परस्पर कहने लगे कि इनमें एकके दश शिर और बीस हाथ पहाड़के समान डोलते हैं, एकके शिर तो एक, परंतु बाहें हजार हैं दोनों माथे पर लाल चन्दनका त्रिपुण्ड्र लगाये रुद्राक्ष की माला पहने;शरीरमें भस्म रमाये, दोनों बलवान् जगत्के जीतने वाले और दोनों डरावने भयंकर शरीर धारे हैं, यह धनुष दोनों ही तोड़ डालेंगे, हाय ! अब इसका क्या उपाय हो ? ईश्वर इस शोकको दूर करेंगे ॥ १ ॥

तब रावण बोल्यो हरषाई * कहौं सिया सो देहु बताई ॥३॥
धनुष तोरि लै जावहुँ अबहीं * बोलो बाणासुर अस तबहीं ॥४॥

तब रावण प्रसन्न होकर बोला-बताओ जानकी कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ मैं धनुषको तोड़कर अभी ले जाऊँ, तब बाणासुर इस प्रकार बोला ॥ ४ ॥

गुरु-धनु धऱ्यो विचारत नाहीं ❋ मारत काहे गाल वृथाहीं ॥५॥
तुम राखत अति गर्व सुरारी ❋ तब रावण सुनि बात उचारी ॥६॥

यह गुरुका धनुष रखा हुआ है विचारते नहीं, वृथा बकबाद क्यों करते हो ? ॥ ५ ॥ रावण ! तुम तो बड़ा अहंकार करते हो, यह सुनकर रावण बोला ॥ ६ ॥

क०-मेरे भुजदंडनते देखिखण्डखण्डदंड भाजिकै ब्रह्माण्डहूंते काल कीन्हों गौन है।
परम प्रचण्ड नवखण्ड में अखण्ड फैलो देखिकै प्रताप मारतंड डोले मौन है ॥
देत देत दण्ड धननाथ भये द्रव्यहीन सुनत कोदण्ड चण्ड इंद्र मानो जौन है।
बाहुदण्ड छत्रदंड सो सुमेरु तोलौ जायकीन्हो मुण्डमालिको कोदंड गर्व कौनहै२॥

रावण बोला-मेरे भुजदण्डोंसे जगत् को खण्ड-खण्ड देखकर वा दण्डको खण्ड २ देखकर काल भी तो ब्रह्माण्डसे भाग गया और मेरा तीक्ष्ण प्रताप नवखण्डमें फैला रहा है, जिस प्रतापको देख सूर्य भी मौन धर चलता है, मैंने कुबेरको दण्ड देते-देते द्रव्यहीन कर डाला है, मेरे धनुषका शब्द सुन इन्द्र कांपता है मैंने अपनी बाहुरूपी दण्डपर छत्रके समान मेरुको उठा लिया, फिर शिवजीके पुराने धनुष उठानेसे क्या अहंकार है ॥ २ ॥

बाणासुर तब कह्यो रिसाई ❋ हो तुम बड़े असुर अन्याई ॥७॥

तब बाणासुर बोला-तुम बड़े अन्यायी राक्षस हो (देखो) ॥ ७ ॥

क०-जोईभगवानवरदानदाता तीनो लोकतीन पाय पृथ्वी हेतु वेष बड़ लीनो है।
आयेतातपासचीन्होतापैनानिराशकीन्होदीन्होदानलीन्होऊनोमानिरोषभीनो है॥
भाष्यो पितुलीजै मोहिदानीदानद्रव्यतुल्यहोहिपाणिदोईपालरेकैतोलि दीन्हो है।
पर्व शर्वरीश जाते सर्व यश सर्वभाषैं रे रे तेरे ऐसे गर्व हौंहू नाहीं कीन्हो है ॥३॥

जो भगवान् तीनोंलोकको वर देनेवाले हैं, जिन्होंने तीन चरण पृथ्वी लेनेके निमित्त बड़ा वेष वामनजीका बनाया और जब पिताके पास आये और बलिने पहिचान भी लिया तथापि निराश न किया और जब उन्होंने थोड़ासा दान मांगा तब पिताने रोषकर कहा क्यों मेरी हँसी करते हो, मुझको देखकर दान मांगिये तब उनके बहुत हठ करनेसे मैंने ही जल लाकर उनके हाथमें दिया, निदान जो दान उनको दिया उसका यश त्रिलोकी गा रही है और चन्द्र सूर्य साक्षी हैं परंतु तेरासा तो घमंड मैंने भी नहीं किया ॥ ३ ॥

तब रावण बोला

सवैया-एकहि शीशकि कौन धरी सिगरे जग यो सरसों सम सो है।
तीनहि शेषके वेष शरीरमें सूक्षम कीन्हे अभूषण जो है ॥
सो शिव वास कियो जेहि शैल सो कौर भयो करि एकहि को है।
हौं नहिं गर्व करौं करै कौन प्रशंसत जाहि हरी हर तो है ॥

रावण बोला-एक शिरकी कौन चलायी, सारा जगत् सरसोंके समान जिसके शिरपर शोभित होता है उन शेषजीका एक सूक्ष्म गहना शरीरमें पहरनेका जिन्होंने बना लिया है वे शिव जिस

पर्वतपर रहते हैं वह मैंने एक हाथसे उठा लिया, तो मैं गर्व न करूं तो कौन ? करे जिसकी शिवजी भी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

सवैया-पीन पिनाक पुरारिकोयों विरच्यो विधि लेकर वज्रको सार है ।
याकी न जानत हैं गुरुता नहिं सीख गनै गुन्यों पूरो गवाँर है ॥
आपनो गर्व गवाँवनको धनु तोरनको शठ कीन्हो विचार है ।
जो बढ़के बसते बलके अवलोकत है सो तो नाऊको बार है ॥५॥

शिवजीका पुराना धनुष नहीं-यह बड़ा दृढ़ है और विधाताने वज्रका सार लेकर रचा है। अरे ! तू इसकी गुरुआई नहीं जानता और न सुनता है इससे पूरा गँवार विदित होता है। यह अपना गर्व गवाँनेको ही तूने धनुष तोड़नेका विचार किया है, जो बलसे बढ़कर बातें बोलता है वह तो नाईका बाल है ॥ ५ ॥

धनुष तोरि तोरहुँ मद तोरौं * पुरी उठाय वारिनिधि बोरौं ॥१॥
अस कहि धनुष उठावन लागा *उठ्यो न तब कह बाण अभागा ॥२॥

तब रावण बोला-धनुष तोड़कर तेरा भी मद तोड़ूँगा और तेरी पुरी उठाकर, समुद्रमें डुबा दूँगा ॥१॥ ऐसा कहकर धनुषको उठाने लगा पर न उठा,तब बाणासुर बोला अरे अभागे॥२॥

सवैया-कर जो करमें कैलास लियो अब कैसे क नाक सिकोरत है ।
दइ तालन बीस भुजा झहराय झकै धनुको झकझोरत है ॥
तिल एक हलै न हलै वसुधा रिस पीसके दाँतन तोरत है ।
मनमें यह ठीक भयो हमरे मद काको महेश न मोरत है ॥ ६ ॥

देखो सभाके लोग ! जिसने हाथमें कैलास लिया है, अब वह कैसे नाक सिकोड़ता है ? बीसों भुजा तालके समान झहराती हैं और धनुषको अनेक प्रकारसे झकझोरता है पर वह एक तिल नहीं हिलता और पृथ्वी हिलती है क्रोधके मारे दांत पीस रहा है, निदान यह हमने मनमें निश्चय कर लिया कि शिवजी किसका मद नहीं तोड़ते ! ॥ ६ ॥

यह कहि धनु परदक्षिण करिकै * बाणासुर निकस्यो मुद भरिकै ॥१॥
तब रावण बोला रिसिआई * जादू यामें परत दिखाई ॥२॥

यह कहकर बाणासुर धनुषकी प्रदक्षिणा कर प्रसन्न हो वहांसे चला गया ॥ १ ॥ तब रावण क्रोध करके बोला कि मुझको तो इस धनुषमें जादू सा दीखता है ॥ २ ॥

वैसेइ लै जाऊँ सिय अबहीं * भइ अकाशवाणी यह तबहीं ॥३॥
तव कुम्भीनसि कन्या जोई * लिये जात मधु दानव कोई ॥४॥

तो अब वैसे ही इस कन्याको ले जाऊँ उसी अवसरमें आकाशवाणी हुई ॥ ३ ॥ अरे रावण ! तेरी कन्या कुम्भीनसीको मधु दैत्य लिए जाता है। (मेघनाद यज्ञमें है, विभीषण जप करने गया और कुम्भकर्ण सोता है) ॥ ४ ॥

सुनि रावण बोला दुख पाई * ताको लाऊँ अबहि छुड़ाई ॥५॥
अस कहि तुरत गयो असुरारी * भये सभाके नृपति सुखारी ॥६॥

सुनकर रावण दुःखित हो बोला मैं अभी जाकर उसको छुड़ा लाता हूँ ॥ ५ ॥ यह कह तुरंत वहाँसे चला गया और सभाके राजा सुखी हो गये ॥ ६ ॥

इति क्षेपक

तब बन्दीजन जनक बुलाये ❀ विरुदावली कहत चलि आये ॥७॥
कह नृप जाय कहहु प्रण मोरा ❀ चले भाट हिय हर्ष न थोरा ॥८॥

तब जनकजीने भाटोंको बुलाया; वे पुरुषोंकी कीर्ति कहते हुए आये। बुलानेसे आनेका कारण यह था कि वे भी रामजीका रूप देखकर अपनेको भूल गए थे) ॥ ७ ॥ राजाने कहा हमारा प्रण जाकर कहो। यह सुनकर भाट चले, जिनके मनमें बड़ा हर्ष है अथवा राजाकी आज्ञासे भाट चले, परंतु उनके मनमें कुछ भी हर्ष नहीं है, क्योंकि राजाने प्रण नहीं त्यागा ॥८॥

दोहा-बोले बंदी वचनवर, सुनहु सकल महिपाल ॥
प्रण विदेह कर करहिं हम, भुजा उठाइ विशाल ॥ २९९ ॥

तब बन्दीजन यह श्रेष्ठ वचन बोले-हे सब राजाओ ! सुनो ! हम अपनी बड़ी भुजा उठाकर राजा विदेहका प्रण कहते हैं विदेहका आशय यह कि भाटोंको यह प्रण अच्छा नहीं लगता अतः कहते हैं कि देही भी ऐसा नहीं करते, यह राजा जो विदेही हैं उनका प्रण सुनो जो विशाल है वा हम उस प्रणको कहते हैं जो बड़े-बड़े राजाओंको देह रहित करनेवाला है ॥ २९९ ॥

नृप भुजबल विधु शिव धनुराहू ❀ गरुअ कठोर विदित सब काहू ॥१॥
रावण बाण महाभट भारे ❀ देखि शरासन गवहिं सिधारे ॥२॥

राजाओंकी भुजाओंका बल चन्द्रमा है; उसके ग्रास करनेको यह शिवका धनुष राहु है, इसका भारी और कठोरपन सब कोई जानते हैं ॥१॥ कि रावण और बाणासुर जो बड़े-बड़े योद्धा थे वे इस धनुषको देखकर ही चले गये, उन्होंने छुवा भी नहीं ॥ २ ॥

सोइ पुरारि कोदंड कठोरा ❀ राज-समाज आज जेइ तोरा ॥३॥
त्रिभुवन जय-समेत वैदेही ❀ विनहि विचारि वरै हठि तेही ॥४॥

वही शिवके धनुषोंमें सबसे अधिक कठोर यह धनुष आज राजाओंके समाजमें जो तोड़ेगा-कठोर कहनेका भाव यह कि, धनुष और भी हैं पर यह कठोर है। आज इस लिये कहा कि कलका नियम नहीं क्योंकि आज प्रणकी अवधि पूरी हुई ॥ ३ ॥ वह त्रिभुवनकी जय वैदेही सहित वा वैदेही जो त्रिभुवनकी जय समेत है, उसको विना विचारे वर सकेगा इसमें राव रंकका विचार न होगा ॥ ४ ॥

सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे ❀ भट मानी अतिशय मनमाषे ॥५॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई ❀ चले इष्टदेवन शिरनाई ॥६॥

प्रण सुन सब राजाओंने अभिलाषा की पर भटमानी जो कि बलका घमंड रखते थे उन्होंने मनमें अधिक क्रोध किया ॥५॥ अपनी अपनी कमर बांधकर घबड़ा उठे और इष्टदेवताओंको शिर नवाकर चले (शंका) इष्टदेवताओंको शिर नवानेपर भी मनोरथ सिद्ध क्यों न हुआ ? (उत्तर) राजाओंकी उपासना सत्य नहीं थी वे कुटिल थे अच्छे राजा तो धनुषके निकट भी नहीं गये तथा "जिनके कुछ विचार मनमाहीं। चाप समीप महीप न जाहीं" अथवा वे राजा ऐसे आतुर होकर चले कि "इष्टदेव न शिर नाई" इष्टदेवको भी शिर न नवाया, इससे मनोरथ सिद्ध न हुआ। श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख देवता क्या कर सकते हैं ? ॥ ६ ॥

तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं * उठइ न कोटि भाँति बल करहीं ॥७॥
जिनके कछु विचार मन माहीं * चाप समीप महीप न जाहीं ॥८॥

क्रोधसे देखकर निशाना लगाकर शिवका धनुष पकड़ते हैं परंतु अनेक भांति बल करनेपर भी नहीं उठता ॥७॥ जिन राजाओंके मनमें कुछ ज्ञान है वे धनुषके पास भी नहीं जाते ॥ ८ ॥

दोहा-तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाय ॥
मनहुँ पाय भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआय ॥२९६॥

मूढ़ राजा तमक कर धनुषको पकड़ते हैं, पर जब नहीं उठता है तो लजाकर चल देते हैं और धनुष मानो राजाओंका बल पाकर अधिक भारी होता जाता है ॥ २९६ ॥

भूप सहस दश एकहि बारा * लगे उठावन टरै न टारा ॥१॥
डगै न शम्भु शरासन कैसे * कामी वचन सतीमन जैसे ॥२॥

दश हजार राजा एकही बार धनुष उठाने लगे, पर वह टससे मस न हुआ (शंका) यदि धनुष टूट जाता तो जानकी किससे ब्याही जाती ? (उत्तर) उन्होंने सोचा होगा कि युद्ध कर लेंगे, जो बली होगा उसको जानकी मिल जायगी। अथवा एक दिनमें दश हजार राजाओंने उठाया परंतु वह टाले न टला ॥ १ ॥ शिवजीका धनुष कैसे नहीं डिगता है कि जैसे कामी पुरुषके वचनसे सती स्त्रीका मन चलायमान नहीं होता ॥ २ ॥

सब नृप भये योग उपहासी * जैसे विन बिराग संन्यासी ॥३॥
कीरति विजय पताका भारी * चलै चापकर बरबस हारी ॥४॥

सब राजा हँसीके योग्य हो गये जैसे विना वैराग्यके संन्यासी हास्य योग्य होता है॥३॥ कीर्ति, विजय, बड़ी बीरता इत्यादि धनुषके हाथ बरबश हार चले ॥ ४ ॥

श्री हत भये हारि हिय राजा * बैठे निज निज जाय समाजा ॥५॥
नृपन विलोकि जनक अकुलाने * बोले वचन रोष जनु साने ॥६॥

सब राजा हृदयमें हारकर शोभा हीन होगये और अपने समाजमें जा बैठे ॥ ५ ॥ राजाओंको देखकर जनकजी व्याकुल हो गये और ऐसे वचन बोले जैसे कि क्रोध सने हों ॥ ६ ॥

दीप दीपके भूपति नाना * आये सुनि हम जो प्रण ठाना ॥७॥
देव दनुज धरि मनुज शरीरा * विपुल वीर आये रणधीरा ॥८॥

हमारे प्रणको सुनकर द्वीप-द्वीपके अनेक राजा आये ॥ ७ ॥ बड़े वीर रणधीर आये और देवता, दैत्य भी मनुष्य शरीर धारण कर आये ॥ ८ ॥

दोहा-कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ॥
पावन हार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥ २९७ ॥

यदि कुमारी जानकीजीको मनोहर कहें तो बन नहीं सकता, क्योंकि अपनी कन्याका कोई शृङ्गार वर्णन नहीं करता, इस कारण यह अर्थ है कि, यहां कुँवारी मनोहर अर्थात् बड़ी विजय त्रिलोककी अति उत्तम सुन्दर कीर्तिरूप कुँवारी है उसका पानेवाला और धनुष तोड़नेवाला क्या ब्रह्माजीने रचा ही नहीं ? इस दोहेमें यह ध्वनि है कि धनुष तोड़नेवाला श्रीरामचन्द्रजी और सीता जो कि विजय और कीर्तिरूप हैं उनको ब्रह्माजीने नहीं रचा, यथा-"आप प्रगट भये विधि न बनाये" ॥ २९७ ॥

कहहु काह यह लाभ न भावा * काहु न शंकर चाप चढ़ावा ॥१॥
रहा चढ़ाउब तोरब भाई * तिलभरि भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥२॥

कहो भाई क्या लाभ किसीको नहीं भाता? जो किसीने भी शिवजीका धनुष नहीं चढ़ाया? ॥ १ ॥ चढ़ाना तोड़ना तो अलग रहा, तिलभर पृथ्वीसे नहीं छुड़ा सके ॥ २ ॥

अब जनि कोउ माखै भट मानी * बीर विहीन मही मैं जानी ॥३॥
तजहु आश निज निज गृह जाहू * लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ॥४॥

अब कोई वीरपनका घमंड मत करना, मैंने जाना कि पृथ्वीमें कोई वीर नहीं रहा ॥ ३ ॥ अब आशा त्यागकर अपने-अपने घरको जाओ, विधाताने जानकीका विवाह नहीं लिखा ॥४॥

सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ * कुँवरि कुँवारि रहउ का करऊँ ॥५॥
जो जनतेउँ बिनु भट भुइँ भाई * तौ प्रण करि होतेउँ न हँसाई ॥६॥

जो प्रण छोड़ूँ तो पुण्यका नाश होता है, अब सीता कुँवारी रहे तो मैं क्या करूँ? ॥५॥ जो जानता कि पृथ्वी वीर रहित है तो प्रण करके हँसीके योग्य नहीं होता ॥ ६ ॥

जनक वचन सुनि सब नर नारी * देखि जानकिहि भये दुखारी ॥७॥
माखे लषण कुटिल भइ भौंहैं * रद पुट फरकत नयन रिसौंहैं ॥८॥

जनकजीके वचन सुनकर सब नर-नारी जानकीजीको देखकर दुःखी हुए ॥ ७ ॥ परंतु लक्ष्मणजीको क्रोध आ गया; भृकुटी टेढ़ी हुई होंठ फड़कने लगे और नेत्रोंमें क्रोध छा गया ॥ ८ ॥

दोहा—कहि न सकत रघुवीर डर, वचन लगे जनु बाण ॥
नाय राम पद कमल शिर, बोले गिरा प्रमाण ॥ २९८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके डरसे कह नहीं सकते परंतु जनकजीके वचन बाणके समान लगे अन्तको श्रीरामचन्द्रजीके चरण कमलोंमें शिर नवाकर प्रामाणिक वाणी बोले ॥ २९८ ॥

रघुवंशिन महँ जहँ कोउ होई * तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥१॥
कही जनक जस अनुचित बानी * विद्यमान रघुकुल मणि जानी ॥२॥

रघुवंशियोंमें जहाँ कोई बैठा होगा उस समाजमें ऐसा कोई भी नहीं कहेगा ॥ १ ॥ जैसी अनुचित वाणी जनकजीने रघुकुलके मणि श्रीरामचन्द्रजीके रहते कही है ॥ २ ॥

सुनहु भानुकुल-पंकज भानू * कहउँ स्वभाव न कछु अभिमानू ॥३॥
जौ तुम्हार अनुशाशन पाऊँ * कन्दुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ ॥४॥

हे सूर्यकुलकमलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजी! आप श्रवण कीजिये। मैं स्वभावसे कहता हूँ अभिमानसे नहीं ॥ ३ ॥ जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंदके समान ब्रह्मांडको उठाऊँ ॥ ४ ॥

कांचे घट जिमि डारउँ फोरी * सकउ मेरु मूलक इव तोरी ॥५॥
तव प्रताप महिमा भगवाना * का बापुरो पिनाक पुराना ॥६॥

कच्चे घड़ेके समान इसको फोड़ डालूँ और सुमेरु पर्वतको मूलीके समान तोड़ डालूँ ॥५॥ हे भगवन्! आपके प्रताप और महिमासे यह पुराना धनुष क्या वस्तु है? ॥ ६ ॥

नाथ जानि अस आयसु होऊ * कौतुक करउँ विलोकिय सोऊ ॥७॥

कमलनाल इमि चाप चढ़ावौं ❋ योजन सत प्रमाण लै धावौं ॥८॥

हे स्वामी ! ऐसा जानके जो आज्ञा हो तो कौतुक करूँ उसे देखिये ॥ ७ ॥ कमलनाल अर्थात् कमलकी दंडीकी नाईं इस धनुषको चढ़ा कर सौ योजन तक ले जाऊँ ॥ ८ ॥

दोहा—तोरउँ छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ ॥
जौ न करउँ प्रभु पद शपथ, पुनि न धरउँ धनु हाथ ॥ २९९ ॥

और हे नाथ ! आपके प्रतापके बलसे इसे छत्रकदंड (पृथ्वीके फूलके) समान तोड़ डालूँ जो ऐसा न करूँ तो आपके चरणोंकी सौगन्ध, फिर धनुष हाथमें न लूँ ॥ २९९ ॥

लषन सकोप वचन जब बोले ❋ डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥१॥
सकल लोक सब भूप डराने ❋ सियहिय हर्ष जनक सकुचाने ॥२॥

जब लक्ष्मणजी क्रोधसे यह वचन बोले तब पृथ्वी कांप गई और दिशाओंके हाथी डोल गये ॥१॥ सब लोग और सब राजा डर गये ! जानकीजीके मनमें प्रसन्नता हुई और जनकजी सकुचा गये ॥ २ ॥

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं ❋ मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं ॥३॥
सैनहिं रघुपति लषन निवारे ❋ प्रेम समेत निकट बैठारे ॥४॥

विश्वामित्र, श्रीरामचंद्रजी और सब मुनि मनमें प्रसन्न होकर बार-बार पुलकित हुए ॥३॥ सैनसे ही श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको निवारण किया और प्रेमसे निकट बैठाया ॥ ४ ॥

विश्वामित्र समय शुभ जानी ❋ बोले अति सनेहमय बानी ॥५॥
उठहु राम भञ्जहु भवचापा ❋ मेटहु तात जनक परितापा ॥६॥

विश्वामित्रजी अच्छा समय जानकर अत्यन्त प्रेम भरी वाणी बोले ॥ ५ ॥ हे तात रामचन्द्रजी ! उठिये और यह शिवका धनुष तोड़कर जनकजीका दुःख दूर कीजिये ॥ ६ ॥

सुनि गुरु वचन चरन शिर नावा ❋ हर्ष विषाद न कछु उर आवा ॥७॥
ठाढ़ भये उठि सहज सुहाये ❋ ठवनि युवा मृग राज लजाये ॥८॥

गुरुजीके वचन सुनकर चरणोंमें शिर नवाया और हर्ष विषाद कुछ भी मनमें न आया॥७॥ सहज स्वभावसे ही श्रीरामचन्द्रजी उठ खड़े हुए, जिनके निःशंक स्वभावसे युवा मृगराज लज्जित हुए वा जिसकी चालसे मृगराज लजाते हैं (ठवनिका अर्थ स्वाभाविक चाल) ॥८॥

दोहा—उदित उदय गिरि मंचपर, रघुवर बाल पतंग ॥
विकसे सन्त सरोज वन, हरषे लोचन भृंग ॥ ३०० ॥

मंचरूपी उदयाचलपर जब श्रीरामचन्द्ररूपी प्रातःकालके सूर्य उदय हुए तब सन्तरूपी कमलके वन खिले और (देखनेवालोंके) नेत्ररूपी भौंरे प्रसन्न हुए ॥ ३०० ॥

नृपनकेरि आशा निशि नाशी ❋ वचन नखत अवलीन प्रकाशी ॥१॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने ❋ कपटी भूप उलूक लुकाने ॥२॥

राजाओंकी जो जानकीजीके प्राप्त होनेकी आशारूपी रात थी वह नष्ट हो गई और उनके (प्रताप) वचनरूपी तारे उसी समय छिप गये ॥ १ ॥ कुमुदरूपी जो मानी राजा वे सकुचा गए और कपटी राजा उलूकके समान छिप गए ॥ २ ॥

भये विशोक कोक मुनि देवा * वर्षहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥३॥
गुरु-पद वंदि सहित अनुरागा * राम मुनिनसन आयसु मांगा ॥४॥

मुनि; जिनको सुधर्मरूपी कोकी और देवता, जिनको सम्पत्तिरूपी कोकीका वियोग था, वे कोक (चकवा) के समान विशोक हुए और फूल वर्षाकर अपनी-अपनी सेवा जनाते हैं॥३॥ गुरुके चरण कमलको प्रेमसे नमस्कार कर श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोंसे आज्ञा मांगी ॥ ४ ॥

सहजहि चले सकल जगस्वामी * मत्त मंजु वर कुञ्जरगामी ॥५॥
चलत राम सब पुर नर नारी * पुलक पूर तनु भये सुखारी ॥६॥

सब जगत्के स्वामी सहजही, चले, जिनकी चाल मतवाले उज्ज्वल हाथीके समान है ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके चलते ही सब जनकपुरके नर नारी पुलकित हो सुखी हुए ॥ ६ ॥

वंदि पितर सुर सुकृत सँभारे * जो कछु पुण्य प्रभाव हमारे ॥७॥
तौ शिव धनु मृणाल कि नाईं * तोरहिं राम गणेश गुसाईं ॥८॥

अपने पितर तथा देवताओंको नमस्कार करके पुण्योंको स्मरण कर कहने लगे कि जो कुछ हमारे पुण्योंका प्रभाव हो ॥ ७ ॥ गणेशजी हे गोसाईं ! यह शिवजीका धनुष कमलकी डण्डीके समान श्रीरामचन्द्रजी तोड़ दें ॥ ८ ॥

दोहा-रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन समीप बुलाइ ॥
सीतामातु सनेह-वश, वचन कहै बिलखाइ ॥ ३०१ ॥

श्रीरामचन्द्रको प्रेमसे निहार सखियोंको पास बुलाया,सीताजीकी माता स्नेहवश व्याकुल हो बोलीं ॥ ३०१ ॥

सखि सब कौतुक देखन हारे * जेउ कहावत हितू हमारे ॥१॥
कोउ न बुझाय कहै नृपपाहीं * यह बालक अस हठ भलनाहीं ॥२॥

हे सखि । जो हमारे हितू कहते हैं वे सब तमाशा देखनेवाले हैं ॥१॥ कोई राजासे समझाकर यह बात नहीं कहता कि यह बालक हैं इनसे ऐसा हठ करना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

रावण बाण छुआ नहिं चापा * हारे सकल भूप करि दापा ॥३॥
सो धनु राजकुँवर कर देहीं * बाल मराल कि मंदर लेहीं ॥४॥

जिस धनुषको रावण और बाणासुरने नहीं छुवा और सब राजा बल करके हार गये॥३॥ वही (कठिन) धनुष राजकुमारके हाथमें देना चाहते हैं भला हंसके बच्चेसे मन्दराचल उठ सकता है ? ॥ ४ ॥

भूप सयानप सकल सिरानी *सखि विधिगति कछुजात न जानी॥५॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी * तेजवंत लघु गनिय न रानी ॥६॥

हे सखि ! राजाकी चतुरता जाती रही; विधाताकी गति कुछ जानी नहीं जाती॥ ५ ॥ तब एक चतुर सखी कोमल वाणी बोली हे रानी ! तेजस्वियोंको छोटा मत जानो ॥ ६ ॥

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा * शोषेउ सुयश सकल संसारा ॥७॥
रवि-मंडल देखत लघु लागा * उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥८॥

कहाँ तो अगस्त्यजी और कहाँ अपार समुद्र ? परंतु वे उसको शोष गये और सब संसार में यश छा गया ॥ ७ ॥ सूर्यका मण्डल देखनेमें छोटा लगता है पर उसके उदय होते ही तीनों लोकोंका अन्धकार भाग जाता है ॥ ८ ॥

दोहा–मंत्र परम लघु जासु वश, विधि हरिहर सुर सर्व ॥
महामत्त गजराज–कहँ, वश कर अंकुश खर्व ॥ ३०२ ॥

मन्त्र भी छोटा ही होता है, पर उसके वशमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि, सब देवता हो जाते हैं क्योंकि (ऊँकारमें ये तीनों देवता रहते हैं) महामतवाले हाथीको छोटा सा अंकुश वशमें कर लेता है ॥ ३०२ ॥

काम कुसुम–धनु सायक लीन्हे * सकल भुवन अपने वश कीन्हे ॥१॥
देवि तजिय संशय अस जानी * भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥२॥

और देखो कामदेवके पास फूलोंका ही धनुष बाण है किंतु उसने सब संसारको अपने वशमें कर लिया है (तुम इनको हंसके बच्चे सत्य कहती हो परन्तु ये शृङ्गार और वीर रससे भरे हैं, जैसे यह कामदेव) ॥ १ ॥ हे देवि ! ऐसा जानकर सन्देह त्याग दो और हे रानी ! सुनो ! श्रीरामचन्द्रजी धनुषको तोड़ देंगे ॥ २ ॥

सखी–वचन सुनि भइ परतीती * मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती ॥३॥
तब रामहि बिलोकि वैदेही * सभय हृदय विनवति जेहि तेही ॥४॥

सखीके वचन सुनकर रानीको विश्वास हुआ; विषाद मिटा और अत्यन्त प्रीति बढ़ी॥३॥ तब जानकीजी उस समय श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मनमें भयभीत हो जिस तिसकी विनती करने लगी। (वैदेही कहनेका यह कारण है कि जानकीको इस समय देहकी सुधि नहीं है)॥४॥

मनही मन मनाव अकुलानी * होउ प्रसन्न महेश भवानी ॥५॥
करहु सफल आपन सेवकाई * करि हित हरहु चाप गरुआई ॥६॥

मनही मनमें मनाकर व्याकुल हो गयी, हे शिव–पार्वती ! प्रसन्न हो ॥५॥ अपनी सेवकाई सफल कीजिये और हित करके धनुषका भारीपन हरिये ॥ ६ ॥

गणनायक वरदायक देवा * आजु लगे कीन्हेउँ तव सेवा ॥७॥
बार बार सुनि विनती मोरी * करहु चाप गरुता अति थोरी ॥८॥

हे गणोंके नायक वरदाता गणेशजी ! इसी दिनके लिये आपकी सेवा करती थी ॥ ७ ॥ बार–बार मेरी विनती सुनकर धनुषका भारी पन बहुत कम कर दीजिये ॥ ८ ॥

दोहा–देखि देखि रघुवीर तनु, सुर मनाव धरि धीर ॥
भरे विलोचन प्रेम जल, पुलकावली शरीर ॥ ३०३ ॥

---

१. एक समय किसी चिड़ियाके तीन बच्चे समुद्र बहा ले गया, तब वह प्रतिदिन अपनी चोंचसे पानी भरकर बाहर फेंकने लगी इस इच्छासे कि उलीच डालूंगी। अगस्त्यजीने यह चरित्र देख उससे पूछा तब पक्षीने कारण कहा, यह सुन दयासंयुक्त हो ऋषिने कहा, कि यह समुद्र बड़ा निर्दयी है, इसको दंड हम देंगे, यह कह चले गये। तब एक दिन समुद्रके किनारे जपपूजा करते थे, कि समुद्र लहरसे उनकी पूजा की सामग्री बहा ले गया, तब वह पक्षीकी बातें स्मरण करके तीन अञ्जलिमें अर्थात्, 'राघवाय नमः केशवाय नमः वासुदेवाय नमः' ऐसा उच्चारण कर सब समुद्र शोष गये, फिर बहुत कालतक सूखा पड़ा रहा, तब देवताओं ने कुम्भज ऋषिसे बहुत निवेदन किया, उन्होंने योगबलसे फिर भर दिया, जिससे कि खारा हो गया।

जानकीजी श्रीरामचन्द्रजीका कोमल शरीर देखकर देवताओंको मनाय धीरज धारण करती हैं नेत्रोंमें प्रेमका जल भर आया शरीर पुलकायमान हो गया ॥ ३०३ ॥

नीके निरखि नैन भरि शोभा * पितुप्रण सुमिरि बहुरि मनक्षोभा ॥१॥
अहह तात दारुण हठ ठानी * समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥२॥

जब नेत्र भरकर शोभा देखती हैं तो नीकी हो जाती हैं,किन्तु जब पिता का प्रण सुमिरती हैं तो फिर मनमें क्षोभ हो जाता है ॥ १ ॥ अहह यह पद खेदका है, अहो ! पिताने ऐसी कठिन हठ ठानी है; कि अपने लाभ और हानिको कुछ नहीं समझते ॥ २ ॥

सचिव सभय सिख देइ न कोई * बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥३॥
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा * कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा ॥४॥

मन्त्री डरके मारे कोई नहीं सिखाता, यह पण्डितोंके समाजमें बड़ी अनुचित बात होती है ॥ ३ ॥ कहां तो यह धनुष कि जिसकी कठोरतासे कुलिश (वज्र) भी कांपता है और कहां यह श्यामल कोमल गात किशोर अवस्थायुक्त बालक ? ॥ ४ ॥

विधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा * सिरस सुमन किमि बेधहि हीरा ॥५॥
सकल सभाकी मति भइ भोरी * अब मोहि शम्भुचाप गति तोरी ॥६॥

हे विधाता ! मनमें कैसे धीरज धरूँ; सिरस फूलसे कहीं हीरा बेधा जा सकता है ? ॥ ५ ॥ सब सभाकी मति भोरी हो गई है, हे शिवजीके धनुष ! अब मैं तेरी ही शरण हूँ ॥ ६ ॥

निज जड़ता लोगन पर डारी * होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥७॥
अति परिताप सीय-मनमाहीं * लव निमेष युगसम चलि जाहीं ॥८॥

(हे धनुष) तू अपनी जड़ता लोगोंपर डालकर और श्रीरामचन्द्रजीको देखकर हलका हो जा ॥७॥ जानकीजीके मनमें बहुत दुःख है,एक पल और एक लव युगके समान बीतते हैं ॥८॥

दोहा-प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल ॥
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधुमंडल डोल ॥ ३०४ ॥

कभी प्रभुकी ओर, कभी, पृथ्वीकी ओर, सकुचाकर देखती हैं, जिससे नेत्र चंचल हो गये हैं, सो वे ऐसे शोभित हैं मानो कामदेवकी दो मछलियां चन्द्रमण्डलमें बैठकर हिंडोला खेल रही हैं । आशय यह कि जानकीजीका मुख चन्द्रमण्डल है; नेत्र मीन हैं जानकीजी पृथ्वीसे उत्पन्न होनेके कारण सकुचाती हैं जब स्त्रीको दुःख होता है तब माता की ओट लेती हैं परन्तु माताके सम्मुख पति दर्शनमें लाज है इससे सकुचाती हैं ॥ ३०४ ॥

गिरा अलिन मुख पंकज रोकी * प्रगट न लाज निशा अवलोकी ॥१॥
लोचन जल रह लोचन कोना * जैसे परम कृपन कर-सोना ॥२॥

यदि जानकी कुछ कहनेकी इच्छा करती हैं तो कहा नहीं जाता क्योंकि वाणीरूप जो भौंरा है वह जानकीजीके कमलरूपी मुखमें रुक गया और लाज रूपी रात्रिको देखकर प्रगट न हुआ अर्थात् जैसे रातमें कमल भौंरोंको भीतर बन्द कर लेता है वैसे ही जानकीजीके मुखसे वाणी नहीं निकली ॥ १ ॥ नेत्रोंका जल नेत्रोंमें ऐसा रहा जैसे परम कंजूसके पास सोना रहता है और उसको कोनेमें छिपा रखता है ॥ २ ॥

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी ❋ धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥३॥
तन मन वचन मोर प्रण साँचा ❋ रघुपति पदसरोज मन राँचा ॥४॥

अपने मनमें व्याकुलता जानकर सकुचायी और धीर धरकर हृदयमें विश्वास किया कि ॥ ३ ॥ यदि तन, मन, वचनसे मेरा प्रण सत्य है और श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें मन रङ्ग रहा है ॥ ४ ॥

तौ भगवान सकल उर वासी ❋ करिहहिं मोहिं रघुवरकी दासी ॥५॥
जेहिके जेहिपर सत्य सनेहू ❋ सो तेहि मिलहिं न कछु संदेहू ॥६॥

तो सबके हृदयमें वसनेवाले जो भगवान् हैं वे मुझको श्रीरामचन्द्रजीकी दासी करेंगे ॥५॥ क्योंकि जिसका जिसके ऊपर सत्य स्नेह होता है वह उसको मिलता है, इसमें सन्देह नहीं॥६॥

प्रभु तन चितै प्रेम प्रण ठाना ❋ कृपानिधान राम सब जाना ॥७॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे ❋ चितव गरुड़ लघुव्यालहि जैसे ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर प्रेम का प्रण ठाना, वह कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने सब जाना ॥७॥ (प्रेमका प्रण यह है कि जो प्रभु न मिलेंगे तो शरीर त्याग दूँगी) जानकीजीकी ओर देखकर धनुषको कैसे ताका जैसे गरुड़जी छोटे सर्प को ताकते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–लषण लखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हर–कोदण्ड ॥
❋ पुलकि गात बोले वचन, चरण चापि ब्रह्मण्ड ॥३०५॥

लक्ष्मणजीने देखा कि, श्रीरामचन्द्रजीने शिवके धनुषको ताका तो पुलकित शरीर हो पृथ्वीको चरणोंसे दबाकर बोले (चरणोंसे इस कारण दबाया कि पहले वचन बोले थे तो पृथ्वी डोल गई थी इस कारण अबकी बार दाब लिया) ॥ ३०५ ॥

दिशि कुञ्जरहु कमठ अहि कोला ❋ धरहु धरणिधरि धीर न डोला ॥१॥
राम चहहिं शंकर धनु तोरा ❋ होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥२॥

हे दिग्गज, कच्छप, शेष, बाराह ! पृथ्वीको धारण किये रहो, धीरज रखना डोलना मत ॥ १ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी शिवजीका धनुष तोड़ना चाहते हैं, अतः मेरी आज्ञा सुनकर सावधान हो जाइए ॥ २ ॥

चाप-समीप राम जब आये ❋ नर नारिन सुर सुकृत मनाये ॥३॥
सब कर संशय अरु अज्ञानू ❋ मंद महीपनकर अभिमानू ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजी धनुषके निकट आये नर, नारियोंने अपने पुण्य और देवता मनाये ॥ ३ ॥ सबका संशय और अज्ञान तथा मंद मति (मूर्ख) राजाओंका अभिमान ॥ ४ ॥

भृगुपति-केरि गर्व गरुआई ❋ सुर मुनिवरन केरि कदराई ॥५॥
सियकर सोच जनक पछितावा ❋ रानिनकर दारुण दुख दावा ॥६॥

परशुरामका गर्व और गुरुता और मुनियोंका भय ॥ ५ ॥ सीताका शोच, जनकजीका पछतावा और रानियोंका दारुण वनाग्नितुल्य दुःख ॥ ६ ॥

---

१. कवित्त – "आयो चापभंग समै तबहो जनायो ढंग, मानी नृप हिय तबै धरकि धरकि उठे। रसिकविहारी नेहवारी पुरनारिनके, कंचुकी सुबन्द आप तरकि तरकि उठे ।। उर उमँगे हैं नृप कौशिक लषण आदि, राम भुजदण्ड दोउ थरकि थरकि उठो जनककिशोरीजूके सखिन समेत दोउ लोचन सफल चाए फरकि फरकि उठे ।" (रामरसायने)

शम्भु चाप बड़ बोहित पाई * चढ़े जाय सब संग बनाई ॥७॥
राम बाहु-बल सिंधु अपारा * चहत पार नहिं कोउ कनहारा ॥८॥

शिवजीके धनुषको एक बड़ा जहाज पाय अपना सङ्ग बनाकर सब चढ़े ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीकी बाहोंका बल अपार समुद्र है; पार जाना चाहते हैं परंतु कोई खेनेवाला नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा-राम विलोके लोग सब, चित्र लिखेसे देखि ॥
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेखि ॥ ३०६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि सब लोग चित्र लिखेके समान हो रहे हैं और कृपानिधानने जानकीजीकी ओर देखा तो उनको विशेष व्याकुल जाना ॥ ३०६ ॥

देखी विपुल विकल वैदेही * निमिष बिहात कल्पसम तेही ॥१॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा * मुए करै का सुधा तड़ागा ॥२॥

जानकीजीको अत्यन्त व्याकुल जाना कि एक पल कल्पके समान बीतता है ॥ १ ॥ प्यासेने जो जलके विना शरीर त्याग किया तो मरकर उसे अमृतके तालावमें भी डाल दो तो वह जल क्या करेगा ? ॥ २ ॥

का वर्षा जब कृषी सुखाने * समय चूक पुनि का पछिताने ॥३॥
अस जिय जानि जानकी देखी * प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी ॥४॥

जब खेती सूख गयी तब वर्षा क्या ? समय चूककर पछतानेसे क्या होता है ? ॥ ३ ॥ ऐसे जीमें जान जानकीजीको देखा और अधिक प्रीति देख प्रभु पुलकित हुए ॥ ४ ॥

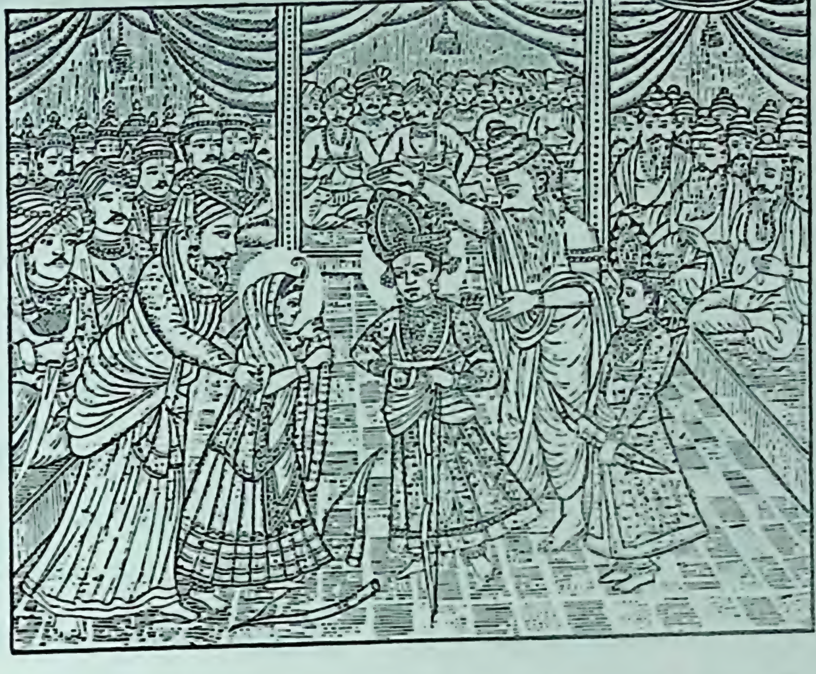
गुरुहि प्रणाम मनहि मन कीन्हा * अतिलाघव उठाय धनु लीन्हा ॥५॥
दमकेउ दामिनि जिमि घन लयऊ * पुनि धनु नभमंडल सम भयऊ ॥६॥

गुरुको मनही मन प्रणाम किया और बड़ी फुरतीसे धनुष उठा लिया ! (मनमें प्रणाम करनेका भाव यह है कि यहां वसिष्ठजीको प्रणाम किया) ॥ ५ ॥ ऐसी फुरतीसे उठाये मानो बिजली चमक गई और मेघमें लय हुई। फिर धनुष ऐसा खींचा कि दोनों गोसे मिलकर आकाशवत् हो गए अथवा धनुष उठाते ही वह भगवान् के मेघवर्णसरीखे हाथमें बिजलीके समान चमका और जब उसे खैंचा तो उनके मुखका नीला प्रतिबिंब पड़नेसे आकाश तुल्य-रूप हो गया। अथवा जब घनरूपी श्रीरामचन्द्रजीने धनुष चढ़ा लिया तब दामिनी रूप सीता दमकी अर्थात् व्याकुल हो गई कि आज धनुष फिर नभमंडलके समान हुआ, क्योंकि एक धनुष महादेवजीने त्रिपुरासुरके मारनेको हाथमें ले लिया था और एकही बाणसे उसे मार डाला था तब शिवजी बोले यह धनुष विशेष कार्यका न हुआ; अतः विष्णुने क्लेश कर उसका एक कोना तोड़ दिया, तब शिवजीने उसको वहीं रखकर कहा—आप मनुष्य शरीर धरकर इसे तोड़ना सो इसलिये जानकी अकुलायी कि तब तो विष्णु शिवमें क्लेश हुआ था। अब चढ़कर क्या होगा ? अथवा राम जो घनरूप हैं उनके धनुष चढ़ानेसे दामिनीरूप जानकी प्रसन्न हुई ॥ ६ ॥

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े * काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥७॥
तेहि क्षण राम मध्य धनु तोरा * भरेउ भुवन ध्वनि घोर कठोर ॥८॥

लेते, चढ़ाते और दृढ़तासे खैंचते समय किसीने न देखा और सब खड़े हुए देखते रहे ॥ ७ ॥ उसी क्षणमें श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोड़ा; संसारमें यह घोर कठोर ध्वनि भर गयी। अथवा धनुषका मध्य रामने भंग कर दिया ॥ ८ ॥

जानकी विवाह



छन्द–भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल विकल विचारहीं ।
कोदण्ड खण्डेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ॥ ३४ ॥

ब्रह्माण्डभरमें घोर महान् ऊँचा कठोर शब्द भर गया, कि जिससे सूर्यके घोड़े मार्ग छोड़-कर चले, दिग्गज चिंघाड़ने लगे, धरती कांप उठी, शेष बाराह, कच्छप परस्पर भार और भयसे कसमसाये तथा सुर, असुर और मुनि अपने-अपने कानोंमें हाथ दे व्याकुल हो विचार करते हैं कि श्री रामचन्द्रजीने धनुष तोड़ा और जय-जय उच्चारण करने लगे ॥ ३४ ॥

सोरठा–शंकर चाप जहाज, सागर रघुवर–बाहुबल ॥
बूड़े सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहि मोह वश ॥ ३५ ॥

शिवजीका धनुष जहाज है, श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंका बल समुद्र है, वे समाज डूब गए जो मोह वश पहले चढ़े थे ॥ ३५ ॥

प्रभु दोउ खण्ड चाप महि डारे ❋ देखि लोग सब भये सुखारे ॥१॥
कौशिकरूप पयोनिधि पावन ❋ प्रेमवारि अवगाह सुहावन ॥२॥

जब प्रभुने धनुषके दोनों खंड पृथ्वीमें डाल दिये तब उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए ॥१॥ विश्वामित्रका रूप पवित्र समुद्र है वह श्रीरामजीके सुन्दर प्रेमरूपी जलसे गंभीर भरा है ॥२॥

रामरूप राकेश निहारी ❋ बढ़ी बीचि पुलकावलि भारी ॥३॥
बाजे नभ गहगहे निशाना ❋ देववधू नाचहिं करि गाना ॥४॥

क० — "शोर है उठत महि खूब लटपटत सब सिंधु संघटत जल वेलथल छूटिगो । शेषफल फटत तलवास हूं रचत बाराह दल घटत युग डाढ़सों टूटिगो ॥ दन्त चटचटत नहि शैलापुत छटत दिग्‌दिगन्ति गण हटत भल कुम्भफूल टूटिगो ।" दैत्य लुटिलुटत अभिमानसे छुटत कोदण्डके टूटत ब्रह्मांडसों फूटिगो ॥

श्रीरामचन्द्रजीका पूर्णचन्द्रके समान रूप निहार कर पुलकावली रूप तरंग बढ़ने लगी, अर्थात् विश्वामित्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३ ॥ आकाशमें घनघोर बाजे बजने लगे, अप्सराएँ गान कर नाचने लगीं ॥ ४ ॥

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीशा ❋ प्रभुहि प्रशंसहिं देहिं अशीशा ॥५॥
वर्षहिं सुमन रंग बहु माला ❋ गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥६॥

ब्रह्मादिक देवता, सिद्ध और मुनि प्रभुकी बड़ाई करके आशीष देने लगे ॥ ५ ॥ देवता अनेक रंगके फूलोंकी माला बरसाते हैं और किन्नर रसीले गीत गाते हैं ॥ ६ ॥

रही भुवन भरि जयजय बानी ❋ धनुष-भंग ध्वनि जात न जानी ॥७॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी ❋ भंजेउ राम शम्भु धनु भारी ॥८॥

संसारभरमें जय-जयकी बाणी भर गई उसके सामने धनुषभंगकी ध्वनि नहीं जानी जाती अथवा धनुषभंगकी ध्वनि (जात न) परशुरामने जानी। परशुरामने लोगोंकी जय जय ध्वनिमें यही सुना कि रामने धनुष तोड़ दिया। अथवा सम्पूर्ण भुवनमें जय जयकी वाणी भर रही है, परंतु इस पर भी धनुषभंगकी ध्वनि नहीं जानी। अथवा धनुष भंग ध्वनि सब जातियोंने जानी। अथवा श्रीरामचन्द्रजीके निकट मनुष्य कहते हैं कि धनुष भंगकी ध्वनि जातने जानी अर्थात् इस शरीरसे जानी जाती है ॥ ७ ॥ प्रसन्न होकर जहां-तहां नर नारी कहने लगे कि शिवजीका धनुष रामजीने तोड़ा ॥ ८ ॥

दोहा—बन्दी मागध सूत गण, विरद वदहिं मति धीर ॥
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय धन मणि चीर ॥ ३०७ ॥

बन्दी, मागध और सूत यह भाटोंकी जाति है, सो वे पूर्वपुरुषोंकी कीर्ति सुनाने लगे और सब लोग हाथी घोड़े मणि तथा चीर निछावर करने लगे ॥ ३०७ ॥

झाँझ मृदंग शंख सहनाई ❋ भेरि ढोल दुन्दुभी सुहाई ॥१॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाये ❋ जहँ तहँ युवतिन मंगल गाये ॥२॥

झाँझ मृदंग, नफीरी, शंख, भेरी, ढोल नगाड़े ॥ १ ॥ सुन्दर बहुतसे बाजे बजने लगे और जहाँ-तहाँ स्त्रियोंने मंगल गाये ॥ २ ॥

सखिन सहित हरषीं सब रानी ❋ सूखत धान परा जनुपानी ॥३॥
जनक लहेउ सुख शोच विहाई ❋ पैरत थके थाह जनु पाई ॥४॥

सखियों सहित सब रानी बड़ी प्रसन्न हुईं जैसे धानके सूखते समय पानी पड़े ॥ ३ ॥ जनकजीने शोच छोड़कर सुख पाया, जैसे थके हुए पैरैयेको थाह मिल जाय ॥ ४ ॥

श्रीहत भये भूप धनु टूटे ❋ जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥५॥
सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती ❋ जनु चातकी पाय जल स्वाती ॥६॥

---

१. क०—"ताड़का जु मारी करी यज्ञ रखवारी फेरि; तारी मुनिनारी ये तो बालजश खूटतो। पुनि सुरनारी नरनारी और सुरारी नारी हंसती जु नारी बीर नाम वह छूटतो ॥ रसिक बिहारी ईश सबही सुधारी यह, कीरति, अपारी धौं न जानी कौन लूटतो । जनक दुलारी होती निपट दुखारी भारी अवधविहारी न जोपै धनु टूटतो ॥" (रामरसायने)

राजा धनुष टूटनेसे ऐसे शोभाहीन हुए जैसे दिनमें दीपककी शोभा नहीं रहती ॥५॥ जानकी[1] जीके हृदयका सुख कोई कैसे वर्णन कर सके, जैसे पपीहेको स्वातीकी बूँद मिल जाय ॥६॥

रामहिं लषण विलोकत कैसे ❋ शशिहि चकोर किशोरक जैसे ॥७॥
शतानन्द तब आयसु दीन्हा ❋ सीता गमन रामपहँ कीन्हा ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मणजी ऐसे देखते हैं जैसे चन्द्रमाको चकोरका बच्चा ॥ ७ ॥ तब शतानन्दजीने आज्ञा दी और सीताजी श्रीरामचन्द्रजीके पास गयीं ॥ ८ ॥

दोहा–संग सखी सुन्दरि सकल, गावहिं मंगलचार ॥
गवनीं बाल मरालगति, सुषमा अंग अपार ॥ ३०८ ॥

सङ्गमें सब सुन्दर और चतुर सखियाँ हैं; जो कि मंगलाचार गाती हैं वे राजहंसके बच्चोंके समान चलीं, शरीरकी अपार शोभा है ॥ ३०८ ॥

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी ❋ छबिगण मध्य महाछबि जैसी ॥१॥
कर सरोज जयमाल सुहाई ❋ विश्व विजय शोभा जनु छाई ॥२॥

सखियोंके बीचमें जानकीजी कैसी शोभित हैं जैसी छबियोंके मध्यमें महाछबि शोभित हो ॥१॥ कमलसे हाथमें जयमाल शोभित है, मानो संसारके जीतनेकी शोभा छायी हो ॥२॥

तनु सँकोच मन परम उछाहू ❋ गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू ॥३॥
जाय समीप राम छबि देखी ❋ रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी[2] ॥४॥

शरीरमें संकोच और मनमें अत्यन्त प्रसन्नता है; वह गूढ़ प्रेम किसीको लख नहीं पड़ता॥३॥ निकट जाकर श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखी, मानो कुँवरि चित्रके समान लिखी हुई सी रह गयी॥४॥

चतुर सखी लखि कहा बुलाई ❋ पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥५॥
सुनत युगल कर माल उठाई ❋ प्रेम विवश पहिराइ न जाई ॥६॥

चतुर सखीने जानकीजीकी यह गति देख बुलाकर कहा कि सुन्दर जयमाला पहिराओ॥५॥ यह वचन सुनते दोनों हाथोंसे माला उठायी, पर ऐसे प्रेमके वश हुईं कि पहनायी नहीं जाती॥६॥

सोहत जनु युग जलज सनाला ❋ शशिहि सभीत देत जयमाला[3] ॥७॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली ❋ सिय जयमाल राम-उर मेली ॥८॥

ऐसी शोभा हुई कि मानो डंडी समेत कमल चन्द्रमाको भयके साथ जयमाल देते हैं (भय इस बातका है कि जो चन्द्रमाको जयमाला दें तो फिर सूर्यका प्रकाश उसके सामने होगा, क्योंकि सूर्यकी प्रीति कमलसे होती है, चन्द्रमासे विरुद्ध है, इसी कारण उसको नहीं पहना सकतीं, इस

---

१. क० — 'परि परि पायं जाय गिरजा निहोरे नित्य, शंकर मनाये पूज गणपति भावसे। दीन दान विविध विधान जय कीने बहु नेम व्रत लीने सिय सहित उछावसे ॥ रसिक विहारी मिथिलेशकी दुलारी दृढ़, प्रीति उर धारी अवधेश सुत चावसे। जनक किशोरीके प्रतापसे पिनाक टूटो टूटो है कै जानो राम बलके प्रतापसे ॥"

२. क० — "सोहै सिय सहित उमंग सखि साजे अंग, भूषण सुरङ्ग रंगवसन विशालसो। करि कर ऊंच दोउ ठाढ़ी है विदेह सुता, कंसे कण्ठ डारैं माल छोटी रघुलालसों ॥ रसिक विहारी तेहि औसर निहारी छवि, उपमा विचारी सौ उचारी है उतालसों। कनकलतासी नव वल्ली द्वै अनूप कढ़ि उरध उठी है मानों मिलन तमालसों ॥"

३. क० — "अति ही उताल है निहाल रघुलाल कण्ठ, मेरी जयमाला भयो आनन्द अपारो है। रसिक विहारी श्याम मोरी नवजोरी हेरी; सब नर नारी निज प्रान धन वारो है। माल पहराई दहू छाई सो अपार शोभा, ताछिन अनूप रूप रुचिर निहारो है। धारी तिय वेष मंजु मुदित वसन्त मानों आज ऋतुराजपै प्रसून जाल डारो है ॥"

(रामरसायने)

विचारसे सम्पुटित (संकोच युक्त) हो गयीं मुखको चंद्रमाकी उपमा एकदेशीय है और कमल मुखके सामने हाथोंका प्रेम ज्यों का त्यों रह जाना आशय है ॥७॥ इस छबिको देखकर सखियें गाने लगीं और जानकीजीने सचेत होकर श्रीरामचन्द्रजीके गलेमें जयमाला डाल दी ॥ ८ ॥

सोरठा—रघुबर उर जयमाल, देखि देव वर्षहिं सुमन ॥
सकुचे सकल भुवाल, जनु विलोकि रवि कुमुदगण ॥ ३६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गलेमें जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे और सब राजा ऐसे सकुचाये कि जैसे सूर्यको देखकर कुमुदगण सकुचा जायँ ॥ ३६ ॥

पुर अरु व्योम बाजने बाजे * खल भये मलिन साधु सब गाजे ॥१॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीशा * जय-जय जय कहि देहिं अशीशा ॥२॥

पुर और आकाशमें बाजे बजने लगे, दुष्ट मलिन और सब साधु प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ देवता किन्नर, मनुष्य, नाग मुनि सब जय जय कहकर आशीष देने लगे ॥ २ ॥

नाचहिं गावहिं विबुध वधूटी * बार बार कुसुमावलि छूटी ॥३॥
जहँ तहँ विप्र वेद ध्वनि करहीं * बन्दी विरुदावलि उच्चरहीं ॥४॥

गंधर्वनामक देवताओंकी छोटी अवस्थावाली वधू नाचती, गाती हैं और बार बार फूल बरसाती हैं॥३॥जहां-तहां ब्राह्मण वेदध्वनि करते और भाट लोग विरुदावली उच्चारण करते हैं॥४॥

महि पताल नाक यश व्यापा * राम वरी सिय भंजेउ चापा ॥५॥
करहिं आरती पुर नर नारी * देहिं निछावरि वित्त विसारी ॥६॥

यह यश पृथ्वी, आकाश और पातालमें व्याप्त हो गया कि श्रीरामचंद्रजीने धनुष तोड़कर जानकी विवाही ॥५॥ पुरके नर नारी आरती करते और चित्तसे अधिक निछावर देते हैं ॥६॥

सोहति सिय रामकी जोरी * छबि शृङ्गार मनहुँ एक ठोरी ॥७॥
सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता * करति न चरण परस अतिभीता ॥८॥

राम और सीताकी जोरी शोभित हो रही है मानो छबि और शृङ्गार एक स्थानपर हैं॥७॥ सखियाँ कह रही हैं कि जानकी ! श्रीरामचन्द्रजीके चरण छुओ, परन्तु जानकीजी अत्यन्त डरसे चरण नहीं छूतीं ॥ ८ ॥

दोहा—गौतमतिय गति सुरति करि, नहिं परसति पद पाणि ॥
मन विहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ॥३०९॥

गौतमकी स्त्रीकी गतिको स्मरण करके जानकीजी चरण नहीं छूतीं श्रीरामचन्द्रजी अलौकिक प्रीतिजानकर मनमें हँसे, आशय यह कि जानकी हाथमें मणियोंको धारण कर रहीं हैं रामके पदका स्पर्श इस भयसे नहीं करती कि यह मेरे हाथमें पाषाणकी मणियाँ हैं, कहीं अहल्याकी भांति सजीव होकर स्त्री बन श्रीरघुनाथजीकी प्रीतिकी भागी न हो जायँ, अतः श्रीरघुनाथ इस अलौकिक (आदि) प्रीतिको जानकर हँसे, जो जानकीजी और उनके बीचमें है, या इसलिये मनमें हँसते हैं कि जानकीजी आदि प्रीतिको भूलकर भ्रममें पड़ी हैं। एक अर्थ यह है सीता रामजीके सम्मुख हो इस संयोगको ऐसा प्रिय जानती हैं और उनके पदको स्पर्श इस भयसे नहीं करतीं कि, स्पर्श करते ही राजमहलमें जाना पड़ेगा और संयोगसे वियोग हो जायगा; सो यह

अलौकिक प्रीति जानकर रामजी हँसे। चरणोंमें जानकीजी इस कारण प्रीति अधिक करती हैं कि जबतक स्पर्श न करेंगी; सखी हमको यहांसे न ले जायँगी सो यह अलौकिक प्रीति है। अथवा साकेतलोकमें रामजीसे जानकीजी का यह नियम हुआ था कि आप किसी और स्त्रीको अङ्गीकार न करें तो मैं अवतार कर लूँगी, अतः वही स्मरण दिलाती हैं कि आप यह चरण अहल्याको लगा चुके हैं फिर मैं इनको किस प्रकार स्पर्श करूँ? यह अलौकिक प्रीति देख श्रीरामचन्द्रजी हँसे अथवा धनुष टूटनेसे (गौतम) अन्धकार जाता रहा। जो कि अनेक देवताओंकी विनय करतीं थीं, अब अपने कुलके वृद्धोंके सम्मुख स्त्री धर्मकी लज्जा विचार चरण स्पर्श नहीं करतीं, यह देख रामचन्द्रजी हँसे ॥ ३०९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे बालकाण्डान्तर्गत पंडितज्वालाप्रसादकृतव्याख्यायां सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

दोहा–अब अष्टम विश्राममें, परशुराम संवाद ॥
भयउ सो टीका करि कहत, द्विज ज्वालापरसाद ॥ ८ ॥

तब सिय देखि भूप अभिलाखे * क्रूर कुपूत मूढ़ मन माखे ॥१॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे * जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥२॥

तब सीताको देख राजा अभिलाषा करने और जो क्रूर कुपूत थे उन्होंने बड़ा रोष किया ॥ १ ॥ वे अभागे उठकर और अपने बख्तर पहन-पहनकर जहां तहां गाल बजाने लगे ॥२॥

लेहु छुड़ाय सीय कहँ कोऊ * धरि मारहु नृप बालक दोऊ ॥३॥
तोरे धनुष चाह नहिं सरई * जीवत हमहिं कुँवरि को बरई ॥४॥

कोई बोला जानकीजीको छीन लो; इन दोनों बालकोंको पकड़ कर मार डालो ॥ ३ ॥ धनुषतोड़नेसे ही चाहकी सिद्धि नहीं होगी, हमारे जीते कुँवरिको कौन वर सकता है? कहीं 'चाड' पाठ है॥४॥

जौं विदेह कछु करहिं सहाई * जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥५॥
साधु भूप बोले सुनि बानी * राज समाजहि लाज लजानी ॥६॥

जो जनक इनकी कुछ सहायता करे तो दोनों भाइयों सहित इन्हें भी समर कर जीतो ॥५॥ महात्मा राजा उनके यह वचन सुनकर बोले कि, इस राजसभामें तो लाज भी लजाती है ॥६॥

बल प्रताप बीरता बड़ाई * नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥७॥
सोई सूरता कि अब कहुँ पाई * अस बुधि तै विधि मुँहमसिलाई॥८॥

बल प्रताप, वीरता बड़ाई और तुम्हारी नाक यह धनुष टूटनेके संग ही गयी ॥ ७ ॥ सो वही नकटी शूरता है कि अब कहीं पाई है, ऐसी ही बुद्धि होनेसे तो ब्रह्माने तुम्हारे मुखमें स्याही लगा दी ॥ ८ ॥

दोहा–देखहु रामहिं नयन भरि, तजि ईर्षा मद कोहु ॥
लषण रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनि होहु ॥ ३१० ॥

श्रीरामचन्द्रजीको नयन भरकर देख लो, ईर्षा और मद तथा क्रोध छोड़ दो, लक्ष्मण-जीका क्रोध जो जलती हुई प्रबल अग्नि है उसमें तुम पतंग मत बनो ॥ ३१० ॥

वैनतेय बलि जिमि चह कागू * जिमिशश चहहि नाग अरिभागू॥१॥
जिमि चह कुशल अकारण कोही* सुख सम्पदा चहै शिव द्रोही ॥२॥

गरुड़का भोग जैसे कौवे चाहें और सिंहका भोजन खरगोस चाहे ॥ १ ॥ जैसे अकारण कोधी चाहे कि कुशल रहे और शिवजीसे द्रोह करके सुख सम्पदा चाहे ॥ २ ॥

लोभी लोलुप कीरति चहई ❋ अकलंकता कि कामी लहई ॥३॥
हरिपदविमुख परम गति चाहा ❋ तस तुम्हार लालच नर नाहा ॥४॥

लोभी,लालची चाहे कि मेरी कीर्ति(बड़ाई)हो;कामी पुरुष चाहे कि मुझको कलंक न लगे॥३॥ और भगवान्से विमुख होकर मुक्तिकी इच्छा करे तो जैसे यह वस्तु उपर्युक्त जीवोंको प्राप्त नहीं हो सकतीं । हे राजाओ ! ऐसा ही जानकीके विषयमें तुम्हारा जो लालच है वह वृथा है॥४॥

कोलाहल सुनि सीय सकानी ❋ सखी लिवाय गई जहँ रानी ॥५॥
राम सुभाय चले गुरु पाहीं ❋ सिय सनेह वर्णत मनमाहीं ॥६॥

इस कोलाहलको सुनकर जानकीजी सहम गयीं तब सखियाँ उनको रानीके पास लिवा ले गयीं ॥ ५ ॥ उस ओर श्रीरामचन्द्रजी जानकीका प्रेम मनमें वर्णन करते हुए स्वभावसे ही गुरुके पास चले ॥ ६ ॥

रानिन सहित सोचवश सीया ❋ अवधौं विधिहि काह करणीया ॥७॥
भूप वचन सुनि इतउत तकहीं ❋ लषण राम डर बोलि न सकहीं ॥८॥

रानियों सहित जानकी सोचके वश हुई,कि नजाने अब विधाता क्या करे?॥७॥लक्ष्मणजी राजाओंके वचन सुनकर इधर-उधर ताकते हैं पर श्रीरामचन्द्रजीके डरसे बोल नहीं सकते॥८॥

दोहा–अरुण नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप ॥
मनहुँ मत्त गजगण निरखि, सिंह किशोरहि चोप ॥ ३११ ॥

लक्ष्मणजी लाल-लाल नेत्र और भौंहें टेढ़ी करके राजाओंको क्रोधसे देखने लगे, जैसे मतवाले हाथियोंको देखकर सिंहका बच्चा उत्साह करता है ॥ ३११ ॥

खरभर देखि विकल नर नारी ❋ सब मिलि देहिं महीपन गारी ॥१॥
तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा ❋ आये भृगुकुल कमल–पतंगा ॥२॥

यह कोलाहल सुनकर नगरकी नारियाँ व्याकुल हो गयीं और सब मिलकर राजाओंको गाली देने लगीं ॥ १ ॥ उसी समय शिवजीका धनुष टूटना सुनकर भृगुकुलरूपी कमलके सूर्यस्वरूप परशुरामजी आये ॥ २ ॥

---

१. कुशाम्बुके औरस से क्षत्रिय श्रेष्ठ गाधिका जन्म हुआ, उनकी कन्या सत्यवतीसे ऋचीकका विवाह हुआ । एक समय सत्यवती और उनकी माता दोनों ने महर्षिसे सत्पुत्रकी इच्छा की, तब ऋचीक पत्नीको ब्रह्ममय मंत्र और सासुके निमित्त क्षत्रिय मंत्रसे खीर बनाकर स्नानको गये । इसी अवसरमें सत्यवतीने अपने भाग माताको दिया और माताका आप लेकर भक्षण कर गयी वह बात जानकर ऋषिने कहा तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय श्रेष्ठ और तुम्हारी माताके एक पुत्र द्विजश्रेष्ठ होगा । तब पत्नीके प्रार्थना करने पर कहा कि पुत्र नहीं तो पोता अवश्य क्षत्रिय धर्मयुक्त होगा । सत्यवतीने जमदग्निको उत्पन्न किया और वह स्वयं नदीरूप धर कौशिकी नामसे विख्यात हुई । जमदग्निके साथ राजा प्रजासेनकी कन्या रेणुकाका विवाह हुआ उसमें वसुमत आदि पुत्र हुए, सबसे छोटे परशुराम हुये; इसमें वासुदेवका अंश था । एक समय हैहयवंशमें उत्पन्न हुए कार्त्तवीय अर्जुनने जमदग्नि के आश्रमसे जब कामधेनु को हरण किया तब परशुरामने क्रोधकर उस महिष्मतीके राजाको फरशेसे नष्ट कर दिया । उसके पुत्र भाग गये ।परशुरामजीने गौ पिताको दी । तब पिताने कहा तुमने राजाका वध करके अनुचित कार्य किया, अतएव तुम इसका प्रायश्चित करो, तब यह एक वर्षतक पृथ्वीकी परिक्रमा करनेको चले गये । इसके उपरान्त कार्त्तवीर्यके पुत्रोंने अवसर पाकर समाधि स्थित जमदग्निको मार डाला, तब परशुराम आकर संपूर्ण हैहय वंशका संहार किया और रुधिरकी नदी बहादी । कुरुक्षेत्रमें नौ शोणितके कुंड भरे और फिर यज्ञ करके इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय कर होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा अध्वर्युको पश्चिम दिशा उद्गाताको उत्तर दिशा प्रदान कर, आप महेन्द्राचल पर तप करने चले गये । इन परशुरामजीके क्षत्रियवंश संहारमें उद्यत होने का कारण अनेक जाति प्रकट हो गयीं और क्षत्रियोंने वंश चला दिये । सत्यवती की माताके विश्वामित्रजी हुए ॥ (भागवते)

देखि महीप सकल सकुचाने ❋ बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥३॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा ❋ भाल विशाल त्रिपुण्ड्र विराजा ॥४॥

उनको देखकर सब राजा ऐसे सकुचाये जैसे बाजके झपटसे बटेर छिप जाते हैं ॥ ३ ॥ गोरा शरीर उसमें सुन्दर विभूति लगाये हुए चौड़ा माथा, जिसमें त्रिपुंड्र शोभायमान है॥४॥

शीश जटा शशि वदन सुहावा ❋ रिस बस कछुक अरुण होइ आवा॥५॥
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते ❋ सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥६॥

शिरपर जटा चन्द्रमा सरीखा शोभायमान मुख जो कि रिसके मारे कुछ लाल हो आया ॥५॥ टेढ़ी भौंहें और नेत्रोंमें रिस भर रहा है जो सहजमें भी देखें तो मानो क्रोधित ही हैं ॥ ६ ॥

वृषभकन्ध उर बाहु विशाला ❋ चारु जनेउ माल मृगछाला ॥७॥
कटि मुनि वसन तूण दुइ बांधे ❋ धनु शर कर कुठार कल कांधे॥८॥

बैलके प्रमाण ऊँचे कंधे, विशाल छाती-भुजाएं,मस्तक सुन्दर जनेऊ और मृगछाला धरे॥७॥ कमरमें मुनियोंके वस्त्र तथा दो तरकस बांधे,धनुषबाण हाथमें कंधेपर उत्तम कुल्हाड़ा रखे ॥८॥

दोहा–सन्त वेष करणी कठिन, वरणि न जाय स्वरूप ॥
धरिमुनि तनु जनु बीर रस, आये जहँ सब भूप ॥ ३१२ ॥

सन्तोंके समान तो वेष है किंतु करनी महा कठिन है और स्वरूप वर्णा नहीं जाता; मुनियोंके शरीर धारण किये मानो सब राजाओंके बीचमें वीर रस आ गया है ॥ ३१२ ॥

देखत भृगुपति वेष कराला ❋ उठे सकल भय विकल भुवाला॥१॥
पितु समेत कहि निज निज नामा ❋ लगे करन सब दंड प्रणामा ॥२॥

परशुरामजीका तीक्ष्ण वेष देखकर सब राजा भयसे व्याकुल उठ खड़े हुए ॥ १ ॥ और पिताके साथ अपना-अपना नाम बताकर सब दंड प्रणाम करने लगे । पिताके नाम बतानेका भाव यह है कि, हम तो पहले ही आपसे पराजित हैं । अथवा जब परशुरामजीने छत्रवंश नष्ट किये थे तब ऋषि मुनियोंने वंश प्रवृत किये,अतः राजाके डरके मारे उन्हींऋषि मुनियोंके नाम ले लेकर प्रणाम करने लगे ॥ २ ॥

जेहि सुभाय चितवहिं हितजानी ❋ सो जानइ जनु आयु खुटानी ॥३॥
जनक बहोरि आय शिर नावा ❋ सीय बुलाय प्रणाम करावा ॥४॥

जिसको स्वभावसे ही हित जानकर देखते हैं वह जानता है कि मेरी आयु समाप्त हो गयी ॥ ३ ॥ फिर जनकजीने आकर शिर नवाया और जानकीको बुलाकर प्रणाम कराया ॥ ४ ॥

आशिष दीन्ह सखी हरषानी ❋ निज समाज लै गईं सयानी ॥५॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई ❋ पद सरोज मेले दोउ भाई ॥६॥

परशुरामजीने (सौभाग्यवती हो) यह आशीर्वाद दिया, तब चतुर सखियां प्रसन्न होकर उनको अपने समाजमें ले गयीं ॥५॥ विश्वामित्रजी आकर मिले और दोनों भाइयोंको उनके चरणकमलोंमें डाल कर प्रणाम किया ॥ ६ ॥

राम लषण दशरथके ढोटा ❋ देखि अशीश दीन्ह भलि जोटा॥७॥
रामहि चितै रहे थकि लोचन ❋ रूप अपार मार-मद-मोचन ॥८॥

दशरथजीके पुत्र राम लक्ष्मणकी अच्छी जोड़ी देखकर आशीष दी ॥७॥ परंतु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर नेत्र थक गये, जिनका रूप अपार कामदेवके मदको चूर्ण करनेवाला है अथवा वह रूप अपार राजाओंके रूप नष्ट करनेवाले परशुरामजीके भी मदको चूर करनेवाला है यथा-"तासु गर्व जेहि देखत भागा" ॥ ८ ॥

दोहा-बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काह अतिभीर ॥
पूँछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर ॥ ३१३ ॥

फिर जनकजीको देखकर कहा कि कहो यह कैसी बड़ी भीड़ है ? जानकर भी (कि धनुष टूटा है परन्तु) अजानके समान पूछने लगे, शरीरमें क्रोध व्याप रहा है ॥ ३१३ ॥

समाचार कहि जनक सुनाये ❀ जेहि कारण महीप सब आये ॥१॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे ❀ देखि चाप खण्ड महि डारे ॥२॥

सब समाचार कह कर जनकजीने सुनाये कि, जिस कारण सब राजा आये हैं ॥१॥ वचन सुनते ही फिर दूसरी ओर देखा कि धनुषके दो टुकड़े पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ २ ॥

अति रिस बोलेउ वचन कठोरा ❀ कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा ॥३॥
वेगि दिखाउ मूढ़ नतु आजू ❀ उलटौं महि जहँ लगि तव राजू ॥४॥

बड़े क्रोधसे कठोर वचन बोले-बता मूर्ख जनक ! धनुष किसने तोड़ा ? ॥३॥ जल्दी ही उनको दिखा; रे मूर्ख ! नहीं तो आज जहां तक तेरा राज्य है वहां तक पृथ्वी उलट दूँगा ॥४॥

अति डर उतर देत नृप नाहीं ❀ कुटिल भूप हरषे मनमाहीं ॥५॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी ❀ सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥६॥

बहुत डरसे राजा उत्तर नहीं देते और खोटे राजा मनमें प्रसन्न हुए कि अब इनका अनिष्ट होगा ॥५॥ देवता मुनि, नाग नगरके नरनारी सब सोचने लगे, मनमें बड़ाही दुःख हुआ ॥६॥

मन पछिताति सीय-महतारी ❀ विधि सँवारि सब बात बिगारी ॥७॥
भृगुपतिकर स्वभाव सुनु सीता ❀ अर्ध निमेष कल्पसम बीता ॥८॥

सीताकी माता मनमें पछताने लगी कि विधाताने सब बात सँवार कर बिगाड़ दी ॥७॥ जानकीजीको परशुरामका स्वभाव सुनकर आधा पल एक कल्पके समान बीता ॥ ८ ॥

दोहा-सभय विलोके लोक सब, जानि जानकी भीर ॥
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्रीरघुवीर ॥ ३१४ ॥

तब सब लोगोंको भयभीत देख और जानकीजीको मनमें डरी हुई जान श्रीरामचन्द्रजी परशुरामजीसे बोले, जिनके मनमें हर्ष विषाद कुछ नहीं है ॥ ३१४ ॥

नाथ शम्भु-धनु-भञ्जनहारा ❀ होइहि कोइ एक दास तुम्हारा ॥१॥
आयसु काह कहिय किन मोही ❀ सुनि रिसाय बोले मुनि कोही ॥२॥

हे नाथ ! शिवका धनुष तोड़नेवाला कोई एक आपका दास ही होगा । इसी वचनको आगे लिखा है-'सुनि मृदुगूढ़ वचन रघुपतिके' सो मृदुताई तो इस वचनकी प्रत्यक्ष है परंतु गूढ़ता देखनी चाहिये ! श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कोई एक दास आपका ही होगा, एकदासका अर्थ यह कि कोई छटा हुआ दास ब्राह्मणोंका ही होगा और विशेष गौरवता इसमें यह है कि धनुष तोड़नेवाला शंभुनाथ होगा, जो कि आपका दास है, जिनकी छातीमें आपके पूर्वज भृगुने लात

मारी थी, दास कहनेसे बोध उसी बातका है ॥ १ ॥ क्या आज्ञा है ? मुझसे कहते क्यों नहीं यह सुनकर क्रोधी मुनि क्रोध करके बोले ॥ २ ॥

सेवक सोइ जो करै सेवकाई * अरि करनी करि करिय लराई ॥३॥
सुनहु राम जेहि शिव-धनु तोरा * सहसबाहुसम सो रिपु मोरा ॥४॥

अरे ! सेवक तो वही है जो सेवकाई करे और शत्रुकी करनी करे तो शत्रुकी करनी हुई ॥३॥ सुनो राम ! जिस किसीने शिवका धनुष तोड़ा है वह मेरा सहस्रबाहुके समान शत्रु है । (एक समय परशुरामजीके पिता जमदग्निने सहस्रबाहु राजाको अपने यहां निमन्त्रित किया और कामधेनु के प्रतापसे सबको इच्छित भोजन कराया । राजाने विस्मित हो कामधेनु मांगी । मुनिने कहा कि यह मेरी नहीं है, मैं-तो माँगकर लाया हूँ ! इस बात पर क्रोधित हो जमदग्निकी धेनु हरण की तब कामधेनु भागकर इन्द्रलोकको गयी; परशुरामजीने यह वृत्तान्त सुना तो क्रोधित होकर क्षत्रवंश नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की और सहस्रबाहुको मार डाला) ॥ ४ ॥

सो बिलगाय बिहाय समाजा * नतु मारे जैहैं सब राजा ॥५॥
सुनि मुनि वचन लषण मुसुकाने * बोले परशुधरहि अपमाने ॥६॥

उसको समाजमें अलग खड़ा कर दो; नहीं तो सब राजा मारे जायँगे ॥५॥ यह मुनिका वचन सुन लक्ष्मणजी हँसे और परशुधरका निरादर करते हुए बोले (यह निरादरका वचन वीर रसयुक्त परशुरामसे है, क्योंकि वे वीररसकी प्रकृतिमें हैं) ॥ ६ ॥

बहु धनुहीं तोरेउँ लरिकाईं * कबहुँ न अस रिस कीन्ह गुसाईं ॥७॥
यहि धनुपर ममता केहि हेतू * सुनि रिसाय कह भृगुकुलकेतू ॥८॥

महाराज ! लड़कपनमें मैंने बहुतसे धनुष तोड़ डाले; पर आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया । पूर्वकी कथा है कि, परशुरामजीने सब राजाओंको जीत उनके धनुष अपने स्थान पर ला इकट्ठे किये और अनेक देवताओंके धनुष भी संग्रह किये । उनके बोझसे पृथ्वी और शेषजी व्याकुल हुए; तब पृथ्वी स्त्री और शेषजी बालकका शरीर धारणकर परशुरामजीके पास आये । उन्होंने यह भी विचारा कि यह धनुष यदि राक्षसोंके हाथ लग गये तो महा अनर्थ होगा । तब पृथ्वी परशुरामजीसे बोली महाराज ! यह मेरा बालक और मैं बड़ी दुःखी हूँ, आज दिन भोजन भी नहीं मिलता मैं इच्छा रखती हूँ कि आपके आश्रमकी परिचर्या किया करूँगी और ऋषियोंने मुझको इस कारण नहीं रखा कि यह मेरा पुत्र बड़ा चंचल है बिगाड़ करता रहता है । आप इसके बिगाड़पर क्रोधित न हों तो मैं रहूँ । परशुरामजी बोले रहो; हम इस बालकके अपराध क्षमा करेंगे यह सुन दोनों रहे । एक दिन परशुरामजी कहीं गये तब कालरूपी शेषजीने सब धनुष तोड़ डाले उनके शब्दको सुन परशुरामजी विस्मित हो आये और धनुष टूटे देख क्रोध नहीं किया, पर इतना कहा कि अब तुम जाओ और आशीर्वाद दिया तब शेषजीने अपना रूप दिखाया, और कहा कि एक शिवजीका धनुष शेष रह गया है उसको श्रीरामचन्द्रजी तोड़ेंगे तब आपसे फिर वार्त्ता होगी, यह कह कर दोनों अपने-अपने रूपमें मिल गये, वही लक्ष्मणजी कहते हैं कि बालकपनमें बहुत धनुष तोड़े) ॥ ७ ॥ इस धनुषके ऊपर ऐसी प्रीति क्यों है ! यह सुनकर परशुरामजी क्रोधसे बोले ॥ ८ ॥

दोहा-रे नृप बालक कालवश, बोलत तोहि न सँभार ॥
धनुही सम त्रिपुरारि-धनु, विदित सकल संसार ॥ २१५ ॥

अरे राजपुत्र! तुझको सँभालकर बोलना भी नहीं आता, क्या वह शिवजीका धनुष जिसको सारा संसार जानता है साधारण धनुषके ही समान है? ॥३१५॥

लषण कहा हँस हमरे जाना ❋ सुनहु देव सब धनुष समाना ॥१॥
का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे ❋ देखा राम नयेके भोरे ॥२॥

लक्ष्मणजी हँसकर बोले-सुनिये महाराज! हमारे विचारमें सब धनुष समान हैं। अथवा हमारी समझमें सब देवताओंके धनुष बराबर हैं यहां (उनका तोड़ना सूचित करते हैं) ॥ १ ॥ इस पुराने धनुषके तोड़नेसे क्या हानि और क्या लाभ हुआ? रामचन्द्रजीने इसको नया जानकर देखा था ॥ २ ॥

छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू ❋ मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥३॥
बोला चितइ परशुकी ओरा ❋ रे शठ सुनेसि सुभाउ न मोरा ॥४॥

यह छूनेसे ही टूट गया, रघुकुलपालक श्रीरामचन्द्रजीका कुछ भी दोष नहीं है, हे मुनि! क्यों व्यर्थ क्रोध करते हो? ॥ ३ ॥ तब परशुरामजी फरसेकी ओर देखकर बोले-मूर्ख तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना? ॥ ४ ॥

बालक बोलि वधौं नहिं तोहीं ❋ केवल मुनि जड़ जानहिं मोहीं ॥५॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही ❋ विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही॥६॥

मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ; मूर्ख मुझे केवल मुनि ही मत जान ॥५॥ मैं बाल ब्रह्मचारी और अति क्रोधी हूँ संसार जानता है कि क्षत्रिय कुलका द्रोही (वैरी) हूँ ॥ ६ ॥

भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही ❋ विपुल बार महि देवन दीन्ही ॥७॥
सहस-बाहु भुज छेदन हारा ❋ परशु विलोकु महीप कुमारा ॥८॥

पृथ्वी अपनी भुजाओंके बलसे विना राजाओंकी करके २१ बार ब्राह्मणोंको दे दी ॥७॥ यह सहस्रबाहु राजाकी भुजाओंको छेदन करनेवाला फरसा है, हे महीपकुमार! इसको देख ॥ ८ ॥

दोहा-मातु पितहि जनि शोच वश, करसि महीप किशोर ॥
गर्भनके अर्भक-दलन, परशु मोर अति घोर ॥ ३१६॥

हे राजपुत्र! माता-पिताको शोच वश मत कर, यह मेरा कठिन फरसा गर्भके बालकका भी नाशक है, अर्थात् इसके शब्दसे गर्भके बालक मर जाते हैं ॥ ३१६ ॥

विहँसि लषण बोले मृदु बानी ❋ अहो मुनीश महा भट मानी ॥१॥
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारा ❋ चहत उड़ावन फूँकि पहारा ॥२॥

हँसकर लक्ष्मणजी कोमलवाणी बोले-अहो महाराज! आप मुनि होकर महायोधापनका अभिमान करते हो ॥ १ ॥ बार-बार मुझको कुल्हाड़ा दिखाकर फूँकसे पहाड़ उड़ाया चाहते हो ॥ २ ॥

यहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं ❋ जो तर्जनी देखि मुरझाहीं ॥३॥
देखि कुठार शराशर बाना ❋ मैं कछु कहेउ सहित अभिमाना ॥४॥

यहां कोई पैठेकी जैया अथवा (छुईमुई) नहीं है जो तर्जनी (अंगुष्ठके पासकी) उँगली

१. कवित्त — "तूलकी रही कि काहू फूलकी रही कि मृदु मूलकी रही कै धूल सानिके सजायी थी। सांटीकी रही कि कहाँ सांची ही स्वच्छ माटी लाय कांची, काहू कुशल कुलालते कराई थी। रसिक विहारी भृगुनाथ भाषिये तौ नेक, शंकरसमीप या कहांसे किमि आयी थी। हौं तो यह जानों अनुमानते जु कोऊ बाल, खेल हेतु धनुही मृणालकी वनायी थी।"
(रामरसायने)

दिखाते ही मर (कुम्हला) जाती है ॥ ३ ॥ आपके इस कुठार और धनुष बाणको देखकर मैंने कुछ अभिमान सहित कहा, परंतु ॥ ४ ॥

भृगुकुल समुझि जनेउ विलोकी ❋ जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी ॥५॥
सुर महिसुर हरिजन अरुगाई ❋ हमरे कुल इनपर न शुराई ॥६॥

अब जाना कि आप भृगु वंशी ब्राह्मण हो तो जो कुछ कहोगे वह रिस रोककर सह लूँगा। (आपका यज्ञोपवीत भी ब्राह्मणोंका है अब पहिचाना, यज्ञोपवीतमें ग्रन्थी भेद होता है) ॥ ५ ॥ हमारे कुलमें देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और गाय इन पर शूरता नहीं करते ॥ ६ ॥

वधे पाप अपकीरति हारे ❋ मारतहूं पाँ परिय तुम्हारे ॥७॥
कोटि कुलिशसम वचन तुम्हारा ❋ वृथा धरहु धनु बाण कुठारा ॥८॥

क्योंकि इनको मारनेसे पाप, हारनेसे अपकीर्ति होती है, अतः मारोगे तो आपके पांव ही पड़ेंगे। अथवा हारनेसे इनकी अपकीर्ति होती है, इससे पाँव पड़ना ही अच्छा है ॥७॥ करोड़ वज्रके समान तो आपका वचन ही है, यह धनुष, बाण और कुठार तो वृथा ही धारण करते हो॥८॥

दोहा-जो विलोकि अनुचित कहेउँ, क्षमहु महामति धीर ॥
सुनि सरोष भृगुवंशमणि, बोले गिरा गँभीर ॥ ३१७ ॥

हे मुनिराज ! जो कुछ मैंने (आपके वस्त्र) देखकर अनुचित कहा हो वह हे महामति धीर ! क्षमा करना। यह सुन परशुरामजी क्रोधित हो गंभीर वाणी बोले ॥ ३१७ ॥

कौशिक सुनहु मन्द यह बालक ❋ कुटिलकालवश निजकुल घालक ॥१॥
भानुवंश राकेश कलंकू ❋ निपट निरंकुश निठुर निशंकू ॥२॥

हे विश्वामित्रजी ! सुनो यह बालक बड़ा मंद तथा कुटिल है और कालके वशीभूत हो अपने कुलका नाश करनेवाला है ॥ १॥ यह सूर्यवंशमें कलंकरूप चन्द्रमा है तथा अत्यन्त निरंकुश निष्ठुर और निडर भी है ॥ २ ॥

काल-कवल होइहि क्षणमाहीं ❋ कहउँ पुकारि खोरि मोहिं नाहीं ॥३॥
तुम हटकहु जो चहहु उबारा ❋ कहि प्रताप बल रोष हमारा ॥४॥

तनिक देरमें यह कालका ग्रास हो जायगा मैं पुकार कर कहता हूं-फिर मेरा दोष नहीं॥३॥ जो आप इसका उबार चाहते हो हटक दो और हमारा प्रताप बल क्रोध इसको सुना दो ॥४॥

कौशिक कहा क्षमिय अपराधू ❋ बाल दोष गुण गनहिं न साधू ॥५॥

विश्वामित्रजीने कहा-महाराज ! अपराध क्षमा कीजिये, क्योंकि साधुपुरुष बालकोंके गुण और दोषपर ध्यान नहीं देते हैं ॥ ५ ॥

लषण कहेउ मुनि सुयश तुम्हारा ❋ तुमहिं अछतको वरणहि पारा ॥६॥
अपने मुख तुम आपनि करनी ❋ बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥७॥

लक्ष्मणजीने कहा मुनिराज ! आपके होते हुये आपका यश कौन वर्णन करके पार पा सकता है ॥६॥ अपने मुखसे अपनी करनी आपने अनेक बार और अनेक भांतिसे वर्णन की ॥७॥

कवित्त - "पाऊँ अनुशासन तौ आसन बिछाऊँ वेगि वासन भराऊँ वेगि धीर उर राखिये। द्विज गुणवान ज्ञानत्यों विचारवान कीजै, छोह कोह तेइ तो न मन माँह माखिये ।। देखि धनुवान क्षत्रि जान पुनि वीर मान, कीनो हम रोष सो कृपाते दोष नाखिये, रसिक विहारी सदा पूज्य हौ, हमारे याते मीठे दधिमोदक मंगाऊं वैठि चाखिये ।।" (रामरसायने)

नहिं सन्तोष तौ पुनि कछु कहहू * जनि रिस रोकि दुसह दुखसहहू ॥८॥
वीरव्रती तुम धीर अछोभा * गारी देत न पावहु शोभा ॥९॥

इतनेपर भी जो सन्तोष नहीं हो तो फिर कुछ कहिये, क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये ॥ ८ ॥ आप वीरव्रती हैं, आप धीरजवान् और क्षोभरहित हैं अतः गाली देते हुए शोभा नहीं पाते ॥ ९ ॥

दोहा-शूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ॥
विद्यमान रिपु पाय रण, कायर करहिं प्रलापु ॥ ३१८ ॥

जो शूर युद्धमें करनी करते हैं; वे अपने बलका वर्णन आप नहीं करते, लड़ाईमें शत्रुके सामने होकर प्रलाप अर्थात् व्यर्थ बकवाद तो कायर करते हैं ॥ ३१८ ॥

तुम तौ काल हाँकि जनु लावा * बार बार मोहि लागि बुलावा ॥१॥
सुनत लषणके वचन कठोरा * परशु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥२॥

महाराज ! आप तो मानो काल ही हांक लाये हो जो बार-बार मेरे अर्थ बुलाते हो ॥ १ ॥ यह लक्ष्मणजीके कठोर वचन सुनते ही परशुरामजीने कठिन फरसा सँभाल कर हाथमें पकड़ा (और बोले) ॥ २ ॥

अब जनि देइँ दोष मोहिं लोगू * कटुवादी बालक वध-योगू ॥३॥
बाल विलोकि बहुत मैं बाँचा * अब यह मरणहार भा साँचा ॥४॥

अब कोई लोग मुझको दोष न दें, यह कटुवादी बालक मारनेके ही योग्य है॥३॥बालक जानकर इसको बहुत बचाया, किन्तु अब यह सत्य ही मरणहार हुआ है ॥ ४ ॥

कर कुठार मैं अकरण कोही * आगे अपराधी गुरु द्रोही ॥५॥
उतर देत छाँड़ेउ विनु मारे * केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥६॥

हाथमें कुल्हाड़ा है,मैं विना कारण क्रोधी हूँ, उसपर गुरुद्रोही सामने खड़ा है ॥५॥ उत्तर दे रहा है तो भी मैं इसे विना मारे छोड़ रहा हूँ। विश्वामित्रजी ! यह केवल आपके शीलसे॥६॥

नतु यहि काटि कुठार कठोरे * गुरुहि उऋण होतेउँ श्रम थोरे ॥७॥

नहीं तो इस कठोर कुल्हाड़ेसे काटकर थोड़े श्रममें ही गुरुसे उऋण हो जाता ॥ ७ ॥

दोहा-गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरी सूझ ॥
अजगव खंडउ ऊखजिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥ ३१९ ॥

गाधिसुवन विश्वामित्रजी हृदयमें हँसकर बोले कि परशुरामको हरिभगवान् अरि अर्थात् वैरी (क्षत्रिय) दिखाई देते हैं जिन्होंने इस वज्रसार धनुषको गन्नेके समान तोड़ दिया उनको यह अजान अभी तक नहीं जानते। अथवा परशुरामजीको हरा-हराही दिखायी देता है॥३१९॥

कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा * को नहिं जान विदित संसारा ॥१॥
माता पितहि उऋण भये नीके * गुरु ऋण रहा शोच बड़ जीके ॥२॥

लक्ष्मण बोले-हे मुनि ! आपके शीलको कौन नहीं जानता ! संसार भरमें प्रकट है॥१॥

माता पितासे आप अच्छे उऋण हुए अब गुरु ऋण बाकी है सो उसका जीमें बड़ा शोच है॥२॥

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा * दिन चलि गये व्याज बहु बाढ़ा ॥३॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली * तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥४॥

मानो आपने वह हमारे ही माथे काढ़ रखा है, उस ऋणको दिन भी बहुत हो गये, व्याज भी बहुत बढ़ा होगा॥३॥ अब यह जिनका ऋण है उस महाजन अर्थात् अपने गुरुको बुलाइये; परंतु मैं थैली खोलकर दे दूँगा। अथवा किसी हिसाबवालेको बुलाइये, मैं व्याज समेत चुका दूँ॥४॥

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा * हाय हाय सब सभा पुकारा ॥५॥
भृगुवर परशु दिखावहु मोही * विप्र विचारि बचउँ नृप द्रोही ॥६॥

यह कटु वचन सुनकर परशुरामजीने कुल्हाड़ा सुधारा, तब सब सभाके लोग हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ तब लक्ष्मण जी बोले—हे परशुराम! मुझको आप क्या फरसा दिखाते हो? हे राजाओंसे वैर करने वाले! मैं ब्राह्मण जानकर बचाता हूँ ॥ ६ ॥

मिले न कबहुँ सुभट रण गाढ़े * द्विज देवता घरहि के बाढ़े ॥७॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे * रघुपति सैनहि लषण निवारे ॥८॥

कभी कोई रणवीर योद्धा नहीं मिले, ब्राह्मण देवता घरके ही वीर हैं ॥७॥ सब लोगोंने कहा कि, यह बड़ी अनुचित बात है तब रामने सैन सेही लक्ष्मणजीको निवारण किया ॥ ८ ॥

दोहा—लषण उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृशानु ॥
बढ़त देखि जलसम वचन, बोले, रघुकुल भानु ॥ ३२० ॥

लक्ष्मणका उत्तर आहुतिके समान और परशुरामजीका कोप अग्नि है, उसको बढ़ता हुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजी जलके समान वचन बोले ॥ ३२० ॥

नाथ करहु बालकपर छोहू * सूध दूधमुख करिय न कोहू ॥१॥
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना * तौ कि बराबरि करइ अयाना ॥२॥

हे नाथ! बालकपर कृपा कीजिये-यह सूधा है और अभी दूधमुख है क्रोध न कीजिये॥१॥ जो कुछ भी आपका प्रभाव जानता तो यह अजाना क्या आपकी बराबरी कर सकता?॥२॥

जो लरिका कछु अचगरि करहीं * गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥३॥
करिय कृपा शिशु सेवक जानी * तुम समशील धीर मुनि ज्ञानी ॥४॥

जो बालक कुछ अनुचित करते हैं तो गुरु, पिता, माता मनमें प्रसन्न ही होते हैं ॥ ३ ॥ आप इस बालकको अपना सेवक जानकर कृपा कीजिये, क्योंकि आप समशील अर्थात् समान (समदर्शी) अथवा शम अर्थात् शांत स्वभाववाले धीरतायुक्त ज्ञानी मुनि हैं ॥ ४ ॥

---

१. एक समय परशुरामके पिता जमदग्निने रेणुकाको जल भरने भेजा था, वहां उसने एक गंधर्व गंधर्वीका विहार देखते देर लगादी। ऋषिने यह जानकर कि, इसने परपुरुषका विहार देखा क्रोधित हो अपने पुत्रोंको अपनी स्त्रीके वधकी आज्ञा दी, उन्होंने स्वीकार नहीं किया, तब परशुरामसे कहा तुम अपनी माता और इन आज्ञा उल्लंघन करनेवाले अपने भाइयोंको मार डालो परशुराम जीने तत्काल सबको मार डाला, तब जमदग्नि प्रसन्न हो बोले पुत्र वर मांगो, परशुरामजी बोले—यही वर दो कि माता और भाई जीवित हो जायं और यह भी न जानें कि हमने इनको मारा था। ऋषिने 'तथास्तु' कह-कर उनको तपके बलसे जीवित किया, तब परशुरामजी पृथ्वीकी परिक्रमा करने गये। एक समय ऋषिके कामधेनु गऊ न देनेपर क्रोधित हो राजा कार्त-वीर्यने इनसे वैर ठाना परशुरामने उसको मार डाला तब राजाके पुत्रोंने जमदग्निको मारकर बदला ले लिया, उनकी स्त्रीने २१ वार छाती पीटी इतनेमें परशुरामने आकर प्रतिज्ञा की कि मैं २१ वार क्षत्रवंशका नाश करूंगा और वैसाही किये वही बात लक्ष्मणजीने कही है।

१. क०—"वेद पढ़ि जानें जप यज्ञ बढ़ि जानें पाप पुण्य मढ़ि जानें बहु बातें गढ़ि जाने हैं। शापवेमें जानें वर थापवेमें जाने दोषछापवे मेंजानें तन तापवेमें जानें हैं। खाय जानें खूब औ अजूब औं औचि लाय जानें, रसिकबिहारी बालको पढ़ाय जानें हैं। एती पुनि और हूं अनेक रीति जानै एक युद्धपर वीरताई विप्र नाहीं जाने हैं।"

(रामरसायने)

राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने * कहि कछु लषण बहुरि मुसुकाने ॥५॥
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी * राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥६॥

रामजीके वचन सुनकर कुछेक ठंढे हुए थे कि लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुसकाये॥५॥ हँसता देख नखसे शिखतक रिस व्याप गयी और बोले कि राम ! तेरा भाई बड़ा पापी है॥६॥

गौर शरीर श्याम मनमाहीं * कालकूट मुख पय मुख नाहीं ॥७॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोहीं * नीच मीच सम देख न मोहीं ॥८॥

(परशुराम) बोले इसका गोरा शरीर है, पर मनका काला है कालकूट अर्थात् विषका मुख है दूधका नहीं ॥ ७ ॥ यह स्वाभाविक ही टेढ़ा है; तेरी अनुहार नहीं है बड़ा नीच है और मृत्युके समान मुझको नहीं देखता है ॥ ८ ॥

दोहा–लषण कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल ॥
जेहि वश मन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल ॥३२१॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा–मुनि ! क्रोध पापका मूल है जिनके वश होकर मनुष्य अनुचित करते हैं और विश्वके प्रतिकूल चलते हैं ॥ ३२१ ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया * परिहरि कोप करिय अब दाया ॥१॥
टूट चाप नहिं जुरहिं रिसाने * बैठिय होइहिं पांय पिराने ॥२॥

हे मुनिराज ! मैं आपका अनुचर हूँ,अब क्रोध छोड़कर मुझपर दया करो ॥ १ ॥ टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से नहीं जुड़ता, बैठ जाइये, पांव दुखने लगे होंगे ॥ २ ॥

जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई * जोरिय कोउ बड़ गुणी बुलाई[1] ॥३॥
बोलत लषणहिं जनक डराहीं * मष्ट करहु अनुचित भलनाहीं ॥४॥

जो अति प्यारा है तो उपाय करिये और किसी गुणीको बुलाकर जोड़ाइये ॥३॥ लक्ष्मणजीके बोलनेसे जनक डरते हैं कि चुप कीजिये, बहुत अनुचित अच्छा नहीं ॥ ४ ॥

थर थर काँपहिं पुर नर नारी * छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥५॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी * रिस तनु जरे होय बलहानी ॥६॥

पुरके स्त्री पुरुष थरथर काँपते हैं कि छोटा कुमार बड़ा खोटा है ॥ ५ ॥ परशुरामजीका शरीर निर्भय वाणी सुनकर रिसके मारे जलने लगा, बलकी हानि होने लगी ॥ ६ ॥

बोले रामहिं देइ निहोरा * बचउँ विचारि बन्धु लघु तोरा ॥७॥
मन मलीन तन सुन्दर कैसे * विषरस भरा कनक घट जैसे ॥८॥

परशुरामजी रामचन्द्रजीको निहोरा देकर बोले तुम्हारा छोटा भाई जानकर इसे बचाता हूँ ॥ ७ ॥ यह मनका मलिन है शरीर ऐसा सुन्दर है, जैसे सोनेके घड़ेमें विष भरा हो ॥८॥

दोहा–सुनि लक्ष्मण बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम ॥
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि वाणी वाम ॥ ३२२ ॥

---

१. क०—"ऐसे हि कमान बालकेलिकी रुचै तौ बहु; होवेंगी विदेह गेह अवहीं मंगाऊमें ।। रसिक विहारी जो तिहारी प्रीति याहि मांहि, तोपै कहु खंड खंच वेगही बढ़ाऊं में ।। नीकी जिय भावै भृगुनाथ तो निर्देश दीजै हेमकी रचाय मणि माणिक मढ़ाऊं में । जोपै तुम्हें चाहिये कहो तो द्विजराज अब याहूते अनोखी चोखी अमित गढ़ाऊं में ।।" (रामरसायने)

सुनकर लक्ष्मणजी फिर हँसे, तब रामजीने नेत्रोंसे घुड़क दिया, तब गुरुके निकट वाम अर्थात् टेढ़ी वाणी छोड़ कर गये ॥ ३२२ ॥

अति विनीत मृदु शीतल बानी ❋ बोले राम जोरि युग पानी ॥१॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना ❋ बालक वचन करिय नहिं काना ॥२॥

अतिनीति युक्त शीतल कोमलवाणी रामचन्द्रजी हाथ जोड़कर बोले ॥ १ ॥ सुनो नाथ ! तुम स्वाभाविक चतुर हो, बालकके वचन कान मत दो ॥ २ ॥

बौंरें बालक एक स्वभाऊ ❋ इनहिं न सन्त विदूषहिं काऊ ॥३॥
तिन नाहीं कछु काज बिगारा ❋ अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥४॥

बूढ़े अथवा ततैया बौंरे और बालकोंका एकसा स्वभाव होता है इनको सन्त दोष नहीं देते ॥ ३ ॥ और इसने तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा, आपका अपराधी तो मैं हूँ ॥ ४ ॥

कृपा कोप वध बन्ध गुसाईं ❋ मोपर करिय दास की नाईं ॥५॥
कहिय बेगि जेहि विधि रिसजाई ❋ मुनिनायक सोइ करिय उपाई ॥६॥

हे महाराज ! आप तो गोसाई इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले हो, यह व्यंग वचन है, आप कृपा क्रोध वध बन्धन जो चाहें सो मुझे अपना दास जानकर करें ॥ ५ ॥ हे मुनिनायक ! (मननशील सब कुछ जाननेवाले) जिस प्रकार आपकी रिस जाय वह कहो ? उसीका उपाय किया जाय, आप जो कहें सो मैं करूँ ॥ ६ ॥

कह मुनि राम जाय रिस कैसे ❋ अजहुँ बन्धु तव चितव अनैसे ॥७॥
इहिके कंठ कुठार न दीन्हा ❋ तौ मैं काह कोप करि कीन्हा ॥८॥

मुनि बोले-रामजी क्रोध कैसे जाय; अब भी तुम्हारा भाई शत्रु दृष्टिसे देखता है॥७॥ जो इसके कंठमें कुलहाड़ा नहीं दिया अर्थात् इसको नहीं मारा तो मैंने क्रोध करके क्या किया ॥८॥

दोहा-गर्भ स्रवहि अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर ॥
परशु अछत देखौं जियत, वैरी भूप किशोर ॥३२३॥

इस कुलहाड़ेका घोर शब्द सुनकर (अवनिप-रवनी) राजाओंकी रानियोंके गर्भ गिर जाते हैं उस फरशेके होते हुए वैरी राज पुत्रको जीता देखता हूँ ॥ ३२३ ॥

बहै न हाथ दहै रिस छाती ❋ भा कुठार कुंठित नृप घाती ॥१॥
भयउ वाम विधि फिरेउ स्वभाऊ ❋ मोरे हृदय कृपा कस काऊ ॥२॥

हाथ नहीं उठता रिससे छाती जली जाती है और राजाओंको मारते-मारते कुठार कुंठित अर्थात् गुठला हो गया है ॥ १ ॥ विधाता ही वाम हो गया मेरा स्वभाव फिर गया, नहीं तो मेरे मनमें ऐसी दया कहां थी ? ॥ २ ॥

आजु दैव दुख दुसह सहावा ❋ सुनि सौमित्रि विहँसि शिरनावा ॥३॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला ❋ बोलत वचन झरत जनु फूला ॥४॥

---

१. सवैया—"गर्भके अर्भक काटनको पटुभार कुठार कराल है जाको। सोई है बूझत राजसभा धनुको बलिहौं दलिहै बल ताको लघु आनन उत्तर देते बड़ी लरिहै, मरिहै करिहै कछु साको। गोरे गरूर गुमान भरयो कहो कौशिक छोटो सो ढोटो है काको।

आज दैवने बड़ा दुःख दिखाया है कहीं दैवके स्थानमें 'दया' पाठ है और उसका अर्थ यह है आज दयासे दुःख सहना पड़ा, यह सुनकर लक्ष्मणजीने हँसकर शिर नवाया ॥ ३ ॥ जैसे रिसकी वायुमें आप भरे हैं सोई आपकी दया वायु है और आपका मूर्तिरूपी वृक्ष उसके अनुकूल अर्थात् क्रोधसे भरा हुआ है, अथवा आपकी कृपारूपी वायु है, आपकी मूर्ति उसीके अनुकूल अर्थात् शांत है, यह जो आप वचन बोलते हैं उसी मूर्तिरूपी बृक्षमे फूल झरते हैं अथवा यह अर्थ कहना कि वाह ! आप भली कृपाकी अनुकूल मूर्ति हो आप जो वचन बोलते हो सो मानों फूल झरते हैं अथवा वाह ! आप तो कृपाकी मूर्ति हो ॥ ४ ॥

जौपै कृपा जरै मुनि गाता ❋ क्रोध भये तनु राख विधाता ॥५॥
देखु जनक हठि बालक एहू ❋ कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू ॥६॥

हे मुनि ! जो कृपा करनेमें आपका शरीर जलता है तो क्रोधमें विधाता ही शरीर रखे ॥ ५ ॥ कुल्हाड़ेकी कुंठितता तो ऐसी विदित होती है । परशुराम बोले–हे जनक ! इस बालककी हठ तो देखो, यह मूर्ख यमपुरमें घर बनाना चाहता है ॥ ६ ॥

बेगि करहु किन आखिन ओटा ❋ देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥७॥
बिहँसि लषण कहा मुनि पाहीं ❋ मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥८॥

जल्दीसे आंखकी ओट करो, देखनेमें छोटा है पर यह राजपुत्र बड़ा ही खोटा है ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणजी हँसकर बोले महाराज ! आंख मीच लीजिये कहीं कोई भी नहीं दीखेगा ॥८॥

दोहा–परशुराम तब रामप्रति, बोले वचन सक्रोध ॥
शम्भुशराशन तोरि शठ, करसि हमार प्रबोध ॥ ३२४ ॥

तब परशुरामजी श्रीरामचंद्रजीसे क्रोधित होकर बोले मूर्ख! शिवधनुष तोड़के हमें समझाता है।३२४॥

बन्धु कहै कटु सम्मत तोरे ❋ तू छल विनय करत कर जोरे ॥१॥
करु परितोष मोर संग्रामा ❋ नाहित छांड़ कहाउब रामा ॥२॥

तेरा भाई तेरी सम्मतिसे कटु वचन बोलता है और तू छलसे विनती करता है ॥ १ ॥ या तो युद्ध कर मुझे सन्तोष दे नहीं तो अपना 'राम' यह नाम कहना छोड़ दे ॥ २ ॥

छल तजि करहु समर शिव द्रोही ❋ बन्धु सहित नतु मारौं तोही ॥३॥
भृगुपति कहहिं कुठार उठाये ❋ मन मुसुकाहिं राम शिर नाये ॥४॥

हे शिवद्रोही ! छल छोड़कर युद्ध करो, नहीं तो भाई सहित तुम्हें मारूँगा ॥३॥ परशुरामजी कुल्हाड़ेको उठाये हुए कह रहे हैं और राम शिर झुकाये मनमें मुसकाते बात कर रहे थे ॥ ४ ॥

गुनह लषणकर हमपर रोषू ❋ कतहुँ सुधाइहुते बड़ दोषू ॥५॥
टेढ़ जानि शङ्का सब काहू ❋ वक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू ॥६॥

रामचन्द्रजी बोले कठोर वचन कहनेका दोष लक्ष्मणका है और क्रोध हमपर करते हैं कहीं

१. क० – "कै तो कर कंपत गिरो है कहुँ पाहन पं, परशु तिहारो तबहीतें छीन धार भी । कै तो कहूँ कानन कठोर तरु कीने छिन्न ॥ जाते धार मन्द ह्वै हथ्यार विनकार भी ॥ कै तो लोह काचेको बनायो है अजान कोऊ, कै तो यह आजलौं न काहू को प्रहार भी । रसिक विहारी सत्य यही दरशात यातें कन्धपं धरे ही धरे कुण्ठित कुठार भो ।" (रामरसायने)

सूधेपनसे भी दोष होता है और धनुष तोड़नेको पहले ही कह चुके हैं, तथा "तिन नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा" ॥५॥ टेढ़ा जानकर सब किसीको शंका है, टेढ़े चन्द्रमाको राहु भी नहीं ग्रसता है। अथवा रामचन्द्रजी कहते हैं कि, गुनाहको न लखकर हमपर रोष किया; आशय यह है कि इसका मूलकारण जानकीजी हैं, यदि वे धनुष न उठातीं तो यह प्रण कैसे होता? इसीमें मनमें मुसकुराकर कहते हैं, प्रगट कहनेमें अपराध करनेवाले की निसानी देनी पड़ती है और हम सूधी बात कहते हैं, इससे यह अधिक क्रोध करते हैं, सूधापन भी दोषका कारण है ॥ ६ ॥

राम कहेउ रिस तजिय मुनीशा ❋ कर कुठार आगे यह शीशा ॥७॥
जेहि रिस जाय करिय सोइ स्वामी ❋ मोहि जानि आपन अनुगामी ॥८॥

अब श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे-हे मुनीश! आप रिसका त्याग कीजिये, आपके कुल्हाड़ेके आगे यह हमारा शिर है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार आपकी रिस दूर हो, हे स्वामी! मुझे अपना अनुगामी जानकर वही करो ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु सेवकहि समरकस, तजहु विप्रवर रोष ॥
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष ॥ ३२५ ॥

महाराज! सेवक और स्वामीका कैसा युद्ध! आप क्रोधका त्याग कीजिये, वेषको देख कर कुछ कहा, बालकका भी दोष नहीं है ॥ ३२५ ॥

देखि कुठार बाण धनु धारी ❋ भै लरिकहि रिस वीर बिचारी ॥१॥
नाम जानि पै तुमहिं न चीन्हा ❋ वंश स्वभाव उतर तेइँ दीन्हा ॥२॥

आप ब्राह्मण हैं परंतु आपके पास कुठार, बाण, धनुष देख वीर जानकर लक्ष्मणने जो बालक है रिस किया ॥१॥ आपका नाम तो प्रथमसे सुना था, पर पहचाना नहीं, इस कारण वंशके स्वभावानुसार आपको उत्तर दिया। अथवा न आपका नाम जाना न आपको पहचाना॥२॥

जौ तुम अवतेउ मुनिकी नाईं ❋ पदरज शिर शिशु धरत गुसाईं ॥३॥
क्षमहु चूक अनजानत केरी ❋ चहिय विप्र उर कृपा घनेरी ॥४॥

हे मुने! जो तुम मुनिकी नाई आते तो बालक तुम्हारे चरणकमलमें अपना शिर धरता ॥ ३ ॥ सो अनजानेकी चूक क्षमा करो, ब्राह्मणके हृदयमें बड़ी कृपा होनी योग्य है ॥ ४ ॥

हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा ❋ कहहु तौ कहाँ चरण कहँ माथा॥५॥
राम-मात्र लघु नाम हमारा ❋ परशुसहित बड़ नाम तुम्हारा ॥६॥

महाराज हममें तुममें कैसी समता? कहां तो आपके चरणोंमें शिर रखनेवाले और कहां आप शिर स्थानमें नमस्कार योग्य हैं। भगवान् जानते हैं आप शिरके देवता हैं और हम चरणोंके देवता हैं, विष्णु चरणके देवता हैं ॥५॥ राममात्र मेरा छोटासा नाम है और परशुके सहित तुम्हारा बड़ा नाम है (परशुसहित) यह शब्द कहकर परशुरामजीकी सत्ता अपनेमें खैंचली॥६॥

देव एक गुण धनुष हमारे ❋ नव गुण परम पुनीत तुम्हारे ॥७॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे ❋ क्षमहु विप्र अपराध हमारे ॥८॥

हे देव! हमारे तो एकही धनुष है वह भी अपवित्र अर्थात् धनुषसे हिंसादिक होती हैं आपमें

परम पवित्र नौ गुण (डोरे) हैं यथा कोमलता, तप, संतोष, क्षमा, अतृष्णा, जितेन्द्रियता, दान सर्वदाता, दयालु। अथवा हमारे धनुषमें एक गुण (रोदा) है अपवित्र, आपके यज्ञोपवीतमें परम पवित्र नौ गुण (डोरे) हैं अथवा आपकी परम पवित्रतामें नौकासा गुण है जो एकसा रहता है, नौके अंकको गुणा करनेसे एकसा ही रहता है जैसे दो नवां अठारह, आठ और एक नौ इत्यादि ॥७॥ सब प्रकारसे हम तुमसे हार गये। हे विप्र ! हमारे अपराध क्षमा करो ॥ ८ ॥

दोहा—बार बार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम ॥
बोले भृगुपति सरुष ह्वै, तुहू बन्धु सम वाम ॥ ३२६ ॥

हे मुनि ! विप्रवर ! ऐसा बारंबार रघुनाथजीने परशुरामसे कहा, तब फिर वे क्रोधकर बोले-तू भी भाईके समान कुटिल है ॥ ३२६ ॥

निपटहि द्विज करि जानहु मोहीं * मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं ॥१॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू * कोप मोर अति घोर कृशानू ॥२॥

निरा ब्राह्मण ही क्या मुझे जानते हो ? मैं जैसा ब्राह्मण हूँ तुझे सुनाता हूँ ॥ १ ॥ धनुषको स्रुवा जानो जिससे आहुति देते हैं और मेरा कोप घोर अग्नि है और बाण उसमें आहुति है जो स्रुवेसे अग्निमें छोड़ी जाती है ॥ २ ॥

समिध सेन चतुरंग सुहाई * महा महीप भये पशु आई ॥३॥
मैं इहि परशु काटि बलि दीन्हे * समरयज्ञ जग कोटिन कीन्हे ॥४॥

अश्वारोही, गजारोही, रथी, पैदल यह चार प्रकारकी सेना उस यज्ञकी समिधा अर्थात् लकड़ी हैं और ऐसे बड़े-बड़े राजा उस यज्ञमें पशु हुए हैं ॥ ३ ॥ मैंने इस फरशेसे काट-काटकर उनकी बलि दी और बहुत बार समर यज्ञ किया ॥ ४ ॥

मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे * बोलेसि निदरि विप्रके भोरे ॥५॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा * अहमिति मनहुँ जीत जग ठाढ़ा॥६॥

मेरा प्रताप तुम नहीं जानते, ब्राह्मण जानके भूलसे निरादर करते हो ॥ ५ ॥ धनुष क्या तोड़ा तुम्हारा बड़ा दाव लग गया और अहंकार ऐसा है मानो जगत् जीत लिया ॥ ६ ॥

राम कहा मुनि कहहु विचारी * रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥७॥
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना * मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥८॥

रामजीने कहा-महाराज ! विचार करके कहो; रिस तो बड़ी है और चूक हमारी बहुत थोड़ी है गूढ़ आशय यह कि; आप अपने और हमारे रूपको नहीं पहचानते ॥ ७ ॥ यह पुराना धनुष छूते ही टूट गया, मैं किस लिए अभिमान करूँगा ? ॥ ८ ॥

दोहा—जौ हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ ॥
तौ असको जगसुभट जेहि, भय वश नावहिं माथ ॥ ३२७ ॥

हे भृगुनाथ ! जो हम ब्राह्मण जानकर आपका तिरस्कार करते हों तो ऐसा योद्धा जगतमें कौन है जिससे भयभीत हो हम शिर नवावें ॥ ३२७ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना * समबल अधिक होहु बलवाना ॥१॥

जौ रण हमहिं प्रचारै कोऊ * लरैं सुखेन काल किन होऊ ॥२॥

देव दैत्य राजा और अनेक योद्धा चाहे समान बलवाले हों, या अधिक बलवान् हों ॥ १ ॥ जो युद्धमें कोई हमें प्रचारे तो काल ही क्यों न हो हम सुखसे लड़ते हैं ॥ २ ॥

क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना * कुलकलंक तेहि पामर जाना ॥३॥
कहौं स्वभाव न कुलहि प्रशंसी * कालहु डरहिं न रण रघुवंशी ॥४॥

क्षत्रियका शरीर धारण कर जो युद्धसे डरते हैं उन्हें कुलका कलंकी और अधम जानो॥३॥ यह मैं स्वभावसे कहता हूँ, न कि कुलकी प्रशंसासे, रघुवंशी लड़ाईमें कालसे भी नहीं डरते हैं।॥४॥

विप्र-वंशकी अस प्रभुताई * अभय होय जो तुमहि डराई ॥५॥
सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपतिके * उघरे पटल परशुधर-मतिके ॥६॥

ब्राह्मणोंके वंशकी ऐसी प्रभुता है की, जो आपसे डरे वह अभय हो जाता है। अथवा ब्राह्मणोंकी ऐसी महिमा है कि हम जो अभय हैं कालसे भी नहीं डरते, वे भी आपसे डरते हैं। अथवा श्रीरामचन्द्रजीने भृगुलताका चिह्न दिखाकर कहा कि विप्रवंशकी यह महिमा है कि हम ऐसे अभय हो गये किसीसे नहीं डरते ॥ ५ ॥ यह श्रीरामचन्द्रजीके मृदु और गूढ़ वचन सुनकर परशुरामके हृदयके पटल (किवाड़) खुल गये (और बोले) ॥ ६ ॥

राम रमापति कर धनु लेहू * खैंचहु मिटइ मोर संदेहू ॥७॥
देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ *परशुराम मन विस्मय भयऊ ॥८॥

हे राम! आपके वचनसे तो आपका अवतार होना निश्चय हुआ, परन्तु अब कर्मसे भी निश्चय किया चाहता हूँ, इस कारण लक्ष्मीपति विष्णुजीका जो यह धनुष हमारे पास है इसे लो और खैंचकर चढ़ा दो तो हमारा संदेह दूर हो (भगवान् ने परशुरामजीको धनुष देनेके समय कह दिया था कि जो धनुषको चढ़ावे उसे पूर्ण अवतार जानना और तप करने वनको चले जाना) ॥ ७ ॥ जब धनुष देते आप ही चढ़ गया तब तो परशुरामके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि, विष्णु भगवान्ने कहा था जो इसे चढ़ावे पूर्ण अवतार जानना। अब यह तो आपही चढ़ गया फिर विष्णु रूपसे भी परे रामको जान दुर्वचन कहनेसे खेदित हुए। अथवा धनुष देतेमें परशुराम अपने तेजसे आप भी उस पर स्थित हुए, वह उनका ईश्वरीय अंश राममें लय हो गया ॥ ८ ॥

दोहा-जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात ॥
जोरि पाणि बोले वचन, हृदय न प्रेम समात ॥ ३२८ ॥

तब रामजीका प्रताप जाना और रोमाञ्च हो शरीर प्रफुल्लित हो गया और हाथ जोड़के वचन बोले, जिनके मनमें अधिक प्रेम होनेसे समाता नही ॥ ३२८ ॥

जय रघुवंश वनज-वन भानू * गहन दनुज कुल दहन कृशानू ॥१॥
जय सुर धेनु विप्र हितकारी * जय मद मोह कोह भ्रम हारी ॥२॥

हे राम! आपकी जय हो, रघुवंशरूपी कमल वनके विकास करनेको आप सूर्य हैं और राक्षसकुलरूपी वनके जलानेको आप अग्नि हैं ॥ १ ॥ आप देवता, धेनु, ब्राह्मणोंके हितकारी हैं आपकी जय हो और मद, मोह, क्रोध और भ्रमके दूर करनेवाले आपकी जय हो। ॥२॥

विनय शील करुणा गुण सागर ✻ जयति वचन रचना अति नागर ॥३॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा ✻ जयशरीर छबि कोटि अनंगा ॥४॥

आप विनय, शील, करुणा और गुणके समुद्र हो, आपकी जय हो और आपके वचनों की रचना अति श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ सेवकके सुख देनेवाले आपके सब अङ्ग सुन्दर हैं, आपकी जय हो और शरीर की छबि करोड़ कामदेवकीसी है ॥ ४ ॥

कहा करौं मुख एक प्रशंसा ✻ जय महेश मन मानस हंसा ॥५॥
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता ✻ क्षमहु क्षमामंदिर दोउ भ्राता ॥६॥

एक मुखसे मैं क्या प्रशंसा करूँ ? आप तो शङ्करके मनरूपी मानसके हंस हो आपकी जय हो ॥ ५ ॥ मैंने अज्ञानसे जो अनुचित वचन कहा है उसे आप क्षमाके मंदिर दोनों भाई क्षमा करें ॥ ६ ॥

कहि जय जय जय रघुकुल केतू ✻ भृगुपति गये वनहिं तप हेतू ॥७॥
अपभय कुटिल महीप डराने ✻ जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने ॥८॥

हे रघुकुलकेतु ! आपकी जय हो ! ऐसा कह परशुरामजी तप करने वनको चले गये ॥ ७ ॥ खोटे राजा अपने भयसे डरे और जहां तहां कायर अवसर पाकर भाग गये ॥ ८ ॥

दोहा-देवन दीन्ही दुन्दुभी, प्रभुपर बरषहिं फूल ॥
हर्षे पुर नर नारि सब, मिटा मोह भय शूल ॥ ३२९ ॥

देवताओंने नगाड़े बजाये, श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की, पुरके नर नारी प्रसन्न हुए, और मोह, भय शूल मिट गया ॥ ३२९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे बालकाण्डान्तर्गत पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतव्याख्यायामष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

दोहा-सुन्दर नव विश्राम यह, आई राम बरात ।
रचना मण्डपकी भई, मिटे सकल उत्पात ॥ ९ ॥

अति गहगहे बाजने बाजे ✻ सबहि मनोहर मंगल साजे ॥१॥
यूथ यूथ मिलि सुमुखि सुनयनी ✻ करहिं गान कल कोकिल बयनी ॥२॥

अति घने बाजे बजने लगे और सबने मनोहर मङ्गल सजाये ॥१॥ सुन्दर मुख सुन्दर नेत्र और कोकिलाके समान कण्ठोंवाली स्त्रियोंके समूह परस्पर मिलकर गान करने लगे ॥ २ ॥

सुख विदेहकर वरणि न जाई ✻ जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई ॥३॥
विगत त्रास भइ सीय सुखारी ✻ जनु विधु उदय चकोर कुमारी॥४॥

जनकजीके सुखका वर्णन नहीं हो सकता, मानों जन्मके दरिद्रीने खजाना पा लिया ॥ ३ ॥ दुःख छूटनेसे जानकी प्रसन्न हुई जैसे चन्द्रमाके उदयसे चकोरका बच्चा ॥ ४ ॥

जनक कीन्ह कौशिकहि प्रणामा ✻ प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥५॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई ✻ अब जो उचित सो करिय गुसाई॥६॥

---

१. कवित्त —"कै धौं जटाजूट कैधौं कञ्चन मुकुट सोहै चन्दनकी खौर कैधौं चन्द अभिराम है । कैधौं मुण्डमाल कैधौं नाग मुकताकी माल कैधौं अँगरागकै विभूति छविधाम है ।। कैधौं है त्रिशूल कैधौं शरसुखभूलकर कै धौं पटपीत कै बघंबर ललाम है । रसिक, विहारी छबि न्यारी या अनप भारी, रामरूप शम्भु कैधौं शंभु रूपराम है ।" (रामरसायन-रामायण)

जनकजीने विश्वामित्रको प्रणाम कर कहा आपकी ही कृपासे रामजीने धनुष तोड़ा है॥५॥ हे मुने ! मुझे दोनों भाइयोंने कृतार्थ कर दिया, अब जो उचित हो सो कीजिये ॥ ६ ॥

कह मुनि सुनु नरनाह प्रवीना * रहा विवाह चाप आधीना ॥७॥
टूटत ही धनु भयउ विवाहू * सुर नर नाग विदित सब काहू ॥८॥

मुनिने कहा—राजन् ! आप तो जानते ही हैं कि धनुषके अधीन व्याह था ॥ ७ ॥ धनुष टूटते व्याह हो गया, यह देवता नर, नाग, मुनि सब जानते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—तदपि जाय तुम करहु अब, यथा वंश व्यवहार ॥
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचार ॥ ३३० ॥

तो भी आप अपने वंशका जैसे व्यवहार हो करो । ब्राह्मण,कुलवृद्ध,गुरु इनसे पूछकर जैसा वेदमें विधान है वह भी करो ! विवाहकी तीन विधि हैं–पहली स्वयंवर,जैसा कि फूलबाटिकामें विधान किया है कि "चली राखि उर श्यामल मूरति" ! दूसरी पितादत्त विधि-"टूटत ही धनु भयउ विवाहू" । तीसरा कुलोचित विवाह;इसी दोहेमें कहा सो यहां तीनोंही प्रधान हैं॥३३०॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई * आनैं नृप दशरथहि बुलाई ॥१॥
मुदित राउ कह भलेहि कृपाला * पठये दूत बोलि तेहि काला ॥२॥

अयोध्याको एक दूत भेज दो जो राजा दशरथजीको बुला लावे ॥ १ ॥ राजाने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा कृपानिधान ! और दूतोंको भेज दिया ॥ २ ॥

बहुरि महाजन सकल बुलाये * आय सबन सादर शिर नाये ॥३॥
हाट बाट मंदिर सुरवासा * नगर सँवारहु चारिहु पासा ॥४॥

फिर सब महाजनोंको बुलाया, उन सबोंने आकर आदरपूर्वक शिर नवाया॥३॥जनकजीने उन्हें आज्ञा दी कि हाट, वाट,मंदिर-देवताओंके स्थान तथा नगरको चारों ओरसे सँवारो॥४॥

हर्षि चले निज निज गृह आये * पुनि परिचारक बोलि पठाये ॥५॥
रचहु विचित्र वितान बनाई * शिर धरि वचन चले सचुपाई ॥६॥

वे प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये और परिचारकोंको (सेवक, जो कि, गृहादि सुधारनेमें निपुण थे) बुलवाये ॥ ५ ॥ उनसे कहा-जाकर सुन्दर मण्डप बनाओ, वे हर्षित हो वचन शिर धर चले ॥ ६ ॥

पठये बोलि गुणी तिन नाना * जो वितान विधि कुशल सुजाना ॥७॥
विधिहि वंदि तिन कीन्ह अरंभा * विरचे कनक कदलिके खम्भा ॥८॥

उन्होंने अनेक गुणी पुरुषोंको बुला भेजा जो वितान विधिमें कुशल और चतुर थे ॥७॥ उन्होंने विधि (ब्रह्मा) की बन्दना कर आरंभ किया और सोनेके केलेके खम्भे बनाये ॥८॥

दोहा—हरित मणिनके पत्र फल, पद्मरागके फूल ॥
रचना देखि विचित्र अति, मन विरंचिके भूल ॥ ३३१ ॥

हरित मणियोंके पत्ते और फल, पद्मराग मणियोंके फूल बनाये, जिनकी बहुत विचित्र रचना देखकर ब्रह्माका मन भूलता था ॥ ३३१ ॥

वेणु हरित मणिमय सब कीन्हे * सरल सपर्ण परहिं नहिं चीन्हे ॥१॥

कनक कलित अहिबेलि बनाई * लखि नहिं परै सपर्ण सुहाई ॥२॥
सब बांस हरित मणियोंके बनाये, जो कि सीधे पत्ते सहित पहचाने नहीं जाते थे ॥ १ ॥ सोनेकी नवीन पानकी बेल सुन्दर पत्ते सहित बनाई जो चीन्ही नहीं जाती ॥ २ ॥

तेहिते रचिपचि बन्ध बनाये * बिच बिच मुकता दाम सुहाये ॥३॥
माणिक मरकत कुलिश पिरोजा * चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥४॥
उस बेलमें पच्ची करके लपेट लगाये बीच-बीचमें मोतीकी मालाके बन्धन सोहते थे ॥ ३ ॥ माणिक (लाल सोना), मरकत (श्याममणि, नीलम),कुलिश (हीरा), पिरोजा (हरीमणि), इनके कोरोंको चीरके और पच्चीकारी करके कमल बनाये ॥ ४ ॥

किये भृंङ्ग बहु रंग बिहंगा * गुंजत कुंजहि पवन प्रसंगा ॥५॥
सुरप्रतिमा खम्भन गढ़ि काढ़ी * मंगल द्रव्य लिये सब ठाढ़ी ॥६॥
भौंरे और अनेक रंगके पक्षी बनाये जो कि पवनके लगनेसे भौंरे गुंजारते और पक्षी बोलते हैं ॥ ५ ॥ देवताओंकी प्रतिमा खम्भोंमें काढ़ी; जो मंगल द्रव्य अर्थात् मंगलसूचक पदार्थ दही आदि लिये खड़ी थीं ॥ ६ ॥

चौके भाँति अनेक पुराये * सिंधुरमणि मय सहज सुहाये ॥७॥
अनेकप्रकारके चौक पुरे हुए, सिंधुरमणिमय (गजमुक्तायुक्त) सहजही शोभायमान लगते थे॥७॥

दोहा–सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणि कोर ॥
हेमबौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोर ॥ ३३२ ॥
सौरभ (आम) के पत्ते विशेष शोभासे भरे नीलमणिको खोदकर बनाये, सोनेके बौर अर्थात् मौल और श्याममणिकी घवर अर्थात् छोटे-छोटे अँबियें रेशमी डोरीमें गूँथी ॥ ३३२ ॥

रचे रुचिर वर बन्दनवारे * मनहु मनोभव फन्द सँवारे ॥१॥
मंगल कलश अनेक बनाये * ध्वज पताक पट चमर सुहाये ॥२॥
ऐसे सुन्दर श्रेष्ठ बन्दनवार बनाये मानो कामदेवने फन्द सँवारे हैं ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके शोभायमान मंगल कलश बनाये ध्वजा (झण्डा), पताका (फरहरा-छोटी) (झंडी); पट अर्थात् वस्त्र जहां-तहां लगाये गये ॥ २ ॥

दीप मनोहर मणिमय नाना * जाय न वरणि विचित्र विताना ॥३॥
जेहि मण्डप दुलहिन वैदेही * सो वर्णै अस मति कवि केही ॥४॥
अनेक प्रकारसे दीपक सुन्दर मणियोंके बनाये, विचित्र वितान (चँदवा) वरणे नहीं जाते ॥३॥ जिस मण्डपमें दुलहिन जानकीजी हैं उसका वर्णन करे ऐसी मति कौनसे कविकी है ! ॥४॥

दूलह राम रूप गुणसागर * सो वितान तिहुँलोक उजागर ॥५॥
जनक-भवनकी शोभा जैसी * गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी ॥६॥
जिस स्थानमें रूप गुणोंके समुद्र दूलह रामचन्द्रजी बैठेंगे वह मण्डप त्रिलोकीमें उजागर है ॥ ५ ॥ जनकके भवनकी जैसी शोभा थी ऐसी ही पुरवासियोंके घर घर की थी ॥ ६ ॥

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी * तेहि लघु लगे भुवन दशचारी ॥७॥
जो सम्पदा नीच गृह सोहा * सो विलोकि सुर नायक मोहा ॥८॥
जिसने जनकपुरी उस समय देखी उसे चौदह भुवन थोड़े लगे ॥ ७ ॥ जो सम्पदा नीचों के घरमें शोभायमान है, उसे देखकर इन्द्र मोहित होता है ॥ ८ ॥

दोहा–बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि वर वेष ॥
तेहि पुरकी शोभा कहत, सकुचैं शारद शेष ॥ ३३३ ॥

जिस नगरमें लक्ष्मी कपटसे सुन्दर स्त्रीका वेष धारण कर रहती है, उस पुरकी शोभा कहते सरस्वती तथा शेषजी भी सकुचाते हैं ॥ ३३३ ॥

पहुँचे दूत रामपुर पावन ❁ हरषे नगर विलोकि सुहावन ॥१॥
भूप द्वार तिन खबरि जनाई ❁ दशरथ नृप सुनि लिये बुलाई ॥२॥

इधर दूत श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र नगर (अयोध्या) में पहुँचे और उनकी मन भावती शोभा देख प्रसन्न हुए ॥१॥ राजाके द्वार पर उन्होंने खबर की, राजा दशरथजी सुनकर बुला लिए ॥२॥

करि प्रणाम तिन पाती दीन्ही ❁ मुदित महीप आप उठि लीन्ही ॥३॥
वारि विलोचन बाँचत पाती ❁ पुलकि गात आई भरि छाती ॥४॥

प्रणाम करके उन्होंने पत्री दी, राजाने प्रसन्न हो स्वयं उठाकर ली ॥ ३ ॥ पत्री बांचते ही नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर पुलकायमान तथा छाती भर आयी ॥ ४ ॥

राम लषण उर कर वर चीठी ❁ रहिगे कहत न खाटी मीठी ॥५॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची ❁ हर्षी सभा बात सुनि साँची ॥६॥

यह रामलक्ष्मणके हाथ की हृदयङ्गम सुन्दर पत्रिका है ऐसे कहते रह गये कुछ कहते नहीं बना, अथवा राम लक्ष्मण तो मनमें और चिट्ठी हाथमें रह गई, खाटी मीठी अर्थात् भला बुरा कुछ नहीं कहा ॥ ५ ॥ फिर धीरज धरके चिट्ठी बांची और सभा सच्ची बात सुन कर प्रसन्न हुई जो सुना था कि रामचन्द्रजी जनकपुरमें हैं सो सब चिट्ठीसे निर्णय हो गया ॥ ६ ॥

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई ❁ आये भरत सहित दोउ भाई ॥७॥
पूछत अति सनेह सकुचाई ❁ तात कहाँते पाती आई ॥८॥

कहीं खेल रहे थे वहां पत्री आनेका समाचार सुन भरत शत्रुघ्न दोनों भाई आये ॥ ७ ॥ अति स्नेहसे सकुचाकर पूछने लगे–पिताजी चिट्ठी कहांसे आयी है ? ॥ ८ ॥

दोहा–कुशल प्राणप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देश ॥
सुनि सनेह साने वचन, बाँची बहुरि नरेश ॥ ३३४ ॥

प्राणोंके प्यारे हमारे दोनों भाई कुशल हैं और किस देशमें हैं सो कहो ? राजाने यह सप्रेम वचन सुनकर चिट्ठी फिरसे बांची ॥ ३३४ ॥

श्रीः

अनंत श्रीमहाराज अपराजिताधिराज सकलमहाराजानां शिरताज जगलाजको जहाज गरीबनेवाज महिमण्डल महेन्द्र सुरेन्द्रके उपेन्द्रसम करन काज यश जगत् जहान केते भानसमान प्रतापवान् आन मान सम्मान सुजान ज्ञान प्रेम निधान दशरथ भूपको शीरकेतु भूपकी जय जीव ! आप अनूप कुशल स्वरूप हैं यहां आपकी कृपा ही कुशल है सुवन हितकारी मुनि संग अंगअंग आभा उमंग अनंग आभा भंग करनहार आपके युगल कुमार आये। हमने लोचन लाहु पाये। रामचन्द्रने महीपन मद मोरि महेश धनु तोरि महि कीर्ति छाई, महिजा पाई, सजि बरात आइये, ब्याहि लै जाइये।

आपका–जनकराज.

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता ❋ अधिक सनेह समात न गाता ॥१॥
प्रीति पुनीत भरतकी देखी ❋ सकल सभा सुख लहेउ विसेखी॥२॥

पत्री सुनके दोनों भाई प्रसन्न हुए और प्रेम बढ़ जानेके कारण शरीरमें नहीं समाता है ॥ १ ॥ भरतजीकी पवित्र प्रीति देख सब सभाने बड़ा सुख पाया ॥ २ ॥

तब नृप दूत निकट बैठारे ❋ मधुर मनोहर वचन उचारे ॥३॥
भइया कहहु कुशल दोउ बारे ❋ तुम नीके निज नयन निहारे ॥४॥

तब राजाने दूतोंको पास बैठाकर इस प्रकार मधुर मनोहर वचन कहे ॥ ३ ॥ भैया! हमारे दोनों बालकोंका कुशल कहो। तुमने अपने नेत्रोंसे उन्हें अच्छी तरह देखा है? (प्रेमसे भइया शब्द राजाने कहा) ॥ ४ ॥

श्यामल गौर धरे धनुभाथा ❋ वय किशोर कौशिक मुनिसाथा॥५॥
पहिचानहु तुम कहहु स्वभाऊ ❋ प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ ॥६॥

श्याम और गौर शरीर धनुष तरकस धारण किये किशोर अवस्था, विश्वामित्र मुनिके संग हैं ॥ ५ ॥ तुम पहचाने हो तो स्वभाव कहो? राजाने प्रेमवश हो बारंबार कहा ॥ ६ ॥

जा दिनते मुनि गये लिवाई ❋ तबते आजु साँचि सुधि पाई ॥७॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने ❋ सुन प्रिय वचन दूत मुसुकाने ॥८॥

जिस दिनसे मुनि लिवाकर ले गये तबसे आज ही सच्ची खबर मिली है ॥ ७ ॥ कहो तो उन्हें जनकजीने कैसे जाना? प्रिय वचन सुनकर दूत मुसकाये ॥ ८ ॥

दोहा–सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुमसम धन्य न कोउ ॥
राम लषण जिनके तनय, विश्व विभूषण दोउ ॥ ३३५ ॥

दूत बोले–राजाओंमें मुकुटमणि महाराज! आपके समान कोई धन्य नहीं है कि जिनके राम लक्ष्मण दोनों संसारके भूषण रूप पुत्र हैं ॥ ३३५ ॥

पूछन योग न तनय तुम्हारे ❋ पुरुषसिंह तिहुँ पुर उजियारे ॥१॥
जिनके यश प्रतापके आगे ❋ शशि मलीन रवि शीतल लागे ॥२॥

आपके दोनों पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं, वे तो फ़िर पुरुषोंमें सिंह तथा तीनों लोकोंमें प्रकाशित हैं ॥१॥ जिनके यश और प्रतापके आगे चन्द्रमा मलिन और सूर्य ठंडा लगता है ॥ २ ॥

तिनकहँ कहिय नाथ किमि चीन्हें ❋ देखिय रविकि दीप कर लीन्हें ॥३॥
सीय स्वयंवर भूप अनेका ❋ सिमिटे सुभट एकते एका ॥४॥

उनको आप पूछते हैं कि कैसे पहचाना। भला सूर्यको कोई दीपक हाथमें लेकर देखता है वह तो स्वयं ही प्रकाशमान हैं ॥ ३ ॥ सीताजीके स्वयंवर में अनेक राजा एकसे एक योद्धा इकट्ठे हुए थे ॥ ४ ॥

शंभु शरासन काहु न टारा ❋ हारे सकल वीर वरियारा ॥५॥
तीन लोकमें जे भट मानी ❋ सबकी शक्ति शंभुधनु भानी ॥६॥

शिवजीका धनुष किसीने नहीं टारा और सब योद्धा हार गये ॥ ५ ॥ त्रिलोकीमें जितने मानी योद्धा थे सबकी शक्ति शिवजीकी धनुषने खो दी ॥ ६ ॥

सकै उठाय सुरासुर मेरू * सो हिय हारि गयउ करि फेरू ॥७॥
जेहि कौतुक शिव शैल उठाया * सोउ तेहि सभा पराभव पाया ॥८॥

जो बाणासुर सुमेरु पर्वत को उठा सकता है वह भी हार फेरा कर चला गया ॥ ७ ॥ जिसने कौतुकसे ही शिवजीका पर्वत (कैलास) उठा लिया था वह भी उस सभामें पराजित हुआ अर्थात् रावणसे भी धनुष न उठ सका ॥ ८ ॥

दोहा—तहाँ राम रघुवंशमणि, सुनिय महा महिपाल ॥
भंजेउ चाप प्रयास विनु, जिमिगज पंकज नाल ॥ ३३६ ॥

महाराज! सुनिये, उस सभामें रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजीने धनुष इस प्रकार विना प्रयास तोड़ डाला जैसे हाथी कमलकी डण्डीको तोड़ डालता है ॥ ३३६ ॥

सुनि सरोष भृगुनायक आये * बहुत भाँति तिन आँखि दिखाये ॥१॥
देखि रामबल निज धनु दीन्हा * करि बहु विनय गवन बन कीन्हा ॥२॥

सुनके बड़ा क्रोधकर परशुरामजी आये और बहुत प्रकारसे आखें दिखायीं ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीका बल देख अपना धनुष दिया और विनती कर वनको चले गये ॥ २ ॥

राजन राम अतुल बल जैसे * तेजनिधान लषण पुनि तैसे ॥३॥
कम्पहि भूप विलोकत जाके * जिमि गजहरि किशोरके ताके ॥४॥

हे राजन्! जैसे अतुल श्रीरामचन्द्रजी हैं वैसे ही तेजके निधान लक्ष्मणजी भी हैं ॥ ३ ॥ जिनके देखनेसे ही राजा ऐसे कांपते हैं जैसे शेरके बच्चेके देखनेसे हाथी ॥ ४ ॥

देव देखि तब बालक दोऊ * अवनि आँखितर आव न कोऊ ॥५॥
दूत वचन रचना प्रिय लागी * प्रेम प्रताप वीररस-पागी ॥६॥

हे देव तुम्हारे दोनों बालकोंको देखकर पृथ्वीमें कोई और आंखतले नहीं आता ॥ ५ ॥ दूतके वचनकी रचना प्यारी लगी, जो प्रताप और वीररसमें पगी थी। प्रेमसे "अवनि आंखितर आव न कोऊ" प्रताप—"शशिमलीन रवि शीतल लागे" वीररस—"भंजेउ चाप प्रयास विनु, जिमिगज पंकजनाल" ॥ ६ ॥

सभा समेत राउ अनुरागे * दूतन देन निछावर लागे ॥७॥
कहि अनीति तिन मूँदेउ काना * धर्म विचारि सबहिं सुख माना ॥८॥

सभासमेत राजा प्रसन्न हो दूतोंको निछावरि देने लगे ॥ ७ ॥ दूतोंने अनुचित समझ कान मूँदे (मना किया), धर्म विचार कर सबने सुख माना ॥ ८ ॥

दोहा—तब उठि भूप वसिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाय ॥
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बुलाय ॥ ३३७ ॥

तब राजाने उठ वसिष्ठजीको जाकर पत्रिका दी और गुरुके सामने आदरसे दूतोंको बुलाकर सब कथा सुनायी ॥ ३३७ ॥

सुनि बोले मुनि अतिसुख पाई * पुण्य-पुरुष कहँ महि सुख छाई ॥१॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं * यद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥२॥

यह सुनकर मुनि अत्यन्त सुख पाकर बोले कि पुण्यात्मा पुरुषोंको पृथ्वी सुखसे भरी है ॥ १ ॥ जिस प्रकार नदी समुद्रमें जाती हैं यद्यपि समुद्रको उनकी कुछ इच्छा नहीं है ॥ २ ॥

तिमि सुख संपति विनहि बुलाये * धर्मशील पहँ जाहिं सुभाये ॥३॥
तुम गुरु विप्र धेनु सुरसेवी * तस पुनीत कौशल्या देवी ॥४॥

वैसे ही सुख, संपत्ति विना बुलाये धर्मात्मा पुरुषोंके पास स्वभावसे ही जाती है ॥ ३ ॥ आप तो गुरु, ब्राह्मण, गौ, देवताकी सेवा करनेवाले हो ऐसे ही पवित्र कौशल्या देवी हैं ॥ ४ ॥

सुकृती तुम समान जगमाहीं * भयो न है कोउ होनेहु नाहीं ॥५॥
तुमते अधिक पुण्य बड़ काके * राजन रामसरिस सुत जाके ॥६॥

आपके समान पुण्यात्मा जगत्में न कोई हुआ है, न विद्यमान ही है और न होगा ॥५॥ राजन्! आपसे अधिक और कौन पुण्यवान् होगा। जिसके राम ऐसा पुत्र है ॥ ६ ॥

वीर विनीत धर्मव्रत-धारी * गुणसागर बालक वर चारी ॥७॥
तुम कहँ सर्व काल कल्याना * सजहु बरात बजाय निशाना ॥८॥

चारों श्रेष्ठ बालक वीर, नम्र, धर्मात्मा व्रती और गुणोंके समुद्र हैं ॥ ७ ॥ आपको सब कालमें कल्याण है अब निशान बजाकर बरात सजाओ ॥ ८ ॥

दोहा—चलहु बेगि सुन गुरु वचन, भलेहि नाथ शिर नाय ॥
भूपति गवने भवन तब, दूतन वास दिवाय ॥ ३३८ ॥

राजन्! शीघ्र चलो, ऐसा गुरुका वचन सुन, बहुत अच्छा यह कह शिर नवाय और दूतोंको अच्छे स्थानपर ठहराकर तब आप घर (रनिवास) को गये ॥ ३३८ ॥

राजा सब रनिवास बुलाई * जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ॥१॥
सुनि संदेश सकल हरषानी * अपर कथा सब भूप बखानी ॥२॥

राजाने सब रानियोंको बुलाकर जनकराजकी पत्री वांचकर सुना दी ॥ १ ॥ इस सन्देश को सुन सब प्रसन्न हुईं, और सब कथा राजाने सुनायी ॥ २ ॥

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी * मनहुँ शिखिन सुनु वारिदबानी ॥३॥
मुदित अशीष देहिं गुरुनारी * अति आनंद मगन महतारी ॥४॥

सब रानी प्रेमसे ऐसी प्रफुल्लित हुईं जैसे मोर बादलकी वाणी सुनकर प्रसन्न हो जाता है ॥३॥ गुरुकी स्त्री प्रसन्न हो आशीष देने लगी और रामकी माता अतिशय आनंदमें मग्न हो गयी ॥४॥

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती * हृदय लगाय जुड़ावहिं छाती ॥५॥
राम लषणकी कीरति करनी * बारहिं बार भूपवर बरनी ॥६॥

परस्पर बड़े प्यारसे पत्री लेती हैं और हृदयमें लगाय छाती ठंढी करती हैं ॥ ५ ॥ राम-लक्ष्मणकी कीर्ति और करनी बारंबार राजाने भली भांति वर्णन की ॥ ६ ॥

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाये * रानिन तब महिदेव बुलाये ॥७॥
दिये दान आनंद समेता * चले विप्रवर आशिष देता ॥८॥

यह सब मुनिकी कृपा है, ऐसा कहकर राजा दशरथ द्वार पर चले गये, तब रानियोंने ब्राह्मणोंको बुलाया ॥ ७ ॥ आनन्दसे दान दिये और वे ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले ॥ ८ ॥

सोरठा–याचक लिये हँकारि, दीन्ह निछावर कोटि विधि ॥
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दशरत्थके ॥ ३९ ॥

फिर मँगताओंको बुलाकर अनेक प्रकार निछावरि दी और वे कहने लगे कि भूपेन्द्र महाराज दशरथजीके चारों पुत्र बहुत कालतक जीते रहें ॥ ३९ ॥

कहत चले पहिरे पट नाना ❋ हरषि हने गहगहे निशाना ॥१॥
समाचार सब लोगन पाये ❋ लागे घर घर होन बधाये ॥२॥

इस तरह कहते हुए अनेक प्रकार वस्त्र पहनकर चले और प्रसन्न होकर बाजंत्री बाजे बजाने लगे ॥ १ ॥ जब सब लोगोंने समाचार पाये तो घर-घर आनन्द होने लगे ॥ २ ॥

भुवन चारि दश भरेउ उछाहू ❋ जनकसुता–रघुवीर–विवाहू ॥३॥
सुनि शुभ कथा लोग अनुरागे ❋ मग गृह गली सँवारन लागे ॥४॥

जानकीजीके साथ श्री रामचन्द्रजीका विवाह होगा, यह उत्साह चौदहों लोकमें भर गया, अर्थात् यह आनन्द मिथिलापुरीसे चिट्ठी द्वारा आया; प्रथम राजा दशरथके हृदयमें पड़ा वहांसे उमँग कर राजसभामें पहुचा और वहांसे जो चला तो गुरुके महलमें प्रवेश किया, वहांसे उमँग कर राजमहलमें आया और राजमहलसे उमँगकर नगरमें भर गया; उसकी सीमा तोड़कर चौदहों भुवनमें उत्साह भर गया ॥ ३ ॥ यह सुन्दर कथा सुन लोग प्रसन्न हो मार्ग-गृह-गली सँवारने लगे ॥ ४ ॥

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि ❋ रामपुरी मंगलमय पावनि ॥५॥
तदपि प्रीतिकी रीति सुहाई ❋ मंगल रचना रची बनाई ॥६॥

यद्यपि अयोध्या सदा शोभायमान है कारण कि वह रामपुरी मंगलमय और पवित्र है ॥ ५ ॥ तो भी प्रीतिकी रीतिसे मंगलकी रचना और भी श्रेष्ठ बनाई ॥ ६ ॥

ध्वज पताक पट चामर चारू ❋ छावा परम विचित्र बजारू ॥७॥
कनक कलश तोरण मणि जाला ❋ हरदि दूब दधि अक्षत माला ॥८॥

ध्वजा पताका, वस्त्र और चमर इनकी विचित्रतासे बाजार छा दिया, वा इनसे बाजार विचित्र हो गया ॥ ७ ॥ सोनेके कलश, जिनमें मणियोंके वन्दनवार लगे हैं; हल्दी दूध दधि (दही) अक्षत और माला ॥ ८ ॥

दोहा–मंगल मय निज निज भवन, लोगन रचे बनाय ॥
बीथी सींची चतुर सम, चौके चारु पुराय ॥३२९॥

यह मंगलकी वस्तु सबने अपने-अपने द्वार पर रखीं और सब गली समानतासे सुगंधसे छिड़कीं और सुन्दर चौक पुरवा दिये ॥ ३२९ ॥

जहँ तहँ यूथयूथ मिलि भामिनि ❋ सजि नवसप्त सकल द्युतिदामिनि॥१॥
विधुवदनी मृगशावक लोचनि ❋ निज स्वरूप रतिमान विमोचनि॥२॥

जहां-तहां स्त्रियां यूथ-यूथ मिलकर सोलह शृंगार किये चलीं, जिनकी कांति बिजलीके समान है ॥१॥ जिनका चन्द्रमासा मुख, मृगके छौनेकेसे नेत्र तथा अपने स्वरूपसे कामकी स्त्रीका मान दूर करनेवाली ॥ २ ॥

गावहिं मंगल मंजुल बानी * सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥३॥
भूप भवन किमि जाय बखाना * विश्व विमोहन रचेउ विताना ॥४॥

मधुर वाणीसे मंगल गाती हैं, जिनके सुन्दर शब्द सुनकर कोकिला लज्जित होती है ॥३॥ राजाके घरकी शोभा कैसे बखानी जाय, जहां संसारको मोहनेवाला मंडप बनाया है ॥४॥

मंगल द्रव्य मनोहर नाना * राजत बाजत विपुल निशाना ॥५॥
कतहुँ विरद बन्दी उच्चरहीं * कतहुँ वेदध्वनि भूसुर करहीं ॥६॥

मंगलकी अनेक प्रकारकी मनोहर वस्तुएँ सजायीं और अनेक नगाड़े बजने लगे ॥ ५ ॥ कहीं भाट वंशकी प्रशंसा सुना रहे, कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं ॥ ६ ॥

गावहिं सुन्दरि मंगल गीता * ले ले नाम राम अरु सीता ॥७॥
बहुत उछाह भवन अति थोरा * मानहुँ उमड़ि चला चहुँ ओरा ॥८॥

स्त्रियाँ राम और सीताका नाम ले लेकर मंगलके गीत गाती हैं ॥ ७ ॥ वह उत्साह बहुत था और मंदिर उससे अत्यन्त छोटा था, मानो चारों ओरको उमड़ चला ॥ ८ ॥

दोहा-शोभा दशरथ-भवनकी, को कवि वरणै पार ॥
जहां सकल सुरशीशमणि, राम लीन अवतार ॥३४०॥

दशरथजीके महलकी शोभाका वर्णन कर कौन कवि पार पा सके ? जहां देवताओंके मुकुटमणि श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया है ॥ ३४० ॥

भूप भरत पुनि लिये बुलाई * हय गज स्यंदन साजहु जाई ॥१॥
चलहु बेगि रघुवीर बराता * सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥२॥

फिर राजाने भरतको बुलाकर कहा कि हाथी, घोड़े और रथ जाकर सजाओ ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी बरातमें शीघ्र चलनेकी तैयारी करो, यह सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए ॥२॥

भरत सकल साहनी बुलाये * आयसु दीन मुदित उठि धाये ॥३॥
रुचि रुचि जीन तुरंग तिन साजे * वर्ण वर्ण वर वाजि विराजे ॥४॥

भरतने सब दरोगा बुलवाये उन्हें आज्ञा दी, वे प्रसन्न हो उठकर चले ॥३॥ उन्होंने जिस रंगके घोड़े पर जिस रंगका साज चाहिये वैसा ही सजाया इससे वे अधिक शोभित हुए ॥४॥

सुभग सकल सुठि चञ्चल करणी * अयजिमि जरत धरत पग्र धरणी ॥५॥
नाना जाति न जाहिं बखाने * निदरि पवन जनु चहत उड़ाने ॥६॥

सब सुन्दर जिनकी श्रेष्ठ चञ्चल करणी है; वे पृथ्वीको लोहेके समान जलती जानते हैं, जैसे कोई जलती हुई पृथ्वी पर पैर नहीं धरना चाहता वैसे ही घोड़े चञ्चल हैं कि मानो पृथ्वीपर पैर धरते ही नहीं ॥५॥ जो अनेक प्रकारके बखाने नहीं जाते, मानो पवनकी गति तिरस्कार कर उड़ना चाहते हैं ॥ ६ ॥

तिन्ह सब छयल भये असवारा * भरत सरिस सब राजकुमारा ॥७॥
सब सुन्दर सब भूषणधारी * कर शर चाप तूण कटि भारी ॥८॥

उनपर सब छैल सवार हुए जो भरतके समान राजकुमार हैं ॥ ७ ॥ सब सुन्दर और सब गहने पहने हुए हाथमें धनुष बाण और कमरमें तरकस हैं ॥ ८ ॥

दोहा-छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान नवीन ॥
युग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रवीन ॥ ३४१ ॥

छरे-पतले, छबीले-सांचेमें ढले, ऐसे छैल जो शूर पंडित और नवीन अवस्थायुक्त हैं एक-एक असवारके सङ्ग दो-दो पैदल जो असि अर्थात् तलवार वा अश्वकलामें प्रवीन हैं ॥३४१॥

बाँधे विरद वीर रण गाढ़े * निकसि भये पुर बाहर ठाढ़े॥१॥
फेरहिं चतुर तुरगगति नाना * हर्षहिं ध्वनिसुनि पणव निशाना॥२॥

बड़े रणगाढे वीर विरद बांधे हुए निकलके पुरके बाहर खड़े हुए । (विरद) वीरका बाना ॥ १ ॥ चतुर लोग अनेक गतिसे घोड़ेको फेरते हैं और ढोल और निसान आदि बड़े बड़े बाजोंकी ध्वनि सुनकर प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

रथ सारथिन विचित्र बनाये * ध्वज पताक मणि भूषण लाये ॥३॥
चमर चारु किंकिण ध्वनि करहीं * भानुयान शोभा अपहरहीं ॥४॥

सारथियोंके रथोंको विचित्र सजाया और ध्वजा, मणि और गहने लगाये ॥ ३ ॥ सुन्दर चँवर सजाये, घंटालियोंका शब्द होने लगा, ऐसे रथ बने जो सूर्यके विमानोंकी शोभाको हरें॥४॥

श्यामकरण अगणित हय होते * ते सब रथन सारथिन जोते ॥५॥
सुन्दर सकल अलंकृत सोहैं * जिनहिं विलोकत मुनिमन मोहैं ॥६॥

श्मामकर्ण अनगिनत घोड़े थे उनको सारथियोंने सब रथोंमें जोते (इनका एक कान काला होता है; श्यामकर्ण घोड़ा अनगिन्तोंमें कोई एक होता है; यहां अनगिन्त थे जो सारथियोंने रथोंमें जोते । अथवा रथोंमें अनेक श्यामकर्ण घोड़े जुते देखकर जाना गया कि बहुत होते हैं) ॥५॥ ऐसे सब सुन्दर सजाये हुए रथ शोभित हुए जिन्हें देखकर मुनियोंके मन मोहित हुए॥६॥

जो जल चलहिं थलहिकी नांईं * टाप न बूड़ वेगि अधिकाई ॥७॥
अस्त्र शस्त्र सब साज बनाई * रथी सारथिन लिये बुलाई ॥८॥

जलमें थलके समान चलते हैं और ऐसा वेग है कि टाप नहीं डूबती ॥७॥ अस्त्र, शस्त्र, आदि सब सजाकर सारथियोंने बुलाया ॥ ८ ॥

दोहा-चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात ॥
होत शकुन सुन्दर सबहिं, जो जेहि कारज जात ॥ ३४२ ॥

रथ पर चढ़के नगरके बाहर बरात, जुड़ने लगी, सब को अच्छे शकुन होने लगे जो जिस कार्यको जाते हैं, उन्हें अच्छे शकुन होते हैं ॥ ३४२ ॥

कलित करिवरन परीं अँवारी * कहि न जात जेहि भाँति सँवारी ॥१॥
चले मत्त गजघण्ट विराजे * मनहु सुभट सावन घन गाजे ॥२॥

नवीन हाथियों पर सुन्दर अम्बारी धरी हैं और वे जैसे सुन्दर थीं सो कही नहीं जाती ॥१॥ मतवाले हाथी जब चले और उनके निकट घण्टे बजे तो ऐसी शोभा हुई जैसे कि सावनके बादल

गरजें। यह पूर्णोपमालंकार जिसमें उपमान १, उपमेय २, वाचक ३, और साधारण धर्म ४, चारों प्रकट हैं, सावन घर उपमान, मत्तगज उपमेय, मनहुँ वाचक, गर्जना साधारण धर्म पूर्णत्व यह कि रंग-रंगसे जो विचित्र किये थे सो इन्द्रधनुष हैं और जहां खाली रह गयी वह काली घटा है मोतियोंकी झालर बगुलोंकी पंक्ति है; और मणि आदिकोंकी चमक बिजलीकी दमक है, चलनेमें जो हाथी घोड़ोंका शब्द होता है यह गर्जना है, मत्त गजोंका मद झरता है वही वर्षा है और देखने वाले कृषि स्थानमें हैं, वे इस समयको देख के हरित होते हैं और महाराज दशरथादि और गुरु वसिष्ठ किसान हैं, जो आषाढ़के घनसे किसानोंको रुचि होती है वह यह सावनका सुभग घन है जिससे किसानों अर्थात् देखनेवालोंका मनोरथ पूर्ण होता है और इसमें बिजली का शब्द नहीं होता, परन्तु जब गर्जना होती है तब बिजली अवश्य चमकती है ॥ २ ॥

वाहन अपर अनेक विधाना ❋ शिविका सुभग सुखासन याना ॥३॥
तिन चढ़ि चले विप्रवरवृन्दा ❋ जनु तनु धरे सकल श्रुति छन्दा ॥४॥

और भी अनेक प्रकारके बाहन श्रेष्ठ पालकी सुखपाल आदि (वाहन उनको कहते हैं जिनमें घोड़े आदि जुतें, जो कहार आदि लेकर चलते हैं वह यान; जैसे-पालकी आदि) ॥३॥ उनपर चढ़कर सब श्रेष्ठ ब्राह्मण चले मानो सब वेदोंके छन्द शरीर धारण किये जाते हैं ॥ ४ ॥

बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती ❋ चले वस्तु भरि अगणित भाती ॥५॥
मागध सूत बंदि गुणगायक ❋ चले यान चढ़ि जो जेहि लायक ॥६॥

खच्चर, ऊँट, वृषभ अनेक जातिके अनगिन्त प्रकारकी वस्तु भरकर चले ॥ ५ ॥ मागध सूत, भांट गुणोंके गानेवाले यथायोग्य सवारियों पर बैठकर चले ॥ ६ ॥

कोटिन काँवर चले कहारा ❋ विविध वस्तु को वरणे पारा ॥७॥
चले सकल सेवक समुदाई ❋ निज निज साज समाज बनाई ॥८॥

अनेक कांवरि लिये कहार चले; जिनमें अनेक वस्तु भर रही हैं उन्हें कौन वर्णन कर पार पावे? ॥ ७ ॥ संपूर्ण सेवक अपना साज समाज बनाकर चले ॥ ८ ॥

दोहा-सबके उर निर्भय हरष, पूरित पुलक शरीर ॥
कबहि देखिये नयन भरि, राम लषण दोउ वीर ॥ ३४३ ॥

सबके मनमें बड़ा प्रेम भरा है शरीर पुलकायमान हो गये कहने लगे कि, 'राम लक्ष्मण' दोनों भाइयोंको कब चलके नयनोंसे देखेंगे ॥ ३४३ ॥

गर्जहिं गज घंटाध्वनि घोरा ❋ रथ वर वाजि हींस चहुँ ओरा ॥१॥
निदरि घनहिं घूमरहिं निशाना ❋ निज पराव कछु सुनिय न काना ॥२॥

हाथियोंकी गर्जना, घंटोंका घोर शब्द, रथोंका घरघराहट और घोड़ोंकी हिनहिनाहट चारों ओरसे होने लगी ॥ १ ॥ बादलोंकी निन्दासी करते हुए निशान घूमते हैं और अपना पराया कुछ कानोंसे सुनायी नहीं देता ॥ २ ॥

महा भीर भूपतिके द्वारे ❋ रज ह्वै जात पषाण पँवारे ॥३॥
चढ़ी अटारिन देखहिं नारी ❋ लिये आरती मंगल थारी ॥४॥

राजाके द्वारे ऐसी भीड़ हुई कि पवाँरे अर्थात् द्वारेके पत्थर पैरोंसे घिसकर धूरि हुए जाते हैं ? अथवा मार्गके पत्थर रजके समान हो गये ॥ ३ ॥ अटारियों पर चढ़कर स्त्रियाँ देखती हैं जो कि हाथोंमें आरती और मंगल द्रव्यकी थारी लिए हैं ॥ ४ ॥

गावहिं गीत मनोहर गाना * अति अनँद नहिं जात बखाना ॥५॥
तब सुमन्त दुइ स्यन्दन साजी * जोते रविहय-निन्दक बाजी ॥६॥

और वे स्त्रियाँ अनेक प्रकारके मनोहर गीत गाती हैं ऐसा अधिक आनन्द हुआ जो कहा नहीं जाता ॥ ५ ॥ तब सुमन्तने दो रथ सजाये, जिनमें ऐसे घोड़े जोते जो सूर्यके घोड़ोंका तिरस्कार करते थे ॥ ६ ॥

दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने * नहिं शारद पहँ जाहिं बखाने ॥७॥
राज-समाज एक रथ साजा * दूसर तेजपुञ्ज अति भ्राजा ॥८॥

दोनों सुन्दर रथ राजाके पास लाये, जिनका वर्णन शारदासे भी नहीं हो सकता ॥ ७ ॥ तब राजसी रथ राजाके योग्य और दूसरा तेजोराशि देदीप्यमान वशिष्ठजीके योग्य सजाया ॥८॥

दोहा–तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहँ, हर्षि चढ़ाय नरेश ॥
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिरि, हर गुरु गौरि गणेश ॥ ३४४ ॥

उस सुन्दर रथके ऊपर राजा हर्षसे वशिष्ठजीको चढ़ाय आप भी शिव, गुरु, पार्वती और गणेशजीका स्मरण कर रथ पर चढ़े ॥ ३४४ ॥

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे * सुरगुरु संग पुरंदर जैसे ॥१॥
करि कुलरीति वेदविधि राऊ * देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ ॥२॥

वशिष्ठजीके संग राजा शोभित होते थे जैसे बृहस्पतिके संग इन्द्र ॥ १ ॥ राजाने कुलकी रीति और वेद विधि करके सबका सब प्रकार बनाव देख कर ॥ २ ॥

सुमिरि राम गुरु आयसु पाई * चले महीपति शंख बजाई ॥३॥
हर्षे विबुध विलोकि बराता * वर्षहिं सुमन सुमंगल-दाता ॥४॥

श्रीरामजीका स्मरण कर गुरुकी आज्ञा पाकर राजा शंख बजाकर चले ॥ ३ ॥ देवता बरातको देखकर प्रसन्न हुए और अच्छे मंगलदायक फूल बरसाने लगे। (कार्तिक बदी अष्टमीको बरात चली थी) ॥ ४ ॥

भयउ कोलाहल हय गय गाजे * व्योम बरात बाजने बाजे ॥५॥
सुर नर नारि सुमंगल गाई * सरस राग बाजहिं सहनाई ॥६॥

तब हाथी घोड़ोंके गर्जनेका कोलाहल हुआ आकाश और बारातमें बाजे बजने लगे॥५॥देवता और मनुष्योंकी स्त्रियाँ सुन्दर मंगल गाने लगीं, रसीले रागसे सहनाई अर्थात् नफीरी बजने लगी॥६॥

घण्ट घण्टि ध्वनि वरणि न जाहीं * सरौं करहिं पायक फहराहीं ॥७॥
करहिं विदूषक कौतुक नाना * हासकुशल कलगान सुजाना ॥८॥

घण्टा और घण्टालियोंका शब्द वर्णा नहीं जाता ! शब्द करती हुई (झण्डियां) पायकों (सेवकों) के हाथमें फहरा रही हैं ॥ ७ ॥ विदूषक अनेक प्रकारसे कौतुक करने लगे जो हासविधि तथा मधुर गानमें कुशल थे ॥ ८ ॥

दोहा–तुरग नचावहिं कुँवर वर, अकनि मृदंग निशान ॥
नागरनट चितवहि चकित, डिगहिं न ताल बँधान ॥ ३४५॥

श्रेष्ठ कुँवर मृदंग और नगाड़ेको अकनि अर्थात् सुनकर घोड़े नचाते हैं, नागर नट नचाने वाले चकित होकर देखते हैं कि तालके बंधनसे बाहर नहीं जाते ॥ ३४५ ॥

बनै न वर्णत बनी बराता * होहिं शकुन सुन्दर शुभदाता ॥१॥
चारा चाष वाम दिशि लेई * मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥२॥

जैसे बरात बनी वह शोभा वर्णी नहीं जाती, सुन्दर कल्याणदायक शकुन होने लगे ॥१॥ चाष अर्थात् नील कंठ बायीं ओर अपने चारेको ले रहे हैं, मानो सब मङ्गल कहे देते हैं॥२॥

दाहिन काग सुखेत सुहावा * नकुल दरश सब काहू पावा ॥३॥
सानुकूल वह त्रिविध बयारी * सघट सबाल आव वर नारी ॥४॥

दाहिनी ओर कौआ अच्छे खेतमें बैठा हुआ दीख पड़ा और नौलेका दर्शन सब किसीने पाया ॥ ३ ॥ अंगमें स्पर्श करने वाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगंध,) हवा चलने लगी और घड़ा भरे गोदमें बालक लिए सुन्दर स्त्री सम्मुख आ रही हैं ॥ ४ ॥

लोवा फिरि फिरि दरश दिखावा * सुरभी सन्मुख शिशुहि पियावा ॥५॥
मृगमाला फिरि दाहिन आई * मंगल गन जनु दीन्ह दिखाई ॥६॥

लोखरीने बार बार दर्शन दिया और गाय सम्मुख बच्चेको दूध पिलाती मिली ॥ ५ ॥ फिर मृगोंका समूह दाहिनी ओर आया; मानो मङ्गल समूह शकुन दिखाई दिये ॥ ६ ॥

क्षेमकरी कह क्षेम विसेखी * श्यामा वाम सुतरुपर देखी ॥७॥
सन्मुख आयउ दधि अरु मीना * कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना ॥८॥

क्षेमकरी नामक शकुन पक्षी विशेष कुशल कहने लगी और श्यामा नामक पक्षी सुन्दर पेड़पर बायीं ओर दिखाई दी ॥ ७ ॥ सामने दधि और मछली आयी, हाथमें पुस्तक लिए दो विद्वान ब्राह्मण आये ॥ ८ ॥

दोहा–मंगलमय कल्याणमय, अभिमत फल दातार ॥
जनु सब साँचे होन हित, भये शकुन इकबार ॥ ३४६ ॥

मङ्गलमय (धन पुत्रादि देनेवाले), कल्याणमय (उनके निर्विघ्न स्थिरता करने वाले), अभिमत (वांछित फलके देनेवाले) सब शकुन सत्य होनेके लिए एक साथ ही हुए ॥ ३४६ ॥

मंगल शकुन सुभग सब ताके * सगुण ब्रह्म सुन्दर सुत जाके ॥१॥
रामसरिस वर दुलहिन सीता * समधी दशरथ जनक पुनीता ॥२॥

मङ्गल शकुन सब उसको सुगम हैं अर्थात् प्राप्त हैं जिसके सगुण ब्रह्म सुंदर पुत्र हैं॥१॥ रामजीके समान वर, जानकीजीके समान दुलहित और दशरथ जनकके समान पवित्र समधी ॥ २ ॥

सुनि अस ब्याह सकुन सब नाचे * अब कीन्हे विरंचि हम साँचे ॥३॥
इहि विधि कीन्ह बरात पयाना * हय गय गाजहिं हनहिं निशाना ॥४॥

ऐसा सुनकर सब शकुन प्रसन्न हुए कि, अब ब्रह्माने हमें सच्चा किया ॥ ३ ॥ इस प्रकार बरात चली और हाथी, घोड़े गर्जे; नगाड़े बजे ॥ ४ ॥

आवत जानि भानुकुल-केतू * सरितन जनक बँधायउ सेतू ॥५॥
बीच बीच बर बास बनाये * सुर पुर सरिस संपदा छाये ॥६॥

सूर्यकुल केतुरूप महाराज दशरथको आते हुए जान जनकजीने मार्गकी नदियोंमें पुल बँधवा दिये॥५॥बीच-बीच में अच्छे स्थान बनवाये, उनमें इन्द्रलोककीसी संपदा छा रही है॥६॥

अशन शयन वर वसन सुहाये * पावहिं सब निज निज मन भाये ॥७॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले * सकल बरातिन मन्दिर भूले ॥८॥

भोजन शयन सुन्दर श्रेष्ठ वस्त्रोंका पहिराना आदि सब अपने मनके अनकूल पाते (यह बात नहीं कि पृथ्वी में सोना और आधीरात भोजन ॥ ७ ॥ नित्य अनकूल या नया सुख मिलनेसे सब बराती अपना-अपना घर भूल गये ॥ ८ ॥

दोहा–आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निशान ॥
सजि गज रथ पदचर तुरंग, लेन चले अगवान ॥ ३४७ ॥

मिथिलावासी नगाड़े बजानेके शब्दसे सुन्दर बारातका आना जान हाथी, घोड़े रथ पैदल सजाकर अगवानी लेने चले ॥ ३४७ ॥

कनक कलश कल कोपर थारा * भाजन ललित अनेक प्रकारा ॥१॥
भरे सुधासम सब पकवाने * भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने ॥२॥

सोने के कलश, अच्छे कटोरे, थाल और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ बासन ॥ १ ॥ जिनमें अमृतके समान अनेक प्रकारके सब पकवान धरे बखाने नहीं जाते ॥ २ ॥

फल अनेक वर वस्तु सुहाई * हरषि भेंट हित भूप पठाई ॥३॥
भूषण वसन महामणि नाना * खगमृग हयगय बहुविधि याना ॥४॥

अनेक प्रकारके फल और सुन्दर शोभायमान वस्तुएँ प्रसन्न हो राजाने भेंटके वास्ते भेजी॥३॥ और अनेक प्रकारके गहने, वस्त्र, महामणि, खग–मैनादि; मृग घोड़े, हाथी अनेक प्रकारके रथ॥४॥

मंगल शकुन सुगन्ध सुहाये * बहुत भाँति महिपाल पठाये ॥५॥
दधि चिउरा उपहार अपारा * भरि भरि काँवरि चले कहारा ॥६॥

मंगलके शकुन और सुन्दर सुगंध बहुत प्रकारकी सामग्री राजाने भेजी ॥ ५ ॥ दही चिउड़ा और अनेक प्रकार की सौगात (कलेवा आदिके लिए) कांवर भर भर कर कहार ले चले ॥६॥

अगवानन जब दीख बराता * उर आनंद पुलक भर गाता ॥७॥
देखि बनाव सहित अगवाना * मुदित बरातिन हने निशाना ॥८॥

अगवानियोंने जब बरात देखी तो मनमें आनंदित हो शरीर पुलकित हुआ ॥ ७ ॥ अगवानोंको सजाव सहित देखकर बरातियोंने प्रसन्न हो नगाड़े बजाए ॥ ८ ॥

दोहा–हरषि परस्पर मिलन हित, कछुक चले बगमेल ॥
जनु आनंद समुद्र दुइ, मिलत विहाय सुबेल ॥ ३४८ ॥

प्रसन्न हो परस्पर मिलनेके लिए दोनों ओरके कुछ सवार बगमेल अर्थात् घोड़ेकी वाग ढीली कर चले; उस समय ऐसा विदित होता था कि, आनंदके दो समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ मिलते हैं। दोनों ओरका चतुरंगदल समुद्र समान और उसमेंसे जो निकल-निकल कर मिलते

हैं वही लहरें वे दोनों ओर लहरें अपनी लहरोंको मिलती हैं। अथवा दो समुद्र सुवेलनाम मर्यादाके पर्वत तोड़कर मिलते हैं दोनों ओरकी सकुच सुवेल है ॥ ३४८ ॥

वरषि सुमन सुरसुन्दरि गावहिं ❀ मुदित देव दुन्दुभी बजावहिं ॥१॥
वस्तु सकल राखीं नृप आगे ❀ विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे ॥२॥

फूल वर्षाकर देवताओंकी स्त्रियाँ गाती हैं और प्रसन्न हो देवता दुन्दुभी बजाते हैं ॥ १ ॥ उन्होंने सब भेंटकी वस्तुओंको राजाके आगे धर अत्यन्त प्रेमसे विनती की ॥ २ ॥

प्रेम समेत राउ सब लीन्हा ❀ भैं बकशीश याचकन दीन्हा ॥३॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई ❀ जनवासे कहँ चले लिवाई ॥४॥

प्रेमसमेत राजाने सब लिया, बकशीश हुई मँगताओंको दान दिये ॥ ३ ॥ पूजा, मान और बड़ाई कर जनवासेको लिवा ले चले ॥ ४ ॥

वसन विचित्र पाँवड़े परहीं ❀ देखि धनद धनमद परिहरहीं ॥५॥
अति सुन्दर दीन्हेंउ जनवासा ❀ जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा ॥६॥

मार्गमें ऐसे सुन्दर वस्त्र बिछाये हुए हैं जिसे देखकर कुबेर धनका मद छोड़ देते हैं ॥ ५ ॥ बड़ा ही सुन्दर जनवासा दिया, जहां सबको सब प्रकार आनन्द विश्राम मिले ॥ ६ ॥

जानी सिय बरात पुर आई ❀ कछु नित महिमा प्रगट जनाई ॥७॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई ❀ भूप पहुनई करन पठाई ॥८॥

जब जानकीजीने जाना कि बरात पुरमें आगई तब यह अपनी कुछ महिमा (रघुनाथ-जीको) प्रगट दिखाई ॥ ७ ॥ मनमें स्मरण कर सिद्धियां बुलायीं और राजाकी पहुनाई करनेको भेजीं ॥ ८ ॥

दोहा–ऋधि सिधि सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास ॥
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग विलास ॥ ३४९ ॥

ऋद्धि, सिद्धि जानकीजी की आज्ञा सुनकर जनवासेमें सब इन्द्रलोकका सुख; भोगविलास तथा सम्पति लिए गयीं (यह माया है) ॥ ३४९ ॥

निज निज वास विलोकि बराती ❀ सुरपुर सकल सुफल बहु भाँती ॥१॥
विभव भेद कछु काहु न जाना ❀ सकल जनक कर करहिं बखाना ॥२॥

बराती अपना-अपना वास देख कर यह जानते हैं कि सब प्रकारसे देवताओंका सा सम्पूर्ण सुख सहज ही प्राप्त है ॥१॥ यह ऐश्वर्यका भेद किसीने नहीं जाना; सब जनकजीका बखान करते हैं ॥ २ ॥

सिय महिमा रघुनायक जानी ❀ हरषे हृदय हेतु पहिचानी ॥३॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई ❀ हृदय न अति आनंद समाई ॥४॥

सीताजीकी महिमा रामचन्द्रजीने जानी और हृदयमें हेतु जानकर प्रसन्न हुए (हेतु यह कि, रामचन्द्रजीने धनुष तोड़ जनकपुरवासियोंको निज महिमा दिखायी और जानकीजीने जनवासेमें अधिक ऋद्धि-सिद्धि भेज निज महिमा प्रकटकी) ॥ ३ ॥ पिताका आना सुनकर दोनों भाइयोंके मनमें अधिक आनंद बढ़ जानेके कारण नहीं समाया ॥ ४ ॥

सकुचत कहि न सकहिं गुरुपाहीं * पितु दर्शन लालच मनमाहीं ॥५॥
विश्वामित्र विनय बड़ि देखी * उपजा उर सन्तोष विसेखी ॥६॥

सकुचके मारे गुरुसे नहीं कह सकते और पिताके दर्शनका मनमें अधिक लालच है ॥ ५ ॥ विश्वामित्रने बड़ी विनय देखी तो मनमें अधिक सन्तोष उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

हरषि बन्धु दोउ हृदय लगाये * पुलकि अंग अंबक जल छाये ॥७॥
चले जहां दशरथ जनवासे * मनहु सरोवर तके पियासे ॥८॥

दोनों भाइयोंको प्रसन्न हो हृदयसे लगाया, शरीर पुलकायमान होनेसे नेत्रमें जल छा गया ॥ ७ ॥ जहां दशरथजीका जनवासा था वहां चले, जैसे प्यासे तलावपर जाते हैं। अथवा विपरीत उपमा–यह अर्थ होता है कि प्यासोंको देखकर मानों सरोवर तृप्त करने चले ॥ ८ ॥

दोहा–भूप विलोके जबहि मुनि, आवत सुतन समेत ॥
उठे हर्षि सुख सिन्धु महँ, चले थाहसी लेत ॥३५०॥

राजाने जब देखा कि मुनि पुत्रों सहित आते हैं तब प्रसन्न हो उठ खड़े हुए और सुख-रूपी समुद्रकी थाहसी लेते चले, शरीरकी सुधि न रही ॥ ३५० ॥

मुनिहिं दण्डवत कीन्ह महीशा * बार बार पद रज धारि शीशा ॥१॥
कौशिक राउ लिये उर लाई * कहि अशीश पूछी कुशलाई ॥२॥

मुनिको राजाने दंडवत् की बार-बार चरणोंकी रज शिरपर धरी ॥ १ ॥ विश्वामित्रजीने राजाको हृदयसे लगाया और आशीष दे कुशलता पूछी ॥ २ ॥

पुनि दण्डवत करत दोउ भाई * देखि नृपति उर सुख न समाई ॥३॥
सुत हिय लाय दुसह दुख मेटे * मृतक शरीर प्राण जनु भेंटे ॥४॥

फिर दोनों भाइयोंको दंडवत् करते हुए देखकर राजाके मनमें ऐसा सुख हुआ कि हृदयमें समाता नहीं ॥ ३ ॥ पुत्रोंको हृदयसे लगाकर असह्य दुःख (वियोगका) मिटा दिया जैसे मृतक शरीरमें प्राण आ गये ॥ ४ ॥

पुनि वसिष्ठ पद शिर तिन नाये * प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये ॥५॥
विप्र वृन्द वन्दे दोउ भाई * मनभावति अशीष तिन पाई ॥६॥

फिर उन्होंने वसिष्ठजीके चरणोंमें शिर नवाया और प्रेमसे मुदित हो वसिष्ठजीने रामको हृद-यसे लगाया ॥५॥ फिर दोनों भाइयोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम कर मनभावती आशीष पायी ॥६॥

भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा * मिले उठाय लाय उर रामा ॥७॥
हरषे लषण देखि दोउ भ्राता * मिले प्रेम परिपूरित गाता ॥८॥

भरत सत्रुहनने प्रणाम किया, रामचन्द्रने उनको उठा कर हृदयसे लगा लिया ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंको देख प्रेमसे पूर्ण शरीर हो मिले ॥ ८ ॥

दोहा–पुरजन परिजन जाति जन, याचक मन्त्री मीत ॥
मिले यथाविधि सबहि प्रभु, परम कृपालु विनीत ॥ ३५१ ॥

पुरके लोग, कुटुम्बी, जातिके लोग, मँगता, मन्त्री, मित्र, सबसे परम कृपालु नम्र श्रीरामचंद्रजी यथायोग्य मिले ॥ ३५१ ॥

रामहिं देखि बरात जुड़ानी * प्रीति कि रीत न जात बखानी ॥१॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी * जनु धनु धर्मादिक तनुधारी ॥२॥

रामको देखकर बरात प्रसन्न हुई वह प्रीतिकी रीति बखानी नहीं जाती ॥१॥ राजाके निकट चारों पुत्र ऐसे शोभित होते हैं जैसे शरीर धारण किये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ॥ २ ॥

सुतन सहित दशरथ कहँ देखी * मुदित नगर नर नारि विसेखी ॥३॥
सुनत वर्षि सुर हनहिं निशाना * नाकनटी नाचहिं कर गाना ॥४॥

पुत्रों सहित दशरथजीको देखकर नगरके नर नारी अधिक प्रसन्न हुए ॥३॥ फूल वर्षाकर देवता बाजे बजाते हैं, नाकनटी (अप्सरा) गान कर नाचती हैं ॥ ४ ॥

शतानन्द अरु विप्र सचिवगण * मागध सूत विदूष बन्दीजन ॥५॥
सहित बरात राउ सनमाना * आयसु मांगि फिरे अगवाना ॥६॥

शतानन्द और ब्राह्मण, मन्त्री-समूह, मागध, सूत, पंडित, भाट लोग ॥५॥ बरात सहित राजाका सम्मान कर अगवान आज्ञा मांग फिरे ॥ ६ ॥

प्रथम बरात लग्नते आई * ताते पुर प्रमोद अधिकाई ॥७॥
ब्रह्मानन्द लोग सब लहहीं * बढ़े दिवस निशि विधिसन कहहीं ॥८॥

बरात लग्नसे पहले आगयी थी, इससे नगरमें अधिक आनन्द हुआ॥७॥सब लोग ब्रह्मानंदका अनुभव करते हैं इसी कारण ब्रह्मासे मनाते हैं कि दिन रात बढ़े अथवा लग्नके दिन बढ़े ॥ ८ ॥

दोहा-रामसीय शोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज ॥
जहँ तहँ पुरजन करहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥ ३५२ ॥

राम और सीता शोभाकी मर्यादा हैं और दोनों राजा पुण्यकी मर्यादा हैं; जहां-तहां पुरके लोग नर-नारी समूह मिलकर इस प्रकार कहते हैं ॥ ३५२ ॥

जनक सुकृत मूरति वैदेही * दशरथ सुकृत राम धरि देही ॥१॥
इन सम काहु न शिव आराधे * काहु न इन समान फल साधे ॥२॥

जनकके पुण्योंकी मूर्ति जानकी हैं, दशरथके पुण्योंकी मूर्ति श्रीरामचन्द्रजी देह धारण कर आये हैं ॥ १ ॥ इनके समान किसीने शिवकी आराधना नहीं की और न इनके समान किसीने फल ही पाया ॥ २ ॥

इन सम कोउ न भयो जगमाहीं * है न कतहुँ अब होनेउँ नाहीं ॥३॥
हम सब सकल सुकृतकी राशी * भये जग जन्मि जनक पुरवासी॥४॥

इनके समान जगतमें कोई नहीं हुआ न है न अब होगा ॥ ३ ॥ और हम भी सकल पुण्यकी राशि हैं जो संसारमें उत्पन्न हो जनकपुरमें पुरवासी हुए ॥ ४ ॥

जिन जानकी राम छबि देखी * को सुकृती हम सरिस विसेखी ॥५॥
पुनि देखब रघुवीर विवाहू * लेव भली विधि लोचन लाहू ॥६॥

और जिन्होंने जानकी और रामकी छबि देखी तो हमारे समान कौन अधिक पुण्यात्मा है ? ॥५॥ फिर अब श्रीरामचन्द्रजीका विवाह देखेंगे तो भली विधि नेत्रोंका भला होगा ॥६॥

कहहिं परस्पर कोकिल बयनी * यहि विवाह बड़लाभ सुनयनी ॥७॥
बड़े भाग्य विधि बात बनाई * नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई॥८॥

परस्पर कोकिलाके समान शब्दवाली स्त्रियाँ कहने लगीं-हे सुनयनि! यह विवाह बड़े लाभका है ॥७॥ बड़े भाग्यसे ब्रह्माने बात बनाई है,दोनों भाई नेत्रोंके पाहुने अर्थात् तृप्तिकारक होंगे॥८॥

दोहा-बारहिंबार सनेह बश, जनक बुलाउब सीय ॥
लेन आइहैं बन्धु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥ ३९३ ॥

हे सखि ! बार-बार प्रेमसे जनकजी सीताजीको बुलाया करेंगे और करोड़ कामकी शोभा वाले दोनों भाई लिवाने आवेंगे ॥ ३९३ ॥

विविध भाँति होइहै पहुनाई * प्रिय न काहि अस सासुर माई॥१॥
तब तब राम लषणहिं निहारी * होइहैं सब पुर लोग सुखारी ॥२॥

अनेक प्रकारसे पहुनाई होगी, हे सखि ऐसी ससुराल किसे न प्यारी लगेगी ॥ १ ॥ तब राम और लक्ष्मणको देखकर सब पुरवासी प्रसन्न होंगे ॥ २ ॥

सखि जस रामलषण कर जोटा * तैसेइ भूपसंग दुइ ढोटा ॥३॥
श्माम गौर सब अंग सुहाये * ते सब कहहिं देखि जे आये ॥४॥

सखि ! जैसी राम और लक्ष्मणकी जोड़ी है, वैसे ही राजा के सङ्ग दो बालक और हैं॥३॥ श्माम और गोरे सम्पूर्ण अंगसे शोभायमान हैं, वे सब कहते हैं जो देख आये हैं ॥ ४ ॥

कहा एक मैं आज निहारे * जनु विरंचि निज हाथ सँवारे ॥५॥
भरत रामहीकी अनुहारी * सहसा लखि न सकहिं नरनारी॥६॥

एकने कहा मैं आज ही देख आयी हूँ मानो विधाताने निज हाथसे बनाये हैं ॥ ५ ॥ भरत तो रामकी सूरतके हैं एका एकी नर-नारी पहँचान नहीं सकते ॥ ६ ॥

लखन शत्रुसूदन इक रूपा * नख शिखते सब अंग अनूपा ॥७॥
मनभावहिं मुख वरणि न जाहीं * उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥८॥

लक्ष्मण और शत्रुहनका एकसा ही रूप है नखसे शिखा तक सब अंग,श्रेष्ठ, हैं ॥ ७ ॥ वह रूप मनमें ही भाता है मुखसे कहा नहीं जाता; उपमा देनेको त्रिलोकीमें कोई नहीं है ॥ ८ ॥

छन्द-उपमा न कोउ कहदास तुलसी कतहुँ कवि कोविद कहैं ।
बल विनय विद्या शील शोभा सिन्धु इन सम एइ अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल विधिहि वचन सुनावहीं ।
ब्याहियहु चारिउ भाइ इहि पुर हम सुमंगल गावहीं ॥ ३५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि इनकी उपमामें कोई कहीं नहीं है; फिर कवि,कोविद किस प्रकार से वर्णन करें ? बलमें, विनयमें विद्यामें, शीलमें, शोभामें ये समुद्र हैं फिर उपमा कहां ? इस कारण इनके समान ये ही हैं; नगरकी सब नारी अञ्चल पसारके विधातासे वचन सुनाती हैं कि चारों भाइयोंका यहीं ब्याह हो तो हम मङ्गल गावें ॥ ३५ ॥

सोरठा-कहहिं परस्पर नारि, वारि विलोचन पुलक तनु ॥
सखि सब करत पुरारि, पुण्य पयोनिधि भूप दोउ ॥ ३७ ॥

आपसमें स्त्री नेत्रोंमें जल भरके पुलकित शरीर कहती हैं-हे सखि ! सब मनोरथ शिवजी पूर्ण करेंगे, क्योंकि यह दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने मिश्रसुखानन्दसुतपंडित- ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतव्याख्यायां बालकाण्डान्तर्गत नवमो विश्रामः ॥ ९ ॥

दोहा-सुभग दशम विश्राममें, श्रीरघुवीर विवाह ॥
अरु सब भाइनको भयो, सो सब कहब उछाह ॥ १० ॥

इहि विधि सकल मनोरथ करहीं ❋ आनँद उमँगि उमँगि उर भरहीं ॥१॥
जे नृप सीय स्वयंवर आये ❋ देखि बन्धु तिन सब सुख पाये ॥२॥

इस प्रकारसे सब पुरवासी मनोरथ कहते हैं और आनन्दकी उमंगसे हृदय भर जाता है ॥ १ ॥ जो राजा जानकीके स्वयंवरमें आए थे वे सब भाइयोंको देखकर प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

कहत रामयश विशद विशाला ❋ निज निज भवन गये महिपाला ॥३॥
गये बीत कछु दिन इहि भाँती ❋ प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥४॥

रामचन्द्रका बड़ा उज्ज्वल यश वर्णन करते हुए राजा अपने-अपने घर गए ॥ ३ ॥ इस प्रकार कुछ दिन बीत गए, सब बराती पुरवासी प्रसन्न रहे ॥ ४ ॥

मंगल मूल लग्न दिन आवा ❋ हिम ऋतु अगहन मास सुहावा ॥५॥
ग्रह तिथि नखत योग वर वारू ❋ लग्न सोधविधि कीन्ह विचारू ॥६॥

मंगलका मूल लग्नका दिन आया, हिमऋतु और अगहनका सुन्दर महीना ॥ ५ ॥ ग्रह तिथि, योग, अच्छा वार, मुहूर्त्त विचार ब्रह्माजीने लग्न शोधी ॥ ६ ॥

पठै दीन्ह नारद सन सोई ❋ गनी जनकके गणकन जोई ॥७॥
सुनी सकल लोगन यह बाता ❋ कहै ज्योतिषी अपर विधाता ॥८॥

ब्रह्माजीने नारदजीके साथ वहां भेज दी; जनकके ज्योतिषियोंने जो लग्न प्रथम ही विचार रखी थी॥७॥जब यह बात सब लोगोंने सुनी तो कहने लगे कि ज्योतिषी दूसरे ही विधाता हैं॥८॥

दोहा-धेनु धूलि बेला विमल, सकल सुमंगल मूल ॥
विप्रन कहेउ विदेहसन, जानि समय अनुकूल ॥ ३५४ ॥

गोधूली बेला विमल अर्थात् सब विघ्न रहित है और सम्पूर्ण सुमङ्गलकी मूल है, सो ब्राह्मणोंने जनकको बताया कि महाराज ! यह समय विवाहमें अच्छा है ॥ ३५४ ॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा ❋ अब विलम्ब कर कारण काहा ॥१॥
शतानन्द तब सचिव बुलाये ❋ मंगल कलश साजि सब लाये ॥२॥

तब राजाने पुरोहितसे कहा कि अब देर क्यों है ? ॥ १ ॥ तब शतानन्दने मन्त्रियोंको बुलाया, मङ्गल कलश सजाकर लाये ॥ २ ॥

शंख निशान पणव बहु बाजे ❋ मंगल कलश सगुन शुभ साजे ॥३॥

सुभग सुआसिन गावहिं गीता ॥ करहिं वेदध्वनि विप्र पुनीता ॥४॥

बहुतसे शंख, निशान, ढोल बजने लगे और मङ्गलके कलश तथा शुभदायक शकुन सजाये गये ॥ ३ ॥ सुन्दर सुहागिनि (राम और सीताका नाम लेकर) गीत गाती हैं और ब्राह्मण पवित्र वेदध्वनि करते हैं ॥ ४ ॥

लेन चले सादर इहि भाँती ॥ गये जहां जनवास बराती ॥५॥
कोशलपतिकर देखि समाजू ॥ अति लघु लगे तिनहिं सुर राजू ॥६॥

आदरसे इस प्रकार लेने चले और जनवासेमें बरातियोंके पास गये ॥ ५ ॥ राजा दशरथ जीका समाज देखकर उन्हें इन्द्र बहुत छोटे जचने लगे ॥ ६ ॥

भयउ समय अब धारिय पाऊ ॥ यह सुनि परा निशानन घाऊ ॥७॥
गुरुहिं पूँछि करि कुल विधि राजा ॥ चले संग मुनि साधु समाजा ॥८॥

जनवासेमें जाकर जनकरायजीकी ओरसे उन्होंने कहा कि, महाराज ! समय होगया, अब चलिये, यह बात सुनते ही निशानों पर चोट पड़ने लगीं ॥ ७ ॥ गुरुसे पूँछ कुलकी विधि कर राजा दशरथ मुनि और साधु समाजके संग चले ॥ ८ ॥

दोहा-भाग्य विभव अवधेश कर, देखि देव ब्रह्मादि ॥
लगे सराहन सहसमुख, जानि जन्म निजबादि ॥ ३९९ ॥

राजा दशरथजीका भाग्य और ऐश्वर्य देखकर ब्रह्मादिक देवता अपना जीवन वृथा जान कर सहस्रमुख-शेषजीकी सराहना करने लगे कि (सहस्रमुख होनेसे वे इस ऐश्वर्यका कुछ वर्णन कर सकते हैं) ॥ ३९९ ॥

सुरन सुमंगल अवसर जाना ॥ वर्षहिं सुमन बजाय निशाना ॥१॥
शिव ब्रह्मादिक विविध वरूथा ॥ चढ़े विमानन नाना यूथा ॥२॥

देवताओंने सुमंगलका समय जानकर फूल बरसाये और निशान बजाये ॥ १ ॥ शिव ब्रह्मादिक देवसमूहोंके अनेक यूथ विमानोंमें चढ़े ॥ २ ॥

प्रेम पुलकि तनु हृदय उछाहू ॥ चले विलोकन राम-विवाहू ॥३॥
देखि जनकपुर सुर अनुरागे ॥ निज निज लोक सबहिं लघु लागे ॥४॥

प्रेमसे पुलकायमान शरीर हो श्रीरामजीका विवाह देखने चले ॥ ३ ॥ जनकका नगर देख देवता प्रसन्न हुए और अपने-अपने लोक सबको छोटे लगे ॥ ४ ॥

चितवहिं चकित विचित्र विताना ॥ रचना सकल अलौकिक नाना ॥५॥
नगर नारि नर रूप निधाना ॥ सुघर सुधर्म सुशील सुजाना ॥६॥

विचित्र वितान अर्थात् मण्डप रचनाको चकित होकर देखते हैं, जिसकी सब रचना अलौकिक और अनेक हैं ॥५॥ नगरके नारी और नर रूपनिधान अच्छे सुन्दर धर्मात्मा और चतुर हैं ॥६॥

तिनहिं देखि सब सुर पुर नारी ॥ भयीं नखत जनु विधु उजियारी ॥७॥
विधिहि भयउ आश्चर्य बिशेखी ॥ निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥८॥

उन्हें देखके सब देवताओंकी स्त्रियाँ ऐसी हो गयीं जैसे चन्द्रमाके सम्मुख तारे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपनी करनी कहीं कुछ न देखी (क्योंकि वह रचना सीताजीकी मायासे थी) ॥ ८ ॥

दोहा-शिव समुझाये देव सब, जनि आश्चर्य भुलाहु ॥
हृदय विचारहु धीरधरि, सिय रघुवीर विवाहु ॥ ३५६ ॥

शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि आश्चर्य कर मत भूलो और हृदयमें धीरज धरके विचारो कि यह सीता और रामजीका विवाह है (इसमें जो कुछ हो सब थोड़ा) है ॥३५६॥

जिनकर नाम लेत जगमाहीं * सकल अमंगल मूल नशाहीं ॥१॥
करतल होहिं पदारथ चारी * तेहि सियराम कहेउ कामारी ॥२॥

जिनका नाम लेते ही जगत्में सब अमंगल मूलसे नष्ट हो जाता है ॥१॥ 'चारों पदार्थ' हाथमें आजाते हैं, ये वेही सीताराम हैं। यह शिवजीने कहा ॥ २ ॥

इहि विधि शम्भु सुरन समुझावा * पुनि आगे बर बसह चलावा ॥३॥
देवन देखे दशरथ जाता * महा मोद मन पुलकित गाता ॥४॥

इस प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया और फिर आगे बरबसह (श्रेष्ठ नंदीको) चलाया ॥३॥ देवताओंने दशरथको जाते देखा जिनके मनमें बड़ा प्रेम और पुलकायमान शरीर है॥४॥

साधु समाज संग महि देवा * जनु तनु धरे करहिं सुर सेवा ॥५॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी * जनु अपवर्ग सकल तनुधारी ॥६॥

संगमें साधुओंका समाज और ब्राह्मण ऐसी शोभा देते हैं मानों शरीर धारे देवता सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ साथमें सुन्दर चारों पुत्र ऐसे शोभित हैं जैसे सब अपवर्ग अर्थात् सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य नामक चारों मोक्षही शरीर धरे हों ॥ ६ ॥

मर्कत कनक वरन वर जोरी * देखि सुरन भइ प्रीति न थोरी ॥७॥
पुनि रामहि विलोकि हिय हर्षे * नृपहिं सराहि सुमन तिन वर्षे ॥८॥

रामचन्द्र और भरतकी मर्कतमणिके समान श्याम; लक्ष्मण और शत्रुसूदनकी सुवर्णके समान गोरी जोरी देख देवताओंको बड़ी प्रीति हुई ॥ ७ ॥ फिर रामचन्द्रजीको देखके देवता मनमें प्रसन्न हुए और उन्होंने राजा दशरथकी सराहना कर फूल बरसाये ॥ ८ ॥

दोहा-रामरूप नख शिख सुभग, बारहिं बार निहारि ॥
पुलकि गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ॥ ३५७ ॥

पार्वती सहित शिवजी रामचन्द्रजीका सुन्दर रूप नख-शिख पर्यन्त बारंबार देख कर पुलकायमान शरीर हो नेत्रोंमें जल भर आनन्दमें मग्न हुए ॥ ३५७ ॥

केकिकण्ठ द्युति श्यामल अंगा * तडित विनिन्दक वसन सुरंगा ॥१॥
ब्याह विभूषण विविध बनाये * मंगलमय सब भाँति सुहाये ॥२॥

मोरके कंठके समान कान्तिमान् श्याम अंग और बिजलीको लज्जाकारक रंगीन वस्त्र अर्थात् केसरिया बाना धारण किये हुए ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके मंगलमय, सब भाँतिसे शोभायमान ब्याहके गहने धारण किये हुए हैं ॥ २ ॥

शरद विमल विधु वदन सुहावन * नयन नवल राजीव लजावन ॥३॥
सकल अलौकिक सुन्दरताई * कहि न जाय मनही मन भाई ॥४॥

शरदचन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुख और नेत्र नये कमलोंको भी लजानेवाले हैं ॥ ३ ॥ सब सुन्दरता अलौकिक है, मनही मन भाती है ॥ ४ ॥

बंधु मनोहर सोहहिं संगा * जात नचावत चपल तुरंगा ॥५॥
राजकुँवर वर वाजि नचावहिं * वंश प्रशंसक बिरद सुनावहिं ॥६॥

मनोहर भाई संगमें शोभित हैं जो चञ्चल घोड़ोंको नचाते जाते हैं ॥ ५ ॥ राजकुँवर उत्तम घोड़ोंको नचाते हैं, भाट वंशकी प्रशंसा सुनाते हैं ॥ ६ ॥

जेहि तुरंग पर राम विराजे * गति विलोकि खगनायक लाजे ॥७॥
कहि न जाय सब भाँति सुहावा * वाजिवेष जनु काम बनावा ॥८॥

जिस घोड़ेपर रामजी विराजे उसकी गति देखकर गरुड़जी लजाते हैं॥७॥सब प्रकारसे शोभायमान घोड़ेका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसा सजा है मानो कामदेवने ही घोड़ेका रूप धरा है॥८॥

छन्द–जनु वाजि वेष बनाय मनसिज राम हित अति सोहई।
अपनेहि वय बल रूप गुण गति सकल भुवन विमोहई॥
जगमगति जीन जड़ाव जोति सुमोति माणिक मणि लगे।
किंकिणिललामलगामललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥३६॥

जैसे कामदेवही घोड़ेका वेष बनाए रामके कारण प्रगट हो शोभित है; जो अपने वय, बल, रूप, गुण, गतिसे सब जगत्को मोहित करता है; जिसकी जड़ाऊ जीन जगमगाती है और ज्योतिवाले मोती माणिक जिसमें लगे हैं सुन्दर तगड़ी और सुन्दर लगामको देख देवता और मुनि चकित होते हैं ॥ ३६ ॥

दोहा–प्रभु मनसहि लयलीन मन, चलत वाजि छबि पाव॥
भूषित उडुगण तड़ित घन, जनु वर बरहि नचाव ॥३५८॥

घोड़ा प्रभुके मनकी लयमें अपने मनको लीन करके नाचता चलता है, सो ऐसा शोभित है जैसा उडुगण (तारा) तड़ित (बिजली) से घन (बादल) भूषित हो और उसे देखकर मोर नृत्य करता है, उडुगण अर्थात् तारेके समान गहने, बिजली केसरिया बाना है रघुनाथजीका अंग घन है, अश्व मोर है ॥ ३५८ ॥

जेहि वर वाजि राम असवारा * तेहि शारदहु न वरणै पारा ॥१॥
शङ्कर राम–रूप अनुरागे * नयनपंचदश अति प्रिय लागे ॥२॥

जिस सुन्दर घोड़े पर रामजी असवार थे उसका शारदा भी नहीं वर्णन कर सकतीं ॥१॥ शिवजी उस समय रामके रूपको प्रेमसे देखने लगे और पन्द्रह नेत्र अधिक प्यारे लगे, अनुरागी होनेसे तीसरा नेत्र भी सौम्य हो गया। अथवा शंकरने जब अनुरागसे दश नेत्रोंसे रामको देखा तो उन पांच नेत्रोंको वे प्रिय लगे ॥ २ ॥

हरि हित सहित राम जब जोहे * रमा समेत रमापति मोहे ॥३॥
निरखि राम छबि विधि हरषाने * आठै नयन जानि पछिताने ॥४॥

भगवान् विष्णुने जब प्रेमसे रामको देखा तब लक्ष्मी सहित मोहित हो गए ॥ ३ ॥ रामकी छबि देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और आठ ही नेत्र जानकर पछताए ॥ ४ ॥

कवि–'कंधौं मणिमौर कंधौं रुचिर रसाल मौर, कंधौं फूल जाल कंधौं सेहरो दराज है। कंधौं मुख मंजु कंधौं विकसो विशाल कञ्ज, कुन्तल किधौं है किधौं मधुप समाज है ॥ कंधौं है तुरङ्ग कंधौं मारुत चलै है मन्द, कंधौं कलगान कंधौं कोकिला अवाज है। कंधौं रघुराज साज दूलह सुहावं आज, रसिक विहारी कंधौं आवै ऋतुराज है ॥" (रामरसायने)

सुरसेनप उर बहुत उछाहू ❋ विधिसे डचोढ़े लोचन लाहू ॥५॥
रामहिं चितै सुरेस सुजाना ❋ गौतम शाप परम हित माना ॥६॥

स्वामिकार्तिकके मनमें बहुत उत्साह हुआ कि, ब्रह्माजीसे डचोढ़े अर्थात् बारह नेत्र हैं ॥ ५ ॥ रामको इन्द्रने देखकर गौतमके शापको परम श्रेष्ठ जाना गौतमने अहल्याके साथ संगम करनेसे हजार भग होनेका शाप दिया था फिर वे यज्ञ करनेसे हजार नेत्र हो गए थे, सो हजार नेत्रोंसे रामजीको देख प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं ❋ आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं ॥७॥
मुदित देवगण रामहिं देखी ❋ नृप समाज दुहुँ हर्ष विसेखी ॥८॥

सब देवता इन्द्रकी सराहना करने लगे कि आज इन्द्रके समान कोई नहीं है ॥७॥ रामको देखकर देवता प्रसन्न हुए और राजाको भी देखकर विशेष प्रसन्न हुए; दोनों राजसभामें आनन्द छा गया ॥ ८ ॥

छन्द–अति हर्ष राज समाज दुहुँ दिशि दुन्दुभी बाजहि घनी ॥
वर्षहिं सुमन सुर हरषि कहि जयजयति जय रघुकुलमनी ॥
इहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं ॥
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं ॥ ३७ ॥

दोनों राजसमाजमें बड़ा आनंद छा गया, और नगाड़े बजने लगे, देवता फूल वर्षा कर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करने लगे। इस भाँति बरात चली और बाजे बजनेके शब्दसे बरातका आना जान रानी सुहागनोंको बुलाकर आरतीका सामान सजाने लगी ॥ ३७ ॥

दोहा–सजि आरती अनेक विधि, मंगल कलस सँवारि ॥
चलीं मुदित परिछन करन, गज गामिनि वर नारि ॥ ३५९ ॥

अनेक प्रकारसे आरती सजा और संपूर्ण मांगलिक वस्तु सँवारके प्रसन्न हो मत्त गजकी चालवाली सुन्दर स्त्रियां परिछन करने चलीं (दूलहकी आरतीको परिछन कहते हैं) ॥३५९॥

विधु वदनी मृगशावक–लोचनि ❋ सब निज तनु छबि रति मद मोचनि ॥१॥
पहिरे बरन बरन वर चीरा ❋ सकल विभूषण सजे शरीरा ॥२॥

चन्द्रमासे मुखवाली, मृगसे नेत्रवाली सब अपने शरीरकी छबिसे रतिका मद दूर करनेवाली हैं ॥ १ ॥ रंग रंगके वस्त्र पहने हैं, और सब शरीरमें भूषण शोभित हैं ॥ २ ॥

सकल सुमंगल अंग बनाये ❋ करहिं गान कलकंठ लजाये ॥३॥
कंकण किंकिणि नूपुर बाजहिं ❋ चाल विलोकि काम गज लाजहिं ॥४॥

सब सुमंगलके चित्र शरीरमें बनाये हुए ऐसे स्वरसे गाती हैं जो सुनकर कोकिलाका कंठ लज्जित होता है ॥३॥ कंकण, किंकिणी (कमरकी तगड़ी) और नूपुर बजते हैं जिनकी चाल देखकर कामदेव और हाथी लजाते हैं ॥ ४ ॥

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा ❋ नभ अरु नगर सुमंगलचारा ॥५॥
शची शारदा रमा भवानी ❋ जे सुरतिय शुचि सहज सयानी ॥६॥

अनेक प्रकारसे बाजे बजते हैं; आकाश और नगरमें मङ्गलाचार हो रहा है ॥ ५ ॥ शची-इन्द्राणी, शारदा-ब्रह्माणी, रमा-लक्ष्मी, पार्वती आदि जो देवताओंकी पवित्र और स्वाभाविक चतुर स्त्रियें हैं वे ॥ ६ ॥

कपट नारि वर वेष बनाई ❋ मिलीं सकल रनिवासिन जाई ॥७॥
करहिं गान कल मंगल बानी ❋ हर्ष विवश सब काहु न जानी ॥८॥

कपटसे सुन्दर नारियोंका वेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं ॥ ७ ॥ सुन्दर मंगल वाणीसे गाने लगीं और हर्षके वशीभूत होनेसे उनको किसीने नहीं पहिचाना ॥ ८ ॥

छन्द–को जान केहि आनंदवश सब ब्रह्म वर परिछन चलीं ।
कलगान मधुर निशान वर्षहिं सुमन सुरशोभा भलीं ॥
आनन्द कंदविलोकि दूलह सकल हिय हर्षित भईं ।
अंभोज अंबक अम्बु उमँगि सुअंग पुलकावलि छईं ॥३८॥

कौन जाने किस आनंदके कारण प्रसन्न हो सब ब्रह्मवर अर्थात् रघुनाथजीकी आरती करने चलीं। सुन्दर गान हो रहा है मधुर बाजे बज रहे हैं देवता फूल बरसा रहे हैं जिससे अच्छी शोभा हो रही है, आनंदसागर दूलहको देखकर स्त्रियाँ मनमें प्रसन्न हो गयीं; अंभोज अर्थात् कमलसे अम्बक (नेत्रोंमें) अम्बु (जल) उमड़ आया; अंगमें पुलकावली छा गयी ॥३८॥

दोहा–जो सुख भा सियमातु मन, देखि राम वर वेष ॥
सो न सकहिं कहि कल्प शत, सहस शारदा शेष ॥ ३६० ॥

जो सुख सीताकी माताके मनमें श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर वेष देखकर हुआ वह सौ कल्प तक सहस्र सरस्वती शेषजी नहीं कह सकते ॥ ३६० ॥

नयन नीर हठि मंगल जानी ❋ परिछन करहिं मुदित मन रानी ॥१॥
वेद विहित अरु कुल-आचारू ❋ कीन्ह भलीविधि सब व्यवहारू ॥२॥

मंगलका समय जान नेत्रोंमें नीर भर आया, उसे रानी रोक प्रसन्न हो आरती करने लगीं ॥१॥ जो वेदसे कथन किया हुआ और जो कुलका आचार है वह सब व्यवहार भली प्रकार किया ॥२॥

पंच शब्द ध्वनि मंगल गाना ❋ पटपाँवड़े परहिं विधि नाना ॥३॥
करि आरती अर्घ्य तिन दीन्हा ❋ राम गमन मंडप तब कीन्हा ॥४॥

पंचशब्द-घंटा, शंख, बांसुरी, नगाड़े, दुन्दुभी आदि और मनोहर गीतोंका शब्द होने लगा अथवा वेदध्वनि, बन्दीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और बाजोंकी ध्वनि पंचशब्द हैं अथवा मंगल ध्वनि इन पांच शब्दोंमें हो रही हैं, मार्गमें अनेक प्रकारके वस्त्र बिछवा दिये ॥ ३ ॥ जब रानीने आरती कर अर्घ्य दिया तब श्रीरामचन्द्रजीने मण्डपमें गमन किया ॥ ४ ॥

दशरथ सहित समाज विराजे ❋ विभव विलोकि लोकपति लाजे ॥५॥
समय समय सुर वर्षहिं फूला ❋ शांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला ॥६॥

राजा दशरथजी भी समाज सहित विराजमान हुए, जिनके ऐश्वर्यको देख लोकपति इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक लज्जित हुए ॥ ५ ॥ समय-समय पर देवता फूल बरसाते हैं और ब्राह्मण अनुकूल शांति पढ़ते हैं ॥ ६ ॥

नभ अरु नगर कोलाहल होई ❋ आपन पर कछु सुनै न कोई ॥७॥

इहि विधि राम मंडपहि आये ❋ अर्घ्य देइ आसन बैठाये ॥८॥

आकाश और नगरमें कोलाहल हो रहा है; अपना और पराया कोई नहीं सुनता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी मण्डपमें आये अर्घ्य देकर आसनपर बैठाये ॥ ८ ॥

छन्द–बैठारि आसन आरती करि निरखि वर सुख पावहीं ।
मणि वसन भूषण भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुरवरि विप्र वेष बनाय कौतुक देखहीं ।
अवलोकि रविकुलकमल रवि छबि सफल जीवन लेखहीं ॥३९॥

आसनमें बैठाकर आरती करके वरको देख सुख पा रही हैं और मणि, वस्त्र गहने बहुतसे न्योछावर कर स्त्रियां मंगल गाती हैं, ब्रह्मादिक देवता ब्राह्मणोंके वेष बनाए यह कौतुक देख रहे हैं और सूर्यकुलकमलको खिलानेवाले सूर्य समान श्रीरामचन्द्रजीकी छबिको देखकर अपना जीवन सफल मानते हैं ॥ ३९ ॥

दोहा–नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ ॥
मुदित अशीषहिं नाय शिर, हर्ष न हृदय समाइ ॥ ३६१ ॥

नाई, वारी, भाट और नट रामकी प्रीति पाकर प्रसन्न हो शिर नवाकर आशीष देते हैं जिनके मनमें आनन्द अधिक होनेके कारण नहीं समाता ॥ ३६१ ॥

मिले जनक दशरथ अति प्रीती ❋ करि लौकिक वैदिक सब रीती ॥१॥
मिलत महा दोउ राज विराजे ❋ उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥२॥

जनक और दशरथजी बड़ी प्रीतिसे लोक–वेदकी सब रीति करके मिले ॥१॥ दोनों राजा मिलते हुए अधिक शोभित हुए, जिनकी उपमा ढूँढ़नेसे न मिलने पर कवि लज्जित हुए ॥२॥

लही न कतहुँ हारि हिय मानी ❋ इन सम यहि उपमा उर आनी ॥३॥
समधी देखि देव अनुरागे ❋ सुमन वरषि यश गावन लागे ॥४॥

जब कहीं उपमा नहीं मिली तो मनमें हारकर यह कहा कि इनके समान ये ही हैं ॥ ३ ॥ समधियोंको देखकर देवता प्रसन्न हो फूल बरसाकर यश गाने लगे ॥ ४ ॥

जग विरंचि उपजावा जबते ❋ देखे सुने व्याह बहु तबते ॥५॥
सकल भाँति सब साज समाजू ❋ सम समधी देखे हम आजू ॥६॥

ब्रह्माने जगत् जबसे उपजाया है तबसे हमने बहुत ब्याह देखे और सुने हैं ॥ ५ ॥ सब प्रकार साज समाज सहित समान समधी हमने आज देखे हैं ॥ ६ ॥

देवगिरा सुनि सुन्दर साँची ❋ प्रीति अलौकिक दुहुँ दिशि माँची ॥७॥
देत पावड़े अर्घ्य सुहाये ❋ सादर जनक मंडपहि ल्याये ॥८॥

देवताओंकी सुन्दर सत्य वाणी सुनकर दोनों ओर अधिक प्रीति छा गई ॥ ७ ॥ पाटम्बर बिछाते और अर्घ्यको देते जनकजी दशरथजीको मंडपमें आदरसे लाये ॥ ८ ॥

---

१. कवित्त–"भले भूप कहत भले भदेश भूपनसों; लोक लख बोलिये पुनीत रीति सारखी। जगदम्बा जानकी जगतपितु, रामचन्द्र जनि जिय जोहो जौन लागै मुख कारखी। देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुराण वेद, बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज जो विराजमान रामसे न वर दुलही न सीय सारखी।"

छन्द–मण्डप विलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे ।
निज पाणि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे ॥
कुलइष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आशिष लही ।
कौशिकहि पूजत परम प्रीतिकि रीति सो न परै कही ॥ ४० ॥

मंडपकी विचित्र रचना और शोभा देखकर मुनियोंके मन मोहित हो जाते थे; प्रवीण जनकजीने अपने हाथसे सबके लिए सिंहासन बिछाये और सबको बैठाया, अपने कुलदेवताके समान वसिष्ठजीकी पूजा और विनती कर आशीष ली, परंतु विश्वामित्रजीके पूजन करनेमें जो अधिक प्रीति थी सो नहीं कही जाती, क्योंकि इस कार्यकी सिद्धिके ये ही कारण थे ॥४०॥

दोहा–वामदेव आदिक ऋषि, पूजे मुदित महीश ॥
दिये दिव्य आसन सबहिं, सबसन लही अशीश ॥ ३६२ ॥

वामदेव, जाबालि आदि ऋषियोंका पूजन कर राजाने हर्षित हो सबको सुन्दर आसन दिये और सबसे आशीष ली ॥ ३६२ ॥

बहुरि कीन्ह कोशलपति पूजा ❋ जानि ईशसम भाव न दूजा ॥१॥
कीन्ह जोरि कर विनय बड़ाई ❋ कहि निज भाग्य विभव बहुताई॥२॥

फिरसे दशरथजीकी पूजा साक्षात् ईश्वर जानके की और भावसे नहीं ॥ १ ॥ और फिर हाथ जोड़कर विनय बड़ाई की और अपने भाग्य ऐश्वर्यकी बड़ाई कह कर ॥ २ ॥

पूजे भूपति सकल बराती ❋ समधी सम सादर सब भाँती ॥३॥
आसन उचित दिये सब काहू ❋ कहौं कहा मुख एक उछाहू ॥४॥

राजाने सब बरातियोंको समधीके समान जानकर सब प्रकारकी पूजाकी ॥३॥ सब किसीको उचित आसन दिये, याज्ञवल्क्यजी कहते हैं एक मुखसे उत्साह कैसे वर्णन हो सके ॥४॥

सकल बरात जनक सनमानी ❋ दान मान विनती वर बानी ॥५॥
विधि हरिहर दिशिपति दिनराऊ ❋ जो जानहिं रघुवीर प्रभाऊ ॥६॥

सब बरातका जनकजीने सम्मान किया और अच्छी वाणीसे दान मान विनतीकी ॥५॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव दिशाओंके देवता और सूर्य जो रामजीका प्रभाव जानते हैं ॥ ६ ॥

कपट विप्रवर वेष बनाये ❋ कौतुक देखहिं अति सचुपाये ॥७॥
पूजे जनक देव सम जाने ❋ दिये सुआसन विनु पहिचाने ॥८॥

ये अपनेको छिपाकर कपटसे सुन्दर ब्राह्मण वेष बनाये बड़े प्रेमसे कौतुक देखते हैं॥७॥ जनकजीने देवताओंके समान जानकर इनका पूजन किया और विना पहचाने सुन्दर आसन दिये॥८॥

छन्द–पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भई ।
आनन्दकन्द विलोकि दूलह उभय दिशि आनँदमई ॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये ।
अवलोकि सरल स्वभाव प्रभुको विबुधमन प्रमुदित भये ॥४१॥

कौन किसको पहचाने और जाने; सबको अपनी-अपनी सुध भूल गयी और आनन्दकंद रामचन्द्रजीको देखकर दोनों ओर आनंद छा गया, जब सुजान श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंको देखा तो मानसिक पूजन कर आसन दिये। यह रामजीका सरल स्वभाव देख सब देवता मनमें प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥

दोहा–रामचन्द्र मुखचन्द्र छबि, लोचन चारु चकोर ॥
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर ॥ ३६३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखरूपी चन्द्रमाको सब कोई सुन्दर चकोरके समान नेत्रोंसे देखने लगे और नेत्रोंसे ही रूपका पान आदरसे करने लगे, जिनके मनमें प्रेमका आनंद थोड़ा नहीं है अर्थात् बहुत है ॥ ३६३ ॥

समय विलोकि वसिष्ठ बुलाये ❋ सादर शतानंद मुनि आये ॥१॥
वेगि कुँवरि अब आनहु जाई ❋ चले मुदित मुनि आयसु पाई ॥२॥

समय जान वसिष्ठजीने शतानंदजीको बुलाया, वे सुनकर आदर पूर्वक आये ॥१॥ वसिष्ठजी बोले–अब शीघ्र जानकीजीको लाओ, तब मुनिकी आज्ञा पाय प्रसन्न हो लिवाने चले ॥२॥

रानी सुनि उपरोहित बानी ❋ प्रमुदित सखिन समेत सयानी ॥३॥
विप्रवधू कुल वृद्ध बुलाई ❋ करि कुलरीति सुमंगल गाई ॥४॥

बुद्धिमती रानी पुरोहितकी वाणी सुनकर सखी सहित प्रसन्न हुई ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंकी बड़ी और कुलकी वृद्धा बुलायीं, कुलरीति कर मंगल गाये ॥ ४ ॥

नारि वेष जे सुरवर–वामा ❋ सकल सुभाय सुन्दरी श्यामा ॥५॥
तिनहिं देखि सुख पावहिं नारी ❋ बिनु पहिचान प्राणते प्यारी ॥६॥

स्त्रियोंके वेषमें जो देवताओंकी स्त्री सब स्वभावसे सुन्दर थोड़ी अवस्थाकी थीं ॥ ५ ॥ उन्हें देखकर नारियोंने सुख पाया और विना पहचाने प्राणोंसे प्यारी मान ॥ ६ ॥

वार वार सन्मानहिं रानी ❋ उमा–रमा शारद सम जानी ॥७॥
सीय सँवारि समाज बनाई ❋ मुदित मण्डपहि चलीं लिवाई ॥८॥

वार वार रानी पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती के समान जानकर उनका आदर करती हैं ॥ ७ ॥ सीताजीको शृङ्गार करके और समाज बनाकर सखियाँ प्रसन्न हो मंडपमें लिवा ले चलीं ॥ ८ ॥

छन्द–चलीं लाय सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त साजे सुन्दरी सब मत्त कुञ्जरगामिनी ॥
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकण तालगति वर बाजहीं ॥ ४२ ॥

सखियाँ आदरपूर्वक जानकीजीको लेकर चलीं जो सब स्त्रियाँ सुमंगल साजको सजाये हैं और सोलह शृङ्गार किये मत्त हथिनी की सी चालवाली हैं, जिनके सुन्दर गानेसे मुनि ध्यान त्यागते हैं और कामकोकिल लजाती हैं, । मँजीरे, नूपुर, सुन्दर कंकण यह तालगतिसे सुंदर बजते हैं॥४२॥

दोहा–सोहति वनिता-वृन्दमहँ, सहज सुहावनि सीय ॥
छवि ललनागणमध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय ॥ ३६४ ॥

स्त्रियोंके बीचमें सहज सुहावनी जानकीजी ऐसी शोभित होती हैं जैसे सुषमा अर्थात् अत्यन्त शोभारूपी श्रेष्ठ स्त्री बनकर छविरूपी स्त्रियोंके बीचमें विराजमान हुई हो ॥३६४॥

सिय सुन्दरता वरणि न जाई ❋ लघुमति बहुत मनोहरताई ॥१॥
आवत देखि बरातिन सीता ❋ रूपराशि सब भाँति पुनीता ॥२॥

सीताजीकी सुन्दरता वरणी नहीं जाती; क्योंकि मेरी मति थोड़ी और मनोहरता अधिक है ॥ १ ॥ बरातियोंने रूपकी राशि और सब प्रकारसे पवित्र जानकीजीको आते देखा ॥ २ ॥

सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रणामा ❋ देखि राम भय पूरण-कामा ॥३॥
हर्षे दशरथ सुतन समेता ❋ कहि न जाय उर आनंद जेता॥४॥

सबने मन ही मन प्रणाम किया और रघुनाथजी भी देखकर संतुष्ट हुए ॥ ३ ॥ दशरथजी पुत्रों समेत प्रसन्न हुए और हृदयमें इतना आनंद हुआ कि कहा नहीं जाता ॥ ४ ॥

सुर प्रणाम करि वर्षहिं फूला ❋ मुनि अशीष ध्वनि मंगलमूला ॥५॥
गान निशान कुलाहल भारी ❋ प्रेम प्रमोद नगर नर नारी ॥६॥

देवता प्रणामकर फूल बरसाते हैं और मुनि लोग मंगलयुक्त आशीषकी ध्वनि कर रहे हैं॥५॥ गान और बाजोंसे भारी कोलाहल हो रहा है और प्रेमके आनंदमें नगरके नरनारी भर रहे हैं ॥६॥

इहि विधि सीय मंडपहि आई ❋ प्रमुदित शांति पढ़हिं मुनि राई॥७॥
तेहि अवसर करि विधि व्यवहारू ❋ दुइ कुलगुरु सबकीन अचारू ॥८॥

इस प्रकार जानकीजी मण्डपमें आयीं और आनंदसे मुनि शांतिपाठ पढ़ने लगे ॥७॥ उस समय व्यवहारकी विधि करके दोनों कुलके गुरुओंने सब कार्य किये ॥ ८ ॥

छन्द–आचार करि गुरु गौरि गणपति मुदित विप्र पुजावहीं ।
सुर प्रगट पूजा लेहिं देहिं अशीश अति सुखपावहीं ॥
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहिं समय मुनि मनमहँ चहैं ।
भरि कनक कोपर कलश सब कर लिये परिचारक रहैं ॥४३॥

आचार करके दोनों कुलगुरु पार्वती और गणेशजी तथा ब्राह्मणोंका पूजन हर्षसे कराते हैं, देवता प्रकट होकर पूजा लेते,आशीष देते और अत्यन्त सुख पाते हैं;मधुपर्क अर्थात् दही और मधु आदि जो ब्याह समय कटोरेमें धरा जाता है और मङ्गल पदार्थ जो जिस समय मुनि मनमें चाहते हैं उन्हें सुवर्ण पात्र और कलशोंमें भर सब नौकर हाथमें लिए उपस्थित रहते हैं॥४३॥

छन्द–कुलरीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर किये ।
इहि भाँति देव पुजाय सीतहि सुभग सिंहासन दिये ॥
सिय राम अवलोकन परस्पर प्रेम काहु न लखि परै ।
मन बुद्धि वर वाणी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै ॥ ४४ ॥

सूर्य अपने कुलकी रीति प्रीति सहित सब आदरसे वर्णन कर देते हैं इस भांतिसे देवताओंका पूजन कराकर जानकीजीको सुन्दर सिंहासन दिया; सीता और रामजीका परस्पर जो अवलोकन है, यह प्रेम किसीको विदित नहीं होता और जो मन बुद्धिवाणीसे परे है उसे कवि कैसे प्रकट करे ॥ ४४ ॥

दोहा-होम समय तनु धरि अनल, अति हित आहुति लेहिं ॥
विप्रवेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं ॥ ३६५ ॥

होम समयमें शरीर धारण करके अग्नि अतिप्रेमसे आहुति ग्रहण करते हैं और वेद ब्राह्मणका वेष धारण किये विवाहकी सब विधि बताते हैं ॥ ३६६ ॥

जनक पाटमहिषी जग जानी ❋ सीयमातु किमि जाय बखानी ॥१॥
सुयश सुकृत सुख सुन्दरताई ❋ सब समेटि विधि रची बनाई ॥२॥

सुनयनाजी जब जनकजीको व्याही गयीं और पटरानी हुईं तो सब जगतने जाना और अब जानकीजी की माता बनीं तो किस तरह बखान किया जाय ॥ १ ॥ सुयश, पुण्य, सुख और सुंदरता सब एकत्रित कर विधाताने सुनयनाजीको रचकर बनाया है ॥ २ ॥

समय जानि मुनिवरन बुलाईं ❋ सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं ॥३॥
जनक वामदिशि सोह सुनयना ❋ हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥४॥

समय जानकर मुनिवरोंने बुलाया और सुनते ही सौभाग्यवती स्त्रियाँ आदर पूर्वक लिवा लायीं ॥ ३ ॥ जनकजीके बायीं ओर सुनयना ऐसी शोभित हुईं जैसे हिमालयके संग मयना (पार्वतीकी माता) शोभित हो ! अथवा सुनयनाके वामदिशि जनक और दक्षिण ओर सुनयना शोभित हैं, जैसे हिमालयके संग विवाहमें मैना थी,यथा-"सीमंते च विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने । व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे" ॥ ४ ॥

कनक कलश मणि कोपर रूरे ❋ शुचि सुगन्ध मंगल जल पूरे ॥५॥
निजकर मुदित राउ अरु रानी ❋ धरे रामके आगे आनी ॥६॥

सोनेके कलश मणिजटित सुन्दर पवित्र सुगंधयुक्त मङ्गलजलसे भरे और बड़ी-बड़ी परात ॥५॥ अपने हाथसे प्रसन्न हो राजा औ रानीने रामजीके आगे धरी ॥ ६ ॥

पढ़हिं वेद मुनि मंगल बानी ❋ गगनसुमन झरि अवसर जानी ॥७॥
बर विलोकि दम्पति अनुरागे ❋ पाँय पुनीत पखारन लागे ॥८॥

मुनि मंगलवाणीसे वेद पढ़ने लगे और समय जान देवता आकाशसे फूल बरसाने लगे ॥ ७ ॥ वर देखकर दोनों स्त्री पुरुष प्रसन्न हो चरण कमल धोने लगे ॥ ८ ॥

छन्द-लागे पखारन पाँय पंकज प्रेम तनु पुलकावली ॥
नभनगरगान निसानजयध्वनि उमंगि जनु चहुँदिशि चली ॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सरसदैव विराजहीं ।
जे सुकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजहीं ॥४५॥

प्रेमसे पुलकायमान होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरण धोने लगे आकाश और नगरके मध्य बाजे बजे मंगलगीतकी ध्वनि चारों ओरसे उमड़के निकली। जो चरणकमल शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें सदैव विराजते हैं जिनपुण्यरूपी चरणों कोस्मरणकर मनके सब पाप दूर हो जाते हैं और निर्मलता होती है अथवा जिसको एकबार मनमें स्मरण करनेसे सब कलिकलुष दूर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

छन्द-जे परसि मुनिवनिता लही गति रही जो पातक मई ।
मकरन्द जिनको शंभुशिर शुचिता अवधि सुर वरणई ॥

करि मधुप मन मुनि योग जेहि सेइ अभिमत फल लहैं।
ते पद पखारत भाग्य भाजन जनक जय जय सब कहैं ॥ ४६ ॥

जिन चरणोंका स्पर्श करके गौतम नारी जो पातकमयी थी वह पवित्र हो गयी और जिनका मकरंद शंभुशिरपर धारण करते हैं; देवतादि पवित्रताकी मर्यादा करते हैं और मुनि योगीजन जिन चरणकमलोंमें अपने-अपने मनको भौंरा बनाकर जिनकी सेवा कर वांछित गतिको प्राप्त होते हैं उन्हीं चरणोंको भाग्यशाली जनकजी धोते हैं और सब कोई जयजयकार करते हैं॥४६॥

छन्द-वर कुँवरि करतल जोरि शाखोचार दोउ कुलगुरु करैं।
भयो पाणिग्रहण विलोकि विधि सुरमनुज मुनि आनँद भरैं ॥
सुखमूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलसैं हिये।
करि लोक वेद विधान कन्या दान नृप भूषण दिये ॥ ४७ ॥

वर कुँवारिका हाथ परस्पर पकड़ कर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे,जब इस प्रकार पाणिग्रहण हो चुका तब ब्रह्मा,देवता मनुष्य और मुनि देखकर प्रसन्न हुए,सुखमूल दूलहको देखकर राजा जनक और सुनयना रानी दोनों मनमें बार-बार प्रसन्न होते हैं ! इस प्रकार लोक और वेदकी विधि कर नृपभूषण अर्थात् राजा धिराज जनकजीने कन्यादान किया। शाखोच्चार वाल्मीकिमें इस प्रकार लिखा हैः-वसिष्ठजी बोले-उस परमेश्वरसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उनके पुत्र मरीचि-मरीचिके कश्यप, उनके सूर्य सूर्यके वैवस्वत मनु हुए, इनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए,ईक्ष्वाकुने अयोध्यापुरी बसायी। इनके कुक्षिनाम पुत्र हुए इनकेविकुक्षि,इनके बाणनामक पुत्र हुए,बाणके अनरण्य,अनरण्यके पृथु,पृथुके त्रिशंकु,त्रिशंकुके धुन्धुमार, इनके युवनाश्व, इनके चक्रवर्ती मांधाता इनके सुसंधि इनके ध्रुवसंधि और प्रसेनजित दो पुत्र हुए,ध्रुवसंधिके भरत,और भरतके असितनाम पुत्र हुए, ये असित हैहयतालजंघसे हार रानी सहित तप करने चले गये और वहीं परलोकको गये, इनकी कालिंदी नाम रानी गर्भवती थी, दूसरी रानीने उसे डाहसे विष दे दिया तब वह च्यवनके (शरणागत हुई, उन्होंने कहा मत घबड़ाओ, विषसहित पुत्र उत्पन्न होगा, यों ही हुआ,गर (विष) सहित पुत्र उत्पन्न हुआ इससे उसका नाम सगर हुआ। ये पुनः राजा हुए; इनके पुत्र असमंजस असमंजसके अंशुमान्, इनके दिलीप, इनके भगीरथ भगीरथके ककुत्स्थ, इनके रघु, रघुके प्रवृद्ध इन्हें वसिष्ठजीने शाप दिया और ये भी शाप देनेको हुए फिर गुरुजान नहीं दिया; वह जल पैरोंपर डाल दिया, पैर काले हो गये इससे कल्माषपाद नाम हुआ बारह वर्ष राक्षस रहे, इनके शंखण पुत्र हुये इनके सुदर्शन सुदर्शनके अग्निवर्ण इनके शीघ्रग, इनके मरु, मरुके प्रशु श्रुक, इनके अम्बरीष अम्बरीषके नहुष, नहुषके ययाति ययातिके नाभाग, नाभागके अज, अजके ये महाराजाधिराज दशरथ हुए दशरथजीसे रामचन्द्र, लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न चार पुत्र हुए ॥ ४७ ॥

दोहा-ब्रह्मासे लै रामलगि, सब इक्ष्वाकु नरेश।
शुद्ध वंश धार्मिक यशी, सत्य वचन शुभ वेष ॥
रामचन्द्रहित तव सुता, माँगत देहु महीप।
तेहिके समवर है यही खोजि लखो सब दीप ॥

वाल्मीकीयसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७० ॥

राजा जनकजीके पुरोहित शतानंदजी बोले-त्रिलोकीमें श्रेष्ठ राजा निमि हुए उनके पुत्र मिथि, मिथिके जनक उन्हींके समयसे सब वंशके जनक कहाए। जनकके उदावसु, इनके नन्दवर्द्धन, इनके सुकेतु, इनके देवरात, देवरातके बृहद्रथ, इनके महावीर, इनके सुधृतिमान्, सुधृतिमानके धृष्टिकेतु इनके हर्य्यश्व, इनके मरु, मरुके प्रतींधक, इनके कीर्तिरथ, इनके देवमीढ़, इनके विबुध, विबुधके महीध्रक, इनके कीर्तिरात इनके महारोमा, इनके स्वर्णरोमा, इनके ह्रस्वरोमा, इनके दो पुत्र हुए एक तो सीरध्वज दूसरे कुशध्वज। ये मिथिलापतिके भाई सांकाश्य नगरीके राजा हैं, सीरध्वज अपनी कन्या आपको देते हैं (वाल्मीकीय, सर्ग ७० क्षेपक)।

छन्द-हिमवंत जिमि गिरिजा महेशहिं हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समर्पी विश्वकलि कीरति नई॥
क्यों करै विनय विदेह कियो विदेह मूरति साँवरी।
करि होम विधिवत गांठ जोरी होन लागी भाँवरी॥४८॥

जिस प्रकार हिमालयने पार्वती शिवजीको दी और समुद्रने लक्ष्मी भगवान्को दी इसी प्रकार जनकजीने रामचन्द्रजीको सीता सौंप दी, जिनकी कीर्ति संसारमें फैल गयी; जनकजी से विनती नहीं की जाती, सांवरी मूर्तिने विदेह अर्थात् देहकी सुध भुला दी; पुनः विधान पूर्वक होम कर गांठ जोड़ी और भाँवरी (फेरे) फिरने लगी॥ ४८॥

महासंकल्पः

ॐ विष्णुः २ ॐ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ॐ तत्सत् श्रीहंसस्य सच्चिदानंद रूपिणोब्रह्मणोऽनिर्वाच्यमायाशक्तिविजृम्भिताविद्यायोगात्कालकर्म्मस्वभावाविर्भूतमहत्तत्त्वोदिताहंकारतृतीयोद्भूतवियदादिपंचकेंद्रियदेवताविनिर्मितांडकटाहेचतुर्दश लोकात्मकेलोकेलीलया तन्मध्यवर्तिभगवतः श्रीनारायणस्य नाभिकमलोद्भूतेन सकललोक पितामहेनब्राह्मणासृष्टिंकुर्वता तदुद्धरणाय प्रजापतिप्रार्थितेन महापुरुषरूपिणा सितवाराहावतारेणध्रियमाणायमस्यांभूर्लोकसहितायां धरित्र्यांसप्तद्वीपमंडितायांक्षीराद्यब्धिद्विगुणद्वीपवलयीकृतलक्षयोजनविस्तीर्णे जम्बूद्वीपेभरतखण्डेस्वर्गस्थित्याद्यंशावतारे गङ्गादिसरिद्भिः पाविते निखिलजन पावने शौनकादिमुनिकृतनिवसतिनैमिषारण्य आर्यावर्ते पुण्यक्षेत्रे मिथिलादेशे श्रीभगवन्मार्तण्डकृपापात्रकालत्रितयज्ञगर्गवराहाचार्य्यादिगणितायांपरार्द्धर्यादिसंख्यायां श्रीब्रह्मणेद्वितीयपरार्द्धस्यद्वितीययामेतृतीय मुहूर्ते श्रीश्वेतवाराहनाम्निप्रथमकल्पेस्वायम्भुवस्वारोचिषोत्तमतामसरैवतचाक्षुषेति षण्मनूनतिक्रम्य सम्प्रति सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे चतुर्णांयुगानांमध्येत्रेतायुगेषष्टचब्दानां मध्येसौम्यसंवत्सरे मार्गशीर्षमासे शुक्लपक्षेपंचम्यांतिथौरेवतीनक्षत्रेअत्रिगोत्रोत्पन्नःवृश्चिकराशिः जनक वर्मा समहिषीकोऽहंकाश्यपगोत्रस्य काश्यपावत्सरनैध्रुवेति त्रिप्रवरस्य माध्यन्दिनीयशाखिनोयजुर्वेदाध्ययिनः श्रीमद्राजराजेश्वरस्य नाभागवर्म्मणः प्रपौत्राय राज्ञोऽजवर्मणः पौत्रायराज्ञोदशरथ वर्म्मणः पुत्राय आयुष्मतेविष्णुस्वरूपिणेकन्यार्थिने श्रीरामचन्द्रनाम्नेवरायआत्रेयगोत्रस्यआत्रेयशातातपसांख्येतित्रिप्रवरस्यामाध्यन्दिनीयशाखिनोयजुर्वेदाध्यायिनःश्रीमन्महारोमवर्म्मणः पौत्रीं सीरध्वजजनकवर्म्मणःपुत्रीमायुष्मतीं श्रीरूपिणीवरार्थिनींसीतानाम्नीं कन्यां यथाशक्त्यलंकृतां

बहुयौतुकान्वितां समस्तफलप्राप्तिकामः पितॄन्पवित्रीकर्तुमात्मनश्श्रीलक्ष्मीनारायण प्रीतये देवाग्निगुरुब्राह्मणसन्निधौ अग्निसाक्षिकतया सहधर्माचरणाय तुभ्यमहं संप्रददे प्रतिगृह्णातु भवान्॥

श्लोक–"सीतां कन्यामिमां राजन्यथाशक्त्युपसंस्कृताम् ।
तुभ्यं काश्यपगोत्राय दत्तां राम समाश्रय" ॥ १ ॥

दोहा–जयध्वनि बन्दी वेदध्वनि, मंगल गान निशान ।
सुनि हर्षहिं वर्षहिं विबुध सुरतरु सुमन सुजान ॥ ३६६ ॥

बन्दीजन जयध्वनि कर रहे हैं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं नारियाँ गा रही हैं,बाजे बज रहे हैं यह शब्द सुनकर सब कोई प्रसन्न होते हैं और चतुर देवता कल्पवृक्षके फूल बरसाते हैं॥३६६॥

कुँवरि कुँवर कल भाँवरि देहीं ❋ नयन लाभ सब सादर लेहीं ॥१॥
जाय न वरणि मनोहर जोरी ❋ जो उपमा कछु कहिय सो थोरी ॥२॥

रामजी और जानकीजीकी सुन्दर भांवर होती हैं और सब नेत्रोंका लाभ सादर प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ मनोहर जोड़ी वर्णी नहीं जाती जो कुछ कही जाय वह थोड़ी है ॥ २ ॥

राम सीय सुन्दर परिछाहीं ❋ जगमगाहिं मणिखंभन माहीं ॥३॥
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा ❋ देखहिं राम विवाह अनूपा ॥४॥

राम–सीताकी सुन्दर परछाहीं मणियोंके खम्भोंमें जगमगाती हैं ॥३॥ मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण कर श्रीरामजीका अनुपम विवाह देखते हैं ॥ ४ ॥

दरश लालसा सकुच न थोरी ❋ प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥५॥
भये मगन सब देखन हारे ❋ जनक समान अपान बिसारे ॥६॥

मणियोंके खम्भोंमें जो श्रीराम और सीताजीकी परछाहीं पड़ती है और फिर वह ओट हो जाती है वह मानों काम और रति देखनेकी इच्छासे बार बार प्रगट होते और संकोचकी अधिकतासे लज्जित होकर छिप जाते हैं ॥ ५ ॥ सब देखने वाले मग्न हुए और जनकजीके समान अपने देहकी सुधि भूल गये ॥ ६॥

प्रमुदित मुनिन भाँवरी फेरी ❋ नेम सहित सब रीति निबेरी ॥७॥
राम सीय शिर सिंदुर देहीं ❋ शोभा कहि न जात विधि केहीं ॥८॥

प्रसन्न हो मुनियोंने भांवरी फेरी और नेग सहित सब रीति पूर्णकी ॥ ७ ॥ रामजी सीताके शिरमें सिंदूर लगाते हैं वह शोभा किसी भी प्रकार नहीं कही जाती ॥ ८ ॥

अरुण पराग जलज भरि नीके ❋ शशिहि भूख अहिलोभ अमीके ॥९॥
बहुरि वसिष्ठ दीन्ह अनुशासन ❋ वर दुलहिन बैठे इक आसन ॥१०॥

जैसे लाल रज कमलमें अच्छी प्रकार भरा हुआ है वह अमृतके लोभसे सर्प चंद्रमाको भूषित करता है, भुजदण्ड सर्प, करकोश–कमल, सिंदूर लाल रज, जानकीजीका मुख–चन्द्र, छबि अमृत,कमल जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर सकुचाता है उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सिंदूर लगाने में सकुचाते हैं ॥९॥ फिर वसिष्ठने आज्ञा दी तब वर और दुलहिन एक आसन पर बैठे॥१०॥

छन्द–बैठे वरासन राम जानकि मुदित मन दशरथ भये ।
तनु पुलकि पुनि पुनि देखि अपने सुकृतसुरतरु फलनये ॥
भरि भुवन रहा उछाह राम-विवाह भा सबही कहा ।
केहि भांति वरणि सिरात रसना एक यह मंगल महा ॥ ४९ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी एक आसन पर बैठे तब दशरथजी अपने पुण्य रूपी कल्पवृक्षमें सुन्दर फल देखकर प्रसन्न हुए शरीर बार-बार पुलकायमान हो रहा है; संसार भरमें यह आनन्द भर गया और सबने "श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हुआ" ऐसा कहा, किस प्रकारसे यह आनन्द वर्णन किया जाय ? क्योंकि जीभ एक और मंगल बहुत हैं ॥ ४९ ॥

छन्द–तब जनक पाय वसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारिकै ।
माण्डवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँवरि लई हँकारिकै ॥
कुशकेतु कन्या प्रथम जो गुणशील सुख शोभामयी ।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दयी ॥ ५० ॥

तब जनकजीने वसिष्ठजीकी आज्ञा पाकर और सब ब्याहका साज सजाकर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला, नामकी कन्याओंको बुलाया। पहली जो मांडवी कुशध्वजकी कन्या थी वह गुण, शील; सुख और शोभाकी खानि थी; उसको संपूर्ण रीति और प्रीति सहित राजाने भरतजीको ब्याह दिया (यह कुशध्वज दूसरे देश सांकाश्य नगरीके राजा और जनकजीके भ्राता थे) ॥ ५० ॥

छन्द–जानकी लघु भगिनि जो सुन्दरि शिरोमणि जानिकै ।
जनक दीन्ही ब्याहि लषणहि सकल विधि सन्मानिकै ॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुण आगरी ।
सोदई रिपुसूदनहि भूपति रूप शील उजागरी ॥ ५१ ॥

जानकीजीकी छोटी बहिनको सुन्दरियोंमें शिरोमणि जानकर (यह सुनयनाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी उर्मिला नाम था) इसका लक्ष्मणके सङ्ग सब प्रकारसे सम्मान कर विवाह कर दिया और जिसका नाम श्रुतिकीर्ति जो कि अच्छे नेत्रोंवाली; सुन्दरी, सब गुणोंसे चतुर रूप और शीलमें प्रसिद्ध थी वह शत्रुघ्नके संग विवाह दी (यह भी कुशध्वजकी कन्या थी) ॥ ५१ ॥

छन्द–अनुरूप वर दुलहिन परस्पर लखि सकुचि हिय हर्षहीं ।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहीं ॥
सुन्दर वरण सह सुन्दरी सब एक मण्डप राजहीं ।
जनु जीव अरु चारिहु अवस्था विभुन सहित विराजहीं ॥ ५२ ॥

अपने समान वरको देखकर दुलहिन परस्पर सकुचाकर मनमें प्रसन्न होती हैं और सबकोई प्रसन्न हो सुंदरता सराहते हैं देवता फूल बरसाते हैं। सब सुन्दरी अपने सुन्दर वरों समेत एक मंडपमें शोभित होती हैं; मानो जीवके अंतरात्मामें चारों अवस्था-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, अपने-अपने पति-विश्व, तैजस, विराट, अन्तर्यामी समेत विराजते हैं। जीव दशरथ हैं इस कारण कि उनका सम्बन्ध पुत्र और बन्धुओंसे पड़ा है; अंतरात्मा मंडप है यह जाग्रत अवस्था सम्पूर्ण जगत् है चौबीस तत्त्वका स्थूल शरीर भोग है, देवता इसका विश्व है यह जाग्रत उर्मिला है विश्व लक्ष्मण इसके देवता हैं सत्रह तत्त्वके लिंग शरीरके भोगको स्वप्नावस्था कहते हैं, तैजस देवता है दिव्य स्वप्न श्रुतिकीर्ति है, तैजस शत्रुघ्न हैं जाग्रत्के २४, स्वप्नावस्थाके १७ तत्त्व जब सुखमें लय

हो जाते हैं इस कारण शरीरके आनंद भोगको सुषुप्ति कहते हैं। माण्डवी सुषुप्ति हैं भरत उनके प्राज्ञ देवता हैं। तीनों अवस्था रहित आनंद विग्रह अन्तर्यामी रामजी हैं और जानकी जी ब्रह्मानन्दरूपिणी तुरीयावस्था हैं, आशय यह कि-राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इनकी स्त्री जानकी मांडवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, अवस्थाओंके विभु क्रमसे तुरीय, सुषुप्ति, जाग्रत, स्वप्न उनके विभु अन्तर्यामी, प्राज्ञ, विश्व, तैजस उनके गुण गुणातीत; तमोगुण, रजोगुण, सत्त्वगुण, क्रिया; उनकी भक्ति, तपस्या, सेवा श्रद्धा; फल इनके, मोक्ष काम धर्म अर्थ हैं ॥ ९२ ॥

दोहा-मुदित अवधिपति सकल सुत, वधुन समेत निहारि ॥
जनु पाये महिपालमणि, क्रियन सहित फल चारि ॥ ३६७ ॥

राजा दशरथजी सब पुत्रोंको बहुओं सहित देख ऐसे प्रसन्न हुए मानो चारों ओर फल-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष क्रियाओं (सेवा, श्रद्धा, तपस्या, भक्ति) सहित पाये ॥ ३६७ ॥

जस रघुवीर ब्याह विधि वरणी * सकल कुँवर ब्याहे तेहि करणी ॥१॥
कहि न जाय कछु दायज भूरी * रहा कनक मणि मंडप पूरी ॥२॥

जैसी रामचन्द्रजीके विवाह की विधि वर्णन की है, सब पुत्रोंका विवाह उसी प्रकार हुआ ॥ १ ॥ दहेजकी बहुतायत नहीं कही जाती, सुवर्ण और मणियोंसे मण्डप भर गया ॥ २ ॥

कंबल बसन विचित्र पटोरे * भाँति भाँति बहुमोल न थोरे ॥३॥
गज रथ तुरँग दास अरु दासी * धेनु अलंकृत कामदुहासी ॥४॥

कंबल (ऊनी कपड़े), अच्छे रेशमी वस्त्र, भाँति-भाँतिके मोलके वे भी थोड़े नहीं बहुतसे ॥३॥ हाथी, घोड़े, रथ दास-दासी, गाय शृङ्गार की हुई कामधेनुसी दूध देनेवाली दीं ॥ ४ ॥

वस्तु अनेक करिय किमि लेखा * कहि न जाय जानहिं जिन देखा॥५॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने * लीन्ह अवधपति सब सुख माने॥६॥

अनेक वस्तु जिसका लेखा नहीं किया जाता (कहा नहीं जाता) जिन्होंने देखा वे ही जानते हैं ॥५॥ जिनको देखकर लोकपाल सिहाने लगे राजा दशरथने सुखमानकर सब लिया ॥ ६ ॥

दीन्ह याचकन जो जेहि भावा * उबरा सो जनवासे आवा ॥७॥
तब कर जोरि जनक मृदुबानी * बोले सब बरात सन्मानी ॥८॥

उनमेंसे जो याचकने मांगा वह उसे दे दिया और जो बचा वह जनवासेमें आया ॥७॥ तब जनकजी हाथ जोड़कर कोमलवाणीसे सब बरातका सम्मान कर बोले ॥ ८ ॥

छन्द-सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइके।
प्रमुदित महा मुनि वृन्द वन्दे पूजि प्रेम लड़ाइके ॥
शिर नाय देव मनाय सबसन कहत कर संपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये ॥ ९३ ॥

जनकजीने सब बरात का दान, विनती व बड़ाईसे आदर करके प्रसन्न हो महामुनियोंके समूहोंको दंडवत् प्रणाम कर प्रेमसे पूजन किया शिर नवाके देवताओंको मनाके हाथ जोड़ सबसे बोले कि देवता और साधु केवल भाव (प्रीति) चाहते हैं समुद्र जलकी एक अंजलि देनेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता, इस कारण मैं आपको कुछ देकर सन्तुष्ट नहीं कर सकता मैं किस योग्य हूँ ? केवल आप प्रेम जान कृपा करेंगे ॥ ९३ ॥

छन्द-कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कोशलरायसों ।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह शील सुभायसों ॥
सम्बन्ध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये ।
यह राज साज समाज सेवक जानबी बिनु गथ लये ॥ ५४ ॥

फिर जनकजी अपने भाई समेत हाथ जोड़कर दशरथजीसे शील स्वभावसे स्नेह भरे मनोहर वचन बोले-महाराज ! अब आपके सम्बन्धसे हम सब प्रकारसे बड़े हुए, वह स्नेह भरे राज, साज, समाज विना मोल अपना सेवक जानिये ॥ ९४ ॥

छन्द-यह दारिका परिचारिका करि पालवी करुणामई ।
अपराध क्षमियो बोलि पठयो बहुत हम ढीठी कई ॥
पुनि भानकुलभूषण सकल सन्मान विधि समधी हिये ।
कहि जाति नहिं विनती परस्पर प्रेम परिपूरण हिये ॥ ५५ ॥

हे दयामय ! इन कन्याओंको अपनी परिचारिका जानकर पालन करना और आपको जो बुलाने भेजा यह बड़ी ढीठताकी, यह अपराध क्षमा करना। फिर दशरथजीने जनकका मनोहर वाक्योंसे सम्मान किया, परस्परकी विनती कही नहीं जाती, हृदय प्रेमसे पूर्ण हो रहा है ॥९५॥

छन्द-वृन्दारका गण सुमन वर्षहिं राउ जनवासहिं चले ।
दुन्दुभि जयध्वनि वेद ध्वनि नभ नगर कौतूहल भले ॥
तब सखिन मंगल गान करति मुनीश आयसु पायके ।
दूलहदुलहिनिन सहित सुन्दरि चलीं कोहबर ल्यायके ॥ ५६ ॥

वृन्दारका देवतागण फूल बरसाने लगे, राजा जनवासे चले, नगाड़ेके शब्द, जयके शब्द और वेदध्वनिसे आकाश और नगरमें कौतूहल दृष्टि आता था, बाजोंका शब्द आकाशसे होना कौतुक था। तब सखियां मंगल गीत गाती हुई मुनीश (वशिष्ठजी) की आज्ञा पाकर सीता और रामचन्द्रजी और दूलह-दुलहिनको कोहबरमें ले चलीं ॥ ९६ ॥

दोहा-पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचत मन सकुचैन ॥
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पियासे नैन ॥ ३६८ ॥

बार-बार रामचन्द्रजीको जानकीजी देखती हैं और सकुचाती हैं; परंतु मन नहीं सकुचाता प्रेमके प्यासे नेत्र बारंबार देखनेके कारण मनोहर मीनकी छबि हरते हैं ॥ ३६८ ॥

श्याम शरीर स्वभाव सुहावन ❋ शोभा कोटि मनोज लजावन ॥१॥
जावकयुत पद कमल सुहाये ❋ मुनिमन मधुप रहत जहँ छाये ॥२॥

प्रभुका श्याम शरीर स्वभावसे शोभायमान है, शोभा करोड़ों कामदेवको लज्जित करती है॥ १॥ महावरसे युक्त चरणकमल शोभायमान हो रहे हैं जिसमें भौंरेकी नाई मुनियोंका मन रहता है॥२॥

पीत पुनीत मनोहर धोती ❋ हरत बालरवि दामिनि ज्योती ॥३॥
कल किंकिणि कटि सूत्र मनोहर ❋ बाहु विशाल विभूषण सुन्दर ॥४॥

पीली पवित्र मनोहर धोती है जो कि बिजली और प्रातःकालके सूर्यकी ज्योतिको हरती है ॥ ३ ॥ सुन्दर तगड़ी-करधनी धारण किये हुए बड़ी भुजाओंमें सुन्दर गहने पहने हैं ॥ ४ ॥

पीत जनेउ महा छबि देई * कर मुद्रिका चोरि चित लेई ॥५॥
सोहत ब्याह साज सब साजे * उर आयत सब भूषण राजे ॥६॥

पीला जनेऊ बड़ी छबि दे रहा है, हाथकी अँगूठी चित्त चुराती है ॥ ५ ॥ ब्याहका सब साज सजाये शोभित होते हैं; हृदय चौड़ा और सब गहने विराज रहे हैं ॥ ६ ॥

पीत उपरना कांखा सोती * दुहुँ आचरन लगे मणि मोती ॥७॥
नयन कमल कल कुंडल काना * वदन सकल सौंदर्य निधाना ॥८॥

जिसके दोनों ओरके छोरोंमें मणि मोती टँक रहे हैं, ऐसा पीला दुपट्टा कांखासोती अर्थात् जनेऊके आकार का पड़ा हुआ है ॥७॥ कमलसे नेत्र, कानोंमें सुन्दर कुण्डल और मुख सब सुन्दरताका निधान है ॥ ८ ॥

सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा * भाल तिलक रुचिरता निवासा ॥९॥
सोहत मौर मनोहर माथे * मंगलमय मुक्ता मणि गाथे ॥१०॥

सुन्दर भौंहें मनोहर नासिका और माथेपर ऐसा तिलक है, जिसे शोभाने अपना निवास स्थान बना लिया है॥९॥मनोहर मौर माथेपर शोभित है जिसमें मंगलदायक मुक्तामणि जड़े हैं॥१०॥

छन्द-माथे महामणि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुन्दरि वर विलोकहिं निरखि छबि तृण तोरहीं ॥
मणि वसन भूषण वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन वर्षहिं सूत मागध बंदि सुयश सुनावहीं ॥ ९७ ॥

मौरमें महामणि जड़े हैं रामचन्द्रजीके अंग सब ऐसे मनोहर हैंजो चित्तको चुराते हैं,नगरकी सब सुन्दरी स्त्रियाँ वरोंको देख (चकित) तृण तोड़ती हैं (यदि स्त्रियां कोई आश्चर्यकी बात देखती हैं तो तृण तोड़ने लगती हैं) मणि-वस्त्र-भूषण न्योछावर करके आरती करती हैं और मंगल गाती हैं, देवता फूल बरसाते हैं, तथा सूत; मागध और बंदीजन यश सुनाते हैं॥९७॥

छन्द-कोहबरहिं आने कुँवर-कुँवरि सुवासिनिन्ह सुख पायकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गायकै ॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीयसन शारद कहैं।
रनिवास हासविलास रसवश जन्मको फल सब लहैं ॥९८॥

सौभागिनियोंने रामजी औरजानकीजीको सुख पाके कोहबरमें लाकर बिठाया और बड़े प्रेमसे लौकिक रीति मंगल गाकर करने लगीं,रामचन्द्रको पार्वती लहकौर सिखाने लगीं और जानकीजीको सरस्वती सिखाने लगीं। सिखाना यह कि रामचन्द्रजीसे कहती हैं यह मिश्री आदि तुम जानकीजीके मुखमें दो और जानकीसे कहती हैं कि तुम यह वस्तु रामजीके मुखमें दो इस प्रकार हास विलास सम्बन्धी रसके वश हो रनिवासकी रानियोंने जन्मका सब फल पाया ॥ ९८ ॥

छन्द-निजपाणिमणिमहँ देखि प्रतिमूरति स्वरूप निधानकी।
चालति न भुजवल्ली विलोकनि बिरहवश भइ जानकी ॥
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाय कहि जानहिं अलीं।
वर कुँवरि सुन्दर सकलसखिन लिवाय जनवासहि चलीं ॥ ९९ ॥

हाथके भूषणोंकी मणियोंमें जो रूप निधान रामचन्द्रजीकी मूर्तिकी आभा पड़ती है उसको देखकर जानकी अपनी भुजलताके अवलोकनको नहीं हटाती कि, उस स्वरूपकी छाया दृष्टिसे पृथक् हो जायगी इस प्रकार विरहके वशमें पड़ी हैं, कौतुक और विनोदके (जो कार्य आली दूलह दुलहिननसे कराती हैं उसके) आनंद और प्रेमको वही जानती हैं कहा नहीं जाता ! पुनः सुन्दर वर और दुलहिनोंको लेकर सखियाँ जनवासेको चलीं ॥ ५९ ॥

छन्द–तेहि समय सुनिय अशीश जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा ।
चिर जियहु जोरी चारु चारिउ मुदित मन सबही कहा ॥
योगीन्द्र सिद्ध मुनीश देवविलोकि प्रभु दुन्दुभि हनी ।
चले हर्षि वर्षि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥६०॥

उस समय जहाँ-तहाँ आशीष सुनाई देने लगी; नगर और आकाशमें महा आनंद छा गया और "चारों जोड़ी बहुत काल तक जिये" ऐसा प्रसन्न मन हो सबने कहा, बड़े योगी सिद्ध, मुनीश और देवताओंने प्रभुको देख नगाड़े बजाये और प्रसन्न हो फूल बरसाए, जय-जयकार करते अपने-अपने लोकको गए ॥ ६० ॥

दोहा–सहित वधूटिन कुँवर सब, तब आये पितु पास ॥
शोभा मंगल मोद भरि, उमँगे जनु जनवास ॥ ३६९ ॥

जब वधूटियों सहित सब कुमार अपने पिता दशरथजीके पास जनवासेमें आए तब वह शोभा मंगल और आनंदसे भरपुर हो मानो उँमग उठा ॥ ३६९ ॥

पुनि जेंवनार भयउ बहु भाँती ❀ पठये जनक बुलाय बराती ॥१॥
परत पाँवड़े वसन अनूपा ❀ सुतन समेत गमन किय भूपा ॥२॥

फिर अनेक प्रकारसे जेवनार हुई और जनकजीने बरातियोंको बुला भेजा ॥ १ ॥ अनोखे वस्त्रोंके पांवड़े बिछाए गए और पुत्रों सहित राजा दशरथ उन पर चरण धरते चले ॥ २ ॥

सादर सबके पांय पखारे ❀ यथायोग्य पीढ़न बैठारे ॥३॥
धोये जनक अवधपति–चरणा ❀ शील सनेह जाय नहिं वरणा ॥४॥

आदरसे सबके पांव धोये और यथायोग्य आसनों पर बैठाया ॥ ३ ॥ जनकजीने दशरथजीके चरण धोये वह शील स्नेह वर्णा नहीं जाता ॥ ४ ॥

बहुरि रामपद–पंकज धोये ❀ जे हर हृदय कमल महँ गोये ॥५॥
तीनिहुँ भाइ राम सम जानी ❀ धोये चरण जनक निज पानी ॥६॥

फिर रामजीके चरणकमल धोये, जिनको शिवजीने हृदयमें छिपाया है ॥ ५ ॥ तीनों भाइयोंको रामजीके समान जान कर जनकजीने अपने हाथसे उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

आसन उचित सबहिं नृप दीन्हे ❀ बोलि सूपकारी सब लीन्हे ॥७॥

---

१. सवैया–दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दरि मंदिरमाहीं । गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाहीं । रामको रूप निहारति जानकी कंकणके नगकी परिछाहीं । याते सबै सुधि भूल गयीं कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।

सादर लगे परन पनवारे ❋ कनककील मणि पात सँवारे ॥८॥

सबको उचित आसनपर बैठाया; राजाने उत्तम रसोई बनानेवालोंको बुलाया ॥७॥ आदरसे वे पत्तलें बरातियोंके सम्मुख धरीं; जिनमें मणियोंके पत्ते सोनेकी कीलोंसे जड़े थे ॥ ८ ॥

दोहा–सूपोदन सुरभी–सरपि, सुन्दर स्वादु पुनीत ॥
क्षणमहँ सबको परसि गये, चतुर सुआर विनीत ॥ ३७० ॥

सूपोदन–दालि भात, सुरभीसरपि–गायका सुन्दर घी जिसमें पड़ा हुआ ऐसा अन्न चतुर परोसने वाले नम्रतासे तनक देरमें सबके आगे परोस गये ॥ ३७० ॥

पंचकवलि करि जेवन लागे ❋ गारिगान सुन अति अनुरागे ॥१॥
भाँति अनेक परे पकवाने ❋ सुधासरिस नहिं जाहिं बखाने ॥२॥

पंचकवलि–नित्य नियम करके (जो पांच ग्रास 'प्राणाय स्वहा' इत्यादि मंत्र कहकर प्राशन करते हैं) जीमने लगे, उस समय गालियोंका गान सुन सब कोई बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि समयकी सब अच्छी बात होती है। "दोहा–'फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि। सबके मन हर्षित करै, ज्यों विवाहमें गारि" ॥ परन्तु इस समयकी जैसी गाली होती हैं वे ऐसी नहीं थीं; आजकलकी गाली बहुत अनुचित हैं ॥१॥ जिनके स्वाद अमृतके समान थे ऐसे अनेक प्रकारके पकवान इतने थे जो वर्णे नहीं जाते ॥ २ ॥

परसन लगे सुआर सुजाना ❋ व्यंजन विविध नामको जाना ॥३॥
चार भाँति भोजन विधि गाई ❋ एक एक विधि वरणि न जाई ॥४॥

चतुर भोजन बनाने वाले अनेक प्रकारके व्यंजन परोसने लगे, उनके नाम कौन जाने ॥ ३ ॥ चार प्रकारके भोजन होते हैं–भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य। चबानेमें जो आवे (बूँदी आदि) वह भक्ष्य, जो खाया जाय (पूरी मिठाई दाल-भात) वह भोज्य, जो चाटा जाय (रबड़ी आदि मोहन भोग) वह लेह्य, जो चूसा जाय वह चोष्य पदार्थ कहलाता है और इन एक-एक व्यंजनोंके भी अनेकानेक प्रकार थे; जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

छरस रुचिर व्यंजन बहु जाती ❋ एक एक रस अगणित भाँती ॥५॥
जेंवत देहिं मधुर ध्वनि गारी ❋ लै लै नाम पुरुष अरुनारी ॥६॥

छः रस-अम्ल, मधुर, तिक्त, कषाय, कटु, लवण, इन छः रसोंके अनेक प्रकारके व्यंजन बने थे और एक एक रस अनेक प्रकारके बने थे ॥५॥ भोजन करते समय पुरुष नारियोंके नाम लेकर स्त्रियाँ गाली गाने लगीं ॥ ६ ॥

समय सुहावनि गारि विराजा ❋ हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥७॥
इहि विधि सबही भोजन कीन्हा ❋ आदर सहित आचमन लीन्हा ॥८॥

समयानुसार गाली अच्छी लगती हैं, राजा समाजसहित सुनकर हँसते हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे सबने भोजन किया और आदरपूर्वक आचमन लिया ॥ ८ ॥

दोहा–देइ पान पूजे जनक, दशरथ सहित समाज ॥
जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिरताज ॥ ३७१ ॥

पान देकर जनकजीने समाज सहित दशरथजीका पूजन किया, तदनन्तर महाराज दशरथजी प्रसन्न हो गये ॥ ३७१ ॥

अथ राम कलेवा क्षेपक

भोर भये अपने कुमारको जनक वेगि बुलवाये ॥
सुनिकै पितु सँदेह लक्ष्मीनिधि सखन सहित तहँ आये ॥ १ ॥

प्रातःकाल होते ही जनकजीने अपने कुमारको बुलाया और कुमार लक्ष्मीनिधि पिताका सन्देशा सुन सखाओं सहित शीघ्र वहां आये ॥ १ ॥

सादर किये प्रणाम चरण छुइ लखि बोलेऊ मिथिलेशू ॥
गवनहु तात तुरत जनवासे जहँ श्री अवध नरेशू ॥ २ ॥

आकर आदरसे चरणोंमें प्रणाम किया, देखकर जनकजी बोले—हे पुत्र जनवासेमें दशरथजीके निकट शीघ्र जाओ ॥ २ ॥

विनय सुनाय राय दशरथसों पाय रजाय सचेतू ॥
आनहु चारिउ राजकुमारन करन कलेऊ हेतू ॥ ३ ॥

राजा दशरथजीको विनती सुनाय उनकी आज्ञा पाय चारों राजकुमारोंको कलेऊ करनेको बुला लाओ ॥ ३ ॥

यह सुनि शीश नाय लक्ष्मीनिधि भरि उर मोद उमंगा ॥
सखन समेत मन्द हँसि गवने चढ़ि चढ़ि चपल तुरंगा ॥४॥

यह सुनते ही लक्ष्मीनिधि हृदयमें आनंदकी उमंगें भर राजाको शिर नवाय सखाओं सहित मंद-मंद मुसकाते हुए चंचल घोड़ोंपर चढ़-चढ़ चले ॥ ४ ॥

कलन देखावत हय थिरकावत करत अनेक तमासे ॥
मृदु मुसुकात बतात परस्पर पहुँचि गये जनवासे ॥ ५ ॥

अनेक प्रकारकी कला दिखाते, घोड़े नचाते; तमासे दिखाते, मंद-मंद मुसकाते परस्पर बातें करते जनवासे पहुँच गए ॥ ५ ॥

सखन सहित तहँ उतरि तुरंगते मिथिलापतिके बारे ॥
चारिहु सुतयुत अवधराजको सादर जाय जुहारे ॥ ६ ॥

मिथिलापति कुमारने सखाओं सहित वहां घोड़ेसे उतर चारों पुत्रों सहित राजा दशरथजीको आदरके साथ प्रणाम किया ॥ ६ ॥

अतिसुखनिधि लक्ष्मीनिधिको लखि सखन सहित सतकारे ॥
रघुकुल-दीप महीप हाथ गहि निज समीप बैठारे॥ ७ ॥

अत्यन्त सुखकी खान लक्ष्मीनिधिका राजा दशरथने सखाओं सहित सत्कार किया और रघुकुलदीप महाराज दशरथजीने हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया ॥ ७ ॥

तेहि छिन सानुज निरखि रामछबि सखन सहित सुख माने ॥
लक्ष्मीनिधि मुख दरश पायके रामहु नयन जुड़ाने ॥ ८ ॥

उस समय लक्ष्मीनिधि छोटे भाइयों सहित रामजीकी छबि देख सखाओं सहित प्रसन्न हुए और लक्ष्मीनिधिके दर्शन करके रामजीके भी नयन शीतल हुए ॥ ८ ॥

तब श्रीनिधि कर जोरि भूपसों कोमल बैन उचारे ॥
करन कलेऊ हेतु पठावो चारिहु राजदुलारे ॥ ९ ॥

तब लक्ष्मीनिधिने हाथ जोड़कर राजासे कोमल वचन कहे कि, चारों राजकुमारोंको कलेऊ करनेके लिए भेजिए ॥ ९ ॥

सुनि मृदु वचन प्रेम रस साने दशरथ मृदु मुसकाने ॥
चारिहु कुवँर बुलाय वेग ही विदा किये सुख माने ॥१०॥

दशरथजीने प्रेमके रसमें सने हुए कोमल वचन सुनकर मन्द-मन्द मुसकाय चारों राजकुमारोंको शीघ्र बुलाकर सुखमान भेज दिया ॥ १० ॥

जनकनगरकी जानि तैयारी सेवक सब सुख पागे ॥
निज निज प्रभुहि सँवारन लागे लै भूषण बर बागे ॥ ११ ॥

जनकनगरीकी तैयारी जानकर सब सेवक प्रसन्न हुए और सुन्दर गहने बागे (वस्त्र) लेकर अपने-अपने स्वामियोंको सँवारने लगे ॥ ११ ॥

रघुनन्दन शिर पाग जरकसी लसी त्रिभंगी बांधी ॥
तिमि नौरंगी झुकी कलंगी रुचि पैजनि साधी ॥ १२ ॥

रामचन्द्रजीके शिरपर जरकसी पाग तीन लटवाली बांधी और उसमें नौरंगी कलँगी मोतियोंकी लड़ी युक्त झुकाकर सुन्दर बांधी ॥ १२ ॥

दोहा-वरणि सकै को रामको, अनुपम दूलह वेष ॥
जेहि लखि शिव सनकादिको, रहत न तनुहिं सरेख ॥ १ ॥

रामचन्द्रजीका उपमारहित जो दूलहवेष है उसे कौन वर्णन कर सके ? जिसे देखकर शिवसनकादिकोंको भी देहकी सँभार नहीं रह सकती है ॥ १ ॥

इमि सजि अनुज सहित रघुनन्दन चारों राजदुलारे ॥
बढ़े उमंगन चढ़े तुरंगन अंगन वसन सँवारे ॥ १३ ॥

इस प्रकारसे छोटे भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजी सजकर चारों राजकुमार उमंगमें बढ़े घोड़ोंपर चढ़े; अङ्गमें वस्त्र सजाए चले ॥ १३ ॥

जो रघुवंशी-कुँवर लाड़िले प्रभु कहँ प्राणपियारे ॥
चढ़े तुरंग संग तेउ गमने राम रंग मतवारे ॥ १४ ॥

जो रघुवंशके लड़के कुँवर रामजीको प्राणोंके प्यारे थे वे प्रेमसे मतवाले घोड़ोंपर चढ़ रामजीके सँग चले ॥ १४ ॥

रामवामदिशि श्रीलक्ष्मीनिधि सखन सहित तेउ सोहैं ॥
चञ्चल बाग किये तुरंगकी बाते करत हँसों हैं ॥ १५ ॥

रामजीकी बायीं ओर सखाओं सहित लक्ष्मीनिधि सोहते हैं; चंचल घोड़ोंकी बागें पकड़े हँसीकी वार्ता करते चले ॥ १५ ॥

जगवन्दन जेहि नाम जाहिरो रघुनन्दनको बाजी ॥
ताको गुण छबि कहलौं वरणौं जोहि होत मन राजी ॥१६॥

जगत्में विख्यात 'जगवंदन' नामक रामजीके घोड़ेकी छबि और गुण कहां तक कहें ? उसके देखते ही मन राजी हो जाता है ॥ १६ ॥

जित रुख पावै तित पहुँचावै क्षण आवै क्षण जावै ॥
जमि जमि थमि थमि थिरकि भूमिपर गतिन ततिन दरशावै ॥१७॥

वह घोड़ा जहां रामजीकी इच्छा पावे वहां ही पहुँचावे, क्षणमें आवे, क्षणमें जाय, थम-थम कर नाचकर पृथ्वी पर अनेक प्रकारकी गति दिखाता है ॥ १७ ॥

फांदत चञ्चल चारु चौकड़ी चपलहुके चख झांपै ॥
भरत कुँवरको तुरँग रँगीलो वरणि जाय कहु कापै ॥१८॥

कूदने-फांदने चंचल चौकड़ी भरनेमें चतुर चपलाकी भी आंखें झँपानेवाला भरतजीका रंगीला घोड़ा है उसकी शोभा कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ १८ ॥

चंपा नाम चाल चटकीली जेहिपर रिपुहन भाये ॥
सब समाजके आगे निरतै मोर कुरंग लजाये ॥ १९ ॥

'चम्पा' नामक चटकीली चालवाले घोड़ेपर शत्रुघ्नजी चढ़े और वह घोड़ा सब समाजके आगे नृत्य करता चला, जिसे देख मोर और मृग लजाते हैं ॥ १९ ॥

जो कहुँ नेकहु हाथ उठावत कई हाथ उठि जातो ॥
बार बार चुचुकारि दुलारत ताहूपै न जुड़ातो ॥ २० ॥

जो कहीं भी थोड़ा भी हाथ उठाते हैं तो कई हाथ ऊपर पृथ्वीसे उठ जाता है कि बार बार पुचकारने और प्यार करने से भी नहीं मानता है ॥ २० ॥

लक्खी घोड़ा लषणलालको बांको निपट चलाँको ॥
उड़ि उड़ि जात वायुमंडलको परत न पग महि ताको ॥२१॥

लक्ष्मणजीका बड़ा चालाक 'लक्खी' घोड़ा बाँकी झांकीका ऐसे है कि पृथ्वी पर पैर ही नहीं धरता है बार-बार वायुमण्डलको उड़ उड़ जाता है ॥ २१ ॥

तरफराय उड़ि जाय परत है लक्ष्मीनिधि हयपाहीं ॥
उचित विचार हँसे रघुवंशी रामहु मृदु मुसकाहीं ॥ २२ ॥

कभी तड़फड़ाकर उड़कर लक्ष्मीनिधिके घोड़ेके निकट जा पड़ता है। उचित विचार कर रघुवंशी हँसते हैं, कुछ रामजी भी मनमें मुसकाते हैं ॥ २२ ॥

तकि तुरंगकी चञ्चलताई लषण कि देखि चढ़ाई ॥
निमिवंशी रघुवंशी सिगरे ठगिसे रहे बिकाई ॥ २३ ॥

घोड़ेकी चंचलता और लक्ष्मणजीकी चढ़ाई देखकर सब निमिवंशी रघुवंशी ठगेसे बिक गये ॥ २३ ॥

राम आदि जे कुँवर लाड़िले तेउ लखि भरैं उछाहैं ॥
रीझि रीझि तहँ लषणलालको बारहिं बार सराहैं ॥ २४ ॥

रामजी आदि लाड़िले कुँवर भी देखकर उत्साह भरते हैं रीझकर लक्ष्मणजीकी बार-बार बड़ाई करते हैं ॥ २४ ॥

इमि मग होत विलास विविध विधि विपुलबाजने बाजैं ॥
सुनत नकीब पुकारि नगर तिय कढ़ि बैठीं दरवाजैं ॥२५॥

इस प्रकारसे मार्गमें अनेक प्रकारसे आनन्द होते जाते हैं और तरह तरहके बाजे बजते हैं, नकीबोंकी वाणी सुनकर नगरकी स्त्रियाँ निकल कर द्वारपर बैठीं ॥ २५ ॥

कोउ तिय निरखि वदनकी सुषमा अतिसुख महँ सो पागी ॥
भरी सनेह देह सुधि नाहीं रामरूप अनुरागी ॥ २६ ॥

कोई स्त्री मुखकी शोभा देख अत्यन्त आनंदमें भर गयीं, स्नेहसे देहकी सुधि नहीं रही, रामजीके रूपकी अनुरागिणी हो गयीं ॥ २६ ॥

कोउ तिय देखि अतूला दूल्हा अति सनेह तनु भूला ॥
फूला नैन मैन मन भूला लागि प्रीतिकी हूला ॥ २७ ॥

कोई स्त्री उपमारहित दूलहको देख अति प्रेम होनेके कारण शरीरकी सुध भूल गयी, नेत्र खिल गये; मनमें काम जागा, प्रीतिकी साटी हृदयमें आ लगी ॥ २७ ॥

कोउ घूँघट पट खोलि सुन्दरी मणि मुँदरी लै पानी ॥
देखत दूलह रूप रामको आनँद सिंधु-समानी ॥ २८ ॥

कोई स्त्री घूँघटपट खोलकर मणिजटित मुंदरी हाथमें ले उसमें रामजीका दूलहरूप देखकर आनन्दके समुद्रमें समा गयी (पतिव्रता होनेके कारण प्रकट नहीं देखती) ॥ २८ ॥

दोहा-कोउ मूरति सखि साँवरी, तोरति तृण सुख पागि ॥
माधुरि मूरतिमें पगी, निज मूरति सुख त्यागि ॥ २ ॥

कोई साँवरी मूर्ति देखकर आनंदमें मग्न हो तृण तोड़ती है और उनकी मनोहर मूर्तिमें लवलीन हो अपनी मूर्तिके सुखको भूल गयीं ॥ २ ॥

कोऊ रघुनन्दन छबि विलोकिकैं बोली सुन सखि बैना ॥
राज-कुँवर ये करन कलेऊ जात जनकके ऐना ॥ २९ ॥

कोई रामचंद्रजी की छबि देखकर बोली-हे सखी ! हमारी बात सुनो ये चारों राजकुमार जनकजीके गृह कलेऊ करनेको जाते हैं ॥ २९ ॥

इनको श्रीनिधि गये लिवावन आये चारिहुँ बेटा ॥
रँगभीने रघुवंशी छैला दशरथराज-दुल्हेटा ॥ ३० ॥

लक्ष्मीनिधि उन्हें लिवाने गये थे, रंगभरे दुलहे रघुवंशके छैला दशरथ राजाके चारों पुत्र आये हैं ॥ ३० ॥

धनि है भाग्य हमारो प्यारी निज भरि नैन निहारे ॥
नतु दर्शन दुर्लभ दूलहके रविकुल-प्राण-पियारे ॥ ३१ ॥

प्यारी ! हमारा भाग्य धन्य है ! जो इनका नेत्र भर दर्शन किया, नहीं तो इन सूर्यकुल के प्राण प्यारे दूलहके दर्शन दुर्लभ थे ॥ ३१ ॥

भाग सोहाग आज भल पायो श्रीमिथिलेश कि बेटी ॥
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति जिन निज भुजभर भेंटी ॥ ३२ ॥

मिथिलेश किशोरी–जानकीजीने आज भला भाग और सुहाग पाया है जिसने यह सुन्दर साँवरी मनोहर मूर्ति अपनी भुजाओंसे भरकर भेंटी ॥ ३२ ॥

बोली अपर सखी सुनु सजनी भली बात बनि आई ॥
हमहुँ चले सब जनक महलको हँसिये इन्हैं हँसाई ॥३३॥

दूसरी बोली–सुनो सजनी ! यह भला समय है हम लोग भी (जल्दी चद्दर ओढ़कर) जनकजीके महलमें चलें हम भी हँसें और इन्हें भी हँसावें ॥ ३३ ॥

इमि सब बात करत परस्पर भईं प्रेमवश वामा ॥
सुनत जात मुसुकात अनुजयुत कृपासिंधु श्रीरामा ॥ ३४ ॥

वे सब स्त्रियाँ इस प्रकार परस्पर बातें करते प्रेमके वश हुई और कृपासागर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजी सहित सुनते मुसकाते जाते हैं ॥ ३४ ॥

द्वार समीप देखि अति सुन्दर मणि मय चौक सँवारे ॥
राजकुँवर रघुवंशिनके तहँ ठाढ़ भये मतवारे ॥ ३५ ॥

द्वारके निकट मणियोंके अत्यन्त सुन्दर चौक पूरे देखकर रंगीले रघुवंशी राजकुँवर वहाँ खड़े हुए ॥ ३५ ॥

उधर जाय लिहि सिया मातुकी नगर सुवासिन नारी ॥
कंचन कलश सजे शिर ऊपर पल्लव दीप सँवारी ॥ ३६ ॥

उधर नगरकी सौभाग्यवती स्त्रियोंने सीताजीकी माताकी आज्ञा ले पल्लव दीपक संयुक्त कंचनके कलश भली भांति सजाकर शिर पर धरे ॥ ३६ ॥

गावत मंगल गीत मनोहर कर लै कंचन थारी ॥
परिछन चलीं हेतु रघुवरके बहु आरती सँवारी ॥ ३७ ॥

हाथमें सोनेका थार ले आरती सँवार, मनोहर गीत गाती रघुनन्दनको परिछन करने चलीं ॥ ३७ ॥

जाय समीप निहारि राम छवि दृग आनँद जल बाढ़ी ॥
छकित रहीं वर वदन विलोकति चकित रहीं तहँ ठाढ़ी॥ ३८ ॥

निकट जाते ही रामजीकी छबि निहार नेत्रोंमें जल भर आया और उनका सुन्दर मुख देख छक रही और वहाँ ही चकित हो खड़ी रहीं ॥ ३८ ॥

रामरूप रँगि गईं रंगीली लखि दूलह सुखसारा ॥
तन मन रह्यो सरेख न काहू को करै मंगल चारा ॥ ३९ ॥

वे रंगीली सुखमय दूलहको देखकर उनके रूपमें रंग गयी, किसीको तन मनकी सुध न रही मंगलाचार कौन करे ॥ ३९ ॥

प्रेम पयोधि मगन सब प्यारी धरि पुनि धीरज भारी ॥
परिछन अली भली विधि कीन्ही रोकि विलोचन बारी ॥ ४० ॥

वे सब बालाएँ प्रेम सागरमें मग्न हो फिर बहुतसे धीरज धर नेत्रोंका जल रोककर अच्छे प्रकारसे रघुनंदनकी आरती करने लगीं ॥ ४० ॥

लक्ष्मीनिधि तब उतरि तुरंगते चारिउ कुँवर उतारे ॥
पाणि पकरि रघुनन्दनजीको भीतर महल सिधारे ॥ ४१ ॥

तब लक्ष्मीनिधिने घोड़ेसे उतर कर चारों कुमारोंको उतार और श्रीरामचंद्रजीका हाथ पकड़ भीतर महलमें ले चले ॥ ४१ ॥

जहँ पिकबैनी सब सुखऐनी बैठी सुनैना रानी ॥
इन्द्राणीकी कौन चलावै लखि रति रूप लुभानी ॥ ४२ ॥

जहाँ सब सुख निधान मधुर भाषिणी सुनैना रानी बैठी थी, उनके रूपको इंद्राणी तो क्या ? रति भी देखकर लुभा जाती थीं ॥ ४२ ॥

चन्द्रमुखी चहुँ ओर विराजैं कोउ कर चमर चलावैं ॥
कोउ सखि देखि रामकी शोभा आरति मंगल गावैं ॥ ४३ ॥

जिनके चारों ओर चन्द्रमुखी नारियाँ खड़ी हैं कोई चँवर डुला रहीं थीं और कोई रामजीकी शोभा देख आरती मंगल गाती थीं ॥ ४३ ॥

तेहि क्षण तहां गये रघुनन्दन मन फन्दन वरबेखा ॥
देखत उठीं सकल रनिवासैं रह्यो न तनुहि सरेखा ॥ ४४ ॥

उसी समय कामके भी मोहित करनेवाले रामचन्द्रजी वहां सुन्दर वेष किये हुए गये; इन्हें देखते ही सब रनिवासकी स्त्रियाँ उठ खड़ी हुईं किसीको तनकी सुधि न रही ॥ ४४ ॥

करि आरती बारि मणि भूषण सादर पांय पखारे ॥
चारि रंगके चारि सिंहासन चारिहुँ वर बैठारे ॥ ४५ ॥

आरती कर मणि भूषण न्यौछावर करके आदर पूर्वक जलसे चरण धोकर चार रंगके चार सिंहासनोंमें चारों राजकुमारोंको बैठाया ॥ ४५ ॥

लखि छबि ऐना सासु सुनैना एकहु पलक तजै ना ॥
भूली चैना बोलि सकै ना कहते बनै ना बैना ॥ ४६ ॥

सुनैना रानी इस प्रकार छबिगृह रामजीको पलक बिसार देखने लगीं और सब चेत भूल गयीं, बोल नहीं सकती; मुखसे बात कहते नहीं बनती ॥ ४६ ॥

तकि जकि रही तनक नहिं डोले मगन महा मुदमाहीं ॥
राम रूप रँगि गई रँगीली आंसू बहे दृग जाहीं ॥ ४७ ॥

देखनेसे कर्तव्यहीन स्थिर हो अति आनंद मग्न हो गयीं और वह रंगीली रामके रूपमें ऐसी रंगी कि आंखोंमें आंसू बहे जाते हैं ॥ ४७ ॥

इमि तहँ दशा विलोकि सासुकी राम गुनत मनमाहीं ॥

कहा भयो यह आजु रानिको पूछतमें सकुचाहीं ॥ ४८ ॥

सासुकी यह दशा देखकर रामजी मनमें सोचने लगे, आज महारानीजीको क्या हो गया ! परंतु पूछनेमें सकुचाते हैं ॥ ४८ ॥

चतुर सखी चित चरित रामसों बोली मधुरी बानी ॥
यह तुम्हार गुण है सब लालन और न कछु उर आनी ॥ ४९ ॥

तब एक चतुर सखी रामजीके चित्तकी बात जान कोमल वाणीसे बोली- लालन ! ये सब तुम्हारे गुण हैं और कुछ मनमें नहीं आता है ॥ ४९ ॥

सुनत वचन यह तुरत धीर धरि जगी सुनैना रानी ॥
बार बार बहु लीन बलैया चूमि कपोलन पानी ॥ ५० ॥

वचन सुनते ही तुरंत धीरज धरके सुनैना रानी जगीं और मुख चूम हाथसे बार-बार बहुत बलैया लेने लगी ॥ ५० ॥

माधुरि मूरति सांवलि सूरतिकी तृण तोरति रानी ॥
रीझि रीझि तहँ राम रूप पै बिन ही मोल बिकानी ॥ ५१ ॥

रानी उस माधुरी सांवरी सूरतको देख तृण तोड़ने लगी और रामजीके रूप पर रीझकर विना मोल बिक गयी ॥ ५१ ॥

पुनि कर जोरि बहोरि रामसों बोली अति मृदु सोई ॥
उठहु लाल अब करहु कलेऊ जो जो रुचि हिय होई ॥ ५२ ॥

फिर रामजीसे हाथ जोड़कर रानी अति कोमल वाणीसे बोली-हे लाल ! अब उठो और जो-जो मनमें इच्छा हो कलेऊ करो ॥ ५२ ॥

यह सुनि सखन समेत उठे तहँ चारिहु राज दुलारे ॥
भूरि भाग्य अनुराग सुनैना निज कर पांय पखारे ॥ ५३ ॥

यह सुनकर चारों राजकुमार सखाओं सहित उठे और बड़भागिनी सुनैना रानीने अपने हाथसे प्रेमपूर्वक चरण धोये ॥ ५३ ॥

रचना अधिक पदकके पीठन बैठारे सब भाई ॥
कंचनथारी मृदुल सुहारी परसी विविध मिठाई ॥ ५४ ॥

विचित्र रचना युक्त मणि जटित सिंहासन पर चारों भाइयोंको बैठाया, अच्छी सोनेकी थालीमें विविध प्रकारकी पूरी-मिठाई परोसी ॥ ५४ ॥

रुचि अनुरूप भूपसुत जेंवत पौन डुलावैं सासू ॥
बूझि बूझि रुचि व्यंजन परसै वरणि न जाय हुलासू ॥ ५५ ॥

रुचिके अनुसार राजकुमार जीमते और सासुयें पंखा करती हैं और रुचि बूझ-बूझकर व्यञ्जन परोसती हैं उस समयका आनन्द कहा नहीं जाता ॥ ५५ ॥

स्वाद सराहि पाय पुनि अँचये सखियन पान खवाये ॥
बैठे पहिरि पोशाक सखनयुत विविध सुगन्ध लगाये ॥ ५६ ॥

स्वादकी सराहना करते कुमार जीमते हैं फिर आचमन किया, सखियोंने पान खवाये, फिर पोशाक पहन सखाओं सहित बैठे सखियोंने अनेक सुगन्ध वस्त्रोंमें लगाये ॥५६॥

दोहा-राज ऐन सब चैन युत, राजैं राजकुमार ॥
जिनको हास विलास लखि, लाजहिं लाखन मार ॥ ३ ॥

इस प्रकार से आनंदपूर्वक कुमार राजभवनमें विराजते हैं जिनका हास-विलास देख लाखों काम लज्जित होते हैं ॥ ३ ॥

तेहि औसर सुधि पाय सखीसुख लक्ष्मीनिधिकी नारी ॥
नाम सिद्धि परिसिद्ध जासु गुण रूप शील उजियारी ॥ ५७ ॥

उस समय सिद्धिनाम रूप, गुण, शीलसे भरी लक्ष्मीनिधिकी नारीने जो कि गुणोंमें उजेरी है और एक सखीसे श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका समाचार पाया ॥ ५७ ॥

भाग सुहाग भरी सुठि सुन्दरि नव यौवन मतवारी ॥
रसिकन रीति प्रीति परबीनी रतिहि लजावनहारी ॥ ५८ ॥

भाग और सुहागसे भरी हुई अत्यन्त सुन्दरी नवयौवनसे मतवाली रसिकोंकी रीति और प्रीतिमें चतुर, रूपमें रतिको भी लजानेवाली ॥ ५८ ॥

अति गुणवान निधान रूपकी सब विधि सुभग सयानी ॥
लक्ष्मीनिधिकी प्राणपियारी निमि कुलकी महरानी ॥ ५९ ॥

अत्यन्त गुणवाली रूपकी निधान सब प्रकारसे सुन्दर और चतुर लक्ष्मीनिधिकी प्राण प्यारी निमिवंशकी महारानी ॥ ५९ ॥

अलबेली सरहज रघुवरकी बड़ी सनेह शृँगारी ॥
प्रीतम प्रीति निवाहनहारी रामरूप रिझवारी ॥ ६० ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी अलबेली सरहज शृङ्गार किये स्नेहमें सनी प्रीतमसे प्रीति निवाहने-वाली श्रीरामचन्द्रजीके रूप पर रीझने वाली ॥ ६० ॥

चञ्चल चषन चहूँ दिशि चितवति देखनको अतुराई ॥
भरी उमंग सँग सखियन लै तुरत राम-ढिग आई ॥ ६१ ॥

चंचल नेत्रोंसे चारों ओर देखती श्रीरामचन्द्रजीके देखनेकी इच्छा किये उमंगमें सखि-योंको संग लेकर तुरन्त श्रीरामचन्द्रजीके निकट आयी ॥ ६१ ॥

वदन चन्द्र अरविन्द लिये कर बिहँसत मँद सरसौं हैं ॥
राजकुँवर कर पकड़ि लाड़िली बोली तकि तिरछौं हैं ॥ ६२ ॥

चन्द्रमासा मुख, हाथमें कमल लिये रसीली मन्द-मन्द हँसती हुई राजकुमारका हाथ पकड़ तिरछे नयन किये लाड़िली यह बोली ॥ ६२ ॥

हौ चित चोर किशोर भूपके बड़े चोर तुम प्यारे ॥
सुरति हमारि भुलाय साँवरे सासु--समीप सिधारे ॥ ६३ ॥

प्यारे राजकुमार ! तुम चित्त चुरानेमें बड़े चतुर हो, सांवरे हमारी याद भुलाकर सासके ही समीप चले गये ॥ ६३ ॥

उलटी बात कहो जनि प्यारी आपन दोष दुराई ॥
तुमहीं रहिउ छिपाय छबीली सुनति हमारि अवाई ॥ ६४ ॥

तब रघुनन्दनजी बोले प्यारी ! उलटी बात अपना दोष छिपाकर मत कहो, छबीली ! तुम ही हमारा आना सुनकर छिप रही ॥ ६४ ॥

हम आये तुम महलन भीतर तुमहिं परचो न जनाई ॥
भलो सदन तुम्हरो है प्यारी जहँ सब जाहिं समाई ॥६५॥

हम तुम्हारे महलोंके भीतर आये और तुम्हें मालूम न पड़ा, प्यारीजी ! घर अच्छा है ? जहां सभी समा जाते हैं ॥ ६५ ॥

सुनत रामके वचन लाडिली बोली मृदु मुसुकाई ॥
तुम्हरे घरकी रीति लालजू यहां न चली चलाई ॥ ६६ ॥

सिद्धि श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुन मुसकाकर मृदु वचन बोली-लालजी ! तुम्हारे घरकी रीति यहां चलायेसे नहीं चलती ॥ ६६ ॥

सासु सुनैनाके समीप महँ देत जवाब बनेना ॥
पाणि पकरि रघुनन्दनजीको गइ लिवाय निज ऐना ॥ ६७ ॥

सुनयना रानीके सामने उत्तर देते नहीं बनता, इस कारण रघुनंदनजीका हाथ पकड़कर अपने घरको लिवा ले गयी और कुमारोंको भी बुला ले गयी ॥ ६७ ॥

चारि सिंहासन दै तहँ आसन भरी हुलासन प्यारी ॥
बारहिं बार निहारि वदन छबि बहु आरती उतारी ॥ ६८ ॥

वहां सिंहासनोंका आसन दे प्रेमसे भरी चारों राजकुमारोंको बैठाया और बारबार मुखकी अत्यन्त छबि देखकर आरती उतारी ॥ ६८ ॥

मेलि सुकण्ठ मालती माला बसननि अतर लगायो ॥
अञ्चलसों मुख पोंछि रामको निजकर पान खवायो ॥६९॥

सुन्दर गलेमें मालतीके फूलोंकी माला डालकर वस्त्रोंमें अतर लगाया और रघुनाथजीका मुख अंचलसे पोंछकर अपने हाथसे पान खिलाया ॥ ६९ ॥

ललित लवंग कपूर सँग धरि कोउ सखि पान लगावै ॥
कोउ कर पीकदान लिये ठाढी कोउ सखि चमर डुलावै ॥ ७० ॥

कोई सखी सुन्दर लौंग, कपूर, कस्तूरी सहित पान लगाती है और कोई सखी हाथमें पीकदान लिये खड़ी है कोई चमर डुलाती है ॥ ७० ॥

जे निमिराज निवत सुनि आई कोटिन राजकुमारी ॥
राम मिलनकी बड़ी लालसा कहि न सकैं सकुचारी ॥ ७१ ॥

जो निमिराजके यहां अनेक राजकुमारी न्योतेमें आयी थीं उन सबको श्रीरामचन्द्रजीके मिलनेकी बड़ी लालसा थी, पर सकुचसे कह नहीं सकती थीं ॥ ७१ ॥

तिन यह सुन्यो कि सिद्धि सदनमें आये चारिहु भाई ॥
तुरतै पहुँचीं सबही प्यारी जानि सबै सुखदाई ॥ ७२ ॥

उन्होंने जब यह सुना कि चारों भाई सिद्धिके स्थानमें आये हैं तब वे सब सिद्धिके मंदिरमें गयीं क्योंकि सबके सुखदायक वहां ही थे ॥ ७२ ॥

देखीं राजकुँवरि सब आईं रामदरशकी प्यासी ॥
अतिसम्मान कियो सबहीको सिद्धि सदन सुखराशी ॥७३॥

जब सिद्धिने देखा कि रामजीके दर्शनकी प्यासी सब राजकुमारी आयी हैं तब सबका अत्यन्त सम्मान किया; वह सिद्धि का घर सुखकी राशि हो गया था ॥ ७३ ॥

मणिन मौरपर मोतिन कलँगी अलबेली अति सोहै ॥
राजतियनकी कौन चलावै मुनियनको मन मोहै ॥ ७४ ॥

रघुनाथजीके मणियोंके बने मौरमें मोतियोंकी कलँगी ऐसी अनोखी शोभित है कि उसे देखकर राजा रानियोंके भी मन मोहित हो जाते थे ॥ ७४ ॥

दोहा-मन लोभा शोभा निरखि, भईं विवश सुकुमारि ॥
चकित छकित सब रह गईं, तनमन दशा विसारि ॥ ४ ॥

रामजीकी शोभा देखकर स्त्रियोंका मन मोहित हो गया और वे सब विवश हो गयीं चकित होकर सब छकि रहीं, तन मनकी दशा भूल गयीं ॥ ४ ॥

जेतिय मान अनूप रूप निज रहीं स्वरूप गुमानी ॥
ते लखि रामवदनकी सुषमा विनही मोल बिकानी ॥ ७५ ॥

जो स्त्रियां अपने सुन्दर रूपके गुमानमें भरी रहती थीं वे भी तो रामजीके मुखकी शोभा देखकर विना मोल ही बिक गयीं ॥ ७५ ॥

अति सुकुमारी राजकुमारी सिद्धि सहित अनुरागीं ॥
तहँ प्यारी गारी रघुवरको देन दिवावन लागीं ॥ ७६ ॥

सुकुमारी सिद्धि सहित बहुत प्रसन्न हुईं और सिद्धि उस समय रामजीको प्यारी गारी देने और दिलाने लगीं ॥ ७६ ॥

एक सखी कह सुनहु लालजी यह स्वरूप कहँ पायो ॥
कानन सुन्यो काम अति सुन्दर की तुमको सोइ जायो ॥ ७७ ॥

एक सखी बोली-प्रिय रघुनन्दन ! तुमने यह स्वरूप कहां पाया ? हमने कामको बड़ा सुन्दर सुना है क्या तुम उसीसे उत्पन्न हुये हो ॥ ७७ ॥

बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार ननदोई
एक बात तुमसों हम पूछैं लाल न राखहु गोई ॥ ७८ ॥

सिद्धि बोली सुनो-रघुनन्दन ! तुम हमारे नँनदोई हो, इससे मैं एक बात पूछती हूँ उसे तुम बता दो छिपाओ मत ॥ ७८ ॥

होत ब्याह सम्बन्ध सबनको अपनी जातिहि मांही ॥
निज बहिनी शृँगीऋषिको तुम कैसे दियो विवाही ॥ ७९ ॥

सबका ब्याह तो अपनी-अपनी जातिमें होता है; तुम्हारी बहिन शृंगी ऋषिको कैसे ब्याही गयी ? "राजा दशरथकी कन्या रोमपाद अंगदेशके राजाने गोद ली थी और उसे शृंगी ऋषिके साथ ब्याह दिया" ॥ ७९ ॥

की उनको मुनीश लै भाग्यो की वोई संग लागी ॥
एती बात बतावहु लालन तुम रघुवंश अदागी ॥ ८० ॥

क्या उन्हें वह मुनि ले भागे या स्वयं चलीं गयीं ? लालन ! बस इतनी बात बताओ तुम्हारा रघुवंश तो निष्कलंक है ? ॥ ८० ॥

लषण कह्यो यह सुनहु लाड़िली जेहि विधि जहँ लिख दीना ॥
लहैं सँयोग होत है ताको ब्याह तो कर्म अधीना ॥ ८१ ॥

लक्ष्मणजी बोले—सुनो लाड़िली जिस विधिसे जहां जो विधाताने लिख दिया वहां ही उसका संयोग होता है और ब्याह तो कर्मके आधीन है ॥ ८१ ॥

कहँ हम राजकुँवर रघुवंशी कहँ विदेह वैरागी ॥
भयो हमारो ब्याह तुम्हारे विधिगत गनै को भागी ॥ ८२ ॥

देखो कहां तो हम रघुवंशी राजकुमार और कहां वैरागी विदेह ? सो तुम वैरागियोंके यहां हमारा ब्याह हुआ, विधाताकी गति कौन जाने ॥ ८२ ॥

औरो एक हास उर आवै अचरज है सब काहू ॥
तुम तो हो सिधि वे लक्ष्मी निधि नारि नारि भौ ब्याहू ॥ ८३ ॥

और एक बड़ी हँसीकी बात है सब किसीको यह सुनकर बड़ा अचरज लगता है कि तुम सिद्धि और वे तुम्हारे पति लक्ष्मीनिधि दोनों स्त्री वाचक हैं, सो नारी-नारीका कैसे ब्याह हुआ ? ॥ ८३ ॥

एक सखी कह सुनहु लालजी तुमहिं सकहिं को जीती ॥
जाहिर अहै सकल जगमाहीं तुम्हरे घरकी रीती ॥ ८४ ॥

एक सखी बोली—लालन तुम्हें कौन जीत सके ! सब जगत्में तुम्हारे घरकी रीति जाहिर है ॥ ८४ ॥

अति उदार करतूतिदार सब अवधपुरी की वामा ॥
खीर खाय पैदा सुत करतीं पति कर कछु नहिं कामा ॥ ८५ ॥

अयोध्या की नारी बड़ी उदार और करतूतदार हैं; जो खीर खाके सुत उत्पन्न करती हैं पतिका तो कुछ काम ही नहीं ॥ ८५ ॥

सखी-वचन सुनि तब रघुनन्दन बोले मृदु मुसुकाते ॥
आपनि चाल छिपावहु प्यारी कहहु आनकी बातैं ॥ ८६ ॥

यह सखीके वचन सुनकर रघुनन्दनजी मुसकाते हुए बोले-हे प्यारी ! अपनी बात छिपाकर और की बातें करती हो ! ॥ ८६ ॥

कोउ नहिं जन्मैं मात पिता विनु बँधी वेदकी नीती ॥
तुम्हरे तौ महिते सब उपजै असि हमरे नहिं रीती ॥ ८७ ॥

कोई भी माता-पिताके विना उत्पन्न नहीं होता, यह वेदकी नीति बँध रही है, पर तुम्हारे यहां तो सब पृथ्वीसे उत्पन्न होते हैं ऐसी हमारे यहांकी रीति नहीं है ॥ ८७ ॥

बोली चन्द्रकला तेहि औसर परम चतुर सुकुमारी ॥
सिद्धि कुँवरकी लहुरी भगिनी लक्ष्मीनिधिकी सारी ॥ ८८ ॥

उस समय परमचतुर सुकुमारी चंद्रकला जो सिद्धिकी छोटी बहिन और लक्ष्मीनिधिकी साली थी, बोली ॥ ८८ ॥

लरिकाईते रह्यो लालजी तुम तपसिन-सँगमाहीं ॥
ये छलछन्द फन्द कहँ पाये सत्य कहो हम-पाहीं ॥ ८९ ॥

कुँवरजी ! लड़कपनसे तो तुम तपस्वियोंके सङ्गमें रहे परंतु हमसे यह तो सत्य कहो कि यह छलछंद कहांसे सीखे हैं ? ॥ ८९ ॥

की मुनि नारिनके सँग सीखे की निज भगिनी पासै ॥
मीठो सीठो स्वाद लालजी विन चाखे नहिं भासै ॥ ९० ॥

क्या मुनियोंकी नारियोंके संग या अपनी भगिनीसे सीखे हो लालजी ! मीठे सीठेका स्वाद तो विना चाखे कोई नहीं जानता ॥ ९० ॥

बोले भरत भली कह सजनी तुमहुँ तौ अबै कुमारी ॥
बर्णहु पुरुषसंगकी बातैं सो कहँ सीखेउ प्यारी ॥ ९१ ॥

भरतजी बोले-सुनो सखि ! तुम भी तो अभी क्वाँरीही हो और पुरुषोंके सङ्गकी बातें कहती हो सो कहां सीखी हैं बताओ तो सही ! ॥ ९१ ॥

रहे मुनिन सँग ज्ञान सिखनको सो सब सुने सुनाये ॥
कामिन काम कला अब सीखन हम तुम्हरे ढिग आये ॥ ९२ ॥

हे लाड़िली ! हम ज्ञान सीखनेको मुनियोंके संग रहे, वह सुने और सुनाया, पर अब कामकला सीखनेको तुम्हारे पास आये हैं ॥ ९२ ॥

सिद्धि कह्यो तब सुनहु भरतजी ऐसे तुम न बखानौ ॥
तुम्हरी तौ गिनती साधुनमें लोक बात का जानौ ॥ ९३ ॥

सिद्धि बोली-भरतजी ! तुम ऐसा मत कहो, क्योंकि तुम्हारी तो गिनती साधुओंमें है तुम संसारकी बातें क्या जानो ? ॥ ९३ ॥

भरत कह्यो तुम साँचि कहत हौ हम साधू पर काजी ॥
ऐसी सेवा करौ कामिनी जामे हों हम राजी ॥ ९४ ॥

भरतजी बोले-सत्य कहती हो हम साधू पराया कार्य करनेवाले हैं, इससे हे भामिनी ! हमारी ऐसी सेवा करो जिसमें हम राजी हों ॥ ९४ ॥

आये ऐन अपूरब योगी अस निज मन गुनि लीजै ॥
अधर सुधारसको दै भोजन अतिथिहि पूजन कीजै ॥ ९५ ॥

तुम्हारे घरमें अपूर्व योगी आये हैं यह अपने मनमें जान लीजिये और अपने अधररूपी अमृतका भोजन देकर अतिथियोंका पूजन कीजिये ॥ ९५ ॥

एक सखी कह सुनहु सबै मिलि इनकी एक बड़ाई ॥
ऋषि मख राखन गये कुँवर ये तहँ हम अस सुधि पाई ॥ ९६ ॥

एक सखी ऐसी बोली–सब मिलके इनकी एक बड़ाई सुनो, ये मुनिका यज्ञ रखानेको गये थे, वहां हमने ऐसी सुध पायी है कि ॥ ९६ ॥

इनको सुन्दर देखि कामवश त्रिया ताड़का आई ॥
सो करतूति न भई लालसों मारेहु तेहि खिसिआई ॥ ९७ ॥

इनका रूप देखकर मोहित हो ताड़का नाम स्त्री वहां आयी सो जब लालसे कुछ करतूत नहीं हो पाई तब खिसियाकर अर्थात् लज्जित होकर उसे मार डाला ॥ ९७ ॥

बोले रिपुहन सुनहु भामिनी नाहक दोष न दीजै ॥
जो करतूति बनी नहिं उनसे सो हमसे भरिलीजै ॥ ९८ ॥

शत्रुघ्नजी बोले–हे भामिनी ! वृथा दोष मत दो, जो करतूति उनसे न हुई सो हमसे भर लीजिये ॥ ९८ ॥

बिन जाने करतूति सबनको तुम्हरे घर भौ ब्याहू ॥
सो पछिताव न रहै पियारी अब करि लेहु समाहू ॥ ९९ ॥

विना करतूत जाने तुम्हारे घर सबका ब्याह हुआ, इससे अब करतूत की परीक्षा कर लो अर्थात् अब करतूत देख लो, जिसमें पछतावा भी न रहे ॥ ९९ ॥

जाके हित तुम रोष बढ़ावहु सो मति करहु उपाई ॥
वैसिन सेवामें तुम्हरे हम हाजिर चारिउ भाई ॥ १०० ॥

जिसके कारण तुम रोष बढ़ाती हो उसका उपाय मत करो ! वैसे ही तुम्हारी सेवामें हम चारों भाई हाजिर हैं ॥ १०० ॥

सुनि वाणी रिपुदवन लालकी बोली कोउ सुकुमारी ॥
कहँ पाई एती चतुराई कहिये लाल विचारी ॥ १०१ ॥

शत्रुघ्नजीकी वाणी सुनकर कोई सुकुमारी बोली–लाल ! इतनी चतुराई कहां सीखी, सो तो कहो ? ॥ १०१ ॥

की कहुँ मिली नारि गुण आगरि की गणिकन सँग कीनो ॥
तीनों भाइनते तुम्हरे महँ लखियत चिह्न नवीनो ॥ १०२ ॥

क्या तीनों गुणकी आगरी स्त्री, मिली, या तुमने वेश्याओंका संग किया है ? क्योंकि तुममें तीनों भाइयोंसे नये चिह्न पाये जाते हैं ॥ १०२ ॥

रिपुहन कह भल कह्यो भामिनी भेदिया भेदिहि जानैं ॥
गणिका नारिनहूते सौ गुण तुम्हैं अधिक हम मानैं ॥ १०३ ॥

शत्रुघ्नजी बोले–भामिनी ! सत्य कहती हो, भेदिया भेदकी बात जानते हैं, तुममें गणिकाओंसे भी सौगुनी बातें हैं ऐसा हम मानते हैं ॥ १०३ ॥

हमरो तुम्हरो चिह्न लाड़िली एकै भाँति लखाई ॥
ताते सखी हमारि तुम्हारी चाही अवसि सगाई ॥ १०४ ॥

प्यारी ! हमारे तुम्हारे चिह्न एक ही भाँतिके हैं इससे हमारी तुम्हारी सगाई अवश्य होनी चाहिये ॥ १०४ ॥

सुनि नव युक्ति उक्तिकी बातैं बोली सिधि सुकुमारी ॥
सुनिये रसिक राय रघुनन्दन आनँदकन्द विहारी ॥१०५॥

यह शत्रुघ्नकी नयी युक्तिकी बातें सुनकर सिद्धि बोली–हे रसिकराय ! आनंदकंद विहरणशील रघुनन्दन ! सुनो ॥ १०५ ॥

अति अभिराम कामहू मोहत मूरति देखि तुम्हारी ॥
कैसे बची होयँगी तुमसे अवधपुरीकी नारी ॥ १०६ ॥

बड़ी शोभायमान तुम्हारी मूर्ति कामदेवको मोहनेवाली है, इससे इस मूर्तिको देखकर तुमसे अवध पुरकी नारी कैसे बची होंगी ? ॥ १०६ ॥

यों कहि रही चुपाय सुन्दरी सिद्धि कुँवरिसुख ऐना ॥
ताको हाथ पकरि रघुनन्दन बोले अति मृदुबैना ॥ १०७ ॥

यह कहकर सुन्दरी और सुखका स्थान सिद्धि कुमारी चुप हो रही तब उसका हाथ पकड़ श्रीरामचन्द्रजी अति कोमल वाणी बोले ॥ १०७ ॥

दोहा–जसि मर्यादा जगतकी, बांधि दीन्ह करतार ॥
राजा रंक यती सती, करत सोइ व्यवहार ॥ ९ ॥

विधाताने जगत्‌की मर्यादा जैसी बांध दी है राजा, रंक, यती, सती, उसी व्यवहारको करते हैं॥९॥

अनुचित उचित विचारि लोग सब तहँ तस राखत भावा ॥
तुम तौ अपने कस जानति हौ सबही के रस चावा ॥ १०८ ॥

अनुचित उचित विचार कर लोग वहां वैसा भाव रखते हैं, तुम तो अपने जैसा ही सबका स्वभाव जानती हो कि, जैसा हमारे जीमें रसका चाव है वैसा ही सबका होगा ॥ १०८ ॥

यह सुनि भरत लषन रिपुसूदन हँसे सकल दै तारी ॥
सिद्धि आदि सब राजकुमारी ते अति भईं सुखारी ॥ १०९ ॥

यह सुनकर भरतजी शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी ताली देकर हँसे और सिद्धि आदि सब राजकुमारी भी बहुत सुखी हुईं फिर रामचन्द्रजी बोले ॥ १०९ ॥

ते तुम सबै प्रेमकी मूरति सूरति की बलिहारी ॥
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहिं प्राणहुँ ते प्यारी ॥ ११० ॥

वे तुम सब प्रेमकी मूर्ति हो, सखि ! तुम्हारी सूरतपर बलिहारी जाइये, सिद्धि आदि तुम सब राजकुमारी मुझे प्राणोंसे अधिक प्यारी हो ॥ ११० ॥

तुम्हरे हिय अभिलाष आजु जो सो सब भाँति पुजैहौं ॥
लोक कि लाज बचाय लाड़िली तुमते विलग न होइहौं ॥ १११ ॥

प्यारी तुम्हारे हृदयकी अभिलाषा आज सब प्रकार पूरी होगी लोककी लाज बचाकर मैं तुमसे पृथक् नहीं हूँगा अर्थात् लोकलाज बचानी ही पड़ेगी ॥ १११ ॥

हम सब भाँति तुम्हारे साँवरि तुम सब भांति हमारी ॥
सत्य सत्य ये सत्य वचन मम सब मानहु राजकुमारी ॥ ११२ ॥

प्यारी ! हम सब प्रकारसे तुम्हारे और तुम सब प्रकारसे हमारी हो राजकुमारी ! यह हमारा वचन सब प्रकार सत्य त्रिवार सत्य, मानो ॥ ११२ ॥

दोहा–रघुनन्दनके वचन सुनि, खुल गये हृदय किवाँर ॥
बढ़्यो प्रेम सब तियनके, तनिकहु नाहिं सँभार ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर सबके हृदयके किवाँड़ खुल गये और सब स्त्रियोंके हृदयमें प्रेम बढ़ा, तनिक भी सँभार नहीं रहा ॥ ६ ॥

पुनि धरि धीरज अली भली विधि जोरि पंकरुह पानी ॥
सिद्धि आदि सब राजकुमारी बोलीं अति मृदुबानी ॥ ११३ ॥

फिर वे सिद्धि आदि सब राजकुमारी और सखियाँ अच्छे प्रकारसे धीरज धरकर हाथ जोड़कर अतिकोमल वाणी बोलीं ॥ ११३ ॥

धन्य भाग्य हमरे रघुनन्दन हमते बड़ कोउ नाहीं ॥
बूड़त रहीं जगत सागरमें राखि लीन्ह गहि बाहीं ॥ ११४ ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! हमारे भाग्य धन्य हैं, हमसे बड़ा कोई नहीं इस संसार सागरमें डूबी जाती थीं, आपने बाँह पकड़कर रख लिया ॥ ११४ ॥

प्रति उपकार होत नहिं हमते जस तुम कीन्हेंउ प्यारे ॥
चन्द्र-समान होयँ नहिं कबहूँ जुरहिं हजारन तारे ॥ ११५ ॥

हे प्यारे श्रीरामचन्द्रजी ! जैसा आपने किया, इसका हमसे प्रत्युपकार नहीं हो सकता क्योंकि चाहे हजारों तारे जुड़ें पर चन्द्रमाके समान नहीं हो सकते ॥ ११५ ॥

जेहि जेहि योनि कर्मवश हमको जनम विधाता देही ॥
तहँ तहँ रसिकराय रघुनन्दन तुमही मिलहु सनेही ॥ ११६ ॥

जिस-जिस योनिमें विधाता हमको कर्मानुसार जन्म दें, वहाँ तुम ही हमको स्नेही मिलो ॥ ११६ ॥

वरु विधि कोटिन करै यातना या तनु क्षण क्षण छूटै ॥
हमरी तुमरी लगन लाड़िले कौनेउ जनम न टूटै ॥ ११७ ॥

चाहे विधाता कोटि प्रकारके दुःख दें या क्षण-क्षणमें शरीर छूटे, पर प्यारे ! हमारा-तुम्हारा प्रेम किसी जन्ममें न छूटे ॥ ११७ ॥

सुनि वानी करुणा रस सानी रघुवर अन्तर-जानी ॥
सनमान्यो सब राजकुमारिन कहि कहि कोमल बानी ॥ ११८ ॥

यह करुणारसमें सनी उनकी वाणी सुनकर अन्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजीने कोमल वाणी कह कहकर सब राजकुमारियोंका सम्मान किया ॥ ११८ ॥

सबसों बिदा माँगि रघुनन्दन अनुज सहित पगु धारे ॥
निकसे मानहुँ सिद्धि-महलते चारि चन्द्र छबिवारे ॥ ११९ ॥

फिर सबसे विदा मांग श्रीरामचन्द्रजी भाइयों सहित ऐसे चले जैसे सिद्धिके महलसे छबि भरे चार चन्द्रमा निकले हों ॥ ११९ ॥

दोहा-बिदा सासुसे होय पुनि, आये सब जनवास ॥
बढ़त छिनहि छिन जनकपुर, आनँद परम हुलास ॥ ७ ॥

फिर सासुसे बिदा हो सब राजकुमार जनवासे आये, जनकपुरमें नित नया, परम आनन्द उल्लास बढ़ता है ॥ ७ ॥ इति रामकलेवा (क्षेपक) समाप्त ।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने मिश्रसुखानन्दसूनु
पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतव्याख्यायां बालकाण्डान्तर्गत दशमो विश्रामः ॥ १० ॥

दोहा-एकादश विश्राममें, रघुकुल कैरवचन्द ।
विदा होय आये अवध, पूरण परमानंद ॥ ११ ॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं * निमिषसरिसदिनयामिनि जाहीं ॥१॥
बड़े भोर भूपति मणि जागे * याचक गुण गण गावन लागे ॥२॥

नित नया आनन्द जनक पुरीमें रहे, पलके समान रातदिन बीते ॥ १ ॥ बड़े सबेरे राजाधिराज जगे, याचक जन गुणोंको गाने लगे ॥ २ ॥

देखि कुँवर वरवधुन समेता * किमि कहि जाय मोद मन जेता ॥३॥
प्रात क्रिया करि गे गुरु पाहीं * महाप्रमोद प्रेम मनमाहीं ॥४॥

बहुओंके सहित श्रेष्ठ चारों पुत्रोंको देख राजाके मनमें बड़ा आनंद हुआ सो कहा नहीं जाता ॥३॥ प्रातःकाल-क्रिया(शौचादि)से निश्चिन्त हो राजा गुरुके पास गये, जिसके मनमें बड़ा आनंदहै ॥४॥

करि प्रणाम पूजा कर जोरी * बोले गिरा अमिय जनु बोरी ॥५॥
तुम्हरी कृपा सुनिय मुनिराजा * भयउ आज मम पूरण काजा ॥६॥

प्रणाम कर हाथ जोड़ पूजन कर ऐसी वाणी बोले मानो अमृत से सनी हैं ॥५॥ हे मुनि-राज ! आपकी कृपासे मेरे काम पूरे हो गये ॥ ६ ॥

अब सब विप्र बुलाय गुसांई * देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥७॥
सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई * पुनि पठये मुनि-वृन्द बुलाई ॥८॥

अब हे मुनिराज ! सब ब्राह्मणोंको बुलाकर गायें दिलवा दो ॥ ७ ॥ यह सुनकर गुरुने राजाकी बड़ाई कर मुनियोंके समूहको बुलाया ॥ ८ ॥

दोहा-वाम देव-अरु देव ऋषि, वाल्मीकि जाबालि ॥
आये मुनिवर निकर सब, कौशिकादि तपशालि ॥ ३७३ ॥

उस समय वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जाबालि, विश्वामित्रादि बड़े-बड़े महात्मा तपस्वी ऋषि मुनि आये ॥ ३७३ ॥

दण्ड प्रणाम सबहिं नृप कीन्हा * पूजि सप्रेम बरासन दीन्हा ॥१॥
चारि लक्ष वर धेनु मँगाई * काम सुरभि सम शील सुहाई ॥२॥

राजाने सबको दंड प्रणाम किया, प्रेमसे पूजन कर सुन्दर आसन दिया ॥ १ ॥ कामधेनुके समान शील स्वभाव वाली चार लाख सुन्दर गायें मँगवायीं ॥ २ ॥

सब विधि सकल अलंकृत कीन्हीं * मुदित महिप महिदेवन दीन्हीं॥३॥
करत विनय बहुविधि नरनाहू * लहेउ आजु जग जीवन लाहू ॥४॥

इस प्रकार सुन्दर अलंकार द्वारा सजाकर प्रसन्न हो राजाने ऋषियोंको दीं ॥ ३ ॥ राजाने अनेक प्रकारसे बहुत विनती की—आज मैंने जगत्में जीनेका लाभ पाया ॥ ४ ॥

पाइ अशीष मुनीश अनन्दा * लिये बोलि पुनि याचकवृन्दा ॥५॥
कनक वसन मणि हयगय स्यंदन* दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन ॥६॥

मुनियोंका आशीर्वाद पाकर राजा आनंदित हुए और फिर याचकोंको बुलाया ॥ ५ ॥ सूर्यकुलके महाराजने सोना, वस्त्र, मणि, घोड़े, हाथी, रथ रुचिके अनुसार दिये अर्थात् जो जिसने मांगा सो उसे दिया ॥ ६ ॥

चले पढ़त गावत गुण–गाथा *जय जय जय दिनकर कुलनाथा॥७॥
इहि विधि राम विवाह उछाहू * सकै न वरणि सहसमुख जाहू ॥८॥

वे याचक लोग गुणानुवाद कहते चले कि सूर्यकुलके नाथ महाराज दशरथकी जयजयकार हो ! ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके विवाह उत्सवका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते जिनके सहस्र मुख हैं, मैं क्या कहूँ ॥ ८ ॥

दोहा—बार बार कौशिक चरण, शीश नाय कह राउ ॥
यह सब सुख मुनिराज तव, कृपा कटाक्ष प्रभाउ ॥ ३७४ ॥

बार बार विश्वामित्रजीके चरणोंमें शिर नवाकर दशरथने कहा- हे मुनिराज ! यह सब सुख आपकी कृपाके प्रभावसे प्राप्त हुआ है ॥ ३७४ ॥

जनक सनेह शील करतूती * नृप सब भाँति सराह विभूती ॥१॥
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा * राखहिं सहित जनक अनुरागा ॥२॥

राजा जनकके स्नेह, शील कर्तव्यको महाराज दशरथ बरात सहित सराहने लगे और विभूति ऐश्वर्यकी सराहना करने लगे ॥ १ ॥ राजा दशरथ रोज उठकर विदा मांगते हैं परंतु जनकजी प्रेम पूर्वक ठहरा लेते हैं जाने नहीं देते ॥ २ ॥

नित नूतन आदर अधिकाई * प्रतिदिन सहस भाँति पहुनाई ॥३॥
नित नव नगर अनंद उछाहू * दशरथ गमन सुहात न काहू ॥४॥

रोज नया आदर हो प्रतिदिन अनेक प्रकारकी पहुनाई हो ॥ ३ ॥ नित नया नगरमें आनन्द होता है, दशरथजीका जाना किसीको अच्छा नहीं लगता है ॥ ४ ॥

बहुत दिवस बीते इहि भाँती * जनु सनेह रजु बँधे बराती ॥५॥
कौशिक शतानन्द तब जाई * कही विदेह नृपहि समुझाई ॥६॥

इस प्रकार बहुत दिन गये, मानो बराती स्नेहकी रस्सीमें बँधे हैं ॥ ५ ॥ तब विश्वामित्रजी और शतानन्दने राजा जनकसे समझाकर कहा ॥ ६ ॥

अब दशरथ कहँ आयसु देहू ❋ यद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू ॥७॥
भलेहि नाथ कहि सचिव बुलाये ❋ कहि जय जीव शीश तिन नाये॥८॥

अब राजा दशरथजीको जानेकी आज्ञा दो, यद्यपि स्नेह नहीं छोड़ सकते ॥ ७ ॥ "बहुत अच्छा महाराज" यह कहकर राजा जनकजीने मंत्रियोंको बुलाया और उन्होंने 'जय जीव' कह शिर नवाया ॥ ८ ॥

दोहा—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाव ॥
भये प्रेमवस सचिव सुनि, विप्र सभासद राव ॥ ३७५ ॥

जनकजी बोले अवधनाथ जाना चाहते हैं; सो भीतर रनिवासमें खबर कर दो, यह सुनते ही सभाके बैठनेवाले मन्त्री ब्राह्मणादि प्रेमवश हो गये और राजा प्रेमवश चुप हो रहे॥३७५॥

पुरवासी सुन चली बराता ❋ पूछत विकल परस्पर बाता ॥१॥
सत्य गमन सुनि सब बिलखाने ❋ मनहुँ साँझ सरसिज कुँमिलाने ॥२॥

जब पुरवासियोंने सुना कि बरात जाती है तो व्याकुल हो परस्पर पूछने लगे ॥ १ ॥ सत्य जाना सुनकर सब व्याकुल हुए, मानों साँझको कमल कुम्हला गये ॥ २ ॥

जहँ जहँ आवत बसे बराती ❋ तहँ तहँ सिद्धि चली बहु भाँती॥३॥
विविध भाँति मेवा पकवाना ❋ भोजन साज न जाय बखाना ॥४॥

जहाँ-जहाँ बराती आनेके समय ठहरे थे, वहाँ-वहाँ अनेक प्रकारकी सामग्री चावल आदि चली ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारके मेवा, पकवान-भोजनका साज, जो बखाना नहीं जाता ॥ ४ ॥

भरि भरि बसह अपार कहारा ❋ पठये जनक अनेक सुआरा ॥५॥
तुरँग लाख रथ सहस पचीसा ❋ सकल सँवारे नख अरुशीशा ॥६॥

बहुतसे सामग्रीसे लदे हुए बैल और कहार अपार सामग्री सहित और अनेक रसोइये जनकजीने भेजे ॥५॥ लाख घोड़े, पचीस हजार रथ सब नखसे सिख तक सँवारे हुए ॥ ६ ॥

मत्त सहसदश सिंधुर साजे ❋ जिनहिं देखि दिशिकुञ्जर लाजे॥७॥
कनकवसन मणि भरि भरि याना❋ महिषी धेनु वस्तु विधि नाना ॥८॥

मतवाले दश हजार हाथी सजाये, जिनको देखकर दिशाओंके कुंजर लजाते थे ॥७॥ सुवर्ण वस्त्र, मणि अनेक विधिसे यान अर्थात् सवारियोंमें भर भरके और अनेक प्रकारकी भैंस गाय॥८॥

दोहा—दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि ॥
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि ॥ ३७६ ॥

असंख्य दहेज जनकजीने फिर दिया, जिनका लेखा नहीं हो सकता; जिनको देखकर लोकपति अर्थात् इन्द्र कुबेरके लोककी संपदा थोड़ी लगती है ॥ ३७६ ॥

सब समाज इहि भाँति बनाई ❋ जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥१॥
चलिहि बरात सुनत सब रानी ❋ विकल मीनगणजनु लघुपानी ॥२॥

---

१. कवित्त—वत्सयुत धेनु कामधेनु सम पंचलक्ष दंती श्याम श्वेतदशलक्ष मदभीने हैं। हरित सुरंग रंग रंगके तुरंग कोटि स्यंदन सपाद कोटि हेमके नवीने हैं। शिबिका अमोल रत्न जटित सुसप्त कोटि दासी दास अमित अनूप जे प्रवीने हैं। वासन वसन भरि भूषण अपार साज, रसिक बिहारी ये विदेह भूप दीने हैं। (रामरसायने)

सब सामग्री समाज इस प्रकार बनाकर जनकजीने अयोध्या भेज दिया ॥ १ ॥ जब रानियोंने सुना कि बरात जाती है तब ऐसी व्याकुल हो गयीं जैसे थोड़े पानीसे मछली ॥२॥

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं ❋ देइ अशीष सिखावन देहीं ॥३॥
होइहु संतत पियहि पियारी ❋ चिर–अहिवात अशीष हमारी ॥४॥

बारंबार जानकीजीको गोदमें लेती हैं और अशीष देकर शिक्षा देती हैं ॥ ३ ॥ सदापिय को प्यारी रहो; बहुत दिनों तक सुहाग रहे, यह हमारी आशीष है ॥ ४ ॥

सासु श्वसुर गुरु सेवा करहू ❋ पतिरुख लखि आयसु अनुसरहू ॥५॥
अति सनेहवश सखी सयानी ❋ ❋ नारि धर्म सिखवहिं मृदु बानी ॥६॥

सासु, श्वसुर, गुरुकी सेवा करना और पतिका रुख देखके आज्ञा मानना ॥ ५ ॥ अति स्नेहवश हो चतुर सखी मनोहर वाणीसे नारी धर्म सिखाती हैं ॥ ६ ॥

सादर सकल कुँवरि समुझाई ❋ रानिन बार बार उर लाई ॥७॥
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी ❋ कहहिं विरंचि रची कत नारी ॥८॥

आदर से सब कुमारियोंको समझाकर रानियोंने बारंबार हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥ बारंबार माता मिलती हैं और कहती हैं की ब्रह्माने क्यों स्त्री बनायी है, सच है बेटी किसी दिन पराये घरका धन होती है ॥ ८ ॥

दोहा–तेहि अवसर भाइन सहित, राम भानुकुलकेतु ॥
चले जनक मंदिर मुदित, विदा करावन हेतु ॥ ३७७ ॥

उसी समय भाइयों सहित रघुकुलमें पताकारूप श्रीरामचन्द्रजीने जनक मन्दिरमें प्रसन्न हो विदा करानेको चले ॥ ३७७ ॥

चारिउ भाइ सुभाय सुहाये ❋ नगर नारि नर देखन धाये ॥१॥
कोउ कह चलन चहततहहिं आजू ❋ कीन्ह विदेह विदाकर साजू ॥२॥

चारों भाई सहज ही शोभायमान थे, नगरके नारी नर देखने दौड़े ॥१॥ कोई बोले आजही जाना चाहते हैं, जनकजीने विदाकी तैयारी कर दी । लोगोंको राजा दशरथका जाना अच्छा नहीं लगता इससे राजा जनकजी कहते हैं कि, यह विदेह ही है इससे विदाका साज किया है वा अपने विदेहपनसे विदाकी इच्छा की है, वा सबके विदेह होनेका साज किया है आशय यह कि विदेह छोड़कर वियोगसे भर जाय; जैसे आगे कहा–"मिटीमहामर्यादज्ञानकी" ॥२॥

लेहु नयन भरि रूप निहारी ❋ प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥३॥
को जानै केहि सुकृत सयानी ❋ नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥४॥

इनका रूप नेत्र भरकर देख लो, ये राजाके चारों प्यारे पाहुने हैं ॥ ३ ॥ हे सयानी ! कौन जाने किस पुण्यसे विधाताने इन्हें लाकर नेत्रोंका अतिथि किया है ॥ ४ ॥

मरणशील जिमि पाव पियूखा ❋ सुरतरु लहै जनमकर भूखा ॥५॥
पाव नारकी हरि पद जैसे ❋ इनकर दर्शन हमकहँ तैसे ॥६॥

जैसे मरणशील अमृत पा ले और जन्मके भूखेको कल्पवृक्ष मिल जाय॥५॥नरकमें जानेवाले पापीको जैसे हरिपद अर्थात् वैकुण्ठ मिल जाय इसी प्रकार इनका दर्शन हम लोगोंको है ॥६॥

निरखि राम शोभा उर धरहू * निजमनफणि मूरति मणि करहू॥७॥
इहि विधि सबहिं नयनफल देता * गये कुँवर सब राज-निकेता ॥८॥

श्रीरामचंद्रजीकी शोभा देखकर हृदयमें धारण करो, अपना मन सर्प और श्रीरामचंद्रजीकी मूर्ति मणिके समान कर लो ॥ ७ ॥ इस प्रकार सबको नेत्रोंका फल देते हुए सब राजकुमार राज निकेतन नाम राजभवनमें गये ॥ ८ ॥

दोहा–रूपसिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठीं रनिवासु ॥
करहिं निछावर आरती, महामुदित मन सासु ॥ ३७८ ॥

रूप सागर चारों भाइयोंको देख रनिवासकी स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठीं, सासु मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर न्योछावर आरती करने लगीं ॥ ३७८ ॥

देखि राम छबि अति अनुरागीं * प्रेम विवश पुनि पुनि पदलागीं ॥१॥
रही न लाज प्रीति उर छाई * सहज सनेह वरणि किमि जाई॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और प्रेमवश होकर बारंबार चरणोंमें लगीं ॥१॥ लाज नहीं रही, हृदयमें प्रीति छा गयी; वह स्वाभाविक स्नेह कैसे वरणा जाय ? ॥२॥

भाइन सहित उबटि अन्हवाये * छरस अशन अति हेतु जिमाये॥३॥
बोले राम सुअवसर जानी * शील सनेह सकुचमय बानी ॥४॥

भाइयों सहितका उबटन कर स्नान कराया; छः रसयुक्त भोजन अति प्रेमसे जिमाये ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुअवसर जानकर शील, स्नेह, सकुच युक्त वाणी बोले ॥ ४ ॥

राउ अवधपुर चहत सिधाये * बिदा होन हम इहां पठाये ॥५॥
मातु मुदित मन आयसु देहू * बालक जानि करब नित नेहू ॥६॥

राजाजी अयोध्या जाना चाहते हैं, हमें यहां विदा होनेको भेजा है ॥ ५ ॥ माता ! मनमें प्रसन्न होकर आज्ञा दो और बालक जानकर नित्य प्रति प्रेम करती रहना ॥ ६ ॥

सुनत वचन बिलखेऊ रनिवासू * बोलि न सकहिं प्रेम वश सासू ॥७॥
हृदय लगाय कुँवरि सब लीन्ही * पतिन सौंपि विनती अति कीन्ही॥८॥

यह वचन सुनते ही रनिवास व्याकुल हो गया, सासु प्रेमवश कुछ कह नहीं सकतीं ॥७॥ सब कुमारियोंको रानियोंने हृदयसे लगाया, पतियोंको सौंप अत्यन्त विनती की ॥ ८ ॥

छन्द–करि विनय सिय रामहिं समर्पी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलिजाउँ राम सुजान तुम कह विदित गति सबकी अहै ॥
परिवार पुरजन मोहिं राजहिं प्राण प्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुशील सनेह लखि निज किंकरी करि मानबी ॥ ६१ ॥

विनय करके जानकीजी श्रीरामचन्द्रजीको सौंपी और हाथ जोड़कर बारंबार कहा--हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं बलि जाती हूँ आप चतुर हो और सबकी गति जानते हो, कुटुम्बियोंको, नगरवासियोंको, राजाको और मुझे जानकी प्राणोंके समान प्यारी हैं इसका सुन्दर शील स्नेह विचार कर इसे अपनी दासी करके मानिये ॥ ६१ ॥

सोरठा–तुम परिपूरण काम, ज्ञानि–शिरोमणि भावप्रिय ॥
जन गुण ग्राहक राम, दोषदलन करुणायतन ॥ ४० ॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप कामनाओंसे परिपूर्ण, ज्ञानियोंमें शिरोमणि, भावप्रिय, भक्तोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाले, दोषको दूर करनेवाले और करुणाके घर हो ॥ ४० ॥

अस कहि रही चरण गहि रानी ❋ प्रेमपंक जनु गिरा समानी ॥१॥
सुनि सनेह सानी वर बानी ❋ बहुविधि राम सासु सन्मानी ॥२॥

ऐसा कह रानीने चरण पकड़ लिये मानों प्रेमकी पंक (कीच) में वाणी समा गई ॥१॥ स्नेहमें सनी सुन्दर वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने बहुत प्रकार सासुका सम्मान किया ॥२॥

राम विदा मांगत कर जोरी ❋ कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी ॥३॥
पाय अशीष बहुरि शिर नाई ❋ भाइन सहित चले रघुराई ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विदा मांगी और बारंबार प्रणाम किया ॥ ३ ॥ आशीष पाय शिर नवाय भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजी चले ॥ ४ ॥

मंजु मधुर मूरति उर आनी ❋ भई सनेह शिथिल सब रानी ॥५॥
पुनि धीरज धरि कुवरि हँकारी ❋ बार बार भेंटहि महतारी ॥६॥

कोमल माधुरी मूर्ति हृदयमें धारण कर सब रानी स्नेहसे सिथिल हो गयीं ॥ ५ ॥ फिर धीरज धर कुमारियोंको बुलाकर बारंबार मिलती हैं ॥ ६ ॥

पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी ❋ बढ़ी–परस्पर प्रीति न थोरी ॥७॥
पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई ❋ बालवत्स जनु धेनु लवाई ॥८॥

माता पहुँचाती हैं फिर उनके लौट आनेसे फिर मिलती हैं परस्पर प्रीति भी थोड़ी न बढ़ी अर्थात् अत्यन्त बढ़ गयी ॥ ७ ॥ बारबार सखियोंसे अलग-अलग मिलती हैं जैसे जल्दीकी ब्याई हुई गाय अपने वत्ससे मिलती है ॥ ८ ॥

दोहा–प्रेम विवश नर नारि सब, सखिन सहित रनिवास ॥
मानहुँ कीन्ह विदेह पुर, करुणा बिरह निवास ॥३७९॥

प्रेमके वशमें नर-नारी और सखियों सहित रनिवास ऐसे हो गया मानों जनकपुरमें करुणा और विरहने (बिछुड़नेके दुःखसे) निवास किया हो ॥ ३७९ ॥

शुक सारिका जानकी ज्याये ❋ कनक पींजरन राखि पढ़ाये ॥१॥
व्याकुल कहहिं कहा वैदेही ❋ सुनि धीरज परिहरै न केही ॥२॥

तोते मैने जो जानकीजीने पाले थे और सोनेके पींजरेमें रखकर पढ़ाए थे ॥ १ ॥ व्याकुल होकर कहने लगे की जानकी कहां जाती हैं ? यह सुनकर सबके धीरज छूटते हैं कोई धीरज धारण नहीं करता ॥ २ ॥

भये विकल खग मृग इहि भांती ❋ मनुज दशा कैसे कहि जाती ॥३॥
बन्धु समेत जनक तब आये ❋ प्रेम उमंगि लोचन जल छाये ॥४॥

जब खग मृग इस प्रकारसे व्याकुल हुए तो मनुष्योंकी दशा कैसे कही जाय ? ॥३॥ तब जनकजी भाई (कुशकेतु) सहित आये, प्रेमसे उमड़कर नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ४ ॥

सीय विलोकि धीरता भागी * रहे कहावत परम विरागी ॥५॥
लीन्ह राउ उर लाय जानकी * मिटी महा मर्याद ज्ञानकी ॥६॥

जानकीजीको देखकर धीरता भाग गयी; यद्यपि परम वैरागी कहाते थे॥५॥ राजाने जानकीजीको हृदयसे लगा लिया, वह महाज्ञानकी मर्यादा मिट गई। उस समय धीरज न रह सका जब विदेहकी यह दशा है तो साधारण गृहस्थोंकी बेटी विदा होनेके समयमें क्या दशा होती होगी? ज्ञान वैराग्य भक्तिके साधन हैं जानकीजी रामभक्तिस्वरूप हैं सिद्धि होनेपर साधन छूटते हैं इस कारण राजा सीतारूपी रामभक्तिको प्राप्त हो ज्ञान वैराग्यसे पृथक् हो गए ॥ ६ ॥

समझावत सब सचिव सयाने * कीन्ह विचार अनवसर जाने ॥७॥
बारहिं बार सुता उर लाई * सजि सुन्दर पालकी मँगाई ॥८॥

सब चतुर मन्त्री समझाने लगे, तब असमय जान विचार किया अर्थात् धीरज धरा ॥ ७ ॥ बार बार सुताको हृदयसे लगाया, सुन्दर पालकी सजाकर मँगाई ॥ ८ ॥

दोहा-प्रेम विवश परिवार सब, जानि सुलग्न नरेश ॥
कुँवरि चढ़ाई पालकी, सुमिरे सिद्धि गणेश ॥ ३८० ॥

सकल परिवार प्रेमके वशमें हो गये, राजाने अच्छा लग्न देख सिद्धि गणेशका स्मरण किया और जानकीको पालकीमें चढ़ाया ॥ ३८० ॥

बहु विधि भूप सुतहिं समझाई * नारिधर्म कुलरीति सिखाई ॥१॥
दासी दास दिये बहुतेरे * शुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥२॥

बहुत प्रकारसे राजाने जानकीजी और सब पुत्रियोंको समझाया, नारीधर्म और कुलरीति सिखाई॥१॥ बहुतसे दासी-दास और सेवक जो कि, जानकीजीके विश्वासपात्र वा प्रिय थे दिये॥२॥

सीय चलत व्याकुल पुरवासी * होहिं सकुन शुभमंगलराशी ॥३॥
भूसुर सचिव समेत समाजा * चले संग पहुँचावन राजा ॥४॥

जानकीजीके चलनेसे पुरवासी व्याकुल हो गये और मङ्गलदायक सुन्दर शकुन होने लगे ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मन्त्रियोंके समाज सहित राजा पहुँचानेके लिए चले ॥ ४ ॥

समय विलोकि बाजने बाजे * रथ गज बाजि बरातिन साजे ॥५॥
दशरथ विप्र बोलि सब लीन्हे * दान मान परिपूरण कीन्हे ॥६॥

समय देखकर बाजे बजने लगे और बरातियोंने रथ, हाथी, घोड़े सजाये ॥ ५ ॥ दशरथजीने सब ब्राह्मणोंको बुलाया और दानमानसे परिपूर्ण किया ॥ ६ ॥

चरण सरोज धूरि धरि शीशा * मुदित महीपति पाय अशीशा॥७॥
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना * मंगलमूल शकुन भये नाना ॥८॥

ब्राह्मणोंके चरण कमलकी धूरि शिरपर धरके राजा आशीष पाय प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ गणेशजीका स्मरण कर चले, मंगलमूल अनेक शकुन हुए ॥ ८ ॥

दोहा-सुर प्रसून वर्षहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान ॥
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाय निशान ॥ ३८१ ॥

देवता प्रसन्न होकर फूल वर्षाने लगे, अप्सरा गाने लगीं, राजा दशरथजी प्रसन्न हो नगाड़े बजवाकर अयोध्याको चले ॥ ३८१ ॥

नृप करि विनय महाजन फेरे ❋ सादर सकल माँगने टेरे ॥१॥
भूषण बसन बाजि गज दीन्हे ❋ प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ॥२॥

राजाने विनय कर ब्राह्मणादि महान् पुरुषोंको लौटाया और फिर मांगने वालोंको आदरसे बुलाया। 'मांगनेटेरे' कहनेसे यह विदित होता है कि जनकपुरमें मँगता भी ऐसे थे कि बुलानेसे आते थे ॥ १ ॥ गहने, वस्त्र, हाथी, घोड़े देकर प्रेमसे संतुष्ट करके सबको खड़ा किया ॥२॥

बार बार विरुदावलि भाखी ❋ फिरे सकल रामहिं उर राखी ॥३॥
बहुरि बहुरि कोशलपति कहहीं ❋ जनक प्रेमवश फिरन न चहहीं॥४॥

वे बार बार वंशकी प्रभुता वर्णन करके श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारण कर फिरे अर्थात् वापस चले ॥३॥ बार बार दशरथजी कहते हैं किंतु जनकजी प्रेमके वश फिरा नहीं चाहते॥४॥

पुनि कह भूपति वचन सुहाये ❋ फिरिय महीप दूरि बड़ि आये ॥५॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े ❋ प्रेम प्रवाह विलोचन बाढ़े ॥६॥

फिर राजाने शोभायमान वचन कहे-राजन्! फिर जाओ, बहुत दूर आ गए ॥ ५ ॥ फिर राजा उतरके खड़े हो गये, प्रेमका जल नेत्रोंमें भर आया ॥ ६ ॥

तब विदेह बोले कर जोरी ❋ वचन सनेह सुधा जनु बोरी ॥७॥
करौं कवन विधि विनय बनाई ❋ महाराज मोहिं दीन्ह बड़ाई ॥८॥

फिर जनकजी हाथ जोड़कर बोले-मानो वचन स्नेहरूपी अमृतमें बोर दिये हैं ॥ ७ ॥ आपकी विनती किस प्रकार बनाकर करूँ महाराजने मुझे बड़ाई दी ॥ ८ ॥

दोहा-कोशलपति समधी सजन, सन्माने सब भाँति ॥
मिलन परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति ॥ ३८२ ॥

दशरथ महाराजने सब प्रकार से सज्जन समधी जनकजीका सम्मान किया, वह परस्पर मिलना और अत्यन्त विनय प्रीति समाती नहीं ॥ ३८२ ॥

मुनि मण्डलिहि जनक शिर नावा❋ आशिर्वाद सबहिंसन पावा ॥१॥
सादर पुनि भेंटे जामाता ❋ रूपशील गुणनिधि सब भ्राता ॥२॥

मुनिमण्डलीको जनकजीने शिर नवाया, सबसे आशिर्वाद पाया ॥ १ ॥ फिर प्रेमसे अपने जामाताओंसे मिले; वे सब भाई रूप शील और गुणके निधि (समुद्र) थे ॥ २ ॥

जोरि पंकरुह पाणि सुहाये ❋ बोले वचन प्रेम जनु जाये ॥३॥
राम करौं केहि भाँति प्रशंसा ❋ मुनि महेश मन मानस हंसा ॥४॥

जनकजी सुन्दर कमल समान हाथ जोड़कर मानों प्रेमके भरे हुए वचन बोले ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचंद्र! किस प्रकारसे प्रशंसा करूँ? आप तो मुनि और शिवजीके मनरूपी मान-सरोवरके हंस हो ॥ ४ ॥

करहिं योग योगी जेहि लागी ❋ कोह मोह ममता मद त्यागी ॥५॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी ❋ चिदानन्द निर्गुण गुण राशी ॥६॥

जिनके निमित्त योगी योग करते हैं, क्रोध, ममता, मद छोड़ते हैं ॥ ५ ॥ जो व्यापक ब्रह्म निराकार अविनाशी हैं, सदा आनन्दस्वरूप, निर्गुण और गुणकी राशि हैं ॥ ६ ॥

मन समेत जेहि जान न बानी * तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥७॥
महिमा निगम नेति करि कहहीं * जो तिहुँकाल एकरस रहहीं ॥८॥

मनसमेत जिसको वाणी नहीं जानती और सब अनुमानसे तार्किक जिसकी तर्कना नहीं कर सकते जो सब न्यायके अनुमानसे परे हैं ॥ ७ ॥ जिनकी महिमा वेद 'नेति-नेति' कहते हैं और तीनों कालमें एकरस रहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—नयन विषय मो कहँ भयऊ, सो समस्त सुखमूल ॥
सबहिं सुलभ जग जीव कहँ, भये ईश अनुकूल ॥ ३८३ ॥

जो समस्त सुखके मूल थे, वे मेरे नेत्रों के सामने आये और जगत्के जीवोंको तुम्हारी प्राप्ति सुलभ करनेको शंकर अनुकूल हुए । अथवा हे ईश्वर ! आपने अनुकूल होकर यह सुख जगत्के सब जीवोंके अनुकूल कर लिया ॥ ३८३ ॥

सबहिं भांति मोहिं दीन्ह बड़ाई * निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥१॥
होइँ सहस दश शारद सेखा * करहिं कल्प कोटिन भरि लेखा ॥२॥

सब प्रकारसे बड़ाई दी और अपना भक्त जानकर अपनाय लिया ॥ १ ॥ जो दश हजार सरस्वती, शेषजी हों और करोड़ों कल्पभर तक लेखा करें ॥ २ ॥

मोर भाग्य राउर गुण गाथा * कहि न सिराहि सुनिय रघुनाथा ॥३॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे * तुम रीझत सनेह सुठि थोरे ॥४॥

तो मेरा भाग्य और तुम्हारे गुणों की कथा वे नहीं कह सकेंगे ॥३॥ मैं कुछ कहूँ तो मुझे एकही बल है, आप थोड़ेसे पवित्र स्नेहसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, यथा-"रीझत राम सनेह निसोते" अथवा मैं क्या कहूँ कि आपकी बलि जाऊँ, मेरे तो तुम एकही हो थोड़े स्नेहसे रीझ जाते हो॥४॥

बार बार मागौं कर जोरे * मन परिहरे चरण जनि भोरे ॥५॥
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे * पूरण काम राम परितोषे ॥६॥

बारबार हाथ जोड़कर मांगता हूँ कि आपको मन भूलकर भी न छोड़े ॥ ५ ॥ अच्छे वचन सुन कर मानों प्रेमसे-पुष्ट हुए कामनाओंके पूर्ण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने जनकजीको अपने कोमल वचनसे संतुष्ट किया ॥ ६ ॥

करि वर विनय ससुर सन्माने * पितु कौशिक वसिष्ठ समजाने ॥७॥
विनती बहुरि भरतसन कीन्ही * मिलि सप्रेम पुनि आशिष दीन्ही ॥८॥

विनती कर श्वसुरका सम्मान किया, पिता कौशिक और वसिष्ठके समान उन्हें जाना राम जानकी एक अङ्ग हैं, इस कारण जनकजीको पिता समान जाना; विश्वामित्रके समान इस हेतुसे जाना कि जैसे उनके हेतु विजय मिली ऐसे जानकीजी जो विजयरूपा हैं सो उनसे मिलीं, प्रथम विद्या वसिष्ठसे मिली है इस लिए जानकीजी जो ब्रह्मविद्यारूप हैं उनकी प्राप्तिसे वसिष्ठ समान जाना ॥ ७ ॥ फिर राजाने भरतसे विनतीकी, फिर प्रेमसे मिलके आशीष दी ॥ ८ ॥

दोहा—मिले लषण रिपुसूदनहिं, दीन्ह अशीश महीश ॥
भये परस्पर प्रेम वश, फिर फिर नावहिं शीश ॥ ३८४ ॥

फिर राजा लक्ष्मण और रिपुसूदनसे मिले, आशीष दी, परस्पर प्रेमके वश हो बारंबार शिर नवाते हैं ॥ ३८४ ॥

बार बार करि विनय बड़ाई * रघुपति चले संग सब भाई ॥१॥
जनक गहे कौशिकपद जाई * चरण रेणु शिर नयनन लाई ॥२॥

बारंबार विनय और बड़ाई कर श्रीरामचन्द्रजी सब भाइयों सहित चले ॥ १ ॥ जनकजीने विश्वामित्रके चरण छुए और चरणोंकी धूरि शिर आखोंमें लगायी ॥ २ ॥

सुनु मुनीश वर दर्शन तोरे * अगम न कछु प्रतीति मन मोरे॥३॥
जो सुखसुयश लोकपति चहहीं * करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥४॥

सुनो मुनिराज ! तुम्हारे दर्शनसे मुझे कुछ अगम नहीं है यह मुझे विश्वास है ॥ ३ ॥ जिस सुखके मनोरथ करनेमें लोकपति इन्द्रादिक अपने को लघु जान लजाते हैं ॥ ४ ॥

सो सुख सुयस सुलभ मोहिं स्वामी* सब विधि तव दर्शन अनुगामी ॥५॥
कीन्ह विनय पुनि पुनि शिरनाई * फिरे महीपति आशिष पाई ॥६॥

हे स्वामी ! वह सुख मुझे सब प्रकारसे सुलभ है क्योंकि तुम्हारे दर्शनका अनुगामी है ॥ ५ ॥ बारंबार चरणोंमें शिर नवाय विनयकी, राजा आशीर्वाद पाकर फिरे ॥ ६ ॥

चली बरात निशान बजाई * मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥७॥
रामहिं निरखि ग्राम नर नारी * पाय नयनफल होहिं सुखारी ॥८॥

बरात निशान बजाय चली और छोटे-बड़े सब प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ गाँवके नर-नारी श्रीरामचन्द्रजीको देखकर नेत्रोंका फल पाय सुखी होते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-बीच बीच वर वास करि, मग लोगन सुख देत ॥
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ॥ ३८५ ॥

बीच-बीचमें वास करती, मार्गके लोगोंको सुख देती अयोध्याके निकट पवित्र दिनमें बरात आ पहुँची ॥ ३८५ ॥

हने निशान पणव बहु बाजे * भेरि शंखध्वनि हय गज साजे॥१॥
झांझ मृदंग डिमडिमा सुहाई * सरस राग बाजे सहनाई ॥२॥

नगारे और बाजे बजने लगे, दुंदुभी, शंखध्वनि हुई; हाथी घोड़े सजाये ॥ १ ॥ झांझ मृदंग, डिमडिम, सहनाई ये बजने लगे जिनमें अपार राग हैं ॥ २ ॥

पुरजन आवत अकनि बराता * मुदित सकल पुलकावलि गाता॥३॥
निज निज सुन्दर सदन सँवारे * हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥४॥

पुरवासियोंने बरात का आना सुना तो सब प्रसन्न हो गये, शरीरमें प्रसन्नतासे रोमांच हो गये ॥३॥ सबने अपने-अपने घर सँवारे, बाजार, गली, चौराहे, नगरके दरवाजे सुधारे ॥४॥

गली सकल अरगजा सिंचाई * जहँ तहँ चौहट चारु पुराई ॥५॥
बना बजार न जात बखाना * तोरन केतु पताक बिताना ॥६॥

सब गली अरगजे चंदनादिसे सिंचाई और जहां-तहां सुन्दर चौक पुरवाये ॥ ५ ॥ ऐसा सुन्दर बजार बना जो बखाना नहीं जाता, तोरन, ध्वजा, पताका, चँदवा लगा दिये ॥ ६ ॥

सफल पूगिफल कदलि रसाला * रोपे बकुल कदंब तमाला ॥७॥
लगे सुभग तरु परसत धरणी * मणिमय आलवालकलकरणी ॥८॥

फलवाले सुपारी, केले, आम, बकुल, कदंब, तमालके वृक्ष जहाँ तहाँ लगाये ॥ ७ ॥ लगे हुए ये सुन्दर वृक्ष(फलोंके बोझसे झुके हुए) पृथ्वीको छूते थे, वा ऐसे वृक्ष जो धरणीको छूते ही उग गये और उनके आलवाल (क्यारी वा थाले) मणिमय कारीगरी युक्त बने हैं ॥८॥

दोहा-विविध भाँति मंगल कलश, गृह गृह रचे सँवारि ॥
सुरब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुवर पुरी निहारि ॥ ३८६ ॥

अनेक प्रकारके मंगलकलश घर घर संवार रखे हैं श्रीरामचन्द्रजीकी पुरीको देखकर ब्रह्मादि देव ललचाते हैं ॥ ३८६ ॥

भूपभवन तेहि अवसर सोहा * रचना देखि मदन-मन मोहा ॥१॥
मंगल शकुन मनोहरताई * ऋद्धि सिद्धि सुख संपदा सुहाई ॥२॥

राजाका घर उस समय ऐसा शोभायमान था कि; जिसकी रचना देख कामदेवका मन मोहित होता था ॥१॥ मंगलके शकुन, मनोहरता ऋद्धि, सिद्धि और सुख सम्पदा शोभित होती थीं ॥२॥

जनु उछाह सब सहज सुहाये * तनु धरि धरि दशरथ गृह आये ॥३॥
देखन हेतु राम वैदेही * कहहु लालसा होय न केही ॥४॥

मानों सब स्वाभाविक सुन्दर उत्साह शरीर धारण करके दशरथके घर आये हैं ॥ ३ ॥ राम सीताके देखनेकी किसकी इच्छा न हो ? ॥ ४ ॥

यूथ यूथ मिलि चलीं सुवासिनि * निजछबिनिदरहिंमदनविलासिनि ॥५॥
कलश सुमंगल साजि आरती * गावहिं जनु बहु वेष भारती ॥६॥

यूथके यूथ मिलकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ चलीं जो अपनी छबिसे रतिको लजाती हैं ॥५॥ कलश और आरती सजाकर मानो बहुत वेष धारण किये सरस्वती सुन्दर मंगल गीत गाती हैं ॥६॥

भूपति भवन कुलाहल होई *जाय न वरणि समय सुख सोई ॥७॥
कौशल्यादि राम-महतारी * प्रेम विवश तनु दशा बिसारी ॥८॥

राजाके घरमें कोलाहल होता है, उस समयका सुख वर्णा नहीं जाता ॥ ७ ॥ कौशल्या-सुमित्रादिक जो श्रीरामचन्द्रकी माताएँ हैं वे प्रेमके मारे शरीरकी दशा भूल गयीं ॥ ८ ॥

दोहा-दिये दान विप्रन विपुल, पूजि गणेश पुरारि ॥
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाय पदारथ चारि ॥ ३८७ ॥

ब्राह्मणोंको अनेक भांति दान दिये, गणेश, पार्वतीको पूजा; जिस प्रकार परम दरिद्र चार पदार्थ पाकर प्रसन्न हो वैसे माता बहुओं सहित पुत्रोंका आगमन सुन प्रसन्न हुई ॥ ३८७ ॥

प्रेम प्रमोद विवश सब माता *चलहिं न चरण शिथिल भये गाता ॥१॥
राम दरशहित सब अनुरागीं * परिछिन साज सजन सब लागीं ॥२॥

सब माताएँ अधिक प्रेम और आनन्दसे ऐसी विह्वल हुई कि चला नहीं जाता, सबका शरीर शिथिल हो गया ॥ १ ॥ रामजीके दर्शनके हेतु सब प्रसन्न हो इच्छा करने लगीं और आरती की सामग्री सजाने लगीं ॥ २ ॥

विविध विधान बाजने बाजे * मंगल मुदित सुमित्रा साजे ॥३॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला * पान पूगिफल मंगल मूला ॥४॥

अनेक प्रकारके बाजे बजे, प्रसन्न हो सुमित्राने मंगल सजाये ॥ ३ ॥ मंगलके मूल जैसे हल्दी, दूब, दही, सुन्दर पत्ते, फूल पान, सुपारी ॥ ४ ॥

अक्षत अंकुर रोचन लाजा * मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ॥५॥
छुहे पुरटघट सहज सुहाये * मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये ॥६॥

चावल, अंकुरे हुए धान्य, गोरोचन, खीलें,तुलसीकी मनोहर मञ्जरी शोभायमान थी॥५॥ छुहे (रंगे) हुए स्वभावसे ही सुहावने पुरघट-सोनेके घड़े ऐसे बनाये थे कि, मानों कामदेवने संकोचसे अपने रहनेको नीड़ (घोंसला) अर्थात् निवास स्थान बनाये हैं ॥ ६ ॥

सकुन सुगन्ध न जाहिं बखानी * मंगल सकल सजहिं सब रानी ॥७॥
रची आरती विविध विधाना * मुदित करहिं कल मंगल गाना ॥८॥

शकुन और सुगंधकी वस्तु जो संग्रहकी गयीं वे बखानी नहीं जाती, सब रानी सब मंगल सजाने लगीं ॥ ७ ॥ अनेक प्रकारसे आरती रचीं और प्रसन्न हो मंगल गान करने लगीं ॥८॥

दोहा-कनकथार भरि मंगलन, कमल करन लिये मात ॥
चलीं मुदित परिछन करन, पुलकि पल्लवित गात ॥ ३८८ ॥

सब माताएँ सोनेके थालमें अनेक मंगलोंके पदार्थ भरे और कमलसे हाथोंमें लिये हुए प्रसन्नतासे पुलकित शरीर होनेसे शिथिल हुई श्रीरामचन्द्रकी आरती करने चलीं ॥ ३८८ ॥

धूप धूम नभ मेचक भयऊ * सावन घन घमंड जनु ठयऊ ॥१॥
सुरतरु सुमनमाल सुर बर्षहिं * मनहु बलाक अवलि मन कर्षहिं ॥२॥

धूपके धुएँसे आकाश काला हो गया जैसे सावनके बादल आकाशमें छाये हों ॥ १ ॥ देवता कल्पवृक्षके फूलोंकी माला बरसाते हैं मानों बकुलोंकी पंक्ति मनको खींचती है ॥ २ ॥

मन्जुल मणिमय बन्दनवारे * मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे ॥३॥
प्रगटहिं दुरहिं अटनपर भामिनि * चारुचपल जनु दमकहिं दामिनि ॥४॥

सुन्दर मणियोंके बन्दनवार बँधे हुए मानों इन्द्रने धनुष सँवारे हैं ॥३॥ जो सुन्दरी नारियां अटारियों पर प्रकट होती हैं और छिपती हैं वे ही मानों चपल बिजली चमकती हैं ॥ ४ ॥

दुन्दुभि धुनि घन गर्जहिं घोरा * याचक चातक दादुर मोरा ॥५॥
सुर सुगन्ध शुचि बर्षहिं बारी * सुखी सकल ससि पुर नर नारी ॥६॥

नगाड़ोंका जो घोर शब्द है वही बादलोंकी घोर गर्जना है और याचकोंका पपीहे, मेढक और मोरोंकासा होता है । चातक कहनेका भाव यह है कि, जैसे चातक मेघकी सदा इच्छा करता है ऐसे ही याचक श्रीरामचन्द्रके घनश्यामरूपके सदा अभिलाषी हैं । दादुरका भाव यह है कि, जैसे दादुर लगातार बोलता जाता है ऐसे ही याचक भी जय जय पुकारते ही चले जाते हैं, मोर जैसे मेघका शब्द सुन नृत्य करता है इसी प्रकार याचक प्रसन्न हो आना सुन मग्न हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देवतागण सुगंधयुक्त जल बरसाते हैं; सब पुरके नरनारी मानो ससि (सस्य) अर्थात् खेती हैं जो वर्षा में सुखी हो रहे हैं ॥ ६ ॥

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा * पुर प्रवेश रघुकुलमणि कीन्हा ॥७॥
सुमिरि शंभु गिरिजा गणराजा * मुदित महीपति सहित समाजा॥८॥

समय जानके गुरुने आज्ञा दी, तब रघुकुलमणि (रामजी) ने नगरमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ शिव-पार्वती; गणेशजीका स्मरण कर राजा समाजसहित प्रसन्न हो चले ॥ ८ ॥

दोहा—होहिं शकुन वर्षहिं सुमन, सुर दुन्दुभी बजाय ॥
विबुधवधू नाचहिं मुदित, मन्जुल मंगल गाय ॥ ३८९ ॥

शकुन होते हैं; फूल बरसते हैं, देवता दुन्दुभी बजाते हैं, अप्सराएं प्रसन्नतासे नाचतीं और मनोहर मंगल गाती हैं ॥ ३८९ ॥

मागध सूत बंदि नट नागर * गावहिं यश तिहुँलोक उजागर॥१॥
जयध्वनि विमल वेद वर बानी * दशदिशि सुनिय सुमंगल सानी॥२॥

मागध, सूत, बन्दी, चतुर नट, त्रिलोकीमें प्रसिद्ध रघुनाथजीके यशको गाने लगे ॥ १ ॥ मंगलदायक जयध्वनि और निर्मल वेदध्वनि दशों दिशाओंमें सुनायी देती थी ॥ २ ॥

विपुल बाजने बाजन लागे * नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥३॥
बने बराती बरनि न जाहीं * महामुदित मन सुख न समाहीं॥४॥

अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे आकाशमें देवता, नगरमें लोग प्रसन्न हुए॥३॥ सब बराती सजे हुए जिनका वर्णन नहीं हो सकता,बड़े प्रसन्न मन हो रहे कि,वह सुख कहीं नहीं समाता॥४॥

पुरवासिन तब राउ जुहारे * देखत रामहिं भये सुखारे ॥५॥
करहिं निछावरि मणिगण चीरा * वारि विलोचन पुलक शरीरा ॥६॥

तब पुरवासियोंने आकर दशरथजीको जुहार किया और रामचंद्रजीको देख सुखी हुए ॥ ५ ॥ मणिसमूह वस्त्र इत्यादिकी निछावरें करते हैं,नेत्रोंमें प्रेमका जल और शरीर पुलकित हो रहा है ॥ ६ ॥

आरति करहिं मुदित पुर नारी * हरषहिं निरखि कुँवर वर चारी॥७॥
शिबिका सुभग ओहार उघारी * देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥८॥

पुरकी नारी आरती करतीं और चारों (दूल्हे) कुमारोंको देख प्रसन्न होती हैं ॥७॥ शोभायमान पालकीका परदा उठाकर दुलहिनोंको देखकर सुखी होती हैं ॥ ८ ॥

दोहा—इहि विधि सबहीं देत सुख, आये राजदुआर ॥
मुदित मातु परिछन करहिं, वधुन समेत कुमार ॥ ३९० ॥

इस प्रकारसे सबको सुख देते राजद्वार पर आये, रानियों समेत माता प्रसन्न होकर बहुओं सहित कुमारोंकी आरती करती हैं ॥ ३९० ॥

करहिं आरती बारहिं बारा * प्रेम प्रमोद कहै को पारा ॥१॥
भूषण मणि पट नाना जाती *करहिं निछावरि अगणित भांती ॥२॥

बार-बार आरती करती हैं, उस प्रेम आनंदको कहकर कौन पार पा सकता है ? ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके गहने मणि-वस्त्र अनेक विधिसे निछावर करती हैं ॥ २ ॥

वधुन समेत देखि सुत चारी * परमानन्द मगन महतारी ॥३॥

पुनि पुनि सीय-राम छबि देखी ❋ मुदित सफल जग जीवन लेखी॥४॥

बहुओं समेत चारों पुत्रोंको देख माताएँ बड़े आनंदसे मग्न हुई ॥ ३ ॥ बार-बार प्रसन्न हो सीता रामजीकी छबि देख जगत्में जीनेका फल मानती हैं ॥ ४ ॥

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाहीं ❋ गान करहिं निजसुकृत सराहीं॥५॥
वर्षहिं सुमन क्षणहि क्षण देवा ❋ नाचहिं गावहिं लावहि सेवा ॥६॥

सखियाँ जानकीजीका मुख बारबार देखती हैं और अपने भाग्यकी बड़ाई कर गाती हैं ॥५॥ देवता क्षण-क्षण फूल बरसाते हैं और अपनी सेवा नृत्य गानसे जताते हैं ॥ ६ ॥

देखि मनोहर चारिउ जोरी ❋ शारद उपमा सकल ढँढोरी ॥७॥
देत न बनहि निपट लघु लागी ❋ इकटक रही रूप अनुरागी ॥८॥

चारों जोड़ी मनोहर देखकर सरस्वतीने सब उपमा ढूँढ़ी ॥७॥ कोई उपमा देते नहीं बनती, सब छोटी लगती हैं, अतः उस रूपके अनुरागमें शारदा टकटकी लगाये खड़ी रह गयी॥८॥

दोहा–निगम नीति कुलरीति करि, अर्घ्य पांवड़े देत ॥
वधुनसहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाय निकेत ॥ ३९१ ॥

वेदकी रीति, कुलकी रीति कर, अर्घ्य पांवड़े देकर बहुओं सहित पुत्रोंकी आरती कर रानी घरको लिवा ले चलीं ॥ ३९१ ॥

चारि सिंहासन सहज सुहाये ❋ जनु मनोज निज हाथ बनाये ॥१॥
तिनपर कुँवर कुँवरि बैठारे ❋ सादर पाँय पुनीत पखारे ॥२॥

चार सिंहासन सहजसे शोभायमान मानो कामदेवने अपने हाथसे बनाये हैं ॥ १ ॥ उन पर सब कुमारों और बहुओंको बैठाया, आदरसे पवित्र चरण धोये ॥ २ ॥

धूप दीप नैवेद्य वेद विधि ❋ पूजे वर दुलहिन मंगल निधि ॥३॥
बारहिं बार आरती करहीं ❋ व्यजन चारु चामर शिर ढरहीं॥४॥

धूप, दीप, नैवेद्य वेदकी विधिसे मंगल निधान वर दुलहिनका पूजन किया ॥ ३ ॥ बारं-बार आरती करें सुन्दर पंखे और चमर मस्तक पर ढुरने लगे ॥ ४ ॥

वस्तु अनेक निछावरि होहीं ❋ भरी प्रमोद मातु सब सोहीं ॥५॥
पावा परम तत्व जनु योगी ❋ अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी ॥६॥

अनेक वस्तु न्योछावर होती हैं और आनंद भरी सब माताएँ सोहती हैं ॥५॥ जैसे योगीने परम तत्त्व पाया जैसे सदा रोगीने अमृत पाया हो ॥ ६ ॥

जनम रंक जनु पारस पावा ❋ अन्धहिं लोचन लाभ सुहावा ॥७॥
मूक वदन जनु शारद छाई ❋ मानहुँ समर शूर जय पाई ॥ ८॥

जन्मके दरिद्रने मानो पारस पा लिया; वा जैसे अन्धेको नेत्र मिल जायँ ॥ ७ ॥ अथवा जैसे गूँगेको वाणी प्राप्त हो जाय अथवा जैसे युद्धमें शूरने जय पाई हो ॥ ८ ॥

दोहा–इहि सुखते शतकोटि गुण, पावहिं मातु अनन्द ॥
भाइन सहित विवाह घर, आये रघुकुलचन्द ॥ ३९२ ॥

इस सुखसे भी सौ कोटिगुण सुख माताओंने पाया; जिस समय सब भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजी ब्याह कर (द्वितीयाको) घर आये ॥ ३९२ ॥

दोहा–लोकरीति जननी करहिं वर दुलहिन सकुचाहिं ॥
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहिं मुसुकाहिं ॥३९३॥

लोकरीति माताएँ करती हैं, वर दुलहिन सकुचाते हैं, बड़ा आनंद मंगल देखकर श्रीरामचन्द्रजी मनमें मुसकाते हैं ॥ ३९३ ॥

देव पितर पूजे विधि नीकी * पूजी सकल वासना जीकी ॥१॥
सबहिं बंदि माँगहिं बरदाना * भाइन सहित राम कल्याना ॥२॥

देवता पितर भली प्रकार पूजे, मनकी सब वासना पूरी हुई ॥ १ ॥ रानी सब देवताओंको मनाय यही वर मांगती हैं कि, भाइयों सहित श्रीरामचन्द्रजीका मंगल हो ॥ २ ॥

अन्तरहित सुर आशिष देहीं * मुदित मातु अञ्चल भरि लेहीं॥३॥
भूपति बोलि बरातिन लीन्हे * यान बसन मणि भूषण दीन्हे ॥४॥

अन्तर्द्धान होकर देवता आशीर्वाद देते हैं, माता प्रसन्न हो अंचल पसार लेती हैं ॥ ३ ॥ राजाने बरातियोंको बुलाया, सवारी, वस्त्र, मणि, गहने भेंट दिये ॥ ४ ॥

आयसु पाय राखि उर रामहिं *मुदित गये सब निज निज धामहिं॥५॥
पुर नर नारि सकल पहिराये * घर घर बाजहिं अनँद बँधाये ॥६॥

आज्ञा पाय रामजीको हृदयमें रख प्रसन्न हो सब अपने-अपने धामको गए ॥५॥ फिर राजाने अयोध्याके नर-नारियोंको पहरावनी दी घर-घर आनंदके बधाए बजने लगे ॥ ६ ॥

याचक जन याचहिं जोइ जोई * प्रमुदित राउ देहि सोइ सोई ॥७॥
सेवक सकल बजनिया नाना * पूरण किये दान सम्माना ॥८॥

मांगनेवाले जो-जो वस्तु मांगे राजा प्रसन्न हो वही वस्तु देते हैं ॥ ७ ॥ सब सेवक और अनेक बाजे बजाने वालोंको दान सम्मानसे भर दिया ॥ ८ ॥

दोहा–देहिं अशीष जुहारि सब, गावहिं गुणगण गाथ ॥
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गमन कीन्ह रघुनाथ ॥ ३९४ ॥

सब जुहार करके आशीष देते और गुणोंकी कथा बखानते अपने घरोंको गए तब गुरु और ब्राह्मणों सहित महाराज दशरथ रनिवासमें आये ॥ ३९४ ॥

जो वसिष्ठ अनुशासन दीन्हा * लोक वेद–विधि सादर कीन्हा॥१॥
भूसुर भीर देखि सब रानी * सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥२॥

जो कुछ वसिष्ठजीने आज्ञा दी वह लोकवेदविधिसे आदर सहित राजाने की ॥१॥ ब्राह्मणोंकी भीड़ देखकर सब रानी अपना बड़ा भाग्य जान आदरके साथ खड़ी हुईं ॥ २ ॥

पाँय पखारि सकल अन्हवाये * पूजि भली विधि भूप जिवाँये ॥३॥
आदर दान प्रेम परिपोषे * देत अशीष चले मन तोषे ॥४॥

पांय धुलाके स्नान करवा भले प्रकारसे पूजा कर राजाने (ब्राह्मण) जिवाये ॥ ३ ॥ आदर दान, प्रेमसे सबको सन्तुष्ट किया वे प्रसन्न हो सब आशीष देते चले ॥ ४ ॥

बहु विधि कीन्ह गाधिसुत पूजा ❋ नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥५॥
कीन्ह प्रशंसा भूपति भूरी ❋ रानिन सहित लीन्ह पगधूरी ॥६॥

बहुत प्रकारसे विश्वामित्रकी पूजा कर कहा-महाराज ! मेरे समान और कोई धन्य नहीं॥५॥ राजाने बड़ी बड़ाई कर रानियों सहित विश्वामित्र मुनिके चरणोंकी रज माथे पर चढ़ाई ॥६॥

भीतर भवन दीन्ह वर वासू ❋ मनु जुगवत रह नृप रनिवासू ॥७॥
पूजे गुरुपद-कमल बहोरी ❋ कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी॥८॥

भीतर घरमें रहनेको स्थान दिया, मानो वे रनिवासकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ७ ॥ गुरुके चरणकमल पुनः पूजन कर बड़े हार्दिक प्रेमसे विनती की ॥ ८ ॥

दोहा—बधुन समेत कुमार सब, रानिन सहित महीश ॥
पुनि पुनि वन्दत गुरुचरण, देत अशीष मुनीश ॥ ३९५ ॥

बहुओं सहित सब कुमार और रानियों सहित राजा बारंबार गुरुके चरणोंको नमस्कार (दंडवत्) करते हैं और वसिष्ठजी आशीष देते हैं ॥ ३९५ ॥

विनय कीन्ह उर अति अनुरागे ❋ सुत सम्पदा राखि नृप आगे ॥१॥
नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा ❋ आशिर्वाद बहुत विधि दीन्हा ॥२॥

राजा दशरथने हृदयमें बड़े प्रेमसे विनय की और पुत्र धन सब आगे धर दिये ॥ १ ॥ मुनिनायकने अपना नेग मांग लिया और अनेक विधिसे आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

उर धरि रामहि सीय समेता ❋ हर्षि कीन्ह गुरु गमन निकेता ॥३॥
विप्रबधू सब भूप बुलाई ❋ चीर चारु भूषण पहिराई ॥४॥

सीता समेत श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारणकर गुरुजी प्रसन्न होकर घर गये ॥३॥ ब्राह्मणोंकी बहुओंको राजा दशरथजीने बुलाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिनाए ॥४॥

बहुरि बुलाय सुआसिन लीन्ही ❋ रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्ही॥५॥
नेगी नेग योग सब लेहीं ❋ रुचि अनुरूप भूपमणि देहीं ॥६॥

फिर और सुहागिनोंको बुला उनको रुचि अनुसार पहिरावनी दी ॥ ५ ॥ नेगी लोग नेगयोग सब लेते हैं राजाधिराज उनकी इच्छानुसार देते हैं ॥ ६ ॥

प्रिय पाहुने पूज्य सब जाने ❋ भूपति भली भाँति सन्माने ॥७॥
देव देखि रघुवीर-विवाहू ❋ वर्षि प्रसून प्रशंसि उछाहू ॥८॥

प्यारे पाहुने जो पूजने योग्य थे, राजाने उनका अच्छे प्रकार सम्मान किया ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजी का विवाह मंगल देखकर देवता फूल बरसा कर उत्साहकी बड़ाई करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—चले निशान बजाय सुर, निज निज पुर सुख पाय ॥
कहत परस्पर रामयश, हर्ष न हृदय समाय ॥ ३९६ ॥

सुखी हो देवता निशान बजाकर श्रीरामचन्द्रजीका यश गाते हुए अपने-अपने लोकको चले गये, जिनके मनमें प्रसन्नता नहीं समाती ॥ ३९६ ॥

सब विधि सबहि समधि नरनाहू ❋ रहा हृदय भरि पूरि उछाहू ॥१॥

जहँ रनिवास तहाँ पगुधारे * सहित वधूटिन कुँवर निहारे ॥२॥
राजाने सब प्रकारसे सम्मान किया; हृदय प्रेम पूर्ण हो रहा है ॥ १ ॥ जहाँ रनिवास था वहाँ गए और बहुओं सहित पुत्रोंको देखा ॥ २ ॥

लिये गोद करि मोद समेता * को कहि सकै भयउ सुख जेता॥३॥
वधू सप्रेम गोद बैठारी * बार बार हिय हर्षि दुलारी ॥४॥
आनन्द सहित पुत्रोंको गोदमें लिया जितना सुख हुआ उसे कौन कह सके ॥ ३ ॥ बहु-ओंको प्रेमके साथ गोदमें बैठाकर हृदयमें प्रसन्न हो प्यार किया ॥ ४ ॥

देखि समाज मुदित रनिवासू * सबके उर अनँद किय वासू ॥५॥
कहेहु भूप जिमि भयउ विवाहू * सुनि सुनि हर्ष होत सब काहू ॥६॥
समाज देख रनिवास प्रसन्न हुआ और सबके मनमें आनंद छा गया ॥ ५ ॥ जिस प्रकार व्याह हुआ उसका राजाने वर्णन किया सुन-सुनकर सबको प्रसन्नता होती है ॥ ६ ॥

जनकराज गुण शील बड़ाई * प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥७॥
बहुविधि भूप भाट जिमि वरणी * रानी सब प्रमुदित सुनि करणी ॥८॥
जनकराजके गुण, शीलकी बड़ाई, प्रीति-रीति और धन सम्पदाकी शोभा ॥७॥ बहुत प्रकार से राजाने भाटकी नाईं वर्णनकी सब रानी राजाकी करतूत सुनकर प्रसन्न हुईं ॥ ८ ॥

दोहा—सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि लिये गुरु ज्ञाति ॥
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पाँच गइ राति ॥ ३९७ ॥

पुत्रोंसहित राजाने स्नान करके जातिमें-श्रेष्ठ पुरुषोंको बुलाया अनेक प्रकारके भोजन किये; तब पांच घड़ी रात बीत गई ॥ ३९७ ॥

मंगल गान करहिं वर भामिनि * भइ सुखमूल मनोहर यामिनि ॥१॥
अँचै पान सब काहू पाये * स्रग सुगन्ध भूषित छबि छाये ॥२॥
उत्तम नारियाँ मंगलगान करने लगीं, वह रात्रि बड़ी मनोहर और सुखमूल थी ॥१॥ आच-मन कर सब किसीने पान पाये और गलेमें सुगंधित माला पहिनकर शोभायमान हुए ॥२॥

रामहिं देखि रजायसु पाई * निज निज भवन चले शिरनाई॥३॥
प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई * समय समाज मनोहरताई ॥४॥
श्रीरामचन्द्रजीको देख और आज्ञा पाय सब शिर नवाके अपने-अपने घर गये ॥ ३ ॥ प्रेमका आनंद मङ्गल, विनोद, बड़ाई, समयका समाज और मनोहरता ॥ ४ ॥

कहि न सकहिं शत शारद शेषा * वेद विरंचि महेश गणेशा ॥५॥
सो मैं कहौं कवन विधि वरणी * भूमि नाग शिर धरै कि धरणी॥६॥
कि जिसका अनेक सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेव, गणेशजी वर्णन नहीं कर सकते ॥५॥ उसका मैं कैसे वर्णन करूँ ? कहीं पृथ्वीके नाग (केंचुवे वा छोटे सर्प) अपने शिर पर पृथ्वी धारण कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

नृप सब भाँति सबहिं सन्मानी * कहि मृदु वचन बुलाई रानी ॥७॥
वधू लरकिनी पर घर आईं * राखेउ नैन पलककी नाईं ॥८॥

राजाने सब प्रकारसे सबका कोमल वचनसे सम्मान किया; रानीको बुला भेजा और कहा ॥ ७ ॥ ये बहुयें लड़किनी परघर आयी हैं सो इन्हें ऐसे प्यारसे रखना जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-लरिका श्रमित उनींदवश, शयन करावहु जाइ ॥
अस कहि गे विश्राम गृह, रामचरण चित लाइ ॥ ३९८ ॥

लड़के थक रहे हैं और नींदके वशीभूत हो रहे हैं जाकर शयन कराओ, ऐसा कह कर रामजीके चरणोंमें चित्त लगाय राजा भी विश्राम स्थानको चले गए ॥ ३९८ ॥

भूप वचन सुनि सहज सुहाये * जड़ित कनक मणि पलँग डसाये॥१॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना * कोमल कलित सुपेती ताना ॥२॥

राजाके वचन सुनकर जो सहजसे शोभायमान थे रानियोंने सोनेमें मणि जड़े हुए पलँग बिछाये ॥१॥ सुन्दर गायके दूधके फेनके समान श्वेत, कलित-नई सुपेती युक्त अनेक तोसकें बड़ी कोमल बिछायीं ॥ २ ॥

उपबरहन वर वरणि न जाहीं * स्रग सुगंध मणि मंदिर-माहीं ॥३॥
रत्न दीप सुठि चारु चँदोवा * कहत न बनै जाय जेहि जोवा॥४॥

सुन्दर तकिये लगाये जिनकी शोभा नहीं वरणी जाती, मणिमंदिरोंमें जहाँ-तहाँ माला और सुगंध धरी है ॥ ३ ॥ दीपक रत्नोंके धरे हुए सुन्दर पलँग ऊपर चँदोवे जिनका वर्णन नहीं हो सकता जिसने देखा वही जानता है ॥ ४ ॥

सेज रुचिर रचि राम उठाये * प्रेम समेत पलंग पौढ़ाये ॥५॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन दीनी * निज निज सेज शयन तिन कीन्ही॥६॥

सुन्दर सेज रच करके श्रीरामचंद्रजीको उठाया और प्रेमसे पलँग पर लिटाया ॥५॥ श्रीरामचंद्र जीने बारंबार भाइयों को आज्ञा दी, तब उन्होंने अपनी-अपनी सेजपर जाकर शयन किया ॥६॥

देखि श्याम मृदु मंजुल गाता * कहहिं सप्रेम वचन सब माता॥७॥
मारग जात भयावनि भारी * केहि विधि तात ताड़का मारी॥८॥

श्याम और कोमल शरीर देख सब माताएँ प्रेम सहित वचन कहने लगीं ॥७॥ हे लाल ! तुमने मार्गमें जाते हुए बड़ी डरावनी ताड़का कैसे मारी ? ॥ ८ ॥

दोहा-घोर निशाचर विकट भट, समर गनै नहिं काहु ॥
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥ ३९९ ॥

जो बड़े कठिन राक्षस युद्धमें किसीको कुछ नहीं गिनते थे, हे पुत्र ! तुमने सहाय सहित उन दुष्ट मारीच और सुबाहुको सेना सहित कैसे मारा ॥ ३९९ ॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारे * ईश अनेक करवरे टारे ॥१॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई * गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥२॥

हे पुत्र ! मैं बलैया लेती हूँ, मुनिके प्रसादसे आपके करवर अर्थात् विघ्न महादेवजीने दूर किये ॥१॥ यज्ञकी रखवारी करके दोनों भाइयोंने गुरुकी कृपासे सब विद्या पायी ॥ २ ॥

मुनि तिय तरी लगत पगधूरी ❋ कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥३॥
कमठपीठ पवि कूट कठोरा ❋ नृपसमाज महँ शिवधनु तोरा ॥४॥

मुनिकी नारी चरणकी धूल लगते ही तर गई, कीर्ति संसारमें पूर्ण रीतिसे व्याप्त हो गई, कि अहल्याको तारा ॥३॥ जो कि कछुएकी पीठ वज्रसे भी कठिन और अत्यन्त कठोर था वह शिवजीका धनुष राज सभामें तोड़ा ॥ ४ ॥

विश्व विजय यश जानकि पाई ❋ आये भवन व्याह सब भाई ॥५॥
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे ❋ केवल कौशिक कृपा सुधारे ॥६॥

धनुष तोड़नेसे संसारकी विजय, यश और जानकीजी पायीं, सब भाई विवाह कर घर आये॥५॥ आपके सबही कर्म ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य नहीं कर सकते, आपने विश्वामित्रकी कृपासे किये हैं॥६॥

आजु सफल जग जन्म हमारे ❋ देखि तात विधुवदन तुम्हारे ॥७॥
जे दिन गये तुमहिं बिनु देखे ❋ ते विरंचि जनि पारहिं लेखे ॥८॥

हे पुत्र ! आपके चन्द्रमा समान मुख देखनेसे आज हमारा जगत्में जन्म सफल हुआ ॥७॥ हे पुत्र! जितने दिन तुम्हें विना देखे बीते वे दिन विधाता आयुके लेखेमें न लगावे ॥ ८ ॥

दोहा–राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनीत वर बैन ॥
सुमिरि शम्भु गुरु विप्रपद, किये नींदवश नैन ॥ ४०० ॥

श्रीरामचन्द्रने सब माताओंको अच्छे वचनोंसे सन्तुष्ट किया, तब शिवजी, गुरु और ब्राह्मणोंके चरणोंका स्मरण कर नेत्रोंको नींदवश किया अर्थात् सो रहे ॥ ४०० ॥

नींदहु वदन सोह सुठि लोना ❋ मनहुँ साझ सरसीरुह सोना ॥१॥
घर घर करहिं जागरन नारी ❋ देहिं परस्पर मंगल गारी ॥२॥

वह अत्यंत सुन्दर नींद सहित मुख ऐसा शोभित होता है जैसे संध्या समय लाल कमल हो॥१॥ व्याहके आनंदमें नारियाँ घर-घर जागरण करती और परस्पर मङ्गलगान कर गारी गाती हैं॥२॥

पुरी विराजति राजित रजनी ❋ रानी कहहिं विलोकहु सजनी ॥३॥
सुन्दर वधुन सासु लै सोई ❋ फणिकन्हजनुशिरमणि उरगोई॥४॥

रानी कहती हैं सखियो! देखो नगर शोभित होने के कारण रात्रिकी शोभा कैसी हो रही है॥३॥ सुन्दर बहुओंको लेकर सास ऐसे सोयीं जैसे सर्प शिरकी मणिको हृदयमें छिपाकर सोवे॥४॥

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे ❋ अरुणचूड़ वर बोलन लागे ॥५॥
बन्दी मागध गुण गण गाये ❋ पुरजन द्वार जुहारन आये ॥६॥

सबेरे ही श्रीरामचन्द्रजी उस पवित्र कालमें जगे जब कि अरुड़चूड़वर अर्थात् श्रेष्ठ मुर्गे बोलने लगे ॥ ५ ॥ बन्दी मागध बहुत प्रकार गुण गाने लगे पुरवासी द्वारे जुहारने (जय-जयकार) करने आये ॥ ६ ॥

बंदि विप्र सुर गुरु पितु माता ❋ पाय अशीष मुदित सब भ्राता ॥७॥
जननिन्ह सादर वदन निहारे ❋ भूपति संग द्वार पगु धारे ॥८॥

ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता-माताको नमस्कार करके आशीष पा सब भाई प्रसन्न हुए ॥७॥ माताओंने प्रेमसे मुख देखा, राजाके संग चारों भाई द्वार पर आये ॥ ८ ॥

दोहा-कीन्ह शौच सब सहज शुचि, सहित पुनीत नहाइ ॥
प्रात क्रिया करि तात पहँ, आये चारिउ भाइ ॥ ४०१ ॥

स्वाभावसे ही पवित्र चारों भाई शौचादि कर पवित्र सरयूमें स्नानकर सन्ध्या वन्दनादि प्रातःकृत्यसे निश्चिन्त हो पिताके पास आये ॥ ४०१ ॥

भूप विलोकि लिये उर लाई * बैठे हर्षि रजायसु पाई ॥१॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी * लोचनलाभ अवधि अनुमानी ॥२॥

राजाने देखकर हृदयसे लगा लिया और आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो बैठे॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सब सभा प्रसन्न हुई और नेत्रोंके लाभकी मर्यादाका अनुमान करने लगी कि इससे अधिक और क्या लाभ होगा ॥ २ ॥

पुनि वसिष्ठ मुनि कौशिक आये * सुभग आसनन्ह मुनि बैठाये ॥३॥
सुतन समेत पूजि पद लागे * निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे॥४॥

फिर वसिष्ठ मुनि और विश्वामित्र आये, राजाने सुन्दर आसन पर उनको बैठाया ॥ ३ ॥ राजाने पुत्रों सहित पूजनकर चरण छुए, श्रीरामचन्द्रजीको देख दोनों गुरु प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

कहहिं वसिष्ठ धर्म इतिहासा * सुनहिं महीप सहित रनिवासा ॥५॥
मुनिमन-अगम गाधिसुत करणी*मुदित वसिष्ठ विपुल विधि वरणी॥६॥

वसिष्ठजी धर्मके इतिहास (चरित्र) कहते हैं, राजा प्रसन्न हो रनिवास सहित सुनते हैं ॥५॥ मुनियोंके मनको अगम ऐसे विश्वामित्रके तपकी कथा वसिष्ठजीने प्रसन्न हो भली भांति वर्णनकी।६।

बोले वामदेव सब साची * कीरति ललित लोक तिहुँमाची॥७॥
सुनि आनंद भयो सब काहू * राम लषण उर अधिक उछाहू ॥८॥

वामदेवजी बोले-यह सब सत्य है विश्वामित्रजीकी सुन्दर कीर्ति त्रिलोकीमें मच रही है ॥ ७ ॥ यह सुनकर सब किसीको आनन्द हुआ, रामचन्द्रजी और लक्ष्मणके मनमें गुरुके पवित्र चरित्र सुननेसे अधिक प्रसन्नता हुई ॥ ८ ॥

दोहा-मंगल मोद उछाह नित, जाहि दिवस इहि भाँति ॥
उमँगि अवध आनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥ ४०२ ॥

इसी प्रकारसे नित्यमंगल उत्साहमें दिन व्यतीत होते हैं, अयोध्या आनन्दसे उमड़के उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होती जा रही है ॥ ४०२ ॥

सुदिन सोधि करकंकन छोरे * मंगल मोद विनोद न थोरे ॥१॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं * अवध जन्म याचहिं विधि पाहीं॥२॥

---

१. एक समय वसिष्ठजीने कामधेनुके बलसे विश्वामित्रजीकी सेनासहित पहुनाई की तब विश्वामित्रजीने कामधेनु मांगी, वसिष्ठजीके न देनेपर युद्ध आरंभ हुआ । वसिष्ठजीने ब्रह्मदंडसे विश्वामित्रजीके संपूर्ण अस्त्र नष्ट कर दिये, तब यह क्षत्रिय बलको धिक्कार दे तप करने गये और चारों दिशाओंमें १००० वर्ष तक तप कर ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मऋषि हुए और ब्रह्माजीने वसिष्ठजीसे मेल करा दिया, चरु इनका ब्रह्ममय ही था ।

अच्छा दिन विचारकर कंकण खोले उस समय मंगल हर्ष(आनंद)भी थोड़ा न था॥१॥नित नवीन सुख देखकर देवता सिहाते और विधातासे अयोध्यामें जन्म होनेकी प्रार्थना करते हैं॥२॥

विश्वामित्र चलन नित चहहीं * राम सप्रेम विनय वश रहहीं ॥३॥
दिन दिन शतगुण भूपति भाऊ * देखि सराह महामुनि राऊ ॥४॥

विश्वामित्रजी नित्य जाना चाहते हैं पर श्रीरामचन्द्रजीके प्रेम और विनयके वश हो रहते हैं ॥३॥दिन-दिन राजाका सौगुना भाव देखकर महामुनिराज विश्वामित्रजी सराहना करते हैं ॥४॥

माँगत बिदा राउ अनुरागे * सुतन समेत ठाढ़ भये आगे ॥५॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी * मैं सेवक समेत सुत नारी ॥६॥

बिदा मांगते समय राजा प्रेमसे पुत्रों सहित आगे खड़े हो गये ॥ ५ ॥ स्वामी ! यह सब सम्पत्ति आपकी है और मैं तो पुत्र सहित आपका सेवक हूँ ॥ ६ ॥

करब सदा लरिकन पर छोहू * दर्शन देत रहब मुनि मोहू ॥७॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी * परे चरण मुख आव न बानी ॥८॥

सदा बालकोंके ऊपर कृपा करते रहना और हे मुनि ! मुझे भी दर्शन देते रहना ॥ ७ ॥ ऐसा कह राजा पुत्र रानियों सहित मुनिके चरणोंमें पड़े, मुखसे वाणी नहीं आई ॥ ८ ॥

दीन्ह अशीष विप्र बहु भांती * चले न प्रीति रीति कहि जाती॥९॥
राम सप्रेम संग सब भाई * आयसु पाय फिरे पहुँचाई ॥१०॥

विश्वामित्रजीने बहुत भांति आशीष दी और चले, वह प्रीतिकी रीति कही नहीं जाती॥९॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रेम सहित सब भाइयोंके संग पहुँचाने चले,और आज्ञा पाय पहुँचाके फिरे॥१०॥

दोहा–रामरूप भूपति भगति, ब्याह उछाह अनन्द ॥
जात सराहत मनहिंमन, मुदित गाधिकुलचन्द ॥ ४०३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका रूप, राजा दशरथजीकी भक्ति, ब्याहके उत्साहका आनंद मन ही मन प्रसन्न हो विश्वामित्रजी सराहते जाते हैं ॥ ४०३ ॥

वामदेव रघुकुल गुरु ज्ञानी * बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥१॥
सुनि मुनि सुयश मनहिंमन राऊ * वर्णत आपन पुण्य प्रभाऊ ॥२॥

वामदेव और वसिष्ठजीने पुनः विश्वामित्रजीकी कथा कही ॥ १ ॥ मुनिका सुयश सुनकर महाराज दशरथजी मनहीं मनमें अपने पुण्यका वर्णन करते हैं कि, ऐसे महात्मा मेरे द्वारपर आये, धन्य है मेरा भाग्य ! ॥ २ ॥

बहुरे लोग रजायसु भयऊ * सुतन समेत नृपति गृह गयऊ ॥३॥
जहँ तहँ राम ब्याह यश गावा * सुयश पुनीत लोक तिहुँ छावा ॥४॥

फिर लोगोंको घर जाने की आज्ञा हुई, वे दशरथजी भी पुत्रों सहित घरको पधारे ॥ ३ ॥ जहां तहां श्रीरामचन्द्रजीके ब्याहका यश गाया; पवित्र सुन्दर यश त्रिलोकीमें छा गया ॥४॥

१. कवित्त—"बोली एक नारी सुनो अवधविहारी यह, शंभुधनु है, न जाहि वेगि गहि तोरोगे । रसिक विहारी, हौं तिहारी चतुराई तव, जानोंगी सुकंकणकी गांठ जब छोरोगे ॥ ता छिन छबीली एक दूजी हँसि बोली श्याम, आज धीरताई वीरताई सब बोरोगे । तुम पै न तौलों कबौं छूटि है छबीले लाल, जौलौं नहिं जनकललीको कर जोरोगे ॥" (रामरसायने)

आये राम ब्याहि घर जबते ❋ बसै अनन्द अवध सब तबते ॥५॥
प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू ❋ सकहिं न वरणि गिरा अहिनाहू॥६॥

सब आनंद पहले कभी मिथिलामें रहते थे और कभी अयोध्यामें परंतु, जबसे श्रीरामचन्द्रजी ब्याह करके घर आये तबसे सब आनंद अवधमें वश गये ॥५॥ जैसा श्रीरामचन्द्रजी के विवाहमें आनंद हुआ उसे सरस्वतीजी और शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ ६ ॥

कविकुल जीवन पावन जानी ❋ राम सीय यश मङ्गल खानी ॥७॥
तेहिते मैं कछु कहा बखानी ❋ करन पुनीत हेतु निज बानी ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताका यश कविकुलके जीवनको पवित्र करने वाला तथा मंगलकी खान जानकर "यह पार्वतीका चौथा प्रश्न पूरा हुआ" (कहहु कथा जानकी विवाहा) ॥ ७ ॥ मैंने भी अपनी वाणी पवित्र करनेके हेतु कुछ थोड़ा वर्णन किया है ॥ ८ ॥

छन्द–निज गिरा पावनि करण कारण राम यश तुलसी कह्यो ।
रघुवीरचरित अपार वारिधि पार कवि कवने लह्यो ॥
उपवीत ब्याह उछाह मङ्गल सुनहिं सादर गावहीं ।
वैदेहि–राम प्रसादते जन सर्वदा सुख पावहीं ॥ ९२ ॥

अपनी वाणी पवित्र करनेको श्रीरामचन्द्रजीका यश तुलसीदासजीने वर्णन किया है, श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र तो अपार समुद्र हैं उसका पार कौन कवि पा सकता है ! श्रीरामचन्द्रजीके जनेऊ, ब्याहका आनंद मगल जो पुरुष आदर पूर्वक सुनेंगे तथा गावेंगे वे लोग जानकीजी और श्रीरामचन्द्रकी कृपासे सदा सुख पावेंगे ॥ ९२ ॥

सोरठा–सिय रघुबीर विवाह, जे सप्रेम सादर सुनहिं ॥
तिनकहँ सदा उछाह, मङ्गलायतन रामयश ॥ ३९ ॥

सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके विवाहको जो नर प्रेमसे आदर पूर्वक सुनेंगे उन्हें सदा उत्साह होगा; क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीका यश ही मंगलका स्थान है ॥ ३९ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तुलसीकृतरामायणे विमलमंगल सम्पादनो नाम बालकांडे प्रथमस्सोपानः ॥ १ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे मुरादाबाद-निवासी पं० सुखानंद--मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत टीकायामेकादशोविश्रामः ॥ ११ ॥

दोहा–कियो तिलक मन लायकर, निज मतिके अनुसार ॥
ध्यान धरिहिं पढ़िहहिं सुजन, लहहिं पदारथ चार ॥ १ ॥
ब्याहचरित रघुनाथको, सुख उपजावनहार ॥
तिनकी मैं टीका करी, कछु निजमति अनुसार ॥ २ ॥
सीयसहित मूरति सुघर, मृदुल मनोहर श्याम ॥
हिय ज्वालाप्रसाद के, बसो आन श्रीराम ॥ ३ ॥

इति बालकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ १ ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत



अयोध्याकाण्डम् २.

★

विद्यावारिधि-

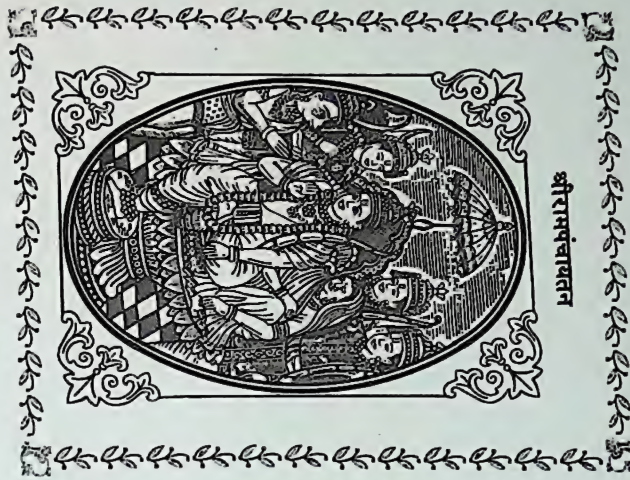
श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

अयोध्याकाण्डम् २.



दोहा-मुनिदुर्लभ हरिभक्ति नर, पावहिं विनहि प्रयास ।
जो यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि विश्वास ॥





लक्ष्मण जानकी सहित श्रीरामचन्द्रजी की माता कौशल्याजीसे विदा हो गंगापार होना।

चौपाई-जे असि कथा पाय परिहरहीं । केवल ज्ञानहेतु श्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पयलागी ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

अयोध्या काण्डम् २.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

श्लोकाः

वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके,
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ॥
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा,
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥ १ ॥

अर्थ-जिन शिवजी महाराजके (वामांके) बायीं गोदीमें (भूधरसुता) पार्वती (विभाति)
शोभित होती हैं, (मस्तकके देवापगा) मस्तकमें गंगाजी हैं, (भाले बालविधुः) माथे पर द्विती-
याका चन्द्रमा है, (गले च गरलम्) गलेमें जिनके विष है, (यस्योरसि व्यालराट्) जिन शिवजी
महाराजके हृदयमें सर्पोंका राजा पड़ा है, (भूतिविभूषणः) जिनका विभूति ही भूषण है, (सुरवरः)
जो देवताओंमें श्रेष्ठ हैं; (सर्वाधिपः) सबके स्वामी, (शर्वःशृणातीति शर्वः) संहारकर्ता (सर्वगतः)
सर्वव्यापक, (शशिनिभः) चन्द्रमातुल्य शोभायमान्, (श्रीशंकरः) श्रीमङ्गलस्वरूप कल्याण-
दाता (सः) वह (अयम्) यह (शिवः) भगवान् शिव (सर्वदा) सदा (माम्) मेरी (पातु) रक्षा
करें । शिवजी महाराजसे रक्षाकी प्रार्थना कर श्रीशंकरजीको मानसरामायणके आचार्य जान
ग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्ति हेतु स्वविषयक आशिर्वादात्मक मंगल किया ॥ १ ॥

प्रसन्नतां[1] या न गताऽभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ॥
मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥ २ ॥

(या) जो (रघुनंदनस्य) श्रीरामचंद्र महाराजकी (मुखाम्बुजश्रीः) मुखकमलकी शोभा (अभि-
षेकतः) राज्याभिषेक होनेसे (प्रसन्नतां) प्रसन्नताको (न) नहीं (गता) प्राप्त हुई (तथा) वैसे ही (वनवास
दुःखतः) वनवासके दुःखसे (न) नहीं (मम्लौ) मलिन हुई (सा) वही श्रीरामचन्द्रजीके मुखकम-
लकी शोभा (मे) मुझे सदा (मंजुलमंगलप्रदास्तु) सदा सुन्दरमंगलकी देनेवाली हो । भाव यह

१. यह श्लोक इस प्रकार भी लिखा है कि—"प्रसन्नतां यो न गतोऽभिषेकस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः । मुखांबुज श्रीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु तन्मंजुलमङ्गलप्रदम्" अर्थ—जो अभिषेकसे प्रसन्न और वनवासके दुःखसे मलिन न हुआ वह श्रीरामचन्द्रजीका मुखकमल मुझे सदा उज्ज्वल मंगलदायक हो।

है कि राज्याभिषेक और वनवास दोनोंकी प्राप्तिमें एक सदृश श्री रही तो हमारे राज्याभिषेक और वनवास वर्णनकी निर्विघ्न समाप्ति एकरस क्यों न करावेगी। अयोध्याकांडमें राज्याभिषेक और वनवास दोनोंका वर्णन है इस कारण दोनोंके अनुकूल यह ध्यान गोसाईंजी लिखते हैं ॥२॥

नीलांबुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम् ॥
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

(नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगम्) जिनका नीलकमल सम श्यामल और कोमल अंग है (सीतासमारोपितवामभागम्) सीताजी जिसके वाम ओर स्थित हैं, (पाणौमहासायकचारुचापम्) जिनके हाथमें धनुषबाण शोभित हैं, ऐसे (रघुवंशनाथम्) रघुवंशके स्वामी (रामम्) महाराज श्रीरामचंद्रजीको (नमामि) नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

दोहा-रघुनंदन अभिषेक हित, बढ्यो उछाह अपार ॥
सोइ प्रथम विश्राममें, वर्णहुँ मति अनुसार ॥ १ ॥

दोहा-श्रीगुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि ॥
वर्णहुँ रघुवर विमल यश, जो दायक फल चारि ॥ १ ॥

श्रीगुरुके चरणकमलकी धूरिसे अपने मनरूपी दर्पणको सुधारके रघुवरके विमल यशको वर्णन करता हूँ; जो चारों फलोंका देनेवाला है। (शंका) बालकांडमें गुरुपदरजसे मनको निर्मलकर चुके हैं, अब उसमें कौन-सा मल गया जिसे फिर गुरुके चरण कमलकी रजसे सुधारा ? (उत्तर) छः प्रकारकी शरणागतिमें कार्पण्य शरणागति का एक ही स्वरूप लिखा है कि जीव सदा अपनेको सदोष मानके डरता है। प्रमाण-पद्मपुराणमें नारद वचन-"पापोऽहं पापकर्माऽहंपापात्मा पापसम्भवः" इत्यादि साक्षात् ब्रह्मपुत्र देवर्षि वाल्मीकिजीके गुरु नारदजीको त्रिकालमें पापका लेश नहीं फिर जो "पापोऽहं" इत्यादि अपनेको जानते हैं वह केवल कार्पण्य शरणागति है, वही गोसाईंजीका सिद्धांत है, वा स्वच्छ वस्त्रपर भी किंचित् मलका भ्रम होता है, मनोमल बहुविधि अनादिकालिक, अतिदुर्विज्ञेय; परम सूक्ष्मरूप है, एक ही बार किसी साधनसे जल्दी दूर नहीं होते हैं, गीतामें लिखा है कि, अनेक जन्मके साधनसे परमगतिकी प्राप्ति होती है, इस कारण फिर मनको सुधारा। वा-"भरतमहामहिमा सुन रानी जानहिं राम सकहिं न बखानी" जब श्रीरामचन्द्रजी भरतकी महिमा नहीं वर्णन कर सकते तो उन्हीं भरतजीके वर्णनमें गोसाईंजी गुरुचरणसे मनरूपी निर्मल मुकुरको फिर सुधारें तो क्या शंका है ? अयोध्याकांडमें भरतचरित्रका ही वर्णन है प्रमाण-"भरत चरित कर नेम" इति वा श्रीरघुनाथजीको राज्य देनेमें श्री अवधमें अनेक विघ्न हुए हैं वह स्मरण कर श्रीगोसाईंजीका मन शोकग्रस्त हुआ है; इससे फिरसे गुरुपदरज लगायी। वा बालकांडमें गुरुपदरजसे विवेक रूपी नेत्र निर्मल किये, यहां डरे कि जो मन सदोष रहेगा तो विवेकरूपी नेत्रोंको बिगाड़ेगा इसी कारण मनरूपी दर्पणको भी गुरुपदरजसे पवित्र किया, इससे पुनरुक्ति दोष नहीं। (शंका) अबतक किसका यश वर्णन करते रहे ? जो अब लिखा-"वर्णहुँ रघुवर विमलयश"। (उत्तर) यहां रघुवरपदसे भरतजीको जानना; जो प्रमाण ऊपर लिख चुके हैं, अगली चौपाईसे बालकांडका अयोध्याकांडसे प्रसंग मिलता है सो लिखते हैं ॥ १ ॥

जबते राम ब्याहि घर आये * नित नवमंगल मोद बधाये ॥१॥
भुवन चारि दश भूधर भारी * सुकृत मेघ वर्षहिं सुख वारी ॥२॥

जबसे श्रीरामचन्द्रजी ब्याहकर घर आये हैं,तबसे नित्य नये मङ्गल और आनंदकी बधाई बजने लगी ॥ १ ॥ चौदहों भुवन ही पर्वत हैं और चौदहों भुवनवासियोंके पुण्य ही मेघ हैं जो सुखरूप जलको बरसाते हैं ॥ २ ॥

ऋद्धि सिधि संपति नदी सुहाई * उमँगि अवध अम्बुधि कहँ आई ॥३॥
मणिगण पुर नर नारि सुजाती * शुचि अमोल सुन्दर सब भाँती ॥४॥

जहां श्रीरामचन्द्र हैं वहां क्षीर सागर होता है यही भाव है क्षीरसागर निवासी रूपसे अभेद है,वही कहते हैं–पर्वत पर जल होनेसे नदी उमँगती हैं, ऋद्धि-सिद्धि और संपत्ति ये ही सुन्दर नदी हैं,वे उमँगके अयोध्यारूपी समुद्रमें आयीं॥३॥समुद्रमें मणियाँ होती हैं, यहां पुरके सुजन नर-नारी मणिसमूह हैं समुद्रके मणि कुजातिके भी होते हैं अर्थात् दोषयुक्त और अशुचि असुंदर होते हैं यह सब सुजाति, पवित्र, अमोल और सब भांतिसे सुन्दर हैं ॥४॥

कहि न जाय कछु नगर विभूती * जनु इतनिहि विरंचि करतूती ॥५॥
सब विधि सब पुर लोक सुखारी * रामचन्द्र-मुखचन्द्र निहारी ॥६॥

नगरका ऐश्वर्य थोड़ा नहीं कहा जा सकता है; मानो ब्रह्माकी इतनी ही करतूत है ॥ ५ ॥ सब प्रकारसे सम्पूर्ण पुरके लोग श्रीरामचन्द्रजीका मुखरूपी चन्द्र देखकर प्रसन्न होते हैं ॥६॥

मुदित मातु सब सखी सहेली * फलित विलोकि मनोरथ वेली ॥७॥
राम रूप गुण शील स्वभाऊ * प्रमुदित होहिं देखि मुनिराऊ ॥८॥

माता और सखी सहेली सब अपने मनोरथरूपी लताको फलती देखकर प्रसन्न होती हैं ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीका रूप, गुण,शील, स्वभाव देखकर मुनि और राजा प्रसन्न होते हैं॥८॥

दोहा–सबके उर अभिलाष अस, कहहिं मनाय महेश ॥
आप अछत युवराजपद, रामहिं देहिं नरेश ॥ २ ॥

सबके हृदयमें यह अभिलाषा है कि, अपने सामने महराज दशरथजी श्रीरामचंद्रजीको युवराज पद दें, इसलिये शिवजीको मनाके कहते हैं (अगली कथा क्षेपक है) ॥ २ ॥

केकय नृप सुत कंकय नामा * भुजबल प्रबल सकल गुण धामा ॥१॥
कैकयिभ्रात सकल जग जाना * समर शूर शुचि शील निधाना ॥२॥

केकयराजके पुत्र कङ्कय नामक भुजाओंके बलमें बड़े प्रबल; संपूर्ण गुणोंके धाम ॥ १ ॥ कैकयीके भ्राता जिनको सब जगत् जानता है, समरमें शूर, पवित्र और शीलके निधान थे ॥२॥

राम प्रेम रत अति सुख पाये * रहेउ अब्द भरि अवध सुहाये ॥३॥
गुरुगृह एक दिवस सो गयऊ * मुनि वसिष्ठ लखि आदर दयऊ ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके प्रेममें रत बड़े सुख पाये, एक वर्ष तक सुंदर अयोध्यामें रहे ॥३॥ सो एक दिन वे गुरुके घर आये, वसिष्ठजीने देखकर बड़ा आदर किया ॥ ४ ॥

मुनि-पद वंदि केकनृपनन्दन * बोलेउ वचन अमीमद-गंजन ॥५॥
नाथ कमलपद शीश नवाये * मनवांछित फल लहिय सुहाये ॥६॥

केकय राजाके पुत्र मुनिके चरणकी बंदना कर अमृतके स्वादको भी फीका करनेवाले वचन बोले ॥५॥ हे नाथ ! आपके चरण कमलोंको प्रणाम करनेसे मनवांछित फल मिलते हैं ॥६॥

अस कहि कंकय परम सयाना * गहि गुरुपद निज भाग बखाना ॥७॥
वाणी मृदुल प्रेम रस सानी * सुनत वसिष्ठ हृदय सुख मानी॥८॥

ऐसा कह परम चतुर युधाजितने गुरुके चरण पकड़ अपना भाग्य सराहा ॥७॥ मनोहर प्रेमरसमें सनी वाणी सुनकर वसिष्ठजीने हृदयमें सुख माना ॥ ८ ॥

दोहा-गुरु वसिष्ठ कह विहँसि तब, कहहु कुँवर सत भाउ ॥
प्रगटहु मनवांछित हरषि, छाड़ि संकोच दुराउ ॥ ३ ॥

तब गुरु वसिष्ठजी हँसकर बोले-हे कुमार ! सद्भावसे कहो, संकोच और दुराव छोड़कर प्रसन्नतासे मनवांछित बात प्रगट करो ॥ ३ ॥

सुनि मुनि वचन सत्य ध्रुव जाने * केकय नन्दन तनु पुलकाने ॥१॥
प्रभु जग विदित विगत मदमाया * जानहु सब घटगति मुनिराया ॥२॥

मुनिके वचन सुन सत्य निश्चय जान केकयपुत्रका शरीर पुलकित हुआ ॥ १ ॥ हे प्रभो! जगत् जानता है कि आप मद मायासे रहित हो,मुनिराज! आप सबके मनकी बात जानते हो॥२॥

मम मनवांछित सुनिय कृपाला * निज जन जानि करिय प्रतिपाला॥३॥
भरत शत्रुहन दोनों भाई * चलहिं संग सोइ करिह उपाई ॥४॥

हे मुनिराय ! सुनिये ! मेरी मनकी इच्छाको अपना सेवक जानकर प्रतिपाल करिये ॥३॥ जिससे भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई संग चलें वही उपाय कीजिये ॥ ४ ॥

पावन करि मम देश अभीता * कृपासिंधु दोउ बन्धु अजीता ॥५॥
गये कछुक दिन पुनि दोउ भ्राता * ऐहें अवधपुरी जगत्राता ॥६॥

मेरा देश निर्भय पवित्र करके ये अजीत कृपासागर दोनों बन्धु ॥५॥ कुछ दिन जाने पर फिर जनोंके रक्षक दोनों भाई अयोध्यामें आवेंगे ॥ ६ ॥

मैं न सकहुँ कहि भूपति आगे * प्रभु तव पद विनवहुँ छल त्यागे ॥७॥
अस कहि कुंवर परेउ गुरु चरणा * मुनिमनगुनिकह सुनो अपरणा॥८॥

मैं तो राजाके आगे नहीं कह सकता,हे प्रभु! आपके चरणोंका छल त्यागकर विनय करता हूँ ॥७॥ हे पार्वती ! ऐसा कह कुँवर मुनिके चरणोंमें गिरे, फिर मुनि मनमें विचार कर बोले ॥८॥

दोहा-विधि प्रपंच आगम समुझि गुरु वसिष्ठ सज्ञान ॥
हँसि बोले मुनि कुवरसन, करि बहु विधि सन्मान ॥ ४ ॥

विधिका प्रपंच और आगमन समझकर ज्ञानी गुरु वसिष्ठजी कुँवरसे हँसकर अनेक प्रकार सन्मान करते हुए बोले ॥ ४ ॥

तुम नृपनन्दन नृपकी आना * राखेउ मोर बड़ापन माना ॥१॥
राम कृपामन काम तुम्हारा * पूरहि विधि धरु धीर कुमारा ॥२॥

हे नृपनंदन ! अपने राजाकी आन (मर्यादा) तथा मेरा मान और बड़ापन रख लिया॥१॥ हे कुमार ! श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे आपके मनके काम पूरे होंगे, मनमें धीरज धरो ॥ २ ॥

यहि विधि कहि मुनि वचन सुहाये * सहित कुँवर नृप मंदिर आये ॥३॥
गुरु आये लखि सहित समाजा * उठि प्रणाम कीन्हेउ रघुराजा ॥४॥

इस प्रकार मुनि शोभायमान वचन कहकर कुँवरके सहित राजमंदिरमें आये ॥३॥ गुरुको आते देखकर राजाने समाज सहित उठकर प्रणाम किया ॥ ४ ॥

लहि अशीष आसन बैठारे * पुनि केकयसुत राउ जुहारे ॥५॥
भूपति प्रिया अनुज सन्मानी * बैठहु कहेउ विहँसि मृदुबानी ॥६॥

आशीर्वाद लेकर आसन पर बैठाये, फिर केकयपुत्रने राजाको प्रणाम किया ॥५॥ राजाने अपनी प्रियाके छोटे भ्राताका सम्मान किया हँसकर मृदुबानीसे बैठनेको कहा ॥ ६ ॥

कुँवर न बैठ जोरि कर रहेऊ * तासु प्रश्न मुनिवर तब कहेऊ ॥७॥
केकय गमन कीन्ह गृह चहहीं * माँगत बिदा सकुचमन गहहीं ॥८॥

कुँवर बैठे नहीं हाथ जोड़ खड़े रहे, तब उनके प्रश्न मुनिराजने सुनाये ॥ ७ ॥ केकयपुत्र घर जाना चाहते हैं, विदा माँगनेको मनमें सकुचाकर रह जाते हैं ॥ ८ ॥

अब महीपमणि आयसु देहू * औरौ एक विनय सुनि लेहू ॥९॥
इन मन एक मनोरथ रूरा * उचित दयालु करिय सो पूरा ॥१०॥

सो हे राजन् ! अब इनको आज्ञा दो, और भी एक विनय सुन लो ॥ ९ ॥ इनके मनमें एक उत्तम मनोरथ है, हे दयालु ! यह उचित है इस कारण पूरा करो ॥ १० ॥

दोहा-भरत शत्रुहन बन्धु दोउ, पठइय इनके साथ ॥
शीलसिंधु दुहुँ बन्धु वसि, करि सब लोक सनाथ ॥ ५ ॥

भरतजी और शत्रुघ्नजी दोनों भाई इनके साथ भेज दो, शीलसागर दोनों भ्राता वहाँ रह कर और लोगोंको सनाथ करके ॥ ५ ॥

कछु दिन रहि सुख जननीमायक * पुनिपद देखहिं सुन नर नायक ॥१॥
मम सन्देश सुनत दोउ भाई * ऐहहिं बेगि अवध सुखदाई ॥२॥

राजन् सुनिये, कुछ दिन नानीके यहाँ रह सुख दे फिर आपके चरणोंको देखेंगे ॥१॥ मेरा सन्देशा सुनते ही सुखके देने वाले दोनों भाई फिर अवधपुरीमें शीघ्र ही आ जायँगे ॥ २ ॥

सुनि वसिष्ठके वचन सुहाये * सुत सनेह वश नृपहि न भाये ॥३॥
पुनि जिय समुझि अचल गुरुबानी * बोले भूप हिये सुख मानी ॥४॥

यह वसिष्ठजीके सुन्दर वचन सुनकर पुत्रोंके प्रेमके कारण राजाको अच्छे न लगे ॥३॥ फिर गुरुकी वाणी अचल समझकर राजा मनमें सुख मान बोले ॥ ४ ॥

अवशि नाथ जो तुमहिं सुहाना * सोइ धरि धीर मोर कल्याना ॥५॥
अस कहि गुरुपद नायउ शीशा * भरतहि लीन्ह बुलाय महीशा ॥६॥

हे नाथ ! अवश्य ही जो आपको भला लगता है उसको शिर पर धरनेसे मेरा कल्याण है ॥ ५ ॥ ऐसा कह गुरुके चरणोंमें शिर नवाया राजाने भरतजीको बुलाया ॥ ६ ॥

पितु अनुशासन सुनि दोउ भ्राता * आये नृपपहँ पुलकित गाता ॥७॥
गहे पिता पद पुनि गुरु चरना * बैठे मुनिढिग सुनो अपरना ॥८॥

पिताजीकी आज्ञा सुन दोनों भाई पुलकित शरीर राजाके निकट आये ॥७॥ हे पार्वती ! सुनो, पहले पिताजीके पीछे गुरुके चरण पकड़ मुनिके समीप बैठे ॥ ८ ॥

दोहा-देखि भरत रिपुसूदनहि, सकल सभा महिपाल ॥
ब्रह्मानंदहि मगन मन, बोलेउ बिहँसि भुवाल ॥ ६ ॥

भरत और रिपुसूदनको देखकर सभा व राजा ब्रह्मानंदमें मग्न हुए तब राजा हँसकर बोले॥६॥

तात भरत तुम दूनहु भाई * गुरुपद कमल अमल शिर नाई ॥१॥
गवनेहु केकय-नन्दन-साथा * करहु जाइ वह देश सनाथा ॥२॥

हे तात भरत ! तुम दोनों भाई गुरुके निर्मल चरण कमलमें शिर नवाकर ॥ १ ॥ केकयनंदनके साथ जाकर वह देश सनाथ करो ॥ २ ॥

जाहु जननिसन आयसु माँगी * सुभट सुसंग लेहु हितलागी ॥३॥
भूप चरणगहि आयसु लीन्हेउ * मोद समेत गवन तब कीन्हेउ ॥४॥

जाओ, मातासे आज्ञा लेकर आओ और अपने हितके वास्ते सेना भी संग ले जाओ ॥ ३ ॥ तब यह सुन दशरथजीके चरणोंको प्रणामकर आज्ञा ले प्रसन्न हो गमन किया ॥४॥

यहि विधि भूप रजायसु दयऊ * भरत शत्रुहन आनँद भयऊ ॥५॥
सहित वसिष्ठ तात पद माथा * हर्षि बंदि गवने द्विजनाथा ॥६॥

इस प्रकार राजाने आज्ञा दी और भरत शत्रुहनको आनंद हुआ ॥ ५ ॥ द्विजनाथ वसिष्ठ सहित पिताके चरणोंमें शिर नवाया प्रसन्न हो प्रणाम कर गमन किया ॥ ६ ॥

गहे जननि कौशल्या पाऊ * कहेउ हेतु अनुशासन राऊ ॥७॥
राम मातु दोउ सुत उर लाये * सुधासरिस फल मधुर खवाये ॥८॥

माता कौशल्याके चरणोंको प्रणाम किया और राजाकी आज्ञाका कारण सुनाया॥७॥श्रीरामचन्द्रजीकी माताने दोनों कुमारोंको हृदयसे लगाया और अमृतके समान मधुर फल खवाये॥८॥

सोरठा-अशन अमी सम पाइ, भरत शत्रुहन बन्धुयुग ॥
जननि चरण शिर नाइ, लहि अशीष गवनेहरषि ॥ १ ॥

अमृत समान भोजन पाकर भरत शत्रुघ्न दोनों भाई माताके चरणोंमें शिर नवा आशिष ले प्रसन्न हो चले ॥ १ ॥

सानुज भरत मोद भरि देहा * गवने श्रीरघुनन्दन गेहा ॥१॥
जगत्राता लखि आवत भ्राता * मिले मुदितमन मुख मुसुकाता॥२॥

भाई सहित अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीके घर गये ॥ १॥ जगत्के रक्षक अपने भाइयोंको आते देखकर मनमें प्रसन्न हो मुखसे मुसकाते हुए मिले ॥ २ ॥

परे चरण-पंकज दोउ भ्राता * कृपा उदधि रघुवर सुरत्राता ॥३॥
हरषि हृदय दोउ अनुज लगाये * परम रुचिर आसन बैठाये ॥४॥

दोनों भाई उनके चरणकमलमें पड़े जो श्रीरामचंद्रजी कृपाके समुद्र देवताओंके रक्षक हैं ॥३॥ प्रसन्न हो दोनों भाइयोंको हृदय लगाया और परम सुन्दर आसन पर बैठाया ॥ ४ ॥

निरखि जानकी चरण पुनीता * परसे भरत सबन्धु विनीता ॥५॥
नाइ शीश शुभ आशिष पाई * बैठे मुदित रामपहँ आई ॥६॥

जानकीजीके पवित्र चरणकमलोंको देखकर भरतने भ्राता सहित नम्र हो प्रणाम किया ॥५॥ शिर नवा सुन्दर अशीष पाय फिर प्रसन्न हो रामचंद्रजीके पास आ बैठे ॥ ६ ॥

भरत जोरि कर प्रभु रुख पाई * कहेउ भूप जस दीन्ह रजाई ॥७॥
अनुज वचन सुनि राम सुजाना * बोले शील सनेह निधाना ॥८॥

भरतने हाथ जोड़कर प्रभुका रुख पा जैसी राजाने आज्ञा दी थी कही ॥ ७ ॥ भाईके वचन सुनकर शील स्नेहके निधान सुजान श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ८ ॥

सोरठा-भूपशिरोमणि राउ, तुम कहँ आयसु दीन्ह जो ॥
मनक्रम वचन सुभाउ, करहु तात सोइ तुरत तुम ॥ २ ॥

हे तात! भूपश्रेष्ठ राजाने जो आज्ञा तुमको दी है; वह मन-वचन-कर्म स्वभावसे शीघ्र करो॥२॥

दीन्ह रजायसु रघुवर जबहीं * उठे भरत रिपुसूदन तबहीं ॥१॥
सहित सीय प्रभु पद धरि माला * बिदा भये हिय हर्षि विशाला ॥२॥

जबही श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा दी तबही भरत और रिपुसूदन उठे ॥ १ ॥ सीता और प्रभुके चरणोंमें शिर नवाकर हृदयमें अत्यन्त हर्षित हो बिदा हुए ॥ २ ॥

मुदित अनुज युत गवने तहवाँ * शुचिमंदिर केकइ रह जहवाँ ॥३॥
जननिहि करि प्रणाम मति धीरा * पितु रजाय वरणी दोउ बीरा ॥४॥

प्रसन्न हो भाई सहित वहां गये, जहां श्रेष्ठ मंदिरमें केकयी रहती थी ॥ ३ ॥ चतुर, वीर दोनों भाइयोंने माताको प्रणामकर पिताकी आज्ञा वर्णन किया ॥ ४ ॥

आशिष आयसु तुरतहि पाये * पितु समीप दोउ बन्धु सिधाये ॥५॥
नृपति हँकारे सुभट अपारा * ज्ञान निधान सुशील जुझारा ॥६॥

आशीर्वाद और आज्ञा पाय तुरन्त दोनों भाई पिताके समीप आये ॥ ५ ॥ राजाने अनेक योद्धाओंको बुलाया जो ज्ञानके निधान, सुशील और लड़नेवाले थे ॥ ६ ॥

सकल नवलतनु सुभग विचारा * जिनकहँ भरत प्राणते प्यारा ॥७॥
सुठि सुकुमार कुमार नृपनके * दीन्हे संग भरत हित मनके ॥८॥

सबके सब नये और अच्छे विचारवाले जिनको भरत प्राणोंके समान प्यारे थे ॥ ७ ॥ अच्छे सुकुमार राजाओंके कुँवर भरतजीके लिए उनकी रुचिसे साथ कर दिये ॥ ८ ॥

दोहा-सहित अनुज पुनि भरत गे, ललकि सुमित्रा गेह ॥
नाइ शीश लहि आशिष, राखि लषण सब नेह ॥ ७ ॥
मांगि बिदा आये बहुरि, भूपतिपहँ दोउ भाइ ॥
केकय गवने राम पहँ, रहेउ चरण शिर नाइ ॥ ८ ॥
पुनि उठि निरखत पदकमल, रहेउ जोरि दोउ हाथ ॥
करि प्रबोध दै भक्ति वर, बिदा कीन्ह रघुनाथ ॥ ९ ॥
पुनि मुनि पितुपद नाइ शिर, प्रमुदित भरत सुजान ॥
सानुज सह जननी अनुज, कीन्हेउ सदल पयान ॥ १० ॥

फिर प्रसन्नता सहित अनुजके संग भरत सुमित्राके घर गये, शिर नवाय आशीष पाय लक्ष्मणसे स्नेह रख फिर बिदा मांग दोनों भाई राजाके पास आये फिर युधाजित श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और चरणोंमें शिर नवाया फिर उठ चरणकमल देखते दोनों हाथ जोड़ रह गये; तब

श्रीरामचन्द्रजीने ज्ञान भक्ति वर दे बिदा किया। चतुर भरतजीने मुनि और पिताके चरणोंमें शिर नवाय प्रसन्न हो शत्रुघ्नजी और युधाजितके सहित दलके साथ पयान किया ॥७-१०॥

धरि मन नयन राम पद पासा * भरत शत्रुहन हृदय हुलासा ॥१॥
बिच बिच करि विश्राम सुहावन * गये मातु मायक जगपावन ॥२॥

मन और नयन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगाय, भरत, शत्रुघ्न हृदयमें प्रसन्न हुए ॥१॥ बीच-बीचमें सुखद विश्राम करते नानाके जगपावन स्थान पर पहुँच गये (संसारमें ननिहाल माताकी जन्मभूमि होनेके कारण तीर्थके समान पवित्र स्थान माना जाता है) ॥ २ ॥

भरत आगमन सुनि नृप केका * मंगल रचना रची अनेका ॥३॥
गुरु बुध सुभट लीन्ह नृप संगा * मन वच क्रम करि प्रेम अभंगा ॥४॥

केकयराजाने भरतका आना सुनकर अनेक मंगल रचना रची ॥ ३ ॥ गुरु, पंडित और वीरोंके साथ लेकर मन वचन कर्मसे दृढ़ प्रेम करके ॥ ४ ॥

श्याम गौर दोउ कुँवर विलोकी * भयउ भूप दल सहित विशोकी ॥५॥
मणिमय भूषण वस्तु अनूपा * दीन भेंट हित भरतहि भूपा ॥६॥

दलसहित श्याम गौर दोनों कुमारोंको देखकर राजा शोक रहित हुए ॥ ५ ॥ मणिमय भूषण, वस्त्र, अनुपम वस्तु, प्रसन्न हो राजाने भरतजीको भेंट दी ॥ ६ ॥

जन्म लाभ लहि सहित सामाजा * भरत लिवाय चले गृह राजा ॥७॥

समाज सहित जन्मका लाभ लेकर राजा भरतको लिवाय घर ले चले ॥ ७ ॥

छन्द-गवनेउ भवन लै भरत भूपति निरखि रानिन सुख लये।
करि आरती बहुभाँति मंगल दान द्विजवृन्दन दये ॥
प्रविशे भवन वर करि केकनंदन जनक जननी पद नये।
दिये विविध आशिष आरती करि मुदित नृप रानी भये ॥१॥

भरतको ले राजा घरको गये, रानी देख प्रसन्न हुई, अनेक आरती कर ब्राह्मणोंको मङ्गलदान दिये। केकयनंदन भी सुन्दर घरमें प्रवेश कर माता पिताके चरणोंमें प्रणाम करते हुए और राजा रानी भी अनेक आशीष दे आरती कर प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

दोहा-जबते ननिऔरे बसे, भरत सुनहु खगभूप ॥
भयउ देश तबते सुभग, परम कृतारथ रूप ॥ ११ ॥

हे गरुडजी! जबसे भरतजी नानीके यहां बसे, तबसे वह देश सुन्दर कृतार्थ रूप हो गया ॥११॥

सानुज भरत केकपुर आये * सो सुन चरित विचित्र सुहाये ॥१॥
रामकृपा पुनि सुनहु भवानी * अपर चरित अब कहहु बखानी ॥२॥

जब अनुज सहित भरत केकयपुरमें आये, वह विचित्र सुन्दर चरित्र सुनो मैं कहता हूँ ॥१॥ हे भवानी! फिर श्रीरामचन्द्रजी की कृपासे अब और चरित्र सुनो; मैं कहता हूँ ॥ २ ॥

माल्ल नाम इक निशिचर द्रोही * खरमुखकेतु तासु सुत कोही ॥३॥
सो खल केकनगर जब आवहि * तब महिदेवन अधिक सतावहि ॥४॥

एक मल्लनामक निशाचर बड़ा द्रोही था, खरमुखकेतु उसका पुत्र महाक्रोधी था ॥ ३ ॥ वह दुष्ट जब केकय नगरमें आता था, तब ब्राह्मणोंको अधिक सताता था ॥ ४ ॥

तेहि डर मुनिजननिशिदिन डरहीं * शुभ आचरणकवनविधि करहीं ॥५॥
मुनि सभीत सुनि भरत कृपाला * सहित शत्रुहन शोच विशाला ॥६॥

मुनि उसके डरसे रात दिन डरते थे, किस प्रकार अच्छे आचरण करें कृपालु भरतजी मुनियोंको डरे सुनकर शत्रुघ्नसहित बहुत विचारने लगे ॥ ६ ॥

सबकी पर्णकुटीर सिधाये * करि प्रणाम शुभ आशिष पाये॥७॥
कह कर जोरि सुनहु मुनिवृन्दा * तजि खलडर तप करहु अनंदा ॥८॥

सबकी पर्णकुटियोंमें गये और प्रणाम कर आशीष पायी ॥७॥ और हाथ जोड़ बोले—हे मुनिवृन्द ! सुनिये; आप लोग दुष्टोंका डर छोड़ आनंदसे तप कीजिये ॥ ८ ॥

हम सेवक तव कृपा भरोसे * यदपि नाथ सेवक बहु मोसे ॥९॥
रघुवंशिनिकी रीति गुसांई * अबलहुँ सुनहिं न द्विजदुखदाई ॥१०॥

और हम सेवक आपकी कृपाका भरोसा करते हैं, यद्यपि आपके निकट हमारे समान बहुतसे सेवक हैं ॥९॥ हे गुसाईं ! रघुवंशियोंकी यह रीति है कि ब्राह्मणके दुःख देनेवालेको अबतक भी नहीं सुन सकते ॥ १० ॥

रघुकुल राम अनुज पुनि सेवक *केहि विधिसहिय विप्र दुखदेवक॥११॥
सो सब द्विजपद भक्ति प्रभाऊ * निज बल प्रभुता गर्व न काऊ॥१२॥

एक रघुकुल दूजे श्रीरामचन्द्रजीके अनुज फिर सेवक तो ब्राह्मणके दुःख देनेवालेको कैसे सह सकते हैं ११यह सब ब्राह्मणोंके चरणकीभक्तिका प्रभाव है अपने बल और प्रभुताईका कुछ गर्व नहीं है१२

करहु स्वधर्म भरत अस कहेऊ * सुनि मुनिवृन्द आनँद लहेऊ ॥१३॥

अब अपना धर्म करो ऐसा भरतने कहा, तब मुनिवृंद सुनकर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥

छन्द—आनँद लहे मुनिवर विपुल अति सबल भरतहि जानिकै।
लागे करन जहँ तहँ अभय जप यज्ञ व्रतमन मानिकै ॥
मख करत सुनि खल अधमखरमुखकेतु अधिक रिसायकै।
धावा गरजि निशिचर सुभट दश खर्व संग लिवायकै ॥ २ ॥
रिपु जानि आवत भरत रिपुहन धनुष बाण सुधारिकै।
प्रमुदित चले दोउ बंधु सिय-रघुवीर-पद उर धारिकै ॥
तेहि नगरते वसु कोश आगे श्री भरत पग ढारिकै।
ठाढ़ो कियो मनुजाद यूथप निकट निकर प्रचारिकै ॥ ३ ॥

भरतजीको अत्यन्त बली जान मुनिवर परम प्रसन्न हुए, जहां तहां अभय हो जप, यज्ञ, व्रत मनमाना करने लगे। मुनि यज्ञ करते हैं यह वार्ता सुनकर अधम दुष्ट खरमुखकेतु बड़ी रिसकर गर्ज कर दशखर्ववीर राक्षस संग लेकर दौड़ा॥२॥ भरतजी और शत्रुघ्नजी शत्रुको आता देख धनुष बाण सुधार कर सिय रघुवीरचरण हृदयमें धारणकर दोनों भाई युद्धको चले उस नगरसे आठ कोस आगे श्री भरतजीने अपना पग अड़ाय ललकार कर राक्षसोंके यूथप समूहोंको खड़ा किया॥३॥

दोहा—ऋषिन तीर रिपुसूदनहिं, राखि भरत रणधीर ॥
आइ इकाकी ठाढ़ तहँ, जहँ खल दल बलवीर ॥ १२ ॥

रणमें धीर बलवानोंमें वीर भरतजी ऋषियोंके निकट रिपुसूदनको रखकर अकेले आकर खड़े हुए जहां दुष्ट राक्षसकी सेना थी ॥ १२ ॥

भरत हृदय सुमिरत रघुनायक * दक्षिण कर फेरत वर सायक ॥१॥
राम अनुज प्रमुदित मन कैसे * निरखि निकर करि केहरि जैसे॥२॥

भरतजी हृदयमें श्रीरामचंद्रजीका स्मरणकर दाहिना हाथ श्रेष्ठबाण पर फेरने लगे॥१॥भरत जी उस समय मनमें कैसे प्रसन्न थे जिस प्रकार सिंह हाथियोंके समूह देख प्रसन्न होता है॥२॥

मार अमित सुषमा मुख सोहा * देखत भा खलदल मनमोहा ॥३॥
चारन इक तब दुष्ट पठावा * आइ भरत ढिग वचन सुनावा ॥४॥

मुखकी शोभा अनेक कामदेवोंको लज्जित करती थी, जिसे देख राक्षसी सेना मोहित हो गयी ॥ ३ ॥ तब उन दुष्टोंने एक दूत भेजा; उसने भरतजीसे कहा ॥ ४ ॥

तुम नृपभूषण निरखन लायक * कत रोकत मग गहि धनुसायक ॥५॥
समर योग नहिं तुम सुकुमारा * दनुजभूप यह कठिन जुझारा ॥६॥

तुम राजाओंमें भूषणस्वरूप देखनेके योग्य हो,हमारा मार्ग धनुष बाण लेकर क्यों रोकते हो ॥ ५ ॥ हे सुकुमार! तुम युद्धके योग्य नहीं हो यह राक्षस कठिन युद्ध करने वाला है ॥ ६ ॥

जिन्हैं सहज मायाकृत खेला * सुध न रहे यह देखि अकेला ॥७॥
जेहि संग प्रबल वीर दश खर्वा * तेहि रण तुम किमि धीरज धर्वा ॥८॥

उन्हें मायाका खेल करना सहज है,जिसको समरमें अकेला भी देखकर सुध नहीं रहती॥७॥ जिनके संग दशखर्व प्रबलवीर रहते हैं,उनके साथ समरमें तुम किस प्रकार धीरज धरोगे॥८॥

छन्द–तेहि समर तुम किमि धरब धीरज बिकट भट जब गर्जिहैं।
आयुध विविध गिरि शिला सह वर गहे कर अति तर्जिहैं ॥
सुनि तासु वाणी श्री भरत रिसि रोकि दूत विचारिकै।
रघुवर अनुज श्रुतिसेतु पालक कही गिरा पुकारिकै ॥ ४ ॥
रिपु कहँ कृपा नहिं उचित अस मैं कहहुँ ताहि बुझाइकै।
अब लरहु तुम छल छांड़ि निज निज बाहुबल दिखराइकै ॥
तुलसी भरतकर वचन सुनि पुनि चार फिर खरपहँ गयो।
करि विनय कहेउ वृतांत जब तब सुनत खर क्रोधित भयो ॥५॥

जब वे विकट भट गर्जना करेंगे और अनेक प्रकार शिला पर्वत,शस्त्र अच्छी तरह हाथमें ग्रहण करके तर्जना करेंगे तब इनके संग संग्राममें किस विधिसे धीरज धरोगे? उनकी वाणी सुन दूत विचार कर भरतजीने रिस रोकी और वेद मर्यादा पालक रघुवरके अनुजने विचार कर वाणी कही ॥४॥ शत्रु पर कृपा करनी उचित नहीं है ऐसा मैं कहता हूँ-जाकर अपने स्वामीसे कहो कि अब सब योद्धा अपनी-अपनी भुजाका बल दिखाकर कपट छोड़ लड़ो। भरतके वचन सुन दूत फिर कर खरमुखके पास गया और विनय करके वृत्तांत कहा,तब सुनते ही खर क्रोधित हुआ॥५॥

दोहा-भृगुनन्दनके शिष्य बहु, यहि विधि उठे रिसाइ ॥
प्राचीदिशि रवि सन्मुखहिं, जिमि निहार-समुदाइ ॥ १३ ॥

तब यह शुक्राचार्यके शिष्य अनेक प्रकार रिसाकर ऐसे चले जैसे पूर्व दिशामें रविके सम्मुख निहार (कुहरा) होता है ॥ १३ ॥

नाना गिरि तरु धरि खल धाये * भरत हृदय रघुबीर मनाये ॥१॥
राम अनुज निज धनुष टँकोरा * रिपु दल बाहिर भयउ सुनि घोरा॥२॥

वे दुष्ट अनेक प्रकारके पर्वत, वृक्ष, धारण करके दौड़े; तब भरतने हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके अनुजने अपने धनुष पर टंकोर दी, वह शब्द सुनकर शत्रुओंका दल बहरा हो गया ॥ २ ॥

यहां शत्रुहन हृदय विचारा * आइ भिरचो रिपुदल बरियारा ॥३॥
जय रघुबर कहि चाप चढ़ावा * रवि समान शर जोरि चलावा ॥४॥

यहां शत्रुघ्नजीने हृदयमें विचार किया कि, प्रबल शत्रुका दल आ मिला ॥ ३ ॥ जय रघुवर ऐसा कहकर चाप चढ़ाया और सूर्यके समान बाण जोड़कर छोड़े ॥ ४ ॥

खरमुख दलहिं परा सो जाई * अनी अयुत दुइ अवनि गिराई ॥५॥
दूसर शर शत्रुघ्न पवारा * गिरे निशाचर सुभट अपारा ॥६॥

वह बाण खरमुखके दलमें जाकर पड़ा और बीस सहस्र सेना पृथ्वीमें गिरा दी ॥ ५ ॥ दूसरा बाण शत्रुघ्नने छोड़ा जिससे अपार राक्षस योद्धा गिर गये ॥ ६ ॥

भरत अनुज पुनि दिक शर छाड़े * चले प्रचण्ड भरतते चांड़े ॥७॥
चंड विशिखगण अरिदल गवना * कीन्ह जो कौतुक सुनअहिदवना ॥८॥

फिर शत्रुघ्नजीने दश बाण भरतसे अधिक क्रोध करके छोड़े और वे प्रचण्डतासे चले॥७॥ वे प्रचंड बाण समूह शत्रुओंके दलमें चले; हे गरुड़जी! सुनो उन बाणोंने जो कौतुक किया॥८॥

छन्द-शर गये अरिदल पेल, तहँ करन लागे खेल ।
लै लै निशाचर वीर, डारहिं विदारि शरीर ॥
जित तित भजैं खल वृन्द, शर धाइ डारे छिंद ।
पुनि शरहु दिशिते घेरि, लावहिं समरमँह फेरि ॥
पुनि विधहि विशिख कराल, चिक्करहिं दनुज विशाल ।
लखि लरत केवल तीर, रणमहँ न कोऊ वीर ॥
दै शपथ सेनहिं फेर, भट बहुरि लावा घेरि ।
करि खेल घटिका पांच, प्रविशे निषंग नराच ॥६॥

जब बाण शत्रुसेनामें गये, तब वहां जाय खेल करने लगे, निशाचर वीरोंको ले लेकर उनका शरीर विदीर्ण करने लगे, जहां-तहां दुष्ट लोग भागने लगे, और बाण दौड़कर उनको छेदन करने लगे, फिर दशों दिशाओंसे घेरकर समरमें फेर लाते थे; फिर तीक्ष्ण बाण आकर वेधन करते थे; बड़े राक्षस चिक्कार करते थे जब खरने देखा कि युद्धमें कोई वीर नहीं है केवल बाण लड़ते हैं, शपथ देकर सेनाको खड़ी किया फिर घेरकर लाया इस प्रकार पांच घड़ी खेल करके फिर नाराच निषंगमें प्रविष्ट हुए ॥ ६ ॥

सोरठा-भरत अनुज बल देखि, पुलकि सराहेउ रिपुहनै ॥
सुरगण हरष विशेषि, भरत अनुज बल जानि जिय ॥३॥

भरतजीने अनुजका बल देखकर पुलकित हो उनकी सराहना की, भरतके अनुजका बल मनमें जान देवता बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥

समुझि विबुध रामहिं अनुकूला * पुनि पुनि वर्षहिं सुरतरु फूला ॥१॥
जय जय भरत शत्रुहन वीरा * जयति राम-भ्राता रणधीरा ॥२॥

देवता श्रीरामचन्द्रजीको अनुकूल जानकर बारंबार कल्पवृक्षके फूल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ भरतजी और शत्रुघ्न वीरकी जय हो ! रणधीर राम भ्राताकी जय हो ! ॥ २ ॥

इहि विधि वचन कहत सब देवा * अभय होन हित लावहिं सेवा ॥३॥
निर्भय अस्तुति करहिं बखाना *सुनिखरमुखखलअधिकरिसाना ॥४॥

इस प्रकार सब देवता वचन कहते हैं और अभय होनेके निमित्त अपनी सेवा लाते हैं॥३॥ और निर्भय होकर स्तुति करते हैं यह सुनकर खल खरमुख बड़ा कुपित हुआ ॥ ४ ॥

फेरा निज दल सुभटन डाटी * धाये खल गहि गहि गिरि भाटी॥५॥
डारे राम अनुज पहँ कैसे * वारिद करहिं बारि झरि जैसे ॥६॥

योद्धाओंको डाटकर अपना दल फेरा और वे दुष्ट पत्थर शिला लेकर दौड़े ॥ ५ ॥ और इस प्रकार राम अनुजपर डाल दिये जैसे मेघ वर्षा करते हैं ॥ ६ ॥

भरत विहँसि इक बाण चलावा * छत्र समान सुसुभग सुहावा ॥७॥
पुनि शर दूसर छांड़ी जबहीं * गे उड़ि रज हुइ गिरितरु तबहीं ॥८॥

तब भरतजीने हँसकर बाण चलाया, जो छत्रके समान सुन्दर शोभायमान था ॥ ७ ॥ फिर जब ही दूसरा बाण छोड़ा तब ही रज होकर गिरि तरु पेड़ उड़ गये ॥ ८ ॥

दोहा-गये पक्ष दुइ योजनहिं, किमि निश्चर समुदाइ ॥
जिमि मारुत अति प्रबलते, कज्जल अचल उड़ाइ ॥ १४ ॥

पक्ष दुइ (तीन योजन) पर वे राक्षस ऐसे जा पड़े जैसे कभी पवन वेगसे कज्जल का पर्वत उड़ जाय ॥ १४ ॥

आवा बहुरि भरतके पासा * देखि भरत कहँ वचन प्रकाशा ॥१॥
मायामय रण कवन शुराई * छिपा बन्धु तव विशिख लराई ॥२॥

फिर वह राक्षस भरतके पास आया भरतजीको देखकर कहने लगा ॥ १ ॥ मायाका युद्ध करनेसे क्या शूरता दिखाई है ? बाणकी लड़ाई में तुम्हारे बन्धु छिप गये हैं ॥ २ ॥

पवन बाण तुम एक चलावा * योजन तीसक कटक उड़ावा ॥३॥
बिहँसि कहा रघुवंश-कुमारा * अवश काज कत दोष हमारा ॥४॥

तुमने एकही पवन बाण चलाकर तीस योजन कटक उड़ा दिया ॥ ३ ॥ तब रघुवंश कुमार हँसकर बोले- यह आवश्यक कार्य है इसमें हमारा क्या दोष है ॥ ४ ॥

शूर कवन हम रघुकुल बालक * विप्र-देव द्रोही खल घालक ॥५॥
अपयश भूषण बली दुखद द्विज * मानी भट पुनि अनयीभूभुज ॥६॥

हम रघुकुलके बालक हैं, शूर नहीं हैं, ब्राह्मण देवताओंके द्रोही दुष्टके मारनेवाले हैं ॥५॥ अपयशके भूषण बली देवताओं और ब्राह्मणोंके दुःखदाता मानी भट नीति रहित राजा॥६॥

इनते किये न रण हम सोहा * यथा मृतक पर बूझ न कोहा ॥७॥
ताते बाण प्रभाव जनावा * तुमहिं जीति कस सुयश सुहावा ॥८॥

इनसे हमको युद्ध करनेसे शोभा नहीं है, जैसे मृतक पर क्रोध करना अनुचित है॥७॥इससे केवल बाणका प्रभाव ही जता दिया है तुमको जीतनेसे सुयश कैसे शोभित होगा ॥ ८ ॥

दोहा-त्यागि द्रोह द्विजजाहु गृह, भजहु सदा रघुवीर ॥
करहु निरंतर राजसुख, जो तुम भट रणधीर ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंका द्रोह छोड़कर घर जाओ, सदा श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो और यदि तुम रणधीर योद्धा हो तो निरंतर सुखपूर्वक राज्य करो ॥ १५ ॥

सुनत गिरा खल हृदय लजाना * सेन समेटि बहुरि रण ठाना ॥१॥
गर्जा घोर कठोर अपारा * सुना शब्द तिन सुनब बिसारा ॥२॥

यह वाणी सुनकर दुष्ट मनमें लजाया और सेना समेट कर युद्ध ठाना ॥ १ ॥ और अपार घोर कठोर गर्जना की इससे किसीको कुछ सुनायी नहीं पड़ता था ॥ २ ॥

पुनि तमबाण मानते छाँड़ा * अन्धकार अवनी अति माँड़ा ॥३॥
हाहाकार मच्यो चहुँ ओरा * छिपे तेजरवि भौं तम घोरा ॥४॥

फिर धनुषसे अन्धकार बाण छोड़ा जिससे भूमिमें अति अन्धकार छा गया ॥ ३ ॥ चारों ओर हाहाकार मच गया, सूर्यका तेज छिपा, घोर अन्धकार छा गया ॥ ४ ॥

भरत विलोकि लोक विकलाई * छाँड़ेउ भानुबाण अतुराई ॥५॥
कटा विषिक तम मिटा अन्धेरा * भयउ प्रकाश जगत चहुँ फेरा ॥६॥

भरतजीने लोकोंकी व्याकुलता देख शीघ्रतासे सूर्य बाण छोड़ा ॥ ५ ॥ बाण कट गया और अन्धेरा मिट गया । संसारमें चारों ओर प्रकाश हो गया ॥ ६ ॥

आवा पुनि खल दल लै भारी * छांड़सि अस्त्र शस्त्र भयकारी ॥७॥
एक भरत बहु सुभट प्रहारा * जरत पतंग जिमि दीपक झारा॥८॥

फिर वह दुष्ट बड़ा दल लेकर आया और उसने भयंकर अस्त्र-शस्त्र छोड़े।७।एक तो भरत और अनेक योद्धाओंका प्रहार परंतु वे सब ऐसे भस्म होते थे जैसे दीपक पर पतंग जलकर पंखहीन हो जाते हैं।८॥

छन्द-जिमि परत दीप पतंग जारत, शस्त्रगण निष्फल गये ।
पुनि सोच पोच पहार पाहन, विटप बहु डारत भये ॥
सुर देखि घोर प्रहार व्याकुल, त्रास युत अम्बर खरे ।
केहि भाँति होइ उबार अब शर, देखि अगणित दबि मरे ॥ ७ ॥

जिस प्रकार दीपकके निकट पतंग आकर पंखहीन होते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंके आयुध समूह निष्फल हो गये, फिर उस दुष्टने विचार पूर्वक बहुतसे पर्वत, वृक्ष, शिलाओंका प्रहार किया, देवता घोर प्रहार देखकर व्याकुल हो भयसे आकाशमें खड़े थे, अब किस प्रकार उबार होगा ? क्योंकि बहुतसे दबकर मर गये ॥ ७ ॥

छन्द-रणमध्य रघुवर बन्धु राजत, जिमि द्विरददल केशरी ।
भय विन शरासन तान कान, समीप करि त्यागन करी ॥
टंकोर रव दश ओर घोर, कठोर सुनि रिपु भौंचके ।
भइ वधिर खरमुख सेन सगरी, सुनत बैन न रह सके ॥ ८ ॥

युद्धमें भरतजी इस प्रकार विराजमान हैं,जैसे हाथियोंके झुण्डमें सिंह भयरहित हो; शरासन तानकर कानपर्यन्त चढ़ाय बाण छोड़े; उनकी घोर कठोर टंकोरध्वनि दशों दिशाओंमें भर गई, शत्रु घबड़ाये,सब खरमुख की सेना बधिर हो गई, शब्द होनेके कारण ठहर न सके ॥ ८ ॥

सोरठा-सुनत न टेरे टेरि, बिकल शत्रुसेना सकल ॥
भरत जोरि सरफेरि, छांड़ेउ रिपुदल दलन हित ॥ ४ ॥

कोई बुलानेसे भी नहीं सुनता, शत्रुकी सेना व्याकुल हो गयी, भरतजीने फिर बाण चढ़ा कर शत्रुदलके मारनेको छोड़े ॥ ४ ॥

भये बहुत खल धूरि समाना * सोहत समर वेष धरि नाना ॥१॥
भरत चरन रज इक शिर नावा * त्रिदशापुर तेहि हर्षि पठावा ॥२॥

बहुतसे दुष्ट धूरीके समान हो गये और अनेक वेष धर समरमें शोभित हुए ॥१॥ एकने भरतके चरणकी रजमें शिर नवाया, प्रसन्न हो उसे देवलोकको भेज दिया ॥ २ ॥

बहुतक भट पुनि उठेउ सँभारी * धाये गरजि तरजि निशि चारी॥३॥
मायाधीश अनुज सन माया * करहिं निशाचर अधम अदाया॥४॥

फिर बहुत राक्षस योद्धा सँभार कर उठे और गरज-तरज कर दौड़े ॥३॥ और मायापतिके अनुजसे अधम दया रहित निशाचर माया करने लगे ॥ ४ ॥

छांड़ असित नराच अपारा *पुनि भा यामिनिजिमिअँधियारा॥५॥
तब रविबाण भरत संचारा * रिपुशर काटि कीन्ह उजियारा॥६॥

कृष्णवर्णके अनेक बाण छोड़े फिर रात्रिके समान अँधियारा हो गया ॥ ५ ॥ तब भरतजीने रविबाण छोड़ा और शत्रुके बाणोंको काट उजियाला कर दिया ॥ ६ ॥

विहँसि भरत पुनि चाप चढ़ावा * अग्निबाण पुनि सपदि चलावा ॥७॥
जरे अमित खल तृणसम तूला * देखि विबुध बरसे वर फूला ॥८॥

फिर भरतजीने हँसकर चाप चढ़ाया और फिर शीघ्र ही अग्निबाण चलाया ॥७॥ अनेक दुष्ट तृण और रुईके समान जल गये, देवताओंने देख उत्तम फूल बरसाये ॥ ८ ॥

सोरठा-जिमि नभ पर नभमाहि, घन समूह कं-करत झरी ॥
भरत शत्रुहन पाहि, करि वरषा त्रिदशा सुमन ॥ ५ ॥

सावनमें जिस प्रकार आकाशमें घन समूह (कं) शब्द करते-जलकी झरी करते हैं उसी प्रकार भरत शत्रुघ्न पर फूल बरसाने लगे ॥ ५ ॥

देखा समर वीर भय माना *खड़ा तमीचर खरमुख ज्ञाना ॥१॥
गहिधनु शर प्रभु निकट तुलाना * छांड़े सायक उरग समाना ॥२॥

वीर उस युद्धको देखकर भय मान भाग गये और राक्षस खरमुख धीरज धारे रहा ॥१॥ और धनुष बाण लेकर प्रभुके निकट प्राप्त हुआ और सर्पके समान बाण छोड़े ॥ २ ॥

चले फूंकरत शर समुदाई * देखि हँसे रघुवर लघु भाई ॥३॥
जयति राम कहि तजेउ नराचा * लगेउ गरुडसम सो शर पांचा ॥४॥

वे बाणसमूह फुँकार मारते चले, जिन्हें देखकर रघुवीरके छोटे भाई हँसे ॥ ३ ॥ और 'रामकी जय' कहकर उन्होंने पांच बाण छोड़े वे बाण गरुड़के समान लगे ॥ ४ ॥

अरिशिर काटि निकट भट मारी * गरजहिं रिपुकर शिरपर भारी ॥५॥
राम अनुज करि अस रण क्रीड़ा * देहिं निशाचर कर गहि पीड़ा ॥६॥

वे शत्रुके बाण काटकर योद्धागणोंको मार शत्रुके शिरपर अत्यंत गरजते हैं॥५॥ रामजीके लघुभ्राताने रणमें ऐसी क्रीड़ाकी कि,निशाचरोंको बड़ी पीड़ा दी और उनके प्राण जाने लगे॥६॥

शत शर प्रबल भरत संधाना *कीन्ह सकल रिपु कटक निदाना॥७॥
सकल शूर रण सेज सुवाये * भरत विशिख तूणीर समाये ॥८॥

भरतजीने महा प्रबल सौ बाण चलाये और शत्रुओंके कटकका अन्त कर दिया॥७॥ सब शत्रुओंको युद्धकी सेजमें सुलाकर वे भरतजीके बाण फिर तरकसमें आ गये ॥ ८ ॥

दोहा-निशचर रहा अकेल तब, खल खरमुख भुज जोर ॥
ले दुहुँकर दुइ शिखर शठ, धावा करि रव घोर ॥ १६ ॥

तब वह प्रबल भुजावाला दुष्ट राक्षस खरमुख अकेला रह गया और दोनों हाथोंमें दो शिखर लेकर भयानक शब्द कर शठ दौड़ा ॥ १६ ॥

सहित शिखर निशिचर भुजदंडा * तजि इक सायक कृत युग खंडा॥१॥
बहुरि एक शर भरत चलावा * काटि तासु शिर धरणि खसावा॥२॥

तब भरतजीने एक ही बाण छोड़, राक्षसके शिखर सहित भुजदण्डके दो टुकड़े कर दिये ॥१॥ और फिर एक बाण भरतजीने चलाया,उसका शिर काटकर भूमिमें डाल दिया ॥२॥

शीशहीन खल सन्मुख धायउ * तेहिक्षण धरा कछुक भय पायउ॥३॥
सभय विश्व जाना भगवाना * कीन्ह तासु तनु रज परिमाना ॥४॥

वह दुष्ट शिर हीन भी सम्मुख धावमान हुआ, उस समय पृथ्वी कुछ भयभीत हुई ॥३॥ तब भरतजीने विश्वको सभीत जान उसके शरीरको धूलिके समान चूर्ण कर डाला ॥ ४ ॥

तजत प्राण गरजा सो भारी * भई धरा अति हृदय सुखारी ॥५॥
चढ़ि विमान नभ खरमुख गयउ * देवन हरषि दुन्दुभी दयऊ ॥६॥

प्राण त्यागने पर उसने बड़ी गर्जना की पृथ्वी हृदयमें अत्यन्त सुखी हुई ॥५॥ खरमुख विमानमें चढ़कर स्वर्गको गया, देवताओंने प्रसन्न हो दुन्दुभी बजाई ॥ ६ ॥

कहि जय जयति जयति जनत्राता * जयति भरत जय रिपुहन ताता॥७॥
गावत राम अनुज यश भूरी * गये अमर निज गृह सुखपूरी ॥८॥

और जनके रक्षक भरत शत्रुघ्नकी जय हो जय हो ऐसा कहा ॥ ७ ॥ भरतजीका महा-यश गान करते हुए देवता प्रसन्न हो अपने स्थानको गये ॥ ८ ॥

दोहा-खग जंबुक वेताल गण, चूसे रुधिर अघाइ ॥
गवने सब निज निज थलन, रामबन्धु यश गाइ ॥ १७ ॥

पक्षी, गीदड़ और वेतालगण उनकी सेनाका रुधिर पानकर अघाकर अपने-अपने स्थानों को भरत और शत्रुघ्नके गुण गाते चले गये ॥ १७ ॥

बिनु श्रम भरत कठिन रिपु मारा * सुमिरि हृदय सिय राम उदारा॥१॥
उपमा शील सकल गुण भवनू * गवने भरत जहाँ रिपुदवनू ॥२॥

विना श्रमके ही भरतजीने कठिन शत्रुको मारा और हृदयमें उदार सीता रामजीका स्मरण किया ॥१॥ सब उपमा योग्य शील सम्पन्न गुणोंके घर भरत रिपुसूदनके समीप आये॥२॥

रिपुहन परे भरतके चरणा * प्रेम प्रमोद जाय नहिं वरणा ॥३॥
भरत स्वबन्धु पुलकि उर लाये * मिलत परस्पर अति सुखपाये ॥४॥

शत्रुघ्न भरतके चरणोंमें पड़े, प्रेम-आनंद वरणा नहीं जाता ॥३॥ भरतजीने अपने बंधुको पुलकित हो हृदयसे लगाया और परस्पर मिलनेसे बड़ा आनंद पाया ॥ ४ ॥

पुनि महिदेवन कीन्ह प्रणामा * सहित बन्धु परिपूरण कामा ॥५॥
विप्र अशीश देहिं अति शीतल * निर्भय भये त्रास खल बीतल ॥६॥

फिर भाई सहित ब्राह्मणोंको प्रणाम किया, और पूर्णकाम हुए ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंने बड़े उत्तम आशीर्वाद दिये, दुष्टोंके त्रास बीतनेसे निर्भय हुये ॥ ६ ॥

संग अनुज द्विजवृन्द समेता * भरत चले जहँ भूपनिकेता ॥७॥
भरत समर करि बड़ रिपुमारा * यह सुनि पायहु केक भुवारा ॥८॥

अनुज और ब्राह्मणोंके समूह संग लिये भरतजी राजाके स्थानको चले गये ॥ ७ ॥ भरतजीने समर कर बड़े शत्रुको मारा यह समाचार केकय राजाने पाया ॥ ८ ॥

छन्द-सुधि पाय केक भुवार प्रमुदित चले निजदल साजिकै ।
दुन्दुभि हनत गुण भनत गायक भरत यश भय त्यागिकै ॥
इहि भाँति भूपति भरत सनमुख बहु रतन धन वारहीं ।
तुलसी सराहत प्रभुहि नृपदल मिलहिं हर्षि जुहारहीं ॥ ९ ॥

यह सुध पाय केकयराजा प्रसन्न हो दल साजके साथ चले, इधर दुदुंभी बाज रही और गानेवाले भय त्याग भरतके गुण यशगाते थे, इस प्रकार राजा भरतके सम्मुख बहुत रत्न धन न्योंछावर करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं किसब राजाका दल प्रसन्न हो प्रभुकी सराहना-जुहार करता है॥९॥

दोहा-भरत शत्रुहन दलसहित नृप गृह कीन्ह प्रवेश ॥
साजहिं रानी आरती, मंगल गाव खगेश ॥ १८ ॥

भरत और शत्रुघ्नने दलके सहित राजाके घरमें प्रवेश किया । हे गरुड़जी ! रानियाँ मङ्गल गाती आरती सजातीं हैं ॥ १८ ॥

कीन्ह आरती मङ्गल गाई * विविध वस्तु गज वाजि लुटाई ॥१॥
भये अभय पुरलोक सुखारी * गृह गृह मंगल गावहिं नारी ॥२॥

मङ्गल गाकर आरती की, अनेक वस्तु हाथी, घोड़े दान दिये ॥ १ ॥ पुरवासी अभय हो सुखी हुए, स्त्रियाँ घर-घरमें गाने लगीं ॥ २ ॥

देत दान रितवहिं भण्डारा * तुरत भरै धन विविध प्रकारा ॥३॥
केकय नृप गृह मङ्गल जैसा * कहि न सकै निगमागम तैसा ॥४॥

दान देते-देते भण्डार खाली करदें और भरतके प्रभावसे वे सब भाँति फिर भर जायँ ॥ ३ ॥ केकयराजाके घर जैसा मङ्गल है वेद और शास्त्र भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

करहिं देव झरि सुमन अपारा * गाय भरत यश बहुत प्रकारा ॥५॥
ऋषि समूह दोउ कुँवर निहारी * अस्तुति करहिं सुनहु उरगारी ॥६॥

देवता फूलोंकी वर्षा करते हैं, भरतका यश अनेक प्रकार गाते हैं ॥ ५ ॥ हे गरुड़जी ! सुनो, ऋषिसमूह दोनों कुमारोंका दर्शन कर स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

जयति राम-भ्राता दोउ बीरा * मदन कोटि छबि निंदशरीरा ॥७॥
जय गोद्विज जनहित तनुधारी * जयति जयति उर्वीभयहारी ॥८॥

रामजीके भ्राता दोनों वीरोंकी जय हो, जिनका शरीर कोटि कामदेवकी छबिकी निंदा करतेहैं॥७॥ गो, ब्राह्मण भक्तोंके निमित्त शरीर धारणकरनेवालेकी जयहो, भूमिके भयको दूर करनेवालेकी जयहो॥८

छन्द-जय जयति उर्वी-भयहरन दोउ बन्धु शील उजागरे ।
छबिभवन संसयदवन धृत-शरचाप प्रभु करुणा करे ॥
जयराम-अनुज कृपालु दीन-दयालु यह वर दीजिये ।
तवचरणपंकज अमल हमनिशि दिवस दृग अलि कीजिये ॥ १० ॥

भूमिके भयहरनेवाले दोनों बंधु शीलताके उजागर आपकी जय हो; छबिके भवन, संदेहको दूरकरनेवाले, करुणाकर शरचापके धारण करनेवाले आपकी जय हो, हेराम अनुज ! कृपालु दीनदयालु ! यह वर दीजिये कि आपके चरण कमलोंमें हमारे नेत्र भ्रमरके समान दिन रात्रि लगे रहें ॥ १० ॥

सोरठा-यह वरदान कृपालु, देहु दयानिधि दया करि ॥
शमन सकल जंजाल, निजपद भक्ति सप्रेमदृढ़ ॥ ६ ॥

हे कृपालु ! हे दयानिधे ! दया करके यह वरदान दो कि सब जंजालको शांत करके आपके चरणकमलमें सप्रेम दृढ़ भक्ति हो ॥ ६ ॥

सुनि मुनि विनय भरत पुलकाने * बोले बैन सुधारस साने ॥१॥
भूसुर सुनहु वचन परिमाना * जिनकी कृपा अभय मय दाना ॥२॥

मुनियोंकी विनय सुनकर भरतजी पुलकायमान हुए और अमृतके समान सुन्दर वचन बोले कि ॥१॥ हे ब्रह्मणो ! ये हमारे विश्वासप्रद वचन सुनो; जिनकी कृपासे संग्राममें अभय होता है॥२॥

हम जीते बड़ खल सुरद्रोही * नेकु परिश्रम भयउ न मोही ॥३॥
तेहि प्रभुके मुख पंकज नीके * निजदृग अलिसे अतिप्रियजीके॥४॥

और हमने बड़े देवद्रोही असुरोंको जीता, पर हमको कुछ भी परिश्रम न हुआ ॥ ३ ॥ उन प्रभुके सुन्दर मुख कमलमें हमारे नेत्र भौंरोंके समान और जीके बहुत प्यारे रहें ॥ ४ ॥

करो लहो सुख भवभयनाशी * जपै जिन्हे नितहरगिरिजासी ॥५॥
हम रघुपति-दासनके दासा * द्विजवर मानहु यह विश्वासा ॥६॥

संसारके भय नाश करनेवाले प्रभुका स्मरण कर सुख प्राप्त करो, जिसका शिव-पार्वती सदा जप करते हैं ॥५॥ मैं रघुनाथजीके दासोंका दास हूँ हे ब्राह्मणो ! यह मनमें विश्वास मानो॥६॥

रामनाम मणि मनअहि करहू * अभय होहु भव भय परिहरहू ॥७॥

मम अनुचित सिख तुम श्रुतिबेता * सुनि बोले द्विज सकल सचेता ॥८॥

राम रूपी मणि ग्रहण करने को मन सर्पके समान करो; अभय होकर संसारका भय त्यागो ॥ ७ ॥ मेरी शिक्षा आपको अनुचित है क्योंकि आप श्रुतिके वेत्ता हो, यह सुनकर वे विद्वान् ब्राह्मण बोले ॥ ८ ॥

छन्द–द्विज सकल परम सचेत बोले भरत वचननि चित धरे ।
निरखहिं मनोहर उभय मूरति, सकल अम्बकजल भरे ॥
तुम विना अस सिख देइको, सकु हमैं भूरुजगंजनं ।
हम तुमहिं रामहिं एक जानत, सुनहु खल खर भञ्जनं ॥११॥

भरतके वचनोंको चित्तमें धर वे अत्यन्त ज्ञानी ब्राह्मण बोले और उन दोनोंकी मनोहर मूर्ति देख उनके नेत्रोंमें जल भर आया । हे भूमिके दुःख मेटनेवाले ! आपके विना ऐसी शिक्षा हमें कौन दे सकता है । दुष्ट खरमुखके नाशक ! सुनिये, हम आप और रामको एक जानते हैं, यह हमारा निश्चय सिद्धान्त हुआ है ॥ ११ ॥

दोहा–मनवांछित फल पाय सब, द्विज गवने निज धाम ॥
तुलसी गावत भरत यश, पावा सब मन काम ॥ १९ ॥

सब ब्राह्मण मनवांछित फल पाकर अपने घरको गये और भरतका यश गाते हुए मनकी सब कामना प्राप्त किये ॥ १९ ॥

भरत संग जे राजकुमारा * आगे दशगुण शील उदारा ॥१॥
सो सब देखि भरतकै करणी * पायउ हर्ष जाइ नहिं बरणी ॥२॥

भरतजीके संग जो दश गुण शीलके उदार राजकुमार आये थे ॥ १ ॥ वे सब भरतजीकी करनी देखकर ऐसी प्रसन्नताको प्राप्त हुए जो वर्णी नहीं जाती ॥ २ ॥

नित नूतन सुख लहहिं सुपासा * मास चार तहँ कीन्ह निवासा ॥३॥
सानुज भरत सुखद रुख पाई * केक नृपतिके पद शिर नाई ॥४॥

वे सब नित्य नये सुख पाने लगे, चार महीने वहां निवास किया ॥ ३ ॥ और फिर अनुज सहित भरतकी सुखमयी संमति पाकर केकय राजा के चरणोंमें शिर नवाया ॥ ४ ॥

माँगि विदा ते भूपकुमारा * चले अवध हिय हर्ष अपारा ॥५॥
केकराउ नग विविधि अनूपा * जान अयुत दुइ सुन खगभूपा ॥६॥

वे सब राजकुमार बिदा मांगकर हृदयमें बहुत प्रसन्न हो अवधको चले ॥५॥ हे गरुड़जी सुनो, केकयराजाने अनेक अनुपम रत्न २०००० बीस सहस्र दिये ॥ ६ ॥

वसन विचित्र अनेक सुहाये * खगमृग हयगय हाटक छाये ॥७॥
धन अपार बहु भार भराई * कुँवरन सँग नृप दीन पठाई ॥८॥

अनेक शोभायमान विचित्र वस्त्र, खग, हाथी, घोड़े; सुवर्ण ॥ ७ ॥ अपार धनके बहुत भार भरवा कर कुमारोंके संगमें भेज दिया ॥ ८ ॥

दोहा–भरत शत्रुहन पद जलज, बंदि बंदि शिर नाइ ॥
सेन सहित सब कुँवर तब, चले सुमिरि रघुराइ ॥ २० ॥

वे भरत और शत्रुघ्नके चरणकमलको बारंबार शिर नवाकर सेना सहित सब कुमार रघुनाथजीका स्मरण करके चले ॥ २० ॥

भरत शत्रुहन दोउजन साथा ❋ गवने सार्ध-कोश मुनि नाथा ॥१॥
कमलनयन उमँगे जस नीके ❋ सुरति करत प्रभु प्रेम अमीके ॥२॥

हे भरद्वाज ! भरत शत्रुघ्न ये दोनों कुमार डेढ़ कोशतक उनके साथ गये ॥ १ ॥ कमल से नेत्रोंमें जल भर आया, रामके अमृतरूप प्रेमका स्मरण करने लगे ॥ २ ॥

सिया राम पदकञ्ज नेह करि ❋ बोले भरत वचन अनंद भरि ॥३॥
सुनहु सुमंत सुवन गुणगेहा ❋ तात विनय मम सहित सनेहा ॥४॥

सीतारामके चरणकमलमें प्रेम करके आनन्दमें भरकर भरतजी वचन बोले ॥ ३ ॥ गुणोंके पात्र सुमन्त पुत्र ! तुम प्रेम सहित पितासे हमारा विनय सुनाना ॥ ४ ॥ ॥

गुरु पितु मातुन सबन बुझाई ❋ कहब प्रणाम चरण शिरनाई ॥५॥
पुनि दिन प्रतिसिय रघुवर पाऊ ❋ कहब प्रणाम सहित सतभाऊ ॥६॥

गुरु, पिता, माता सबसे बुझाकर चरणोंमें शिर नवाय प्रणाम कहना ॥५॥ और फिर प्रति दिन सीता रघुनाथजीके चरणोंमें हमारी ओरसे सत्यस्वभाव द्वारा प्रणाम किया करना ॥ ६ ॥

अस कहि बहुरि पुलकि दोउ भाई ❋ केक भवन गये महि सुखदाई ॥७॥
मगमहँ करत कछुक दिन वासा ❋ चलहिं रामपद दरशन आसा ॥८॥

फिर ऐसा कह दोनों भाई पुलकित होकर भूमिके सुख देनेवाले केकयराजके भवनको लौट गये ॥७॥ और कुमार मार्गमें कुछ दिन निवास करते रामके दर्शनोंकी आशासे चलते हैं॥८॥

दोहा-सुखानन्द आदिक सकल, पहुँचे श्री नृप पास ॥
भूप मुकुट मणिके चरण, शिर धरि हृदय हुलास ॥ २१॥

सुखानंदादि सब राजा दशरथके निकट पहुँचे और प्रसन्न हो राजाके चरणोंमें शिर नवाये॥२१॥

यथायोग्य सब कह मुनिराऊ ❋ पूछी कुशल सहित सतभाऊ ॥१॥
सुखानंद कहँ मिलि महिपाला ❋ बूझेउ कुशल प्रमोद विशाला ॥२॥

राजाने सबसे यथायोग्य कहकर सत्यभावसे कुशल पूछी ॥ १ ॥ सुखानंदसे मिलकर राजाने बड़े प्रेमसे कुशल पूछा ॥ २ ॥

देखि बढ़ेउ शुभ अवसर जानी ❋ सचिव सुवन बोलेउ मृदुबानी ॥३॥
नृपमणि सुनिय भरतके करणी ❋ विदित लोक तिहुँ भवभय हरणी॥४॥

देखकर और सुन्दर अवसर जानकर मन्त्रीके पुत्र कोमल वाणीसे बोले ॥ ३ ॥ हे नृप-मणि भरतजीकी करनी सुनो-तीनों लोकोंमें संसारका भय हरनेवाली है ॥ ४ ॥

भरत शत्रुहन अति रणधीरा ❋ अश्रम हतेउ निशिचर बलवीरा ॥५॥
भू भूसुरन अभय वर दयऊ ❋ संशय पुरवासिन कर गयऊ ॥६॥

भरत शत्रुघ्न महारणधीरोंने विना श्रमके बड़े बली निशाचरोंको मार डाला ॥ ५ ॥ भूमि और ब्राह्मणोंको अभय वर दिया, अब पुरवासियोंका सन्देह मिट गया ॥ ६ ॥

लेखागण निर्मल यश गावहिं ❋ निशिदिनसुमनवृष्टिझरिलावहिं ॥७॥
इतनी कहत सचिव सुत ज्ञानी ❋ पाती भेंट दीन्ह सुख मानी ॥८॥

देवतागण जिनका निर्मल यश दिन-रात गाते हैं, फूलों की वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर ज्ञानी मन्त्रीपुत्रने सुख पत्रिका और भेंट सम्मुख रख दी ॥ ८ ॥

दोहा-पाती घरनी तातकी, प्रमुदित लै नृप हाथ ।
ताही क्षण लक्ष्मण सहित, आये श्रीरघुनाथ ॥ २२ ॥

अपने पुत्रोंकी और कैकेयीके पिताकी पत्री प्रसन्न हो राजा अपने हाथमें लेकर बांचनेको थे कि उसी समय लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी आये ॥ २२ ॥

तात चरण शिर धरि दोउ भ्राता * बैठे बन्धुसहित जनत्राता ॥१॥
नृपहि प्रमोद बढ़ेउ तब कैसे * युगल अम्बुनिधि संगम जैसे ॥२॥

जनरक्षक दोनों भाई पिताके चरणोंमें शिरधरके भाई सहित बैठे ॥ १ ॥ तब राजाकी इस प्रकार प्रसन्नता बढ़ी जैसे दो सागरोंका संगम होता है ॥ २ ॥

तेहि अवसर बसिष्ठ पगुधारा * राम लषण युत सभा सुवारा ॥३॥
उठि प्रणाम करि लहि शुभ बैना * बैठे पुनि आसन सुख ऐना ॥४॥

उसी समय वसिष्ठजी पधारे, जहां रामलक्ष्मणके सहित सभामें राजा बैठे थे ॥३॥ राजाने उठकर प्रणाम किया; आशीष ली और वे सुखसे अपने स्थानमें आसन पर बैठे ॥ ४ ॥

नृपति केककी पत्री आई * सो निज मुख बांची मुनिराई ॥५॥
सुनि प्रसंग सबहिन सुख पावा * भूप कहेउ अब करहु बधावा ॥६॥

राजा केकयकी पत्री आयी, मुनिराजने निजमुखसे बांची ॥ ५ ॥ यह प्रसंग सुनकर सबने सुख पाया और कहा अब बधावा करो ॥ ६ ॥

भरत प्रबल रिपु रणमहँ जीता * पुनि हरषे पुर लोग पुनीता ॥७॥
प्रथमहि तिन निज भवन बधाई * लगे बजावन मंगल गाई ॥८॥

भरतने समरमें बड़े शत्रुको जीता है, यह वचन सुन घरके सब लोग परम प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ वे प्रथम ही अपने घरमें जाकर बधाई बजाय मङ्गल गान करने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-दिन दूने योजन नगर, बाजहिं हरषि निशान ॥
गो गज रथमणि वसन हय, गृहपति सब कर दान ॥ २३ ॥
गुरु रघुनायक लषणयुत, गृहपति सचिव समेत नरेश ॥
पुरजन याचकवृन्द सब, मंदिर कीन्ह प्रवेश ॥ २४ ॥

बीस योजन नगरमें हर्षसे निशान बजने लगे; गौ, हाथी, रथ, मणि, वस्त्र, घोड़े सबके घर दान हुए ॥ २३ ॥ राजाने राम, लक्ष्मण, गुरु और मंत्रियोंको साथ ले याचकवृन्द और पुरवासियोंके सहित मंदिरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

अलंकार संयुत बहु धेनू * दै महिसुरन वंदि पदरेनू ॥१॥
विदा किये नृप पाइ अशीशा * गान निशान सुनिय दशदीशा ॥२॥

अलंकारसहित बहुतसी धेनु ब्राह्मणोंको देकर उनके चरणरेणुको प्रणाम किया॥ १ ॥आशीष पाकर राजाने उनको बिदा किया और दशों दिशाओंमें गान निशानकी ध्वनि छा गई ॥२॥

मंगल करहिं मुदित जिमि रानी * सो न वरणि सकैं शम्भु भवानी ॥३॥

वाहन मणिगण वसन अनूपा ❋ देहिं याचकहिं वनवहिं भूपा ॥४॥

जिस प्रकार प्रसन्न हो रानी मंगल करती हैं, उसे शिव पार्वती नहीं कह सकते ॥ ३ ॥ सवारी मणिसमूह; अनुपम वस्त्र याचकोंको देते हैं वे राजाकी विनय करते हैं ॥ ४ ॥

विदा कीन्ह मंगल समुदाई ❋ गे निज भवन नयन फल पाई॥५॥
गुरु पुजाय अति प्रीति समेता ❋ दे वर आशिष गये निकेता ॥६॥

मांगलिक जनसमुदायको बिदा किया,वे नेत्रोंका फल पाय अपने-अपने मंदिरको गये॥५॥ गुरुको अतिप्रीतिसे पूजा करके बिदा किया,वे वर और आशीष देकर अपने-अपने घर गये॥६॥

सुर गवने निज निज सो धामा ❋ हृदय राखि संयुत सिय रामा ॥७॥
पितु रजाइ सुनि प्रभु दोउ भाई ❋ निज निज मंदिर प्रविशे आई॥८॥

देवता भी सीता सहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारण कर अपने-अपने स्थानको गये ॥ ७ ॥ पिताकी आज्ञा लेकर राम और लक्ष्मण भी अपने-अपने मंदिरमें प्रविष्ट हुए ॥ ८ ॥

छन्द-निज भवन प्रविशे नाथ अवध सनाथ सन्तत पुरजनं ।
मंगल सुखद नित रहे नूतन नारि नर सुनि सुत धनं ॥
गिरिजा सुनो सुर शीश मणि जहँ श्रीसहितहरि राजहीं ।
उपमा कहत तेहि नगरकी तुलसी सकुच अति लागहीं ॥१२॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने घरमें गये,पुरवासी सदाके लिए सनाथ हुये,स्त्री-पुरुषोंने नित नया सुख पाया उनके पुत्र धनकी अधिकाई थी, हे पार्वती! सुनो जहां देवताओंके शिरोमणि लक्ष्मी सहित हरि विराजते हैं उस नगर की उपमा कहते तुलसी दासको अति संकोच होता है॥१२॥

दोहा-निगमागम श्रुति यथामति, चरित कहेहुँ मैं गाइ ॥
शम्भु कृपा अब प्रभु सुयश, अपर सुनहु खगराइ ॥२५॥

भुशुण्डिजी- बोले निगमागम श्रुतिके अनुसार यथामति सुने चरित्रको गाकर सुना दिया हे गरुडजी ! अब शिवजीकी कृपासे दूसरे प्रभुके सुयशको सुनो ॥ २५ ॥

अवध-अनंद देखि सब लेखा ❋ नैन तृपित उर शोच बिसेखा ॥१॥
चतुरानन पँह सुर सब जाई ❋ निज मन संशय कह समुझाई ॥२॥

अवधका आनंद देख सब देवता नेत्रोंसे तृप्त होते हैं, हृदयमें विशेष शोच है ॥ १ ॥ सब देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपने- अपने मनका संशय समझाकर कहा ॥ २ ॥

तब विधि आदिति नन्दन पाहीं ❋ कहा शोच त्यागहु मनमाहीं ॥३॥
प्रतिदिन करहु रामपद सेवा ❋ करिहैं अभय सुनो सब देवा ॥४॥

तब ब्रह्माजी देवताओंसे बोले-मनमें शोच त्याग करो ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! सुनो, प्रतिदिन रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करो वे अभय करेंगे ॥ ४ ॥

नर तनु धरि हरि तुम्हरे काजा ❋ जगमहँ प्रगट भये सुरराजा ॥५॥
थोरेउ दिवस गये अब भाई ❋ तुव संकट हरिहैं रघुराई ॥६॥

सुरराज भगवान् तुम्हारे निमित्त ही मनुष्यका शरीर धारण कर जगत्में प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥ हे भाई अब थोड़े दिनोंमें श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा संकट हरेंगे ॥ ६ ॥

सुनत विबुध सब श्रेष्ठ सिखावन ❋ सुमिरत हृदय रामजग पावन ॥७॥

विधिहि वंदि निज निज गृह आये * रहे राम चरणन लव लाये ॥८॥

सब देवता श्रेष्ठ उपदेश सुनकर हृदयमें जगपावन रामजीका स्मरण करने लगे ॥७॥ और विधाताको प्रणाम कर अपने-अपने घर आये और रामजीके चरणोंमें प्रीति लगाकर रहने लगे॥८॥

सोरठा–रघुवर सहज सुभाउ, देखि देखि सुर अहर निशि ॥
धारि अवधपुर पाउ, वरषि सुमन आवहिं सदन ॥ ७ ॥

श्रीरामचंद्रजीका सहज स्वभाव दिनरात देखकर सुर अयोध्यामें आकर फूल बरसाकर घर आते हैं ॥ ७ ॥

विश्वावसु गंधर्वका गान तथा नारदागमनकी कथा

दोहा–इक दिन विश्वावसु तहां, कियो गान गंधर्व ॥
सुनि प्रसन्न ह्वै स्वपुर तोहि, कह्यो रहन हित सर्व ॥ २६ ॥

एक दिन विश्वावसु गन्धर्वने वहां आकर गान किया, तब सबने प्रसन्न होकर उसे अपने ही पुरमें रहनेके लिये कहा ॥ २६ ॥

दोहा–सो कह इंद्र निदेश विन, मैं न सकत रहि अंत ॥
कह्यो केकयी बसत है, हमरे बल सुरकन्त ॥ २७ ॥

विश्वावसु गन्धर्व बोले कि इन्द्रकी आज्ञा विना मैं कहीं रह नहीं सकता यह सुनकर कैकेयी बोली कि इन्द्र हमारे बलसे अपने लोकमें वसता है ॥ २७ ॥

दोहा–हमरे आवत रिसि करत, अस तुम गये मुटाय ॥
पठइ पत्रिका बांचिकर, सुनि नृप रहे चुपाय ॥ २८ ॥

हमारे यहां आनेमें इन्द्र रिस करेगा ऐसे तुम मोटे अर्थात् अभिमान हो गया है ! एक पत्री लिखकर इन्द्रको भेज दी, उसे बाँचकर इन्द्र चुप रहे ॥ २८ ॥

दोहा–मन में समुझे कैकयी, लिखि पठये वच बंक ॥
हमरउ लागी घात जब, हमहूँ देब कलंक ॥ २९ ॥

इन्द्रने मनमें सोचा कि, इस कैकयीने कठोर वचन लिख भेजा है जब हमारा दांव लगेगा तो हम भी कलंक देंगे ॥ २९ ॥

दोहा–लिख पठयो विश्वावसुहि, करयो कहै नृप जोय ॥
बिदा करै तब आइयो, समुझि बूझि तुम सोय ॥३०॥

इन्द्रने विश्वावसुको लिख भेजा कि राजा जो कहें वह करो, जब वे बिदा करें तब तुम समझ बूझकर आ जाना ॥ ३० ॥

---

१. कैकयीके पूर्वजन्मकी कथा आनन्दरामायणमें इस प्रकार लिखी है कि, सह्यपर्वतके निकट करबीपुरमें एक धर्मदत्त ब्राह्मण रहता था, एक समय वह पूजा करनेको गंगाजलादिपूजनकी सामग्री लिये जाता था, तब रात्रिमें उसे एक करालमुख राक्षसी मिली उसने भयभीत हो तुलसीयुक्त जलसे उसको ताड़ित किया, इससे वह पापहीन हो ब्राह्मणको प्रणाम कर कहने लगी कि सौराष्ट्र नगरके भिक्षुनाम ब्राह्मणकी मैं भार्या थी, कलहा मेरा नाम था, सदा स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती; आप मिष्टान्न खाती स्वामीको रूखा भोजन देती जो स्वामी कहता उसके विपरीत ही करती; तब स्वामीने यह विचार जो काम करना होता उसे न करनेको कहना प्रारंभ किया मैं, उसके विपरीत करती, इससे उनका मनोरथ पूरा होता था, अन्तमें उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया, तब मैं विष भक्षण कर मर गयी, स्वामीसे विपरीताचरण करनेके कारण अनेक दुष्ट योनियोंमें भ्रमण करती फिरी अब राक्षसी शरीर मिला है, कोई उद्धारका उपाय कहो । तब ब्राह्मणने जन्मपर्यंत कार्त्तिक स्नानसे संचित पुण्यका उसे आधा फल दिया और द्वादशाक्षर मन्त्रसे अभिषेक किया, तब उसका प्रेतत्व मुक्त हुआ और विमान पर चढ़ स्वर्गको गयी पुण्यक्षीण होने पर दशरथकी रानी कैकेयी हुई ।

दोहा–वर्ष अठारहकी सिया, सत्ताइसके राम ॥
कीनो मन अभिलाष तब, करिबो है सुरकाम ॥ ३१ ॥

विवाह हुए जब बारह वर्ष व्यतीत हो गये, उसी समय महारानी जानकी अठारह वर्षकी और रघुनाथजीकी अवस्था सत्ताईस वर्षकी थी, तब यह मनमें अभिलाषा की कि अब देवताओंका कार्य करना है ॥ ३१ ॥

अति आनन्द अवधपुरवासी * भ्रातन सहित देखि सुखरासी ॥१॥
एक बार जानकी समेता * बैठे प्रभु निज रुचिर निकेता ॥२॥

अयोध्यावासी भाइयोंके सहित सुखकी राशि श्रीरामचन्द्रजीको देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ एक बार जानकी सहित श्रीरामचन्द्रजी अपने सुन्दर स्थान पर बैठे थे ॥ २ ॥

भुज प्रलंब उर नयन विशाला * पीत बसन तनु श्याम तमाला ॥३॥
कोटि मनोज देखि छबि मोहा * सीता कर चामर वर सोहा ॥४॥

जिनकी भुजा बड़ी;छाती चौड़ी;नेत्र बड़े,पीले वस्त्र, शरीर श्याम तमालसा है॥३॥जिनकी छबि देखकर कोटि कामदेव मोहित होते हैं,सीताके हाथमें सुन्दर चमर शोभित हो रहा है॥४॥

तेहि अवसर मुनि नारद आये * सुर हित लागि विरंचि पठाये ॥५॥
तेजपुञ्ज करतल शुभ बीना * हरिगुण गण गावत लवलीना ॥६॥

उसी अवसरमें मुनि नारदजी आये,उन्हें देवताओंके हितके लिये ब्रह्माजीने भेजा था॥५॥ बड़े तेज धारी हाथमें सुन्दर वीणा लिये, नारायणके गुण समूह गाते हुए प्रेममें मग्न थे ॥ ६ ॥

देखि राम सहसा उठि धाये * करत दण्डवत मुनि उर लाये ॥७॥
सादर निज आसन बैठारे * जनकसुता तब चरण पखारे ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजी देखते ही शीघ्र खड़े हुये और दंडवत् करते ही मुनिने हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥ आदर पूर्वक अपने आसन पर बैठाया, तब जानकीजीने चरण धोये ॥ ८ ॥

तेहि चरणोदक भवन सिंचावा * जगपावन हरि शीश चढ़ावा ॥९॥
सुनु मुनि विषय विरत जे प्राणी * हम सारिखे देह अभिमानी ॥१०॥

उसी चरणके जलसे घरको सिंचाया,जगत पवित्र करनेवाले रामजीने शिरपर चढ़ाया॥९॥ और बोले हे मुनि ! जो प्राणी विषयोंमें लगे रहते हैं वे देहाभिमानी हमसे ही होते हैं ॥ १० ॥

तिन कहँ सतसंगति जब होई * करहिं कृपा जापर प्रभु सोई ॥११॥
ताको मुनि नाहिन भव आगे * जेहि बिनुहेतु संग प्रिय लागे ॥१२॥

उनको तब सत्सङ्गति होती है जब भगवान् उनपर कृपा करते हैं ॥ ११ ॥ हे मुनिराज संसारमें नहीं पड़ेंगे जिन्हें विना कारण सन्त प्यारे लगते हैं ॥ १२ ॥

ताते नारद मैं बड़-भागी * यद्यपि गृह कुटुम्ब अनुरागी ॥१३॥

इस कारण हे नारदजी ! मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ, यद्यपि गृह कुटुम्बमें अनुराग करता हूँ परंतु आपके दर्शनसे कृतार्थ हूँ ॥ १३ ॥

दोहा–सुनि प्रभु वचन मधुर प्रिय, करि विचार मुनि धीर ॥
परम कृपालु लोक हित, कस न कहौ रघुवीर ॥ ३२ ॥

यह श्रीरामचंद्रजीके मधुर और प्यारे वचन सुनकर धीर मुनि विचार कर बोले-महाराज आप परम दयालु लोकहितकारक हो, क्यों न ऐसे वचन कहो ? ॥ ३२ ॥

कह मुनि तव महिमा रघुराया * मैं जानी कछु तुम्हरी दाया ॥१॥
वचन कह्यो प्राकृतकी नाईं * यामें नहिं कछु घटेउ गोसाईं ॥२॥

नारदजी बोले-रघुनाथजी ! आपकी महिमा मैं आपकी ही दयासे कुछ जानता हूँ ॥१॥ जो आपने प्राकृति मनुष्योंकी नाईं वचन कहे हे गुसाईं ! इसमें कुछ घटा नहीं ॥ २ ॥

प्रभु यह तुमहिं सदा बनिआई * निज लघुता जनकेरि बड़ाई ॥३॥
सहज स्वभाव प्रणत अनुरागी * नरतनु धरेउ दास हित लागी ॥४॥

प्रभु! यह आपको ही सदैव शोभा देती है कि अपनी लघुता और दासोंकी ही बड़ाई करते हो ॥३॥ सहज स्वभावसे दीनोंके ऊपर प्रेम करनेवाले हो, दासोंके हेतु मनुष्य शरीर धरते हो ॥४॥

मायागुण गो-ज्ञान अतीता * अजितनाम सो दासन जीता ॥५॥
जेहिप्रभुसमअतिशय कोउ नाहीं * व्यापक अज समान सब माहीं ॥६॥

मायाके गुण इन्द्रियोंके ज्ञानसे तुम परे हो आपका अजित नाम दासोंने जीत लिया है ॥५॥ जिन स्वामीके समान बड़ा कोई नहीं है जो व्यापक अजन्मा, सबमें समान हैं ॥६॥

उदर चराचर मेलि जो सोवा * अस्तन पान लागि सोइ रोवा ॥७॥
नाम रूप वपु वर्ण न भेदा * अविगत अकल नेति कह वेदा ॥८॥

जो चराचरको उदरमें रखकर सो जाता है, वही दूध पाने के हेतु रोता है यह आपकी लीला है ॥ ७ आपके नाम, रूप, शरीर, वर्ण-भेद कोई नहीं जानता जो कि गतिरहित, कलारहित है जिसको वेद 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

निर्मम मुक्त निरामय जोई * दशरथ सुत कहि गाइय सोई ॥९॥
जप तप योग यज्ञ व्रत दाना * विमल विराग ज्ञान विज्ञाना ॥१०॥

जो ममता रहित मुक्त स्वरूप कल्याणयुक्त हैं, वे ही दशरथ पुत्र नामसे गाये जाते हैं ॥९॥ जप, तप योग, यज्ञ, व्रत दान, उज्ज्वल वैराग्य और विज्ञान द्वारा ॥ १० ॥

करहिं यत्न मुनि पावहिं कोई * देखा प्रगट भक्तवश सोई ॥११॥
हठवश शठबहु साधन करहीं * भक्तिहीन भवसिंधु न तरहीं ॥१२॥

यत्न करके जिससे कोई मुनि पाते हैं उन्हें भक्तोंके प्रेम वश प्रकट होते देखा है ॥११॥ बहुतेरे शठ हठ ठान अनेक साधन करते हैं परन्तु भक्ति हीनतासे वे संसार सागरके पार नहीं होते हैं ॥१२॥

दोहा-जानि सकहु ते जानहु, निर्गुण सगुन स्वरूप ॥
मम हिय पंकज भृङ्ग इव, वसहु राम नररूप ॥ ३३ ॥

जो आपके निर्गुण रूपके जाननेमें समर्थ हों वे जाने, पर हे रामचन्द्रजी ! आपका यह नररूप मेरे हृदयरूपी कमलमें भौंरे की नाईं बसे ॥ ३३ ॥

ब्रह्मभवन मैं रह्यो कृपाला * गावत तव गुण दीन दयाला ॥१॥
असि इच्छा उपजी मन माहीं * बहु दिन गये लखे पद नाहीं ॥२॥

हे दयालु ! मैं ब्रह्मलोकमें था उस समय आपके गुण गा रहा था ॥ १ ॥ हे दयालु ! इतनेमें ऐसी इच्छा मनमें हुई कि बहुत दिनोंसे आपके चरणकमल नहीं देखे ॥ २ ॥

यद्यपि प्रभु सर्वत्र समाना * सगुण रूप मोरे मन माना ॥३॥
अवध चलत विरंचि मोहि जाना * कीन्ही विनय लागि ममकाना ॥४॥

यद्यपि प्रभु सब स्थानमें व्यापक हैं तो भी सगुणरूप मेरे मनको भाता है॥३॥ अयोध्याको आते हुए ब्रह्माजीने मुझे जानकर मेरे कानमें लगे अर्थात् धीरेमें यह विनती आपसे कही है॥४॥

प्रभु जानत सब अन्तर्यामी * भक्तवछल विनती यह स्वामी ॥५॥
जेहि हित लीन्ह मनुज अवतारा * नाथ ताहि अब करिय सँभारा ॥६॥

आप अन्तर्यामी होनेसे सब कुछ जानते हैं परंतु भक्तवत्सलतासे यह विनती की है ॥५॥ हे नाथ ! जिस कारणसे आपने मनुष्य अवतार लिया है अब उसकी सँभाल कीजिये ॥६॥

सुनत वचन रघुपति मुसुकाने * मुनि अजहूँ विरंचि भय माने ॥७॥
कहेउ तात ब्रह्महि समुझाई * कछु दिन गये देखिहौं आई ॥८॥

यह वचन सुन रामचन्द्र मुसकाये और बोले-हे नारद ! क्या अब भी ब्रह्माजी भयभीत हैं?॥७॥हे तात!ब्रह्माजीसे यह बात समाझाकर कहना,कुछ दिन गये उपरांत आपको देखूँगा॥८॥

बार बार चरणन शिर नाई * ब्रह्मानंद हृदय न समाई ॥९॥
राम रूप उरधरि मुनि नारद * चले करत गुणगान विशारद ॥१०॥

नारदजी बारंबार चरणोंमें शिर नवाने लगे, जिनके मनमें ब्रह्मानंद नहीं समाता ॥ ९ ॥ चतुर नारद मुनि श्रीरामचन्द्रजीका रूप हृदयमें धारणकर गुण गाते चले ॥ १० ॥

तब रघुपति सीतहिं समुझाई * पूर्व कथा सब हेतु सुनाई ॥११॥
सुरहित लागि सो करिय उपाई * चलिये वन परिहरि ठकुराई ॥१२॥

तब रामचन्द्रजीने जानकीजीको समझाया और पूर्व कथा अर्थात् रावणके मारनेके हेतु जन्म लिया है वह सब सुनायी ॥ ११ ॥ जानकीजीने कहा देवताओंका हित जैसे हो वह उपाय करिये और राज्य छोड़ वनको चलिये ॥ १२ ॥

दोहा-जग संभव सुस्थिति प्रलय, जाके भ्रुकुटि विलास ॥
सो प्रभु यत्न विचारत, केहि विधि निशिचर नाश ॥ ३४ ॥

जिनकी भौंहके फेरनेसे जगत्‌की उत्पत्ति पालन और प्रलय हो जाती है वे श्रीरामचन्द्रजी उपाय विचारने लगे, कि, राक्षस किस प्रकार मरेंगे ॥ ३४ ॥ (इति क्षेपक)

एक समय सब सहित समाजा * राउ सभा रघुराज विराजा ॥१॥
सकल सुकृतिमूरति नरनाहू * राम सुयश सुनि अधिक उछाहू॥२॥

एक समय सम्पूर्ण समाजसहित राज सभामें महाराज दशरथ विराजमान थे ॥ १ ॥ सकल पुण्योंकी मूर्ति राजा दशरथ हैं और सब सुकृतके फल श्रीरामचन्द्रजी प्राप्त हुए, उनका यश सुनके अधिक प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे * लोकप रहहिं प्रीति रुख राखे ॥३॥
त्रिभुवन तीनि काल जगमाही * भूरि भाग्य दशरथ सम नाहीं ॥४॥

सब राजा महाराजकी कृपाके अभिलाषी रहते हैं और लोकपाल इंद्रादिक सब रुख राखे प्रीति करते हैं(केवल प्रीति मित्रवर्गमें होती है स्वामीमें प्रीति रुख रखनेसे होती है) ॥३॥ तीनों

भुवन स्वर्ग, पृथ्वी; पाताल, तीनकाल-भूत, भविष्य वर्तमान, जगत्में राजा दशरथके समान न कोई हुआ है न होगा, न है ॥ ४ ॥

मंगलमूल राम सुत जासू * जो कछु कहिय थोर सब तासू ॥५॥
राय सुभाय मुकर कर लीन्हा * वदन विलोकि मुकुटसम कीन्हा ॥६॥

मङ्गलके मूल जिनके रामजी पुत्र हैं, उन्हें जो कुछ कहा जाय सब थोड़ा है ॥५॥ राजाने स्वभावसे ही दर्पण हाथमें लिया और मुख देखके मुकुट समान किया अर्थात् सीधा किया॥६॥

श्रवण समीप भयउ सित केशा * मनहुँ जरठपन अस उपदेशा ॥७॥
नृप युवराज रामकहँ देहू * जीवन जन्म लाहु किन लेहू ॥८॥

कानोंके पास श्वेत बाल हुये, मानो बुढ़ापा राजाको यह उपदेश करता है अथवा कैकेयीके डरसे कानमें कहता है ॥७॥ हे राजन् । अब युवराज श्रीरामचन्द्रजीको देकर जीवन और जन्मका लाभ क्यों नहीं लेते ? ॥ ८ ॥

दोहा-यह विचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाय ॥
प्रेम पुलकि तनु मुदित मन, गुरुहि सुनायउ जाय ॥३५॥

यह विचार मनमें धारण कर सुन्दर दिन और योग्य समय पाकर प्रेमसे पुलकित तनु आनंदित मन हो गुरुको राजाने जाकर सुनाया ॥ ३५ ॥

कहइ भुवाल सुनिय मुनिनायक * भये राम सब विधि सब लायक॥१॥
सेवक सचिव सकल पुरवासी * जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥२॥

राजाने कहा-हे मुनिनायक ! सुनिये, अब श्रीरामचन्द्रजी सब विधिसे लायक हुए ॥१॥ सेवक, मन्त्री, सब पुरके रहनेवाले, जो हमारे शत्रु, मित्र, उदासी हैं ॥ २ ॥

सबहिं रामप्रिय जेहि विधि मोही *प्रभु अशीष जनुधरि तनु सोही ॥३॥
विप्र सहित परिवार गुसाईं * करहिं छोह सब रौरइ नाईं ॥४॥

जैसे रघुनाथ हमें प्यारे हैं वैसे ही सबको हैं; मानो आपकी आशीष ही शरीर धारणकर शोभित हुई है, भाव यह है कि जैसे आपकी आशीष सबको प्यारी है, वैसे रघुनाथजी सबको प्यारे हैं ॥ ३ ॥ हे गुसाईं ! ब्राह्मण सब कुटुम्ब सहित आपके समान ही प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥

जे गुरु-चरणरेणु शिर धरहीं * ते जनु सकल विभव वश करहीं ॥५॥
मोहि सम यह अनुभयेउ न दूजे * सब पायउँ रज पावन पूजे ॥६॥

जो गुरु चरणकी धूरिको शिरपर धरते हैं वे सारे ऐश्वर्यको वशमें करते हैं ॥ ५ ॥ हमारे समान यह सुख और अनुभव नहीं किया यह सब सुख आपके चरणकमलकी पवित्र रज पूजनेसे प्राप्त हुआ है । अथवा मेरे समान दूसरा बड़ भागी नहीं हुआ ॥ ६ ॥

अब अभिलाष एक मन मोरे * पूजहि नाथ अनुग्रह तोरे ॥७॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू * कहेउ नरेश रजायसु देहू ॥८॥

हे नाथ ! अब यह मेरे मनमें एक अभिलाषा है वह आपके अनुग्रहसे पूरी होगी ॥ ७ ॥ मुनिको अपने स्वाभाविक स्नेह और प्रसन्नता देखकर महाराज दशरथने कहा कि आप आज्ञा दें (तो अपना अभिलाषा कहें यह वाक्य-शेष है) अथवा महाराजका स्वाभाविक स्नेह देख मुनि प्रसन्न हुए और बोले-जो कहना हो कहो । पुनः प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–राजन राउर नाम यश, सब अभिमत–दातार ॥
फल अनुगामी महिप मणि, मन अभिलाष तुम्हार ॥ ३६ ॥

वसिष्ठजी बोले–हे राजन्! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथका देनेवाला है, तुम्हारे मनका अभिलाष श्रेष्ठ राजा है और फल सबके अनुगामी–पीछे चलनेवाले (दास) हैं॥३६॥

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी * बोलेउ राउ विहँसि मृदु बानी॥१॥
नाथ राम करिये युवराजू * कहिय कृपाकरि करिय समाजू॥२॥

सब प्रकारसे अर्थात् नेत्र, मुख,वचनमें गुरुको प्रसन्न जान राजा हँसके कोमल वाणी बोले ॥१॥ हे नाथ! रामचन्द्रको युवराज करिये जो आप कृपाकर कहें तो हम समाज करें ॥२॥

मोहि अच्छत यह होय उछाहू * लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥३॥
प्रभु प्रसाद शिव सबहि निबाहीं * यह लालसा एक मनमाहीं ॥४॥

मेरे रहते जो यह उत्साह हो और सब लोग नेत्रोंका लाभ लें तो अच्छा है ॥ ३ ॥ आपके प्रसादसे शिवजीने सब मनोरथ निबाहे, अब मनमें एकही लालसा शेष है ॥ ४ ॥

पुनि न शोच तनु रहउ कि जाऊ * जेहि न होय पाछे पछिताऊ ॥५॥
सुनि मुनि दशरथ वचन सुहाये * मंगल मोद मूल मन भाये ॥६॥

मनोरथ पूर्ण होनेपर शोच नहीं कि,फिर शरीर रहे वा जाय,कारण कि जिससे पीछे पछताव तो न होगा॥५॥मुनि दशरथके सुन्दर वचन सुनके,जो आनंद मंगलके मूल हैं प्रसन्न हुए॥६॥

सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं * जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥७॥
भये तुम्हार तनय सोइ स्वामी * राम पुनीत प्रेम अनुगामी ॥८॥

सुनो, राजन्! जिससे विमुख होकर जीव पछताते हैं और जिसके भजन विना हृदयकी जरनि नहीं जाती है ॥ ७ ॥ वे ही स्वामी पुनीत प्रेमके अनुगामी तुम्हारे पुत्र हुए हैं। भाव यह है कि ऐसी अवस्थामें पछतावा कैसा ? आनन्द करो ॥ ८ ॥

दोहा–बेगि विलम्ब न करिय नृप, साजिय सबुइ समाज ॥
सुदिन सुमंगल तबहि जब, राम होइ युवराज ॥ ३७ ॥

हे नृप! विलम्ब न करिये शीघ्र ही तिलकका समाज साजिये; सुन्दर दिन और सुमङ्गल तब ही है जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हों। व्यंगसे यह सूचित किया कि, युवराज होना रामके अधीन है, तुम्हारे नहीं ॥ ३७ ॥

मुदित महीपति मंदिर आये * सेवक सचिव सुमन्त बुलाये ॥१॥
कहि जय जीव शीश तिन नाये * भूप सुमंगल वचन सुनाये ॥२॥

राजा प्रसन्न होके मंदिरमें आये और सेवक मन्त्री सुमंतको बुलाया ॥ १ ॥ उन्होंने 'जयजीव' यह वचन कहकर शिर नवाया, तब राजाने मङ्गल वचन सुनाये ॥ २ ॥

प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू * रामहि राय देहु युवराजू ॥३॥
जो पंचहिं मत लागै नीका * करहु हर्षि हिय रामहि टीका ॥४॥

आज हर्षित हो हमसे गुरुने कहा है कि राजन्! श्रीरामचन्द्रजी को युवराज–पदवी दो॥३॥ जो तुम पंचोंको यह मत सुहाय तो मनमें प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्रजी को टीका करो ॥ ४ ॥

मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी * अभिमत बिरव परेउ जनुपानी ॥५॥
विनती सचिव करहिं कर जोरी * जियहु जगत पति बरिस करोरी॥६॥

मन्त्री यह प्यारी वाणी सुनकर प्रसन्न हुए,मानो वांछित रूपी बिरवे(छोटे पेड़)में पानी पड़ा मन्त्री जनका यह मनोरथ पहलेसे था,अब मनकी इच्छामें राजाकी इच्छा मिलनेसे वह मनोगत बात पुष्ट हुई॥५॥मन्त्री हाथ जोड़ विनती करने लगे-संसारके पति! आप करोड़ वर्ष जियो॥६॥

जगमंगल भल काज विचारा * वेगिय नाथ न लागिय बारा ॥७॥
नृपति मोद सुनि सचिव सुभाषा * बढ़त बवँरि जनु लही सुशाखा ॥८॥

जगत्में मङ्गल करनेवाले यह आपने भला काज विचारा है; सो महाराज ! इसमें शीघ्रता करिये देर न लगाइये ॥७॥ मन्त्रीका सुन्दर वचन सुनकर राजाको ऐसा आनन्द हुआ मानो बढ़ती बेलने सुन्दर शाखा पायी । भाव यह है-जैसे डार होनेसे बढ़ती चढ़ती है वैसे आनन्द बढ़ा । यहाँ मन्त्रीके आनन्दको विरवा कहा, राजाके आनन्दको बवँरि, इससे जनाया कि विरवा और लता चौमासे भर रहते हैं वैसे यह आनन्द थोड़े दिन रहेगा ॥८॥

दोहा—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ॥
राम राज्य अभिषेक हित, वेगि करहु सोइ सोइ ॥ ३८ ॥

तब राजाने कहा—मुनिराजकी जो जो आज्ञा हो; रामजीके राज्य अभिषेकके अर्थ वही-वही शीघ्रतासे करो ॥ ३८ ॥

हर्षि मुनीश कहेउ मृदु बानी * आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥१॥
औषधि मूल फूल फल पाना * कहे नाम गनि मंगल नाना ॥२॥

मुनिने प्रसन्न हो कोमल वाणीसे कहा कि सब तीर्थोंका पानी लाओ ॥१॥ औषधि, मूल, फूल, फल और पान इत्यादि अनेक नाम मंगल करनेवालीं वस्तुओंके बताये ॥ २ ॥

चामर चमर बसन बहु भाँती * रोम पाट पट अगणित जाती ॥३॥
मणि गण मंगल वस्तु अनेका * जो जग योग भूप अभिषेका ॥४॥

चमर और व्यग्रता,मृगादिके चर्म और सूतके वस्त्र बहुत भाँतिके दुशाला आदि रेशमी वस्त्र॥३॥ अनेक जातिकी मणियाँ और मंगलकी अनेक वस्तु जो-जो जगत्में राज्य-अभिषेकके योग्य थीं।४॥

वेद विहित कहि सकल विधाना * कहेउ रचहु पुर विविध बिताना ॥५॥
सफल रसाल पूंगिफल केरा * रोपहु बीथिन पुर चहुँ फेरा ॥६॥

वेदोंके शतपथादि ब्राह्मणोंमें जो विधान कहा है सो सब बताया और यह कहा कि अनेक वितान पुरमें बनाओ॥५॥ फलसहित आम,सुपारी और केला गलियोंमें,पुरके चारों ओर लगाओ॥६॥

रचहु मंजुमणि चौकहि चारु * कहेउ बनावन बेगि बजारू ॥७॥
पूजहु गणपति गुरु कुल देवा * सब विधि करहु भूमि सुर सेवा ॥८॥

सुन्दर मणियोंसे रम्य चौक पुराओ और जहाँ-तहाँ शीघ्र ही बजारें सजाओ ॥ ७ ॥ गणेशजी, गुरु और कुल देवताओंका पूजन करो, सब प्रकारसे ब्राह्मणोंकी पूजा करो ॥ ८ ॥

दोहा—ध्वज पताक तोरण कलश, सजहु तुरग रथ नाग ॥
शिर धरि मुनिवर वचन सब, निज निज काजहि लाग ॥ ३९ ॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े; रथ और हाथी सजाओ, मुनिके यह वचन सुनकर सब अपने-अपने काममें लगे ॥ ३९ ॥

जो मुनीश जेहि आयसु दीन्हा * सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा ॥१॥
विप्र साधु सुर पूजत राजा * करत रामहित मंगल काजा ॥२॥

जो मुनिने जिसको आज्ञा दी वह उसने मानों पहले ही कर लिया, इस कथनसे सावधानता और सेवकोंकी श्रद्धा विदित होती है ॥ १ ॥ ब्राह्मण, साधु, देवताओंको राजा पूजते हैं और श्रीरामचन्द्रजीके हेतु मंगलका कार्य करते हैं ॥ २ ॥

सुनत राम अभिषेक सुहावा * बाज गहगहा अवध बधावा ॥३॥
राम सीय तनु शकुन जनाये * फरकहिं मंगल अंग सुहाये ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर अभिषेक होना सुन सारे नगरमें बड़े-बड़े बधाये बजने लगे ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजी और जानकीजीके शरीरमें शकुन होने लगे और सुन्दर मंगल सूचक अंग फड़कने लगे अर्थात् जानकीजीके वाम अंग, रघुनाथजीके दक्षिण अङ्ग फड़कने लगे, (प्रश्न) शकुनका फल मङ्गल क्यों न हुआ ? (उत्तर) वालि रावणादिके वध विना समस्त भूमिके राजा नहीं हो सकते इससे वनका जाना मङ्गल है ॥ ४ ॥

पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं * भरत आगमन सूचक अहहीं ॥५॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी * शकुन प्रतीत भेंट प्रियकेरी ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी पुलकित हो प्रेम पूर्वक आपसमें कहते हैं कि ये शकुन भरतजीके आगमन सूचक हैं ॥ ५ ॥ बहुत दिन हुए अति अवसेरी (शोच) है, शकुनसे विदित होता है कि प्रियकी भेंट होगी ॥ ६ ॥

भरत सरिस प्रिय को जगमाहीं * इहै शकुन फल दूसर नाहीं ॥७॥
रामहि बंधु सोच दिन राती * अंडन्ह कमठ हृदय जेहि भाँती ॥८॥

भरतजीके समान जगत्में प्यारा कौन है? वही मिलेंगे इस प्रकार शकुनका फल दूसरा नहीं है ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीको दिनरात भाई का शोच रहता है जिस प्रकार कछुयेके मनमें अंडोंका ॥८॥

दोहा-तेहि अवसर मंगल परम, सुनि हरषेउ रनिवास ॥
शोभित लखिविधि बढ़त जनु, वारिधि वीचि विलास ॥ ४० ॥

उस समयमें परम मंगल सुनकर रनिवास हर्षित हुआ जैसे कि, पूर्ण चन्द्रमाको देख कर समुद्रमें लहरें उठती हैं ॥ ४० ॥

प्रथम जाय जिन वचन सुनाये * भूषण वसन भूरि तिन पाये ॥१॥
प्रेम पुलकि तनु मन अनुरागीं * मंगल साज सजन सब लागीं ॥२॥

पहले जाकर जिन्होंने यह समाचार सुनाये उन्होंने बहुत गहने वस्त्र पाये ॥ १ ॥ प्रेमसे शरीर पुलकित, मनमें प्रसन्न हो, मंगलका साज सब सजाने लगीं ॥ २ ॥

चौकइ चारु सुमित्रा पूरी * मणिमय विविध भाँति अतिरूरी ॥३॥
आनँद-मगन राम-महतारी * दिये दान बहु विप्र हँकारी ॥४॥

सुन्दर चौक सुमित्राजीने पूरे, जो मणियोंसे अनेक विधि सुन्दर रचे ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजीकी महतारी आनंदमें मग्न हो गयी, ब्राह्मणोंको बुलाया बहुतसे दान दिये ॥ ४ ॥

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा * कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥५॥
जेहि विधि होय राम कल्यानू * देहु दया सो करि वरदानू ॥६॥
नगर देवता नागोंका पूजन किया और पुनः बलिभाग देनेको कहा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण हो वह वरदान दया करके दो ॥ ६ ॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी * विधुवदनी मृग शावक नयनी ॥७॥
कोकिलाके समानस्वरवाली, हरिणके बच्चेके समाननेत्रवाली चन्द्रवदनी स्त्रियाँ मंगल गाने लगीं ॥७॥

दोहा-राम राज्य अभिषेक सुनि, हिय हर्षे नर नारि ॥
लगे सुमंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि ॥ ४१

श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेक होनेका समाचार सुन नर-नारी मनमें प्रसन्न हुए और विधाताको अनुकूल विचार सब मंगल सजाने लगे ॥ ४१ ॥
तब नरनाह वसिष्ठ बुलाये * रामधाम शिख देन सिधाये ॥१॥
गुरु आगमन सुना रघुनाथा * द्वार आय नायउ पद माथा ॥२॥
तब राजाने वसिष्ठजीको बुलाया और वे रामचन्द्रजीके स्थानमें शिक्षा देनेको चले ॥ १ ॥ गुरुका आगमन सुनकर रामचन्द्रजीने द्वारपर आकर चरणोंमें शिर नवाया ॥ २ ॥
सादर अर्घ्य देइ घर आने * सोरह भाँति पूज सन्माने ॥३॥
गहे चरण सिय सहित बहोरी * बोले राम कमल कर जोरी ॥४॥
आदरसे अर्घ्य देकर घर लाय; सोलह प्रकारसे पूजके सम्मान किया ॥३॥ फिर जानकीजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने गुरुके चरण पकड़े और हस्तकमल जोड़ बोले ॥ ४ ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू * मंगल मूल अमंगल-दमनू ॥५॥
तदपि उचितजन बोलि सप्रीती * पठइय काज नाथ असि नीती ॥६॥
सेवकके घरमें स्वामी का आगमन होना मङ्गलका मूल अमंगलका दूर करनेवाला है ॥५॥ तो भी यह उचित था कि, प्रीतिपूर्वक दासको कामके लिये बुला भेजते हैं यही नीति है ॥६॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू * भयउ पुनीत आजु मम गेहू ॥७॥
आयसु होय सो करहुँ गोसाईं * सेवक लहइ स्वामि सेवकाईं ॥८॥
हे प्रभो ! आपने ! अपनी मर्यादा छोड़ स्नेह किया, इससे आज मेरा घर पवित्र हुआ ॥ ७ ॥ हे गुसांई जो आज्ञा हो वह करूँ, सेवकको स्वामी की सेवकाई प्राप्त हो ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि सनेहसाने वचन, मुनि रघुवरहिं प्रशंस ॥
राम कस न तुम कहउ अस, हंस वंस अवतंस ॥ ४२ ॥

स्नेहसे सने हुए वचन सुनकर मुनिने रामचन्द्रजीकी प्रशंसा की कि, हे रामचन्द्र ! तुम सूर्यवंशमें भूषणरूप क्यों न ऐसे कहो ॥ ४२ ॥
बरणि रामगुण शील स्वभाऊ * बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥१॥
भूप सजेउ अभिषेक-समाजू * चाहत देन तुमहिं युवराजू ॥२॥
श्रीरामचन्द्रजीका गुण, शीलस्वभाव वर्णन कर वसिष्ठजी प्रेमसे पुलकित हो बोले ॥ १ ॥ राजाने अभिषेकका समाज सजाया है, तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं ॥ २ ॥
राम करहु सब संयम आजू * जो विधि कुशल निबाहै काजू ॥३॥

गुरु शिख देइ राउपहँ गयऊ * राम हृदय अस विस्मय भयऊ ॥४॥

हे रामचन्द्रजी! सब संयम ब्रह्मचर्यादि जो तुमको कर्त्तव्य है वह आज करो, पर विधाता इस कार्यको आज कुशल पूर्वक निबाहे तो। श्रीरामचंद्रजीकी रुचि जान वसिष्ठजी इस प्रकार कहते हैं॥३॥गुरु तो शिक्षा दे राजाके पास गये और श्रीरामचंद्रजीका मन इस विस्मयमें हुआ कि॥४॥

जन्मे एक सङ्ग सब भाई * भोजन शयन केलि लरिकाई ॥५॥
कर्णवेध उपवीत विवाहा * सङ्ग सङ्ग सब भयउ उछाहा ॥६॥

सब भाई एक सङ्ग जन्मे और भोजन, शयन, बालक सम्बंधी खेल साथ ही होता था ॥ ५ ॥ कर्णवेध, जनेऊ, विवाह, ये सब उत्साह एक ही संग हुये ॥ ६ ॥

विमल वंश यह अनुचित एकू * अनुज विहाय बड़ेहि अभिषेकू॥७॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई * हरउ भगत मनकी कुटिलाई ॥८॥

निर्मल वंशमें यह अनुचित एक बात है कि और भाइयोंको छोड़ केवल बड़े भाईको युवराज दें, उन्हें भी कुछ पद दिया जाता व भरतके विना हुये हमें युवराज देना अनुचित है सो (इससे रामचन्द्रजी राज्य छोड़ वनको गये) ॥ ७ ॥ प्रभुकी प्रेमसहित जो पछितानी है सो भक्तोंके मनकी कुटिलायी हरे, कवि ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-तेहि अवसर आये लषण, मगन प्रेम आनंद ॥
सनमाने प्रिय वचन कहि, रघुकुल-कैरवचन्द ॥ ४२ ॥

उसी अवसरमें रामचन्द्रजीका राज्याभिषेक सुनकर लक्ष्मणजी प्रेमके आनंदमें मग्न होकर आये और रघुकुलरूपी कुमुदोंको खिलानेवाले श्रीरामचंद्रजीने बड़े मधुर वचनोंसे सम्मान किया श्रीरामचंद्रजीकी उपमा है कि (रघुकुलकैरवचंद्र) रघुकुलरूपी कुमदोंको खिलानेवाले चन्द्रमा हैं इसी प्रकार लक्ष्मणजीसे मनोहर वचन कहते हैं कि हम तो निमित्त मात्र होंगे, कर्त्ता, भोक्ता तुम होगे कैरवचंद्रका भाव दोनों ओर है; चंद्रमा, कुमुद; चकोर दोनोंको सुख देता है हनुमदादि चकोरकी नांई बाट जोह रहे हैं-"हरिमारग चितवहिं रणधीरा" उनको भी सुख देना चाहते हैं।४२।

बाजहिं बाजन विविध विधाना * पुर प्रमोद नहिं जाय बखाना ॥१॥
भरत आगमन सकल मनावहिं * आवहिं वेगि नयन फल पावहिं॥२॥

अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं, नगर का आनंद बखाना नहीं जाता ॥ १ ॥ भरतजीका आना सब मानते हैं कि शीघ्र आवें और नेत्रोंका फल पावें ॥ २ ॥

हाट बाट घर गली अथाई * कहहिं परस्पर लोग लुगाई ॥३॥
कालि लगन भलि केतिक बारा * पूजहि विधि अभिलाष हमारा ॥४॥

बाजार, सड़क, घर, गली, अथाई अर्थात् बैठकोंमें लोग लुगाई परस्पर कहते हैं ॥ ३ ॥ कलकी भली लग्न कितनी देरमें आवेगी ? जब विधाता हमारा अभिलाष पूरा करेगा ॥ ४ ॥

कनक सिंहासन सीय-समेता * बैठहिं राम होइ चित चेता ॥५॥
सकल कहहिं कब होइहि काली * विघ्न मनावहिं देव कुचाली ॥६॥

सोनेके सिंहासन पर जानकी समेत जब श्रीरामचन्द्रजी बैठें, तब हमारे चित्तमें चेत हो ॥ ५ ॥ सब कहें कि प्रातःकाल कब होगा और कुचाली देवता विचारें कि आज ही विघ्न हो जाय तो भला है। कुचाली कहनेका भाव यह कि मंगलमें अमंगल किया चाहते हैं ॥ ६ ॥

तिन्हैं सुहाय न अवध बधावा * चोरहिं चाँदनि राति न भावा ॥७॥
शारद बोलि विनय सुर करहीं * बारहिं बार पांव लै परहीं ॥८॥

उन्हें अयोध्याका मंगल अच्छा नहीं लगता जैसे चांदनी रात सबको भाती है पर चोरोंको अच्छी नहीं लगती ॥७॥ सरस्वती को बुलाके देवता विनती करते हैं बारबार चरणोंमें पड़ते हैं ॥८॥

दोहा-विपति हमारि विलोकि बड़ि, मातु करिय सो आज ॥
रामजाहिं वन राज तजि, होय सकल सुरकाज ॥ ४४ ॥

हे मातः! हमारी बड़ी विपत्ति देखकर वही आज कृत्य करिये कि श्रीरामजी राज्य छोड़ वनको जायँ, जिससे सब देवताओंका कामहो; आज ही यह करो कलको काम बिगड़ जायेगा॥४४॥

सुनि सुर विनय ठाढ़ि पछिताती * भयउँ सरोज विपिन हिमराती ॥१॥
देखि देव पुनि कहइ निहोरी * मातु तोहिं नहिं थोरिउ खोरी ॥२॥

देवताओंकी विनती सुनकर खड़ी होकर पछताती है, बैठी नहीं पछतानेका भाव यह कि इनके बुलानेसे मैं क्यों आयी ? मैं अवधवासी जो कमलके वन हैं उनके दुःख देनेको हिम ऋतुकी रात समान हुई॥ १ ॥ पछताती देखकर देवता डरे कि कहीं फिर न जायँ अतः फिर निहोरा करते हैं-हे मातः तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं होगा, क्योंकि ॥ २ ॥

विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ * तुम जानहु सब राम प्रभाऊ ॥३॥
जीव कर्मवश दुख सुख भागी * जाइय अवध देव हित लागी ॥४॥

विस्मय और हर्षरहित श्रीरामचन्द्रजी हैं; उनको दुःख नहींहोगा और तुम भी रामचन्द्र-जीका सब प्रभाव जानती हो और कहो कि अवधवासी तो दुःखी होंगे; उसपर कहते हैं ॥ ३ ॥ जीव अपने कर्मवश सुख दुःखका भागी होता है, देवताओंके हेतु अयोध्या जाओ, हमारा उपकार करना तुम्हें उचित है क्योंकि तुम भी देवता हो। कर्म भोगनेके प्रमाण-"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" इति ॥ ४ ॥

बार बार गहि चरण सँकोची *चली विचारि विविधमति पोची ॥५॥
ऊँच निवास नीच करतूती * देखि न सकहिं पराइ विभूती ॥६॥

बारबार देवताओंने चरण पकड़ कर शारदाको संकोचमें डाला, तब वह अनेक खोटी मति विचार कर चली राजापुरकी पुस्तकमें "विविध" पाठ लिखा है, उसके अनुकूल यह अर्थ है। और पुस्तकमें "विबुध मति पोची" यह पाठ है तो यह अर्थ करना कि शारदा देवताओंकी खोटी मति है, ऐसा विचार कर चली ॥ ५ ॥ ऊँचा तो निवास और नीची कर-तूत है ये देवता दूसरेका ऐश्वर्य नहीं देख सकते ॥ ६ ॥

आगिल काज विचारि बहोरी *करिहहिं चाहि कुशल कवि मोरी॥७॥
हर्षि हृदय दशरथपुर आई * जनुग्रहदशा दुसह दुखदाई ॥८॥

फिर अगला कार्य विचारा कि रामजीके वन जानेसे गौ; ब्राह्मण, देवताओंका कार्य होगा रावणादि मरेंगे तब कुशल कवि हमारी चाह करेंगे ॥७॥ यह विचार मनमें प्रसन्न हो महाराज दशरथके नगरमें आयी, जैसे दुसह दुख देनेवाली (शनि आदिकी दशा आई हो) ॥ ८ ॥

दोहा-नाम मंथरा मन्दमति, चेरि कैकई-केरि ॥
अयश पिटारी ताहि करि, गई गिरामति फेरि ॥ ४५ ॥

मंदमति मंथरा नाम्नी एक कैकेयीकी चेरी थी, शारदा उसे अपयशकी पिटारी कर भरमाकर चली गयी! शारदा अवधवासियोंकी विपत्ति न देख सकी इससे चली गयी और उन पर कुचाल भी न कर सकी, अतः कैकेयीके संग मंथरा जो काश्मीरसे आयी थी उसी पर कुचाल कर गयी (कभी कैकेयीके पिता बनमें अहेर करते समय एक मृगका वध किया तब उसकी मृगी रोती हुई अपनी माताके पास गयी; उसने हाल सुन राजाके पास आकर कहा कि यह मेरा जामाता है, तुम इसे छोड़ दो मैं इसे जिला लूँगी, क्योंकि मैं यक्षिणी हूँ मेरे ही बलसे यह निर्भय फिरता है राजाने यह सुन उसके तलवार मारी तब उसने मरते समय कहा-राजन् जैसे तुमने मेरे जामाताका प्राण लिया वैसे ही तुम्हारे जामाताका प्राण लूँगी सो वही मृगी यह मंथरा हुई! किसी रामायणमें लिखा है यह दुंदुभी नामवाली गंधर्वी है जो कि द्वापरमें कुब्जा हुई थी) ॥ ४९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे अयोध्याकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-राज्याभिषेकवर्णनं नाम प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

दोहा-यहि दूजे विश्राममें, कैकयिकी मति फेरि।
कोप भवन पठयो तुरत, महादुष्ट मति चेरि ॥ २ ॥

देखि मंथरा नगर बनावा * मंजुल मंगल बाज बधावा ॥१॥
पूछेसि लोगन काह उछाहू * राम-तिलक सुनि भा उर दाहू॥२॥

मंथराने नगरका बनाव देखा कि सुन्दर आनन्दका बधावा बज रहा है ॥ १ ॥ लोगोंसे पूछा क्या उत्साह है! रामका तिलक सुनकर हृदयमें बड़ा दाह हुआ ॥ २ ॥

करै विचार कुबुद्धि कुजाती * होइ अकाज कवन विधि राती ॥३॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती * जिमि गँव तकै लेउ केहि भाँती॥४॥

वह कुबुद्धिनी कुजातिनी विचार करने लगी कि आज रातमें ही अकाज किस प्रकार हो! ॥ ३ ॥ जैसे कुटिल भीलनी शहद लगा देखकर घात लगाती है कि किस प्रकार से लूँ? कुटिल किराती कहनेका यह भाव है कि अयोध्याजीमें दोको किराती कहा है. मंथरा को यहां और कैकेयीको आगे-"विधि कैकेयी किरातिनि कीन्ही" कैकेयी सीधी किरातिनी है और यह कुबरी है इससे कुटिल किरातिनी कहा। शिकार वाले टेढ़े अङ्गसे शिकार अच्छे प्रकारसे देखते हैं श्रीरामराज्य मधु है और अवधवासी मधुमक्खी हैं सुकृत फूलोंका रस है; मक्खी दिनमें विघ्न करती हैं, इससे रातमें निकालनेका यत्न किया ॥ ४ ॥

भरत-मातु पहँ गइ बिलखानी *का अनमनी हँसि हँसि कह रानी॥५॥
उतर न देइ सो लेइ उसांसू * नारि चरित करि ढारति आँसू॥६॥

भरतकी माताके पास दुःखी होके गयी, रानीने हँसके कहा क्यों दुःखी हो रही हो ॥५॥ वह उत्तर नहीं देती, उसांस लेती है त्रिया चरित्रसे बनावटी आँसू गिराती है ॥ ६ ॥

हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे *दीन्ह लषण सिख अस मन मोरे॥७॥
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिन *छांड़इ श्वास कारि जनु सांपिनि॥८॥

तब रानी हँसकर बोली-तू बड़ी मुहजोर है, मैं जानती हूँ कुछ लक्ष्मणने शिक्षा दी है ॥ ७ ॥ तो भी पापिन चेरी नहीं बोली, सर्पिनी की नाईं श्वास छोड़ने लगी ॥ ८ ॥

दोहा-सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल ॥
लषण भरत रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर शाल ॥ ४६ ॥

तब रानी डरकर कहने लगी कि रामचन्द्र, राजाजी लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न कुशल हैं? यह सुनकर कुबरीके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ, दुःखका कारण यह है कि पहले रामका कुशल पूछा। ४६।

"का सोवसि सुहाग अभिमानी * निकट महाभय तुम न डरानी"॥१॥

तब कुमरी बोली– सौभाग्यके अभिमानसे क्या सोती हो ? समीपमें बड़ा भय उपस्थित है जिसका तुम्हें डर नहीं है ? ॥ १ ॥ क्षेपक ॥

कत शिख देइ हमहिं कोउ भाई * गाल करब केहिकर बल पाई ॥२॥
रामहिं छांड़ि कुशल केहि आजू * जाहि नरेश देइँ युवराजू ॥३॥

हे भाई ! हमें कोई क्या शिक्षा देगा और अब किसका बल पाकर मुँह जोरी करेंगी ? ॥ २ ॥ आज रामको छोड़कर किसे कुशल है, जिसको राजा युवराज देते हैं ॥ ३ ॥

भयउ कौशिलहि विधिअतिदाहिन * देखत गर्व रहत उर नाहिन ॥४॥
देखहु कस न जाय सब शोभा * जो अवलोकि मोर मन क्षोभा ॥५॥

आज कौशल्याको विधाता अतिदाहिना है और यह देख कौशल्याका गर्व हृदयमें नहीं रहता ॥४॥ यह सब शोभा जाकर क्यों नहीं देखती ? जिसे देखकर मेरामन चलायमान होगया ॥५॥

पूत विदेश न शोच तुम्हारे * जानति हौ वश नाह हमारे ॥६॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई * लखहु न भूप कपट चतुराई ॥७॥

पूत विदेशमें है तुम्हें कुछ सोच नहीं, यह जानती हो कि राजा हमारे वशमें हैं ॥६॥ तोसक-युक्त सेज पर तुम्हें नींद ही बहुत प्यारी है, राजाकी कपट चतुराई नहीं जानती हो ? ॥ ७ ॥

सुनि प्रिय वचन मलिनमन जानी * झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥८॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी * तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी ॥९॥

कैकेयीने यद्यपि अपने विषयके प्रिय वचन सुने तो भी मलिन मन जानके झुकी, क्रोध-कर कहा कि अरगानी रहु अर्थात् चुप रह ॥ ८ ॥ जो कभी घर बिगाड़की बात कहेगी तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी ॥ ९ ॥

दोहा–काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ॥
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥ ४७ ॥

काने, खोरे (गंजे), कुबड़े और कुचाली ये सब कुटिल होते हैं, जानके कहती हूँ जो स्त्री हों तो और भी विशेष कुटिल हों, उसमेंभी तू चेरी क्यों न कुटिल हो ? ऐसे कहकर भरत की माता मुसकायी, कारण की मनमें उसपर प्रीति थी रोष न किया ॥ ४७ ॥

प्रिय वादिन सिख दीन्हेउँ तोहीं * स्वप्नेहु तोपर कोप न मोहीं ॥१॥
सुदिन सुमंलदायक सोई * तोर कहा फुर जा दिन होई ॥२॥

हे प्रियवादिनि ! मैंने तुझे शिक्षा दी, मेरा क्रोध तेरे ऊपर स्वप्नमें भी नहीं है प्रियवादिनी कहनेका यह भाव कि किञ्चित् देवमायाकी छाया पड़ी जिससे क्रोधमें मंथराके आश्वासन हेतु मीठी बोली, पर अभी मायाने अच्छी तरहसे प्रवेश नहीं किया है; इससे रघुनाथजीके स्नेहकी बात अगली चौपाईमें कहती है॥ १॥ तूने जो श्रीरामचन्द्रजीका तिलक कहा सो सत्य है वह जिस दिन हो वही सुंदर मंगलदायक है, वा वही दिन मंगलदायक होगा जिस दिन यह तेरा कहा सत्य होगा

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई * यह दिनकर कुलरीति सुहाई ॥३॥
राम तिलक जो सांचेहु काली * देउँ माँगु मन भावत आली ॥४॥

बड़ेको स्वामीपन, छोटे भाईको सेवकाई यह सूर्य कुलकी सुहावनी रीति है॥३॥ हे अली! श्रीरामचन्द्रजीको कल तिलक सत्य हो तो मन भावती वस्तु मांग, मैं दूँगी साँचेहु कहनेका भाव यह कि, जो तिलक सत्य होता तो मुझे खबर न होती क्या ? आली इस कारण कहा कि,श्रीरामके तिलककी खबर सुनायी,अब चेरी न कहनी चाहिए, सुर मायासे मोहित हो आली कहा और श्रीरामचन्द्र राजा होंगे तो कौशल्याको मानेंगे इस पर कहती हैं ॥ ४ ॥

कौशल्या सम सब महतारी * रामहि सहज स्वभाव पियारी ॥५॥
मोपर करहिं सनेह विशेखी * मैं करि प्रीति परीक्षा देखी ॥६॥

कौशल्याके समान सब महतारी रामचन्द्रजीको सहज स्वाभावसे प्यारी हैं ॥ ५ ॥ और मेरे ऊपर तो बहुत प्रेम करते हैं मैंने प्रीतिकी परीक्षा कर देखी है ॥ ६ ॥

जौ विधि जन्म देइ करि छोहू * होहु राम सिय पूत पतोहू ॥७॥
प्राणते अधिक राम प्रिय मोरे * तिन्हके तिलक क्षोभ कस तोरे॥८॥

जो ब्रह्मा कृपा करके जन्म दें तो सदैव रामचन्द्र पुत्र और जानकीजी पतोहू हुआ करें ॥७॥ रामजी तो मुझे प्राणोंसे अधिक प्यारे हैं उनके तिलकसे तुझे कैसे क्षोभ हुआ ? ॥८॥

दोहा-भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ ॥
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहि सुनाउ ॥ ४८ ॥

तुझे भरतकी सौगंध है, सत्य कह, कपट दुराव छोड़कर बता, प्रसन्नताके समय क्यों दुःख मानती है ? इसका कारण मुझसे कह ॥ ४८ ॥

सुनत वचन मन्थरा रिसानी * बोली वचन कपट छल-सानी ॥१॥
एकहि बार आस सब पूजी * अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥२॥

यह वचन सुनते ही मंथराको क्रोध हो आया और कपट छलसे मिली हुई वाणी बोली ॥ १ ॥ एक ही बारके कहनेसे सब आशा पूरी हो गयी क्योंकि तुमने कहा कि जीभ उखड़वा दूँगी तो अब दूसरी जीभ बनाकर फिर कुछ कहूँगी ॥ २ ॥

फोरै योग कपारु अभागा * भलउ कहत दुख रौरेहि लागा ॥३॥
कहहिं झूंठि फुरि बात बनाई * ते प्रिय तुमहि करुइ मैं माई ॥४॥

भली बात करते तुम्हें दुःख लगा तो यह हमारा भाग्यहीन कपार फोड़नेके योग्य है ॥ ३ ॥ जो झूठी बातको सत्य बनाकर कहते हैं तुम्हें वे ही प्यारे हैं मैं कड़वी हूँ, अर्थात् 'सत्य कहे सो मारा जाय । झूठा कहे सो लड्डुआ खाय' ॥ ४ ॥

हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती * नाहित मौन रहब दिन राती ॥५॥
करि कुरूप विधि परवश कीन्हा *बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा॥६॥

हम भी अबसे ठकुरसुहाती कहेंगी, नहीं तो दिन रात मौन रहेंगी। अथवा यह कि आजके दिन मौन रहें रात बीतने पर कलको रामजी राजा होंगे तो तुम्हारी ठकुराई ही न रहेगी,तो क्यों ठकुर सुहाती कहनी पड़ेगी? अब काने खोरेके ऊपर कहती है॥५॥एकतो विधाताने कुरूप करके

परवश कर दिया है जो बोया है वह काटा है; जो दिया है वही पाया है, जैसे कर्म किये हैं वे भोगनेमें आते हैं (रानीने जेठे भाईका राजा होनेको कहा, उस पर कहती है) ॥ ६ ॥

कोउ नृप होय हमहिं का हानी * चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥७॥

जारइ योग स्वभाव हमारा * अनभल देखि न जाय तुम्हारा ॥८॥

कोई राजा हो, मुझे क्या हानि ? चेरी छोड़ अब क्या रानी हूँगी ? चेरी से नीच पदवी और दूसरी क्या होगी; जिससे मेरी हानि होगी ? दूसरा भाव-रानीसे जो चेरी होनेका है वह तो हानि मानती ही नहीं मेरी क्या हानि है ? ॥ ७ ॥ हमारा स्वभाव जराइबे योग्य है तुम्हारा अनभल देखा नहीं जाता; अर्थात् जिसका अनभल हो और वह भला माने तो दूसरा काहेको जरे ? इसका कारण हमारा स्वभाव जराइबे योग्य है ॥ ८ ॥

ताते कछुक बात अनुसारी * क्षमिय देवि बड़ि चूक हमारी ॥९॥

तुम्हारा अनभल देखकर कुछ कही थी, वह हमारी बड़ी चूक है, हे देवि ! उसे क्षमा करिये ! कछुक कहनेका भाव यह कि अनभलकी कुछ बात चलाई, है तो बहुत ॥ ९ ॥

दोहा-गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि ॥
सुरमायावश वैरनिहि, सुहृद् जानि पतिआनि ॥ ४९ ॥

गूढ़, कपट, भरे मीठे वचन सुन स्त्रियोंके बीचमें ओठपर बुद्धिवाली अर्थात् क्षणमती वा अधर कहे नीच बुद्धिवाली रानी देवताओंकी मायाके वश हो बैरिनी जो मन्थरा अर्थात् सब सुखोंका नाश करनेवाली उसे सुहृद सुख देनेवाली जानकर पतियाई ॥ ४९ ॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही * शबरी गान मृगी जनु मोही ॥१॥

तस मति फिरी अहइ जसि भावी * रहसी चेरि बात जनु फावी ॥२॥

आदरसे बारंबार उससे पूछती है, जैसे कि भीलनीके गानेसे मृगी मोहित हो जाती है; यह नहीं विचारती कि मारनेको यह मीठे सुरोंसे गाती है। कैकेयी नहीं विचारती कि ये मन्थराकी मीठी बातें दुःखदायी हैं कोई शंका करे कि पहले जिस बातपर क्रोधित हुई अब उसे क्यों पूछती है ? तो उसका उत्तर अगली चौपाईमें है ॥ १ ॥ वैसी मति फिरी जैसा होनहार है, मन्थरा प्रसन्न हुई मानो भावी वा सुमति नहीं फिरी, मन्थरा की बात फबी, वा घात लगा। रानीने घर फोरी कही थी उसपर कहती है ॥ २ ॥

तुम पूछहु मैं कहत डेराऊँ * धरचो मोर घरफोरी नाऊँ ॥३॥

सजि प्रतीत बहुविधि गढ़ि छोली * अवध साढ़साती जनु बोली ॥४॥

रानी ! तुम जो पूछती हो वह मैं कहते डरती हूँ, क्योंकि मेरा नाम घरफोरी धरा है ॥३॥ विश्वास कराके बहुविधि गढ़िछोलि बात बनाकर जैसे गठीली छड़ी छोलके ऊपर सीधी दीखती है,ऐसे ही मन्थरा कुटिलतासे भरी ऊपरसे सीधी सी हुई अवधकी शनैश्चरकी साढ़ेसाती दशा रूपी चेरी तब बोली। (शनैश्चरकी दशा साढ़े सात वर्षकी होती है) यहां दो वरदान दो शनैश्चरोंकी दशा है। चेरीके वाक्योंकी भाषा भी गोस्वामीजीने वैसे ही रखी है ॥ ४ ॥

प्रिय सिय राम कहा तुम रानी * रामहि तुम प्रिय सो फुरि बानी ॥५॥

रहे प्रथम अब सो दिन बीते * समय फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥६॥

रानी तुमने कहा–सीता राम मुझे प्यारे हैं रामको मैं प्यारी हूँ, यह सत्य है ॥ ५ ॥ सो यह बात पहले थी, अब वे दिन बीत गये, समयके फेरसे शत्रु भी प्रीति करने लगते हैं, समय बीतने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हैं ॥ ६ ॥

भानु कमलकुल-पोषनहारा * बिनुजर जारि करिय सोइ छारा ॥७॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी * रूँधहु करि उपाय वर वारी ॥८॥

देखो सूर्य कमलका पालन करने वाला है परंतु जब कमल जड़में नहीं हो तो उसे जलाकर छार कर देता है ॥ ७ ॥ सो तुम्हारी जड़ सौत उखाड़ना चाहती है, उसे उपायरूपी अच्छे जलसे रूँधो (घेरा बनाके दृढ़ करो) नहीं तो कमलकीसी दशा होगी ॥ ८ ॥

दोहा–तुमहिं न सोच सुहाग बल, निज वश जानहु राउ ॥
मन मलीन मुहँ मीठ नृप, राउर सरल स्वभाव ॥५० ॥

तुम्हें तो सुहागके बलसे कुछ शोच नहीं है, राजाको अपने वशमें जानती हो,सो राजा मनके मलीन हैं, मुँहपर मीठी बातें कह देते हैं और तुम सीधे स्वभावसे सत्य जानती हो ॥ ५० ॥

चतुर गँभीर राम महतारी * बीच पाय निज बात सँवारी ॥१॥
पठये भरत भूप ननिऔरे * राम-मात-मत जानब रौरे ॥२॥

रामजीकी महतारी चतुर और गम्भीर हैं, अवसर पाकर अपनी बात सँभाली है ॥ १ ॥ भरतजीको राजाने नानाके यहां रामजीकी माताके मतसे ही भेज दिया है यह समझो॥२॥

सेवहिं सकल सवति मोहि नीके * गर्वित भरत मातु बल पीके ॥३॥
शाल तुम्हार कौशलहि माई * कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥४॥

सब सौत मेरी अच्छी सेवा करती हैं, भरतकी माता राजाके प्रेमसे गर्वीली हैं हमारी सेवा नहीं करतीं ॥३॥ हे माई ! यह दुःख तुम्हारा कौशल्याजीको है,पर कपटमें चतुर हैइससे जाना नहीं जाता, यदि कैकेयी कहे कि,हम द्वेष नहीं रखतीं, वे क्यों करेंगी ! उस पर कहती है ॥४॥

राजहि तुमपर प्रीति विसेखी *सवति स्वभाव सकहि नहिं देखी॥५॥
रचि प्रपंच भूपहि अपनाई * राम तिलक–हित लगन धराई ॥६॥

राजाकी तुम पर अधिक प्रीति है, वह सौत स्वभावसे देख नहीं सकती ॥ ५ ॥ प्रपंच रच राजाको अपनाकर रामचन्द्रके तिलककी लग्न धरायी ॥ ६ ॥

यहि कुल उचित रामकहँ टीका * सबहिं सुहाय मोहिं सुठि नीका॥७॥
आगिल बात समुझि डर मोही * दैव देय फिर सो फल वोही ॥८॥

सूर्यकुलमें उचित जो यह टीका श्रीरामचन्द्रजीको होता है वह सबको ही सुहाता है और मुझे भी अच्छा लगा है ॥७॥ परंतु अगली बात अर्थात् तुम्हारा अधिकार भंग समझकर हमें डर है अधिकार भंग रूप फल; जो तुम ऐसे सीधेके साथ कपट रचा है उसको दैव दे ॥ ८ ॥

दोहा–रचि पचि कोटि कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोध ॥
कहेसि कथा शत सवतिकी, जेहि विधि बाढ़ विरोध ॥ ५१ ॥

कोटि कुटिल श्रमसे रचकर कैकेयीको कपटका ज्ञान कराया और जिस प्रकारसे विरोध

बढ़े सैकड़ो सौतोंकी कथा कही जैसे चित्रकेतुकी रानियोंने सौतके बालकको मारा और ध्रुवको जैसे विमाताने दुःख दिया, वे पांच वर्षके ही वनको गये, ऐसी अनेक कथा कहीं ॥ ५१ ॥

भावीवश प्रतीति उर आई * पूँछि रानि पुनि शपथ दिलाई ॥१॥
का पूँछहु तुम अबहु न जाना * निजहित अनहित पशु पहिचाना॥२॥

कैकेयीको भवितव्यताके वश मंथराकी प्रतीति हृदयमें आयी तो अपनी सौगंध दिलाके पूछने लगी, तब वह अपने को हितकारिणी जानती हुई कठोर वचन बोली ॥ १ ॥ क्या पूछती हो तुमने अब भी नहीं जाना ! अपना हित अहित पशु भी पहचानते हैं ॥ २ ॥

भयउ पाख दिन सजत समाजू * तुम पाई सुधि मोहिसन आजू ॥३॥
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे * सत्य कहे नहिं दोष हमारे ॥४॥

पन्द्रह दिन राज समाज सजाते बीत गये, तुमने आज मुझसे सुधि पायी है, जो राजाको तुमसे कपट न होता तो छिपाते क्यों ! ॥३॥ जिस सत्यके कहनेसे किसीका विगाड़ हो वह सत्य कहनेमें दोष क्या है ऐसा शास्त्रमें लिखा है परन्तु तुम्हारे राज्यमें हमने खाया पहना इससे सत्य कहनेमें दोष नहीं ! अब वचनमें अत्यन्त प्रतीत हेतु शपथ करती है ॥ ४ ॥

जौ असत्य कछु कहब बनाई * तौ विधि देइहि हमहिं सजाई ॥५॥
रामहिं तिलक कालिह जो भयऊ * तुम कहँविपतिबीजविधि बयऊ ॥६॥

जो मैं इस विषयमें बनाकर कुछ असत्य कहूँ, तो विधाता मुझे दण्ड देंगे ॥ ५ ॥ जो रामको कल तिलक हो गया तो तुम्हारे हेतु विधाताने विपत्तिका बीज बो दिया ॥ ६ ॥

रेख खँचाय कहौं बल माखी * भामिन भइउ दूधकी माखी ॥७॥
जो सुत सहित करहु सेवकाई * तौ घर रहहु न आन उपाई ॥८॥

रेखा खींचकर और बल पूर्वक अर्थात् प्रतिज्ञा करती हूँ, हे भामिनी ! तुम दूधकी माखी हुई। जैसे दूधसे मक्खी निकाल फेकते हैं वैसे तुमको राज्यसे निकाल देंगे ॥ ७ ॥ जो पुत्र सहित सेवा करोगी तो घर रहने पाओगी, नहीं तो रहनेका दूसरा उपाय नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-कद्रू विनतहिं दीन दुख, तुमहिं कौशलादेव ॥
भरत बन्दिगृह सेइहहिं, लषण रामके नेब ॥ ५२ ॥

जैसे कद्रूने विनताको दुःख दिया वैसे ही तुमको कौशल्या देगी और भरत कैदखाना सेवेंगे और लक्ष्मणजी रामके (नायब) नायबका अर्थ अधिकारी है ॥ ५२ ॥

केकय सुता सुनत कटु बानी * कहि न सकै कछु सहमि सुखानी॥१॥
तनु पसेव कदली जिमि कापी * कुबरी दशन जीभ तब चापी ॥२॥

कैकेयी यह कटु वाणी सुनते ही संदेहमें हो गयी कुछ कह न सकी; सहमके सूख गई ॥१॥ सब शरीरमें पसीना आ गया जैसे केला हवा लगनेसे कांपता है इस प्रकारसे कांपने लगी तब

कद्रू, विनताकी कथा-कद्रू नागोंकी माता, विनता गरुड़की माता ये दोनों कश्यपकी पत्नी थीं । परस्पर विवाद हुआ, कद्रूने कहा सूर्यके घोड़े श्याम हैं विनताने कहा श्वेत हैं, बाजी लगी जो हारे सो दासी हो, तब कद्रूने अपने पुत्र सर्पोंको सिखा दिया, वे जाकर घोड़ोंकी पूछ और शरीर में लिपट गये तब दोनों पर्वतपरसे देखने गयीं और घोड़ोंके श्याम बाल देख विनता हार कर दासीपन करने लगी । पीछे गरुड़ने यह वृत्तान्त जान सर्पोंसे अमृत लानेकी प्रतिज्ञा कर माताको दासित्वसे छुड़ाया । अमृतका घड़ा, गरुड़जीने कुश पर धर दिया, सर्प स्नान करने गये, इन्द्र उठा ले गया, सर्प कुश चाटने लगे उसके लगनेसे सर्पोंकी जिह्वा चिरकर दो हो गयीं और अमृत धरनेसे कुश पवित्र हुए ।

कुबरीने दांततरे,जीभ दाबी। दांततरे जीभ दबानेका भाव यह कि कैकेयीके दुःखसे अपनेको दुखी जनाया वा अब रानीको दुःख मालुम पड़ा, भाव यह कि रानी हमारे वश हो चुकी ॥ २ ॥

कहि कहि कोटिक कपट कहानी ❋ धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी ॥३॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाय कुपाठू ❋ फिर न नवइ जिमि उकठि कुकाठू॥४॥

करोड़ों कपटकी कहानी कहकर मंथराने रानीको समझाया कि धीर धरो, मैं तुम्हारे सब काम साधूँगी ॥ ३ ॥ जैसे उकठा कुकाठ फिर नहीं नवता अर्थात् कठिन हो जाता है वैसे ही रानी को कुत्सित पाठ पढ़ाया कठिन किया। (राजापुरकी पोथीमें यह चौपाई नहीं है) ॥४॥

फिरा कर्म प्रिय लागि कुचाली ❋ बकिहि सराइह मानि मराली ॥५॥
सुनु मंथरा बात फुर तोरी ❋ दाहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥६॥

कर्म फिरा; कुचाल प्रिय लगी,इससे उस चेरीरूपी बकीको हंसनी मान सराहने लगी ॥५॥ कैकेयी बोली-सुन मंथरा ! तेरी बात सत्य है, मेरी दाहिनी आंख नित्य फड़कती है ॥६॥

दिनप्रति देखहु राति कुसपने ❋ कहहु न तोहि मोहवश अपने ॥७॥
कहा करौं सखि सूध स्वभाऊ ❋ दाहिन बाम न जानौं काऊ ॥८॥

प्रति दिन रातको कुस्वप्न देखती हूँ,परन्तु अपनी मूर्खता मैं तुझसे नहीं कहती। यहाँ दाहिने नेत्रका फड़कना,कुस्वप्न देखना,विधवापन आदि दुःख सूचक हैं।।७।। क्या करूं सखी! सीधा स्वभाव है इस कारण दाहिना बांया अर्थात् यह शत्रु है,वह मित्र है मैं कुछ नहीं जानती।।८।।

दोहा-अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु न दीन्ह ॥
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह ॥ ५२ ॥

अपने बसाते तो आजतक किसीका अनभल नहीं किया फिर किस पापसे विधाताने एक ही बार मुझे यह कठिन दुःख दिया ॥ ५२ ॥

नैहर जन्म भरब बरु जाई ❋ जियत न करब सवति सेवकाई ॥१॥
अरिवश दैव जियावत जाही ❋ मरण नीक तेहि जीवन चाही ॥२॥

मंथराने जो कहा कि सेवा करोगी तो रह सकोगी उसपर कहती है—चाहे मां के यहां जाकर जन्म बिता दूँ पर जीतेजी सौत की सेवा नहीं करूँगी ॥ १ ॥ जिसको विधाता शत्रुके वश जिलावे उसके जीनेसे मरना अच्छा है ॥ २ ॥

दीन वचन कह बहुविधि रानी ❋ सुनि कुबरी तिय माया ठानी ॥३॥
अस कस कहेउ मानि मनऊना ❋ सुख सुहाग तुम कहँदिन दूना ॥४॥

रानीने बहुत प्रकारसे जब दीन वचन कहे तब सुनकर कुबरीने स्त्रियोंकी माया रची ॥३॥ हे रानी मनमें! दीनता मान ऐसा क्यों कहती हो? सुहागसे सुख तुमको दिन-दिन दूना है, इससे यह अर्थ भी निकलता कि सुहागसे उत्पन्न सुख तुमको अब दो दिन भी नहीं है और अपने मनको ऊना अर्थात् छोटा मानो। अथवा दिन दूना चौदह दिनका सुहाग जानो ॥ ४ ॥

जेहि राउर अति अनभल ताका ❋ सो पाइहि यह फल परिपाका॥५॥
जबते कुमति सुना मैं स्वामिनि ❋ भूख न वासर नीद न यामिनि॥६॥

जिसने तुम्हरा अधिक अनभल ताका है, वही अन्तमें इसका फल पावेगा ॥ ५ ॥ हे स्वामिनि! जबसे मैने यह कुमन्त्र सुना है तबसे दिनमें न भूख है न रातमें नींद आती है ॥६॥

पूछेहुँ गुणिन्ह रेख तिन्ह खाँची * भरत भुआल होहिं यह साँची ॥७॥
भामिन करहु तो कहहुँ उपाऊ * हैं तुम्हरे सेवावश राऊ ॥८॥

मैंने ज्योतिषी आदिकोंसे पूछा है उन्होंने गणित करके कहा भरत राजा होंगे, यह सच्ची है ॥ ७ ॥ हे भामिनि ! जो तुम करो तो मैं उपाय कहूँ; यह है कठिन, पर राजा तुम्हारी सेवाके वश हैं इससे कार्य हो जायगा; तब (कैकेयी बोली) ॥ ८ ॥

दोहा-परउँ कूप तव वचनपर, सकौं पूत पति त्यागि ॥
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥ ५४ ॥

तेरे वचन पर कुएँमें गिर पड़ूँगी;; पूत और पतिका भी त्याग कर सकती हूँ; कारण कि मेरा बड़ा दुःख देखकर कहती हो फिर हितकी बात क्यों न करूँगी ? ॥ ५४ ॥

कुबरी करि कुबली कैकेयी * कपट छुरी उर पाहन टेई ॥१॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे * चरइ हरित तृण बलि पशु जैसे॥२॥

कुबरीसे कुबिलाई हुई जो कैकेयी है,कुबरीने उसके मारने को कपटरूपी छुरी हृदयरूपी पाषाण पर टेई अर्थात् तेजकी । अथवा कुबरीने जो किसी देवताकी मानता की है उसमें कैकेयीके बलि देनेको मंथरा कपटरूपी छुरी उररूपी पाषाण पर तेज करती है ॥१॥ रानी अपने दुःखको निकट नहीं देखती वरन् सुख मानती है, जैसे बलिपशु हरे (नवीन तृण सुख मान चरता है यह नहीं जानता कि मृत्यु निकट है इसमें यज्ञ करता कुबरी है बलिपशु कैकेई है।पशु मारनेको कपटकी छुरी है, मंथराके वचन हरी घास है भरतका राजा होना कुबरीका मनोरथ है सो कुबली देनेसे न सिद्ध हुआ किन्तु बालपशु कैकेयीका ही अनिष्ट हुआ ॥ २ ॥

सुनत बात मृदु अन्त कठोरी * देत मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥३॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं *स्वामिनि कहेउ कथा मोहिं पाहीं॥४॥

बात सुननेमें कोमल परन्तु अन्तमें उसका फल कठोर है, जैसे कोई मधुमें विष घालके देता है ॥ ३ ॥ चेरी बोली याद है, कि नहीं जो तुमने मुझसे कथा कही थी ? ॥ ४ ॥

दुइ वरदान भूपसन थाती * मांगहु आजु जुड़ावहु छाती ॥५॥
सुतहि राज्य रामहि वनवासू * देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥६॥

दो वरदान राजाके पास तुम्हारी थाती (धरोहर) हैं उन्हें मांगकर छाती ठंढी करो । चेरीने सुध दिलायी कि, दक्षिण दिशामें दण्डकारण्यमें वैजयन्त नगरके राजा पतिध्वज रहते थे, वहाँ शंबर नाम असुरसे और इन्द्रसे युद्ध होने लगा तब महाराज दशरथ तुम्हें सङ्ग लेकर इन्द्रके सहायतार्थ गये और युद्ध करने लगे,लड़ते-लड़ते रात हो गई।उस रातमें राक्षसोंने बहुत से बीरोंको मारा और राजा दशरथके भी सर्वांगमें शस्त्रव्रण होनेसे मुर्छा हुई और,सारथी भी मारा गया । हे देवि ! तब तुम रथ हांक संग्रामसे दूर ले गयीं और पतिकी रक्षा की, जब राजाकी मुर्छा गयी तब उन्होंने कहा कि मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ दो वरदान मांगो तब 'तुमने कहा कि जब कभी हम मागें तो देना, यह थाती आपके पास रखती हूँ महाराजने तथाऽस्तु' कहा । मन्थरा कहती है हम नहीं जानती हैं, आपने ही हमसे कहा है, सो हमको स्मरण है तुम भूल गयी हो ? कोई यों कहते हैं कि उस लड़ाईमें रथकी धुरी टूट गयी कैकेयीने उस छिद्रमें अपना हाथ लगा धुरी समान की कैकेयीने एक ऋषिके मुखपर सोतेमें स्याही लगा दी थी, इस पर उसने शाप दिया कि तुझे कलङ्क लगेगा

कोई तेरा मुख न देखेगा और फिर ऋषिने दंड मांगा तब बड़ी प्रार्थनासे इसने वामहाथमें दण्ड दिया; उसपर प्रसन्न हो वर दिया कि जब इच्छा करेगी, तेरा हाथ लोहदंडके सदृश हो जायगा । उसी समय राजाने दो वर दिये, कैकेयीने कहा कि, दोनों वरदान क्या मांगे ! उस पर कहती है ॥५॥ पुत्रको राज्य और रामको वनवास देकर सब सौतोंकी प्रसन्नता छीन लो, रामके रहनेसे प्रजाके दो भाग हो जायेंगे । इस कारण वनवास रामको देनेको कहा; अथवा दो वरदान लेकर अपना और सौतोंका आनंद दे दो, विधवापनका दुःख लो ॥ ६ ॥

भूपति रामशपथ जब करई * तब मांगेहु जेहि वचन न टरई ॥७॥
होइ अकाज आजु निशि बीते * वचन मोर प्रिय मानहु जीते ॥८॥

जब राजा रामकी सौगन्ध करें तब मांगना, जिससे वचनसे न टरें ॥७॥ आजकी रात-बीत जाने पर यह कार्य नहीं होगा; इससे हमारे वचनको जीसे भी प्यारा जानो ॥ ८ ॥

दोहा–बड़ कुघात करि पातकिनि, कह्यो कोपगृह जाहु ॥
काज सँभारेउ सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥ ५५ ॥

बड़ा कुत्सित घातक पापिन मंथराने कहा कि अब कोप भवनमें जाओ और वहां सावधान होकर सब काज सँभालना, एकाएकी पतिका विश्वास नहीं करना ॥ ५५ ॥

कुबरिहि रानि प्राणप्रिय जानी * बारबार बड़ि बुद्धि बखानी ॥१॥
तोहि सम हित न मोर संसारा * बहे जातकर भयसि अधारा ॥२॥

रानीने कुबरीको प्राणके समान प्यारी जान और बारंबार बुद्धि बखानी ॥ १ ॥ तेरे समान संसारमें मेरा हित नहीं, क्योंकि तू बही जातीकी आधार हुई ॥ २ ॥

जौ विधि पुरब मनोरथ काली * करौं तोहि चखपूतरि आली ॥३॥
बहुविधि चेरिहि आदर देई * कोप भवन गँवनी कैकेयी ॥४॥

आली ! जो कल विधाताने मेरा मनोरथ पूरा किया तो तुझे नेत्रोंकी पुतली करूँगी ॥३॥ बहुत प्रकारसे चेरीको आदर दे कैकेयी कोप भवनको गई । नीचोंका आदर करनेसे उलटा फल मिलता है वह पावेगी, (वृक्षका रूपक कहते हैं) ॥ ४ ॥

विपति बीज वर्षा ऋतु चेरी * भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी ॥५॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा * वर दोउ दलदुख फलपरिणामा ॥६॥

इस वृक्षका विपत्ति बीज है, वर्षाऋतुके जलसे बीज जमता है सो चेरी वर्षाऋतु है कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई ॥ ५ ॥ कपटजल मिलनेपर उस बीजका अंकुर जामा, पहले दो पत्ते निकलते हैं वे दोनों वर हैं, इस वृक्षका परिणाम दुःख फल रूप होगा ॥ ६ ॥

कोप समाज साजि सब सोई * राज्यकरत निजकुमति बिगोई ॥७॥
राउर नगर कोलाहल होई * यह कुचालि कछु जान न कोई ॥८॥

वह कोपका सब समाज सजाकर राज्य करती कैकेयी अपनी कुमतिसे नष्ट हुई ॥ ७ ॥ राजाके नगरमें कोलाहल होता है, पर यह कुचाल कुछ भी कोई नहीं जानता ॥ ८ ॥

दोहा–प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगलचार ॥
यक प्रविशहिं यक निर्गमहिं, भीर भूप–दरबार ॥ ५६ ॥

नगरमें नर नारी सब प्रसन्न हो मंगलद्रव्य सजाते हैं और एक जाते हैं एक आते हैं, राजाके दरबारमें बड़ी भीड़ है। अथवा राजाके दरबारमें भूप भीर अर्थात् राजाओंकी भीड़ है,ऐसी भीड़ है कि एक-एक आते जाते हैं ॥ ५६ ॥

बालसखा सुनि हिय हर्षाहीं ❋ मिलि दशपांच रामपहँ जाहीं ॥१॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी ❋ पूछहिं कुशल क्षेम मृदुबानी ॥२॥

रामचन्द्रके बालसखा[1] सुनकर हृदयमें प्रसन्न होते हैं और दश-पांच मिलकर रामजीके पास जाते हैं ॥१॥ रामचन्द्र उनका प्रेम पहिचान आदर कर मृदुवाणीसे कुशल क्षेम पूछते हैं ॥२॥

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई ❋ करत परस्पर राम बड़ाई ॥३॥
को रघुवीर-सरिस संसारा ❋ शील सनेह निबाहन हारा ॥४॥

रामजीकी प्रिय आज्ञा पाकर घरको लौट आते हैं, परस्पर रामकी बड़ाई करते हैं ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके समान संसारमें शील स्नेहका निबाहनेवाला कौन है? भाव यह कि राज्यसे अहंकार नहीं किया पूर्ववत् आदर किया ॥ ४ ॥

जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं ❋ तहँ तहँ ईश देहि यह हमहीं ॥५॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू ❋ होय नात यह ओर निवाहू ॥६॥

जिस-जिस योनिमें कर्मवश हम जायँ वहां-वहां हमें ईश (शिवजी) यही दें ॥ ५ ॥ सेवक तो हम, स्वामी रघुनाथजी इस नाते निर्वाह ओर (अन्त) तक रहे ॥ ६ ॥

अस अभिलाष नगर सब काहू ❋ केकयसुता हृदय अति दाहू ॥७॥
को न कुसंगति पाय नसाई ❋ रहै न नीच मते चतुराई ॥८॥

ऐसी अभिलाषा नगरमें सब किसीको रहती है,कैकेयीके मनमें बड़ा दाह है यह नगरमें भिन्न है अतः केकयसुताका कहा।७।कुसंगति पाकर कौन नहीं नष्ट होता!नीचके मतसे चतुराई नहीं रहती है।८।

दोहा-सांझ समय सानन्द नृप, गयउ कैकयी गेह ॥
गमन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥ ५७ ॥

सन्ध्या समय आनंद पूर्वक राजा कैकेयीके घर गये, जैसे कि स्नेह देह धारण कर निष्ठुरताके निकट जाता हो ॥ ५७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद-निवासी पंडित सुखानंद-मिश्रात्मज वि० वा० पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृतटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतो द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा-यहि तीजे विश्राममें, कैकेयी वरदान।
जिमि राजा दशरथ दियो, पायो दुःख महान ॥ ३ ॥

कोप भवन सुनि सकुचे राऊ ❋ भय वश आगे परै न पाऊ ॥१॥
सुरपति बसहिं बाहुबल जाके ❋ नरपति रहहिं सकल रुखताके ॥२॥

कैकेयीको कोपभवन सुनकर राजा सकुचाये, डरसे आगे पांव नहीं पड़ता है ॥ १ ॥ इन्द्र जिनकी बाहके बलसे बसता है और सब राजा जिसका रुख देखते हैं ॥ २ ॥

सो सुनु तियरिस गयउ सुखाई ❋ देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥३॥
शूल कुलिस असि अँगवन हारे ❋ ते रतिनाथ सुमन शर मारे ॥४॥

---

१. सखा तो बहुत हैं परंतु मुख्य अठारह हैं – सुन्दर, शेखर, बीरसेन, मणिभद्र, तेजरूप, रसिकेश, कलाधर, बाणरूप, रसराज, मनोहर, गुणाकर, मानन्द, पत्रीश, वनपाल, गदाधर, रमणेश, पद्माकर, शीलनिधि।

वह राजा नारीकी रिस सुनकर सूख गये, देखो ऐसा कामदेवका प्रताप और बड़ाई है ॥३॥ जो कि, महाराज त्रिशूल वज्र, और तलवारके सहनेवाले हैं कामदेवने फूलोंके बाणसे मार दिया, कोई कहते हैं जो कामदेवके त्रिशूल, इंद्रके वज्र, भगवती-दुर्गाकी तलवार सह लेते हैं उन्हें कामदेवने फूलोंसे मार दिया ॥ ४ ॥

सभय नरेश प्रियापहँ गयऊ ❋ देखि दशा दुख दारुण भयऊ ॥५॥
भूमि शयन पट मोट पुराना ❋ दिये डारि तनु भूषण नाना ॥६॥

डरते हुए राजा प्रियाके पास गये और दशा देखकर दारुण दुःख हुआ ॥ ५ ॥ पृथ्वीपर शयन मोटा-पुराना वस्त्र और अनेक शरीरके आभूषण पृथ्वीपर डाले हुए पड़े थे ॥ ६ ॥

कुमतिहि कस कुवेषता फाबी ❋ अन अहिवात सूच जनु भावी ॥७॥
जाय निकट नृप कह मृदु बानी ❋ प्राण प्रिया केहि हेतु रिसानी ॥८॥

खोटी बुद्धिवाली कैकेयीको यह कुवेषता कैसी अच्छी लगी, वही मानो होनहारने विधवापनको जना दिया ॥ ७ ॥ समीपमें जा राजाने कोमल वाणीसे कहा-प्राणप्यारी! किस कारणसे रिसाई हो ? ॥ ८ ॥

छन्द-केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई ॥
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई ॥
दोउ वासना रसना दशन वर मर्म ठाहर देखई ।
तुलसी नृपति भवितव्यता वश कामकौतुक लेखई ॥ १३ ॥

हे रानी! क्यों रिसाय रही हो ? यह कह राजाने हाथ पकड़ा तब,कैकेयी हाथ झटक तीक्ष्ण दृष्टिसे इस प्रकार देखने लगी मानो क्रोध युक्त सर्पिणी क्रूरतासे देखती हो । दो वरदानकी जो वासना है वह रसना जीभ है वर दोनों दो दांत हैं, जो सर्पके तलुयेमें चिपटे रहते हैं, जिनकी जड़में थैली होती है, जब सांप काटता है उन्हीं के द्वारा विष घावमें पहुँचता है,सो मर्मस्थान (जहां प्राण रहते हैं;) कैकेयी देखती है, (राजाका मर्मस्थान रामकी सौगन्ध है) तुलसी दासजी कहते हैं, महाराज भवितव्यतावश कामका कौतुक देखते हैं, या भावीवश महाराज हैं, इस कारण उनका कौतुक देखता है ॥ १३ ॥

सोरठा-बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकवचनि ॥
कारण मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोपकर ॥ ८ ॥

बार बार राजाने कहा-हे सुन्दर मुखवाली, सुन्दर नेत्रवाली, कोयलकेसे वचन बोलनेवाली, गजगामिनि ! अपने कोपका कारण मुझे सुनाओ ? ॥ ८ ॥

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा❋केहि दुइ शिर केहि यम चह लीन्हा॥१॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेशू ❋ कहु केहि नृपहि निकारौं देशू ॥२॥

प्यारी! तेरा अहित किसने किया है किसके दो शिर हुए, यमराज किसे बुलाना चाहते हैं! भाव यह है तुम्हारा अहित जिसने किया है वह स्ववश नहीं किन्तु मृत्युवश होकर किया है ॥१॥ कहो किस कंगालको राजा कर दूँ, किस राजाको उसके देशसे निकाल दूँ यह मानों सरस्वती ही कहती हैं भरत जो रंक हैं वे राजा हों राम जो राजा हैं वे देशसे बाहर हों, और तेरा शत्रु मैं मृत्युके वशमें हूं यह सब रामकी आज्ञा है ॥ २ ॥

सकौं तोरि अरि अमरउ मारी ❋ कहा कीट बपुरे नर नारी ॥३॥
जानसि मोर स्वभाव बरोरू ❋ तुव मुख मम दृग चन्द्र चकोरू ॥४॥

मैं तेरे शत्रु अमरको भी मार सकता हूँ, छोटे कीट नर-नारी तो हैं ही क्या ?॥३॥ सुन्दर जंघोंवाली ! मेरा स्वभाव तुम जानती हो कि तुम्हारे मुखचन्द्र के मेरे नेत्र चकोर हैं ॥ ४ ॥

प्रिया प्राण सुत सर्वस मोरे ❋ परिजन प्रजा सकल वश तोरे ॥५॥
जो कछु कहौं कपट करि तोहीं ❋ भामिनि रामसपथ शत मोहीं ॥६॥

हे प्रिये ! जो सर्वस हमारे प्राण, पुत्र और देशवासी प्रजा हैं वे सब तेरे वश हैं ॥५॥ हे भामिनि ! जो कुछ मैं कपट करके कहूँ तो मुझे रामकी सौगंध है ॥ ६ ॥

विहँसि माँगु मनभावति बाता ❋ भूषण साजु मनोहर गाता ॥७॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू ❋ बेगि प्रिया परिहरहु कुबेखू ॥८॥

हँसके मनभावती बात मांगो और शरीर पर भूषण सजाओ ॥७॥ घरी कुघरी तो मनमें समझ देखो; प्रिये ! शीघ्र ही यह कुवेश त्याग करो अथवा हे प्यारी ! हमें यह घरी कुघरी है, अर्थात् क्षण-क्षण क्लेश होता है ॥ ८ ॥

दोहा-यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, विहँसि उठी मतिमंद ॥
भूषण सजत विलोकि मृग, मनहुँ किराततिनि फंद ॥ ९८ ॥

मतिमन्द कैकेयी यह सुन और बड़ी सपथ मनमें विचार कर हँसकर उठी, गहने पहरने लगी मानो मृगको देख किरातिनी फन्द सँवारती है ॥ ९८ ॥

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी ❋ प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥१॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा ❋ घर घर नगर अनंद बधावा ॥२॥

फिर राजा उसे मनमें सुहृद जान प्रेमसे पुलकायमान हो कोमल सुन्दर वाणी बोले ॥१॥ हे भामिनि ! अब तेरा मनभाया हुआ; नगरमें घर-घर आनन्द बधावा बजने लगा है ॥२॥

रामहि देहुँ कालि युवराजू ❋ सजहु सुलोचनि मंगल साजू ॥३॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरा ❋ जनु छुइ गयउ पाक बर तोरा ॥४॥

रामको कल युवराज पद दूँगा, हे सुन्दर नेत्रवाली प्यारी ! सब मङ्गलके साज सजाओ ॥३॥ यह बात सुनते ही कैकेयीका कठोर हृदय कांप उठा, मानो किसीने पका बरतोर छू लिया हो ॥ ४ ॥

ऐसिहु पीर बिहँसि तेहि गोई ❋ चोर नारि जिमि प्रगट न रोई ॥५॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई ❋ कोटि कुटिलमणि गुरू पढ़ाई ॥६॥

ऐसी पीर भी उसने हँसकर छिपाई जैसे चोरकी नारी प्रगट नहीं रोती है। अथवा चोर नारी व्यभिचारिणी जैसे जारका दुःख देख प्रगट रो नहीं सकती हँसकर छिपाती है । अथवा चोट्टी स्त्री प्रगट नहीं रोती इस पर दृष्टांत 'कोइ स्त्री कुत्तीका वेषधर मुसाफिर के वस्त्र चुराने गयी मुसाफिर जाग पड़ा, कुत्ता जानकर दंडा मारा, वह मनमें विलखाती उसी वेषमें भागी चली आयी प्रगट नहीं रोई ॥ ५ ॥ राजा दशरथ उसकी कपट युक्त चतुराई नहीं देखते हैं क्योंकि कोटि कुटिलोंकी शिरोमणि जो मंथरा गुरु है उसकी पढ़ाई हुई है ॥ ६ ॥

यद्यपि नीति निपुण नर नाहू ❋ नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥७॥
कपट सनेह बढ़ाय बहोरी ❋ बोली विहँसि नैन मुख मोरी ॥८॥

यद्यपि राजा नीतिमें चतुर हैं; नारी चरित्र तो समुद्रसम अथाह है उसे कैसे जानें ॥ ७ ॥ फिर कपटका स्नेह बढ़ाया, नयन मुख मोर, कटाक्ष कर कैकेयी बोली ॥ ८ ॥

दोहा–मांगु मांगु पै कहहु पिय, कबहु न देहु न लेहु ॥
देन कहेहु वरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥ ५९ ॥

हे प्रिय ! माँगु-माँगु तो कहते हो पर कभी देते लेते कुछ नहीं, दो वर पहले देने कहे थे उनके पानेमें भी सन्देह है ॥ ५९ ॥

जानेउ मर्म राउ हँसि कहई * तुमहिं कुहाँब परमप्रिय अहई ॥१॥
थाती राखि न माँगेउ काऊ *बिसरि गयउ मोहि भोर स्वभाऊ॥२॥

राजाने हँसकर कहा, मैं तुम्हारा भेद समझा, तुम्हें रूठना और मनाना बहुत अच्छा लगता है॥ १॥ वे वरदान तो थाती धर दिये थे मांगे नहीं मेरा स्वभाव भूलनेका है इससे मुझे स्मरण नहीं रहे॥ २॥

झूंठेउ हमहिं दोष जनि देहू * दुइके चारि मांगि किन लेहू ॥३॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई * प्राण जाहिं बरु वचन न जाई ॥४॥

हमें झूठा दोष मत दो, दोके चार क्यों न मांग लो ? ॥३॥ रघुकुलकी यह सदाकी रीति चली आयी है कि चाहे प्राण जाते रहें पर वचन नहीं जाएँ ॥ ४ ॥

नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा *गिरिसम होहिं कि कोटिकगुञ्जा॥५॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये * वेद पुराण विदित मनु गाये ॥६॥

असत्यके समान पातकोंके समूह भी नहीं हो सकते, करोड़ों चौंटली पर्वतके समान नहीं हो सकतीं; और आप चौंटलीके समान हैं असत्य पहाड़के समान हैं ॥ ५ ॥ जिनमें सुन्दर सुकृत हैं उन सबका मूल सत्य है, यह वेद पुराणोंमें विदित है और मनुजीने भी कहा है ॥६॥

तेहि पर राम शपथ करवाई * सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥७॥
बात दृढ़ाय कुमति हँसि बोली *कुमति विहँग कुलह जनु खोली॥८॥

उस पर सुकृत और स्नेहकी सीमा श्रीरामचन्द्रजी हैं उनकी सौगन्ध करवायी॥ ७ ॥ बात दृढ़ करके कुत्सित मतिवाली हँसकर बोली। वह बोली नहीं-मानो कुमति रूप कुत्सित पक्षी की टोपी खोली । शिकारी पक्षीकी टोपी किसी शिकार पर उड़ाते समय खोल देते हैं ॥८॥

दोहा–भूप मनोरथ सुभग वन, सुख सुविहंग समाज ॥
भिल्लिनि जिमि छाँड़न चहति, वचन भयंकर बाज ॥६०॥

राजाका मनोरथ सुन्दर बन है और उस मनोरथका सुख सुन्दर पक्षियोंका समूह है उन पर कैकेयी व्याधिनी मानो वचनरूप भयंकर बाज छोड़ना चाहती है ॥ ६० ॥

सुनहु प्राण प्रिय भावत जीका * देहु एक वर भरतहिं टीका ॥१॥
दूसर वर मांगौं कर जोरे * पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे ॥२॥

हे प्राणप्रिय ! जो दोनों वर हमारे जीको भाते हैं वह सुनो। एक वर यह है कि भरतको राज तिलक दीजिए। प्राणप्रिय कहनेका भाव यह कि, इस कालमें महाराजके प्राणोंकी भूखी है॥ १॥ दूसरा वर हाथ जोड़कर मांगती हूँ, स्वामी मेरे मनोरथको पूरा करो। पहले वरमें हाथ नहीं जोड़े दूसरेमें जोड़े इसका यह कारण है कि, इससे दूसरे वरको अति अगम जाना; पहले वरमें धन

और दूसरेमें प्राण लेना इस कारण इस वरमें अधिक नम्र हुई। या युद्ध में रथकी धुरी टूटने पर धुरीके स्थानमें हाथ लगाया और सारथी मरने पर रथ हांका और इन्हौके जोरसे वरदान पाया वही हाथ जोड़ती है कि, इनकी ओर देखकर वर दीजिये, अब वर बताती है ॥ २ ॥

तापस वेष विशेष उदासी ❀ चौदह वर्ष राम वनवासी ॥३॥
सुनि मृदुवचन भूपहिय शोकू ❀ शशिकर छुवत विकल जिमि कोकू॥४॥

तपस्वी वेष धर और विशेष उदासी हो चौदह वर्ष रघुनाथ वनवासी हों। (प्रश्न) पहले वरमें तो अपने सुखके लिये भरतको राज्य मांगा और दूसरे वरके मागनेसे क्या प्रयोजन निकला? (उत्तर) कैकेयीने विचारा कि रघुनाथ यहां रहेंगे तो उपाधि करेंगे और मुनि वेष धरनेका यह प्रयोजन कि, वनमें अभ्याससे रजोगुणवृत्ति सात्विकी हो जायगी, तब फिर राज्यकी वासना न उठेगी। विशेष उदासी इस कारण कहा है कि उदासी तो विश्वामित्र आदि भी हैं इनके सङ्ग गाड़ी बैल रहते हैं,एकत्र भी निवास होता है,रघुनाथ ऐसे न रहें, विशेष उदासी अर्थात् न कुछ संग रखें न एकत्र रहें,यह भी अति वैराग्यका हेतु होगा जिससे राज्यका राग किंचित् भी न रहेगा और चौदह वर्षमें चौदह राजनीति सीखने से भरतका मूलदृढ़ हो जायगा,तब पीछेसे रघुनाथ आकर क्या करेंगे? इस निमित्त दूसरा वर मांगा। चौदह वर्षके वनवास देनेमें यही हेतु वाल्मीकीयरामायणमें लिखा है, अब और महात्माओंकी भी उक्ति लिखते हैं-वर मांगते समय जिह्वापर सरस्वती है, रावणकी चौदहवर्ष आयु शेष जान चौदहवर्ष मांगा, वा कैकेयीने राजसमाज होना मंथराके मुखसे चौदह दिन पीछे पन्द्रहवें दिन सुना सो एक २ दिनके दण्डमें एक२ वर्ष वनवास दिया। वा जिस समय वर मांगा, श्रीरामचन्द्रजीके राज्य होनेमें चौदह घड़ी शेष थी;सो एक २ घड़ीपर एक२ वर्ष लगाया चौदह वर्षका वनवास दिया अथवा चौदह वर्षोंमें वन लीला और निशाचर वध करनेसे चौदह भुवन सुखी होंगे इस कारण चौदहवर्ष सरस्वती ने कहाये ॥३॥ कोमल वचन प्राणप्रिय नाथ आदि विशेषण युक्त सुनकर महाराजके हृदयमें शोक हुआ;जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे चक्रवाक विकल हो जाते हैं चन्द्रमाकी मृदु किरणें चक्रवाकको दुःखदायी होती हैं ऐसे महाराजको कैकेयीके वचन विशेष दुःखदायी हुए ॥ ४ ॥

गयउ सहमि कछु कहि नहिं आवा❀ जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥५॥
विवरन भयउ निपट नरपालू ❀ दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू ॥६॥

राजा दशरथ सहम गये, कुछ कहते नहीं बना, जैसे वनमें लवाके ऊपर सचान (बाज) झपटा ॥ ५ ॥ अत्यंत द्युतिहीन हो मानो विजलीने तालवृक्ष मारा हो ॥ ६ ॥

माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन ❀ तनु धरि शोच लागु जनु शोचन॥७॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला ❀ फलत करिनि जिमि हतेउ समूला॥८॥

माथेपर हाथ दोनों नेत्र मूँद राजा ऐसे शोच करने लगे मानो शरीर धारण किये शोचही शोच करता है शोचका स्वरूप मन,वचन तनुसे जताया! हिय शोक तो यह कि मनसे कुछ कह नहीं सके; वचन से विवरण हुए, तनुसे माथेमें हाथ धर सोचने लगे ॥७॥ मेरा मनोरथ, सुर तरु (कल्पवृक्ष) जब फूला तो फलते समय कैकेयी रूपी हथिनीने जड़से तोड़ दिया ॥ ८ ॥

अवध उजार कीन्ह कैकेयी ❀ दीन्हेसि अचल बिपतिके नेई ॥९॥

कैकेयीने अवध उजार दिया और अचल विपत्तिकी नींव दी। अचल जो न टले ॥ ९ ॥

दोहा-कवने अवसर का भयउ, गयेउँ नारि विश्वास ॥
योग सिद्धि फल समय जिमि, यतिहि अविद्या नास ॥ ६१ ॥

कवने अवसर अर्थात् सुखके अवसरमें क्या हुआ ? अर्थात् दुःख हुआ, नारीके विश्वासमें आकर गयउँ(हम नष्ट हुए)। योगकी फलसिद्धिके समय जैसे यतीको अविद्या नाश करती है वैसे योग सिद्धि फलस्वरूप रघुनाथजीके राज्यका कैकेयीरूपी अविद्याने नाश कर दिया ॥ ६१ ॥

यहि विधि राउ मनहि मन झाँखा * देखि कुभाँति कुमति मन माखा ॥१॥
भरत कि राउर पूत न होहीं * आनेहु मोल बिसाहि कि मोहीं ॥२॥

इस प्रकार महाराजको मनही मन दुखी हुए देख कुदृष्टि किये कैकेयीने मनमें बड़ी क्रोधित हो मन्थराके वचन सत्य कि राजाकी मेरे ऊपर झूठी प्रीति है ॥१॥ और बोली क्या भरत तुम्हारे पुत्र नहीं हैं, रामचन्द्र ही हैं क्या मुझे पैसा देकर मोल लाये हो ? ॥ २ ॥

जो सुनि शर सम लाग तुम्हारे * काहे न बोलेहु वचन सँभारे ॥३॥
देहुँ उतर अब करहु कि नाहीं * सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं ॥४॥

जो सुनकर तुम्हें बाणोंके समान लगे तो पहलेही वचन सम्हालके क्यों नहीं बोले ?॥३॥ या तो जवाब दो या अब नहीं कर दो, तुम रघुकुलके सत्यवादी हो । राजापुरवाली पोथीमें (अनुकरहु) लिखा है तो यह अर्थ होता है कि सत्य प्रतिज्ञावाला जो रघुकुल है उसमें तुम हो (अनु) तुच्छ करो वर मत दो ॥ ४ ॥

देन कहेउ अब जनि वरि देहू * तजहु सत्य जग अपयश लेहू ॥५॥
सत्य सराहि कहेउ वर देना * जानेउ लेइहिं माँगि चबेना ॥६॥

देनेको कहा, अब वर मत दो; अब सत्य त्याग कर दो;अब जगत्में अपयश जो कोटिक मरणके समान है उसे अंगीकार करो ॥ ५ ॥ सत्यकी सराहना करके वर देनेको कहे थे सो जानते थे कि चबेना ही माँग लेगी ॥ ६ ॥

शिबिदधीचिबलि जो कछु भाखा * तन धन तजेउ वचन प्रण राखा ॥७॥
अति कटु वचन कहति कैकेई * मानहुँ लोन जरे पर देई ॥८॥

राजा शिबि, दधीचि, बलिने जो कुछ कहा उसे तन धन त्यागकर अपना प्रण रखा राजा शिबि जिस समय यज्ञ करते थे,उस समय इन्द्र और अग्नि राजाकी परीक्षा लेनेको बाज और कबूतरका रूप बनाकर राजाके पास आये, कबूतरके ऊपर बाज झपटा, तब कबूतर राजा शिबिकी गोदमें जा बैठा; बाजने कहा-राजन् ! मेरा आहार छोड़ दो, मैं भूखके मारे मरा जाता हूँ,मेरे मरनेसे मेरा कुटुम्ब मृतक हो जायगा, तो तुम्हें बड़ी हत्या लगेगी। राजा शिबिने कहा-मैं शरणागतको नहीं त्यागूँगा, इसके बदले चाहे जो कुछ ले ले । बाजने कहा तो इस कबूतरके बराबर अपना मांस तोल दो। राजाने एक तराजूके पल्लेमें कबूतर और दूसरेमें अपने शरीरका मांस काटकर रखना प्रारंभ किया,जब शरीरका मांस उसके बराबर न हुआ तो राजाने अपना शिर काटनेको खड्ग उठाया; त्योंही इंद्रने अपना रूप धारण कर राजाका हाथ पकड़ लिया और वरदान देकर शरीर अच्छा कर दिया, दोनों अपने-अपने लोकको चले गये ।

कथा दधीचिकी-यह ऋषि बड़े ज्ञानी महात्मा थे,तप करते थे, उस समय इंद्र और वृत्रासुरसे

युद्ध होता था और वह इंद्रपर प्रबल हुआ, तब इंद्र ब्रह्माजीके कहनेसे दधीचि ऋषिके पास गये, और वचन बद्धकर उनसे कहा कि अपनी जंघाका हाड़ हमको दे दो। मुनिने 'तथाऽस्तु' कहकर गौसे चटवाय हाड़ निकलवा दिया और अपना शरीर त्याग दिया इंद्रने उस हाड़का वज्र बनाकर वृत्रासुरको मारा।

कथा राजा बलिकी—यह कथा जगद्विख्यात है, वामनजीने राजा बलिके पास जा तीन पग पृथ्वी माँगी, राजाने वचन मान लिया। भगवान्ने दो पगमें त्रिलोकी नाप ली तीसरे पगके बदले राजाने अपनी पीठ नपादी तब भगवान्ने उसे पातालमें भेज दिया। इस प्रकार महात्माओंने तन, धन छोड़ वचन रखा॥७॥ कैकेयी अति कडुवे वचन कहती हुई मानो जरे पर लोन देती है॥८॥

दोहा—धर्म धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय॥
शिर धुनि लीन उसांस असि, मारेसि मोहिं कुठाय॥ ६२॥

धर्मकी धुरी धारण करनेवाले महाराजने धीर धरके नेत्र उघारे और शिर धुनके उसांस लिया और विचारा कि हमको कुजगह तलवारसे मार दिया। अब तलवारका रूपक कहते हैं॥६२॥

आगे देखि जरत रिसि भारी * मनहुँ रोष तलवार उघारी॥१॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई * धरी कूबरी सान बनाई॥२॥

महाराजने देखा कि सम्मुख कैकेयी रिससे जर रही है; वह कैकेयी नहीं है; मानों क्रोधरूपी उघारी तलवार है॥१॥ कुबुद्धि उसकी मूठ है निठुरता धार है कुबरीने बनाके उसमें शान धरी है॥२॥

लखी महीप कराल कठोरा * सत्य कि जीवन लेइहि मोरा॥३॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती * वाणी सविनय तासु सोहाती॥४॥

वही कैकेयीरूपी भयानक कठोर तलवार देखकर राजाने जाना कि यह सत्यही मेरा जीवन लेगी, अथवा सत्यको लेगी॥ ३॥ राजासे बोला नहीं जाता था परंतु छाती कठिन करके विनय पूर्वक कैकेयीको सुहाती वाणी बोले। "वाणी विनय न ताहि सुहाती" कहीं यह भी पाठ है तो अर्थ करना कि इसे विनयकी वाणी नहीं सुहाती॥ ४॥

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती * रीति प्रतीति प्रीति करि हाती॥५॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी * सत्य कहौं करि शंकर साखी॥६॥

हे प्यारी! क्यों ऐसे कुभांति वचन बोलती हो? संकोच प्रीति और प्रतीति नष्ट करती हो? सबका संकोच, पुत्रविषयक प्रीति और पति-पत्नी विषयक प्रीतिका नाश कर बोलती हो? अथवा प्रीतिकी प्रतीति जो रामचन्द्रमें है उसे तू नष्ट करती है कैकेयीने कहा कि तुम्हें भरत प्यारे नहीं हैं उसपर कहते हैं॥५॥ मेरे तो भरत और राम दोनों आखें हैं; शिवजीकी साक्षी देकर सत्य कहता हूँ। यहां प्यार दिखानेको पहले भरतका नाम लिया॥ ६॥

अवशि दूत मैं पठउब प्राता * ऐहहिं वेगि सुनत दोउ भ्राता॥७॥
सुदिन शोधि सब साज सजाई * देहुँ भरतको राज बजाई॥८॥

निश्चय प्रातःकाल मैं दूत भेजूँगा; सुनते ही दोनों भाई शीघ्र आवेंगे॥ ७॥ अच्छा दिन शोध सब साजके भरतको प्रसिद्ध राज्य दूँगा॥ ८॥

दोहा—लोभ न रामहिं राज्य कर, बहुत भरत पर प्रीति॥
मैं बड़ छोट विचार करि, करत रहेउँ नृपनीति॥ ६३॥

श्रीरामचन्द्रजीको राज्य का कुछ भी लोभ नहीं है, किंतु भरतके ऊपर अधिक प्रीति है, वे तो भरतकी ही बढ़ती चाहते हैं, मैं बड़े-छोटेका विचार करके राजनीतिके अनुसार कार्य करता था और जो कौशल्या पर कुछ भी भ्रम हो उस पर कहते हैं ॥ ६३ ॥

राम शपथ शत कहौं स्वभाऊ * राम मातु कछु कहेउ न काऊ ॥१॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिन पूछे * ताते परचो मनोरथ छूछे ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीकी सैकड़ों सौगंध खाकर कहता हूँ कि रामकी माताने मुझसे कुछ भी नहीं कहा ॥ १ ॥ परन्तु मैंने सब तुझसे विना पूछे किया इससे मेरे मनोरथ खाली पड़े ॥ २ ॥

रिस परिहरि अब मंगल साजू * कछु दिन गये भरत युवराजू ॥३॥
एकहि बात मोहि दुःख लागा * वर दूसर असमञ्जस मांगा ॥४॥

रिस छोड़ कर अब मंगल सजाओ, कुछ दिन गये भरत युवराज होगा॥३॥ एकही बातसे मुझे दुःख लगा कि दूसरा वर तुमने असमञ्जस मांगा, हमें सुनकर लोग क्या कहेंगे ?॥४॥

अजहूँ हृदय जरत तेहि आंचा * रिस परिहास कि सांचहु सांचा॥५॥
कहु तजि रोष राम-अपराधू * सब कोउ कहँइ राम सुठि साधू॥६॥

अब भी उसी आंचसे हृदय जलता है;सब रिस अथवा हँसी से वा सत्य ही कहा है?॥५॥ क्रोध छोड़कर रामका अपराध तो कह,सब कोई कहते हैं कि रामचंद्रजी अत्यन्त महात्मा हैं?॥६॥

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू * अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू॥७॥
जासु सुभाव अरिहुं अनुकूला *सोकिम करहि मातु प्रतिकूला ॥८॥

तू भी तो श्रीरामचन्द्रकी प्रेमसे सराहना करती थी; अब मुझे सुनकर सन्देह हुआ कि या तो रामजीने कुछ अपराध किया है वा तेरी मति नष्ट हो गयी ? ॥ ७ ॥ जिनके स्वभावसे शत्रु भी अनुकूल हैं, वे माताके प्रतिकूल कैसे करेंगे ? इससे महाराजने निश्चय किया श्रीरामचन्द्रजी का कुछ अपराध नहीं है । अब फिर कहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-प्रिया हासरिस परिहरहु, माँगु विचारि विवेक ॥
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरतराज्य-अभिषेक ॥ ६४ ॥

हे प्यारी ! कुछ हँसीकी हो तो उसे छोड़कर विचार-युक्त वर मांग ले, जिससे अब नेत्र भरकर भरतका राज्याभिषेक देखूँ ॥ ६४ ॥

जिअइ मीन वरु वारि विहीना*मणि विन फणिक जियइ दुखदीना॥१॥
कहउँ स्वभाव न छल मन माहीं* जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥२॥

जलके विना चाहे मछली जीती रहे, मणि विना चाहे दुःखसे दीन हो सर्प जीवित रहे॥१॥ यह बात मैं स्वभावसे कहता हूँ, छल नहीं मेरा जीना रामके विना नहीं होगा ॥ २ ॥

समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना * जीवन राम दरश आधीना ॥३॥
सुनि मृदु वचन कुमति अतिजरई * मनहुँ अनल आहुति घृतपरई ॥४॥

हे प्रिये! तुम तो चतुर हो,मनमें समझ देखो, मेरा जीना रामजीके दर्शनाधीन है॥३॥ राजाके कोमल वचन सुनकर क्रूर मतिवाली कैकेयी अत्यन्त जलती है; मानो आगमें घीकी आहुती पड़ती है कैकेयीआग है,राजाका कोमल वचन घृत है सो घृतसे अग्नि अधिक जलती है॥४॥

कहहु करहु किन कोटि उपाया * इहां न लागिहि राउर माया ॥५॥
देहु कि लेहु अयश करि नाहीं * मोहि न बहुत प्रपंच सुहाहीं ॥६॥

कैकेयी राजासे कहने लगी, करोड़ों उपाय क्यों न करो, यहां तुम्हारी माया नहीं लगेगी ॥५॥ या तो वर दो अथवा नाहीं करके अयश लो। जो प्रपंची हों उन्हें प्रपञ्च सुहाते हैं मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छे नहीं लगते। प्रपञ्च–बनावटी बातें ॥ ६ ॥

राम साधु तुम साधु सयाने * राम मातु भलि सब पहिचाने ॥७॥
जस कौसिला मोर भल ताका * तस फल उनहिं देउँ करिसाका॥८॥

मैं सब पहचानती हूँ रामजी सज्जन हैं और आप भी चतुर सज्जन हो, रघुनाथकी माता भी अच्छी है ॥ ७ ॥ जैसे कौशल्याने मेरा भला ताका है वैसा ही फल उन्हें (साका) बजाके दूँगी। (राजाने जो कहा रामचन्द्र विना मैं नहीं जिऊँगा उसपर कहती है) ॥ ८ ॥

दोहा–होत प्रात मुनिवेष धरि, जौ न राम वन जाहिं ॥
मोर मरन राउर अयश, नृप समुझिय मनमाहिं ॥ ६५ ॥

राजन्! सबेरा होते ही मुनिका वेश धारण कर जो रामचंद्र वनको नहीं जायँगे तो मेरा मरण और आपको अपयश होगा, यह मनमें जानो ॥ ६५ ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी * मानहु रोष तरंगिणि बाढ़ी ॥१॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई * भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥२॥

ऐसा कहकर वह कुटिल उठ खड़ी हुई सो कैकेयी नहीं खड़ी हुई मानो क्रोधरूपी नदी बढ़ी। कुटिल कहनेका भाव यह है कि नदी कुटिल होती है ॥ १ ॥ वह पापरूपी पहाड़से प्रकट हुई क्रोधरूप जल भरी हुई है, ऐसी भयावनी है कि देखी नहीं जाती ॥ २ ॥

दोउ वर कूप कठिन हठ धारा * भँवर कूबरी वचन प्रचारा ॥३॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला * चली विपति वारिधि अनुकूला॥४॥

दोनों वर दोनों ओरके किनारे हैं, हठ कठोर धार है, कूबरीके जो वचनका फैलाव है वह भँवर है, ॥ ३ ॥ जब नदी बढ़ती है, तो तटके वृक्षोंको काटती है, यहाँ महाराज वृक्ष हैं उन्हें मूलसे ढहाती दुःखरूपी समुद्रके सम्मुख चली ॥ ४ ॥

लखी नरेश बात सब सांची * तियमिसु मीच शीश पर नाची॥५॥
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी * जनि दिनकरकुलहोसि कुठारी॥६॥

राजाने जाना कि यह बात सत्य है, स्त्रीके बहानेसे हमारी मृत्यु शीश पर नाच रही है॥५॥ चरण पकड़कर राजाने कैकेयीको बैठाया और विनतीकी कि सूर्यकुलके काटनेको कुल्हाड़ी मत हो॥६॥

मागु माथ अबहीं देउँ तोहीं * राम विरह जनि मारसि मोहीं ॥७॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती * नाहित जरहिं जन्म भरि छाती॥८॥

जो तू शिर मांगे तो अभी दे दूँ, परंतु रामके वियोगमें मुझे मतमार; शिर देनेसे तो केवल मेरा ही नाश होगा और रामके वन जानेसे सब कुटुम्ब मृत्युसे भी अधिक दुःखी होगा, इससे अपना शिर देने को कहा॥७॥ जिस किस प्रकारसे हो रामचन्द्रको रख; नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी॥८॥

दोहा–देखी व्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ ॥
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ ॥ ६६ ॥

जब दशरथजीने देखा कि रोग असाध्य है, ये अच्छा नहीं होगा तब शिर धुनके पृथ्वीमें गिर पड़े और दुःख से हा राम ! हा रघुनाथ ! ये वचन कहने लगे ॥ ६६ ॥

व्याकुल राउ शिथिल सब गाता * करिणि कल्पतरु मनहुँ निपाता॥१॥
कंठ सूख मुख आव न बानी * जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥२॥

राजा ऐसे व्याकुल हुए कि शरीर सब शिथिल हो गया मानो हाथीने कल्पवृक्ष उखाड़ डाला। महाराज अभिमतदाता हैं; इससे कल्पवृक्षकी उपमा दी ॥१॥ कण्ठ सूख गया मुखसे वाणी नहीं निकली जैसे पाठीन मछली विना पानीके दुःखी हो जाती है ॥ २ ॥

पुनि कह कटु कठोर कैकेयी * मनहुँ घाय महँ माहुर देई ॥३॥
जौं अंतहु अस करतब रहेऊ * मांगु मांगु केहिके बल कहेऊ ॥४॥

फिर कठोर कड़ुवे वचन कैकेयी बोली मानो घावमें विष लगाती है ॥ ३ ॥ जो अन्तमें ऐसा करतब था तो 'माँगो-माँगो' यह किसके बलसे कहते थे ! ॥ ४ ॥

दुइ कि होहिं इक संग भुवालू * हँसब ठठाइ फुलाउब गालू ॥५॥
दानि कहाउब अरु कृपणाई * होइ कि क्षेम कुशल रौताई ॥६॥

हे राजन् ! दो कार्य एक साथ कैसे हो सकते हैं कि जैसे जोरसे हँसना और गालोंका फुलाना एक समय नहीं हो सकता॥५॥ दानी भी कहलाना चाहे और कृपणता भी करे राज्य भोग अथवा सरदारी भी चाहे और क्षेम कुशलकी भी इच्छा करे यह कैसे हो सकता है॥६॥

छाँड़हु वचन कि धीरज धरहू * जनि अबला इव करुणा करहू॥७॥
तनु तिय तनय धाम धन धरनी * सत्यसंध कहँ तृण सम बरनी ॥८॥

या तो अपना वचन छोड़ दो, या सत्य रखो धीरज धरो स्त्रियोंके समान मत रोओ॥७॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, धाम, धन, पृथ्वी ये सत्यवादियोंको तृणके समान कहे गये हैं ॥ ८ ॥

दोहा—मर्म वचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर ॥
लागेउ तोहि पिशाच जिमि, काल कहावत मोर ॥ ६७ ॥

यह दुःसह वचन सुनकर महाराजने कहा-जो चाहे सो कह तेरा कुछ दोष नहीं है तुझे पिशाचके समान मेरा काल चिपटा है वही कहलाता है ॥ ६७ ॥

चहत न भरत भूपपद भोरे * विधिवश कुमति बसी उर तोरे॥१॥
सो सब मोर पाप परिणामू * भयउ कुठाहर जेहि विधि वामू॥२॥

भरत तो भूलके भी राज्यपद नहीं चाहते जानके तो कौन कहे ? यह होनहार वश तेरे मनमें कुमति बसी है ॥१॥ यह सब हमारे पापका फल है जिससे कुठौरमें विधाता वाम हो गये भरत भी यहां नहीं ॥ २ ॥

सुवस बसिहि फिरि अवध सुहाई * सब गुण धाम राम प्रभुताई ॥३॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई * होइहि तिहुँ पुर राम-बड़ाई ॥४॥

सुन्दर अयोध्या तो फिर सुहावनी अच्छे प्रकारसे बसेगी और सब गुणोंके धाम रामकी प्रभुताई होगी ॥३॥ सब भाई रामकी सेवा करेंगे और त्रिलोकीमें रामकी बड़ाई होगी ॥ ४ ॥

तोर कलंक मोर पछताऊ * मुयहु न मिटिहिं न जाइहि काऊ॥५॥
अब तोहिं नीक लागु कर सोई * लोचन ओट बैठ मुख गोई ॥६॥

तेरा कलंक और मेरा पछितावा मरनेसे भी नहीं मिटेगा नहीं कभी जायगा ॥५॥ अब तुझे जोअच्छा लगे वही कर और मुख छिपाकर हमारे नेत्रोंकी ओटमें जा बैठ। (जो तेरा मुख देखे वह दोषी होगा) ॥ ६ ॥

जौलौं जियौं कहौं कर जोरी * तौलौं जनि कछु कहसि बहोरी॥७॥
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी * मारेसि गाय नाहरू-लागी ॥८॥

जब तक मैं जिऊँ तबतक फिर मुझे कुछ मत कह, यह मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ। यहां 'जौलौं जियौं' इस वाक्यसे थोड़े कालतक निज जीवन सूचित किया ॥७॥ रे अभागिनी ! फिर तू अन्तमें पछतायगी, जैसे कोई सिंहके तृप्त करनेको गाय मारे वैसे सवतिके हेतु यह अनर्थ करती है, कोई कहते हैं-नाहरू तांतका बनता है उसके अर्थ जैसे कोई गाय मारे ऐसे पछतायगी, विना आँख खुले बाघके बच्चोंको भी नाहरू कहते हैं, बाजको भी कहते हैं इनके अर्थ गोवध करना अनर्थ है ऐसे भरतजी राज्य नहीं लेंगे, फिर तू पछतायगी ॥ ८ ॥

दोहा-परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदान ॥
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहु मशान ॥ ६८ ॥

राजाने कोटि विधिसे कहा कि क्यों कुलका अन्त करती है ? फिर मूर्छित हो पृथ्वीपर गिरे, परन्तु वह कपटसयानी कुछ नहीं कहती, मानो मशान जगाती है मशान जगानेवाला बोल दे तो उसकी सिद्धिकी हानि हो जाय यहां सिद्धि वरदान है ॥ ६८ ॥

राम राम रटि विकल भुवालू * जिमि विनुपंख विहंग बिहालू ॥१॥
हृदय मनाव भोर जनि होई * रामहिं जाइ कहहिं जनि कोई॥२॥

राम राम करके राजा व्याकुल हो गये, जैसे विना पंखके पक्षी बिहाल होता है ॥ १ ॥ मनही मन मनाते हैं कि सबेरा न हो कहीं कोई रामचन्द्रजीसे जाकर न कह दे ॥ २ ॥

उदय करहु जनिरवि रघुकुल गुर * अवध विलोकिशूल होइहि उर॥३॥
भूप-प्रीति कैकयि-निठुराई * उभय अवधि विधि रची बनाई॥४॥

हे रघुकुल गुरु सूर्य! तुम अपना उदयमत करो, तुम्हारे उदय होनेसे रघुनाथ वनको जायँगे सम्पूर्ण अवध बिहाल हो जायगा, उसके देखनेसे हमारे हृदयमें शूल हो जायगा, रघुकुलके गुरु हो इससे तुम्हारे हृदयमें शूल होगा, जो आनंद देखकर एक मास भूल रहे थे, उसकी कसर निकल जायगी॥३॥ राजाकी प्रीतिकी सींव और कैकेयी निठुरताकी सींव ब्रह्माने बनाकर रची वा भूप की प्रीति ब्रह्माकी रची है कैकेयीकी निठुरता भी ब्रह्माकी बनायी है दोनों बराबर तौल लीं॥४॥

विलपत नृपति भयउ भिनुसारा * वीणा वेणु शंख ध्वनि द्वारा ॥५॥
पढ़हिं भाट गुण गावहिं गायक * सुनत नृपति जनु लागहिं सायक॥६॥

राजाको विलाप करते-करते प्रभात हो गया; बीन, बाँसुरी, शंख इनका शब्द द्वारपर होने लगा ॥५॥ भाट कवित्त पढ़ने लगे, गायक गुण गाने लगे परंतु राजाको सुननेसे बाणसे लगते थे॥६॥

मंगल सकल सुहाहिं न कैसे * सहगामिनिहि विभूषण जैसे ॥७॥
तेहि निशि नींद परी नहिं काहू * रामदरश लालसा उछाहू ॥८॥

वे सब मंगल राजाको कैसे नहीं सुहाते, जैसे सती होनेवाली स्त्रीको भूषण नहीं सुहाते ॥७॥ उस रात्रिमें किसी अयोध्यावासीको नींद नहीं आयी, कारण कि श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसामें सब मग्न हो रहे थे ॥ ८ ॥

दोहा-द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रवि देखि ॥
जागे अजहुँ न अवधपति, कारन कवन बिसेखि ॥ ६९ ॥

द्वारपर मन्त्री और सेवकोंकी भीड़ हो गयी, सब कोई सूर्य का उदय देख कर कहने लगे, क्या विशेष कारण है जो राजा अब तक नहीं जागे ॥ ६९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतस्तृतीयो विश्रामः ॥३॥

दोहा-यहि चतुर्थ विश्राममें, प्रभु आये नृप पास ॥
समाचार सुन अवधजन, पायो अति ही त्रास ॥ ४ ॥

पिछले पहर भूप नित जागा * आजु हमें बड़ अचरज लागा ॥१॥
जाहु सुमन्त जगावहु जाई * कीजिय काजु रजायसु पाई ॥२॥

राजा तो सदा पिछले पहर उठते थे,आज अभी नहीं जगे, यह हमें बड़ा आश्चर्य लगता है ॥ १ ॥ हे सुमन्त ! जाओ राजाको जगाओ तो आज्ञा पाकर कार्य किया जाय ॥ २ ॥

गये सुमन्त तब मन्दिर माहीं * देखि भयावन जात डराहीं ॥३॥
धाय खाय जनु जाय न हेरा * मानहुँ विपति विषाद बसेरा ॥४॥

तब सुमंत मंदिरमें गये वह समय भयानक था,जातेमें डर लगता था ॥३॥ जैसे पकड़कर खा लेगा और कुछ देखनेमें नहीं आता, मानो इस मंदिरमें विषाद विपत्ति रहते हैं ॥ ४ ॥

पूछे कोउ न उत्तर देई * गये जेहि भवन भूप कैकेयी ॥५॥
कहि जय जीव बैठ शिर नाई * देखि-भूप गति गयउ सुखाई ॥६॥

पूछनेसे कोई उत्तर नहीं देता, जिस स्थानमें कैकेयी और राजा थे, वहां गया ॥५॥सुमन्त 'जय हो बहुत जीओ'ऐसा कह शिर नवाय बैठ गया और राजाकी गति देखकर सूख गया॥६॥

शोच विकल विवरण महि परेऊ * मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ ॥७॥
सचिव सभीत सकै नहिं पूछी * बोली अशुभ भरी शुभ छूछी ॥८॥

राजा शोचके मारे व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े हैं, जैसे किसीने मूलरहित कमल डाल दिया हो ॥७॥ मन्त्री तो डरके मारे पूछ नहीं सका, तब कैकेयी जिसमें अशुभ तो भरा है और शुभ रहित है झूठी बात बनाके बोली ॥ ८ ॥

दोहा-परी न राजहि नींद निशि, हेतु जानु जगदीश ॥
राम राम रटि भोर किय, कह्यो न मर्म महीश ॥ ७० ॥

राजाको तो आज रातमें नींद नहीं आयी इसका कारण जगदीश जाने, राम राम रटते राजाको प्रभात हो गया और अपना भेद नहीं बताया।कहीं'मर्म न कह्यो'यह पाठ है ॥७०॥

आनहु रामहि बेगि बुलाई * समाचार तब पूछेउ आई ॥१॥
चलेउ सुमन्त राउ रुख जानी *लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी॥२॥

रामचन्द्रजी को बुलाकर ले आओ, तब समाचार आकर पूछना ॥१॥ यह सुनने पर महाराज कुछ न बोले, इससे सुमन्तने जाना कि इसमें महाराजकी भी रुचि है, राजाने रुचि

इस कारण प्रकाश की कि रामजीकी कोमलता और मेरी व्याकुलता देख कदाचित् रानी हठ छोड़ दे अथवा राम मेरा दुःख देख वनको न जायँ! सुमन्तने मनमें जाना कि रानीने कुछ कुचाल की है, महाराजको कैकेयी अधिक प्यारी है, यह कहती है मुझसे मर्म नहीं कहा, तीसरा भी यहां कोई नहीं है जिसके संकोचसे न कहते इससे रानी की बातमें भेद है ॥ २ ॥

शोच विकल मग परइ न पाऊ ❋ रामहि बोलि कहहिं का राऊ ॥३॥
उरधरि धीरज गयउ दुवारे ❋ पूछहिं सकल देखि मनमारे ॥४॥

शोचके मारे व्याकुल हो आगे को पांव नहीं पड़ता है, श्रीरामचन्द्रजीको राजा बुलाकर क्या कहेंगे ? ॥३॥ हृदयमें धीरज धर द्वारपर गये तो मनमें दुःखी देख सब पूछने लगे॥४॥

समाधान करि सो सबहीका ❋ गयउ जहां दिनकर कुलटीका॥५॥
राम सुमंतहि आवत देखी ❋ आदर कीन्ह पिता सम लेखी॥६॥

वे सबका समाधान करके जहां श्रीरामचन्द्रजी थे वहां गये ॥ ५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त को आते देखा तो पिताके समान जान आदर किया ॥ ६ ॥

निरखि वदन कहि भूप रजाई ❋ रघुकुल-दीपहि चलेउ लिवाई॥७॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं ❋ देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखकी शोभा देख और राजा की आज्ञा सुनाकर रघुकुलके दीपक जो श्रीरामचन्द्रजी हैं उन्हें लिवा ले चले। रघुकुल-दीपकका भाव यह कि, राजाके शोकरूपी तमका नाश करेंगे (शंका) तो सूर्यकी उपमा क्यों न दी (उत्तर) किंचित शोक हरेंगे समस्त नहीं इससे दीपक कहा ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कुभाँति अर्थात् पयादे उतावलीसे मन्त्री सुमन्तके संग चले यह देखकर लोग जहां-जहां दुःखी हुए, आज तो तैयारीसे जाना चाहिये क्या कारण जो पैदल चले ! ॥ ८ ॥

दोहा–जाय दीख रघुवंशमणि, नरपति निपट कुसाज ॥
सहमि परेउ लखि सिंहनिहिं, मनहुँ वृद्ध गजराज ॥ ७१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने जाकर देखा तो महाराज अधिक कुसाजपूर्वक हैं, मानों शेरनीको देख बुड्ढा हाथी सहमके गिर गया हो ॥ ७१ ॥

सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू ❋ मनहुँ दीन मणिहीन भुजंगू ॥१॥
सरुष समीप देखि कैकेयी ❋ मानहुँ मीच घरी गिनि लेई ॥२॥

राजाके होंठ सूखते हैं और सब अंग जरते हैं; मानो महाराजा नहीं हैं मणि करके हीन दीन सर्प है ॥ १ ॥ क्रोधसहित महाराजके निकट कैकेयीको बैठी देखा, सो कैकेयी नहीं है मानों मृत्यु है; वह काल घड़ी गिन रही है ॥ २ ॥

करुणामय मृदु राम स्वभाऊ ❋ प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥३॥
तदपि धीर धरि समय विचारी ❋ पूछी मधुर वचन महतारी ॥४॥

रघुनाथजीका स्वभाव कोमल और करुणा युक्त है,सो दुःख पहले ही देखा है,कभी सुना भी नहीं था। भाव यह कि कोमल पुरुषसे दुःख सहा नहीं जाता ॥ ३ ॥ तथापि समय विचार धैर्य धारण किया। विचार यह कि, दुःखके समय घबड़ाना नहीं चाहिये फिर मधुर वचनसे महतारीसे पूछा, पिताको व्याकुल देख उनसे न पूछा ॥ ४ ॥

मोहिं कहु मात तात दुख कारण * करिय जतन जेहि होइ निवारण ॥५॥
सुनहु राम सब कारण एहू * राजहिं तुमपर बहुत सनेहू ॥६॥

हे माता ! पिताके दुःखका कारण क्या है, वह मुझसे कहो ! जिससे वह यत्न करूँ कि निवारण हो ॥ ५ ॥ कैकेयी बोली–सुनो रामचन्द्र ! सब कारण तो यही है कि राजाका तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम है ॥ ६ ॥

देन कहेउ मोहि दुइ वरदाना * मागेहुँ जो कछु मोहिं सुहाना ॥७॥
सो सुनि भयो भूप-उर शोचू * छांड़ि न सकहि तुम्हार संकोचू॥८॥

राजाने मुझे दो वरदान देनेको कहे थे, जो कुछ मुझे अच्छा लगा वह मैंने मांगा ॥ ७ ॥ राजाके हृदयमें वह सुन सोच हुआ, तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते ॥ ८ ॥

दोहा–सुत सनेह इत वचन उत, संकट परेउ नरेश ॥
सकहु तो आयसु धरहु शिर, मेटहु कठिन कलेश ॥ ७२ ॥

इधर पुत्रका तो स्नेह नहीं त्यागा जाता; उधर वचन कहे वे नहीं त्यागे जाते, इस कारण राजा संकटमें पड़े हैं,जो तुमसे हो सके तो पिताकी आज्ञा शिर पर धरके कठिन क्लेश मेटो,यहाँ यह व्यंगसे कहती है कि तुम्हारे नहीं माननेके भयसे महाराज कहनेमें संकोच करते हैं ॥७२॥

निधरक बैठि कहै कटु बानी *सुनत कठिनता अति अकुलानी॥१॥
जीभ कमान वचन शर नाना * मनहुँ महिप मृदु लक्ष्य समाना॥२॥

कैकेयी बेधड़क बैठकर तीक्ष्ण वाणी कहती है, जिसे सुनकर कठिनता भी बहुत अकुला गयी ॥ १ ॥ कैकेयीकी जीभ कमान है, जैसे कमानसे तीर निकलते हैं ऐसे कैकेयीके मुखसे वचन निकलते हैं, वाण छोड़नेमें जैसे कमान लचकती है ऐसेही जीभ बोलनेमें लचकती है; राजाका हृदय मानों कोमल निसानेके समान है ॥ २ ॥

जनु कठोरपन धरे शरीरू * सिखइ धनुष विद्या वर वीरू ॥३॥
सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई * बैठि मनहुँ तनुधरि निठुराई ॥४॥

मानो कठोरपन शरीर धारण कर धनुष विद्या सीखता है, मृदुके ऊपर कठोर मनवाले वीर शस्त्रपात नहीं करते हैं किंतु कठोर पर ही करते हैं, और नये सीखनेवाले निसानेपर बार बार बाण चलाते हैं ॥ ३ ॥ सब प्रसंग श्री रामचन्द्रजीको सुनाकर (वर मांगनेको) बैठी जैसे शरीर धारण किये निठुरता बैठी हो ॥ ४ ॥

मन मुसुकाहिं भानुकुल-भानू * राम सहज आनंद-निदानू ॥५॥
बोले वचन विगत सब दूषण * मृदु मंजुल जनु वाग-विभूषण ॥६॥

श्री रामचन्द्रजी जो सूर्यकुलके सूर्य हैं वे मनमें मुसुकाते हैं,क्योंकि श्री रामचन्द्रजी स्वभावसे ही आनंदके निधान हैं॥५॥ सब दूषण रहित वचन बोले,वे कोमल और सुंदर ही नहीं मानो सरस्वतीको विभूषित करने वाले हैं, सरस्वती जो कपट कर बोली है उसे सँवारते हैं ॥ ६ ॥

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी * जो पितु मातु वचन अनुरागी॥७॥
तनय मातु पितु पोषन हारा * दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥८॥

सुनो माता ! वही पुत्र बड़भागी होता है जो माता-पिताके वचनोंमें प्रेम करनेवाला हो, अर्थात् माता-पिताके वचनोंको माने ॥७॥ हे जननि ! जो पुत्र माता-पिताका पोषण करनेवाला हो ऐसा पुत्र संसारमें दुर्लभ है ॥ ८ ॥

दोहा-मुनिगण मिलन विशेष बन, सबहिं भाँति हित मोर ॥
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥ ७३ ॥

विशेष करके वनमें मुनियोंका मिलना इससे सब प्रकारसे हमारा हित होगा, उसमें पिताजीकी आज्ञा और उसमें माता तुम्हारा सम्मत है ॥ ७३ ॥

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू * विधि सब विधि मोहिं संमुख आजू॥१॥
जो न जाहुँ वन ऐसेउ काजा * प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा॥२॥

प्राणोंके प्यारे भरतजीको राज्य मिल रहा है, इससे विधाता सब प्रकारसे हमारे सम्मुख है ॥ १ ॥ऐसे काजमें भी वनको न जाऊँ तो मूढ़ोंके समाजमें प्रथम मेरी गिनती हो ॥ २ ॥

सेवहिं अरँड कल्पतरु त्यागी * परिहरि अमिय लेहिं विषु माँगी॥३॥
तेउ न पाय अस समय चुकाहीं * देखु विचारि मातु मन माहीं ॥४॥

जो कल्प-वृक्षको त्यागकर अरण्डको सेवते हैं अमृत छोड़के विष मांग लेते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे मूर्ख भी ऐसा समय पाकर नहीं चूकते, हे माता ! ऐसा मनमें देखो ॥ ४ ॥

अम्ब एक दुख मोहिं विसेखी * निपट विकल नरनायक देखी॥५॥
थोरहिं बात पितहिं दुख भारी * होति प्रतीति न मोहि महतारी॥६॥

हे माता ! अब मुझे एकही बड़ा दुःख है, कि पिताजीको बहुत व्याकुल देखता हूँ ॥५॥ बात थोड़ीसी और पिता का दुःख अधिक है हे महतारी ! मुझे विश्वास नहीं होता थोड़ी बात कहने का भाव यह है कि, धर्मके हेतु लोग बड़े-बड़े संकट सहते हैं ॥ ६॥

राउ धीर गुण उदधि अगाधू * भा मोहिते कछु बड़ अपराधू ॥७॥
जाते मोहि कछु कहत न राऊ * मोर शपथ तो कहि सतभाऊ ॥८॥

राजा धैर्यवान् गुणके अथाह समुद्र हैं, मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है ॥ ७ ॥ जिस कारणसे राजा मुझसे कुछ नहीं कहते, तुम्हें मेरी सौगंध है सत्य भावसे कहो ? ॥ ८ ॥

दोहा-सहज सरल रघुवर वचन, कुमति कुटिल करि जान ॥
चलै जोंक जिमि बक्रगति, यद्यपि सलिल समान ॥७४॥

स्वभावसे सीधे श्रीरामचन्द्रजीके वचनों को वह कुमति कैकेयी कुटिल ही जानती है, यद्यपि जल सब जगह बराबर ही है; पर जोंक उस जलमें टेढ़ी चालसेही चलती है। भाव यह कि कैकेयीने जाना कि मेरे भरमानेको रामचन्द्रजी वनको सुखरूप कहते हैं कि अपने पुत्रोंका वनवास मांग लें वा मीठे वचनसे हमें वनको भेजें ॥ ७४ ॥

रहसि रानि राम रुख पाई * बोली कपट सनेह जनाई ॥१॥
शपथ तुम्हारि भरतकै आना * हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥२॥

वन जाने का रामचन्द्रका रुख देखकर रानी प्रसन्न हुई और कपट स्नेह जानकर बोली॥१॥ तुम्हारी शपथ भरतकी सौगंध है और दूसरा हेतु मैंने कुछ नहीं जाना है ॥ २ ॥

तुम अपराध योग नहिं ताता ❀ जननी जनक बन्धु सुखदाता ॥३॥
राम सत्य तुम जो कछु कहहू ❀ तुम पितु मातु वचनरत अहहू ॥४॥

हे पुत्र ! तुम अपराध योग्य नहीं हो, माता-पिता बन्धुओं को सुख देनेवाले हो, "यथा तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर" और "भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू"॥३॥ हे रामचन्द्र (अब उसका उत्तर देती है जो श्रीरामचंद्रजीने कहाकि,जो पितु मातु वचन अनुरागी,) जो कुछ तुम कहे हो वह सत्य है, तुम पिता-माताके वचनों में प्रेम करनेवाले हो ॥ ४ ॥

पितहिं बुझाय कहौं बलि सोई ❀ चौथे पन जेहि अयश न होई॥५॥
तुमसन सुवन सुकृत जेहि दीन्हे ❀ उचित न तासु निरादर कीन्हे॥६॥

हे रघुनाथ ! मैं बलि जाती हूं तुम पितासे कहो; जिससे कि बुढ़ापेमें अयश न हो ॥५॥ जिस पुण्यसे तुम्हारे समान पुत्र प्राप्त हुए हैं, उसका निरादर करना उचित नहीं है ॥ ६ ॥

लागहिं कुमुखि वचन शुभ कैसे ❀ मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥७॥
रामहिं मातु वचन सब भाये ❀जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये॥८॥

उस कुत्सितमुखवाली कैकेयीके शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगधदेशमें गयादिक तीर्थ हैं देश अपावन, तीर्थ पावन यह भाव है ॥ ७ ॥ रघुनाथजीको माताजीके सब वचन कैसे अच्छे लगे जैसे अपावन जल भी गंगामें आकर सुन्दर पवित्र हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–गइ मूर्छा रामहि सुमिरि, नृप फिर करवट लीन्ह ॥
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह ॥ ७९ ॥

जब राजाकी मूर्छा गयी तब रामको सुमिरके करवट लिया,उस समय मन्त्रीने रामका आगमन सुनाकर समयानुकूल विनयकी कि विपत्तिमें धीरज धरो, वही समयानुकूल विनय है॥७९॥

अवनिप अकनि राम पगु धारे ❀ धरि धीरज तब नैन उघारे ॥१॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे ❀ चरण परत नृप राम निहारे ॥२॥

जब पृथ्वीपतिने रामजीका आगमन (अकनि) सुना तब धीरज धरके नेत्र उघारे ॥ १ ॥ मन्त्रीने सम्हालके राजा को बैठाया, राजाने रामजी को चरण पर गिरते हुए देखा ॥ २ ॥

लिये सनेह विकल उर लाई ❀गइ मणि मनहुँ फणिक फिरि पाई॥३॥
रामहि चितै रहे नरनाहू ❀ चला विलोचन वारि प्रवाहू ॥४॥

स्नेहसे व्याकुल हो राजाने रामजीको हृदयसे लगा लिया जैसे सर्पने अपनी खोई मणि पुनः पायी हो ॥३॥ रघुनाथजीको ही देखते रह गये, नेत्रोंसे जलका प्रवाह बहने लगा ॥४॥

शोक विवश कछु कहैं न पारा ❀ हृदय लगावत बारहिं बारा ॥५॥
विधिहि मनाव राउ मनमाहीं ❀ जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥६॥

शोकके वशीभूति हो कुछ कह नहीं सकते हैं, बारंबार हृदयसे लगाते हैं ॥५॥ विधाताको राजा मन ही मनमें मनाते हैं कि जिससे रामजी वनको न जायँ ॥ ६ ॥

सुमिरि महेशहि कहहिं निहोरी ❀ विनती सुनहु सदाशिव मोरी ॥७॥
आशुतोष तुम अवढर-दानी ❀ आरति हरहु दीन जन जानी ॥८॥

राजा शिवजीका स्मरण करके निहोरा कर कहते हैं–हे सदाशिव ! मेरी विनती सुनो ॥७॥

आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हो; जिससे कोई नहीं ढरे उसपर ढरके दान देने वाले हो सो हमको दीन जन जानके हमारा दुःख हरो ॥ ८ ॥

दोहा-तुम प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु ॥
वचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि शील सनेहु ॥ ७६ ॥

आप सबके हृदयके प्रेरक हो, ऐसी मति रामजीको दे दो कि मेरा वचन तजकर तथा शील स्नेहको भी छोड़ घर पर रहें ॥ ७६ ॥

अयश होउ वरु सुयश नशाऊ * नरक परौं वरु सुरपुर जाऊ ॥१॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं * लोचन ओट राम जनि होहीं ॥२॥

जगत्में चाहे हमारा सुयश नष्ट होकर अपयश हो, सुरपुर हमारा जाय चाहे नरकमें पड़ूँ ॥१॥ सब असह्य दुःख विधाता मुझे सहावे, परंतु रामचन्द्रजी नेत्रोंकी ओट न हों ॥ २ ॥

अस मन गुनइ राउ नहि बोला * पीपर पात सरिस मन डोला ॥३॥
रघुपति पितहिं प्रेमवश जानी * पुनि कछु कहहि मातु अनुमानी॥४॥

ऐसा मनमें विचारते हुए राजा नहीं बोले और पीपलके पत्तेके समान मन डोल गया ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजीने पिताको प्रेमवश जाना और माता फिर भी कुछ कहेगी तो पिताको अधिक दुःख होगा यह विचार ॥ ४ ॥

देश काल अवसर अनुसारी * बोले वचन विनीत विचारी ॥५॥
तात कहौं कछु करहुँ ढिठाई * अनुचित क्षमब जानि लरिकाई॥६॥

देश, काल, अवसरके अनुकूल विचारके नम्र वचन बोले ॥५॥ हे पिताजी ! कुछ ढिठाईसे कहता हूँ, मेरा अनुचित बालपन मानकर क्षमा करना ॥ ६ ॥

अति लघु बात लागि दुख पावा *काहे न मोहि कहि प्रथम जनावा॥७॥
देखि गुसाइँहिं पूछेउँ माता * सुनि प्रसंग भये शीतल गाता ॥८॥

बहुत थोड़ीसी बातके कारण आपने दुःख पाया, प्रथम ही मुझसे क्यों न कहा ? ॥७॥ आपको देखके मातासे कारण पूछा और प्रसंग सुनके शरीर ठंडा हो गया ॥ ८ ॥

दोहा-मंगल समय सनेह-वश, शोच परिहरिय तात ॥
आयसु देइय हर्षि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥ ७७ ॥

हे पिताजी ! मंगलके समय स्नेह वश होकर आप शोचको छोड़ दीजिये, मुझे हृदयसे हर्षित हो जानेकी आज्ञा दीजिये, ऐसा कहकर रघुनाथजीका शरीर पुलकित हो गया ॥७७॥

धन्य जन्म जगतीतल तासू *पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥१॥
चारि पदारथ करतल ताके *प्रिय पितु मातु प्राणसम जाके॥२॥

उसीका यह पृथ्वीतलमें जन्म धन्य है जिसके चरित्र सुनके पिताको आनंद हो ॥ १ ॥ चारों पदार्थ उसके हाथमें हैं जिसे माता पिता प्राण समान प्यारे हैं ॥ २ ॥

आयसु पालि जन्म फल पाई * ऐहौं बेगिहि होय रजाई ॥३॥
बिदा मातुसन आवौं माँगी * चलिहौं बहुरि बनहि पगलागी ॥४॥

आज्ञा पालन कर जन्मका फल पाकर शीघ्र ही आऊँगा आज्ञा दे दीजिये ॥ ३ ॥मातासे बिदा मांग आऊँ और फिर जाते समय आपके चरणोंको दण्डवत् करके तो जाऊँगा ॥४॥

अस कहि राम गमन तब कीन्हा ❋ भूप शोकवश उतर न दीन्हा ॥५॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी ❋ छुवत चढ़ी जनु सब तनु बीछी ॥६॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी चले किंतु राजाने शोकके वश हो उत्तर नहीं दिया ॥ ५ ॥ यह तीक्ष्ण बात महलोंके नौकरों द्वारा सारे नगरमें फैल गयी और जैसे विच्छूके डंक मारने से सब शरीरमें विष फैल जाय ऐसे ही सब लोग व्याकुल हो गये ॥ ६ ॥

सुनि भये विकल सकल नरनारी ❋ बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥७॥
जो जहँ सुनै धुने शिर सोई ❋ बड़ विषाद नहिं धीरज होई ॥८॥

सुनकर सब नर नारी व्याकुल हो गये जैसे अग्निको देखकर बेलि वृक्ष कुंभिला जाते हैं ॥७॥ जो जहां सुने वह वहीं शिर धुने, बड़ा दुःख हुआ, किसीको धीरज नहीं होता ॥८॥

दोहा–मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, शोक न हृदय समाइ ॥
मानहुँ करुणारस कटक, उतरा अवध बजाइ ॥ ७८ ॥

मुख सूखते हैं, नेत्रोंसे जल टपकता है, हृदयसे शोक उमड़ आता है, मानों करुणा रस की सेना अयोध्यामें डंका बजाकर उतरी है ॥ ७८ ॥

भलि बनाइ विधि बात बिगारी ❋ जहँ-तहँ देहिं कैकेयिहिं गारी ॥१॥
यहि पापिनिहि बूझि का परेऊ ❋ छाय भवन पर पावक धरेऊ ॥२॥

विधाताने भली बात बनाकर बिगाड़ दी, सब कोई जहां-तहां कैकेयीको गालियां देने लगे ॥ १ ॥ इस पापिनको क्या सूझा, जो छाये हुए घरपर आग रख दी ॥ २ ॥

निजकर नयन काढ़ि चह दीखा ❋ डारिसुधा विष चाहत चीखा ॥३॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी ❋ भइ रघुवंश-वेणु-वन आगी ॥४॥

अपने हाथोंसे नेत्र निकाल कर देखा चाहती है, अमृतको छोड़ विष चाखा चाहती है ॥ ३ ॥ रघुवंशरूपी जो बाँसका बन है उसके जलानेको यह कुटिल कुमति अभागिनी अग्निरूप हो गयी ॥ ४ ॥

पालव बैठि पेड़ यहि काटा ❋ सुखमें शोक ठाट धरि ठाटा ॥५॥
सदा राम यहि प्राण समाना ❋ कारन कवन कुटिल पन ठाना ॥६॥

डालीपर बैठकर इसने पेड़ काटा और सुखमें बलात् दुःख खड़ा कर दिया। यहां डाली भरत हैं ॥५॥ सदा श्रीरामचन्द्र इसको प्राणोंके समान थे, फिर क्या कारण है जो ऐसा कुटिल पन ठाना है ? ॥ ६ ॥

सत्य कहहिं कवि नारि स्वभाऊ ❋ सब विधि अगम अगाध दुराऊ॥७॥
निज प्रतिबिम्ब मुकुरगहि जाई ❋ जानि न जाय नारिगति भाई॥८॥

कवि जो नारीके स्वभाव कहते हैं वह सत्य है इनमें सब प्रकारसे गहन अगाध कपट होता है॥७॥ चाहे कोई अपनी परछाहींको दर्पणमें पकड़ ले, परंतु स्त्री की गति नहीं जानी जाती है ॥ ८ ॥

दोहा–काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय ॥
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥ ७९ ॥

अग्निमें क्या नहीं जल सकता ? समुद्रमें क्या नहीं समा सकता ? प्रबल नारी क्या नहीं कर सकती ? काल जगत्में किसको नहीं खाता ॥ ७९ ॥

का सुनाय विधि काह सुनावा * का दिखाय चह काह दिखावा ॥१॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा * वर विचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥२॥

क्या सुनाकर विधाताने क्या सुनाया? और क्या दिखाना चाहता था क्या दिखाया अर्थात् श्रीरामजीका राज्य सुनाकर वनवास सुनाया; आनंद दिखाना चाहता था सो दुःख दिखाया ॥१॥ एक बोले राजाने अच्छा नहीं किया; वर विचार कर इस पापिनको नहीं दिया ॥२॥

जे हठि भयउ सकल दुख भाजन * अबला विवश ज्ञान गुण गाजन ॥३॥
एक धर्म परमिति पहिचाने * नृपहिं दोष नहिं देहिं सयाने ॥४॥

जो हठ करके समस्त दुःखके भागी हुए; अबलाके वश होकर ज्ञान और गुण जाता रहा ॥३॥ एक धर्मकी सीमा (गति) पहचानते हैं, इस कारण वे चतुर राजाको दोष नहीं देते ॥ ४ ॥

शिवि दधीचि हरिचन्द कहानी * एक एकसन कहहिं बखानी ॥५॥
एक भरत कर सम्मत कहहीं * एक उदास भाव सुनि रहहीं ॥६॥

राजा शिबि, दधीच और हरिश्चंन्द्रकी कहानी परस्पर एक दूसरेसे कहने लगे ॥ ५ ॥ एक कहने लगे कि इसमें भरतका सम्मत है और एक सुनकर उदास भाव धारण करते हैं ॥ ६ ॥

कान मूँदिकर रद गहि जीहा * एक कहहिं यह बात अलीहा ॥७॥
सुकृत जाहि अस कहत तुम्हारे * राम भरत-कहँ प्राण पियारे ॥८॥

हाथोंसे कान मूँदकर और दांतोंसे जीभ दबाकर कोई कहते हैं कि यह बात अलीक (मिथ्या) है ॥ ७ ॥ ऐसा कहते ही तुम्हारे पुण्य जाते रहेंगे, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी तो भरतको प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ८ ॥

दोहा-चन्द्र चुअइ बरु अग्निकण, सुधा होय विष तूल ॥
सपनेहुं कबहुं न करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल ॥ ८० ॥

चाहे चन्द्रमासे अग्निकी चिनगारियां टपकने लगें और अमृत विषके तुल्य हो जाय परंतु भरतजी कभी स्वप्नमें भी श्रीरामचन्द्रजीके प्रतिकूल नहीं करेंगे ॥ ८० ॥

एक विधातहिं दूषण देहीं * सुधा दिखाय दीन विष जेहीं ॥१॥
खरभर नगर सोच सब काहू * दुसह दाह उर मिटा उछाहू ॥२॥

---

१. दो कथा पूर्व लिख चुके हैं। हरिश्चन्द्रकी कथा इस प्रकार है-"जब राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रजीको सब राज दे दिया तब दक्षिणा न रहनेके कारण काशीजीमें जाकर अपनी स्त्रीको बेचा और आप भी एक चाण्डालके हाथ बिक दक्षिणा दे ऋषिसे उद्धरित हो चाण्डालके वचनानुसार मर्घटमें रहकर कफन लेनेका काम करने लगे। विश्वामित्र इन्द्रके कहनेसे राजाको सत्य भ्रष्ट करना चाहते थे। इस कारण उसके कुमार रोहिताश्वको सर्प बनकर डँसा, उसकी माता पुत्रके निमित्त रोती पीटती उसे ले मरघटमें दाह क्रिया करने लगी कि राजाने आकर आधा कफन मांगा, तब रानीने कहा महाराज ? मेरे पास सिवाय इस धोतीके जो पहन रही हूँ और कुछ नहीं है। यह आपका पुत्र है, विचारिये तो ! राजाने कठिन छाती करके कहा, सत्य है परंतु मैं पराधीन हूं, धर्म त्याग नहीं सकता, जो स्वामीकी आज्ञा है, वह करूंगा, निदान बहुत विवाद होने पर ज्यों ही रानी अपना वस्त्र फाड़नेको तैयार हुई कि तुरंत त्रिलोकी कांप गयी और सद देवताओं सहित भगवान्ने प्रकट हो पुत्र जिलाकर चाण्डाल सहित राजाको मुक्ति दी।

एक विधाताको दोष देते हैं जिसने अमृत दिखाकर विष दिया॥१॥ नगर में खलबली पड़ गयी सब किसीको बड़ा सोच हुआ, मनमें असह्य दाह बढ़कर प्रसन्नता मिट गयी ॥ २ ॥

विप्रवधू कुलमान्य जठेरी * जे प्रिय परम केकयी केरी ॥३॥
लगीं देन शिख शील सराही * वचन बाणसम लागहिं ताही ॥४॥

ब्राह्मणोंकी स्त्री और कुलकन्या जेठी जो कैकेयीको परम प्यारी थीं ॥३॥ वे कैकेयीका शील सराह कर सीख देने लगीं, किंतु उनके वचन उसको बाणके समान लगे ॥ ॥ ४ ॥

भरत न मोहिं प्रिय राम समाना *सदा कहहु यह सब जगजाना ॥५॥
भरत रामपर सहज सनेहू * केहि अपराध आज वन देहू ॥६॥

स्त्रियाँ बोलीं- भरत तुमको रामचन्द्रके समान प्यारे नहीं हैं, यह तुम सदा कहती थीं और यह सब जगत् जानता है ॥५॥ तुम रामचन्द्रजी पर स्वाभाविक प्रेम करती थीं; फिर आज किस अपराधसे उनको वन देती हो ॥ ६ ॥

कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू * प्रीति प्रतीति जान सब देसू ॥७॥
कौशल्या अब काह बिगारा * तुम जेहि लागि वज्र पुर पारा ॥८॥

तुमने कभी सौतियाडाह न किया, तुम्हारी प्रीति और विश्वास सारा देश जानता है॥७॥ अब कौशल्याने क्या बिगाड़ा है, जिसके कारण तुमने अयोध्यामें वज्र डाल दिया ? ॥८॥

दोहा-सीय कि पियसँग परिहरहिं, लषण कि रहिहहिं धाम ॥
राज कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जियहिं बिन राम ॥ ८१ ॥

भला रानी ! यह तो विचारो ! क्या जानकीजी रामचन्द्रजीका सङ्ग छोड़ देंगी ! अर्थात् नहीं छोड़ेंगी क्या लक्ष्मण घर रहेंगे अर्थात् नहीं रहेंगे और क्या भरतजी पुरका राज्य करेंगे ? अर्थात् नहीं करेंगे और क्या राजा विना रामचन्द्रजीके जियेंगे अर्थात् नहीं जियेंगे ॥८१॥

अस विचारि उर छाड़हु कोहू * शोक कलंक कोट जनि होहू ॥१॥
भरतहि अवशि देहु युवराजू * कानन कवन रामकर काजू ॥२॥

ऐसा जीमें विचार कर क्रोध त्याग दो, शोक और कलंकका कोट (किला) मत बनो ॥१॥ भरतजीको निश्चय ही युवराज दो, परन्तु रामचन्द्रजीको वनमें जानेका क्या काम है ? कदाचित् कैकेयी कहे कि रामचन्द्रजी यहां रहेंगे तो उपद्रव करेंगे । इस पर कहती हैं ॥ २ ॥

नाहिं न राम राज्यके भूखे * धर्मधुरीण विषयरस रूखे ॥३॥
गुरुगृह वसहिं राम तजिगेहू * नृपसन अस वर दूसर लेहू ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजी राज्यके भूखे नहीं वल्कि वे तो धर्मकी धुरी धारण करनेवाले; विषयवासना (संसारी सुख) से उदासीन हैं ॥३॥ जो एकत्र वाससे डरती हो तो श्रीरामचन्द्रजी अपने घरको छोड़कर गुरुके घर रहें ऐसा राजासे दूसरा वर ले लो ॥ ४ ॥

जो नहिं लगिहहु कहे हमारे * नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥५॥
जो परिहास कीन्ह कछु होई * तो कहि प्रगट जनावहु सोई ॥६॥

जो हमारी बातपर न चलेगी तो तुम्हारे हाथ कुछ नहीं लगेगा ॥ ५ ॥ जो कुछ हँसी की हो तो उसको अब प्रगट होकर कह दो (यह बात रानीके भरमानेको स्त्रियोंने चतुरतासे कही) ॥६॥

राम-सरिस सुत कानन योगू ❋ काह कहहिं सुनि तुम कहँ लोगू॥७॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई ❋ जेहि विधि शोक कलंक नसाई॥८॥

अरी! रामचन्द्रसे पुत्र भला वनके योग्य हैं, लोग सुनकर तुमको क्या कहेंगे? ॥७॥ उठो शीघ्रतासे वही उपाय करो जिससे (प्रजा-कुटुम्बका) शोक और तुम्हारा कलंक दूर हो ॥८॥

छन्द-जेहि भाँति शोक कलंक जाय उपाय करि कुल पालहू।
हठि फेरि रामहिं जात वन जनि बात दूसरि चालहू॥
जिमिभानुबिनदिन प्राण बिन तनु चन्द्रबिन जिमि यामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझिधौं जिय भामिनी॥१४॥

जिस प्रकारसे शोक कलंक जाय वही उपाय करके कुलका पालन करो। जो रघुनाथजी नहीं माने तो हठसे वन जानेसे फेर लो और दूसरी बात मत चलाओ। जैसे सूर्यके विना दिन, प्राणके विना शरीर और चन्द्रके विना रात है वैसे ही रघुनाथजीके विना अयोध्या होगी। हे भामिनि! यह जीमें विचार कर देखो॥ १४ ॥

सोरठा-सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिणाम हित॥
तेहि कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥ ९ ॥

सखियोंने वह सीख दी, जो कि सुननेमें भी मधुर और परिणाममें हितकारी थी, परन्तु कैकेयी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उसको तो कुटिल कूबरीने सिखा रखा था॥ ९ ॥

उतरु न देइ दुसह दुख रूखी ❋ मृगन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥१॥
व्याधि असाधि जानि तिन त्यागी ❋ चली कहत मतिमन्द अभागी॥२॥

वह उत्तर नहीं देती, बड़े क्रोधसे रूखी हो रही है और ऐसी देखती है जैसे भूखी बाघनी हिरनियोंको देखती है॥ १ ॥ यह व्याधि असाध्य है ऐसे जानकर उन स्त्रियोंने त्याग दी और उसको मतिमंद तथा अभागिनी कहती चलीं॥ २ ॥

राज्य करत यहि दैव बिगोई ❋ कीन्हेसि अस जस करहि न कोई॥३॥
यहि विधि विलपहिं पुरनरनारी ❋ देहिं कुचालिहि कोटिक गारी॥४॥

राज्य करते हुए इसको दैवने नष्ट किया, इसने ऐसा किया कि जैसा कोई न करेगा ॥३॥ इस प्रकार पुर नर-नारी विलाप कर इस कुचालिनीको बहुतेरी गारी देने लगे॥ ४ ॥

जरहिं विषम ज्वर लेहि उसांसा ❋ कवन राम विनु जीवन आसा ॥५॥
बिपुल वियोग प्रजा अकुलानी ❋ जनु जलचर गण सूखत पानी ॥६॥

विषमज्वरसे जलते हैं और उसांस लेते हैं और सब नर व्याकुल होकर कहते हैं कि रामचन्द्रजीके विना किसीको जीनेकी क्या आशा है?॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दुःसह वियोगसे प्रजा ऐसे व्याकुल हुई जैसे जल सूखनेसे मछली आदि जलचर व्याकुल होते हैं॥ ६ ॥

अति विषादवश लोग लुगाई ❋ गये मातुपहँ राम गुसांई ॥७॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ ❋ मिटा सोच जनि राखइँ राऊ ॥८॥

इस प्रकार लोग लुगाई बड़े विषादमें हुये और श्रीरामचन्द्रजी- जो इंद्रियोंको वश किये हुए हैं माताके पास गये ॥ ७ ॥ मुख प्रसन्न और चित्तमें चौगुना प्रेम है क्योंकि भरतके विना अपनेको अभिषेक होनेसे जो सोचा था वह मिट गया, इस कारण मुखसे प्रसन्न हैं और जिस हेतु अवतार लिया है वह काम होगा, इस कारण चौगुना चाव हुआ, पर इतना विचारते हैं कि मिटा हुआ जो सोच है इसको कहीं राजा न रख लें अर्थात् फिर न कहें कि रह जाओ अथवा राजाके रखनेका सोच मिटा, जब कहा कि मातासे बिदा मांग आऊँ तब राजाने उत्तर नहीं दिया इस लिये रखनेका भय मिट गया ॥ ८ ॥

दोहा-नव गयंद रघुवंशमणि, राज्य अलान समान ॥
छूट जानि वनगमन सुनि, उर अनँद अधिकान ॥ ८२ ॥

रघुवंशमणि (श्रीरामचन्द्र) मानो नवीन हाथी हैं और राज्य हाथीके बंधनके समान है वनका जाना सुन बंधनको छूटा जान हृदयमें बड़ा आनंद हुआ ॥ ८२ ॥

इति श्री रामचरित मानसे विद्यावारिधिपंडित ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृतटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतश्चतुर्थोविश्रामः ॥४॥

दोहा-यहि पंचम विश्राममें, राम मातु संवाद ॥
जेहि विधि भयउ सो सब कहउँ, पुरजन सहित विषाद ॥ ५ ॥

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा * मुदित मातुपद नायउ माथा ॥१॥
दीन्ह अशीष लाइ उर लीन्हे * भूषण वसन निछावर कीन्हे ॥२॥

रघुनाथजीने दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्न होकर माताके चरणोंमें शिर नवाया ॥ १ ॥ आशीष देकर माताने हृदयसे लगा लिया, भूषण और वस्त्र निछावर किया ॥ २ ॥

बार बार मुख चूमति माता * नयन नेह जल पुलकित गाता ॥३॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये * स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये ॥४॥

बार बार माता मुख चूमती है नयनोंसे प्रेमका जल बहता है और शरीर पुलकायमान है ॥३॥ गोदीमें बैठाया फिर हृदयसे लगाया, स्तनोंमें दूध चूने लगा ॥ ४ ॥

प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई * रंक धनद पदवी जनु पाई ॥५॥
सादर सुन्दर वदन निहारी * बोली मधुर वचन महतारी ॥६॥

प्रेमानन्दके वश होकर माता कुछ कह न सकी जैसे कङ्गालने धनीकी पदवी पायी हो ॥ ५ ॥ प्रेमसे पुत्रका मुख देखकर महतारी मीठे वचन बोली ॥ ६ ॥

कहहु तात जननी बलिहारी * कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥७॥
सुकृत शील सुखसींव सुहाई * जन्मलाभ लहि अवध अघाई ॥८॥

हे पुत्र ! कहो मैया बलिहारी जाय; कब तुम्हारे अभिषेककी आनंद मङ्गलकारी लग्न होगी ? ॥ ७ ॥ जो लग्न पुण्यशीलके सुखकी सुन्दर मर्यादा है वा सुकृत, शील और सुखकी सीमा है जिसमें जन्मका लाभ लेकर अवधवासी अघा जायँगे ॥ ८ ॥

दोहा-जेहि चाहत नर नारि अस, अति आरत यहि भाँति ॥
जिमि चातक चातकि तृषित, वृष्टि शरदऋतु स्वाति ॥ ८३ ॥

जिस लग्नको नगरके पुरुष-स्त्री सब आर्त होकर इस प्रकार चाहते हैं, जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतुमें स्वाती नक्षत्रकी वर्षा चाहते हैं ॥ ८३ ॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू * जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥१॥
पितु समीप तब जायहु भैया * भइ बड़ि बार जाय बलि मैया ॥२॥

हे तात ! बलि जाऊँ, शीघ्र नहाओ और जो मन भावे; मीठा खाओ, (यह प्रेमका वचन है) ॥१॥ हे पुत्र ! तब पिताके समीप जाना; बड़ी देर हो गई मैया बलिहारी जाय ॥२॥

मातु वचन सुनि अति अनुकूला * जनु सनेह सुरतरुके फूला ॥३॥
सुख मकरंद भरे श्रीमूला * निरखि राममन भ्रमर न भूला ॥४॥

माताके अति अनुकूल (प्रेम भरे) वचन सुने, मानों स्नेहरूपी कल्पवृक्षके फूल हैं ॥ ३ ॥ सुखकारी मकरन्दका उनमें रस भरा है जो कि सम्पतिका मूल है, किंतु उसको देखकर रामजीका मन रूपी भौंरा नहीं भूला ॥ ४ ॥

धर्म-धुरीण धर्म गति जानी * कहेउ मातुसन अतिमृदु बानी ॥५॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू * जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥६॥

धर्मका भार धारण करनेवाले धर्म गति जानकर श्रीरामचन्द्रजी मातासे अत्यन्त कोमल वाणी बोले ॥५॥ मैया ! पिताने मुझको वनका राज्य दिया है, जहां सब भाँतिसे मेरा बड़ा काम होगा । (वनमें महात्माओंका मिलन और राक्षसोंका निधन-यही बड़ा काम है) ॥६॥

आयसु देहु मुदितमन माता * जेहि मुदमंगल कानन जाता ॥७॥
जनि सनेहवश डरपसि भोरे * आनँद अम्ब अनुग्रह तोरे ॥८॥

हे माता ! प्रसन्न होकर आज्ञा दे दो जिससे वनमें जाते हुए आनंद मंगल हो ॥ ७ ॥ माता ! स्नेहके वश होकर डरना मत, आपकी कृपासे सब आनंद होगा ॥ ८ ॥

दोहा-वर्ष चारि दश विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान ॥
आय पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान ॥ ८४ ॥

माता सहन कर ले,इस कारण पहले चार फिर दश कहे। हे मैया ! चौदह वर्ष वनवास और पिताकीआज्ञाका पालन करने पर फिर आकर चरण देखूँगा आप मनको मलिन मत कीजिये ॥८४॥

वचन विनीत मधुर रघुवरके * शरसम लगे मातु उर करके ॥१॥
सहमि सूखि सुनि शीतल बानी * जिमि जवासपर पावस पानी ॥२॥

यह श्रीरामचंद्रजीके विनीत और मधुर वचन माताके हृदयमें बाणोंके समान लगकर करकने लगे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी शीतल वाणी सुनकर माता सहम कर ऐसे सूख गयी जैसे जवासा बरसातका पानी पड़नेसे सूख जाता है ॥ २ ॥

कहि न जाय कछु हृदय विषादू * मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥३॥
नयन सजल तनु थर थर काँपी * माँजहिं खाय मीन जनु मापी ॥४॥

हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, मानों सिंहनाद सुनकर हरिणी व्याकुल हो गयी ॥३॥ आँखोंमें आंसू भर आये, थर-थर कांपने लगी, माँजा खाकर जैसे मछली व्याकुल होती है, वर्षाके नवीन जलसे एक रोग उत्पन्न होता है सेन्दूर आदिके जलमें डालनेसे जलमें जो फेन होता है उसको मज्जा कहते हैं । अथवा मछली पकड़नेके कांटे को भी मज्जा कहते हैं ॥ ४ ॥

धरि धीरज सुत बदन निहारी ✽ गदगद वचन कहति महतारी ॥५॥
तात पितहिं तुम प्राण पियारे ✽देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥६॥

धीरज धर और पुत्रका मुख देखकर माता गद्गदकण्ठ होकर वचन बोली ॥५॥ हे तात ! तुम तो पिताको प्राणोंके समान प्यारे थे और वे तुम्हारे चरित्र देखकर नित्य प्रसन्न होते थे॥६॥

राज्य देन कहँ शुभ दिन साधा ✽ कहेउ जान वन केहि अपराधा ॥७॥
तात सुनावहु मोहि निदानू ✽को दिनकर कुल भयउ कृशानू ॥८॥

राज्य देनेको अच्छा दिन साधा था तो फिर कौनसे अपराध से वन जानेको कहा ? ॥७॥ हे पुत्र ! मुझको इसका कारण सुनाओ । कि सूर्यकुलके जलानेको कौन अग्निरूप हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-निरखि राम रुख सचिवसुत, कारण कहे बुझाय ।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दशा वरणि नहिं जाय ॥ ८५॥

रामका रुख देखकर सुमन्तके पुत्र अभिनन्दनने सब कारण समझाकर कहा, इस प्रसङ्गको सुनकर कौशल्या चुप रह गयी, जैसे गूँगा बोल नहीं सकता,वह दशा वर्णी नहीं जाती । रघुनाथजीने अपने सुंदर मुखसे माताका दोष कहना उचित न जान मन्त्रीसुतसे कहलवाया ॥८५॥

राखि न सकहिं न कहि सक जाहू ✽ दुहूँ भाँति उर दारुण दाहू ॥१॥
लिखत सुधाकर लिखिगा राहू ✽ विधिगति वाम सदा सब काहू ॥२॥

न रख सकती हैं और न कह सकती हैं कि जाओ, दोनों प्रकारसे मनमें बड़ा कठिन दुःख हुआ । पिता की आज्ञा पालन धर्म है, इससे रख नहीं सकतीं और श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे अधिक प्यारे हैं इससे जाने को न कह सकीं ॥ १ ॥ लिखते तो थे चन्द्रमा किंतु लिखा गया राहु अर्थात् देते थे तो राज्य और दिया गया वन ! विधाता की गति सदा सबको विपरीत है; धनुषके समान चन्द्र, मकरके समान राहु, लिखते समय चन्द्रपर अधिक स्याही पड़े तो चन्द्रमाका राहु हो जाता है क्योंकि राहु श्याम है ॥ २ ॥

धर्म सनेह उभय मति घेरी ✽ भइ गति साँप-छछूँदरि केरी ॥३॥
राखौं सुतहिं करौं अनुरोधू ✽ धर्म जाय अरु बन्धु--विरोधू ॥४॥

धर्म और स्नेह दोनोंने बुद्धिको घेर लिया, अतः माता की गति सांप छछुंदरके समान हो गयी । सांप छछुंदर को छोड़े तो अन्धा हो और खाय तो मरे व कुष्ठी हो, तब वह जैसे जल में उसको छोड़कर दोषोंसे बचता है वैसे ही कौशल्याजी जलरूप पातिव्रत्य धर्मकी शरण हुई ॥ ३ ॥ जो हठसे पुत्रको रख लूँ तो धर्म जायेगा और बन्धुओंसे विरोध होगा ॥ ४ ॥

कहौं जान वन तौ बड़ि हानी ✽ संकट सोच विकल भइ रानी ॥५॥
बहुरि समुझि तिय-धर्म सयानी ✽ राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥६॥

जो वनमें जानेको कहूँ तो बड़ी हानि होगी, रानी इस संकट और शोच में व्याकुल हो गई ॥ ५ ॥ बुद्धिमती कौशल्याजीने स्त्री धर्म अर्थात् पातिव्रत्यको समझ रामचन्द्रजी और भरतजी दोनों पुत्रोंको समान जान ॥ ६ ॥

सरल स्वाभाव राम-महतारी ✽ बोली वचन धीर धरि भारी ॥७॥
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका ✽ पितु आयसु सब धर्मक टीका ॥८॥

सीधे स्वभावयुक्त श्रीरामचन्द्रजीकी महततारी बड़ा धीरज धरकर वचन बोली ॥७॥ पुत्र ! बलिहारी जाऊँ तुमने अच्छा किया है, पिताकी आज्ञा मानना सब धर्मोंका तिलक है ॥ ८ ॥

दोहा-राज देन कहि दीन्ह वन, मोहिं न शोच दुख लेश ॥
तुम बिन भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहिं प्रचंड कलेश ॥ ८६ ॥

राज्य देनेको कहकर वन दिया इसका मुझे शोच दुःख कुछ नहीं, परन्तु तुम्हारे विना भरत, राजा और प्रजाको घोर कष्ट होगा। श्रीरामचन्द्रजीने कहा, पिता ने वन दिया किंतु मन्त्रीसुतने रानीका नाम लिया है इस पर कहती हैं ॥ ८६ ॥

जो केवल पितु आयसु ताता * तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥१॥
जौ पितु मातु कहेउ वन जाना * तौ कानन शत अवध समाना ॥२॥

हे पुत्र जो केवल पिताकी आज्ञा है तो माताको बड़ी जानकर मत जाओ, क्योंकि धर्मशास्त्रमें माता पितासे अधिक है, यथा-"पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते।" अर्थात् पितासे माताका गौरव दशगुणा अधिक है ॥१॥ परंतु जो पिता माता दोनोंने ही वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्याके समान है। यहां अपनी आज्ञा से कैकेईकी आज्ञा अधिक जनायी,अपनी मातासे विमाताकी आज्ञा प्रबल है "मातुर्दशगुणामान्या विमाता धर्म भीरुणा" धर्म भीरु पुरुषको अपनी माताकी अपेक्षा विमाताको दशगुना अधिक मानना चाहिये ॥२॥

पितु वनदेव मातु वनदेवी * खगमृग चरणसरोरुह-सेवी ॥३॥
अन्तहु उचित नृपति वनवासू * वय विलोकि हिय होत हरासू ॥४॥

वनके देवता पिता और वनकी देवीको माता जानो तथा खग-मृग तुम्हारे चरणकमलकी सेवा करेंगे ॥ ३ ॥ अन्तमें राजाको वनवास ही उचित है, पर तुम्हारी सुकुमार अवस्था देख कर जी घबड़ाता है ॥ ४ ॥

बड़भागी वन अवध अभागी * जो रघुवंश तिलक तुम त्यागी॥५॥
जो सुत कहौं संग मोहि लेहू * तुम्हरे हृदय होय सन्देहू ॥६॥

हे रामचन्द्रजी ! वन बड़ा भाग्यवाला है, अवध अभागी है, जिसका तुमने त्याग किया ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! जो मैं तुमसे यह कहूँ कि मुझको संग ले चलो तो तुम्हारे मनमें संदेह होगा कि स्त्रीको तो पतिकी सेवा करनी चाहिये, वह पुत्रके संग क्यों जाय ॥ ६ ॥

पूत परम प्रिय तुम सबहीके * प्राण प्राणके जीवन जीके ॥७॥
ते तुम कहहु मातु वन जाऊँ * मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ॥८॥

हे पुत्र ! तुम सबहीके परमप्रिय हो, प्राणके प्राण हो जितने जीव हैं सबके जीवन हो ॥७॥ वे तुम कहते हो कि 'माता ! वनको जाता हूँ' और मैं यह वचन सुनकर बैठी पछताती हूँ शरीर त्याग नहीं करती ॥ ८ ॥

राग सोरठा-"राम हौं कौन जतन घर रहिहौं। बारबार भरि अंक गोद लै, ललन कौनसों कहिहौं। इहि आंगन विहरत मेरे बारे, तुम जो संग शिशु लीन्हें। कैसे प्राण रहत सुमिरत सुत, बड़ विनोद तुम कीन्हें ॥ जिन श्रवणन कल वचन तिहारे, सुनति रही अनुरागी। तिन श्रवणन वन गमन सुनति हौं मोते कौन अभागी। युग सम निमिष जाहि रघुनन्दन, बदन कमल विनु देखे। जो तनु वदन रहे बीते बलि, कहा प्रीति यहि लेखे ॥ तुलसीदास प्रेमवश श्रीहरि देखि विकल महतारी। गद्गद् कंठ नैन जल भरि, फिरि आवन कहो खरारी।"

दोहा-यह विचारि नहिं करहुँ हठ, झूँठ सनेह बढ़ाय ॥
मानि मातुकर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाय ॥ ८७ ॥

यह विचार मिथ्या स्नेह बढ़ाकर हठ नहीं करती हूँ बलि जाऊँ माताके नातेको मानकर मेरी सुरत मत भुला देना (विदेशमें बहुत दिन रहने से घरकी सुरत विसर जाती है और झूँठा स्नेह इस कारण कहा कि; वनगमन सुनकर भी हृदय न फटा) ॥ ८७ ॥

अथ क्षेपक

शुक्र सोम रवि धनद यमादिक * रक्षा करहिं तुम्हारि अनादिक ॥१॥
राम दण्डकारण्य-निवासी * तुमहिं देहिं ये सब सुखरासी ॥२॥

कौशल्या कहने लगी-हे रामचन्द्र ! शुक्र,चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, यम आदि सब अनादिदेव तुम्हारी रक्षा करें ॥१॥ हे रामचन्द्र ! संपूर्ण दंडकवनके रहनेवाले तुमको अति आनंद दें ॥२॥

अग्नि वायु अरु धूम पुनीता *ऋषिमुखच्युत सब मन्त्र विनीता॥३॥
तुमहिं आचमन करत सदाहीं * रक्षा करहिं राम बलि जाहीं ॥४॥

अग्नि, वायु, (यज्ञका) धुआँ, ऋषियोंके मुखसे निकले सब मंत्र ॥ ३ ॥ सदा आचमन करतेमें तुम्हारी रक्षा करें पुत्र ! मैं तुम्हारी बलिहारी हूँ ॥ ४ ॥

सर्व लोक प्रभु सब जगकारी *विधि ऋषिगण सब जे असुरारी॥५॥
वनवासी रघुनन्दन तोही *पालहिं कृपा करहिं यह मोही ॥६॥

सब जगत्के स्वामी,जगत्के कर्ता, ब्रह्मा, ऋषियोंके समूह, असुरनिकन्दन भगवान् ॥५॥ हे श्रीरामचन्द्र ! वनमें वास करने के समय ये सब तुम्हारी रक्षा करें मुझ पर यही कृपा करें॥६॥

ऋतु सागर श्रुति दीप रु लोका *दिशा आदि तुम काहि विशोका॥७॥
करहिं राम अरु नाना मंगल * देहिं बहुत तव मिटहिं अमंगल॥८॥

६ ऋतु, ७ समुद्र, ४ वेद, ७ द्वीप, ३ लोक, दशों दिशायें तुमको सुखदायक हों ॥७॥ हे रामचन्द्र ! सब तुमको अनेक मंगल दें और तुम्हारे अमङ्गल दूर करें ॥ ८ ॥

अस कहि सुत-शिर अक्षत शेषा * जननी कर कीन्हो शुभ वेशा ॥९॥
चन्दनादि सब गन्ध लगाये *राम-माथ महँ अति मन भाये॥१०॥

यह कह कौशल्या माताने पुत्रके शिर पर अक्षत छोड़कर सुन्दर तिलक किया और अपने हाथसे सुन्दर वेषकर ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके माथे पर चन्दनादि सुगंध द्रव्य लगाये, जिनसे वे अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ १० ॥

दोहा-बाँधि औषधी भुजनमें, देवी देव मनाय ॥
बिदा किये रघुवंशमणि, दशा कही नहिं जाय ॥ ८८ ॥

घाव और मूर्च्छाको दूर करनेवाली औषधि देवी मनाकर श्रीरामचन्द्रजीकी भुजामें बाँध माताने उनको विदा किया; उस समयकी दशा कही नहीं जाती ॥ ८८ ॥ इति क्षेपक ॥

देव पितर सब तुमहिं गुसाईं * राखहिं पलक नयनकी नाईं ॥१॥
अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना * तुम करुणाकर धर्मधुरीना ॥२॥

हे जितेन्द्रिय पुत्र ! देवता और पितर सब तुमको ऐसे रक्खें जैसे पलकें नेत्रोंकी रक्षा करती हैं ॥१॥ चौदह वर्षकी अवधि है वही जल है; प्रिय परिवार मछली हैं; तुम करुणाकी खान तथा धर्मधुरीके धारण करनेवाले हो; आशय यह कि जनपालन धर्मको मत भुला देना ॥ २ ॥

अस विचारि सोइ करहु उपाई *सबहिं जियत जेहि भेंटहु आई ॥३॥
जाहु सुखेन वनहि बलि जाऊँ * करि अनाथजन परिजन गाऊँ ॥४॥

ऐसा विचार कर वही उपाय करो जिससे सबके जीते ही आकर मिलो; क्योंकि जैसे जलके विना मछली नहीं जीती ऐसे ही अवधिरूपी जलके घटते ही सब प्रियजन मृतक हो जायँगे ॥३॥ सुख पूर्वक वनको जाओ और जनोंको, कुटुंबियोंको, गांवको अनाथ कर वनमें वास करो ॥४॥

सबकर आजु सुकृत फल बीता * भयउ कराल काल विपरीता ॥५॥
बहुविधि विलपि चरण लपटानी * परम अभागिनि आपुहि जानी ॥६॥

सबका आज पुण्यफल बीत गया, काल कराल और विपरीत हो गया ॥५॥ माता बहुत प्रकारसे विलाप करके चरणों में लिपट गयी और अपनेको परम अभागिनी जाना ॥ ६ ॥

दारुण दुसह दाह उर व्यापा * वरणि न जाय विलाप कलापा ॥७॥
राम उठाय मातु उर लाई * कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई ॥८॥

हृदयमें असह्य दारुण दाह व्याप्त हो गया, तात्कालिक उन विलापोंका वर्णन नहीं हो सकता था ॥७॥ श्रीरामचंद्रजीने उठाकर माताको हृदयसे लगाया और कोमल वचन कहकर फिर समझाया ॥८॥

दोहा-समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय ॥
जाय सासु पद कमल युग, बंदि बैठि शिर नाय ॥ ८९ ॥

उस समय यह समाचार सुनकर जानकीजी व्याकुल हो उठीं और जाकर सासुके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम कर शिर नवाय बैठी (आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति-विपत्तिमें मर्यादा नहीं रहती, इसीसे पतिके सम्मुख सासुके पास गयीं) ॥ ८९ ॥

दीन्ह अशीष सासु मृदु बानी *अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥१॥
बैठि नमित मुख शोचति सीता * रूपराशि पति-प्रेम पुनीता ॥२॥

सासुने कोमलवाणीसे आशीष दी और अधिक सुकुमारि देख (संग जाने की इच्छा समझ व्याकुल हो गयीं) ॥ १ ॥ मुख झुकाये बैठी हुई जानकी शोचने लगीं जो रूपकी राशि और पवित्र प्रेम धारण करनेवाली हैं ॥ २ ॥

चलन चहत वन जीवन नाथा * केहि सुकृतिसन होइहि साथा ॥३॥
की तनु प्राण कि केवल प्राना * विधिकरतब कछु जात न जाना ॥४॥

जीवनके नाथ रघुनाथजी वनको जाया चाहते हैं, सो न जाने किस सुकृतिसे उनका साथ होगा? ॥३॥ क्या तनु और प्राण या केवल प्राणसेही साथ होगा? विधाताका करतब कुछ जाना नहीं जाता। भाव यहकि जो संग ले जायँगे तो शरीर सहित जाऊँगी और न लेजायँगे तो केवल प्राण ही जायँगे अर्थात् शरीर त्याग दूँगी। इस कारण कहती हैं दोनों सुकृत हैं वा एक ?॥४॥

चारु चरण नख लेखति धरणी * नूपुर मुखर मधुर कवि वरणी ॥५॥

मनहुँ प्रेमवश विनती करहीं * हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥६॥

सुन्दर चरणोंके नखोंसे पृथ्वी लिखती हैं उस समय नूपुरका जो मधुर शब्द होता है उसको कविने इस भांति वर्णन किया है-(नखसे भूमिका खोदना सोच मुद्रा है या पृथ्वीपर लिखनेका भाव यह है कि, जब बड़ा संकट पड़ता है तब वह जन माताके सम्मुख होता है, जानकीजी सासु और पतिकी लाजसे बोल नहीं सकतीं लिखकर माता पृथ्वीको जनाती हैं वा राघवको जनाती हैं कि या तो संग ले चलिये, अन्यथा पृथ्वीमें प्रवेश करूँगी) ॥ ५ ॥ वह जो जानकीजीके चरणोंमें नूपुरोंका शब्द होता है सो मानो वे नूपुर प्रेमवश हो जानकीजीसे विनती करते हैं कि हमको आपके चरण न त्यागें ॥ ६ ॥

मंजु विलोचन मोचत वारी * बोली देखि राम-महतारी ॥७॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी * सासु ससुर परिजनहिं पियारी ॥८॥

सुंदर नेत्रोंसे जल जाने लगा, यह देखकर रामजीकी माता बोली ॥ ७ ॥ हे रघुनाथजी ! सुनो-जानकीजी बहुत ही सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा अपने कुटुम्बियोंको प्यारी हैं॥८॥

दोहा-पिता जनक भूपालमणि, ससुर भानुकुल-भानु ॥
पति रविकुल कैरव विपिन, विधु गुण रूप निधान ॥ ९० ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ जनकजी जिनके पिता, सूर्यकुलके सूर्य ससुर और सूर्यकुलकी कुमुदिनीके वनको खिलाने के लिये चन्द्रमारूपी राम जो गुण और रूपके घर हैं वे जिनके पति हैं ॥ ९० ॥

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई * रूप राशि गुण शील सुहाई ॥१॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई * राखेउँ प्राण जानकिहि लाई ॥२॥

मैंने सुन्दर पुत्रवधू पायी, जो रूप की राशि, गुण और शीलमें शिरोमणि है ॥ १ ॥ नयनोंको पुतली करके मैंने प्रीति बढ़ायी और प्राणके समान जानकीजीको रखा ॥ २ ॥

कल्पवेलि जिमि बहु विधि लाली * सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥३॥
फूलत फलत भयउ विधि वामा * जानि न जाय काह परिणामा॥४॥

कल्पलताके समान बहुत प्रकारसे प्यार और स्नेहरूपी जलसे सींचकर पालन किया है ॥ ३ ॥ उस लताके फूलते फलते में विधाता वाम हो गया, नहीं जाना जाता कि इसका क्या परिणाम होगा ? ॥ ४ ॥

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा * सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥५॥
जियनमूरि जिमि युगवत रहेउँ * दीपबाति नहिं टारन कहेउँ ॥६॥

पँलग सिंहासन, गोद हिंडोरा छोड़कर जानकीजीने कठिन पृथ्वी पर पग नहीं रखा ॥५॥ सजीवनि मूरिकी नाईं देखती रही हूँ और तो क्या कभी दीपककी बत्ती टारनेको नहीं कहा॥६॥

सोइ सिय चलन चहति वनसाथा * आयसु कहा होइ रघुनाथा ॥७॥
चन्द्र किरणि रस रसिक चकोरी * रविरुख नैन सकै किमि जोरी॥८॥

वह जानकी वनको साथ चलना चाहती है हे रघुनाथजी ! उसके लिए तुम्हारी क्या आज्ञा

१. कोई कहते हैं दीपककी बत्ती महारानी क्यों उसका सकती हैं, सहस्रों दासी विद्यमान हैं ? तो यह आशय है कि एक राक्षस गुप्तभावसे दशरथजीके राज्यमें प्रजाको कष्ट देने लगा तब वसिष्ठजीने कहा – यदि जानकीजी अपने हाथ से दीपककी बत्ती उसका दें तो उपद्रव शांत हो जाय यह जानकर भी कौशल्याने परिश्रम होने के कारण सीताजीसे बत्ती उसकाने को नहीं कहा ।

होती है ? यह जानकीजीका निवेदन प्रगट कर अब अपनी सम्मति प्रगट करती हैं ॥७॥ जो चकोरी चन्द्रकिरणके रसकी इच्छुक है वह भला सूर्यके सम्मुख नयन कैसे जोड़ सकती है॥८॥

दोहा-करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्ट जन्तु वन भूरि ॥
विषवाटिका कि सोह सुत, संग सजीवन मूरि ॥ ९१ ॥

वनमें अनेक हाथी, सिंह निशाचरादि दुष्ट जन्तु फिरते हैं, हे पुत्र विषकी फुलवाड़ीमें सजीवन जड़ी क्या, कभी शोभित हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ॥ ९१ ॥

वनहित कोल किरात किशोरी * रची विरंचि विषय सुख भोरी ॥१॥
पाहनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ * तिनहिं कलेश न कानन काऊ॥२॥

वनके हेतु तो कोल और किरातोंकी कन्याओंको विधाताने रचा है, जो कि विषयके सुख से भोरी हैं ॥ १ ॥ पाषाण के कीट-(सांप, बिच्छू, आदि) के समान जिनका कठिन स्वभाव है उनको वनमें कभी क्लेश नहीं होता ॥ २ ॥

कै तापस तिय कानन योगू * जिन तप हेतु तजा सब भोगू ॥३॥
सिय वन वसहिं तात केहि भाँती * चित्र लिखित कपि देख डराती॥४॥

अथवा तपस्वियोंकी नारी वनके योग्य होती हैं जिन्होंने तपके लिए सब भोग त्याग दिये हैं ॥३॥ हे तात ! जो जानकीजी तसबीरमें लिखे बंदरको देखकर डरती हैं वे वनमें कैसे बसेंगी॥४॥

सुरसर सुभग वनज वनचारी * डाबर योग कि हंस-कुमारी ॥५॥
अस बिचारि जस आयसु होई * मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥६॥

देवताओंके मानसरोवरके सुन्दर कमल वनमें विहार करनेवाली हंसकुमारी क्या गढेके गँदले जलके योग्य है अर्थात् नहीं ॥५॥ ऐसा विचार कर जो कहो सो मैं जानकीजीको सीख दूँ॥६॥

जौ सिय भवन रहइ कह अम्बा * मो कहँ होइ प्राण-- अवलंबा ॥७॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी * शील सनेह सुधा जनु सानी ॥८॥

माताने कहा जो जानकीजी घर रहेंगी तो मुझको प्राण रखने का सहारा हो जायगा॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीने यह माताकी प्रियवाणी सुनकर जो मानों शील स्नेहरूपी अमृतमें सनी थी॥८॥

दोहा-कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष ॥
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगट विपिन गुण दोष ॥ ९२ ॥

ज्ञानमय प्रियवचन कहकर माताको समझाया और वनमें रहने का गुण दोष प्रगट कर जानकीजीको समझाने लगे। प्रगट होनेका भाव यह कि मनमें दोष नहीं कहते, क्योंकि साथ ले जाने की इच्छा है ॥ ९२ ॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं * बोले समय समुझि मनमाहीं ॥१॥
राज कुमारि सिखावन सुनहू * आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥२॥

माताके निकट कहते हुए सकुचाते हैं परंतु मनमें समय अर्थात् विपत्तिकालको समझकर बोले ॥१॥ हे राजकुमारी ! हमारा सिखावन सुनो, जीमें कुछ दूसरी भांति मत जानना ॥२॥

आपन मोर नीक जो चहहू * वचन हमारि मानि घर रहहू ॥३॥

आयसु मोरि सासु सेवकाई ❋ सब विधि भामिनि भवन भलाई॥४॥

जो और मेरा भला चाहो तो हमारा वचन मानकर घरमें ही रहो ॥३॥ मेरी आज्ञा है कि सासुकी सेवा करो, हे प्यारी ! सब प्रकार घरमें रहनेसे भलाई होगी ॥ ४ ॥

यहिते अधिक धर्म नहिं दूजा ❋ सादर सासु श्वसुर पद-पूजा ॥५॥
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी ❋ होइहि प्रेम विकल मति भोरी ॥६॥

इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं है कि स्त्री आदरपूर्वक सासु-स्वसुरके चरणोंकी पूजा करे ॥ ५ ॥ जब-जब माता मेरी सुधि करे और प्रेमसे उनकी मति व्याकुल हो जाय ॥ ६ ॥

तब तब तुम कहि कथा पुरानी ❋ सुन्दरि समझायहु मृदु बानी ॥७॥
कहौं सुभाय शपथ शत मोहीं ❋ सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं ॥८॥

तब-तब तुम पुरानी कथा कहकर हे सुन्दरि ! कोमल वाणीसे समझाना ॥७॥ हे सुमुखि ! स्वभावसे अनेक सौगन्ध करता हूँ केवल माताके हित तुमको यहां रखता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-गुरुश्रुति सम्मत धर्म फल, पाइहि बिनाहि कलेश ॥
हठ वश-सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश ॥ ९३ ॥

गुरु और वेद सम्मत जो धर्म है वह विना ही क्लेशके सासु-श्वासुरकी सेवासे मिल जाता है और हठ करने से सब संकट गालव मुनि और नहुष राजाने सहे ॥ ९३ ॥

मैं पुनि करि प्रमाण पितु बानी ❋ बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥१॥
दिवस जात नहिं लागहि बारा ❋ सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा ॥२॥

और मैं फिर पिताकी आज्ञा प्रमाण करके हे सुमुखि! सयानी! शीघ्र ही लौटकर आऊँगा ॥ १ ॥ दिनोंके जानेमें देर नहीं लगती, हे सुन्दरि ! हमारा सिखावन सुनो ॥ २ ॥

जौ हठ करहु प्रेमवश वामा ❋ तौ तुम दुख पाउव परिणामा ॥३॥
कानन कठिन भयंकर भारी ❋ घोर घाम हिम वारि बयारी ॥४॥

जो तुम प्रेमके वश होकर इस समय हठ करोगी तो परिणाम में दुख पाओगी ॥३॥ वह वन कठिन और महा भयंकर है, कठिन धूप जाड़ा पानी तथा वायुसे कष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुश कंटक मग कंकर नाना ❋ चलब पयादे बिन पदत्राना ॥५॥
चरणकमल मृदु मंजु तुम्हारे ❋ मारग अगम भूमिधर भारे ॥६॥

मार्गमें अनेक कुशकांटे कङ्कड़ होते हैं सवारी पर चलते तो भी एक बात थी; पर सो भी

---

१. रागबिलावल-रहहु भवन हमरे कहे भामिनि । सादर सासु चरण सेवहु नित, जो तुम्हरे अति हितगृहस्वामिनि । राजकुमारि कठिन कंटक मग क्यों चलिहौ मृदुपद गजगामिनि ! दुसह बात वर्षा हिम आतप, किमि सहिहौ अगणित दिन यामिनि । हौं पुनि पितु आज्ञा प्रमाण करि, ऐहौं वेगि सुनहु द्युतिदामिनि । तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि, सहि न सकी मूर्छित भइ भामिनि ।

२. गालवमुनि विश्वामित्रके शिष्य थे, जब विद्या पढ़ चुके तो उन्होंने गुरुदक्षिणा देने का हठ किया, हठसे विश्वामित्र रिसाकर बोले कि ८०० घोड़े श्यामवर्ण हमें दो । तब गालब शोच करते हुए गरुड़ के साथ ययाति राजाके पास गये ययातिने घोड़े न होनेसे एक कन्या दी और कहा जो दोसौ २०० घोड़े देगा वह इस कन्यामें एक पुत्र उत्पन्न करेगा और फिर यह कन्याभावको ही प्राप्त हो जायगी तब मुनि उस कन्याको ले गये और तीन राजाओं से तीन पुत्र उत्पन्न करवाकर ६०० घोड़े लाये किंतु २०० न मिले । दक्षिणामें मुनिको वह कन्या ही दे दी । यद्यपि गुरु दक्षिणा देना परम धर्म है पर गुरुसम्मत न रहा, इससे ही संकट सहा ।

३. राजा नहुष एक बड़े सुकृतसे इन्द्र हुए, देवराज उस समय ब्रह्महत्याके डरसे छिपे हुए थे, नहुषने इंद्राणीसे भोग करना चाहा तब शचीने हठ देख कहा यदि ब्राह्मणोंके वाहन पर आओगे तो तुम्हारी सहचारिणी होंगी राजाने ऋषियोंको वाहन में जोतकर शीघ्रतासे चलने को कहा तब दुर्वासाने शाप दिया कि जा तू अजगर होकर पृथ्वीमें गिर पड़ । वह राजा अजगर होकर पृथ्वीमें गिरा और फिर युधिष्ठिरके दर्शन से शापोद्धार हुआ ।

नहीं पैदल चलना होगा, इस पर भी विना पदत्राण (खड़ाऊँ) ॥ ५ ॥ तुम्हारे चरणकमल मनोहर तथा कोमल हैं और मार्ग भी समान नहीं, किन्तु अगम है और फिर बड़े बड़े पर्वत हैं (एक तो राह कठिन दूसरे चढ़ाव-उतार) ॥ ६ ॥

कंदर खोह नदी नद नारे * अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥७॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा * करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥८॥

कन्दरा, पर्वतकी गुफा, नदी-नद, नाले बड़े अगाध हैं जो निहारे नहीं जाते ॥ ७ ॥ रीछ चीते भेड़िये तथा हाथियोंके नाद सुनकर धीरज नहीं रहता ॥ ८ ॥

दोहा-भूमि शयन वल्कल वसन, अशन कंद फल मूल ॥
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल ॥ ९४ ॥

भूमिमें सोना, वृक्षकी त्वचा (भोजपत्रादि) पहनना, मूल फल कंद भोजन (कन्दवर्तुलाकारमूल लंबा) सो भी क्या सदा मिलते हैं ? नहीं जब जिसका समय होगा तब मिलेंगे॥९४॥

नर अहार रजनीचर करहीं * कपट वेष विधि कोटिक धरहीं॥१॥
लागइ अति पहाड़ कर पानी * विपिन विपति नहिं जाय बखानी॥२॥

राक्षस मनुष्योंको भक्षण करते हैं और करोड़ों प्रकार से कपटका वेष धारण करते हैं ॥१॥ हे प्यारी ! पहाड़का पानी बहुत लगता है; वनकी विपत्ति बखानी नहीं जाती ॥ २ ॥

व्याल कराल विहग वन घोरा * निशिचर निकर नारि नर चोरा॥३॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये * मृग लोचनि तुम भीरु सुभाये ॥४॥

वनमें विकराल सर्प घोर (भयावने) पक्षी और बहुत से राक्षस नारी नरोंके चुराने वाले होते हैं। वा अनेक निशाचर नर और नारी चोर हैं ॥ ३ ॥ धीर पुरुष भी वनकी याद आने से डर जाता है, फिर हे मृगनयनी ! तुम तो स्वभावसे ही डरने वाली हो ॥ ४ ॥

हंसगमनि तुम नहिं बन योगू * सुनि अपयश मोहिं देइहिं लोगू ॥५॥
मानस सलिल सुधा प्रति पाली * जियइ कि लवणपयोधि मराली ॥६॥

हे हंसगामिनि ! तुम वनके योग्य नहीं हो, लोग सुनकर मुझको अपयश देंगे ॥ ५ ॥ मानस सरोवरके अमृत रूपी जलको पान की हुई हंसिनी क्या लवण पयोधि अर्थात् खारे समुद्रमें जी सकती है अर्थात् नहीं जी सकती ॥ ६ ॥

नव रसाल वन विहरन शीला * सोह कि कोकिल विपिन करीला॥७॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी * चन्द्रवदनि दुख कानन भारी॥८॥

नवीन आमके वनमें विहार करनेवाली कोकिला क्या करीलके वनमें शोभित हो सकती है?॥ ७ ॥ हे चन्द्रवदनि ! ऐसा विचार कर घरमें रहो, वनमें बड़ा ही दुःख होता है ॥ ८ ॥

दोहा-सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करहिं हित मानि ॥
सो पछिताय अघाइ उर, अवशि होइ हित हानि ॥ ९५ ॥

स्वभावसे ही मित्र, गुरु और स्वामी इनकी शिक्षामें हित मानकर जो उसके अनुसार कार्य नहीं करते वे हृदयमें अघाकर पछताते हैं और निश्चय उनके हितकी हानि होती है ॥९५॥

सुनि मृदु वचन मनोहर पियके * लोचन नलिन भरे जल सियके॥१॥
शीतल शिख दाहक भइ कैसे * चकइहि शरद चाँदनी जैसे ॥२॥

चन्द्रवदनि आदि विशेषण युक्त मनहरने वाले पतिके वचन सुनकर जानकीजीके कमल से नेत्रोंमें जल भर आया ॥१॥ शीतल सीख-'हंसगमनि तुम नहिं वन योगू' इत्यादि जानकीजीको कैसे अग्निके समान दाहक हुई, जैसे चकवा-चकईको शरदऋतुकी चांदनी दुखदायी लगती है ॥२॥

उतरु न आव विकल वैदेही * तजन चहत शुचिस्वामि सनेही॥३॥
बरबस रोकि विलोचनि वारी * धरि धीरज उर अवनि कुमारी॥४॥

पवित्र स्नेही स्वामी त्याग किया चाहते हैं, इससे जानकीजीको उत्तर नहीं आया और व्याकुल हो गयीं ॥ ३ ॥ बरबस नेत्रोंका जल रोक अवनिकुमारीने मनमें धीरज धरकर ॥४॥

लागि सासुपद कह कर जोरी * क्षमब देवि बड़ अविनय मोरी॥५॥
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई * जेहि विधि मोर परमहित होई॥६॥

सासुके चरणोंमें प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कहा—हे देवि! मेरी भारी अविनय है उसको आप क्षमा कीजिये अवनिकुमारी कहनेका भाव यह है कि पृथ्वीमें महान् धीरता है उसकी कुमारी क्यों न धीर धारण करें, अब रामचंद्रजीने कहा कि घर रहो इसमें भलाई है तो उसका उत्तर भी जानकीजी देती हैं ॥५॥प्राणपतिने मुझको वही सीख दी है जिस प्रकार मेरा परम हित हो॥६॥

मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं * पियवियोग सम दुखजग नाहीं॥७॥

फिर मैंने भी मनमें विचार देखा कि पति बिछुड़नेके समान जगत्‌में दुःख नहीं होता ॥७॥

इहि विधि सीय सासु समुझाई * कहत पतिहि वरविनय सुनाई ॥८॥
अस कहि सिय रघुपति पदलागी * बोली वचन प्रेमरस पागी ॥९॥

जानकीजीने इस प्रकारसे सासुको समझाया और पतिको भली प्रकारसे विनय सुनाकर बोली (यह चौपाई क्षेपक है) ॥ ८ ॥ ऐसा कहकर सीताने रामचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रेमरसमें पगे वचन बोलीं ॥ ९ ॥

दोहा-प्राण नाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ॥
तुम बिनु रघुकुल कुमुदविधु, सुरपुर नरक समान ॥ ९६ ॥

हे प्राणनाथ ! करुणानिधान ! सुखसागर ! हे रघुवंशरूपी बबूलेको खिलाने को चन्द्र ! आपके विना यह स्थान तो क्या—किंतु सुरपुर भी नरकके समान है ॥ ९६ ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई * प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥१॥
सासु श्वसुर गुरु सजन सहाई * सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ॥२॥

माता, पिता, बहन, भाई, प्रिय कुटुम्ब, हितकारी ॥ १ ॥ सासु, श्वसुर, गुरु, सज्जन, सहायकारी, सुन्दर शीलवान् और सुखदायी पुत्र ॥ २ ॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते * पिय बिनु तियहि तरणिते ताते॥३॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू * पति विहीन सब शोक समाजू॥४॥

हे स्वामी! जहां तक स्नेह और नाते हैं वे सब पतिके विना नारीको सूर्यसे भी अधिक ताते हैं ॥ ३ ॥ तन, धन, धाम पृथ्वी और पुरका राज्य पतिके विना सब शोकका समाज है ॥४॥

भोग रोग सम भूषण भारू ❋ यमयातना सरिस संसारू ॥५॥
प्राणनाथ तुम विनु जगमाहीं ❋ मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ॥६॥

पति विना भोग रोगके समान, गहने बोझके समान और संसार यम यातनाके समान है यमलोकमें दुःख भोगनेको अंगुष्ठके समान शरीर मिलता है, उसको यमयातना का शरीर कहते हैं, यह साधारण नारियों पर कहा, किंतु अब अपने पर कहती हैं ॥५॥ हे प्राणनाथ ! आपके विना जगत्में मुझको कोई कहीं भी सुख देनेवाला नहीं है ॥ ६ ॥

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी ❋ तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥७॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे ❋ शरद विमल विधुवदन निहारे ॥८॥

जैसे जीवके विना देह और जलके विना नदी शोभा नहीं पाती, हे नाथ ! ऐसे ही पुरुषके विना नारी है ॥ ७ ॥ हे नाथ आपका शरदचन्द्र सम उज्ज्वल मुख देखनेसे सब कुछ सुख आपके साथ है। (अब भूमि शयनादिका उत्तर देती हैं) ॥ ८ ॥

दोहा–खग मृग परिजन नगर वन, बलकल विमल दुकूल ॥
नाथ साथ सुरसदन सम, पर्णशाल सुखमूल ॥ ९७ ॥

खग मृग ही कुटुम्बी होंगे, नगरके समान वन होगा, बल्कल रेशमी वस्त्रोंके समान होंगे और आपके सङ्गमें देवताओंके घरके समान सुखदायक पर्णशाला होगी ॥ ९७ ॥

वन–देवी वन–देव उदारा ❋ करिहैं सासु श्वसुर सम सारा ॥१॥
कुश किसलय साथरी सुहाई ❋ प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥२॥

वनके उदार देवी देवता सास श्वसुरके समान रक्षा करेंगे ॥ १ ॥ कुश पल्लवों की सुंदर साथरी आपके संगमें कामदेवकी सेजके समान उज्ज्वल तोसकसी होगी ॥ २ ॥

कन्द मूल फल अमिय अहारू ❋ अवध सौधशत सरिस पहारू ॥३॥
क्षण क्षण प्रभुपद कमल विलोकी ❋ रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥४॥

कन्दमूल फल अमृतके समान आहार होंगे, और अवधके सौध (राजमहल) को अटारीके समान अनेकों पहाड़ होंगे, (सौधोऽस्त्री राजसदनमित्यमरः) ॥ ३ ॥ क्षण क्षण आपके पदकमल देखकर ऐसे प्रसन्न रहूँगी जैसे दिनमें चकवा चकई रहते हैं ॥ ४ ॥

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे ❋ भय विषाद परिताप घनेरे ॥५॥
प्रभु वियोग लवलेश समाना ❋ होहिं न सब मिलि कृपा निधाना ॥६॥

हे प्रियतम ! आपने वनके भयदायक विषाद परितापसे भरे बहुतेरे दुःख कहे–'करहिं नाद सुनि धीरज भागा' यह भय है, भूमि शयनादि विषाद है 'लागै अति पहाड़कै पानी' परिताप है ॥५॥ हे कृपासागर ! वे सब मिलकर आपके वियोग दुःखके लेशमात्रके भी बराबर नहीं हो सकते ॥६॥

अस जिय जानि सुजान शिरोमनि ❋ लेइय संग मोहि छांड़िय जनि ॥७॥
विनती बहुत करौं का स्वामी ❋ करुणामय उर अन्तरयामी ॥८॥

ऐसा जीमें जानकर हे जाननेवालोंमें शिरोमणि ! मुझको संग ले चलिये छोड़िये नहीं ॥७॥ हे स्वामी ! आपसे बहुत क्या विनती करूँ ? आप दयामय और अन्तर्यामी हो अतः मेरे मनको भी जानते ही हो ॥ ८ ॥

दोहा–राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान ॥
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील–सनेह–निधान ॥ ९८ ॥

हे दीनबन्धु ! मैं दीन हूँ, मेरे छोड़नेसे आपके नाममें बट्टा लगेगा। आप सुन्दर सुखके देने वाले हो तो फिर मेरे सुखमें क्यों विरोध करते हो ? आप शीलसनेहके पात्र हो, फिर मुझसे शील स्नेह क्यों छोड़ते हो ? यदि चौदह वर्षतक मेरा प्राण अवधमें रहता जानिये तो मुझको छोड़ जाइये, नहीं तो सङ्ग ले चलिये ॥ ९८ ॥

मोहिं मग चलत न होइहि हारी ❀ क्षण क्षण चरण सरोज निहारी॥१॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं ❀ मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥२॥

मुझको मार्ग चलते में हार नहीं होगी, क्योंकि क्षण-क्षण आपके चरणकमलोंका दर्शन होता रहेगा ॥ १ ॥ हे प्रिय ! सब प्रकारसे ही आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलनेसे जो खेद होगा उस सबको हरूँगी ॥ २ ॥

पायँ पखारि बैठि तरु–छाहीं ❀ करिहौं वायु मुदित मनमाहीं ॥३॥
श्रमकन सहित श्याम तन देखे ❀ का दुख समय प्राणपति पेखे ॥४॥

जब बैठोगे सुन्दर वृक्षके नीचे आपके चरण धोकर मनमें प्रसन्न हो पवन करूँगी ॥ ३ ॥ पसीनेके बिन्दुसहित आपका श्याम शरीर और कृपा युक्त मुख देखकर दुःख कहां होगा ! अर्थात् कहीं न होगा ॥ ४ ॥

सम महि तृण तरु पल्लव डासी ❀पायँ पलोटिहि सब निशि दासी॥५॥
बार बार मृदु मूरति जोही ❀ लागिहि तात बयारि न मोही ॥६॥

बराबर भूमिमें घास और वृक्षोंके कोमल पत्ते बिछाकर दासी सारी रात आपके पांव दाबेगी ॥ ५ ॥ बारबार आपकी कोमलमूर्ति देख मेरे ताती बयार न लगेगी ॥ ६ ॥

को प्रभु सँग मोहिं चितवन हारा ❀सिंह बधुहि जिमि शशक सियारा॥७॥
मैं सुकुमारि नाथ वन–योगू ❀तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू॥८॥

रघुनाथजीने कहा कि वनमें राक्षस स्त्रियोंको चुरा ले जाते हैं उस पर कहती हैं–आपके संगमें मेरी ओर कौन देख सकता है ? जैसे सिंहिनी को खरगोश और शियार नहीं देख सकते। प्रभुने कहा–"हंसगमनि तुम नहिं वन योगू" उसका उत्तर देती हैं॥७॥हे नाथ ! मैं सुकुमारी हूँ, क्या आप सुकुमार नहीं–आपका शरीर वनके योग्य है ? आपको तप उचित है और मैं भोग करूँ ? जैसी मेरी अवस्था वैसी आपकी, जो आप करोगे वही मैं करूँगी ॥ ८ ॥

दोहा–ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान ॥
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्राण ॥ ९९ ॥

रघुनाथजीने जो कहा घर रहो, उस पर कहती हैं कि ऐसे वचन सुनकर भी जो हमारा हृदय विदीर्ण न हुआ तो प्रभुका तीक्ष्ण वियोग दुःख भी पामर प्राण अवश्य सहेंगे, अथवा नहीं सहेंगे वियोगमें शरीर छोड़ देंगे ॥ ९९ ॥

---

१. भ०–"कृपानिधान सुजान प्राणपति संग विपिन हौं जाऊंगी। गृहते कोटि भांति सुख मारग चलत साथ सचुपाऊंगी। थाके चरणकमल चापूंगी श्रम भये पवन डुलाऊंगी। नयन चकोरन मुखमयंक छबि, सादर पान कराऊंगी ॥ जौ हठि साथ नाथ नहिं लैहौं तौ संग प्राण पठाऊंगी। तुलसीदास प्रभुविन जीवन रहे, क्यों फिर वदन दिखाऊंगी ॥"

अस कहि सीय विकल भइ भारी * वचन वियोग न सकी सँभारी ॥१॥
देखि दशा रघुपति जिय जाना * हठ राखे राखै नहिं प्राना ॥२॥

ऐसा कह जानकी अत्यन्त व्याकुल हुई और प्रत्यक्ष कौन कहे, वियोग के वचनोंको भी न सँभार सकीं ॥ १ ॥ यह दशा देखकर श्रीरामजीने जीमें जाना कि हठ करने से जानकी प्राण नहीं रखेंगी ॥ २ ॥

कहेउ कृपालु भानुकुल-नाथा * परिहरि शोच चलहु वन सांथा ॥३॥
नहि विषाद कर अवसर आजू * बेगि करहु वनगमन-समाजू ॥४॥

कृपासागर रघुनाथजी बोले-प्रिये ! जो ऐसा है तो शोचको त्यागकर वनको चलो ॥ ३ ॥ आज विषाद का समय नहीं है । भाव यह है कि; लोग कहेंगे राज्य छोड़नेमें इन्हें कष्ट होता है और यात्रामें विषाद करना उचित नहीं है जल्दी वनगमनका साज करो ॥ ४ ॥

कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई * लगे मातु पद आशिष पाई ॥५॥
बेगि प्रजा दुख मेटेहु आई *जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥६॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्यारे वचन कहकर जानकीजीको समझाया और माताके चरणोंमें प्रणाम कर आशीष पायी ॥ ५ ॥ माता बोली-शीघ्र ही आकर प्रजाका दुःख मेटना और निष्ठुर माताको मत भूल जाना । निष्ठुर कहनेका भाव यह है कि तुम शरीखे पूत-पतोहूको वन जानेकी आज्ञा देती हूँ और प्राण नहीं त्याग करती ॥ ६ ॥

फिरहि दशाविधि बहुरि कि मोरी * देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥७॥
सुदिन सुघरी तात कब होई * जननी जियत वदन विधु जोई॥८॥

हे विधाता ! क्या मेरी दशा फिर कभी फिरेगी जो नेत्रोंसे मनोहर जोड़ी देखूँगी ? ॥७॥ हे तात ! बड़ी सुन्दर अच्छी घड़ी कब होगी जो माता जीती हुई तुम्हारे चन्द्रमुखको देखेगी॥८॥

दोहा-बहुरि वत्स कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ॥
कबहि बुलाय लगाय उर, हर्षि निरखिहौं गात ॥ १०० ॥

पुनः पुनः वत्स लाल, रघुपति रघुवर तात ऐसे कह तुम्हें बुलाय हृदयसे कब लगाऊँगी ॥ बारंबार कहनेसे माता की अधिक व्याकुलता प्रतीत होती है ॥ १०० ॥

लखि सनेह कातरि महतारी * वचन न आव विकल भइ भारी ॥१॥
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना * समय सनेह न जाय बखाना ॥२॥

माता स्नेहसे कातर हो गयी और वचन नहीं आया, अत्यन्त व्याकुल होगयी यह देख ॥१॥ रघुनाथजीने अनेक प्रकार समझाया, उस समयका स्नेह बखाना नहीं जाता ॥ २ ॥

तब जानकी सासु-पग लागी * सुनिय माय मैं परम अभागी ॥३॥
सेवा समय दैव दुख दीन्हा * मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥४॥

तब जानकीजी सासुके चरणोंको प्रणाम कर बोली-माता । मैं परम अभागिनी हूँ ॥ ३ ॥ सेवा करनेके समय विधाताने दुख दिया मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ ॥ ४ ॥

---

१. भजन-में तुमसों सतिभाव कही है । बूझति और भांति भामिनि कत कानन कठिन कलेश सही है । जौ चलिहौ तौ चलौ वेगि वन सुनि सिय मन अवलंब लही है । बूड़त विरह वारिनिधि मानहुं, नाह वचन मिष बांह गही है । प्राणनाथके साथ चली उठि, अवध शोक सागर उमही है । तुलसी सुनि न कबहुं काहू कहुं तनु परिहरि परिछाहिं रही है ॥

तजउ क्षोभ जनि छांड़िय छोहू ❋ कर्म कठिन कछु दोष न मोहू ॥५॥
सुनि सिय वचन सासु अकुलानी ❋ दशा कवनविधि कहौं बखानी॥६॥

दुःख त्याग कर दो, मुझसे प्रेम मत छोड़ो,कर्मकी कठिन गति है, मेरा कुछ दोष नहीं है ॥५॥ जानकीजीके वचन सुनकर सासु व्याकुल हुई, वह दशा कैसे बखान कर कहूँ ? ॥ ६ ॥

बारहिंबार लाय उर लीन्हीं ❋धरि धीरज सिख आशिष दीन्हीं॥७॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा ❋ जब लगि गंग यमुन जलधारा ॥८॥

बारंबार जानकीजीको हृदयसे लगाया और धीरज धर कौशल्याने सीख तथा आशीष दी ॥ ७ ॥ तुम्हारा सुहाग अचल हो जबतक गंगा–यमुनाकी जल-धारा है ॥ ८ ॥

दोहा–सीतहि सासु अशीष शिख, दीन्ह अनेक प्रकार ॥
चली नाइ पदपद्म शिर, अति हित बारहिं बार ॥१०१॥

सीताजीको सासुने अनेक प्रकार से सीख और आशीष दी बड़े प्रेमसे बारंबार सासुके चरण कमलमें अपना शिर नवाय जानकीजी चलीं ॥ १०१ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे मुरादाबाद-निवासी पं० सुखानंद-मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत टीकायामयोध्याकांडान्तर्गतः पंचमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा–सुभग षष्ठ विश्राममें, लषण जानकी सङ्ग ॥
चले राम वन मुदित मन, भयो अवध रस भङ्ग ॥ ६ ॥

समाचार जब लक्ष्मण पाये ❋व्याकुल बिलखि वदन उठि धाये॥१॥
कंप पुलक तनु नयन सनीरा ❋ गहे चरण अति प्रेम अधीरा ॥२॥

जब लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीके वनगमनके समाचार पाये तो व्याकुल मुख हो श्रीरामचन्द्रजीके पास दौड़े ॥ १ ॥ कंपायमान पुलकित शरीर नेत्रोंमें जल भरे, प्रेमसे अत्यन्त अधीर हो रघुनाथजीके चरण पकड़ लिए ॥ २ ॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े ❋ मीन दीन जनु जलते काढ़े ॥३॥
सोच हृदय विधि कह होनिहारा ❋ सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥४॥

कुछ कह नहीं सकते, खड़े देखते हैं, जैसे दीन मछलीको कोई जलसे निकाल दे तो वह व्याकुल होती है ॥३॥ हृदयमें सोच करने लगे, विधाता ! क्या होनेवाला है ? हमारा सब सुख और पुण्य जाता रहा, अर्थात् पुण्यरूप रघुनाथजीकी सेवा हाथसे चली गयी ॥ ४ ॥

मोकहँ काह कहब रघुनाथा ❋ रखिहहिं भवन कि लैहहिं साथा ॥५॥
राम विलोकि बन्धु कर जोरे ❋ देह गेह सब सन तृण तोरे ॥६॥

मुझे रघुनाथजी क्या आज्ञा देंगे, घरमें रखेंगे वा साथ ले चलेंगे ! जानकीजी तो अर्द्धांगिनी हैं, सङ्ग जानेका अधिकार है, मैं दास हूँ मुझे आज्ञा माननी होगी ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने देखा कि बंधु हाथ जोड़े देह गेह सबसे तृण समान मोह त्याग विरक्त हुए हैं ॥ ६ ॥

बोले वचन राम नयनागर ❋ शील सनेह सकल सुखसागर ॥७॥
तात प्रेम वश जनि कदराहू ❋ समुझि हृदय परिणाम उछाहू ॥८॥

नीतिमें चतुर शील और स्नेहयुक्त सीधे सुखके समुद्र रघुनाथजी बोले। नयनागर कहनेका

---

१. भ०–"जब रघुपति संग सीय चली। विकल वियोग लोग सुरतिय, कह, अति अन्याउ अली। कोऊ कह मणिगण तजत कांच लगि करत न भूप भली ॥ एक कहैं बनयोग जानकी विधि बड़ विषम बली। कोउ कह कुल कुबेलि कैकेयी, दुःख विष फलनि फली। तुलसी कुलिशहुकी कठोरता, तेहि दिन दलकि दली ॥"

भाव यह है कि घर रहनेकी आज्ञा दी, शील स्नेह सुखसागरका भाव यह है कि संग ले चले ॥७॥ हे तात ! प्रेम वश हो मत डरो, हृदयमें वनगमन का फल समझ उत्साह करो ॥ ८ ॥

दोहा-मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करहिं सुभाय ॥
लहेउ लाभ तिन जन्म कर, न तरु जन्म जग जाय ॥१०२॥

जो माता, पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षा अच्छे प्रकार शिर धारण करते हैं वे ही जन्मका लाभ पाते हैं नहीं तो जन्म जगत्में योंही जाता है ॥ १०२ ॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई * करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥१॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं * राउवृद्ध मम दुख मनमाहीं ॥२॥

ऐसा जीमें जानकर हे भाई ! माता पिताके चरणोंकी सेवा करो, यही हमारी शिक्षा है ॥ १ ॥ घरमें भरत और शत्रुघ्न नहीं हैं, राजा बूढ़े हैं और मनमें मेरा दुःख है ॥ २ ॥

मैं बन जाउँ तुमहिं लै साथा * ह्वैहै सब विधि अवध अनाथा ॥३॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू * सब कहँ परइ दुसह दुख भारू ॥४॥

मैं वनमें तुम्हें साथ लेकर जाऊँ तो अयोध्या सब विधि अनाथ हो जायगी ॥ ३ ॥ गुरु, पिता, माता प्रजा परिवार सबको बड़ा कठिन दुःख पड़ेगा ॥ ४ ॥

रहहु करहु सब कर परितोषू * नतरु तात हुइहै बड़ दोषू ॥५॥
जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी *सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥६॥

हे तात ! रहो और सबको समझाते रहो, नहीं तो बड़ा दोष होगा ॥ ५ ॥ जिस राजाके राज्यमें प्यारी प्रजा दुःखित रहती है वह राजा निश्चय नरकमें जाता है, तुम्हारे रहनेसे ये दोष दूर हो जायँगे-"क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्" मनुः ॥ ६ ॥

रहहु तात अस नीति विचारी *सुनत लषण भये व्याकुल भारी॥७॥
सियरे वचन सूखि गये कैसे * परसत तुहिन तामरस जैसे ॥८॥

हे भ्रातः ! ऐसी नीति विचार कर रहो, यह सुनकर लक्ष्मणजी बहुत व्याकुल हुए ॥ ७ ॥ शीतल वचनोंको सुनकर ऐसे सूख गये जैसे पालेके छूनेसे कमल ॥ ८ ॥

दोहा-उतरु न आवत प्रेमवश, गहे चरण अकुलाय ॥
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तौ कहा बसाय ॥ १०३ ॥

लक्ष्मणजी यह वचन सुनकर ऐसे प्रेमके वश हुये कि कुछ उत्तर नहीं आया । व्याकुल हो चरण पकड़ लिए और बोले-हे नाथ ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हो मुझे त्याग करोगे तो मेरा क्या वश है ! ॥ १०३ ॥

दीन मोहिं सिख नीकि गुसांई * लागि अगम अपनी कदराई ॥१॥
नर वर धीर धर्मधुर-धारी * निगम नीतिके ते अधिकारी ॥२॥

महाराज ! आपने मुझे अच्छी शिक्षा दी है, परन्तु अपनी कायरता अर्थात् डरसे मुझे अगम लगता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य श्रेष्ठ, धीर धर्मके धारण करने वाले हैं वे राजनीति वा वेदनीतिके अधिकारी हैं, सेवकका तो सेवा करना ही धर्म है ॥ २ ॥

मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला * मंदर मेरु कि लेइ मराला ॥३॥
गुरु पितु मातु न जानहु काहू * कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू ॥४॥

मैं बालक तो आपके प्रेमसे पाला गया हूँ कहीं हंससे मेरु पर्वत उठता है ? अर्थात् नहीं॥३॥ मैं गुरु, पिता, माता किसीको नहीं जानता स्वभावसे कहता हूँ, हे प्रभु विश्वास मानिये ॥ ४ ॥

जहँ लगि नाथ सनेह सगाई * प्रीति प्रतीत निगम निज गाई॥५॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी * दीन बन्धु उर-अन्तरयामी ॥६॥

हे नाथ जहांतक स्नेह, सगाई, प्रीति-प्रतीति शास्त्रने स्वयं गाई है ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! मेरे तो सर्वस्व एक आप ही हो-हे दीन बन्धु ! आप हृदयकी बात जाननेवाले हो ॥ ६ ॥

धर्मनीति उपदेशिय ताही * कीरति भूति सुगतिप्रिय जाही ॥७॥
मन क्रम वचन चरणरति होई * कृपासिंधु परिहरिय कि सोई ॥८॥

धर्म तथा नीतिका तो उपदेश उसे दीजिये जिसे कीर्ति, ऐश्वर्य और अच्छी गतिमें प्रीति हो ॥७॥ हे कृपासिंधु ! मन, वाणी, कर्मसे जिनकी चरणोंमें प्रीति हो क्या उसे त्यागना उचित है ? अर्थात् नहीं कृपासिंधु कहने का भाव यह, ऐसे समय कृपा अवश्य करोगे ॥ ८ ॥

दोहा-करुणासिन्धु सुबंधुके, सुनि मृदु वचन विनीत ॥
समुझाये उर लाय प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥ १०४ ॥

करुणाके समुद्र प्रभुने सुन्दर भाईके कोमल नम्र वचन सुनकर स्नेहसे सभीत जानकर हृदय से लगाय और समझाया ॥ १०४ ॥

माँगहु विदा मातु सन जाई * आवहु बेगि चलहु वन भाई ॥१॥
मुदित भये सुनि रघुवर बानी * भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥२॥

हे भाई ! जाओ मातासे विदा होकर शीघ्र आओ, वनको चलो ॥ १ ॥ रामजीकी वाणी सुनकर प्रसन्न हुए मानो बड़ा लाभ हुआ और बड़ी हानि गई ॥ २ ॥

हर्षित हृदय मातु पहँ आये * मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये॥३॥
जाय जननि पद नायउ माथा * मन रघुनन्दन जानकि साथा ॥४॥

प्रसन्न हृदय होकर माताके समीप आये, मानो अन्धेने फिर नेत्र पाये, अर्थात् रामजानकी नेत्ररूप वनको जाते थे वे अब साथ रहेंगे ॥ ३ ॥ जाकर माताके चरणोंमें शिर नवाया, परन्तु मन रघुनन्दन और जानकीजीके सङ्ग था ॥ ४ ॥

पूछेउ मातु मलिन मन देखी * लषण कही सब कथा विसेखी ॥५॥
गई सहमि सुनि वचन कठोरा * मृगी देखि दवजनु चहुँ ओरा ॥६॥

माताने मलिन मन देख कारण पूछा, तो लक्ष्मणजीने सब वृत्तांत सुनाया ॥ ५ ॥ सुमित्रा कठोर वचन सुनकर सहम गयी, जैसे मृगी चारों ओर अग्नि देखकर व्याकुल हो जाती है॥६॥

लषण लखेउ भा अनरथ आजू * यह सनेह वश करब अकाजू ॥७॥
माँगत विदा सभय सकुचाहीं *जान संग विधि कहिहि कि नाहीं॥८॥

लक्ष्मणने देखकर जाना कि आज अनर्थ हुआ, यह स्नेहवश अकाज करेंगी अर्थात् वन जाने न देंगी ॥७॥ भयसे बिदा मांगते सकुचाते हैं; हे विधाता ! संग जानेको आज्ञा देंगी या नहीं ॥८॥

दोहा-समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील स्वभाव ॥
नृपसनेह लखि धुनेउ शिर, पापिन कीन्ह कुदाव ॥ १०५ ॥

श्रीराम और जानकीजीका रूप सुशील स्वभाव समझ कर और राजाका प्रेम देखकर सुमित्राने शिर धुना और कहा-पापिनीने कुदाव किया जिसमें हार ही रही है ॥ १०५ ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी ❋ सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥१॥
तात तुम्हारि मातु वैदेही ❋ पिता राम सब भाँति सनेही ॥२॥

फिर सुमित्राने कुसमय जानकर धीरज धरा और सरल हृदयसे कोमल वाणी बोली ॥१॥ हे पुत्र ! तुम्हारी माता जानकी और पिता रामजी हैं, सब भांतिसे प्रेम करनेवाले हैं ॥ २ ॥

अवध तहाँ जहँ राम निवासू ❋ तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥३॥
जौं पै सीय राम वन जाहीं ❋ अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥४॥

जहां राम रहें वही अवध जानो, जहां सूर्य प्रकाश करे वहीं दिन होता है ॥३॥ हे पुत्र ! यदि सीता और राम वनको जाते हैं तो तुम्हारा अयोध्यामें कुछ काम नहीं है ॥ ४ ॥

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं ❋ सेइय सकल प्राणकी नाईं ॥५॥
राम प्राणप्रिय जीवन जीके ❋ स्वारथ रहित सखा सबहीके ॥६॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता, स्वामी इन सबकी प्राणोंके समान सेवा करनी चाहिए ॥५॥ रामजी प्राणों के प्यारे और जी के जीवन हैं, स्वार्थ रहित सबके मित्र हैं "द्वासुपर्णासयुजासखाया" यह श्रुति ऋग्वेदमें भी प्रसिद्ध है, इससे यह सिद्ध है कि जीव और ईश परस्पर सखा हैं ॥ ६ ॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँते ❋ मानिय-सकल रामके नाते ॥७॥
अस जिय जानि संग वन जाहू ❋ लेहु तात जगजीवन-लाहू ॥८॥

जहां तक परमप्रिय पूजनीय हैं, वे सब रामके नाते माने जाते हैं। अथवा उन्हींके नाते से सब पूजनीय माने जाते हैं, जो रामके सम्बन्धसे हीन हैं उन्हें पूजनीय मानना नहीं ॥७॥ हे तात ! ऐसा जीमें विचार कर संगमें वनको जाओ, जगत्में जीवनका लाभ लो ॥ ८ ॥

दोहा-भूरि भाग्य भाजन भयउ, मोहि समेत बलि जाउँ ॥
जो तुम्हरे मन छांड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥१०६॥

मुझ सहित बड़े भाग्यके पात्र हुए। मैं बलिहारी हूँ-जो तुमने छल छोड़ रामजीके चरणकमलों में मन लगाया ॥ १०६ ॥

पुत्रवती युवती जग सोई ❋ रघुवर-भक्त जासु सुत होई ॥१॥
नतरु बाँझ भलि बादि वियानी ❋ राम विमुख सुतते हित हानी ॥२॥

जगत्में वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र रघुवीर का भक्त हो॥१॥नहीं तो बांझही भली वृथा ही व्यायीं, क्योंकि रामविमुख पुत्रसे हितकी हानि होती है। शंका-व्यायी शब्दका तो प्रयोग पशुओमें होता है, मनुष्योंमें कैसे हुआ ? उत्तर-परमेश्वरसे विमुख पशुके समान ही हैं ॥२॥

तुम्हरेइ भाग राम वन जाहीं ❋ दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥३॥
सकल सुकृत कर बड़ फल येहू ❋ राम सिया पद सहज सनेहू ॥४॥

हे पुत्र! तुम्हारे ही भाग्य से राम वनको जाते हैं दूसरा कुछ कारण नहीं क्योंकि पापियोंका भार पृथ्वीपर और भूमिका भार शेषजी पर है, वही भार उतारनेको रामचन्द्र वनको चले हैं तुम्हारे भले भाग्य खुले हैं, अथवा तुम वनमें अच्छी भाँति सेवा कर सकोगे इससे तुम्हारा बड़ा भाग्य है॥३॥ सब पुण्योंका यही बड़ा फल है, जो राम सीताके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

राग रोष ईर्षा मद मोहू * जनि स्वपनेहु इनके वश होहू ॥५॥
सकल प्रकार विकार विहाई * मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥६॥

हे पुत्र ! स्वप्नमें भी राग, रोष, ईर्षा, मद, मोहके वश मत होना ॥ ५ ॥ और सब प्रकारसे विकार छोड़कर मन, वचन, कर्मसे रामजीकी सेवा करना ॥ ६ ॥

तुम कहँ वन सब भाँति सुपासू * सँग पितु मातु राम सिय जासू॥७॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेशू * सुत सोइ करहु यहै उपदेशू ॥८॥

तुमको वनमें सब भाँतिसे सुख है, कारण कि राम और जानकी तुम्हारे पिता-माता साथ हैं ॥७॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें वही करना, यही उपदेश है ॥८॥

छन्द–उपदेश यह जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आशिष दई ।
रति होहु अविरल अमल सिय रघुवीर पद नित नित नई ॥ १५ ॥

हे पुत्र! रघुनाथजीको और जानकीजीको जिस प्रकारसे कोई दुःख न हो वही कार्य करना, यही मेरा उपदेश है और मात-पिता, प्रिय परिवार अयोध्याके सुखकी सुध वनमें विसरा देना। तुलसीदासजी कहते हैं इस प्रकार पुत्रको शिक्षा देकर फिर आशीर्वाद दिया कि श्रीजानकीजी और रघुनाथके चरणकमलमें तुम्हारी उज्ज्वल नित्य नयी प्रीति हो, जिसमें कभी अन्तर न आवे ॥१५॥

सोरठा–मातुचरण शिर नाय, चले तुरत शंकित हृदय ॥
बागुरु विषम तुराय, मनहुँ भाग मृग भागवश ॥ १० ॥

माताजीके चरणोंमें शिर नवाय शंकित हृदय हो लक्ष्मणजी शीघ्र चले। शंकितका भाव यह कि फिर माता नाहीं न कर दें; अथवा कहीं रामजी चले न गये हों, मानों तीक्ष्ण जाल तुरा कर भाग्यके वश मृग भागा हो ॥ १० ॥

गये लषण जहँ जानकि नाथा * भे मन मुदित पाय प्रिय साथा ॥१॥
बंदि राम सिय चरण सुहाये * चले संग नृप-मंदिर आये ॥२॥

जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ लक्ष्मणजी शीघ्र गये और प्रियका साथ पाया मनमें प्रसन्न हुए ॥१॥ राम सीताके सुंदर चरणोंको नमस्कार करके साथ चले और राजमंदिरमें आये ॥ २ ॥

कहहिं परस्पर पुर नर नारी * भलि बनाय विधि बात बिगारी॥३॥
तनु कृश मन दुख वदन मलीने * विकल मनहुँ माखी मधु छीने॥४॥

पुरके नरनारी परस्पर कहने लगीं-विधाताने भली बात बनाकर बिगाड़दी ॥ ३ ॥ शरीर सूख गये, मनमें दुःखी, मुख मलिन हुये, जैसे मधु छिन जानेसे मक्खी विकल हों ॥ ४ ॥

कर मींजहिं शिर धुनि पछिताहीं *जिमि बिनु पंख विहँग अकुलाहीं॥५॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा * जाय न वरणि विषाद अपारा ॥६॥

हाथ मलते हैं, शिर धुनकर पछताते हैं, जैसे विना पंखके पक्षी अकुलाते हैं ॥ ५ ॥ राजाके दरबार में बड़ी भीड़ हुई, बड़ा विषाद हुआ, जो वर्णन नहीं किया जा सकता ॥६॥

सचिव उठाय राउ बैठारे ❋ कहि प्रिय वचन राम पगु धारे॥७॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी ❋ व्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥८॥

मन्त्री ने उठाकर राजाको बैठाया और प्रिय वचन कहे कि महाराज ! श्रीरामचन्द्रजी आये हैं ॥ ७ ॥ जानकी सहित दोनों पुत्रों को देख कर राजा अधिक व्याकुल हुये ॥ ८ ॥

दोहा-सीयसहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाय ॥
बारहिं बार सनेह-वश, राउ लिये उर लाय ॥ १०७ ॥

जानकी सहित सुन्दर दोनों पुत्रोंको देख व्याकुल होकर स्नेहके वश हो राजाने बार बार हृदयसे लगाया ॥ १०७ ॥

सकइ न बोलि विकल नरनाहू ❋ शोकजनित उर दारुण दाहू ॥१॥
नाइ शीश पद अतिअनुरागा ❋ उठि रघुनाथ विदा तब माँगा ॥२॥

राजा बोल नहीं सके, शोकसे व्याकुल हो गये, हृदयमें बड़ा दुःख हुआ ॥ १ ॥ चरणों में अत्यन्त प्रेमसहित शिर नवाकर रामजीने उठकर विदा माँगी ॥ २ ॥

पितु अशीष आयसु मोहिं दीजै ❋ हर्ष समय विस्मय कत कीजै ॥३॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू ❋ यश जग जाय होय अपवादू ॥४॥

हे पिताजी ! मुझे आशीष और आज्ञा दीजिये, हर्षका समय है विस्मय क्यों करते हो॥३॥ पिताजी मोहसे प्रियजनमें प्रेम करनेसे प्रमाद गिना जायगा,जगत्में यश जाता रहेगा,निंदा होगी४

सुनि सनेह वश उठि नरनाहा ❋ बैठारे रघुपति गहि बाँहा ॥५॥
सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं ❋ राम चराचर नायक अहहीं ॥६॥

सुनकर राजाने स्नेह वश हो उठकर रघुनाथजीको बाँह पकड़ बैठाया ॥ ५ ॥ सुनो रघुनाथजी ! तुम्हें मुनि जन कहते हैं कि रामजी चराचरके स्वामी हैं ॥ ६ ॥

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी ❋ ईश देइ फल हृदय विचारी ॥७॥
करै जो कर्म पाव फल सोई ❋ निगम नीति अस कह सब कोई॥८॥

ईश्वर अच्छे और बुरे, कर्मोंका फल कर्मानुसार हृदयमें विचार कर देता है ॥ ७ ॥ जो कोई जैसा कर्म करता है, वही फल पाता है, यह वेद और नीति सब कोई कहता है अर्थात् लोक और वेद सम्मत बात है ॥ ८ ॥

दोहा-और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग ॥
अति विचित्र भगवन्तगति, को जग जानै योग ॥ १०८ ॥

और कोई अपराध करे और कोई उसका फल पावे, यह भगवान्की गति परम विचित्र है, इसे कौन जाने ? अर्थात् हम अपराध करें; तुम उसका फल भोगो ॥ १०८ ॥

राव राम राखन हित लागी ❋ बहुत उपाय किये छल त्यागी॥१॥
लखा रामरुख रहत न जाने ❋ धर्म-धुरंधर धीर सयाने ॥२॥

राजाने श्रीरामचन्द्रजीके रखनेको छल त्यागकर बहुत उपाय किये, पहले कैकेयीको समझाया "राखु राम कहँ जेहि तेहि भांती" और "भरतहि अवशि देहु युवराजू" फिर दैवी उपाय किया-"विधिहि मनाव राउ मनमाहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥ सुमिर महेशहि कहहिं निहोरी" इत्यादि जानना॥ १॥ श्रीरामचन्द्रजीका रुख देखकर जाना कि रहेंगे नहीं क्योंकि धर्मकी धुरी धारण करने वाले और चतुर हैं। अथवा धराकी धुरी धारण करने वाले राजाने जब जाना कि रामचन्द्रजी न रहेंगे तब सावधानीसे धैर्य धारण किया॥ २॥

तब नृप सीय लाय उर लीन्ही * अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥३॥
कहि वनके दुःख दुसह सुनाये * सासु श्वसुर पितु सुख समझाये॥४॥

तब राजाने जानकीजीको हृदयसे लगा लिया; अतिहितसे बहुत भांति शिक्षा दी॥३॥ अनेक कठिन दुःख कह सुनाये और सास श्वसुर, पिताके यहां रहनेके भी सुख समझाये॥४॥

सिय मन राम चरण अनुरागा * घर न सुगम वन विषम न लागा॥५॥
औरहु सबहिं सीय समुझाई * कहि कहि विपिनविपति अधिकाई॥६॥

जानकीजी का मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें ऐसा लग रहा था कि घर तो सुगम नहीं लगा और सङ्ग जानेमें वन कठिन नहीं मालूम हुआ॥ ५॥ और भी सब लोगोंने वनके अधिक दुःख कहकर जानकीजीको समझाया॥ ६॥

सचिव नारि गुरु नारि सयानी * सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥७॥
तुम कहँ तौ न दीन वनवासू * कहहु जो कहिहिं श्वसुर गुरु सासू॥८॥

मन्त्रीकी स्त्री, गुरुकी स्त्री, सयानी प्रेमपूर्वक कोमल वाणीसे समझाने लगीं॥ ७॥ तुम्हें तो वनवास नहीं दिया है, इस कारण जो श्वसुर, गुरु और सासु कहें वह करो॥ ८॥

दोहा-शिख शीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सुहानि॥
शरदचन्द्र चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥ १०९॥

शीतल हितयुक्त मीठी कोमल सीख सुनकर जानकीजीको अच्छी न लगी, जैसे शरदऋतु के चन्द्रमाकी चांदनीके स्पर्शसे चकई व्याकुल हो जाती है, यद्यपि चांदनी सबको सुखदायी है पर चकईको दुःखदायी होती है॥ १०९॥

सीय सकुच-वश उतर न देई * सो सुनि तमकि उठी कैकेयी॥१॥
मुनिपट भूषण भाजन आनी * आगे धरि बोली मृदु बानी॥२॥

जानकीजीने संकोच वश उत्तर नहीं दिया, वह सुनकर कैकेयी तमक उठी। तमकि उठनेका यह भाव है कि कैकेयीने जाना जो इन्होंने उत्तर न दिया तो रहनेका विचार है॥ १॥ मुनि-वस्त्र मृगछालादि भूषण, तुलसी, कमंडलु आगे धरके कोमल वाणी बोली॥ २॥

नृपहि प्राणप्रिय तुम रघुवीरा * शील सनेह न छाँड़िहिं भीरा॥३॥
सुकृत सुयश परलोक नशाऊ * तुमहिं जान वन कहहिं न काऊ॥४॥

हे राम! तुम राजाको प्राणोंके समान प्यारे हो; वे शील स्नेहकी भीर अर्थात् भयको नहीं छोड़ेंगे॥३॥ सुकृत, यश, परलोक चाहे नष्ट हो जाय पर राजा तुम्हें वन जानेको कभी नहीं कहेंगे॥४॥

अस विचारि सोइ करहु जो भावा ❋ रामजननि सिखसुनि सुख पावा॥५॥
भूपहि वचन बाण सम लागे ❋ करहिं न प्राण पयान अभागे ॥६॥

ऐसा विचार जो तुम्हें भावे वह करो; राज्य सिंहासन भी प्रस्तुत है और वन जानेको मुनि पट आदि भी आगे धरे हैं; रामचन्द्रजीने माताकी शिक्षा सुनकर सुख पाया ॥५॥ राजाको कैकेयीके वचन बाणोंके समान लगे और कहने लगे अभागे प्राण जाते नहीं ॥ ६ ॥

अथ क्षेपक

जब मुनि वसन राम तनु धारे ❋ नर नारी लखि भये दुखारे ॥७॥
पहिरे लषण वसन तनु माहीं ❋ सीय गई लखि सहमि तहांहीं॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने शरीरमें मुनि वस्त्र धारण किये तब स्त्री पुरुष सब देखकर बहुत दुःखी हुए ॥७॥ लक्ष्मणजीने शरीरमें वस्त्र पहिरे, जानकीजी देख वहां सहम गयीं ॥ ८ ॥

हाथ लिये वल्कल सुकुमारी ❋ ठाढ़ी भई लाज उर भारी ॥९॥
पहिरि न जानत मन अकुलानी ❋ राम ओर लखि कह मृदुबानी॥१०॥

वह सुकुमारी हाथमें वल्कल लिये बड़ी लज्जासे खड़ी रह गयी ॥९॥ पहरना नहीं जानती थीं इससे मनमें व्याकुल हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख कोमल बाणीसे बोलीं॥१०॥

मुनिजन केहि विधि बाँधत चीरा ❋ सो नहिं मैं जानत रघुवीरा ॥११॥
अस कहि चल्यो नैन बहि बारी ❋ सुनि प्रभु उठे धीर धरि भारी॥१२॥

भगवन् ! मुनि जन किस प्रकारसे चीर बांधते हैं, वह मैं नहीं जानती ॥ ११ ॥ ऐसे कहते जानकीजीके नेत्रोंसे जल बह चला । प्रभु श्रीरामचन्द्रजी महाधीरज धर उठे ॥ १२ ॥

निज करसों पहिरावन लागे ❋ लखि नर नारि महादुख पागे॥१३॥
तब वसिष्ठ उठि कियो निवारण ❋सिय नहिंकरिहैं यह पट धारण॥१४॥

तब श्रीरामचन्द्रजी अपने हाथसे वस्त्र पहनाने लगे यह देखकर सब नरनारी महा दुःखी हुए ॥१३॥ तब वसिष्ठजीने उठकर मना किया कि जानकीजी यह वस्त्र धारण नहीं करेंगी ॥ १४ ॥

दोहा-सुन्दर भूषण वसन युत, सिया चलहिं प्रभु साथ ॥
सुनि वसिष्ठ के वचन तब, तजे वसन रघुनाथ ॥ ११० ॥

जानकीजी सुन्दर भूषण, वस्त्र पहनकर प्रभुके पास जायँगी ये वसिष्ठजीके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वल्कल वस्त्रोंका पहनाना छोड़ दिया ॥ ११० ॥

इति क्षेपक

लोक विकल मूर्छित नर नाहू ❋ काह करिय कछु सूझ न काहू॥१॥
राम-तुरत मुनि-वेष बनाई ❋ चले जनक जननिहिं शिरनाई॥२॥

लोग व्याकुल हो गये,राजा मूर्छित हुए, क्या करना चाहिए ? किसीको कुछ सूझता नहीं ॥ १ ॥ रामचन्द्रजी तुरन्त मुनिका वेष बनाकर माता-पिताको शिर नवाकर चले ॥ २ ॥

दोहा-सजि वन साज समाज सब, वनिता बन्धु समेत ॥
बंदि विप्र गुरुचरण प्रभु, चले करि सबहिं अचेत ॥ १११ ॥

सब वनका समाज भार और स्त्री सहित सजाय ब्राह्मण और गुरुके चरणोंको नमस्कार करके प्रभु सबको अचेत कर चले ॥ १११ ॥

निकसि वसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े * देखे लोग विरह-दव दाढ़े ॥१॥
कहि प्रिय वचन सकल समुझाये * विप्र-वृन्द रघुवीर बुलाये ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी निकल कर वसिष्ठजीके दरवाजे पर खड़े हुए, वहाँ देखा कि लोग विरह-रूपी अग्निसे व्याकुल हो रहे हैं ॥ १ ॥ प्रिय वचन कहकर रघुनाथजीने सबको समझाया और ब्राह्मणोंके समूहको बुलाया ॥ २ ॥

गुरुसन कहि वरषाशन दीन्हे * आदर दान विनय वश कीन्हे ॥३॥
याचक दान मान सन्तोषे * मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥४॥

गुरुसे कहकर वर्षाशन अर्थात् चौदह वर्ष तक भोजन करनेके लिये उनको द्रव्य दिया और (क्षत्रियादिकोंको) विनयसे वशमें किया ॥ ३ ॥ याचकोंको दान मानसे संतोष दिया और मित्रोंको पवित्र प्रेमसे संतुष्ट किया ॥ ४ ॥

दासी दास बुलाय बहोरी * गुरुहिं सौंप बोले कर जोरी ॥५॥
सबकै सार सँभार गुसांई * करब जनक जननी की नाई ॥६॥

फिर दासी दासोंको बुलाकर गुरुको सौंप हाथ जोड़ कर बोले ॥ ५ ॥ स्वामी ! आप इन सबकी सार सँभार माता पिताके समान करना ॥ ६ ॥

बारहिंबार जोरि युग पानी * कहत राम सबसन मृदु बानी ॥७॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी * जाते रहहिं भुवाल सुखारी ॥८॥

बार बार दोनों हाथ जोड़कर श्री रामचन्द्रजी सबसे कोमल वाणी द्वारा कहते हैं ॥ ७ ॥ कि वही व्यक्ति सब प्रकार मेरा हितकारी है जिससे राजा सुखी रहें ॥ ८ ॥

दोहा-मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहिं दुखदीन ॥
सोइ उपाय तुम करब सब, पुरजन परम प्रवीन ॥ ११२ ॥

सब माताएँ मेरे वियोगमें जिससे दुःखी और दीन न हों, हे पुरवासियो ! आप सब लोग परम चतुर हो, वही उपाय करना ॥ ११२ ॥

यहि विधि राम सबहि समुझावा * गुरुपदपद्म हर्षि शिर नावा ॥१॥
गणपति गौरि गिरीश मनाई * चले अशीष पाय रघुराई ॥२॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने सबको समझाया और गुरुके चरणकमलमें प्रसन्न होकर शिर नवाया ॥ १ ॥ और गणेश, पार्वती, शिवजीको मनाय आशीष पाय रघुनाथजी चले ॥२॥

राम चलत अति भयउ विषादू * कहि न जाय पुर आरत नादू ॥३॥
कुशकुन लंक अवध अतिशोकू * हर्ष विषाद विवश सुरलोकू ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके चलनेके समय पुरवासियोंको बड़ा दुख हुआ और नगरमें जो आर्तनाद (हाहाकार) का शब्द हुआ वह कहा नहीं जाता ॥३॥ लंकामें (मृत्युसूचक) अशकुन होने लगे

सवैया-कागर कीर ज्यों भूषण चीर शरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई। मातु पिता प्रिय लागे सबै सनमानि सुभाइ सनेह सगाई ॥ संग सुभामिनि भाई भलो दिन है जनु औधहुते पहुनाई। राजिवलोचन राम चले तजि, बापको राज बटाउ कि नाई ॥

और अयोध्यामें महान् शोक हुआ, देवता हर्ष विषादके वश हुए, अर्थात् लंकाके अशकुन देखकर खुशी और अयोध्याकी घोर विपत्ति देखकर दुःखी हुए, यद्यपि अपनी ही करतूत है, तो भी अधिक दुःख हुआ ॥ ४ ॥

गइ मुर्छा तब भूपति जागे ✻ बोलि सुमन्त कहन अस लागे ॥५॥
राम चले बन प्राण न जाहीं ✻ केहि सुख लागि रहे तनु माहीं ॥६॥

जब मुर्छा गयी राजा दशरथजीको चेत हुआ तो सुमन्तको बुलाकर कहने लगे ॥५॥ मंत्रिवर ! राम तो वनको चल दिये;किन्तु प्राण नहीं जाते; न जाने किस सुखके हेतु शरीरमें रहे हैं॥६॥

यहिते कवनि व्यथा बलवाना ✻ जो दुख पाय तजहिं तनु प्राना ॥७॥
पुनि धरि धीर कहै नरनाहू ✻ लै रथ संग सखा तुम जाहू ॥८॥

इससे अधिक और बलवान् कौनसा दुख होगा जिसको पाकर प्राण शरीरको छोड़ेंगे?॥७॥ फिर धीरज धरकर राजाने(सुमन्तसे)कहा—हे सखा ! आप रथ लेकर रघुनाथजीके साथ जाइये॥८॥

दोहा-सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ॥
रथ चढ़ाय दिखराय वन, फिरेहु गये दिन चारि ॥ ११२॥

सुन्दर सुकुमार दोनों कुमार तथा जानकी सुकुमारीको रथमें चढ़ाय वन दिखलाय चार दिन बीते लौट आइये ॥ ११२ ॥

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई ✻ सत्यसंध दृढ़-व्रत रघुराई ॥१॥
तौ तुम विनय करेहु कर जोरी ✻ फेरिय प्रभु मिथिलेश किशोरी॥२॥

जो धैर्यवान् दोनों भाई नहीं लौटें क्योंकि रघुनाथजी सत्यसन्ध अर्थात् सत्यप्रतिज्ञावाले और दृढ़व्रत हैं॥१॥ तो आप हाथ जोड़कर विनय करना कि हे प्रभु! जानकीजीको ही लौटा दीजिये। मिथिलेश किशोरी कहनेका यह भाव कि जनकजीको हम क्या उत्तर देंगे ? ॥२॥

जब सिय कानन देखि डराई ✻ कहेउ मोरि सिख अवसर पाई ॥३॥
सासु श्वसुर अस कहेउ सँदेशू ✻ पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेशू ॥४॥

जब जानकी वनको देख डरें तो मेरी शिक्षा अवसर (मौका) पाकर कहना ॥ ३॥ सासु श्वसुरने ऐसा सदेशा कहा है, हे पुत्री ! घर लौट चलो, वनमें बहुत क्लेश हैं ॥ ४ ॥

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी ✻ रहेउ जहाँ रुचि होय तुम्हारी ॥५॥
इहि विधि करेहु उपाय कदम्बा ✻ फिरइ तो होय प्राण अवलम्बा ॥६॥

कभी पिताके घर,कभी ससुरालमें जहां तुम्हारी रुचि हो वहां रहा करना ॥५॥ इस प्रकारसे अनेक उपाय करना,क्योंकि जो जानकीजी लौट आवेंगी तो प्राणोंका सहारा हो जायगा॥६॥

नाहित मोर मरण परिणामा ✻ कछु न बसाय भयो विधि वामा॥७॥
अस कहि मूर्छि परयो महिराऊ ✻ रामलषण सिय आनि दिखाऊ॥८॥

नहीं तो मेरा अन्तमें मरण ही है, अब कुछ नहीं बसाता, विधाता वाम अर्थात् उलटा हो गया है ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर राजा पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर गये और कहा कि रामचंद्र, लक्ष्मण, जानकीजीको लाकर दिखाओ ॥ ८ ॥

दोहा-पाय रजायसु नाय शिर, रथ अति बेगि बनाइ ॥
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥ ११४ ॥

मन्त्री राजाकी आज्ञा पाय शिर नवाय रथ अति वेगसे बनाय जहां नगरके बाहर सीताजीके सहित श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी थे वहां गया ॥ ११४ ॥

तब सुमन्त नृप वचन सुनाये * करि विनती रथ राम चढ़ाये ॥१॥
रथ चढ़ि सीय सहित दोउ भाई * चले हृदय अवधहि शिर नाई ॥२॥

तब सुमंतने राजाके वचन सुनाये और विनती करके रामजीको रथमें चढ़ाया ॥१॥ रथमें चढ़कर सीता सहित दोनों भाई मनमें अयोध्याको शिर नवाय चले ॥ २ ॥

चलत राम लखि अवध अनाथा * विकल लोग लागे सब साथा ॥३॥
कृपासिंधु बहु विधि समुझावहिं * फिरहिं प्रेमवश पुनि फिरि आवहिं॥४॥

रामजीके चलते समय अयोध्याको अनाथ हुआ देखकर सब लोग व्याकुलहो साथ लगे॥३॥ कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रकारसे समझावें,लोग फिरें किंतु प्रेमवश फिर लौट आवें॥४॥

लागत अवध भयावन भारी * मानहुँ कालराति अँधियारी ॥५॥
घोर जन्तु सम पुर नर नारी * डरपहिं एकहि एक निहारी ॥६॥

अयोध्या बड़ी भयावनी लगती है; मानो अँधियारी कालरात्रि है ॥ ५ ॥ पुरके नर-नारी घोर जन्तुके समान हैं जो एक एकको देखकर डरते हैं ॥ ६ ॥

घर मसान परिजन जनु भूता * सुत हित मीत मनहु यमदूता ॥७॥
बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं * सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥८॥

घर श्मशानके समान;कुटुम्ब भूतके समान,और पुत्र हितू तथा मित्र यमदूतके समान हैं॥७॥ बागोंमें वृक्ष बेल कुम्हलाते हैं, नदी तालाब देखे नहीं जाते, अर्थात् भयावने लगते हैं॥ ८ ॥

दोहा-हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुरपशु चातक मोर ॥
पिक रथांग शुक सारिका, सारस हंस चकोर ॥ ११५ ॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, केलिमृग (रखनेके मृग), पुरपशु (गाय आदि) चातक, मोर पपीहा, चक्रवाक, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर ॥ ११५ ॥

राम वियोग विकल सब ठाढ़े * जहँ तहँ मनहुँ चित्रलिखि काढ़े॥१॥
नगर सकल वनु गहबर भारी * खगमृग विपुल सकल नरनारी ॥२॥

सब कोई श्रीरामचन्द्रजीके वियोगमें व्याकुल हो खड़े हो गये;मानो जहां-तहां किसीने चित्रमें लिखकर काढ़ा हो॥१॥संम्पूर्ण नगर बड़ा वनसा हो गया,उसमें नर-नारी बहुतसे खगमृग हैं॥२॥

विधि कैकेयी किरातिनि कीन्ही * जेहिदवदुसह दसहुँ दिशि दीन्ही॥३॥
सहि न सके रघुवर-विरहागी * चले लोग सब व्याकुल भागी ॥४॥

उस वनको जलानेके लिए कैकेयीको विधाताने किरातिनी किया, जिसने दशों दिशाओं में दुःसह अग्नि लगा दी ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी अग्नि न सह सके, इस कारण सब लोग व्याकुल हो संग भाग चले ॥ ४ ॥

सबहि विचार कीन्ह मनमाहीं * राम लषण सिय बिनु सुख नाहीं ॥५॥
जहां राम तहँ सबइ समाजू * बिनु रघुवीर अवध केहि काजू ॥६॥

सबने मनमें विचार किया कि राम, लक्ष्मण, जानकीके विना सुख नहीं ॥५॥ जहां श्रीरामचन्द्रजी हैं वहां ही सब समाज है, विना रघुनाथजीके हमारा अयोध्यामें क्या काम है?॥६॥

चले साथ अस मन्त्र दृढाई * सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई ॥७॥
राम चरण पंकज प्रिय जिनहीं * विषय भोगवश करहिं कि तिनहीं॥८॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओंको भी दुर्लभ सुखवाले घरोंको छोड़ श्रीरामचंद्रजीके साथ चले ॥७॥ जिनको श्रीरामचन्द्रजीके चरण कमल प्यारे हैं उनको क्या विषय भोग वशमें कर सकते हैं॥८॥

दोहा–बालक वृद्ध बिहाय गृह, लगे लोग सब साथ ॥
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥ ११६ ॥

बालक और बूढ़ोंको घरमें छोड़कर सब लोग रघुनाथजीके साथ चले। पहले दिन श्रीरघुनाथजीने तमसा नदीके किनारे विश्राम किया ॥ ११६ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृतटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतषष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

दोहा–यहि सप्तम विश्राममें, शृङ्गबेरपुर गौन ।
गंगा पार भये प्रभु, सो वर्णहुँ सुख भौन ॥ ७ ॥

रघुपति प्रजा प्रेम वश देखी * सदय हृदय दुख भयउ विसेखी॥१॥
करुणामय रघुनाथ गुसाईं * बेगि पाइअहि पीर पराईं ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाको प्रेमवश देखा तो दयायुक्त हृदय होनेसे विशेष दुःखी हुए।१॥दुखी होनेका हेतु कहते हैं कि जितेंद्रिय श्रीरघुनाथजी करुणामय हैं इससे पराई पीरको वेगही पागये॥२॥

कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाये * बहुविधि राम लोग समुझाये ॥३॥
किये धर्म–उपदेश घनेरे * लोग प्रेमवश फिरहिं न फेरे ॥४॥

प्रेमपूर्वक कोमल और सुन्दर वचन कहकर श्रीरघुनाथजीने अनेक प्रकारसे लोगोंको समझाया ॥३॥ अनेक धर्मके उपदेश किये किंतु लोग ऐसे प्रेमवश हुए कि फेरे नहीं फिरते, इससे विदित होता है कि प्रेम सर्वोपरि है। ज्यों-ज्यों श्रीरामचन्द्रजी प्रेमसे जानेको कहते हैं त्यों-त्यों वे अधिक प्रेमसे संग नहीं त्यागते ॥ ४ ॥

शील सनेह छाँड़ि नहिं जाई * असमंजस-वश भये रघुराई ॥५॥
लोग शोक श्रमवश गये सोई * कछुक देव माया मति मोई ॥६॥

शील और स्नेह नहीं छोड़ा जाता, रघुनाथजी दुचिताईके वश हुए, न संग ले जा सकें न कुछ कठिन वचन कह फेर सकें ॥ ५ ॥ सब लोग शोक और श्रमके वश हो सो गये, कुछ देवताओंने मति मोह दी ॥ ६ ॥

जबहिं याम युग यामिनि बीती * राम सचिवसन कहेउ सप्रीती ॥७॥
खोज मारि रथ हाँकहु ताता * आन उपाय बनै नहिं बाता ॥८॥

जब दोपहर रात बीत गयी तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रीतिपूर्वक मन्त्रीसे कहा ॥७॥ हे तात ! चिह्न मिटाकर रथ हांको, और उपायसे बात नहीं बनेगी ॥ ८ ॥

दोहा-रामलषण सिय यान चढ़ि, शम्भु चरण शिर नाय ॥
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराय ॥ ११७ ॥

राम,लक्ष्मण-जानकी रथमें बैठ शिवजीके चरणोंमें शिर नवाय चले और मन्त्री इधर-उधरसे खोज छिपाकर (अर्थात् पीछे झांखर बांधकर रथ चलाया । अथवा कुछ चलाकर फिर लौटाया और फिर चलाया ।) शंकरको प्रणाम करनेका भाव यह है कि अपने इष्टदेव हैं दूसरे रातमें चलना मना है, मार्गमें महादेवजीके गणोंसे विघ्न हो इससे प्रणाम किया । तीसरे अयोध्यावासी महाव्याकुल हैं, शिवजीको प्रणाम कर उनकी रक्षा चाही । चौथे महादेवजीका नाम मंगलके निमित्त स्मरण किया । पांचवें श्रीरामचन्द्रजी रावणके मारनेकी इच्छासे वनको जाते हैं और रावण महादेवजीका भक्त है इस कारण उनकी सहायता चाहते हैं ॥ ११७ ॥

जागे सकल लोग भये भोरू * गये रघुनाथ भयो अति शोरू ॥१॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं *रामराम कहि चहुँ दिशि धावहिं॥२॥

प्रातःकाल होते ही सब लोग जगे और 'रघुनाथजी चले गये' यह अत्यन्त शोक हुआ ॥ १ ॥ रथकी खोज कहीं नहीं पाते और राम-राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं ॥ २ ॥

मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू *भयउ विकल बड़ बनिक समाजू॥३॥
एकहि एक देहिं उपदेशू * तजेउ राम हम जानि कलेशू ॥४॥

मानों समुद्रमें जहाज डूब गया और वैश्योंका समाज बहुत व्याकुल हो गया हो॥३॥ एक एकको आपसमें उपदेश देने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीने क्लेश जानकर हमको त्याग दिया॥४॥

निंदहिं आपु सराहहिं मीना * धिग जीवन रघुबीर-विहीना ॥५॥
जो पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा * तौ कस मरण न माँगे दीन्हा ॥६॥

अपनी निंदा और मछलियोंकी सराहना करते हैं कि वे जलके विना नहीं जी सकतीं किंतु श्रीरघुनाथजीके विना हम जीते हैं, अतः हमारा जीना धिक्कार है । अथवा मीन भीलोंकी एक जाति है वही बड़भागी है क्योंकि भील रामचन्द्रजीका दर्शन करेंगे हम अभागी हैं जिनको श्रीरामचन्द्रजीने त्याग दिया ॥ ५ ॥ जो विधाताने प्रियका वियोग किया ही था तो मांगनेसे मरण क्यों न दिया ? ॥ ६ ॥

यहि विधि करत विलाप कलापा * आये अवध भरे परितापा ॥७॥
विषम वियोग न जाय बखाना * अवधि आश सब राखहिं प्राना॥८॥

इस प्रकार महाविलाप-कलाप करते हुए सब दुःख भरे अयोध्यामें आये ॥ ७ ॥ कठिन वियोग बखाना नहीं जाता, केवल अवधिकी आशा पर सबने प्राण रखे ॥ ८ ॥

दोहा-राम दरश हित नेम व्रत, लगे करन नर नारि ॥
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि ॥ ११८ ॥

रघुनाथजीके दर्शनहित लोग नेम और व्रत करने लगे, ऐसी दशा हो गयी जैसे चकवा-चकई और कमल सूर्यके विना दीन हो जाते हैं ॥ ११८ ॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई * शृंगबेर पुर पहुँचे जाई ॥१॥
उतरे राम देवसरि देखी * कीन्ह दण्डवत हर्ष बिसेखी ॥२॥

सीता मंत्रीसहित दोनों भाई शृंगबेरपुरमें जा पहुँचे ॥ १ ॥ गंगाजीको देखकर श्रीरामचन्द्रजी उतरे और प्रसन्न हो दंडवत्की ॥ २ ॥

लषण सचिव सिय कीन्ह प्रणामा ❋ सबहिं भाँति सुख पायउ रामा॥३॥
गंग सकल मुद-मंगल मूला ❋ सब सुख करनि हरनि सब शूला॥४॥

लक्ष्मण,जानकी और मन्त्रीने गंगाजीको प्रणाम किया और रघुनाथजीने सब प्रकार सुख पाया॥३॥गंगा सब आनन्द मंगलकी मूल हैं,सब सुख करनेवाली और सब दुःख हरनेवाली हैं॥४॥

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा ❋ राम विलोकति गंग-तरंगा ॥५॥
सचिवहिं अनुजहिं प्रियहिं सुनाई ❋ विबुध नदी महिमा अधिकाई ॥६॥

अनेक कथाओंके प्रसंग कहकर रघुनाथजी गंगाजीकी तरंग देखते हैं ॥ ५ ॥ रामचन्द्रजीने मन्त्री से, अनुज-लक्ष्मणसे जानकीजीसे गंगाजीकी अधिक महिमा वर्णन करके सुनायी ॥६॥

मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ ❋शुचिजल पियत मुदित मन भयऊ॥७॥
सुमिरत जाहि मिटहि श्रमभारू ❋तेहि श्रम यह लौकिक व्यवहारू॥८॥

मज्जन करनेसे, पंथका श्रम गया और पवित्र जलपान करनेसे चित्त प्रसन्न हुआ ॥ ७ ॥ जिसके स्मरण करनेसे, जन्मका भार मिट जाता है उसे श्रम होना संसारका व्यवहार है॥८॥

दोहा-शुद्ध सच्चिदानन्दमय, राम भानुकुल केतु ॥
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु ॥ ११९ ॥

शुद्ध सच्चिदानंदमय अर्थात् शुद्ध सदानंदस्वरूप रामजी भानुकुलकी ध्वजा हैं, मनुष्यों के से चरित करते हैं, संसारसागरके पार उतारनेको सेतु-पुल हैं ॥ ११९ ॥

यहि सुधि गुह निषाद जब पाई ❋ मुदित लिये प्रिय बन्धु बुलाई ॥१॥
लै फल फूल भेंट भरि भारा ❋ मिलन चलेउ हिय हर्ष अपारा॥२॥

यह सुध जब निषादोंके राजा गुहने पायी तब प्रसन्न होकर प्रिय बांधवोंको बुलाया। प्रिय भाइयोंका बुलानेका भाव यह है कि उत्तम पदार्थ अकेला न सेवन करना चाहिये ॥२॥ फल-फूल और भेंट लेकर प्रसन्न होकर मिलनेको चला ॥ २ ॥

करि दण्डवत भेंट धरि आगे ❋ प्रभुहि विलोकत अतिअनुरागे ॥३॥
सहज सनेह विवश रघुराई ❋ पूछी कुशल निकट बैठाई ॥४॥

दंडवत् करके आगे भेंट धरकर प्रसन्न होकर रघुनाथजीको देखने लगा ॥ ३ ॥ रघुनाथजी सनेहके वशमें हैं, निकट बैठाकर कुशल पूछने लगे ॥ ४ ॥

नाथ कुशल पद पंकज देखे ❋ भयउँ भाग-भाजन जन लेखे ॥५॥
देव धरणि धनु धाम तुम्हारा ❋ मैं जन नीच सहित परिवारा ॥६॥

गुह बोला--हे नाथ ! अब आपके चरणकमल देखने से कुशल हुआ भाग्यका पात्र हुआ जो आपके भक्तजनोंके लेखेमें आया ॥ ५ ॥ हे देव ! धरणी, धन, धाम तुम्हारा ही है और मैं तो परिवार सहित नीच कार्य करनेवाला हूँ ॥ ६ ॥

कृपा करिय पुर धारिय पाऊँ * थापिय जन सब लोग सिहाऊँ ॥७॥
कहेउ सत्य सब सखा सुजाना * मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना॥८॥

कृपा करके नगरमें पग धरिये; जनको थापिये जिससे सब लोग प्रसन्न हों ॥७॥श्रीरामचंद्रजी बोले--हे सखासुजान ! तुमने सब सत्य कहा, परन्तु मुझे पिताने आज्ञा और आन देदी है॥८॥

दोहा–वर्ष चारिदश वास वन, मुनि व्रत वेष अहार ॥
ग्रामवास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखभार ॥ १२० ॥

चौदह वर्ष वनमें वास करके मुनिव्रत अर्थात् वानप्रस्थ व्रत और मुनिवेष,मुनियोंका आहार यह पिताकी आज्ञा है, इस कारण ग्राममें वसना उचित नहीं है, यह सुन गुहको भारी दुःख हुआ । दुःख यह है कि ऐसे सुकुमार पर इतना भार दिया है ? अथवा घर ले जाना चाहते थे सो नहीं हुआ, इससे दुःख । यहां निषादसे ग्रामवास उचित नहीं कहा, सुग्रीवसे 'पुर न जाउँ दशचारि वरीषा' और विभीषणसे 'पिता वचन मैं नगर न जाऊँ' कहा, इससे ग्राम, पुर, नगर तीनोंका निषेध जनाया । निषाद ग्रामवासी है इससे ग्राम कहा, सुग्रीव पुरवासी है इस कारण पुर कहा, विभीषण नगरवासी है इस कारण नगर कहा ॥ १२० ॥

राम लषण सिय रूप निहारी * कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥१॥
ते पितु मातु कहउ सखि कैसे * जिन पठये बालक बन ऐसे ॥२॥

राम, लक्ष्मण, जानकीके रूपको देखकर प्रेमपूर्वक गांवके नर-नारी कहने लगे ॥ १ ॥ हे सखि ! वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने वनमें ऐसे बालकों को भेज दिया ? ॥ २ ॥

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा *लोचन लाभ हमहिं विधि दीन्हा॥३॥
तब निषादपति उर अनुमाना * तरु शिंशुपा मनोहर जाना ॥४॥

एक बोले--राजाने अच्छा किया है; जो हमें सहज ही नेत्रोंका लाभ दिया है ॥ ३ ॥ तब निषादराजने मनमें अनुमान कर एक शीशमका मनोहर वृक्ष देखा ॥ ४ ॥

लै रघुनाथहिं ठाँव दिखावा * कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥५॥
पुरजन करि जुहार घर आये * रघुवर सन्ध्या करन सिधाये ॥६॥

रघुनाथजीको लेकर स्थान दिखाया, तब रघुनाथजीने कहा–सब प्रकार ठीक है ॥ ५ ॥ पुरवासी जुहार करके घर आये और रघुनाथजी संध्या करनेको सिधाये ॥ ६ ॥

गुह सँभारि साथरी डसाई * कुश किसलय मय मृदुल सुहाई॥७॥
शुचि फल मूल मधुर मृदु जानी * दोना भरि भरि राखेसि आनी॥८॥

निषादने सँवारके कुश और कोमल पत्तोंकी कोमल साथरी अर्थात् सेज बनाई ॥ ७ ॥ पवित्र फल-मूल मीठे और कोमल जानकर दोना भर भरके आगे ला धरे ॥ ८ ॥

दोहा–सिय सुमन्त भ्राता सहित, कन्द मूल फल खाय ॥
शयन कीन्ह रघुवंश मणि, पायँ पलोटत भाय ॥ १२१ ॥

जानकीजी, सुमन्त और भाई सहित कन्दमूल फल खाकर रघुनाथजीने शयन किया, लक्ष्मणजी चरण दाबने लगे ॥ १२१ ॥

उठे लषण प्रभु सोवत जानी * कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी॥१॥
कछुक दूर सजि बाण शरासन * जागन लगे बैठि बीरासन ॥२॥

प्रभुको सोता जानकर लक्ष्मणजी उठे और मन्त्रीसे सोनेको कोमल वाणीसे कहा ॥ १ ॥ और आप थोड़ी दूरपर जानु आसनसे धनुष बाण सजाय जगने लगे ॥ २ ॥

गुह बुलाय पाहरू प्रतीती * ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥३॥
आपु लषणपहँ बैठेउ जाई * कटि भाथी शर चाप चढ़ाई ॥४॥

निषादने विश्वासी पहरुओंको बुलाया और ठौर-ठौर पर अति प्रेमसे रखा ॥ ३ ॥ आप लक्ष्मणजीके पास कमरमें तरकस, हाथमें धनुष बाण चढ़ाकर जा बैठा ॥ ४ ॥

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू * भयउ प्रेमवश हृदय विषादू ॥५॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई * वचन सप्रेम लषण सन कहई ॥६॥

रघुनाथजीको सोता देखकर निषादको प्रेमके मारे बड़ा दुःख हुआ ॥ ५ ॥ शरीर पुलकायमान, नेत्रोंमें जल बहता है, प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजीसे वचन बोला ॥ ६ ॥

भूपति भवन स्वभाव सुहावा * सुरपति सदन न पटतर पावा ॥७॥
मणिमय रचित चारु चौबारे * जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥८॥

राजादशरथजीका घर स्वभावसेही शोभायमान था कि, जिसकी समता इन्द्रभवनको भी नहीं प्राप्तथी॥७॥ जहां सुन्दर चौबारे मणियोंसे जड़े हैं मानो कामदेवने अपने हाथसे सँवारे हों॥८॥

दोहा-शुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुवास ॥
पलंग मंजु मणिदीप जहँ, सब विधि सकल सुपास ॥ १२२॥

जहां पवित्र और अच्छे भोग, सुन्दर सुगंधियुक्त पुष्प, सुन्दर पलँग सुन्दर मणियोंके दीप धरे हैं और सब प्रकारसे आनंद प्राप्त है ॥ १२२ ॥

विविध वसन उपधान तुराई * क्षीरफेन मृदु विशद सुहाई ॥१॥
तहँ सिय राम शयन निशि करहीं * निज छबिरति मनोज मद हरहीं॥२॥

जहां दूधके फेन सम कोमल उज्ज्वल सुन्दर विविध प्रकारसे वसन और तकिये युक्त बिछौने हैं ॥ १ ॥ वहां श्रीजानकीजी और रघुनाथजी रात्रिमें शयन करते थे और अपनी छबिसे रति व कामदेवका मद हरते थे ॥ २ ॥

ते सिय राम साथरी सोये * श्रमित बसन बिन जाहिं न जोये॥३॥
मातु पिता परिजन पुरवासी * सखा सुशील दास अरु दासी ॥४॥

वे सीता और रामजी कुशोंकी साथरी पर सो रहे हैं, थके हुए विना वसनके देखे नहीं जाते, महा शोक है ॥ ३ ॥ माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी; सुशील दास और दासी ॥४॥

जुगवहिं जिनहिं प्राणकी नाईं * महि सोवत सो राम गुसाईं ॥५॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ * श्वसुर सुरेश सखा रघुराऊ ॥६॥

जिन्हें प्राणोंकी नाईं रखते थे, आज वे स्वामी रामजी पृथ्वी पर सोते हैं॥५॥ जिनके पिता

जनकजी, जिनका प्रभाव जगत्में विदित है और इन्द्रके सखा दशरथजी जिनके श्वसुर हैं जनकका प्रभाव यह है कि, जिनके ज्ञानसे ऋषि मुनि चकित होते थे ॥ ६ ॥

रामचन्द्र पति सो वैदेही ❋ सोवति महि विधि वाम न केही ॥७॥
सिय रघुवीर कि कानन-योगू ❋ कर्म प्रधान सत्य कह लोगू ॥८॥

रामचन्द्र जिनके पति वे जानकी पृथ्वी पर सोती हैं विधाता किसे वाम नहीं होता ? ॥७॥ सीताजी और रामजी क्या वनजाने योग्य हैं ? लोग सत्य कहते हैं कि कर्म प्रधान है ॥८॥

दोहा-केकयनन्दिनि मन्द मति, कठिन कुटिल प्रण कीन्ह ॥
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुख दीन्ह ॥ १२३ ॥

केकयनृपकी पुत्री (कैकेयी) ने बड़ा कठिन और कुटिल प्रण किया जिसने रघुनन्दन और जानकीजीको सुख (राज्य प्राप्ति)के समय दुःख दिया ॥ १२३ ॥

भइ दिनकर कुल विटप-कुठारी ❋ कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी ॥१॥
भयउ विषाद निषादहि भारी ❋ राम सीय महि शयन निहारी ॥२॥

यह कैकेयी दिनकर (सूर्य) कुलरूपी वृक्षको कुठारी हुई, अपनी कुत्सित मतिसे सब जगत्को दुःखी किया ॥ १ ॥ निषादको राम-सीताका पृथ्वी शयन देखकर बड़ा विषाद हुआ ॥२॥

बोले लषण मधुर मृदु बानी ❋ ज्ञान विराग भक्तिरस सानी ॥३॥
काहु न कोउ सुख-दुखकर दाता ❋ निजकृत कर्म भोग सब भ्राता ॥४॥

लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य, भक्तिरसयुक्त मधुर और कोमल वाणी से बोले। कोमल बोलनेका भाव यह है कि रघुनाथजी समीप सोये हैं, जाग न उठें मधुरवाणी ऐसी जो निषादके हृदयमें बैठ जाय। निषादने कैकेयीको दोष दिया उसपर कहते हैं ॥ ३ ॥ कोई किसीके सुख दुःखका देनेवाला नहीं है, हे भ्राता ! सब अपने किये कर्मोंके भोग हैं; कर्मका भोग मायाकृत है वास्तवमें नहीं; सो अगली चौपाईमें कहते हैं ॥ ४ ॥

योग वियोग भोग भल मन्दा ❋ हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥५॥
जन्म मरण जहँ लगि जगजालू ❋ सम्पति विपति कर्म अरु कालू ॥६॥

मिलना, बिछुड़ना, भोग, भला, बुरा, हित, अहित; मध्यम, ये भ्रमके फन्द हैं ॥ ५ ॥ जन्म-मरण जहां तक जगत्का जाल है सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म और काल ॥ ६ ॥

धरणि धाम धन पुर परिवारू ❋ स्वर्ग नरक जहँ लगि व्यवहारू ॥७॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाहीं ❋ मायाकृत परमारथ नाहीं ॥८॥

पृथ्वी, धाम, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग नरक जहांतक व्यवहार हैं ॥ ७ ॥ देखिये, सुनिये, मनमें विचारिये यह मायाकी रचना है; वास्तवमें नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-सपने होय भिखारि नृप, रंक नाकपति होय ॥
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय ॥ १२४ ॥

स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाता है और भिखारी इन्द्र हो जाता है, परन्तु जब जागते हैं तो हानि लाभ कुछ नहीं होता, ऐसा ही यह प्रपञ्च संसारका मिथ्या है ॥ १२४ ॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू ❋ काहुहि बादि न दीजिय दोषू ॥१॥
मोहनिशा सब सोवन-हारा ❋ देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा ॥२॥

ऐसा विचार कर रोष मत करो; वृथा किसीको दोष मत दो ॥ १ ॥ जो सब मोहरूपी रात्रिमें सोनेवाले हैं वे अनेक प्रकारसे स्वप्न देखते हैं ॥ २ ॥

यहि जगयामिनि जागहिं योगी ❋ परमारथी प्रपंच वियोगी ॥३॥
जानिय तबहि जीव जग जागा ❋ जब सब विषय विलास विरागा ॥४॥

इस संसाररूपी रात्रिमें योगी जागते हैं–जो परमार्थी हैं और इस प्रपञ्च के वियोगी हैं॥३॥ तभी जानिये कि जीव संसारमें जगा है जब सब विषय विलाससे वैराग्य हो ॥ ४ ॥

होय विवेक मोह भ्रम भागा ❋ तब रघुनाथ चरण अनुरागा ॥५॥
सखा परम परमारथ एहू ❋ मन क्रम वचन रामपद नेहू ॥६॥

जब ज्ञान होकर मोह भाग जाता है, तब रघुनाथजीके चरणोंमें अनुराग होता है ॥ ५ ॥ हे सखा! यही परमार्थ है कि मन, वचन, कर्मसे रघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम करना ॥ ६ ॥

राम ब्रह्म परमारथ-रूपा ❋अविगति अलख अनादि अनूपा ॥७॥
सकल विकार रहित गत-भेदा ❋ कहि नित नेति निरूपहिं वेदा ॥८॥

श्रीरघुनाथजी ब्रह्म और परमार्थरूप हैं जिनकी गति जानी नहीं जाती, सर्वत्र परिपूर्ण किंतु जो देखनेमें न आवे और प्रमाण अनुभवसे अलक्ष्य हैं आदि रहित उपमारहित हैं ॥ ७ ॥ सब विकार अर्थात् जन्म मरणादिसे रहित हैं, भेद दृष्टिसे गत हैं अर्थात् समदृष्टा हैं जिनको नित्य नेति-नेति कहकर वेद निरूपण करते हैं, रघुनाथजीमें दुःख-सुख बन नहीं सकता ॥८॥

दोहा–भक्त भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल ॥
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥ १२५ ॥

सेवक, पृथ्वी, ब्राह्मण, गऊ, देवता इनके हेतु दया करके मनुष्यका अवतार ले भगवान् चरित्र करते हैं जिनके सुननेसे जगत्‌के जाल मिट जाते हैं ॥ १२५ ॥

सखा समुझि अस परिहर मोहू ❋ सिय रघुवीर चरण रति होहू ॥१॥
कहत राम-गुण भा भिनुसारा ❋ जागे जग-मंगल-दातारा ॥२॥

हे सखा ! ऐसा समझ कर मोह त्याग करो; सीतारामके चरणोंमें प्रीति हो ॥१॥ रघुनाथजीके गुणानुवाद कहते सबेरा हो गया, जगत्‌के मङ्गल करनेवाले रघुनाथजी जगे ॥ २ ॥

सकल शौच करि राम अन्हाये ❋ शुचि सुजान वटक्षीर मँगाये ॥३॥
अनुज सहित शिर जटा बनाये ❋ देखि सुमन्त नयन जल छाये ॥४॥

शौच करके रघुनाथजीने स्नान किया, शुचि (पवित्र) सुजान रघुनाथजीने पुनः वटका दूध मँगाया ॥ ३ ॥ छोटे भाई सहित शिरपर जटा बनाई अर्थात् बालोंमें दूध लपेटा; यह देखकर सुमन्तके नेत्रोंमें जल छा गया । नयनोंमें जल आनेका कारण यह कि–मैं ऐसा अभागी हूँ, कि रघुनाथजीके राज्यतिलकके बदले शिर पर जटा देखी ? अथवा अब यह अयोध्या नहीं जायँगे ॥ ४ ॥

हृदय दाह अति वदन मलीना * कह कर जोरि वचन अतिदीना॥५॥
नाथ कहेउ अस कौशलनाथा * लै रथ जाहु रामके साथा ॥६॥

हृदयमें अत्यन्त दाह और मुख मलिन हो गया—हाथ जोड़कर परमदीन वचन बोला ॥५॥ कि हे नाथ! महाराजने यह कहा था कि रथ लेकर रघुनाथजीके साथ जाओ ॥ ६ ॥

वन दिखाय सुरसरि अन्हवाई * आनहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥७॥
लषण राम सिय आनहु फेरी * संशय सकल सँकोच निबेरी ॥८॥

वन दिखाकर और गंगाजीमें स्नान कराकर दोनों भाइयोंको शीघ्र लौटा लाना॥७॥ प्रथम दोनों भाइयोंको लौटा लाना कहा, जानकीका नाम न आया, जब स्मरण हुआ तो तीनों जनोंके लौटा लानेको कहा कि श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और जानकीजीको सब संशय संकोच दूर करके लौटा लाना, आवश्यकता दिखाकर दो बार लौटानेको कहा ॥८॥

दोहा—नृप अस कहेउ गुसाईं जस, कहिय करउँ बलि सोइ ॥
करि विनती पाँयन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ ॥१२६ ॥

महाराज दशरथजीने तो ऐसा कह दिया है, किन्तु अब आप जैसा कहें वैसा करूँ यह कह विनतीकर पाओंमें पड़ गया और दीन बालकके समान रोकर बोला ॥ १२६ ॥

तात कृपा करि कीजिय सोई * जाते अवध अनाथ न होई ॥१॥
मंत्रिहि राम उठाय प्रबोधा * तात धर्ममग तुम सब सोधा ॥२॥

हे तात! अब कृपा करके आप वही कीजिये, जिससे अवध अनाथ न हो। अनाथ कहनेका भाव यह है कि आपके विना राजा न जियेंगे; (भरत राज्य नहीं पालन करेंगे)॥१॥ रघुनाथजीने मन्त्रीको उठाकर समझाया कि हे तात! आपने धर्मका मार्ग सब जान लिया है ॥२॥

शिबि दधीचि हरिश्चन्द्र नरेशा * सहे धर्महित कोटि कलेशा ॥३॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना * धर्म धरेउ सहि संकट नाना ॥४॥

(देखिये) शिबि, दधीचि और हरिश्चन्द्र राजाने धर्म हेतु अनेक क्लेश सहे ॥ ३ ॥ रन्तिदेव और परम प्रवीन राजा बलिने भी अनेक संकट सहकर धर्मको रखा है ॥ ४ ॥

धर्म न दूसर सत्य समाना * आगम निगम पुराण बखाना ॥५॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा * तजे तिहूँ पुर अपयश छावा ॥६॥

सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है, यह वेद शास्त्र पुराणोंने कहा है ॥ ५ ॥ वही धर्म मैंने सरलता से पाया है, अब उसके त्यागनेसे त्रिलोकीमें अपयश होगा ॥ ६ ॥

सम्भावित कहँ अपयश लाहू * मरण कोटि सम दारुण दाहू ॥७॥
तुमसन तात बहुत का कहऊँ * दिये उतर फिरि पातक लहऊँ॥८॥

१. रंतिदेवने बनमें तप करते हुए ४८ दिनका व्रत किया और जब भोजन करनेको बैठे तब उसी समय एक अभ्यागत आ गया, वह भोजन उसको दे दिया और आप भूखे रह गये। पीछे उस मूर्खने और मांगा तब उसको स्त्री और पुत्र का भी भाग देदिया और मनमें विकार कुछ न हुआ तब भगवान्ने प्रसन्न हो उन्हें दर्शन दिया। राजा बलिने भगवान् को तीन पग पृथ्वी देकर राज्य खोया परंतु धर्म नहीं छोड़ा।

समर्थ, यशस्वी मानी पुरुषको अपयशका होना कोटि मरणसम कठिन दाह है ॥ ७ ॥ "संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते" ॥ हे तात ! आपसे बहुत क्या कहूँ ? लौटकर उत्तर देनेसे पातक होगा, आप बड़े हैं, बड़ोंके सम्मुख बोलनेसे पातक होता है ॥ ८ ॥

दोहा-पितुपद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि ॥
चिन्ता कवनिहुँ बातकी, तात करिय जनि मोरि ॥ १२७ ॥

पिताके पद गहकर कोटि (नति) नमस्कार कहना, हाथ जोड़कर विनती करना कि पिता जी ! मेरी चिंता किसी बातकी भी आप न करें ॥ १२७ ॥

तुम पुनि पितुसम अतिहित मोरे * विनती करौं तात कर जोरे ॥१॥
सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे * दुख न पाव पितु शोच हमारे ॥२॥

और फिर आप भी मेरे पिताके समान हितकारी हैं, इस कारण हे तात । हाथ जोड़ विनती करता हूँ॥१॥सब विधिसे आपका वही कर्तव्य है जिससे मेरे शोच में पिताजी दुःख न पावें॥२॥

सुनि रघुनाथ-सचिव-संवादू * भयउ सपरिजन विकल निषादू ॥३॥
पुनि कछु कही लषण कटु बानी * प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥४॥

रघुनाथजी और मन्त्रीका संवाद सुनकर निषाद परिजन सहित व्याकुल होगया॥३॥ फिर कुछ कटु वाणी लक्ष्मणजीने कही किंतु प्रभुने बड़ा अनुचित जानकर उनको वरजा ॥ ४ ॥

सकुचि राम निजशपथ दिवाई * कहब न तात लषण लरिकाई ॥५॥
कह सुमंत पुनि भूप संदेशू *सहि न सकहि सियविपिन कलेशू॥६॥

और सकुचाकर रघुनाथजीने अपनी सौगंध दिलाई, हे तात ! लक्ष्मणके लड़कपनकी बात जानकर न कहना ॥५॥ फिर सुमन्त राजाका सन्देश कहने लगे कि जानकीजी वनके क्लेश नहीं सह सकेंगी ॥ ६ ॥

जेहि विधि अवध आव फिरि सीया * सोइ रघुनाथ तुमहिं करनीया ॥७॥
नतरु निपट अवलंब विहीना *मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥८॥

हे रघुनाथजी ! जिस प्रकार जानकीजी अयोध्यामें फिर आवें वही आपको करना उचित है ॥७॥नहीं तो निपट अवलम्बके विना मैं नहीं जीऊँगा,जैसे जल विना मछली नहीं जीती ॥८॥

दोहा-मयिके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान ॥
तब तहँ रहब सुखेन सिय,जब लगि बिपति-बिहान ॥ १२८ ॥

मायके और श्वशुरालयमें सब सुख है जब जहां मन माने तब तहां सुखपूर्वक जानकीजी रहें जबतक कि (चौदहवर्ष रूपी) विपत्ति कटे ॥ १२८ ॥

विनती भूप कीन्ह जेहि भाँती *आरति प्रीति न सो कहि जाती॥१॥
पितु संदेश सुनि कृपानिधाना *सियहिं दीन्ह सिख कोटिक नाना॥२॥

आर्ति और प्रीतिसे जिस प्रकार महाराजने विनती की है वह मुझसे नहीं कही जाती (कुछ सारांश मैंने कहा है)॥१॥पिताका संदेशा सुनकर रघुनाथजीने जानकीको अनेक सीखदीं ॥२॥

सासु श्वसुर गुरु प्रिय परिवारू *फिरउ तौ सबकर मिटहिं खँभारू॥३॥

सुनि पति वचन कहति वैदेही ❀ सुनहु प्राणपति परम सनेही ॥४॥

(कहा कि) जो तुम लौटो तो सास, श्वसुर, गुरु, प्रिय-परिवार इन सबका दुःख मिट जाय ॥ ३ ॥ पतिके वचन सुनकर जानकीजी बोलीं–हे परमसनेही प्राणपति ! सुनिये ॥ ४ ॥

प्रभु करुणामय परम विवेकी ❀ तनु तजि रहत छाँह किमि छेकी ॥५॥
प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई ❀ कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥६॥

हे प्रभु ! आप दयामय अत्यन्त ज्ञानी अर्थात् सब जाननेवाले हैं, भला शरीरको छोड़कर रोकी हुई छाया कैसे रह सकती ? ॥ ५ ॥ प्रभा (घाम) सूर्यको छोड़कर कहां जाय और चाँदनी चन्द्रमाको छोड़कर कहां जाय ? भाव यह है जो ये सब त्याग कर सकें तो मैं भी आपको छोड़कर अयोध्या चली जाऊँ ॥ ६ ॥

पतिहि प्रेममय विनय सुनाई ❀ कहत सचिवसन गिरा सुहाई ॥७॥
तुम पितु-श्वसुर सरिस हितकारी ❀ उतर देउँ फिरि अनुचित भारी ॥८॥

पतिको प्रेम भरी विनय सुनाकर मन्त्रीसे सुहाती वाणी बोलीं ॥ ७ ॥ आप पिता और श्वशुरके समान हितकारी हैं, जो उत्तर दूँ तो फिर अनुचित है ॥ ८ ॥

दोहा–आरत वश सनमुख भयउ, बिलग न मानब तात ॥
आरजसुत-पदकमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥ १२९ ॥

दुःखके वश होकर सम्मुख हुई हूँ, हे तात ! बिलग मत मानना, क्योंकि आर्यपुत्रके पदकमलके विना जितने नाते हैं वे सब वृथा ही हैं ॥ १२९ ॥

पितु वैभव विलास मैं दीठा ❀ नृपमणिमुकुट मिलत पदपीठा ॥१॥
सुख निधान अस पितुगृह मोरे ❀ पिय विहीन मन भाव न भोरे ॥२॥

पिताके ऐश्वर्यकी शोभा भी मैंने देखी है, कि राजाओंमें मुकुट मणि जो राजा हैं वे भी उनके चरण और सिंहासनमें अपना शिर नवाते हैं ॥ १ ॥ सुख निधान ऐसा मेरे पिताका घर है, परन्तु पतिके विना मुझको भूलकर भी नहीं भाता ॥ २ ॥

श्वसुर चक्कवै कोशल-राऊ ❀ भुवन चारिदश प्रगट प्रभाऊ ॥३॥
आगे होय जेहि सुरपति लेई ❀ अर्द्ध सिंहासन आसन देई ॥४॥

और श्वसुर जो चक्रवर्ती श्री अवधके राजा, जिसका चौदह भुवनमें प्रभाव प्रकट है ॥३॥ और जिसको राजा इन्द्र आगे होकर लेते और आधा सिंहासन बैठनेको देते हैं ॥ ४ ॥

श्वसुर एतादृश अवध निवासू ❀ प्रिय परिवार मातु सम सासू ॥५॥
बिनु रघुपति-पदपद्म परागा ❀ मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा ॥६॥

ऐसे तो श्वसुर और अयोध्याके समान निवास, प्यारे कुटुम्बी और माताके समान सब सासु हित करने वाली हैं ॥ ५ ॥ पर रघुनाथजीके चरणकमलके पराग विना मुझको कोई स्वप्नमें भी सुखदाता नहीं लगता ॥ ६ ॥

अगम पंथ वन भूमि पहारा ❀ करि केहरि सर सरित अपारा ॥७॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा ❀ मोहि सब सुखद प्राणपति संगा ॥८॥

दुर्गम मार्ग, वनभूमि, पहाड़, हाथी, सिंह अनेक ताल और नदी ॥ ७ ॥ कोल, किरात (भीलोंकी जाति), कुरंग (हरिन), विहंग (पक्षी) मुझको प्राणपतिके साथ सब सुख देंगे ॥८॥

दोहा-सास श्वसुरसन मोरहुति, विनय करब परि पाँय ॥
मोर शोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी सुभाय ॥ १३० ॥

सासु-श्वशुरसे मेरी ओरसे विनती करना और पाँव पकड़कर यह बात कहना कि मेरा शोच कुछ मत कीजिये, मैं स्वभावसे ही वनमें सुखी हूँ ॥ १३० ॥

प्राणनाथ प्रिय देवर साथा * वीर धुरीण धरे धनु भाथा ॥१॥
नहिं मग श्रम भ्रम दुख मन मोरे *मोहिलगि शोच करियजनि भोरे॥२॥

प्राणनाथ रघुनाथजी और प्रिय देवर लक्ष्मणके सहित जो वीरोंमें अग्रगण्य और धनुष तरकस धारण किये हैं (इनके चलते) ॥ १ ॥ मार्गमें परिश्रम, दुःख श्रम मेरे मनमें कुछ नहीं होगा, मेरे निमित्त भूलकर भी शोच मत कीजिये ॥ २ ॥

सुनि सुमन्त सिय-शीतल बानी *भयउ विकल जनु फणि मणिहानी॥३॥
नैन सूझ नहि सुनहिं न काना *कहि न सकहि कछुअतिअकुलाना॥४॥

सुमंत जानकीजीकी शीतलवाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे सर्पकी मणि छिन गयी हो ॥ ३ ॥ नेत्रोंसे सूझता नहीं, कानोंसे सुनते नहीं; कुछ कह नहीं सकते बहुत व्याकुल हुए॥४॥

राम प्रबोध कीन्ह बहुभाँती * तदपि होति नहि शीतल छाती॥५॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे * उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे ॥६॥

(यद्यपि रघुनाथजीने बहुत समझाया परंतु इसपर भी छाती शीतल नहीं होती ॥५॥अनेक यत्न संग चलनेको किये, किंतु रघुनाथजीने उचित उत्तर दिया (कि तुम्हें महाराजको छोड़ना उचित नहीं है और तुम्हें हमारे साथ १४ वर्ष रहनेको भी नहीं कहा इत्यादि) ॥६॥

मेटि जाय नहिं राम-रजाई * कठिन कर्मगति कछु न बसाई॥७॥
रामलषण सिय-पद शिरनाई * फिरेउ वणिक जनु मूर गँवाई ॥८॥

रघुनाथजीकी आज्ञा मेटी नहीं जाती,कर्मकी गति कठिन है,कुछ नहीं बसाता॥७॥ राम लक्ष्मण जानकीजीके चरणोंमें शिर नवाय सुमंत पीछे लौटे,जैसे व्यापारी अपना सब धन गँवाय चले॥८॥

दोहा-रथ हाकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिंहिंनाहिं ॥
देखि निषाद विषाद वश, धुनहिं शीश पछिताहिं ॥ १३१ ॥

रथ हांका किंतु घोड़े श्रीरामचन्द्रजीके शरीरको देखकर हींसते हैं । भाव यह कि सुमंत से विनती करते हैं कि इस साँवली सूरतसे हमारा वियोग मत कराओ, यह चरित्र देख निषाद महादुःखी हो शिर धुनि पछिताने लगे ॥ १३१ ॥

जासु वियोग विकल पशु ऐसे * प्रजामातु पितु जीवहिं कैसे ॥१॥
बरबश राम सुमन्त पठाये * सुरसरि तीर आप तब आये ॥२॥

जिसके वियोगमें पशु ऐसे व्याकुल हैं तो प्रजा, माता-पिता उनके वियोगमें कैसे जियेंगे ॥ १ ॥ रघुनाथजीने सुमन्तको बरजोरी भेजा और आप गङ्गाजीके तट पर आये ॥ २ ॥

माँगी नाव न केवट आना * कहै तुम्हार मर्म मैं जाना ॥३॥
चरणकमल रज कहँ सब कहई * मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥४॥

नाव मांगी किंतु केवट नहीं लाया और यह कहा कि मैं आपका भेद जानता हूँ ॥ ३ ॥ आपके चरण कमलकी धूलको सब लोग कहते हैं कि मनुष्य करनेकी कोई जड़ी है ॥ ४ ॥

छुवत शिला भइ नारि सुहाई ❋ पाहनते न काठ कठिनाई ॥५॥
तरणिउ मुनि घरनी होइ जाई ❋ बाट परै मोरि नाव उड़ाई ॥६॥

शिला जिस धूलको छूते ही सुन्दर नारी हो गयी तब फिर काठ तो पत्थर से अधिक कठिन नहीं होता है॥५॥ मेरी नौका भी मुनिकी स्त्री हो जाय तो नावके उड़ते ही मार्ग बंद हो जाय॥६॥

यहि प्रतिपालउँ सब परिवारू ❋ नहिं जानउँ कछु और कबारू॥७॥
जौ प्रभु अवशि पार गा चहहू ❋ मोहि पदपद्म पखारन कहहू ॥८॥

इस नौकासे ही परिवारकी पालना करता हूँ दूसरा और कुछ उद्यम नहीं जानता ॥ ७ ॥ सो हे प्रभु ! जो आप अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझको अपने चरण कमल धो लेनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥

छन्द–पदपद्म धोय चढ़ाय नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साची कहौं ॥
बरु तीर मारहिं लषण पै जब लगि न पांव पखारि हौं ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारि हौं ॥ १६ ॥

चरणारविंद धोकर नावपर चढ़ाऊँगा और आपसे उतराई नहीं चाहता; (क्योंकि आप भव-सागरके और हम नदी पार करनेके मल्लाह हैं अतएव एक पेशा करनेवाले हे कृपालु! हे नाथ ! परस्पर मजूरी नहीं लेते हैं) हे राम जी ! मुझको आपकी आन और दशरथजीकी शपथ है सब साँची कहता हूँ, चाहे लक्ष्मणजी तीर मारें; परंतु जब तक पांव नहीं धो लूँगा; तबतक पार नहीं उतारूँगा । दशरथजीकी सौगन्ध करनेका यह भाव कि सत्यके कारण महाराजने आपसे पुत्रोंको त्याग दिया, मैं भी सत्य कहता हूँ–विना चरण धोये पार नहीं उतारूँगा; चाहे कितना ही कृष्ट क्यों न हो, अथवा जो आप बल प्रकाश करो तो आपको राजा की आन है ॥ १६ ॥

सोरठा–सुनि केवटके बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ॥
बिहँसे करुणा ऐन, चितै जानकी लषण तन ॥ ११ ॥

केवटके प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणा सागर रघुनाथ जी लक्ष्मणजी और जानकीजीकी ओर देखकर हँसे । देखनेका यह भाव है कि जानकीजीसे कहते हैं हमारे और लक्ष्मण के पग तुम्हारे पिताने कन्या देकर धोये, सो यह संतमेत ही धोना चाहता है, वा यह तुम्हारी सेवामें भागीदार बनना चाहता है; अथवा यह कि हम निषादको ही चतुर जानते थे परंतु उसके नौकर चाकर तो उससे भी अधिक चतुर हैं । अथवा यह कि हमारे चरणोंके प्रेमी ऐसे २ ही हैं, वा इस कारण देखते हैं कि तुम दोनों तो एक चरणके उपासक हो तो यह गति पायी किन्तु यह दोनों चरणोंकी उपासनासे किस गतिको प्राप्त होगा ? ॥ ११ ॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई ❋ सोइ करहु जेहि नाव न जाई ॥१॥
वेगि आनि जल पाय पखारू ❋ होत विलम्ब उतारहु पारू ॥२॥

सवैया–"नाम अजामिलसे खल कोटि, अपार नदी भवबूड़त काढे । जो सुमिरे गिरि मेरुशिला कण होत अजाखुर बारिध बढ़े ॥ तुलसी जेहिके पद पंकजते, प्रगटी तटिनी जो हरे अघगाढ़े । ते प्रभु या सरिता तरिवे कहँ मांगत नाव करार पै ठाढ़े ॥"

कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले–वही करो, जिससे तुम्हारी नाव न जाय ॥ १ ॥ जल्दी ही जल लाकर पांव धोओ, देर होती है, पार उतारो ॥ २ ॥

जासु नाम सुमिरत इक बारा ✻ उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥३॥
सो कृपालु केवटहिं निहोरा ✻ जेहि जग किय तिहुँ पगनते थोरा ॥४॥

जिनका नाम एक बार स्मरण करके मनुष्य अपार भवसागरके पार उतर जाते हैं॥३॥ वे ही कृपालु केवटका निहोरा करते हैं; जिन्होंने वामन अवतारमें जगत्‌को तीन पगसे भी थोड़ा किया॥४॥

पद नख निरखि देवसरि हरषी ✻ सुनि प्रभु वचन मोहमति करषी॥५॥
केवट रामं-रजायसु पावा ✻ पानि कठउता भरि लै आवा ॥६॥

प्रभुके पद नखको देख गंगाजी अपना जन्मस्थान जान प्रसन्न हुई और प्रभुके वचन सुन कर मतिसे मोहको खींचती हुई, अर्थात् गंगाजीको सन्देह हुआ कि यदि केवटके वचन सुन, प्रभु रिस वश हमें उलाँघ जायँ तो हम चरणस्पर्श न पा सकेंगी सो वह मोह दूर हुआ जब रघुनाथजीका चरण स्पर्श हुआ। अथवा यह जो रघुनाथजीने कहा–"होत विलंब उतारहु पारू" यह वचन सुनकर गंगाजीने जाना कि हमारे निकटसे शीघ्र जाया चाहते हैं इस कारण मोहने मतिको खींचा। भाव यह कि, बहुत दिन पीछे पिता मिले; सो तुरंत जाया चाहते हैं, अथवा रामजीने जो कहा कि शीघ्र पार उतारो; यह सुन गंगाजी को मोह हुआ कि यह समर्थ होकर क्या कहते हैं ? अथवा गंगाजीने विचारा कि पैरों ही उतरते तो बड़ी प्रसन्नता होती ॥५॥ केवट श्रीरामचंद्रजी की आज्ञा पाते ही और पात्र तो नहीं लाया; किंतु कठवतेमें पानी भर लाया। यह कि इसीसे परीक्षा कर लें; जो यह नहीं उड़ेगा तो नाव भी नहीं उड़ेगी ॥ ६ ॥

वर्षि सुमन सुर सकल सिहाहीं ✻ यहि सम पुण्य पुञ्ज कोउ नाहीं॥७॥
अति आनंद उमँगि अनुरागा ✻ चरण-सरोज पखारन लागा ॥८॥

सब देवता फूल बरसाकर प्रशंसा करते हैं कि इसके समान कोई अधिक पुण्यात्मा नहीं है क्योंकि जो चरण मुनियोंके भी ध्यानमें अगम हैं, उनको यह प्रत्यक्ष धोता है ॥७॥ केवट अत्यन्त आनंद और प्रेममें भरकर चरण कमलको धोने लगा ॥ ८ ॥

दोहा–पदपखारि जलपान करि, आपसहित परिवार ॥
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार ॥ १३२ ॥

चरण धोकर जलपान करके आप कुटुम्बसहित पवित्र हो प्रथम अपने पितरोंको पार किया पश्चात् प्रसन्नतासे प्रभुको पार ले गया ॥ १३२ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीका-यामयोध्याकाण्डान्तर्गतः सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

---

१. कवित्त –"जिनकी पुनीत वारि शिव शिर है पुरारि, त्रिपथगामिनि अस वेद कहँ गायकै। जिनको योगीन्द्र मुनि बृन्द देव देह धरि, करत विविध योग जप मन लायकै। तुलसी जिन चरणकी धूर छू अहल्या तरी, गौतम सिधाये गृह गौना सी लिवायकै। तेइ पांय पायकै चढ़ाय नाव धोये बिन ख्वैहौं ना पठावनी कहुं हौंना हंसायकै ॥"

२. कवित्त –"प्रभुरुख पायकै बुलाय बाल घरनिहिं, बंदि कै चरण चहुंदिशि बैठे घेरि घेरि। छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजूको, धोय पांय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि ॥ तुलसी सराहे ताको भाग सानुराग सुर, बरषै सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि। विविध सनेह सानी बानी असयानी सुनि, हँसे राघव जानकी लषण तन हेरि हेरि ॥"

दोहा—अब अष्टम विश्राममें, शृङ्गबेरसे राम।
वन वनमें विचरत फिरे, सफल किये मनकाम ॥ ८ ॥

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि-रेता * सिया राम गुह लषण समेता ॥१॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा * प्रभु सकुचे इहि कछु नहिं दीन्हा॥२॥

रघुनाथजी, लक्ष्मण, जानकी और निषादके सहित गङ्गाजीके रेतमें उतरकर खड़े हुए॥१॥ मल्लाहने उतरकर दण्डवत की, तब रघुनाथजी सकुचाये कि इसको कुछ दिया नहीं ॥ २ ॥

पिय-हियकी सिय जानन हारी * मणि मुँदरी मनमुदित उतारी ॥३॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई * केवट चरण गहे अकुलाई ॥४॥

सीताजी रामजीके हृदयकी जाननेवाली थीं, अतः उसी समय प्रसन्न मनसे मणि मुँदरी उतारी (भाव यह है कि केवट उस मुँदरीकी छापसे चारों पदार्थ चाहे जिसे दिया करे) ॥ ३ ॥ रघुनाथजी बोले-उतराई लो, केवटने अकुलाकर चरण पकड़ लिये ॥ ४ ॥

नाथ आज मैं काह न पावा * मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥५॥
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी * आजु दीन्ह विधि बनि भरिपूरी॥६॥

और बोला-हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ? क्योंकि पाप दुःख रोग और दरिद्रतासे जो जलन थी वह मिट गयी ॥५॥ मैंने बहुत काल (अनेकों जन्म) मजूरी की, उसकी बनी (उतराई) विधाताने आज पूरी दे दी अर्थात् मुझ समेत सब पितरोंको पार कर दिया ॥६॥

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे * दीन दयालु अनुग्रह तोरे ॥७॥
फिरती बार मोहिं जो देवा * सो प्रसाद मैं शिर धरि लेवा ॥८॥

अब हे नाथ दीन दयालु ! आपके अनुग्रहसे मुझको कुछ नहीं चाहिये ॥७॥ लौटती बार जो कुछ आप देंगे वह प्रसाद मैं शिर पर रख लूँगा,क्योंकि इस समय तो न लेनेको सौगन्ध कर चुका हूँ। अथवा अब तो आप वनको जाते हैं जब राज्यको लौटोगे तब लेलूंगा। अथवा आपने पितर पार किये,मैंने गङ्गा पार किया,इससे मैं और आप बराबर हैं फिरती बार आप जो देंगे वह मैं लूंगा, क्यों कि मुझको एक बार उतरना था सो उतर चुका, अब आप फिर उतरेंगे तब लूंगा। अथवा रामचन्द्रजीसे यह प्रार्थना है कि फिरती बार आप इसी घाटपर उतरना॥८॥

दोहा—बहुत कीन्ह प्रभु लषण सिय, नहिं कछु केवट लेइ ॥
विदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमलवर देइ ॥ १२३ ॥

रघुनाथजी, लक्ष्मण और जानकीने बहुत (यत्न) किया परन्तु केवटने कुछ नहीं लिया कारण यह कि मैं इनसे उतराई लूंगा तो यह कहेंगे हमने तेरे पितरोंको पार किया, उसकी उतराई हमें दे, अतः न लेना ही अच्छा है तब रघुनाथजीने उसको उज्ज्वल भक्ति वर देकर बिदा किया ॥ १२३ ॥

तब मज्जन करि रघुकुल नाथा * पूजि पार्थिव नायउ माथा ॥१॥
सिय सुरसरिहिं कहा कर जोरी * मातु मनोरथ पुरवहु मोरी ॥२॥

तब रघुनाथजीने स्नान करके पार्थिव शिवका पूजन किया और उनको शिर नवाया ॥१॥ सीताजीने गङ्गाजीसे हाथ जोड़कर कहा—हे माता ! मेरे मनोरथ पूरे कीजिये ॥ २ ॥

पति देवर सँग कुशल बहोरी * आय करहुँ जेहि पूजा तोरी ॥३॥
सुनि सिय वचन प्रेमरस-सानी * भइ तब विमल वारि वर बानी ॥४॥

जिससे पति तथा देवरके साथ कुशल पूर्वक आकर आपकी फिर पूजा करूँ ॥ ३ ॥ प्रेम रसमें सनी जानकीजीकी विनती सुनकर तब स्वच्छ जलमें उज्ज्वल वाणी हुई ॥ ४ ॥

सुन रघुवीर-प्रिया वैदेही * तव प्रभाव जगविदित न केही ॥५॥
लोकप होहिं विलोकत तोरे * तोहि सेवहिं सब सिधि करजोरे॥६॥

हे रघुनाथजीकी प्यारी ! जनक राजा तो ज्ञानियोंमें शिरोमणि उनकी आप कन्या हैं; सुनिये आपका प्रभाव जगतमें कौन नहीं जानता ? ॥ ५ ॥ आपकी कृपादृष्टिसे लोकपाल (इंद्र कुबेरादिक) हो जाते हैं और सब सिद्धियाँ हाथ जोड़कर आपकी सेवा करती हैं ॥ ६ ॥

तुम जु हमहिं बड़ि विनय सुनाई * कृपा कीन्ह मोहि दीन्हि बड़ाई॥७॥
तदपि देवि मैं देव अशीषा * सफल होनहित निज वागीशा॥८॥

आपने जो हमको विनय सुनायी सो कृपा करके मुझको बड़ाई दी ॥ ७ ॥ तो भी हे देवि ! अपनी वाणी सफल होनेको आशीष देती हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-प्राणनाथ-देवर सहित, कुशल कौशला आय ॥
पूजहिं सब मनकामना, सुयश रहहिं जग छाय ॥ १३४ ॥

प्राणनाथ ! रघुनाथ और देवर सहित कुशल पूर्वक अयोध्यामें आओगी; आपकी सब मनःकामनाएँ पूरी होंगी; संसारमें यश छा जायेगा ॥ १३४ ॥

गंग वचन सुनि मंगलमूला * मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥१॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू * सुनत सूख मुख भा उर दाहू ॥२॥

गङ्गाजीका मङ्गलमूल वचन सुनकर जानकीजी प्रसन्न हुई कि गङ्गाजी अनुकूल हैं॥ १॥ तब प्रभुने निषादसे कहा-कि घर जाओ,सुनते ही उसका मुख सूख गया और मनमें बड़ा दुःख हुआ॥२॥

दीन वचन कह गुह करजोरी * विनय सुनहु रघुकुल मणि मोरी ॥३॥
नाथ साथ रहि पंथ दिखाई * करि दिन चारि चरण सेवकाई ॥४॥

गुह दीन वचन हाथ जोड़कर बोला-हे रघुकुलमणि हे नाथ ! मेरी विनय सुनिये ॥ ३ ॥ आपके साथ रहकर मार्ग दिखाऊँगा ॥ ४ ॥

जेहि वन जाय रहब रघुराई * परण-कुटी मैं करब सुहाई ॥५॥
तब मोहि कहँ जस देव रजाई * सोइ करिहौं रघुवीर-दुहाई ॥६॥

और हे रघुनाथजी ! जिस वनमें आप जाकर रहेंगे वहां मैं सुन्दर पर्णकुटी बनाऊँगा ॥ ५ ॥ तब मुझको जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा, रघुनाथजीकी दुहाई है ॥ ६ ॥

सहज सनेह राम लखि तासू * संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥७॥
पुनि गुह ज्ञाति बोलि सब लीन्हे * करि परितोष विदा सब कीन्हे॥८॥

रघुनाथजीने उसका सहज स्नेह देखकर निषादको संग लिया और मनमें प्रसन्न हुए ॥७॥ फिर निषादने अपने जातिके लोगोंको बुलाया और समझा बुझाकर सबको विदा किया ॥८॥

दोहा—तब गणपति शिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ ॥
सखा अनुज सिय सहित बन, गवन कीन्ह रघुनाथ ॥ १३५ ॥

तब रामचन्द्रजीने गणेशजी और शिवजीका स्मरण कर गंगाजीको शिर नवाया । सखा (निषाद), लक्ष्मण, सीता सहित रघुनाथजी वनको चले ॥ १३५ ॥

तेहि दिन भयउ विटप तरु वासू * लषण सखा सब कीन्ह सुपासू ॥१॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई * तीरथराज दीख प्रभु जाई ॥२॥

उस दिन वृक्षके नीचे वास हुआ, लक्ष्मण और निषादने सब स्थानादिक सुधारकर शयन स्थान बनाया और कंद मूल फल लाये ॥ १ ॥ प्रातःकाल होते ही प्रातःकृत्य (दंतधावन) (सन्ध्यादि) करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजी चले और जाकर तीर्थोंके राजा प्रयागराजके दर्शन किये अब राज अंगका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी * माधव सरिस मीत हितकारी ॥३॥
चारि पदारथ भरा भँडारू * पुण्यप्रदेश देश अति चारू ॥४॥

सत्य मन्त्री है और श्रद्धा प्यारी पत्नी है तथा माधव सदृश हितकारी जिसके मित्र हैं ॥ ३ ॥ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंसे भण्डार भरा है और जितने पुण्यस्थल देश हैं उनमें यह अति सुन्दर है ॥ ४ ॥

क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा * सपनेहुँ नहिं प्रतिपक्षिन पावा ॥५॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा * कलुष अनीक दलन रणधीरा ॥६॥

क्षेत्र जो चालिस कोसमें है वही सुन्दर दृढ़ किला है, जागनेमें कौन कहे ? उसको शत्रु स्वप्नमें भी नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ यहां पाप नरकादि शत्रु हैं, भरद्वाज आश्रम और इसमें शर्मेश्वर महादेव, झूंसीमें प्रलयकालका कूप, दशाश्वमेध और उत्तम शिरकोटिमें महादेव यह इतना क्षेत्र है जो सब बड़े तीर्थरूपी वीर हैं वे ही सेना हैं, सो पापीकी सेनाके मारनेमें बड़ी रणधीर (प्रबल) हैं (यह सब रूपकालंकार है) ॥ ६ ॥

संगम सिंहासन सुठि सोहा * छत्र अछयवट मुनिमन मोहा ॥७॥
चमर यमुन अरु गंग-तरंगा * देखि होत दुख-दारिद-भंगा ॥८॥

गंगा, यमुना, सरस्वतीका जो संगम है, वही सुन्दर सिंहासन है और अक्षय वट छत्र है जो मुनियों के मनको मोहता है । अथवा जिसका ध्यान मुनि करते हैं ॥ ७ ॥ गंगा और यमुनाकी तरंग ही चमर हैं, जिनको देखते ही दुःख दरिद्र भङ्ग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—सेवहिं सुकृती साधु शुचि, पावहिं सब मनकाम ॥
बन्दी वेद पुराणगन, करहिं विमल गुण ग्राम ॥ १३६ ॥

पुण्यात्मा पवित्र साधुजन उसकी सेवा करते हैं और अपनी सब मनःकामना पाते हैं । वे पुराण और बन्दीजन उज्ज्वल गुण समूह गाते हैं ॥ १३६ ॥

---

१. सवैया—तटते जु चली रघुवीर वधू, धरि धीर दिये मगमें पग द्वै । झलकी भरि भालकनी जलकी, पुट सूख गये मधुराधर द्वै ॥ फिर बूझति हैं चलनो जु कि तो पिय पर्णकुटी करिहैं कित ह्वै । तियकी लखि आतुरता पियकी, अखियाँ अति चारु चली जल च्वै ॥

को कहि सकहि प्रयाग-प्रभाऊ * कलुष-पुंज कुंजर-मृगराऊ ॥१॥
अस तीरथपति देखि सुहावा * सुखसागर रघुवर सुख पावा ॥२॥

प्रयागका प्रभाव कौन कह सकता है ? जो कि पापरूपी हाथियोंके समूहको मारनेके लिए सिंह है ॥१॥ ऐसे तीर्थपति प्रयागको देखकर सुखसागर श्रीरघुनाथजीने सुख पाया ॥ २ ॥

कहि सिय लषणहि गुहहि सुनाई * श्रीमुख तीरथराज-बड़ाई ॥३॥
करि प्रणाम देखत बन बागा * कहत महातम अति अनुरागा ॥४॥

सीता, लक्ष्मण और निषादसे रघुनाथजीने अपने श्रीमुखसे तीर्थराजकी बड़ाई कर सुनायी ॥३॥ प्रणाम करके वन बाग देखते और परम प्रेमसे माहात्म्य कहते हुए चले ॥ ४ ॥

यहि विधि आय बिलोकी वेनी * सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥५॥
मुदित नहाय कीन्ह शिवसेवा * पूजि यथाविधि तीरथ देवा ॥६॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीने इसी प्रकारसे आकर त्रिवेणीको देखा जो स्मरण करते ही समस्त सुन्दर मंगलोंकी देनेवाली है ॥ ५ ॥ प्रसन्नता पूर्वक स्नान करके शिवजीकी सेवा की और यथाविधि तीर्थ (माधवादि) का पूजन किया ॥ ६ ॥

तब प्रभु भरद्वाज-पहँ आये * करत दण्डवत मुनि उर लाये ॥७॥
मुनि मनमोद न कछु कहि जाई * ब्रह्मानंद राशि जनु पाई ॥८॥

तब प्रभु भरद्वाज ऋषिके पास आये और दंडवत करते ही मुनिने हृदयसे लगा लिया॥७॥ मुनिके मनमें जो आनंद हुआ वह कुछ कहा नहीं जाता, मानो ब्रह्मानंदकी राशि पायी हो ॥८॥

दोहा—दीन्ह अशीश मुनीश उर, अति अनँद अधिकान ॥
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आन ॥ १३७ ॥

मुनिवरने प्रसन्न होकर आशीष दी और मनमें अत्यन्त आनंदित हुए, मानो विधाताने पुण्योंके फलको नेत्रोंके सामने लाकर उपस्थित किया ॥ १३७ ॥

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हे * पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥१॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके * दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके॥२॥

मुनिने कुशल पूछकर आसन दिया और पूजकर प्रेमसे परिपूर्ण किया ॥१॥ फिर मुनिने कन्द-मूल-फल और सुन्दर अंकुर अमृतके समान लाकर दिये (वृक्ष की जड़, जिसमेंसे ऊपरको वृक्ष निकलते हैं उसे कन्द कहते हैं, मूल जो पहले पतलेसे होते हैं; अंकुर प्रथम बीजसे निकलते हैं) ॥ २ ॥

सीय लषण जन सहित सुहाये * अति रुचि राम मूलफल खाये ॥३॥
भये बिगत-श्रम राम सुखारे * भरद्वाज मृदु वचन उचारे ॥४॥

सीता, लक्ष्मण, निषाद सहित श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त रुचिसे (कन्द) मूल, फल खाये ॥ ३ ॥ श्रम दूर होनेपर रघुनाथजी सुखी हुए तब भरद्वाजजीने कोमल वचन कहे ॥ ४ ॥

आजु सफल सब तीरथ यागू * आजु सफल जप योग विरागू ॥५॥
सफल सकल शुभ साधन साजू * राम तुमहिं अवलोकत आजू ॥६॥

आज हमारा तप, तीर्थवास, याग, योग, तथा वैराग्य सफल हुआ ॥ ५ ॥ रघुनाथजी ! आपके दर्शनसे सब साधन फल प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी * तुम्हरे दरश आश सब पूजी ॥७॥
अब करि कृपा देव वर एहू * निज पद-सरसिज सहज सनेहू ॥८॥

लाभ और सुखकी मर्यादा दूसरी नहीं है, आपके दर्शनसे सब आशाएँ पूर्ण हो गईं॥ ७ ॥ अब कृपा करके यही वर दीजिये कि आपके चरणकमलमें स्वाभाविक स्नेह हो ॥ ८ ॥

दोहा-कर्म वचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार ॥
तब लगि सुख सपनेहुं नहीं, किये कोटि उपचार ॥ १३८ ॥

जब तक कर्म, वचन, मनसे छल छोड़ यह जन आपका (दास) नहीं होता, तबतक चाहे करोड़ों उपचार करो; स्वप्नमें भी सुख नहीं होता ॥ १३८ ॥

सुनि मुनि वचन राम सकुचाने * भाव भक्ति आनंद अघाने ॥१॥
तब रघुवर मुनि सुयश सुहावा * कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥२॥

मुनिके वचन सुनकर रघुनाथजी सकुचाये और भाव भक्तिके आनन्दसे परिपूर्ण हो गये ॥१॥ तब रघुनाथजी मुनिका सुन्दर यश अनेक भांतिसे कहकर सबको सुनाया ॥ २ ॥

सोइ बड़ सोइ सब गुणगण गेहू * जेहि मुनीश तुम आदर देहू ॥३॥
मुनि रघुवीर परस्पर नवहीं * वचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥४॥

हे मुनीश्वर ! वही बड़ा और वही गुणोंका घर है जिसको आप आदर देते हो ॥ ३ ॥ मुनि और रघुनाथजी परस्पर नवते हैं और वचनसे अगोचर (परे) सुखका अनुभव करते हैं ॥ ४ ॥

यह सुधि पाय प्रयाग निवासी * बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥५॥
भरद्वाज आश्रम सब आये * देखन दशरथ-सुवन सुहाये ॥६॥

जब यह समाचार प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी,तपस्वी,मुनि,सिद्ध,और उदासियोंने पाये ॥५॥ तब वे सब भरद्वाजजीके आश्रममें आये सुन्दर दशरथ कुमारोंको देखनेके लिये आये ॥ ६ ॥

राम प्रणाम कीन्ह सब काहू * मुदित भये सब लोचन लाहू ॥७॥
देहिं अशीश परम सुख पाई * फिरे सराहत सुन्दरताई ॥८॥

रघुनाथजीने सब किसीको प्रणाम किया, वे नेत्रोंका लाभ लेकर प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ परम सुख पाकर आशीष दी और सुन्दरताई सराहते हुए लौट आये ॥ ८ ॥

दोहा-राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग अन्हाय ॥
चले सहित सिय लषण जन, मुदित मुनिहि शिर नाय ॥ १३९ ॥

रघुनाथजीने रात्रिमें विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागमें स्नान कर सीता, लक्ष्मण और सखा सहित मुनिको प्रीतिसे शिर नवाकर चले ॥ १३९ ॥

राम सप्रेम कहेउ मुनिपाहीं * नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥१॥
मुनि मन विहँसि रामसन कहहीं * सुगम सकलमग तुम कहँ अहहीं॥२॥

रघुनाथजीने प्रेमपूर्वक मुनिराजसे कहा-नाथ ! कहिये हम किस मार्गसे जायँ ? ॥ १ ॥ मुनि मनमें हँसकर रघुनाथजीसे बोले-कि आपको तो सब ही मार्ग सुगम हैं ॥ २ ॥

साथ लागि मुनि शिष्य बुलाये ❋ सुनि मनमुदित पचासक आये॥३॥
सबन्ह राम-पद प्रेम अपारा ❋ सबहिं कहहिं मग दीख हमारा॥४॥

साथ भेजनेके निमित्त मुनिने शिष्य बुलाये, सुनते ही मनमें प्रसन्न होकर पचासों आये ॥ ३ ॥ सबका ही श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें अपार प्रेम है और सबही कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है ॥ ४ ॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे ❋ जिन बहुजन्म सुकृत सब कीन्हे॥५॥
करि प्रणाम ऋषि आयसु पाई ❋ प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥६॥

तब मुनिने चार विद्यार्थी संग दिये जिन्होंने बहुत जन्म तक सब पुण्य किये थे ॥ ५ ॥ फिर रघुनाथजी प्रणाम कर और ऋषिकी आज्ञा पाय हृदयमें प्रसन्न हो चले ॥ ६ ॥

ग्राम निकट जब निसरहिं जाई ❋ देखहि दरश नारि नर धाई ॥७॥
होहिं सनाथ जन्म-फल पाई ❋ फिरहिं दुखित मन संग पठाई ॥८॥

जब ग्रामके निकट जाकर निकले तब नर नारी दौड़कर दर्शन करते हैं ॥ ७ ॥ और जन्म का फल (दर्शन)पाकर कृतार्थ हो अपने दुःखी मनको उनके साथ ही भेजकर लौट आते हैं॥८॥

दोहा-बिदा किये बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम ॥
उतरि नहाये यमुन जल, जो शरीर सम श्याम ॥ १४० ॥

फिर रघुनाथजीने बहुत विनय (आग्रह) करके विद्यार्थियोंको विदा किया, और वे मनः कामना पाकर लौट गये। तब यमुनाजीमें स्नान किया जिनका जल शरीरके समान श्याम है ॥ १४० ॥

सुनत तीरवासी नर नारी ❋ धाये निज निज काज बिसारी॥१॥
लषण-राम-सिय-सुन्दरताई ❋ देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥२॥

यमुनातीरवासी नर नारी सुनते ही अपना कामकाज छोड़कर दौड़े ॥ १ ॥ लक्ष्मण राम जानकी जी की सुन्दरता देखकर सब अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे ॥ २ ॥

अति लालसा सबहिं मनमाहीं ❋ नाँव गाँव बूझत सकुचाहीं ॥३॥
जे तिन महँ वय-वृद्ध सयाने ❋ तिन्ह करि युक्ति राम पहिचाने॥४॥

सबके मनमें अधिक लालसा हुई; नाँव-गाँव पूछते हुए सकुचाते हैं ॥ ३ ॥ जो उनमें वयो-वृद्ध और चतुर थे उन्होंने युक्ति करके रघुनाथजीको पहचाना, क्योंकि सुना था कि भाई और स्त्री सहित रघुनाथजी वनको आवेंगे तो अब तीनों को देखकर पहचान लिया ॥ ४ ॥

सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई ❋ बनहिं चले पितु आयसु पाई ॥५॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं ❋ रानीं राय कीन्ह भल नाहीं ॥६॥

उन्होंने सब कथा उनको सुनाई कि पिताकी आज्ञा पाकर वनको चले हैं ॥ ५ ॥ सुनकर विषाद से सब पछताने लगे कि रानी, राजाने अच्छा नहीं किया ॥ ६ ॥

तेहि अवसर तापस एक आवा * तेजपुञ्ज लघुवयस सुहावा ॥७॥
कवि अलखित गति वेष विरागी * मन क्रम वचन राम-अनुरागी ॥८॥

उसी अवसरमें एक तपस्वी आया जो बड़ा तेजस्वी और सुन्दर छोटी अवस्थावाला था ॥ ७ ॥ उसकी गति कवि नहीं जानते, विरागीका वेष और मन-वचन-कर्मसे रघुनाथजीका प्रेमी था ॥ ८ ॥

दोहा–सजल नयन तनु पुलक निज, इष्टदेव पहिचानि ॥
परेउ दंडजिमि धरणितल, दशा न जाय बखानि ॥ १४१ ॥

नेत्रों में जल भरे शरीरसे पुलकित अपने इष्ट देवको पहचान कर पृथ्वीमें दंडके समान पड़ गया जिसकी दशा बखानी नहीं जाती ॥ १४१ ॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा * परम रंक जनु पारस पावा ॥१॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ * मिलत धरे तनु कह सब कोऊ ॥२॥

रघुनाथजीने प्रेमसे पुलकायमान हो उसे हृदय से लगाया; जैसे परम दरिद्रको पारस मिल जाय ऐसा तपस्वी प्रसन्न हुआ ॥ १ ॥ मानो प्रेम और परमार्थ दोनों शरीर धारे मिलते हैं ऐसा सब कोई कहने लगे ॥ २ ॥

बहुरि लषण पायन सो लागा * लीन्ह उठाय उमगि अनुरागा ॥३॥
पुनि सिय चरण धूरि धरि शीशा *जननि जानि शिशु दीन्ह अशीशा॥४॥

फिर वह लक्ष्मणके चरणोंमें पड़ा और उन्होंने प्रेमसे उठाय हृदयसे लगाया ॥ ३ ॥ फिर जानकीजीके चरणोंकी धूर शिर पर धरी, तब माताने बालक जानकर आशीष दी ॥ ४ ॥

कीन्ह निषाद दण्डवत तेही * मिलेउ मुदित लखि रामसनेही ॥५॥
पियत नैनपुट रूप पियूखा *मुदित सुअशन पाय जिमि भूखा ॥६॥

फिर निषादने उसे दंडवत् की और इसको रघुनाथजीका स्नेही जान मिला ॥ ५ ॥ नयनोंके दोने द्वारा रूपामृतका पान करने लगा जैसे भूखा सुन्दर भोजन पाकर प्रसन्न हो । अब गाँवकी स्त्रियोंका संवाद कहते हैं) ॥ ६ ॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे * जिन पठये वन बालक ऐसे ॥७॥
राम लषण सिय रूप निहारी * होहिं सनेह विकल नर नारी ॥८॥

---

१. किसीके मतसे यह तपस्वी अग्नि है, इसके आनेपर रघुनाथजीने निषादको विदा कर दिया । बिना इसके रघुनाथजी तीन जने रह जायंगे और तीन जनोंका, साथ जाना मना है । अवधसे सुमंतके साथ चार ही रहे, शृंगवेरपुरसे निषादके साथ होनेसे वहां तक चार जने रहे, यहां अग्नि आ मिला क्योंकि अग्निदेवकी दी हुई हबिसे ये प्रकट हुए हैं, वह प्रेम और रक्षा करते हैं और फिर साथ ही रहा, इस कारण इसकी बिदाई नहीं लिखी और सुग्रीवकी मित्रतामें इसकी साक्षी पड़ी है, क्योंकि साक्षी निकट रहनेवालेकी होती है और दंडकारण्यमें जानकीजीको अग्निदेवताके पास रखा, क्योंकि थाती भी निकट वर्तीको ही सौंपी जाती है, फिर गोसाइंजीने इसको तेजपुञ्ज भीलिखा है, और अंत में मुदित सुअशन पाय जिमि 'भूखा' तो तेजपुञ्ज और क्षुधित दोनों अग्निके धर्म हैं; इससे अग्नि ही तपस्वीरूप सिद्ध है । कोई ऐसा कहते हैं कि चित्रकूटमें अगस्त्यका शिष्य एक तपस्वी रहता था वह रघुनाथजीका आगमन सुन कुटीसे उठ यमुनातटपर आ मिला, यह कथा महारामायणकी बताते हैं परंतु हमने उसका दर्शन नहीं किया है और कोई ऐसा कहते हैं दोहा –'चित्रकूट, अस श्रवण सुनि, यमुन तीर भगवान् ।। बाल बिरागी वेष धरि, गयो लेन भगवान । श्रीकामदनाथ ही रघुनाथजीको लिवानेको आये । कोई कहते हैं गोसाइंजीने यहां अपनेको ही लिखा है, क्योंकि यमुनाके दक्षिण कूलमें राजापुर स्थान उनके रहने का है सो ध्यानमें अपनेको ही रघुनाथजीसे मिलना और दंडवत करना बताया है इससे यह कथा प्रसंग से छूट गयी है ध्यान से छूटे हैं तो प्रसंग मिला चले हैं, 'ते पितु मातु कहौ सखि कैसे' इत्यादि ।

सखि ! कहो वे माता पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालक वनको भेज दिये हैं ? ॥ ७ ॥ राम लक्ष्मण सीताका रूप निहार कर नर नारी स्नेहसे व्याकुल हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–तब रघुवीर अनेक विधि, सखहि सिखावन दीन्ह ॥
राम रजायसु शीश धरि, भवन गवन तेहि कीन्ह ॥ १४२ ॥

तब रघुनाथजीने अनेक प्रकारसे निषादको सब सिखाया; उसने रघुनाथजीकी आज्ञा शिरपर धर घरको गमन किया ॥ १४२ ॥

पुनि सिय राम लषण करजोरी * यमुनहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी ॥१॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई * रवि तनयाकर करत बड़ाई ॥२॥

फिर सीता, राम, लक्ष्मणने हाथ जोड़कर यमुनाजीको प्रणाम किया ॥१॥ फिर जानकी सहित दोनों प्रसन्न हो यमुनाजीकी बड़ाई करते चले। (यमुनाजी सूर्य पुत्री हैं बड़ाई करनेका भाव यह है कि, सूर्यवंश होनेसे श्री राघवकी बड़ी बूढ़ी पुरुषिन हैं) ॥ २ ॥

पथिक अनेक मिलहिं मगु जाता * कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥३॥
राज-सुलक्षण अंग तुम्हारे * देखि सोच चित होत हमारे ॥४॥

अनेक यात्री मार्गमें मिलते हैं और प्रेमसे दोनों भाइयोंको देखकर कहते हैं ॥ ३ ॥ तुम्हारे शरीरमें सब राजाओंके सुन्दर सुलक्षण हैं और आप इस दशामें फिरते हो यह देख हमारे जीमें शोच होता है ॥ ४ ॥

मारग चलहु पयादेहि पाये * ज्योतिष झूठ हमारे भाये ॥५॥
अगम पंथ गिरि कानन भारी * तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥६॥

नंगे पाँव मार्गमें चलते हो, हमारे जाने ज्योतिष झूठा है ॥ ५ ॥ बड़े पर्वत और वनका दुर्गम मार्ग है, उस पर भी आपके साथ कोमल स्त्री है ॥ ६ ॥

करि केहरि वन जाय न सोई * हम संग चलहिं जो आयसु होई॥७॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई * फिरब बहोरि तुम्हैं शिर नाई ॥८॥

वह हाथी सिंहोंका वन जाने योग्य नहीं है जो आपकी आज्ञा हो तो हम साथ चलें ॥७॥ जहाँ तक चलोगे वहां पहुँचाकर तुम्हें शिर नवाकर लौट आवेंगे ॥ ८ ॥

दोहा–यहि विधि पूछहिं प्रेमवश, पुलक गात जल नैन ॥
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हैं, कहि विनीत मृदु बैन ॥ १४३ ॥

इस प्रकारसे लोग पुलकित देह प्रेम वश हो नेत्रोंमें जल भरकर पूछते हैं और रघुनाथजी उनको कोमल नम्र वचन कहकर लौटाते हैं ॥ १४३ ॥

जे पुर गाँव बसहिं मगमाहीं * तिनहिं नाग सुर नगर सिहाहीं ॥१॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये * धन्य पुण्यमय परम सुहाये ॥२॥

---

१. –प्रभाती-देखुरी किशोर दोय भूपति कुलतिलक कोय । मन्द इन्दु लोग ये मुखारविंद हेरें । मुनि पट श्यामल शरीर नाशत भवविषम पीर-कीन्हे मृदु मन्द हंसनि काम कोटि चेरे ॥ कीन्हे तनु सुरति त्याग निरखत मुख सानुराग, ए तो रह सुरन भाग जस खग मृग केरे । लोचन युग पल बिसारि चितवत मग ग्राम नारि अतिहित जोइ जाहि ताहि कहत मंत्र टेरे ॥ प्रफुल्लित सोउ रहित जाय जीवन फल सहज पाय, सोच सकुच भवंन ढहेउ प्रेम सलिल मेरे । माषति भरि दृगन वारि मोचे इन धरु संभारि सूरज तमकमल क्षारि कमलनयन फेरे ॥

मार्गमें जिस नगर गाँवमें वास करते हैं उन ग्रामोंकी नागलोक, देवलोक सभी सराहना करते हैं ॥ १ ॥ कि किस पुण्यात्माने किस घरी बसाये हैं वे धन्य हैं पुण्यमय परम शोभायमान हैं ॥ २ ॥

जहँ जहँ राम--चरण चलि जाहीं ❋ तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥३॥
पुण्यपुञ्ज मगनिकट--निवासी ❋ तिनहिं सराहहिं सुरपुर वासी ॥४॥

जहां-जहां रघुनाथजीके चरण जाते हैं। उन-उन स्थानोंके समान इन्द्रपुरी भी नहीं है॥३॥ मार्ग के समीप रहने वाले बड़े पुण्यात्मा हैं, ऐसा उनको सुरपुरवासी सराहते हैं ॥ ४ ॥

जे भरि नयन विलोकहिं रामहिं ❋ सीतालषणसहित घनश्यामहिं ॥५॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं ❋ तिन्हैं देवसर सरित सराहहिं ॥६॥

जो लोग नयन भरकर सीता लक्ष्मण सहित श्याम शरीर रघुनाथजीको देखते हैं ॥ ५ ॥ और जिस तालाब और नदीमें रघुनाथजी स्नान करते हैं, उसकी मानसरोवर और गङ्गाजी बड़ाई करती हैं ॥ ६ ॥

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई ❋ करहि कल्पतरु तासु बड़ाई ॥७॥
परसि राम-पद-पद्म परागा ❋ मानति भूमि भूरि निज भागा ॥८॥

जिस वृक्षके नीचे प्रभु जाकर बैठते हैं उसकी कल्पवृक्ष बड़ाई करता है ॥ ७ ॥ रघुनाथजीके चरणकमलकी रजको स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा भाग्य मानती है ॥ ८ ॥

दोहा—छाँह करहिं घन विबुधगण, बर्षहिं सुमन सिहाहिं ॥
देखत गिरि वन विहँग मृग, राम चले मग्र जाहिं ॥ १४४ ॥

बादल छाया करते हैं, देवता फूल बरसाते हैं और सराहना करते हैं । पर्वत, वन, पक्षी तथा मृगोंको देखते हुए रघुनाथजी मार्गमें चले जाते हैं ॥ १४४ ॥

सीता-लषण-सहित रघुराई ❋ गाँव-निकट जब निसरहिं जाई॥१॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी ❋ चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥२॥

सीता लक्ष्मण सहित रघुनाथजी जब गांवके निकट निकलते हैं ॥ १ ॥ तो सुनकर सब बालक और बूढ़े नर नारी घरका काम छोड़कर तुरन्त चल देते हैं ॥ २ ॥

राम-लषण-सिय-रूप निहारी ❋ पाय नैनफल होहिं सुखारी ॥३॥
सजल विलोचन पुलकि शरीरा ❋ सब भये मगन देखि दोउ वीरा॥४॥

राम, लक्ष्मण, जानकीजीके रूपको देख नयनका फल पाय सुखी होते हैं ॥ ३ ॥ नेत्रोंमें जल भर और शरीरसे पुलकायमान हो दोनों वीर भाइयोंको देख सब प्रेममें मग्न हुए ॥४॥

वर्णि न जाय दशा तिनकेरी ❋ लहि जनु रंकन्ह सुरमणि ढेरी॥५॥
एकन एक बोलि सिख देहीं ❋ लोचन-लाहु लेहु छिन येहीं ॥६॥

उनकी दशा नहीं वर्णी जाती, जैसे दरिद्र मनुष्योंको देवताओंकी मणियों (चिन्तामणि) की ढेरी मिल गयी ॥५॥ एक एकको बुलाकर शिक्षा देते हैं कि इस समय तो नेत्रोंका लाभ ले लो ॥ ६ ॥

रामहिं देखि एक अनुरागे * चितवत चले जाहि सँग लागे ॥७॥
राम नैन मग छबि उर आनी * होहिं शिथिल तनु मनवरबानी ॥८॥

एक रघुनाथजीको देखकर ऐसे प्रेममें आये कि देखते हुए संग ही चले जा रहे हैं ॥७॥ एक रघुनाथजीकी छबि नयनोंके मार्ग ग्रहण कर तन, मन तथा सुन्दर वाणीसे शिथिल हो जाते हैं॥८॥

दोहा–एक देखि वटछाँह भलि, डासि मृदुल तृण पात ॥
कहहिं गवाँइय छिनक श्रम, गवनब अबहिंकि प्रात ॥ १४५ ॥

एक वटकी भली छाया देखकर कोमल तृण पत्ते आदि बिछाकर कहते हैं कि क्षणमात्र तो बैठकर थकावट मिटा लीजिये ! आज ही या सबेरे चले जाना ? ॥ १४५ ॥

एक कलश भरि आनहिं पानी * अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी ॥१॥
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी * परम कृपालु सुशील बिसेखी ॥२॥

एक पानीका कलश भर लाये और हे नाथ ! पीजिये यह कोमल वाणी से बोले ॥ १ ॥ उनके यह प्रिय वचन सुन और अत्यन्त प्रीति देखकर परम कृपालु अधिक शीलवान् ॥२॥

जानी श्रमित सीय मनमाहीं * घरिक विलम्ब कीन्ह वटछाँहीं॥३॥
मुदित नारि नर देखहिं शोभा * रूप अनूप नैन मन लोभा ॥४॥

श्रीरघुनाथजीने जानकीजीको थकी हुई जानकर एक घड़ी बटकी छायामें विलम्ब (विश्राम) किया ॥३॥ प्रसन्न होकर नारी नर शोभा देखते हैं, अनूप रूप देखकर नयन, मन लुभा गये॥४॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा * रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरा ॥५॥
तरुण तमाल वरण तन सोहा * देखत कोटि मदन मन मोहा ॥६॥

एक टक सब चारों ओर शोभित होते हैं, रघुनाथजीके मुखको ऐसे देखते हैं जैसे चंद्रमा को चकोर (यह रामजीकी महिमा है कि चारों ओर बैठने वालोंको मुखही दीखता है पीठ नहीं ॥५॥ नवीन तमालके सदृश शोभायमान शरीर, जिसको देखकर कामका मन मोहित हो॥६॥

दामिनि वरण लषण सुठि नीके * नखशिख सुभग भावते जीके ॥७॥
मुनि पट कठिन कसे तूणीरा * सोहहिं करकमलन धनु तीरा ॥८॥

(बिजलीके समान) गोरा वर्ण लक्ष्मणजीका अति सुन्दर है, नख शिखसे सुन्दर, जीको भाता है ॥ ७ ॥ वल्कल वस्त्र धारण किये कमरमें दृढ़तासे तरकस कसे और कमलसे हाथोंमें धनुष बाण शोभित हैं ॥ ८ ॥

दोहा–जटा मुकुट शीशन सुभग, उर भुज नयन विशाल ॥
शरद पर्व विधु वदनवर, लसत स्वेद-कण-जाल ॥ १४६ ॥

शिरोंपर जटाओंके सुन्दर मुकुट, छाती, भुजा, नयन बड़े और शरद चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है; पसीनेके कण (बूँदें) शरीर पर शोभित हो रहे हैं ॥ १४६ ॥

---

१. राग विलावल –" कहो विपिन धौं केतिक दूरि ॥ जहां गवन कियो कुँवर अवधपति, बूझति सिय प्रिय पतिहि विसूरि । प्राण नाथं परदेश पयादेहि चले सुख सकल तजे तृण तूरि । करौं बयारि बिलंबि बिटप्तर, झरिहौं चरण सरोरुह धूरि, तुलसिदास प्रभु सिया वचन सुनि, नीरज नयन नीर आये पूरि ॥ कानन कहां अवहि सुनु सुन्दरि रघुपति फिरि चितये हित भूरि ।

बरणि न जाय मनोहर जोरी * शोभा बहुत मोरि मति थोरी ॥१॥
राम-लषण-सिय सुन्दरताई * सब चितवहिं चितमन मतिलाई॥२॥

मनहरणी जोड़ी की शोभा वर्णी नहीं जाती,क्योंकि सुन्दरता बहुत और मेरी मति थोड़ी है ॥१॥ राम,लक्ष्मण,जानकीजीकी सुन्दरताको सब मन, चित्त और बुद्धि लगाकर देखते हैं ॥२॥

थके नारि नर प्रेम पियासे * मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ॥३॥
सीय-समीप-ग्राम-तिय जाहीं * पूछत अति सनेह सकुचाहीं ॥४॥

प्रेमके प्यासे नारीनर रूप देकर ऐसे थक गये जैसे मृगी और मृग दिया देखकर थक जाते हैं॥ ३ ॥ जानकीजीके निकट ग्रामकी स्त्रियां जाती हैं और अत्यन्त प्रेमके मारे पूछते हुये सकुचाती हैं ॥ ४ ॥

बार बार सब लागहिं पाये * कहहिं वचन मृदु सरल सुहाये ॥५॥
राजकुँमारि विनय हम करहीं * तिय स्वभाव कछु पूछत डरहीं ॥६॥

बारंबार सब चरण लगतीं और सरल तथा सुन्दर कोमल वचन कहती हैं ॥ ५ ॥ कि हे राजकुमारी ! हम विनय करती हैं और स्त्री स्वभावसे कुछ पूछते हुए डरती हैं ॥ ६ ॥

स्वामिनि अविनय क्षमब हमारी * बिलग न मानव जानि गँवारी ॥७॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने * इनते लहिं द्युति मरकत सोने ॥८॥

हे स्वामिनि ! अविनय क्षमा करना और गँवारी जानकर कुछ बुरा मत मानना ॥ ७ ॥ ये दोनों राजकुमार जो स्वभावसे ही सलोने हैं इन्हींसे मरकतमणि और सोने ने कांति प्राप्त की है क्या ? ॥ ८ ॥

दोहा-श्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुषमा ऐन ॥
शरद शर्वरी नाथ मुख, शरद सरोरुह नैन ॥ १४७॥

श्याम और गौरवर्ण, अवस्था छोटी सुन्दर शोभाके घर तथा शरच्चन्द्रके समान जिनके मुख और शरदकमलके समान नेत्र हैं ॥ १४७ ॥

कोटि--मनोज---लजावनहारे * सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे ॥१॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी * सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥२॥

और करोड़ों कामदेवोंको जिनके दर्शनसे लाज लगती है, हे सुन्दरमुखी ! आपके ये कौन हैं ? ॥१॥ स्नेहसे भरी उज्ज्वल वाणी सुन जानकीजी सकुचाकर मनमें मुसकाईं; मुसकानेका भाव यह है कि, हैं गँवारी, पर तो भी बड़ी चतुरतासे पूछती हैं ॥ २ ॥

तिनहिं विलोकि विलोकति धरणी * दुहुँ संकोच सकुचति वरवरणी ॥३॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृगनयनी * बोलीं मधुर वचन पिकबयनी ॥४॥

वरवरणी अर्थात् सुन्दर गौरशरीरवाली जानकीजी उनको देख फिर पृथ्वीको देखने लगी और दोनोंके संकोचसे सकुचा गयीं । भाव यह है कि जो न कहूँ तो ये स्त्रियां उदास होंगी । भूमि माता है उनके निकट पतिविषयक वचन कहनेमें लाज है, इस लिए इनको देख पुनः पृथ्वीको देखती हैं स्त्रियोंका स्वभाव है कि लाजकी बातें सुनकर पृथ्वीको देखने

लगती हैं अथवा पतिके पास लाजसे सकुचाती हैं ॥ ३ ॥ सकुचाकर प्रेम सहित बालमृग नयनी पिकबयनी जानकीजी मधुर वचन बोलीं ॥ ४ ॥

सहज स्वभाव सुभग तनु गोरे * नाम लषन लघु देवर मोरे ॥५॥
बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी *पियतन चितै भौंह करि बाँकी ॥६॥

सहज स्वभाव (कुटिल स्वभावरहित) जिनका सुन्दर गोरा शरीर है, लक्ष्मण इनका नाम है ये मेरे छोटे देवर हैं (छोटे कहनेसे भरत बड़े देवर हैं यह बोध होता है) ॥ ५ ॥ फिर अपने चन्द्र सरीखे मुख पर अञ्चल ढँक; बाँकी भौंहकर रघुनाथजीकी ओर देख ॥ ६ ॥

खञ्जन मंजु तिरीछे नयननि *निजपति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥७॥
भईं मुदित सब ग्राम वधूटी * रंकनराय राशि जनु लूटी ॥८॥

खंजन सरीखे उज्ज्वल तिरछे नैनोंके द्वारा जानकीजीने रामजीको अपना पति बताया ॥ ७ ॥ गाँवकी स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं जैसे कंगालोंने धनकी राशि लूट ली ॥ ८ ॥

दोहा-अति सप्रेम सिय पाँय परि, बहु विधि देहिं अशीश ॥
सदा सुहागिनि होहु तुम, जब लगि महि अहिशीश ॥ १४८ ॥

अत्यन्त प्रेमसे जानकीजीके पाँय पकड़ कर बहुत प्रकारसे आशीष देती हैं कि तुम सदा सुहागिनी रहो जब तक पृथ्वी शेषजी के शिर पर है ॥ १४८ ॥

पारवती-सम-पति-प्रिय होहू * देवि न हमपर छाँड़ब छोहू ॥१॥
पुनि पुनि विनय करहिं कर जोरी * जो यहि मारग फिरिय बहोरी ॥२॥

हे देवि! पार्वतीके समान पतिको प्यारी हो और हमारे ऊपरसे कृपा मत छोड़ना। भाव यह कि, जैसे शिवजी पार्वतीको अर्द्धांगिनी रखते हैं, वैसे ही तुमको तुम्हारे पति संग रखें ॥१॥ बार-बार हाथ जोड़कर हम विनय करती हैं, जो पुनः इस मार्गसे लौटकर आओ ॥ २ ॥

दरशन देव जानि निज दासी * लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥३॥
मधुर वचन कहि कहि परितोषी * जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥४॥

तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना जानकीजीने उन सबको प्रेमकी प्यासी देखा ॥ ३ ॥ मधुर वचन कहकर सबको समझाया, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंने कुमुदिनीको पुष्ट किया ॥४॥

तबहिं लषण रघुवर रुख जानी * पूछेउ मग्गु लोगन मृदु बानी ॥५॥
सुनत नारि नर भये दुखारी * पुलकित गात विलोचन बारी ॥६॥

उसी समय लक्ष्मणने रघुनाथजीका रुख जान कोमल वाणी द्वारा लोगोंसे मार्ग पूछा॥५॥ सुनते ही नारी नर दुःखी हो गये, शरीर पुलकायमान हो नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ६ ॥

मिटा मोद मन भये मलीने *विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥७॥
समुझि कर्मगति धीरज कीन्हा *शोधि सुगममग्गु तिन्ह कहि दीन्हा॥८॥

प्रसन्नता जाती रही, मन मलिन हो गये, जैसे विधाता धन देकर छीन लेता हो कारण कि रघुनाथजीका वियोग न सहा गया ॥७॥ फिर कर्मकी गति समझकर धैर्य धारण किया और उन्होंने सरल (सीधा) मार्ग निर्णय करके बता दिया ॥ ८ ॥

दोहा–लषण जानकी-सहित वन, गवन कीन्ह रघुनाथ ॥
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिये लाय बन साथ ॥ १४९ ॥

तब लक्ष्मण–जानकी सहित श्रीरघुनाथने वनमें गमन किया और प्रिय वचन कहकर सब को लौटाया उनके मन साथ ले गये ॥ १४९ ॥

फिरत नारि नर अति पछिताहीं ❋ दैवहि दोष देहिं मनमाहीं ॥१॥
सहित विषाद परस्पर कहहीं ❋ विधि करतब उलटे सब अहहीं॥२॥

नारी नर फिरते हुए बहुत पछताते और मनमें दैवको दोष देते हैं। दोष देनेका भाव यह कि ऐसे प्यारोंको मिलाकर फिर वियोग कर दिया ॥ १ ॥ दुःखसे आपसमें कहते हैं कि विधाताके करतब सब उलटे हैं ॥ २ ॥

निपट निरंकुश निठुर निशंकू ❋जेहि शशि कीन्ह सरुज सकलंकू॥३॥
रूख कल्पतरु सागर खारा ❋ तेहि पठये वन राजकुमारा ॥४॥

निपट ही दबाव रहित, निष्ठुर और शंकाहीन है जिसने चन्द्रमाको रोगी और कलंकी बनाया है ॥ ३ ॥ जिसने सर्वकामदाता कल्पतरुको वृक्ष किया; रत्नदाता समुद्रको खारा किया उसीने राजकुमारोंको वन भेज दिया ॥ ४ ॥

जौ पै इनहिं दीन्ह वनवासू ❋ कीन्ह वादि विधि भोग विलासू॥५॥
ये विचरहिं मग बिन पदत्राना ❋ रचे बादि विधि वाहन नाना ॥६॥

जो इनको वनवास दिया है तो विधाताने भोग विलास वृथाही बनाये हैं ॥५॥ जो ये विना पदत्राण (खड़ाऊँ आदि) के मार्गमें चलते हैं तो विधाताने अनेक वाहन वृथा ही बनाये ॥ ६ ॥

ये महि परहिं डासि कुश पाता ❋ सुभग सेज कत सृजत विधाता॥७॥
तरुवर वास इनहिं विधि दीन्हा ❋धवलधाम रचि रचि श्रम कीन्हा॥८॥

जो ये कुश पत्ते बिछाकर पृथ्वीमें सोते हैं तो विधाताने सुन्दर सेज क्यों बनाई ?॥७॥ जो विधाताने इनको वृक्षके नीचे वास दिया है तो ऊँचे धाम बना बनाकर क्यों श्रम किया ? ॥ ८ ॥

दोहा–जौ ये मुनिपटधर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार ॥
विविध भाँति भूषण वसन, वादि किये करतार ॥ १५० ॥

ये सुन्दर और अति सुकुमार जो मुनिपट धारण कर जटा रखावें तो अनेक प्रकारसे भूषण और वस्त्र विधाताने वृथा ही बनाये ॥ १५० ॥

जौ यह कन्द मूल फल खाहीं ❋ बादि सुधादि अशन जगमाहीं॥१॥
एक कहहिं ये सहज सुभाये ❋ आप प्रगट भये विधि न बनाये॥२॥

---

१. भैरवी –"पथिक मोहनियां डारे जात। विहँसत मन्द विलोकत जेहि तनु, प्राणन सहित विकात ।। तजत निमेष विशेष नयन युग दर्शत श्यामल गात। अधरन स्रवत मधुर वचनामृत क्यों ये श्रवण अघात ।। धरनी रहत सकुचि उर पग पग, परशि चरण चल जाल ।। इनहिं रह्यो वनवास योग सखि, विधिसे कहा बसात ।। मनसहुं अगन कि मिलहिं बहुरि यह निमिष भेंटके नात। ये जड़ प्रान अपान विगत संग, अजहुं न लागे जात ।। करतल खोय सहज चिन्तामणि, अन्त रहहिं पछितात। बहुरि कहा करनी फल भोगत, सूरज निज जलजात ।।"

जो ये कंद मूल फल खाते हैं तो अमृत के समान भोजनादि जगत्में वृथा ही हैं॥ १॥ एक बोला कि, ये स्वभावसे शोभायमान आप प्रकट हो गये हैं, इनको विधाताने नहीं बनाया ॥ २ ॥

जहँ लगि वेद कही विधि करनी ❋ श्रवण नयन मन गोचर बरनी ॥३॥
देखहुँ खोजि भुवन दशचारी ❋ कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥४॥

जहाँतक वेदने विधाताकी करनी बरनी है सो श्रवण, नयन, मन आदि इंद्रियोंके आगे हैं अर्थात् कुछ सुना है, कुछ देखा है, कुछ मनने अनुभव कर जाना है इन तीनों रीतियोंसे विधि की करनी सब बुद्धिमें आजाती है ॥ ३ ॥ भला चौदहों भुवनोंमें खोजकर देखो तो कहां ऐसे पुरुष और कहां ऐसी नारी हैं ? ॥ ४ ॥

इनहिं देखि विधि मन अनुरागा ❋ पटतर योग बनावन लागा ॥५॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न पाये ❋ तेहि ईर्षा वन आनि दुराये ॥६॥

इनको देखकर विधाताके मनमें अनुराग हुआ तो इनके समान बनाने लगा ॥ ५ ॥ जब बहुत श्रम किया और किसी प्रकार नहीं बने तो ईर्षावश उसने बनमें ला छिपाया ॥ ६ ॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं ❋आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥७॥
ते पुनि पुण्य पुंज हम लेखे ❋ जे देखहिं देखहहिं जिन देखे ॥८॥

एक बोले—हम बहुत नहीं जानते, केवल अपनेको ही परम धन्य मानते हैं ॥ ७ ॥ और फिर हमारे मतसे जो देखते हैं, जो देखेंगे और जिन्होंने देखा है वे ही पुण्यात्मा हैं ॥ ८ ॥

दोहा—यहि विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर ॥
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर ॥१५१॥

इस प्रकार—प्यारे वचन कह-कहकर नेत्रोंमें जल भर लेते हैं कि, ये सुकुमार शरीर दुस्तर मार्गमें कैसे चलेंगे ? ॥ १५१ ॥

नारि सनेह विकल-वश होहीं ❋ चकई साँझ समय जनु सोहीं ॥१॥
मृदु पदकमल कठिन मग जानी ❋ गहवर हृदय कहइँ बर बानी ॥२॥

नारियाँ स्नेहके वश व्याकुल होती हैं जैसे सन्ध्या समय चकवी हो जाती है ॥१॥ इनके कोमल चरण और मार्ग कठिन जानकर गद्गद कंठ होकर सुन्दर वाणी कहते हैं ॥ २ ॥

परसत मृदुल चरण अरुणारे ❋सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥३॥
जौ जगदीश इनहिं बन दीन्हा ❋कस न सुमन मय मारग कीन्हा॥४॥

इनके कोमल अरुण चरण स्पर्श करके पृथ्वी हमारे हृदयके समान सकुचाती है ॥ ३ ॥ जो जगदीशने इनको वन दिया तो फूलोंका मार्ग क्यों न बना दिया ॥ ४ ॥

जौ माँगे पाइय विधि पाहीं ❋ये रखियहिं सखि आँखिन माहीं॥५॥
जे नर नारि न अवसर आये ❋ तिन सिय राम न देखन पाये ॥६॥

हे सखि ! जो विधाता हमें इच्छितवर दें तो इन्हें आँखोंमें रखलें।५। अथवा स्त्रियां पृथ्वीसे कहती हैं कि जो हम विधातासे मांगे पातीं तो इन्हें नेत्रोंमें धरतीं, और तू प्रार्थना कर ब्रह्मासे मांग लाई है इस कारण तू भी इन्हें नेत्रोंमें धर और इनके चरणोंको लेकर हमारे हृदयके समान सकुचा जा।

पृथ्वीके समान रामचंद्र इनके हृदयमें विराजमान हैं॥५॥जो नर नारी उस अवसरमें न आये (अथवा जिनका जन्म उस समय संसारमें नहीं हुआ था) उन्हें सीताराम देखनेको न मिले॥६॥

सुनि स्वरूप बूझहिं अकुलाई ❋ अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥७॥
समरथ धाय विलोकहिं जाई ❋ प्रमुदित फिरहिं जन्मफल पाई॥८॥

स्वरूप सुन व्याकुल हो पूछते हैं कि भाई! अब कहां तक गये होंगे? ॥७॥ समर्थ लोग दौड़कर जा देखते हैं और जन्मका फल पाय प्रसन्नतासे लौट आते हैं॥ ८ ॥

दोहा—अबला बालक वृद्ध जन, कर मींजहि पछिताहिं॥
होहिं प्रेमवश लोग सब, राम जहाँ जहँ जाहिं॥ १५२ ॥

स्त्री बालक और बूढ़े जन हाथ मल मलकर पछताते हैं निदान जहाँ-जहाँ रघुनाथजी जाते हैं, सब लोग इसी प्रकार प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं॥ १५२ ॥

गाँव गाँव अस होय अनन्दू ❋ देखि भानुकुल-कैरव-चन्दू ॥१॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं ❋ ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं ॥२॥

सूर्यकुलरूपी बबूलेके लिए चन्द्रस्वरूप रघुनाथजीको देखकर प्रत्येक गाँवमें ऐसा ही आनंद होता था॥ १ ॥ जो कोई कुछ समाचार सुन पाते हैं वे महाराजकी रानी (कैकेयी) को अथवा राजा और रानी दोनोंको दोष लगाते हैं॥ २ ॥

कहहिं एक अति भल नरनाहू ❋दीन्ह हमहिं जिन लोचन लाहू ॥३॥
कहहिं परस्पर लोग लुगाई ❋ बातें सरल सनेह सुहाई ॥४॥

एक बोले—राजा बहुत अच्छे हैं, जिन्होंने हमको, नेत्रोंका लाभ दिया है॥ ३ ॥ लोग लुगाई परस्पर सीधी स्नेह भरी सुन्दर बातें कहते हैं॥ ४ ॥

ते पितु मातु धन्य जिन जाये ❋ धन्य सो नगर जहाँते आये ॥५॥
धन्य सो देश शैल वन गाऊँ ❋ जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥६॥

वे माता-पिता धन्य हैं! जिन्होंने उत्पन्न किया और वह नगर भी धन्य है, जहांसे ये आये हैं॥५॥ वे देश, पर्वत, वन गांव धन्य हैं और स्थान भी धन्य हैं जहां-जहां ये जाते हैं॥ ६ ॥

सुख पायउ विरंचि रचि तेही ❋ ये जेहिके सब भाँति सनेही ॥७॥
राम-लषण-सिय कथा सुहाई ❋ रही सकल मग कानन छाई ॥८॥

वे जिसके सर्वप्रकार स्नेही हैं विधाताने उसको रचकर सुख पाया॥ ७ ॥ राम, लक्ष्मण तथा जानकीजीकी सुन्दर कथा सब मार्ग और वनमें छा रही है अथवा सबके कानोंमें समा गयी है; एक कहते हैं और एक सुनते हैं॥ ८ ॥

दोहा—यहि विधि रघुकुलकमल रवि, मगलोगन सुख देत॥
जाहि चले देखत विपिन, सिय सौमित्रि समेत॥ १५३ ॥

इस प्रकार रघुकुलरूपी कमलके सूर्य रघुनाथजी लोगोंको सुख देते और वन देखते हुए जानकी, लक्ष्मण सहित चले जा रहे हैं॥ १५३ ॥

---

१. स०— रानी में जानी अमानी महापवि, पाहनहुते कठोर हियो है। राजहु काज अकाज न जान्यों, कहो तीयको जेहि कान कियो है ॥ ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है। आंखिनमें रखि राखिवे योग, इन्हें किनिकै बनवास दियो है।"

आगे राम लषण पुनि पाछे * तापस वेष विराजत आछे ॥१॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी * ब्रह्म जीव विच माया जैसी ॥२॥

आगे तो रघुनाथजी और पीछे लक्ष्मण तपस्वियोंका वेष धारण करते हुए शोभित हैं ॥ १ ॥ दोनोंके बीचमें जानकीजी कैसी शोभित हैं जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया अर्थात् ब्रह्मके पीछे माया रहती है और उसके पीछे जीव रहता है ॥ २ ॥

बहुरि कहउँ छबि जस मन बसई * जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥३॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही * जनु बुध विधुविचरोहिण सोही ॥४॥

फिर कहता हूँ जैसी छबि मनमें बसी–मानो बसन्त और कामदेवके बीचमें रति शोभित होती है ॥३॥ फिर जीमें विचार कर उपमा कहता हूँ, मानों बुध और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी शोभित होती है ॥ ४ ॥

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता * धरति चरणमग चलति सभीता ॥५॥
सीय राम-पद अङ्क बराये * लषण चलहिं मगु दाहिन लाये ॥६॥

रघुनाथजीके चरणोंकी रेखाके बीच-बीचमें जानकी भयभीत हो बचाके चरण रखती हुई चलती हैं ॥५॥ और सीता रघुनाथजीके चरण चिह्न बचाते लक्ष्मणजी दाहिनी ओर (चरण चिह्न) लेते हुए चलते हैं, जिससे स्वामीके चरणोंकी परिक्रमा होती जाय ॥ ६ ॥

राम लषण सिय प्रीति सुहाई * वचन अगोचर किमि कहि जाई ॥७॥
खग मृगमगन देखि छबि होहीं * लिये चोर चित राम बटोहीं ॥८॥

राम, लक्ष्मण, जानकीजीकी सुन्दर प्रीति वचनसे अगोचर है सो वह कैसे कही जाय ? ॥७॥ खग मृग छबि देखकर मग्न होते हैं कि रघुनाथ बटोहीने चित्त चुरा लिया ! अथवा चित्त राममें लग जानेसे पशु-पक्षी बटोही हो गये; पीछे चले गये अथवा बटोही होनेपर भी श्रीरामचंद्रजीकी छबि देखकर चित्त मोहित हो गये, शृंगार किये होनेकी तो बात क्या ? अथवा कोई गांव नगरका व्यक्ति चुरानेवाला हो तो उसका पता मिले; किंतु जो पथिक चोरी करे वह कहां मिले ? इससे इनके मन नहीं मिल सकते, जिनके मन रामके निकट रहे; सामीप्य मुक्ति मिली ॥८॥

दोहा–जिन जिन देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाय ॥
भव मग अगम अनंद तेइ, विनुश्रम रहे सिराय ॥ १५४ ॥

जिन जिन्होंने प्रिय पथिक अर्थात् जानकी सहित दोनों भाइयोंको (मार्गमें) देखा वे दुस्तर संसारमार्ग (सागर) से विना श्रम आनंदपूर्वक पार हो गये । अथवा जिनको संसारका मार्ग प्यारा था वे भी दर्शन कर संसारसे पार हो गये अथवा पथिक प्रियका भाव यह है कि पथिक प्रिय नहीं होते, किन्तु ये सबको प्यारे हैं ॥ १५४ ॥

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ * बसहिं राम सिय लषण बटाऊ ॥१॥
रामधाम–पथ पाइहि सोई * जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥२॥

अब भी जिनके हृदय स्वप्नमें भी कभी राम, लक्ष्मण, जानकी पथिक बसें ॥ १ ॥ वह उस रामके धाम मार्गको जायगा-जिस मार्गको कभी कोई मुनि पाता है ॥ २ ॥

तब रघुवीर श्रमित सिय जानी * देखि निकट वट शीतल पानी॥३॥
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई * प्रात नहाय चले रघुराई ॥४॥

तब रघुनाथजीने जानकीजीको थकी हुई जाना और वटके निकट ही शीतल पानी देखकर ॥३॥ वहां वसकर और कन्दमूल फल खाकर और प्रातःकालही स्नान कर रघुनाथजी चले॥४॥

देखत वन सर शैल सुहाये * बालमीकि-आश्रम प्रभु आये ॥५॥
राम दीख मुनिवास सुहावन * सुन्दर गिरि कानन जल पावन॥६॥

वन पर्वत सरोवर देखते हुए प्रभु वाल्मीकिजीके आश्रममें आये ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने मुनिका सुन्दर आश्रम देखा, जहाँपर सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल विद्यमान हैं ॥ ६ ॥

सरन सरोज विटप वन फूले * कूजत मंजु मधुप रस भूले ॥७॥
खग मृग विपुल कुलाहल करहीं * रहित वैर प्रमुदित मन चरहीं ॥८॥

सरोवरमें कमल, वनमें वृक्ष फूल रहे और श्रेष्ठ भौंरे रसमें भूले हुए उनपर गुञ्जार कर रहे हैं ॥७॥ बहुतसे खग मृग जहां कुलाहल कर रहे हैं और वैर छोड़कर प्रसन्न मनसे फिर रहे हैं ॥ ८ ॥

दोहा-शुचि सुन्दर शोभा निरखि, हरषे राजिव नैन ॥
सुनि रघुवर-आगमन मुनि, आगे आये लैन ॥ १५५ ॥

पवित्र सुन्दर आश्रम देखकर रघुनाथजी प्रसन्न हुए और रघुनाथजीका आगमन सुन मुनि आगे लेनेको आये ॥ १५५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासी पं० सुखानन्द-मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत टीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतोऽष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

दोहा-सुभग नवम विश्राममें, चित्रकूटपर वास ।
कियो राम लक्ष्मण मुदित, पायो अमित हुलास ॥ ९ ॥

मुनिकहँ राम दण्डवत कीन्हा * आशीर्वाद विप्रवर दीन्हा ॥१॥
देखि रामछबि नयन जुड़ाने * करि सन्मान आश्रमहि आने ॥२॥

रघुनाथजीने मुनिको दंडवत की और श्रेष्ठ ब्राह्मणने आशीर्वाद दिया ॥ १ ॥ रघुनाथजी की छबि देख मुनिके नेत्र ठंढे हुए और सम्मान करके उनको आश्रममें लाये ॥ २ ॥

मुनिवर अतिथि प्राण प्रिय पाये * तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥३॥
कंद मूल फल मधुर मंगाये * सिय सौमित्रि रामफल खाये ॥४॥

मुनि श्रेष्ठने अपने प्राणपियारे पाहुँनोंको आया देखकर सुन्दर आसन बैठनेको दिया॥३॥ फिर मुनिने मधुर कन्द मूल फल मँगाये और रघुनाथजीने सीता-लक्ष्मण सहित उन फलोंको खाया । अथवा जहाँ आश्रम दिये, ऐसा पाठ है, वहां अर्थ है कि, आसमन्तात् इस कालपर्यन्त जो श्रम, जप, आदि किये थे सो रघुनाथजीको अर्पणरूप उद्यापन किया ॥ ४ ॥

वालमीकि-मन आनँद भारी * मंगल मूरति नयन निहारी ॥५॥
तब कर कमल जोरि रघुराई * बोले वचन श्रवण सुख दाई ॥६॥

मंगलमूर्तिको नेत्रोंसे देखते ही वालमीकिजीके मनमें बड़ा आनंद हुआ ॥५॥ तब रघुनाथ जी कमलसे हाथ जोड़कर कानोंको सुखदायक वचन बोले ॥ ६ ॥

तुम त्रिकालदर्शी मुनि-नाथा * विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा ॥७॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी *जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी॥८॥

हे मुनिनाथ !आप तीनों कालकी बात जाननेवाले हो,संसार बेरकी नाईं आपकी हाथमें है॥७॥ ऐसा कह रघुनाथजीने (वह) सब कथा बखानी, कि जिस प्रकार से रानीने बन दिया था॥८॥

दोहा—तात वचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ ॥
मो कहँ दर्श तुम्हार प्रभु, सब मम पुण्य प्रभाउ ॥ १५६ ॥

पिताके वचन और फिर माताका हित, भाई भरतसे राजा हुए और मुझको आपका दर्शन मिला, हे मुनिराज ! यह सब मेरे पुण्योंका ही प्रभाव है ॥ १५६ ॥

देखि पाँय मुनि राय तुम्हारे * भये सुकृत सब सफल हमारे ॥१॥
अब जहँ राउर आयसु होई * मुनि उद्वेग न पावहि कोई ॥२॥

हे मुनिराज ! आपके चरणोंको देख हमारे सब सुकृत फलयुक्त हुये ॥ १ ॥अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और कोई मुनि उद्वेग न पावें (किसीकी हानि न हो, वहाँ मैं रहूँ) ॥ २ ॥

मुनि तापस जिनते दुख लहहीं * ते नरेश बिनु पावक दहहीं ॥३॥
मंगल मूल विप्र परितोषू * दहइ कोटि कुल भूसुर-रोषू ॥४॥

क्योंकि मुनि और तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा विना अग्निके भस्म हो जाते हैं॥३॥ ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनाही मंगलका मूल है ब्राह्मणोंका रोष कोटि कुलोंको भस्म कर देता है॥४॥

अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ *सिय सौमित्रि सहित तहँ जाऊँ ॥५॥
तहँ रचि रुचिर परन तृण शाला * वास करौं कछु काल कृपाला ॥६॥

ऐसा जीमें जानकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता लक्ष्मणके सहित जा रहूँ ॥ ५ ॥ हे कृपालु ! वहां सुन्दर पत्ते और तृणोंकी परम सुन्दर शाला बनाकर कुछ काल बास करूँ॥६॥

सहज सरल सुनि रघुवर बानी * साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी ॥७॥
कस न कहहु अस रघुकुल केतू * तुम पालक संतत श्रुति-सेतू ॥८॥

स्वाभाविक ही सूधी रघुनाथजीकी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि धन्य-धन्य बोले-॥७॥हे रघुकुलके मर्यादारूप रघुनाथजी,ऐसा क्यों न कहो ? आप सदा वेदोंकी मर्यादा पालन करते हो॥८॥

छन्द—श्रुतिसेतु पालक राम तुम, जगदीश माया जानकी ।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधानकी ॥
जो सहस शीश अहीश महिधर, लषण सचराचर धनी ।
सुरकाज धरि नर राजतन, चले दलन खलनिशिचर अनी ॥१७॥

हे रघुनाथ—जगदीश ! आप वेदोंकी मर्यादा पालन करने वाले हो, जानकीजी आपकी माया हैं जो आपकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति, पालन और नाश करती हैं जो सहस्र शिरधारी शेषजी पृथ्वीके धारण करनेवाले हैं वे ही चराचरके धनी लक्ष्मणजी हैं, देवताओंके हेतु मनुष्यका शरीर धारण कर अब राक्षसोंकी सेना मारने चले हैं ॥ १७ ॥

सोरठा–राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ॥
अविगत अकथ अपार,नेति नेति जेहि निगम कह ॥ १२ ॥

हे रघुनाथजी ! आपका स्वरूप और वचन बुद्धिसे परे है आपकी गति अपार है, कहनेमें नहीं आती, वेद भी नित्य जिसको 'नेति नेति' कहता है ॥ १२ ॥

जग पेखन तुम देखन हारे * विधि हरि शम्भु नचावन हारे ॥१॥
तेउ न जानहिं मर्म तुम्हारा * और तुमहिं को जानन हारा ॥२॥

आप जगत्के कौतुक दिखानेवाले, अथवा जगत् दृश्य और आप देखनेवाले हैं और विधि (ब्रह्मा), विष्णु शिवजीको नचानेवाले हो ॥ १ ॥ वे देवता भी आपका भेद नहीं जानते और फिर दूसरा आपको कौन जाने ? ॥ २ ॥

सो जानै जेहि देहु जनाई * जानत तुम्हैं तुमहिं होइ जाई ॥३॥
तुम्हरी कृपा तुमहिं रघुनन्दन * जानत भक्ति भक्त उर चन्दन ॥४॥

अथवा जिसको आप जना देते हैं वही जानता है और आपको जानते ही आपका रूप हो जाता है ॥ ३ ॥ हे रामजी ! आपकी कृपासे आपको भक्त जन जानते हैं, जिनके हृदयमें आपकी शीतल चन्दनसी भक्ति है भक्तिको चन्दन इस कारण कहा, कि जिसके द्वारा तीनों ताप दूर होकर हृदय शीतल हो जाता है ॥ ४ ॥

चिदानन्दमय देह तुम्हारी * विगत विकार जान अधिकारी॥५॥
नर-तनु धरहु सन्त सुरकाजा * कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥६॥

आपका देह चिदानंदमय विकार रहित है इसको अधिकारी ही जानते हैं॥५॥ मनुष्य शरीर संत और देवताओं के हेतु धारण करके साधारण राजाओं की नाईं कहते और करते हो ॥६॥

राम पेखि सुनि चरित तुम्हारे * जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥७॥
तुम जो कहहु करहु सब साँचा * जस काछिय तस चाहिय नाचा॥८॥

हे रघुनाथजी ! आपके चरित्र देख सुनकर मूर्ख मोहित और पंडित सुखी होते हैं ॥ ७ ॥ जो आप कहते हो सब सत्य करोगे, जैसा काछ कछे वैसा नाच नाचे ॥ ८ ॥

दोहा–पूँछेउ मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ ॥
जहँ न होउ तहँ देउँ कहि, तुमहि दिखावौं ठाउँ ॥ १५७ ॥

मुझसे आप पूछते हो कि मैं कहाँ रहूँ, किंतु मैं पूछते हुए सकुचाता हूँ कि आपको कौनसा स्थान रहनेके लिए बताऊँ ? क्योंकि आप जहां न हों वहां रहनेके लिए आपको स्थान दिखाऊँ । कहीं 'मैं कहते सकुचाऊँ' पाठ है ॥ १५७ ॥

सुनि मुनि वचन प्रेमरस साने * सकुचि राम मनमहँ मुसकाने ॥१॥
बालमीकि हँसि कहा बहोरी * वाणी मधुर अमिय रस बोरी ॥२॥

मुनिके वचन प्रेम रस साने सुन रघुनाथजी सकुचाकर मनमें मुसकाये ॥ १ ॥ वाल्मीकिने हँसकर फिर मीठी रस भरी वाणी कही ॥ २ ॥

सुनहु राम अब कहौं निकेता * वसहु जहाँ सिय लषण समेता ॥३॥
जिनके श्रवण समुद्र समाना * कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥४॥

सुनिये रघुनाथजी ! अब स्थान कहता हूँ–जहाँ सीता लक्ष्मण सहित आप वास करें ॥३॥ जिनके कान समुद्रके समान और आपकी कथा उनमें प्रवेश करनेको अनेक सुन्दर नदी हैं ॥४॥

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ❋ तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे ॥५॥
लोचन चातक जिन करि राखे ❋ रहहिं दरश जलधर अभिलासे ॥६॥

जिनके कान निरन्तर आपके गुणोंसे भरे रहते हैं और पूरे नहीं होते उनके हृदयमें आपके लिए श्रेष्ठ घर है ॥ ५ ॥ जिन्होंने अपने नेत्र पपीहेके समान कर रखे हैं और दर्शनरूपी मेघोंकी अभिलाषा करते हैं ॥ ६ ॥

निदरहिं सिन्धु सरित सर भारी ❋ रूपबिन्दु लहि होहिं सुखारी ॥७॥
तिनके हृदय सदन रघुनायक ❋ वसहु लषण सियसहसुखदायक॥८॥

जो चातक भक्त अनेक साधन रूपी बड़े समुद्र, नदी, सरोवरोंको तिरस्कार करके आपके स्वरूपकी बूँद पाकर सुखी होते हैं ॥७॥ हे सुखके देनेवाले रघुनायक ! उनके हृदयरूपी घरमें जानकी लक्ष्मण सहित वास कीजिये ॥ ८ ॥

दोहा–यश तुम्हार मानस विमल, हसिनि जीहा जासु ॥
मुक्ताफल गुणगण चुगहिं, राम बसहु हिय तासु ॥ १५८ ॥

आपके उज्ज्वल यश मानसके वर्णन करनेको जिसकी हंसिनी सी जिह्वा आपके गुणगण रूपी मोती चुगती है, हे रघुनाथजी ! आप उस जिह्वावाले हृदयमें वास कीजिये ॥ १५८ ॥

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा ❋ सादर जासु लहइ नित नासा ॥१॥
तुमहि निवेदित भोजन करहीं ❋ प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥२॥

आपके प्रसादकी पवित्र और सुन्दर गन्ध जिसकी नासिका प्रति दिन आदरसे प्राप्त करती है ॥ १ ॥ और आपको निवेदन करके भोजन करते हैं, आपके प्रसाद स्वरूप पट वस्त्र और गहने धारण करते हैं ॥ २ ॥

शीश नवहिं सुरगुरु द्विज देखी ❋प्रीतिसहित करि विनय विसेखी॥३॥
कर नित करहिं राम–पदपूजा ❋ राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥४॥

जो देवता,गुरु,ब्राह्मणको देखकर शिर नवाते और प्रीतिसहित विशेष विनती करते हैं॥३॥जिनके हाथ सदा रामजीके चरणोंकी पूजा करते हैं,और मनमें उन्हींका भरोसा करते हैं दूसरे का नहीं॥४॥

चरण राम तीरथ चलि जाहीं ❋ राम बसहु तिनके मनमाहीं ॥५॥
मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा ❋ पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ॥६॥

रामजीके तीर्थोंमें जिनके चरण जाते, हैं, हे राम ! उनके मनमें वास कीजिये॥५॥ जो आपके मन्त्रराज[1]को जपते और कुटुम्ब सहित आपका पूजन करते हैं(कुटुम्ब दोनों ओर लगता है)॥६॥

तर्पण होम करहिं विधि नाना ❋ विप्र जिवाँय देहिं बहु दाना ॥७॥
तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी ❋ सकल भाव सेवहिं सनमानी ॥८॥

१. मन्त्रराज 'राम' नाम है यथा–"सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रमकारकाः। एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षरद्वयम् ।।" इति ।।

जो अनेक प्रकारसे तर्पण, होम और ब्राह्मणोंको जिमाकर बहुतसा दान देते हैं ॥ ७ ॥ आप से अधिक गुरुको जीमें जानकर सर्व भावसे सम्मान करके सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–सबकर माँगहि एक फल, रामचरण-रति होउ ॥
तिनके मन मंदिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ ॥ १५९ ॥

सब (सेवाओं) का यही फल माँगते हैं कि रघुनाथजी के चरणोंमें प्रीति हो उनके ही मनरूपी मंदिरमें तुम सीताराम दोनों जने वास कीजिये ॥ १५९ ॥

काम क्रोध मद मान न मोहा ❋ लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा ॥१॥
जिनके कपट न दम्भ न माया ❋ तिनके हृदय बसहु रघुराया ॥२॥

काम, क्रोध, मद, मान, मोह जिनके नहीं, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह किसीसे नहीं करते ॥१॥ जिनके कपट, पाखण्ड और छल नहीं है, हे रघुनाथजी ! उनके ही हृदयमें वास कीजिये ॥ २ ॥

सबके प्रिय सबके हितकारी ❋ सुख दुख सरिस प्रशंसा गारी ॥३॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी ❋ जागत सोवत शरण तुम्हारी ॥४॥

जो सबके प्रिय करनेवाले और सबके हितकारी हैं जिसको सुख-दुःख, बड़ाई और गाली सब समान हैं ॥३॥ जो सत्य प्रिय वचन विचारकर बोलते हैं और सोते जागतेमें आपकी शरण हैं ॥४॥

तुमहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं ❋ राम बसहु तिनके उरमाहीं ॥५॥
जननी सम जानहिं परनारी ❋ धन पराय विषते विष भारी ॥६॥

हे रघुनाथजी ! आपको छोड़कर जिन्हें दूसरी गति नहीं है आप उनके हृदयमें वास कीजिये ॥५॥ जो माताके समान पराई स्त्रीको जानते हैं; जिनको पराया धन विषसे भी अधिक विष है ॥६॥

जे हर्षहिं परसम्पति देखी ❋ दुखित होहिं पर विपति विसेखी ॥७॥
जिनहिं राम तुम प्राण पियारे ❋ तिनके उर शुभ सदन तुम्हारे ॥८॥

जो पराई सम्पत्तिको देखकर प्रसन्न और पराई विपत्तिको देखकर अधिक दुखी होते हैं ॥७॥ और हे रघुनाथजी ! जिनको आप प्राणोंके समान प्यारे हो, उनके हृदयमें ही आपके लिए सुन्दर घर है ॥ ८ ॥

दोहा–स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात ॥
तिनके मन मंदिर बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥ १६० ॥

हे तात ! जिनके स्वामी, मित्र, पिता, गुरु, सब कुछ आप ही हो उनके मन-मंदिरमें सीता सहित दोनों वास कीजिये ॥ १६० ॥

अवगुण तजि सबके गुण गहहीं ❋ विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥१॥
नीति निपुण जिनकी जग लीका ❋ घर तुम्हार तिनके मन नीका ॥२॥

जो अवगुण त्यागकर सबके गुण ग्रहण करते हैं और ब्राह्मण, धेनुके निमित्त संकट सहते हैं ॥१॥ जो नीतिमें चतुर हैं; जिनकी जगत्में मर्यादा है, आपका घर उनके मनोंमें सुन्दर है ॥२॥

गुण तुम्हार समुझहिं निज दोसू ❋ जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसू ॥३॥
रामभक्त प्रिय लागहिं जेही ❋ तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥४॥

जो आपका गुण और अपना दोष समझते हैं तथा जिनको सब भांति आपका ही भरोसा है ॥३॥ जिनको रामके भक्त प्यारे लगते हैं आप उनके ही हृदयमें जानकी सहित वास कीजिये॥४॥

जाति पाँति धन धर्म बड़ाई ❀ प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥५॥
सब तजि रहहिं तुमहिं लवलाई ❀ तेहिके हृदय रहहु रघुराई ॥६॥

जो जाति, पांति, धन, धर्म, बड़ाई कुटुम्ब, सुखदायक घर ॥ ५ ॥ सब छोड़कर केवल आपसे ही लव लगाये रहते हैं; हे रघुनाथजी ! उनके हृदयमें बास कीजिये ॥ ६ ॥

स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना ❀ जहँ तहँ देखि धरे धनु बाना ॥७॥
मन क्रम वचन जो राउर चेरा ❀ राम करहु तेहिके उर डेरा ॥८॥

जिसको स्वर्ग, नरक, अपवर्ग समान हैं अर्थात् उन सबका त्याग है। जहाँ-जहाँ धनुष बाण धरे आप ही दीखते हों ॥ ७ ॥ मन, वचन कर्मसे जो आपका चेरा (दास) है; हे रघुनाथजी ! उसके मनमें अपना डेरा (स्थान) बनाइये ॥ ८ ॥

दोहा—जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुमसन सहज सनेह ॥
❀ बसहु निरन्तर तासु उर, सो राउर निज गेह ॥ १६१ ॥

जिसको कभी कुछ नहीं चाहिये, जिसका आपसे स्वाभाविक स्नेह है उसके हृदयमें निरंतर वास कीजिये; वही आपका निज घर है। ऊपरके तेरह स्थानोंमें रहनेको कहा, किंतु इसको निज गेह बताया; सो इसमें श्रीरामचन्द्रजीका यह ऐश्वर्य प्रकट किया है कि जो एक अङ्ग भी उनमें लगा देता है उसके हृदयमें वे निरन्तर रहते हैं ॥ १६१ ॥

यहि विधि मुनिवर भवन दिखाये ❀ वचन सप्रेम राम मन भाये ॥१॥
कह मुनि सुनहु भानु कुलनायक ❀आश्रम कहौं समय सुख दायक ॥२॥

इस प्रकार मुनिने स्थान दिखाये और ये प्रेमके वचन रघुनाथजीके मनको अच्छे लगे ॥१॥ मुनिने कहा सुनिये रघुनाथजी ! अब समयके अनुसार सुख देनेवाले आश्रम कहता हूँ ॥ २ ॥

चित्रकूट गिरि करहु निवासू ❀ तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ॥३॥
शैल सुहावन कानन चारू ❀ करि केहरि मृग विहंग बिहारू ॥४॥

चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये; वहां आपको सब भांति सुभीता (विश्राम)होगा॥३॥यह सुन्दर पर्वत है, शोभायमान वन है, जहां, हाथी, सिंह, मृग, पक्षी(निर्वैर)हो विहार करते हैं॥४॥

नदी पुनीत पुराण बखानी ❀ अत्रि प्रिया निज तपबल आनी॥५॥
सुरसरि धार नाम मंदाकिनि ❀ जो सब पातक पोतक डाकिनि॥६॥

पवित्र नदी (मन्दाकिनी) जो पुराणोंमें बखानी है और जिसको अत्रिकी स्त्री अनुसूया अपने तप बलसे (चित्रकूटके निकट) ले आयी हैं ॥ ५ ॥ गंगाजीकी धार मन्दाकिनी नाम जो सब पापरूपी बच्चोंके खानेको डाकिनी है ॥ ६ ॥

१. —यह विध्याचलका पिछला भाग है, प्रयागसे साठ मीलके अनुमान वांदा जिलेमें है यह तीन मीलके घेरे में है। चित्रकूटके नीचे पयस्विनी और मन्दाकिनी, नदी बहती हैं रामनवमी और दिवालीके दिन यहां पूजा होती है, यहां निज स्थान बनानेका निषेध है।

२. —यह कथा इस प्रकार है कि ऋषिलोग जो वृद्ध थे सो गंगाजीमें स्नान करने जाते थे, उनमें उनको बड़ा परिश्रम पड़ता था अनुसूया उनका यह कष्ट दूर करनेके निमित्त तपस्या कर गंगाजीकी धार ले आयीं, यह कथा रघुवंशमें भी प्रसिद्ध है, यथा —"अत्राभिषेकाय तपो धनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृत हेम पद्माम्। प्रवर्तयामास किमानुसूया त्रैस्रोतसं त्र्यंबकमौलिमालाम् ॥)"

अत्रि आदि मुनिवर तहँ बसहीं * करहिं योग जप तप तनु कसहीं॥७॥
चलहु सफल श्रम सबकर करहू * राम देहु गौरव गिरिवरहू ॥८॥

अत्रि आदि मुनिश्रेष्ठ वहाँ रहते हैं और जप, तप, योग करके शरीरको कसते हैं ॥ ७ ॥ हे रघुनाथजी ! चलिये और सबका श्रम सफल कीजिये पर्वतको गौरव (बड़ाई) दीजिये ॥ ८ ॥

दोहा–चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ॥
आय नहाये सरितवर, सीय सहित दोउ भाइ ॥ १६२ ॥

मुनिराजने रघुनाथजीसे चित्रकूटकी बड़ी महिमा कही तब जानकी सहित दोनों भाई चले और आकर नदी श्रेष्ठ मन्दाकिनी में स्नान किया ॥ १६२ ॥

रघुवर कहेउ लषण भल घाटू * करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ॥१॥
लषण दीख पय उतर करारा *चहुँदिशिफिरयोधनुषजिमिनारा॥२॥

रघुनाथजी बोले-लक्ष्मण ! घाट तो अच्छा है, पर अब कहीं ठहरने का ठाट करो ॥१॥ लक्ष्मणजीने पयस्विनी नदीका उत्तर करार देखा जो ऐसा शोभित हो रहा था, कि मानो चारों ओर धनुषका आकार फिरा है ॥ २ ॥

नदी पनच शर शम दम दाना *सकल कलुष कलिसाउज नाना॥३॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी * चूक न घात मार मुठभेरी ॥४॥

नदी धनुषकी ज्या (रोंदा) है, शम, दम दान उसके बाण हैं अनेक प्रकारके कलयुगी पाप शिकार हैं ॥३॥ मानों चित्रकूट (कामदनाथ) अचल अहेरी (शिकार खेलनेवाले) हैं जो पापको एक ही मूठ मार देते हैं घात चूकती नहीं ॥ ४ ॥

अस कहि लक्ष्मण ठाँव दिखावा *थल विलोकि रघुपति मन भावा॥५॥
रमेउ राम मन देवन जाना * चले सहित सुरपति परधाना ॥६॥

लक्ष्मणजीने यह कहकर वह स्थान दिखाया और रघुनाथजी उसको देखकर प्रसन्न हुए॥५॥ रघुनाथजीका मन लगा यह देवताओंने जाना तब प्रधान देवराज इन्द्रके सहित देवता चले॥६॥

कोल किरात वेष धरि आये * रचेउ पर्ण तृण सदन सुहाये ॥७॥
वर्णि न जायँ मंजु दुइ शाला * एक ललित लघु एक विशाला ॥८॥

और कोल, किरात (भील) आदिकोंका वेष धरकर आये और उन्होंने सुन्दर पर्ण शाला रचीं ॥ ७ ॥ दो उज्ज्वल शालाएँ जो वर्णी नहीं जाती, उनमें एक सुन्दर छोटी और एक बड़ी बनाई ॥ ८ ॥

दोहा–लषण जानकी सहित प्रभु, राजत पर्ण निकेत ॥
सोह मदन मुनि वेष जनु,रति ऋतुराज समेत ॥ १६३ ॥

लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) पर्णशालामें ऐसे शोभित होने लगे जैसे वसन्त और रतिके सहित मुनिवेषसे कामदेव शोभा पाता है ॥ १६३ ॥

अमर नाग किन्नर दिगपाला * चित्रकूट आये तेहि काला ॥१॥
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू *मुदित देव लहि लोचन- लाहू ॥२॥

देवता, नाग, किन्नर; दिक्पाल (ये सब देवजाति) उस समय चित्रकूटमें आये ॥ १ ॥
रघुनाथजीने सबको प्रणाम किया और देवता नेत्रोंका लाभ लेकर प्रसन्न हुए ॥२॥

वर्षि सुमन कह देव समाजू ॥ नाथ सनाथ भये हम आजू ॥३॥
करि विनती दुख दुसह सुनाये ॥ हर्षित निज निज गेह सिधाये ॥४॥

फूल वर्षाकर देवताओंके समाज बोले—हे नाथ! हम आज (आपके आगमनसे) सनाथ हुए ॥३॥ विनती करके (अपने) दुःख सुनाये और प्रसन्न हो अपने-अपने घर गये ॥ ४ ॥

चित्रकूट रघुनन्दन छाये ॥ समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥५॥
आवत देखि मुदित मुनिवृन्दा ॥ कीन्ह दण्डवत रघुकुल-चन्दा॥६॥

रघुनाथजी चित्रकूटमें आकर रहे हैं; यह समाचार सुन सुनकर मुनि आये ॥ ५ ॥ मुनियोंके समूहको प्रसन्नता से आता हुआ देख रघुकुलचन्द्र (रघुनाथजी) ने दंडवत् की ॥ ६ ॥

मुनि रघुवरहिं लाय उर लेहीं ॥ सफल होन हित आशिष देहीं॥७॥
सिय सौमित्र राम छबि देखहिं ॥ साधन सकल सफल करि लेखहिं॥८॥

मुनिजन रघुनाथजीको हृदयसे लगाते और अपनी वाणी सफल होनेके लिए आशीष देते हैं ॥७॥ सीता, लक्ष्मण तथा रामजीकी छबि देखकर सब साधनोंको सफल मानते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—यथायोग्य सन्मानि प्रभु, बिदा किये मुनिवृन्द ॥
करहिं योग जप याग तप, निज आश्रमनि स्वच्छन्द ॥ १६४ ॥

रघुनाथजीने मुनियोंको यथायोग्य सम्मान देकर बिदा किया और वे मुनि फिर अपने-अपने आश्रममें स्वच्छन्द होकर जप, यज्ञ, और तप करने लगे ॥ १६४ ॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई ॥ हर्षे जनु नव निधि घर आई ॥१॥
कन्दमूल फल भरि भरि दोना ॥ चले रंक जनु लूटन सोना ॥२॥

यह सुध कोल किरातोंने पायी; वे ऐसे प्रसन्न हुए जैसे नव निधि घर आये हों ॥ १ ॥ कन्दमूल फल दोनोंमें भर भर कर चले, जैसे कंगाल सोना लूटने चले हों ॥ २ ॥

तिन महँ जिन देखे दोउ भ्राता ॥ और तिनहिं पूँछहिं मग्ग जाता ॥३॥
कहत सुनत रघुवीर-बड़ाई ॥ आय सबन देखे दोउ भाई ॥४॥

उनमें जिन्होंने दोनों भाइयोंको देखा उनसे मार्गके दूसरे लोग पूछने लगे ॥३॥ रघुनाथजीकी बड़ाई करते सुनते सबने आकर दोनों भाइयों को देखा ॥ ४ ॥

करहिं जुहार भेंट धरि आगे ॥ प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे॥५॥
चित्रलिखे से जहँ तहँ ठाढ़े ॥ पुलक शरीर नयन जल बाढ़े ॥६॥

भेंट आगे धरकर जुहार करते प्रभुको बड़े प्रेमसे देखते हैं ॥ ५ ॥ जहाँ-तहाँ तसवीर लिखेसे खड़े हो गये शरीर पुलकित हो नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ६ ॥

राम सनेह मगन सब जाने ॥ कहि प्रिय वचन सकल सन्माने॥७॥
प्रभुहि जुहारि बहोरि बहोरी ॥ वचन विनीत कहहिं कर जोरी॥८॥

रघुनाथजीने सबको स्नेहमें मग्न देख प्रिय वचन कहकर सम्मान किया ॥ ७ ॥ रघुनाथ-जीको बार-बार जुहार और हाथ जोड़कर प्रेमसे विनीत वचन बोले ॥ ८ ॥

दोहा—अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाँय ॥
भाग्य हमारे आगमन, राउर कोशलराय ॥ १६५ ॥

हे नाथ ! अब हम सब आपके पाँव देखकर सनाथ हुए, हे कोशलपति ! हमारे भाग्यसे ही आपका आना हुआ है ॥ १६५ ॥

धन्य भूमि वन पंथ पहारा * जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा॥१॥
धन्य विहँग मृग कानन चारी *सफल जन्म भये तुमहिं निहारी॥२॥

हे नाथ ! जहाँ-जहाँ आपने पग धारण किया उस भूमि, वन, मार्ग,पहाड़को धन्य है॥१॥ वे वनचारी पक्षी और मृग धन्य हैं आपको देखकर जिनका जन्म सफल हुआ ॥ २ ॥

हम सब धन्य सहित परिवारा * देखि नयन भरि दरश तुम्हारा॥३॥
कीन्ह वास भल ठाँव विचारी * यहाँ सकल ऋतु रहब सुखारी॥४॥

हम सब कुटुम्ब सहित धन्य हैं, जो नेत्र भरकर आपका दर्शन देखा ॥ ३ ॥ अच्छा स्थान विचार कर यहां सब ऋतुओंमें प्रसन्न रहोगे ॥ ४ ॥

हम सब भाँति करब सेवकाई * करि केहरि अहि वाघ वराई ॥५॥
वन बीहड़ गिरि कन्दर खोहा * सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥६॥

हम सब प्रकारसे आपकी सेवा करेंगे, हाथी सिंह सर्प बाघसे बचावेंगे ॥ ५ ॥ क्योंकि हे प्रभु, ! वन वीहड़ (विकट स्थान) पहाड़की कंदरा खोह हमारा सब पग-पग देखा हुआ है॥६॥

जहँ तहँ तुमहिं अहेर खिलाउब * सर निर्झर सब ठाम दिखाउब॥७॥
हम सब सेवक परिवार-समेता * नाथ न सकुचब आयसु देता ॥८॥

जहाँ-तहाँ आपको शिकार दिखलावेंगे और सरोवर झरनेके स्थान आदि सब दिखावेंगे॥७॥ हे नाथ ! हम परिवार-सहित आपके सेवक हैं अतः आप आज्ञा देनेमें नहीं सकुचाना ॥ ८ ॥

दोहा—वेद वचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुणा-ऐन ॥
वचन किरातनके सुनत, जिमि पितु बालक-बैन ॥ १६६ ॥

जो वेद वचन और मुनियोंके मनमें भी अगम हैं वे करुणाके घर प्रभु किरातोंके वचन सुनकर ऐसा प्रसन्न होते हैं जैसे पिता बालकके वचन सुनकर प्रसन्न होता है ॥ १६६ ॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा * जानि लेहु जो जाननहारा ॥१॥
राम सकल वनचर परितोषे * कहि मृदु वचन प्रेम परिपोषे ॥२॥

श्रीरघुनाथजीको प्रेम ही प्यारा है, जो जाननेवाला हो वह जान ले ॥१॥ श्रीरघुनाथजीने सब वनवासियोंको प्रसन्न किया और कोमल वचन कहकर प्रेमसे संतुष्ट किया ॥ २ ॥

बिदा किये शिर नाय सिधाये *प्रभुगुण कहत सुनत घर आये ॥३॥

---

१. किरातिनी बोली—ये उपहीं कोउ कुँवर अहेरी । श्याम गौर धनुबाण तूणधर, चित्रकूट अब आय रहेरी । इनहिं बहुतआदरत महा-मुनि, समाचार सब मेरे कहेरी । बनिता बन्धु समेत वसन बन, पितु हित कठिन क्लेश सहेरी । वचन परस्पर कहति किरातिनि, पुलक गात जल नैन बहेरी । तुलसी प्रभुहि विलोकत इकटक, लोचन जनु विनु पलक लहेरी ।

यहि विधि सीय सहित दोउ भाई * बसहिं विपिन सुरमुनि सुखदाई॥४॥

जब किरातोंको बिदा किया तो वे शिर नवाकर चले और प्रभुके गुण कहते सुनते घर आये ॥ ३ ॥ इस प्रकार सीता सहित दोनों भाई देवता, मुनियोंके सुखदाता वनमें बसते हैं ॥४॥

जबते आय रहे रघुनायक * तबते भा वन मंगलदायक ॥५॥
फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना * मंजु ललित वर बेलि विताना ॥६॥

जबसे रघुनाथजी आकर रहने लगे, तबसे वन मङ्गल देनेवाला हो गया ॥ ५ ॥ नाना (अनेक) प्रकारके वृक्ष फूलते फलते हैं उज्ज्वल सुन्दर बेलोंके वितान हो रहे हैं ॥ ६ ॥

सुर तरु सरिस सुभाव सुहाये * मनहुँ विबुधवन परिहरि आये॥७॥
गुञ्जत मंजुल मधुकर-श्रेनी * त्रिविध बयारि बहै सुखदेनी ॥८॥

वृक्ष कल्पवृक्षके समान स्वभावसे ही शोभित हैं मानों देवताओंका वन छोड़कर वहां ही कल्पवृक्ष आगये हैं ॥ ७ ॥ उनपर सुन्दर भौंरोंकी पंक्ति गुञ्जार करती हैं (शीतल, मंद, सुगंध) तीन प्रकार की सुखदायक पवन चल रही है ॥ ८ ॥

दोहा-नीलकंठ कलकण्ड शुक, चातक चक्क चकोर ॥
भाँति भाँति बोलहिं विहँग, श्रवण सुखद चितचोर ॥ १६७ ॥

नीलकंठ, कोयल, तोते, चातक, चकवा, चकोर तथा और भी अनेक प्रकारके विहंग (पक्षी) कानोंके सुखदाता चित्त चुरानेवाले वचन बोलते हैं ॥ १६७ ॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा * विगत वैर विचरहिं सब संगा ॥१॥
फिरत अहेर राम-छबि देखी * होहिं मुदित मृगवृन्द बिसेखी ॥२॥

हाथी, सिंह, सुअर, और हरिण वैर त्यागकर सब एक संग विचरण करते हैं ॥ १॥ वनमें फिरते समय रघुनाथजीकी छबि देखकर मृगवृन्द बड़े प्रसन्न होते हैं अर्थात् रघुनाथजीके हाथमें बाण देखकर भी उनकी छबिसे प्रसन्न होते हैं अथवा अपनेको मोक्षका अधिकारी जानकर प्रसन्न होते हैं॥२॥

विबुध विपिन जहँ लगि जगमाहीं * देखि राम वन सकल सिहाहीं ॥३॥
सुरसरि सरस्वति दिनकर कन्या * मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥४॥

संसारमें देवताओंके भी जितने वन हैं, वे सब ही रघुनाथजीके वनको देखकर सिहाते हैं ॥ ३ ॥ गङ्गाजी, सरस्वती, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, धन्या ॥ ४ ॥

सब सर सिन्धु नदी नद नाना * मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥५॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू * मंदर मेरु सकल सुरबासू ॥६॥

सब सरोवर, सिंधु, नदी और नद अनेक प्रकारसे मन्दाकिनीकी बड़ाई करते हैं ॥ ५ ॥ उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मन्दराचल, सुमेरु और जिन पर्वतोंपर सब देवता रहते हैं॥६॥

शैल हिमाचल आदिक जेते * चित्रकूट यश गावहिं तेते ॥७॥
विंध्य मुदित मन सुख न समाई * बिनु श्रम विपुल बड़ाई पाई ॥८॥

हिमालय आदि जितने पर्वत हैं वे सब चित्रकूटका यश गाते हैं ॥७॥ और विंध्याचलके

मनमें तो सुख नहीं समाता, क्योंकि विना परिश्रम इसने बहुत बड़ी बड़ाई पायी (विन्ध्याचलका ही भाग चित्रकूट है) ॥ ८ ॥

दोहा–चित्रकूटके विहँग मृग, बेलि विटप तृण जाति ॥
पुण्यपुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥ १६८ ॥

चित्रकूटके विहंग, मृग, वेलि, वृक्ष, तृण (तिनकों की अनेक जाति) ये सब पुण्यके ढेर और सराहने योग्य हैं, ऐसे देवता दिन रात कहते हैं ॥ १६८ ॥

नयनवन्त रघुपतिहि विलोकी * पाय नयनफल होहिं विशोकी॥१॥
परसि चरण रज अचर सुखारी * भये परम पदके अधिकारी ॥२॥

नेत्रवाले रघुनाथजीको देख नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं ॥ १ ॥ स्थावर चरणोंकी रज छूकर प्रसन्न हो परमपदके अधिकारी हो गये ॥ २ ॥

सो वन शैल सुभाव सुहावन * मङ्गलमय अति पावन-पावन ॥३॥
महिमा कहिय कवन विधि तासू * सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥४॥

वह वन-पर्वत स्वभावसे ही सुन्दर और पवित्रसे भी अति पवित्र मंगलरूप हो गया॥३॥उस स्थानकी महिमा किस प्रकारसे कही जाय ? जहां सुखसागर भगवान्ने निवास किया है॥४॥

पय पयोधि तजि अवध विहाई * जहँ सिय राम लषण रहे आई॥५॥
कहि न सकहिं सुख भा जस कानन* जौ शतसहस होहिं सहसानन ॥६॥

वह स्थान क्यों न बड़ाईके योग्य हो जहां सीता राम, और लक्ष्मण आकर क्षीर सागर और अयोध्याको त्यागकर निवास कर रहे हैं ॥ ५ ॥ जो सौ हजार शेषजी हों तो भी जो वनमें सुख हुआ उसको नहीं कह सकते ॥ ६ ॥

सो मैं बरणि कहौं विधि केही * डाबर कमठ कि मन्दर लेही ॥७॥
सेवहिं लषण कर्म मन बानी * जाय न शील सनेह बखानी ॥८॥

उसको मैं किस प्रकारसे वर्णन करूँ,क्योंकि कछुयेके बच्चेसे कहीं मंदराचल पहाड़ उठा है॥७॥ लक्ष्मणजी कर्म मन वाणीसे सेवा करते हैं और उनका शील, स्नेह बखाना नहीं जाता ॥ ८ ॥

दोहा–क्षण क्षण लखि सिय-रामपद, जानि आपुपर नेह ॥
करत लषण सपने न चित, बन्धु मातु पितु गेह ॥ १६९ ॥

क्षण-क्षणमें रघुनाथजी तथा जानकीजीके चरण देख और अपने ऊपर स्नेह जान लक्ष्मणजी माता, पिता, बन्धुजन और घरकी स्वप्नमें भी याद नहीं करते हैं ॥ १६९ ॥

राम संग सिय रहहिं सुखारी * पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥१॥
क्षण क्षण पिय विधुवदन निहारी * प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥२॥

रघुनाथजीके संग जानकीजी प्रसन्न रहती हैं,पुर कुटुम्ब, और घरका स्मरण भी नहीं करती हैं ॥१॥क्षण-क्षणमें अपने स्वामीका चन्द्रमुख देखकर चकोर कुमारीके समान प्रसन्न रहती हैं ॥२॥

नाह नेह नित बढ़त विलोकी *हर्षित रहति दिवस जिमि कोकी॥३॥
सिय मन रामचरण-अनुरागा *अवध सहस सम वन प्रिय लागा॥४॥

स्वामीका स्नेह नित्य बढ़ता देखकर ऐसे प्रसन्न रहतीहैं जैसे दिनमें चकवी ॥ ३ ॥ सीताजीका मन रामजीके चरणोंमें ऐसा अनुरागी हुआ कि अयोध्यासे सहस्रगुना वन प्यारा लगा ॥४॥

पर्णकुटी प्रिय प्रीतम-संगा * प्रिय परिवार कुरंग विहंगा ॥५॥
सासु श्वसुरसम मुनि तिय मुनिवर *अशन अमियसम कंद मूलफर॥६॥

प्रीतिके संगमें वह पर्णकुटी आनंदरूप है और हरिण तथा पक्षी प्यारे कुटुम्बके समान विदित होते हैं ॥ ५ ॥ सास श्वसुरके समान मुनि और उनकी स्त्रियाँ हैं भोजन करनेको अमृतके समान कन्द और मूल फल हैं ॥ ६ ॥

नाथ-साथ साथरी सुहाई *मयन शयन शत सम सुखदाई॥७॥
लोकप होहिं विलोकत जासू *तेहि कि मोह सक विषय विलासू॥८॥

स्वामीके साथ वह (कुलका) सुन्दर बिछौना सौ कामदेवकी सेजके समान सुखदाई है ॥ ७ ॥ जिसकी दृष्टि मात्रसे ही लोकप (इन्द्रादि) हो जाते हैं, उसको क्या यह विषय विलास मोह सकता है ? अर्थात् नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृणसम विषय विलासु ॥
रामप्रिया जगजननि सिय, कछु न आचरज तासु ॥ १७० ॥

रघुनाथजीका स्मरण करते ही भक्तजन तृणके समान विलासको त्याग देते हैं फिर यदि लोकमाता रघुनाथजीकी प्रिया सीताजीने ऐसा किया तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ १७० ॥

सीय लषण जेहि विधि सुख लहहीं* सोइ रघुनाथ करै सोइ कहहीं ॥१॥
कहहिं पुरातन कथा बखानी *सुनहि लषण सिय अतिसुखमानी॥२॥

सीता और लक्ष्मण जिस बातसे सुख पायें, जो कहें वही रघुनाथजी करते हैं ॥१॥ पुरानी कथा बखान कर कहते हैं और लक्ष्मण सीता परम सुख मानकर सुनते हैं ॥ २ ॥

जब जब राम अवध सुधि करहीं * तब तब वारि विलोचन भरहीं॥३॥
सुमिर मातु पितु परिजन भाई * भरत सनेह शील सेवकाई ॥४॥

जब-जब रघुनाथजीको अवधकी याद आती है, तब-तब नेत्रोंमें जल भर आता है ॥३॥ माता, पिता, कुटुम्ब और भाई भरतके स्नेह, शील और सेवकाई का स्मरण कर ॥ ४ ॥

कृपा सिन्धु प्रभु होहिं दुखारी * धीरज धरहिं कुसमय विचारी॥५॥
लखि सिय लषण विकल ह्वै जाहीं *जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥६॥

प्रभु कृपासागर रामजी दुःखी हो जाते हैं परंतु फिर कुसमय विचार धैर्य धरते हैं ॥५॥ यह देखकर सीता और लक्ष्मणजी ऐसे व्याकुल हो जाते थे जैसे परिछाहीं पुरुषका अनुसरण करती है।६।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनन्दन * धीर कृपालु भक्त उर चन्दन ॥७॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता *सुनि सुख लहहिं लषण अरु सीता॥८॥

रघुनाथजी प्रिया और बंधुकी गति देखकर धीर कृपासागर भक्तोंके हृदयमें आनंदके दाता ॥७॥ कुछ पवित्र कथा कहने लगते थे,जिनको सुनकर लक्ष्मणजी और जानकीजी प्रसन्न हों॥८॥

दोहा-रामलषण सीता सहित, सोहत पर्णनिकेत ॥
जिमि वासव बस अमरपुर, शची जयंत समेत ॥ १७१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, जानकी सहित पर्णशालामें ऐसे शोभित हो रहे हैं, जैसे इंद्र अपनी स्त्री और पुत्र जयन्तके सहित शोभा पाते हैं ॥ १७१ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे विद्यावारिधि-पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतोनवमोविश्रामः ॥ ९ ॥

दोहा-आये अवध सुमन्त जिमि, कही कुशल सियराम ।
तनु तजि नृप सुरलोकगे, सो दशमें विश्राम ॥ १० ॥

जुगवहिं प्रभु सिय अनुजहि कैसे * पलक विलोचन गोलक जैसे ॥१॥
सेवहिं लखन सीय रघुवीरहि * जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि॥२॥

रघुनाथजी,लक्ष्मणजी,और जानकीजी की ऐसी रक्षा करते हैं जैसे नेत्रोंके गोलककी पलक॥१॥ इधर लक्ष्मण और जानकी रघुनाथजीकी ऐसी सेवा करती हैं जैसे अज्ञानी पुरुष अपने शरीरकी॥२॥

इहि विधि प्रभु वन बसहिं सुखारी * खग मृग सुर तापस हितकारी॥३॥
कहेउ राम वन गमन सुहावा *सुनहु सुमन्त अवध जिमि आवा॥४॥

इस प्रकार रघुनाथजी प्रसन्न चित्त वनमें बसते हैं और खग, मृग, देव, तपस्वियोंका हित करते हैं ॥ ३ ॥ रघुनाथजीका सुन्दर वन गमन वर्णन किया, अब सुमन्त जिस प्रकार अवधमें आये सो सुनो । सुन्दर वनगमनका आशय यह है कि, ऋषि महात्माओंका संकट दूर होनेसे उनको वनगमन आनंददायक हुआ ॥ ४ ॥

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई * सचिव-सहित रथ देखेउ आई ॥५॥
मन्त्री विकल विलोकि निषादू *कहि न सकै अति भयउ विषादू॥६॥

निषाद रघुनाथजीको पहुँचाकर लौटा तो आकर मंत्री सहित रथ (गङ्गा किनारे) देखा ॥ ५ ॥ निषादने मंत्रीको व्याकुल देखकर जैसा दुःख माना सो कहा नहीं जाता ॥ ६ ॥

राम राम सिय लषण पुकारी * परेउ भूमितल व्याकुल भारी ॥७॥
देखि दखिन दिशि हय हिहिनाहीं*जिमि विनु पंख विहँग अकुलाहीं॥८॥

मन्त्री "राम सीता लक्ष्मण" पुकारता हुआ पृथ्वीमें व्याकुल हो गिर गया ॥७॥ दक्षिण दिशाकी ओर देखकर घोड़े हिनहिनाते हैं, जैसे विनापंखके पक्षी व्याकुल हों ॥ ८ ॥

दोहा-नहिं तृण चरहि न पियहिं जल, मोचत लोचन वारि ॥
व्याकुल भयउ निषाद सब, रघुवर-वाजि निहारि ॥१७२॥

न तृण चरते हैं, न जल पीते हैं,नेत्रोंसे जल छोड़ते हैं, यह दशा रघुनाथजीके घोड़ोंकी देखकर सब निषादगण बड़े व्याकुल हुए!कहीं, 'निषाद सब' के स्थानमें 'निषादपति' पाठ है॥१७२॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू * अब सुमन्त परिहरहु विषादू ॥१॥
तुम पंडित परमारथ-ज्ञाता * धरहु धीर लखि वाम विधाता॥२॥

तब निषादने धैर्य धरकर कहा-सुमंत ! अब आप दुःख त्याग दीजिये ॥१॥ आप पंडित परमार्थकी वार्ता जाननेवाले हो, विधाताको वाम जानकर धैर्य धारण कीजिये ॥ २ ॥

विविध कथा कहि कहि मृदुबानी * रथ बैठारयो बरबस आनी ॥३॥
शोक शिथिल रथ सकहि न हाँकी* रघुवर-विरह पीर उर बाँकी ॥४॥

निषादने कोमल वाणीसे विविध (अनेक प्रकारकी) कथा कहकर सुमंतको बरबस रथपर बैठाया ॥ ३ ॥ शोकसे शिथिल हो गया, रथ हांका नहीं जाता, हृदयमें रघुवरके विरहकी बांकी (बेढब) पीड़ा है ॥ ४ ॥

तरफराहिं मगु चलहिं न घोरे ❋ वन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥५॥
अटकि परहिं फिर चितवहिं पीछे ❋ राम वियोग विकल दुख तीछे॥६॥

घोड़े तड़फड़ाते हैं, मार्ग नहीं चलते मानो वनके मृग लाकर रथमें जोड़ दिये हैं ॥५॥ अटक पड़ते हैं, फिर कर पीछे देखते हैं,रामजीके वियोगसे व्याकुल हो बड़े दुःखी हो रहे हैं ॥ ६ ॥

जो कह राम लषण वैदेही ❋ हिकरि हिकरि हय हेरहिं तेही ॥७॥
बाजिविरहगति किमि कहि जाती❋बिनुमणिफणिक विकल जेहि भाँती॥८॥

जो राम लक्ष्मण वैदेहीका नाम लेता है उसको घोड़े हिकर-हिकर अर्थात् प्रेमसे शब्द करते देखते हैं ॥७॥घोड़ोंकी दशा क्या कही जाय ? मणि विना सर्पके समान व्याकुल हो रहे हैं॥८॥

दोहा-भये निषाद विषाद वश, देखत सचिव तुरंग ॥
बोलि सुसेवक चारि तब,दिये सारथी संग ॥ १७३ ॥

निषाद (बड़े) व्याकुल हुए, तब सुमन्त और घोड़ोंको देखकर अपने चार सेवक बुला कर सारथी संग कर दिये ॥ १७३ ॥

गुह सारथिहिं फिरचो पहुँचाई ❋ विरह विषाद वरणि नहिं जाई॥१॥
चले अवध लै रथहिं निषादा ❋ होत क्षणहिं क्षण मगन विषादा॥२॥

निषाद सारथीको पहुँचा कर लौटा, वह विरह विषाद वर्णा नहीं जाता ॥ १ ॥ संग भेजे हुए निषाद रथ ले अयोध्याको चले और क्षण-क्षण विषादमें मग्न होते हैं ॥ २ ॥

शोच सुमन्त विकल दुख दीना ❋ धिक जीवन रघुवीर-विहीना ॥३॥
रहहि न अन्तहु अधम शरीरू ❋ यश न लहेउ बिछुरत रघुवीरू॥४॥

सुमंत दुःखसे व्याकुल हो शोच करने लगा कि रघुनाथजीके विना जीवनको धिक्कार है ॥३॥ अंतमें भी यह अधम शरीर न रहेगा, रघुनाथजीके बिछुड़ते समय(प्राण त्याग कर)यश न लिया॥४॥

भये अयस-अघ-भाजन प्राना ❋ कौन हेतु नहिं करत पयाना ॥५॥
अहह मन्दमति अवसर चूका ❋ अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥६॥

ये प्राण पाप और अपयशके पात्र हुए, न जाने क्यों शरीरसे नहीं निकलते?॥५॥ अहह ! मैं बड़ा मंदमति हूँ जो समय पर चूक गया और अब भी मेरे हृदयके दो टुकड़े नहीं होते॥६॥

मींजि हाथ शिर धुनि पछिताई ❋ फिरै बनिक जिमि मूर गवाँई ॥७॥
विरद बाँधि वर वीर कहाई ❋ चले सुभट जनु समर पराई ॥८॥

हाथ मल और शिर धुनकर पछताता है, जैसे वैश्य अपनी सब पूंजी (धन) खोकर चले वैसे व्याकुल हो गया ॥ ७ ॥ जैसे कोई विरद बांधकर (पैज कर) और श्रेष्ठ वीर कहा कर युद्धसे भागने पर दुःखी हो ऐसी ही दशा सुमन्तकी हो गयी ॥ ८ ॥

दोहा-विप्र विवेकी वेद-विद, सम्मत साधु सुजाति ॥
जिमि धोखे मदपान करि, सचिव सोच तिहि भाँति ॥ १७४ ॥

अथवा जैसे कोई ज्ञानी वेद जानने वाला साधु सन्त ब्राह्मण धोखेसे मद्यपान कर शोच करे इसी प्रकार सुमन्त शोच करने लगा ॥ १७४ ॥

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी * पति देवता कर्म मन बानी ॥१॥
रहै कर्मवश परिहरि नाहू * सचिव हृदय तिमि दारुण दाहू॥२॥

जैसे साधु, चतुर, कुलीन स्त्री कर्म मन वाणीसे पतिकी सेवा करनेवाली और पतिको देवता समझनेवाली (पतिव्रता) ॥१॥ कर्मके वश अपने स्वामीको त्याग कर रहै (और फिर पछतावे) इसी प्रकार सुमन्तके मनमें कठिन दाह हुआ ॥ २ ॥

लोचन सजल दृष्टि भइ थोरी * सुनै न श्रवन विकलमति भोरी॥३॥
सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी * जिय न जाय उरअवधिकपाटी॥४॥

नेत्रोंमें जल आजानेसे दृष्टि थोड़ी हो गयी और व्याकुलतासे मति ऐसी भोरी हो गई, कि कुछ सुनाई नहीं देता॥३॥होठसूख गये,मुखमें स्याही-सी लग गई, रामजीके जो आनेकी अवधि थी वह हृदयमें किवाड़ बनकर प्राणोंकी रक्षा कर रही है; इस कारण वे प्राण नहीं जाते ॥ ४ ॥

विवरण भयो न जाय निहारी * मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥५॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी * यमपुर पंथ शोच जिमि पापी ॥६॥

वर्ण बुरा हो गया, देखा नहीं जाता जैसे किसीने अपने माता-पिताको मार डाला हो॥५॥ मनमें हानि और ग्लानि बहुत व्याप्त हो गई जैसे कोई पापी पाप करके फिर यमलोकके मार्गका दुःख स्मरण कर शोच करे वैसे ही शोच करने लगा कि राजाको क्या उत्तर दूँगा ? हानि रामचन्द्रके वन जानेकी और ग्लानि यह कि मन्त्री होकर कुछ भी न कर सका ॥ ६ ॥

वचन न आव हृदय पछिताई * अवध काह मैं देखब जाई ॥७॥
राम-रहित रथ देखहिं जोई * सकुचहिं मोहि विलोकत सोई ॥८॥

मुखसे वचन न आये, मनमें पछताने लगा, मैं अयोध्यामें जाकर क्या देखूँगा ? ॥७॥ जो कोई रामचन्द्रजीसे रहित रथ देखेंगे वे ही मुझको देखकर सकुच जावेंगे ॥ ८ ॥

दोहा-धाय पूछिहहिं मोहिं जब, विकल नगर नर नारि ॥
उतर देब मैं सबहिं तब, हृदय वज्र बैठारि ॥ १७५ ॥

जब नगरके नर-नारी दौड़कर मुझसे पूछेंगे कि श्रीरामचंद्रजी कहाँ हैं, तब मैं छाती पर शिला रखकर सबको उत्तर दूँगा ॥ १७५ ॥

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता * कहब काह मैं तिनहिं विधाता॥१॥
पुछिहहिं जबहिं लषण महतारी * कहिहौं कवन सन्देश सुखारी॥२॥

हे विधाता ! जब माताएँ दीन दुःखी होकर पूछेंगी तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगा ?॥१॥ जब लक्ष्मणजीकी महतारी पूछेंगी तब क्या सुखदायक सन्देश कहूँगा ? ॥ २ ॥

राम-जननि जब आइहि धाई * सुमिरि वत्स जनु धेनु लवाई ॥३॥
पूछत उतर देब मैं तेही * गये वन राम लषण वैदेही ॥४॥

जब रामजीकी माता दौड़कर आवेंगी; जैसे बछड़ेको यादकर गाय दौड़ती है॥३॥पूछते ही उनको मैं वही उत्तर दूँगा कि, महारानीजी ! राम, लक्ष्मण, सीता तो वनको चले गये ॥४॥

जो पूछहिं तेहि उत्तर देवा ❋ जाय अवध अब यह यश लेवा ॥५॥
पूँछहिं जबहिं राउ दुख दीना ❋ जीवन जासु राम आधीना ॥६॥

जो पूछेगा उसको वही उत्तर देना होगा, बस, अवधमें जाकर अब यह यश मिलेगा ॥५॥ जब दीन दुःखी महाराज जिनका जीवन रघुनाथजीके ही अधीन है, मुझसे रघुनाथजीका वृत्तांत पूछेंगे ॥ ६ ॥

दैहैं उतर कवन मुँह लाई ❋ आयउँ कुँवर कुशल पहुँचाई ॥७॥
सुनत लषण सिय राम सँदेसू ❋ तृण इव तनु परिहरब नरेसू ॥८॥

तो क्या मुँह लेकर उत्तर दूँगा, बस यही कहना पड़ेगा कि राजकुमारको कुशलसे पहुँचा आया ॥ ७ ॥ लक्ष्मण, रघुनाथ, जानकीजीके वनसे न लौटनेके समाचार सुनते ही राजा अपना प्रिय शरीर तृणके समान त्याग देंगे ॥ ८ ॥

दोहा–हृदय न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर ॥
जानत हौं मोहिं दीन्ह विधि, यम यातना शरीर ॥ १७६ ॥

अपने प्रीतम जलके बिछुड़ते ही जलके भीतरकी धरती फट जाती है; ऐसे ही प्यारे रघुनाथजीके बिछुड़नेसे मेरा हृदय क्यों न फटा? मुझको जान पड़ता है कि विधाताने मुझको यमयातनाका (सहनेवाला) शरीर दिया है अथवा विधाताने इसी शरीरमें यमयातनाका कष्ट दिया है ॥१७६॥

एहि विधि पंथ करत पछितावा ❋ तमसा तीर तुरत रथ आवा ॥१॥
बिदा किये करि विनय निषादू ❋ फिरे पाँव परि विकल विषादू ॥२॥

इस प्रकार मार्गमें पछतावा करते हुए तमसा नदीके तीरपर तुरंत रथ आया ॥१॥ विनय करके निषादोंको विदा किया; वे पांव पड़कर विषादसे व्याकुल हो लौटे ॥ २ ॥

पैठत नगर सचिव सकुचाई ❋ जनु मारेसि गुरु ब्राह्मण गाई ॥३॥
बैठि विटपतर दिवस गवाँवा ❋ साँझ समय तब अवसर पावा ॥४॥

नगरमें प्रवेश करते हुए मन्त्री सकुचाता है जैसे उसने गुरु, ब्राह्मण या गायको मारा हो ॥३॥ सुमंतने वृक्षके नीचे बैठकर दिन गँवाया और जब संध्या समयका अवसर पाया तब ॥ ४ ॥

अवध प्रवेश कीन्ह अँधियारे ❋ पैठ भवन रथ राखि दुआरे ॥५॥
जिन जिन समाचार सुनि पाये ❋ भूप द्वार रथ देखन आये ॥६॥

अंधेरेमें अयोध्यामें प्रवेश किया, जब द्वारे पहुँचा तो रथ द्वार पर रखकर आप भवनमें गया ॥५॥ जिन जिनने (कुछ) समाचार सुने वे राजद्वारपर रथ देखने आये ॥ ६ ॥

रथ पहिचान विकल लखि घोरे ❋ गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥७॥
नगर नारि नर व्याकुल कैसे ❋ निघटत नीर मीन गण जैसे ॥८॥

रथको पहँचान और घोड़ोंको देखकर मनुष्योंके शरीर ऐसे गलने लगे जैसे गरमीमें ओला गलता है ॥ ७ ॥ नगरके नारी नर ऐसे व्याकुल थे जैसे पानी घटनेसे मछली व्याकुल होती है ॥ ८ ॥

दोहा–सचिव आगमन सुनत सब, विकल भयो रनिवास ॥
भवन भयंकर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत-निवास ॥ १७७ ॥

मन्त्रीका आगमन सुनकर सब रनिवास व्याकुल हो गया और उनको भवन ऐसा भयंकर लगता है मानों इसमें प्रेत निवास करते हैं ॥ १७७ ॥

अति आरत सब पूछहिं रानी * उतर न आव विकल भइ बानी॥१॥
सुनै न श्रवण नयन नहिं सूझा * कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा॥२॥

अति दुःख से सब रानी पूछती हैं उत्तर नहीं आता; वाणी व्याकुल हो गयी ॥१॥ कानोंसे सुनता नहीं; नेत्रोंसे सूझता नहीं, कहो राजा कहां हैं ? यही बात जिस तिससे पूछी ॥ २ ॥

दासिन्ह दीख सचिव विकलाई * कौशल्या-गृह गई लिवाई ॥३॥
जाय सुमन्त दीख कस राजा *अमिय रहित जनु चन्द्र विराजा॥४॥

जब दासियोंने मन्त्रीकी यह व्याकुलता देखी तो कौशल्याके घरको लिवां ले गयीं ॥३॥ सुमन्तने जाकर राजाको देखा जैसे अमृत रहित चन्द्रमा (मलिन) होता है ॥ ४ ॥

असन शयन न विभूषण हीना * परेउ भूमितल निपट मलीना॥५॥
लेइँ उसाँस शोच इहि भाँती * सुरपुरते जनु खसेउ ययाती ॥६॥

राजा भोजन, शयन, भूषणोंसे हीन पृथ्वीतलमें निपट मलिन पड़े हैं ॥ ५ ॥ और इस प्रकार शोच करके श्वास लेते हैं जैसे ययाति वैकुण्ठसे गिर पड़ा हो ॥ ६ ॥

राम राम कहि राम सनेही * पुनि कह राम लषण वैदेही ॥७॥
लेत शोच भरि क्षण क्षण छाती * जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥८॥

राम राम राम हे सनेही प्रिय पुत्र ! फिर राम लक्ष्मण जानकी ऐसा कहते हैं ॥ ७ ॥ प्रतिक्षण हृदयमें शोच भरते हैं अथवा शोचके कारण लम्बी साँस लेनेसे छाती भरती है, जैसे पंख जलनेसे सम्पाती पड़ा हो ॥ ८ ॥

दोहा-देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दण्ड प्रणाम ॥
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ राम ॥ १७८ ॥

मन्त्रीने देखते ही (जय जीव) ऐसा कहकर दण्डवत् प्रणाम किया, सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और पूछने लगे-सुमन्त ! बताओ राम कहाँ हैं ? ॥१७८ ॥

भूप सुमन्त लीन्ह उर लाई * बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥१॥
सहित सनेह निकट बैठारी * पूछत राउ नयन भरि बारी ॥२॥

राजाने सुमंतको हृदयसे लगा लिया; जैसे डूबते हुएको कुछ सहारा मिल गया हो ॥ १ ॥ स्नेहसे पास बैठाया, राजा नेत्रोंमें जल भर भरके पूछने लगे ॥ २ ॥

---

१. उस समय कौशल्या कह रही थी –" माई री ! मोहि न कोउ समझावै । राम गमन सांचौ किधौं सपनो, मन परतीति न आवै । लगे रहत मेरे नैनन आगे राम लषण अरु सीता । तदपि न मिटत दाह यहि उरको, विधि जो भयो विपरीता । दुःख न रहै रघुपतिहिं विलोकत, तनु न रहे बिनु देखे । करत न प्रान पयान सुनहु सखि, अरुझि परी यहि लेखे ।। कौशल्याके विरह वचन सुनि, रोइ उठीं सब रानी । तुलसीदास रघुवीर विरहकी, पीर न जात बखानी।"

२. ययाति राजा अनेक यज्ञ कर सदेह स्वर्ग को गये और इन्द्रासनपर बैठे तब इन्द्रने पूछा, आपने ऐसे क्या कर्म किये हैं जो सशरीर स्वर्गमें आये ? उन्होंने अभिमानके वश अपने सब गुणों का वर्णन कर दिया, कहनेसे वे क्षीण हो गये, तब वहांसे इनको इन्द्रने ढकेल दिया और पृथ्वीमें आकर गिरे ।

राम कुशल कहु सखा सनेही ❋ कहँ रघुनाथ लषण वैदेही॥३॥
आनेहु फेरि कि वनहिं सिधाये ❋ सुनत सुमन्त नयन जल छाये ॥४॥
हे सखे ! प्रियकी कुशलता कहो; रघुनाथ, लक्ष्मण, जानकी कहां हैं ? ॥३॥ लौटा लाये हो या वनको चले ! सुनते ही सुमन्तके नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ४ ॥

शोच-विकल पुनि पूछ नरेशू ❋ कहु सिय राम लषण सन्देशू ॥५॥
राम रूप गुण शील स्वभाऊ ❋ सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥६॥
शोकसे व्याकुल हो राजा फिर पूछने लगे कि सीता राम लक्ष्मणजीका संदेश कहो ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीका रूप, गुण, शील स्वभाव स्मरण कर करके राजा मनमें शोच करते हैं।६॥

राज्य सुनाय दीन्ह वनवासू ❋ सुनि मन भयउ न हर्ष हरासू॥७॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना ❋ को पापी जग मोहि समाना ॥८॥
हाय ! मैंने राज्य सुनाकर अपने पुत्रको वनवास दिया, यह सुनकर भी उनके मनमें प्रसन्नता और दुःख नहीं हुआ, आज्ञा मांग वनको गये ॥ ७ ॥ ऐसे पुत्रके बिछुड़ते समय मेरे प्राण क्यों न गये ? मेरे समान जगत्में कौन पापी है ॥ ८ ॥

दोहा-सखा राम सिय लषण जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ॥
नाहित चाहत चलन अब, प्राण कहौं सतिभाउ ॥ १७९ ॥
हे सखे ! राम, सीता, लक्ष्मण जहाँ हैं वहाँ मुझको पहुँचा दो, नहीं तो मैं सत्य भावसे ही कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना चाहते हैं ॥ १७९ ॥

पुनि पुनि पूछत मन्त्रिहि राऊ ❋ प्रियतम सुवन सन्देश सुनाऊ॥१॥
करहु सखा सोइ वेगि उपाऊ ❋ राम लषण सिय नैन दिखाऊ॥२॥
बारम्बार मन्त्रीसे राजा पूछने लगे-हे प्रियतम ! पुत्रोंका संदेश सुनाओ; अथवा प्यारे पुत्रोंका सन्देश कहो ? ॥१॥ हे सखा ! वह शीघ्र उपाय करो, राम,लक्ष्मण, सीताको लाकर दिखाओ मैं नेत्रोंसे उनका दर्शन करूँ ॥ २ ॥

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी ❋ महाराज तुम पण्डित ज्ञानी ॥३॥
वीर सुधीर धुरंधर देवा ❋ साधु-समाज सदा तुम सेवा ॥४॥
मन्त्री धैर्य धरकर कोमलवाणीसे बोला-महाराज ! आप पंडित ज्ञानी हो॥३॥ वीर धैर्यवान् धुरंधर देव स्वरूप हो, क्योंकि आपने साधु महात्माओंका सदा सङ्ग किया है ॥ ४ ॥

जन्म मरण सब सुख दुख भोगा ❋हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा॥५॥
काल कर्मवश होहिं गुसाईं ❋ वरवश राति दिवस की नाईं ॥६॥
जीना-मरना, सुख, दुःख, भोग, प्रिय मिलन, वियोग, लाभ, हानि,सब ॥ ५ ॥ हे महाराज ! काल और कर्मके बस बलात्कार रात-दिनके समान हुआ करते हैं ॥ ६ ॥

सुख हर्षहि जड़ दुख विलखाहीं ❋ दोउ सम धीर धरहि मनमाहीं॥७॥
धीरज धरहु विवेक विचारी ❋ छाँड़िय शोच सकल हितकारी॥८॥
सुखमें प्रसन्न और दुःखमें रोना यह तो मूर्खोंका काम है किंतु जो दोनोंमें समान हैं वे मनमें

धैर्य रखते हैं ॥ ७ ॥ अतः ज्ञान विचारकर धैर्य धरिये, हे सबके हितकारक राजन्! शोच त्याग दीजिये ॥ ८ ॥

दोहा–प्रथम वास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि–तीर ॥
न्हाय रहे जलपान करि, सिय समेत दोउ वीर ॥ १८० ॥

पहला वास (मुकाम) तमसाके किनारे हुआ, दूसरा गंगाके तट पर सीता सहित दोनों वीरों ने स्नान कर जलपान किया, क्योंकि तमसाके किनारे तो जलपान भी नहीं किया था ॥ १८० ॥

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई ❋ सो यामिनि श्रृंगबेर गँवाई ॥१॥
होत प्रात वटक्षीर मँगावा ❋ जटामुकुट निजशीश बनावा ॥२॥

केवटने बहुत सेवकाई की; सो वह रात तो श्रृङ्गवेरपुरमें गँवाई ॥ १ ॥ प्रातःकाल होते ही रघुनाथजीने वटका दूध मँगाया और अपने हाथसे शिर पर जटाओंका मुकुट बनाया ॥ २ ॥

राम–सखा तब नाव मँगाई ❋ प्रियहि चढ़ाय चढ़े रघुराई ॥३॥
लषण बाण धनु धरे बनाई ❋ आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥४॥

तब निषादने नाव मँगायी और प्यारी जानकीजी को चढ़ाकर रघुनाथजी आप चढ़े ॥ ३ ॥ लक्ष्मणजीने धनुष बाण बना रखे थे अथवा उस समय धनुष बाण चढ़ाय हाथमें लिये और रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर आप चढ़े ॥ ४ ॥

विकल विलोकि मोहि रघुवीरा ❋ बोले मधुर वचन धरि धीरा ॥५॥
तात प्रणाम तातसन कहेऊ ❋ बार बार पदपंकज गहेऊ ॥६॥

मुझको व्याकुल देख रघुनाथजी धैर्यधर मधुर वचन बोले ॥ ५ ॥ हे तात! पिताजीसे प्रणाम कहना बारबार मेरी ओरसे उनके चरणकमलोंको पकड़ना ॥ ६ ॥

करब पाँय परि विनय बहोरी ❋ तात करिय जनि चिंता मोरी ॥७॥
बन मग मङ्गल कुशल हमारे ❋ कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारे ॥८॥

फिर पाँय पकड़कर मेरी ओरसे विनती करना हे तात! मेरी चिंता कुछ मत कीजिये ॥ ७ ॥ वन–मार्गमें हमको आपकी कृपा, अनुग्रह, पुण्यसे सदा कुशल है ॥ ८ ॥

छन्द–तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपाल आयसु कुशल देखन पाँय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाँय करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ यत्न जेहि विधि कुशल रहँ कोशल धनी ॥१८॥

हे पिताजी! आपके अनुग्रहसे वनमें जाते सब प्रकारसे सुख पाऊँगा और आपकी आज्ञा पालन कर सकुशल चरण (कमल) का दर्शन करने फिर आऊँगा और सब माताओंके चरणोंमें पड़कर मेरी ओरसे घनी विनती कर सन्तुष्ट कर देना और वह यत्न करना कि जिससे महाराज कुशल रहें ॥ १८ ॥

---

१. —"अबतक लक्ष्मणजीको संदेह था कि, कदाचित् रघुनाथजी लौट जायं, अब जब देखाकि रघुनाथजी न लौटेंगे तो धनुष संभाल कर धारण किये अथवा यहां तक अपना देश था, अब पराये देशमें जाना होगा इससे सावधान हुए, किंवा रघुनाथजीको पृथ्वीका भार उतारनेमें कृतसंकल्प देखकर उनको श्रम देना उचित न जान अपने आप धनुष बाण धारण किया।"

सोरठा–गुरुसन कहब सँदेश, बार बार पदपद्म गहि ॥
करब सोइ उपदेश, जेहि न शोच मोहि अवधपति ॥ १३ ॥

वारवार गुरुके चरणकमल पकड़कर उनसे सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझे महाराज न शोचें ॥ १३ ॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी ❋ तात सुनायहु विनती मोरी ॥१॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी ❋ जाते रहैं भुवाल सुखारी ॥२॥

हे तात! पुरवासी कुटुम्ब इनसे निहोरा करके मेरी विनती सुनाना ॥ १ ॥ वही सब प्रकारसे मेरा हितकारी है, जिससे नरनाह (पिताजी) सुखी रहें ॥ २ ॥

कहब सँदेश भरतके आये ❋ नीति न तजब राज्यपद पाये ॥३॥
पालेहु प्रजहि कर्म मन वानी ❋ सेयहु मातु सकल सम जानी ॥४॥

भरतके आनेपर सन्देश कह देना कि राज्यपद पानेसे नीति न त्यागे! अथवा हे भरत! आपने जो राज्यपद पाया है पिताकी आज्ञा विचार उसको त्याग न करना। क्योंकि यह नीति है, जिसको पिता राज्य दे वही पावे। यह उस शंका पर अर्थ है जो श्रीरामचन्द्रजीने कहा था कि "होय न नृपमद भरतहिं भाई" तो फिर नीतिका त्याग न करना यह क्यों कहा? तो दूसरा अर्थ करना ॥ ३ ॥ प्रजाको कर्म मन वाणीसे पालन और सब माताओंकी समानभावसे सेवा करना। समानका भाव यह कि कैकेयीका निरादर मत करना ॥ ४ ॥

और निबाहब भायप भाई ❋ करि पितु मातु चरण सेवकाई ॥५॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ ❋ शोच मोर जेहि करहिं न काऊ ॥६॥

और हे भाई! भाईपन निबाहना तथा पिता-माताके चरणों की सेवकाई करना ॥ ५ ॥ और हे तात! पिताजीको उसी भांतिसे रखना जिससे वे मेरा कभी शोच न करें ॥ ६ ॥

लषण कहेउ कछु वचन कठोरा ❋ वरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥७॥
बार बार निज शपथ दिवाई ❋ कहब न तात लषण लरिकाई ॥८॥

लक्ष्मणने कुछ कठोर वचन कहे थे, परन्तु रघुनाथजीने उनको बरजा और फिर मुझे निहोरा देकर ॥ ७ ॥ वार-वार अपनी सौगन्ध दिलवाई और कहा कि हे तात! लक्ष्मण-जीकी लरकाई मत कहना ॥ ८ ॥

दोहा–करि प्रणाम कछु कहन लिय, सिय भइ शिथिल सनेह ॥
थकित वचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥ १८१ ॥

जानकीजी प्रणाम कह कर कुछ कहना ही चाहती थीं कि स्नेहसे शिथिल हो गयीं। वचन थकित, नेत्रोंमें जल और शरीर पुलकित हो गया, इससे कुछ कह न सकीं ॥ १८१ ॥

तेहि अवसर रघुवर-रुख पाई ❋ केवट पारहिं नाव चलाई ॥१॥
रघुकुल तिलक चले इहि भाँती ❋ देखेउँ ठाढ़ कुलिश धरि छाती ॥२॥

इसी अवसरमें रघुनाथजीका रुख पाकर केवटने पारको नाव चलाई ॥ १ ॥ इस प्रकार रघुनाथजी चले और मैं छाती पर वज्र धरकर खड़ा हुआ देखता रहा ॥ २ ॥

मैं आपन किमि कहउँ कलेशू ❋ जियत फिरेउँ लै राम सन्देशू॥३॥
अस कहि सचिव वचन रहि गयऊ❋हानि गलानि शोच वश भयऊ॥४॥

मैं अपना क्लेश किस प्रकारसे कहूँ कि जीतेजी श्रीरघुनाथजीका संदेश लेकर लौट आया ॥३॥ ऐसा कहकर मन्त्री मौन हो गया और हानि, ग्लानि, तथा शोचके वश हो गया ॥४॥

सुनत सुमन्त-वचन नर नाहू ❋ परेउ धरणि उर दारुण दाहू ॥५॥
तलफत विषम मोह मन मापा ❋ माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा ॥६॥

राजा दशरथजी सुमन्तके वचन सुनकर पृथ्वीपर मूर्छित हो गिरे; हृदयमें दारुण दाह हुआ ॥ ५ ॥ कठिन मोहके मतवाले होकर नृपति तड़फने लगे मानों प्रथम पावसका जल मछलीको व्याप गया हो ॥ ६ ॥

करि विलाप रोवहिं सब रानी ❋ महाविपति किमि जाय बखानी॥७॥
सुनि विलाप दुःखहूं दुख लागा ❋ धीरजहूं-कर धीरज भागा ॥८॥

विलाप करके सब रानियाँ रोने लगीं यह महाविपत्ति कैसे बखानी जाय ? ॥ ७ ॥ उनका विलाप सुनकर दुःखको भी दुःख लगा और धैर्यका भी धैर्य भाग गया ॥ ८ ॥

दोहा-भयउ कुलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर शोर ॥
विपुल विहँग बन परेउ निशि, मानहु कुलिश कठोर ॥ १८२ ॥

राजमहलमें रानियोंके रोनेका शब्द सुनकर नगरमें अत्यन्त कोलाहल हुआ मानो रात्रि-समय अनेक पक्षियोंसे युक्त वनमें (इन्द्रका) कठोर वज्र गिरा हो ॥ १८२ ॥

प्राण कंठ-गत भयउ भुवालू ❋मणिविहीन जिमि व्याकुल व्यालू॥१॥
इन्द्रिय सकल विकल भइँ भारी ❋ जनु सर सरसिज बन विनु बारी॥२॥

राजा दशरथके प्राण कण्ठमें पहुँच गये जैसे मणिके विना सर्प व्याकुल हो जाता है ॥१॥ सब इन्द्रियें बड़ी व्याकुल हुईं;जैसे विना जलके कमलवन और उनका स्थान सरोवर हो जाता है॥२॥

कौशल्या नृप दीख मलाना ❋ रविकुलरवि अथये जिय जाना॥३॥
उर धरि धीर राम महतारी ❋ बोलीं वचन समय अनुहारी ॥४॥

कौशल्याने राजाकी मलिन अवस्था देखकर कि, अब सूर्यकुलका सूर्य अस्त होना चाहता है ॥३॥ तब रामजीकी महतारी हृदयमें धैर्य धारण करके समयानुसार वचन बोलीं ॥ ४ ॥

नाथ समुझि मन करिय विचारू ❋ राम वियोग पयोधि अपारू ॥५॥
कर्णधार तुम अवध जहाजू ❋ चढ़े सकल प्रिय बणिक समाजू॥६॥

हे नाथ ! मनमें समझकर विचार कीजिये कि रघुनाथजीके विरहका समुद्र अपार है ॥५॥ आप उसके कर्णधार (मल्लाह) हो अवध जहाज है प्रिय(कुटुम्ब) वणिक समाज सब उसमें चढ़े हैं ॥ ६ ॥

धीरज धरिय तो पाइय पारू ❋ नाहित बूड़िहि सब परिवारू ॥७॥
जौ जिय धरिय विनय पिय मोरी ❋राम लषण सिय मिलिहिं बहोरी॥८॥

जो आप धैर्य धरेंगे तो पार पा जायँगे, नहीं तो सारा परिवार डूब जायगा ॥७॥ स्वामी जो आप मेरी विनय हृदयमें धारण करेंगे तो राम, लक्ष्मण और सीता फिर मिलेंगे ॥ ८ ॥

दोहा–प्रिया वचन मृदु गूढ़ सुनि, चितयउ आँखि उघारि ॥
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत शीतल वारि ॥ १८३ ॥

प्रियाका वचन कोमल और गूढ़ सुनकर राजाने आंख उघाड़कर देखा, ये वचन ऐसे थे कि जैसे कोई दीन मलीन तड़फती हुई मछली को पानीसे सींचे ॥ १८३ ॥

धरि धीरज उठि बैठ भुवालू ❋ कहु सुमन्त कहँ राम कृपालू ॥१॥
कहाँ लषण कहँ राम सनेही ❋ कहँ प्रिय पुत्र वधू वैदेही ॥२॥

राजा धैर्य धरकर उठ बैठे और बोले–कहो सुमन्त ! कृपालु रघुनाथजी कहाँ हैं ? ॥ १ ॥ लक्ष्मण कहां, प्यारे राम और प्यारी पुत्रबधू जानकी कहां हैं ॥ २ ॥

विलपत राउ विकल बहु भाँती ❋ भइ युग सरिस सिराति न राती ॥३॥
तापस अन्ध शाप सुधि आई ❋ कौशल्यहि सब कथा सुनाई ॥४॥

राजा बहुत प्रकारसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे, रात्रि युगके समान हो गयी, अर्थात् बीतनेमें अपार हो गयी ॥ ३ ॥ फिर अन्धे तपस्वी श्रवणके पिताके शापकी बात याद आयी तो कौशल्याको (इस प्रकार) सब कथा सुनाई ॥ ४ ॥

(श्रवण कुमार की कथा) क्षेपक

एक समय सुनि प्रिये सयानी ❋ मृगयाकी मेरे मन आनी ॥१॥
सब मृगया कर साज सजाई ❋ गयउँ बनहिं सँग सैन सुहाई ॥२॥

(राजाने कहा) हे प्रिये ! सुनिये, एक समय मेरे मनमें मृगया खेलनेकी आयी ॥ १ ॥ सब मृगयाका साज सजाकर वनको सुन्दर सेना सङ्ग लेकर गया ॥ २ ॥

रैनि समय वेतसवन तीरा ❋ बैठो सरवर तट मति धीरा ॥३॥
ताही समय लिये घट करमें ❋ सरवन आये जलहित सरमें ॥४॥

रात्रिके समय बेतोंके वनके तीर, सरोवरके तटपर मैं बैठा था ॥ ३ ॥ उसी समय घड़ा हाथमें लिए सरवन सरोवरमें जलके लिए आया ॥ ४ ॥

तूंबा जलमें जबहिं डुबायो ❋ भयो शब्द मेरे मन भायो ॥५॥
जान्यों मृग तब धनुष सँभारा ❋ लक्ष्य वेधिकर तेहि उर मारा ॥६॥

तूम्बा जलमें ज्योंही डुबाया, त्योंही उसमें शब्द हुआ तो मेरे मनमें आया कि ॥ ५ ॥ मृग आया तब मैंने धनुष सम्हाल कर लक्ष्य वेध उसके हृदयमें मारा ॥ ६ ॥

लाग्यो हिये शब्द हा कीन्हो ❋ यह मानुष तब मैंने चीन्हो ॥७॥
गयो निकट तब लखि दुख पायो ❋ सरवन मोसे वचन सुनायो ॥८॥

जैसे ही उसके हृदयमें बाण लगा कि उसने हा शब्द किया और तब मैंने पहचाना कि यह मनुष्य है ॥७॥ जब मैं निकट गया तो देखकर बड़ा दुःख पाया, सरवनने मुझसे कहा ॥ ८ ॥

सोच करहु मति नृपति हमारी * जो मैं कहहुँ करहु यहि बारी ॥९॥
मैं सरवन सेवहुँ पितु माता * नयन विहीन दोउ सुखदाता ॥१०॥

हे राजन् ! हमारा शोच मत कीजिये, बल्कि जो मैं कहूँ वह कीजिये ॥ ९ ॥ मैं सरवन पिता-माताकी सेवा करता हूँ वे दोनों मेरे सुख दाता नयन विहीन हैं ॥ १० ॥

तिनहिं तृषाने अधिक सतायो * लेन हेत जलको हौं आयो ॥११॥

उनको प्यासने बहुत सताया था, इस कारण मैं जल लेने को आया था ॥ ११ ॥

दोहा—सो तुमने अज्ञानसे, नृप मम मारेउ बान ॥
याहि खैंचिये देह ते, निकसन चाहत प्रान ॥ १८४ ॥

राजन् ! आपने धोखेसे मेरी छातीमें बाण मार दिया सो अब इसको खींच लीजिये क्योंकि देहसे प्राण निकलना चाहते हैं ॥ १८४ ॥

अरु तुम मन शंका मत आनो * मेरी कही सत्य ही मानो ॥१॥
पर इक बात हिये मम लावहु * मम पितु मातु निकट तुम जावहु॥२॥

और आप मनमें सन्देह न कीजिये, मेरी बात सत्य मानिये ॥ १ ॥ इतनी बात मेरी और है कि मेरे माता-पिताके निकट आप जाइये ॥ २ ॥

तिनको हितसों नीर पिवाई * पाछे कहियो मम समुझाई ॥३॥
करहिं न शोच करहु उपदेशा * सत्य संध रघुवंश नरेशा ॥४॥

उनको प्रेमसे जल पिलाकर पीछे समझाकर सब मेरा हाल कह देना ॥ ३ ॥ और उन्हें ऐसा उपदेश करना जिससे वे शोच न करें, हे रघुवंशोत्पन्न नृपति ! आप सत्य संध हो ॥४॥

अब तुम दीजै बाण निकारी * सुनि दशरथ दुःखित भये भारी॥५॥
हियते जबहिं निकारो बाणा * ॐकार कहि छाँड्यो प्राणा ॥६॥

अब आप मेरे शरीरसे बाण निकाल दीजिये, यह सुनकर दशरथजी बड़े दुःखी हुए ॥५॥ ज्योंही हृदयसे बाण निकाला कि त्योंही उसने ॐकारका नाम लेकर प्राण छोड़ दिये ॥ ६ ॥

नृप दशरथ घट लियो उठाई * तेहिके मातु पिता ढिग जाई ॥७॥
प्यावन लगे नीर बिनु बानी * तब बोले दम्पति दुखमानी ॥८॥

(शिवजी बोले)-राजा दशरथजीने वह घड़ा उठा लिया और उसके माता पिताके पास जाकर ॥ ७ ॥ विना बात किये जल पिलाने लगे, तब वे दोनों स्त्री पुरुष दुःख मानकर बोले ॥ ८ ॥

दोहा—पुत्र न बोलत आजु तुम, हमसे सुन्दर बैन ॥
कारण कवन सो कहहु तुम, जासों होय जिय चैन ॥ १८५ ॥

हे पुत्र ! आज हमसे सुन्दर वचन क्यों नहीं बोलते, सो इसका कारण कहो ? जिससे जीमें चैन हो ॥ १८५ ॥

बिन बोले हम पियहिं न नीरा * सुनि भये दशरथ अधिक अधीरा॥१॥

समाचार सब दिया सुनाई * परे धरणि दोऊ अकुलाई ॥२॥

विना बोले हम जल नहीं पियेंगे यह बात सुनकर (हे पार्वती) राजा दशरथजी अधिक अधीर हुए ॥ १ ॥ (दशरथ बोले) फिर मैंने वृत्तांत सुना दिया और वे दोनों घबड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २ ॥

पुत्र पुत्र कहि रोवन लागे * मोसन कहने लगे अभागे ॥३॥
जहाँ पुत्र तहँ देहु दिखाई * तब मैं तिन कहँ गयउँ लिवाई॥४॥

वे दोनों 'पुत्र पुत्र' कहकर रोने लगे और मुझसे बोले अरे अभागे ॥ ३ ॥ जहाँ पुत्र है वह हमें दिखाओ, तब मैं उनको वहां लिवा ले गया ॥ ४ ॥

पुत्र उठाय गोद महतारी * रोवन लगी शब्द करि भारी ॥५॥
पुनि दोउन यह बात सुनाई * दीजे नृपति चिता बनवाई ॥६॥

महतारी पुत्रको गोदमें उठाकर बड़ा शब्द करके रोने लगी ॥ ५ ॥ फिर दोनोंने मुझसे यह कहा कि राजन् चिता बनवा दीजिये ॥ ६ ॥

सुनि मैंने रचि चिता बनाई * बैठे पुत्र सहित दोउ जाई ॥७॥
योग अग्निमें निज तन जारा * मरण समय अस वचन उचारा॥८॥

सुनकर मैंने चिता बना दी और उस पर वे दोनों पुत्रसहित जा बैठे ॥ ७ ॥ योग अग्निमें अपना शरीर जला दिया और मरते समय यह वचन बोले ॥ ८ ॥

दोहा-जिमि हम पुत्र वियोगमें, दशरथ त्यागहिं प्राण ॥
ऐसे ही तनु तजहु तुम, मानहु वचन प्रमाण ॥ १८६ ॥

हे दशरथ! जैसे हम पुत्रके वियोगमें प्राण त्याग करते हैं, ऐसे ही आप भी प्राण त्याग करेंगे, यह वचन हमारा सत्य मानना ॥ १८६ ॥

अस कहि तापस गे सुरलोका * मेरे मन छायो अति शोका ॥१॥
पुनि मैं निजमन कीन्ह विचारा * बिनु समुझे ऋषि वचन उचारा॥२॥

ऐसा कह तपस्वी शरीर त्याग देवलोकको गये और मेरे मनमें बड़ा शोक हुआ ॥ १ ॥ फिर मैंने अपने मनमें विचार किया कि ऋषिने विना समझे शाप दिया ॥ २ ॥

पुत्र नहीं कोउ गेह हमारे * किहि त्यागहि तनु वचन तुम्हारे॥३॥
शोच विहाय गेह मैं आयो * अब तक तुमको नहीं सुनायो॥४॥

पुत्र तो कोई मेरे घर है ही नहीं, ऋषिके वचनसे फिर शरीर कैसे छूटेगा ? ॥ ३ ॥ अथवा शाप सत्य होनेको पुत्र हो तो यह आशीर्वाद ही है ऐसा विचार शोच त्याग घरको आया, अब तक यह भेद तुमको नहीं सुनाया था ॥ ४ ॥

साँच भई अब वह सब बाता * गये बन सीय राम दोउ भ्राता॥५॥
प्राण पियारे वनहिं सिधारे * अबतक प्राण न गये हमारे ॥६॥

सो अब वह बात सत्य हुई, सीता राम और लक्ष्मण वनको गये ॥ ५ ॥ प्राण प्यारे रघुनन्दन तो वनको गये किंतु हमारे प्राण अब तक नहीं गये ॥ ६ ॥

अब सुख कौन मिलहि जग माहीं * जेहिते प्राण न तनुते जाहीं ॥७॥
राम लषण सिय कानन जाहीं * अब लगि प्राण रहे तनुमाहीं ॥८॥

अब जगतमें ऐसा क्या सुख मिलेगा, जिसके लिये शरीरसे प्राण नहीं जाते ? ॥७॥ राम लक्ष्मण, जानकी वनको गये और अबतक प्राण शरीरमें बस रहे हैं ॥ ८ ॥

दोहा-प्रिय सरवनकी कथाते, अब मोहि रह्यो न धीर ॥
पुत्र विना जे नहिं जियैं, धनि धनि ते नर वीर ॥ १८७ ॥

प्यारी ! अब सरवनकी कथासे मुझको धैर्य नहीं रहा, जो पुत्रके विना नहीं जियें उन वीर पुरुषोंको धन्य है ! धन्य है ! ! ॥ १८७ ॥

इति क्षेपक

भयो विकल वर्णत इतिहासा * रामरहित धिक जीवन आसा ॥५॥
सो तनु राखि करब मैं काहा * जेहि न प्रेमप्रण मोर निबाहा ॥६॥

इतिहासको वर्णन करते राजा व्याकुल हो गये रामजीके विना जीवनकी आशाको धिक्कार है ॥ ५ ॥ वह शरीरमें रखकर क्या करूँगा जिसने मेरे प्रेमका प्रण नहीं निबाहा ॥ ६ ॥

हा रघुनन्दन प्राण पिरीते *तुम बिन जियत बहुत दिन बीते॥७॥
हा जानकी लषण हा रघुवर * हा पितुहित चितचातकजलधर॥८॥

हा प्राणप्यारे रघुनाथजी ! तुम्हारे विना जीते हुए बहुत दिन बीत गये ॥७॥ हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! ! हा रघुनाथ ! ! ! हा पिताके हितरूपी चित्तचातकके जलधर अर्थात् मेघ होकर तृप्त करनेवाले ! ॥ ८ ॥

दोहा-राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ॥
तनु परिहरि रघुबर विरह, राउ गयउ सुरधाम ॥ १८८ ॥

छः बार रामका नाम लेकर राजा दशरथजी श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें शरीर त्याग सुरधाम (इन्द्रलोक) को चले गये । मोक्ष इस कारण नहीं हुआ कि, भेदभक्ति दृढ़ की । अथवा राजाके मनमें अभिषेक देखनेकी इच्छा थी, इससे देवलोकको गये और फिर राज्य होनेपर साकेतको पधारे ॥ १८८ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे विद्यावारिधि पंडितज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गतो दशमो विश्रामः ॥१०॥

दोहा-एकादश विश्राममें, भरत आगमन कीन्ह ।
नृप दशरथकी क्रिया करि, चित्रकूट मन दीन्ह ॥ ११ ॥

जियन मरन फल दशरथ पावा * अण्ड अनेक अमलयश छावा॥१॥
जियत राम विधुवदन निहारा * राम-विरह करि मरन सँवारा ॥२॥

महाराज दशरथजीने जीने और मरनेका फल पाया और अनेक ब्रह्माण्डोंमें उनका उज्ज्वल यश छा गया ॥ १ ॥ जीतेजी तो रघुनाथजीका मुखचन्द्र देखा और वियोग होते ही प्राण भेंट कर दिये ॥ २ ॥

शोक विकल सब रोवहिं रानी * रूप शील बल तेज बखानी ॥३॥
करहिं विलाप अनेक प्रकारा * परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥४॥

शोकसे व्याकुल हो सब रानियाँ रूप, शील, बल और तेजका बखान कर रोती हैं ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारसे विलाप करती और बारंबार पृथ्वीतलमें गिरती हैं ॥ ४ ॥

विलपहिं विकल दास अरु दासी * घर घर रुदन करहिं पुरवासी ॥५॥
अथयउ आजु भानुकुल भानू * धर्म अवधि गुण रूप निधानू ॥६॥

व्याकुल होकर दास और दासी विलाप करते हैं और पुरवासी घर-घरमें रोते हैं ॥ ५ ॥ सूर्यकुलका सूर्य अस्त हो गया, जो धर्मकी मर्यादा, रूप और गुणका निधान था ॥ ६ ॥

गारी सकल कैकयिहि देहीं * नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥७॥
इहि विधि बिलपत रैन बिहानी * आये सकल महामुनि ज्ञानी ॥८॥

सब कैकेयीको गालियाँ देते हैं, जिसने जगत्‌को नेत्रविहीन कर दिया ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे विलाप करते हुए रात बीत गयी प्रातःकाल ही सब महामुनि ज्ञानी आये ॥ ८ ॥

दोहा—तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास ॥
शोक निवारयो सबहिं कर, निज विज्ञान प्रकाश ॥ १८९ ॥

तब वसिष्ठजीने समयानुरूप अनेक इतिहास कहकर अपने ज्ञानके प्रकाशसे सबका शोक दूर किया (कि यह संसारकी गति है जो उत्पन्न होता है वह मरता है) ॥ १८९ ॥

---

१. वसिष्ठजीने कहा —हे कौशल्ये ! क्या हम और क्या आप, यह सुख और दुःखका भोग सबके ही अर्थ अवश्य है; अन्तमें सबकी ही मृत्यु है, फिर आप क्यों शोक करती हो ? हम प्राचीन राजाओंका इतिहास कहते हैं सो आप सुनो, जिससे आपका शोक दूर होगा, जो राजाओंके चरित्रको सुनते हैं उनकी आयुकी वृद्धि होती है और शुभग्रहोंका संचार होता है ।

अवक्षितिके पुत्र राजा मरुत बड़े भाग्यवान् थे, इन्द्रादिक संपूर्ण देवता बृहस्पतिको साथ ले उनके यज्ञमें आये थे, राजाने कीर्तिमें इन्द्रको भी जीता था, बृहस्पति और इन्द्रकी प्रीतिके अर्थ इस राजाकी यज्ञक्रियाके संपादन करनेको स्वीकार कर उस कार्यका संवतने निर्वाह किया था ! उनके राज्यमें पृथ्वी विनाही कर्षण (जोतनेसे) धान्योंको उत्पन्न करती थी उनके यज्ञमें विश्वदेव सभासद थे; साध्य और मरुद्‌गण चारों ओरसे रक्षा करनेवाले थे; देवता उस यज्ञमें सोमरसको पानकर अत्यन्त तृप्त हुए थे और उस राजाने देवता मनुष्य और गन्धर्वों को इतनी दक्षिणा दी थी कि जिसको वे उठा नहीं सकते थे, हे कौशल्ये ! वह राजा आपसे बहुत धार्मिक और ज्ञानी तथा वैराग्ययुक्त थे, किंतु जब वे भी मृत्युको प्राप्त हुए तो आप महाराजका शोक क्यों करती हो ?

उतथिके पुत्र सुहोत्र भी मृत्युको प्राप्त हुए, जिनके राज्यमें इन्द्रने एक वर्षतक सुवर्णकी वर्षाकी थी; वसुमति यथार्थ नामसे उनके ही राज्यमें थी, सारी नदियां सुवर्णवाहिनी थीं—बल्कि नदियोंमें इन्द्रने स्वर्णके ही नक्र, कच्छपादि उत्पन्न कर दिये थे । राजा सुहोत्रने यह देख विस्मयको प्राप्त उन सब नक्रादिकोंको ग्रहण कर कुरु, जांगल देशमें रखकर यज्ञमें सब ब्राह्मणोंको दान कर दिया था, अन्तमें वे भी तो मरे !

अंगदेशके राजाने जो यज्ञ करके दश लाख श्वेतवर्णवाले घोड़े दश लाख सुवर्णसे शोभित कन्या, दिग्गजोंके समान दश लक्ष हाथी, सुवर्णकी मालाओंसे भूषित एक कोटि (करोड़) वृषभ और हजार गौ दक्षिणामें दी थीं । इस वृहद्रथ राजाके विष्णुपद नामवाले पर्वमें यज्ञ करनेसे इन्द्र और ब्राह्मण सोमपान करनेसे उन्मत्त हो गये,इसी प्रकार उस अंगदेशाधिपति राजा बृहद्रथने सौ यज्ञ किये राजाने जो यज्ञमें धन दिया था उतने धनका दान करनेवाला आज तक कोई राजा नहीं हुआ; जब वे भी कालके वश हुए तो आप राजा दशरथजीका वृथा शोक क्यों करती हो ?

राजा शिबि, जिन्होंने रथमें अकेले ही बैठकर, सारे भूमंडलको जीता था और फिर यज्ञमें अपना सर्वस्व दान कर दिया था जब ऐसे-ऐसे भी मृत्युके अधीन हुए तो आप राजा दशरथजीका वृथा शोक क्यों करती हो ?

बड़े ऐश्वर्यवाले शकुन्तलाके पुत्र भरतने यमुनाके किनारे तीन सौ और सरस्वतीके तटपर वीस तथा गंगाके किनारे चौदह इस प्रकार हजार अश्वमेध यज्ञ और सौ राजसूय यज्ञ किये थे; उस समय उनके समान और कोई दूसरा राजा न था । राजा भरतने यज्ञवेदीका विस्तार और असंख्य घोड़ोंको बांधकर महर्षि कण्वको हजार पद्मद्रव्यसहित घोड़े दान कर दिये थे, हे कौशल्ये वे भी तो कालके ग्रास हुए, तो आप दशरथजीका वृथा शोक क्यों करें ? ।

एक समय राजा भगीरथ एकान्त स्थानमें बैठे थे उन राजाके गोदमें गंगा विराजमान-थी इसी कारण गंगाका नाम ‘ उर्वशी ’ हुआ । गंगाने राजा भगीरथको पिताके सदृश माना था; इसी कारण आजतक गंगाजीका नाम “भागीरथी” प्रसिद्ध है—उन्हीं राजा भगीरथने यज्ञमें सुवर्णसे शोभायमान दश

तेल नाव भरि नृप तनु राखा * दूत बुलाय बहुरि अस भाखा ॥१॥
धावहु वेगि भरत पहँ जाहू *नृप सुधि कतहु कहेउ जन काहू॥२॥

वसिष्ठजीने तेल भरी नावमें राजाका शरीर रखाया और फिर दूतोंको बुलाकर ऐसा कहा ॥१॥ जाओ, जल्दी भरतजीके पास जाओ और राजाकी सुध कभी किसीसे मत कहो ॥२॥

इतनहिं कहेउ भरत सन जाई * गुरु बुलाय पठये दोउ भाई ॥३॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाये * चले बेगि वर वाजि लजाये ॥४॥

इतना जाकर भरतजीसे कहना कि गुरुजीने दोनों भाइयोंको बुलाया है ॥ ३ ॥ मुनिकी आज्ञा पाय वे दूत ऐसे वेगसे चले कि उनकी गति देख श्रेष्ठ घोड़े भी लज्जित हुए ॥ ४ ॥

अनरथ अवध अरंभेउ जबते * अशकुन होहिं भरत कहँ तबते॥५॥
देखहिं राति भयानक सपना *जागि करहिं कटुकोटि कलपना॥६॥

लक्ष कन्याएं दक्षिणामें दी थीं । वह कन्याओंका समूह चार चार घोड़ेवाले रथोंमें स्थित था एक एक रथके पीछे सुवर्णकी मालाओंसे भूषित सौ सौ हाथी एक एक हाथीके पीछे सौ सौ गौ, प्रत्येक गौके पीछे हजार हजार मेष (मेढ़े) और बकरी दान की थीं, जब वे भी कालके मुखमें गये तो दशरथजीके प्रति शोक करना वृथा है ।

राजा दिलीपने भी यज्ञ करके धन तथा रत्नोंसे परिपूर्ण पृथ्वी दान कर दी थी, उनके पुरोहितने प्रत्येक यज्ञमें हजार हजार हाथियोंकी दक्षिणा ली थी और उसमें सुवर्णके यूप (खंभ) गाड़े थे, इन्द्रादिक संपूर्ण देवता यज्ञकी सुवर्ण भूमि में स्थित हो गन्धर्व नृत्य करते थे और गन्धर्वोंके राजा विश्वावसु गान कर रहे थे, जिन्होंने राजा दिलीपको आंखोंसे देखा था। वे भी तो स्वर्गवासी हुए। जब ऐसे पुण्यात्मा राजा भी कालके कलेवा हुए तो आप दशरथजीका शोक वृथा क्यों करती हो ?

राजा युवनाश्वके पुत्र मान्धाताने एक दिनमें सारी पृथ्वीको जीता था । अङ्गार, मरुत, असित, गय, अङ्ग, और बृहद्रथको भी जीता था अंगारके साथ युद्धमें इनके धनुषकी टंकोरसे मानो आकाशमण्डल विदीर्ण होता था और सूर्यके उदयसे अस्त पर्यन्त पृथ्वीको जीता था, इस राजाने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दश योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा सुवर्णका मत्स्य दक्षिणामें दिया था, जब वे भी मृत्युके अधीन हुए तो आप वृथा शोक मत कीजिये ।।

नहुषके पुत्र राजा ययाति एक ही स्थानमें बैठकर बलसे युगकीकीलकको फेंकते थे, वह कीलक जितनी दूर जाकर गिरता था अपने स्थानसे उतनी ही दूर यज्ञकी वेदी बनाते थे, उस कीलकका नाम 'शम्यापात' है । राजा ययातिने शतप्रधान यज्ञ और सौ वाजमेध यज्ञकर सुवर्णके तीन पर्वत दान करके ब्राह्मणोंको तृप्त किया था और दैत्योंके समूहको युद्धमें मारकर यदु, द्रुह आदि भूपने पुत्रोंको पृथ्वी देकर पुरुको राज्यतिलक कर स्त्री सहित वनको गमन किया जब वे भी मरे तो आप राजाका शोक क्यों करती हो ?

राजा नाभागके पुत्र अम्बरीष अपनी प्रजामें बहुत प्रीति रखते थे, उन्होंने यज्ञमें स्थित दशलक्ष राजाओंको ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त कर दिया था, ये सब राजा ब्राह्मणोंको दक्षिणा करके दिये थे, जब वे भी मृत्युके वश हुए तो आप अपने पति दशरथका शोक क्यों करती हो ?

हे कौशल्ये ! राजा शशबिन्दुके दशलाख पुत्र थे, उन एक-एक पुत्रको सौ-सौ कन्या विवाही थीं, प्रत्येक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी थे, एक एक हस्तीके पीछे सात-सात रथ, एक-एक रथके पीछे सुवर्णके आभूषण युक्त सौ-सौ घोड़े प्रत्येक घोड़े के पीछे सौ-सौ गो एक एक गौके पीछे सौ-सौ मेंढ़े और बकरा दायजमें आया, राजा शशबिन्दुने यह यज्ञमें दान दिया था-जब वे भी कालके कराल गालमें गये तो आपका शोक करना वृथा है ।

हे कौशल्ये ! अमूर्त्तरायके पुत्र राजा गयने सौ वर्ष पर्यंत होमसे बची हुई वस्तुका भोजन किया, अग्निआहुतियों से प्रसन्न हो वर देनेको तैयार हुए । तब राजाने यही वर मांगा कि आपकी कृपासे मेरी धर्ममें श्रद्धा, सत्यमें प्रेम और निरंतर दान करनेसे भी धनका नाश नहीं हो, अग्निने प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही होगा' इस राजाने हजार वर्ष पर्यन्त दर्शन, पौर्णमास, चतुर्मास तथा अश्वमेध यज्ञ किये थे, उन्होंने स्वाहासे देवगण स्वधासे पितृगण और इच्छानुसार साधनोंसे स्त्रीगणोंको तृप्त किया था । अश्वमेध यज्ञमें बीस व्यास लंबी और दश व्यास चौड़ी सुवर्णमय पृथ्वी ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दान दी थी । गंगामें वालुकाके जितने कण होते हैं उतनी ही गौ दान कर ब्राह्मणोंको दी थीं; ऐसे भी राजा एक दिन मर गये तो आपका शोक करना वृथा है ।

और हे कौशल्ये ! इसी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजा सगर भी जिनकी कीर्ति आकाशतक छा रही है, मर ही गये तो वृथा शोक क्यों करती हो ।

और भी सुनो— राजा वेनके पुत्र राजा पृथुको सब महर्षियोंने इकट्ठा होकर दण्डकवनमें राजतिलक किया था, वह राजा क्षत (नाश) से त्राण करते थे कारण क्षत्रिय शब्द इनमें ही चरितार्थ हो रहा था । वे प्रजाको आनंद देते इस कारण राजा शब्द उन्हींमें घटता था । उनके राज्यमें पृथ्वी बिना ही कर्षणके धान्योंको उत्पन्न करनेवाली और बहुतसे फलफूलोंको उत्पन्न करनेवाली थी । प्रत्येक पत्रमें मधु उत्पन्न होता था संपूर्ण प्रजा रोगरहित निर्भय थी । जब राजाजलमें चलते थे तब नदी समुद्र स्थिर हो जाते थे उन राजाने अश्वमेध यज्ञोंमें इक्कीस सुवर्णके पर्वत दान किये थे, जब वे भी मृत्युके अधीन हुए तब फिर आपका राजा दशरथजीके प्रति शोक करना वृथा है ।। इति ।।

जबसे अयोध्यामें अनर्थोंका आरंभ हुआ तबसे भरतजीको कुशकुन होते थे ॥ ५ ॥ रात्रिमें भयानक स्वप्न देखते और जागृत होके अनेक प्रकारकी अनिष्ट कल्पना सोचते कि यह क्या कारण है ! प्रिय बन्धुओं में तो किसीको कष्ट नहीं है ? इत्यादि ॥ ६ ॥

विप्र जिवाँय देहि दिन दाना * शिव अभिषेक करहिं विधि नाना॥७॥
माँगहिं हृदय महेश मनाई * कुशल मातु पितु परिजन भाई॥८॥

ब्राह्मणोंको भोजन कराकर प्रतिदिन दान देते हैं और अनेक विधिसे शिवजीका अभिषेक करते हैं ॥ ७ ॥ हृदयमें शंकरको मनाकर यही मांगते हैं कि माता, पिता, परिजन, भाई कुशलसे हों ॥ ८ ॥

दोहा–इहि विधि शोचत भरत मन, धावन पहुँचे जाय ॥
गुरु अनुशासन श्रवन सुनि, चले महेश मनाय ॥ १९० ॥

इस प्रकारसे भरतजी शोच करते थे कि दूत जाकर (चतुर्दशीके दिन) पहुँचे और गुरुकी आज्ञा कानोंसे सुनकर ही महेशको मनाकर (मामासे विदा हो) चल दिये ॥ १९० ॥

चले समीर-वेग रथ हाँके * लाँघत सरित शैल बन बाँके ॥१॥
हृदय सोच बड़ कछु न सुहाई * अस जानहि जिय जाउँ उड़ाई॥२॥

तुरंत ही भरतजी चले, पवनके वेगसे घोड़े हाँके, नदी, पर्वत, विकट वन लाँघते चले ॥१॥ हृदयमें बड़ा शोच है; कुछ नहीं सुहाता, ऐसा जीमें आता है कि मानो उड़ जायँ ॥ २ ॥

एक निमेष वर्ष सम जाई * इहि विधि भरत नगर नियराई॥३॥
अशकुन होहिं नगर पैठारा * रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥४॥

एक पलभी वर्षके समान बीतता है, इस प्रकारसे भरतजी नगरके निकट आये ॥ ३ ॥ नगरमें प्रवेश करते हुए अशकुन होते हैं और करार (कारे कौए) कुखेत अर्थात् अशुभ स्थानोंमें शब्द करते हैं ॥ ४ ॥

खर शृगाल बोलहिं प्रतिकूला * सुनि सुनि होहिं भरत-उरशूला॥५॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा * नगर विशेष भयावन लागा ॥६॥

खर और शृंगाल प्रतिकूल बोलते हैं, जिनका शब्द सुनकर भरतजीके हृदयमें शूल होता है ॥ ५ ॥ नदी, वन, बाग सब शोभाहीन और नगर बड़ा भयावना लगा ॥ ६ ॥

खग मृग हय गय जाहिं न जोये * राम वियोग कुरोग बिगोये ॥७॥
नगर नारि नर निपट दुखारी * मनहुँ सबनि सब संपति हारी ॥८॥

पक्षी, मृग, घोड़े, हाथी निहारे नहीं जाते, रघुनाथजीका वियोगरूपी जो कुरोग है उसने सबको विशेष दुःखी कर रखा है ॥ ७ ॥ नगरके नर-नारी सब बड़े दुःखी हैं; मानो सबने सब सम्पत्ति हार दी है ॥ ८ ॥

दोहा–पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवँहिं जुहारहिं जाहिं ॥
भरत कुशल पूछि न सकहिं, भय विषाद मनमाहिं ॥ १९१ ॥

पुरवासी मिलते हैं लेकिन कुछ कहते नहीं; केवल जुहार कर चले जाते हैं ! भरतजीके मनमें बड़ा भय विषाद हो रहा है, उनकी कुशलता नहीं पूछ सकते ॥ १९१ ॥

हाट बाट नहिं जायँ निहारी * जनु पुर दशदिशि लागि दवारी॥१॥
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि * हरषी रविकुल जलरुह चंदनि॥२॥

बाजार, मार्ग भयानक होनेके कारण निहारे नहीं जाते, मानो पुरकी दशों दिशाओंमें अग्नि लगी है ॥ १ ॥ केकय नंदिनी अपने पुत्रका आगमन सुन प्रसन्न हुई जो कि कैकेयी सूर्य कुलरूपी कमलको चन्द्रमाकी किरणोंके समान दुःखदाता है ॥ २ ॥

सजि आरती मुदित उठि धाई * द्वारहिं भेंट भवन लै आई ॥३॥
भरत दुखित परिवार निहारा * मानहुँ तुहिन वनज बन मारा॥४॥

कैकेयी आरती सजा प्रसन्न हो उठ धाई और द्वारपर भेंटकर आदरसे भवनमें ले आयी॥३॥ भरतजीने अपना सब परिवार दुःखी देखा, मानो पाले द्वारा मारा हुआ कमलोंका वन हो ॥४॥

कैकेयी हर्षित इहि भाँती * मनहुँ मुदित दव लाय किराती॥५॥
सुतहि सशोच देखि मन मारे * पूछति नैहर कुशल हमारे ॥६॥

और कैकेयी ऐसी प्रसन्न हो रही है जैसे भीलनी आग लगाकर प्रसन्न हो ॥ ५ ॥ पुत्रको मन मारे शोच करते देखकर पूछती है हमारे मैकेमें तो कुशल है ? ॥ ६ ॥

सकल कुशल कहि भरत सुनाई * पूछी निज कुलकी कुशलाई ॥७॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता * कहँ सियराम लषण प्रिय भ्राता ॥८॥

भरतजीने सब कुशल कह सुनाया और फिर अपने कुलका कुशल पूछा ॥ ७ ॥ कह तो पिताजी कहां हैं ? सब माताएँ कहां हैं और सीता, राम तथा लक्ष्मण प्यारे भाई कहां हैं॥८॥

दोहा—सुनि सुत वचन सनेह मय, कपट नीर भरि नैन ॥
भरत श्रवण मन शूल सम, पापिन बोली बैन ॥ १९२ ॥

ये पुत्रके वचन स्नेह भरे सुन कपटसे नेत्रोंमें जल भर भरतके कान और मनको शूलके समान वह पापिन वचन बोली ॥ १९२ ॥

तात बात मैं सकल सँभारी * भइ मंथरा सहाय बिचारी ॥ १ ॥
कछुक काज विधि बीच बिगारेउ * भूपति सुरपति पुर पग धारेउ ॥ २ ॥

हे पुत्र ! मैंने सब बात तो सँभाल रखी है, बिचारी मंथराने बड़ी सहायता की ॥१॥ पर कुछ काज विधाताने बीचमें बिगाड़ दिया है कि, राजा देवलोकको सिधार गये ॥ २ ॥

सुनत भरत भये विकल विषादा * जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥ ३ ॥
तात तात हा तात पुकारी * परे भूमितल व्याकुल भारी ॥ ४ ॥

सुनतेही भरत विषादसे ऐसे व्याकुल हुए जैसे सिंहनादसे हाथी व्याकुल हो जाता है ॥३॥ तात ! तात ! ! हा तात ! ! ! ऐसे पुकार कर पृथ्वीमें महाव्याकुल हो गिर पड़े ॥ ४ ॥

चलत न देखन पायउँ तोहीं * तात न रामहिं सौंपेउ मोहीं ॥५॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी * कहु पितु मरण हेतु महतारी ॥६॥

हे पिता ! चलते समय आपका मुझको दर्शन नहीं मिला, हे तात ! रघुनाथजीको मुझे

सौंपकर जाते ॥५॥ फिर धैर्य धर देह सँभालकर उठे और बोले-हे माता ! यह तो कहो कि पिताका मरण किस कारण हुआ ? ॥ ६ ॥

सुनि सुत वचन कहति कैकेयी * मर्म पोंछि जनु माहुर देई ॥७॥
आदिहिते सब आपनि करणी * कुटिल कठोर मुदितमन वरणी॥८॥

पुत्रके वचन सुन कैकेयी कहने लगी, मानो घावको पोंछकर उसमें विष लगाती है ॥७॥ प्रारंभसे ही सब अपनी करनी उस कुटिल कठोरने प्रसन्न मन होकर वर्णन की ॥ ८ ॥

दोहा-भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम वन गौन ॥
हेतु अपनउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन ॥ १९३

भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका वनगमन सुन पिताजीका मरण भूल गये और इस अनर्थका कारण भी अपनेको ही मनमें समझ चुप हो बैठ गये ॥ १९३ ॥

विकल विलोकि सुतहिं समुझावति * मनहुँ जरे पर लोन लगावति ॥१॥
तात राउ नहिं सोचन योगू * बड़इ सुकृत यश कीन्हेउ भोगू॥२॥

पुत्रको शोचमें व्याकुल देख समझाने लगी, मानो जरे हुए पर लोन लगाती है ॥ १ ॥ हे तात ! राजा सोचने योग्य नहीं हैं, बड़े ही पुण्योंसे राजाकेसे यश और भोग मिलते हैं ? अथवा महाराजने बड़े ही यश और पुण्योंको भोग लिया ॥ २ ॥

जीवत सकल जन्म फल पाये * अन्त अमरपति सदन सिधाये॥३॥
अस अनुमानि शोच परिहरहू * सहित समाज राज्य पुर करहू ॥४॥

जीतेजी सब जन्मका फल पाया और अन्त समय इन्द्रलोकको चले गये ॥ ३ ॥ ऐसा अनुमान कर शोच त्यागो और समाज सहित पुरका राज्य करो ॥ ४ ॥

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारा * पाके क्षत जनु लाग अँगारा ॥५॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसाँसा * पापिन सबहिं भाँति कुलनाशा॥६॥

राजकुमार सुनते ही सहम गये जैसे पके घाव पर अङ्गार लग गया हो ॥ ५ ॥ धैर्य धर और भरकर उसाँस लेते हैं, पापिन ! तूने सब प्रकार ही कुलका नाश किया (राजाकी मृत्यु, रघुनाथजीका वन गमन, कुलकी परंपरा विरुद्ध छोटेको राज्य यह सब विरुद्ध है) ॥ ६ ॥

जो पै कुरुचि रही अस तोहीं * जन्मत काहें न मारेसि मोहीं ॥७॥
पेड़ काटि तैं पल्लव सींचा * मीन जियन हित वारि उलीचा॥८॥

जो तेरे मनमें ऐसी ही कुरुचि थी तो मुझको उत्पन्न होते ही क्यों न मार डाला ? ॥७॥ तूने पेड़ काटकर पत्तेको सींचा और मछली जीनेके निमित्त पानी उलीच दिया ! (पेड़के स्थानमें राजा दशरथ, वारि स्थानमें रघुनाथजी तथा पल्लव और मीन भरतजी अपनेको कहते हैं)॥८॥

दोहा-हंश वंश दशरथ जनक, राम लषणसे भाय ॥
जननी तू जननी भई विधिसन कछु न बसाय ॥ १९४ ॥

हंस जिसका वंश है,अर्थात् सूर्यवंश और दशरथसे जिसके पिता हैं,राम लक्ष्मणसे जिसके भाई हैं हे जननी माता ! उसकी तू जननी (उत्पन्न करनेवाली) हुई विधातासे कुछ नहीं बसाता;

तू हमारी माता होने योग्य नहीं थी अथवा तू अपनी माताके समान कठोर; पतिका प्राण लेनेवाली हुई ॥ १९४ ॥

जबते कुमति कुमति मन ठयऊ * खण्ड खण्ड होइ हृदय न गयऊ ॥१॥
वर माँगत उर भई न पीरा * जरि न जीह मुँह परे न कीरा ॥२॥

हे कुमति ! जबसे तेरे मनमें ऐसी कुमति बसी, तेरा हृदय खण्ड-खण्ड क्यों न हो गया ? ॥ १ ॥ वर माँगते समय पीड़ा नहीं हुई, तेरी जीभ नहीं जली, मुँहमें कीड़े न पड़े ॥ २ ॥

भूप प्रतीत तोरि किमि कीन्ही * मरणकाल विधिमति हरि लीन्ही ॥३॥
विधिहु न नारि हृदयगति जानी * सकल कपट अघ अवगुण खानी ॥४॥

राजाने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ? कदाचित् मृत्युकाल आ गया था इससे विधाताने मति हर ली ? ॥ ३ ॥ विधाताने भी स्त्रियोंके मनकी गति नहीं जानी कि ये सब कपट पाप अवगुणोंकी खानि हैं ? ॥ ४ ॥

सरल सुशील धर्म रत राऊ * सो किमि जानहिं तीय स्वभाऊ ॥५॥
अस को जीव जन्तु जगमाहीं * जेहि रघुनाथ प्राणप्रिय नाहीं ॥६॥

फिर वे सीधे, सुशील धर्ममें प्रीतिमान राजा स्त्रीके स्वभावको कैसे जान सकते थे ? ॥५॥ ऐसा कौन जीव जन्तु जगतमें है जिसको रघुनाथजी प्राण प्यारे नहीं ? और मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६ ॥

भे अति अहित राम तेउ तोहीं * को तू अहसि सत्य कहु मोहीं ॥७॥
जो हसि सो हसि मुँह मसिलाई * आँखि ओट उठि बैठहु जाई ॥८॥

ऐसे रघुनाथजी भी तेरे अति अहित (शत्रु) हुए तो तू कौन है, मुझको सत्य बता ? ॥७॥ जो तू चाहे सो तू हो, पर काला मुँहकर आँखकी ओटमें मेरे सामनेसे उठकर जा बैठ ॥८॥

दोहा–राम विरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह विधि मोहि ॥
मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि ॥ १९५ ॥

विधाताने मुझको श्रीरामचन्द्रजीसे विरोध करनेवाले तेरे हृदयसे उत्पन्न किया है, इस कारण मेरे समान कौन पापी है ? मुझे कुछ कहना वृथा है ॥ १९५ ॥

सुनि शत्रुहन मातु कुटिलाई * जरहिं गात रिसि कछु न बसाई ॥१॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई * वसन विभूषण विविध बनाई ॥२॥

शत्रुघ्नके गात माताकी कुटिलता सुनकर जलने लगे, पर मातापर कुछ बसाती नहीं ॥ १ ॥ उसी अवसरमें कुबरी वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर गहने वस्त्र पहने हुए आयी ॥२॥

लखि रिसि भरेउ लषण लघुभाई * बरत अनल घृत आहुति पाई ॥३॥
हुमकि लात तकि कूबर मारा * परि मुहभरि महि करति पुकारा ॥४॥

---

१. कैकेयीके पिताको एक ऋषिने यह वर दिया कि, आप सब जीवोंकी बोली समझ लेंगे किंतु यह भेद किसीसे कहोगे तो तुरंत मर जावोगे। एक दिन रानी सहित राजा बैठे थे उसी समय चींटीकी बात सुनकर राजाको हँसी आयी, तब रानीने राजासे हठ करके पूछा– हँसने का क्या कारण है ? राजाने कहा जो मैं बताऊँगा तो मेरा प्राण जाता रहेगा ? रानीने कहा चाहे आपका प्राण रहे या जाय, मैं अवश्य पूछूंगी राजाने यह सुनकर रानीको घरसे निकाल दिया ।

लषण लघु भाई कहनेका तात्पर्य यह है कि उन्होंने लख लिया कि सब अनर्थ करनेवाली यही है; देखते ही बड़े रिसमें हो गये, जैसे घीकी आहुति पाकर अग्नि जलती है ? ॥३॥ क्रोधसे कूदकर उसके कूबरमें एक लात मारी, जिससे वह मुँहके बल पुकार करती गिरी ॥ ४ ॥

कूबर टूटेउ फूट कपारू * दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू॥५॥
आह दई मैं काह नशावा * करत नीक फल अपयश पावा॥६॥

उसका कूबर टूट गया खोपड़ी फट गयी और दांत टूटनेके कारण मुखसे भी रुधिर बहने लगा ॥५॥ हाय दई ! इनका मैंने क्या बिगाड़ किया, जो भला करते बुरा फल पाया ? ॥ ६ ॥

पुनि रिपुहन लखि नख शिख खोटी * लगे घसीटन धरि धरि चोटी ॥७॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई * कौशल्यापै गये दोउ भाई ॥८॥

फिर शत्रुघ्नजी उसको नखशिखसे खोटी देख चोटी पकड़ घसीटने लगे ॥ ७ ॥ तब दयानिधि भरतजीने छुड़ा दिया और दोनों भाई कौशल्याके समीप गये ॥ ८ ॥

दोहा–मलिन वसन विवरन विकल, कृश शरीर दुख भार ॥
कनक कल्प बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुषार ॥१९६॥

माता कौशल्या मलिन वस्त्र (एक ही) पहन रही है, चित्त व्याकुल; शरीर दुबला उनके ऊपर बड़ा ही दुःख पड़ा है, मानों वनमें कल्पलताके सुवर्ण सदृश (अग्र भाग) को तुषारने नष्ट किया हो ॥ १९६ ॥

भरतहिं देखि मातु उठि धाई * मूर्छित अवनि परी झँइ आई ॥१॥
देखत भरत विकल भये भारी * परे चरण तनु दशा विसारी ॥२॥

भरतको देखकर कौशल्या माता उठ धायी और मूर्छित हो घुमनी आनेसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १ ॥ देखकर भरतजी महाव्याकुल हो गये और शरीरकी दशा विसार कर उनके चरणोंमें गिर पड़े ॥ २ ॥

मातु तात कहँ देहु दिखाई * कहँ प्रिय राम लषण दोउ भाई ॥३॥
कैकयि कत जनमी जगमाँझा * जौं जनमी भइ काहे न बाँझा॥४॥

हे माता ! पिताजी कहां हैं ? उनको दिखा दो और श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण प्यारे दोनों भाई कहां हैं ? ॥३॥ कैकेयी जगतमें क्यों उत्पन्न हुई और हुई तो भी बाँझ क्यों न हुई ?॥४॥

कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही * अपयश भाजन प्रियजन द्रोही॥५॥
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी * गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥६॥

कुलका कलंक जिसने मुझको उत्पन्न किया और अपयशका पात्र तथा प्यारे जनोंका द्रोही बनाया ॥ ५ ॥ मेरे समान त्रिलोकीमें कौन अभागी है । हे माता ! जिसके कारण तेरी ऐसी गति हुई ॥ ६ ॥

पितु सुर पुर वन रघुकुल केतू * मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥७॥
धिक मोहि भयउँ वेणुवन आगी * दुसह दाह दुख दूषण भागी ॥८॥

पिता सुरपुरमें, रघुकुलनायक वनमें, ये सब अनर्थ मेरे ही कारण हुए ॥ ७ ॥ मुझको धिक्कार है, जो वेणुवंशके जलानेको आग हुआ, दुःसह दाह तथा दोषोंका भागी हुआ ॥८॥

दोहा–मातु भरतके वचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि ॥
लिये उठाय लगाय उर, लोचन मोचति वारि ॥ १९७ ॥

माता भरतजीके कोमल वचन सुन सँभाल कर उठी और भरतजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया, नेत्रोंसे जल बहाने लगी ॥ १९७ ॥

सरल सुभाउ माय उर लाये * अतिहित मानहु राम फिरि आये॥१॥
भेंटउ बहुरि लषण लघु-भाई * शोक सनेह न हृदय समाई ॥२॥

सीधे स्वभावसे माताने भरतको हृदयसे लगा लिया और उसे ऐसा अधिक स्नेह हुआ मानो रघुनाथजी लौट आये॥१॥फिर लक्ष्मणके छोटे भाईसे मिले, शोक स्नेह हृदयमें नहीं समाता॥२॥

देखि सुभाउ कहत सब कोई * राम-मातु असि काहे न होई ॥३॥
माता भरत गोद बैठारे * आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे ॥४॥

स्वभाव देखकर सब लोग कहने लगे कि रामचन्द्रजीकी माता ऐसी क्यों न हों ? ॥ ३ ॥ माताने भरतजी को गोदमें बैठाया और आंसू पोंछकर सुन्दर मधुर वचन उच्चारण किये ॥४॥

अजहुँ वत्स बलि धीरज धरहू * कुसमय समुझि शोक परिहरहू ॥५॥
जनि मानहुँ जियहानि गलानी * कालकर्म गति अघटित जानी॥६॥

हे पुत्र ! अब भी धैर्य धरो, कुसमय समझकर शोक त्याग दो ॥ ५ ॥ जीमें हानि, ग्लानि मत मानो, क्योंकि काल और कर्मकी गनि अघटित है अर्थात् मिटती नहीं ॥ ६ ॥

काहुहि दोष देहु जनि ताता * भा मोहिसब विधि वाम विधाता॥७॥
जो एतेहु दुख मोहि जियावा * अजहुँ को जानै का तेहि भावा॥८॥

हे पुत्र ! किसीको दोष मत दो, मुझसे ही सब प्रकार विधाता रुष्ट है ॥ ७ ॥ जो इतने दुःखमें भी मुझको जिलाता है तो अब भी कौन जाने उसको क्या भाया है ? ॥ ८ ॥

दोहा–पितु आयसु भूषण वसन, तात तजे रघुवीर ॥
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे वल्कल चीर ॥ १९८ ॥

हे पुत्र ! पिताकी आज्ञासे रघुनाथजीने भूषण वस्त्र सब त्याग दिये, वल्कल वस्त्र पहर लिए परंतु हृदयमें हर्ष विषाद कुछ नहीं हुआ ॥ १९८ ॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू * सब कर सब विधि करि परितोषू॥१॥
चले विपिन सुनि सिय संग लागी * रही न रामचरण-अनुरागी ॥२॥

मुखसे प्रसन्न, मनमें राग दोष कुछ नहीं सबको सब प्रकार आश्वासन देकर ॥ १ ॥ वनको चले, सुनकर जानकी संग चलीं, क्योंकि रघुनाथजीके चरणोंमें अधिक प्रेम होनेसे रह न सकीं समझाया भी बहुत, परंतु न रहीं ॥ २ ॥

सुनतहि लषण चले उठि साथा * रहे न जतन किये रघुनाथा ॥३॥
तब रघुपति सबही शिर नाई * चले संग सिय अरु लघुभाई ॥४॥

सुनते ही लक्ष्मणजी भी साथ उठ चले, यद्यपि रघुनाथजीने यत्नसे समझाया, परंतु तो भी घर नहीं रहे॥३॥तब रघुनाथजी सबको शिर नवाकर संगमें जानकी लक्ष्मणको लेकर चले॥४॥

राम लषण सिय वनहिं सिधाये * गयउ न संग नहिं प्राण पठाये॥५॥
यह सब भा इन आँखिन आगे * तउ न तजत तनु जीव अभागे॥६॥
मेरे राम लक्ष्मण सीता तो वनको गये, पर मैं संग न गयी और न प्राण ही भेजे ॥ ५ ॥ यह सब कुछ इन्हींके आँखोंके सामने हुआ, तो भी अभागा जीव शरीर नहीं छोड़ता ॥६॥
मोहि न लाज निज नेह निहारी * राम सरिस सुत मैं महतारी ॥७॥
जियइ मरइ भल भूपति जाना *मोर हृदय शत कुलिश समाना॥८॥
मुझको अपना स्नेह विचार कर लाज नहीं है परंतु यह संकोच है रामसे पुत्र और मुझसी (कठोर हृदय) महतारी ॥७॥ जीना मरना तो राजाने अच्छा जाना (जबतक जिये रामजीके दर्शन करते रहे और वियोग होते ही प्राण त्याग दिये) मेरा हृदय तो सौ वज्रके समान है ॥८॥
दोहा-कौशल्याके वचन सुनि, भरत सहित रनिवास ॥
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहु शोक निवास ॥ १९९ ॥
कौशल्याके वचन सुनकर भरत और रनिवास तथा राजघरके सब दास दासी व्याकुल होकर विलाप करने लगे, मानो वह राजगृह शोकका निवास है ॥ १९९ ॥
विलपहिं विकल भरत दोउ भाई * कौशल्या लिये हृदय लगाई ॥१॥
भाँति अनेक भरत समुझाये * कहि विवेक वर वचन सुनाये ॥२॥
भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई व्याकुल होकर विलाप करने लगे; तब कौशल्याने हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥ अनेक भाँतिसे भरतको समझाया और ज्ञानके सुन्दर वचन कहे ॥२॥
भरतहु मातु सकल समुझाई * कहि पुराण श्रुति कथा सुहाई॥३॥
छल विहीन शुचिसरल सुबानी * बोले भरत जोरि युग पानी ॥४॥
भरतजीने पुराण श्रुति आदिकी सुन्दर कथा कहकर सब माताओंको समझाया ॥ ३ ॥ फिर छल रहित पवित्र सीधी सुवाणीसे भरतजी दोनों हाथ जोड़कर बोले ॥ ४ ॥
जे अघ मात पिता गुरु मारे * गाय गोठ महिसुर पुर जारे ॥५॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे * मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥६॥
जो पाप माता, पिता, गुरुके मारने; गोशाला, ब्राह्मणोंके पुर ग्राम और मंदिर जलानेसे होते हैं ॥ ५ ॥ जो पाप स्त्री तथा बालकके वधसे और मित्र अथवा-राजा को विष देनेसे होते हैं ॥ ६ ॥
जे पातक उपपातक अहहीं *कर्म वचन मन भव कवि कहहीं॥७॥
ते पातक मोहि होउ विधाता * जौ यह होय मोर मत माता॥८॥
जो ब्रह्महत्या-सुरापान-चोरी आदि पातक और झूठ बोलना, कपट करना इत्यादि उपपातक हैं, जो मन-वचन-कर्मसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा कवि कहते हैं ॥ ७ ॥ हे माता ! वे सब पातक विधाता मुझे लगावे, जो श्रीरामचन्द्रजीको वन भेजनेमें मेरा मत हो ॥ ८ ॥
दोहा-जे परिहरि हरिहर-चरण, भजहिं भूतगण घोर ॥
तिनकी गति मोहि देउ विधि, जौ जननी मत मोर ॥ २०० ॥

जो विष्णु और शिवजीके चरणोंको त्यागकर घोर भूतगणोंकी उपासना करते हैं हे माता! जो इस काममें मेरा मत हो तो मुझे विधाता उन भूत-उपासकोंकी गति दें ॥ २०० ॥

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं * पिशुन पराय पाप कहि देहीं ॥१॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी * वेद-विदूषक विश्व-विरोधी ॥२॥

जो वेद बेचते हैं अर्थात् द्रव्य लेकर वेद पढ़ाते हैं वे धर्मके दुहनेवाले कहे जाते हैं, जो चुगलखोर और पराया पाप कहने वाले हैं अर्थात् कोई पाप करे तो उसे सर्वत्र कहते फिरते हैं ॥ १ ॥ कपटी, कुटिल, कलह करनेवाले, क्रोधी, वेदके निंदक, संसारके विरोधी ॥ २ ॥

लोभी लम्पट लोलुप चारा * जे ताकहिं परधन परदारा ॥३॥
पावउँ मैं तिनकै गति घोरा * जौ जननी यहि सम्मत मोरा ॥४॥

माता ! लोभी व्यभिचारी, लोलुप (चंचल) आचारवाले जो पराये धन और परायी स्त्रियोंको ताकते हैं ॥ ३ ॥ मैं उनकी ही घोर गति पाऊँ जो इसमें मेरा सम्मत हो ॥ ४ ॥

जे नहिं साधु-संग अनुरागे * परमारथ पथ विमुख अभागे ॥५॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई * जिनहिं न हरिहर सुयश सुहाई॥६॥

जो साधुओंके संगमें प्रेम नहीं करते,परमार्थके मार्गमें विमुख और अभागे हैं॥५॥ जो मनुष्य शरीर पाकर भगवान्‌को नहीं भजते जिनको भगवान् और शिवजीका यश नहीं सुहाता ॥६॥

तजि श्रुति पंथ वामपथ चलहीं * वंचक विरचि वेष जग छलहीं ॥७॥
तिन्हकी गति शंकर मोहिं देऊ * जननी जौ यह जानउँ भेऊ ॥८॥

हे माता ! वेदोंका मार्ग छोड़कर जो वाम (उल्टे) मार्गसे चलते हैं, अथवा वाममार्ग (भैरवीचक्रादि मत) में प्रवृत्ति करते हैं और ठगोंके वेष बनाकर जगत्‌को छलते हैं ॥ ७ ॥ माता ! उनकी गति मुझको शिवजी दें जो मैं भेदको जानता होऊँ ॥ ८ ॥

छन्द-मन वचन कर्म कृपायतन कर दास मैं सुनि मातुरी ।
उर वसत राम सुजान जानत प्रीति औ छल चातुरी ॥
अस कहत लोचन बहत जलतनु पुलक नख लेखत मही ।
हिय लाय लीन्ह बहोरि जननी जानि प्रभु पदरत सही ॥ १९ ॥

(भरतजी बोले)-सुन माता ! मैं तो मन, वचन, कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ और वे सुजान श्रीरामचन्द्रजी (सबके) हृदयमें वास करते हैं इस कारण सबकी प्रीति और छल चतुराईको जानते हैं; ऐसा कहते-कहते भरतजीके नेत्रोंमें जल बहने लगा, शरीर पुलकित हो गया (पैरके) नखोंसे पृथ्वी लिखने लगे, माताने प्रभुके चरणोंमें सच्ची और दृढ़ प्रीति देख-कर हृदयसे लगा लिया । (यह छंद क्षेपक है) ॥ १९

दोहा-मातु भरतके वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय ॥
कहत राम प्रिय तात तुम, सदा वचन मन काय ॥ २०१ ॥

माता कौशल्याने ही भरतजीके सरल सत्य वचन सुनकर कहा-हे तात ! तुम सदा मन, वचन, कायसे श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे हो ॥ २०१ ॥

राम प्राणते प्राण तुम्हारे * तुम रघुपतिहि प्राणते प्यारे ॥१॥
विधु विष चुवै स्रवै हिम आगी * होहिं वारिचर वारि विरागी ॥२॥
श्रीरामचन्द्रजीके प्राणोंसे तुम्हारे प्राण हैं और तुम रघुपतिको प्राणोंसे प्यारे हो ॥ १ ॥ चाहे चन्द्रमामेंसे विष टपकने लगे, बर्फसे आग निकलने लगे और जलचर चाहे जल छोड़ कर पृथ्वीपर रहने लगें ॥ २ ॥

भये ज्ञान वरु मिटइ न मोहू * तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥३॥
मत तुम्हार अस जो जग कहहीं * सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥४॥
चाहे ज्ञान होनेसे भी मोह (अज्ञान) न मिटे, परंतु तुम रामजीके प्रतिकूल न होगे॥३॥ यह तुम्हारा मत है ऐसा जो जगत्में कहते हैं, वे स्वप्नमें भी सुख और सुगतिको प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अस कहि मातु भरत हिय लाये * थनपय स्रवहिं नयन जल छाये ॥५॥
करत विलाप विपुल इहि भांती * बैठेइ बीत गई सब राती ॥६॥
ऐसा कहकर माताने भरतको हृदयसे लगाया, स्तनोंसे दूध टपकने लगा और नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ५ ॥ इसी प्रकार बहुत विलाप करते और बैठे ही सब रात्रि बीत गयी॥६॥

वामदेव वसिष्ठ मुनि आये * सचिव महाजन सकल बुलाये ॥७॥
मुनि बहुभाँति भरत उपदेशे * कहि परमारथ वचन सुदेशे ॥८॥
(प्रातः ही) वामदेव और वसिष्ठ मुनि आये; (जिन्होंने) मंत्री और महाजन सब बुलाये ॥७॥ मुनिने बहुत भाँतिसे भरतको उपदेश दिया और परमार्थके सुन्दर वचन सुनाये ॥ ८ ॥

दोहा–तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु ॥
उठे भरत गुरु वचन सुनि, करन कहेउ सब काजु ॥ २०२ ॥
हे तात ! हृदयमें धैर्य रखिये और जो करनेका समय है वह कीजिये । तब भरतजीने गुरुके वचन सुनकर सब काम स्वीकार किया और उठे ॥ २०२ ॥

नृप तनु वेद-विहित अन्हवावा * परम विचित्र विमान बनावा ॥१॥
गहि पद भरत मातु सब राखीं * रहीं राम-दर्शन अभिलाखीं ॥२॥
राजाके शरीरको वेदानुसार स्नान कराया और अत्यन्त अद्भुत विमान बनाया ॥ १ ॥ भरतजीने चरण पकड़कर सब माताओंको रखा, वे श्रीरामचन्द्रके दर्शनकी अभिलाषासे रह गयीं (सती न हुईं) ॥ २ ॥

चन्दन अगर भार बहु आये * अमित अनेक सुगंध सुहाये ॥३॥
सरयूतट रचि चिता बनाई * जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥४॥
चन्दन और अगरके भार आये, अनेक प्रकारकी सुगंधियोंसे शोभित ॥ ३ ॥ सरयूके किनारे रखकर चिता बनवायी, मानो साक्षात् स्वर्गलोककी सुन्दर सीढ़ी है ॥ ४ ॥

यहि विधि दाह क्रिया सब कीन्हीं * विधिवत न्हाय तिलांजलि दीन्हीं ॥५॥
शोधि स्मृति सब वेद पुराना * कीन्ह भरत दशगात्र विधाना ॥६॥

इस प्रकारसे सब दाह क्रिया करके विधि पूर्वक स्नान कर तिलांजलि दी ॥ ५ ॥ स्मृति, वेद, पुराण सबका शोधन कर अर्थात् तात्पर्य विचार कर (शुक्लपक्ष एकादशीके दिन) भरतने दश गात्रका विधान किया ॥ ६ ॥

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा *तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा॥७॥
भये विशुद्ध दिये सब दाना * धेनु वाजि गज वाहन नाना ॥८॥

जहाँ जैसे मुनिराजने आज्ञा दी; वहां वैसी भरतने सहस्र भांतिसे सबको ॥७॥ सब प्रकार से दान देकर विशुद्ध हुए और धेनु, घोड़े, हाथी, वाहन आदि अनेक दिये ॥ ८ ॥

दोहा-सिंहासन भूषण वसन, अन्न धरनि धन धाम ॥
दिये भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम ॥२०३॥

सिंहासन, गहने वस्त्र, अन्न धरणी, धन, धाम भरतजीने ब्राह्मणोंको दिये और वे लेकर पूर्णकाम हुए, क्योंकि और फिर उनको कुछ लेनेकी आवश्यकता न रही । अथवा सुफल कहलाय भरत पूर्णकाम हुए ॥ २०३ ॥

पितु हित भरत कीन्हि जस करणी*सो मुख लाख जाय नहिं वरणी ॥१॥
सुदिन शोधि मुनिवर तहँ आये * सकल महाजन सचिव बुलाये ॥२॥

पिताके निमित्त जो भरतने करनी की है वह लाख मुखसे नहीं वरणी जाती ॥ १ ॥ फिर अच्छा समय विचारकर गुरु वसिष्ठजी वहां आये और सब महाजन (प्रतिष्ठित बड़े लोग) और मन्त्री गणको बुलाया ॥ २ ॥

बैठे राजसभा सब जाई * पठये बोलि भरत दोउ भाई ॥३॥
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे * नीति धर्ममय वचन उचारे ॥४॥

वे सब राजसभामें जाकर बैठे; तब वहां दोनों भाई भरत और शत्रुघ्नको बुलाया ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी भरतको निकट बैठाय नीति धर्म भरे वचन कहने लगे ॥ ४ ॥

प्रथम कथा सब मुनिवर वरणी *कैकेयी कुटिल कीन्ह जसि करणी॥५॥
भूप धर्म व्रत सत्य सराहा * जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा ॥६॥

पहले सब कथा मुनिने वर्णन की; जिस प्रकारसे कैकेयीने कुटिल काम किया अर्थात् रामजीको वनवास दिया था ॥ ५ ॥ और फिर राजाके धर्म और सत्यव्रतको सराहा कि, जिन्होंने रामजीके वियोगमें शरीर छोड़कर प्रेम निबाहा ॥ ६ ॥

कहत राम गुण शील स्वभाऊ * सजल नैन पुलके मुनिराऊ ॥७॥
बहुरि लषण सिय प्रीति बखानी * शोक सनेह मगन मुनिज्ञानी ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुण,शील,स्वभाव,कहते हुए नेत्रोंमें जलभर आया और मुनिराज पुलकित हुए॥७॥फिर लक्ष्मण और जानकीकी प्रीति कहते हुए ज्ञानी मुनि शोक और प्रेमसे मग्न हो गये।८।

दोहा-सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ ॥
हानि लाभ जीवन मरन, यश अपयश विधि हाथ ॥ २०४ ॥

मुनिनाथने यह बात व्याकुल होकर कही कि सुनो भरत! होनहार प्रबल है हानि,लाभ जीवन, मरण; यश और अपयश विधाताके ही हाथमें अथवा व्याकुल होनेसे बात सूचित करते हैं

कि, होनहारके सामने हमारा भी बल नहीं चलता और इस प्रसंगसे छहों बातें लिख भी दी हैं अर्थात् हानि अवधवासियोंको; लाभ देवताओं तथा वनवासियोंको, विभीषण सुग्रीवका जीवन, रावणादि राक्षसोंका मरण, यश भरत-लक्ष्मण आदिको, अपयश कैकेयी और मन्थराको और 'विलखि' का अर्थ यह है कि मुनिने यह बात विशेष विचार कर कही ॥ २०४ ॥

अस विचारि केहि दीजिय दोषू * व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू ॥१॥
तात विचारि करहु मनमाहीं * शोच योग दशरथ नृप नाहीं ॥२॥

ऐसा विचार कर किसे दोष दें और वृथा किस पर क्रोध करें ? हे तात ! ॥ १ ॥ मनमें विचार कीजिये कि महाराज दशरथजी शोच करने योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥

शोचिय विप्र जो वेद विहीना * तजि निज धर्म विषय लवलीना ॥३॥
शोचिय नृपति जो नीति न जाना * जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना ॥४॥

उस ब्राह्मणपर शोक करना जो वेदविहीन है अथवा जो अपना धर्म छोड़कर विषयोंमें लवलीन हुआ है वह शोक करने योग्य है ॥ ३ ॥ वह राजा शोक करने योग्य है जो नीति नहीं जानता और प्रजा जिसको प्राणोंके समान प्यारी नहीं है ॥ ४ ॥

शोचिय वैश्य कृपण धनवानू * जो न अतिथि शिवभक्त सुजानू ॥५॥
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी * मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी ॥६॥

उस वैश्यका शोच अर्थात् उस वैश्यके निमित्त शोचिये जो धनवान् होकर भी कृपण हो और जो अतिथि तथा शिवजीका भक्त नहीं हो ॥ ५ ॥ उस शूद्रके निमित्त शोक कीजिये, जो ब्राह्मणोंका अपमान करे, बहुत बोले, मानी और ज्ञानका गुमान करे ॥ ६ ॥

शोचिय पुनि पतिवंचक नारी * कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी ॥७॥
शोचिय बटु निजव्रत परिहरई * जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥८॥

फिर पतिसे विपरीत चलनेवाली स्त्रियों पर शोक करना योग्य है, जो कुटिल कलह प्रिय अर्थात् क्लेश करनेवाली और इच्छाचारिणी हों ॥७॥ वह ब्रह्मचारी शोक करने योग्य है जो अपना ब्रह्मचर्य छोड़कर गुरुकी आज्ञा न माने ॥ ८ ॥

दोहा-शोचिय गृही जो मोहवश, करइ धर्मपथ त्याग ॥
शोचिय यती प्रपंचरत, विगत विवेक विराग ॥ २०५ ॥

उस गृहस्थ पर शोक कीजिये, जो मोह वश धर्मका त्याग करे और उस संन्यासीके हेतु शोक करना उचित है जो पाखण्डी हो, (रोजगार करे, पायजामा पहरे, कोठी बँगलेमें रहे; धन बटोरे अपना नया पन्थ चलावे) जिसे ज्ञान-विराग न हो और मिथ्याचारी बने ॥ २०५ ॥

वैखानस सोइ शोचन-योगू * तप विहाय जेहि भावै भोगू ॥१॥
सोचिय पिशुन अकारन क्रोधी * जननि जनक गुरुबन्धु विरोधी ॥२॥

वह वानप्रस्थ आश्रमी सोचने योग्य है जो तप छोड़कर भोगमें मन लगावे ! गृहस्थाश्रमके उपरांत, ५० वर्षसे ७५ वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रमका अधिकार होता है) ॥ १ ॥ उस चुगुली करनेवाले, विना कारण क्रोध करनेवाले को शोचिये जो कि माता, पिता, गुरु और भाइयोंसे विरोध करनेवाला हो ॥ २ ॥

सब विधि सोचिय पर अपकारी * निज तनु पोषक निरदय भारी ॥३॥
शोचिय लोभनिरत अति कामी * सुरश्रुति निन्दक परधनस्वामी ॥४॥

सब प्रकारसे पराये काम बिगाड़नेवालेके निमित्त शोक करना चाहिये, जो अपना शरीर ही पुष्ट करता और बड़ा निर्दय होता है-"तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये" ॥ ३ ॥ जो लोभमें निरत और (अत्यन्त) कामी हैं, देवता और वेदोंकी निंदा करते हैं और पराये द्रव्यके स्वामी बन बैठे हैं वे सब प्रकारसे शोकके योग्य हैं ॥ ४ ॥

शोचनीय सब ही विधि सोई * जो न छांड़ि छल हरिजन होई ॥५॥
शोचनीय नहिं कोशलराऊ * भुवन चारिदश प्रगट प्रभाऊ ॥६॥

और वह भी सब प्रकारसे शोकके योग्य है जो छल छोड़कर भगवान्‌का भक्त नहीं होता ॥५॥ किंतु महाराज दशरथजी शोक करने योग्य नहीं हैं; क्योंकि उनका १४ भुवनमें प्रभाव प्रकट है॥६॥

भयउ न अहै न अब होनिहारा * भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥७॥
विधि हरिहर सुरपति दिशिनाथा * वर्णहिं सब दशरथ-गुणगाथा ॥८॥

न हुआ है, न है और न आगे ऐसा होगा, हे भरत ! जैसे ये आपके पिता थे ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, दिग्पाल सब दशरथजीके गुणोंका वर्णन करते हैं अर्थात् प्रजा बढ़ानेमें ब्रह्मा, पालनेमें हरि, शत्रुसंहारमें हर, राज्य भोगसे इन्द्र और चारों ओर प्रजा पालनेमें दिग्पाल महाराजके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-कहहु तात केहि भांति कोउ, करहि बड़ाई तासु ॥
राम लषण तुम शत्रुहन, सरिस सुअन शुचि जासु ॥ २०६ ॥

कहो पुत्र ! फिर उनकी क्या कोई बड़ाई करे, जिनके राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्नसे पवित्र पुत्र हों ॥ २०६ ॥

सब प्रकार भूपति बड़ भागी * बादि विषाद करिय तेहि लागी ॥१॥
यह सुनि समुझि शोक परिहरहू * शिर धरि राज रजायसु करहू ॥२॥

सब प्रकारसे राजा बड़भागी हैं; उनके निमित्त शोक करना वृथा है ॥ १ ॥ यह सुन और समझकर शोक त्याग दीजिये और राजाज्ञा शिरपर धारण करके (कार्य) कीजिये ॥ २ ॥

राय राजपद तुम कहँ दीन्हा * पिता वचन फुरचाहिय कीन्हा ॥३॥
तजे राम जेहि वचनहिं लागी * तनु परिहरेउ राम-विरहागी ॥४॥

राजाने आपको राजपद दिया है सो पिताका वचन सत्य (पूरा) करना चाहिये ॥ ३ ॥ जिन्होंने वचनोंके निमित्त रघुनाथजीको त्याग दिया और उनकी विरहाग्निमें अपने शरीरको त्याग दिया ॥ ४ ॥

नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना * करहु तात पितु-वचन प्रमाना ॥५॥
करहु शीश धरि भूप रजाई * है तुम कहँ सब भाँति भलाई ॥६॥

हे तात ! राजाको वचन प्यारे थे प्राण नहीं, इस कारण आप भी उनके वचन मानिये॥५॥ राजाकी आज्ञा शिरपर धारण करके कार्य कीजिये; आपकी सब प्रकारसे इसमें भलाई है ॥६॥

परशु राम पितु आज्ञा राखी * मारी मातु लोक सब साखी ॥७॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ *पितु आज्ञा अघ अयश न भयऊ॥८॥

परशुरामने पिताकी आज्ञा रखी थी अर्थात् पिताके कहनेसे माताको मार डाला; इस बातको सारा जगत् जानता है ॥ ७ ॥ ययातिके (छोटे) पुत्र (पुरु) ने पिताको अपनी युवा अवस्था दे दी थी और पिताकी आज्ञासे उसको पाप तथा अपयश नहीं हुआ ॥ ८ ॥

दोहा–अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ॥
ते भाजन सुख सुयशके,बसहिं अमरपति ऐन ॥ २०७ ॥

जो कोई अयोग्यका विचार छोड़कर पिताके वचन (आज्ञा) पालन करते हैं, वे सुख और सुयशको प्राप्त करके अन्तमें इन्द्रलोकमें वास करते हैं ॥ २०७ ॥

अवशि नरेश वचन फुर करहू * पालहु प्रजा शोक परिहरहू ॥१॥
सुरपुर नृप पाइहिं परतोषू *तुम कहँ सुकृत सुयश नहि दोषू॥२॥

इस लिये अवश्य ही राजाके वचन पूरे कीजिये, प्रजाओंको पालिये और शोक दूर कीजिये ॥ १ ॥ स्वर्गलोकमें राजा भी सन्तुष्ट होंगे, क्योंकि उनकी अवस्थामें कुछ राज्य भोगना शेष रह गया है, इससे वे प्रसन्न होंगे, जो आप राज्य करोगे तो आपको पुण्य और यश मिलेगा दोष नहीं होगा ॥ २ ॥

वेद विदित सम्मत सबहीका *जेहि पितु देइ सो पावहि टीका॥३॥
करहु राज्य परिहरहु गलानी * मानहु मोर वचन हित जानी ॥४॥

कारण यह कि; वेदमें लिखा है और सब शास्त्रोंकी भी सम्मति है कि जिसको पिता राज्य तिलक दे वही पाता है ॥ ३ ॥ राज्य कीजिये; ग्लानि छोड़ दीजिये और मेरा वचन हितकारी समझकर मानिये ॥ ४ ॥

सुनि सुख लहब राम वैदेही * अनुचित कहब न पंडित केही॥५॥
कौशल्यादि सकल महतारी * तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥६॥

यह सुनकर रघुनाथजी और जानकीजी सुख पावेंगे और कोई पंडित भी इसको अनुचित न कहेगा ॥ ५ ॥ कौशल्यादि सब माताएँ भी प्रजाके सुखसे सुखी होंगी ॥ ६ ॥

प्रेम तुम्हार रामकर जानहिं *सो सब विधि तुमसन भल मानहिं॥७॥
सौंपेहु राज्य रामके आये * सेवा करेहु सनेह सुहाये ॥८॥

शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा दोनों स्नान करने गयीं । भूलसे दोनोंके कपड़े बदल गये, झगड़ा हुआ, शर्मिष्ठा उसको कुएँमें ढकेलकर घर चली आयी । राजा ययातिने देवयानी को हाथ पकड़कर निकाला । अतः देवयानीने उन्हींसे व्याह करनेकी प्रतिज्ञा कर पितासे सब वृत्तान्त कहा–तब शुक्राचार्य रूठकर चल दिये । वृषपर्वाने मनाया और देवयानीके कहनेसे शर्मिष्ठाको उसकी दासी बना दिया, जब देवयानी राजासे विवाही गयी और शर्मिष्ठा दासी बनकर परिचर्यामें गयी, तब शुक्रने राजासे मना कर दिया था कि शर्मिष्ठासे विवाह मत करना, परंतु राजाने प्रतिज्ञा करके भी शर्मिष्ठासे रमण किया और उसके भी कई पुत्र हुए । जब देवयानीको यह समाचार विदित हुए तब पितासे जाकर कहा, शुक्रजीने शाप दिया कि राजा तू बूढ़ा हो जा । राजा तुरंत वृद्ध हो गया और बड़ी प्रार्थना की तब शुक्र बोले– यदि तुमको कोई तेरा पुत्र अपनी युवावस्था देकर तेरी वृद्धावस्था ले लेगा तो यह बदला हो सकेगा । राजाने देवयानीके पुत्रोंसे युवावस्था मांगी, किंतु उन्होंने न दी, तब शर्मिष्ठाके बड़े बेटेसे मांगी, उसने भी न दी । तब पुरुसे मांगनेपर उसने दे दी और इसी कारण राजाने उसको राज्य दिया फिर बहुत दिनोंके उपरान्त राजाने अपनी वृद्धता लेकर पुत्रकी युवावस्था लौटा दी ।

क्योंकि वे माताएँ आपका और रघुनाथजीका प्रेम जानती हैं, वे सब प्रकार आपको भला मानेंगी ॥७॥ फिर रघुनाथजीके आने पर उनको राज्य सौंपकर सेवा करना बस यही स्नेहकी शोभा है (और जो सदैव राज्य करो तो धर्मकी शोभा है क्योंकि पितृदत्त राज्य है) ॥८॥

दोहा–कीजिय गुरु आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि ॥
रघुपति आये उचित जस, तब तस करब बहोरि ॥२०८॥

मन्त्री भी हाथ जोड़कर कहते हैं कि–हे भरत जी! अवश्य गुरुकी आज्ञा मानिये और फिर रघुनाथजीके आनेपर जैसे उचित जानना वैसा करना। मंत्रियोंको अभी भरतके मनका भेद नहीं मिला इस लिए अपनी ओरसे कुछ नहीं कहते, केवल गुरुके वाक्योंको ही पुष्ट करते हैं ॥२०८॥

कौशिल्या धरि धीरज कहई * पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ॥१॥
सो आदरिय करिय हित मानी * तजिय विषाद काल गतिजानी ॥२॥

कौशल्या धैर्य धरकर कहने लगी–हे पुत्र! गुरुकी आज्ञा पथ्य अर्थात् अवश्य करने योग्य है ॥ १ ॥ उसे हित मानकर आदरसे कीजिये और कालकी गति जानकर विषाद त्यागिये (आपके घबड़ानेका यह समय नहीं है, क्योंकि आपही तो सबके अवलम्बन हो) ॥ २ ॥

वन रघुपति सुरपुर नरनाहू * तुम इहि भाँति तात कदराहू ॥३॥
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा * तुमही सब कर सुत अवलंबा ॥४॥

हे पुत्र श्रीरघुनाथजी वनमें, राजा स्वर्गमें और आप इस प्रकारसे भय करते हो ॥ ३ ॥ कुटुम्बीजन, प्रजा, मन्त्री, सब माताएँ, इन सबके आपही आधार हो ॥ ४ ॥

लखि विधि वाम काल कठिनाई * धीरज धरहु मातु बलिजाई ॥५॥
शिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू * प्रजापालि पुरजन दुख हरहू ॥६॥

विधाताकी वामगति और कालकी कठिनाई देखकर धैर्य धरिये, माता बलिजाय ॥ ५ ॥ गुरुकी आज्ञाके अनुसार कीजिये और प्रजाकी पालना कर पुरजनोंके दुःख हरिये ॥ ६ ॥

गुरुके वचन सचिव अभिनन्दन * सुनत भरत हिय हित जनुचन्दन ॥७॥
सुनी बहोरि मातु वर बानी * शील सनेह सरल रस सानी ॥८॥

गुरुके वचन और मंत्रियोंको सुख देनेवाले अनुमोदन (वाक्य) सुने, वे भरतके हृदयमें चन्दनके समान हितकारी हुए ॥ ७ ॥ और फिर माताकी सुन्दर वाणी सुनी, जो कि शील, स्नेहके सरल रसमें सनी हुई थी ॥ ८ ॥

छन्द–सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचनसरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ॥
सो दशा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीम सहज सनेह की ॥ २० ॥

सरलरस सनी हुई माताकी वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये अर्थात् अपनी माताकी कुटिलतासे रामका वनवासादि होना याद करके व्याकुल हुए, कमलसे नेत्रोंसे जल टपकने लगा और हृदयमें नये विरहके अंकुर उत्पन्न हो गये; सो अंकुरोंको मानो नेत्रकमलोंके जलसे

सींचते हो वह दशा देखकर उस समय सबको अपने देहकी सुध विसर गयी; तुलसीदासजी कहते हैं कि सब कोई आदरसे शील व स्नेहकी सीमाको सराहने लगे ॥ २० ॥

सोरठा–भरत कमल कर जोरि, धर्म-धुरन्धर धीर धरि ॥
वचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि ॥ १४ ॥

धर्मकी धुरी धारण करने वाले भरतजी कमलसे हाथ जोड़कर धैर्य धरकर जैसे अमृतमें बोरे वचन हों उनके द्वारा इस प्रकार सबको उचित उत्तर देने लगे ॥ १४ ॥

मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका * प्रजा सचिव संमत सबहीका ॥१॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा *अवशि शीशधरि चाहिय कीन्हा॥२॥

मुझको गुरुजीने अच्छा उपदेश दिया है,जो कि प्रजा, मन्त्री और सबका संमत है॥१॥और फिर माताने भी उचित आज्ञा दी है, जिसको मुझे शिरपर धर अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥

गुरु पितु मातु वचन हित जानी *सुनिमन मुदित करिय भल जानी॥३॥
उचितकि अनुचित किये विचारू * धर्म जाय शिर पातक भारू ॥४॥

क्योंकि गुरु, माता- पिता की हितकारिणी वाणी सुनकर मनमें प्रसन्न हो भली जान कर करे ॥ ३ ॥ जो उसमें उचित अनुचितका विचार करते हैं तो धर्म जाता है और भारी पातक शिरपर लगता है ॥ ४ ॥

तुम तौ देहु सरल सिख सोई * जो आचरत मोरहित होई ॥५॥
यद्यपि यह समुझत हउँ नीके * तदपि होत परितोष न जीके ॥६॥

आप तो वह सीधी शिक्षा देते हो, जिसके पालन करनेसे मेरा हित हो ॥ ५ ॥ यद्यपि वह अच्छी प्रकार समझता हूँ, किंतु तो भी जीमें सन्तोष नहीं होता ॥ ६ ॥

अब तुम विनय मोरि सुनि लेहू * मोहि अनुहरत सिखावन देहू ॥७॥
उत्तर देहुँ क्षमब अपराधू * दुखित दोष गुणगनहिं न साधू॥८॥

अब आप मेरी विनती सुनिये और मेरी ओर देखकर उनके अनुसार (योग्य) शिक्षा दीजिए ॥७॥ उत्तर देता हूँ अपराध क्षमा करना,क्योंकि दुःखीके दोष-गुण साधु पुरुष नहीं गिनते ॥८॥

दोहा–पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राज ॥
यहिते जानहु मोर हित, कै आपन बड़काज ॥ २०९ ॥

जिस राज्यके कारण पिता सुरपुर गये, सीता राम वनको गये, वही राज्य करनेको कहते हो, इसमें मेरा हित वा आप अपना बड़ा काज करना चाहते हैं ? इस भावसे चार सूत्र हैं अर्थात् वसिष्ठजीके वचन नीति, धर्म और भरतके वचनमें अपना तथा सबोंका काज॥२०९॥

हित हमार सियपति सेवकाई * सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥१॥
मैं अनुमानि दीख जगमाहीं * आन उपाय मोर हित नाहीं ॥२॥

हमारा हित तो इसमें था कि रघुनाथजीकी सेवा करते; परन्तु वह माताकी कुटिलताने हर लिया ॥ १ ॥ मैंने अपने मनमें विचार करके देख लिया कि; दूसरे उपायसे मेरा हित नहीं होगा ॥ २ ॥

शोक समाज राज केहि लेखे * लषण राम सिय पद बिनु देखे ॥३॥
बादि बसन बिनु भूषण भारू * बादि बिरति बिनु ब्रह्म विचारू॥४॥

अयोध्याका राज्य लक्ष्मण, राम, सीताके पद देखे विना शोकका समाज है सो किस गिनतीमें है ? ॥ ३ ॥ जैसे कोई सब भूषणोंसे सजा है पर वस्त्र नहीं ऐसा ही यह दशरथके विना राज्य है और विना राम, लक्ष्मणके ऐसा है जैसे विरागके विना ब्रह्मका विचार ॥४॥

सरुज शरीर बादि बहु भोगा * बिनु हरिभक्ति बादि जप योगा॥५॥
जाय जीव बिनु देह सुहाई * बादि मोरि सब बिनु रघुराई ॥६॥

जब शरीर रोगी है तो सब भोग वृथा हैं, विना हरिभक्तिके जप योग वृथा है। अर्थात् मैं जो बिरहका रोगी हूँ सो मेरे लिये यह भोगरूप राज्य व्यर्थ है और हरिभक्तिरूप जो जानकी हैं उनके विना यह योगरूपी राज्य व्यर्थ है ॥५॥ सुन्दर शरीररूपी राज्य रघुनाथरूपी जीवके विना व्यर्थ है, सारांश-श्रीरामचन्द्रके विना मेरा जो कुछ है वह सब ही व्यर्थ है ॥ ६ ॥

जाहुँ रामपहँ आयसु देहू * एकहि आंक मोर हित येहू ॥७॥
मोहि नृपकरि आपन हित चहहू * सो सनेह-जड़ता वश कहहू ॥८॥

श्रीरघुनाथजीके पास जाऊँ मुझको आज्ञा दो; बस यही एक अंकमें मेरा हित है॥७॥मुझको राजा बनाकर आप अपना हित चाहते हो, यह स्नेह और जड़तासे कहते हो (जड़ता शब्द महाकठोर है; इसका समाधान यह है कि भरतजी कहते हैं कि मेरे स्नेहसे जड़ हो गये हो)॥८॥

दोहा-कैकेयीसुत कुटिलमति, राम विमुख गतलाज ॥
तुम चाहत सुख मोह वश, मोहिते अधमके राज ॥२१०॥

कैकेयीका पुत्र, कुटिलमति, श्रीरामचन्द्रजीसे विमुख, लाज रहित ऐसा जो मैं हूँ, सो मुझसे अधमके राज्यमें आप सुख चाहते हो ? मुझको तो लाज नहीं रही, सभामें सबके सामने बैठा मुख दिखा रहा हूँ ॥ २१० ॥

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू * चाहिय धर्मशील नरनाहू ॥१॥
मोहि राज्य हठि देहहु जबही * रसा रसातल जाइहि तबही ॥२॥

सत्य ही कहता हूँ, आप सब इस बातको सुनकर विश्वास मानिये कि राजा धर्मशील होना चाहिये ॥ १ ॥ किंतु मुझको आप हठ करके जभी राज्य दोगे तभी रसा (पृथ्वी) पातालको चली जायगी ॥ २ ॥

मो समान को पाप निवासी * जेहि लगि राम सीय वनवासी ॥३॥
राय राम कहँ कानन दीन्हा * बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा ॥४॥

मेरे समान कौन पापनिवासी (पापात्मा) है जिसके कारण सीता रामजी वनवासी हुए॥३॥ राजाने रघुनाथजीको वन भेजा और उनके वियोगमें आप स्वर्गको गमन किया ॥ ४ ॥

मैं शठ सब अनरथ कर हेतू * बैठि बात सब सुनहु सचेतू ॥५॥
बिनु रघुबीर विलोकिय वासू * रहे प्राण सहि जग उपहासू ॥६॥

और मैं मूर्ख सब अनर्थका कारण हूँ, बैठा सावधानी से सब कुछ बात सुन रहा हूँ ॥५॥ विना रघुनाथजीके यह स्थान देखकर भी मेरे प्राण रह गये इससे जगतमें हँसी अवश्य है ॥६॥

राम पुनीत विषय रस रूखे ❋ लोलुप भूप भोगके भूखे ॥७॥
कहँ लगि कहउँ हृदय कठिनाई ❋ निदरि कुलिस जेहि लही बड़ाई॥८॥

श्रीरामचन्द्र(परम)पवित्र और विषयरससे विरक्त हैं, भोगके भूखे और लोभी भूप राज्यसुख चाहते हैं अथवा रामविषयक जो पवित्र रस है उससे यह मेरा प्राण रूखा है बलिक यह लोलुप मन्दतर मेरा प्राण राज्यभोगका भूखा है॥७॥ अपने हृदयकी कठिनता कहां तक कहूँ ? जिसने वज्रको भी तिरस्कार कर बड़ाई पायी क्योंकि रामचन्द्रजीके वियोगमें फटा नहीं ॥ ८ ॥

दोहा–कारणते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ॥
कुलिश अस्थिते उपलते, लोह कराल कठोर ॥ २११ ॥

(कारण स्थानमें कैकेयी और कार्यके स्थानमें भरतजी अपनेको कहते हैं) कारणसे कार्य कठिन होता है,इससे मेरा दोष नहीं क्योंकि वज्र और पत्थरसे लोहा अत्यन्त कराल कठोर होता है, यह यहां दो प्रमाण देते हैं कि कारणरूप अस्थिसे कार्यरूप वज्र हुआ है, दधीचिकी अस्थिसे इन्द्रने वज्र बनाया जो कि महाकठोर है, ऐसे पत्थरसे उत्पन्न लोहा महाकराल होता है, अस्तु मैं कैकेयीसे उत्पन्न होनेके कारण अधिक कुटिल हूँ क्योंकि कार्य स्थानमें हूँ ॥ २११ ॥

कैकेयी-भव तनु अनुरागे ❋ पामर प्राण अघाय अभागे ॥१॥
जो प्रियविरह प्राण प्रिय लागे ❋ देखब सुनब बहुत अब आगे ॥२॥

मेरा जो अभागा नीच प्राण है, वह कैकेयीके उदरसे उत्पन्न हुए शरीरमें प्रेम करनेवाला है तो यह अभाग्यसे अघा ले ॥ १ ॥ जो प्राणप्रिय रघुनाथजीका विरह इन प्राणोंको प्रिय लगा तो यह अभी आगे बहुत कुछ देखेंगे और सुनेंगे। अथवा प्रिय जनोंके प्राण वियोगमें रखनेवाले आगे बहुत देखे सुने जायँगे ॥ २ ॥

लषण राम सिय कहँ बन दीन्हा ❋ पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा॥३॥
लीन्ह विधवपन अपयश आपू ❋ दीन्हेउ प्रजहिं शोक सन्तापू॥४॥

जिस पापिनी कैकेयीने राम, लक्ष्मण और सीताको वन दे अपने पतिको अमरपुरमें भेजके यह हित किया॥३॥आप विधवा बनी,अपयश लिया और प्रजाको शोक सन्ताप दिया ॥४॥

मोहि दीन्ह सुख सुयश सुराजू ❋ कीन्ह कैकयी सब कर काजू ॥५॥
इहि ते मोर काह अब नीका ❋ तेहि पर देन कहहु तुम टीका॥६॥

उसी पाँतिमें मुझे सुयश सुराज्य अर्थात् दुःख और अपयशका राज्य दिया, सो इस कैकेयीने सबका काज किया ॥ ५ ॥ इससे अधिक अब हमारा कौन हित बाकी है, तुम मुझे टीका देनेको कहते हो ? ॥ ६ ॥

कैकेयि जठर जन्मि जग माहीं ❋यह मोहिं कहँ कछु अनुचित नाहीं॥७॥
मोरि बात सब विधिहि बनाई ❋ प्रजा पांच कत करहु सहाई ॥८॥

जब जगत्में कैकेयीके पेटसे जन्मा हूँ तो मुझे कलंक भी कुछ अनुचित नहीं है ॥ ७ ॥ मेरी बात तो सब विधाताने ही बना दी है,अब प्रजा पांच यह पंचायत करके मेरी सहायता किस बातमें करते हो, अब बाकी ही क्या है ? ॥ ८ ॥

दोहा–ग्रहग्रहीत पुनि वातवश, तेहि पुनि बीछी मार ॥
ताहि पियाई वारुणी, कहहु कवन उपचार ॥ २१२ ॥

जिसे क्रूरग्रहादि लगे हैं, सन्निपात हो गया है, उसपर बिच्छूने काट लिया, आरोग्य करनेको वारुणी (मदिरा) पिला दे तो उसके बचनेका उपाय ही क्या है ? यह क्या औषधि भरतजी अपनेको कहते हैं-कैकेयीके उदरका वास ग्रहकी पकड़, पिताकी मृत्यु सन्निपात, रघुनाथजीका वनगमन बिच्छूका काटना; तीनों हो चुके अब तुम राज्यरूपी वारुणी पिलाते हो फिर बचनेका क्या उपाय है ? ॥ २१२

कैकेयि-सुवन योग जग जोई ❋ चतुर विरंचि दीन्ह मोहिं सोई॥१॥
दशरथ-तनय राम लघु भाई ❋ दीन्ह मोहि विधि बादि बड़ाई॥२॥

कैकेयी पुत्रके योग्य जो जगत्‌में था, वह चतुर ब्रह्माने यथार्थ ही दिया, परन्तु ॥ १ ॥ दशरथजीके पुत्र, रघुनाथजीके छोटे भ्राता भरत हैं, यह बड़ाई वृथा ही दी ॥ २ ॥

तुम सब कहहु कढावन टीका ❋ राय रजायसु सब कहँ नीका ॥३॥
उतर देउँ केहि विधि केहि केही ❋ कहहु सुखेन यथारुचि जेही ॥४॥

तुम सब राज्याभिषेक करनेको कहते हो, राजा होनेकी आज्ञा सबको अच्छी लगती है, और मैं इसे स्वीकार नहीं करता, इनका कुछ तो कारण होगा ! ॥ ३ ॥ सो मैं किस विधिसे किस किसको उत्तर दूँ ! जैसे जिसकी रुचि हो वह सुख पूर्वक कहो ॥ ४ ॥

मोहि कुमातु समेत विहाई ❋ कहहु कहिहि को कीन्ह भलाई॥५॥
मोहि विनु को सचराचरमाहीं ❋ जेहि सियराम प्राणप्रिय नाहीं॥६॥

मुझे और मेरी दुष्ट माताको छोड़कर कौन कहेगा कि यह भलाईकी है जिसको तुम कहो ॥ ५ ॥ चराचरमें मेरे विना ऐसा कौन है जिसे सीताराम प्राणोंके समान प्यारे न हों ॥ ६ ॥

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू ❋ अदिन मोर नहिं दूषण काहू ॥७॥
संशय शील प्रेमवश अहहू ❋ सबै उचित अब जो कछु कहहू ॥८॥

जिस राज्यसे हमारी परम हानि होगी, वही सबको लाभ दिखाता है, यह हमारे कुदिन का कारण है, इसमें किसीका दोष नहीं ॥ ७ ॥ संशय, शील और प्रेमके वश होकर जो चाहे सो कहो, सब उचित ही है, संशय अवधके अनर्थका, प्रेम हमारा ॥ ८ ॥

दोहा-राममातु सुठि सरल चित, मोपर प्रेम विशेखि ॥
❋ कहहि स्वभाव सनेह वश, मोरि दीनता देखि ॥ २१३ ॥

अत्यन्त सरल स्वभाववाली श्रीरामचन्द्रजीकी माताका मुझपर विशेष प्रेम है, वे स्वभावसे स्नेहवश मेरी दीनता देख, मुझे राज्य करनेको कहती हैं, क्योंकि उनके गर्भमें रहकर श्रीरघुनाथजीने विशेष सरलता पायी है ॥ २१३ ॥

गुरु विवेकसागर जग जाना ❋ जिनहिं विश्व करबदरि समाना॥१॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ ❋ भय विधि विमुख विमुख सब कोऊ॥२॥

गुरु ज्ञानके समुद्र हैं, यह जगत् जानता है, जिसके हाथमें संसार बेरके समान है,॥१॥ वे भी मेरे लिये तिलकका साज सजाये हैं,सत्य है जबविधि विमुख होता है तब सब विमुख हो जाते हैं॥२॥

परिहरि राम सीय जगमाहीं ❋ कोउ न कहहि मोर मत नाहीं॥३॥
सो मैं सुनब सहब सुखमानी ❋ अन्तहु कीच तहां जहँ पानी ॥४॥

रघुनाथजी और जानकीजीको छोड़कर जगत्में कोई नहीं कहेगा, कि रामचन्द्रजीके वन भेजनेमें हमारा मत नहीं है ॥ ३ ॥ सो मैं सुनूँगा, सुख मानकर सब सहूँगा, अन्तमें वहां भी कीच होता है जहां पानी होता है ॥ ४ ॥

डर न मोहिं जग कहै कि पोचू * परलोकहु कर नाहिं न सोचू ॥५॥
एकै बड़ उर दुसह दवारी * मोहि लगि भै सियराम दुखारी ॥६॥

मुझे जगत् पोच (नीच भीरु) कहे तो डर नहीं, परलोकका भी शोच नहीं ॥ ५ ॥ मेरे निमित्त सीता, राम दुःखी हुए यही एक बड़ी असह्य ज्वाला हृदयमें उठी है ॥ ६ ॥

जीवनलाहु लषण भल पावा * सब तजि रामचरण मनलावा ॥७॥
मोर जन्म रघुवर बन लागी * झूठ काहु पछिताउँ अभागी ॥८॥

जीवनका लाभ लक्ष्मणने ही अच्छी प्रकार पाया; सो सब त्यागकर श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मन लगाया ॥ ७ ॥ और मेरा जन्म श्रीरघुनाथजीके वन--गमनके निमित्त हुआ; मैं अभागा झूँठ ही क्या पछिताऊँ ॥ ८ ॥

दोहा-आपनि दारुण दीनता, कहहुँ सबहिं शिर नाय ॥
देखे विनु रघुवीरपद, जियकी जरनि न जाय ॥ २१४ ॥

मैं अपनी दारुण बड़ी दीनता सबको समझाकर कहता हूँ कि रघुनाथजीके चरण विना देखे जीकी जलन नहीं जायगी ॥ २१४ ॥

आन उपाय मोहि नहिं सूझा * को जियकी रघुवर विनु बूझा ॥१॥
एकहिं आंक यहै मन माहीं * प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ॥२॥

और उपाय मुझे नहीं सूझता, बिना रघुनाथजीके अब जीकी जाननेवाले कौन है ॥१॥ बस मनमें अब एकही लालसा है कि, प्रातःकाल होते ही रघुनाथजीके पास दर्शन करने चलूँगा ॥२॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी * भइ मोहिं कारण सकल उपाधी ॥३॥
तदपि शरण सन्मुख मोहिं देखी * क्षमिसब करिहहिं कृपा विशेखी ॥४॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी हूँ, क्योंकि मेरे ही कारण ये सब उपाधियाँ हुईं ॥३॥ तो भी श्रीरामचन्द्रजी मुझको शरण, सम्मुख देखने पर सब अपराध क्षमाकर विशेष कृपा ही करेंगे ॥४॥

शील सकुच सुठि सरल स्वभाऊ * कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥५॥
अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा * मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा ॥६॥

क्योंकि शील, संकोच, नितान्त श्रेष्ठ स्वभाव, कृपा, प्रीति, इन सबके श्रीरघुनाथजी स्थान हैं ॥५॥ श्रीरघुनाथने शत्रुका भी अनभल नहीं किया, मैं तो बालक सेवक हूँ यद्यपि उनके वाम हूँ तथापि वे कृपा ही करेंगे ॥ ६ ॥

तुम पै पांच मोर भल मानी * आयसु आशिष देहु सुबानी ॥७॥
जेहि सुनि विनय मोहिं जन जानी * आवहि बहुरि राम रजधानी ॥८॥

और आप सब पंच भी मेरा भला मानकर अच्छी वाणीसे आज्ञा आशीर्वाद दीजिये ॥७॥ जिससे

मेरी विनय सुनें और मुझको अपना दास जानकर रघुनाथजी राजधानीको लौट आवें ॥८॥

दोहा–यद्यपि जन्म कुमातु ते, मैं शठ सदा सदोस ॥
आपन जानि न त्यागि हैं, मोहि रघुबीर भरोस ॥ २१५ ॥

(जो कि शरणागतमें मुख्य विश्वास है वही भरतजी आगे कहते हैं) यद्यपि मेरा जन्म कुमातासे है और मैं मूर्ख सदा दोषी हूँ परन्तु अपना जानकर श्रीरघुनाथजी नहीं त्यागेंगे यह मुझको भरोसा है ॥ २१५ ॥

भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे * राम सनेह सुधा जनु पागे ॥१॥
लोग वियोग विषम दुख दागे * मन्त्र सजीव सुनत जनु जागे ॥२॥

भरतजीके वचन सबको प्रिय लगे, मानों रघुनाथजीके स्नेहरूपी अमृतमें पागे हैं ॥ १ ॥ लोग तो रघुनाथजीके वियोगरूपी अमृतमें दगे थे; किंतु अब यह उसका सजीवन मंत्र (रघुनाथजीके पासका जाना) सुनकर मानो जग गये ॥ २ ॥

मातु सचिव गुरु पुर नर नारी * सकल सनेह विकल भये भारी॥३॥
भरतहिं कहहिं सराहि सराही * राम प्रेम मूरति तनु आही ॥४॥

माता, मन्त्री, गुरु, पुरके नर-नारी सब स्नेहसे बहुत व्याकुल हो गये ॥ ३ ॥ भरतजीको सराह सराह कर कहने लगे कि रामजीकी प्रेम मूर्तिके भरतजी शरीर हैं ॥ ४ ॥

तात भरत अस काहे न कहहू * प्राण समान राम प्रिय अहहू ॥५॥
जो पामर अपनी जड़ताई * तुमहिं सुगाइ मातु कुटिलाई ॥६॥

हे तात भरत ! ऐसा क्यों न कहो ? आप तो रामजीको प्राणोंके समान प्यारे हो ॥ ५ ॥ जो अधम अपनी मूर्खतासे माताकी कुटिलताको आपके ऊपर लगावेगा ॥ ६ ॥

सो सठ कोटिक पुरुष समेता * बसहि कल्पशत नरक निकेता॥७॥
अहि अघ अवगुण मणि नहिं गहई* हरै गरल दुख दारिद दहई ॥८॥

वह मूर्ख अपने करोड़ पुरुषों सहित सौ कल्पतक नरकमें बसेगा ॥ ७ ॥ हे भरतजी ! सर्पके दोष और अवगुण उसकी मणि ग्रहण नहीं करती और अपने (गुण) से विष तथा दुःख दरिद्रका नाश कर देती है । आशय यह कि-आप कहते हो हम कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हैं, सो आप निर्दोष हो जैसे सर्पमें मणि निर्दोष रहती है, विष और दुःखको नाश कर देती है, ऐसे ही आपने उन सबोंके विरह विषको मिटाकर रामदर्शनरूपी धनको प्राप्त कराकर दुःखरूपी दरिद्रका नास करा दोगे ॥ ८ ॥

दोहा–अवशि चलिय वन राम जहँ, भरत मन्त्र भल कीन्ह ॥
शोक सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह ॥ २१६ ॥

निश्चय ही जहां रघुनाथजी हैं उस वनको चलिये, भरतजी ! आपने अच्छी सम्मति प्रकट की, शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए सबको आपने ही सहारा दिया ॥ २१६ ॥

भा सबके मन मोद न थोरा *जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा॥१॥
चलत प्रात सुनि निर्णय नीके * भरत प्राणप्रिय भे सबहीके ॥२॥

सबके मनमें बहुत आनंद हुआ,जैसे बादलके शब्द सुनकर चातक और मोर प्रसन्न होते हैं॥ १॥ प्रातःही चलनेका सुन्दर निर्णय सुनकर भरतजी सबको प्राणके समान प्यारे लगने लगे ॥ २ ॥

मुनिहिं वंदि भरतहि शिर नाई ❋ चले सकल घर विदा कराई ॥३॥
धन्य भरत जीवन जगमाहीं ❋ शील सनेह सराहत जाहीं ॥४॥

मुनिको नमस्कार और भरतजीको शिर नवाकर बिदा हो घर चले गये ॥३॥ भरतजीका जीवन जगत्में धन्य है, उनके शील स्नेहको सब सराहते हैं ॥ ४ ॥

कहहिं परस्पर भा बड़ काजू ❋ सकल चलइ कर साजहिं साजू॥५॥
जेहि राखहिं घर रहु रखवारी ❋ सो जानइ जनु गर्दन मारी ॥६॥

परस्पर कहने लगे कि बड़ा काज हुआ सब चलनेका सामान करने लगे ॥ ५ ॥ जिसको घरमें रखवालीको रखते हैं मानो उसकी गर्दन मारदी ॥ ६ ॥

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू ❋ को न चहइ जग जीवन लाहू ॥७॥
केहि न भाव लक्ष्मण सिय रामू ❋सबको प्रिय हिय सदा सकामू ॥८॥

कोई बोला किसीके रहनेको मत कहो; क्योंकि जगत्में जीवनलाभ कौन नहीं चाहता ! राम, लक्ष्मण, सीताजीके दर्शन न चाहे ऐसा कौन मनुष्य है ? ॥७॥ लक्ष्मण,सीता और राम किसको प्रिय नहीं हैं? सबको राम हृदयसे प्यारे हैं और रामजीके दर्शनकी सदा अभिलाषा है॥८॥

दोहा—जरउ सुसंपति सदनसुख, सुहृद मातु पितु भाय ॥
सन्मुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाय ॥ २१७ ॥

वह सम्पति, घर, सुहृद, माता-पिता भाई सब जल जायँ जो कि रघुनाथजीके सम्मुख होनेमें स्वभावसे ही सहायता नहीं करते । कहीं 'सहस सहाय' पाठ है तो यह अर्थ है कि सहस्र भांतिसे सहाय नहीं करते ॥ २१७ ॥

घर घर वाहन साजहिं नाना ❋ हर्षित हृदय प्रभात पयाना ॥१॥
भरत जाय घर कीन्ह विचारू ❋ नगर वाजि गज भवन भँडारू॥२॥

घर-घर अनेक बाहन सजाने लगे और सबके मनमें प्रातःकाल चलनेकी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥१॥ भरतजीने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े, हाथी, भवन, भण्डार ॥ २ ॥

संपति सब रघुपति की आही ❋जो विनु यतन चलउँ तजि ताही॥३॥
तौ परिणाम न मोरि भलाई ❋ आप शिरोमणि साँइ दुहाई ॥४॥

यह सब संपति रघुनाथजीकी है, जो इसको विना यत्न छोड़कर चलूँ ॥३॥ तो परिणाममें भलाई नहीं है, मुझको अपने शिरोमणि स्वामीकी दुहाई है और जहां "पापशिरोमणि" पाठ है वहां अर्थ है कि सब पापियोंमें शिरोमणि गिना जाऊँगा ॥ ४ ॥

करइ स्वामिहित सेवक सोई ❋ दूषण कोटि देइ किन कोई ॥५॥
अस विचारि शुचि सेवक बोले ❋ जो सपनेहुँ निजधर्म न डोले ॥६॥

जो स्वामीका हित करे वही सेवक है, दोष कोई कितना क्यों न दे ॥ ५ ॥ ऐसा विचार कर उन पवित्र सेवकोंको बुलाया; जो स्वप्नमें भी अपने धर्मसे नहीं डोले थे ॥ ६ ॥

कहि सब धर्म मर्म सब राखा ❋ जो जेहि लायक सो तहँ राखा॥७॥

करि सब यत्न राखि रखवारे ॥ राम-मातु पहँ भरत सिधारे ॥८॥

सब धर्म कहकर मर्मकी सब बात कही और जो जिस योग्य था उसको वहां रखा ॥७॥ सब प्रकारके यत्न कर और रखवाले रख भरतजी माताके पास गये ॥ ८ ॥

दोहा-आरत जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान ॥
कहेउ बनावन पालकी, सुखद सुखासन यान ॥ २१८ ॥

सब माताओंको रामजीके विना दुःख विचार कर स्नेहके ज्ञाता भरतजीने पालकी सुखासन सुखदायक यान (सवारी) तैयार करनेको कहा ॥ २१८ ॥

चक चकई इव पुर नर नारी ॥ चहत प्रात उर आरत भारी ॥१॥
जागत सब निशि भयउ बिहाना ॥ भरत बुलाये सचिव सुजाना ॥२॥

पुरके महादुःखी नरनारी चकवा चकवीकी नाईं हृदयसे प्रातःकाल होनेकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ १ ॥ सारी रात जागते ही सबेरा हो गया, तब भरतजीने चतुर मन्त्री बुलाये ॥ २ ॥

कहेउ लेउ सब तिलक समाजू ॥ वनहिं देव मुनि रामहिं राजू ॥३॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जुहारे ॥ तुरत तुरंग रथ लोग सँवारे ॥४॥

कहा कि सब तिलककी सामग्री ले चलो, क्योंकि वनमें ही मुनिराज श्रीरामचन्द्रजीको राज्य तिलक दें ॥ ३ ॥ 'शीघ्र ले चलो' यह वचन सुन मंत्रियोंने जुहार किया और घोड़े, हाथी रथ, तुरंत सजाये ॥ ४ ॥

अरुंधती अरु अग्निसमाऊ ॥ रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥५॥
विप्रवृन्द चढ़ि वाहन नाना ॥ चले सकल तप तेज निधाना ॥६॥

अपनी स्त्री अरुन्धती और अग्निहोत्र इन दोनों सहित रथमें बैठकर प्रथम मुनिराज वसिष्ठजी चले। 'अग्निसमाऊ' श्रौत अग्नि रखनेके पात्रका नाम है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंके समूह भी जो बड़े तेज और तपोनिधान थे वे सब अनेक बाहनोंपर चढ़कर चले ॥ ६ ॥

नगर लोग सब सजि सजि याना ॥ चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥७॥
शिबिका सुभग न जाइ बखानी ॥ चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥८॥

नगरके लोग अपनी-अपनी सवारी सजाकर चित्रकूटको गमन करने लगे ॥ ७ ॥ सुन्दर पालकी जिनका वर्णन नहीं हो सकता, उन पर चढ़कर सब रानियाँ चलीं ॥ ८ ॥

दोहा-सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहिं चलाय ॥
सुमिरि राम सिय चरण तब, चले भरत दोउ भाय ॥ २१९ ॥

अच्छे पवित्र सेवकोंको नगर सौंपकर और सादर सबको आगे चलाकर राम-सीताके चरणोंका स्मरण कर भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई चले ॥ २१९ ॥

इति श्री रामचरितमानसे अयोध्याकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि-पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायामेकादशो विश्रामः ॥ ११ ॥

दोहा-यहि द्वादश विश्राममें, शृङ्गबेरपुर जाय ।
बसे भरत इक रैन पुनि, दीनों कटक चलाय ॥ १२ ॥

राम दरश वश सब नर नारी ॥जनुकरि करिणि चले तकि वारी॥१॥

वन सिय राम समुझि मनमाहीं * सानुज भरत पयादेहिंवजाहीं ॥२॥

रघुनाथजीके दर्शन निमित्त सब नर-नारी ऐसे चले जैसे हथिनी और हाथी गरमीमें जल देखकर चलें ॥ १ ॥ वनमें सीता और रघुनाथजीको मनमें विचारकर शत्रुघ्नसहित भरतजी पैरोंही चले जा रहे हैं ॥ २ ॥

देखि सनेह लोग अनुरागे * उतरि चले हय गजरथ त्यागे ॥३॥
जाय समीप राखि निज डोली * राम-मातु मृदु वाणी बोली ॥४॥

यह स्नेह देखकर लोग प्रेममें मग्न हो गये; और हाथी, घोड़े रथ छोड़कर सब पैरों ही चलने लगे ॥ ३ ॥ (यह दशा देख) श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौशल्याजी अपनी पालकी (भरतके) समीप रखवाकर मीठी वाणी द्वारा कहने लगीं ॥ ४ ॥

तात चढ़हु रथ बलि महतारी * होइहिं प्रिय परिवार दुखारी ॥५॥
तुम्हरे चलत चलै सब लोगू * सकल शोक वश नहिं मग योगू॥६॥

हे तात ! माता बलि जाय, रथपर चढ़ो (तुम्हारे पैरोंसे चलनेसे) प्रिय परिवार दुःखी होता है ॥५॥ तुम्हारे (सवारीमें) चलनेसे सब लोग (सवारीसे) चलेंगे, क्योंकि ये रघुनाथजी के विरह शोकसे दुबले (अशक्त) हैं; पैरोंसे मार्ग चलने योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

शिर धरि वचन चरन शिर नाई * रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥७॥
तमसा[1] प्रथम दिवस करि वासू * दूसर गोमति-तीर निवासू ॥८॥

यह वचन शिर धर चरणोंमें शिर नवाय दोनों भाई रथमें बैठ कर चले ॥ ७ ॥ पहले दिन तमसा नदीके निकट वास कर दूसरा गोमतीके किनारे वास किया ॥ ८ ॥

दोहा-पय अहार फल अशन इक, निशि भोजन सब लोग ॥
करत रामहित नेम व्रत, परिहरि भूषण भोग ॥ २२० ॥

दूध, आहार व फल भोजन एक बार सब लोग रात्रिमें करते थे और सब भूषण भोग त्यागकर रघुनाथजीके निमित्त नियम और व्रत करते थे ॥ २२० ॥

सई[2] तीर बसि चले बिहाने * शृङ्गबेरपुर सब नियराने ॥१॥
समाचार सब सुने निषादा * हृदय विचार करइँ सविषादा ॥२॥

सईतीरें वासकर प्रातःकाल ही सब चले और शृङ्गबेर पुरके निकट पहुँचे ॥ १ ॥ निषाद सब समाचार सुनकर हृदयमें विषादकर विचारने लगा ॥ २ ॥

कारण कवन भरत वन जाहीं * है कछु कपट भाव मनमाहीं ॥३॥
जो पै जिय न होति कुटिलाई * तौ कत लीन्ह सङ्ग कटकाई ॥४॥

क्या कारण है भरतजी वनको जाते हैं ? (निश्चय) इनके मनमें कुछ कपट भाव है ॥ ३ ॥ जो जीमें कुटिलता नहीं होती तो यह सेना साथ क्यों लेते ? ॥ ४ ॥

---

१. तमसा घाघराकी एक शाखा है, अयोध्याजीसे दो योजनके करीब निकलकर आजमगढ़से आगे बढ़कर सरयूमें मिली है । गोमती पीली-भीतके निकट एक झीलसे निकलकर लक्ष्मणपुर (लखनऊ) आदिदेशोंमें होती हुई ४८२ मील चलकर गंगामें मिली है ।

२. गङ्गाजी और गोमतीके मध्यमें सई नदी है, जो अवधमें लगभग २३० मील बहकर जौनपुरके निकट १० मीलकी दूरी पर गोमतीमें मिल गयी है । शृङ्गबेरपुरको इस समय "संगरूर" कहते हैं जो प्रयागके प्रान्तमें है ।

जानहिं सानुज रामहि मारी ❋ करउँ अकंटक राज्य सुखारी ॥५॥
भरत न राजनीति उर आनी ❋ तब कलंक अब जीवन हानी ॥६॥

इन्होंने यह समझा है कि, लक्ष्मण सहित रामजीको मारकर सुखी हो अकंटक राज्य करूँ ॥ ५ ॥ भरतने हृदयमें राजनीतिका विचार नहीं किया (चौदह वर्ष राज्य करते) तब तो कलंक लगता और अब जीवनकी भी हानि होगी (क्योंकि) ॥ ६ ॥

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा ❋ रामहि समर न जीतन हारा ॥७॥
का आचरज भरत अस करहीं ❋ नहि विषबेलि अमिय फल फरहीं ॥८॥

सब सुर-असुर वीर भी एकत्र हो आवें तो भी रघुनाथजीको कोई युद्धमें जीतनेवाला नहीं है ॥ ७ ॥ और भरतजी ऐसा करते हैं यह कोई अचंभे की बात नहीं है, क्योंकि विषकी वेलिपर अमृतफल नहीं आते (आखिर कैकेयीके ही तो पुत्र हैं) ॥ ८ ॥

दोहा–अस विचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु ॥
हथवाँसहु बोरहु तरणि, कीजिय घाटा रोहु ॥ २२१ ॥

यह विचार निषादने अपनी जातिको यह आज्ञा दी कि भाई ! सब सावधान हो जाओ, और हथवासा अर्थात् पतवारी बोर दो । फिर यह शोचकर कि, इससे रोक न होगी, सब नावोंके डुबाने की आज्ञा दो ! अथवा हाथ भर पानीमें नाव डुबा देने को कहा; परन्तु फिर यह विचारा कि सरयू तीरवासी हैं कदाचित् तैर कर चले जावें तब घाटको रोकनेको कहा ॥२२१॥

होइ सँजोइल रोकहु घाटा ❋ ठाटहु सकल मरण कर ठाटा ॥१॥
सन्मुख लोह भरतसन लेहू ❋ जियत न सुरसरि उतरन देहू ॥२॥

सावधान होकर घाट रोक लो और मरणके सब ठाट रचो ॥ १ ॥ भरतके सम्मुख लोहा लो अर्थात् शस्त्रोंसे युद्ध करो, परन्तु जीतेजी गङ्गाजी मत उतरने दो ॥ २ ॥

समर मरण पुनि सुरसरि तीरा ❋ रामकाज क्षण भंगु शरीरा ॥३॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू ❋ बड़े भाग्य अस पाइय मीचू ॥४॥

एक तो युद्धमें मरण और फिर गङ्गाजीके किनारे विशेषकर रघुनाथजीके अर्थ, यह शरीर तो क्षण भंगुर है, एक दिन जायगा ही, इससे रघुनाथजीके काममें आवे तो अच्छा है ॥३॥ भरत रामजीके भाई और राजा हैं और मैं नीच, ऐसी मीच (मृत्यु) बड़े भाग्यसे मिलती है ॥ ४ ॥

स्वामिकाज करिहउँ रण रारी ❋ यश धवलिहुँ भुवन दश चारी ॥५॥
तजहुँ प्राण रघुनाथ निहोरे ❋ दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ॥६॥

स्वामीके निमित्त (बड़ा) संग्राम करूँगा और चौदह भुवनोंमें उज्ज्वल यश प्राप्त करूँगा ॥ ५ ॥ रघुनाथजीके निमित्त प्राण त्यागूँगा, ऐसा होनेसे मेरे हाथोंमें आनन्दके मोदक अर्थात् जीतनेसे रामजीकी प्रसन्नता तथा यश और मरणसे परमपद ॥ ६ ॥

साधु समाज न जाकर लेखा ❋ रामभक्त महँ जासु न रेखा ॥७॥
जाय जियत जग सो महिभारू ❋ जननी यौवन विटप कुठारू ॥८॥

साधु समाजमें जिसका लेखा नहीं और राम भक्तिमें जिसकी रेखा नहीं ॥ ७ ॥ ऐसा मनुष्य जगत्से जाय अर्थात् व्यर्थ जीता है और वह केवल पृथ्वीका भार तथा माताके यौवनरूपी वृक्षको नाश करनेके लिये कुठार ही है ॥ ८ ॥

दोहा-विगत विषाद निषाद पुनि, सबहिं बढ़ाय उछाह ॥
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाह ॥ २२२ ॥

फिर निषादने विषादको दूर कर सबके मनमें उत्साह बढ़ा दिया और श्रीरामचन्द्र-जीको स्मरण कर तुरन्त तरकस, धनुष और बख्तर माँगा ॥ २२२ ॥

बेगिहि भाइहु सजहु संजोऊ * सुनि रजाय कदराय न कोऊ ॥१॥
भले नाथ सब कहहिं सहर्षा * एकहिं एक बढ़ावहिं कर्षा ॥२॥

भाई! शीघ्र युद्धमें सब काम ठीक करो और आज्ञा सुनकर कोई मत डरो ॥१॥ बहुत अच्छा महाराज! ऐसा कह सब कोई प्रसन्न होकर कहने लगे और एक दूसरेका तेहा बढ़ाने ॥ २ ॥

चले निषाद जुहारि जुहारी * सूर सकल रण रुचै रुरारी ॥३॥
सुमिरि रामपद-पंकज पनही * भाथा बाँधि चढ़ावहिं धनुही ॥४॥

वे सब निषादराजको जुहार-जुहार कर चले, सब शूर और युद्ध करनेमें रुचिवाले हैं ॥ ३ ॥ उन्होंने श्रीरघुनाथजीके चरणकमलकी पादुकाओं का स्मरण कर धनुष चढ़ाये और तरकस बाँधे ॥ ४ ॥

आँगर पहिरि कुंडिशिर धरहीं * फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥५॥
एक कुशल अति ओड़न खाँड़े * कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥६॥

अंग में बख्तर और झिलम टोप शिरके ऊपर धरते हैं, फारस बाँस सेल समान करते हैं ॥ ५ ॥ एक कोई तलवार ढाल चलानेमें बड़े चतुर आकाशमें कूदते हैं मानो पृथ्वी छोड़ दी है ॥ ६ ॥

निज निज राज समाज बनाई * गुह राउतहि जुहारहि जाई ॥७॥
देखि सुभट सब लायक जाने * लै लै नाम सकल सनमाने ॥८॥

अपना-अपना समाज बना निषादराजको जाकर जुहार करते हैं ॥ ७ ॥ निषादने योद्धाओं को देख सब लायक जान नाम लेकर सबका सम्मान किया ॥ ८ ॥

दोहा-भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहु ॥
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहु ॥ २२३ ॥

(निषाद बोला)हे भाइयो ! धोखा मत देना; यह आज मेरा बड़ा काम आकर पड़ा है, सो सुन सुभट क्रोधकर बोले-हे वीर अधीर मत हो; अथवा वीर अधीर नहीं होते ॥ २२३ ॥

राम-प्रताप नाथ बल तोरे *करहिं कटक बिनुभट बिनु घोरे॥१॥
जियत पाँव नहिं पीछे धरहीं * रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं॥२॥

हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रताप और आपके बलसे यह सेना हम विना भट और घोड़ेके कर देंगे ॥ १ ॥ जीतेजी पाँव पीछेको नहीं धरेंगे और पृथ्वीको रुण्डमुण्ड कर देंगे ॥ २ ॥

दीख निषादनाथ भल टोलू ❋ कहे बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥३॥
इतना कहत छींक भइ बाँये ❋ कहेउ शकुनियन्ह खेत सुहाये॥४॥

जब निषादने अपने जातियोंका गोल अच्छा सज्जित देखा तो युद्धके ढोल बजानेको कहा ॥३॥ इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई; शकुन विचारनेवालोंने कहा शुभ छींक हुई है; जीत होगी (सुखेतकी छींक है) ॥ ४ ॥

बूढ़ एक कह शकुन विचारी ❋ भरतहिं मिलिय न होइहि रारी॥५॥
रामहि भरत मनावन जाहीं ❋ शकुन कहै अस विग्रह नाहीं ॥६॥

एक बूढ़ा शकुन विचार कर कहने लगा कि भरतसे मिलो, लड़ाई न होगी ॥ ५ ॥ रामजीको भरत मनाने जाते हैं, शकुन ऐसा ही कहता है कि लड़ाई नहीं है ॥ ६ ॥

सुनि गुह कहइ नींक कह बूढ़ा ❋सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥७॥
भरत स्वभाव शील बिनु बूझे ❋बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे॥८॥

सुनकर निषाद बोला–बूढ़ा ठीक कहता है, एकाएक कार्य करनेसे मूर्ख पीछे पछताया करते हैं इस कारण शोच विचार कर ही काम करना उचित है ॥ ७ ॥ भरतजीका स्वभाव शील विना जाने युद्ध करनेसे बड़ी हानि है ॥ ८ ॥

दोहा–गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मर्म मिलि जाइ ॥
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करब उपाय ॥ २२४ ॥

तुम तो सब योद्धा समिटकर घाटोंपर सावधान रहो और मैं जाकर उनसे मिलूँ, उनका भेद लूँ, फिर उनकी मित्र, शत्रु और उदासीन गति जानकर तब वैसा उपाय करूँगा ॥२२४॥

लखब सनेह सुभाव सुहाये ❋ वैर प्रीति नहिं दुरद दुराये ॥१॥
अस कहि भेंट सँजोवन लागे ❋ कन्द मूल फल खग मृग मांगे॥२॥

प्रथम स्वभावसे ही स्नेह विदित हो जायगा, क्योंकि स्नेह और प्रीति छिपानेसे नहीं छिपती ॥१॥ ऐसा कहकर भेंट की सामग्री तैयार करने लगे और कंद, मूल, फल, खग-मृग मांगे ॥२॥

मीन पीन पाठीन पुराने ❋ भरि भरि भार कहारन आने ॥३॥
मिलन साजि सजि मिलन सिधाये❋ मङ्गल मूल शकुन शुभ पाये ॥४॥

मछली पीन अर्थात् मोटी, पुराने पाठीनकी जाति (रोहू) कहार बहँगी भर-भर कर ले आये ॥३॥इस प्रकार मिलनेका साज सजाकर मिलनेको चला और मङ्गल मूल अच्छे शकुन हुए॥४॥

देखि दूरते कहि निज नामू ❋ कीन्ह मुनीशहि दण्ड प्रणामू ॥५॥
जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा ❋ भरतहि कहेउ बुझाय मुनीशा ॥६॥

निषादने दूरसेही देखकर और अपना नाम कहकर मुनिवर वसिष्ठजीको दंडवत प्रणाम

---

१. भेंट की यह रीति है कि, जिस वस्तुका जिसको अधिकार है, वह वही देता है, निषादराज बन और नदीका राजा है, अतः अपने अधिकारानुसार ऐसी भेंट लेकर चला जो पहले कहा, "बूझमित्र अरिमध्यगति" इसी परीक्षा निमित्त तीन प्रकारकी भेंट लेकर चला, कंद मूल मित्रकी परीक्षा, क्योंकि उससे सत्त्वगुण प्रकट होता है खगमृगसे उदासीनकी परीक्षा है क्योंकि उससे रजोगुण जाना जाता है, मीनसे शत्रुकी परीक्षा है क्योंकि उससे तमोगुण प्रकट होता है, अस्तु जैसा इनके मनका भाव होगा वैसी ही भेंट लेंगे।

किया ॥ ५ ॥ रघुनाथजी का प्रिय जानकर वसिष्ठजीने आशीर्वाद दिया; और भरतजीको समझाकर कहा कि यह रघुनाथजीका सखा है ॥ ६ ॥

रामसखा सुनि स्यन्दन त्यागा * चले उतरि उमँगत अनुरागा ॥७॥
गाँव जाति गुह नाम सुनाई * कीन्ह जुहार माथ महि लाई ॥८॥

भरतजीने 'यह रघुनाथजीका सखा है' ऐसा सुनते ही रथ त्याग दिया, अनुराग भर आया और रथसे उतर पैरों ही मिलने चले ॥ ७ ॥ निषादने अपना गांव जाति और नाम कहकर पृथ्वीमें शिर धर जुहार किया ॥ ८ ॥

दोहा-करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाय ॥
मनहुँ लषनसन भेंट भइ, हर्ष न हृदय समाय ॥ २२५ ॥

उसको दंडवत् करते देखकर भरतजीने हृदयसे लगा लिया और ऐसे प्रसन्न हुए मानो लक्ष्मणजीसे भेंट हुई, मनमें प्रसन्नता न समायी ॥ २२५ ॥

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती * लोग सिहाहिं प्रेम की रीती ॥१॥
धन्य धन्य ध्वनि मंगल मूला * सुर सराहि तेहिं वर्षहिं फूला ॥२॥

भरतजी उसको बड़ी प्रीतिसे मिले; लोग प्रेमकी रीति देखकर सराहने लगे ॥ १ ॥ देवता लोग मंगलमय शब्द करते हुए आकाशसे फूल बरसाते हैं ॥ २ ॥

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा * जासु छाँह छुइ लेइय सीचा ॥३॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता * मिलत पुलक परिपूरित गाता॥४॥

(देवता बोले) जो लोक और वेदमें सब भांतिसे नीच है बल्कि जिसकी परिछाहीं भी छूकर स्नान करना पड़ता है ॥ ३ ॥ उसको रामजीके लघु भ्राता गोदभर और पुलकित गात होकर मिलते हैं ॥ ४ ॥

राम राम कहि जे जमुहाहीं * तिनहिं न पापपुंज समुहाहीं ॥५॥
इहि तौ राम लाय उर लीन्हा * कुल समेत जग पावन कीन्हा॥६॥

जो 'राम-राम' कहकर जँभाई लेते हैं उसको पाप समूह नहीं लगते ॥५॥ फिर इसको तो रघुनाथजीने हृदयसे लगाया और कुलसहित जगत्में पवित्र कर दिया है ॥ ६ ॥

करमनाश जल सुरसरि परई * तेहि को कहहु शीश नहिं धरई॥७॥
उलटा नाम जपत जग जाना * बालमीकि भये ब्रह्म समाना ॥८॥

(और देखो) जो कर्मनाशाका जल गङ्गाजीमें पड़े तो बताओ उसको कौन शिरपर नहीं रखता है ? ॥७॥ उल्टा नाम (मरा-मरा) जपकर बाल्मीकिजी सिद्ध हो गये यह जगत् जानता है ॥८॥

दोहा-श्वपच शबर खस यवन जड़, पामर कोल किरात ॥
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥ २२६ ॥

जो श्वपच (चांडाल), शबर, (नट आदि), खश, यवन (म्लेच्छ), जड़ जाति, नीच कोल किरात आदिक हैं वे राम कहनेसे परम पवित्र होते हैं यह भुवनमें विख्यात है ॥ २२६ ॥

नहिं अचरज युग युग चलि आई * केहि न दीन्ह रघुवीर बड़ाई ॥१॥

राम नाम महिमा सुर कहहीं ❋ सुनिसुनि अवध लोग सुख लहहीं॥२॥

यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं, युग-युगसे चली आयी है कि रघुनाथजी ने किसको बड़ाई नहीं दी ? अर्थात् सभी भक्तोंको बड़ाई दी है ॥ १ ॥ रामनामकी महिमाको देवता वर्णन करते और सुन-सुनकर अयोध्यावासी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा ❋ पूछहिं कुशल सुमंगल क्षेमा ॥३॥
देखि भरतकर शील सनेहू ❋ भा निषाद तेहि समय विदेहू ॥४॥

भरतजी प्रेम पूर्वक रामसखासे मिलकर कुशल-क्षेम पूछने लगे ॥ ३ ॥ भरतजीका शील और स्नेह देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया, अर्थात् देहकी सुध न रही ॥ ४ ॥

सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा ❋ भरतहिं चितवत इकटक ठाढ़ा॥५॥
धरि धीरज पद बंदि बहोरी ❋ विनय सप्रेम करत कर जोरी ॥६॥

(पूर्वके कर्तव्यसे) सकुच कर स्नेहसे मनमें आनन्द बढ़ गया, भरतजीको खड़ा हो एकटक देखने लगा॥५॥फिर धैर्य धर चरणोंमें प्रणाम कर प्रेमसे हाथ जोड़कर विनती करने लगा ॥६॥

कुशलमूल पद पंकज देखे ❋ मैं तिहुँकाल कुशल निज लेखे॥७॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे ❋ सहित कोटि कुल मंगल मोरे॥८॥

कुशलमूल आपके पदकमल देखनेसे तीनों कालमें मैं अपनेको कुशल मानता हूँ ॥ ७ ॥ अब हे प्रभो आपके परम अनुग्रहसे करोड़ कुलसहित मेरे मंगल हो गये ॥ ८ ॥

दोहा-समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोय ॥
जो न भजै रघुवीरपद, जग विधि वंचित सोय ॥२२७ ॥

मेरी करतूत,कुल और प्रभुकी महिमाको समझकर भी जो रघुनाथजीके चरणोंको नहीं भजता है वही जगत्में वंचित हैअर्थात् जब उनके भजनेसे मुझसे नीच कुलका भी साधु समाजमें लेखा हो गया तो फिर रघुनाथजीका जो भजन न करे जगत्में विधाता द्वारा वही वंचित है ॥२२७॥

कपटी कायर कुमति कुजाती ❋ लोक वेद बाहर सब भाँती ॥१॥
राम कीन्ह आपन जबहींते ❋ भयउँ भुवन भूषण तबहींते ॥२॥

मैं कपटी, कायर, कुमति, कुजाति, और लोक-वेदसे सब प्रकार बाहर हूँ ॥ १ ॥ परंतु जब रघुनाथजीने अपनाया तभीसे मैं संसारका भूषण हो गया ॥ २ ॥

देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई ❋ मिले बहोरि लषण लघुभाई ॥३॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी ❋ सादर सकल जुहारीं रानी ॥४॥

सुन्दर प्रीति और विनय देख सुनकर लक्ष्मणजीके छोटे भाई फिर उससे मिले ॥३॥फिर निषादने अपना नाम लेकर कोमल वाणीसे सब रानियोंको आदर पूर्वक जुहारा ॥ ४ ॥

जानि लषणसम देहि अशीशा ❋ जियहु सुखी शतलाख बरीशा॥५॥
निरखि निषाद नगर नर नारी ❋ भये सुखी जनु लषण निहारी॥६॥

रानियाँ निषादको लक्ष्मणजीके समान जानकर आशीष देती हैं कि; सौ लाखवर्षतक सुखसे जीवित रहो ॥ ५ ॥ निषादको नगरके नर नारी देखकर ऐसे प्रसन्न हो गये, मानो लक्ष्मणजी को देख लिया ॥ ६ ॥

कहहिं लहेउ यहि जीवनलाहू ❀ भेंटेउ राम-भाइ भरि बाहू ॥७॥
सुनि निषाद निज भाग्य बड़ाई ❀ प्रमुदित मन लै चलेउ लिवाई॥८॥

और कहने लगे कि जगत्में इसने जीवनका लाभ प्राप्त किया, जो रघुनाथजीके भाईसे बाहों भरकर इसने भेंटकी ॥ ७ ॥ निषाद अपने भाग्यकी बड़ाई सुनकर प्रसन्न हो सबको अपने स्थान पर ले चला ॥ ८ ॥

दोहा-सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाय ॥
घर तरुतर सर बाग वन, बास बनायउ जाय ॥ २२८ ॥

फिर निषादने सेवकोंको सैनसे चेतया, वे स्वामीका इशारा पाकर चले और उन्होंने वृक्षके तले तथा तालाब, बाग, वनके निकट बहुतसे घर रहने के लिए बनाये, इशारा करनेका यह भी आशय है कि अब लड़ाईका बाना छोड़कर सेवामें लगो ॥ २२८ ॥

शृंगबेरपुर भरत दीख जब ❀भये स्नेह वश अंग शिथिल तब॥१॥
सोहत दिये निषादहि लागू ❀ जनु तनु धरे विनय अनुरागू ॥२॥

जब भरतने शृङ्गबेरपुरको देखा; तब स्नेहसे शरीर शिथिल हो गया ॥१॥ निषादके कंधे पर हाथ रक्खे हुए ऐसे शोभित हैं, मानो विनय और अनुरागने ही शरीर धारण किया हो॥२॥

इहि विधि भरत सेन सब संगा ❀ दीख जाय जग पावनि गंगा ॥३॥
राम-घाट कहँ कीन्ह प्रणामा ❀ भा मन मुदित मिले जनु रामा॥४॥

इस प्रकारसे भरतजी सब सेना साथ लिये चले और उन्होंने जाकर जगत् पवित्र करने वाली गंगाजीका दर्शन किया ॥ ३ ॥ फिर भरतजीने रामघाटको प्रणाम किया और मन ऐसा प्रसन्न हुआ कि, मानो रघुनाथजी ही मिले ॥ ४ ॥

करहिं प्रणाम नगर नर नारी ❀ मुदित ब्रह्म मय वारि निहारी॥५॥
करि मज्जन माँगहिं करजोरी ❀ रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी ॥६॥

नगरके नर-नारी प्रणाम करने लगे और ब्रह्ममय जल देखकर प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ स्नान पूर्वक हाथ जोड़कर यही मांगते हैं कि, श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलमें प्रीति हो ॥ ६ ॥

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू ❀ सकल सुखद सेवक सुर धेनू ॥७॥
जोरि पाणि माँगहिं वर एहू ❀ सीय राम-पद सहज सनेहू ॥८॥

भरतजीने कहा-हे गङ्गाजी! आपकी रेणु सब सुखकी दाता और सेवकोंके लिये कामधेनु है ॥७॥ मैं हाथ जोड़कर वर माँगता हूँ कि, मेरा सीतारामके चरणोंमें स्वाभाविक स्नेह हो॥८॥

दोहा-इहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुशासन पाय ॥
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लिवाय ॥ २२९ ॥

इस प्रकारसे भरतजीने स्नान किया और फिर गुरुकी आज्ञा पाकर और सब माताओंको स्नानसे निश्चिन्त हुई जान डेरोंको लिवा ले चले ॥ २२९ ॥

जहँ तहँ लोगन डेरा कीन्हा ❀ भरत शोध सबही कर लीन्हा ॥१॥
गुरु-सेवा करि आयसु पाई ❀ राम-मातुपहँ गये दोउ भाई ॥२॥

जहां-तहां लोगोंने डेरे किये और भरतजीने सबका शोध (खबर) कर लिया है ॥ १ ॥ गुरुकी सेवा कर और आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजीकी माताके पास गये ॥ २ ॥

चरण चापि कहि कहि मृदुबानी ❋ जननी सकल भरत सन्मानी ॥३॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई ❋ आपु निषादहिं लीन्ह बुलाई ॥४॥

चरण दाब और कोमल वाणी कहकर भरतजीने सब माताओंका सम्मान किया ॥ ३ ॥ फिर माताओंकी सेवकाई भाईको सौंप आपने निषादको बुलाया ॥ ४ ॥

चले सखा करसों कर जोरे ❋ शिथिल शरीर सनेह न थोरे ॥५॥
पूछत सखहिं सो ठाँव दिखाऊ ❋ नेकु नैन मन जरनि जुड़ाऊ ॥६॥

सखाका हाथसे हाथ पकड़कर चले,अधिक स्नेहसे शरीर शिथिल हो रहा है ॥५॥ निषादसे पूछने लगे कि,वह स्थान दिखाओ;जिसको देखकर जरा नेत्र और मनकी जलन तो मिटाऊँ॥६॥

जहँ सिय राम लषण निशि सोये ❋ कहत भरे जल लोचन कोये ॥७॥
भरत वचन सुनि भयउ विषादू ❋ तुरत तहाँ लै गयउ निषादू ॥८॥

जहां सीता-राम-लक्ष्मण रातमें सोते थे, यह कहते ही नेत्रोंके कोयोंमें जल भर आया ॥ ७ ॥ भरतके वचन सुनकर विषाद हुआ और निषाद वहाँ उनको तुरंत ले गया ॥ ८ ॥

दोहा—जहँ शिंशपा पुनीत तरु, रघुवर किय विश्राम ॥
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दण्ड प्रणाम ॥ २३० ॥

जहां शिंशपा (सीसम) के पवित्र वृक्षतले श्रीरामचन्द्रजीने विश्राम किया था, अत्यन्त स्नेह और आदरसे उन स्थानोंको भरतजीने दंडवत् प्रणाम किया ॥ २३० ॥

कुश साथरी निहारि सुहाई ❋ कीन्ह प्रणाम प्रदक्षिण लाई ॥१॥
चरण रेख रज आँखिन लाई ❋ बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥२॥

भरतजीने सुन्दर कुशकी साथरी देख प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया ॥ १ ॥ और वह चरणरेखाकी रेणु (रज) आंखोंमें लगाई, वह अधिक प्रीति कहते नहीं बनती ॥ २ ॥

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे ❋ राखे शीश सीय सम लेखे ॥३॥
सजल विलोचन हृदय गलानी ❋ कहत सखासन वचन सुबानी ॥४॥

दो-चार सोनेके टुकड़े जो जानकीके वस्त्रोंसे झड़ पड़े थे उनको देखकर भरतजीने जानकीजीके समान जान शिर पर रख लिया ॥ ३ ॥ फिर नेत्रोंमें जल भर हृदयमें ग्लानि कर सखासे कोमल वचन द्वारा बोले ॥ ४ ॥

श्रीहत सीय विरह द्युतिहीना ❋ यथा अवध नर नारि मलीना॥५॥
पिता जनक देउ पटतर केही ❋ करतल भोग योग जग जेही ॥६॥

यह जानकीजीके विरहमें ऐसी शोभा (कांति) हीन हो रहे हैं; जैसे अयोध्याके नर-नारी रघुनाजीके विना मलिन हैं ॥ ५ ॥ पिता जनकजीकी उपमा किससे दूँ कि जिसके हाथमें जगत‌के योग और भोग हैं ॥ ६ ॥

श्वसुर भानुकुल भानु भुवालू ❋ जेहि सिहात अमरावति पालू ॥७॥

प्राणनाथ रघुनाथ गुसांई ❋ जो बड़ होत सो राम बड़ाई ॥८॥

जिनके सूर्यवंशोत्पन्न सूर्यके समान तेजस्वी महाराज दशरथ श्वसुर, जिनकी इन्द्र भी बड़ाई करते हैं ॥ ७ ॥ और जिनके प्राणनाथ (स्वामी) महाराज श्रीरामचन्द्रजी हैं जो कि ईश्वर हैं। जो कोई बड़ा हुआ है; वह रघुनाथजीके बड़ाई देने पर बड़ा हुआ ॥ ८ ॥

दोहा–पति देवता सुतीयमणि, सीय साथरी देखि ॥
विदरत हृदय न हहरि मम, पविते कठिन बिसेखि ॥ २३१ ॥

पतिव्रता स्त्रियोंकी शिरोमणि सीताजीकी साथरी (कुशकी सेज) देखकर भी जो मेरा घवड़ाया हृदय विदीर्ण नहीं होता तो वह वज्रसे भी कठिन है ॥ २३१ ॥

लालन योग लषण लघु लोने ❋भये न भाइ अस अहहिं न होने॥१॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे ❋ सिय रघुवीरहि प्राण पियारे ॥२॥

प्यार करने योग्य, सब भांति सुख भोगनेवाले लक्ष्मणसे छोटे भाई न हुए; न हैं और होंगे ॥ १ ॥ पुरवासियोंके प्यारे और माता-पिताके दुलारे तथा सीता रामको प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं ॥ २ ॥

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ ❋ तात बाउ तनु लाग न काऊ ॥३॥
ते बन बसहिं विपति सब भाँती ❋ निदरे कोटि कुलिश यह छाती॥४॥

जो कोमल मूर्ति सुकुमार स्वभाव है, तत्ती पवन भी जिनके शरीरमें कभी नहीं लगी ॥३॥ वे वनमें बसें और सब भांतिसे विपत्ति सहें। अहो ! इस छातीने करोड़ वज्रोंका भी तिरस्कार कर दिया ॥ ४ ॥

राम जनमि जग कीन्ह उजागर ❋ रूपशील सुख सब गुण आगर॥५॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता ❋ रामस्वभाव सबहिं सुखदाता ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजीने जन्म लेकर जगतको उजागर कर दिया, जो रूप शील सुख और सब गुणोंके आगार हैं ॥ ५ ॥ पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता और माता सबको श्रीरघुनाथजी स्वभावसे ही सुख देने वाले हैं ॥ ६ ॥

वैरिउ राम-बड़ाई करहीं ❋बोलनि मिलनि विनयमनहरहीं॥७॥
शारद कोटि कोटि शत शेखा ❋करि न सकहिं प्रभुगुणगण लेखा॥८॥

वैरी भी रघुनाथजीकी बड़ाई करते हैं कि बोलने मिलने और विनयसे मन हर लेते हैं ॥७॥ करोड़ सरस्वती और सौ करोड़ शेषजी भी प्रभुके गुणोंके गणका लेखा नहीं कर सकते ॥८॥

दोहा–सुख स्वरूप रघुवंश मणि, मंगल मोद निधान ॥
ते सोवत कुश डासि महि,विधि गत अति बलवान ॥ २३२ ॥

सुखरूप रघुनाथजी-जो मंगल और आनंदके घर हैं वे पृथ्वीमें कुश बिछाकर सोते हैं अहो ! विधाताकी गति अत्यन्त बलवान् है ॥ २३२ ॥

राम सुना दुख कान न काऊ ❋ जीवन् तरु जिमि जुगवत राऊ॥१॥
पलकनयन फणिमणि जेहि भाँती ❋जुगवहिं जननि सकल दिन राती॥२॥

रघुनाथजीने कभी कानसे भी दुःखका नाम नहीं सुना था, राजा जीवनवृक्षकी तरह उनको

रखते थे ॥ १ ॥ जैसे पलक नेत्रों की, सर्प मणिकी रक्षा करते हैं वैसे ही दिन-रात सब रानी रघुनाथजीकी रक्षा करती हैं ॥ २ ॥

ते अब फिरत विपिन पदचारी ❋ कन्द मूल फल फूल अहारी ॥३॥
धिक कैकेयी अमंगल-मूला ❋ भयसि प्राण- प्रीतम प्रतिकूला॥४॥

वे अब वनमें कंद, मूल, फल, फूल भोजन करते हुए पैरों फिरते हैं ॥ ३ ॥ अमंगल मूल कैकेयीको धिक्कार है, जो ऐसे प्राण प्यारेके प्रतिकूल हो गई ॥ ४ ॥

मैं धिक धिक अघ उदधि अभागी❋ सब उत्पात भयेउ जेहिं लागी॥५॥
कुल कलंक करि सृजेउ विधाता ❋ साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता॥६॥

और मुझ पापके सागर अभागेको भी धिक्कार है,जिसके निमित्त ये सब उत्पात हुए॥५॥ मुझको विधाताने कुलका कलंक उत्पन्न किया, कुमाताने स्वामिद्रोही बना दिया ॥ ६ ॥

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू ❋ नाथ करिय कत बादि विषादू॥७॥
राम तुमहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं ❋यह निर्जोस दोष विधि वामहिं ॥८॥

सुनकर प्रेमपूर्वक निषाद समझाने लगा–नाथ वृथा क्यों विषाद करते हो ? ॥ ७ ॥ राम आपको और आप रामको प्यारे हो, निर्जोस सारांश–यह दोष वाम विधाताका है ॥ ८ ॥

छन्द–विधि वामकी करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ॥
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी ।
तुलसी न तुमसों राम प्रीतम कहत हूँ सोहैं किये ॥
परिणाम मंगल जानि अपने आनिये धीरज हिये ॥२१ ॥

वाम विधाताकी करणी कठिन है, जिसने माताको बौरा दिया, उस रातमें तो रघुनाथजी आदरसे वार-वार आपकी सराहना करते थे, तुलसीदासजी कहते हैं आपके समान कोई रघुनाथजीको प्यारा नहीं, यह मैं सौगन्ध करके कहता हूँ परिणाममें भलाई है यह जानकर अपने मनमें धैर्य धरिये ॥ २१ ॥

सोरठा–अन्तरयामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन ॥
चलिय करिय विश्राम, यह विचार दृढ़ आनि मन ॥ १५ ॥

रघुनाथजी अन्तर्यामी संकोची प्रेमी और कृपासागर हैं यह मनमें दृढ़ निश्चय ले आइये और चलकर विश्राम कीजिये ॥ १५ ॥

सखा-वचन सुनि उर धरि धीरा ❋ वास चले सुमिरत रघुवीरा ॥१॥
यह सुधि पाय नगर नर नारी ❋ चले विलोकन आरत भारी ॥२॥

सखाके वचन सुन हृदयमें धीरज धर रघुनाथजीका स्मरण करते भरतजी स्थान पर चले॥१॥ उस नगरके नर-नारी यह सुध पाकर बहुत दुःखित हो बड़ी शीघ्रतासे देखनेके लिये चले ॥२॥

परदक्षिण करि करहिं प्रणामा ❋ देहिं कैकयिहि खोरि निकामा॥३॥
भरि भरि वारि विलोचन लेहीं ❋ वाम विधातहि दूषण देहीं ॥४॥

(नगरके नारी नर) प्रदक्षिणा करते प्रणाम करके और कैकेयीको अनेक प्रकारसे बुरा दोष देते हैं ॥ ३ ॥ नेत्रोंमें जल भर भरकर वाम विधाताको भी दोष देते हैं ॥ ४ ॥

एक सराहहिं भरत सनेहू ❋ कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥५॥
निन्दहि आप सराहि निषादहिं ❋ को कहि सकै विमोह बिषादहिं ॥६॥

(नर नारियोंमें) एक भरतका स्नेह सराहते हैं; कोई कहते हैं राजाने प्रेम निवाहा ॥ ५ ॥ अपनी निन्दा और निषादकी सराहना करते हैं विशेष मोह और विषाद कौन वर्णन कर सके ॥६॥

इहि विधि राति लोग सब जागा ❋ भा भिनुसार गुदारा लागा ॥७॥
गुरुहिं सुनाव चढ़ाव सुहाई ❋ नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥८॥

इस प्रकार रात भर लोग जगे, प्रातःकाल होते ही उतरने चले ॥ ७ ॥ गुरुजीको अच्छी नावमें चढ़ाया और नई नावपर सब माताओं को चढ़ाया ॥ ८ ॥

दण्ड चारिमहँ भै सब पारा ❋ उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥९॥

चार घड़ीमें सब पार होगये, तब भरतजीने उतर कर सबकी शोध कर ली ॥ ९ ॥

दोहा-प्रातक्रिया करि मातुपद, वंदि गुरुहि शिर नाय ॥
❋ आगे किये निषादगण, दीन्हेउ कटक चलाय ॥ २३३ ॥

भरतजीने प्रात-क्रिया करके और माताके चरणोंको वंदना कर और गुरुजीको शिर नवा-कर निषादोंको आगे कर कटक चला दिया ॥ २३३ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे अयोध्याकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि-पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां द्वादशो विश्रामः ॥ १२ ॥

दोहा-त्रयोदशहि विश्राममें, भरद्वाज मुनि पास ।
भरत गये आतिथ्य तब, कीन्हों हिये हुलास ॥ १ ॥

कियउ निषाद-नाथ अगुआई ❋ मातु पालकी सकल चढ़ाई ॥१॥
साथ बुलाय भाइ लघु लीन्हा ❋ विप्रन सहित गमन गुरु कीन्हा॥२॥

आगे निषादको करके सब माताओंकी पालकी चलायी ॥ १ ॥ भरतजीने छोटे भाईको साथ बुला लिया और ब्राह्मणोंके सहित गुरुजीने गमन किया ॥ २ ॥

आप सुरसरिहिं कीन्ह प्रणामू ❋ सुमिरे लषण सहित सिय रामू॥३॥
गवने भरत पयादेहि पाये ❋ कोतल संग जाहिं डोरि आये ॥४॥

आपने (भरतने) गङ्गाजीको प्रणाम किया और लक्ष्मण सीतासहित रघुनाथजीका स्मरण किया ॥३॥ भरतजी पैदल चले और कोतल घोड़ोंकी बाग पकड़े पकड़े सेवक चले ॥ ४ ॥

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा ❋ होइय नाथ अश्व असवारा ॥५॥
राम पयादेहिं पाँव सिधाये ❋ हम कहँ रथ गज वाजि न भाये॥६॥

अच्छे सेवक वारंवार कहने लगे-महाराज! घोड़े पर सवार हो, यह सुन भरतजी बोले॥५॥ रघुनाथजी प्यादे पांव सिधाये, इससे हमको रथ, हाथी, घोड़े अच्छे नहीं लगते ॥ ६ ॥

शिरभर जाउँ उचित अस मोरा ❋ सबते सेवक-धर्म कठोरा ॥७॥
देखि भरतगति सुनि मृदुवानी ❋ सब सेवक गण गरहिं गलानी ॥८॥

मुझे यह उचित है कि शिरके बल जाऊँ क्योंकि सेवकका धर्म सबसे कठोर है ॥ ७ ॥ भरतजीकी गति देख और कोमल वाणी सुनकर सब सेवक ग्लानिके मारे गलने लगे ॥ ८ ॥

दोहा–भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेश प्रयाग ॥
कहत राम सिय राम सिय, उमँगि उमँगि अनुराग ॥ २३४ ॥

भरतजी तीसरे पहरको प्रयागमें पहुँचे और अनुराग उमड़ आया; राम-सीता, राम-सीता कहने लगे ॥ २३४ ॥

झलका झलकत पायँन कैसे * पंकज कोश ओस कण जैसे ॥१॥
भरत पयादेहि आये आजू * भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥२॥

झलका (छाले) पांवोंपर इस प्रकारसे झलकने लगे जैसे कमलकी कलीपर ओसकी बूँद ॥ १ ॥ आज भरतजी प्यादे पाँव आये, यह सुनकर समाज दुखी हुआ ॥ २ ॥

खबरि लीन्ह सब लोग अन्हाये * कीन्ह प्रणाम त्रिवेणी आये ॥३॥
सविधि सितासित नीर अन्हाने * दिये दान महिसुर सनमाने ॥४॥

सब लोगोंकी शोध खबर ली त्रिवेणीके निकट आ प्रणाम किया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक गंगा-यमुनाके जलमें स्नान कर दान दे ब्राह्मणोंका सम्मान किया ॥ ४ ॥

देखत श्यामल धवल हिलोरे * पुलक शरीर भरत कर जोरे ॥५॥
सकल कामप्रद तीरथ-राऊ * वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥६॥

श्यामली-धौली लहरें देखकर भरतजी पुलकित शरीर हो हाथ जोड़कर बोले ॥५॥ तीर्थ-राज सब कामनाओंको देनेवाला है, यह बात वेद विदित है और जगत्में प्रभाव भी प्रगट है॥६॥

माँगौं भीख त्यागि निज धरमू * आरत काह न करहिं कुकरमू ॥७॥
असजिय जानि सुजान सुदानी * सफल करहिं जग याचक बानी॥८॥

क्षत्रियको भीख मांगना बुरा है सो मैं धर्म त्याग भीख मांगता हूँ, दुःखी पुरुष क्या कुकर्म नहीं करते ? क्षत्रियोंको तप किये विना कुछ मांगनेका निषेध है, इससे धर्म त्याग कहा। अथवा यमुना सूर्यपुत्री और गंगाविष्णुके अंगुष्ठसे हैं भरतजी भी सूर्यवंशके होनेसे अपने पूज्योंसे मांगनेमें दोष कहते हैं ! अथवा भीखको त्याग अपना धर्म रामकी सेवा मांगता हूँ। अथवा तुम्हारा आशीर्वाद मांगता हूँ 'आरत काह' दुखी हूँ तो कुकर्म नहीं किया॥७॥ ऐसा जीमें जान चतुर तथा उत्तम दानी जगत्में याचककी वाणीको सफल करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान ॥
जन्म जन्म रति रामपद, यह वरदान न आन ॥ २३५ ॥

अर्थ, धर्म, काममें मेरी प्रीति नहीं; मैं मोक्ष पदको नहीं चाहता, केवल यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म-जन्ममें सीतारामजीके चरणोंमें प्रीति हो अन्य वरदान नहीं ॥ २३५ ॥

जानहिं राम कुटिल करि मोही * लोग कहैं गुरु साहब द्रोही ॥१॥
सीताराम-चरण रति मोरे * अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे ॥२॥

चाहे रघुनाथजी मुझे कुटिल करके जानें, लोग गुरु और स्वामी द्रोही कहें ॥ १ ॥ परन्तु सीतारामजीके चरणोंमें आपके अनुग्रहसे प्रतिदिन प्रीति बढ़े ॥ २ ॥

जलद जन्मभरि सुरति बिसारे ❀ याचत जल पवि पाहन डारे ॥३॥
चातक रटनि घटे घटि जाई ❀ बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई ॥४॥

जैसे मेघ पपीहेकी सुधि जन्म भर बिसारे रहता है, पपीहा जल चाहता है,और वह उस पर पत्थर और वज्र डालता है ॥ ३ ॥ परंतु इन सबके होते हुए जो चातककी सब रटनि घट जाय तो उसके प्रेमकी मर्यादा घट जाय और जो मेघमें दृढ़ प्रेम बढ़ता जाय तो चातककी सब प्रकार भलाई (बड़ाई) है अर्थात् वह पदवी तो उसे प्रेमके कारण मिली है छोड़नेसे फिर न रहेगी । अथवा इतने पर भी चातककी रटन नहीं घटती, चाहे आप मर जाय पर प्रेम बढ़ता जाता है, कारण कि प्रेमके बढ़नेमें सब प्रकार भलाई है ॥ ४ ॥

कनकहि बान चढ़े जिमि दाहे ❀ तिमि प्रीतम पद प्रेम निबाहे ॥५॥
भरत वचन सुनि माँझ त्रिबेनी ❀ भइ मृदुवाणि सुमङ्गल-देनी ॥६॥

इसी प्रकार सोना कुन्दन जितना अग्निसे प्रेम निबाहता है अर्थात् अग्निको जितना दाह देता है उतनी उसपर बान (शोभा) बढ़ती है, सो वह उससे प्रेमके निर्वाहके साथ है ऐसा मेरा प्रेम हो, क्योंकि स्वामीके चरणोंमें मन लगाने से सेवककी शोभा है चाहे कितना ही क्लेश क्यों न हो ॥ ५ ॥ भरतजीके वचन सुन त्रिवेणीसे कोमल मंगलदायक वाणी हुई ॥ ६ ॥

तात भरत तुम सब विधि साधू ❀ रामचरण अनुराग अगाधू ॥७॥
बादि गलानि करहु मनमाहीं ❀तुमसम रामहि प्रिय कोउ नाहीं॥८॥

हे तात भरतजी ! तुम सब प्रकारसे साधु हो, रामजीके चरणोंमें तुम्हारा अगाध प्रेम है ॥७॥ अतः मनमें वृथा ग्लानि मत करो; तुम्हारे समान रामजीको अन्य कोई प्यारा नहीं है ॥८॥

दोहा–तनु पुलके हिय हर्ष सुनि, बेणि वचन अनुकूल ॥
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित वर्षहिं फूल ॥ २३६ ॥

यह त्रिवेणीके अनुकूल वचन सुन भरतजी शरीरसे पुलकायमान हुए और हृदयमें हर्ष हुआ भरतजीको धन्य-धन्य कहकर देवता हर्षित हो फूल बरसाने लगे ॥ २३६ ॥

प्रमुदित तीरथराज-निवासी ❀ वैखानस बटु गृही उदासी ॥१॥
कहहिं परस्पर मिलि दशपाँचा ❀ भरत सनेह शील शुचि साँचा ॥२॥

तीर्थराजके रहनेवाले वैखानस, बटु (ब्रह्मचारी), गृहस्थ और उदासी प्रसन्न हो ॥ १ ॥ परस्पर दश-पांच मिलकर कहते हैं कि भरतजीका स्नेह शील पवित्र और सत्य है ॥ २ ॥

सुनत राम-गुणग्राम सुहाये ❀ भरद्वाज मुनिवर पहँ आये ॥३॥
दंड प्रणाम करत मुनि देखे ❀ मूरतिवंत भाग्य निज लेखे ॥४॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर गुणग्राम सुनते ही भरतजी भरद्वाज मुनिके निकट आये ॥ ३ ॥ मुनिने जैसे दंड प्रणाम करते भरतजीको देखा वैसे जाना कि मानो अपने भाग्य मूर्ति धारण कर आ गये ॥ ४ ॥

धाय उठाय लाय उर लीन्हे ❀ दीन्ह अशीश कृतारथ कीन्हे ॥५॥
आसन दीन्ह नाइ शिर बैठे ❀ चहत सकुचि गृहजनु भजि पैठे॥६॥

दौड़कर उठाकर हृदयसे लगाया और आशीष दे कृतार्थ किया ॥ ५ ॥ आसन दिया और भरत शिर नवाकर बैठे, जैसे सकुचकर घरमें भागकर बैठना चाहते हैं ॥ ६ ॥

मुनि पूछब कछु यह बड़ शोचू * बोले ऋषि लखि शील सँकोचू ॥७॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई * विधि करतब पर कछु न बसाई ॥८॥

मुनि कुछ पूछेंगे यह बड़ा शोच है; तब शील संकोच देखकर ऋषि बोले ॥ ७ ॥ सुनो भरतजी ! हमने सब सुध पायी है, विधाताके कर्तव्य पर कुछ नहीं चलता ॥ ८ ॥

दोहा-तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति ॥
तात कैकेयिहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति ॥ २३७ ॥

हे तात ! तुम अपने जीमें माताकी करतूत समझकर ग्लानि मत करो, कैकेयीका भी कुछ दोष नहीं क्योंकि सरस्वती इसकी मति बिगाड़ गई थी ॥ २३७ ॥

इहौ कहत भल कहइ न कोऊ * लोक वेद बुध सम्मत दोऊ ॥१॥
तात तुम्हार विमल यश गाई * पाइहि लोकहु वेद बड़ाई ॥२॥

इतना कहनेमें भी कोई भला नहीं कहेगा, क्योंकि लोक और वेद पंडितोंको दोनों सम्मत हैं ॥ १ ॥ लोकके मतमें तो कैकेयीका दोष, वेदके मतमें सरस्वतीका दोष है, सो ये दोनों प्रभुको सम्मत हैं, उनकी इच्छासे हुए हैं, इसमें किसीका दोष नहीं, परंतु हे तात ! तुम्हारा उज्ज्वल यश गानेवाले लोक और वेद दोनोंमें बड़ाई पावेंगे ॥ २ ॥

लोक वेद सम्मत सब कहई * जेहिं पितु राज्य देइ सोइ लहई ॥३॥
राउ सत्यव्रत तुमहिं बुलाई * देत राज्य सुख धर्म बड़ाई ॥४॥

लोक और वेदका ऐसा सिद्धान्त कहते हैं, कि जिसको पिता राज्य दे वही पावे ॥ ३ ॥ सत्यवादी महात्मा राजा बुलाकर राज्य तुम्हें देते तथा सब सुख और धर्म बड़ाई होती, परन्तु ॥ ४ ॥

राम गवन बन अनरथ-मूला * जो सुनि सकल विश्व भै शूला ॥५॥
सो भावीवश रानि सयानी * करि कुचाल अन्तहु पछितानी ॥६॥

रामजीका वनगमन अनर्थका मूल हुआ, जिसे सुनकर समस्त विश्व भरको शूलसा हो गया ॥ ५ ॥ सो होनहारके वश कुचालकर अन्तमें चतुर रानी भी पछितायी ॥ ६ ॥

तहउँ तुम्हार अल्प अपराधू * कहै सो अधम अयान असाधू ॥७॥
करतेउ राज्य तुमहिं नहिं दोषू * रामहिं होत सुनत सन्तोषू ॥८॥

उसमें जो तुम्हारा थोड़ा भी अपराध कहेंगे वे नीच, निर्बुद्धि तथा असाधु गिने जायँगे ॥ ७ ॥ राज्य करते तो भी तुम्हें दोष नहीं था, किंतु रघुनाथजीको सुनकर सन्तोष ही होता ॥ ८ ॥

दोहा-अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु ॥
सकल सुमंगल-मूल जग, रघुवर चरण सनेहु ॥ २३८ ॥

भरतजी ! अब तो तुमने बहुत अच्छा किया, यह मत उचित ही था, रामजीके चरणोंमें स्नेह होना संसारमें सब मंगलका मूल है ॥ २३८ ॥

सो तुम्हार धन जीवन प्राना ❋ भूरि भाग्य को तुमहि समाना॥१॥
यह तुम्हार आचरज न ताता ❋ दशरथ सुवन राम-प्रिय भ्राता॥२॥

तुम्हारा यह प्रेम धन, जीवन प्राण है, तुम्हारे समान बड़भागी कौन है ? ॥१॥ और तुममें यह प्रेम होना आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि तुम दशरथजीके पुत्र रामजीके प्रिय भाई हो ॥२॥

सुनहु भरत रघुवर मनमाहीं ❋ प्रेमपात्र तुमसम कोउ नाहीं ॥३॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती ❋ निशि सब तुमहि सराहत बीती॥४॥

सुनो भरतजी ! रघुपतिके मनमें तुम्हारे समान कोई प्रेमका पात्र नहीं है॥३॥लक्ष्मण, राम, सीता को अत्यन्त प्रेम पूर्वक सारी रात तुम्हें याद करते और बड़ाई करते बीती थी ॥ ४ ॥

जाना मर्म नहात प्रयागा ❋ मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ॥५॥
तुम पर अस सनेह रघुवरके ❋ सुखजीवन जग जस जड़ नरके॥६॥

और प्रयागमें नहाते प्रेमका मर्म जाना कि तुम्हारे अनुरागमें मग्न हो जाते थे। अथवा जब प्रयाग नहाने को गये और किसीने यह संकल्प पढ़ा कि 'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे' तब तुम्हारी याद होनेसे तुम्हारे अनुरागमें मग्न हो गये ॥ ५ ॥ तुमपर रघुनाथजीका ऐसा स्नेह है जैसा संसारमें मूर्खोंका सुखमय जीवन पर ॥ ६ ॥

यह न अधिक रघुवीर-बड़ाई ❋ प्रणत कुटुम्बपाल रघुराई ॥७॥
तुम तौ भरत मोर मत येहू ❋ धरे देह जनु राम सनेहू ॥८॥

यह भी रघुनाथजीकी अधिक बड़ाई नहीं है, वे रामजी तो प्रणत अर्थात् जो प्रणाम भी करते हैं, उनके कुटुम्बकी पालना करते हैं ॥ ७ ॥ हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम साक्षात् रघुनाथजीके स्नेहकी देह धारण किये हो ॥ ८ ॥

दोहा–तुम कहँ भरत कलङ्क यह, हम सब कहँ उपदेश ॥
राम भक्ति रससिद्धि हित, भा यह समय गणेश ॥ २३९ ॥

हे भरतजी ! तुमने यह बात अपने को कलङ्करूप मानी है, वह सबोंका उपदेश रूप है, रामभक्तिरसको सिद्ध करनेके लिये यह समय गणेशरूप हुआ अर्थात् सबके प्रथम हुआ भाव यह कि सबसे पूर्व भरतने ही रामभक्तिका रस सिद्ध किया ॥ २३९ ॥

नवविधुविमल तात यश तोरा ❋ रघुवर किंकर कुमुद चकोरा ॥१॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना ❋ घटिहि न जगनभ दिन दिन दूना॥२॥

हे तात ! तुम्हारा अमल यश नवीन (दोयजका) चन्द्रमा है, रघुवरके दास कुमुद और चकोर हैं ॥ १ ॥ यह चन्द्रमा सदा उदित रहेगा और कभी अस्त नहीं होगा और यह कभी घटेगा नहीं, जगतरूपी आकाशमें दिन-दिन दूना रहेगा ॥ २ ॥

कोक त्रिलोक प्रीति अति करहीं ❋ प्रभु प्रताप रवि छबिहिं न हरहीं॥३॥
निशिदिन सुखद सदा सब काहू ❋ ग्रसिहि न केकयि करतब राहू॥४॥

त्रिलोकीमें तीन प्रकारके कोकरूपी जो जीव हैं, अर्थात् मुक्त, मुमुक्षु, विषयी वे तुम्हारे यशरूपी चन्द्रमासे अत्यन्त प्रीति करेंगे और रघुनाथजीका प्रतापरूप रवि तुम्हारे यश चन्द्रकी छबि को नहीं हरेगा ॥ ३ ॥ यह रात दिन सदा सबको सुखदायक है और कैकेयीका कर्तव्यरूपी राहु इसको नहीं ग्रसेगा ॥ ४ ॥

पूरण राम सप्रेम पियूषा ❋ गुरु अपमान दोष नहिं दूषा ॥५॥
रामभक्ति अब अमिय अघाहू ❋ कीन्हेउ सुलभ सुधा वसुधाहू ॥६॥

तुम्हारा यशचंद्र रामचन्द्रके सुंदर प्रेम पियूषसे परिपूर्ण रहेगा और चन्द्रमा जो गुरु(बृहस्पति) के अपमानसे दूषित है सो आपका यशचंद्र गुरु अपमान अर्थात् पिता और वसिष्ठादिकके वचन अपमानके दोषसे दूषित न होगा ॥५॥ रामके भक्त रामभक्ति अमृतसे अघायेंगे क्योंकि आपने पृथ्वीमें अमृतको सुलभ कर दिया अर्थात् सबको रामभक्तिसे पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

भूप भगीरथ सुरसरि आनी ❋ सुमिरत सकल सुमंगल-खानी ॥७॥
दशरथ गुणगण बरणि न जाहीं ❋ अधिक कहा जेहि सम जगनाहीं ॥८॥

राजा भगीरथ गंगाजीको लाये, जिनके स्मरण मात्रसे सब सुमंगल होते हैं (यह तुम्हारे कुलकी परम्परा ही है) ॥७॥ दशरथजीके गुणगण वर्णन नहीं किये जाते, वर्णन तब करें जब कोई समान हो, सो उनके समान कोई जगत्में नहीं, अधिक होनेकी कौन कहे ? ॥ ८ ॥

दोहा—जासु सनेह सँकोच वश, राम प्रगट भये आय ॥
जे हर हिय नैनन कबहुँ, निरखे नाहिं अघाय ॥ २४० ॥

जिनके स्नेह और संकोच वश रघुनाथजी आप आकर प्रगट हुए और जिनको महादेव जी कभी हृदयके नेत्रोंसे देखकर नहीं अघाते ॥ २४० ॥

कीरति विधु तुम कीन्ह अनूपा ❋ जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा ॥१॥
तात गलानि करहु जिय जाये ❋ डरहु दरिद्रहि पारस पाये ॥२॥

हे तात ! तुमने उपमा रहित कीर्तिरूप चन्द्रमाको बनाया जिसमें रामजीका प्रेम मृगरूप होकर बस रहा है ॥ १ ॥ हे तात ! मनमें जो ग्लानि प्रगट करते हो वह मत करो, पारस पाकर भी दरिद्रताका डर करते हो ॥ २ ॥

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं ❋ उदासीन तापस वन रहहीं ॥३॥
सब साधन कर सुफल सुहावा ❋ लषण रामसिय दरशन पावा ॥४॥

सुनो भरतजी ! हम झूठ नहीं कहते, हमारे शत्रु-मित्र नहीं हैं और हम तपस्वी हैं क्योंकि वनमें रहते हैं किसीका भय नहीं ॥ ३ ॥ सब साधनोंका तो यह सुन्दर फल है कि राम, लक्ष्मण, सीताका दर्शन प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

तेहि फलकर फल दरश तुम्हारा ❋ सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥५॥
भरत धन्य तुम जग यश जयऊ ❋ कहि अस प्रेममगन मुनि भयऊ ॥६॥

और रघुनाथजीके दर्शनोंके फलका फल तुम्हारा दर्शन है आज प्रयागवासियोंका धन्य भाग्य है ॥ ५ ॥ से भरतजी ! तुम धन्य हो, जगत्में बड़ा यश प्राप्त किया, ऐसा कहकर प्रेममें मुनि मग्न हो गये ॥ ६ ॥

सुनि मुनि वचन सभासद हरषे ❋ साधु सराहि सुमन सुर वरषे ॥७॥
धन्य धन्य ध्वनि गगन प्रयागा ❋ सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ॥८॥

मुनिके वचन सुनकर सब सभासद प्रसन्न हुए और भली भांति सराहना करके देवताओंने

फूल बरसाये ॥ ७ ॥ आकाश और प्रयागमें धन्यवादकी ध्वनि होने लगी, जिसे सुन कर भरतजी अनुरागमें मग्न हो गये ॥ ८ ॥

दोहा-पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन ॥
करि प्रणाम मुनि मंडलिहिं, बोले गद्गद बैन ॥ २४१ ॥

भरतजीका शरीर पुलकायमान होगया; हृदयमें राम जानकीकी चिंता होनेसे कमलसे नेत्रोंमें जलभर आया, मुनि मंडलीको प्रणाम करके गद्‌गदकण्ठ हो बोले ॥ २४१ ॥

मुनि समाज अरु तीरथ राजू * साँचेउ शपथ अघाइ अकाजू ॥१॥
यहि थलजो कछु कहिय बनाई * यहिसम अधिक न अघ अधमाई॥२॥

मुनियोंका समाज और तीर्थराज है,यहां सच्ची सौगन्ध भी करे तो अघाकर अकाज होता है॥१॥ इस स्थानमें जो कुछ बनाकर कहा जाय इससे अधिक पाप व नीचता नहीं है ॥ २ ॥

तुम सर्वज्ञ कहौं सत भाऊ * उर अन्तर्यामी रघुराऊ ॥३॥
मोहिं न मातु करतब कर सोचू * नहिंदुखजिय जग जानहि पोचू॥४॥

तुम सर्वज्ञ हो मैं यह बात सद्भाव से कहता हूँ, रामजी हृदयके जानने वाले हैं ॥ ३ ॥ मुझे माताके कर्तव्यका शोच नहीं और जगत् कायर जाने इसका भी हृदयमें दुःख नहीं है ॥४॥

नाहिं न डर बिगरहि परलोकू * पितहु मरे कर नाहिन शोकू ॥५॥
सुकृत सुयश भरि भुवन सुहाये * लक्ष्मण राम सरिस सुत पाये ॥६॥

परलोक बिगड़नेका डर नहीं और पिताके मरनेका भी शोच नहीं क्योंकि ॥५॥ लक्ष्मण और रामके समान पुत्र पानेसे उनका पुण्य सुयश संसारमें फैल रहा है ॥ ६ ॥

राम विरह तजि तनु क्षण भंगू * भूप शोचकर कवन प्रसंगू ॥७॥
रामलषन सिय बिनुपग पनहीं * करि मुनिवेष फिरहिं वन वनहीं॥८॥

रामजीके विरहमें क्षण भंगुर शरीरका त्याग कर दिया इससे महाराजके शोकका प्रसंग ही क्या है ? परंतु ॥७॥ राम, लक्ष्मण और जानकी नंगे पाँव मुनिवेष किये वन-वन फिरते हैं ॥८॥

दोहा-अजिन बसन फल अशन महि, शयन डासि कुशपात ॥
बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप वर्षा बात ॥ २४२ ॥

मृगचर्मके वस्त्र,भोजनको फल,पृथ्वीपर शयन,कुशपत्ते बिछानेको और वृक्षके नीचे वास जाड़ा गर्मी वर्षा और पवनका दुःख उन्हें नित्य सहना पड़ता है; इन सबका कारण मैं हूँ ॥२४२॥

यहि दुख दाह दहै नित छाती * भूख न वासर नींद न राती ॥१॥
यह कुरोग कर औषध नाहीं * शोधेउँ सकल विश्व मनमाहीं ॥२॥

इसी दुःख दाहसे नित्य छाती जलती है, दिनमें भूख और रातमें निद्रा नहीं आती ॥ १ ॥ इस कुरोगकी औषधि नहीं है; मैंने मनमें सब विश्वम खोज देखी ॥ २ ॥

मातु-कुमति बढ़ई अघमूला * तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥३॥
कलि कुकाठकर कीन्ह कुयंत्रू * गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥४॥

पापकी जड़ हमारी माताकी दुष्टबुद्धिने बढ़ई रूप होकर हमारा हित (राज्य देना) बसूला बनाया ॥३॥ उससे कलि जो पाप है कि राम राजा होंगे मुझे दुख देंगे उस क्लेशरूपको कुकाठ

अर्थात् बहेड़े बबूरका कुयंत्र करके, जो कि मंथराके वचनोंसे गढ़ा गया है और रामके वनरूपी कठिन कुमंत्रको पढ़के अवधमें गाड़ दिया है अर्थात् हठ करना यही गाड़ना है; दो वर कठिन कुमंत्र हैं; पापरूप काठका यंत्र गढ़कर रामके वनगमनके कुमन्त्रसे पढ़ अयोध्यामें गाड़ दिया है ॥४॥

मोहिं लगि यह कुठाट तेहिं ठाटा * घालेसि सब जग बारह बाटा ॥५॥
मिटैं कुरोग राम फिरि आये * बसहिं अवध नहिं आन उपाये ॥६॥

मेरे निमित्त यह सब कुठाट उसने किया। सब जगत्के जो विपत्तिके बारह बाट अर्थात् बारह मार्ग हैं उनमें कर दिया, बारह बाटमें प्रमाण श्लोक-"मोहो दैन्यं भयं ह्रासो हानिर्ग्लानिः क्षुधा तृषा। मृत्युः क्षोभो वृथाऽकीर्तिर्वाटा ह्येते हि द्वादश" ॥५॥ जब रघुनाथजी लौटकर आवेंगे तब यह कुरोग मिटेगा और तब ही अयोध्या बसेगी, अन्य उपायसे नहीं ॥६॥

भरत वचन सुनि मुनि सुख पाई * सबहिं कीन्ह बहु भाँति बड़ाई ॥७॥
तात करहु जनि सोच बिसेखी * सब दुःख मिटिहि रामपद देखी ॥८॥

भरतजीके वचन सुनकर मुनिने सुख पाया और सबने बहुत भांतिसे बड़ाई की ॥ ७ ॥ हे तात ! विशेष सोच मत करो, रघुनाथजीके चरण देखनेसे सब दुःख मिटेंगे ॥ ८ ॥

दोहा—करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्राणप्रिय होहु ॥
कन्द मूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु ॥ २४३ ॥

इस प्रकार मुनिराजने समझाकर कहा कि तुम प्राणप्रिय हमारे पाहुने हो, इस कारण जो कन्द, मूल, फल, हम दें वह प्रेमसे ग्रहण करो ॥ २४३ ॥

सुनि मुनि वचन भरत हिय सोचू * भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥१॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी * चरण बंदि बोले करजोरी ॥२॥

मुनिके वचन सुनकर भरतजीके मनमें शोच हुआ कि, ऐसे कुअवसरमें अर्थात् प्रयाग तीर्थमें ब्राह्मणका अन्न लेना और उधर कठिन संकोच मुनिके कहनेका हुआ ॥ १ ॥ फिर भरद्वाजजीकी वाणीको श्रेष्ठ जान चरणोंमें दंडवत् कर हाथ जोड़ बोले ॥ २ ॥

शिर धरि आयसु करिय तुम्हारा * परम धर्म यह नाथ हमारा ॥३॥
भरत वचन मुनिवर मन भाये * शुचि सेवक शिष निकट बुलाये ॥४॥

हे नाथ ! आपकी आज्ञा शिरपर धारण करनी चाहिए, यह हमारा परम धर्म है ॥ ३ ॥ भरतजीके वचन मुनिराजको अच्छे लगे; तब पवित्र सेवक निकट बुलाये ॥ ४ ॥

चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई * कन्द मूल फल आनहु जाई ॥५॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह शिर नाये * प्रमुदित निज निज काज सिधाये ॥६॥

उनसे कहा—भरतकी पहुनाई करनी चाहिए, जाकर कंद, मूल, फल ले आओ ॥५॥ बहुत अच्छा महाराज, ऐसा कह उन्होंने शिर नवाये और प्रसन्न हो अपने-अपने काम को गये ॥६॥

मुनिहिं शोच पाहुन बड़ नेवता * तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥७॥
सुनि ऋधि सिधि अणिमादिक आई * आयसु होय सो करैं गुसाईं ॥८॥

फिर मुनिराजने विचारा कि, बड़े पाहुनेका न्योता है और जैसा देवता हो उसकी वैसे ही

१. मोह, दीनता, भय, ह्रास, हानि, ग्लानि, क्षुधा, तृषा, मृत्यु, क्षोभ, वृथा, अकीर्ति यह बारह बाट हैं।

पूजा चाहिए, यह विचार ऋद्धि सिद्धिको स्मरण किया ॥ ७ ॥ आज्ञा सुनते ही अणिमादिक ऋद्धि सिद्धि आ गयीं और बोलीं–हे गुसांई ! जो आज्ञा हो सो करें ॥ ८ ॥

दोहा–राम बिरह व्याकुल भरत, सानुज सकल समाज ॥
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहेउ मुदित मुनिराज ॥ २४४ ॥

मुनिराजने प्रसन्न हो सिद्धियोंसे कहा–भरतजी भाई व समाज सहित रघुनाथजीके विरह में व्याकुल हैं तुम पहुनाई करके उनका श्रम हरो ॥ २४४ ॥

ऋधिसिधिशिरधरि मुनिवर बानी * बड़भागिनि आपुहिं अनुमानी॥१॥
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई *अतुलित अतिथि रामलघु भाई॥२॥

ऋद्धि सिद्धि मुनिराजकी वाणी शिर धरके और अपनेको बड़भागिनी जानके ॥१॥ वे सब सिद्धियाँ परस्पर कहने लगीं कि रामजीके छोटे भाई अनुपम अतिथि हैं ॥ २ ॥

मुनिपद बंदि करिय सोइ काजू * होइ सुखी सब राज समाजू ॥३॥
अस कहि रुचिर रचे गृह नाना * जो बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥४॥

मुनिके पदकमलको नमस्कार करके आज वह करो जो राज समाज प्रसन्न हो जाय ॥३॥ ऐसा कहकर अनेक सुन्दर घर बनाये जिनको देख विमान व्याकुल हो लज्जित हो जायँ वा लज्जित होते हैं ॥ ४ ॥

भोग बिभूति भूरि भरि राखे * देखत जिनहिं अमर अभिलाखे॥५॥
दासी दास साज सब लीन्हे * जुगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे॥६॥

भोग और ऐश्वर्य अनेक पदार्थ बहुत भर रखे, जिन्हें देखते देवता भी अभिलाषा करते हैं ॥ ५ ॥ और दासी-दास सब साज लिये मनमें मन लगाये देखते रहे । अथवा वे मनसे ही जानते हैं कि इन्हें इस वस्तु की कमी है ॥ ६ ॥

सब समाज सजि सिधि पलमाहीं* जो सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं ॥७॥
प्रथमहि बास दिये सबकेही * सुन्दर सुखद यथारुचि जेही ॥८॥

सिद्धिने पलमात्रमें सब समाज रच दिया जो सुखकि, सुरपुरमें स्वप्नमें भी नहीं, वह करके ॥ ७ ॥ पहले पहल सब किसीको स्थान दिये, सुन्दर सुखद जैसी जिसकी रुचि थी ॥ ८ ॥

दोहा–बहुरि सपरिजन भरत कहँ, ऋषि अस आयसु दीन्ह ॥
बिधि बिस्मय दायक बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥ २४५ ॥

फिर कुटुम्बियों समेत भरतको मुनिनायक ने उन स्थानोंमें ठहरनेकी आज्ञा दी और मुनिराजने ब्रह्माको विस्मयदायक ऐश्वर्य अपने तपोबलसे उत्पन्न किया ॥ २४५ ॥

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका * सब लघु लगे लोकपति लोका॥१॥
सुखसमाज नहिं जात बखानी * देखत बिरति बिसारहिं ज्ञानी ॥२॥

जब भरतजीने मुनिका प्रभाव देखा तो लोकपति सब छोटे लगने लगे ॥ १ ॥ सुखका समाज बखाना नहीं जाता, जिसे देखकर ज्ञानी ज्ञान भूल जाते थे,वैराग्य भाग जाता था॥२॥

आसन शयन सुबसन बिताना * बन बाटिका बिहँग मृगनाना ॥३॥

सुरभि फूल फल अमिय समाना ✻विमल जलाशय विविध विधाना ॥४॥

आसन, शयन, सुवस्त्र, वितान (चँदोवे), वन-वाटिका, विहंग, अनेक प्रकारके मृग ॥३॥ सुगंधित फूल, अमृतके समान फल, अनेक प्रकारके निर्मल तालाब ॥ ४ ॥

अशनपान शुचि अमल अमीसे ✻ देखि लोग सकुचात यमीसे ॥५॥

सुर-सुरभी सुरतरु सबहीके ✻लखि अभिलाख सुरेश शचीके॥६॥

खाने पीनेकी वस्तु निर्मल और अमृतके समान हैं, जिन्हें देखके अयोध्यावासी त्यागीके समान सकुचाते हैं क्योंकि रघुनाथजीमें प्रीतिके कारण विषयोंके भोगके यमी अर्थात् त्यागी हैं, इस कारण वे फल ग्रहण करनेके अभिलाषी नहीं हैं ॥ ५ ॥ द्वार द्वारपर कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र-इंद्राणीको अभिलाषा होती है अथवा उस प्रभावको देखकर सुरभि (कामधेनु) और कल्पवृक्ष कहते हैं कि हमारा भी ऐसा प्रभाव नहीं है ॥ ६ ॥

ऋतु वसंत बह त्रिविध बयारी ✻ सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥७॥

स्रक चन्दन वनितादिक भोगा ✻ देखि हर्ष विस्मय वश लोगा ॥८॥

वसन्त ऋतु हो गयी, शीतल-मंद-सुगंध पवन चलने लगी, सबको चारों पदार्थ सुलभ हो गये। जो पदार्थ मुनिने प्रगट किये थे वे अर्थ धर्मकामके देनेवाले थे, भरत और उनके साथी इस भोगसे विरक्त होनेके कारण मोक्षके अधिकारी हुए इस कारण सबको चारों पदार्थोंकी प्राप्ति कही ॥ ७ ॥ फूलोंकी माला-चन्दनादि सुगंध, स्त्रियादि भोगोंको देखकर लोग हर्ष और विस्मयके वशमें हो गये, हर्ष यह है कि हम उसके भोगी हैं, विस्मय यह कि श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें ये वस्तुएँ प्राप्त हुई ॥ ८ ॥

दोहा—संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार ॥
तेहि निशि आश्रम पीञ्जरा, राखे भा भिनुसार ॥ २४६ ॥

यह सारी सम्पत्ति चकई है और भरत चकवा और मुनिकी आज्ञा खेलवार अर्थात् बहेलिया है जिसने इन दोनोंको घेर लिया आश्रमरूपी पिंजरेमें एकत्र कर दिया परन्तु रात्रिका समय है इससे संग नहीं हुआ और फिर प्रातःकाल हो गया। भाव यह है कि जैसे रात्रिमें कोई चकवा-चकवीको एकत्र भी रख दे तो भी वह नहीं मिलते; इसी प्रकार भरतजीका मन इस ऐश्वर्य वश रागी नहीं हुआ। अथवा राम वनगमन रूप रात्रिके संग न हुआ ॥ २४६ ॥

कीन्ह निमज्जन तीरथ राजू ✻नाइ मुनिहि शिर सहित समाजू॥१॥

ऋषि आयसु अशीश शिर राखी ✻ करि दण्डवत विनय बहु भाखी॥२॥

तीर्थराजमें स्नान कर और समाज सहित मुनिको शिर नवाकर ॥ १ ॥ ऋषिकी आज्ञा और आशीर्वाद शिर पर रख कर दण्डवत् कर बहुतसी विनय कर ॥ २ ॥

पथगति कुशल साथ सब लीन्हे ✻ चले चित्रकूटहि चित दीन्हे ॥३॥

राम सखा कर दीन्हे लागू ✻ चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥४॥

मार्ग जाननेमें चतुरोंको साथ ले सब चित्रकूटको मन लगाकर चले ॥ ३ ॥ निषादके कन्धेपर हाथ धरे हैं मानो शरीर धारण किये अनुराग चलता है ॥ ४ ॥

नहिं पदत्राण शीश नहिं छाया ✻ प्रेम नेम व्रत धर्म अमाया ॥५॥

लषण राम सिय पंथ कहानी ✻ पूँछत सखहिं कहत मृदुबानी ॥६॥

पैरोंमें जूता नहीं, शिर पर छत्र नहीं, प्रेम, नेम, व्रत, धर्म मायारहित करते हैं (अथवा प्रेम लिये हुये जो नेम व्रत हैं वही उनका माया रहित धर्म है) ॥ ५ ॥ राम, लक्ष्मण, जानकीजीकी कहानी मार्गमें सखासे कोमल वाणीसे पूछते हैं ॥ ६ ॥

राम वास थल विटप विलोके ✻ उर अनुराग रहत नहिं रोके ॥७॥
देखि दशा सुर वर्षहिं फूला ✻ भइ मृदु महि मग मंगल मूला ॥८॥

श्रीरघुनाथजीके स्थान वृक्ष देखकर हृदयका प्रेम रोकनेसे भी नहीं रुकता है ॥ ७ ॥ यह दशा देख देवता फूल बरसाते हैं, उस समय मार्गमें पृथ्वी कोमल मंगलमूल हो गयी ॥ ८ ॥

दोहा—किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहै वर बात ॥
तस मग भयउ न रामकहँ, जस भा भरतहिं जात ॥ २४७ ॥

बादल छाया किये जाते हैं,सुन्दर सुखद पवन चलता है,ऐसा मार्ग रघुनाथजीको भी सुखकारी नहीं हुआ जैसे भरत के जानेमें हुआ। शंका-पूर्व लिख आये हैं कि भरतजीके पांवोंमें छाले पड़ गये, यथा-"झलका झलकत पाँयन कैसे" ? अब कहते हैं भरतजीको मार्ग रघुनाथजीसे अधिक सुखदायक हुआ यह कैसे ? समाधान—जब भरतजीने वसिष्ठादिके निकट कहा था कि आप ऐसा आशीर्वाद दें कि राम वनसे लौट आवें, तब देवताओंने अपने कार्यकी हानि समझ विघ्न करनेको अनेक प्रकारसे दुःख दिया और भरतजीने चार पदार्थ छोड़ त्रिवेणीसे केवल रघुनाथजीकी भक्ति माँगी, तब शुद्धान्तः करण जान देवता सहायता करने लगे, जैसे इस दोहे में लिखा है और मुनि आदि की पहुनाई भी इसका कारण है ॥ २४७ ॥

जड़ चेतन जग जीव घनेरे ✻ जे चितये प्रभु जिन प्रभु हेरे ॥१॥
ते सब भये परमपद योगू ✻ भरत दरश मेटेउ भवरोगू ॥२॥

जड़ चैतन्य जितने जगत्में घने जीव हैं; चैतन्य—जिन्होंने प्रभुको देखा और जड़—जिन्हें रघुनाथजीने देखा ॥१॥ वे सब परमपदके योग्य हो गये, परन्तु जिन्होंने यह जाना कि यह राज्यके कारण वनमें भेजे गये हैं, राज्य मुख्य पदार्थ है, वे भव रोगसे ग्रस्त हुए; उनका भवरोग भरतजीके दर्शनसे मिट गया, कारण कि जब उन्होंने देखा कि भरत राज्य छोड़कर दर्शनोंको चले हैं, तब उन्होंने राज्यको तुच्छ जाना, इससे रामपदके अधिकारी हुए ॥ २ ॥

यह बड़ि बात भरतकी नाहीं ✻ सुमिरत जिनहि राम मनमाहीं॥३॥
बारेक राम कहत जग जेऊ ✻ होत तरण तारण नर तेऊ ॥४॥

भरतजीको यह कुछ बड़ी बात नहीं है कारण कि जिन्हें रघुनाथजी मनमें स्मरण करते हैं ॥ ३ ॥ जगत्में एक बार भी जो राम कहता है वह मनुष्य तरण तारण अर्थात् आप तरता और औरोंको तारता है ॥ ४ ॥

भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता ✻ कस न होय मग मंगल दाता ॥५॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं ✻ भरतहिं निरखि हर्ष हिय लहहीं॥६॥

भरतजी एक तो रघुनाथजीके प्यारे, फिर छोटे भाई, उन्हें मार्ग मंगलदाता क्यों न हो ? ॥५॥ सिद्ध साधु और मुनिश्रेष्ठ ऐसा कहते हैं और भरतजीको देख मनमें प्रसन्नता पाते हैं ॥६॥

देखि प्रभाव सुरेशहि शोचू ❋ जग भल भलेहि पोचकहँ पोचू॥७॥
गुरुसन कहेउ करहु प्रभु सोई ❋ रामहिं भरतहिं भेंट न होई ॥८॥

भरतजीके प्रभावको देख इंद्रको यह शोच हुआ कि भरतजी रामजीको लिवा लेजायँगे तो हमारा कार्य न होगा, यह जगत् भलेको भला बुरेको बुरा दीखता है"स्वार्थी अपना स्वार्थ देखते हैं" ॥७॥ गुरुसे कहने लगे, हे प्रभु ! वह उपाय करो जिससे रामकी और भरतकी भेंट न हो ॥८॥

दोहा-राम सँकोची प्रेमवश, भरत सुप्रेम पयोधि ॥
बनी बात विगरन चहति, करिय यतन छल शोधि ॥ २४८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी प्रेमका संकोच करते हैं और भरतजी प्रेमके समुद्र हैं बनी बात बिगड़नी चाहती है, माता-पिताके पाससे तो निकल आये, अब ऐसा शोधकर यत्न करो कि वनमें ही रघुनाथजी रहें ॥ २४८ ॥

वचन सुनत सुर गुरु मुसुकाने ❋ सहस नैन बिनु लोचन जाने ॥१॥
कह गुरु बादि क्षोभ छल छाँड़ू ❋ यहाँ कपटकर होइहि भाँड़ू ॥२॥

यह वचन सुन बृहस्पतिजी हँसे, इन्द्रके सहस्र नेत्र होते हुए भी अन्धेके समान जाने ॥ १ ॥ गुरुजी बोले कि वृथा ईर्षा, छल छोड़ दो यहां कपटका भङ्ग हो जायगा ॥ २ ॥

माया पति सेवकसन माया ❋ करियत उलटि परै सुरराया ॥३॥
तब कछु कीन्ह राम रुख जानी ❋ अब कुचालि करि होइहि हानी॥४॥

हे इन्द्र ! यदि मायापतिके सेवकसे माया करे और उलट पड़े तो कैसा होगा ? ॥ ३ ॥ तब तो कुछ श्रीरामचन्द्रजीका रुख जानकर किया था, अब कुचाल करनेसे हानि होगी ॥४॥

सुन सुरेश रघुनाथ सुभाऊ ❋ निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥५॥
जो अपराध भक्तकर करई ❋ रामरोष पावक सो जरई ॥६॥

सुनो इन्द्र ! रघुनाथजीका यह स्वभाव है कि अपने अपराधसे किसी पर नहीं रिसाते हैं ॥ ५ ॥ जो रघुनाथजीके भक्तोंका अपराध करता है वह रघुनाथजीकी क्रोधाग्निमें जलता है, भक्तके अपराधसे श्रीरामचन्द्रजी अधिक रिसाते हैं ॥ ६ ॥

लोकहु वेद विदित इतिहासा ❋ यह महिमा जानहिं दुर्वासा ॥७॥
भरत सरिसको राम-सनेही ❋ जगजपु राम राम जपु जेही ॥८॥

लोक और वेदमें यह इतिहास विख्यात है और इस महिमाको दुर्वासा ऋषि जानते हैं॥७॥

सवैया -"वेद विरुद्ध महामुनि, सिद्धि, सशोक, सुरासुर लोक उजाड़चो । और कहा कहूं सीय हरी तबहूं करुणानिधि कोप निवारचो ॥ सेवक क्षोमते छांड़ि क्षमा तुलसी लख्यो राम सुभाव तुम्हारचो ।। तौलौं न दाविदलो दशकन्धर, जोलौं विभीषण लात न मारचो ॥

१. राजा अम्बरीषका यह नियम था कि एकादशीका व्रत करके द्वादशीमें ब्राह्मण जिमाकर पारण करते थे । एक समय दुर्वासा ऋषि निमन्त्रण मान स्नान करने गये और द्वादशी थोड़ी रह गई । काल व्यतीत होते जान राजाने ब्राह्मणोंसे कहकर चरणामृत पान किया । तदुपरांत दुर्वासा ऋषि आये, राजाको चरणामृत लिया सुन क्रोध कर जटा पटकी, उससे कृत्या नाम राक्षसी प्रकट हो राजाको मारने चली । इधर राजा कम्पायमान हो पृथ्वीपर गिरा; उधर ऋषिदुर्वासाके ऊपर भगवान्का सुदर्शन चक्र चला, उसने राक्षसीको मारडाला और फिर दुर्वासाके पीछे हुआ दुर्वासा त्रिलोकीमें घूम आये परंतु कहीं शरण न मिली तो भगवानके पास गये । भगवान्ने कहा -तुम राजाकी ही शरण में जाओ वही तुम्हारी रक्षा करेगा, तब दुर्वासा ऋषि अम्बरीषकी शरण में गये, अतः ऋषिको शरणागत जानकर राजाने विनय पूर्वक सुदर्शनचक्र का निवारण किया तथा ऋषिको भोजन करवाकर आदरपूर्वक विदा किया ।

भरतजीके समान श्रीरामचन्द्रजीका स्नेही कौन ? कि जगत् श्रीरामचन्द्रजीको जपे और श्रीरामचन्द्रजी भरतजीको जपते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुवर भक्त-अकाज ॥
अयश लोक परलोक दुख, दिन दिन शोक समाज ॥ २४९ ॥

हे अमरपति ! श्रीरघुनाथजीके भक्तोंका अकाज तो मनसे मत कीजिये; क्योंकि लोकमें अयश, परलोकमें दुःख और दिन-दिन शोकका समाज होता है ॥ २४९ ॥

सुन सुरेश उपदेश हमारा ❋ रामहिं सेवक परम पियारा ॥१॥
मानत सुख सेवक सेवकाई ❋ सेवक वैर वैर अधिकाई ॥२॥

सुनो इन्द्र ! हमारा यह उपदेश है कि श्रीरघुनाथजीको सेवक परम प्यारा है ॥१॥ सेवककी सेवा करनेसे सुख और वैर करनेसे वैरकी अधिकता मानते हैं ॥ २ ॥

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू ❋ गहहिं न पाप पुण्य गुण दोषू ॥३॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा ❋जो जस करइ सो तस फल चाखा॥४॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी सम हैं, राग, रोष, कुछ नहीं किसीका पाप, पुण्य, गुण, दोष नहीं ग्रहण करते ॥ ३ ॥ परन्तु जगत्में कर्म परम प्रधान कर रखा है, जो जैसा करे वैसा फल भोगनेको मिलता है ॥ ४ ॥

तदपि करहिं सम विषम विहारा ❋ भक्त अभक्त हृदय अनुसारा ॥५॥
अगुण अलेख अमान एकरस ❋ राम सगुण भये भक्ति प्रेम वश॥६॥

तो भी भक्तोंके अभक्तोंके हृदयके अनुसार सम विषम लीला करते हैं, अर्थात् जिसका प्रेम एकरस है उनके हृदयमें एकरस, जिनका भिन्न प्रकारका है उनसे विषम हैं ॥ ५ ॥ गुणरहित अलेख मानरहित एकरस ऐसे रघुनाथजी भक्तोंके प्रेमवश सगुण हुए हैं ॥ ६ ॥

राम सखासेवक-रुचि राखी ❋ वेद पुराण साधु सुर साखी ॥७॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई ❋ करहु भरत-पदप्रीति सुहाई ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीने सखा और सेवककी रुचि (सदा) राखी है; इस विषयमें वेद, पुराण, श्रेष्ठ लोग देवता साखी हैं ॥ ७ ॥ ऐसा जीमें जान कुटिलता छोड़ भरतजीके चरणोंमें सुन्दर प्रीति करो ॥ ८ ॥

दोहा–रामभक्त परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल ॥
भक्तशिरोमणि भरतते, जनि डरपहु सुरपाल ॥ २५० ॥

हे इन्द्र ! श्रीरघुनाथजीके भक्त पराये हितमें प्रीति करनेवाले पराये दुःखसे दुखी दयालु होते हैं, अतः भक्तोंके शिरोमणि भरतजीसे मत डरो ॥ २५० ॥

सत्यसिंधु प्रभु सुर-हित कारी ❋ भरत राम-आयसु अनुहारी ॥१॥
स्वारथ विवश बिकल तुम होहू ❋ भरत दोष नहिं राउर मोहू ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी सत्यसागर देवताओंके हितकारी प्रभु हैं और भरतजी रघुनाथजीकी आज्ञा माननेवाले हैं ॥ १ ॥ स्वार्थके कारण तुम व्याकुल होते हो इसमें भरतजीका दोष नहीं तुम्हारा अज्ञान है ॥ २ ॥

सुनि सुरवर सुरगुरु वर बानी * भा प्रबोध मन मिटी गलानी ॥३॥
वर्षि प्रसून हर्षि सुरराऊ * लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥४॥

यह बृहस्पतिजीकी सुन्दर वाणी सुनकर इन्द्रको ज्ञान हो गया और मनकी ग्लानि मिट गयी ॥ ३ ॥ इन्द्र फूल बरसा कर प्रसन्न हो भरतजीके स्वभावकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

इहि विधि भरत चले मगुजाहीं * दशा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥५॥
जबहिं राम कहि लेहिं उसाँसा * उमँगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा ॥६॥

इस प्रकार भरतजी मार्गमें चलते जाते हैं, वह दशा देखकर मुनि सिद्ध सिहाते हैं ॥ ५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजी कहकर उसांस लेते हैं तो मानो चारों ओर प्रेम उमँगता है ॥ ६ ॥

द्रवहिं वचन सुनि कुलिश पखाना * पुरजन-प्रेम न जाय बखाना ॥७॥
बीच वास करि यमुनहिं आये * निरखि नीर लोचन जल छाये ॥८॥

उनके वचन सुनकर वज्र और पत्थर पिघले जाते और पुरजनोंका प्रेम बखाना नहीं जाता ॥ ७ बीचमें वास करके यमुनापै आये जल देखकर नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ८ ॥

दोहा—रघुवर वरण विलोकि वर, वारि समेत समाज ॥
होत विरह वारिधि मगन, चढ़े विवेक जहाज ॥ २५१ ॥

जलका रंग सुन्दर श्रीरघुनाथजीके वर्णकेसा देखकर समाज सहित भरतजी विरह सागर में मग्न होनेको थे, कि ज्ञानके जहाजमें चढ़े । अर्थात् धैर्य धारण किया ॥ ॥ २५१ ॥

यमुन तीर तेहि दिन करि वासू * भयउ समय सम सबहिं सुपासू॥१॥
रातहिं घाट घाटकी तरणी * आई अगणित जाय न वरणी ॥२॥

उस दिन यमुनाके तीर वास करके सब प्रकारसे सबको समयानुरूप सुख हुआ; अर्थात् निषादने यथावत शुश्रूषा की ॥ १ ॥ रातही रातमें घाट-घाटकी अनेक नावें आ गयीं; जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ २ ॥

प्रात पार भये एकहि खेवा * तोषे राम सखा करि सेवा ॥३॥
चले नहाइ नदिहिं शिर नाई * साथ निषादनाथ लघु भाई ॥४॥

प्रातःकाल एकही खेवेमें सब पार हुए और निषादने सबको सेवा करके सन्तुष्ट किया ॥ ३ ॥ निषादनाथ और छोटे भाईके साथ स्नान कर नदीको शिर नवाकर चले ॥ ४ ॥

आगे मुनिवर वाहन आछे * राज-समाज जाइ सब पाछे ॥५॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे * भूषण वसन वेष सुठि सादे ॥६॥

मुनिराज अच्छे वाहनपर आगे चले; राजसमाज सब पीछे जाता है ॥ ५ ॥ उसके पीछे दोनों भाई पैदल चले, जिनके वेष, गहना और वस्त्र अत्यन्त सादे हैं ॥ ६ ॥

सेवक सचिव सुहृद सब साथा * सुमिरत लषण सीय रघुनाथा ॥७॥
जहँ जहँ राम कीन्ह विश्रामा * तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रणामा ॥८॥

सेवक-मन्त्री, सब साथ लिये जाते हुए लक्ष्मण, सीता, रघुनाथजीका स्मरण करते हैं ॥७॥ जहां श्रीरामचन्द्रजीके वास और विश्राम थे, वहां, प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–मगवासी नर नारि सुनि, धाम काज तजि धाइ ॥
देखि स्वरूप सनेहवश, मुदित जन्म फल पाइ ॥ २५२ ॥

मार्गमें वसनेवाले स्त्री पुरुष सुनते ही घर का काम त्याग कर दौड़े और स्वरूप देखकर स्नेहके वश होकर जन्मका फल पाकर हर्षित हुए ॥ २५२ ॥

कहहिं सप्रेम एक इकपाहीं ❋ रामलषण सखि होहिं कि नाहीं॥१॥
वय वपु वर्ण रूप सोइ आली ❋ शील सनेह सरिस सम चाली ॥२॥

प्रेमपूर्वक एकसे एक कहती हैं-ये राम, लक्ष्मण हैं कि नहीं ? ॥ १ ॥ हे आली ! आयु शरीरका वर्ण और रूप तो वैसा ही है और वही शील स्नेहके समान चाल है ॥ २ ॥

वेष न सो सखि सीय न संगा ❋ आगे अनी चली चतुरंगा ॥३॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा ❋ सखि सन्देह होत यहि भेदा ॥४॥

परन्तु हे सखी ! वैसा वेष नहीं, जानकीजी साथ नहीं और आगे चतुरंगिनी सेना चली है ॥ ३ ॥ इनका प्रसन्न मुख नहीं कुछ मनमें खेद है; हे सखि ! इस भेदसे कुछ संदेह होता है, कि ये श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी नहीं हैं ॥ ४ ॥

तासु तर्क तियगण मनमानी ❋ कहहिं सकल तोहि सम न सयानी॥५॥
तेहि सराहि वाणी फिरि पूजी ❋ बोली मधुर वचन तिय दूजी ॥६॥

उसकी तर्कना स्त्रियोंने मनमें मानी और सब कहने लगीं तुम्हारे समान कोई चतुर नहीं है॥ ५ ॥ उसकी सराहना करके उसकी वाणीकी प्रशंसाकी और फिर दूसरी सखी मधुर वचन बोली ॥ ६ ॥

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू ❋ जेहि विधि राम राज रस भंगू॥७॥
भरतहिं बहुरि सराहन लागी ❋ शील सनेह स्वभाव सुभागी ॥८॥

प्रेमपूर्वक सब कथा प्रसंग कहा, जिस प्रकारसे श्रीरघुनाथजीका राज्य रस भंग हुआ ॥७॥ फिर भरतजीकी सराहना करने लगी । शील, स्नेह, स्वभाव, सौभाग्यकी बड़ाई की ॥ ८ ॥

दोहा–चलत पयादे खात फल, पिता दीन तजि राज ॥
जात मनावन रघुवरहि, भरत सरिस को आज ॥ २५३ ॥

प्यादे चलते, फल खाते, पिताके दिये राज्यको त्यागकर श्रीरघुनाथजीको भरतजी मनाने जाते हैं इनके बराबर कौन बड़भागी है ? ॥ २५३ ॥

भायप भक्ति भरत आचरणू ❋ कहत सुनत दुखदूषण-हरणू ॥१॥
सुनि कछु कहिय थोर सखि सोई ❋ रामबन्धु अस काहे न होई ॥२॥

भाईचारेकी भक्ति और भरतजीका आचरण कहने सुननेसे दुख दोषको हरनेवाला है ॥१॥ हे सखी ! इनको कुछ भी कहा जाय वह थोड़ा है, रघुनाथजीके बन्धु ऐसे क्यों न हों ? ॥ २॥

हम सब सानुज भरतहि देखे ❋ भइन्ह धन्य युवतीजन लेखे ॥३॥
सुनि गुण देखि दशा पछिताहीं ❋ कैकेयि जननियोग सुत नाहीं ॥४॥

और हम सबने भी जो भाईके सहित भरतजीको देखा है तो स्त्रियोंकी गोष्ठीमें धन्य युवती जनके लेखेमें हो गयीं ॥ ३ ॥ भरतजीके गुण सुनकर और दशा देखकर पछताती हैं कि कैकेयीके उदरसे उत्पन्न होने योग्य यह पुत्र नहीं था ॥ ४ ॥

कोउ कह दूषन रानिहँ नाहिन * विधि सब कीन्ह हमहिं जो दाहिन॥५॥
कहँ हम लोग-वेद-विधिहीनी * लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥६॥

कोई बोली-इसमें रानीका दोष नहीं है, यह सब विधाताका कर्त्तव्य है जो हमें दहिना हो रहा है ॥५॥ कहां तो हम छोटे कुलकी लोक वेद विधिसे हीन और करतूतसे मलिन ॥ ६ ॥

बसहिं कुदेश कुगांव कुबामा * कहँ यह दरश पुण्य परिणामा॥७॥
अस अनन्य अचरज प्रतिग्रामा * जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥८॥

कहां हम कुदेश, कुगांवकी रहनेवाली क्षुद्र स्त्रियाँ और कहां इनके दर्शन ? यह सब हमारे पुण्यों का फल है ॥ ७ ॥ ऐसा असाधारण आश्चर्य प्रत्येक गाँवमें होता है जैसे कि मारवाड़ देशमें कल्पवृक्ष जम आया हो ॥ ८ ॥

दोहा-भरत दरश देखत खुले, मगलोगन्ह कर भाग ॥
जनु सिंहलवासिन्ह भयउ, विधिवश सुलभ प्रयाग ॥ २५४ ॥

भरतजीके दर्शन करनेसे मार्गमें लोगोंके भाग्य खुल गये, मानो सिंहलद्वीपके रहने वालोंको प्रारब्धसे प्रयाग मिल गया ॥ २५४ ॥

निज गुणसहित राम गुणगाथा * सुनत जात सुमिरत रघुनाथा ॥१॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा * निरखि निमज्जहिं करहिं प्रणामा॥२॥

अपने गुणों सहित रामजीके गुणों की कथा सुनते भरतजी रघुनाथजीका स्मरण करते चले जाते हैं ॥१॥ तीर्थ,मुनियोंके आश्रम और देवस्थान देखकर स्नान और प्रणाम करते हैं ॥२॥

मनहीं मन माँगहिं वर येहू * सीय राम पदपद्म सनेहू ॥३॥
मिलहिं किरात कोल वनवासी * बैखानस बटु यती उदासी ॥४॥

मनही मनमें यह वरदान मांगते हैं कि सीतारामके चरण कमलोंमें स्नेह हो ॥३॥ किरात, कोल, वैखानस, वनवासी, ब्रह्मचारी, यती, उदासी ये जहाँ मिलते हैं ॥ ४ ॥

करि प्रणाम पूछहिं जेहि तेही * केहि वन लखन राम वैदेही ॥५॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं * भरतहिं देखि जन्मफल लहहीं॥६॥

प्रणाम करके जिस तिससे पूछते हैं कि लक्ष्मण राम वैदेही किस वनमें हैं ? ॥ ५ ॥ वे प्रभुके समाचार सब कहते हैं और भरतजीको देखकर जन्मका फल पाते हैं ॥ ६ ॥

जे जन कहहिं कुशल हम देखे * ते प्रिय राम लषण सम लेखे ॥७॥
इहि विधि बूझत सबहिं सुबानी * सुनत राम वनवास कहानी ॥८॥

और जो कहते हैं कि हमने कुशलपूर्वक देखे हैं उन्हें भरतजीने राम लक्ष्मणके समान प्यारे जाना ॥७॥ इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणीसे बूझते और रामकी वनवासकी कथा सुनते चले॥८॥

दोहा-तेहि वासर वसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ ॥
राम दर्शकी लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥ २५५ ॥

उस दिन वास करके प्रातःकाल ही रघुनाथजीका स्मरण कर चले, रामचन्द्रजीके दर्शनों की इच्छा है और भरतजीके साथ जो समाज है उन सबकी इच्छा श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेमें भरतजीके ही समान है ॥ २५५ ॥

मंगल शकुन होहिं सब काहू * फरकहिं सुखद विलोचन बाहू ॥१॥
भरतहिं सहित समाज उछाहू * मिलिहहिं राम मिटहिं दुखदाहू॥२॥

मंगल शकुन सब किसीको होते हैं सुखदायक दाहिने नेत्र और बाहें पुरुषोंकी फड़कने लगीं और वाम अंग नारियोंके फड़कने लगे ॥१॥ भरतजीको समाज सहित उत्साह हुआ कि अब रघुनाथजी मिलेंगे और दुःखदाह मिट जायेगा ॥ २ ॥

करत मनोरथ जस जिय जाके * जाहिं सनेह सुरा सब छाके ॥३॥
शिथिल अङ्गपग डगमग डोलहिं* विह्वल वचन प्रेमवश बोलहिं ॥४॥

जैसा जिनके मनमें मनोरथ है वैसा कहते हैं, स्नेहसुरामें उन्मत्त हुए चले जाते हैं ॥ ३ ॥ अंग शिथिल हैं; मार्गमें पग डगमग पड़ते हैं, प्रेमवश विह्वल वचन बोलते हैं ॥ ४ ॥

रामसखा तेहि समय दिखावा * शैल शिरोमणि सहज सुहावा ॥५॥
जासु समीप सरित पय तीरा * सीय समेत बसहिं दोउ वीरा ॥६॥

उस निषादने स्वाभाविक सुन्दर पर्वतोंमें शिरोमणि चित्रकूटको दिखाया ॥ ५ ॥ जिसके निकट मन्दाकिनीके किनारे जानकी सहित वीर दोनों भाई रहते हैं ॥ ६ ॥

देखि करहिं सब दंड प्रणामा * कहि जय जानकि जीवन रामा ॥७॥
प्रेम मगन अस राज समाजू * जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥८॥

देख सब दण्ड प्रणाम करते हैं जानकीजीके जीवन रघुनाथजीकी जय हो ! अथवा हे पर्वत ! तू तो जानकी रामका जीवन है तेरी जय हो ! ऐसा कहते हैं ॥ ७ ॥ सब राजसमाज प्रेममें ऐसा मग्न हो गया मानो फिर रघुनाथजी अयोध्या चले ॥ ८ ॥

दोहा-भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकत न शेषु ॥
कविहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु ॥२५६॥

उस समय जैसा भरतजीका प्रेम है वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते तो कविके लिये ऐसा अगम हुआ जैसा अहम् और मेरे कहनेवाले अर्थात् अहंकारी मलिनजन ब्रह्मके सुखको नहीं कह सकते ! अथवा जो भरतजीको सुख हुआ उसे कवि लेशमात्र भी नहीं कह सकते, अथवा भरतके प्रेमको जब शेषरूप लक्ष्मणने भी न जाना तो कवि क्या कहे ? ॥ २५६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासी पंडित सुखानंद-मिश्रात्मज विद्या वारिधि पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत टीकायामयोध्याकांडान्तर्गत त्रयोदशो विश्रामः ॥ १३ ॥

दोहा-भरत मिलन रघुनाथसों, सो चौदह विश्राम ॥
बर्णहुँ सुनिये कान दै, पूरहिं सब मन काम ॥ ४ ॥

सकल सनेह शिथिल रघुवरके * गये कोश दुइ दिनकर ढरके ॥१॥
जल थल देखि बसे निशि बीते * कीन्ह गमन रघुनाथ पिरीते ॥२॥

सब कोई रघुनाथजीके स्नेहमें शिथिल सूर्यास्त होनेपर भी दो कोस निकल गये ॥ १ ॥ जल और थल देखके बसे और रात्रि व्यतीत होते ही रघुनाथजीके प्रियतमने गमन किया अथवा प्रभुकी प्रीतिसे गमन किया वा जिनको रघुनाथजी प्यारे है उन्होंने गमन किया, (वहांकी तो यह दशा है, अब रघुनाथजीका वृत्तान्त सुनिये) ॥ २ ॥

उहाँ राम रजनी अवशेषा ❋ जागे सीय सपन अस देखा ॥३॥
सहित समाज भरत जनु आये ❋ नाथ वियोग ताप तन ताये ॥४॥

वहां रघुनाथजी रात्रि थोड़ी शेष रहनेसे जागे, जानकीजीने ऐसा स्वप्न देखा ॥३॥ समाज सहित मानो भरतजी आये हैं और आपके वियोगके तापसे उनका शरीर तापित है ॥ ४ ॥

सकल मलिन मन दीन दुखारी ❋ देखीं सासु आन अनुहारी ॥५॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन ❋ भये सोच वश शोच विमोचन ॥६॥

सबही मलिन मन, दीन और दुःखी हैं, सब सासु और ही प्रकार अर्थात् विधवाके रूपमें देखीं ॥ ५ ॥ जानकीजीका स्वप्न सुनकर रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल भर आया और वे शोक दूर करनेवाले शोकके वश हो गये ॥ ६ ॥

लषण स्वप्न यह नीक न होई ❋ कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥७॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने ❋ पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥८॥

हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं होगा, कोई कठिन कुचाह (अनिष्ट समाचार) सुनायेगा ॥ ७ ॥ यह कहकर भाई सहित स्नान किया और शिवजीका पूजनकर साधुओंका सम्मान किया ॥ ८ ॥

छन्द–सनमानि सुर मुनि वंदि बैठे उतरदिशि देखत भये ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे, विकल प्रभु आश्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारण, काह चित चकित रहे ।
सब समाचार किरात कोलन्ह, आय तेहि अवसर कहे ॥२२॥

सम्मान करके सुर मुनियोंको नमस्कार कर बैठे और उत्तरकी ओर देखने लगे तो आकाशमें धूलि छारही है, बहुतसे खग मृग व्याकुल हो भागकर प्रभुके आश्रममें आगये रघुनाथजी यह देख क्या कारण है ? यह जाननेको उठे और मनमें चकित हो रहे, उसी समय भील, वनवासी कोल, किरातोंने भरतजीके आनेके सब समाचार आकर कहे ॥ २२ ॥

सोरठा–सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तनु पुलक भर ॥
शरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥ १६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं–यह भरतजीके आनेके सुमंगल वचन सुन मनमें प्रसन्न, शरीरसे पुलकायमान हो शरदऋतुके कमलसे नेत्रोंमें स्नेहका जल भर आया ॥ १६ ॥

बहुरि शोच वश भये सियरमनू ❋ कारण कवन भरत आगमनू ॥१॥
एक आइ अस कहा बहोरी ❋ सेन संग चतुरंग न थोरी ॥२॥

फिर भगवान् शोकवश हुए कि, क्या कारण है जो भरतजीका आगमन हुआ ? शोच यह

कि कदाचित् हमारी माताने भरतके राज्यको भंग न कर दिया हो, दूसरा शोच यह कि भरत और शत्रुघ्नसे कुछ विरोध न हुआ हो, तीसरे कोई राज्यको दबा न बैठा हो, चौथे प्रजा फिर न गयी हो जिससे भरतजी यहां आते हों ॥१॥ एकने आकर यह कहा कि संगमें चतुरंगिनी सेना भी थोड़ी नहीं है अर्थात् बहुत है ॥ २ ॥

सो सुनि रामहिं भा अति शोचू ❋ इत पितु वच उत बन्धु सँकोचू ॥३॥
भरत सुभाव समुझि मनमाहीं ❋ प्रभुचित हितथिति पावत नाहीं॥४॥

यह सुनकर रघुनाथजीको बड़ा शोच हुआ, इधर पिताके वचन उधर बन्धुका संकोच कि हमें लौटा ले जावेंगे ॥ ३ ॥ भरतजीका स्वभाव समझकर प्रभुका चित्त हितकी जगह ठहरने नहीं पाता है, कारण यह कि मैं प्रेममें वशीभूत होता हूँ, भरतका प्रेम प्रबल है लौटनेको कहेंगे ॥ ४ ॥

समाधान तब भा यह जाने ❋ भरत कहे-महँ साधु सयाने ॥५॥
लषण लखेउ प्रभु हृदय खँभारू ❋ कहत समय सम नीति विचारू॥६॥

तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत आज्ञाकारी हैं,चतुर महात्मा हैं ॥५॥लक्ष्मणजीने रघुनाथजीका चित्त चलायमान देखा तो समय अनुसार नीतिपूर्वक विचार कर बोले । इससे विदित होता है कि लक्ष्मणजीने निज अनुकूल नहीं किंतु समयके अनुकूल कहा है ॥ ६ ॥

विनु पूछे कछु कहउँ गुसाँई ❋ सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥७॥
तुम सर्वज्ञ शिरोमणि स्वामी ❋ आपुनि समुझि कहौं अनुगामी॥८॥

हे गोसाई ! विना पूछे कुछ कहता हूँ मेरा अपराध न गिनना क्योंकि समय पाकर जो सेवक ढिठाई करे वह ढीठ नहीं है । अथवा स्वामी सोता हो और उसपर कोई उपद्रव आवे तो सेवक सोने देनेकी आज्ञाको न मान उसे जगा दे ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! तुम सर्वज्ञ शिरोमणि हो, मैं सेवक अपनी सेवकाई समझकर कहता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-नाथ सुहृद सुठि सरल चित, शील सनेह-निधान ॥
सब पर प्रीति प्रतीत जिय, जानिय आपु समान ॥ २५७ ॥

हे नाथ ! आप अच्छे सुहृद, सरलचित्त, शील और स्नेहके घर हो; आप सब पर प्रीति करके अपने चित्तके समान जानते हो ॥ २५७ ॥

विषयी जीव पाय प्रभुताई ❋ मूढ़ मोहवश होहिं जनाई ॥१॥
भरत नीतिरत साधु सुजाना ❋ प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना॥२॥

विषयी मूर्ख प्रभुताई (अधिकार) पाकर मोहवश हो अभिमान करते हैं, (जनाई) अपने बराबर किसीको न समझना ॥ १ ॥ भरत नीतिमें तत्पर साधु और सुजान हैं, उनकी आपके चरणोंमें जैसी प्रीति है उसे भी जगत् जानता है ॥ २ ॥

तेऊ आजु राज्य पद पाई ❋ चले धर्म मर्याद मिटाई ॥३॥
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी ❋ जानि राम वनवास एकाकी ॥४॥

वे भरतजी भी आज राज्यपद पाकर धर्मकी मर्यादा मिटाकर चले हैं ॥ ३ ॥ कुटिल कुबंधुने बुरा समय देख और आपका वनमें अकेले रहना विचार, अथवा यह भाव धर्म मर्यादा मिटानेका है कि, आप तो पिताके दिये राज्यको छोड़ते हैं और आपसे पिताके आज्ञारूप धर्म छुड़ाने अर्थात् आपके लौटनेकी इच्छा करते हैं इस समय आपको वनवासी देख ये स्वतंत्र हो गये और कुमंत्र सोचकर पिताके वचन न माने और जो अकंटक राज्य था उसे न करके यहाँ चले आये ॥ ४ ॥

करि कुमन्त्र मन साजि समाजू * आये करन अकंटक राजू ॥५॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई * आये दल बहोरि दोउ भाई ॥६॥

ये मनमें कुमंत्र कर और समाज सजाकर अकंटक राज्य करने आये हैं ॥ ५ ॥ करोड़ प्रकारसे कुटिलता करके दोनों भाई दल एकत्र करके आये हैं, कि श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध कर उन्हें मारें ॥ ६ ॥

जौं जिय होति न कपट कुचाली * केहि सुहाति रथ वाजि गजाली॥७॥
भरतहि दोष देइ को जाये * जग बौराय राज्य पद पाये ॥८॥

जो जी में कपट कुचाल न होती तो हाथी. घोड़े, रथोंकी पंक्ति किसे सुहाती ? ॥ ७ ॥ भरतजीको कौन वृथा दोष दे ? राजपद पाकर तो जगत् बौराय जाता है ॥ ८ ॥

दोहा–शशिगुरु तियगामी नहुष, चढे भूमिसुरयान ॥
लोकवेदते विमुख भा, अधम को बेन समान ॥ २९८ ॥

चन्द्रमाने गुरुकी स्त्रीसे गमन किया, नहुषने राज्यमदसे ब्राह्मणोंसे पालकी उठवाई और बेनके समान कौन अधम है ? जो लोक और वेदसे विमुख हुआ ॥ २९८ ॥

---

१. चन्द्रमाके गुरु वृहस्पति उनकी स्त्री तारा, उसने कामके वश मोहित हो चन्द्रमासे कहा कि मेरे संग रमण करो, तब चन्द्रमाने गुरुपत्नीका विचार कुछ मनमें न लाया और उसके साथ भोग किया, जब वह गर्भवती हुई और पुत्र हुआ जिसका नाम 'बुध' हुआ। तब बृहस्पति बुधका नामकरण करने लगे उस समय चन्द्रमाने कहा – महाराज ! यह पुत्र मेरा है मुझे दीजिये। यह कहकर समाचार सुनाया, तब बृहस्पति जो बोले वीर्य तुम्हारा और क्षेत्र हमारा है इस कारण पुत्र हमारा है, झगड़ा हुआ तब देवताओंने पञ्चायत करके वह पुत्र चंद्रमाको दिलवाया। यह आलंकारिक कथा है मनरूप चन्द्रमाने दारारूप ब्रह्म विद्या हरण की जिससे बुध हुआ।

२. राजा नहुष प्रतिष्ठान पुरमें बड़े धर्मात्मा प्रतापी राजा हुए। एक समय जब इन्द्र वृत्रासुरको हत्याके भयसे भागकर मानस सरोवरमें जा छिपे तब इन्द्रपद खाली देख वृहस्पति महाराजने राज्यप्रबंधके निमित्त राजा नहुषको बुलाया इन्द्र पद पर स्थापित किया, तब राजा बड़े यश प्रतापके साथ इन्द्रपदका राज्य भोगने लगे। राज्य पद प्राप्त होनेसे मद आगया और इन्द्राणीको कहला भेजा कि अब हम इन्द्र हो गये तुम हमारी सेजपर आओ। इन्द्राणी बहुत व्याकुल हुई पश्चात् बृहस्पतिसे सम्मति करके कहला भेजा कि यदि आप ब्राह्मणोंसे पालकी उठवाकर उसपर चढ़कर आवें तो मैं आपके पास आऊंगी। राजाने यह बात सुन सप्तऋषियोंसे विनयपूर्वक पालकी उठवायी, जब वे शनैः शनैः चलने लगे तब राजाने कामांध होकर उनसे सर्प-सर्प अर्थात् 'जल्दी-जल्दी चलो' कहा और लात मारी, तब ऋषियोंने क्रोधकर शाप दिया कि, तू मूर्ख सर्प हो जा, राजा तुरंत सर्प हो गिरा और पीछे युधिष्ठिरसे निस्तार हुआ।

३. राजा बेन बालकपनसे ही क्रूर था प्रजाको अनेक प्रकारसे दुःख दिया करता था और अंगराजाके मरनेके पीछे तब प्रजामें डोंडी पिटवा दी कि आजसे सब कोई मुझे परमेश्वर जाने और जप-तप सब मेरे नामसे किया करें, जो आज्ञा न मानेगा उसे दंड दिया जायगा, जब प्रजा बहुत दुःखी हुई तब ऋषियोंने आकर इसे ज्ञानोपदेश करना प्रारंभ किया। तब उसने मुनियोंसे कहा –तुम झूठ बोलते हो, यह सुनते ही ऋषियोंने शाप देकर उसे मार डाला और फिर उसके शरीरको मथा तब प्रथम काला पुरुष निकला, वह निषादोंका राजा हुआ, पीछे भुजासे पृथु निकले, तब उन्हें श्रेष्ठ जानके राज्य दिया; काले पुरुषकी जाति निषाद कहलायी, यह नियोग भी राजा बेनने ही चलाया है जो अनर्थका मूल है।

सहसबाहु सुरनाथ त्रिशंकू ❋ केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥१॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ ❋ रिपु ऋण रंच न राखब काऊ ॥२॥

सहस्रबाहु[1], इन्द्र, त्रिशंकु[2], राज्यमदने किसे कलंक नहीं दिया ? ॥ १ ॥ भरतजीने यह उचित ही उपाय किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण सर्वथा शेष नहीं रखना चाहिये ॥ २ ॥

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई ❋ निदरे राम जानि असहाई ॥३॥
समुझि परिहि सो आजु बिशेखी ❋ समर सरोष राममुख पेखी ॥४॥

एक ही भरतजीने अच्छा नहीं किया कि रघुनाथजीको असहाय जानकर तिरस्कार किया ॥ ३ ॥ सो आज समरमें क्रोध भरा रघुनाथजीका मुख देखकर विशेषता समझ पड़ेगी ॥४॥

इतना कहत नीति रस भूला ❋ रणरस विटप पुलक मिस फूला ॥५॥
प्रभुपद बंदि शीश रज राखी ❋ बोले सत्य सहज बल भाखी ॥६॥

इतना कहते नीतिरसको भूल गये, वीर रसका वृक्ष पुलकके बहाने फूल उठा ॥५॥ प्रभुके चरणोंमें नमस्कार कर और रज शिर पर रख सत्य स्वाभाविक बल कहते बोले ॥ ६ ॥

अनुचित नाथ न मानब मोरा ❋ भरत हमहिं उपचार न थोरा ॥७॥
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे ❋ नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥८॥

हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानना, भरतने कुछ हमारे लिये भी थोड़ा उपाय नहीं किया अर्थात् बहुत किया ॥ ७ ॥ कहां तक सहें और मन मारे रहें ? नाथ ! एक तो आप हमारे साथ हैं, दूसरे धनुष बाण हाथमें है ॥ ८ ॥

दोहा–क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, राम अनुज जग जान ॥
लातहु मारेहु चढ़त शिर, नीच को धूलि समान ॥ २५९ ॥

एक तो हमारी क्षत्रिय जाति, दूसरे, रघुकुलमें जन्म, तीसरे मैं रामजीका भाई हूँ, यह जगत् जानता है फिर क्यों न युद्ध करके बदला लूँ, देखो धूरिके समान कौन नीच है परन्तु वह भी लात मारनेसे बदला लेनेको शिरके ऊपर चढ़ती है ॥ २५९ ॥

---

१. सहस्र बाहु क्षत्रिय राजा महादेवके प्रसादसे बड़ा बली राजा हुआ । एक समय सेना संग लेकर अहेर खेलने गया, वहां प्यासा होकर दूतको भेजा कि कहींसे पानी लाओ । दूत जमदग्निके आश्रमपर गया और ऋषिको समाचार सुनाकर बोला – जल दो जब ऋषिने कहा राजाको यहां बुलाकर लाओ; हम उनका निमन्त्रण करेंगे, राजाने सुनकर कहा कि यदि सेनासहित हमारी शुश्रूषा करो तो हम आवें । ऋषिने स्वीकार करके राजाको सेना सहित निमन्त्रण कर संतुष्ट कर दिया । सहस्रबाहुने पूछा–आपने इतनी शीघ्रतासे कैसे निमन्त्रण की सामग्री तैयार की ? ऋषिने कहा–मेरे पास कामधेनु गौ.है । राजाने मांगी और ऋषिने नहीं दी, तब ऋषिसे राजा बलपूर्वक कामधेनु ले चला, तब कामधेनु भागकर इन्द्रलोकको गयी, परशुरामजी यह समाचार सुनकर आये और पिताकी यह दशा देख क्षत्रिय वंशका नाश कर दिया ।

२. राजा त्रिशंकुको राज्य मदसे इच्छा हुई कि हम ऐसा यज्ञ करें कि सदेह स्वर्गको जायें, ऐसा विचार वसिष्ठजीके पास गये और अपना मनोरथ सुनाया, तब वसिष्ठजीने कहा कि यह शास्त्रविरुद्ध कर्म हम नहीं करेंगे, तब त्रिशंकु वसिष्ठके पुत्रोंके पास गये और यह सब वृत्तांत सुनाया तो उन्होंने उसे गुरुवचनमें अविश्वासी देख शाप दिया, कि तू चाण्डाल हो जा तब यह चांडाल हो विश्वामित्रके पास गया और सब व्यौरा कह सुनाया, तब विश्वामित्रने उससे यज्ञ कराया । देवता लोग यज्ञका भाग लेने न आये तब विश्वामित्रने नये देवतादिका बनाना प्रारंभ कर दिया और अपने कमण्डलुसे जल निकालकर, उसके ऊपर छिड़क कर कहा कि तू सदेह बैकुंठको चला जा, जब त्रिशंकु स्वर्गमें जाकर इन्द्रके आसनपर बैठ गया, तब इन्द्रने नीचे ढकेल दिया, विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे ऊपर स्थिर कर दिया सो आजतक वह त्रिशंकु नीचेको मुंह किये लटका है और उसके मुखसे लार जो टपकती है वही कर्मनाशा नदी हुई, जो बनारस, बिहार जिलेके बीच बहती है और शास्त्रसे उसका पानी वर्जित है । कोई ऐसा भी कहते हैं कि गुरु और गुरुपुत्रोंकी आज्ञा न मानी और एक समय वसिष्ठजीकी गऊको ताड़ना करनेसे इन तीनों पापोंसे इस राजाके माथेमें तीन सींग हो गये इससे "त्रिशंकु नाम पड़ा ।"

उठि कर जोरि रजायसु माँगा * मनहुँ वीर रस सोवत जागा ॥१॥
बाँधि जटा शिर कसि कटि भाथा* साजि शरासन सायक हाथा ॥२॥

लक्ष्मणजी यह कह खड़े हुए और हाथ जोड़कर आज्ञा मांगी मानो वीर रस सोते हुएसे जाग गया ॥ १ ॥ शिरके ऊपर जटा बांध और कमरमें तरकस कस, धनुष बाण हाथमें सुधार कर (बोले) ॥ २ ॥

आजु राम सेवक यश लेऊँ * भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥३॥
राम निरादर कर फल पाई * सोवहि समर सेज दोउ भाई ॥४॥

आज श्रीरामचन्द्रजीकी सेवकाईका यश लूँ और भरतको युद्धमें शिक्षा दूँ॥३॥ रघुनाथजीके निरादरका फल पाकर दोनों भाई समरमें शयन करेंगे ॥ ४ ॥

आय बना भल सकल समाजू * प्रगट करौं रिस पाछिल आजू ॥५॥
जिमि करि निकर दलै मृगराजू * लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥६॥

सब समाज अच्छा आ बना है, आज पिछली रिस "जो शेषरूप होके संसारका प्रलय करनेमें कहते हैं" प्रगट करूँ ॥ ५ ॥ जैसे एक सिंह हाथियोंको मारता है जैसे चिड़ियोंको एक बाज लपेट लेता है ॥ ६ ॥

तैसेहि भरतहिं सेन समेता * सानुज निदरि निपातौं खेता ॥७॥
जो सहाय कर शंकर आई * तौ मारौं रण राम दुहाई ॥८॥

इसी प्रकार भरतको सेन सहित अनुज समेत मारकर समरभूमिमें सुला दूँगा॥७॥जो शिवजी भी आकर सहायता करें तो भी युद्धमें मार डालूँगा,रघुनाथजीकी सौगंध है अथवा जो शंकर उनकी सहायताको आवेंगे उन्हें रामकी दुहाई दिला दूँगा जिससे भरतका पक्ष छोड़ देंगे ॥८॥

दोहा–अति सरोष भाखे लषण, लखि सुनि सपथ प्रमान ॥
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥ २६० ॥

जब बड़े क्रोधसे लक्ष्मणजीने यह बात कही तब प्रमाणपूर्वक सच्ची प्रतिज्ञा सुन तथा जानकर लोक और लोकपाल सब घबड़ा गये और डरके मारे भागनेका विचार करने लगे ॥२६०॥

जग भय मगन गगन भै बानी * लषण बाहुबल विपुल बखानी ॥१॥
तात प्रताप प्रभाव तुम्हारा * को कहि सकै को जानन हारा॥२॥

जगत् भय सागरमें मग्न हो गया, आकाशसे लक्ष्मणके बाहुबलकी अत्यन्त प्रशंसामें वाणी हुई ॥ १ ॥ हे तात ! तुम्हारा प्रताप प्रभाव कौन कह सके, कौन जाननेवाला है ॥२॥

अनुचित उचित काज कछु होई *समुझि करिय भल कह सब कोई॥३॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं * कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥४॥

अनुचित उचित जो काम हो समझके किया जाय तो सब कोई भला कहेगा ॥ ३ ॥ जो शीघ्रता करते हैं वे पीछे पछताते हैं, वेद और पंडित कहते हैं कि वे बुद्धिमान नहीं हैं ॥ ४ ॥

सुनि सुर वचन लषण सकुचाने ✻ राम सीय सादर सनमाने ॥५॥
कही तात तुम नीति सुहाई ✻ सबते कठिन राजमद भाई ॥६॥

देवताओंके वचन सुनकर लक्ष्मणजी सकुचाये और सीता-रघुनाथजीने आदरसे सम्मान किया ॥ ५ ॥ हे तात ! तुमने अच्छी नीति कही है राज्यमद सबसे कठिन है ॥ ६ ॥

जो अँचवत मातहिं नृप तेई ✻ नाहिं न साधुसभा जिन सेई ॥७॥
सुनहु लषण भल भरत सरीसा ✻ विधि-प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥८॥

जिसे पीते ही वे नृपति मत्त हो जाते हैं, जिन्होंने साधुसभाका सेवन नहीं किया है ॥ ७ ॥ सुनो लक्ष्मण ! भरतजीके समान भला विधाताकी सृष्टिमें न सुना है न देखा है ॥ ८ ॥

दोहा-भरतहिं होय न राजमद, विधि हरि—हरपद पाय ॥
कबहुँ कि कांजी शीकरन्हि, क्षीर सिन्धु बिनसाय ॥ २६१ ॥

भरतजीको राज्यमद ब्रह्मा, विष्णु और शिवका पद पानेसे भी नहीं होगा क्या कहीं कांजीकी बूँदोंसे क्षीरसिंधु फट सकता है ? कभी नहीं ॥ २६१ ॥

तिमिरतरुण तरुणिहिं सकु गिलई ✻गगन मगन मकु मेघहि मिलई ॥१॥
गोपद जल बूड़हिं घट योनी ✻ सहज क्षमा वरु छांड़हि छोनी ॥२॥

जेठके दुपहरके सूर्यको चाहे अन्धकार निगल जाय; (मकु) बल्कि आकाशमें मेघको मार्ग न मिले ॥ १ ॥ समुद्रके पीनेवाले अगस्त्यमुनि चाहे गायके खुरमें डूब जायँ और पृथ्वी चाहे स्वाभाविक क्षमाको छोड़ दे ॥ २ ॥

मशक-फूँक वरु मेरु उड़ाई ✻ होई न नृपमद भरतहि भाई ॥३॥
लषण तुम्हार शपथ पितु आना ✻ शुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥४॥

चाहे मच्छरकी फूँकसे सुमेरु उड़ जाय पर भरतजीको राज्य मद नहीं होगा ॥ ३ ॥ लक्ष्मण ! तुम्हारी सौगंध, पिताकी आन है भरतजीके समान बंधु नहीं होगा ॥ ४ ॥

सगुण क्षीर अवगुण जल ताता ✻ मिलइ रचै परपंच विधाता ॥५॥
भरत हंस रघुवंश तडागा ✻ जनमि कीन्ह गुणदोष विभागा॥६॥

हे तात ! ब्रह्माने सगुण दूध निर्गुण जलको मिलाकर प्रपंच रूप जगत्को बनाया ॥ ५ ॥ भरतजी इस सूर्यरूपी सरोवरमें हंस हुए,जिन्होंने उत्पन्न होकर गुण दोषका विभाग कर दिया ॥६॥

गहि गुण पय तजि अवगुण वारी ✻निज यश जगत कीन्ह उजियारी॥७॥
कहत भरत गुण शील स्वभाऊ ✻ प्रेम पयोधि-मगन रघुराऊ ॥८॥

गुणरूपी दूध ग्रहण करके अवगुणरूपी जल त्याग अपने भक्तिरूपी यशके सहित उजियाला किया॥७॥ भरतजीके गुण शील स्वभाव कहते-कहते रघुनाथजी प्रेमके समुद्रमें मग्न हो गये॥८॥

दोहा-सुनि रघुवर वाणी विबुध, देखि भरत पर हेतु ॥
सकल सराहत रामसों, प्रभु को कृपा निकेतु ॥ २६२ ॥

रघुनाथजीकी वाणी देवता श्रवणकर और भरतजी पर प्रेम देख सब सराहना करने लगे कि प्रभुके समान कौन कृपालु है ? ॥ २६२ ॥

जौ न होत जग जन्म भरतको * सकलधर्मधुर धरणि धरतको ॥१॥
कविकुल अगम भरतगुणगाथा * को जानै तुम बिनु रघुनाथा ॥२॥

जो भरतजीका जन्म जगत्में न होता तो सब धर्मकी धुरी और पृथ्वीको कौन धारण करता ? ॥ १ ॥ भरतजीके गुणोंकी कथा कविकुलको अगम है; रघुनाथजी तुम्हारे विना उसे कौन जाने ॥ २ ॥

लषण राम सिय सुनि सुरबानी *अतिसुख लहेउ न जाय बखानी॥३॥
यहाँ भरत सब सहित सहाये * मंदाकिनी पुनीत नहाये ॥४॥

लक्ष्मण, राम, सीताजीने देवताओंकी वाणी सुनकर जैसा सुख पाया सो कहा नहीं जाता ॥ ३ ॥ यहां भरतजी सबके सहित पवित्र मन्दाकिनी नदीमें स्नानकर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

सरित समीप राखि सब लोगा *माँगि मात गुरु सचिव नियोगा॥५॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई * साथ निषाद नाथ लघु भाई ॥६॥

नदीके तटपर सब लोगोंको ठहराकर और आप माता गुरु, और मंत्रियोंसे आज्ञा ले॥५॥ जहां सीता रामजी हैं वहां भरतजी छोटे भाई और निषादको साथ लेकर चले ॥ ६ ॥

समुझि मातु करतब सकुचाहीं * करत कुतर्क कोटि मनमाहीं ॥७॥
राम लषण सिय सुनि मम नाऊँ *उठि जन अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥८॥

माताके कर्तव्य समझकर सकुचाते हैं और मनमें अनेक कुतर्क करते हैं कि ॥ ७ ॥ राम, लक्ष्मण सीता मेरा नाम सुनकर इस जगहको छोड़ कहीं और स्थानमें न चले जायँ ? ॥८॥

दोहा–मातुमतेमें मानि मोहिं, जो कछु कहहिं सो थोर ॥
अघ अवगुण क्षमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥ २६३ ॥

माताके मतेमें मुझे जानकर जो कुछ कहें सो थोड़ा है, परंतु मेरे पाप और अवगुण छोड़ अपनी ओर विचारेंगे तो आदर करेंगे ॥ २६३ ॥

जौ परिहरिहिं मलिन मन जानी * जौ सनमानहिं सेवक मानी ॥१॥
मोरे शरण रामकी पनहीं * राम सुस्वामि दोष सब जनहीं ॥२॥

चाहे मलिन मन जानकर छोड़ दें और जो सेवक मानकर सम्मान करेंगे ॥१॥ तो भी मैं रामजीकी पनहींके शरण हूँ। अथवा रामजीकी पनहीं निश्चय दीनकी रक्षा करनेकी है उनकी शरण हूँ राम तो सुन्दर स्वामी हैं और दोष सब दासके ही हैं सो इनका विस्तार उन्हींसे है ॥ २ ॥

जग यश भाजन चातक मीना * नेम प्रेम निज निपुण नवीना ॥३॥
अस मन गुनत चले मग जाता *सकुचि सनेह शिथिल सब गाता ॥४॥

जगत्में चातक और मीन यशके पात्र हैं, क्योंकि अपने नेम और प्रेममें निपुण हैं और नवीन हैं नेम चातकके साथ और प्रेम मीनके साथ है ॥ ३ ॥ ऐसे मनमें विचारते हुए चले और सकुचके मारे सब शरीर शिथिल हो गया था ॥ ४ ॥

फेरति मनहुँ मातुकृत खोरी * चलत भक्तिबल धीरज धोरी ॥५॥
जब समुझहिं रघुनाथ सुभाऊ * तब पथ परत उतावल पाऊ ॥६॥

माताकी करणीका जो अपराध है वह मानो भरतजीको पीछे फेरता है भक्तिका बल जो धोरी अर्थात् वीर वह धीरज देता है अथवा भक्तिके बलसे धीरज धरकर चलते हैं॥५॥ जब रघुनाथजीका स्वभाव विचारते हैं कि वे भक्तवत्सल हैं तब तो मार्गमें उतावल पांव पड़ता है ॥६॥

भरत दशा तेहि अवसर कैसी ❋ जलप्रवाह जल अलिगति जैसी॥७॥
देखि भरतकर शोच सनेहू ❋ भा निषाद तेहिं समय विदेहू॥८॥

भरतजीकी दशा उस समय कैसी हुई जैसे जलके बहने पर जलके अलि अर्थात् जलके भौंरेकी दशा होती है। यह तीनों गतिका दृष्टांत जलके भँवरके साथ देते हैं अर्थात् माताकी करनीको समझ उस भँवर गतिके अनुसार पीछेको लौटते हैं और अपनी प्रीतिके बलसे आगे को चलते हैं और रामके स्वभावको देख जल्दी-जल्दी चलते हैं (जल-अलि पानीका वह काला कीड़ा है जिसको भँवरी कहते हैं) ॥ ७ ॥ भरतजीका शोक स्नेह देखकर निषादको उस समय शरीरकी सुधि न रही ॥ ८ ॥

दोहा—लगे होन मंगल शकुन, सुनि गुनि कहत निषाद ॥
मिटिहि शोच होइहि हरष, पुनि परिणाम विषाद ॥ २६४ ॥

मङ्गल शकुन होने लगे, पक्षियोंकी बोलीको सुनकर निषादने समझ लिया और बोला कि शोच मिटेगा प्रसन्नता होगी और परिणाममें विषाद होगा, अर्थात् रघुनाथजीका बिछोह हो जायगा ॥ २६४ ॥

सेवक वचन सत्य सब जाने ❋ आश्रम निकट जाय नियराने ॥१॥
भरत दीख वन शैल समाजू ❋ मुदित क्षुधित जनु पाय सुनाजू॥२॥

सेवकके वचन सब सत्य जाने और आश्रमके निकट जा पहुँचे ॥ १ ॥ भरतजीने वन शैल समाज देखा तो ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा अनाज पाकर प्रसन्न हो ॥ २ ॥

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी ❋ त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह भारी॥३॥
जाय सुराज सुदेश सुखारी ❋ होइ भरत गति तेहि अनुहारी॥४॥

ईति सात प्रकारकी होती है—"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाःशलभाःशुकाः ॥ स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः" अयोध्याकी राजरूपी खेती जो रघुनाथजीके राजतिलक होनेकी तैयारीके समय पक गई थी सो उसको कैकेयीके कुमतिरूप सुगाने खा डाला, यही अयोध्यावासियोंके लिये इति हुई और रघुनाथ लक्ष्मण जानकीकी विरह तीन ताप हुए। ईति, भीति, सरस्वती और मन्थरा तथा और भारी ग्रह शनैश्चरका फल राजा दशरथकी मृत्यु हुई, चित्रकूट सुंदर देश है ॥ ३ ॥ जैसे इन क्लेशोंसे पीड़ित हुई प्रजा सुराज और अच्छे देशको पाकर सुखी होती है ऐसे देश ही भरतजीकी सुखी प्रजाके समान हो गई ॥ ४ ॥

राम वास वन संपति भ्राजा ❋ सुखी प्रजा जनु पाय सुराजा ॥५॥
सचिव विराग विवेक नरेशू ❋ विपिन सुहावन पावन देशू ॥६॥

रघुनाथजीके निवास करनेमें वनमें सम्पति विराज रही थी, जैसे सुराजको पाकर प्रजा प्रसन्न होती है ॥५॥ वैराग्यरूपी मन्त्री और ज्ञान रूप राजा है; सुन्दर वन पवित्र देश है ॥६॥

१. बहुत वर्षना, नहीं वर्षना, चूहा, टीडी, तोता, समीपवर्ती राजा, शत्रु ये सात ईति हैं देवताओंसे भय होनेका नाम ईति है चोर राजाके भयका नाम भीति है।

भट यम नियम शैल रजधानी * शांति सुमति शुचि सुन्दरि रानी॥७॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ * रामचरण आश्रित चित चाऊ ॥८॥

संयम नियम राजाके योद्धा हैं; पर्वत राजस्थल (राजधानी) है; शांति, सुमति पवित्र पटरानी है; ॥७॥ यह राजा सब अङ्गोंसे सम्पन्न हैं और रामजीके चरणोंमें आश्रित होनेसे बलवान् हैं ॥८॥

दोहा-जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल ॥
करत अकंटक राजपुर, सुख संपदा सुकाल ॥ २६५ ॥

विवेक राजाने सैन्यके साथ मोहरूपी राजाको जीत लिया है और पुरका अकंटक राज्य करता है, सदा सुख संपदा सुकाल रहता है ॥ २६५ ॥

वन प्रवेश मुनि वास घनेरे * जनु पुर नगर गाँव गण खेरे ॥१॥
विपुल विचित्र विहँग मृग नाना * प्रजा समाज न जाय बखाना ॥२॥

वनके बीचमें जो मुनियोंके स्थान हैं वही कोई गांव, कोई नगर, कोई खेड़े हैं ॥ १ ॥अनेक प्रकारके विचित्र विहंग मृग हैं वही प्रजाका समाज है जो बखाना नहीं जाता ॥ २ ॥

खगहा करि हरि बाघ बराहा * देखि महिष वृक साज सराहा ॥३॥
वैर विहाय चरहिं इक संगा * जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥४॥

गैंडा, हाथी, सिंह, सुअर, बाघ, भैंसा, भेड़िया इनका समाज देखकर प्रशंसाकी क्योंकि ॥३॥ वैर छोड़कर एक संग फिरते हैं वह मानों चतुरंगिनी सेना है हाथियोंके स्थानमें हाथी, घोड़ोंके स्थानमें बाघ, रथके स्थानमें गैंडा और मृग वृकादि प्यादे हैं ॥ ४ ॥

झरना झरहिं मत्तगज गार्जहिं * मनहुँ निसान विविध विधि बाजहिं॥५॥
चक चकोर चातक शुक पिकगन * कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥६॥

झरना झरते हैं, मतवाले हाथी गर्जते हैं, वही मानो अनेक प्रकारके निशान बजते हैं॥५॥ चकवा, चकोर, चातक, तोता पपीहा और सुन्दर हंस प्रसन्न हो शब्द करते हैं ॥ ६ ॥

अलिगन गावत नाचत मोरा * जनु सुराल मंगल चहुँ ओरा ॥७॥
बेलि विटप तृण सफल सफूला * सब समाज मुद मंगल मूला ॥८॥

भौंरे गाते, मोर नाचते हैं, जैसे सुराजमें सब ओर मङ्गल हो रहा है ॥ ७ ॥ वेलि वृक्ष तिनके हैं, फल फूलादि समाज आनंद मंगलका मूल है, वेलि स्त्री है, वृक्ष पुरुष है तृण उनके लड़के हैं उनको पास लेकर नाच होता है ॥ ८ ॥

दोहा-राम शैल शोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम ॥
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम ॥ २६६ ॥

रघुनाथजीके पर्वतकी शोभा देखकर भरतजीके मनमें बड़ा प्रेम हुआ, जैसे तपस्वी तपस्याका बल पाकर नेम त्याग सुखी होता है ॥ २६६ ॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई * कहत भरत सन भुजा उठाई ॥१॥
नाथ देखियत विटप विशाला * पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥२॥

तब केवटने ऊँचे चढ़के भरतजीसे भुजा उठाकर कहा ॥ १ ॥ हे नाथ ! वह बड़े वृक्ष पाकर, जामुन, रसाल (आम) और तमालके दीखते हैं ॥ २ ॥

तिन तरुवरन मध्य वट सोहा ❋ मंजु विशाल देखि मन मोहा ॥३॥
नील सघन पल्लव फल लाला ❋ अविचल छांह सुखद सब काला॥४॥

उन वृक्षोंके बीचमें एक बड़ा वटका शोभायमान उज्ज्वल और विशाल पेड़ है—जिसे देखकर मन मोहित होता है ॥ ३ ॥ नीले सघन पत्ते लाल-लाल जिसके फल; अविचल जिसकी छाया सब कालमें सुखदायक है ॥ ४ ॥

मानहुँ तिमिरि अरुणमय रासी ❋ विरची विधि सकेलि सुषमासी॥५॥
ते तरु सरित समीप गुसाँई ❋ रघुवर पर्ण कुटी जहँ छाई ॥६॥

मानो अन्धकार और अरुण मिलाकर तीनों लोककी शोभा बटोर ब्रह्माने एक राशिकर दी है ॥५॥ इसी वृक्षके नीचे नदीके तटपर जहाँ रघुनाथजीने अपनी पर्णकुटी बनाई है ॥६॥

तुलसी तरुवर विविध सुहाये ❋कहुँ कहुँ सिय कहुँ लषण लगाये ॥७॥
वट-छाया वेदिका बनाई ❋ सिय निजपाणि सरोज सुहाई॥८॥

अनेक प्रकारसे सुन्दर तुलसीके विरवे, कहीं जानकीजीने कहीं लक्ष्मणजीने लगाये हैं ॥ ७ ॥ वटकी छायामें सुन्दर वेदी जानकीजीने अपने कर कमलोंसे बनायी ॥ ८ ॥

दोहा—जहाँ बैठ मुनि गण सहित, नित सिय राम सुजान ॥
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥ २६७ ॥

जहाँ मुनिगणों सहित नित्य सीता और चतुर रामचन्द्रजी बैठते हैं, कथा सब इतिहास वेद शास्त्र-पुराण सुनते हैं ॥ २६७ ॥

सखा वचन सुनि विटप निहारी ❋ उमँगेउ भरत विलोचन वारी ॥१॥
करत प्रणाम चले दोउ भाई ❋ कहत प्रीति शारद सकुचाई ॥२॥

सखाके वचन सुन और वह वृक्ष देख भरतजीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ दोनों भाई प्रणाम करते चले; वह प्रीति कहते सरस्वती भी सकुचाती है ॥ २ ॥

हर्षहिं निरखि रामपद अंका ❋ मानहुँ पारस पायउ रंका ॥३॥
रज शिर धरि हिय नैनन लावहि ❋ रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं॥४॥

रघुनाथजीके चरणचिह्न देखकर हर्षित होते हैं मानो कंगालने पारस पाया हो ॥ ३ ॥ रज शिरपर धरके हृदय और नेत्रोंसे लगाते हैं;रघुनाथजीके मिलनेके बराबर सुख पाते हैं॥४॥

देखि भरत गति अकथ अतीवा ❋प्रेममगन खग मृग जड़ जीवा ॥५॥
सखहि सनेह विवश मग भूला ❋ कहि सुपंथ सुर वर्षहिं फूला ॥६॥

भरतकी यह अकथनीय अपार गति देख कर खग, जड़ जीव प्रेममें मग्न हो गये॥५॥ भरत शत्रुघ्नके स्नेहको देख निषाद मार्ग भूल गया,देवता सुन्दर मार्ग बताकर फूलोंकी वर्षा करते हैं॥६॥

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे ❋ सहज सनेह सराहन लागे ॥७॥
होत न भूतल भाव भरत को ❋ अचर सचर चर अचर करतको॥८॥

देखकर सिद्ध साधक प्रसन्न हुए और स्वाभाविक स्नेहकी प्रशंसा करने लगे कि ॥ ७ ॥ जो धरती पर भरतका भाव नहीं होता तो देवता अपने स्वार्थमें अचर अर्थात् जड़ हो रहे थे, उन्हें सचर अर्थात् चैतन्य कौन करता ? जो भरतको मार्ग बताते हैं और चर अर्थात् चैतन्य जो निषादराज है उसे जड़ कौन करता ? क्योंकि वह भरतके प्रेममें जाने हुए मार्ग को भी भूल गया। अथवा पर्वत, तृण आदि किस प्रकार द्रवकर अचरसे चर होते और सचर ऋषि मुनि स्नेह देखकर शिथिल हो गये शरीरकी सुध न रही ॥ ८ ॥

दोहा–प्रेम अमिय मन्दर विरह, भरत पयोधि गँभीर ॥
मथि प्रगटे सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥ २६८ ॥

वनवासका विरह मन्दराचल और भरत गंभीर क्षीर समुद्र हैं; सो उसको कृपासिंधु रघुवीरने सुर और साधुके हेतु मथ कर प्रेमरूपी अमृतको प्रगट किया ॥ २६८ ॥

सखा समेत मनोहर जोटा * लखेउ न लषण सघन वनओटा॥१॥
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन * सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥२॥

सखा समेत मनोहर जोड़ी सघन वनकी ओटमें लक्ष्मणजीने नहीं देखी ॥ १ ॥ भरतजीने प्रभुका पवित्र आश्रम जो सुमंगलका घर और श्रेष्ठ था--देखा ॥ २ ॥

करत प्रवेश मिटा दुखदावा * जनु योगी परमारथ पावा ॥३॥
देखे भरत लषण प्रभु आगे * पूछत वचन कहत अनुरागे ॥४॥

आश्रममें प्रवेश करते ही दुःख दाव मिट गया, मानों योगीने परमार्थ पा लिया ॥ ३ ॥ भरतजीने देखा कि लक्ष्मण प्रभुके आगे कुछ पूछते हैं और वे अनुरागसे कहते हैं वे भरतजी अनुरागमें भरे निषादसे पूछते हैं निषाद कहता है ॥ ४ ॥

शीश जटा कटि मुनि पट बांधे * तूण कसे कर सर धनु काँधे ॥५॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू * सीय सहित राजत रघुराजू ॥६॥

शिरपर जटा, कमरमें मुनि वस्त्र बांधे, तरकस कसे, हाथमें बाण कंधेपर धनुष ॥ ५ ॥ वेदीपर मुनि और साधुओंका समाज है, वहां सीता सहित रघुनाथजी विराजते हैं ॥ ६ ॥

वलकल वसन जटिलतनु श्यामा * जनु मुनि वेष कीन्ह रतिकामा॥७॥
करकमलन्ह धनु सायक फेरत * जियकी जरनि हरत हँसि हेरत॥८॥

रघुनाथजी पेड़ोंके छालके वस्त्र धारण किये हैं, शिरपर जटा, सांवला शरीर है और इसी चौपाईमें जानकीजीका गुप्त वर्णन है, लकार और रकारकी सवर्ण संज्ञा है सो बलसे वरका अर्थ होता है कल सुंदरका अर्थ देता है अर्थात् जानकीजी श्रेष्ठ और सुन्दर वस्त्र धारण किये और तनु पर बड़े बड़े केश छूटे हैं श्यामा अवस्था है मानो रति और कामदेवने मुनिका वेष धारण किया है ॥ ७ ॥ इसमें प्रगट अर्थसे रघुनाथजीका वर्णन है कि, कमलके समान हाथोंमें धनुष बाण फेरते हैं और गुप्त अर्थसे जानकीजीका वर्णन है कि जानकीजी अपने हाथोंसे कमलको फेरती हैं, प्रगट अर्थ यह है कि जीवनकी जरनिको रघुनाथजी दृष्टिपूर्वक हँसकर हर लेते हैं और श्रीरघुनाथजीके जीकी जरनिको जानकीजी देखकर हँसके हर लेती हैं अथवा रघुनाथजी जिसकी ओरको देखते हैं हँसकर उसके जीकी जरन अर्थात् ताप हर लेते हैं॥८॥

दोहा-लसत मन्जु मुनि मण्डली, मध्य सीय रघुचन्द ॥
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द ॥ २६९ ॥

मुनियोंकी मनोहर मंडलीके मध्यमें जानकीजी सहित रघुनाथजी ऐसे शोभित होते हैं जैसे ज्ञानकी सभामें शरीर धारण किये भक्ति और सच्चिदानन्द शोभित हों ॥ २६९ ॥

सानुज सखा समेत मगन मन * बिसरे हर्षशोक सुखदुख गन ॥१॥
पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं * भूतल परे लकुटकी नाईं ॥२॥

भरतजी भाई और सखा समेत मनमें मग्न हो गये; हर्ष शोक सुख दुःख भूल गये ॥१॥ नाथ! रक्षा करो रक्षा करो!! ऐसा कहकर लकड़ीकी नाईं पृथ्वीमें गिरे, प्रेमके कारण वहीं मूर्छित हो और सम्मुख न हो सके ॥ २ ॥

वचन सप्रेम लषण पहिचाने * करत प्रणाम भरत जिय जाने ॥३॥
बन्धु सनेह सरस इहि ओरा * उत साहिब सेवा बरजोरा ॥४॥

लक्ष्मणजीने प्रेम पूर्वक वचन पहचाने प्रणाम करते ही मनमें भरतजीको जान लिया ॥ ३ ॥ इस ओर तो भरतजीका सरस स्नेह उधर रघुनाथजीकी सेवा चित्तको हठात् खैंचती है उधर जो रघुनाथजीने पूछा था उसके उत्तर देनेमें उनकी सेवा खैंचती है इससे न भरतजी से मिल सके और न रघुनाथजीको उत्तर दे सके ॥ ४ ॥

मिलि न जाय नहिं गुदरत बनई * सुकवि लषण मनकी गति भनई॥५॥
रहे राखि सेवापर भारू * चढ़ी चंग जनु खैंच खिलारू ॥६॥

न मिला जाता है, न सेवामें स्थिर रहा जाता है, श्रेष्ठ कवि लक्ष्मणकी मनकी गति कहता है ॥ ५ ॥ स्वामीकी सेवाको अधिक मानकर भरतकी ओरसे स्नेहको खींचा, जैसे खिलाड़ी चढ़ी पतंगको खींचते हैं "जैसे ऊँची पतंगको खैंचकर फिर ढील देते हैं फिर खैंचते हैं" इस प्रकार लक्ष्मणजी कुछ भरतकी ओर देखते फिर सेवा करने लगते हैं; इस प्रकार उधरसे मन खैंचकर सेवामें लगा दिया ॥ ६ ॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा * भरत प्रणाम करत रघुनाथा ॥७॥
उठे राम सुनि प्रेम-अधीरा * कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥८॥

फिर प्रेमसे पृथ्वीमें माथा नवाकर बोले-रघुनाथजी! भरतजी! आपको प्रणाम करते हैं॥७॥ रघुनाथजी सुनते ही प्रेममें अधीर हो उठे, तरकस धनुष तीर कहीं का कहीं रह गया है ॥८॥

दोहा-बरबस लिये उठाय उर, लाये कृपा निधान ॥
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान ॥ २७० ॥

रघुनाथजीने बलपूर्वक भरतजीको हृदयसे लगाया, उस समय भरत और रघुनाथजीका मिलना देखकर सब कोई अपने आपको भूल गये अर्थात् शरीरकी सुधि न रही ॥ २७० ॥

मिलन प्रीति किमि जाय बखानी*कवि कुल अगम कर्ममन बानी॥१॥
परमप्रेम पूरण दोउ भाई *मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥२॥

मिलनेके समयकी प्रीति कैसे बखानी जाय? कर्म, मन, वाणीसे कविकुलको वह प्रीति अगम

है ॥१॥ परम प्रेमसे दोनों भाई पूर्ण होकर मन, बुद्धि, चित्त अहंकारको भूलकर मिले ॥२॥

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई * केहि छाया कविमति अनुसरई॥३॥
कविहिं अर्थ आखर बल साँचा * अनुहरि तालगतिहि नट नाचा॥४॥

उस प्रेमको कौन प्रकट कर सके ? कविकी मति किस आधारसे चले ॥ ३ ॥ कविको तो अर्थ अक्षरका सत्य बल है, क्योंकि नट ताल गतिको अनुकूल देखकर ही नाचता है यहां प्रेमके प्रकट करनेको अक्षर नहीं मिलते ॥ ४ ॥

अगम सनेह भरत रघुवरको *जहँनजाइ मन विधि हरिहरको ॥५॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती * बाज सुराग कि गांडर तांती ॥६॥

भरत और रामचन्द्रका ऐसा अगम स्नेह है की जहां विष्णु और ब्रह्माका भी मन नहीं जाता,यद्यपि रघुनाथजी और ब्रह्मादिक देवताओंमें कुछ भेद नहीं है तथापि उपासना ग्रन्थमें रघुनाथजीकी अतिशय परता कही गयी है, प्रमाण-"उपजहिं जासु अंशते नाना। विष्णु विरंचि शंभु भगवाना" किसीका यह अर्थ है-कि रघुवरको जहँ न जाय मन" अर्थात् जहां रामजीका मन भी नहीं जा सकता फिर विधि हरि हरकी कौन ? यथा-"भरत महा-महिमा सुन रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी" ॥ ५ ॥ सो मैं क्षुद्रबुद्धि उस प्रेमको कैसे वर्णन करूँ? भला कहीं अच्छा राग गांडर (एक प्रकारकी घास)की तांतसे बज सकता है?॥६॥

मिलनि बिलोकि भरत रघुवरकी * सुरगण सभय धुकधुकी धरकी ॥७॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे * बरसि प्रसून प्रशंसन लागे ॥८॥

भरत और रघुनाथजीका मिलाप देख डरके मारे देवताओंकी छाती धड़कने लगी ॥७॥ फिर बृहस्पतिके समझाने पर जड़ देवता समझ गये; और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे॥८॥

दोहा-मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम ॥
भूरि भाग्य भेंटेउ भरत, लक्ष्मण करत प्रणाम ॥ २७१ ॥

प्रेमपूर्वक शत्रुघ्नसे मिलकर, रघुनाथजी केवटसे मिले, बड़भागी लक्ष्मणजी भरतजीसे मिले और प्रणाम किया ॥ २७१ ॥

भेंटेउ लषण ललकि लघु भाई * बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई ॥१॥
पुनि मुनिगण दोउ भाइन बन्दे * अभिमत आशिष पाइ अनन्दे॥२॥

लक्ष्मणजी प्रसन्न हो छोटे भाईसे मिले, फिर निषादको हृदयसे लगाया ॥१॥ फिर दोनों भाइयोंने मुनियोंकी वंदना की और इच्छित आशीर्वचन पाकर प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

सानुज भरत उमँगि अनुरागा * धरि शिर सियपदपद्म-परागा ॥३॥
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाये * शिर करकमल परसि बैठाये ॥४॥

भाई सहित भरत प्रसन्न हो जानकीके चरणकमलकी धूरी शिरपर धर ॥ ३ ॥ बारम्बार प्रणाम करने लगे तब जानकीजीने भरतको उठा शिर पर कमलसा कोमल हाथ धरकर बैठाया ॥४॥

सीय अशीष दीन्ह मनमाहीं * मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥५॥
सब विधि सानुकूल लखि सीता * भये निशोच उर अपडर बीता ॥६॥

जानकीजीने मनमें ही आशीष दी और स्नेहमें मग्न हो देहकी सुध न रही, इस कारण कुछ कह न सकीं। अथवा जानकीजीकी आशीष सुनकर भरतजी ऐसे प्रेममें मग्न हुए कि शरीरकी सुध न रही ॥ ५ ॥ भरतजी सब प्रकारसे जानकीजीको प्रसन्न देखकर शोच रहित हो गये और हृदयसे झूठा डर जाता रहा ॥ ६ ॥

कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूछा * प्रेम भरा मन निजगति छूछा ॥७॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि *जोरि पाणि बिनवत प्रणाम करि॥८॥

कोई कुछ न कहता है न पूछता है,मनमें प्रेम भर गया अपनी गतिसे शून्य हो गये ॥ ७ ॥ उस अवसरमें केवट धैर्य धरकर हाथ जोड़ प्रणाम कर विनती करने लगा। केवटके कहनेका भाव यह है कि प्रेममें मग्न हुओंको निकालता है ॥ ८ ॥

दोहा-नाथ साथ मुनिनाथके, मातु सकल पुरलोग ॥
सेवक सेनप सचिव सब, आये विकल वियोग ॥ २७२ ॥

हे नाथ! मुनिनायकके साथ सब माता व पुरके लोग,सेवक, सेनापति, मन्त्री आपके वियोगमें विकल होकर आये हैं। भरतका नाम छोड़कर मुनिके साथ सबका आना कहा, इसका कारण यह कि मुनिका नाम सुनकर उस प्रेमसागरसे निकल आवेंगे और दूसरे यह कि भरतजीका इस भाँति चला आना आज्ञा भंग है और मुनिके साथ यह बात नहीं है और मुनि तथा माता आदि सबका आगमन कहना भी इसी कारण है कि भरतके प्रेमसे निकल कर इनके लेनेके भी सावधान हों। अथवा मुनिकेसाथसे राजाका परलोक गमन सूचित किया।२७२।

शीलसिंधु सुनि गुरु आगमनू * सीय समीप राखि रिपुदमनू ॥१॥
चले सवेग राम तेहि काला * धीर धरम धुर दीनदयाला ॥२॥

शीलसिंधु रघुनाथजी गुरुका आगमन सुन शत्रुघ्नको जानकीजीके समीप छोड़ ॥ १ ॥ धर्मधुर धारी दीन दयाल रघुनाथजीसे उस समय वेगसे चले, प्रेमसे निकलकर सावधान हो गये, इससे धीर धर्मधुर कहा और सबकी विकलता पर दृष्टि करनेसे 'दीनदयालु' कहा कि उनकी प्रीति देख उनके निकट जानेमें देर न की ॥ २ ॥

गुरुहिं देखि सानुज अनुरागे * दंड प्रणाम करन प्रभु लागे ॥३॥
मुनिवर धाय लिये उर लाई * प्रेम उमँगि भेंटे दोउ भाई ॥४॥

गुरुको देखकर भाई सहित रघुनाथजी बड़े प्रेमसे उमड़कर दंड प्रणाम करने लगे ॥३॥ मुनिने दौड़कर रामजीको हृदयसे लगा लिया और प्रेमसे उमड़कर दोनों भाइयोंसे मिले॥४॥

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू * कीन्ह दूरते दण्ड प्रणामू ॥५॥
रामसखा ऋषि बरबस भेंटे * जनु महि लुटत सनेह समेटे ॥६॥

प्रेमसे पुलकायमान हो केवटने अपना नाम कह दूरसे दण्ड प्रणाम किये। तात्पर्य यह कि निषादको ऐसा प्रेम हुआ कि वसिष्ठजीके सङ्ग आया है परंतु उसे इस बातकी सुध न रही इससे प्रणाम किया। अथवा ऋषिसे मिलनेके हेतु प्रणाम किया ॥ ५ ॥ निषादसे ऋषि बरबस मिले, जैसे कोई पृथ्वीमें लुटते हुए स्नेहको समेटता हो ॥ ६ ॥

रघुपति-भक्ति सुमंगल-मूला * नभ सराहि सुर वर्षहिं फूला ॥७॥
यहि सम निपट नीच कोउ नाहीं * बड़ वसिष्ठ सम को जगमाहीं॥८॥

रामचन्द्रजीकी भक्ति सुमंगलका मूल है, यह देवता आकाशसे स्तुति करके फूल बरसाते हैं ॥ ७ ॥ देखो, इस निषादके समान अत्यन्त नीच और वसिष्ठके समान कोई जगत्में बड़ा नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा-जेहि लखि लखनहुँते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ॥
सो सीता-पति भजनको, प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥ २७३ ॥

जिसे देखकर लक्ष्मणजीसे भी अधिक प्रीति कर प्रसन्न हो मुनिराज मिले, सो यह सीता-पति रामचन्द्रजीके भजनकी महिमा प्रकट है ॥ २७३ ॥

आरत लोग राम सब जाना * करुणाकर सुजान भगवाना ॥१॥
जो जेहि भांति रहा अभिलाखी *तेहि तेहिकी तसि तसि रुचि राखी॥२॥

चतुर रघुनाथजीने सब लोगोंको दुःखी देखकर बड़ी करुणा कर ॥ १ ॥ जो जिस भांतिसे जैसे अभिलाषी था उसकी वैसी रुचि रखी ॥ २ ॥

सानुज मिलि पलमहँ सब काहू * कीन्ह दूरि दुख दारुण दाहू ॥३॥
यह बड़ि बात रामकै नाहीं *जिमि घट कोटि एक रविछाहीं॥४॥

रामचन्द्रजीने भाई समेत पलमें सब किसीसे मिल और कठिन दाह दूर किया ॥ ३ ॥ रघुनाथजीको यह बड़ी बात नहीं है क्योंकि जैसे करोड़ोंमें एक सूर्यकी छाया पड़ती है अर्थात् अनेक रूप धरकर मिले ॥ ४ ॥

मिलि केवटहिं उमँगि अनुरागा * पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥५॥
देखी राम दुखित महतारी * जनु सुबेलि अवली हिम मारी॥६॥

केवटसे मिल कर और अनुरागसे भरकर सब पुरवासी भाग्यकी सराहना करने लगे। अथवा पुरवासियोंसे मिलकर फिर रामचन्द्रजी निषादसे मिले। फिर मिलनेका कारण यह है कि इसने गुरुसे मिलाया; यह देख पुरवासी सराहने लगे ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने महता-रियोंको ऐसे दुःखी देखा जैसे सुन्दर वेलोंका समूह बर्फने मार दिया हो ॥ ६ ॥

प्रथम राम भेंटी कैकेयी * सरल स्वभाव भक्ति मति भेई ॥७॥
पग परि कीन्ह प्रबोधि बहोरी *कालकर्म विधि शिर धरि खोरी॥८॥

पहले रघुनाथजी कैकेयीसे मिले, सरल स्वभाव और भक्तिसे उसकी मति प्रभुने गीली कर दी। अथवा प्रभुने अपने सरल स्वभावसे उसकी मतिको भक्तिसे भीगी हुई समझा ॥७॥ फिर पांव पड़कर बहुत समझाया और यह दोष काल, कर्म और विधाताके शिर पर धर दिया। अथवा परम बोध कराकर अर्थात् अपना स्वरूप दिखाकर काल पाकर जो कर्मका विधान हो गया उसका दोष अपने शिर लिया ॥ ८ ॥

दोहा-भेंटी रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष ॥
अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥ २७४ ॥

रघुनाथजी सब माताओंसे मिले और समझाकर सन्तुष्ट किया माता यह जगत ईश्वरके आधीन है, किसीको दोष नहीं देना चाहिये ॥ २७४ ॥

गुरुतिय पद वंदे दोउ भाई * सहित विप्रतिय जे सँग आई ॥१॥
गंग गौरि सम सब सन्मानी * देहिं अशीश मुदित मृदु बानी ॥२॥

गुरुकी स्त्रीके चरणोंमें दोनों भाइयोंने प्रणाम किया, और भी जो ब्राह्मणोंकी स्त्रियें संगमें आयी थीं उनको भी दंडवत किया ॥ १ ॥ गङ्गा और गौरीके समान सबका सम्मान किया उन्होंने प्रसन्न हो कोमलवाणीसे आशीश दीं ॥ २ ॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका * जनु भेंटी संपति अतिरंका ॥३॥
पुनि जननी चरणन दोउ भ्राता * परे प्रेम व्याकुल सब गाता ॥४॥

फिर दोनों भाई चरण पकड़कर सुमित्राकी गोदीमें बैठे उसने ऐसे हृदयसे लगाया जैसे किसी कंगालको अधिक सम्पत्ति मिल गयी हो ॥ ३ ॥ फिर प्रेमसे सब शरीर व्याकुल ऐसे दोनों भाई माताके चरणोंमें गिरे ॥ ४ ॥

अति अनुराग अंब उर लाये * नयन सनेह सलिल अन्हवाये ॥५॥
तेहि अवसर-कर हर्ष विषादू *किमि कवि कहै मूक जिमि स्वादू॥६॥

बड़े प्रेमसे कौशल्याने हृदयसे लगाया और स्नेहरूपी नयनोंके जलसे स्नान कराया ॥५॥ उस समयका हर्ष विषाद कोई कवि कैसे कह सकता है जैसे गूँगा स्वादको नहीं कह सकता॥६॥

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ * गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ॥७॥
पुरजन पाय मुनीश नियोगू * जल थल तकि तकि उतरे लोगू॥८॥

भाई सहित रघुनाथजी मातासे मिलकर गुरुसे बोले कि महाराज ! पधारिये ॥ ७ ॥ पुरवासी लोग मुनिकी आज्ञा पाकर जल थल देख देखकर उतरे ॥ ८ ॥

दोहा-महिसुरमन्त्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ ॥
पावनआश्रम गमन किये, भरत लषण रघुनाथ ॥ २७५ ॥

ब्राह्मण, मन्त्री, माता गुरु गिने लोगोंको साथले भरत, लक्ष्मण और रघुनाथजी पवित्र आश्रममें चले ॥ २७५ ॥

सीय आय मुनिवर पग लागी *उचित अशीष लही मन मांगी ॥१॥
गुरुपत्निहिं मुनितियन्ह समेता * मिली प्रेम कहि जाय न जेता ॥२॥

सीताजी आकर मुनिके चरणोंमें लगीं और मनमांगी उचित आशीश प्राप्त की॥१॥ गुरुकी स्त्री और मुनियोंकी स्त्रियोंसे मिलकर जो सुख पाया, जैसे प्रेम बढ़ा वह कहा नहीं जाता॥२॥

वंदि वंदि पग सिय सबहींके * आशिश वचन लहे प्रिय जीके॥३॥
सासु सकल जब सीय निहारी * मूंदेउ नयन सहमि सुकुमारी ॥४॥

जानकीजीने सबके पद वंदना करके जीके प्यारे आशीर्वचन लिये ॥ ३ ॥ जब सब सासुओंको सुकुमारी जानकीजीने देखा तो नेत्र मूँद लिये और सहम गयीं यह चौपाई जानकीजी और सासु दोनों ओर लगती है कि जब सासुओंने जानकीजीको देखा तो सहम कर आंखें मीच लीं कि ये सुकुमारी वनमें दुःख कैसे सह सकेंगी ? ॥ ४ ॥

परी वधिक वश मनहुँ मराली * काह कीन्ह करतार कुचाली ॥५॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखपावा * सो सब सहिय जो दैव सहावा ॥६॥

और वह दशा हुई जैसे हंसिनी वधिकके वशमें पड़ गयी हो मनमें कहने लगीं हे कर्तार! तूने यह क्या कुचाल की दूसरे पक्षमें हंसिनी जानकी और वधिक कैकेयी है ॥ ५ ॥ उन्होंने भी जानकीजीको देखकर बड़ा दुःख पाया, वह सब सहना पड़ता है जो विधाता सहावे यह दूसरी रनिवासकी रानियें थीं ॥ ६ ॥

जनकसुता तब उर धरि धीरा * नीलनलिन लोचन भरि नीरा ॥७॥
मिली सकल सासुन सिय जाई * तेहि अवसर करुणा महिछाई ॥८॥

तब जानकीजी हृदयमें धैर्य धरकर और नीले कमलसे नेत्रोंमें जल भरकर ॥ ७ ॥ सब सासुओंसे जाकर मिलीं, उस समय पृथ्वीमें करुणा छा गयी ॥ ८ ॥

दोहा—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग ॥
हृदय अशीशहिं प्रेमवश, रहिहौ भरी सुहाग ॥ २७६ ॥

जानकी सबके चरणोंमें लगके प्रेमसे मिलती हैं, वे सब हृदयसे प्रेमवश हो आशीष देती हैं कि तुम सुहागसे भरी रहो ॥ २७६ ॥

विकल सनेह सीय सब रानी * बैठे सबहि कह्यो गुरु ज्ञानी ॥१॥
कहि जगगति मायिक मुनिनाथा * कहे कछुक परमारथ गाथा ॥२॥

जानकीजी और सब रानी स्नेहसे व्याकुल हो गयीं; उस समय ज्ञानी गुरुने सबको बैठनेको कहा ॥ १ ॥ वसिष्ठजीने माया सम्बन्धी जगत्की गति वर्णन की और फिर कुछ परमार्थकी कथा कही कि, ज्ञान दृष्टिसे यह संसारका प्रपंच झूठा जान पड़ता है ॥ २ ॥

नृपकर सुरपुर गमन सुनावा * सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा ॥३॥
मरण हेतु निज नेह विचारी * भये अतिविकल धीर धुरधारी॥४॥

बहुतसी कथाएँ सुनाकर वसिष्ठजीने रघुनाथजीसे राजा दशरथ का सुरपुर गमन सुनाया जिनके सुननेसे रघुनाथजीको असह्य दुःख हुआ ॥ ३ ॥ प्राण त्यागनेका कारण अपना स्नेह विचार कर धीरोंके धुर धारण करनेवाले रघुनाथजी बड़े व्याकुल हुए ॥ ४ ॥

कुलिश कठोर सुनत कटुबानी * विलपति लषण सीय सब रानी॥५॥
शोक विकल अति सकल समाजू * मानहुँ राज अकाजेउ आजू ॥६॥

वज्रके समान कठोर और कटु वाणी सुनकर लक्ष्मण, जानकी और सब रानी रोने लगीं॥५॥ सब समाज शोचसे अत्यन्त व्याकुल हो गया, मानो आजही राजाका मरण हुआ ॥ ६ ॥

मुनिवर बहुरि राम समुझाये * सह समाज सुरसरित नहाये ॥७॥
व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा * मुनिहुँ कहे जल काहु न लीन्हा ॥८॥

मुनिने फिर रघुनाथजीको समझाया और समाज सहित मंदाकिनीमें स्नान किये॥७॥ उस दिन रघुनाथजीने निर्जल व्रत किया और मुनिके कहनेसे भी किसीने जल नहीं लिया ॥८॥

दोहा—भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह ॥
श्रद्धा भक्ति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥ २७७ ॥

प्रातःकाल होने पर रामचन्द्रजीको जो कुछ मुनिने आज्ञा दी सो श्रद्धा भक्तिसहित आदरसे किया ॥ २७७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे अयोध्याकाण्डान्तर्गत वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां चतुर्दशो विश्रामः ॥ १४ ॥

दोहा–जेहि विधि जुरचो समाज सब, आये जनक नरेश ।
कहेउ पञ्चदशमें सकल, बहुरि फिरे जस देश ॥ १५ ॥

करि पितु क्रिया वेद जसि वरणी ❋ भय पुनीत पातकतम तरणी ॥१॥
जासु नाम पावक अघ तूला ❋ सुमिरत सकल सुमङ्गल मूला ॥२॥

पिताकी वेद विहित क्रिया करके पातकरूपी अन्धकारके दूर करनेको सूर्य रघुनाथजी पवित्र हुए ॥१॥ जिसका नाम पापरूपी रुईको जलानेको अग्नि है और स्मरण करनेमें सुमङ्गलका मूल है॥२॥

शुद्ध सो भयउ साधुसम्मत अस ❋ तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥३॥
शुद्ध भये दुइ वासर बीते ❋ बोले गुरुसन राम पिरीते ॥४॥

वे शुद्ध हुए ऐसा साधुओंका सम्मत है, जैसे नदीमें स्नान करनेसे गङ्गा अपनेको शुद्ध माने । वा जैसे तीर्थोंके आवाहनसे गङ्गा अपनेको शुद्ध माने और जैसे गंगाके स्पर्श करनेसे नदी शुद्ध होती है वैसे रघुनाथजीके करनेसे कर्म शुद्ध हो गये । अथवा जैसे गंगाके आवाहन करनेसे तीर्थ शुद्ध हो जाते हैं वैसे रघुनाथजीके करनेसे कर्म तीर्थ शुद्ध हो गये । लोकरीतिसे यह कहते हैं कि रामचन्द्र शुद्ध हुये ॥ ३ ॥ जब शुद्ध होनेके उपरान्त दो दिन बीत गये तब रघुनाथजी प्रेमपूर्वक गुरुसे बोले ॥ ४ ॥

नाथ लोग सब निपट दुखारी ❋ कन्द मूलफल अम्बु अहारी ॥५॥
सानुज भरत सचिव सब माता ❋ देखि मोहि पल जिमि युगजाता ॥६॥

हे नाथ ! लोग सब कंद मूल, फलादि भोजन वा जलाहार रहनेसे अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं ॥ ५ ॥ शत्रुघ्न भरत और सब माताओंको मुझे देखकर एक पल युगके समान जाता है ॥६॥

सब समेत पुर धारिय पाऊ ❋ आपु यहाँ अमरावति राऊ ॥७॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई ❋ उचित होय तस करिय गुसाँई ॥८॥

सबको लेकर नगरमें पधारिये, क्योंकि आप यहां हैं राजा देवलोकमें हैं ॥७॥ हे स्वामी ! मैंने ढिठाई करके कहा है; अब जैसा उचित हो वैसा कीजिये ॥ ८ ॥

दोहा–धर्मसेतु करुणायतन, कस न कहहु अस राम ॥
लोग दुखित दिन दुइ दरश, देखि लहहिं विश्राम ॥ २७८ ॥

वसिष्ठजी बोले–हे धर्मसेतु करुणा सागर रघुनाथजी ! तुम क्यों न ऐसे कहो ? लोग दुःखी दो दिनसे आपका दर्शन कर विश्राम पाते हैं ॥ २७८ ॥

राम वचन सुनि सभय समाजू ❋ जनु जलनिधि महँ विकल जहाजू ॥१॥
सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला ❋ भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला ॥२॥

रामजीके जानेके वचन सुनकर समाज व्याकुल हो गया, जैसे समुद्रमें पवनके चलनेसे जहाज व्याकुल हो जाता है ॥ १ ॥ गुरुकी सुन्दर मंगलमूल वाणी सुनकर जैसे पवन अनुकूल हो जाय वैसे प्रसन्न हुए, पवन अनुकूल होनेसे जहाज नहीं डूबता ॥ २ ॥

पावन पय तिहुँ काल अन्हाहीं ❋ जेहि बिलोकि अघओघ नशाहीं॥३॥
मंगल मूरति लोचन भरि भरि ❋ निरखहिं हर्षि दण्डवत करि करि॥४॥

मन्दाकिनीके पवित्र जलमें त्रिकाल स्नान करते हैं जिसे देखकर पापके समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥ मंगलमूर्तिको नेत्रोंसे भरकर देखते हैं और दण्डवत करके प्रसन्न होते हैं ॥ ४॥

रामशैल वन देखन जाहीं ❋ जहँ सुख सकल कतहुँ दुख नाहीं॥५॥
झरना झरहिं सुधा सम वारी ❋ त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी ॥६॥

श्रीरामजीके शैल वन देखने जाते हैं जहां सब सुख है और कहीं भी दुख नहीं है ॥५॥ झरनोंमेंसे अमृतके समान जल झरता है और दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंका हरनेवाला शीतल, मन्द, सुगंधयुक्त पवन चलता है ॥ ६ ॥

विटप बेलि तृण अगणित जाती ❋ फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥७॥
सुन्दर शिला सुखद तरुछाहीं ❋ जाय बरणि छबि वनकेहि पाहीं ॥८॥

सब जातिके वृक्ष, बेलि, तृण जो कि अनेक भाँतिके फल फूल और पल्लवोंसे युक्त हैं ॥७॥ सुन्दर शिला; सुखदायक वृक्षोंकी छाया है, वनकी छबि किससे वर्णन की जाय ? ॥ ८ ॥

दोहा—सरित सरोरुह जलविहँग, कूजत गुंजत भृङ्ग ॥
❋ वैर विगत विहरत विपिन, मृग बिहँग बहुरंग ॥ २७९ ॥

नदीमें कमल खिल रहे हैं, उनपर जलके पक्षी शब्द कर रहे हैं भौंरे गूँज रहे हैं वैर छोड़ कर वनमें अनेक प्रकारके मृग और पक्षी विहार करते हैं ॥ २७९ ॥

कोल किरात भिल्ल वनवासी ❋ मधु शुचि सुन्दर स्वाद सुधासी॥१॥
भरि भरि पर्णपुटी रुचि रूरी ❋ कन्द मूल फल अंकुर जूरी ॥२॥

कोल, किरात, भील, वनवासी सुन्दर स्वादिष्ट अमृतके समान पवित्र मधुको लेकर बर्तनोंमें भर भर कर लाते हैं । अथवा पवित्र और मधुर स्वादवाली वस्तुएँ और ॥ १ ॥ पत्तोंके सुन्दर पुटी (दोने) बनाकर अथवा जोड़कर उनमें कंद, मूल, फल और जूरी जिसका अँखुआ खाने योग्य होता है, जैसे (सूरण आदि) भर भर कर ॥ २ ॥

सबहिं देहिं करि विनय प्रणामा ❋ कहि कहि स्वादु भेदगुण नामा॥३॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं ❋ फेरत राम-दुहाई देहीं ॥४॥

और उनके स्वाद, भेद, गुण, नाम बता बताकर सबको नम्रतासे प्रणाम कर देते हैं ॥३॥ लोग बहुत मूल्य देते हैं, किंतु वे नहीं लेते और फेरतेमें रघुनाथजीकी दुहाई देते हैं ॥ ४ ॥

कहहिं सनेह मगन मृदुबानी ❋ मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥५॥
तुम सुकृती हम नीच निषादा ❋ पावा दर्शन राम प्रसादा ॥६॥

स्नेहमें मग्न होके कोमलवाणी कहते हैं कि तुम क्यों नहीं लेते ? सत्पुरुष प्रेम पहचान कर प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥ आप पुण्यात्मा और हम नीच निषाद हैं, श्रीरामचन्द्रजी के प्रसादसे आपका दर्शन पाया है ॥ ६ ॥

हमहिं अगम अतिदरश तुम्हारा ❋ जस मरु धरणि देवधुनिधारा ॥७॥
राम कृपालु निषाद निवाजा ❋ परिजन प्रजउ चहिय जस राजा॥८॥

हमको आपके दर्शन ऐसे कठिन हैं जैसे मारवाड़में गङ्गाजीकी धारा दुर्लभ है ॥७॥ (चित्रकूटके कोल, किरात अवधवासियोंसे कहते हैं कि) रघुनाथजीने निषादको तारा है सो आप लोग हमको तारें; क्योंकि जैसा राजा हो वैसी ही प्रजा भी होनी चाहिये ॥ ८ ॥

दोहा–यह जिय जानि सँकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु ॥
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृण अंकुर लेहु ॥२८०॥

यह जीमें विचार कर संकोच छोड़ कृपा कीजिये; स्नेह देखकर हमें कृतार्थ करनेको फल तृण और अंकुर लीजिये ॥ २८० ॥

तुम प्रिय पाहुन वन पगुधारे ❋ सेवा योग न भाग्य हमारे ॥१॥
देब कहा हम तुमहिं गुसाँई ❋ ईंधन पात किरात मिताई ॥२॥

तुम प्यारे पाहुने यहां आये हो, हमारे भाग्य सेवा योग्य नहीं हैं ॥१॥ हे गुसाईं ! हम तुम्हें क्या देंगे क्योंकि ईंधन और पत्तोंसे किरातोंकी मित्रता है ॥ २ ॥

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई ❋ लेहिं न बासन बसन चुराई ॥३॥
हम जड़ जीव जीवगण-घाती ❋ कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥४॥

यही हमारी बड़ी सेवा है कि; तुम्हारे बासन, कपड़े नहीं चुरा लेते हैं ॥३॥ हम जड़, जीवोंके मारनेवाले, खोटे, कुचाली, कुमति, कुजाति हैं ॥ ४ ॥

पाप करत निशि बासर जाहीं ❋ नहिं कटिपट नहिं पेट अघाहीं ॥५॥
सपनेहु धर्मबुद्धि कस काऊ ❋ यह रघुनन्दन-दरश प्रभाऊ ॥६॥

हमें रात दिन पाप करते बीतते हैं न कमरमें कपड़े रहते हैं न पेट ही भरता है ॥५॥ हमारी तो धर्म बुद्धि स्वप्नमें भी नहीं होती। यह रघुनंदनके दर्शनका प्रभाव है, जो आपकी शुश्रूषामें मन लगा ॥६॥

जबते प्रभुपद पद्म निहारे ❋ मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥७॥
वचन सुनत पुरजन अनुरागे ❋ तिनके भाग्य सराहन लागे ॥८॥

जब प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) के चरण कमल देखे हैं तबसे हमारे असह्य दुःख, दोष मिट गये हैं ॥ ७ ॥ पुरवासी वचन सुनकर प्रसन्न हुए और उनके भाग्य सराहने लगे ॥ ८ ॥

छन्द–लागे सराहन भाग्य सब अनुराग वचन सुनावहीं ॥
बोलनि मिलनि सियरामचरण सनेह लखि सुख पावहीं ॥
नर नारि निदरहिं नेह निज सुन कोल भिल्लनिकी गिरा ॥
तुलसी कृपा रघुवंशमणिकी लोह लै नौका तिरा ॥ २३ ॥

सब कोई उनके भाग्यकी सराहना करने लगे और प्रेमके वचन सुनाने लगे। उनका बोलना मिलना और रघुनाथजीके चरणोंमें स्नेह देखकर सुख पाते हैं। नर नारी कोल किरातोंकी वाणी सुनकर अपने स्नेहकी निंदा करते हैं; रघुवंशमणिकी कृपासे जो लोहेके मणिके स्थानमें किरात हैं वे नौकारूपी अवधवासियोंको लेकर पार हो गये; कारण कि उनसे अपनी प्रशंसा सुनते हैं ! अथवा रघुवंशमणिकी कृपा नाव है कोल भील लोहा हैं, इन्हें संसार सागरसे पार किया ॥२३॥

सोरठा–विहरहि बन चहुँ ओर, प्रति दिन प्रमुदित लोग सब ॥
जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥ १७ ॥

रघुनाथजीके बिरहमें जो अयोध्यावासी दुर्बल हो गये थे वे रघुनाथजीके संयोग होनेसे दिन प्रतिदिन आनंदित हो वनके चारों तरफ विहार करते हैं, जैसे प्रथम पावस अर्थात् वर्षाकालका जल पाकर मेंढक, मोर मोटे हो आनंद सहित घूमते हैं ॥ १७ ॥

पुर नर नारि मगन अति प्रीती * बासर जाहि पलक सम बीती॥१॥
सीय सासु प्रतिवेष बनाई * सादर करहिं सरिस सेवकाई ॥२॥

पुरनरनारी अत्यन्त प्रेममें मग्न हैं, अतः पलकके समान दिन बीतते हैं ॥ १ ॥ जानकीजी अपने कई रूप बनाकर जितनी सासुएँ हैं सबकी समान सेवा करती हैं ॥ २ ॥

लखा न मर्म राम बिनु काहू * माया सब सिय माया नाहू ॥३॥
सीय सासु सेवा वश कीन्ही *तिन्ह लहि सुख शिख आशिष दीन्ही॥४॥

रघुनाथजीके विना यह गुप्त बात किसीने नहीं जानी क्योंकि सब माया जानकीजीकी मायाके भीतर है, श्रीरामचन्द्रजी मायाके पति हैं ॥ ३ ॥ जानकीजीने सब सासुओंको सेवा करके वशमें कर लिया, उन्होंने सुखी हो शिक्षा और आशीर्वाद दिया ॥ ४ ॥

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई* कुटिल रानि पछितानि अघाई॥५॥
अब निज मन याचति कैकेयी * महि न बीच विधि मीच न देई॥६॥

जानकी सहित दोनों भाइयोंको सरल चित्त देख कुटिल कैकेयी बहुत पछताई ॥ ५ ॥ अब अपने जीमें कैकेयी याचना करती है कि पृथ्वी बीच नहीं देती है कि समा जाऊँ विधाता मृत्यु नहीं देता कि मर जाऊँ ॥ ६ ॥

लोकहु वेद विदित कवि कहहीं *राम विमुख थल नरक न लहहीं॥७॥
यह संशय सबके मनमाहीं *रामगमन विधि अवधकि नाहीं॥८॥

यह बात लोक और वेदमें विदित है- ऐसा कविजन कहते हैं कि रघुनाथजीसे विमुख जीवोंको नरकमें भी स्थान नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ सबके मनमें यह सन्देह है कि न जाने रघुनाथजी अयोध्याको चलेंगे या नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुठि शोच ॥
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥२८१॥

भरतजीको रातमें नींद नहीं आती, दिनमें भूख नहीं शोचमें बड़े व्याकुल हैं जैसे नीच कीचमें डूबी मछलीको पानीका संकोच अर्थात् इतना पानी है कि डूब नहीं सकती; चल नहीं सकती, नीच कीचका अर्थ भी थोड़ेका है जैसे उसमें थोड़ा जल है वैसे ही भरतको यहां रहना थोड़ा है, जैसे मीनको बकुलादिका भय है, ऐसे इन्हें रघुनाथजीकी आज्ञाका भय है, जैसे मछली जल विना नहीं जी सकती ऐसे ही भरतजी रघुनाथजीके संयोगरूपी जल विना नहीं जी सकते अर्थात् मति काम नहीं देती ॥ २८१ ॥

कीन्ह मातु मिसु काल कुचाली * ईति भीति जस पातक शाली ॥१॥
केहि विधि होय राम-अभिषेकू * मोहि अवकलत उपाय न एकू॥२॥

कालने माताके बहानेसे कुचालकी, जिस समय श्रीरघुनाथजीके शिरपर मुकुट रखना था उस समय जटा रखी गयी, जैसे जाड़ेके पके हुए धानोंको ईति अर्थात् अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसेका लगना, टीड़ीका आना, सुगोंका लगना, खेत जो राजा काटले वा पाला वा ओले पड़े, सो रामराजगद्दी रूप पके खेतको कैकेयी जीभरूप तोतेकी चोंचने काट डाला ॥१॥ कैसे रघुनाथजीका अभिषेक हो ? मुझे अब कोई उपाय नहीं सूझता। 'अवकलना–सूझना'॥२॥

अवशि फिरहिं गुरु आयसु मानी ❋ मुनि पुनि कहब रामरुचि जानी॥३॥
मातु कहेउ बहुरहिं रघुराऊ ❋ राम जननि हठ करब कि काऊ॥४॥

रामचन्द्र गुरुकी आज्ञा मान कर लौट सकते हैं, परन्तु विना रघुनाथजीकी रुचि देखे गुरुजी नहीं कहेंगे ॥ ३ ॥ माताके कहनेसे भी रघुनाथजी लौट सकते हैं, परन्तु रामजीकी माता जिनके पुत्रने धर्मके कारण राज्य छोड़ दिया, वे कभी हठ नहीं करेंगी ॥ ४ ॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता ❋ तेहिमहँ कुसमय बाम विधाता॥५॥
जौं हठ करौं तौ निपट कुकर्मू ❋ हर गिरिते गुरु सेवक धर्मू ॥६॥

और जो मैं कहूँ तो मुझ अनुचरकी बात ही क्या है, उसमें भी कुसमय और विधाता वाम है॥ ५ ॥ जो हठ करूँ तो अधिक बुराई है, क्योंकि सेवकका धर्म तो कैलास से भी अधिक भारी है, जिन शिवजीने रघुनाथजीके कारण सतीको त्याग दिया उन्हींका यह पर्वत है। अथवा सेवकका धर्म कैलाससे भी अधिक निर्मल है, श्वेतमें स्याही लगनी भली नहीं, विंध्याचल गुरुके धर्मको स्वीकार कर आज तक झुक रहा है ॥ ६ ॥

एकउ युक्ति न मन ठहरानी ❋ सोचत भरतहि रैनि बिहानी ॥७॥
प्रात नहाय प्रभुहि शिर नाई ❋ बैठत पठये ऋषय बुलाई ॥८॥

एक भी युक्ति मनमें न ठहरी, भरतजीको सोचते-सोचते रात बीत गयी ॥ ७ ॥ प्रातःकाल स्नान कर श्रीरघुनाथको शिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषिने बुलाया ॥ ८ ॥

दोहा–गुरुपदकमल प्रणाम करि, बैठे आयसु पाय ॥
विप्रमहाजन सचिव सब, जुरे सभासद आय ॥ २८२ ॥

भरतजी गुरुके चरणकमलको प्रणाम कर आज्ञा पाकर बैठे, उस समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभामें आकर बैठे ॥ २८२ ॥

बोले मुनिवर समय समाना ❋ सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥१॥
धर्म- धुरीण भानुकुल भानू ❋ राजा राम स्ववश भगवानू ॥२॥

मुनिराज समयानुसार बोले–हे सभासद ! और हे सुजान भरत ! सुनो ॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजी धर्मधुरीण (धर्मकी धुर धारण करनेवाले) हैं ये माता पिताकी आज्ञा उल्लंघन कैसे करें ? और फिर सूर्यकुलके सूर्य हैं, सब स्थानमें प्रकाश होना चाहिये और राम हैं अर्थात् सबमें रमे हैं; स्ववश (अपने वशमें) हैं और छहों ऐश्वर्योंसे पूरित हैं ॥ २ ॥

सत्यसंध पालक श्रुति-सेतू ❋ रामजन्म जग मंगल हेतू ॥३॥
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी ❋ खलदल दलन देव हितकारी ॥४॥

यह सत्य संकल्प है, विश्वका भार उतारने और वेदकी मर्यादा रखनेके निमित्त और मङ्गल करनेको जगत्में रघुनाथजीका जन्म है ॥३॥ गुरु माता-पिताकी आज्ञा मानकर तदनुसार वर्त्तनेवाले हैं इनके विपरीत मैं आज्ञा दूं तो कैसे बने ? एकको भङ्ग करना पड़ेगा और उनके धर्मकी रक्षा करने और खलोंको मारके देवताओंके हित करनेके निमित्त इनका अवतार है॥४॥

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ ❋ कोउ न रामसम जान यथारथ॥५॥
विधिहरिहर शशिरवि दिगपाला ❋ माया जीव कर्म सब काला ॥६॥

नीति, प्रीति, परमार्थ, स्वार्थ, श्रीरामजीके समान कोई यथार्थ नहीं जानता ॥५॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और सम्पूर्ण काल ॥ ६ ॥

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई ❋ योग सिद्ध निगमागम गाई ॥७॥
करि विचार जिय देखहु नीके ❋ राम रजाय शीश सबहीके ॥८॥

शेष और महीप (पृथ्वीके राजा) आदिकोंकी जहां तक प्रभुताई है और जोग सिद्धि, वेद शास्त्रोंने गायी ॥ ७ ॥ जीमें अच्छी प्रकार विचार कर देखो,श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा सबको शिरोधार्य है उनकी आज्ञा सब मान रहे हैं, न कि उन्हें कोई आज्ञा दे रहा है ॥ ८ ॥

दोहा–राखे राम रजाय रुख, हम सब कर हित होय ॥
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि सम्मत सोय ॥ २८३ ॥

श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा और रुख रखनेसे हम सबका हित होगा, सब सयाने लोग समझके अब सम्मत करो, जैसी सबकी इच्छा हो वही किया जाय ॥ २८३ ॥

सब कहँ सुखद राम-अभिषेकू ❋ मंगल मोद मूल मग एकू ॥१॥
केहि विधि अवध चलहिं रघुराई ❋ कहब समुझि सोइ करे उपाई ॥२॥

श्रीरघुनाथजीका अभिषेक सबको सुखदायक है, यही एक मंगल मोदका मूल मार्ग है ॥ १ ॥ किस प्रकारसे रघुनाथजी अयोध्याको चलें ? समझके कहो; वही उपाय करें ॥ २ ॥

सब सादर सुनि मुनिवर वानी ❋ नय परमारथ स्वारथ सानी ॥३॥
उतर न आव लोग भये भोरे ❋ तब शिर नाय भरत कर जोरे ॥४॥

सब आदरसे मुनिकी नीति, परमार्थ और स्वार्थयुक्त वाणी सुनकर (मौन हो गये) नीति यह कि राम धर्मधुरधारी हैं पिता माताके आज्ञाकारी हैं परमार्थ यह कि रामजीकी आज्ञा सबके शिरपर है, स्वार्थ यह कि रामजीका राज्याभिषेक किस प्रकार हो ? ॥ ३ ॥ जब उत्तर नहीं आया लोग भोरे हो गये तब शिर नवाकर भरतजी हाथ जोड़कर बोले ॥ ४ ॥

भानुवंश भये भूप घनेरे ❋ अधिक एकते एक बड़ेरे ॥५॥
जन्महेतु सब कहँ पितु माता ❋ कर्म शुभाशुभ देइ विधाता ॥६॥

सूर्यवंशमें अनेक राजा हो गये जो एकसे एक बड़े थे ॥५॥ जन्म तो सबको माता-पिता देते हैं उनमें बड़ा करनेका सामर्थ्य नहीं है और विधाता केवल कर्मके अनुसार फल देता है॥६॥

दलि दुख सजे सकल कल्याना ❋ अस अशीश राउर जगजाना ॥७॥
सोइ गुसाइँ जेहि विधि गति छेकी ❋ सकै को टारि टेक जो टेकी ॥८॥

और दुःख दूर करके सब कल्याण रच देती है, ऐसी आशीष आपकी है जगत् जानता है ॥ ७ ॥ हे गुसाईं ! आपने विधाता की गति छेक[1] दी अर्थात् सबको शुभफल कर दिया, जो आपने टेक टेकी है उसे कौन टार सकेगा ? अथवा सूर्यवंशी राजाओंके प्रारब्धमें जो खोटे अंक थे वे आपने शुभ कर दिये, सो आपने जो टेक टेकी अर्थात् यह सिद्धांत किया है कि "राखें राम रजाय रुख हम सबकर हित होय" इसे कौन मेट सकता है ॥ ८ ॥

दोहा—बूझिय मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभाग ॥
सुनि सनेहमय वचन गुरु, उर उमँगा अनुराग ॥ २८४ ॥

सो आप ऐसे होकर मुझसे अब पूछते हो सो मेरा अभाग्य ही है क्योंकि आप समर्थ हो वसिष्ठजी यह भरतजीके स्नेह युक्त वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, मनमें बड़ा अनुराग उत्पन्न हुआ और बोले ॥ २८४ ॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं ❋ रामविमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥१॥
सकुचौं तात कहत इक बाता ❋ अर्ध तजहि बुध सरबस जाता ॥२॥

हे तात ! तुम्हारी बात सत्य है, अब तक रामजीकी कृपासे ऐसा ही होता था परन्तु राम जीसे विमुख होनेसे स्वप्नमें सिद्धि नहीं होती ॥१॥ तथा एक बात कहते हुए सकुचाता हूँ पर कहना ही पड़ा, क्योंकि पंडितोंकी यह रीति है कि जो आधेके जानेसे सर्वस्व बचता हो तो उस आधेको त्याग देते हैं। आशय यह कि रघुनाथजी सर्वस्व हैं और भरत आधे हैं, अथवा रघुनाथ जानकी सहित हैं भरत अकेले हैं अर्थात् रघुनाथ पिंडके आधे भाग हैं और भरत चौथाई, इससे भी आधे ठहरे; वा रामके गमनसे देवताओंका पूरा काज और हमारा आधा है वा रामचन्द्र पूर्ण राजा हैं भरतजी नामसे ही राजा हुए हैं इससे आधे हैं ॥ २ ॥

तुम कानन गवनहु दोउ भाई ❋ फेरिय लषण सीय रघुराई ॥३॥
सुनि सुवचन हरषे दोउ भ्राता ❋ भये प्रमोद परिपूरण गाता ॥४॥

तुम दोनों भाई वनको जाओ और लक्ष्मण, सीता, रघुनाथजीको लौटा दो ॥ ३ ॥ यह सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए और प्रसन्नतासे शरीर परिपूर्ण हो गया ॥ ४ ॥

मन प्रसन्न तनु तेज विराजा ❋ जनु जिय राउ राम भये राजा ॥५॥
बहुत लाभ लोगन लघु हानी ❋ सम दुख सुख रोवहिं सब रानी ॥६॥

मनमें प्रसन्न होकर शरीरमें तेज विराजने लगा, मानो रामचन्द्र ही राजा हो गये। अथवा मानो राजा जीवित हुए और राम राजा हुए ॥ ५ ॥ लोगोंको बहुत लाभ थोड़ी हानि है और सब रानी समान सुख-दुःख होनेसे रोने लगीं ॥ ६ ॥

कहहिं भरत मुनि कहा सो कीन्हे ❋ फलजगजीवन अभिमत दीन्हे ॥७॥
कानन करौं जन्म भरि वासू ❋ इहिते अधिक न मोर सुपासू ॥८॥

भरतजीने कहा कि मुनिजीका कहना करनेसे जगत्में जीवनके इच्छित फलकी प्राप्ति होगी ॥ ७ ॥ जन्मपर्यन्त वनमें वास करूँगा इससे मेरा अधिक सुपास नहीं है ॥ ८ ॥

१. ब्रह्माजीने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि होनेका वरदान दिया, परंतु वसिष्ठजीने राजर्षि ही कहकर ब्रह्माजीकी गति छेक दी और एक राजाकी कन्याको बालक भी बना दिया था।

दोहा-अन्तर्यामी राम सिय, तुम सर्वज्ञ सुजान ॥
जौ फुर कहौ तौ नाथ निज, कीजिय वचन प्रमान ॥ २८५ ॥

हे नाथ ! राम और सीता अन्तर्यामी हैं,आप सर्वज्ञ तथा चतुर हो जो आप सत्य कहते हो अपने वचनानुकूल करें अर्थात् मैं वनको जाता हूँ;आप श्रीरामचन्द्रजीको लौटा ले जाइये॥२८५॥

भरत वचन सुनि देखि सनेहू * सभासहित मुनि भयउ विदेहू ॥१॥
भरत महामहिमा जलराशी * मुनिमति तीर ठाढ़ि अबलासी॥२॥

भरतजीके वचन सुन और स्नेह देखकर मुनिराज सभा सहित विदेह हो गये अर्थात् शरीरकी सुध न रही ॥ १ ॥ भरतजीकी महामहिमा समुद्रके समान है, वहां मुनिकी मति स्त्रीकी तरह तीर पर खड़ी रह गयी, अर्थात् सोचकर रह गये ॥ २ ॥

गा चह पार जतन हिय हेरा * पावति नाव न बोहित बेरा ॥३॥
और करहि को भरत बड़ाई * सरसी सीपि कि सिंधु समाई ॥४॥

पार जाना चाहती है परन्तु कोई जहाज, बेड़ा या नाव नहीं मिलती ॥ ३ ॥ और भरतजीकी कौन बड़ाई करे ? मेरी मति जो तलैयाकी सीपी है; उसमें सिंधुसमान भरतकी महिमा क्यों कर समा सकती है ? अथवा क्या तालकी सीपी समुद्रमें समा सकती है ? जैसे बाहरी वस्तु सागरमें डालनेसे लहरोंसे किनारे पर आ जाती है इसी प्रकार भरतजीके वचनोंमें मुनिकी बुद्धि प्रवेश नहीं करने पाती है, उनके मन रूपी समुद्रमें पड़कर प्रेमरूपी लहरसे बाहर आ जाती है । अथवा सीपीमें क्या समुद्र समा सकता है ? ॥ ४ ॥

भरत मुनिहिं मन भीतर भाये * सहित समाज राम पहँ आये ॥५॥
प्रभु प्रणाम करि दीन्ह सुआसन * बैठे सब सुनि मुनि-अनुशासन॥६॥

मुनि वसिष्ठजीके हार्दिक प्रिय भरतजी समाज सहित रघुनाथजीके पास आये । अथवा भरतजी मुनिके मनका आशय जान रामजीके पास चले ॥ ५ ॥ प्रभुने मुनिको प्रणाम करके आसन दिया, सब मुनिकी आज्ञा पाकर बैठे ॥ ६ ॥

बोले मुनिवर वचन विचारी * देश काल अवसर अनुहारी ॥७॥
सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना * धर्म नीति गुण ज्ञान निधाना ॥८॥

तब वसिष्ठजी विचार कर देश, काल और समयानुकूल वचन बोले ॥ ७ ॥ सुनो रघुनाथजी तुम सर्वज्ञ सुजान, धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके निधान हो ॥ ८ ॥

दोहा-सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव ॥
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाव ॥ २८६ ॥

आप सबके हृदयान्तरमें बसते और सब भाव कुभावको जानते हो, जिससे पुरवासी माता और भरतजीका हित हो वही उपाय कीजिये ॥ २८६ ॥

आरत कहहि विचारि न काऊ * सूझि जुवारिहिं आपन दाँऊ ॥१॥
सुनि मुनि वचन कहत रघुराऊ * नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥२॥

वसिष्ठजी कहते हैं कि ऊपर जो हमने कहा है सो आज्ञासे नहीं कहा है, किंतु आर्त होकर कहा है, कोई आर्त विचारके नहीं कहता, जुवारीको अपना ही दाँव सूझता है, हमें अपना ही

दाँव (आपका घर चलना) अच्छा मालूम होता है ॥ १ ॥ मुनिके वचन सुनकर रघुनाथजी बोले—हे नाथ ! उपाय आपके ही हाथ है ॥ २ ॥

सब कर हित रुख राउर राखे * आयसु किये मुदित फुर भाखे ॥३॥
प्रथम जो आयसु मोकहँ होई * माथे मानि करौं सिख सोई ॥४॥

आपका रुख रखनेसे सबका कल्याण होगा । अथवा सबका हित आपके रुखकी ओर देखता है अर्थात् आप केवल भरतके ही कल्याणको ही न देखें, वरन् सब देवता मुनि, ऋषि आदिकोंके कल्याणको भी देखें जिनको असुरोंके हाथसे विपत्ति है वे आपकी आज्ञा मानने और फुर कहनेसे सब प्रसन्न हैं ॥३॥ पहले जो आज्ञा मुझे हो वही मैं शिरपर धारण करूँ ॥४॥

पुनि जेहि कहँ जस होइ रजाई * सो सब भाँति करहिं सेवकाई ॥५॥
कह मुनिराम सत्य तुम भाखा * भरत-सनेह विचार न राखा ॥६॥

फिर जैसी जिसको आज्ञा हो वह सब भांतिसे आपकी सेवा करे ॥ ५ ॥ मुनि बोले रघुनाथजी ! आप सत्य कहते हैं, परन्तु भरतजीके स्नेहने हमारा विचार नहीं रखा, यानी उनके प्रेमसे हमारी बुद्धि थकित है ॥ ६ ॥

तेहिते कहौं बहोरि बहोरी *भरत भक्ति भइ मम मति भोरी॥७॥
मोरे जान भरत रुचि राखी *जो कीजिय सो शुभ शिवसाखी॥८॥

इससे बारंबार कहता हूँ कि भरतकी भक्तिसे मेरी मति भोरी हो गयी ॥ ७ ॥ मेरे जान तो भरतजीकी रुचि रखना ही अच्छा है, मैं शिवजीको साक्षी रखकर कहता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचारि बहोरि ॥
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥ २८७ ॥

पहले भरतजीकी विनय आदरपूर्वक सुन लीजिये और फिर विचार करके साधुमत, लोक सम्मत, राजनीतिके अनुसार और जो वेदके अनुकूल हो वह कीजिये ॥ २८७ ॥

गुरु-अनुराग भरत पर देखी * राम हृदय आनन्द विसेखी ॥१॥
भरतहि धर्मधुरंधर जानी * निज सेवक तन मानस वानी ॥२॥

गुरुकी प्रीति भरतजीके ऊपर देखकर रघुनाथजीके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और यह भी विचारा कि इन्होंने हमारा न्याय भरतके हाथ सौंपा है; सो यदि गुरुके हाथमें होता तो जो वे कहते सो करना पड़ता ॥ १ ॥ भरतजीको धर्मधुरंधर और तन, मन, वचनसे अपना सेवक जानकर विचारा कि ये हमारे अनुकूल ही कहेंगे ॥ २ ॥

बोले गुरु-आयसु अनुकूला * वचन मंजुमृदु मंगल मूला ॥३॥
नाथ शपथ पितु चरण दुहाई * भयउ न भुवन भरतसम भाई ॥४॥

रामचन्द्रजी गुरुकी आज्ञाके अनुसार उज्ज्वल कोमल मंगलमूल वचन बोले ॥ ३ ॥ आपकी शपथ पिताजीके चरणकी सौगंध है—संसारमें भरतसे भाई नहीं हुए ॥ ४ ॥

जे गुरुपद- अंबुज अनुरागी * ते लोकहु वेदहु बड़ भागी ॥५॥
राउर जापर अस अनुरागू * को कहि सकै भरत कर भागू ॥६॥

जो गुरुके चरण कमलके अनुरागी हैं वे लोक और वेदमें बड़भागी हैं ॥ ५ ॥ फिर आपसे गुरुओंका जिसके ऊपर अनुराग है ऐसा भरतजीका भाग्य कौन कह सके ॥ ६ ॥

लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई * करत वदन पर भरत बड़ाई ॥७॥
भरत कहहिं सो किये भलाई * अस कहि राम रहे अरगाई ॥८॥

छोटा भाई देखकर मुखपर भरतजीकी बड़ाई करते बुद्धि सकुचाती है ॥ ७ ॥ जो भरतजी कहेंगे उसके करनेमें भलाई है, ऐसा कहकर रघुनाथजी चुप रहे ॥ ८ ॥

दोहा–तब मुनि बोले भरतसन, सब सँकोच तजि तात ॥
कृपासिंधु प्रियबन्धु सन, कहहु हृदयकी बात ॥ २८८ ॥

तब मुनिराज भरतजीसे बोले–हे तात ! सब संकोच छोड़कर दयासागर प्रिय भाईसे जीकी बात कहो ॥ २८८ ॥

सुनि मुनि वचन रामरुख पाई * गुरु साहब अनुकूल अघाई ॥१॥
लखि अपने शिर सब कर भारू *कहि न सकहिं कछु करहिं विचारू॥२॥

भरतजी मुनिके वचन सुन रामजीका रुख पाकर गुरु और स्वामीकी अनुकूलताके भूखे थे सो सन्तुष्ट हो गये॥ १॥अपने शिरपर सब बड़ा भार देख कुछ कह नहीं सकते, विचार करते हैं ॥२॥

पुलकि शरीर सभा भये ठाढ़े * नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥३॥
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा * इहिते अधिक कहौं मैं काहा ॥४॥

शरीर पुलकायमान हो गया, सभामें खड़े हो गए, कमलसे नेत्रोंमें स्नेहका जल भर आया ॥ ३ ॥ और बोले–मेरा कहना मुनिनाथने निबाहा, इससे अधिक मैं क्या कहूँगा ? मुनिने यह कहा "जो भरतजीकी रुचि हो सो करो" और रामने कहा "भरत कहहिं सो किये भलाई" भरतजी बोले–मेरा कहना तो मुनि और स्वामी दोनोंने ही निबाहा ॥ ४ ॥

मैं जानौं निज नाथ सुभाऊ * अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥५॥
मोपर कृपा सनेह बिसेखी * खेलत खुनश कबहुँ नहिं देखी॥६॥

मैं अपने स्वामीके स्वभावको जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी कोप नहीं करते ॥५॥ तथापि मेरे ऊपर तो कृपा और स्नेह (सर्वदा) अधिक रहता है, कभी खेलतेमें भी खुनस नहीं देखी ॥ ६ ॥

शिशुपनते परिहरेउ न संगू * कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥७॥
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही * हारेउ खेल जितायउ मोही ॥८॥

बालकपनसे साथ नहीं छोड़ा और कभी मेरा मन भंग नहीं किया ॥ ७ ॥ मैंने प्रभुकी कृपा रीति जीमें देख ली है; खेलमें हारने पर भी मुझे जिता देते थे ॥ ८ ॥

दोहा–महूँ सनेह सँकोच वश, सन्मुख कहेउँ न बैन ॥
दर्शन तृप्ति न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥ २८९ ॥

मैंने भी स्नेह संकोच वश होकर सामने बात नहीं कही और आजतक दर्शनसे तृप्त नहीं हुए नेत्र प्रेमके प्यासे हैं । तात्पर्य यह है कि मैं दर्शन ही करने आया हूँ कुछ कहने नहीं आया जो आज्ञा हो सो मैं करूँ ॥ २८९ ॥

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा * नीच बीच जननी मिसु पारा ॥१॥
इहौ कहत मोहि आजु न शोभा *आपुनि समुझि साधु सुचि कोभा ॥२॥

विधि आपका प्यार मेरे विषयमें भी न सह सका; नीचता माताके बहाने भेद कर दिया ॥ १ ॥ यह कहना भी आज मुझे शोभा नहीं देता क्योंकि मैं दोष मातापर रखता हूँ और अपनेको निर्दोष कहता हूँ, सो अपनी समझसे कौन पवित्र साधु हुआ है ? ॥ २ ॥

मातु मन्द मैं साधु सुचाली * उर अस आनत कोटि कुचाली॥३॥
फरै कि कोदव बालि सुशाली * मुक्ता प्रसव कि शम्बुक ताली ॥४॥

"माता मन्द मैं साधु सुचाली हूँ" हृदयमें ऐसा लानेसे कोटि कुचालें उठती हैं ॥ ३ ॥ कहीं कोदोंमें सुन्दर धानकी बाली लगती हैं ? अथवा पोखरेकी सीपमें मोती लगते हैं ? ऐसे ही कुमातासे सुपुत्र नहीं होते ॥ ४ ॥

सपनेहुँ दोष कलेश न काहू * मोर अभाग्य उदधि अवगाहू ॥५॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू * जारेउँ जाय जननि कहि काकू॥६॥

स्वप्नमें भी किसीका दोष और क्लेश नहीं है मेरे अभाग्यका अपार समुद्र है ॥५॥ अपने पापके फल विना समझे जननीको काकु (खोटे) वचन कहकर जलाया; सो जाय (व्यर्थ) है कारण कि यह मेरे अभाग्यका दोष है, मैं मामाके यहां चला गया भाग्यने ही भेजा है ॥६॥

हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा * एकहि भाँति भलेहि भल मोरा॥७॥
गुरु गुसांइ साहब सिय रामू * लागत मोहि नीक परिणामू ॥८॥

अपने भाग्य समुद्र पार होनेका हेतु मैं चारों ओर हृदयमें हेरके हार गया किसी रीतिसे निर्वाह न देखा, केवल एक भाँतिसे अपना भला देखता हूँ ॥ ७ ॥ कि गुरु आप और स्वामी सीता रघुनाथजी हैं इससे मुझको परिणाम अच्छा मालूम होता है ॥ ८ ॥

दोहा-साधुसभा प्रभुगुरु निकट, कहौं सुथल सति भाउ ॥
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥ ॥२९० ॥

साधुओंकी सभामें प्रभु गुरुके निकट सुथलमें सद्भावसे कहता हूँ, प्रेमसे व प्रपञ्चसे झूठ वा सत्य इस बातको मुनि और रघुराज जानते हैं क्योंकि ये अन्तर्यामी हैं ॥ २९० ॥

भूपति मरण प्रेम प्रण राखी *जननी कुमति जगत सब साखी॥१॥
देखि न जाहिं विकल महतारी * जरहिं दुसह दुख पुर नरनारी ॥२॥

राजाका मरण हुआ परन्तु प्रेमका प्रण रखा और माताकी कुमतिका सब दुःख जगत् साक्षी है ॥ १ ॥ व्याकुल माताएँ देखी नहीं जाती; पुर-नर नारी दुःसह ज्वरसे जल रहे हैं ॥ २ ॥

मैंहीं सब अनरथ कर मूला * सो सुनि समुझि सहेउँ सब शूला॥३॥
सुनि वन गवन कीन्ह रघुनाथा *करि मुनि वेष लषण सिय साथा॥४॥

मैं ही इन सब अनर्थोंका मूल हूँ सो सुनकर और समझकर सब दुःख सहा ॥३॥ जब सुना कि रघुनाथजी मुनिका वेष कर सीता और लक्ष्मण सहित वनको गये ॥ ४ ॥

विनु पनहिन प्यादेहि पाये * शंकर साखि रहेउँ इह घाये ॥५॥

बहुरि निहारि निषाद सनेहू * कुलिश कठिन उर भयउ न बेहू॥६॥

विना जूते पहरे पैरों ही वनको गये यह सुनकर जो शूल हुआ इस (घाये) घावके शिवजी साक्षी हैं, सो इस घावपर भी मैं जीता रहा इसका कारण यही कि सब अनर्थका मूल मैं ही हूँ नहीं तो शरीर त्याग देता॥५॥ इसपर निषादराजका यह स्नेह देखा कि मुझे रघुनाथजीका शत्रु जान प्राण देनेपर संनद्ध हुआ तब भी वज्रसी मेरी छाती न बेहू अर्थात् न फटी ॥ ६ ॥

अब सब आँखिन देखेउँ आई * जियत जीव जड़ सबै सहाई ॥७॥

जिनहि निरखि मगसांपिनि बीछी * तजहि विषमविष तामस तीछी॥८॥

जो बात मैंने सुनी थी वह सब अब आकर आँखोंसे देखी, इतना होनेपर भी मेरा जड़ जीव सब दुःख मुझे सहाके जीता है ॥ ७ ॥ जिनको मार्गमें साँप बीछी देखकर अपना तीक्ष्ण विष तीक्ष्ण तामस (क्रोध) त्याग कर देते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-तेइ रघुनन्दन लषण सिय, अनहित लागे जाहि ॥

तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि ॥ २९१ ॥

वे रघुनाथजी, लक्ष्मण और जानकी जिस मेरी माताको बुरे लगे उसके पुत्रको छोड़कर और दैव किसे ऐसा असह्य दुःख सहावेगा ? ॥ २९१ ॥

सुनि अतिविकल भरत-बरबानी * आरति प्रीति विनय नयसानी॥१॥

शोक मगन सब सभा खभारू * मनहुँ कमलवन परचो तुषारू॥२॥

भरतकी अति व्याकुलतायुक्त सुन्दर वाणी सुनकर जो कि दुःख, विनय, प्रीति, राजनीति युक्त थी, आरति-"सो सुनि समुझि सही सब शूला" प्रीति "महूँ सनेह सँकोच वश" विनय " गुरु गुसाईं साहब सिय रामू" नीति सम्पूर्ण ही है ॥ १ ॥ शोकमें मग्न सब सभामें खलबली पड़ गयी, जैसे कमल वनमें पाला पड़ गया हो ॥ २ ॥

कहि अनेक विधि कथा पुरानी * भरत प्रबोध कीन्ह मुनिज्ञानी ॥३॥

बोले उचित वचन रघुनन्दू * दिनकर कुल कैरव वन चन्दू ॥४॥

तब अनेक प्रकारकी पुरानी कथा कहकर ज्ञानी मुनिने भरतजीको समझाया॥३॥ उस समय रघुनाथजी जो सूर्यकुलके कुमुदिनी रूपी वनके चन्द्रमा हैं सो यह उचित वचन बोले ॥ ४॥

तात जाय जनि करहु गलानी * ईश अधीन जीव गति जानी ॥५॥

तीन काल त्रिभुवन मत मोरे * पुण्यश्लोक तात वश तोरे ॥६॥

हे तात ! जीवकी गति ईश्वराधीन जान जीमें वृथा ग्लानि मत करो ॥ ५ ॥ तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीन लोक मेरे मतसे पुण्यश्लोक हैं अर्थात् पुण्यपुरुष हैं वे सब तुम्हारे आधीन हैं तुमसे तले हैं। अथवा पुण्यपदार्थ तुम्हारे हाथमें हैं अथवा तीन लोकमें तीन कालमें पुण्यपदार्थ तुम्हारा किया है। अथवा पुण्यश्लोक (ईश्वर) तुम्हारे हाथमें हैं ॥६॥

उर आनत तुम पर कुटिलाई * जाय लोक परलोक नशाई ॥७॥

दोष देहिं जननी जड़ तेई * जिन गुरु साधु सभा नहिं सेई ॥८॥

हृदयमें भी जो तुमपर कुटिलता लायेगा उसके लोक परलोक दोनों बिगड़ जायँगे ॥ ७ ॥ और वे ही मूर्ख माताको दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभा नहीं सेवन की है ॥ ८ ॥

दोहा-मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ॥
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥ २९२ ॥

भरतजीकी बुराई करनेवालोंको प्रायश्चित कहते हैं कि, तुम्हारा नाम लेते ही सब पापोंके प्रपञ्च और सब बड़े अमंगल भार मिट जायँगे, लोकमें सुयश परलोकमें सुख होगा ॥२९२॥

कहौं सुभाय सत्य शिव साखी * भरत भूमि रह राउर राखी ॥१॥
तात कुतर्क करहु जनि जाये * वैर प्रेम नहिं दुरै दुराये ॥२॥

हे भरतजी ! मैं शिवजीको साक्षी देकर सत्य स्वभावसे कहता हूँ-यह भूमि तुम्हारे रखनेसे ही रहेगी, क्योंकि हम अंगीकार कर चुके हैं कि तुम कहो सो हम करें, हम वनको नहीं जायँगे तो पृथ्वीका भार नहीं उतरेगा ! अथवा तुम्हारे विना पृथ्वी ठहर नहीं सकती, क्योंकि तुम उसके भरण पोषण करनेवाले हो ॥ १ ॥ हे भाई ! तुम अपने मनमें वृथा कुतर्क मत करो; वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपता ॥ २ ॥

मुनिगण निकट विहँग मृगजाहीं * बाधक बधिक विलोकि पराहीं ॥३॥
हित अनहित पशु पक्षिउ जाना * मानुष तनु गुण ज्ञान निधाना ॥४॥

मुनियोंके निकट पक्षी, मृग जाते हैं और वे ही बाधक (सिंहादि) और बधिकोंको देखकर भाग जाते हैं ॥ ३ ॥ हित अहित पशु पक्षी भी जानते हैं और मनुष्यका शरीर तो गुण- ज्ञानका घर है ॥ ४ ॥

तात तुमहिं मैं जानौं नीके * करौं काह असमंजस जीके ॥५॥
राखे राउ सत्य मोहि त्यागी * तनु परिहरेउ प्रेम प्रण लागी ॥६॥

हे तात ! तुम्हें मैं अच्छे प्रकारसे जानता हूँ, क्या करूँ ? जीमें बड़ा असमंजस है ॥५॥ राजाने मुझे त्यागकर सत्य रखा और प्रेमके निमित्त प्राण त्याग दिया ॥ ६ ॥

तासु वचन मेटत मन सोचू * तेहिते अधिक तुम्हार सँकोचू ॥७॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा *अवशि जो कहो चहहुँ सो कीन्हा॥८॥

उन पिताजीका वचन मेटनेसे हृदयमें शोच होता है और उससे भी अधिक तुम्हारा संकोच है ॥ ७ ॥ उस पर गुरुने मुझे आज्ञा दी है तो अवश्य जो कहो वही मैं करूँ ॥ ८ ॥

दोहा-मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आज ॥
सत्यसंध रघुवर-वचन, सुनि भा सुखी समाज ॥ २९३ ॥

मन प्रसन्न कर संकोच छोड़ जो कहो वही आज करूँ, सत्यसागर रघुनाथजीका वचन सुनकर समाज प्रसन्न हुआ । ये रघुनाथजीके वचन ऐसी चतुरता के हैं कि भरतजीसे सबके सम्मुख कह दिया कि हम पिताके वचन नहीं टाल सकते और कहे भी इस प्रकार कि, जो भरतजी कहें सो करें, यह सुन सब प्रसन्न हुए ॥ २९३ ॥

सुरगण सहित सभय सुरराजू * सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥१॥
करत उपाय बनत कछु नाहीं * रामशरण सब गे मनमाहीं ॥२॥

यह सुनते ही देवताओं सहित इन्द्र डरकर सोचने लगे कि अब अकाज हुआ चाहता है॥१॥ अब कुछ उपाय करते नहीं बनता है, तब सब मनमें श्रीरामचन्द्रजीकी शरण गये ॥ २ ॥

बहुरि विचार परस्पर कहहीं * रघुपति भक्त भक्ति-वश अहहीं॥३॥
सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा * भे सुर सुरपति निपट निरासा॥४॥

फिर परस्पर विचार कर कहने लगे--रघुनाथजी भक्तोंकी भक्तिके वशमें हैं॥ ३॥ अम्बरीष और दुर्वासाकी याद करके देवता और इन्द्र अधिक निराश होगये(अम्बरीषकी कथा लिख चुके हैं)॥४॥

सहे सुरन्ह बहु काल विषादा * नरहरि किये प्रगट प्रहलादा ॥५॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा* अब सुरकाज भरतके हाथा ॥६॥

देवताओंने बहुत काल तक विषाद सहे, परन्तु भक्त प्रह्लादजीने ही नरसिंह (भगवान्) को प्रगट किया ॥ ५ ॥ सब परस्पर एक दूसरेके कानमें लग लगकर माथा धुनके कहते हैं, कि अब देवताओंका कार्य भरतजीके हाथमें है ॥ ६ ॥

आन उपाय न देखिय देवा * मानत राम सुसेवक सेवा ॥७॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं * निजगुणशील रामवश करतहिं॥८॥

और उपाय देवताओंने नहीं देखा; पर सोचा कि रघुनाथजी सुसेवक की सेवा मानते हैं अथवा भक्तकी सेवा करने वालेको मानते हैं ॥ ७ ॥ हृदयमें प्रेमपूर्वक सब भरतजीको स्मरण करो क्योंकि ये अपने गुणशीलसे रघुनाथजीको वशमें किये हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि सुरमत सुर गुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग ॥
सकल सुमंगल मूल जग, भरत-चरण-अनुराग ॥ २९४ ॥

यह देवताओंकी सम्मति सुनकर बृहस्पतिजी बोले-तुम्हारा अच्छा बड़ा भाग्य है, जगत्में भरतजीके चरणोंमें अनुराग करना सब सुमङ्गलका मूल है ॥ २९४ ॥

सीता-पतिसेवक सेवकाई * कामधेनु शत सरिस सुहाई ॥१॥
भरत भक्ति तुम्हरे मन आई * तजहु शोच विधि बात बनाई ॥२॥

सीता पति (रघुनाथजी) के सेवकोंकी सेवा करनी सुन्दर सौ कामधेनुओंके समान फलदायक है ॥ १ ॥ जो तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति आई है तो अब शोच छोड़ो, सब बात विधाताने बना दी है ॥ २ ॥

देखि देवपति भरत प्रभाऊ * सहज सनेह विवश रघुराऊ ॥३॥
मन थिर करहु देव डर नाहीं * भरतहिं जानि राम परिछाहीं ॥४॥

हे इन्द्र ! भरतजीका प्रभाव देखा कि रघुनाथजी स्वभावसे ही स्नेहके वश हो रहे हैं॥ ३॥ हे देवताओं ! मन स्थिर करो; डरनेकी कुछ बात नहीं है; क्योंकि भरतजीको रामजीकी परिछाहीं जानो ॥ ४ ॥

सुनि सुरगुरु सुर सम्मत सोचू * अन्तरयामी प्रभुहिं सँकोचू ॥५॥
निज शिर भार भरत जिय जाना *करत कोटि विधि उर अनुमाना॥६॥

बृहस्पति और देवताओंकी सम्मति शोच सुनकर प्रभुको बड़ा संकोच हुआ; क्योंकि अन्तर्यामी हैं अथवा देवताओंके विचारको सुनकर बृहस्पतिजीको अन्तर्यामी प्रभुका संकोच हुआ कि रामचन्द्रजी यह सोचेंगे कि बृहस्पति इन्हें धैर्य नहीं देते ॥ ५ ॥ भरतजी मनमें अपने शिरपर सब भार जानकर अनेक प्रकारसे हृदयमें अनुमान करते हैं ॥ ६ ॥

करि विचार मन दीन्ही ठीका * राम रजायसु आपन नीका ॥७॥
निज प्रणतजि राखेउ प्रणमोरा * छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा ॥८॥

भरतजी ने विचारसे मनमें यही निश्चय किया कि, रघुनाथजीकी आज्ञा माननेमें ही मेरी भलाई है ॥ ७ ॥ क्योंकि रघुनाथजीने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा और दया स्नेह बहुत किया ॥ ८ ॥

दोहा–कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ ॥
करि प्रणाम बोले भरत, जोरि जलज युग हाथ ॥ २९५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब प्रकारसे अत्यन्त अनुग्रह किया है। भरतजी प्रणाम कर कमलसम दोनों हाथ जोड़कर बोले २९५ ॥

कहउँ कहावउँ अबका स्वामी * कृपा अम्बुनिधि अन्तर्यामी ॥१॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला *मिटी मलिन मन कलिपत शूला॥२॥

हे कृपासागर ! अन्तर्यामी स्वामी ! अब मैं और क्या कहूँ कहाऊँ ? ॥ १ ॥ जब गुरु प्रसन्न और स्वामी अनुकूल हैं तो मलिन मनके कलिपत विपत्तिरूप दुःख मिट गये ॥ २॥

अपडर डरेउँ न सोच समूले * रविहि न दोष देव दिशि भूले ॥३॥
मोर अभाग्य मातु कुटिलाई * विधिगति विषमकाल कठिनाई॥४॥

मैं अपडर से डरा हूँ और उस शोचमें जड़ नहीं है दिशाके भ्रम हो जानेमें सूर्यका दोष नहीं है। आयश यह है कि आप सूर्य स्थानमें यथा तथ्य हैं, यहाँ दोष मेरा है जो उलटा देख लिया ॥३॥ मेरा अभाग्य, माताकी कुटिलता, विधिकी टेढ़ी गति, कालकी कठिनता ॥ ४ ॥

पाँव रोपि सब मिलि मोहि घाला * प्रणतपाल प्रण आपन पाला ॥५॥
यह नइ रीति न राउर होई * लोकहु वेद विदित नहिं गोई ॥६॥

इन चारोंने मिल मुझे पांव रोपके घालनेकी इच्छा की, परन्तु आप प्रणतपाल हैं इससे अपने प्रणकी रक्षाकर मुझे उबार लिया ॥ ५ ॥ यह आपकी नई रीति नहीं किंतु पुरानी है, लोक वेदमें प्रगट है छिपी नहीं है ॥ ६ ॥

जग अनभल भल एक गुसांई * कहिय होय भल कासु भलाई ॥७॥
देव देवतरु सरिस सुभाऊ * सम्मुख विमुख न काहुइ काऊ॥८॥

हे स्वामी ! ऐसा कौन है कि अपनी भलाईसे जगत् अनभले की भलाई करे, अर्थात् ऐसे आपही हैं, जिससे जगत् की भलाई है। अथवा यह जगत् अनभल (बुरा) एक आप ही भले हो, इस जगत्की भलाई आपकी ही भलाई है ॥ ७ ॥ हे देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, सबके सम्मुख हो किसीको विमुख नहीं करते और किसीसे विमुख नहीं हो ॥८॥

दोहा–जाय निकट पहिचानि तरु, छाह शमन सब शोच ॥
माँगत अभिमत पाव फल, राउ रंक भल पोच ॥ २९६ ॥

जो कल्पवृक्षको पहचानकर उसकी छायाके निकट जाता है उनके सब शोच शांत हो जाते हैं और राजा, रंक, साधु, अधम जो मांगते हैं सो पाते हैं ॥ २९६ ॥

लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू * मिटेउ क्षोभ नहिं मन सन्देहू॥१॥
अब करुणाकर कीजिय सोई *जनहित प्रभु चित क्षोभ न होई॥२॥

सब प्रकारसे गुरु और स्वामीका स्नेह देखकर क्षोभ मिट गया, मनका संदेह जाता रहा॥ ॥ १ ॥ हे कृपासागर ! अब वही कीजिये जिससे मेरे कारण प्रभुके चित्तमें क्षोभ न हो ॥२॥

जो सेवक साहिबहिं सँकोची * निजहित चहै तासुमति पोची॥३॥
सेवक हित साहिब सेवकाई * करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥४॥

जो सेवक स्वामीके मनको बिगाड़ कर अपना हित चाहता है उसकी मति खोटी है ॥३॥ सेवक सब सुख और लोभ छोड़कर स्वामीकी सेवकाई करे यही उसका हित है ॥ ४ ॥

स्वारथ नाथ फिरे सबहीका * किये रजाय कोटि विधि नीका॥५॥
यह स्वारथ परमारथ सारू * सकलसुकृतफलसुगतिसिंगारू॥६॥

हे नाथ ! आपके अयोध्याको फिरनेसे सबका स्वार्थ है और आपकी आज्ञा करनेसे अनेक प्रकारसे भलाई है ॥ ५ ॥ आपकी आज्ञा ही स्वार्थ और परमार्थका सार है और सम्पूर्ण पुण्योंका फल है और सुगतिका शृंगार है ॥ ६ ॥

देव एक विनती सुनि मोरी * उचित होय तस करब बहोरी ॥७॥
तिलक समाज साजि सब आना *करिय सफल प्रभु जो मनमाना॥८॥

हे देव ! मेरी एक विनती सुनकर फिर जैसा उचित हो वैसा कीजिए ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! तिलकका सामान साजके सब लाया हूँ जो मनमें आवे तो सफल कीजिये ॥ ८ ॥

दोहा—सानुज पठइय मोहि बन, कीजिय सबहि सनाथ ॥
न तरु फेरिये बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥ २९७ ॥

शत्रुघ्न सहित मुझे वनमें भेजिये और आप लौटकर सबको सनाथ कीजिये, नहीं तो हे नाथ ! दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये; मैं आपके साथ चलूंगा ॥ २९७ ॥

नतरु जाहिं वन तीनिउँ भाई * बहुरिय सीय सहित रघुराई ॥१॥
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई * करुणा सागर कीजिय सोई ॥२॥

नहीं तो रघुनाथजी ! वनमें हम तीनों भाई जायँगे आप सीता सहित लौट जाइये ॥१॥ हे करुणासागर ! जिस प्रकार प्रभुका मन प्रसन्न हो वही कीजिये ॥ २ ॥

देव कीन्ह सब मोपर भारू * मोरे नीति न धर्म विचारू ॥३॥
कहौं वचन सब स्वारथ-हेतू * रहत न आरतके चित चेतू ॥४॥

हे देव ! आपने तो सब मेरे ऊपर भार दिया है और मेरे नीति धर्मका विचार नहीं है॥३॥ मैं सब वचन अपने प्रयोजनके कहता हूँ, क्योंकि दुःखीके मनमें ज्ञान नहीं रहता ॥ ४ ॥

उतर देइ सुनि स्वामि रजाई * सो सेवक लखि लाज लजाई ॥५॥
अस मैं अवगुण उदधि अगाधू * स्वामि सनेह सराहत साधू ॥६॥

जो स्वामीकी आज्ञा पाकर उत्तर देता है उस सेवकको देखकर लाज भी लजाती है ॥५॥ मैं तो अवगुणका अथाह समुद्र हूँ स्वामी के स्नेहको साधु सराहते हैं ॥ ६ ॥

अब कृपालु मोहि सो मत भावा ❀ सकुच स्वामिमन जाहि न पावा ॥७॥
प्रभु पद-शपथ कहौं सत भाउ ❀ जगमङ्गल हित एक उपाऊ ॥८॥

हे कृपालु ! अब मुझे वह मत अच्छा लगता है, जिसमें आपके मनमें सकुच न प्राप्त हो ॥ ७ ॥ प्रभुके चरणोंकी सौगन्ध करके सत्य स्वभाव कहता हूँ; जगत्के निमित्त एक उपाय है, यह उसका उत्तर है, जो रामचन्द्रने कहा कि-"भरत भूमि रह राउर राखी" ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब ॥
सो शिर धरि धरि करहिं सब, मिटिहि अनट अवरेब ॥ २९८ ॥

अब प्रसन्न मन हो सकुच त्यागकर जो जिसको आज्ञा दोगे वह सब शिर धर धरके करेंगे और अनट अवरेब (न टरनेवाली उलझन) अर्थात् आज्ञा, पुरवासियोंका स्नेह आदि उलझन मिट जायगी ॥ २९८ ॥

भरत वचन शुचि सुनि हिय हर्षे ❀ साधु सराहि सुमन सुर वर्षे ॥१॥
असमञ्जस वश अवध निवासी ❀ प्रमुदित मन तापस वनवासी ॥२॥

भरतजीके ऐसे पवित्र वचन सुनकर हृदयमें प्रसन्न हुए और 'अच्छा कहा' ऐसा कहकर देवताओंने फूल बरसाये। देवताओंने भरतजीका आशय समझ लिया कि ये रामजीकी आज्ञानुसार करेंगे ॥१॥ अवध निवासी दुविधामें पड़ गये और तपस्वी वनवासी मनमें प्रसन्न हुए ॥२॥

चुप रहिगे रघुनाथ सँकोची ❀ प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥३॥
जनकदूत तेहि अवसर आये ❀ मुनि वसिष्ठ सुनि वेगि बुलाये ॥४॥

रघुनाथजी सकुचाकर चुप हो गये, प्रभुकी गति देखकर सब सभा सोचने लगी ॥३॥ उसी अवसरमें जनकजीके दूत आये, मुनि वसिष्ठजीने सुनकर शीघ्र ही निकट बुलाये ॥ ४ ॥

करि प्रणाम तिन राम निहारे ❀ वेष देखि भये निपट दुखारे ॥५॥
दूतन्ह मुनिवर पूँछी बाता ❀ कहहु विदेह भूप कुशलाता ॥६॥

प्रणाम करके उन्होंने रघुनाथजीको देखा तो उनके वेषको देखकर बड़े दुःखी हुए ॥ ५ ॥ दूतोंसे मुनिने यह बात पूछी कि विदेह राजाका कुशल कहो? जिस विपत्ति से जगत् विकल हो गया है तो विदेहकी कुशलता क्यों कर हो ? आशय यह है कि देही होते तो विकल होते॥६॥

सुनि सकुचाय नाय महि माथा ❀ बोले चरवर जोरे हाथा ॥७॥
बूझब राउर सादर साईं ❀ कुशल हेतु सो भयउ गुसाईं ॥८॥

सुनकर चतुर दूत सकुचाकर पृथ्वीमें माथा नवाकर हाथ जोड़कर बोले। सकुचानेका भाव यह कि उन्होंने वसिष्ठजीका आशय समझ लिया॥७॥ हे स्वामी ! आपका आदर सहित कुशल पूछना ही हमारे स्वामीके कुशलका हेतु है। अथवा कुशलके कारण तो गोसाईं बैठे हैं। अथवा अपना पूछना ही कुशल है । अथवा आपने विदेह कहकर कुशल पूछा यही कुशलका हेतु है, कारण कि यदि जनकजी देही होते तो दशरथजीके समान उनकी भी दशा होती ॥ ८ ॥

दोहा-नाहिंत कोशलनाथ के, साथ कुशल गइ नाथ ॥
मिथिला अवध विशेषते, जग सब भयउ अनाथ ॥ २९९ ॥

हे नाथ ! पुरानी कुशलता थी वह तो महाराज दशरथजीके साथ गई, जिसके जानेसे जगत् अनाथ हो गया और विशेषकर अयोध्या और मिथिला अनाथ हो गई, क्योंकि राजाकी मरणरूप विपत्तिके सिवाय राम, लक्ष्मण, जानकी वनको चले गये ॥ २९९ ॥

कोशलपति गति सुनि जनकौरा * भे सब लोगु शोचवश बौरा ॥१॥
जेहि देखा तेहि समय विदेहू * नाम सत्य अस लाग न केहू ॥२॥

राजा दशरथकी गति सुनकर जनक राजाके सब लोग शोचके वश व्याकुल हो गये ॥१॥ जिसने उस समय विदेहको देखा उसे उनका सत्यनाम नहीं विदित हुआ । अथवा जिसने उस समय विदेहको देखा तो ऐसा कोई न था जिसको यह नाम सच्चा नहीं लगा, सबने जाना कि राजा सच्चे विदेह हैं, शरीरकी सुध न रही ॥ २ ॥

रानि कुचालि सुनत महिपालहि *सूझ न कछु जस मणि बिनु व्यालहि॥३॥
भरत-राज रघुवर-वनवासू * भा मिथिलेशहि हृदय हरासू ॥४॥

रानीकी कुचाल सुनकर राजाको कुछ न सूझा, जैसे मणि विना सर्पको कुछ नहीं सूझता ॥ ३ ॥ भरतजीको राज्य और श्रीरघुनाथजीको वन सुनकर जनकजीके मनमें खेद हुआ ॥४॥

नृप बूझे बुध सचिव समाजू * कहहु विचारि उचितका आजू ॥५॥
समुझि अवधि असमञ्जस दोऊ *चलिय कि रहिय न कह कछु कोऊ॥६॥

राजाने सभामें पंडितोंका समागम और मंत्रियोंका समागम भी एकत्र किया और कहा कहो आज क्या उपाय करना चाहिए ? ॥ ५ ॥ यह सुनके अवधको जाना व न जाना इन दोनों बातोंमें दुविधा करके बैठे रहे; चलो या रहो यह किसीने कुछ नहीं कहा ॥ ६ ॥

नृपति धीर धरि हृदय विचारी * पठये अवध चतुर चर चारी ॥७॥
बूझि भरत सतभाउ कुभाऊ * आयहु वेगि न होय लखाऊ ॥८॥

राजाने धैर्य पूर्वक मनमें विचार कर अयोध्याको चतुर चार दूत भेजे ॥ ७ ॥ और कहा-भरतका सत्य भाव, दुष्ट भाव देखकर जल्दी आना और यह भेद कोई न जाने ॥ ८ ॥

दोहा-गये अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति ॥
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥ ३०० ॥

दूत अयोध्यामें जाकर भरतजीकी गति जान और कृत्य देखकर जब भरतजी चित्रकूट को चले तब दूत तिरहुति (जनकपुर) को आये ॥ ३०० ॥

दूतन आय भरतकी करणी * जनक समाज यथामति वरणी ॥१॥
सुनि गुरु पुरजन सचिव महीपति * भे सब सोच सनेह विकल अति॥२॥

दूतोंने आकर भरतजीकी करणी जनककी सभामें यथामति वर्णन की ॥१॥ गुरु पुरवासी मन्त्री और राजा सुनकर शोचसे व्याकुल हो गये ॥ २ ॥

धरि धीरज करि भरत बड़ाई * लिये सुभट साहनी बुलाई ॥३॥
घर पुर देश राखि रखवारे * हय गय रथ बहु यान सँवारे ॥४॥

फिर धैर्य धरकर भरतजीकी बड़ाई कर सेनाके योद्धा बुलाये ॥ ३ ॥ घर पुर देशमें रखवाले रखकर हाथी, घोड़े, रथ आदि बहुतसे यान तैयार कराये ॥ ४ ॥

दुघरी साधि चले तत्काला * किय विश्राम न मग महिपाला॥५॥
भोरहिं आजु नहाय प्रयागा * चले यमुन उतरन सब लागा ॥६॥
और राजा दुघरिया मुहूर्त साधकर तत्काल चले; मार्गमें विश्राम तक नहीं किया ॥५॥
आज सबेरे ही प्रयागमें स्नान कर चले और सब यमुनामें उतरने लगे ॥ ६ ॥
खबरि लेन हम पठये नाथा *तिन्ह कहि अस महिनायउ माथा॥७॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे * मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥८॥
राजाने हमें सुध लेनेको भेज दिया, दूतोंने ऐसा कह पृथ्वीमें माथा नवाया ॥ ७ ॥
सङ्गमें छः सातेक किरात करके मुनिने तुरत दूतों को विदा कर दिया ॥ ८ ॥

दोहा-सुनत जनक आगमन सब, हर्षेउ अवध समाज ॥
रघुनन्दनहिं सँकोच बड़, शोच विवश सुरराज ॥ ३०१ ॥

जनकजीका आगमन सुनकर सब अयोध्यावासी प्रसन्न हुए कि अब रघुनाथजी निश्चय चलेंगे, इसमें श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा संकोच हुआ, भरतके आनेका संकोच था जनकजीके आनेसे और भी हो गया और इसी कारण इन्द्रको बड़ा शोच हुआ ॥ ३०१ ॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेयी * काहि कहइ केहि दूषण देई ॥१॥
अस मन आनि मुदित नर नारी * भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥२॥
कुटिल कैकेयी ग्लानिके मारे गली जाती है क्या करे ? किसे दोष दे ॥ १ ॥ ऐसा मनमें विचारकर नर नारी प्रसन्न हुए कि अब दो चार दिन और रहना होगा ॥ २ ॥
इहि प्रकार गत वासर सोऊ * प्रात नहान लगे सब कोऊ ॥३॥
करि मज्जन पूजहिं नरनारी * गणपति गौरि पुरारि तमारी ॥४॥
इसी प्रकारसे वह भी दिन बीत गया; सबेरे सब कोई स्नान करने लगे ॥ ३ ॥ नर-नारी स्नान करके गणेश, पार्वती, शिव और सूर्यको पूजते हैं ॥ ४ ॥
रमा-रमण पद वंदि बहोरी * विनवहिं अंजलि अञ्चल जोरी॥५॥
राजा राम जानकी रानी * आनँद अवधि अवध रजधानी॥६॥
फिर रमारमण (विष्णु) भगवान्‌के चरणोंमें दंडवत् करके अञ्जली बांधकर आंचल जोड़ विनती करते हैं ॥ ५ ॥ कि भगवान्‌की कृपासे राजा रामजी और रानी जानकी हों तथा आनंदकी सीमा अयोध्या राजधानी हो ॥ ६ ॥
सुबस बसै फिरि सहित समाजा * भरतहि राम करहिं युवराजा ॥७॥
इहिं सुखसुधा सींचि सब काहू * देव देहु जग जीवन लाहू ॥८॥
अयोध्या फिर अच्छी तरह बसे, भरतजीको रामचन्द्रजी युवराज करें ॥ ७ ॥ हे देव ! इस सुख-रूपी अमृतसे सबको सींचके जगतमें जीवनका लाभ दो ॥ ८ ॥

दोहा-गुरु समाज भाइन सहित, रामराज पुर होउ ॥
अछत राम राजा अवध, मरिय माँगु सब कोउ ॥ ३०२ ॥

गुरु समाज भाइयों सहित रघुनाथजी पुरके राजा हों और श्रीरामचन्द्रजीके रहते अवधमें हमारा मरण हो यह सब मांगते हैं ॥ ३०२ ॥

सुनि सनेह मय पुरजन बानी * निन्दहिं योगविरति मुनि ज्ञानी॥१॥
इहि विधि नित्यकर्म करि पुरजन * रामहि करहिं प्रणाम मुदित मन॥२॥

पुरवासियोंकी स्नेह भरी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वैराग्यकी निन्दा करते हैं ॥ १ ॥ इस प्रकारसे पुरवासी नित्य कर्म करके रघुनाथजीको प्रसन्न मन हो प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

ऊँच नीच मध्यम नर नारी * लहहिं दरश निज निज अनुहारी॥३॥
सावधान सबही सन्मानहिं * सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥४॥

ऊँच, नीच, मध्यम नर-नारी अपने योग्य दर्शन पाते हैं ॥ ३ ॥ सावधान होकर रघुनाथजी सबका सम्मान करते हैं और वे सब कृपानिधानकी सराहना करते हैं ॥ ४ ॥

लरकाइहिते रघुवर बानी * पालत प्रीति रीति पहिचानी ॥५॥
शील सँकोच सिन्धु रघुराऊ * सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥६॥

बालकपनसे ही रघुनाथजीकी बान थी, कि रीति पहचान कर प्रीति पालते थे॥ ५ ॥ रघुनाथ शील संकोचके समुद्र हैं, जो सुन्दर मुख नेत्र सीधे स्वभावसे युक्त हैं। सुमुख कहने का भाव है कि सबके सम्मुख हैं किसीसे विमुख नहीं अथवा किसीको कुवचन नहीं कहते सुलोचन इस कारण कहा है कि सब पर बराबर कृपा दृष्टि है ॥ ६ ॥

कहत रामगुणगण अनुरागे * सब निजभाग सराहन लागे ॥७॥
हम सम पुण्यपुञ्ज जग थोरे * जिनहिं राम जानत करि मोरे ॥८॥

रघुनाथजीके गुणानुवाद कहते कहते सब अपने भाग्यकी सराहना करने लगे ॥ ७ ॥ कि हमारे समान जगत्में थोड़े पुण्यात्मा हैं जिन्हें रघुनाथजी मेरे समान मानते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेश ॥
सहित सभा सम्भ्रमि उठे, रविकुल-कमल दिनेश ॥ ३०३ ॥

(हे पार्वती !) उस समयमें सब जनकजीका आना सुनकर प्रेममें मग्न हो गये; सभा समेत सूर्यकुलकमलके सूर्य-रघुनाथजी सम्भ्रम उठे ॥ ३०३ ॥

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा * आगे गमन कीन्ह रघुनाथा ॥१॥
गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं * करि प्रणाम त्यागा रथ तबहीं ॥२॥

भाई मन्त्री गुरु पुरवासियोंको साथ ले रघुनाथजीने आगे गमन किया ॥ १ ॥ जब जनक जीने पर्वतोंमें श्रेष्ठ चित्रकूट देखा तब प्रणाम करके रथ त्याग कर दिया ॥ २ ॥

राम दरश लालसा उछाहू * पथ श्रम लेश कलेश न काहू ॥३॥
मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही * विनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसा और उत्साहसे किसीको लेशमात्र भी मार्गका श्रम और क्लेश नहीं हुआ ॥ ३ ॥ मन तो जहां रघुनाथ और जानकी थे वहां था तो विना मनके तनको दुःख और सुखकी सुध किसे हो ? ॥ ४ ॥

आवत जनक चले यहि भाँती * सहित समाज प्रेम मति माती ॥५॥
आये निकट देखि अनुरागे * सादर मिलन परस्पर लागे ॥६॥

इस प्रकारसे जनकजी चले आते हैं और समाजसहित मति प्रेममें पगी है ॥ ५ ॥ जब निकट आगये तब प्रेमसे देखकर आदरपूर्वक परस्पर मिलने लगे ॥ ६ ॥

लगे जनक मुनिगण पद-वन्दन *ऋषिन प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन॥७॥
भाइन सहित राम मिलि राजहिं * चले लिवाय समेत समाजहिं ॥८॥

जनकजी मुनियोंके सहित चरणोंकी बंदना करने लगे और रघुनाथजी ऋषियोंको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ भाइयों सहित रामचन्द्रजी राजासे मिल समाज सहित लिवा ले चले ॥८॥

दोहा–आश्रम सागर शांतरस, पूरण पावन पाथ ॥
सेन मानहुँ करुणासरित, लिये जात रघुनाथ ॥ ३०४ ॥

शांतरसके पवित्र जलसे भरा हुआ सागररूपी श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम है और उसमें जनककी सेनारूपी करुणा नदीको मिलानेके लिए रघुनाथजी लिए जाते हैं ॥ ॥ ३०४ ॥

बोरति ज्ञान विराग करारे * वचन सशोक मिलत नद नारे ॥१॥
शोच उसाँस समीर तरंगा * धीरज तट तरुवरकर भंगा ॥२॥

यह करुणारूपी नदी, ज्ञान-वैराग्यके जो दो किनारे हैं उसको बोरती और मिथिलावासी तथा अवधवासियोंके शोक भरे वचनके नद नारोंके मिलनेसे अधिक होती जाती है ॥ १ ॥ शोचसे जो उसका श्वास लेना है, वे ही वायुकी तरंगे हैं उन नदीके किनारे जो धैर्यरूपी श्रेष्ठ वृक्ष हैं उनको तोड़ देती है ॥ २ ॥

विषम विषाद तुरावति धारा * भय भ्रम भँवरावर्त अपारा ॥३॥
केवट बुध विद्या बड़ि नावा * सकहि न खेइ एक नहिं आवा ॥४॥

राजाके मरने, श्रीरघुनाथजीके वन जाने और भरतजीके राज्य न अङ्गीकार करनेके कारण जो बड़ा विषाद है वही नदीकी तीव्र धारा है, जिनमें नाव टूट जाती है, रघुनाथजीको लौटाने और न लौटानेके समय जो भय और भ्रम है, वही अपार भ्रमका आवर्त भँवर है, ॥ ३ ॥ बुध और वसिष्ठादि मुनि इस नदीके केवट हैं और उनकी बड़ी विद्या नाव है, इसलिए नहीं खेइ सकते कि (खेइ एक नहिं आवा) क्योंकि खेना तो एक को भी नहीं आता। अथवा पार निश्चय नहीं होता ॥ ४ ॥

वनचर कोल किरात बिचारे * थके विलोकि पथिक हिय हारे॥५॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई * मनहुँ उठेउ अम्बुधि अकुलाई॥६॥

विचारे कोल किरातरूपी मुसाफिर देखके थक गये, जीमें हार गये ॥ ५ ॥ जब यह नदी आश्रमरूपी समुद्रमें जा मिली तो मानो समुद्र अकुला उठा। तात्पर्य यह कि आश्रम जो शांत रससे पूर्ण था वह करुणारससे भर गया ॥ ६ ॥

शोक विकल दोउ राज समाजा * रहा न ज्ञान न धीरज लाजा ॥७॥
भूप रूप गुण शील सराही * शोचहिं शोकसिन्धु अवगाही ॥८॥

दोनों समाज शोकसे व्याकुल हो गये, उस समय ज्ञान धैर्य, लाज, कुछ भी नहीं रहा॥७॥ राजाका जो रूप गुण शील सराहना कर शोचना है वही शोकसिंधुमें स्नान है ॥ ८ ॥

छन्द-अवगाहि शोच समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं वाम विधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस योगि जन मुनि दशा देखि विदेहकी।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेहकी ॥ २४ ॥

नर-नारी महाव्याकुल हो शोकरूपी समुद्रमें स्नान कर शोचते हैं और सब क्रोधसे वाम विधिको दोष देकर कहते हैं कि यह क्या किया ? देवता सिद्ध तपस्वी योगी मुनि, लोक विदेहकी दशा देखकर कोई भी ऐसे समर्थ न हुए जो स्नेहकी नदी तर सकें ॥ २४ ॥

सोरठा-किये अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन मुनिवरन ॥
धीरज धरिय नरेश, कहेउ वसिष्ठ विदेहसन ॥ १८ ॥

जहां-तहां मुनिश्रेष्ठोंने लोगोंको बहुत उपदेश दिये। इसी प्रकार वसिष्ठने भी राजासे कहा कि महाराज ! धैर्य कीजिये ॥ १८ ॥

इति श्री रामचरित मानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने अयोध्याकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि-पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां पंचदशो विश्रामः ॥ १५ ॥

दोहा-यहि षोडश विश्राममें, भरत जनक मुनि साथ ॥
भये सभामें प्रतिवचन, समुझाये रघुनाथ ॥ १६ ॥

जासु ज्ञान रवि भवनिशि नाशा * वचन किरण मुनि कमल विकाशा॥१॥
तेहि कि मोह ममता नियराई * यह सियराम सनेह बड़ाई ॥२॥

जिसके ज्ञानरूपी सूर्यसे संसारकी आवागमनरूपी रात्रि नष्ट होती है और जिनके वचन किरणोंने मुनिरूपी कमलोंको खिला दिया है ॥१॥ उन (जनक) के निकट क्या मोह ममता जा सकती है ? किंतु यह (व्याकुलता होनी) सीता और रघुनाथजीके स्नेहकी बड़ाई है॥२॥

विषयी साधक सिद्ध सयाने * त्रिविध जीव जग वेद बखाने ॥३॥
राम सनेह सरस मन जासू * साधु सभा बड़ आदर तासू ॥४॥

विषयी, साधना करनेवाले (मुमुक्षु) और सिद्ध तीन प्रकारके जीव जगत्में वेदने बखाने हैं ॥३॥जिसका मन रामके स्नेहमें भीज रहा है,उसका साधुओंके समाजमें बड़ा आदर है॥४॥

सोह न रामप्रेम विनु ज्ञानू * कर्णधार विनु जिमि जलयानू ॥५॥
मुनि बहुविधि विदेह समुझाये * रामघाट सब लोग नहाये ॥६॥

रामचन्द्रके प्रेमके विना ज्ञान नहीं शोभित होता, जैसे मल्लाहके विना जहाज ॥ ५ ॥ वसिष्ठजीने बहुत प्रकारसे जनकजीको समझाया और सब लोग रामघाट पर नहाये ॥ ६ ॥

सकल शोक संकुल नर नारी * सो बासर बीतेउ विनु बारी ॥७॥
पशु खगमृगन्ह न कीन्ह अहारा * प्रिय परिजन कर कवन विचारा॥८॥

सब नर-नारी शोचसे व्याकुल हैं वह दिन भी विना जल पिये सबको बीत गया ॥ ७ ॥ पशु, खग मृगोंने भी भोजन नहीं किया प्यारे कुटुम्बियोंकी तो कथा ही क्या है ? ॥ ८ ॥

दोहा-दोउ समाज निमिराज, रघुराज नहाने प्रात ॥
बैठे सब वट विटपतर, मन मलीन कृश गात ॥ ३०५ ॥

जनकका समाज और महाराज दशरथकी ओरके सब मनुष्य प्रातः स्नान कर वटवृक्षके नीचे मनमलीन कृशगात बैठे ॥ ३०५ ॥

जे महिसुर दशरथ पुरवासी * जे मिथिलापति नगर निवासी ॥१॥
हंस-वंश गुरु जनक पुरोधा * जिन जगमहँ परमारथ शोधा ॥२॥

जो ब्राह्मण अयोध्याके रहनेवाले और जो जनकपुरके रहनेवाले थे ॥ १ ॥ हंसवंश अर्थात् सूर्यवंशके गुरु वसिष्ठ और जनकजीके पुरोहित शतानंद, जिन्होंने इस जगत्में परमार्थका मार्ग शोध लिया है ॥ २ ॥

लगे कहन उपदेश अनेका * सहित धर्म नय विरति विवेका ॥३॥
कौशिक कहि कहि कथा पुरानी * समुझाई सब सभा सुबानी ॥४॥

ये दोनों अनेक प्रकारके धर्म नीति वैराग्य ज्ञानयुक्त उपदेश कहने लगे ॥ ३ ॥ विश्वामित्रजीने पुरानी कथा कहकर सुन्दर वाणीसे समझाया ॥ ४ ॥

तब रघुनाथ कौशिकहि कहेऊ *नाथ कालिह विनु जल सब रहेऊ॥५॥
मुनिकह उचित कहत रघुराई * गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥६॥

तब रघुनाथजीने विश्वामित्रसे कहा-नाथ! कल सब कोई जल बिना रहे हैं अब भोजन करनेको कहो ॥५॥ मुनि बोले-रघुनाथजी उचित कहते हैं आज भी अढ़ाई पहर दिन बीत गया॥६॥

ऋषिरुख लखि कह तिरहुति राजू* यहाँ उचित नहिं अशन अनाजू॥७॥
कहा भूप भल सबहि सुहाने * पाय रजायसु चले नहाने ॥८॥

ऋषिका रुख जानकर जनकजी बोले-यहां अन्नका भोजन करना उचित नहीं ॥ ७ ॥ राजाका कहना सबको अच्छा लगा और आज्ञा पाकर सब स्नान करने चले ॥ ८ ॥

दोहा-तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार ॥
लै आये वनचर विपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥ ३०६ ॥

उसी समय वनके रहनेवाले कोल किरात अनेक फल, फूल, दल, मूल बहुतसे काँवरमें भरभरके ले आये ॥ ३०६ ॥

कामद भो गिरि राम प्रसादा * अवलोकत अपहरत विषादा ॥१॥
सर सरिता वन भूमि विभागा * जनु उमँगत आनँद अनुरागा॥२॥

रामके प्रसादसे पर्वत कामनादायक हो गये, दर्शन मात्रसे ही दुःख हरता है ॥१॥ तालाब नदी, वनभूमिके विभागोंसे मानों चारों ओर आनंद अनुराग उमड़ता है ॥ २ ॥

बेल विटप सब सफल सफूला * बोलत खग मृग अति अनकूला॥३॥
तेहि अवसर वन अधिक उछाहू * त्रिविध समीर सुखद सह काहू॥४॥

सब वेल, वृक्ष फूल फल, सहित हो गये और खग अति अनुकूल हो बोलने लगे ॥३॥ उस अवसर पर वनमें अधिक उत्साह हो गया; शीतल, मंद, सुगंध सबको सुखदायी पवन चलने लगा ॥४॥

जाइ न वरणि मनोहरताई ❀ जनु महि करति जनक पहुनाई॥५॥
तब सब लोग नहाइ नहाई ❀ राम जनक मुनि आयसु पाई ॥६॥

वह मनोहरताई वर्णी नहीं जाती मानो पृथ्वी जनककी पहुनाई करती है, क्योंकि वे जानकीजीकी माता हैं ॥ ५ ॥ तब लोग स्नान करके राम, जनक, मुनिकी आज्ञा पाकर ॥ ६ ॥

देखि देखि तरुवर अनुरागे ❀ जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥७॥
दल फल फूल कन्दविधि नाना ❀ पावन सुन्दर सुधा समाना ॥८॥

वृक्षको देख देखके बड़े प्रेमसे जहाँ-तहाँ पुरके लोग उतरने लगे ॥ ७ ॥ दल, फल, फूल, कंद अनेक प्रकारके पवित्र सुन्दर अमृतके समान ॥ ८ ॥

दोहा-सादर सब कहँ रामगुरु, पठये भरि भरि भार ॥
❀ पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार ॥ ३०७ ॥

आदरसे सबको श्रीरामचन्द्रके गुरुने भार भर भरके भेजे, पितर, देवता, अतिथि और गुरुका पूजन कर फलाहार करने लगे ॥ ३०७ ॥

इहि विधि बीते वासर चारी ❀ राम निरखि नर नारि सुखारी ॥१॥
दुहुँ समाज अस रुचि मनमाहीं ❀ बिनु सियराम फिरब भल नाहीं ॥२॥

इस प्रकार चार दिन बीत गये, रघुनाथजीको देखकर सब नर-नारी सुखी हो जाते हैं॥१॥ दोनों समाजके मनमें ऐसी रुचि थी कि बिना सीता, रामके फिरना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

सीता राम संग वनवासू ❀ कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥३॥
परिहरि लषण राम वैदेही ❀ जेहिघर भाव वाम विधि तेही ॥४॥

सीता रामके संगमें वनवास कोटि स्वर्गके समान सुखदायक है ॥ ३ ॥ राम, लक्ष्मण, जानकीजीको छोड़कर जिसे घर भावे उसे विधाता वाम है ॥ ४ ॥

दाहिन दैव होइ जब सबहीं ❀ राम समीप बसिय वन तबहीं॥५॥
मन्दाकिनि मज्जन तिहुँ काला ❀ रामदरश मुद मंगल-माला ॥६॥

जब रामके समीप वनमें वास करें तब जानिये कि ईश्वर सबको दाहिना हो गया ॥ ५ ॥ मन्दाकिनीका तीनों कालमें स्नान रघुनाथजीका आनंद-मङ्गल दायक दर्शन ॥ ६ ॥

अटन राम गिरि वन तापस थल ❀ अशन अमिय समकंदमूलफल॥७॥
सुख समेत संवत दुइ साता ❀ पलसम होहिं न जानिय जाता॥८॥

श्रीरघुनाथजीके पर्वत, वन तपस्वियोंके आश्रममें फिरना अमृतके समान फल, मूल, कंद खाना॥७॥ इस प्रकार सुख समेत चौदह वर्ष पलके समान बीत जायँगे, जाने नहीं जायँगे॥८॥

दोहा-इहि सुख योग न लोग सब, कहहिं कहां अस भाग ॥
❀ सहज सुभाव समाज दुहुँ, रामचरण अनुराग ॥ ३०८ ॥

इस सुखके योग्य सब लोग नहीं हैं और कहते हैं कि हमारे ऐसे भाग्य कहां हैं? इस प्रकार सहज स्वभावसे दोनों समाजका रघुनाथजीके चरणोंमें अनुराग है ॥ ३०८ ॥

इहि विधि सकल मनोरथ करहीं * वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥१॥
सीय मातु तेहि समय पठाई * दासी देखि सुअवसर आई ॥२॥

इस प्रकारसे सब मनोरथ करते हैं और प्रेमपूर्वक वचन सुनकर मन हरण होते जाते हैं ॥ १ ॥ सीताजीकी माताने उस समय एक दासीको भेजा, उसने आकर कौशल्यादिको खाली देख सुनयना रानीसे जा कहा ॥ २ ॥

सावकास सुनि सब सिय सासू * आयउ जनकराज-रनिवासू ॥३॥
कौशल्या सादर सनमानी * आसन दीन्ह समय सम आनी॥४॥

जानकीजीकी सासोंको खाली सुनकर सब जनक रनिवास कौशल्याजीके पास आया (जेष्ठ सुदी एकादशीके दिन सब रानी मिलने आयीं) ॥ ३ ॥ कौशल्याजीने आदरपूर्वक सम्मान किया और समय अनुसार आसन लाकर दिया ॥ ४ ॥

शील सनेह सकल दुहुँ ओरा *द्रवहिं देखि सुनि कुलिश कठोरा॥५॥
पुलकि शिथिल तनु वारि विलोचन*महिनख लिखन लगीं सब सोचन॥६॥

शील स्नेह सब दोनों ओर ऐसा है जिसे देख सुनकर कठोर वज्र भी पसीज जाते हैं ॥५॥ शरीर पुलकित होनेसे शिथिल; नेत्रमें जल, पृथ्वीको नखोंसे खुरेदती सब सोचने लगीं ॥६॥

सब सिय राम प्रेमकी मूरति * जनु करुणा बहु वेष विसूरति ॥७॥
सीय मातु कह विधि बुधि बाँकी * जेहि पयफेन फोरपवि टाँकी ॥८॥

सब सीतारामके प्रेमकी मूर्ति हैं, ऐसे बैठी हैं जैसे करुणा बहुत रूप धरे बिसूरती हो ॥७॥ सीताजीकी माता बोलीं-विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है जिसने दूधके फेनको वज्रके टाँकीसे फोड़ा। आशय यह कि सुनयना ब्रह्माके बहाने कैकेयीका कर्तव्य वर्णन करती है, पयके स्थानमें दशरथ कौशल्या रघुनाथजीका संयोग है, टाँकीके स्थानमें कैकेयीका है और हथोड़ीके स्थानमें मन्थरा है ठोकनेवाली सरस्वती है सो इन तीनोंने उस संयोगको तोड़ अलग-अलग कर दिया, राजा दशरथ स्वर्गवासी हुए, रघुनाथ चित्रकूटमें बसे, कौशल्या अवधमें रही। अथवा विधाताकी गति ऐसी विचित्र है जिसने हीरेको दूधके झागोंसे तोड़ा अर्थात् दृढ़ रामराज्यका कैकेयी अबलाके वचनोंसे भंग करा दिया। सुना है हीरेके तोड़नेमें दूधके झागोंकी लाग लगाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल ॥
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥ ३०९ ॥

सुनयना कहती है-विधाताका सब कर्तव्य कठिन है, अमृत जो श्रेष्ठ पदार्थ है सो सुननेमें ही आता है और विष जो महा निकृष्ट वस्तु है वह देखनेमें आता है और उलूक बगले काग तो जहाँ-तहाँ दीखते हैं,श्रेष्ठ राजहंसस कृत(एक)मानसरोवरमें ही सुने जाते हैं।भाव यह कि सुनते थे कि कैकेयीके किसी अङ्गमें अमृत है। सो निकला तो देखनेमें विष अथवा सुधारूपी रामराज्य आता था,देखनेमें वन गरल आया। अथवा सुधारूपी कैकेयी और रघुनाथजीमें प्रीति रहती थी देखनेमें महाविरोधरूपी गरल प्रगट हुआ और अवधरूपी मानसरोवरमें हंस सुन पड़ते थे सो

देखो, जहाँ-तहाँ काक, उलूक और बगुले बहुत हैं, मराल अर्थात् हंस बहुत थोड़े देखनेमें आये। इन तीनों पक्षियोंका गुण कैकेयीमें आरोपण कर कहती हैं, किसीकी प्रतीति न मानना, और कठोर बोलना काकका गुण है सो उसमें प्रत्यक्ष है, सूर्यरूपी दशरथको नष्ट करके अँधेरेमें अवधमें प्रसन्न होना उलूकका काम है और श्रीरघुनाथजीमें प्रीति दिखाकर सबको विश्वास दे फिर अनर्थ करना यह बकुलेका काम है और जो थोड़े हंस कहे हैं वे लक्ष्मण, भरत हैं यथा "भरत हंस रविवंश तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा" तथा वसिष्ठ आदि ऋषि मानस हंस थे, परंतु किसीकी चतुराई काम न आयी ॥ ३०९ ॥

सुनि सशोच कह देवि सुमित्रा * विधिगति बड़ि विपरीत विचित्रा॥१॥
जो सृजि पालै हरै बहोरी * बालकेलिसम विधिमति भोरी॥२॥

देवी सुमित्रा सुनकर शोकयुक्त हो कहने लगी–विधाताकी गति अति विपरीत और विचित्र है, अर्थात् सोचकर कैकेयीका दोष विधाता पर रख दिया ॥ १ ॥ बालकके खेलके समान विधाताकी मति भी भोरी है, क्योंकि जो उत्पन्न, पालन कर फिर हर लेता है, इससे ये सब कर्म विधाताके अधीन हैं ॥ २ ॥

कौशल्या कह दोष न काहू * कर्म विवश दुखसुख क्षतिलाहू ॥३॥
कठिन कर्मगति जान विधाता * जो शुभ अशुभ सकल फलदाता॥४॥

कौशल्या बोली–किसीका दोष नहीं है दुःख, सुख, हानि और लाभ सब कर्मानुसार ही होते हैं, "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"॥३॥कठिन कर्म विधाता जानता है, जो शुभाशुभ सब फल देता है, कारण है कि हम कर्मोंकी गति नहीं जानतीं, विधाता जानता है॥४॥

ईश रजाय शीश सबहीके * उतपतिथितिलय विषहु अमीके॥५॥
देवि मोहवश सोचिय वादी * विधि प्रपंच अस अचल अनादी॥६॥

ईश्वरकी आज्ञा सबके शिर पर है। उत्पत्ति, पालन, नाश विष भी अमृतके तुल्य ये सब उसकी आज्ञासे होते हैं अर्थात् वह जो चाहे सो करे ॥५॥ हे देवि! मोह वश वृथा क्यों शोच करती हो यह विधाताका प्रपंच इसी प्रकार अनादि कालसे चला आता है। "द्रव्य कर्म, गुण, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव" ये सात पदार्थ अनादि हैं विधि प्रपंचमें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा अटल अनादि है ॥ ६ ॥

भूपति जियब मरब उर आनी * शोचियसखि लखि निज हितहानी॥७॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी * सुकृती अवधि अवधपति रानी ॥८॥

हे सखी! राजाने तो मरना-जीना मनमें अच्छा जाना, परंतु अपने हितकी हानिका शोच है? अथवा हे रानी! जो राजाका मरना-जीना मनमें लाओ तो अपनी हानि देख कर शोच होता है, मरना-जीना इस संसारमें ईश्वर की आज्ञासे अवश्य है ॥७॥ सीताजीकी माता बोलीं कि यह तुम्हारी सुन्दर वाणी सत्य है, क्योंकि जो पुण्यात्माओंकी अवधि (जिनसे अधिक कोई पुण्यात्मा हुआ ही नहीं) उन दशरथ अयोध्याके पतिकी तुम रानी हो ॥ ८ ॥

दोहा–लषण राम सिय जाहिं बन, भल परिणाम न पोच ॥
गहबर हिय कह कौशिला, मोहि भरत कर शोच ॥ ३१० ॥

कौशल्याने गद्‌गदकंठसे कहा कि लक्ष्मण, रघुनाथ और सीताके वन जानेसे परिणाम अच्छा होगा बुरा नहीं; परंतु मुझको भरतजीका शोच है (रघुनाथजीके विरहको सहें वा न सहें) ॥ ३१० ॥

ईश-प्रसाद अशीश तुम्हारी ❀ सुत सुतवधू देव सरि वारी ॥१॥
राम-शपथ मैं कीन्ह न काऊ ❀ सो करि सखी कहौं सति भाऊ॥२॥

ईशके प्रताप और तुम्हारी आशीषसे पुत्रवधू गंगाजीके जलके समान निर्मल हैं ॥ १ ॥ हे सखी मैंने रामकी कभी सौगंध नहीं खायी; सौगंध करके सद्भावसे कहती हूँ ॥ २ ॥

भरत-शील गुण बिनय बड़ाई ❀ भायप भक्ति भरोस भलाई ॥३॥
कहत शारदहुँकी मति हीचे ❀ सागर सीप कि जाहि उलीचे ॥४॥

भरतजीका शील, गुण, विनय, बड़ाई, भाईचार, भक्ति, भरोसा और भलाई ॥ ३ ॥ कहतेमें सरस्वतीजीकी भी मति सकुचाती है, क्योंकि समुद्र सीपीसे उलीचे जाते हैं अर्थात् नहीं, ऐसे ही भरतजीके गुण नहीं कहे जाते ॥ ४ ॥

जानौं सदा भरत कुलदीपा ❀ बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥५॥
कसे कनक मणि पारिखि पाये ❀ पुरुष परखिये समय सुभाये ॥६॥

सदा भरतजीको कुलदीपक जानो, यह मुझसे राजाने बार-बार कहा है॥५॥सुवर्ण कसौटीसे परखा जाता है, मणि, पारिखी (परीक्षक) से और पुरुष समय पर परखा जाता है ॥ ६ ॥

अनुचित आजु कहब अस मोरा ❀ शोक सनेह सयानप थोरा ॥७॥
सुनि सुरसरि समपावन बानी ❀ भईं सनेह विकल सब रानी ॥८॥

आज मेरा ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि शोक स्नेहसे श्रेष्ठता थोड़ी हो गयी है । भाव यह, कि इस समय मैं कहूँगी तो लोग इसे अनुचित कहेंगे कि, भरत राजा हुए इससे यह प्रसन्न करनेकी बातें हैं; परंतु मेरे वचन शोक और स्नेहके हैं, इसमें चतुराई नहीं है और अनुचित मानने वाले इसे चतुराई समझेंगे ॥ ७ ॥ गङ्गाजीके समान पवित्र वाणी सुनकर सब रानी स्नेहसे शिथिल हो गयीं ! आशय यह है कि गंगाजी अनेक पापियोंको तार देती हैं, इन कौशल्याके गङ्गारूपी वचनसे मन्थरादि निष्पाप हो गयीं ॥ ८ ॥

दोहा-कौशल्या कह धीर धरि, सुनहु देवि मिथिलेशि ॥
को विवेकनिधिवल्लभहि, तुमहि सकै उपदेशि ॥ ३११ ॥

फिर कौशल्या धैर्य धरके कहने लगीं-सुनो मिथिलेशकी महारानी । तुम ज्ञान समुद्र महाराज जनकजीकी बल्लभा हो, तुम्हें कौन उपदेश दे सकता है ? ॥ ३११ ॥

रानि रावसन अवसर पाई ❀ अपनी भाँति कहब समुझाई ॥१॥
राखिय लषण भरत गवनहि वन ❀ जौ यह मत मानैं महीप मन ॥२॥

कौशल्या बोली-महारानी ! राजासे समय पाकर अपनी ओरसे समझा कर कहना ॥१॥ लक्ष्मण तो रहें और भरतजी रघुनाथके संग वनको जायँ जो यह मत राजा मनमें माने॥२॥

तौ भल यत्न करब सुविचारी ❀ मोरे शोच भरत-कर भारी ॥३॥
गूढ़ सनेह भरत मनमाहीं ❀ रहे नीक मोहि लागत नाहीं ॥४॥

तो यह भली भाँति विचार कर भला यत्न करें क्योंकि मुझे भरतजीका बड़ा सोच है ॥ ३ ॥ भरतजीके मनमें रघुनाथजीका गंभीर स्नेह है सो विना रघुनाथजीके भरतजीका रहना मुझे अच्छा नहीं विदित होता, क्योंकि कहीं शरीर न त्याग दें ॥ ४ ॥

लखि सुभाव सुनि सरल सुबानी * सब भइँ मगन करुणरस रानी॥५॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि *शिथिल सनेह सिद्ध योगी मुनि॥६॥

रामजीकी माताका स्वभाव देख सीधी वाणी सुन सब रानी करुणासागरमें मग्न हो गयीं ॥ ५ ॥ आकाशमें फूलोंकी वर्षा और धन्य धन्यकी ध्वनि होने लगी, सिद्ध, योगी, मुनि, स्नेहमें मग्न हो गये (देवता कौशल्याके मनका भाव जान प्रसन्न हुए कि इन्हें रघुनाथजीका वनगमन स्वीकार है) ॥ ६ ॥

सब रनिवास थकित लखि रहेऊ * तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥७॥
देवि दण्ड युग यामिनि बीती * राममातु सुनि उठी सप्रीती ॥८॥

सब रनिवास यह देखकर थकित हो रहा, तब सुमित्राने धैर्य धरके कहा ॥ ७ ॥ हे देवि ! दो घड़ी रात्रि बीत गयी, यह सुनकर रघुनाथजीकी माता प्रीति समेत उठीं । कौशल्याके पहले उठनेका कारण यह है कि जनकजीकी रानी इस समय चहकारी (स्यापा) में आयीं थीं और चहकारीमें पहले घरकी उठें तब दूसरी स्त्री उठती हैं ॥ ८ ॥

दोहा-वेगि पाँव धारिय थलहिं, कह सनेह सतिभाय ॥
हमरे तो अब ईशगति, कै मिथलेश सहाय ॥ ३१२ ॥

कौशल्या स्नेह से सद्भाव पूर्वक कहने लगीं-आप अपने स्थानको शीघ्र ही पधारें हमारे तो शंकर व मिथिलापति सहायक हैं ॥ ३१२ ॥

लखि सनेह सुनि वचन विनीता * जनक-प्रिया गहि पाँव पुनीता॥१॥
देवि उचित अस विनय तुम्हारी * दशरथ घरनि राम-महतारी ॥२॥

स्नेह देख नम्र वचन सुन जनककी प्रिया (सुनयना) रानी कौशल्याके पवित्र चरण पकड़कर बोलीं ॥ १ ॥ हे देवि ! तुम्हारी ऐसी विनती उचित ही है, क्योंकि तुम दशरथ-जीकी रानी और रामचन्द्रजीकी माता हो ॥ २ ॥

प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं * अग्निधूम गिरि शिर तृण धरहीं॥३॥
सेवक राउ कर्म मन बानी * सदा सहाय महेश भवानी ॥४॥

प्रभु अपने नीचका भी आदर करते हैं, (जैसे) अग्नि धुएँको और पर्वत तृणको अपने शिरपर सदा धरते हैं॥३॥ राजा तो वचन मनवाणीसे सदा सेवक हैं शिव पार्वती हमेशा सहायक हैं॥४॥

रौरे अंग योग जग को है * दीपसहाय कि दिनकर सोहै ॥५॥
राम जाय वन करि सुरकाजू * अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥६॥

तुम्हारे अंगके उपमा योग्य जगत्में कौन है, दीपकी सहायतासे क्या सूर्य शोभा पा सकता है ? ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य कर फिर अचल होकर अयोध्याका राज्य करेंगे ॥ ६ ॥

अमर नाग नर राम बाहुबल * सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥७॥
यह सब याज्ञवल्क्य कहि राखा * देवि न होइ मृषा ऋषि भाषा ॥८॥

देवता, शेष, मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके बाहुबलसे सुखपूर्वक अपने-अपने स्थान पर बसेंगे॥७॥ हे देवि ! यह याज्ञवल्क्य ऋषिने कह रखा है ऋषिका कहना मिथ्या नहीं होता ॥ ८ ॥

दोहा–अस कहि पगु परि प्रेम अति, सियहित विनय सुनाय ॥
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाय ॥ ३१३ ॥

यह कहकर बड़े प्रेमसे पांव पकड़े, जानकीजीके हेतु विनती सुनाकर यदि आज्ञा हो तो मैं जानकीजीको लिवा जाऊँगी तब आज्ञा पाकर जानकी की माता जानकीको लिवा कर चलीं।३१३।

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही * जो जेहि योग भाँति तस तेही ॥१॥
तापस वेष जानकिहि देखी * भे सब विकल विषाद बिसेखी॥२॥

जानकीजी अपने प्रिय कुटुम्बसे जो जिस योग्य था, उससे उस प्रकार मिलीं ॥ १ ॥ तपस्विनीके वेषमें जानकीजीको देख सब कोई दुःखसे व्याकुल हो गये ॥ २ ॥

जनक राम गुरु आयसु पाई * चले थलहिं सिय देखी आई ॥३॥
लीन्ह लाय उर जनक जानकी * पाहुनि पावनि प्रेम प्राणकी ॥४॥

जनकजी राम और गुरुकी आज्ञा पाकर आये तो अपने स्थानपर आकर जानकीको देखा॥३॥ राजाने जानकीको हृदयसे लगा लिया, क्योंकि जानकी पवित्र स्नेह और प्राणोंकी पाहुनी हैं॥४॥

उर उमगेउ अम्बुधि अनुरागू * भयउ भूप मन-मनहु प्रयागू ॥५॥
सिय सनेह वट बाढ़त जोहा * तापर राम प्रेम शिशु सोहा ॥६॥

हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ आया, राजाका मन उस समय प्रयाग हो गया, प्रयाग कहनेका भाव यह है कि, प्रलयमें भी प्रयाग रह जाता है इसी प्रकार राजाका मन प्रेममें डूबनेसे अचल है ॥ ५ ॥ जहाँ जानकीजीका स्नेह अक्षयवट बढ़ता जाता है, उस अक्षयवट के पत्ते पर रघुनाथजीका प्रेम शिशुरूप शोभित होता है । प्रलय का जल बढ़नेसे अक्षयवट उसके ऊपर ही रहता है और उसके पत्ते पर भगवान् विराजते हैं ॥ ६ ॥

चिरजीवी मुनि ज्ञान बिकल जनु * बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु ॥७॥
मोह मगन मति नहिं विदेहकी * महिमा सिय रघुवर सनेहकी ॥८॥

जैसे चिरञ्जीवी मुनि मार्कण्डेय चेतनाहीन हो समुद्रकी उमंगमें डूबते-डूबते वटके पत्रमें सोते हुए बालकरूप विष्णु भगवान्का अवलम्बन करके बच गये, इसी प्रकार इनके ज्ञान-रूप मार्कण्डेय मुनिको रामका प्रेमरूप अवलम्बन मिला ॥ ७ ॥ मोहमें मग्न हो गये, विदेह राजाकी मति ठिकाने नहीं रही, यह रघुनाथ और जानकीके स्नेहकी महिमा है । अथवा विदेहकी मति मोहमें मगन नहीं है यह सीतारामजीके स्नेहकी महिमा है ॥ ८ ॥

१. मार्कण्डेयजीने तपकर भगवान्से यह वर मांगा कि मैं प्रलयका कौतुक देखूं तब नारायण ने 'तथास्तु' कहा, एक दिन संध्या करनेको बैठे की उसी समय देखा कि चारों ओरसे समुद्र उमड़ा चला आता है, जल ही जल हो गया, ऋषि तैरने लगे तब अक्षयवटको देख उसपर चढ़े, वहां एक दोनेमें बालकको देखा और उसके श्वाससे उस बालकके उदरमें प्रवेश कर गये । वहां भी एक जगत देखा, आश्रम भी देखा, कुछ दिन वहां रहे, फिर श्वासके साथ बाहर अपने को नदीके तटपर स्थित देखा तो दो घड़ीकी माया विदित हुई ।

दोहा-सिय पितु मातु सनेह वश, विकल न सकी संभारि ॥
धरणिसुता धीरज धरेउ, समय सुधर्म विचारि ॥ ३१४ ॥

जानकीजी पिता, माताके स्नेहसे ऐसी व्याकुल हुई कि अपनेको संभाल न सकीं। अथवा सीताजीके पिता माता अपनेको न संभाल सके, पुनः धरणीसुता जानकीने समय और सुधर्म विचार कर धैर्य धरा, धैर्य धारण करना पृथ्वीमें है इससे जानकीको 'धरणीसुता' कहा॥३१४॥

तापस वेष जनक सिय देखी * भयउ प्रेम परितोष विसेखी ॥१॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ *सुयश धवल जग कह सब कोऊ॥२॥

तपस्विनीके वेषमें जब जनकजीने जानकीजीको देखा तो प्रेम और बहुत सन्तोष हुआ और कहने लगे॥१॥हे पुत्रि! तू ने हमारा कुल और दशरथका कुल दोनों पवित्र कर दिये,तेरा उज्ज्वल सुयश जगत्में सब कोई कहेंगे ! दोनों कुलकीर्तिरूपी नदीके किनारे हैं सो कहते हैं ॥ २ ॥

जित सुरसरि कीरति सरि तोरी * गवन कीन्ह विधि अण्डकरोरी॥३॥
गङ्ग अवनि थल तीनि बड़ेरे * इहिं किये साधु समाज घनेरे ॥४॥

तेरी कीर्तिरूपी नदीने गङ्गाजीको जीतके विधाताके करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें गमन किया है, गंगाजी तो तीनों लोकमें गई हैं ॥३॥ गंगाजीके पृथ्वी पर तीन बड़े स्थान हैं हरिद्वार, प्रयाग, और सागर संगम और कीर्तिरूपी नदीने सब साधुसमाजोंके स्थल बना लिये हैं ॥ ४ ॥

पितु कह सत्य सनेह सुबानी * सीय सकुच मन मनहुँ समानी॥५॥
पुनि पितु मातु लीन्ह उर लाई *शिष आशिष हित दीन्ह सुहाई ॥६॥

पिताने तो स्नेहसे सुन्दर सत्यवाणी कही, परन्तु जानकीजी सकुचाकर मानो मनमें समा गयीं ॥५॥ फिर माता-पिताने हृदयसे लगाकर हितकारी शिक्षा और सुन्दर आशीष दी॥६॥

कहति न सीय सकुचि मन माहीं* इहां बसब रजनी भल नाहीं ॥७॥
लखि रुख रानि जतायउ राऊ * हृदय सराहत शील सुभाऊ ॥८॥

जानकीजी सकुचके मारे कहती नहीं परन्तु मनमें सोचती हैं कि यहां रातका रहना अच्छा नहीं । जानकीजीने इस कारण रहनेकी इच्छा नहीं की कि रघुनाथजीकी सेवामें विक्षेप पड़ेगा दूसरे यह बात कि माता-पिताके निकट रहनेसे चौदह वर्षके वनवासमें एक दिनका बल पड़ जायगा ॥ ७ ॥ यह रुख देखकर रानीने राजासे कहा, वे हृदयमें जानकीजीका शील स्वभाव सराहने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-बार बार मिलि भेंटि सिय, विदा कीन्ह सन्मानि ॥
कही समय सम भरतगति, रानि सुबानि सयानि ॥ ३१५ ॥

बार-बार मिल भेंटकर जानकीजीको सम्मानसे विदा कर दिया, फिर चतुर रानीने समय पाकर जो बात कौशल्याजीने रामसे कहने को कही थी, सो सुन्दर वाणीसे कही ॥ ३१५ ॥

सुनि भूपाल भरत- व्यवहारू * सोन सुगन्ध सुधा शशि सारू॥१॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन * सुयश सराहन लगे मुदित मन॥२॥

राजा भरतजीका व्यवहार सुनकर कि वे कैसे हैं, सोनेके तुल्य हैं उसमें उनका सद्भाव सुगंधके तुल्य; जो त्रिलोकीमें फैल गया, फिर वे चन्द्रमाके तुल्य हैं जिस चन्द्रमा का सार (तत्व) अमृत है और भरतजीमें सुधारूप सद्भाव, जिसने सब मनुष्यों को आनंदित किया ॥ १ ॥ नेत्रोंमें जल भर आया अतः मूँद लिए, शरीर पुलकायमान हो गया, मनमें (भरतजीका) सुयश सराहने लगे और फिर प्रसन्न हो बोले ॥ २ ॥

सावधान सुन सुमुखि सुलोचनि * भरत कथा भव बंध-विमोचनि॥३॥
धर्म राजनय ब्रह्म-विचारू * यहाँ यथामति मोर प्रचारू ॥४॥

हे सुमुखि सुलोचनि ! सावधान होकर सुनो, भरतजीकी कथा संसार बंधनसे छुड़ानेवाली है ॥३॥ धर्म, राजनीति, ब्रह्म विचार इन स्थानोंमें तो यथामति मैं कह सकता हूँ ॥ ४ ॥

सो मति मोरि भरत महिमाहीं *कहै काह छलि छुअति न छाहीं॥५॥
विधि गणपति अहिपति शिवशारद*कवि कोविद बुधबुद्धि विशारद ॥६॥

सो मेरी मति भरतजीकी महिमाको क्या कहे ? कि छलसे भी उस महिमाकी छाया नहीं छू सकती ॥ ५ ॥ ब्रह्मा गणेश, शेष, शिव, सरस्वती, कवि, पंडित बुद्धिमान तथा चतुर समझनेवाला ॥ ६ ॥

भरत चरित कीरति करतूती * धर्म शील गुण विमल विभूती॥७॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू *शुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥८॥

भरतजीका चरित्र, कीर्ति, करतूति, धर्म, शील, गुण, उज्ज्वल विभूति ॥ ७ ॥ समझने और सुननेमें सब किसीको सुख देनेवाली है और उनकी पवित्रता गंगाको और रुचि अमृतके स्वादको भी तिरस्कृत करती है ॥ ८ ॥

दोहा-निरवधि गुण निरुपम पुरुष, भरत भरत समजानि ॥
कहिय सुमेरु कि सेरसम, कविकुलमति सकुचानि ॥ ३१६ ॥

हे देवि ! तुम भरतको भरतके ही समान जानो; जिनका गुण अवधि रहित है और वे आप उपमारहित पुरुष हैं, जैसे कविकी मति सुमेरुको (तोलने के) सेरके समान कहते सकुचे वैसे ही अन्य पुरुषोंको सेर और भरतको सुमेरुसम जान मेरी मति सकुचाती है ॥ ३१६ ॥

अगम सबहि वर्णत वर वरणी *जिमि जलहीन मीन गमु धरणी॥१॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी * जानहिं राम न सकहिं बखानी ॥२॥

हे मनोहारिणी । भरतजीकी कीर्ति और गुणोंका कथन करना सबको ऐसा अगम है जैसा जलहीन भूमिपर मछलीका चलना कठिन है ॥ १ ॥ हे रानी ! सुनो, भरतजीकी महिमाका पार नहीं है, उसको श्रीरामचन्द्रजी जानते हैं पर कह नहीं सकते ॥ २॥

वरणि सप्रेम भरत अनुभाऊ *तियजियकी रुचि लखि कह राऊ॥३॥
बहुरहिं लषण भरत बन जाहीं * सब कर भल सबके मनमाहीं ॥४॥

इस प्रकार प्रेमसे भरतजीका अनुभव वर्णन कर रानीके जीकी रुचि देखकर राजा बोले॥३॥ लक्ष्मणजी लौट जायँ भरत साथ जायँ यह बात सबके मनमें है और इसमें सबकी भलाई है॥४॥

देवि परंतु भरत रघुवरकी *प्रीति प्रतीति जाय नहिं तरकी॥५॥
भरत अवधि सनेह ममताके * यद्यपि राम सींव समताके ॥६॥

परन्तु हे देवि ! श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी प्रीति और प्रतीतिमें तर्कना नहीं हो सकती। प्रीति श्रीरामजीकी और प्रतीति भरतजीकी है ॥ ५ ॥ भरतजी तो स्नेह और ममताकी सीमा हैं यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समताकी मर्यादा हैं ॥ ६ ॥

परमारथ स्वारथ सुख सारे * भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥७॥
साधन सिद्ध रामपद नेहू *मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥८॥

परमार्थ और स्वार्थके सुख जो साररूप हैं, उन्हें भरतजीने स्वप्नमें भी मनमें नहीं देखा केवल श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुकूल रहे हैं ॥ ७ ॥ सब साधनोंकी सिद्धि श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंमें प्रीतिका होना है, मुझे भरतजीका मत यही विदित होता है ॥ ८ ॥

दोहा-भोरेउ भरत न पेलिहैं, मनसहु राम रजाय ॥
करिय न सोच सनेह वश, कहेउ भूप विलखाय ॥ ३१७ ॥

भरतजी भूलकर भी मनसे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं टालेंगे, तुम स्नेह वश होकर शोच मत करो। वार्ता राजाने प्रीतिसे व्याकुल हो कही ॥ ३१७ ॥

राम भरत गुन गनत सप्रीती *निशि दंपतिहि पलकसम बीती॥१॥
राज समाज प्रात युग जागे * न्हाय न्हाय सुर पूजन लागे ॥२॥

रघुनाथजी और भरतजीके प्रेमपूर्वक गुण कहते सुनते रात्रि दोनों स्त्री पुरुषोंको पलकके समान बीती ॥१॥ दोनों राजसमाज प्रातःकाल जागे तो स्नान कर देवताओंका पूजन करने लगे॥२॥

गये न्हाय गुरुपहँ रघुराई * वंदि चरण बोले रुख पाई ॥३॥
नाथ भरत पुरजन महतारी * शोच विकल वनवास दुखारी ॥४॥

स्नान करके रघुनाथजी गुरुके पास गये और चरणोंको प्रणाम कर रुख पाकर बोले॥३॥ स्वामी ! भरत, पुरवासी, सब माताएँ मेरे शोचमें व्याकुल और वनवाससे दुःखी हैं ॥ ४ ॥

सहित समाज राउ मिथिलेशू * बहुत दिवस भये सहत कलेशू ॥५॥
उचित होय तस कीजिय नाथा * हित सबही कर रौरे हाथा ॥६॥

समाजसहित अब महाराज मिथिलेशको भी कष्ट सहते बहुत दिन हो गये ॥ ५ ॥ जो उचित हो सो हे नाथ ! करिये; क्योंकि सबका हित आपके ही हाथमें है ॥ ६ ॥

अस कहि अति सकुचेउ रघुराऊ *मुनि पुलके लखि शील स्वभाऊ॥७॥
तुम बिनु राम सकल सुख साजा * नरक सरिस दुहु राज समाजा ॥८॥

यह कहकर रघुनाथजी बहुत सकुचाये। सकुचानेका कारण यह कि गुरुजीसे जानेको कहा और गुरु सम्मुख विना आज्ञा बोले और मुनि शील स्वभाव देखकर प्रसन्न हुए॥७॥ और बोले-हे रामजी ! तुम्हारे बिना सब सुखोंका साज दोनों राजसमाजोंमें नरकके समान है (इससे घरको कैसे जायँ ?) ॥ ८ ॥

दोहा-प्राण प्राणके जीवके, जिव सुखके सुख राम ॥
तुम तजि तात सुहात गृह, जिनहिं तिनहिं विधि वाम ॥ ३१८ ॥

हे प्राणोंके प्राण, जीवके जीव, सुखके सुख रघुनाथजी ! तुम्हें छोड़कर उन्हें घर सुहाता है, जिनसे विधाता वाम है, हमारी तो आपके साथ ही भजन करनेकी इच्छा है ॥ ३१८ ॥

सो सुख कर्म धर्म जरि जाऊ * जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥१॥
योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू * जहाँ न रामप्रेम परधानू ॥२॥

जहां श्री रघुनाथजीके पदकमलका प्रेम न हो वह सुख, कर्म, धर्म जल जाय ॥ १ ॥ और जहां रघुनाथजीका प्रेम प्रधान नहीं है वह योग कुयोग और ज्ञान अज्ञान है ॥२ ॥

तुम बिनु दुखी सुखी तुमतेही * तुम जानहु जिय जो जेहि केही॥३॥
राउर आयसु शिर सबहींके *विदित कृपालुहिं गति सब नीके॥४॥

जो तुम्हारे विना दुःखी और तुमसे सुखी है तुम जानते ही हो, जो जिसके जीमें है ॥३॥ आपकी आज्ञा सबको शिरोधार्य है और तुमको सबकी गति भली भाँति विदित ही है, क्योंकि कृपासागर अन्तर्यामी अर्थात् आपकी आज्ञासे हम लौट जायँगे; परंतु आप सबके सुख दुःखकी गति जानते हैं सो आपको उसका विचार रखना उचित है ॥ ४ ॥

आपु आश्रमहिं धारिय पाऊ * भये सनेह शिथिल मुनिराऊ ॥५॥
करि प्रणाम तब राम सिधाये *ऋषि धरि धीर जनक पहँ आये॥६॥

आप आश्रमको चलिये यह कहकर वसिष्ठजी स्नेहसे शिथिल हो गये॥५॥ यह सुन रघुनाथजी तो प्रणाम कर आश्रमको गये, वसिष्ठजी धैर्य धर कर जनकजीके पास आये ॥ ६ ॥

राम वचन गुरु नृपहि सुनाये * शील सनेह सुभाय सुहाये ॥७॥
महाराज अब कीजिय सोई * सब कर धर्म सहित हित होई ॥८॥

गुरुजीने रघुनाथजीके शील स्नेह स्वभावयुक्त वचन राजासे कहे ॥ ७ ॥ महाराज अब वह कीजिये जिससे धर्म सहित सबका कल्याण हो ॥ ८ ॥

दोहा–ज्ञान निधान सुजान शुचि, धर्मधीर नरपाल ॥
तुम विनु असमञ्जस शमन, को समर्थ इहिकाल ॥ ३१९ ॥

तुम ज्ञानके सागर चतुर पवित्र धर्मात्मा धीर मनुष्योंको पालनेवाले हो, तुम्हारे विना यह असमंजस शांत करनेको इस समय कौन समर्थ है(रामचन्द्र रहें या घर चलें यही दुविधा है)।३१९।

सुनि मुनि वचन जनक अनुरागे * लखि गति ज्ञान विराग विरागे॥१॥
शिथिल सनेह गुनत मनमाहीं * आये इहाँ कीन्ह भल नाहीं ॥२॥

मुनिके वचन सुनकर जनकजीको बड़ा अनुराग हुआ, जिनकी गति देखकर ज्ञान वैराग्यको भी विराग हुआ ॥ १ ॥ जनकजी स्नेहसे शिथिल हो मनमें सोचने लगे कि हम यहाँ आये यह अच्छा नहीं किया ॥ २ ॥

रामहिं राय कहेउ वन जाना * कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रमाना ॥३॥
हम अब वनते वनहि पठाई * प्रमुदित फिरब विवेक बढ़ाई ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीको राजाने वन जानेको कहा और अपने प्रिय प्रेमका निर्वाह किया, अर्थात् उसे पूरा कर श्रीरामजीके बिछुड़ते ही शरीर त्याग दिया॥३॥और हम अब यह करेंगे कि प्यारे रामको

इस वनसे दूसरे वनको भेजकर ज्ञान दृढ़ कर प्रसन्न हो घरको चलेंगे ॥३॥ भाव यह है कि हमारे लौटने पर कहेंगे कि जनकजी क्यों न लौटते, कारण कि बड़े ज्ञानी हैं जो ज्ञानियोंमें बड़े कहावेंगे न रामजीको लौटा सके, न शरीर त्याग कर सके, इससे यहां आये यह अच्छा नहीं किया ॥ ४ ॥

तापस मुनि महिसुर गति देखी ❋ भये प्रेमवश विकल बिसेखी ॥५॥
समय समुझि धरि धीरज राजा ❋ चले भरत पहँ सहित समाजा ॥६॥

तपस्वी, मुनि, ब्राह्मण, रामजीकी गति देख प्रेमके वश हो अधिक व्याकुल हो गये। अथवा तपस्वी मुनि ब्राह्मण की गति देख राजा विकल हो गये ॥ ५ ॥ समय विचार कर राजा धैर्य धरकर समाज सहित भरतजीके पास चले ॥ ६ ॥

भरत आय आगे होइ लीन्हा ❋ अवसर सरिस सुआसन दीन्हा॥७॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ ❋ तुमहि विदित रघुवीर सुभाऊ ॥८॥

भरतजीने पहलेसे आकर स्वागत किया और समयानुकूल सुन्दर आसन दिया ॥ ७ ॥ मिथिलापति जनकजी बोले-तात ! तुमको रघुनाथजीका स्वभाव विदित है ॥ ८ ॥

दोहा–राम सत्यव्रत धर्मरत, सब कर शील सनेहु ॥
संकट सहत सँकोच वश, कहिय जो आयसु देहु ॥ ३२० ॥

श्रीरामजी सत्य प्रतिज्ञ, धर्मप्रिय सबके स्नेहके वश होकर संकोचसे संकट सहते हैं, अब जो आज्ञा हो सो कहिये ॥ ३२० ॥

सुनितनु पुलकि नयन भरि वारी ❋ बोले भरत धीरधरि भारी ॥१॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू ❋ कुल गुरुसम हित माय न बापू॥२॥

यह बात सुन शरीर पुलकायमान होनेसे नेत्रोंमें जल भर आया और विशेष धैर्य धारण कर भरतजी बोले ॥ १ ॥ हमारे प्रभु रघुनाथजी प्यारे और पूज्य हैं पिताके समान आप हो और कुलगुरु वसिष्ठ हैं जिनके समान हितकारी मां बाप भी नहीं हैं ॥ २ ॥

कौशिकादि मुनि सहित समाजू ❋ ज्ञान अम्बुनिधि आपुन आजू॥३॥
शिशु सेवक आयसु अनुगामी ❋ जानि मोहि सिख देइय स्वामी॥४॥

समाजसहित कौशिकादि मुनि और आज दिन साक्षात् ज्ञानके समुद्र आप हैं ॥ ३ ॥ यह बालक सेवक तो आज्ञाका अनुगामी है ऐसे जानकर मुझे शिक्षा दीजिये ॥४॥

इहि समाज बूझब थल राउर ❋ मौन मलिन बोलब मन बाउर॥५॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता ❋ क्षमब तात लखि वाम विधाता॥६॥

इस समाज स्थलमें जो आप पूछते हैं वह मैं (दुःखसे) मलिन मौन हो बावला अर्थात् घबड़ाकर कहता हूं अतएव ॥ ५ ॥ छोटे मुँहसे बड़ी बात कहता हूँ, सो आप विधाताके वाम होनेसे क्षमा करेंगे ॥ ६ ॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ❋ सेवा धर्म कठिन जग जाना ॥७॥
स्वामिधर्म स्वारथहि विरोधू ❋ वैर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू ॥८॥

यह वेद, शास्त्र, पुराणोंमें प्रकट है और जगत् भी जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है ॥ ७ ॥ स्वामिधर्म और स्वार्थसे विरोध है, जैसे वैरसे अन्धेको प्रेमका ज्ञान नहीं हो सकता है, कहीं 'बधिर' पाठ है, उसका भाव यह है कि जैसे अन्धे और बहरे कहीं नृत्यमें गये तो पूछने पर बहरे ने कहा गाना बजाना तो कुछ नहीं नृत्य अच्छा था, अन्धेने कहा-गाना बजाना अच्छा था नृत्य कुछ न था, इसी प्रकार स्वार्थसे स्वामी धर्म नहीं बनता; स्वामिधर्मसे स्वार्थ नहीं बनता ॥ ८ ॥

दोहा-राखि रामरुख धर्मव्रत, पराधीन मोहिं जानि ॥
सेवक सम्मत सर्वहित, करिय प्रेम पहिचानि ॥ ३२१ ॥

श्रीरामजीके धर्मव्रतका रुख रखके मुझे पराधीन जानकर श्रीरामचन्द्रका धर्म सर्वसम्मत तथा कल्याण कारक है। सो आप प्रेमसे पहचानके इसको करें वा श्री रघुनाथजीके प्रेमकी पहचान आप करें कि रघुनाथजीका प्रेम धर्म पर है वा व्रतपर है ? ३२१ ॥

भरत वचन सुनि देखि सुभाऊ * सहित समाज सराहत राऊ ॥१॥
सुगम अगम मृदु मन्जु कठोरा * अर्थ अमित अति आखर थोरा॥२॥

भरतजीके वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाजसहित राजा प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥ वह भरतकी वाणी सुनकर जो सुननेमें सुगम, कोमल तथा मनोहर है किन्तु समझनेमें अगम तथा कठोर है; अर्थ बहुत और अक्षर थोड़े हैं श्रीरामचन्द्रजीका रुख रखना और अपनेको पराधीन कहना यह सुगम है और श्रीरामको धर्मव्रत रखनेको कहना और रघुनाथजीको अपनी धर्मप्रतिज्ञा (पितु आज्ञाका पालन) यह अगम है, और जो अवधवासी माता, मन्त्री, प्रजा, भरत आदि विकल होकर शरण आये हैं उनके मनोरथका करना व्रत है, इस प्रकारसे जो महान् विरोध है सो कैसे बने, यही अगम कठोर है और श्रीभरतकी पराधीनता जो रामरुखका रखना है वही मंजु मृदु और सुगम है ॥ २ ॥

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पाणी *गहि न जाय अस अद्भुत वाणी ॥३॥
भूप भरत मुनि साधु समाजू * गये जहँ विबुध कुमुद द्विजराजू॥४॥

जैसे दर्पण हाथके भीतर, मुख दर्पणके भीतर हो, यही मंजु मृदु और सुगम है, इतने निकट मुखको पकड़ा चाहे तो कोई उपाय नहीं है जैसे दर्पणमें मुख पकड़ा नहीं जाता ऐसे ही भरतकी अद्भुत वाणी है ॥३॥ यह वचन सुन राजा, भरत, मुनिराज, साधुसमाज सब कोई देवतारूपी कूंकाबेरीके खिलानेको चन्द्रमा समान रघुनाथजीके पास गये श्रीरघुनाथजीको देवताओं का हितकारी इस कारण कहा कि अब वे केवल देवताओंको रखेंगे ॥ ४ ॥

सुनि सुधि सोच विकल सब लोगा * मनहु मीनगण नव जल योगा॥५॥
देव प्रथम कुलगुरु गति देखी * निरखि विदेह सनेह विसेखी ॥६॥

यह सुन सुनकर सब लोग शोचसे व्याकुल हो गये (कि आज निर्णय हो जायगा) जैसे नये जलके आनेसे मछली समूह ॥५॥ देवताओंने पहले कुलगुरु भगवान् वसिष्ठजीकी गति देखी और जनकजीका अधिक स्नेह देखा। वसिष्ठजीकी यही गति कि तुम्हारे विना दोनों समाज नरकतुल्य है, परंतु जनकजीका स्नेह उनसे भी अधिक है ॥ ६ ॥

राम-भक्तिमय भरत निहारे * सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥७॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा * भये अलेख शोचवश लेखा ॥८॥

राम भक्तिमय भरतजीको देखकर स्वार्थी देवता जीमें हारकर घबड़ा गये ॥ ७ ॥ सब कोई रामजीको प्रेममय देखकर लेखा (देवता) "लेखा अदितिनन्दनाः" इत्यमरः । श्रीरघुनाथ लौट न जायँ ऐसे अलेखा (जो लिखनेमें न आवे) शोच वश हो गये अथवा जिसका लेखा नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

दोहा-राम सनेह सँकोच वश, कह सशोच सुरराज ॥
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहित भयो अकाज ॥ ३२२ ॥

रघुनाथजी स्नेह तथा संकोचके वशीभूत हैं, यह शोकयुक्त इन्द्र कहने लगा अब पञ्च मिलकर प्रपञ्च रचो नहीं तो अकाज हुआ चाहता है ॥ ३२२ ॥

सुरन्ह सुमिरि शारदा सराही * देवि देव शरणागति पाही ॥१॥
फेरि भरतमति करि निज माया * पाल विबुधकुल करि छल छाया॥२॥

देवताओंने स्मरण करके शारदा की बड़ाई की कि हे देवि ! शरणागत देवताओंकी रक्षा करो ॥ १ ॥ अपनी माया करके भरतकी मति फेर, और छल छाया करके देवताओंके कुलका पालन करो ॥ २ ॥

विबुध विनय सुनि देवि सयानी * बोली सुर स्वारथ जड़जानी ॥३॥
मोसन कहहु भरत-मति फेरू * लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥४॥

श्रेष्ठ देवी देवताओंकी विनय सुनकर देवताओंको स्वार्थ जड़ जानकर बोली ॥ ३ ॥ तुम मुझसे कहते हो कि भरतजीकी मति फेर दो, सो तुम्हें हजार नेत्रोंसे भी सुमेरु पर्वत नहीं सूझता ? तुम्हें भरतकी महिमा नहीं दीखती ॥ ४ ॥

विधि हरि हर माया बड़ि भारी * सो न भरत मति सकै निहारी ॥५॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी * चँदनि कर कि चन्द्रकर चोरी॥६॥

ब्रह्मा शिव विष्णुकी बड़ी भारी माया भरतकी मतिको नहीं देख सकती ॥ ५ ॥ ऐसी उनकी मति मुझसे फेरनेको कहते हो भला कहीं चांदनी चन्द्रकी चोरी कर सकती है ? ॥६॥

भरत हृदय सिय राम निवासू *तहँकि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू॥७॥
अस कहि शारद गइ विधि लोका *विबुध विकल निशि मानहुँ कोका॥८॥

भरतजीके हृदयमें सीतारामका निवास है, क्या वहां अँधेरा हो सकता है जहाँ सूर्यका प्रकाश होता है ? ऐसे ही माया भरत पर नहीं चल सकती ॥ ७ ॥ ऐसे कह सरस्वती ब्रह्मलोकको चली गयी, देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रातमें चकवा चकवी ॥ ८ ॥

दोहा-सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्र कुठाट ॥
रचि प्रपंच माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाट ॥ ३२३ ॥

तब स्वारथी देवताओंने अपने मन मलिन होनेके कारण कुमंत्र कुठाट और मायासे प्रबल पाखण्ड रचके उच्चाटन मंत्र सिद्ध किया जिससे भय भ्रम,अप्रीति और उच्चाट फैल गया॥३२३॥

करि कुचाल सोचत सुर राजू ❋ भरत हाथ सब काज अकाजू ॥१॥
गये जनक रघुनाथ समीपा ❋ सनमाने सब रघुकुल-दीपा ॥२॥

कुचाल करके इन्द्र शोच करने लगा कि अब सब काज अकाज भरतजीके हाथमें है॥ १॥ जनकजी रघुनाथजीके समीप गये, सूर्य कुल दीपक रघुनाथजीने सब प्रकार सम्मान किया ॥ २ ॥

समय समाज धर्म अवरोधा ❋ बोले तब रघुवंश पुरोधा ॥३॥
जनक भरत संवाद सुनाई ❋ भरत कहावति कही सुहाई ॥४॥

तब समयानुसार धर्मसे अविरुद्ध रघुवंशके पुरोहित वसिष्ठजी बोले ॥ ३ ॥ जनक और भरतका संवाद सुनकर भरतजीकी सुन्दर कहावत कही ॥ ४ ॥

तात राम जस आयसु देहू ❋ सो सब करैं मोर मत एहू ॥५॥
सुनि रघुनाथ जोरि युग पानी ❋ बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥६॥

हे तात रामजी ! अब जैसी तुम आज्ञा दो वही सब करें; मेरा मत तो यही है ॥ ५ ॥ यह वचन सुन रघुनाथजी हाथ जोड़कर सत्य सरल कोमल वाणी बोले ॥ ६ ॥

विद्यमान आपुन मिथिलेशू ❋ मोर कहब सब भाँति भदेशू ॥७॥
राउर राय रजायसु होई ❋ राउर शपथ सही शिर सोई ॥८॥

जहाँ आप और जनकजी विद्यमान हैं वहां मेरा कहना सब प्रकार भद्दा है ॥ ७ ॥ जो कुछ आपकी और राजाकी आज्ञा हो, आपकी सौगंध वही निश्चय शिरधर मानूंगा ॥ ८ ॥

दोहा–राम शपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत ॥
सकल विलोकहिं भरत मुख, बनै न उत्तर देत ॥ ३२४ ॥

रामजीकी शपथ सुनकर मुनि और जनक सभासहित सकुचाये, सब भरतजीके मुखकी ओर देखने लगे, उत्तर देते नहीं बनता ॥ ३२४ ॥

सभा सकुचवश भरत निहारी ❋ रामबन्धु धरि धीरज भारी ॥१॥
कुसमय देखि सनेह सँभारा ❋ बढ़त विन्ध्य जिमि घटज निवारा॥२॥

रामजीके भाई भरतजीने सभाको संकोच वश देख विशेष धैर्य किया ॥ १ ॥ और समय देखकर स्नेह सँभार, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचलको अगस्त्यजीने निवारण किया है ॥ २ ॥

शोक कनकलोचन मति छोनी ❋ हरी विमल गुणगण जग योनी॥३॥
भरत विवेक बराह विशाला ❋ अनायास उधरी तेहि काला ॥४॥

शोकरूपी हिरण्याक्षने बुद्धिरूपी पृथ्वीको हर लिया उसी समय विमल गुणोंके समूह-रूपी ब्रह्माजीसे ॥ ३ ॥ भरतजीका विवेक रूप विशाल वराह प्रकट होकर हिरण्याक्षको मार पृथ्वीको विना श्रम उबार लिया । यह कथा भागवतमें प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

करि प्रणाम सब कहँ कर जोरे ❋ राम राउ गुरु साधु निहोरे ॥५॥
क्षमब आज अति अनुचित मोरा ❋ कहहु वदन मृदु वचन कठोरा ॥६॥

१. एक समय विंध्याचल पर्वत मनमें यह विचारकर बढ़ने लगा कि मैं सूर्यका तेज अवरुद्ध कर लूंगा; अर्थात् रोक लूंगा, तब देवताओंके कहनेसे गुरु अगस्त्यजी जब उसके पास गये तब उसने दण्डवत् कर कहा — मुझे कुछ आज्ञा हो ऋषि बोले, जबतक हम लौटकर न आवें तबतक इसी प्रकार रहो, उस दिनसे विन्ध्याचल उसी प्रकार झुका है और मुनि दक्षिण दिशा में ही हैं आज तक नहीं लौटे, पर्वत गुजरातसे राज महल तक चला गया है ।

भरतजी प्रणामकर सबको हाथ जोड़ राम, राजा साधुओंका निहोरा करके बोले ॥ ५ ॥ आज मेरा अति अनुचित क्षमा करना क्योंकि मैं कोमल मुखसे कठोर वचन कहता हूँ ॥६॥

हिये सुमिरि शारदा सुहाई * मानस ते मुखपंकज आई ॥७॥
विरति विवेक धर्म नय शाली * भरत भारती मंजु मराली ॥८॥

हृदयमें सुन्दर सरस्वती का स्मरण किया सो मानसरूपी हृदयसे मुखरूपी कमलमें आयी। रघुनाथजीकी आज्ञा करनेको मनमें ठीक किये थे वह वाणी मुखमें आगई। यहांपर वाणीका ध्यान है ॥ ७ ॥ भरतजी भारती अर्थात् वाणी जो मनोहर हंसिनीरूपा है सो ज्ञान, वैराग्य, धर्म, नीतिरूप मोतियोंके खेतमें विचरती है। भाव यह है कि भरतजी विनय, वैराग्य-नीति-युक्त वाणी बोले ॥ ८ ॥

दोहा-निरखि विवेक विलोचनन्हि, शिथिल सनेह समाज ॥
करि प्रणाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज ॥ ३२९ ॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंसे समाजको स्नेहसे शिथिल देख प्रणाम कर सीता रामजीका स्मरण कर भरतजी बोले ॥ ३२९ ॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी * पूज्य परमहित अन्तर्यामी ॥१॥
सरल सुसाहिब शील निधानू * प्रणतपाल सर्वज्ञ सुजानू ॥२॥

हे प्रभो ! आप पिता माता, सुहृद, गुरु, स्वामी, पूज्य, परमहितू, अंतर्यामी हो ॥१॥आप सरल,सुन्दर स्वामी, शीलके निधान,दीनबन्धु,सर्वज्ञ सुजान हैं जो कहूँगा सो आप जानते हैं॥२॥

समरथ शरणागत हितकारी * गुणग्राहक अवगुण अघहारी ॥३॥
स्वामि गुसाँईहिं सरिस गुसाँई * मोहिं समान मैं स्वामि दुहाई ॥४॥

आप समर्थ शरणागत हितकारी, गुणकारी हो, आप अवगुण और पापके हरनेवाले हो ॥ ३ ॥ हे स्वामी ! आपके समान आपही स्वामी हो और आपकी सौगन्ध करके कहता हूँ कि मेरे समान (स्वामि द्रोहियोंमें) मैं ही हूँ ॥ ४ ॥

प्रभु पितु वचन मोह वश पेली * आयउँ यहाँ समाज सकेली ॥५॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू * अमी अमरपद माहुर मीचू ॥६॥

हे प्रभो ! मैं आपके और पिताके वचन मोहवश उल्लंघन करके यहां समाज सहित चला आया; इस प्रकार मैं द्रोही हूँ राजाने राज्य दिया आपने सुमंतके हाथ सन्देशा कहला भेजा, वह एक न माना, यही द्रोह है ॥ ५ ॥ जगत्में भला, बुरा, ऊँच, नीच, अमृत, अमरपद, विष, मृत्यु सब कुछ है ॥ ६ ॥

राम रजाय मेट मनमाहीं * देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥७॥
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई * प्रभु मानी सनेह सेवकाई ॥८॥

रामजीकी आज्ञा मनसे भी मेटनेवाला कहीं कोई देखा सुना नहीं ॥ ७ ॥ सो मैंने सब प्रकारसे ढिठाई ही की; तो भी प्रभुने स्नेहसे सेवकाई मानी अर्थात् इतना करने पर भी अच्छा ही समझा ॥ ८ ॥

दोहा—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ॥
दूषण भये भूषणसरिस, सुयश चारु चहुँ ओर ॥ ३२६ ॥

अपनी कृपा भलाईसे आपने मेरा सब भाँतिसे भला कर दिया; जिससे मेरे दोष ही भूषण के समान हो गये; सुन्दर यश चारों ओर फैल गया ॥ अथवा आपकी दयालुताका यश चारों ओर फैल गया ॥ ३२६ ॥

राउर रीति सुवाणि बड़ाई ❋ जगत विदित निगमागम गाई ॥१॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी ❋ नीच निशील निरीह निशंकी ॥२॥

आपकी रीति, सुन्दर वाणी बड़ाई जगत्में प्रसिद्ध, वेदशास्त्रोंने गायी ॥ १ ॥ क्रूर कुटिल दुष्ट, कुमति, कलंकी, नीच, शीलरहित, निरीह (गुरुहीन अथवा नास्तिक) और निर्भय ॥२॥

तेउ सुनि शरण सामुहे आये ❋ सकृत प्रणाम किये अपनाये ॥३॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने ❋ सुनि गुण साधु समाज बखाने ॥४॥

ऐसे पुरुष भी जिनके गुण श्रवण कर सामने आये तो एक ही बारके प्रणाम करनेसे आपने उन्हें अपना लिया ॥ ३ ॥ और दोष देखकर भी मनमें न लाये तथा गुण सुनकर उनका साधु समाजमें बखान किया। अथवा उनके अवगुणोंको कहकर बखान किया। अथवा आपके दोष न देखनेकी साधुजन मण्डली बड़ाई करती है ॥ ४ ॥

को साहिब सेवकहि निवाजी ❋ आपु समान साज सब साजी ॥५॥
निज करतूति न समुझिय सपने ❋ सेवक सकुच शोच उर अपने ॥६॥

कौन ऐसा स्वामी सेवकको निबाहनेवाला है, अपने समान सबका साज सजा देते हैं ॥५॥ आप (सेवकपर कृपाका ठिकाना नहीं है) ऐसी अपनी करनीको स्वप्नमें भी नहीं लाते और सेवककी सकुचका अपने हृदयमें बड़ा शोच करते हैं ॥ ६ ॥

सोइ गुसाइँ नहिं दूसर कोपी ❋ भुजा उठाय कहौं प्रण रोपी ॥७॥
पशु नाचत शुकपाठ प्रवीना ❋ गुणगति नट पाठक आधीना ॥८॥

सो ऐसे आप ही हैं और दूसरा कोई नहीं, यह मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञा कर सकता हूँ॥७॥ जो पशु नाचता है उसको गति सिखानेवाले और जो तोता पढ़ानेमें चतुर होता है उसकी गति और जो नट कला करते हैं उनके गुणों की गति पढ़ानेवालेके अधीन है इसी प्रकार मेरी भलाई बुराईका गुण आपके अधीन है, आप मेरे पाठक हो जो सिखाओगे वही मैं सीखूँगा ॥ ८ ॥

दोहा—यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु शिरमोर ॥
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरुदावलि बरजोर ॥ ३२७ ॥

यद्यपि मैंने अवज्ञा भी की परंतु आपने यों सुधार और सम्मान करके मुझे अपने भक्तों का सुन्दर शिरमौर बना दिया, अब आपके बिना बलात्कारसे भी बिगड़नेको बनानेका यश कौन पालेगा ? कारण कि आप कृपालु हैं ॥ ३२७ ॥

शोक सनेह कि बाल सुभायें ❋ आयउँ लाय रजायसु बायें ॥१॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा ❋ सबहिं भाँति भल मानेउ मोरा ॥२॥

मैं शोक स्नेहसे वा बालस्वभावसे आज्ञाको बायें लाय अर्थात् उल्लंघन कर चला आया ॥ १ ॥ तब भी कृपालुने अपनी ओर देखकर सब प्रकारसे मेरा भला माना ॥ २ ॥

देखेउँ पाय सुमंगल-मूला * जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥३॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू * बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥४॥

सुन्दर मंगलके मूल आपके चरण देखे और आपको सहजही अपने अनुकूल देखा ॥ ३ ॥ बड़े भाग्यसे इस समाजको देखा, मुझसे बड़ी जो चूक हुई तो भी स्वामीका अनुराग रहा अथवा इस समाजमें अपने बड़े भाग्य दीख पड़े; जो चूक पर भी आपका प्रेम रहा ॥ ४ ॥

कृपा अनुग्रह अंग अघाई *कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई॥५॥
राखा मोर दुलार गुसाँई * अपने शील स्वभाव भलाई ॥६॥

आपकी कृपा और अनुग्रहसे अंग अघा गया, कृपाके निधि आपने सब अधिक ही किया ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! अपने शील स्वभावसे मेरा सब प्रकार प्यार रखा ॥ ६ ॥

नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई * स्वामि समाज सँकोच बिहाई ॥७॥
अविनय विनय यथारुचि बानी * क्षमिय देव अति आरत जानी॥८॥

नाथ ! मैंने स्वामी और समाजका संकोच छोड़कर बड़ी ढीठता की ॥७॥ अविनय अथवा विनयकी वाणी यथारुचि विचारकर हे देव ! मुझे अत्यन्त दुःखी जानकर क्षमा कीजिये॥८॥

दोहा–सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि ॥
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि ॥ ३२८ ॥

हे देव ! प्रिय, चतुर, श्रेष्ठ स्वामीसे बहुत कहना बड़े दोषकी बात है, सो अब आज्ञा देकर मेरा सब सुधारिये ॥ ३२८ ॥

प्रभु पद पद्म पराग दुहाई * सत्य सुकृति सुख सीम सुहाई ॥१॥
सो करि कहौं हिये अपनेकी * रुचि जागत सोवत सपनेकी ॥२॥

प्रभुके चरण कमलोंके परागकी दुहाई है कि सत्य पुण्यकी मर्यादा सुखकी सुन्दर सीमा है ॥ १ ॥ सो ऐसे चरणोंके परागकी सौगन्ध करके मैं अपने जीकी बात कहता हूँ जो रुचि सोते-जागते स्वप्नमें होती है ॥ २ ॥

सहज सनेह स्वामि सेवकाई * स्वारथ फल छल चारि बिहाई ॥३॥
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा * सो प्रसाद जन पावै देवा ॥४॥

स्वामीकी सेवकाई स्वाभाविक स्नेहसे कर, स्वार्थ छल और चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) छोड़ दे ॥ ३ ॥ हे रघुनाथजी ! आज्ञा पूर्वक आपकी सेवा यह प्रसाद भक्त पावे, कारण कि आज्ञा पालन करनेके समान श्रेष्ठ सेवा स्वामीकी सेवा नहीं है ॥ ४ ॥

अस कहि प्रेम बिवश भये भारी * पुलक शरीर बिलोचन बारी ॥५॥
प्रभुपद कमल गहे अकुलाई * समय सनेह न सो कहि जाई ॥६॥

भरतजी ऐसा कह अधिक प्रेमके वश हो गये, शरीर पुलकित नेत्रोंमें जल भर आया ॥५॥ घबड़ा कर प्रभुके चरण कमल पकड़ लिये, उस समयका स्नेह कहा नहीं जाता ॥ ६ ॥

कृपासिन्धु सनमानि सुबानी ❋ बैठाये समीप गहि पानी ॥७॥
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ ❋ शिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥८॥

रघुनाथजीने भरतजीका सुवाणीसे सन्मान कर हाथ पकड़ पास बैठाया ॥७॥ भरतजीकी विनय सुनकर स्वभाव देखकर सभा और रघुनाथजी स्नेहसे शिथिल हो गये ॥ ८ ॥

छन्द–रघुराउ शिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिला धनी ।
मनमहँ सराहत भरत भायप भक्ति की महिमा घनी ॥
भरतहि प्रशंसत विबुध वर्षत सुमन मानस मलिनसे ।
तुलसी विकल सब लोक सुनि सकुचे निशागम नलिनसे ॥ २५ ॥

रघुनाथजी, साधु समाज, मुनिजन, राजा जनक ये सब स्नेहसे शिथिल हो गये; मनमें भरतजीकी भायप पर भक्तिकी बड़ी गूढ़ महिमा सराहने लगे, देवता जो मनके मलीन हैं, वे भरतजीकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे सब अवधवासी और जनकपुरवासी सुनकर व्याकुल हो गये और ऐसे सोचने लगे कि जैसे रात्रिके आनेसे कमल सकुचाते हैं ॥२५॥

सोरठा–देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नरनारि सब ॥
मघवा महा मलीन, मुयेहि मारि मंगल चहत ॥ १९ ॥

दोनों समाजके स्त्री–पुरुषोंको दीन दुःखी देखकर महामलिन मन इन्द्र उन मारे हुओंको मारकर मंगल चाहता है। इन्द्रको महामलिन कहनेका आशय यह है कि अवध और मिथिलावासी जो श्रीरामचन्द्रजीके वियोगमें मृतक तुल्य हैं उनको मायासे मारकर अपना मंगल चाहता है भरतजीके वचन नहीं विचारता ॥ १९ ॥

कपट कुचाल-सीम सुरराजू ❋ पर अकाज प्रिय आपुन काजू॥१॥
काक समान-पाकरिपु रीती ❋ छली मलीन न कतहुँ प्रतीती॥२॥

इन्द्र कपट और कुचालीकी सीमा है, उसको दूसरे का अकाज और अपना काज प्यारा है ॥ १ ॥ कौवेके समान इन्द्रकी रीति है क्योंकि छली मलीन कहीं भी किसीका इसे विश्वास नहीं है। पाकनामक एक दैत्यके मारनेसे इन्द्रको, पाकरिपु कहते हैं ॥ २ ॥

प्रथम कुमति करि कपट सकेला ❋ सो उचाट सबके शिर मेला ॥३॥
सुर माया वश लोग विमोहे ❋ राम प्रेम अतिशय न बिछोहे ॥४॥

पहले कुमति करके कपट सकेल कर वह उच्चाट सबके शिर पर डाल दिया ॥ ३ ॥ देवताओंकी मायाके वश लोग मोहित होकर भी रघुनाथजीके अतिशय प्रेमी होनेसे वियोग नहीं चाहते ॥ ४ ॥

भये उचाट वश मन थिर नाहीं ❋ क्षण वनरुचि क्षण सदन सुहाहीं ॥५॥
द्विविध मनोगति प्रजा दुखारी ❋ सरित सिंधु संगम जिमि वारी ॥६॥

सबका मन उच्चाटयुक्त हो गया, मन स्थिर नहीं रहा, क्षणमें वनकी रुचि और क्षणमें घर जानेकी रुचि होने लगी। अथवा भय उचाट पाठ हो तो भय उच्चाट हो गया अर्थ है॥५॥

मनकी दो प्रकारसे गति हो जानेके कारण प्रजा दुःखी हो गयी, जैसे नदियोंके सङ्गमसे समुद्रका जल काँप जाता है। देवताओंकी माया नदी रूप और सबका मन समुद्र रूप है ॥६॥

दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं ❋ एक एकसन मर्म न कहहीं ॥७॥
लखिहिय हँसि कह कृपानिधानू ❋ सरिस श्वान मघवान युवानू ॥८॥

मनकी गति दो हो जानेसे कहीं संतोष नहीं पाते और एक दूसरेसे अपना भेद नहीं कहते ॥ ७ ॥ यह देख रघुनाथजी मनमें हँसकर कहने लगे कि, मघवन्, श्वन्, युवन, समान हैं, तभी तो व्याकरणकर्त्ताने एक पंक्तिमें बैठाया है, यथाहि,-"श्वयुवमघोनामतद्धिते" ॥ ८ ॥

दोहा-भरत जनक मुनिगण सचिव, साधु सचेत बिहाय ॥
लागि देवमाया सबहिं, यथायोग्य जन पाय ॥ ३२९ ॥

भरत, जनकजी, मुनिगण, मन्त्री चैतन्य साधुजनोंको छोड़ और सबको देवमाया यथायोग्य व्यापी ॥ ३२९ ॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे ❋ निज सनेह सुरपति छल भारे ॥१॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री ❋ भरतभक्ति सबकी मति यन्त्री॥२॥

कृपासिंधु लोगोंको दुःखी देखकर कि मुझमें स्नेहके कारण इन्द्रने बड़ा छल किया है ॥ १ ॥ और सभा, राजा, गुरु, ब्राह्मण, मन्त्री इन सबकी मतिका भरतजीकी भक्तिने यन्त्री अर्थात् अनबोल कर दिया ॥ २ ॥

रामहिं चितवत चित्र लिखेसे ❋ सकुचत बोलत वचन सिखेसे ॥३॥
भरत प्रीति नति विनय बड़ाई ❋ सुनत सुखद वर्णत कठिनाई ॥४॥

रघुनाथजीको चित्रलिखेकी नाईं खड़े होकर देखने लगे, सकुचाकर सिखायेसे वचन बोलते हैं ॥३॥ भरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनय,बड़ाई सुननेमें सुखदायक और वर्णनमें कठिन है ॥४॥

जासु विलोकि भक्ति लवलेशू ❋ प्रेम मगन मुनिगण मिथिलेशू ॥५॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी ❋ भक्तिसुभाय सुमति हिय हुलसी॥६॥

जिसकी भक्तिका लवलेश देखकर मुनिगण और जनक प्रेममें मग्न हो गये ॥ ५ ॥ कवि तुलसीदास उनकी महिमा किस प्रकार वर्णन कर सके ? सो उनकी भक्ति के भावसे जो सुमति हृदयमें हुलसी अर्थात् जो उमंग हुआ है उसीके अनुसार कहता हूँ ॥ ६ ॥

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी ❋ कविकुल कानि मानि सकुचानी॥७॥
कहि न सकत गुण रुचि अधिकाई ❋ मति गति बाल वचनकी नाई ॥८॥

अपने आपको छोटी और भरतजीकी महिमाको बड़ी जानकर मति कवियोंके वंशकी कानि मानकर सकुचायी॥७॥ भरतजीके गुणोंके कहनेको रुचि अधिक होती है किंतु कह नहीं सकती मतिकी गति बालकके वचनके समान हो गयी जैसे बालक कहना चाहता है और कहा नहीं जाता ॥ ८ ॥

दोहा-भरत विमल यश विमल विधु, सुमति चकोर कुमारि ॥
उदित विमल जन हृदय नभ, इकटक रही निहारि ॥३३०॥

भरतजीका उज्ज्वल यश विमल चन्द्रमा है, भक्तोंका निर्मल हृदय स्वच्छ आकाश है, जहां यह उदय हुआ है उसमें कवियोंकी मति चकोरकुमारी होके इकटक निहार रही है; कुछ कह नहीं सकती ॥ ३३० ॥

भरत सुभाव न सुगम निगमहू * लघुमति चापलता कवि क्षमहू ॥१॥
कहत सुनत सति भाव भरतको * सीय-राम पद होय न रतको ॥२॥

भरतजीका स्वभाव वेदको भी सुगम नहीं है, लघुमति होनेसे मैं किस प्रकार कह सकता हूँ ? अतः कवि लोग मेरी चपलता क्षमा करें ॥ १ ॥ भरतजीका सत्यभाव कहते सुनते मनमें कौन सीतारामजीके चरणोंमें प्रीतिवाला न होगा ? ॥ २ ॥

सुमिरत भरतहि प्रेम रामको *जेहि न सुलभ तेहि सरिसवामको॥३॥
देखि दयालु दशा सबहीकी *राम सुजान जानि जन जीकी॥४॥

भरतजीका स्मरण करते ही जिसको रघुनाथजीका प्रेम (भक्ति) सुलभ न हो उसके समान कोई कुटिल नहीं ॥३॥ सुजान दयालु रामजीने सबकी दशा देखकर सबके जीकी जानकर॥४॥

धर्म धुरीण धीर नयनागर * सत्य सनेह शील सुखसागर ॥५॥
देशकाल लखि समय समाजू * नीति-प्रीति-पालक-रघुराजू ॥६॥

धर्मकी धुर धारण करनेवाले, धीर, राजनीतिमें चतुर, सत्य, स्नेह, शील सुखके समुद्र ॥ ५ ॥ देश, काल, समय, समाज देख नीति और प्रीति पालनेवाले भगवान् ॥ ६ ॥

बोले वचन वाणि सरबससे *हित परिणाम सुनत शशिरससे॥७॥
तात भरत तुम धर्म धुरीणा * लोक वेदविधि परम प्रवीणा ॥८॥

सरस्वतीके सर्वस्व समान वचन बोले-जो परिणाममें हित और सुननेमें चन्द्रमाके समान शीतल हैं । "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" । अथवा अपनी बात जो सबके हित करनेमें है उसके समान वचन बोले ॥ ७ ॥ हे तात भरत ! तुम धर्मात्माओंमें धुरीण और लोक वेद विधिमें अत्यन्त चतुर हो ॥ ८ ॥

दोहा-कर्म वचन मानस विमल, तुम समान तुम तात ॥
गुरु समाज लघु बन्धु गुण, कुसमय किमि कहिजात ॥ ३३१ ॥

हे तात ! कर्म वचन मनसे उज्ज्वल तुम समान तुम ही हो, एक तो गुरुजनोंका समाज, दूसरे कुसमयमें, तीसरे छोटे भाईके गुण ऐसे स्थानमें कैसे कहे जायँ ॥ ३३१ ॥

जानहु तात तरणि कुलरीती * सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीती ॥१॥
समय समाज लाज गुरुजनकी * उदासीन हित अनहित मनकी॥२॥

हे तात ! आप सूर्यकुलकी रीति जानते हो, 'प्राण जायँ बरु वचन न जाई' सत्यप्रतिज्ञ पिताजीकी कीर्ति और प्रीति देख चुके हो । अथवा हे भरत ! तुम सूर्यकुलकी रीतिको तात नाम कठिन जानो । कैसी भी विपत्ति पड़े वचन नहीं छोड़ते । अथवा तुम अपनेको कुलकी तरणी अर्थात् नौका जानो ॥ १ ॥ आप समय, समाज, गुरुजनकी लाज और उदासीन, हितकारी, अहितकारी, सबके मनकी जानते हो ॥ २ ॥

तुमहि विदित सबही कर करमू * आपन मोर परमहित धरमू ॥३॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा * तदपि कहौं अवसर अनुसारा ॥४॥

तुमको सबका कार्य विदित है और अपना, मेरा परम हित धर्म भी जानते हो ॥ ३ ॥ हे तात ! मुझे सब भांति तुम्हारा भरोसा है तो भी समयानुकूल कहता हूँ ॥ ४ ॥

तात तात बिनु बात हमारी * केवल कुलगुरु कृपा सुधारी ॥५॥
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू * हमहि सहित सब होत खुआरू॥६॥

हे तात ! पिताके विना हमारी बात केवल गुरुकी कृपाने ही सुधारी है ॥ ५ ॥ नहीं तो पुरजन, प्रजा, परिवार हम सब दुःखी हो जाते ॥ ६ ॥

जो बिनु अवसर अथव दिनेशू * जग केहि कहहु न होय कलेशू॥७॥
तस उत्पात तात विधि कीन्हा *मुनि मिथिलेश राखि सब लीन्हा॥८॥

जो विना समय सूर्य अस्त हो जायँ तो कहो जगमें किसे क्लेश न हो ? ॥ ७ ॥ भाई ! दैवने इसी प्रकारका उत्पात किया, परंतु वह सब गुरु और जनकजीने रख लिया ॥ ८ ॥

दोहा–राजकाज सब लाज पति, धर्म धरणि धन धाम ॥
गुरु प्रभाव पालहि सबहि, भल होइहि परिणाम ॥ ३३२ ॥

गुरुका प्रभाव राजकाज, सब लाज पति (प्रतिष्ठा) धर्म पृथ्वी, धन धाम इन सबका पालना करेगा परिणाम भी अच्छा होगा ॥ ३३२ ॥

सहित समाज हमार तुम्हारा * घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ॥१॥
मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू * सकल धर्म धरणी धर शेशू ॥२॥

समाज सहित तुम्हारा हमारा वन और घरका रखवाला गुरुजीका प्रसाद ही है॥ १॥माता, पिता गुरुस्वामीकी आज्ञा माननी सब धर्मरूपी पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग ही हैं जैसे शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं वैसे ही माता-पिताकी आज्ञा धर्मको धारण करती है। अथवा माता-पिताकी आज्ञा धर्मकी पृथ्वी है, उसके धारण करनेको तुम शेष हो ॥ २ ॥

सो तुम करहु करावहु मोहू * तात तरणिकुल-पालक होहू ॥३॥
साधन एक सकल सिधि देनी * कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥४॥

हे तात भाई ! सो तुम वही आज्ञा करो, और मुझसे कराओ, सूर्यकुलके पालन कर्त्ता होओ ॥ ३ ॥ यही एक साधना है कि पिताकी आज्ञा माननी सब सिद्धिकी देनेवाली है, कीर्ति इसी सुगतिसे प्राप्त होती है,यही ऐश्वर्यकी बेनी है। अथवा कीर्ति सुगति विभूतिकी मिली हुई त्रिवेणी है। अथवा हमारी आज्ञा माननेसे तुमको सहस्रों सिद्धियाँ प्राप्त होंगी ॥ ४ ॥

सो विचारि सहि संकट भारी * करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥५॥
बाँटी विपति सबहिं मिलि भाई *तुमहिं अवधि भरि अति कठिनाई॥६॥

सो विचार भारी संकट सहन कर प्रजा और परिवार सुखी करो ॥ ५ ॥ हे भाई ! सब लोग मिलकर यह विपत्ति बाँट लो; चौदह वर्षतक अति कठिनाई है ॥ ६ ॥

जानि तुम्हैं मृदु कहौं कठोरा * कुसमय तात न अनुचित मोरा॥७॥
होहिं कुठावँ सुबन्धु सहाये * ओड़ियहि हाथ असनिके घाये॥८॥

हे तात! तुम्हें मृदु जानकर भी कठोर कहता हूँ अर्थात् कठिन भार सौंपता हूँ, सो कुसमयकी बात है, अनुचित नहीं है ॥ ७ ॥ सुन्दर भाई कुठांवमें ही सहाय होते हैं; जैसे जिस समय वज्र पड़ता है तो पहले उसके घावको हाथही रोकता है, यद्यपि हाथ और शरीर एक है पर सहाय हाथ करता है ऐसे ही तुम सहाय करो ॥ ८ ॥

दोहा-सेवक कर पद नैनसे, मुख सो साहिब होय ॥
तुलसी प्रीतिकी रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोय ॥ ३३३ ॥

सेवककी रीति ऐसे चाहिये जैसे किसी फलको आँखने देखा, पैर वहां ले गये, हाथ ने उसे उठाकर मुखको सौंप दिया। मुखसा स्वामी हो कि उसे खाकर सब अंगोंको पुष्ट किया इसी प्रीतिकी रीतिको ही सुन्दर कवि सराहना करते हैं। सेवकका यही धर्म है कि स्वार्थी न हो सब कुछ स्वामीको अर्पण करे, स्वामीको उचित है कि यथायोग्य सेवकको संतुष्ट करे॥३३३॥

सभा सकल सुनि रघुवर बानी * प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी॥१॥
शिथिल समाज सनेह समाधी * देखि दशा चुप शारद साधी ॥२॥

सब सभा रघुनाथजीकी वाणी सुनकर प्रेमरूपी समुद्रसे निकले हुए अमृतसे मानो सन गयी ॥ १ ॥ दोनों समाज स्नेहके समाधिसे शिथिल हो गये, ऐसी दशा देखकर सरस्वतीने भी मौन साध लिया ॥ २ ॥

भरतहिं भयउ परम सन्तोषू *सन्मुख स्वामि विमुख दुख दोषू ॥३॥
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू * भा जनु गूँगहिं गिरा प्रसादू ॥४॥

भरतजीको भी परम सन्तोष हुआ कि स्वामीके सम्मुख होने से दोष दुःख जाते रहे ॥ ३ ॥ मुख प्रसन्न हुआ, हृदयका विषाद मिटा जैसे गूँगेको सरस्वती प्राप्त हो गयी ॥ ४॥

कीन्ह सप्रेम प्रणाम बहोरी * बोले पाणि पंकरुह जोरी ॥५॥
नाथ भयो सुख साथ गयेको * लहेउ लाभ जग जन्म भयेको ॥६॥

प्रेमसे प्रणाम किया और कमल से हाथ जोड़कर बोले ॥ ५ ॥ हे नाथ ! आपके साथ जानेका सुख प्राप्त हो गया, जगत्में जन्म लेनेका फल मिल गया ॥ ६ ॥

अब कृपालु जस आयसु होई * करौं शीश धरि सादर सोई ॥७॥
सो अवलम्ब देव मोहि देई * अवधि पार पावौं जेहि सेई ॥८॥

हे कृपालु ! अब जैसी आपकी आज्ञा हो वही आदरपूर्वक; शिरपर धर करूँ ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! अब मुझे ऐसा अवलम्बन दो जिसे सेवन कर चतुर्दश वर्षकी अवधि बिता सकूँ॥८॥

दोहा-देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुशासन पाय ॥
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाय ॥ ३३४ ॥

हे स्वामी ! आपके अभिषेकके निमित्त गुरुकी आज्ञासे सब तीर्थोंका जल लाया हूँ, इसके हेतु क्या आज्ञा है ? ॥ ३३४ ॥

एक मनोरथ बड़ मनमाहीं * सभय सँकोच जात कहि नाहीं॥१॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई * बोले बाणि सनेह सुहाई ॥२॥

मनमें एक बड़ा मनोरथ है सो भय संकोचके कारण नहीं कहा जाता ॥ १ ॥ रघुनाथजी बोले-भाई ! कहो तब प्रभुकी आज्ञासे भरतजी स्नेह भरी सुन्दर वाणी बोले ॥ २ ॥

चित्रकूट शुचिथल तीरथ वन *खगमृग सरिसर निर्झर गिरिगन ॥३॥
प्रभुपद अंकित अवनि बिसेखी * आयसु होय तौ आवहुँ देखी ॥४॥

चित्रकूटमें पवित्र स्थान, तीर्थवन, खग, मृग, नदी, सरोवर, झरने, पर्वतगण ॥३॥ विशेष करके जो पृथ्वी प्रभुके चरणोंसे अंकित है वह आज्ञा हो तो देख आऊँ ॥ ४ ॥

अवशि अत्रि आयसु शिर धरहू * तात विगत भय कानन चरहू ॥५॥
मुनिप्रसाद वन मंगलदाता * पावन परम सुहावन भ्राता ॥६॥

रामचन्द्रजी बोले–हे भाई ! निश्चय अत्रि ऋषिकी आज्ञा शिर धर भय रहित वनमें हो आओ ॥५॥ हे भाई ! मुनिके प्रसादसे मंगलदायक पवित्र अति सुन्दर वन देख सकोगे॥६॥

ऋषिनायक जहँ आयसु देहीं * राखे तीरथ जल थल तेहीं ॥७॥
सुनि प्रभु वचन भरत सुख पावा *मुनिपद कमल मुदित शिर नावा॥८॥

ऋषिनायक जिस स्थानमें आज्ञा दें वहीं यह तीर्थोंका जल धर देना ॥ ७ ॥ प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने सुख पाया और प्रसन्न होकर मुनिके चरण कमलोंमें शिर नवाया ॥ ८ ॥

दोहा–भरत राम संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल ॥
सुर स्वारथी सराहि कुल, वर्षहिं सुरतरु फूल ॥ ३३५ ।

भरत और रघुनाथजीका सम्पूर्ण मंगलमूल संवाद सुनकर स्वार्थी देवता (सूर्य)कुलकी सराहना कर कल्पवृक्षके फूल वर्षाने लगे ॥ ३३५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे अयोध्याकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि पंडितज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–
भाषाटीकायां षोडशो विश्रामः ॥ १६ ॥

दोहा–यहि सत्रह विश्राममें, तीरथ देखि ललाम ।
भरत पादुका लै चले, आये अवध निकाम ॥ १७ ॥

धन्य भरत जय राम गुसाईं * कहत देव हर्षित बरिआईं ॥१॥
मुनि मिथिलेश सभा सब काहू * भरत वचन सुनि भयउ उछाहू॥२॥

धन्य भरत ! जय रघुनाथजीकी ! ऐसे कह देवता बरबस प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ मुनि और मिथिलेशकी सभामें सब किसीको भरतजीके वचन सुनकर प्रसन्नता हुई ॥ २ ॥

भरत राम गुण ग्राम सनेहू * पुलकि प्रशंसत राउ विदेहू ॥३॥
सेवक स्वामि सुभाव सुहावन * नेम प्रेम अतिपावन पावन ॥४॥

राजा जनकजी, भरत और रामजीके गुण समूह और स्नेहकी पुलकित हो सराहना करने लगे ॥ ३ ॥ सेवक और स्वामीका सुन्दर स्वभाव है, परस्पर प्रीतिका नियम पवित्रसे भी पवित्र है । ॥ ४ ॥

मति अनुसार सराहन लागे * सचिव सभासद सब अनुरागे ॥५॥
सुनि सुनि राम-भरत संवादू * दुहुँ समाज हिय हर्ष विषादू ॥६॥

सब कोई मतिके अनुसार सराहने लगे, मन्त्री सभासद सब प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ राम और भरतका संवाद सुनकर दोनों समाजके मनमें हर्ष विषाद हुआ ॥ ६ ॥

राममातु दुख सुख सम जानी * कहि गुण दोष प्रबोधीं रानी ॥७॥
एक करहिं रघुवीर बड़ाई * एक सराहहिं भरत भलाई ॥८॥

रामजीकी माताने दुःख सुख समान जानकर गुणदोष कहकर रानियोंको समझाया ॥७॥ एक रघुनाथजीकी बड़ाई करते हैं, एक भरतजीकी भलाई सराहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—अत्रि कहेउ तब भरत सन, शैल समीप सुकूप ॥
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमल अनूप ॥ ३३६ ॥

तब अत्रि ऋषिने भरतजीसे कहा—पर्वतके किनारे एक सुन्दर कूप है, यह तीर्थोंका पवित्र उज्ज्वल उपमा रहित जल वहां रखिये ॥ ३३६ ॥

भरत अत्रि अनुशासन पाई * जल भाजन सब दिये चलाई ॥१॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू * सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥२॥

भरतजी अत्रि मुनिकी आज्ञा पाकर जलके सब पात्र लिवा ले चले ॥ १ ॥ अनुज सहित भरतजी और अत्रि मुनि साधुजनके साथ जहां अगाध कूप था वहां गये ॥ २ ॥

पावन पाथ पुण्य थल राखा * प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥३॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू * लोपेउ काल विदित नहिं केहू ॥४॥

वह पवित्र जल उस पुण्यस्थानमें रखा गया और बड़े प्रेमसे अत्रिने ऐसा कहा॥३॥हे तात ! यह अनादिकालका सिद्ध स्थल है; किंतु समय पाकर लोप हो गया, किसीको विदित नहीं है॥४॥

तब सेवकन्ह सरस थल देखा * कीन्ह सुजल हितकूप बिसेखा ॥५॥
विधिवश भयउ विश्व उपकारू * सुगम अगम अतिधर्म विचारू ॥६॥

सब सेवकोंने सुन्दर स्थान देखकर उस कुएँसे मिट्टी आदि निकाल कर सुन्दर जलके योग्य कर दिया ॥५॥ दैवयोगसे संसार भरका उपकार हुआ, जो अगम धर्म अनेक तीर्थोंका जल यहां एकत्र हो गया ! अथवा धर्मका विचार गहन है कहीं सुगमका अगम हो जाता है कहीं अगमका सुगम हो जाता है ! अगम अभिषेकका जल यहां सुगम हो गया ॥ ६ ॥

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा * अति पावन तीरथ जल योगा ॥७॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी * होइहहिं बिमल कर्म मनवाणी ॥८॥

अब इसे लोग 'भरतकूप' कहेंगे और जलके योगसे अति पवित्र तीर्थ होगा ॥ ७ ॥ प्राणी इसमें प्रेमसे नियमसहित स्नान करते ही कर्म मन वाणीसे निष्पाप हो जायँगे ॥ ८ ॥

दोहा—कहत कूपमहिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ ॥
अत्रि सुनायउ रघुवरहि, तीरथ पुण्य प्रभाउ ॥ ३३७ ॥

कुएँकी महिमा कहते सब रघुनाथजीके पास आये और अत्रिने रघुनाथजीको उस तीर्थका पुण्य प्रभाव कह कर सुनाया ॥ ३३७ ॥

कहत धर्म इतिहास सप्रीती * भयउ भोर निशि सो सुख बीती॥१॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई * राम अत्रि गुरु आयसु पाई ॥२॥

प्रीतिपूर्वक धर्म इतिहास कहते सवेरा हो गया और वह रात्रि सुखसे बीत गयी ॥ १ ॥ नित्यकर्म निबाहके भरतजी दोनों भाई राम, अत्रि और गुरुकी आज्ञा पाकर ॥ २ ॥

सहित समाज साज सब सादे * चले राम वन अटन पयादे ॥३॥
कोमल चरण चलत बिनु पनहीं * भइ मृदुभूमि सकुचि मन मनहीं॥४॥

सब समाजसहित सादे साजसे पैदल रघुनाथजीके वनमें विचरनेको चले ॥ ३ ॥ कोमल चरण हैं उसपर जूते त्याग करके चले हैं इससे पृथ्वी मन ही मन सकुचकर कोमल हो गयी ॥ ४ ॥

कुश कंटक कांकरी कुराई * कटुक कठोर कुवस्तु दुराई ॥५॥
महिमंजुल मृदु मारग कीन्हे * बहत समीर त्रिविध सुखलीन्हे॥६॥

कुश, कण्टक, कांकरी, कुराई (कोरदार) बड़ी कठोर कड़वी कुवस्तु, जिससे पैरमें लगनेसे दुःख हो, सब छिपाकर ॥ ५ ॥ पृथ्वीने उज्ज्वल कोमल मार्ग किया । शीतल, मन्द और सुगन्ध पवन सुखके साथ चल रहा था ॥ ॥ ६ ॥

सुमन वर्षि सुर घन करि छाहीं * विटप फूल फल तृण मृदु ताहीं॥७॥
मृग विलोकि खग बोलि सुबानी * सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥८॥

देवता फूल बरसाते, मेघ छाया करते, वृक्ष फल देते और तृण कोमलताको धारण किये हैं ॥ ७ ॥ खग मृग देखकर सुन्दर वाणी बोलने लगे, मानो रघुनाथजीका प्रिय जानकर सब सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सुलभ सिद्ध सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात ॥
राम प्राणप्रिय भरतको, यह न होय बड़ि बात ॥ २३८ ॥

जँभाई लेतेमें भी जो मनुष्य रघुनाथजीका नाम लेते हैं उनको सब सिद्धियाँ सुगमतासे प्राप्त होती हैं फिर रामके प्राण प्यारे भरतको जो ऐसा मार्ग हुआ तो यह कोई बड़ी बात नहीं है॥२३८॥

यहि विधि भरत फिरत वनमाहीं * नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं॥१॥
पुण्य जलाशय भूमि-विभागा * खग मृग तरु तृण गिरि वन बागा॥२॥

इस प्रकारसे भरतजी वनमें फिरते हैं जिनका नेम प्रेम देखकर मुनि सकुचाते हैं॥१॥ पुण्य सरोवर, भूमिके स्थान, खगमृग, वृक्ष, तृण, पर्वत, वन बाग ॥ २ ॥

चारु विचित्र पवित्र विसेखी * बूझत भरत दिव्य सब देखी ॥३॥
सुनिमन मुदित कहत ऋषिराऊ * हेतु नाम गुण पुण्य-प्रभाऊ ॥४॥

सुन्दर विचित्र अधिक सब दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं, (कि महाराज ! यह कौन तीर्थ है ?) ॥ ३ ॥ सुनकर मनमें प्रसन्न हो अत्रि मुनि उनके होनेका कारण, नाम, गुण; और पुण्य प्रभाव कहते हैं ॥ ४ ॥

कतहुँ निमज्जहिं कतहुँ प्रणामा * कतहुँ विलोकत मन अभिरामा॥५॥

कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई ❀ सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥६॥
भरतजी कहीं स्नान, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं दर्शनमात्रसे मनमें प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥ कहीं मुनिकी आज्ञासे बैठकर जानकी, रघुनाथ और लक्ष्मणको स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥

देखि सुभाउ सनेह सुसेवा ❀ देहिं अशीश मुदित वनदेवा ॥७॥
फिरहिं गये दिन पहर अढ़ाई ❀ प्रभुपद कमल विलोकहिं आई ॥८॥
भरतजीके स्वभाव स्नेहसे अपनी सेवा देखकर वनके देवता मनमें प्रसन्न हो आशीष देते हैं ॥ ७ ॥ अढ़ाई पहर दिन जाने पर लौटते हैं और प्रभुके चरण-कमल आकर देखते हैं ॥८॥

दोहा—देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ ॥
कहत सुनत हरिहर सुयश, गयउ दिवस भइ साँझ ॥ ३३९ ॥
भरतजीने सब स्थल और तीर्थ पांच दिनमें देखे; विष्णु और शिवजीका सुन्दर यश कहते-सुनते दिन बीत गया, सांझ हो गयी ॥ ३३९ ॥

भोर न्हाय सब जुरा समाजू ❀ भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥१॥
भलदिन आजु जानि मनमाहीं ❀ रामकृपालु कहत सकुचाहीं ॥२॥
सबेरे स्नान करके सब समाज जुड़ा भरतजी, ब्राह्मण और राजा जनकजी ये सब आये॥१॥ रघुनाथजी आज भला दिन है यह मनमें जानते हैं, किंतु बिदा करनेमें कहते हुए सकुचाते हैं ॥२॥

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी ❀सकुचि राम फिरि अवनि विलोकी॥३॥
शील सराहि सभा सब सोची ❀ कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥४॥
गुरु, राजा, भरत, और सभाको देखकर फिर रघुनाथजीने सकुचाकर पृथ्वीकी ओर देखा ॥ ३ ॥ शीलकी सराहना करके सब सभा सोचने लगी कि रघुनाथजीके समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है ॥ ४ ॥

भरत सुजान रामरुख देखी ❀ उठि सप्रेम धरि धीर विशेखी॥५॥
करि दंडवत कहत कर जोरी ❀ राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥६॥
चतुर भरतजी रघुनाथ का रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठे और विशेष धैर्य धरके ॥५॥ दण्डवत् कर हाथ जोड़ बोले—महाराज ! आपने सब प्रकारसे रुचि रखी ॥ ६ ॥

मोहि लगि सबहिं सहेउ सन्तापू ❀ बहुत भाँति दुख पावा आपू ॥७॥
अब गुसाइँ मोहिं देहु रजाई ❀ सेवौं अवध अवधि लगि जाई॥८॥
मेरे कारण सबने ही दुःख सहे और आपने भी अनेक प्रकारके दुःख पाये ॥७॥ अब हे स्वामी ! मुझे आज्ञा दीजिये; जो अयोध्यामें जाकर आपके आगमनकी चौदह वर्षकी अवधितक सेवन करूँ ॥ ८ ॥

दोहा—जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखै दीन दयालु ॥
सो सिख देइय अवधि लगि,कोशलपाल कृपालु ॥ ३४० ॥
जिस उपायसे ये आपके चरण फिर आपके दासको दर्शन करनेको मिलें वही शिक्षा हे दीन दयालु ! कोशलपुरीके पालक ! चौदह वर्ष धैर्य धारण करनेको दीजिये ॥ ३४० ॥

पुरजन परिजन प्रजा गुसाँई * सब शुचिसरस सनेह सगाई ॥१॥
राउर वदि भल भवदुख-दाहू * प्रभु विन वादि परमपद लाहू ॥२॥

हे स्वामी ! पुरवासी, कुटुम्ब, प्रजा, ये सब स्नेहके सम्बन्धसे परम पवित्र अत्यन्त सरस हैं तो भी ॥ १ ॥ आपके निमित्त संसारका दुःख-दाह भी मुझे अंगीकार है और आपके विना परमपदका लाभ भी वृथा है ॥ २ ॥

स्वामि सुजान जानि सबहीकी * रुचि लालसा रहनि जनजीकी॥३॥
प्रणतपाल पालहिं सब काहू * देव दुहूँ दिशि ओर निबाहू ॥४॥

हे स्वामी ! आप सुजान हो, भक्तोंकेजीकी रुचि, इच्छा रहन सब कुछ जानते हो ॥ ३ ॥ आप दीनोंके पालक सबका पालन करते हो, हे देव ! दोनों ओर निर्वाह करते हो ॥ ४ ॥

अस मोहिं सब विधि भूरि भरोसो* किये विचार न शोच खरोसो ॥५॥
आरति मोरि नाथ कर छोहू *दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥६॥

ऐसा मुझे सब प्रकारसे आपका बड़ा भरोसा है, विचार करनेसे शोच तृणके समान भी नहीं रहता ॥ ५ ॥ मेरा दुःख और आपकी प्रेमपूर्वक कृपा दोनोंने मिलकर मुझे हठसे ढीठ कर दिया ॥ ६ ॥

यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी *तजि सँकोच सिखइय अनुगामी॥७॥
भरत विनय सुनि सभा प्रशंसी * क्षीर नीर विवरण गति हंसी ॥८॥

स्वामी ! यह मेरी ढिठाईका बड़ा दोष दूर कर संकोच त्याग सेवकको शिक्षा दीजिये॥७॥ भरतजीका विनय सुनकर सभा प्रशंसा करने लगी, जो विनय दूध और जलको पृथक् करनेमें हंसके समान है ॥ ८ ॥

दोहा-दीनबन्धु सुनि बन्धुके,वचन दीन छल हीन ॥
देश काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन ॥ ३४१ ॥

दीन प्रतिपालक चतुर रघुनाथजी भाईके छलहीन दीनता युक्त वचन सुनकर देश काल अवसर अनुसार वचन बोले ॥ ३४१ ॥

तात तुम्हारि मोरि परिजनकी * चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर वनकी॥१॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेशू * हमहिं तुमहिं सपने न कलेशू ॥२॥

हे तात ! घरमें तुम्हारी; वनमें हमारी और सब कुटुम्बकी गुरु और महाराज जनकजीको चिंता है; ये सब ठीक करते रहेंगे ॥ १ ॥ जब हमारे माथेपर गुरुजी और राजा जनकजी हैं तो हमको तुमको स्वप्नमें भी क्लेश नहीं है ॥ २ ॥

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ * स्वारथ सुयश धर्म परमारथ ॥३॥
पितु आयसु पालिय दोउ भाई * लोक वेद भल भूप भलाई ॥४॥

हमारा और तुम्हारा तो यही परम पुरुषार्थ है, कि स्वार्थ, यश, धर्म और परमार्थ प्राप्त हो ॥ ३ ॥ पिताकी आज्ञा दोनों भाई पालें, लोक और वेदमें भी अच्छे गिने जायँगे और राजाकी कीर्ति होगी ॥ ४ ॥

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले * चलेहु कुमग पग परत न खाले॥५॥
अस बिचारि सब शोच विहाई * पालहु अवध अवधि भरि जाई॥६॥

जो गुरु, पिता, माताकी आज्ञा पाले तो कुमार्गमें चलने पर भी पग खाली नहीं पड़ता सब सिद्ध हो जाता है ॥ ५ ॥ यह विचार सब शोच त्यागकर चौदह वर्ष पर्यन्त अयोध्याकी रक्षा करो ॥ ६ ॥

देश कोश पुरजन परिवारू * गुरुपद रजहि लागछर भारू ॥७॥
तुम मुनि मातु सचिव सिख मानी * पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥८॥

देश, खजाना, पुरजन, कुटुम्बका छर (बड़ा) कार्यभार गुरुकी पदरजसे लगा है ॥७॥ऐसे तुम,वसिष्ठ,मन्त्री और माताकी शिक्षा मानकर पृथ्वी,प्रजा और राजधानीकी पालना करो ॥८॥

दोहा-मुखिया मुखसो चाहिये, खान पानको एक ॥
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥ ३४२ ॥

मुखिया मुखसा होना चाहिए जो खाने-पीने को तो एक हो और विवेक सहित सब अंगों की पालना करता हो। मुखके द्वारा सब अंग पुष्ट हो जाते हैं, ऐसे तुम प्रजा पालन करो और प्रजा तुम्हारी सेवा करे ॥ ३४२ ॥

राज धर्म सर्वस इतनोई * जिमि मनमाहँ मनोरथ गोई ॥१॥
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती *बिनु अधार मन तोष न शाँती ॥२॥

सब प्रजा पालन और राजधर्मका सर्वस्व इतना ही है जैसे मनमें मनोरथ है। मनमें बहुत मनोरथ होते हैं, इस प्रकार उक्त दोहेमें सब प्रजा पालनकी नीति वर्णन की है ॥ १ ॥ रघुनाथजीने भरतजीको बहुत प्रकार समझाया पर विना आधारके मनमें सन्तोष और शांति न हुई ॥ २ ॥

भरत शील गुरु सचिव समाजू * सकुच सनेह विवश रघुराजू ॥३॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं * सादर भरत शीश धरि लीन्हीं ॥४॥

भरतके शील तथा गुरु मन्त्रियोंके समाज से रघुनाथजी स्नेहके वश हो बहुत सकुचाये ॥३॥ रघुनाथजीने कृपा करके अपनी खड़ाऊँ दी, सो भरतजीने आदरसे शिरपर धर लीं॥४॥

चरणपीठ करुणा-निधानके * जनु युग यामिक प्रजा प्रानके ॥५॥
संपुट भरत सनेह रतनके * आखर युग जनु जीव जतनके ॥६॥

करुणा निधानके वे दोनों चरणोंके पीठ 'खड़ाऊँ रूपी आसन' मानो प्रजाओंके प्राणके दो पहरुए हैं ॥ ५ ॥ भरतजीके स्नेहरत्नकी रक्षा करनेको दोनों सम्पुट हैं; सब जीवोंके उद्धार करनेको अक्षर 'रकार-मकार' हैं ॥ ६ ॥

कुल कपाट कर कुशल कर्मके * विमल नयन सेवा सुधर्मके ॥७॥
भरत मुदित अवलंब लहेते * अस सुख जस सिय राम रहेते ॥८॥

मानो रघुकुलकी रक्षा करनेको दो किवाड़ हैं; मानो कुशल कर्मके दो हाथ हैं, मानो सेवा

और सुधर्मके साक्षात् निर्मल नेत्र हैं ॥ ७ ॥ भरतजी खड़ाऊँका अवलम्बन मिलनेसे हर्षित हुए और ऐसा सुख हुआ जैसे सीतारामजीके रहनेसे होता था ॥ ८ ॥

दोहा–माँगेउ बिदा प्रणाम करि, राम लिये उरलाय ॥
लोग उचाटे अमर-पति, कुटिल कुअवसर पाय ॥ ३४३ ॥

तब भरतजीने प्रणाम कर बिदा मांगी, सुनते ही रघुनाथजीने हृदयसे लगा लिया; अमर-पति (इंद्र) ने कुटिलतासे उसी असमयमें अवसर पाकर लोगोंको उच्चाट कर दिया॥३४३॥

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी ❋ अवधि आश सब जीवन जीकी॥१॥
नतरु लषण सिय राम वियोगा ❋ हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥२॥

सो कुचाल सबको अच्छी हुई, क्योंकि सबके जीवनकी आशा अवधि है ॥ १ ॥ नहीं तो सीताराम लक्ष्मणके वियोगके कुरोगमें सब लोग व्याकुल हो हाय-हाय कर मर जाते ॥ २ ॥

रामकृपा अवरेब सुधारी ❋ विबुध धार भइ गुणद गुहारी ॥३॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो ❋ राम प्रेमरस कहि न परत सो ॥४॥

श्रीरामजीकी कृपासे वह टेढ़ी भी सूधी हो गयी, देवताओंकी धार अर्थात् माया गुणदायक (गुहारी) सहायक अथवा ओट फाटनेवाली फौज हो गयी, अर्थात् इन्द्रकी विचारी हुई कुचाल उलटी गुण करनेवाली और सहायक हो गयी॥३॥ भरतजीसे भाईको हृदयसे लगाके भुज भरकर रामचन्द्रजी मिलते हैं, वह रघुनाथजीका प्रेमरस वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

तन मन वचन उमँगि अनुरागा ❋ धीर-धुरन्धर धीरज त्यागा ॥५॥
वारिज लोचन मोचत वारी ❋ देखि दशा सुर-सभा दुखारी ॥६॥

उस समय तन, मन, वचनमें अनुराग भर गया, धीर धुरंधर रघुनाथजीने धैर्य त्याग दिया ॥ ५ ॥ कमल नेत्रोंसे जल बहने लगा, यह दशा देख देवताओंकी सभा बड़ी दुःखी हुई ॥ ६ ॥

मुनि गण गुरु धुर धीर जनकसे ❋ ज्ञान अनल मन कसे कनकसे॥७॥
जे विरंचि निरलेप उपाये ❋ पद्मपत्र जिमि जग जल जाये॥८॥

और मुनि गण, गुरु (वसिष्ठ) जनकजीसे धैर्यवाले जिन्होंने सोनेरूपी मनको ज्ञानाग्निमें कसा है ॥७॥ और जो ब्रह्माके जगत्के प्रपंचसे भिन्न हैं जैसे कमलका पत्र जलमें रहता है और उससे भिन्न है ऐसे ही वे भी जगत्में हैं ॥ ८ ॥

दोहा–तेउ विलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार ॥
भये मगन तन मन वचन, सहित विराग विचार ॥ ३४४ ॥

वे भी भरतजीकी और रघुनाथजीकी उपमा रहित अपार प्रीति देखकर सब तन, मन वचनसे विराग और विचार सहित मग्न हो गये ॥ ३४४ ॥

जहाँ जनक गुरु गतिमति भोरी ❋ प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥१॥
वर्णत रघुवर-भरत वियोगू ❋ सुनि कठोर कवि जानहिं लोगू॥२॥

जहां जनक और वसिष्ठादिकी मतिकी गति काम नहीं करती वहां प्राकृत प्रीति कहनेमें बड़ा दोष है, उसकी तो कथा ही क्या है ? ॥१॥ रघुनाथजीका भरतजीसे वियोग वर्णन करनेमें लोग मुझे कठोर कवि जानेंगे। अथवा जो उनका वियोग वर्णन करेगा, लोग उसे भी कठोर कवि समझेंगे ॥ २ ॥

सो सँकोच रस अकथ सुबानी * समय सनेह सुमिरि सकुचानी॥३॥
भेंटि भरत रघुवर समुझाये * पुनि रिपुदमन हर्षि हिय लाये॥४॥

सो बात संकोचके रसके कारण अकथनीय है और उस स्नेहको सुमिरके मेरी सुन्दर वाणी वर्णन करनेमें सकुचायी ॥ ३ ॥ रघुनाथजीने भरतजीसे मिलकर समझाया, फिर शत्रुघ्नको हृदयसे लगाया ॥ ४ ॥

सेवक सचिव भरत रुख पाई * निज निज काज लगे सब जाई॥५॥
सुनि दारुण दुख दुहूँ समाजा * लगे चलनके साजन साजा ॥६॥

सेवक, मन्त्री भरतका रुख पाकर सब अपने-अपने काममें जाने लगे ॥५॥ दोनों समाजोंमें सुनकर कठिन दुःख हुआ, चलनेके साज सजाने लगे ॥ ६ ॥

प्रभु-पदपद्म वंदि दोउ भाई * चले शीश धरि राम रजाई ॥७॥
मुनि तापस वनदेव निहोरी * सब सन्मानि बहोरि बहोरी ॥८॥

प्रभुके चरण कमलोंमें प्रणाम कर दोनों भाई रघुनाथजीकी आज्ञा शिर धर चले ॥ ७ ॥ तपस्वी, वनके देवताओंका निहोरा कर और सबका बार-बार सम्मान कर ॥ ८ ॥

दोहा-लषणहि भेंटि प्रणामकरि, शिर धरि सियपद धूरि ॥
चले सप्रेम अशीश सुनि, सकल सुमंगल मूरि ॥ ३४५ ॥

भरतजी लक्ष्मणसे मिल प्रणाम करके जानकीजीके पगकी धूरि शिरपर लगाकर प्रेमपूर्वक मंगलमूल आशीष सुनकर चले ॥ ३४५ ॥

सानुज राम नृपति शिर नाई * कीन्ह बहुत विधि विनय बड़ाई॥१॥
देव दया वश बड़ दुख पायउ *सहित समाज काननहि आयउ ॥२॥

फिर रघुनाथजीने लक्ष्मण सहित जनकको शिर नवाकर बहुत विनती स्तुतिकी और कहने लगे॥१॥हे देव!आपने दयाके वशीभूत होकर बड़ा दुःख उठाया,जो समाज सहित वनमें आए॥२॥

पुर पगु धारिय देइ अशीशा * कीन्ह धीर धरि गमन महीशा ॥३॥
मुनि महिदेव साधु सन्माने * बिदा किये हरिहरसम जाने ॥४॥

अब आप आशीष देकर पुरको पग धारिये राजाने यह सुन धैर्य धर गमन किया ॥ ३ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने मुनि, ब्राह्मण, साधुओंको सम्मान करके उनको विष्णु और शिवजी के समान जान विदा किया ॥ ४ ॥

सासु समीप गये दोउ भाई * फिरे वन्दि पद आशिष पाई ॥५॥
कौशिक वामदेव जाबाली * परिजन पुरजन सचिव सुचाली ॥६॥

फिर दोनों भाई सासुके पास गये और चरणोंमें प्रणाम कर आशीष पाकर लौटे ॥ ५ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि; पुरवासी कुटुम्ब और सदाचरणयुक्त मंत्रियोंको ॥ ६ ॥

यथायोग करि विनय प्रणामा ❋ बिदा किये सब सानुज रामा ॥७॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे ❋ सब सन्मानि कृपानिधि फेरे ॥८॥

यथायोग्य विनय प्रणाम करके भाई सहित रामजीने सबको विदा किया ॥ ७ ॥ नारी पुरुष, लघु, मध्य, बड़े सबको भगवान्ने सम्मान करके फेर दिया ॥ ८ ॥

दोहा–भरत मातु पद वंदि प्रभु, शुचि सनेह मिलि भेंटि ॥
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच शोच सब मेटि ॥ ३४६ ॥

भरतजीकी माताके चरणोंमें नमस्कार करके प्रभुने पवित्र स्नेहसे मिल भेंट कर पालकी सजाकर सब शोच सकुच मेटकर विदा कर दिया ॥ ३४६ ॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता ❋ फिरी प्राण पति प्रेम पुनीता ॥१॥
करि प्रणाम भेंटीं सब सासू ❋ प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू ॥२॥

कुटुम्बी, माता, पितासे जानकी मिलकर लौट आयीं; सबको प्राणकी प्यारी, जिसका प्रेम पवित्र वा रामचन्द्रजीके पवित्र प्रेमवाली ॥ १ ॥ जानकी प्रणाम करके सब सासुओंसे मिलीं वह प्रीति वर्णन करते कवियोंके मनमें हुलास नहीं होता ॥ २ ॥

सुनि सिख अभिमत आशिष पाई ❋ रही सीय दुहुँ प्रीति समाई ॥३॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई ❋ करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई ॥४॥

शिक्षा सुन अभिमत (इच्छित) आशीष पाकर जानकी सासु और माता दोनोंकी प्रीतिमें समा रही ॥ ३ ॥ तब रघुनाथने सुन्दर पालकी मँगायी और समझाकर सब माताओंको उस पर चढ़ाया ॥ ४ ॥

बार बार हिलि मिलि दोउ भाई ❋ सम सनेह जननी पहुँचाई ॥५॥
साजि वाजि गज वाहन नाना ❋ भूप भरत दल कीन्ह पयाना ॥६॥

बार-बार हिल मिलकर दोनों भाइयोंने समान स्नेहसे माताओंको पहुँचाया ॥५॥ अनेक प्रकारसे हाथी, घोड़े वाहन ठीक कर राजा और भरतजीके दलने पयान किया ॥ ६ ॥

हृदय राम सिय लषण समेता ❋ चले जाहिं सब लोग अचेता ॥७॥
बसह बाजि गज पशु हिय हारे ❋ चले जाहिं परवश मन मारे ॥८॥

हृदयमें सीता, राम, लक्ष्मण कहते सब लोग अचेत चले जाते हैं ॥ ७ ॥ बैल, घोड़े, हाथी, पशु सब हारे मनमारे परवश हुए चले जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–गुरु गुरुतिय पद वंदि प्रभु, सीता लषण समेत ॥
फिरे हर्ष विस्मय सहित, आये पर्ण-निकेत ॥ ३४७ ॥

गुरु और गुरुकी स्त्रीके चरणोंमें नमस्कार करके रघुनाथजी सीता, लक्ष्मण समेत हर्ष विस्मय सहित पर्णशालाको आये ॥ ३४७ ॥

विदा कीन्ह सन्मानि निषादू ❋ चले हृदय बड़ विरह विषादू ॥१॥

कोल किरात भिल्ल वनचारी * फेरे फिरे जुहारि जुहारी ॥२॥

फिर रघुनाथजीने निषादको सम्मान करके विदा कर दिया, वह हृदयमें बड़े विरह विषाद से चला॥१॥फिर भिल्ल, कोल, किरात, वनचारियोंको फेरा, वे सब जुहार जुहार करके फिरे ॥२॥

प्रभु सिय लषण बैठ वटछाहीं * प्रियपरिजन वियोग बिलखाहीं॥३॥
भरत सनेह सुभाव सुबानी *प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥४॥

रघुनाथजी,जानकी और लक्ष्मण वटकी छायामें बैठकर प्रिय कुटुम्बके वियोगमें दुःखी होते हैं ॥३॥ रघुनाथजी भरतका स्नेह स्वभाव मधुरवाणीसे जानकी और लक्ष्मणसे कहते हैं ॥ ४ ॥

प्रीति प्रतीति वचन मन करणी * श्रीमुख राम प्रेमवश वरणी ॥५॥
तेहि अवसर खग मृग जलमीना * चित्रकूट चर अचर मलीना ॥६॥

भरतजीकी प्रीति प्रतीति मन वचनसे करनी रघुनाथजीने प्रेमवश अपने मुखसे वर्णन की ॥५॥ उस अवसरमें खग, मृग, जलमीन, चित्रकूटके स्थावर जंगम सब जीव मलीन हो गये ॥६॥

विबुध विलोकि दशा रघुवरकी *वरषि सुमन कहि गति घरघरकी॥७॥
प्रभु प्रणाम करि दीन्ह भरोसो *चले मुदित मन डर न खरोसो॥८॥

देवताओंने रघुनाथजीकी ऐसी दशा देखकर फूल बरसाकर अपने घर घरकी गति निवेदन की कि; राक्षसोंसे बड़ा दुःख है ॥ ७ ॥ प्रभुने प्रणाम करके भरोसा दिया, वे मनमें प्रसन्न होकर चले और मनमें डर न रहा ॥ ८ ॥

दोहा–सानुज सीय समेत प्रभु, राजत पर्णकुटीर ॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर ॥ ३४८ ॥

सीता, लक्ष्मण सहित प्रभु पर्णशालामें ऐसे विराजते हैं मानो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य शरीर धरे हों ॥ ३४८ ॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुवालू * राम विरह सब साज विहालू ॥१॥
प्रभु गुणग्राम गुनत मनमाहीं * सब चुप चाप चले मग जाहीं ॥२॥

मुनि, ब्राह्मण, वसिष्ठ, भरत, राजा जनक, समाज श्रीरघुनाथजीके विरहमें व्याकुल हो रहा है ॥ १ ॥ मनमें प्रभुके गुणोंकी कथा करते सब मार्गमें चुपचाप चले जाते हैं ॥ २ ॥

यमुना उतरि पार सब भयऊ * सो वासर बिनु भोजन गयऊ ॥३॥
उतरि देवसरि दूसर वासू * राम सखा सब कीन्ह सुपासू ॥४॥

यमुनाजी उतर कर सब पार हुए और वह दिन विना भोजनके बीता ॥ ३ ॥ गङ्गाजी उतर कर दूसरा वास किया, वहां निषादराजने सब प्रकार पहुनाई की ॥ ४ ॥

सई उतरि गोमती नहाये * चौथे दिवस अवधपुर आये ॥५॥
जनक रहे पुर वासर चारी * राज काज सब साज सँवारी ॥६॥

फिर सई उतर कर गोमतीमें तीसरे दिन स्नान किया चौथे दिन अयोध्यामें आये ॥ ५ ॥ जनकजी चार दिन पुरमें रहे और राज-काज सँभाल कर ॥ ६ ॥

सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू * तिरहुति चले साजि सब साजू॥७॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी * बसे सुखेन राम रजधानी ॥८॥

जनकजी, मंत्री, गुरु; भरतजीको राज्य सौंपकर सब समाज सहित अपनी राजधानी तिरहुतिको गये ॥ ७ ॥ नगरके नारी नर गुरुकी शिक्षा मान रघुनाथजीकी राजधानीमें सुखसे बसे ॥ ८ ॥

दोहा—राम दरस हित लोग सब, करत नेम उपवास ॥
तजि तजि भूषण भोग सुख, जियत अवधिकी आस ॥ ३४९ ॥

रघुनाथजीके दर्शनके निमित्त लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोगके सब सुख छोड़कर अवधिकी आशामें प्राण धारण किये रहे ॥ ३४९ ॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे *निज निज काज पाय सिखओधे॥१॥
पुनि सखि दीन्ह बोलि लघु भाई * सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥२॥

मन्त्री और अच्छे सेवकोंको भरतजीने समझाया; वे सीख पाकर अपने-अपने काममें लगे ॥ १ ॥ फिर लघुभाईको बुलाकर सीख दी और माताओंकी सब सेवकाई सौंपी ॥ २ ॥

भूसुर बोलि भरत कर जोरे * करि प्रणाम वर विनय निहोरे॥३॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू * आयसु देव न करब सँकोचू ॥४॥

फिर ब्राह्मणोंको बुलाकर भरतजीने हाथ जोड़ प्रणामकर बड़े विनयसे निहोरा किया ॥ ३ ॥ और कहा कि ऊँच-नीच कैसा भी काम भला बुरा हो, आज्ञा देनेमें संकोच मत करिये ॥४॥

परिजन पुरजन प्रजा बुलाये * समाधान करि सुबस बसाये ॥५॥
सानुज गे गुरु गेह बहोरी * करि दण्डवत कहत कर जोरी ॥६॥

फिर कुटुम्बी पुरवासी प्रजाओंको बुलाया और चित्त सावधान कर अच्छे प्रकारसे रहने को कहा ॥ ५ ॥ फिर भाई सहित गुरुके घर जाय दंडवत् कर हाथ जोड़ बोले ॥ ६ ॥

आयसु होय तो रहौं सनेमा * बोले मुनि तनु पुलकि सप्रेमा ॥७॥
समुझब कहब करब तुम सोई * धर्म सार जग होइहि जोई ॥८॥

आज्ञा हो तो नेमसे रहूँ तब मुनिराज पुलकित हो प्रेमसे बोले ॥ ७ ॥ तुम उसे समझोगे कहोगे और करोगे जो जगत्में धर्मका सार होगा ॥ ८ ॥

दोहा—सुनि सिख पाय अशीश बड़ि, गणक बोलि दिन साधि ॥
सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥ ३५० ॥

भरतजीने मुनिकी शिक्षा पाकर और बड़ी आशीष सुनकर ज्योतिषियोंको बुलाकर अच्छे दिन सिंहासन पर प्रभुकी पादुका उपाधिरहित बैठायी ॥ ३५० ॥

राम मातु गुरुपद शिर नाई * प्रभुपद पीठ रजायसु पाई ॥१॥
नंदि ग्राम करि पर्णकुटीरा * कीन्ह निवास धर्मधुर धीरा ॥२॥

कौशल्या[1] और गुरुके चरणोंमें शिर नवाकर प्रभुकी खड़ाउओंकी आज्ञा पाकर ॥ १ ॥ नंदिग्राममें पर्णकुटी बनाकर धर्मकी धुर धारण करनेवाले भरतजी रहने लगे ॥ २ ॥

१. उस समय कौशल्या बोली —" हाथ मीजबो मोहि रह्यो। लगी न संग चित्रकूटहुते, ह्या कहँ जाव बह्यो पति सुरपुर सिय राम लषन वन, मुनिव्रत भरत गह्यो। हौं रहि घर मशान पावक ज्यों, मरिबो मृतक दह्यो। मोरइ हिय कठोर, करिबेको विधि कहँ कुलिश लह्यो। तुलसी बन पहुंचाय फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो।"

जटाजूट शिर मुनि पट धारी * महि खनि कुश साथरी सँवारी॥३॥
अशन वसन बासन व्रत नेमा * करत कठिन ऋषिधर्म सप्रेमा ॥४॥

जटाजूट शिरमें धारण कर मुनियोंके वस्त्र पहिने भरतजीने पृथ्वी खोदकर कुशोंकी साथरी सँवारी ॥ ३ ॥ भोजन, वस्त्र, कमंडलुपात्र, व्रत, नियम और ऋषियोंका धर्म प्रेमपूर्वक करने लगे ॥ ४ ॥

भूषण वसन भोग सुख भूरी * मन तन वचन तजे तृणतूरी॥५॥
अवधराज सुरराज सिहाई * दशरथ धन लखि धनद लजाई॥६॥

भूषण, वस्त्र, भोग और बड़े-बड़े सुख मन, तन, वचनसे तृण समान त्याग दिये ॥ ५ ॥ जिस अवधराज्यकी इन्द्र सराहना करते हैं दशरथजीका धन देखकर कुबेर लजाते हैं ॥ ६ ॥

तेहि पुर बसत भरत विनुरागा * चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥७॥
रमा-विलास राम अनुरागी * तजत वमन इव जन बड़भागी॥८॥

उस पुरमें भरतजी विना राग अर्थात् वैराग्ययुक्त हो बसते हैं, जैसे चंपेके बागमें भौंरा राग रहित बसता है ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! राम-अनुरागी जन जो बड़े बड़ भागी हैं (रमावि- लास) धनादिक ब्रह्मांडके ऐश्वर्यको वमनके समान त्याग देते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-राम प्रेम भाजन भरत, बड़ी न यह करतूति ॥
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति ॥ ३५१ ॥

भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके पात्र हैं; उनकी यह बड़ी करतूति नहीं है, क्योंकि चातक हंस श्लाघनीय हैं जो अपनी टेकको नहीं छोड़ते यह विवेक ही उनकी सम्पदा है। चातककी टेक स्वातिजलकी और हंसका क्षीर नीरका विवेक या मोती चुगे, या नहीं तो कंकर खाकर रह जायँगे ॥ ३५१ ॥

देह दिनहिं दिन दूबरि होई * घट न तेज बलमुख छबि सोई॥१॥
नित नव रामप्रेम प्रण पीना * बढ़त धर्म दल मन न मलीना॥२॥

देह दिन दिन दुर्बल होती है, तेज बल नहीं घटता, मुखकी छबि वैसी ही है ॥१॥ नित्य नया रामका प्रेम प्रण दृढ़ होता जाता है, धर्मरूपी दल बढ़ता जाता है, मन मलिन नहीं होता॥२॥

जिमि जल निघटत शरद प्रकासे *बिलसत वेतस वनज विकासे ॥३॥
शम दम संयम नियम उपासा *नखत भरत हिय विमल अकासा॥४॥

जैसे शरदऋतुके प्रकाशसे जल घटता है, बेत शोभित होता है; कमल खिलता है ॥३॥ वैसे ही शम, दम (बाह्यांतर इन्द्रियोंका निग्रह) संयम-नियम (व्रत) ये भरतजीके विमल हृदयरूप आकाशमें तारागणकी नाईं प्रकाशित होते हैं ॥ ४ ॥

ध्रुव विश्वास अवधि राकासी *स्वामि सुरति सुरवीथि विकासी॥५॥
राम प्रेम विधु अचल अदोषा *सहित समाज सोह नित चोषा॥६॥

रघुनाथजीके आनेका विश्वास ध्रुवतारा है, चौदहवर्षकी अवधि पूर्णमासी है। अथवा अचल विश्वास पूर्णिमाकी रात्रि है, रघुनाथजीकी सुरति देववीथी है, जो शरदऋतुके अवकाशमें मार्गसा

दीखता है ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम अचल अदोष (क्षीणतादि दोषरहित) चन्द्रमा है, जो नित्य समाज सहित प्रकाशित है ॥ ६ ॥

भरत रहनि समुझनि करतूती * भक्ति विरति गुण विमल विभूती॥७॥
वर्णत सकल सुकवि सकुचाहीं * शेष गणेश गिरा गम नाहीं ॥८॥

भरतजीकी रहन, समुझन, कर्तव्यता, भक्ति, वैराग्य, गुण, उज्ज्वल ऐश्वर्य ॥ ७ ॥ ये सब अच्छे कवि कहनेमें सकुचाते हैं वहाँ शेष गणेश सरस्वतीकी भी पहुँच नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा–नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ॥
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहुभाँति ॥ ३५२ ॥

नित्य प्रति भगवान्की खड़ाऊँ पूजते प्रीति हृदयमें नहीं समाती, आज्ञा माँग माँग कर अनेक विधि राजकाज करते हैं ॥ ३५२ ॥

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू * जीह नाम जपु लोचन नीरू॥१॥
लषण राम सिय कानन बसहीं *भरत भवन बसि तनु तप कसहीं॥२॥

शरीर पुलकित, हृदयमें सियाराम, जिह्वासे रामनाम जपें, नेत्रोंसे जल बहता है ॥ १ ॥ लक्ष्मण, राम, सीता वनमें बसते हैं और भरतजी तप कर घरमें रहते भी शरीर कसते हैं ॥२॥

दुहुँ दिशि समुझि कहत सब लोगू * सब विधि भरत सराहन योगू ॥३॥
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं * देखि दशा मुनिराज लजाहीं ॥४॥

दोनों ओरकी बात समझके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकारसे भरतजी सराहने योग्य हैं ॥ ३ ॥ व्रत नेमको सुनकर साधु सकुचाते हैं दशा देखकर मुनिराज लजाते हैं ॥ ४ ॥

परम पुनीत भरत-आचरणू * मधुर मंजु मुद मङ्गल करणू ॥५॥
हरण कठिन कलिकलुष कलेशू * महामोह निशि दलन दिनेशू॥६॥

भरतजीका आचरण परम पवित्र उज्ज्वल मधुर आनन्द मंगल करने वाला है ॥ ५ ॥ कलिके कठिन दोष क्लेशको हरने वाला है और मोहरूपी रात्रि दूर करनेको सूर्य है ॥ ६ ॥

पाप पुंज कुंजर मृगराजू * शमन सकल संताप समाजू ॥७॥
जन रंजन भंजन भव-भारू * राम-सनेह सुधाकर सारू ॥८॥

पापके समूहरूपी हाथियोंका नास करनेको भरतजीका आचरण सिंह है और सन्तापके समाजको शान्त करनेवाला है ॥ ७ ॥ भक्तजनोंको आनन्द देनेवाला है संसारका भय दूर करनेवाला, रघुनाथजीके स्नेहरूपी चन्द्रमाका सार है ॥ ८ ॥

छन्द–सिय राम प्रेम पियूष पूरण होत जन्म न भरतको ।
मुनिमन अगम यम नियमशमदम विषमव्रत आचरतको ॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषण सुयश मिसु अपहरतको ।
कलिकाल तुलसीसे शठहि हठि राम सन्मुख करतको ॥२६॥

सीता रामके प्रेमामृतको पूर्ण करनेके लिये यदि भरतजीका जन्म न होता तो मुनियोंके मनसे अगम (कठिन) यम, नियम, शम, दम विषमव्रतका कौन आचरण करता है। दुःख, ताप, दरिद्र, पाखण्ड दोषोंको सुयशके बहाने कौन हर लेता ? कलियुगमें तुलसीदासजी कहते हैं; मुझसे शठको हठपूर्वक रघुनाथजीके सम्मुख कौन करता ? ॥ २६ ॥

सोरठा–भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं ॥
सीय राम पद प्रेम, अवशि होय भवरस विरति ॥ २० ॥

जो कोई भरतजीके चरित्रको नियमपूर्वक आदरसे सुनेंगे उनको सीता रामके चरणोंमें प्रेम और संसारमें विरक्तता अवश्य प्राप्त होगी; यह तुलसीदासजी कहते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तुलसीकृते अयोध्याकाण्डे विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादनो नाम द्वितीयः सोपानः सम्पूर्णः ॥ २ ॥ शुभमस्तु ॥

चौपाई–नील जलद तनु सुन्दर श्यामा। तरुण कमलसम नयन ललामा ॥
सहित लषण सिय अवध विहारी। राजत चित्रकूट भयहारी ॥
गुरु वसिष्ठमुनि भरत सचिवगन। नृप मिथिलेश समाज मुदितमन ॥
मुनि मण्डली सुहावन पावन। चहुँदिशि लसत शोक दुःखदावन ॥
सम्मुख रह निषाद कर जोरे। रघुपति चितवत प्रेम न थोरे ॥
अवध-नगरवासी नर नारी। निरखत प्रभुहि निमेष बिसारी ॥
यह विचार सबके मनमाहीं। जनु प्रभु घर चलि हैं की नाहीं ॥
तेहि छिन भरत विनय अति कीन्हीं। कृपा कीन्ह प्रभु पाँवरि दीन्हीं ॥

दोहा–सो छबि श्रीरघुराजकी, सहित समाज महान।
नित ज्वाला परसादके, हिये बसहिं सुखदान ॥ १ ॥
उन्निस शत ऊपर अधिक, सैंतालिसको साल।
द्वितिया शुक्ला फालगुन, गुरुवासर गुणमाल ॥ २ ॥
अवधकांड टीका सुगम, निज मतिके अनुसार।
लिखी कृपाकर देखिये, सज्जन साधु विचार ॥ ३ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे मुरादाबाद पं० सुखानन्द–मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायामयोध्याकाण्डान्तर्गत सप्तदशो विश्रामः ॥ १७ ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत

रामायण

आरण्यकाण्डम् ३.

★

विद्यावारिधि-

श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



श्रीरामपंचायतन

आरण्यकाण्डम् ३

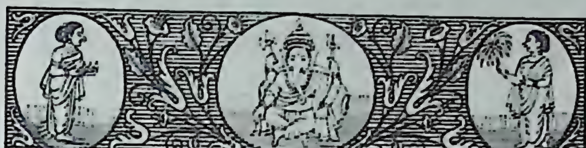
दोहा-रामचरण रति जो चहै, अथवा पद निर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा, करे श्रवण पुट पान ॥





चौपाई-इहि कलिकाल न साधन दूजा । योग यज्ञ जप तप व्रत पूजा ।
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं । संतत सुनिय राम गुण ग्रामहिं ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

आरण्यकाण्डम् ३.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

दोहा-ऋषिगणमिलन विराध वध, खरदूषण संहार ॥
सीय हरन शबरी तरन, सो वनकांड विचार ॥ १ ॥

श्लोक-मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं,
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ॥
मोहाम्भोधरपुञ्जपाटनविधौ खेसम्भवं शंकरं,
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूप प्रियम् ॥ १ ॥

जो शिवजी महाराज धर्मरूपी वृक्षके मूल, ज्ञानरूपी समुद्रके आनंद करनेको पूर्णचन्द्र और वैराग्यरूपी कमलके खिलानेको सूर्य हैं, पाप समूहरूपी अन्धकार दूर करने वाले, त्रिविधतापके मिटानेवाले और मोहरूपी बादलोंके समूह तोड़नेमें (खे संभवम्) आकाशमें प्रकट होनेवाले पवन रूप हैं, कल्याणकर्ता हैं, (ब्रह्मकुलम्) परब्रह्मके वंश, कलंकके नाशक श्रीराम भूपके प्यारे श्रीशंकरकी मैं वन्दना करता हूँ । कहीं'स्वसंभवम्' ऐसा पाठ है अर्थात् स्वयं प्रकट हुए । कहीं पुञ्जपाटन के स्थानमें पूगपाटन पाठ है ॥ १॥

श्लोक-सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं,
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीर भारं वरम् ॥
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं,
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथि गतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

जिनका सुन्दर शरीर जलसे भरे हुए बादलोंके समान है, सुन्दर पीताम्बर धारण किये हाथमें धनुष बाण, कटिमें बाणोंसे भरा हुआ तरकस शोभित है, कमलके समान बड़े बड़े नेत्र, शिरपर सुन्दर जटाजूट शोभित सीता लक्ष्मण सहित मार्गमें जाते हुए जानकीके आनंददायी रामकी मैं शरण हूँ वा भजन करता हूँ ॥ २ ॥

दोहा-प्रथम सुखद विश्राममें, शक्रपुत्र सिख दीन्ह।
अत्री अरु शरभंगसे, मिलि विराध वध कीन्ह ॥ १ ॥

सोरठा-उमा रामगुण गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति ॥
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्मरति ॥ १ ॥

शिवजी कहते हैं,हे पार्वती! रामजीके गुण बड़े गंभीर हैं जिनके ध्यानसे पंडित मुनि तो वैराग्य पाते हैं और मूर्ख मोहको प्राप्त होते हैं,जो परमेश्वरसे विमुख हैं और जिनकी धर्ममें प्रीति नहीं है अथवा हे पार्वती! रामके गंभीर गुणोंसे पंडित मुनि वैराग्य पाते हैं मोह भी पाके विशेष मूढ़से देख पड़ते हैं परंतु वे हरिसे विमुख नहीं किंतु धर्ममें प्रीतिवाले होते हैं जैसे सती, गरुड़ आदि अथवा रामके गुण गूढ़ हैं उनको वे पंडित और मुनि पाते हैं जो संसारमें विरक्त हैं और विमूढ़ अर्थात् विगत है मूढ़ता जिनमेंसे,ज्ञानी जो हरिपदसे विमुख नहीं हैं जिनकी धर्ममें प्रीति है॥१॥

पुरनर भरत प्रीति मैं गाई * मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥१॥
अब प्रभु चरित सुनहु अतिपावन * करत जो वन सुरनर मुनिभावन॥२॥

पुरवासी वा कहीं 'पूरण' पाठ है तो अनूप शोभित भरतजीकी प्रीतिसे पूर्ण अयोध्याकाण्ड मैंने अपनी मतिके अनुसार गाया इससे अयोध्याकाण्डसे संबन्ध मिल गया,यदि वह कहें कि भरतकी प्रीति पूर्ण गायी तो बन नहीं सकता, कारण कि पूर्व लिख आये हैं कि "अगम सनेह भरत रघुवरको। जहँ न जाय मन विधि हरि हरको"तो फिर पूर्ण प्रीति कैसे गायी जा सकती है? अथवा यों अर्थ है कि भरतजीकी रामचन्द्रमें पूर्ण प्रीति, उसे मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार बनाकर पूर्ण गाया ॥१॥ अब रघुनाथजीके पवित्र चरित्र सुनो, जो वनमें देवता मुनियोंके मन भावन हैं! पावन कहनेका भाव यह है कि इस कांडमें कितने ही अपावन पवित्र हो गये जैसे शबरी, गृध्र आदि और यह वनचरित्र देवता मुनियोंकी भावनासे हुआ जो चरित्रका वन है जिसमें जयन्तादिको मोह हो गया है और इसी वनचरित्रसे इसका 'आरण्यकांड' नाम है। अब कहनेका यह आशय है कि अयोध्यामें भरत चरित्र कहा अब रामचरित्र कहते हैं ॥२॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाये * निजकर भूषण राम बनाये ॥३॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर * बैठे फटिक शिला परमाधर ॥४॥

एक समय रघुनाथजीने सुन्दर फूल तोड़कर अपने हाथसे गहने बना ॥ ३ ॥ आदरपूर्वक प्रभुने जानकीजीको पहराये और परमा (शोभा) "सुषमा परमा शोभा इत्यमरः" के धारण करनेवाले स्फटिक शिलापर बैठे। पुष्पोंके भूषण बनाकर पहरानेका भाव यह है कि रावण दो बातोंसे प्रबल है एक तो अनादि शक्तिको इष्ट जानता है दूसरे शंकरको गुरु मानता है इससे रघुनाथजीने राजनीतिके अनुकूल शंकरजीको जब गङ्गा उतरीं तभी पूजके मिला लिया और यहांसे जानकीजीको मिलाते हैं कि अपने भक्तका पक्ष न करें (आगे चार चौपाई क्षेपक हैं) ॥४॥

करहिं प्रकाश सुभग मणिझारी * रही छिटकि पूनो उजियारी ॥५॥
तेहि निशि नारि जयन्ता केरी * आई सँग लै सुमुखि घनेरी ॥६॥

पर्वतमें अनेक मणियां प्रकाश करती हैं और पूर्णिमाकी चांदनी छिटक रही है ॥५॥ उसी रात्रिमें जयन्तकी स्त्री बहुतसी सखियोंको लिए रघुनाथजीका दर्शन करने आयी ॥ ६ ॥

रघुपति-रूप विलोकि जुड़ानी * अस्तुति कीन्ह मनोहर बानी ॥७॥
मन भावत वर माँगि सिधाई * सो सुधि कतहुँ जयन्तै पाई ॥८॥

रघुनाथजीका रूप देखकर प्रसन्न हुई और मनोहर वाणीसे स्तुतिकी ॥७॥ मन भावता वर माँग चली गयी, इन्द्रके पुत्र जयन्तने यह समाचार सुन (क्रोधकर)(यहाँ तक क्षेपक है) ॥८॥

सुरपतिसुत धरि वायस बेखा * शठ चाहत रघुपतिबल देखा ॥९॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा * महा मन्दमति पावन चाहा ॥१०॥

वह मूर्ख जयन्त कागका रूप धर श्रीरघुनाथजीका बल देखने आया ॥ ९ ॥ जैसे चींटी अपनी मूर्खतासे समुद्रकी थाह पाना चाहे वैसे इस महामूर्खने किया ॥ १० ॥

सीता चरण चोंच हति भागा * मूढ़मंदमति कारण कागा ॥११॥
चला रुधिर रघुनायक जाना * सींक धनुष सायक संधाना ॥१२॥

यह मूढ़ काग मन्दमतिके कारण सीताजीके चरणोंमें चोंच मारके भागा। अथवा जानकीके शरीर में चरण और चोंच दोनों मारके भागा॥ ११॥रघुनाथजी सीताकी गोदमें सोते थे उसी अवसरमें जयन्तने चोंच मारी, परंतु रघुनाथजीके जग उठनेके भयसे सीताजीने कुछ अंग नहीं हिलाया जब रुधिर बहकर पीठमें ठंडा लगा तब रघुनाथजीने जाना और धनुषपर सींकका बाण चढ़ाया।१२।

दोहा-अति कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह ॥
तासन आय कीन्ह छल, मूरख अवगुण-गेह ॥ १ ॥

रघुनाथजीका अति कृपालु स्वभाव है और सदा दीनोंपर प्रेम रखते हैं, इस मूर्ख अवगुणीने आकर छल किया (अगली चौपाई क्षेपक है) ॥ १ ॥

निरपराध प्रभु हतैं न काहू * अवसर परे ग्रसै शशि राहू ॥१॥
जब प्रभु लीन्ह धनुष सिक बाना * क्रोध जानि भा अनल समाना॥२॥

विना अपराध प्रभु किसीको नहीं मारते किंतु अवसर पड़े तो राहु चन्द्रमाको ग्रास करता ही है ॥ १ ॥ जब रघुनाथजीने धनुषपर सींकका बाण चढ़ाया तो रघुनाथजीको क्रोधित जानकर वह बाण अग्निके समान हो गया (यहाँ तक क्षेपक) ॥ २ ॥

प्रेरित मन्त्र ब्रह्मशर धावा * चला भाजि वायस भय पावा ॥३॥
धरि निजरूप गयउ पितु पाहीं * राम विमुख राखा तिन्ह नाहीं॥४॥

ब्रह्मास्त्रसे अभिमंत्रित हो जब वह बाण चला तो वह काग भय पाकर भाग चला ॥ ३ ॥ अपना रूप धरके पिता (इन्द्रके) पास गया परंतु उसने रामविमुख होनेसे नहीं रखा ॥४॥

भा निराश उपजी हिय त्रासा * यथा चक्र भय ऋषि दुर्वासा ॥५॥
ब्रह्मधाम शिव पुर सब लोका *फिरा भ्रमित व्याकुल भय शोका॥६॥

जब पिताने नहीं रखा तो निराश हो गया, मनमें डर गया, जैसे चक्रके भयसे दुर्वासा ऋषि भागते फिरते थे; जब अम्बरीषसे झगड़ा किया था ॥ ५ ॥ ब्रह्मधाम, शिवलोकादि सभी लोकोंमें व्याकुल हो डरसे भागता फिरा और बड़ा शोक हुआ ॥ ६ ॥

काहू बैठन कहा न ओही * राखिको सकै राम कर द्रोही ॥७॥
मातु मृत्यु पितु शमन समाना * सुधा होइ विष सुनु हरियाना ॥८॥

किसीने उसे बैठनेको भी न कहा, रघुनाथजीके द्रोहीको कौन रख सकता है ? ॥ ७ ॥ हे हरियान (गरुड़जी) सुनो, उसे माता मृत्यु, पिता यम, अमृत विषके समान हो जाता है ॥८॥

मित्र करै शत रिपुकी करणी ॐ ताकहँ विबुध नदी वैतरणी ॥९॥
सब जग तोहि अनलहुते ताता ॐ जो रघुवीर विमुख सुनु भ्राता ॥१०॥

मित्र सौ शत्रुकी करनी करने लगते हैं, गङ्गा वैतरणीके समान हो जाती है ॥ ९ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भाई भरद्वाज ! उसे सब जगत् अग्निसे भी अधिक तत्ता हो जाता है जो रघुनाथजीसे विमुख होता है, सो ये सब बातें जयन्त पर हुईं ॥ १० ॥

दोहा-जिमि जिमि भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुःख दीन ॥
तिमि तिमि धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ॥ २ ॥

जैसे जैसे इन्द्रका पुत्र महाव्याकुल अति दुःखसे दीन हो भागता है वैसे ही वैसे परम चतुर रघुनाथजीका बाण पीछे दौड़ता है (यह दोहा क्षेपक है) ॥ २ ॥

बचहि उरग वरु ग्रसे खगेशा ॐ रघुपति शर छुटि वचब अन्देशा ॥१॥
नारद देखा विकल जयन्ता ॐ लागि दया कोमल चित सन्ता ॥२॥

चाहे सर्प गरुड़के पकड़नेसे छूट जाय, परन्तु रघुनाथजीके बाण छूटनेके उपरांत बचना कठिन है (यह चौपाई भी क्षेपक है) ॥ १ ॥ नारदजीने देखा कि जयन्त व्याकुल है तब बड़ी दया आयी; कारण कि नारदजीका चित्त कोमल है और संत हैं ॥ २ ॥

दूरिहिते कहि प्रभु-प्रभुताई ॐ भजे जात बहुविधि समुझाई ॥३॥
पठवा तुरत रामपहँ ताही ॐ कहेसि पुकारि प्रणतहित पाही ॥४॥

दूरसे ही प्रभुताई भागते हुए जयन्तसे नारदजीने कहकर समझाई (यह भी क्षेपक है) ॥ ३ ॥ तुरन्त रघुनाथजीके पास उसे भेजा और कहा कि पुकारके कहना-हे दीनोंके हितकारी ! मेरी रक्षा करो ॥ ४ ॥

आतुर सभय गहे पद जाई ॐ त्राहि त्राहि दयालु रघुराई ॥५॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई ॐ मैं मतिमन्द जानि नहिं पाई ॥६॥

तब जयन्तने भयसे आतुर होकर चरण पकड़ लिये, हे दयालु रघुराई ! रक्षा करो, रक्षा करो ! ॥ ५ ॥ तुम्हारा अतुलित बल बड़ी प्रभुताई है सो मुझ मूर्खने नहीं जाना ॥ ६ ॥

निजकृत कर्म जनित फल पायउँ ॐ अब प्रभु पाहि शरण तकि आयउँ ॥७॥
सुनि कृपालु अति आरत बानी ॐ एक नयन करि तजा भवानी ॥८॥

मैं अपने किये कर्मका फल पा गया, अब हे प्रभु ! मेरी रक्षा करो, मैं शरण आया हूँ ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! अति दुःखकी भरी वाणी सुनकर कृपासागर रघुनाथजीने उसको एक नेत्रका करके त्याग दिया ॥ ८ ॥

सोरठा-कीन्ह मोहवश द्रोह, यद्यपि तेहिकर बध उचित ॥
प्रभु छाँड़ेउ करि छोह, को कृपालु रघुवीर सम ॥ २ ॥

मोहके वशीभूत हो यद्यपि उसने द्रोह किया और उसको मार डालना ही उचित था, किन्तु प्रभुने छोह कर छोड़ दिया, श्रीरामचन्द्रजीके समान कौन दयालु है ॥ २ ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना ॐ चरित कीन्ह श्रुति सुधा समाना ॥१॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना ॐ होइहि भीर सबहि मोहि जाना ॥२॥

रघुनाथजी चित्रकूट में बहुत समय तक रहे और कानोंको अमृत समान सुखदायक चरित्र करते रहे ॥ १ ॥ फिर रघुनाथजीने मनमें विचारा कि भीर अब यहां बहुत होती है, अयोध्यावासी भी प्रति दिन आते-जाते हैं और सबने मेरा प्रभाव जान लिया है तब ॥ २ ॥

सकल मुनिनसन बिदा कराई * सीता सहित चले दोउ भाई ॥३॥
अत्रिके आश्रम जब प्रभु गयऊ * सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥४॥

सब मुनियोंसे विदा होकर सीता सहित दोनों भाई चले। (कुवार सुदी दशमीके दिन रघुनाथजी दक्षिण दिशाको चले)॥३॥ रघुनाथजी अत्रिके आश्रममें गये तब महामुनि सुनकर प्रसन्न हुए॥४॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाये * देखि राम आतुर चलि आये ॥५॥
करत दंडवत मुनि उर लाये * प्रेमवारि दोउ जन अन्हवाये ॥६॥

पुलकित शरीर होकर अत्रि ऋषि उठ धाये और रघुनाथजी भी उन्हें आते देखकर शीघ्रतासे चले ॥ ५ ॥ दंडवत् करते ही मुनिने दोनोंको हृदयसे लगा लिया और प्रेमके जलसे दोनोंको स्नान कराया ॥ ६ ॥

देखि राम-छबि नैन जुड़ाने * सादर निज आश्रम तब आने ॥७॥
करि पूजा कहि वचन सुहाये * दिये मूल फल प्रभु मन भाये ॥८॥

रघुनाथजीकी छबि देख नेत्र ठंडे हुए, तब आदर पूर्वक अपने आश्रममें लाये ॥७॥ रघुनाथ जीकी पूजाकर और सुन्दर वचन कहकर प्रभुको भोजनके लिए मन भाये मूल फल दिए ॥८॥

सोरठा—प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन शोभा निरखि ॥
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

प्रभु आसनके ऊपर बैठे हैं, नेत्र भरके उनकी शोभा देखकर परम चतुर ऋषिराज हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

छन्द—नमामि भक्त-वत्सलं । कृपालु शील कोमलम् ।
भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदम् ॥
निकाम-श्यामसुन्दरं । भवाम्बुनाथ मन्दरम् ।
प्रफुल्ल-कंज-लोचनं । मदादि-दोष मोचनम् ॥ १ ॥

भक्तोंके ऊपर कृपा करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ आप कृपाके स्थान, शीलवान् और कोमल हो; कामना रहित जनोंको मुक्ति देनेवाले आपके चरण कमलका मैं भजन करता हूँ आपका निकाम अर्थात् अतिशय श्यामसुन्दर शरीर है, हे नाथ ! संसार समुद्रके मथन करनेका आपका (गुण नाम) मंदराचल है, जैसे समुद्रसे रत्न निकाल पृथक् किये इसी प्रकार भक्तोंको अपनी शरणमें रखा है; अर्थात् जो भक्तजन हैं, उन्हें अपने पास रखते हो, प्रफुल्लित कमलके समान आपके नेत्र हैं आप मद आदि दोषोंके छुड़ानेवाले हो ॥ १ ॥

छन्द—प्रलम्ब-बाहुविक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवम् ।
निषंग-चाप-सायकं । धरं त्रिलोकनायकम् ॥
दिनेश-वंश मण्डनं । महेश-चाप खण्डनम् ।
मुनींद्र सन्त-रंजनं । सुरारि-वृन्द-भंजनम् ॥ २ ॥

हे प्रभो स्वामिन् ! आपकी लम्बायमान भुजाओंके पराक्रमका वैभव अप्रमेय है अर्थात् उसकी तुलना नहीं है जिनमें धनुष बाण धरे, तरकस कमरमें बांधे हो, आप त्रिलोकीके स्वामी हो इन भुजाओंने सूर्यवंशको भूषित किया और शिवजीके धनुषको तोड़ा है; मुनींद्र सन्तोंको आनन्द दिया और असुर समूहोंको नष्ट किया ॥ २ ॥

छन्द–मनोज-वैरि-वंदितं । अजादिदेवसेवितम् ।
विशुद्ध-बोध-विग्रहं । समस्तदूषणापहम् ॥
नमामि इंदिरापतिं । सुखाकरंसतांगतिम् ।
भजे सशक्ति सानुजं । शचीपतिप्रियानुजम् ॥ ३ ॥

जो भुजा कामदेवके वैरी शिवजीसे वंदित, ब्रह्मादि देवताओंसे सेवित है आपका बोध विग्रह अर्थात् शरीर विशेष शुद्ध और ज्ञानरूपी है समस्त दूषणोंका नाशक है। आप लक्ष्मीके पति सुखके आकर सज्जनोंकी गति हैं, आपको नमस्कार है। सीता लक्ष्मण सहित आपका भजन करता हूँ, आप इन्द्रके प्यारे छोटे भ्राता हो ! इन्द्रका छोटा भाई कहनेका तात्पर्य यह कि जब राजा बलिने यज्ञ किया तब अदितिके व्रतसे सन्तुष्ट हो भगवान्‌ने उसके उदरमें जन्म लिया; इन्द्र उसके बड़े पुत्र हैं। वामनजी छोटे कहलाये और राजा बलिसे पृथ्वी ले इन्द्रका कार्य किया इससे प्रिय अनुज कहा "सतां गतिम्" कहनेका भाव यह है कि सत्पुरुषोंको आप ही गति देते हो ॥ ३ ॥

छन्द–त्वदंघ्रिमूल ये नराः। भजन्ति हीन-मत्सराः ।
पतन्ति नो भवार्णवे। वितर्क-वीचि-संकुले ॥
विविक्तवासिनः सदा। भजन्ति मुक्तये मुदा ।
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य आपके चरणकमलका अभिमान त्यागर भजन करते हैं वे कुतर्ककी लहरोंसे युक्त संसार सागरमें नहीं पतित होते, अर्थात् फिर उनका जन्म नहीं होता। विविक्तवासी अर्थात् एकांतसेवी मुक्तिके निमित्त प्रसन्न होकर आपकी सदा सेवा करते हैं इंद्रियादि रसोंको त्याग आपकी निज गतिमें प्राप्त होते हैं। जहां "विविक्ति वासना" और भजन्ति मुक्तिदं पाठ है वहां यह अर्थ करना कि विषय वासना छोड़ मुक्ति देनेवाले आपका भजन करते हैं ॥ ४ ॥

छन्द–त्वमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुम् ।
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेक केवलम् ॥
भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभम् ।
स्वभक्तकल्प–पादपं । समस्त-सेव्यमन्वहम् ॥ ५ ॥

आप एक हो, अद्भुत हो, प्रभु हो और (निरीह) इच्छा रहित, (ईश्वर) सबके प्रेरक, (विभु) व्यापक, जगत्‌के गुरु, शाश्वत (निरंतर) तुरीय अर्थात् जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओंसे भिन्न, केवल एक हो, आपका भाव प्यारा है और आप कुयोगियोंको दुर्लभ हैं और अपने भक्तोंके कल्पवृक्ष हो और सुन्दर सेवा करने योग्य हो, आपको नमस्कार करता हूँ। कहीं 'समं सुसेव्य'-पाठ है तो समान भावसे सबको सेव्य अर्थ है ॥५ ॥

छन्द—अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजापतिम् ।
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्जभक्ति देहि मे॥
पठन्ति ये स्तवं त्विदं। नरादरेण ते पदम्।
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीयभक्ति संयुतम्॥ ६॥

आप जानकीजीके पति हो आपका अनुपम राजाका रूप है, प्रसन्न हूजिये मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ अपने चरणकमलकी भक्ति मुझे दो। जो मनुष्य इस स्तोत्रको आदरसे पढ़ते हैं वे आपकी भक्तिसहित आपको निःसन्देह प्राप्त होते हैं कहीं 'संशयं' भक्तिसंयुक्त पाठ है॥६॥

दोहा—विनती करि मुनि नाय शिर, कह कर जोरि बहोरि।
चरण सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि॥ ३॥

विनती कर हाथ जोड़ शिर नवाय फिर मुनिराज कहने लगे--हे नाथ! आपके चरण कमलको मेरी मति कभी न त्यागे॥ ३॥

जन्म जन्म तव पद सुखकन्दा * बढ़ै प्रेम चकोर जिमि चन्दा॥१॥
देखि राम मुनि विनय प्रणामा * विविध भाँति पायउ विश्रामा॥२॥

जन्म जन्म आपके सुखदायक चरण (कमल) में प्रेम ऐसे बढ़े जैसे चकोरका चन्द्रमामें प्रेम बढ़ता है॥ १॥ रघुनाथजीने मुनिका विनय प्रणाम देखकर अनेक प्रकारसे सुख पाया (दोनों चौपाई क्षेपक हैं)॥ २॥

अनसूयाके पद गहि सीता *मिली बहोरि सुशील विनीता॥३॥
जो सिय सकल लोक सुखदाता *अखिल लोक ब्रह्माण्डकि माता॥४॥

फिर अत्रि ऋषिकी स्त्री अनुसूयाके चरण स्पर्श कर जानकीजी अधिक सुशीलता और विनय पूर्वक मिलीं॥ ३॥ जो सीता सब लोकोंकी सुख दाता, सब लोक और ब्रह्माण्डकी माता हैं (यह चौपाई क्षेपक है)॥ ४॥

तेउ पाइ सिय मुनिवर भामिनि *सुखी भई कुमुदिनि जिमि यामिनि॥५॥
ऋषिपत्नी मन सुख अधिकाई * आशिष देइ निकट बैठाई॥६॥

उन जानकीको मुनिपत्नी पाकर ऐसी प्रसन्न हुई जैसे रात्रिमें कुमुदिनी (कूँकावेरी) (यह भी क्षेपक है)॥५॥ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ, आशीष दे जानकीजीको निकट बैठाया॥६॥

दिव्य वसन भूषण पहिराये * जे नित नूतन अमल सुहाये॥७॥
जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं *गरुड़ जानि जिमि पन्नग जाहीं॥८॥

दिव्य अर्थात् जो कभी मैले न हों, सदा प्रकाशित रहें ऐसे वस्त्र गहने पहराये, जो नित्य नये शोभायमान रहे॥ ७॥ जिनको देखते ही दुख दूर होते हैं; जैसे गरुड़को जान सर्प दूर भाग जाते हैं॥ (यह आठवीं चौपाई क्षेपक है)॥ ८॥

दोहा—ऐसे वसन विचित्र शुचि, दिये सीय कहँ आनि॥
सन्मानी प्रिय वचन कहि, प्रीति न जाय बखानि॥ ४॥

इस प्रकारसे पवित्र अद्भुत वस्त्र जानकीजीको लाकर दिये,जो कभी मैले न हों और प्यारे वचन कहकर सम्मान किया, प्रीति बखानी नहीं जाती (यह दोहा भी क्षेपक है)॥ ४॥

कह ऋषिवधू सरस मृदु बानी * नारिधर्म कछु व्याज बखानी ॥१॥
मातु पिता भ्राता हितकारी * मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी॥२॥

तब अनसूया कोमलवाणीसे कुछ स्त्री-धर्मके व्याजसे वर्णन करने लगीं॥१॥ हे राजकुमारी सुनो-माता, पिता, भाई हितू ये सब परिमित अर्थात् योग्यतानुसार सुख देनेवाले हैं ॥ २ ॥

अमित दानि भर्ता वैदेही * अधम सो नारि जो सेव न तेही॥३॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी * आपदकाल परखिये चारी ॥४॥

परंतु हे जानकी ! स्वामी अनन्त सुखदाता हैं, अतः जो स्त्री अपने स्वामीकी सेवा नहीं करती वह अधम है ॥ ३ ॥ धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्रीको आपत्कालमें परखना चाहिए ॥४॥

वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना * अन्ध बहिर क्रोधी अतिदीना॥५॥
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना * नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥६॥

बुड्ढा, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, बधिर, क्रोधी अत्यन्त दुःखी ॥ ५ ॥ ऐसे भी पतिका अपमान करनेसे स्त्रियाँ यमलोकमें अनेक दुख पाती हैं ॥ ६ ॥

एकै धर्म एक व्रत नेमा * काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥७॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं * वेद पुराण सन्त सब कहहीं ॥८॥

स्त्रियोंका एक ही धर्म एक व्रत नेम है कि शरीर वचन मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना ॥ ७ ॥ जगत्में पतिव्रता चार प्रकारकी होती हैं ऐसे वेद पुराण और सब सन्त कहते हैं ॥८॥

दोहा-उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाय ॥
आगे सुनहिं ते भव तरहि, सुनहु सीय चितलाय ॥ ५ ॥

उत्तम, मध्यम, नीच लघु सब प्रकार समझाकर कहती हूँ जो आगे सुनेंगी वे संसार सागरसे पार हो जायँगी। जानकीजी तुम भी मन लगाकर सुनो ! (यह दोहा क्षेपक है) ॥ ५ ॥

उत्तमके अस बस मन माहीं * सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥१॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे * भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥२॥

उत्तम पतिव्रता स्त्रियोंके तो मनमें यह बात बसी रहती है कि दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी जगत्में नहीं है, अर्थात् सब स्त्री हैं पुरुष तो केवल मेरा पति है ॥ १ ॥ मध्यम पतिव्रता पराये पतियोंको भाई समान देखती हैं ॥ २ ॥

धर्म बिचार समुझि कुल रहहीं *सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं॥३॥
बिनु अवसर भयते रह जोई * जानहु अधम नारि जग सोई॥४॥

जो धर्म विचारके अपना कुल समझके रहती हैं वे निकृष्ट स्त्री हैं, ऐसा वेद कहते हैं ॥३॥ जो अवसर न मिलनेसे तथा कुल और गुरुजनके भय माननेके कारण अपने धर्ममें रहती हैं उन्हें जान लेना कि जगत्में वे अधम स्त्री हैं ॥ ४ ॥

पतिवंचक परपति रति करई * रौरव नरक कल्पशत परई ॥५॥
क्षणसुख लागि जन्म शतकोटी *दुख न समुझ तेहि समको खोटी॥६॥

जो अपने पतिको ठगकर पर पुरुषसे प्रीति करती हैं वे सौ कल्पतक नरकमें पड़ती हैं ॥५॥

जो क्षणमात्रके सुखके निमित्त सौ करोड़ जन्मतकका दुःख नहीं समझती उसके समान कौन खोटी है ? ॥ ६ ॥

बिनु श्रम नारि परम गति लहई * पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ॥७॥
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई * विधवा होय पाय तरुणाई ॥८॥

जो छल छोड़के पतिव्रत धर्म पालन करती है वह स्त्री विना परिश्रम परम गतिको प्राप्त हो जाती है ॥७॥ पतिसे प्रतिकूल स्त्री जहाँ जन्म लेगी वहाँ तरुणाईमें विधवा हो जायगी ॥८॥

सोरठा-सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहइ ॥
यश गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥ ४ ॥

स्वाभाविक अपवित्र नारी पतिकी सेवा करनेसे शुभ गतिको प्राप्त हो जाती है, यह यश चारों वेद गाते हैं देखो तुलसी अभी तक हरिको प्यारी है यह वृन्दाके पतिव्रतका ही प्रभाव है जो पतिकी भक्ति करके तुलसी हो गयी (वृन्दाने पतिके मरने और पतिव्रतका नष्ट होनेसे विष्णु भगवान्‌को शाप दिया कि तुम शिला हो जाओ, विष्णुजी बोले तू तुलसी होगी और मैं धारण करूँगा) ॥ ४ ॥

सोरठा-सुन सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ॥
तोहि प्राणप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥ ५ ॥

सुनो जानकीजी ! तुम्हारे तो नाम स्मरण करनेसे ही स्त्री पतिव्रत धर्म करेंगी तुम्हें तो रघुनाथजी प्राणोंके समान प्यारे हैं किन्तु यह कथा मैंने संसारके कल्याणके लिये कही है ॥५॥

सुनि जानकी परम सुख पावा * सादर तासु चरण शिर नावा ॥१॥
तब मुनिसन कह कृपा निधाना * आयसु होय जाउँ वन आना॥२॥

सुनकर जानकीजीने सुख पाया, आदरसे अनुसूयाके चरणोंमें शिर नवाया ॥ १ ॥ तब मुनिसे भगवान्‌ने कहा जो आज्ञा हो तो मैं और वनमें जाऊँ ॥ २ ॥

सन्तत मोपर कृपा करेहू * सेवक जानि तजहु जनि नेहू ॥३॥
धर्म-धुरं-धर प्रभुकी बानी * सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी ॥४॥

सदा मुझपर कृपा करते रहना और मुझे सेवक जानकर प्रीति न छोड़ना ॥ ३ ॥ धर्म धुरंधर प्रभुकी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रीति पूर्वक बोले ॥ ४ ॥

जासु कृपा शिव अज सनकादी * चहत सकल परमारथवादी ॥५॥
ते तुम राम अकाम पियारे * दीनबन्धु मृदुवचन उचारे ॥६॥

जिसकी कृपाको शिव, ब्रह्मा, सनकादिक सब परमार्थवादी चाहते हैं ॥५॥ हे रामजी ! वही आप हमें निष्काम प्यारे हो आप दीनोंके बन्धु हो; कोमल वचन आपने उच्चारण किये हैं॥६॥

अब जानी मैं श्री-चतुराई * भजिय तुमहिं सब देव विहाई ॥७॥
जे समान अतिशय नहिं कोई * ताकर शील कस अस न होई॥८॥

अब मैंने आपकी चतुराईको जाना आप कहते हैं कि और देवताओंको छोड़ मुझको भजो ॥ ७ ॥ जिसके समान अधिकतर कोई नहीं उनका शील ऐसा क्यों न होगा ॥ ८ ॥

केहि विधि कहौं जाहु अब स्वामी * कहहु नाथ तुम अंतरयामी ॥९॥

अस कहि प्रभु विलोक मुनिधीरा * लोचन जल बह पुलक शरीरा॥१०॥
आप कहते हो मैं किस प्रकारसे कहूँ कि वनको जाओ ? हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं ॥९॥
धीर मुनिने यह कहकर प्रभुको देखा, नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया॥१०॥

छन्द–तनु पुलक निर्भर प्रेम पूरण नयन मुख पंकज दिये ।
मनज्ञान गुणगोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किये ॥
जप योग धर्म समूहते नरभक्ति अनुपम पावहीं ।
रघुवीर-चरित पुनीत निशिदिन दास तुलसी गावहीं ॥ ७ ॥

मुनिका शरीर पुलकित, अत्यन्त प्रेमसे पूर्ण हो गया रघुनाथजीके मुखकमलकी ओर नयन लगाये मुनि बोले–जो मन, ज्ञान गुण इंद्रियोंसे परे हैं उन्हें मैंने देखा, ऐसा क्या जप तप किया जिसका यह फल मिला । जप, योग और धर्मसमूहसे मनुष्य अनुपम भक्ति पाता है और रघुनाथजीके पवित्र चरित्र रात दिन तुलसीदासजी गाते हैं ॥ ७ ॥

दोहा–कलिमलशमन दमन मन, राम सुयश सुखमूल ॥
सादर सुनहिं जे तिनहिं पर, राम रहहिं अनुकूल ॥ ६ ॥

कलियुगके मलोंका शांत करनेवाला, मनका निग्रह करनेवाला, सुखमूल रघुनाथजीका सुयश है जो प्रेमसे सुनेंगे उनपर रघुनाथजी अनुकूल रहेंगे ॥ ६ ॥

सोरठा–कठिन काल मलकोस, धर्म न ज्ञान न योग तप ॥
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥ ६ ॥

यह कठिन कलिकाल मलका भंडार है, इसमें धर्म ज्ञान योग कुछ भी नहीं है जो सब भरोसेको छोड़कर रघुनाथजीका भजन करते हैं वे चतुर पुरुष हैं ॥ ६ ॥

दोहा–मुनिहुकि अस्तुति कीन्ह प्रभु, दीन्ह सुगम वरदान ॥
सुमन वृष्टि नभसंकुल, जय जय कृपानिधान ॥ ७ ॥

रामचन्द्रजीने भी मुनिकी स्तुति की और सुन्दर वरदान दिया, आकाश फूलोंकी वर्षासे छा गया, देवता बोले–हे कृपानिधान ! आपकी जय हो ! ! (यह दोहा क्षेपक है) ॥ ७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने आरण्यकाण्डान्तगत–विद्यावारिधि–
पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायां प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

दोहा–यह द्वितीय विश्राममें, किय विराध वध राम ।
मिले सुतीक्षणसे मुदित, गे अगस्त्यके धाम ॥ २ ॥

मुनिपदकमल नाइ कर शीशा * चले वनहिं सुर नर मुनि ईशा ॥१॥
आगे राम अनुज पुनि पाछे * मुनिवर वेश बने अति आछे ॥२॥
मुनिके चरणकमलमें शिर नवाकर सुर नर मुनियोंके ईश्वर वनको चले ॥ १ ॥ आगे रामचन्द्र पीछे लक्ष्मण अत्यन्त सुन्दर मुनिके वेष बनाये हुए चले ॥ २ ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी * ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥३॥
दोनोंके बीचमें जानकीजी इस प्रकार शोभित होती हैं जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया ॥३॥
सरिता वन गिरि अवघट घाटा * पति पहिचानि देहिं वर बाटा॥४॥

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया * करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया॥५॥

नदी, वन, पर्वत, औघट घाट सब, कोई स्वामी जानकर जहाँ मार्ग नहीं वहाँ सुन्दर मार्ग देते हैं, नदी औघटमें घाट कर देती हैं ॥ ४ ॥ जहाँ जहाँ देव रघुनाथजी जाते हैं वहाँ वहाँ मेघ आकाशसे छाया करते हैं (आगे क्षेपक है) ॥ ५ ॥

आश्रम विपुल दीख मगमाहीं * देवसदन तेहि पटतर नाहीं ॥६॥
बहु तड़ाग सुन्दर अमराई *भाँति भाँति सब मुनिन लगाई॥७॥

बहुत आश्रम मार्गमें देखे, जिनके समान देवताओंके भी स्थान नहीं हैं ॥ ६ ॥ बहुतसे तालाब, सुन्दर, आमके वृक्ष, जो, भांति भांतिसे सब मुनियों ने लगाये थे ॥ ७ ॥

दिव्य विटप वनचहुँ दिशि सोहैं * देखत सकल सुरन मन मोहैं ॥८॥
तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा *सकलमुनिनमिलि कीन्ह सुपासा॥९॥

वनके चारों ओर दिव्य वृक्ष शोभित हो रहे थे, जिन्हें देखकर देवताओं के मन मोहित हो जाते थे ॥८॥उस दिन रघुनाथजीने वहां ही वास किया,सब मुनियोंने मिलकर पहुनाई की॥९॥

दोहा-निज निज आश्रम वेदिका, तेहिपर तुलसि विराज ॥
अनुज जानकी सहित तहँ, राजत भये रघुराज ॥ ८ ॥

सबके आश्रमों पर वेदी वनी हुई हैं उन पर तुलसी विराज रही है, लक्ष्मण जानकी सहित रघुनाथजी वहां विराजे ॥ ८ ॥

दोहा-आनि सुआश्रम मुदित मन, पूजि पहुनई कीन्ह ॥
कन्दमूल फल अमियसम, आनि रामकहँ दीन्ह ॥ ९ ॥

मनमें हर्षित हो मुनियोंने प्रभुको अपने सुन्दर आश्रममें लाकर पूजाकर पहुनाई की और अमृतके समान कंद मूल फल लाकर रघुनाथजीको दिये ॥ ९ ॥

अनुज सीय सह भोजन कीन्हा * जोजेहि भाव सुभग वर दीन्हा ॥१॥
होत प्रभात मुनिन्ह शिर नावा * आशिरवाद सबहि सन पावा ॥२॥

रामचन्द्रने लक्ष्मण सीतासहित भोजन किया, जो जिसको भाया उसे सुन्दर वर दिया ॥ १ ॥ प्रातःकाल होते ही मुनियोंको शिर नवाकर और सबसे आशीर्वाद पाकर ॥ २ ॥

सुमिरि उमा सुर सिद्ध गणेशा * पुनि प्रभु चले सुनहु विहँगेशा॥३॥
वन अनेक सुन्दर गिरि नाना * लाँघत चले जाहिं भगवाना ॥४॥

हे पार्वती ! पुनः देवता, गणेशजीको स्मरण कर प्रभु चले, हे गरुड़जी ! सुनिये यह काक भुशुण्डजी कहते हैं ॥३॥ अनेक वन, सुन्दर पर्वत लांघते हुए भगवान् चले जाते हैं॥४॥

मिला असुर विराध मग जाता * गर्जत घोर कठोर रिसाता ॥५॥
रूप भयंकर मानहु काला * वेगवन्त धावा जनु व्याला ॥६॥

विराध राक्षस मार्गमें जाते घोर कठोर गर्जन करता हुआ मिला । (आधी पूर्वकी चौपाई क्षेपक नहीं है)॥५॥ बड़ा भयंकर रूप कालके समान ऐसा वेगसे दौड़ा मानो सर्प आया॥६॥

गगन देव मुनि किन्नर नाना * तेहि क्षण हृदय हारि भयमाना॥७॥
तुरतहि सो सीतहि ले गयऊ * राम हृदय अति विस्मय भयऊ॥८॥

आकाशमें अनेक देवता मुनि किन्नरों ने उस समय हृदयमें हार और भय मानी ॥ ७ ॥ वह तुरन्त जानकीजीको ले गया, तब रघुनाथजीका मन बड़ा विस्मित हुआ ॥ ८ ॥

समुझी हृदय कैकयी करणी * कहा अनुजसन बहुविधि वरणी ॥९॥
बहुरि लषण रघुवरहिं प्रबोधा * पांच बाण छांड़े करि क्रोधा ॥१०॥

हृदयमें कैकेयीकी करणी समझकर लक्ष्मणजीसे बहुत प्रकारसे कहा कि अब कैकेयीका मनोरथ पूरा हुआ॥९॥फिर लक्ष्मणजीने रघुनाथजीको समझाकर और क्रोध कर पांच बाण छोड़े॥१०॥

छन्द–भये क्रुद्ध लषण सँधानि शरधनु मारि तेहि व्याकुल कियो ।
पुनि उठि निशाचर राखि सीतहिं शूल लै धावत भयो ॥
जनु कालदण्ड कराल धावा विकल सब खग मृग भये ।
धनु तानि श्रीरघुंवशमणि पुनि मारि तन जर्जर किये ॥ ८ ॥

जब लक्ष्मणजीको क्रोध आ गया तो धनुष संधानकर बाण मारकर उसे व्याकुल कर दिया तब वह राक्षस जानकीको रख और उठ त्रिशूल लेकर दौड़ा उस समय ऐसा विदित हुआ मानो कराल कालदंड दौड़ा चला आता है। सब खग मृग व्याकुल हो गये तब रघुनाथजीने धनुष चढ़ाकर बाणोंसे मार मारके जर्जर कर दिया ॥ ८ ॥

दोहा–बहुरि एक शर मारेउ, परा धरणि धुनि माथ ॥
उठा प्रबल पुनि गर्जेउ, चला जहाँ रघुनाथ ॥ १० ॥

फिर एक बाण मारा कि जिसके लगनेसे पृथ्वी में माथा धुनकर विराध गिर पड़ा फिर प्रबल होकर उठ गर्जा और जहाँ रघुनाथजी थे वहां चला ॥ १० ॥

ऐसे कहत निशाचर धावा * अब नहिं बचहु तुमहिं मैं खावा ॥१॥
आव प्रबल इहि विधि जनु भूधर * होइहि कहा कहहिं व्याकुल सुर ॥२॥

यह कहता हुआ राक्षस दौड़ा कि तुम अब नहीं बचोगे, मैं खा जाऊँगा ॥१॥इस प्रकार वेगसे दौड़ा मानों पहाड़ चला आता हो;न जाने क्या होगा ? देवता व्याकुल हो ऐसा कहने लगे॥२॥

तासु तेज शत मरुत समाना * टूटहिं तरु बहु उड़हिं पषाना ॥३॥
जीव जन्तु जहँ लगि रहे जेते * व्याकुल भागि चले सब तेते ॥४॥

उसका तेज सौ पवनके समान था, बहुतसे वृक्ष टूट गये, पत्थर उड़ने लगे ॥ ३ ॥ जितने जीव जन्तु जहाँ तक रहते थे व्याकुल होकर भाग चले ॥ ४ ॥

उरग समान जारि शर साता * आवतही रघुवीर निपाता ॥५॥
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा * देखि दुखी निज धाम पठावा ॥६॥

सर्प समान सात बाण छोड़कर रघुनाथजीने आते ही उसे मार डाला (पहली आधी चौपाई तक क्षेपक है) ॥ ५ ॥ तुरन्त ही उसने रघुनाथजीके सम्पर्कसे सुन्दर रूप पाया उसे दुःखी देखकर रामचन्द्रजीने अपने धामको भेज दिया ॥ ६ ॥

---

१. यह विराध पूर्वजन्मका गन्धर्व था, कुबेरके पास समय पर उपस्थित न होनेके कारण कुबेरने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा तब प्रार्थना करने पर कहा — रामचन्द्रके साथ युद्ध कर अपने स्थानको प्राप्त होगा।

तासु अस्थि गाड़े प्रभु धरणी * देवमुदित लखि प्रभुकी करणी॥७॥
सीता आय चरण लिपटानी * अनुज सहित तब चले भवानी॥८॥

उसकी हड्डी प्रभुने धरती में गाड़ दी, देवता प्रभुकी यह करनी देख प्रसन्न हुए (यहांसे क्षेपक है) ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! सीता आकर चरणोंमें लिपट गयी, तब रघुनाथजी भाई सहित चले ॥ ८ ॥

वहां शक्र जहँ मुनि शरभंगा * आये सकल देव मुनि संगा ॥९॥
गये कहन प्रभु देन सिखावन * दिशिबल भेद बसत जहँ रावन॥१०॥

जहाँ शरभंग मुनि थे वहां इन्द्रजी सब देवता मुनि साथ लिये आये ॥९॥ प्रभुको शिक्षा देनेके लिए गये थे वह दिशा और उसका बल जहां रावण रहता था सो भेद कहने आये थे॥१०॥

दोहा-सुरपति संशय तमशमन, रघुपति-तेज दिनेश ॥
रावण जीवन निशा सम, बीते छुटहि कलेश ॥ ११ ॥

इन्द्रके संशयरूप अन्धकार नाशक रघुनाथजीका तेज सूर्यके समान है, रावणका जीवन रात्रिके समान है, जिस रात्रिके बीतने मात्रसे इंद्रादिकोंके सब क्लेश छूट जायँगे ॥ ११ ॥

सुनासीर प्रभु तेहि क्षण देखा * तेज-निधान शुभ्र अति वेषा ॥१॥
तुरग चारिबल मरुत समाना * रथरविसम नहिं जाय बखाना ॥२॥

इन्द्रको उस समय प्रभुने देखा कि तेज निधान और बड़ा सुन्दर वेष है ॥१॥ चार घोड़े रथमें जुते, जिनका बल पवनके समान था और रथ सूर्यके समान प्रकाशमान जो बखाना नहीं जाता ॥ २ ॥

क्षिति न परस अन्तरहित रहई * श्वेत छत्र चामर शिर ढरई ॥३॥
अनुजहिं प्रियहि कहा समुझाई * सुरपति महिमा गुण प्रभुताई ॥४॥

रथ पृथ्वीको स्पर्श नहीं करता, किंतु अंतर्हित रहता है श्वेत क्षत्र चँवर शिरपर ढल रहा है ॥३॥ यह देखकर लक्ष्मण और जानकीको रघुनाथजीने इंद्रकी महिमा गुण बड़ाई सुनाई ॥४॥

जेहि कारण वासव तहँ आये * सो कछु वचन कहै नहिं पाये ॥५॥
बीचहिं सुनि आगम प्रभु केरा * कहि सारथिहिं तुरत रथ फेरा ॥६॥

जिस कारण इन्द्र वहां आया था वह तो कुछ वचन कहने नहीं पाया ॥ ५ ॥ बीचमें ही प्रभुका आगमन सुनकर तुरन्त सारथीसे कहकर इन्द्रने रथ फेरा, वह शरभंगसे रावणकी कथा कहने गये थे ॥ ६ ॥

दूरहिते करि प्रभुहि प्रणामा * हरषि सुरेश गयउ निज धामा॥७॥
प्रभु आये जहँ मुनि शरभंगा * सुन्दर अनुज जानकी संगा ॥८॥

दूरसे ही प्रभुको प्रणाम करके इन्द्र प्रसन्न हो अपने घरको गया (यहाँ तक क्षेपक है) ॥ ७ ॥ प्रभु जहाँ शरभंग मुनि थे वहां सुन्दर लक्ष्मण और जानकीके संग आये ॥ ८ ॥

दोहा-देखि राममुखपंकज, मुनिवर लोचनभृंग ॥
सादर पान करत अति, धन्य जन्म शरभंग ॥ १२ ॥

रघुनाथजीके मुखकमलको देखकर शरभंग मुनिके नेत्र भ्रमर हो गये, अत्यंत आदरपूर्वक पान करने लगे और अपने जन्मको धन्य मानने लगे ॥ १२ ॥

कह मुनि सुनु रघुवीर कृपाला * शंकर--मानस राज-मराला ॥१॥
जात रहेउँ विरंचिके धामा * सुनेउँ श्रवण वन आवत रामा ॥२॥

मुनि बोले-हे रघुनाथजी ! सुनिये, आप शिवजीके हृदयरूपी सरोवरके राजहंस हो ॥१॥ मैं ब्रह्मलोकको जाता था सो सुना कि आप वनको आते हैं ॥ २ ॥

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती * अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥३॥
नाथ सकल साधन मैं हीना * कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥४॥

मैं रात दिन मार्ग देखता रहता था, अब आपको देख छाती ठंडी हुई ॥ ३ ॥ हे नाथ ! मैं सब साधनसे हीन हूँ, दीनजन जानके आपने कृपा की ॥ ४ ॥

सो कछु देव न मोर निहोरा * निजप्रण राखेउ जनमन चोरा॥५॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी *जब लग मिलौं तुम्हैं तनु त्यागी॥६॥

हे जनोंके मन चुरानेवाले नाथ ! उसमें कुछ मेरा निहोरा नहीं; आपने अपना प्रण रखा है, ॥ ५ ॥ मैं जबतक तुम्हें शरीर त्यागकर न मिलूँ तबतक तो दीन हूँ अथवा शरीर त्यागकर तुम्हें मिलूँ तबतक तुम दीन पर हित करनेके निमित्त यहां स्थिर रहो ॥ ६ ॥

योग यज्ञ जप तप व्रत कीन्हा * प्रभु कहँ देइ भक्तिवर लीन्हा ॥७॥
इहि विधि सर रचि मुनिशरभंगा * बैठे हृदय छांड़ि सब संगा ॥८॥

योग,यज्ञ, जप, तप, व्रत जो कुछ किया था सो प्रभुको देकर भक्ति वर लिया ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे चिता रचके शरभंग ऋषि हृदयसे सब संग (विषयासक्ति) छोड़कर बैठ गये ॥ ८ ॥

दोहा-सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम ॥
मम हिय बसहु निरंतर, सगुण रूप श्रीराम ॥ १३ ॥

और बोले-हे प्रभु नीले बादलके समान आपका श्याम शरीर है सीता लक्ष्मण सहित सो मेरे हृदयमें यह आपका सगुणरूप सदा बसता रहे ॥ १३ ॥

अस कहि योग-अग्नितनु जारा * राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा ॥१॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ * प्रथमहि भेद भक्ति वर लयऊ ॥२॥

यह कहकर योगाग्निमें शरीर जला दिया और रघुनाथजीकी कृपासे वैकुंठको गया ॥१॥ मुनि इस कारण भगवानमें लीन नहीं हुआ कि प्रथम ही भेद भक्तिका वर माँग लिया था॥२॥

ऋषि निकाय मुनिवर गति देखी*सुखी भये निज हृदय विसेखी ॥३॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि वृन्दा* जयति प्रणतहित करुणाकन्दा॥४॥

ऋषिसमूह मुनिराजकी गति देखकर हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ सब मुनि समूह स्तुति करते हैं; हे दीनोंके हितकारक करुणामय ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

पुनि रघुनाथ चले वन आगे * मुनिवर वृन्द विपुल सँग लागे॥५॥
अस्थि समूह देखि रघुराया * पूछा मुनिनि लागि अति दाया ॥६॥

फिर रघुनाथजी आगे वनको चले और सब श्रेष्ठ मुनि साथ ही साथ चले ॥ ५ ॥

अस्थियोंका समूह देखकर रघुनाथजीको बड़ी दया आयी और मुनियोंसे पूछा ॥ ६ ॥

जानतहू कस पूँछहु स्वामी * समदर्शी उर अन्तर्यामी ॥७॥
निशिचर निकर सकल मुनिखाये * सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ॥८॥

मुनि बोले–हे स्वामी ! जानते हुए भी पूछते हैं ? आप समदर्शी सबके हृयदके जाननेवाले हो ॥७॥ सब मुनियोंको राक्षस समूह भक्षण कर गये यह वचन सुनकर रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८ ॥

दोहा–निशचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह ॥
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय जाय सुख दीन्ह ॥ १४ ॥

पृथ्वी राक्षसोंसे हीन कर दूँगा; सब मुनियोंके सामने भुजा उठाकर रघुनाथजीने यह प्रण किया और सबके आश्रमोंमें जा जाकर सुख दिया ॥ १४ ॥

मुनि अगस्त्य कर शिष्य सुजाना * नाम सुतीक्षण रत भगवाना ॥१॥
मन क्रम वचन रामपद-सेवक * सपनेहु आन भरोस न देवक ॥२॥

एक अगस्त्तय ऋषिका चतुर शिष्य जिसका सुतीक्षण नाम; रघुनाथजीका बड़ा प्रेमी ॥१॥ मन, वचन, कर्मसे रघुनाथजीके चरण (कमल) का सेवक और अन्य देवताका स्वप्नमें भी भरोसा न करने वाला था ॥ २ ॥

प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा * करत मनोरथ आतुर धावा ॥३॥
हे विधि दीनबन्धु रघुराया * मोसे शठपर करिहहिं दाया ॥४॥

प्रभुका आगमन श्रवण करके मनोरथ करता व्याकुल हो दौड़ा(और मनमें कहने लगा) ॥ ३ ॥ हे विधाता ! दीनबन्धु रघुनाथजी मेरे समान मूर्खपर दया करेंगे ? ॥ ४ ॥

सहित अनुज मोहि राम गुसाईं * मिलिहहिं निज सेवककी नाईं ॥५॥
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं * भक्ति न विरति ज्ञान मनमाहीं ॥६॥

लक्ष्मण सहित रघुनाथजी मुझसे अपने सेवकोंके समान मिलेंगे ? ॥५॥ मेरे मनमें दृढ़ विश्वास नहीं है, अथवा भरोसा मिलनेका नहीं है, क्योंकि भक्ति, ज्ञान वैराग्य तो मनमें है नहीं ॥६॥

नहिं सतसंग योग जप यागा * नहि दृढ़ चरणकमलअनुरागा ॥७॥
एक बानि करुणा-निधानकी * सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥८॥

सत्संग, योग, जप, यज्ञ मैंने किया नहीं; न दृढ़ चरणकमलमें प्रेम ही है ॥७॥ पर रघुनाथजीकी एक बान है जो अनन्यगति है उसे प्यार करते हैं ॥ ८ ॥

छन्द–तेउ परमप्रिय अतिपातकी जिन कबहिं प्रभु सुमिरण करो ॥
सो आजु मैं निज नयन देखौं पूरि पुलकित हिय भरो ॥
जे पद सरोज अनेक मुनि उर ध्यान कबहुँक आवहीं ॥
ते राम श्रीरघुवंशमणि प्रभु प्रेम ते सुख पावहीं ॥ ९ ॥

श्रीरघुनाथजीको वह अत्यन्त पातकी भी बहुत प्यारा है जिसने कभी भी स्वामीका स्मरण किया हो, सो आज मैं उन्हें अपने नेत्रोंसे देखूँगा, यह कहते हृदयमें पुलकावली

छा गयी जो चरण कमल अनेक विधि ध्यान करनेसे भी मुनियोंके हृदयमें नहीं आते। वे रघुनाथजी केवल प्रेमसे सुख पाते हैं (यह छन्द क्षेपक है) ॥ ९ ॥

दोहा–पन्नगारि सुनु प्रेमसम, भजन न दूसर आन ॥
यह विचारि पुनि पुनि मुनि, करत राम गुण-गान ॥ १६ ॥

काकभुशुण्डजी बोले--गरुड़जी ! सुनो प्रेमके समान कोई और दूसरा भजन नहीं है यह विचार कर मुनि बारंबार रघुनाथजीके गुणोंका गान करते हैं (यह दोहा क्षेपक है) ॥१६॥

होइहिं सफल आज मम लोचन * देखि वदन-पंकज भव मोचन॥१॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी * कहि न जाय सो दशा भवानी॥२॥

आज संसार भयनाशक कमल समान मुखका दर्शन करके मेरे नेत्र सफल होंगे ॥१॥ हे पार्वती ! ज्ञानी मुनि अत्यन्त प्रेममें मग्न हो गये, यह दशा कही नहीं जाती ॥ २ ॥

दिशि अरु विदिशि पंथ नहिं सूझा * को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥३॥
कबहुँक फिरि पाछे मुनि जाई * कबहुँक नृत्य करत गुण गाई ॥४॥

सुतीक्ष्ण मुनिको दिशा और विदिशाओंमें मार्ग नहीं दिखायी देता कि मैं कौन,कहां जाता हूँ? यह कुछ नहीं समझते॥३॥ कभी पीछेको चले जाते हैं कभी गुण गाकर नृत्य करते हैं ॥ ४ ॥

अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई * प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥५॥
अतिशय प्रीति देखि रघुवीरा * प्रगटे हृदय हरण भवपीरा ॥६॥

मुनिने रघुनाथजीकी अविचल प्रेम भक्ति पायी,रघुनाथजी वृक्षकी ओटमें छिपे देखते हैं॥५॥ फिर अधिक प्रीति देखकर संसारके दुःख दूर करनेवाले रघुनाथजी उसके हृदयमें प्रगट हो गये॥६॥

मुनि मग माँझ अचल होइ वैसा * पुलकशरीर पनस फल जैसा ॥७॥
तब रघुनाथ निकट चलि आये *देखि दशा निज जन मन भाये॥८॥

मुनि मार्गमें रघुनाथजीके हृदयमें प्रगट होनेसे अचल होकर बैठ गये। बैठनेका कारण यह है कि चित्तकी वृत्ति रुकनेसे शरीर शिथिल हो गया और शरीर पुलकित हो ऐसे रोमांच हो गये; जैसे कटहरके फलके रोम खड़े रहते हैं ॥ ७ ॥ तब रघुनाथजी (मुनिके) निकट चले आये और अपने भक्तकी दशा देखकर प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

सोरठा–राम सु सहज सुभाय, सेवक दुख दारिद दमन ॥
मुनिसन कह प्रभु आय, उठु उठु द्विज मम प्राणसम ॥ ७ ॥

रघुनाथजी सुन्दर सहज स्वभावसे ही सेवकके दुःख दरिद्र नाशक हैं वे आकर मुनिसे कहने लगे उठो, तुम मेरे प्राणोंके समान प्यारे हो (यह सोरठा क्षेपक है) ॥ ७ ॥

मुनिहि राम बहुभाँति जगावा * जाग न ध्यान जनित सुखपावा॥१॥
भूपरूप तब राम दुरावा * हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ॥२॥

रघुनाथजीने मुनिको बहुत प्रकारसे जगाया परन्तु वे ध्यानसे उत्पन्न सुखको पाकर न जागे ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीने अपना भूप-रूप छिपाकर हृदयमें चतुर्भुज रूप दिखाया ॥२॥

मुनि अकुलाय उठा तब कैसे * विकल हीन मणि फणिवर जैसे॥३॥

आगे दीख राम तनु श्यामा ❋ सीता अनुज सहित सुखधामा॥४॥

तब मुनि ऐसे घबड़ाकर उठे जैसे श्रेष्ठ सर्प मणिके बिना घबड़ा उठा हो ॥३॥ आगे देखे तो श्याम शरीर सुखके धाम रघुनाथजी सीता लक्ष्मण सहित खड़े हैं ॥ ४ ॥

परेउ लकुट इव चरणन लागी ❋ प्रेममगन मुनिवर बड़भागी ॥५॥
भुज विशाल गहि लिये उठाई ❋ परम प्रीति राखे उर लाई ॥६॥

लकड़ीके समान चरणोंमें गिरकर बड़भागी मुनिराज प्रेममें मग्न हो गये ॥५॥ रामचन्द्र-जीने विशाल भुजाओंसे उठाये और परम प्रीतिसे हृदयमें लगा लिये ॥ ६ ॥

मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला ❋ कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥७॥
राम वदन विलोकि मुनि ठाढ़ा ❋ मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥८॥

मुनिसे मिलनेमें रघुनाथजीकी ऐसी शोभा होती है मानों सुवर्णके वृक्षसे तमालकी भेंट हो ॥ ७ ॥ मुनि (मौन होकर) रघुनाथजीके मुखको देखने लगे, मानो किसीने चित्रमें लिख काढ़ दिया हो ॥ ८ ॥

दोहा-तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिं बार ॥
निज आश्रम प्रभु आनिकर, पूजा विविध प्रकार ॥ १६ ॥

तब मुनिने हृदयमें धैर्य धर बारंबार चरण पकड़ अपने आश्रममें प्रभुको लाकर अनेक प्रकारसे पूजा की ॥ १६ ॥

कह मुनि सुन प्रभु विनती मोरी ❋अस्तुति करउँ कवन विधि तोरी॥१॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी ❋ रवि सनमुख खद्योत उजोरी ॥२॥

मुनि बोले-महाराज ! मेरी विनय सुनिये मैं आपकी स्तुति किस प्रकारसे करूँ ? ॥ १ ॥ आपकी महिमा बहुत बड़ी है, मेरी मति बहुत थोड़ी है, सूर्यके सम्मुख पटबीजनेका प्रकाश नहीं हो सकता ॥ २ ॥

श्याम-तामरस-दाम--शरीरं ❋ जटा-मुकुट-परिधन-मुनिचीरं॥३॥
पाणि-चाप-शर--कटि--तूणीरं ❋ नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥४॥

श्याम कमलके समूहके समान आपका शरीर है, आप जटाओंका मुकुट और मुनिवस्त्र (भोजपत्रादि) धारण किये हो ॥ ३ ॥ हाथमें धनुष वाण, कमरमें तरकस ऐसे रघुनाथजी को निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

मोह-विपिन-घन दहन कृशानुः ❋ सन्त-सरोरुह-कानन-भानुः ॥५॥
निशिचर-करि-वरूथ मृगराजः ❋ त्रातु सदा नो भवखगबाजः ॥६॥

मोहरूपी गहन वनके जलानेको अग्नि हो और संतरूपी कमलवनके खिलानेको सूर्य हो ॥ ५ ॥ हाथीके समूहरूप राक्षसोंके मारनेको आप सिंह हो और संसाररूपी पक्षीके मारने को वाज हो, हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं ❋ सीता नयन चकोर निशेशं ॥७॥
हर-हृद मानस राज मरालं ❋ नौमि रामउर बाहु विशालं ॥८॥

कमलके समान लाल आपके नेत्र हैं सुन्दर वेष है सीताके नयनचकोरोंके आप पूर्ण चन्द्र हैं ॥ ७ ॥ शिवजीके हृदयरूपी मानसके आप हंसराज हैं, हृदय, बाहु आपका बड़ा विशाल है, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

संशय सर्प ग्रसन उरगादः ❋ शमन सुकर्कस तर्क विषादः ॥९॥
भय-भंजन रञ्जन सुर यूथः ❋ त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ॥१०॥

संशयरूपी सर्पके खानेको आप गरुड़ हैं और कठिन जो तर्कना तथा विषाद हैं उनके नाशक हो, कहीं 'सतर्क सुतर्क' पाठ हैं। अर्थ–ये जितने दुःख अन्तःकरणमें करते हैं और जो मनकी तर्कनाएँ हैं उनको शान्त करते हो ॥ ९ ॥ भयके नाश करनेवाले, देवता समूहको आनन्द देनेवाले, कृपाके सागर आप हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं ❋ ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥११॥
अमल अखिल-मनवद्यमपारं ❋ नौमि राम भंजन महिभारं ॥१२॥

आप निर्गुण विषम समान रूप हैं, आप ज्ञान गिरा (वाणी) इंद्रियोंसे परे अनूप (उपमारहित) निर्गुण ब्रह्मरूप योगियोंके ध्यान करने योग्य हैं; सगुणरूप जो धारण किये हैं सो विषमरूप दुष्टोंके निमित्त, समरूप सन्तोंके लिये अथवा आपका निर्गुण रूप एकरस रहता है और सगुणरूप विषम है कभी कैसा, कभी कैसा ये दोनों रूप ज्ञान, वाणी और इंद्रियोंसे परे हैं ॥ ११ ॥ आप मलरहित अखण्ड दोष रहित अनन्त हो पृथ्वीके भार दूर करने वाले आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

भक्त कल्प पादप आरामं ❋ तर्जन क्रोध लोभ मदकामं ॥१३॥
अति नागर भव सागर सेतुं ❋ त्रातु सदा दिनकर कुलकेतुं ॥१४॥

आप भक्तोंके मनोरथ सफल करनेको कल्पवृक्षके बाग हैं, आप क्रोध, लोभ, मद, कामको दुःख देनेवाले हो ॥ १३ ॥ आप भवसागरके सेतु बांधनेमें अति चतुर हो अर्थात् आपके नामसे प्राणी संसारसे पार हो जाते हैं, हे सूर्यकुलके ध्वजा ! आप मेरी रक्षा करो ॥ १४ ॥

अतुलित भुजप्रताप बल धामः ❋ कलिमलविपुलविभञ्जन नामः ॥१५॥
धर्म वर्म नर्मद गुण-ग्रामं ❋ सन्तत शं तनोतु मम रामं ॥१६॥

आपकी भुजाओंका अतुलित प्रताप है आप बलके धाम हो, आपका नाम विपुल कलिमलका नाश करने वाला है ॥ १५ ॥ आपके गुणोंका समूह धर्म कर्मका वर्म अर्थात् बख्तर है (नर्मद) कल्याण दाता है, हे रामजी ! आप मेरे निमित्त सदा शं (कल्याण) विस्तार करो ॥ १६ ॥

यदपि विरज व्यापक अविनाशी ❋ सबके हृदय निरंतर वासी ॥१७॥
तदपि अनुज सिय सहित खरारी ❋ बसहु मनसि मम कानन चारी॥१८॥

यद्यपि आप गुणातीत (अजन्मा) व्यापक अविनाशी; सबके हृदयमें निरन्तर वास करनेवाले हो ॥ १७ ॥ तो भी लक्ष्मण–जानकी सहित वनमें विचरनेवाले रघुनाथजी ! आप मेरे मनमें वास करो ॥ १८ ॥

जे जानहि ते जानहु स्वामी ❋ सगुण अगुण उर अन्तर्यामी॥१९॥

जो कोशलपति राजिवनयना ❋ करौ सो राम हृदय मम अयना॥२०॥

जो आपके सगुण निर्गुण रूपको जानते हैं वे जानें, आप सबके अन्तर्यामी हो ॥ १९ ॥ परंतु आप कौशलपति कमल नयन हैं अतः मेरे हृदयमें इसी रूपसे वास करें ॥ २० ॥

सोरठा-"मायावश जिमि जीव, रहहिं सदा सन्तत मगन ॥
तिमि लागहु मोहि प्रीय, करुणाकर सुन्दर सुखद" ॥ ८ ॥

हे करुणासागर सुन्दर सुखद ! जैसे मायाके वश जीव सदा मग्न रहता है, वैसे ही आप मुझे प्यारे लगो (यह क्षेपक है) ॥ ८ ॥

अस अभिमान जाय जनि भोरे ❋ मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥१॥
रामभक्ति तजि चह कल्याना ❋ सो नर अधम शृगाल समाना॥२॥

ऐसा अभिमान कभी भोरेपनसे भी न जाय कि मैं सेवक और रघुनाथजी स्वामी हैं ॥ १ ॥ जो रघुनाथजीकी भक्ति त्यागकर कल्याण चाहता है वह मनुष्य मूर्ख और शृगाल के समान है (यह चौपाई क्षेपक है) ॥ २ ॥

सुनि मुनि वचन राम मन भाये ❋ बहुरि हर्षि मुनिवर उर लाये ॥३॥
परम प्रसन्न जानि मुनि मोहीं ❋ जो वर माँगहु देहुं सो तोहीं ॥४॥

मुनिके वचन सुन रघुनाथजीके मनको भाये और फिर प्रसन्न हो मुनिको हृदयसे लगाया ॥ ३ ॥ और बोले-हे मुनि मुझे परम प्रसन्न जान जो वर मांगोगे वही मैं तुम्हें दूँगा ॥ ४ ॥

मुनि कह मैं वर कबहुँ न याचा ❋ समुझि न परै झूठ का साँचा ॥५॥
तुमहिं नीक लागे रघुराई ❋ सो मोहिं देहु दास सुखदाई ॥६॥

मुनि बोले मैंने कभी वर नहीं मांगा, जाना नहीं जाता क्या झूठ क्या सत्य है ॥ ५ ॥ हे दासोंके सुखदाता रघुनाथजी आपको जो अच्छा लगे वही मुझे दो ॥ ६ ॥

अविरल भक्ति विरत विज्ञाना ❋ होहु सकल गुणज्ञान निधाना ॥७॥
प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा ❋ अब सो देहु मोहिं जो भावा ॥८॥

रघुनाथजी बोले-तुम अखण्ड भक्ति, वैराग्य, विज्ञान युक्त हो, तुम सब गुण ज्ञानके घर हो ॥ ७ ॥ तब मुनि बोले-हे प्रभु ! आपने जो दिया वह तो मैंने पाया, अब वह दो जो मुझे अच्छा लगा है ॥ ८ ॥

दोहा-अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप-बाणधर राम ॥
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निष्काम ॥ ॥ १७ ॥

हे प्रभु ! लक्ष्मण जानकी सहित धनुष बाण धारण किये आप मेरे हृदयरूपी आकाशमें निष्प्रयोजन चन्द्रमाके समान वास करो ॥ १७ ॥

एवमस्तु कहि रमा निवासा ❋ हर्षि चले कुम्भज ऋषि पासा॥१॥
मुनि प्रणाम करि युग कर जोरी ❋ सुनहु नाथ कछु विनती मोरी॥२॥

'ऐसा ही होगा' यह कह लक्ष्मीपति रघुनाथजी प्रसन्न होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले ॥ १ ॥ मुनि प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर बोले नाथ ! कुछ मेरी विनती सुनो (क्षे०) ॥२॥

बहुत दिवस गुरु दरशन पाये * भये मोहिं इहि आश्रम आये ॥३॥
अब प्रभुसंग जाउँ गुरु पाहीं * तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं ॥४॥

गुरुके दर्शन पाये विना मुझे इस आश्रममें आये बहुत दिन बीत गये ॥ ३ ॥ अब आपके संग गुरुके पास जाऊँगा, हे स्वामी ! इसमें आपका निहोरा भी नहीं है ॥ ४ ॥

चले जात मग्र तव पद कंजा * देखिहौं जो विराधमदगंजा ॥५॥
देखि कृपानिधि मुनि--चतुराई * लिये संग बिहँसे दोउ भाई ॥६॥

मार्ग चले जाते आपके चरण कमलोंको देखता चलूँगा, जिन्होंने विराधका मदचूर्ण किया है (क्षे०)॥५॥ कृपा निधानने मुनिकी चतुरता देख साथ लिया और दोनों भाई हँसते चले। अथवा अगस्त्यजीने शिष्यसे कहा था कि तुम रघुनाथजीको हमारे आश्रममें लाना; इसीको हम गुरु-दक्षिणा मानेंगे, सो ऋषिके साथ चलनेमें वह बात पूरी होती देख चतुराई जान हँसे ॥ ६ ॥

पंथ कहत निज भक्ति अनूपा * मुनि आश्रम पहुँचे सुर भूपा ॥७॥
आश्रम देखि महाशुचि सुन्दर * सरित सरोवर हर्षित भूधर ॥८॥

मार्गमें अपनी श्रेष्ठ भक्तिको कहते हुए देवताओंके राजा राम मुनिके आश्रममें पहुँचे ॥ ७ ॥ (यहांसे क्षेपक है) महापवित्र सुन्दर आश्रम नदी तालाब पर्वत प्रसन्न हो सब देखा ॥ ८ ॥

जलचर थलचर जीव जहाँते * वैर न करहिं प्रीति सब राते ॥९॥

जलचर थलचर जितने जीव जन्तु थे वे परस्पर वैर नहीं करते सबकी प्रीति है ॥ ९ ॥

दोहा—तरुवर विविध विहंगमय, बोलत विविध प्रकार ॥
बसहिं सिद्ध मुनि तप करहिं,महिमा गुण आगार ॥ १८ ॥

सुन्दर वृक्ष बहुत प्रकारसे विहंगोंसे लसित हैं और अनेक प्रकारसे बोलते हैं, सिद्धि मुनि वहां रहते तप करते हैं महिमा और गुणका घर है (यहां तक क्षेपक है) ॥ १८ ॥

तुरत सुतीक्षण गुरु पहँ गयऊ * करि दंडवत कहत अस भयऊ॥१॥
नाथ कोशलाधीश-कुमारा * आये मिलन जगत आधारा ॥२॥

तुरन्त सुतीक्ष्ण गुरुके समीप गये दण्डवत् करके यह कहने लगे ॥ १ ॥ स्वामिन् ! अयोध्याके महाराजके कुमार जगत्के आधार आपसे मिलनेको आये हैं ॥ २ ॥

राम अनुज समेत वैदेही * निशिदिन देव जपतहहु जेही ॥३॥
सुनत अगस्त्य तुरत उठि धाये * हरिहि विलोकि नयन जल छाये॥४॥

वे ही रघुनाथजी लक्ष्मण जानकी समेत आये हैं, जिन्हें आप रात दिन जपते हैं ॥ ३ ॥ यह सुनकर अगस्त्यजी तुरंत उठकर दौड़े प्रभुको देखकर नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ४ ॥

मुनिपद कमल परे दोउ भाई * ऋषि अतिप्रीति लिये उर लाई॥५॥
सादर कुशल पूछि मुनि ज्ञानी * आसन पर बैठारे आनी ॥६॥

दोनों भाई मुनिके पदकमलमें पड़े, ऋषिने बड़ी प्रीतिसे हृदयसे लगा लिया ॥५॥ ज्ञानी मुनिने आदर पूर्वक कुशल पूछा और दोनों भ्राताओंको लाकर आसन पर बैठाया ॥ ६ ॥

पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा * मोहि सम भागवंत नहिं दूजा॥७॥

जहँ लगि रहे अपर मुनि वृन्दा * हर्षे सब विलोकि सुखकन्दा ॥८॥

फिर मुनि बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजाकर कहने लगे कि मेरे सामने कोई भाग्यवान् नहीं है ॥ ७ ॥ जहां तक और मुनि थे सब भगवान् को देखकर प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

दोहा-मुनि समूह महँ बैठ प्रभु, सम्मुख सबकी ओर ॥
शरद इंदु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर ॥ १९ ॥

मुनि समूहमें प्रभु बैठे थे, परन्तु मुख सबकी ओर था, मुनि लोग ऐसे देख रहे थे, जैसे शरदके चन्द्रमाको चकोरके समूह देखते हों। यह रघुनाथजीका रहस्य है कि चारों ओर मुनि बैठे हैं और आपका मुख सबके सन्मुख दीख पड़ता है ॥ १९ ॥

पाय सुथल जल हर्षित मीना * पारस पाय सुखी जिमि दीना॥१॥
प्रभुहिं निरखि सुख भा इहिं भाँती* चातक जिमि पाये जल स्वाती ॥२॥

जैसे सुन्दर जल पाकर मछली और पारस पत्थर पाकर दुःखी दरिद्र प्रसन्न होता है ॥१॥ प्रभुको देखकर मनुष्योंको इस प्रकार सुख हुआ, जैसे पपीहेको स्वातीके बूँद पानेसे होता है (ये दोनों चौपाई क्षेपक हैं) ॥ २ ॥

तब रघुवीर कहा मुनिपाहीं * तुमसन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥३॥
तुम जानहु जेहि कारण आयउँ * ताते तात न कहि समुझायउँ ॥४॥

तब रघुपतिजीने अगस्त्यजीसे कहा-महाराज ! तुमसे कुछ छिपा नहीं है ॥ ३ ॥ तुम जानते हो जिस कारण मैं आया हूँ-इस कारण हे प्रिय ! समझाकर नहीं कहा ॥ ४ ॥

अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही * जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ॥५॥
द्विजद्रोही न बचहिं मुनि राई *जिमि पङ्कजवन हिम ऋतु पाई॥६॥

प्रभु ! अब वह सम्मति दीजिए जिस प्रकार राक्षसोंको मारूँ ॥५॥ हे मुनिराज ! ब्राह्मणोंके द्रोही ऐसे नहीं बचेंगे जैसे जाड़ेका समय पाकर कमल वन नहीं बचता (क्षेपक) ॥६॥

मुनि मुसकाने सुनि प्रभु बानी * पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥७॥
तुमरेइ भजन प्रभाव अघारी * जानौं महिमा कछुक तुम्हारी॥८॥

मुनिराज प्रभुकी वाणी सुनकर मुसकाये और बोले नाथ ! आपने मुझसे क्या जानकर पूछा ॥ ७ ॥ हे पापके शत्रु ! आपके ही भजन प्रभावसे आपकी कुछ महिमा जानता हूँ ॥ ८ ॥

सोरठा-"भृकुटी निरखत नाथ, रहति सदा पद कमलतर ॥
रचि डारे निजहाथ, विविध विधाता सिद्ध हर" ॥ ९ ॥

हे नाथ ! आपकी माया सदा आपकी भृकुटि निहारती हुई पदकमलके तरे रहती है,जिससे अपने हाथसे अनेक प्रकार विधाता सिद्ध शिव बना दिये। (यह सोरठा क्षेपक है) ॥ ९ ॥

अति कराल सबपर जग जाना * औरौ कहौं सुनिय भगवाना ॥१॥
ऊमरि तरु विशाल तव माया * फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥२॥

हे भगवन् ! आपकी माया सब पर अति कराल है, यह जगत् जानता है, और भी

कहता हूँ सुनिये ! (यह क्षेपक है) ॥ १ ॥ आपकी सुन्दर माया गूलरके वृक्षके समान है, इसमें अनेक ब्रह्मांडरूपी फल लगे हैं ॥ २ ॥

जीव चराचर जन्तु समाना * भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥३॥
ते फलभक्षक कठिन कराला * तव भय डरत सदा सोउ काला ॥४॥

चराचर जीव इसमें जन्तुओंके समान भीतर वास करते हैं, और किसीको नहीं जानते बाहर क्या है ? ॥ ३ ॥ इन ब्रह्मांडरूपी फलोंका भक्षण करनेवाला कराल काल भी आपके भयसे सदा डरता है ॥ ४ ॥

ते तुम सकल लोकपति साईं * पूछेहु मोहिं मनुजकी नाईं ॥५॥
यह वर माँगउँ कृपानिकेता * बसहु हृदय सिय अनुज समेता॥६॥

हे स्वामी ! वही आप सब लोगोंके पति होकर मनुष्योंके समान हमसे पूछते हो ॥ ५ ॥ कृपासागर ! यह वरदान मांगता हूँ कि सीता अनुज समेत मेरे हृदयमें बसो ॥ ६ ॥

अविरल भक्ति विरति सतसंगा * चरण सरोरुह प्रीति अभंगा ॥७॥
यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता * अनुभवगम्य भजहिं जेहिं संता॥८॥

मुझे अविरल भक्ति वैराग्य सत्संग प्राप्त हो और आपके चरण कमलमें अखण्ड प्रीति हो॥७॥ यद्यपि ब्रह्म अखण्ड अनंत आप हो, अनुभवसे जाने जाते हो, जिसका संतजन भजन करते हैं॥८॥

अस तव रूप बखानौं जानौं *फिरि फिरि सगुण ब्रह्मरति मानौं ॥९॥

ऐसे आपके रूपको बखानता और जानता हूँ परंतु मेरी बारंबार सगुण ब्रह्ममें प्रीति हो ॥९॥

दोहा—जाहि जीव पर तव कृपा, संतत रहत हुलास ॥
तिनकी महिमा को कहै, जे अनन्य प्रियदास ॥ २० ॥

जिस जीवके ऊपर आपकी कृपा होती है, वह सदा प्रसन्न रहता है अतः उनकी महिमा कौन कहे ? जो आपके अनन्य प्रिय दास हैं (यह दोहा क्षेपक है) ॥ २० ॥

सन्तत दासन्ह देहु बड़ाई * ताते मोहि पूछेहु रघुराई ॥१॥
हे प्रभु परम मनोहर ठाऊँ * पावन पञ्चवटी तेहि नाऊँ ॥२॥

हे रघुराई ! आप सदा दासोंको बड़ाई देते हो इस कारण मुझे पूछते हो ॥ १ ॥ परम मनोहर पवित्र स्थान पंचवटी निकट ही है ॥ २ ॥

गोदावरी नदी तहँ बहई * चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई ॥३॥
दंडक वन पुनीत प्रभु करहू * ऊग्रशाप मुनिवरकर हरहू ॥४॥

---

१. शापकी कथा एक समय पञ्चवटीमें दुर्भिक्ष पड़ा तब मुनि आहारार्थ गौतमजीके पास गये, तब, गौतमजीने तपोबल से बहुत कालतक ऋषियोंका पालन किया, पश्चात् ऋषियोंने विचार किया कि अब जनस्थानको चलना चाहिये परंतु गौतमजीके भयसे न जा सके तब सबोंने छलकर एक मायाकी गौ बनाकर गौतमजीके धान्यागारमें छोड़ दी। गौतमजी जैसे हाथसे हटाने लगे हाथसे छूते ही वह मर गयी, तब सब मुनि इन्हें गो हत्याका दोष लगाकर जनस्थानको चले। पीछे गौतमजीने छल जानकर शाप दिया कि जिस बनके लोभसे तुमने छल किया वह वन भ्रष्ट हो जाय और वहां राक्षस वास करें। दूसरी कथा— राजा दंडकने अपनी गुरुपुत्रीसे उसकी इच्छा न रहने पर भी भोग करना विचारा, उसने अपने पिता भृगु मुनिसे कहा, तब मुनिने शाप दिया कि राजाका सब देश नष्ट हो जाय और धूरि बरसे ऋषि लोग वहांसे भाग कर जहां बसे वही स्थान जनस्थान कहलाया, रघुनाथजीके चरण आनेतक उसकी दुर्दशाकी अवधि थी, जब रघुनाथजी गये तब फिर फूल पत्ते लगे।

यहां गोदावरी नदी बहती है जो चारों युगमें प्रसिद्ध है वहाँ ही दंडकवन है ॥३॥ हे प्रभो! आप दंडकवनको पवित्र करिये और मुनिराजने जो कठिन शाप दिया उसे हरिये ॥ ४ ॥

वास करहु तहँ रघुकुल राया * कीजिय सकल मुनिनपर दाया ॥५॥
चले राम तब आयसु पाई * तुरतहिं पंचवटी नियराई ॥६॥

हे रघुनाथजी! वहां कुछ काल पर्यन्त वास करके सब मुनियों पर दया करो ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजी आज्ञा पाकर चले और पंचवटीमें शीघ्र ही पहुँच गये ॥ ६ ॥

दिव्य लता द्रुम प्रभु मन भाये * निरखि राम तेउ भये सुहाये ॥७॥
लषण राम सिय चरण निहारी * कानन अघ गा भा सुखकारी ॥८॥

रघुनाथजीको दिव्य लता और वृक्ष हृदयसे अच्छे लगे और वे भी प्रभुको देखकर सुहावने हो गये ॥ ७ ॥ लक्ष्मण, राम व सीताजीके चरणोंको देखते ही वनका शाप मिट गया और सुखकारी हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-गिद्धराज ते भेंट भइ, बहुविधि प्रीति बढ़ाइ ॥
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्ण गृह छाइ ॥ २१ ॥

गृद्धराजसे (जटायु) भेंट हुई और अनेक प्रकारसे प्रीति बढ़ी, तब गोदावरीके किनारे ही प्रभु पर्णशाला बनाकर रहने लगे (जटायुसे दशरथकी प्रीति थी रामचन्द्रजीके मिलनेसे वह और भी दृढ़ हो गयी) ॥ २१ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे आरण्यकाण्डान्तर्गत विद्यावारिधि-पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा-भक्ति ज्ञान वैराग्य युत, यहि तृतीय विश्राम ।
भई विरूपा राक्षसी, खरदूषण बध वाम ॥ ३ ॥

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा * सुखी भये मुनि बीती त्रासा ॥१॥
गिरि वन नदी ताल छबि छाये * दिन दिन प्रति अति होत सुहाये ॥२॥

जबसे रघुनाथजीने वहां निवास किया तबसे वहांके सब मुनि प्रसन्न हो गये, दुःख मिट गये ॥१॥ पर्वत, वन नदी और ताल छबिसे छा गये, प्रतिदिन अधिक सुन्दर होते जाते हैं ॥२॥

खग मृग वृन्द अनंदित रहहीं * मधुप मधुर गुञ्जत छबि लहहीं ॥३॥
सो वन वरणि न सक अहिराजा * जहाँ प्रगट रघुवीर विराजा ॥४॥

और खग मृगोंके समूह आनंदित रहते हैं भौंरे मधुर गुञ्जारते छबि पाते हैं ॥ ३ ॥ उस वनको शेषजी वर्णन नहीं कर सकते, जहां प्रगट होकर रघुनाथजी विराजते हैं ॥ ४ ॥

एक बार प्रभु सुख आसीना * लक्ष्मण वचन कहेउ छलहीना ॥५॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं * मैं पूछौं निज प्रभुकी नाईं ॥६॥

एकवार कहनेका भाव यह है कि कुछ वर्ष उपरांत लक्ष्मणजी रघुनाथजीसे ज्ञान विषयक प्रश्न छल रहित हो पूछने लगे। प्रश्न चार प्रकारके होते हैं एक तो विवादार्थ; जिसमें जीत हारका विचार हो सो तुच्छ है, द्वितीय वक्ता आदिकी परीक्षाके निमित्त सो कनिष्ठ है, तृतीय अपनी बुद्धि की चतुरता दिखानेके निमित्त सो मध्यम है, चतुर्थ संदेह निवृत्त्यर्थ सो उत्तम। लक्ष्मणजीने चतुर्थ

प्रश्न किया इसीसे छलहीन लिखा ॥५॥ हे देव, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी! अर्थात् यावत संसारके व्यवहार जानने वाले! आपसे मैं अपने स्वामीके समान जानकर पूछता हूँ॥६॥

मोहिं समुझाय कहो सोइ देवा * सब तजि करौं चरणरज-सेवा॥७॥
कहहु ज्ञान विराग अरु माया *कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया॥८॥

हे देव! मुझे समझाकर वही कहिये कि सब त्यागकर आपके चरणधूलिकी सेवा करूँ॥७॥ हे महाराज! मुझे ज्ञान वैराग्य तत्त्व और मायाका स्वरूप क्या है सो कहिये उस भक्तिका स्वरूप कहो, जिस भक्ति पर आपकी कृपा वा जिसके करनेसे आप भक्तोंपर कृपा करते हो॥८॥

दोहा-ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहो समुझाय ॥
जाते होय चरण रति, शोक मोह भ्रम जाय ॥ २२ ॥

हे प्रभो! ईश्वरजीवमें क्या भेद है? सो सब समझकर कहो; जिससे आपके चरणोंमें प्रीति हो; शोक मोह भ्रम जाता रहे (लक्ष्मणजी संदेह हीन हैं तो भी संसारके मनुष्योंके शोक और मोह दूर करनेको पूछा, रघुनाथजी बोले) ॥ २२ ॥

थोरे महँ सब कहौं बुझाई * सुनहु तात मतिमन चित लाई॥१॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया * जेहि वश कीन्हे जीव निकाया॥२॥

हे भाई! थोड़ेमें समझाकर कहता हूँ—तुम मति मन चित्त लगाकर सुनो, बुद्धि लगानेसे गूढ़ आशय शीघ्र ध्यानमें आता है इस कारण मन लगानेको कहा। लक्ष्मणका प्रश्न व्यतिक्रमसे है रघुनाथजी अनुक्रमसे कहते हैं॥१॥ देहमें अहंभाव, अपने पदार्थोंमें ममता तू और तेरा यही मायाका स्वरूप है; इसी मेरे तेरे ने ही सब चराचरको आधीन कर रखा है ॥२॥

गोगोचर जहँ लगि मन जाई * सो सब माया जानेहु भाई ॥३॥
तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ * विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥४॥

जो इंद्रियोंका विषय स्पष्ट है और इंद्रियोंके देवता और जहाँ तक मन जाता है वह सब माया है; पांच ज्ञानेंद्रिय, पांच कर्मेंद्रिय क्रमसे इनके देवता भी कहते हैं श्रवणके दिशा, त्वचाके वायु, नेत्रके सूर्य, जिह्वाके वरुण, नासिकाके अश्विनीकुमार, चरणके विष्णु, गुदाके यम, लिंगके दक्ष, हाथके इंद्र, मुखके अग्नि ये सब अपने विषयोंके भोग भोगते हैं ॥ ३ ॥ तुम सुनो उस प्रकृतिके दो भेद हैं एक विद्या दूसरी अविद्या है ॥ ४ ॥

एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा * जा वश जीव परा भव-कूपा ॥५॥
एक रचै जग गुण वश जाके * प्रभु प्रेरित नहिं निजबल ताके॥६॥

एक (अविद्या) दुष्ट और अधिक दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कूपमें गिरता है अर्थात् समस्त जगत् अविद्यासे भासता है ॥ ५ ॥ और एक अविद्या मायाको प्रभुकी प्रेरणासे जगत्को रचती है और जगत्के रचनेके गुण ब्रह्मके आधीन हैं अर्थात् मायाको स्वतः बल नहीं है ॥ ६ ॥

ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं * देखत ब्रह्म रूप सब-माहीं ॥७॥
कहिय तात सो परम विरागी * तृण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी॥८॥

ज्ञान उसको कहते हैं जहां वर्णाश्रमादिका कुछ भी अभिमान नहीं है सबमें समान ब्रह्मरूप

देखते हैं"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचन"यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, यहां नाना वस्तु कुछ नहीं ॥ ७ ॥ हे भाई ! रजोगुणसे ब्रह्माकी सिद्धि, सत्त्वगुणसे विष्णुकी सिद्धि, तमोगुणसे रुद्रकी सिद्धिको जो तृणके समान त्याग कर दे उसे परम वैरागी कहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–माया ईश न आपुकहँ, जान कहिय सो जीव ॥
बन्धमोक्षप्रद सर्वपर, माया प्रेरक सींव ॥ २३ ॥

इस दोहेमें द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत तीनों मत प्रकट हैं, अद्वैत इस प्रकार कि जबतक अपने को मायाईश अर्थात् मायाका पति (ईश्वर) नहीं जानता तबतक जीव कहलाता है और जब अपने को जान लिया तब बांधने छोड़नेवाला सबसे परे और मायाको आज्ञा देनेवाला और सींव अर्थात् मर्यादारूप हुआ। द्वैत यह है कि यह मायाको नहीं जानता; अपनेको और ईश्वरको जाना। विशिष्टाद्वैत यह कि रघुनाथजी लक्ष्मणसे कहते हैं, अपनेको मायाईश अर्थात् ईश्वरको न जाने, जीव जाने वा जो मायाईश और अपनेको नहीं जानता वह जीव है और जो बन्ध मोक्षका देनेवाला सबसे परे मायाका प्रेरक मर्यादायुक्त है वह ईश्वर है॥२३॥

धर्मते विरति योगते ज्ञाना * ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना ॥१॥
जाते वेगि द्रवौं मैं भाई * सो मम भक्ति भक्त-सुखदाई ॥२॥

स्वधर्मसे त्याग होता है और योगसे ज्ञान होता है, ज्ञानसे मोक्ष होता है, यह वेद कहता है ॥ १ ॥ और हे लक्ष्मण ! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होता हूँ सो मेरी भक्ति भक्तोंको सुखदायी है (ईश्वरमें अत्यन्त प्रेम करना भक्ति कहाती है) ॥ २ ॥

सो स्वतंत्र अवलंब न आना * तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥३॥
भक्ति तात अनुपम सुख मूला * मिलै जु संत होइ अनुकूला ॥४॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है उसमें किसीका अवलम्ब नहीं है और उसके आधीन ज्ञान विज्ञान हैं ॥ ३ ॥ हे भ्राता ! भक्ति अनुपम सुखका मूल है, परन्तु जो संत अनुकूल हों तो प्राप्त होती है॥४॥

भक्तिके साधन कहौं बखानी * सुगम पंथ मोहिं पाइय प्रानी ॥५॥
प्रथमहिं विप्रचरण अति प्रीती * निज निज धर्म निरति श्रुतिरीती॥६॥

उस भक्तिके साधन बनाकर कहता हूँ, जिस सुगम मार्गसे मुझे प्राणी पाते हैं॥५॥ प्रथम तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अतिप्रीति करनी और वेदानुसार अपने अपने धर्ममें प्रीति करनी ॥६॥

इहि कर फल पुनि विषय विरागा * तब मम चरण उपज अनुरागा॥७॥
श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाई * मम लीलारति मति अधिकाई ॥८॥

इसका फल यह है कि विषयोंमें विराग होना, तब मेरे चरणोंमें प्रीति उपजती है ॥७॥ श्रवणादिक नौ प्रकारकी भक्तिको दृढ़कर और मेरी लीलामें मति लगाकर प्रीति करे ॥ ८ ॥

सन्त चरण पंकज अति प्रेमा * मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा॥९॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा * सब मोहिं कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥१०॥

संतोंके चरणकमलोंमें बड़ा प्रेम करे, मन कर्म वचनसे दृढ़ नियमसे भजन करे ॥ ९ ॥ गुरु, पिता, माता बन्धु पति देवता सब मुझे ही जानकर दृढ़ सेवा करे ॥ १० ॥

मम गुण गावत पुलक शरीरा * गदगद गिरा नयन बह नीरा॥११॥

काम आदि मद दम्भ न जाके * तात निरंतर वश मैं ताके ॥१२॥

शरीर पुलकायमान हो मेरे ही गुण गावे गद्गद वाणी; नयनोंसे जल बहाता रहे ॥११॥ हे तात! जिसके काम आदि अहंकार पाखंड नहीं हैं; मैं सदा उसके वशमें हूँ ॥ १२ ॥

दोहा-वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहिं निष्काम ॥
तिनके हृदय-कमल महँ, करौं सदा विश्राम ॥ २४ ॥

वचन, कर्म, मनसे जिनको मेरी गति है, जो सदा निष्काम (कामना त्यागकर) मेरा भजन करते हैं, मैं उनके हृदयकमलमें सदा विश्राम करता हूँ ॥ २४ ॥

भक्तियोग सुनि अति सुख पावा * लक्ष्मण प्रभु चरणन शिरनावा ॥१॥
नाथ सुनत मम गत सन्देहा * भयउ ज्ञान उपजे नव नेहा ॥२॥

भक्तियोग सुनकर बहुत सुख पाकर लक्ष्मणने प्रभुके चरणोंमें शिर नवाया ॥१॥ और बोले हे नाथ! श्रवणमात्रसे ही मेरा सन्देह जाता रहा ज्ञान हो जानेसे नवीन स्नेह आपमें उत्पन्न हुआ॥२॥

अनुज वचन सुनि प्रभु मन भाये * हर्षि राम निज हृदय लगाये ॥३॥
इहि विधि गये कछुक दिन बीती * कहत विराग ज्ञान गुण नीती ॥४॥

लक्ष्मणजीके वचन प्रभुको अच्छे लगे रघुनाथजीने प्रसन्न हो हृदयसे लगाया (क्षेपक है) ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे ज्ञान वैराग्य गुण नीति कहते कहते कुछ समय भी बीत गया ॥ ४ ॥

शूर्पणखा रावणकी बहिनी * दुष्टहृदय दारुण जिमि अहिनी॥५॥
पंचवटी सो गइ इक वारा * देखि विकल भइ युगल कुमारा॥६॥

शूर्पणखा नामकी रावणकी विधवा बहिन दुष्ट स्वभाव कठिन, दौड़के काटने वाली सर्पिणीके समान थी ॥ ५ ॥ सो एक बार पंचवटीको गयी और कुमारोंको देखकर (कामसे) व्याकुल हो गयी ॥ ६ ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी * पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥७॥
होहि विकल सकु मनहि न रोकी*जिमि रविमणिद्रवरविहि विलोकी॥८॥

काकभुशुण्डजी कहते हैं-हे गरुड़ ! भ्राताके तुल्य सम अवस्था वाला वा पिताके तुल्य अधिक अवस्थावाला हो वा पुत्रतुल्य छोटी उमरवाला हो पुरुषकी मनोहरताई देखकर स्त्री ॥ ७ ॥ विकल हो पसीज जाती है अर्थात् मन नहीं रोकसकती, जैसे सूर्यकांत मणि सूर्यको देख द्रव जाती है उसमें आग निकलने लगती है वैसे ही शूर्पणखा महावृद्धा होकर भी राजपुत्रोंको देख मोहित हो गयी ॥ ८ ॥

दोहा-अधम निशाचरि कुटिल अति, चली करन उपहास ॥
सुनु खगेश भावी प्रबल, भा चह निशिचर-नाश ॥ २५ ॥

काकभुशुण्डजी बोले-हे गरुड़ ! सुनो, प्रथम तो नीच मति उसपर राक्षसी जिनके वधकी प्रभुकी प्रतिज्ञा है पुनः कुटिल उस पर भी ईश्वरसे हँसी करना यह दोष देख प्रभुने दंड दिया भावी प्रबलका आशय यह है कि इतने समय तक न आयी, अब वनवासकी अवधि अल्प कालकी रह गयी तो आयी, अब होनहारके वशसे कुलनाशक बुद्धि उपजी, क्योंकि राक्षसोंका नाश निकट आ गया है ॥ २५ ॥

रुचिर रूप धरि प्रभुपहँ आई ❋ बोली वचन मधुर मुसुकाई ॥१॥
तुमसन पुरुष न मोसम नारी ❋ यह सँयोग विधि रचा विचारी॥२॥

सुन्दर रूप धरकर रघुनाथजीके पास आयी और मधुर मुसुकान कर वचन बोली ॥१॥ तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान स्त्री जगत्में नहीं है,विधाताने यह संयोग विचारके रचा है राम समान रामही हैं और इन दुष्टोंके समान भी कोई कुटिल नहीं यह भाव है ॥२॥

मम अनुरूप पुरुष जगमाहीं ❋ देखेउँ खोज लोक तिहुँ नाहीं ॥३॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी ❋ मनमाना कछु तुमहिं निहारी ॥४॥

मेरे योग्य रूपवान् पुरुष जगत्में नहीं है, मैंने त्रिलोकी ढूँढ़ देखी ॥३॥इस कारण अबतक कुमारी रही कुछ तुम्हें देखकर मन माना है रघुनाथजीके प्रति'कुछ मनमाना'यह वचन कहा॥४॥

सीतहि चितै कही प्रभु बाता ❋ अहै कुमार मोर लघुभ्राता ॥५॥
गई लक्ष्मण रिपु भगिनी जानी ❋ प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥६॥

तब रघुनाथजी जानकी की ओर देखते हुए बोले, आशय कि जानकीजीकी ओर देखते रहे इससे यह बात जनायी कि तेरा मन कुछ माना है, हमारा मन रञ्चकमात्र भी नहीं माना अथवा उसने जो कहा था कि मुझसी नारी त्रिलोकमें नहीं है तो उसको जानकी को दिखाते हैं की ऐसी सुन्दरी तो तू है भी नहीं ! अथवा कहते हैं कि हमारे निकट तो स्त्री है परन्तु हमारे छोटे भाई कुमार हैं, कुमारपद प्रत्यक्षस्त्रीके अभावमें है अथवा रघुनाथजी जानते हैं कि यह राक्षसी है, छल करके मनोहर रूप धरे है इस कारण"शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्" इस न्यायसे हास्य पूर्वक लक्ष्मणको कुमार कहा । यदि वह कहे मैं कुलीन स्त्री हूँ आपको कुलीन जानके वरती हूँ उत्तरमें रघुनाथजी कहते हैं कि यह मेरे छोटे भाई हैं अथवा कुनाम पृथ्वीका है उस विषे यह मार अर्थात् कामदेवके समान सुन्दर हैं"मदनो मन्मथो मारः"यह अमरकोशमें लिखा है, रूपमें तेरे अनुरूप ही हैं अथवा यह कुमार खोटे पुरुषोंके मारनेवाले हैं,तू भी राक्षसी है सो उनके निकट जा और जानकीजीकी ओर देखनेका यह भी आशय है कि जानकीजी रावणकी इष्ट हैं उनका रुख देखते हैं कि रावणसे विरोध करें वा न करें, एक आशय हास्य का भी है कि देखो स्त्रीकी कैसी प्रकृति होती है॥५॥लक्ष्मणके निकट जैसे वह गई त्योंही वह जान गये कि यह शत्रुकी भगिनी है, क्योंकि राक्षसोंकी गति ऐसी हो कि चाहे जहाँ जाते हैं कामचारी होते हैं; यह राक्षसी होनेसे त्रिलोकमें घूम आयी, सो लक्ष्मणने रघुनाथजीका मन हास्य पर जानकर मृदु वचन कहा ॥ ६ ॥

सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा ❋ पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥७॥
प्रभु समर्थ कौशलपुर राजा ❋जो कछुकरहिं उन्हहिं सबछाजा॥८॥

हे सुन्दरि ! सुन, मैं उनका दास हूँ, पराधीन हूँ तेरे योग्य नहीं हूँ ॥ ७ ॥ प्रभु समर्थ हैं कोशलपुरके राजा हैं जो करें उन्हें सब सोहता है, अर्थात् कोशलपुरके राजा दशरथके ६६० रानी हैं उन्हींके स्थानपर ये हैं इन्हें दो ब्याह करना क्या बड़ी बात है ? अथवा राजा समर्थ होते हैं जिस स्त्रीको चाहे विना जाति कुल जाने स्वीकार कर लें और दूसरा ऐसा करे तो जातिभ्रष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

दोहा-केहरि सम नहिं करिवर, लवा कि बाज समान ॥
प्रभु सेवक इमि जानहुँ, मानहुँ वचन प्रमान ॥ २६ ॥

जैसे सिंहके समान श्रेष्ठ हाथी नहीं होता। चिड़िया बाज समान नहीं होती; ऐसे मुझे प्रभु सेवक जानकर वचन प्रमाण मान, अर्थात् मुझे तेरे साथ व्याह करनेको सामर्थ्य नहीं है (यह दोहा क्षेपक है)॥ २६ ॥

सेवक सुख चह मान भिखारी ❋ व्यसनी धन शुभगति व्यभिचारी॥१॥
लोभी यश चह चारु गुमानी ❋ नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥२॥

सेवकको सुख चाहना, भिखारीको मान चाहना, व्यसनीको धन चाहना, व्यभिचारीको शुभ गतिकी इच्छा ॥१॥ लोभीको यश चाहना, गुमानीको शोभाकी इच्छा करनी ऐसी है कि जैसे कोई आकाश दुहकर दूध चाहता है इस कारण मुझसे विवाह कर सुख न मिलेगा ॥२॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई ❋ प्रभु लक्ष्मण पहँ बहुरि पठाई ॥३॥
लक्ष्मण कहा तोहि सो बरई ❋ जो तृण तोरि लाज परिहरई ॥४॥

यह सुनकर वह फिर रघुनाथजीके पास आयी, प्रभुने लक्ष्मणजीके पास भेज दिया ॥३॥ लक्ष्मणजीने कहा—तुझे वही वरेगा जो तिनकेकी नाई लाज त्याग देगा ॥ ४ ॥

तब खिसियानि रामपहँ गई ❋ रूप भयंकर प्रगटत भई ॥५॥
बिथुरे केश रदन विकराला ❋ भ्रुकुटी कुटिल कर्णलगि गाला॥६॥

तब खिसियाकर रघुनाथजीके पास गयी और भयंकर रूप प्रकट करती भयी, मानों खाने को दौड़ी ॥ ५ ॥ केश बिखरे हुए; बिकराल दांत टेढी भौंह, गालतक लम्बायमान कान ॥६॥

सीतहि सभय देखि रघुराई ❋ कहा अनुजसन सैन बुझाई ॥७॥
अनुज राममनकी गति जानी ❋ उठे रिसाय सो सुनो भवानी ॥८॥

उसे देखकर सीताजी डर गयीं, तब रघुनाथजी उसे देखकर सैनसे बुझाकर लक्ष्मणजीसे कहा। बरवा रामायणमें लिखा है,—"वेद नाम गनि अँगुरिन खण्ड अकाश। शूर्पणखा प्रभु पठयी लक्ष्मण पास ॥" रघुनाथजीने चार अँगुली आकाशको उठाकर लक्ष्मणजीको सैनकी, आशय यह कि वेदसे चारका बोध होता है-वेद श्रुतिको भी कहते हैं और श्रुतिका अर्थ कान है चार अँगुली उठानेसे कान, आकाशकी ओर करनेसे नाकका बोध होता है, क्योंकि ऊपर स्वर्ग है और "स्वरव्ययं स्वर्गनाक-" इत्यमरः। इस प्रकार नाकका बोध हुआ और झटका देकर खण्ड आकाश करनेका भाव यह है कि काट डालो ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! सुनो ? अनुज (लक्ष्मण) जीने रघुनाथजीके मनकी गति जानी, तब तत्काल क्रोधकर उठे ॥ ८ ॥

दोहा-लक्ष्मण अति लाघव तेहि, नाक कान बिनु कीन्ह ॥
ताके कर रावण कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्ह ॥ २७ ॥

लक्ष्मणजीने अति शीघ्रता से उसके नाक और कान काट डाले उसके हाथसे मानों रावण को चुनौती दी ॥ २७ ॥

नाक कान विनु भइ विकरारा ❋ जनु स्रव सैल गेरुकै धारा ॥१॥
खर दूषण पहँ गइ बिलखाता ❋ धिक धिक तव पौरुष बलभ्राता॥२॥

वह नाक कानके विना विकराल हो गयी, ऐसा रुधिर बहा कि मानो गेरुकी धारा बहती है ॥ १ ॥ खरदूषणके निकट व्याकुल हो गई और बोली हे भाई ! तेरे बल और पुरुषार्थको धिक्कार है ॥ २ ॥

तेइँ पूछा सब कहेसि बुझाई ❁ यातुधान सुनि सेन बनाई ॥३॥
चौदह सहस सुभट संग लीन्हे ❁ जिन सपनेहु रण पीठि न दीन्हे॥४॥

उसने पूछा-क्या हुआ ? शूर्पणखाने सब समाचार समझाकर कहा, तब यातुधान (राक्षस) ने सुनकर सेना बनाई ॥ ३ ॥ खरदूषणने चौदह सहस्र ऐसे राक्षस संग लिये जिन्होंने स्वप्नमें भी लड़ाईमें पीठ नहीं दिखाई (यहांसे क्षेपक है) ॥ ४ ॥

धाये निशिचर-निकर वरूथा ❁ जनु सपक्ष कज्जल गिरि यूथा ॥५॥
नाना वाहन नानाकारा ❁ नानायुधधर घोर अपारा ॥६॥

राक्षसोंके समूह ऐसे दौड़े मानों पंखवाले काले २ पर्वत-समूह दौड़ते हैं ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारके वाहन, अनेक प्रकारके आकार, अनेक प्रकारके घोर आयुध धारण किये हुए ॥६॥

श्याम घटा देखत नभ केरी ❁ वासवधनु तहँ मनहुँ उगेरी ॥७॥
शूर्पणखहि आगे करि लीन्ही ❁ अशुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥८॥

राक्षसोंके आनेसे आकाशमें श्याम घटा सी उदय हो गई, अनेक प्रकारके वस्त्र अस्त्रादि मानों इन्द्र धनुष उदय हुआ। (यहां तक क्षेपक है) ॥ ७ ॥ शूर्पणखाको आगे कर लिया जो अशुभरूप नाक कानसे हीन है, वह अमङ्गल-सूचक आगे की ॥ ८ ॥

दोहा-निज निज बल सब मिलि कहहिं, एकहिं एक सुनाय ॥
बाजन बाज जुझाऊ, हर्ष न हृदय समाय ॥ २८ ॥

अपना अपना बल राक्षस मिलकर कहते हैं, कि एकको एक सुनाते हैं जुझाऊ बाजे बजने लगे प्रसन्नता हृदयमें नहीं समाती ॥ २८ ॥

अशकुन अमित होहिं भयकारी ❁ गनहिं न मृत्यु विवश सब झारी॥१॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं ❁ देखि कटक भट अति हर्षाहीं॥२॥

उस समय अनेक भयदायक अशकुन होने लगे, परन्तु राक्षस मृत्युके वशमें हो रहे थे, इस कारण गिनते नहीं थे ॥ १ ॥ कोई गर्जते, कोई आकाशमें उड़ते कटकको देखकर योद्धा बड़े प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

कोउ कह जियत धरहु दोउ भाई ❁ धरि मारहु तिय लेहु छुड़ाई ॥३॥
कोउ कह सुनहु सत्य हम कहहीं ❁कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं॥४॥

कोई कहने लगे-दोनों भाइयोंको जीता ही पकड़ लो, कोई बोले-इन्हें मारके स्त्री छीन लो ॥ ३ ॥ कोई बोले-भाई ! हम सत्य कहते हैं, ये वनमें घूमते हैं अतःनिश्चय कोई वीर हैं ॥४॥

एकै कहा मिष्ट है रहहू ❁ खरके आगे अस जनि कहहू ॥५॥
बहु विधि कहत वचन रण धीरा ❁ आये सकल जहां रघुवीरा ॥६॥

एक बोले चुप हो जाओ, खरके आगे ऐसा मत कहो ॥ ५ ॥ वे सब रणधीर इस प्रकार वचन कहते हैं जहां रघुनाथजी थे वहां आये (यह दोनों क्षेपक हैं) ॥ ६ ॥

धूरि पूरि नभ मण्डल रहेऊ * राम बुलाइ अनुज सन कहेऊ ॥७॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कन्दर * आवा निशिचर कटक भयंकर॥८॥

आकाशमंडल धूरि पूर्ण देखकर रघुनाथजीने लक्ष्मणको बुलाकर कहा ॥७॥ जानकीजीको लेकर पर्वतकी कंदरामें चले जाओ क्योंकि राक्षसोंका भयंकर कटक आता है ॥ ८ ॥

रहेउ सजग सुनि प्रभुकी बानी * चले सहित सिय शरधनुपानी॥९॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा *विहँसि कठिन कोदण्ड चढ़ावा॥१०॥

और सावधान रहना प्रभुकी वाणी सुन लक्ष्मण हाथमें धनुष बाण ले जानकी सहित चले ॥९॥जब रामजीने देखा शत्रुओंका दल चला आता है तब हँसकर कठिन धनुष बाण चढ़ाया॥१०॥

छन्द–कोदण्ड कठिनचढ़ाय प्रभु, शिर जटा बांधत सोह क्यों ॥
मरकत शैलपर लसित दामिनि कोटिसों युगभुजग ज्यों ॥
कटि कसि निषंग विशालभुज गहि चाप विशिख सुधारिकै॥
चितवत मनहु मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारिकै ॥१०॥

कठिन धनुष चढ़ाकर, प्रभुने शिरकी जटा कसकर बांधी उस समय ऐसे शोभित हुए; मानो मरकत अर्थात् श्याममणिके शैल पर करोड़ों बिजली चमकती हैं और दोनों हाथों से जो बालोंको बांधते हैं, वे मानो दो सर्प लिपटे हैं। कमरमें तरकस कसे, बड़ी भुजा-ओंसे बाण और धनुष सुधारके सिंहके समान प्रभु राक्षसोंकी घटाओंको हाथीके समान देखने लगे ॥ १० ॥

सोरठा–आय गये बगमेल, धरहु धरहु धाये सुभट ॥
यथा विलोकि अकेल,बाल रविहि घेरत दनुज ॥ १० ॥

चारों ओरसे राक्षस सवार आ गये। बाग ढीली कर दीं और 'पकड़ लो पकड़ लो' कह कर योद्धा दौड़े और इस प्रकार रामचन्द्रजीको घेर लिया; जैसे प्रातःकालके सूर्यको अकेला जानकर दैत्य घेर लेते हैं। यह सूर्य घेरनेवाले मन्देहा नामक राक्षस सन्ध्या करके दिये ब्राह्मणोंके जलसे ताड़ित सूर्यको त्याग देते हैं ॥ १० ॥

घेरि रहे निशिचर-समुदाई * दंडक खग मृग चले पराई ॥१॥
प्रभु विलोकि शर सकहिं न डारी * थकित भई रचनीचर धारी ॥२॥

राक्षसोंके समूहने आकर रामचन्द्रको घेर लिया; तब दंडकवनके खग मृग भाग चले (यह क्षेपक है) ॥ १ ॥ प्रभुको देखकर बाण नहीं छोड़ सकते, तब राक्षस रामचन्द्रजीका रूप देखकर थकित हो गये ॥ २ ॥

सचिव बोलि बोले खर दूषण *यह कोई नृप बालक नर भूषण॥३॥
सुर नर नाग असुर मुनि जेते * देखे जिते हते हम केते ॥४॥

मन्त्रीको बुलाकर खरदूषण बोले–ये कोई मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजकुमार हैं ॥ ३ ॥ सुर, नर, नाग, असुर मुनि जितने हैं वे कितने एक हमने देखे और मारे हैं परंतु ॥ ४ ॥

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई ❋ देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥५॥
यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा ❋ बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥६॥

भाई अपने जन्ममें तो हमने ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी ॥ ५ ॥ यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप किया है, परंतु तो भी यह अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

देहि तुरत निज नारि दुराई ❋ जीवत भवन जाहिं दोउ भाई ॥७॥
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु ❋ तासु वचन सुनि आतुर आवहु॥८॥

किंतु अपनी स्त्रीको हमे शीघ्र दे दें जो छिपाई है और जीते हुए दोनों भाई अपने घर जायँ ॥ ७ ॥ यह मेरा कहना तुम उसे सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र आओ ॥ ८ ॥

दोहा-भये कालवश मूढ़ सब, नहिं जानहिं रघुबीर ॥
मशक फूंक किमि मेरु उड़, सुनहु गरुड़ मतिधीर ॥ २९ ॥

वे सब मूर्ख कालके वश होकर रघुनाथजीके प्रभावको नहीं जानते । काकभुशुण्डजी कहते हैं हे मतिधीर गरुड़जी ! क्या कहीं मच्छरकी फूँकसे सुमेरु पर्वत उड़ता है(यह क्षेपक है) ॥२९॥

दूतन कहा रामसन जाई ❋ सुनत राम बोले मुसुकाई ॥१॥
आज भयउ बड़ भाग्य हमारा❋ तुम्हरे प्रभु अस कीन्ह बिचारा ॥२॥

दूतोंने सब वृत्तांत रघुनाथजीसे कहा, तब रघुनाथजी सुनकर हँसकर बोले ॥ १ ॥ आज हमारा बड़ा भाग्य हुआ जो तुम्हारे प्रभुने ऐसी नीतिका विचार किया; परन्तु ॥ २ ॥

हम क्षत्री मृगया बन करहीं ❋ तुमसे खलमृग खोजत फिरहीं ॥३॥
रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं ❋ एक बार कालहुसन लरहीं ॥४॥

हम क्षत्रिय वनमें मृगया (शिकार) करते हैं तुमसे खल मृगोंको ढूँढ़ते फिरते हैं यह अपने स्वामीसे कह देना ॥ ३ ॥ हम बलवान् शत्रुको देखकर नहीं डरते, यदि काल सम्मुख आवे तो उससे भी एक बार लड़ें ॥ ४ ॥

यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक ❋ मुनिपालकखलशालकबालक ॥५॥
जौं न होय बल घर फिरि जाहू ❋ समर विमुख मैं हतौं न काहू ॥६॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं परंतु राक्षसोंके मारनेवाले मुनियोंके पालक दुष्टोंका वध करनेवाले हैं अथवा हम राक्षसोंके मारनेवाले बालक हैं अथवा अरे बालको अर्थात् मूर्खो ! ॥५॥परंतु जो तुममें बल न हो तो घरको चले जाओ, मैं समरसे विमुख हुये किसीको नहीं मारता ॥ ६ ॥

रण चढ़ि करिय कपट चतुराई ❋ रिपुपर कृपा परम कदराई ॥७॥
दूतन जाय तुरत अस कहेऊ ❋सुनि खरदूषण उर अति दहेऊ ॥८॥

रे नीचो ! युद्धके निमित्त चढ़कर आना और कपटकी चतुरताकर अपनेको दयालु दिखाना नहीं बनता, शत्रुपर कृपा करनी कायरता है ॥ ७ ॥ दूतोंने जाकर तुरन्त यह सब कुछ कह दिया सुनकर खरदूषणका हृदय अति क्रोधसे जल उठा ॥ ८ ॥

छन्द-उर दहेउ कहेउ धरहु धावहु विकट भट रजनीचरा ।
शर-चाप तोमर-शक्तिशूल-कृपाण-परिघपरशुधरा ॥

प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।
भये बधिर व्याकुल यातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा ॥ ११ ॥

जब हृदय क्रोधसे जल उठा तब कहा हे राक्षसो ! इन्हें पकड़ो, ऐसा कह दौड़े जो शर चाप तोमर शक्ति शूल (त्रिशूल), परिघ (लंबा शस्त्र) कृपाण (तलवार) और परशु धारण किये हैं देखकर प्रभुने प्रथम धनुष टंकोर किया, जिसका भयकारी कठिन महाशब्द पूर्ण हो गया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे हो उस समय ज्ञानशून्य हो गये ॥ ११ ॥

दोहा–सावधान ह्वै धाये, जानि सबल आराति ॥
लागे वर्षन राम पर, अस्त्र शस्त्र बहु भाँति ॥ ३० ॥

तब वे रघुनाथजीको प्रबल शत्रु जानकर सावधान होकर दौड़े और रघुनाथजी पर अनेक प्रकारके अस्त्र, शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३० ॥

दोहा–तिनके आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर ॥
तानि शरासन श्रवण लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥ ३१ ॥

रघुनाथजीने उनके आयुध तिलके समान करके काट दिये और फिर कर्णपर्यन्त धनुष तान कर अपने तीर छोड़े ॥ ३१ ॥

तोमर छन्द–तब चले बाण कराल । फुँकरत जनु बहु व्याल ॥
कोपे समर श्रीराम । चले विशिखनिशितनिकाम ॥
अवलोकि खरतरतीर । मुरि चले निशिचर वीर ॥
इक एकको न सम्हार । करे तात भ्रात पुकार ॥ १२ ॥

तब बड़े तीक्ष्ण बाण चले, मानो बहुत सर्प फुंकारते आते हैं, जब समरमें श्रीरघुनाथजी कुपित हुए तब अत्यन्त चोखे बाण चले । अथवा राक्षसोंको निकाम पदवी देने चले अति वेगवान् बाण देखकर वीर राक्षसोंका मुख फिर गया, एक एकको सँभार नहीं रही तात और भ्राताको पुकारने लगे ॥ १२ ॥

छन्द–कोउ कहै खर का कीन्ह । जो युद्ध इन सन लीन्ह ॥
जाको बाण अतिहि कराल । ग्रसे आय मानहु काल ॥
भये क्रुद्ध तीनिहु भाइ । जो भागि रण ते जाइ ॥
तेहि बधब हम निज-पानि । फिर मरण-मनमहँ ठानि ॥ १३ ॥

कोई बोला–खरने क्या किया जो इनसे लड़ाई ली ! जिनके कालके समान अतितीक्ष्ण बाण आकर ग्रसते हैं तब (खरदूषण त्रिशिरा) तीनों भाई क्रोधकर कहने लगे, जो लड़ाईसे भाग जायगा उसे हम अपने हाथोंसे मार डालेंगे । फिर वे राक्षस मनमें मरण ठान युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

दोहा–उमा एक निज प्रभुहि वश, पुनि उनके बड़ भाग ॥
तरन चहहिं प्रभुशर लगे, विना योग जप याग ॥ ३२ ॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! एक तो वे अपने स्वामीके वश, फिर इनके बड़े भाग्य, जो प्रभुके शर लगनेसे विना योग, जप, यज्ञके तरना चाहते हैं । (यह क्षेपक) ॥ ३२ ॥

छन्द-आयुध अनेक प्रकार। सन्मुखते करहिं प्रहार॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष शर संधानि॥
छाडे विपुल नाराच। लगे कटन विकट पिशाच॥
उरशीशकर भुज चरण। जहँ तहँ लगे महि परन॥ १४॥

सम्मुख हो अनेक प्रकारके आयुध वे राक्षस मारने लगे तब रघुनाथजीने शत्रुओंको अधिक क्रोधित हुए जानकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाया, बहुत बाण छोड़े जिससे विकट राक्षस कटने लगे; शिर, भुजा, चरण जहाँ-तहाँ पृथ्वीमें गिरने लगे॥ १४॥

छन्द-चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥
भट कटत तनु शतखण्ड। पुनि उठत करि पाखण्ड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुण्ड॥
खग कंक काक शृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥ १५॥

बाणके लगते ही चिक्कार करते हैं पहाड़के समान पृथ्वीमें धड़ गिरते हैं यद्यपि उनके शरीर सौ खंड हो जाते हैं किंतु फिर उठकर पाखंड करने लगते हैं, क्योंकि उनकी मृत्यु किसीके हाथसे नहीं थी परस्पर थी,आकाशमें अनेक भुजाएँ शिर बाणोंमें लगे उड़ते हैं विना शिरके रुण्ड दौड़ते हैं, पक्षी बड़े छोटे काक और गिद्धादिक महा कटकट शब्द कर(आमिष खाते हैं)॥१५॥

छन्द-कटकटहिं जम्बुक भूत प्रेत पिशाच खप्पर संचहीं॥
वैताल वीर कपाल ताल बजाय योगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बाण प्रचण्ड खण्डहिं भटनके भुजउर शिरा॥
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु करहिं भयकारणि गिरा॥१६॥

गीदड़ कटकट शब्द करते हैं, भूत पिशाच खप्पर भरते, वैताल वीर खोपड़ी बजाते हैं और योगिनी नाचती हैं, रघुनाथजीके प्रचंड बाण राक्षसोंके भुजा, हृदय शिर काटते हैं सो जहाँ तहां गिरकर फिर उठ लड़ने लगते हैं और ''धरो पकड़ो'' ऐसी भयंकर वाणी बोलते हैं॥१६॥

छन्द- अंत्रावली लै उड़त गीध पिशाच कर गहि धावहीं॥
संग्राम पुरवासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥
मारे पछारे उर विदारे विपुल भट कहरत परे॥
अवलोकि निजदल विकट भट त्रिशिरादि खर दूषण फिरे॥ १७॥

गीध आंतोंको लेकर उड़ते, पिशाच नीचे हाथ पकड़ कर दौड़ते हैं सो ऐसा विदित होता है मानो संग्रामपुरके अनेक बालक गुडी अर्थात् कनकैया,-पतंग उड़ाते हैं, मारे पछाड़े हुए बहुतसे योद्धा पड़े कराहते हैं। तब विकट योद्धाओंका अपना दल व्याकुल देखकर खर-दूषण और त्रिशिरा लौटे॥ १७॥

छन्द-शर शक्ति तोमर परशु शूल कृपान एकहि बारहीं॥
करि कोप श्रीरघुवीर पर अगणित निशाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महँ रिपु शर निवारि प्रचारि डारे सायका॥

दशदश विशिख उर माझँ मारे, सकल निशिचर नायका ॥१८॥

बाण, शक्ति, तोमर परशु त्रिशूल तलवार एक ही बार क्रोध करके अगणित राक्षस प्रभुपर डालने लगे, रघुनाथजीने पलमात्रमें शत्रुओंके बाण निवारण कर अपने बाण छोड़े और सब राक्षसोंके हृदयमें दश दश बाण मारे ॥ १८ ॥

छन्द-महि परत पुनि उठि भिरत मरत न करत माया अतिघनी ॥
सुर डरत चौदह सहस निशिचर देखि इक कोशलधनी ॥
सुरमुनि सभय प्रभुदेखि मायानाथ अति कौतुक करयो ॥
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो ॥१९॥

राक्षस पृथ्वीमें गिरते हैं फिर उठकर लड़ते हैं, मरते नहीं, बड़ी गम्भीर माया करते हैं देवता डरते हैं कि चौदह सहस्र निशाचर, अकेले रघुनाथजी हैं तब देवता मुनियोंको भयभीत देख श्रीरामचन्द्रजीने जो मायाके पति हैं विचित्र कौतुक किया कि सब राक्षसोंके रामरूप हो गये, तब वे एक दूसरेको राम जानकर परस्पर मारने लगे, रघुनाथजी तो देखते ही रहे और शत्रुदल परस्पर संग्राम कर लड़ मरा। कहीं-"सुर डरत चौदह सहस प्रेत विलोकि इक अवध धनी" पाठ है ॥ १९ ॥

दोहा-राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान ॥
करि उपाय रिपु मारेउ, क्षण महँ कृपानिधान ॥ ३३ ॥

राक्षसगण राम राम कहकर शरीर त्यागते और मुक्ति पाते हैं, इस प्रकार कृपानिधानने उपाय करके क्षणमात्रमें शत्रुओंको मार डाला ॥ ३३ ॥

दोहा-हर्षित बर्षहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निशान ॥
अस्तुति करि करि सब चले, शोभित विविध विमान ॥ ३४ ॥

प्रसन्न होकर देवता फूल वर्षाते हैं, आकाशमें नगाड़े बजते हैं अनेक विमानोंमें शोभायमान सब देवता स्तुति करके अपने-अपने स्थानको चले ॥ ३४ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद-निवासि पं० सुखानन्द मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां आरण्यकाण्डान्तर्गत खरदूषणवधो नाम तृतीयो विश्रामः ॥ ३ ॥

दोहा-यहि चतुर्थ विश्राममें, जेहि विधि वध मारीच ॥
जनकसुताको हरण जिमि, कियो दशानन नीच ॥ ४ ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते * सुर नर मुनि सबके भय बीते ॥१॥
तब लक्ष्मण सीतहि लै आये * प्रभु पद परत हर्षि उर लाये ॥२॥

जब रघुनाथजीने समरमें शत्रुओंको जीता तब सुर नर मुनि सबके भय दूर हो गये। सब जान गये कि अब विरोध हो गया, रघुनाथजी रावणको निश्चय मारेंगे॥१॥तब लक्ष्मण जानकीको ले आये और प्रभुके चरणोंमें पड़े कि उन्होंने उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

सीता चितव श्याम मृदु गाता * परम प्रेम लोचन न अघाता ॥३॥
पंचवटी वसि श्रीरघुनायक * करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥४॥

सीता श्याम सुन्दर कोमल गात देखकर परम प्रेममें भर गयीं नेत्र नहीं अघाते, राक्षसोंके युद्धके समय तप्त हो गयी थीं, सो अब विजयसे शीतल हो गयीं इससे सीता कहा ॥ ३ ॥ पंचवटीमें वास करते श्रीरघुनाथजी सुर मुनियोंके सुखदायक चरित्र करते रहे ॥ ४ ॥

धुआँ देखि खर दूषण केरा * जाइ सुर्पनखा रावण प्रेरा ॥५॥
बोली वचन क्रोध कर भारी * देश कोशकी सुरति बिसारी ॥६॥

खरदूषणकी मृत्यु देखकर वा बाणोंसे जलनेका धुआँ देखकर शूर्पणखाने रावणको प्रेरणा की ॥ ५ ॥ और बड़ा क्रोध करके कहने लगी-तुमने राजमर्यादा, कोश और अपने देश (पंचवटी) की सुरति बिसरा दी ॥ ६ ॥

करसि पान सोवसि दिनराती * सुधि नहिं तव शिरपर आराती॥७॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा * हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥८॥

मदपान करके दिन रात सोता है,खबर नहीं तेरे शिर पर शत्रु आ गया॥७॥विना नीतिके राज्यका, विना धर्मके धनका, हरिको अर्पण किये विना सत्कर्मका ॥ ८ ॥

विद्या विनु विवेक उपजाये * श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥९॥
संगते यती कुमन्त्रते राजा * मानते ज्ञान पानते लाजा ॥१०॥

विना विवेक विद्याका फल श्रममात्र है अर्थात् जो विद्या पढ़नेमें दुःख हुआ वही फल है और सत्कर्म करनेमें जो दुःख हुआ वही उसका फल है और जो राजधन कमानेमें दुःख हुआ वही उसका फल है; इससे विवेक रखना चाहिये ॥९॥ संगसे संन्यासीका नाश, खोटे मन्त्रसे राजाका नाश, मानसे ज्ञानका नाश और मदपानसे लाजका नाश होता है ॥ १० ॥

प्रीति प्रणय बिनु मदते गुनी * नाशहि वेगि नीति असिसुनी॥११॥

प्रणय अर्थात् नम्रता विना प्रीतिका, अहंकारसे गुणका नाश तत्काल हो जाता है, ऐसा नीतिमें भी सुना जाता है ॥ ११ ॥

सोरठा-रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि ॥
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन ॥११॥

हे रावण ! शत्रु रोग अग्नि पाप और सांपको छोटा मत जानो ये प्रबल होकर दुःसाध्य हो जाते हैं; यह कह अनेक विलाप कर रोने लगी ॥ ११ ॥

दोहा-सभा माँझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कहि रोय ॥
तोहि जियत दशकंधर, मोरि कि असि गति होय ॥ ३५ ॥

सभाके बीच व्याकुल हो गिर पड़ी और बहुत प्रकारसे रोकर कहने लगी-हे दशशीश ! तेरे जीते ही मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिये ? ॥ ३५ ॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई * समुझाई गहि बाँह उठाई ॥१॥
कह लंकेश कहसि किन बाता * किन तव नाशा कान निपाता॥२॥

सुनकर सभासद(सभाकेबैठनेवाले)व्याकुल हो उठे और बांह पकड़ उठाकर उसे समझाया ॥१॥ रावण बोला वह बात क्यों नहीं कहती, तेरे नाक कान किसने काटे ? तब शूर्पनखा बोली ॥२॥

अवध नृपति दशरथके जाये * पुरुषसिंह वन खेलन आये ॥३॥
समुझि परी मोहि उनकी करणी * रहित निशाचर करिहैं धरणी ॥४॥

अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र पुरुषोंमें सिंह उत्पन्न हुए हैं और वनमें खेलनेको आये हैं ॥ ३ ॥ अब मुझे उनकी करणी समझ पड़ी कि पृथ्वीको राक्षस रहित कर देंगे ॥ ४ ॥

जिनकर भुजबल पाय दशानन *अभय भये मुनि विचरहिं कानन॥५॥
देखत बालक काल समाना * परम धीर धन्वी गुण नाना ॥६॥

हे रावण ! जिनकी भुजाओंका बल पाकर मुनि अभय होकर वनमें विचरते हैं ॥ ५ ॥ वे देखनेमें बालक पर कालके समान परम धैर्यवान्, धनुषधारी, अनेक गुणयुक्त हैं ॥ ६ ॥

अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता * खलवधरत सुर मुनि सुख दाता॥७॥
शोभाधाम राम अस नामा * तिनके सङ्ग नारि इक श्यामा॥८॥

दोनों भाई अतुलित बल अर्थात् जिनके बलकी तौल नहीं हो सकती और प्रतापशाली हैं दुष्टोंके मारनेमें तत्पर, सुर नर मुनियोंके सुखदाता हैं ॥ ७ ॥ जो शोभाके धाम हैं उनका नाम 'राम' है उनके संगमें एक श्यामा अर्थात् तरुणी स्त्री है ॥ ८ ॥

सोरठा–अति सुकुमारि पियारि, पट तर योग न आहि कोउ ॥
मैं मन दीख विचारि, जहँ रह तेहि सम आन नहिं॥ १२ ॥

वह अति सुकुमारी स्त्री है, जिसके समान दूसरा कोई नहीं है, मैंने मनमें विचार देखा कि जहाँ रहे उसके समान कोई नहीं (यहाँसे क्षेपक)॥ १२ ॥

रूपराशि विधि नारि सँवारी * रति शतकोटि तासु बलिहारी ॥१॥
अजहुँ जाय तुम देखिहौ जबहीं * हुइहौ विकल तासु वश तबहीं॥२॥

विधाताने यह नारी रूपकी रास सँवारी है कि जिसके ऊपर सौ करोड़ रति बलिहारी जायँ। अथवा वह स्त्री ऐसी सुन्दर है कि विधाताकी बनाई सौ करोड़ रति उसके ऊपर बलिहारी की जाँय ॥१॥ अब भी जो तुम उसे जाकर देखोगे तो तुरत उसके वशमें व्याकुल होगे॥२॥

जीवन मुक्त लोक वश ताके *दशमुख सुनु सुन्दरि असि जाके॥३॥
तासु अनुज काटी श्रुति नाशा * सुनि तव भगिनी कर परिहासा॥४॥

हे रावण ! जिसकी स्त्री ऐसी सुन्दर है वह जीवन मुक्त है और सब लोग उसके वशमें हैं (यहां तक क्षेपक है) ॥ ३ ॥ उन रामके छोटे भाईने यह वार्ता सुनकर कि यह रावणकी बहिन है हँसी करके नाक और कान काट लिये ॥ ४ ॥

निरपराध असि दशा हमारी * अपराधी किमि बचिहिं सुरारी ॥५॥
खर दूषण सुनि लगे पुकारा *क्षणमहँ सकल कटक तिन मारा॥६॥

हे सुरारी ! विना अपराध किये हमारी यह दशा हुई तो अपराधी क्यों बच सकता है ? (यह क्षेपक है) ॥ ५ ॥ (यदि कहो कि जन स्थानके थानेमें खरदूषणके पास क्यों न गयी ? तो उनकी तेरही भी हो गयी) वे सुनकर मेरे साथ सहायताके निमित्त चौदह सहस राक्षस लेकर गये, परन्तु रामने क्षणमात्रमें कटक सहित संहार कर दिया ॥ ६ ॥

खर दूषण त्रिशिराकर घाता * सुनि दशशीश जरा सब गाता ॥७॥
भयो शोचवश नहिं विश्रामा * बीतहिं पल मानों शतयामा ॥८॥

खरदूषण और त्रिशिराका मरण सुनकर रावणके शरीरमें क्रोधाग्नि जल उठी ॥ ७ ॥ बड़े शोचमें हो गया शांति नहीं, एक पल सौ पहरके समान बीतने लगा (यह क्षेपक है) ॥ ८ ॥

दोहा–शूर्पणखहि समुझायकरि, बल बोलेसि बहु भाँति ॥
गयउ भवन अति शोच वश, नींद परै नहिं राति ॥ ३६ ॥

शूर्पणखाको समझाकर अपना बल बहुत भांतिसे बखान किया और अधिक शोचमें होकर घर गया परन्तु रात्रिमें नींद नहीं आती ॥ ३६ ॥

सुर नर असुर नाग खगमाहीं * मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं ॥१॥
खर दूषण मोसम बलवन्ता * तिनहिको मारै बिनु भगवन्ता॥२॥

देवता, मनुष्य, नाग और पक्षियोंमें कोई मेरे अनुचरोंका भी सामना नहीं कर सकता ॥ १ ॥ खर दूषण तो मेरे समान बली हैं,उनको विना भगवान्‌के कोई नहीं मार सकता ॥२॥

सुररंजन भञ्जन महि-भारा * जो जगदीश लीन अवतारा ॥३॥
तौ मैं जाय बैर हठि करऊँ * प्रभुशर प्राण तजे भव तरऊँ ॥४॥

देवताओंको आनन्द देने और पृथ्वीका भार दूर करनेको जगदीश्वरने अवतार लिया है कहीं 'भगवंत' पाठ है ॥ ३ ॥ तो मैं जाकर हठपूर्वक उनसे वैर करूँगा और प्रभुके बाणसे प्राण छोड़ भव तर जाऊँगा ॥ ४ ॥

होइहि भजन न तामस देहा * मनक्रम वचन मन्त्र दृढ़ एहा ॥५॥
जो नररूप भूपसुत कोऊ * हरिहौं नारि जीत रण दोऊ ॥६॥

तामसी देहसे भजन तो होगा नहीं अब मन कर्म वचनसे यही दृढ़ मंत्र निश्चय है ॥५॥और जो कोई मनुष्यरूप किसी राजाके पुत्र हैं तो दोनोंको युद्धमें जीत उनकी स्त्री हर लूँगा ॥ ६ ॥

चला अकेल यान चढ़ि तहवाँ * बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥७॥
रथ अनूप जोरे खर चारी * वेगवन्त इमि जिमि उरगारी ॥८॥

ऐसा विचार कर अकेला सवारीमें चढ़कर वहां चला जहां (समुद्र किनारे)मारीच रहता था ॥ ७ ॥ सुन्दर रथमें चार खच्चर जुते हुए थे, जिनका गरुड़के समान बड़ा वेग था (यहांसे क्षेपक है) ॥ ८ ॥

छन्द–उरगारि सम अति वेग वरणत जाय नहिं उपमा कही ।
शिर छत्र शोभित श्यामघन जनु चमरश्वेत विराजहीं ॥
इहि भांति लांघत सरित शैल अनेक वापी सोहहीं ।
बन बाग उपवन बाटिका शुचि नगर मुनिमन मोहहीं ॥२०॥

गरुड़के समान अति वेगवान् रथ जिसकी उपमा वर्णित नहीं हो सकती, शिरपर श्याम छत्र शोभित है, मानों मेघ हैं और श्वेत चमर विराजते हैं इस भांतिसे नदी पर्वत लांघता हुआ चला; जहाँ अनेक बावड़ी शोभित हो रही हैं और पवित्र वन, बाग, उपवन, वाड़ी और नगर मुनियोंके मनको मोहित करते हैं ॥ २० ॥

दोहा–बहु तड़ाग शुचि विहँग मृग, बोलत विविध प्रकार ॥
यहि विधि आयउ सिंधुतट, शतयोजन विस्तार ॥ ३७ ॥

बहुत सुन्दर सरोवर, जिनमें अनेक प्रकारसे मृग, पक्षी बोल रहे हैं इस प्रकार रावण समुद्रके तटपर आया, जिसका सौ योजन का विस्तार है ॥ ३७ ॥

सुन्दर जीव विविध विधि जाती * करहिं कोलाहल दिन अरुराती॥१॥
कूदहिं ते गर्जहिं घन नाईं * महाबली बल बरणि न जाई ॥२॥

सुन्दर अनेक अनेक जातिके जीव दिन और रात कोलाहल करते हैं ॥१॥ वे कूदते और मेघोंकी तरह गरजते हैं, उन महाबलियोंका बलवर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

कनक बालु सुन्दर सुखदाई * बैठहिं सकल जन्तु तहँ आई ॥३॥
तेहि पर दिव्य लता तरु लागे * जेहि देखत मुनिमन अनुरागे ॥४॥

सोनेकी जहाँ सुन्दर सुखदायी बालुका बिछ रही है;सब जीव जन्तु वहां आकर बैठतेहैं॥३॥ उनपर दिव्य लतायुक्त वृक्ष लगे हैं, जिन्हें देखकर मुनियोंके मनमें भी अनुराग होता है॥४॥

गुहा विविध विधि रहहिं बनाई * वर्णत शारद मति सकुचाई ॥५॥
चाहिय जहाँ ऋषिनकर वासा * तहां निशाचर करहिं निवासा॥६॥

अनेक प्रकारकी गुहा बनाकर रहते हैं जिसे वर्णन करते शारदाकी मति सकुचाती है ॥ ५ ॥ जहाँ ऋषियोंका निवास होना योग्य है वहाँ राक्षस वास करते हैं ॥ ६ ॥

दशमुख देखि सकल सकुचाने * जे जड़जीव सजीव पराने ॥७॥
इहां राम जस युक्ति बनाई * सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥८॥

रावण को देखकर सब सकुचाये, मूर्ख और धूर्त सब भाग गये, (यहां तक क्षेपक है) ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! यहाँ रघुनाथजीने जो युक्ति बनायी वह सुहावनी कथा सुनो ॥ ८ ॥

दोहा–लक्ष्मण गये वनहिं जब, लेन मूल फल कन्द ॥
जनक सुतासन बोलेउ, विहँसि कृपा–सुखवृन्द ॥ ३८ ॥

जिस समय लक्ष्मणजी वनमें कंद, मूल फल लेनेको गये उस समय रघुनाथजी हँसकर जानकीजी से बोले । कृपासुख वृन्द कहनेका आशय यह कि अब मनोरथ सिद्ध किया चाहते हैं॥३८॥

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला * मैं कछु करब ललित नरलीला॥१॥
तुम पावक महँ करहु निवासा * जब लगि करौं निशाचर नाशा॥२॥

हे प्रिये ! (रुचिर व्रत) पतिव्रता धर्म पालनेवाली सुशीले ! सुनो, हम कुछ ललित मनुष्य लीला, करुणा विरह आदि करेंगे ॥ १ ॥ सो जबतक मैं निशाचरोंका नाश करूँ तबतक तुम अग्निमें निवास करो ! अग्निमें टिकानेका हेतु कि अग्निको पिता मानते हैं, क्योंकि अग्निके दिये पिंडसे इनका जन्म हुआ था, स्त्री अपने पति वा पिताके घरमें शुद्ध रहती है दूसरा हेतु यह है कि अग्नि सौगंधसे निकालेंगे । अथवा क्रोध अग्नि स्वरूप है और ऋषियोंके क्रोधसे जानकीजीका-जन्म है इससे अग्नि पिता हैं अथवा रघुनाथजीने विचारा महावीर द्वारा लंकादाह करना है सब देवता रावण से भयभीत हैं, कदाचित् अग्नि न जलावे इस कारण इसमें अपनी शक्ति रखी, जो निर्भय दाह करे ॥ २ ॥

जबहिं राम सब कहेउ बखानी ❋ प्रभुपदधरि हिय अनल समानी॥३॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता ❋ तैसइ शील स्वरूप विनीता ॥४॥

जब रघुनाथजीने यह सब बात कही तब प्रभुके पद हृदयमें धर जानकीजी अग्निमें प्रवेश कर गयीं॥३॥ अपने प्रतिबिंबकी वैसी ही विनीत समानशील रूपवाली सीता रख दी ॥४॥

लछिमनहूँ यह मर्म न जाना ❋ जो कछु चरित रचेउ भगवाना॥५॥
दशमुख गयउ जहाँ मारीचा ❋ नाय माथ स्वारथ रत नीचा ॥६॥

लक्ष्मणजीने भी भेदको नहीं जाना जो कुछ रघुनाथजीने चरित्र। रचा गुसाईंजीने गुरु-कृपासे जाना, जैसे लिखा है–"सूझहिं रामचरित मणि माणिक। गुप्त प्रगट०" इत्यादि यह गुप्त चरित है, लीला करनेके निमित्त लक्ष्मणसे यह भेद छिपाया ॥ ५ ॥रावण जहां मारीच था वहाँ गया और स्वार्थमें तत्पर नीचने माथा नवाया ॥ ६ ॥

नवनि नीचकी अति दुखदाई ❋ जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥७॥
भयदायक खलकी प्रियबानी ❋ जिमि अकालके कुसुम भवानी॥८॥

नीचोंकी नम्रता ऐसी दुःखदायक होती है–जैसे अंकुशकी, धनुषकी, सांपकी, विलारकी नम्रता दुःखदायक होती है,अर्थात् यह नवकर ही दुख देते हैं। पहले कभी न आया अब प्रयोजन पड़ने पर आया इससे स्वार्थरत नीच कहा ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! दुष्टोंकी प्रियवाणी भी भयदायक होती है, जैसे विना ऋतुके पुष्प भय उपजाते हैं। अथवा कहीं आकाशके कुसुम पाठ है तो अर्थ हुआ कि केतु उदय होकर दुःख देते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात ॥
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयउ तात ॥ २९

पूजा सत्कार करके मारीचने आदर पूर्वक यह बात पूछी की हे तात् ! क्या है जो तुम्हारा मन बहुत उदास है और अकेले आये हो ! ॥ २९ ॥

दशमुख सकल कथा तेहि आगे ❋ कही सकल अभिमान अभागे॥१॥
होहु कपट-मृग तुम छलकारी ❋ जेहि विधि हरि आनौं नृपनारी॥२॥

अभागे रावणने खर दूषणादिक की सब कथा अभिमान पूर्वक उससे कही ॥१॥ और फिर बोला–तुम छल करनेवाले कपटसे मृग बनो, जिससे मैं नृप (राम) की नारी हर लाऊँ॥२॥

तेहि पुनि कहा सुनहु दशशीशा ❋ ते नररूप चराचर ईशा ॥३॥
तासों तात वैर नहिं कीजै ❋ मारे मरिय जियाये जीजै ॥४॥

यह वार्ता सुनकर रावणसे मारीच बोले–सुनो जी रावण ! जिनको तुम मनुष्य कहते हो वे मनुष्यरूप चराचरके ईश हैं ॥ ३ ॥ इस कारण हे तात ! उनसे वैर मत कीजिये उनके मारनेसे मरना और जिलानेसे जीना चाहिए ॥ ४ ॥

मुनि मख राखन गयउ कुमारा ❋ विनु फरसर रघुपति मोहि मारा॥५॥
शत योजन आयउँ पलमाहीं ❋ तिनसन वैर किये भल नाहीं ॥६॥

जब रघुनाथजीकी कुमार अवस्था थी तब मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रखवाली करने

गये थे, रघुनाथजीने बिना फरका बाण मेरे मार दिया ॥ ५ ॥ मैं सौ योजन यहां एक पलमात्रमें आ पड़ा, उनसे वैर करनेसे भला नहीं होगा ॥ ६ ॥

भइ गति कीट भृङ्गकी नांई * जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई ॥७॥
जो नर तात तदपि अति शूरा * तिनहिं विरोध न आइहि पूरा ॥८॥

उस दिनसे मेरी गति भृङ्गीकी नाईं हो गयी कि जहां तहां मुझको दोनों भाई ही दीखते हैं। भृङ्गीका पकड़ा हुआ कीट जो छूट जाय तो उसके डरसे सब संसार भृङ्गीमय दिखायी देता है॥७॥ हे तात! जो वे मनुष्य हैं, तो भी बहुत शूर हैं उनसे वैर करनेमें पूरी नहीं पड़ेगी॥८॥

दोहा-जेहिं ताड़का सुबाहु हति, खण्डेउ हर-कोदण्ड ॥
खरदूषण त्रिशिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिबण्ड ॥ ४० ॥

जिसने ताड़का और सुबाहुको मार शिवजीका धनुष तोड़ा, खर दूषण और त्रिशिराको मार दिया, क्या ऐसा बली मनुष्य हो सकता है ? ॥ ४० ॥

रा अस नाम सुनत दसकंधर * रहत प्राण नहिं मम उर अंतर॥१॥
जाहु भवन कुल कुशल विचारी * सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ॥२॥

रामके नाममात्रसे मुझे इतना भय हो गया कि कोई 'रा' अक्षरका भी उच्चारण करता है तो मेरे हृदयमें प्राण नहीं रहता (क्षेपक) ॥ १ ॥ तुम कुलका कुशल विचार कर घरको चले जाओ। मारीचके यह वचन सुनकर रावण जल उठा, बहुत गारी दी ॥ २ ॥

गुरु जिमि मूढ़ करत मम बोधा *कहु जग मोहिं समानको योधा॥३॥
तब मारीच हृदय अनुमाना * नवहिं विरोधे नहिं कल्याना ॥४॥

हे मूर्ख। गुरुके समान मुझे समझाता है, जगत्में मेरे समान कौन योद्धा है ? ॥ ३ ॥ तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि नौ व्यक्तियोंसे विरोध करनेसे भला नहीं होता॥४॥

शस्त्री मरमी प्रभु शठ धनी * वैद्य वंदि कवि मानस गुनी ॥५॥
उभय भांति देखेसि निज मरणा * तब ताकेसि रघुनायक शरणा ॥६॥

हथियार बंद १, मर्म जाननेवाला पड़ोसी २,प्रभु जिसके राज्यमें बसे३,शठमूर्ख४,धनी५, हकीम ६, भांड७,कवि-छन्द बनानेवाला ८ और गुणवान् पंडित ९ इनसे वैर न करना चाहिए ॥५॥ जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा तो रघुनाथजीकी शरण ताकी ॥ ६ ॥

उतर देत मोहि वधब अभागे * कस न मरौं रघुपति शर लागे॥७॥
अस जिय जानि दशानन संगा * चला रामपद-प्रेम अभंगा ॥८॥

उत्तर देनेसे तो यह अभागा मुझे मार डालेगा इससे रघुनाथजीके ही बाण लगनेसे मरना अच्छा है ॥ ७ ॥ ऐसा जीमें जानकर रावणके संग चला रावणमें प्रेम भंग और रघुनाथजीके पदमें अभङ्ग प्रेम किया ॥ ८ ॥

मन अति हर्ष जनाव न तेही * आजु देखिहौं परम सनेही ॥९॥

मनका बड़ा हर्ष उसने प्रकट करके नहीं कहा,सोचा कि आज परम स्नेही रघुनाथजीको

देखूँगा। परमस्नेहीका भाव है कि जीव ब्रह्मका स्नेह सबसे परे है और ब्रह्मके प्राप्त होनेपर दूसरा स्नेह नहीं होता ॥ ९ ॥

छन्द–निज परम प्रीतम देखि लोचन सफल करि सुख पाइहौं।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्वाण-दायक क्रोध जाकर भक्ति अवशहिं वश करी।
निजपाणिशरसन्धानि सो मोहिं वधहिं सुखसागर हरी ॥२१॥

अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्र सफल कर सुख पाऊँगा, सीता लक्ष्मण सहित कृपानिधानके पदमें मन लाऊँगा, जिनका क्रोध मुक्तिका देनेवाला है और उनकी भक्ति ही अवशों को वशमें करनेवाली है; सुखसागर रघुनाथजी अपने हाथसे धनुष बाण धारण कर मारेंगे; धन्य मेरे भाग्य ! ॥ २१ ॥

दोहा–मम पाछे धर धावत, धरे शरासन बान॥
फिरि फिरि प्रभुहि विलोकिहौं, धन्य न मोसम आन ॥ ४१ ॥

मेरे पीछे धनुष बाण धरके रघुनाथजी दौड़ेंगे मैं बार बार पीछे फिरकर देखूंगा मेरे समान धन्य कौन है ? ॥ ४१ ॥

सीता-लषण सहित रघुराई * जेहि वन वसहिं मुनिन्ह सुखदाई॥१॥
तेहि बन निकट दशानन गयऊ * तब मारीच कपट मृग भयऊ ॥२॥

सीता लक्ष्मण सहित मुनियोंके सुखदायी रघुनाथजी जिस वनमें वसते हैं ॥ १ ॥ उस वनके निकट रावण गया; तब मारीच कपटका मृग हुआ ॥ २ ॥

अति विचित्र कछु वरणि न जाई* कनक देह मणि रचित बनाई ॥३॥
सीता परम रुचिर मृग देखा * अंग अंग सुमनोहर बेखा ॥४

उसने अति विचित्र जिसका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसी मणियोंसे जटित सोनेकी देह बनायी ॥ ३ ॥ जानकीजीने परम शोभायमान मृग देखा कि जिसके प्रत्येक अंग मनोहर और सुन्दर वेष हैं, तब कहने लगीं ॥ ४ ॥

सुनहु देव रघुवीर कृपाला * इहि मृगकर अतिसुन्दर छाला॥५॥
सत्यसन्ध प्रभु वध करि एही * आनहु चर्म कहति वैदेही ॥६॥

हे देव रघुवीर ! हे कृपासागर ! सुनिये इस मृगका अति सुन्दर छाला है ॥ ५ ॥ हे सत्य सागर स्वामी ! इसे वध करके इसका चर्म लाओ यह जानकीजीने कहा। सत्यसंध कहनेका भाव यह कि आपने राक्षसोंके मारनेकी प्रतिज्ञा की है, यह मृग उसका कारण है ॥ ६ ॥

तब रघुपति जानत सब कारन * उठे हर्षि सुरकाज सवारन ॥७॥
मृग विलोकि कटि परिकर बांधा * करतल चाप रुचिरशर सांधा ॥८॥

तब रघुनाथजी तो सब कारण जानते ही थे, प्रसन्न होकर देवताओंका काज सँवारनेको उठे ॥ ७ ॥ मृगको देखते ही रघुनाथजीने कमर बांध हाथमें धनुष ले सुन्दर बाण साधा ॥ ८ ॥

प्रभु लक्ष्मणहि कहा समुझाई *फिरत विपिन निशिचर बहु भाई॥९॥

सीता-केरि करेहु रखवारी ❀ बुद्धि विवेक बल समय विचारी ॥१०॥

प्रभुने लक्ष्मणसे समझाकर कहा—भाई ! वनमें बहुतसे राक्षस घूमते रहते हैं ॥ ९ ॥ तुम सीताकी रखवारी बुद्धि, विवेक बल समय विचार कर करना, लड़ना व बचा जाना ॥१०॥

दोहा—"अस कहि चले तहां प्रभु, जहाँ कपट मृग नीच ॥
देव हर्ष विस्मय विवश, चातक वर्षा बीच" ॥ ४२ ॥

ऐसा कहकर प्रभु वहां चले जहां वह कपटी नीच मृग था। देवता हर्ष और विस्मयके वश हो गये, जैसे चातक वर्षाके बीचमें होता है कि स्वाती बरसे वा नहीं बरसे (यह क्षेपक है) ॥४२॥

प्रभुहि विलोकि चला मृग भाजी ❀ धाये राम शरासन साजी ॥१॥
निगम नेति शिव ध्यान न पावा ❀ माया-मृग पाछे सो धावा ॥२॥

प्रभुको देखकर मृग भाग चला; रघुनाथजी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े ॥१॥ जिसको वेद 'नेति' अर्थात्, ऐसे नहीं यह कह गाते हैं; शिव जिसका पार नहीं पाते, वे प्रभु माया के मृगके पीछे दौड़े ॥ २ ॥

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई ❀ कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई ॥३॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी ❀ यहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ॥४॥

मृग कभी समीप कभी दूर चला जाता है, कभी प्रकट कभी छिप जाता है ॥ ३ ॥ इस प्रकार वह प्रकट होते छिपते और अनेक छल करते प्रभुको दूर ले गया ॥ ४ ॥

तब तकि राम कठिन शर मारा ❀ धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥५॥
लक्ष्मण कर प्रथमहि लै नामा ❀ पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा ॥६॥

तब रघुनाथजीने ताककर कठिन बाण मारा जिससे वह घोर पुकार कर पृथ्वीमें गिर गया ॥५॥ तब उसने हा लक्ष्मण! ऐसा बड़े शब्दसे उच्चारण कर पीछे मनमें रघुनाथजीका स्मरण किया ॥६॥

प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा ❀ सुमिरेसि राम समेत सनेहा ॥७॥
अन्तर प्रेम तासु पहिचाना ❀ मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥८॥

उसने प्राण त्याग करते ही अपनी देह प्रकट की और रघुनाथजीका स्नेह सहित स्मरण किया ॥७॥ उसका अन्तर प्रेम पहचान कर रघुनाथजीने उसे वह गति दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥८॥

दोहा—विपुल सुमन सुर वर्षहिं, गावहिं प्रभुगुण गाथ ॥
निज पद दीन्ह असुर कहँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥ ४३ ॥

देवता बहुतसे फूल बरसाने लगे, प्रभुके गुणानुवाद गाने लगे कि दीनबंधु रघुनाथजी ऐसे हैं कि असुरको भी अपना पद दिया। जहां दौड़ते हुए मृगका नूपुर गिरा था वहां 'नूपुर' ग्राम हुआ और जहां वह चपलतासे गिरा वहां 'चापल्या' ग्राम हुआ, ये गोदावरीके तटपर स्थित हैं ॥४३॥

खल वधि तुरत फिरे रघुबीरा ❀ सोह चाप कर कटि तूणीरा ॥१॥
आरत गिरा सुनी जब सीता ❀ कह लक्ष्मणसन परम सभीता ॥२॥

दुष्टको मारकर तुरंत रघुनाथजी लौटे, हाथमें धनुष और कमरमें तरकस शोभित है ॥१॥ जब सीताजीने दुःखकी वाणी मारीचकी कही सुनी तब लक्ष्मणजीसे बहुत डरकर कहने लगीं॥२॥

जाहु वेगि संकट तव भ्राता ❋लक्ष्मण बिहँसि कहा सुनु माता॥३॥
भृकुटि विलास सृष्टि लय होई ❋ सपनेहु संकट परै कि सोई ॥४॥

शीघ्र जाओ तुम्हारे भाई पर संकट पड़ा है, तब लक्ष्मणजीने हँसकर कहा-कहीं ईश्वर पर संकट पर सकता है, कहा-सुनो; माता ! ॥३॥ जिनकी भृकुटी फेरने मात्रसे सृष्टिका नाश हो जाता है उन्हें स्वप्नमें भी कभी संकट पड़ सकता ? हँसनेका कारण यह कि वे इस बातको नहीं जानतीं ॥४॥

सौंपि गये रघुपति मोहिं थाती ❋जो तजि जाउँ तोष नहिं छाती॥५॥
यह जिय जानि सुनहुँ मम माता❋ पूछत कहब कवनि मैं बाता ॥६॥

रघुनाथजी मुझे धरोहरकी तरह तुमको सौंप गये हैं। तुमको त्यागकर जाऊँ तो छातीमें सन्तोष नहीं होता ॥ ५ ॥ हे माता ! यह जीमें जानकर मेरी विनय सुनो, जो वे पूछेंगे तुम कैसे छोड़ आये, तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? (यह क्षेपक है) ॥ ६ ॥

मर्म वचन जब सीता बोली ❋ हरि प्रेरित लक्ष्मण मति डोली ॥७॥
चहुँ दिशि रेख खँचाइ अहीशा ❋ बारहिंबार नाय पद शीशा ॥८॥

जब जानकीजीने लक्ष्मणजीके प्रति कठोर वचन कहे कि तुम रघुनाथजीका कल्याण नहीं चाहते हो, तब हरिकी प्रेरणासे लक्ष्मणकी मति डोली जानकीजीके वचनसे नहीं ॥७॥ लक्ष्मण चारों ओरसे अभिमंत्रित करके रेखा खैंचकर और बारंबार चरणोंमें शिर नवाकर ॥ ८ ॥

वन दिशि देव सौंपि सब काहू ❋ चले जहां रावण शशि राहू ॥९॥
चितवहिं लषण सियहिं फिरि कैसे❋ तजत वत्स निज मातहिं जैसे॥१०॥

जानकीजीको वनके देवता और दिशाओंको सौंपकर लक्ष्मणजी जहां रावणरूपी चंद्रमाको ग्रास करनेवाले राहुरूपी राम हैं वहां चले। उपमा एक देशी है अर्थात् चन्द्रमाको दबानेवाला राहु ऐसे ही रावणके दबानेवाले केवल राम हैं ॥९॥ लक्ष्मणजी जानकीजीको इस प्रकार लौटकर देखते हैं जैसे अपनी माताको छोड़कर बछड़ा देखता है (यह क्षेपक) है ॥ १० ॥

दोहा-एक डरत डर रामके, दूजे सीय अकेलि ॥
लषण तेज तनु हत भयो, जिमि दाही दव वेलि ॥ ४४ ॥

एक तो रामजीके डरसे डरते हैं, दूसरी जानकीजी अकेली हैं, उस समय लक्ष्मण इस प्रकार तेजोहत हो गये जैसे दव वेलिको जला देती है ॥ ४४ ॥

सून बीच दशकंधर देखा ❋ आवा निकट यतीके बेखा ॥१॥
जाके डर सुर असुर डेराहीं ❋निशि न नींद दिन अन्न न खाहीं॥२॥

रावणने जब देखा कि इस स्थानमें कोई नहीं है तब मायासे संन्यासी रूप बनाकर आया ॥१॥ जिसके डरसे असुर डरते हैं, रात्रिमें नींद नहीं आती दिनमें अन्न नहीं खाते ॥ २ ॥

सो दशशीश श्वानकी नाईं ❋ इत उत चितै चला भड़िहाईं ॥३॥

इमि कुपंथ पग देत खगेशा * रह न तेज बल बुधि लवलेशा ॥४॥

सो रावण कुत्तेकी नाईं इधर उधर देखता चोरीको चला, चोरी ऐसी वस्तु है ॥ ३ ॥ काकभुशुण्डजी कहते हैं हे गरुड़जी ! इस तरह जो कोई कुमार्गमें पग धरते हैं तेज; बुद्धि बल किंचिन्मात्र नहीं रहते ॥ ४ ॥

करि अनेक विधि छल चतुराई * मांगेउ भीख दशानन जाई ॥५॥
अतिथि जानि सिय कंदमूल फल *देन लगीं तेहि कीन्ह बहुरि छल॥६॥

अनेक प्रकारसे छल चतुराई करके रावणने जाकर भीख मांगी (यहांसे क्षेपक है) ॥५॥ अतिथि जानकर जानकीजी उसे कन्द, मूल, फल देने लगीं, तब उसने छल किया ॥ ६ ॥

कह रावण सुन सुन्दरि बानी * बाँधी भीख न लेउँ सयानी ॥७॥
विधि गति वाम काल कठिनाई *रेख नांघि सिय बाहर आई ॥८॥

रावण बोला–हे चतुर सुन्दरी ! यह मैं बँधी भीख नहीं लेता ॥ ७ ॥ विधाताकी गति वाम है; कालकी गति बड़ी कठिन है, जानकीर्जा रेखा लांघकर बाहर आयीं ॥ ८ ॥

दोहा–विश्वभरनि अघदलदलनि, करनि सकल सुरकाज ॥
जाना नहिं तेहिं समय तहँ, दशशिर कपट कुसाज ॥ ४९ ॥

संसारके पालनेवाली; पापसमूहको नाश करनेवाली; देवताओंकी सम्पूर्ण काज संभालनेवाली जानकीजीने उस समय रावणका नीच कपट नहीं जाना । (यहां तक क्षेपक है) ॥४९॥

नाना विधि कहि कथा सुहाई * राजनीति भय प्रीति दिखायी ॥१॥
कह सीता सुनु यती गुसांई * बोलेहु वचन दुष्टकी नांईं ॥२॥

रावणने अनेक प्रकारसे कहकर कथा सुनाई राजनीति भय प्रीति दिखाई । कथा यह कि अमुक पुरुषसे अमुक नारीकी ऐसी प्रीति हुई, अहल्यासे इन्द्रकी हुई, राजसुखका लोभ दिया सब सृष्टि मेरे वशमें है । भय यह है जो मेरी आज्ञा भङ्ग करे उसके प्राण नहीं रहते । प्रीति यह कि जो मुझसे प्रीति करे मुझे प्राणोंके समान प्यारा है इत्यादि ॥ १ ॥ तब जानकीजी यह बात सुनकर बोलीं सुन यती गुसाईं ! तूने दुष्टोंकेसे वचन कहे ॥ २ ॥

तब रावण निज रूप दिखावा *भई सभीत जब नाम सुनावा ॥३॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा * आय गये प्रभु खल रहु ठाढ़ा ॥४॥

तब रावणने अपना रूप दिखाया और जब अपना नाम बताया तब जानकीजी डरीं ॥ ३ ॥ पुनः सीताजी बड़ा धैर्य धरके बोलीं–खड़ा रह दुष्ट ! रघुनाथजी आ गये ॥ ४ ॥

जिमि हरिवधुहि छुद्र शश चाहा *भयसि काल वश निशिचर नाहा॥५॥
वायस कर चह खगपति समता *सिंधु समान होय किमि सरिता ॥६॥

जैसे सिंहनीको कोई छोटा खरगोश कालके वश होकर चाहे वैसे तूने कालके वश होकर हमारी इच्छा की है; तू राक्षसोंका पति है ॥ ५ ॥ क्या कौवा गरुड़की समता कर सकता है और नदी समुद्रके समान हो सकती है ॥ ६ ॥

खर कि होइ सुरधेनु समाना * जाहु भवन निज सुनु अज्ञाना ॥७॥

सुनत वचन दशशीश लजाना * मन महँ चरणवंदि सुखमाना ॥८॥

गधी क्या कामधेनु के समान हो सकती है ? हे अज्ञानी ! सुन, कुशल समझे तो अपने घर चला जा ॥७॥ रावण यह वचन सुनकर लज्जित हो और धैर्य देखकर जान गया कि यह ईश्वर ही हैं, जो कि मेरा रूप देखकर भी भय न हुआ, तब मनमें पद वंदना कर सुख माना ॥८॥

दोहा-क्रोधवन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय ॥
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाय ॥ ४६ ॥

तब रावणने क्रोधकर जानकीजीको रथमें बैठा लिया और आतुर हो आकाश मार्गसे चला भयके मारे रथ हांका नहीं जाता, (तब जानकीजी विलाप करती हैं) ॥ ४६ ॥

हा ! जगदेक वीर रघुराया * केहि अपराध बिसारेउ दाया ॥१॥
आरति हरण सरण सुखदायक * हा रघुकुल सरोज दिन नायक॥२॥

हा ! यह खेदमें है; जगत्‌के अद्वितीय वीर रघुनाथजी ! आपने मेरे ऊपरसे किस अपराध से दया बिसार दी ॥ १ ॥ आप तो दुःखके दूर करनेवाले तथा शरणागतके सुख देनेवाले हो, हा ! रघुकुलकमल दिवाकर ! (कहां हो ?) ॥ २ ॥

हा लक्ष्मण तुम्हार नहिं दोषा * सो फल पायउँ कीन्हेउ रोषा ॥३॥
कैकेयी मन जो कछु रहेऊ *सो विधि आज मोहिं दुख दयेऊ॥४॥

हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है, मैंने जो निरपराध तुमपर क्रोध किया यह उसीका फल मिला है ॥ ३ ॥ जो कुछ कैकेयीके मनमें रहा सो आज विधाताने मुझे दुःख दिया ॥ ४ ॥

पञ्चवटीके खग मृग जाती * दुखी भये वनचर बहु भाँती ॥५॥
विविध विलाप करति वैदेही * भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥६॥

पञ्चवटीके खग, मृग, वनचर, उस समय अनेक प्रकारसे सब दुःखी हुए ॥५॥ जानकीजी अनेक विलाप करके कहती हैं, कि जिनके हृदयमें बड़ी कृपा है और मेरे स्नेही हैं, पुनः इस दुष्टके मारनेको समर्थ भी हैं, क्या जाने कितनी दूर मृगके पीछे चले गये ? ॥ ६ ॥

विपति मोरिको प्रभुहि सुनावा * पुरोडाश चह रासभ खावा ॥७॥
सीताके विलाप सुनि भारी * भये चराचर जीव दुखारी ॥८॥

मेरी विपत्ति प्रभुको कौन सुनावे ? होम करनेकी खीर जो देवताओंका भाग है उसे गधा खाना चाहता है ॥७॥ सीताजीका भारी विलाप सुनकर चराचर जीव सब दुःखी हुए। रावण इस बातको न जाने कि यह मेरे वध निमित्त चली है, इस कारण उसे अज्ञानी करने को विलाप किया ॥ ८ ॥

दोहा-बहुविधि करत विलाप[1] नभ, लिये जात दशशीश ॥
डरत न खल बर पाय भल, जो दीन्हेउ अज ईश ॥ ४७ ॥

१. भजन—"आरत वचन कहति बैदेही ॥ विलपति भूरि विसूरि दूरि गये, मृग संग परम सनेही ॥ कहे कटुवचन रेख नाघी मैं तात क्षमासों कीजै ॥ देखि वधिक वश राजमरालिनि लषणलाल, छिन लीजै। बनदेविन सिय कहति यों, छल कर नीच हरी हौं। डोमके कर सुरधेनु, नाथ ज्यों त्यों पर हाथ परी हौं । तुलसीदास रघुनाथ नाम सुनि, अकनि गीध धुकि धायो । पुत्रि पुत्रि जनि डरेन जइहैं, नीच मीच हौं आयो ॥"

बहुत प्रकार विलाप जानकी करती हैं आकाशमार्गसे रावण लिये जाता है यह खल उन श्रेष्ठ वरोंको पाकर निडर हो गया है; जो शिव और ब्रह्माने दिये हैं ॥ ४७ ॥

गीधराज सुनि आरति बानी *रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥
अधम निशाचर लीन्हे जाई *जिमि म्लेच्छ बस कपिला गाई॥२॥

गृध्रराजने यह दुःखकी वाणी सुनकर जानकीजीको पहचाना कि रघुनाथजीकी स्त्री हैं क्योंकि पूर्व देख चुका है शोचने लगा ॥ १ ॥ दुष्ट राक्षस लिये जाता है, जैसे म्लेच्छके वश पड़ी कपिला गऊ जाती हो; इस प्रकार जानकीजी विवश हैं ॥ २ ॥

अहह प्रथम तनु मम बल नाहीं * तदपि जाय देखौं बल ताहीं ॥३॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा * करिहौं यातुधान कर नाशा ॥४॥

'अहह' यह खेद है कि मेरे शरीरमें पहलासा बल नहीं है परंतु तो भी उसका बल जाकर देखता हूँ। राजाओंसे राजाका युद्ध होता है। यह गीधोंका राजा, वह राक्षसोंका ॥ ३ ॥ हे सीते पुत्रि ! मनमें मत डरो, मैं इस राक्षसका नाश कर दूंगा ॥ ४ ॥

धावा क्रोधवन्त खग कैसे * छूटै पवि पर्वत कहँ जैसे ॥५॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होहीं * निर्भय चलेसि न जानेसि मोहीं॥६॥

गृध्रराज इस प्रकार क्रोधकर दौड़ा जैसे वज्र पर्वत पर छूटता हो और बोला ॥५॥ रे दुष्ट ! तू खड़ा क्यों नहीं होता निर्भय चला जाता है मुझे नहीं जानता ? ॥ ६ ॥

आवत देखि कृतांत समाना * फिरि दशकंठ करत अनुमाना॥७॥
की मैनाक कि खगपति होई *मम बल जान सहित पति सोई॥८॥

कालके समान आता देख रावण लौटकर मनमें अनुमान करने लगा ॥७॥ या तो यह मैनाक पर्वत होगा या गरुड़ है जो पति अर्थात् विष्णुसहित मेरे बलको जानता है ॥ ८ ॥

जाना जरठ जटायू एहा * मम कर तीरथ छाँड़िय देहा ॥९॥

यह निकट आया तो जाना कि यह वृद्ध जटायु है, हाथरूपी तीर्थमें यह शरीर तजेगा, आशय यह है कि जैसे बूढ़े तीर्थपर मरने जाते हैं वैसे यह मेरे निकट आता है ॥ ९ ॥

दोहा-"मम भुज बल नहिं जानत, आवत तपिन्ह सहाय ॥
समर चढै तौ यहि हतौं, जियत न निज थल जाय" ॥ ४८ ॥

यह मेरी भुजाओंके पराक्रमको नहीं जानता, तपस्वियोंकी सहायताके निमित्त आता है जो युद्ध करेगा तो निश्चय मारूँगा, जीतेजी यह अपने घर नहीं जायगा (क्षेपक)॥ ४८ ॥

सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा * कह सुन रावण मोर सिखावा ॥१॥
तजि जानकिहिं कुशल गृह जाहू * नाहित अस होइहि बहुबाहू ॥२॥

यह सुनकर गृध्र बहुत क्रोध कर दौड़ा और बोला-सुनो रावण ! मेरा कहना मानो॥१॥ जानकीजीको त्याग करके कुशलपूर्वक घर जाओ नहीं तो हे रावण ! बड़ा युद्ध होगा ॥ २ ॥

१. एक समय विष्णु भगवान् गरुड़पर स्थित हो रावणसे लड़े थे वा मेरे भुजबलका जानने वाला कैलास पर्वत शंकर समेत चला आता है ।

राम रोष पावक अति घोरा * होइहि शलभ सकल कुल तोरा ॥३॥
उतर न देत दशानन योधा * तबहिं गृध्र धावा करि क्रोधा ॥४॥

रामचन्द्रजीके रोष अर्थात् क्रोध की भयंकर अग्निमें तेरा सबकुल पतंगवत् जल जायगा ॥ ३ ॥ रावण योधापनके घमण्डसे कुछ उत्तर नहीं देता और चला ही जाता है तब गृध्र क्रोध करके दौड़ा ॥ ४ ॥

धरिकच विरथ कीन्ह महिगिरा * सीतहि राखि गृध्र पुनि फिरा ॥५॥
दशमुख उठि कृत शर संधाना * गृध्र आय काटेसि धनु बाना ॥६॥

जटायुने मुकुट उतार करके केशोंको ऐसा खींचाकी रावण धरती पर गिर पड़ा तब गृध्रने सीताको रथसे उतार कर किसी वृक्षके नीचे बैठाया और फिर आप उसे मारने के निमित्त लौटा॥५॥ पुनःलौटनेका भाव यह कि उसके बलकी परीक्षा कर ली,अथवा यह विचारा कि जो मैं जानकी जीको ले जाऊँ तो फिर यह शस्त्र चलावेगा अथवा कदाचित् जानकीजीको मार न डाले। रावणने उठकर शर संधान किया और छोड़नेको था कि गृध्रने आकर धनुषबाण काट दिया ॥६॥

चोंचन मारि विदारेसि देही * दंड एक भइ मूर्छा तेही ॥७॥

और मारे चोंचसे उसकी देह फाड़ डाली; जिससे एक घड़ी तक मूर्छा हुई ॥ ७ ॥

दोहा-जेहि रावण निज वश किये, मुनिगण सिद्ध सुरेश ॥
तेहि रावणसन समर अति, धीर वीर गृध्रेश ॥ ४९ ॥

जिस रावणने अपने वशमें सिद्ध मुनि देवता कर लिये उससे ऐसा युद्ध किया, बड़ा धीरवीर जटायु है ॥ ४९ ॥

स्वस्थ भयउ सो पुनि उठि धावा * मारे गृध्र न सन्मुख आवा ॥१॥
कीन्हेसि बहु जब युद्ध खगेशा * थकित भयउ तब वृद्ध गिधेशा॥२॥

जब रावण सावधान हुआ तो फिर उठ धाया परंतु गृध्रने फिर मारा जिससे सम्मुख न हो सका ॥१॥ जब रावणसे बहुत युद्ध किया तब वृद्ध होनेके कारण थक गया (क्षे०) ॥ २ ॥

तब सक्रोध निशिचर खिसियाना * काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥३॥
काटेसि पंख परा खग धरणी * सुमिरि राम करि अद्भुत करणी॥४॥

तब रावणने खिसियाकर बड़े क्रोधसे परमतीक्ष्ण तलवार निकाली ॥३॥ उससे गृध्रके पंख काट डाले तब गृध्र रामजीको स्मरण करता हुआ अद्भुत करणी कर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४ ॥

मनमें गृध्र परम सुख माना * रामकाज मम लागेउ प्राना ॥५॥
सीतहि यान चढ़ाय बहोरी * चला उतावल त्रास न थोरी ॥६॥

गृध्रने मनमें बड़ा सुख माना कि रघुनाथजीके कार्यमें मेरे प्राण लगे (क्षे०) ॥ ५ ॥ फिर जानकीजीको यान (जो आकाशमें चलते हैं उनको भी यान कहते हैं) में चढ़ाकर शीघ्रतासे चला, मनमें थोड़ा त्रास नहीं किंतु बहुत है क्योंकि कदाचित् कोई फिर आ जाय ॥ ६ ॥

करति विलाप जाति नभ सीता * व्याध विवश जनु मृगी सभीता॥७॥

गिरि पर बैठे कपिन निहारी * कहि हरिनाम दीन्ह पट डारी॥८॥

जानकीजी विलाप करती हुई आकाशमें जाती हैं, जैसे व्याधके वश सभीत मृगी जाती हो ॥७॥ पर्वत पर बैठे हुए सुग्रीवादिको देख "हरिनाम" कहकर जानकीजीने पट डाल दिया। हरिनाम बन्दरोंका भी है हरि कहकर सन्मानसे सहायता-निमित्त बुलाती हैं अथवा हरिनाम रामका है, सो जानती हैं कि मैं रामकी रानी हूँ जो तुम मुझे छुड़ा नहीं सकते यह मेरी निशानी दे देना। अथवा हरि कहनेका भाव यह है कि प्रभुने पृथ्वीके भार हरनेके निमित्त अवतार लिया है सो रावणको तो मारेंगे ही परन्तु बाली जो पृथ्वीका भाररूप है उसका संहार कर तुमको भी सुख देंगे, तुम यह मेरा वस्त्र उनको देना। अथवा वानरोंने जानकीजीको जाती देख हरिनाम उच्चारण किया, जानकीजीने भक्त जान पट डाल दिया ॥ ८ ॥

यहि विधि सो सीतहि लैगयऊ * वन अशोक महँ राखत भयऊ॥९॥

इस प्रकारसे वह जानकीजीको ले गया और अशोक वाटिकामें रखा। घरको इस कारण न ले गया, उसने विचारा आरामकी सुन्दरता कामोत्पादक है, इस वाटिकामें जानकीजीको मदनोद्दीपन होगा तो मुझसे प्रीति करेंगी। अथवा कुबेरके पुत्रोंने यह शाप दिया था कि तुम जिस स्त्रीसे बल पूर्वक रतिमें प्रवृत्त होगे, तत्काल मस्तक विदीर्ण हो जायँगे,इस कारण जानकी को अधिक सुन्दरताके कारण बागमें रखा कि घरमें प्रतिक्षण सम्मुख रखना ठीक नहीं ॥९॥

दोहा-हारि परा खल बहु विधि, भय अरु प्रीति दिखाय ॥
तब अशोक पादप तर, राखेसि यत्न कराय ॥ ५० ॥

अनेक प्रकारसे भय और प्रीति दिखाकर दुष्ट रावण हार गया, परंतु जानकीजीने उसकी बात न मानी तब यत्न पूर्वक नवीन अशोक वृक्षके नीचे रखा। भाव यह है कि कदाचित् यह रामचन्द्रके वियोगमें अन्न छोड़ प्राणोंको पीडित करे तो अशोकके नीचे रहनेके प्रभावसे इसके प्राण बचे रहेंगे ॥ ५० ॥

वहां विधाता मन अनुमाना *सुरपति बोलि मन्त्र असठाना ॥१॥
तात जनक तनया पहँ जाहू * सुधि न पाव जेहि निशिचर नाहू॥२॥

वहाँ ब्रह्माने मनमें सब बात बिचार इंद्रको बुलाकर यह सम्मति दी(यहांसे क्षेपक है)॥१॥हे इंद्र! तुम ऐसी गुप्तरीतिसे जानकीजीके पास जाओ,जिससे रावणको यह समाचार विदित न हो॥२॥

अस कहि विधि सुन्दर हवि आनी* सौंपि बहुरि बोले मृदु बानी ॥३॥
इहि भक्षण कृत क्षुधा न प्यासा * वर्ष सहस दश संशय नाशा ॥४॥

यह ब्रह्माजीने दिव्य हवि (खीर) इंद्रको देकर फिर मीठी वाणी से कहा ॥ ३ ॥ इसके भक्षण करनेसे १० हजार वर्ष तक भूख प्यास नहीं लगती, इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

सो प्रसाद लइ आयसु पाई * चले हृदय सुमिरत रघुराई ॥५॥
कछु वासव माया निज मोई * रक्षक रहे गये तहँ सोई ॥६॥

वह प्रसाद ले आज्ञा पाकर हृदयमें रघुनाथजीका स्मरण करते चले ॥५॥ रात्रिके समय इन्द्र आये सो राक्षसों पर अपनी माया फैला दी, जितने राक्षस थे सब सो गये ॥ ६ ॥

तदपि डरत सीता पहँ आयउ *करि प्रणाम निज नाम सुनायउ॥७॥

निश्चय जानि सुरेश सुजाना * पिता जनक दशरथ सम माना॥८॥

तो भी डरते डरते जानकीजीके पास आया और प्रणाम कर अपना नाम सुनाया ॥७॥ निश्चय 'इन्द्र ही है' यह जान जानकीजीने पिता जनक और दशरथके समान माना ॥ ८ ॥

करि परितोष दूरि करि शोका * हविहि खवाय गये निज लोका॥९॥

जानकीजीको समझाके शोक दूर कर,हवि खवाय इंद्र अपने लोकको चले गये (क्षे०)॥९॥

दोहा-जेहि विधि कपट कुरंग सँग, धाय चले श्रीराम ॥
सो छबि सीता राखि उर, रटत रहति हरि नाम ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार कपट-मृगके पीछे रघुनाथजी गये वही छबि हृदयमें धारण कर जानकी हरिका नाम रटती थीं ॥ ५१ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने आरण्यकांडान्तर्गत विद्यावारिधि-पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृतभाषा-टीकायांचतुर्थो विश्राम. ॥ ४ ॥

दोहा-यहि पञ्चम विश्राममें, गृध्रराज उद्धार ।
जातिहीन नारी तरी, शबरी प्रीति विचार ॥

रघुपति अनुजहि आवत देखा * बाहिज चिन्ता कीन्ह विशेखा ॥१॥
जनकसुता परिहरेउ अकेली * आयउ तात वचन मम पेली ॥२॥

रघुनाथजीने लक्ष्मणको आते देख बाहिज (ऊपरसे) बड़ी चिंताकी और बोले ॥१॥ हे तात ! जानकीजीको अकेली छोड़ हमारा वचन उल्लंघन कर यहां चले आये ॥२॥

निशिचर निकर फिरहिं वन माहीं * मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥३॥
अहह ! तात भल कीन्हो नाहीं * सिय विहीन मम जीवन नाहीं॥४॥

वनमें अनेक राक्षस घूमते फिरते हैं मेरे मनमें ऐसा आता है कि जानकी आश्रममें नहीं हैं॥३॥ 'अहह' यह दुःखका शब्द है,हे भ्रात ! अच्छा नहीं किया,सीता विना मेरा जीवन कहाँ? ॥४॥

इहिते कवनि विपति बड़ि भाई * छाँड़े सीय काननहि आई ॥५॥
गहि पदकमल अनुज कर जोरी * कहेउ नाथ कछु मोरि न खोरी॥६॥

हे भाई ! इससे अधिक और क्या बड़ी विपत्ति होगी कि वनमें आकर जानकीको छोड़ दिया (क्षे०) ॥ ५ ॥ हाथ जोड़ चरण कमल पकड़ लक्ष्मणजीने जानकीजीकी दुरुक्ति सुनाकर कहा-नाथ ! मेरा अपराध नहीं है ॥ ६ ॥

अनुज समेत गयउ प्रभु तहवाँ * गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥७॥
आश्रम देखि जानकी हीना * भये विकल जस प्राकृत दीना ॥८॥

भाई समेत प्रभु वहाँ गये जहाँ गोदावरीके किनारे आश्रम था॥७॥जानकी हीन आश्रमको देखकर रघुनाथजी ऐसे व्याकुल हुए जैसे साधारण मनुष्य दीन हो जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-कानन रहेउ तड़ाग इव, चक चकई सिय राम ॥
रावण निशि बिछुरन किये, दुःख बीते चहुँ याम ॥ ५२ ॥

वह वन सरोवर समान; उसमें राम सीता चकवा चकई समान रहते हैं, सो रावणरूपी

रात्रिने वियोग करा दिया, चार याम रात्रि बीतनेसे सुख होगा वा चार रात्रि बीतेतक दुःख रहेगा। कहीं 'सुख' पाठ ॥५२॥

पर दुख-हरण सो कस दुखताहीं ❋ भा विषाद तिन्हहूँ मनमाहीं ॥१॥
हा गुण खानि जानकी सीता ❋ रूप शील व्रत नेम पुनीता ॥२॥

परायेका दुःख हरनेवाले जिन्हें कभी दुःख न हो उनके मनमें विषाद हुआ (क्षे०)॥१॥ हा जानकी! सीता! गुणोंकी खानि, रूप शील स्वभाव और पतिव्रताके नेमको धारण करनेवाली! तुम कहां हो? ॥ २ ॥ यथा हनुमन्नाटके-

रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना,
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः ॥
बिम्बोष्ठी चारुनेत्रा सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकाञ्ची,
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा ॥ १ ॥

हे वृक्षो! तुम पर्वतोंपर स्थिर हो इससे सब वस्तु देखते होगे,तुम पर्वतकी गहन लतास्पर्श किये वायुसे चलायमान हो,अर्थात् वायु सर्वगामी है उसके द्वारा तुम्हें सब समाचार विदित होगा।यदि मेरा परिचय पूछना चाहो,तो मैं व्याकुल हृदय राम दशरथ पुत्र शोकाग्निसे दग्ध हो रहा हूँ वह कंदूरीके समान ओष्ठवाली,सुन्दर नेत्र,पुष्टजंघावाली,नागेन्द्रकांची बाँधे हुए"करिकुंभ मणिस्तोमनानारत्नोत्करेधिता। मध्ये कुम्भाकृतिः स्वर्णा सा नागेन्द्राख्यया मता" ॥हा! वह जानकी जो प्रतिक्षण मेरे हृदयमें बसी उसे कौन ले गया तुममेंसे किसीने देखा है? ॥ १ ॥

के यूयं वद नाथनाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः
कोऽहं वत्स स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः ॥
किं कुर्मो विजने वने तत इतो देवीं समुद्वीक्षते,
का देवी जनकाधिराजतनया हा! हा! प्रिये जानकि! ॥ २ ॥

फिर रामचंद्र व्याकुल हो लक्ष्मणजीसे बोले (के यूयं वद) तुम कौन हो कहो? लक्ष्मण (नाथनाथ किमिदम्) हे नाथोंके नाथ! आप क्या कहते हैं? (दासोऽस्मिते लक्ष्मणः) मैं आप का दास लक्ष्मण हूं;रा०(वत्स! अहंकः)तात तो मैं कौन हूं?ल०(स आर्य एव भगवान्)आप वही ऐश्वर्यवान आर्य हैं; रा०(स आर्यः कः) वह आर्य कौन? ल० (राघवः) रघुवंशमें उत्पन्न हुए राम, रा० (किं कुर्मो विजने वने) तो हम निर्जन वनमें क्या करते हैं? ल० (तत इतो देवीं समुद्वीक्षते) इधर उधर देवीको खोजते हैं, रा० (का देवी)कौन देवी? ल० (जनकाधिराज तनया) जनककुमारी; रा० (हा! हा! प्रिये जानकि) हा प्रिये जानकी कहां हो ॥ २ ॥

लक्ष्मण समुझाये बहु भाँती ❋ पूछत चले लता तरु पाँती ॥३॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी ❋ तुम देखी सीता मृगनैनी ॥४॥

लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया, लता और वृक्षोंसे पूछते चले ॥ ३ ॥ जानकीजीके अंगोंका स्मरण कर मृगादिकोंसे सीताके अंगकी उपमा देते हुए पूछते हैं, हे खग मृग भ्रमरो! कहीं तुमने मृगनयनी जानकी देखी है ॥ ४ ॥

खञ्जन शुककपोत मृग मीना ❋ मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥५॥
कुन्दकली दाड़िम दामिनी ❋शारदकमल शशि अहि भामिनी॥६॥

खञ्जन, मृग और मीन यह नेत्रकी उपमा है, चञ्चलता सफेदी और स्याहीकी रेख खञ्जन के साथ और जलसे भरी बड़ी और उभरी आँखका आकार और चमकती उपमा मीन और मृगके साथ; सुआ नासिकाकी उपमा, कपोत ग्रीवाकी उपमा, मधुप (भौंरों)के समूह केशकी उपमा, कोकिला स्वरकी उपमा ॥ ५ ॥ कुंदकी कली, अनारके दाने और बिजलीकी चमक दांतोंकी उपमा, शरद कमल मुखकी उपमा, शरद चन्द्रमा मुखमण्डलकी उपमा और नागिनी चोटीकी उपमा । यह उपमेय लुप्तालंकार है ॥ ६ ॥

वरुणपाश मनोज धनु हंसा * गज केहरि निज सुनत प्रशंसा ॥७॥
श्रीफल कनक कदलि हर्षाहीं * नेकु न शंकु सकुच मनमाहीं ॥८॥

वरुण अर्थात् जलके देवताकी फांसी कण्ठरेखाकी उपमा, मनोज (कामदेवका) धनु भौंह की उपमा और हंस गति सत् असत् विवेककी उपमा, गज गमनकी उपमा, केहरि कटिकी उपमा, यह सब अपनी प्रशंसा सुनते हैं, कारण कि तुम्हारा दर्शन नहीं होता ॥ ७ ॥(श्रीफल) बेल और (कनक) सोना (कदली) केलेका खंभ, श्रीफल उरोजकी, कनक वर्णकी कदली जंघाकी उपमा है, ये सब जानकीजीकी शोभासे फीके पड़े थे सो आज उनके गुप्त होनेसे हर्षित हुए, इनके मनमें कुछ भी शंका और सकुच नहीं है । श्री गोसांईजीने अपनी कवितांईसे श्रीमहारानीके शृंगारका वर्णन नहीं किया, यहां प्रसंग पाकर रघुनाथजीके द्वारा वर्णन करते हैं परंतु उसमें भी केवल उपमा कहा और उपमेयका कहना अपने लिये अनुचित समझा ॥८॥

सुनु जानकी तोहि बिनु आजू * हर्षे सकल पाय जनु राजू ॥९॥
किमि सहिजात अनख तोहि पाहीं * प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥१०॥

सुन जानकी ! ये सब तेरे विना ऐसे प्रसन्न हुए, मानों राज्य मिल गया ॥ ९ ॥ हे प्रिये! यह शत्रुकी प्रसन्नता तुझसे कैसे सही जाती है; शीघ्र प्रकट क्यों नहीं होती ॥ १० ॥

इहि विधि विलपत खोजत स्वामी * मनहुँ महाविरही अतिकामी ॥११॥

इस प्रकारसे स्वामी रामचन्द्रजी विलाप करते और खोजते हैं, जैसे कोई बड़ा विरही और महाकामी हो ॥ ११ ॥

दोहा-"मणिविहीन फणि दीन जिमि, मीन हीन जिमि वारि ॥
तिमि व्याकुल भये लषण तहँ, रघुवर दशा निहारि" ॥ ५३ ॥

जैसे मणि विना सर्प दीन होता है, जल विना मछली इस प्रकार लक्ष्मणजी रघुनाथजी की दशा देखकर दुःखी हुए (यह दोहा क्षेपक है) ॥ ५३ ॥

उर धरि धीर बुझावहिं रामहि * तजहिं न शोक अधिक सुख धामहि ॥१॥
पूरण काम राम सुखराशी * मनुज चरित कर अज अविनाशी ॥२॥

लक्ष्मणजी हृदयमें धैर्य धरकर रघुनाथजीको समझाते हैं, परन्तु उनके शोक नहीं जाते (क्षेपक है) ॥ १ ॥ यद्यपि आनंदके सागर रघुनाथजी पूर्णकाम हैं, अज अविनाशी हैं, परन्तु मनुष्योंकेसे चरित्र करते हैं ॥ २ ॥

सरवर अमित नदी गिरि खोहा * बहुविधि राम लषण तहँ जोहा ॥३॥

शोच हृदय कछु कहि नहिं आवा * टूट धनुष शर आगे आवा ॥४॥

अनेक सरोवर, नदी, पर्वतकी कन्दराएँ अनेक प्रकारसे रघुनाथजी लक्ष्मणजीने ढूँढ़ी पर जानकी न मिलीं ॥ ३ ॥ हृदयमें बड़ा शोच है, कुछ कहा नहीं जाता । आगे चलकर देखा तो धनुष बाण टूटा है ॥ ४ ॥

कहत राम लक्ष्मणहिं बुझाई * काहू कीन्ह युद्ध यहि ठाई ॥५॥
आगे परा गृध्र-पति देखा * सुमिरत रामचरण चिन्ह रेखा॥६॥

तब रघुनाथजीने लक्ष्मणजीसे समझाकर कहा कि किसीने यहां युद्ध किया है (क्षे०) ॥५॥ आगे गृध्रराजको पड़ा देखा, जो रामचरणकी रेखाका स्मरण कर रहा था ॥ ६ ॥

दोहा–कर सरोज शिर परसेउ, कृपासिंधु रघुवीर ॥
निरखि राम छवि धाम मुख, विगत भई सब पीर ॥ ५४ ॥

दया सागर रघुनाथजीने कमलसा हाथ उनके शिर पर रखा, भगवान्‌के मुखकी शोभा देखते ही उनकी सब पीड़ा मिट गयी ॥ ५४ ॥ गृध्रराजकी ऐसी दशा थी-

छन्द–दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परचो क्षिति खिन्न दुखारी ।
राघव दीनदयालु कृपालुको देखि दुखी करुणा भई भारी ॥
गीधको गोदमें राखि कृपानिधि नैन सरोजनमें भरि वारी ।
बारहिं बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसों झारी ॥ १ ॥

जटायु गृध्रराज दीन मलिन हो अङ्गसे विकल महादुःखी पृथ्वीमें पड़े हुए थे, दीनदयालु रघुनाथजीको यह दशा गृध्रराजकी देख बड़ी दया आई, गृध्रको रघुनाथजी गोदमें रखकर और कमलसे नेत्रोंमें जल भरकर बारंबार पंख सुधारते हैं और जटायुकी धूरि जटाओंसे झाड़ते हैं॥ १॥

छन्द–गीधको गोदमें राखि कृपालु निहारैं औ नैननते जल डारैं ।
टूक ह्वै जात हैसीता विथाके जो याकी सनेह कथाको विचारैं ।
छांड़ि चले तुम हाय हमैं हम भी अब आजहि सङ्ग सिधारैं ।
यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारैं ॥२॥

कृपा सागर गीधको गोदमें रखकर और देखकर नेत्रोंसे जल डालते हैं जिस समय गृध्रराजकी स्नेह कथाको विचारते हैं उस समय जानकीके वियोगका दुःख कुछ भी नहीं रहता, रघुनाथजी बोले-गृध्रराज हमें छोड़कर कहाँ जाते हो ? हम भी साथ चलते हैं यों कह रघुनाथजीने नेत्रोंमें जल भर जटाओंसे धूरि झाड़ते हैं ॥ (क्षे०) ॥ २ ॥

तब कह गृध्र वचन धरि धीरा * सुनहु राम भञ्जन भव भीरा ॥१॥
नाथ दशानन यह गति कीन्ही *तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही॥२॥

---

१. भजन —"मेरे एको हाथ न लागी। गयो वपु बीच वादि कानन ज्यों, कल्पलता दवदागी ।। दशरथसों न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो सकल जग साखी। पर वश हरत निसाचरपतिसों, हठ न जानकी राखी ।। मरत न मैं रघुवीर विलोके तापस वेष बनाये । चाहत चलन प्राण पामर विनु, सिय सुधि प्रभुहि सुनाये ।। बार बार कर मींजि शीश धुनि, गीधराज पछिताई । तुलसी प्रभु कृपालु तेहि अवसर, आय गये दोउ भाई ।।"

तब गृध्र धैर्य धारण कर वचन बोला–सुनो रामचन्द्र ! आप संसारका भय छुड़ानेवाले हो ॥ १ ॥ हे नाथ ! रावणने यह गति करदी और उसी दुष्टने जानकी हर ली ॥२॥

लेइ दक्षिण दिशि गयउ गुसाँई * विलपति अति कुररीकी नाँई ॥३॥
दरश लागि तन राखेउँ प्राना * चलन चहत अब कृपानिधाना॥४॥

हे महाराज ! वह दुष्ट जानकीको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर गया है जानकी कुररी पक्षीकी नाईं विलाप करती थीं ॥ ३ ॥ हे कृपानिधान ! मैंने आपके दर्शन निमित्त शरीरमें प्राण धारण किये थे सो अब चलना चाहते हैं ॥ ४ ॥

राम कहा तनु राखहु ताता * मुख मुसकाय कही तेहि बाता ॥५॥
जाकर नाम मरत मुख आवा * अधमहुँ मुक्त होइ श्रुति गावा ॥६॥

रघुनाथजी बोले–हे प्रिय ! शरीर धारण करो, तब मुखसे मुसकराकर गृध्रने बात कही ॥ ५ ॥ जिसका नाम मरते समय मुखसे निकल जाय तो अधम भी मुक्तिको प्राप्त होता है ऐसा वेदने भी गाया है ॥ ६ ॥

सो मम लोचन गोचर आगे * राखौं नाथ देह केहि लागे ॥ ७॥
जल भरि नैन कहा रघुराई * तात कर्म निजते गति पाई ॥८॥

हे नाथ ! वे ही मेरे नेत्र और इन्द्रियोंके सम्मुख उपस्थित हैं तो अब किस निमित्त देह रखूँ ॥ ७ ॥ रघुनाथजी नेत्रोंमें जल भरकर बोले–हे तात ! तुमने अपने कर्मसे शुभ-गति पायी, मेरा निहोरा नहीं ॥ ८ ॥

परहित बस जिनके मनमाहीं * तिनकहँ जगदुर्लभ कछु नाहीं ॥९॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा * देउँ काह तुम पूरणकामा ॥१०॥

जिनके मनमें परोपकार बसता है उनको जगमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है "परोपकाराय सतां विभूतयः" ॥ ९ ॥ हे तात ! तुम शरीर त्याग हमारे धामको जाओ और मैं तुम्हें क्या दूँ ? तुम पूर्णकाम हो ॥ १० ॥

दोहा–सीताहरण पिता सन, कहेउ तात जनि जाय ॥
जौ मैं राम तो कुलसहित, कहिहि दशानन आय ॥ ५५ ॥

हे तात ! तुम सीताका हरण पितासे जाकर मत कहना, क्योंकि उन्हें सुनकर शोक होगा और जो मर कर रावण जाकर कहेगा तो हर्ष होगा । जटायुने जो रावणसे कहा था कि राम रोषाग्निमें तेरा कुल भस्म होगा; उसके पूर्ण करनेके निमित्त रघुनाथजी प्रतिज्ञा करते हैं कि जो मैं रामचन्द्र हूँ तो रावण कुल सहित मरकर जाके कहेगा ॥ ५५ ॥

गृध्र देह तजि धरि हरिरूपा * भूषण बहु पट पीत अनूपा ॥१॥
श्याम गात विशाल भुजचारी * अस्तुति करत नयन भरि वारी॥२॥

---

१. पद—"मेरे जान तात कछुक दिन जीजै। देखिये आप सुवन सेवासुख, मोहि पितुको सुख दीजै। दिव्यदेह इच्छा जीवन जग विधि मनाय मगि लीजै। हरि हर सुयश सुनाय दरश दै, लोग कृतारथ कीजै ॥ देखि वदन सुनि वचन अमिय, तन राम नयन जल भीजै वोल्योवचन गृध्र रघुवर वलि,कहों सुभाव पतीजै। मेरे मरिवे सम न चारि फल, होहि तौ क्यों न कहीजै। तुलसी प्रभु दिये उत्तर मौनहि, परि मानो प्रेम सहीजै।

गृध्र देह त्याग हरिका रूप धारण कर बहुतसे अनुपम भूषण सुन्दर पीत वस्त्र धारण किये ॥१॥ श्याम शरीर और सुन्दर चार भुजा वाला नेत्रोंमें जल भरकर स्तुति करने लगा ॥ २ ॥

छन्द–जय रामरूप अनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरक सही ।
दशशीश बाहु प्रचण्ड खंडन चण्डशर मण्डन् मही ॥
पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचनम् ।
नित नौमि राम कृपालु बाहु विशाल भवभयमोचनम् ॥ २२ ॥

हे रामचन्द्र ! आपके अनूपरूपकी जय हो, वह रूप कैसा है निर्गुण जो व्यापक ब्रह्म है और सगुणमत्स्यादि अवतार और गुण सत्व, रज, तम अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन सबका प्रेरक है और आप पृथ्वीके भूषित करने और दूषणरूपी रावणके मारनेके हेतु तीक्ष्ण बाणको धारण किये हो आपका शरीर श्याम घनके समान है, कमलके तुल्य मुख और बड़े बड़े नेत्र हैं, कृपालु संसारके भय छुड़ानेवाले विशाल बाहु रामको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ २२ ॥

छन्द–बलमप्रमेय-मनादि–मज–मव्यक्त–मेकमगोचरम् ।
गोविंद गोपर द्वन्दहर विज्ञानघन धरणीधरम् ॥
जे राममन्त्र जपंत सन्त अनंत जन मन रंजनम् ।
नितनौमि राम अकामप्रिय कामादिखलदल गंजनम् ॥ २३ ॥

आपका बल अप्रमेय है, आप अनादि, अजन्मा; अप्रकट शक्ति अद्वैत और इंद्रियोंकी गतिसे परे, गोविंद इंद्रियोंके भोक्ता और इंद्रियोंसे परे हो, इन्द्र मोहके हरनेवाले विज्ञानके बरसानेवाले पृथ्वीके धारण करनेवाले हो, जो अनन्त सन्त राम मन्त्रको जपते हैं और उनके मनको प्रसन्न करते हो, हे कामादि दुष्टोंके मारनेवाले अकामप्रिय राम ! मैं आपको नित्य प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥

छन्द–जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्मव्यापक विरज अज कहिं गावहीं ।
करि ध्यान ज्ञान विराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रकट करुणाकन्द शोभावृन्द अग जग मोहई ।
मम हृदय-पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥ २४ ॥

जिनको वेद–निरंजन, रोगरहित, जन्मरहित, व्यापक ब्रह्म कहकर गाते हैं और जिनको अनेक मुनि ध्यान, ज्ञान विराग योग कर पाते हैं वे ही करुणाजलके बरसानेवाले प्रकट होकर अपनी शोभाके समूहोंसे जड़ चैतन्यको मोहनेवाले मेरे हृदय कमलमें भौंरेकें समान अङ्ग अङ्गमें कामकी बहुत छबिसे युक्त शोभायमान हों ॥ २४ ॥

छन्द–जो अगम सुगमस्वभाव निर्मल असम सम शीतल सदा ।
पश्यन्ति यं योगी यतन करि कर्म मन गोवश मुदा ॥
सो राम रमानिवास सन्तत दासवश त्रिभुवन धनी ॥
मम उर बसहु सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी ॥ २५ ॥

जो अगम दुर्गम और सुगम प्रति योग्य;स्वभावसे निर्मल,विषम और सम और सदा शीतल हैं

जिनको योगीजन मन और इन्द्रियों के वश करनेवाले अनेक यत्न करते हैं तो देखते हैं। वैसे जाननेमें अगम और कृपा कर भक्तोंके जाननेमें सुगम हो जाते हो कर्मफल देनेमें विषम भक्तों-पर दया करनेमें सम हो, हे रामचन्द्रजी! वे रमा-अर्थात् लक्ष्मीके निवास त्रिभुवन धनी जो आप अपने दासके निरंतर वश रहते हो और आपकी पवित्र कीर्ति जरा मरणको नष्ट करनेवाली है, मेरे हृदयमें बसो ॥ २९ ॥

दोहा–अविरल भक्ति माँगि बर, गृध्र गयउ हरि-धाम ॥
तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥ ५६ ॥

अविचल भक्तिका वर मांगकर गृध्र (हरिधाम) वैकुण्ठको चला गया; रघुनाथजीने उसकी यथायोग्य दाहादि क्रिया अपने हाथसे की ॥ ५६ ॥

कोमल चित अति दीन दयाला * कारण बिनु रघुनाथ कृपाला ॥१॥
गीध अधम खग आमिषभोगी * गति तेहि दीन्हि जो याचत योगी॥२॥

कोमलचित्त अति दीनदयालु रघुनाथजी हैं, विना ही कारणके कृपा करते हैं ॥ १ ॥ गृध्र नीच पक्षी मांसादिकोंका खानेवाला उसे रघुनाथजीने वह गति दी जो योगी चाहते हैं ॥ २ ॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी * हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ॥३॥
पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई * चले बिलोकत बन बहुताई ॥४॥

सुनो पार्वती! वे अभागे लोग हैं जो नारायणको छोड़ विषयोंमें प्रेम करते हैं ॥ ३ ॥ फिर दोनों भाई जानकीको ढूँढ़ते वनकी अधिकता देखते चले ॥ ४ ॥

संकुल लता बिटप घन कानन *बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥५॥
आवत पंथ कबन्ध निपाता * तेहि सब कही शापकी बाता ॥६॥

अनेक वृक्ष वेलोंसे युक्त घना जंगल था जहां अनेक प्रकारके पक्षी, हिरण, हाथी और सिंह थे ॥५॥ मार्गमें आते हुए रघुनाथजीने कबन्धको मारा, इसने सब शापकी बात कही ॥६॥

दुर्वासा मोहिं दीन्ही शापा * प्रभुपद देखि मिटा सो पापा ॥७॥
सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही * मोहिं न सुहाय ब्रह्मकुल-द्रोही॥८॥

मुझे दुर्वासा ऋषिने शाप दिया सो पाप आपके दर्शन कर मिट गया, तब रघुनाथजी बोले ॥ ७ ॥ सुन गन्धर्व! मैं तुमसे कहता हूँ कि मुझे ब्राह्मण कुलका द्रोही अच्छा नहीं लगता ॥ ८ ॥

दोहा–मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव ॥
मोहि समेत विरंचि शिव, वश ताके सब देव ॥ ५७ ॥

---

१. मार्ग में एक बड़ी भयंकर अजामुखी राक्षसी मिली सो लक्ष्मणसे बोली–चलो हम तुम विहार करें, यह कहकर हाथ पकड़ा तब लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये, तत्काल वह पलायन कर गयी–'वाल्मीकि रामायणे०'

२. यह कवन्ध पूर्व जन्मका गन्धर्व था, किसी समय उसके गानेसे दुर्वासा मुनि नहीं रीझे तो वह उनपर हँसा तब मुनिने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा, तब राक्षस हो उपद्रव करने लगा तब इन्द्रने ऐसा वज्र मारा कि उसका शिरही पेटमें घुस गया, मुनिके शापसे मरा नहीं तब से उसका नाम 'कवंध' पड़ा। जब इसने भोजनके निमित्त प्रार्थना की तब इन्द्र के कहनेसे उसको योजन भरकी भुजा हो गयी थी जो बाहोंके बीचमें आता था उसे खींचकर खा जाता था, ऋषि की प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा रघुनाथजी तेरा उद्धार करेंगे, सो रघुनाथ जीको भुजाओंके बीच में डालकर खेंचने लगा तब इन्होंने उसकी भुजाएँ काट ली तब वह रघुनाथजी से बोला।

मन, कर्म, वचनसे कपट त्याग कर जो ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझ सहित ब्रह्मा शिवादि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

शापत ताड़त परुष कहंता * विप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥१॥
पूजिय विप्र शील गुण हीना * शूद्र न गुणगण-ज्ञान प्रवीना ॥२॥

शाप देता, मारता दुर्वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है, ऐसा संत कहते हैं यह रघुनाथजीने निज धर्म कहा है कि, शाप देनेमें नारदजी, ताड़ना करनेमें भृगुजी और कठोर कहनेमें परशुराम-जीकी पूजा की, शील गुणहीन भी ब्राह्मण पूज्य हैं किन्तु गुण ज्ञानमें प्रवीण शूद्र नहीं ॥१॥२॥

कहि निजधर्म ताहि समुझावा * निजपदप्रीति देखिमन भावा ॥३॥
रघुपतिचरण कमल शिर नाई * गयउ गगन आपनि गति पाई ॥४॥

अपना धर्म इस प्रकार कहकर उसको समझाया और अपने चरणोंमें प्रीति देख उससे प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ रघुनाथजीके चरण कमलोंमें शिर नवाया गंधर्व-तनु पाकर आकाश मार्ग से चला गया ॥ ४ ॥

ताहि देइ गति राम उदारा * शबरीके आश्रम पगु धारा ॥५॥
शबरी देखि राम गृह आये *मुनिके वचन समुझि जिय भाये ॥६॥

उदारचित्त रघुनाथजी उसको गति दे शबरीके आश्रममें गये। उदार कहनेका तात्पर्य यह कि अबतक जो दैवयोगसे मिलता था उसको गति देते थे, किंतु अब घर पर गति देने चले ॥५॥ शबरीने देखा कि रघुनाथजी घर आये हैं तब मुनिके वचन स्मरण कर बड़ी प्रसन्न हुई ॥६॥

सरसिज लोचन बाहु विशाला * जटामुकुट सिर उर वनमाला॥७॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई * शबरी परी चरण लपटाई ॥८॥

कमलसे नेत्र, विशाल बाहु, जटाओंका मुकुट शिरपर, हृदयमें वनमाला ॥ ७ ॥ श्याम गौर सुन्दर दोनों भाइयोंको देखकर शबरी चरणोंमें पड़ गयी ॥ ८ ॥

प्रेम मगन मुख वचन न आवा *पुनि पुनि पद सरोज शिर नावा॥९॥
सादर जल लेइ चरण पखारे * पुनि सुन्दर आसन बैठारे ॥१०॥

प्रेममें ऐसी मग्न हुई कि मुखसे वचन नहीं निकला, बारंबार चरण कमलोंमें शिर नवाकर ॥ ९ ॥ आदरपूर्वक जल ले चरण धोये और फिर सुन्दर आसन पर बैठाया ॥ १० ॥

दोहा–कन्द मूल फल सुरस अति, दिये रामकहँ आनि ॥
प्रेम सहित प्रभु खायउ, बारहि बार बखानि ॥ ५८ ॥

बहुत मीठे मीठे कंद मूल फल प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको लाकर दिये; प्रभुने बारंबार बखान कर प्रेमसे खाये कि इनमें बड़ा स्वाद है (शबरी जिस वृक्षके मीठे फल देखती थी वही प्रति दिन ला रखती और रघुनाथजीके आनेकी वाट देखा करती थी) ॥ ५८ ॥

---

१. यह भीलनी मतंग ऋषिकी सेवा किया करती थी, जब वे परमधामको जाने लगे तब वह भी चलनेको तैयार हुई। ऋषि बोले कि तू यहीं रह, तुझको रघुनाथजीका दर्शन होगा सो वह वहीं रहने लगी दश सहस्र वर्ष पीछे रघुनाथजी आये ।

२. कवित्त –" बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु, रसिक विहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर। चाखि चाखि भाषैं येह ताहुते महान मीठो लेहु तो लषण यों बखानते हैं हेर हेर। बेर बेर देव बेर शबरी सुबेर बेर, तऊ रघुवीर बेर बेर तेहि टेर टेर। बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर, बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर ॥

पाणि जोरि आगे भइ ठाढ़ी ❋ प्रभुहि बिलोकि प्रीति उर बाढ़ी॥१॥
केहि बिधि अस्तुति करउँ तुम्हारी❋अधम जाति मैं जड़मति भारी॥२॥

हाथ जोड़कर आगे खड़ी हुई प्रभुको देखकर हृदयमें बहुत प्रीति बढ़ी ॥ १ ॥ आपकी स्तुति किस प्रकारसे करूँ ? मैं तो नीच जाति और महामूर्ख मतिवाली हूँ ॥ २ ॥

अधमते अधम अधम अतिनारी ❋ तिन महँ मैं मतिमन्द गँवारी॥३॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता ❋ मानउँ एक भक्ति कर नाता ॥४॥

अधम से अधम और उससे भी अत्यन्त अधम स्त्री होती हैं, किंतु मैं इनसे भी मतिमंद गँवारी हूँ॥३॥रघुनाथजी बोले-हे कांते! यह बात सुन, मैं केवल एक भक्तिका नाता मानता हूँ॥४॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई ❋ धन बल परिजन गुण चतुराई॥५॥
भक्तिहीन नर सोहत कैसे ❋ बिनु जल वारिद देखिय जैसे॥६॥

जाति, पांति, कुलके धर्म बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण, चतुरता यह सब हों, परंतु ॥ ५ ॥ विना भक्तिके मनुष्य ऐसे सोहता है जैसे विना जलके बादल दीखता है ॥ ६ ॥

नवधा भक्ति कहहुँ तोहि पाहीं ❋ सावधान सुनु धरु मनमाहीं ॥७॥
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा ❋ दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥८॥

नौ प्रकारकी भक्ति तुझसे कहता हूँ; सावधान होकर सुन और मनमें धर ॥७॥ सन्तोंकी सङ्गति करना प्रथम भक्ति है ! मेरी कथामें प्रीति करना दूसरी भक्ति है ॥ ८ ॥

दोहा-गुरुपद-पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान ॥
चौथि भक्ति मम गुणगण, करे कपट तजि गान ॥ ५९ ॥

गुरुके चरण कमलकी सेवा अभिमान त्यागकर करना तीसरी भक्ति है और कपट त्याग मेरे गुणानुवाद गाना चौथी भक्ति है ॥ ५९ ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा ❋ पंचम भजन जो वेद प्रकाशा ॥१॥
षट दम शील विरति बहुकर्म्मा ❋ निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥२॥

मेरे मन्त्रका दृढ़ विश्वास करके भजन करना पांचवी भक्ति वेदमें कही है ॥ १ ॥ छठी भक्ति इंद्रियोंको जीतना शीलवान् होना, वैराग्य और सत्कर्ममें प्रीति तथा सज्जनोंके धर्मोंका निरन्तर आचरण करना ॥ २ ॥

सप्तम सब मोहिमय जग देखे ❋ मोते सन्त अधिक करि लेखे ॥३॥
अष्टम यथा लाभ सन्तोषा ❋ सपनेहु नहिं देखै परदोषा ॥४॥

सब जगत्‌को राममय देखना और सन्तोंको मुझसे भी अधिक जानना, यह सातवीं भक्ति है ॥ ३ ॥ जो मिल जाय उसमें सन्तोष करना, स्वप्नमें भी पराये दोषोंको नहीं देखना आठवीं भक्ति है ॥ ४ ॥

नवम सरल सब सन छल हीना ❋ मम भरोस हिय हर्ष न दीना ॥५॥
नवमहँ जिनके एकौ होई ❋ नारि पुरुष सचराचर कोई ॥६॥

सबसे सीधा छलहीन रहना, मेरा ही भरोसा करना; हर्ष शोक रहित होना नौवीं भक्ति है ॥ ९ ॥ इन नौ भक्तियोंमेंसे जिनके एक भी होगी वह नारी पुरुष चर अचर कोई हो ॥ ६ ॥

सो अतिशय प्रिय भामिनि मोरे * सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे ॥७॥
योगि-वृन्द दुर्लभ गति जोई * तो कहँ आजु सुलभ भइ सोई ॥८॥

हे भामिनि ! वह मुझको अधिक प्यारा है और फिर तुझमें तो वह भक्ति दृढ़ है ॥ ७ ॥ जो गति योगियोंको दुर्लभ है वह आज तुझे सुलभ है ॥ ८ ॥

मम दर्शन फल परम अनूपा * जीव पाव निज सहज स्वरूपा ॥९॥

मेरे दर्शनके परम अनूप फलसे जीव अपने स्वाभाविक रूपको प्राप्त हो जाता है (जो भक्तिमें तत्पर होता है) ॥ ९ ॥

दोहा–सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरणन अनुराग ॥
तव महिमा जेहि उर बसिहि, तासु परम जग भाग ॥ ६० ॥

सब प्रकारसे तेरा बड़ा भाग्य है, जो मेरे चरणोंमें प्रीति की है, तेरी महिमा जिसके हृदयमें बसे उसका भी जगतमें बड़ा भाग्य है ॥ ६० ॥

सुनत वचन शबरी हरषाई * पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई ॥१॥
जनक सुताकर सुधि कहु भामिनि *जानिहि कछु जो करिवर गामिनि॥२॥

यह रघुनाथजीके वचन सुनकर वह प्रसन्न हुई, तब रघुनाथजी बोले (क्षे०) ॥ १ ॥ हे गजगामिनि ! जनकसुताका समाचार विदित हो तो बताओ ॥ २ ॥

अथ क्षेपक

सुनिये देव चराचर स्वामी * रावण बली महा अति कामी ॥१॥
एक समय सजि पुष्पक याना * बैठि कियो लंकेश पयाना ॥२॥

शबरी बोली–हे चराचरके स्वामी ! आप श्रवण कीजिये कि रावण महाबली और अतिकामी है ॥१॥ वह लंकेश एक समय पुष्पक विमानमें बैठकर जगत् जीतनेको निकला ॥ २ ॥

विपिन मध्य देखी इक बाला * तासन कहेउ वचन दशभाला ॥३॥
कस अकेलि विचरहु विच कानन * बोली सो तिय सुनहु दशानन॥४॥

वनमें एक कन्याको देखकर उससे रावणने कहा ॥ ३ ॥ तुम वनमें अकेली क्यों फिरती हो ? तब वह स्त्री बोली–रावण ! सुनो ॥ ४ ॥

कुशध्वज नाम ब्रह्म ऋषि ख्याता * सो मम पिता वेदवर ज्ञाता ॥५॥
वेद पढ़त मुखते प्रगटानी * वेदवती इमि नाम बखानी ॥६॥

मेरे पिता कुशध्वज नामसे प्रसिद्ध ब्रह्म ऋषि वेदवादी थे ॥ ५ ॥ वेद पाठ करते समय मेरा जन्म उनके मुखसे हुआ इससे मेरा नाम 'वेदवती' हुआ ॥ ६ ॥

सो मम तात सत्य प्रण धारा * विष्णु संग मोहि व्याह विचारा॥७॥
यह सुनि शुम्भ दैत्यपति कोप्यो * खल मलीन सब धर्महि लोप्यो॥८॥

हमारे पिताने दृढ़ प्रण किया कि मैं तेरा विवाह विष्णु भगवान्‌के संग करूँगा ॥७॥ यह सुनकर शुंभ दैत्यराजने बड़ा क्रोध किया, उस दुष्ट मलिन बुद्धिने सब धर्म नष्ट किया ॥ ८ ॥

सोवत हनि सो गयो पराई * सती भई मम मातु सुहाई ॥९॥
तबते मैं नित हरि आराधौं *पितु प्रण सत्यहेतु तप साधौं ॥१०॥

आधी रातको सोतेमें उन्हें मारकर भाग गया, तब मेरी माता उनके संग सती हो गयी ॥९॥ तबसे मैं नित्य हरिका आराधन कर पिता का प्रण सत्य होनेके निमित्त तप करती हूँ॥१०॥

रावण कह्यो होहु मम नारी * काहे करहु कठिन तप भारी ॥११॥
हौं लंकेश सकल जगनाथा *असकहि धरचो तिया कर हाथा॥१२॥

तब रावण बोला-तुम वृथा बड़ा तप करके क्यों दुःख उठाती हो ? हमारी भार्या हो जाओ ॥ ११ ॥ मैं रावण त्रिलोकीका पति हूँ; यह कह कर उस स्त्रीका हाथ पकड़ा ॥ १२ ॥

असिसम भयो नारिकर तेहि छिन*बोली महाक्रोध करि तब मन ॥१३॥
करौं शाप दै जौ तोहि छारा *तो नशाय मम तप बल सारा॥१४॥

वेदवतीका हाथ उसी समय तलवारके समान हो गया । तब वह मनमें महाक्रोध कर बोली ॥ १३ ॥ जो मैं शाप देकर तुझे नष्ट करूँ, तो मेरी सारी तपस्या नष्ट हो जायगी ॥ १४ ॥

दोहा-ताते हौं पुनि जन्म लै, करौं वेगि तव नाश
असकहि वेदवती तबै, कियो अग्निमें वास ॥ ६१ ॥

इससे मैं दूसरा जन्म ले शीघ्र तेरा नाश करूँगी यह कहकर वेदवती अग्निमें जल गई॥६१॥

दोहा-तासु अंस सियमें मिलो, सो पहुँची वन आय ॥
रावण अपने निधन हित, सो लै गयो चुराय ॥ ६२ ॥

उसीका अंश जानकीमें मिला है, सो वनमें आयी, रावण उन्हें अपने नाशके निमित्त चुरा ले गया है ॥ ६२ ॥

ताते मनमें शोच न कीजै * जनक सुताहि खोजत मन दीजै॥१॥
यह मैं सुनी गुरुमुख बानी * सो तुमसे रघुराज बखानी ॥२॥

इससे मनमें शोच मत करो, जानकीजीको ढूँढ़ो ॥ १ ॥ हे राम ! मैंने ऋषि मतंग से सुना था, सो आपसे कहा ॥ २ ॥ इति क्षेपक ॥

पम्पासरहि जाहु रघुराई * मुनिवर विपुल रहे जहँ छाई ॥३॥
ऋषि मतंग महिमा गुण भारी * जीव चराचर रहत सुखारी ॥४॥

हे रघुनाथजी ! पम्पा सरोवरको जाओ, वहां बड़े २ श्रेष्ठ मुनि रहते हैं ॥३॥ मतंग ऋषिकी यह महिमा और बड़ा आशीर्वाद है कि वहां चर अचर जो रहेगा वह सुखी हो जायगा ॥४॥

वैर न कर काहू-सन कोई * जासन वैर प्रीति कर सोई ॥५॥
शिखर सुहावन कानन फूले * खग मृग जीव जन्तु अनुकूले॥६॥

कोई किसीसे वैर नहीं करता, जिससे वैर है वे भी (परस्पर) प्रीति करते हैं ॥ ५ ॥ पर्वत सुन्दर है, वन फूल रहे हैं खग मृग जीव जन्तु अनुकूल रहते हैं, हिंसादि भाव नहीं हैं ॥ ६ ॥

करहु सफल श्रम सबकर जाई * तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥७॥
सो सब कहिहि देव रघुवीरा * जानतहूँ पूछहु मतिधीरा ॥८॥

सबका श्रम जाकर सफल करो, वहां सुग्रीवसे मित्रता होगी (यह मतंग ऋषि कह गये थे) ॥ ७ ॥ हे देव रघुनाथजी ! वह सुग्रीव सब कहेगा जिस प्रकार जानकीजी हरी गयी हैं। आप जानकर भी पूछते हो इसी कारण बड़े धैर्यधारी हो ॥ ८ ॥

बार बार प्रभुपद शिरनाई * प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥९॥

प्रभुके चरणोंमें बार बार प्रणाम कर सुग्रीवकी मित्रता और रावण मरण या अवधराज तक जो भविष्य कथा मतंग ऋषिसे सुन रखी थी वह प्रेमसे सब सुनायी ॥ ९ ॥

छन्द-कहि कथा सकल विलोकि हरिमुख हृदय पदपंकज धरे ।
तजि योग पावक देह हरिपद लीन भई जहँ नहिं फिरे ॥
नर विविध कर्म अधर्म बहुमत शोकप्रद सब त्यागहू ।
विश्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥ २६ ॥

शबरी सब कथा कह प्रभुका मुख देखकर चरण कमल को हृदयमें धारणकर योगाग्निमें शरीर त्याग हरिपदमें लीन हो गयी; जहाँसे फिर नहीं लौटते हैं, मनुष्योंके अनेक प्रकारके कर्म अनेक मत शोकके देनेवाले हैं, इन्हें छोड़ो। तुलसीदासजी कहते हैं विश्वासकर रामजीके चरणों प्रीति करो ॥२६॥

दोहा-जातिहीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि ॥
महा-मंद मति सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ ६३ ॥

जिन्होंने जातिहीन जो पृथ्वीमें पापरूप है ऐसी नारीको भी मुक्त कर दिया वह महामंद मति हैं जो ऐसे प्रभुको छोड़कर सुख चाहते हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासि पं० सुखानन्द मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायामारण्यकांडे पञ्चमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा-याहि षष्ठ विश्राममें, कछुक विरह रघुनाथ ।
पुनि नारदकर आगमन, गावत गुणगण गाथ ॥ ६ ॥

चले राम त्यागा वन सोऊ * अतुलित बल नरकेहरि दोऊ ॥१॥
विरही इव प्रभु करत विषादा * कहत कथा अनेक संवादा ॥२॥

रघुनाथजी वहांसे भी आगे चले वन छोड़ दिया, दोनों बड़े बली, दोनों पुरुष सिंह हैं ॥१॥ विरही पुरुषोंकी नाई प्रभु विषाद करते अनेक कथा संवाद करते जाते ॥ २ ॥

लक्ष्मण देखहु कानन शोभा * देखत केहि कर मन नहिं क्षोभा ॥३॥
नारि सहित सब खग मृग वृन्दा * मानहु मोरि करतहहिं निन्दा ॥४॥

लक्ष्मण ! वनकी शोभा देखकर किसका मन क्षुभित नहीं होगा ? ॥ ३ ॥ सब खगमृगोंके समूह नारी सहित रहते हैं मानों मेरी निंदा करते हैं कि तुम स्त्री को साथ क्यों नहीं लिये रहे ?॥४॥

हमहिं देख मृग निकर पराहीं * मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं॥५॥
तुम आनन्द करहु मृगजाये * कञ्चन मृग खोजन यह आये ॥६॥

हमें देखकर मृग भागते हैं तब मृगी कहती हैं कि तुम इनसे भय मत करो ॥५॥ हे मृग-छौने तुम आनंद करो; ये तो सोनेका मृग ढूँढने आये हैं ॥ ६ ॥

संग लाय करिणी करि लेहीं * मानहुँ मोहि सिखावन देहीं ॥७॥

शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय * भूप सुसेवित वश नहिं लेखिय ॥८॥

हाथी हथिनियोंको साथ लेकर चलते हैं, मानो मुझे शिक्षा देते हैं कि तुम स्त्री इस प्रकार क्यों न लिये रहे ॥ ७ ॥ भली भाँति चिन्तित भी शास्त्रको बारम्बार देखते रहो तब ध्यान में रहता है नहीं तो नहीं। राजाकी अच्छी प्रकार सेवा करते रहो, परन्तु तो भी वह अपने वशमें नहीं होता ॥ ८ ॥

राखिय नारि यद्यपि उरमाहीं * युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं ॥९॥
देखहु तात वसन्त[1] सुहावा *प्रियाहीन मोहिं भय उपजावा॥१०॥

यद्यपि स्त्रीको हृदयमें ही रखिये तथापि स्त्री शास्त्र और महीप वशमें नहीं होते ॥९॥ हे तात ! देखो वसन्तकी कैसी शोभा हो रही है, परन्तु प्रियाहीन मुझे भय उपजाता है ॥१०॥

दोहा–विरह विकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल ॥
सहित विपिन मधुकर खगन, मदन कीन्ह बगमेल ॥ ६४ ॥

कामदेवने मुझे विरहसे व्याकुल बलहीन और अत्यन्त अकेला जानकर, वन, भौंरे पक्षी इनकी सवारीकी सहायता लेकर मेरे जीतनेकी तैयारी की है। बगमेल सवारी पक्षी आदि की अथवा हमारे जीतनेको बगमेल अर्थात् बाग छोड़ दी है ॥ ६४ ॥

दोहा–देखि गयउ भ्राता- सहित, तासु दूत सुनि बात ॥
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटक हटकि मनजात ॥ ६५ ॥

उस कामदेवके दूत (त्रिविध पवन) ने तुम्हारे सहित हमको देख यह बात उससे जा कही कि महाबली भ्राता संग हैं सो सुनकर तुम्हारे भयसे कामदेवने सेनाको हटाकर वहीं डेरा कर दिया ॥ ६५ ॥

विटप विशाल लता अरुझानी * विविध वितान दिये जनुतानी ॥१॥
कदलि ताल वर ध्वजा पताका * देखि न मोह धीर मन जाका॥२॥

डेरेका समाज वर्णन करते हैं–विशाल वृक्षोंमें जो लता चढ़कर छा रही है वे मानों अनेक प्रकारके तम्बू तने हैं ॥ १ ॥ केलेके वृक्ष सुन्दर ध्वज हैं, ताड़के वृक्ष पताका हैं, जिसके मनमें धैर्य है वही इन्हें देखकर नहीं मोहता ॥ २ ॥

विविध भाँति फूले तरु नाना * जनु बानैत बने बहु बाना ॥३॥
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाये * जनु भटविलग विलग है छाये॥४॥

जो वृक्ष अनेक रंगके फूले हैं वे ही मानों अनेक रंगके बाण चलानेवाले हैं ॥ ३ ॥ जो सुन्दर वृक्ष कहीं कहीं अलग हैं वे ही मानों महायोद्धा सेनाके बाहर डेरा किये हैं ॥ ४ ॥

कूजत पिक मानहु गज माते * ढेक महोख[2] ऊँट बिसराते ॥५॥
मोर चकोर कीर बर बाजी * पारावत मराल सब ताजी ॥६॥

कोयलका शब्द मानों मतवाले गज बोलते हैं, ढेक (कुलङ्गपक्षी) और महोख पक्षी मानो

१. कवित्त–"वेलिन वसंत औ नवेलिन वसंत वन, बागन वसंत रङ्गरागन वसंत है। कुंजन वसन्त विशि पुंजन वसंत अलिगुञ्जन वसंत चहुं ओरन वसंत है। छैलन वसंत और फैलन बसंत संग सैलन वसंत बहु गैलन वसंत है। रसिकविहारी नैन सैननमें चैननमें, जितै अवलोकौं तितै वसत वसंत है।" २ : यह पक्षी कौवेसे बड़ा लालरंगका होता है और मुंह काला, नेत्र लाल होते हैं।

ऊँट और खच्चर बोलते हैं ॥५॥ मोर चकोर और तोता मानो उत्तम घोड़े हैं, कबूतर हंस मानों ताजी घोड़े हैं ॥ ६ ॥

तीतर लावक पदचर यूथा ❋ बरणि न जाय मनोज वरूथा ॥७॥
रथ गिरि शिला दुन्दुभी झरना ❋ चातक बंदी गुणगण बरना ॥८॥

तीतर और लावा (बटेर) मानों पैदलोंके समूह हैं इस प्रकार कामकी सेना कही नहीं जाती॥७॥ पहाड़ोंकी टूटी शिला रथ हैं,झरना नगारे हैं, पपीहे गुण गणकी प्रशंसा करनेवाले भाट हैं ॥८॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई ❋ त्रिविध बयारि बसीठी आई ॥९॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे ❋ विचरत सबहि चुनौती दीन्हे ॥१०॥

भौंरोंका शब्द मानों भेरी और शहनाई बजती है, शीतल, मन्द, सुगंध पवन बसीठी अर्थात् दूत आते हैं कि तुम शत्रुसे मिलो, मत लड़ो॥९॥ इस प्रकार चतुरंगिनी-हाथी के सवार, अश्वारोही, रथी, पैदलोंकी सेना लिये सबकी हँसी करता कामदेव पृथ्वीमें विचरता है॥१०॥

लक्ष्मण देखत काम अनीका ❋ रहहि धीर तिन्हकी जगलीका॥११॥
इहिके एक परम बल नारी ❋ तेहिते उबर सुभट सोइ भारी॥१२॥

हे लक्ष्मण ! कामकी सेना देखते जो धैर्य धारण करें उन्हींकी जगत्में मर्यादा है ॥११॥ इसको एक स्त्रीका बड़ा बल है; जो उससे बचे वही बड़ा योद्धा है ॥ ॥ १२ ॥

दोहा–तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ॥
मुनि विज्ञानधाम मन, करहिं निमिष मँह क्षोभ ॥ ६६ ॥

हे तात ! तीन बड़े दुष्ट शत्रु हैं काम क्रोध और लोभ ये बड़े बड़े विज्ञानी मुनियोंके मनमें भी क्षणमात्रमें क्षोभ कर देते हैं। (ये ही तीन सेनापति हैं) ॥ ६६ ॥

दोहा–लोभके इच्छा दंभ बल, कामके केवल नारि ॥
क्रोधके परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि ॥ ६७ ॥

लोभका बल अर्थात् सेना इच्छा और पाखण्ड है कामका बल केवल स्त्री है और क्रोध का बल कठोर वचन बोलना है, यह बात मुनिवर विचार कर कहते हैं ! प्राणीने पाखण्ड किया कि उसको लोभने जीत लिया, जहाँ स्त्रीसे प्रेम भरी बातें की, बस कामकी जय हुई। कठोर वचन कहते ही क्रोधकी जय हुई ॥ ६७ ॥

गुणातीत सचराचर स्वामी ❋ राम उमा सब अन्तर्यामी ॥१॥
कामिन्हकी दीनता दिखाई ❋ धीरनके मन विरति दृढ़ाई ॥२॥

हे पार्वति ! तीनों गुणोंसे परे चराचरके स्वामी राम जो सबके अन्तरमें टिके हैं ॥ १ ॥ वे कामियोंकी दीनता दिखाते हैं और धीरोंके मनमें वैराग्य दृढ़ करते हैं ॥ २ ॥

क्रोध मनोज लोभ मदमाया ❋ छूटहिं सकल रामकी दाया ॥३॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला ❋ जापर होइ सो नट अनुकूला ॥४॥

रामचन्द्रजीकी दयासे काम, क्रोध, लोभ, माया सब छूट जाते हैं ॥ ३ ॥ वही मनुष्य इस इन्द्रजालमें नहीं भूलता जिस पर वह (इन्द्रजाल करनेवाला) नट अनुकूल रहता है। भाव यह कि रामचन्द्रकी कृपासे मायाके गुण नहीं व्यापते ॥ ४ ॥

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ❋सत हरिभजन जगत सब सपना॥५॥

पुनि प्रभु गये सरोवर-तीरा ❋ पंपा नाम सुभग गम्भीरा ॥६॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! मैं अपना अनुभव कहता हूँ इस स्वप्नरूपी जगत्‌में हरिका भजन ही सत्य है ॥५॥ फिर प्रभु पंपा नामक सरोवरके किनारे गये जो सुन्दर और गम्भीर है ॥ ६ ॥

संत हृदय जस निर्मल वारी ❋ बाँधे घाट मनोहर चारी ॥७॥
जहँ तहँ पियहिं विहँग मृग नीरा ❋ जनु उदार गृह याचक भीरा ॥८॥

सन्तोंके हृदयके समान उनका निर्मल जल है, सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं ॥७॥ जहाँ तहाँ विहंग मृग जल पीते हैं, जैसे दाता पुरुषोंके यहाँ याचकोंकी भीड़ लगी रहती है ॥ ८ ॥

दोहा-पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म ॥
मायाछन्न न देखिये, जैसे निर्गुण ब्रह्म ॥ ६८ ॥

पुरइनकी सघनतासे जल ऐसा ढका है कि एकाएकी उसका भेद नहीं मिलता, जैसे निर्गुण ब्रह्म मायासे ढका हुआ नहीं दिखाई देता ॥ ६८ ॥

दोहा-सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जलमाहिं ॥
यथा धर्म-शीलन्हके, दिन सुख संयुक्त जाहिं ॥ ६९ ॥

अति गहरे जलमें सब मछली एकरस सुखसे रहती हैं जैसे धर्मात्माओंके दिन एक रस सुखसे बीतते हैं ॥ ६९ ॥

विकसे सरसिज नाना रंगा ❋ मधुर मुखर गुञ्जत बहु भृङ्गा ॥१॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा ❋ प्रभु विलोकि जनु करत प्रशंसा॥२॥

अनेक रंगके कमल खिले हैं सुखदायक बहुतेरे भौंरे अनेक प्रकारसे गुञ्जारते हैं ॥ १ ॥ जल-मुर्गावी और हंस बोल रहे हैं,मानो रघुनाथजीको देखकर प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

चक्रवाक बक खग समुदाई ❋ देखत बनै वरणि नहिं जाई ॥३॥
सुन्दर खगगण गिरा सुहाई ❋ जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥४॥

चकवा, चकवी,बगले और भी पक्षियोंका समूह है वह देखतेही बनता है कहा नहीं जाता॥३॥ सुन्दर पक्षियोंके समूहोंकी ऐसी सुन्दर वाणी है जो जाते हुए पथिकोंको मानो बुला लेती है॥४॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये ❋ चहुँदिशि कानन विटप सुहाये॥५॥
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला ❋ पाटल पनस पलास रसाला ॥६॥

तालके समीप मुनियोंके आश्रम बने हैं, चारों ओर वनके वृक्ष सुन्दर हैं॥५॥ चंपा, बकुल, (मौलसिरी), कदम्ब, तमाल, पाटल (जिसमें केवल फूल होता है), कटहर, ढाक, आम ॥६॥

नवपल्लव कुसुमित तरु नाना ❋ चंचरीक पटली कर गाना ॥७॥
शीतल मन्द सुगंध सुभाऊ ❋ सन्तत बहै मनोहर बाऊ ॥८॥

अनेक प्रकारके वृक्ष नवपल्लव फूलसे शोभित हैं, उनपर भौंरोंकी कतार गान कर रही है ॥७॥ शीतल, मन्द, सुगंधयुक्त पवन सदैव चलता रहता है ॥ ८ ॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं ❋सुनिरवसरस ध्यान मुनि टरहीं॥९॥

कोकिला 'कुहू-कुहू' शब्द करती हैं, उस रसीले शब्दको सुनकर मुनियोंके भी ध्यान छूट जाते हैं ॥ ९ ॥

दोहा–फल भारन ते विटप सब, रहे भूमि नियराय ॥
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाय ॥ ७० ॥

फलों के बोझसे सब वृक्ष पृथ्वीपर झुक रहे हैं जैसे परोपकारी पुरुष उत्तम संपत्ति पाकर झुक जाते हैं ॥ ७० ॥

देखि राम अति रुचिर तलावा * मज्जन कीन्ह परमसुख पावा ॥१॥
देखी सुन्दरि तरुवर-छाया * बैठे अनुज-सहित रघुराया ॥२॥

रघुनाथजी सुन्दर सरोवर देखकर प्रसन्न हुए और मज्जन कर अत्यन्त सुख पाये ॥ १ ॥ एक सुन्दर वृक्षकी छाया देखकर लक्ष्मणसहित रघुनाथजी बैठ गये ॥ २ ॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आये *अस्तुति करि निज धाम सिधाये॥३॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला * कहत अनुजसन कथा रसाला॥४॥

फिर वहां सब देवता तथा मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने स्थानोंको चले गये॥३॥ दयालु रघुनाथजी परम प्रसन्नतासे बैठे और कुछ सुन्दर कथा लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥

विरहवंत भगवंतहि देखी * नारद मन भा शोच विसेखी ॥५॥
मोर शाप करि अङ्गीकारा * सहत राम नाना दुख भारा ॥६॥

विरहयुक्त रघुनाथजीको देखकर नारदजीके मनमें शोच हुआ कि ॥ ५ ॥ मेरा शाप अंगीकार कर रघुनाथजी ऐसे बड़े बड़े अनेक दुःख सहते हैं ॥ ६ ॥

ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई *पुनि न बनहि अस अवसर आई॥७॥
यह विचार नारद कर बीना * गये जहां प्रभु सुख आसीना ॥८॥

ऐसे समय प्रभुको जाकर देखूँ, फिर आकर ऐसे समय नहीं बनेगा ॥ ७ ॥ यह विचार नारदजी हाथमें वीणा लिये जहाँ रघुनाथजी सुखसे बैठे थे वहां गये। पिछली चौपाईमें 'विरहवंत' और यहां 'सुखासीन' पाठ है, इसका कारण यह है कि दूसरोंकी दृष्टिमें विरहवंत हैं और स्वयं सुखसे स्थित हैं। अथवा पम्पासरोवरके प्रभावसे सुखपूर्वक बैठे हैं। अथवा जानकीके वियोगमें विरही और पृथ्वीके भार हरनेको सुखासीन हैं ॥ ८ ॥

गावत रामचरित मृदु बानी * प्रेम सहित बहु भांति बखानी ॥९॥
करत दण्डवत लिये उठाई * राखे बड़ी बार उर लाई ॥१०॥

मृदुवाणीसे रामचरित प्रेमपूर्वक बहुत भांतिसे बखानकर गाते हैं ॥ ९ ॥ दंडवत् करते ही रघुनाथजीने उठा लिया और बड़ी देर तक हृदयसे लगाये रहे ॥ १० ॥

स्वागत पूछि निकट बैठारे * लक्ष्मण सादर चरण पखारे ॥११॥

कुशल पूछकर समीप बैठाया, लक्ष्मणजीने आदरपूर्वक चरण धोये ॥ ११ ॥

दोहा–नानाविधि विनती करी, प्रभु प्रसन्न जिय जानि ॥
नारद बोले वचन तब, जोरि पंकरुह पानि ॥ ७१ ॥

अनेक प्रकारसे विनय कर जीसे प्रभुको प्रसन्न जान नारदजी कमलसे हाथ जोड़कर बोले॥७१॥

सुनहु उदार परम रघुनायक * सुन्दर अगम सुगम वरदायक ॥१॥
देहु एक वर मांगउँ स्वामी * यद्यपि जानहु अन्तर्यामी ॥२॥

हे परमउदार रघुनाथजी ! सुनिये, आप सुन्दर हो अगम (कठिनतासे प्राप्त होने योग्य) हो प्रेमसे सुगम हो, वरदाता हो ॥१॥ हे स्वामी ! हे अन्तर्यामी ! यद्यपि आप (सब) जानते हो तो भी आपसे एक वर माँगता हूँ कृपाकर दीजिये। (तब रघुनाथजी बोले) ॥ २ ॥

जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ * जनसन कबहुँ न करउँ दुराऊ ॥३॥
कवनि वस्तु असि प्रिय मोहि लागी * जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी॥४॥

हे मुनिवर ! आप मेरा स्वभाव जानते हो कि मेरा भक्तोंके साथ कुछ दुराव नहीं है ॥३॥ हे मुनिवर ! ऐसी कौनसी वस्तु मुझे प्यारी लगी जो आप माँग नहीं सकते ! ॥ ४ ॥

जनकहँ कछु अदेय नहिं मोरे *अस विश्वास तजहु जनि भोरे॥५॥
तब नारद बोले हरसाई * अस वर माँगउँ करउँ ढिठाई ॥६॥

भक्तोंको मुझे कभी कोई वस्तु अदेय नहीं है ऐसा आप विश्वास भोरसे भी मत छोड़ना ॥५॥ तब नारदजी प्रसन्न होकर बोले-ऐसा वर मांगता हूँ; ढिठाई करता हूँ ॥ ६ ॥

यद्यपि प्रभुके नाम अनेका * श्रुति कह अधिक एकते एका॥७॥
राम सकल नामनते अधिका *होउ नाथ अघ खग गण बधिका॥८॥

यद्यपि प्रभुके अनेक नाम हैं वेद एकसे एक अधिक कहता है, परन्तु ॥७॥ हे नाथ ! राम के नाम सब नामोंसे अधिक पापरूपी पक्षियोंके लिये वधिक हो ॥ ८ ॥

दोहा-राकारजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम ॥
अपर नाम उडुगण विमल, बसहु भक्त उर व्योम ॥ ७२ ॥

आपकी भक्ति (कारकी) पूर्णिमाकी रात्रि हो राम नाम पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान तारागणके समान और नामोंके सहित मुझ भक्तके हृदयरूपी आकाशमें निवास करें ॥ ७२ ॥

दोहा-एवमस्तु मुनिसन कहे, कृपासिंधु रघुनाथ ॥
तब नारद मन हर्ष अति, प्रभु पद नायउ माथ ॥ ७३ ॥

जब कृपासागर रघुनाथजीने नारदकी बात सुनकर कहा 'ऐसा ही होगा' तब नारदजीने मनमें अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रभुके पदमें माथा नवाया ॥ ७३ ॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी * पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥१॥
राम जबहि प्रेरेउ निज माया * मोहेउ मोहि सुनहु रघुराया ॥२॥

रघुनाथजीको अधिक प्रसन्न जानकर फिर नारदजी कोमल वाणी बोले ॥ १ ॥ हे रघुनाथजी ! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरणा करके मुझे मोहित किया था ॥ २ ॥

तब विवाह मैं चाहउँ कीन्हा *प्रभु केहि कारण करन न दीन्हा ॥३॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा *भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा॥४॥

तब मैं विवाह करना चाहता था सो हे प्रभु आपने किस कारण नहीं करने दिया ? ॥ ३ ॥ रामचन्द्र बोले हे मुनि सुनिये, आपसे कहता हूँ जो शूरता पूर्वक और सब भरोसा छोड़ मेरा भजन करते हैं। अथवा सहरोसा-सत्यसंकल्प कर कहता हूँ ॥ ४ ॥

करउँ सदा तिन्हकी रखवारी * जिमि बालकहि राख महतारी॥५॥
गह शिशु वत्स अनल अहि धाई * तहँ राखै जननी अरु गाई ॥६॥

मैं सदा उनकी रखवारी करता हूँ, जैसे महतारी बालककी रक्षा करती है ॥५॥ जबकि बालक और बछड़ा अग्नि और सर्पको पकड़ने दौड़ते हैं तब माता और गैया रक्षा करती है ॥ ६ ॥

प्रौढ भये तेहि सुत पर माता ❋ प्रीति करै नहिं पाछिल बाता ॥७॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी ❋ बालकसुत सम दास अमानी ॥८॥

वही पुत्र जब बड़ा (ज्ञानवान्) हो जाता है तब माता पिछलीसी प्रीति नहीं करती ॥७॥ ऐसे ही जो ज्ञानी हैं वे हमारे बड़े बेटे हैं क्योंकि वे अब अपनेको सँभाल लेते हैं और अमानी अर्थात् मान रहित दास छोटे बालक हैं ॥ ८ ॥

जनहिं मोर बल निज बल ताही ❋ दुहुँकहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥९॥
यह विचारि पंडित मोहि भजहीं ❋पायहु ज्ञानभक्ति नहिं तजहीं ॥१०॥

हमारे जो छोटे बालक हैं उन्हें हमारा बल है और ज्ञानी जो बड़े बेटे हैं उनको अपना बल है, और काम क्रोध शत्रु दोनोंके निकट घात करनेको खड़े हैं ॥ ९ ॥ यह विचार कर पंडित मेरा भजन करते हैं और ज्ञान पाकर भी भक्ति नहीं त्यागते ॥ १० ॥

दोहा—काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोहकी धारि ॥
तिन महँ अति दारुण दुखद, माया रूपी नारि ॥ ७४ ॥

मोह जो सबसे प्रधान है उसकी धारि अर्थात् सेनामें यद्यपि काम, क्रोध, लोभ आदि दुःखदायी हैं परन्तु उनमें अति दारुण दुःख देनेवाली मायारूपी स्त्री है ॥ ७४ ॥

सुनु मुनि कह पुराण श्रुति सन्ता ❋ मोह विपिन कहँ नारि वसन्ता॥१॥
जप तप नियम जलाशय झारी ❋ होइ ग्रीषम शोषइ सब नारी ॥२॥

सुनो, मुनि ! पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वनको स्त्री ही वसंत ऋतु है अर्थात् स्त्रीसे मोह बढ़ता है ॥१॥ जप तप नियमरूपी सरोवरको स्त्री ग्रीष्म ऋतु हो शोष लेती है ॥२॥

काम क्रोधमद मत्सर भेका ❋ इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका ॥३॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई ❋ तिन्ह कहँ शरद सदा सुखदाई॥४॥

काम, क्रोध, अभिमान, मत्सररूपी मेढ़कोंको आनन्द देनेको एकमात्र स्त्री ही वर्षा ऋतु है ॥ ३ ॥दुर्वासनारूपी बबूलोंको सदा सुख देनेके निमित्त स्त्री शरद ऋतु है ॥ ४ ॥

धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा ❋होइ हिम तिनहिं देत दुखमन्दा॥५॥
पुनि ममता जवास बहुताई ❋ पलुहै नारि शिशिर ऋतुपाई ॥६॥

वर्णाश्रम धर्मरूपी समस्त कमलोंको स्त्री हिम ऋतु होकर दुख देती है ॥ ५ ॥ फिर ममतारूपी जवासेके वन स्त्री शिशिर ऋतु बढ़ाती है वा पालती है ॥ ६ ॥

पाप उलूक-निकर सुखकारी ❋ नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥७॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना ❋ वंशी सम तिय कहहिं प्रवीना॥८॥

पापरूपी उलूकोंको सुखदायक यह नारी महा अँधेरी रात है ॥ ७॥ बुद्धि बल शील सत्य रूपी सब मीनोंको स्त्री वंशीके समान है ऐसा चतुर पुरुष कहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—अवगुणमूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुखखानि ॥
तातें कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि ॥ ७५ ॥

हे मुनि ! अवगुणकी मूल अनेक दुःखोंको देनेवाली स्त्री सब दुःखोंकी खानि है, बस यही जीमें जानकर मैंने आपको निवारण कर दिया था ॥ ७५ ॥

सुनि रघुपतिके वचन सुहाये * मुनि तनु पुलक नयन भरि आये॥१॥
कहहु कवन प्रभुकी असि रीती * सेवक पर ममता अति प्रीती ॥२॥

रघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकायमान होकर नेत्रोंमें जल भर आया॥१॥ कहो ऐसी किस प्रभुकी रीति है जिसकी सेवकके ऊपर ऐसी ममता और परम प्रीति हो ? ॥२॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी * ज्ञानरंक नर मन्द अभागी ॥३॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद * सुनहु राम विज्ञान विशारद ॥४॥

जो ऐसे प्रभुको भ्रम त्यागकर नहीं भजते वे ज्ञानके दरिद्र, मन्द, भाग्यहीन हैं ॥ ३ ॥ फिर आदरपूर्वक मुनि नारदजी बोले-हे विज्ञानके पारगामी रघुनाथजी ! सुनिये ॥ ४ ॥

सन्तनके लक्षण रघुबीरा * कहहु राम भंजन भव भीरा ॥५॥
सुनि मुनि सन्तनके गुण कहऊँ * जिन्हते मैं उनके वश रहऊँ ॥६॥

हे रघुनाथजी ! संतोंके लक्षण कहिये आप संसारकी भीर अर्थात् जन्म मरणके मेटनेवाले हो ॥५॥ रामचन्द्रजी बोले-सुनो मुनि ! सन्तोंके लक्षण कहता हूँ जिनसे मैं उनके वशमें रहता हूँ॥६॥

षटविकार जित अनघ अकामा * अचल अकिंचन शुचि सुखधामा॥७॥
अमित बोध अनीह मित भोगी * सत्यसार कवि कोविद योगी ॥८॥

छः विकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अहंकारको जीतकर पापरहित कामनारहित अचल, धनके लोभसे रहित; पवित्रता और सुख जिनके हृदयमें स्थित है ॥ ७ ॥ बड़े ज्ञानी, चाहना रहित, मितभोगी, सत्यसारके कवि, अर्थात् कहनेवाले और (कोविद) सत असत् के जाननेवाले पंडित, (योगी) इंद्रिय जीतनेवाले ॥ ८ ॥

सावधान मानद मद हीना * धीर भक्ति पथ परम प्रवीना ॥९॥

सदा धर्ममें सावधान, मानदाता, मदसे रहित, बड़े धैर्यवान्, भक्ति मार्गमें परम प्रवीण॥९॥

दोहा-गुणागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह ॥
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन कहँ देह न गेह ॥ ७६ ॥

गुणके घर, संसारके दुःखसे भिन्न और सन्देह रहित हैं और हमारे चरण कमलकी प्रीतिको छोड़कर उनको न तो देह प्यारा है और न घर ही प्यारा है ॥ ७६ ॥

निजगुण श्रवण सुनत सकुचाहीं * परगुण सुनत अधिक हर्षाहीं ॥१॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती * सरल सुभाव सबहिं सन प्रीती॥२॥

जो अपने गुण श्रवण कर सकुचाते और पराये गुण श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥१॥ जो सम शीतल हैं वे नीति नहीं त्यागते किंतु सीधे स्वभावसे रहते और सबसे प्रीति रखते हैं॥२॥

जप तप व्रत दम संयम नेमा * गुरु गोविंद विप्रपद प्रेमा ॥३॥
श्रद्धा क्षमा मइत्री दाया * मुदिता ममपद प्रीति अमाया ॥४॥

जप, तप, व्रत, दम, संयम करते हुए गुरु गोविंद और ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं,

(दम) इंद्रियोंको जीतना, (संयम) विषय त्याग ॥ ३ ॥ श्रद्धा, क्षमा, मित्रता, दया, प्रसन्नता, मेरे चरणोंमें माया रहित प्रीति ॥ ४ ॥

विरति विवेक विनय विज्ञाना * बोध यथारथ वेद पुराना ॥५॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ * भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥६॥

विरति (त्याग), विवेक (सत् असत्का जानना), विनय (नम्रता), विज्ञान (अंतर्विचार) और वेद पुराणोंका यथार्थ बोध ॥ ५ ॥ कभी पाखण्ड और अभिमान नहीं करते, भूलकर भी कुमार्गमें पग नहीं रखते ॥ ६ ॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला * हेतु रहित परहित रत शीला ॥७॥
सुनु मुनि साधुनके गुण जेते * कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते॥८॥

सदा मेरी लीलाको गाते सुनते हैं और अपने प्रयोजन विना परायेका हित करते हैं ॥७॥ सुनो मुनि ! जितने साधुओंके गुण हैं उसे शेष, सरस्वती भी नहीं कह सकते ॥ ८ ॥

छन्द–कहि सक न शारद शेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपालु अपने भक्त गुण निजमुख कहे ॥
शिर नाइ बारहिंबार चरणन्ह ब्रह्मपुर नारद गये ।
ते धन्य तुलसीदास आश विहाय जे हरि रंग रये ॥ २७ ॥

शेष, शारदा भी उन गुणोंका वर्णन नहीं कर सकते, यह वचन सुनकर नारदजीने रघुनाथजीके चरणकमल पकड़े और बोले कि आपही ऐसे दीनबन्धु कृपालु हैं जो अपने भक्तोंके गुण अपने मुखसे वर्णन किये बार बार चरणोंमें शिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं–वे मनुष्य धन्य हैं जो आशा छोड़कर सब प्रकारसेहरिके रंगमें रंगे हैं॥२७॥

दोहा–रावणारियश पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग
रामभक्ति दृढ़ पावहिं, विनु विराग जप योग ॥ ७७ ॥

जो लोग रावणके शत्रु रघुनाथजीका यश गावेंगे वा सुनेंगे वे विना वैराग्य जप योग किये ही रघुनाथजीकी दृढ़ भक्ति पावेंगे ॥ ७७ ॥

दोहा–दीपशिखा सम युवति तन, मन जनि होसि पतंग ॥
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सत्संग ॥ ७८ ॥

हे मन, दियेकी लपटके समान स्त्रीके तनोंमें पतंग होकर मत जल, काम; मदको छोड़कर सदा रामको भज और सत्संग कर (क्षे०)(कांडमें जो बहुतसे क्षेपक हैं उनको टीकाकारोंने माना है परंतु खड्ग विलासके छपे मूल रामायणमें इसके क्षेपक मूल नहीं समझे गये हैं) ॥ ७८ ॥

दोहा-नीलसरोरुह श्यामघन,रामचन्द्र भगवान्। नित ज्वाला परसादके हिये विराजो आन ॥१॥
कियो तिलक भावार्थ यह,निज मतिके अनुसार। है विश्वास विचारि प्रभु, करिहैं अंगीकार॥२॥
महाकठिन कलिकालमें और न साधन कोय। केवल हरिको नाम इक, जपै पार सो होय ॥३॥
पढ़े सुने सुख पावहीं, भक्ति करहिं नर नारि । प्रीति और विश्वाससे, लहहिं पदारथ चारि ॥४॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने विमलकर्मवैराग्यज्ञानपराभक्तिपरतम उपासना सम्पादनो नाम तृतीयः सोपानः ॥३॥
इति श्रीरामचरितमानसे आरण्यकांडे विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां षष्ठो विश्रामः। तृतीयः सोपानः समाप्तः ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत

रामायण

किष्किन्धाकाण्डम् ४.

विद्यावारिधि-

श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

श्रीरामपञ्चायतन



किष्किन्धाकाण्डम् ४

दोहा-रामचरणरति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
भावसहित सो यह कथा, करे श्रवणपुट पान॥



ऋष्यमूक पर्वतपर हनुमान्‌जीका सुग्रीवकी आज्ञासे रघुनाथजीका परिचय लेना।

दोहा-वारि मथे बरु होइ घृत, सिकताते बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

किष्किन्धाकाण्डम् ४.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

श्लोक-कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ,
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ॥
माया मानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हि तौ,
सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥ १ ॥

श्रीगोसाईंजी महाराज मंगलाचरणरूप ध्यान करते हैं–जो कुन्दपुष्पके समान गौरवर्ण श्री लक्ष्मणजी और इन्दीवर अर्थात् श्यामकमलके समान श्रीरघुनाथजी हैं दोनों अति-सुन्दर, अतिबलवान्, विज्ञानके धाम, शोभाके आगार, श्रेष्ठ धनुष धारण किये, वेदोंसे स्तूय-मान, गो ब्राह्मणोंके प्यारे अथवा उनको गो ब्राह्मण प्यारे हैं, दोनोंने मायाको अंगीकार कर मनुष्य रूप धारण किया है, रघुकुलमें श्रेष्ठ सद्धर्मवाले अर्थात् सुन्दर धर्मरूप कवचसे संयुक्त, सीताजीके ढूँढ़नेमें तत्पर होकर मार्गमें प्राप्त हैं, वे दोनों हमें निश्चय भक्ति देनेवाले हैं । जहां 'सद्धर्मवन्तौ' पाठ है वहां सनातनधर्मसे युक्त ऐसा अर्थ करना ॥ १ ॥

श्लोक-ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं,
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा ॥
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं,
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ २ ॥

"ते कृतिनः धन्याः" वे सुकर्म करनेवाले धन्य हैं जो निरंतर रामनामरूपी अमृतका पान करते हैं । वह रामनामरूपी अमृत कैसा है ? ब्रह्म जो वेदरूपी समुद्र है, उससे उत्पन्न है और कलिमल अर्थात् कलिके पातक आदिका नाशक है, "अव्ययम्" जन्म मरणादिसे रहित है और परम शोभायुक्त श्रीमहादेवजीके सुन्दर मुखचन्द्रमें सदैव शोभित है, संसाररूपी रोगका औषध तथा सुख करनेवाला है और (वियोग समुद्रमें) श्री जानकीजीको जिलानेवाला है ॥२॥

दोहा-प्रथम सुगम विश्राममें, भइ कपीशसों प्रीति।
जन्मकथा सुग्रीवकी, वर्णन कीन्ह सुरीति ॥ १ ॥

सोरठा-मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर ॥
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न ॥ १ ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी शिव पार्वतीकी वंदना करते हैं-ज्ञानकी खानि, (सम्पूर्ण) पापोंके नाश करनेवाली और मुक्तिकी जन्मभूमि जानकर जिस काशीमें शिवपार्वती (सदा) वसते हैं उस काशीको महादेवसहित क्यों न सेवन करूँ ? दूसरा अर्थ यह कि श्रीमद्रामायण कैसा है, मुक्तिकी जन्मभूमि, ज्ञानकी खानि है अघको नाश करता है, जिस रामायणमें, शिवपार्वती अन्तः करणसे सदा बसते हैं; फिर रामायण कैसा है कि, 'शोकाशी' अर्थात् शोक के नाश करनेको असि (खड्ग) है, अतः इस रामायणको क्यों न सेवन करें ? अर्थात् अवश्य करें। इस सोरठेका अर्थ अयोध्यामें भी लगाते और राम नाम पर भी लगाते हैं परंतु उसमें खैंच बहुत करनी पड़ती है; इससे उसमें रस नहीं रहता; जैसे ज्ञानकी खानि और 'अघहानिकर' पापका दूर करनेवाला 'र' है और मुक्तिकी जन्मभूमि 'महि' निश्चय करके मकार है, जिन दो अक्षरोंमें शिव पार्वती निवास करते हैं, जो शोकके लिये असि अर्थात् खड्ग उसका क्यों न सेवन किया जाय ? ॥ १ ॥

सोरठा-जरत सकल सुरवृन्द, विषम गरल जेहि पान किय ॥
तेहि न भजसि मन मन्द, को कृपालु शंकर सरिस ॥ २ ॥

श्रीमद्रामायणका आचार्य जानके फिर महादेवजीको प्रणाम करते हैं-जिस महाविषकी ज्वालासे सम्पूर्ण देव, दैत्य समूह व्याकुल हुए जाते थे उस विषम विषको जो पान कर गये इससे शङ्करके समान कृपालु कौन है ? उन शिवजीको रे मूर्ख मन ! तू क्यों नहीं भजता ? अथवा जिस रामनामकी महिमासे शिवजी विषम विषको पान कर गये उस नामको क्यों नहीं भजता ? अथवा जिसकी महिमा शंकरके समान कोई कृपालु नहीं जो अन्तमें काशीमें प्राण छोड़नेवालोंको रामनामका उपदेश करते हैं ॥ २ ॥

आगे चले बहुरि रघुराया * ऋष्यमूक पर्वत नियराया ॥१॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा * आवत देखि अतुलबल सींवा ॥२॥

फिर श्रीरामचन्द्रजी आगेको चले ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे। 'आगे' शब्द कहनेसे आरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्डका सम्बन्ध मिल गया, अर्थात् आरण्यको छोड़ आगे किष्किन्धाको चले। दूसरा अर्थ यह कि जैसे पहले आप आगे चलते और लक्ष्मणजी पीछे होते थे वैसे ही फिर आगे चले। तीसरे यह राज्य छूटा, माता पिता छूटे, देश छूटा, वनमें आनेसे सब भोग छूटे उस पर भी सीता हरण हुआ; इन विपत्तियोंको सहकर पीछे फिरनेका विचार नहीं किया, किंतु फिर आगेको ही चले। 'रघुराया' कह कर शूरताकी प्रधानता दिखाते हैं। वा इस काण्डमें राजधर्मको प्रधान करेंगे; क्योंकि जब सुग्रीवने अपनी विपत्ति और बालिके अन्यायोंका वर्णन किया तब रघुनाथजीने जानकीकी सुधिमें अपना अर्थ विचार सुग्रीवका पक्ष कर बालिका वध किया, यही राजधर्म है। 'ऋष्यमूक' इस पर्वतका नाम इस कारण था कि यहां ऋषिलोग मौन धारण करते थे ॥१॥ वहां मंत्रियों सहित सुग्रीव रहता था, वह इन अतुलबलके मर्यादारूप दोनों भाइयोंको आते देखकर ॥ २ ॥

अति सभीत कह सुनु हनुमाना * पुरुष युगल बल रूप निधाना ॥३॥
धरि बटुरूप देखु तैं जाई * कहेसु जानि जिय सैन बुझाई ॥४॥

अतिसभीत अर्थात् वालिके भयसे डरा हुआ सुग्रीव हनुमानसे बोला-हे महावीर देखो ये दोनों पुरुष बड़े बलवान् और रूपवान् हैं जो अनेक विघ्नोंसे भरे बनमें निःशंक चले जाते हैं ॥ ३ ॥ सो तू ब्रह्मचारीका रूप धर जाकर देख, क्योंकि ब्रह्मचारी अवध्य है और मंगलरूप है। अथवा विद्यार्थी रूप धर, क्योंकि उनका स्वभाव चञ्चल होता है, विना प्रयोजन प्रश्न करना उनको उचित है, सो देखकर जैसा वृत्तान्त हो सो मुझे वानरी सैनसे जता देना जिससे वे न जानें ॥४॥

पठये बालि होइ मन मैला * भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥५॥
विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ * माथ नाइ अस पूछत भयऊ ॥६॥

जो ये वालिके पठाये हों तो तुम उदास हो जाना। अथवा जो ये मनमलिन भाई वालिके भेजे होंगे तो मैं इस पर्वतको छोड़कर भाग जाऊँगा। वालिको 'मनमैला' क्यों कहा कि उसने सर्वस्व छीन इसकी स्त्रीसे भोग किया ॥ ५ ॥ ब्राह्मणका रूप धर महावीरजी वहां गये और हमारा स्वरूप पहचान न जाय इस कारण शिर नीचे किये ही यह वचन बोले। अथवा महावीरजीने जाना कि ये कोई ब्रह्मऋषिके बालक हैं इस कारण प्रणाम किया। अथवा महावीरजी अपनेको वानर जानते हैं इस कारण प्रणाम किया। अथवा यह भी लेख है कि जो कोई वनान्तर वा तीर्थमें अपूर्व रूप देख पड़े तो उसमें देव बुद्धि कर प्रणाम करे। तीसरे यह कि महावीरजीको दूरसे देख यह बुद्धि हुई कि तीनों देवताओंमें कोई हैं वा नर नारायण व परब्रह्म हैं इस कारण बड़े हैं। अथवा उत्तम पुरुष श्रेष्ठोंके साथ नीचा मुखकर बात करते हैं रघुनाथजीके तेजसे धर्षित हो महावीरजी नीचा शिर कर बोले ॥ ६ ॥

को तुम श्यामल गौर शरीरा * क्षत्रिय रूप फिरहु बन वीरा ॥७॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी * कवन हेतु वन विचरहु स्वामी ॥८॥

आप श्याम और गौर शरीरवाले कौन हो क्षत्रियका रूप धरे वीरवृत्तिसे वनमें फिरते हो ? ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! यह पृथ्वी वनकी बड़ी कठिन है, आपके कोमल पद हैं, क्या कारण है जो आप वनमें फिरते हो ? (यह दूसरा प्रश्न हुआ) ॥ ८ ॥

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता * सहत दुसह वन आतप वाता ॥९॥
की तुम तीन देवमहँ कोऊ * नरनारायण की तुम दोऊ ॥१०॥

आपके कोमल मनोहर सुन्दर शरीर हैं, आप किस कारण वनकी दुःसह गरमी और पवन सहते हो ? ॥९॥ क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओंमेंसे कोई हो, एक तुमसे बिछुड़ गया है ? अथवा आप नरनारायण ये दो मूर्ति धारण करके जगत्में रक्षा हेतु विचरते हो ? ॥१०॥

दोहा-जग कारण तारण भवहि, भञ्जन धरणी भार ॥
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ॥ १ ॥

क्या आप जगत्के परम कारण संसारसागरसे तारनेवाले पृथ्वीके भारहर्ता हो ? अथवा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके पति अपनी इच्छासे मनुज अवतार धारण कर वनमें आये हो ? ॥ १ ॥

"हँसि बोले रघुवंश कुमारा *विधिकर लिखा को मेटनहारा" ॥१॥

कोशलेश दशरथके जाये * हम पितु वचन मानि बन आये॥२॥

रघुनाथजी हँसकर बोले–ब्रह्माका लेख कौन मेट सकता है ? अथवा विधाताके लेखको मेटनेवाले रघुवंशकुमार हँसकर बोले (यह चौपाई क्षेपक है) ॥१॥ प्रथम प्रश्नका उत्तर देते हैं कि अयोध्याके राजा दशरथके हम पुत्र हैं और पिताके वचन मानकर वनमें आये हैं ॥२॥

नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई * संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥३॥
यहाँ हरी निशिचर वैदेही * विप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥४॥

हमारे दोनों भाइयोंका नाम 'राम' और 'लक्ष्मण' है संगमें हमारी कोमल शोभायमान स्त्री थी ॥३॥ हे विप्र ! यहीं हमारी स्त्रीको किसी राक्षसने हर लिया है हम उसे ही ढूँढ़ते फिरते हैं। शेष प्रश्नोंका उत्तर रघुनाथजीने नहीं दिया, इससे अपने रूपको गुप्त रखना चाहते हैं ॥ ४ ॥

आपन चरित कहा हम गाई * कहहु विप्र निज कथा बुझाई ॥५॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरणा * सो सुख उमा जाय नहिं बरणा॥६॥

हे विप्र ! हमने अपना चरित्र तुमसे कहा, अब तुम अपनी कथा समझाकर कहो ॥५॥ हे पार्वती ! प्रभु के वाक्योंको महावीरजी विचार कर चरणोंमें गिरे, वह सुख वर्णा नहीं जाता महावीरजीने शास्त्रोंमें रघुनाथजीका आना सुना था कि वनमें आये हैं इस कारण उनके कहे वाक्योंको विचारने लगे कि "कुशलानां समूहः कोशलस्तस्य ईशः कौशलेशः" अर्थात् सर्व कल्याणोंका दाता और (दश) पक्षी विशेष गरुड़ वही है जिसका (रथ) वाहन सो विष्णु परमात्मा उनके (जाये) अवतार, पितु अर्थात् हम सकल विश्वके कर्ता हैं। जो वह कहे कि तुम अपनी श्लाघाके हेतु यह कहते हो तो अपनी सर्वज्ञता भी दिखाते हैं कि तुम वन आये वास्तविक रूप आपका और है,यह विप्रवेष बनावटी है,यह हमारा वचन मानो। अथवा रघुनाथजी जब विश्वामित्रके साथ चले तब महावीरसे कहा–हम तुमको वनमें आके मिलेंगे सो अब नाम सुनते ही पहचान लिया। अथवा ब्रह्माजीने जब देवताओंको वानर शरीर धारण करनेको कहा था तब यह वृत्तांत जना दिया था कि 'रामचन्द्र वनमें आवेंगे' सो यादकर पहचान लिया॥६॥

पुलकित तनु मुख आव न वचना * देखत रुचिर वेशकी रचना ॥७॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हा * हर्ष हृदय निज नाथहि चीन्हा॥८॥

महावीरजीका शरीर पुलकायमान हो गया,मुखसे वचन नहीं निकले;सुन्दर वेषकी रचना देखने लगे ॥७॥ फिर धैर्य धर कर स्तुति की, अपने स्वामीके पहचाननेसे मनमें प्रसन्न हो बोले ॥८॥

मोर न्याव मैं पूँछा साईं * तुम कस पूछेहु नरकी नाईं ॥९॥
तव माया वश फिरौं भुलाना * ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥१०॥

हे प्रभो ! हम यदि आपको नहीं पहचान कर पूछें तो हमको उचित ही है; पर आप कैसे मनुष्योंके समान पूछते हो ? ॥ ९ ॥ मैं आपकी मायाके वश भूला फिरता हूँ इस कारण मैंने आपको नहीं पहचाना ॥ १० ॥

दोहा–एक मंद मैं मोहवश, कीश हृदय अज्ञान ॥
पुनि प्रभु मोहिं विसारेहु, दीनबंधु भगवान् ॥ २ ॥

एक तो मैं मतिमंद मोहवश हूँ दूसरे कीश होनेसे अज्ञानी हूँ; अतः आपको नहीं पहचाना उसपर आपने प्रभु और दीनबन्धु रामेश्वर होकर मुझे विसार दिया (मेरा बड़ा अभाग्य है)॥२॥

यदपि नाथ अवगुण बहु मोरे * सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे ॥१॥
नाथ जीव तव माया मोहा * सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा ॥२॥

हे नाथ ! यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं तथापि स्वामी समर्थ हैं सेवकको नहीं बिसारते॥१॥ हे नाथ ! जीव आपकी मायासे मोहित है,सो आपकी ही कृपा हो तो निस्तार पा सकता है॥२॥

तापर मैं रघुवीर दुहाई * जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥३॥
सेवक सुत पितु मातु भरोसे * रहै अशोच बनै प्रभु पोसे ॥४॥

और तो कुछ कर्म करते भी हैं परन्तु रघुवीरकी दुहाई करके कहता हूँ कि कुछ भजन का उपाय नहीं जानता ॥ ३ ॥ सेवक स्वामीके भरोसे, पुत्र पिता माताके भरोसे अशोच रहता है और प्रभुके पोषनेसे बनता है । अथवा प्रभुको उनको पोषे ही बनता है ॥ ४ ॥

अस कहि चरण परेउ अकुलाई * निज तनु प्रगटि प्रीति उरछाई॥५॥
तब रघुपति उठाय उर लावा *निज लोचन जल सींचिजुड़ावा॥६॥

ऐसा कह व्याकुल हो चरणोंमें गिर पड़ा, ब्राह्मण रूप छोड़कर अपना शरीर प्रत्यक्ष करके प्रीति हृदयमें छा रही ॥ ५ ॥ जबतक महावीरजी ब्राह्मण शरीर धारे रहे तबतक रघुनाथजी ने अंगमें नहीं लगाया, क्योंकि वह कपटरूप था; जब प्रेमवश वह शरीर छोड़के वानररूप हुए तब अंगमें लगा लिया और अपने नेत्रोंके जलसे सींच कर ठंढा किया ॥ ६ ॥

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना* तैं मम प्रिय लक्ष्मण ते दूना ॥७॥
समदरशी मोहि कह सब कोऊ * सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥८॥

हे कपि जीमें संकोच मत करो, तुम मुझे लक्ष्मणसे दूने प्रिय हो । दूने कहनेका भाव यह कि लक्ष्मण हमारे सेवक और ये दोनों के सेवक हैं अथवा महावीर ही केवल विपत्तिमें रघुनाथजीके साथी हुए हैं, लक्ष्मणके साथ रहते भी जानकीका वियोग हुआ, इनके साथसे फिर जानकीका मिलाप होगा, इस कारण दूना प्यार अथवा शक्ति लगने पर संजीवनी ये ही लावेंगे इस कारण दूना प्यार कहा ॥ ७ ॥ हमें सब कोई समदर्शी कहते हैं, परंतु जो हमारे अनन्यगति सेवक हैं वे अधिक प्यारे हैं (अनन्यका लक्षण आगे कहते हैं) ॥ ८ ॥

दोहा–सो अनन्य जाकी असि, मति न टरै हनुमन्त ॥
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त ॥ ३ ॥

वह अनन्य भक्त है जिसकी ऐसी मति नहीं टरती कि जो भगवान् चराचरमें व्याप्त और स्वामी हैं उनका मैं सेवक हूँ । जिसको दूसरी गति नहीं है वही अनन्य कहलाता है ॥ ३ ॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला * हृदय हर्ष बीते सब शूला ॥१॥
नाथ शैलपर कपिपति रहई * सो सुग्रीव दास तव अहई ॥२॥

महावीरजी रघुनाथजीको प्रसन्न देख मनमें प्रसन्न हुए,सुग्रीवकेदुःख से दुःखी थे सो दुःख मिट गया ॥१॥ और बोले--हे नाथ पर्वत पर कपिपति'सुग्रीव' रहता है सो भी आपका दास है॥२॥

तेहिसन नाथ मइत्री कीजे * दीन जानि तेहि अभय करीजे॥३॥
सो सीताकर खोज कराइहि * जहँ तहँ मर्कट कोटि पठाइहि ॥४॥

हे नाथ ! उससे मित्रता कीजिये और दीन जानकर उसे अभय करिये ॥ ३ ॥ वह जानकीजीकी खोज करनेको जहाँ तहाँ करोड़ों वानरोंको भेजेगा ॥ ४ ॥

यहि विधि सकल कथा समुझाई * लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई ॥५॥
जब सुग्रीव राम कहँ देखा *अतिशय जन्म धन्य करिलेखा॥६॥

इस प्रकारसे उसके राज्य व्यवहारकी सब कथा समझाकर दोनों भाइयोंको पीठपर चढ़ाकर और कूदकर पर्वतपर आये ॥ ५ ॥ सुग्रीवने रघुनाथजीको देखा तब उनके दर्शन मात्रसे अपनेको कृतार्थ जाना ॥ ६ ॥

सादर मिलेउ नाइ पद माथा * भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥७॥
कपि कर मन विचार यहि रीती * करिहैं विधि मोसन यहि प्रीती ॥८॥

सुग्रीवजी आदर पूर्वक चरणोंमें शिर नवाकर मिले; रघुनाथजी लक्ष्मण सहित मिले॥७॥ सुग्रीव अपने मनमें इस तरह विचार करते हैं कि हे विधि क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे ? ॥८॥

दोहा-तब हनुमंत उभय दिशि, कहि सब कथा सुनाइ ॥
पावक साखी देइकरि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ४ ॥

तब हनुमान्‌जीने दोनों ओरकी सब कथा कह सुनायी अर्थात् सुग्रीवकी ओरसे रघुनाथजीसे कहा आप इन्हें अभय कीजिये, आपकी सहायता करेंगे। पुनः सुग्रीवसे कहा ये तुम्हें अभय करेंगे तो तुम्हें इनका प्रयोजन सिद्ध करना पड़ेगा, अग्निकी साक्षी देकर दृढ़ प्रीति जोड़ी। इसका यह कारण है कि अग्नि सबके हृदयमें बसते हैं और दाहक शक्तिमान् हैं और जिस किसीके मनमें विकार उत्पन्न हो तो उसे जला देंगे। अथवा रामायणमें अग्नि ही प्रधान है, अग्निसे ही उत्पत्ति, अग्निमें जानकीको सौंपा, अग्निसे ही लंका दहन और अग्निसे जानकीको निकालना है, मित्रतामें शुद्धिका कारण अग्नि ही है ॥ ४ ॥

कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा * लक्ष्मण रामचरित सब भाखा ॥१॥
कह सुग्रीव नयन भरि वारी *मिलिहिं नाथ मिथिलेश कुमारी॥२॥

तब ऐसी प्रीति की कि कुछ अन्तर नहीं रखा, लक्ष्मणने रघुनाथजीका सब चरित्र वर्णन किया सो सुनकर ॥ १ ॥ सुग्रीव नेत्रोंमें जल भरकर बोला--नाथ ! जानकी मिथिलाके राजा की कन्या आपको मिलेंगी। मिथिलेश कुमारी नाम यहां अर्थानुकूल है अर्थात् जो मथने से उत्पन्न हुए थे उनके वंशकी कुमारी है, इनके लिये बड़ा मथन करना पड़ेगा तो मिलेंगी आंखोंमें जल भरनेका भाव यह कि रुलायके मिलेंगी ॥ २ ॥

मंत्रिन सहित यहां इक बारा * बैठ रहेउँ कछु करत विचारा ॥३॥
गगन पंथ देखी मैं जाता * परवश परी बहुत बिलपाता ॥४॥

मैं एक समय मंत्रियों सहित यहां बैठा हुआ कुछ विचार करता था ॥ ३ ॥ जानकीजी को आकाशमें जाती मैंने देखा था परवश बहुत व्याकुल थीं ॥ ४ ॥

राम राम हा राम पुकारी * हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी॥५॥
माँगा राम तुरत तेइँ दीन्हा *पट उरलाय शोच अति कीन्हा॥६॥

उन्होंने राम राम हा राम ! ऐसा पुकार कर हमारी ओर देख वस्त्र डाल दिये सो धरे हैं। अथवा मैंने उनका विलाप सुनकर 'हा राम' पुकारा, तब उन्होंने हरिभक्त जान वस्त्र

डाल दिया ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने कहा लाओ, तो तत्काल सुग्रीवने ला दिया; तब प्रभुने पट हृदयसे लगाकर बड़ा शोच किया । (अगली तीन चौपाई क्षेपक हैं) ॥ ६ ॥

कह प्रभु लक्ष्मणसों यों बाता * पहँचानत पट भूषण ताता ॥७॥
हाथ जोरि लक्ष्मण तब बोले * रघुनायकसों वचन अमोले ॥८॥

तब रघुनाथजीने लक्ष्मणजीसे कहा-भाई ! यह गहने और वस्त्र पहचानते हो ? ॥ ७ ॥ यह वचन सुन हाथ जोड़कर लक्ष्मणजी रघुनाथजीसे अमोल वचन बोले ॥ ८ ॥

पगभूषण मैं सकत चिन्हारी * ऊपर कबहुँ न सीय निहारी ॥९॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा *तजहु शोच उर आनहु धीरा ॥१०॥

हे प्रभो ! मैंने कभी सीताजीके चरण छोड़कर और कहीं नहीं निहारा,इस कारण पगके भूषण पहचान सकता हूँ (क्षे०) ॥९॥ सुग्रीव बोले प्रभो ! सुनो,तुम शोच त्याग मनमें धैर्य धरो ॥१०॥

सब प्रकार करिहौं सेवकाई *जेहि विधि मिलिहिं जानकी आई ॥११॥

मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूँगा जिस प्रकार माता जानकीजी मिलेंगी ॥ ११ ॥

दोहा-सखा वचन सुनि हरषे, कृपासिंधु बलसींव ॥
कारण कवन वसहु वन, मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

सखाके वचन सुनकर करुणासागर रघुनाथजी प्रसन्न हो सुग्रीवसे बोले-हे सुग्रीव ! किस कारण वनमें वसते हो ? मुझसे कहो ॥ ५ ॥

अथ क्षेपक

पूँछहिं प्रभु हँसि जानहिं ताहीं * महावीर मरकट कुलमाहीं ॥१॥
तव अस्थान प्रथम केहि ठामा * कहु निज मात पिताकर नामा॥२॥

प्रभु जान करके भी उस महावीर वानरकुलवालेसे पूछने लगे ॥ १ ॥ तुम्हारा स्थान प्रथम कहां था और अपने माता पिताका नाम कहो ॥ २ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * कहहुँ आदिते उतपति गाई ॥३॥
ब्रह्मा नयनन कीच निकारी * लै अंगुरी भुइँ ऊपर डारी ॥४॥

सुग्रीव बोले-हे रघुनाथजी ! सुनो, आदिसे उत्पत्ति गाकर कहता हूँ ॥ ३ ॥ एक समय ब्रह्माजीने नेत्रोंसे कीचड़ निकाला अँगुलियोंसे पृथ्वीके ऊपर डाली ॥ ४ ॥

वानर एक प्रगट तहँ होई * चञ्चल बहु विरंचि बल सोई ॥५॥
तेहिकर नाम धरा विधि जानी *ऋच्छराज तेहि सम नहिं ज्ञानी॥६॥

उससे एक वानर प्रकट हुआ, जो बड़ा चञ्चल ब्रह्माके समान बली था ॥ ५ ॥ विधाताने विचार पूर्वक उसका नाम 'ऋच्छराज' रखा, उसके समान और दूसरा ज्ञानी नहीं था ॥६॥

विधिपद नाय कीश अस कहई * आयसु कहा मोहि प्रभु अहई॥७॥

---

१. कवित्त-'अमल अमोल गोल कुण्डल प्रकाशमान ऐसी दरसात कोऊ गजगामिनीको है । तैसे ही अमन्द भुजबन्द चन्दते दुचन्द दीपति सुदिव्य दुतिहारी दामिनी को है । परम पुनीत पदभूषण अनूप चारु, पूजनीय सन्ततविलोकि नामिनीको हैं । रसिक विहारी और नहि पहचाने एक जाने यह नूपुर हमारी स्वामिनीको है ।" (रामरसायन) ॥२'नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामिकंकणे । नूपुरेऽहंविजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् " ॥ (वा० ला०)

विचरहु वन गिरिवन फल खावहु ❋ मारहु निशिचर जे जहँ पावहु ॥८॥
ब्रह्माके चरणोंमें शिर नवाकर वह वानर बोला–हे प्रभो ! मुझे क्या आज्ञा है ? ॥ ७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले-तुम वनमें विचरो फल खाओ, राक्षस जहाँ पाओ मारो ॥ ८ ॥
सो ब्रह्माकी आज्ञा पाई ❋ दक्षिण दिशा गयउ रघुराई ॥९॥
हे रघुनाथजी ! वह ब्रह्माकी आज्ञा पाकर दक्षिण दिशामें गया ॥ ९ ॥
दोहा–ऋक्षराज तहँ विचरई, महावीर बलवान ॥
निशिचर पावत ही हनै, शिरमें कठिन पषान ॥ ६ ॥
वहां महाबली ऋक्षराज विचरते फिरते थे; जो राक्षस उन्हें मिलता था उसके शिर पर कठिन शिला मार देते थे ॥ ६ ॥
फिरत देखि इक कुण्ड अनूपा ❋ जल परछाइँ दीख निजरूपा ॥१॥
तब कपि शोच करत मनमाहीं ❋ केहि विधि रिपुरहही ह्यां आहीं ॥२॥
फिरते फिरते एक सुन्दर कुण्ड देखा तो जलमें परछांई द्वारा अपना रूप देखने लगा ॥ १ ॥ तब वह कपि विचारने लगा, कि यह शत्रु यहां किस प्रकार रहता है ? ॥ २ ॥
ताहि देखि कोपा कपि वीरा ❋ सब दिशि फिरा कुण्डके तीरा॥३॥
जो जो चरित कीन्ह कपि जैसा ❋ सो सो चरित दीख तहँ तैसा ॥४॥
उसे देख क्रोधित हो कुण्डके चारों ओर घूमने लगा ॥ ३ ॥ कपिने जैसी चेष्टा कि उसे वैसी वैसी ही जलमें दिखाई दी ॥ ४ ॥
गरजा कीश सोइ सो बोला ❋ कूदि परा जलमाहीं डोला ॥५॥
सो तनु पलटि भई सोइ नारी ❋ अति अनूप गुणरूप अपारी ॥६॥
जब कीशने गर्जना की कुण्डसे प्रतिध्वनिका शब्द हुआ, तब वह कुण्डमें कूद पड़ा ॥ ५ ॥ सो तुरन्त ही शरीर पलटकर वह बड़ी सुन्दर स्त्री हो गया ॥ ६ ॥
सुनहु उमा अति कौतुक होई ❋ आइ बहुरि ठाढी भै सोई ॥७॥
सुरपति दृष्टि परी तेहि काला ❋ तेहि तब बिंदु परा तेहि बाला ॥८॥
सुनो पार्वती ! यहां बड़ा कौतुक हुआ, फिर वह निकलकर खड़ी हुई ॥ ७ ॥ उस समय उसके ऊपर इन्द्रकी दृष्टि पड़ी तो उसके बालोंपर वीर्य गिरा ॥ ८ ॥
मोहे भानु देखि छबि सींवा ❋ छूटा बिन्दु परा तेहि ग्रीवा ॥९॥
उसकी अपार छबिको देख सूर्य मोहित हुए, तब उसकी गर्दन पर उनका वीर्य गिरा ॥९॥
दोहा–इंद्र अंशते वालि भा, महावीर बलधाम ॥
दिनकर सुत दूसर भयो, तेहि सुग्रीव सुनाम ॥ ७ ॥
इंद्रके अंशसे बली वालि हुआ, सूर्यके अंशसे मैं सुग्रीव उत्पन्न हुआ (बालसे उत्पन्न होने से वालि; ग्रीवासे सुग्रीव) ॥ ७ ॥
पुनि तत्काल सुनहु रघुवीरा ❋ नारी पलटि भई सोइ वीरा ॥१॥
तब ऋच्छराज प्रीतिमन भयऊ ❋ हमहिं संग लै विधि पहँ गयऊ॥२॥

फिर हे रघुनाथजी ! तत्काल वही नारी तनुसे ज्योंका त्यों पुरुष हो गया ॥ १ ॥ तब वह ऋक्षराज बड़े प्रसन्न हो हमें साथ ले ब्रह्माके पास गये ॥ २ ॥

करि प्रणाम सब चरित बखाना * कह अज हरि इच्छा बलवाना ॥३॥
तब विधि हमहिं कहा समुझाई * दक्षिण दिशा जाहु दोउ भाई ॥४॥

ब्रह्माजीसे प्रणाम करके सब चरित्र बखाना; तब ब्रह्माजी बोले-हरि इच्छा बलवान् है ॥ ३ ॥ तब ब्रह्माजीने हमें समझाकर कहा-तुम दोनों भाई दक्षिण दिशाको जाओ ॥ ४ ॥

किष्किन्धा तुम करि अस्थाना * राज्य भोग बहुविधि सुख नाना॥५॥
जो प्रभु लोक चराचर स्वामी * सो अवतरिहि नाथ बहुनामी ॥६॥

तुम किष्किन्धा नगरीमें स्थान बनाकर अनेक प्रकार सुख भोग राज्य करो ॥५॥ जो प्रभु संसारके और चर अचरके स्वामी हैं वे नाथ किसी समय अवतार लेंगे जिनके अनेक नाम हैं॥६॥

रघुकुलमणि दशरथ सुत होई * पितु आज्ञा विचरहिं वन सोई ॥७॥
नरलीला करिहैं विधि नाना * पैहो दरश होइ कल्याना ॥८॥

वे रघुकुलमणि दशरथके पुत्र होकर पिताकी आज्ञासे वनमें विचरेंगे ॥ ७ ॥ वे अनेक प्रकारकी लीलाएँ करेंगे तब उनके दर्शनसे तुम्हारा कल्याण हो जायगा ॥ ८ ॥

दोहा-तब हर्षे हम बन्धु दोउ, सुनिके विधिके बैन ॥
जप तप योग न पावहीं, सो हम देखब नैन ॥ ८ ॥

तब हम दोनों भाई ब्रह्माके वचन सुनकर प्रसन्न हुए कि जो जप तप और योगसे भी नहीं मिलते उन्हें हम नेत्रों से देखेंगे ॥ ८ ॥

विधि-पद वंदि चले दोउ भाई * किष्किन्धा महँ आये धाई ॥१॥
वाली राज कीन्ह सुरत्राता * वन वसि दैत्य हने दोउ भ्राता॥२॥

हम दोनों भाई ब्रह्माके पदवंदन करके शीघ्र किष्किन्धामें आये ॥ १ ॥ हे सुररक्षक ! वनमें रहकर दोनों भाइयोंने दैत्य मारे और वालि किष्किन्धाका राज्य करने लगा ॥ २ ॥

मय दानवके सुत दोउ वीरा * मायावी दुंदुभि रणधीरा ॥३॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * विधिगतिअलखजानिनहिंजाई॥४॥

मयदानवके दो बेटे वीर मायावी और दुन्दुभि बड़े रणधीर थे ॥ ३ ॥ सुग्रीव बोले-सुनो रघुनाथजी ! विधाताकी अलक्षित गति जानी नहीं जाती ॥ ४ ॥ इति क्षेपक ॥

नाथ वालि अरु मैं दोउ भाई * प्रीति रही कछु वरणि न जाई ॥५॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ * आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ॥६॥

हे नाथ ! मेरी और वालिकी ऐसी प्रीति थी जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता ॥५॥ हे प्रभु ! मयका बेटा 'मायावी' नामक दैत्य युद्ध करनेको हमारे गांवमें आया ॥ ६ ॥

अर्धराति पुर द्वार पुकारा * वालिहु रिपुबल सहै न पारा ॥७॥
धावा वालि देखि सो भागा * मैं पुनि गयउँ बन्धु सँग लागा॥८॥

वहाँ उसने आधीरातके समय पुरके द्वारे पुकारा, वालि भी शत्रुका बल नहीं सह सकता था ॥७॥ वालिको आता देख वह दैत्य भागा, वालिभी उसके पीछे हुआ मैं भी बंधुके संग हो गया॥८॥

गिरिवर गुहा पैठ सो जाई * वालि मोहिं तब कहा बुझाई ॥९॥
परखेहु मोहिं एक पखवारा * नहिं आवौं तौ जानेउ मारा ॥१०॥

वह एक सुन्दर पर्वतकी गुफामें घुस गया तब वालिने मुझसे समझाकर कहा ॥ ९ ॥ पंद्रह दिनतक मेरी बाट देखना, जो नहीं आऊँ तो जान लेना कि मारा गया ॥ १० ॥

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी * निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥११॥
तब मैं निजमन कीन्ह विचारा * जाना असुर वालि कहँ मारा॥ १२॥

हे रघुनाथजी ! वहाँ महीनेके ३० दिन तक रहा, अथवा मास बारहके दिन अर्थात् ३६० दिन (एक वर्ष) पर्यन्त रहा, यही वाल्मीकिमें लिखा है-"तस्य प्रविष्टस्य बिलं समग्रः संवत्सरो गतः" (वाल्मीकी कि०सर्ग९श्लोक० १६) कोई बारह दिनका अर्थ करते हैं, तब वहाँसे रुधिरकी (फेनयुक्त) धारा निकली, इसी प्रकारका वालिका रुधिर होता था, अतएव मुझे भ्रम हो गया । "इस पर भी वालिने अन्याय किया तभी तो रघुनाथजीने मारा" ॥ ११ ॥ तब मैंने अपने मनमें यह जाना कि असुरने वालिको मारा (यह क्षेपक है) ॥ १२ ॥

वालि हतेसि मोहि मारिहि आई * शिला द्वार देइ चलेउँ पराई ॥१३॥

यह दैत्य वालिको मारके मुझे भी मारेगा, तब मैं गुहाके मुखपर शिला लगाकर भागा॥१३॥

दोहा—वालि महाबल अमित अति, समर न जीतै कोय ॥
तेहि मारेसि जो निशिचर, सो अब मारिहि मोय ॥ ९ ॥

वालि बहुत बलवान् है उसके बलका ठिकाना नहीं उसे कोई युद्धमें नहीं जीत सकता परन्तु जो इसने मार डाला तो मुझे भी मार डालेगा (यहांसे क्षेपक है) ॥ ९ ॥

गयउँ भवन मन सोच अपारा * पूछे वालि कहेउँ जिमि मारा ॥१॥
पंपापुरके जन तेहि काला * तनुव्याकुल मन बहुत बिहाला॥२॥

तब मैं मनमें बड़ा शोच करता घर आया और पूछनेसे वालिके समाचार मरनेके सुनाये॥१॥ उस समय पंपापुरवासी जन तनसे बहुत व्याकुल, मनसे बेहाल थे (यहां तक क्षेपक है) ॥ २ ॥

मंत्रिनपुर देखा विनु साईं * दीन्हेउ राज्य मोहिं बरि आईं॥३॥
वाली ताहि मारि गृह आवा * देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा ॥४॥

मन्त्रियोंने विना राजाके पुर देख मेरी इच्छा न होते भी बलसे राज्य दे दिया ॥३॥ जब वालि उसे मारकर घर आया और मुझे सिंहासन पर बैठा देखा तो हृदयसे वैर बढ़ाया ॥ ४ ॥

रिपु समान मोहि मारेसि भारी * हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी॥५॥
ताके भय रघुवीर कृपाला * सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥६॥

देखते ही वालिने शत्रु समान मुझे बहुत मारा, मेरा सर्वस्व और स्त्री भी हर ली ॥ ५ ॥ हे रघुनाथजी ! उसके डरसे मैं सब पृथ्वीमें व्याकुल फिरा ॥ ६ ॥

इहाँ शापवश आवत नाहीं * तदपि सभीत रहौं मन माहीं ॥७॥

सुनि सेवक-दुख दीनदयाला ❋ फरकि उठीं दोउ भुजा विशाला॥८॥

यहां मुनिके शापके डरके मारे नहीं आता, तो भी मैं मनमें डरता हूँ ॥ ७ ॥ सेवकका दुख सुनते ही दीनदयालु रघुनाथजीकी दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं ॥ ८ ॥

अथ क्षेपक

दोहा-सुनत वचन बोले प्रभु, कहहु शापकी बात ॥
दुन्दुभि दैत्य सो कवन विधि, वालि हत्यो तेहि तात ॥ १० ॥

वचन सुनकर रघुनाथजी बोले--शापकी बात कहो कि दुंदुभी दैत्यको वालिने किस प्रकार मारा ? ॥ १० ॥

दोहा-समदर्शी शीतल सदा, मुनिवर परम प्रवीन ॥
मोहि बुझाय कहहु सब, शाप कौन हित दीन ॥ ११ ॥

मुनि श्रेष्ठ मतंगजी, जो समदर्शी, सदा शीतल और अत्यन्त चतुर थे उन्होंने किस कारण शाप दिया यह मुझे समझाकर कहो ॥ ११ ॥

इमि बूझत भये कृपा निकेता ❋ वालिहि शाप भयो केहि हेता ॥१॥
तब बोले कपीश मन लाई ❋ दुन्दुभि दैत्य महाबलदाई ॥२॥

इस प्रकार कृपालु रघुनाथजीने, पूछा कि वालिको किस कारण शाप हुआ ? ॥ १ ॥ तब मन लगाकर कपीश बोला--दुंदुभि दैत्य बड़ा बली था ॥ २ ॥

मल्लयुद्धकी गति सब जानै ❋ और बली नहिं कोउ मनमानै॥३॥
एक वार जलनिधि तट आयो ❋ जाके जलनिधि माँझ अथायो॥४॥

वह मल्लयुद्धकी गति सब जानता था और मनमें अपने समान किसीको बली नहीं मानता था ॥३॥ एक बार समुद्रके तटपर आकर उसमें क्षोभ बढ़ाया, अर्थात् अवगाहन किया ॥४॥

सबही कटि प्रमाण जल भयऊ ❋ करि अभिमान मथन सो लयऊ॥५॥
मथत सिंधु व्याकुल सब गाता ❋ जीव जन्तु सब भये निपाता ॥६॥

सब सागर कमर तक हुआ, तब वह अभिमान करके मथने लगा ॥ ५ ॥ मंथनसे समुद्र सब शरीरसे व्याकुल हो गया; सब जीव जन्तु मरने लगे ॥ ६ ॥

तब अकुलाय सिंधु चलि आवा ❋ वचन विचारि सो ताहि सुनावा॥७॥
तुव बल सरवर और न कोऊ ❋ वचन विचारि कहौं मैं सोऊ ॥८॥

तब अकुला कर समुद्र चला आया और विचार कर कहने लगा ॥ ७ ॥ तुम्हारे बलके बराबर और तो कोई नहीं है, परन्तु मैं वचन विचार कर कहता हूँ ॥ ८ ॥

हिमगिरि बल बरणों नहिं जाई ❋ तेहि जीतन कर करहु उपाई ॥९॥
वचन सुनत तहँवा चलि आयो ❋ देखि हिमाचल अतिमन भायो॥१०॥

हिमगिरिका बल वर्णन नहीं किया जाता, तुम उसके जीतनेका उपाय करो ॥ ९ ॥ वह दैत्य वचन सुनते ही वहां आकर हिमालयको देख प्रसन्न हुआ ॥ १० ॥

ताल ठोंकि हिम लीन्ह उठाई ❋ तब हिमगिरि बहु विनती लाई॥११॥

तुम्हरे बल सरवर मैं नाहीं * ताते करौं न मान तुम्हाहीं ॥१२॥

ताल ठोंक कर हिमालयको उठा लिया,तब हिमालयने बहुत विनती की और कहा॥११॥ मैं तुम्हारे बलके बराबर नहीं हूँ इस कारण मैं तुमसे मान नहीं करता,विनती करता हूँ॥१२॥

पंपापुर अबहीं चलि जाहू *वालि महाबल निधि अवगाहू॥१३॥
सुनत वचन तहँवा चलि आवा * वालि वालि कहिके गुहरावा॥१४॥

तुम पंपापुरको अभी चले जाओ; वहां वालि महाबलवान रहता है ॥ १३ ॥ वह दैत्य यह वचन सुनकर वहाँ चला आया वालि वालि कहके पुकारा ॥ १४ ॥

दोहा–वेष किये सो महिषकर, गर्व बहुत मनमाहिं ॥
आयो निकट सो गर्ज करि, मनहि तनिक भय नाहिं ॥१२॥

वह भैंसेका वेष किये बड़े घमण्डसे गर्जना करके समीप आया, मनमें तनिक भी भय नहीं था ॥ १२ ॥

महि मर्दै तरु करै निपाता * गर्जेउ घोर गिरा भय दाता ॥१॥
ठोंकेउ ताल वज्र जनु परहीं * तेहिकर मर्म जानि सब डरहीं ॥२॥

पृथ्वीका मर्दन करता हुआ वृक्षोंका निपातन करने लगा और बड़ी भयंकर गर्जना की ॥ १ ॥ ताल ठोंकना मानों वज्र पड़ता है। उसका भेद जानकर सब डरते हैं ॥ २ ॥

पंपापुर व्याकुल सब काहू * चन्द्रग्रसन जनु आयो राहू ॥३॥
सुनत वालि धावा तत्काला * देखि असुर भुजदंड कराला ॥४॥

पंपापुरमें सब कोई व्याकुल हो गये, मानों चन्द्रमाके पकड़नेको राहु आ गया ॥ ३ ॥ सुनकर वालि तत्काल दौड़ा और असुरके कराल भुजदंड देखकर ॥ ४ ॥

भिरे युगल करिवरकी नाईं * मल्लयुद्ध कछु वरणि न जाई ॥५॥
चारि याम सब कौतुक भयऊ * मुष्टि प्रहार तासु कपि दयऊ ॥६॥

दो बड़े हाथियोंके समान दोनों भिड़े जो मल्लयुद्ध हुआ, वह कुछ वर्णा नहीं जाता ॥५॥ चार पहर तक यह सब कौतुक (युद्ध) हुआ, फिर वालिने उसके एक घूँसा मारा ॥ ६ ॥

गिरा अवनि तब शैल समाना * जीव जन्तु तरु टूटे नाना ॥७॥
पुनि तेहि वालि युगल कर डारा * उत्तर दक्षिण कीन्ह प्रहारा ॥८॥

तब वह राक्षस पृथ्वीपर पर्वतके समान गिरा, जीव जन्तु उसके नीचे दब गये, वृक्ष टूट गये ॥ ७॥ फिर वालिने उसे दो टुकड़े कर उत्तर दक्षिणकी ओर फेंक दिया ॥ ८ ॥

तेहि गिरि पर मुनि कुटी सुहाई * रुधिर प्रवाह गयो तहँ धाई ॥९॥
ऋषि मतंगकर तहां निवासा *गयो सो ऋषिमज्जनसुख रासा॥१०॥

उस पर्वतके ऊपर मुनिकी कुटी थी वहां रुधिर गिरा ॥ ९ ॥ वहाँ मतंग ऋषिका आश्रम था और वे आनंदराशि ऋषि स्नान को गये ॥ १० ॥

मज्जन करि मतंग ऋषि आये *देखि कुटी अति क्रोध बढ़ाये॥११॥

तबहिं विचार कीन्ह मनमाहीं * यक्ष एक चलि आवा ताहीं ॥१२॥

जब मतंग ऋषि मज्जन करके आये तब कुटीको देखकर बड़ा क्रोध किया ॥११॥ और मनमें विचार करने लगे कि यह रुधिर कहांसे गिरा ! उसी समय एक यक्ष वहां आया ॥ १२ ॥

तिन सब सकल कहा इतिहासा *सुनि मतंग भये क्रोध निवासा॥१३॥

उसने सब रुधिरकी कथा कही, उसे सुनकर मतंग ऋषिको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १३ ॥

दोहा–दीन्ह शाप तब क्रोध करि, नहिं मन कीन्ह विचार ॥
बालिनाश गिरि देखते, होय जाय तनु छार ॥ १३ ॥

तब ऋषिने क्रोध कर शाप दिया और मनमें विचार नहीं किया। यह बोले कि इस पर्वत पर आते और देखते ही वाली भस्म हो जायगा ॥ १३ ॥

तेहि भय यहां बालि नहिं आवत * ऋषिके वचन मानि भय पावत ॥१॥
तेहि भरोस इहि गिरिपर रहऊँ * बालि त्रास नहिं विचरत कहऊँ॥२॥

इसी भयसे यहां वाली नहीं आता, ऋषिके वचनोंसे डरता है ॥ १ ॥ इस भरोसे पर मैं भी इसी पर्वत पर रहता हूँ, वालिके त्राससे कहीं नहीं जाता ॥ २ ॥

यहि दुखते प्रभु दिन अरु राती * चिंता बहुत जरति अति छाती॥३॥
जानहु मर्म सकल रघुनाथा * इहाँ रहौं हनुमत ले साथा ॥४॥

हे प्रभो ! इसी दुःखसे दिन रात चिन्ताके मारे छाती अत्यन्त जलती है ॥ ३ ॥ हे रघुनाथजी ! आप तो सब कारण जानते हैं, इस कारण हनुमानजीको साथ ले यहां रहता हूँ ॥४॥

सो वृत्तान्त बालि सब जाना * यहाँ न आवत कृपा निधाना ॥५॥
सुनि सुग्रीव-वचन भगवाना * बोले हरि हँसि धरि धनुबाना ॥६॥

हे कृपानिधान ! यह सब वृत्तांत वाली जानता है,इससे यहां नहीं आता ॥५॥ यह सुग्रीवके वचन सुनकर भगवान हँसे और धनुष धारण कर बोले (यहां तक क्षेपक है) ॥ ६ ॥

दोहा–सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं, बालिहि एकहि बाण ॥
ब्रह्म रुद्र शरणागतहुं, गये न उबरहिं प्राण ॥ १४ ॥

सुनो ! सुग्रीव ! जो ऐसा है तो वाली को मैं एक ही बाणसे मार डालूँगा। यदि वह भागकर ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें जायगा तो भी उसके प्राण नहीं बचेंगे ॥ १४ ॥

इति श्रीरामचरित मानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने किष्किन्धाकाण्डान्तर्गतविद्यावारिधि पंडितज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायां प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

दोहा–यहि द्वितीय विश्राममें, वध्यो वालिको राम ।
राज्य दियो सुग्रीवको, पूरे सब मनकाम ॥ २ ॥

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी * तिनहिं विलोकत पातक भारी॥१॥
निज दुख गिरिसमरजकरि जाना * मित्रके दुख रज मेरु समाना ॥२॥

जो अपने मित्रको दुःखी देखकर दुःखी नहीं होते उनको देखकर बड़ा पाप लगता है ॥ १ ॥

अपना दुःख पर्वतके समान हो तो उसे रजके समान जाने और जो मित्रका दुःख रजके समान हो तो पर्वतके समान जाने (उसके निवारणका यत्न करे) ॥ २ ॥

जिनके असि मति सहज न आई ❋ ते शठ हठिकत करत मिताई ॥३॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा ❋ गुण प्रगटे अवगुणहि दुरावा ॥४॥

जिनके ऐसी मति सहज स्वभावसे नहीं आयी वे शठ हठपूर्वक मित्रता क्यों करते हैं ? ॥३॥ जो कुपंथसे निवारण कर सुपंथमें चलाते हैं, गुण प्रकट करते हैं और अवगुण छिपाते हैं ॥४॥

देत लेत मन शङ्क न धरहीं ❋ बल अनुमान सदा हित करहीं ॥५॥
विपतिकाल कर शतगुण नेहा ❋ श्रुति कह सन्त मित्र गुण एहा ॥६॥

जो देते लेते मनमें शंका नहीं धरते, बलके अनुसार सदा हित करते हैं वे मित्र हैं ॥ ५ ॥ और जब विपत्तिकाल आवे तो सौ गुणा प्रेम करे, वेदने संतों और मित्रोंके गुण कहे हैं ॥६॥

आगे कह मृदु वचन बनाई ❋ पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥७॥
जाकर चित अहिगति सम भाई ❋ अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥८॥

और जो आगे तो बनाकर मीठे वचन कहे किंतु पीछे अहित और मनमें कुटिलता करें ॥७॥ भाई ! जिसका चित्त सांपकी गतिके समान है ऐसे कुमित्रको त्यागनेसे ही भलाई है ॥८॥

दोहा–मित्र मित्रसों प्रीति कर, हृदय आन मुख आन ॥
जाके मन वच प्रेम नहिं, दुरे दुराये जान ॥ १५ ॥

मित्र मित्रसे परस्पर प्रीति करते हैं परन्तु हृदयमें और मुखमें और । जिनके वचन और मनमें प्रीति नहीं है वे अपना कपट हृदयमें छिपाते हैं अतः वे कुमित्र हैं (क्षेपक) ॥ १५ ॥

सेवक शठ नृप कृपण कुनारी ❋ कपटी मित्र शूलसम चारी ॥१॥
सखा शोच त्यागहु बल मोरे ❋ सब विधि करब काज मैं तोरे ॥२॥

मूर्ख सेवक, कृपण राजा, खोटी स्त्री, कपटी मित्र ये चारों शूलके समान हैं ॥ १ ॥ हे मित्र ! तुम मेरे भरोसे अपना शोच त्याग दो; मैं सब प्रकारसे तुम्हारे काज करूँगा ॥ २ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा ❋ वालि महाबल अति रणधीरा ॥३॥
सप्तताल यह कृपानिधाना ❋ बेधे जो सब एकहि बाना ॥४॥

सुग्रीव बोला–सुनो रघुनाथजी ! वालि महाबली और परम रणधीर है (आगे क्षेपक है) ॥ ३ ॥ हे कृपानिधान ! इन सात तालके वृक्षोंको जो एक बाणसे बेधे ॥ ४ ॥

चन्द्र मण्डलाकार सुहाई ❋ परै एक बाणहि महि आई ॥५॥
ताके कर वाली प्रभु मरई ❋ नातौ श्रम मिथ्या कोउ करई ॥६॥

---

१. जैसे एक मनुष्यने यात्राके समय ४००० रुपये संदूकमें बन्दकर दिया परंतु उसमेंसे ५०० रुपये उसकी स्त्रीने निकाल लिये उसे वह संदूक मित्रके यहां धर दिया कुछ दिन उपरांत जब लौटकर आये तब मित्रके पास जाकर कहा सन्दूक लाओ, वह बोला–जहां धरा है ले जाओ, यह उठा लाये और घर आकर ताला खोलकर रुपये गिने तो ५०० रुपये कम थे मित्रसे जाकर कहा ५०० रुपये कमती हैं वह बोला ले जाओ किसी घरके काममें उठ गये होंगे वह ले आये स्त्रीने पूछा रुपये गिनकर कहां चले गये थे ? यह बोले ५०० कम थे लेने गया था, स्त्री बोली वह तो चलते समय मैंने निकाल लिये थे तब यह बोले पहलेसे ही क्यों न कहा तब रुपये लेकर मित्रके घर गये और कहा हमारे रुपये घरमें ही थे, यह बोले क्या डर है धर जाओ । सच्चे मित्र ऐसे होते हैं ।

चन्द्रमण्डलाकार ये वृक्ष जिसके एक बाणसे पृथ्वीपर आ गिरें ॥ ५ ॥ हे प्रभु ! उसीके हाथसे वालि मरेगा, नहीं तो श्रम कितना ही करे वृथा है ॥ ६ ॥

सुनि बोले प्रभु शीतल वानी ❋ कपि चतुरई तोरि मैं जानी ॥७॥
इहि विधि बलकर करहु परेखा ❋ कहहु तालकर चरित विसेखा॥८॥

सुनकर प्रभु शीतल वाणी बोले–हे कपि ! मैंने तुम्हारी चतुराई जानी ॥ ७ ॥ तुम इस प्रकारसे हमारे बलकी परीक्षा करना चाहते हो, तो तालका विशेष चरित्र कहो ॥ ८ ॥

सुनि सुग्रीव हिये हर्षाना ❋ ताल वृक्षकर चरित बखाना ॥९॥
एक दिवस कपीश वन गयऊ ❋ वृक्ष फूल फल देखत भयऊ ॥१०॥

सुनकर सुग्रीव हृदयमें प्रसन्न हो तालवृक्षका चरित्र कहने लगा ॥ ९ ॥ कि एक दिन वालि वनको गया, फूल फलवाले वृक्षोंको देखने लगा ॥ १० ॥ (अथ क्षेपक)

मन हर्षांत सात फल लीन्हा ❋ जल मज्जनते शुचि जो कीन्हा॥११॥

मनमें प्रसन्न हो सात फल लिये और जलसे धोकर उन्हें पवित्र किया ॥ ११ ॥

दोहा–लै आतुर चलि आयउ, पंपापुर जगदीश ॥
करि स्नान ध्यान पुनि, नाइ इष्ट कहँ शीश ॥ १६ ॥

हे जगदीश्वर ! उन्हें लेकर वालि शीघ्रतासे पंपापुर आया और स्नान कर इष्टदेवको शिर नवाया ॥ १६ ॥

राखे फल जे मग करि दर्पा ❋ प्रभु तापर बैठा इक सर्पा ॥१॥
शशिमण्डल समान फन काढ़ी ❋ देखि कपीश महा रिसि बाढ़ी॥२॥

हे प्रभो ! जो फल अहंकारपूर्वक वालिने मार्गमें धरे; उनपर एक सर्प आकर बैठ गया॥१॥ चंद्रमंडलके समान फण काढ़ कर बैठा देखकर वालिको बड़ा क्रोध हुआ और बोला ॥ २ ॥

अरे दुष्ट भख मोर नशावा ❋ यमपुर आज सदन तैं छावा ॥३॥
ता हित शीश शाप ले मोरा ❋ वृक्ष फूटि निकसे तनु तोरा ॥४॥

अरे दुष्ट ! तूने मेरा भोजन नष्ट कर दिया, तू यमपुर जाना चाहता है ! ॥३॥ इस कारण मेरा शाप शिरपर ले; कि तेरे शरीरको फोड़कर ये वृक्ष निकलेंगे ॥ ४ ॥

जहाँ जाय कर बैठो वेदी ❋ निकसे ताल वृक्ष तनु छेदी ॥५॥
क्रोध निवारि वालि गृह आवा ❋ समाचार यहु तक्षक पावा ॥६॥

जैसे कि तू वेदीके आकार शरीर किये बैठा है इसी प्रकार ये तत्काल वृक्ष शरीर छेदकर निकलेंगे ॥ ५ ॥ वालि क्रोध त्यागकर घर आया । यह समाचार तक्षकने पाया ॥ ६ ॥

दोहा–पुत्रशाप सुनि क्रोध करि, मन दुःख भयो अपार ॥
निश्चय मारे वालिको, जो यह वेधे तार ॥ १७ ॥

पुत्रका शाप सुनकर बड़ा क्रोधकर मनमें दुखी हो यह शाप दिया, कि जो ये सातों ताड़ एक बाणसे तोड़ दे वह निश्चय वालिको मारेगा ॥ १७ ॥

पुनि ऋषिराय कही अस बाता ❋ दुन्दुभि अस्थिकेर यह भ्राता ॥१॥

एक बाण जो देइ उड़ाई * वाली मृत्यु तासु कर पाई ॥२॥

फिर मतंग ऋषिने यह भी कहा कि दुन्दुभिकी अस्थियोंका समूह ॥ १ ॥ जो एक बाणसे उड़ा देगा, वालिकी मृत्यु निश्चय उसके हाथसे होगी ॥ २ ॥

सो सब समाचार मैं जानउँ * अब तव कहब नाथ मैं मानउँ॥३॥
दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये * बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये ॥४॥

हे नाथ ! यह समाचार मैं जानता हूँ, अब जो कहो सो करूँ (यहां तक क्षेपक है) ॥ ३ ॥ दुन्दुभिकी अस्थि और तालके वृक्षको ज्यों ही रघुनाथजीको दिखाया त्यों ही प्रभुने उन्हें विना प्रयास ढहा दिया, पैरके अँगूठेसे दुन्दुभिकी अस्थि कई योजन तक फेंक दीं ॥ ४ ॥

भये सत खण्ड वृक्षके जबहीं * निकस्यो सर्प तालतर तबहीं ॥५॥
करि अस्तुति जब सर्प सिधावा * निरखि हरीश प्रभुहि सुख पावा॥६॥

ज्यों ही वृक्षके सौ टुकड़े हुए कि तालके तरेसे सर्प निकला (और रामचन्द्रजीकी आज्ञासे सोते हुए वालिके निकटसे इन्द्रकी दी हुई मालाको ले गया, इस मालाको धारण कर युद्ध करनेसे हार नहीं होती थी) ॥ ५ ॥ स्तुति करके जब सर्प चला गया, तब सुग्रीवने प्रभुको देखकर बड़ा सुख पाया (इति क्षेपक) ॥ ६ ॥

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती * वालि वधन कइ भइ परतीती ॥७॥
बारहिं बार नाइ पद शीशा * प्रभुहिं जानि मन हर्ष कपीशा॥८॥

रामचन्द्रका बड़ा बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ी और वालिके वधका विश्वास हुआ ॥ ७ ॥ बारबार चरणोंमें शिर नवाया और प्रभुको पहचान कर मनमें प्रसन्न हुआ ॥ ८ ॥

उपजा ज्ञान वचन तब बोला * नाथ कृपा मन भयउ अडोला॥९॥
सुख संपति परिवार बड़ाई * सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥१०॥

रघुनाथजीका बल देख जान लिया कि ये परब्रह्म हैं, तब ज्ञान हो गया कहने लगा कि आपकी कृपासे मन अडोल हो गया ॥ ९ ॥ हे ईश्वर ! सुख सम्पत्ति कुटुम्बकी बड़ाई यह सब मिथ्या हैं, इससे सब त्याग मैं आपकी सेवा करूँगा ॥ १० ॥

यह सब राम-भक्तिके बाधक *कहहिं संत तव पद अवराधक ॥११॥
मित्र शत्रु दुख सुख जग माहीं * मायाकृत परमारथ नाहीं ॥१२॥

हे रघुनाथजी ! ये सब आपकी भक्तिमें बाधा करनेवाले हैं आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले सन्त महात्मा ऐसा कहते हैं ॥ ११ ॥ शत्रु, मित्र, दुःख और सुख जगत्में मायाके किये हुए दीखते हैं परमार्थ नहीं ॥ १२ ॥

वालि परम हितु जासु प्रसादा * मिले राम तुम शमन बिशादा॥१३॥
सपनेहुँ जेहि सन होइ लराई * जागे समुझत मन सकुचाई ॥१४॥

हे रघुनाथजी ! वालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसके कारण आप मिले क्योंकि जो वालिसे मेरा द्रोह न होता तो आपका दर्शन कैसे होता ?॥१३॥ यह वैर ऐसा है कि जैसे स्वप्नमें जिससे लड़ाई होती है वह जागता है तो जागकर मन बहुत सकुचाता है इसी प्रकार इस

संसारकी अहंममत्वादि लड़ाई यह कुल मिथ्या है जागनेसे अर्थात् ज्ञान होनेसे फिर कुछ माया नहीं रहती ॥ १४ ॥

अब प्रभु करहु कृपा इहि भाँती * सब तजि भजन करौं दिनराती ॥१५॥
सुनि विराग संयुत कपि-वाणी * बोले विहँसि रामधनुपाणी ॥१६॥

हे प्रभु ! अब ऐसी कृपा करो जो सब कुछ त्याग कर आपका दिन रात भजन करूँ (मुझे राज्यकी वासना नहीं है) ॥ १५ ॥ सुग्रीवकी वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर रघुनाथजी धनुष धारण कर हँसकर बोले। सुग्रीवकी चपलता पर हँसे कि अभी शत्रु मानता था, अब मित्र जानने लगा, अपनी प्रतिज्ञा रखनेको धनुष उठाकर कहने लगे ॥ १६ ॥

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई * सखा वचन मम मृषा न होई ॥१७॥
नट मर्कट इव सबहिं नचावत * राम खगेश वेद अश गावत ॥१८॥

हे सखा ! जो कुछ तुमने कहा, सिद्धांत तो यही है परन्तु मेरी प्रतिज्ञा भी असत्य नहीं होती ! (तुमको राज्यकी प्राप्ति होगी और राज्य भोगकर अन्त समय मुझको प्राप्त होगे; फिर जन्म नहीं होगा यह कहकर सुग्रीवका ज्ञान आकृष्ट कर लिया) ॥ १७ ॥ हे गरुड़ जिस प्रकारसे नट बन्दरोंको नचाता है उसी प्रकार रघुनाथजी सबको भ्रमाते हैं, ऐसे वेद गाते हैं, गीतामें लिखा है—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।" अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है ॥ १८ ॥

लइ सुग्रीव संग रघुनाथा * चले चाप सायक गहि हाथा ॥१९॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा * गर्जेसि जाय निकट बल पावा ॥२०॥

रघुनाथजी सुग्रीवको संग लेकर धनुष बाण हाथमें लेकर चले ॥ १९ ॥ रघुनाथजीने तब सुग्रीवको भेजा, वह बल दर्पित हो वालिके पास जाकर गर्जने लगा ॥ २० ॥

सुनत वालि क्रोधातुर धावा * गहि कर चरण नारि समुझावा ॥२१॥
सुनु पति जिनहिं मिला सुग्रीवा * ते दोउ बंधु तेज बल सींवा ॥२२॥

सुनकर वालि बड़ा क्रोधित हुआ और चला, तब चरण पकड़कर उसकी स्त्री(तारा)समझाने लगी; अर्थात् जो कुछ अंगदजी सुन आये थे वह सुनाने लगी ॥२१॥ हे पति ! सुनो; जिनसे सुग्रीव मिला और जिनकी सहायता लेकर लड़ने आया है वे दोनों भाई तेज और बलकी पराकाष्ठा हैं। पहले तो सुग्रीव गिरिसे नहीं उतरता था अब सहायतासे लड़ने आया है ॥२२॥

कौशलेश सुत लक्ष्मण रामा * कालहु जीति सकैं संग्रामा ॥२३॥
सोइ रघुवीर हृदयमें आनहु * छांडहु मोह कहा मम मानहु॥२४॥

वे राजा दशरथके पुत्र लक्ष्मण और राम हैं; जो संग्राममें कालको भी जीत सकते हैं ॥२३॥ उन रघुनाथजीको हृदयमें धारण करो; मोह त्याग करो, मेरा कहना मानो (क्षेपक) ॥ २४ ॥

दोहा—कह वाली सुनु भीरु प्रिय, समदर्शी रघुनाथ ॥
जो कदापि मोहि मारिहैं, तौ पुनि होब सनाथ॥१८॥

तब वालिने कहा-हे भीरु (डरनेवाली) प्रिये ! रघुनाथजी तो समदर्शी अर्थात् सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले हैं जैसा सुग्रीव वैसा मैं, जो कदाचित् मुझे मारेंगे तो फिर मैं सनाथ अर्थात् कृतार्थ हो जन्म मरणसे छूट जाऊँगा ॥ १८ ॥

असि कहि चला महा अभिमानी * तृण समान सुग्रीवहि जानी ॥१॥
"वालि देखि सुग्रीवहि ठाढ़ा *हृदय क्रोध पुनि बहु विधि बाढ़ा"॥२॥

ऐसा कहकर महा अभिमानी सुग्रीवको तृणके समान जानकर चला । महा अभिमानी कहनेका तात्पर्य यह है कि रघुनाथजीको ईश्वर और सुग्रीवके सहायक जानकर तथा स्त्रीका निषेध अशकुन जानकर भी मारनेको धाया, इससे महा अभिमानी कहा ॥१॥ जब वालिने सुग्रीवको खड़ा देखा तो हृदयमें बड़ा क्रोध बढ़ा (क्षेपक) ॥ २ ॥

भिरे युगल वाली अति तर्जा * मुष्टिक मारि महाधुनि गर्जा ॥३॥
तब सुग्रीव विकल है भागा * मुष्टि प्रहार वज्रसम लागा ॥४॥

जब दोनों भिड़े तब वालिने बड़ा क्रोधकर मुष्टिक मार महा गर्जना की ॥ ३ ॥ तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा, क्योंकि वह घूँसा उसके वज्रके समान लगा (तो रघुनाथजीसे कहा) ॥४॥

मैं जो कहा रघुवीर कृपाला * बंधु न होय मोर यह काला ॥५॥
एक रूप तुम भ्राता दोऊ * तेहि भ्रमसे मारेउँ नहिं सोऊ ॥६॥

हे रघुनाथजी ! मैंने जो आपसे कहा कि यह मेरा बन्धु नहीं, काल है, तब रघुनाथजी बोले ॥ ५ ॥ तुम दोनों भाई एक रूप हो इस भ्रमके कारण मैंने उसको नहीं मारा (यहां गूढ़ तात्पर्य यह है कि सुग्रीव प्रथम रघुनाथजीसे वालिको अपना हितू बता चुका है कि वालि परम हितु जासु प्रसादा, इस कारण रघुनाथजीने नहीं मारा, और उससे कहते हैं कि वालि और अपनेको एक रूप बता चुका है उसमें कुछ भेद नहीं यह द्वैत मायाका सब झूठा है, मैंने यही विचार कर नहीं मारा, अब तूने उसे काल बताया है तो निश्चय मारूँगा । दूसरी बात यह है कि "प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई" ऐसा भी लिखा है तो सुग्रीवके शरण आने और सखा बननेसे उसके सब कुटुम्बी रघुनाथजीके सखा हुए, इससे उसके पालनेकी इच्छा की, इस कारण जब तक अपने मुखसे नहीं कहा तबतक नहीं मारा, अब वालिको अपना शत्रु कहा तब मारनेमें कृतसंकल्प हुए। दूसरी वार्ता यह है कि वालिके मरणका काल नहीं आया है, दो बार युद्ध होना है, इस कारण भी उपेक्षा की, यहां कोई भ्रमकी बात नहीं है ॥ ६ ॥

कर परसा सुग्रीव शरीरा * तनुभा कुलिश मिटी सब पीरा ॥७॥
मेली कण्ठ सुमनकी माला * पुनि पठवा बल देइ विशाला ॥८॥

हाथसे सुग्रीव का शरीर छुवा तब वज्रके समान हो गया, सब पीड़ा मिट गयी ॥ ७ ॥ सुग्रीवके गलेमें फूलोंकी माला डाल और अधिक बल देकर भेजा । माला इसलिए डाल दी कि जो वालिने कहा था वे समदर्शी हैं उस पर रघुनाथजीने प्रथम दोनोंको एक रूप अर्थात् समान कहा, अब स्त्रीके समझाने, रघुनाथजीकी सहायता करने पर अवज्ञा की तो अपना भक्त होनेके कारण सुग्रीवके हृदयमें माला डाली कि बालि अब भी इनसे न लड़े और जान ले कि इस पर रामकी कृपा है ॥ ८ ॥

पुनि नाना विधि भई लराई ❀ विटप ओट देखहिं रघुराई ॥९॥

फिर अनेक विधिसे लड़ाई हुई, रघुनाथजी वृक्षकी ओटसे देखते हैं। ओटमें इस कारण खड़े हैं कि वालिने तो समदर्शी कहा है और यहां सुग्रीवका पक्ष लिये हैं लाजके कारण ओटमें खड़े हैं कि सम्मुख जानेसे वालि भी शरणमें आ जायगा तो प्रतिज्ञा भंग होगी, कार्य बिगड़ेगा तो ठीक नहीं, इस कारण ओटमें खड़े हुए। आधे बल खिंच जानेकी बात ईश्वरमें नहीं घट सकती (यह युद्ध जेठ सुदी १४ को हुआ) ॥ ९ ॥

दोहा-बहु छल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि ॥
मारा वालिहि राम तब, हृदय- माँझ शर तानि ॥ १९ ॥

जबतक सुग्रीवको अपने छल बलका भरोसा रहा तबतक रघुनाथजीने नहीं मारा, जब छलबलका भरोसा छोड़ हृदयमें भय मान, रघुनाथजीकी शरण हुआ तब रघुनाथजीने वालिके हृदयमें तानके बाण मारा कि इसके हृदयमें अहंकार अधिक है सो दूर करना उचित है। जब मनुष्य सब बल कर्मादि त्याग भगवान्‌की शरण होता है तब सहायता करते हैं, यथा-'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज (गीता) ॥ १९ ॥

परा विकल महि शरके लागे ❀ पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे ॥१॥
श्याम गात शिर जटा बनाये ❀ अरुण नयन शर चाप चढ़ाये ॥२॥

वालि बाणके लगते ही व्याकुल हो पृथ्वीमें गिरा कि रघुनाथजी उसके निकट चले गये इधर वालि भी गिर पड़ा परन्तु वीर था इस कारण फिर उठ बैठा। रघुनाथजीको आगे खड़ा देखा ॥१॥ सांवला शरीर, शिरपर जटा बनाये, लालनेत्र, धनुषपर बाण चढ़ाये थे वही बाण वालिका हृदय विदीर्ण करके फिर धनुषमें स्थित हुआ, इस कारण बाण चढ़ाये कहा। अथवा जबतक शत्रुके प्राण सम्यक् प्रकारसे न निकलें तबतक सावधान रहनेके निमित्त बाण चढ़ाये, अथवा बालिकी ओरसे कदाचित् कोई युद्ध करनेको आवे इससे चढ़ाया ॥२॥

पुनि पुनि चितै चरण चित दीन्हा ❀ सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥३॥
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा ❀ बोला चितै रामकी ओरा ॥४॥

बार बार इस कारण देखता है कि रूप अति सुन्दर है वा विचार करके देखता है; मनमें कहता है कि ये तो ईश्वर हैं इन्होंने विषमता क्यों की! अथवा यह मुझसे पूछते तभी मारते; सुग्रीवने ऐसा इनका क्या काम सँवारा है? अथवा उसके किस गुणपर रीझे हैं इत्यादिक विचार कर मनमें कहा हरि इच्छा, ये जो चाहें सो करें, मुझे इनके चरण ध्येय हैं। अथवा ताराने जो स्वरूप कहा था उसे पहचान कर कहने लगा मैं इनके कौनसे अङ्गका ध्यान करूँ? तब बारबार सर्वाङ्गको देखकर चरणोंमें मन लगाया और अपना जन्म सफल माना ॥३॥ हृदयमें प्रीति थी, किंतु मुखसे कठोर वचन रघुवीरकी ओर देखकर बोला ॥४॥

धर्म हेतु अवतरेउ गुसाईं ❀ मारेउ मोहि व्याधकी नाईं ॥५॥
मैं वैरी सुग्रीव पियारा ❀ कारण कवन नाथ मोहिं मारा ॥६॥

हे गुसाईं! आपने तो पृथ्वीमें धर्म स्थापन करनेको अवतार लिया है। मुझे आपने व्याधके समान क्यों छिपकर मारा? ॥५॥ मैं आपका कैसा वैरी हूँ और सुग्रीव आपको क्यों प्यारा है? हे नाथ! क्या कारण जो आपने मुझे मारा? तब रघुनाथजी उसे दोष दिखाते हुये कहते हैं ॥६॥

अनुजबधू भगिनी सुत नारी * सुनु शठ कन्या सम ये चारी ॥७॥
इन्हैं कुदृष्टि विलोकै जोई * ताहि वधे कछु पाप न होई ॥८॥

रे मूर्ख ! सुन, छोटे भाईकी बहू, बहिन, बेटेकी बहू और पुत्री ये चारों समान हैं ॥ ७ ॥ इन्हें जो कोई खोटी दृष्टिसे देखे उसके मारनेका कुछ पाप नहीं होता। तूने तो सुग्रीवकी स्त्रीको अपनी स्त्री बना ली है ॥ ८ ॥

मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना * नारि सिखावन करेसि न काना॥९॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी *मारा चहसि अधम अभिमानी॥१०॥

रे मूढ़ ! तुझे बड़ा अभिमान है; जो अपनी नारीका सिखाना भी न माना। यह सर्वज्ञता है ॥ ९ ॥ और सुन अरे अधम ! अभिमानी ! तू मेरे भुजबलके आश्रयभूत सुग्रीवको जानकर भी मारा चाहता था ? ॥ १० ॥

दोहा–सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि ॥
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि ॥ २० ॥

तब वालि बोला-हे रघुनाथजी ! आपसे कुछ मेरी चतुराई नहीं चलेगी, परंतु हे प्रभो ! इतनी विनय है कि, जब आप अंत समयमें मेरे सम्मुख विद्यमान हैं तो क्या मैं अब भी पातकी हूँ॥२०॥

सुनत राम अति कोमल वानी * वालि शीश परसेउ निज पानी ॥१॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना * बालि कहा सुनु कृपानिधाना ॥२॥

रघुनाथजीने कोमल वाणीके सुनते ही वालिके शिरपर अपना हाथ रखा ॥१॥ और बोले मैं तुम्हारे शरीरको अचल कर प्राणोंकी रक्षा कर देता हूँ, जरा मृत्यु नहीं व्यापेगी शरीर रखो, तब वालिने कहा–कृपानिधान ! सुनो ॥ २ ॥

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं * अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥३॥
जासु नाम बल शंकर काशी * देत सबहिं समगति अविनाशी ॥४॥

मुनिजन अनेक जन्म यत्न करते हैं परंतु अन्तमें 'राम' शब्द भी मुखसे नहीं कहा जाता वा अन्तमें राम शब्द उच्चारण कर फिर संसारमें नहीं आते। अथवा रामका अन्त नहीं कहा जाता; वा अन्तमें राम कहीं नहीं आते ॥ ३ ॥ जिसके नामके बलसे शिवजी काशीमें सबको अविनाशी (नाश न होनेवाली) समान गति अर्थात् मुक्ति देते हैं ॥ ४ ॥

मम लोचन-गोचर सोइ आवा *बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा ॥५॥

सो साक्षात् मेरे नेत्रोंके सामने आये, हे प्रभु ! फिर ऐसा बनाव नहीं बनेगा फिर मेरे सम्मुख आप कहां आओगे ? ॥ ५ ॥

छन्द–सो नयन गोचर जासु गुण नित नेति कहि श्रुति गावहीं ।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥
मोहि जानि अति अभिमान वश प्रभु कहेउ राखु शरीरहीं ।
अस कवन शठ हठि काटि सुरतरु वारि करिहि बबूरहीं ॥१॥

वे मेरे नयनगोचर अर्थात् नेत्रोंके सम्मुख हैं जिनका गुण वेद नित्य नेति कहकर गाते हैं।

और प्राण, अपान, व्यान, उदान और इंद्रिय मन वश करके मुनि लोग भी ध्यानमें उनको पाते हैं सो आपने मुझे अहंकारके वश जानकर कहा कि शरीर रखो, ऐसा कौन मूर्ख होगा जो कल्पवृक्ष काट कर बबूरका बाग लगावेगा ? ॥ १ ॥

छन्द-अब नाथ करि करुणा विलोकहु देहु यह वर माँगऊँ।
जेहि योनि जनमउँ कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नरनाह अंगद दास अपनो कीजिये॥ २॥

अब हे नाथ कृपा करके मेरी ओर देखो, जो वर माँगू सो मुझे दो कि जिस योनिमें कर्मानुसार जन्म लूँ वहां ही आपके चरणोंमें दृढ़ प्रीति हो। वालिका चित्त चलायमान हो गया; भेद दृष्टि करके सब कुछ कहकर यह वर मांगा कि कर्मानुसार जिस योनिमें जन्म लूँ वहां आपकी प्रीति हो यद्यपि यह अनन्य भक्ति है और भक्तोंको कर्म नहीं लगते परन्तु वालि कर्मानुसार योनि मिलनेका वरदान मांग कर्मको प्रधान मान जन्म पानेकी इच्छा करता है इसी कारण बहुत कालतक वैकुण्ठका सुख भोग रघुनाथजीको व्याध कहनेके कारण "मारेउ मोहि व्याधकी नाईं" द्वापर युगमें व्याधकी योनिको प्राप्त हो श्रीकृष्णके बाण मार कर्म बंधनसे मुक्त हो गया। यह मेरा पुत्र अङ्गद मेरे समान बल विनय सम्पन्न आप इसे अभय कीजिये। हे देवता मनुष्योंके नायक! आप मेरे पुत्रकी बांह पकड़ इसे अपना दास कीजिये यही मेरी प्रार्थना है॥२॥

दोहा-रामचरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग॥
सुमन माल जिमि कंठते, गिरत न जानै नाग॥ २१॥

रघुनाथजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके वालिने अपना शरीर विना दुःख त्याग दिया, जैसे हाथीके गलेसे फूलोंकी माला गिर जाय और उसे खबर नहीं होती॥ २१॥

राम वालि निज धाम पठावा * नगर लोग सब व्याकुल धावा॥१॥
नाना विधि विलाप करि तारा * छूटे केश न देह सँभारा॥२॥

रघुनाथजीने वालिको अपने लोक भेज दिया। अथवा उसके जाने योग्य लोकको भेज दिया और सब नगरवासी व्याकुल होकर दौड़ चले॥ १॥ तारा अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी केश खुल गये, देहकी सुध न रही॥ २॥

पुनि पुनि तासु शीश उर धरई * वदन विलोकि हृदय महँ हतई॥३॥
मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा *काल विवश प्रिय मनहिं न आवा॥४॥

बार बार उसका शीश हृदयमें धरती है, मुख देख हृदयमें ताड़न करती है॥ ३॥ हे पति! मैंने तुम्हें बहुत समझाया, परन्तु कालवश तुम्हारी समझमें न आया॥ ४॥

अङ्गद कहँ कछु कहन न पायउ * बीचहि सुरपुर प्राण पठायउ॥५॥
तारा विकल देखि रघुराया * दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया॥६॥

आपने अंगदसे भी कुछ नहीं कहा, बीचमें ही सुरपुरको प्राण पठा दिये (क्षे०)॥ ५॥ ताराको व्याकुल देखकर रघुनाथजीने ज्ञान दिया और माया हरली और कहने लगे॥ ६॥

क्षिति जल पावक गगन समीरा * पंच रचित यह अधम शरीरा॥७॥

प्रगट सो तनु तब आगे सोवा * जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा॥८॥

हे तारा ! तुम क्यों रुदन करती हो ? यह शरीर अनित्य है कारणकि यह अधम शरीर पांच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु) रचित है इसमें त्रैगुण्यमय विकार रात दिन होते रहते हैं, जो उत्पन्न होता है वह निश्चय नष्ट होता है, शरीर पार्थिव है, गंध विषयग्राहक नासिका इंद्रिय है जलका जिह्वा इंद्रिय है अग्निका नेत्र इंद्रिय है, आकाशका श्रोत्र इंद्रिय है, पवनका त्वक् इंद्रिय है सबके संघातसे यह नाशवान् शरीर होता है ॥ ७ ॥ सो शरीर प्रगट तुम्हारे आगे सोता है, जो चाहे करो और यदि आत्माके निमित्त रुदन करती हो तो आत्मा नित्य उसके निमित्त रोना क्या ? ॥ ८ ॥

उपजा ज्ञान चरण तब लागी * लीन्हेसि परम भक्ति वर मांगी॥९॥
उमा दारुयोषितकी नाईं * सबहि नचावहिं राम गुसाईं ॥१०॥

जब ज्ञान उपजा तब चरणोंमें तारा गिरी और परम भक्तिका वर मांग लिया ॥ ९ ॥ शिवजी बोले-हे पार्वती ! काठकी पुतलीकी तरह रघुनाथजी सबको नचाते हैं ॥ १० ॥

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा * मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥११॥
राम कहा अनुजहि समुझाई * राज्य देहु सुग्रीवहि जाई ॥१२॥

फिर सुग्रीवको आज्ञा दी, उसने विधिपूर्वक सब मृतक कर्म किया ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीको यह बात समझाकर कहा सुग्रीवको जाकर राज्य दो ॥ १२ ॥

रघुपति चरण नाइकर माथा * चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥१३॥

रघुनाथजीके चरणोंमें माथा नवाकर रघुनाथजीके कहनेसे हनुमदादिक चले ॥ १३ ॥

दोहा-लक्ष्मण तुरत बुलायउ, पुरजन विप्र समाज ॥
राज्य दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज ॥ २२ ॥

लक्ष्मणने तुरंत पुरवासी वा ब्राह्मणोंके समाजको बुलाकर सुग्रीवको राज्य अंगदको युवराज पद दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासि पण्डित सुखानंद-मिश्रात्मज विद्यावारिधि-पंडितज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां किष्किन्धाकांडे द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा-यहि तृतीय विश्राममें, राम प्रवर्षण वास ।
चहुँदिशि सेना आगमन, राम रोष कपित्रास ॥ ३ ॥

उमा राम सम हित जग माहीं * गुरु पितु मातु बन्धु कोउ नाहीं॥१॥
सुर नर मुनि सबकी यह रीती * स्वारथ लागि करैं सब प्रीती ॥२॥

शिवजी बोले हे पार्वती ! रघुनाथजीके समान जगत्में हितकारी गुरु, माता, पिता और बंधु कोई नहीं है । अथवा गुरु पिता तो माता हैं पर बन्धु कोई नहीं हैं ॥ १ ॥ सुर नर मुनि सबकी यह रीति है कि अपने स्वार्थके निमित्त प्रीति करते हैं परंतु रामजीमें यह बात नहीं है॥२॥

वालि त्रास व्याकुल दिन राती * तनु बहु व्रण चिंता जर छाती॥३॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ * अति कोमल रघुवीर स्वभाऊ॥४॥

जो सुग्रीव वालिके डरसे रात दिन महाव्याकुल था, शरीरमें घाव और चिंताके मारे छाती जलती थी ॥३॥ उसी सुग्रीवको कपियोंका राजा बना दिया, रामजीका स्वभाव अति कोमल है ॥ ४ ॥

जानतहू अस प्रभु परि हरहीं ❋ काहे न बिपति जाल नर परहीं॥५॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बुलाई ❋ बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥६॥

जो नर जान बूझ कर ऐसे प्रभुको बिसारते हैं वे विपत्ति जालमें क्यों न पड़ें ? ॥ ५ ॥ फिर सुग्रीवको बुलाकर बहुत प्रकार राजनीति सिखायी ॥ ६ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराया ❋ दीन जानि पुर कीजिय दाया॥७॥
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा ❋ पुर न जाउँ दशचारि बरीशा ॥८॥

तब सुग्रीवने कहा कि रामचन्द्रजी ! मुझे दीन जानकर मेरे पुरमें पधारनेकी कृपा करें॥७॥ तब प्रभु बोले हे कपीश सुग्रीव ! सुनो मैं चौदह वर्षतक किसी पुरमें नहीं जाऊँगा ॥ ८ ॥

गत ग्रीषम वर्षाऋतु आई ❋ रहिहौं निकट सैलपर छाई ॥९॥
अंगद सहित करहु तुम राजू ❋सन्तत हृदय धरेउ मम काजू॥१०॥

अब गर्मी बीत चुकी वर्षा ऋतु आ गयी, निकटके इस पर्वत पर रहूँगा ॥ ९ ॥ तुम अंगदके सहित राज करो और (जबतक प्रयत्न करनेका समय न आवे तबतक) तुम मेरा काज हृदयमें धारण किये रहो ॥ १० ॥

तब सुग्रीव भवन फिरि आये ❋ राम प्रवर्षण गिरि पर छाये ॥११॥

तब सुग्रीव घर लौट आये और रघुनाथजी प्रवर्षण पर्वत पर रहने लगे (इसपर सब दिन वर्षा होती रहती है इससे प्रवर्षण नाम है) ॥ ११ ॥

दोहा-प्रथमहि देवन गिरिगुहा, राखी रुचिर बनाय ॥
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आय ॥ २३ ॥

देवताओंने प्रथम ही यह वार्ता जानकर एक गुहा सुन्दर प्रकारसे बनाकर रखी थी; कि रघुनाथजी कुछ दिन यहाँ आकर रहेंगे ॥ २३ ॥

सुन्दर वन कुसुमित अतिशोभा ❋ गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥१॥
कंद मूल फल पत्र सुहाये ❋ भये बहुत जबते प्रभु आये ॥२॥

सुन्दर वन फूल रहा सो अत्यंत शोभा होती है, मधुके लोभसे भौंरोंके समूह गुञ्जार रहे हैं ॥ १ ॥जब प्रभु आये तबसे कंद-मूल, फल और पत्र शोभायमान बहुत उत्पन्न हुए ॥२॥

देखि मनोहर शैल अनूपा ❋ रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥३॥
मधुकर खग मृग तनुधरि देवा ❋ करहिं सिद्ध मुनि प्रभुकी सेवा॥४॥

मनोहर अनुपम पर्वतको देखकर वहां देवताओंके राजा रघुनाथजी लक्ष्मण सहित रहे ॥ ३ ॥ देवता, भ्रमर खग और मृगोंका शरीर धारण कर सुन्दर बोली बोलकर प्रभुके मनको प्रसन्न करते और सिद्ध, मुनि भी प्रभुकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

मंगलरूप भयो वन तबते ❋ कीन्ह निवास रमापति जबते ॥५॥
फटिकशिला अति शुभ्र सुहाई ❋ सुख आसीन तहाँ दोउ भाई ॥६॥

जबसे रघुनाथजीने उसमें निवास किया तबसे वह मङ्गलरूप हो गया ॥ ५ ॥ एक पर्वतकी उत्तम श्वेत शिलाके ऊपर दोनों भाई सुखपूर्वक बैठे हुए हैं ॥ ६ ॥

कहत अनुज सन कथा अनेका * भक्ति विरति नृपनीति विवेका॥७॥
वर्षाकाल मेघ नभ छाये * गर्जत लागत परम सुहाये ॥८॥

लक्ष्मणसे अनेक प्रकारकी भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञानकी कथा कहते हैं ॥ ७ ॥ अब वर्षाकालमें मेघ आकाशमें छा गये, जो गर्जनेमें परम शोभायमान लगते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद पेखि ॥
गृही विरतिरत हर्ष युत, विष्णुभक्त कहँ देखि ॥ २४ ॥

रघुनाथजी बोले-भैया लक्ष्मण! देखो, मोरोंके समूह बादलोंको देखकर नाचते हैं जैसे विरागसे युक्त गृहस्थी विष्णुभक्तको देखकर प्रसन्न होते हैं (इसमें नीति, वैराग्य, और भक्ति तीनों हैं) ॥ २४ ॥

घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा * प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥१॥
दामिनि दमक रही घन माहीं * खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं॥२॥

आकाशमें बादल बहुतसे होकर घोर गर्जना करते हैं प्रियाहीन होनेके कारण मेरा मन डरता है ॥१॥ बिजली चमकती है बादलमें रहती नहीं,जैसे दुष्टोंकी प्रीति स्थिर नहीं रहती(यह नीति है) ॥२॥

वर्षहिं जलद भूमि नियराये * यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥३॥
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे * खलके वचन संत सह जैसे ॥४॥

बादल पृथ्वीके निकट आकर वर्षते हैं पंडित जैसे विद्याको पाकर नम्र हो जाते हैं ॥ ३ ॥ बूँदें, वृक्ष पशु आदि सब सहते हैं परन्तु उनसे अधिक नहीं सहा जाता, पर्वत अनायास सहते हैं; ऐसे ही खलोंके वचनोंसे सबका अन्तःकरण बिगड़ जाता है सन्तोंका नहीं ॥ ४ ॥

क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई * जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥५॥
भूमि परत भा डाबर पानी * जिमि जीवहि माया लपटानी ॥६॥

छोटी नदी भरके ऐसे वेगसे चली जैसे थोड़े ही धन से दुष्ट इतरा जाते हैं (यह नीति है) कहीं 'बौराई' पाठ है ॥ ५ ॥ जल पृथ्वी पर पड़नेसे मैला हो जाता है, जैसे जीवमें माया लिपट गयी कि वह मलिन हुआ ॥ ६ ॥

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा * जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा॥७॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई * होइ अचल जिमि जिव हरिपाई॥८॥

जल सरोवरमें सिमिट सिमिट कर इस प्रकार भरता है जैसे सुन्दर गुण सज्जनके पास आकर इकट्ठे हो जाते हैं(यह नीति है)॥७॥ नदियोंका जल सागरमें जाकर इस प्रकार स्थिर हो जाता है जिस प्रकार ईश्वरको प्राप्त होकर मन वा जीव अचल हो जाता है(यह ज्ञान है)॥८॥

दोहा–हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पंथ ॥
जिमि पाखण्ड विवादते, लुप्त होहिं सद्ग्रंथ ॥ २५ ॥

पृथ्वी हरित तृणोंसे ऐसी आच्छादित हो गयी कि मार्ग नहीं विदित होता, जैसे पाखण्ड विवादसे सद्ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं। (यह ज्ञान है) ॥ २५ ॥

दादुर धुनि चहुँ दिशा सुहाई ❋ वेद पढ़ैं जनु बटुसमुदाई ॥१॥
नव पल्लव भये विटप अनेका ❋ साधकमन जस मिले विवेका ॥२॥

मेंढक चारों दिशाओंमें इस प्रकार बोल रहे हैं जैसे ब्रह्मचारी वेद पढ़ते हैं ॥ १ ॥ अनेक वृक्ष नवीन पत्तोंसे सम्पन्न हो गये,जैसे साधकोंके मन ज्ञानसे सुन्दर हो जाते हैं(यह ज्ञान है)॥२॥

अर्क जवास पात विनु भयऊ ❋ जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ॥३॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी ❋ करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥४॥

आक, जवासा, सूखकर विनापत्तोंके होगये,जैसे अच्छे राज्यमें दुष्टोंका कर्तव्य जाता रहता है (यह वैराग्य है) ॥ ३ ॥धूल कहीं ढूँढेसे नहीं मिलती,जैसे क्रोधसे धर्म नहीं रहता ॥ ४ ॥

शश सम्पन्न सोह महि कैसी ❋ उपकारीकी संपति जैसी ॥५॥
निशि तम घन खद्योत विराजा ❋ जिमि दंभिन कर जुरा समाजा॥६॥

खेतीसे भरी हुई पृथ्वी कैसी शोभित होती है जैसे परोपकारीकी सम्पत्ति ॥ ५ ॥ रात्रिमें अधिक अन्धकार होनेसे पटबीजने ऐसे शोभित होते हैं जैसे मूर्खोंमें पाखण्डी अपना जाल फैलाते हैं ॥ ६ ॥

महावृष्टि चलि फूटि किआरी ❋ जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी॥७॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना ❋ जिमिबुध तजहिं मोहमदमाना॥८॥

अधिक वर्षा होनेसे क्यारियाँ फूटकर बह चलीं; जैसे स्वतंत्रता (जो इच्छा आये सो करने) से स्त्री बिगड़ जाती है ॥ ७ ॥ चतुर किसान खेतियों को निराकर अर्थात् नाजमेंसे घासको निकाल कर शुद्ध करते हैं, जिस प्रकार महात्मा मोह, मद, मान त्यागकर अपनेको शुद्ध करते हैं ॥ ८ ॥

देखिय चक्रवाक खग नाहीं ❋ कलिहि पाय जिमि धर्म पराहीं॥९॥
ऊषर बरसइ तृण नहिं जामा ❋संत हृदय जस उपज न कामा॥१०॥

वर्षाऋतुमें चकई चकवा इस प्रकार दिखाई नहीं देते जैसे कलियुग को पाकर वर्णाश्रम धर्म नहीं दिखाई देते ॥ ९ ॥ ऊषरमें बरसनेसे तृण मात्र तक नहीं जमा, जैसे सन्तके हृदयमें कामना नहीं उपजती । (यह नीति है) ॥ १० ॥

विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा ❋बढ़इ प्रजा जिमि पाइ सुराजा॥११॥
जहँ तहँ पथिक रहे थकि नाना ❋ जिमि इंद्रियगण उपजे ज्ञाना॥१२॥

अनेक जन्तुओंसे संयुक्त पृथ्वी ऐसे शोभित हो गयी जैसे सुराज्यसे प्रजा बढ़ती है (यह नीति है) ॥ ११ ॥ जहाँ तहाँ अनेक पथिक वर्षाके कारण मार्ग बन्द हो जाने से थककर बैठ रहे जैसे ज्ञान उपजनेसे इंद्रियाँ स्थिर हो जाती हैं ॥ १२ ॥

दोहा—कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ॥
जिमि कुपूतके ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥ २६ ॥

कभी ऐसी तीक्ष्ण पवन चलती है कि जहाँ तहाँ सब मेघ बिला जाते हैं जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने पर कुल के सब धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ २६ ॥

दोहा–कबहुँ दिवस महँ निविड़तम, कबहुँक प्रगट पतंग ॥
उपजइ बिनशइ ज्ञान जिमि, पाय सुसंग कुसंग ॥ २७ ॥

कभी तो दिनमें बड़ा अन्धकार हो जाता है, कभी सूर्य निकल आता है तो उजेला हो जाता है जैसे कुसंगति करनेसे ज्ञानका नाश हो जाता है और सुसंगतिसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई * देखहु लक्ष्मण परम सुहाई ॥१॥
फूले कास सकल महि छाई * जनु वर्षाकृति प्रगट बुढ़ाई ॥२॥

हे लक्ष्मण ! देखो, अब वर्षा बीत गई, शरदऋतु आगई यह परम शोभायमान है (इस कारण इसमें जानकीजीके खोजनेका उद्योग होगा) ॥ १ ॥ सब पृथ्वीमें घास फूलकर छा रहे हैं मानों वर्षा ऋतुने बुढ़ापा प्रकट किया है ॥ २ ॥

उदित अगस्त्य पन्थ जल शोषा * जिमि लोभहि सोखइ संतोषा ॥३॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा * सन्त हृदय जस गत मद मोहा॥४॥

अगस्त्य तारेने उदय होकर मार्गका जल शोषना प्रारम्भ कर दिया; जैसे सन्तोषसे लोभ सूख जाता है ॥ ३ ॥ नदी सरोवरोंका जल निर्मल हो शोभित होता है जिस प्रकार मोह मद-रहित सन्तोंका मन होता है ॥ ४ ॥

रस रस सूख सरित सर पानी *ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥५॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये *पाय समय जिमि सुकृत सुहाये॥६॥

शनैः शनैः सरोवरादिका जल घट जाता है जैसे ज्ञानी शनैः शनैः ममता त्यागते हैं ॥५॥ शरदऋतुको जानकर खञ्जन आ गये, जैसे समय पाकर पुण्य फलते हैं, खञ्जनके वर्षाऋतुमें पंख शिरमें निकलता है जिससे वे अदृष्ट हो जाते हैं, शरदमें उनके गिर जानेसे दृष्टि आते हैं जो उस पंखको मुखमें धरे वह भी अदृष्ट हो सकता है ॥ ६ ॥

पंक न रेणु सोह अस धरणी *नीति निपुण नृपकी जसि करणी॥७॥
जल संकोच विकल भये मीना *अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥८॥

कीच कहीं नहीं है, पृथ्वी धूरिसे ऐसी शोभित है जैसे नीतिमान् राजाकी करणी अथवा पंक और धूरि न होने से पृथ्वी ऐसी शोभित है जैसे नीतिमान् राजाकी करनी ॥ ७ ॥ जल घट जानेसे मछली व्याकुल है जैसे निर्बुद्ध कुटुम्बी धन विना व्याकुल रहते हैं ॥ ८ ॥

बिनु घन निर्मल सोह अकाशा *जिमि हरिजन परिहरि सब आशा॥९॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी *कोउ इक पाव भक्ति जिमि मोरी॥१०॥

विना बादलोंका आकाश ऐसे शोभित है जैसे हरि भक्त सब आशा छोड़कर प्रसन्न होते हैं ॥ ९ ॥ शरदऋतुमें कहीं-कहीं वर्षा थोड़ी सरदी होती है जैसे सहस्रोंमें किसी एकको मेरी भक्ति मिलती है ॥ १० ॥

दोहा–चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ॥
जिमि हरिभक्ति पाय श्रम, तजहिं आश्रमी चारि ॥ २८ ॥

राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिक्षुक शरदऋतु पाकर आनंदसे घर छोड़ अपने अपने कामको चले। जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी हरि भक्तिको पाके अपने अपने आश्रमको छोड़ देते हैं; अर्थात् राजा देश सँभारनेको, तपस्वी ग्राम छोड़ वनमें तप करनेको, वणिक व्यापारको, भिखारी भिक्षा मांगनेको चलते हैं। इन चारों आश्रमवालोंको मेरी भक्ति पाकर फिर आश्रमानुसार अनुष्ठान करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ २८ ॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा * जिमि हरिशरण न एकौ बाधा॥१॥
फूले कमल सोह सर कैसे * निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ॥२॥

जहाँ गहरा जल है वहांकी मछली इस प्रकार सुखी हैं जैसे नारायणकी शरणमें जानेपर कोई बाधा नहीं होती ॥ १ ॥ कमल खिलनेपर सरोवर ऐसे शोभित होते हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होनेसे (अधिक) शोभित होते हैं ॥ २ ॥

गुञ्जत मधुकर निकर अनूपा * सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥३॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी * जिमि दुरजन पर संपति देखी॥४॥

अनेक सुन्दर भौंरोंके समूह गूँजते हैं, अनेक प्रकार पक्षी सुन्दर बोली बोलते हैं ॥ ३ ॥ रात्रिको देखनेसे चकवा चकवीके मनमें दुःख होता है जैसे दुष्ट पराई सम्पति देखकर दुखित होते हैं ॥ ४ ॥

चातक रटत तृषा अति ओही * जिमि सुख लहै न शंकर द्रोही॥५॥
शरदातप निशि शशि अपहरई * सन्त दरश जिमि पातक टरई॥६॥

चातक स्वाती बूँदके निमित्त अत्यन्त प्यासे रहकर चिल्लाया करते हैं जैसे शिवजीके द्रोही कभी सुख नहीं पाते ॥५॥ शरदऋतुकी तीक्ष्ण धूपको रात्रिमें चन्द्रमा हर लेता है जैसे सन्त दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं ॥ ६ ॥

देखहिं विधु चकोर समुदाई * चितवहिं जिमि हरिजन हरिपाई॥७॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा *जिमि द्विज द्रोह किये कुलनाशा॥८॥

अनेक चकोर चन्द्रमाको देखते हैं जैसे नारायणको पाकर उनके भक्त देखते हैं ॥ ७ ॥ हिमके डरसे मशक दंश बीते (नाशको) प्राप्त हो गये, जैसे ब्राह्मणोंसे द्रोह करनेसे कुलका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

दोहा-भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय ॥
सद्गुरु मिलते जाहि जिमि, संशय भ्रम-समुदाय ॥ २९ ॥

पृथ्वीपर अनेक जीव जो (वर्षामें) उत्पन्न हुए थे शरदऋतु पाकर नष्ट हो गये, जैसे सद्-गुरुके मिलनेसे संशय, भ्रम समूह मिट जाते हैं ॥ २९ ॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई * सुधि न तात सीताकी पाई ॥१॥
एक बार कैसेहु सुधि जानौं *कालहु जीति निमिष महँ आनौं॥२॥

हे लक्ष्मण ! वर्षा बीत गयी, और शरद ऋतु आ गयी, परंतु अभीतक जानकीकी सुध न मिली ॥१॥ एक बार कैसे भी सुध पाऊँ तो कालको भी जीतकर एक पलमें लाऊँ ॥ २ ॥

कतहु रहउ जौ जीवित होई ❋ तात यतन करि आनौं सोई ॥३॥
सुग्रीवहु सुधि मोरि विसारी ❋ पावा राज्य कोश पुर नारी ॥४॥

हे तात! जो जानकी कहीं भी हो परंतु जीती होगी तो यत्न करके ले आऊँगा॥३॥ सुग्रीवने भी राज्य, खजाना, पुर, स्त्री पाकर मेरी सुध विसार दी यद्यपि मैंने कोई कसर नहीं रखी ॥४॥

जेहि सायक मारा मैं वाली ❋ तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥५॥
जासु कृपा छूटै मद मोहा ❋ ताकहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥६॥

जो वह मूर्ख मुझसे आज आकर नहीं मिलेगा तो जिस बाणसे मैंने वालिको मारा है उसी बाणसे उस मूर्खको मारूँगा अथवा जो उसी बाणसे मारूँगा तो लोग कल ही मुझे मूढ़ कहेंगे अथवा आज नहीं मिला तो कल उसकी मूढ़ता हरूँगा, यह मनुष्य लीला है सन्देह नहीं करना, यथा—"मैं कुछ करब ललित नर लीला"॥५॥ शिवजी बोले-हे पार्वती ! जिसकी कृपासे मद मोह छूट जाते हैं उसे तो स्वप्नमें भी क्रोध नहीं होता; यह भय दिखाया है, कि जिससे दास सावधान रहें ॥ ६ ॥

जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी ❋ जिन रघुवीर-चरणरति मानी ॥७॥
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना ❋ धनुष चढ़ाय गहे कर बाना ॥८॥

इस चरित्रको तो वे ज्ञानी और मुनि जानते हैं जो रघुनाथके चरणोंमें प्रीति रखते हैं (यह नर लीला है) ॥७॥ लक्ष्मणने प्रभु (रघुनाथजी) को क्रोधमें जान धनुष चढ़ाकर बाण ग्रहण किये (तब श्रीरामचन्द्रजीने यह समझा कि कहीं यह सुग्रीवको मार न दें) ॥ ८ ॥

दोहा—तब अनुजहिं समझायहु, रघुपति करुणासींव ॥
भय दिखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥ ३० ॥

तब करुणा सागर रघुनाथजीने लक्ष्मणको समझाया कि हे भाई ! सुग्रीवको केवल भय दिखाकर ले आओ (किंतु उसे मारना नहीं) वह मेरा मित्र है ॥ ३० ॥

इहाँ पवन-सुत हृदय विचारा ❋ रामकाज सुग्रीव बिसारा ॥१॥
निकट जाय चरणन्ह शिर नावा ❋ चारिहुँ विधि तेहि कहि समुझावा॥२॥

यहां हनुमानजीने मनमें विचारा कि सुग्रीवने रघुनाथजीका कार्य भुला दिया ॥१॥ निकट जाके चरणोंमें शिर नवाकर चारों विधि अर्थात् साम,दाम,दंड,भेद कहकर सुग्रीवको समझाया कि राजाओंमें चार गुण होते हैं सो रघुनाथजी तुम्हारे साथ दो तो कर चुके,एक सामके साथ मित्रता और दामके साथ राज्य आदिका देना और दंड और भेद रहे सो भी होने चाहते हैं क्योंकि भेदके निमित्त अङ्गद विद्यमान है और दंडके निमित्त वही वाण है जिससे वालिको मारा था, इससे शीघ्र जानकीजीकी सुधको दूत भेज दो और खोजनेका उपाय करो ॥ २ ॥

सुनि सुग्रीव परम भय माना ❋ विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना ॥३॥
अब मारुतसुत दूत समूहा ❋ पठवहु जहँ तहँ वानर यूहा ॥४॥

सुग्रीवने सुनकर बड़ा भय माना और बोला,विषयने मेरा ज्ञान हर लिया ॥ ३ ॥ पवनात्मज ! अब जहां तहां अनेक दूतोंके समूह भेजो; जो वानरोंको बुलाकर लावें ॥ ४ ॥

कहेउ पाखमहँ आव न जोई ❋ मोरे कर ताकर वध होई ॥५॥
तब हनुमन्त बुलाये दूता ❋ सबकर करि सम्मान बहूता ॥६॥

कह देना, जो एक पखवारे में नहीं आवेगा तो मेरे हाथसे उसका वध होगा ॥ ५ ॥ तब महावीरजीने दूत बुलाये और सबका बहुत सम्मान किया ॥ ६ ॥

भय अरु प्रीति नीति दिखलाई ❋ चले सकल चरणन्ह शिरनाई ॥७॥
सुनि पितु वचन बोल युवराजू ❋ विनु हनुमन्त होइ नहिं काजू ॥८॥

भय और प्रीति, नीति दिखलायी तब सब चरणोंमें शिर नवाके चले (आगे क्षेपक है) ॥७॥ सुग्रीवके वचन सुनकर अंगदजी बोले कि विना हनुमान्जीके काम नहीं होगा ॥ ८ ॥

जानै हैं गिरि कन्दर सागर ❋ चतुर विचक्षण बुधिबल आगर ॥९॥
केशरिपुत्र पवन कर अंसा ❋ पठवहु नाथ करहु परशंसा ॥१०॥

ये पर्वतकी कंदरा और सागर आदि सब स्थान जानते हैं और चतुर, विवेकी, बुद्धिबलकी खानि हैं ॥९॥ हे नाथ ! केशरीके पुत्र पवनके अंश हैं, आप उन्हें बड़ाई कर भेजिये ॥ १० ॥

तब सुग्रीव मारुतिहिं हँकारा ❋ राम काज जनि लावहु बारा ॥११॥
पति आज्ञा धरि शीश सिधाये ❋ मारि फलाँग पूर्व दिशि आये॥१२॥

तब सुग्रीवने महावीरजीको बुलाकर कहा तुम रघुनाथजीके काममें देर मत लगाओ ॥११॥ स्वामीकी आज्ञा मान महावीरजी चले और एक ही फलांग मारकर पूर्व दिशामें आये ॥१२॥

सुनि हनुमन्त मिलन सब आवहिं ❋ माथ नाय हित वचन सुनावहिं ॥१३॥
कारण कवन कीन्ह श्रम भारी ❋ तुम किष्किन्धा नाथ-अधिकारी॥१४॥

महावीरजी का आना सुनकर सब कोई मिलनेको आते हैं और माथा नवाकर सब कोई हित वचन बोले ॥ १३ ॥ क्या कारण है जो आपने इतना श्रम किया ? आप तो किष्किन्धानाथ व अधिकारी हो ॥ १४ ॥

हम लायक जो कारज होई ❋ नाय शीश धरि मानब सोई ॥१५॥
सुनि कपि कहा न लावहु बारा ❋ तुमहिं वालि लघुबन्धु हँकारा॥१६॥

हे नाथ ! जो कार्य हमारे योग्य हो वह शिर धरकर मानेंगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर महावीरजी बोले-देर मत लगाओ तुम्हें सुग्रीवने बुलाया है ॥ १६ ॥

आतुर जाहु विलँब न करेहू ❋ परो काज भारी मन देहू ॥१७॥
सुनत वचन सब मिले तुरन्ता ❋ जय सुग्रीव कहि गगन गहंता॥१८॥

जल्दी जाओ देर मत करो, बड़ा काम है सो मन देकर करो ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर सब कोई तुरन्त ही सुग्रीवकी जय बोलते आकाश मार्गसे चले ॥ १८ ॥

दोहा-असी लाख अरु सात शत, कपिदल वर बरि बंड ॥
नभ मारग कूदत चले, गय गवाक्ष बलि दंड ॥ ३१ ॥

अस्सी लाख और सात सौ प्रचण्ड वानर, गय, गवाक्ष नामक यूथप सहित कूदते हुए आकाश मार्गसे चले ॥ ३१ ॥

पठै तिनहिं तरक्यो हनुमाना * रोहित पर्वत जाय तुलाना ॥१॥
दुर्धर्षणसन बात सुनाई * चला वीर कदली वन आई ॥२॥

इन्हें भेजकर महावीरजी कूदकर रोहित पर्वत पर गये ॥ १ ॥ दुर्धर्षणसे बात सुनाकर महावीरजी कदली वनमें आये ॥ २ ॥

गजसन कह सुनु वानरराजा * परा कठिन सुग्रीवहि काजा ॥३॥
निजदल संग लाय सब लेहू * धीरजता निज पतिको देहू ॥४॥

हनुमान्‌जीने गजसे कहा, हे वानरोंके राजा ! सुनो, सुग्रीवको कठिन काज आ पड़ा है, वहीं शीघ्र जाओ ॥ ३ ॥ सब अपना दल संग ले जाकर अपने पतिको धैर्य दो ॥ ४ ॥

भलेहि नाथ कहि सब उठि चले * वसुधा हिली शेष कल मले ॥५॥
पद्म सात दल असी करोरी * चले द्विरज गज भई अँधेरी ॥६॥

'बहुत अच्छा स्वामी' यह कह वे उठ कर चल दिये, तब पृथ्वी कांपी और शेषजी कलमलाये ॥ ५ ॥ सात पद्म अस्सी करोड़ सेना लेकर द्विरद और गज वानर चले तब अँधेरा हो गया ॥ ६ ॥

हनुमत व्याहर पर्वत आवा * जेठ पुत्र बलवीर बुलावा ॥७॥
तीस लाख दल साठि हजारा * पवन पुत्र सब कीन जुहारा ॥८॥

तब हनुमान्‌जी व्याहर पर्वत पर आये और बलवीरके बड़े पुत्रको बुलाया ॥ ७ ॥ तीस लाख साठ हजार दल सबने पवन पुत्रको जुहार किया ॥ ८ ॥

कारज होय तो आयसु दीजै * इतना श्रम केहि कारण कीजै ॥९॥
कपिपति रघुपति कथा सुनाई * चलेउ पवनसुत विदा कराई ॥१०॥

जो आपका कार्य हो वह आज्ञा कीजिये, किस कारण इतना श्रम किया ? ॥ ९ ॥ महावीरजीने सुग्रीव और रघुनाथजीकी कथा सुनायी और विदा होकर चले ॥ १० ॥

धुन्धुमार पर्वत नियराना * कह तेहि श्रीखंड कीन पयाना ॥११॥
छपन कोटि वानर लै साथा * करि परणाम चले कपि नाथा ॥१२॥

फिर महावीरजी धुन्धुमार पर्वत पर गये, वहांके वानरों को बुलवा दिया, श्रीखण्ड वानर सुनते ही चला ॥११॥ छप्पन करोड़ वानरोंको साथ ले प्रणाम कर सेनापति चला ॥ १२ ॥

तब हनुमत अंजनि गिरि आवा * कुमुद नाम कपिवीर बुलावा ॥१३॥
पद्म सात अरु लाख सतासी * धाये वीर महाबल रासी ॥१४॥

तब हनुमान्‌जी अञ्जनी पर्वत पर आये कुमुद नामक वीर वानरको बुलाया ॥ १३ ॥ सात पद्म सतासी लाख वीर बलवान् वानर चले ॥ १४ ॥

गगन मार्ग जयराम कहंता * आयो नीलगिरी हनुमंता ॥१५॥
जहँ रह नील नाम कपि भारी * अग्निपुत्र बलबुधि अधिकारी ॥१६॥

आकाश मार्गमें 'जय रामकी' ऐसा कहते महावीरजी नीलगिरि पर्वत पर आये ॥ १५ ॥ जहां नील नामक अग्निका बुद्धिमान् पुत्र रहता था ॥ १६ ॥

मारुतसुत तेहि मर्म बुझावा * मेघसमान गार्जि कपि आवा ॥१७॥
अर्बुद चारि चारि शत बारा * समरधीर सब सुभट जुझारा ॥१८॥

तब महावीरजीने उसे भेद समझाया, वह वानर मेघके समान गर्जता हुआ आया॥१७॥ चार अरब चार सौ बारह सब समरमें धीरधारी जुझारू अच्छे योद्धा थे ॥ १८ ॥

गहे वृक्ष आयुध वनचारी * चले शकल जय राम पुकारी॥१९॥
पवनपुत्र उत्तर दिशि गयऊ * बद्रिक आश्रम परसत भयऊ॥२०॥

अनेक वानर वृक्ष आयुध हाथमें लिये सब रघुनाथजीकी जय पुकारते चले ॥ १९ ॥ तब महावीरजी उत्तर दिशा बदरिकाश्रममें गये ॥ २० ॥

शीघ्र गन्धमादन पर गयऊ * जलतडाग देखत सुख लयऊ॥२१॥

फिर शीघ्र गंधमादन पर्वत पर गये और वहां तड़ागोंमें जल देख सुख पाया ॥ २१ ॥

दोहा-गज गवाक्ष कहँ मिल्यो पुनि, बहु प्रकार समुझाय ॥
नाय माथ अस्तुति करत, चले बीर हर्षाय ॥ ३२ ॥

फिर गज गवाक्षसे मिलकर उन्हें बहुत प्रकारसे भेद समझाया, वे माथा नवाके स्तुति कर प्रसन्न होकर चले ॥ ३२ ॥

हनुमत अर्जुन-गिरिपर आवा * तारा-तात वीर तहँ पावा ॥१॥
नाम सुषेण महाबल बीरा * बुधि-बलतेज समर धर धीरा ॥२॥

फिर महावीरजी अर्जुन पर्वतपर आये, जहाँ ताराका पिता वीर रहता था ॥१॥ सुषेण नामक महाबली बुद्धिमान् तेजस्वी धीर धारी था ॥ २ ॥

समाचार पुनि ताहि सुनावा * चलि हनुमन्त सुमेरुहि आवा ॥३॥
कनक वरण सम दीपित काया * नेत्र लाल अति विपुल सुहाया॥४॥

फिर सब समाचार उसे सुनाकर हनुमान्जी सुमेरु पर्वत पर आये ॥ ३ ॥ सोनेके वर्णके समान दीप्तिमान् शरीर बहुत बड़े लाल लाल नेत्र सुहाते हुए ॥ ४ ॥

पवन-प्रसून गगनपर गरजे * राक्षस देखि कालसम तरजे ॥५॥
लँगुर उठाय शीशपर लाये * मानहुँ मघवा धनुष सुहाये ॥६॥

पवन सुत आकाशमें गर्जे, राक्षसोंको देखकर कालके समान घुड़की दी ॥ ५ ॥ जो लँगूर उठाकर शिरपर धरे उसकी शोभा इन्द्र धनुषकी थी ॥ ६ ॥

एक एक सन वचन सुनावा * हनुमत चरणन शिर तिन नावा॥७॥
काया कष्ट कीन्ह केहि काजा * कुशल अहहिं किष्किधा राजा ॥८॥

एकने एकसे वचन सुनाया और उन्होंने महावीरजीके चरणोंमें शिर नवाया ॥ ७ ॥ और बोले-आपने कायाकष्ट किस निमित्त किया ? किष्किंधाके राजा तो कुशल हैं ? ॥ ८ ॥

कपि तब समाचार सब भाषा * चले दरश कारण अभिलाषा ॥९॥

महावीरजीने समाचार कहे तब दर्शनकी अभिलाषा कर सब चले ॥ ९ ॥

दोहा–दशकरोरि नवलाख अरु, बीस सहस शत एक ॥
चले केशरी संग लै, करत चरित्र अनेक ॥ ३३ ॥

दश करोड़ नौ लाख बीस हजार एक सौ वानरोंको साथ ले केशरी नामक वानर अनेक चरित्र करता हुआ चला ॥ ३३ ॥

ताहिहु विदा कीन्ह कपि पवना * रुद्रगिरी कैलासहि गवना ॥१॥
कपि बलपुरद ताहिकर नाऊँ * रखवारी अलकापुर गाऊँ ॥२॥

उसको भी महावीरजी विदाकर रुद्र गिरी (कैलास) पर आये ॥ १ ॥ बलपुरद नामक वानर जो अलकापुरीमें रखवारीको रहता था ॥ २ ॥

महातेज बल दुर्गम काया * समर चतुर जानत सब माया ॥३॥
सुनि सो मारुतसुत पहँ आवा * लै संग सेन शीश तेहि नावा ॥४॥

महातेजस्वी, बली, दुर्गम जिसका शरीर, सब माया जानने; भेद लेनेमें चतुर ॥ ३ ॥ वह महावीरजीका आना सुन सेना संग लेकर आया और शिर नवाया ॥ ४ ॥

पूछा कवन काज है नाथा * दीन दरश हम भये सनाथा ॥५॥
तुम सुकंठ नृपके परधाना * आज्ञा देहु बेगि हनुमाना ॥६॥

और पूछा हे स्वामी ! क्या है ? आपका दर्शन पाकर हम सनाथ हुए ॥ ५ ॥ आप राजा सुग्रीवके प्रधान मन्त्री हैं; हे पवनसुत शीघ्र आज्ञा कीजिये ॥ ६ ॥

कहा पवनसुत विलम न लावहु * लै निजसेन पम्पपुर धावहु ॥७॥
जय रघुवीर अनुज लघु बाली * सजि दल चले मेदनी हाली ॥८॥

पवनसुतने कहा देर मत करो, अपनी सेना लेकर पम्पापुरी जावो ॥ ७ ॥ रघुनाथजी, लक्ष्मणजी और सुग्रीवका जय बोलकर वे सेना सजाकर चले कि, पृथ्वी हिली ॥ ८ ॥

सिंहनाद करि पूँछ उठाये * दरश उछाह सकल उठि धाये॥९॥
रहा न कोउ पवनसुत प्रेरा * मैना गिरिहि हिमाचल हेरा ॥१०॥

सिंहनाद करके पूँछ उठाये हुए दर्शनके उत्साहसे सब कोई उठकर दौड़े ॥९॥ महावीरजीके कहनेसे कोई नहीं रहा, फिर दूसरे मैनागिरि और हिमाचलमें महावीरजी आये ॥ १० ॥

प्रेम सहित कपि सकल बुलाये * आसवासना करत पठाये ॥११॥
अण्डक नाम महाबल कीशा * चले कहत जय राम अहीशा॥१२॥

वहांके वानरोंको प्रेमसे बुलाके आश्वासन देकर भेज दिया ॥११॥ अण्डक नाम महाबली वानर 'जय रघुनाथजीकी जय लक्ष्मणजीकी' कहते चले ॥ १२ ॥

ताहि बिदा करि पवन कुमारा * विन्ध्याचल कहँ तुरत सिधारा॥१३॥
नाम वसंत महाबलवाना *लै निज दल कपि निकट तुलाना॥१४॥

महावीरजी उसे बिदाकर तुरंत विन्ध्याचलको गये ॥ १३ ॥ वहां का राजा वसन्त नाम महाबली वानर अपना दलले कपिके निकट आया ॥ १४ ॥

इंद्रकेलि वनके कपि जेते * हनुमत चरण गहे कपि तेते ॥१५॥
आठ पद्म अरु सहस अठासी * चले तहाँ जहँ हैं अविनासी ॥१६॥

जितने इन्द्रकेलि वनके वानर थे, सबने महावीरजीके चरण पकड़े ॥ १५ ॥ आठ पद्म और अठासी सहस्र वानर वहांसे रघुनाथजीके निकट चले ॥ १६ ॥

रामकाज हनुमत हिय धारे * कश्यप पर्वत जाय पुकारे ॥१७॥
नाम मयन्द महाबल वीरा * तेजपुञ्ज अति दुर्ग शरीरा ॥१८॥

महावीरजी रघुनाथजीका कार्य हृदयमें धारण किये कश्यप पर्वत पर जा पुकारे ॥ १७ ॥ मयन्द नाम महाबली वीर तेजस्वी, अति कठिन शरीर वाला वानर (वहां रहता था) ॥१८॥

इकिस कोटि वनचर लै साथा * पवनकुमारहि नायउ माथा ॥१९॥
कहा पवनसुत जानहुँ तोहीं * धन्य भाग्य दर्शन भा मोहीं ॥२०॥

उसने इक्कीस कोटि वानरोंको साथ लेकर पवन कुमारको माथा नवाया ॥ १९ ॥ महावीरजी बोले—मैं तुम्हें जानता हूँ धन्य भाग्य ! जो मुझे दर्शन हुआ ॥ २० ॥

करहु न बेर सुनहु बलसींवा * तुमहिं बुलाव बेगि सुग्रींवा ॥२१॥

हे बलवानो ! सुनो, अब देर मत करो, तुम्हें सुग्रीवने शीघ्रतासे बुलाया है ॥ २१ ॥

दोहा—सुनत मयन्द गयन्दगति, उच्छलन्त आकाश ॥
अट्टहास गम्भीर करि, सैन बुलायसि पास ॥ ३४ ॥

हाथी कीसी चालवाले मयन्दने आकाशमें उछल, गंभीर अट्टहास कर सेना पास बुलायी॥३४॥

टीडी सम सेना उथलानी * चलते दिगपालन भय मानी ॥१॥
आतुर चले गगन करि छाहीं * उठे लँगूर पतंग छिपाहीं ॥२॥

वह सेना टीड़ीके समान उथला चली और उसके चलनेसे दिक्पालोंने भय माना ॥१॥ वे बड़ी शीघ्रतासे आकाशमें छाया करते चले, जिनकी पूछोंके उठानेसे सूर्य छिप गये ॥ २ ॥

एक नील दल तीस करोरा * धावत एक एक करजोरा ॥३॥
जय सिंहनाद करत बल दापा * देवन हाथ पेटमें चापा ॥४॥

एक नील वानरका तीस करोड़ वानरोंका दल चला, जो बड़े बली थे और एकको एक रिसकर कूदते चले ॥ ३ ॥ बलसे दर्पित जयजयकार और सिंहनाद करते चले जिसे देखकर देवताओंने भी पेटमें हाथ दबाये ॥ ४ ॥

रामस्वरूप हिये महँ आना * करि दल बिदा चला हनुमाना॥५॥
रसना करै राम गुण गाना * धवलागिरि कहँ कीन्ह पयाना॥६॥

रघुनाथजीका स्वरूप हृदयमें धारण किये सेनाको बिदाकर महावीरजी चले ॥ ५ ॥ जिह्वासे रघुनाथजीका गुणगान करते धौलागिरि पर्वतको पयान किया ॥ ६ ॥

दुर्गन्धनामक कपि बड़ योधा * ताहि बुलाय दीन वर बोधा ॥७॥
आठ लाख शत बार गनाई * लै संग सैन पंपपुर जाई ॥८॥

दुर्गन्ध नामक एक बड़ा बली बन्दर था, उसे बुलाकर बहुत ज्ञान दिया अर्थात् सुग्रीवका बुलाना सुनाया ॥ ७ ॥ वह आठ करोड़ सेना लेकर पंपापुरको चला ॥ ८ ॥

हनुमत उदयागिरि पर आवा * बंदर धाय परे तेहि पावा ॥९॥
कुन्द कुमुद बन्दर जे गाये * जे जहँ रहे वनचर सब छाये ॥१०॥

तब महावीरजी उदयाचल पर्वत पर आये, वहांके बन्दर आकर उनके चरणोंमें पड़े ॥९॥ कुन्द कुमुद जो बन्दर थे उनके जितने साथी वानर थे, सब चले ॥ १० ॥

शब्द किलकिला नभपर करहीं * वन सर शैल धरब सब धरहीं॥११॥

आकाशमें किलकिला शब्द करते वन, सरोवर, पर्वतोंको मँझाते चले ॥ ११ ॥

दोहा–रामकाज करि पवन सुत, आये जहँ सुग्रींव ॥
मिले हर्षि अस्तुति करि, धन्य धन्य बलसींव ॥ ३५ ॥

महावीरजी रघुनाथजीका काज कर सुग्रीवके पास आये और प्रसन्न हो स्तुति की तब सुग्रीवने प्रसन्न हो प्रशंसा की कि हे महाबली! तुम धन्य हो ! धन्य हो! (क्षेपक समाप्त)॥३५॥

तेहि अवसर लक्ष्मण पुर आये * क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये ॥१॥

उसी समय लक्ष्मणजी नगरमें आये उन्हें क्रोधमें भरे देख जहाँ तहाँ वानर व्याकुल हो दौड़े॥१॥

दोहा–धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करौं पुर छार ॥
व्याकुल नगर देखि तब, आवा वालिकुमार ॥ ३६ ॥

जब लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर कहा कि पुरको जलाकर भस्म कर दूँगा तब नगरको व्याकुल होते देखकर अंगदजी आये। उनके आनेका कारण यह है कि पिताहीन जानकर क्षमा करेंगे। अथवा यह कि वालिमुझे रघुनाथजीको सौंप गया है उस कारण भी कृपा करेंगे॥३६॥

चरण नाय शिर विनती कीन्ही * लक्ष्मण अभय बाँह तेहि दीन्ही॥१॥
क्रोधवन्त लक्ष्मण सुनि काना *कह कपीश अतिशय अकुलाना॥२॥

चरणोंमें शिर नवाकर विनती की तब लक्ष्मणजीने उसे अभय बांह दी ॥१॥ लक्ष्मणको क्रोधवन्त कानोंसे सुनकर सुग्रीव भयसे बहुत घबड़ाकर कहने लगा ॥ २ ॥

सुनु हनुमन्त संग लेइ तारा * करि विनती समुझाव कुमारा ॥३॥
तारा सहित जाय हनुमाना * चरण वंदि प्रभु सुयश बखाना॥४॥

और महावीरजीसे बोला कि तुम ताराको साथमें ले विनती कर कुमार लक्ष्मणको समझाओ; ताराको भेजनेका कारण यह कि स्त्रीको देखकर क्रोध शांत हो जायगा, क्योंकि स्त्रीकी विनतीसे दया शीघ्र उत्पन्न होती है। अथवा इसके पतिको प्रभुने मारा है इस कारण इस पर दया करेंगे। यद्वा इसे रघुनाथजीने तत्त्वका उपदेश दिया है सो शिष्या जानकर कृपा करेंगे महावीरजीको परमभक्त और सत्संगी जानकर भेजा॥३॥ महावीरजीने तारा सहित जाय चरणोंमें पड़ प्रभुका सुयश बखाना कि आप दीनोंपर दया करते आये हो सो अब भी दया करो ॥४॥

करि विनती लै मंदिर आये * चरण पखारि पलँग बैठाये ॥५॥
तब कपीश चरणन शिर नावा * गहि भुज लक्ष्मण कंठ लगावा ॥६॥

लक्ष्मणजीको विनती करके मंदिरमें ले आये और चरण धोकर पलँग पर अर्थात् आसन पर बैठाया ॥५॥ कपीशने चरणोंपर शिर नवाया और लक्ष्मणजीने भुजा पकड़ सुग्रीवको कंठसे लगाया ॥६॥

नाथ विषयसम मद कछु नाहीं * मुनिमन मोह करै क्षणमाहीं ॥७॥
सुनत विनीत वचन सुख पावा * लक्ष्मण तेहि बहुविधि समुझावा ॥८॥

सुग्रीवजी बोले–हे नाथ ! विषयके समान कोई मद नहीं है जो क्षण मात्रमें मुनियोंके मनमें मोह कर देता है, उसमें राजमद तो बहुत कठिन है ॥ ७ ॥ इन विनम्र वचनोंको सुन सुख पाकर लक्ष्मणजीने उसे बहुत प्रकार समझाया ॥ ८ ॥

पवनतनय सब कथा सुनाई * जेहि विधि गए दूत समुदाई ॥९॥ न

तब महावीरजीने सब कथा कह सुनाई जिस प्रकार दूत सेना बुलाने को गये हैं ॥ ९ ॥

दोहा–हर्षि चले सुग्रीव तब, अङ्गदादि कपि साथ ॥
राम अनुज आगे किये, आये जहँ रघुनाथ ॥ ३७ ॥

जब लक्ष्मणजी यह वार्ता सुन प्रसन्न हुए तब अंगदादि कपियों सहित सुग्रीवजी लक्ष्मण जीको आगे कर चले। आगे इस कारण किया कि रघुनाथजी जानें कि इन्होंने सुग्रीवको पीछे कर लिया है। सब रघुनाथजीके पास आये ॥ ३७ ॥

नाय चरण शिर कह कर जोरी * नाथ मोहिं कछु नाहिं न खोरी ॥१॥
अतिशय प्रबल देव तव माया * छूटै राम करहु जब दाया ॥२॥

चरणोंमें शिर नवाके हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा, नाथ ! मेरा कुछ दोष नहीं है ॥१॥ हे देव आपकी माया अधिक प्रबल है, यह तभी छूटती है जब आप दया करते हैं ॥ २ ॥

विषय विवश सुर नर मुनि स्वामी * मैं पामर पशु कपि अतिकामी ॥३॥
नारि नयन शर जाहि न लागा * घोरक्रोधतम निशि जो जागा ॥४॥

हे स्वामी ! विषयोंके वश तो सुर, नर, मुनि हैं फिर अतिकामी मुझ पामर और पशुकी क्या गिनती है ? ॥ ३ ॥ जिसको स्त्रीके नेत्रोंका बाण नहीं लगा और जो घोर क्रोधरूपी अन्धकारकी रात्रिमें जागता है अर्थात् क्रोध और अज्ञानसे हीन है ॥ ४ ॥

लोभ पाश जेहि गर न बँधाया * सो नर तुम समान रघुराया ॥५॥
यह गुण साधनते नहिं होई * तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥६॥

हे रघुनाथजी ! और जिसने लोभकी फांसीमें अपना गला नहीं बँधाया है वह मनुष्य आपके समान है। सुग्रीवने मित्रताके कारण रघुनाथजीसे व्यंग वचन कहे और लक्ष्मण-जीकी स्तुतिकी है, रघुनाथजी जानकीके वियोगमें व्याकुल हो क्रोधकर लक्ष्मणजीको भेजा और वे मुझे यहां लाये परन्तु बाधाओंसे रहित हैं ॥ ५ ॥ यह गुण साधनसे नहीं, तुम्हारी कृपासे कोई २ पाते हैं (जैसे लक्ष्मणजी और हनुमानजी पाये) ॥ ६ ॥

तब रघुपति बोले मुसुकाई * तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥७॥
अब सोइ यतन करहु मन लाई * जेहि विधि सीताकी सुधि पाई ॥८॥

तब रघुनाथजी सुग्रीवकी व्यंग भरी ज्ञान विरागयुक्त बातें सुनकर हँसे और बोले–तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो, छोटे भाइयोंमें सबसे बड़े हैं इस कारण भरतके समान प्यारा कहा।

लक्ष्मणजीसे दूना प्यारा रघुनाथजी महावीरको कह चुके इस कारण लक्ष्मणका नाम नहीं लिया ॥ ७ ॥ हे सखा ! अब मन लगाकर वही यत्न करो जिससे जानकीकी सुध मिले, फिर मैं सब देख लूँगा ॥ ८ ॥

दोहा–यहि विधि होत बतकही, आये वानर-यूथ ॥
नाना बरण अतुल बल, देखिय कीश वरूथ ॥ ३८ ॥

इस प्रकार बातचीत होती थी कि अनेक प्रकार वानरोंके यूथके यूथ आ गये, वर्ण वर्णके अतुल बली दीखते थे "यूथप यूथ" पाठ है अर्थात् वानरोंके राजाओंके समूह आये जिनमें एक एक यूथपतियोंके साथ अनेक वर्णवाले अतुलबली वानरोंकी सेना देखी गयी थी ॥३८॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने किष्किन्धाकांडान्तर्गत–विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायां तृतीयो विश्रामः ॥ ३ ॥

दोहा–यहि चतुर्थ विश्राममें, महाकीश बलवान ।
सीताकी सुधि लेनको, तुरतहि कीन पयान ॥ ४ ॥

वानर कटक उमा मैं देखा * सो मूरख जो किय चह लेखा ॥१॥
आइ राम पद नावहिं माथा *निरखि वदन सब होहिं सनाथा ॥२॥

शिवजी बोले हे पार्वती ! मैंने वह वानरोंकी सेना देखी थी वह मूर्ख है जो सेनाकी संख्या गिनना चाहे॥ १॥सब कोई आकर रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाते हैं और मुख देखकर सनाथ होते हैं। ये वानर देवता हैं, अनाथ पड़े थे अब रघुनाथजीको देखकर सनाथ हो गये ॥ २ ॥

अस कपि एक न सेना माहीं * राम कुशल पूछी जेहि नाहीं ॥३॥
यह कछु नहिं प्रभुकी अधिकाई * विश्वरूप व्यापक रघुराई ॥४॥

सेनामें ऐसा कोई कपि नहीं था जिसकी रघुनाथजीने कुशल न पूछी। जो कोई कहे अपार सेनासे कुशल कैसे पूछी और क्यों पूछी ? तो वानर सब देव अंश हैं, मान देना उचित ही था दूसरे प्रश्नका उत्तर आगे ॥ ३ ॥ एक तो रघुनाथजीका विश्वरूप है, दूसरे जितने विश्वमें जड़ चैतन्यरूप हैं उन सबमें तिलमें तेलकी नाईं व्यापक हैं तो प्रत्येक वानरसे मिलना और कुशल पूछना क्या आश्चर्य है ? ॥ ४ ॥

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई * कह सुग्रीव सबहिं समुझाई ॥५॥
राम काज अरु मोर निहोरा * वानर कटक जाहु चहुँ ओरा ॥६॥

जहाँ तहाँ सब वानर आज्ञा पानेके निमित्त खड़े हैं तब सुग्रीवने सबसे समझाकर कहा ॥ ५ ॥ हे वानरो ! यह महाराज रामचन्द्रजीका कार्य है सो करो, मेरे ऊपर तुम्हारा उपकार होगा, चारों ओर वानरोंकी सेना लेकर जाओ ॥ ६ ॥

जनकसुता कहँ खोजहु जाई * मास दिवस महँ आयहु भाई ॥७॥
तब कपीश दुइ दूत बुलाये * गज गवाक्ष आतुर चलि आये ॥८॥

जाकर जानकीजीको ढूँढो और एक महीनेमें सब कोई आ जाना (आगे क्षेपक है) ॥७॥ तब सुग्रीवने दो दूत गज और गवाक्षको बुलाया वे शीघ्रतासे आ गये ॥ ८ ॥

मन बुधि निगम केरि गति जानी ❋ बोलेउ कीश सुधा सम बानी ॥९॥
सिय खोजन हित पूर्व सिधायउ ❋रामकाज कहँ विलँब न लायउ॥१०॥

उनकी मन, बुद्धि और शास्त्रकी गति जानकर सुग्रीव अमृतके समान वाणी बोले ॥९॥तुम जानकीजीके ढूँढ़नेको पूर्वदिशामें जाना और राम काज समझकर इसमें देर नहीं करना ॥१०॥

उदधि स्रोत सरिता गिरि झरना ❋ ब्रह्मपुरी कामावति वरना ॥११॥
सर वापी गिरिकन्दर जेते ❋ देव नगर खोहादिक तेते ॥१२॥

समुद्र स्रोत नदीके तीर पर्वत झरनोंके स्थान ब्रह्मपुरी कामावती और वरना तक ॥११॥ सरोवर बावड़ी पर्वतकी कंदरा देवताओंके स्थान नगर खोहादिक जितने हैं वे सब ढूँढ़ना॥१२॥

जो कोइ तुम्हँ मिलहि मगमाहीं ❋ सीता सुधि पूछेहु तिनपाहीं ॥१३॥

जो कोई तुम्हें मार्गमें मिले उससे जानकीजीके समाचार पूछना ॥ १३ ॥

दोहा-रामचरण परणाम करि, उर धरि युगल स्वरूप ॥
सात कोटि वानर बली, चलेउ पूर्वकहँ भूप ॥ ३९ ॥

रघुनाथजीके चरणोंमें प्रणाम कर युगल स्वरूप मूर्तिको हृदयमें धार सात करोड़ बलवान् वानरयूथ पूर्वको चले ॥ ३९ ॥

वाली-अनुज सुषेण बुलावा ❋ करि सम्मान निकट बैठावा ॥१॥
तुम मयन्द उत्तर दिशि जाहू ❋ सीता सुधि पूछेहु सब काहू ॥२॥

तब सुग्रीवने सुषेणको बुलाया और बड़े सम्मानसे पास बैठाया और कहा ॥ १ ॥ तुम और मयंद उत्तर दिशाकी ओर जाओ और सब किसीसे जानकीजीकी सुधि पूछो ॥ २ ॥

मादनगन्ध सुमेरु महीधर ❋ अर्जुन शैल नील गिरि कन्दर॥३॥
शिव कैलास अलकपुर छानी ❋ गंधर्व यक्ष पूछ मृदुबानी ॥४॥

तुम गंधमादन, सुमेरु, पर्वत, अर्जुन शैल, नीलगिरिकी कंदरा ॥ ३ ॥ कैलासपर्वत, अलकापुरी ढूँढ़कर गंधर्व और यक्षोंसे कोमल वाणीसे पूछना ॥ ४ ॥

तिनहिं पूछि आगे धरि पाऊँ ❋ जायहु दिव्य सरोवर ठाऊँ ॥५॥
पुष्पभार जहँ विटप सुहाये ❋ परसत हैं धरणी नियराये ॥६॥

उनसे पूछकर फिर आगे पैर धरना और दिव्य मानस सरोवरमें जाना ॥ ५ ॥ जहां के सुहावने वृक्ष फूल फलोंके बोझसे पृथ्वीमें झुक रहे हैं ॥ ६ ॥

श्रम निवारि कछु करेउ अहारा ❋ प्रभु कारज हिय धरेहु करारा ॥७॥
सबहि ठौर ढूँढ़हु मनलाई ❋जेहि विधि मिलहिं जानकी आई॥८॥

श्रम निवारके कुछ भोजन करना, प्रभुके काममें ढील न करना सावधान रहना ॥ ७ ॥ सब स्थानोंमें मन लगाके ढूँढो, जिस विधिसे माता जानकीजी मिल जायँ ॥ ८ ॥

दोहा-ऋषि तपसिनसों बूझिकै, करेहु बलिष्ठ पयान ॥
श्वेत भूमि उत्तर दिशा, अन्त धराको जान ॥४०॥

हे वीरो ! वहाँ ऋषि तपस्वियोंसे पूछ के फिर आगे जाना, म्लेच्छ देश होते हुए उत्तर सागर तक जाना, जहां सूर्यका प्रकाश नहीं, सागरका जल भी जहां जमकर बर्फ हो जाता है वहां तक जाना, वही श्वेतभूमि है, वहांसे पृथ्वीका अन्त है ॥ ४० ॥

शिखर सुमेरु मही कैलासू * काकभुशुण्डिकेर वन-वासू ॥१॥
कुण्ड एक तहँ मोती चूरा * पानी अमृत कीच कर्पूरा ॥२॥

सुमेरु पर्वतके शिखर, कैलास पर्वत और जहां काकभुशुण्डजी रहते हैं ॥ १ ॥ वहां एक मोतीचूर नामक कुण्ड है, अमृतके समान जिसका जल और जिसमें कपूरकी कीच रहती है॥२॥

जामुनि वृक्ष अहै तेहि ठाऊँ * जम्बू द्वीप जासुते नाऊँ ॥३॥
गज समान लागैं फल ताही * अमृत रसकहि निगम सराही ॥४॥

वहां एक जामुनका वृक्ष है उस जामुनके पेड़के कारण उस स्थानका नाम जम्बूद्वीप है ॥ ३ ॥ उस वृक्षमें हाथीके बराबर बड़े अमृत सम स्वादिष्ट फल लगते हैं, जिनकी निगम सराहना करते हैं ॥ ४ ॥

पकत सो फल धरणी पर परई * तेहिके शाक कुण्ड बहु भरई ॥५॥
दिव्य रूप चढ़ि देव विमाना * तेहिके नीर करहिं अस्नाना ॥६॥

पकते ही वे फल पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं और उसके रससे बहुत कुण्ड भर जाते हैं ॥ ५ ॥ दिव्यरूप देवता विमानोंमें चढ़कर उसके सुन्दर जलमें स्नान करते हैं ॥ ६ ॥

सो शुभ नीर सरित ह्वै बहई * अवध समीप प्रगट सो अहई ॥७॥
जहँ मज्जन कीन्हेते वीरा * सकल पाप दुख हरै शरीरा ॥८॥

वह जल नदी होकर बहता है, जो अयोध्याके निकट सरयू नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ हे वीरो ! जहाँ स्नान करनेसे शरीरमें कोई पाप दुःख नहीं रहता ॥ ८ ॥

फल भोजन जल पान करेहू * रामकाज हित हिये धरेहू ॥९॥
शूरसेन-कर मण्डप जहँवाँ * सुमिरि राम जायहु पुनि तहँवाँ॥१०॥

वहाँ फल भोजन, जलपान करना और रघुनाथजीका कार्य हृदयमें धारे रहना ॥ ९ ॥ रघुनाथजीको स्मरण करके फिर सूरसेनका जहां मंडप है वहां जाना ॥ १० ॥

लोमश ऋषिकर दर्शन करहू * पुनि शांडिल्य जहाँ अनुसरहू ॥११॥

लोमश ऋषिका दर्शन करना, जिनका एक प्रलयमें एक रोम गिरता है फिर शांडिल्य ऋषिके पास जाना ॥ ११ ॥

दोहा-रन वन घन जन शोधिकै, तिया बतायहु राम ॥
मास दिवस महँ आतुर, फिरेहु लहै विश्राम ॥ ४१ ॥

लड़कर जैसे हो वैसे घने वनोंको ढूँढ़कर जानकीजीकी सुध लेकर एक महीनेमें आकर रामचन्द्रजीको बताना फिर विश्राम करना ॥ ४१ ॥

अथ क्षेपक

आवर्त्तन इषु जात देश पुनि रोम पटच्चर ।
इंदु द्वीप पशु क्रौंच सैनिक कुक्कुट वर ॥

अश्वक प्रलिया कुहक देश तामस अरु मारक ।
आरण्यकी तुरुष्क कानिबल बर्बर चारक ॥ १ ॥

ये प्राचीन नाम हैं और जो इनके इस समय नाम हैं सो भी लिखते हैं आवर्तन (ब्रिटेन); इषुजात व अश्वक्रांत (यूरप) रोम-रूम पटच्चर (इटाली) इंदुद्वीप वा इन्द्रद्वीप (इंग्लैण्ड), पशुशील (पोर्टुगाल,) क्रौंच क्रमथ कामल (जर्मनी), सैनिक कुक्कुटहालेण्ड (वेलजियम), अश्वक वा आश्वीय (आस्ट्रिया), प्रलिया कुहक (गोलया फ्रांस), तामस (स्पेन), मारक वा माठक (डेनमार्क स्वीडन स्केण्डेनेविया), आरण्यक-तुरुष्क यूरुपियन, टरकी, कानिबल (केनिबल), बर्बर (बारबेरी) में जाना ॥ १ ॥

रथक्रांत उपद्वीप राक्षसावास विचारो ।
वारुण विष्णुक्रांत हैख रुखमें पशु धारो ॥
शक तुरुष्क अरु चीन ताल तोषकमें जाई ।
पार्वत अरु आर्वत देख पारस्य सुहाई ॥ २ ॥

रथक्रांत वा सूर्यारिया (अफ्रीका),उपद्वीप, राक्षसवास, वरुण वारिधान (अफ्रीकाके उपद्वीप),विष्णुक्रांत वा आसेचेनक (एशिया), हैख (साइबेरिया), रुष (रशिया वा रूस), शक तुरुष्क (एशियाटिक टरकी), चीन पारट महाचीन (चीन), ताल तोषक (तिब्बत) पार्वत (टार्टरी) आवर्त (अरब) पारस्य (ईरान) ॥ २ ॥

देश तुखारा शूद्रयवन पहनव मनलाई ।
नर्दिनाश गान्धार देश अपवाह सुहाई ॥
ब्रह्मोत्तर उपमल्क सिंहलद्वीप कुमारी ।
स्वर्णभूमि उत्तर कुमारि दक्षिण पशु धारी ॥ ३ ॥

तुखारा (बुखारा), शूद्रयवन (मह्का वा मक्का), पहनव (काबुल), नार्दिनाश, कारस्कर (महादी वा मदीना) गांधार (कंधार), अपवाह वा अपक्रांत (मस्तक) ब्रहोत्तर ब्रह्मदेश (ब्रह्मा) उपमल्क, (मलेका), सिंहलद्वीप (सिलोन),कुमारी (कन्याकुमारी वा केशकारिन),स्वर्णभूमि वा कुमारद्वीप, अमेरिका, उत्तरकुमार, दक्षिणकुमार; (नार्थ अमेरिका साउथ अमेरिका)॥३॥

रमणक तलह हिरण्यपूर लख भाई ।
स्वर्णप्रस्थ अरु दुर्गद्वीप खोजौ मन लाई ॥
दरद पंचनद दरदलिंग कश्मीर सुहावन ।
उत्तर कौशल इन्द्रप्रस्थ कुरुजांगल पावन ॥ ४ ॥

रमणक (आस्ट्रेलिया), तलह (ब्राजील), हिरण्यपुर (पेरू), स्वर्णप्रस्थ (पालिनेशिया), दुर्गद्वीप (छोटे बड़े), दरद (भोटान), पंचनद (पंजाब), दरदलिंग (दार्जिलिंग), काशमीर वा गैरिक (काश्मीर),उत्तर कोशल(अयोध्याके देश),कुरुजांगल(कुरुक्षेत्र),इन्द्रप्रस्थ(दिल्ली)॥४॥

पुरी अवन्ती गुर्जराट कांची पुनि काशी ।
केकय महिषक पाण्डय देश उत्कल सुखराशी ॥

मिथिला सिन्धु सुराष्ट्र महोदय मगध विचारी ।
अङ्ग पाटलीपुत्र पुंड चम्पा लख भारी ॥ ५ ॥

अवन्तिकापुरी (उज्जैन), गुर्जरराष्ट्र (गुजरात), कांची (कर्नाटक), काशी शिवपुरी बाराणसी (बनारस), केकय (हिरात), महिषक (महिसूर), पांड्य (मालावार और श्रेष्ठ), उत्कल (उड़ीसादेश), मिथिला (विदेह तिरहुत), सिंधुसौवीर (सिंधुनदके मध्यवर्ती देश), सुराष्ट्र (महाराष्ट्र), महोदय (कान्यकुब्ज कन्नौजादि), मगध (कीकट गया), अंग (वैद्यनाथ–कालगाँव, राज महल, आरा आदि), पाटली पुत्र (पटना), पुंड (मेदनी पुर), चम्पा (भागलपुर) देखना ॥ ५ ॥

मत्स्यदेश अरु वंगगौड उपवंग सिधारो ।
प्राग्ज्योतिष अरु शूरसेन किलकिला पधारो ॥
किष्किन्धा निज देश सकल ढूँढो वसुधातल ।
और बीचके देश ढूँढियो सबही जल थल ॥ ६ ॥

मत्स्यदेश (रंगपुर, दीजानपुर राज शाई), वंगगौड़ (बाकरगंज ढाका नदिया शांतिपुरी । कृष्णनगर), उपवंग (माईमसिंह),किल किला (कलकत्ता),प्राग्यज्योतिष (कामरूप), शूरसेन (मथुरा), और अपना सब देश किष्किन्धा सब पृथ्वी जल थल तथा बीचके सब देश ढूँढ़ो । यह प्राचीन नवीन नामोंकी सूची 'भारत वर्ष विचार' ग्रन्थमें लिखी है ॥ ६ ॥

दोहा–उदय अस्तलौ खोजिके सिय सुधि देहु बताय ॥
वचन सुनत सब कपि चले, तब बोले रघुराय ॥ ४२ ॥

उदयाचलसे अस्ताचल तक जानकीजीको ढूँढ़कर शीघ्र आकर बतला दो, यह वचन सुनकर सब वानर चले । उस समय रामचन्द्रजी बोले–॥ ४२ ॥

दोहा–सर्व भूमिके देश तुम, केहि विधि जानहु मित्र ॥
सो कहिये सुनि प्रभु वचन,बोले वचन पवित्र ॥ ४३ ॥

हे मित्र ! सब देशोंके समाचार तुम कैसे जानते हो सो कहो ? रामचंद्रजीके यह वचन सुन सुग्रीव पवित्र वचन बोले ॥ ४३ ॥

दोहा–बाली भय भागत फिरौं, सकल देश रघुराज ॥
तब यह देखे देश सब, अब आये सब काज ॥ ४४ ॥

हे रामचन्द्रजी ! वालिके भयसे सब देशोंमें भागता फिरता था, तब ये सब देश देखे थे, आज वह देखना काम आ गया ॥ ४४ ॥

निज प्रभु केरि मानि हित बानी ✻ शीश धरे प्रभु चरणन आनी ॥१॥
निदरी पवन दोऊ उठि चले ✻ पद्म एकादश वनचर भले ॥२॥

उन्होंने अपने प्रभुकी हितकारिणी वाणी मानकर प्रभुके चरणोंमें आकर शिर धरा ॥१॥ गति में पवनकी निंदा करके अर्थात् उससे भी अधिक वेगवाले दोनों उठ चले, ग्यारह पद्म वानर साथ लिये हैं ॥ २ ॥

पुनि सुग्रीव मोर मुख देखा * वीर शतबलिहि कहा विसेखा ॥३॥
सुनहु सुवीर प्राण हितकारी * रामकाज हिय धरहु सँवारी ॥४॥

फिर सुग्रीवने मुख मोड़कर और शतबली वीरसे विशेष (विचार पूर्वक) बोला ॥ ३ ॥ हे सुवीर प्राणहितकारी ! सुनो, रघुनाथजीका कार्य हृदयमें विचारके धरो ॥ ४ ॥

तुम वसंत पश्चिम दिशि गवनी * सीता सुधि सब पूछहु अवनी ॥५॥
पश्चिम देश शैल सर जायहु * अग्निदेव कर जोरि मनायहु ॥६॥

तुम और वसंत पश्चिम दिशामें जाकर सीताजीकी सुधि सब किसीसे पूछो ॥५॥ पश्चिम देशके पर्वत, सरोवर देखते हुए अग्निदेवको हाथ जोड़कर मनाओ ॥ ६ ॥

खोजो सब तहँके अस्थाना * राम काज हित करहु पयाना ॥७॥
रंगभूमि जायहु पुनि भाई * सीता सुधि पूछेहु सब ठाँई ॥८॥

वहांके सब स्थान खोजो, रघुनाथजीके कार्यके लिये पयान करो ॥ ७ ॥ फिर हे भाई ! रंगभूमिमें जाकर सब किसीसे जानकी की सुध पूछना ॥ ८ ॥

सरिता सैल सुगिरि बन जेते * खोजेहु सीतहि हितधरि तेते ॥९॥
जो कोइ मिलै महामुनि ज्ञानी * पूछेहु समाचार मृदु बानी ॥१०॥

नदी, पर्वत गिरि, वन जितने हैं, वहां वहां जानकीजीको हित धरके ढूँढ़ो ॥९॥ जो कोई महामुनि ज्ञानी मिलें उनसे कोमल वाणीसे समाचार पूछना ॥ १० ॥

तुम्हरे बल गर्जत मैं भाई * मिलवहु बेगि जानकी लाई ॥११॥

हे भाई ! मैं तुम्हारे बलसे गर्जता हूँ शीघ्र माता जानकीजीको लाकर मिलाओ ॥ ११ ॥

दोहा—पश्चिम दिशा विशेष सो, जहाँ धराको अन्त ।
एक मासमें लेइ सुधि, फिरो बेगि बलवन्त ॥ ४५ ॥

पश्चिम दिशामें जहांतक पृथ्वीका अन्त हो वहांतक जाकर एक मासमें सुध लेकर जल्दी लौट आना ॥ ४५ ॥

चरण कमल सब करहिं प्रणामा * पश्चिम दिशा चले बल धामा ॥१॥
दश षट लाख हरीहर बोलत * चले जाहिं गिरि कन्दर तोलत॥२॥

चरण कमलमें सब प्रणाम करते हैं इस प्रकार सब बलवान् पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ सोलह लाख बंदर 'हरीहर' कहते पर्वतोंकी कंदरा देखते चले (यहां तक क्षेपक है) ॥ २ ॥

अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये *अवशि मरिहि सो मम कर आये॥३॥

सुग्रीवजी बोले—जो अवधि मेटकर विना सुध पाये आवेगा सो निश्चय मेरे हाथसे मृत्यु पावेगा॥३॥

दोहा—वचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरन्त ॥
तब सुग्रीव बुलायउ, अंगदादि हनुमन्त ॥ ४६ ॥

सब वानर वचन सुनकर जहां तहां तुरन्त चले; तब सुग्रीवने अंगदादि हनुमान्जीको बुलाया (और कहा) ॥ ४६ ॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना * जाम्बवंत मति धीर सुजाना ॥१॥
सकल सुभट मिलि दक्षिण जाहू * सीता सुधि पूछेहु सब काहू ॥२॥

हे नील अंगद हनुमान् जाम्बवंत मतिधीर सुजान ! सुनो ॥ १ ॥ तुम सब योद्धा मिलकर दक्षिण दिशामें जाओ; सब किसीसे जानकीजीकी सुध पूछना ॥ २ ॥

मन वच कर्म सो यतन विचारेहु * रामचन्द्रके काज सँवारेहु ॥३॥
भानु पीठि सेइय उर आगी * स्वामी सर्व भाव छल त्यागी ॥४॥

मन, वचन, कर्मसे यही प्रयत्न विचारो कि रघुनाथजीका कार्य जिससे सम्पूर्ण हो जाय ॥३॥ सूर्यको पीठसे सेइये और अग्नि उरसे और स्वामीको आगे पीछे छल छोड़कर सेइये, क्योंकि सूर्यके साथ आगेका कपट, अग्निके साथ पीछे का कपट लगा है । दूसरा अर्थ यह कि बाहरका छल कपट रघुनाथजी सूर्य होकर देखते हैं, अन्तःकरणका छल कपट अग्नि होकर देखते हैं, इस कारण छल कपट छोड़कर रघुनाथजीका काम करना (यथा स्तवराजे–'सूर्य मंडलमध्यस्थं रामसीतासमन्वितम्' और 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनः देहमाश्रितः' । (गीतायां प्रसिद्धम्) अथवा जैसे सूर्य छल कपटको छोड़ पीठ अर्थात् मार्ग सेवते हैं, अग्नि जैसे छल कपटको छोड़ अन्नको सेवते हैं, क्योंकि जो सूर्य सावधानी न रखे तो रात दिनमें अंतर पड़ जाय और अग्नि छल कपट रखे तो अन्न न पचे; देह जल जाय ऐसे सावधान होकर तुम रघुनाथजीकी सेवा करना । अथवा सुग्रीव रघुनाथजीका गौरव दिखाते हैं कि ये भानुके पीठ हैं, भानु है पीठ जिनकी सो रविवंशी हमारे उरआगी सम्मुख स्थित हैं, इन्हें छल छोड़ सेइये अथवा इनको तपस्वी मत जानो; ये भानुके पीठ हैं सूर्य इनके पीछे उपजा है हमारे उर आगे अर्थात् प्रत्यक्ष हैं अथवा भानुपीठ आतसी शीशा होता है, सूर्यके सम्मुख करते ही उसमेंसे अग्नि प्रकट हो जाती है; परन्तु जो उसमें सूर्यकी किरणें गोल बिन्दु सम सीधी पड़ें तो अग्नि निकले, नहीं तो टेढ़ा रखनेसे नहीं निकलती, सूधीसे अग्नि निकालके चाहे जितना कार्य कर लो उसके सम्मुख होनेसे सूर्य अग्नि देकर कार्य करते हैं अग्नि तो सूर्य देते हैं नाम शीशे का होता है; इस प्रकार जो तुम छल कपट छोड़कर कार्य करोगे तो रघुनाथजी कार्य तो आप बना लेंगे, तुम केवल निमित्त मात्र हो बड़ाई योग्य होगे ॥ ४ ॥

तजि माया सेइय परलोका *मिटिहि सकल भव संभव शोका॥५॥
देह धरे कर यह फल भाई * भजिय राम सब काम बिहाई ॥६॥

मायाको त्याग कर परलोक सेवन करना चाहिये, इससे संसारसे उत्पन्न हुए शोक मिट जाते हैं ॥ ५ ॥ हे भाई ! देह धारण करनेका यही फल है कि कामना छोड़ रघुनाथजीका भजन करें ॥ ६ ॥

सोइ गुणज्ञ सोई बड़ भागी * जो रघुवीर-चरण अनुरागी ॥७॥
आयसु मांगि चरण शिर नाई * चले हृदय सुमिरत रघुराई ॥८॥

वही गुणी और वही बड़भागी है जो रघुनाथजीके चरणकमलका प्रेमी हो ॥७॥ यह वार्ता सुन वे सब वानर आज्ञा मांगके चरणोंमें शिर नवाकर रघुनाथका हृदयमें स्मरण करते चले ॥८॥

पाछे पवन तनय शिर नावा * जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥९॥
परसा शीश सरोरुह पानी * करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥१०॥

पीछे महावीरजीने शिर नवाया, तब रघुनाथजीने यह बात विचार कर इनसे कार्य होगा निकट बुलाया ॥९॥ शिरके ऊपर कमलसा हाथ रख अपना भक्त जानकर अँगूठी उतार कर दी। सबसे पीछे हनुमान्‌जी स्नेहके कारण रह गये तथा एकान्तमें मुद्रिका इस कारण दी कि सबके सामने एकको देनेसे औरोंका अपमान था और यह कि कार्य इन्हींसे होगा इस कारण इन्हें ही दी। कमलवत् कर स्पर्शका तात्पर्य यह कि तुम निर्भय होना जैसे कमलके आश्रित भौंरे जलमें मग्न नहीं होते वैसे मेरे हाथके आश्रित तुम सागरमें मग्न न होगे, पार हो जाओगे मुद्रिकासे जानकी प्रसन्न होंगी, नाम और नामीमें अभेद है ॥ १० ॥

बहु प्रकार सीतहि समुझायहु * कहि बल विरह बेगि तुम आयहु॥११॥
हनुमत जन्म सफल करि माना * चले हृदय धरि कृपा निधाना॥१२॥

रामचन्द्रजी बोले-हनुमानजी ! बहुत प्रकारसे जानकीजीको समझाकर और हमारा विरह तथा बल बखानकर शीघ्र लौट आना ॥ ११ ॥ महावीरजीने अपना जन्म सफल जाना और भगवान्‌को हृदयमें धारण कर चले ॥ १२ ॥

यद्यपि प्रभु जानत सब बाता * राजनीति राखत सुर त्राता ॥१३॥

यद्यपि प्रभु सब बातें जानते हैं परन्तु राजनीतिके अनुसार बर्ताव करते हैं और देवताओंके रक्षाके निमित्त नीतिसे वर्तते हैं कारण यह कार्य देवताओंकी रक्षाके ही निमित्त है, यद्यपि बल दिखाके यह सूचना करना और राक्षसोंको भय दिखाना कि जिनके दूत ऐसे हैं वे स्वामी जानते थे कि जानकी लंकामें हैं परन्तु दूत द्वारा समुद्रलंघन, बंधनादिसे रावण आदि सब कैसे होंगे तथा राक्षसोंके बलकी परीक्षा महावीरजी द्वारा हो जायगी और सर्वज्ञता विदित न हो जाय इस कारण चारों दिशाओंको दूत भेजे ॥ १३ ॥

दोहा—चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरि खोह ॥
राम काज लवलीन मन, बिसरा तनुकर छोह ॥ ४७ ॥

सब कोई वन, सरिता (नदी), सर, तालाब और खोह ढूँढते हुए चले, रामकाजमें मन लवलीन हो गया, शरीरका मोह त्याग दिया ॥ ४७ ॥

कतहुँ होय निशिचरसन भेंटा * प्राण लेहिं तेहि एक चपेटा ॥१॥
वज्रदंष्ट्र इक राक्षस आवा * देखत कपिन परम दुख पावा ॥२॥

कहीं जो राक्षसोंसे भेंट हो जाय तो एक चपेटमें ही उसका प्राण लेते हैं ॥ १ ॥ तब एक वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस आया, बन्दरोंने उसे देख बड़ा दुख पाया (यहांसे क्षेपक है) ॥२॥

भीमरूप यह को अब आवा * लखि अंगद क्रोधित उठि धावा॥३॥
देखत ताहि कोप युवराजा * सन्मुख जाय ताहिसन बाजा ॥४॥

अब भयंकर रूप राक्षस कौन आया ? अंगदको देखते क्रोधित हो उठके दौड़ा ॥ ३ ॥ उसको देखते ही महान् युवराज उसके सम्मुख जाके जुट गये ॥ ४ ॥

मल्लयुद्ध अति भयो अपारा * सब बानर मिलि कीन्ह बिचारा ॥५॥

प्रथम पयान काल चलि आवा * कह कपि विधि कह कीन्ह बनावा॥६॥

बड़ा भारी अत्यन्त मल्लयुद्ध हुआ, तब वानर मिलके विचार करने लगे कि ॥५॥ पहले ही प्रस्थानमें काल चला आया, कपियोंने कहा यह विधाताने क्या किया ? ॥ ६ ॥

बालि सुवन तब हृदय विचारा * मुष्टिक एक तासु शिर मारा ॥७॥
रामस्वरूप हृदय महँ आनी * ऊर्ध्व अर्ध धरि चीर भवानी ॥८॥

तब अंगदने हृदयमें विचार कर उसके शिरमें एक घूंसा मारा ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! रघुनाथजीकारूप हृदयमें स्मरण कर टाँग पकड़ कर चीर डाला ॥ ८ ॥

जै जै शब्द भयो तेहि बारा * पवन पुत्र मन हर्ष अपारा ॥९॥
बीस कोटि सँग सेन सुहाई * चले सकल जय कहि रघुराई॥१०॥

उस समय सबने जय जयकार किया। महावीर जी मनमें बहुत प्रसन्न हुए॥९॥ संगमें बीस करोड़ सुन्दर सेना रघुनाथजीकी जय पुकारती बढ़ती हुई चली जाती थी(यहां तक क्षेपक है)॥१०॥

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं * कोउ मुनि मिलहि ताहि सब घेरहिं॥११॥
लागि तृषा अतिशय अकुलाने * मिलै न जल घन गहन भुलाने ॥१२॥

बहुत प्रकारसे वन; पर्वत ढूँढ़े जो कोई मुनि मिले तो उसे सब घेरकर पूछे ॥११॥ एकदिन मार्गमें प्यासके मारे बहुत घबड़ा गये, जल नहीं मिला, सघन वनमें (मार्गमें) भूल गये॥१२॥

तब हनुमान कीन्ह अनुमाना * मरण चहत सब बिनु जलपाना॥१३॥
चढि गिरि शिखर चहूँ दिशि देखा * भूमि विवर इक कौतुक पेखा॥१४॥

तब हनुमान्‌जीने अनुमान (अन्दाज) किया जलपानके विना सब मरना चाहते हैं॥१३॥ पर्वतकी चोटी पर चारों ओर देखा कि पृथ्वीके विवरमें एक कौतुक होता है ॥ १४ ॥

चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं * बहुतकखगप्रविशहिं तेहि माहीं॥१५॥
गिरते उतरि पवनसुत आवा * सब कहँ लै सोइ विवर दिखावा॥१६॥

चकवा चकवी, बगले और हंस उड़ते हैं, बहुतसे पक्षी प्रवेश करते हैं; (तब महावीरजीने जाना कि यहां जल है क्योंकि पक्षी फिरते हैं) ॥ १५ ॥ महावीरजी पर्वतसे उतर आये और सबको वह स्थान दिखाया ॥ १६ ॥

आगे करि हनुमन्तहिं लीन्हा * पैठे विवर विलंब न कीन्हा ॥१७॥
योजन चारि दुर्ग अति बाकी * मय दानव गढ़ कीन्हा ढाँकी ॥१८॥

तब वानर तत्काल महावीरजीको आगे कर बिलमें घुसे, (हाथ पकड़ कर घुसे थे) ॥ १७ ॥ चार योजनके बीचमें विशाल गढ़ मयदानवका बनाया हुआ था, वह मायासे ढँका था (यह क्षेपक है) ॥ १८ ॥

दोहा—दीख जाय उपवन सुभग, सर विकसित बहु कञ्ज ॥
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप पुञ्ज ॥ ४८ ॥

वानरोंने सुन्दर उपवन जाकर देखा और तालाबमें अनेक कमल खिल रहें हैं तथा वहां एक अति सुन्दर मन्दिर और एक तपस्विनी स्त्री बैठी है ॥ ४८ ॥

दूरिहिते तेहि सब शिर नावा * पूछेसि निज वृत्तान्त सुनावा ॥१॥
तब तेहि कहा करहु जलपाना * खाहु सुरस सुन्दर फल नाना ॥२॥

सबने उसे दूरसे शिर नवाया, पूछनेसे अपना वृत्तांत सुनाया कि जिस प्रकारसे आये थे ॥ १ ॥ तब उसने कहा–जलपान कर अनेक तरहके सुन्दर स्वादवाले फल खाइये (प्रथम श्रम मिटाओ) ॥ २ ॥

मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये * तासु निकट पुनि सब चलि आये॥३॥
तेइँ सब आपनि कथा सुनाई * मैं अब जाब जहाँ रघुराई ॥४॥

वानरोंने स्नान करके मीठे फल खाये फिर उसके निकट आकर बैठे ॥ ३ ॥ फिर उसने अपनी सब कथा सुनाकर यह बात कही कि मैं अब जहां रघुनाथजी हैं वहां जाऊँगी, स्वयंप्रभा मेरा नाम है, गन्धर्व कन्या हूँ, हेमा अप्सराकी सखी हूँ, मय दानवने उसे यहां छिपा रखा था सो उसे इन्द्र ले गया, मैं यहां रह गयी ॥ ४ ॥

देवांगना सुनाम हमारो * एक समय तप करत विचारो ॥५॥
ब्रह्मासे मांगेउँ वरदाना * दर्शन मैं पाऊँ भगवाना ॥६॥

मेरा नाम देवांगना है एक समय तपस्या करनेका विचार किया ॥ (यहांसे क्षेपक है) ॥ ५ ॥ ब्रह्मासे यह वरदान मांगा कि मुझे भगवान्का दर्शन मिले ॥ ६ ॥

ब्रह्मा कह्यो रह्यो यहि थाना * आवहिं यहां कीश बलवाना ॥७॥
तिनसों राम खबरि तुम पाई * दर्शन पावहुगी रघुराई ॥८॥

ब्रह्माजी बोले-तुम इस स्थानमें ठहरो; यहां बड़े बलवान् वानर आवेंगे ॥ ७ ॥ उनसे तुम रामचन्द्रजीकी खबर पाकर रघुनाथजीके दर्शन पावोगी ॥ ८ ॥

सो वह सत्य भई अब बानी * जाउँ दर्शहित शारँग पानी ॥९॥
मूँदहु नयन विवर तजि जाहू * पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥१०॥

सो वह बात अब सत्य हुई, मैं रघुनाथजीके दर्शन निमित्त जाती हूँ (यहां तक क्षेपक है) ॥ ९ ॥ अब तुम सब अपनी आँखें मीचलो तो इस विवरसे निकल जाओगे जानकी मिलेंगी घबड़ाओ मत ॥ १० ॥

नयन मूँदि तब देखहिं वीरा * ठाढ़े सकल सिन्धुके तीरा ॥११॥
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा * जाइ कमल पद नायसि माथा॥१२॥

तब वे वीर आंखें मीचनेके उपरांत देखने लगे तो समुद्रके किनारे खड़े हैं ॥ ११ ॥ फिर वह जहां रघुनाथजी थे वहां गयी और जाकर पदकमलमें माथा नवाया ॥ १२ ॥

नाना भाँति विनय तेइँ कीन्ही * अनपायनी भक्ति प्रभु दीन्ही॥१३॥

उसने अनेक प्रकारसे विनय की, रघुनाथजीने अनपायनी (अनपायनी जो नाश रहित) भक्ति दी ॥ १३ ॥

दोहा–बदरीवन कहँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि शीश ॥
उर धरि राम चरण युग, जो वंदत अज ईश ॥ ४९ ॥

सो प्रभुकी आज्ञा शिरपर धरकर वदरीवनको गयी, रघुनाथजीके उन युगल चरणोंको हृदयमें धारण किये जिनकी ब्रह्मा और शिव वंदना करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासि पं० सुखानन्द-मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत भाषाटीकायां किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

दोहा-संपाती को मिलन अरु, वर्णन बल कपिराज ॥
कथा पवनसुत जन्मकी, जलनिधि कूदन काज ॥ ५ ॥

इहाँ विचारहिं कपि मनमाहीं * बीती अवधि काज कछु नाहीं॥१॥
सब मिलि करहिं परस्पर बाता *विनु सुधि लिये करब का भ्राता॥२॥

यहां अंगदादि वानर मनमें विचार करने लगे कि महीनेकी अवधि बीत गयी और काज कुछ हुआ नहीं, अब क्या करें ? ॥ १ ॥ सब कोई मिलकर परस्पर बातें करने लगे-भाई ! विना सुधि लिये हम क्या करेंगे ॥ २ ॥

कह अंगद लोचन भरि वारी * दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ॥३॥
इहाँ न सुधि सीताकी पाई * उहाँ गये मारिहि कपिराई ॥४॥

अंगद नेत्रोंमें जल भरकर कहने लगे-दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई ॥ ३ ॥ यहां तो जानकीजीकी सुधि नहीं पायी, वहां जानेसे सुग्रीव मारेंगे ॥ ४ ॥

पिता वधे पर मारत मोही * राखा राम निहोर न ओही ॥५॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं * मरण भयउ अब संशय नाहीं ॥६॥

पिताजीके मरनेपर ही यह मुझे मारता, पर रघुनाथजीने मेरा हाथ पकड़ा है इस कारण छोड़ा नहीं तो वह मुझे मार डालता कुछ उसका निहोरा नहीं है ॥ ५ ॥ अङ्गदजीने यह वार्ता वारंवार सबसे कही कि अब मरण हुआ इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

अंगद वचन सुनत कपि वीरा * बोलि न सकहिं नयन बह नीरा ॥७॥
क्षण इक सोच मगन होइ गयऊ *पुनि अस वचन कहत सब भयऊ ॥८॥

(बड़े बड़े)वीर कपि अंगदके वचन सुनकर बोल नहीं सकते हैं नेत्रोंसे जल बहता है (क्षे०) ॥ ७ ॥क्षणमात्रको तो सब वानर शोकमें मग्न हो गये, फिर इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥

हम सीताकी शोध विहीना * नहिं जैहहिं युवराज प्रवीना ॥९॥
अस कहि लवण-सिंधुतट जाई * बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥१०॥

हे चतुर युवराज ! हम जानकीकी सुध लिये विना नहीं लौटेंगे, चाहे मर जायँ ॥९॥ यह कह क्षीरसमुद्रके किनारे (मरनेको कृतसंकल्प हो) सब वानर कुश बिछाकर बैठे ॥ १० ॥

जाम्बवन्त अंगद दुख देखी * कही कथा उपदेश विसेखी ॥११॥
तात रामकहँ नर जनि जानहु *निर्गुण ब्रह्म अजित अज मानहु॥१२॥

जाम्बवंतने अंगदजीको दुःखी देख अनेक उपदेशकी कथा कही ॥ ११ ॥ हे तात ! रघुनाथजीको मनुष्य मत जानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म अजित और अजन्मा मानो ॥ १२ ॥

हम सब सेवक अति बड़भागी * संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी ॥१३॥

हम सब सेवक अति बड़भागी हैं; निरंतर सगुण ब्रह्मकी आराधना करते हैं ॥१३॥

दोहा-निज इच्छा अवतरेउ प्रभु, सुर महि गोद्विज लागि ॥
सगुण उपासक संग तहँ, रहहिं मोक्ष सुख त्यागि ॥ ५० ॥

ये प्रभु देवता, गो ब्राह्मण, पृथ्वीकी रक्षा करनेके निमित्त अपनी इच्छासे अवतार लेते हैं, जो सगुण ब्रह्मके उपासक हैं वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षपद सबके त्यागी हो संग रहते हैं (इससे शोच मत करो, रघुनाथजीकी कृपा सब काम बनावेगी) ॥ ५० ॥

इहि विधि कहत कथा बहु भाँती ❋ गिरि कन्दरा सुनी संपाती ॥१॥
बाहर होइ देख सब कीशा ❋ मोहिं अहार दीन्ह जगदीशा ॥२॥

इस भाँति अनेक कथा कह रहे थे कि पर्वतकी कंदरामें सम्पातीने बातें सुनीं ॥ १ ॥ सो बाहर निकल कर देखे कि बन्दर बहुत बैठे हैं, कहने लगा-विधाताने आज मुझे भोजन दिया ॥ २ ॥

आजु सबन कहँ भक्षण करऊँ ❋ दिन बहु गये अहार विनु मरऊँ॥३॥
कबहुँ न मिलि भर उदर अहारा ❋ आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा॥४॥

आज इन सबका भक्षण करूँगा, बहुत दिन बीत गये, भूखा मरा जाता हूँ ॥३॥ कभी पेटभर कर भोजन नहीं मिला; सो आज विधाताने एक ही बार दे दिया ॥ ४ ॥

डरपे गीध वचन सुनि काना ❋ अब भा मरण सत्य हम जाना ॥५॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी ❋ जाम्बवन्त मन शोच बिसेखी ॥६॥

गृध्रके वचन कानोंसे सुनकर वानर डरे और कहने लगे अब हमने जाना कि निश्चय मरण होगा ॥ ५ ॥ सब वानर गीधको देखकर उठ बैठे परन्तु जाम्बवत शोच करने लगा कि सम्पातिको देखकर यह दशा हुई, रावणसे कैसे लड़ेंगे ? ॥ ६ ॥

कह अंगद विचारि मन माहीं ❋ धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥७॥
राम काज कारण तनु त्यागी ❋ हरिपुर गयउ परम बड़ भागी ॥८॥

अंगदजी मनमें विचार कर कहने लगे कि जटायुके समान कोई भाग्यवान् नहीं है ॥७॥ जो रघुनाथजीके कार्यमें अपना शरीर त्यागकर वैकुण्ठको गया। ये बातें ऐसे ऊँचे स्वरसे कही कि वह सुन ले, अङ्गदजी पहलेसे जानते थे कि यह जटायुका भ्राता है ॥ ८ ॥

जो रघुवीर चरण चित लावै ❋ तेहि सम धन्य न आन कहावै॥९॥
सुनि खग हर्ष शोकयुत वानी ❋आवा निकट कपिन भय मानी॥१०॥

जो रघुनाथजीके चरणोंमें चित्त लगाता है उसके समान कोई धन्य नहीं (यह क्षेपक है) ॥ ९ ॥ यह हर्ष और शोक युक्त वानरोंकी वाणी सुनकर सम्पाती निकट आया तो वानर डरे जानकीजीकी सुधि न मिलनेसे और सुग्रीवके भयसे मन कातर है इस कारण वानर डरते हैं॥१०॥

ताहि देखि कपि चले पराई ❋ ठाढ कीन्ह तिन शपथ दिवाई॥११॥
तिनहिं अभय करि पूछेउ जाई ❋ कथा सकल तिन ताहि सुनाई॥१२॥

जब उसे देखकर वानर भागने लगे तब उसने सौगंध दिला कर खड़े किये ॥ ११ ॥उन्हें अभयदान देकर कहा तुम मत डरो, मैं रघुनाथजीका सेवक हूँ, तुम कौन हो ? अपनी कथा

कहो ? तब उन्होंने जटायुके मरनेका और सीताकी सुधके निमित्त आनेका अपना सब भेद कहा ॥ १२ ॥

सुनि संपाति बन्धुकी करणी * रघुपति महिमा बहु विधि वरणी॥१३॥

तब संपातीने भाईकी करनी सुनकर बहुत प्रकार रघुनाथजीकी महिमा वर्णन की ॥ १३ ॥

दोहा–मोहिं लेइ चलहु सिंधुतट, देहुँ तिलांजलि ताहि ॥
वचन सहाय करब मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥ ५१ ॥

सम्पाती बोले-भैया वानरो ! मुझे उठाकर समुद्रके किनारे ले चलो, उसे तिलांजली दूँगा और तुम्हारी भी वचनसे सहायता करूँगा,जानकी तुम्हें मिलेंगी ढूँढनेके लिये जाओ ॥५१॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा * कह निज कथा सुनहु कपिवीरा॥१॥
हम दोउ बन्धु प्रथम तरुणाई * गगन गये रवि निकट उड़ाई॥२॥

समुद्रके तीर छोटे भाईकी क्रिया करके संपाती अपनी कथा सुनानेके निमित्त बोला–हे कपिवीर ! सुनो ॥ १ ॥ हम दोनों भाई पहले युवावस्थामें (ईर्ष्या कर) सूर्यके निकट उड़ गये ॥ २ ॥

तेज न सहि सक सो फिरि आवा* मैं अभिमानी रवि नियरावा ॥३॥
जरे पंख रवि तेज अपारा * परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥४॥

वह तो तेज न सह सका इस कारण लौट आया और मैं अभिमानके वश हो सूर्यके निकट होने लगा ॥ ३ ॥ सूर्यके अपार तेजसे मेरे पंख जल गये, तब मैं घोर चिकार कर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ४ ॥

मुनि इक नाम चन्द्रमा ओही * लागी दया देखि कर मोही ॥५॥
बहु प्रकार तेइँ ज्ञान सिखावा * देह जनित अभिमान छुड़ावा ॥६॥

एक चंद्रमा नामक मुनि थे, मुझे देखकर उनके जीमें बड़ी दया आयी ॥५॥ बहुत प्रकारसे उन महात्माने ज्ञान सिखाया और देहसे उत्पन्न हुए अभिमानको छुड़ाया और बोले ॥ ६ ॥

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरहीं * तासु नारि निशिचरपति हरहीं॥७॥
तासु खोजि पठवहिं प्रभु दूता * तिनहिं मिले तुम होब पुनीता॥८॥

त्रेतायुगमें ब्रह्म मनुष्यका शरीर धारण करेंगे उनकी स्त्रीको रावण हरेगा ॥ ७ ॥ उसकी खोज करनेको प्रभु दूत भेजेंगे, उनके मिलनेसे तुम पवित्र हो जाओगे ॥ ८ ॥

जमिहहिं पंख करसि जनि चिन्ता* तिनहिं दिखाइ देव तैं सीता ॥९॥
यहि कहि मुनि निज आश्रम गयऊ*तेहि क्षण हृदय ज्ञान कछु भयऊ॥१०॥

तुम्हारे पंख जम आवेंगे, चिंता मत करो, उन्हें तुम सीता दिखा देना ॥ ९ ॥ यह कहकर मुनि अपने आश्रमको गये उस समय हृदयमें कुछ ज्ञान हुआ ॥१०॥ (यहां से क्षेपक है)

पुनि संपाती वचन उचारी *सुनो गिरा अब मम हितकारी ॥११॥
पुत्र मोर सुपर्ण तेहि नाऊँ * सेवत मोहि सदा इहि ठाऊँ ॥१२॥

फिर संपाती कहने लगा कि हित करने वाले मेरे वचन सुनो ॥ ११ ॥ मेरा सुपर्ण नामक पुत्र इस स्थानमें मेरी सेवा सदा करता था ॥ १२ ॥

दोहा-क्षुधावन्त इक दिन गयउँ, कही पुत्र सुनु बात ॥
बेगि भक्ष लै आवहु, न तो प्राण मम जात ॥ ५२ ॥

भूखसे व्याकुल हो एक दिन मैं गया और पुत्रसे कहा-बेटा ! शीघ्र भोजन लाओ नहीं तो मेरे प्राण चले ॥ ५२ ॥

सुत शिर आज्ञा धारि सिधावा * मोहिं धीरज दै बहु समुझावा ॥१॥
नभपथ होय महावन गयऊ * गजमृगराज हनत बहु भयऊ ॥२॥

बेटा शिरपर आज्ञा धारण कर चला और मुझे धैर्य दे बहुत प्रकारसे समझाया ॥ १ ॥ आकाशके मार्गसे महावनमें गया और वहाँ बहुतसे हाथी और मृगोंको मारा, अथवा बहुत से सिंहोंको मारा ॥ २ ॥

अस्त पतंग बहुरि घर आवा * क्षुधावन्त मैं क्रोध बढ़ावा ॥३॥
ज्ञानरंक मैं अधम अभागा * सुत कहँ शाप देन तब लागा ॥४॥

सूर्यके अस्त होनेपर फिर वह लौटके घर आया, तब भूखके मारे मुझे बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३ ॥ ज्ञानसे हीन मैं नीच और अभागा तब पुत्रको शाप देने लगा ॥ ४ ॥

गहि मम बाहु कह्यो समुझाई * सुनहु तात मम वच चितलाई ॥५॥
जब आरण्य गयउ मैं ताता * तहँ पुनि भयउ एक उतपाता ॥६॥

तब उसने मेरी बाँह पकड़ समझाकर कहा-पिताजी ! मेरे वचन चित्त लगाकर सुनो ॥ ५ ॥ पिताजी ! जब मैं वनको गया तब फिर वहां एक उत्पात हुआ ॥ ६ ॥

बीस भुजा दश मस्तक ताहीं * आतुर चला जात मगमाहीं ॥७॥
सङ्ग नारि एक दिव्य अनूपा *कोउ नहिं वरणि सकै तेहि रूपा ॥८॥

जिसके बीस भुजा, दश शिर थे ऐसा एक पुरुष शीघ्रतासे मार्गमें चला जाता था ॥७॥ सङ्गमें एक अनुपम सुन्दरी स्त्री थी उसके रूपको कोई नहीं वर्णन कर सकता ॥ ८ ॥

कोटि सुधाकर नख बलिहारी * रम्भा रती शचीसी नारी ॥९॥
जन्तु जानि तेहि धरा पछारी *दीनो छोड़ि निरखि सोइ नारी ॥१०॥

करोड़ों चन्द्रमा जिसके नखों पर बलिहारी थे वह स्त्री रंभा, रति और इन्द्राणीके समान थी ॥ ९ ॥ उस पुरुषको जन्तु जानकर मैंने पीछेसे पकड़ा, परन्तु वह स्त्री देखकर उसे छोड़ दिया ॥ १० ॥

करिमोहिं विनयदखिनदिशि गयऊ *यहि कारण विलंब मोहि भयऊ ॥११॥
सुनत वचन मोहि लागि अँगारा *आपनि गति विचारि हियहारा ॥१२॥

मेरी बड़ी विनती करके वह दक्षिण दिशामें गया, इस कारण मुझे देर लगी ॥ ११ ॥ वचन सुनते ही मेरे अंगारसा लगा अर्थात् क्रोध आ गया, परन्तु अपनी गति न होनेके कारण जीमें हार गया ॥ १२ ॥

मैं तनु पंख-हीन का करऊँ * आतुर जाय वोहि अब धरऊँ ॥१३॥

मैं पंखहीन शरीर होनेसे अब क्या करूँ ? अब उसे जाकर शीघ्रता से पकड़ूँ ॥ १३ ॥

दोहा-पंखहीन अवसर गये, सुत बल कीन्ह धिकार ॥
गहि मम निकट न लायेउ, हुती रामकी नार ॥ ५३ ॥

अरे! मेरे तो पंख नहीं, तू अवसर पर चूक गया, यह कहकर पुत्रके बलको धिक्कार किया, अरे! उसे पकड़कर मेरे निकट नहीं लाया, रघुनाथजीकी स्त्री थी, (रावण हरे जाता था)॥५३॥

जब मुनि वचन ध्यान हित आवा * हियमें धीरज तब कछु पावा ॥१॥
इहि मिस राम जो दूत पठावहिं *सिय सुधि लेन अरण्यहि आवहिं॥२॥

फिर मुनिके हित वचन स्मरण आये तब हृदयमें कुछ धैर्य हुआ ॥ १ ॥ कि, इसी बहाने जो रघुनाथजी दूत भेजेंगे वे जानकीजीकी सुधि लेने वनमें आवेंगे ॥ २ ॥

देखत दरश होब बड़ भागी * तुम मग देखत मन अनुरागी ॥३॥
सदा रामकर सुमिरण करऊँ *निशिदिन मग जोवत दिन भरऊँ॥४॥

मैं उनके दर्शन कर बड़ भागी हो जाऊँगा, सो अनुराग युक्त मनसे तुम्हारा मार्ग देखता था ॥ ३ ॥ सदा रघुनाथजीका स्मरण करता; रात-दिन मार्ग देखता दिन पूरे कर रहा था (यहाँ तक क्षेपक) ॥ ४ ॥

मुनिकी गिरा सत्य भइ आजू *सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू॥५॥
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका * तहँ रह रावण सहज अशंका ॥६॥

सो आज मुनिकी वाणी सत्य हुई, मेरे वचन सुनकर प्रभु का कार्य करो ॥ ५ ॥ त्रिकूट पर्वत के ऊपर लंकापुरी है वहां जन्मसे ही निडर रावण रहता है ॥ ६ ॥

तहँ अशोक उपवन जहँ रहई * सीता बैठि शोचरत अहई ॥७॥

वहाँ अशोक वाटिका है, जहां जानकीजी बैठी शोचती हैं, (यह संपातीके वचन सुनकर वानर दक्षिण दिशाको देखने लगे, जब जानकीजी उन्हें न दीखीं तब वे बोले-हमें जानकी जीको दिखाओ तब गृद्ध बोला) ॥ ७ ॥

दोहा-मैं देखौं तुम नाहिंन, गीधहिं दृष्टि अपार ॥
वृद्ध भयउँ नतु करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार ॥ ५४ ॥

मैं देखता हूँ तुम्हें जानकी नहीं दीखतीं क्योंकि गृद्धकी दृष्टि अपार है (चारसौ योजन तकसे अधिक देखने की होती है) मैं बूढ़ा हो गया हूँ नहीं तो तुम्हारी और भी कुछ सहायता करता ॥ ५४ ॥

जो नांघइ शतयोजन सागर *करइ सो रामकाज मति आगर ॥१॥
जो कोइ करै रामकर काजू *तेहिसम धन्य आन नहिं आजू ॥२॥

जो कोई सौ योजन समुद्र लांघ सके और बुद्धिमान् हो वही रघुनाथजीका कार्य कर सकता है ॥ १ ॥ जो कोई रघुनाथजीका कार्य कर सके उसके समान आज कोई धन्य नहीं है ॥२॥

मोहिं विलोकि धरहु मन धीरा * रामकृपा कस भयउ शरीरा ॥३॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं * अति अपार भवसागर तरहीं ॥४॥

मुझे देखकर मनमें धैर्य धारण करो कि रघुनाथजीकी कृपासे कैसा शरीर हो गया कि (पुनः पंख जम आये) ॥ ३ ॥ उस सागरका तो पार भी है और तुम उन भगवान्के भक्त हो जो अनंत हैं और उनका नाम यदि पापी भी स्मरण करे तो जिसका पार नहीं है ऐसे भवसागरसे पार हो जाते हैं ॥ ४ ॥

तासु दूत तुम तजि कदराई ✽ राम हृदय धरि करहु उपाई ॥५॥
अस कहि उमा गीध जब गयऊ ✽तिनके मन अति विस्मय भयऊ॥६॥

तुम उनके दूत हो इस कारण भय त्याग श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें धारण कर उपाय करो ॥ ५ ॥शिवजी बोले-हे पार्वती ! ऐसा कहकर जब गृध्र चला गया (उड़ गया) तब सबके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ; देखो रघुनाथजीकी महिमा कि इसके पंख जम आये ! ॥ ६ ॥

निज निज बल सब काहू भाखा ✽ पार जाइकर संशय राखा ॥७॥
जरठ भयउँ अब कहइ ऋछेशा ✽ नहिं तनु रहा प्रथम बललेशा ॥८॥

अपना अपना बल सब किसीने कहा, परन्तु पार जानेका सबको संदेह रहा॥७॥अब बूढ़ा हो गया हूँ, पहलासा बल शरीरमें लेशमात्र भी नहीं रहा, यह बात जाम्बवंतने कही ॥८॥

जबहिं त्रिविक्रम भयउ खरारी ✽ तब मैं तरुण रहा बलभारी ॥९॥

जब भगवान्‌ने त्रिविक्रम(वामन) अवतार लिया था मैं तरुण और बड़ा बली था॥९॥

अथ क्षेपक

दोहा–घेरि अंगदहि कहा सब, अब कछु करहु उपाय ॥
है कोउ सुभट प्रवीन अस, जलधि लाँघि जो जाय ॥ ५५ ॥

तब सब किसीने अङ्गदको घेरकर यह बात कही कि अब कुछ उपाय करो और कहने लगे कि कोई चतुर योद्धा है जो सागर लांघ जाय ॥ ५५ ॥

बोला विकट सुनहु युवराजू ✽ योजन तीस उलंघहुं आजू ॥१॥
नील कहा चालिस मैं जाऊँ ✽ आगे परत मोर नहिं पाऊँ ॥२॥

विकट वानर बोला–सुनो युवराज ! मैं आज तीस योजन उलांघ सकता हूँ ॥ १ ॥ नील बोला–मैं चालीस योजन जा सकता हूँ; आगे मेरा पांव नहीं पड़ेगा ॥ २ ॥

नील वचन सुनि दुर्धर कहई ✽ पञ्चाशत योजन बल अहई ॥३॥
बोल्यो नल दोउ भुजा उठाई ✽ योजन साठि मोर गति भाई ॥४॥

नीलके वचन सुनकर दुर्धर बोला–मेरी गति पचास योजनकी है ॥ ३ ॥ नल दोनों भुजा उठाकर बोला–भाई मेरा बल साठ योजनका है ॥ ४ ॥

दधिमुख कह अस्सी उपरन्ता ✽ योजन सात जानु बलवन्ता ॥५॥
सुनहु वचन मम सुभट प्रवीना ✽ आगे होइ मोर बलहीना ॥६॥

बलवान् दधिमुख बोला–मैं सत्तासी योजन जा सकता हूँ ॥ ५ ॥ हे प्रवीण योद्धाओ ! मेरे वचन सुनो, इससे आगे मेरा बल क्षीण हो जायगा ॥ ६ ॥

सुनि अस वचन बोलि युवराजू ✽ इहि बलते बनिहै नहिं काजू ॥७॥
दुःख कृशित अंगद कहँ देखी ✽ जाम्बवंत पुनि कहा विशेखी ॥८॥

ऐसे वचन सुनके अङ्गद बोले–इस बलसे काम नहीं चलेगा ॥ ७ ॥ अङ्गदजीको विशेष दुःखोंसे उदास देखकर जाम्बवंत विशेष रूपसे फिर बोले ॥ ८ ॥

निरखि सकल मुखकह ऋच्छेसा ✽ नहिं रह प्रथमक बललवलेशा ॥९॥

वृद्ध भये बल ऐसा भाई * लांघत पलमें जलधिहिं धाई ॥१०॥
सबके मुख देखकर जाम्बवन्त बोले—पहलेकासा अब लेशमात्र भी बल मुझमें नहीं है ॥ ९ ॥ भाई इस वृद्धतामें भी ऐसा बल था कि, पलमें सागर लांघ जाता ॥ १० ॥
इनकहि बात सत्य सनमानी * मानी सत्य कर्म मन बानी ॥११॥
इकदिन बद्रिक आश्रम गयऊँ *विपिन विलोकि महासुख भयऊँ॥१२॥
सब वानरोंने इनकी कही बातको कर्म,मन,वाणीसे सत्य माना और सम्मान किया॥११॥ जाम्बवंत बोले-एक दिन मैं बदरिका आश्रमको गया,उस वनको देखके मुझे बड़ा सुख हुआ॥१२॥
भक्षण करि फल पीन्हेउँ पानी * बैठेउँ एक शिला सुखमानी ॥१३॥
ब्रह्मज्ञानि इक विप्र सुजाना * बैठि अराधत श्रीभगवाना ॥१४॥
फल भक्षण कर पानी पिया और एक शिलापर सुख मानकर बैठ गया ॥ १३ ॥ एक ब्रह्मज्ञानी विद्वान ब्राह्मण बैठकर श्री भगवान्‌की वहां आराधना करता था ॥ १४ ॥
ताहि वधन इक दानव आवा * देखत नैन क्रोध मोहिं छावा॥१५॥
मुनि भय देखि गयउँ तेहि सामू *तेहिं द्रुततर कीन्हा अस कामू॥१६॥
उसे मारनेको एक दानव आया, तब उसे आँखोंसे देखकर मुझे बड़ा क्रोध हुआ ॥१५॥ मैं मुनिको भयभीत देखकर उसके सामने गया; परन्तु उस राक्षसने बड़ी शीघ्रतासे यह काम किया कि ॥ १६ ॥
त्रिशत योजन शैल उठाई * मारेसि मोर गोड़में आई ॥१७॥
लागत गिरि तनु सहा प्रहारा *भयो क्रोध तेहि अवनि पछारा॥१८॥
तीस योजनका पर्वत उठाया और आकर मेरे घुटनेमें मारा ॥ १७ ॥ शरीरमें यह प्रहार लगते ही मैंने सहन कर क्रोध करके उसे पृथ्वीमें पछाड़ दिया ॥ १८ ॥
चीरे दोउ चरण करि रीशा *सुख पायो द्विज दीन्ह अशीशा॥१९॥
सो बल नहीं तव तुमहिं बखानू * सुनत बात सब अचरज मानू॥२०॥
क्रोध कर उसके दोनों चरण पकड़ कर चीर डाले,तब ब्राह्मणने सुख पाया और आशीष दी और॥१९॥वह बल मैं तुमसे नहीं कहता,सब बातें सुनकर तुम आश्चर्य मानोगे परन्तु॥२०॥
शैल प्रहार लगेउ मम पाऊँ * योजन नवे पांच मैं जाऊँ ॥२१॥
मेरे पांवमें पहाड़की चोट लग गयी है परंतु तो भी मैं पञ्चानवे योजन जा सकता हूँ(इति क्षे०)२१॥
दोहा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु वरणि न जाइ ॥
उभय घरी महँ दीन्ह मैं, सात प्रदक्षिण धाइ ॥ ५६ ॥
त्रिविक्रमजी जब बलिको बांधने लगे तब उनका शरीर इतना बढ़ा कि उसका वर्णन नहीं हो सकता (दो ही पगसे त्रिलोकी नापी) तब मैं तरुण था, दो घड़ीमें उस शरीरकी दौड़ कर सात बार प्रदक्षिणा की थी ॥ ५६ ॥
अंगद कहा जाऊँ मैं पारा * जिय संशय कछु फिरती बारा ॥१॥
जाम्बवन्त कह तुम सब लायक *किमि पठवौं सबही कर नायक ॥२॥

अंगदने कहा-मैं पार जा सकता हूँ परंतु लौटती बार जीमें कुछ सन्देह है कि राक्षसोंसे युद्ध करके फिर आया जाय वा नहीं, क्योंकि जाता तो शक्तिके सम्मुख हूँ इससे बल रहेगा आनेमें शक्तिसे विमुखता होगी, सामर्थ्य रहे वा न रहे, यथा " अशक्तः शक्तिसम्पन्ना ये च शक्तिपराङ्मुखाः । असमर्थाः स्युश्शक्तिसन्मुखगामिनः ॥" इसके अर्थ कई प्रकारके करते हैं परंतु वे निर्मल हैं। कोई कहते हैं कि अंगदजीको ऋषिका शाप था जिस जलको उलांघोगे फिर न लौट सकोगे, यदि शाप होता तो अंगदजीको सन्देह क्यों होता निश्चय ही था। कोई कहते हैं वाली और रावणकी प्रीति थी अंगदजीको सन्देह हुआ कि उसकी प्रीतिमें न फँस जाऊँ, परंतु इससे भक्तिकी न्यूनता होती है इस कारण ठीक नहीं, एक कथा यह भी है कि अंगद और अक्षयकुमार दोनों गुरुके पास पढ़ते थे तब अंगदने एक दिन अक्षय को बहुत मारा यह सुन गुरुने शाप दिया कि अक्षयके एक ही घूँसेसे अंगद मर जायगा वह बात स्मरण करके अंगद कहते हैं यदि अक्षय मिल गया तो आनेमें संदेह होगा, यथा हि दोहा- " अंगद कह्यो सकोप तब, अबहिं जाउँ मैं पार। मोहिं सुरति मुनि शापकी, संशय फिरती बार" ॥ १ ॥ जाम्बवन्त बोले तुम सब कुछ करनेमें समर्थ हो परन्तु सबके स्वामी युवराज हो तुम्हें कैसे भेजूँ ? क्योंकि भृत्योंके होते स्वामीका जाना नीति विरुद्ध है ॥ २ ॥

कहा-ऋच्छपति सुनु हनुमाना * का चुप साधि रहा बलवाना ॥३॥
पवन तनय बल पवन समाना * बुधि विवेक विज्ञान निधाना ॥४॥

तब ऋच्छपति बोले सुनो महावीरजी ! तुम इतने बलवान् होके कैसे चुप बैठे हो ? ॥३॥ तुम पवनके पुत्र हो! इस कारण तुममें पवनके समान बल है,बुद्धि,विवेक,विज्ञानके घर हो॥४॥

कौन सो काज कठिन जगमाहीं * जो नहिं तात होय तुम पाहीं ॥५॥
तव उत्पति अब कहौं सहेता * सुनहु सकल बैठे इहि रेता ॥६॥

हे तात ! जगत्में ऐसा कौनसा काम है जो तुमसे नहीं हो सके ? (आगे क्षेपक है)॥५॥हे महावीर! अब मैं कारण सहित तुम्हारी उत्पत्ति कहता हूँ,सब कोई इस रेतीमें बैठकर सुनो॥६॥

हिमचल इक पर्वतके पासा * कश्यप ऋषि तप तेज प्रकाशा ॥७॥
दिग्गज इक ऐरावतके सम *आयो ऋषि सम्मुख दुर्धर यम ॥८॥

हिमालय पर्वतके पास एक तपतेजसे प्रकाशमान कश्यप ऋषि थे ॥७॥ ऐरावतके समान एक हाथी मानों कठिन यमराज ही हो, ऋषिके सम्मुख दौड़ा ॥ ८ ॥

निरखि ताहि ऋषि सकल सयाने *चले न चरण सिथिल भय माने॥९॥
तात तोर तेहि वनकर राजा * केशरि नाम तेज बल छाजा ॥१०॥

उसे देखकर सब मुनि डर गये, भयके मारे भाग न सके, चरण शिथिल हो गये ॥ ९ ॥ केशरी नाम बड़े तेजस्वी तुम्हारे पिता उस वनके राजा थे ॥ १० ॥

सो गज देखि मुनीश निहोरा * हे कपि सकल शरण हैं तोरा॥११॥
ऋषिदुख देखि दया मन माहीं * धायो तुरत तात बल माहीं ॥१२॥

हाथी देखकर सब मुनि पुकार उठे हे कपिराज हम सब आपकी शरण हैं॥११॥ ऋषियोंका दुःख देखकर मनमें बड़ी दया हुई और तुम्हारे पिता उसी समय वेगसे दौड़कर वहां गये॥१२॥

भिरचो ताहि इक मुष्टिक मारा ❋उभय दशन गहि भूमि पछारा॥१३॥
परचो धरणि करि घोर चिकारा ❋ तब मुनि होय प्रसन्न विचारा॥१४॥
केशरी उस हाथीसे लड़ने लगे और एक घूँसा मार दोनों दांत पकड़ कर पृथ्वीपर पछाड़ दिया॥१३॥ वह घोर चिक्कार कर पृथ्वीमें गिरा, तब मुनिने बड़े प्रसन्न हो मनमें विचार किया॥१४॥

दोहा–तव पितु बहुबल देखि मन, मुनिवर दीन्ह अशीश ॥
माँगु माँगु वर भाय मन, हे द्विजपाल कपीश ॥ ५७ ॥
मनमें तुम्हारे पिताका अधिक बल देखकर मुनिने आशीष देकर कहा–हे ब्राह्मण पालक कपिराज ! जो मनमें भावे सो वर मांग ॥ ५७ ॥

सानुकूल तपसी कहँ जानी ❋ बोलत तात जोरि युग पानी ॥१॥
जौ प्रसन्न मोपर भगवाना ❋ पुत्र देहु बल मरुत समाना ॥२॥
तपस्वीको प्रसन्न जानकर तुम्हारे पिता केशरी दोनों हाथ जोड़के बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मरुतके समान बली पुत्र दीजिये ॥ २ ॥

एवमस्तु कहि ऋषि तब गयऊ ❋आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥३॥
माता तोरि अञ्जनी सती ❋ रूप अपार नहीं रहि रती ॥४॥
एवमस्तु (ऐसा ही होगा) यह कहकर ऋषि तब चले गये अब अगला चरित्र जैसा हुआ सो सुनो ॥ ३ ॥ माता तुम्हारी सती अञ्जनी थी जिसका अपार रूप रतिसे उत्तम था ॥४॥

नवसत साजि शृङ्गार बनाई ❋ बैठी शिखर शैल पर आई ॥५॥
त्रिविध समीर बहै सुखदाई ❋ निरखत वन शोभा अधिकाई ॥६॥
सोलह शृंगार बनाये और सजकर पर्वतके शिखरपर आ बैठी ॥५॥ सुख देनेवाला शीतल मंद सुगंध त्रिविध पवन चल रहा था, वनकी अपार शोभा देखकर मनमें प्रसन्नता होती थी॥६॥

चीर उड़ावन पवन सुवरसा ❋ भुजा दीर्घ करि चाहत परसा ॥७॥
देखि मातु तव क्रोध करेही ❋ लागी शाप देन पुनि तेही ॥८॥
पवनदेव उसे देखकर मोहित हुए और पतिकी तरह चीर उड़ाकर-भुजा दीर्घकर छूना चाहा ॥ ७ ॥ देखकर तेरी माताको क्रोध बढ़ा, फिर उसे शाप देने लगी ॥ ८ ॥

मारुत मधुरे वचन कहेऊ ❋ शाप न देउ वचन सुनि लेऊ ॥९॥
तव पति ऋषिसन सुत वर माँगा ❋ ताते परसि अंग तव लागा ॥१०॥
पवनने मीठे स्वरसे कहा–शाप मत दो, पहले बात सुन लो ॥९॥ तुम्हारे पतिने ऋषिसे पुत्रका वर मांगा-इस कारण तुम्हारा शरीर छूने लगा ॥ १० ॥

निज काया धरि मिलेउँ न तोही❋ काहे शाप देति है मोही ॥११॥
अस कहि पवन गुप्त है रह्यऊ ❋ सो तव माता पतिसन कह्यऊ॥१२॥
मैं अपनी काया धरके तुमसे नहीं मिला हूँ, मुझे क्यों शाप देती हो ? ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर पवनदेव गुप्त हो रहे, तुम्हारी माताने वे सब बातें पतिसे कहीं ॥ १२ ॥

अब तव जन्म कहब सुखमानी * सुनहु सकल कुलदीपक जानी ॥१३॥
शुभ नक्षत्र शुभ घरी सुहाई * जन्मत भयउ दैव बल पाई ॥१४॥

अब तुम्हारा सुखदायक जन्म कहता हूँ, कुलका प्रकाशरूप जानके सब सुनो ॥ १३ ॥ अच्छे नक्षत्र और अच्छी घड़ीमें दैवबल पाकर तुमने जन्म लिया, (कार्तिक वदी चौदश भौमके दिन तुम्हारा जन्म हुआ) ॥ १४ ॥

पुनि वरदान पवन कर दरसा * वीरज तोहिं पिता कर परसा॥१५॥
उदित भये दंपति सुख माने * करहिं केलि वनमें मनमाने ॥१६॥

फिर पवनके वरदानसे पिताके वीर्यसे तुम उत्पन्न हुए। अथवा पवनने वरदान दिया, हाथसे स्पर्श किया और कहा मेरे समान बली होगे ॥ १५ ॥ तुम्हारे उत्पन्न होनेसे दोनों स्त्री पुरुष सुख मानकर वनमें मनमाना विहार करते थे ॥ १६ ॥

एक दिवस माताकी गोदा * करत रहेउ पयपान विनोदा ॥१७॥
देखेउ अरुणबंधु छबि लाला * तरकि अकाश गयेउ ततकाला ॥१८॥

एक समय माताकी गोदीमें तुम दूध पीते थे और खेलते थे ॥ १७ ॥ प्रातःकालके रक्तवर्ण सूर्यकी छबि देख (पक्का फल समझ पकड़नेको) तड़क कर (किलकार मारकर) शीघ्र आकाशमें उछल गये ॥ १८ ॥

सूर्य गहन कहँ भुजा पसारा * क्रोधित इन्द्र वज्र तब मारा॥१९॥

सूर्य पकड़नेको हाथ फैलाकर दौड़े तब इंद्रने क्रोधकर वज्र मारा ॥ १९ ॥

दोहा—लागत वज्र महा कठिन, मूर्छित भे तुम तात ॥
पवन देव तब क्रोधकरि, रोकी सिगरी वात ॥ ५८ ॥

हे तात ! महावीरजी महा कठिन वज्र लगते ही तुम मोहित हो मूर्छित हुए, तब पवनदेवने क्रोध करके सब वायुकी गति बंद कर दी ॥ ५८ ॥

क्रोधित पवन वायु गति रोकी * व्याकुल तुरत भई तिरलोकी ॥१॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्ह निज हेता * बोले शिव गुणज्ञान-निकेता ॥२॥

क्रोध करके पवनने वायुकी गति रोक ली; जिससे तुरंत त्रिलोकी व्याकुल हो गयी ॥१॥

---

१. महावीरजीको जन्मतिथिमें मतभेद है, उत्सवसिन्धुमें लिखा है कि महावीरजीका जन्म कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी स्वाती नक्षत्र भौमवार मेष
लग्नमें हुआ था जैसा कि श्लोकसे पाया जाता है–'उर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः। मेष लग्नेऽञ्जनी गर्भाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम्" और वह सत्य
भी विदित होता है कारण कि "यस्मिन्नेवदिने ह्येषग्र हीतुं भास्करं प्लुतः। तस्मिन्नेवदिने राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम्" (वाल्मी० उ० ३५ स० ३१ श्लो०) अर्थात्
जब महावीरजीका जन्म हुआ तब माता इनके निमित्त फल लेनेको गयी उस समय यह भूखे हो सूर्यको उदय होता देखकर उसे कोई फल समझकर खानेको उछले,
जिस दिन सूर्यके निकट कूदे थे उसी समय राहु सूर्यको ग्रसने आया था इससे विदित होता है कि स्वाती नक्षत्र मंगलवार कातिक कृष्ण चतुर्दशीमें महावीरका
जन्म हुआ होगा, क्योंकि कार्तिकमें मेषलग्न रात्रिमें आता है, प्रातः काल सूर्यको देखकर कूदे क्योंकि सूर्यग्रहण अमावसमें ही होता है । इन ग्रंथोंसे तो कार्तिक
आता है। राहुने महावीरको, आता देख दूसरा राहु समझकर इन्द्रसे सब वृत्तांत कहा था यह सुनकर इन्द्र वज्र लेकर आये (वहां भी पर्व शब्द पड़ा है "अद्याहं
वर्षकाले तु") महावीर इन्द्रको राहुके निकट देखकर उनपर धावमान हुए। तब इन्द्रने वज्र मारा जिससे किंचित् हनु अर्थात् ठोड़ी टेढ़ी हो गई उसी समय
पवनदेवने पवन बन्द कर दिया और देवताओंके वरदानसे फिर पवन छोड़ा (वाल्मी० स० ३५ उ०) और दूसरे किसी-किसी ग्रंथों में चैत्र शुक्ल पूर्णि-
माका जन्म लिखा है सो वह भी प्रमाण ही है क्योंकि "कल्पभेद हरि चरित सुहाये, भाँति अनेक मुनीशन गाये" इसमें कोई संदेह नहीं अनेक कल्प वीत गये किसी
कल्पमें कोई विधि है उसीके अनुसार महात्मा ऋषि मुनियोंने ग्रंथ रचे हैं। "करिय न संशय अस जिय जानी, सुनिय कथा सादर रति मानी ।।"

तब देवता घबड़ाकर अपने प्रयोजनके लिये शिवजीकी स्तुति करने लगे, उस समय गुण और ज्ञानके निधान शिवजी बोले ॥ २ ॥

धरहु धीर जनि होउ उदासा * सब मिलि चलहु पवनके पासा ॥३॥
शिव विरंचि सुर इन्द्र समेता * वायूके ढिग चले सचेता ॥४॥

धैर्य धरो, उदास मत हो, मिलकर पवन देवताके पास चलो ॥ ३ ॥ शिव, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता सब पवनके निकट आये ॥ ४ ॥

तव सुत गगन सूर्यगहि लीन्हा *श्वास समीर रोकि दुःख दीन्हा ॥५॥
तजहु पवन रहे प्राण भलाई * तुमको सुयश होय जग भाई ॥६॥

तुम्हारे पुत्रने आकाशमें सूर्यको पकड़ लिया, एक तो अपराध किया दूसरे तुमने पवनकी गति रोक दी ॥ ५ ॥ हे भाई ! वायुको त्याग दो तो सबके प्राण रहें इसमें तुम्हें यश और भलाई मिलेगी ॥ ६ ॥

जो मन भाव लेहु वरदाना * तजहु समीर होय कल्याना ॥७॥
देवगिरा सुनि सुन्दरि बानी * बोलेउ बात जोरि युग पानी ॥८॥

जो मनमें आवे सो वरदान लो, पवनको त्याग दो जिससे सबका हित हो ॥ ७ ॥ देवताओं की सुंदर वाणी सुनकर पवन देव दोनों हाथ जोड़कर बोले ॥ ८ ॥

अमर अजीत सकल बलसागर * सुतहि देहु वर देव सुनागर ॥९॥
राम-भगत अरु निकट निवासी * यह वरदान देव बलरासी ॥१०॥

हे देवताओ ! मेरा पुत्र अमर अजित सब बलका समुद्र और चतुर हो यह वर दो ॥९॥ और मेरा पुत्र रामका भक्त बलकी राशि और उनके निकट रहनेवाला हो यह वर दो ॥ १० ॥

एवमस्तु सब देवन कीन्हा * पवन समीर छाँड़ि तब दीन्हा ॥११॥
दै वरदान देव सब गयऊ * विचरैं वनहिं महासुख भयऊ ॥१२॥

तब देवता बोले-यही होगा, (ब्रह्माजी बोले तुम्हारा पुत्र वज्रांगी होगा और मेरी शक्ति भी इनको नहीं व्यापेगी, अग्निदेवने अग्निसे, इन्द्रने वज्रसे अभय दिया, महादेवजीने त्रिशूल से, यमने अपने दंडसे, वरुणने जलसे, देवीने वचनसे निर्भय किया) यह सुन उस समय पवनदेवने वायुको छोड़ दिया ॥ ११ ॥ वरदान देकर सब देवता चले गये और हनुमानजी महासुखी हो वनमें विचरने लगे ॥ १२ ॥

जब जब जायँ मुनिनके तीरा * डारैं फोर कमण्डलु नीरा ॥१३॥
विटप तोरि गिरि शिखर ढहावैं * बल अति भूरि अंग धुनिहावैं ॥१४॥

जब जब मुनियोंके निकट जायँ तब तब कमण्डलु फोड़ जल बहा दें ॥१३॥ वृक्ष तोड़ें, पर्वतके शिखर ढहावें महाबलसे शरीर धुनें ॥ १४ ॥

ऋषिन शाप तब दीन विचारी * भूलि जाहु निज पौरुष भारी ॥१५॥
जब जब कोऊ सुरति कराई * तब तब तुम्हरे बल हो भाई ॥१६॥

तब ऋषियोंने शाप दिया कि तुम अपना प्रबल बल भूल जाओगे ॥ १५ ॥ जब कोई स्मरण करावेगा तो तुम्हारे बल हो जायगा ॥ १६ ॥

तात मात कर प्राण समाना * इन्द्रजु हनी नाम हनुमाना ॥ १७ ॥
सो मैं तुमहिं सुनायउँ सबहीं * बोले महावीर सुनि तबहीं ॥ १८ ॥

ये तात माताके प्राणोंके समान प्यारे हैं, इंद्रने जो ठोढ़ीमें वज्र मारा तो हनुमान्‌की ठोढ़ी टेढ़ी हो गयी इससे हनुमान् नाम हुआ ॥ १७ ॥ सो मैंने तुमसे सब कथा कही, यह सुनकर तब महावीरजी बोले ॥ १८ ॥

तजहु शोक आनहु मन धीरा * मोहि निश्चय सेवक रघुवीरा ॥ १९ ॥
हनुमत वचन सुनत सब काना * जय जय जय सब करहिं बखाना ॥२०॥

शोकका त्याग करो, मनमें धैर्य धरो मैं निश्चय रघुनाथजी का सेवक हूँ (कार्य करूँगा) ॥ १९ ॥ हनुमान्‌जीके वचन कानोंसे सुनकर सब कोई जयजयकार करने लगे ॥ २० ॥

होइहै सिद्ध रामकर काजा * अतिसुख लहेउ हिये युवराजा ॥२१॥
जाम्बवन्त औरो नल नीला * अंगद आदि सुभट बलशीला ॥२२॥

अब रघुनाथजीका काम सिद्ध होगा, यह जान अङ्गदजीने हृदयमें अत्यन्त सुख पाया ॥ २१ जाम्बवंत, नल, नील और भी बड़े बड़े अङ्गद आदि सुभट जो बलवान् थे ॥२२॥

मिले सबै हनुमन्तहि धाई * रामकाज तुम करिहो भाई ॥२३॥
कह हनुमन्त सिंधु तनु देखी * करिहौं रघुपति काज विशेखी ॥२४॥

सब कोई दौड़कर हनुमानजीसे मिले कि अब रघुनाथजीके कार्य तुम करोगे ॥२३॥ तब महावीरजी सागरकी ओर देखकर बोले मैं निश्चय रघुनाथजीका विशेषरूपसे कार्य करूँगा॥२४॥

तब ऋच्छेश अस वचन उचारा * सादर सुनहु समीर कुमारा ॥२५॥
रामकाज लगि तव अवतारा * सुनतहि भयउ पर्वताकारा ॥२६॥

तब जाम्बवंत ऐसे वचन बोले—महावीरजी ! मन लगाकर सुनो (यहां तक क्षेपक हुआ) ॥ २५ ॥ (महावीरजीको अपना बल स्मरण नहीं रहता था करानेसे स्मरण होता था तब जाम्बवन्तकी यह वार्त्ता सुनकर) कि तुम्हारा जन्म रघुनाथजीके कार्य निमित्त ही है, सुनते ही महावीरजी पर्वताकार हो गये ॥ २६ ॥

कनक वर्ण तनु तेज विराजा * मानहुँ अपर गिरिन कर राजा॥२७॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा * लीलहि लाँघौं जल निधि खारा॥२८॥

सोनेकासा वर्ण शरीरका ऐसा तेज हो गया मानो दूसरे पर्वतोंके राजा हैं ॥ २७॥ वारंवार सिंहनाद करके कहने लगे, मैं क्षारसमुद्रको लीलासे ही लांघ जाऊँगा ॥ २८ ॥

सहित सहाय रावणहि मारी * आनौं यहाँ त्रिकूट उपारी ॥२९॥
जाम्बवंत मैं पूछौं तोहीं * उचित सिखावन दीजै मोहीं॥३०॥

कहो तो सेना सहित रावणको मारकर यहां त्रिकूट पर्वत उखाड़ लाऊँ ॥२९॥हे जाम्बवंत मैं तुमसे पूछता हूँ क्या करूँ ? मुझे योग्य शिक्षा दो ॥ (तब जाम्बवंत बोले) ॥ ३० ॥

इतना करहु तात तुम जाई * सीतहि देखि कहौ सुधि आई॥३१॥
तब निज भुजबल राजिवनैना * कौतुक लागि संग कपि सैना॥३२॥

हे तात ! तुम जाकर केवल इतना ही करो कि जानकीजीको देखकर उनकी सुध आकर सुनाओ ॥ ३१ ॥ तब रघुनाथजी अपने भुजबलसे कौतुकके निमित्त अर्थात् युद्धकी शोभा बढ़ानेके लिये कपियोंकी सेना लेकर चढ़ेंगे ॥ ३२ ॥

छन्द-कपि सेन संग सँहारि निशिचर राम सीतहि आनिहैं ।
त्रयलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावहीं ।
रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावहीं ॥ ६ ॥

तब बानरोंकी सेना संगमें लेकर रघुनाथजी रावणको मार जानकीको लावेंगे, उनका पवित्र चरित्र देवता, नारदादि मुनि त्रिलोकमें बखान करेंगे । जो इस कथाको सुनते, गाते, कहते, समझते अर्थात् मनन करते हैं वे नर परम पदको प्राप्त होते हैं । रघुनाथजीके चरण कमलके मधुकर (भौंरे) तुलसीदासजी इस चरित्रको गाते हैं ॥ ६ ॥

दोहा-भव भेषज रघुनाथ यश, सुनहिं जे नर अरु नारि ॥
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिपुरारि ॥ ५९ ॥

संसार रोगको औषधरूप रघुनाथजीका यश जो नर नारी कहेंगे, सुनेंगे, शिवजी उनके सब मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ ५९ ॥

सोरठा-नीलोत्पल तनु श्याम, काम कोटि शोभा अधिक ॥
सुनिय तासु गुणग्राम, जासु नाम अघ खग वधिक ॥ ५ ॥

नील कमलके समान श्याम शरीर करोड़ों कामदेवसे भी अधिक शोभावाले रघुनाथजीके ही गुणानुवाद सुनिये, जिनका नाम पापरूपी पक्षीको मारनेके लिये वधिक (व्याध) है ॥५॥

इति श्रीराचरित्रमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसंपादनो नाम
चतुर्थः सोपानः ॥ ४ ॥

दोहा-कियो यथा मतिसे तिलक, सुमिरि राम घनश्याम ।
श्रोता वक्ताके सदा, सिद्ध होहिं सब काम ॥ १ ॥
दशमी आश्विन कृष्णकी, रविवासर सुखदान ।
किये तिलक पूरण सुभग, कुशल करैं भगवान ॥ २ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज मतिमान ।
छाप्यो तिन अति हेतुसों, देखैं सन्त सुजान ॥ ३ ॥
नित ज्वालाप्रसाद श्री,-हरिके गुण अनुराग ।
प्रेम कीजिये नेमसों, जगमें अति बड़ भाग ॥ ४ ॥
मुक्त माल पहिरे हिये, लिये हाथ धनु बान ।
याही रूप अनूपसों, हृदय बसहु भगवान् ॥ ५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसनेकिष्किन्धाकाण्डान्तर्गत वि० वा० पंडित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायां पञ्चमो विश्रामः ॥ ५ ॥

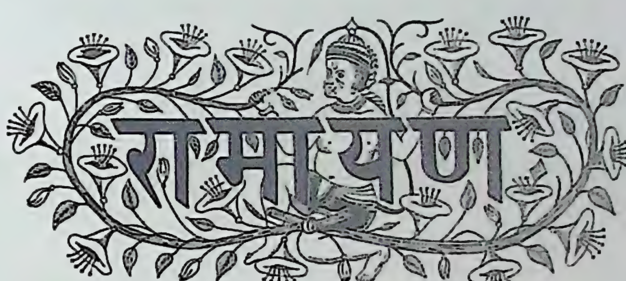
इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्त ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत



सुन्दरकाण्डम् ५.

★

विद्यावारिधि-

श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदासमार्ग बम्बई.

दोहा–रामचरण रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा, करै श्रवण पुट पान ॥



दोहा–यह रहस्य रघुनाथकर, बेगि न जानै कोय।
जानैते रघुपति-कृपा, स्वप्नेहु दुःख न होय ॥

सुन्दरकाण्डम् ५.



श्रीरामपञ्चायतन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

सुन्दरकाण्डम् ५.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

श्लोक–शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशांतिप्रदं,
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदांतवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं,
वंदेहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल-चूडामणिम् ॥ १ ॥

जो निरन्तर शान्त, आदि अन्त रहित, प्रमाणसे परे, सब पातकोंसे रहित होनेसे शुद्ध मोक्ष और शांतिदायक, ब्रह्मा शम्भु शेषजी करके नित्य सेवन किये हुए, वेदांतसे जानने योग्य, समर्थ, जिनका 'राम' नाम है, जगत्के ईश्वर, देवताओंके गुरु, मायासे मनुष्य अवतार धारण किये साक्षात् विष्णुरूप, करुणासागर, रघुकुलमें श्रेष्ठ, राजाओंमें चूड़ामणि सर्व व्यापक रघुनाथजीकी मैं वंदना करता हूं ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च
भवानखिलान्तरात्मा । भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव
निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

हे रघुपति ! मेरे हृदयमें और कोई आकांक्षा नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ और आप सबके अन्तःकरणके आत्मा हैं रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! मुझे परिपूर्ण भक्ति दो और मेरे मनको कामादि दोषोंसे रहित करो ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं
ज्ञानिनामग्रगण्यम् । सकल गुणनिधानं वानराणा-
मधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

जो अतुलित बलके धाम हैं, सुमेरुके सदृश जिनका शरीर है,राक्षसरूपी वनके जलानेको अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रसर, सम्पूर्ण गुणोंके स्थान वानरोंके अधीश्वर, रघुपतिके श्रेष्ठ दूत महावीरकी मैं वंदना करता हूँ ॥ ३ ॥ आगे टीकाकारकृत मंगलाचरण–

दोहा-पवनतनयके चरण गहि, ध्यान हियेमें धारि ॥
सुन्दरकी टीका रचत, कछु निजमति अनुसारि ॥ १ ॥
महावीर रणधीर यम, हिये विराजो आय ॥
यह अपनो परताप अब, आपहि देहु बताय ॥ २ ॥
भक्त जानि कीजे दया, कृपादृष्टि करि आप ॥
जो वरणौं यह काण्डमें, सुन्दर सहज प्रताप ॥ ३ ॥
सुन्दर सुन्दरकांड यह, मन वांछित दातार ॥
भक्ति नेह दृढ़ राखिकर, सुमिरहुँ पवनकुमार ॥ ४ ॥
तहां प्रथम विश्राममें, जलधि लांघि हनुमान ॥
सुरसाको संवाद अरु, देखन लंक महान ॥ ५ ॥

जाम्बवंतके वचन सुहाये * सुनि हनुमान हृदय अति भाये॥१॥
तब लगि मोहिं परखेउ तुम भाई * सहि दुख कंद मूल फल खाई ॥२॥

जो कुछ महावीरजीने किष्किन्धाकांडमें जाम्बवंतसे लंकाके विषयमें पूछा था उस विषयकी जाम्बवंतने जो सम्मति दी उसे सुनकर महावीरजी हृदयमें प्रसन्न हुए और बोले (किष्किन्धा और सुंदरका भी सम्बंध इससे मिल गया)॥१॥ हे वानरो! तब तक तुम मेरी वाट देखते रहना कंद मूलफल खाकर निर्वाह करना और यह न मिले तब दुःख सहकर रहना ॥२॥

जब लगि आवौं सीतहिं देखी * होय काज मन हर्ष बिसेखी ॥३॥
अस कहि नाय सबन कहँ माथा * चले हर्षि हिय धरि रघुनाथा ॥४॥

जबतक मैं जानकीजीको देखकर आऊँ और यह कार्य निश्चय होगा क्योंकि मनमें प्रसन्नता अधिक होती है ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर सबको माथा नवाके योगमार्गमें स्थित प्रसन्न होकर महावीरजी हृदयमें रघुनाथजीका स्मरण कर चले ॥ ४ ॥

सिंधु तीर इक सुन्दर भूधर * कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर ॥५॥
बार बार रघुवीर सँभारी * तरकेउ पवन तनय बल भारी ॥६॥

सिंधुके किनारे एक सुन्दर नामक पर्वत था, महावीरजी खेलसे ही कूदकर उसके ऊपर चढ़ गये। उक्त पर्वतसे ही कथा प्रारंभ हुई, अतः इस कांडका भी सुन्दर नाम हुआ॥५॥ उस पर्वतके ऊपर अपना शरीर बढ़ाके बार बार रघुनाथजीका स्मरण कर महावीरजी बड़े बलसे गर्जे और कूदे (उस समय तनका झटका लगनेसे बहुतसे पेड़ उखड़कर वेगसे समुद्रकी ओर चले तो ऐसे विदित होते थे जैसे कोई घरका कहीं जाय तो उसके लोग उसे पहुँचानेको साथ जाते हैं ॥ ६ ॥

जेहि गिरि चरण देइ हनुमन्ता * सो चलि गयउ पताल तुरंता ॥७॥
जिमि अमोघ रघुपतिके बाना * ताही भाँति चला हनुमाना ॥८॥

महावीरजी जिस पर्वतके ऊपर चरण धरकर कूदे थे वह तुरंत पृथ्वीमें समा गया ॥७॥ जैसे रघुनाथजीके बाण अप्रतिहत वेगसे जाते हैं उसी प्रकारसे महावीरजी चले। रघुनाथजीके बाणकी

उपमा तीन बातोंसे है एक यह है कि जिस अर्थको चलता है उसको सिद्ध करके फिर लौट आता है दूसरे मनोगतिसे अति वेगवान् है तीसरे किसीके रोकनेसे नहीं रुक सकता ॥ ८ ॥

जलनिधि रघुपतिदूत विचारी * कह मैनाक होहु श्रमहारी ॥ ९ ॥

समुद्रने विचारसे जाना कि यह रघुनाथजीका दूत है, तब मैनाक पर्वत जो समुद्रके भीतर था उससे कहने लगा तुम समुद्रसे निकल इनको थोड़ासा विश्राम दो। इसका कारण यह था कि जब इंद्रने पर्वतोंके पंख काटे तब वायुने मैनाककी सहायता की, इसको उड़ाकर समुद्रमें ले गया अब तक यह वहीं रहता था। सागर कहता है तुम्हारी इनके पिताने सहायता की है, तुम इनकी सहायता करो। कहीं पाठांतरमें 'तै मैनाक' है अर्थ यह कि तुम श्रम हरके मेरा नाक हो अर्थात् मेरी नाक रख ले, मैनाक एक छोटी पहाड़ी लंका और भारत वर्षके मध्यमें है॥९॥

इन्द्र वज्र जा दिन कर लीन्हा * पर्वत सबै पंख बिनु कीन्हा ॥ १ ॥
तादिन मारुत कीन्ह सहाई * तासु तनय लंका को जाई ॥ २ ॥

इंद्रने जिस दिन हाथमें वज्र लेकर सब पर्वतोंके पंख काट डाले थे ॥१॥ उस दिन पवन-देवने तुम्हारी सहायता की थी जो उड़ाके यहां छिपा दिया। अब यह उन्हीं पवनके पुत्र लंकाको जाते हैं; इनकी सहायता करनी तुमको उचित है ॥ २ ॥ (यहांसे क्षेपक है)

सोरठा–सिंधु वचन उर आनि, तुरत उठेउ मैनाक तब ॥
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम, बार बार कर जोरिकै ॥ १ ॥

तब सागरके वचन हृदयमें मान मैनाक पर्वत उसी समय सागरमें से निकला और महावीरसे बारबार विश्रामके निमित्त हाथ जोड़कर प्रणाम करके प्रार्थना की (यहां तक क्षेपक है) ॥१॥

दोहा–हनूमान तेहि परसि कर, पुनि पुनि कीन्ह प्रणाम ॥
रामकाज कीन्हे बिना, मोहिं कहाँ विश्राम ॥ १ ॥

महावीरजीने स्पर्श करके बार बार प्रणाम कर कहा कि रघुनाथजीका कार्य किये विना मुझे विश्राम करना उचित नहीं है (और तुम आजसे सागरमें इसी प्रकार बाहर निकले रहो इंद्र तुम्हारा कुछ न कर सकेगा) ॥ १ ॥

जात पवनसुत देवन देखा * जानै कहँ बल बुद्धि बिसेखा ॥१॥
सुरसा नाम अहिनकी माता * पठयहु आइ कही तेहि बाता ॥२॥

देवताओंने महावीरजीको जाता देखकर विशेष करके बल बुद्धि जाननेकी इच्छासे ॥१॥ सुरसा नाम सर्पोंकी माताको परीक्षाके निमित्त भेजा, उसने महावीरजीसे आकर यह बात कही ॥२॥

आज सुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा * सुनत वचन कह पवन कुमारा ॥३॥
रामकाज करि फिरि मैं आवौं * सीताकी सुधि प्रभुहिं सुनावौं ॥४॥

आज देवताओंने मेरे भोजनके निमित्त तुमको भेजा है, सो मैं तुम्हें खाऊँगी। यह वचन सुनकर महावीरजी बोले ॥ ३ ॥ मैं रघुनाथजी का काम करके फिर आऊँ और सीताजीकी सुध प्रभुको सुना दूँ ॥ ४ ॥

तब तव वदन पैठिहौं आई * सत्य कहौं मोहिं जान दे माई ॥५॥
कवनेहु यतन देइ नहिं जाना * ग्रससि न मोहि कहा हनुमाना ॥६॥

तब तेरे मुखमें आकर प्रवेश करूँगा, हे माता ! सत्य कहता हूँ मुझे जाने दे, ब्रह्मचर्यव्रती होनेसे महावीरजी स्त्रीको माताका सम्बोधन करके बोले ॥५॥ जब महावीरजीके अनेक यत्न करने पर भी उसने नहीं जाने दिया; तब वे बोले कि खा क्यों नहीं लेती ? यत्न ये हैं त्रिलोकीके पति रघुनाथजीके कार्यको जाता हूँ, दूसरा यत्न यह कि यह भी स्त्री है; कि सीताकी सुधि लानेकी बात सुनके स्त्रीका पक्ष करेगी, तीसरा माई शब्द कहा कि जिससे करुणा उपजे, चौथा यत्न सीताके नामका है जिसके हेतु राम लक्ष्मण सुग्रीव सब देवता तापित हो रहे हैं उन सबको शीतल करनेवाली है यह सब वचन बुद्धिमत्ता ही प्रकट करते हैं ॥ ६ ॥

योजन भरि तेहि वदन पसारा *कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा॥७॥
सोरह योजन मुख तेहि ठयऊ * तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥८॥

सुरसाने एक योजन अर्थात् चार कोस का मुख फैलाया; महावीरजीने अपना शरीर उससे दुगना करके दिखाया ॥ ७ ॥ जब सुरसाने सोलह योजनका मुख किया तब तुरन्त ही महावीरजी बत्तीस योजनके हो गये ॥ ८ ॥

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा * तासु दुगुण कपि रूप दिखावा ॥९॥
शतयोजन तेहिं आनन कीन्हा *अतिलघुरूप पवनसुत लीन्हा ॥१०॥

जैसा जैसा सुरसाने अपना मुख बढ़ाया महावीरजीने उससे दूना ही रूप दिखाया ॥९॥ जब उसने सौ योजनका मुख किया तो महावीरजीने बहुत छोटा रूप धर लिया, यह अपनी बुद्धिमत्ता दिखायी ॥ १० ॥

वदन पैठि पुनि बाहर आवा * माँगी विदा ताहि शिर नावा॥११॥
मोहिं सुरन जेहि लागि पठावा * बुधि बल मर्म तोर मैं पावा ॥१२॥

महावीरजीने उसके मुखमें प्रवेश करके बाहर निकल प्रणाम कर शिर नवाके विदा मांगी जो माई शब्द कहा था यही उसकी सार्थकता दिखायी ! अथवा मुखमें बैठकर शीघ्र बाहर निकले जबतक मुख बंद करे तबतक सूक्ष्म रूपसे बाहर निकले और शीश नवाके बिदा मांगी तब सुरसा बोली॥११॥मुझे देवताओंने जिस निमित्त भेजा था तुम्हारी बुद्धिबलका सब मैंने भेद पाया ॥१२॥

दोहा–रामकाज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान ॥
आशिष दै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान ॥ २ ॥

तुम बल और बुद्धिके निधान हो सब रघुनाथजीके काम करोगे, यह आशीष देकर सुरसा चली तब महावीरजी प्रसन्न हो और भी वेगसे समुद्र उलांघते चले ॥ २ ॥

निशिचरि एक सिंधु महँ रहई * करि माया नभके खग गहई ॥१॥
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं *जल बिलोकि तिनकी परछाहीं॥२॥

एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी;सिंहिका नाम राहुकी माता थी, छलसे आकाशके पक्षियोंको पकड़ लेती थी ॥१॥जो जीव जंतु आकाशमें उड़ते थे वह जलमें उसकी परछाहीं देखकर ॥२॥

गहै छाँह सक सो न उड़ाई * इहि विधि सदा गगनचर खाई॥३॥
सोइ छल हनुमानते कीन्हा *तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा॥४॥

छाया पकड़ लेती थी; फिर वह उड़ नहीं सकता था इस प्रकारसे सदा पक्षियोंको

खाती थी; जो आकाशमें उड़ते थे ॥ ३ ॥ वही छल इसने हनुमानजीसे किया, महावीरजी सुग्रीवसे इसका वृत्तांत सुन चुके थे; इस कारण उसे तुरन्त पहचान गये ॥ ४ ॥

ताहि मारि मारुतसुत वीरा * वारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥५॥
तहाँ जाय देखी वन शोभा * गुञ्जत चञ्चरीक मधु-लोभा ॥६॥

वह मतिधीर पवनपुत्र महावीर उसे मारकर सागरके पार गये (नीचेको अपने चरण बढ़ाकर उसे चूर्ण कर दिया)॥५॥ वहां जाकर वनकी शोभा देखी कि मधुके लोभसे भौंरे गुञ्जार रहे हैं॥६॥

नाना तरु फल फूल सुहाये * खग मृगवृन्द देखि मन भाये ॥७॥
शैल विशाल देखि इक आगे * तापर कूदि चढ़े भय त्यागे ॥८॥

अनेक वृक्ष फल फूलोंसे शोभित हैं, खग मृगोंके झुंड देख मन मोहित होता है ॥ ७ ॥ महावीरजी एक बड़ा पर्वत आगे देख निर्भय उसपर कूदके चढ़े। जबतक सागरके पार न हुए तबतक इस बातका संन्देह था कि कदाचित् दो विघ्न हो चुके हैं कोई और विघ्न उपस्थित न हो जाय परन्तु पार होकर भय जाता रहा। दूसरा अर्थ यह कि भय इनके साहस की परीक्षा निमित्त यहाँ तक इनके साथ आया; परन्तु जब सब प्रकार हार गया तब साथको त्याग चला गया॥८॥

उमा न कछु कपिकी अधिकाई * प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥९॥
गिरिपर चढ़ि लंका तेहि देखी * कहि न जाय अतिदुर्ग बिसेखी॥१०॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! यह कपिकी कुछ अधिकता नहीं है, किंतु सब प्रभुका प्रताप है, जो कालको भी खा सकता है ॥ ९ ॥ महावीरजीने उसी पर्वत पर चढ़कर लंकापुरी देखी उसके दुर्गोंकी अति विशेषता कही नहीं जाती ॥ १० ॥

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा * कनककोट कर परम प्रकासा॥११॥

वह कोट अति ऊंचा और उसके चारों ओर समुद्र है, सुवर्ण का कोट अधिक प्रकाशित हो रहा है ॥ ११ ॥

छन्द-कनक कोट विचित्र मणि कृत सुन्दरायत अतिघना।
चौहट्ट हाट सुघट्ट वीथी चारु पुर बहुविधि बना ॥
गज वाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथन को गनै।
बहुरूप निशिचर यूथ अति बल सैन वर्णत नहिं बनै ॥१॥

सोनेका कोट अनेक रंगकी मणियोंसे विचित्र और सुन्दरता का घर, बहुत लम्बा चौड़ा अतिदृढ़ सघन बना हुआ, चौहट (चौरस्तों की बजार) हाट (दुकानें) और सुन्दर वीथी (गली) सुघट पुर अनेक प्रकार से बना है, हाथी, घोड़े, खच्चर, अथवा खेचर अर्थात् आकाश में चलने वाले पैदलोंका निकर अर्थात् समूह और रथोंके समूहों को कौन गिने ? अनेक रूप के अति बली निशाचरों के झुण्ड और सेनाका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥

छन्द-वन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं।
नर नाग सुर गन्धर्व कन्या रूप मुनिमन मोहहीं ॥
कहुँ मल्ल देह विशाल शैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन तर्जहीं ॥ २ ॥

बन (जंगल) बाग (बड़े बाग) उपवन (नगरके भीतर बाग) बाटिका (फूल बाग) सरोवर, कूप, बावड़ी शोभित हो रहे हैं। मनुष्य, नाग, देवता और गन्धर्वोंकी कन्याएँ रूप से मुनियोंके मनको मोहित करती हैं कहीं पर्वतके समान बड़े देहवाले मल्ल अतिबलसे गर्जते हैं अनेक अखाड़ोंमें भिड़ते हैं और अनेक भांतिसे एक दूसरे को ललकारते हैं ॥ २ ॥

छन्द–करियत्न भट कोटिन्ह विकट तनु नगर चहुँ दिश रक्षहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निशाचर भक्षहीं ॥
इहि लागि तुलसी दास इनकी कथा संक्षेपहि कही।
रघुवीर शर तीरथ शरीरन त्यागि गति पैहैं सही ॥ ३ ॥

भयंकर शरीर वाले करोड़ों योद्धा अनेक यत्न से नगरकी चारों ओर से रक्षा करते हैं कहीं कहीं भैंसे, मनुष्य, धेनु, गधे और बकरे दुष्टराक्षस भक्षण करते हैं। इसी कारण तुलसी-दास ने इनकी कथा संक्षेप से ही कही है कि रघुनाथजीके बाण रूपी तीर्थ में शरीर त्याग सुन्दर गति को अवश्य प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥

दोहा–पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार ॥
अति लघुरूप धरौं निशि, नगर करौं पैसार ॥ ३ ॥

पुरमें अनेक रखवारे देखकर कपि ने मनमें विचार किया कि रात के समय बहुत छोटा रूप बनाकर नगर में प्रवेश करूँ ॥ ३ ॥

मशक समान रूप कपि धरी ❋ लंका चले सुमिरि नर हरी ॥१॥
नाम लंकिनी एक निशिचरी ❋ सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥२॥

यहाँ मशक 'मच्छर' समान का अर्थ यह कि अपने कपिरूप को बहुत छोटा कर लिया मशक शब्द उपमामें पड़ा है, उपमा उपमेयमें बड़ा अन्तर रहता है, जैसे तालाबकी उपमा समुद्रसे मनुष्यकी इन्द्रसे दी जाती है और नरहरिको सुमिरके चले अर्थात् नरोंमें सिंह जो रघुनाथजी उन्हें अथवा नृसिंहजीका स्मरण किया। यदि कहो कि उपासनीयको त्याग रूपा-न्तरका क्यों स्मरण किया ? तो समाधान यह है कि रघुनाथजीका रूप दयामय है उन्हें उपद्रव करना है इस कारण करालरूप नृसिंहजीका स्मरण किया, अथवा नरस्थानमें रघुनाथ-जी और हरिस्थानमें सुग्रीव जी का स्मरण किया, क्योंकि ये दोनों इनके स्वामी हैं। चौथे यह कि रावणने अपनी मृत्यु नर और वानरके हाथ मांगी थी, सो उसी कारणसे नर वानरको स्मरण करके लंकामें चले। कोई मशक समानके अर्थमें बिलावके समान बड़ारूप धरा कहते हैं परन्तु यह संघटित नहीं होता। वास्तवमें यहां मशकका अर्थ बहुत छोटे रूपका है, जैसे आगे लिखा है–"अति लघु रूप धरेउ हनुमाना" और यदि मशकका का अर्थ मच्छरका धरें तो अँगूठी कहां रही यह शंका होगी इससे यह ठीक नहीं ॥१॥ लंकिनी नाम एक छटी हुई राक्षसी थी; सो महावीरजी को देख बोली–अरे मेरा तिरस्कार कर कहां जाता है ॥ २ ॥

जानेसि नाहिं मर्म शठ मोरा ❋ मोर अहार लंककर चोरा ॥३॥
मुष्टिक एक ताहि कपि हनी ❋ रुधिर वमत धरणी ठनमनी ॥४॥

और बोली-मूर्ख ! मेरे भेदको तू नहीं जानता कि लंकामें जितने चोर आते हैं, मैं उन सबको खा जाती हूँ ॥ ३ ॥ महावीरजीने उसको एक घूँसा मारा कि उसके मुखसे रुधिर बहने लगा, धरणीमें गिर पड़ी ॥ ४ ॥

पुनि सँभारि उठी सो लंका ❋ जोरि पाणि कर विनय सशंका॥५॥
जब रावणहि ब्रह्म वर दीन्हा ❋ चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा॥६॥

फिर वह लंकिनी सँभारकर उठी और हाथ जोड़कर सशंक विनती करने लगी । शंका इसी बातकी कि फिर न मार बैठें क्योंकि महावीरजी वहां खड़े थे, इस लिये कि या तो यह मर जाय या हमारी शरण हो, नहीं कोलाहल करनेसे पुकार पड़ जायगी ॥५॥ जब ब्रह्माजीने रावणको वर दिया तो चलते समय मुझसे जो कहा था सो पहचान लिया ॥ ६ ॥

बिकल होसि जब कपिके मारे ❋ तब जानेसु निशिचर संहारे ॥७॥
तात मोर अति पुण्य बहूता ❋ देखेउँ नयन राम कर दूता ॥८॥

जब कपिके मारनेसे तू व्याकुल हो जायगी तब जान लेना कि अब राक्षस मारे जायँगे। (जो वानर जानकीजीकी सुधिको आवेगा उसीके मारनेसे तू व्याकुल होगी) ॥ ७ ॥ हे तात ! मेरा बड़ा भारी पुण्य है नेत्रोंसे रघुनाथजीके दूतको देखा ॥ ८ ॥

दोह-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग ॥
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! सात लोक, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्य-लोक और अपवर्ग (मोक्ष)-:सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य, इन सबके सुखको तुला (तराजू) के एक ओर रखो तो भी सब मिलके उस सुखके बराबर नहीं होते जो लव भरके सत्सङ्गमें होता है। साठ लवका एक निमेष है, जितनी देरमें ऊपरका पलक नीचेके पलकको छूकर उठ जाता है उतने कालका नाम निमेष होता है, तुलाका भारी पल्ला धरतीपर झुक आता है, हलका ऊपर जाता है, इसी प्रकार सत्सङ्गकी मुख्यता धरणीपर है, स्वर्गादि सुख ऊँचे लोकमें हैं इससे हलके हैं ॥ ४ ॥

प्रविशि नगर कीजै सब काजा ❋ हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥१॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई ❋ गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥२॥

नगरमें प्रवेश कर और रघुनाथजीको हृदयमें रखकर सब काम कीजिये। वे सब काम ये हैं कि जानकीजीके मिला देनेकी सुग्रीवकी प्रतिज्ञा १, रघुनाथजीका कार्य २, सब वानरोंके श्रमकी सफलता ३, जानकीजीका विरह छुड़ाना ४, विभीषणका मनोरथ पूरा करना५, लंकादाह करके त्रिलोकीको आनंद देना ६; रघुनाथजीको हृदयमें धारण करनेको इस कारण

---

१. एक समय विश्वामित्र वसिष्ठ दोनोंमें सत्संग और तपके विषयमें विवाद हुए, वसिष्ठजी सत्संग और विश्वामित्रजी तपको बड़ा कहते थे, दोनों निर्णय करनेको शेषके पास गये और अपना वृत्तांत सुनाया। शेषजी बोले—यदि आपमें कोई पृथ्वीको धारण कर ले तो हम उत्तर दें, विश्वामित्र ने अपनी तपस्याका संपूर्ण फल लगा दिया परंतु शेषजीके कुछ हटते ही पृथ्वी गिरने लगी तब वसिष्ठजीने दो घड़ीके सत्संगका फल लगाया तो पृथ्वी स्थिर हो गयी अतः विश्वामित्र सत्संगको बड़ा मान मौन हो चले गये।

कहा कि जब यह इनको पुत्र कह चुकी तो उपदेश देना उचित हुआ। इस संदेहसे कि महावीरजीने लोककी मायारूपी तीन स्त्री विघ्नकारिणी स्वर्गकी सुरसा, पातालवासिनी सिंहिका भूतलवासिनी लंकिनीको जीत लिया, तो इससे इन्हें अहंकार न हो, इन तीनोंके मिलनेका कारण यह कि महावीरजी ब्रह्मचर्यव्रत धारण किये जानकीरूपी रामभक्तिको प्राप्त किया चाहते हैं सो उस व्रतमें प्रबल विघ्न स्त्रियोंका है दूसरा कारण यह कि रात्रिके समय लंकामें घर घर ढूँढ़ेंगे और लंका त्रैलोक्यकी सुन्दरी स्त्रियोंकी खानि है, ऐसा न हो कि इनका चित्त बिगड़ जाय और यह काम भूल जायें इससे रघुनाथजीको हृदयमें धारण करनेको कहा ॥१॥ उस रामभक्तको विष अमृत, शत्रु मित्र, समुद्र गोपद, अग्नि शीतल बन जाते हैं ॥ २ ॥

गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही * राम कृपाकरि चितवहिं जाही ॥३॥
अति लघु रूप धरे हनुमाना * पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥४॥

महाभारी सुमेरु पर्वत मिट्टीके कणके समान हो जाता है, जिसको रघुनाथजी कृपा दृष्टिसे देखते हैं, यह सब बातें महावीरमें हुईं। गरल सुधा यह कि इन्द्रने जब वज्र मारा तो मरे नहीं किंतु अमर हो गये, लंकिनी शत्रुरूप थी सो मित्र हो गयी, समुद्र गौका खुर हो गया, लंका जलानेमें अग्नि इनको शीतल होगी, रावण जो सुमेरुके समान था सो धूलका कण हो गया ॥ ३ ॥ महावीरजी बहुत छोटा रूप बनाके भगवान्‌का स्मरण कर नगरमें घुसे। अब इसलिये छोटा रूप धरके चले कि कोई देख न ले ॥ ४ ॥

मन्दिर मन्दिर प्रति करि शोधा * देखे जहँ तहँ अगणित योधा ॥५॥
गयउ दशानन मन्दिर माहीं *अति विचित्र कहि जात सो नाहीं॥६॥

प्रत्येक मंदिर महावीरने ढूँढ़ा जहाँ तहाँ अनेक योद्धा देखे ॥ ५ ॥ रावणके मंदिरमें गये वह ऐसा विचित्र है कि कहा नहीं जाता ॥ ६ ॥

शयन किये देखा कपि तेही * मन्दिर महँ न दीख वैदेही ॥७॥
शोचै लाग कहाँ अब जाऊँ * कहाँ दरश सीताकर पाऊँ ॥८॥

महावीरजीने उसे सोते देखा परंतु मंदिरमें जानकीजीको नहीं देखा यह शकुन महावीरको अच्छा हुआ कि शत्रुको सोता देखा। (आगे क्षेपक है) ॥ ७ ॥ सोचने लगे कि अब कहां जाऊं और कैसे जानकीजीका दर्शन पाऊं ? ॥ ८ ॥

बिनु देखे जो सीतहि जाऊँ * कैसे वदन प्रभुहि दिखराऊँ ॥९॥
जाम्बवन्त पूछहिं कुशलाता * नीकी अहहि जानकी माता ॥१०॥

जो जानकीजीको विना देखे जाऊँ तो प्रभुको कैसे मुख दिखलाऊँगा ॥ ९ ॥ जाम्बवंत जब कुशल पूछेंगे कि जानकी माता अच्छी है ॥ १० ॥

कवन उतर देहौं तिन जाई * पवनतनय मनमहँ पछताई ॥११॥
निशिचर घोर भयंकर रहहीं * सीताकी सुधि कोउ न कहहीं ॥१२॥

तब उन्हें जाकर क्या उत्तर दूँगा ? महावीरजी मनमें पछताये ॥ ११ ॥ बड़े बड़े घोर राक्षस रहते हैं कोई जानकीजीकी सुध नहीं बता सकते ? ॥ १२ ॥

पूछौं काहि कहौं केहि जाई * जनक सुता को देइ बताई ॥ १३ ॥

भवन एक पुनि दीख सुहावा * हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥१४॥

अब किसे जाकर पूँछू, कौन जानकीजीको बता देगा ? (यहां तक क्षेपक है) ॥ १३ ॥ और एक सुन्दर स्थान देखा जो राक्षसी-मंदिरसे भिन्न रचनाका था । अथवा एक हरिमंदिर विभीषणके निकट पृथक् था ॥ १४ ॥

दोहा-रामायुध अंकित गृह, शोभा बरणि न जाय ॥
नवतुलसीके वृन्द बहु, देखि हर्ष कपिराय ॥ ५ ॥

वह घर रामके आयुध (धनुषबाण) करके अंकित था, जिसकी शोभा नहीं कही जाती छोटे छोटे तुलसीके बिरवे देखकर कपिराज बड़े प्रसन्न हो मनमें कहने लगे ॥ ५ ॥

लंका निशिचर निकर निवासा * यहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ॥१॥
मनमहँ तर्क करन कपि लागे * ताही समय विभीषण जागे ॥२॥

लंकामें तो अनेक राक्षस रहते हैं यहां तो सज्जनोंका आना बहुत कठिन है,बसना केसे हुआ ॥१॥यह बात महावीरजी विचारने लगे कि कहीं छल तो नहीं है, उसी समय विभीषण जागे॥२॥

राम नाम तेहि सुमिरण कीन्हा *हृदय हर्ष कपि सज्जन-चीन्हा॥३॥
इहिसन हठि करिहौं पहिचानी * साधुते होय न कारज हानी ॥४॥

विभीषणने रामनाम स्मरण किया;महावीरजी उसे सज्जन जान हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए ॥३॥ इससे मैं निश्चय पहचान करूँगा, क्योंकि महात्माओंसे कार्यकी हानि नहीं हो सकती ॥४॥

विप्ररूप धरि वचन सुनाये * सुनत विभीषण उठि तहँ आये॥५॥
करि प्रणाम पूँछी कुशलाई * विप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥६॥

ब्राह्मणका रूप धरकर वचन सुनाया सुनते ही विभीषण वहां आये (ब्राह्मण इस कारण बने कि जो राक्षस होगा तो यह ब्राह्मणको न मानेगा) ॥ ५ ॥ प्रणाम करके कुशलता पूछी-हे ब्राह्मण ! अपना चरित समझाकर कहो ? ॥ ६ ॥

की तुम हरिदासनमें कोई * मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥७॥
की तुम राम दीन अनुरागी * आयहु मोहि करन बड़ भागी॥८॥

क्या तुम कोई नारायणके दासोंमें हो ? क्योंकि तुम्हें देख मेरे हृदयमें बड़ी प्रीति होती है ॥ ७ ॥ अथवा तुम दीन भक्तोंके ऊपर प्रेम करने वाले श्रीरामचन्द्र ही हो, मुझे बड़भागी करनेको आये हो ? ॥ ८ ॥

दोहा-तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम ॥
सुनत युगल तनु पुलकमन, मगन सुमिरि गुणग्राम ॥ ६ ॥

तब हनुमानजीने रामचन्द्रजीकी कथा और अपना नाम कहा, वचन सुनते ही दोनोंका शरीर और मन पुलकित हो गया और रघुनाथजीके गुणग्राम सुमिरण कर मग्न हुए और बोले ॥६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी * जिमिदशनन्हमें जीभ विचारी ॥१॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा * करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥२॥

हे पवनपुत्र ! सुनो, हम इस प्रकार निर्वाह करते हैं जैसे दांतोंके बीचमें विचारी जीभ

निर्वाह करती है ॥१॥ हे तात ! कभी मुझे दीन अनाथ जानकर रघुनाथजी कृपा करेंगे ? ॥२॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं * प्रीति न पदसरोज मन माहीं ॥३॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता * बिनु हरिकृपा मिलहिंनहिं सन्ता॥४॥

हमारा तामसी शरीर साधन रहित था चरण कमलमें प्रीति नहीं थी इससे सन्देह था ॥३॥ परंतु हे महावीरजी ! अब मुझे भरोसा हुआ नारायणकी कृपाके विना संत नहीं मिलते ॥ ४ ॥

जौ रघुवीर अनुग्रह कीन्हा * तौ तुम मोहिं दरश हठि दीन्हा॥५॥
सुनहु विभीषण प्रभुकी रीती * करहिं सदा सेवकपर प्रीती ॥६॥

जो रघुनाथजीने अनुग्रह किया तो तुमने मुझे हठसे पुकार कर दर्शन दिया ॥५॥ महावीरजी बोले-सुनो विभीषणजी ! प्रभुकी यह रीति है कि सदा सेवक पर प्रीति करते हैं ॥ ६ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना * कपि चंचल सबही विधि हीना॥७॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा * ता दिन ताहि न मिलै अहारा॥८॥

तुम अपनेको तामसी कहते हो तो मैं क्या कुछ कुलीन हूँ, जातिसे बन्दर, चञ्चल सब प्रकारसे हीन हूँ ॥ ७ ॥ जो प्रातःकाल हमारा नाम ले उसे उस दिन भोजन न मिले ॥ ८ ॥

दोहा-अस मैं अधम सखा सुनु, मोहूँ पर रघुवीर ॥
कीन्ही कृपा सुमिरि गुण, भरे विलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे सखा ! मैं ऐसा नीच हूँ तो भी मेरे ऊपर रघुनाथजीने कृपा की है यह भगवान्के गुण स्मरण कर दोनों नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ७ ॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी * फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥१॥
इहि विधि कहत राम गुण ग्रामा * पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ॥२॥

जो जान बूझकर ऐसे स्वामीको बिसार कर इधर उधर भटकते फिरते हैं वे क्यों न दुःखी होंगे ? ॥ १ ॥ इस प्रकार रघुनाथजीके गुण समूह कहते सुनते वह विश्राम पाया जो अनिर्वाच्य अर्थात् कहनेमें न आवे ॥ २ ॥

पुनि सब कथा विभीषण कही * जेहि विधि जनक सुता तहँ रही॥३॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता * देखा चहौं जानकी माता ॥४॥

फिर वह सब कथा विभीषणने सुनायी कि जानकी यहां ऐसे रहती हैं, जैसे जनक अर्थात् पिताके घरमें पुत्री जहां तहां रहती हैं। अथवा जैसे जनकके यहां जानकी थीं वैसे यहां हैं अथवा जहां जानकी थीं वह स्थान बताया ॥ ३ ॥ तब महावीरजी बोले-सुनो भाई ! माता जानकीजीको मैं देखना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

युक्ति विभीषण सकल सुनाई * चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥५॥
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ * बन अशोक सीता रह जहवाँ ॥६॥

तब विभीषणने सब युक्ति सुनायी तो महावीरजी विदा होकर चले। विदा करनेसे विदित होता है कि अभी विभीषण इनका जाना नहीं चाहते थे परंतु यह हठकर चले ॥ ५ ॥ फिर वही रूप धारण करके (जो लंकामें प्रवेशके समय धरा था) हनुमानजी वहां गये जहां अशोकवाटिकामें जानकीजी रहती थीं ॥ ६ ॥

देखि मनहि मन कीन्ह प्रणामा * बैठे बीति जात निशि यामा ॥७॥
कृशतनु शीशजटा इक वेणी * जपत हृदय रघुपतिगुण श्रेणी ॥८॥

महावीरजीने देखकर मनही मनमें प्रणाम किया, जिस समय बैठे हैं एक प्रहर रात्रि बीती जाती थी; अथवा जानकीजीको बैठे २ दिन रात बीतती थी ॥ ७ ॥ जानकीजीका तनु दुर्बल शिरके बाल बँधकर एक वेणी हो गये थे, मनमें रघुनाथजीके गुणानुवाद जपती थीं ॥ ८ ॥

दोहा-निजपद नयन दिये मन, रामचरण महँ लीन ॥
परमदुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

नेत्रोंको अपने चरणोंकी ओर दिये, मन रामजीके चरणोंमें लीन किये बैठी थीं। भाव यह कि वियोगमें संयोग करनेवाले चरण हैं, ये चरण वहाँ जायँ या वे चरण यहाँ आवें। जानकीजीको इस प्रकारसे दीन देख महावीरजी परम दुःखी हुए ॥ ८ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने सुन्दरकाण्डान्तर्गत वि० वा०
पं० ज्वालाप्रसादजो मिश्रकृत-भाषाटीकायां प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

दोहा-यहि द्वितीय विश्राममें, महावीर सुखपाय ॥
जनकसुताकहँ रामकी, दीन्हीं वृत्ति सुनाय ॥ १ ॥

तरु पल्लव-महँ रहा लुकाई * करै विचार करौं का भाई ॥१॥
तेहि अवसर रावण तहँ आवा * संग नारि बहु किये बनावा ॥२॥

पेड़ोंके पत्तोंमें छिपे रहे और विचार करने लगे, क्या करूँ ? ॥ १ ॥ उसी समय शयनसे उठकर रावण वहां आया, संगमें अनेक स्त्रियाँ ऐसी थीं जो अपना शृङ्गार किये थीं ॥ २ ॥

बहुविधि खल सीतहिं समुझावा * साम दाम भयभेद दिखावा ॥३॥
कह रावण सुनु सुमुखि सयानी * मन्दोदरी आदि सब रानी ॥४॥

बहुत प्रकारसे दुष्टने जानकीजीको समझाया और साम (प्रीति करना), दाम (लोभ), भय (डर), भेद (आपसका बिगाड़) दिखाया ॥ ३ ॥ रावण बोला कि हे सुमुखि सयानी ! सुन्दर मुखवाली ! सुन, यह साम है; मन्दोदरी आदि सब रानी जितनी हैं ॥ ४ ॥

तव अनुचरी करौं प्रण मोरा * एकबार विलोकु मम ओरा ॥५॥
तृण धरि ओट कहति वैदेही * सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥६॥

उन सबको मैं तेरी दासी कर दूँगा, तू एकबार कृपादृष्टिसे मेरी ओर देख ले। यह भी विदित होता है कि रावण जानकीजीको अपना इष्ट मानता है सो अपने ऊपर अनुग्रहके निमित्त कहता है, क्योंकि हरण समयमें लिखा है कि "मनमहँ चरण वंदि सुख माना" फिर दूसरे भावसे नहीं कहना बनता ॥ ५ ॥ जानकीजीको आदिशक्ति जानकर सहायताके निमित्त कहता है; जानकी उपाय बताती हैं; जानकी तृणकी ओट करके बोलीं (पतिव्रता परपुरुषसे सम्भाषण करते समय कुछ ओटमें कर लेती हैं) अथवा तृणधर नाम पृथ्वीकी ओर मुखकर कहती हैं। अथवा तृण नाम घूँघटका भी है, यथा दो०-"मुख ढापन शारंग दहन, चन्द्र अँगौछा जौन। विनय करन अरुक्षय करन,तुलसी तृण है तौन॥"अथवा अपने प्राणोंको तृणके समान जानती हैं कि जैसे तृण तोड़ देते हैं वैसे मैं प्राणोंको छोड़ दूँगी। अथवा रघुनाथजीके

सम्मुख रावणको तृणवत् करके कहती हैं कि तू अवधिपति परम सनेही रघुनाथजीको स्मरण कर अथवा जानकीजी अवधपति दशरथजीके परम सनेही रघुनाथको स्मरण कर कहती हैं जैसे उन्होंने रघुनाथजीके वियोगमें शरीर त्याग दिया था उसी प्रकार मैं भी शरीर त्याग दूँगी ॥६॥

सुनु दशमुख खद्योत प्रकाशा * कबहुँकि नलिनी करहि विकाशा ॥७॥
अस मन समुझहु कहति जानकी * खल सुधि नहि रघुवीर-बानकी ॥८॥

हे रावण ! तू तो खद्योतके समान प्रकाशित है, क्या कहीं पटबीजनेके प्रकाशसे कमलिनी खिलती हैं, यह मेरी कमलिनीरूप आंखें रामरूप सूर्यको प्राप्त होकर खुलेंगी। इष्टका यह पक्ष है कि रावण तेरे कुलकमलको रामरूप भानु ही कृपा करके खिला सकते हैं-निस्तार सकते हैं विना रामकी कृपा मेरे खद्योतके प्रकाशसे कुछ भी न होगा ॥ ७ ॥ हे खल ! ऐसा मनमें समझ जैसा मैंने ऊपर कहा ! तुझे रघुवीरजीके बाणोंकी सुध नहीं है जिसके डरसे तू मुझे चोरीसे लेकर चला आया है। अथवा यह उसी राजा अजके कुलमें हैं जिनके बाणके डरसे तू लंकामें छिपा था वह कथा बालकाण्डमें लिख चुके हैं। कहीं "रघुवीर भानुकी" ऐसा पाठ है कि रघुनाथरूपी सूर्यकी तुझे खबर नहीं है। इष्टपक्षमें तुझे रघुवीरजीके बानकी सुध नहीं ? दासके दोषको न मानकर शीघ्र दयालु हो जाते हैं ॥ ८ ॥

शठ सूने हरि आनिसि मोहीं * अधम निलज्ज लाज नहि तोहीं ॥९॥

हे शठ ! जिस बाणके डरसे तू सूनेमें हर लाया है रे नीच निर्लज्ज ! तुझे लाज नहीं आती अथवा सूने-हरि अर्थात् विना रामके मेरे समीप आकर प्रार्थना करते तुझे लाज नहीं आती ॥९॥

दोहा-आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान ॥
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥ ९ ॥

अपने आपको पटबीजना और रघुनाथजीको सूर्यके समान यह कठोर वचन सुन रावण तलवार निकाल खिसियाकर बोला, इष्टपक्षमें जानकीजीको खद्योत समान रामको भानुसमान अपने हेतु कठोर समझा, इस कारण खिसियाकर और तलवार निकाल बोला, मैंने तो तेरे ही भरोसे रघुनाथजी से विरोध किया था ॥ ९ ॥

सीता तैं मम कृत अपमाना * कटिहौं तव शिर कठिन कृपाना ॥१॥
नाहित सपदि मानु मम बानी * सुमुखि होइ नतु जीवन हानी ॥२॥

हे सीता ! तूने मेरा निरादर किया, इस कारण मैं तेरा कठिन तलवारसे शिर काट लूंगा। इष्टपक्षमें यह कि जब मेरा अपमान करेगी तब अपना शिर काट लूँगा ॥१॥ हे सुमुखि ! इसलिये शीघ्र मेरी वाणी मान, नहीं तो जीवनकी हानि होती है। यह दोनों पक्षोंमें लगता है, तब जानकी बोलीं ॥ २ ॥

श्याम सरोज दाम सम सुन्दर * प्रभु भुज करिकरसम दशकंधर ॥३॥
सो भुज कण्ठ कि तव असि घोरा * सुनु शठ अस प्रमाण प्रण मोरा ॥४॥

हे रावण ! श्यामकमलकी मालाके समान सुन्दर हाथीके सूँड़के समान जो प्रभुकी भुजा हैं॥३॥ सो या तो वे भुजा मेरे कंठमें पड़ेंगी या तेरी तलवार। दूसरा अर्थ हे शठ, (कितव) चोर ? उन्हीं भुजाओंकी घोर तलवार तेरे कण्ठमें पड़ेगी; यहीं दृढ़ प्रतिज्ञा है। अथवा श्याम कमलकी

मालाके समान जो तेरे दशों शिर हैं उनको तोड़नेको प्रभुकी सुन्दर भुजाएँ हाथीकी शुण्डके समान होंगी और उन्हीं भुजाओंकी असि अर्थात् तलवार तव कंठ अर्थात् तेरे कंठमें लगेगी ॥ ४ ॥

चन्द्रहास हरु मम परितापं ❋ रघुपति विरह-अनल-संजातं ॥५॥
शीतल निशि तव असिवर धारा ❋ कह सीता हरु मम दुख भारा ॥६॥

हे चन्द्रहास तलवार ! रघुपतिके विरहरूपी अनलसे उत्पन्न हुए मेरे परितापको तू हर ले; वह इसके शिरको काट देनेसे जाता रहेगा । अथवा मेरा दुःख जो रघुपतिकी विरहाग्निसे उत्पन्न है सो तेरी चन्द्रहास तलवारको हर लेगा, तेरी यह तलवार प्रभुके सम्मुख कुछ काम न देगी ॥५॥ हे चन्द्रहास ! तेरी जो उत्तम धार है, सो तेरे नाम अर्थात् चन्द्रकिरणके अनुकूल रात्रिमें शीतलताको प्राप्त है उसे सीता कहती हैं कि मेरे दुःखको हर अथवा यह तलवार की धार शीतल निशिके समान है, सो मेरे दुःखको कहाँ हर सकती है ? ॥ ६ ॥

सुनत वचन पुनि मारन धावा ❋ मयतनया कहि नीति बुझावा ॥७॥
कहेसि सकल निशिचरी बुलाई ❋ सीतहि बहुविधि त्रासहु जाई ॥८॥

यह वचन सुनकर रावण फिर सीताके मारनेको दौड़ा; मन्दोदरी नीति कथन करके कि स्त्रीको मारना उचित नहीं है समझाया ॥ ७ ॥ तब सब राक्षसियोंको बुलाकर रावणने कहा कि जानकीजीको दुःख दिखाओ । दूसरा अर्थ यह है कि जानकीके यह वचन सुन (मार न) अपनेको मारा तो नहीं किंतु उनके डरसे (धावा) भागा, तब मन्दोदरीने समझाया कि इनकी और सेवा करो तो प्रसन्न होंगी तब रावणने राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि अब तुम सब अतित्रास अर्थात् कष्टसे जानकीजीकी सेवा करो; जो एक महीनेमें प्रसन्न न हुई तो तुम्हारा अपराध समझा जायगा और खड्गसे मार डालूँगा ॥ ८ ॥

मास दिवस महँ कहा न माना ❋ तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना ॥९॥

जो एक महीनेमें मेरा कहा नहीं माना तो मैं तुमको और सीता को खड्ग निकालके मार डालूँगा वा तुम्हें मारूँगा ॥ ९ ॥

दोहा-भवन गयउ दशकंध तब, यहां निशाचरि वृन्द ॥
सीतहिं त्रास दिखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ॥ १० ॥

तब रावण यह कहकर मंदिरमें चला गया, राक्षसियोंका झुण्ड अनेक प्रकारके भयंकर रूप धरकर जानकीजीको दुःख दिखाने लगा, अथवा ऐसे रूप धरती हैं जिससे दया आवे ॥१०॥

त्रिजटा नाम राक्षसी एका ❋ रामचरणरत निपुन विवेका ॥१॥
सबहिं बुलाय सुनायसि सपना ❋ सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥२॥

एक त्रिजटा नाम राक्षसी रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति करने वाली ज्ञानवती थी ॥ १ ॥ उसने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा-मैंने स्वप्न देखा है कि जानकीजीकी सेवा करके अपना हित करो ॥ २ ॥

सपने वानर लंका जारी ❋ यातुधान सेना सब मारी ॥३॥
खर आरूढ़ नगन दशशीशा ❋ मुंडित शिर खंडित भुजबीसा ॥४॥

स्वप्न में वानरने लंका जला दी है और राक्षसोंकी सब सेना मार दी ॥३॥ रावणको देखा है कि नंगे शिर गदहे पर चढ़ा हुआ शिर मुण्डा, बीसों हाथ टूटे हुए हैं ॥ ४ ॥

इहि विधि सो दक्षिण दिशि जाई * लंका मनहुँ विभीषण पाई ॥५॥
नगर फिरी रघुवीर-दुहाई * तब प्रभु सीतहि बोलि पठाई ॥६॥

इस प्रकारसे रावण दक्षिण दिशामें चला गया और लंकापुरीका राज्य मानों विभीषणको मिला ॥५॥ नगरमें रघुनाथजी की दुहाई फिर गई, तब रघुनाथजीने जानकीजीको बुला भेजा ॥ ६॥

यह सपना मैं कहौं विचारी * होइहि सत्य गये दिनचारी ॥७॥
तासु वचन सुनिके सब डरीं * जनक सुताके चरणन परीं॥८॥

गये दिन चारी अर्थात् दिन बीतने पर फिरने हारी निशाचरी मैं विचारकर कहती हूँ कि कुछ दिनों उपरांत ही यह स्वप्न सत्य होगा। अथवा हे राक्षसियो मैं विचारसे कहती हूँ कि यह स्वप्न चार दिन गये सत्य होगा अथवा दिन चारी (वानर) के यहाँसे जानेसे सिद्ध होगा ॥७॥ सब निशाचरी त्रिजटाके वचन सुनकर डर गयीं और जानकीजीके चरणोंमें पड़ी ॥८॥

दोहा-जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन शोच ॥
मास दिवस बीते मोहि, मारहि निशिचर पोच ॥ ११ ॥

तब वे राक्षसी जहाँ तहाँ चली गयीं तब जानकीजी मनमें सोच करने लगीं कि महीने उपरांत मुझे यह पोच राक्षस मारेगा, शोच इस बातका कि एक महीनेकी मृत्यु और हट गयी। अथवा राक्षसियोंको सीताका शोच है जो महीने भरमें कहा न माना तो रावण हमें मारेगा ॥११॥

त्रिजटा सन बोली कर जोरी * मातु विपति संगिनि तैं मोरी ॥१॥
तजौं देह करु वेगि उपाई * दुसह विरह अब सहा न जाई ॥२॥

सीता त्रिजटासे हाथ जोड़ बोली हे माता! तू मेरी विपत्तिमें संग देनेवाली है ॥१॥ अब शीघ्र उपाय कर कि मैं देह त्याग कर दूँ, यह कठिन वियोग दुःख नहीं सहा जाता ॥ २ ॥

आनि काठ रचु चिता बनाई * मातु अनल पुनि देहु लगाई ॥३॥
सत्य करहु मम प्रीति सयानी * सुनैको श्रवण शूलसम बानी ॥४॥

हे माता! काठ लाकर चिता बना दो; मैं उसमें बैठ जाऊँ फिर तुम आग लगा दो ॥३॥ हे सयानी! मेरी प्रीतिको तू सत्य कर, यह कानोंको शूलके समान रावणकी वाणी कौन सुने? अथवा रामके विमुख होनेसे रावणके वचन शूलके समान लगते हैं ॥ ४ ॥

सुनत वचन पदगहि समुझायसि * प्रभु प्रताप बल सुयश सुनायसि॥५॥
निशिन अनल मिलि सुनु सुकुमारी * अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥६॥

वचन सुनकर त्रिजटाने चरण पकड़ कर समझाया कि तुम मत दुःखी हो प्रभुका प्रताप और बल सुयश सुनाया कि जयंतके पीछे सीकका बाण रघुनाथजीने छोड़ा, उसका चौदह लोकमें कोई शरण दाता न हुआ, बल धनुष तोड़नेमें विख्यात है, सुयश यही है कि एक नारी व्रत ॥५॥ हे सुकुमारी सुन रात्रिमें आग नहीं मिलेगी ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी ॥ ६ ॥

कह सीता विधि भा प्रतिकूला * मिलिहि न पावक मिटिहि न शूला॥७॥
देखियत प्रगट गगन अंगारा * अवनि न आवत एको तारा ॥८॥

सीता बोली-विधाता प्रतिकूल है न अग्नि मिलेगी, न दुःख मिटेगा ॥७॥ आकाशमें अनेक अंगारे दीखते हैं परन्तु पृथ्वीमें कोई एक भी तारा नहीं आता ॥ ८ ॥

पावकमय शशि स्रवत न आगी ❋ मानहु मोहिं जानि हत भागी ॥९॥
सुनहु विनय मम विटपअशोका ❋ सत्यनाम करु हरु मम शोका ॥१०॥

चन्द्रमा भी अग्नियुक्त है परन्तु मुझे हतभागी जानकर अग्नि नहीं देता ॥ ९ ॥ हे अशोक वृक्ष तू मेरी विनय सुनकर अपना नाम सत्य करके मेरा शोक हर ॥ १० ॥

नूतन किसलय अनल समाना ❋ देहु अगिनि तनु करहु निदाना ॥११॥
देखि परम विरहाकुल सीता ❋ सो क्षण कपिहि कल्पसम बीता ॥१२॥

अग्निके समान लाल जो तेरे नवीन पत्ते हैं उनसे मुझे अग्नि दे तो मैं अपने शरीरका नाश कर दूँ ॥ ११ ॥ सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर वह क्षण महावीरजीको कल्पके समान बीता ॥ १२ ॥

सोरठा-कपि करि हृदय विचारि, दीन्ह मुद्रिका डारि तब ॥
❋ जनु अशोक अंगार, दीन्ह हर्षि उठि कर गहेउ ॥ २ ॥

तब महाबीरजीने हृदयमें विचार कर मुद्रिका डाल दी, मानो अशोक वृक्षने अंगार दी, सो जानकीजीने प्रसन्नतासे उठकर उसे उठा लिया ॥ २ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर ❋ रामनाम अंकित अति सुन्दर ॥१॥
चकित चितव मुद्रिक पहिचानी ❋ हर्षविषाद हृदय अकुलानी ॥२॥

तब मनोहर मुद्रिका देखी, अथवा अपनी मन हरनेवाली मुद्रिका देखी कि जिसके ऊपर सुन्दर रामनाम लिखा था ॥ १ ॥ चकित होकर देखने लगीं; मुद्रिका पहिचानी, प्रसन्नता हुई दुःख भी हुआ; मनमें व्याकुल हुई। हर्ष अँगूठी मिलनेका, विषाद इस बातका कि यहाँ कैसे आयी॥२॥

जीति को सकै अजय रघुराई ❋ मायाते असि रची न जाई ॥३॥
सीता मन विचार कर नाना ❋ मधुर वचन बोला हनुमाना ॥४॥

यह अँगूठी कैसे आयी ? रघुनाथजी तो अजेय हैं उन्हें कोई जीत नहीं सकता, फिर यह कैसे आयी ? और जो कहूँ कि माया है तो मायासे ऐसी बनायी नहीं जा सकती ॥ ३ ॥ सीता मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगीं, तब महावीरजी मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥

रामचन्द्र गुण वर्णन लागे ❋ सुनतहि सीताके दुख भागे ॥५॥
लागी सुनै श्रवण मन लाई ❋ आदिहुंते सब कथा सुनाई ॥६॥

महावीरजी रघुनाथजीके गुण वर्णन करने लगे, जिनके सुनते ही जानकीजीके दुःख भाग गये ॥ ५ ॥ कान और मन लगाकर सुनने लगीं । महावीरजीने आदिसे रामचन्द्रके जन्म व वन जाने तककी सब कथा सुनायी कि महाराज दशरथके कुमार वनमें आये, वहां रावणने जानकी हरण की, फिर खोजते हुए जटायुसे सुध पायी, फिर सुग्रीवको राज्य दे चारों ओर ढूँढ़नेको वानर भेजे हैं, मैं उन्हींसे अँगूठी ले चार सौ कोश सागर लांघकर यहाँ कलसे खोज रहा हूँ आज माताका दर्शन हुआ है । तब जानकीजी बोलीं ॥ ६ ॥

श्रवणामृत जेहि कथा सुनाई ❋ कहां सो प्रगट होत किन भाई ॥७॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ ❋ फिरि बैठी मन विस्मय भयऊ ॥८॥

जिसने कानोंको अमृतरूप कथा सुनायी सो कहाँ है ? हे भाई प्रकट क्यों नहीं होता ? ॥ ७ ॥ फिर जब महावीरजी पास चले गये तो तुरन्त जानकीजी पीठ फेरके बैठ गयीं और मनमें बड़ा विस्मय हुआ, कि यह रावणकी माया है तब महावीरजी बोले ॥ ८ ॥

रामदूत मैं मातु जानकी * सत्य शपथ करुणा निधानकी ॥९॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी * दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी॥१०॥

हे माता जानकी ! मैं ही रघुनाथजीका दूत हूँ करुणा सागरकी सत्य शपथ कर कहता हूँ ॥९॥ हे माता ! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ, रघुनाथने पहचानके लिये तुम्हें दी है ॥ १० ॥

नर वानरहिं संग कहु कैसे * कही कथा संगति भइ जैसे ॥११॥

जब जानकीजी बोलीं–नर और वानरोंकी संगति कैसे हुई ? तब महावीरजीने वह भी कथा सुनाई, जैसे सुग्रीवसे रघुनाथजीकी मित्रता हुई, वालिका वध और वानर सुधको गये ॥११॥

दोहा–कपिके वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास ॥
जाना मन क्रम वचन यह, कृपा सिन्धुकर दास ॥ १२ ॥

महावीरजीके यह प्रीतिके वचन सुनकर जानकीजीके मनमें विश्वास हुआ और जाना कि यह मन, वचन, कर्मसे रघुनाथजीका दास है ॥ १२ ॥

हरिजन जानि प्रीति अतिबाढ़ी * सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥१॥
बूड़त विरहजलधि हनुमाना * भयउ तात मो कहँ जलयाना ॥२॥

हरिका दास जानकर, बड़ी प्रीति बढ़ी नेत्रोंमें जल भर आया, पुलकावली (रोमराजी) शरीरमें खड़ी हो गयी ॥ १ ॥ विरहरूपी समुद्रमें डूबते हुए मुझे बचानेको हे तात पवन-पुत्र तुम जलयान (जहाज) हो गये ॥ २ ॥

अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी * अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥३॥
कोमल चित्त कृपालु रघुराई * कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥४॥

हे महावीरजी ! मैं बलिहारी जाती हूँ अब कुशल कहो कि लक्ष्मण सहित रघुनाथजी प्रसन्न हैं ॥ ३ ॥ वे तो कोमल चित्त और कृपालु हैं, हे महावीर ! उस कोमल चित्तमें किस कारण निठुराई धरी है ॥ ४ ॥

सहज बानि सेवकसुखदायक * कबहुँ कि सुरति करत रघुनायक ॥५॥
कबहुँ नयन मम शीतल ताता * होइहिं निरखि श्याम मृदुगाता ॥६॥

उनकी स्वाभाविक यह बान है सेवकको सुख देते हैं, भला कभी वे मेरी भी याद करते हैं ॥ ५ ॥ हे तात ! कभी मेरे नेत्र उस श्याम कोमल शरीरको देखकर शीतल होंगे ॥ ६ ॥

वचन न आव नयन भरि बारी * अहह नाथ मोहि निपट बिसारी ॥७॥
देखि परम विरहाकुल सीता * बोला कपि मृदु वचन बिनीता ॥८॥

आगे जानकीजीसे वचन नहीं आया; नेत्रोंमें जल भरकर कहने लगीं–अहा स्वामी ! मुझको बिलकुल ही विसार दिया ॥ ७ ॥ जानकीजीको इस प्रकार विरहसे अति व्याकुल देख महावीरजी विनययुक्त कोमल वचन बोले ॥ ८ ॥

मातु कुशल प्रभु अनुज समेता ❋ तव दुख दुखी सो कृपा निकेता ॥९॥
जननी जनि मानहुँ मन ऊना ❋ तुमते प्रेम रामकह दूना ॥१०॥

हे माता ! रघुनाथजी लक्ष्मणजी सहित कुशल हैं परन्तु कृपानिधि तुम्हारे दुःखसे दुःखी हैं ॥९॥ हे माता ! मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि मत करो, रघुनाथजीको तुमसे दुगुना प्रेम है ॥ १० ॥

दोहा—रघुपतिके सन्देश अब, सुनु जननी धरि धीर ॥
अस कहि कपि गद्गद भयउ, भरे विलोचन नीर ॥ १३ ॥

हे माता ! अब धैर्य धरकर रघुनाथजीका सन्देश सुनो, यह कह प्रेमसे महावीरजीका कंठ गद्गद हो गया (रुक गया) नेत्रोंमें जल भर आया, फिर बोले ॥ १३ ॥

राम कहेउ वियोग तव सीता ❋ मोकहँ सकल भये विपरीता ॥१॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृशानू ❋ कालनिशासम निशि शशि भानू ॥२॥

रघुनाथजीने कहा—हे सीता ! शीतल करनेवाली सब वस्तुएँ तेरे वियोगमें विपरीत हो गयीं जो शीतल थीं वे जलानेवाली हो गयीं ॥ १ ॥ वृक्षोंके नये कोमल पल्लव अग्निके समान लगते हैं; रात्रि कालरात्रिके समान, चन्द्रमा ज्येष्ठके सूर्यके समान लगता है ॥ २ ॥

कुवलय विपिन कुन्तवन सरिसा ❋ वारिद तप्त तेल जनु बरिसा ॥३॥
जेहि तरु रहौं करत सो पीरा ❋ उरग श्वाससम त्रिविध समीरा ॥४॥

कमलोंका वन बरछियोंके समान लगता है, बादल मानों तप्त तेल बरसाते हैं ॥३॥ जिस वृक्षके नीचे जाकर रहता हूँ सो दुःख देता है, शीतल मंद सुगंध पवन सर्पके श्वासके समान लगता है ॥ ४ ॥

कहेहु ते कछु दुःख घटि होई ❋ काहि कहौं यह जान न कोई ॥५॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ❋ जानत प्रिया एक मन मोरा ॥६॥

कहनेसे कुछ दुःख घट जाता है पर किससे कहूँ ? इस दुःखका कोई जाननेवाला नहीं अर्थात् ऐसा दुःख किसीको भी न पड़ा ॥ ५ ॥ हे प्यारी ! मेरे और तेरे प्रेमके तत्त्वको केवल एक मेरा मन जानता है ॥ ६ ॥

सो मन सदा रहत तोहिं पाहीं ❋ जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥७॥
प्रभु संदेश सुनत वैदेही ❋ मगन प्रेमतनु सुधि नहिं तेही ॥८॥

सो वह मेरा मन सदा तेरे पास रहता है, तेरी प्रीतिका रस जो विरह दुःख है उसको मेरा यही तनु-जिसमें वह है, जानता है ! अथवा इतनेमें ही प्रीतिका रस जान लेना ॥७॥ प्रभुका सन्देश सुनते ही जानकीजी प्रेममें मग्न हो गयीं; शरीरकी सुध न रही ॥ ८ ॥

कह कपि हृदय धीर धरु माता ❋ सुमिरि राम सेवक सुखदाता ॥९॥
उर आनहु रघुपति-प्रभुताई ❋ सुनि मम वचन तजहु कदराई ॥१०॥

महावीरजी बोले-हे माता ! मनमें धैर्य धरो, सेवकोंके सुखदायक रघुनाथजीका स्मरण करो ॥९॥ रघुनाथजीके सामर्थ्यको हृदयमें धारण करो, मेरे वचन मान व्याकुलता छोड़ दो ॥१०॥

दोहा-निशिचरनिकर पतंग सम, रघुपति बाण कृशानु ॥
जननी हृदय धीर धरु, जरे निशाचर जानु ॥ १४ ॥

राक्षसोंका समूह पतंगके समान है, रघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं, माता ! हृदयमें धीरज धरो; राक्षसोंको भस्म हुए जानो, (महावीरजीने राक्षसोंका जलाना मनमें निश्चय कर लिया था) ॥ १४ ॥

जो रघुवीर होत सुधि पाई * करते नहिं विलम्ब रघुराई ॥१॥
राम बाण रवि उदय जानकी * तम वरूथ कहँ यातुधानकी ॥२॥

जो रघुनाथजीको तुम्हारे यहां होनेकी खबर होती तो रघुनाथजी देर न करते ॥ १ ॥ हे जानकीजी ! रघुनाथजीके बाण सूर्यके समान प्रकाशवाले हैं उनके सामने राक्षसोंका समूह-रूपी अँधेरा नहीं ठहरता सो अब सूर्य उदय हुआ ही चाहता है ॥ २ ॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई * प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई ॥३॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा * कपिन सहित ऐहैं रघुवीरा ॥४॥

माता!मैं तुम्हें अभी लिवा जाता परन्तु रघुनाथजीकी दुहाई कर कहता हूं मुझे सब बातकी आज्ञा नहीं है ॥३॥माता ! अब कुछ दिन धैर्य धारण करो,कपियों सहित यहां रघुनाथजी आवेंगे॥४॥

निशिचर मारि तुम्हें लइ जैहैं * तिहुँपुर नारदादि यश गैहैं ॥५॥
हैं सुत कपि सब तुमहिं समाना * यातुधान भट अति बलवाना ॥६॥

राक्षसोंको मारकर तुम्हें ले जायँगे, यह यश त्रिलोकीमें नारदादि गावेंगे ॥५॥ जानकीजी बोलीं—हे पुत्र ! जैसे तुम छोटे हो वैसे सब बन्दर क्या तुम्हारे ही समान हैं ? आकर क्या करेंगे क्योंकि राक्षस अतिबलवान् योद्धा हैं ॥ ६ ॥

मोरे हृदय परम सन्देहा * सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ॥७॥
कनक भूधराकार शरीरा * समर भयंकर अति रणधीरा ॥८॥

मेरे मनमें इस बातका बड़ा संदेह है सुनकर महावीरजीने देह प्रकट किया ॥ ७ ॥ सोनेके पर्वतके आकारका बड़ा भारी देह युद्ध करनेवालेको डरानेवाला अति बलवान् शरीर हुआ॥८॥

सीता मन भरोस तब भयऊ * पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ ॥९॥

तब सीताजीके मनमें भरोसा हुआ, महावीरजी फिर छोटा रूप बना लिया ॥९॥

दोहा-सुनु माता शाखामृगहिं, नहिं बल बुद्धि विशाल ॥
प्रभु प्रतापते गरुड़हिं, खाय परम लघु व्याल ॥ १५ ॥

हे माता ! शाखामृग जो वृक्षकी डालीपर बैठता फिरता है उसमें बुद्धिकी विशालता और बल कहां है ? छोटी २ डालियां उसका भार सँभालती हैं परन्तु प्रभुके प्रतापसे छोटासा सांप गरुड़को खा सकता है अर्थात् मैं चाहूं तो रावणको मार सकता हूँ ॥ १५ ॥

१. अथवा—यह भी एक दृष्टांत है कि एक समय गरुड़जीने एक छोटे सर्पके बच्चेको खानेकी इच्छा की, वह अपने प्राणोंकी रक्षाके निमित्त विष्णु भगवान्के सिंहासनके नीचे घुस गया । गरुड़जी सामने बैठे कि जब निकलेगा तो भक्षण करूंगा, भगवान्ने विचारा गरुड़ मेरे शरण आये को भी खाना चाहता है शरणागतिका निरादर करता है तब सर्प को वर दिया कि तू गरुड़के खानेमें समर्थ हो जब सर्प बली हो गरुड़पर झपटा तब पक्षिराज प्रार्थना करने पर छूटे ।

मन सन्तोष सुनत कपि बानी ✱ भक्ति प्रताप तेज बल सानी ॥१॥
आशिष दीन्हि रामप्रिय जाना ✱ होहु तात बलशील निधाना ॥२॥

महावीरजीकी वाणी जो भक्ति, प्रताप, तेज, और बलसे मिली हुई थी सुनकर जानकी जीके मनमें सन्तोष हुआ। भक्ति-"सुमिरि राम सेवक सुखदाता" प्रताप-"प्रभु प्रतापसे गरुड़हि, खाय परम लघु व्याल" तेज-"रामबाण रवि उदय जानकी" बल-"उर आनहु रघुपति प्रभुताई" वा "अबहि मातु मैं जाउँ लिवाई" ॥ १ ॥ रघुनाथजीका प्रिय जानकर आशीष दी, हे तात ! तुम बल और शीलके स्थान हो ॥ २ ॥

अजर अमर गुणनिधि सुत होहू ✱ करहिं सदा रघुनायक छोहू ॥३॥
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना ✱ निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥४॥

हे पुत्र ! तुम जरारहित, अमर और गुण निधान हो, रघुनाथजी सदा तुम्हारे ऊपर कृपा करते रहेंगे ॥ ३ ॥ सदा प्रभु कृपा करेंगे ऐसी वार्ता कानसे सुनकर महावीरजी अधिक प्रेममें छक गये ॥ ४ ॥

बार बार नायउ पद शीशा ✱ बोले वचन जोरि कर कीशा ॥५॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता ✱ आशिष तव अमोघ विख्याता ॥६॥

महावीरजी बार बार चरणोंमें शिर नवाके हाथ जोड़कर वचन बोले ॥ ५ ॥ हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपका आशीर्वाद अमोघ है कभी विफल नहीं होता यह बात विख्यात है ॥ ६ ॥

सुनिय मातु मोहिंअतिशय भूखा ✱ लागि देखि सुन्दर फल रूखा ॥७॥
सुन सुत करहिं विपिन रखवारी ✱ परम सुभट रजनीचर भारी ॥८॥

क्षुधार्त मातासे ही मांगता है, इस कारण कहते हैं कि माता ! ये सुन्दर फल जो वृक्षोंमें लगे हैं इन्हें देखकर भूख लग आयी है, तब जानकीजी बोलीं ॥ ७ ॥ हे पुत्र सुन इस वनकी रखवाली बड़े बड़े राक्षसोंके अधिपति करते हैं, तब महावीरजी बोले ॥ ८ ॥

तिनकर भय माता मोहिं नाहीं ✱ जौ तुम सुख मानहु मनमाहीं ॥९॥

हे माता ! मुझे उनका भय नहीं है, जो तुम मनमें सुख मानो ॥ ९ ॥

दोहा-देखि बुद्धिबल निपुन कपि, कहा जानकी जाहु ॥
रघुपति चरण हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥ १६ ॥

बुद्धि बलमें कपिको निपुण देखकर जानकी बोलीं-अच्छा हे पुत्र ! जाओ और रघुनाथजीके चरण कमल हृदयमें रखकर मीठे फल खाओ ॥ १६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद-निवासि पं० सुखानंद मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां सुन्दरकाण्डान्तर्गत द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा-यहि तृतीय विश्राममें, बाग अशोक उजारि ।
अक्षयवध करि लंकगढ़, बहुविधि दीन्हों जारि ॥ ३ ॥

चलेउ नाय शिर पैठेउ बागा ✱ फल खायउ तरु तोरन लागा ॥१॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे ✱ कछु मारे कछु जाय पुकारे ॥२॥

महावीरजी शिर नवाके चले और अशोक वाटिकामें प्रवेश किया; फल खाये वृक्ष तोड़ने लगे ॥ १ ॥ वहां बहुतसे योद्धा जो रक्षा करते थे, कुछ मार डाले गये और कुछ रावणके पास जाकर पुकारे ॥ २ ॥

नाथ एक आवा कपि भारी * तेहि अशोक वाटिका उजारी ॥३॥
खायसि फल अरु विटप उपारे * रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे ॥४॥

हे नाथ! एक बड़ा भारी बन्दर आया; उसने अशोक वाटिकाको उजाड़ दी यह शब्द रावणको अशुभ सुनाया; (क्योंकि जब अशोकवाटिका उजाड़ी तब शोकवाटिका लगी) ॥३॥ फल खाये और पेड़ उखाड़ डाले रक्षा करनेवालोंको मसल मसल कर पृथ्वीमें डाल दिया ॥ ४ ॥

सुनि रावण पठये भट नाना * तिनहिं देखि गरजा हनुमाना ॥५॥
सब रजनीचर कपि संहारे * गये पुकारत कछु अधमारे ॥६॥

सुनकर रावणने अनेक योद्धा अर्थात् अस्सी हजार किंकर भेजे, उन्हें देखकर हनुमानजी गरजे ॥ ५ ॥ महावीरजीने उन राक्षसोंका संहार कर दिया, कुछ अधमरोंने फिर जाकर पुकारकी ॥ ६ ॥

पुनि पठवा तेहि अक्ष कुमारा * चला संग लै सुभट अपारा ॥७॥
आवत देखि विटप गहि तर्जा * ताहि निपाति महाध्वनि गर्जा ॥८॥

फिर अक्षय कुमारको रावणने भेजा; वह अगणित योद्धा संग ले चला ॥७॥ महावीरजी उसे आता देख वृक्ष लेकर ललकारे और मारकर जमीनमें गिराकर महाध्वनिसे गर्जे ॥ ८ ॥

दोहा—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछुक मिलायसि धूरि
कछु पुनि जाय पुकारेउ, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥ १७ ॥

महावीरजीने शेषमेंसे किसीको मारा, किसीको मर्दन किया, किसीको धूलमें मिला दिया कुछ जाकर फिर पुकारे—महाराज ! वह मर्कट (मारनेवाला बन्दर) बड़ा बली है अक्षयको भी मार डाला ॥ १७ ॥

सुनि सुत वध लंकेश रिसाना * पठवा मेघ नाद बलवाना ॥१॥
मारेसि जनि सुत बांधेसि ताही * देखौं कीश कहां कर आही ॥२॥

पुत्रका मरण सुनकर रावणने रिसाकर बली मेघनादको भेजा और कहा ॥१॥ हे पुत्र ! उसे मारना मत; बांध लाना, देखूँ वह बन्दर कहांका है ॥ २ ॥

चला इंद्रजित अतुलित योधा * बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥३॥
कपि देखा दारुण भट आवा * कटकटाय गर्जा अरु धावा ॥४॥

अतुलित योद्धा इन्द्रजीत चला, भाईका मरना सुनकर बड़ा क्रोध उपजा ॥ ३ ॥ जब कपिने देखा कि कठिन योद्धा आया तब कटकटाकर गर्जा और दौड़ा ॥ ४ ॥

अति विशाल तरु एक उपारा * विरथ कीन्ह लंकेश कुमारा ॥५॥
रहे महाभट ताके संगा * गहि गहि कपि मर्देशि निज अंगा ॥६॥

महावीरजीने एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ और ऐसा मारा कि मेघनाथका रथ टूट गया, वह विरथ हो गया ॥ ५ ॥ इसके सङ्गमें भी अनेक योद्धा थे, उन्हें पकड़ पकड़कर महा-वीरजी अपने अंगसे मलने लगे ॥ ६ ॥

तिन्हैं निपाति ताहिसन बाजा * भिरे युगल मानहुँ गजराजा ॥७॥
मुष्टिक मारि चढ़ेउ तरु जाई * ताहि एक क्षण मूर्छा आई ॥८॥

उन सबको मारके महावीरजी फिर मेघनादसे भिड़े जैसे दो हाथी लड़ते हों ऐसा लड़ने लगे ॥ ७ ॥ तब महावीरजी उसको घूँसा मार पेड़पर जा चढ़े, उसे एक क्षण मूर्छा आगई ॥८॥

उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया * जीति न जाय प्रभञ्जन जाया ॥९॥

फिर उठकर मेघनादने अनेक माया की, परन्तु पवनपुत्रको न जीत सका ॥ ९ ॥

दोहा–ब्रह्म अस्त्र तेहिं साधेउ, कपि मन कीन्ह विचार ॥
जौ न ब्रह्मशर मानउँ, महिमा मिटै अपार ॥ १८ ॥

मेघनादने ब्रह्म अस्त्र साधा, तब कपिने मनमें विचार किया कि जो मैं इस बाणको नहीं मानूँगा तो ब्रह्माकी अपार महिमा मिट जायगी और जो ब्रह्माने नर वानरके हाथ रावणकी मृत्यु कही है वह भी मिट जायगी ॥ १८ ॥

ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा * परतिहु बार कटक संहारा ॥१॥
तेहि जाना कपि मूर्छित भयऊ * नागफांस बाँधेसि लेइ गयऊ ॥२॥

मेघनादने ब्रह्मबाण महावीरजीको मारा तब इन्होंने गिरते समय भी सेनाका संहार कर दिया ॥१॥ जब उसने महावीरजीको जाना कि मूर्च्छित हो गये तब नागफांसमें बांधकर ले गया ॥२॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी * भव बन्धन काटहिं मुनि ज्ञानी ॥३॥
तासु दूत बंधन तर आवा * प्रभु कारज लगि आपु बँधावा ॥४॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! जिसका नाम जपके ज्ञानी मुनि संसार बंधनको काटते हैं ॥३॥ उनका दूत क्योंकर बन्धनमें आ सकता है ? परन्तु प्रभुके कार्य निमित्त अपनेको बँधाया ॥४॥

कपि बंधन सुनि निशिचर धाये * कौतुक लागि सभा लइ आये ॥५॥
दशमुख सभा दीख कपि जाई * कहि न जाय कछु असि प्रभुताई ॥६॥

कपिबन्धन सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुकके निमित्त सभामें लाये ॥ ५ ॥ रावणकी सभा महावीरजीने जाकर देखी, जिसकी प्रभुता कुछ कही नहीं जाती ॥ ६ ॥

कर जोरे सुर दिशिप विनीता * भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता ॥७॥
देखि प्रताप न कपि मन शङ्का * जिमि अहिगणमहँ गरुड़ अशङ्का ॥८॥

सब दिशाओंके देवता इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमादिक हाथ जोड़ विनीत भावसे खड़े भय-भीत हुए भृकुटी देखते हैं ॥ ७ ॥ यह प्रताप देखकर भी महावीरजीके मनमें शंका नहीं हुई; जैसे सर्पोंके समूहमें गरुड़ निःशंक रहता है इसी प्रकार स्थिर हुए ॥ ८ ॥

दोहा-कपिहि विलोकि दशानन, बिहँसा कहि दुर्बाद ॥
सुत वध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥ १९ ॥

महावीरजीको देखकर रावण दुर्वाक्य कहकर हँसा, पुनः पुत्रके मरणकी सुध करके दुःखी हुआ ॥ १९ ॥

कह लंकेश कवन तैं कीशा * केहिके बल घालेसि वन खीशा ॥१॥
कीधौं श्रवण सुने नहिं मोहीं * देखौं अति अशङ्क शठ तोहीं ॥२॥

रावण बोला अरे वानर ! तू कौन है ? तुझे किसका बल है, जो वनको उजाड़ दिया ? ॥ १ ॥ अरे शठ ! तू जो ऐसा कर्म करके अति निःशंक दिखलाई देता है सो क्या तूने कानोंसे मेरा नाम नहीं सुना ? ॥ २ ॥

मारे निशिचर केहि अपराधा * कहु शठ तोहि न प्राण की बाधा ॥३॥
सुनु रावण ब्रह्माण्ड निकाया * पाय जासु बल विरचति माया ॥४॥

तूने किस अपराधसे राक्षसोंको मारा ? कह मूर्ख !तुझे क्या प्राणोंकी बाधा नहीं अथवा हम तुझे न मारेंगे; तू सत्य कह ॥ ३ ॥ (रावणके प्रश्न संक्षेपसे पंडिताई युक्त हैं, अब महावीरजी उत्तर देते हैं-महावीरजीका उत्तर विलोम है, पहले जिसका बल है उसको बताते हैं और अपने उत्तरमें रावणका बल तोड़ते हैं, रावणको अपनी लंकापुरीकी रचनाका घमंड है) महावीरजी कहते हे । हे रावण सुन ! जिनका बल पाकर माया अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना करती है ॥ ४ ॥

जाके बल विरंचि हरि ईशा * पालत सृजत हरत दशशीशा ॥५॥
जा बल शीश धरत सहसानन * अण्डकोश समेत गिरि कानन ॥६॥

हे दशानन ! जिनके बलसे ब्रह्मा सृष्टिको उत्पन्न करते हैं विष्णु पालन करते हैं शिव संहार करते हैं (तुझे तो अपने परिवारके उत्पन्न करने, पालने, शत्रुसंहार करनेका तुच्छ अभिमान है) ॥ ५ ॥ (जो तुम्हें दशशिर होने तथा कैलाश पर्वतका उठानेका घमंड है तो सुनो) जिनके बलसे सहस्र मुखवाले शेष पहाड़ वन सहित इस ब्रह्माण्डको शिरपर धारण करते हैं ॥ ६ ॥

धरै जो विविध देह सुर त्राता * तुमते शठन सिखावन-दाता ॥७॥
हर कोदण्ड कठिन जेइ भञ्जा * तोहि समेत नृपदल मदगञ्जा ॥८॥

जो तू कहे कि वे देह नहीं धरते सो तेरे समान अनेक शठोंके सिखाने और देवताओंकी रक्षा करनेको अनेक देह धरते हैं ॥ ७ ॥ जो तू कहे कि इस समय कहां हैं ? तो वे ही हैं, जिन्होंने शिवजीका धनुष तोड़ा, वह ऐसा कठिन धनुष था कि जिसने तुझ समेत राजाओंके समूहके मदको नष्ट कर दिया है ॥ ८ ॥

खर दूषण विराध अरु बाली * वधे सकल अतुलित बलशाली ॥९॥

उन्होंने साधारण शत्रुको नहीं मारा किन्तु खर दूषण, विराध वाली इन सब महाबलियोंका नाश किया ॥ ९ ॥

दोहा-जाके बल लवलेशते, जितेउ चराचर झारि ॥
तासु दूत हौं जाहिकी, हरि आनेउ प्रिय नारि ॥ २० ॥

और तू अपने मनको तो देख; कि उनके लवलेशके बलसे जो शंकर हैं उनकी प्रसन्नता का तू किंचित् लेश बल पाया है, जिससे समस्त चराचरको जीत लिया है, वा जिनके लेश बलसे सबको जीता है सो मैं ऐसे बलवान्‌का दूत हूँ तू उन्हींकी स्त्रीको हर लाया है इस कारण मैं आया हूँ ॥ २० ॥

जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई ❋ सहसबाहु सन परी लड़ाई ॥१॥
समर बालिसन करि यश पावा ❋ सुनि कपि वचन बिहँसि बहरावा ॥२॥

तुम कहते हो कि मुझे नहीं सुना, मैं तुम्हारी प्रभुताको जानता हूँ, तुम्हारी लड़ाई सहसबाहु से हुई थी ॥१॥ जो कुछ वालिसे समर करके यश पाया है वह भी जानता हूँ, कपिके ये वचन सुनकर रावणने मनमें सोचा कि यह तो भेद खोल देता है तब हँसके बहला दिया ॥ २ ॥

खायउँ फल मोहि लागी भूखा ❋ कपि स्वभावते तोरेउँ रूखा ॥३॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी ❋ मारहिं मोहिं कुमारग गामी ॥४॥

भूख लगी थी इस कारण मैंने फल खाये, वानर स्वभावसे वृक्ष तोड़ डाले ॥३॥ हे स्वामी ! मैं तो अपने मार्गमें रहा, अपना शरीर सबको प्रिय होता है इस पर तुम्हारे कुमार्ग पर चलने वाले दूत मुझे मारने लगे। स्वामीपद हनुमान्‌जीने राजा जानकर कहा। अथवा हे खोटे मार्गमें चलनेवाले राक्षसोंके स्वामी ! देह सबको प्यारा होता है ॥ ४ ॥

जिन मोहिं मारा तेहि मैं मारा ❋ तेहिपर बाँधेउ तनय तुम्हारा ॥५॥
मोहिं न कछु बाँधेकर लाजा ❋ कीन्ह चहौं निज प्रभुकर काजा ॥६॥

जिसने मुझे मारा, मैंने उसे मारा, उसपर जिसने मुझे बांधा सो तुम्हारे पुत्र हैं अर्थात् यह तुम्हारेसे पुत्र नहीं अथवा इसे तुम्हारा पुत्र समझकर मैंने अपनेको बंधा लिया है ॥ ५ ॥ मुझे कुछ अपने बँधनेकी लाज नहीं है, मैं अपने स्वामीका कार्य करना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

विनती करौं जोरि कर रावन ❋ सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥७॥
देखहु तुम निज कुलहि विचारी ❋ भ्रम तजि भजहु भक्त भयहारी ॥८॥

हे रावण ! मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि मानको त्यागकर मेरी शिक्षा मानो। कोई सन्देह करे कि महावीरजीने हाथ जोड़कर विनती की ? तो यह अर्थ करना कि हे रावण ! मेरी शिक्षा सुनो नहीं तो (जोरकर) अर्थात् बलसे (विनती करौं) विना स्त्रीके कर दूँगा ॥ ७ ॥ तुम अपने कुलको विचार देखो कि ब्रह्मा के परपोते, पुलस्त्यके पोते, विश्रवाके बेटे हो तुम भ्रमको छोड़कर भक्तोंके भय हरनेवाले का भजन करो ॥ ८ ॥

जाके डर अति काल डेराई ❋ जो सुर असुर चराचर खाई ॥९॥
तासों वैर कबहुँ नहिं कीजै ❋ मोरे कहे जानकी दीजै ॥१०॥

देखो जिसके डरसे सुर असुर चराचरको खानेवाला काल भी बहुत डरता है ॥९॥ उनसे बैर कभी न करना, मेरे कहनेसे जानकी दे दो (यह शिक्षा महादेवजीके पक्षसे है) ॥ १० ॥

दोहा-प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणासिंधु खरारि ॥
गये शरण प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ॥ २१ ॥

जो दीनोंकी पालना करनेवाला रघुवंश है उसके ये मणि हैं कृपाके समुद्र हैं यद्यपि उन्होंने खरदूषण आदिको मारा है तथापि तू शरण जायगा तो तेरा अपराध क्षमा कर देंगे ॥ २१ ॥

राम-चरण-पंकज उर धरहू * लंका अचल राज्य तुम करहू ॥१॥
ऋषि पुलस्त्य यश विमल मयंका * तेहि शशिमहँ जनि होउ कलंका ॥२॥

रघुनाथजीके चरण कमल हृदयमें धारण कर तुम लंकामें अचल राज्य करो ॥ १ ॥ पुलस्त्य ऋषिका जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल यश है, तुम यशरूप चन्द्रमामें कलंक मत हो॥२॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा * देखु विचारि त्यागि मद मोहा ॥३॥
वसन हीन नहिं सोह सुरारी * सब भूषण भूषित वर नारी ॥४॥

रामनामके विना वाणी नहीं शोभित होती, यह विचार देख मद, मोह त्याग दे ॥ ३ ॥ हे देवशत्रु ! स्त्रीको कैसे ही भूषण पहना दो परन्तु वह विना कपड़ोंके शोभित नहीं होती इसी प्रकार रामनाम विना कैसी भी वाणी हो शोभित नहीं होती ॥ ४ ॥

राम विमुख सम्पति प्रभुताई * जाय रही पाई बिनु पाई ॥५॥
शैल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं * वरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥६॥

रामके विमुख होनेसे यह संपत्ति और प्रभुताई जो तूने पाई है और पावेगा सो जाती रहेगी ! अथवा पाई जिसके पांव हैं हाथी घोड़े, बिनुपाई स्वारथ महल वस्ती आदि जो तू पा चुका है और पावेगा सो जाती रहेगी, अथवा संपत्ति और प्रभुताई जाती रहेगी और वह वस्तु पावेगा जो तूने नहीं पाई दुःख विपत्ति । अथवा रामजी एक पाई अर्थात् एकका अंक हैं उनके विना सब संपत्ति बिनु पाई शून्यके बराबर है विना अंकके शून्यकी संख्या नहीं ॥ ५ ॥ जैसे जिन नदियोंके मूल पर्वत नहीं हैं वे वर्षने के उपरान्त सूख जाती हैं इसी प्रकार तेरी संपत्ति नष्ट हो जायगी । कहीं 'सजल मूल' पाठ है उसका भी यही अर्थ है कि जिसमें जलका कारण नहीं है ॥६॥

सुनु दशकंठ कहौं प्रण रोपी * राम विमुख त्राता नहिं कोपी ॥७॥
शंकर सहस विष्णु अज तोही * राखि न सकहिं रामकर द्रोही ॥८॥

सुन रावण ! यह बात मैं प्रण रोपकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीसे जो पुरुष विमुख है उसकी कोई रक्षा नहीं करेगा ॥ ७ ॥ हजार शिवजी, ब्रह्मा और विष्णु भी जो रघुनाथजीसे तेरा वैर होगा तो तुझे नहीं रख सकेंगे ॥ ८ ॥

दोहा-मोहमूल बहुशूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान ॥
भजउ राम रघुनायकहि, कृपासिंधु भगवान ॥ २२ ॥

तुम्हारे हृदयमें जो अभिमानका अंकुर है उसका मूल मोह है तथा फल शूल है, उसे त्यागकर कृपासागर भगवान् रघुनाथजीका भजन करो ॥ २२ ॥

यदपि कही कपिअति हित बानी * भक्ति विवेक विरति नयसानी ॥१॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी * मिला हमहिं कपिगुरु बड़ ज्ञानी ॥२॥

यद्यपि महावीरजीने भक्ति ज्ञान वैराग्य नीतिसे सनी हितकारी वाणी कही, भक्ति "भजहु राम" विवेक "जाके डर अति काल डराई" विरत "त्यागहु तुम अभिमान" नीति यह प्रकरण ही है ॥१॥ तो भी महा अभिमानी हँसकर बोला हमें यह कपि गुरु बड़ा ज्ञानी मिला है ॥ २ ॥

मृत्यु निकट आई खल तोहीं * लागेसि अधम सिखावन मोहीं॥३॥
उलटा होइहि कह हनुमाना * मतिभ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ॥४॥

मूर्ख अब तेरी मृत्यु निकट आयी है जो मुझे नीच होकर शिक्षा करता है ॥ ३ ॥ महावीरजी बोले-इस वचनका उलटा होगा, मेरी तो नहीं तेरी मृत्यु आई है, जिसके निकट मृत्यु आती है उसकी मतिमें भ्रम होता है, सो तुझे भ्रम है मृत्यु तो तेरे निकट है और देखता है मेरे निकट ॥ ४ ॥

सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना * बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना ॥५॥
सुनत निशाचर मारन धाये * सचिवन सहित विभीषण आये ॥६॥

महावीरके वचन सुनकर रावण बहुत लज्जित हुआ और कहने लगा कि इस मूर्खके प्राण शीघ्र क्यों नहीं हरते ? ॥ ५ ॥ यह वचन सुनकर राक्षस मारनेको दौड़े, उस समय मंत्रियों सहित विभीषण आये ॥ ६ ॥

नाय शीश करि विनय बहूता * नीति विरोध न मारिय दूता ॥७॥
आन दण्ड कछु करिय गुसांई * सब ही कहा मन्त्र भल भाई ॥८॥

विभीषण चरणमें शिर नवाके अनेक विनती कर कहा-स्वामी ! नीतिके विरुद्ध है, दूतको मारना न चाहिये ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! इसे कुछ और दंड दीजिये, तब सब सभासद बोले तुम ठीक कहते हो ॥ ८ ॥

सुनत बिहँसि बोला दशकन्धर * अंग भंग करि पठवहु बन्दर ॥९॥

तब रावण सबकी एक सम्मति सुनकर हँसकर बोला कि इस बन्दरको अंग भंग करके छोड़ दो ॥ ९ ॥

दोहा-कपिकी ममता पूंछपर सबहिं कहा समुझाय ॥
तेल बोरि पट बांधि पुनि, पावक देहु लगाय ॥ २३ ॥

(तब सबसे यह बात समझाकर कही कि) बन्दरको अपनी पूँछ बहुत प्यारी होती है, इस कारण तेलमें कपड़ा भिगोगर पूँछमें आग लगा दो ॥ २३ ॥

पूँछहीन वानर तहँ जाइहि * तब शठ निज नाथहिं लै आइहि॥१॥
जिन्हकी कीन्हेसि बहुत बड़ाई * देखौं मैं तिन्हकी मनुसाई ॥२॥

जब वहां वानर पूँछहीन होकर जायेगा तब यह मूर्ख अपने स्वामीको ले आवेगा ॥ १ ॥ जिनकी इसने बड़ी बड़ाई की है मैं उनकी मनुसाई अर्थात् वीरता देखूँगा । कहीं 'प्रभुताई' पाठ है ॥ २ ॥

वचन सुनत कपि मन मुसुकाना * भइ सहाय शारद मैं जाना ॥३॥
यातुधान सुनि रावण वचना * लागे रचन मूढ़ सोइ रचना ॥४॥

यह वचन सुनकर महावीरजी मनमें मुसकाये और कहने लगे कि सरस्वतीने सहायताकी यह मैंने जाना ॥ ३ ॥ मूर्ख राक्षस तो रावणके वचन सुनकर वही रचना करने लगे (मूर्ख) इस कारण कहा कि अपना घर जलानेकी रचना करने लगे ॥ ४ ॥

रहा न नगर वसन घृत तेला ❋ बाढ़ी पूछ कीन्ह कपि खेला ॥५॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी ❋ मारहिं चरण करहिं बहु हाँसी ॥६॥

उस समय लंकाभरमें वस्त्र, घी, तेल, नहीं रहा, क्योंकि कपिकी पूँछ बढ़ गई किन्तु वे खेल समझने लगे। महावीरजीने खेल करके पूँछ बढ़ा दी ॥ ५ ॥ यह कौतुक देखनेको पुरवासी आये और महावीरजी को लात मार बहुत हँसी करने लगे ॥ ६ ॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी ❋ नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥७॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता ❋ भयउ परम लघुरूप तुरन्ता ॥८॥

ढोल बजाते हैं सब; ताली पीटते हैं, सारे नगरमें फिराकर फिर पूँछमें आग लगा दी॥७॥ महावीरजी अग्निको जलता देख बहुत छोटे रूप हो गये, जिससे सब बन्धन ढीले पड़कर छूट गये (ब्रह्मास्त्र तो पहले ही छूट गया था क्योंकि ब्रह्मास्त्रसे बांधनेके उपरांत फिर किसी वस्तुसे बांधो तो वह ब्रह्मास्त्र फिर नहीं रहता। महावीरजीको वर था, दो घड़ीसे अधिक इनको ब्रह्मास्त्र बाधा नहीं करेगा) ॥ ८ ॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी ❋ भईं सभीत निशाचर नारी ॥९॥

फिर महावीरजी कूदकर सोनेकी अटारीपर चढ़ गये, निशाचरोंकी स्त्रियां डर गयीं ॥९॥

दोहा–हरिप्रेरित तेहि अवसर, चलेउ पवन उनचास ॥
अट्टहास करि गर्जेउ, कपि बढ़ि लाग अकाश ॥ २४ ॥

हरि इच्छासे उस समय उनचासों (४९) पवन चलने लगे, अट्टहास करके महावीरजी गरजे और आकाशको बढ़ने लगे। अथवा बढ़के आकाशमें लग गये (आगे क्षेपक है) ॥२४॥

---

१. गोसाईंजीकृत कवित्त—' गाजो कपि गाज ज्यों विराजो ज्वाला जालयुत, वाजो वीर धीर अकुलाय उठो रावनो। धावो धावो धरो सुनि धाये यातुधान धारि, वारिधारा उलचें जलद ज्यों नशावनो। लपट झपट झहराने हहराने बात, भहराने भट परचो प्रबल परावनो। ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि, नाथ ना चलेगो बनअनल भयावनो ॥१॥ बड़ी विकराल देखि सुनि सिंहनाद उठचो, मेघनाद सहित विषाद करै रावनो। वेगिजीतौमारुत प्रताप मारतण्ड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो। तुलसी सयाने यातुधाने पछिताने कहैं, जाको ऐसो दूत सो तो स्वामी अबै आवनो। काहे की कुशल रोष राम वाम देवहूकोविषम बली सों वादि बैरको बढ़ावनो॥२॥हाटबाट कोट और अट्टनि अगार पौरि,खौरि खौरि, दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है। आरत पुकारत सँभारत न कोऊ काहु, व्याकु ल, जहांसों तहां लोग चले भागि हैं। वालधी फिरावै वार वार झहरावै झरैं बूदियांसी लंक पवि लाय पागि पागि है। तुलसी विलोकी अकुलानी यातुधानी कहैं, चित्रहूंके कपिसों निराचर न लागि हैं ॥३॥ लागि लागि आगि भागि भागि चले जहां तहां, धायको न माय बाप पूतन सँभारहीं। छूटे वार बसन उघारे धूम धुन्ध अन्धे कहैं वारे बूढ़े वारि वारि बारहीं ॥ हय हिहिनात भागे जात घहरात गज, भारी भीर ठेलिपेलि रौंदि खौंदि डारहीं। नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति, तात तात तोसियत कोसियत झारहीं ॥४॥ लपट कराल ज्वाल जालमाह दशों दिशि, धूम अकुलाने पहिचाने कौन काहिरे। पानीको ललात बिललात जरे जात गात, परे पायमाल जात भ्रात तू निवाहिरे॥ प्रियांतू पराहि नाथनाथतूपराहि बाप बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहि रे। तुलसी विलोकि लोक व्याकुल बिहाल कहैं लेहि दशशीश अब बीस भुज चाहिरे ॥ ५ ॥ बीथिका बजारप्रति अटनिअगारे प्रति, पंवरि प्रगार प्रति वानरे विलोकिये। अधः उर्ध्व वानर विदिशिदिशिवानर हैं, मानों रह्यो जङ्गभरि वानर विलोकिये। मूंद आंखि हियेमें उघारे आंख आगे ठाढ़ो, धाव, जाय जहां तहां और कोऊ को किये। लेहु अब लेहु तब कोउ न सिखावों मानों कोई सतराय जाय जाहि जाहि रोकिये ॥६॥ पान पकवानविधि नामके समानो सिधो, विविध विधान धान वरत बखारहीं। कनक किरीट कोटि पलंग पिटारे पीठ काढ़त कहार सब भर भर भारहीं। प्रबल पावक बढ़े जहां काढ़े तहां ठाढ़े झपटलपट भरे भवन भंडारहीं। तुलसी अगार न पगार न बजार बचो हाथी हथियार जरे घोरे घुरसारहीं ॥ ७ ॥ कोपि दशकन्धर तब प्रलय पयोधि बोले रावण रजाय धाय आये यूथ जोरिकै। कह्यो लंकपति लंक बरत बुझावो बेगि बानर भगाय मारो महावीर बोरिकै ॥ भले नाथ नाय माथ चले पाथप्रद नाथ, बरसे मूसलधार जलवार बोरिकै। जीवनते जानि आगि चपरिचौगुनि लागि, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरिकै ॥ ८ ॥

छन्द-चढ़्यो फलांगि धाम लूम लामको उठायऊ।
मनो अकाशते नदी कृशानुको बहायऊ॥
कि लंक लीलनेको काल जीहसी पसारेहू।
किधौं अनी महान शूर सैफसी निकारेहू॥ ४॥

जिस समय महावीरजी फलांग मारकर धामपर चढ़े और लम्बी पूँछ उठायी, जो गूदड़ीकी लपेटसे बड़ी मोटी हो गयी इससे विदित होता था कि मानो आकाशमें अग्निकी नदी बहा दी है। अथवा लंकाके लीलनेको मानो कालने अपनी जीभ निकाली है, अथवा सेनाके किसी महान् शूरने सैफसी निकाली है, सैफ लम्बा हथियार होता है सो पटेबाज उससे खेलता है॥ ४॥

छन्द-फिराय लाब लाय ऐन मैनसे लगे बरै।
गयंद छोर बाजि छोर ऊँट छोरिये खरै॥
अनेक बाल बालिका सुतात मात बोलहीं।
बचाय लीजिये हमैं समै समान डोलहीं॥ ५॥

बार बार महावीरजी कामके समान मकानोंको जलाने लगे, लंका जलने लगी, स्थान भस्म होने लगे, कोई बोले-हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चरोंको खोल दो। अनेक बालक बालिकाएँ पिता माताको पुकारने लगे कि हमें बचाओ, इस प्रकार कहते फिरते थे॥ ५॥

छन्द-अनेक नारि भारि डिम्भ डिम्भ काढ़ि लावहीं।
अनेक डारि डारि वस्तु वारि लेन धावहीं॥
अनेक कन्त वीरते पुकारि बैन यों कहैं।
उठाय लेहु लाल माल-जाल दे परो तहैं॥ ६॥

अनेक नारियाँ चिल्लाती हुई बालकोंको निकालती हैं कोई चीजें छोड़ छोड़ जल लेने जाती हैं, अनेक स्त्रियाँ अपने कंत और वीरोंको पुकार कर इस प्रकार वचन कहती हैं-लालको उठा लो अर्थात् बालकोंको उठा लो और माल असबाब आदि वहीं पड़ा जल जाने दो॥६॥

छन्द-गिरे कँगूर टूरते तबै कहै मँदोदरी।
विहाय लोक लाज कानि भागती न क्यों अरी॥

इहां ज्वाल जरे जात उहां ग्लानि गरे गात सूख सकुचात सब कहत पुकार है। युगषट् भानु देखे प्रलय कृशानु देखे शेष मुख अनल विलोके बार बार है। तुलसी सुना न कान सलिल सर्पी समान अति अचरज कियो केशरी कुमार है। वारिद वचन सुनि धुनै शील सचिव सब, कहैं दशशीश ईश वामता विकार है॥९॥ पावकपवन पानी भानु हिमवान यम, काल लोक पाल मेरे डर डांवाडोल हैं। साहिब महेश सदा शंकित रमेश मोहि, महाताप साहस विरंचि लिये मोल हैं। तुलसी त्रिलोक आज दूजो न विराजे राज, बाजे बाजे राजनके बेटा बेटी बोल हैं। को है ईश नामको जो वाम होत मोइसे, को मालवान् रावरेकी वावरी सी बोल हैं॥१०॥ भूमि भूमिपाल व्याल पालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभट समाज हैं। कहे मालवान यातुधानपति रावरेको, मानहु अनाम आने ऐसे कौन आज है। राम कोह पावक समीर सीयस्वास कीश ईश वामता बिलोकि वानर से व्याज हैं। जारत प्रचार फेरि वारिसों निशंक लंक, जहां वांके वीर तोसे शूर शिरताज हैं॥११॥ हाट वाट हाटक पिघलि चलो घिसो घनो कनकवाहो लंक तालफल जायसी। नाना पकवान यातुधान बलवान सब पागि पागि ढेरी कीन्ह भली भांति भायसों। पाहुने कृशानु पकवानसों परोसो हनुमान सनमानकै जिमाये चितचायसों। तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहैं, बावरे सुरारि वैर कीन्हीं रामराय सों॥१२॥

अरे अकम्पनातिकाय कण्टकी महोदरम् ।
लिवाय लेहु अर्द्धगति पूत नाति सोदरम् ॥ ७ ॥

कंगूरोंको दूरसे गिरते देख मन्दोदरी बोली-अरी ! लोकलाजकी की कान छोड़कर भागती क्यों नहीं ? अरे अकंपन, अतिकाय, कंटकी, महोदर ! अधजले पूत, नाति, सहोदरोंको बुला लो, निकलो, बचाओ ॥ ७ ॥

छन्द-अनेक वार मैं कही बुझायहू विभीषणम् ।
न मान दाढ़िजारने कुठारवंश तीक्षणम् ॥
निकेत द्वार अर्ध ऊर्ध्व हाट बाटमें जहां ।
लुकाय जायँ नीर तीर कीश देखिये तहां ॥ ८ ॥

मैंने और विभीषणने अनेक बार समझाकर कहा कि हे दशानन ! कुलका नाश मत कर, परंतु उस दाढ़ीजार वंशके तीक्ष्ण कुठारने एक न मानी । बहुतेरे द्वार घरमें ऊँचे हाट बाटमें जहां जायँ वहां कपिको देखें, जलमें भी कपिको देखने लगे, जहां छिपें वहां ही कपिको देखें ॥ ८ ॥

छन्द-वधू जो कुम्भकर्णकी पसारि हाथ भाखिये ।
दुहाइ रामचन्द्र केरि मोर कन्त राखिये ॥
अनेक धाय धाय आय रावणं सुनायऊ ॥
विचारि वीर मेघनाथ से बली पठायऊ ॥ ९ ॥

कुम्भकर्णकी बहू हाथ जोड़कर बोली-मेरा पति सोता है, तुम्हें रघुनाथजीकी सौगन्ध जो मेरा घर जलाओ, बहुतोंने जा जाकर रावणसे यह समाचार कहा, उसने विचार कर मेघनादसे बलीको भेजा ॥ ९ ॥

छन्द-अनेक अस्त्र शस्त्र लाय आय मारने लगे ।
घुमाय दीन्हि बालधी पुकारि क्रूरसे भगे ॥
विशालज्वाल जानि कोपमेघ बोलियों कही ।
बुझाय देहु आगिरे बहाय कीशको सही ॥ १० ॥

वे राक्षस आ आकर अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे मारने लगे, महावीरजीने तनक पूँछ जो घुमाई तो सब क्रूर बालकोंकी तरह पुकारते भागे । तब विशाल अग्निकी ज्वाला जान रावणने क्रोधकर कहा मेघो ! तुम अभी जाकर लंका ठंडी कर दो; आग बुझा दो, कीशको बहा दो ॥ १० ॥

छन्द-भले सुनाय मेघ आय पाथ पुञ्ज छाड़ेऊ ।
यथा सनेह पाय चौगुनी कृशानु बाढ़ेऊ ॥
लगे जु अंग अग्निबाण प्राण ले भगे सबै ॥
निहारि रीति माल्यवान स्यान बोलियो तबै ॥ ११ ॥

मेघोंने आकर जल बरसाया, परंतु जैसे तेल पड़नेसे आग बढ़ती है ऐसे चौगुनी अग्नि बढ़ गयी जब राक्षसोंके अङ्ग अङ्गमें अग्निके बाण लगे तब सब प्राण ले भागे । यह दशा देख चतुर माल्यवान् बोला ॥ ११ ॥

छन्द-न आहि याहि अग्नि आहि ईशकी जु वामता ।
समीर श्वास सीयकी जु रामरोष मामता ॥
बुलाय कालते कह्यो लँगूर लाउ मारिकै ।
बटोरि भूत प्रेत यक्ष दण्ड चण्ड धारिकै ॥ १२ ॥

यह अग्नि नहीं, ईश्वर का क्रोध है, अथवा जानकीजीकी श्वास और रघुनाथजीका क्रोध है। तब रावण ने कालसे कहा-बन्दरको मारके ला, भूत, प्रेत, यक्षको साथ लेकर तीक्ष्ण दंड धारण करके जा ॥ १२ ॥

छन्द-विलोकि वातजात घात कीन्ह सैन तासुको ।
उठाय गालमें धरी परो खँभार जासुको ॥
समेत शम्भु इन्द्र वातजात पास आयऊ ।
सभीत पंकजासनादि बीनती सुनायऊ ॥ १३ ॥

जब काल पहुँचा तो महावीरजीने देखते ही उसकी सेना मार डाली और कालको उठाकर गालमें धर लिया तब काल बहुत व्याकुल हुआ । फिर शिवजी सहित इंद्र महावीरजीके पास आये और ब्रह्मादि देवताओंने भयभीत होकर विनती सुनायी ॥ १३ ॥

दोहा-देहु छाँड़ि यमराज कहँ, यही विनय इक मोरि ॥
परवश आयो लरन सुनि, दीन्ह गालते छोरि ॥ २६ ॥

और बोले कि यमराजको छोड़ दो एक यही हमारी विनय है, ये परवश होकर लड़नेको आये थे, यह सुनकर महावीरजीने यमराजको गालसे छोड़ दिया (इति क्षेपक) ॥ २६ ॥

देहविशाल परम हरुआई * मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि धाई ॥१॥
जरत नगर भये लोग विहाला * झपट लपट बहु कोटि कराला॥२॥

देह तो बहुत बड़ी थी, परंतु हलकी थी, सो एक स्थानसे दूसरे स्थानमें सहजसे दौड़के चढ़ जाते थे ॥ १ ॥ नगरके जलानेसे लोग बेहाल हो गये, अनेक प्रकारकी कराल लपटें करोड़ों निकलती हैं ॥ २ ॥

तात मात हा सुनिय पुकारा * इहि अवसर को हमहिं उबारा ॥३॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई * वानर-रूप धरे सुर कोई ॥४॥

हा तात ! हा मात ! मेरी पुकार सुनो, इस समय हमें कौन बचावे ? ॥३॥ कोई बोले कि हमने जो कहा था वह कपि नहीं है कोई वानर रूप धरे देवता है । (उसी समय जानकीजीने अग्निकी प्रार्थना की, महावीरजीको बाधा न हो; ऐसी प्रचण्ड अग्नि थी; परन्तु महावीरजीको जाड़ा लगता था) ॥ ४ ॥

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा * जरै नगर अनाथकर जैसा ॥५॥
जारा नगर निमिष इकमाहीं * एक विभीषणको गृह नाहीं ॥६॥

साधु श्रेष्ठ पुरुष महात्माके निरादरका यही फल होता है,जैसे अनाथकी तरह नगर जल रहा है । जो महावीरजीने कहा था-"मोरे कहे जानकी दीजै" सो रावणने न मानी ॥५॥ पलमात्रमें

नगर जला दिया परन्तु विभीषणका घर नहीं जलाया और कुम्भकर्ण सोता था, उसकी स्त्री के विनय करने पर उसका घर नहीं जलाया ॥ ६ ॥

ताकर भक्त अनल जेइँ सिरजा ❋ जरा न सो तेहि कारण गिरजा ॥७॥
उलटि पलटि लंका सब जारी ❋ कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥८॥

विभीषण उनका भक्त है, अग्नि जिसकी बनाई है भाई चारे का नाता हुआ, हे पार्वती ! इसी कारणसे नहीं जला ॥७॥ महावीरजीने उलट पलटके सब लंकापुरी जलाकर फिर समुद्रमें कूद पड़े, (कोई कहते हैं कि एक समय शनैश्चरकी दृष्टिसे लंकाकी दीवार काली पड़ गई; तब रावणने उसे दीवालके नीचे दबा दिया, जब लंकामें आग लगी तो सोना और भी अधिक चमका, तब महावीरजीसे देवताओंने कहा-महाराज ! शनैश्चरको दीवालके नीचेसे निकालो उनकी दृष्टिसे लंका काली पड़ जायगी, तब जलेगी। महावीरजीने दीवाल उलट शनिको निकाला, उनकी दृष्टिसे लंका काली पड़ गई, तब महावीरजी लंका जलाकर उसी दीवालके नीचे शनैश्चरको रख ज्योंका त्यों कर दिया और कहा--रघुनाथजी तुम्हारा उद्धार करेंगे कुछ दिन धैर्य धरो ऐसा कहा फिर वैसे ही दीवाल रख दी, इस कारण पलट शब्द कहा है, कि लंकाको उलट कर वैसे ही करके खूब जलाकर सागरमें कूद पड़े) ॥ ८ ॥

दोहा-पूँछ बुझाय खोय श्रम, धरि लघुरूप बहोरि ॥
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २६ ॥

पूँछ बुझाय, श्रम खोकर फिर छोटा रूप बना हाथ जोड़कर जानकीजीके सम्मुख खड़े हुये ॥२६॥

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा ❋ जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥१॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ ❋ हर्ष समेत पवन सुत लयऊ ॥२॥

और बोले-माता तुम भी कोई मुझे चिन्हारी दो, जैसे रघुनाथजीने मुझे आपके निमित्त दिया था ॥१॥ तब जानकीजीने चूडामणि उतार महावीरको दी, उन्होंने प्रसन्न हो ग्रहणकी ॥ २ ॥

कहेउ तात अस मोर प्रणामा ❋ सब प्रकार प्रभु पूरण कामा ॥३॥
दीन दयालु विरुद सम्भारी ❋ हरहु नाथ मम संकट भारी ॥४॥

हे तात ! प्रणाम कहना; आप सब प्रकारसे पूर्ण काम हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ ! आप दीन दयालु हो; यह बिरद सँभालकर भारी संकट हरो ॥ ४ ॥

---

१. जिस समय महावीरजीने लंका दाह किया था उस समय लंकाकी गलियोंमें सुवर्ण वहने लगा था, कारण यह है कि क्षीरसागर में भी एक त्रिकूट पर्वत है उसके बहुत ऊँचे चांदी सोने और लोहेके तीन शृङ्ग हैं, उस पर्वत में एक वरुणका क्रीड़ा सरोवर है, उसमें एक कच्छप रहता था, एक दिन हाथियों का राजा उस स्थानपर जल पीनेको आया और कच्छपने उसे पकड़ा दोनों बहुत दिन तक युद्ध करते रहे, उधरसे गरुड़जीका आगमन हुआ उन्होंने दोनों पंजोंमें दोनोंको पकड़ लिया और ले उड़े, आगे चलकर एक कई योजनका जांबूनदका वृक्ष देखा, उसके ऊपर ज्योंही गरुड़जी बैठे उसकी शाखा टूट गई उसमें नीचे को मुख किये साठ हजार बालखिल्य तप करते थे उन्हें देख शाप के भयसे गरुड़ने चोंचमें उस शाखाको भी धारण किया और आकाश मार्गमें जाकर कश्यपसे कहा मुझे शुद्ध भूमि बताओ, जहां में भोजन करूं ? कश्यपजी बोले– सागरमें सौ योजन पर लंकानाम शुद्ध भूमि है वहां तुम भोजन करो। यह पिताके वचन सुन गरुड़जी लंकामें आये और वहां शाखा स्थापितकर हस्ती और कच्छपका भोजन किया उन दोनों की अस्थियों के ऊपर लंकामें तीन शृंङ्ग हुए वही लंकामें त्रिकूट पर्वत हुआ, वहीं शृंगोंपर गरुड़जीने वहां कई योजनकी शाखा स्थापित की थी और फिर अमृत लेने चले गये बालखिल्य भी तप करके विष्णु लोकको चले गये। उस शाखापर बहुत मिट्टी आदि पत्थररूप होकर जम गई थी, उसे राक्षसोंने न जाना लंकामें अग्नि लगनेसे उसी शाखा का सुवर्णमयरस बहने लगा जिससे लंकाकी भूमि सुवर्णकी हो गई, जम्बूनदके फलों से सोना होता है यह प्रसिद्ध है।

तात शक्रसुत-कथा सुनायहु * बाण प्रताप प्रभुहिं समुझायहु ॥५॥
मास दिवस महँ नाथ न आवैं * तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावैं॥६॥

हे तात ! जयन्तकी कथा सुनाना यह भी चिह्नरूप थी, क्योंकि रघुनाथजी और जानकीजीके सिवाय और कोई इस भेदको नहीं जानता था और बाणका प्रताप समझाना कि (सींकके बाणसे त्रिलोकीमें जयन्तको ठौर नहीं रहा था, अब रावण कैसे बचा है ?) ॥५॥ स्वामी एक मासमें न आयेंगे तो फिर मुझे जीती नहीं पावेंगे ॥ ६ ॥

कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना * तुमहूँ तात कहत अब जाना ॥७॥
तुमहि देखि शीतल भइ छाती * पुनि मो कहँ सोइ दिन सोइ राती॥८॥

कहो महावीरजी ! किस प्रकारसे अपने प्राण रखूँ अब तुम भी जानेको कहते हो ॥ ७ ॥ तुम्हें देखकर छाती ठंढी हुई थी, परंतु तुम्हारे विना फिर उसी प्रकार दिनरात बीतेंगे ॥ ८ ॥

अथ क्षेपक

दोहा-जिमि मणिबिनु व्याकुल भुजग, जलबिनु व्याकुल मीन ॥
तिमि देखे रघुनाथ बिनु, तलफत हौं मैं दीन ॥ १ ॥

जैसे मणिके विना सर्प व्याकुल रहता है, जलके विना मछली दुःखी रहती है, वैसे ही मैं रघुनाथजीके विना देखे दुःखी हूँ ॥ १ ॥

दोहा-कब धौं विधि पहुँचइहैं, फिरि कोशलपुर तात ॥
भरत शत्रुहन लोग सब, कब लहिहैं मुद मात ॥२॥

हे महावीर ! न जाने विधाता फिर कब अयोध्यामें पहुँचावेगा ? कब माता सहित भरत शत्रुघ्न और सब लोग आनन्द पावेंगे ॥ २ ॥

दोहा-ह्वैहैं मंगल काज सब, पुजिहैं याचक काम ॥
नखशिख कब अवलोकिहौं, रघुपति छबि अभिराम ॥ ३ ॥

कब मङ्गल काज होंगे ? और कब याचकोंके कार्य पूरे होंगे ? कब श्री रामचन्द्रजीके नखसे शिख तक मनोहर छबि देखूँगी ? ॥ ३ ॥

दोहा-शीशमुकुट मणिगण जटित, श्रवणन कुण्डल लोल ॥
जगमगात कब देखिहौं, टोपी दिये अमोल ॥ ४ ॥

वह कौनसा दिन होगा जब मैं श्रीरामचन्द्रजीको मणियोंसे जटित मुकुट शिर पर धरे, कानोंमें कुण्डल हिलते, जगमगाती अमोल टोपी दिये देखूँगी ? ॥ ४ ॥

दोहा-अलकैं सींची अतरसों, निकट कपोलन मुक्त ॥
भरि लोचन कब देखिहौं, कुसुम कलिन-संयुक्त ॥ ५ ॥

सुगन्धसे सींची हुई, कपोलोंके निकट छुटी हुई जिनमें फूलोंकी कली लगी हुई ऐसी अलकें नेत्र भरके मैं कब देखूँगी ? ॥ ५ ॥

दोहा–भाल तिलक भूषित सुभग, भृकुटी धनु अनुहारि ॥
भूरिभाग्य कब देखिहौं, नयनन पलक बिसारि ॥ ६ ॥

माथे ऊपर सुन्दर तिलक दिये, धनुषके समान भौंहें, बड़ भागिनी मैं नेत्रोंके पलक विसार कर उन्हें कब देखूँगी ? ॥ ६ ॥

दोहा–चञ्चल चारु विशाल शुभ, लोचन मोचन मान ॥
चितवत दिशि कब देखिहौं, मनको करि कुरबान ॥ ७ ॥

बड़े चञ्चल, सुन्दर शुभदायक, मानके दूर करनेवाले (हमारी) तरफ देखते हुए स्वामीके नेत्रोंकी ओर मनको बलिहारी कर मैं कब देखूँगी ? ॥ ७ ॥

दोहा–कीर तुण्डसम नासिका, लटकनकी छबि भूरि ॥
कब चकोर सम देखिहौं, मुखमयङ्क तृण तूरि ॥ ८ ॥

तोतेके चोंचके समान जिनकी नासिका उसमें अति शोभायमान लटकन पहने हुए प्रभुके मुख चन्द्रको चकोरके समान तृण तोरकर मैं कब देखूँगी ? ॥ ८ ॥

दोहा–अरुण अधरदाडिम दशन, रसन चारु मृदुहास ॥
हे हरि कब अवलोकिहौं, शशिकर सरिस प्रकाश ॥ ९ ॥

हे महावीरजी ! जिनके लाल होठ, दाडिमके समान दांत, सुन्दर रसना, मन्द हँसना है उन चन्द्रमाके समान प्रकाशयुक्त स्वामीका कब दर्शन करूँगी ? ॥ ९ ॥

दोहा–मधुर वचन जनमन हरन, कब सुनिहौं निज कान ॥
चिबुक चारु कब देखिहौं, चितवनि अमी समान ॥ १० ॥

भक्तोंके मन हरनेवाले, कोमल वचन मैं अपने कानोंसे कब सुनूँगी ? वह सुन्दर ठोढी और वह अमृत के समान चितवन मैं कब देखूँगी ? ॥ १० ॥

दोहा–कम्बु कण्ठ तुलसी सुभग, मणि मोतिनकी माल ॥
उर दीरघ अवलोकिहौं, कब त्रिवली सुख जाल ॥ ११ ॥

जिनका शंखसा कंठ, उसमें सुन्दर तुलसी और मणि मोतियोंकी माला पहने जिनका हृदय विशाल है, वह सुखकी खान उदरकी त्रिवली कब अवलोकन करूँगी ? ॥ ११ ॥

दोहा–भुज विशाल करि कर सरिस, करतल कमल समान ॥
सहित विभूषण देखिहौं, कब लीन्हे धनु बान ॥ १२ ॥

जिनकी बड़ी भुजाएँ हाथीके शुण्डके समान हैं, जिनकी हथेली कमलके समान हैं और धनुष बाण लिये गहने पहरे उन भुजाओंको कब देखूँगी ? ॥ १२ ॥

दोहा–झीन झगा पहरे ललित, ता ऊपर पट पीत ॥
कब निज नयन निहारिहौं, देखि उदर उपवीत ॥ १३ ॥

सुन्दर पतला जामा पहरे उसपर पीला दुपट्टा डाले, यज्ञोपवीत युक्त प्रभुके उदरका दर्शन अपने नयनोंसे कब करूँगी ? ॥ १३ ॥ इति क्षेपक ॥

दोहा–जनक सुतहि समुझाय करि, बहु विधि धीरज दीन्ह ॥
चरण कमल शिर नाइ कपि, गमन रामपहँ कीन्ह ॥ २७ ॥

तब महावीरजीने जानकीको समझाया बहुत प्रकारसे धैर्य दिया और चरणकमलमें शिर नवाकर रघुनाथजीके निकटको चले ॥ २७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद–निवासि पं० सुखानंद मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां सुन्दरकांडे तृतीयो विश्रामः ॥ ३ ॥

दोहा–यहि चतुर्थ विश्राममें, कपि रघुवर ढिग आय ।
समाचार कहि लंकके, पुनिदल चले लिवाय ॥४॥

चलत महाधुनि गर्जेउ भारी * गर्भ स्रवहिं सुनि निशिचर नारी॥१॥
लांघि सिन्धु इहि पारहि आवा * शब्द किलकिला कपिन सुनावा॥२॥

महावीरजी चलते समय महाध्वनिसे बहुत गर्जे, जिसे सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर पड़े ॥ १ ॥ समुद्र लांघकर इस पार आये, किलकिला शब्द कपियोंको सुनाया (कार्तिक-पूर्णिमाको) इस पार आये ॥ २ ॥

हर्षे सब विलोकि हनुमाना * नूतन जन्म कपिन तब माना ॥३॥
मुख प्रसन्न तनु तेज विराजा * कीन्हेसि रामचन्द्रकर काजा ॥४॥

सब कोई महावीरजीको देख प्रसन्न हुए; तब कपियोंने अपना नया जन्म माना॥३॥ मुख प्रसन्न शरीर में तेज विराजमान देख सब जान गये कि श्रीरामचन्द्रजीका (सब) काम किये हैं; क्योंकि महावीरजी चलते समय कह गये थे कि "होय काज मन हर्ष विसेखी" ॥ ४ ॥

मिले सकल अति भये सुखारी * तलफत मीन पाव जनु वारी ॥५॥
चले हर्षि रघुनायक-पासा * पूछत कहत नवल इतिहासा ॥६॥

सब मिलकर बड़े प्रसन्न हुए जैसे तड़फती मछली जल पा जाय ॥ ५ ॥ सब प्रसन्न हो रघुनाथजीके पास (लंका जलानेकी) नई कथा कहते सुनते चले ॥ ६ ॥

तब मधुवन भीतर सब आये * अंगद-सम्मत मधु फल खाये ॥७॥
रखवारे जब बरजन लागे * मुष्टि प्रहार करत सब भागे ॥८॥

तब मधुवनके भीतर आये, अंगदजीकी सम्मतिसे सबने मीठे फल खाये । (सुग्रीवने कह रखा था जो जानकीजी की सुध लावेगा वह इस वनके फलोंको खायेगा) ॥७॥ जब रखवारे बरजने लगे तब मुष्टिप्रहार करने पर वे सब भाग गये (अगहन कृष्ण ५ शुक्रवारको मधुवनके फल खाये) ॥ ८ ॥

---

१. जिन समय महावीरजी पार आये तब एक मुनिके आश्रम में आकर जल पीनेकी इच्छा की । मुनिने निकट सरोवर दिखाया तब यह चूड़ामणि और मुद्रिका रखकर जल पीने गये पीछे मुनिने यह चूड़ामणि व मुद्रिका कमण्डलुमें डाल दी, महावीरजीने जाकर पूछा मुद्रिका, चूड़ामणि कहां है ? मुनि बोले कमण्डलुमें है ले लो महावीर जी कमण्डलु देखने लगे तो उसमें सहस्रों मुद्रिका और चूडामणि देखी जो सीता और रामके नामसे अंकित थीं । महावीरजी बोले–भगवन ! यह क्या है ? ऋषि बोले– जब जब रामअवतारमें महावीरजी सुध लेने गये तब वहां होकर गये उन्हींको ये मुद्रिका धरी हैं तुम संख्या करो ? महावीरजी संख्या करने लगे तो अनन्त पायीं तब मुनिने कहा अनंतवार रामका अवतार हुआ है, महावीर जी रामका माहात्म्य जान प्रसन्न हो चले । (आ. रा.)

दोहा—जाय पुकारे सकलते, वन उजार युवराज ॥
सुनि सुग्रीव हर्ष कपि, करि आये प्रभु काज ॥ २८ ॥

तब वे सब रखवारे सुग्रीवके पास जाकर पुकारे कि युवराजने वन उजाड़ दिया, यह सुनते ही सुग्रीव प्रसन्न हो गये; जान लिया कि वानर प्रभुका काज कर आये ॥ २८ ॥

जो न होति सीता शुधि पाई * मधुवनके फल सकत की खाई ॥१॥
इहि विधि मन विचार कर राजा * आइ गये कपि सहित समाजा॥२॥

जो जानकीकी सुध न पायी होती तो मधुवनके फल कौन खा सकता ! ॥१॥ इस प्रकार सुग्रीव मनमें विचार करने लगे कि समाज सहित वानर आ गये ॥ २ ॥

आय सबहि नावा पद शीशा * मिले सबन्ह अति प्रेम कपीशा॥३॥
पूँछेउ कुशल कुशलपद देखी * राम कृपा भा काज बिसेखी ॥४॥

सबने आकर चरणोंमें शिर नवाया; कपीश सबसे बड़े प्रेमसे मिले ॥ ३ ॥ उनके कुशलके चिन्ह देखकर कुशल पूछा, तब वानर बोले—आपके चरण देखकर सब कुशल हैं रघुनाथजीकी कृपासे विशेष कार्य बन गया ॥ ४ ॥

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना * राखे सकल कपिनके प्राना ॥५॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ * कपिन सहित रघुपति पहँ चलेऊ॥६॥

हे नाथ ! हनुमान्‌जीने सब कार्य किया है और सब कपियोंके प्राण रखे हैं ॥ ५ ॥ यह सुनकर सुग्रीव फिर महावीरजीसे मिले और कपियों सहित रघुनाथजीके पास चले ॥ ६ ॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा * कीन्ह काज मन हर्ष विसेखा ॥७॥
फटिक शिला बैठे दोउ भाई * परे सकल कपि चरणन जाई ॥८॥

जब रघुनाथजीने कपियोंको आते देखा कि काज कर चुके (इसीसे) अति प्रसन्न मनसे चले आते हैं ॥७॥ एक चट्टानपर दोनों भाई बैठे थे, कि सब वानर चरणोंमें जा पड़े ॥ ८ ॥

दोहा—प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुणापुञ्ज ॥
पूछेउ कुशल नाथ अब, कुशल देखि पदकञ्ज ॥ २९ ॥

कृपासागर रघुनाथजी सबसे प्रीतिपूर्वक मिले और कुशल पूछा तब वानर बोले—नाथ ! अब आपके चरणकमल देखकर सब कुशल है ॥ २९ ॥

जाम्बवन्त कह सुनु रघुराया * जापर नाथ करहु तुम दाया ॥१॥
ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर * सुर नर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर॥२॥

तब जाम्बवन्त कहने लगे—सुनो रघुनाथजी ! जिस पर आप दया करते हो ॥१॥ उसका सदैव शुभ होता है और सुर नर मुनि भी उस पर प्रसन्न रहते हैं ॥ २ ॥

सोइ विजयी विनयी गुणसागर * तासु सुयश तिहुँ लोक उजागर॥३॥
प्रभुकी कृपा भयउ सब काजू * जन्म हमार सफल भा आजू ॥४॥

वही विजयी, विनययुक्त, गुणोंका समुद्र है, उसीका सुयश त्रिलोकीमें उजागर है ॥ ३ ॥ प्रभुकी कृपासे सब काम हुआ; आज हमारा जन्म सफल हुआ ॥ ४ ॥

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करणी * सहसहु मुख न जाय सो वरणी ॥५॥
पवनतनय के चरित सुहाये * जांबवन्त रघुपतिहिं सुनाये ॥६॥

हे नाथ ! महावीरजीने जो करणी की है सो सहस्र मुखोंसे भी नहीं वरणी जा सकती ॥५॥ जाम्बवंतने महावीरजीके पवित्र चरित्र रघुनाथजीको सुनाये ॥ ६ ॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाये * पुनि हनुमान हर्षि उर लाये ॥७॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी * रहति करति रक्षा स्व प्रानकी ॥८॥

सो सुनकर कृपानिधानके मनको अत्यन्त भाये और प्रसन्न होकर हनुमानजीको फिर हृदयसे लगाया ॥७॥ कहो तात ! जानकी किस प्रकारसे अपने प्राणोंकी रक्षा करती है ? ॥ ८ ॥

अथ क्षेपक

कौन भाँति लंका विस्तारा * सो सब वर्णहु पवन कुमारा ॥१॥
सुनत वचन कह मारुत बानी * सुनिये दीनबन्धु सुख दानी ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले-हे महावीरजी ! लंकाका विस्तार किस प्रकार है सब कहो ॥ १ ॥ यह सुनकर महावीरजी बोले-हे दीनबन्धु सुखदानी ! सुनो ॥ २ ॥

गिरि त्रिकूट पर लंक सुहाई * वर्णि न जाय मनोहरताई ॥३॥
पांच लक्ष हैं पत्थरके घर * औ नव लाख काठके सुन्दर ॥४॥

त्रिकूट पर्वतके ऊपर लंकापुरी विराजमान है, उसकी मनोहरता वर्णी नहीं जाती ॥ ३ ॥ उसमें पांच लख पत्थरके और नौ लाख काठके सुन्दर घर हैं ॥ ४ ॥

दोहा-सात कोटि हैं ताम्रके, चांदीके श्रुति कोटि ॥
जातरूप केहू इते, माणिक कोटि सु ओटि ॥ १ ॥

सात करोड़ तांबेके, चार करोड़ चांदीके, चार ही करोड़ सोनेके और एक करोड़ माणिकके घर हैं ॥ १ ॥

तृण निर्मित षटकोटि विशाला * वंश छाल शत कोटि दयाला ॥१॥
नव करोरि अस्फटिक सुहाये * सहस कोटि मणिनील सुहाये ॥२॥

छः करोड़ बड़े बड़े घास फूसके तथा सौ करोड़ (अगणित) बांस और छालके घर हैं ॥१॥ नौ करोड़ स्फटिकके और हजार करोड़ (अगणित) नीलमणिके सुन्दर घर हैं ॥ २ ॥

शत योजन में पुरी सुहाई * घनी बसति अतिशय रघुराई ॥३॥
राज करत रावण तहँ स्वामी * सो तुम जानत अन्तर्यामी ॥४॥

हे रघुनाथजी ! वह सुन्दर पुरी सौ योजनके बीचमें अत्यन्त सघन वसती है ॥ ३ ॥ हे स्वामी ! वहां रावण राज्य करता है सो आप जानते ही हो, क्योंकि अन्तर्यामी हो ॥ ४ ॥

दशशिर ताके भुज प्रभु बीसा * देव दनुज नावत सब शीशा ॥५॥
ताकी प्रभुताई तहँ भारी * राज्य करत भय त्यागि खरारी॥६॥

हे प्रभु ! रावणके दश शिर और बीस भुजाएँ हैं, उसको देवता दैत्य सब शिर नवाते हैं ॥५॥ हे खरारि ! वहां उसकी बड़ी प्रभुता है, वह भय त्याग राज्य करता है ॥ ६ ॥

चलिये अब प्रभु बिलम न कीजै * जनकसुताको धीरज दीजै ॥७॥
तुम बिनु सीय महा दुख पावत *तुम बिनु तिन्हैं कछू नहिं भावत॥८॥

हे प्रभु ! अब चलिये, देर मत कीजिये, शीघ्र चलकर जानकीको धैर्य दीजिये ॥ ७ ॥ आपके विना जानकीजी बहुत दुःख पाती हैं और आपके विना उन्हें अच्छा नहीं लगता ॥८॥

॥ इति क्षेपक ॥

दोहा–नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट ॥
लोचन निजपद यंत्रित, जाहिं प्राण केहि बाट ॥ ३० ॥

आपका नाम रात दिन पहरा देता है और आपका ध्यान किवाड़ है और जानकीके नेत्र अर्थात् आंखें जो पांवकी ओर लगी हैं वही कपाटको ताला हैं, इससे प्राण निकलनेका मार्ग नहीं पाता है, अर्थात् महादुःखी है। भाव यह कि जो आपके रंगमें रंगे हैं उनका काल भी कुछ नहीं कर सकता ॥ ३० ॥

चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही * रघुपति हिये लाय तेहि लीन्ही॥१॥
नाथ युगल लोचन भरि वारी * वचन कहे कछु जनक कुमारी ॥२॥

चलने पर मुझे यह चूड़ामणि दी है, उसे लेकर रघुनाथजीने हृदयमें लगा लिया ॥ १ ॥ हे नाथ ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीजीने कुछ वचन कहे हैं ॥ २ ॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरणा * दीनबन्धु प्रणतारति-हरणा ॥३॥
मन क्रम वचन चरण अनुरागी * केहि अपराध नाथ मोहि त्यागी॥४॥

लक्ष्मणसहित प्रभुके चरण पकड़कर कहना हे-दीनबन्धु ! आप दीनोंके दुःख हरने वाले हो लक्ष्मणके चरण पकड़नेका आशय यह कि जो हमने कटुवाक्य कहे थे सो क्षमा करें। अथवा "रहत न आरतके चित चेतू"। अथवा जो प्रभु दीनबन्धु हैं, अनुज समेत रहते हैं, उनके चरण पकड़ना अथवा तुम और लक्ष्मण मेरी ओरसे प्रभुके चरण पकड़ना अथवा लक्ष्मणकी और मेरी सेवाके दोनों चरण पकड़ना ॥ ३ ॥ मन, कर्म और वचनसे चरणोंमें अनुराग करने वाली मुझको रघुनाथजीने किस अपराधसे त्याग कर दिया है ? ॥ ४ ॥

अवगुण एक मोर मैं जाना * बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना ॥५॥
नाथ सो नयनन्ह कर अपराधा * निसरत प्राण करहिं हठि बाधा ॥६॥

हां मेरा एक अवगुण है सो मैंने जाना, कि बिछुड़ते ही प्राणोंको त्याग नहीं दिया ॥५॥ हे नाथ ! वह नेत्रोंका अपराध है, वे प्राण निकलनेमें हठसे बाधा करते हैं ? ॥ ६ ॥

विरह-अनल तनु तूल समीरा * श्वास जरइ क्षणमाहँ शरीरा ॥७॥
नयनस्रवहि जल निज हित लागी * जरइ न पाव देह विरहागी ॥८॥

आपकी विरहकी तो अग्नि, शरीर रुई है, श्वास पवन है, क्षणमात्रमें शरीर जल जाता ॥७॥ परंतु नेत्र अपने निमित्त जल बहाते हैं इस कारण विरहाग्निसे देह जलने नहीं पाती। (नेत्रोंका हित रामका दर्शन है) ॥ ८ ॥

सीताकी अति विपति विशाला * विनहिं कहे भल दीनदयाला ॥९॥

हे दीनदयालु ! सीताकी बड़ी विपत्ति वह विना कहनेसे ही अच्छा है, अथवा जानकीजीकी ऐसी विशाल विपत्ति कि उससे आपको दीनदयालु न कहना ही भला है ॥ ९ ॥

दोहा–निमिष निमिष करुणानिधि, जाहि कल्प सम बीति ॥
बेगि चलहु प्रभु आनिये, भुजबल खल दल जीति ॥ ३१ ॥

हे करुणासागर ! जानकीजीको एक एक पल कल्पके समान बीतते हैं, हे नाथ ! आप शीघ्र चलकर शत्रुओंको भुज बलसे जीतकर जानकीजीको लाइये ॥ ३१ ॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना * भरि आये जल राजिव नयना ॥१॥
वचन काय मन मम गति जाही * सपनेहुँ बूझिय विपतिकि ताही॥२॥

जो प्रभु सुखके धाम हैं, सीताजीका दुःख सुनते ही उनके कमल नेत्रोंमें जल भर आया ॥ १ ॥ जिसे मन, वचन, कर्मसे मेरी ही गति है, क्या उसे स्वप्नमें भी विपत्ति होनी चाहिए अर्थात् उसे विपत्ति होती ही नहीं ॥ २ ॥

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई * जब तव सुमिरन भजन न होई ॥३॥
केतिक बात प्रभु यातुधानकी * रिपुहि जीति आनिये जानकी ॥४॥

महावीरजी बोले-हे प्रभु ! विपत्ति तो वही है जबकि आपका स्मरण भजन नहीं हो (इससे जानकीजीके निकट विपत्ति नहीं) ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! राक्षसों की क्या बड़ी बात है ? शत्रुको जीतकर जानकीजीको लाइये ॥ ४ ॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी * नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी॥५॥
प्रति उपकार करौं का तोरा * सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥६॥

तब रघुनाथजी बोले-सुनो, पवनसुत ! तुम्हारे समान उपकारी देवता, मनुष्य, मुनि, शरीर धारियोंमें नहीं है ॥ ५ ॥ मैं इसका प्रत्युपकार क्या करूँ ? मेरा मन तुम्हारे सम्मुख नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

सुनु कपि तोहि उऋण मैं नाहीं * करि देखेउँ विचार मन माहीं ॥७॥
पुनिपुनिकपिहि चितव सुरत्राता * लोचन नीर पुलक अति गाता॥८॥

सुनो कपि ! मनमें यह विचार कर देखा है कि मैं तुमसे उऋण नहीं, अर्थात् तुम्हारा ऋणी हूँ ॥ ७ ॥ देवताओंके रक्षक रघुनाथजी (प्रेमसे) बारंबार महावीरजीको देखने लगे नेत्रोंमें जल भर आया, शरीर अति पुलकित हो गया ॥ ८ ॥

दोहा–सुनि प्रभु वचन विलोकि मुख, हृदय हर्षि हनुमन्त ॥
चरण परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥ ३२ ॥

महावीरजी प्रभुका यह वचन सुनकर कि "मैं तुमसे उऋण नहीं" प्रभुके मुखकी ओर देख मनमें प्रसन्न हो चरणोंमें प्रेमसे गिरे और कहने लगे-हे प्रभो ! रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ३२ ॥

बार बार प्रभु चहत उठावा * प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥१॥

प्रभुपद पंकज कपिकर शीशा ❋ सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा॥२॥

रघुनाथजी बारंबार उठाना चाहते हैं, परंतु महावीरजी प्रेममें ऐसे मग्न हैं कि उठना नहीं चाहते ॥ १ ॥ (याज्ञवल्क्यजी बोले) प्रभुके चरण कमल पर महावीरजीका शिर, महावीरजीके शिर पर रघुनाथजीका हाथ है, वह दशा स्मरण कर शिवजी भी मग्न हो गये। अथवा गौरी और शिवजी दोनों प्रेममें मग्न हो गये ॥ २ ॥

सावधान मन करि पुनि शंकर ❋ लागे कहन कथा अति सुन्दर ॥३॥
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा ❋ कर गहि परम निकट बैठावा ॥४॥

फिर शिवजी मनको सावधान करके अति सुन्दर कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ कपिको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगा लिया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठाया ॥ ४ ॥

कहु कपि रावण पालित लंका ❋केहि विधि दहेउ दुर्ग अतिबंका॥५॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना ❋ बोले वचन विगत अभिमाना ॥६॥

कहो कपि ! रावणकी पाली हुई लंकाको किस प्रकार जलाया ? जो कि, अति विकट किला है ॥ ५ ॥ हनुमान्‌जी प्रभुको प्रसन्न जानकर अभिमान रहित वचन बोले ॥ ६ ॥

शाखामृगकी बड़ि मनुसाई ❋ शाखाते शाखा पर जाई ॥७॥
लाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा ❋निशिचरगणवधि विपिन उजारा॥८॥

महाराज वानरोंकी तो यही बड़ी वीरता है, एक शाखासे दूसरी शाखा पर जाते हैं ॥ ७ ॥ और जो समुद्र लांघकर स्वर्णमय नगर जलाया राक्षसोंको मार सब अशोक वन उजाड़ दिया॥८॥

सो सब तव प्रताप रघुराई ❋ नाथ न मोर कछुक प्रभुताई ॥९॥

सो हे रघुनाथजी ! यह सब आपका प्रताप है, कुछ मेरा बल नहीं है, भाव यह है कि आपकी मुद्रिकाके सहारे समुद्र पार होकर मुद्रिका दिखाकर जानकीजीको शीतल किया आपकी शोकाग्निसे लंकाको जलाया; फिर चूड़ामणिके सहारे इस पार आया, अर्थात् आपके प्रतापसे वन उजाड़ा और राक्षसोंका संहार किया ॥ ९ ॥

दोहा—ताकहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल ॥
तव प्रताप बड़वानल, जारि सकै खल तूल ॥ ३३ ॥

हे प्रभो ! जिसके ऊपर आपकी कृपा होती है उसको कुछ कठिन नहीं रहता । आपके प्रतापकी प्रचण्ड बड़वाग्नि रुई रूप दुष्ट राक्षसोंको जला सकती है कहीं 'खलु तूल' पाठ है अर्थ यह है कि आपके प्रतापसे रुई बड़वानलको भी अवश्य भस्म कर सकती है ॥ ३३ ॥

नाथ भक्ति तव अतिसुखदायिनि ❋ देहु कृपाकरि सो अनपायिनि ॥१॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी ❋ एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥२॥

हे नाथ ! कृपाकर अपनी अत्यन्त सुखदायिनी अनपायिनी भक्ति दो ॥ १ ॥ हे पार्वती ! रघुनाथजीने कपिकी बहुत सीधी वाणी सुनकर यह कहा कि (एवमस्तु) ऐसा ही होगा ॥२॥

उमा राम स्वभाव जेहि जाना ❋ताहि भजन तजि भाव न आना॥३॥
यह संवाद जासु उर आवा ❋रघुपति चरण-भक्ति तेहि पावा ॥४॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! जिसने रघुनाथजीका स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर दूसरा कुछ नहीं अच्छा लगता ॥३॥ यह सम्वाद जिसके हृदयमें आ गया उसने ही रघुपति के चरणकी भक्ति पायी ॥ ४ ॥

सुनि प्रभु वचन कहहिं कपिवृन्दा ❋ जय जय जय कृपालु सुखकन्दा॥५॥
तब रघुपति कपिपतिहि बुलावा ❋ कहा चलै कर करहु बनावा ॥६॥

प्रभुके वचन सुनकर कपिसमूह बारंबार कहने लगे—हे कृपालु सुखसागर ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने सुग्रीवको बुलाकर कहा कि अब चलनेका सामान करो ॥ ६ ॥

अब विलम्ब केहि कारण कीजै ❋ तुरत कपिन कहँ आयसु दीजै ॥७॥
कौतुक देखि सुमन बहु वरषे ❋ नभते भवन चले सुर हरषे ॥८॥

अब आप किस कारण देर करते हो ? तुरन्त वानरोंको प्रस्थानकी आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ आकाशसे देवता यह कौतुक देख प्रसन्न हुए और बहुत फूल बरसाकर घर गये ॥ ८ ॥

दोहा—कपिपति बेगि बुलायउ, आये यूथप यूथ ॥
नाना वरण अतुल बल, वानर भालु वरूथ ॥ ३४ ॥

तब कपिपतिने शीघ्रतासे यूथपतियोंके यूथोंको बुलाया तो जो अनेक वर्णके बड़े बली रीछ और वानरोंके यूथ थे वे सब आये ॥ ३४ ॥

प्रभु पद पंकज नावहिं शीशा ❋ गर्जहिं भालु महा बल कीशा ॥१॥
देखी राम सकल कपि सैना ❋ चितव कृपा करि राजिव नैना ॥२॥

प्रभुके चरण कमलमें शिर नवाकर महाबली रीछ और वानर गर्जने लगे ॥ १ ॥ कमल-नयन रघुनाथजीने सब वानरोंकी सेनाको देखकर कृपा दृष्टिसे निहारा ॥ २ ॥

रामकृपा बल पाय कपिन्दा ❋ भये पक्षयुत मनहुँ गिरिन्दा ॥३॥
हर्षि राम तब कीन्ह पयाना ❋ शकुन भये सुंदर शुभ नाना ॥४॥

रघुनाथजीकी कृपाका बल पाकर वानर ऐसे हो गये मानो पर्वतोंके पंख निकल आये ॥३॥ तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर पयान किया, उस समय अनेक सुन्दर शुभ शकुन हुए ॥४॥

जासु सकल मंगलमय कीती ❋ तासु पयान सगुन यह नीती ॥५॥
प्रभु पयान जाना वैदेही ❋ फरकि वाम अँग जनु कहि देही॥६॥

जिसका यश कहना मङ्गल मूल है उनके पयानमें शकुन होना यह एक नीति मनुष्य शरीर धारण करनेकी है अथवा उनके पयानमें सफल होनेको शकुन हुआ करते हैं ॥५॥ प्रभुका पयान जानकीने जाना, क्योंकि वाम अंग फरकते ही मानो कह दिया कि रघुनाथजी चले ॥ ६ ॥

जो जो शकुन जानकिहि होई ❋ अशकुन भयउ रावणहि सोई ॥७॥
चला कटक को वरणै पारा ❋ गर्जहिं वानर भालु अपारा ॥८॥

जानकीजीको जो जो शकुन हुये वही वही रावणको अपशकुन हुए ॥ ७ ॥ कटक चला उसका पार कौन वर्णन कर सके ? अपार वानर और रीछ गर्जने लगे ॥ ८ ॥

नख आयुध गिरि-पादप-धारी * चले गगन महि इच्छाचारी ॥९॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं * डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥१०॥

जिनके नख ही आयुध हैं, वे वृक्ष और पर्वत धारण करनेवाले इच्छा अनुसार पृथ्वी और आकाश मार्गसे चले ॥ ९ ॥ सब भालु और बानर सिंहनाद करते हैं डगमगाकर दिग्गज चिक्कारने लगे ॥ १० ॥

छन्द-चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे ।
मन हर्ष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे ॥
कट कटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन धावहीं ।
जय राम प्रबल प्रताप कोशलनाथ-गुणगण गावहीं ॥१४॥

दिग्गज चिंघारते हैं, पृथ्वी डोलती है, पर्वत चञ्चल हो गये; समुद्र उछलने लगा, चन्द्रमा सूर्यके मनमें प्रसन्नता हुई, देवता, मुनि, नाग किन्नरोंका दुःख छूट गया; अनेक विकट योद्धा बानर कट-कट शब्द करके अनेक भांतिसे धावते हैं और कहते हैं प्रबल प्रतापी रघुनाथजीकी जय हो ! इस प्रकार कोशलनाथका गुण समूह गाते हैं ॥ १४ ॥

छन्द-सहि सक न भार उदार अहिपति बार बार विमोहई ।
गहि दशन पुनि पुनि कमठपृष्ठ कठोरसो किमि सोहई ॥
रघुवीर रुचिर पयान प्रस्थित जानि परम सुहावनी ।
जनु कमठ खप्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी ॥ १५ ॥

उस महाभारको शेषजी सह न सके, बार बार मूर्छित हो जाते हैं; अपने दांतोंसे कमठकी कठोर पीठको बारम्बार पकड़ते हैं उसकी कठोरतासे दांत नहीं धँसता, परन्तु रेखायें पड़ जाती हैं, वे रेखायें विशेषरूपसे ऐसे शोभित होती हैं मानो रघुनाथजीके सुन्दर पयानके ब्योरेको शेषजी कमठकी पीठको अचल और पवित्र जानकर उस पर लिख रहे हैं ॥ १५ ॥

दोहा-इहि विधि जाय कृपानिधि, उतरे सागर तीर ॥
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर ॥ ३५ ॥

इस प्रकारसे कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी समुद्रके किनारे जाकर उतरे, जहाँ तहाँ अनेक रीछ बली वानर फल खाने लगे। अथवा इस प्रकारसे चले जैसे तीर; यह कृपानिधान वह जलनिधि दोनों एकसे हैं। जहाँ तहाँ फलको खाते हैं,अथवा जहां तहां खानेके फल लगेहैं॥३५॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विद्यावारिधि-पंडित ज्वालाप्रसादजी-मिश्रकृत भाषाटीकायां सुन्दरकांडे चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

दोहा-यहि पञ्चम विश्राममें, सभा कीन्ह दशशीश ।
त्याग विभीषणको कियो, मिलो आय जगदीश ॥ ५ ॥

उहाँ निशाचर रहहिं सशंका * जबते जारि गयो कपि लंका ॥१॥
निज निज गृह सब करहिं विचारा * नहिं निशिचर कुलकेर उबारा॥२॥

वहां लंकामें सब राक्षस डरते हैं, जबसे महावीर लंका जला गये। अथवा जब हनुमान् महावेगसे लंका जला गये और कुछ न बन पड़ा इससे सन्देहमें रहते हैं ॥१॥ अपने अपने घरमें (रावणके डरसे) सब विचार करते हैं कि राक्षसोंके कुलका अब उद्धार नहीं है ॥२॥

जासु दूतबल बरणि न जाई ❋ तेहि आये पुर कवन भलाई ॥३॥
दूतन सो सुनि पुरजन बानी ❋ मन्दोदरी हृदय अकुलानी ॥४॥

जिनके दूतका बल वर्णा नहीं जाता उसके नगरमें आनेसे क्या भलाई होगी अर्थात् महा अनर्थ होगा, क्योंकि जब दूत ऐसा है तो राजा कैसे होंगे ॥ ३ ॥ यह पुरवासियोंकी वाणी दूतियोंसे सुनकर मन्दोदरी मनमें अत्यन्त व्याकुल हुई ॥ ४ ॥

रहसि जोरि कर पति पद लागी ❋ बोली वचन नीति रस पागी ॥५॥
कन्त कर्ष हरिसन परिहरहू ❋ मोर कहा अतिहित हिय धरहू॥६॥

एकांतमें हाथ जोड़कर पतिके चरण छूकर नीतिके रसमें सनी हुई वाणी कहने लगी अथवा 'रहसि' के स्थानमें 'रही कर जोरि' का यह अर्थ है रावण जाता था और इसने चरण पकड़ जोरसे रोक लिया और 'बोली वच न' अर्थात् तुम बचोगे नहीं क्योंकि तुम नीति युक्त नहीं हो, अथवा नीतियुक्त न होनेसे 'बच न पागी' तुम्हारी पगड़ी न बचेगी ॥ ५ ॥ हे स्वामी! भगवान्से शत्रुता त्याग दो और मेरा कहना जो हितकारी है सो मनमें धरो ॥ ६ ॥

समुझत जासु दूतकी करनी ❋ स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥७॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई ❋ पठवहु कन्त जो चहहु भलाई ॥८॥

जिसके दूतकी करनी श्रवण करके राक्षसियोंके गर्भ गिर जाते हैं ॥ ७ ॥ हे कांत! जो भलाई चाहो तो अपने मन्त्रीको बुलाकर उनकी स्त्रीको उनके पास भिजवा दो ॥ ८ ॥

---

१. एक समय पद्माक्ष राजाने संसारको लक्ष्मीकी इच्छामें देखकर महातप किया कि, मेरे यहां लक्ष्मी कन्या रूपसे हो, लक्ष्मीने दर्शन देकर कहा मैं परतन्त्र हूँ, तुम विष्णु भगवान्से प्रार्थना करो। राजाने विष्णुका तप किया, भगवान्ने पद्माक्षको एक मातुलिङ्ग का फल दिया, उस फलमें से एक कन्या प्रादुर्भूत हुई, जो साक्षात् लक्ष्मीरूप थी राजाने उसका नाम पद्मा रक्खा फिर वह फल ज्यों का त्यों हो गया; वह कन्या बहुत शीघ्र वृद्धि को प्राप्त हुई, तब राजाने स्वयंवर किया, उसमें देवता, दैत्य, राक्षस, मनुष्य सब आये। राजाने कहा जो नीलवर्णके आकाशको अपनी देह में लपेट लेगा उसे मैं अपनी कन्या ब्याह दूंगा, यह दुर्घट बात सुनकर सब राजाओंने कन्या हरणके निमित्त राजासे युद्ध किया, उस युद्धमें दैत्योंसे राजाकी मृत्यु हुई, तब वे कन्याके ग्रहण करनेको दौड़े, कन्या अग्निमें प्रवेश कर गई। राजा ढूंढ़ भालकर चले गये, नगर नष्ट भ्रष्ट हो गया। एक समय पद्मा अग्निकुंडसे निकल-कर विचरण करती थी और उसी समय आकाशसे रावण जाता था, सारनके दिखानेसे रावणने कहा—हे पद्मा! अब तुम्हारा स्थान जाना यह कह ज्योंही उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया त्योंही वह अग्निमें प्रवेश कर गयी, तब रावण अग्निमें ढूंढ़ने लगा उस कुंडमें से पांच रत्न निकले उन्हें ले पिटारीमें धर रावण लंकामें आया मंदोदरी से एकान्तमें बोला मैं तुम्हारे निमित्त रत्न लाया हूँ सो पिटारीमें धरे हैं उठा लाओ मन्दोदरी जब पिटारी उठाने लगी तो न उठी लज्जित हो पतिसे कहा, रावण हँसकर उठाने को गया तब उससे भी न उठी तब विस्मयको प्राप्त हो वहीं राव-णने खोला, उसमें महातेजोनिधान कन्या देखी जिसके तेजसे रावणकी आँखें मीच गयीं। बहुत राक्षस उस कन्याको देखने आये तब रावणने पद्माका सब चरित्र कहा कि इसने अपना सब कुछ विध्वंस किया है। तब मन्दोदरी बोली जो यह ऐसा है तो तुम इसे यहां क्यों लाये? इसका शीघ्र ही त्याग करो मैं जानती हूं इसके कारण तुम्हारा वध होगा। दूतोंको बुलाकर मन्दोदरी बोली, इसे बंदकर आकाश मार्गसे पुष्पकमें बैठाकर ले जाओ बाहर मत डालना किंतु पृथ्वीमें गाड़ देना, जो गृहस्थ जितेंद्रिय चराचरमें आत्माका देखनेवाला होगा उसके यहां यह रह सकती है और वृद्धि को प्राप्त हो सकती है। यह सुनकर दूत चले गये तब यह कन्या बोली, अब मैं जाती हूँ, परंतु राक्षसोंके सब कुटुम्ब और रावणके वधके निमित्त फिर मैं आऊंगी, तीसरी बार शतशिरके रावणको मारूंगी चौथी बार मूलकासुरको मारूंगी, वह वचन सुन खड्ग ले रावण दौड़ा तब मन्दोदरीने निवारण किया हे रावण। अभी क्यों बिना काल मृत्यु के मुखमें पतित होता है? होनहार नहीं मिटता यह सुन रावण मौन हुआ। दूतोंने जाकर उसे जनकपुरमें गाड़ी जिससे जानकी हुई। सो मन्दोदरी कहती है वही सीता तुम्हारे कुलकी नाशिनी आयी है इसे दे दो।

तव कुलकमल विपिन दुखदाई * सीता शीत निशा सम आई ॥९॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे * हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हे॥१०॥

तुम्हारे कुलकमलको दुःख देनेके निमित्त जानकी शीतकालकी रात्रिके समान आयी है ॥९॥ हे स्वामिन् ! सुनो, विना जानकीजीके दिये यदि शिव ब्रह्मा भी तुम्हारा भला चाहें तो न होगा। अथवा 'सुनहु न' 'नते नहीं, अथ सीता बिनु दीन्हें' अथ विना जानकी दिये 'हित न तुम्हार शम्भु' शिवजी हितु न होंगे, जिन्होंने तुम्हें अजर किया है ॥ १० ॥

दोहा-रामबाण अहिगण सरिस, निकर निशाचर भेक ॥
जब लगि ग्रसत न तबहिं लग, यतन करहु तजि टेक ॥ ३६ ॥

रघुनाथजीके बाण सर्पके तुल्य हैं, राक्षस समूह मेढकके समान हैं वे जब तक मेढकोंको न खायँ तब तक जानकीके न देनेकी टेक त्याग दो, अर्थात् जानकी को दो और रघुनाथ-जीसे मिलनेका यत्न करो ॥ ३६ ॥

श्रवण सुनत शठ ताकरि बानी * विहँसा जगत विदित अभिमानी॥१॥
सभय सुभाव नारि कर सांचा * मंगल महँ भय मन अति कांचा॥२॥

जगत्में जिसका अभिमान प्रकट है वह मूर्ख रावण उसकी वाणी सुनकर हँसा और बोला ॥ १ ॥ स्त्रीका भययुक्त स्वभाव है यह बात सत्य है उसे मंगल भय प्रतीत होता है, क्योंकि उसका मन बहुत कच्चा होता है ॥ २ ॥

जो आवै मर्कट कटकाई * जियहिं विचारे निशिचर खाई॥३॥
कम्पहिं लोकप जाके त्रासा * तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥४॥

जो बन्दरोंका कटक आवेगा तो विचारे राक्षस उन्हें खा कर जियेंगे ॥ ३ ॥ लोकपाल जिसके देखनेसे ही कांप जाते हैं, उसकी स्त्री डरे यह बड़ी हँसीकी बात है ॥ ४ ॥

अस कहि विहँसि ताहि उर लाई * चलेउ सभा ममता अधिकाई ॥५॥
मन्दोदरी हृदय करि चीता * भयो कंत पर विधि विपरीता ॥६॥

यह कहकर हँसते हुए उसे हृदयसे लगाकर बड़े अहंकारसे सभाको चला ॥ ५ ॥ मन्दोदरीने मनमें विचार किया कि अब स्वामी पर विधाता विपरीत हो गया, क्योंकि दीपकके बुझनेकी गन्ध, सुहृदोंके वाक्य, अरुंधती तारा ये तीन वस्तु गतायुष पुरुष सूँघते, सुनते, देखते नहीं यथाहि—"दीपनिर्वाणगंधं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् । न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यंति गतायुषः" ॥ ६ ॥

बैठेउ सभा खबरि अस पाई * सिन्धुपार सेना सब आई ॥७॥
बूझेउ सचिव उचित मत कहहू * ते सब हँसे मौन करि रहहू ॥८॥

तब रावण सभामें जा बैठा तो खबर पायी कि समुद्रके पार सेना आ गयी ॥७॥ मंत्रियोंसे पूछा कि उचित मत कहो, तुम्हारी इसमें क्या संमति है ? वे सब हँसे कि इसमें मौन ही उत्तर है ॥ ८ ॥

अथ क्षेपक

सुनि घट श्रुति बोला अहँकारी * को है त्रिभुवन सरिस हमारी ॥१॥
जो सन्मुख सक नयन मिलाई * अस कहि चला विवश औंघाई॥२॥

यह सुनकर अहंकारी कुम्भकर्ण (रावणकी सभामें) कहने लगा त्रिलोकीमें हमारे समान कौन है ॥१॥ जो सामने आकर नयन मिला सके ? ऐसा कहते २ औंघाई, सोनेको चला गया ॥२॥

तब सक्रोध बोला अति काया * आयसु मोहिं देहु करि दाया ॥३॥
अबहीं क्षिति नर हरि बिनु करहूँ * और मन्त्र का बहु उच्चरहूँ ॥४॥

तब अतिकाय राक्षस क्रोधकर बोला-हे रावण ! आप कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ३ ॥ अभी सब पृथ्वी मनुष्य और वानरहीन कर दूँ और सारी बातें आपसे क्या कहूँ ? ॥ ४ ॥

काम रूप बोला घननादा * मम प्रभाव जग जानत जादा ॥५॥
विधि हरिहर वश कियउँ जुझारू * नर वानर हित कौन विचारू ॥६॥

तब कामरूपी मेघनाद बोला—मेरा प्रताप सारा जगत् जानता है ॥५॥ कि मैंने बड़े लड़नेवाले ब्रह्मा,विष्णु,महेशको भी अपने वशकर लिया, फिर,नर वानरकी तो बात ही क्या है॥६॥

कुम्भ निकुंभ दम्भ छलकारी * बोले विभुता विदित हमारी ॥७॥
कृपादृष्टि सब लोग निहारैं * देखत उच्चासन बैठारैं ॥८॥

यह सुनकर कुम्भकर्णके बेटे महाछली पाखण्डी कुम्भ और निकुम्भ बोले कि हमारी प्रभुताई सब जानते हैं ॥ ७ ॥ सब देवता हमारी कृपादृष्टिकी इच्छा करते हैं, देखते ही ऊँचे आसन पर बैठाते हैं ॥ ८ ॥

भोजन हित कहियत तिनपाहीं * हम काहूकर छुवा न खाहीं ॥९॥
डाटत बोलि सकैं नहिं एकू * कपि मानुष हम गनै न नेकू॥१०॥

भोजनके निमित्त उसको क्या कहना ? हम किसी दूसरेका छुवा नहीं खाते ॥९॥ हमारी डाटसे कोई भी नहीं बोल सकता, हम वानर और मनुष्योंको कुछ भी नहीं गिनते ॥ १० ॥

मत्सर रूप अकम्पन कहई * हमैं जियत असको सिय लहई ॥११॥
कहो उपाय करौं अब सोई * नर बानर जेहि बचै न कोई ॥१२॥

यह वार्ता सुन अहंकाररूप अकंपन बोला—हमारे जीते जानकीजीको कौन ले सकता है ? ॥ ११ ॥ अब जो कहो वही उपाय करें जिससे कोई मनुष्य और बन्दर न बचे ॥ १२ ॥

अपर कथा कहिये को लोभी * तब भा भनत महोदर लोभी ॥१३॥
जौ आवैं अनगिनत करोरी * डारौं खाय भरै मम झोरी ॥१४॥

फिर और कथा कहनेकी तथा लोभ दिलानेकी आवश्यकता क्या है ? यह बात सुनकर लोभी महोदर बोला ॥ १३ ॥ जो अनगिन्त करोड़ों वानर आवें तो भी मैं उन्हें खा डालूँगा तब मेरी झोली भरेगी ॥ १४ ॥

तो कपि सहस लाख केहि लेखे * जे हैं भूमि नाग हम देखे ॥१५॥

बोला तब दुर्मुख पाखण्डी * छल करि हरि आनौं दोउ दण्डी॥१६॥

फिर हजार और लाख वानर किस लेखेमें हैं ? हमारे देखनेसे तो सर्प भी पृथ्वीमें घुस जाते हैं वा हमारे देखते ही नागके समान भूमिमें घुस जायँगे ॥ १५ ॥ यह वार्ता सुन पाखण्डी दुर्मुख बोला—कहो तो दोनों तपस्वियोंको छल करके हर लाऊँ ॥ १६ ॥

जो चाह्यो सो कीन्हो पाछे * वद मकराक्ष कपट वपु काछे ॥१७॥
विपुल विप्र जीमैं वरि आनी * भूसुर वनि कोउ सकै न जानी ॥१८॥

पीछे जो चाहे सो करना, सुनकर कपटी मकराक्ष बोला ॥ १७ ॥ हम ब्राह्मणरूप धर कर कि कोई जान न सके बहुत ब्राह्मणोंको जिमावे ॥ १८ ॥

दोहा—तिनके छलसे रामको, प्रभु तहँ लेहिं बुलाय ॥
धरि बाँधे लावैं यहां, कैसो कहो उपाय ॥ १ ॥

हे स्वामी ! उनके छलसे रामको बुला लेंगे और फिर उसे बांधकर तुम्हारे पास ले आवेंगे कहो यह कैसा उपाय है (इति क्षेपक) ॥ १ ॥

जितेउ सुरासुर तब श्रम नाहीं * नर वानर केहि लेखे माहीं ॥१॥

जब आपने सुर, असुरोंको जीत लिया; श्रम नहीं हुआ तब नर वानर किस लेखेमें हैं। ये तो हैं ही क्या ? ॥ १ ॥

दोहा—सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आश ॥
राज धर्म तनु तीनकर, होय बेगिही नाश ॥ ३७ ॥

जो मन्त्री भयसे प्यारी वाणी बोले तो राज्यका नाश हो जाय, वैद्य भयसे अथवा किसी लोभकी आशासे प्रिय वाणी बोले तो शरीरका नाश हो जाय,गुरु भय वा आशासे प्रिय बोले तो धर्मका नाश हो जाय। तात्पर्य यह कि मन्त्रीके ठकुरसुहाती कहनेसे नीति बिगड़ कर राज्यका नाश होता है, रोगीके कुपथ्य मांगनेपर वैद्य लोभ अथवा भयसे उसे दे तो शरीरका नाश होता है और यदि गुरु लोभ वा भयसे शिष्योंको अधर्मसे न रोके तो धर्मका नाश होता है ॥३७॥

सोइ रावण कहँ बनी सहाई * अस्तुति करहिं सुनाय सुनाई ॥१॥
अवसर जानि विभीषण आवा * भ्राता चरण शीश तेहि नावा ॥२॥

वही सहाय रावणको आकर बनी है कि (मन्त्री भयसे) सुना सुना कर स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ समय जानकर विभीषण आया और भाईके चरणोंमें शिर नवाया ॥ २ ॥

पुनि शिर नाय बैठ निज आसन * बोला वचन पाय अनुशासन ॥३॥
जो कृपालु पूछेहु मोहिं बाता * मति अनुरूप कहब मैं ताता ॥४॥

फिर शिर नवाकर आसन पर बैठा (रावणकी आज्ञा हुई कि तुम्हारी इसमें क्या संमति है ?) तब आज्ञा पाकर विभीषण बोला ॥ ३ ॥ हे कृपालु भाई ! जो मुझसे यह बात आप पूछते हो तो अपनी मतिके अनुसार मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥

जौ आपन चाहहु कल्याना * सुयश सुमति शुभगति सुखनाना॥५॥
तौ परनारि लिलार गुसाईं * तजहु चौथि चन्दाकी नाईं ॥६॥

जो अपना भला, सुयश, सुमति और अनेक सुख चाहो तो ॥ ५ ॥ हे गुसाईं ! पराई स्त्री का मुख भादोंकी चौथ चन्द्रमाकी नाईं त्याग दो (जैसे उस दिन चन्द्रमाको देखनेसे कलंक लगता है उसी प्रकार पराई स्त्रीका मुख देखनेसे कलंक लगता है, मुख देखना तो क्या ! माथ देखना भी बुरा है चौथके चन्द्रकी माथेसे उपमा है) ॥ ६ ॥

चौदह भुवन एकपति होई ✻ भूतद्रोह तिष्ठै नहिं कोई ॥७॥
गुण-सागर नागर नर जोऊ ✻ अल्प लोभ भल कहै न कोऊ ॥८॥

चाहे चौदह भुवनका एक पति हो, परंतु जीवमात्रसे द्रोह करनेसे कोई नहीं रह सकता अथवा चौदह भुवनके स्वामीसे कोई एक प्राणी द्रोह नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ जो मनुष्य गुणोंका समुद्र अति चतुर हो थोड़ेसे भी लोभसे कोई भला नहीं कहता ॥ ८ ॥

दोहा–काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरकके पंथ ॥
सब परिहरि रघुवीरपद, भजहु कहहिं सद ग्रन्थ ॥ ३८ ॥

हे नाथ ! काम, क्रोध, मद, लोभ ये सब नरकके मार्ग हैं, इन सबको छोड़कर रघुनाथजी के चरणोंको भजो, यह सद्ग्रन्थ कहते हैं ॥ ३८ ॥

तात राम नहिं नर-भूपाला ✻ भुवनेश्वर कालहु कर काला ॥१॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता ✻ व्यापक अजित अनादि अनंता ॥२॥

हे तात ! रघुनाथजी कोई मनुष्य राजा नहीं हैं, वे भुवनोंके ईश्वर और कालके भी काल हैं ॥१॥ ब्रह्म हैं, रोगरहित हैं, जन्मरहित हैं, ऐश्वर्यवान् हैं (विश्वमें) व्यापक हैं, अजित हैं आदि रहित तथा अन्त रहित (जो ऐसे हैं तो शरीर क्यों धारण किया ?) उस पर कहते हैं ॥ २ ॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी ✻ कृपासिन्धु मानुष तनुधारी ॥३॥
जनरंजन भंजन खल-व्राता ✻ वेद धर्म रक्षक सुर-त्राता ॥४॥

पृथ्वी, ब्राह्मण, धेनु और देवताओंके हित करनेके निमित्त कृपा सागरने मनुष्यका शरीर धारण किया है ॥३॥ भक्तोंको आनंददायक, दुष्टोंके मारनेवाले, देवताओंके और वेद धर्मके रक्षा करने वाले हैं ॥ ४ ॥

ताहि वैर तजि नाइय माथा ✻ प्रणतारति भंजन रघुनाथा ॥५॥
देहु नाथ प्रभुकहँ वैदेही ✻ भजहु राम विनु हेतु सनेही ॥६॥

वैर छोड़कर रघुनाथजीको माथा नवाओ, महाराज श्रीरामचन्द्रजी दीनोंके दुःख दूर करनेवाले हैं ॥५॥ हे नाथ ! प्रभुको जानकी दे दो, वे विना ही कारण स्नेह करते हैं उनका भजन करो (जो कहो, हमने बड़े पाप किये हैं क्यों कर शरणमें जायँ तो कहते हैं कि) ॥ ६ ॥

शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा ✻ विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥७॥
जासु नाम त्रयताप नशावन ✻ सोइ प्रभु प्रगट समुझि जिय रावन ॥८॥

शरणमें गये पर तो प्रभुने उसे भी नहीं त्यागा जिसे संसारसे द्रोह करनेका पातक लग चुका है ॥ ७ ॥ हे भ्रातः रावण ! जिसका नाम तीनों तापोंको दूर करनेवाला है वे ही प्रभु प्रकट हैं ऐसा जीमें विचार कर देखो ॥ ८ ॥

दोहा-बार बार पद लागउँ, विनय करहुँ दशशीश ॥
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश ॥ ३९ ॥

हे रावण ! मैं बारंबार तुम्हारे चरणोंमें पड़कर विनय करता हूँ कि मान, मोह, मदको त्याग कर रघुनाथजीका भजन करो (यह बात कुछ मैं अपनी ओरसे नहीं कहता हूँ किंतु) ॥ ३९ ॥

दोहा-मुनि पुलस्त्य निज शिष्यसन, कहि पठई यह बात ॥
तुरत सो मैं तुम सन कही, पाय सुअवसर तात ॥ ४० ॥

हे भाई ! पुलस्त्य ऋषिने अपने शिष्यसे यह बात कहला भेजी थी; वही समय पाकर मैंने तुमसे कही है (इस कारण जानकी को दे दो) ॥ ४० ॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना * तासु वचन सुनि अतिसुख माना॥१॥
तात अनुज तव नीति विभूषण * सो उर धरहु जो कहत विभीषण॥२॥

माल्यवंत एक वृद्ध मन्त्री था, उसने यह विभीषणके वचन सुनकर बहुत सुख माना ॥१॥ (और बोला) हे महाराज ! आपका भाई नीतिका गहना है अतः जो विभीषण कहता है उसे हृदयमें धारण करो ॥ २ ॥

रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ * दूरि न करहु इहाँते कोऊ ॥३॥
माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी * कहइ विभीषण पुनि कर जोरी ॥४॥

(तब रावण रिसाकर बोला) ये दोनों मूर्ख हैं शत्रुकी बड़ाई करते हैं, कोई इन दोनोंको यहांसे निकाल दो ॥३॥ माल्यवंत तो यह बात सुनकर घर चला गया, विभीषण फिर हाथ जोड़कर बोला ॥ ४ ॥

सुमति कुमति सबके उर रहहीं * नाथ पुराण निगम अस कहहीं ॥५॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना *जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥६॥

हे नाथ ! सुमति कुमति सबके हृदयमें बसती है ऐसा पुराण और शास्त्र कहते हैं ॥५॥ जहां सुमति होती है वहां अनेक प्रकारकी संपत्ति होती है, जहां कुमति है वहां विपत्ति होती है ॥६॥

तव उर कुमति बसी विपरीती *हित अनहित मानत रिपु प्रीती॥७॥
कालरात्रि निशिचर-कुलकेरी * तेहिं सीतापर प्रीति घनेरी ॥८॥

तुम्हारे हृदयमें कुमति बसी है, जो विपरीत समझते हो कि, हितको अहित और शत्रुको मित्र मानते हो। अथवा प्रीति करनेवालेको शत्रु मानते हो अथवा मुझे प्रीति करनेवालेको शत्रु मानते हो ॥ ७ ॥ राक्षसोंके कुलकी कालरात्रि हैं, जिस सीतापर तुम्हारी बहुत प्रीति है ॥ ८ ॥

दोहा-तात चरण गहि मागहुँ, राखहु मोर दुलार ॥
सीता देहु रामकहँ, अति हित होय तुम्हार ॥ ४१ ॥

हे भ्रातः ! मैं चरण पकड़ कर आपसे मांगता हूँ कि मेरा प्यार मानकर जानकीजीको रघुनाथजीको दे दो तुम्हारा अत्यन्त कल्याण होगा ॥ ४१ ॥

बुध-पुराण-श्रुति सम्मत वानी * कही विभीषण नीति बखानी ॥१॥
सुनत दशानन उठा रिसाई *खल तोहि मृत्यु निकट अब आई॥२॥

विभीषणने पंडितोंकी सम्मत, पुराण और वेदसे मिली हुई वाणी नीति बखान कर

कही ॥ १ ॥ सुनते ही रावण बड़े क्रोधसे उठकर बोला, मूर्ख तेरी मृत्यु अब निकट आ गई ॥२॥

जियसि सदा शठ मोर जियावा * रिपु कर पक्ष मूढ़ तोहि भावा ॥३॥
कहसि न खल अस को जगमाहीं * भुज बल मैं जीता जेहि नाहीं ॥४॥

हे मूर्ख ! सदा तू मेरे जिलानेसे जीता है आज तुझे शत्रुका पक्ष अच्छा लगा ? ॥ ३ ॥ मूर्ख ! बता जगत्में ऐसा कौन है जिसे मैंने भुजाओंके बलसे न जीता हो ॥ ४ ॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती * शठ मिलु जाय तिन्हहिं कहु नीती ॥५॥
अस कहि कीन्हेसि चरण प्रहारा * अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥६॥

हमारे नगरमें रहकर तपस्वियों पर प्रीति करता है ! मूर्ख ? जा उन्हींसे मिल; यह नीति उन्हें ही सुना ॥ ५ ॥ यह कहकर रावणने विभीषणके चरण प्रहार किया; तब विभीषणने बारम्बार भाईके चरण पकड़े ॥ ६ ॥

उमा सन्तकी यही बड़ाई * मन्द करत जो करै भलाई ॥७॥
तुम पितु सरिस भले मोहि मारा * राम भजे हित नाथ तुम्हारा ॥८॥

(शिवजी बोले) हे पार्वती ! सन्तकी यही बड़ाई है जो मंद करते भी भलाई करे ॥ ७ ॥ (विभीषणने कहा) तुम पिताके सदृश हो, अच्छा किया जो मुझे मारा पर हे प्रभो ! श्रीरामचन्द्रजीका भजन करनेसे ही तुम्हारा हित होगा ॥ ८ ॥

सचिव संग लेइ नभ पथ गयऊ * सबहि सुनाय कहत अस भयऊ ॥९॥

(विभीषण) मन्त्रीको साथले आकाशमार्गमें गया और सबको सुनाकर यह बात कही ॥९॥

दोहा–राम सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालवश तोरि ॥
मैं रघुवीर शरण अब, जाउँ देउ जनि खोरि ॥ ४३ ॥

रघुनाथजीका राक्षसोंके मारनेका सत्य संकल्प है उसके अनुसार तेरी सभा कालवश हो रही है और मैं अब रघुनाथजीकी शरण जाता हूँ,मुझे कुछ दोष नहीं देना ॥ ४३ ॥

अस कहि चला विभीषण जबहीं * आयुहीन भये निशिचर तबहीं ॥१॥
साधु अवज्ञा तुरत भवानी * कर कल्याण अखिलकी हानी ॥२॥

यों कहकर जब ही विभीषण चला कि तभी राक्षस आयुहीन हो गये ॥१॥ (शिवजी बोले) हे पार्वती ! साधु महात्माका निरादर तत्काल संपूर्ण कल्याणका नाश कर देता है ॥ २ ॥

रावण जबहिं विभीषण त्यागा * भयो विभव बिनु तबहिं अभागा ॥३॥
चलेउ हर्षि रघुनायक-पाहीं * करत मनोरथ बहु मनमाहीं ॥४॥

रावणने जभी विभीषणको त्याग दिया तभी वह ऐश्वर्यके विना अभागा हो गया ॥ ३ ॥ विभीषण प्रसन्न होकर रघुनाथजीके पास मनमें अनेक मनोरथ करता हुआ चला ॥ ४ ॥

देखिहौं जाय चरण जलजाता * अरुण मृदुल सेवक-सुखदाता ॥५॥
जे पद परसि तरी ऋषि नारी * दंडक–कानन–पावन–कारी ॥६॥

आज वह लाल कमलसे कोमल, सेवकोंको सुख देनेवाले चरणोंको देखूँगा ॥ ५ ॥ जिन चरणोंको छूकर ऋषि पत्नी तर गयी, दण्डक वन पवित्र हो गया ॥ ६ ॥

जे पद जनकसुता उर लाये * कपट-कुरंग संग धर धाये ॥७॥
हर उर-सर-सरोज-पद जेई * अहो भाग्य मैं देखब तेई ॥८॥

जो पद जानकीने हृदयमें धारण किये हैं और कपटके मृगके पीछे जो चरण चले (यदि रघुनाथजी शरण न रखें तो जानकीजी की तरह मैं दूर बैठे ध्यान करूँगा और जो मैं कहूँ कि कपटी हूँ तो जैसा मृगका कपट न विचार उसके संग गये वैसे ही मेरे अवगुण पर दृष्टि न करेंगे) ॥७॥ शिवजीके हृदय सरोवरमें जो पदकमल होकर रहते हैं मैं उन्हें (आखोंसे) देखूँगा, अहो मेरे परम भाग्य हैं ! (जिनका गुरु ध्यान करें उन्हींका चेलेको भी ध्यान करना योग्य है)॥८॥

दोहा-जिन पायनके पादुका, भरत रहे मन लाय ॥
सो पद आज विलोकिहौं, इन नयनन अब जाय ॥ ४३ ॥

जिन चरणोंकी पादुकामें भरतजीने मन लगा रखा है (जिन्होंने ऐश्वर्यका मद भरतजीको न होने दिया) आज वे ही पद इन नेत्रोंसे जाकर देखूँगा (फिर मुझे भी कोई ऐश्वर्यमद बाधा न करेगा ॥ ४३ ॥

इहि विधि करत सप्रेम विचारा * आयउ सपदि सिंधुके पारा ॥१॥
कपिन विभीषण आवत देखा * जाना कोउ रिपु दूत विशेखा ॥२॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक विचार करता शीघ्र समुद्रके पार हो आया, अथवा जो इस प्रकार विचार करता है वही शीघ्र समुद्रसे पार हो जाता है ॥ १ ॥ कपियोंने विभीषणको आता देखकर जाना कि यह कोई शत्रुका विशेष दूत है ॥ २ ॥

ताहि राखि कपीश पहँ आये * समाचार सब ताहि सुनाये ॥३॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई * आवा मिलन दशानन भाई ॥४॥

वानर उसे वहां ही रखकर सुग्रीवके पास आये और उन्हें सब समाचार सुनाया ॥ ३ ॥ सुग्रीव बोले-सुनिये रघुनाथजी ! दशाननका भाई मिलने आया है ॥ ४ ॥

कह प्रभु सखा बूझिये काहा * कहेउ कपीश सुनिय नरनाहा ॥५॥
जानि न जाय निशाचर माया * कामरूप केहि कारण आया ॥६॥

तब रघुनाथजी बोले-इसमें तुम्हारी क्या संमति है ? तब सुग्रीवजी बोले-सुनो महाराज ॥ ५ ॥ राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती, यह काम रूपी यथेच्छाचारी न जाने यहां क्यों आया है ॥ ६ ॥

भेद हमार लेन शठ आवा * राखिय बांधि मोहिं अस भावा ॥७॥
सखा नीति तुम नीक विचारी * मम प्रण शरणागत भयहारी ॥८॥

(आपका भेद मिलना कठिन है परन्तु) यह हमारा भेद लेनेको आया है मेरी संमतिमें तो यह आता है कि इसे बांध लो ॥ ७ ॥ (रघुनाथजी बोले) हे सखा ! तुमने नीति श्रेष्ठ विचारी है परन्तु (इसके प्रतिकूल) मेरी एक प्रतिज्ञा है कि जो शरणमें आता है उसका भय दूर करता हूं ॥ ८ ॥

सुनि प्रभु वचन हर्ष हनुमाना * शरणागत-वत्सल भगवाना ॥९॥

प्रभुके वचन सुनकर महावीरजी प्रसन्न हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं (जैसे गाय बछड़ेका शरीर चाटकर निर्मल कर देती है उसी प्रकार रघुनाथजी भक्तोंके पाप काट निर्मल कर देते हैं) ॥ ९ ॥

दोहा—शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ॥
ते नर पामर पापमय, तिनहि विलोकत हानि ॥ ४४ ॥

जो अपना अहित विचार कर शरणागतको त्याग देते हैं वे मनुष्य पापी और निकम्मे हैं उनको देखनेसे भी पाप लगता है ॥ ४४ ॥

कोटि विप्रवध लागहिं जाहू * आये शरण तजौं नहिं ताहू ॥१॥
सन्मुख होय जीव मोहिं जबहीं * जन्मकोटि अघ नासौं तबहीं ॥२॥

करोड़ों ब्राह्मणोंका वध जिसको लगा हो उसे भी शरण आनेसे मैं नहीं त्यागता ॥ १ ॥ जबही जीव मेरे सम्मुख होता है तभी मैं उसके कोटि जन्मके पाप नष्ट कर देता हूँ ॥ २ ॥

पापवन्त कर सहज स्वभाऊ * भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥३॥
जो पै दुष्ट हृदय सो होई * मोरे सन्मुख आव कि सोई ॥४॥

पापियोंका सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उनको कभी प्यारा नहीं लगता ॥३॥ जो वह दुष्ट हृदय होगा तो मेरे सम्मुख कैसे आवेगा ? ॥ ४ ॥

निर्मल मनजन सो मोहिं पावा * मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥५॥
भेद लेन पठवा दशशीशा *तदपि न कछु भयहानि कपीशा॥६॥

जो मनुष्य निर्मल स्वभाव वाले हैं वे ही मुझे प्राप्त होते हैं, मुझे कपट, छल, छिद्र नहीं सुहाता ॥ ५ ॥ हे सुग्रीव ! जो रावणने हमारा भेद लेनेको भेजा है तो भी कुछ भय और हानि नहीं है ॥ ६ ॥

जगमहँ सखा निशाचर जेते * लक्ष्मण हनहिं निमिष महँ तेते ॥७॥
जो सभीत आवा शरणाई * रखिहौं ताहि प्राण कि नाई ॥८॥

हे सखा ! जगत्में जितने राक्षस हैं, लक्ष्मणजी एक पलमें सबको मार सकते हैं ॥ ७ ॥ और जो डरकर मेरी शरणमें आया है तो मैं इसे प्राणके समान रक्खूँगा ॥ ८ ॥

दोहा—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिधान ॥
जय कृपालु कहि कपि चले, अंगदादि हनुमान ॥ ४५ ॥

डरकर आया है या दूसरे प्रकारसे आया है, परन्तु उसे ले आओ, यह बात रघुनाथजीने हँसकर कही ! अंगद, हनुमान आदि वानर 'जय कृपालु' यों कहकर चले ॥ ४५ ॥

सादर तेहि आगे कर वानर * चले जहाँ रघुपति सुख सागर ॥१॥
दूरिहिते देखे दोउ भ्राता * नयनानन्द-दानके दाता ॥२॥

---

१. सवैया—एकही वेर कहौं सुकहौं, कहिकै पुनि औरको और न भाखौं । कीन्हि, कृपा जेंहिपै तिहिपै अपराध निहारि न रंचहु माखौं । लावों कपीश विभीषणको, कर देऊं अभै शरणागत राखौं ॥ (रामरसायने) दोहा—जाहि लियो गहिकै अपनाय, तिन्हैं रसिकेश न भूलिहु नाखौं ? "कहा विभीषणको कथा, वश कन्धर यदि होय । शरणागत कहँ आनिये, विलम करहु मति कोय ॥"

अब सब वानर आदरपूर्वक विभीषणको आगे करके रघुनाथजीके पास चले ॥ १ ॥ विभीषणने दोनों भाइयोंको दूरसे देखा, जो नेत्रोंको आनंददान देनेवाले हैं ॥ २ ॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी * रह्यो ठिठकि इकटक पग रोकी ॥३॥
भुज प्रलम्ब कञ्जारुण-लोचन * श्यामल गात प्रणतभय-मोचन॥४॥

फिर रघुनाथजीकी छबि देखकर एकटक पग रोककर खड़ा रह गया। कहीं 'पल रोकी' पाठ है, वहां यह अर्थ करना कि नेत्रोंके पलक खुले रह गये ॥ ३ ॥ जिनकी लम्बी भुजाएँ, लाल कमलसे नेत्र श्यामल गात जो भक्तोंका डर दूर करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सिंह-कन्ध आयत उर सोहा * आनन अमित मदनमन मोहा ॥५॥
नयननीर पुलकित अति गाता * मन धरि धीर कही मृदुबाता ॥६॥

और सिंहके समान ऊँचे कंधे, चौड़ी सुन्दर छाती, मुख अनेक कामको मोहित करने वाला है, (इस प्रकार रघुनाथजीको देखकर) ॥ ५ ॥ नेत्रोंमें जल भरे शरीर पुलकित हो गया, मनमें धीरज धरके कोमल वाणी बोला ॥ ६ ॥

नाथ दशाननकर मैं भ्राता * निशिचर वंश जन्म सुरत्राता ॥७॥
सहज पापप्रिय तामस देहा * यथा उलूकहिं तमपर नेहा ॥८॥

हे देवताओंके रक्षक! (जो आपने प्रण किया है कि हम राक्षस रहित पृथ्वी कर देंगे) सो मेरा जन्म उसी राक्षस वंशमें है और दशाननका भाई हूँ। अथवा हे सुरत्राता! निशिचर-वंशके प्रवृत्त करनेका जो नाथ राजा है मैं उसी रावणका भाई हूँ ॥ ७ ॥ हमें स्वभावसे ही पाप प्यारा है क्योंकि तामसी देह है, जैसे उलूकका अन्धकारसे स्नेह होता है ॥ ८ ॥

दोहा-श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भवभीर ॥
त्राहि त्राहि आरत हरण, शरण सुखद रघुवीर ॥ ४६ ॥

आपका सुन्दर यश कानोंसे सुनकर आया हूँ; आप संसारका भय दूर करनेवाले हैं (आपके सिवा कोई मेरा दूसरा रक्षक नहीं इस कारण) हे रघुवीर! आप शरणागतके सुख-दाता और दुःखनाशक हो, मेरी रक्षा करो! रक्षा करो! "त्यक्त्वा दारांश्च पुत्रांश्च त्वामहं शरणं गतः" ॥ वाल्मी० ॥ ४६ ॥

अस कहि करत दण्डवत देखा * तुरत उठे प्रभु हर्ष बिसेखा ॥१॥
दीन वचन सुनि प्रभुमन भावा * भुज विशाल गहि हृदय लगावा॥२॥

यह कहकर उसे दंडवत् करते देखकर रघुनाथजी अति प्रसन्न हो तुरन्त उठ खड़े हुए ॥१॥ ॥ १ ॥ दीन वचन सुनकर प्रभुके मनको भाया और विशाल भुजाओंसे पकड़ कर हृदयसे लगा लिया (क्योंकि ब्रह्माजीके वरदान पानेके समयसे ही यह भगवद्भक्त था) ॥ २ ॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी * बोले वचन भक्त भय-हारी ॥३॥
कहु लंकेश सहित परिवारा * कुशल कुठाहर वास तुम्हारा ॥४॥

रामचन्द्र लक्ष्मण सहित मिलकर समीप बैठाकर भक्तोंके भयहारक वचन बोले ॥ ३ ॥ (विभीषणका मनोरथ लंकामें राज्य पानेका था इसी कारण रघुनाथजीकी भुजाको प्रथम देखा कि यह मनोरथ पूर्ण करेगी, लाल लाल आँखें देखीं, जो रावणकी शत्रुतासे भरी थीं श्याम शरीर शरणागत भयमोचन करनेवाला देखा) इसी आशयको जान रामचन्द्रजीने तुरन्त उसे लंकाका राज्य देना विचारा वा लंकेश पदका उच्चारण किया कि लंकाके राजा ! परिवार सहित अपना कुशल कहो, तुम्हारा वास बड़ा कुठौर है ॥ ४ ॥

खल मण्डली बसहु दिनराती * सखा धर्म निबहै केहि भाँती ॥५॥
मैं जानौं तुम्हारि सब रीती * अति नयनिपुण न भाव अनीती ॥६॥

हे सखा ! रात दिन खलमंडलीमें वास करते हो, अतः धर्म कैसे निभता है ॥५॥ मैं तुम्हारी सब रीतिको जानता हूँ कि तुम नीतिनिपुण हो अनीति तुमको नहीं अच्छी लगती ॥ ६ ॥

बरु भल वास नरक कर ताता * दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥७॥
अब पद देखि कुशल रघुराया * जो तुम कीन्हि जानि जन दाया ॥८॥

हे तात ! नरकका वास मिलना उत्तम है, परन्तु विधाता दुष्टका संग न दे (यह सुनकर विभीषण बोले) ॥ ७ ॥ हे रघुनाथजी ! अब आपके चरणोंको देखकर कुशल हुआ, जो आपने अपना भक्त जानकर दया की ॥ ८ ॥

दोहा-तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन विश्राम ॥
जब लगि भजत न रामकहँ, शोकधाम तजि काम ॥ ४७ ॥

तब तक जीवका कुशल नहीं होता और स्वप्नमें भी मनको विश्राम नहीं मिलता, जब तक शोकका धाम कामनाओंको त्यागकर रघुनाथजीका भजन नहीं करता ॥ ४७ ॥

तब लगि हृदय वसत खल नाना * लोभ मोह मत्सर मद माना ॥१॥
जब लगि उर न वसत रघुनाथा * धरे चाप शायक कटि भाथा ॥२॥

तबतक ही हृदयमें लोभ, मोह, मत्सर, मद, मान आदि अनेक दुष्ट वास करते हैं ॥१॥ जब तक हृदयमें रघुनाथजी कटिपर तरकस और हाथमें धनुष बाण धारण कर वास नहीं करते ॥ २ ॥

ममता तरुण तिमिर अँधियारी * राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥३॥
तब लगि बसत जीव उरमाहीं * जब लगि प्रभुप्रताप रवि नाहीं ॥४॥

ममता जो अँधेरी युवा रात है, वह राग-द्वेष अर्थात् प्रीति विरोध उलूँकोंको सुखकारी है ॥ ३ ॥ यह तभी तक जीवके हृदयमें वास करती है जब तक प्रभुके प्रताप रूपी सूर्यका उदय नहीं होता ॥ ४ ॥

अब मैं कुशल मिटे भय भारे * देखि राम पदकमल तुम्हारे ॥५॥
तुम कृपालु जापर अनुकूला * ताहि न व्याप त्रिविध भवशूला ॥६॥

हे रघुनाथजी ! अब मेरा सब प्रकार कुशल हुआ, सब भय मिट गये, आपके चरण-कमल देखनेसे कृतार्थ हो गया ॥ ५ ॥ हे कृपालु ! आप जिसके ऊपर अनुकूल होते हो उसे संसारमें तीन प्रकारके (दैहिक, दैविक, भौतिक) दुःख नहीं व्यापते ॥ ६ ॥

मैं निशिचर अतिअधम सुभाऊ * शुभ आचरण कीन्ह नहिं काऊ ॥७॥
जासु रूप मुनि ध्यान न पावा * सो प्रभु हर्षि हृदय मोहि लावा ॥८॥
मैं राक्षस अति नीच स्वभाववाला हूँ, कभी मैंने शुभ आचरण नहीं किया ॥७॥ जिसका रूप मुनियोंके ध्यानमें भी नहीं प्राप्त होता उन्होंने प्रसन्न हो मुझे हृदयसे लगाया ॥ ८ ॥

दोहा-अहो भाग्य मम अमित अति, रामकृपा सुखपुंज ॥
देखेउँ नयन विरंचि-शिव, सेव्य युगल पदकञ्ज ॥ ४८ ॥

अहो! मेरे बड़े अपरमित भाग्य हैं मैंने उन कृपालु सुखसागर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया है कि जिनके दोनों चरणकमलोंको ब्रह्मा, शिवजी सेवन करते हैं (अब रघुनाथजी बोले) ॥४८॥

सुनहु सखा निज कहौं सुभाऊ * जान भुशुण्डि शम्भु गिरिजाऊ ॥१॥
जो नर होय चराचर द्रोही * आवै सभय शरण तकि मोही ॥२॥
हे सखा! सुनो, मैं अपना स्वभाव कहता हूँ-इसे शिव पार्वती और काकभुशुण्डिजी जानते हैं ॥ १ ॥ जो मनुष्य चराचरका द्रोही हो और फिर डरकर मेरी शरणमें आजाय॥२॥

तजि मद मोह कपट छल नाना * करौं सद्य तेहि साधु समाना ॥३॥
जननी जनक बन्धु सुत दारा * तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥४॥
और मद (अहंकार), मोह (अज्ञान) और अनेक छल, कपट त्यागकर आवे तो मैं उसे शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ। कहीं 'आप समाना' पाठ है ॥ ३ ॥ माता, पिता, बन्धु, बेटे, स्त्री, तनु, गृह, धन, परिवार और मित्र ॥ ४ ॥

सबकी ममता ताग बटोरी * मम पद मनहिं बाँधि बटि डोरी ॥५॥
समदर्शी इच्छा कछु नाहीं * हर्ष शोक भय नहिं मनमाहीं ॥६॥
इन सबकी प्रीतिका तागा बटोर कर मनमें उसकी डोरी बटके मेरे चरणोंमें बांधे ॥ ५ ॥ समान दृष्टिसे रहे, कुछ इच्छा न रखे; मनमें हर्ष, शोक, भय कुछ न लावे ॥ ६ ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे * लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥७॥
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे * धरौं देह नहिं आन निहोरे ॥८॥
ऐसे सज्जन मेरे हृदयमें इस प्रकार वास करते हैं जैसे लोभीके हृदयमें धन रहता है ॥ ७ ॥ तुम सरीखे महात्मा मेरे प्यारे हैं, तुम्हारे ही समान साधुओंके निमित्त मैं देह धारण करता हूँ और के कहनेसे नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-सगुण उपासक परम हित, निरत नीति दृढ़ नेम ॥
ते नर प्राण समान मोहिं, जिनके द्विज पद प्रेम ॥ ४९ ॥

जो सज्जन सगुणके उपासक हैं वे (मेरे) परम हितैषी हैं और जिनका नीतिमें निश्चय (प्रीतिका नियम) है और ब्राह्मणोंमें जिनकी प्रीति है वे सज्जन मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं (यह प्रतिज्ञा जब रावणने विभीषण पर शक्ति चलाई तब रघुनाथजीने वह शक्ति अपने ऊपर ली, वहां पूर्णरूपसे दिखाई है) ॥ ४९ ॥

सुनु लंकेश सकल गुण तोरे * ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ॥१॥

राम वचन सुनि वानर-यूथा * सकल कहहिं जय कृपावरूथा ॥२॥

हे लंकेश ! सुनो, तुममें ये गुण वास करते हैं, इस कारण तुम मुझे परम प्यारे हो ॥ १ ॥ रघुनाथजीके वचन सुनकर सब वानर समूह कहने लगे कृपासिंधुकी जय हो ! ॥ २ ॥

सुनत विभीषण प्रभुकी बानी * नहिं अघात श्रवणामृत सानी ॥३॥
पद अम्बुज गहि बारहि बारा * हृदय समात न प्रेम अपारा ॥४॥

विभीषण कानोंसे प्रभुकी अमृतके समान वाणी सुनकर नहीं अघाये ॥ ३ ॥ बार बार चरण कमल पकड़कर (प्रार्थना करने लगे) हृदयमें अपार प्रेम नहीं समाता ॥ ४ ॥

सुनिय देव सचराचर-स्वामी * प्रणतपाल उर अन्तर्यामी ॥५॥
उर कछु प्रथम वासना रही * प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥६॥

हे देव ! चराचरके स्वामी ! हे दीनोंके पालन करनेवाले ! हे अन्तर्यामी ! सुनिये ॥ ५ ॥ पहले तो कुछ हृदयमें वासना भी थी, सो वह प्रभुके चरण कमलकी प्रीतिरूपी नदी द्वारा बह गयी अब कोई कामना नहीं है ॥ ६ ॥

अब कृपालु निज भक्ति सुपावनि * देहु दया करि शिवमन भावनि॥७॥
एवमस्तु कहि प्रभु रणधीरा * माँगा तुरत सिंधुकर नीरा ॥८॥

हे कृपालु ! अब अपनी पवित्र भक्ति जो शिवजीके मनको भाती है, मुझे दया करके दो॥७॥ 'यही हो' ऐसा कहकर रणधीर रघुनाथजीने तुरंत समुद्रका जल मांगा (और बोले) ॥ ८ ॥

यदपि सखा तोहि इच्छा नाहीं * मम दर्शन अमोघ जगमाहीं ॥९॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा * सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ॥१०॥

हे सखा ! यद्यपि तुझे इच्छा नहीं है, परन्तु जगत्में मेरा दर्शन अमोघ है (निष्फल नहीं जाता) ॥ ९ ॥ यह कहकर रघुनाथजीने उसे (लंकाके राज्यका) तिलक कर दिया। आकाशसे फूलोंकी अपार वर्षा हुई ॥ १० ॥

दोहा-रावण क्रोध अनल निज, श्वास समीर प्रचण्ड ॥
जरत विभीषण राखेउ, दीन्हेउ राज अखण्ड ॥ ५० ॥

रावणका क्रोध ही अग्नि है और अपना श्वास तीक्ष्ण पवन है उससे जलते हुए विभीषणको रखकर अखण्ड राज्य दिया ॥ ५० ॥

दोहा-जो सम्पति शिव रावणहि, दीन्हि दिये दशमाथ ॥
सोइ सम्पदा विभीषणहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥ ५१ ॥

जो सम्पदा शिवजीने रावणको दश शिर चढ़ाने पर दी थी वही सम्पदा रघुनाथजीने विभीषणको सकुचा कर दी ॥ ५१ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने सुन्दरकांडे विद्यावारिधि-पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायां पंचमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा-शुक रावण संवाद अरु, सागरको अभिमान ।
कथा षष्ठ विश्राममें, दूर कियो भगवान ॥ ६ ॥

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना * ते नर पशु बिनु पूँछ विषाना ॥१॥
निज जन जानि ताहि अपनावा * प्रभु सुभाव कपिकुल मन भावा ॥२॥

ऐसे प्रभुको छोड़कर जो औरोंका भजन करते हैं अर्थात् भूत प्रेतको इष्टदेव मानते हैं वे बिना सींग, पूँछके पशु हैं ॥ १ ॥ प्रभुने अपना भक्त जानकर उसे अपनाया यह प्रभुका स्वभाव वानरोंके मनको भाया ॥ २ ॥

पुनि सर्वज्ञ सर्व उरवासी * सर्वरूप सब रहित उदासी ॥३॥
बोले वचन नीति प्रति पालक * कारण मनुज दनुज कुलघालक॥४॥

फिर सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले) सबके हृदयमें वास करनेवाले, सर्व रूप सबसे रहित उदासीन ॥ ३ ॥ नीतिको पालन करनेवाले मनुष्यरूप धरकर दैत्य कुलका नाश करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजी वचन बोले ॥ ४ ॥

सुनु कपीश लंकापति वीरा * केहि विधि तरिय जलधि गंभीरा॥५॥
संकुल उरग मकर झष जाती * अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥६॥

हे सुग्रीव ! लंकापति वीर विभीषण ! सुनो, यह गंभीर सागर किस प्रकार उतरा जायगा ॥ ५ ॥ सर्प, मकर, झष (मछली) आदिसे युक्त है बहुत गहरा और सब प्रकारसे दुस्तर है, किस प्रकारसे इसे तरना चाहिए ॥ ६ ॥

कह लंकेश सुनहु रघुनायक * कोटि सिंधु शोषक तव शायक ॥७॥
यद्यपि तदपि नीति असि गाई * विनय करिय सागर सन जाई ॥८॥

तब विभीषण बोले-सुनो रघुनाथजी ! आपका बाण अनेक सागर शोष सकता है ॥७॥ यद्यपि यह बात ऐसी है, परन्तु नीति अनुसार जाकर सागरसे विनय करना चाहिये ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय विचारि ॥
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपि धारि ॥ ५२ ॥

हे प्रभो ! समुद्र आपका कुलगुरु है,(क्योंकि सगरके पुत्रोंसे उत्पन्न है) कोई उपाय विचार कर बतावेगा,जिससे सब रीछ और वानर सेना विना प्रयास सागर-पार हो जायगी ॥ ५२ ॥

सखा कहेउ तुम नीक उपाई * करब दैव जो होइ सहाई ॥१॥
मन्त्र न यह लक्ष्मण मन भावा * राम वचन सुनिअति दुखपावा ॥२॥

सखा ! तुमने अच्छा उपाय कहा, जो प्रारब्ध सहाय करे तो यही करेंगे ॥१॥ लक्ष्मणजीको मनसे यह संमति भली न लगी,रामजीके वचन सुनकर अतिदुख पाये (और कहने लगे) ॥२॥

नाथ दैव कर कौन भरोसा * शोषिय सिंधु करिय मन रोषा ॥३॥
कादर मनकर एक अधारा * दैव दैव आलसी पुकारा ॥४॥

हे नाथ ! दैवका क्या भरोसा ? मनमें रोष करके सागरको शोष लीजिये ॥ ३ ॥ यह तो एक कातरके मनका आधार है आलसी दैव दैव पुकारते हैं काम तो उद्योगसे सिद्ध होता है; "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी दैवेन देयमिति का पुरुषा वदंति" ॥ ४ ॥

सुनत विहँसि बोले रघुवीरा * ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥५॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई * सिंधु-समीप गये रघुराई ॥६॥

सुनकर रघुनाथजी हँसकर बोले-ऐसे ही करेंगे; मनमें धैर्य धरो ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर प्रभु अनुज (लक्ष्मणजी) को समझाकर समुद्रके किनारे गये ॥ ६ ॥

प्रथम प्रणाम कीन्ह शिर नाई ❋ बैठे तट पुनि दर्भ डसाई ॥७॥
जबहिं विभीषण प्रभु पहँ आये ❋ पाछे रावण दूत पठाये ॥८॥

पहले तो प्रभुने (सागरको) शिर नवाके प्रणाम किया, फिर कुश बिछाके किनारे पर बैठ गये ॥७॥ यहां जैसे विभीषण प्रभुके पास आये कि पीछेसे रावणने दूत भेज दिये ॥ ८ ॥

दोहा–सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपिदेह ॥
प्रभु गुण हृदय सराहहिं, शरणागत पर नेह ॥ ५३ ॥

उन्होंने कपटसे वानरी देह धारण कर सब चरित्र देखे और प्रभुके गुण हृदयसे सराहने लगे कि शरणागत पर बड़ी प्रीति है ॥ ५३ ॥

प्रगट बखानहिं राम-सुभाऊ ❋ अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥१॥
रिपुके दूत कपिन तब जाने ❋ तिन्हें बांधि कपीश पहँ आने ॥२॥

प्रकटमें रघुनाथजीके स्वभावका वर्णन करते थे, बड़े प्रेमके मारे दुराव भूल गये अर्थात् राक्षस हो गये ॥ १ ॥ तब वानरोंने शत्रुके दूत जाने और उन्हें बांधकर सुग्रीवके पासमें लाये (कहा ये रावणके दूत हैं क्या आज्ञा होती है) ॥ २ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब वनचर ❋ अंग भंग करि पठवहु निशिचर ॥३॥
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये ❋ बांधि कटक चहुँपास फिराये ॥४॥

सुग्रीवजी बोले वानरो ! सब कोई सुनो, इन राक्षसोंको अंग भंग करके भेजो ॥३॥ सुग्रीवके वचन सुनकर कपि दौड़े और राक्षसोंको बांधकर कटकके चारों तरफ फिराया ॥ ४ ॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे ❋ दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥५॥
जो हमार हर नासा काना ❋ तेहि कोशलाधीश कै आना ॥६॥

अनेक प्रकारसे कपि मारने लगे; वे दीन होकर पुकारने लगे, तो भी न छोड़े ॥ ५ ॥ तब वे बोले–जो हमारे नाक कान काटें उन्हें कोशलाधीश (रघुनाथजी) की आन है ॥ ६ ॥

सुनि लक्ष्मण तेहि निकट बुलाये ❋ दया लागि हँसि तुरत छुड़ाये ॥७॥
रावण कर दीन्हेउ यह पाती ❋ लक्ष्मण वचन बांचु कुलघाती ॥८॥

सुनकर लक्ष्मणजीने उन्हें समीप बुलाया और दयापूर्वक हँसकर छुड़ा दिया ॥ ७ ॥ और एक पत्री लक्ष्मणजीने लिखकर दी कि यह रावणके हाथमें देकर कहना; हे कुलघाती ! लक्ष्मणके वचन बाँचकर छाती ठंढी कर और ॥ ८ ॥

दोहा–कहेउ मुखागर मूढ़सन, मम संदेश उदार ॥
सीता देइ मिलहु नतु, आवा काल तुम्हार ॥ ५४ ॥

उस मूर्खसे जबानी भी मेरा सन्देश कह देना कि या तो जानकीजीको देकर मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया है ॥ ५४ ॥

तुरत नाय लक्ष्मणपद माथा ❋ चले दूत वर्णत गुणगाथा ॥१॥
कहत रामयश लंका आये ❋ रावण चरण शीश तिन नाये ॥२॥

दूत लोग तुरंत लक्ष्मणके चरणोंमें शिर नवाकर गुण वर्णन करते चले ॥ १ ॥ रघुनाथजीका यश कहते (सुनते) लंकामें आये और रावणके चरणोंमें शिर नवाये ॥ २ ॥

बिहँसि दशानन पूछेसि बाता * कहसि न शुक आपनि कुशलाता ॥३॥
पुनि कहु खबरि विभीषण केरी * जासु मृत्यु आई अतिनेरी ॥४॥

हँसकर रावणने बात पूछी कि हे शुक ! तुम अपनी कुशल क्यों नहीं कहते ? अर्थात् कहो ॥३॥ विभीषणका समाचार कहो, जिसकी मृत्यु निकट आ गयी है ॥ ४ ॥

करत राज्य लंका शठ त्यागी * होइहि यवकर कीट अभागी ॥५॥
पुनि कहु भालु कीश कटकाई * कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥६॥

जो लङ्काको राज्य करते छोड़ गया वह (मूर्ख) भाग्यहीन जौके कीड़ासा होगा अर्थात् जैसे जौके संग घुन पिस जाता है ऐसे ही नष्ट होगा ॥ ५ ॥ फिर रीछ वानरोंकी कटकाई कहो (कितनी है ?) जो कठिन कालकी प्रेरणासे चली आयी है ॥ ६ ॥

जिनके जीवनकर रखवारा * भयो मृदुल चित सिंधु विचारा ॥७॥
कहु तपसिनकी बात बहोरी * जिनके हृदय त्रास अति मोरी ॥८॥

जिनके जीवनका रक्षक कोमल चित्तवाला विचारा सागर हुआ है ॥ ७ ॥ फिर तपस्वियों की बात कहो ? जिनके हृदयमें मेरा अत्यन्त भय रहता है ॥ ८ ॥

दोहा—की भइ भेंट कि फिर गये, श्रवण सुयश सुनि मोर ॥
कहसि न रिपुदल तेजबल, बहुत चकित चित तोर ॥ ५५ ॥

तेरी भेंट उनसे हुई या मेरे सुयशको श्रवण करके लौट गये, शत्रुका दल, तेज बल क्यों नहीं कहता ? तेरा चित्त बहुत चकित हो रहा है ॥ ५५ ॥

नाथ कृपा करि पूछहु जैसे * मानहु वचन क्रोध तजि तैसे ॥१॥
मिला जाय जब अनुज तुम्हारा * जातहि राम तिलक तेहि सारा ॥२॥

शुक बोले—हे नाथ ! जैसे कृपा करके पूछते हो वैसे ही क्रोध त्याग मेरे वचन मानो ॥१॥ जभी तुम्हारा छोटा भाई जाकर मिला तभी रघुनाथजीने उसे लंकाका राज्यतिलक कर दिया ॥२॥

रावणदूत हमहिं सुनि काना * कपिन्ह बांधि दीन्हे दुख नाना ॥३॥
श्रवण नासिका काटन लागे * राम शपथ दीन्हे हम त्यागे ॥४॥

हमें आपका दूत कानोंसे सुनकर कपियोंने बांधकर बड़े दुःख दिये ॥ ३ ॥ और हमारे कान नाक काटने लगे; हमने रघुनाथजीकी शपथ दिवायी तो छोड़ा ॥ ४ ॥

पूछेहु नाथ राम-कटकाई * वदन कोटिशत बरणि न जाई ॥५॥
नाना वरण भालु कपि धारी * विकटानन विशाल भयकारी ॥६॥

आप श्रीरामचन्द्रजीकी कटकाई पूछते हो, सो सौ करोड़ मुखोंसे नहीं वर्णी जायगी ॥ ५ ॥ अनेक वर्णके रीछ वानर हैं विकट मुखवाले बड़े भयानक हैं ॥ ६ ॥

जेहि पुर दहेउ बधेउ सुत तोरा * सकल कपिन महँ तेहि बल थोरा ॥७॥
अमित नाम भट कठिन कराला * अमितनागबल विपुल विशाला ॥८॥

जिसने लंका जलायी, तुम्हारे पुत्रको मारा उसके सब वानरोंसे थोड़ा बल है, इसके कहनेसे प्रभुके प्रतापकी महिमा दिखाई कि उनकी कृपासे छोटे भी बड़ा कार्य करते हैं। अथवा जिसने

लंका जलायी है, उससे (सकल कपिन महँ) और बन्दरोंमें कुछ थोड़ा बल नहीं, जब एक से ठिकाना न लगा तो बहुतोंसे कैसे होगा ? ॥ ७ ॥ उन कठिन भयानक योद्धाओंके अनेक नाम हैं और एकएकमें असंख्य हाथियोंका विशेष बल है ॥ ८ ॥

दोहा–द्विविद मयंद नील नल, अंगदादि विकटासि ॥
दधिमुख केहरि कुमुद गव, जाम्बवन्त बल रासि ॥ ५६ ॥

द्विविद, नील, नल, अंगद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव, जाम्बवंत ये तो सब योद्धा बलकी राशि हैं ॥ ५६ ॥

ए कपि सब सुग्रीव समाना * इन सम कोटिन गनै को नाना ॥१॥
रामकृपा अतुलित बल तिनहीं * तृण समान त्रैलोकहि गिनहीं ॥२॥

ये सब वानर सुग्रीवके समान हैं इनके समान और भी करोड़ों हैं, उन्हें कौन गिन सकता है ? ॥१॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे उनके अपरिमित बल हैं, तृणके समान तीनों लोकको गिनते हैं॥२॥

अस मैं श्रवण सुना दशकंधर * पद्म अठारह यूथप बन्दर ॥३॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं * जो न तुम्हें जीते रणमाहीं ॥४॥

हे रावण ! यह वार्ता मैंने सुनी है कि अठारह पद्म वानरोंके सेनापति हैं और जितनी सेना है उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ हे नाथ ! कटकमें ऐसा कोई वानर नहीं जो लड़ाईमें तुम्हें न जीत ले ॥ ४ ॥

परम क्रोध मींजहिं सब हाथा * आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥५॥
शोषहिं सिंधु सहित झष व्याला * पुरहि न तौ धरि कुधर विशाला ॥६॥

वे सब बड़े क्रोधसे (लंकामें घुसनेको) हाथ मलते हैं परंतु रघुनाथजी आज्ञा नहीं देते॥५॥ मीन, सर्पसहित समुद्र शोष लें जो ऐसा भी काम न चले तो पर्वत रखकर पाट दें "फारहिं नख धरि कुधर विशाला" कहीं ऐसा पाठ है तो यह अर्थ है कि नखोंसे पर्वतोंको फाड़ डालें॥६॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दशशीशा * ऐसेइ वचन कहहिं सब कीशा ॥७॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज अशंका * मानहुँ ग्रसन चहहिं अब लंका ॥८॥

मलकर रावणको गर्दमें मिला दो, सब वानर ऐसा ही वचन कहते हैं ॥ ७ ॥ गरजते हैं तुमको भयकारी वचन कहते हैं, निडर हैं,मानो अब इस लंकाको खाना चाहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–सहज सूर कपि भालु सब, पुनि शिरपर प्रभु राम ॥
रावण काल कोटि कहँ, जीति सकैं संग्राम ॥ ५७ ॥

एक तो कपि, भालु सब स्वाभाविक ही शूर हैं, पुनः उनके रखनेवाले रघुनाथजी हैं, सो हे रावण ! तुम तो क्या हो ! करोड़ों कालको भी संग्राममें जीत सकते हैं ॥ ५७ ॥

रामतेज बल बुधि विपुलाई * शेष सहसशत सकहिं न गाई ॥१॥
सक शर एक शोषि शत सागर * तव भ्रातहि पूछेउ नयनागर ॥२॥

उन रघुनाथजीके तेज, बल, बुद्धिकी अधिकता सौ हजार शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते ॥ १ ॥ वे एक ही बाणसे सौ सागर शोष सकते हैं, परंतु तुम्हारे भाईसे नीति अनुसार पूछा कि सागरके उतरनेका क्या उपाय करें ? (उसने कहा कि सागर से विनय करो) ॥ २ ॥

तासु वचन सुनि सागर पाहीं * मांगत पंथ कृपा मन माहीं ॥३॥
सुनत वचन विहँसा दशशीशा *जो असि मति सहायकृत कीशा॥४॥

उसके वचन सुनकर सागरसे पंथ मांगते हैं, क्योंकि उनके मनमें बड़ी कृपा है ॥ ३ ॥ यह वचन सुनकर रावण हँसा, कि जिसकी ऐसी मति है और सहायक बन्दर हैं तो बन्दर क्या कर सकते हैं ? अथवा जो ऐसी मति है तभी तो बन्दर सहायक हैं ॥ ४ ॥

सहज भीरु करि वचन दृढ़ाई * सागरसन ठानी मचलाई ॥५॥
मूढ़ मृषा कत करसि बड़ाई * रिपुबल बुद्धि थाह मैं पाई ॥६॥

जन्मके कातर हैं और वचनकी ढिठाई कर समुद्रसे मचलाई ठानते हैं अथवा स्वाभाविक डरपोक विभीषणके वचन मानकर सागरसे मचलाई ठानी है ॥ ५ ॥ अरे मूर्ख ! क्यों वृथा बड़ाई करता है ? मैंने शत्रुकी बुद्धि की थाह पा ली ॥ ६ ॥

सचिव सभीत विभीषण जाके * विजय विभूति कहाँ लगि ताके॥७॥
सुनि खल वचन दूत रिस बाढ़ी * समय विचार पत्रिका काढ़ी ॥८॥

जिसके यहां विभीषणसे डरपोक मन्त्री हैं उसे विजय (जीत) और (विभूति) ऐश्वर्य नहीं प्राप्त हो सकती ॥७॥ उस दुष्टके वचन सुनकर दूतको अति क्रोध आया और समय विचार कर पत्री काढ़ी ॥ ८ ॥

राम अनुज दीन्हीं यह पाती * नाथ बँचाय जुड़ावहु छाती ॥९॥
बिहँसि वामकर लीन्हेसि रावन *सचिव बोलि शठ लाग बचावन॥१०॥

हे नाथ ! लक्ष्मणजीने यह पत्री दी है, इसे बँचाकर छाती ठंढी करो ॥ ९ ॥ रावणने हँसकर बायें हाथसे ली और मन्त्रीको बुलाकर बँचाने लगा (पत्रिका बायें हाथसे लेना मन्त्री से पढ़वाना यह निरादर है उसमें लिखा था कि) ॥ १० ॥

दोहा—बातन मनहि रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीश ॥
राम विरोध न उबरसि, शरण विष्णु अज ईश ॥ ५८ ॥

अरे मूर्ख ! बातोंसे ही तो मन रिझाकर कुलका नाश मत कर; चाहे विष्णु, ब्रह्मा और शिवजीकी शरणमें जा; परन्तु रघुनाथजीसे वैर करनेसे तेरा उद्धार नहीं होगा ॥ ५८ ॥

दोहा—की तजि मान अनुज इव, प्रभुपदपंकज भृंग ॥
होहि कि राम शरानल, खल कुल सहित पतंग ॥ ५९ ॥

अरे मूर्ख ! या तो मान त्याग कर विभीषणकी तरह तुम भी प्रभुके चरणकमलमें भौंरेकी नाई प्रेम करनेवाले हो, अथवा रामचन्द्रजीके बाणकी अग्निमें कुल सहित पतंग हो ॥५९॥

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई * कहत दशानन सबहिं सुनाई ॥१॥
भूमि परा कर गहत अकाशा * लघु तापस कर वाग विलासा ॥२॥

सुनते ही रावण मनमें तो डरा, परंतु ऊपरसे हँसकर सबको सुनाता हुआ बोला ॥ १ ॥ देखो तो छोटे तपस्वीका वाग्विलास ! भूमिपर गिरके मैं आकाशवत् हूँ; उसे पकड़ना चाहता है, अर्थात् छोटा तपस्वी ही मुझे जीतना चाहता है ॥ २ ॥

कह शुक नाथ सत्य सब बानी *समुझहु छांड़ि प्रकृति अभिमानी॥३॥

सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा * नाथ रामसन तजहु विरोधा ॥४॥

शुकने कहा हे नाथ ! सब सत्य है जो चिट्ठीमें लिखा है उसे समझो और अभिमानी प्रकृतिको छोड़ दो॥३॥ हे नाथ ! क्रोधको त्यागकर वचन सुनो, रघुनाथजीसे वैर त्याग दो॥४॥

अति कोमल रघुवीर-स्वभाऊ * यद्यपि अखिल लोककर राऊ ॥५॥
मिलत कृपा प्रभु तुमपर करिहैं * उर अपराध न एकौ धरिहैं ॥६॥

यद्यपि रघुनाथजी सम्पूर्ण लोकके राजा हैं तथापि उनका स्वभाव अतिकोमल है ॥ ५ ॥ रघुनाथजी मिलते ही तुम पर कृपा करेंगे, हृदयमें एक भी अपराध न धरेंगे ॥ ६ ॥

जनकसुता रघुनाथहिं दीजै * इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥७॥
जब तेहि देन कहेउ वैदेही * चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ॥८॥

हे स्वामिन् ! जानकीजी रघुनाथजीको दीजिये, इतना मेरा कहा कीजिये ॥७॥ जब उसने जानकीजी देनेको कहा तो सुनते ही मूर्ख रावणने लात मारी ॥ ८ ॥

नाय चरण शिर चला सो तहाँ * कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ॥९॥
करि प्रणाम निज कथा सुनाई * राम कृपा आपनि गति पाई॥१०॥

चरणोंमें शिर नवाकर वह रघुनाथजीके पास चला ॥ ९ ॥ उन्हें प्रणाम करके अपनी कथा सुनायी और रामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी गति पाई ॥ १० ॥

ऋषि अगस्त्यके शाप भवानी * राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी ॥११॥
वंदि राम पद बारहिं बारा *मुनि निज आश्रम कहँ पगुधारा॥१२॥

शिवजी बोले हे पार्वती ! यह एक ज्ञानी मुनि था, अगस्त्यजीके शापसे राक्षस हो गया था ॥११॥ बार बार रघुनाथजीके चरणोंकी वंदना करके मुनिने अपने स्थानको प्रस्थान किया (अब इधरका वृत्तांत सुनो) ॥ १२ ॥

दोहा–विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति ॥
बोले राम सकोप तब, भय विन होय न प्रीति ॥ ६० ॥

मूर्ख सागरने विनय नहीं मानी, प्रार्थना करते तीन दिन बीत गये, तब रघुनाथजी क्रोध करके बोले-भय विना प्रीति नहीं होती (यदि कोई संदेह करे कि रामचन्द्रजीका सम्मान क्यों नहीं किया ? तो उत्तर यह है कि समुद्र रामकी नरलीला देख मोहित हो गया । दूसरे उसको उत्तरतटके निवासियोंका दमन कराना था;इस कारण प्रार्थना करनेसे भी न आया)॥६०॥

लक्ष्मण बाण शरासन आनू * सौषौं वारिधि विशिख कृशानू॥१॥
शठसन विनय कुटिलसन प्रीती * सहज कृपणसन सुन्दरि नीती ॥२॥

---

१. एक समय अगस्त्यजी इसके आश्रम पर आये, इन्होंने ज्ञानके अभिमानसे आदर सन्मान उठकर नहीं किया तब अगस्त्यजीने शाप दिया कि राक्षस हो जा फिर उसके बड़ी प्रार्थना करने पर कहा–त्रेताके चौथे चरणमें रघुनाथजीके दर्शनसे कृतार्थ होगे ।। अध्यात्मरामायणमें यह कथा ऐसी है–शुक ब्रह्मनिष्ठ थे, इन्होंने आसुरी यज्ञका अनुष्ठान किया एक दिन अगस्त्यको निमन्त्रण दिया उस समय उनके चले जाने पर पिछले वैरसे वज्रदंष्ट्रराक्षसने अगस्त्यके रूपमें कहा कि हमको सामिष अन्न भोजन कराना, शुकने स्वीकार किया, तब राक्षसने वहांके रसोईयेका रूप धरा और नरमांस बनाया । जब अगस्त्य आये तब उन्होंने नरमांस देखकर शुकको शाप दिया कि राक्षस हो जा; पीछे राक्षसका कर्तव्य जानकर कहा कि रावणके समीप जा रहो, त्रेताके अंतमें रामचंद्रजीके आने पर रावणको ज्ञान सिखानेसे तिरस्कृत होकर श्रीरामचंद्रजीका दर्शन पाकर मुक्त होगे ।

हे लक्ष्मण ! धनुष बाण लाओ, अभी अग्निबाणसे सागरको सुखाता हूँ ॥ १ ॥ मूर्खसे विनती, कुटिलसे प्रीति, स्वाभाविक कृपणसे सुन्दर नीतिका उपदेश करना ॥ २ ॥

ममतारत सन ज्ञान-कहानी * अतिलोभी सन विरति बखानी॥३॥
क्रोधिहि शम कामिहि हरि कथा * ऊषर बीज बये फल यथा ॥४॥

ममतारत (मोहवाले) से ज्ञान कथा कहनी, अति लोभीसे वैराग्यकी चर्चा करनी ॥३॥ क्रोधीको शांतिका उपदेश, कामीको हरि कथा सुनानी ऊषरमें बीज बोनेके समान है अर्थात् व्यर्थ है ॥ ४ ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा * यह मत लक्ष्मणके मन भावा ॥५॥
संधानेउ प्रभु विशिख कराला *उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला॥६॥

ऐसा कहकर रघुनाथजीने धनुष चढ़ाया यही मत लक्ष्मणजीको अच्छा लगा ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने बड़ा तीक्ष्ण बाण सन्धान किया समुद्रके हृदयसे ज्वाला उठने लगी ॥ ६ ॥

मकर उरग झषगण अकुलाने *जरत जन्तु जलनिधि जब जाने ॥७॥
कनक थार भरि मणिगण नाना * विप्ररूप आयउ तजि माना ॥८॥

मकर, सर्प, मछली, आदि सब व्याकुल हो गये, जब समुद्रने जाना कि सब जले जाते हैं ॥७॥ तब सोनेके थालमें अनेक प्रकारकी बहुत मणि भरकर ब्राह्मणका रूप धारण कर मान त्याग आया ॥ ८ ॥

दोहा—काटेहिंपै कदली फरै, कोटि यतन कोउ सींच ॥
विनय न मान खगेश सुनु, डाटेहि पै नव नीच ॥ ६१ ॥

काकभुशुण्डजी कहते हैं—हे गरुड़जी ! सुनो चाहे कोई अनेक यत्नसे सींचे परंतु केला काटने पर ही फरता है इसी प्रकार नीच भी प्रार्थना नहीं सुनता डाटने पर ही नवता है ॥६१॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे * छमहु नाथ सब अवगुण मेरे ॥१॥
गगन समीर अनल जल धरणी * इनके नाथ सहज जड़ करणी ॥२॥

समुद्रने डर कर प्रभुके पद पकड़ लिये और कहा—नाथ ! मेरे सब कुछ अवगुण अब क्षमा करो ॥१॥ हे नाथ ! आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी इनकी स्वाभाविक जड़ करणी है ॥२॥

तव प्रेरित माया उपजाये * सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये ॥३॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई * सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥४॥

इन्हें आपकी प्रेरणासे मायाने उपजाया है और इनको सब ग्रंथोंने सृष्टिका कारण कहा है ॥ ३ ॥ प्रभुकी जैसी आज्ञा जिसको है वह उसी तरह रहनेसे सुख पाता है ॥ ४ ॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही * मर्यादा सब तुम्हरी कीन्ही ॥५॥
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी * यह सब ताड़नके अधिकारी ॥६॥

प्रभुने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा दी यह मर्यादा आपकी ही हुई है । जो जैसे हैं उनसे वैसे ही किया जाय, मायाके कारण मैं प्रथम उपस्थित न हुआ ॥५॥ ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, स्त्री ये सब ताड़ना करनेके योग्य हैं, अर्थात् जो समझानेसे स्त्री, शूद्र आदि न मानें तो उनको डाट दे, फिर न माने तो कुछ ताड़न करे, यह नहीं कि प्रथमसे ही मारे ॥ ६ ॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई * उतरहि कटक न मोरि बड़ाई॥७॥
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई * करहु सो वेगि जो तुमहि सुहाई॥८॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सूख जाऊँगा; कटक उतर जायगा, परन्तु इसमें मेरी बड़ाई न होगी॥७॥ वेद कहता है, आपकी आज्ञा अपेल (अनिवार्य) है इससे जो आपकी इच्छा हो शीघ्र करो॥८॥

दोहा-सुनत विनीत वचन अति, कह कृपालु मुसुकाय॥
जेहि विधि उतरै कपि कटक, तात सो कहहु उपाय॥ ६२॥

यह (सागरके) विशेष विनययुक्त वचन सुनकर कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुसकाकर बोले- हे तात! जिस प्रकार वानरोंका कटक उतरे वही उपाय कहो॥ ६२॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई * लरिकाई ऋषि आशिष पाई॥१॥
सरिता निकट रहे मुनि छाई * करहिं उपद्रव तहँ दोउ भाई॥२॥

हे नाथ! (आपकी सेनामें) जो दोनों भाई नील, नल (सेनापति हैं) उन्हें लड़कपनमें ऋषिने शाप दिया था जिसे इस समय शाप नहीं बल्कि आशीष कहना चाहिये, आगे क्षेपक है॥ १॥ नदीके किनारे मुनि रहते थे, उनके निकट जाकर ये दोनों उपद्रव करते थे॥ २॥

आँख मूँदि मुनि ध्यान लगावैं * तब यह ठाकुरको लेइ जावैं॥३॥
सो जल महँ सब देहिं डुबाई * तब मुनि शाप दियो रिसियाई॥४॥

जब आंखें मूँदके मुनि ध्यान लगाते थे तब ये नील नल उनके ठाकुरको उठाकर ले जाते थे॥३॥ सब जलमें डाल देते थे, इसीसे तब मुनिने क्रोध करके यह शाप दिया॥ ४॥

वस्तु तुम्हार छुई जो होई * पानी पै उतरावै सोई॥५॥
अस्थिर रहे चले सो नाहीं * तब यह कछु समझे मनमाहीं॥६॥

जो वस्तु तुम्हारी छुई होगी वह पानी पर उतरावेगी॥५॥ और वह जहांकी तहां स्थिर रहेगी चलेगी नहीं, तब उन्होंने कुछ मनमें समझा (अपनी चञ्चलता त्याग दी)॥ ६॥ (इति क्षेपक)

तिनके परस किये गिरि भारे * तरिहैं जलधि प्रताप तुम्हारे॥७॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु-प्रभुताई * करिहौं बल अनुमान सहाई॥८॥

उनके स्पर्श करनेसे बड़े पर्वत आपके प्रतापसे समुद्र पर तरेंगे॥ ७॥ और मैं भी आप की प्रभुताई हृदयमें धारण करके बलके अनुसार सहायता करूँगा॥ ८॥

इहि विधि नाथ पयोधि बँधाइय *जेहियह सुयश लोक तिहुँ गाइय॥९॥
यहि शर मम उत्तर तटवासी *हतहु नाथ खलगण अघराशी॥१०॥

हे महाराज! इस प्रकार सागरको बँधाइये; जिससे यह आपका यश त्रिलोकी गावे॥९॥ नाथ इस बाण से (जो आपने चढ़ाया है) मेरे उत्तर तटके रहनेवाले किरातगण बड़े पापात्मा हैं उनका नाश करो॥ १०॥

सुनि कृपालु सागर-मन पीरा * तुरतहि हरी राम रणधीरा॥११॥
देखि राम बल पौरुष भारी * हर्षि पयोनिधि भयो सुखारी॥१२॥

दयालु तथा रणधीर रघुनाथजीने सागरके मनकी पीड़ा सुनकर तुरन्त ही दूर कर दी उस

देशके किरात जो दुःखदायी थे उन्हें मार दिया; इससे उस स्थानका जल शुष्क हो गया तब उसे वर दिया कि यहां बहुत फल फूल होंगे ॥ ११ ॥ रघुनाथजीका भारी पौरुष बल देख समुद्र प्रसन्न हो सुखी हुआ ॥ १२ ॥

सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा ❋ चरण वंदि पाथोधि सिधावा॥१३॥

(रावणके घरका) सब प्रसंग प्रभुको सुनाकर चरणोंमें दण्डवत् करके चला गया ॥१३॥

छन्द--निजभवन गवनेउ सिन्धु श्रीरघुपतिहि मत यह भायऊ ॥
यह चरित कलिमलहर यथामति दास तुलसी--गायऊ ॥
सुखभवन संशय शमन दमन विषाद रघुपति--गुणगना ॥
तजि सकल आश भरोस गावहिं सुनहिं सज्जन शुचिमना ॥ १६ ॥

सागर अपने घर गया और रघुनाथजीने उसके वचन मान लिये। कलि मल हरनेवाला यह चरित्र यथामति तुलसीदासजीने गाया है, यह कथा सुखकी निधान, संशय नाशक और विषाद नाशक है, इसमें रघुनाथजीके गुण वर्णन किये हैं, सम्पूर्ण (विषयोंकी) आशाएं और दूसरोंका भरोसा त्यागकर पवित्र मनवाले सज्जन इसे गाते तथा सुनते हैं ॥ १६ ॥

दोहा-सकल सुमंगल-दायक, रघुनायक गुणगान ॥
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥ ६३ ॥

रघुनाथजीके गुणोंका गान सकल आनंद मंगलका देनेवाला है जो आदर पूर्वक सुनते[1] हैं वे विना जहाज संसारके पार हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने विमलैश्वर्यसंपादनो नाम पंचमः सोपानः समाप्तः ।

दोहा-महावीर सुख-दानिके, चरण कमल चित धार ।
सुन्दरकी टीका करी, कछु निजमति अनुसार ॥ १ ॥
संवत वसु अरु वेद ग्रह, शशि सुन्दर रविवार ।
दीपमालिकाके दिवस, पूरण कियो विचार ॥ २ ॥
तड़ित विनिंदक पीत पट, लक्ष्मणयुत जगदीश ।
द्विज ज्वाला परसाद नित, तुमको नावत शीश ॥ ३ ॥
दीनबन्धु करुणायतन, हम पर होहु दयाल ।
शरणागत-वत्सल प्रभो, भक्तनके रखवाल ॥ ४ ॥

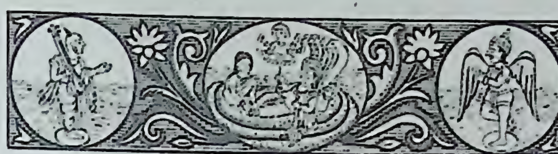
इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासि पं० सुखानन्द मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां सुन्दरकांडे षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

इति सुन्दरकाण्डं समाप्तम् ॥

---

१. सज्जनो ! इस तरह कथा न सुने कि मन घरके कामोंमें लगा है, बैठे कथामें हैं, जैसे एक बजाज कहने सुननेसे कथामें गये और राम राम करते पंडित जीकी चौकीके समीप ही बैठ गये नींद आ गयी, स्वप्न देखने लगा कि अपनी दुकानमें बैठे हैं ग्राहक बैठे हैं लेन देनका सौदा हो रहा है, अंतमें आय बोले चार ही आने गज ले पंडितजीका जो अंगरखा था उसका दामन सोते समय हाथमें आ गया, झट उसे फाड़ डाला तब लोग बोले यह क्या हुआ। लालाजी बहुत लज्जित हुए। सो ऐसे सुननेसे निस्सार नहीं होता अतः मन लगाकर कथा सुननी चाहिये।

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत

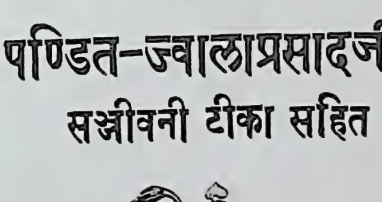
रामायण

लंकाकाण्डम् ६.

विद्यावारिधि-

श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



श्रीरामपञ्चायतन

लंकाकाण्डम् ६

दोहा–समर विजय रघुवीरके, सुनहिं जे सन्त सुजान ।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान ॥



नल नीलादि वन्दरोंकरके सेतु रचना और श्री रामचन्द्रजीका रामेश्वर (शिवलिंग) का स्थापन करना

चौपाई–भव भंजन- गंजन संदेहा । जनरञ्जन सज्जन प्रिय एहा ।
राम उपासक जे जगमाहीं । यहि सम प्रिय तिन कहँ कछु नाहीं ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

लंकाकाण्डम् ६.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

श्लोकः—रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं,
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ॥ १ ॥

वीररस प्रधान युद्ध कांडमें गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार रघुनाथजीकी वंदना करते हैं—मैं (कामारिसेव्यम्) कामदेवके अरि शिवजीसे सेव्यमान, (भवभयहरणम्) संसारके जन्म-मरणके भय हरनेवाले, (कालमत्तेभसिंहम्) कालरूपी मतवाले हाथी को मारनेको सिंह, (योगीन्द्रज्ञान गम्यम्) योगियोंमें जो श्रेष्ठ नारद शुक सनकादिक उनको ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य, (गुणनिधि) गुणोंके समुद्र, (अजितम्) जो किसीके जीतनेमें न आवें, (निर्गुणम्) गुणातीत, (निर्विकारम्) विकार रहित, (मायातीतम्) मायासे परे, (सुरेशम्) देवताओंके स्वामी, (खलवधनिरतम्) दुष्टोंके मारनेमें तत्पर, (ब्रह्मवृंदैकदेवम्) ब्राह्मणोंके पूजनेको एक देव अथवा ब्राह्मणोंके वृन्द हैं देवता जिनके, (कंदावदातम्) मेघकी आभा समान सुन्दर, (सरसिजनयनम्) कमलसे नेत्रवाले, (देवम्) दिव्य-गुणयुक्त, (उर्वीशरूपम्) साक्षात् पृथ्वीपतिरूपधारण किये (रामम्) श्रीरघुनाथजीको (वंदे) नमस्कार करता हूँ। कहीं देवकैः सेव्यमानं, पाठ है अर्थ—देवताओंसे सेवित हैं ॥ १ ॥

शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूलचर्म्माम्बरं,
कालव्यालकपालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम् ।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं,
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशंकरं कामदम् ॥ २ ॥

(शंखेन्द्वाभम्) जिनकी शंख और चन्द्रमाके समान कांति है, (अतीव सुन्दरतनुम्) बहुत सुन्दर शरीर, (शार्दूलचर्म्माम्बरम्) सिंहका चर्म ही जिनका वस्त्र है, (कालव्यालकपालभूषणधरम्) कालके समान सर्प और कपालरूप गहने धारण करनेवाले, अर्थात् जीवोंके काल-

रूप सर्प धारण किये और कपालमें विभूति भूषण धारण किये, (गंगाशशांकप्रियम्) गङ्गा और चन्द्रमाको प्यार करनेवाले, (काशीशम्) काशीके पति, (कलिकल्मषौघशमनम्) कलियुगके पाप समूहोंके नाशकर्त्ता, (कल्याणकल्पद्रुमम्) कल्याणोंके कल्पवृक्ष, (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य अर्थात् चराचरके पूजनीय, (गिरिजापतिम्) पार्वती पति, (गुणनिधिम्) गुणोंके सागर, (कामदम्) कामनाओंके पूर्ण करनेवाले (श्रीशंकरम्) शांतिदाता शिवजीको (नौमि) नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे ॥ ३ ॥

(यः) जो (शंभु) शिवजी महाराज (सताम्) महात्माओंको (दुर्लभम्) दुष्प्राप्य (कैवल्यम्) मुक्ति (ददाति) देते हैं, (यः) जो (असौ) वे (खलानाम्) दुष्टोंके (दंडकृत) दण्डकरनेवाले (शंकरः) महादेवजी हैं सो (मे) मेरे निमित्त (शम्) कल्याणको (तनोतु) विस्तार करें ॥ ३ ॥

टीकाकारकृत मङ्गलाचरण

दोहा-कर शर वर कोदंड दृढ़, कटिनिषंग रणधीर ।
जटा जूट माथे कस्यो, छबि निधान रघुवीर ॥ १ ॥
महावीर अंगद सुभट, जाम्बवन्त सुग्रीव ।
कुमुद नील नल विकट मुख, गव गवाक्ष बलसींव ॥ २ ॥
सागर तट सब विकट भट, बैठे वीर स्वरूप ।
शोभित तिनके मध्यमें, राम लषण सुर भूप ॥ ३ ॥
सभा सहित रघुराजके, चरणकमल शिर नाथ ।
करहुँ यथामतिसो तिलक, कीजै आय सहाय ॥ ४ ॥

दोहा-लव निमेष परिमाण युग, वर्ष कल्प शर चंड ॥
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड ॥ १ ॥

हे मन ! उन श्रीरामचन्द्रजीका भजन क्यों नहीं करता कि जिनके लवसे कल्पपर्यन्त प्रचण्ड बाण हैं, काल धनुष है; पलकके लगानेका नाम लव है, साठ लवका एक निमेष, साठ निमेषका एक परिमाण, साठ परिमाणका एक पल, साठ पलका एक दंड अर्थात् घड़ी, साठ घड़ीका एक दिनरात, तीस दिनरातका एक महीना, बारह महीनोंका एक वर्ष, सौ वर्ष उनके बाणकी दण्डी है, लव निमेष बाणोंके फोंक हैं; वे वर्षमें लगे हैं; चार युग ही बाणके पर हैं, कल्प प्रचण्ड गांसी है; हजार सतयुग, हजार त्रेता, हजार द्वापर, हजार कलियुग बीतने पर ब्रह्माका एक दिन होता है इसको कल्प कहते हैं, वही बाण है महाकालका जो महाप्रलय वही धनुष है, जो कालके भीतर उत्पत्ति पालन है वही प्रत्यंचा है जिसका धनुष हो उसीके बाण भी होते हैं, यथा "काम कुसुमधनु सायक लीन्हें" सो यह बाण ब्रह्मादिकोंको लगते रहते हैं मनुष्योंकी क्या गिनती है ? हे मन ! जिनका काल ही धनुषबाण है उन श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर । इस कांडमें निरंतर बीररसका प्रतिपादन किया है । यहां धनुषबाणकी महिमा वर्णन की॥ १॥

सोरठा-सिन्धु वचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ॥
अब विलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटक ॥ १ ॥

(इस सोरठेसे सुन्दर और लंकाकाण्डका प्रसंग मिला दिया है कि) सिन्धुके वचन सुनकर रघुनाथजीने मंत्रियोंको बुलाकर यह कहा कि अब क्यों देर करते हो पुलकी रचना करो जिससे कि कटक उतरे ॥ १ ॥

सोरठा–सुनहु भानुकुल केतु, जाम्बवन्त कर जोरि कह ॥
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिं ॥ २ ॥

जाम्बवन्त हाथ जोड़कर बोले–हे सूर्य कुलके ध्वजारूप! आपका नाम ही सेतु है; जिस पर मनुष्य आरोहण करके संसार सागरसे पार हो जाते हैं ॥ २ ॥

यह लघु जलधि तरत कति वारा * अस सुनि पुनि कह पवन कुमारा ॥१॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी * शोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी ॥२॥

फिर इस लघु--सागरके तरनेमें क्या देर लगेगी? यह सुन फिर महावीरजी बोले ॥ १ ॥ आपका बड़वानलरूप प्रताप पहले ही समुद्रके जलको शोष चुका है ॥ २ ॥

तव रिपुनारि रुदन जलधारा * भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा ॥३॥
सुनि अस उक्ति पवनसुत केरी * बिहँसे रघुपति कपि तन हेरी ॥४॥

जब आपके शत्रुओंकी नारियाँ रोईं तो यह उनके आंसुओंसे फिर भर गया और इसी कारण खारा हो गया है? कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि 'तोयरिपुं' जलके शत्रु अगस्त्यजीने जब आप के प्रतापसे शोष लिया तब उसके रुदनसे नाड़ी द्वारा निकाल दिया, इसीसे यह खारा हो गया है। जब आपके भक्तोंने ऐसा किया तो आपकी क्या बड़ी बात है? ॥ ३ ॥ महावीरजी की यह उक्ति सुनकर कपिके शरीरकी ओर देख रघुनाथजी हँसे ॥ ४ ॥

जाम्बवंत बोले दोउ भाई * नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥५॥
राम प्रताप सुमिरि मनमाहीं * करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥६॥

जाम्बवन्तने दोनों भाई नल नीलको बुलाकर यह सब कथा सुनाई जो सागर कह गया था ॥ ५ ॥ श्रीरघुनाथजीका प्रताप मनमें स्मरण करके पुल बांधो; कुछ प्रयास न होगा ॥ ६ ॥

बोलि लिये कपिनिकर बहोरी * सकल सुनहु इक विनती मोरी ॥७॥
रामचरण पंकज उर धरहू * कौतुक एक भालु कपि करहू ॥८॥

फिर कपियोंके समूहों को बुलाकर कहा--तुम सब मेरी एक विनती सुनो ॥ ७ ॥ हे भालु कपियो! रघुनाथजीके चरणकमलको हृदयमें धारण कर एक कौतुक करो ॥ ८ ॥

धावहु मर्कट विकट बरूथा * आनहु विटप गिरिनके यूथा ॥९॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा * जय रघुवीर प्रताप-समूहा ॥१०॥

हे अनेक प्रकारसे साहसी वानरो! वृक्ष और पर्वतोंको उठाकर लाओ ॥९॥ सुनकर रीछ और बन्दर 'हूहा' शब्द करके रघुनाथजीका यश समूह बखानते चले ॥ १० ॥

दोहा–अति उतंग तरु शैलगण, लीलहि लेहिं उठाय ॥
आनि देहिं नल नील कहँ, रचहिं ते सेतु बनाय ॥ २ ॥

बड़े बड़े ऊँचे पर्वत तथा वृक्षोंको खेलसे ही उठा लेते और नल, नीलको लाकर देते हैं, वे बनाकर सुन्दर सेतु रचते हैं ॥ २ ॥

चहुँ दिशि कहँ सब बानर धावहिं * कंदुक इव नग कहँ धरि लावहिं॥१॥
चौदह योजन रच्यो प्रथम दिन * दूजे वीस रच्यो प्रमुदित मन ॥२॥

चारों ओरको सब वानर धावमान होते हैं, गेंदके समान पर्वतोंको उठा लाते हैं (यहांसे क्षेपक है) ॥१॥ प्रसन्न मन हो पहले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस योजन सेतु रचा ॥ २ ॥

तीजे दिन इक्कीस बनायो * बाइस चौथे दिवस सुहायो ॥३॥
पंचम दिन योजन तेईसा * रच्यो नील नल प्राज्ञ हरीसा ॥४॥

तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाइस योजन बनाया ॥३॥ वानर श्रेष्ठ नील नलने पांचवें दिन तेइस योजन बनाया ! इस प्रकार पांच दिनमें सौ योजन बनाया ॥ ४ ॥

पूर्ण भयो सत योजन जबहीं * आज्ञा दी रघुनन्दन तबहीं ॥५॥
अब कोई पर्वत मत लावो * जहाँ तहाँ तुरतहि पधरावो ॥६॥

जब पूरा सौ योजन इस पारसे उस पारतक बँध गया तब श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा दी ॥ ५ ॥ अब कोई पर्वत मत लाओ, जहां तहां रख दो, विलंब मत करो ॥ ६ ॥

तेहि क्षण शृंग हिमालय भारी * लावत हैं हनुमान उपारी ॥७॥
वृन्दावन ढिग पहुँचे जाई * तहँ प्रभुकी आज्ञा सुनि पाई ॥८॥

जिस समय यह आज्ञा हुई उस समय महावीरजी हिमालयका शृंग ला रहे थे ॥७॥ सो वृन्दावनके निकट आकर पहुँचे वहां प्रभुकी आज्ञा सुनी ॥ ८ ॥

दोहा–सुनि आज्ञा हनुमान तब, तहँ गिरि धरो उतारि ॥
गिरि गोवर्धन विप्र तनु, धरि तब कह्यो उचारि ॥ १ ॥

आज्ञा सुनते ही महावीरजीने पर्वत रख दिया, तब गोवर्धनने विप्ररूप धरकर कहा (कि तुम तो रामके निकटकी प्रतिज्ञा करके लाये थे) ॥ १ ॥

रामदरश इच्छा मनमाहीं * त्यागो हमहिं उचित अस नाहीं॥१॥
महावीर सुनि प्रभु पहँ आये * ताके समाचार सब गाये ॥२॥

सो हमारे मनमें रामके दर्शनकी इच्छा है, तुम हमें त्यागते हो, यह उचित नहीं है ॥१॥ यह सुन महावीरजी (उसे समुझाय) रामजीके पास आये सब समाचार सुनाये ॥ २ ॥

रघुपति कह्यो कहो तुम जाई * द्वापर अन्त दरश दें आई ॥३॥
सात दिवस करपर तेहि धरिहौं * तीन लोक महिमा विस्तरिहौं ॥४॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा उससे जाकर कहो कि द्वापरके अन्तमें आकर दर्शन देंगे ॥ ३ ॥ सात दिन तक उसे हाथ पर धारण करेंगे, उसकी तीन लोकमें महिमा विस्तृत होगी ॥ ४ ॥

महावीर पुनि तेहि पर आये * प्रभुके सब सन्देश सुनाये ॥५॥
सुनि गोवर्धन हर्षित भारी * मग्न प्रेम सुमिरे अघहारी ॥६॥

यह सुनकर महावीरजी फिर उसके निकट आये और प्रभुके वचन सुनाये ॥ ५ ॥ गोवर्धन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और प्रेममें मग्न हो भगवान्का स्मरण किया ॥ ६ ॥ (इ० क्षे०)

शैल विशाल आनि कपि देहीं * कंदुक इव नल नील सो लेहीं ॥७॥
देखि सेतु अति सुन्दर रचना * विहँसि कृपानिधि बोले वचना ॥८॥

बड़े बड़े पर्वत बन्दर लाकर देते हैं नल नील उन्हें गेंदके समान हाथमें लेते हैं ॥ १ ॥ पुलकी अतीव सुन्दर रचना देखकर रघुनाथजी हँसकर यह वचन बोले ॥ २ ॥

परम रम्य उत्तम यह धरणी * महिमा अमित जाय नहिं वरणी॥३॥
करिहौं यहां शंभु-थापना * मोरे हृदय परम कल्पना ॥४॥

यह धरणी परम रम्य और उत्तम है, इसकी बड़ी महिमा है; जो वरणी नहीं जाती। धरणीकी महिमा इस कारण कही कि द्रविड़ देश भक्तिकी जन्म भूमि है और देवाराधनको पर्वत पीठ उत्तम स्थान है, यहां अनेक पर्वतोंका सङ्गम है, समुद्रका तट है इस कारण यह स्थान परमोत्तम है ॥३॥ यहां मैं शिवजीकी स्थापना करूँगा यह मेरे हृदयका संकल्प है (शिवजीके स्थापन करनेका परम संकल्प इस कारण कहा कि रावण शंकरका परम भक्त है और उसके यहां शिवजीका स्थापन हो चुका है। रघुनाथजीने रावणके मारनेका निश्चय किया है; इस कारण शिवजीके प्रसन्न करनेको यहां स्थापना करते हैं कि रावणका विनाश देख चित्त उदास न कीजिये मैं आपकी सेवा करूँगा। दूसरी बात यह है कि यदि कोई वैष्णव शिवजीकी निंदा अज्ञानवश हो करे तो ऐसे अधर्म और अज्ञानके निवारण करनेको प्रतिज्ञा की कि मेरे धर्म स्थापन और अधर्म नाशके तो अनेक संकल्प हैं परंतु यह संकल्प सर्वोपरि है) ॥ ४ ॥

सुनि कपीश बहु दूत पठाये * मुनिवर निकर बोलि लइ आये॥५॥
लिङ्ग थापि विधिवत करि पूजा * शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा॥६॥

सुनकर सुग्रीवने कई दूत भेजे वे अनेक मुनियोंको बुलाकर ले आये। कोई कोई कहते हैं कि रावणने स्थापना कराई और जानकीजीको लाया, भला यह कैसे हो सकता है कि अनेक सदाचारी ज्ञानी मुनियोंके होते हुए रघुनाथजी दुराचारी पापी रावणको अपने यज्ञमें बुलाते और उस महा अभिमानीको क्या दक्षिणाकी आवश्यकता थी जो जानकीजीको लेकर यज्ञमें आता ? उसने तो जानकीके देनेके नामसे विभीषणको निकाल दिया, फिर रघुनाथजी और लक्ष्मणजी कैसे उसे जानकीजीको ले जाने देते ? क्या जुयेमें हार गये थे या वह जीतकर ले गया था जो धर्म विचार कर उसके पास छोड़ देते ? इस कारण रावणके आनेकी सम्पूर्ण वार्त्ता असङ्गत है और चौपाईमें प्रत्यक्ष दूतोंका भेजना, मुनियोंका बुलाना लिखा है ॥५॥ लिंगकी स्थापना करके विधिवत् पूजा जैसी वेदमें लिखी है वैसी ही की और कहने लगे कि शिवजीके समान मुझे कोई प्यारा नहीं है गोसाईंजी पूर्व कालमें शिवजीको "सेवक स्वामि सखा सियपियके" लिख चुके हैं, सेवकका लक्ष्य तो- "पूजि पार्थिव नायउ माथा" स्वामीका लक्ष्य- "रघुकुलमणि मम स्वामि सोइ, कहि शिव नायउ माथ" स्वामी यहां हैं तथा वाल्मीकीय रामायणमें भी शिवजीका स्थापन लिखा है, यथाहि "एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। सेतुबंध इतिख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्। एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्। अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः" अर्थात् रघुनाथजी कहते हैं कि हे जानकी ! यह जो देखती हो सो महात्मा सागरका तीर्थ है सेतुबन्ध त्रिलोकीमें पूजित है, यह बड़ा पवित्र पापनाशक तीर्थ है, यहां ही रावणपर चढ़ाई करनेसे पहले मैंने महादेवजीको स्थापित किया था, जिनकी कृपासे मैंने रावणको जीता। ये लंका कांडके श्लोक इसी प्रकार वेदमें मृत्युञ्जय और रुद्राध्याय शिवजीकी महिमामें विद्यमान हैं॥६॥

शिवद्रोही मम दास कहावै * सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावै ॥७॥
शंकर-विमुख भक्ति चह मोरी * सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥८॥

जो शिवजीसे द्रोह करता हो और मेरा दास कहावे वह मनुष्य स्वप्नमें भी मुझको नहीं पावेगा ॥ ७ ॥ जो मनुष्य शिवजीसे विमुख हो और मेरी भक्ति चाहे वह मूर्ख, बुद्धिहीन तथा नारकी है ॥ ८ ॥

दोहा-शंकर प्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही मम दास ॥
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ वास ॥ ३ ॥

जो शैव होकर मेरे द्रोही हों वा वैष्णव होकर शिवसे द्रोह करें वे मनुष्य कल्प पर्यन्त घोर नरकमें वास करेंगे । "शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः" ॥ ३ ॥

जो रामेश्वर दर्शन करिहैं *सो तनु तजि मम धाम सिधरिहैं॥१॥
जो गङ्गाजल आनि चढ़ाइहि * सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि ॥२॥

जो रामेश्वरके दर्शन करेंगे वे शरीर त्याग करनेके उपरांत मेरे धामको प्राप्त होंगे । (रघुनाथजी बोले कि इस स्थानका क्या नाम होगा ? तब ऋषियोंने कहा 'रामेश्वर' अर्थात् जहां राम और ईश्वर विराजते हैं यह सखा भाव है, रघुनाथजी बोले कि 'रामके ईश्वर' स्वामीभाव है, तब पिण्डी बोली-'कि राम हैं ईश्वर जिसके' यही सेवक भाव है इत्यादि) ॥ १ ॥ जो मनुष्य आकर गङ्गाजल चढ़ावेगा वह सायुज्य मुक्ति पावेगा ॥ २ ॥

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि* भक्ति मोरि तेहि शंकर देइहि ॥३॥
मम कृत सेतु जो दरशन करिहैं * सो बिनु श्रम भव सागर तरिहैं॥४॥

जो कामना रहित हो छल त्याग सेवा करेगा उसे शिवजी मेरी भक्ति देंगे ॥ ३ ॥ जो कोई मेरे पुलका दर्शन करेंगे वे विना परिश्रम भवसागरसे पार हो जायँगे ॥ ४ ॥

राम वचन सबके मन भाये *मुनिवर निज निज आश्रम आये॥५॥
गिरिजा रघुपतिकी यह रीती * सन्तत करहिं प्रणत पर प्रीती ॥६॥

रघुनाथजीके वचन सबके मनको अच्छे लगे, सब मुनिवर अपने अपने आश्रमको चले आये ॥५॥ शिवजी बोले-हे पार्वती! रघुनाथजीकी यह रीति है कि सदा दासों पर प्रीति करते हैं॥६॥

बांधेउ सेतु नील नल नागर * रामकृपा यश भयउ उजागर ॥७॥
बूड़हि आनहिं बोरहिं जेई * भये उपल बोहित सम तेई ॥८॥

चतुर नील और नलने पुल बांधा; रघुनाथजीकी कृपासे सर्वत्र यश फैल गया ॥ ७ ॥ जो दूसरोंको डुबा दें और आप भी डूब जायँ वे ही पत्थर जहाजके समान हो गये ॥ ८ ॥

महिमा यह न जलधिकी वरणी * पाहन गुण न कपिनकी करणी॥९॥

यह कुछ समुद्रकी महिमा नहीं थी,पत्थरों का गुण नहीं था,कपियोंकी भी करणी नहीं थी॥९॥

दोहा-श्री रघुवीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान ॥
ते मतिमन्द जो राम तजि, भजहिं जाय प्रभु आन ॥ ४ ॥

किंतु श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे पत्थर समुद्रमें तर गये । वे बड़े मूर्ख हैं जो रघुनाथजीको त्याग औरोंका जाकर भजन करते हैं ॥ ४ ॥

बांधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा * देखि कृपानिधिके मन भावा ॥१॥
चली सेन कछु वरणि न जाई * गर्जहिं मर्कट भट समुदाई ॥२॥

बड़ा दृढ़ और सुन्दर पुल बांधा, उसे देख रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ इतनी सेना चली कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, बन्दर योद्धाओंके समूह गर्जते हैं ॥ २ ॥

सेतुबन्ध ढिग चढ़ि रघुराई * चितव कृपालु सिन्धु बहुताई ॥३॥
देखन कहँ प्रभु करुणा कन्दा * प्रगट भये सब जलचर वृन्दा ॥४॥

सेतु बन्धके ढिग चढ़कर कृपालु रघुनाथजी समुद्रकी बहुताई देखने लगे ॥ ३ ॥ करुणा-सागर रघुनाथजीके देखनेको अनेक जलचर प्रकट हो गये अर्थात् पानीके ऊपर आ गये॥४॥

नाना मकर नक्र झष व्याला * शतयोजन तनु परम विशाला ॥५॥
ऐसेउ एक तिनहिं जे खाहीं * एकनके डर एक डेराहीं ॥६॥

मगर (नाके), घड़ियाल, मछली, सांप जिनका परम विशाल सौ योजनका शरीर है; वा सबके शरीर मिलकर सौ योजनमें हो गये हैं ॥ ५ ॥ उनमें ऐसे भी हैं जो उन्हें पकड़ कर खा जायँ और एकके डरसे एक भागने वाले हैं परन्तु ॥ ६ ॥

प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे * मन हर्षित सब भये सुखारे ॥७॥
तिनकी ओट न देखिय वारी * मगन भये हरि रूप निहारी ॥८॥

प्रभुको देखते हैं टारनेसे भी नहीं टरते और सब मनमें प्रसन्न हो सुखी हुए हैं ॥ ७ ॥ इनकी ओटमें जल नहीं दीखता था ये हरिरूप निहारके मग्न हो गये ॥ ८ ॥

चला कटक कछु वरणि न जाई * को कहिसक कपिदल विपुलाई ॥९॥

कटक चला, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता वानरोंके दलकी विपुलता अर्थात् अधिकता कौन वर्णन कर सके ? ॥ ९ ॥

दोहा-सेतुबन्ध भइ भीर अति, कपि नभ पन्थ उड़ाहिं ॥
अपर जलचरन ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं ॥ ५ ॥

सेतु बंध पर बड़ी भीड़ हुई और सागरसे उतरनेके तीन मार्ग इसमें वर्णन किये हैं कारण यह है संसारसागरसे पार होनेके भी तीन ही मार्ग "कर्म, उपासना, ज्ञान" हैं । जो वानर सेतुपर चढ़कर जाते हैं वे कर्मकाण्डी हैं, जो जलजन्तुओं पर चढ़कर पार जाते हैं वे उपासक हैं, जो आकाशमें उड़कर जाते हैं वे ज्ञानी हैं, परन्तु फल सबका एकही है कि रघुनाथजीकी प्रसन्नता भक्तिरूपी जानकीजीकी प्राप्ति और मोहादिरूप शत्रु रावणादिकोंका नाश ॥ ५ ॥

यह कौतुक विलोकि दोउ भाई * विहँसि चले कृपालु रघुराई ॥१॥
सेन सहित उतरे रघुवीरा * कहि न जाय कपि यूथप भीरा॥२॥

कृपासागर दोनों भाई हँसकर यह कौतुक देखते हुए चले ॥ १ ॥ सेना सहित रघुनाथजी उतरे वानरोंकी भीड़का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

सिन्धु-पार प्रभु डेरा कीन्हा *सकल कपिन कहुँ आयसु दीन्हा॥३॥
खाहु जाय फल मूल सुहाये * सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये॥४॥

सागरके पार उतर प्रभुने डेरा किया और सब कपियोंको यह आज्ञा दी कि ॥३॥ जाकर

बनके सुन्दर मूल फल खाओ, यह सुनकर रीछ और वानर जहां तहां खानेको दौड़े ॥ ४ ॥

सब तरु फले राम हित लागी * ऋतु अनऋतु अकालगति त्यागी॥५॥
खाहिं मधुरफल विटप हिलावहिं * लंका सनमुख शिखर चलावहिं॥६॥

रामजीके निमित्त सब वृक्ष ऋतु अनऋतुके फलनेके नियम त्यागकर फलनेवाले हो गये अर्थात् जिनके फलनेका समय नहीं था वे भी फले हुए हैं ॥ ५ ॥ वानर मीठे फल खाते हैं पेड़ोंको हिलाते हैं लंकाके सामने शिला फेंकते हैं ॥ ६ ॥

जहँ कहुँ फिरत निशाचर पावहिं * घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥७॥
दशनन काटि नासिका काना * कहि प्रभु सुयश देहिं तब जाना॥८॥

जहां कहीं राक्षसोंको फिरते देखते हैं तो उन्हें घेरकर अनेक नाच नचाते हैं ॥ ७ ॥ दांतोंसे उनके नाक कान काटते हैं, जब वे रघुनाथजीका सुयश बखानते हैं तब जाने देते हैं ॥ ८ ॥

जिनकर नाशा कान निपाता * तिन्ह रावणहिं कही सब बाता॥९॥
सुनत श्रवण वारिधि बन्धाना * दशमुख बोलि उठा अकुलाना॥१०॥

जिनके नाक कान काटते थे उन्होंने रावणसे जाकर रघुनाथजीकी सेनाकी सब व्यवस्था सुनायी (कि पुल बांधकर इस पार आ गये) ॥९॥ कानोंसे सागरका बंधन सुनते ही रावण घबड़ाकर दशों मुखोंसे बोल उठा । भाव यह कि रावणके दश मुख थे परंतु बातचीत एक ही मुखसे करता था, जब सुना कि रघुनाथजी इधर आये, अनेक राक्षसोंके नाक और कान काटे गये तब व्याकुल होकर समुद्रके दश नामोंको दशों मुखोंसे बोल उठा ॥ १० ॥

दोहा-बांधेउ वननिधि नीरनिधि, जलधि सिन्धु वारीश ॥
सत्य तोयनिधि कम्पति, उदधि पयोधि नदीश ॥ ६ ॥

वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश बांध लिया क्या सत्य है ? (रावणको यह शाप भी था कि जब यह दशों मुखोंसे बोलेगा तो इसकी मृत्यु होगी यह समझकर व्याकुल हो गया; फिर यह कहा कि मुझे शाप क्या करेगा ? यह तो मेरे मनका भय है) ॥ ६ ॥

व्याकुलता निज समुझि बहोरी * विहँसि चला गृहकरि भय भोरी॥१॥
मन्दोदरी सुना प्रभु आयो * कौतुक ही पाथोधि बँधायो ॥२॥

रावण अपनेको व्याकुल जान हँसकर घरको चला । इस कारण कि ऐसे न हो कि मेरे मुखसे कोई और घबराहटकी बात निकल जाय । अथवा ऐसा न हो कि वानर यहां आकर मेरे ही नाक कान काट लें इस कारण मनमें बहुत भयमान घरको चला ॥१॥ इधर मन्दोदरीने सुना कि रघुनाथजी आये उन्होंने कौतुकसे ही सागर बांध लिया ॥ २ ॥

कर गहि पतिहि भवन निज आनी * बोली परम मनोहर बानी ॥३॥
चरण नाय शिर अञ्चल रोपा * सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा ॥४॥

रावणका हाथ पकड़कर मन्दोदरी अपने घर लायी और परम मनोहर वाणी बोली, इससे यह सूचित हुआ कि रावण घबड़ाया हुआ घरमें जाता था सो मन्दोदरीने यह उसकी दशा

देखकर विचारा कि इस समय उपदेश लग सकेगा इस कारण हाथ पकड़ कर लायी और बोली॥३॥ चरणोंमें शिर नवाके अंचल फैलाकर बोली कि हे स्वामी ! कोप त्याग मेरा वचन सुनो॥४॥

नाथ वैर कीजै ताहीसों * बुद्धिबल जीत सकिय जाहीसों॥५॥
तुमहिं रघुपतिहि अन्तर कैसा * खलु खद्योत दिवाकर जैसा ॥६॥

हे स्वामी ! वैर तो उसीसे करना चाहिये जिसे बुद्धि बलसे जीत सके ॥ ५ ॥ खलु (निश्चय करके) तुममें और रघुनाथजीमें इतना अन्तर है कि जितना पटबीजने और सूर्यमें होता है ॥ ६ ॥

अतिबल मधु कैटभ जिन मारा * महावीर दितिसुत संघारा ॥७॥
जेइ बलि बांधि सहसभुज मारा * सोइ अवतरेउ हरण महि भारा॥८॥

जिन्होंने महाबली मधुकैटभको मारा और महाबली दितिके पुत्र (हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष) को मारा ॥ ७ ॥ जिन्होंने राजा बलिको बांधा और जिन्होंने सहस्र भुजावाले कार्त्तवीर्यार्जुनको मार डाला, तुम्हारे वीस भुजा हैं, वही पृथ्वीका महाभार हरण करनेको अवतार लिये हैं ॥ ८ ॥

तासु विरोध न कीजिय नाथा * काल कर्म गुण जिनके हाथा ॥९॥

हे नाथ ! उनसे विरोध मत करो; जिनके हाथमें काल, कर्म, गुण हैं अर्थात् काल जगत्को खाता है, कर्म जो चराचरको बांधे हुए है और गुण अर्थात् गुणरूप रस्सी जिससे सब बँधे हुए हैं सो ये तीनों जिसके आधीन हैं उससे वैर त्याग दो ॥ ९ ॥

दोहा-रामहिं सौंपहु जानकी, नाय कमलपद माथ ॥
सुत कहँ राज्य समर्पि वन, जाय भजहु रघुनाथ ॥ ७ ॥

जानकी रघुनाथजीको सौंप दो और उनके चरण कमलमें माथा नवाके पुत्रको राज्य देकर तुम वनमें जाकर रघुनाथजीका भजन करो ॥ ७ ॥

नाथ दीन दयालु रघुराई * बाघौ सनमुख गये न खाई ॥१॥
चाहिय करन सो सब करि बीते * तुम सुर असुर चराचर जीते ॥२॥

हे नाथ ! रघुनाथजी (सदा) दीनोंके ऊपर दया करते हैं, शरणागत पालक हैं और देखो वे तो क्या ! बाघ भी सम्मुख जाने से नहीं खाता है ॥ १ ॥ जो तुमको करना चाहिये था वह सब कर लिया, क्योंकि तुमने देवता, राक्षस, चराचर सब जीत लिये हैं। अथवा जो न करना चाहिये वह सब तुमने कर लिया ॥ २ ॥

वेद कहहिं अस नीति दशानन * चौथे पनहि जाय नृप कानन ॥३॥
तासु भजन कीजै तहँ भर्ता * जो कर्ता पालक संहर्ता ॥४॥

हे स्वामी ! वेदने ऐसी नीति वर्णन की है चौथेपनमें राजा वनमें तप करनेको चला जाय ॥ ३ ॥ हे स्वामी ! उनका भजन वहां वनमें जाकर कीजिये जो संसारको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सोइ रघुवीर प्रणत अनुरागी * भजहु नाथ ममता मद त्यागी॥५॥
मुनिवर यतन करहिं जेहिं लागी * भूप राज तजि होहिं विरागी ॥६॥

वे ही रघुनाथजी दीनोंके ऊपर अनुराग करने वाले हैं यह ममता और अभिमान त्याग, उन्हींका भजन करो ॥५॥ जिनके निमित्त श्रेष्ठमुनि यत्न करते हैं राजा राज्य त्याग करके विरागी होते हैं ॥ ६ ॥

सोइ कोशलाधीश रघुराया * आये करन तोहिं पर दाया ॥७॥
जौ पिय मानहु मोर सिखावन * होइ सुयश तिहुँपुर अतिपावन ॥८॥

वे ही परब्रह्म परमेश्वर कोशलदेशके राजा तुमपर दया कर घर बैठे दर्शन देनेको आये हैं ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! जो तुम मेरा कहना मानो तो त्रिलोकीमें तुम्हारा अति पवित्र यश होगा, (जो जानकीजीको दे दोगे) ॥ ८ ॥

दोहा-अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कंपित गात ॥
नाथ भजहु रघुवीर पद, मम अहिवात न जात ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर नेत्रोंमें जल भर कर चरण पकड़ लिये शरीर कांपने लगा और बोली, हे नाथ ! रघुनाथजीके चरणोंका भजन करो जिससे मेरा अहिवात (सुहाग) न जाय अथवा मेरा सुहाग तो (न जाता) कभी नहीं जायगा; सदा सुहागिनी ही बनी रहूँगी ॥ ८ ॥

तब रावण मयसुता उठाई * कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥१॥
सुनु तैं प्रिया मृषा भय माना * जग योधा को मोहिं समाना ॥२॥

तब रावण मन्दोदरीको चरणोंपरसे उठाकर अपनी बड़ाई अपने मुख से करने लगा । जो अपने मुखसे अपनी बड़ाई करते हैं वे खल हैं इसी कारण यहां रावणको खल कहा है ॥१॥ हे प्रिया ! सुन तो तूने क्या वृथा भय माना है; बता तो जगत्में मेरे समान कौन योद्धा है॥२॥

वरुण कुबेर पवन यम काला * भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ॥३॥
देव दनुज नर सब वश मोरे * कवन हेतु उपजा भय तोरे ॥४॥

वरुण, कुबेर, पवन, यम, कालादि जितने दिक्पाल हैं उन सबको मैंने भुजाओंके बलसे जीत लिया; देख, राज्य करते अनेक युग बीत गये और काल भी मेरे निकट नहीं आया अथवा मैं रघुनाथजीसे युद्ध कर फिर प्रकृति मंडलमें नहीं आऊँगा, इस कारण कालका जीतना कहा । इससे विदित होता है कि रावण तत्त्ववेत्ता है वेदका भाष्य बनाया है क्योंकि शांतरसके विना काल नहीं जीता जाता ॥ ३ ॥ देवता, राक्षस और मनुष्य मेरे वशमें हैं, तुझे किस निमित्त भय हो रहा है॥४॥

नाना विधि तेहि कहि समुझाई * सभा बहोरि बैठि सो जाई ॥५॥
मन्दोदरी हृदय अस जाना * काल विवश उपजा अभिमाना ॥६॥

अनेक प्रकारसे उसे कहकर समझाया फिर वह सभामें चला गया ॥५॥ मन्दोदरीने हृदयमें ऐसा अनुमान किया कि कालके वशीभूत होनेके कारण स्वामीको अभिमान हो गया है॥६॥

सभा जाय मन्त्रिन सो बूझा * करिय कवन विधि रिपुसन जूझा ॥७॥
कहहिं सचिव सुनु निशिचर नाहा * बार बार प्रभु बूझत काहा ॥८॥

समाजमें जाकर मन्त्रियोंसे पूछा कि शत्रुसे किस प्रकार युद्ध करना चाहिये ? ॥ ७ ॥ मन्त्री बोले-हे महाराज़ ! सुनिये, आप बार बार क्या पूछते हैं ? ॥ ८ ॥

कहहु कवन भय करिय विचारा * नर कपि भालु अहार हमारा ॥९॥

कहो ऐसा क्या डर है विचार किया जाय ? मनुष्य, वानर, रीछ तो हमारे भोजन हैं॥९॥

दोहा–वचन सबनिके श्रवण सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि ॥
नीति विरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन मति अति थोरि ॥ ९ ॥

यह सबके वचन कानोंसे सुनकर प्रहस्त हाथ जोड़कर बोले–हे प्रभु ! नीतिसे विरोध मत करो; मंत्रियोंकी बुद्धि बहुत थोड़ी है ॥ ९ ॥

सचिव कहहिं सब ठकुरसुहाती * नाथ न पूर आव इहि भाँती ॥१॥
वारिधि लाँघि एक कपि आवा * तासु चरित मनमहँ सब गावा ॥२॥

मन्त्री तो सब ठकुरसुहाती कहते हैं, परन्तु हे नाथ ! इन बातोंसे पूरी नहीं पड़ेगी ॥१॥सागर लांघकर एक वानर आया था, जिसका कर्तव्य सब निशाचर मनमें आजतक गाते हैं ॥२॥

क्षुधा न रही तुमहिं तब काहू * जारत नगर न कस धरि खाहू ॥३॥
सुनत नीक आगे दुख पावा *सचिवन्ह अस मत प्रभुहि सुनावा ॥४॥

तुम्हें, सब किसीको उस समय भूख नहीं लगी थी ! उसने तुम्हारा नगर जलाया तो तुमने उसे क्यों त्याग दिया ? क्यों नहीं खा गये ? ॥ ३ ॥ सुननेमें तो अच्छी परंतु परिणाम (पीछे) में दुःख देनेवाली ऐसी वाणी मंत्रियोंने आपको सुनाई है, देखो ॥ ४ ॥

जेहि वारीश बँधायउ हेला * उतरे कपिदल सहित सुबेला ॥५॥
सो जनु मनुज खाब हम भाई * वचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥६॥

जिसने खेलमें ही सागरको बांध लिया और दल सहित सुवेल पर्वतपर डेरा किया ॥५॥ सो वे क्या मनुष्य हैं जिसके लिये 'हम खायँगे' यह बात सब गाल फुला फुलाकर कहते हैं (सम्मुख कुछ न हो सकेगा) ॥ ६ ॥

सुन मम वचन तात अति आदर *जनिमन गुनहु मोहि कहि कादर॥७॥
प्रिय वाणी जे सुनहिं जे कहहीं * ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥८॥

हे तात ! मेरे वचन बड़े आदरसे सुनो, अपने मनमें मुझे कादर मत गिनना ॥ ७ ॥ परंतु जो प्यारी वाणी कहते, सुनते हैं ऐसे जगतमें बहुत मनुष्य हैं ॥ ८ ॥

वचन परम हित सुनत कठोरे * कहहिं सुनहिं ते नर प्रभु थोरे ॥९॥
प्रथम बसीठि पठव सुन नीती * सीतहि देइ करिय पुनि प्रीती॥१०॥

हे प्रभु ! सुननेमें तो कठोर, परंतु वचन परम हितकारक हों ऐसे वचनोंके कहने सुननेवाले मनुष्य थोड़े हैं ॥९॥ सुनो, नीतिके अनुसार प्रथम दूत भेजो, फिर जानकीजीको देकर प्रीति करो ॥१०॥

दोहा–नारि पाय फिरि जाहिं जो, तौ न बढ़ाइय रारि ॥
नाहित सनमुख समर महँ, नाथ करिय हठि मारि ॥ १० ॥

हे नाथ ! जो वे स्त्रीको पाकर लौट जायँ तो रारि बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं और जो नारीको पाकर भी न मानें तो समरमें हठ करके युद्ध कीजिये ॥ १० ॥

यहु मत जौ मानहु प्रभु मोरा * उभय प्रकार सुयश जग तोरा ॥१॥
सुतसन कह दशकंठ रिसाई *असि मति तोहि शठ कवन सिखाई॥२॥

हे स्वामी ! जो यह मेरी बात तुम मानोगे तो तुम्हारा दोनों प्रकार जगत्में यश होगा ॥ १ ॥ रावण क्रोध कर बेटेसे बोला–रे मूर्ख तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी है ? ॥ २ ॥

अबहींते उर संशय होई * वेणुवंश सुत भयसि घमोई ॥३॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा * चला भवन कहि वचन कठोरा ॥४॥

अरे ! अभीसे तेरे हृदयमें संदेह होने लगे ? तू बांसके वंशमें जलानेको घमोई (अग्नि) अथवा बांसहीके वंशके बिगाड़नेको तू घुन हुआ, अथवा घमोई घास है, जिसके होते ही बांस जड़से सूख जाता है ॥ ३ ॥ यह पिताकी तीक्ष्ण घोर कठोर वाणी सुनकर कठोर वचन कह प्रहस्त घर चला (और कहा) ॥ ४ ॥

हित मत तोहिं न लागत कैसे * काल-विवश कहँ भेषज जैसे ॥५॥
संध्या समय जानि दशशीशा * भवन चला निरखत भुज बीशा ॥६॥

तुझे हितकी बात ऐसे अच्छी नहीं लगती जैसे मरनेवालेको औषध अच्छी नहीं लगती ॥ ५ ॥ संध्या समय जानकर रावण भी अपनी बीसों भुजाओंको देखता हुआ घरको चला। आशय यह कि वे दो बाहोंवाले मुझ बीस भुजावालेका क्या कर सकते हैं ? ॥ ६ ॥

लंकाशिखर उपर आगारा * अतिविचित्र तहँ होइ अखारा ॥७॥
बैठ जाय तेहि मंदिर रावन * लागे किन्नर गुणगण गावन ॥८॥

लंकाके शिखर पर एक स्थान था; वह अति विचित्र था और वहां अखाड़ा होता था ॥ ७ ॥ उसी मंदिरमें जाकर बैठा और किन्नर गुणगण गाने लगे ॥ ८ ॥

बाजें ताल पखावज बीना * नृत्य करहिं अप्सरा प्रवीना ॥९॥

ताल पखावज, बीन बजते हैं और अप्सराएँ नृत्य करती हैं ॥ ९ ॥

दोहा–सुनासीर शत सरिस सो, संतत करै विलास ॥
परम प्रबल रिपु शीशपर, तदपि न कछु मनत्रास ॥ ११ ॥

रावण सौ इन्द्रके बराबर सदा ऐश्वर्य भोगता है, इंद्रको तो डर भी रहता है क्योंकि मेघनादने उसको जीत लिया था, परंतु यह रावण कहीं हारा नहीं। इसके शिरपर रघुनाथजी ऐसे प्रबल परम शत्रु विद्यमान हैं तो भी इसके मनमें कुछ भय नहीं है, इन्द्रका विलास भययुक्त है तथापि–"सुरपुर नितहिं परावन होई" ॥ ११ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत–भाषाटीकायां लंकाकांडान्तर्गत प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

दोहा–यहि द्वितीय विश्राममें, दशकंधरके राम।
छत्र मुकुट सब काटिकै, तोरचो गर्वनिकाम ॥ २ ॥

इहाँ सुवेल शैल रघुवीरा * उतरे सेन सहित अति भीरा ॥१॥
शैलश्रृंग इक सुन्दर देखी * अति उतंग सम सुभग विसेखी ॥२॥

इधर रघुनाथजी सुवेल पर्वतपर सेना सहित उतरे साथमें बड़ी भीड़ है ॥ १ ॥ एक सुन्दर पर्वतका श‍ृङ्ग देखकर जो बहुत ऊँचा, समान और बहुत सुन्दर था ॥ २ ॥

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाये * लक्ष्मण रचि निज हाथ डसाये ॥३॥

तापर रुचिर मृदुल मृगछाला * तेहि आसन आसीन कृपाला ॥४॥

वहां सुन्दर वृक्षोंके पत्ते और पुष्प लक्ष्मणजीने अपने हाथसे बिछाये ॥ ३ ॥ उसके ऊपर सुन्दर मृगछाला बिछा दी, उस आसनके ऊपर रघुनाथजी बैठे ॥ ४ ॥

प्रभु कृत शीश कपीश उछंगा * वामदहिन दिशि चाप निषंगा ॥५॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना * कह लंकेश मंत्र लगि काना ॥६॥

प्रभु सुग्रीवकी गोदीमें अपना शिर रखकर लेट रहे, बाईं दाहिनी ओर धनुषबाण धरे थे ॥५॥ दोनों करकमलोंसे बाण सुधारते हैं, विभीषण कानोंके समीप बैठे कुछ मन्त्र बताते हैं ॥६॥

बड़भागी अंगद हनुमाना * चरणकमल चापत विधिनाना ॥७॥
प्रभु पाछे लक्ष्मण वीरासन * कटि निषंग कर बाण शरासन ॥८॥

अंगद हनुमान्जी बड़भागी हैं, जो अनेक प्रकारसे रघुनाथजीके चरणकमल दबाते हैं ॥ ७ ॥ प्रभुके पीछे वीरासनसे लक्ष्मण कमरमें तरकस हाथमें धनुष बाण लिये बैठे हैं ॥८॥

दोहा-यहि विधि करुणाशील गुण, धाम राम आसीन ॥
धन्य सो नर जो ध्यान यहि, रहत सदा लवलीन ॥ १२ ॥

इस प्रकार करुणाशील, गुणके धाम रघुनाथजी विराज रहे हैं, वे नर धन्य हैं-जो इस ध्यानमें सदा लवलीन रहते हैं। इस दोहेमें रघुनाथजीमें तीन विशेषण दिये हैं; वही ऊपरकी चौपाइयोंमें वर्णन कर आये हैं। सुग्रीवकी गोदीमें शिर रखना, बाण सुधारना, विभीषणकी सम्मति सुनना, अंगद हनुमान्को चरण देना यह सब करुणा है। सुग्रीव को शिर सौंपते हैं कि यह आपकी गोदमें है;बाणोंका प्यार करनेका कारण यह कि जन्म भर सेइ आये हैं, अब तुम्हारा काम पड़ा है; चरण अङ्गद हनुमान्को देनेका यह आशय है कि जहां ले चलेंगे वहां चलेंगे अथवा सुग्रीवकी गोदीमें शिर रखकर शिरकी रक्षा समरमें कपिपतिको सौंपी। धनुष तरकससे तनकी रक्षाकी, बाण सुधारनेसे पुरुषत्वका समय जताया; विभीषणको कान दे शत्रुका भेद चाहा अंगद हनुमान्को चरण देकर चलना न चलना उनके अधीन किया इन सबकी असावधानता सुधारनेको लक्ष्मणजी पीछे बैठे हैं जो ये लोग आज्ञा न मानेंगे तो हम इनको दंड देंगे ॥ १२ ॥

दोहा-पूरब दिशा विलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक ॥
कहेउ सबहिं देखहु शशिहिं, मृगपतिसरिस अशंक ॥ १३ ॥

प्रभुने जो पूर्व दिशाकी ओर देखा तो चन्द्रमा उस समय उदय हो रहा था, तब रघुनाथजी बोले- सब कोई देखो तो चन्द्रमा सिंहके समान निःशंक है चन्द्रमाके मिषसे अपनी शूरता जनायी, अब तीन भेदसे निश्शंक वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

पूरब दिशि गिरि-गुहानिवासी * परम प्रताप-तेजबल-राशी ॥१॥
मत्त-नाग-तम कुंभ विदारी * शशि केशरी-गगन-वनचारी ॥२॥

पूर्व निवासी सिंह चन्द्रमा,गिरिनिवासी सिंह आप और गुहानिवासी प्राकृत सिंह तीनोंको प्रताप, तेज बलकी राशि वर्णन किया है। अथवा क्षीरसागर गिरि है पूर्व दिशा गिरि-गुहा है वही निवास है, वहांसे निकलता है और प्रकाश ही परम प्रताप है और जिससे

तमको भस्म करता है वही तेज, बलकी राशि है ॥ १ ॥ अन्धकाररूपी हस्तीका विदारण चन्द्र सिंह करता है; रावण गजविदारणसिंह अपनेमें ध्वनित किया है, प्राकृत गजविदारण प्राकृत सिंहको वर्णन किया है केशरी तीनों सिंह हैं चन्द्रकी किरण केश सिंहकी गर्दन केश और रघुनाथजीके शिरके बड़े केश हैं यह ध्वनि दोनों चौपाइयोंसे निकलती है, अन्धकारको दूर कर चन्द्रमा आकाशमें विचरता है ॥ २ ॥

विथुरे नभ मुकताहल तारा * निशि सुन्दरीकेर श्रृंगारा ॥३॥
कह प्रभु शशिमहँ मेचकताई * कहहु काह निज निज मति भाई॥४॥

सिंह जब मत्त हाथीका मस्तक विदीर्ण करता है तब मोती बिखर जाते हैं आकाशमें मोतीरूपी तारे बिखर रहे हैं रात्रिरूपी स्त्रीके शृङ्गार हैं अथवा अन्धकाररूपी हाथीके तारागणरूपी शिरके मोती हैं, रात्रिरूपी सुन्दरीका शृंगार है प्राकृत हाथीके मोती प्राकृत स्त्रीके शृंगार हैं, रावणरूपी हाथीके मुक्तागण राक्षसोंकी मुक्ति है जो महावीरजीका शृङ्गार है। यहां तक शील है ॥३॥ रघुनाथजी बोले कि चन्द्रमामें जो श्यामलता है वह क्या है ? सब अपनी बुद्धिके अनुसार कहो। श्यामलता पूछना यह गुण है, इससे सबके अन्तरका भाव प्रकट करते हैं, सब सेना चार कोटिमें परिणत हो गयी वही प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराया * शशिमहँ प्रगट भूमिकी छाया॥५॥
मारेउ राहु शशिहि कह कोई * उरमहँ परी श्यामता सोई ॥६॥

सुग्रीवने कहा—सुनो रघुनाथजी ! चन्द्रमामें पृथ्वीकी छाया प्रकट है। इससे राज्यकी अभिलाषा सूचित हुई, कारण कि इनके मनमें पृथ्वीका ध्यान रहता है ॥५॥ किसी किसीने कहा राहुने चन्द्रमाको मारा उसकी श्यामलता हृदयमें पड़ी है; इससे वीरता और युद्धका मनोरथ मिला। कोई यह अंगदका वाक्य बताते हैं ॥ ६ ॥

कोउ कह विधि जब रतिमुख कीन्हा * सारभाग शशिकर हरि लीन्हा ॥७॥
छिद्र सो प्रगट इन्दु उरमाहीं * तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं॥८॥

कोई बोले-जब विधाताने रतिका मुख बनाया था तब चन्द्रमाका सार भाग हर लिया था ॥ ७ ॥ वही चन्द्रमामें छिद्र दीखता है उस मार्गसे आकाशकी श्यामता दीखती है इससे समर विमुखता पायी गयी ॥ ८ ॥

कह प्रभु गरल बन्धु शशिकेरा * अति प्रीतम उर दीन बसेरा ॥९॥
विषसंयुत करनिकर पसारी * जारत विरहवंत नर नारी ॥१०॥

रघुनाथजी बोले—चन्द्रमाका बन्धु गरल है दोनों सागरसे निकले हैं सो भाईको रत्न समझकर हृदयमें वास दिया ॥९॥ इसी कारण विषसंयुक्त किरणोंको पसारकर विरही स्त्री पुरुषोंको जलाता है, इससे वियोग सूचित किया है ॥ १० ॥

दोहा—कह मारुत सुत सुनहु प्रभु, शशि तुम्हार प्रिय दास ॥
तव मूरति तेहि उर वसति, सोइ श्यामता भास ॥ १४ ॥

(सबके वचन सुनकर) महावीरजी बोले कि सुनो प्रभु ! चन्द्रमा आपका प्यारा दास है आपकी मूर्ति उसके मनमें वसती है वही आपकी श्यामता भासती है। इससे यह प्रकट किया

कि जितने रीछ वानर हैं चाहे शूर हों वा कातर, वे सब आपको अन्तःकरणमें लिये हैं जो इनका शरीर भिन्न हो जाय तो शत्रु आपको देख सकेगा ॥ १४ ॥

दोहा–पवनतनयके वचन सुनि, विहँसे राम सुजान ॥
दक्षिण दिशा विलोकि पुनि, बोले कृपा निधान ॥ १५ ॥

महावीरजीके अपने अनुकूल वचन सुन कृपासागर रघुनाथजी हँसे और दक्षिण दिशा देखकर (विभीषणके भावकी परीक्षा करनेके निमित्त) फिर बोले ॥ १५ ॥

देखु विभीषण दक्षिण आशा * घन घमण्ड दामिनी विलासा ॥१॥
मधुर मधुर गर्जत घन घोरा * होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा ॥२॥

विभीषण! दक्षिणकी ओर देखो कि बादल उमड़ रहे हैं, बिजली भी चमक रही है ॥१॥ मधुर मधुर घनघोर गर्जता है, मानो कठोर पत्थर (ओलों) की वर्षा होगी वा हो रही है ॥ २ ॥

कहइ विभीषण सुनहु कृपाला * होइ न तड़ित न वारिद माला ॥३॥
लंका शिखर रुचिर आगारा * तहँ दशकन्धर देख अखारा ॥४॥

विभीषण कहने लगा--सुनो रघुनाथजी ! यह बिजली और मेघ माला नहीं है ॥३॥ लंकाके शिखरके ऊपर सुन्दर स्थान है वहां दशकंधर अखाड़ा देखता है ॥ ४ ॥

छत्र मेघडम्बर शिर धारी * सो प्रभु जलद घटा अतिकारी ॥५॥
मन्दोदरी श्रवण ताटङ्का * सोइ प्रभु जनु दामिनी दमङ्का ॥६॥

हे प्रभो ! जो रावणके शिरके ऊपर मेघडम्बर छत्र है वही अत्यन्त काली मेघ घटासी दीखती है ॥५॥ हे स्वामी । मन्दोदरीके कर्णफूल हैं वे ही मानो बिजलीके समान चमकते हैं॥६॥

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा * सोइ रव सरस सुनहु सुरभूपा ॥७॥
प्रभु मुसकाय समुझि अभिमाना * चाप चढ़ाय बाण सन्धाना ॥८॥

सुनिये महाराज ! अनुपम ताल मृदंग बजते हैं वही सरस बादलोंके शब्द सुनाई देते हैं ॥७॥ यह अभिमान समझकर रघुनाथजी मुसकाये और धनुष चढ़ाकर बाण संधान किया॥८॥

दोहा–छत्र मुकुट ताटंक सब, हते एकही बान ॥
सबके देखत महि गिरे, मर्म न काहू जान ॥ १६ ॥

एक बाणमें छत्र, मुकुट, कर्णफूल सब काटकर गिरा दिये, सबके देखते देखते पृथ्वीपर गिर पड़े परन्तु यह मर्म किसी ने नहीं जाना ॥ १६ ॥

दोहा–यह कौतुक करि रामशर, प्रविशेउ आय निषंग ॥
रावण सभा सशङ्क सब, देखि महा रस भंग ॥ १७ ॥

यह कौतुक करके रघुनाथजीका बाण फिर निषंगमें आकर प्रवेश कर गया रावणकी सब सभा महारसका भंग देखकर घबड़ा गयी ॥ १७ ॥

कम्प न भूमि न मरुत बिशेखा * अस्त्र शस्त्र कछु नयन न देखा ॥१॥
शोचहिं सब निज हृदय विचारी * अशकुन भयउ भयङ्कर भारी ॥२॥

पृथ्वी नहीं कांपी, न पवन चला, न कुछ अस्त्र नेत्रोंसे दिखायी दिये ॥ १ ॥ सब अपने मनमें विचार करते हैं कि बड़ा भारी भयंकर अशकुन हुआ ॥ २ ॥

रावण दीख सभा भय पाई ❋ विहँसि वचन कह युक्ति बनाई ॥३॥
शिरउ गिरे सन्तत शुभ जाही ❋ मुकुट गिरे कस अशकुन ताही ॥४॥

जब रावणने देखा कि सभाने भय पाया तब हँसकर युक्ति बनाकर बोला ॥ ३ ॥ जब कि हमने शिर काटकर होम दिये तब कुछ अमंगल नहीं हुआ, अब मुकुट गिरनेसे कब अशुभ हो सकता है ? ॥ ४ ॥

शयन करहु निज निज गृह जाई ❋ गवने भवन सकल शिर नाई ॥५॥
मन्दोदरी शोच उर बसेऊ ❋ जबते श्रवण फूल महि खसेऊ ॥६॥

अब अपने अपने घर जाकर शयन करो, यह सुनकर सब कोई शिर नवाकर चले गये ॥ ५ ॥ मन्दोदरीके हृदयमें शोच हो गया जबसे कि कर्णफूल पृथ्वीमें गिरे ॥ ६ ॥

सजल नयन कह युग कर जोरी ❋ सुनहु प्राणपति विनती मोरी ॥७॥
कन्त राम-विरोध परिहरहू ❋ जानि मनुज हठ जनि उर धरहू ॥८॥

नेत्रोंमें जल भर कर दोनों हाथ जोड़कर बोली--हे प्राणपति ! विनती सुनो ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! रघुनाथजीसे विरोध त्याग कर दो; मनुष्य जानकर हृदयमें हठ मत करो ॥ ८ ॥

दोहा--विश्वरूप रघुवंशमणि, करहु वचन विश्वासु ॥
लोककल्पना वेद कह, अंग अंग प्रतिजासु ॥ १८ ॥

रघुनाथजी विराट्रूपसे जगत्के रूप हैं यह मेरे वचन विश्वास करने योग्य हैं वेद कहते हैं कि जिनके अंग अंगमें लोकोंकी कल्पना है ॥ १८ ॥

पद पाताल शीश अजधामा ❋ अपर लोक अंगन्ह विश्रामा ॥१॥
भृकुटि विलास भयङ्कर काला ❋ नयन दिवाकर कच घन माला ॥२॥

पग जिनके पाताल हैं, ब्रह्मलोक शिर है, सब लोक अंगोंके विश्राम हैं अर्थात् अंगोंमें ठहरे हुए हैं ॥१॥ भौंहका फेरना ही भयंकर काल है, सूर्य नेत्र हैं, बादल समूह केश हैं ॥२॥

जासु घ्राण अश्विनी कुमारा ❋ निशि अरु दिवस निमेष अपारा॥३॥
श्रवण दिशा दश वेद बखानी ❋ मारुत श्वास निगम निज बानी॥४॥

जिनकी नासिका अश्विनी कुमार हैं रात और दिनकी अपार पलक लगती है ॥३॥ दशों दिशाएँ कान हैं यह वेदने वर्णन किया है पवन जिनका श्वास है वेद जिनके वचन हैं ॥४॥

अधर लोभ यम दशन कराला ❋ माया हास बाहु दिगपाला ॥५॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा ❋ उतपति पालन प्रलय समीहा ॥६॥

ओठ लोभ हैं, दांत यम हैं, जो बड़े तीक्ष्ण हैं; हँसना माया है बाहु दिक्पाल हैं ॥ ५ ॥ मुख अग्नि है जीभ वरुण है, उत्पत्ति पालन प्रलय उद्यम है ॥ ६ ॥

रोमराजि अष्टादश भारा ❋ अस्थि शैल सरिता नस जारा ॥७॥

उदर उदधि अधगो यातना * जगमय प्रभुकी बहु कल्पना ॥८॥

अष्टादश भार वनस्पति उनकी रोमावली हैं पर्वत हड्डी हैं नदी नसोंके जाल हैं ॥७॥ पेट समुद्र है नीचेकी इंद्रिय नरक स्थान हैं, ऐसे ही संसार (विराट्) रूप ईश्वरकी कल्पनाएँ हैं ॥८॥

दोहा–अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान ॥
मनुज वास चर-अचरमय, रूपराशि भगवान ॥ १९ ॥

अहंकार शिव हैं, ब्रह्माजी बुद्धि हैं, चन्द्रमा मन है, महत्तत्व चित्त है और मनुष्यादि चराचर सबमें वे ही वास करते हैं, वे ही मनुष्यादि चराचरके रूपकी राशि हैं। श्रुतौ यथा– "चन्द्रमा मनसो जातः" इत्यादि ॥ १९ ॥

दोहा–अस विचारि सुन प्राणपति, प्रभुसन वैर विहाइ ॥
प्रीति करहु रघुवीरपद, मम अहिवात न जाइ ॥ २० ॥

सुनो प्राणपति ! ऐसा विचार कर प्रभुसे वैर त्यागकर रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति करो, जिससे मेरा सौभाग्य न जाय; अथवा मेरा सौभाग्य नहीं जायगा ॥ २० ॥

विहँसा नारि वचन सुनि काना * अहो मोह महिमा बलवाना ॥१॥
नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं * अवगुण आठ सदा उर रहहीं ॥२॥

नारीके वचन कानोंसे सुनकर रावण हँसा, कि अहो मोहका प्रभाव बड़ा बलिष्ठ होता है अथवा रावण हँसकर कहता है कि रघुनाथजीसे युद्धकर अब मेरी मुक्ति हुआ चाहती है सो यह भजन में डालकर वर्षोंसे पार होनेकी विधि कहती है ॥ १ ॥ कविजन सत्य कहते हैं कि स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा है कि उनके हृदयमें सदा आठ अवगुण रहते हैं ॥ २ ॥

साहस अनृत चपलता माया * भय अविवेक अशौच अदाया ॥३॥
रिपुकर रूप सकल तैं गावा * अति विशाल भय मोहिं दिखावा ॥४॥

साहस १, झूठ २, चञ्चलता ३, छल ४, डर ५, अज्ञानता ६, अपवित्रता ७, निर्दयता ८, ये आठ अवगुण हैं ॥३॥ तूने शत्रुका रूप बहुत कुछ गाया और मुझे बहुत डर दिखाया ॥४॥

सो सब प्रिया सहज वश मोरे * समुझि परा प्रभाव अब तोरे ॥५॥
जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई * इहिमिसि कहेउ मोरि प्रभुताई ॥६॥

हे प्यारी ! ये तो सब स्वाभाविक मेरे वशमें हैं यह तेरा प्रभाव समझ पड़ा ॥ ५ ॥ हे प्यारी ! अब मैंने तेरी चतुराई जानी कि इसी बहानेसे तूने मेरी प्रभुता वर्णन की है ॥ ६ ॥

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि * समुझत सुखद सुनत भय मोचनि ॥७॥
मन्दोदरि मनमहँ यह ठयऊ * पियहि कालवश मति भ्रम भयऊ ॥८॥

हे मृगलोचनी ! तेरी वार्ता गूढ़ है समझनेमें सुखदायक, श्रवण करनेमें भय दूर करनेवाली है। मन्दोदरीने जो विराटरूप वर्णन किया सो रावणने उन्हीं वचनोंको गूढ़ कहा है; उन्हीं परमेश्वरके बाण लगनेसे मोक्ष होता है, इससे तेरे वचन भयमोचन हैं और भजन करनेसे भक्ति होगी इससे उन्हें सुखदायक कहा है परन्तु अपना संकल्प युद्धका ही रखा है, "तो मैं जाय बैर हठि करिहूँ" भजनमें विघ्न बहुत हैं बने या न बने ॥ ७ ॥ मन्दोदरीने यह बात मनमें निश्चय कर ली कि कालवश होनेसे स्वामीकी मतिमें भ्रम हुआ ॥ ८ ॥

दोहा–बहु विधि जल्पेसि सकल निशि, प्रात भये दशकन्ध ॥
सहज अशंक सो लंकपति, सभा गयउ मतिअन्ध ॥ २१ ॥

बहुत प्रकारसे सारी रात बकवाद करता रहा, प्रातःकाल होते ही स्वभावसे निडर मतिहीन लंकापति रावण सभामें गया ॥ २१ ॥

सोरठा–फूलै फलै न बेत, यदपि सुधा वर्षहिं जलद ॥
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ॥ ३ ॥

आकाश कभी फूलता फलता नहीं; चाहे बादल अमृत ही क्यों न बरसावे; क्योंकि आकाश शून्य है शून्यमें अमृत ठहरता ही नहीं गुण कैसे करे ? ऐसे मूर्खका हृदय शून्य होता है; ब्रह्माके समान भी गुरु हो तो क्या करे ? अर्थात् मूर्खको उपदेश नहीं लगता। अथवा बेत फूलता नहीं चाहे मेघ अमृत ही बरसावे ॥ ३ ॥

अथ क्षेपक

दोहा–मंत्रिन सहित दशानन, चढ़यो धवरहर जाय ॥
सारन कह तब राजसन, देखहु कपि समुदाय ॥ २२ ॥

वहां मंत्रियोंको साथ लेकर रावण लंकाके सबसे ऊँचे शिखर पर चढ़ा तब उस समय सारन बोला कि कपियोंके समूहको देखो ॥ २२ ॥

यह जो सिंहनाद किलकरहीं * सप्तताल उन्नत संचरहीं ॥१॥
सहस कोटि अतुलित बलवाना * इनके सँग वानर परिमाना ॥२॥

यह जो सिंहनाद करते किलकारी मारते, सात तालके बराबर ऊँचे हैं ॥ १ ॥ सहस्र करोड़ बड़े बली वानर इनके संग हैं ॥ २ ॥

रण अजीत यह सहज अशंका * नाद सुने कांपै गढ़ लंका ॥३॥
नभ निरखहु इनके लंगूरे * जनु ऋतु पावस युग धनु पूरे ॥४॥

ये रणमें अजित और स्वाभाविक निडर हैं जिनके शब्द सुनकर लंकापुरी कांपती है ॥३॥ आकाशमें इनके लंगूरोंको देखो जैसे वर्षाऋतुमें दो धनुष निकल आये हों ॥ ४ ॥

विशकर्मा के सुत अभिमानी * इन परसे पय शिल उतरानी ॥५॥
रहहिं ताम्रगिरि-कन्दर-माहीं * गोदावरी विमल जल पाहीं ॥६॥

ये अभिमानी विश्वकर्माके पुत्र हैं इन्हींके छूनेसे जलके ऊपर शिला तरी है ॥ ५ ॥ ये ताम्रगिरिकी कन्दरामें निवास करते और गोदावरीका उज्ज्वल जल पीते हैं ॥ ६ ॥

अतिबल आगे धावहिं बीरा * इनपर कृपा करहिं रघुबीरा ॥७॥
करहिं यमहु कर संगर ढीला * कज्जल बरण नाम नल नीला ॥८॥

ये जो अति बली वीर आगे चलते हैं इनपर रघुनाथजी बड़ी कृपा करते हैं ॥ ७ ॥ ये संग्राममें यमको भी ढीला कर सकते हैं, कज्जलवर्णवाले नील-नल नामक वानर हैं ॥ ८ ॥

दोहा–पद्म अठारह कपिकटक, चल इनकी भुज छांह ॥
निजकर सुरभी सुमन लै, रघुपति पूजी बांह ॥ २३ ॥

अठारह पद्म वानरोंकी सेना इनकी भुजाकी छाया में चलती है; अपने हाथसे मनोहर सुगंधित पुष्प लेकर रघुनाथजीने इनकी बाहुओंका पूजन किया है ॥ २३ ॥

यह जो आवत अचल समाना * चौदह ताड उच्च परिमाना ॥१॥
बास पुलिन्दाके तट करई * अम्बुद निकर निरखि कर धरई॥२॥

यह जो पर्वतके समान चला आता है जिसका परिमाण चौदह तालका है ॥ १ ॥ पुलिंदा नदीके किनारे वास करता है बादलोंके समूहोंको देखते ही पकड़ लेता है ॥ २ ॥

रक्त कमल दल सम सब देहा * जनु बिकसेउ संध्याकर मेहा ॥३॥
हतै मेदिनी पूछ भँवाई * लंका सौंह चितव जनु खाई ॥४॥

इसका लाल कमलदलके समान देह है मानो संध्याका मेघ उदय हुआ है ॥ ३ ॥ पूँछ घुमाकर मारे तो पृथ्वी टूक हो जाय, लंकाकी ओर ऐसा देखता है मानो खा जायगा ॥४॥

तारा-सुवन बालिको जायो * अतिजुझार रघुपति मन भायो ॥५॥
हृदय गगन इहिके प्रभु भानू * पंच पद्म इनकर परिमानू ॥६॥

यह ताराका पुत्र बालिसे उत्पन्न हुआ बड़ा शूर है, रघुनाथजी इनको बड़ा प्यार करते हैं॥५॥ इसके हृदयरूपी आकाशमें रघुनाथजी सूर्यके समान हैं, इसके साथमें पांच पद्म वानर हैं॥६॥

करै वज्र वासव कर भंगा * उदयाचल कहँ लेइ उछंगा ॥७॥
परम चतुर सेनप यहि लागी * रघुपति कृपा परम बड़भागी ॥८॥

यह इन्द्रके वज्रको भी तोड़ सकता है उदयाचल पर्वतको गोदीमें उठा सकता है ॥ ७ ॥ यह सेनापति परम चतुर है, रघुनाथजीकी कृपासे बड़ा भाग्यवान् है ॥ ८ ॥

दोहा-पाउँ धरा धरि चापै, पन्नग होइ अकाज ॥
सैन अग्रसर देखहु, यह अंगद युवराज ॥ २४ ॥

जो पृथ्वीको चरणोंसे धरकर दबावे तो शेषजी व्याकुल हो जायँ। यह वही सेनाके आगे चलनेवाला युवराज अंगद है ॥ २४ ॥

यह जो श्वेतवरण तनु रेखा * मनहु रजतगिरि श्रृंग विसेखा ॥१॥
दीर्घ केश दारुण भुजदण्डा * चपल चलत बल बुद्धि प्रचण्डा ॥२॥

देखो यह जो श्वेतवर्णके शरीरवाला है मानो चांदीके पर्वतका शृंग है ॥ १ ॥ चपल चालवाला बल और बुद्धिमें तीव्र, जिसके बड़े लम्बे केश और कठिन भुजदंड हैं ॥ २ ॥

वास करै जलनिधिके तीरा * पान करै गोमती सुनीरा ॥३॥
नृप सुग्रीवकेर अधिकारी * सबल व्यूह यह रचै सँवारी ॥४॥

यह समुद्रके किनारे रहता, गोमतीका उज्ज्वल जल पान करता है ॥ ३ ॥ यह राजा सुग्रीव का अधिकारी, सबल व्यूह रचना अनूठी जानता है ॥ ४ ॥

जन्मत चन्द्रहि ग्रसन उड़ाना * इहिकर पुरुषारथ जगजाना ॥५॥
निरखि गगन राकाशशि सोहा * शिशु अजान तेहि लगि मनमोहा॥६॥

यह जन्म लेते ही चन्द्रमाके खानेको उड़ा इसका पुरुषार्थ जगत् जानता है ॥ ५ ॥ आकाशमें (पूर्णमासीका) सुन्दर चन्द्रमा देखकर इसका मन मोह गया, क्योंकि उस समय यह अजान बालक था ॥ ६ ॥

धरणी धसकि धरन जब उड़ेऊ * सत्तरि योजनते पुनि फिरेऊ ॥७॥

जब यह पकड़ने दौड़ा तब पृथ्वी धसक गयी, फिर यह सत्तर योजनसे लौटा है ॥ ७ ॥

दोहा-कोटि पंचसत मर्कट, रहहिं सर्वदा साथ ॥
कालहुते रण लरि सकै, कुमुदमान कपिनाथ ॥ २५ ॥

पांचसौ करोड़ वानर इनके साथ सदा रहते हैं; यह कालसे भी लड़ सकता है; इसका नाम कुमुद है और वानरोंका स्वामी है ॥ २५ ॥

ये देखहु जे चहुँदिशि घुमड़े * मनहुँ लंक सावन घन उमड़े ॥१॥
आगे पीछे दश दिशि धावहिं * शिला श्रृंग तरु तोरत आवहिं ॥२॥

अब ये देखो,जो चारों ओर घुमड़ते चले आते हैं मानो लंकामें सावनके बादल उमड़ आये हैं ॥१॥ आगे पीछे दशों दिशाओंमें दौड़ते हैं शिला और पर्वतोंके श्रृंग व वृक्ष तोड़ते आते हैं॥२॥

सहस नाग बल सबहि समाना * सप्त पद्म इनकर परिमाना ॥३॥
काशीपुरी वास इनकेरा * समर कतहुँ जिन पीठ न फेरा ॥४॥

इनमें हजार हाथियोंका बल प्रत्येकमें है, ये सब वानर सात पद्म हैं ॥३॥ इनका काशीपुरीमें वास है, युद्धमें इन्होंने कभी पीठ नहीं फेरी है ॥ ४ ॥

तीक्ष्ण दन्त नख आयुध धारी * द्वन्द्व युद्ध जानहिं यह भारी ॥५॥
धूमकेतु यूथप इनकेरा * लंका निकट कीन्ह जेहि डेरा ॥६॥

तीक्ष्ण दन्त और नख रूप आयुधवाले द्वन्द्व युद्धको ये अच्छा जानते हैं ॥ ५ ॥ इनका यूथपति धूमकेतु है; जिसने लंकाके निकट डेरा किया है ॥ ६ ॥

इहिकर जेठ बन्धु जमवन्ता * तेहिके बलकर पावको अन्ता ॥७॥
देव दनुज को जूझै ताही * धरा होइ कर कन्दुक जाही ॥८॥

इसीके बड़े भाईका नाम जाम्बवन्त है, उसके बलका अन्त कौन पा सकता है ॥७॥ उससे देवता और राक्षसोंमें कौन लड़ सकता है ? पृथ्वीको गेंदके समान उठा सकता है ॥ ८ ॥

बसै अशंक नर्मदा तीरा * अशनि समान अभेद शरीरा ॥९॥

यह निर्भय नर्वदाके किनारे वास करता है, इसका वज्रके समान अभेद्य शरीर है ॥ ९ ॥

दोहा-यह मन्त्री सुग्रीवकर, रघुपतिकर प्रियदास ॥
सो जड़ मंद जो याहि रण, चह जीतनकी आस ॥ २६ ॥

यह सुग्रीवका मन्त्री, रघुनाथजीका प्यारा दास है, वह महामूर्ख है जो युद्धमें इसे जीतना चाहता हो ॥ २६ ॥

अब देखौ यह यूथ अपारा * पीत बरण होइ गयउ पहारा ॥१॥
बाल अरुण मरीचि जस फूटी * निशिचर निकर तमी चह छूटी ॥२॥

अब इस अपार यूथको देखो जिनके रंगसे पहाड़ पीला हो गया है ॥१॥ जैसे प्रातःकालकी लाल किरणें फूटती हों और राक्षसरूपी अन्धकारका नाश करना चाहती हों ॥ २ ॥

चौबिस अर्बुद इनकर यूहा * सहस बुन्द सम कोटि समूहा ॥३॥
शिलाशैल जे आगे परहीं * पायन मर्दि गर्दसम करहीं ॥४॥

इनका समूह चौबीस अरबका है सहस्र बुन्दके समान करोड़ों का समूह ॥३॥ जो शिला व पर्वत आगे पड़ते हैं उन्हें ये पांवसे मसल कर गर्द कर देते हैं ॥ ४ ॥

कञ्चन-गिरि-कन्दरके वासी * इनकर यूथनाथ अविनासी ॥५॥
अतिबल वासवकर हितकारी * सखासुकंठ केर सुखकारी ॥६॥

ये सब सुमेरु पर्वतकी कन्दराके वासी हैं इनका यूथपति अविनासी है ॥ ५ ॥ यह अति बलवान् इंद्रका हितकारी और सुग्रीवका सुखदायक मित्र है ॥ ६ ॥

पान करै गंगा-कर नीरा * पर्वत शृंग समान शरीरा ॥७॥
छिन छिन सिंह नाद जो होई * आवत गर्जत है कपि सोई ॥८॥

यह गंगाका जलपान करता है, पर्वतके शृङ्गके समान इसका शरीर है ॥ ७ ॥ यह जो क्षण क्षणमें सिंहनाद होता है, सो वही वानर गर्जता चला आता है ॥ ८ ॥

दोहा-यश तिहुँ मंडल गलित गज, बलकर नाहिंन अन्त ॥
यह कपिराजा केशरी, सुवन जासु हनुमन्त ॥ २७ ॥

त्रिलोकीमें जिसका यश फैल रहा है, इसने अनेक हाथी मारे हैं बलका आदि अन्त नहीं है यह वानरोंका राजा केसरी है जिसका पुत्र हनुमान् है ॥ २७ ॥

उत्तर दिशि देखहु रजधानी * जनु दुकाल लगि शलभ उड़ानी ॥१॥
मर्कट निकर विकट बल जूटे * आवत उदधि कूल जनु छूटे ॥२॥

अब यह राजधानीसे उत्तरकी ओर देखो, मानो दुकालके निमित्त टीडी उड़ती हैं ॥१॥ बानरोंके समूह बड़े बली जुटकर ऐसे चले आते हैं जैसे समुद्रके किनारे छूटे चले आते हैं ॥ २ ॥

इहि दल यूथनाथ जो अहई * अति बलवन्त राजसँग रहई ॥३॥
कपिके रूप अनल अविनासी * ये दोउ पारियात्रके वासी ॥४॥

इस दलका जो यूथनाथ है वह बड़ा बली है, राजाके संग रहता है ॥ ३ ॥ कपिके रूपमें साक्षात् अविनाशी अग्नि ही है, ये दो पारियात्रके रहनेवाले हैं ॥ ४ ॥

अतिसुन्दर अरु समर-विपक्षा * महाबली दोउ गवय गवक्षा ॥५॥
ये दोउ गर्जत अतिरण धीरा * पीवहिं तुंगभद्र कर नीरा ॥६॥

अति सुन्दर और युद्धमें बड़े प्रवीण महाबली ये दोनों गवय, गवाक्ष हैं ॥ ५ ॥ ये दोनों रणधीर जो गर्जते हैं तुंगभद्र नदीका जल पीते हैं ॥ ६ ॥

सत्तरि सहस नाग बल शाही * इनमें एक कहौं मैं ताही ॥७॥
अपर बली गँधमादन नामा * रण अजेय पुनि सब गुणधामा ॥८॥

इनके एकके सत्तर हजार हाथियोंका बल है उसे मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥ इस दूसरे बलीका नाम गन्धमादन है, जो रणमें अजेय और गुणोंका धाम है ॥ ८ ॥

दोहा-वासव विबुधवृन्द महँ, तेजन महँ जस भानु ॥
पनस नाम यह वानर, अतिबल नीति निधानु ॥ २८ ॥

(और देखो) देवता-समूहमें जैसे इन्द्र, तेजोंमें जैसे सूर्य ऐसेही 'पनस' नामक वानर बल और नीतिका घर है ॥ २८ ॥

यह जो कुसुदपत्रसम देहा * जस कैलास शरदकर मेहा ॥१॥
लोचन मधुपिंगल अति लोने * कामरूप चितवत चहुँ कोने ॥२॥

यह जो कुसुद (बबूले) के पत्रके समान देहवाला, जैसे कैलासके ऊपर शरदका मेह होता है ॥१॥ जिसके नेत्र मधुपिंगल (भूरे) अति सुन्दर हैं और कामरूपी चारों कोनों को देखता है ॥ २ ॥

लंका सौंह लँगूर फिराई * गर्जत प्रलय मेघकी नाई ॥३॥
सुरपति साथ युद्ध कहँ गयऊ * तबते कामरूप है गयऊ ॥४॥

लंकाकी ओर तो लंगूर फिराता है; प्रलय मेघके समान गर्जता है ॥३॥ यह इंद्रके साथ (दैत्योंसे) युद्ध करनेको गया था, तबसे कामरूप हो गया यानी मन इच्छित रूप धारण कर लेता है ॥ ४ ॥

मघवा इहिसन कीन्ह मिताई * करै सदा यह देव सहाई ॥५॥
सहस कोटि कपि इहिके संगा * राते पीत श्वेत बहु रंगा ॥६॥

इन्द्रसे इसने मित्रता कर ली है, यह सदा देवताओंकी सहायता करता है ॥ ५ ॥ हजार करोड़ वानर इनके साथ हैं-जो लाल पीले तथा सफेद रंगके हैं ॥ ६ ॥

वचन मृषा मम प्रभु यह नाहीं * अपरबालि जानहु मनमाहीं ॥७॥
दर्दुर शैल सदन यहि-केरा * मन बच कर्म राम कर चेरा ॥८॥

हे प्रभु ! मेरा वचन झूठ नहीं है मनमें इसे तुम दूसरा बालि जानो ॥ ७ ॥ इसका दर्दुर पर्वतमें स्थान है यह मन वचन और कर्मसे रामका दास है ॥ ८ ॥

दोहा-गिरिवर लाँघत आवत, चलत उड़ावत रेणु ॥
तरणि तेज इन रूँधेउ, तारा तनय सुषेणु ॥ २९ ॥

यह जो पर्वतोंको लांघता हुआ आता है जिसके चलनेमें बड़ी धूरि उड़ती है इसने सूर्यका तेज भी रूँध दिया था इसीकी तारा बेटी है और नाम सुषेण है ॥ २९ ॥

यह कपि लसत मनहुँ गिरि गेरू * दिनमुख छबि जस लहत सुमेरू॥१॥
सोइ कपि प्रथम लंक जेहि जारी * प्रभु केहि लगि आवत इहिबारी॥२॥

यह वानर देखो; जो गेरुके पर्वतके समान शोभायमान होता है जैसे प्रातःकाल सुमेरु की छबि होती है ॥ १ ॥ यह वही वानर है जिसने प्रथम लंका जलायी थी, हे प्रभु ! न जाने अब यह यहां क्यों आता है ? ॥ २ ॥

अञ्जनि गर्भ जन्म जब भयऊ * क्षुधित जननिसन पूछत भयऊ ॥३॥
तेहि कह सुपक अरुण फल खाहू *सुनत चितव इत उत चित चाहू॥४॥

जब माता अञ्जनीके गर्भसे जन्म लिया तब भूँखे हो, मातासे पूछने लगे ॥ ३ ॥ उसने कहा सुपक्व लाल फल खाओ, यह सुनकर इधर उधर मन इच्छित वस्तु देखने लगे॥ ४ ॥

बाल अरुण लखि गगन उड़ाना * ग्रसत तरणि वासव तब जाना ॥५॥
मारेउ वज्र चिबुक भइ टेढ़ी * कोपि पवन समीर सब बेढ़ी ॥६॥

बाल सूर्यको देखकर सूर्यके खानेको आकाशमें उड़े, तब इंद्रने यह जानकर कि सूर्यको ग्रसेंगे ॥५॥ वज्र मारा तो इसकी ठोडी टेढ़ी हो गयी जिससे पवनने क्रोधकर सब वायु रोक दी ॥६॥

देव विकल होइ अस्तुति कीन्हा *कुलिश होइ तनु अस वर दीन्हा॥७॥
पवन वायुने तब तजि दीन्हा * जय जयकार देव सब कीन्हा ॥८॥

देवताओंने व्याकुल होकर स्तुति की और यह वर दिया कि इसका शरीर वज्रके समान हो जायगा ॥ ७ ॥ तब पवनदेवने वायु त्याग दिया सब देवताओंने जयजयकार किया ॥ ८ ॥

विद्या पढ़त भानुके पाहीं * उलटी गति रवि आगे जाहीं ॥९॥
वारिधि लँघेउ गोपद जैसे * यहि कपीश सन जूझब कैसे ॥१०॥

इसने सूर्यसे विद्या पढ़ी है उलटी गतिसे सूर्यके सम्मुखसे उलटा चला ॥९॥ इसने समुद्र को गोपदकी नाईं तरण किया अब इस कपिसे कैसे युद्ध करोगे ? ॥ १० ॥

दोहा-अंबक पीत बाल रवि, वदन तेज अतिराज ॥
पवनते वेग अधिक जनु, अनल नितम्ब सुभ्राज ॥ ३० ॥

इसके मुखका तेज प्रातःकालके सूर्यके समान अति शोभित है, आंखें पीली हैं पवनसे भी अधिक वेगवान् है अग्निके समान नितंब शोभित है (इससे कैसे लड़ोगे ?) ॥ ३० ॥

अतसीकुसुम वरण तनु रेखा * पुरुष पुराण धरे नरवेषा ॥१॥
मत्त गजेंद्र शुण्ड भुजदण्डा * धनुष बाण असि धरे प्रचण्डा ॥२॥

अलसीके फूलके समान जिसके शरीरका वर्ण है, और पुराण पुरुष मनुष्यका वेश धारण किये हैं ॥ १ ॥ जिनका भुजदंड मत्त गजेन्द्रकी सूंडके समान है, जो प्रचंड धनुष, बाण और तलवार धारण किये हैं ॥ २ ॥

उर विशाल अति उन्नत कन्धर * कम्बु कंठ रेखा प्रसन्न वर ॥३॥
मुख छबिकी उपमा कवि जोहै * शशि सरोज सम कहै न सोहै ॥४॥

जिनका हृदय विशाल है ऊँचे बड़े कंधे शंखकीसी कंठमें रेखा पड़ी है, प्रसन्न वदन ॥३॥ जो कवि मुखकी छबिकी उपमा विचारे तो चन्द्रमा और कमल नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

दशनपांतिकी कांति कहै को * ललकत मन पटतरिय लहैको ॥५॥
देखत अधरनकी अरुणाई * बिंबाफल बंधूक लजाई ॥६॥

१. गायके खुरसे पृथ्वीमें जो गड्ढा पड़ जाता है उसको 'गोपद' कहते हैं।

दाँतोंकी पंक्तिकी कांतिको कौन कहे, उपमा देनेको मन ललचाता है परन्तु किससे उपमा दें ? अर्थात् कोई उपमा देने योग्य नहीं ॥ ५ ॥ होठोंकी लाली देखकर कन्दूरी और गुल-दुपहरियाके फूल लजाते हैं ॥ ६ ॥

शुकतुण्डहिं नासिका लजावै ❋ थके सुकवि नहिं पटतर आवै ॥७॥
शीश जटाके मुकुट बनाये ❋ भाल विशाल तिलक अति भाये ॥८॥

जिनकी नासिका तोतेकी नासिकाको लजाती है, कवि श्रेष्ठ थक गये, कोई उपमा (समानता) नहीं मिलती ॥ ७ ॥ शिरके ऊपर जटाके मुकुट बनाये हैं, विशाल माथेपर तिलक अत्यंत शोभायमान है ॥ ८ ॥

दक्षिण दिशि लक्ष्मण बलवीरा ❋ राम बाहुसम अतिरणधीरा ॥९॥

इनकी दक्षिण दिशामें वीर लक्ष्मणजी बैठे हैं, ये रघुनाथजीकी बाहुके समान बड़े रणधीर हैं ॥९॥

दोहा-वाम बिभीषण सोहहिं, शिर अभिषेका राज ॥
बीज मन्त्र सब जानहिं, अकसर करिहि अकाज ॥ ३१ ॥

बांई ओर विभीषण है जिसके शिरपर राज्यका अभिषेक (तिलक) शोभित है, सब बीज मंत्र जानता है; निश्चय यह तुम्हारा काम बिगाड़ देगा रघुनाथजीका कार्य सम्भालेगा ॥३१॥

अब देखहु यह सेन सुहाई ❋ भादौं मेघघटा जनु छाई ॥१॥
कन्या एक ब्रह्म उपजाई ❋ नयन भूरि अरु रूप लुनाई ॥२॥

अब देखो, यह सुन्दर सेना भादोंके मेघकी घटाके समान छा रही है ॥ १ ॥ एक कन्या ब्रह्माजीने उपजायी, जिसका सुन्दर नेत्र और सुन्दर रूप था ॥ २ ॥

बालमाहिं दिनकर बल दीन्हा ❋ ऋतु जानी वासवरति कीन्हा ॥३॥
जातक यमल बीर दोउ जाये ❋ देव अंश वानर तनु पाये ॥४॥

सूर्यका वीर्य बालोंपर गिरा और इंद्रका मद उसके गर्दन पर गिरा ॥ ३ ॥ उन्हींके वीर्यसे दो वीर उत्पन्न हुए, देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए वानरका शरीर पाया ॥ ४ ॥

किष्किन्धा पर इनकर थाना ❋ देव सरिस मधुवन उद्याना ॥५॥
ऋष्यमूक इनकर विश्रामा ❋ चातुर्मास बसे जहँ रामा ॥६॥

इनका स्थान किष्किन्धा पर है जहांका मधुवन देवताओंके नंदनवनसे श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ और इनका विश्राम ऋष्यमूक पर्वत पर है, जहां चार महीना रघुनाथजी बसे थे ॥ ६ ॥

वाली ज्येष्ठ राम रण मारा ❋ यहि कहँ राजतिलक प्रभु सारा ॥७॥
तारा तासु भई पटरानी ❋ जेहिकर सुत अंगद अतिज्ञानी ॥८॥

वाली इससे बड़ा था, जिसको लड़ाईमें रघुनाथजीने मारकर इसे राज तिलक दिया ॥ ७ ॥ अब तारा इसकी पटरानी हुई है जिसका पुत्र अंगद बड़ा ज्ञानी है ॥ ८ ॥

सहस शंकुकर अर्बुद एका ❋ अर्बुद सहस कि बिन्दु विवेका ॥९॥
सहस बिन्दु गणकन मनमाना ❋ महापद्म तेहिकर परिमाना ॥१०॥

सहस्र करोड़का एक अर्व, सहस्र अर्वका एक बिंदु ॥ ९ ॥ हजार बिन्दुका ज्योतिषियोंने महापद्म कहा है ॥ १० ॥

ऐसे पद्म अठारह साजा ❋ विग्रह बढ़ेउ रामके काजा ॥११॥
वीरवेष अरु नैन विशाला ❋ कम्बुकण्ठ मोतिनकी माला ॥१२॥

ऐसे अठारह पद्म सेना रघुनाथजीके निमित्त तुमसे समर करनेको प्रस्तुत हुई है ॥ ११ ॥ वीरवेषधारी विशालनेत्र, शंखके समान जिसकी गर्दन, मोतियोंकी माला पहरे ॥ १२ ॥

दोहा–हस्ती साठि सहस्रबल, सदा धर्मकी सींव ॥
श्वेत छत्र सिर शोभित, यह राजा सुग्रीव ॥ ३२ ॥

जिसके साठ हजार हाथियोंका बल है सदा धर्मकी मर्यादा है श्वेत छत्र शिर पर शोभित है यह राजा सुग्रीव है ॥ ३२ ॥

दोहा–इहि विधि सकल दिखाये, सारन कपिदल यूह ॥
गनै न रावण कालवश, अतिशय गर्व समूह ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सारनने सब कपि दलके यूथ दिखाये, परंतु अत्यन्त अभिमानी रावण कालके वशीभूत हुआ कुछ नहीं गिनता है ॥ ३३ ॥ इति क्षेपक

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद निवासि पं० सुखानन्द मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत भाषाटीकायां लंकाकांडे द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा–यहि तृतीय विश्राममें, अंगद आज्ञा पाय ।
रावणके दर्बारमें, फिरि आये समुझाय ॥ ३ ॥

यहां प्रात जागे रघुराई ❋ पूछा मत सब सचिव बुलाई ॥१॥
कहहु बेगि का करिय उपाई ❋ जाम्बवन्त कह पद शिर नाई ॥२॥

गोसाईंजी रघुनाथजीके निकट हैं इसी कारण रघुनाथजीके प्रसंगको यहां और रावणके प्रसंगको वहां लिखते हैं। रघुनाथजी प्रातःकाल जागे सब मंत्रियोंको बुलाकर पूछा ॥ १ ॥ कहो क्या उपाय करें ? तब जाम्बवन्त चरणोंमें शिर नवाकर बोले। रघुनाथजीके तीन मन्त्री मुख्य हैं–सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त। सुग्रीवका मत विभीषणकी शरणागतिमें, विभीषणका मत सागर उतरनेमें हो चुका, अब जाम्बवन्तकी बारी आयी ॥ २ ॥

सुनु सर्वज्ञ सकल उरवासी ❋ सर्वरूप सब रहित उदासी ॥३॥
मन्त्र कहउँ निज मति अनुसारा ❋ दूत पठाइय बालि कुमारा ॥४॥

हे सर्वज्ञ, सबके हृदयमें वास करनेवाले, सर्वरूप, सबसे रहित, उदासीन ! सुनिये ॥३॥ अपनी मतिके अनुसार मैं मन्त्र कहता हूँ कि अंगदको दूत बनाकर भेजो ॥ ४ ॥

नीक मन्त्र सबके मन माना ❋ अङ्गदसन कह कृपानिधाना ॥५॥
बालितनय बुधिबलगुण-धामा ❋ लङ्का जाहु तात मम कामा ॥६॥

यह मंत्र सबके मनको अच्छा लगा, तब अंगदसे रघुनाथजी बोले ॥ ५ ॥ हे तात अंगद ! तुम बुद्धि, बल और गुणके धाम हो, मेरे कार्यके निमित्त लंकामें जाओ ॥ ६ ॥

बहुत बुझाय तुमहिं का कहऊँ * परम चतुर मैं जानत अहऊँ ॥७॥
काज हमार तासु हित होई * रिपुसन करेउ बतकही सोई ॥८॥

मैं तुम्हें बहुत समझाकर क्या कहूँ ? मैं तुमको परम चतुर जानता हूँ ॥ ७ ॥ जिससे हमारा काज और उसका हित हो वही वार्ता शत्रुसे करना । आशय यह है कि हमारा काज रावणका मारना, और उसका हित, मुक्त होना है सो वही करना जिससे विरोध बढ़े ॥ ८ ॥

सोरठा–प्रभु आज्ञा धरि शीश, चरण वंदि अङ्गद उठेउ ॥
सोइ गुण सागर ईश, राम कृपा जापर करउ ॥ ४ ॥

प्रभुकी आज्ञा शिरपर धर चरणवन्दन करके अंगदजी उठे और बोले रघुनाथजी आप जिसके ऊपर कृपा करें वही गुणसागर है ॥ ४ ॥

सोरठा–स्वयं सिद्ध सब काज, नाथ मोहिं आदर दयउ ॥
अस विचारि युवराज, तन पुलकित हर्षित भयउ ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! आपके कार्य तो स्वयं ही सिद्ध हैं, परन्तु आपने मुझे आदर दिया, यह कहकर अंगदजी शरीरसे पुलकित होकर प्रसन्न हो उठे (माघवदी परिवाको अंगदजी चले) ॥५॥

वंदि चरण उर धरि प्रभुताई * अंगद चले सबहिं शिर नाई ॥१॥
प्रभु प्रताप उर सहज अशंका * रणबांकुरा बालि-सुत बंका ॥२॥

अंगदजी चरणवंदन करके रामजीकी प्रभुता हृदयमें धारण कर सबको शिर नवाके चले ॥ १ ॥ रघुनाथजीके प्रतापसे ये सहज ही मनमें अशंक और रणके बांके वालिकुमार हैं ॥२॥

पुर पैठत रावण करबेटा * खेलत रहा सो होइ गई भेंटा ॥३॥
बातहिं बात कर्ष बढ़ि आई * युगल अतुल बल पुनि तरुणाई ॥४॥

नगरमें घुसतेही एक रावणके बेटेसे जो खेल रहा था भेंट हो गयी ॥ ३ ॥ रावणके पुत्रने पूछा कि बन्दर ! तू कौन है ? अंगदजीने कहा, मैं रघुनाथजीका दूत हूँ; तब उसने कहा जिसकी पत्नीको हमारे पिता हर लाये हैं ! अंगद बोले मैं उनका दूत हूँ जिन्होंने तेरी फूफीके कान काट डाले । इसी तरह बात ही बातसे क्रोध बढ़ गया क्योंकि दोनों अतुल बली और युवा थे ॥ ४ ॥

तेहि अंगद कहँ लात उठाई * गहि पद पटकेउ भूमि भ्रमाई ॥५॥
निशिचर निकर देखि भट भारी * जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी ॥६॥

उसने अंगदको लात उठायी उन्होंने उसका पांव पकड़ और घुमाकर पृथ्वीपर पटका ॥५॥ राक्षसोंने जब देखा कि बड़ा योद्धा है तब जहां तहां चल दिये पुकार नहीं सके ॥ ६ ॥

एक एकसन मर्म न कहहीं * समुझि तासु वध चुप होइ रहहीं ॥७॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी * आवा कपि लंका जेहि जारी ॥८॥

एक एकसे भेद नहीं कहते उसका वध समझकर चुप हो रहे हैं ? कहीं 'बल' पाठ है तो यह अर्थ करना कि उसका बल समझ कर चुप रहे ॥ ७ ॥ लंकामें बड़ा कोलाहल हुआ कि वही कपि आया है जिसने लंका जलाई थी ॥ ८ ॥

अब धौं काह करिहि करतारा * अतिसभीत सब करहिं विचारा॥९॥
बिनु पूँछे मग्र देहिं दिखाई * जेहि बिलोकि सोइ जाइ सुखाई॥१०॥
अब न जाने करतार क्या करेगा ? अत्यन्त डरे हुए सब कोई विचार करते हैं ॥ ९ ॥ बिना पूछे ही मार्ग दिखा देते हैं, जिसकी ओर देख लें सूख जाता है ॥ १० ॥

दोहा–गये सभा दरबार तब, सुमिरि राम-पदकञ्ज ॥
सिंह ठवनि इत उत चितै, धीर वीर बलपुञ्ज ॥ ३४ ॥
धीर वीर तथा बलके सागर अङ्गदजी शत्रुके सभा दरबार (सभाका दरवाजा) में रघुनाथजीके चरण-कमलका स्मरण कर गये, सिंहके समान चालमें इधर उधर देखने लगे ॥ ३४ ॥

तुरत निशाचर एक पठावा * समाचार रावणहिं सुनावा ॥१॥
सुनत विहँसि बोला दशशीशा * आनहु बोलि कहां कर कीशा ॥२॥
तुरन्त एक राक्षसको भेजकर रावणको समाचार सुनाया ॥ १ ॥ वचन सुनते ही रावण हँसकर बोला बुला लाओ कहांका बन्दर है ॥ २ ॥

आयसु पाय दूत बहु धाये * कपिकुञ्जरहि बोलि लइ आये ॥३॥
अंगद दीख दशानन बैसा * सहित प्राण कज्जल गिरि जैसा ॥४॥
उसकी आज्ञा पाकर बहुतसे दूत चले और कपिश्रेष्ठ अङ्गदजीको बुला लाये ॥३॥ अङ्गदने रावणको ऐसा देखा, मानो प्राण सहित जैसे कज्जल गिरि (काला पहाड़) होता है ॥ ४ ॥

भुजा विटप शिर शृंग समाना * रोमावली लता जनु नाना ॥५॥
मुख नासिका नयन अरु काना * गिरि कन्दरा खोह अनुमाना ॥६॥
भुजा वृक्षके समान, शिर पर्वतके शृङ्गके समान, रुये मानो अनेक लता--वेलसे हैं ॥५॥ मुख, नासिका, नेत्र और कान पर्वतकी कन्दरा और खोहके समान हैं ॥ ६ ॥

गयउ सभा मन नेकु न मुरा * वालितनय अतिबल बाँकुरा ॥७॥
उठे सभासद कपि-कहँ देखी * रावण उर भा क्रोध बिसेखी ॥८॥
सभामें गये पर तनिक भी मन नहीं घबड़ाया; क्योंकि वालि पुत्र लड़ाईमें बड़ा वीर है ॥ ७ ॥ कपिको देखकर सब सभासद उठे, पर रावणके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ८ ॥

दोहा–यथा मत्तगज यूथ महँ, पंचानन चलि जाय ॥
राम प्रताप सँभारि उर, बैठ सभा शिर नाय ॥ ३५ ॥
जैसे मतवाले हाथियोंके बीचमें शेर चला जाय उसी प्रकार हृदयमें रामका प्रताप सँभाल कर सभाको शिर नवाकर बैठ गये, क्योंकि सभा भी इनके आदर को उठी थी अथवा इनके बैठते ही सब सभाका शिर नीचा हो गया ॥ ३५ ॥

कह दशकंठ कवन तै बन्दर * मैं रघुवीर-दूत दशकंधर ॥१॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई * तव हितकारण आयउँ भाई ॥२॥
रावण बोला बन्दर ! तू कौन है ? अङ्गदजी बोले मैं रघुनाथजीका दूत हूँ ॥ १ ॥ रावण

बोला—यहां कैसे आये ? तब अंगदजी बोले--मेरे पिता और तुमसे मित्रता थी, इसी कारण तुम्हारे हित करनेके निमित्त आया हूँ (सुनो) ॥ २ ॥

उत्तम कुल पुलस्त्यकर नाती * शिव विरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥३॥
बर पायउ कीन्हेउ सब काजा * जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥४॥

तुम्हारा श्रेष्ठ कुल है पुलस्त्य ऋषिके नाती हो, शिव ब्रह्माजीका अनेक प्रकार पूजन किया है ॥३॥ तुमने वर पाकर सब काम किये, लोकपाल(इंद्रादि) और सब राजाओंको जीत लिये ॥४॥

नृप अभिमान मोहवश किम्बा * हरि आनेहु सीता जगदम्बा ॥५॥
अब शुभ कहा करहु तुम मोरा * सब अपराध क्षमहि प्रभु तोरा ॥६॥

हे नृप ! फिर अभिमानसे या मोहसे वा राजमदसे जो जगदम्बा (जगन्माता) जानकीजी को हर लाये (यह अच्छा नहीं किया) ॥ ५ ॥ परन्तु अब मेरा--सुन्दर कहा मानो इसके करने से रघुनाथजी; तुम्हारे सब अपराधोंको क्षमा कर देंगे ॥ ६ ॥

दशन गहहु तृण कण्ठ कुठारी * पुरजन संग सहित निज नारी ॥७॥
सादर जनकसुतहि करि आगे * इहि विधि चलहु सकल भय त्यागे॥८॥

वह कहना यह है कि दांतोंमें तृण धरो अर्थात् गऊ बनो, गलेमें कुठारी धरो जिससे अपराधी सूचित हो और लंकाकी स्त्रियोंको ले चलो, जिससे विदित हो लंकामें शूर नहीं, किन्तु स्त्रियां रहती हैं ॥ ७ ॥ और जानकीजीको आदर पूर्वक सबके आगे करो, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो और कहना कि ॥ ८ ॥

दोहा—प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं ॥
सुनतहि आरत वचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं ॥ ३६ ॥

हे दीनोंके रक्षक रघुनाथजी ! अब मेरी रक्षा करो, यह दुःखके वचन सुनते ही रघुनाथजी तुम्हें अभय कर देंगे (यह सुनकर रावण कहने लगा) ॥ ३६ ॥

रे कपिपोच न बोल सँभारी * मूढ़ न जानेसि मोहिं सुरारी ॥१॥
कहु निज नाम जनककर भाई * केहि नाते मानिये मिताई ॥२॥

रे वानरके बच्चे ! सँभालके नहीं बोलता मूर्ख तू नहीं जानता मैं देवताओंका शत्रु हूँ ? ॥ १ ॥ अरे भाई ! अपने बापका तो नाम बता, मैं किस नातेसे मिताई मानूँ ? ॥ २ ॥

अंगद नाम बालि कर बेटा * तोसों कबहु भई धौं भेंटा ॥३॥
अंगद वचन सुनत सकुचाना * रहा बालि वानर मैं जाना ॥४॥

अङ्गदजी बोले-अङ्गद मेरा नाम है वालिका पुत्र हूँ तुमसे उनसे कभी भेंट हुई थी ! ॥ ३ ॥ रावण यह अङ्गदके वचन सुनकर सकुचाया और कहने लगा-हां एक बालि नामका वानर था उसे मैं जानता हूँ ॥ ४ ॥

अंगद तुही बालि कर बालक * उपजेउ वंश अनल कुल घालक ॥५॥
गर्भ न खसेउ वृथा तुम जाये * निजमुख तापस दूत कहाये ॥६॥

अङ्गद ! तू ही बालिका बालक है, तू अपने कुलके जलानेको अग्नि हुआ॥५॥ तेरा गर्भ न गिर

गया, तू वृथा ही उत्पन्न हुआ; जो ऐसे वीरका पुत्र होकर अपने मुखसे तपस्वीका दूत कहाया ॥६॥

अब कहु कुशल बालि कहँ अहई ❋ विहँसि बचन अंगद अस कहई ॥७॥
दिन दश गये बालि पहँ जाई ❋ पूछेहु कुशल सखा उर लाई ॥८॥

अच्छा, अब बालिकी कुशल तो कह, वह कहां है ? तब अंगदजी हँसते हुए ऐसे वचन बोले ॥७॥ हे दशशीश ! अब दश दिन पीछे वालिके निकट जाकर, उसे हृदयसे लगाकर कुशल पूछना। अथवा अच्छे दिन और अच्छी दशा बीत गयी, अब कुशल कहां ? ॥ ८ ॥

राम विरोध कुशल जस होई ❋ सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥९॥
सुनु शठ भेद होइ मन ताके ❋ श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके ॥१०॥

जैसा कुछ कुशल रघुनाथजीसे विरोध करनेसे होता है वह वालि तुम्हें सब सुना देगा ॥९॥ ऊपरकी चौपाईसे वालिका बखानकर रावण अंगदकी निंदा कर उसे अपनेमें मिलाता है, उसपर अंगदजी कहते हैं—रे मूर्ख ! सुन, भेद तो उसके मनमें होता है जिसके मनमें रघुनाथजी नहीं हों ॥ १० ॥

दोहा—हम कुलघातक सत्य तुम, कुलपालक दशशीश ॥
अन्धौ बधिर न कहहिं अस, श्रवण नयन तोहि बीस ॥ ३७ ॥

हे रावण ! हम तो कुल नाशक हैं यह सत्य है क्योंकि रघुनाथजीके दास हैं तुम उनसे वैर करके कुलपालक बनोगे ! अरे एक भी न बचेगा जैसी बात हमसे कही है ऐसी तो अन्धे बहरे भी नहीं कहते तेरे तो बीस आंखे और बीस कान हैं। अथवा जिस कुलका तू पालक है हम उस कुलके नाशक हैं ॥ ३७ ॥

शिव विरंचि सुर मुनि समुदाई ❋ चाहत जासु चरण-सेवकाई ॥१॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा ❋ ऐसिहु मति उर बिहरु न तोरा ॥२॥

शिव ब्रह्मा देवता तथा मुनि जिनके चरणोंकी सेवकाई चाहते हैं ॥१॥ हमने उसका दूतपना स्वीकार कर कुल डुबाया ? ऐसी मति होनेसे तेरा हृदय क्यों नहीं विदीर्ण होता ? ॥२॥

सुनि कठोर बानी कपिकेरी ❋ कहत दशानन नयन तरेरी ॥३॥
खल तव कठिन वचन मैं सहऊँ ❋ नीति धर्म सब जानत अहऊँ ॥४॥

यह अंगदकी कठोर वाणी सुन नेत्रोंसे घुड़क कर रावण बोला ॥ ३ ॥ दुष्ट ! तेरे कठोर वचन मैं इस कारण सहता हूँ कि सब नीति-धर्मको मैं जानता हूँ ॥ ४ ॥

कह कपि धर्म शीलता तोरी ❋ हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी ॥५॥
देखेउँ नयन दूत रखवारी ❋ बूड़ि न मरहु धर्म व्रतधारी ॥६॥

अङ्गदजी बोले-मैंने भी तुम्हारी धर्मशीलता सुनी है कि पराई स्त्रीको चुरा लाये हो ॥५॥ और दूतकी रखवाली तो आँखोंसे देख ली। रे धर्मव्रतधारी ! तू डूब क्यों नहीं मरता ! जब अङ्गदजी रावणसे बात करते थे उसी समय कुबेरका दूत रावणको समझाने आया था कि रामचन्द्रसे मिलाप कर लो, रावण उसे मारकर खा गया, उसपर अङ्गदजी कहते हैं कि दूत रक्षा तो आँखोंसे देख ली; अब तू डूब मर। वा महावीरजीकी ओर संकेत करते हैं कि दूतकी रख (पूँछमें) वारी (आग लगायी) यह सुनना भी देखना ही है ॥ ६ ॥

नाक कान बिनु भगिनि निहारी ❋ क्षमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ॥७॥
धर्मशीलता तव जग जागी ❋ पावा दर्श हमहुँ बड़भागी ॥८॥

नाक, कानके विना बहिनको देखकर भी तुमने धर्मको ही विचार कर क्षमा कर दी ॥७॥ तुम्हारी धर्मशीलता जगत्में व्यापक हो रही है, हमारे भी बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ (तब रावण कहने लगा) ॥ ८ ॥

दोहा–जनि जल्पसि जड़जन्तु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु ॥
लोकपाल बल विपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु ॥ ३८ ॥

अरे जड़जन्तु वानर ! वृथा बकवाद मत कर, मूर्ख ! मेरी बांहोंको तो देख, जो लोकपालों के अपार बलरूपी चन्द्रमाके ग्रास करनेको राहुके समान हैं ॥ ३८ ॥

दोहा–पुनि नभ सर मम करनिकर, कमलन पर करि वास ॥
शोभित भयउ मराल इव, शम्भु-सहित कैलास ॥ ३९ ॥

फिर देख आकाशरूपी सरोवरमें हाथरूपी अनेक कमलोंके ऊपर वास कर हंसकी नाईं श्वेत कैलास पर्वत शिवजीके सहित शोभित हुआ, अर्थात् मैंने कैलास पर्वतको विना परिश्रम उठा लिया ॥ ३९ ॥

तुम्हरे कटक माहिं सुनु अङ्गद ❋ मोसन भिरहि कवन योधा वद ॥१॥
तव प्रभु नारि-विरह बलहीना ❋ अनुज तासु दुखदुखित मलीना ॥२॥

अच्छा अङ्गद ! सुन, अब तो यह बता, तेरे कटकमें मुझसे लड़नेवाला कौन योधा है ? ॥ १ ॥ तुम्हारे स्वामी तो लड़ नहीं सकते, क्योंकि वह स्त्रीके वियोगसे बलहीन हैं और जो उनका छोटा भाई लड़े सो भी नहीं क्योंकि वह भाईके दुःखसे दुःखी है ॥ २ ॥

तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ ❋ बन्धु हमार भीरु अति सोऊ ॥३॥
जाम्बवन्त मन्त्री अति बूढ़ा ❋ सो किमि होय समर आरूढ़ा ॥४॥

तुम और सुग्रीव दोनों विरोध नदीके किनारेके वृक्ष हो अर्थात् परस्पर राज्य प्राप्तिकी इच्छा करते हो, इससे क्या लड़ोगे ? हमारा भाई भी नहीं लड़ सकता, क्योंकि वह बहुत डरपोक है ॥३॥ और जाम्बवन्त मंत्री बहुत बूढ़ा है । कैसे समरमें लड़ेगा ॥ ४ ॥

शिल्प कर्म जानहिं नल नीला ❋ है कपि एक महाबलशीला ॥५॥
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा ❋ सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा ॥६॥

नल नील राजगीरी जानते हैं वे लड़ना नहीं जानते; एक कपि निश्चय बड़ा बली है ॥ ५ ॥ जो प्रथम आया था और जिसने हमारा नगर जला दिया, यह बात सुन अङ्गदजी हँसकर बोले ॥ ६ ॥

सत्य वचन कहु निशिचर नाहा ❋ साँचेउ कीश कीन्ह पुरदाहा ॥७॥
रावण-नगर अल्प कपि दहई ❋ को अस मूढ़ सुनै को कहई ॥८॥

रावण! सत्य बात कहो क्या सत्य ही वानरने तुम्हारे नगरको जला दिया?॥७॥ एक छोटा सा

वानर रावणके नगरको जलावे यह कौन मूर्ख कहे सुनेगा । कहीं मूढ़के स्थानमें झूठ पाठ है अर्थात् ऐसा झूठ कौन कहे ? कहीं 'सुनि अस वचन सत्य को कहई' पाठ है ॥ ८ ॥

जो अति सुभट सराहेउ रावन * सो सुग्रीवकेर लघु धावन ॥९॥
चलै बहुत सो वीर न होई * पठवा खबरि लेन हम सोई ॥१०॥

रावण ! तुम जिसको बड़ा योद्धा कहकर बड़ाई करते हो वह तो सुग्रीवका छोटा दूत है ॥ ९ ॥ जो बहुत चलता है वह वीर नहीं होता, हमने उसे खबर लेने भेजा था ॥ १० ॥

दोहा–अब जाना पुर दहेउ कपि, विनु प्रभु आयसु पाय ॥
गयउ न फिरि निजनाथ पहँ, तेहि भय रहेउ लुकाय ॥ ४० ॥

यह बात मैंने अब जानी की कपिने विना प्रभुकी आज्ञा तुम्हारा नगर जलाया और इसी कारण वह फिर कर अपने स्वामीके पास नहीं गया, उसी डरके मारे कहीं छिपा रहा ॥४०॥

दोहा–सत्य कहेसि दशकण्ठ तैं, मोहि न सुनि कछु कोह ॥
कोउ न हमरे कटक अस, तोसन लरत जो सोह ॥ ४१ ॥

रावण ! तुमने यह बात सत्य कही और कुछ सुनकर मुझे क्रोध नहीं आया है, क्योंकि हमारे कटकमें कोई भी ऐसा नहीं जो तुमसे युद्ध करते शोभा पावे, क्योंकि ॥ ४१ ॥

दोहा–प्रीति विरोध समानसन, करिय नीति असिआहि ॥
जो मृगपति वध मेंडुकहि, भलो कहै को ताहि ॥ ४२ ॥

नीति तो ऐसी है, कि प्रीति और बैर बराबर वालोंसे करना, जो सिंह मेंढकको मारे तो उसे कौन भला कहेगा ? अर्थात् यह रावण मेंढक और राम सिंह हैं ॥ ४२ ॥

दोहा–यद्यपि लघुता राम कहँ, तोहि बधे बड़ दोष ॥
तदपि कठिन दशकंध सुनु, क्षत्रिजाति कर रोष ॥ ४३ ॥

सुनो रावण ! यद्यपि रामको इसमें बड़ी लघुता है क्षुद्रके मारनेसे बड़ा दोष है तो भी क्षत्रिय जातिका क्रोध कठिन होता है अथवा तूने जानकीजीको हरकर बड़ा दोष किया है; अथवा तू ब्राह्मण है तेरे मारनेमें दोष है; तो भी क्षत्रिय जातिका महा रोष होनेसे तुझे मारेंगे ॥ ४३ ॥

दोहा–हँसि बोलेउ दशमौलि तब, कपिकर गुण बड़ एक ॥
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक ॥ ४४ ॥

तब रावण हँसकर बोला--वानरोंमें एक बड़ा गुण होता है जो कि उनको पाले वे उसकी बड़ाई निमित्त अनेक उपाय करते हैं ॥ ४४ ॥

धन्य कीश जे निज प्रभु काजा * जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा ॥१॥
नाचि कूदि करि लोक रिझाई * पति हित करत धर्म निपुणाई ॥२॥

ये वानर धन्य हैं जो अपने स्वामीके निमित्त जहां तहां लाज छोड़कर नाचते हैं ॥१॥ नाच कूदकर लोगोंको रिझाते तथा अपने स्वामीके निमित्त अनेक निपुणताके धर्म करते हैं ॥ २ ॥

अंगद स्वामिभक्ति तव जाती * प्रभुगुण कस न कहसि इहि भाँती ॥३॥
मैं गुणगाहक परम सुजाना * तव कटु वचन करौं नहिं काना ॥४॥

अंगद ! तुम्हारी जाति ही स्वामिभक्त होनेकी है फिर तुम प्रभुके गुण इस प्रकार क्यों न कहो? ॥३॥ परंतु मैं परम सुजान गुण ग्राहक हूँ तेरे कटुवचनों पर ध्यान नहीं देता हूँ ॥ ४ ॥

कह कपि तव गुण गाहकताई * सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई ॥५॥
वन विध्वंसि सुत वधि पुरजारा * तदपि न तेइ कृत कछु अपकारा ॥६॥

कपि बोले--तुम्हारी गुणग्राहकता मुझे पवनसुतने सत्य सुनायी है; क्योंकि उनमें तीन गुण थे ॥ ५ ॥ एक वन उजारा, दूसरे तुम्हारे पुत्रको मारा, तीसरे पुर जारा, उसपर भी तुमने उसका कुछ अपकार नहीं किया ॥ ६ ॥

सोइ विचारि तव प्रकृति सुहाई * दशकन्धर मैं कीन्ह ढिठाई ॥७॥
देखेउँ आय जो कछु कपि भाखा * तुम्हरे लाज न रोष न माखा ॥८॥

वही तुम्हारी सुन्दर प्रकृति विचार मैंने भी ढिठाई की अर्थात् तुम्हारे दर्शन करनेको आया ॥ ७ ॥ जो कुछ कपिने कहा था आकर देखा, तुम्हारे लाज क्रोध और अहंकार नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा–वक्र उक्ति धनु वचन शर, हृदय दहे रिपु कीश ॥
प्रतिउत्तर सँडसिनि मनहुँ, काढ़त भट दशशीश ॥ ४५ ॥

अंगदकी उक्तिरूपी धनुषसे वचनरूपी बाण जो रावणके हृदयमें बींधे जाते हैं उनको वीर रावण अनेक उत्तररूपी सँडसीसे निकालता जाता है आप चलनेका अवकाश नहीं पाता॥४५॥

जो असिमति पितु खायउ कीशा * कहि अस वचन हँसा दशशीशा ॥१॥
पितुहि खाइ खातेउँ अब तोहीं * अबहीं समुझि परा कछु मोहीं ॥२॥

जो ऐसी मति थी तभी तो तुमने पिताको खा लिया, यह वचन कहकर रावण हँसा॥१॥ अङ्गदजी बोले-पिताको तो खा चुका, अब तुम्हें खाता परन्तु एक वार्ता मुझे स्मरण है इस कारण तुम्हें नहीं मारता ॥ २ ॥

बालि विमल यश भाजन जानी * हतौं न तोहिं अधम अभिमानी ॥३॥
कहु रावण रावण जग केते * मैं निज श्रवण सुने सुनु तेते ॥४॥

हे महा अभिमानी ! मैं तुम्हें बालिके उज्ज्वल यशका पात्र समझकर नहीं मारता हूँ क्यों कि जो सुनते हैं सो कहते हैं कि यही बालिके काखमें रहा था ॥ ३ ॥ परन्तु कह तो; कि जगत्में रावण कितने हैं ? मैंने सुने हैं सो सुनाता हूँ ॥ ४ ॥

बलि जीतन यक गयउ पताला * राखा बांधि शिशुन हयशाला ॥५॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई * दया लागि बलि दीन्ह छुड़ाई ॥६॥

एक राजा बलिको जीतने पातालमें गया था, उसे बालकोंने घुड़सालमें बांध रखा ॥५॥ बालक उसके संग खेलते और मारते थे सो राजा बलिने दयाकर उसे छुड़ा दिया ॥ ६ ॥

एक बहोरि सहसभुज देखा * धाइ धरा जनु जन्तु विसेखा ॥७॥
कौतुक लागि भवन लेइ आवा * सो पुलस्त्य मुनि जाय छुड़ावा ॥८॥

फिर एक रावण और देखा था, जिसे सहस्रबाहुने जलजन्तुके समान पकड़ लिया ॥७॥ और कौतुकके निमित्त अपने घर ले आया, उसे पुलस्त्य मुनिने जाकर छुड़ाया ॥ ८ ॥

दोहा-एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालिकी काँख ॥
तिनमहँ रावण कवन तुम, सत्य कहहु तजि माँख ॥ ४६ ॥

एकका वर्णन करते मुझे बड़ी सकुच लगती है, जो कि वालिकी कांखमें रहता था, उनमें तुम कौनसे रावण हो ? सो अभिमान त्यागकर सत्य बताओ तब रावण बोला ॥ ४६ ॥

सुनु शठ सोइ रावण बलशीला ॥ हरगिरि जान जासु भुजलीला ॥१॥
जान उमापति जासु शुराई ॥ पूजेउँ जेहि शिर सुमन चढ़ाई ॥२॥

सुन मूर्ख ! मैं वही रावण हूँ जिसकी भुजाओंके पराक्रमको कैलास पर्वत जानता है, अर्थात् मैंने कैलास पर्वतको बहुत बार उठा लिया है ॥१॥ और जिसकी शूरताको शिवजी जानते हैं कि मैंने फूलोंके स्थानमें अपने शिर चढ़ाकर उनका पूजन किया था ॥ २ ॥

शिर सरोज निज करन उतारी ॥ पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥३॥
भुज विक्रम जानहिं दिगपाला ॥ शठ अजहूँ जिनके उर शाला ॥४॥

अपने हाथसे कमलरूपी शिर उतारकर बहुत बार शिवजीका पूजन किया है ॥३॥ मेरी भुजाओंके विक्रमको दिक्पाल जानते हैं मूर्ख ! अभी भी जिनके हृदयमें बड़ा दुःख रहता है॥४॥

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई ॥ जब जब भिरेउँ जाय वरिआँई ॥५॥
जिनके दशन कराल न फूटे ॥ उर लागत मूलक इव टूटे ॥६॥

दिग्गज मेरे हृदयकी कठिनताको जानते हैं, जब जब मैं जबरदस्ती उनसे जाकर भिड़ जाता हूँ ॥ ५ ॥ जिनके दांत ऐसे कठिन थे जो कभी टूटनेवाले न थे; वे दांत मेरे हृदयमें लगकर मूलीकी नाईं टूट गये हैं ॥ ६ ॥

जासु चलत डोलत इमि धरणी ॥ चढ़त मत्त गजजिमि लघुतरणी ॥७॥
सोइ रावण जग विदित प्रतापी ॥ सुनेसि न श्रवण अलीक प्रलापी॥८॥

जिसके चलनेसे पृथ्वी ऐसे डोलती है जैसे मत्त हाथीके चढ़नेसे छोटी नौका डोलती है ॥ ७ ॥ वही प्रतापी रावण जगत्में विख्यात है; रे असंगत वचन कहनेवाले ! क्या तूने कानोंसे नहीं सुना मेरा कैसा प्रताप है ? ॥ ८ ॥

दोहा-तेहि रावण कहँ लघु कहसि, नरकर करसि बखान ॥
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ज्ञान ॥ ४७ ॥

ऐसे रावणको छोटा कहता है मनुष्यका बखान करता है, रे मूर्ख ! छोटे दुष्ट कपि अब मैंने तेरा ज्ञान जाना ॥ ४७ ॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी ॥ बोल सँभारि अधम अभिमानी ॥१॥
सहस बाहु भुज गहन अपारा ॥ दहन अनल समजासु कुठारा ॥२॥

यह सुनकर अङ्गदजी क्रोधकर बोले-अरे नीच अभिमानी ! सँभाल कर बोल ॥ १ ॥ जिन परशुरामजीने फरसे से सहस्रबाहुकी भुजा छेदन कर दी है ॥ २ ॥ सहस्रबाहुकी अपार गहन भुजाओंको जलानेको जिसका कुल्हाड़ा अग्निसमान है अर्थात्

जासु परशु सागर खर धारा ❋ बूड़े नृप अगणित बहु बारा ॥३॥
तासु गर्व जेहि देखत भागा ❋ सो नर किमि दसकंठ अभागा ॥४॥

जिन परशुरामजीके फरसे रूप सागरकी तीक्ष्ण धारमें अनगिन्त बार अनेक राजा डूब गये ॥३॥ उन परशुरामजीका अहंकार जिन रामचन्द्रजीको देखते ही भाग गया; हे अभागे रावण ! वे मनुष्य कैसे हो सकते हैं ? ॥ ४ ॥

राम मनुज कस रे शठ बंगा ❋ धन्वी काम नदी पुनि गंगा ॥५॥
पशु सुर धेनु कल्प तरु रूखा ❋ अन्नदान अरु रस पीयूखा ॥६॥

अरे बंगा (लुच्चे) ! रघुनाथजी मनुष्य कैसे हैं ? क्या कामदेव एक साधारण धनुषधारी है यदि साधारण होता तो पुष्पके धनुष बाणसे भी कहीं लोकजय होती है और क्या गंगा एक नदी है ॥ ५ ॥ कामधेनु क्या पशु है ? कल्पवृक्ष क्या पेड़ है ? क्या अन्न एक साधारण दान और अमृत एक रस है ? ॥ ६ ॥

वैनतेय खग अहि सहसानन ❋ चिंतामणि पुनि उपल दशानन॥७॥
सुनु मतिमन्द लोक वैकुण्ठा ❋ लाभकि रघुपति भक्ति अकुण्ठा॥८॥

क्या गरुड़ एक पक्षी है ? शेषजी क्या सांप हैं ? और चिंतामणि क्या कोई पत्थर है ? अर्थात् ये अलौकिक पदार्थ हैं ॥७॥ सुन मूर्ख ! क्या वैकुण्ठ भी एक साधारण लोक है ? रघुनाथजीकी अविचल भक्ति क्या साधारण लाभ है ? वह तो अखण्ड लाभ है ॥ ८ ॥

दोहा-सेन सहित तव मान मथि, वन उजारि पुर जारि ॥
कस रे शठहनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि ॥४८॥

जो सेना सहित तेरे मानको मथकर वन उजाड़, पुर जलाय तथा तेरे पुत्रको मारकर चला गया; क्या वह हनुमान एक साधारण कपि है ? ॥ ४ ॥

सुनु रावण परिहरि चतुराई ❋ भजसि न कृपासिंधु रघुराई ॥१॥
जो खल भयसि रामकर द्रोही ❋ ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥२॥

सुन रावण ! तू यह चतुरता छोड़; कृपासागर रघुनाथजीका भजन क्यों नहीं करता ॥१॥ रे मूर्ख ! जो रघुनाथजीका विरोधी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और शिवजी भी नहीं रख सकते ॥२॥

मूढ़ मृषा जनि मारिसि गाला ❋ राम द्रोह होइहि अस हाला ॥३॥
तव शिर निकर कपिनके आगे ❋ परिहैं धरणि रामशर लागे ॥४॥

अरे मूर्ख ! वृथा गाल मत बजा; रघुनाथजीसे वैर करनेसे यह हाल होगा ॥ ३ ॥ कि तेरे शिर समूह रघुनाथजीके बाण लगनेसे वानरोंके आगे पृथ्वीपर गिरेंगे ॥ ४ ॥

ते तव शिर कन्दुक इव नाना ❋ खेलहिं भालु कीश चौगाना ॥५॥
जबहिं समर कोपहिं रघुनायक ❋ छूटहिं अति कराल बहुसायक ॥६॥

तब गेंदकी तरह रीछ वानर तेरे अनेक शिरोंकी चौगान खेलेंगे ॥ ५ ॥ जब रघुनाथजी युद्धमें क्रोध करेंगे और अनेक कराल बाण छूटेंगे ॥ ६ ॥

---

१. कवित्त—जाके रोष दुसह त्रिदोषदाह दूर कीन्हें, पैयत न क्षत्री खोज खोजते खलकमें । माहिष्मतीको नाह साहस सहसबाहु, समर समर्थराज हेरियें हलकमें । सहित समाज महाराजसो जहाज राज, बूड़ि गयो जाके बल, वारिधि छलकमें । टूटत पिनाकके मनाक वाम राम ते नाक विनु भये भृगुनायक पलक में ।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा ❋ अस विचारि भजु राम उदारा ॥७॥
सुनत वचन रावण पर जरा ❋ बरत अनल महँ जनु घृत परा ॥८॥
तब यह तुम्हारा गाल बजाना नहीं चलेगा, ऐसा विचार कर उदार रघुनाथजीको भजो ॥७॥ यह वचन सुन रावण बड़े क्रोधमें हुआ, मानो जलती अग्निमें घृत पड़ा है और बोला ॥८॥

दोहा-कुंभकरण अस बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध शक्रारि ॥
मोर पराक्रम सुनेसि नहिं, जितेउँ चराचर झारि ॥ ४९ ॥

कुम्भकरण ऐसा तो मेरा भाई प्रसिद्ध और इन्द्रको जीतनेवाला पुत्र है, तूने क्या मेरे पराक्रमको नहीं सुना ! जो मैंने चराचर जगत्को झारकर जीत लिया है । झारका अर्थ समूह है॥४९॥

शठ शाखामृग जोरि सहाई ❋ बांधेउ सिन्धु यही प्रभुताई ॥१॥
नांघहिं खग अनेक वारीशा ❋ शूर न होहिं ते सुनु जड़ कीशा ॥२॥
अरे मूर्ख ? वानरोंकी सेना जोड़कर पुल बांध लिया है बस यही प्रभुताई है ? ॥ १ ॥ अनेक पक्षी सागर लांघ जाते हैं रे मूर्ख वानर ! वे शूर नहीं होते ॥ २ ॥

मम भुज सागर बलजल पूरा ❋ जहँ बूड़े बहु सुर नर शूरा ॥३॥
बीस पयोधि अगाध अपारा ❋ को अस वीर जो पावहि पारा ॥४॥
सागर रूपी मेरी बीस बाँहोंमें बलरूपी जल भर रहा है यहां अनेक शूर, देवता, मनुष्य डूब गये हैं ॥ ३ ॥ ये गहरे अपार बीस समुद्र हैं ऐसा कौन वीर है जो इनका पार पावे॥४॥

दिगपालन मैं नीर भरावा ❋ भूप सुयश खल मोहिं सुनावा ॥५॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा ❋ पुनि पुनि कहसि जासु गुणगाथा॥६॥
मैंने दिक्पालोंसे जल भराया, रे मूर्ख तू राजाका सुयश मुझे सुनाता है ॥ ५ ॥ जो तेरे स्वामी समरमें बड़े योद्धा हैं जिनके गुणोंकी कथा तू बार बार कहता है ॥ ६ ॥

तौ बसीठ पठवा केहि काजा ❋ रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा॥७॥
हरगिरिमथन निरखु मम बाहू ❋ पुनि शठ कपि निज स्वामि सराहू॥८॥
तो उन्होंने दूत किस कारण भेजा ? शत्रुसे प्रीति करते लाज नहीं आती ? ॥ ७ ॥ शिवजीके कैलासको मथन करनेवाली मेरी बाहोंको देख फिर मूर्ख वानर ! अपने स्वामीकी सराहना करना ॥ ८ ॥

दोहा-शूर कवन रावण सरिस, स्वकर काटि जेइँ शीश ॥
हुने अनलमहँ बार बहु, हर्षित साखि गिरीश ॥ ५० ॥

रावणके बराबर कौन शूर है जिसने अपने हाथसे शिर काटकर अनेक बार प्रसन्न हो अग्निमें होम दिये; इसके साक्षी शिवजी हैं ॥ ५० ॥

जरत विलोकेउँ जबहि कपाला ❋ विधिके लिखे अंक निज भाला ॥१॥
नरके कर आपन वध बांची ❋ हँसेउँ जानि विधि गिरा असाँची॥२॥
जब मैंने अपने कपाल जलते देखे तो अपने भालपर विधाताके लिखे अंक बाँचे ॥ १ ॥ तो मनुष्यके हाथ अपना मरना बांच मुझे हँसी आयी कि ब्रह्माजीकी बात झूठी है ॥ २ ॥

सो मन समुझि त्रास नहिं मोरे * लिखा विरंचि जरठमति भोरे ॥३॥
आन वीर को सठ मम आगे * पुनि पुनि कहसि लाज परित्यागे ॥४॥
उसे भी मनमें समझके मुझे दुःख नहीं होता, क्योंकि ब्रह्माने बुढ़ापेकी भूलसे लिख दिया है॥३॥ रे मूर्ख ! मेरे आगे दूसरा कौन वीर है जो लाजको छोड़कर बार बार ऐसी बातें कहता है ॥४॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं * रावण तोहि समान कोउ नाहीं ॥५॥
लाजवंतकर सहज सुभाऊ * निजमुख निजगुण कहहिं न काऊ॥६॥
अंगद बोले-रावण ! लाजवाला जगत्‌में कोई तुम्हारे समान नहीं है ॥ ५ ॥ क्योंकि लाजवालोंका तो सहज ही स्वभाव होता है कि अपने गुण अपने मुखसे कभी नहीं कहते किंतु छिपाते हैं तुमने बार बार अपने गुण कहे इससे बड़े निर्लज्ज हो, परन्तु ॥ ६ ॥

शिर अरु शैल कथा चित रही * ताते बार बीस तैं कही ॥७॥
सो भुजबल राखेउ उर घाली * जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥८॥
शिर और पर्वतकी ही कथा तुम्हारे चित्तमें भर रही है इसीसे बीसों बार तुमने वर्णन की ॥ ७ ॥ परन्तु यह भुजाओंका बल तुमने उस समय क्या हृदयमें छिपा रखा था जब सहस्रबाहु, बलि और बालिसे लड़ाई हुई थी। आशय यह कि जब इन वीरोंने दुर्दशा की तब पर्वतादि उठानेका सामर्थ्य कहां गया था ? जो उन्हें नहीं जीता ॥ ८ ॥

सुनु मतिमन्दकी देहि अब पूरा * काटे शीश कि होइहि शूरा ॥९॥
इन्द्रजालि कहँ कहिय न वीरा * काटै निज कर सकल शरीरा ॥१०॥
रे मतिमन्द ! सुन अब इसका तो उत्तर दे कि शिर काटनेवाले भी कहीं शूर होते हैं ? अर्थात् वे शूर नहीं होते ॥ ९ ॥ बाजीगर अपने हाथसे अपना सम्पूर्ण शरीर काट डालता है परन्तु उसे कोई वीर नहीं कहता ॥ १० ॥

दोहा—जरहिं पतंग विमोहवश, भार बहहिं खरवृन्द ॥
ते नहिं शूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमन्द ॥ ५१ ॥
मोहके वशीभूत होकर पतंग दीपक पर जल जाते हैं; गदहे बोझ उठाते हैं, हे मतिमन्द रावण ! समझ देख, वे शूर नहीं कहाते, और ॥ ५१ ॥

अब जनि बत बढ़ाव खल करही * सुनु मम वचन मान परिहरही ॥१॥
दशमुख मैं न वसीठी आयउँ * अस विचारि रघुवीर पठायउँ ॥२॥
मूर्ख अब बतबढ़ाव मत कर, मान त्याग कर मेरे वचन सुन ॥ १ ॥ रावण ! मैं बसीठी नहीं आया हूँ यह विचार कर रघुनाथजीने भेजा है और ॥ २ ॥

बारबार इमि कहेउ कृपाला * नहिं गजारि यश वधे शृगाला ॥३॥
मनमहँ समुझि वचन प्रभु केरे * सहउँ कठोर वचन शठ तेरे ॥४॥
बारंबार रघुनाथजीने यही कहा कि गीदड़के मारनेसे गजारि (सिंह) को कुछ यश नहीं मिलता ॥ ३ ॥ वही प्रभुके वचन मनमें स्मरण करके तेरे कठोर वचन सहता हूँ ॥ ४ ॥

नाहिंत करि मुख भंजन तोरा * लइ जातेउँ सीतहि बर जोरा ॥५॥

जानेउँ तव बल अधम सुरारी ❋ सूने हरि आनी परनारी ॥ ६ ॥

नहीं तो तेरा मुख भञ्जन (तोड़) करके जानकीजीको बरजोरी ले जाता ॥ ५ ॥ रे नीच दैत्य ! मैं तेरा बल जानता हूँ कि सूने स्थानसे परायी स्त्रीको चुरा लाया है ॥ ६ ॥

तैं निशिचरपति गर्व बहूता ❋ मैं रघुपति सेवक-कर दूता ॥७॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ ❋ तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥८॥

हे रावण ! तुझे तो स्वामीपनेका गर्व बहुत है और मैं रघुनाथजीके सेवक सुग्रीका दूत हूँ ॥ ७ ॥ जो मैं रघुनाथजीके अपमानसे न डरूँ तो तेरे देखते ही यह कौतुक करूँ। रामका अपमान यह कि रावणके मारनेका उन्होंने संकल्प किया है, यदि मैं तुझे मारूँ तो संकल्प वृथा होनेसे अपमान होगा ॥ ८ ॥

दोहा-तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ ॥
मन्दोदरी समेत शठ, जनकसुतहि लइ जाउँ ॥ ५२ ॥

हे मूर्ख ! तुझे पृथ्वीपर पटक; तेरी सेना मारकर और यह लंकापुरी चौपटकर मन्दोदरी समेत जानकीजीको ले जाऊँ तूने समझा ही क्या है ? और देख ॥ ५२ ॥

जौ अस करउँ न तदपि बड़ाई ❋ मुयहि वधे कछु नहिं मनुसाई ॥१॥
कौल कामवश कृपण विमूढ़ा ❋ अति दरिद्र अयशी अति बूढ़ा ॥२॥

ऐसा करूँ तो भी मेरी बड़ाई नहीं क्योंकि मरे हुएको मारनेसे कुछ बड़ाई नहीं होती ॥ १ ॥ कौल (वाममार्गी) १, कामी २, कंजूस ३, मूर्ख ४, बहुत दरिद्र ५, जिसकी दुर्नामता जगत्में फैल रही हो ६, अत्यन्त बूढ़ा ७ ॥ २ ॥

सदा रोगवश सन्तत क्रोधी ❋ विष्णुविमुख श्रुतिसन्त विरोधी ॥३॥
तनुपोषक निन्दक अघखानी ❋ जीवत शवसम चौदह प्रानी ॥४॥

सदाका रोगी ८, सदा क्रोध करनेवाला ९, विष्णुसे विमुख १०, वेद और संतोंसे विरोध करनेवाला ११, ॥ ३ ॥ अपने ही शरीरको पालनेवाला १२, निन्दा करनेवाला १३ और पापी १४ ये चौदह प्राणी जीते हुए मुर्देके समान हैं अर्थात् मृतकवत् हैं ॥ ४ ॥

अस विचारि खल वधौं न तोहीं ❋ अबजनि रिस उपजावसि मोहीं ॥५॥
पुनि सकोप कह निशिचर नाथा ❋ अधर दशन गहि मींजहि हाथा॥६॥

अरे दुष्ट ! यही विचार कर मैं तुझे नहीं मारता हूँ अब तुम मुझे रिस मत उत्पन्न करो ॥५॥तब रावण फिर बड़ा कोपकर दांतोंसे होंठ दबा, हाथ मलकर यह कहने लगा ॥ ६ ॥

रे कपि पोच मरण अब चहसी ❋ छोटे वदन बात बड़ि कहसी ॥७॥
कटु जल्पसि जड़कपि बल जाके ❋ बुधि बल तेज प्रताप न ताके ॥८॥

अरे नीच कपि ! मरना चाहता है, जो छोटे मुखसे बड़ी बात कहता है ॥७॥ रे मूर्ख कपि ! जिसके बलसे तू क्रूर वचन बोलता है उसके बुद्धि, बल, तेज प्रताप कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा-अगुण अमान विचारि तेहि, दीन्ह पिता वनवास ॥
सो दुख अरु युवती विरह, पुनि निशि दिन मम त्रास ॥ ५३ ॥

उसमें अवगुण मानहीनता विचार कर ही पिताने घरसे निकाल दिया है एक तो वह दुःखी और स्त्रीका वियोग, फिर रातदिन मेरा डर लगा रहता है ॥ ५३ ॥

दोहा–जिनके बलकर गर्व तोहि, ऐसे मनुज अनेक ॥
खाहिं निशाचर दिवस निशि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥ ५४ ॥

मूर्ख ! जिनके बलका तुझे गर्व है ऐसे बहुत मनुष्य हैं, जिनको राक्षस दिनरात खाते हैं, यह विचार कर टेक त्याग दे; अर्थात् राम असमर्थ हैं कुछ नहीं कर सकते ॥ ५४ ॥

जब तेइँ कीन्ह रामकी निन्दा * क्रोधवन्त तब भयउ कपिन्दा ॥१॥
हरि हर निन्दा सुनहिं जे काना * होइ पाप गोघात-समाना ॥२॥

जब रावणने रामकी निंदा की तब अङ्गदजीको बड़ा क्रोध हुआ ॥१॥ और सोचने लगे कि जो विष्णु और शिवजीकी निंदा कानोंसे सुनते हैं उनको गौ मारनेके समान पाप होता है ॥२॥

कटकटाय कपिकुञ्जर भारी * दोउ भुजदंड पटक महि मारी ॥३॥
डोलत धरणि सभासद खसे * चले भागि भय मारुत ग्रसे ॥४॥

कपिकुञ्जरने महाशब्द करके दोनों भुजदंड पृथ्वीपर दे मारे ॥ ३ ॥ भुजदण्डके आघात से पृथ्वी हिल गयी; जिससे सभासद औंधे गिरे और भयरूपी पवनसे भाग चले। अथवा जो हाथ पटकनेसे पवन निकला उसके भयसे भाग न सके। अथवा भागकर चले परन्तु भयसे जहांके तहां स्थिर रहे ॥ ४ ॥

गिरत दशानन उठा सँभारी * भूतल परे-मुकुट षट चारी ॥५॥
कछु निजकर लेइ शिरहि सँभारे * कछु अंगद प्रभुपास पँवारे ॥६॥

रावण गिरते गिरते सँभालकर उठा, परन्तु उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥ कुछ तो रावणने हाथसे लेकर अपने शिर पर धारण किये; कुछ अङ्गदने प्रभुके पास फेंक दिये (छः रावणने धारण किये चार अङ्गदजीने फेंक दिये) ॥ ६ ॥

आवत मुकुट देखि कपि भागे * दिनही लूक परन विधि लागे ॥७॥
की रावण करि कोप चलाये * कुलिश चारि आवत अतिधाये॥८॥

मुकुट आते देख कपि भागने लगे कि हे विधाता ! क्या दिनमें ही लूक (उल्कापात) पड़ने लगे ! ॥ ७ ॥ या क्रोध करके रावणके फेंके चार वज्र आ रहे हैं ॥ ८ ॥

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू * लूक न अशनि केतु नहिं राहू ॥९॥
ये किरीट दश कन्धर-केरे * आवत वालि तनयके प्रेरे ॥१०॥

रघुनाथजीने हँसकर कहा–हृदयमें मत डरो ये उल्का नहीं, वज्र नहीं, केतु और राहु नहीं किंतु ॥ ९ ॥ ये अङ्गदके फेंके हुए रावणके मुकुट आते हैं ॥ १० ॥

दोहा–कूदि पवनसुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभुपास ॥
कौतुक देखहिं भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकाश ॥ ५५ ॥

महावीरजीने कूदकर हाथोंमें पकड़कर प्रभुके पास लाकर धरे; सब भालु कपि कौतुक देखने लगे कि जिनका सूर्यके समान प्रकाश हो रहा था ॥ ५५ ॥

उहां कहत दशकन्ध रिसाई * धरि मारहु कपि भागि न जाई ॥१॥
इहि विधि वेगि सुभट सब धावहु * खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु ॥२॥

वहाँ रावणने क्रोधकर कहा कि इस वानरको पकड़ कर मार डालो भाग न जाय ॥ १ ॥ इस प्रकार शीघ्रतासे सब योद्धा जाओ, जहां रीछ वानर मिलें उन्हें खा जाओ ॥ २ ॥

महि अकीश करि फेरि दुहाई * जियत धरहु तपसी दोउ भाई ॥३॥
पुनि सकोप बोलेउ युवराजा * गाल बजावत तोहि न लाजा ॥४॥

पृथ्वीको वानर रहित कर, हमारी दुहाई फेर दोनों तपस्वी भाइयोंको जीता ही पकड़ लो ॥ ३ ॥ तब फिर क्रोध कर अङ्गदजी बोले–मूर्ख तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती ? ॥४॥

मरु गर काटि निलज कुलघाती * बल विलोकि विदरति नहिं छाती ॥५॥
रे तिय-चोर कुमारग-गामी * खल मलराशि मन्दमति कामी ॥६॥

अरे निर्लज्ज कुलघाती ! गला काटकर मर जा, हमारा बल देखकर तेरी छाती क्यों नहीं फटती ? ॥ ५ ॥ रे स्त्रीके चोर, कुमार्गगामी, दुष्ट पापिष्ठ, मन्दमति कामी ! ॥ ६ ॥

सन्निपात जल्पसि दुर्वादा * भयसि कालवश शठ मनुजादा ॥७॥
यहि कर फल पावहुगे आगे * वानर भालु चपेटन्ह लागे ॥८॥

अरे ! मूर्ख राक्षस; तुझे सन्निपात हो गया है, इस कारण यह वृथा बकवादके वचन बोलता है, अब तेरा काल निकट प्राप्त है ॥ ७ ॥ और इसका फल आगे मिलेगा, जब रीछ और वानरोंकी चपेटें लगेंगी ॥ ८ ॥

राम मनुज बोलत असिबानी * गिरहि न तव रसना अभिमानी ॥९॥
गिरिहहिं रसना संशय नाहीं * शिरन समेत समर महि माहीं ॥१०॥

रघुनाथजी 'मनुष्य' हैं ऐसी बात कहता है, अभिमानी ! तेरी जीभ नहीं गिरती ? ॥९॥ शिरों समेत तेरी जीभ रणभूमिमें गिरेगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥

सोरठा–सो नर क्यों दशकंध, बालि बधेउ जेहि एक शर ॥
बीसउ लोचन अन्ध, धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥ ६ ॥

रावण ! वे मनुष्य कैसे हो सकते हैं जिन्होंने बालिको एक ही बाणसे मार दिया ? रे कुजाति जड़ ! तेरी बीसों आँखें अन्धी हैं और तेरे जन्मको धिक्कार है ॥ ६ ॥

सोरठा–तव शोणितकी प्यास, तृषित रामसायक-निकर ॥
तजहुँ तोहि तेहि आस, कटु जल्पक निशिचर अधम ॥७॥

अरे कठोर बकवाद करनेवाले अधम राक्षस ! रघुनाथजीके बाणसमूह तेरे रुधिरके प्यासे हैं इसी कारण मैं त्याग करता हूँ ॥ ७ ॥

मैं तव दशन तोरिबे लायक * आयसु पै न दीन्ह रघुनायक ॥१॥
अस रिस होत दशौं मुख तोरौं * लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ॥२॥

मैं तेरे दांत तोड़ने योग्य था परंतु क्या करूँ रघुनाथजीने आज्ञा नहीं दी ॥ १ ॥ क्रोध तो ऐसा होता है कि तेरे दशों मुख तोड़ लंकाको उठाकर समुद्रमें डुबा दूँ ॥ २ ॥

गूलर फल समान तव लंका * बसहिं मध्य जनु जन्तु अशंका ॥३॥
मैं वानर फल खात न वारा * आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥४॥

यह सब लंका गूलर समान है,जिसमें अनेक निश्शंक राक्षस जन्तुकी तरह बसते हैं॥३॥ मैं बानर उस फलके खानेमें देर न लगाता,परंतु क्या करूँ उदार रघुनाथजीने आज्ञा नहीं दी ॥४॥

युक्ति सुनत रावण मुसुकाई * मूढ़ सिखेसि कहँ अधिक झुठाई ॥५॥
बालि कबहुँ अस गाल न मारा * मिलि तपसिन तैं भयसि लबारा ॥६॥

यह युक्ति सुनकर रावण मुसकाकर कहने लगा-मूर्ख ! अधिक झूठ बोलना कहांसे सीख लिया है ? ॥ ५ ॥ बालि तो कभी इस प्रकार गप्प नहीं करता था, तू उन तपस्वियोंसे मिलकर लबार हो गया ? (तब अङ्गदजी बोले) ॥ ६ ॥

सांचहुँ मैं लबार भुज बीहा * जौ न उपारौं तव दश जीहा ॥७॥
राम प्रताप सुमिर कपि कोपा * सभा माँझ प्रण करि पग रोपा ॥८॥

हे रावण ! जो युद्धमें तेरी दशों जिह्वाएँ न उखाड़ूँ तो निश्चय ही लबार हूँ ॥ ७ ॥ रघुनाथजीके प्रताप स्मरण करके अङ्गदजीका क्रोध बढ़ा और सभाके बीच प्रण करके अपना पाँव रोप दिया प्रताप यह है "तृणते कुलिश कुलिश तृण करई" और "श्रीरघुवीर प्रतापते, सिंधु तरे पाषाण" "गरुअ सुमेरु रेणुसम ताही" इत्यादि (जब अङ्गदजीने रघुनाथजीके बलसे पग रोपा है और उनपर पूरा विश्वास है तो अगली चौपाईमें शंका करनेकी आवश्यकता नहीं तथापि समाधान करेंगे) ॥ ८ ॥

जो मम चरण सकसि शठ टारी * फिरहिं राम सीता मैं हारी ॥९॥
सुनहु सुभट सब कह दशशीशा * पदगहि धरणि पछारहु कीशा ॥१०॥

जो कोई मूर्ख मेरे पांवको हटा सके तो रघुनाथजी लौट जायँगे मैंने जानकीको हार दिया ! भाव यह कि और अङ्ग तो क्या ! मेरे पगको भी नहीं टार सकते, जो निकृष्ट अङ्ग है। अंगदजी रघुनाथजीकी ओरसे प्रतिनिधि होकर आये, और प्रतिनिधियोंको सब अधिकार होता है; इससे इस वचनमें कुछ दोष नहीं। अथवा अंगदजी कहते हैं "फिरहिं राम सीता" राम सीता तो फिरेंगे ही मैं हार गया, तुमसे संग्राम नहीं करूँ। अथवा जो मुझसे राम सीता ही फिर जायँगे तो मैं हारूँगा, नहीं तो नहीं अथवा उन्होंने ऋषियोंसे रघुनाथजीका लंका जीतना सुन रखा था इस कारण ऐसी प्रतिज्ञा की, मेरा पैर किसीसे न उठा तो अब लंका हमारी हो गयी इसमें वानरोंका पग जम गया ॥ ९ ॥ तब रावण बोला हे श्रेष्ठ योद्धाओ ! सुनो, चरण पकड़ इस वानरको पृथ्वीपर पछाड़ दो ॥ १० ॥

इन्द्रजीत आदिक बलवाना * हर्षि उठे जहँ तहँ भट नाना॥ ११॥
झपटहिं करि बल विपुल उपाई * पद न टरै बैठहिं शिर नाई ॥१२॥

मेघनाद आदिक अनेक बलवान् योद्धा जहां तहां प्रसन्न होकर उठ खड़े हुए ॥ ११ ॥ अनेक उपाय तथा बल करके पद झपटते हैं परंतु जब नहीं टरता तो शिर नवाकर बैठ जाते हैं॥१२॥

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती * टरै न कीश चरण इहि भाँती ॥१३॥
पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी * मोह विटप नहिं सकहिं उपारी॥१४॥

काकभुशुण्डजी बोले--हे गरुड़ जी ! बारंबार उठकर देवताओंके वैरी (चरणको टालनेके लिये) झपटते हैं परन्तु अङ्गदजीका पंग इस प्रकार नहीं टरता ॥ १३ ॥ जैसे कुत्सित पुरुष मोहरूपी वृक्ष नहीं उखाड़ सकता ॥ १४ ॥

दोहा–भूमि न छांड़त कपि चरण, देखत रिपुमद भाग ॥
कोटि विघ्न जिमि सन्तकहँ, तदपि नीति नहिं त्याग ॥५६॥

जैसे सन्तोंको करोड़ों विघ्न होते हैं परन्तु वे नीति नहीं त्यागते ऐसे ही कपिके चरण पृथ्वीको नहीं छोड़ते यह देखकर राक्षसोंका मद चूर्ण हो गया ॥ ५६ ॥

कपि बल देखि सकल हिय हारे * उठा आप कपिके परचारे ॥१॥
गहत चरण कह बालि कुमारा * मम पद गहे न तोर उबारा ॥२॥

अंगदजीका बल देखकर सब मनमें हार गये, तब कपिके प्रचारसे रावण भी पग उठानेको उठा ॥ १ ॥ ज्योंही चरण पकड़नेको हाथ बढ़ाया कि अङ्गदजी बोले-मेरे चरण पकड़नेसे तेरा उद्धार नहीं होगा। यद्यपि सबके पग हटानेकी प्रतिज्ञा की थी, परंतु रावणको अधिपति तथा रघुनाथजीसे ही संग्राम करने योग्य है ऐसा जानकर पग पकड़ने से निषेध किया जो इससे पैर न हटा तो रघुनाथजी पर हीनता आवेगी क्योंकि लोग कहेंगे कि उससे तो अङ्गदका भी पग न हटा था तो रघुनाथजीने मारा तो क्या बड़ाई हुई? अथवा वालिका मित्र समझ पिता समान जान चरण नहीं छुवाया, अथवा जो यह हारकर जानकी दे देगा तो रघुनाथजी विभीषणको राजा कैसे करेंगे? इस कारण अंगदने निवारण किया और बोला ॥ २ ॥

गहसि न रामचरण शठ जाई * सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥३॥
भयो तेजहत श्री सब गई * मध्य दिवस जिमि शशि सोहई ॥४॥

अरे मूर्ख ! जाकर रघुनाथजीके चरण क्यों नहीं पकड़ता जो तेरा निस्तार हो जाय यह सुनते ही रावण अत्यन्त लज्जित हो फिर गया ॥ ३ ॥ तेज हत हो गया श्री (शोभा) सब जाती रही ऐसा हो गया जैसा दिनमें चन्द्रमा छबिहीन हो जाता है ॥ ४ ॥

सिंहासन बैठा शिर नाई * मानहुँ सम्पति सकल गँवाई ॥५॥
जगदाधार प्राणपति रामा * तासु विमुख किमि लह विश्रामा ॥६॥

सिंहासन पर शिर नवाकर बैठा, मानो सब सम्पति गँवा दी हो ॥५॥ जो जगत्के आधार प्राणपति रघुनाथजीके विमुख हैं उन्हें क्या विश्राम मिल सकता है अर्थात् नहीं ॥ ६ ॥

उमा रामकी भृकुटि विलासा * होय विश्व पुनि पावै नासा ॥७॥
तृणते कुलिश कुलिश तृण करई * तासु दूतपद कहु किमि टरई ॥८॥

हे पार्वतीजी ! रघुनाथजीकी भौंहकी मरोड़से संसार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है ॥७॥ जो तृणको वज्र और वज्रको तृण कर सकता है उनके दूतका पग कहो किस प्रकार टल सकता है ? यहां यही दृष्टांत प्रत्यक्ष है ॥ ८ ॥

---

१. कवित्त—"रोप्यो पांव पैंज कै बिचारि रघुवीर बल, लागे भट सिमिट न नेक टसकतु है। तज्यो धीर धरणि धर धसकत, धराधर धीर भार सहि न सकतु है। महाबली बालिको दबत दबकत भूमि तुल उछल सिंधु मेरु मसकतु है। कमठ कठिन पीठि पेठा परी मन्दरको आयो सोइ काम पै करेजो कसकतु है।"

पुनि कपि कही नीति विधि नाना ❋ मान न तासु काल नियराना ॥९॥
रिपुमदमथि प्रभु सुयश सुनायो ❋ अस कहि चलेउ वालि नृपजायो॥१०॥

फिर अंगदजी अनेक प्रकारकी नीति कही परन्तु उसका तो काल निकट था, इस कारण एक न मानी ॥ ९ ॥ इस प्रकार वालि सुत उसके मदका मथन कर और प्रभुका सुन्दर यश सुनाके ऐसा कहकर चले कि ॥ १० ॥

अबहीं मुख का करौं बड़ाई ❋ हतिहौं तोहि खिलाइ खिलाई॥११॥
यातुधान अंगद बल देखी ❋ भये दुःखी निज हृदय विसेखी॥१२॥

अभी मुखसे बड़ाई क्या करूँ? तुझे खिला खिलाकर मारूँगा ॥ ११ ॥ राक्षस अंगदका बल देखकर अपने मनमें बहुत दुःखी हुये ॥ १२ ॥

प्रथमहि तासु तनय कपि मारा ❋ सो सुनि रावण भयउ दुखारा॥१३॥

प्रथम ही रावणका पुत्र अंगदजीने मारा था यह सुनकर रावण बड़ा दुःखी हुआ ॥ १३ ॥

दोहा-रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, बालितनय बलपुंज ॥
सजल नयन तनु पुलकि अति, गहे रामपदकंज ॥ ५७ ॥

बालिपुत्र इस प्रकार शत्रुके बलका मथन कर, मनमें प्रसन्न हो नेत्रोंमें जल भर शरीरसे अति पुलकायमान हो रघुनाथजीके चरण कमलोंमें पड़ गये ॥ ५७ ॥

दोहा-सांझ जानि दशकण्ठ तब, भवन गयउ विलखाय ॥
मन्दोदरी अनेक विधि, बहुरि कहा समुझाय ॥ ५८ ॥

रावण सन्ध्या समय जानकर व्याकुल हो अपने घर गया; तब फिर मन्दोदरीने अनेक प्रकारसे समझाकर कहा ॥ ५८ ॥

कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही ❋ सोह न समर तुमहिं रघुपतिही ॥१॥
राम-अनुज धनुरेख खँचाई ❋ सोउ नहिं लांघेउ असि मनुसाई॥२॥

हे स्वामी! मनमें समझकर कुमतिको त्याग दो, तुमसे और रघुनाथजीसे समर होना शोभा नहीं देता ॥ १ ॥ देखो, जो लक्ष्मणजीने केवल एक धनुषकी रेखा दी थी वह भी तुमसे नहीं लांघी गयी, बस यही वीरता है ॥ २ ॥

पिय तेहिते जीतब संग्रामा ❋ जाके दूतनके अस कामा ॥३॥
कौतुक सिन्धु लांघि तव लंका ❋ आयउ कपि-केहरी अशंका ॥४॥

हे स्वामी! जिनके दूतोंके ऐसे काम हैं उनसे ही संग्राममें जीतनेकी इच्छा करते हो ॥३॥ देखो कपि केशरी कौतुकसे ही समुद्र लांघ निःशंक हो लंकापुरीमें चला आया ॥ ४ ॥

रखवारे हति विपिन उजारा ❋ देखत तुमहिं अक्ष तेइँ मारा ॥५॥
जारि नगर सब कीन्हेसि छारा ❋ कहां रहा बल गर्व तुम्हारा ॥६॥

और रखवालोंको मारकर वन उजाड़ा, जिसने तुम्हारे देखते ही अक्षको मार डाला॥५॥ उसने लंका जलाकर सब नगर छार कर दिया तब तुम्हारा बल गर्व कहां रहा? ॥ ६ ॥

अब पति मृषा गाल जनि मारहु * मोर कहा कछु हृदय विचारहु ॥७॥
पतिरघुपतिहि मनुज जनि जानहु * अगजगनाथअतुलबल मानहु ॥८॥

हे स्वामी ! अब वृथा गाल मत मारो, मेरा कहा कुछ हृदयमें विचारो ॥ ७ ॥ हे स्वामी रघुनाथजीको मनुष्य मत जानो, किंतु पर्वत वृक्ष देवतादि जगत्के स्वामी अतुल बली मानो॥८॥

बाण-प्रताप जान मारीचा * तासु कहा नहिं मानेउ नीचा ॥९॥
जनक सभा अगणित महिपाला * रहेउ तुमहु बल गर्व विशाला ॥१०॥

उनके बाणका प्रताप मारीच जानता था; तुमने नीचतासे उसका भी कहा नहीं माना ॥ ९ ॥ देखो, जनकजीकी सभामें अगणित राजा थे, वहां तुम भी बलके गर्वसे पूर्ण विद्यमान थे कुछ तुमसे पुरुषार्थ न हो सका वहां रघुनाथजीने ॥ १० ॥

भंजि धनुष जानकी विवाही * सक संग्राम जीति को ताही ॥११॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा * राखा जियत आँखि इक फोरा ॥१२॥

धनुष तोड़ जानकीको व्याहा; उन्हें संग्राममें कौन जीत सकता है ॥ ११ ॥ इंद्रसुत जयंत भी थोड़ा बल जानता है, उसकी ढिठाई पर प्राणदंड न देकर एक आंख फोड़ दी ॥ १२ ॥

सूर्पणखाकी गति तुम देखी * तदपि हृदय नहिं लाज बिसेखी ॥१३॥

और सूर्पणखाकी दुर्गति तुमने देखी ही है तो भी तुम्हारे हृदयमें कुछ लाज नहीं आती ॥१३॥

दोहा-वधि विराध खर दूषणहि, लीला हतेउ कबन्ध ॥
बालि एक शर मारेऊ, तेहि जानहु दशकन्ध ॥ ५९ ॥

विराधको मारकर खरदूषणका वध किया, कबंधको खेलसे ही मार डाला, बालिका प्राण एक ही बाणसे हर लिया, हे रावण ! उसे जानते हो ? ॥ ५९ ॥

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला * उतरे कपिदल सहित सुवेला ॥१॥
कारुणीक दिनकर-कूलकेतू * दूत पठायउ तव हितहेतू ॥२॥

जिसने कौतुकसे ही सागरको बांध लिया, जो वानरोंके दल सहित सुबेल पर्वत पर टिके हैं ॥१॥ उन्हीं सूर्यवंशमें ध्वजारूप दयालु रामजीने तेरे हितकारण अपना दूत भेजा था ॥२॥

सभा माँझ जेइँ तव बल मथा * करि बरूथ महँ मृगपति यथा ॥३॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके * रणबांकुरे वीर अति बाँके ॥४॥

सभाके बीचमें उसने तेरा बल मथा, जैसे हाथियोंमें सिंह हाथियोंके बलको मथता है ॥ ३ ॥ जिनके अंगद और हनुमान्से रणके बांके वीर अनुचर (दास) हैं ॥ ४ ॥

तेहि कहँ पिय पुनिपुनिनर कहहू * वृथा मान ममता मद बहहू ॥५॥
अहह कंत कृत राम विरोधा * काल विवश मन उपज न बोधा ॥६॥

हे स्वामी ! उनको तुम बारंबार मनुष्य कहते हो, वृथा मान, ममता, मदमें बहे जाते हो ॥ ५ ॥ हा स्वामी तुम रामसे वैर करते हो, कालके वशीभूत हो, इससे मनमें ज्ञान नहीं उपजता, किसीका समझाना नहीं मानते, किसीने सत्य कहा है ॥ ६ ॥

काल दंड गहि काहु न मारा * हरै धर्म बल बुद्धि विचारा ॥७॥
निकट काल जेहिं आव गुसाईं * तेहि भ्रम होय तुमारिहि नाईं ॥८॥

काल किसीको लठिया लेकर नहीं मारता, केवल बुद्धि, बल, धर्म, विचारको हर लेता है ॥ ७॥ हे स्वामिन्! जिसके निकट काल आता है उसे तुम्हारी ही तरह भ्रम हो जाता है ॥ ८॥

दोहा–दुइ सुत मरेउ दहेउ पुर, अजहूँ पिय सिय देहु ॥
कृपासिंधु रघुवीर भजि, नाथ विमल यश लेहु ॥ ६० ॥

हे कान्त ! देखो तुम्हारे दो सुत मारे गये, पुर जलाया गया, अब भी सीताजीको दे दो और कृपासागर रघुनाथजीका भजनकर उज्ज्वल यश लो ॥ ६० ॥

नारि वचन सुनि विशिख समाना * सभा गयउ उठि होत विहाना ॥१॥
बैठि जाय सिंहासन फूली * अति अभिमान त्रास सब भूली ॥२॥

नारीके वचन बाणोंके समान सुन प्रातःकाल होते ही उठकर सभामें चला गया ॥ १ ॥ फूलकर सिंहासनके ऊपर जा बैठा और अत्यन्त अभिमानके मारे अंगद और मन्दोदरीके वचनोंका सब त्रास भूल गया ॥ २ ॥

अथ क्षेपक

करि विचार दशकन्धर भारी * विद्युतज्जिह्वहिं लयो हँकारी ॥१॥
कह्यो कि माया कृत शिर धनुहीं * रामचंद्रकर लावो अबहीं ॥२॥

तब रावण विचार कर विद्युतज्जिह्वा राक्षसको बुला कर ॥१॥ कहा कि तुम अभी मायासे श्रीरामचन्द्रका शिर और धनुष बनाकर लाओ ॥ २ ॥

जेहि लखि दुखी होय अति सीता * सो उठि गयो तुरत भयभीता ॥३॥
मायाकर शिर धनुष बनाई * दशकन्धरहिं दिखायो आई ॥४॥

जिसको देख जानकी महादुःखी हो। यह वचन सुन भयभीत हो वह तुरन्त उठकर गया ॥ ३ ॥ और मायाका धनुष और शिर बनाकर रावणको दिखाया ॥ ४ ॥

भेद नहीं कछु परै लखाई * रावण देखि उठ्यो हरषाई ॥५॥
वन अशोक सियके ढिग आयो * शिर धनु रखि अस वचन सुनायो ॥६॥

ऐसा बनाया था कि उसमें किसी प्रकारका भेद विदित नहीं होता था; रावण देख प्रसन्न हो उठा ॥५॥ अशोक वनमें जानकीजीके निकट जाके वह शिर धनुष रखकर ऐसे वचन सुनाने लगा ॥६॥

निशिदिन करहु जासु गुणगाना * यह ताको शिर अरु धनु बाना ॥७॥
सब कपि-सेना मारि गिराई * लषण जीव लै गये पराई ॥८॥

हे सीता ! तुम रात दिन जिनके गुण गाती हो यह उन्हींका शिर और धनुष है ॥ ७ ॥ मैंने सब वानरोंकी सेना मार गिरायी, लक्ष्मण प्राण ले पलायन कर गये ॥ ८ ॥

दोहा–मैं तुम्हरी परतीतिको, लायो शिर धनु राम ॥
लखि सिय धनु शिर विकल ह्वै, रोदन करति निकाम ॥ १ ॥

मैं तुम्हारी प्रतीतिके लिये यह श्रीरामचन्द्रजीका शिर और धनुष लाया हूँ। शिर और धनुष देखते ही जानकी महारुदन करने लगीं ॥ १ ॥

सिय जिहि विधि तब कियो विलापा ❋ को कहि सकै विलाप कलापा ॥१॥
बहुतै गुण-गण प्रभुके गावति ❋ महि लोटति तनु सुधि विसरावति॥२॥

उस समय जानकीजीने जिस प्रकार विलाप किया सो कौन कह सकता है ? ॥ १ ॥ प्रभुके अनेक गुण कहकर पृथ्वीमें लोटतीं और शरीरकी सुधि विसारती हैं ॥ २ ॥

हँसत मोरि मुख अधम सुरापी ❋ तिहि छिन जयध्वनि दशदिशि व्यापी॥३॥
जय रघुवीर कोशलाधीशा ❋ धाय लंक सब घेरि कपीशा ॥४॥

देखकर मद्यपी नीच राक्षस मुख फेर हँसता था, उसी समय सब ओरसे जयका शब्द सुनायी दिया ॥ ३ ॥ 'जय कोशलपति रामकी' कहकर सब वानरोंने दौड़कर लंका घेर ली ॥ ४ ॥

शब्द सुनत रावण उठि तबही ❋ सभा गयो सब त्यागि बतकही ॥५॥
तब सरमा सियके ढिग जाई ❋ सियको समुझायसि गुण गाई ॥६॥

यह शब्द सुनते ही रावण उठकर सब बातें छोड़ सभाको गया ॥ ५ ॥ तब विभीषणकी स्त्री सरमाने सीताके निकट जाकर समझाया कि ॥ ६ ॥

यह सब माया कौतुक जानौ ❋ मन अपने निश्चय करि मानौ ॥७॥
सुनहु शब्द कपि लंका घेरी ❋ तेहिते रावण गयो सबेरी ॥८॥

यह सब मायाका कौतुक है अपने मनमें निश्चय मानो ॥७॥ और शब्द सुनो, वानरोंने लंकापुरी घेर ली है, यदि ऐसा हो तो, श्रीरामचंद्रजीकी जय कौन कहता ? इससे रावण जल्दी चला गया है ॥ ८ ॥

दोहा-सब माया को भेद मैं, जानौं कहौं बखान ॥
कुशल राम कपि अनुज युत, आइउँ देखि विहान ॥ २ ॥

मैं यह सब मायाका भेद जानती हूँ इससे बखान कर कहती हूँ। राम लक्ष्मण और कपि दलको मैं प्रातःकाल कुशल देख आयी हूँ ॥ २ ॥

दोहा-वचन सुनत हर्षित सिया, धारयो मनमें धीर ॥
राम राम मनमहँ जपति, मिटी कठिन उर पीर ॥ ३ ॥

जानकीजी यह वचन सुनकर महा प्रसन्न हुईं, मनमें धैर्य धरा 'राम राम' मनमें जपने लगीं हृदयकी कठिन पीड़ा मिट गयी ॥ ३ ॥

इति क्षेपक

इहां राम अंगदहि बुलावा ❋ आय चरणपंकज शिर नावा ॥३॥
अति आदर समीप बैठारी ❋ बोले विहँसि कृपालु खरारी ॥४॥

यहां रघुनाथजीने अंगदको बुलाया, उन्होंने आकर चरणकमलोंमें शिर नवाया ॥३॥ उन्हें बड़े आदरसे समीप बैठाकर कृपासागर और राक्षसोंके मारनेवाले रघुनाथजी हँसकर बोले ॥४॥

बालितनय अति कौतुक मोही ❋ तात सत्य कहु पूछौं तोही ॥५॥

रावण यातुधान-कुलटीका * भुजबल अतुल जासु जगलीका ॥६॥

हे वालि पुत्र ! मुझे इसकी बड़ी इच्छा है,सत्य कहो मैं पूछता हूँ॥५॥ रावण राक्षसोंके कुलका शिरमौर है जिसकी भुजाओंका अतुल बल और जगत् जिसकी आन मानता है ॥ ६ ॥

तासु मुकुट तुम चारि चलाये * कहहु तात कवनी विधि पाये ॥७॥
सुनु सर्वज्ञ प्रणत-सुखकारी * मुकुट न होइ भूपगुण चारी ॥८॥

हे तात! उसके चार मुकुट तुमने फेंक दिये,सो किस प्रकारसे पाये थे सो तो कहो। तब अङ्गदजी बोले॥७॥हे सर्वज्ञ दीनोंके सुखदायक ! सुनिये,ये मुकुट नहीं हैं किंतु राजाके चारों गुण हैं ॥८॥

साम दाम अरु दण्ड विभेदा * नृप उरवसहिं चार कह वेदा ॥९॥
नीति धर्मके चरण सुहाये * अस जिय जानि नाथ पहँ आये॥१०॥

हे नाथ ! साम दाम दण्ड भेद चारों राजाके हृदयमें बसते हैं, यह वेद कहता है ॥ ९ ॥ सो ये ही चारों नीति और धर्मके मुख्य चिन्ह हैं, यह मनमें विचार कर आपके पास चले आये कि ॥ १० ॥

दोहा-धर्महीन प्रभुपद विमुख, काल विवश दशशीश ॥
आये गुण तजि रावणहिं, सुनहु कोशलाधीश ॥ ६१ ॥

अब वह रावण तो धर्महीन प्रभुके पदसे विमुख होनेके कारण कालके वशीभूत हो गया है हे कोशलदेशके राजा ! सुनिये इस कारण वे गुण रावणको त्याग यहां चले आये ॥ ६१ ॥

दोहा-परम चतुरता श्रवण सुनि, बिहँसे राम उदार ॥
समाचार तब सब कहे, गढ़के बालिकुमार ॥ ६२ ॥

अङ्गदजीकी परम चतुरता कानोंसे सुन उदार रघुनाथजी मुसकाये, तब अङ्गदजीने लंकाके सब समाचार रघुनाथजीको सुनाये ॥ ६२ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने लंकाकांडे विद्यावारिधि-
पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां तृतीयोविश्रामः ॥ ३ ॥

दोहा-कपि रीछन जेहि विधि कियो, युद्ध निश्चरन संग ।
सो अब सुनिये प्रेमसे, यही चतुर्थ प्रसंग ॥ ४ ॥

रिपुके समाचार जब पाये * राम सचिव सब निकट बुलाये ॥१॥
लङ्का बांके चारि दुआरा *केहि विधि लागिय करहु विचारा॥२॥

जब शत्रुके समाचार पाये तब रघुनाथजीने सब मंत्रियोंको निकट बुलाकर कहा ॥ १ ॥ लंकाके बांके चार द्वार हैं, किस प्रकारसे लगें अर्थात् घेरें ? इसका विचार करो ॥ २ ॥

तब कपीश ऋक्षेश विभीषण *सुमिरि हृदय दिनकर कुलभूषण॥३॥
करि विचार तिन मन्त्र दृढ़ावा * चारि अनी कपि कटक बनावा ॥४॥

तब सुग्रीव, जाम्बवन्त, विभीषणने हृदयमें रघुनाथजीका स्मरण कर ॥ ३ ॥ विचारके साथ मन्त्र दृढ़ किया और कपियोंके कटककी चार सेना बनाई ॥ ४ ॥

यथायोग्य सेनापति कीन्हे * यूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥५॥
प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये * सुनि कपि सिंहनाद करि धाये ॥६॥

तब यथायोग्य सेनापति करके सब यूथपतियोंको बुलाकर ॥ ५ ॥ और सबको प्रभुका प्रताप कहकर समझाया सुनते ही वे सब कपि सिंहनाद कर दौड़े ॥ ६ ॥

हर्षित राम चरण शिर नावहिं ❀ गहिगिरि शिखर वीर सब धावहिं ॥७॥
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीशा ❀ जय रघुवीर कोशलाधीशा ॥८॥

सब वानर प्रसन्न हो रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाते और पर्वतोंके शिखर लेकर दौड़ते हैं ॥७॥ रीछ वानर प्रसन्न हो गर्जन तर्जन करते हैं कि कोशलपुरीके राजाकी जय हो ॥ ८ ॥

जानत परम दुर्ग गढ़ लंका ❀ प्रभु प्रताप कपि चले अशंका ॥९॥
घटाटोप करि चहुँदिशि घेरी ❀ मुखहि निशान बजावहिं भेरी॥१०॥

जानते थे कि लंका भयंकर दुर्ग है, तथापि रघुनाथजीके प्रतापसे कपि निडर हो चले ॥९॥ पूर्व द्वारमें अतिकाय राक्षस है वहां नील गये; दक्षिण द्वार पर महोदर है वहांके सेनापति अङ्गद हुए, पश्चिम द्वारमें मेघनाद है वहांके सेनापति महावीरजी हुए, उत्तरके द्वारपर रावण है वहां रघुनाथजी स्वयं गये इस प्रकार घटाटोप कर लंकाको चारों ओरसे घेर लिया मुखसे ही निशान भेरी बजाते हैं ॥ १० ॥

दोहा-जयति राम भ्रातासहित, जय कपीश सुग्रीव ॥
❀ गर्जेउ केहरिनाद कपि, भालु महाबल सींव ॥ ६३ ॥

भाई सहित रघुनाथजीकी जय हो, वानरोंके राजा सुग्रीवकी जय हो यह कहकर सिंहनाद कर बली रीछ वानर गर्जने लगे ॥ ६३ ॥

लंका भयउ कोलाहल भारी ❀ सुनेहु दशानन अति हंकारी ॥१॥
देखहु बनरन-केरि ढिठाई ❀ बिहँसि निशाचर सेन बुलाई ॥२॥

लंकामें बड़ा भारी कोलाहल हुआ, रावणने सुनकर बड़े अहंकारसे कहा ॥ १ ॥ इन वानरोंकी धृष्टता तो देखो, यह कहकर रावणने हँसकर अपनी सेना बुलायी ॥ २ ॥

आये कीश कालके प्रेरे ❀ क्षुधावन्त रजनीचर मेरे ॥३॥
अस कहि अट्टहास शठ कीन्हा ❀ घर बैठे अहार विधि दीन्हा ॥४॥

ये वानर कालके प्रेरे आये हैं मेरे राक्षस भी भूखे हैं ॥ ३ ॥ यों कह वह मूर्ख बहुत हँसा कि विधाताने घर बैठे भोजन दिया है ॥ ४ ॥

सुभट सकल चारिहुँ दिशि जाहू ❀ धरि धरि भालुकीश सब खाहू ॥५॥
उमा रावणहिं अस अभिमाना ❀ जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ॥६॥

और कहने लगा हे श्रेष्ठ योद्धाओ ! तुम सब मिलके चारों ओर जाओ और जहां मिलें वहां सब रीछ, वानरोंको धर धरके खा जाओ ॥ ५ ॥ शिवजी बोले-हे पार्वती ! रावणको ऐसा अभिमान है कि जैसे टिट्टिभ पक्षी अण्डा बचानेके निमित्त पैर ऊपर करके सोता है क्योंकि कदाचित् आकाश गिरे तो चंगुल पर थाम लूँगा ॥ ६ ॥

चले निशाचर आयसु माँगी ❀ गहिकर भिन्दिपाल वर सांगी ॥७॥
तोमर मुद्गर परिघ प्रचण्डा ❀ शूल कृपान परशु गिरिखण्डा ॥८॥

राक्षसगण आज्ञा मांग भिंदिपाल (ढिलवास वा गोफन) और श्रेष्ठ सांगी लेकर चले ॥ ७ ॥ तोमर, मुद्गर, बेड़ा, तीक्ष्ण शूल, तलवार, फरसा, पर्वत खण्ड (लेकर) ॥ ८ ॥

जिमि अरुणोपल निकर निहारी * धाये खग शठ मांस अहारी ॥९॥
चोंच भंग दुख तिनहिं न सूझा * तिमि धाये मनुजाद अबूझा ॥१०॥

जैसे लाल वर्णके पत्थरोंको देखकर मांस जान पक्षी दौड़ते हैं वैसे ही राक्षस भी दौड़े ॥९॥ चोंच टूट जानेका दुःख उनको विदित नहीं होता, उसी प्रकार बेसुध हो राक्षस भी दौड़े ॥१०॥

दोहा—नानायुध शर चाप धर, यातुधान बलवीर ॥
कोट कँगूरन चढ़ि गये, कोटि कोटि रणधीर ॥ ६४ ॥

धनुष बाण आदि अनेक प्रकारके आयुध धारण कर बड़े बली रणधीर करोड़ों राक्षस कोटके कंगूरोंपर चढ़ गये जिससे कि वानर ऊपर चढ़ न सकें ॥ ६४ ॥

कोट कँगूरन सोहहिं कैसे * मेरुके शृँगन जनु घन वैसे ॥१॥
बाजहिं ढोल निशान जुझाऊ * सुनि सुनि होइ भटनमन चाऊ ॥२॥

वे कोटके कंगूरों पर ऐसे शोभित होते हैं जैसे मेरुके शृंगपर बादल हों ॥ १ ॥ ढोल निशान जुझाऊ बजते हैं, जिन्हें सुनकर सुभटोंके मनमें चाव होता है ॥ २ ॥

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा * सुनि कादर उर जाहिं दरारा ॥३॥
देखि न जाय कपिनके ठट्टा * अति विशाल तनु भालु सुभट्टा ॥४॥

भेरी नफीरी अपार बजती हैं; जिन्हें सुनके कायरोंके हृदयमें दरार होते हैं ॥ ३ ॥ कपियोंके ठट्ट देखे नहीं जाते, अति विशाल शरीरवाले बड़े योद्धा रीछ हैं ॥ ४ ॥

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा * पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा ॥५॥
कटकटाय कोटिन भट गर्जहिं * दशनन्ह ओठ काटि अति तर्जहिं ॥६॥

रीछ, वानर दौड़ते हैं, औघट घाट नहीं गिनते और पर्वतोंको फोरकर मार्ग बना लेते हैं ॥५॥ करोड़ों योद्धा कटकटाकर गर्जते हैं, कोई दांतोंसे ओठ काटकर बहुत तर्जते हैं ॥ ६ ॥

उत रावण इत राम दुहाई * जयति जयति करि परी लराई ॥७॥
निशिचर शिखर समूह ढहावहिं * कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥८॥

उधर रावण, इधर रामकी दुहाई बोलते हैं, जयकार कर दोनों ओरसे लड़ाई प्रारम्भ हुई ॥७॥ राक्षस लंकापरसे पर्वत शिखर नीचेको ढहाते हैं फिर वानर उन्हें कूदकर बीचमें ही पकड़कर राक्षसोंके ऊपर चलाते हैं ॥ ८ ॥

छन्द—धरि कुधर खण्ड प्रचण्ड मर्कट भालु गढ़पर डारहीं ।
झपटहिं चरण गहि पटकि महि महँ बार बार प्रचारहीं ॥
अति तरुण तरल प्रताप तर्जहिं तमकि गढ़पर चढ़ि गये ।
कपि भालु चढ़ि मन्दिरन जहँ तहँ रामयश गावत भये ॥ ९ ॥

रीछ, वानर पर्वतोंके तीक्ष्ण टुकड़े लेकर लंकापर डालते हैं; चरण पकड़कर झपटते हैं; पृथ्वीमें

पटककर बार बार प्रचारते हैं ! बड़े युवा, चपल प्रतापशाली वानर गर्ज कर कूदकर गढ़पर चढ़ गये और मंदिरोंपर जहाँ तहाँ रघुनाथजीका यश गाने लगे ॥ ९ ॥

दोहा–एक एक गहि रजनिचर, पुनि कपि चले पराय ॥
ऊपर आपुन हेठ भट, गिरहिं धरणिपर आय ॥ ६५ ॥

फिर एक एक राक्षसको पकड़ कर वानर कोटके शिखरोंसे कूद ऊपर आप नीचे राक्षस ऐसे पृथ्वीपर आकर गिरते हैं ॥ ६५ ॥

राम-प्रताप प्रबल कपियूथा ❋ मर्दहिं निशिचर निकर वरूथा ॥१॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ वानर ❋ जय रघुवीर प्रताप दिवाकर ॥२॥

रघुनाथजीके प्रतापसे वानरसमूह प्रबल पड़ गये और राक्षसोंका नाश करने लगे ॥ १ ॥ फिर जहाँ तहाँ वानर किलेपर चढ़ गये और बोले–प्रतापके सूर्य रघुनाथजीकी जय हो ?॥२॥

चले तमीचर-निकर पराई ❋ प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥३॥
हाहाकार भयउ पुर भारी ❋ रोवहिं आरत बालक नारी ॥४॥

तब राक्षस समूह भाग चले, जैसे तीक्ष्ण हवासे बादलोंके समूह उड़ जाते हैं ॥ ३ ॥ लंकामें बड़ा हाहाकार मच गया । बालक स्त्री व्याकुल हो रोने लगे ॥ ४ ॥

सब मिलि देहिं रावणहिं गारी ❋ राज्य करत यहि मृत्यु हँकारी ॥५॥
निजदल विचल सुना तेहि काना ❋ फेरि सुभट लंकेश रिसाना ॥६॥

सब कोई मिलकर रावणको गाली देते हैं कि उसने राज्य करते अपनी मृत्यु बुला ली ॥ ५ ॥ जब रावणने कानोंसे सुना कि मेरा दल व्याकुल है और कुछ लौट भी आये तब बड़ी लज्जा आयी, फिर रिसाकर यह आज्ञा दी ॥ ६ ॥

जो रणविमुख फिरा मैं जाना ❋ तेहि मारिहौं कराल कृपाना ॥७॥
सर्वस खाय भोग करि नाना ❋ समर भूमि भये वल्लभ प्राना ॥८॥

जिसकी मुझे खबर हो कि यह युद्धसे लौट आया उसे मैं अपनी कठिन तलवारसे मार डालूँगा ॥ ७ ॥ सर्वस खाकर अनेक भोग भोगा, अब युद्धमें प्राण प्यारा हो गया ? ॥ ८ ॥

उग्र वचन सुनि सकल डेराने ❋ फिरे क्रोधकरि सुभट लजाने ॥९॥
सनमुख मरण वीरकी शोभा ❋ तब तिन तजा प्राणकर लोभा॥१०॥

यह रावणके भयंकर वचन सुन सब डरे और लजा गये, फिर क्रोधकर वानरोंकी सेनापर फिरे ॥९॥सम्मुख लड़कर मरना वीरकी शोभा है यह विचार उन्होंने प्राणका लोभ छोड़ दिया॥१०॥

दोहा–बहु आयुध धरि सुभट सब, भिरहिं प्रचारि प्रचारि ॥
कीन्हे व्याकुल भालु कपि, परिघ प्रचण्डन मारि ॥ ६६ ॥

सब योद्धा अनेक आयुध हाथमें ले प्रचार कर भिड़ने लगे और तीक्ष्ण परिघोंकी मारसे रीछ, वानरोंको व्याकुल कर दिया ॥ ६६ ॥

भय आतुर कपि भागन लागे * यद्यपि उमा जीतिहैं आगे ॥१॥
कोउ कह कहँ अंगद हनुमन्ता * कहँ नलनील द्विविद जमवंता ॥२॥

हे पार्वती ! यद्यपि अगाड़ी इन्हींकी जीत होगी तथापि वानर व्याकुल होकर भागने लगे॥१॥ कोई बोले-अंगद, हनुमान कहां हैं और नल, नील, द्विविद, जाम्बवन्त कहां हैं ? ॥ २ ॥

निजदल विचल सुना हनुमाना * पश्चिम द्वार रहा बलवाना ॥३॥
मेघनाद तहँ करै लराई * टूट न द्वार परम कठिनाई ॥४॥

यह दल विचलित पूर्वके द्वारे हुआ, बलवान् महावीरजीने पश्चिमके द्वारसे सुना ॥ ३ ॥ वहाँ मेघनाद युद्ध करता था, द्वार नहीं टूटता था बड़ी कठिनाई थी ॥ ४ ॥

पवन तनय मन भा अति क्रोधा * गर्जेउ प्रलयकाल सम योधा ॥५॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा * गहि गिरि मेघनाद पर धावा ॥६॥

तब योद्धा महावीरजीके मनमें बड़ा क्रोध हुआ, प्रलयके समान गर्जकर ॥ ५ ॥ कूदकर लंकाके गढ़पर चढ़ गये और एक पर्वत ले मेघनाद पर धाये ॥ ६ ॥

भंजेउ रथ सारथी निपाता * तासु हृदय महँ मारेसि लाता ॥७॥
दूसर सूत विकल तेहिं जाना * स्यन्दन घालि तुरत घर आना ॥८॥

रथ तोड़ सारथीको मार डाला और उसके हृदयमें लात मारी ॥ ७ ॥ दूसरा सारथी उसे व्याकुल देख तुरंत रथपर चढ़ाकर घर ले आया ॥ ८ ॥

दोहा-अंगद सुनेउ पवन सुत, गढ़ पर गयउ अकेल ॥
समर बांकुरा बालिसुत, तर्कि चढ़ेउ कपि खेल ॥ ६७ ॥

अङ्गदजीने सुना कि महावीरजी गढ़पर अकेले गये हैं तब ये समरके बांके बालिपुत्र खेलसे ही कूदकर चढ़ गये ॥ ६७ ॥

युद्ध विरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर * रामप्रताप सुमिर मन अन्दर ॥१॥
रावण भवन चढ़े दोउ धाई * करहिं कोशलाधीश दुहाई ॥२॥

दोनों वानर युद्धमें विरुद्ध और क्रुद्ध अर्थात् युद्धमें विशेष उलझ गये, रघुनाथजीका प्रताप हृदयमें स्मरण कर ॥ १ ॥ दोनों रावणके घरपर दौड़कर चढ़ गये और रघुनाथजीकी दुहाई करने लगे ॥ २ ॥

कलशसहित सब भवन ढहावहिं * देखि निशाचर अति भय पावहिं ॥३॥
नारिवृन्द कर पीटहिं छाती * अब द्वइ कपि आये उतपाती ॥४॥

कलशों सहित सब घरोंको ढहाते हैं, राक्षस देखकर बड़ा भय पाते हैं ॥ ३ ॥ अनेक स्त्रियाँ हाथोंसे छाती पीटने लगीं कि अब दो वानर उत्पाती आगये हैं तब तो एकने ही नगर फूँक दिया था अब क्या होगा ? ॥ ४ ॥

कपि लीला करि तिनिहिं डरावहिं * रामचन्द्र कर सुयश सुनावहिं ॥५॥
पुनि कर गहि कंचनके खम्भा * करन लगे उतपात अरम्भा ॥६॥

वानर अपने खेलसे उन्हें डराते हैं और रघुनाथजीका सुन्दर यश गाते हैं ॥ ५ ॥ फिर सोनेके खम्भे हाथोंसे उखाड़कर उत्पात आरम्भ करने लगे ॥ ६ ॥

कूदि परे अरि-कटक-मझारी * लागे मर्दन भुजबल भारी ॥७॥
काहुहि लात चपेटन केहू * भजेहु न रामहि सो फल लेहू ॥८॥

फिर शत्रुके कटकमें कूद पड़े और अपनी भुजाओंके बड़े बलसे शत्रुओंका दल मर्दन करने लगे ॥ ७ ॥ किसीके लात, किसीके चपेट मारने लगे कि, तुमने जो रघुनाथजीको नहीं भजा उसका फल लो ॥ ८ ॥

दोहा-एक एकसन मर्दि करि, तोरि चलावहिं मुंड ॥
रावण आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधिकुण्ड ॥ ६८ ॥

एक एकसे मर्दन करके उसका शिर तोड़कर फेंकते हैं, वे सब रावणके आगे जाकर गिरते और दहीके कुण्डके समान फूट जाते हैं, (चरबी बिखर जाती है) ॥ ६८ ॥

महा महा मुखिया जे पावहिं * ते पद गहि प्रभुपास चलावहिं ॥१॥
कहहि विभीषण तिनके नामा * देहिं राम तिनहूँ निजधामा ॥२॥

जिनको बड़े बड़े सरदार जानते हैं उनके पांव पकड़कर प्रभुके पास फेंक देते हैं ॥ १ ॥ विभीषण रघुनाथजीसे उनके नाम बताते हैं; रामजी उन्हें अपने धाम पठा देते हैं ॥ २ ॥

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी * पावहिं गति जो याचत योगी ॥३॥
उमा राम मृदुचित करुणाकर * वैरभाव मोहिं सुमिरत निशिचर ॥४॥

जो दुष्ट राक्षस ब्राह्मणोंके मांसको खानेवाले हैं वे योगियोंके योग्य गति श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे पाते हैं ॥ ३ ॥ शिवजी बोले-हे पार्वती ! कोमल चित्त दयाके निधान रघुनाथजी कहने लगे कि राक्षस मुझे वैर भावसे स्मरण तो करते ही हैं ॥ ४ ॥

देहिं परम गति अस जिय जानी * को कृपालु अस सुनहु भवानी ॥५॥
जेअस प्रभु नभजहिं भ्रम त्यागी * नर मतिमन्द ते परम अभागी ॥६॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! यही मनमें विचार कर राक्षसोंको परम गति देते हैं ऐसे दयासागर कौन हैं ? ॥ ५ ॥ जो मनुष्य भ्रम त्याग ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे बड़े मतिमन्द तथा अभागी हैं ॥ ६ ॥

अंगद अरु हनुमन्त प्रवेशा * कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेशा ॥७॥
लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे * मथत सिन्धु दुइ मन्दर जैसे ॥८॥

अङ्गद और हनुमान्‌जी लंकापुरीमें प्रवेश कर रघुनाथजीका नाम उच्चारण किया अथवा श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि अङ्गद और हनुमान्‌ने लंकापुरीमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ ये दोनों लंकामें ऐसे शोभित हुए मानो समुद्रको दो मन्दराचल मथते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-भुजबल रिपुदल दलमलि, देखि दिवसकर अन्त ॥
कूदे युगल प्रयास बिनु, आये जहँ भगवन्त ॥ ६९ ॥

भुजाओंके बलसे शत्रुका दल नाश कर दिनका अन्त (सायंकाल) देख दोनों विना प्रयासके कूदे और रघुनाथजीके पास आये ॥ ६९ ॥

प्रभुपदकमल शीश तिन नाये * देखि सुभट रघुपति मन भाये ॥१॥
राम कृपा करि युगल निहारे * भये विगत श्रम परम सुखारे ॥२॥
आकर उन्होंने प्रभुके चरणकमलोंमें अपना शिर नवाया, उन श्रेष्ठ योद्धाओंको देख श्रीरघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ रघुनाथजीने कृपादृष्टि कर दोनोंको देखा कि दोनों श्रमरहित हो महासुखी हुए ॥ २ ॥

गये जानि अंगद हनुमाना * फिरे भालु मर्कट भटनाना ॥३॥
यातुधान प्रदोष बल पाई * धाये करि दशशीश-दुहाई ॥४॥
अंगद और हनुमान्‌जी गये जानकर अनेक रीछ, वानर योद्धा भी लौट आये ॥ ३ ॥ इधर राक्षस रात्रिका बल पाके 'रावणकी जय' कहकर लड़नेको दौड़े ॥ ४ ॥

निशिचर अनी देखि कपि फिरे * कटकटाय जहँ तहँ पुनि भिरे ॥५॥
दोउ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी * लरहिं सुभट नहिं मानहिं हारी ॥६॥
राक्षसोंकी सेना देख फिर वानर फिरे और जहां तहां कटकटाकर फिर लड़ने लगे ॥ ५ ॥ दोनों दल बड़े बली प्रचार कर लड़ते हैं, ये दोनों दलके योद्धा लड़नेमें हार नहीं मानते ॥६॥

वीर तमीचर सब अति कारे * नाना वर्ण बलीमुख भारे ॥७॥
सकल युगल दल समबल योधा * विविधप्रकार लरहिं अति क्रोधा ॥८॥
राक्षस वीर तो सब बहुत काले थे और वानर वीर अनेक रंगके थे ॥ ७ ॥ दोनों दल बली दोनोंमें समान बलके योद्धा थे, जो अनेक प्रकारसे अत्यन्त क्रोधकर लड़ते थे ॥ ८ ॥

प्रावृट शरद पयोद घनेरे * लरत मनहु मारुतके प्रेरे ॥९॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया * विचलत सेन करी तिन माया ॥१०॥
मानो वर्षा और शरदके घने बादल वायुकी प्रेरणासे परस्पर लड़ते हैं ॥ ९ ॥ सेनापति अकंपन और अतिकाय राक्षसने अपनी सेना विचलते देख माया फैलायी ॥ १० ॥

भयउ निमिष महँ अति अँधियारा * वृष्टि होय रुधिरोपल छारा ॥११॥
एक पलमें बड़ा अँधेरा हो गया। रुधिर पत्थर और राखकी वर्षा होने लगी ॥ ११ ॥

दोहा-देखि निबिड़ तम दशहुँ दिशि, कपिदल भयउ खँभार ॥
एकहि एक न देखत, जहँ तहँ करहिं पुकार ॥ ७० ॥

दशों दिशाओंमें अत्यन्त अँधेरा देख वानरोंके दलमें खलबली पड़ गयी एक एकको नहीं देखते इधर उधर पुकारने लगे ॥ ७० ॥

सकल मर्म रघुनायक जाना * लिये बोलि अंगद हनुमाना ॥१॥
समाचार सब कहि समुझाये * सुनत कोप कपि कुञ्जर धाये ॥२॥
सब मर्म रघुनाथजीने जाना तब अंगद और हनुमान्‌जीको बुलाया ॥ १ ॥ सब समाचार कहकर समझाया कि राक्षसोंने बड़ा उपद्रव किया है; सुनते ही कपिकुञ्जर क्रोधकर दौड़े ॥२॥

पुनि कृपालु हँसि चाप चढ़ावा * पावक सायक सपदि चलावा ॥३॥
भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं * ज्ञान उदय संशय जिमि जाहीं ॥४॥

फिर रघुनाथजीने हँसकर धनुष चढ़ाया और शीघ्र अग्निबाण चलाया ॥ ३ ॥ जिससे शीघ्र प्रकाश हो गया कहीं अँधेरा नहीं रहा जैसे ज्ञानके उदयसे संदेह नहीं रहता ॥ ४ ॥

भालु बलीमुख पाय प्रकाशा ❋ धाये हर्षि विगत श्रम त्रासा ॥५॥
हनूमान अंगद रण गाजे ❋ हांक सुनत रजनीचर भाजे ॥६॥

रीछ और वानर प्रकाश पाकर श्रम त्रास दूर हो जानेसे हर्षित हो राक्षसों पर दौड़े ॥५॥ ज्योंही अंगद हनुमान्‌जी लड़ाईमें गर्जे कि हांक सुनते ही राक्षस भाग गये ॥ ६ ॥

भागत भट पटकहिं गहि धरणी ❋ करहिं भालु कपि अद्भुत करणी॥७॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं ❋ मगर उरग झष धरि धरि खाहीं॥८॥

भालु वानर अद्भुत करनी करते हैं। ज्यों योद्धा भागते हैं कि उन्हें पकड़ पृथ्वीपर पटक देते हैं ॥ ७ ॥ और फिर चरण पकड़ सागरमें डाल देते हैं उन्हें नाक, मछली, सर्प पकड़ पकड़ कर खा जाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—कछु घायल कछु रण परे, कछु गढ़ चले पराय ॥
गर्जहिं मर्कट भालु भट, रिपुदल बल विचलाय ॥ ७१ ॥

युद्धमें कुछ घायल हुए, कुछ मर गये और कुछ लंकामें भाग गये, इस प्रकार रीछ वानर शत्रुओंके दल बलको विचलाकर गर्जते हैं ॥ ७१ ॥

निशा जानि कपि चारिउ अनी ❋ आये सब जहँ कोशलधनी ॥१॥
राम कृपा करि चितवा जबहीं ❋ भये विगतश्रम वानर तबहीं ॥२॥

रात्रि जानकर वानरोंने विचारा कि सब राक्षस तो भाग गये, चलो अब चलें; तब चारों सेनाएँ रघुनाथजीके पास आयीं ॥ १ ॥ ज्योंही रघुनाथजीने कृपा करके देखा कि सब वानर श्रमरहित हो गये ॥ २ ॥

उहाँ दशानन सचिव हँकारे ❋ सबसन कहेसि सुभट जे मारे ॥३॥
आधा कटक कपिन संहारा ❋ कहहु वेगि का करिय विचारा ॥४॥

वहां रावणने मंत्रियोंको बुलाकर कहा कि, आज बहुत राक्षस मारे गये ॥ ३ ॥ वानरोंने आधी सेना मार डाली, शीघ्र कहो अब क्या करें ? ॥ ४ ॥

माल्यवंत इक जरठ निशाचर ❋ रावण मातु पिता मन्त्रीवर ॥५॥
बोला वचन नीति अति पावन ❋ तात सुनहु कछु मोर सिखावन॥६॥

एक माल्यवंत बूढ़ा राक्षस था, जो रावणकी माताका बाप था और (रावणका) श्रेष्ठमंत्री भी था ॥ ५ ॥ सो बड़ी पवित्र नीतिके वचन बोला—तात ! कुछ मेरा सिखावन सुनो ॥ ६ ॥

जबते तुम सीता हरि आनी ❋ अशकुन होय न जाहिं बखानी॥७॥
वेद पुराण जासु गुण गावा ❋ तासु विमुख सुख काहु न पावा ॥८॥

---

१. कवित्त—जाकी बांकी वीरता सुनत सहमत शूर, जाकी आंच अबहु लसत लंक लाहसी। सोई हनुमान बलवान बांको बान इत, जोहै यातुधान सेना चलै लेत थाहसी ॥ कंपत अकंपन सुखाय अतिकायहू, कुम्भहूं करण आय रह्यो पाय आहसी। देखि गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो, वीर रघुवीरको समीरसूनु साहसी ॥

जबसे तुम जानकीको हर लाये हो तबसे (बड़े बड़े) अशकुन होते हैं, जो वर्णे नहीं जाते ॥ ७ ॥ जिनका यश वेद पुराण गाते हैं उनसे विमुख होकर किसीने सुख नहीं पाया (यह सत्य जानिये) ॥ ८ ॥

दोहा-हिरण्याक्ष भ्रातासहित, मधु कैटभ बलवान ॥
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिन्धु भगवान ॥ ७२ ॥

जिन्होंने भाई सहित हिरण्याक्षको मारा और मधुकैटभको मारा वे ही कृपासागर भगवान् अवतार ले आये हैं ॥ ७२ ॥

दोहा-कालरूप खल बन दहन, गुणागार घनबोध ॥
जेहि सेवहि शिव कमलभव, तेहिसन कवन विरोध ॥ ७३ ॥

जो दुष्टोंके वन दहन करने (जलाने) को काल रूप हैं, गुणोंके सागर विज्ञानघन हैं, जिनको शिव ब्रह्मा सेवन करते हैं उनसे वैर कैसा ? ॥ ७३ ॥

परिहरि वैर देहु वैदेही * भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥१॥
ताके वचन बाण सम लागे * करिया मुख करि जाहु अभागे ॥२॥

तुम वैर त्यागकर जानकीजीको दे दो,परमप्रियतम रघुनाथजीका भजन करो ॥१॥ रावणको उसके वचन बाणोंके समान लगे और बोला-अभागे काला मुँह करके चला जा ॥ २ ॥

बूढ़ भयसि नतु मरतेउँ तोहीं *अब जनि वदन दिखायसि मोहीं॥३॥
तेइँ अपने मन अस अनुमाना * वधै चहत यहि कृपानिधाना ॥४॥

अरे ! तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मैं मार डालता, अब मुझे मुख मत दिखलाना ॥ ३ ॥ तब उसने अपने मनमें विचार किया कि इसे भगवान् मारना चाहते हैं, क्योंकि इसकी बुद्धि विपरीत हो गयी है ॥ ४ ॥

सो उठि गयउ कहत दुर्वादा * तब सकोप बोलेउ घननादा ॥५॥
कौतुक प्रात देखियहु मोरा * करिहौं बहुत कहौं का थोरा ॥६॥

वह तो दुर्वचन कहकर (कि तेरा सत्यानाश हो जाय)चला गया,तब क्रोधकर मेघनाद बोला ॥ ५ ॥ पिताजी कल प्रातःकाल मेरा कौतुक देखना, मैं बहुत करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ ॥६॥

सुनि सुत वचन भरोसा आवा * प्रीति समेत निकट बैठावा ॥७॥
करत विचार भयउ भिनुसारा * लगे भालु कपि चारिउ द्वारा ॥८॥

पुत्रके वचन सुनकर रावणको भरोसा आगया और प्रीति सहित निकट बैठाया॥७॥ विचार करतेरसवेरा हो गया और चारों द्वारोंपर भालुकपि आकर युद्ध करनेको उपस्थित हो गये॥८॥

कोपि कपिन दुर्गम गढ़ घेरा * नगर कुलाहल भयउ घनेरा ॥९॥
विविधायुध धरि निशिचर धाये * गढ़ते पर्वत शिखर ढहाये ॥१०॥

बड़ा क्रोधकर वानरोंने दुर्गम गढ़ घेर लिया; तब नगरमें बड़ा कोलाहल हुआ ॥ ९ ॥ राक्षस अनेक प्रकारसे आयुध (अस्त्र), शस्त्र, ग्रहण कर दौड़े और किलेमेंसे पर्वतोंके शिखर ढहाने लगे ॥ १० ॥

छन्द–ढाहे महीधर शिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत प्रलयके जिमि बादले॥
मर्कट विकट भट जुटत कटत न लटत तनु जर्जर भये।
गहि शैल ते गढ़पर चलावहिं जहँ सो तहँ निशिचर हये॥५॥

पर्वतोंके शिखर ढहाये अनेक प्रकारके करोड़ों गोले चलने लगे और ऐसे गर्जना करते थे मानो प्रलयकालके बादल हैं बड़े-बड़े योद्धा वानर जुटते हैं अर्थात् युद्ध करते हैं, कटते नहीं; न लटते (हार मानते) हैं शरीर जर्जरीभूत हो जाता है तो वानर पर्वत पर से शिला उठाकर फेंक देते हैं, जहां तहां राक्षस मरते हैं। अथवा जहां जो राक्षस थे वे वहीं मारे गये॥ ५॥

दोहा–मेघनाद सुनि श्रवण अस, गढ़ पुनि छेंका आय॥
उतरि दुर्गते वीरवर, सन्मुख चला बजाय॥ ७४॥

जब बड़े वीर मेघनादने कानोंसे यह सुना कि वानरोंने फिर गढ़ घेर लिया तब दुर्गसे उतर कर युद्धके बाजे बजाता सम्मुख चला और कहने लगा॥ ७४॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबाद-निवासि पं० सुखानन्दमिश्रात्मज–पं० ज्वालाप्रसादजी–
मिश्रकृत भाषाटीकायां लंकाकाण्डे चतुर्थो विश्रामः॥ ४॥

दोहा–लषण संग संग्राम करि, मेघनाद बलधाम।
मारी शक्ति लषन उर, सो पंचम विश्राम॥ ५॥

कहँ कोशलाधीश दोउ भ्राता * धन्वी सकललोक विख्याता॥१॥
कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा * कहँ हनुमत अंगद बलसींवा॥२॥

कोशलपति राम और लक्ष्मण दोनों भाई कहां हैं, जो बड़े धनुर्धारी संपूर्ण संसारमें विख्यात हैं ?॥ १॥ नल, नील, द्विविद, सुग्रीव, हनुमान्, अंगद ये सब बली कहां हैं ?॥ २॥

कहां विभीषण भ्राता द्रोही * आजु शठहि हठि मारहुँ ओही॥३॥
अस कहि कठिन बाण सन्धाने * अतिशय कोपि श्रवण लगि ताने॥४॥

भाईसे बैर करनेवाला विभीषण कहां है ? मैं आज हठसे उस मूर्खको मार डालूँगा॥ ३॥ यों कहकर, कठिन बाण सन्धान कर क्रोधसे कानोंतक ताने॥ ४॥

शर समूह सो छाँड़न लागा * जनु सपक्ष धाये बहु नागा॥५॥
जहँ तहँ परत देखिये वानर * सन्मुख होइ न सकत तेहि अवसर॥६॥

वह बाणोंके समूह छोड़ने लगा; वे पंखयुक्त सर्पोंके समान धावमान होने लगे॥५॥ जिनके लगनेसे वानर जहां तहां गिरते दिखाई देते हैं उस समय कोई सम्मुख नहीं हो सकता था॥६॥

भागे भय व्याकुल कपि ऋच्छा * बिसरी सबहिं युद्धकी इच्छा॥७॥
सो कपि भालु न रणमहँ देखा * कीन्हेसि जेहि न प्राण अवशेखा॥८॥

भालु वानर लड़ाईमें भयसे व्याकुल हो भागने लगे और युद्धकी इच्छा सबकी जाती रही॥ ७॥ रीछ, वानर लड़ाईमें ऐसा कोई भी नहीं था कि, जिसका प्राण मात्र अवशेष न रह गया हो अर्थात् केवल प्राणमात्र शरीरमें रह गया और जर्जरित हो गया था॥ ८॥

दोहा–मारेसि दश दश विशिख उर, परे भूमि कपि वीर ॥
सिंहनाद करि गर्ज तब, मेघनाद रणधीर ॥ ७५ ॥

दश दश बाण सब कपि वीरोंके हृदयमें मारे, वे पृथ्वीमें गिर पड़े तब रणधीर मेघनाद सिंहनाद करके गर्जा ॥ ७५ ॥

देखि पवन-सुत कटक बिहाला * क्रोधवन्त धावा जनु काला ॥१॥
महा महीधर तमकि उपारा * अति रिस मेघनाद पर डारा ॥२॥

जब महावीरजीने कटकको बेहाल देखा तो क्रोध करके कालके समान दौड़े ॥ १ ॥ तमक कर एक महापर्वत उखाड़ा और क्रोधकर मेघनाद पर डाला ॥ २ ॥

आवत देखि गयउ नभ सोई * रथ सारथी तुरँग सब खोई ॥३॥
बार बार प्रचार हनुमाना * निकट न आव मर्म सो जाना ॥४॥

महाशिला को आते देखकर मेघनाद आकाशको कूद गया; परंतु रथ सारथी तुरन्त उसके चूर्ण हो गये ॥ ३ ॥ महावीरजीने बार बार ललकार कर-निकट आ तो तुझे बताऊँ परन्तु वह महावीरजीके मर्मको जानता है कि उनमें बड़ा पुरुषार्थ है इस कारण निकट नहीं आया॥४॥

राम समीप गयउ घननादा * नाना भाँति कहेसि दुर्वादा ॥५॥
अस्त्र शस्त्र बहु आयुध डारे * कौतुक ही प्रभु काटि निवारे ॥६॥

मेघनाद रामचन्द्रजीके समीप गया और अनेक प्रकारके दुर्वचन कहे ॥५॥ अनेक अस्त्र, शस्त्ररूपी आयुध रघुनाथजी पर छोड़े परन्तु उन्हें प्रभुने कौतुक से ही काट डाला ॥ ६ ॥

देखि प्रभाव मूढ़ खिसियाना * करै लाग मायाविधि नाना ॥७॥
जिमि कोउ करै गरुडसन खेला * डरपावै गहि स्वल्प सपेला ॥८॥

रघुनाथजीका प्रभाव देखकर वह मूर्ख बहुत खिसिआया और अनेक प्रकार की माया करने लगा ॥ ७ ॥ जैसे कोई गरुड़जीसे खेल करे कि उसे एक छोटे सांपके बच्चेसे डरावे उसी प्रकार रघुनाथजीको अपनी माया दिखाने लगा कि डर जायँ ॥ ८ ॥

दोहा–जासु प्रबल माया विवश, शिव विरंचि बड़ छोट ॥
ताहि दिखावै रजनिचर, निज माया मति खोट ॥ ७६ ॥

जिनकी प्रबल मायाके वशमें शिव ब्रह्मादिक बड़े छोटे सब हैं उनको राक्षस अपनी माया की प्रबलता दिखाता है, इसकी मतिकी खोटाई तो देखो ॥ ७६ ॥

नभ चढ़ि वर्ष विपुल अँगारा * महिते प्रगट होहिं जल धारा ॥१॥
नाना भाँति पिशाच पिशाची * मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ॥२॥

आकाशमें चढ़कर अनेक अंगारे बरसाने लगा, तब पृथ्वीसे जलकी धारा प्रकट होने लगी आशय यह है कि आकाशमें वानर जायँ तो जलें और पृथ्वीमें रहें तो डूबें अथवा जो वह आग बरसाता है तो रघुनाथजी पृथ्वीसे जल प्रकट कर देते हैं जिससे अग्नि शांत हो जाती है ॥ १ ॥ अनेक भांतिके भूत प्रेतनी नाचकर 'मारो काटो' इस प्रकारकी ध्वनि कर रहे हैं ॥२॥

विष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा * वर्षै कबहुँ उपल बहु छांड़ा ॥३॥

वर्षि धूरि कीन्हेसि अँधियारा * सूझ न आपन हाथ पसारा ॥४॥

फिर विष्ठा, पीव, रुधिर, बाल व हाड़ोंकी वर्षा की, कभी अनेक पत्थर बरसाने लगा ॥३॥ फिर धूल बरसाकर अँधेरा कर दिया जिससे कि अपना हाथ पसारा नहीं सूझता है ॥ ४ ॥

अकुलाने कपि माया देखे * सबकर मरण बना इहि लेखे ॥५॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने * भये सभीत सकल कपि जाने ॥६॥

वानर यह माया देखकर घबरा गये कि इस समय सबका मरण होनेको है ॥ ५ ॥ रघुनाथजी यह कौतुक देख हँसे और जाना कि सब कपि डर गये हैं ॥ ६ ॥

एकहि बाण काटि सब माया * जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ॥७॥
कृपादृष्टि कपि भालु विलोके * भये प्रबल रण रहहिं न रोके ॥८॥

एक ही बाणसे सब माया काट डाली, जैसे सूर्य अन्धकार समूह हर लेता है ॥७॥ और कृपादृष्टिसे रीछ, वानरोंको देखा तो वे ऐसे प्रबल हो गये कि युद्धमें रोका तो भी रुक नहीं सकते ॥८॥

दोहा-आयसु माँगि रामपहँ, अंगदादि कपि साथ ॥
लक्ष्मण चले सकोप तब, बाण शरासन हाथ ॥ ७७ ॥

तब रघुनाथजीसे आज्ञा मांगी और अंगदादि वानरोंको साथ ले लक्ष्मणजी क्रोधकर धनुष बाण हाथमें ले चले ॥ ७७ ॥

क्षतज-नयन उर बाहु विशाला * हिमिगिरिनिभतनु कछु इकलाला ॥१॥
उहाँ दशानन सुभट पठाये * नाना अस्त्र शस्त्र गहि धाये ॥२॥

लाल नेत्र, हृदय और बाहु विशाल, श्वेत हिमालयसा रंग कुछ एक क्रोधसे लाल हो गया है ॥ १ ॥ उधर रावणने लक्ष्मणके आनेके समाचार सुनकर योद्धा भेजे, वे अनेक अस्त्र शस्त्र लेकर धाये ॥ २ ॥

भूधर-नख-विटपायुध-धारी * धाये कपि जय राम पुकारी ॥३॥
भिरे सकल जोरीसन जोरी * इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ॥४॥

शिला, नख और वृक्षरूप आयुध लिये हुए कपि 'रघुनाथजीकी जय' बोलकर धाये ॥ ३ ॥ सब जोड़ी जोड़ीसे भिड़ गये । यहां वहांसे जयकी इच्छा थोड़ी नहीं किंतु बहुत थी ॥ ४ ॥

मुठिकन लातन दाँतन काटहिं * कपि जयशील मारि पुनि डाटहिं ॥५॥
मारु मारु अरु धरु धरु मारू * शीश तोरि गहि भुजा उपारू ॥६॥

घूँसे लात मारते हैं, दांतोंसे काटते हैं इस प्रकार जयशील वानर मारते और डाटते हैं ॥ ५ ॥ मारो पकड़ो पकड़ो, धर मारो शिर तोड़ भुजा पकड़ कर उखाड़ डालो ॥ ६ ॥

असि धुनि पूरि रही नव खण्डा * धावहिं जहँ तहँ रुण्ड प्रचण्डा ॥७॥
देखहिं कौतुक नभ सुर वृन्दा * कबहुँक विस्मय कबहुँ अनंदा ॥८॥

यह ध्वनि नवों खण्डोंमें भर गयी जहां तहां प्रचण्ड रुंड दौड़ने लगे ॥ ७ ॥ आकाशमें देवतासमूह कौतुक देखते हैं, कभी व्याकुल कभी आनंदित होते हैं अर्थात् वानरोंके संकटसे व्याकुल और जीतनेसे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–जमेउ गाड़ भरि भरि रुधिर, ऊपर धूरि उड़ाय ॥
जिमि अंगारन राशिपर, मृतक धूमि रहि छाय ॥७८॥

रुधिर गड्ढोंमें भरकर जम गया है, उसके ऊपरसे धूरि उड़ती है सो ऐसी भासती है मानो अंगारोंकी राशिपर राख छा रही हो ॥ ७८ ॥

घायल वीर विराजहिं कैसे * कुसुमित किंशुकके तरु जैसे ॥१॥
लक्ष्मण मेघ नाद दोउ योद्धा * भिरहिं परस्पर करि अति क्रोधा ॥२॥

घायल वीरोंकी यह शोभा हो रही है, जैसे टेसू वृक्षके फूल फूले होते हैं ॥ १ ॥ लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा परस्पर अत्यंत क्रोध करके लड़ते हैं ॥ २ ॥

एकहि एक सकै नहिं जीती * निशिचर छलबल करै अनीती ॥३॥
क्रोधवन्त तब भयउ अनंता * भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥४॥

एक एकको नहीं जीत सकता और राक्षस छल, बलसे अनीति किया चाहता है ॥ ३ ॥ तब लक्ष्मणजीने क्रोध करके मेघनादका रथ तोड़ डाला और सारथीको मार दिया ॥ ४ ॥

नानायुध प्रहार कर शेषा * राक्षस भयउ प्राण अवशेषा ॥५॥
रावण सुत निज मन अनुमाना * संकट भयउ हरिहि मम प्राना ॥६॥

लक्ष्मणने अनेक आयुध प्रहार किये, जिससे मेघनादको प्राणांतकी पीड़ा हुई ॥ ५ ॥ तब मेघनादने मनमें विचार किया कि संकट आ गया, यह मेरे प्राण लिया चाहता है ॥ ६ ॥

वीरघातिनी छांड़िसि सांगी * तेजपुंज लक्ष्मण उर लागी ॥७॥
मूर्छा भई शक्तिके लागे * तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥८॥

तब मेघनादने (ब्रह्माकी दी हुई) वीरको नाशनेवाली सांगी जो तेजमान थी छोड़ी, वह लक्ष्मणके हृदयमें आकर लगी ॥ ७ ॥ लगते ही मूर्छा आ गयी तब भय त्यागकर समीप चला गया ॥ ८ ॥

दोहा–मेघनाद सम कोटि शत, योद्धा रहे उठाइ ॥
जगदाधार अनंत किमि, उठहिं चले न खिसाइ ॥ ७९ ॥

मेघनादके समान कोटिशत अनेक योद्धा उठा रहे हैं परन्तु वे जगदाधार अर्थात् जगत् उनके आधारसे स्थित है कैसे उठें कोटिशत शब्द यहां बहुवाची है, संख्यावाची नहीं। जब लक्ष्मणजी न उठे तब खिसिया कर चले गये ॥ ७९ ॥

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू * जारै भुवन चारिदश आसू ॥१॥
सक संग्राम जीति को ताहीं * सेवहिं सुर नर अग जग जाहीं ॥२॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! सुनो, जिसकी क्रोधाग्नि चौदहों भुवनोंको शीघ्र जला देती है ॥१॥ उसे संग्राममें कौन जीत सकता है ? जिसकी देवता, मनुष्य सब जगत् सेवा करते हैं ॥ २ ॥

---

१. कवित्त—"लोथिनसो लोहूके प्रवाह चले जहां तहाँ मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं। शोणित सरित घोर कुञ्जर करारे भारे कूलते समूल वाजि विटप परत हैं।। सुभट शरीर नीरचारी भारी भारी जहां शूरन उछाह क्रूर कादर डरत हैं। फिकरि फिकरि फेरु फारि फारि पेट खात, काक कंक वालक कोलाहल करत हैं।।"

यह कौतूहल जानइ सोई ❋ जापर कृपा रामकी होई ॥३॥
संध्या भई फिरी दोउ ऐनी ❋ लगे सँभारन निज निज सैनी ॥४॥

और जो यहां लक्ष्मणके शक्ति लगी है यह संग्रामकी शोभा है रघुनाथजीके कौतूहल (चरित्र) कौन जान सकता है ? परन्तु इस चरित्रको वही जानेगा जिसपर रघुनाथजीकी कृपा होगी ॥३॥ सन्ध्या हो जाने पर अपनी अपनी सब सेनाएँ सँभालकर स्थानों पर चले ॥ ४ ॥

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर ❋ लक्ष्मण कहाँ बूझ करुणाकर ॥५॥
तब लगि लेइ आयउ हनुमाना ❋ अनुज देखि प्रभु अतिदुख माना॥६॥

तब सर्वव्यापक, ब्रह्म, अजित और संसारके ईश्वर करुणा सागर श्रीराम कहने लगे कि सब तो आ गये परंतु लक्ष्मण कहां हैं ? ॥५॥ वह कहते ही थे, कि महावीरजी गोदीमें लिए लक्ष्मणको ले आये, यह दशा देख रघुनाथजीने बड़ा दुःख मानां ॥ ६ ॥

जाम्बवंत कह वैद्य सुषेना ❋ लंका रहि पठइय कोउ लेना ॥७॥
धरि लघुरूप गयउ हनुमन्ता ❋ आनेउ भवन समेत तुरन्ता ॥८॥

तब जाम्बवन्त बोले–सुषेण नामक वैद्य लंकामें रहता है, उसे किसीसे बुलवाओ ॥ ७ ॥ सुनते ही महावीरजी छोटा रूप धर लंकामें गये और विचार किया कि जो इसे जगाऊँ तो कदाचित् न चले, इस कारण इसको घर सहित उठा लाये। अथवा वहां पहुँचकर कहने लगे कि 'औषधि तो घर ही रही' ऐसा कहकर फिर यहाँ चला आवे और न जाय शोर–गुल मचा दे, इस कारण घर सहित उठा लाये, छोटा रूप इस कारण धरा कि बड़े रूपमें लंका प्रवेश करना कठिन था, अथवा यह समझा कि लाना भी एक पुरुषको है बड़ा रूप धरकर क्या करना ? ॥ ८ ॥

दोहा–रघुपति चरण सरोज शिर, नायउ आय सुषेन ॥
कहा नाम गिरि औषधी, जाउ पवनसुत लेन ॥ ८० ॥

सुषेणने आकर रघुनाथजीके चरण कमलमें अपना शिर नवाया और पर्वतका नाम तथा औषधि बतलाकर कहा–महावीरजी ! तुम औषधि लेनेको जाओ ॥ ८० ॥

रामचरण–सरसिज उर राखी ❋ चलेउ प्रभंजन सुत बलभाखी॥१॥
उहाँ दूत इक मर्म जनावा ❋ रावण कालनेमि गृह आवा ॥२॥

रामजीके चरणकमल हृदयमें धारण कर बल कथन करके महावीरजी चले।'बलभाखी' का लक्ष्य गीतावलीमें कहा है–"जौ मैं तव अनुशासन पाऊँ। तौ चन्द्रमहिं निचोर चैल जिमि, आनि सुधा शिर नाऊँ। कै पाताल दलौं व्यालावलि, अमृतकुण्ड महि ल्याऊँ। भेदि भुवन करि भानु बाहिरो, तुरत राहु दै ताऊँ। पटकौं नीच मीच मूषक जिमि, सबको पाप बहाऊँ। तुम्हरी कृपा प्रताप तुम्हारे, नेक बिलंब न लाऊँ। दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु, जौ तुम्हरे मन

१. "मेरो सब पुरुषारथ थाको। विपति बँटावन बन्धुबाहु बिनु, करौं भरोसो काको। सुनु सुग्रीव सांचेहुँ मोसन अब, फेरचो वदन विधाता। ऐसे समय समर संकट हौं, तजो लषणसों भ्राता। गिरिकानन जैहैं शाखामृग, हौं पुनि अनुज संघाती। ह्वै है कहा विभीषणकी गति, रही सोच भरि छाती। तुलसी सुनि प्रभु वचन भालु कपि, सकल विकल हिय हारे ॥ जांबवन्त हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे।"

भाऊँ।" यह कह कर महावीरजी चले ॥ १ ॥ उधर यह भेद एक दूत रावणसे जनाया सो सुनकर रावण कालनेमिके घर आया ॥ २ ॥

दशमुख कहा मर्म तेइ सुना ❋ पुनि पुनि कालनेमि शिर धुना॥३॥
देखत तुमहिं नगर जेइँ जारा ❋ तासु पंथ को रोकन हारा ॥४॥

रावणने अपना सब आनेका भेद सुनाया, जिसके सुनते ही कालनेमिने बारंबार अपना शिर धुना ॥ ३ ॥ और बोला—तुम्हारे देखते ही जिसने सुन्दर नगर जला दिया, भला उसका मार्ग कौन रोक सकता है ? ॥ ४ ॥

भजि रघुपतिहि करहु हित अपना ❋ तजहु नाथ अब वृथा कल्पना ॥५॥
नीलकंज-तनु सुन्दर श्यामा ❋ हृदय राखु लोचन अभिरामा ॥६॥

रघुनाथजीका भजन कर अपना हित करो और अब यह (जयकी) वृथा कल्पना त्यागो ॥ ५ ॥ जिनका नीलकमलके समान सुन्दर शरीर है; जिनके सुन्दर नेत्र हैं उन्हें हृदयमें धारण करो ॥ ६ ॥

अहंकार ममता मद त्यागू ❋ महामोह निशि सोवत जागू ॥७॥
काल व्यालकर भक्षक जोई ❋ सपनेहुँ समर न जीतिय सोई ॥८॥

अहंकार, ममता और मदको त्यागकर महामोहरूपी रात्रिमें सोते हुए जागो ॥७॥ जो काल-रूपी सर्पका खानेवाला है, भला कोई उससे समरकर क्या स्वप्नमें भी जीत सकता है ? ॥८॥

दोहा-सुनि दशकंध रिसान तब, तेइ मन कीन्ह विचार ॥
रामदूत कर मरण भल, यह खल रत मलभार ॥ ८१ ॥

रावण सुनते ही बड़ा क्रोधित हुआ, तब कालनेमिने अपने मनमें विचार किया रघुनाथ-जीके दूतके हाथसे मरना अच्छा है; यह तो दुष्ट पापमति है ॥ ८१ ॥

अस कहि चला रचेसि मगमाया ❋ सर मन्दिर वर बाग बनाया ॥१॥
मारुत-सुत देखा शुभ आश्रम ❋ मुनिहिं बूझिजल पिऔं जायश्रम॥२॥

यह विचार कालनेमि उठकर चला एक सरोवर और मंदिरके निकट एक मायाका बाग बनाया। अथवा सरोवर, मंदिर और बाग बनाया ॥१॥ महावीरजीने सुन्दर आश्रमको देख विचार किया कि मुनिके निकट जाकर थोड़ा जल पीयें श्रम जाता रहेगा ॥ २ ॥

राक्षस कपट वेष तहँ सोहा ❋ मायापति-दूतहि चह मोहा ॥३॥
तुरत पवनसुत नायउ माथा ❋ लाग सो कहै राम गुणगाथा ॥४॥

वह कपट वेष किये राक्षस बैठा था, मायापतिके दूतको मोहा चाहता है ॥ ३ ॥ तुरन्त महावीरजीने जाकर शिर नवाया; वह कृत्रिम साधु रामजीकी गुणगाथा कहने लगा ॥ ४ ॥

होत महारण रावण रामहिं ❋ जितिहहिं राम न संशय यामहिं॥५॥
इहाँ रहे मैं देखौं भाई ❋ ज्ञानदृष्टि बल मोहिं अधिकाई ॥६॥

राम रावणमें युद्ध होता है, रामचन्द्र जीतेंगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ भाई ! मैं सब यहीं बैठा देखता हूँ, क्योंकि मुझे ज्ञान दृष्टिका बल अधिक है ॥ ६ ॥

मांगा जल तेइँ दीन्ह कमण्डल * कह कपि नहिं अघाउँ थोरे जल ॥७॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु * दीक्षा देउँ ज्ञान जेहि पावहु ॥८॥

तब महावीरजीने पीनेको पानी मांगा, उसने अपने कमण्डलुका जल दिया, तब महावीरजी बोले–थोड़े जलसे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ७ ॥ तब कालनेमि बोला–इस सरोवरमें स्नान करके शीघ्र आओ, मैं तुझे गुरुदीक्षा दूँगा। जिससे ज्ञानकी प्राप्ति होगी। महावीरजी बहुत अच्छा कह कर चले ॥ ८ ॥

दोहा–सर पैठत कपि पद गहेउ, मकरी तब अकुलान ॥
मारी सो धरि दिव्य तनु, चली गगन चढ़ि यान ॥ ८२ ॥

सरोवरमें प्रवेश करते ही एक मकरी (मगरकी स्त्री) ने महावीरजीके चरण पकड़ लिये तब महावीरजीने उसे चरण पकड़ते ही दबा दिया, वह दबते ही मर गयी और विमानमें बैठकर आकाशको चली गयी (और चलते समय कहने लगी) ॥ ८२ ॥

कपि तव दरश भयउँ निष्पापा * मिटा तात मुनिवरकर शापा ॥१॥
मुनि न होय यह निशिचर घोरा * मानहुँ सत्य वचन कपि मोरा ॥२॥

हे कपि! मैं आपके दर्शनसे निष्पाप हो गयी और हे तात! मुनिराजका शाप मिट गया ॥ १ ॥ यह मुनि नहीं किंतु घोर राक्षस है, तुम मेरा कहना सत्य मानो ॥ २ ॥

अस कहि गई अप्सरा जबही * निशिचर निकट गयो कपि तबही ॥३॥
कह कपि मुनि गुरुदक्षिना लेहू * पाछे हमहिं मन्त्र तुम देहू ॥४॥

जब यह कहकर वह अप्सरा चली गयी तब राक्षसके निकट महावीरजी गये ॥ ३ ॥ महावीरजी बोले मुनिराज! पहले गुरुदक्षिणा तो ले लो पीछे हमें मन्त्र बताना ॥ ४ ॥

अथ क्षेपक

यहाँ देर हनुमतहिं निहारा * किय निशिचर मनमाहिं बिचारा ॥१॥
मकरीने मारचो हनुमाना * करहुँ लंक गढ़ शीघ्र पयाना ॥२॥

हनुमान्‌जीको देर तक न आया देखकर कालनेमिने मनमें विचार किया ॥ १ ॥ हनुमान्‌जी को मकरीने कदाचित् मार डाला है; अब शीघ्र लंकाको जाऊँ ॥ २ ॥

रावणको यह वचन सुनाई * अर्धराज्यकी करहुँ बटाई ॥३॥
उत्तर दिशिकी सागर रेती * शंका तहाँ बाढ़की तेती ॥४॥

रावणसे हनुमान्‌का मरणवृत्तांत सुनाकर आधा राज्य बँटवा लूँ, क्योंकि उन्होंने प्रतिज्ञा की है ॥ ३ ॥ उत्तर ओर तो सागरकी रेती है; उधर सदा बाढ़की शंका रहती है ॥ ४ ॥

---

१. यह मकरी और कालनेमि पहले जन्ममें गन्धर्व थे, दोनों इन्द्रकी सभामें गाते थे; उसी समय दुर्वासा ऋषि आ गये दोनों उनकी सूरत देखकर हँसे तो मुनिने शाप दिया कि–'तुम दोनों राक्षस हो जाओ' यह सुनते ही दोनों बड़े भयभीत हो गये और मुनिकी बड़ी प्रार्थना की। तब वे प्रसन्न हो बोले कि अब तो तुम राक्षस होगे और लंकामें जन्म होगा, त्रेताके चौथे चरणमें राम अवतार होगा और लंकामें युद्ध होगा, पश्चात् लक्ष्मणके शक्ति लगने पर जब हनुमान्‌जी संजीवनी बूटी लेने जायंगे तब यह गंधर्व मुनिरूप होकर महावीरजीका मार्ग रोकेगा और यह अप्सरा मकरी होकर मायाके सरोवरमें रहेगी, तब उनके द्वारा दोनोंका उद्धार हो जायगा।

रावणको दैहौं दिशि सोई ❋दक्षिण दिशि लैइहौं शुचि जोई॥५॥
गज रथ तुरंग सेन भट भारी ❋ सबकी अब करिहौं बँटवारी ॥६॥

वही दिशा रावणको दूँगा और पवित्र दक्षिण दिशा की ओर लूँगा ॥ ५ ॥ अब मैं हाथी, घोड़े, रथ, सेनाके योद्धा सबकी ही बँटाई करूँगा ॥ ६ ॥

जिहि विधि मिलिहै पुष्पक भागा ❋ सो सब मैं लैहहुँ अनुरागा ॥७॥
मनही मन अस करत विचारा ❋ आइ कह्यो इमि पवन कुमारा ॥८॥

जिस प्रकार पुष्पक मेरे हिस्सेमें आवे वही विधि करके सब लेकर प्रसन्न हूँगा ॥ ७ ॥ वह अपने मन ही मनमें यह विचार करता था कि उसी समय वहां महावीरजी आकर बोले कि पहले गुरुदक्षिणा ले लो फिर मन्त्र देना ॥ ८ ॥

इति क्षेपक

शिर लँगूर लपेटि पछारा ❋ निज तनु प्रगटेउ मरती बारा ॥५॥
राम राम कहि छांड़ेसि प्राना ❋ सुनि मन हर्षि चले हनुमाना ॥६॥

यों कह अपनी पूँछमें उसका शिर लपेटकर पछाड़ दिया, उसने मरते समय अपना शरीर प्रगट किया ॥ ५ ॥ और 'राम राम' कहकर प्राण छोड़ दिये। महावीरजी यह सुन-कर प्रसन्न होकर चले, विघ्न दूर होनेसे प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

देखा शैल न औषधि चीन्हा ❋सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥७॥
गहि गिरिनिशिनभ धावत भयऊ ❋ अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥८॥

योग मार्गमें स्थित होकर पर्वत पर गये परन्तु अर्थीको आता देखकर वे औषधियाँ छिप जाती हैं, इस कारण वे लोप हो गयीं और महावीरजीके प्रार्थना करने पर भी प्रकट नहीं हुई, तब उन्होंने औषधि न पहिचान कर पर्वतके उखाड़नेकी इच्छाकर शीघ्र पर्वत उखाड़ लिया ॥ ७ ॥ तब पर्वतको ग्रहणकर रात्रिमें महावीरजी आकाशमार्गसे अवधपुरीकी ओर आये। वहां भरतजी बैठे तपस्या करते थे, रामचन्द्रजी नित्य प्रति भरतके गुण वर्णन करते थे इससे महावीरजीने उनकी प्रीति और भक्ति देखनेको गमन किया, जब उनकी छाया खडाऊँ पर पड़ी तब इस अतिक्रमणसे भरतने धनुष चढ़ाया ॥ ८ ॥

दोहा–देखा भरत विशाल अति, निशिचर मन अनुमानि ॥
बिन फर शर तकि मारेउ, चाप श्रवण लगि तानि ॥ ८३ ॥

परम विशाल भरतजीने देखा तो मनमें विचार किया कि यह कोई राक्षस पर्वत लिये आता है, कहीं अयोध्यापर पर्वत न पटक दे; यह विचार विना ही गांसीके कानतक तानके बाण मारा ॥ ८३ ॥

परेउ मूर्च्छि महि लागत सायक ❋ सुमिरत राम राम रघुनायक ॥१॥
सुनि प्रिय वचन भरत उठि धाये ❋ कपि समीप अति आतुर आये ॥२॥

महावीरजी बाण लगते ही मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरे; "राम राम रघुनायक" स्मरण करने लगे (और पर्वत भी धर दिया यही तो सावधानी है) यह सब कौतुकके अन्तर्गत है। अथवा उस

समय पर्वत लंगूरपर धारण किये रहे, इनमें प्रमाण हनुमन्नाटक १३ अंक १९ श्लोकका खण्ड "गिरिं दधानो लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण" परंतु नीचे लिखे गोसांईके पदसे विदित होता है कि पवनने पर्वत धारण कर लिया था। कहीं लिखा है, भरतजीने कुस्वप्न देखा था उसकी शांति कर रहे थे, उसी समय महावीरजी उन्हें देखने आये थे इससे विना फरका बाण मारा, क्योंकि हवन करते थे॥१॥ प्यारे वचन सुनकर भरतजी उठके दौड़े और शीघ्र महावीरजीके समीप आये॥२॥

विकल विलोकि कीश उर लावा * जागत नहिं बहु भाँति जगावा ॥३॥
मुख मलीन मन भयउ दुखारी * कहत वचन भरि लोचन वारी ॥४॥

कीशको व्याकुल देखकर हृदयसे लगा लिया, अनेक प्रकारसे जगाया; परंतु नहीं जागे ॥ ३ ॥ मुख मलीन हो गया, बड़े दुःखी हुए नेत्रोंमें जल भरके बोले ॥ ४ ॥

जेहि विधि राम विमुख मोहिं कीन्हा * तेहि पुनि यह दारुण दुख दीन्हा ॥५॥
जौ मोरे मन वच अरु काया * प्रीति राम पद-कमल अमाया ॥६॥

जिस विधाताने मुझे रामसे विमुख किया उसने ही फिर यह मुझे दारुण दुःख दिया है ॥ ५ ॥ जो मेरे मन वचन और कर्मसे रघुनाथजीके चरणकमलोंमें निष्कपट प्रीति है ॥ ६ ॥

तौ कपि होउ विगत श्रम शूला * जौ मोपर रघुपति अनुकूला ॥७॥
वचन सुनत उठि बैठ कपीशा * कहि जय जयति कोशलाधीशा ॥८॥

और जो मेरे ऊपर रघुनाथजी प्रसन्न हैं तो कपि तत्काल व्यथा रहित हो ॥ ७ ॥ यह वचन सुनते ही महावीरजी 'जय रघुनाथजी' कहकर उठ बैठे। कोई कहते हैं कि महावीरजीको मूर्छा नहीं हुई थी किन्तु भरतजीकी परीक्षा करते थे ॥ ८ ॥

सोरठा–लीन्ह कपिहि उर लाय, पुलकित तनु लोचन सजल ॥
प्रीति न हृदय समाय, सुमिरि राम रघुकुल तिलक ॥ ६ ॥

भरतजीने कपिको हृदयसे लगा लिया, शरीर पुलकित नेत्रोंमें जल भर आया, प्रीति हृदयमें नहीं समाती, रघुनाथजीका स्मरण करने लगे ॥ ६ ॥

तात कुशल कहु सुखनिधानकी * सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥१॥
कपि सब चरित समास बखाने * भये दुखित मनमहँ पछिताने ॥२॥

हे तात! सुख निधान रघुनाथजी, लक्ष्मण और माता जानकीजी की कुशल कहो ॥ १ ॥ कपिने संक्षेपसे सब चरित्र वर्णन किया जिसे सुनकर भरतजी दुःखी हो मनमें पछताने लगे॥२॥

अहह दैव मैं कत जग जायउँ * प्रभुके एकौ काज न आयउँ ॥३॥
जानि कुअवसर मन धरि धीरा * पुनि कपिसन बोले बलवीरा ॥४॥

हा दैव! मेरा जगत्में क्यों जन्म हुआ, जो मैं प्रभुके किसी भी काममें नहीं आया ॥ ३ ॥ फिर बलवान् भरतजी कुअवसर जान मनमें धैर्य धर कपिसे बोले ॥ ४ ॥

---

१. राग केदार–"कौतुक ही कपि कुधर लियो है। चली नभ नाय माथ रघुनाथहि सरिस न वेग बियो है। देखे जात जानि निशिचर विनु फर
शर हन्यो हियो है। परचो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है॥ जाय भरत भरि अंक भेंट निज जीवनदान दियो है। दुख लघु लषण
परम घायल सुनि सुख बड़ो कीश जियो है। आयसु इतहि स्वामिसंकट उत, परत न कछू कियो है। तुलसीदास निहारचो आकाशसों कैसो जात सियो है॥

अथ क्षेपक

भले भरत कहि बोले ताता * पीछे सुनि दुख पैहैं माता ॥१॥
तेहिते चलि दीजै समुझाई * आय भवन सब कथा सुनाई ॥२॥

भरतजी बोले हे तात! अब आपका जाना अच्छा है परन्तु पीछे सुनकर माता दुःख पावेगी ॥ १ ॥ इस कारण तुम्हीं चलकर उनको समझा दो; यह कह भरतजीने घरमें आकर सब कथा कही ॥ २ ॥

सुत घायल सुनि साधु सुमित्रहि * भयो हर्ष अरु शोच विचित्रहि ॥३॥
बोली धन्य सुवन मम आजू * जूझेउ समर स्वामिके काजू ॥४॥

अपने पुत्रको घायल जानकर सुमित्राको विचित्र हर्ष और शोक दोनों हुए ॥ ३ ॥ और कहने लगीं–आज मेरा पुत्र धन्य है ! जो स्वामीके निमित्त समरमें जूझा ॥ ४ ॥

पर इक दुःख होत जिय ताता * कुसमय भये राम विनु भ्राता ॥५॥
पुनि सुभाव रिपुहनते कहेऊ * जाहु तात तुम प्रभु पहँ रहेऊ ॥६॥

पर एक ही दुःख मुझे होता है कि रघुनाथजी कुसमयमें ही भाईसे रहित हुए ॥ ५ ॥ फिर स्वभावसे शत्रुघ्नसे कहा कि हे तात ! तुम जाकर प्रभुके पास रहो ॥ ६ ॥

सुनत उठे सुख सहित प्रकाशा * विधिवश सुढर ढरे जनु पाँसा ॥७॥

सुनते ही शत्रुघ्न बड़े प्रसन्न हो उठे; मानो प्रारब्धवश सूधे पांसे पड़ गये ॥ ७ ॥

दोहा–अम्ब अनुज गति देखि मन, मानी सबनि गलानि ॥
बोली रघुपति–मातु सब, कपिते धीरज आनि ॥ ८४ ॥

शत्रुघ्नकी यह गति देख सब माताओंने मनमें ग्लानि मानी तब धैर्य धरकर रघुनाथजीकी माता महावीरजीसे बोलीं ॥ ८४ ॥

दोहा–जेहि सौंपेउँ मैं लषणको, तिनकी यह गति होय ॥
अब कब देखौं नयन भरि, पुत्र कमलमुख सोय ॥ ८५ ॥

जिनको मैंने लक्ष्मणजी सौंपे थे उनकी यह गति हो ? बड़ा दुःख है, अब नेत्रोंसे भरकर पुत्रका मुखकमल कब देखूँगी ? अथवा जिन लक्ष्मणको मैंने सौंपा था उनकी यह गति हुई, अब मैं लक्ष्मणको कब देखूँगी ॥ ८५ ॥

दोहा–बोलेउ मरुत सुवन तब, सकल धरहु उर धीर ॥
कुशल जानकी लषणयुत, ऐहैं श्रीरघुवीर ॥ ८६ ॥

तब महावीरजी बोले–हृदयमें धैर्य धरो; लक्ष्मण–जानकी सहित रघुनाथजी कुशल पूर्वक (शीघ्र) आवेंगे ॥ ८६ ॥

इति क्षेपक

१. "सुनि रण घायल लषण परे हैं। स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं ।।। सुवन शोक संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति वरे हैं । छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं। कपिसों कहति सुभाव अंबक अंबु भरे हैं।। रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, यद्यपि धनु दुसरे हैं। तात जाहु कपिसङ्ग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं। प्रमुदित पुलकित प्रेमपूरित जनु विधिवश सुढर ढरे हैं ।। अंब अनुजगति लखि पवनज, भरतादि ग्लानि गरे हैं। तुलसी तब समुझाय मातु तेंहि समय सचेत करे हैं ।।"

तात गहरु होइहै तोहि जाता ✻ काज नशाइहि होत प्रभाता ॥१॥
चढु मम सायक शैल समेता ✻ पठवौं तोहिं जहँ कृपानिकेता ॥२॥

हे तात! तुम्हें जाते ही देर होगी और प्रातः होते ही कार्यका नाश हो जायगा ॥१॥ तुम शैलसहित मेरे बाणके ऊपर चढ़ो मैं तुम्हें कृपासागरके पास भेज दूँ ॥ २ ॥

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना✻मोरे भार चलिहि किमि बाना ॥३॥
राम प्रताप विचारि बहोरी ✻ बंदि चरण बोलेउ कर जोरी ॥४॥

सुनकर कपिके मनमें अभिमान उपजा कि मेरे भारसे बाण कैसे चलेगा? ॥ ३ ॥ फिर रघुनाथजीका प्रताप विचार हाथ जोड़कर चरण वंदन कर बोला ॥ ४ ॥

तव प्रताप उर राखि गुसाईं ✻ जैहौं नाथ बाणकी नाईं ॥५॥
हर्षि भरत तब आयसु दीन्हा ✻पद शिर नाय गमन कपि कीन्हा॥६॥

हे गोसाईं! आपका प्रताप हृदयमें धारण कर आपके बाणकी तरह ही चला जाऊँगा ॥५॥ तब भरतजीने प्रसन्न होकर आज्ञा दी, महावीरजी चरणोंमें शिर नवाकर चल दिये ॥६॥

दोहा–तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहौं नाथ तुरन्त ॥
अस कहि आयसु पाय पद, बंदि चलेउ हनुमन्त ॥ ८७ ॥

हे प्रभु! आपका प्रताप हृदयमें धारण कर मैं तुरंत चला जाऊँगा, यह कह आज्ञा पाय पदवन्दन कर महावीरजी चले ॥ ८७ ॥

दोहा–भरत बाहुबल शील गुण, प्रभुपद प्रीति अपार ॥
जात सराहत मनहिं मन, पुनि पुनि पवन कुमार ॥ ८८ ॥

भरतजीका बाहुबल, शील, गुण तथा प्रभुके पदमें अपार प्रीति, महावीरजी मनही मन बारंबार सराहते हैं ॥ ८८ ॥

उहाँ राम लक्ष्मणहि निहारी ✻ बोले वचन मनुज अनुहारी ॥१॥
अर्धरात्रि गइ कपि नहिं आवा ✻ राम उठाय अनुज उर लावा ॥२॥

उधर लंकापुरीमें रघुनाथजी लक्ष्मणको देख मनुष्योंके समान वचन बोले ॥ १ ॥ देखो आधीरात बीत गयी, महावीरजी नहीं आये, क्या कहीं द्रोणाचलका मार्ग भूल गये? यह कह रघुनाथजीने लक्ष्मणको हृदयसे लगाया ॥ २ ॥

सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ ✻ बन्धु सदा तव मृदुल स्वभाऊ ॥३॥
मम हित लागि तजेउ पितु माता ✻सहेउ विपिन हिम आतप वाता॥४॥

हे भ्राता! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे, सदा तुम्हारा मृदुल स्वभाव था॥३॥ मेरे ही निमित्त पिता माताको त्याग दिये, वनमें अनेक दुःख उठाये, जाड़ा, गर्मी, पवन सहे ॥४॥

सो अनुराग कहाँ अब भाई ✻ उठहु न सुनि मम वच बिकलाई॥५॥
जो जनतेउँ वन बंधु बिछोहू ✻ पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥६॥

हे भाई! इस समय वह प्रेम कहां है, मेरे व्याकुलताके वचन सुनकर क्यों नहीं उठते? ॥५॥ जो मैं यह जानता कि भाईका वनमें वियोग होगा तो चौदह वर्ष बहुत हैं, मैं पिताके वे भी

वचन नहीं मानता जो उन्होंने कहे थे "रथ चढ़ाय दिखराय वन फिरेहु गये दिन चारि" यहां संदेह नहीं करना; क्योंकि यह भी लिख आये हैं कि रघुनाथजी मनुष्यनाट्य होनेसे मनुष्यके समान वचन बोले; क्योंकि बड़े दुःखका समय है, तथा-"रहत न आरतके चित्त चेतू" अथवा रघुनाथजी कहते हैं पिताके वचन तो मानता, परंतु जानकीके वह वचन नहीं मानता जो उन्होंने कहे थे-"राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत न जानिये प्रान" जो वह न आती तो क्यों यह दशा होती ? न रावण हरता न इनके शक्ति लगती। तीसरे यह कि पिताके वचन मानता परन्तु लक्ष्मणजीके यह वचन नहीं मानता कि 'नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहां बसाय' न ये साथ आते, न यह दशा होती ! अथवा पिताके वचन न मानकर वह मानता जो उन्होंने चार दिनमें लौट आनेको कहे थे अथवा पिताके वचन न मानकर माता के वचन मानता जो कहा था "जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता" इत्यादि, परंतु सर्वथा व्याकुलताके होनेसे पहला ही अर्थ ठीक है ॥ ६ ॥

सुत बित नारि भवन परिवारा * होहिं जाहिं जग बारहिंबारा ॥७॥
अस विचारि जिय जागहु ताता * मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता ॥८॥

पुत्र, धन, स्त्री, भवन, कुटुम्ब जगत्में बार-बार होते जाते रहते हैं ॥७॥ परन्तु हे तात ! यह विचार कर जागो कि जगत्में सहोदर भाई नहीं मिलते पिताके पक्षमें दोनों भाई सहोदर हैं कारण एक पेट हो अर्थात् दोनोंका छल कपट रहित एक मन हो। तीसरा अर्थ यह कि जैसे तुमने हमारे साथ पृथक् उदर होकर भी स्नेह किया ऐसे जगत्में सहोदर भी नहीं मिलते, यथा-देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बांधवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ (वा० रा०) ॥ ८ ॥

यथा पंख बिनु खग अति दीना *मणिबिनु फणि करिवर करहीना॥९॥
अस मम जीवन बंधु बिनु तोही * जो जड़ दैव जियावै मोही ॥१०॥

जैसे पंखोंके विना गरुड़ अत्यन्त दीन हो जाता है और मणि विना सर्प, सूँड़ विना हाथी दुःखी होता है ॥ ९ ॥ हे भाई ! इसी प्रकार तेरे विना मेरा जीना है, फिर भी जड़ दैव मुझे जिलाता है ॥ १० ॥

जैहौं अवध कवन मुँह लाई * नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई ॥११॥
बरु अपयश सहतेउँ जगमाहीं * नारि हानि विशेष छति नाहीं ॥१२॥

मैं किस मुहँसे अयोध्या जाऊँगा ? हाय मैंने स्त्रीके कारण प्यारे भाईको खोया॥ ११ ॥ बल्कि जगत्में अपयश सह लेता इनकी स्त्री को रावणने छीन ली; स्त्रीके न होनेसे कोई विशेष हानि नहीं होती परन्तु ॥ १२ ॥

अब अपलोक शोक यह तोरा * सहिहि कठोर निठुर मन मोरा ॥१३॥
निज जननीके एक कुमारा * तात तासु तुम प्राण अधारा ॥१४॥

अब यह स्त्री हरण अपयश और तुम्हारा शोक दोनों बातें मेरा कठोर निष्ठुर मन सहेगा॥१३॥ तुम अपनी माताके एक अर्थात् प्रधान कुमार 'एकोऽन्ये च प्रधाने चेत्यमरः' लक्ष्य "पुत्रवती युवती जग सोई। रघुवर भक्त जासु सुत होई" अथवा जैसे तुम हो ऐसे कोई अपनी माताके

एक ही कुमार होते हैं, सो तुम ही प्रधान हो और तुम अपनी माताके इसी कारण प्राणोंके आधार हो। अथवा हम अपनी जननीके एक ही कुमार हैं, जिनके प्राणके आधार तुम हो सो मैं न जिऊँगा तो कौशल्या भी न जियेंगी। अथवा तुम्हारे गुण देख हमारी माता तुम्हें प्राण समान रखती थी ॥ १४ ॥

सौंपेसि मोहिं तुमहिं गहि पानी * सब विधिसुखद परम हित जानी ॥१५॥
उतर ताहि दैहौं कह जाई * उठि किन मोहि समुझावहु भाई ॥१६॥

सो तुम्हारी माताने मुझे हाथ पकड़के सौंप दिया था और यह जानता था कि मैं सब प्रकारसे परम हितकारी सुखदायक हूँ ॥ १५ ॥ सो मैंने यह दशा कर दी, प्रमाण "तुम कहँ वन सब भांति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू" "जेहि न राम बन लहैं कलेशू" अथवा कौशल्याजीने मुझे परमहितू जानकर सौंप दिया। पूर्व यद्यपि यह प्रसंग नहीं कहा है परन्तु कविजन जहां आवश्यकता देखते हैं वहां प्रसंगवश अर्थ खोल देते हैं, सो उस माता कौशल्या वा सुमित्राको जाकर क्या उत्तर दूँगा। भाई उठकर मुझे क्यों नहीं समझाते? ॥१६॥

बहुविधि शोचत शोच विमोचन * स्रवत सलिल राजिवदल लोचन ॥१७॥
उमा अखण्ड एक रघुराई * नरगति भक्तिकृपालु दिखाई ॥१८॥

जो अनेक प्रकारके शोचको दूर करनेवाले हैं वे भी शोच करते हैं और कमल दलके समान नेत्रोंसे जल चला आता है, यही मनुष्य नाट्य है ॥ १७॥ हे पार्वती! रघुनाथजीका अखण्ड एक रूप है लीला नाट्य दिखाकर अपने भक्तोंपर अपनी भक्ति दिखाते हैं कि मेरे भक्त मुझको इस प्रकारसे प्यारे हैं ॥ १८ ॥

सोरठा-प्रभु विलाप सुनि कान, विकल भये वानर निकर ॥
आइ गयेउ हनुमान, जिमि करुणामहँ वीर रस ॥ ॥ ९ ॥

शिवजी बोले-हे पार्वती! रघुनाथजीका (अत्यन्त) विलाप कानोंसे सुनकर सब वानर व्याकुल हो गये, उसी समय महावीरजी संजीवनी लेकर ऐसे आ गये जैसे करुणामें वीररस आकर प्राप्त होता है यह दान वीररस है कि जो कोई किसीको दुःखी देखे तो उसके लिये रणमें प्राणपर्यन्त दे दे। यह सम्पूर्ण सेना करुणारसपरिपूर्ण है, महावीरजीमें ही सबके प्राण लग रहे हैं; यदि महावीरजी सबेरे तक न आते तो सबके प्राण जाते रहते। यहाँ हनुमान्‌जी सबके प्राणदाता हुए, इस कारण करुणा वीररसका संग होना दोष नहीं है। बस, यहां तक यह कौतुक ही दासोंकी महिमा प्रकट करता है क्योंकि यदि लक्ष्मणजीके शक्ति न लगती, संजीवनीका लाना, कालनेमिका वध, मकरीका उद्धार, ब्रह्माजीकी शक्तिका मान और महावीरजीकी कीर्ति कैसे होती? अथवा यह भी यहां दिखाया कि महानुभावोंको भी हर्ष शोक होते रहते हैं, इस कारण दुःख पड़नेसे हमारे भक्त व्याकुल न हों। हर्ष शोक शारीरिक धर्म हैं लक्ष्मणजी यही विचार मूर्छित हुए कि जो मैं मूर्छित हूँगा तो रघुनाथजीको इन राक्षसों पर बड़ा क्रोध होगा और शीघ्र इनको मारेंगे ॥ ९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने लंकाकाण्डान्तर्गत वि० वा०
पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायां पञ्चमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा–यही षष्ठ विश्राममें, कुम्भकर्ण वध कीन्ह ॥
कृपासिंधु भगवान् सब, देवन कहँ सुख दीन्ह ॥ ६ ॥

हर्षि राम भेंटेउ हनुमाना * अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना ॥१॥
तुरत वैद्य तब कीन उपाई * उठि बैठे लक्ष्मण हर्षाई ॥२॥

रघुनाथजी प्रसन्न होकर महावीरजीसे मिले, प्रभु परम सुजान अतिकृतज्ञ हैं अर्थात् उपकारको पहचानते हैं ॥१॥ तब वैद्यने तुरंत उपाय किया, चार जड़ी उखाड़ ली, विशल्यकरणी शस्त्रकी पीड़ा दूर कर दे, दूसरी सन्धानकरणी जो कहीं मांस अस्थि फटी टूटी हो उसे जोड़ दे, तृतीय सवर्ण करणी जो उसी स्थानके रंग और सब शरीर जैसेका तैसे कर दे, चौथी मृतसंजीवनी प्राणोंको सावधान करनेवाली। बस यही चारों औषधियां वैद्यने लक्ष्मणजीके लगायीं तब प्रसन्न होकर उठ बैठे, पर्वतके आतेही वानर जो युद्ध क्षेत्रमें मरे थे वे उस औषधिकी सुगंध पाकर उठ खड़े हुए; राक्षस वहां थे ही नहीं, क्योंकि वानरोंने तो मरे हुए राक्षसोंको सागरमें डाल दिया था, जिससे रावणको यह विदित न हो कि राक्षस बहुत मारे गये ॥ २ ॥

हृदय लाय भेंटेउ प्रभु भ्राता * हर्षे सकल भालु-कपि व्राता ॥३॥
पुनि कपि वैद्य तहाँ पहुँचावा * जेहि विधि तबहिं ताहि लेइ आवा॥४॥

रघुनाथजी भाईको हृदयसे लगाकर मिले और सब रीछ वानर समूह प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ महावीरजीने सुषेण वैद्यको वहां पहुँचा दिया, जिस प्रकार जहांसे लाये थे ॥ ४ ॥

हरि-दिन धूम्र अक्ष बलवाना * चढ़ि कीन्हों अतिसमर महाना॥१॥
महावीर तेहि कियो निपाता * चढ़्यो अकंपन पुनि दुखदाता ॥२॥

(क्षेपक) एकादशीके दिन बलवान् धूम्राक्षने चढ़ाईकी और बड़ा संग्राम किया ॥ १ ॥ (द्वादशीके दिन) फिर उसे महावीरजीने मारा फिर दुःख देनेवाला अकंपन चढ़कर आया ॥२॥

समर कीन्ह ताने अति भारी * मारचो तेहि युवराज प्रचारी ॥३॥
पुनि प्रहस्त क्रोधातुर धावा * नील मारि तेहि धरणि गिरावा ॥४॥

फिर अकंपनने बड़ा भारी संग्राम किया (तेरसके दिन) उसे अङ्गदजीने ललकारके मार डाला ॥३॥ फिर क्रोध करके प्रहस्त आया (परिवाके दिन) नीलने मारके पृथ्वीपर गिरा दिया ॥४॥

चल्यो महोदर करि अति क्रोधा * महावीर मारो सो योधा ॥५॥
पुनि अतिकाय भिरचो रिसिआई * मरचो आठ दिन कीन्ह लराई ॥६॥

फिर महोदर क्रोधकर चला, उसी दिन महावीरजीने उसे मार डाला ॥ ५ ॥ फिर अतिकायने क्रोधसे आकर युद्ध किया और आठ दिन लड़कर मर गया ॥ ६ ॥

कुम्भ निकुम्भ आय रण ठाना * मरे पांच दिन करि मैदाना ॥७॥
पुनि मकराक्ष महाभट आवा * लक्ष्मणसे अति युद्ध मचावा ॥८॥

फिर कुम्भकर्णके बेटे कुम्भ निकुम्भने आकर युद्ध ठाना और पांच दिन संग्राम कर (तेरसके दिन) मारे गये ॥ ७ ॥ महायोद्धा मकराक्ष आया, उसने लक्ष्मणसे आकर बड़ा युद्ध किया ॥ ८ ॥

दोहा–तब लक्ष्मणने क्रोध करि, ताको डारो मार ॥
कपिदलमें आनँद छयो, जय जयकार पुकार ॥ ८९ ॥

तब लक्ष्मणने क्रोध करके उसे मार डाला और वानरोंके दलमें आनंद छा गया, वे जय-जयकार करने लगे (क्षेपक समाप्त) ॥ ८९ ॥

यह वृत्तांत दशानन सुनेऊ * अति विषाद पुनि पुनि शिर धुनेऊ ॥५॥
व्याकुल कुम्भकर्ण पहँ गयऊ * करि बहु यतन जगावत भयऊ ॥६॥

यह समाचार रावणने सुना तो दुःखसे अति व्याकुल हो अपना शिर पीटा ॥ ५ ॥ और व्याकुल होकर कुम्भकर्णके पास गया और अनेक यत्न करके जगाने लगा ॥ ६ ॥

दश सहस्र राक्षस तब धाये * * ढोल दमामे अधिक बजाये ॥१॥
करन लगे कोउ मुद्गर मारी * तदपि उठ्यो नहिं सो असुरारी ॥२॥

(यहांसे क्षेपक है) तब रावणकी आज्ञासे दश हजार योद्धा चले और (कुम्भकर्णके कानके निकट) ढोल, दमामे (नगाड़े) अधिक बजाने लगे ॥ १ ॥ कोई मुद्गर मारने लगे तो भी वह राक्षस न उठा ॥ २ ॥

कोऊ लात चपेट लगावै * पर ताके कछु मनहिं न आवै ॥३॥
भूधर सम तेहि परयो शरीरा * तासो मनमें गिनत न पीरा ॥४॥

और कोई लात चपेट लगाने लगे परंतु उसके मनमें कुछ नहीं आता ॥ ३ ॥ क्योंकि उसका शरीर पर्वतके समान पड़ा था, इस कारण उसके मनमें कुछ पीड़ा न हुई ॥ ४ ॥

श्वास चलत आँधी सी आवत * सन्मुख तेहि कोउ रहन न पावत ॥५॥
तबते राक्षस हृदय विचारी * काटन लगे प्रचारि प्रचारी ॥६॥

उसकी नाकसे श्वास आँधीके समान निकलते थे, राक्षस सम्मुख नहीं खड़े हो सकते थे ॥ ५ ॥ तब वे राक्षस मनमें विचार कर और महाशब्द कर उसे काटने लगे ॥ ६ ॥

उठ्यो न पुनि तब कियो उपाई * दियो नाकमें मेष चलाई ॥७॥
अरु हाथिनकी दायँ चलाई * छींक महानिशिचरको आई ॥८॥

इस पर भी न उठा तब यह उपाय किया कि उसकी नाकमें एक मेष गाड़ दिया ॥ ७ ॥ फिर ऊपरसे हाथियोंकी दाँय चलायी; तब उस घोर राक्षसको छींक आई ॥ ८ ॥

दोहा-कुम्भकरण ऐंडाय कर, जबहि उघारे नैन ॥
राक्षस लागे भागने, रावण मान्यो चैन ॥ ९० ॥

जब कुम्भकर्णने अँगड़ाई लेकर आँखें खोलीं तो उसे देख राक्षस डरकर भागने लगे और रावण बड़ा प्रसन्न हुआ (क्षेपक समाप्त) ॥ ९० ॥

जागा निशिचर देखिय कैसा * मानहुँ काल देह धरि वैसा ॥७॥
कुम्भकरण पूछा सुनु भाई * काहे तव मुख रहे सुखाई ॥८॥

जब राक्षस जागा तो ऐसा विदित हुआ कि मानो साक्षात् देहधारी काल है ॥ ७ ॥ जब कुम्भकर्ण पूछने लगा-सुनिये भाई ! तुम्हारा मुख किस कारण सूख रहा है ? ॥ ८ ॥

कथा कही सब तेइँ अभीमानो * जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥९॥
तात कपिन निशिचर संहारे * महा महा योधा सब मारे ॥१०॥

तब उस अभिमानीने सब कथा कही जिस प्रकार जानकीजीको हर लाया था ॥ ९ ॥ बोला–हे तात! वानरोंने सब राक्षस मार डाले, मुख्य मुख्य सब योद्धाओंका संहार कर दिया ॥ १० ॥

दुर्मुख सुररिपु मनुज-अहारी * भट अतिकाय अकंपन भारी ॥११॥
अपर महोदर आदिक वीरा * परे समर महँ सब रणधीरा ॥१२॥

दुर्मुख, देवशत्रु, मनुष्य भक्षक, बड़ा वीर अतिकाय, अकंपन ॥ ११ ॥ तथा और भी महोदर आदिक जो रणधीर वीर थे सब युद्ध क्षेत्रमें गिर गये अर्थात् प्राण दे दिये ॥ १२ ॥

दोहा–दशकंधरके वचन सुनि, कुम्भकरण बिलखान ॥
जगदम्बा हरि आनिकै, शठ चाहसि कल्यान ॥ ९१ ॥

रावणके वचन सुनकर कुम्भकर्ण बड़ा व्याकुल होकर बोला–रे मूर्ख! जगत् माता जानकीजीको हर लाकर भी कल्याण चाहता है? ॥ ९१ ॥

भल न कीन्ह तैं निशिचर-नाहा * अब मोहिं आय जगायउ काहा ॥१॥
अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना * भजउ राम होइहि कल्याना ॥२॥

हे राक्षसराज! तुमने यह काम अच्छा नहीं किया, अब मुझे आकर जगाया सो वृथा है ॥१॥ और जो अब भी अभिमान त्याग रघुनाथजीको भजो तो तुम्हारा भला हो जायगा ॥२॥

बिन विचार तुम कारज ठाना * ताते नहिं होइहि कल्याना ॥१॥
तुम्हरी सभामाहिं दशकन्धर * कार्यकुशल नहिं कोउ मंत्रीवर ॥२॥

(यहांसे क्षेपक) यह तुमने विचार किये विना कार्य किया है, इसमें तुम्हारा मंगल नहीं होगा। ॥१॥ हे रावण! तुम्हारी सभामें अब कोई कार्य कुशल अच्छा मन्त्री विदित नहीं होता ॥ २ ॥

सागर पार शिबिर अस्थापन * काहे तुम नहिं कियो दशानन ॥३॥
रक्षित होतेउ सागर-पारा * बँधत सेतु फिर कौन प्रकारा ॥४॥

हे रावण! भला सागरके पार एक छावनी क्यों नहीं स्थापित की ॥ ३ ॥ यदि सागर का उत्तर तट रक्षित होता तो फिर पुल कैसे बँध सकता? ॥ ४ ॥

जब असहाइ रहे दोउ भाई * तब तिनको नहिं मार्यो जाई ॥५॥
मित्र तुम्हार बालि अति भारी * ताकी लै सहाय असुरारी ॥६॥

जब दोनों भाई असहाय रहे तब तुमने जाकर क्यों नहीं मारा? ॥ ५ ॥ हे रावण! बालि तुम्हारा बड़ा मित्र था, उसकी सहायता लेकर युद्ध करते तो वानर तुम्हारी ओर होते ॥ ६ ॥

करते शत्रुन कर संहारा * यह सब तजि चोरी पर दारा ॥७॥
शूर्पणखाकी दशा निहारी * करते तेहि क्षण प्रभुसन रारी ॥८॥

और शत्रुका संहार करते यह सब तो न किया किंतु पराई स्त्रीकी चोरी की ॥ ७ ॥ जब शूर्पणखाकी दशा देखी थी तभी उनसे युद्ध करते (तो जीत होती) ॥ ८ ॥

दोहा–त्यागि नीतिपथ धर्म तजि, हरि आनी परनारि ॥
राजनीति परमार्थता, तुम सब दीनि बिसारि ॥ ९२ ॥

नीति मार्ग और धर्म दोनों बातोंको छोड़कर पराई स्त्रीको चुरा लाये, राजनीति और परमार्थता कि राम कौन हैं, यह तुमने सब बिसार दिया ॥ ९२ ॥

तात राम प्राकृत नर नाहीं ✽ पूरण ब्रह्म लखहु मनमाहीं ॥१॥
भू के भार हरण अवतारा ✽ लियो कह्यो नारद बहु बारा ॥२॥

हे तात ! राम साधारण मनुष्य नहीं हैं, इन्हें तुम मनमें पूर्णब्रह्म जानो ॥ १ ॥ पृथ्वीके भार हरनेके लिए उन्होंने अवतार लिया है, यह मुझसे नारदजीने कई बार कहा था। (क्षेपक समाप्त) ॥ २ ॥

हे दशशीश मनुज रघुनायक ✽ जाके हनूमानसे पायक ॥३॥
अहह बन्धु तैं कीन्ह खोटाई ✽ प्रथमहिं मोहि न जगायउ आई ॥४॥

हे रावण ! क्या रघुनाथजी मनुष्य हैं कि जिनके हनुमानसे पायक (अनुचर) हैं ? ॥ ३ ॥ अहा ! भाई ! तूने बड़ी खुटाई की जो पहले मुझे आकर नहीं जगाया ॥ ४ ॥

कीन्हेउ प्रभु विरोध तेहि देवक ✽ शिव विरंचि सुर जाके सेवक ॥५॥
नारद मुनि मोहिं ज्ञान जो कहेऊ ✽ कहतेउ तोहि समय नहिं रहेऊ ॥६॥

तुमने उन देवतासे विरोध माना है जो समर्थ हैं और जिनके शिव, ब्रह्मादिक देवता सेवक हैं ॥ ५ ॥ अरे जो ज्ञान नारदजीने मुझे सुनाया था वह मैं तुझे कहता, परन्तु समय नहीं रहा अथवा ऊपर कहा हुआ ज्ञान नारदजीने मुझसे कहा था सो तुमसे कहा क्योंकि अब इसके छिपानेका समय न रहा ॥ ६ ॥

अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई ✽ लोचन सफल करौं निज जाई ॥७॥
श्याम गात सरसीरुह–लोचन ✽ देखौं जाय तापत्रय–मोचन ॥८॥

हे भाई ! अब अंकभर मुझे मिल लो क्योंकि अब मैं जीता न बचूँगा और अब जाकर अपने नयनोंको सफल करूँ ॥७॥ उन रघुनाथजीका जाकर दर्शन कर कृतार्थ हो जाऊँ ! श्याम गात, कमलसे नेत्रवाले तीनों ताप दूर करनेवाले रघुनाथजीका जाकर दर्शन करूँ ॥ ८ ॥

दोहा–रामरूप गुण सुमिरि मन, मग्न भयेउ क्षण एक ॥
रावण माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्ण रघुनाथजीका रूप, गुण स्मरण कर क्षणमात्रको मग्न हो गया, पुनः रावणके प्रसन्नार्थ युद्धमें जानेके निमित्त रावणसे करोड़ों घट मद और अनेकों भैंसे मँगाये ॥ ९३ ॥

महिष खाय करि मदिरा पाना ✽ गर्जेउ वज्राघात समाना ॥१॥
कुम्भकर्ण दुर्मद रण रंगा ✽ चलेउ दुर्ग तजि सेन न संगा ॥२॥

---

१. एक समय नारदजी कुंभकर्णके पास गये थे तब कुंभकर्णने कहा–कहांसे आते हो ? नारदजी बोले–राक्षसोंके दुःखसे पृथ्वी क्षीर-सागरमें पुकार करने गयी थी, वहां भगवान्‌ने अवतार धारण कर रामचन्द्ररूपसे रावणके वधकी प्रतिज्ञाकी है सो मैं तुम्हें सावधान करने आया हूं ।

भैंसे खाकर मदिरा पान करके वज्राघातके समान गर्जा ॥ १ ॥ दुर्मद कुम्भकर्ण लड़ाईके रंगमें रंग गया किला छोड़कर अकेला चला, सेना भी नहीं ली, क्योंकि वीरोंको किसीका आश्रय करना उचित नहीं। अथवा कुम्भकर्ण सब छोड़ वैराग्य धारण कर रघुनाथजीके सम्मुख होता है ॥ २ ॥

देखि विभीषण आगे आयो * पुनि पदगहि निज नाम सुनायो ॥३॥
अनुज उठाय हृदय तेहि लावा * रघुपति भक्त जानि मन भावा ॥४॥

विभीषण कुम्भकर्णको आता देख आगे आया चरण पकड़कर अपना नाम सुनाया ॥३॥ कुम्भकर्णने विभीषणको उठा हृदयसे लगाया और रघुनाथजीका भक्त जान बहुत प्यार किया (तब विभीषण) बोला ॥ ४ ॥

तात लात रावण मोहिं मारा * कहत परमहित मंत्र विचारा ॥५॥
तेहि गलानि रघुपति पहँ आयउँ * दीन जानि प्रभुके मन भायउँ ॥६॥

हे भाई! रावणने मेरे लात मारी, यद्यपि मैंने हितकारक विचारपूर्वक सम्मति दी थी परन्तु तो भी मारा ॥ ५ ॥ उसी ग्लानिसे मैं रघुनाथजीके पास चला आया और प्रभुने दीन जान मुझे अपना लिया ॥ ६ ॥

सुनु सुत भयउ कालवश रावन * सोकि मान अब परम सिखावन ॥७॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण * भयउ तात निशिचर कुलभूषण ॥८॥

कुम्भकर्ण बोला हे पुत्र! सुनो, (छोटा भाई पुत्रवत् होता है इस कारण सुत कहा) रावणकी तो मृत्यु निकट आ गयी, इससे वह परम शिक्षा क्यों मानेगा ? ॥ ७ ॥ हे भाई विभीषण! तू निश्चय धन्य है, राक्षसोंके कुलमें भूषण पैदा हुआ ॥ ८ ॥

बन्धु वंश तैं कीन्ह उजागर * भजेहु राम शोभा सुखसागर ॥९॥

हे भाई! तूने वंशको उजागर कर दिया जो शोभा और सुखके सागर रघुनाथजीका भजन करता है ॥ ९ ॥

दोहा—कर्म वचन मनकपट तजि, भजउ तात रघुवीर ॥
जाहु न निजपर सूझ मोहिं, भयउँ कालवश वीर ॥ ९४ ॥

हे तात! मन, वचन और कर्मसे कपट त्यागकर रघुनाथजीका भजन करो। हे वीर! जाओ अब मुझे अपना पराया नहीं सूझता, अब मैं कालवश हो गया (तुम भी भक्तिमें अपने परायेको भूल जाओ, रावणको अपना मत समझो) ॥ ९४ ॥

बन्धु वचन सुनि फिरा विभीषण * आयउ जहँ त्रैलोक विभूषण ॥१॥
नाथ भूधरा कार शरीरा * कुम्भकरण आवत रणधीरा ॥२॥

भाईके वचन सुनकर विभीषण फिरा और त्रिलोकीके भूषण रघुनाथजीके निकट आया (और बोला) ॥ १ ॥ हे नाथ! पर्वताकार शरीरवाला रणधीर कुम्भकर्ण आता है ॥ २ ॥

इतना कपिन सुना जब काना * किलकिलाय धाये बलवाना ॥३॥

लिये उपारि विटप अरु भूधर ❋ कटकटाय डारहिं ता ऊपर ॥४॥

जब बलवान् वानरोंने यह बात कानोंसे सुनी तो किलकिला कर दौड़े ॥ ३ ॥ वृक्ष और पर्वतोंकी शिलाएँ उखाड़ लीं और कटकटाकर उसके ऊपर डालने लगे ॥ ४ ॥

कोटि कोटि गिरि शिखर प्रहारा ❋ करहिं भालु कपि एक एक वारा॥५॥
मुरेउ न मन तनु टरेउ न टारे ❋ जिमि गज आकफलनिके मारे ॥६॥

रीछ, वानर एक एक वारमें कोटि कोटि पर्वतोंके शिखर प्रहार करतेहैं॥५॥ परंतु कुम्भकर्णका मन नहीं मुड़ा शरीर टालेसे नहीं टला, जैसे हाथी आकके फल मारनेसे व्याकुल नहीं होता॥६॥

तब मारुत सुत मुठिका हनेऊ ❋ परेउ धरणि व्याकुल शिर धुनेऊ॥७॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमन्तहि ❋ घुर्मित घायल परेउ तुरंतहि ॥८॥

तब महावीरजीने एक घूसा मारा जिससे वह पृथ्वीमें गिर व्याकुल हो शिर धुनने लगा ॥ ७ ॥ फिर उसने उठकर महावीरको मारा जिससे घूमकर घायल हो तुरन्त पृथ्वी पर गिर गये ॥ ८ ॥

पुनि नल नीलहिं अवनि पछारेसि ❋ जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥९॥
चली बलीमुख सेन पराई ❋ अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥१०॥

फिर नल नीलको पृथ्वीपर पछाड़ और जहां तहां योद्धाओंको पटक पटक कर डाल दिया ॥९॥ वानरोंकी सेना भाग चली अत्यन्त डरसे दुःखी हो उसके सामने कोई नहीं होता ॥१०॥

दोहा—अंगदादि कपि मूर्छित, करि समेत सुग्रीव ॥
❋ काँख दाबि कपिराज कहँ, चला अमित बल सींव ॥ ९५ ॥

वह अमित बली राक्षस सुग्रीव सहित अङ्गदादि वानरोंको मूर्छित कर सुग्रीवको कांखमें दबाकर ले चला। दबाना मानो रावणका बदला लेना है, जो कि बालिने रावणको कांखमें धरा था अथवा वानरोंके राजाका पकड़ना सारी सेनाको जीतना है ॥ ९५ ॥

उमा करत रघुपति नर लीला ❋ खेल गरुड़ जिमि अहिगण मीला॥१॥
भृकुटि भंग कालहि जो खाई ❋ ताहि कि ऐसी सोह लराई ॥२॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! रघुनाथजी यह मनुष्यलीला करते हैं जैसे गरुड़जी सर्पोंके साथ मिलकर खेलते हों ॥ १ ॥ जो भौंहके मरोड़से भी कालको भक्षण कर जायँ क्या उन्हें ऐसी लड़ाई शोभित होती है ? ॥ २ ॥

जगपावनि कीरति विस्तरिहैं ❋ गाय गाय नर भवनिधि तरिहैं ॥३॥
मूर्छा गइ मारुतसुत जागे ❋ सुग्रीवहि तब खोजन लागे ॥४॥

यह चरित केवल इसी कारण किया है कि जगत्के पवित्र होनेके निमित्त कीर्तिका विस्तार हो जिसे गा-गाकर मनुष्य संसार के पार हो जायँ ॥ ३ ॥ जब मूर्छा शांत हुई तो महावीरजी सुग्रीवको ढूँढ़ने लगे ॥ ४ ॥

कपि-राजहुकी मूर्छा बीती ❋ निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥५॥
काटेसि दशन नासिका काना ❋ गर्जि अकाश चला तेहि जाना ॥६॥

जब सुग्रीवकी मूर्छा शांत हुई तो कुम्भकर्णको अपने मरनेकी प्रतीति देकर निबुकि गये अर्थात् कोखसे लटक पड़े, तब कुम्भकर्णने मृतक जान छोड़ दिया ॥ ५ ॥ तो फिर उसके नाक, कान काट गर्जकर आकाशको चले, जब उसने यह जाना तो ॥ ६ ॥

गहेसि चरण धरि धरणि पछारा ❋अतिलाघव पुनि उठि तेहि मारा॥७॥
पुनि आयउ प्रभुपहँ बलवाना ❋जयति जयति जय कृपानिधाना॥८॥

फिर चरण पकड़ कर उसे धरतीमें पछाड़ दिया फिर सुग्रीवने शीघ्रतासे उठ उसे मारा ॥७॥ फिर सुग्रीवने रघुनाथजीके पास आकर "कृपानिधानकी जय हो" यह शब्द उच्चारण किया॥८॥

नाक कान काटे तेहि जानी ❋ फिरा क्रोध करि मानि गलानी ॥९॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा❋ देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥१०॥

फिर कुम्भकर्णने नाक, कान काटे समझ बड़ा क्रोध किया और ग्लानि मानकर लौटा ॥९॥ एक तो स्वाभाविक भयानक फिर नाक कानसे रहित देखते ही वानरोंको बड़ा भय हुआ ॥१०॥

दोहा–जय जय जय रघुवंशमणि, धाये कपिकर हूह ॥
❋ एकहि बार ताहि पर, डारे गिरितरु यूह ॥ ९६ ॥

'रघुनाथजीकी जय हो' यह कहकर वानर दौड़े और 'हूहू' कर एक ही बारमें उसके ऊपर अनेक पर्वत और वृक्ष डाल दिये ॥ ९६ ॥

कुम्भकर्ण रण रंग विरुद्धा ❋ सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥१॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई ❋ जनु टीड़ी गिरिगुहा समाई ॥२॥

कुम्भकर्ण युद्धके रंगमें भयंकर हो गया, मानो कालके समान क्रोधकर सम्मुख चला ॥ १ ॥ करोड़ों वानरोंको पकड़ पकड़ कर खाने लगा और वे उसके मुखमें इस प्रकार प्रवेश करने लगे जैसे टीड़ी पर्वतकी गुफामें समाती हो ॥ २ ॥

कोटिन गहि शरीरसन मर्दा ❋ कोटिन मींजि मिलायसि गर्दा ॥३॥
मुख नासिका श्रवणकी बाटा ❋ निकसि पराहिं भालुकपि ठाटा ॥४॥

कुम्भकर्णने करोड़ों वानर पकड़ कर शरीरसे मल डाले और अनेकोंको मलकर गर्दमें मिला दिया ॥ ३ ॥ भालु वानरोंके ठट्टके ठट्ट कुम्भकर्णके मुख नासिका कानोंके मार्गसे निकल कर भाग जाते हैं ॥ ४ ॥

रण मदमत्त निशाचर दर्पा ❋ मानहुँ विश्वग्रसन कहँ अर्पा ॥५॥
मुरे सुभट रण फिरहिं न फेरे ❋ सूझ न नयन सुनै नहिं टेरे ॥६॥

रणमें मदमत्त हो कुम्भकर्णने बड़ा अभिमान किया और ऐसा विदित हुआ मानो संसारको खा जायगा। अथवा जगत्के खानेको अर्पा (संकल्प) किया है॥५॥सब योद्धा लड़ाईसे मुँह फेर भागे लौटानेसे भी नहीं लौटते; आंखोंसे देखते नहीं और पुकारनेसे भी कानोंसे नहीं सुनते॥६॥

कुम्भकरण कपि फौज बिडारी ❋ सुनि धाये रजनीचर झारी ॥७॥
देखी राम विकल कटकाई ❋ रिपु–अनीक नाना विधि आई ॥८॥

कुम्भकर्णने वानरोंकी सेना विडार डाली, यह सुनकर अनेक राक्षस(सहायताके)निमित्त दौड़ आये॥७॥जब रघुनाथजीने सेना व्याकुल देखी कि शत्रुकी सेना अनेकप्रकारसे आयी है तब॥८॥

दोहा-सुनु सौमित्रि विभीषण, सकल सँभारेहु सैन ॥
मैं देखौं खलदल बलहिं, बोले राजिवनैन ॥ ९७ ॥

कमललोचन रघुनाथजी बोले-हे लक्ष्मण और विभीषण ! अब सेना सँभालना मैं उन दुष्टदलोंके बलको देखूँगा ॥ ९७ ॥

कर सारंग विशिख कटि भाथा * मृगपति ठवनि चले रघुनाथा ॥१॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टँकोरा * रिपुदल बधिर भयो सुनि शोरा॥२॥

हाथमें शार्ङ्गधनुष बाण कमरमें तरकस धारण किये सिंहकी चालसे रघुनाथजी चले ॥१॥ प्रथम प्रभुने धनुषकी टंकोर की, जिसका शब्द सुनते ही शत्रुदल बहरा हो गया ॥ २ ॥

धनु सन्धानि छांड़ शर लक्षा * काल सर्प जनु चले सपक्षा ॥३॥
अति बल चले निकर नाराचा *लगे कटन भट विकट पिशाचा॥४॥

धनुष चढ़ाकर लाख बाण छोड़े वे ऐसे चले जैसे पंखवाले काले सर्प चलते हों ॥ ३ ॥ बड़े वेगसे बाणसमूह चले, जिनसे कि बड़े-बड़े योद्धा राक्षस, पिशाच कटने लगे ॥ ४ ॥

कटहिं चरण शिर अरु भुजदंडा * बहुतक बीर होहिं शतखण्डा ॥५॥
घूर्मि घूर्मि घायल महि परहीं *उठहिं सँभारि सुभट फिरिलरहीं॥६॥

उन बाणोंसे राक्षसोंके शिर, चरण, भुजा कटते हैं बहुतेरे वीरोंके सौ सौ टुकड़े होते हैं ॥५॥ घूम घूम कर घायल हो पृथ्वीपर गिरते हैं और उठकर फिर सँभाल कर लड़ते हैं ॥ ६ ॥

लागत बाण जलद जिमि गाजैं * बहुतक देखि कठिन शर भाजैं॥७॥
रुण्ड प्रचण्ड मुण्ड बिनु धावहिं * धरु धरु मारु मारु गुहरावहिं ॥८॥

राक्षस बाण लगते ही बादलकी तरह गरजते हैं बहुतेरे कठिन बाण देखकर भागते हैं ॥७॥ विना मुण्डके प्रचण्ड रुण्ड दौड़ते हैं और 'पकड़ो पकड़ो मारो मारो' पुकारते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-क्षणमहँ प्रभुके सायकन, काटे विकट पिशाच ॥
पुनि रघुपतिके त्रोणमहँ, प्रविशे आइ नराच ॥ ९८ ॥

क्षणमात्रमें प्रभुके बाणोंने कठिन राक्षसोंको मार डाला और वे फिर रघुनाथजीके तरकसमें आकर समा गये ॥ ९८ ॥

कुम्भकर्ण मन दीख विचारी * क्षणमहँ हते निशाचर झारी ॥१॥
भयो क्रुद्ध दारुण बलवीरा * करि मृगनायक नाद गँभीरा ॥२॥

तब कुम्भकर्णने मनमें विचार किया कि क्षणमात्रमें रामजीने सब राक्षस मार डाले ॥१॥ उस बलवान् वीरको बड़ा भारी क्रोध हुआ, तब गंभीर सिंहनाद करके ॥ २ ॥

---

१. यह शार्ङ्गधनुष विष्णु भगवान्का था। यह साढ़े तीन हाथका लंबा विश्वकर्माका बनाया है, सिवाय भगवान्के किसीके वशमें यह धनुष नहीं रहता मनुष्यों के व्यवहार योग्य शार्ङ्गनामके धनुष साढ़े छः बालिस्तके होते हैं, और उन्हें अश्वारोही, गजारोही धारण करते हैं। रथी, पदाति, बांसके धारण करते हैं (वृद्ध० सा०) भगवान्के धनुषकी उत्पत्ति इस प्रकार है कि पूर्वमें ब्रह्मादि देवगणोंने युद्ध किया था, उससे २५ पर्वयुक्त एरंड वृक्ष प्रगट हुआ, इसके नौ पर्वसे विष्णु का धनु, सात पर्वसे शिवका और पांच पर्वसे रामका कोदण्ड, तीन पर्वसे गाण्डीव, एक पर्वसे श्रीकृष्ण की बांसुरी हुई मनुष्योंके व्यवहार योग्य शार्ङ्गधनुष महिषादिक शृंगसे बनाया जाता है। "शार्ङ्गकं त्रिणतं प्रोक्तं" शृङ्गादिके बने हुए धनुष तीन स्थानसे वक्र होते हैं।

कोपि महीधर लेइ उपारी * डारइ जहँ मर्कट भट भारी ॥३॥
आवत देखि शैल प्रभु भारे * शरनि काटि रजसम करि डारे ॥४॥

महाक्रोध कर पर्वत शिखर उखाड़ लेता है और जहां बड़े२ योद्धा वानर थे वहां डाल देता है ॥३॥ प्रभुने भारी पर्वत शिखरोंको आते देख अपने बाणोंसे काटकर उन्हें धूलिके समान कर दिया ॥४॥

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक * छांड़े अति कराल बहुसायक ॥५॥
तनुमें प्रविशि निसरि शर जाहीं * जिमि दामिनि घनमाहिं समाहीं ॥६॥

फिर क्रोध करके रघुनाथजीने धनुष तान बड़े तीक्ष्ण बहुत बाण छोड़े ॥ ५ ॥ बाण उनके शरीरमें प्रवेश कर निकल जाते हैं जैसे बिजली एक बादलमेंसे दूसरेमें समा जाती है ॥ ६ ॥

शोणित स्रवत सोह तनु कारे * जिमि कज्जल गिरि गेरु पनारे ॥७॥
विकल विलोकि भालु कपि धाये * बिहँसा जबहिं निकट चलि आये ॥८॥

काले शरीरसे रुधिर चूता ऐसा विदित होता है जैसे कज्जलके पर्वतसे गेरुके पनारे निकलते हैं ॥७॥ व्याकुल देखकर रीछ वानर दौड़कर आये, उन भटोंके आते ही कुम्भकर्ण हँसा ॥ ८ ॥

दोहा–गर्जत धायउ वेग अति, कोटि कोटि गहि कीश ॥
महि पटके गजराज इव, शपथ करै दशशीश ॥ ९९ ॥

बड़े वेगसे गर्जता हुआ दौड़ा, अनेक बन्दरोंको पकड़ कर पृथ्वीमें हाथीके समान पटकता और रावणकी दुहाई देता है भाईकी शपथ करता है जीतके लिये ॥ ९९ ॥

भागे भालु कपिनके यूथा * वृक विलोकि जिमि मेष वरूथा ॥१॥
चले भाग कपि भालु भवानी * विकल पुकारत आरत वानी ॥२॥

रीछ और वानरोंके समूह ऐसे भागे, जैसे भेड़ियाको देखकर मेषसमूह भाग जाते हैं ॥१॥ शिवजी बोले हे पार्वती ! भालु और कपि व्याकुल होकर पुकारते भाग चले कि ॥ २ ॥

यह निशिचर दुकालसम अहई * कपिकुल देश परन अब चहई ॥३॥
कृपावारिधर राम खरारी * पाहि पाहि प्रणतारति-हारी ॥४॥

कुम्भकर्णरूपी दुकाल यह कपिरूपी देशमें पड़ा चाहता है ॥ ३ ॥ हे कृपारूपी बादल रघुनाथजी ! हे दीनोंके दुःख हरनेवाले रक्षा करो ! रक्षा करो ! भाव यह कि बाण वर्षा करके कुम्भकर्णरूपी कालको मेटो ॥ ४ ॥

करुणा वचन सुनत भगवाना * चले सुधारि शरासन बाना ॥५॥
रामसेन निज पाछे घाली * चले सकोप महाबलशाली ॥६॥

वानरोंके करुणा वचन सुनकर भगवान् धनुष बाण सुधारते चले ॥ ५ ॥ महाबली रामचन्द्रजी क्रोधित हो अपनी सेना पीछे कर आप आगे चले, अर्थात् जबतक वानरोंको अपने बलका भरोसा रहा तबतक आगे किये रहे जब उन्होंने हारके करुणा वचन सुनाया तब उन्हें पीछे कर आप आगे हुए ॥ ६ ॥

खैंचि धनुष शत शर संधाने * छूटे तीर शरीर समाने ॥७॥
लागत शर सँभारि सो फिरा * कुधर डगमगेउ डोली धरा ॥८॥

रामचन्द्रने धनुष खैंचकर सौ बाण मारे, जो छूटते ही कुम्भकर्णके शरीरमें समा गये॥७॥ लगते ही वह कुम्भकर्ण सँभलकर फिरा जिसके चलते पर्वत कँपे और पृथ्वी डोल गई ॥ ८ ॥

लीन्ह एक तेहि शैल उपाटी * रघुकुल तिलक भुजा सो काटी॥९॥
धावा वाम बाहु गिरि धारी *प्रभु सोउ भुजा काटि महि डारी॥१०॥

तब उसने एक पर्वत शिला उखाड़ ली, रघुनाथजीने वह भुजा काट डाली ॥ ९ ॥ तब वह बायें हाथमें पर्वत लेकर दौड़ा, प्रभुने वह भुजा भी काटकर पृथ्वीपर डाल दी ॥ १० ॥

काटे भुज सोहै खल कैसा * पक्षहीन मन्दर गिरि जैसा ॥११॥
उग्र विलोकनि प्रभुहिं विलोका * मानो ग्रसन चहत त्रैलोका ॥१२॥

भुजाओंके कटनेसे वह दुष्ट ऐसा शोभित होता है जैसे विना पंखके मंदराचल पर्वत ॥११॥ तब बड़ी तीक्ष्ण दृष्टिसे रघुनाथजीको देखा, मानो त्रिलोकीको भक्षण करना चाहता है ॥१२॥

दोहा-करि चिक्कार घोर अति, धावा वदन पसारि ॥
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हाहाकार पुकारि ॥ १०० ॥

तब वह कुम्भकर्ण महाघोर चिंघार कर मुख फैलाकर दौड़ा, आकाशमें सिद्ध देवता हाहाकार कर दुःखित हुए ॥ १०० ॥

सभय देव करुणानिधि जानेउ * श्रवण प्रयन्त शरासन तानेउ ॥१॥
विशिख निकर निशिचर मुख भरेऊ* तदपि महाबलि भूमि न परेऊ॥२॥

कृपालु रघुनाथजीने देवताओंको भयभीत जान कानपर्यंत धनुष ताना ॥ १ ॥ शर समूहसे राक्षसका मुख भर दिया, तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा ॥ २ ॥

शरनि भरा मुख सन्मुख धावा * काल त्रोण सजीव जनु आवा ॥३॥
तब प्रभु कोपि तीव्र शर लीन्हा * धड़से भिन्न तासु शिर कीन्हा ॥४॥

वह बाण भरे मुखसे रघुनाथजीके सम्मुख दौड़ा मानो सजीव कालका तर्कस आता हो ॥३॥ तब प्रभुने क्रोध कर तीक्ष्ण बाण चढ़ाया और उसका शिर धड़से पृथक् कर दिया ॥ ४ ॥

सो शिर परा दशानन आगे *विकल भयउ जिमि फणिमणि त्यागे॥५॥
धरणि धँसेउ धर धाव प्रचण्डा *तब प्रभु शर हति कृत युग खण्डा॥६॥

वह कुम्भकर्णका शिर रावणके आगे गिरा, तब रावण ऐसा व्याकुल हुआ, जैसे सर्पकी मणि जाती रही हो ॥ ५ ॥ तब कुम्भकर्णका प्रचंड रुण्डही धावमान हुआ, उस समय पृथ्वी धसकने लगी, तब प्रभुने बाण मार दो खण्ड कर दिये ॥ ६ ॥

परे भूमि जिमि नभते भूधर *हेठ दाबि कपि भालु निशाचर ॥७॥
तासु तेज प्रभु वदन समाना * सुर मुनि सबहिं अचंभा माना ॥८॥

कुम्भकर्णके तनुके वे खंड ऐसे गिरे जैसे आकाशसे पर्वत गिरते हों और अपने नीचे रीछ वानर दाब लिये ॥ ७ ॥ उसका तेज रघुनाथजीके मुखमें समा गया, इस बातको देख सब देवता मुनियोंने अचंभा माना कि राक्षसकी सद्गति हुई, जो विना जप तप किये ही मुक्त हो गया ॥ ८ ॥

नभ दुंदुभी बजावहिं हर्षहिं * जय जय कहि प्रसून सुर वर्षहिं॥९॥
करि विनती सुर सकल सिधाये * तब तेहि समय देवऋषि आये॥१०॥

देवता आकाशमें बाजे बजाने लगे, प्रसन्न हो 'जयजयकार' कर फूल बरसाने लगे ॥ ९ ॥ तब देवता तो विनती कर चले गये, उसी समय नारदजी आये ॥ १० ॥

गगनोपरि हरि-गुणगण गाये * रुचिर वीररस प्रभु मन भाये॥११॥
वेगि हतहु-खल कहि मुनि गये * राम समर महँ शोभित भये॥१२॥

आकाशमें ऊपर ही स्थित हरिके गुण गण गाये और सुन्दर वीररसयुक्त प्रभुका वेष मनको भाया ॥ ११ ॥ नारदजी चलते समय यह कह गये कि हे प्रभु ! इस दुष्टको जल्दी मार डालो तब रघुनाथजी समरमें शोभित हुए ॥ १२ ॥

छन्द–संग्राम भूमि विराज रघुपति अतुलबल कोशल धनी ।
श्रमविन्दु मुख राजीवलोचन रुचिर तनु शोणित कनी ॥
भुज युगल फेरत शर शरासन भालु कपि चहुँदिशि बने ।
कहदास तुलसी कहि न सक छबिशेष जेहि आनन घने ॥ ६ ॥

संग्राम भूमिमें अधिक बलवान् और अयोध्याके राजा रघुनाथजी विराजते हैं मुखके ऊपर पसीनेकी बूंदे, कमलसे नेत्र, सुन्दर शरीर जिसपर रुधिरके छींटे पड़े हैं, दोनों हाथोंसे धनुष बाण फेरते हैं, रीछ वानर चारों ओर खड़े हैं, तुलसीदासजी कहते हैं इस छबिको मैं एक मुखवाला क्या कहूँ ? जिसे बहुत मुखवाले शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ ६ ॥

दोहा–निशिचर अधम मलाकर, ताहि दीन निज धाम ॥
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम ॥ १०१ ॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! ऐसे पापी नीच राक्षसको भी रघुनाथजीने अपना धाम दिया तो वे बड़े मूर्ख हैं जो श्रीरामजीका भजन नहीं करते ॥ १०१ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे मुरादाबादनिवासि पं० सुखानंद मिश्रात्मज वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां लंकाकांडे षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

दोहा–यहि सप्तम विश्राममें, मेघनाद वध कीन्ह ।
सती सुलोचन जिमि भई, मन हरिपद महँ लीन्ह ॥ ७ ॥

दिनके अन्त फिरीं दोउ अनी * समर भयो सुभटनसन घनी ॥१॥
रामकृपा कपिदल बल बाढ़ा * जिमि तृणपाय आग अतिडाढ़ा॥२॥

दिनके अन्त होने पर दोनों सेनाएँ फिर गयीं, इस प्रकार राक्षसोंसे संग्राम हुआ ॥ १ ॥ रघुनाथजीकी कृपासे वानरोंकी सेनाका बल बढ़ गया जैसे तृणको पाके अग्निकी लपट बढ़ती है ॥ २ ॥

छीजहिं निशिचर दिन अरु राती * निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती॥३॥
बहु विलाप दशकन्धर करई * पुनि पुनि बन्धु शीश उर धरई ॥४॥

अनेक प्रकारसे दिन और रातमें राक्षस क्षीण होते हैं जिस प्रकार अपने मुखके कहनेसे

पुण्य क्षीण हो जाते हैं ॥ ३ ॥ रावण अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा; बारंबार उस कुम्भकर्णका शीश गोदमें धारण कर रोता है ॥ ४ ॥

रोवहिं नारि हृदय हति पानी * तासु तेज बल विपुल बखानी ॥५॥
मेघनाद तेहि अवसर आवा * कहि बहु कथा पितहिं समुझावा॥६॥

स्त्रियाँ हाथोंसे छाती पीटकर उसका अधिक तेज बल बखान कर रोती हैं ॥ ५ ॥ उसी समय मेघनाद आया और बहुतसी कथाएँ कह कर पिताको समझाया ॥ ६ ॥

देखहु काल्हि मोरि मनुसाई * अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ॥७॥
इष्ट देवसों वर रथ पायउँ * सो वर तात न तुमहिं सुनायउँ ॥८॥

कल मेरी वीरता देखना, अभी क्या बहुत बड़ाई करूँ ? कल दिखा दूँगा ॥ ७ ॥ पिताजी जो कुछ मैंने इष्टदेवसे वर और रथ पाया है उसे तुम्हें भी नहीं सुनाया था ॥ ८ ॥

इहि विधि जलपत भयउ विहाना * लगे भालु कपि चहुँ दिशि नाना॥९॥
इत कपिभालु कालसम बीरा * उत रजनीचर अति रणधीरा॥१०॥

इस प्रकार उसे बकवाद करते सवेरा हो गया, रीछ और वानर चारों फाटकोंपर आ खड़े हुए ॥ ९ ॥ इधर तो रीछ वानर कालके समान वीर, उधर राक्षस भी बड़े रणधीर थे ॥१०॥

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू * बरणि न जाय समर खग केतू ॥११॥

काकभुशुण्डिजी बोले हे गरुड़जी ! दोनों ओरसे योद्धा अपने अपने जयके निमित्त लड़ते हैं वह युद्ध वर्णा नहीं जाता ॥ ११ ॥

दोहा-मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकाश ॥
गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि, भा कपिदल अतित्रास ॥ १०२ ॥

मेघनाद मायाके रथ पर चढ़ आकाशको चला गया और वहां जाकर प्रलय कालके मेघके समान गर्जा, जिसे सुनकर वानर बहुत डरे ॥ १०२ ॥

अथ क्षेपक

तेहि छिन करि मायाकी सीता * रथ चढ़ाय कर चल्यो अभीता ॥१॥
पहुँच्यो जब संग्राम मँझारी * खल हनुमन्तहि गिरा उचारी ॥२॥

उस क्षण निश्शंक मेघनाद मायाकी सीता बनाकर रथपर चढ़ा ले चला ॥ १ ॥ और वह दुष्ट जब संग्राममें पहुँचा तब महावीरजीको देख यह वचन कहे ॥ २ ॥

जेहिके हित ठाना तुम रारी * अब सियको डारत हौं मारी ॥३॥
याहि मरे सब मिटहि लराई * कहि अस असिसन मारि गिराई॥४॥

तुमने जिसके निमित्त यह युद्ध ठाना है उस जानकीको मैं मारे डालता हूँ ॥३॥ क्योंकि इसके मरनेसे सब लड़ाई मिट जायगी, यह कह कर तलवारसे मारकर गिरा दिया ॥ ४ ॥

तब हनुमान कह्यो रिसियाई * हनि डारहु निशिचर कहँ धाई ॥५॥
किलकिलाय कपि कीन्ह प्रहारा * सहि न सक्यो किय लंक प्रसारा॥६॥

तब महावीरजीने क्रोधकर कहा—वानरो ! दौड़कर इस राक्षसको मार डालो ॥ ५ ॥ तब वनारोंने उसपर ऐसा प्रहार किया कि वह प्रहार न सहकर लंकाको भाग गया ॥ ६ ॥

तब मारुतसुत तजी लड़ाई ❋ प्रभु ढिग जा सो बात सुनाई ॥७॥
मूर्छित हो सुनि श्रीरघुनायक ❋ करत विलाप विविध अघ घायक ॥८॥

तब महावीरजीने युद्ध त्याग और रघुनाथजीके निकट जाकर वह बात सुनाई ॥ ७ ॥ तब अनेक पापोंके नाश करनेवाले रघुनाथजी सुनते ही मूर्च्छित हो विलाप करने लगे ॥८॥

दोहा—लक्ष्मण सिय बिनु अब नहीं, हम करिहैं संग्राम ॥
नारि पवित्र जगतमें, जहँ तहँ मिलत न वाम ॥ १०३ ॥

हे लक्ष्मण ! सीताके विना अब हम संग्राम नहीं करेंगे, पतिव्रता स्त्री जगतमें जहां तहां नहीं मिलती ॥ १०३ ॥

सीता हमसे पतिको पाई ❋ मृतक भई अनाथकी नाई ॥१॥
अब सुख कौन अवधपुर जैहौं ❋ माता कहँ उत्तरका दैहौं ॥२॥

हमसे पतिको पाकर भी सीता अनाथके समान मृत हो गयी ॥ १ ॥ अब किस सुखके निमित्त अयोध्यापुरी जाऊँगा और माताजीको क्या उत्तर दूँगा ॥ २ ॥

अस कहि मूर्छि परे प्रभु जबहीं ❋ आयो सपदि विभीषण तबहीं ॥३॥
समाचार सुनि बोला बाता ❋ सब यह झूठी है जगत्राता ॥४॥

यह कह कर प्रभु जिस समय मूर्छित हुए कि उसी समय प्रभुके निकट विभीषण आये ॥ ३ ॥ और समाचार सुनकर बोले—हे भगवन् ! यह सब असत्य है ॥ ४ ॥

हनुमन्तहि तुम लङ्क पठावहु ❋ सपदि कुशल सियकी मँगवावहु ॥५॥
सीता हैं रक्षित अति भारी ❋ को नहिं तिनकोउ सकत निहारी ॥६॥

तुम हनुमान्‌को भेज कर शीघ्र लंकामें जानकीजीकी कुशल मँगा लो ॥ ५ ॥ सीता तो इस प्रकारसे रक्षित हैं कि उन्हें रावणके सिवाय और पुरुष देख नहीं सकता ॥ ६ ॥

मायाकी सीता तिन मारी ❋ सुनि यह वचन धीर प्रभु धारी ॥७॥
गुप्तरूप मारुतसुत जाई ❋ सियकी कुशल देखि फिर आई ॥८॥

मेघनादने (आपके मोहित करनेको) मायाकी सीता मारी, प्रभुने यह वचन सुन धैर्य धरा ॥ ७ ॥ और गुप्तरूपसे हनुमान्‌जी जाकर सीताजीको कुशल देख लौट आये ॥ ८ ॥

दोहा—रघुपतिसे सब कुशल कह, सुख मानो भगवान ॥
धरि धीरज पुनि युद्ध कहँ, सबहिन कीन पयान॥ १०४ ॥

और रघुनाथजीको कुशल समाचार सुनाये भगवान्‌ने सुनकर सुख माना । फिर सबने धैर्य धर युद्धको पयान किया ॥ १०४ ॥

मेघनाद पुनि आयो धाई ❋ लाग्यो करन समर दुखदाई ॥१॥

फिर मेघनाद दौड़कर आया और दुखदायी युद्ध करने लगा ॥ १ ॥

इति क्षेपक

शक्ति शूल शर परिघ कृपाना * शस्त्र अस्त्र कुलिशायुध नाना ॥१॥
डारै परशु प्रचण्ड पषाना * लागेउ वृष्टि करन विधि नाना ॥२॥

उस समय शक्ति, शूल, बाण, परिघ, कृपाण (तलवार); वज्रादिक अनेक अस्त्र शस्त्र (हथियार) ॥ १ ॥ तीक्ष्ण फरशे, पत्थर इत्यादिक मेघनाद वर्षा करने लगा ॥ २ ॥

रहे दशहु दिशि सायक छाई * मानहु मघा मेघ झरि लाई ॥३॥
धरु धरु मारु सुनहिं कपि काना * जो मारै तेहि काहु न जाना ॥४॥

चारों ओर बाण ही बाण छा गये; मानो मघा नक्षत्रमें मेघकी झड़ी लगी है (भादोंमें मघा नक्षत्रमें महावर्षा होती है) ॥ ३ ॥ पकड़ो पकड़ो, मार लो, यही बात वानरोंको सुनायी देती थी और जो मारता था उसे कोई नहीं जानता था ॥ ४ ॥

गहि गिरि तरु अकाश कपि धावहिं * देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं ॥५॥
अवघट घाट बाट गिरि कन्दर * मायाबल कीन्हेसि शरपञ्जर ॥६॥

वानर पर्वत वृक्षादि लेकर आकाशमें धावते हैं, जब उसे नहीं देखते तो दुःखी होकर लौट आते हैं ॥ ५ ॥ अवघट घाट मार्ग पर्वतकी कंदरामें भी मायाके बलसे बाणोंका पिंजड़ा बना दिया ॥ ६ ॥

जाहिं कहाँ भय व्याकुल बन्दर * सुरपति बंदि परे जनु मन्दर ॥७॥
मारुत सुत अंगद नल नीला * कीन्हेसि विकल सकल बल शीला ॥८॥

भयसे व्याकुल वानर अब कहां जायँ ? रुक गये जैसे इन्द्रकी बंदीमें मन्दर (आदि) पर्वत पड़े थे ॥७॥ बलवान् हनुमान्, अङ्गद नल नील वानरोंको भी व्याकुल कर दिया ॥ ८ ॥

पुनि लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण * शरन मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥९॥
पुनि रघुपति सन जूझै लागा * शर छांड़त होइ लागहिं नागा ॥१०॥

फिर लक्ष्मण;सुग्रीव,विभीषण इनको भी बाण मारकर जर्जर शरीर अर्थात् व्याकुल कर दिया ॥९॥ रघुनाथजीसे युद्ध करने लगा जो बाण छोड़ता था वे सांप बनके काटते थे ॥ १० ॥

नागफांस वश भयउ खरारी * स्ववश अनन्त एक अविकारी ॥११॥
नट इव कपट चरित कर नाना * सदा स्वतन्त्र राम भगवाना ॥१२॥

जो रघुनाथजी सदा स्वतन्त्र, अनन्त, एकरस, अविकारी (विकार रहित) हैं वे अपनी इच्छासे नागफांसमें बँध गये ॥ ११ ॥ यद्यपि राम भगवान् स्वतन्त्र हैं, परन्तु अपनेको छिपाकर ऐसी लीला करते हैं जैसे कोई नट अनेक कपट चरित्र करता है ॥ १२ ॥

रण शोभाहित आपु बँधावा * देखि दशा देवन दुख पावा ॥१३॥

युद्धकी शोभाके निमित्त अपनेको बँधाया और यह दशा देखकर देवताओंने बड़ा दुःख पाया, रणस्थलकी शोभाके निमित्त अपनेको बँधाया ॥ १३ ॥

१. वाल्मीकी आदि और रामायणोंमें लिखा है कि समरभूमि देखने को पुष्पक विमानमें बैठाकर जानकीको रावणने भेजा, नागपाशसे राम लक्ष्मण को बँधे देखा जो प्राणहीनके समान हो रहे थे, जानकीजीने महाविलाप किया, उस समय सरमाने समझाया कि जानकी धैर्य धरो, रामका शरीर प्राणयुक्त है, इनके मुख की शोभा पूरी बनी है और एक यह भी वार्ता है कि यह विमान सौभाग्यवतीके सिवाय दूसरेको धारण नहीं करता है, इत्यादि समझाकर विमान लौटाया ।

दोहा–खगपति जाकर नाम जपि, नर काटहिं भव पास ॥
सो प्रभु आव कि बंधतर, व्यापक विश्वनिवास ॥ १०५ ॥

काकभुशुण्डिजी बोले–हे गरुड़जी ! जिसका नाम जपकर मनुष्य संसारका पाश काटते हैं भला वे व्यापक तथा संसारके निवास स्थान प्रभु कैसे बन्धनमें आ सकते हैं ? यह तो अपनी इच्छा से स्वीकार किया ॥ १०५ ॥

चरित रामके सगुण भवानी * तरकि न जायँ बुद्धि बल बानी ॥१॥
अस विचारि जे परम विरागी * रामहिं भजहिं तर्क सब त्यागी ॥२॥

शिवजी बोले--हे पार्वती ! यह रामके सगुण चरित्र हैं; इनमें बुद्धि, बल, वाणीसे तर्कना नहीं हो सकती ॥ १ ॥ ऐसे विचार जो परम वैरागी हैं वे सब प्रकारकी तर्कना त्याग रघुनाथजीका भजन करते हैं ॥ २ ॥

व्याकुल कटक कीन्ह घननादा * पुनि भा प्रगट कीन्ह दुर्वादा ॥३॥
जाम्बवन्त कह खल रहु ठाढ़ा * सुनिकर ताहि क्रोध अतिबाढ़ा ॥४॥

मेघनादने सारा कटक व्याकुल कर दिया, फिर दुर्वचन कहता हुआ प्रकट हुआ ॥ ३ ॥ उस समय जाम्बवंत उसे प्रकट देख बोले--अरे दुष्ट खड़ा तो रह, यह सुनते ही मेघनाद को बड़ा क्रोध बढ़ा ॥ ४ ॥

बूढ़ जानि शठ छांड़ेउँ तोहीं * लागेसि अधम प्रचारन मोहीं ॥५॥
अस कहि तीव्र त्रिशूल चलावा * जाम्बवन्त सो कर गहि धावा ॥६॥

और बोला--अरे मूर्ख अधम ! मैंने तो तुझे बूढ़ा जानकर छोड़ा, तू ही धमकाने लगा ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर एक तीक्ष्ण त्रिशूल जाम्बवन्त पर फेंका, जाम्बवन्त इसे बीचमें ही पकड़ कर मेघनाद पर दौड़ा ॥ ६ ॥

मारेउ मेघनादकी छाती * परा धरणि घुर्मित सुरघाती ॥७॥
पुनि रिसाय गहि चरण फिरावा * महि पछारि निज बल दिखरावा ॥८॥

वह शूल मेघनादकी छातीमें मारा, जिसके आघात से वह देवताओंका घातक घूमकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ फिर जाम्बवन्तने क्रोधित हो टांग पकड़ कर घुमाया पृथ्वीपर पछाड़ कर अपना बल दिखाया कि मैं ऐसा बूढ़ा हूँ ॥ ८ ॥

वरप्रसाद सो मरै न मारा * तब पद गहि लंकापर डारा ॥९॥
इहां देवऋषि गरुड़ पठावा * राम समीप सपदि चलि आवा ॥१०॥

वह वरदानके कारण नहीं मरा, तब टांग पकड़ कर लंकामें फेंक दिया ॥ ९ ॥ इधर नारदजीने गरुड़को भेजा वह रघुनाथजीके निकट बहुत शीघ्र आया ॥ १० ॥

अथ क्षेपक

कह्यो भवानी तब शिर नाई * शक्ति सुलोचनि केहि विधि पाई ॥१॥
तब शिव कहन लगे इतिहासा * मन प्रसन्न करि सुखद निवासा ॥२॥

तब शिर नवाकर पार्वतीजी बोलीं--हे नाथ ! मेघनादने शक्ति और सुलोचना किस प्रकारसे

पाई सो कहो ॥ १ ॥ तब सुखके धाम शिवजी मन प्रसन्न कर यह इतिहास कहने लगे ॥ २ ॥

मेघनाद तप कीन्ह अपारा * तब देवी वर माँग उचारा ॥३॥
मेघनाद कह सुनहु भवानी * यान लोप दीजै सुखदानी ॥४॥

एक समय मेघनादने (जब बीस बरसकी अवस्था थी तब) बड़ा तप किया, तब देवीने कहा--वर मांग ॥ ३ ॥ तब मेघनाद बोला--हे सुखदायिनी भगवति ! सुनिये, जो वरदान देती हो तो मुझे ऐसा रथ दो कि किसीको न दीखे ॥ ४ ॥

तेहि पर चढ़ि सन्मुख जेहि धावौं * विना प्रयास मारि तेहि लावौं ॥५॥
रथ दीन्हो देवी सुख पाई * कह्यो सदा रख याहि छिपाई ॥६॥

और उस रथपर चढ़ मैं जिसके साथ लडूँ, विना परिश्रम उसे मार लाऊँ ॥ ५ ॥ यह सुन देवीने सुख पाय रथ दिया और कहा इसे सदा छिपाके रखना ॥ ६ ॥

परै कठिन रण जब कहुँ आई * तब यहि महँ चढ़ि करेउ लराई ॥७॥
जाय अकाश पहर दो माहीं * जितिहौं समरवीर शक नाहीं ॥८॥

जब कहीं कठिन संग्राम आ पड़े तब इस रथपर चढ़कर युद्ध करना ॥ ७ ॥ हे वीर ! आकाशमें जाकर दो ही पहरमें युद्ध जीत लोगे, सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

दोहा--जो त्यागे द्वादश वरस, नींद अन्न अरु नारि ॥
तासों मत करियो समर, सो तोहि डारै मारि ॥ १०६ ॥

और जिसने बारह वर्षतक अन्न नींद तथा स्त्रीका त्याग किया हो उससे युद्ध मत करना और जो युद्ध करोगे तो वह तुझे मार डालेगा ॥ १०६ ॥

यह कहि अन्तर भई भवानी * शिवकी कठिन तपस्या ठानी ॥१॥
समर करत भय लगत न तोहीं * यह वरदान दियो शिव ओहीं ॥२॥

यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी, तब मेघनाद शिवजीकी कठिन तपस्या करने लगा ॥ १ ॥ तब शिवजीने प्रसन्न हो यह वर दिया कि तुझे युद्ध करनेमें भय न लगेगा ॥ २ ॥

एक दिवस लै सैन अपारा * चढ़यो इन्द्रपर कियो प्रहारा ॥३॥
ठान्यो समर भयङ्कर भारी * वासवको पुनि धरयो प्रचारी ॥४॥

तब मेघनादने एक समय बड़ी सेना ले इन्द्र पर चढ़ाई की और इन्द्र पर प्रहार किया ॥ ३ ॥ बड़ा भयंकर संग्राम हुआ और उसने ललकार कर इन्द्रको पकड़ लिया ॥ ४ ॥

लै आवा पुनि लंक मँझारी * रावणने सुख मानो भारी ॥५॥
तुरत कमल भव लंक सिधाये * तजो इन्द्र यह वचन सुनाये ॥६॥

फिर इन्द्रको पकड़ लंकामें ले आया, तब रावणने बड़ा सुख माना ॥ ५ ॥ यह समाचार सुन ब्रह्माजी लंकामें गये और यह कहा कि इन्द्रको छोड़ दो ॥ ६ ॥

दियो छाँड़ि सुनि विधिके बयना * भे प्रसन्न तब अज सुख अयना ॥७॥
तबहिं अमोघ शक्ति विधि दीन्ही * गे प्रसन्न मति हरिपद लीन्ही ॥८॥

ब्रह्माजीके वचनसे मेघनादने इन्द्रको छोड़ दिया तब सुखके स्थान ब्रह्माजी प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ तब ब्रह्माजीने अमोघ शक्ति दी, यह जिसके लगेगी एक रात्रिमें उपचार न होनेमें उसके प्राण हर लेगी। यह कहकर विष्णुके चरणोंमें मन लगाये हुए ब्रह्माजी प्रसन्न हो चले गये ॥ ८ ॥

दोहा–नाग लोक घननादने, तुरतहि कीन पयान ॥
तहां वासुकी नागसे, कीन्हो युद्ध महान ॥ १०७ ॥

इधर मेघनादने नागलोकमें जाकर वहां वासुकी नागसे बड़ा युद्ध किया ॥ १०७ ॥

चौदह दिवस युद्ध करि भारी * बाँधि लियो अहिराज प्रचारी ॥१॥
लंका लाय पितहि दिखरायो * बाँध्यो बहुरि गेह लै आयो ॥२॥

मेघनादने चौदह दिन तक युद्ध कर अहिराज वासुकीको बांध लिया ॥ १ ॥ और लंकामें लाके रावणको दिखाया फिर बांधकर घर ले आया ॥ २ ॥

कह्यो वासुकी त्यागौ हमको * कन्या व्याहि देउँ मैं तुमको ॥३॥
छाँड़ि दियो सुनि वचन भवानी * दीन्ह वासुकी सुता सयानी ॥४॥

तब वासुकी बोला–तुम हमको छोड़ दो तो हम तुमको अपनी कन्या व्याह देंगे ॥ ३ ॥ महादेव बोले–हे पार्वती! यह सुनते ही मेघनादने वासुकीको छोड़ दिया और उसने अपनी चतुर कन्या व्याह दी ॥ ४ ॥

यहि विधि मिली सुलोचनि नारी * इन्द्रजीत भा नाम सुरारी ॥५॥
जेहि विधि महाशक्ति खल पाई * सो सब तुमको दीन सुनाई ॥६॥

हे पार्वती! इस प्रकारसे सुलोचना स्त्री मिली और मेघनादका इन्द्रजीत नाम हुआ ॥५॥ उस खलने जिस प्रकारसे महाशक्ति पायी सब कथा तुमको सुना दी ॥ ६ ॥

इति क्षेपक

दोहा–पन्नगारि खाये सकल, क्षणमहँ व्याल वरूथ ॥
भई विगत माया तुरत, हरषे वानर यूथ ॥ १०८ ॥

गरुड़जीने क्षणमात्रमें सब सर्प खा डाले; माया तुरन्त जाती रही; वानर, रीछोंके यूथ बड़े प्रसन्न हुए ॥ १०८ ॥

दोहा–गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीश रिसाय ॥
चले तमीचर विकल अति, गढ़पर चढ़े पराय ॥ १०९ ॥

रीछ वानर पर्वत, शिला, पत्थर ग्रहण कर और नखोंसे तीक्ष्ण कर रिसा कर दौड़े और राक्षस अत्यन्त व्याकुल हो भागकर लंकापुरीमें प्रवेश कर गढ़पर चढ़ गये ॥ १०९ ॥

मेघनादकी मूर्छा जागी * पितहि विलोकि लाज अतिलागी ॥१॥
तुरत गयउ सो गिरिवर कन्दर * करौं अजय मख अस निज मनधर ॥२॥

जब मेघनादकी मूर्छा जागी तो पिताको देखकर बड़ी लाज आयी कि अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका ॥ १ ॥ तुरंत वहांसे उठकर पर्वतकी कंदरामें 'अजय यज्ञ' करनेकी इच्छासे गया।

(मेघनादका यज्ञस्थल निकुम्भिलामें था, यह लंकाका एक उपवन था; इसी स्थानमें इसने अनेक यज्ञ कर वर पाये थे) ॥ २ ॥

सो सुधि पाय विभीषण कहई * सुनु प्रभु समाचार अस अहई ॥३॥
मेघनाद मख करै अपावन * खल मायावी देव-सतावन ॥४॥

(विभीषणके चारों मन्त्री गुप्त भावसे समाचार लाये थे) सो उनसे सुध पाकर विभीषण रघुनाथजीसे बोला—सुनिये महाराज! इस समय यह समाचार है ॥३॥ कि मेघनाद जो बड़ा दुष्ट, मायावी है और देवताओंको सतानेवाला है वह इस समय अपवित्र यज्ञ करता है॥४॥

जौ प्रभु सिद्ध होई सो पाइहि * नाथ बेगि रिपु जीति न जाइहि॥५॥
सुनि रघुपति अतिशय सुख माना * बोलि लिये अंगद हनुमाना ॥६॥

हे प्रभु! जो वह यज्ञ सिद्ध हो गया तो शत्रु शीघ्र नहीं जीता जायगा ॥ ५ ॥ यह सुन रघुनाथजीने बहुत सुख माना और अंगद हनुमान्‌को बुलाया ॥ ६ ॥

लक्ष्मण संग जाहु सब भाई * करहु विध्वंस यज्ञकर जाई ॥७॥
तुम लक्ष्मण मारेउ रण ओही * देखि सभय सुरदुख अतिमोही ॥८॥

और कहा—हे भाई! तुम सब लक्ष्मणके संग जाकर उसका यज्ञ बिगाड़ दो ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! तुम उसे युद्धमें मार डालना, क्योंकि अब देवता दुःखी हैं और उनके दुःखसे मुझे बड़ा दुःख है ॥ ८ ॥

जाम्बवन्त कपिराज विभीषण * सेन समेत रहेउ तीनहु जन ॥९॥
जब रघुवीर दीन्ह अनुशासन * कटि निषंग करबाणशरासन॥१०॥

हे जाम्बवन्त, सुग्रीव, विभीषण! सेना सहित तुम तीनों जन लक्ष्मणके साथ रहना ॥९॥ जब रघुनाथजीने आज्ञा दी तब कमरमें तरकस बांध, हाथमें धनुष-बाण ग्रहण कर ॥ १० ॥

प्रभु प्रताप उर धरि रणधीरा * बोलेउ घन इव गिरा गँभीरा ॥११॥
जौ तेहि आजु बधे बिनु आवौं * तौ रघुपति सेवक न कहावौं ॥१२॥

रणधीर लक्ष्मणजी प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण कर बादलकी नाईं गंभीर वाणी बोले ॥ ११ ॥ जो उसे आज बिना मारे आऊँगा तो रघुनाथजीका सेवक न कहाऊँगा ॥ १२ ॥

जौ शत शंकर करहिं सहाई * तदपि हतौं रघुवीर-दुहाई ॥१३॥

जो सौ शिवजी भी आकर रक्षा करें; तो भी मैं मेघनादको मार डालूँगा, रघुवीरकी दुहाई है अथवा जो शिवजी युद्ध करने आवें तो उन्हें रघुनाथजीकी सौगंध देकर अलग कर दूँगा और मैं मारूँगा। अथवा 'शं करोतीति शंकरः' जो कल्याण करें वे शंकर अर्थात् यज्ञ, जो सौ यज्ञ भी उसकी सहायता करें तो भी मार दूँगा, यही अर्थ ठीक भी है। यहां यज्ञका प्रकरण भी है कि उसे देवीका यह वरदान था कि जो तू निकुम्भिला स्थानमें आकर यज्ञ करे और यदि वह ठीक हो जाय तो अमर हो जायगा, यदि विघ्न हो गया सिद्ध न हुआ तो तेरी मृत्यु हो जायगी ॥ १३ ॥

दोहा—बंदि राम पद कमल युग, चलेउ तुरन्त अनन्त ॥
अंगद नील मयन्द नल, संग सुभट हनुमन्त ॥ ११० ॥

रघुनाथजीके चरण कमलको बन्दन करके लक्ष्मणजी तुरंत चले। अंगद, नील, नल, मयन्द और श्रेष्ठ योद्धा संगमें चले ॥ ११० ॥

जाय कपिन देखा सो वैसा * आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥१॥
तब कीशन कृत यज्ञ विध्वंसा * जब न उठइ तब करहिं प्रशंसा ॥२॥

वानरोंने जाके क्या देखा कि मेघनाद बैठा हुआ रुधिर और भैंसेकी आहुति दे रहा है ॥ १ ॥ तब वानर यज्ञ विध्वंस करने लगे जब न उठा तब व्याज स्तुति करने लगे अथवा धीरताकी प्रशंसा करने लगे ॥ २ ॥

तदपि न उठै धरहिं कच जाई * लातन हति हति चलहिं पराई ॥३॥
लेइ त्रिशूल धावा कपि भागे * आयो राम अनुजके आगे ॥४॥

तब भी न उठा तो जाकर बाल पकड़ते हैं और लातोंसे मार मार कर भाग जाते हैं ॥३॥ तब मेघनाद यज्ञसे उठ त्रिशूल लेकर दौड़ा वानर भाग गये। तब वह लक्ष्मणजीके आगे आया॥४॥

आवा परम क्रोधकरि मारा * गर्जि घोर रव बारहिं बारा ॥५॥
कोपि मरुत-सुत अंगद धाये * हति त्रिशूल उर धरणि गिराये ॥६॥

बड़े क्रोधसे वारंवार घोर गर्जना करके आते ही त्रिशूल मारा ॥ ५ ॥ महावीरजी और अंगद क्रोध करके दौड़े और उसने त्रिशूल हृदयमें मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६ ॥

प्रभुपर छांड़ेसि शूल प्रचण्डा * शरहत कृत अनन्त युगखण्डा ॥७॥
उठि बहोरि मारुति युवराजा * हतेउ कोपि तेहि घाव न बाजा ॥८॥

उसने प्रभुके ऊपर भी प्रचण्ड शूल छोड़ा जिसे लक्ष्मणने बाण मारकर दो खंड कर दिया ॥ ७ ॥ महावीर और अंगदने मूर्छासे उठ फिर उसे मारा, पर उसके घाव नहीं लगा ॥ ८ ॥

फिरे वीर रिपु मरै न मारा * पुनि धावा करि घोर चिकारा ॥९॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला * लक्ष्मण छांड़े बाण कराला ॥१०॥

वीर फिर गये, मेघनाद मारनेसे नहीं मारा जाता; फिर वह घोर चिंघार कर दौड़ा ॥९॥ उसको क्रोधित आता देखकर लक्ष्मणजीने तीक्ष्ण कालके समान बाण छोड़े अथवा उसे कालके समान आता देख तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥ १० ॥

आवत देखि वज्र सम बाना * तुरत भयउ खल अन्तरधाना ॥११॥
विविध वेष धरि करै लराई * कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरिजाई ॥१२॥

वज्रके समान बाण आते देख वह दुष्ट तुरंत अन्तर्धान हो गया ॥ ११ ॥ अनेक वेष धरके लड़ाई करता है कभी प्रकट कभी छिप जाता है ॥ १२ ॥

तब त्रिशूल छांड़ेसि लक्ष्मण पर *काटि कीन्ह शतखण्ड धरणिधर॥१३॥
शिखर एक लेइ पुनि सोइ धावा * राम अनुज सो काटि खसावा॥१४॥

तब लक्ष्मणजीके ऊपर त्रिशूल छोड़ा; लक्ष्मणने काट कर उसे सौ टुकड़े कर दिये॥१३॥ फिर वह एक पर्वतका शिखर लेकर दौड़ा, लक्ष्मणने उसे भी काटकर गिरा दिया। (क्षेपक) ॥ १४ ॥

देखि अजय रिपु डरपे कीशा * परम क्रुद्ध तब भयउ अहीशा ॥१५॥
इहि पापिहि मैं बहुत खिलावा *अब वध उचित कपिन भय पावा॥१६॥

शत्रुको अजित देख वानर घबड़ा गये तब लक्ष्मणको बड़ा क्रोध आया ॥ १५ ॥ और बोले–इस पापी को मैंने बहुत खेलाया, अब इसका वध करना ही उचित है, क्योंकि वानर बहुत डर गये ॥ १६ ॥

सुमिरि कोशलाधीश-प्रतापा * शर संधान कीन्ह अतिदापा ॥१७॥
छांड़ा बाण तासु उर लागा * मरती बार कपट सब त्यागा ॥१८॥

रघुनाथजीका प्रताप स्मरण कर उसे ललकार कर बाण चढ़ाया ॥ १७ ॥ बाण जैसे छोड़ा कि लगते ही उसके हृदयमें से प्राणोंको पान कर गया, तब मरती बार मेघनादने सब कपट त्याग दिया ॥ १८ ॥

दोहा–राम अनुज कहि राम कहि, अस कहि छांड़ेसि प्रान ॥
धन्य शक्रजित मातु तव, कह अंगद हनुमान ॥ १११॥

'लक्ष्मण रघुनाथजी' ऐसे कहकर (तेरसके दिन) प्राण छोड़ दिया। प्रथम लक्ष्मणका नाम इस कारण लिया मैंने शक्ति मारकर तुम्हें बड़ा दुःख दिया है इस कारण प्रथम तुम हमारा अपराध क्षमा कर दो तो मैं रघुनाथजीके नाम लेनेका अधिकारी हो जाऊँगा, इसी कारण अङ्गद और महावीरजीने कहा कि हे इन्द्रजीत! तेरी माता मंदोदरी धन्य है। भाव यह कि यह उसकी भक्तिका प्रताप है कि जिसके कारण अन्त समय रघुनाथजीको स्मरण किया ॥१११॥

बिनु प्रयास हनुमान उठाये * लंकाद्वार राखि तेहि आये ॥१॥
तासु मरण सुनि सुर गंधर्वा * चढ़ि विमान आये नभ सर्वा ॥२॥

महावीरजी उसे विना प्रयास ही उठाकर लंकाके द्वारपर धर आये इसका भाव यह है कि लक्ष्मणको मेघनादके समान सैकड़ों योद्धा उठाते थे, वे न उठे उन्होंने उसे उठाकर उसका लघुत्व सूचित कर यह जताया कि लक्ष्मणको अपने यहां लिये जाता था उसे उसीके यहां पहुँचाते हैं। अथवा मृतकको नगरमें नहीं ले जाते हैं और कदाचित् रावण लाजके मारे समरमें न आवे और शिवभक्त रावणके पुत्रके रुण्डकी दुर्दशा न हो इस कारण धर आये, क्योंकि महावीरजी शंकरके अवतार हैं। अथवा बेटेकी यह दुर्दशा देख कदाचित् अब भी जानकीजीको दे दे इस कारण धर आये ॥ १ ॥ उसका मरना सुन देवता, गंधर्व सब विमानों पर चढ़कर आकाशमें आये ॥ २ ॥

वरषि सुमन दुन्दुभी बजावहिं * श्रीरघुवीर-विमल यश गावहिं ॥३॥
जय अनन्त जय जगदाधारा * तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा ॥४॥
अस्तुति करि सुर सकल सिधाये * लक्ष्मण कृपासिंधु पहँ आये ॥५॥

फूल बरसाकर नगाड़े बजाने लगे और श्रीरघुनाथजीके उज्ज्वल यश गाने लगे ॥३॥ हे अनन्त! आपकी जय हो, हे जगदाधार! आपकी जय हो, हे प्रभो! आपने देवताओंको

दुःखसे पार किया ॥ ४ ॥ स्तुति करके सब देवता चले गये और लक्ष्मणजी रघुनाथजीके निकट आये ॥ ५ ॥

अथ क्षेपक

(सुलोचनाके सती होनेकी कथा)

मुख प्रसन्नता देखि पूँछे जब * रिपुवध कहा विभीषणहू तब ॥६॥
प्रभुहिं विलोकि शीश पदनाये * उठि प्रभु अनुज हर्षि उर लाये ॥७॥

मुखकी प्रसन्नता देख जब रघुनाथजीने पूछा कि शत्रुको मार डाला ? तब विभीषणने कहा—हाँ महाराज ! आज उसकी मृत्यु हुई जिसे सुन रघुनाथजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ रघुनाथजीको देख लक्ष्मणने चरणोंमें शिर नवाया, तब उठकर प्रसन्न हो रघुनाथजीने भ्राताको हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥

कृपादृष्टि करि अनुजहिं हेरा * विगत भयो श्रम जब कर फेरा ॥८॥
बाण वेध तनु देखिय कैसे * कनक-तूण शरपूरित जैसे ॥९॥

रघुनाथजीने कृपा दृष्टिसे भाईको देखा और हाथ फेरते ही लक्ष्मणजी श्रम रहित हो गये ॥ ८ ॥ बाणसे बिंधा शरीर ऐसा दीखता था जैसे सोनेके तरकसमें बाण भरे हों ॥ ९ ॥

धरेउ सो शीश आनि प्रभु आगे * वानर भालु विलोकन लागे ॥१०॥
प्रभु कौतुकी निरखि सोइ शीशा * राखन कहेउ कोशलाधीशा ॥११॥

और मेघनादका शिर रघुनाथजीके आगे धरा, जिसे रीछ, वानर देखने लगे ॥ १० ॥ कौतुक करनेवाले रघुनाथजीने वह शिर देखकर कहा कि (यत्नसे) इसे रखो ॥ ११ ॥

दोहा—प्रभु आयसु सुनि कीशपति, राखेउ यत्न कराय ॥
कटक सहित रघुवंशमणि, शोभित अति दोउ भाय ॥ ११२ ॥

सुग्रीवने रघुनाथजीकी आज्ञासे उसे यत्नपूर्वक रखा, दोनों भाई सेनासहित बड़ी शोभाको प्राप्त हुए ॥ ११२ ॥

कृपादृष्टि सब कटक निहारे * भये श्रम रहित राम बैठारे ॥१॥
सुनहु उमा इहि विधि रिपु मारे * सुर नर मुनि सब भये सुखारे ॥२॥

रघुनाथजीने कृपादृष्टिसे सब कटकको देखा और बैठाया, सब श्रमरहित हो गये ॥ १ ॥ शिवजी बोले—हे पार्वती ! सुनो इस प्रकार शत्रुको मारा और सुर,नर,मुनि सब सुखी हुए ॥ २ ॥

अब सो सुनहु भुजा तेहि केरी * खग जिमि गई लंक शर प्रेरी ॥३॥
मेघनाद आँगन-महँ परी * बाण विद्ध शोणितसन भरी ॥४॥

अब वह कथा सुनो जो लक्ष्मणजीके बाणसे भेजी गई पक्षीकी नाईं मेघनादकी भुजा गयी ॥ ३ ॥ वह बाणसे बिंधी, शोणितसे भरी हुई मेघनादके आंगनमें पड़ी ॥ ४ ॥

राजति तहाँ सुलोचनि वैसी * रतिते रुचिर रूप गुण जैसी ॥५॥
नागसुता दशकन्ध-पतोहू * वासव रिपुतिय छबिखनि जोहू ॥६॥

वहां रतिसे भी अधिक सुन्दर रूप; गुणवाली सुलोचना बैठी थी ॥५॥ यह नाग (वासुकी) की कन्या और रावणकी पतोहू तथा मेघनादकी स्त्री थी; सुन्दरताकी खान थी ॥ ६ ॥

हेम सिंहासन सोहति बाला * सेवति विद्याधरि त्रय काला ॥७॥
पूजत विविध विनय करि ताही * सुख प्रमोद को सकत सराही ॥८॥

यह बाला सोनेके सिंहासनपर बैठी शोभित होती थी तीनों कालोंमें विद्याधरोंकी स्त्रियां सेवा करती थीं ॥ ७ ॥ अनेक प्रकारकी विनती कर इसे पूजती थीं, उसका सुख और आनंद कौन कह सकता है ॥ ८ ॥

तहँ पतिभुजा परी इहि भाँती * मनहुँ सकल सुखतरुकी काँती ॥९॥

वहां मेघनादकी भुजा इस प्रकारसे पड़ी थी, जैसे सब सुखके वृक्षकी कांति हो ॥ ९ ॥

दोहा—तब निजदासिन्ह देख तहँ, शोणित स्रव भुजदण्ड ॥
भयउ समर आश्चर्य मय, मनहुँ अखण्डन खण्ड ॥ ११२ ॥

तब उसकी दासियोंने रुधिर चुवाते हुए भुजदंडको देखा और कहने लगीं कि आश्चर्यमय समर हुआ, जिससे अखण्डका भी खण्ड हुआ दीखता है ॥ ११२ ॥

सुनिकर सकल सखीमुख बैना * तजि सिंहासन उठी सुनैना ॥१॥
प्रेम सुभाय धुकधुकी धरकी * सूचक अशुभ दहिन भुज फरकी॥२॥

सब सखियोंके मुखसे वचन सुन सिंहासन छोड़कर सुलोचना उठी ॥१॥ प्रेमके स्वभावसे सुलोचनाकी धुकधुकी धड़की, अशुभ सूचक दाहिनी भुजा फड़कने लगी ॥ २ ॥

होत महारण रावण रामहिं * वीरधुरीण मोर पियतामहिं ॥३॥
सकल सुरासुर सकहिं न जूझी * विधि वामता परत नहिं बूझी ॥४॥

मनमें शोचने लगी, रावण और राममें महायुद्ध होता है, मेरे वीरधुरीण स्वामी भी उसी युद्धमें हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि स्वामीसे सम्पूर्ण देवता राक्षस कोई नहीं लड़ सकते, पर वाम विधाताकी गति जानी नहीं जाती ॥ ४ ॥

इतना कहति गई चलि आपू * पतिभुज लखि कर कोटि विलापू॥५॥
कंकण मणि गण भूषण सोई * महाविटप सम आन न होई ॥६॥

इतना कहकर सुलोचना आप ही चली गयी और पतिकी भुजा देख बहुत विलाप करने लगी ॥ ५ ॥ यह कंकण तथा मणियोंसे जटित भूषणयुक्त महावृक्षके समान मेरे पतिकी ही भुजा है, दूसरेकी नहीं ॥ ६ ॥

देखत मनहिं न आवत तेही * तासु प्रभाव सुना पहिले ही ॥७॥
नींद नारि भोजन परिहरई * बारह वर्ष तासु कर मरई ॥८॥

परन्तु देखकर भी पतिके मरनेका विश्वास नहीं होता था; क्योंकि उसके प्रभावको पहिले ही से जानती थी ॥ ७ ॥ जो बारह वर्ष तक नींद, नारी और भोजन त्याग देगा उसीके हाथसे मेघनाद मरेगा ॥ ८ ॥

दोहा-करि विचार मन टेक दै, मैं पति देवत नारि ॥
भुज लिखि मेटहु दुचितई, सुनि कर दीन पसारि ॥ ११४ ॥

फिर यह विचार मनमें दृढ़ किया कि मैं पतिव्रता स्त्री हूँ तो यह भुजा लिखकर मेरा सन्देह मिटा दे, यह सुनकर हाथ फैल गया ॥ ११४ ॥

लखि रुख तासु सखी उठि धाई ❋ सो तहँ खोजि खरी लै आई ॥१॥
दीन हाथ मणिमय अँगनाई ❋ लिखत लषण कीरति रुचिराई ॥२॥

उसका रुख देखकर सखी उठकर चली और ढूँढ़कर खरिया ले आयी ॥ १ ॥ वह हाथमें घर दी, तब हाथ मणिके आंगनमें लक्ष्मणजीकी रुचिर कीर्ति लिखने लगा ॥ २ ॥

नींद नारि भोजन शत कोटी ❋ तजत तासु महिमा अति छोटी ॥३॥
अक्षय अखण्ड अलख अविनाशी ❋ अकुल अमित घट घटके वासी ॥४॥

जो नींद, नारि, भोजन सौ करोड़ वर्ष त्याग दें तो भी उनकी महिमा अत्यन्त छोटी है ॥ ३ ॥ वह अक्षय, अखंड, अलख तथा अविनाशी हैं अप्रमेय और सबके अन्तरमें वास करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

प्रगटहिं पालहिं पुनि संहरहीं ❋ त्रिगुण रूप त्रय मूरति धरहीं ॥५॥
जो कालहुकर काल भयंकर ❋ वर्णत शेष शारदा शंकर ॥६॥

जो उत्पत्ति, पालन, संहार करनेके लिये त्रिगुण (सत्व, रज, तम) से विष्णु, ब्रह्मा तथा शिवरूपी तीन मूर्ति धारण करते हैं ॥ ५ ॥ जो कालके भी भयंकर काल हैं, ऐसा-शेष सरस्वती और शिवजी वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

लीला तनु सुर-सेवक हेतू ❋ जासु नाम भवसागर-सेतू ॥७॥
मुनिमन पुण्डरीक जाको घर ❋ वचन विवेक विचार बुद्धिपर ॥८॥

जो देवता सेवकोंके निमित्त लीलासे शरीर धारण करते हैं, जिनका नाम भवसागर पार करनेको सेतु है ॥७॥ कमलरूपी मुनियोंका जो मन है वही उनका निवास स्थान है, जो ज्ञान विचार तथा बुद्धिमें कठिनतासे आते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-कोटि कल्प वर्णत निगम, अगम जासु गुणगाथ ॥
तम शरीर जड़ जीव बिनु, किमि वर्णइ लिखि हाथ ॥ ११५ ॥

जिनके गुणोंकी कथा शास्त्र करोड़ों कल्प वर्णन करके भी नहीं पा सकते उनके गुण यह जड़ शरीर प्राण विना केवल हाथसे लिखके कैसे वर्णन कर सकता है ? ॥ ११५ ॥

मम शिर गयो दरश रघुराई ❋ तव प्रतीति लगि भुजा पठाई ॥१॥
इहि विधि लिखेउ सकल भुजबाता ❋ परी भूमि तब अति बिलखाता ॥२॥

मेरा शिर रघुनाथजीके पास गया, तेरी प्रतीति (विश्वास) के निमित्त भुजा भेजी है ॥ १ ॥ इस प्रकार भुजाने सब बातें लिखीं, तब व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २ ॥

बांचि सकल भुजलिखित यथारथ ❋ लक्ष्मण राम नाम परमारथ ॥३॥
नारि स्वभाव तदपि बहु भाँती ❋ विलपहि मिलि सखियनकी पाँती ॥४॥

सब भुजाका लिखा यथार्थ बांचकर राम लक्ष्मणके नामकी परमार्थता पढ़कर भी ॥ ३ ॥ स्त्रीके स्वाभाविक धर्मसे बहुत प्रकार सखियोंके मध्यमें विलाप करने लगी ॥ ४ ॥

गुणगण साहस शील नाहको * कहि रोवति बल बिपुल बांहको ॥५॥
जेहि भुजबल सुरनाथ बिगोवा * सो भुज आजु समरमहि सोवा ॥६॥

सुलोचना स्वामीके गुणसमूह, पराक्रम, शील, विशेष बाहुबल वर्णन कर रोने लगी ॥५॥ हाय ! जिस भुजाके बलसे इन्द्र भाग गया था, वह भुजा आज समरभूमिमें पड़ी है ॥६॥

मणिगण भूषण वसन विसारति * महि लोटति करतल शिर मारति॥७॥
मगन शोकसरि तनु सुधि नाहीं * दारुण विपति कहिय केहि पाहीं॥८॥

मणिसमूह, गहने, वस्त्र त्यागने लगी, पृथ्वीपर लोटने तथा शिर पटकने लगी ॥ ७ ॥ शोकरूप नदीमें डूब गयी; शरीरकी सुध न रही, महाविपत्तिको किससे कहे ? ॥ ८ ॥

छिनक प्रबोध सखी कोउ करई * बहुरि शोक दावानल जरई ॥९॥
क्षण क्षण उठति परति धरणी पर * पुनि रोवहि सराहि पतिकर बल॥१०॥

तनक देरको सखीके समझानेसे कुछ ज्ञान होता है परन्तु वह फिर दुःखकी आगमें जलने लगती है॥९॥क्षण क्षणमें उठती और पृथ्वीपर गिरती है,फिर पतिका बल बखान कर रोती है ॥१०॥

दोहा-तिनमें सखी सयानि इक, कहि समुझाई बैन ॥
शोक छांड़ि पति देवता, सुमति करौ मति ऐन ॥ ११६ ॥

उनमें चतुर सखी समझाके कहने लगी-हे पतिव्रते ! शोक त्याग करो और उचित कार्य का सम्पादन करो, क्योंकि तुम तो बुद्धिमती हो ॥ ११६ ॥

सुनि कह सहसानन तनु जाता * सत्य कहति तुम सखी सुमाता ॥१॥
विधि निर्मित मोकहँ दुख लाहू * सुख परिपूर भवन सब काहू ॥२॥

नागसुता यह सुन कर बोली-हे अच्छी माता सखी ! तुम सत्य कहती हो ॥१॥ यह दुःख प्रारब्धसे मुझको प्राप्त हुआ है, यद्यपि सब वस्तु और सुखसे मेरा घर पूर्ण है ॥ २ ॥

विजय राम लक्ष्मण कहँ आवा * सुयश सकल मर्कट कुल पावा ॥३॥
कुलकलंक बहु लहेउ विभीषन * कुलकुठार अस सुनेउ न दीख न॥४॥

परन्तु अब विजय (जीत) तो राम-लक्ष्मणकी हुई और सुयश सब वानरोंने पाया ॥३॥ विभीषणने कुलमें अत्यन्त कलंक पाया; ऐसा कोई कुलकुठार (कुलका काटनेवाला) देखा सुना भी नहीं ॥ ४ ॥

छूटि बंदि अब सुरगण केरी * निज निज पुरन दुहाई फेरी ॥५॥
मुनि पुलस्त्यकर भा कुल नाशा * अब रवि शशि सुख करहिं प्रकाशा॥६॥

अब देवताओंकी बन्दी छूट गयी, उन्होंने अपने पुरोंमें अपने अपने राज्यकी दुहाई फेर दी ॥५॥ पुलस्त्य ऋषिके कुलका नाश हुआ, अब सूर्य चन्द्रमा सुखपूर्वक प्रकाश करेंगे ॥ ६ ॥

तेजवन्त पावक परिहरि दुख * बहिहि समीर आजु अपने सुख ॥७॥
सलिल गंग निर्मल जल आजू * स्ववश बसिहि सुरनायक राजू ॥८॥

अग्निदेवका दुःख गया अब वे तेजयुक्त हो जायँगे, आज पवन भी स्वच्छन्द चलेंगे ॥७॥ आज गंगाका जल निर्मल होगा तथा इन्द्र अपने राज्यमें स्वच्छन्द विहार करेगा ॥ ८ ॥

दोहा–यम कुबेर दिगपाल सब, प्रमुदित सुर नर नाग ॥
खाय अघाय विहाय दुख, पाय सुयज्ञ विभाग ॥ ११७ ॥

आज यम कुबेर आदि दिक्पाल; देवता, नर, नाग सब प्रसन्न होकर दुःख त्याग अच्छे प्रकारसे भोजन कर यज्ञभाग पाके प्रसन्न होंगे । मेघनादके भयसे बन्दी होनेके कारण देवता यज्ञभाग नहीं ग्रहण कर सकते थे ॥ ११७ ॥

इतना कहि मन्दिर महँ आई * देखत मणिगण धन बहुताई ॥१॥
सुरपति भवन सुपटतर नाहीं * जहँ ऋद्धि सिधि तनु धरे कमाहीं ॥२॥

इतना कह मन्दिरमें आयी जहां कि मणिगण धन बहुत भरा था ॥ १ ॥ इन्द्र भवन भी जिसके समान नहीं था जहां शरीर धारे ऋद्धि सिद्धि काम करती थीं ॥ २ ॥

देखत विभव न मन अनुरागा * पतिपद प्रेम निपुण मन पागा ॥३॥
देत दान मणि भूषण चीरा * धेनु धरणि गज हाटक हीरा ॥४॥

वह विभव देख कर भी उसे धनसे अनुराग नहीं हुआ केवल पतिके ही चरणोंमें मन लगा ॥ ३ ॥ मणि, भूषण, वस्त्र, गाय, पृथ्वी, गज, सुवर्ण, हीरे दान करने लगी ॥ ४ ॥

मणिमय शिबिका रचेउ सुहाई * भुज चढ़ाइ पहिराइ बनाई ॥५॥
आपुन चढ़ति भई पुनि आई * सुर दुर्लभ सुखसदन विहाई ॥६॥

मणियोंसे जड़ी हुई सुन्दर पालकी बनाके उसपर भुजाको सजाकर चढ़ाया ॥ ५ ॥ फिर आप भी उस पालकी पर चढ़ी देवताओंके दुर्लभ सुखवाले घरको त्याग दिया ॥ ६ ॥

वीतराग जिमि तजत विषय गन * तेहि तस भांति दियो पतिपद मन॥७॥
शुक सारिका सुलोचनि ज्याये * कनक पींजरन्ह राखि पढ़ाये ॥८॥

जैसे विरागी विषयोंको त्याग देते हैं उसी प्रकार सबको त्याग उसने पतिके चरणोंमें मन लगाया ॥७॥ जो तोता मैंना सुलोचनाने पाले थे और सोनेके पिंजरेमें रख के पढ़ाये थे ॥८॥

व्याकुल कह कहँ जाति सुनयना * सुनि धीरज परिहरत सुबयना ॥९॥
भये विकल खग मृग यहि भांती * अपर दशा कैसे कहि जाती ॥१०॥

वे व्याकुल हो कहने लगे, सुलोचना ! कहां जाती है ? उनके वचन सुनकर धैर्य छूट जाता था ॥९॥ जब इस प्रकार खग मृग व्याकुल हो गये तो औरोंकी दशा क्या कही जाय ? ॥ १० ॥

प्रजा लोग गृह तजि सँग लागे * प्रेम उमँगि लोचन जलपागे ॥११॥

प्रजा लोग भी घर त्याग संग हो गये; प्रेमके मारे नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ११ ॥

दोहा–बाजन लगे निशान बहु, ढोल दुन्दुभी भेरि ॥
पुरजन परिजन संग सब, चले पालकी घेरि ॥ ११८ ॥

अनेक निशान, ढोल नगाड़े भेरी बजने लगीं; नगरवासी और कुटुम्बी पालकी घेरकर चले ॥ ११८ ॥

देखि भीरि दशकन्धर द्वारे ❋ सजग भये सब वीर प्रचारे ॥१॥
जानेउ कटक रिपुनकर आवा ❋ अस्त्र शस्त्र कर गहि कर धावा ॥२॥

रावणके द्वारपर भीड़ देखकर सब वीर सावधान हो ललकारने लगे ॥ १ ॥ यह जाना कि शत्रुका कटक आ गया, अस्त्र शस्त्र हाथमें लेकर दौड़े ॥ २ ॥

धनु चढ़ाय कटि तरकस बाँधे ❋ कोउ असि चर्म शरासन साधे ॥३॥
तोमर परशु प्रचण्ड गदा गहि ❋ रोषन चोखे शूल शक्ति लहि ॥४॥

धनुष चढ़ा कमरमें तरकस बांधा, किसीने तलवार ढाल सँभारा ॥ ३ ॥ कोई तोमर, फरसा, प्रचण्ड गदा, तीक्ष्ण शूल, शक्ति लेकर क्रोधसे भरे खड़े हो गये ॥ ४ ॥

मारु मारु धरु धरु कहि धाये ❋ प्रगट दशानन विजय सुनाये ॥५॥
गर्जत तर्जत गिरा गँभीरा ❋ समर भयंकर निशिचर बीरा ॥६॥

मारो २ पकड़ो २ कहकर दौड़ पड़े रावणकी जय पुकारने लगे ॥ ५ ॥ गम्भीर वाणीसे गर्जते ललकार करते युद्धके पराक्रमी समरमें बड़े भयंकर राक्षस चले ॥ ६ ॥

निपटहि निकट पालकी आई ❋ चीन्हि सकल भट रहे लजाई ॥७॥
देखि जुहारि नागपति कन्या ❋ सती शिरोमणि त्रिभुवन धन्या ॥८॥

जब बहुत ही समीप पालकी आ गयी तो सब योद्धा अपना दल पहिचान कर लज्जित हुए॥७॥ तब तीनों लोकोंमें धन्य सतियोंमें उत्तम उस नागपतिकी कन्याको देखकर जुहार किया ॥८॥

दोहा-द्वारपाल दशकन्ध कहँ, खबरि जनाई जाय ॥
भयउ रजायसु बेगि ही, लेहुसु ताहि बुलाय ॥ ११९ ॥

द्वारपालने रावणको खबर दी-सुलोचना आई है,तब आज्ञा हुई कि उसे बुला लाओ॥११९॥

दोहा-तिहि अवसरहि सुलोचना, गही चरण शिर नाइ ॥
राखि भुजा घननादकी, करुणा वचन सुनाइ ॥ १२० ॥

उस समय सुलोचना चरण पकड़ शिर नवाकर मेघनादकी भुजा (रावणके) आगे धर करुणायुक्त वचन बोली ॥ १२० ॥

तुमहिं अछत असि दशा हमारी ❋ सुख तजि भई शोक अधिकारी॥१॥
नभ पथ होइ भुज मम गृह परी ❋ वाण विद्ध शोणित तनु भरी ॥२॥

तुम्हारे होते हुए हमारी यह दशा है कि, मैं सुख त्यागकर शोककी अधिकारिणी हुई ॥१॥ आकाशमार्गसे होकर भुजा मेरे घरमें पड़ी, जो बाणोंसे बिंधी तथा रुधिरसे लिप्त है ॥ २ ॥

देखि भुजा मनमें अति डरी ❋ संशय जानि दीन्हि कर खरी ॥३॥
लिखी रामलक्ष्मण महिमा इन ❋ क्रम क्रमसों सब कथा कही तिन॥४॥

भुजा देख कर मैं मनमें बहुत डरी और सन्देह जानकर हाथमें खड़िया दी ॥ ३ ॥ इसने राम लक्ष्मणकी महिमा लिखी और क्रम क्रमसे उनकी सब कथा कही ॥ ४ ॥

ठगिसि रही बांचि गुणगाथा ❋ जरहुँ संग जो पावहुँ माथा ॥५॥
रण कबन्ध भुज मम गृह आई ❋ शिर तहँ गयउ जहाँ रघुराई ॥६॥

रघुनाथजीके गुणोंकी कथा बांचकर मैं ठगीसी हो रही; जो अपने पतिका शिर पाऊं तो जलकर मर जाऊँ॥ ५ ॥ धड़ लड़ाईमें, भुजा मेरे घरमें आयी और शिर वहां गया जहां रघुनाथजी हैं ॥ ६ ॥

करहु सो यतन मिलइ सो शीशा ❀ तुम समर्थ निशिचर कुल ईशा ॥७॥
सुनत कुलिशसम गिरा वधूकी ❀ जीवन आश दशानन मूकी ॥८॥

हे निशाचरपति रावण ! तुम समर्थ हो इससे अब वही यत्न करो जिससे शिर मिले॥७॥ वज्रके समान पुत्रवधूकी वाणी सुनकर रावणने जीने की आशा त्याग दी ॥ ८ ॥

तदपि धीर धरि करत प्रबोधा ❀ कह कोउ मोहि समान जग योधा॥९॥

तो भी रावण धैर्य धारण कर समझाने लगा, कि कह जगत्‌में मेरे समान योद्धा कौन है॥९॥

दोहा–राम लषण सुग्रीव नल, नील द्विविद हनुमन्त ॥
माथ विभीषण ऋषभकर, आनब मारि तुरन्त ॥ १२१ ॥

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, हनुमान्, विभीषण और ऋषभका माथा अभी मारकर लाऊँगा ॥ १२१ ॥

अब लगि रहेउ भरोसा भारी ❀ कुम्भकरण घननाद सुरारी ॥१॥
महूँ आजु लगि कीन्ह न जूझा ❀ इन सब कर पुरषारथ बूझा ॥२॥

अबतक तो चित्तमें बड़ा भरोसा था कि कुम्भकर्ण और मेघनादसे कुछ होगा ॥ १ ॥ मैंने इसी कारण आजतक संग्राम नहीं किया, इन सबका पुरुषार्थ देख लिया ॥ २ ॥

मरे सो नर वानरके मारे ❀ बात सुनत अति लाज हमारे ॥३॥
गिनती कवनि वीरमें तिनकी ❀ अतिदुर्दशा कीन्ह कपि जिनकी॥४॥

सो वे तो मनुष्य और वानरोंके मारे मर गये, जिनकी बात सुनकर हमें लाज लगती है ॥३॥ क्या उनकी वीरोंमें गिनती हो सकती है जिनकी वानरोंने यह दुर्दशा कर दी ? ॥ ४ ॥

तजहु शोक कुलवधू पतोहू ❀ उन समान जनि मानसि मोहू ॥५॥
पुत्रि विलम्ब करौ घटि चारी ❀ देखहु मोर पराक्रम भारी ॥६॥

हे कुलवधू पतोहू ! शोक त्याग दे और उनके समान मुझे मत जान ॥ ५ ॥ हे पुत्री ! चार घड़ी विलम्ब कर; मेरा भी संग्राममें घोर पराक्रम देख ले ॥ ६ ॥

आनि शीश तव शत्रुन केरा ❀ बिनु प्रयास नहिं लागिहि बेरा ॥७॥
भोगत जन्तु पुराकृत भोगा ❀ नतु कस निशिचर वनचर योगा॥८॥

तेरे शत्रुओंका शिर विना प्रयास काटकर ले आऊँगा, इसमें तनिक भी देर न लगेगी॥७॥ प्राणी अपने पूर्वकालके भोगोंको भोगता है, नहीं तो क्या भला राक्षसोंको वानर मारें ॥८॥

दोहा–मेरु उखारनहार जे, धरा धरत कर बीच ॥
ते भट खाये मशक शिशु, काल कुटिलता नीच ॥ १२२ ॥

जो सुमेरुको उखाड़नेवाले तथा पृथ्वीको धारण करने वाले थे उन योद्धाओंको मच्छर सदृश वानरोंने खा लिया, कालकी गति नहीं कही जाती ॥ १२२ ॥

क्रोधावेश घोर रव बोलहि * हृदयशोक तरुअचल न डोलहि॥१॥
समाधान नहिं मानत सोई * सुनि प्रताप परितोष न होई ॥२॥

यह सुन क्रोधसे अधीर हुई सुलोचना कहने लगी, क्योंकि उसके हृदयमें शोकरूपी अचल वृक्ष जम गया है ॥ १ ॥ रावणके किसी समाधानको नहीं मानती और वृथा प्रताप सुनकर उसके मनमें संतोष नहीं होता ॥ २ ॥

नर वानर पुरुषारथ देखत * बड़ो प्रभाव छोट करि लेखत ॥३॥
कूदि सिंधु कपि लंका जारी * लघुकरि मानत ताहि सुरारी ॥४॥

हे महाराज ! नर वानरोंके पुरुषार्थ देखकर भी आप बड़े प्रभाववालोंको छोटा करके मानते हो ॥ ३ ॥ जिसने सागर लांघ कर लंका जलायी उसे भी तुम छोटा करके जानते हो ? ॥४॥

कुम्भकरण अति काय महोदर * मम पति गिरेउ समेत सहोदर ॥५॥
ते रिपु चहत दशानन जीती * देखहु महामोहकी रीती ॥६॥

कुम्भकर्ण, अतिकाय, महोदर और मेरा पति भी अपने भ्राताओं सहित जूझ गया ॥५॥ हे रावण ! उन शत्रुओंको तुम जीतना चाहते हो ? तुम्हें बड़ा मोह (अज्ञान) है ॥ ६ ॥

उतर देउँ तौ पातक होई * अब विवाद करि सर्वस खोई ॥७॥
फिरइ राज्य कछु मोहिं न काजू * विन पिय सकल नरक कर साजू॥८॥

और अब जो उत्तर दूँ तो पातक होगा, विवाद करनेसे सर्वस्व जाता रहता है ॥७॥ चाहे अब राज फिर आवे पर मुझे कुछ काज नहीं, बिना पतिके सब सुख नरकका साज है ॥८॥

दोहा-तुरतहि उठी सुलोचना, गइ मयतनया पास ॥
पद गहि रोवत सकल कहि, प्रगट शोक इतिहास ॥ १२३ ॥

सुलोचना यह कहकर तुरंत उठी और मन्दोदरीके पास, चरण पकड़ कर रो रो अपना सब शोकका इतिहास (कथा) सुनायी ॥ १२३ ॥

आदिहिं ते सब कथा बखानी * सुनि सुनि रोवत रावण रानी ॥१॥
कह निज पतिभुजलिखनि बहोरी * राम लषण महिमा नहिं थोरी ॥२॥

प्रथमसे ही सब कथा बखान की, जिसे सुनकर मन्दोदरी रोने लगी ॥ १ ॥ फिर अपने स्वामीके हाथकी लिखी बात सुनायी, जिसमें राम और लक्ष्मणकी बड़ी महिमा थी ॥ २ ॥

कहेउ बहुरि दशकंधर क्रोधा * मुये विडम्बन कीन्हेसि बोधा ॥३॥
सुनि निज पुत्रवधूकी बानी * बोली दुखित मन्दोदरि रानी ॥४॥

फिर रावणका क्रोध करना सुनाया, जो कि मरे पीछे समझना विडबना मात्र है, ऐसा ज्ञान रावणने मुझे सुनाया ॥३॥ अपने पुत्रवधूकी वाणी सुनकर मन्दोदरी दुःखी होकर बोली ॥४॥

कहौं सो मानहु सत्य सयानी * सुनि जो नारद मुनिकी बानी ॥५॥
पाछिल बात भई सब साँची * अनुभव कीन्ह न एकहु बाँची ॥६॥

हे चतुर वधू ! जो मैं कहती हूँ उसे सत्य मानो कि जैसा कुछ नारद मुनिने कहा है॥५॥ उससे पिछली बात तो सब सत्य हुई,अनुभव कर देख लिया,एक भी होनेसे शेष नहीं रही॥६॥

देवि न होय मृषा ऋषिभाषित * अपने महा मोह मन राखित ॥७॥
आगिलि कथा समास समेता * सुनहु पुत्रि ऋषि वर्णउ जेता ॥८॥

हे वधू ! नारदका कहा झूठा नहीं होगा, चाहे मनमें कैसा हो महा मोह धारण करो, वा उस बातको मनमें रख लेना अज्ञान है ॥ ७ ॥ हे पुत्री ! अगली कथा संक्षेपसे कहती हूँ मन लगाकर सुनो, नारदजीने कही है ॥ ८ ॥

वैर भाव दशकन्धर जूझहि * प्राणहु गये नीति नहिं बूझहि ॥९॥
सिया शोक संकटसे छूटहिं * वानर भालु राज्य घर लूटहिं ॥१०॥

वैर भावसे रावण जूझ जायगा, प्राण जानेसे भी नीति नहीं वर्तेगा ॥९॥ जानकी शोक-संकटसे छूट जायँगी; रीछ वानर राज्य घर लूटेंगे ॥ १० ॥

सुरमणि भूषण वसन विमाना * भोग करहिं वनचर कुल नाना ॥११॥

देवताओंके मणि, गहने, वस्त्र विमान इन सबको वनचर समूह भोग करेंगे ॥ ११ ॥

दोहा-राज्य विभीषण पाइहैं, अमर कल्प निर्वाह ॥
भावीवश दुःख सुख जगत, उपदेशिय कहु काह ॥ १२४ ॥

विभीषण कल्पतक अमर राज्य करेंगे, होनहारके वशसे जगत्में सुख दुःख है कोई किसी को उपदेश देकर क्या कर सकता है? अर्थात् यह समयसबको कर्माधीन कर भ्रमण कराता है।१२४।

मुनिवर वचन मोहिं परतीती * अनुभव दोउ हार अरु जीती ॥१॥
अब पुत्री परिहरि सब शोका * पति सँग वेगि साधु परलोका ॥२॥

नारदजीके वचनों पर मुझे विश्वास है; हार जीत दोनोंका अनुभव होता है ॥ १ ॥ अब हे पुत्री ! सब शोक त्यागकर पतिके सङ्ग शीघ्र परलोक साधन करो ॥ २ ॥

जाहु रामपहँ पतिशिर लागी * तजि संकोच आनु किन मांगी ॥३॥
आज न होय लाज तव भूषण * समय हीन गुण गनिय न दूषण ॥४॥

पतिके शिरके लिये रघुनाथजीके निकट जाओ,संकोच त्यागकर शीश मांगकर लाओ॥३॥ आज भूषणरूपी लाज करनेका समय नहीं है,समयके फेरमें दोष नहीं होता है, कर्तव्य करो॥४॥

है पुनि श्वसुर विभीषण तोरा * वालितनय बालकसम मोरा ॥५॥
एक-नारि व्रत रघुवर केरा * लषण सुयश तुम सुनेउ घनेरा ॥६॥

फिर विभीषण तुम्हारे श्वसुर हैं (अतः तुम्हें कोई कुछ न कहेगा) वालि और रावणकी मित्रता होनेसे अंगद मेरे पुत्र के समान हैं ॥ ५ ॥ रघुनाथजीका एक नारीका ही व्रत है, लक्ष्मणके यती होनेका विशेष वृत्तांत तुम सुन चुकी हो, किसी स्त्री को नहीं देखते इस कारण वहां जानेमें कुछ दोष नहीं ॥ ६ ॥

जाम्बवन्त मन्त्री सुग्रीवा * द्विविद मयन्द महाबल सींवा ॥७॥
जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता * शिवस्वरूप भवहर भगवन्ता ॥८॥

महाबली जाम्बवन्त, सुग्रीव, द्विविद, मयंद ये मन्त्री हैं; अर्थात् रघुनाथजीके रुखसे काम करते हैं ॥ ७ ॥ महावीरजीको ब्रह्मचारी जानो, वे शिवस्वरूप दुःखहारी भगवान् हैं ॥ ८ ॥

सदा नीतिरत राम नरेशा * तहां जात कहु कवन कलेशा ॥९॥
फिर महाराज रघुनाथजी सदा नीति युक्त कार्य करते हैं, तो कहो वहाँ जानेसे क्या क्लेश है ? ॥ ९ ॥

दोहा-विदित तोर पतिभुज लिखित, लक्ष्मण राम प्रभाव ॥
मैं हूँ ऋषि भाषित कहेउँ, अब विलम्ब जनि लाव ॥ १२५ ॥
और तेरे पतिकी भुजाने तो राम लक्ष्मणकी महिमा लिखी है वह तुझे विदित ही है और मैंने यह भी सब बात ऋषिकी कही हुई वर्णन की है, अब देर मत लगा ॥ १२५ ॥

सुनत सासु-मुखते हित बानी * जाहुँ रामपहँ अस जिय ठानी ॥१॥
बार बार चरणन शिर नाई * चली जहाँ लक्ष्मण रघुराई ॥२॥
सुलोचना मंदोदरीके मुखसे हितकर वाणी सुन कर विचारने लगी कि निश्चय रघुनाथजीके पास जाऊँ ॥ १ ॥ बार बार मन्दोदरीके चरणोंमें शिर नवाय रामचन्द्रके निकट चली ॥२॥

देखी कटक भालु कपि केरा * सिंधु सुबेल महीधर घेरा ॥३॥
उमँगे मनहुँ महोदधि दूसर * हरित पीत कपि धूमर धूसर ॥४॥
रीछ, वानरोंका कटक देखा कि सागरका किनारा और सुवेल पर्वत पूर्ण हो रहा है ॥३॥ मानो दूसरा समुद्र उमड़ रहा है । वानर हरे, पीले, धूम्र तथा धूसर रंगके हैं ॥ ४ ॥

भासत व्योम लाल अनुहेरी * मनहुँ लेत बड़वानल घेरी ॥५॥
गिरितरुधर भुज सहस भयंकर * जहँ तहँ प्रगट होहिं जनु जलधर॥६॥
उनसे रक्तपूर्ण आकाश बड़वानल अग्निके समान भासता है वह मानो चारों ओरसे घेर रहा है ॥ ५ ॥ पर्वत वृक्ष धरे हजारों भुजा मानो भयंकर बादल प्रगट हो रहे हैं ॥ ६ ॥

लक्ष्मण शेष सुअंक शीशधर * कटक जलधि सोवत राघववर ॥७॥
अक्षयवट तहँ बैठ विभीषन * अस सुकृती कहुँ सुने न दीखन ॥८॥
शेषरूपी लक्ष्मणकी गोदीमें शिर धरे सेनारूपी सागरमें सुन्दर रघुनाथजी सोते हैं ॥ ७ ॥ वहां अक्षयवटरूपी विभीषण यथायोग्य बैठे हैं, ऐसे पुण्यात्मा कहीं देखे सुने नहीं ॥ ८ ॥

दोहा-देखत डरति सुलोचना, धीरज धरति बहोरि ॥
महाराज रघुवीर कहँ, विनय सुनावहु मोरि ॥ १२६ ॥
सुलोचना देखते ही डर गयी और फिर धैर्य धरकर बोली कि महाराज रघुनाथजीको मेरी विनय सुनाओ ॥ १२६ ॥

वानर सकल उठे अस बोली * अरिपुरते आवत इक डोली ॥१॥
जानि परत रावण अब बूझा * भइ मति मेघनाद जब जूझा ॥२॥
उस समय वानर (प्रसन्न होकर) बोल उठे कि, भाई ! आज तो लंकासे डोली आती है ॥ १ ॥ विदित होता है कि रावणको अब कुछ समझ आ गयी, मेघनादके मरनेपर सुमति हुई ॥ २ ॥

हठ तजि सीतहिं दीन्ह पठाई * तजहु सोच अब मिटी लराई ॥३॥

जिहि लगि प्रगट कीन्ह पुर आगी॥ बांधेउ सेतु हेतु जिहि लागी ॥४॥

हठ त्याग कर रावणने जानकीजीको भेज दिया, अब सोच त्यागो, लड़ाई मिट गयी ॥ ३ ॥ जिसके निमित्त लंकामें आग लगायी जिसके कारण पुल बांधा ॥ ४ ॥

सोइ सीता अब बिनु श्रम पाई ॥ जानहु विधि अनुकूल सहाई ॥५॥
विजय राम सुग्रीवहि आवा ॥ सुयश वीर वानरकुल पावा ॥६॥

सो अब जानकी विना श्रमके पायी, विधाता हमारी सहायता पर अनुकूल है ॥ ५ ॥ राम और सुग्रीवकी जय रही, वीर वानरोंको सुयश मिला ॥ ६ ॥

विरह राम लक्ष्मण कर छूटा ॥ विन कलेश लंकागढ़ टूटा ॥७॥
युग युग कीरति चलब हमारी ॥ कहँ राक्षस कहँ लघु वनचारी ॥८॥

राम लक्ष्मणका दुःख छूटा (लक्ष्मण रघुनाथजीके दुःखसे दुःखी थे) विना क्लेश लंकागढ़ टूट गया ॥ ७ ॥ युग युगमें हमारी कीर्ति चलेगी कि कहां राक्षस कहां लघु वानर ? ॥ ८ ॥

दोहा–इहि विधि चारुविचार करि, निश्चय करि मनमाहिं ॥
भयउ काज रघुराज कर, बात दूसरी नाहिं ॥ १२७ ॥

वानरोंने इसी प्रकार सुन्दर विचार कर निश्चय कर लिया कि रघुनाथजीका कार्य हो गया दूसरी बात नहीं है ॥ १२७ ॥

पैठत कटक अतिहि सकुचाई ॥ नव नारी जनु पर घर जाई ॥१॥
आगे जाय देख रघुवीरा ॥ छबिमय श्यामल गौर शरीरा ॥२॥

सुलोचना कटकमें प्रवेश करते बहुत सकुचाती है जैसे नयी स्त्री अन्यके घर जाती हो ॥ १ ॥ आगे जाकर छबिके धाम श्याम और गौर शरीरवाले रघुनाथजी तथा लक्ष्मणजीका दर्शन किया ॥ २ ॥

मरकत कनक छबिहि जनु निंदत ॥ धन्य सुजन महिमाते विन्दत ॥३॥
मत्त–गयन्दशुण्ड भुजदण्डा ॥ धनुष बाण असि धरे प्रचण्डा ॥४॥

मरकत मणि और सुवर्णकी छबिको जिनका तन लज्जित करता है। जिन सुजनोंकी महिमा होती है अर्थात् जो महात्मा होते हैं वे उनको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ मतवाले हाथीके सूण्डके समान जिनके भुजदण्ड हैं जिनमें धनुष बाण और प्रचंड तलवार धारण कर रहे हैं ॥ ४ ॥

उर विशाल अतिउन्नत कन्धर ॥ कम्बु कंठ रेखा त्रय सुन्दर ॥५॥
दशन पाँतिकी कांति कहै को ॥ ललकत मन पटतरहि लहैको ॥६॥

विशाल छाती बड़े ऊँचे कंधे शंखकीसी गर्दन जिसमें तीन रेखाएँ शोभा देती हैं ॥ ५ ॥ दांतोंकी पंक्तिकी शोभा कौन कहे ? उपमा देनेको मन ललचाता पर किसे पा सकता है ॥६॥

देखत अधरनकी अरुणाई ॥ बिंबाफल बन्धूक लजाई ॥७॥
शुकतुण्डक नासिका लजाई ॥ थाकेउ कवि पटतरहि न पाई ॥८॥

होठोंकी लाली देखकर बिंबाफल (कंदूरी) और दुपहरियाका फूल लजाता है ॥ ७ ॥ नासिकाको देख तोतेकी नासिका लजाती है। कवि थक गये उपमा नहीं मिलती ॥ ८ ॥

दोहा-छबिमय गुणमय तेजमय, राम उदधि अवगाह ॥
जहाँ न पावत पार सुर, किमि बरणै कवि थाह ॥ १२८ ॥

छबिके खान गुणोंके सागर तेजस्वी रामचन्द्र गुण निधान हैं, जिनका पार देवता भी नहीं पा सकते, तो कवि क्या वर्णन करे ॥ १२८ ॥

भृकुटी ललित कपोल सुहाये * शीश जटाकर मुकुट बनाये ॥१॥
भाल विशाल तिलक युत सोहै * ध्यान समय मुनिमानस मोहै ॥२॥

सुन्दर भौंह, सुन्दर कपोल, शिरपर जटाके मुकुट बनाये हुए ॥ १ ॥ चौड़ा माथा, उसपर तिलक शोभित होता है; जिसके ध्यानसे मुनियोंका मन मोहित हो जाता है ॥ २ ॥

वलकल वसन तूण कटि बाँधे * कर शर सुभग शरासन काँधे ॥३॥
बीरासन आसीन कृपाला * नवपल्लव प्रसूनकी माला ॥४॥

पेड़ोंकी छालके वस्त्र पहने, कमरमें तरकस बांधे हाथमें सुन्दर बाण, कंधेपर धनुष धरे ॥ ३ ॥ बीरासनसे दयासागर बैठे हुए नये पत्ते और फूलोंकी माला पहने हुए हैं ॥ ४ ॥

चरण सरोज बरणि नहिं जाई * मुनिमन मधुकर रहे लुभाई ॥५॥
प्रगट भई जेहि थलते गंगा * श्रुति पुराण कह कथा प्रसंगा ॥६॥

चरणकमलकी शोभाका वर्णन नहीं हो सकता, जहां मुनियोंके मन भौंरोंके समान लुभा जाते हैं ॥ ५ ॥ जिस स्थानसे गङ्गा प्रकट हुई हैं, यह कथा प्रसंग वेद और पुराण कहते हैं ॥ ६ ॥

नमत महेश विरंचि जाहिको * लोचन गोचर होत काहिको ॥७॥
जन आरति भञ्जन जो होई * भवसागर तारण कर सोई ॥८॥

जिनको शिव ब्रह्मा नमस्कार करते हैं वह भला किसीके नेत्रगोचर हो सकता है ? ॥७॥ जो मनुष्योंके दुःख दूर करनेवाले हैं वे ही भवसागरसे पार करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

दोहा-प्रणतपाल विरुदावली, जिन चरणनकी बानि ॥
शोक हरण संशय दलन, सकल सुमङ्गल खानि ॥ १२९ ॥

जिन चरणोंकी यह विरुदावली (बान) है कि सदा दीनोंको पालते हैं और शोक हरने वाले, संशय नाशक, सब सुमंगलोंकी खान हैं ॥ १२९ ॥

कर जोरे अङ्गद हनुमाना * द्विविद मयंद कुमुद बलवाना ॥१॥
जाम्बवन्त कपिपति बलशीला * ऋषभ सुषेण सहित नलनीला ॥२॥

अंगद और हनुमान् हाथ जोड़े खड़े हैं, बलवान् द्विविद, मयंद, कुमुद ॥ १ ॥ जाम्बवान्, बली सुग्रीव, ऋषभ, सुषेण नल-नील ॥ २ ॥

महावीर वानर सब राजत * लषण विभीषण दोउ दिशि भ्राजत ॥३॥
मितभाषी प्रभु चरण सुसेवक * चितवत रुख रघुनन्दन देवक ॥४॥

और महावीर आदि सब वानर विराजमान हो रहे हैं, लक्ष्मण और विभीषण दोनों ओर विराजते हैं ॥३॥ ये सब थोड़ा बोलने वाले प्रभुके चरणोंके सुन्दर सेवक रघुनाथजीका रुख देखते रहते हैं ॥४॥

सभा मध्य सोहत अघ-मोचन * कीन्हेउ सफल निरखि निज लोचन ॥५॥

करत दंडवत शिर धरि धरणी * तिहिकर चरित विभीषण बरणी॥६॥

सभाके बीच रामचन्द्रजी शोभित हैं, जिनका दर्शन कर सुलोचनाने अपने नेत्र सफल किये ॥ ५ ॥ और पृथ्वीमें शिर धरकर दंडवत् किया; तब विभीषणने उसका समाचार रघुनाथजीको सुनाया कि ॥ ६ ॥

पुत्रवधू दशकन्धर-केरी * बड़ि पतिव्रता जानि प्रभु हेरी ॥७॥
मेघनादकी नारि सुशीला * असिगत तव विरोध प्रणशीला ॥८॥

महाराज ! 'यह रावणके पुत्र मेघनादकी बहू बड़ी पतिव्रता है' यह सुन रघुनाथजीने उसकी ओर दृष्टि की ॥ ७ ॥ हे प्रणशील ! यह मेघनादकी सुशीला नारी है, आपसे विरोध करनेसे इसकी भी यही गति हुई ॥ ८ ॥

करत प्रणाम प्रेम नहिं थोरे * करुणा वचन कहति कर जोरे ॥९॥

सुलोचना बड़े प्रेमसे प्रणाम कर हाथ जोड़ करुणासे भरे वचन कहने लगी ॥ ९ ॥

दोहा-मृतक जानि पति भुजहिं जब, लिखि समुझाई मोहिं ॥
महाराज रघुवंश मणि, याचन आई तोहिं ॥ १३० ॥

महाराज रघुवंशमणि ! भुजाने जाकर मुझे आपकी महिमा और सब समाचार लिख कर समझाया है, तब पतिको मृतक जान मैं आपसे कुछ मांगने आयी हूँ। ऐसा कह कर॥१३०॥

छन्द-परशे चरण कर प्रेमपूरण प्रणतपाल खरारिके।
जिहि नमत शङ्कर शेष सुर मुनि धरणि भञ्जन भारिके ॥
प्रभु जानि सो विनता सुलोचनि कहति करि विनती घनी।
जय शोकहरण कृपालु जयजय जयति जय रघुकुलमनी ॥ १ ॥

सुलोचनाने अधिक प्रेमसे दीनोंके पालन करनेवाले खरारिके उन चरणोंको स्पर्श किया जिन चरणोंमें शिव, शेष, देवता और मुनि दंडवत् करते हैं जो पृथ्वीका भार दूर करनेवाले हैं, स्वामी जानकर वह विनीत सुलोचना अनेक विनय कर कहने लगी-हे शोक नाशक, दयालु, रघुकुलमें श्रेष्ठ ! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥

छन्द-प्रभु ब्रह्मरूप स्वभाव शीतल अतुलबल त्रिभुवनधनी।
जय हरणधरणी भार बाहु विशाल खण्डन खल अनी ॥
तव दीनबन्धु दयालु अपरम्पार सब गुण आगरे।
करुणानिधान सुजान शील सनेह सब सुख सागरे ॥ २ ॥

हे प्रभु ! साक्षात् ब्रह्मरूप, स्वभावसे शीतल; अपरिमित बली; तीनों लोकोंके धनी, पृथ्वीका भार हरनेवाले, बड़ी भुजायुक्त, दुष्टोंकी सेनाके नाशक हैं, आपकी जय हो। हे दीनोंके बन्धु दयासागर ! आपके गुण अपार हैं और आप सब गुणोंकी खान हैं। हे दया-निधि ! आप चतुर, शील, स्नेह और रूपसे उजागर हैं ॥ २ ॥

छन्द-षट अष्ट लोक जो रचत पालत प्रलय सो मायासुरी।
केहि भाँति बरणौं नाथ गुणगण नारि जड़ मति बावरी ॥

जे चरण ईश महेश शारद श्रुति निरन्तर ध्यावहीं।
हौं भूरिभाग्य सरोज रज सोइ हर्ष शिरसि लगावहीं ॥ ३ ॥

हे नाथ! जो माया आपकी आज्ञासे चौदह लोक रचती, पालती और नाश करती है (वह भी आपका पार नहीं पाती तो) मैं जड़ बुद्धि स्त्री आपके गुण समूह कैसे वर्णन कर सकती हूँ? हे ईश! जिन चरणोंका शिव, सरस्वती और शेषजी निरंतर ध्यान करते हैं, सो मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ जो उन चरण कमलकी धूरि हर्ष पूर्वक शिरपर धारण करती हूँ॥३॥

छन्द-निरखतयुगचरणं अशरणशरणं तारणतरणं भयहरणं।
जग कारणकरणं पोषणभरणं खलदलहरणं दुखटरणं॥
घनश्यामस्वरूपं अतिहि अनूपं सुरवरभूपं नररूपं।
जेहि निगम निरूपं अकल अरूपं कीन्ह कुरूपं नखशूपं ॥ ४ ॥

आपके दोनों चरण तो तारण तरण, अशरणके शरणदाता हैं, भय हरनेवाले हैं और जो जगत्के कारण, भरण पोषण करनेवाले, दुष्टोंके दलोंके मारनेवाले हैं तथा भक्तोंके दुःख हरनेवाले हैं (उन्हें देखकर मैं कृतार्थ हो गयी) आपका रूप घनश्याम स्वरूप अत्यन्त श्रेष्ठ सुखदायक नरराजाओंकासा है, आप देवताओंके पति हो परन्तु वेद उस रूपको अरूप कला रहित कहता है जिसने शूर्पणखाको कुरूप किया ॥ ४ ॥

छन्द-पीतांबर राजत अतिछबिछाजत तडित सुलाजत मुख भ्राजत।
सबके शिरताजत गरीब निवाजत सन्तनकाजत तनुसाजत॥
कटिसुभगसुहावनि सिंह लजावनि मुनिमन भावनि ललचावनि।
नाभीसुभगावनि अतिशय पावनि उपमा ना बनि छबिछावनि ॥५॥

आप पीतांबर पहरे, अधिक छबिसे छाये बिराजते हो, दुपट्टेकी शोभा देख बिजली लजाती है, आपका प्रकाशमान मुख है, सबके शिरताज, गरीब निवाज और संतोंके कार्य सँभालनेके लिये शरीर धारण करते हो सुन्दर पतली कमर सिंहको लजानेवाली, मुनियोंके मनको भावने वाली, ललचावनी है, सुन्दर नाभि बड़ी पवित्र जिसकी छबिकी उपमा कही नहीं जाती॥५॥

छन्द-अतिहृदय विशाला गल बनमाला तल मृगछाला है काला।
लोचन युगलाला भृकुटि विशाला दीनदयाला जनपाला॥
कुण्डलयुग काना सूर्यसमाना कर गहि ध्याना मनमाना।
कर धरि धनु बाना कृपा निधाना काम लजाना लखि बाना॥६॥

आपका विशाल हृदय, गलेमें वनमाला, बैठनेको काले मृगकी छाल दोनों नेत्र लाल और भौंहें बड़ी हैं। आप जनोंके पालक दीनदयालु हो, कानोंमें सूर्यके समान कुण्डल हैं जिनके ध्यानसे मन प्रसन्न होता है, हाथमें धनुषबाण लिये हो, कृपाके निधान हो, आपके वेषको देखकर काम लज्जित होता है ॥ ६ ॥

छन्द-मस्तक दिय चन्दन सिर जटबन्धन दशरथनंदन सुखवंदन।
द्विजसन्त अनंदन दुष्टनिकन्दन हरदुखद्वन्द्वन यमफन्दन॥

सुनि कीर्ति सुहाई शरणहिं आई सुन्दरताई मन भाई ।
दीजै रघुराई भक्ति सुहाई करिय सहाई सुखदाई ॥ ७ ॥

आपके मस्तक पर चन्दन विराजता है,शिरपर जटा बँधी है । दशरथ कुमार! आपको देवता वन्दन करते हैं,ब्राह्मण संतोंके आनंददायक, दुष्टोंके मारनेवाले, दुःखद्वंद्व यमके फंदोंके तोड़नेवाले हो; मैं आपकी सुन्दर कीर्ति सुनकर शरणमें आयी हूँ आपके रूपकी सुन्दरता मेरे मनमें बस गयी है । हे रघुराई ! अपनी श्रेष्ठ भक्ति दीजिये, सुखदायी ! सदा सहायता कीजिये ॥७॥

छन्द-गहि करबाणी शारंग पाणी सब गुणखानी रामबली ॥
सुरसुरभीरक्षक राक्षस भक्षक भक्तन रक्षक मान बली ।
मैं रिपुसुत नारी जानु अघारी अधिकारी नहिं दुखभारी ।
हरि विरह दवारी अति भयकारी सह बहुबारी दुखकारी ॥ ८ ॥

हे शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले ! सब गुणोंकी खान बलवान् रघुनाथजी ! मेरी विनयवाणी ग्रहण करो, हे देवता, गायोंके रक्षा करनेवाले ! राक्षसोंके मारनेवाले ! भक्तोंके रक्षक होकर उन्हें मान और बल देते हो, हे पापहारी ! मैं आपके शत्रुके बेटेकी स्त्री हूँ, आपकी स्तुति करनेकी अधिकारिणी नहीं हूँ मुझपर बड़ा दुःख पड़ा है, हे प्रभु ! स्वामीके वियोगकी अग्नि बड़ी भयदायक है, दुःखदायक है, बहुत सहली अब नहीं सही जाती ॥ ८ ॥

छन्द-तव शरणहि आई जन सुखदाई रघुराई करुणा सागर ।
पति मस्तक पाऊँ सँग जरि जाउँ शिरपाऊँ शोभा आगर ॥
पति मम तनुत्यागी अति बड़िभागी अनुरागी जिन मुक्ति लही ।
ममता किमि तासू वरणूं आसू जासु अचल जग पंक्ति रही ॥ ९ ॥
यहि विधि पदपंकज सेव्य रमा अज शिर नमि दोउ कर जोरि रही ।
सुनि पंकजलोचन वचन सुलोचन लोचन ते जलधार बही ॥ १० ॥

हे जनोंके सुखदाता ! दयाके सागर रघुनाथजी मैं आपकी शरण आयी हूँ । हे शोभाके स्थान ! यह इच्छा है कि जो मैं अपने पतिका मस्तक पाऊँ तो उसके संग जल जाऊँ, जिस मेरे पतिने शरीर छोड़ आपसे अनुराग किया वह बड़भागी है और आपका प्रेमपात्र है इससे उसकी मुक्ति हुई; फिर उसके साथ ममता करनेसे क्या लाभ है ? उसका वर्णन क्या करूँ जिसकी जगत्में अचल कीर्ति छा रही है ॥ ९ ॥ इस प्रकार आपके चरण कमल हैं, जिनको लक्ष्मी और ब्रह्मा सेवते हैं, यह कह कर शिर नवाके दोनों हाथ जोड़े रह गयी । कमलनेत्र रघुनाथजी सुलोचनाके वचन सुनकर अश्रुपूर्ण हो गये, नेत्रोंसे जलकी धारा बह निकली ॥ १० ॥

दोहा-अस प्रभु दीनबन्धु हरि, कारण रहित दयाल ॥
तुलसिदास शठ ताहि भजु, छांड़ि कपट जञ्जाल ॥ १२१ ॥

दीनोंके बन्धु भगवान् ऐसे हैं कि विना प्रयोजन ही हित करते हैं, तुलसीदास अपनेको कहते हैं कि हे मूर्ख ! प्रभुको सब कपट जाल छोड़कर तू भज ॥ १२१ ॥

तुम अन्तर्यामी भगवाना ❋ नहिं तव आदि मध्य अवसाना ॥१॥
करुणा वचन सुनत रघुवीरा ❋ पुलकरोम भये शिथिल शरीरा ॥२॥

सुलोचना बोली-भगवन् ! आप अन्तर्यामी हैं आपका आदि मध्य अन्त नहीं ॥ १ ॥ रघुनाथजी उसके यह करुणा वचन सुनकर पुलकित हो गये शरीर शिथिल हो गया ॥ २ ॥

देहुँ जियाय तोर पति आजू ❋ करु बसि लंक कल्प शत राजू ॥३॥
छाँड़ि शोच अब मन हर्षाहू ❋ तुरत भवन अपने फिरि जाहू ॥४॥

और प्रसन्न हो बोले अभी तेरे पतिको जिला देता हूँ, सौ कल्पतक लंकामें राज्य करो ॥ ३ ॥ अब शोच त्यागके मनमें प्रसन्न हो और शीघ्र अपने घर चली जाओ ॥ ४ ॥

सुनि असि सत्यसिंधुकी बानी ❋ मनमहँ वनचर अति भयमानी ॥५॥
कहि न सकत कछु प्रभुरुख देखी ❋ कहा करब करतार बिसेखी ॥६॥

यह सत्यप्रतिज्ञ रघुनाथजीकी वाणी सुन वनचरोंने बड़ा भय माना ॥ ५ ॥ कुछ कह नहीं सकते, प्रभुका रूख देखते हैं विशेष विचार करते हैं कि ईश्वर क्या करेगा ? ॥ ६ ॥

सब देवनकर शोच न जाई ❋ जौ करिकृपा राम इहि ज्याई ॥७॥

परस्पर कहने लगे-कदाचित् रघुनाथजी इसको कृपा कर जिला देंगे तो किसी देवताका शोच नहीं जायगा ॥ ७ ॥

दोहा-राज्य विभीषण लंककर, किहि विधि करिहहिं जाइ ॥
❋ समुझि वैर घननाद जब, गहहि शरासन धाइ ॥ १३२ ॥

विभीषण जाकर लंकाका राज्य किस प्रकार करेंगे ? जब वैर स्मरण कर मेघनाद धनुष लेकर सामने खड़ा होगा ॥ १३२ ॥

मुख रुख देखि कपिन भय माना ❋ प्रणत पाल भगवन्त सुजाना ॥१॥
देखि बहुत रघुबर कर छोहू ❋ विनय करति दशकन्ध-पतोहू ॥२॥

मुखका रूख देखकर वानर भयभीत हो गये और बोले-महाराज दीनोंकी पालनामें सावधान हैं ॥ १ ॥ रघुनाथजीकी अधिक कृपा देख सुलोचना विनय करने लगी ॥ २ ॥

तुम उदार सब देबे लायक ❋ करुणामय देखे रघुनायक ॥३॥
हमहुँ विचारि दीख मनमाहीं ❋ जीवन ते अस मरण सराहीं ॥४॥

हे महाराज ! आप बड़े उदार हो, सब कुछ दे सकते हो करुणासागर हो यह देख लिया ॥ ३ ॥ परन्तु मैंने भी मनसे विचार देखा कि ऐसे जीनेसे मरना अच्छा है ॥ ४ ॥

भुजबल जीति लोक वश कीन्हे ❋ चौदह भुवन भोग करि लीन्हे ॥५॥
रण तीरथ याचक बड़ चीन्हा ❋ प्राणसुधन लक्ष्मण कहँ दीन्हा ॥६॥

जिसने अपनी भुजाओंके बलसे लोकोंको जीतकर वशमें किया; चौदह भुवनोंका भोग किया ॥५॥ युद्ध तीर्थमें बड़े याचक लक्ष्मणजीको प्राणरूप सुन्दर धन दान कर दिया ॥६॥

अब न उचित पति दै उपहारा ❋ सबते अधिक सो दरश तुम्हारा ॥७॥
हमहूँ जाइ मरब सत साधी ❋ मिलब तुमहिं जस मिलत समाधी ॥८॥

अब यह उचित नहीं है कि पतिको उपहार (पुरस्कार) अर्थात् इनाममें फेर लूँ क्योंकि सबसे अधिक (लाभ) यह आपका दर्शन ही है ॥७॥ मैं भी अब सत साधकर मरूँगी और जैसे योगी समाधी लगाकर आपको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आपमें मिलूँगी ॥ ८ ॥

दोहा-निर्मल गति अवसर भयउ, सुनहु सत्य रघुवीर ॥
तुमहिं मिलत नहिं होय भव, यथा सिंधु गत नीर ॥ १३३ ॥

हे सत्यप्रतिज्ञ रघुनाथजी ! सुनिये, अब तो निर्मल गति(मुक्ति)का समय प्राप्त हुआ है आपमें मिल जानेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता,जैसे सागरमें गया हुआ जल फिर नहीं लौटता ॥१३३॥

मनकी जाननहार सुदेवा * भवसागर तारहु यहु खेवा ॥१॥
लीन्हेउ राम कपीश बुलाई * मेघनाद शिर दीन्ह मँगाई ॥२॥

हे सुदेव ! आप मनकी इच्छा जाननेवाले हो, यह मेरी भी नाव भवसागरसे पार करो ॥ १ ॥ यह सुन रामचन्द्रजीने सुग्रीवको बुलाकर मेघनादका शिर मँगा दिया ॥ २ ॥

पाय कृतारथ मानेउ आपू * पिया विरह संभव परितापू ॥३॥
अञ्चल पोंछत मुखकी धूरी * कहि मम प्राण सजीवन मूरी ॥४॥

शीश पाकर सुलोचनाने अपनेको कृतार्थ माना, परन्तु पतिवियोग सन्ताप फिर नवीन हो गया ॥३॥ हे मेरे प्राणजीवनमूरि ! यह वचन कहकर आंचलसे मुखकी धूरि पोछने लगी ॥४॥

देखि सँदेह कहत सुग्रीवा * भुज महि लिखा सो मोहिं नहिं सींवा ॥५॥
हँसिहहि वदन तो है है सांची * नातर निशिचर माया काँची ॥६॥

शिर देख सुग्रीवजी संदेह करने लगे, कि विना जीवके भुजाने पृथ्वीमें लिखा यह मुझे विश्वास नहीं ॥ ५ ॥ यदि विना जीवके शिर हँसे तो यह बात सत्य है नहीं तो यह झूठी राक्षसोंकी माया है ॥ ६ ॥

कह अस ज्ञान मृतक भुज गावा * जो मुनिवर साधन नहिं पावा ॥७॥
प्रभु अस कहेउ हँसब यह शीशा * करत कुतर्क न उचित कपीशा ॥८॥

जो ज्ञान मुनियोंको साधन करनेसे भी नहीं प्राप्त होता वह बात मृतककी भुजा कैसे लिख सकती है ? ॥ ७ ॥ रघुनाथजी बोले-सुग्रीव ! यह उचित नहीं, क्यों कुतर्क करते हो यह शिर हँस सकता है ॥ ८ ॥

दोहा-शिरसों कहति सुलोचना, हँसहु बेगि मम नाथ ॥
नातरु सत्य न मानिहैं, लिखा जो तुम्हरे हाथ ॥ १३४ ॥

तब सुलोचना अपने पतिके शिरसे बोली-हे मेरे नाथ । शीघ्र हँसो, नहीं तो तुम्हारे हाथके लिखनेकी प्रतीति न होगी ॥ १३४ ॥

क्षणक विलम्ब कीन्ह नहिं बोला * मृतक वदन मूँदत नहिं खोला ॥१॥
पुनि पुनि कहत सो नाग कुमारी * श्रमित भयउ रणमहँ करि मारी ॥२॥

क्षणमात्रका विलम्ब हुआ मृतकका मुख बन्द रहा बोला नहीं ॥ १ ॥ तब बारम्बार नागकुमारी कहने लगी-युद्धमें मार करके बहुत थक गये हो ? ॥ २ ॥

लगे लषण शर क्षोभ बढ़ावा * प्रभु समीप कस मोहि लजावा ॥३॥
जौ मन वचन कर्म यह देही * पति देवता न आन सनेही ॥४॥

लक्ष्मणके बाण लगनेसे क्षुभित हो प्रभुके समीप मुझे क्यों लजाते हो ? ॥ ३ ॥ जो मन, वचन, कर्मसे देहीके पति देवता हैं, और कोई स्नेही नहीं है ॥ ४ ॥

तौ प्रभु सभा बीच शिर बोलै * रहहि छाय जग सुयश अमोलै ॥५॥
जौ जानति तव असि गति सांई * बोलि पठावति पितहि सहाई ॥६॥

तो इस सभाके बीचमें शिर बोले जिससे कि जगत्में अमल यश विख्यात हो जाय॥५॥ स्वामी जो मैं जानती की तुम्हारी यह गति होगी तो सहाय करनेको अपने पिताको बुला लेती ॥६॥

सुनि तिय वचन हँसेउ तब शीशा * चौंके चकित भालु भट कीशा ॥७॥
हँसेउ ठठाय वदन सब देखत * विस्मय भयउ सकल जिहिं पेखत॥८॥

(तब पिताकी सहायतासे क्या ईश्वर जीते जाते ?) यही भाव समझ स्त्रीके वचन सुन कर शीश हँस पड़ा । योद्धा रीछ वानर चौंक पड़े ॥ ७ ॥ सबके देखते ही बड़े वेगसे शिर हँसा जिसने देखा सबको आश्चर्य हुआ ॥ ८ ॥

कुलिश समान सुनो नहिं जाई * रहेउ सो वदन बहुरि अरगाई ॥९॥
सकुचि कपीशहि तोषेउ नारी * बड़ आश्चर्य भयो वनचारी ॥१०॥

वज्रके शब्दके समान शिर हँसा, जो सुना न जाय, फिर वह मुख चुप हो गया ॥ ९ ॥ कपीशने सकुचाकर सुलोचनाकी बड़ाई की, वानरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १० ॥

पूछत कपिपति पद शिर नाई * कारण कौन हँसा शिर सांई ॥११॥
प्रभु कह सुनु सुग्रीव कपीशा * कारण कहहुँ हँस्यो जो शीशा॥१२॥

सुग्रीव रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर बोले-महाराज ! किस कारणसे यह शिर हँसा ? ॥ ११ ॥ तब प्रभु बोले-हे कपीश सुग्रीव ? सुनो मैं शिरके हँसनेका कारण कहता हूँ ॥ १२ ॥

मन क्रम वचन पतिहि सेवकाई * तियहित इहिसम अस न उपाई॥१३॥
अस जिय जानि करइ पतिसेवा * तिहिपर सानुकूल मुनि देवा ॥१४॥

मन, कर्म, वचनसे पतिकी सेवा करनी, स्त्रीको इससे अधिक कल्याण निमित्त कोई उपाय नहीं है॥ १३॥ऐसा जीमें जान जो स्त्री पतिकी सेवा करे उस पर सब देवता मुनि प्रसन्न रहते हैं ॥१४॥

यह सतवति अहिराज कुमारी * तेहि सतते हँसि शीश सुरारी॥१५॥
सुनि प्रभु वचन कपिन सुख माना * पुनिपुनि चरण गहेउ हनुमाना॥१६॥

यह नाग कन्या सत्यवती है इसके सत्यसे राक्षसका शिर हँसा ॥१५॥ यह रघुनाथजीका वचन सुन कपियोंने बड़ा सुख माना । महावीरजीने (प्रेमसे) बारंबार चरण गहे ॥ १६ ॥

सुनु गिरिजा असि प्रभु प्रभुताई * केवल भक्तहि देत बड़ाई ॥१७॥
जासु दृष्टि जग उपजत नाशा * अस कौतुक कर केतिक आशा॥१८॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! सुनो प्रभुकी प्रभुता है कि अपने भक्तोंको ही बड़ाई देते हैं॥ १७॥ जिसकी दृष्टिसे जगत्की उत्पत्ति और संहार होता है उसके सामने यह कौतुक क्या कुछ अधिक है॥ १८॥

दोहा–शीश पाइ प्रभु चरण गहि, बहु विधि विनय सुनाय ॥
आजुके दिन रण परिहरहु, मम हित कोशलराय ॥ १३५ ॥

सुलोचना शीश पाकर प्रभुके चरण गहकर अनेक विधिसे विनय सुनाकर बोली–हे कोशलपति ! आजके दिन मेरे कारण युद्ध मत करो ॥ १३५ ॥

बहुरि विभीषण पगन परी सो * रघुपति चरण दिये मन पुनि सो॥१॥
तुम पितु सम दशकन्धर भाई * इहि कुलकी तोहि लाज बड़ाई ॥२॥

फिर सुलोचना विभीषणके चरणोंमें पड़ी और फिर रघुनाथजीके चरणोंमें मन लगाया ॥ १ ॥ और बोली हे विभीषण ! तुम दशकंधरके भाई पिताके समान हो, इस कुलकी लाज बड़ाई तुम्हारे हाथ है ॥ २ ॥

मुनि पुलस्त्य परिवारके दीपा * पायेउ फल रघुबीर समीपा ॥३॥
महा मोहवश अनभल माना * ज्ञान भयो तव गुण पहिचाना ॥४॥

तुम पुलस्त्यकुलके दीपक हो, तपके बलसे रघुनाथजीकी समीपता पायी ॥३॥ महामोहके वशीभूत हो पुरुष अनभल मानता है, जब ज्ञान होता है, तब गुणोंकी पहचान होती है अथवा अज्ञान वश तुमसे बुरा माना था, अब ज्ञान होनेसे तुम्हारा गुण जाना ॥ ४ ॥

युग युग करहु अकण्टक राजू * सहित सुकीरति सुकृत समाजू ॥५॥
सुमिरत तुमहि सुजन गति पावै * रघुपति चरित संग करि गावै ॥६॥

तुम युगयुगमें अकंटक राज्य करो, कीर्तिसहित पुण्यरूप समाज बना रहे ॥ ५ ॥ हे सुजन ! जो तुम्हारा नाम स्मरण करेंगे और रघुनाथजीके चरित्रके साथमें तुमको भी गावेंगे उनकी भी गति हो जायगी ॥ ६ ॥

सुनत विभीषण मन करुणाभर * प्रगट न कहत समय विरहाकर॥७॥
काल कर्म गति कहि समुझाई * चली तुरत गुरु आयसु पाई ॥८॥

यह सुनते ही विभीषणके मनमें करुणा हो गयी विरह प्रकट नहीं किया, क्योंकि प्रगट करनेका समय नहीं था ॥ ७ ॥ सुलोचनाको यह कह कर समझाया कि यह सब काल और कर्मकी गति है, तब वह गुरु विभीषणकी आज्ञा पाकर चली ॥ ८ ॥

दोहा–बाहर करि कपि कटकते, फिरेउ विभीषण आप ॥
बिसरेउ दशमुख वैरही, हृदय अधिक संताप ॥ १३६ ॥

कपियोंके कटकसे बाहर कर विभीषण लौट आया । उस समय रावणका वैर बिसर गया और हृदयमें अधिक सन्ताप हुआ ॥ १३६ ॥

शिर चढ़ाय पालकी चढ़ी सो * रघुपति कृपा प्रभाव बढ़ी सो ॥१॥
हृदय राखि मूरति घनश्यामा * रसना रटति निरंतर नामा ॥२॥

वह शिर चढ़ाकर पालकी पर चढ़ी रघुनाथजीकी कृपासे उसका प्रभाव बढ़ गया ॥ १ ॥ वह घनश्याम मूर्ति हृदयमें धारण कर जिह्वासे निरन्तर नाम जपती चली ॥ २ ॥

सरित सिंधु संगम जहँ पावन * असि सुधि पाय गयो तहँ रावन॥३॥

संग मँदोदरि सब रनिवासू * मनहु शोक रवि कीन्ह प्रकासू ॥४॥

जहां लंकाकी नदी और सागरका पवित्र संगम था वहां सुलोचना गयी, यह सुध पाकर वहां रावण भी गया ॥ ३ ॥ संगमें मन्दोदरी आदि सब रनिवास था, मानो शोकके सूर्यका प्रकाश हो रहा है ॥ ४ ॥

पाय रजाय सुसेवक धाये * चन्दन अगर सुगंध बहु लाये ॥५॥
रचि दृढ़ दारुण चिता बनाई * जनु सुरलोक निसेनी लाई ॥६॥

दशकंधरकी आज्ञासे अच्छे सेवक चले और बहुतसे चन्दन और अगर भार लाये ॥५॥ सुन्दर दृढ़ चिता बनाई, मानो स्वर्गलोककी सीढ़ी है ॥ ६ ॥

करि प्रणाम सब जन परितोषी * धीरज धरसि तासु मति पोषी ॥७॥
शिरभुज धरि बैठी करि आसन * भइ जनु योग सिद्धि कर बासन ॥८॥

सुलोचनाने प्रणाम करके सबको सन्तुष्ट किया और उन सब स्त्रियोंने धैर्य धरकर उसकी मति दृढ़ की बहुत बड़ाई की ॥ ७ ॥ पश्चात् मेघनादका शिर और भुजा गोदीमें लेकर आसन मार कर बैठ गयी; मानो योग और सिद्धका भाजन (पात्र) हो गयी। अथवा जैसे योगी योग सिद्ध करके सिद्धिका स्वरूप बन गया हो ॥ ८ ॥

दोहा-देत अनल ज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगि धाय ॥
लखी न काहू जात तेहि, सुर पुर पहुँची जाय ॥ १३७ ॥

अग्नि संस्कार करते ही लपट बढ़ी, जो कि आकाश तक पहुँच गयी। उस सुलोचनाको जाते किसीने न देखा सुरपुर जा पहुँची ॥ १३७ ॥ इति क्षेपक

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुषविध्वंसने लंकाकांडे--विद्यावारिधि पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत-भाषाटीकायां सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

दोहा-यहि अष्टम विश्राममें, अहिरावण-कर नाश।
जेहि विधि कीन्हों पवन सुत, सो सब करहुँ प्रकाश ॥ ८ ॥

सुत वध सुना दशानन जबहीं * मूर्छित भयउ परेउ महि तबहीं ॥१॥
दुखित भयउ लोचन भरि आवा * जनु निजमणि अहिराज गँवावा ॥२॥

रावणने ज्योंही पुत्रवधकी यह कथा सुनी कि व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥१॥ बड़ा दुःखी हुआ, नेत्रोंमें जल भर आया, जैसे सर्पने मणि खो दी हो (यहां क्षेपक है) ॥ २ ॥

हा सुत संतत आज्ञाकारी * करि विलाप दशकंध पुकारी ॥३॥
शक्र आदि जीतेउ सब देवा * सुर मुनि वंदि करायहु सेवा ॥४॥

'मेरा पुत्र निरंतर आज्ञाकारी था' यह कह विलाप करके रावण रोने लगा ॥ ३ ॥ इन्द्र आदि सब देवता जीत लिये, मुनियोंको बंधनमें किया और सेवा भी करायी ॥ ४ ॥

दूसर रहा न भुजबल दापा * स्वर्ग भूमि तल तपेउ प्रतापा ॥५॥
इहि विधि करि विलाप लंकेशा * भयउ तेजहत सुनु उरगेशा ॥६॥

कोई पुत्रके बलके समान पृथ्वीमें नहीं हुआ, स्वर्ग और पृथ्वीमें प्रताप तपता था ॥ ५ ॥
हे गरुड़ ! सुनो, इस प्रकार रावण विलाप करता तेजहत हो गया (इति क्षेपक) ॥ ६ ॥

मन्दोदरी रुदन करि भारी ❋ उर ताड़ित बहु भाँति पुकारी ॥७॥
नगर लोग सब व्याकुल सोचा ❋ सकल कहहिं दशकन्धर पोचा ॥८॥

मन्दोदरी बहुत रुदन करके बहुत प्रकारसे पुकार कर हृदय पीटती है ॥७॥ नगरके मनुष्य सब व्याकुल होकर सोच करने लगे और कहने लगे कि रावण पोच (नीच) है ॥ ८ ॥

दोहा--तब दशकंध अनेक विधि, समुझाई सब नारि ॥
नश्वर रूप प्रपंच सब, देखहु हृदय विचारि ॥ १३८ ॥

तब रावणने सब नारियोंको अनेक प्रकारसे समझाया कि यह जगत् नश्वर (नाशवान्) है, हृदयमें विचार कर धैर्य धरो। "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" ॥१३८॥

तिनहिं ज्ञान उपदेशेउ रावन ❋ आपुन मन्द कथा शुभ पावन ॥१॥
पर उपदेश कुशल बहुतेरे ❋ जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥२॥

रावणने उन्हें ज्ञान सिखाया, परंतु अपनी वही मंद कथा रखी ॥ १ ॥ औरोंके उपदेश करनेमें तो सभी चतुर हैं और जो उसके आचरण करनेवाले हैं वे मनुष्य बहुत नहीं हैं ॥ २ ॥

तासु क्रिया करि निशिचर नाहा ❋ भयो शोचवश अतिउर दाहा ॥३॥
सचिव आय सब लगे बुझावन ❋ वादि विषाद करिय जनि रावन॥४॥

उसकी क्रिया करके रावण शोचके वशीभूत हो गया, हृदयमें बड़ा शोक हुआ ॥ ३ ॥ मन्त्री सब आकर समझाने लगे, हे रावण ! वृथा शोच क्यों करते हो (यहांसे क्षे०) ॥४॥

सुत बित नारि त्रिविध सुख कैसे ❋ उपजहिं छटा जाहिं नभ जैसे ॥५॥
तड़ित विदित देखी घन माहीं ❋ रहे न थिर तहँ तुरत छिपाहीं ॥६॥

बेटे, धन, स्त्रीका सुख ऐसा है कि होकर नष्ट हो जाता है जैसे आकाशमें घटा होकर नष्ट हो जाती है ॥५॥ यह जीवन ऐसा क्षणभंगुर है जैसे मेघमें बिजली स्थिर नहीं रहती ॥ ६ ॥

यहु जिय जानि सुनहु दशभाला ❋बचहि न कोउ जग आये काला॥७॥
अब प्रभु यतन विचारहु सोई ❋ रिपुकर नाश जवनि विधि होई ॥८॥

हे रावण ! यह जीमें जानकर विचार करो कि जगत्में काल आनेपर कोई बचेगा नहीं ॥ ७ ॥ हे प्रभु ! अब वही यत्न विचारो जिससे शत्रुका नाश हो (इति क्षेपक) ॥ ८ ॥

अथ क्षेपक

(अहिरावणकी कथा)

दोहा—लागे करन विचार पुनि, बहु प्रकार दशशीश ॥
समुझि हृदय अहिरावणहि, आयउ जहाँ गिरीश ॥ १३९ ॥

फिर अनेक प्रकारसे विचार करने लगा; हृदयमें अहिरावणको स्मरण कर जहां शिवजीका मन्दिर था वहां आया ॥ १३९ ॥

दण्ड चारि तब तहँ निशि बीती ❋ सन्ध्या वन्दन कीन सप्रीती ॥१॥
लागेउ करन ध्यान दशशीशा ❋ हर्षित करि सम्पुट भुज बीसा ॥२॥

जब चार घड़ी रात बीती, प्रेमपूर्वक सन्ध्या वंदनसे निश्चित हो गया ॥ १ ॥ रावण प्रसन्न हो बीसों हाथ जोड़ शिवजीका ध्यान करने लगा ॥ २ ॥

शंकर सेवक अति अनुरागी * सुनु खगेश तेहिते बड़भागी ॥३॥
मन्त्राकर्षण जप दशभाला * अहिरावण चित डोल पताला ॥४॥

काक भुशुण्डिजी बोले-हे गरुड़जी ! सुनो, रावण शिवजीका अत्यन्त प्रेमी सेवक है इसीसे बड़ा भाग्यवान् है ॥ ३ ॥ जब रावण आकर्षण मंत्र जपने लगा तब अहिरावणका चित्त पाताल में डोल गया ॥ ४ ॥

लगेउ करन सो मन अनुमाना * केहि कारण दशमुख अकुलाना ॥५॥
निशिचरनाह भुवन वश जाके * जीतन कहँ कोउ वीर न ताके ॥६॥

तब मनमें अनुमान करने लगा; कि रावण किस कारण व्याकुल हुआ है ॥ ५ ॥ यह राक्षसपति है; संसार उसके वशमें है, कोई वीर जीतनेको समर्थ नहीं है ॥ ६ ॥

मन क्रम वचन आन नहिं सेवी * धरेउ ध्यान उर कामद देवी ॥७॥
चलेउ बहुरि आयउ सो तहँवा * शिवमण्डप रावण रह जहँवा ॥८॥

अहिरावण मन वचन कर्मसे कामद देवीके सिवाय और का सेवक नहीं था, उसीका हृदयमें ध्यान किया ॥ ७ ॥ फिर वह चलकर वहां आया, जहां शिव मंडपमें रावण बैठा था ॥ ८ ॥

निशिचरपति कहि तेहि शिर नायो * कर गहि निज आसन बैठायो ॥९॥

उसने निशाचरपति कहकर शिर नवाया रावणने हाथ पकड़ अपने आसन पर बैठाया ॥९॥

दोहा-अहिरावण तब रावणहि बूझी कुशल सप्रीति ॥
प्रथम कही तेहि सब कथा, जैसे भगिनि अनीति ॥ १४० ॥

तब अहिरावणने रावणसे प्रीति पूर्वक कुशल पूछा तो पहले रावणने भगिनीके संग अनीति करने की सब कथा कही ॥ १४० ॥

वध खरदूषण जिमि सुधि पाई * मृग मारीच कपट कृत भाई ॥१॥
कहेसि बहुरि सीताकर हरण * लंकदहन हनुमतकर बरणा ॥२॥

और जैसे खरदूषणकी मारनेकी सुध पाई, जैसे मारीच कपटका मृग बना ॥ १ ॥ फिर जिस प्रकार जानकीका हरण हुआ उसे कहा और हनुमानजीके लंका जलानेकी कथा वर्णन की ॥२॥

सेतु बाँधि जिमि प्रभु चलि आयउ * बालि कुमार विवाद सुनायउ ॥३॥
अनी अकम्पन अरु अतिकाया * परे समर महि सुन अहिराया ॥४॥

जैसे रामचन्द्र पुल बांधकर आये वह, अङ्गदका विवाद सुनाया ॥ ३ ॥ सेना सहित अकंपन और अतिकाय राक्षस जैसे युद्ध भूमिमें मरे वह सब अहिरावणको सुनाया ॥ ४ ॥

तात कुशल अब सबइ सिरानी * कटक निशाचर सकल नशानी ॥५॥
कुम्भकरण घननादहु मारे * राम लषण दुइ मनुज विचारे ॥६॥

हे अहिरावण ! अब सब कुशल जाता रहा; राक्षसोंकी सब सेना मर चुकी ॥ ५ ॥ कुम्भकर्ण और मेघनादको विचारे (निर्बल) मनुष्य राम लक्ष्मणने मार डाला ॥ ६ ॥

आनेहुँ बोलि तोहि निज पासा ॐ कहउ सो यत्न होय रिपुनासा ॥७॥
सुनत शोच भा अहिरावण मन ॐ बोला वचन सुहावन पावन ॥८॥
मैंने तुम्हें इसी कारण अपने पास बुलाया, अब यही यत्न कहो जिससे शत्रुका नाश हो ॥ ७ ॥ सुनते ही अहिरावणके मनमें शोच हुआ और सुन्दर पवित्र वचन बोला ॥ ८ ॥
सुनु रावण जग नीति पियारी ॐ करै अनीति होय भय भारी ॥९॥
बिना बिचारि रारि तुम ठानी ॐ कीन्ह सेन कुल सर्वस हानी ॥१०॥
हे रावण ! जगत्में नीति सबको प्यारी है, जो अनीति करता है उसे बड़ा भय होता है ॥ ९ ॥ तुमने विना विचारे लड़ाई ठाना है कुल सेना क्या सर्वस्वकी हानि करदी ॥ १० ॥
मनुज प्रताप प्रभाव न जानेउ ॐ सबते बड़ तेहि लघुकर मानेउ॥११॥
यदपि न योग मोहि अस बाता ॐ तदपि हरहुँ तव लगि दोउ भ्राता॥१२॥
मनुष्योंका प्रताप और प्रभाव नहीं जाना, सबसे बड़ेको अधिक छोटा करके माना है॥ ११॥ यद्यपि मुझे यह बात योग्य नहीं है तो भी तुम्हारे निमित्त दोनों भाइयोंको हरूँगा ॥ १२ ॥
लै पताल देविहि बलि देहौं ॐ यश पूरण निशिचर कुल लेहौं ॥१३॥
लै जैहौं तुम जानेउ तबहीं ॐ रविसम तेज होइ निशि जबहीं ॥१४॥
पातालमें ले जाकर देवीको बलि दूँगा; राक्षसोंके कुलमें पूर्ण यश प्राप्त करूँगा ॥ १३ ॥ जब रात्रिमें सूर्यके समान प्रकाश हो तब जानना कि मैं ले चला ॥ १४ ॥

दोहा—कहि अस वचन प्रबोध करि, शीश नाइ बल भाखि ॥
आयउ रघुपति कटक तब, निज देवी उर राखि ॥ १४१ ॥

तब यह वचन कह समझा कर, शिर नवाके बल कथन कर और अपनी देवीको हृदयमें धारण कर रामचन्द्रजीके कटकमें आया ॥ १४१ ॥
यह सुनि उमा कह्यो त्रिपुरारी ॐ अहिरावण को भा विबुधारी ॥१॥
कहहु तासु जन्मादि चरित्रा ॐ शिव बोले सुनि कथा विचित्रा ॥२॥
यह सुनकर पार्वती शिवजीसे बोलीं—महाराज अहिरावण राक्षस कौन था ? ॥१॥ उसके जन्म आदि चरित्र सुनाओ यह सुन शिवजी विचित्र कथा सुनाने लगे ॥ २ ॥
अहिरावणकी कथा भवानी ॐ सुनहु चित्त दै कहौं बखानी ॥३॥
भे रावणके सुत बहुतेरे ॐ सब बल विद्या बुद्धि घनेरे ॥४॥
हे पार्वती ! चित्त दे सुनो, मैं अहिरावणकी कथा बखान कर कहता हूँ ॥ ३ ॥ रावणके बहुत पुत्र हुए थे और सब बल, बुद्धि, विद्यामें निपुण थे ॥ ४ ॥
एक समय मयजा सुत जायो ॐ सुनि दशकंठ महाभय खायो ॥५॥
बीस व्यालसुत सुनि विबुधारी ॐ राखन योग न मनहिं विचारी ॥६॥
एक समय मन्दोदरीके ऐसा पुत्र हुआ जिसे सुनकर रावणको बड़ा भय हुआ ॥ ५ ॥ बीस सांप युक्त पुत्र जन्म सुनके उसका रखना मनमें उचित न जाना ॥ ६ ॥
श्वानाननते कह्यो बोलाई ॐ आयहु याहि गाड़ि कहुँ जाई ॥७॥

दूत दाबि नैर्ऋत्य सिधावा ❀ पृथ्वी खोदि तोपि तर आवा ॥८॥

रावणने श्वानानन नाम अपने अनुचरसे कहा, कि इसे कहीं जाकर गाड़ आओ ॥ ७ ॥ वह दूत उसे नैर्ऋत्य दिशामें खोदकर पृथ्वीमें गाड़कर चला आया ॥ ८ ॥

रघुपति चरित करन हित आगे ❀ मरा न सो बालक तेहि लागे ॥९॥
खायसि खनि माटी एक मासा ❀ पुनिगा निकरि नीरनिधि पासा॥१०॥

आगे रघुनाथजीके चरित्र करनेके निमित्त वह बालक नहीं मरा ॥ ९ ॥ और एक महीने तक माटी खोदकर खाता रहा, फिर खोदता हुआ सागरके निकट पहुँच गया ॥ १० ॥

तेहि लखि राहु जननि अनुरागी ❀ भवन लाय निज पालन लागी॥११॥
इक दिन तहाँ शुक्र चलि आये ❀ बोले पुत्र कहाँ यहु पाये ॥१२॥

उसे देखकर राहुकी माता प्रसन्न हो अपने घर लाकर पालन करने लगी ॥ ११ ॥ एक दिन वहां शुक्राचार्य गये और सिंहिकासे पूछा यह पुत्र कहांसे पाया ? ॥ १२ ॥

छाया-ग्रहणि कह्यो तब आई ❀ ज्येहि विधि उदधि तीरते लाई॥१३॥
दनुज पूज्य पुनि वचन उचारा ❀ यहु है रावणकेर कुमारा ॥१४॥

तब वह छाया ग्राहिणी सिंहिका जिस प्रकार सागरके तटसे ले आयी वह कथा कही ॥ १३ ॥ तब दैत्यगुरु (शुक्राचार्य) बोले यह रावणका पुत्र है ॥ १४ ॥

आदिहिते सब कथा सुनाये ❀ अहिरावण धारि नाम सिधाये ॥१५॥
निज उत्पत्ति सुनी तेहि जबहीं ❀ कूदि परा सागर महँ तबहीं ॥१६॥

और उसकी सब कथा आदिसे वर्णन कर अहिरावण (सांपयुक्त) रावण नाम धरकर शुक्र चले गये ॥ १५ ॥ ज्योंही अहिरावणने अपनी उत्पत्ति सुनी त्योंही सागरमें कूद पड़ा ॥१६॥

निकसा तुरत वितल महँ जाई ❀ तहाँ रहै अहिपुरी सुहाई ॥१७॥
सत्तरि योजन बसत ललामा ❀ चामीकरके अति सुठि धामा ॥१८॥

तुरंत वितलमें जाकर निकला,(वितल तीसरे पातालका नाम है)वहां सुन्दर सर्पोंकी पुरी थी ॥१७॥सत्तर योजनके बीचमें मनोहारिणी पुरी है, वहां सोनेके अत्यन्त सुन्दर घर बने हैं ॥१८॥

दर्वीकर तहँ रहै भुआरा ❀ सो वासुकी केर सग सारा ॥१९॥
तासु पुरी लखि कौतुक नाना ❀ पुनि गा जहँ नित होत पुराना॥२०॥

वहां दर्वीकर नाम राजा राज्य करता था, जो वासुकीका सगा साला था ॥ १९ ॥ उस पुरीमें अनेक प्रकारके कौतुक देखकर फिर वहाँ गया जहां पुराणोंकी कथा होती थी॥ २० ॥

तप-प्रभाव तहँ सुनि अधिकाई ❀ सपदि विपिन पहुँचा हर्षाई ॥२१॥
वनमें लखी नदी इक बहई ❀ नाम कामदा देवी रहई ॥२२॥

कथामें तपकी अधिक महिमा श्रवण कर प्रसन्न हो शीघ्रतासे वनमें गया ॥ २१ ॥ उस पुरीमें एक बहती हुई नदी देखी और वहीं कामदा देवीका स्थान था ॥ २२ ॥

सुथल समुझि तहँ ध्यान लगावा ❀ संवत चौदह सहस बितावा ॥२३॥
सब विधि देखि समाधि अडोली ❀ वरंब्रूहि तब देवी बोली ॥२४॥

वह सुन्दर स्थान देखकर तप आरंभ कर दिया, चौदह सहस्र वर्ष बीत गये ॥२३॥ जब सब प्रकार समाधि अचल देखी, तब देवी ने कहा-वर मांग ॥ २४ ॥

इष्ट वचन सुनि दुहुँ कर जोरी * माँगेसि वरकरि विनय बहोरी ॥२५॥
अमरनते अधिकी सुख करहूँ * जीतहु तेहि जेहिके संग लरहूँ ॥२६॥

तब इष्ट देवताके यह वचन सुन दोनों हाथ जोड़ विनय पूर्वक यह वर मांगा ॥२५ ॥ मैं देवताओंसे भी अधिक सुख भोगूँ और जिसके सङ्ग लड़ूँ उसे जीत लूँ ॥ २६ ॥

दोहा--शेष महेश दिनेशसुर, ईश अजीश अनन्त ॥
मरौं न काहू हाथसे, होउँ निशाचरकन्त ॥ १४२ ॥

शेष, शिव, सूर्य, देवता, विष्णु, ब्रह्मादिक जो अनेक हैं, मैं उनमें से किसीके हाथसे न मरूँ और राक्षसों का स्वामी होऊँ ॥ १४२ ॥

पितहि कीन अपमान हमारा * सोऊ मोहि याचै इक बारा ॥१॥
सुनि देवी बोली सुनु ताता * करिहौ तुम सुख बहुविधि गाता ॥२॥

पिताने मेरा अपमान किया है सो ऐसा कि एक बार वह भी मेरी याचना करें ॥१॥ यह सुनकर देवी बोली, हे पुत्र ! सुन, तुम अनेक प्रकार शारीरिक सुख भोगोगे ॥ २ ॥

त्रेता-शेष समय दशशीशा * याचै तोहि जोरि भुज बीशा ॥३॥
मारै तुम्हैं न कोउ जग माहीं * कपि एक मम वाचा वश नाहीं ॥४॥

त्रेतायुग के बीतने के समय बीसों हाथ जोड़कर रावण तेरी याचना करेगा ॥३॥ जगत्‌में तुम्हें कोई मार नहीं सकेगा, केवल एक वानर मेरे वचनके वशमें नहीं हैं ॥ ४ ॥

तेहि प्रभुते जनि करे कुचाली * तौ तू अजर अमर कहि चाली ॥५॥
रहन लाग तहँ दनुज कुमारा * अगणित खग मृग करै अहारा ॥६॥

उनके प्रभुसे कुचाल मत करना जो तू ऐसा करेगा तो अजर अमर रहेगा यह कह देवी चली गयी ॥५॥ वहां अहिरावण अनेक खग मृगों का आहार करता रहने लगा ॥ ६ ॥

यहि विधि वर्ष पाँच शत बीती * तब खल करन लाग अनरीती ॥७॥
विविध वेष धरि अहिपुर जाई * अज गज हय खर डारहि खाई ॥८॥

इस प्रकार ५०० पांचसौ वर्ष बीत गये तब वह दुष्ट अनीति करने लगा ॥ ७ ॥ अनेक वेश धरकर सर्पों की पुरीमें जाकर बकरे, हाथी, घोड़े गदहे खा जाय ॥ ८ ॥

एक दिवस दर्वीकर राजा * धरन गये तेहि सहित समाजा ॥९॥
अहिरावण करि कठिन लराई * दीन्हे सकल नाग विचलाई ॥१०॥

एक दिन 'दर्वीकर' नाम राजा सेना लेकर उसे पकड़नेको गया ॥ ९ ॥ अहिरावणने कठिन लड़ाई करके सब नाग बिचला दिया ॥ १० ॥

तब दर्विक अनन्त पहँ गयऊ * सब वृत्तान्त सुनावत भयऊ ॥११॥
सुनि बोले करि शेष विचारा * अहिरावण तप बल अधिकारा ॥१२॥

तब दर्विक नागराज अनंत नामक शेषनाग के पास जाकर सब वृत्तांत सुनाने लगे ॥११॥ तब शेषजी सुन विचार कर बोले अहिरावणका तप बल अधिक है ॥१२॥

तेहिते नहिं ऐहौ अरिआँई * कन्या दै मिलि रहियो जाई ॥१३॥
तब दर्विक बुलवावा ताही * दीन्ही विधिवत सुता विवाही॥१४॥

इस कारण उसे जीत न सकोगे, यह काम करो, कि अपनी कन्या व्याह दो और उससे मिले रहो॥१३॥ तब दर्विक ने अहिरावणको बुलाकर अपनी कन्या विधिपूर्वक व्याह दी॥१४॥

कुन्दनि नाम पाय वर नारी * तब नागनते गिरा उचारी ॥१५॥
अब सब होउ विगत सन्देहू * करिहौं मैं काननमें गेहू ॥१६॥

तब अहिरावण कुंदनिनामक श्रेष्ठ स्त्रीको पाकर नागोंसे बोला ॥ १५ ॥ अब तुम सब संदेह रहित हो जाओ मैं अपना घर वनमें करूँगा ॥ १६ ॥

पुनि कामदा देवि ढिग आवा * नव योजन कर नगर बनावा ॥१७॥
असुरन सहित रहै तेहि माहीं * करन लाग सुख वरणि न जाहीं ॥१८॥

फिर कामदा देवीके निकट आकर नौ योजन का एक नगर बनाया ॥१७॥ राक्षसों सहित वहां रहने लगा और अनेक सुख भोगने लगा जो वर्णे नहीं जाते ॥१८॥

यहि विधि शम्भु उमासन बरणा * अहिरावणकी कथा सुपरणा ॥१९॥
अब सब कथा सुनहु उरगारी *जेहि विधि यमपुरगा विबुधारी॥२०॥

हे गरुड़जी ! इस प्रकार शिवजीने पार्वतीको अहिरावणकी कथा सुनायी ॥ १९ ॥ हे गरुड़जी ! अब वह कथा सुनो जिस प्रकार अहिरावण यमलोक को गया ॥ २० ॥

सोरठा-आइ गयो सोइ योग, जो त्रेताके शेष महँ ॥
देवी कह्यो सँयोग, रच्यो अन्धतम कटक जहँ ॥ १ ॥

जो संयोग देवी ने कहा था वही संयोग त्रेता के अन्तमें प्राप्त हुआ; अहिरावणने अपनी मायासे श्रीरामचन्द्रजीकी सेना में अन्धकार फैला दिया ॥ १ ॥

सूझ न निजकर अति अँधियारी * मर्कट भट जागहिं तहँ भारी ॥१॥
कहहिं जयति जयजयति कृपाला *अतिहि अगम जहँ नहिं गति काला॥२॥

उस समय ऐसा अंधेरा था कि अपना हाथ पसारा भी नहीं सूझता था वहां बड़े योद्धा वानर जागते थे ॥ १ ॥ 'कृपालुकी जय जय' बोल रहे थे, वहां जाना अत्यन्त अगम था कालके जाने की भी गति नहीं थी ॥ २ ॥

तहँ मारुतसुत रचेउ उपाई * करि लँगूर कोट कठिनाई ॥३॥
सो शोभा इहि भाँति सुहाई * भुजगराज कुण्डली लगाई ॥४॥

वहां महावीरजीने यह उपाय रचा कि अपनी पूँछको गोला घुमाकर कोट कर लिया ॥३॥ सो ऐसी शोभा थी मानो सर्पराजने कुण्डली बनायी हो ॥ ४ ॥

देखिय उन्नत शैल समाना * द्वार तहाँ जहँ मुख हनुमाना ॥५॥
देखि हृदय अहिरावण हारा *किमि रविग्रहकर तिमिर पसारा ॥६॥

पर्वतके समान ऊँचा कोटसा दीख पड़ा द्वार जहां महावीरजीका मुख था वहीं था ॥ ५ ॥ देखते ही हृदयमें अहिरावण हार गया सूर्यके सामने कहीं अंधकार ठहर सकता है वा जा सकता है ? ॥ ६ ॥

एकौ युक्ति न मन ठहरानी ❋ कपट वेष तहँ कीन्ह भवानी ॥७॥
वेष विभीषण सब अनुहारी ❋ पवन तनय पहँ गा छलकारी ॥८॥

हे पार्वती ! जब मनमें एक भी युक्ति नहीं ठहरी तब उसने कपट वेष बनाया ॥ ७ ॥ तब विभीषणका वेष बनाकर यह छली महावीरजीके पास गया ॥ ८ ॥

दोहा–सहज प्रतापी पवन सुत, पुनि सुरपति पति–दास ॥
तिनहिं निदरि चल रामपहँ, मूढ़ हृदय नहिं त्रास ॥ १४३ ॥

महावीरजी स्वाभाविक ही प्रतापी हैं फिर सुरपति (इन्द्र) के पति रघुनाथजीके दास हैं मूर्ख अहिरावण उनका तिरस्कार कर रामके निकट चला, उसके हृदय में त्रास नहीं है ॥१४३॥

मर्म न जान प्रभंजन–जाता ❋ कीन्हेसि गमन विभीषण भाँता ॥१॥
ठाढ़ होउ बोलेउ सुनु भ्राता ❋ जाउँ जहाँ कृपालु जनुत्राता ॥२॥

महावीरजीने यह मर्म नहीं जाना उसने विभीषणके समान गमन किया ॥ १ ॥ खड़े रहो, ऐसा हनुमान्जीने कहा तो बोला-भाई मैं कृपालु रघुनाथजीके पास जाता हूँ ॥ २ ॥

मैं रघुपतिसन आयसु पाई ❋ सन्ध्या करन गयउँ सुनु भाई ॥३॥
तेहिते तुरत चलेउँ प्रभु पाहीं ❋ भा विलम्ब जनि राम रिसाहीं ॥४॥

सुनो भाई मैं रघुनाथजीसे आज्ञा लेकर संध्या करनेको गया था ॥ ३ ॥ अब इस कारण शीघ्र प्रभुके पास जाता हूँ कि कहीं देर हो जानेसे रघुनाथजी क्रोधित न हों ॥ ४ ॥

सत्य वचन कपि निजमन माना ❋ सुनु खगेश भावी बलवाना ॥५॥
कपट चतुरगति जानि न जाई ❋ पर मन हरै हरै धन भाई ॥६॥

महावीरजीने अपने मनमें सत्य बात जानी, हे गरुड़ ! सुनो होनहार बलवान् है ॥ ५ ॥ भाई ! कपटी चतुरकी गति जानी नहीं जाती पराया मन और धन भी हर लेता है ॥ ६ ॥

आयसु पाय गयउ सो तहँवा ❋ रह फणीस प्रभु दोऊ जहवाँ ॥७॥
कपिपति जाम्बवन्त नल नीला ❋ वालीसुत सुषेण बलशीला ॥८॥

वह आज्ञा पाकर वहां गया जहां दोनों भाई राम लक्ष्मणजी (सोये) थे ॥ ७ ॥ बलवान् सुग्रीव, जाम्बवन्त, नल, नील, अङ्गद, सुषेण ॥ ८ ॥

दोहा–द्विविद मयन्द रु कीशगण, गय गवाक्ष कपिवीर ॥
सहित विभीषण अपर भट, सोये सब रण धीर ॥ १४४ ॥

द्विविद, मयन्दादि वानर, गय गवाक्षादि वीर और विभीषण सहित अन्य सब रणधीर योद्धा सोते थे ॥ १४४ ॥

तिनहिं मध्य रावण शशि राहू ❋ एक संग सोहत फणिनाहू ॥१॥
दक्षिण दिशि सोवत रघुनाथा ❋ अनुज वामदिशि तेहि पर हाथा ॥२॥

उन सबके बीचमें रावणरूपी चन्द्रमाको ग्रसनेवाले राहुरूप रामलक्ष्मण एक साथ सोते॥ १॥ दक्षिण ओर रघुनाथजी सोते बांई ओर लक्ष्मणजी सोते थे, उनके ऊपर प्रभु हाथ रखे थे ॥२॥

प्रभुकर उरपर राजत कैसे ❀ जातरूप पंकज फणि जैसे ॥३॥
कपि समूह जनु सागर क्षीरा ❀ तहँ सोये मानहुँ दोउ वीरा ॥४॥

रघुनाथजीका हाथ लक्ष्मणजीके हृदयपर ऐसा शोभित था जैसे सोनेके कमल पर सर्प ॥ ३ ॥ वानर समूह क्षीरसागरवत् हैं, वहां ये दोनों वीर सो रहे हैं अथवा क्षीरसागरमें वीर-रस शयन करता है ॥ ४ ॥

सुभग बाण धनु धरे बनाई ❀ लक्ष्मण सह समीप रघुराई ॥५॥
अहिरावण मन कीन्ह प्रणामा ❀ देखि राम सुन्दर घनश्यामा ॥६॥

लक्ष्मणजीने रघुनाथजीके निकट सुन्दर धनुष बाण बनाकर धरे थे ॥ ५ ॥ अहिरावणने सुन्दर घनश्याम श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मनमें प्रणाम किया ॥ ६ ॥

ब्रह्मादिक जेहि ध्यान न पावहिं ❀ मुनि महेश पूजा मन लावहिं ॥७॥
करहिं विविध जप योग विरागी ❀ जपहिं निरंतर निशिदिन जागी॥८॥

जिनको ब्रह्मादिक ध्यानमें नहीं पाते, मुनि शंकर जिनकी पूजामें मन लगाते हैं ॥ ७ ॥ वैरागी जिनके निमित्त अनेक जप योग करते हैं रात दिन जागकर निरन्तर जपते हैं ॥८॥

सो प्रभु तेहि देखा भरि लोचन ❀ कृपासिंधु सेवक भय मोचन ॥९॥
बहुरि हृदय तेहि कीन्ह विचारा ❀ करहुँ काज रावण अनुसारा ॥१०॥

सेवकके भय दूर करने वाले उन कृपासागर प्रभु रामचन्द्रको इसने अपनी आंखों देखा ॥ ९ ॥ फिर उसने मनमें विचार किया कि रावणका कहा कार्य करना उचित है ॥ १० ॥

सो निज माया कृत गुण आई ❀ कवनी भाँति जाहिं दोउ भाई ॥११॥

कुछ अपनी मायाके गुण करके विचारा, किस प्रकार दोनों भाइयोंको ले जाऊँ ॥ ११ ॥

दोहा-मोहनते मोहे सकल, मन्त्रन ते मुख मूँदि ॥
भयउ अदृश्य उठायकरि, प्रभुहिं चलेउ लै कूदि ॥ १४५ ॥

तब मोहनमन्त्रसे सबको मोहित कर मन्त्रोंसे मुख मूँदकर वह रघुनाथजीको उठाकर अदृश्य हो कूद कर आकाशको ले उड़ा ॥ १४५ ॥

यहि विधि गयउ दुहुँन लै सोई ❀ नभ मारग प्रकाश अति होई ॥१॥
सो प्रकाश जब रावण देखा ❀ किय प्रमाण तेहि वचन बिसेखा ॥२॥

इस प्रकार अहिरावण दोनोंको ले गया और आकाश मार्गमें बड़ा प्रकाश हुआ ॥ १ ॥ वह प्रकाश जब रावणने देखा, तब उसके वचन विशेष कर सत्य जाने ॥ २ ॥

मनमहँ हर्ष करइ अति भारी ❀ अहिरावण लै गा असुरारी ॥३॥
लै निज लोक गयउ पलमाहीं ❀ भयउ शोर तब कपिदलमाहीं ॥४॥

रावणने मनमें बड़ा हर्ष किया कि अहिरावण राक्षसोंके शत्रुओंको ले गया ॥ ३ ॥ एक पलमें रघुनाथजीको ले वह अपने लोकमें पहुँच गया तब वानरोंके दलमें शोक हुआ ॥४॥

जागे वानर श्रीहत भारी * देखिय जिमि सरिता बिनुवारी ॥५॥
पुनि देखिय जिमि निशि बिनु इंदू * भे वानर जिमि उडु बिनु चन्दू ॥६॥

वानर जागे परंतु बहुत शोभा हीन हो गये, जैसे विना जलकी नदी होती है ॥५॥ अथवा जैसे विना चन्द्रमाके रात जैसे चन्द्र विना तारे ऐसे सब वानर हो गये ! ॥ ६ ॥

रवि बिनु दिवस जीव बिनु देहा * जिमि देखिय दीपक बिनु गेहा॥७॥
एकहि एक लगे तब बूझन * कहाँ गये त्रैलोक्य-विभूषन ॥८॥

जैसे सूर्य विना दिन, जीव विना देह और दीपक विना घर होता है, ऐसे ही वानर हो गये ॥ ७ ॥ तब एकसे एक पूछने लगे कि त्रिलोकीके भूषण कहां गये ? ॥ ८ ॥

दोहा-शोधेउ सब मिलि कटक तिन, नहिं पाये दोउ वीर ॥
भय व्याकुल सब भालुकपि, जिमि जलचर गतनीर ॥ १४६ ॥

उन सबोंने मिलकर कटकमें ढूँढ़ा, परंतु कहीं दोनों भाई रघुनाथजी न मिले, तब सब रीछ वानर ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल कम होने पर मछली दुःखी होती है ॥ १४६ ॥

सकल कहहिं यह विधि कह कीन्हा * रघुपति विरह प्राणकत लीन्हा ॥१॥
शोक ग्रसित धरि सकहिं न धीरा * कहाँ राम लक्ष्मण दोउ वीरा ॥२॥

सब बोले-यह विधाताने क्या किया ? रघुनाथजीके विरहमें क्यों प्राण लिये ? ॥ १ ॥ शोकके मारे धैर्य धारण नहीं कर सकते हैं, राम लक्ष्मण दोनों वीर कहां हैं ॥ २ ॥

करुणा करहिं कपीस अपारा * बनी बात विधि काह बिगारा ॥३॥
कटक निशाचर सकल सँहारी * रहा एक रिपु रावण भारी ॥४॥

सुग्रीव बड़े दुःखसे कहने लगे, विधिने बनी बनायी बात क्यों बिगाड़ दी ? ॥ ३ ॥ राक्षसों की सेना तो मर चुकी थी केवल, एक महान् वैरी रावण रह गया है ॥ ४ ॥

सोउ न रहत रामशर लागे * भाइउ हम सब परम अभागे ॥५॥
कबहुँ जो दशशिर अरिगण जीतहिं * उत्तर कवन देब हम सीतहिं ॥६॥

वह भी रघुनाथजीके बाण लगनेसे न रहता, पर अब भाइयो, हम सब अत्यन्त भाग्यहीन हैं ॥५॥ और कदाचित् युद्धमें हम शत्रुरावणको जीत भी लें तो जानकीको क्या उत्तर देंगे ?॥६॥

अस कहि विकल मूर्छि महिपरे * लागत वज्र शैल जिमि गिरे ॥७॥
दशा विभीषण कही न जाई * विगत वत्स जनु धेनु लवाई ॥८॥

यह कह व्याकुल हो मूर्छित हो पृथ्वीमें गिर पड़े जैसे वज्र लगनेसे पर्वत गिर जाय ॥७॥ विभीषणकी दशा तो कही नहीं जाती जैसे थोड़े दिनोंकी ब्यायी गाय बछड़े विना तड़फती हो॥८॥

दोहा-सहित पवनसुत ऋक्षपति, दुख तम भा बड़ि भाँति ॥
खगपति सूझ न कतहुँ कछु, मन अपार तिहि राति ॥ १४७ ॥

महावीर सहित जाम्बवन्तके मनमें भी बड़ा दुःख हुआ । काकभुशुण्डजी बोले-हे गरुड़ ! उस समय कहीं कुछ नहीं सूझता था, उस रातमें अत्यन्त अन्धकार था ॥ १४७ ॥

पवन तनय पुनि कह सब पाहीं * विस्मय एक होत मन माहीं ॥१॥
कोउ एक आव बिभीषण वेखा * प्रभुके निकट जात हम देखा ॥२॥

फिर महावीरजी सबसे बोले, कि एक द्विविधा तो मनमें होती है ॥ १ ॥ कोई एक विभीषणके वेषमें आया था, उसे हमने रघुनाथजीके निकट जाते देखा था ॥ २ ॥

पूछत वचन कहेसि अति नीका *कपट न जानिय निशिचरजीका ॥३॥
वचन सुनत बोलेउ लंकेशा * अहिरावण लै गा अवधेशा ॥४॥

बूछनेसे तो मीठे वचन कहे थे, परन्तु राक्षसके जीका कपट नहीं जाना जाता ॥३॥ यह वचन सुनते ही विभीषणने कहा-अहिरावण महाराजको ले गया ॥ ४ ॥

पन्नगलोक-निवासी सोई * मम तनु वेष और नहिं कोई ॥५॥
महाबली जानै सब माया * निश्चय तेहि दशशीश पठाया ॥६॥

वह पताल लोकका निवासी है, मेरे शरीरका वेष दूसरा नहीं धर सकता ॥ ५ ॥ वह महाबली है, सब माया जानता है, जरूर उसे रावणने भेजा होगा ॥ ६ ॥

जेहि बल होइ तहाँ सो जाई * ताहि जीति आनै दोउ भाई ॥७॥
कहेउ भालु पति सुनु हनुमाना * तव बल तात सकल जग जाना ॥८॥

जिसके बल हो वह उसके पुरमें जाय उसे जीतकर दोनों भाइयोंको लावे ॥ ७ ॥ तब जाम्बवन्तजी बोले, सुनो तात हनुमान्जी ! तुम्हारा बल जगत् जानता है ॥ ८ ॥

बेगि सो यत्न विचारहु ताता * कृपासिंधु आनहु दोउ भ्राता ॥९॥

हे तात ! अब यत्न शीघ्र विचारो, कृपासागर दोनों भाइयोंको शीघ्र लाओ ॥ ९ ॥

दोहा-बिलखि कहेउ कपिपति बहुरि, सुनु मारुत सुत तात ॥
बिनु रघुनायक जन्म धिग, पल युग सरिस बिहात ॥ १४८ ॥

फिर व्याकुल होकर सुग्रीव बोले-हे मारुतसुत तात ! सुनो, विना रघुनाथजीके जन्मको धिक्कार है, एक पल युगके समान जाता है ॥ १४८ ॥

यथा तृषित विनु वारिद वारी * रवि बिनु जलज मीन बिनु बारी ॥१॥
भट अशस्त्र रण अनी अनाथा * वह्नि अनीन्धन गात न माथा ॥२॥

जिस प्रकार बादलके जलके विना बाड़ी, सूर्यके विना कमल,जल विना मछली सूखती है ॥१॥शस्त्र विना योद्धा युद्धमें विना स्वामी सेना, विना ईंधनकी आग, शिरके विना शरीर॥२॥

दीप अवर्ति सकल क्षण भंगी * तिमि हम सब देखिय बजरंगी ॥३॥
जिमि सीता सुधि भेषज आनी * तेहि प्रकार आनहु सुख दानी ॥४॥

विना बत्तोके दीपक ये सब क्षणभंगुर हैं वैसे ही हे महावीरजी ! रघुनाथजीके विना हम सब हैं ॥ ३ ॥ जिस प्रकार तुम जानकीजीकी सुध और संजीवनी लाये उसी प्रकार सुख-दाता रघुनाथजीको लाओ ॥ ४ ॥

सुनत वचन मारुत सुत बोला * राखेउ चित थिर कटक अडोला ॥५॥
भुवन चारिदश तीनहुँ लोका * आनहुँ प्रभुबल प्रभु तजु शोका ॥६॥

यह वचन सुनते ही महावीरजी बोले–चित्तको स्थिर और सेनाको अडोल रखो ॥५॥ तीनों लोक, चौदहों भुवनोंमेंसे आपके प्रतापसे प्रभुको ले आऊँगा, हे प्रभु शोक त्याग दो ॥ ६ ॥

अब तुम सजग रहो सब भाई * लरेउ कालसन जो चढ़ि आई ॥७॥
अस कहि सुकृति चलेउ हनुमाना * गर्जत प्रलय पयोद समाना ॥८॥

भाई! अब तुम सब सावधान रहो, यदि काल भी चढ़कर आवे तो भी सावधानतासे लड़ना ॥७॥ ऐसा कह प्रलयकालके बादलके समान गर्जते पुण्यात्मा महावीरजी चले ॥८॥

चलत बाट इक तरुतर गयऊ * गीधनि गीध कहत अस भयऊ ॥९॥

मार्गमें चलते एक वृक्षके नीचे गये तो गीधनी गीधसे ऐसा कह रही थी ॥ ९ ॥

दोहा–नारि गर्भिणी गृध्रकी, बोली पतिसन बैन ॥
आनहु आमिष मनुजकर, खाउँ होय जिय चैन ॥ १४९ ॥

गृध्रकी गर्भिणी नारी गृध्रसे वचन बोली–हे स्वामिन्! कहींसे मनुष्यका मांस लाकर मुझे खिलाओ तो मेरे जीको चैन पड़ेगा ॥ १४९ ॥

तासु वचन सुनि खग अस कहेऊ * अहिरावण रामहिं लै गयऊ ॥१॥
देइहि बलि देविहि सो जाई * सो आमिष बड़ भागन पाई ॥२॥

उसके वचन सुन कर गृध्र ऐसा बोला कि अहिरावण राम लक्ष्मणको ले गया है ॥ १ ॥ और वह जाकर देवीको बलि देगा, उनका मांस बड़े भाग्यसे मिलता है ॥ २ ॥

कवनेउ यतन देब मैं आनी * अस कहि विहँग वाम सनमानी ॥३॥
जबहिं पवन सुत असि सुधि पाई * चलेउ बेगि सुमिरत रघुराई ॥४॥

मैं किसी न किसी यत्नसे ला दूँगा यह कह उस पक्षीने अपनी स्त्रीका सम्मान किया ॥३॥ महावीरजीने जब ये समाचार पाये तो शीघ्रतासे रघुनाथजीको स्मरण करते चले ॥ ४ ॥

अभय प्लवंग पतालहि गयऊ * अहिरावण पुर प्रविशत भयऊ ॥५॥
द्वारपाल मकरध्वज कीशा * कपिसन डाटि कहत बहु रीशा॥६॥

महावीरजी निडर(एक ही कुलांचमें)पाताल पहुँचे और अहिरावणकी पुरीमें प्रवेश किया॥५॥ वहाँका द्वारपाल मकरध्वज नाम वानर था वह बड़े क्रोधसे घुड़क कर महावीरजीसे बोला ॥६॥

निदरि जात मोहि तोहि डर नाहीं * दीपहि जिमि न पतंग डराहीं ॥७॥
जानसि मोहि न मरुतसुत बालक * स्वामि भक्त भंजन मुख कालक॥८॥

मेरा तिरस्कार कर कहाँ जाता है, तुझे डर नहीं है? जैसे दीपकके निकट जाते पतंग नहीं डरते ॥ ७ ॥ मुझे नहीं जानता कि मैं महावीरजीका बालक हूँ? स्वामीका भक्त कालका भी मुखभंजन करनेवाला हूँ ॥ ८ ॥

सोरठा–सुनत वचन हनुमान, बोलत भे विस्मय विवश ॥
अरे मूढ़ अज्ञान, मोरे सुत सपनेहु नहीं ॥ २ ॥

वचन सुनते ही हनुमानजी विस्मय पूर्वक बोले–अरे मूढ़ अज्ञानी! मेरे बेटा स्वप्नमें भी नहीं हुआ ॥ २ ॥

कहत वचन शठ संयुत खोरी * काम विवश कब भइ मति मोरी ॥१॥
मम सुत बनसि मूढ़ केहि काजा * इतना कहत तोहि नहिं लाजा ॥२॥

अरे मूर्ख ! तू यह दोष संयुक्त वचन क्यों कहता है ? मेरी बुद्धि कामके वशीभूत कब हुई थी ? ॥१॥ अरे मूर्ख ! मेरा पुत्र क्यों बनता है, इतना कहते तुझे लाज नहीं आती ? ॥२॥

केहि प्रकारते मम सुत भयऊ * निज उतपति मोसन किन कहऊ ॥३॥
सुनत कहेउ मकरध्वज वचना * किहेउ दाह रावणपुर रचना ॥४॥

किस प्रकार मेरा पुत्र हुआ ? अपनी उत्पत्ति मुझसे क्यों नहीं कहता ? ॥ ३ ॥ यह सुनते ही मकरध्वज बोला—जिस समय तुमने लंकापुरीका दाह किया था ॥ ४ ॥

जब आयउ चलि उदधि समीपा * बहेउ स्वेद तव तनु कपि दीपा ॥५॥
सोइ प्रस्वेद सागर महँ गयऊ * पियेउ मीन तेहिते मैं भयऊँ ॥६॥

और हे वानरदीप ! जब आप सागर किनारे आये तब आपके शरीरसे प्रस्वेद बहा ॥५॥ वह प्रस्वेद सागरमें पड़ा, उसे एक मछली पी गयी, उससे मैं हुआ हूँ ॥ ६ ॥

इहि प्रकार मैं तव सुत ताता * गोपहुँ नहिं निज पिता न माता ॥७॥
अहिरावण सेवा मैं करऊँ * रहहुं द्वार कबहूँ नहिं टरऊँ ॥८॥

हे पिताजी ! मैं इस प्रकार आपका पुत्र हूँ, अपने माता पिताको नहीं छिपाता हूँ ॥७॥ मैं अहिरावणकी सेवा करता हूँ यहांसे कभी नहीं हटता ॥ ८ ॥

दोहा—सत्य वचन हनुमान कहि, पुनि पूछी सब बात ॥
लावा लक्ष्मण राम कहँ, कहा करत सो तात ॥ १५० ॥

महावीरजी बोले—यह बात सत्य है, फिर प्रसंगसे और सब बातें पूँछने लगे, हे तात ! अहिरावण जो राम लक्ष्मणको लाया है सो क्या करता है ॥ १५० ॥

कहहु तात तेहि थलकर नाऊँ * जान चहौं मैं तव प्रभु ठाऊँ ॥१॥
यह वृत्तान्त अस जानउ ताता * जस मैं श्रवण सुनेउँ कछु बाता ॥२॥

हे पुत्र ! उस स्थानका नाम बताओ, जहां वह है ? मैं तुम्हारे प्रभुके स्थानमें जाना चाहता हूँ ॥ १ ॥ मकरध्वज बोला—हे पिता ! यह वृत्तांन्त मैंने जैसा सुना है वैसा कहता हूँ ॥२॥

सीतापति अरु फणपति साथा * सो लै आयउ निशिचर नाथा ॥३॥
करत होम तेहि कारण आजू * देविहि बलि देइहि नृपराजू ॥४॥

सीता पति और लक्ष्मण को अहिरावण ले आया है ॥ ३ ॥ इसी कारण आज ऐसा होम करता है; देवीके लिये दोनोंका बलि दिया जायगा ॥ ४ ॥

जो कछु निज श्रवनन सुनि पायउँ * तात सकल सो तुमहिं सुनायउँ ॥५॥
निज प्रभुकाज लागि दुख सहऊँ * तुम सन सत्य वचन मैं कहऊँ ॥६॥

पिताजी ! मैं जो कुछ अपने कानोंसे सुना वह सब आपको सुना दिया ॥ ५ ॥ मैं अपने प्रभुके कार्यके निमित्त दुःख सहता हूँ आपसे यह सत्य वचन कहता हूँ ॥ ६ ॥

जान कहहु तुम जान न देऊँ ❋ प्रभु आज्ञा तजि अयश न लेऊँ ॥७॥
सुनि असि पेलि चलेउ हनुमाना ❋ भयउ क्रोध मकरध्वज जाना ॥८॥

आपने जो जानेको कहा मैं नहीं जाने दूँगा, स्वामीकी आज्ञा त्याग कर मैं अपयश नहीं लूँगा ॥७॥ महावीरजी यह सुन उसे धक्का देकर चले तब मकरध्वजको क्रोध हुआ ॥ ८ ॥

दोहा—तेहि मुष्टिक कपि कहँ हनेउ, पुनि मारेउ कपि ताहि ॥
हनहिं परस्पर एक इक, बल समान घटि नाहिं ॥ १५१ ॥

उसने महावीरजीको मुष्टिक मारा, महावीरजीने उसे मारा, परस्पर एक दूसरेको मारने लगे, बल समान है, न्यून नहीं ॥ १५१ ॥

एकहि एक सकहिं नहिं पारी ❋ पिता पुत्र दोऊ भट भारी ॥१॥
सुतहिं पूँछसन बाँधि भवानी ❋ चलेउ वातसुत विलँब न आनी ॥२॥

एक एकको जीत नहीं सकता, पिता पुत्र दोनों बड़े योद्धा हैं ॥ १ ॥ हे पार्वती ! अन्तमें हनुमान् सुतको पूछसे बांधकर भीतर चले, विलम्ब नहीं किया ॥ २ ॥

धरि लघुरूप होम गृह देखा ❋ जीव सजीव परे नहिं लेखा ॥३॥
तहँ देवीकर मंडप रहई ❋ शोणित घट बहुको कहि सकई ॥४॥

छोटा रूप धारण करके होम स्थान देखा, जीव सजीव जाने नहीं जाते अर्थात् अगणित थे ॥३॥ वहां देवीका मंडप था, रुधिरके अनेक घड़े भरे थे जिनकी गिनती कौन कर सके ॥ ४ ॥

विविध भाँति मेवा पकवाना ❋ धरे आनि देवी अस्थाना ॥५॥
मालिनि तहँ प्रसून लै आई ❋ सुमन मध्य प्रविसेउ कपिराई ॥६॥

अनेक प्रकारसे मेवा पकवान देवीके स्थानमें लाकर रखे थे ॥ ५ ॥ उसी समय मालिन फूल लेकर आयी, महावीरजी (बहुत छोटा रूप धर) फूलोंमें प्रवेश कर गये ॥ ६ ॥

सुमनहुते करि अति हलुकाई ❋ लेत पाणि जेहि जान न जाई ॥७॥
जब देविहि सो पुष्प चढ़ायउ ❋ विकट रूप तब कपि दिखरायउ ॥८॥

फूलसे भी अधिक हलके हो गये, जिससे हाथमें लेनेमें जाना नहीं जावे ॥ ७ ॥ जब वह फूल देवीजीको चढ़ाया तब महावीरजीने विकट रूप दिखाया ॥ ८ ॥

दोहा—छुवत चरन देवी तुरत, धरणी रही समाइ ॥
मुख वगारि ठाढ़े भये, कपि छबि लखत डराइ ॥ १५२ ॥

महावीरजीके चरण स्पर्श करते ही देवी तुरन्त पृथ्वीमें समा गयी, महावीरजी मुख फैलाकर खड़े हुए, उनकी छबि देखकर भय लगने लगा ॥ १५२ ॥

देवी प्रगट समुझि खल झारी ❋ करहिं विचार हृदय अति भारी ॥१॥
कहहिं कि देवि प्रगट भइ आजू ❋ बड़भागी भा निशिचर-राजू ॥२॥

वे सब राक्षस देवीको प्रकट समझकर हृदयमें बड़ा विचार करने लगे ॥ १ ॥ और बोले कि आज देवी प्रकट हुई, हमारे महाराज बड़े भाग्यवान् हैं ॥ २ ॥

करि प्रणाम पुनि पूजा करहीं ❋ जो चढ़ाव सो कपिमुख परहीं ॥३॥

जो तहँ रही वस्तु समुदाई ❋ बची न एकौ सब कपि खाई ॥४॥

प्रणाम करके पूजा करते हैं, जो चढ़ाते हैं वह कपिके मुखमें पड़ता है ॥ ३ ॥ जितनी वहां वस्तुएँ थीं कुछ न बचीं, महावीरजी सब खा गये ॥ ४ ॥

कपि खिलारि कौतुक विस्तारा ❋ भा चह निशिचर कुल संहारा ॥५॥
अहिरावण-उर भा सुख कैसे ❋ चढ़े कांधपर बलिपशु जैसे ॥६॥

खिलाड़ी महावीरजी कौतुक करने लगे, क्योंकि राक्षसोंके कुलका संहार किया चाहते हैं ॥५॥ अहिरावणके हृदयमें ऐसा सुख हुआ जैसे बलिपशु कन्धेपर चढ़ प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥

जबहिं होम सिद्ध तेहि जाना ❋ लक्ष्मण राम तुरत तहँ आना ॥७॥
ठाढ़ कीन्ह प्रभुकहँ तहँ आनी ❋ निशिचर बहु आयुध धरि पानी ॥८॥

जब राक्षसोंने जाना कि अब होम सिद्ध हो गया तब तुरंत लक्ष्मण और रामजीको वह ले आया ॥७॥ उन्हें वहां लाकर खड़ा किया, अनेक राक्षस हाथमें हथियार ले खड़े हुए ॥८॥

कोऊ गदा कोउ धनु बाणा ❋ शक्ति शूल धरि कोउ कृपाना ॥९॥

कोई गदा, कोई धनुष बाण ले खड़े हुए, कोई शक्ति, त्रिशूल और तलवार ले आये ॥९॥

दोहा-तोमर मुद्गर परशु असि, पाश परिघ अरु बेत ॥
शूल भुशुण्डी पटु गदा, देखत बिसरत चेत ॥ १५३ ॥

तोमर, मुद्गर, फरशे, तलवार, पाश, परिघ, बेत, शूल, भुशुण्डी, पटा; गदा इनको लेकर खड़े हुए जिनके देखनेसे चित्तका ज्ञान बिसर जाता है ॥ १५३ ॥

माया बलमें सकल विचक्षण ❋ अति बिकराल मूढ़ दुरलक्षण ॥१॥
यह विधि सकल वीर तहँ रहहीं ❋ अहिरावण दृढ़ आज्ञा गहहीं ॥२॥

मायाके बलमें वे सब चतुर थे और बड़े भयंकर मूर्ख तथा कुलक्षणी थे ॥ १ ॥ इस प्रकारसे सब वीर वहां उपस्थित थे, अहिरावणकी आज्ञा दृढ़ भावसे ग्रहण किये थे ॥ २ ॥

आयसु पाय खड्ग तिन काढ़े ❋ मारन कहँ प्रभुपर भे ठाढ़े ॥३॥
कोउ कह राजनीति अनुसरहू ❋ भरि त्रयदण्ड विलंब अब करहू ॥४॥

उन्होंने अहिरावणकी आज्ञा पाकर खड्ग निकाले और प्रभुके ऊपर मारनेको खड़े हुए ॥ ३ ॥ कोई बोले-राजनीतिका अवलंबन, करके तीन घड़ी तक देर करो ॥ ४ ॥

पुनि अस वचन मूढ़मति कहहीं ❋ सुमिरहु जो तुम्हरे हित अहहीं ॥५॥
नाहित काल आय नियराना ❋ निशा स्वप्नसम दोउ जन प्राना ॥६॥

फिर वे मूर्ख यह वचन बोले, कि जो कोई तुम्हारे हितू हों उन्हें याद करो ॥ ५ ॥ नहीं तो अब काल निकट आ गया है रात्रिके स्वप्न समान तुम्हारे दोनोंके प्राण हैं ॥ ६ ॥

बोलहिं मूढ़ असम्भव बानी ❋ सकुच लगै सो कहत भवानी ॥७॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! वे मूर्ख असंभव वाणी बोलते हैं जो कहनेमें सकुच लगती है॥७॥

दोहा-फणिपति चितवत राम कहँ, राम चितव अहिराज ॥
प्रभुकर कौतुक कहिय किमि, सुनो दशा खगराज ॥ १५४ ॥

तब लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीको रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको देखने लगे; हे गरुड़ ! वह प्रभुका कौतुक कैसे कहें ? वह दशा श्रवण करो ॥ १५४ ॥

विहँसि कीन्ह प्रभु हृदय विचारा ❋ जपै सकल जग नाम हमारा ॥१॥
जाना देविरूप हनुमाना ❋ विहँसि कहा तब राम सुजाना ॥२॥

हँसकर रघुनाथजीने मनमें विचार किया कि सब जगत् तो हमारा नाम जपता है (फिर हम किसका नाम जपें ?) ॥ १ ॥ तब सुजान रामचन्द्रजी महावीरको देवीरूप में देखकर हँसकर बोले ॥ २ ॥

कालकौर तुम सुमिरहु रक्षक ❋ भई तुम्हारि देवि तव भक्षक ॥३॥
गिरा सुनत तिन मारन ठयऊ ❋ घन समान कपि गर्जत भयऊ ॥४॥

अरे निशाचरो ! कालके ग्रासमें तुम ही पड़े हो अपने रक्षकको स्मरण करो, तुम्हारी देवी ही तुम्हारा भक्षण करनेवाली हो गयी है ॥ ३ ॥ यह वाणी सुनते ही सब उन्हें मारनेको दौड़े तब कपि बादलके समान गर्जे ॥ ४ ॥

निशिचर सकल त्रसित भै भारी ❋ कहहिं वचन भय हृदय विचारी ॥५॥
अहिरावण भल कीन्ह न काजू ❋ आनेसि कपट वेष सुरराजू ॥६॥

तब सब राक्षस बहुत व्याकुल हो गये, हृदयसे डरके विचारपूर्वक वचन कहने लगे ॥५॥ अहिरावणने यह कार्य अच्छा नहीं किया, जो कपट वेषसे देवताओंके स्वामीको ले आया ॥६॥

तेहिते देवि क्रुद्ध भइ आजू ❋ अब भा सब कर मरन समाजू ॥७॥
संभ्रम वश तब निशिचर झारी ❋ बहुरि कीश गर्जेउ अति भारी ॥८॥

इसी कारण आज देवी क्रुद्ध हो गयी अब सबका मरण बन गया ॥ ७ ॥ सब राक्षस मोहके वशमें हो गये तब फिर महावीरजी बड़े जोरसे गरजे ॥ ८ ॥

दोहा–प्रगट रूप करि पवनसुत, अट्टहास गम्भीर ॥
अतिभय त्रासित रजनिचर, सुनहु उमा मतिधीर ॥ १५५ ॥

महावीरजी तब प्रकट रूप करके बड़े वेगसे गरजे, राक्षस अत्यन्त भयसे डर गये, हे पार्वती ! मतिमें धैर्य धर सुनो (जो आगे चरित्र हुआ) ॥ १५५ ॥

डगमग भे निशिचर अभिमानी ❋ मारुत वेग यथा नदिपानी ॥१॥
तेहि क्षण कपि लीन्हे दोउ भाई ❋ धुनत तूल निशिचर समुदाई ॥२॥

अभिमानी राक्षस डगमगाये जैसे पवनके वेगसे नदीका पानी हिलता हो ॥ १ ॥ महावीरजीने उसी समय दोनों भाइयोंको कन्धे पर चढ़ा लिया और रुईके समान राक्षसोंको धुनने लगे ॥ २ ॥

छीन कृपाण लीन्ह हनुमाना ❋ काटत भुज शिर कृषी समाना ॥३॥
खण्ड खण्ड तब खल दल कीन्हा ❋ गहिपद डारि अनल महँ दीन्हा ॥४॥

महावीरजीने तलवार छीन ली और राक्षसोंके शिर ऐसे काटने लगे जैसे किसान खेती काटते हों ॥ ३ ॥ दुष्टोंकी सेना काट डाली और पद पकड़-पकड़ आगमें डाल दिया ॥४॥

करि लंगूर कोट कपि राई ❋ जेहि महँ घिरि कोउ भागि न जाई॥५॥
इहि विधि सब निशिचर संहारे ❋ अहिरावण लखि वचन उचारे ॥६॥

महावीरजीने लंगूरका कोट चारों ओर घेरकर बना दिये जिससे कोई निकल कर भाग न जाय ॥ ५ ॥ इस प्रकार सब राक्षस संहार कर दिये तब अहिरावण देखकर बोला ॥ ६ ॥

रे कपि ढीठ त्रास नहिं तोहीं ❋ अहिरावण तैं जान न मोहीं ॥७॥
जम्बुमालि कहँ जिमि तैं मारा ❋ अरु रावणसुत हतेउ विचारा ॥८॥

रे धृष्ट वानर ! तुझे डर नहीं है ? मैं अहिरावण हूँ मुझे नहीं जानता ? ॥ ७ ॥ जैसे तूने जम्बुमाली और रावणके पुत्र अक्षयको मार डाला है क्या वैसा ही मुझे समझता है ? ॥८॥

दोहा-कालनेमि सम नाहिं मैं, करु मम वचन प्रमान ॥
अस कहि खड्ग प्रहार किय, कपि तनु वज्र समान ॥ १५६ ॥

मैं कालनेमिके समान नहीं हूँ मेरे वचन मानो यह कह महावीरजीके एक तलवार मारी परंतु इनका शरीर तो वज्र सम था, चोट न आयी ॥ १५६ ॥

लै असि ताहि पवनसुत मारा ❋ काटि शीश पावक महँ डारा ॥१॥
आहुति पूर्ण दीन्ह तब कीशा ❋ लै पुनि चलेउ लषण जगदीशा॥२॥

तब महावीरजीने उससे वही तलवार छीन उसके मारी और उसका शिर काट आगमें डाल दिया ॥ १ ॥ इस प्रकार महावीरजी पूर्णाहुति दे राम लक्ष्मणजीको लेकर चले ॥ २ ॥

मकरध्वज प्रणाम तब कीन्हा ❋ बन्धन छोरि राज्य तेहि दीन्हा ॥३॥
इहां राज्य भोगहु तुम ताता ❋ भजहु सदा मम प्रभु दोउ भ्राता ॥४॥

चलते समय मकरध्वजने प्रणाम किया, तब महावीरजीने बन्धन खोलकर उसे वहांका राज्य दे दिया ॥ ३ ॥ और बोले हे तात ! यहां राज्य भोगो और सदा मेरे स्वामी दोनों भ्राताओंका भजन करते रहो ॥ ४ ॥

अस कहि कपि निज दल सो आवा ❋ हर्षेउ कटक सबनि सुख पावा ॥५॥
मृतक शरीर प्राण जिमि आवहिं ❋ मणि निज पाय फणी सुख पावहिं ॥६॥

यह कह महावीरजी अपने दलमें आये, देखकर सारी सेना प्रसन्न हो गयी ॥ ५ ॥ जैसे मृतक शरीरमें प्राण आ जाते हैं और अपनी मणि पाकर सर्प प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

बिछुर अलभ्य मिलै जनु आई ❋ तिमि हर्षे सब लखि दोउ भाई ॥७॥
मिलेउ कपीश चरण धरि माथा ❋ पुनि पद गहे निशाचर नाथा ॥८॥

अथवा जैसे अलभ्य वस्तु बिछुड़ कर फिर आकर मिलती है, उसी प्रकार सब दोनों भाइयोंको देखकर प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ सुग्रीव चरणोंमें माथा धरके मिले, विभीषणने चरण गहे ॥ ८ ॥

दोहा-जाम्बवन्त अंगद सहित, मिले भालु अरु कीश ॥
सनमाने कहि वचन प्रिय, लषण कोशलाधीश ॥ १५७ ॥

जाम्बवन्त और अङ्गदादि सब रीछ वानर मिले, लक्ष्मण और रघुनाथजीने प्रिय वचन कह उन सबका सन्मान किया ॥ १५७ ॥

बहुरि सबहि भेंटे हनुमाना * कहहिं तात तुम राखे प्राना ॥१॥
देवन सुमन वृष्टि तब कीन्हीं * प्रमुदित हृदय दुन्दुभी दीन्हीं ॥२॥

फिर सब कोई महावीरजीसे मिले और बोले–हे तात ! आपने ही हमारे प्राण रखे हैं॥१॥ देवताओंने फूलोंकी वर्षा कर हृदयमें प्रसन्न हो नगाड़े बजाये ॥ २ ॥

अनुज सहित हर्षित रघुवीरा * कहेउ वचन सुनु तनय समीरा ॥३॥
तुम समान नहिं कोउ हितकारी * सुर मुनि सिद्ध मनुज तनुधारी ॥४॥

लक्ष्मणसहित रघुनाथजी प्रसन्न होकर बोले–हे पवनपुत्र ! सुनो ॥ ३ ॥ तुम्हारे समान देवता, मुनि, सिद्ध, मनुष्योंमें कोई शरीरधारी उपकारी नहीं है ॥ ४ ॥

यश तुम्हार त्रिभुवन महँ भयऊ * सुनि प्रभु वचन चरण कपि नयऊ॥५॥
नाथ कीन्ह सब मैं केहि लेखे * तरणी चलत अगम जल देखे ॥६॥

तुम्हारा यश त्रिलोकमें फैल जायगा, महावीरजी वचन सुन रघुनाथजीके चरणोंमें पड़े और बोले ॥ ५ ॥ महाराज ! आपने ही सब कुछ किया मैं किस गिनतीमें हूँ ? जैसे नौका अगम जल देख चलती है ॥ ६ ॥

तैसे सब प्रताप तव नाथा * सुनि अस मिले कपिहि रघुनाथा॥७॥
कटक सहित हर्षे दोउ भाई * तेहि अवसर सुख किमि कहि जाई॥८॥

उसी प्रकार सब आपके प्रतापसे होता है, रघुनाथजी यह सुन महावीरजीसे मिले ॥ ७ ॥ सेनासहित दोनों भाई प्रसन्न हुए, उस समयका सुख क्या कहा जाय ? ॥ ८ ॥

छन्द–कहि जाय सुख किमि तेहि समय कर सुनहु गिरिजा चित धरे ।
रघुवीर रुख अवलोकि हर्षित आरती सुरगण करे ॥
अति प्रेमसों मारुतसुवन यश गाइ विवुधन अस कहा ।
नर नारि यहि कीरति सुनहिं गावहिं लहहिं मंगल महा ॥ ७॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! सावधान होकर सुनो, उस समयका सुख कैसे कहा जाय ? रघुनाथजीका रुख देख प्रसन्न हो देवता समूह आरती करने लगे, देवताओंने बड़े प्रेमसे महावीरजीका यश गाकर यह कहा जो कोई नर नारी इस कीर्तिको सुनेंगे और गावेंगे वे महामङ्गल पावेंगे अर्थात् बड़े आनंदको प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

दोहा–इहि विधि करि हरि आरती, वाणी सत्य सुनाय ॥
रामचरण अनुरागेउ, अमर सुमन झरि लाय ॥ १५८ ॥

इस प्रकार देवता भगवान्की आरती कर, सत्य वाणी सुनाकर फूलोंकी वर्षा कर रघुनाथजीके चरणोंके अनुरागी हुए ॥ १५८ ॥

देव निडर प्रभु गुणगण गावहिं * आरतिहर कहँ विनय सुनावहिं॥१॥
विवुध विनय रघुपति सुनि काना * कह प्रभु सत्यसंध भगवाना ॥२॥

देवता निडर होकर प्रभुके गुणगण गाते और दुःखहारीको विनय सुनाते हैं ॥ १ ॥ सत्य-प्रतिज्ञ रघुनाथजीने देवताओंकी विनय सुनकर ये वचन कहे ॥ २ ॥

चतुरानन वर दीन्ह अपेला * तेहि कारण यह बाढ़्यो खेला ॥३॥
नाहित लषण एक पलमाहीं * राखत यातुधान कुल नाहीं ॥४॥

ब्रह्माजीने अनिवार्य वर दिया है, अर्थात् जो टल नहीं सकता, इसी कारण यह खेल बढ़ गया है ॥ ३ ॥ नहीं तो लक्ष्मण एक पलमें राक्षसोंका कुल न रहने देते ॥ ४ ॥

अजहुँ होय रण कौतुक भारी * निरखहु तुम सब शोच बिसारी ॥५॥
अब जो रहेउ निशाचर शेखा * भटमहँ जासु भुजाकर रेखा ॥६॥

अब भी युद्धमें बड़ा कौतुक होगा, तुम सब शोच बिसार कर देखना ॥ ५ ॥ अब जो निशाचर अवशेष रहे हैं जिनकी गिनती बड़े योद्धाओंमें है ॥ ६ ॥

तेहि रणमहँ मैं हतहुँ प्रचारी * बिनुश्रम सब सन कहत खरारी ॥७॥
शम्भु कृपा अब संशय नाहीं * सुनि सुर अति हर्षे मनमाहीं ॥८॥

उन्हें मैं युद्धमें मार डालूँगा और कुछ श्रम न होगा, यह बात रघुनाथजीने सबसे कही ॥ ७ ॥ शिवजीकी कृपासे अब कुछ श्रम न होगा, यह सुन देवता मनमें बड़े प्रसन्न हुए॥८॥

दोहा-सत्य वचन सुनि रामके, आनंदित सुर यूह ॥
चले कहत जय जयति प्रभु, वर्षे सुमन समूह ॥ १५९ ॥

रघुनाथजीके सत्य वचन सुनके देवता समूह बड़े प्रसन्न हुए और 'जय जयकार' कहते फूलोंकी वर्षा करते हुए चले ॥ १५९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायां लंकाकाडान्तर्गत अष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

दोहा-नारान्तक कर जन्मतप, अरु गढ़ लंक पयान ।
सो नवमे विश्राममें, कहहुँ सुमिरि भगवान ॥ ९ ॥

यह चरित्र शुचि सुनहु सुहावा * खगपति रामकृपा मैं गावा ॥१॥
अब हिय हर्षि सुनहु द्विजराई * मानस कहहुँ सुमिरि रघुराई ॥२॥

हे गरुड़जी ! यह पवित्र चरित्र बड़ा शोभायमान है मैंने रामजीकी कृपासे तुम्हें सुनाया है॥ १॥ हे पक्षिराज!अब और कथा मनमें प्रसन्न हो सुनो,रघुनाथजीको स्मरण कर मानस कहता हूँ॥२॥

याज्ञवल्क्य पद वंदि प्रतीती * भरद्वाज बोले शुचि नीती ॥३॥
यह चरित्र अति रुचिर सुहावा * सुनि मैं नाथ परमसुख पावा ॥४॥

याज्ञवल्क्यके चरणोंमें प्रेमपूर्वक दण्डवत करके भरद्वाजजी पवित्र नीतियुक्त वचन बोले॥३॥ हे स्वामिन् । आपके मुखसे यह परम मनोहर चरित्र श्रवण करके मैंने बड़ा सुख पाया ॥ ४ ॥

अहिरावण-वधांत भगवाना * चरित किये सो करहु बखाना ॥५॥
सुनि मुनि विनय ऋषय पुलकाई * बोले हृदय सुमिरि रघुराई ॥६॥

अब वह चरित्र सुनाओ जो अहिरावणके वधके उपरान्त भगवान्ने किये ॥ ५ ॥ भरद्वाज की विनय सुन प्रसन्न हो रघुनाथजीका मनमें स्मरण कर याज्ञवल्क्यजी बोले ॥ ६ ॥

प्रश्न तुम्हार तात अतिपावन ❋ सहज सुभग सज्जन मनभावन ॥७॥
मानस हरि-चरित्र शुठि नीका ❋सुनत करत जो कोउ मन फीका ॥८॥

हे तात ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा पवित्र है, जो स्वभावसे सरल और महात्माओंके मनको प्रसन्न करनेवाला है ॥ ७ ॥ यह मानसनामक भगवान्का चरित्र बहुत श्रेष्ठ है, जो कोई इसे सुनकर मन फीका करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-सोई जगवंचक सुनहु; जेहि मानस न सुहाइ ॥
भवसागरमहँभ्रमत सो, अमित कल्प चलि जाइ ॥ १६० ॥

सुनिये भरद्वाज ! वे ही जगके ठग हैं जिन्हें रामचरितमानस नहीं अच्छा लगता और वे ही जाकर अनेक कल्प भवसागरमें घूमते हैं ॥ १६० ॥

मानस सुनत न मनहिं अघाहीं ❋ तिनसम धन्य और कोउ नाहीं ॥१॥
धन्य धन्य तुम समको आना ❋ललित चरित अति सुनहु सुजाना॥२॥

रामचरितमानस श्रवण करते जिनका मन नहीं अघाता उनके समान और कोई धन्य नहीं ॥१॥ अतः आपके समान कौन धन्य है ? अब हे चतुर ऋषिराज ! अति श्रेष्ठ चरित्र सुनो ॥२॥

राम लषण दलसहित विराजे ❋ जयतिरामकहिकपि गणगाजे ॥३॥
रामसेन सुषमा अधिकाई ❋ निगमागम जानहिं बुध भाई ॥४॥

राम लक्ष्मण दलसहित विराजमान हुए, 'जय राम' कहकर वानरगण गर्जने लगे ॥ ३ ॥ भाई ! रघुनाथजीकी सेनाकी अधिक शोभा वेद, शास्त्र और पंडित ही जान सकते हैं ॥ ४ ॥

वहाँ दशानन सब सुधि पाई ❋ दूत सँदेश दीन्ह सब जाई ॥५॥
अहिरावण कर वध सुनि काना ❋ भयउ तेजहत अति दुखमाना ॥६॥

वहाँ रावणने यह सब समाचार पाये एक दूतने समाचार सुनाये ॥ ५ ॥ अहिरावणका वध कानोंसे सुनकर रावणका तेज हत हो गया और बड़ा ही दुःख माना ॥ ६ ॥

वचन वज्रसम लागे ताहीं ❋ संभ्रमि मूर्छि परेउ महिमाहीं ॥७॥
कटे पंख जिमि विहग विहाला ❋ रंक चीर गत निशि हिमकाला॥८॥

उसे वज्रके समान वचन लगे, संभ्रमित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥७॥ जैसे पंख काट देनेसे पक्षी व्याकुल हो जाता है और जैसे जाड़ेकी रात्रिमें विना वस्त्र कंगाल दुःखी होता है ॥८॥

मुख सुखान लोचन जल बहई ❋ वचन न आव शीश धुनि रहई ॥९॥

रावणका मुख सूख गया, नेत्रोंसे जल बहने लगा, वचन नहीं आया शिर धुनने लगा ॥ ९ ॥

दोहा-मयतनया तब आय पुनि, बहु प्रकार समुझाइ ॥
मान न मूरख कालवश, परम क्रोध कहँ पाइ ॥ १६१ ॥

तब फिर मन्दोदरीने आकर अनेक प्रकारसे समझाया परन्तु वह मूर्ख कालके वशमें था महाक्रोधमें भर गया (मन्दोदरीने कहा बली होकर सोचते हो ?) ॥ १६१ ॥

नारि वचन सुनि तेहि रिस बाढ़ी ❋ उठि बैठेउ धरि धीरज गाढ़ी ॥१॥
तेहि अवसर मन्त्री एक आवा ❋ करि आदर दशमुख बैठावा ॥२॥

नारीका वचन सुनकर रावण बड़ा क्रोधित हुआ और अत्यन्त धैर्य धरकर उठ बैठा ॥ १ ॥ उसी समय एक मन्त्री आया, रावणने आदरके साथ उसे बैठाया ॥ २ ॥

सिन्धुरनाद नाम बलवाना * वृद्ध ज्ञानमय परम सुजाना ॥३॥
सदा विभीषणकर सँग ठयऊ * कबहूँ दशमुख सभा न गयऊ ॥४॥

मन्त्रीका नाम सिन्धुरनाद था, बड़ा वृद्ध ज्ञानी परम चतुर था ॥ ३ ॥ सदा विभीषणके साथ रहता था, रावणकी सभामें कभी नहीं गया था ॥ ४ ॥

आवा सो भल अवसर पाई * कहेसि नीति रावणहि बुझाई ॥५॥
ज्ञान कथा दशमुख न सुहानी * तब बहिराइ बात कह आनी ॥६॥

सो अच्छा समय पाकर आया और रावणसे समझाकर नीति कहने लगा ॥ ५ ॥ रावणको ज्ञान कथा अच्छी नहीं लगी, तब वह बहला कर दूसरी बात करने लगा ॥ ६ ॥

करिवरनाद हृदय अस गुनेऊ * प्रभु दुहुँ ताग हृदय पट बुनेऊ ॥७॥
अब यहि कहौं सो सरल उपाई * जेहि यह मूढ़ समूल नशाई ॥८॥

सिन्धुरनादने हृदयमें यह विचार किया कि प्रभुके हृदयमें दोनों तागोंसे पट बुना गया है अर्थात् स्वामीके हृदयमें अज्ञानका आवरण पड़ा है ॥ ७ ॥ सो अब इसे सरल उपाय बताऊँ जिससे यह मूर्ख जड़ समेत नष्ट हो जाय ॥ ८ ॥

दोहा—यह विचारि बोल्यो सचिव, सुनहु दनुज कुलराय ॥
धीर धरहु संशय विगत, कहहुँ सो करिय उपाय ॥ १६२ ॥

यह विचार कर मन्त्री बोला—हे राक्षसकुलनृपति सुनो ! और जो मैं कहूँ वही उपाय करो सन्देह त्याग धैर्य धरो ॥ १६२ ॥

अक्षादिकन सुतन बल दूना * कस सुरारि मन आनहु ऊना ॥१॥
सचिव वचन सुनि दशमुख कहई * अब हमरे कुल को भट अहई ॥२॥

हे सुरारि ! अभी तो आपके अक्षादिक पुत्रोंसे दूने बली पुत्र विद्यमान हैं, मनमें ग्लानि क्यों मानते हो ॥ १ ॥ यह मन्त्रीके वचन सुनकर, रावण बोला—अब हमारे कुलमें कौन योद्धा शेष है ? ॥२॥

अपने मनमहँ करहु विचारा * है नारान्तक तनय तुम्हारा ॥३॥
मूल अभुक्त-माहिं भा जोई * दियो बहाय मरा नहिं सोई ॥४॥

मन्त्री बोला—अपने मनमें विचार करो, आपका नारान्तक पुत्र विद्यमान है ॥ ३ ॥ जो मूलकी अभुक्त[1] घड़ीमें उत्पन्न हुआ था, जिसे तुमने बहा दिया परन्तु वह मरा नहीं ॥ ४ ॥

शम्भु प्रसाद ताहि कछु भयऊ * पुर विहबावल नृपता दयऊ ॥५॥
कोटि बहत्तरि एक प्रभाऊ * राजा प्रजा भेद नहिं काऊ ॥६॥

---

१. अभुक्तघटीका प्रमाण—नारदजीके मतमें ज्येष्ठाके अन्तकी चार घटी और मूलके आदिकी चारघटी अभुक्त हैं, वसिष्ठके मत में ज्येष्ठाकी पिछली एक घटी मूलके पहलेकी दो घटी, बृहस्पतिके मतमें दोनोंकी एक-एक घटी अभुक्त कहलाती हैं।

उसके ऊपर कुछ शिवजीकी कृपा हुई, वह बिहबावलपुरमें राज्य करता है ॥ ५ ॥ बहत्तर करोड़ एकही प्रभावके हैं राजा प्रजा किसीमें कुछ भेद नहीं है ॥ ६ ॥

दूत पठाय बुलावहु ताही * जीतिहि सो रिपु रणमहि माही ॥७॥
दनुजअधीश चतुर चर पठवो * धरहु धीर चित चिंता घटवो ॥८॥

दूत भेजकर उसे बुलाओ, वह निश्चय युद्ध क्षेत्रमें शत्रुको जीतेगा ॥७॥ हे रावण ! वहां कोई चतुर दूत भेजिये और धैर्य धरो मनमें चिंता मत करो ॥ ८ ॥

दोहा–तासु मन्त्र सुनि दशवदन, हृदय प्रमोद अमान ॥
धूमकेतु कहँ बोलि ढिग, समुझायहु सनमान ॥ १६३ ॥

रावण उसके यह वचन सुन हृदयमें अति प्रसन्न हुआ और 'धूमकेतु' दूतको निकट बुलाकर बड़े सन्मानसे बोला ॥ १६३ ॥

धूमकेतु तुम परम सयाना * लै मम पाती करहु पयाना ॥१॥
बसत जहाँ नारान्तक राजा * तहाँ न तात अवर कर काजा ॥२॥

धूमकेतु ! तू बड़ा चतुर है, मेरी पत्री लेकर जा ॥ १ ॥ हे तात ! जहाँ नारान्तक राजा है वहां सिवाय तेरे और के जानेका काम नहीं है ॥ २ ॥

अवसर पाइ हेतु समुझाई * सपदि ताहि लै आनो भाई ॥३॥
आयसु चार पाय तहँ गवना * यह सुनि विहँसि कह्यो अहिदवना॥४॥

भाई ! समय पाके कारण समझाकर उसे शीघ्र ले आओ ॥ ३ ॥ आज्ञा पाके दूत चला गया, यह कथा सुनकर गरुड़जी काकभुशुण्डिजीसे हँसकर बोले ॥ ४ ॥

काकनाथ यह गाथ सुहाई * मोसन तात कहहु समुझाई ॥५॥
नारान्तक-उत्पत्ति यथा विधि * पुर बिहबावल गा कवनी विधि ॥६॥

हे तात काकभुशुण्डजी ! यह सुन्दर कथा मुझसे समझाकर कहो ॥ ५ ॥ नारान्तककी उत्पत्ति कैसे हुई ? और वह बिहबावलपुरमें कैसे गया ! यह यथा विधि कहो ॥ ६ ॥

सुमिरि काकपति उर अवधेशहि * मन प्रसन्न करि कह विहगेशहि ॥७॥
अति सुन्दर शुचि यह संवादू * चित थिर करि सुनिये उरगादू ॥८॥

काकभुशुण्डजी हृदयमें रघुनाथजीका स्मरण कर मनमें प्रसन्न हो गरुड़जीसे कहने लगे ॥७॥ यह संवाद बहुत सुन्दर तथा पवित्र है। हे गरुड़जी ! चित्त स्थिर करके सुनो ॥ ८ ॥

दोहा–नखचौगुन वसु ऊन तहँ, सप्त अकाश मिलाइ ॥
इतने निशिचर एक दिन, भे रावणपुर आइ ॥ १६४ ॥

नख (बीस) उसके चौगुने अस्सी हुए, उसमें वसु (आठ), ऊन (घटाये) तो बहत्तर रहे उसमें सात शून्य मिलाये तो बहत्तर करोड़ हुये;इतने राक्षस रावणके यहां एक संग उत्पन्न हुये ॥१६४॥

पुरमहँ उपजे खल इकसाथा * तब सुनि हर्ष निशाचर नाथा ॥१॥
निज गुरु बोलि चरण शिरनाई * बूझा मुदित सो कलश धराई ॥२॥

लंकापुरीमें वे दुष्ट सब राक्षसोंके घर उत्पन्न हुए तब यह सुन रावण (बड़ा) प्रसन्न हुआ ॥१॥

शुक्राचार्यको बुलाकर चरणोंमें शिर नवाकर कलश धरकर उनका लग्न मुहूर्त पूछा ॥ २ ॥

भृगुनन्दन तब तेहिसन कहेऊ * आजु बाल सब मूलहिं भयऊ ॥३॥
सत्य कहउँ दशमुख तुम पाहीं * भये आजु जे तव पुर माहीं ॥४॥

तब शुक्राचार्यने उनसे कहा—आज सब बालक मूल नक्षत्रमें हुए हैं ॥३॥ हे रावण ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जितने आज तुम्हारे पुरमें हुए हैं ॥ ४ ॥

ते सुत सब निज निज पितुघाती * मुख देखत सुनु सुर आराती ॥५॥
घर राखे धन सहित विनाशा * होइ अवशि नहिं उबरन आशा॥६॥

ये बालक सब अपने पिताके नाशक हैं जो इनका मुख देखेगा वह मरेगा ॥५॥और जो उन्हें घर रखेगा तो उसका धन सहित नाश हो जायगा, फिर उसके उबरनेकी आशा नहीं है ॥६॥

शुक्र वचन सुनि डरे निशाचर * कहा करिय अतिवाद परस्पर ॥७॥
निश्चय कीन्ह प्रसव शिशु आजू * सौंपिय सिंधुहिं और न काजू ॥८॥

शुक्राचार्यके वचन सुनकर राक्षस डर गये 'क्या करें' ऐसा सब वाद कहने लगे ॥ ७ ॥ निश्चय आज जितने बालक उत्पन्न हुए हैं उन सबको समुद्रमें डुबा दीजिये और काम नहीं है॥८॥

दोहा—सपदि करहु सब काज यहु, लावहु बाल बटोरि ॥
राखे होइहि हानि अति, कह दशवदन बहोरि ॥ १६५ ॥

यह सब काम शीघ्र करो, बालकोंको बटोर लाओ, रखनेसे बड़ी हानि होगी यह रावणने कहा ॥ १६५ ॥

सेवक दशमुख आयसु पाई * धाये तुरत चरण शिरनाई ॥१॥
रावण आयसु नगर पुकारी * सुनहु सकल पुर नर अरु नारी ॥२॥

सेवक रावणकी आज्ञा पाकर चरणोंमें शिर नवाकर तुरंत चले ॥ १ ॥ और रावणकी आज्ञा सारे नगरमें फैला दी और कहा कि हे नगरके नर नारियो ! सब कोई सुनो ॥ २ ॥

आज अभुक्त मूल भये बालक * डारहु सागर सब कुलघालक ॥३॥
बोरे सबनि बाल इक ठाईं * भावी वश मधुमाखी नाईं ॥४॥

आज सब बालक अभुक्त मूलमें हुए हैं इनको समुद्रमें डाल दो क्योंकि सब कुलनाशक हैं ॥ ३ ॥ होनहारके वश सबने बालकोंको एकही जगह मधुमक्खियोंकी तरह डाल दिया ॥ ४ ॥

पाय अधार वृक्ष बट बोरा * पीवन लगे क्षीर चहुँ ओरा ॥५॥
पीवत क्षीर अब्द भरि साती * पुष्ट भये खल निशिचर जाती ॥६॥

तब वे सब बालक वटके वृक्षमें चिपटकर चारों ओर दूध पीने लगे ॥ ५ ॥ सात वर्षतक दूध पीते रहे, तब वे दुष्ट निशाचर पुष्ट हो गये ॥ ६ ॥

पुनि सब एक संग तहँ जाई * सुरसरि संगम भा जिहिं ठाईं ॥७॥
तहँ शिव मन्दिर परम सुहावा *सबनि विलोकि मुदित शिर नावा॥८॥

फिर सब एक संग गङ्गा संगममें जाकर बैठे ॥ ७ ॥ वहां एक परम सुन्दर शिवजीका मंदिर था, सबने देखकर प्रसन्न हो उसे शिर नवाया ॥ ८ ॥

छन्द-शिर नाइ मुदित विलोकि शिवमन्दिर सुहावन पावनं ॥
कछु दिन रहे तहँ सकल पुनि उठि चले सुन अहिदावनं ॥
रावणपुरीते दिशा प्राची कोस शत रस चलि गये।
बैठे जलधि महँ पाइ थल वर शम्भु चरणन चित दिये ॥८॥

शिवजीका परम सुन्दर पवित्र मंदिर देखकर प्रसन्न हो शिर नवाये और कुछ दिन वहां रहे फिर वहांसे उठकर चले। हे गरुड़जी ! सुनो, रावणकी पुरीसे पूर्वकी ओर छः सौ कोश चले गये, वहां सुन्दर स्थान पाकर सागरके तटपर बैठ भूतभावन शिवजी महाराजके चरणोंका स्मरण करने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-जानत नहिं उत्पत्ति निज, मनमहँ करत विचार ॥
गे तेहि ढिग जाकर विदित, रविते छठवां बार ॥ १६६ ॥

अपनी उत्पत्ति नहीं जानते, मनमें विचार करने लगे, तब वे उनके पास गये जिनका रविवारसे छठावार (शुक्र) विदित है, अर्थात् शुक्राचार्यके निकट गये ॥ १६६ ॥

हरि अरिगुरु निज शिष्यन चीन्हा ॥ करत प्रणाम आशिषा दीन्हा ॥१॥
कहि निज नाम सबनि समुझावा ॥ कुलगुरु जानि सुविनय सुनावा॥२॥

दैत्य गुरुने अपने शिष्योंको पहचान और उनके प्रणाम करनेपर आशीर्वाद दिया ॥१॥ अपना नाम कहके शुक्राचार्यने सबको समझाया,उन्होंने कुलगुरु जानकरसुन्दर विनती सुनायी।२।

निज उतपति बूझा शिर नाई ॥ भृगुनन्दन सो सकल सुनाई ॥३॥
सुनि आपन वृत्तान्त लजाने ॥ लखि रुख भृगुनायक सन्माने ॥४॥

और शिर नवाकर अपनी उत्पत्ति पूछी, तब शुक्राचार्यने सब कारण सुनाया ॥३॥ अपना वृत्तांत सुनते ही सब लजा गये। उनकी वह चेष्टा देखकर शुक्रने बहुत सम्मान किया ॥ ४ ॥

करि परितोष मन्त्र गुरु दीन्हा ॥ शिक्षा पाइ गमन तिन्ह कीन्हा॥५॥
ज्ञान लहेउ सब संशय त्यागी ॥ भये विरंचि पद तब अनुरागी ॥६॥

गुरुने सन्तोष कर मन्त्र दिया, उन्होंने शिक्षाको प्राप्त हो वहांसे गमन किया ॥ ५ ॥ तब सब ज्ञानको प्राप्त हो सन्देहको त्यागकर ब्रह्माके चरण कमलका आराधन करने लगे ॥ ६ ॥

निराहार बैठे एक आसन ॥ वर्ष सहस तप किय उरगासन ॥७॥
श्वास धारि कृत वर्ष हजारा ॥ रहे ऊर्ध्वमुख विना अहारा ॥८॥

हे गरुड़जी ! निराहारसे एक आसन बैठे रहे इस प्रकार उन्होंने हजार वर्ष तप किया॥७॥ फिर श्वास धारण कर हजार वर्षतक विना भोजन किये ऊर्ध्वमुख खड़े रहे ॥ ८ ॥

दोहा-एक पाद पुहुमी दिये, अपर अंग अनयास ॥
सकल पुष्टतन मन हरष, सपनेहु भूख न प्यास ॥ १६७ ॥

एक चरण पृथ्वीमें धारण किये सब अंग आधार हीन किये सब कोई शरीरसे पुष्ट मनमें प्रसन्न (परिश्रम सहित तप करने लगे) उन्हें स्वप्नमें भी भूख प्यास नहीं लगती थी ॥१६७॥

तप अति उग्र विचारि विधाता ॥ तिन ढिग गमने मन मुसुकाता ॥१॥

हंसारूढ़ कमंडलु हाथे * श्वेत मुकुट शुचि चारिउ माथे॥२॥

ब्रह्माजी बड़ी उग्र तपस्या विचार कर मनमें मुसकाते हुए उनके निकट गये ॥१॥ हंसपर चढ़े कमण्डलु हाथमें, चारों शिरोंके ऊपर उज्ज्वल मुकुट धारण किए ॥ २ ॥

आनन चारि नयन वसु नीके * चारिउ भाल भस्म शुभ टीके ॥३॥
उपमा किमि प्रभु सब जग अयना * भाष्यो दया सदन तब बयना ॥४॥

ब्रह्माजीके चार मुख, सुन्दर आठ आँखें हैं, चारों मस्तकोंपर भस्मका सुन्दर टीका लगाये थे॥३॥सब जगत्के निवास स्थान प्रभुकी क्या उपमा दें ? तब दयासागर यह वचन बोले ॥४॥

माँगहु वर जो सब मन भावा *सुनेउ सबनि विधिपद शिर नावा॥५॥
नाथ चहत हम यह वरदाना * हमहिं कोउ न जीतै मैदाना ॥६॥

जो सबके मन भावे वह वर मांगो, यह सुनकर सबने ब्रह्माजीके चरणोंमें शिर नवाया (और कहा) ॥५॥ हे नाथ ! हम यह वरदान चाहते हैं कि हमको कोई संग्राममें न जीते ॥ ६ ॥

एवमस्तु विधि कहेउ विचारी * आन पाणि नहिं मृत्यु तुम्हारी ॥७॥
हरि सुत है तुम्हार गुरुभाई * तेहि सन करेउ न कबहुँ लराई ॥८॥

ब्रह्माने विचार कर कहा-'ऐसा ही होगा' तुम्हारी और किसीके हाथ मृत्यु न होगी ॥७॥ सुग्रीवका पुत्र तुम्हारा गुरु भाई होगा, उससे कभी मत लड़ना ॥ ८ ॥

दोहा-जो तेहिसन करिहौ समर, मरिहौ वचन प्रमान ॥
एकहि कहँ वरदान यह, दै कह कृपानिधान ॥१६८॥

जो उससे युद्ध करोगे तो मारे जाओगे, यह मेरा वचन सत्य मानो एकहि नरांतकको ब्रह्माजीने यह वरदान देकर कहा ॥ १६८ ॥

दियउ नरान्तक कहँ वरदाना * रहे अपर जे धरि उर ध्याना ॥१॥
तिनसन वरं ब्रूहि विधि कहेऊ * सुनत प्रमोद सबनि उर लहेऊ ॥२॥

यह तो नरांतकको वरदान दिया, परन्तु जो हृदयमें ध्यान कर रहे थे ॥ १ ॥ उनसे ब्रह्माजीने कहा-वर मांगो, वे सब सुनकर मनमें आनंदित हुए ॥ २ ॥

सुनि विधि गिरा सबनि कह स्वामी * देहु एक वर अन्तर यामी ॥३॥
देवासुर संग्रामहि माही * जीतहिं हम यह वर सुरनाही ॥४॥

ब्रह्माजीकी वाणी सुनकर वे सब बोले-हे स्वामी ! आप अन्तर्यामी हो एक यह वर दो ॥३॥ देवासुर संग्राममें हमारी जीत हो, आपसे यही वर मांगते हैं ॥ ४ ॥

अस कहि रहे दनुज शिर नाई * तिनसन कहेउ विरंचि बुझाई ॥५॥
तुम अजीत सबसन सब भांती * वानर भालु त्यागि दुइ जाती ॥६॥

यह कह वे राक्षस शिर नवाकर खड़े हो गये, उनसे ब्रह्माजी समझाकर बोले ॥ ५ ॥ तुम केवल रीछ, वानर दो जातियोंको छोड़कर सब प्रकार सबसे अजीत रहोगे ॥ ६ ॥

यहि विधि सब कहँ दै वरदाना * ब्रह्मलोक गे ब्रह्म सुजाना ॥७॥
विधिते लहि वर तिन सुख बाढ़ा * लागे करन बहुरि तप गाढ़ा ॥८॥

इस प्रकार सबको वरदान देकर सुजान ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर वे सब बड़े प्रसन्न हुए और कठिन तप करने लगे ॥ ८ ॥

दोहा–गिरा समेत गिरीश सब, जपहिं निरन्तर नाम ॥
जोरि युगल कर एक पद, निशिदिन आठौं याम ॥ १६९ ॥

सब कोई दोनों हाथ जोड़कर एक चरणसे खड़े होकर रात्रि दिन आठों पहर निरन्तर पार्वती सहित शिवजी महाराजका नाम जपने लगे ॥ १६९ ॥

बिनु प्रयास ठाढ़े सब भाई * क्षुधा तृषा निद्रा बिसराई ॥१॥
गुण सहस्र संवत सब ऐसे * गये बीत प्रथमहि तप जैसे ॥२॥

सब भाई विना प्रयास ही भूख, प्यास, नींद त्यागकर खड़े हुए ॥ १ ॥ तीन हजार वर्ष उन्हें तपस्या करते ऐसे बीत गये जैसे पहले बीते थे ॥ २ ॥

सबनि शीश पुनि अवनी दीन्हा * उभय चरण ऊपर सब कीन्हा ॥३॥
जोरे कर निरोध कर श्वासा * जपहिं मन्त्र शंकर वर आसा ॥४॥

तब फिर सब नीचेको शिर, दोनों पैर ऊपरको करके ॥ ३ ॥ हाथ जोड़, श्वास रोक श्रेष्ठ वरकी इच्छासे शिवजीका स्मरण करने लगे ॥ ४ ॥

मुनिजन तिनकर साधन देखी * मनमहँ मानत सकुच बिसेखी ॥५॥
हरि इच्छाबल हृदय विचारी * निरखि चले मुनि जपत पुरारी ॥६॥

मुनिजन उनका साधन देखकर मनमें विशेष सकुच मानने लगे ॥ ५ ॥ तब नारायणकी इच्छाको विचार कर मुनि उन्हें देख शिव भगवान्‌को हृदयमें जपते चले गये ॥ ६ ॥

अयुत अब्द बीते खग नायक * भे प्रसन्न शिव जन सुखदायक ॥७॥
चढ़े बरद हिमसुता समेता * आये तिन तट कृपानिकेता ॥८॥

काकभुशुण्डजी बोले–हे गरुड़जी ! जब दश हजार वर्ष बीते तब जनोंके सुख देनेवाले शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ तब पार्वती सहित कृपालु शिवजी बैलपर चढ़कर आये ॥ ८ ॥

दोहा–बोले तिनहिं प्रशंसि शिव, माँगहु वर मन भाव ॥
नारान्तक करि दण्डवत, बोला सुनु सुरराव ॥१७०॥

उनकी प्रशंसा करके शिवजी बोले जो मन भावे वह मांगो; तब नारांतक दण्डवत् कर बोला–हे देवताओंके स्वामी ! सुनो ॥ १७० ॥

मैं तप कियेउँ दरश तव लागी * नाथ दीनजन चित अनुरागी ॥१॥
अब मांगत आवति मोहिं लाजा * ठाढ़ रहा कहि निशिचर राजा ॥२॥

मैंने आपके दर्शनके निमित्त तप किया था, हे नाथ ! आप तो भक्तवत्सल हो ॥ १ ॥ अब मुझे मांगते लाज आती है, यह कहकर निशिचरराज खड़ा रह गया ॥ २ ॥

मांगु सकुच तजि पुनि हर कहेऊ * नारांतक तब मांगत भयेऊ ॥३॥
मोहि विभव अस देहु गुसाईं * भूप प्रजा नहिं परहिं लखाईं ॥४॥

फिर शिवजी बोले-तुम सकुच त्यागकर मांगो, तब नारांतक माँगने लगा ॥ ३ ॥ हे शिवजी ! मुझे ऐसा ऐश्वर्य दीजिये जो राजा प्रजामें भेद नहीं विदित हो ॥ ४ ॥

पुर अनयास बसहि मम नाथा ❋ यह कहि रहा जोरि युग हाथा ॥५॥
एवमस्तु कहि हर सुरईशा ❋ गमने भवन सहित वागीशा ॥६॥

हे नाथ ! मेरा नगर विना परिश्रमके बस जाय, यह कहकर वह दोनों हाथ जोड़कर खड़ा रह गया ॥ ५ ॥ यह सुन 'एवमस्तु' यह कह कर देवताधिपति शिवजी पार्वती सहित अपने स्थानको चले गये ॥ ६ ॥

शिव प्रसाद नारान्तक पावा ❋ अन्तरिक्ष पुर सपदि बसावा ॥७॥
पुर बिहबावलकी रुचिराई ❋ कहत कछु इक तुमसन गाई ॥८॥

शिवजीकी प्रसन्नतासे नारांतकने अन्तरिक्ष (आकाश) में अपना पुर बसाया ॥ ७ ॥ 'बिहबावलपुर' उसका नाम रखा, कुछ शोभा हम तुमसे गाकर कहते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-ऋतु रवि दूने कोटि सो, भवन बसे इक ठोर ॥
❋ जातरूपमय नग जटित, अति शोभित चहुँ ओर ॥ १७१ ॥

बहत्तर करोड़ घर एक ही समय सबके बसे, नगजटित सुवर्णके बने चारों ओर अत्यन्त शोभित हो रहे हैं । ऋतु (६) रवि (बारह) बारहको छः से गुणा करनेसे ७२ । अथवा "दूने" पाठ होनेसे १४४ करोड़ हुए ॥ १७१ ॥

योजन ढाई शत चकलाई ❋ चौंसठि कोश उतंग सुहाई ॥१॥
दुर्गम दुर्ग जलधि चहुँ फेरा ❋ विस्मय विश्वकर्म मत घेरा ॥२॥

ढाई सौ योजनका चौड़ा और चौंसठ कोसका ऊँचा बड़ा कठिन सुन्दर दुर्ग बनवाया ॥ १ ॥ जिसके चारों ओर समुद्र था, देखते ही विश्वकर्माके मनको आश्चर्य होता था ॥ २ ॥

चारि दुवार कुलिश पट रूरे ❋ गढ़ भीतर चौहट निधि पूरे ॥३॥
वणिक पद्मधन तुच्छ बखाना ❋ बन उपवन सरिता सर नाना ॥४॥

चारों दरवाजोंमें वज्रके किवाड़ थे और गढ़के भीतर चौक धनसे पूर्ण थे ॥ ३ ॥ (बनिये) कुबेरके समान बैठते थे । जिनके पास पद्म धन था वह वैश्य तो तुच्छ गिना जाता था । बगीचे, नदी, सरोवर अनेक प्रकारके थे ॥ ४ ॥

बसत प्रजा पुर सधन अपारा ❋ नारान्तक गढ़ मध्य सँभारा ॥५॥
षोडश कोश कोट चहुँ ओरा ❋ मणिमाणिक लागे नहिं थोरा ॥६॥

पुरमें धनी अपार प्रजा बसने लगी, नारांतक गढ़का मध्यस्थ अर्थात् 'नायक' हुआ ॥५॥ सोलह कोश पर्यंत किलेके चारों ओर कोट था मणि माणिक्य बहुत लगी थीं ॥ ६ ॥

हय गय रथ खच्चर समुदाई ❋ कहि न जाय खग मृग विपुलाई॥७॥
कोटि बहत्तरि एकै साथा ❋ विद्या पठन लगे खगनाथा ॥८॥

हाथी, घोड़े, रथ, खच्चर, खग-मृगोंकी अधिकता कही नहीं जाती ॥ ७ ॥ हे गरुड़जी ! फिर वे बहत्तर करोड़ एक ही साथ विद्या पढ़ने लगे ॥ ८ ॥

दोहा–हरिप्रेरित तेहि कालमहँ, दधिबल पहुँचा आय ॥
पुरबिहबावल निरखि सो, कछु दिन रहा लुभाय ॥ १७२ ॥

हरि इच्छासे उस समय वहाँ दधिबल वानर आकर पहुँच गया और बिहबावलपुरकी शोभा देख कुछ दिन वहां रहा ॥ १७२ ॥

भावी वश निशिचर सँग कीशा * वर्ष एक पढ़ सुनहु मुनीशा ॥१॥
गुरु इक बार कहेउ रिसियाई * हतिहसि तैं आपन गुरुभाई ॥२॥

हे मुनिराज ! सुनिये होनहारके अधीन यह कीश राक्षसोंके साथ एक वर्ष तक पढ़ता रहा ॥१॥ एक दिन इनके गुरुने क्रोधसे कहा–मूर्ख तू अपने गुरु भाईका मारने वाला होगा ॥२॥

विनु अघ सुनि दधिबल गुरु शापा * विदा माँगि गवना करि दापा ॥३॥
मारग मिले देवऋषि तेही * गहेउ सुकण्ठसुवन पग नेही ॥४॥

दधिबल विना अपराध गुरुका शाप सुन बिदा मांगकर अभिमान पूर्वक वहाँसे चला आया ॥ ३ ॥ मार्गमें नारदजी उसे मिले सुग्रीवका पुत्र दधिबल ! नारदजीके चरण पकड़ दण्डवत् करने लगा ॥ ४ ॥

लखि आशिष दै बूझा तेही * दधिबल कवन काज गे जेही ॥५॥
तब नारान्तक पुर प्रभुताई * दधिबल नारद मुनिहि सुनाई ॥६॥

उसे देख नारदजीने आशीर्वाद दे पूछा–दधिबल ! इस समय किस काजको कहां गये थे ? ॥ ५ ॥ तब दधिबलने नारांतकपुरकी प्रभुता नारद मुनिको सुनायी ॥ ६ ॥

सुनी निशाचर सम्पति भारी * रहे ब्रह्मसुत हृदय विचारी ॥७॥
क्षणक देवऋषि किय अनुमाना * बार बार सुमिरे भगवाना ॥८॥

नारदजी राक्षसकी अधिक सम्पत्ति श्रवण कर हृदयमें विचारने लगे ॥ ७ ॥ क्षणमात्र विचार कर बार बार भगवान्‌का स्मरण किया ॥ ८ ॥

दोहा–दधिबलते नारद कहेउ, सुनहु तात चित लाइ ॥
तनु धरि जे हरि भक्त नहिं, जन्मबादि जग जाइ ॥ १७३ ॥

दधिबलसे नारदजी बोले–पुत्र ! मन लगाकर सुनो, जो शरीर पाकर नारायणके भक्त नहीं हुए उनके जन्म जगतमें वृथा हो गये ॥ १७३ ॥

यह विचारि भजु रामहि ताता * उपजेउ सुनत ज्ञान सुनि बाता ॥१॥
ऋषिपद परसि आशिषा पाई * कपिपति सुत गमनेउ हर्षाई ॥२॥

हे तात ! यह विचार रघुनाथजीका स्मरण करो, ये मुनिके वचन सुनते ही दधिबलको ज्ञान हो गया॥१॥तब दधिबल ऋषिके चरणोंको स्पर्श कर आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हो चला आया॥२॥

सपदि कीश तब पहुँचा तहवाँ *पय निधि मध्य रुचिर गिरि जहवाँ॥३॥
धवलागिरि तेहि नाम सुहावा * सुभग देखि कपिवर मन भावा ॥४॥

तब दधिबल शीघ्र वहाँ आया जहाँ सागरके बीचमें सुन्दर पर्वत है ॥ ३ ॥ 'धवलागिरि' नामक मनोहर पर्वत देखकर कपिराज मनमें बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ४ ॥

गौरि गिरीश सुमिरि गणराई * कीन्ह निवास मनहि हर्षाई ॥५॥
नारद ताहि देइ उपदेशा * गये विरंचि धाम खगईशा ॥६॥

शिव, पार्वती तथा गणेशजीका स्मरण कर मनमें प्रसन्न हो वहां निवास करने लगा ॥५॥ हे गरुड़जी ! तब नारदजी उसे उपदेश देकर चले गये ॥ ६ ॥

उत दशमुखसुत विद्या पाई * जहां तहां कर विविध लराई ॥७॥
विंदु नाम इक निशिचर आहा * सो खल रहा वितल थल माहा ॥८॥

उधर नारांतक विद्या पाकर जहाँ तहाँ अनेक लड़ाई लड़ने लगा ॥ ७ ॥ "बिंदु" नामक एक दुष्ट राक्षस वितलमें रहता था ॥ ८ ॥

सोरठा-अति रणधीर जुझार, पढ़े शक्रपर बल विपुल ॥
कीन्हेउ समर अपार, अब्द एक श्रुति संत कह ॥ ४ ॥

यह बड़ा रणधीर युद्ध करने वाला था, एक समय बड़ी सेना ले इन्द्रपर चढ़ गया और एक वर्ष तक अपार युद्ध होता रहा, ऐसा श्रुति और सन्त कहते हैं ॥ ४ ॥

सप्त कोटि निशिचर सँग ताके * अशित मेरुसम अति भट बांके ॥१॥
सुनासीर कोपेउ इक बारा * सब कहँ समर मध्य संहारा ॥२॥

सात करोड़ राक्षस उसके साथ थे, काले पर्वतके समान अति बांके योद्धा थे ॥ १ ॥ इन्द्रने महाकोप कर एक ही बार सबका युद्धमें संहार कर दिया ॥ २ ॥

भाजि बिन्दु केवल गृह गयऊ * तासु नारि निशिचर सुख दयऊ ॥३॥
सब निशि भोग करयो खल पापी * उपजे बहु बालक परितापी ॥४॥

केवल बिंदु भागकर घरमें आया, उसकी स्त्रीने उस समय उसे सुख दिया ॥ ३ ॥ उस दुष्ट पापीने सारी रात उसके साथ भोग किया, जिसके अनेक सुखदायक बालक हुए ॥ ४ ॥

सप्त कोटि सुत नाना नामा * सुन्दर वक्त्र सकल बल धामा ॥५॥
कोटि बहत्तरि तनया जाके * लाजहिं मृगलोचन लखि ताके ॥६॥

सात करोड़ पुत्र अनेक नामके सुन्दर मुखवाले सबही बलवान् थे ॥ ५ ॥ बहत्तर करोड़ उसके कन्याएँ थीं, जिन्हें देख मृगियोंके नेत्र लजाते थे, ये सब उसके राज्यकी थीं, सबको अपनी कन्यावत् पालता था, इस कारण इसीकी कन्या कहाती थीं ॥ ६ ॥

तिन महँ बिन्दुमती इक सुन्दरि * नभ चारिणि अतिरूप निरंतरि॥७॥
निरखि विंदु निजमन अनुमाना * नहिं नारांतक सम कोउ आना॥८॥

उनमें एक बिंदुमती कन्या बड़ी सुन्दर थी जिसका रूप देवकन्याओंसे भी अधिक सुंदर था ॥७॥ बिंदुने नारांतकको देख अपने मनमें विचार किया कि इसके समान कोई बलवान् नहीं है॥८॥

दोहा-यह विचारि चित बिन्दु तब, नारान्तकहि बुलाय ॥
बिन्दुमती आदिक सुता, सुन्दर साज सजाय ॥ १७४ ॥

यह विचार कर बिंदुने नारांतकको बुलाकर बिन्दुमती आदि सब कन्याओंको सुन्दर साज सजाकर ॥ १७४ ॥

सकल सुता इक सँग विवाहीं * यथायोग्य जेहि कहँ जस चाहीं॥१॥
नारान्तक सब सेन समेता *करि विवाह फिरि गयउ निकेता॥२॥

नारांतकके सब साथियोंको सब कन्याएँ विवाह दीं, यथायोग्य जो जिसके योग्य थीं ॥ १ ॥ नारांतक सब सेना समेत व्याह कर अपने घर चला गया ॥ २ ॥

पुर बिहबावल कीन्ह बसेरा * प्रजासहित सुख करत घनेरा ॥३॥
जो तिय चहिय विबुधगृह भाई * सो भावीवश निशिचर पाई ॥४॥

बिहबावलपुरमें राज्य करने लगा, प्रजा समेत अत्यन्त आनन्द करने लगा ॥३॥ भाई! जो स्त्रियाँ देवताओंके घरमें उचित थीं, वे राक्षसोंके यहाँ प्रारब्धसे आ गयीं ॥ ४ ॥

नारि पतिव्रत जेहिं घरमाहीं * तेहि प्रताप नित अमर डराहीं ॥५॥
बिन्दुमती विद्यासम ताता * बुधजन सभा चरित विख्याता ॥६॥

जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री होती है उसके प्रतापसे देवता नित्य डरते हैं ॥५॥ सो हे गरुड़जी बिन्दुमती तो सरस्वतीके समान थी, बुद्धिमानोंकी सभामें उसके गुणोंकी बड़ाई होती थी ॥६॥

नारान्तक-उतपति मैं गावा * सुनु खगेश पुनि चरित सुहावा ॥७॥
पुनि पुनि हरि हर पद शिर नाई * गुरुसन सुनेउ सो कहउँ बुझाई ॥८॥

हे गरुड़जी! यह नारांतककी उत्पत्ति मैंने गायी, अब अगला सुन्दर चरित्र सुनो ॥७॥ बारंबार विष्णु तथा शंकरके चरणोंमें शिर नवाय और कहा-गुरुसे जो सुना है उसे समझा कर सुनाता हूँ ॥ ८ ॥

दोहा-चारण दशमुखको तुरत, मग चलि पहुँचो जाय ॥
ग्रामांतर योजन युगल, ठाढ़ भयउ हर्षाय ॥ १७५ ॥

इधर रावणका दूत मार्गसे चलकर तुरंत बिहबावलपुर पहुँचा, जब आठ कोस नगर रह गया तब वहाँ प्रसन्न होकर खड़ा हुआ ॥ १७५ ॥

तेहि मारुतदिशि कानन भारी * परन लेत देखेउ तहँ बारी ॥१॥
सकुचि समीप जाइ भा ठाढ़ा * बूझे ताहि धीर धरि गाढ़ा ॥२॥

वहां वायव्य दिशामें एक भारी वन था, वहां एक बारी पत्ते तोड़ रहा था इसने उसे देखा॥१॥यह 'धूमकेतु' उसके पास सकुचाता हुआ जाके खड़ा हुआ और बड़ा धैर्य धर उससे पूछने लगा ॥२॥

कवनि रीति यहि पुर महँ भाई * तरु पर चढ़त भूप सुत आई ॥३॥
चार वचन सुनि सो मुसुकाना * कवन नगर तुम बसत अजाना ॥४॥

भाई! इस पुरमें यह क्या रीति है जो राजकुमार आकर पेड़ों पर पत्ते तोड़ते हैं ? ॥३॥ दूतके वचन सुन, वह बारी मुसकराकर बोला-अरे मूर्ख तू कौनसे नगरमें रहता है ? ॥ ४ ॥

नारान्तक नृपकर जो बारी * तेहिकर सेवक लघु मैं चारी ॥५॥
धूमकेतु तेहि उतर न दीन्हा *कछुडरिपुनि निजमारग लीन्हा॥६॥

जो यहांके राजा नारान्तकका बारी है उसका मैं छोटा नौकर हूँ ॥ ५ ॥ धूमकेतुने यह वचन सुन उसे कुछ उत्तर न दिया और कुछ डर कर फिर अपना मार्ग लिया ॥ ६ ॥

लिये कनक घट सुषमा पूरी * वारि लेन आई तिय रूरी ॥ ७ ॥
देखि भयउ तेहि संशय भारी * बूझा सत्य कहहु सुकुमारी ॥ ८ ॥

उस समय सोनेका घड़ा कमरमें कोई एक सौभाग्यवती सुन्दर स्त्री जल लेनेको आयी ॥७॥ उसे देखकर धूमकेतुको बड़ा सन्देह हुआ उसके निकट जाकर पूछा हे सुकुमारी! सत्य कहो॥८॥

दोहा–तुम्हरे पुर किमि चेरि नहिं, रानी भेद बताव ॥
आइउ तुम जल भरन कहँ, मनसन त्यागि डराव ॥ १७६ ॥

रानीजी! क्या तुम्हारे पुरमें कोई चेरी नहीं है जो तुम जल भरनेको आयी हो? अथवा और कोई कारण है भय त्याग सब भेद कहो ॥ १७६ ॥

दूत वचन सुनि निशिचर-चेरी * बोली हँसि कइ एकहि बेरी ॥१॥
नारान्तक दासिनिकी दासी * हम ताकी दासी बिसवासी ॥२॥

यह दूतके वचन सुनकर हँसकर राक्षसकी चेरी तत्काल बोली ॥ १ ॥ नारांतककी दासियोंकी दासीकी मैं विश्वासी दासी हूँ ॥ २ ॥

सदा भरौं यहि सागर पानी * इहँ आवहिं केहि कारन रानी ॥३॥
कहिहउ और काहु असि बाता * पैहहु मारु मुष्टिकन लाता ॥४॥

सदा इस सागरमें पानी भरने आती हूँ, भला यहां रानी काहेको आवेगी? ॥ ३ ॥ जो और किसीसे ऐसी बात कहोगे तो घूसे, लातोंकी मार खाओगे ॥ ४ ॥

अस कहि गमनी लै जल नारी * तेहि संग धूमकेतु पग धारी ॥५॥
गढ़ भीतर कीन्हेसि पैसारी * निरखे विपुल कूप सर बारी ॥६॥

यह कह वह गागर ले चली, उसके पीछे पीछे धूमकेतु चला ॥ ५ ॥ तब नगरके भीतर तो अनेक कुएँ, सरोवर तथा बाग देखे ॥ ६ ॥

नाना गज रथ खच्चर घोरा * फिरत विलोकत पुर चहुँ ओरा॥७॥
अन्तर गढ़ तेहि चारि दुवारा * तहां न चर पावत पैसारा ॥८॥

अनेक गज, रथ, घोड़े अन्तःपुरमें देखते फिरा ॥७॥ राजमार्गके भीतर जानेके भी चार द्वार हैं परन्तु वहां भ्रमवश दूत प्रवेश कर नहीं सका ॥ ८ ॥

छन्द–पावत नहीं पैसार चरगति द्वार लगि फिरि आयऊ।
यहि भांति रावण दूत घटिका युगल दिवस गँवायऊ ॥
मनमहँ बिसूरत ठाढ़ चौहट मध्य सो जब रहि गयो ॥
निशिचर निकन्दन होन लगि विधि ताहि इक अवसर दियो॥९॥

वह दूत द्वारतक जाकर लौट आया; परन्तु प्रवेश नहीं पाता, इस प्रकार धूमकेतुने दो घड़ी खड़े व्यतीत कर दी। चौकमें खड़ा होकर विचार करने लगा, उसी खोटे समयमें उसे राक्षसोंके नाश होनेके निमित्त एक अवसर प्रारब्ध वशसे मिल गया कि ॥ ९ ॥

सोरठा–गवनेउ भूपति द्वार, नृत्य करन इक कौतुकी ॥
लीन्ह धारि तेहि मार, गढ़ इमि कीन्ह प्रवेश चर॥ ५ ॥

एक नट साज सामानसे नारांतकके यहां नृत्य करनेको चला, उसीके साथमें दूतने भी नटका वेष धर प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

बैठे सभा नरांतक जाई * कोटि बहत्तरि संयुत भाई ॥१॥
व्योम तीन रस गुण वसु एका * अंकरीति लिखि गुणी विवेका॥२॥

और जाके देखा तो नरांतक सभामें बैठा था, एक साथ जन्मे बहत्तर करोड़ भाई भी विद्यमान थे अर्थात् सहायक थे ॥ १ ॥ अठारह लाख छत्तीस हजार (१८३६०००) अंककी संख्या जितनी है इतने गुणवान् विवेकी थे ॥ २ ॥

बन्दीजन नट कौतुक करहीं *प्रतिदिन कवि कोविद उच्चरहीं॥३॥
रावण-दूत सभाको देखी * मनमहँ चक्कृत भयो बिसेखी ॥४॥

भाट विदूषक उसी की सभामें तमासा करते थे, प्रति दिन कवि पंडित (यश) बखानते थे ॥ ३ ॥ अद्भुत व्यापार देख दशकंधरका दूत मनमें बहुत चकित हुआ ॥ ४ ॥

तब चारण मन अस अनुमाना * कोटि बहत्तर रूप न आना ॥५॥
भूषण वसन सुआसन जोहा *देखि तिनहिं चारण मन मोहा ॥६॥

तब दूतने अपने मनमें विचार किया कि यह बहत्तर करोड़ एक ही समान हैं ॥ ५ ॥ वस्त्र, गहने, बात-चीत बैठक एकसी ही है उन्हें देख दूतका मन मोह गया ॥ ६ ॥

याम दिवस गत अवसर पावा * नारांतक कहँ शीश नवावा ॥७॥
दीन्हि पत्रिका पद शिर नाई * कुशल तासु पूछेउ हर्षाई ॥८॥

जब पहर दिन चढ़े समय पाया नारांतकको शिर नवाया ॥ ७ ॥ चरणोंमें शिर नवाकर रावणकी पत्रिका दी और प्रसन्न हो उसका कुशल पूछा ॥ ८ ॥

दोहा-नारांतक निज कुशल कहि, बूझा दशमुख हेत ॥
समाचार गढ़ लंककर, बरणेउ दूत सचेत ॥ १७७ ॥

नारांतकने अपना कुशल कहकर रावणका कुशल पूछा, तब सचेत हो दूतने लंका पुरीके सब समाचार सुनाये ॥ १७७ ॥

चरभाषित नारांतक सुनेऊ *क्षणक मनहिं निज कारन गुनेऊ॥१॥
पुनि पत्री निशिचरपति बांची * मानी चारबात सब सांची ॥२॥

दूतकी बात सुनकर नारांतकने क्षणमात्र अपने मनमें कारणका विचार किया ॥ १ ॥ फिर वह पत्री खोलकर पढ़ी तो दूतकी सब बात सत्य जानी ॥ २ ॥

उठेउ सभाते हृदय रिसाई * गा निज भवन सोच सरसाई ॥३॥
बिंदुमती-कहँ बांचि सुनाई * पितुपर भीर पत्रिका आई ॥४॥

हृदयमें क्रोधकर सभासे उठा और बहुत शोचता हुआ अपने घर गया ॥ ३ ॥ वह पत्री बिन्दुमतीको सुनाकर कहा कि पितापर भीर पड़ी है इससे बुलाया है ॥ ४ ॥

समाचार सुनि कह तेइ नारी * तुम जनि करहु रामसन रारी ॥५॥

---

१. सबका रूप एक सा था, सभामें अगणित बैठे थे।

गहहु चरण पिय अकसर जाई ❋ रसन सफल करि विनय सुनाई ॥६॥

सब समाचार सुन उसकी नारी बोली तुम रघुनाथजीसे लड़ाई मत करो ॥५॥ हे स्वामी ! अकेले जाकर उनके चरण पकड़ो और विनय सुनाकर जिह्वा सफल करो ॥ ६ ॥

माँगि भक्ति वर प्रेम दृढ़ाई ❋ निर्भय राज्य करहु गृह आई ॥७॥
नारि वचन तेहि मनहिं न भावा ❋ तब उठि कोटद्वार खल आवा ॥८॥

रामसे भक्ति वर मांगकर प्रेम दृढ़ करके अपने घर आकर निर्भय राज्य करो ॥७॥ स्त्रीके वचन उसके मनको नहीं भाये और उठकर वह दुष्ट किलेके द्वारपर आया ॥ ८ ॥

दोहा–कहेउ बजाव निशान घन, सजहु सेन चतुरंग ॥
जन्मभूमि जावा चहहुँ, पितु चारनके संग ॥ १७८ ॥

आज्ञा दी कि घने निशान बजाओ, चार प्रकारकी सेना सजाओ, मैं पिताके दूतके साथ जन्म भूमिमें जाना चाहता हूँ ॥ १७८ ॥

आयसु दीन्ह नरान्तक राजा ❋ लगे निशाचर सजन समाजा ॥१॥
सुभग बाजि गज उष्ट्र नाना ❋ रथ खच्चर खेचर बहुयाना ॥२॥

नरांतक राजाकी आज्ञा पाकर राक्षस चलनेके समाज सजाने लगे ॥ १ ॥ अनेक सुन्दर हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर और आकाश विमान ॥ २ ॥

नाना अस्त्र शस्त्र गहि पानी ❋ निशिचर अनी न जाइ बखानी॥३॥
ते सब संयुग साज सजाई ❋ विविध निशान हने हर्षाई ॥४॥

तथा अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र हाथमें धारण किये, राक्षसोंकी सेना बखानी नहीं जाती ॥ ३ ॥ इस प्रकार सब युद्धके साज सजाकर प्रसन्न हो अनेक निशान बजाये ॥ ४ ॥

कन्त जात निश्चय जिय जानी ❋ बिंदुमती निज चित अनुमानी ॥५॥
राम विरोध न यहि कल्याना ❋ मैं हूँ संग अब करहुँ पयाना ॥६॥

स्वामीका जाना हृदयमें निश्चय जानकर बिंदुमतीने अपने मनमें विचार किया ॥ ५ ॥ रघुनाथजीसे वैर करनेसे स्वामीका भला नहीं होगा; मैं भी अब साथ साथ चलूँ ॥ ६ ॥

भूषण वसन सुअंग बनाई ❋ कन्त चरण गहि विनय सुनाई ॥७॥
सासु श्वसुर दर्शन हित नाथा ❋ हमहूँ चलब प्राणपति-साथा ॥८॥

अनेक प्रकारके गहने, वस्त्रोंसे अङ्ग सजाकर स्वामीका चरण पकड़ विनय सुनाने लगी ॥७॥ हे स्वामी ! सासु श्वसुरके दर्शनके निमित्त मैं भी आपके साथ चलूँगी ॥ ८ ॥

दोहा–दशमुख सुत सुनि तिय वचन, हृदय परम सुखमानि ॥
कहेउ चलहु सब सखिन सह, प्रमुदित छाँड़ि गलानि ॥१७९॥

नारांतक स्त्रीके यह वचन सुनकर मनमें बहुत सुख मानकर कहा कि सब संकोच छोड़कर सखियों सहित प्रसन्न हो तुम हमारे साथ चलो ॥ १७९ ॥

सुनि पति वचन नारि हर्षानी ❋ चली संग लै सखी सयानी ॥१॥
लै दल नारान्तक पगु धारा ❋ अमित सेनको कहि सक पारा॥२॥

पतिके वचन सुनकर नारी प्रसन्न हुई और चतुर सखियोंको साथ ले चली ॥ १ ॥ सेना लेकर नरांतक चला, अपार सेना थी, उसका प्रमाण कौन कह सके ॥ २ ॥

बुधजन कहत सुनहु खग राजा * अयुत सतावन बाजत बाजा ॥३॥
धूमकेतु कहँ ढिग सँग लीन्हे * अति आतुर गमना रिस कीन्हे॥४॥

काकभुशुण्डजी बोले-हे गरुड़जी ! सुनो, उसकी सेनामें पांच लाख सत्तर हजार बाजे बजते थे ॥ ३ ॥ धूमकेतुको साथ लिये क्रोधकर शीघ्रतासे लंकाको चला ॥ ४ ॥

चलत शकुन भल ताहि न होई * गनइ न मृत्यु विवश शठ सोई ॥५॥
तासु पयान जानि दिगपाला * जिय महँ संशय करत विशाला॥६॥

चलते समय उसे अशकुन होते हैं परंतु मृत्युके वशीभूत है इससे कुछ गिनता नहीं ॥५॥ दिक्पाल उसका पयान जानकर मनमें सन्देह करने लगे ॥ ६ ॥

कोल कूर्म अहिपति अतिडरहीं * पुनि पुनि रामचरण चित धरहीं॥७॥
समुझि राम बल संशय त्यागी * सुर विशेष प्रभुपद अनुरागी ॥८॥

वराह, कच्छप, शेषजी अत्यन्त भय पाते हैं, बार बार रामजीके चरणोंमें चित्त धरते हैं ॥ ७ ॥ फिर देवताओंने रघुनाथजी का बल समझ संशय त्याग दिया और प्रभुके चरणोंमें विशेष प्रीति की ॥ ८ ॥

दोहा–नारान्तक लंका तुरत, दल समेत नियरान ॥
दिगयोजन दल रहेउ जब, सुनु मुनीश सज्ञान ॥१८०॥

नारांतक लंकापुरीके निकट दल समेत शीघ्र आया, जब चालीश कोश दल रह गया तब हे मुनिराज ! जो कुछ हुआ सो सुनो ॥ १८० ॥

इहां कृपालु रमेश खरारी * असित जलदसम सेन निहारी ॥१॥
प्रभु सर्वज्ञ नीति हित सेतू * सचिव बोलि कह रघुकुल केतू ॥२॥

यहाँ कृपासागर, लक्ष्मीपति रघुनाथजीने काले बादलके समान छबिधारी सेना निहारी ॥ १ ॥ यद्यपि रघुकुलके प्रभु सर्वज्ञ हैं परन्तु नीतिकी मर्यादा पालनेके निमित्त मन्त्रियोंको बुलाकर पूछने लगे ॥ २ ॥

सखा विलोकहु दक्षिण ओरा * गर्जत घन आवत नहिं थोरा ॥३॥
उमा राम सब अन्तर्यामी * चरित हेतु बूझा अस स्वामी ॥४॥

हे सखा ! दक्षिणकी ओरको देखो तो बादल बहुत गर्जता आता है॥३॥ शिवजी बोले--हे पार्वती ! रघुनाथजी सबके अन्तरकी बात जानते हैं परन्तु यह वार्ता कौतुकके निमित्त स्वामीने पूछी ॥ ४ ॥

राम वचन सुनि दशमुख भ्राता *कह हँसि गहि प्रभुपद जलजाता॥५॥
देव देव नहिं दल जलवाहा * अहइ नरांतक निशिचर नाहा ॥६॥

रामचन्द्रजीके वचन सुन रावणका भ्राता हँसकर चरण कमल पकड़ कर बोला ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! यह बादलोंका दल नहीं किंतु नारांतक राक्षसोंका राजा है ॥ ६ ॥

बिहबावलपुर वसत गुसांई * पठवा तेहि दशकन्ध बुलाई ॥७॥

आवत धूमकेतु चर संगा ❋ करत कुलाहल नाद उतंगा ॥८॥

स्वामी यह भी रावणका एक पुत्र बिहबावलपुरमें रहता है, इसे रावणने बुला भेजा है ॥ ७ ॥ धूमकेतु दूतके साथ अनेक कोलाहल और उच्च शब्द करता आता है ॥ ८ ॥

दोहा-तेहि सँग गुणी अनेक प्रभु, गावत हनत निशान ॥
सेन संग चतुरंग खल, डोलत विविध दिशान ॥१८१॥

हे स्वामी ! उसके संग गुणी भी अनेक हैं, जो गाते और निशान बजाते हैं, वे दुष्ट हाथी, पैदल, रथ लिये हुए अनेक दिशाओंमें फिरते हैं ॥ १८१ ॥

यह प्रभाव तेहि सुनि भगवाना ❋ विहँसे प्रभु बल बुद्धि निधाना ॥१॥
पाइ राम रुख पवन कुमारा ❋ उठे हर्षि हिय गर्जि प्रचारा ॥२॥

यह उसका प्रभाव सुन बलबुद्धि निधान प्रभु भगवान् हँसे ॥ १ ॥ पुनः रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर महावीरजी हृदयमें प्रसन्न हो गर्ज उठे ॥ २ ॥

सहित लषण प्रभुपद शिर नाई ❋ धाये कहि जय जय रघुराई ॥३॥
वातजात निशिचर समुदाई ❋ देखि सपदि ढिग पहुँचे जाई ॥४॥

लक्ष्मण सहित रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर रघुनाथजीकी 'जय जय' कहकर महावीरजी दौड़े ॥ ३ ॥ महावीरजी राक्षसोंको देख उनके निकट बहुत शीघ्र आ पहुँचे ॥ ४ ॥

कटकटाइ गरजे अति भारी ❋ देखेउ इमि आवत वनचारी ॥५॥
बूझेउ दूतहि निशिचर त्राता ❋ यह आवत धावतको भ्राता ॥६॥

कटकटाकर बड़े वेगसे उसके निकट गर्जे, उसने महावीरजीको ऐसे वेगसे आते देख ॥५॥ दूतसे पूछा-हे तात ! यह कौन दौड़ा चला जाता है ? ॥ ६ ॥

स्वर्ण शैल विकरार शरीरा ❋ गर्जत प्रलय जलद सम वीरा ॥७॥
तब नारान्तकसन कह दूता ❋ यहै पवनसुत बली अकूता ॥८॥

सोनेके पर्वतके समान जिसका भयंकर शरीर, प्रलय कालके बादलके समान जो गर्जता है वह वीर कौन है ? ॥ ७ ॥ धूमकेतुने नारान्तकसे कहा-यही महावीर बड़ा बली है ॥ ८ ॥

दोहा-सिंधु लाँघि लंका दहेसि, पुनि हति अक्षकुमार ॥
कालनेमि कहँ मारि मग, लावा शैल उपार ॥ १८२ ॥

इसीने सागर लांघ लंकापुरी जलायी; अक्षयकुमारको मारा और कालनेमिको मार्गमें मार द्रोणाचल उखाड़ लाया ॥ १८२ ॥

पुनि अहिरावण सह परिवारा ❋ पैठि पताल सदल संहारा ॥१॥
लै आवा तापस दोउ भाई ❋ आवत अब तव ढिग सोइ धाई॥२॥

फिर इसीने पातालमें जाकर अहिरावणका कुल सहित नाश कर दिया ॥ १ ॥ वहांसे तपस्वी दोनों भाइयोंको ले आया, अब वही आपके पास दौड़ा आता है ॥ २ ॥

यहि कर भुजबल अहै अपारा ❋ सुनि रिसान दशकंठ कुमारा ॥३॥
चाप चढ़ाय सुधारेसि बाना ❋ तजन न पाव गहेउ हनुमाना ॥४॥

इसकी भुजाओंका बल अपार है, यह सुन नरांतक बड़ा क्रोधित हुआ ॥३॥ धनुष चढ़ाकर बाण चढ़ाया, छोड़ने नहीं पाया कि बीचमें ही जाके महावीरजीने पकड़ लिया ॥ ४ ॥

सो शर धनुष तोरि कपि डारा * पुनि रिसाय उर मुष्टिक मारा ॥५॥
परा दशानन सुत महि कैसे * मिश्र रसातल गा गिरि जैसे ॥६॥

महावीरजीने वह धनुष तोड़ डाला और क्रोधकर हृदयमें घूसा मारा ॥ ५ ॥ नरांतक उस घूँसेसे पृथ्वीपर पड़ा जैसे मिश्रनामा पर्वत आकाशसे गिरकर रसातलमें चला गया है ॥ ६ ॥

पवनपूत बलि लूम पसारा * कोटिन रथ गहि तापर डारा ॥७॥
रथ सारथी चूर्णसम भयऊ * विधि वश तेहिकर प्राण न गयऊ॥८॥

बली महावीरजीने वह अपनी पूँछ बड़ी कर करोड़ों रथ लपेट उसके ऊपर डाल दिये ॥७॥ रथ सारथी सब चूर्ण हो गये, परन्तु वरदानके कारण उसका प्राण नहीं निकला ॥ ८ ॥

दोहा-एकदंड अति विकल खल, रह भूतल धुनि माथ ॥
पुनि शठ उठा सँभारि तनु, धायेउ धनु धरि हाथ ॥ १८३ ॥

वह दुष्ट मूर्ख एक घड़ी तक व्याकुल होकर माथा धुनता हुआ पृथ्वीमें पड़ा रहा फिर सँभालकर उठा तो धनुष हाथमें ले दौड़ा ॥ १८३ ॥

छांड़ेसि अगणित सायक कोपी * क्षण इक कीश कटक गा तोपी॥१॥
राम प्रताप प्रभंजन-जाया * कर गहि अरिशर तोरि बहाया॥२॥

अगणित बाण क्रोधकर छोड़े, जिनसे एक क्षणको वानरोंका कटक छिप गया ॥ १ ॥ रघुनाथजीके प्रतापसे महावीरजीने हाथसे पकड़ शत्रुके सब बाण तोड़ दिये ॥ २ ॥

देखि पवनसुतकी प्रभुताई * वर्षत सुमन विवुध झरि लाई ॥३॥
जय जय पिंगअक्ष सुर भाखा * सुनि दशकन्ध तनय मन माखा॥४॥

महावीरजीका प्रताप देख देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥३॥ हे पिंगाक्ष पीली आखोंवाले! आपकी 'जय हो' यह देवताओंने कहा; जिसे सुन नरांतकके मनमें बड़ा क्रोध आया ॥४॥

नारान्तक अति हृदय रिसाई * कपितट पहुँचा आतुर धाई ॥५॥
कह भलकीश जो कछु बल धरहू * मोसन मल्लयुद्ध तुम करहू ॥६॥

नारांतक हृदयमें बड़ा क्रोध कर महावीरजीके निकट शीघ्रतासे पहुँचा ॥ ५ ॥ और बोला रे वानर ! जो तुझमें कुछ बल है तो हमसे मल्लयुद्ध कर ॥ ६ ॥

गावहिं विवुध तोर भुज जोरा * निज उर सह इक मुष्टिक मोरा॥७॥
लागत ठाढ़ रहे जौ वानर * तौ जानहुँ तव भुज बल आगर॥८॥

देवता तेरी भुजाओंका यश गाते हैं, एक मेरा घूसा जो अपनी छातीमें सहो तो जानूँ ॥७॥ रे वानर ! घूँसा लगनेसे तू खड़ा रहे तो मैं तेरी भुजाओंका बल अच्छा जानूँगा ॥ ८ ॥

सोरठा-हरि सुनि ताकी बात, रामदूत रिसि रोकि उर ॥
अति समीप मुसक्यात, क्षणक ठाढ़ सन्मुख रहेउ ॥ ६ ॥

महावीरजी उसकी बात सुन हृदयमें क्रोध रोक उसके बहुत निकट मुसकाते हुए क्षणमात्र सन्मुख खड़े रहे ॥ ६ ॥

तब तेहिं कपिकहँ मुष्टिक मारा * भयउ तड़ितसम शब्द अपारा ॥१॥
टरा न तहँते पग हनुमाना * हृदय न निशिचर नेकु लजाना ॥२॥

जिस समय उसने महावीरजीके घूँसा मारा, बिजलीके समान बड़ा शब्द हुआ ॥ १ ॥ परन्तु महावीरजीका पग वहांसे नहीं टरा और वह राक्षस हृदयमें तनिक भी नहीं लजाया ॥२॥

दुइ मुष्टिक तेहिं फेरि चलावा * तब मारुत सुत कोप बढ़ावा ॥३॥
किलकिलाय लंगूर लपेटा * डारि भूमि तिन दीन्ह चपेटा ॥४॥

उसने दो घूँसे और मारे, तब तो महावीरजीको क्रोध आया ॥ ३ ॥ बड़ा किलकिला शब्द कर उसे लंगूरमें लपेट लिया और पृथ्वीमें डालकर चपेटा दिया ॥ ४ ॥

विकल ताहि करि कपिवर गाजे * भे व्याकुल निशिचर बहुभाजे ॥५॥
कोटिन्ह निशिचर कपिकर गहही * राम दूत कर कौतुक यहही ॥६॥

उसे व्याकुलकर महावीरजी गर्जे, बहुतसे राक्षस डरके मारे भागने लगे ॥५॥ महावीरजीने करोड़ों राक्षस पकड़ पकड़ कर मार डाले, रघुनाथजीके दूतने यह कौतुक किये ॥ ६ ॥

मर्दि मर्दि बहु वारिध डारे * देखि देव जय जयति पुकारे ॥७॥
एक दण्ड गत निशिचर जागा * बहु विधि समर करन सो लागा ॥८॥

राक्षसोंकी हड्डी पँसली तोड़ सागरमें डाल दिये, यह देखकर देवता जयजयकार करने लगे ॥ ७ ॥ एक घड़ीके पीछे वह नरांतक जागकर अनेक प्रकार युद्ध करने लगा ॥ ८ ॥

छन्द-लाग्यो करन पुनि समर बहुविधि निज सुभट बहु फेरिकै ।
खल कोटि कोटि प्रचण्ड सायक कपिहि रणमहँ घेरिकै ॥
रणरंग रंजित वीर मारुतपूत पुनि पुनि गर्जहीं ।
गहि गहि विपुल दनुजन पछारत उर विदारत तर्जहीं ॥१०॥

वह दुष्ट अपने योद्धाओंको फेरकर अनेक प्रकारसे युद्ध करने लगा और युद्धस्थलमें महावीरजीको घेर कर बड़े तीक्ष्ण करोड़ों बाण प्रहार करने लगे, लड़ाईके रंगमें रँगे योद्धा महावीरजी बार बार गर्जते हैं,राक्षसोंको पकड़ पकड़ पछाड़ते,हृदय बिदारते और ललकारते हैं॥१०॥

दोहा-सघन वाहिनी जलज वन, जिमि करि कृत उत्पात ॥
रिपुन हनत तिमि वायुसुत, बिनु श्रम प्रमुदित गात ॥ १८४ ॥

उस घनी सेनामें कमलोंके वनमें जैसे हाथी उत्पात करते हैं वैसे ही महावीरजी विना श्रम प्रसन्न होकर शत्रुओंका संहार करते हैं ॥ १८४ ॥

करत समर आयउ तेहि ठामा * जहँ नित होत रहा संग्रामा ॥१॥

लरत अकेल तहां हनुमाना ❋ धायउ बालितनय बलवाना ॥२॥

युद्ध करते वहां आये जहां नित्य संग्राम होता था ॥ १ ॥ महावीरजीको अकेला युद्ध करते देख बलधाम अङ्गद भी दौड़े ॥ २ ॥

ता पाछे कपिचमू अपारा ❋ चली कहत जय कृपा अगारा ॥३॥
लीन्हे गिरिवर तरु पाषाना ❋ जहँ तहँ करन लगे मैदाना ॥४॥

उनके पीछे वानरोंकी अपार सेना 'रघुनाथजीकी जय हो' यह शब्द कहती हुई चली ॥ ३ ॥ हाथमें बड़े पर्वत वृक्ष पत्थर लिये जहां तहां मार मारकर मैदान करने लगे ॥ ४ ॥

अंगद आइ पवनसुत पाहा ❋ कहि जय रघुवरकी द्विजनाहा ॥५॥
दोऊ भट इक सँग करि हूहा ❋ हतन लगे अरिसेन समूहा ॥६॥

हे पक्षिराज ! उसी समय महावीरजीके पास जाकर अङ्गदजी रघुनाथजीकी जय बोले ॥५॥ और दोनों महायोद्धा एक संग 'हू हू' शब्द करके शत्रुओंको मारने लगे ॥ ६ ॥

देखत भालु कीश कृत मारी ❋ भागि चले निशिचर भयभारी ॥७॥
देखि अनी निज त्रसित बहूता ❋ भा अति कुपित दशानन पूता॥८॥

रीछ वानरोंके भयंकर कर्म देख राक्षस बड़े भयसे भाग चले ॥ ७ ॥ तब अपनी सेनाको अत्यन्त ब्याकुल देखकर रावण पुत्र बड़ा क्रोधित हुआ ॥ ८ ॥

छन्द-अतिकुपति भा दशमुख सुवन निज भटन शपथ दिवाइकै ।
फेरेउ सबनि करि कोप बोला जात कहां पराइकै ॥
विधि दीन विविध अहार कपिदल खात कस न अघाइकै ।
बिनु भालु कपि महि करहु पुनि तेहि धरहु तापस धाइकै ॥११॥

तब नारांतकने महाक्रोध कर अपने योद्धाओंको सौगंध दिवाकर फेरा और महाक्रोध कर कहने लगा कि कहां भागे जाते हो ? विधाताने यह वानरोंका भोजन दिया अतः पेट भरकर क्यों नहीं खाते ? देखो, तुम यह पृथ्वी रीछ वानरोंसे रहित कर दो और उन तपस्वियोंको दौड़कर पकड़ लो ॥ ११ ॥

दोहा-सुनि नारान्तक सरुष वच, रचनीचर समुदाय ॥
लागे करन सकोप सब, माया कपट कुभाय ॥ १८९ ॥

ये नारान्तकके रोषयुक्त वचन सब सुनकर राक्षस महाक्रोध कर लड़ने और माया विस्तार करने लगे ॥ १८९ ॥

माया तिमिरि पसार अपारा ❋ अस्त्र शस्त्र बहु भाँति प्रहारा ॥१॥
शक्ति शूल वर विशिख कराला ❋ डारहिं रज तरु शैल विचारा ॥२॥

मायाका अपार अन्धेरा कर दिया, उस समय अनेक अस्त्र शस्त्र प्रहार करने लगे॥१॥ शक्ति त्रिशूल बड़े तीक्ष्ण बाण और धूलि तथा बड़े बड़े पत्थरों, वृक्षोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

गिरत ऋक्ष कपि लागत सायक ❋उठहिं बहुरि कहि जय रघुनायक॥३॥
निजदल विकल विलोकि खरारी ❋ सत्यसन्ध इक शर संचारी ॥४॥

बाण लगते ही रीछ और वानर गिरते हैं परंतु रघुनाथजीकी 'जयजयकार' कर उठते हैं ॥ ३ ॥ सत्यसंकल्प रघुनाथजीने अपना दल व्याकुल देख एक बाण छोड़ा ॥ ४ ॥

रिपु शर काटि तिमिर करि दूरी * प्रभु शर हते निशाचर भूरी ॥५॥
हरिनिषंग महँ पुनि सो तीरा * प्रविशा आइ सुनहु मुनि धीरा॥६॥

उसने शत्रुओंके बाण काटकर सब अन्धकार दूर कर दिया और अनेक राक्षसोंका संहार कर ॥ ५ ॥ हे धीर मुनि ! सुनो फिर वह बाण रघुनाथजीके तरकसमें आकर प्रवेश कर गया ॥६॥

निरखि प्रकाश भालु अरु कीशा *गहि गिरितरु कहि जय जगदीशा॥७॥
निशिचर अनीमध्य गे जबहीं * दिये डारि गिरि रज तरु तबहीं॥८॥

तब रीछ और वानर प्रकाशको देखकर पर्वत वृक्ष लेकर 'रघुनाथजीकी जय' उच्चारण करते दौड़े ॥ ७ ॥ और राक्षसोंकी सेनाके बीच पहुँचते ही उनपर वृक्ष, शिला, धूर डाल दिये ॥८॥

दोहा-मरे तमीचर कोटि षट, जानि निशा परवेश ॥
दलयुत अंगद पवन सुत, चले जहाँ अवधेश ॥ १८६ ॥

जब छः करोड़ राक्षस मर चुके और रात होने ही वाली थी तब सेना सहित अंगद और महावीरजी रघुनाथजीके पास चले ॥ १८६ ॥

अंगद हनुमदादि कपि भालू * आये जहँ रघुवीर कृपालू ॥१॥
प्रभुहि विलोकि चरण शिर धरे * भे श्रम रहित सकल सुख भरे ॥२॥

अंगद हनुमान्‌जी आदि रीछ बानर कृपासागर रघुनाथजीके पास आये ॥ १ ॥ प्रभुको देख चरणोंमें शिर धरा और दर्शन कर सब सुखसे पूर्ण श्रम रहित हो गये ॥ २ ॥

अति आदर प्रभु किय सनमाना * सबकहँ बैठन कह भगवाना ॥३॥
पुनि रजाइ लै थलनि सिधाये * छबि वारिधि प्रभुपद शिरनाये ॥४॥

रघुनाथजीने अति आदर सम्मान किया सबको बैठनेको कहा ॥ ३ ॥ और रघुनाथजीकी आज्ञा ले सब कोई छबिसागर रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर अपने स्थानोंको चले ॥ ४ ॥

अंगद हनुमत निकट-निवासी * रामचरण सुषमा गुणरासी ॥५॥
दोउ भटकर परशत प्रभु पाँऊ * देखि सुरन मन भा अतिचाऊ ॥६॥

अंगद और महावीरजी निकटवर्ती होनेके कारण रघुनाथजीके अत्यन्त सुन्दर और गुणखान चरण कमलोंको ग्रहण कर ॥ ५ ॥ दोनों योद्धा हाथोंसे चरण दबाने लगे, जिसे देख देवताओंके मनमें चरण दबानेको बड़ा चाव हुआ ॥ ६ ॥

हमहुँ होत जग कीश स्वरूपा * पदगहि नित्त रहत नर भूपा ॥७॥
हरिहि सिहाइ सुमन झरि लाये *निज निज आश्रम अमर सिधाये॥८॥

और मनमें भी कहने लगे कि जो हम भी जगत्‌में वानर स्वरूप होते तो नित्य महाराज के चरण दबाते ॥ ७ ॥ देवता इस प्रकार वानरों की बड़ाई कर फूल बरसा कर अपने-अपने आश्रमको चले गये ॥ ८ ॥

दोहा-बन्धु सचिव सेनासहित, शोभित श्रीभगवान ॥
तुलसिदास ते धन्य नर, जे यहि ध्यान लुभान ॥ १८७ ॥

भाई लक्ष्मण मन्त्री सुग्रीवादि और सेना सहित रघुनाथजी शोभित हैं, तुलसीदास कहते हैं वे मनुष्य धन्य हैं जो इस ध्यानमें मग्न रहते हैं ॥ १८७ ॥

उत नारांतक सेन-समेता * गयउ जहां दशकन्ध निकेता ॥१॥
सुतहि सुरारि मिला पुलकाई * कुशल बूझि बैठेउ हरषाई ॥२॥

वहां नारांतक सेना सहित रावणके स्थान पर गया ॥ १ ॥ रावण बहुत प्रसन्न हो अपने पुत्रसे मिला और कुशल पूछ कर बड़ी प्रसन्नतासे बैठा ॥ २ ॥

देखि नरान्तककी समुदाई * दशमुख शठ सब शोच दुराई ॥३॥
जेहि विधि हरिलावा जगमाता * ताहि आदि कृतकृत विख्याता॥४॥

नारांतकका ऐश्वर्य और अधिक सेना देख रावणने सब शोक भुला दिया ॥ ३ ॥ जिस प्रकारसे जानकी को हर लाया वह सब कथा आदिसे सुनायी ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण घननाद निपाता * कहि बिलखा अहिरावण घाता॥५॥
पितुमुख मलिन नरान्तक देखा * बोला खल तब गर्व विशेखा ॥६॥

कुम्भकरण मेघनाद और अहिरावणके वध कहनेमें रावण व्याकुल हो गया ॥ ५ ॥ तब दुष्ट नारांतकने पिताका मुख देखकर बड़े अहंकार पूर्वक कहा ॥ ६ ॥

तजहु सकल संशय विबुधारी * करिहहुँ प्रात समर अति भारी॥७॥
चमू कीश बिनु क्षिति करि ताता * धरिहौं तापस होत प्रभाता ॥८॥

हे देव शत्रु ! सब प्रकारसे सन्देह त्याग करो, प्रातःकाल मैं बड़ा युद्ध करूँगा ॥ ७ ॥ हे पिताजी ! सवेरे ही सर्व पृथ्वी वानर रहित करके दोनों तपस्वियोंको पकड़ लाऊँगा ॥ ८ ॥

छन्द-धरि आनि तापस भ्रात दोउ परभात बार न लाइहौं ।
धरि धरि विपुल कपि भालु दीन निशाचरन अघवाइहौं ॥
भुजबल कहहुँ निज नहिं बहुतकरि रिपुन प्रगट दिखाइहौं ।
बिनु श्रमहिं तातन को वयर लै तव चरण शिर नाइहौं ॥१२॥

सबेरा होते ही दोनों तपस्वियोंको पकड़ लाऊँगा, देर नहीं लगाऊँगा और रीछ वानरोंको पकड़ पकड़ कर दीन राक्षसोंको भोजन कराऊँगा; मैं अपनी भुजाओंका बल बहुत बखान कर नहीं कह सकता हूँ शत्रुओंको प्रकट दिखाऊँगा अपने भाइयोंका वैर लेकर विना श्रम आपके चरणोंमें शिर नवाऊँगा ॥ १२ ॥

दोहा-सुनत बीसभुज सुत वचन, बार बार उर लाइ ॥
लाग करावन नृत्य जड़, गुणी समूह बुलाइ ॥ १८८ ॥

रावणने यह पुत्र वचन सुनकर उसे बार बार हृदयसे लगाया और गुणी जनोंको लाके नाच कराने लगा ॥ १८८ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-भाषाटीकायां लंकाकाण्डान्तर्गत नवमो विश्रामः ॥ ९ ॥

दोहा-नारांतकको निधन कृत, यहि दशमें विश्राम ।
रीछ भालु बानर सुखी, भे परिपूरण काम ॥ १० ॥

विंदुमती आदिक रनिवासू * सब चलि गईं मन्दोदरि पासू ॥१॥
सासुहि मिलि बैठीं सब नारी * मयतनया किय आदर भारी ॥२॥

बिंदुमती आदि नरांतककी नारियें सब मन्दोदरीके पास गयीं ॥ १ ॥ सासुके पगवन्दन करके सब बैठ गयीं तब मन्दोदरीने बड़ा आदर किया ॥ २ ॥

बूझि परस्पर रावण घरणी * ताहि सुनायउ रघुवर करणी ॥३॥
देइ पतोहुन वास सुहावन * आपु लगी सुमिरन जगपावन ॥४॥

परस्पर कुशल पूछकर मन्दोदरीने प्रभुका यश वर्णन कर सुनाया ॥ ३ ॥ पतोहुओंको सुन्दर स्थान दे आप रघुनाथजीका नाम स्मरण करने लगी ॥ ४ ॥

शयन करहु कहि सुतहि निशाचर * उठा आप मतिमन्द अघाकर ॥५॥
गा तेहि भवन कुटिल दशग्रीवा * जहँ मयतनया सदगुणसींवा ॥६॥

वहां मूर्ख पापी रावण अपने पुत्रसे 'तुम भी जाकर शयन करो' यह कहकर आप उठा ॥ ५ ॥ वह कुटिल रावण उस भवनमें गया जहां श्रेष्ठ गुणवाली मन्दोदरी थी ॥ ६ ॥

आयो पिय मन्दोदरि जानी * पाइ सुअवसर गहि पग पानी ॥७॥
पिय सुनाय अति कोमल बयना * लगी कहन जल भरि युगनयना ॥८॥

मन्दोदरी स्वामीको आया हुआ देख समय पाकर हाथसे चरण पकड़ ॥ ७ ॥ बड़े कोमल वचन अपने प्रियतमको सुनाकर दोनों नेत्रोंमें जल भरकर कहने लगी ॥ ८ ॥

दोहा-नाथ निगम आगम विबुध, कहत प्रगट यह बात ॥
बुधजन सो जो आधहूँ, राखै सर्वस जात ॥ १८९ ॥

हे नाथ ! वेद शास्त्र पंडित यह बात प्रकट कहते हैं कि वही चतुरजन हैं जो सर्वस्व जातेमें आधा रख ले, कहा है-"जो सब जाता जानिये, आधा लीजे बांट" ॥ १८९ ॥

तजइ न हठ शठ सर्वश खोवै * यद्यपि अन्त शीश धुनि रोवै ॥१॥
सो विचार प्रभु परम सुजाना * मोर वचन सुनि कीजिय काना ॥२॥

और मूर्ख चाहे अपना सर्वस्व खोदे परन्तु हठ नहीं छोड़ता; अन्तमें शिर पटककर रोता है ॥ १ ॥ सो विचार कर हे परम सुजान प्रभु ! मेरे वचन सुनकर मानो ॥ २ ॥

अजहुँ करहु हठ दूरि गुसाईं * अनुज भाँति मिलिये प्रभु जाई ॥३॥
प्रथमहि सीतहि देहु पठाई * पुनि तुम गमनहु पुत्र लखाई ॥४॥

हे स्वामी ! अब भी हठ दूर करके विभीषणकी तरह आप जाकर रामजीसे मिलिये ॥ ३ ॥ पहले तो जानकीको भेज दो फिर तुम पुत्रको भेजकर आप दर्शन करनेको जाओ ॥ ४ ॥

प्रभुपद गहि मांगहु वर एहू * पदपंकज रति विमल सनेहू ॥५॥
पिया वचन तेहि विष सम लागा * सो गृह तजिगा अनत अभागा ॥६॥

प्रभुके चरण पकड़ यही वर मांगो कि आपके चरणकमलोंमें प्रीति हो ॥५॥ यह मन्दोदरीके वचन उसे विषके समान लगे; इससे वह अभागा घर छोड़कर दूसरे घरमें चला गया ॥६॥

नीच नारि कहि कटु अभिमानी ❋ कीन्ह शयन निशि गइ बड़िजानी॥७॥
सो रजनी गत भयउ प्रभाता ❋ जागे रघुवर जगत्रय त्राता ॥८॥

अभिमानी रावणने मन्दोदरीको 'नीच स्त्री' आदि कटु वचन कह, बहुत रात गयी जान शयन किया ॥ ७ ॥ रात बीतने पर जब प्रातःकाल हुआ और त्रिलोकीके रक्षक श्रीरघुनाथजी जागे तो ॥ ८ ॥

दोहा-ऋक्ष कीश जगदीश पद, शीश नाइ रुख पाइ ॥
धरि गिरि तरु धावत भये, कहि जय जय रघुराइ ॥ १९०

रीछ, वानर प्रभुके चरणोंमें शिर नवाकर और आज्ञा पाकर शिला, वृक्ष हाथोंमें ले 'रघुनाथजीकी जय' उच्चारण करते चले ॥ १९० ॥

कपि घेरा गढ़ यह सुनि काना ❋ रावणसुत तब निपट रिशाना ॥१॥
साजि विपुल दल हनत निशाना ❋ गढ़ते चला निकरि बलवाना ॥२॥

तब वानरोंने लंका घेर ली, यह सुनकर नरांतक बड़ा क्रोधित हुआ ॥ १ ॥ और अपना विपुल दल सजाकर; नगाड़े बजवाके महाबली लंकासे निकल कर चला ॥ २ ॥

चारि द्वार करि कठिन लराई ❋ विशिख वरिष कपिदल विचलाई॥३॥
निकरे निशिचर गढ़ते कैसे ❋ शलभ समूह शैलते जैसे ॥४॥

चारों द्वारोंपर कठिन लड़ाई कर बाणोंकी वर्षा करके वानरोंकी सेना विचलित कर दी ॥ ३ ॥ राक्षस इस प्रकार लंकासे निकले जैसे पर्वतसे टीड़ी निकलती हों ॥ ४ ॥

मारुतसुत देखा कपि भाजे ❋ कटकटाइ अति विक्रम गाजे ॥५॥
कपि लंगूर चहुँ ओर भँवाई ❋ रोके खल निशिचर समुदाई ॥६॥

महावीरजीने देखा कि वानर भागते हैं तब कटकटा कर बड़े विक्रम पूर्वक गर्जनाकी ॥ ५ ॥ चारों ओर अपनी पूँछ बढ़ाकर दुष्ट राक्षसों को निकलनेसे रोका ॥ ६ ॥

पटकत महि निशिचर फल बेलू ❋ केतिक देत विदिशि दिशि मेलू॥७॥
इक दिशि इमि हरिकृत संग्रामा ❋ दिग दूजी अंगद बल धामा ॥८॥

बेलके फलके समान राक्षसोंको पृथ्वीपर पटकने लगे और कितनोंको विदिशाओंमें फेंक दिये ॥७॥ एक ओर तो महावीरजी (घोर) युद्ध करते थे और दूसरी ओर अंगदजी लड़ने लगे ॥८॥

दोहा-निशिचर सेना उदधिसम, मन्दर इव दोउ कीश ॥
मथत देखि जयरतन लगि, हँसे सकल-सुर ईश ॥ १९१ ॥

राक्षसोंकी सेना सागरके समान अंगद हनुमान् मन्दराचल पर्वतके समान उस सागरको जयस्वरूप रत्नके निमित्त मथते हैं;यह देख सब देवताओंके ईश (रामजी) हँसे ॥ १९१ ॥

छन्द-इमि निरखि पराक्रम करत कीश, भा क्रोध परम रजनीचरीश॥१॥
करि प्रलयकन्दसम घोर शोर, धरि कुधर शस्त्र धाये कठोर ॥२॥

इस प्रकार वानरों को पराक्रम करते देख नारान्तकको बड़ा क्रोध हुआ ॥१॥ प्रलयकालके समान बड़ा भयंकर शब्द किया और राक्षस कठोर शिला और शस्त्र लेकर दौड़े ॥ २ ॥

इकवार मारकर शरसमूह, किय विकल अस्त्र हनि कीश जूह ॥३॥
कोउ टेरत कपिपति चितउ चोट, कोउ सुरति करत निजधाम ओट॥४॥

एक ही वार अनेक बाण समूह मारकर और अस्त्र प्रहार कर वानरोंको व्याकुल कर दिया ॥३॥ कोई पुकारने लगे सुग्रीव ! मेरी चोट देखो, कोई अपने घरकी याद करने लगे ॥ ४ ॥

बहु चले शैल कन्दरा ताकि, कोउ दबकत इत उत जात झाँकि ॥५॥
कोउ देत दुहाई लषण राम, कोउ कहत विधाता भयो वाम ॥६॥

बहुतसे पर्वतकी कन्दरा देखकर भगे, कोई इधर-उधर झांक कर छिपनेकी चेष्टा करने लगे ॥ ५ ॥ कोई लक्ष्मण रामकी दुहाई देने लगे, कोई कहने लगे विधाता वाम हो गया ॥ ६ ॥

यहि बीच नरांतक कर प्रधान, तेहि धाय गहेउ युवराज पान ॥७॥
बहु भट लपटाने अंग अंग, सब साथ उड़ेउ अंगद उतंग ॥८॥

उसी समय नारान्तकके मन्त्रीने अंगदजीका हाथ पकड़ा ॥ ७ ॥ उनके साथ ही और भी अनेक योद्धा राक्षस लिपट गये, अंगदजी सबके साथ ही आकाशको उछल गये ॥ ८ ॥

नभ कीश कीन्ह कौतुक अभूत, रविमण्डल पहुँचे वालि पूत ॥९॥
अंगारे जारे तपन आँच-, पुनि आयउ जहँ संग्राम राँच ॥१०॥

आकाशमें अंगदजीने अपूर्व कौतुक किया कि सूर्यमण्डलके निकट चले गये ॥९॥ जिससे राक्षसोंके अंग जलने लगे; तब उन्होंने अंगदजीको छोड़ दिया, और नीचे गिर पड़े, फिर अंगदजी संग्राममें आये ॥ १० ॥

यह निरखि अपर यूथपपिशाच, तुर आइ गयउ सेना समाच ॥११॥
लै विषमशूल मारेसि प्रचण्ड, उर लाग आनि अतिकठिन दण्ड ॥१२॥

यह देखकर और राक्षसोंके सेनापति पिचाशोंकी सेना ले तुरंत आ गये॥११॥ और एक बड़ा तीक्ष्ण त्रिशूल अंगदजीको (पृथ्वी पर आते ही) मारा, वह कठिन दंड इनकी छाती में लगा ॥१२॥

महि परेउ तनय तारा तुरंत, लखि दौरि परेउ हनुमन्त सन्त ॥१३॥
सोइ शूल खैंचि मारेउ प्रचण्ड, उर लाग यूथपति सहस खण्ड ॥१४॥

जिसकी व्यथासे अंगदजी मूर्छित हो तुरंत पृथ्वीपर गिर पड़े, यह देख साधु महावीरजी दौड़े ॥१३॥ वही प्रचण्ड शूल खींचकर महावीरजीने सेनापतिकी छातीमें मारा, जिसके लगते ही यूथपतिके हजार टुकड़े हो गये (तब गिर पड़ा) ॥ १४ ॥

यह चरित सुनेउ रविकुल दिनेश, कह जाहु वेगि अहिराज शेश ॥१५॥
चले नाइ माथ शंकर मनाइ, धनु बाण बाँधि विकराल धाइ ॥१६॥

यह सब समाचार सुन रघुनाथजी बोले-लक्ष्मणजी ! तुम शीघ्र जाओ ॥१५॥ लक्ष्मणजी यह सुनते ही माथा नवाकर शंकरजीका स्मरण कर तीक्ष्ण धनुष बाण ले चले ॥ १६ ॥

अंगद उर कर धर सुमिरि राम, श्रमविगत भयउ बल अतुल धाम ॥१७॥

लक्ष्मणजीने अंगदके हृदयपर रघुनाथजीका स्मरण कर हाथ धरा जिससे महाबली अंगद श्रम रहित हो गये ॥ १७ ॥

दोहा–विगत भई मूर्छा तुरत, बहुरि चलेउ युवराज ॥
लक्ष्मण चाप टँकोर सुनि, फिरा कीशदल साज ॥ १९२ ॥

जैसे ही मूर्छा गयी कि तुरंत अंगदजी युद्ध करने को फिर चले और लक्ष्मणजीके धनुषके शब्दको श्रवणकर वानर फिर उत्साहसे फिरे ॥ १९२ ॥

सुनत टँकोर शरासन निशिचर * बधिर भये नहिं सुनत शब्द पर ॥१॥
वर्षा विशिख कीन्ह अहिनाथा * काटे पाणि पांय बहु माथा ॥२॥

राक्षस धनुषकी टंकोर सुनते ही बहरे हो गये, उन्हें शब्द नहीं सुनायी देता ॥१॥ लक्ष्मण जीने ऐसी बाणकी वर्षा की कि राक्षसोंके पांव, हाथ, शिर कटने लगे ॥ २ ॥

उड़हिं अकाश शीश भुज कैसे * धुनकत तूल रोमगण जैसे ॥३॥
रुण्ड अशीश फिरहिं रणधरणी * यथा अकाल क्षुधारत करणी ॥४॥

राक्षसोंके शिर बाहु आकाशमें ऐसे उड़ रहे हैं, जैसे धुनियोंके यहां रुई उड़ती वा धुनी हुई रुई उड़ती है ॥३॥ विना शिरके रुण्ड युद्ध भूमि पर फिरते हैं, जैसे अकालमें भूखे फिरते हैं॥४॥

इत कपि भालु विजय अभिलाखे * उतहिं निशाचर जयहित राखे॥५॥
मारुतसुत अंगद बलवीरा * समर बांकुरे अति रणधीरा ॥६॥

इधर तो रीछ वानर जीतकी अभिलाषामें उधर राक्षस अपनी जीतके निमित्त लड़ते हैं ॥ ५ ॥ बलवान् योद्धा अंगद और हनुमान्जी युद्धके बांके रणमें धैर्य धरने वाले हैं ॥ ६ ॥

सिंहनाद कीन्हे हरि दोऊ * भाजे कपि रण गाजे सोऊ ॥७॥
दोउ दल युद्ध परस्पर करहीं * प्रमुदित भट कायर हिय डरहीं॥८॥

दोनों वीरोंने जिस समय सिंहनाद किया उस समय भागे हुए वानर भी युद्ध करनेको उद्यत हो गये ॥७॥ दोनों दल परस्पर युद्ध करते हैं। योद्धा प्रसन्न होते हैं कायर हृदयमें डरते हैं ॥८॥

छन्द–कायर डरहिं प्रमुदित सुभट सब लरत हारि न मानहीं ।
जहँ तहँ गिरहिं पुनि उठि भिरहिं दुहुँ ओर जयति बखानहीं ॥
कौतुक विलोकत विबुध गण विस्मय हरष उर आनहीं ।
रघुवीर सेननि पर सुमन झरि लाय विनती ठानहीं ॥ १४ ॥

कायर डरते हैं तथा सब योद्धा प्रसन्न होकर लड़ते हैं;हार नहीं मानते,जहां तहां गिरते और फिर उठकर लड़ने लगते हैं। दोनों ओरसे'जय जय'शब्द उच्चारण करते हैं,देवता यह कौतुक देख रहे हैं। कभी प्रसन्न होते कभी विस्मित होते हैं। रामजीकी सेनापर फूल वर्षाकर विनय करते हैं ॥१४॥

दोहा–अति अद्भुत करणी करहि, ऋक्ष कीश बल भूरि ॥
कर पद बिनु करि रैनिचर, तिन मुख डारहिं धूरि ॥ १९३ ॥

महाबली ऋक्ष वानर बड़ी अद्भुत करनी करते हैं, कि राक्षसोंके हाथ पैर तोड़कर मुखमें धूल भर देते हैं ॥ १९३ ॥

बहुतनके शिर तोरि चलावहिं * निजभुजबल रावणहिं जनावहिं॥१॥
गये याम युग दिवस भवानी * नारान्तक अधसेन सिरानी ॥२॥

बहुतोंके शिर तोड़कर फेंक देते हैं अपना भुज बल रावणको दिखाते हैं ॥ १ ॥ शिवजी बोले हे पार्वती ! दुपहर होते नारांतककी आधी सेना मारी गई ॥ २ ॥

मरे निशाचर अमित निहारी * रावणसुवन कोप भा भारी ॥३॥
रथ समेत ऊपर नभ जाई * भयउ अदृश्य अस्त्र झरि लाई॥४॥

बहुतसे राक्षसोंको मरा देखकर नारांतकको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३ ॥ और रथ समेत ऊपर आकाशमें जाकर अदृश्य हो अस्त्रोंकी झड़ी लगा दी ॥ ४ ॥

क्षणमहँ करि मूर्छित कपि सयना * पुनि शठगा जहँ राजिव नयना॥५॥
गर्जि सो मनहुँ मेघ समुदाई * कहन लाग कटु वचन रिसाई॥६॥

क्षणमात्रमें वानरोंकी सेना मूर्छित करके फिर वह मूर्ख रघुनाथजीके पास गया ॥ ५ ॥ और मेघोंके समान गरज क्रोधकर कटु वचन कहने लगा ॥ ६ ॥

होसि सजग निशिचर कुल द्रोही * बंधु वैर लगि मारहुँ तोही ॥७॥
प्रभुकहँ कटुक कहत सुनि काना * कोपेउ जाम्बवन्त बलवाना ॥८॥

हे राक्षस कुलद्रोही ! सावधान हो, आज भाईके वैरके कारण मैं तुझे मार डालूँगा ॥७॥ रघुनाथजीको कटु वचन कहते सुनकर बलवान् जाम्बवंत क्रोधित हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-शूल एक तेहि छांड़ेऊ, सो कर गहि ऋक्षेश ॥
धाय तासु उर मारेऊ, भाषि जयति अवधेश ॥ १९४ ॥

तब उसने एक बाण छोड़ा उसे जाम्बवंतने बीचमें ही पकड़ रघुनाथजीकी जय, उच्चारण कर (उसी शूलसे) उसके हृदयमें दौड़के मारा ॥ १९४ ॥

लगत शूल सो मूर्छित भयऊ * जाम्बवन्त तब कर गहि लयऊ॥१॥
वार अमित महिमाहिं पछारा * बाँधि गाड़ि वारू महँ डारा ॥२॥

शूलके लगते ही मूर्छित हो गया, तब जाम्बवंतने उसे हाथोंसे पकड़ लिया ॥ १ ॥ और कई वार घुमाकर पृथ्वीपर पछाड़ा, फिर बांधकर रेतमें गाड़ दिया ॥ २ ॥

जागे सकल बलीमुख ऋच्छा *लगे करन रण निज निज इच्छा॥३॥
जाम्बवन्त यह हृदय विचारा * मरै नहीं यह खल मम मारा ॥४॥

इसी अन्तरमें रीछ वानर उठे और युद्ध करने की अपनी अपनी इच्छा प्रकट करने लगे ॥ ३ ॥ जाम्बवंतने मनमें विचार किया यह दुष्ट मेरे मारनेसे नहीं मरता ॥ ४ ॥

विधि इच्छा पुनि ताहि उखारी * मुष्टि चारि उर माहिं प्रचारी ॥५॥
गहि पद संचारा गढ़ माहा * सपदि परा जहँ निशिचर नाहा॥६॥

हरि इच्छासे उसे उखाड़ कर और उसके हृदयमें चार मुष्टिका मारी ॥५॥ फिर टांग पकड़ कर लंकापुरीमें फेंक दिया, जहां रावण था वहां शीघ्र जाकर वह गिरा ॥ ६ ॥

दशमुख तब हाहा करि धावा * नारांतकहि हृदय निज लावा ॥७॥
निरखि निशाचर नहिं समुदाई * गढ़ कहँ गे सब व्याकुल धाई ॥८॥
तब रावण 'हाहाकार' कर दौड़ा और नारांतकको अपने हृदयमें लगा लिया ॥ ७ ॥
नारांतकको न देखकर व्याकुल हो सब राक्षस लंकामें चले गये ॥ ८ ॥

दोहा-कपिगण समय प्रदोष लखि, रामचरण धरिमाथ ॥
ठाढ़ भये सब तन चितय, दयादृष्टि रघुनाथ ॥ १९५ ॥

इधर वानर गण भी सायंकाल देखकर रघुनाथजीके पास आये और उनके चरणोंमें शिर धर खड़े हुए तब, रघुनाथजीने दयादृष्टिसे सबकी ओर देखा ॥ १९५ ॥

बिनु श्रम कीन्ह सबनि जगदीशा * गये सुवासु भालु अरु कीशा ॥१॥
रुचिरासन आसीन रमेशा * ढिग वीरासन उरग नरेशा ॥२॥
रघुनाथजीने सबको विना श्रमकर दिया, रीछ वानर अपने अपने स्थानोंपर गये ॥१॥ रघुनाथजी सुन्दर आसन पर विराजमान हैं, निकट वीरासनसे महाराज लक्ष्मणजी बैठे हैं ॥ २ ॥

अंगद मारुत सुत प्रभु चरणा * लगे पलोटन सुनहु अपरणा ॥३॥
पुण्यपुंज अरु भाग्य निधाना * जिनपर नित प्रसन्न भगवाना ॥४॥
अङ्गद और महावीरजी प्रभुके चरण दबाने लगे, शिवजी बोले-हे पार्वती ! सुनो ॥३॥ वे बड़े पुण्यात्मा और भाग्यके निधान हैं जिनपर भगवान् नित्य प्रसन्न हैं ॥ ४ ॥

वहां सुरारि सुतहिं पौढ़ाई * बिलखहिं तासु नारि समुदाई ॥५॥
होत प्रभात नारांतक जागा * पितु विलोकि लज्जारस पागा॥६॥
वहां रावणने पुत्रको सेज पर लिटा दिया उसकी स्त्रियां व्याकुल हो रोने लगीं ॥ ५ ॥
पुनः प्रातःकाल होते ही नारांतक जागा और पिताको देख बहुत लज्जित हुआ ॥ ६ ॥

रथ चढ़ि तुरत इकाकी धावा * नभपथ समर भूमिमहँ आवा ॥७॥
कीश कटक यह मर्म न जाना * होइ लोप कीन्हेसि झरि बाना ॥८॥
तुरंत रथपर चढ़कर अकेला दौड़ा और आकाश मार्गमें होकर युद्धभूमिमें आया ॥ ७ ॥
वानरोंके कटकने यह भेद नहीं जाना और उसने लोप होकर बाणोंकी झड़ी लगादी ॥ ८ ॥

दोहा-धावहिं व्योमहिं भालु कपि, ताहि न देखहिं नैन ॥
घायल होहिं गिरहिं महि, भाषहिं आरत बैन ॥ १९६ ॥

रीछ वानर आकाशमें जाते हैं परंतु उसे नेत्रोंसे नहीं देखते और घायल होकर पृथ्वी पर गिरते तथा दुःखके वचन उच्चारण करते हैं ॥ १९६ ॥

बाण एक शतवज्र समाना * छांड़ेसि शठ जहँ कृपानिधाना॥१॥
लागत विपुल कीश मुरझाने * बहु तक कायर देखि पराने ॥२॥
उस मूर्खने वज्रके समान प्रचंड सौ बाण जहां रघुनाथजी थे वहां छोड़े ॥१॥ जिन बाणोंके लगते ही अनेक वानर मुरझा गये, बहुतेरे कायर तो (दूरसे) ही देखकर भाग गये ॥ २ ॥

भागि सेतु ढिग एक अयाना ❋ टेरे फिरहिं न सुन हरियाना ॥३॥
मारुत-सुत अंगद सुग्रीवा ❋ कुमुद मयंक द्विविद बलसींवा ॥४॥

काकभुशुण्डिजी बोले-हे गरुड़जी ! कोई एक पुलके निकट भाग गये और पुकारनेसे भी नहीं लौटते हैं ॥ ३ ॥ महावीरजी, अंगद, सुग्रीव, कुमुद, महाबली द्विविद ॥ ४ ॥

ये सब वीर हांक दै धावहिं ❋ नभ पथ ताहि न खोजत पावहिं॥५॥
तब सब वीर एक मत ठाना ❋ लै गिरि तरु किय लंक पयाना॥६॥

ये सब वीर हाँक देकर आकाशमें दौड़ते हैं परंतु वहां उसे ढूँढ़नेसे नहीं पाते ॥ ५ ॥ तब सब वीरोंने एक मत ठानकर पर्वत और वृक्षोंको लेकर लंकाको पयान किया ॥ ६ ॥

दशमुख भवन तासु कंगूरा ❋ बैठे कपि पसारि लंगूरा ॥७॥
करते डारि देहिं पाषाना ❋ बहुत दनुज भे चूर्ण समाना ॥८॥

रावणके घरके कंगूरों पर वानर अपनी अपनी पूँछ फैलाकर बैठे ॥ ७ ॥ हाथसे पत्थर डाल देते हैं जिससे बहुत राक्षस चूर्ण हो गये ॥ ८ ॥

छन्द-भे चूर्ण निशिचरयूथ, गईं निशिचरी भयगूथ ॥
❋ मुख बैन आरत दीन, भईं भवन रावन लीन ॥ १८ ॥

राक्षसोंके यूथ चूर्ण हो गये, भयके मारे राक्षसियाँ भाग गयीं, मुखसे दुःखके शब्द उच्चारण करती रावणके घरमें घुस गयीं ॥ १८ ॥

सुनि बोलि भट दशभाल, कह खाहु कीश कराल ॥
करो यत्न भागैं कीश, अस कहेउ वचन दशशीश ॥ १९ ॥

यह दशा देखकर रावणने योद्धाओंको बुलाकर कहा तुम वानरोंको खा जाओ । अथवा यह यत्न करो कि वानर भाग जायँ ये वचन रावणने कहे ॥ १९ ॥

मम कोउ आयसु छोर, सोइ जानिहौं रिपु मोर ॥
सो शूर मोहकहँ प्यार, जो खाय मर्कट धार ॥ २० ॥

और जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन करेगा तो जानूँगा कि यह मेरा शत्रु है और वही वीर मुझे प्यारा होगा जो अनेक वानरोंको पकड़ कर खा जायगा ॥ २० ॥

दोहा-सुनि दशमुख वच रजनिचर, एक एक भुज जोर ॥
❋ रावण वचन सो राखि शिर, धाये करिरव घोर ॥ १९७ ॥

रावणके यह वचन सुनकर एक एकसे हाथ जोड़कर रावणकी आज्ञा शिर पर धारण कर (बड़े) भयंकर शब्द करके धाये ॥ १९७ ॥

देखि लंगूर सकल हर्षाने ❋ मधुमाखी सम सब लपटाने ॥१॥
कपि उर सुमिरि रमेश प्रतापा ❋ डारे सबनि पटकि करि दापा ॥२॥

वानरोंके लंगूर देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए और शहदकी मक्खीके समान सब लिपट गये ॥ १ ॥ और वानरों ने रघुनाथजीके प्रतापका मनमें स्मरण करके अभिमान पूर्वक सब राक्षसोंको पटक डाला ॥ २ ॥

काँचे घट सम दनुज बिदारी * जयति राम जय लषण पुकारी ॥३॥
सुभट छुवहिं पुनि फेर लँगूरा * भूमि गिरावहिं कोटि कँगूरा ॥४॥

कच्चे घड़ेके समान राक्षसोंको विदीर्ण करके 'जय राम लक्ष्मणकी' पुकारते हैं ॥३॥ फिर जभी राक्षस पूँछको छूते हैं तभी ये छहों योद्धा अपनी पूँछें फैलाकर कंगूरोंमें लपेट कर पृथ्वी में गिरा देते हैं ॥ ४ ॥

अति विशाल गहि कञ्चन खम्भा * ढह प्रयास बिनु करु आरम्भा ॥५॥
जनु ढाहत अपक्क घट जूहा * कपि तिमि तोरत दनुज समूहा॥६॥

अत्यन्त विशाल सोनेके खम्भे तोड़ने लगे, जिसमें उन्हें कुछ परिश्रम नहीं होता था ॥५॥ जैसे कोई कच्चे घड़ेको फोड़ देते हैं, ऐसे ही विना परिश्रमके राक्षसों का संहार करते हैं॥६॥

पुनि विचार करि हरिभट धाये *निशिचर निकरमध्य चलि आये॥७॥
करि कोटिन बिनु नासा काना * कर पद हीन कीन रिपु नाना ॥८॥

फिर विचार कर वानर दौड़े राक्षसोंकी सेनामें चले आये ॥७॥ जाते ही अनेकोंके नाक, कान काट डाले और अनेक शत्रुओंके हाथ पैर तोड़ डाले ॥ ८ ॥

छन्द-रिपु कीन कर पद हीन अगणित दीन वचन पुकारहीं ।
गढ़ते निकरि निशिचर निखिल खल विपिन बाट सिधारहीं ॥
पीपरपरणसम धरणि लंका कंप षट कीशन करा ।
तोरे कपाट निपाटि अरि-तियकेश खैंचत गहि करा ॥ १५ ॥

अनेक शत्रुओंके हाथ पैर तोड़ डाले, वे दीन वचन पुकारने लगे लंकासे निकल अनेक दुष्टराक्षस डरके मारे वनको भागते हैं, केवल छः वानरोंने ही लंकापुरी पीपलके पत्तेके समान कंपित कर दी तथा मंदिरोंके किवाड तोड़ डाले और शत्रुओंकी स्त्रियोंके बाल हाथसे खींचकर घसीटने लगे ॥ १५ ॥

दोहा-भयउ कुलाहल लंक अति, नारान्तक सुनि कान ॥
नभते स्यंदन सहित शठ, प्रगट परम रिसियान ॥ १९८ ॥

लंकापुरीमें बड़ा कोलाहल हुआ तब मायावी नारांतक यह कानोंसे सुनकर आकाशसे रथ सहित उतरा और बड़ा क्रोध कर प्रकट हुआ ॥ १९८ ॥

निरखि दशा निज नारिन केरी * कहन लाग कटु गिरा घनेरी ॥१॥
शठ आयउ संग्राम विहाई * लरत तियन सँग लाज न आई॥२॥

वह अपनी स्त्रियोंकी यह दशा देखकर बड़े कठिन शब्दोंका प्रयोग करने लगा ॥ १ ॥ मूर्खों ! संग्राम छोड़कर यहां चले आये स्त्रियोंके साथ लड़ते तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥२॥

अवलनपै बल भट न कराहीं * छाँड़हु तियन लरहु मम पाहीं॥३॥
सुनि मरकटनि भयउ सुख भारी * तजी निशाचर दीन पुकारी ॥४॥

योद्धा स्त्रियोंपर बल नहीं करते, इस कारण स्त्रियोंको त्यागकर मुझसे लड़ो ॥ ३ ॥ यह सुनकर वानर बड़े प्रसन्न हुए और उन दीन पुकारती हुई राक्षसियोंको छोड़ दिया ॥ ४ ॥

भाजि भवन भययुत गईं नारी ❋ लीन्ह कपिन कर शिला उपारी ॥५॥
शिल प्रहार हय स्यंदन भञ्जा ❋ आयुध तोरि सारथी गञ्जा ॥६॥

तब वे स्त्रियाँ भयके मारे घरोंमें भाग गयीं, वानरोंने हाथोंसे एक एक शिला उखाड़ ली॥५॥ शिलाके प्रहारसे नारांतकके घोड़े,रथ चूर्ण कर दिये और आयुध तोड़ सारथीको मार डाला॥६॥

धरि पछारि रावण दृग देखा ❋ व्याकुल कीशन कीन्ह विसेखा॥७॥
लागे पद गहि खलन फिरावन ❋ नाचहिं गाय रामयश पावन ॥८॥

रावणके देखतेही वानरोंने पकड़के पछाड़ व्याकुल कर दिया ॥ ७ ॥ और चरण पकड़ राक्षसोंको फिराने लगे तथा रघुनाथजीका पवित्र यश गाते और नाचते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-तोरत तिन तनु पटकि महि, कहत जयति रघुवीर ॥
करत युद्ध गत याम युग, कीश छहों रणधीर ॥ १९९ ॥

राक्षसोंको पृथ्वीमें पटक उनके शरीर तोड़ डालते हैं 'रघुनाथजीकी जय' उच्चारण करते हैं, इस प्रकार रणधीर छहों वानरोंको युद्ध करते करते दो प्रहर बीत गये ॥ १९९ ॥

अस्ताचल रवि कीन्ह प्रवेशा ❋ वन्दे चरण जाइ अवधेशा ॥१॥
श्यामसरोरुह प्रभुतनु देखी ❋ पद धरि शिर सुख लहेउ विसेखी॥२॥

इधर सूर्य भगवान्‌ने अस्ताचल पर्वतमें प्रवेश किया, तब वानरोंने जाकर रघुनाथजीके चरण छुए (सायंकाल सूर्य जिस पर्वतके ओटमें होता है उसे 'अस्ताचल' कहते हैं) ॥१॥ प्रभुका श्याम कमलके समान शरीर देखकर चरणोंमें शिर धर बड़ा सुख पाया ॥ २ ॥

राम सबनि सादर सनमाना ❋ को दयालु रघुवीर समाना ॥३॥
रघुवर कहा तिनहिं तब जाना ❋ आयसु पाइ गये निज थाना ॥४॥

रघुनाथजीने सबका आदर पूर्वक सन्मान किया, रघुनाथजीके समान कौन दयालु है ? ॥ ३ ॥ रघुनाथजी उनसे बोले-अपने अपने स्थानोंपर जाओ, आज्ञा पाके सब अपने अपने स्थानों पर विराजे ॥ ४ ॥

भये विगत श्रम वानर भालू ❋ अनुज सहित मनमुदित कृपालू॥५॥
सुनहु उमा ता निशि रघुनायक ❋ गावत जन गुण सब गुणदायक॥६॥

रीछ वानर सब श्रमरहित हो गये, लक्ष्मण सहित रघुनाथजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ शिवजी बोले-हे पार्वती ! उसी समय रघुनाथजी अपने भक्तोंकी बड़ाई करने लगे अथवा उनके जन उनके सब गुण गाने लगे ॥ ६ ॥

याम तीन यामिनि गत जबहीं ❋ उत नारांतक जागेउ तबहीं ॥७॥
शोक विवश मींजत दोउ हाथा ❋ लज्जित हृदय निशाचर नाथा ॥८॥

वहाँ जब तीन प्रहर रात्रि बीत गई, तब नारांतककी मूर्छा जागी ॥ ७ ॥ तो वह अपने दोनों हाथ शोचके मारे मलने लगा और मनमें (बहुत) लज्जित हुआ ॥ ८ ॥

छन्द-साजिकै रथै सँभारि वाजि साजि हृष्ट पुष्ट ।
शंक छांड़ि शस्त्र मांड़ि गाढ़ वीर संग दुष्ट ॥

भेरि दुन्दुभी निशान गान काड़खैत कर्त ।
धीर वीर अग्र गौन गाजि गाजि शब्दभर्त ॥ १९ ॥

लज्जित अपना रथ सँभाल कर और उसमें हृष्ट पुष्ट घोड़े जोतकर शंका त्यागकर शस्त्र बांध और बड़े बली वीरोंको लेकर वह दुष्ट सज्जित हुआ । भेरी, दुन्दुभी, निशान बजने लगे कड़खैत कड़खा गाने लगे बड़े धीर वीर योद्धा आगे हो महाध्वनिसे गर्जते चले ॥ १९ ॥

छन्द–जीव आश त्रास नाश बाजि मोह छंड छंड ।
बंक शूर शंक दूर वीरता सपूर चण्ड ॥
बाजि नाग शोर ओर पूरिगे दशौं दिशान ।
धूरि पूरि मेघ ओघ शोधना परो अपान ॥ २० ॥

जीनेकी आशा और भय त्यागकर घोड़ोंके स्वामी बड़े बांके योद्धा सब शंका और मोह त्याग वीरतामें भर क्रोधकर गर्जे । उस समय घोड़ों, हाथियोंके भी चिंघाड़नेका शब्द दशों दिशाओंमें भर गया, धूलिसे आकाश मेघमण्डलके समान पूर्ण हो गया और मेघके समान गर्जनेसे किसीको अपने परायेका ज्ञान न रहा ॥ २० ॥

छन्द–कूदि कूदि व्योम पंथ जाय आइ जाइँ भूमि ॥
अस्त्र शस्त्र काढ़ि काढ़ि क्रुद्ध क्रुद्ध झूमि झूमि ॥ २१ ॥

कूद कूद आकाशमें बार बार जाते और पृथ्वीमें आते हैं, अस्त्र शस्त्र निकाल निकाल कर महा क्रोध कर झूमते हैं ॥ २१ ॥

दोहा–प्रलय मनहु चाहत करन, अनी तमीचरचण्ड ॥
सुनु खगेश मर्कट विकट, जिमि धाये बरिबंड ॥ २०० ॥

उस समय राक्षसोंकी विकट सेना मानो प्रलय करना चाहती है, काकभुशुण्डजी बोले–हे गरुड़जी ! बड़े योद्धा वानर क्रोधकर जिस प्रकार दौड़े (वह भी सुनो) ॥ २०० ॥

छन्द–निहारि हर्ष कीश ऋक्ष फूलि फूलि शैल भे ।
बजाइ कटकटाइ हूह एक बारकै अभे ॥
उपारि भूधरा अपार वृक्ष अश्म शृङ्गहू ।
मरे निशाचरानि रुण्ड झुण्ड मुण्ड भङ्गहू ॥ २२ ॥

रीछ वानर निशाचरोंको देखते ही प्रसन्नतासे फूल फूलकर पर्वतके समान हो गये । मुखसे एक साथ ही (बाजोंके समान) कट कट हूहू शब्द निर्भय हो करने लगे, अनेक पर्वत शिला वृक्ष उखाड़ कर राक्षसोंको मारने लगे जिससे अनेक राक्षसोंके झुण्ड बिना शिरके हो गये अर्थात् शिलाओंकी मारसे उनके शिर चूर्ण हो गये ॥ २२ ॥

छन्द–रदी हरी मृगावती सवार उष्ट्र भण्डहू ।
मनो विचित्र बाहिनी दई मनोज खंडहू ॥
हलै धरा बलै विचारि भार धारि को सकै ।
सुनै पुकार जयति राम शत्रुसे नहीं धकै ॥ २३ ॥

जिस प्रकार मृगोंको मारकर सिंह नष्ट कर देता है वैसे ही वानरोंने राक्षसी सेनाका विध्वंस कर दिया और हाथी, घोड़े सवार ऊँट आदिसे उत सेनाकी ऐसी शोभा हो रही थी मानो कामने सब विचित्र सेनाका खण्ड कर दिया है । उनके बलको विचार पृथ्वी भार सहनेमें असमर्थ हो कांपने लगी, वानरोंमें 'जय हो रघुनाथजीकी' यही पुकार मच रही थी, राक्षसोंका किंचिन्मात्र भी भय नहीं था ॥ २३ ॥

छन्द-लंगूर शूलसे अकाश भीत उच्च औचट्यो ॥
गिरे पयोद पौनते झपेट भेंटते कट्यो ॥ २४ ॥

वानरोंके लंगूर (पूँछ) जो शूलके समान थे ऊँचे शरीर भीतसे दिखायी देते उनके वेगके पवनसे जो बादल गिरते हैं उन्हें देखते ही वे झपटकर काट देते हैं अथवा उनसे आकाश भी भयभीत सा दृष्टि आता था । पवन थक जानेसे मेघ लंगूरोंके लगनेसे खण्ड खण्ड हो गिरने लगे ॥२४॥

सोरठा-शब्द करत अति घोर, इमि पहुँचा दल भालु कपि ॥
आयुध झरि अति जोर, परे लागि घन प्रलय सम ॥ ८ ॥

इस प्रकार महाशब्द करता रीछ वानरोंका दल भी निश्चरोंके सन्मुख हुआ, राक्षसोंने भी आयुधोंकी वर्षा कर दी, प्रलय कालके बादलोंकी वारिधाराके समान अस्त्र धारा चलने लगी ॥ ८ ॥

सजग होन कपि भालु न पाये ❋ अतिशय निकट तमीचर आये ॥१॥
असित निशाचर अति अँधियारी ❋ तापर करे शरनकै मारी ॥२॥

भालु वानर सावधान भी नहीं होने पाये थे कि राक्षस बहुत समीप आ गये॥१॥अँधेरी रातके समान वे काले काले राक्षस आते ही सब शत्रुपर बाणोंकी मार करने लगे ॥ २ ॥

सूझहि कपिन न हाथ पसारे ❋ जहँ तहँ एकनि एक पुकारे ॥३॥
सन्मुख कोउ न करत लराई ❋ कपिन मारि रण भूमि सुहाई ॥४॥

अँधेरा होनेके कारण वानरोंको हाथ पसारा नहीं सूझता था; जहां तहां एक एकको पुकारने लगे ॥ ३ ॥ और उस समय कोई राक्षस सन्मुख होकर युद्ध नहीं करता था, किंतु गुप्त हो वानरोंको मारकर रणभूमिमें सुला दिया ॥ ४ ॥

गे अनेक भजि सिंधु समीपा ❋ सेन विकल लखि रघुकुल दीपा ॥५॥
सजि सारंग तजा इक बाना ❋ भा प्रकाश दिग तरणि समाना ॥६॥

अनेक तो भागके सागरके किनारे चले गये, रघुनाथजीने (अपनी) सेनाको व्याकुल देख ॥५॥ धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ा जिससे सब दिशाओंमें सूर्यके समान प्रकाश हो गया ॥६॥

लखि तम बिगत भालु कपि हर्षे ❋ कटकटाय धाये रिपु धर्षे ॥७॥
भिरे एक सन एक प्रचारी ❋ लागे करन कठिन हठिमारी॥८॥

अन्धकार दूर होते ही रीछ बानर बड़े प्रसन्न हुए और कटकट शब्द कर दौड़े, शत्रुओंको मारने लगे ॥ ७ ॥ एक एकसे ललकार कर युद्ध करने लगे; उस समय महा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥

दोहा–शीश शिला तरु करन धरि, कांखन भरि भरि धूरि ॥
गर्जें भालु वलीबदन, धाय धाय नभदूरि ॥ २०१ ॥

शिर पर शिला, हाथोंमें वृक्ष, कांखमें धूर भरकर रीछ वानर आकाशमें दूर जाकर महा-शब्द कर गर्जने लगे ॥ २०१ ॥

डारहिं गिरि तरु निशिचर शीशा ❋ दधिघटसम फूटत भट कीशा ॥१॥
चढ़हिं अनेक कन्धपर जाई ❋ काटहिं कान दृगन रज नाई ॥२॥

योद्धा वानर राक्षसोंके शिरोंपर पर्वत वृक्ष डालने लगे; उनके शिर दहीके घड़ोंके समान फूटने लगे॥१॥ और जाकर अनेक राक्षसोंके कंधोंपर चढ़ आंखोंमें धूल डाल कान काट लेते हैं ॥२॥

तोरहिं शूल चाप नाराचा ❋ अरिदल अस्त्र न एकौ बाचा ॥३॥
अस्त्रहीन रिपु सेन पराई ❋ देखि पवनसुत हँसेउ ठठाई ॥४॥

अनेक राक्षसोंके शूल धनुष बाण तोड़ने लगे, शत्रुओंके दलमें किसीके पास भी कोई अस्त्र न रहा॥३॥ अब आयुध रहित होकर राक्षसी सेना भगी, उस समय ऊँचे स्वरसे महावीरजी हँसे ॥४॥

बैठि अवनि पुनि लूम फुलाई ❋ अति उतंग दीरघ चौड़ाई ॥५॥
तर्कित खसे निशाचर कैसे ❋ पक्षहीन नभते खग जैसे ॥६॥

फिर अपनी पूँछ बड़ी लम्बी चौड़ी करके पृथ्वीमें बैठ गये ॥ ५ ॥ अनेक निशाचरोंको पूँछके बीचमें पकड़के गिराने लगे जैसे पंख रहित पक्षी आकाशसे गिरे ॥ ६ ॥

गिरत कीश गहि चरण फिरावहिं ❋ पटकि भूमि गाड़हिं बिहँसावहिं ॥७॥
तुम्बरिसम अगणित शिर तोरत ❋ अगणित रुण्ड सिंधुमहँ बोरत ॥८॥

राक्षसोंके गिरते ही वानर उनके चरण पकड़ फिराते, फिर हँस कर पृथ्वीमें पटक कर गाड़ते हैं॥७॥ तुम्बरि (लौकी) के समान अनेक शिर तोड़ते, अनेक रुण्ड सागरमें बोर देते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–कोटि बयालिस तमीचर, नारान्तककर घाति ॥
राम कृपाबल हति खलनि, कपिन बिताई राति ॥ २०२ ॥

रघुनाथजीकी कृपासे वानरोंने नारान्तकके साथी बयालीस करोड़ राक्षसोंको मार कर वह रात बितायी ॥ २०२ ॥

प्रभु तुणीर महँ हरिशर जबहीं ❋ प्रविशे कीन्ह उदय रवि तबहीं ॥१॥
देखि कटक निज परम बिहाला ❋ नारान्तक भट कोटि कराला ॥२॥

जैसे सूर्य भगवान् उदय हुए कि उसी समय यह प्रकाशमान बाण रघुनाथजीके तूणीरमें प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ अपनी सेनाकी अत्यन्त दुर्दशा देख नारांतक एक करोड़ कठिन योद्धा-ओंको साथ लिए ॥ २ ॥

करि बहु शपथ लिये सँग वीरा ❋ वर्षत शक्ति उपलगण तीरा ॥३॥
शर अस्तंभन विपुल पँवारे ❋ भये अचल कपि टरहिं न टारे ॥४॥

नरान्तक रणधीर वीरोंके सहित शपथ करके वानरोंपर शक्ति, पत्थर तथा बाणोंकी वर्षा

करने लगा ॥३॥ फिर अनेक स्तंभन बाण छोड़, जिससे वानर वहां असमर्थ हो स्थिर हो गये, टालनेसे भी नहीं टलते ॥ ४ ॥

लै लै पाश निशाचर धाई ❋ बांधत जिमि चुंगलि शुक पाई ॥५॥
व्याध पींजरा सम बहु जाना ❋ भरे जात प्रति अयुत प्रमाना ॥६॥

फिर निशाचर पाश ले ले वानरोंको बांधने लगे जैसे तोतोंको (जब वे नलकीको पकड़ झूलने लगते हैं छोड़ नहीं सकते तब) व्याधे जालसे बांध लेते हैं ॥ ५ ॥ हजारों वानरोंको बांधकर एक स्थानमें बन्द किया जैसे व्याधे पशुओंको पींजरेमें जकड़ते हैं ॥ ६ ॥

जे कपि लखैं विपुलबल बंका ❋ ते मूर्छित फेंके गढ़ लंका ॥७॥
रावण देखि तनयकी करनी ❋ बन्दीजन जिमि भुजबल बरणी ॥८॥

उनमें नरांतक जिन वानरोंको बली देखता है उन मूर्छितोंको लंकामें फेंक देता है ॥ ७ ॥ रावण यह पुत्रकी करनी देख भाटोंके समान अपने पुत्रका भुजबल अनेक प्रकारसे वर्णन करने लगा ॥ ८ ॥

दोहा-हरि इच्छा जानै नहीं, सुतहि सराहत मूढ़ ॥
काल विवश मति संभ्रमित, सुनहु ऋषय बुधिगूढ़ ॥ २०३ ॥

हे बुद्धिसागर याज्ञवल्क्य ! सुनो, वह मूर्ख रावण 'हरिकी कैसी इच्छा है' यह न जानकर अपने पुत्रकी सराहना करता है, क्योंकि कालके वश होनेसे मति भ्रांतिमें पड़ गयी है ॥२०३॥

अंगद हनूमान जब जागे ❋ नारान्तकसन जूझन लागे ॥१॥
क्षण इक कीश न पायउ लरई ❋ पुनि शर हति मूर्छावश करई ॥२॥

जब अङ्गद हनुमानजी जागे तब फिर नरांतकसे युद्ध करने लगे ॥१॥ एक क्षण भी वानर युद्ध करने नहीं पाये थे कि फिर नरांतकने बाण मार उन्हें मूर्छित कर दिया ॥ २॥

याम युगल तेहिकर बरदाना ❋ राखेउ तेहि कारण भगवाना ॥३॥
रिपुहि खिलावत रघुकुल-केतू ❋ पालक बुध वाणी श्रुतिसेतू ॥४॥

शत्रुके बलवान् होनेका दो पहरतक वरदान था इसी कारण भगवान्ने अबतक उसे रखा है ॥ ३ ॥ रघुकुलकी ध्वजा रघुनाथजी शत्रुके साथ भी खेल करते हैं, कारण कि ब्रह्मादिक वरदानकी वाणीको पालन कर वेदकी मर्यादा रखते हैं ॥ ४ ॥

सो युग याम गये जब बीती ❋ तब रघुवीर सजी जयरीती ॥५॥
हाँक देइ कपि भालु जगाये ❋ भये विगत मूर्छा सब धाये ॥६॥

सो जिस समय वे दो पहर बीत गये तब रघुनाथजीने यह कौतुक जयके निमित्त किया कि ॥ ५ ॥ एक ही हांक देकर रीछ वानरोंको चैतन्य कर दिया, वे सब कोई मूर्छा रहित होकर युद्धके उत्साही हो दौड़े ॥ ६ ॥

हनूमान अंगद जब जागे ❋ राम लषण चरणन अनुरागे ॥७॥
प्रभु पद शीश रहे धरि कीशा ❋ तब हँसि बोले श्रीजगदीशा ॥८॥

जब हनुमान् और अङ्गदजी जागे तब राम लक्ष्णजीके चरणोंमें प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥ ७ ॥ वे वानर अङ्गद और हनुमानजी प्रभुके चरणोंमें शिर धरे रहे, तब रघुनाथजी हँसकर बोले ॥८॥

सोरठा–विधि वाचा लगि आज, तात तुमहिं मूर्छा भई ॥
पुनि कह प्रभु रघुराज, अब श्रम सपनेहुँ अनत नहिं ॥ ९ ॥

रघुनाथने कहा–हे तात ! ब्रह्माजीके वरदानके कारण आज तुम्हें मूर्छा हुई है अब अन्य समय फिर स्वप्नमें भी श्रम नहीं होगा ॥ ९ ॥

तुमहिं सुमिरि अंगद हनुमाना ❋ जितिहैं जगत मनुज रण नाना॥१॥
अस वर जबहिं रमापति भाखा ❋ सुनत गिरा हर्षे मृगशाखा ॥२॥

हे अंगद ! हनुमान् ! जगत्के सब मनुष्य तुम्हें स्मरण करके संग्राममें जय प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥ यह वर जब रघुनाथजीने दिया तो सुनते ही वे वानर प्रसन्न हो गये ॥ २ ॥

कहेउ बहोरि वचन रघुवीरा ❋ सुनु अंगद हनुमत रणधीरा ॥३॥
तात तुरत तुम उभय सिधावहु ❋ लंक गये कपि तिनहिं छुड़ावहु॥४॥

फिर रघुनाथजी कहने लगे-अंगद ! हनुमान सुनो, तुम बड़े रणधीर हो ॥ ३ ॥ इससे पुत्रो ! तुम दोनों शीघ्र जाओ, जो वानर लंकामें फँस रहे हैं उन्हें छुड़ा लाओ ॥ ४ ॥

सुनि दोउ भट गहिशैल विशाला ❋ सुमिरि कोशलाधीश कृपाला ॥५॥
सपदि कीश गढ़पर चढ़ि गये ❋ देखि लंकमहँ खरभर भये ॥६॥

यह सुनते ही दोनों योद्धा विशाल शिला ग्रहण कर कृपालु रघुनाथजीका स्मरण कर ॥ ५ ॥ शीघ्रतासे लंकापुरी पर चढ़ गये इन्हें देखकर लंकामें खलबली मच गयी ॥ ६ ॥

सकल कपिनकें मूर्छा बीती ❋ तोरि पास भजि राम सप्रीती ॥७॥
वायुसुतु युवराज निहारी ❋ हर्षे कहि जय जयति खरारी ॥८॥

ये ज्यों लंकामें पहुँचे कि वानरोंकी मूर्छा नष्ट हो गयी और सबने प्रेमसे रघुनाथजीकी जय उच्चारण कर बन्धन तोड़ डाले ॥ ७ ॥ महावीर और अंगदको देख वानर रघुनाथजीकी जय कह कर प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

दोहा–मेष बरूथहिं पाय जिमि, वृकगण करहिं सँहार ॥
तिमि मर्दहिं दनुजन समुद, कीश भालु बरियार ॥२०४॥

जैसे भेड़िये भेड़ोंको पाकर संहार करते हैं, उसी प्रकार वानर बड़े वेग और हर्षसे राक्षसोंका मर्दन करने लगे ॥ २०४ ॥

याम एक वासर अवसेखा ❋ कह अंगद कीशन तन देखा ॥१॥
चलिय तात अब जहँ सुरभूपा ❋ देखिय पदपाथोज अनूपा ॥२॥

जब एक पहर दिन शेष रहा तब अंगदजी वानरोंसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे तात ! अब रघुनाथजीके पास चलकर उनके अनुपम चरणारविंदोंका दर्शन करो ॥ २ ॥

अंगद वचन पवनसुत भाये ❋ सपदि सहित दल प्रभुपहँ धाये॥३॥
निशिचर कोटि नरान्तक संगा ❋ करत रहे बहुविधि रणरंगा ॥४॥

अंगदके वचन महावीरजीको अच्छे लगे और शीघ्रतासे दल समेत रघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥ एक करोड़ निशाचर नारांतकके साथी अनेक प्रकार युद्ध कर रहे थे ॥ ४ ॥

माया करि निज गात बचावहिं ❋ जहँ तहँ रावण खल यश गावहिं ॥५॥
अदितिनन्द लखि तिनकरि माया ❋ सभय भये जाना रघुराया ॥६॥

मायासे अपना शरीर बचा करके दुष्ट जहां तहां रावणका यश गाते हैं ॥ ५ ॥ उनकी माया देखकर देवता डर गये, यह बात रघुनाथजीने जानी ॥ ६ ॥

दीन्ह नाथ अनुजहिं अनुशासन ❋ उठे तुरत गहि विशिख शरासन ॥७॥
अहिपति कहेउ तिष्ठ क्षण एका ❋ तैं कीन्हेउ रण खेल अनेका ॥८॥

तब लक्ष्मणजीको युद्धमें जानेकी आज्ञा दी, वे तुरंत धनुष बाण ग्रहण कर उठे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी नरांतकसे बोले-अरे दुष्ट ! क्षणमात्र मेरे सम्मुख स्थिर हो, तूने अनेक रण खेल किये हैं ॥ ८ ॥

छन्द-तैं कीन्ह खेल अनेक विधि अब तिष्ठ खल रणभूथला ।
इमि कहि अहीश चढ़ाय धनुशर करन निशिचर दलमला ॥
निज अनी निरखि निदान हरि अरि सुअन धावा रिसिभरा ।
डारत अनेक नराच प्रभुपर शिला तरुवर भूधरा ॥ २५ ॥

अरे दुष्ट ! तूने अनेक प्रकारसे खेल किये हैं, अब क्षणमात्र रण स्थलमें स्थित हो तो बताऊँ यह कह लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंका दल नष्ट कर दिया, अपनी सेनाका नाश देखकर रावणका पुत्र बड़ा क्रोधकर दौड़ा और अनेक बाण, शिला, वृक्ष, पर्वत लक्ष्मणजीके ऊपर छोड़ा ॥ २५ ॥

छन्द-रघुवीर अनुज प्रवीण खलबल दलन श्रुति यश गावहीं ।
तरु उपल गिरि अरि तीर उपरहिं बाण लषण चलावहीं ॥
रिपु शस्त्र अस्त्र अनेक आयुध कनक करि करि डारहीं ।
सुरगण प्रफुल्लित सुमन झरि करि जयति लषण पुकारहीं ॥२६॥

रघुवीरके भाई लक्ष्मण राक्षसोंके मारनेमें बड़े प्रवीण हैं, जिनका यह यश वेद गाते हैं, जब लक्ष्मणजी बाण चलाते हैं तब राक्षसोंके वृक्ष, पर्वत, बाण आदि सब चूर्ण हो जाते हैं शत्रुओंके अनेक आयुध लक्ष्मणजीने चूर्ण चूर्ण कर दिये, देवता प्रसन्न हो फूल वरसाकर लक्ष्मणजीकी जयजयकार करने लगे ॥ २६ ॥

दोहा-मायापतिके अनुज सन, माया करत अजान ॥
लगत न एकौ जानि जिय, तब खल निकट तुलान ॥ २०५ ॥

वह अज्ञानी (मूर्ख) मायापतिके छोटे भाईसे माया करने लगा जब मनमें जाना कि कोई छल कपट न चलेगा तब वह दुष्ट बहुत ही निकट आया ॥ २०५ ॥

हना लषण उर पवि सम सायक ❋ लगत गिरे रणमहिं अहिनायक ॥१॥
पुनि खल दल भा प्रबल अपारा ❋ भक्षण लाग भालु कपि धारा ॥२॥

लक्ष्मणजीके हृदयमें वज्रके समान बाण मारा जिसके लगते ही लक्ष्मणजी रण स्थलमें गिर पड़े ॥ १ ॥ तब तो राक्षसका दल बड़ा प्रबल होकर रीछ वानरोंको खाने लगा ॥ २ ॥

चले पराय कीश भयभीता ❋ अब न वचब कर काल प्रतीता ॥३॥

निशिचर धारि भालु कपि बेखा ❋ लागे खान कपिन अस देखा ॥४॥

वानर डरके मारे भाग चले और विचारा कि अब नहीं बचेंगे काल आगया ॥३॥ राक्षस रीक्ष वानरोंका वेश धारण कर रीछ वानरोंको खाने लगे, यह रीछ वानरोंने देखा ॥ ४ ॥

कपि डर कीश भालु डर ऋच्छा ❋ आपु आपु भइ मिलन अनिछा॥५॥
कोई न काहु निकट नियराई ❋ जो जेहि पाव ताहि सो खाई ॥६॥

वानरसे वानर, रीछसे रीछ डरने लगे, एक दूसरेसे मिलनेमें अनिच्छा करने लगे ॥ ५ ॥ कोई किसीके निकट नहीं जाता जो जिसे पाता है खा जाता है ॥ ६ ॥

पुनि शठ साधि विभीषण रूपा ❋ गहि हनुमत अंगद कपि भूपा॥७॥
काहु न यहु माया कछु जानी ❋ कपट मिलाप विभीषण ठानी॥८॥

फिर नीच विभीषणका रूप धरकर महावीर अंगद और सुग्रीवके निकट गया ॥७॥ यह माया किसीने कुछ नहीं जानी, कपटसे विभीषणका वेष बनाके मिलनेका निश्चय किया॥८॥

दोहा-तेहि अवसर जागे लषण, देखा सेन विनाश ॥
नारान्तक छल पवनसुत, समुझत उड़ा अकाश ॥२०६॥

उसी समय लक्ष्मणजीकी मूर्छा जागी, देखे तो सेनाका विनाश हो रहा है, इधर महावीरजी नारान्तकके छलको जानकर आकाशको उड़ गये ॥ २०६ ॥

गर्जेउ जाय भयंकर भारी ❋फटेउ हृदय सुनि निशिचर झारी॥१॥
माया हर शर लषन पवारा ❋ उघरे कपट कपाट अपारा ॥२॥

ऊपर जाकर बड़ी भयंकर गर्जनाकी जिसे सुनकर राक्षसोंके हृदय फट गये ॥१॥लक्ष्मणने माया हरने वाला बाण छोड़ा; जिससे तत्काल राक्षसोंके अपार कपटके किंवाड़ खुल गये॥२॥

नारांतकके माया बीती ❋ गयउ यज्ञशाला अति प्रीती ॥३॥
खोजिसि सकल समग्री ताकी ❋ कीन्ह अरम्भ विजय निजताकी॥४॥

इधर नरांतककी माया नष्ट हो गयी तो बड़े प्रेमसे यज्ञ-शालाको गया ॥३॥ 'विजययज्ञ' करनेके निमित्त उसकी सब सामग्री ढूँढने लगा ॥ ४ ॥

यज्ञ आसुरी तेहि तब ठाना ❋ पशु समूह बलिकारण आना ॥५॥
भये निशामुख श्रम वश सैना ❋ फिरे सुमिरि सब राजिव नैना॥६॥

तुरन्त आसुरी यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया, बहुतसे पशु बलिदान करनेके निमित्त ले आया ॥ ५ ॥ तब सन्ध्या होते समय श्रमित हो सब सेना रघुनाथजीका स्मरण कर अपने स्थान पर आगयी ॥ ६ ॥

तुरत अहीश रामपहँ आये ❋ सहित अनी प्रभुपद शिर नाये॥७॥
कृपा-अयन निरखे मृग शाखा ❋ प्रभु श्रमछीन दीन अभिलाषा ॥८॥

तुरन्त सेना सहित लक्ष्मणजीने रघुनाथजीके पास आकर चरणोंमें शिर नवाया ॥ ७ ॥ श्रमसे क्षीण दीन वानरोंको जैसे रघुनाथजीने कृपाकर देखा कि वे गतश्रम हो गये ॥ ८ ॥

दोहा–टिकहु थलनि सबसन कहा, सुखसागर रघुनाथ ॥
पाय सुआयसु भालु कपि, चले सुमिरि श्रीनाथ ॥ २०७ ॥

तब सुख सागर रघुनाथजीने सबसे कहा–अपने आसनों पर सब विराजो, सुन्दर आज्ञा पाके रघुनाथजीका स्मरण करते सब रीछ वानर आसनों पर आ विराजे ॥ २०७ ॥

तब रघुनाथ अनुज उर लावा * निज आसन समीप बैठावा ॥१॥
मघवासुत-सुत अरु हनुमाना * इन सम भाग्यवंत नहिं आना ॥२॥

तब रघुनाथजीने लक्ष्मणको हृदयसे लगा, अपने निकट बैठा लिया ॥ १ ॥ अंगद और हनुमान्‌के समान तो कोई भाग्यवान् है ही नहीं ॥ २ ॥

अमलकमलपद गहि निजपानी * परशत अधिक सनेह भवानी ॥३॥
जाम्बवन्त लंकेश हरीशा * प्रभु समीप सब मुदित मुनीशा ॥४॥

हे पार्वती ! प्रभुके अमल चरणकमलको अपने हाथमें ग्रहण कर स्नेहसे दबाते हैं ॥ ३ ॥ हे मुनीश ! जाम्बवन्त, विभीषण, सुग्रीव ये सब प्रसन्नतासे रघुनाथजीके समीप बैठे हैं ॥४॥

अनुज सखा नारान्तक करणी * युद्ध प्रबलता बहुविधि वरणी ॥५॥
शिव प्रताप तेहि अमित प्रतापा * मरन न दीन्हे बहु संतापा ॥६॥

लक्ष्मणजी और विभीषणने नरांतककी करणी और युद्धकी प्रबलता बहुत प्रकारसे वर्णन की ॥ ५ ॥ शिवजीके प्रतापसे इनका प्रताप बहुत है मरता नहीं बड़े दुःख दिये हैं ॥ ६ ॥

सुने वचन रघुपति मुसुकाने * अति सनेह हर चरित बखाने ॥७॥
सुनहु सकल हम शम्भु न आना * जिनहिं भेद ते वश अज्ञाना ॥८॥

यह वचन सुन रघुनाथजी मुसकाये और बड़े प्रेमसे शिवजीके चरित्र वर्णन करने लगे ॥ ७ ॥ और कहा–तुम सब सुनो, हम और शिवजी अलग नहीं हैं और जो भेद मानते हैं वे अज्ञानी हैं ॥ ८ ॥

दोहा–जे सुमिरहिं शिव सह उमा, ते जानहु मम प्रीय ॥
शंकर भजहिं ते मोहिं भजहिं, मोहिते शम्भु अतीय ॥ २०८ ॥

जो पार्वती सहित शिवका स्मरण करते हैं वे मेरे बड़े प्यारे हैं, जो शिवजीका भजन करते हैं वे मेरा ही भजन करते हैं मुझसे शिवजी अधिक हैं ॥ २०८ ॥

चारि पदारथ करतल ताके * प्रिय महेश गिरिजा उर जाके ॥१॥
जो मम प्रण शिव सदा निवाहा * सो जय देव न संशय आहा ॥२॥

उसके हाथमें धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष चारों पदार्थ हैं,जिनको शिव पार्वती प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ १ ॥ जिन शिवजीने सदा मेरा प्रण निबाहा है वे अब भी जय देंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २ ॥

सुख कलत्र जय बुद्धि विभूती * शंकर-सुमिरत होय अकूती ॥३॥
भक्ति मोर शंकर-आधीना * जलाधीन जिमि जीवन मीना ॥४॥

सुख, स्त्री, जीत, बुद्धि, अपरिमित ऐश्वर्य सब शिवजीके स्मरण करनेसे प्राप्त हो जाते हैं॥३॥

बहुत क्या मेरी भक्ति भी शंकरके अधीन है, जैसे मछलीका जीवन जलके अधीन है ॥ ४ ॥

कह आश्चर्य नरान्तक एहा ❋ मोपर गिरिपति परम सनेहा ॥५॥
सुमिरहु सदा विश्व इक साथा ❋ कपट त्यागि सब नावहु माथा ॥६॥

यह नरांतक ऐसा हो गया तो कुछ आश्चर्य नहीं मुझपर भी शिवजीका परम स्नेह है ॥ ५ ॥ सब कोई उन विश्वनाथका स्मरण करो, कपट त्यागकर माथा नवाओ ॥ ६ ॥

होइहि विजय धीर मन धरहू ❋ वेगि उपाय होइ सुख करहू ॥७॥
शम्भु उपासन कर मम दासा ❋ तात हृदय धरि दृढ़ विश्वासा ॥८॥

जीत होगी, मनमें धीर धरो, अभी उपाय हो जाता है प्रसन्न रहो ॥ ७ ॥ शिवजीकी उपासना करने वाले मेरे दास हैं; लक्ष्मण ! यह जीमें दृढ़ विश्वास रखो ॥ ८ ॥

दोहा-जो नर चाहत भक्ति मम, सो छल कपट दुराइ ॥
शिवासमेत गिरीशपद, निशि दिन रह मन लाइ ॥ २०९ ॥

जो मनुष्य मेरी भक्ति चाहता हो वह छल कपट छोड़कर पार्वती समेत शिवजीके चरण का रात दिन मन लगाकर भजन करे ॥ २०९ ॥

मन क्रम वचन शम्भुपद आसा ❋ करहिं ताहि उर सब गुण वासा ॥१॥
निर्भय कर जो हरपद नेहू ❋ ता उर रमासहित मम गेहू ॥२॥

जो मन, वचन, कर्मसे शिवजीका स्मरण करते हैं उनके हृदयमें सब गुण वसते हैं ॥१॥ जो निर्भय शिवजीके चरणोंमें प्रेम करता है; मैं लक्ष्मी सहित उसके हृदयमें वसता हूँ ॥२॥

भव वारिधि लाँघहि बिनु खेवहिं ❋ यह विचारि बुधजन भव सेवहिं ॥३॥
भव भञ्जन यह हित उपदेशा ❋ अनुजहि सखहि बुझाय रमेशा ॥४॥

वे विना सेवा ही संसारको लांघ जायँगे, यही विचार कर चतुर नर शिवजीका भजन करते हैं ॥ ३ ॥ यह संसारका दुःख दूर करनेवाला हितकारी उपदेश लक्ष्मण और सुग्रीवको रघुनाथजीने सुनाया ॥ ४ ॥

ध्रुव वाणी सुनि अति सुख पावा ❋ अहिपति रामचरण शिर नावा ॥५॥
अंगद हनूमान नल नीला ❋ कपिपति अरु ऋक्षेश सुशीला ॥६॥

यह निश्चयवाणी सुन सबने बड़ा सुख पाया, लक्ष्मणने रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाया ॥ ५ ॥ अंगद, हनुमान्, नल, नील, सुग्रीव तथा सुशील जाम्बवन्त ॥ ६ ॥

सहित विभीषण ये जनसाता ❋ सुनि श्रीमुख हरयश विख्याता ॥७॥
रामहिं शिवहिं एक मन जाने ❋ भय तजि राम जपत हर्षाने ॥८॥

विभीषण सहित ये सातों जन श्रीमुखसे कहा हुआ शिवजीका यश श्रवण कर ॥ ७ ॥ मनमें राम और शिवको एक जानकर भय त्याग प्रसन्न हो नाम जपने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-कहत सुनत इतिहास सुचि, निशि बीती युग याम ॥
खगपति आये देवऋषि, जित शोभित श्रीराम ॥ २१० ॥

यह पवित्र कथा कहते सुनते दो प्रहर रात बीत गयी। हे गरुड़जी ! उस समय जहाँ रघुनाथजी विराजमान थे वहाँ नारदजी आये ॥ २१० ॥

राम लषण सुखसींव विराजे * मार अपार निहारत लाजे ॥१॥
निरखि मान मुनि हृदय सनाथा * उठे हर्षि प्रभु रघुकुल नाथा ॥२॥

इस प्रकार सुख निधान राम लक्ष्मणजी विराजते हैं जिनकी शोभा देख अनंत कामदेव लज्जित हुए॥ १॥ मुनिको देखते ही प्रसन्न हो रघुनाथजी उठ बैठे मुनिने मनमें अपनेको सनाथ माना॥२॥

शीश नाइ प्रभु आसन दीन्हा * आशिष पाइ हर्ष बहु कीन्हा ॥३॥
मुनि नीके हरिरूप विलोका * यथा इन्दु लखि सुखलह कोका॥४॥

रघुनाथजीने नारदजीको शिर नवाकर आसन दिया और आशीष पाकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ मुनिराज रघुनाथजीका रूप देख कर ऐसे सुखी हुए जैसे चन्द्रमाको देख चकोर प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

पुलकि गात तब कह ऋषिराजा * सुनहु नाथ आयहुँ जेहि काजा॥५॥
चतुरानन पठवा मोहिं स्वामी * यदपि कृपानिधि अन्तर्यामी ॥६॥

तब शरीरसे पुलकित हो नारदजी बोले-सुनिये स्वामी ! मैं जिस कारण आया हूँ ॥५॥ हे स्वामी ! यद्यपि आप अन्तर्यामी हैं तथापि ब्रह्माजीने मुझे भेजा है ॥ ६ ॥

सदा अनाथ नाथ भगवाना * विनय विरंचि करिय परिमाना ॥७॥
जब लगि होन प्रभात न पावहि * तब लगि हरि हरि सुत लै आवहि॥८॥

हे भगवन्! आप सदा अनाथोंके नाथ हैं इसे कुछ ब्रह्माजीके विनययुक्त वचन मानिये कि ॥७॥ जबतक प्रातःकाल न हो तबतक महावीरजी जाकर सुग्रीव पुत्र (दधिबल) को ले आवें॥८॥

दोहा-जपत निरन्तर नाम तव, सो जानहु भगवान् ॥
विधि विरचित इत आनिये, तेहि कहँ कृपानिधान॥ २११ ॥

हे भगवन् ! वह सदा आपके नामको जपता रहता है ऐसा जानिये, हे कृपानिधान ! ब्रह्माजीके वरदानानुसार उसे यहाँ बुलाइये ॥ २११ ॥

नारांतक वध है तेहि हाथा * दधिबल नाम भक्त तव नाथा ॥१॥
नाथ बहुत यहि खलहिं खिलावा * रण विलोकि देवन दुखपावा ॥२॥

हे नाथ ! उसीके हाथसे नरान्तकका वध होगा, वह दधिबल नामक आपका भक्त है ॥१॥ हे स्वामी! आपने इस दुष्टको बहुत खिलाया है, यह संग्राम देखकर देवता दुःख पाते हैं ॥ २ ॥

अब रघुबीर करहु सोइ बाता * बिनु प्रयास रिपु मरै प्रभाता ॥३॥
तेहिसन तुमहिं न सोह लराई * दधिबल सनमुख करहु बुलाई ॥४॥

हे रघुनाथजी ! अब वही उपाय करो जिससे विना प्रयास ही प्रातःकाल शत्रु मर जाय॥३॥ उसके साथ युद्ध करना तुम्हें नहीं शोभा देता, दधिबलको बुलाकर इसके सामने करो ॥४॥

सविनय नाइ शीश वर भाखी * गवने मुनि प्रभुछबि उर राखी ॥५॥
नारद गये जबहिं विधिलोका * वायुतनय तन राम विलोका ॥६॥

अच्छे बोलनेवाले नारदजी विनय पूर्वक शिर नवाकर रघुनाथजीकी छबि हृदयमें धारण कर चले गये ॥ ५ ॥ जैसे नारदजी ब्रह्मलोकको गये कि रघुनाथजीने महावीरजीकी ओर देखा ॥ ६ ॥

तात तुरत तुम गवनहु तहवाँ ❋ वारिधि महँ धौलागिरि जहवाँ॥७॥
तहँ दधिबल रह ध्यान लगाये ❋ बहुत दिवस चलि गये सुभाये॥८॥

हे तात ! तुम तुरंत वहाँ जाओ जहां समुद्रमें धवलागिरि पर्वत है ॥ ७ ॥ वहाँ दधिबल ध्यान लगाये रहता है, उसे वहाँ स्वाभाविक तप करते बहुत दिन हो गये ॥ ८ ॥

दोहा–अहै तपोबल तेजसी, तात तासु ढिग जाइ ॥
मन प्रसन्न करि चतुरई, आनहु वेगि बुलाइ ॥ २१२ ॥

महावीरजी ! वह बड़ा तपस्वी बलवान् तेजनिधान है, उसके निकट जाकर उसके मनको प्रसन्न कर चतुरतासे शीघ्र बुलाकर लाओ ॥ २१२ ॥

पवन कुमार पाइ अनुशासन ❋ चले वंदि पद हर्षि उदास न ॥१॥
वेगवन्त धावा कपि कैसे ❋ वर नाराच धनुषते जैसे ॥२॥

महावीरजी आज्ञा पाते ही प्रभुके चरणोंका वन्दन कर प्रसन्नतासे चले, उदासीनता नहीं की ॥ १ ॥ कपि ऐसे वेगसे धावमान हुए जैसे तीक्ष्ण बाण चलते हैं ॥ २ ॥

लोक अर्द्ध घटिका तेहि ठामा ❋ पहुँचे वायुपुत्र बलधामा ॥३॥
देखि तरणि सम तासु प्रकाशा ❋ ठाढ़ भयउ कपि मंदिर पासा ॥४॥

साढ़े तीन घड़ीमें उस पर्वतपर जा पहुँचे क्योंकि वायुपुत्र बड़े बलधाम हैं ॥ ३ ॥ उस मंदिरके निकट जाकर खड़े हुए जिस मंदिरका सूर्यके समान प्रकाश है ॥ ४ ॥

दण्ड युगल कपि स्थित रहेऊ ❋ हियमहँ राम राम अस कहेऊ॥५॥
उत रण होइहि होत प्रभाता ❋ इत इनकर चित हरिपद राता॥६॥

दो घड़ी तक महावीर जी वहाँ खड़े रहे और मनमें राम राम स्मरण करते रहे ॥ ५ ॥ (कोई मंदिरमें बोला नहीं) उधर प्रातःकाल होते ही युद्ध होगा, इधर दधिबलका चित्त हरिचरणोंमें मग्न हो गया है, अर्थात् समाधि लगाये हैं ॥ ६ ॥

क्षण इक कपि मन कीन्ह विचारा ❋ प्रभु पहँ चलिये कवन प्रकारा ॥७॥
जो गृहसहित चलहुँ लै एही ❋ नहिं अस आयसु भक्त सनेही ॥८॥

एक क्षण कपिने मनमें विचार किया अब रघुनाथजीके पास कैसे चलूँ ? ॥ ७ ॥ जो अब इसको घर समेत उठाकर ले चलूँ तो रघुनाथजीकी आज्ञा नहीं क्योंकि वे भक्तोंपर प्रेम करने वाले हैं, इससे ढीठता होगी ॥ ८ ॥

दोहा–बुधजन शीश शिरोरतन, अति लजात मुनिराय ॥
ताहि जगावन हेत तब, कीन्हे अमित उपाय ॥२१३॥

हे मुनीश ! पंडितजनोंके शिरके रत्न महावीरजीने बहुत लजाते लजाते उसके जगानेके अनेक यत्न किये ॥ २१३ ॥

अचल ध्यान कपि तासु प्रमाना * तजि प्रवीणता भज भगवाना ॥१॥
राम चरण चित कपिवर दयऊ * दण्ड एक औरो चलि गयऊ ॥२॥

दधिबलका अचल ध्यान था यही विचार प्रवीणता त्याग महावीरजी भगवान्‌का स्मरण करने लगे॥ १॥महावीरजीने रघुनाथजीके चरणोंमें मन लगाया,इसमें एक घड़ी और बीत गयी ॥२॥

विधि प्रेरित दधिबल लघुशंका * करन उठेउ देखा भट बंका ॥३॥
जय श्रीराम वायुसुत बोला *सुनि दधिबल निज लोचन खोला॥४॥

विधिवश उसी समय दधिबल लघुशंका (पेशाब) करनेको उठा, तो बड़े योद्धाको खड़े देखा ॥३॥ 'जय श्रीरामजी' की यह महावीरजी बोले, सुनते ही दधिबलने अपने नेत्र खोले ॥४॥

बूझि हरिहि कीशहि उर लाई * कही परस्पर दोउ कुशलाई ॥५॥
पुनि हनुमान कहेउ सुनु भ्राता * चलहु विलोकन त्रिभुवनत्राता ॥६॥

दधिबलने हृदयसे लगा महावीरजीका कुशल पूछा, दोनोंने परस्पर कुशल वर्णा ॥५॥ फिर महावीरजी बोले—हे भ्रातः ! सुनिये, त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले भगवान्‌के दर्शनको चलो ॥६॥

सानुज राम सुखद पद कञ्जा * जिन मकरन्द शिला अघ गंजा॥७॥
जेहि लगि तप कीन्हेउ बहुकाला * सो तुम पर अनुकूल कृपाला ॥८॥

भाई सहित उनके सुखदायक चरणकमलोंका दर्शन करो,जिनके चरणोंकी धूलिने शिलाका भी उद्धार कर दिया ॥ ७ ॥ जिनके निमित्त बहुत कालतक तप किया, वे कृपालु इस समय तुमपर प्रसन्न हैं ॥ ८ ॥

दोहा—धूरजटी-हृद-मानस, बसत हंस इव जोइ ॥
सादर तुम कहँ लेन लगि, पठवा मोहि प्रभु सोइ ॥ २१४ ॥

जो शिवजीके मानससरोवरमें हंसके समान वास करते हैं, उन्हीं प्रभुने आदर पूर्वक मुझे तुम्हारे बुलानेको भेजा ॥ २१४ ॥

सुनि शुभ वचन सुकण्ठ कुमारा * हरिपहँ हरिसंग तुरत सिधारा ॥१॥
आये नाथ निकट मृगशाखा * देखे पदजे हर हिय राखा ॥२॥

यह सुन्दर वचन सुनते ही दधिबल तुरन्त महावीरजीके संग भगवान्‌के निकट चला॥१॥दोनों स्वामीके निकट आये और शिवजीने जिन चरणोंको हृदयमें धारण कर रखा है उन्हें देखा॥२॥

रहेउ चरण गहि प्रीति समेता * दधिबल निरखेउ कृपानिकेता ॥३॥
सानुज हर्षि मिले सुखपुंजा * तासु पाणि गहि निजकर कंजा॥४॥

प्रीति समेत चरण पकड़ लिये और दधिबलने कृपासागर रघुनाथजीका दर्शन किया ॥३॥ सुखनिधान रघुनाथजी प्रसन्न हो भाई सहित मिले और अपने कर कमलसे उसका हाथ पकड़॥४॥

बैठे ताहि निकट बैठावा * तेहि अवसर सुकंठ तहँ आवा ॥५॥
निरखि तनय कपिपति हर्षाना * मिलत प्रेम नहिं जाय बखाना ॥६॥

आप बैठे और उसे भी पास बैठाया, उसी समय वहां सुग्रीव आया ॥५॥ अपने पुत्रको देख सुग्रीव बड़े प्रसन्न हुए और मिलते समय जो प्रेम हुआ वह बखाना नहीं जाता ॥ ६ ॥

गइ मणि पन्नग जनु पुनि पाई * देही देह मीन जल जाई ॥७॥
सुख सुग्रीव लहेउ प्रभु भेंटे * अवगुण तीनि ताहि क्षण मेटे ॥८॥

जैसे सांप खोयी हुई मणि फिर पा जाय और जैसे देहमें प्राण आ जायँ, जैसे दीन मछली जल पा जाय वैसे ही सुखी हुये ॥७॥ सुग्रीवने बड़ा सुख माना, जब प्रभु उससे मिले, उसी समय तीन अवगुण अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिक सन्ताप मिट गये (वालिके विवाद से दधिबल पिताकी आज्ञासे तप करनेको चला गया था) ॥ ८ ॥

सोरठा–दधिबल वालिकुमार, मिले परस्पर हर्षि हिय ॥
भयउ आइ भिनुसार, न्हाइ सबनि प्रभुपद गहे ॥ १० ॥

दधिबल और अंगदजी मनमें प्रसन्न होकर मिले और प्रातःकाल हो गया तब सबने स्नान कर प्रभुके चरणोंको स्पर्श किया ॥ १० ॥

जहँ तहँ समर करन वनचारी * चले कहत जय लषण खरारी ॥१॥
वहां नरान्तक प्रात प्रबोधा * रथ चढ़ि चलेउ भयंकर योधा ॥२॥

फिर जहां तहां युद्ध करनेके निमित्त 'जय लक्ष्मण रामकी' उच्चारण कर वानर चले ॥१॥ इधर भयंकर वीर नारांतक भी प्रातःकाल देख रथपर चढ़कर चला ॥ २ ॥

निशिचर हठी सुभटसंग ताके * आयुध अखिल भयानक बाँके॥३॥
महि संग्राम निशाचर ठाढ़े * असित मेघसम अतिरिस बाढ़े॥४॥

साथमें उसके बड़े हठी बांके राक्षस हैं, सम्पूर्ण भयंकर आयुध लिए हैं ॥ ३ ॥ संग्राम भूमिमें राक्षस खड़े हुए काले मेघोंके समान क्रोधसे भरे हुए हैं ॥ ४ ॥

करि माया तेहि गात छिपावा * भयउ प्रकट जब प्रभु ढिग आवा॥५॥
दधिबल लखा सखा चलि आयउ * भुजा पसारि हर्षि उठि धायउ ॥६॥

नारांतक मायासे अपना शरीर छिपाये चला आया, जब रघुनाथजीके समीप आया तब प्रकट हुआ ॥ ५ ॥ इधर दधिबलने गुरुभाईको आता देखा तो प्रसन्न हो भुजा फैला कर मिलनेको उठ धाया ॥ ६ ॥

नारान्तकहु दीख गुरु-भाई * मुदित मिले उर उभय अघाई॥७॥
भेंटि सप्रेम बूझि कुशलाता * निज निज दशा कीन्ह विख्याता॥८॥

नारांतकने भी अपने गुरु भाईको देखा और दोनों बड़े प्रसन्न हो अघाकर मिले ॥ ७ ॥ प्रेमसे मिल कुशल पूछ दोनोंने अपनी दशा वर्णन की ॥ ८ ॥

दोहा–हरिपतिपूत प्रवीण अति, सुनि तेहिमुख विख्यात ॥
लगो बुझावन मित्र कहँ, सुनहु वीयपति बात ॥२१५॥

सुग्रीव पुत्र अत्यन्त चतुर था, नारान्तकका उसीके मुखसे विख्यात वृत्तान्त सुनकर उसके मित्र जान, समझाने लगा। हे वीयपति गरुड़जी ! यह बात सुनो ॥ २१५ ॥

वंशस्वभाव सत्य कवि कहहीं * फल पियूष विषवेलि न लहहीं॥१॥
समुझहु तात विचारि निदाना * किये अनीति न जग कल्याना॥२॥

कविजनोंने वंशका स्वभाव सत्य कहा है कि विषकी वेलमें अमृतफल नहीं लगता ॥ १ ॥ हे तात ! इसका परिणाम विचार देखो, अनीति करनेसे जगत्में कल्याण नहीं होता ॥२॥

पितु चरित्र समुझहु मनमाहीं ❋ राम विरोध कतहुँ जय नाहीं ॥३॥
तुम प्रवीण भा मतिभ्रम कैसे ❋ कूप धसत बिक बाट अनैसे ॥४॥

पिताके चरित्र मनमें विचार देखो, रघुनाथजीसे वैर करनेमें कहीं जय नहीं होगी ॥ ३ ॥ तुम चतुर हो, तुम्हारी मतिमें भ्रम कैसे हुआ ? जैसे मार्ग चलते कुवाँ आवे तो उसमें घुसकर कोई स्थानपर पहुँचना चाहे अर्थात् पिताके विपत्तिरूपी कुएँमें क्यों पड़ते हो ? अथवा जैसे भेड़ एकके पीछे विना समझे कुएँमें गिरती है वैसे ही तुम क्यों पड़ते हो ? ॥ ४ ॥

तुमहुँ कीन्ह दिन चारि लड़ाई ❋ जानेउ भालु कीश बल भाई ॥५॥
तजि कुमन्त्र सम्भव अज्ञाना ❋ कहहु पाहि रघुवर भगवाना ॥६॥

भाई तुमने भी चार दिन युद्ध करके रीछ, वानरका बल देख लिया और ॥५॥ इस कारण कुमन्त्र से उत्पन्न हुए अज्ञानको त्यागकर रघुनाथजीकी शरणमें क्षमा माँगो ॥ ६ ॥

सफल करहु भव प्रभुपद परशी ❋ करिहैं अभय तोहिं समदरशी ॥७॥
मानहु सीख मोरि सुखकारी ❋ प्रणतपाल रघुवीर खरारी ॥८॥

रघुनाथजीके चरण छूकर अपना जन्म सफल करो; वे समदर्शी तुमको निडर कर देंगे ॥ ७ ॥ मेरी सुखदायक शिक्षा मान लो, रघुनाथजी राक्षसोंको मारनेवाले हैं तो भी दीनोंको पालते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—सारंगी शर तरणि सम, दशमुख बपु खग लेख ॥
जरत राखु यहि समय तुम, करि विज्ञान विसेख ॥ २१६ ॥

रघुनाथजीके बाण सूर्य हैं, रावणका शरीर पक्षिवत् है, सो इस समय तू अपने विशेष बलसे रावणको नष्ट होनेसे बचा ॥ २१६ ॥

सुनत वचन गुरु-भ्राता केरा ❋ नारांतक भा क्रुद्ध घनेरा ॥१॥
कहन लाग खल ताहि कुभाँती ❋ सहज सभीत कीश दिन राती॥२॥

गुरुभाईके वचन सुनकर नारांतकको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १ ॥ यह दुष्ट दधिबलको कुटिल बातें कहने लगा, कि वानर दिन रात स्वाभाविक डरपोक होते हैं ॥ २ ॥

वालिहि हतेउ जौन तपधारी ❋ भा अंगद तिन्ह आज्ञाकारी ॥३॥
दधिबल यह वानरकुल रीती ❋ हमरे करहिं न अरिसन प्रीती ॥४॥

जिन तपस्वियोंने वालीको मारा, अङ्गद उन्हींका आज्ञाकारी हुआ ॥ ३ ॥ हे दधिबल ! यह वानरवंशकी ही रीति है, हमारे यहां शत्रुसे प्रीति नहीं करते ॥ ४ ॥

यह कहि प्रभुसम्मुख सो धावा ❋ दधिबल लूम लपेटि टिकावा ॥५॥
नारांतक कह रे शठ वानर ❋ तव तनु नहीं मोर डर कादर ॥६॥

यह कह कर प्रभुके सम्मुख दौड़ा, दधिबलने अपनी पूँछमें लपेटकर रोक लिया ॥ ५ ॥ तब नारान्तक बोला—अरे कायर वानर ! तेरे मनमें मेरा कुछ भय नहीं है ? ॥ ६ ॥

छाँड़हु मूढ़ समुझि गुरुभाई * कहि अस पेलि चला कठिनाई॥७॥
तब सुकंठसुत क्रोधित भयऊ * सपदि जाय आगे गहि लयऊ ॥८॥

हे मूर्ख ! तुझे गुरुभाई समझ मैं छोड़ता हूँ यह कह, कठिन धक्का देकर चला ॥ ७ ॥ तब तो दधिबल भी क्रोधित हुआ शीघ्रतासे आगे जाके पकड़ लिया ॥ ८ ॥

दोहा—नारान्तक दधिबल भिरे, निरखि भालु अरु कीश ॥
लरन लगे सँग निशिचरन, कहि जय श्रीजगदीश ॥ २१७ ॥

उस समय नारान्तक और दधिबल युद्ध करने लगे; यह देखकर रीछ वानर 'रघुनाथजी की जय' उच्चारण कर राक्षसोंके संग लड़ने लगे ॥ २१७ ॥

छन्द--कपि शूर संहारे शिलन मार, बहुमर्दि करचो सिकतापहार ॥
भट बिहबावलवासी जितेक, कपि मारि गिराये बच न एक ॥१॥

वीर कपियोंने शिला मारकर राक्षसोंका संहार कर दिया, बहुतोंको मल मल कर डाल दिया वे रेतेके पर्वतसे दृष्टि आते थे । अथवा पर्वतोंको पीसकर रेत कर दिया, बिहबावलपुरके जितने राक्षस थे, सब मार डाले गये एक भी न बचा ॥ १ ॥

रह एकाकी मनुजाद वीर, किये द्वंद्व युद्ध उरगाद धीर ॥
दोउ लरत लहैं छबि एही भाँति, गिरिकज्जल कंचन उभय गाति ॥२॥

काकभुशुण्डिजी बोले—हे धीर गरुड़जी ! बस, एक नारांतक ही वीर राक्षस रहा, उससे दधिबलका द्वन्द्व युद्ध होने लगा, दोनोंके युद्ध करते समय इस प्रकारकी छबि दीखती थी जैसे कज्जल और सोनेके पर्वत परस्पर युद्ध करते हों ॥ २ ॥

युग घटिका ऊपर एक याम, दोउ भिरे समर बल योगधाम ॥
पुनि भा अलक्ष सो करत युद्ध, बलवन्त उभय श्रमगत सक्रुद्ध ॥३॥

एक प्रहर दो घड़ी वे दोनों बलवान् महायुद्ध करते रहे, फिर युद्ध करते करते नारांतक अन्तर्धान हो गया, दोनों बली थे, किसीको कुछ श्रम नहीं हुआ और क्रोधित हुए ॥ ३ ॥

कह षट प्रकार श्रुति युद्ध रीति, सुख मानेउ सुर देखत सुप्रीति ॥
लखि पुत्र एकाकी पुलकगात, कह बालि अनुज अति हर्षि बात ॥ ४ ॥

शास्त्रमें छः प्रकार युद्ध करनेकी रीति लिखी है उसी प्रकार प्रेम सहित युद्ध होता देख देवता प्रसन्न हुये । पुत्रको अकेला युद्ध करते देख सुग्रीव पुलकित शरीर हो जाम्बवंतसे प्रसन्न हो बोले ॥ ४ ॥

दोहा—जाम्बवन्तसन वचन मृदु, कहेउ सुकंठ पुकारि ॥
कहहु तात दधिबल कबहिं, दनुजहिं डारिहि मारि ॥ २१८ ॥

जाम्बवन्तसे सुग्रीवने यह मनोहर वचन कहे-कहो तात ! यह दधिबल राक्षसको कितनी देरमें मार डालेगा ? ॥ २१८ ॥

समर करत लागी अति बारा * यह सुनि बोले ऋक्ष-भुवारा ॥१॥
क्षणक हृदय धरु धीर कपीशा * दधिबल गुरुसन लही अशीशा॥२॥

युद्ध करते करते बड़ी देर हो गयी; यह सुनकर ऋक्षपति जाम्बवन्त बोले ॥१॥ हे सुग्रीव क्षणमात्र हृदयमें धैर्य धारण करो, दधिबलको तो जीतनेका गुरुने आशीर्वाद ही दिया है ॥२॥

सो अवसर अब आनि तुलाना * एक पलक महँ मरिहि अजाना॥३॥
सुनि हरीश मनमहँ अति हरषे * तबहीं विबुध सुमन बहु वर्षे ॥४॥

वह समय अब आके पहुँचा ही है; यह मूर्ख राक्षस एक पलमें मरता है ॥ ३ ॥ यह सुन सुग्रीव मनमें बड़े प्रसन्न हुए, तब देवताओंने बहुत फूल बरसाये ॥ ४ ॥

दधिबल धन्य भुजाबल तोरा * रण कौतूहल कीन्ह न थोरा ॥५॥
अरि अस्तुति सुनिहरि अरि कोपा*कपिहि सहित खल भयउ अलोपा॥६॥

और कहने लगे—दधिबल ! तेरी भुजाओंके बलको धन्य है, तूने संग्राममें कौतूहल किया ॥५॥ वानरकी बड़ाई सुन वानर शत्रु नरांतक क्रोधित हो दधिबल सहित अन्तर्द्धान हो गया ॥६॥

योजन अयुत अष्ट नभ जाई * दधिबल सुमिरि हृदय रघुराई ॥७॥
गहि मनुजाद भूमि पर डारा * कर चिकार तेहि मरती बारा ॥८॥

अस्सी हजार योजन आकाशमें चला गया, दधिबलने हृदयमें रघुनाथजीका स्मरण कर ॥ ७ ॥ राक्षसको पकड़ पृथ्वीपर दे पटका, तब नरांतकने मरते समय घोर चिक्कार किया ॥८॥

छन्द—मरते समय अति शब्द दशमुख तनय हरि हरि हरि कही ।
तजि अधम तनु धरि सुभगवपु द्विजनाथ मुनिगति सो लही ॥
जेहि हेतु सुर मुनि सिद्ध नाना भाँति जप तप मख किये ।
श्रीराम करुणासिन्धु सो फल सहज ही दनुजहिं दिये ॥ २७ ॥

मरते समय बड़ा शब्द करके रावणके पुत्रने 'राम राम' उच्चारण किया, यह नीच शरीर त्याग दिव्य शरीर धारण कर मुनिगति अर्थात् मुक्त हो गया,काकभुशुण्डिजी बोले—हे द्विज-नाथ (पक्षियोंके स्वामी) गरुड़जी ! जिस मुक्तिके निमित्त देवता, मुनि, सिद्ध अनेक प्रकार के जप, तप, यज्ञ करते हैं वह मुक्ति करुणासागर रघुनाथजीने सहजमें ही राक्षसको दी ॥२७॥

दोहा—देखि तासु गति विबुधगण, अभय भये खगराइ ॥
प्रमुदित वरषे पुहुप झरि, रामचरण चितलाइ ॥ २१९ ॥

हे गरुड़जी ! उसकी यह गति देखकर देवता सब निडर हो गये और रघुनाथजीके चरणोंमें मन लगाकर प्रसन्नतापूर्वक फूलोंकी झड़ी लगा दी ॥ २१९ ॥

मरा नरांतक दधिबल जानी * तोरि तासु शिर गहि निजपानी॥१॥
रुण्ड तासु गहि लंक सँचारी * आपु चले जहँ नाथ खरारी ॥२॥

दधिबल यह देखकर कि नरांतक मर गया तब उसका शिर तोड़ अपने हाथमें लेकर ॥ १ ॥ उसका रुण्ड लंकामें फेंक दिया और आप रामचन्द्रजीके पास चले ॥ २ ॥

निशा प्रवेश भूत वैताला * चढ़ि चढ़ि वाहन वेष कराला ॥३॥
जाइ समरमहँ सुखद समेता * उदर अघाइ गये सुनिकेता ॥४॥

उस समय रात्रि होनेको थी, भूत वेताल भयंकर वेष बनाये अपने अपने वाहनोंपर चढ़ चढ़ के ॥३॥ सुखपूर्वक समरस्थलमें जाकर पेट भर कर अपने-अपने स्थानोंको चले ॥ ४ ॥

आयउ दधिबल प्रभुके पासा ❋ देखि हर्षि उठि रमानिवासा ॥५॥
सानुज राम मिले अति प्रीती ❋ परमप्रसाद नाथ नित रीती ॥६॥

दधिबल रघुनाथजीके पास आया, रघुनाथजी देखकर प्रसन्न हो उठे ॥५॥ लक्ष्मणसहित रघुनाथजी बड़े प्रेमसे मिले, क्योंकि उनकी परम प्रसन्न होनेकी रीति ही है ॥ ६ ॥

बैठे रघुकुल मणि दोउ भाई ❋ सखा सुतहि निज ढिग बैठाई ॥७॥
हनुमदादि मर्कट प्रभुपाहीं ❋ नाइ माथ प्रमुदित मनमाहीं ॥८॥

रघुकुलमणि राम लक्ष्मण बैठे, और मित्रके पुत्र दधिबलको अपने निकट बैठाया ॥ ७ ॥ हनुमान आदि वानर भी प्रभुके चरणोंमें शिर नवाके मनमें प्रसन्न हो बैठे ॥ ८ ॥

दोहा–रामरजायसु पाय पुनि, होइ विगतश्रम कीश ॥
तब दधिबल प्रभु चरण गहि, आगे धर अरिशीश ॥ २२० ॥

रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर (कृपादृष्टिसे) वानर श्रमरहित होकर बैठे उस समय दधिबलने प्रभुके चरण स्पर्शकर नरांतकका शिर रघुनाथजीके आगे धरा ॥ २२० ॥

देखि कौतुकी रिपुसुत शीशा ❋ सुनहु सुकंठ कह्यो जगदीशा ॥१॥
नारान्तक कर शीश धरावहु ❋ यतन समेत न सेत चलावहु ॥२॥

कौतुक करनेवाले रघुनाथजीने नरांतकका शिर देख सुग्रीवसे कहा-सुनिये ॥ १ ॥ वह नरांतकका शिर सँभालकर रखो फेंक मत देना ॥ २ ॥

नाथ रजाय पाय कपिराई ❋ राखेउ सो शिर यतन कराई ॥३॥
पुनि दधिबल हरि कीन्ह बड़ाई ❋ श्रीपतिश्रीमुख बहुविधि गाई ॥४॥

सुग्रीवने रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर वह शिर यत्नपूर्वक रखवा दिया ॥३॥ फिर भगवान्‌ने अपने मुखसे दधिबल की बड़ाई अनेक प्रकारसे कही ॥ ४ ॥

जासु बड़ाई किय बड़ ईशा ❋ सखहि सराहत सो जगदीशा ॥५॥
दधिबल प्रभु अनुकूल विलोकी ❋ सफल जन्म लखि भयो विशोकी ॥६॥

जिसकी बड़ाई करनेसे इन्द्रादिक बड़े हो गये हैं वे ही जगदीश्वर अपने सखाकी बड़ाई करते हैं ॥ ५ ॥ दधिबल प्रभुको प्रसन्न देख अपना जन्म सफल मान शोक रहित हो गया ॥ ६ ॥

प्रेमवारि लोचन कर जोरी ❋ बोलेउ गिरा भक्तिरस बोरी ॥७॥
जगदात्मा तुम्हार यह बाना ❋ सन्तत करहु दीन मन माना ॥८॥

और प्रेमसे नेत्रोंमें जल भरके दोनों हाथ जोड़ भक्तिरस सनी वाणी बोला ॥ ७ ॥ हे जगत्पति ! आपकी यह बान है कि सदा भक्तोंकी मनमानी करते हो ॥ ८ ॥

दोहा–वनचर पामर सहज जड़, बुद्धि विषम अज्ञान ॥
विरद स्वभाव कृपालु प्रभु, सेवक सुयश बखान ॥ २२१ ॥

हम वनचर स्वभावसे ही पामर, मूर्ख, अज्ञानी, विपरीत बुद्धिवाले हैं। हे प्रभु! आप विरदावलीको पालते हो, सेवकोंके यशकी रक्षा करते हो, सदा दयालु रहते हो ॥ २२१ ॥

तव यश विमल विदित अवधेशा ❀ कहत न पार पाव श्रुति शेषा ॥१॥
सो मैं प्रभु कहि सकहुँ न कैसे ❀ पर्णवणिक गजमणि गुण जैसे ॥२॥

हे स्वामी! आपका उज्ज्वल यश जगत्में विख्यात हो रहा है जिसके कहनेमें वेद और शेष पार नहीं पाते ॥ १ ॥ हे प्रभु! उसे मैं इस तरह नहीं वर्णन कर सकता जैसे पत्ते बेचने वाला गजमुक्ताके गुणोंको नहीं जान सकता ॥ २ ॥

अस कहि हरि हरिपद लपटाने ❀ देखि प्रेम कपि विवुध सिहाने ॥३॥
बिनु अभिमान ताहि प्रभु जाना ❀ दीनदयालु बहुत सनमाना ॥४॥

ऐसा कह दधिबल रघुनाथजीके चरणोंमें लिपट गया, यह उसका प्रेम देखकर देवता बड़ाई करने लगे ॥ ३ ॥ रघुनाथजीने उसे अभिमान रहित जानकर अनेक प्रकारसे उसका सम्मान किया, क्योंकि दीनदयालु हैं ॥ ४ ॥

मांगु वत्स जो वर मन भावा ❀सुनि दधिबल करि विनय सुनावा॥५॥
नाथ तुम्हार रूप गुण नामा ❀ करहिं निरंतर मम उर धामा ॥६॥

हे पुत्र! जो मन भावे वही वर मांगो, यह सुन दधिबल (हाथ जोड़) विनय करने लगा ॥ ५ ॥ हे रघुनाथजी! आपका रूप, गुण, नाम मेरे हृदयमें सदा स्थित रहे ॥ ६ ॥

हो मोहिं प्रिय पदपंकज तैसे ❀ कामिहि बाम सूम धन जैसे ॥७॥
एवमस्तु तुम कहँ वर येहू ❀ मम इच्छा कछु औरो लेहू ॥८॥

मुझे आपके चरणकमल ऐसे प्यारे हों जैसे कामीको स्त्री तथा सूमको धन प्यारा होता है ॥७॥ रघुनाथजी बोले–तुमको यह वर दिया, मेरी इच्छासे कुछ और भी लो ॥ ८ ॥

सोरठा–विहबावल पुर राज, करहु तात तुम मुदित मन ॥
छांड़ि और सब काज, शिवाशम्भु पद भक्तिदृढ़ ॥ ११ ॥

हे तात! तुम प्रसन्न होकर विहबावलपुरका राज्य करो और सब कुछ त्याग शिव पार्वतीके चरणोंमें दृढ़ भक्ति करो ॥ ११ ॥

यहै काज शुभ संतत चहहीं ❀ जो सो प्राणी मम मन रहहीं ॥१॥
उमा रामकर यहै स्वभाऊ ❀ जनपर प्रेम न कबहुँ दुराऊ ॥२॥

जो यह शुभ कार्य करते हैं वे प्राणी मेरे मनमें वास करते हैं ॥ १ ॥ शिवजी बोले-हे पार्वती! रघुनाथजीका स्वभाव है कि जनोंके ऊपर निर्मल प्रेम रखते हैं, कभी दुराव नहीं करते ॥ २ ॥

मोहिं निजरूप रमापति जाने ❀ ताते बारंबार बखाने ॥३॥
जानेउ श्रीरघुवर सुभाव जिन ❀ सब तजि प्रेम भक्ति मांगी तिन॥४॥

रघुनाथजी मुझे अपना रूप जानते हैं इस कारण बारंबार बखान करते हैं ॥ ३ ॥ जिसने रघुनाथजीका स्वभाव जाना उसने सब कुछ छोड़कर प्रेमभक्ति मांग ली ॥ ४ ॥

राम भक्ति वारीश जासु उर * महिमा तासु कहत श्रुति बुधवर॥५॥
सर सरिता सब सुखद सुहाये * सहजहिं आवत विनहिं बुलाये ॥६॥

राम भक्तिरूपी सागर जिसके हृदयमें वसता है उसकी महिमा वेद और पंडित कहते हैं ॥ ५ ॥ सुन्दर सुख देनेवाले सब ताल, नदी, सागरमें विना ही बुलाये चले आते हैं उसी प्रकार भक्तोंपर सुख आता है ॥ ६ ॥

ताहि शुद्ध शिख दै रघुनाथा * पुनि प्रभु कीन्ह तिलक निज हाथा॥७॥
सारंगी रुख-सबहीं पावा * अंगदादि ताकहँ शिर नावा ॥८॥

समर्थ रघुनाथजीने उसे शुद्ध शिक्षा देकर फिर अपने हाथसे तिलक किया ॥ ७ ॥ रघुनाथजीका रुख पाकर अङ्गदादि वीरोंने उसे शिर नवाया ॥ ८ ॥

दोहा-पाइ भक्ति वर राज्य वर, प्रभु चरणन शिर नाइ ॥
दधिबल पठयउ तुरत हठि, सुनहु ऋषय शुभ भाइ ॥२२२॥

भक्तिवर और राज्य पाके प्रभुके चरणोंमें शिर नवाकर दधिबल बहुत कहनेसे विहबावलपुरको बिदा हो गया, हे भरद्वाजजी ! आगे कथा सुनो ॥ २२२ ॥

तन मन राम चरण अनुरागे * दधिबल राज्य करत भय त्यागे ॥१॥
सेन-सहित श्रीराजिवनयना * राजत देखि विबुध चित चयना॥२॥

तन मनसे रघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम किये दधिबल भय त्याग राज्य करता है ॥ १ ॥ यहां सेनासहित रघुनाथजी विराजते हैं, उन्हें देखकर देवता मनमें प्रसन्न हैं ॥ २ ॥

हनत दुन्दुभी विविध प्रकारा * पुहुपमाल झरि करत अपारा ॥३॥
करि अस्तुति वर विनय पुकारे * अदिति सूनु निज गेह सिधारे ॥४॥

अनेक प्रकारसे नगाड़े बजाते हैं, फूलोंकी मालाकी अपार वर्षा करते हैं ॥३॥ स्तुति कर विशेष विनय सुनाकर देवता अपने स्थानोंको चले गये ॥ ४ ॥

उतहिं जहां बैठा दशभाला * बिनु शिरवपु सो परा विशाला ॥५॥
देखि विकल आपै उठि धावा * पहिचानत तेहि अति दुखपावा ॥६॥

अब उधरकी कथा सुनिये, जहां रावण बैठा था वहीं शिरहीन नरांतकका विकट शरीर जाकर गिरा ॥५॥ देखते ही व्याकुल होकर उठके दौड़ा और पहचानकर महादुःखी हुआ ॥६॥

हा नारांतक कहि खल परा * महा खँभार लंकगढ़ भरा ॥७॥
मयतनया आदिक निशिचरी * शोक समाज विषादहिं भरी ॥८॥

वह दुष्ट हा नरांतक यह कहकर मूर्छित हो गया, शोकसे लंकामें महाखलबली मच गयी ॥ ७ ॥ मन्दोदरी आदिक राक्षसियाँ शोकसमाज विषादमें भर गयीं ॥ ८ ॥

दोहा-बिंदुमती आदिक सकल, नारांतककी नारि ॥
व्याकुल महि लोटहिं परी, निजतनु दशा विसारि ॥२२३॥

बिंदुमती आदिक जितनी नरांतककी स्त्रियाँ थीं वे व्याकुल होकर पृथ्वीमें लोटने लगीं अपने शरीरकी दशा भूल गयीं ॥ २२३ ॥

करि विलाप जिमि निशिचर नारी * सो न जात कहि सुनु नभचारी॥१॥
शोक जलधि लंका लघु तरणी * चढ़ीं सकल निशिचरकी घरणी॥२॥

हे गरुड़जी ! सुनो, वे निशाचरकी स्त्रियाँ जैसे विलाप करती थीं वह कहा नहीं जाता॥१॥ शोकसागरमें लंकारूपी छोटीसी नौका पड़ी है, उसमें राक्षसोंकी सब स्त्रियाँ चढ़ी हैं ॥ २ ॥

बूड़त जानि न कतहुँ निबाहा * कहत मँदोदरि तब सब पाँहा ॥३॥
बिन्दुमती कर गहि बैठाई * नाग सुताकी कथा सुनाई ॥४॥

वह नौका डूबना चाहती है, कहीं निर्वाह होता न देखकर तब मन्दोदरी सबसे बोली॥३॥ बिंदुमतीका हाथ पकड़ कर बैठाया सुलोचनाके सती होनेकी कथा सुनायी ॥ ४ ॥

सुनत सुनयनाकी शुचि करणी * धारि धीर नारान्तक-घरणी ॥५॥
सबनि बुझाय सासु पग लागी * तजि धन धाम स्वामि अनुरागी॥६॥

सुलोचनाकी पवित्र करणी श्रवण करके नारान्तककी स्त्री मनमें धैर्य धरकर ॥ ५ ॥ विनय पूर्वक अपना भेद समझाके सासुके चरणोंमें लगी, धन और धामका मोह त्याग स्वामीकी अनुरागिनी हुई ॥ ६ ॥

मातु करहु सो यतन उताउल * मिलहुँ जाइ जेहिं पद निज राउल॥७॥
सुनु सुत-वधू न आन उपाऊ * जाउ जहां राजत रघुराऊ ॥८॥

और बोली—माता ! अब शीघ्र वह उपाय सोचो कि जिसमें अपने पतिके लोकको पहुँच जाऊँ ॥ ७ ॥ मन्दोदरी बोली—हे पुत्र वधू ! और तो कोई उपाय नहीं है, जहां रघुनाथजी हैं वहां ही तू जा ॥ ८ ॥

दोहा—जेहि विधि गई सुलोचना, तेहि गति तुम भय त्यागि ॥
निरखहु रघुपति-पदकमल, लावहु पति शिर माँगि ॥ २२४ ॥

जिस प्रकारसे सुलोचना गयी उसी प्रकारसे तुम भय त्याग कर रघुनाथजीके चरण-कमल का दर्शन करो, पतिका शिर मांग लो ॥ २२४ ॥

सासु वचन सुनि जान प्रभाता * उठि निशिचर तिय पुलकित गाता॥१॥
जात-रूपमय यान मँगाई * निज कर गहि पतिदेह चढ़ाई ॥२॥

सासुके वचन सुनते ही प्रातःकाल बिंदुमती प्रसन्न होकर उठी ॥ १ ॥ सोनेकी पालकी मँगा कर अपने हाथसे उसपर अपने पतिकी देह चढ़ायी ॥ २ ॥

चली अकेलि यान चढ़ि जबहीं * तासु सवति इक आई तबहीं ॥३॥
नाम चित्ररेखा अस तासू * गुणगण सुभग बसै तनु आसू ॥४॥

जब ही वह पालकी चढ़कर अकेली चली कि उसी समय एक सौत आ गयी ॥ ३ ॥ उसका नाम 'चित्ररेखा' था जिसके शरीरमें अनेक सद्गुण वास करते थे ॥ ४ ॥

सो करि विनय चढ़ी तेहि संगा * कीन पयान रँगी सतरंगा ॥५॥
यान एक आवत कपि देखा * कायर डरपे हृदय बिसेखा ॥६॥

वह भी विनय करके उनके साथ चढ़ी और सत्तके रंगमें रंगकर रघुनाथजीके निकट चली॥५॥ वानरोंने देखा कि एक पालकी आती है, बहुतेरे तो अपने मनमें डर गये ॥ ६ ॥

आवत मानि सबल रिपु कोऊ * नल अरु नील सुभट वर दोऊ॥७॥
आये धाय सपदि तब आगे * युगल नारि तनु निरखन लागे॥८॥

कोई बलवान् शत्रु आता विचार कर दोनों बड़े योद्धा नल, नील ॥७॥ शीघ्रतासे दौड़कर आगे आये और दोनों स्त्रियोंको देखने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-समुझि बूझि वृत्तांत दोउ, फिरि आये प्रभु पास ॥
बंदि कंजपद सभय कह, सुनिये रमा निवास ॥ २२५ ॥

इन दोनोंका वृत्तांत समझ बूझकर फिर रघुनाथजीके पास आये, चरणकमलको दण्डवत् कर डरते हुए दोनों बोले- सुनिये महाराज ! ॥ २२५ ॥

अब नारान्तककी दोउ नारी * आवति शरणप्रणत-भयहारी ॥१॥
सुनि रघुवीर हृदय मुसुकाने * उतहि टिकावहु सखा सयाने ॥२॥

अब नरान्तककी दो स्त्री आपके शरण आती हैं, आप दीनोंके भय दूर करनेवाले हो॥१॥ यह सुनकर रघुनाथजी मनमें मुसकाकर बोले-हे चतुर सखा ! उन्हें वहां ही टिकाओ ॥ २ ॥

सुनि प्रभु वचन वेगि सो धाये *कटक विगत तिन दूरि टिकाये॥३॥
बिन्दुमती चित रेखा दूनौ * विनय हमारि कीश अस सूनौ॥४॥

रघुनाथजीके वचन सुन वे वानर शीघ्रतासे चले उन्हें वानरोंके कटकसे बाहर टिकाया ॥ ३ ॥ तब बिंदुमती और चित्ररेखा दोनों बोलीं हे वानरो। हमारी कुछ विनय सुनो ॥ ४ ॥

कहहु जाय तुम प्रभुहि बुझाई * केहि कारण हम दरश न पाई॥५॥
हम अबला कपि बिनवैं तोही * बूझि नाथसन कहबे मोही ॥६॥

तुम अपने स्वामीके पास जाकर समझाके यह वचन कहो कि हमें दर्शन क्यों नहीं होता ॥५॥हे कपि ! हम स्त्री तुम्हारी विनती करती हैं,अपने स्वामीसे पूछकर यह बात हमसे कह दो॥६॥

नारि विनय सुनि कपि दोउ भले * नीति विचारि रामपहँ चले ॥७॥
विनती नारि जाय नल बरणी * सुनि बिहँसे प्रभु तिनकै करणी॥८॥

दोनों भले वानर स्त्रियोंकी यह विनय सुन धर्म विचारकर रघुनाथजीके पास चले ॥ ७ ॥ नलने जाकर रघुनाथजीसे नारिकी विनय सुनायी, उसकी यह करनी सुन भगवान् हँसे ॥८॥

दोहा-परम मृदुल रघुनाथ चित, कहत सन्त बुध वेद ॥
तिन कहँ देत न दरश प्रभु, सुनु खगेश सो भेद ॥ २२६ ॥

हे गरुड़जी ! रघुनाथजीका चित्त परम कोमल है, यह महात्मा पंडित और वेद कहते हैं, परंतु प्रभु जिस कारणसे उनको दर्शन नहीं देते हैं, वह भेद सुनिये ॥ २२६ ॥

प्रेम परीक्षा-हित रघुनायक * कौतुक करत समर सुखदायक॥१॥
नाथ सखा तब बहुरि बुझाई * पुनि नल नारिन पास पठाई ॥२॥

उनके प्रेमकी परीक्षाके निमित्त रघुनाथजी युद्धके सुखदायक चरित्र करते हैं ॥ १ ॥

तब रघुनाथजीने सखाओंको समझा बुझाकर फिर नलको नारियोंके पास भेज दिया ॥ २ ॥

कह कपि सुनहु नारांतक नारी * दरशन तुमहिं न देहिं खरारी ॥३॥
तुम गृह जाहु वचन मम मानी * बोलीं सो तिय वचन सयानी ॥४॥

तब नल जाकर कहने लगे, हे नरांतककी नारियो ! तुम्हें रघुनाथजी दर्शन नहीं देंगे ॥३॥ तुम मेरा वचन मानकर घर चली जाओ, यह सुन वे चतुर स्त्रियाँ बोलीं ॥ ४ ॥

हम अबला दरशन हित आईं * नयन सफल बिनु किमि गृह जाईं ॥५॥
यहि विधि करत विनय दोउ नारी * कीशन कटक कीन्ह पैसारी ॥६॥

हम स्त्री दर्शनको आई हैं, अब नेत्र सफल किये विना कैसे जायँ ॥ ५ ॥ इस प्रकार दोनों स्त्रियोंने विनय करते करते वानरोंके कटकमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥

आवत निकट जानि रिपु घरनी * यद्यपि पतिव्रत हैं शुभकरनी ॥७॥
तदपि नाथ तेहि दरश न देहीं * जाइ निकट बिनती किय तेहीं ॥८॥

शत्रुओंकी स्त्रियोंको निकट आती जानकर यद्यपि वे पतिव्रता हैं ॥७॥ तो भी रघुनाथजी उनको दर्शन नहीं देते, तब उन्होंने निकट जाकर यह विनती की ॥ ८ ॥

दोहा-प्रभु सीतापति जगतपति, सुर नर पति रघुनाथ ॥
देउ दरश करुणायतन, दीन बन्धु श्रुतिमाथ ॥ २२७ ॥

हे प्रभु सीतापति जगत्के पति ! हे देवताओंके पति रघुनाथजी ! हे करुणासागर दीन-बन्धु ! हे वेदोंके मान रक्षक ! हमारे ऊपर कृपा करो ॥ २२७ ॥

बोले राम न सो तिय बोली * विमल ज्ञान पतिव्रत अनडोली ॥१॥
नाथ सत्य यह नीति बखाने * पुरुष न परतिय सपनेहु जाने ॥२॥

रघुनाथजी उनकी बात सुनकर न बोले, तब फिर वे स्त्रियाँ बोलीं-जो उज्ज्वल ज्ञानवाली पतिव्रताधर्ममें अडोल हैं ॥ १ ॥ हे स्वामी ! यद्यपि शास्त्रकी यह नीति है कि महात्मा पुरुष परायी स्त्रीको स्वप्नमें भी नहीं देखते ॥ २ ॥

प्राकृत पुरुषनकी यह रीती * जिनके हृदय कपट पर प्रीती ॥३॥
समदर्शी कछु दोष न स्वामी * सोइ विचारि प्रभु अन्तर्यामी ॥४॥

परंतु यह रीति साधारण (निकृष्ट) लोगोंकी है जिनके हृदयमें प्रतिक्षण कपट रहता है ॥ ३ ॥ हे स्वामी ! आप तो समदर्शी हो इससे आपको कुछ दोष नहीं है; यह विचार कर हे प्रभु अन्तर्यामी ! ॥ ४ ॥

आरतबन्धु विलम्ब न कीजै * करुणा करि अब दरशन दीजै ॥५॥
नहिं बोले प्रभु पुनि सो कहहीं * तव यश अस श्रुति गावत अहहीं ॥६॥

हे दुखियोंके बन्धु ! विलम्ब मत करो, अब दया करके हमें दर्शन दीजिये ॥ ५ ॥ फिर रघुनाथजी न बोले तब वे फिर बोलीं-वेद इस प्रकार आपका यश गाते हैं ॥ ६ ॥

गौतम नारि नाथ तुम तारी * अधम जाति भिल्लिनि निस्तारी ॥७॥
सुनि मम हृदय परी परतीती * अब प्रभु कस देखिय विपरीती ॥८॥

हे नाथ! आपने गौतमकी नारीको तारा, नीच जाति भिल्लिनी शबरीको तार दिया॥७॥ यह सुनकर मेरे मनमें भी विश्वास हुआ; अब हे प्रभु! यह उससे विपरीत कैसे देखा जाता है॥८॥

दोहा–तारि तारि अधमनि अमित, बार बार श्रम जान॥
तातै करत अनाकनी, मोरि ओर भगवान्॥२२८॥

हे भगवन्! क्या इस कारण आप दर्शन नहीं देते कि वारंवार पापियोंको तारनेमें आपको श्रम हो गया है, जिससे आप मेरी ओर आनाकानी करते हो? ॥ २२८ ॥

प्रभु मुसुकाहिं न उत्तर देहीं * ताकर प्रेम-परीक्षा लेहीं ॥१॥
विकल उभय नारान्तक बाला * बार बार करि विनय विशाला ॥२॥

रघुनाथजी मुसकाते हैं परन्तु उत्तर नहीं देते, कारण यह है कि उनकी प्रेम परीक्षा लेते हैं ॥१॥ नरांतककी दोनों नारियाँ व्याकुल होकर वारंवार बड़ी विनय करने लगीं ॥ २ ॥

धर्मधुरंधर प्रभु अवतारा * केवल पतिव्रत धर्म हमारा ॥३॥
जो हम सत्य सत्य तुम स्वामी * द्रवहु वेगि उर अन्तर्यामी ॥४॥

हे प्रभु! आपका अवतार धर्मस्थापना करनेके निमित्त हुआ है, हमारा धर्म केवल पतिव्रता ही है ॥ ३ ॥ जो हम सत्य ही पतिव्रता हैं और आप सत्य ईश्वर हो तो, हे अन्तर्यामी स्वामी! आप शीघ्र प्रसन्न हो जायँ ॥ ४ ॥

वृथा करत कत प्रभु श्रुतिभाषा * पूजत नाथ न मम अभिलाषा ॥५॥
लीन भयउ पति प्राण रामपहँ * अर्धभाग हम जाइँ कहहु कहँ॥६॥

हे स्वामी प्रणतपाल! जो वेदने आपका वर्णन किया है उसे क्या वृथा करते हो? दर्शन देकर हमारी अभिलाषा पूरी क्यों नहीं करते? ॥ ५ ॥ हमारे पतिका प्राण आपमें लीन हो गया, अब हम आधा भाग कहां जायँ? ॥ ६ ॥

वृन्दा चरित नाथ सुधि करहू * विनय हमारि वेगि उर धरहू ॥७॥
विनय प्रीति सत धर्म जनाई * परीं प्रेमवश महि अकुलाई ॥८॥

हे नाथ! वृन्दाके चरित्र की याद करके हमारी विनय शीघ्र सुनो ॥ ७ ॥ इस प्रकार स्त्रियाँ विनय, प्रीति, सत्यधर्म जनाकर दोनों प्रेमवश हो पृथ्वीमें गिर पड़ीं ॥ ८ ॥

दोहा–पाहि पाहि रघुवंशमणि, हतहु न विरुद प्रतीति ॥
प्रीतम प्रीत न करत डर, तुम कहँ नाथ अनीति ॥ २२९ ॥

रक्षा करो, रक्षा करो, रघुवंशमणि विरुदावलीकी प्रतीति प्रणयपालना मत त्यागो! प्रियतम हमारी सच्ची प्रीतिका आप डर नहीं करते, जो पतिसे हमने की है अर्थात् पतिका शिर न मिला तो हम सती न हो सकेंगी इसमें तुमको बड़ी अनीति होगी ॥ २२९ ॥

सती निराश विनय सुनि बानी * पुलके दीन दयालु भवानी ॥१॥
दुहुँन लीन निज निकट बुलाई * परीं युगल प्रभु पदतर आई ॥२॥

शिवजी बोले–हे पार्वती! यह उन सती स्त्रियोंकी निराशताकी वाणी सुन दीनदयालु पुलकित हो गये ॥१॥ दोनोंको अपने निकट बुला लिया वे दोनों प्रभुके चरणोंमें आ पड़ीं ॥२॥

तिन्हैं उठाय राम बैठावा ❋ जगदीश्वर मृदु वचन सुनावा ॥३॥
बिन्दुमती तैं परम सयानी ❋ पतिपदरति दृढ़ हृदय समानी ॥४॥

रामजीने उन्हें उठाकर बैठाया और त्रिलोकीनाथ उनसे कोमल वचन बोले ॥३॥ हे बिंदुमती ! तू बड़ी चतुर है, क्योंकि पतिके चरणोंकी दृढ़ प्रीति तेरे मनमें समा रही है ॥ ४ ॥

बहुत करहुँ का तव गुण गाना ❋ माँगु वेगि वर जो मन माना ॥५॥
सुनत वचन लोचन जल बाढ़ी ❋ जोरि युगल कर दोऊ ठाढ़ी ॥६॥

मैं तेरे गुण बहुत क्या कहूँ ? जो मन भावे वही वरदान मांग ॥ ५ ॥ सुनते ही दोनोंके नेत्रोंमें जल भर आया, दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हुई ॥ ६ ॥

प्रभु तुम दानि देव तरुवरसे ❋ पदजलजात देखि सुरसरिसे ॥७॥
परमपवित्र भई हम दोऊ ❋ हमसम धन्य नारि नहिं कोऊ॥८॥

महाराज आप दान देनेमें साक्षात् कल्पवृक्षसे हो, आपके चरण कमल गंगाजीके समान पवित्र करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ जिनका दर्शन करके हम दोनों परम पवित्र हो गयीं, अब हमारे समान धन्य कोई और स्त्री नहीं ॥ ८ ॥

छन्द--को धन्य हमसम नारि जगमहँ सुनहु श्रीरघुनायकम् ।
दै दरश कीन्ह्यो पतित पावनि नाथ सुरअरिघायकम् ॥
हे कृपासागर यश उजागर देहु वर सुर भावरम् ।
जेहि मिलैं पतिकहँ जाइ विनुश्रम बढ़े तव यश श्रीधरम् ॥ २८ ॥

हे रघुनाथजी सुनिये; हमारे समान जगत्में कौन स्त्री धन्य है ? हे नाथ ! आपने दर्शन देकर हम पापियोंको पवित्र किया, आप देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले हो, हे कृपाके समुद्र ! हे प्रसिद्ध यशवाले ! आप देवताओंके मन भाये वर दीजिये; जिसमें हम विना श्रम पतिको प्राप्त हो जायँ और लक्ष्मीपति ! आपका यश बढ़े ॥ २८ ॥

सोरठा--यह कहि बिन्दुकुमारि, सहित सौति प्रभुपद परी ॥
तिन्हैं उठाइ खरारि, जगत्राता इमि कहत पुनि ॥ १२ ॥

बिन्दुकी कन्या यह कह कर सौत समेत प्रभुके चरणोंमें पड़ी फिर रघुनाथजी उन्हें उठाकर यह कहने लगे ॥ १२ ॥

धरहु धीर तुम जनि अब डरहू ❋ निजपति लेहु भवन सुख करहू॥१॥
कहेउ देव हम कहँ यह नीका ❋ हमहुँ कहत अब भावत जीका॥२॥

धैर्य धरो, तुम अब मत डरो; अपना पति लो और घरमें जाकर सुख करो ॥ १ ॥ यह सुनकर वे बोलीं-हे देव ! आपने अपनी कृपा बहुत दिखायी, परन्तु हम भी अपने जीकी बात कहती हैं ॥ २ ॥

गिरिजा सहित गिरीश विरागी ❋ नाथ तुम्हार दरश अनुरागी ॥३॥
नारदादि सनकादिक जेते ❋ जप तप करहिं विविध विधि तेते॥४॥

हे नाथ ! पार्वती सहित शिवजी विरागी होकर आपके दर्शनमें अनुराग करते हैं ॥ ३ ॥ नारदादि सनकादि जितने हैं वे सब अनेक प्रकार के जप तप करते हैं ॥ ४ ॥

तेउ न कबहुँ हमारी नाईं ❀ देखहिं पद जलजात अघाईं ॥५॥
हरि दरशन लवलेश प्रमाना ❀ जगके सब सुख नाहिं समाना ॥६॥

उन्होंने भी हमारे समान कभी आपके चरण कमल अघाकर नहीं देखे होंगे ॥ ५ ॥ जगत्के सम्पूर्ण सुख आपके दर्शनके लवलेशके भी समान नहीं हैं ॥ ६ ॥

अमिय अघाइ गरल को खाई ❀ विनय हमारि यहै सुरसांई ॥७॥
देहु कान्त शिर सपदि मँगाई ❀ दयाशील सागर रघुराई ॥८॥

अमृतसे पेट भरने पर विष कौन खायगा ? हे देवताओंके स्वामी ! यही हमारी विनती है कि ॥ ७ ॥ आप हमारे स्वामीका शिर शीघ्र मँगाकर दीजिये, हे दया-शीलके सागर रघुनाथजी यही हमारी इच्छा है ॥ ८ ॥

दोहा–नारान्तक कर शीश तब, दीन्ह मगाय रमेश ॥
पाय स्वामिशिर मुदित भईं, बोलीं दोउ उरगेश ॥ २३० ॥

तब रघुनाथजीने यह वार्ता सुनते ही नरान्तकका शिर मँगा दिया, हे उरगेश (गरुड़जी) ! अपने स्वामीका शिर पाकर दोनों प्रसन्न होकर बोलीं ॥ २३० ॥

नाथ विनय हम औरौ करहीं ❀ दारु विना हम केहि विधि जरहीं ॥१॥
सुखसागर सुनि वचन समाना ❀ हनुमत अङ्गदादि भट नाना ॥२॥

हे नाथ ! हमारी इतनी विनय और है, कि ईंधन विना हम किस प्रकार अपना शरीर दाह करेंगी ? ॥ १ ॥ सुखसागर रघुनाथजी उनके वचन सुनकर हनुमान् अंगदादि अनेक योद्धाओंसे ॥२॥

कहा सखा लंकामें धावहु ❀ चन्दन अगर भार बहु लावहु ॥३॥
पाइ राम अनुशासन धाये ❀ लंकागढ़ गृह गृह सचुपाये ॥४॥

बोले, कि हे सखाओ ! शीघ्र लंकामें जाओ वहांसे चन्दन अगरके अनेक बोझ लाओ ॥ ३ ॥ रघुनाथजीकी आज्ञासे वानर धाये और लंकापुरीमें घर-घर चन्दन ढूँढ़ा ॥ ४ ॥

कपिन शोधि चन्दन बहु भारा ❀ लाये जहँ श्रीनाथ उदारा ॥५॥
कह रघुवीर सुनहु लंकेशा ❀ तात यहै बड़ हित उपदेशा ॥६॥

वे वानर अनेक भार चन्दनके ढूँढ़कर उदार रघुनाथजीके पास ले आये ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजी बोले-विभीषण ! सुनो, बड़ा हितकारी उपदेश है कि ॥ ६ ॥

बिन्दुमती जहँ चाहत ठांऊ ❀ दारु भार सँग तुम तहँ जाऊ ॥७॥
दशकन्धर-कर वैर विहाई ❀ चिता चारु शुचि देहु बनाई ॥८॥

जहां बिंदुमती स्थान चाहती हो वहां तुम यह जलानेका काष्ठभार पहुँचवा दो ॥ ७ ॥ रावणका वैर छोड़कर सुन्दर चिता बनवा दो ॥ ८ ॥

दोहा–रघुवर आज्ञा धारि शिर, उठे दशानन भाइ ॥
अयुत भार चन्दन अगर, तेहि संग चले लिवाइ ॥ २३१ ॥

रघुनाथजीकी आज्ञा शिरपर धर कर विभीषण उठे, बहुतसे अगर चन्दनके भार अपने

साथ लिवा ले चले, (अयुतभार दश हजार भारका होता है पर यहाँ बहुतका अर्थ है) ॥२३१॥

जहाँ जरी मघवाजित-नारी * ताहि ठहर शुचि चिता सँवारी॥१॥
उहवाँ अपर सौति मनु नारी * बिंदुमती मनभाव पियारी ॥२॥

जहाँ मेघनादकी नारी सती हुई थी, उसी स्थानमें इन्होंने भी चिता बनवायी ॥ १ ॥ वहां बिन्दुमतीकी दूसरी सौतें जो बिन्दुमतीको बहुत प्यारी थीं ॥ २ ॥

मूर्छित परीं प्रथम सुधि नाहीं * चलीं सुनत गति दुख मनमाहीं॥३॥
चलीं चतुर्दश निशिचरि कैसे * निरखि दवाग्नि मृगीगण जैसे ॥४॥

पहले मूर्छित होकर सब गिर पड़ीं, शरीरकी सुध न रही, फिर बिन्दुमतीकी गति सुनकर मनमें दुःखित हो वे सब चलीं ॥ ३ ॥ चौदह राक्षसी ऐसे वेगसे चलीं, जैसे वनकी आग देखकर मृगी भागती हों ॥ ४ ॥

हा हा बिंदुमती पतिप्यारी * कहां गई तुम हमहिं बिसारी ॥५॥
पहुँची सह विलाप तहँ सोऊ * हरषीं हृदय विलोकत दोऊ ॥६॥

और कहने लगीं-हा हा पतिकी प्यारी बिन्दुमती ! तू कहां है ? हमें छोड़कर कहां गयी ! ॥५॥इस प्रकार वे विलाप करतीं हुईं वहां पहुँचीं और उन दोनोंको देखकर मनमें प्रसन्न हुईं॥६॥

षोडश निशिचरि भईं सभागी * मन वच क्रम पतिपद अनुरागी॥७॥
सकल अन्हाइ मृतक अन्हवाई * सुमिरति हृदय राम गतिदाई ॥८॥

भाग्यवती सोलह राक्षसियाँ मन वचन कर्मसे पतिके चरणोंकी अनुरागिनी हुईं ॥ ७ ॥ सबने स्नान कर मृतकको स्नान कराया और मुक्ति देनेवाले रघुनाथजीका मनमें स्मरण करने लगीं ॥ ८ ॥

दोहा-उत दशकन्ध जगेउ शठ, सुनेउ श्रवण सब हेतु ॥
सँग मन्दोदरि आदि तिय, गमना लै खगकेतु ॥२३२॥

हे खगकेतु (गरुड़जी) ! उधर मूर्ख रावण जागा, और सब कारण सुनकर संगमें मन्दोदरी आदि स्त्रियोंको लेकर (जहां बिन्दुमतीने चिता बनायी थी वहांको) चला ॥ २३२ ॥

बाजत ढोल कपिन सुनि काना * अपने मन तिन अस अनुमाना॥१॥
आव युद्धहित उत कोउ बीरा * हम कहँ ठाढ़ करत यहि तीरा ॥२॥

ढोल बजाते हुए वानरोंने सुनकर अपने मनमें विचार किया ॥ १ ॥ कि वहांसे कोई वीर युद्ध करनेके निमित्त आता है हमें यहां खड़ा रहना उचित नहीं ॥ २ ॥

कीश अयुत तब प्रभुपहँ आये * पूरण प्रेम चरण शिर नाये ॥३॥
नाथ उतहि दशकन्धर जाता * कीश काह कह सुनु जगत्राता॥४॥

तब १०००० वानर रघुनाथजीके पास आये और प्रेमसे चरणोंमें शिर नवाये ॥ ३ ॥ एक वानर बोला-सुनिये नाथ ! मुझे ऐसा विदित होता है कि रावण चिताके निकट आया चाहता है, हे जनोंके रक्षक ! क्या आज्ञा होती है ? ॥ ४ ॥

प्रभु कह कुमुद तुरत तुम धावहु * बेगि विभीषण कहँ ले आवहु ॥५॥
राम रजायसु शिर धरि धाये * सपदि विभीषण पहँ सो आये ॥६॥

रघुनाथजी बोले-हे कुमुद ! तुम शीघ्र जाकर विभीषणको बुला लाओ ॥५॥ कुमुद रघुनाथजीकी आज्ञा शिर पर धर चले और शीघ्रतासे विभीषणके पास आये ॥ ६ ॥

तात तुमहिं रघुराज बुलावा * सुनत लंकपति आतुर धावा ॥७॥
हेतु पतोहुन कहि समुझावा * कुमुद सहित रघुपति पहँ आवा ॥८॥

और कहने लगे-हे तात विभीषण ! तुम्हें रघुनाथजी बुलाते हैं, सुनते ही विभीषण शीघ्रतासे चले ॥ ७ ॥ बहुओंको सब कारण समझाकर कुमुद सहित विभीषण रघुनाथजीके पास आये ॥ ८ ॥

दोहा-मोहनिशा कहँ तरुणरवि, तिन चरणन शिर नाइ ॥
भाग्यवन्त रावण अनुज, बैठेउ प्रभु रुख पाइ ॥ २३३ ॥

मोहरूपी रात्रिके नशानेको प्रचण्ड सूर्य रूप रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर भाग्यवान् रावणका भाई रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर स्थित हुआ ॥ २३३ ॥

दशमुख तियन सहित गा तहवाँ * बिंदुमती चितरेखा जहवाँ ॥१॥
देखत अति बिलखा विबुधारी * करुणा करत निशाचरि नारी ॥२॥

रावण स्त्रियों समेत वहां गया जहां बिन्दुमती और चित्ररेखा थीं ॥ १ ॥ देखते ही रावण बड़ा व्याकुल हो रोने लगा और साथकी स्त्रियाँ भी रुदन करने लगीं ॥ २ ॥

सासु ससुर-कहँ देखि दुखारी * ज्ञान नवीन नरांतक-नारी ॥३॥
कहि शुचिगाथ सबनि समुझाई * स्वामि समेत चितापर आई ॥४॥

सास श्वशुरको दुःखी देख नवीन ज्ञानवती नरांतककी स्त्रीने ॥ ३ ॥ सबको ज्ञान युक्त कथा कहकर समझाया और अपने स्वामी समेत चिता पर आयी ॥ ४ ॥

यथायोग्य बैठीं सब तैसे * पतिगृह रहत रहीं नित जैसे ॥५॥
अग्नि दीन्हि ज्वाला अति धाई * पहुँचीं सुरपुर सब तिय जाई ॥६॥

वे सोलहों राक्षसी इस प्रकार यथायोग्य बैठीं जैसे अपने पतिके घरमें रहा करती थीं ॥ ५ ॥ तब अग्नि लगा दी बड़ी तीक्ष्ण ज्वाला बढ़ी, क्षण मात्रमें सब स्त्री स्वर्गलोक पहुँच गयीं ॥ ६ ॥

देखि दशा तिनकी सुर रवनी * तिनहिं सराहि भवन निज गवनी ॥७॥
रावण सहित युवति निज गेहा * गयउ भवन सासति संदेहा ॥८॥

देवताओंकी स्त्रियें उनकी यह दशा देखकर उनकी सराहना कर अपने अपने स्थानोंको गयीं ॥ ७ ॥ रावण भी सब स्त्रियोंको साथ ले दुःख और संदेहसे भरा हुआ भवनको गया ॥ ८ ॥

छन्द-सन्देह सासति भरे रावण सहित दारनि गृह गयो ।
इमि मयसुतादिक निशिचरिन लखि विकल खल मूर्छित भयो ॥
दशमाथ गति देखत विपुल बिलखैं निशाचर निशिचरी ।
संताप शोक विलाप भय भ्रम कटक लंकामहँ परी ॥ २९ ॥

संदेह दुःखसे भरा हुआ दुष्ट रावण स्त्रियों सहित अपने घर गया और मन्दोदरी आदिक रानियोंको व्याकुल देख आप भी मूर्छित हो गया । रावणकी यह गति देख अनेक निशाचरी

निशाचर व्याकुल हो रोने लगे, मानो संताप, दुःख विलाप, भय और सन्देहकी सेना लङ्कामें आ गयी है ॥ २९ ॥

दोहा-राम विरोधहि जस उचित, तस दिन पहुँचा आइ ॥
सो विचार करि लंकगढ़, उतरी विपति बजाइ ॥ २३४ ॥

जैसा कुछ रघुनाथजीसे विरोध होनेका फल मिलना चाहिए, वही दिन रावणको आकर प्राप्त हुआ, लंकापुरीमें डंका बजा विपत्ति आकर उतरी ॥ २३४ ॥

इहां देवतन देव सुजाना * वर आसन शोभित भगवाना ॥१॥
यथायोग्य बैठे मृग शाखा * सब कीन्हे प्रभुपद अभिलाषा ॥२॥

यहां देवताओंके देवता सुजान रघुनाथजी सुन्दर आसन पर शोभायमान हैं ॥ १ ॥ शाखा मृग (वानर) यथायोग्य स्थानमें बैठे हुए हैं और सब प्रभुके चरण कमलोंमें अभिलाषा लगाये हैं ॥ २ ॥

रिपु बड़ मरेउ हर्ष सबके मन * पुनि पुनि हेरत सुभग श्यामतन॥३॥
तिनकी रुचि लखि दीनदयाला * शिव यश गावहु कह्यो कृपाला॥४॥

बड़ा भारी शत्रु मर गया इससे सबके मनमें प्रसन्नता है, सब कोई बारंबार रघुनाथजीका सुन्दर श्याम शरीर अवलोकन करते हैं ॥ ३ ॥ उनकी प्रीति देखकर रघुनाथजी कहने लगे भाई ! शिवजीका यश गाओ ॥ ४ ॥

भरद्वाज प्रभु-आज्ञा पाई * गावहिं कपि कलकंठ लजाई ॥५॥
डमरु भृंगि श्रृंगी करतारी * घ्राण पाणि मुखते वनजारी ॥६॥

याज्ञवल्क्यजी बोले-हे भरद्वाज ! प्रभु की आज्ञा पाकर वानर ऐसे मधुर स्वरोंसे गाते हैं जिसे सुन कोकिला भी लजाती है ॥ ५ ॥ डमरू, भृंगी, शृङ्गी (सींगका बाजा, जो हरिणीके सींगका होता है), ताड़ी आदि बाजा नाक, हाथ, मुखसे सब वानर बजाते हैं ॥ ६ ॥

गाँडर तन्तु वेणु मंजीरा * शंख मृदंग नाद गम्भीरा ॥७॥
नृत्यत कीश भाव दिखरावत * शिवासहित शिव कीरति गावत॥८॥

गांडर, तन्तु, वेणु (बांसुरी), शंख, मंजीरे, गंभीर नादयुक्त मृदंग ॥ ७ ॥ सब मुखसे ही बजाते और भाव दिखाकर वानर नाचते हैं और पार्वती सहित शिवजीकी कीर्ति गाते हैं॥८॥

छन्द-शिवशिवाकीरति विमल गावत भालु वानर सुख भरे ।
अहिनाथयुत रघुनाथ छबि निरखत सकल चितपद धरे ॥
प्रभु देखि कौतुक अनुज सहित सखन बखानत श्रीमुखम् ।
तुलसी पगे यहि ध्यान जे जन पाइहैं नितयश सुखम् ॥ ३०॥

इस प्रकार रीछ वानर आनंदमें भरे शिवपार्वतीकी उज्ज्वल कीर्ति गाने लगे लक्ष्मणजीके सहित रघुनाथजीकी छबि सब चरणोंमें मन लगाये देखते हैं, लक्ष्मण समेत रघुनाथजी

१. भजन—शिवसम को भक्तन सुखदाई । भीर देवतनपर जब जानी, कीनो गरलपान हर्षाई ॥१॥ बाणासुरको सहस भुजा दी त्रिपुर दैत्य मारो रिसियाई ॥ २ ॥ जिन जिन भक्ति करी श्री शिवकी, तिन तिनकी महिमा जग छाई ॥३॥ इन ज्वाला प्रसादको नित ही करो उमापति आप सहाई ॥ ४ ॥

यह वानरोंके गानेका कौतुक देख अपने मुखसे उसका बखान करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं जो कोई इस ध्यानमें मग्न हैं वे सदा यश और सुख पावेंगे ॥ ३० ॥

सोरठा–गत रजनी युग याम, तब कोशन करुणा अयन ॥
करि पूरण मनकाम, सबनि कहेउ राजहु थलन ॥ १३ ॥

जब इस प्रकार आनन्दमें दो पहर रात बीत गयी, तब करुणासागर रघुनाथजीने सबके काम पूर्ण करके कहा–अपने–अपने स्थानों पर विराजो ॥ १३ ॥

बैठे निज निज थल रणधीरा ❋ अनुज सहित राजत रघुवीरा ॥१॥
सुखमासीवँ सेनयुत राजैं ❋जय जय धुनि कपि भालु समाजैं॥२॥

सब रणधीर अपने अपने स्थानोंपर शोभित हुए, लक्ष्मणजी सहित रघुनाथ जी विराजमान हुए ॥ १ ॥ इस प्रकार परम शोभाकी मर्यादा रामजी सेना सहित विराजमान हुए, तब रीक्ष वानर 'जयजयकार' करने लगे ॥ २ ॥

उमा चरित यह सुभग सुहावा ❋ नाथ कृपा मैं तुमहिं सुनावा ॥३॥
अपर चरित गिरिराज कुमारी ❋ सुनहु कहत तव प्रीति निहारी॥४॥

शिवजी बोले–हे पार्वती! यह सुन्दर चरित्र रघुनाथजीकी कृपासे मैंने तुम्हें सुनाया ॥३॥ हे पार्वती! अब और चरित्र सुनो, तुम्हारी प्रीति विचार कर कहता हूँ ॥ ४ ॥

वहाँ मध्यनिशि रावण जागा ❋कोउ कोउ सचिव सिखावन लागा॥५॥
उग्र सिखावन कहि बुध बांके ❋ थकै न कछु मनमानै ताके ॥६॥

वहां आधीरातके समय रावण जागा कोई मन्त्री आकर समझाने लगे ॥ ५ ॥ बड़े बड़े पंडित रावणको सिखाकर थक गये, परंतु उसके मनमें एक न आयी ॥ ६ ॥

रावण मन औरौ कछु लसई ❋मेटिको सकै जो विधि उर बसई॥७॥
प्रभुविरोध करि चह कल्याना ❋ मोह विवश सो शठ अज्ञाना ॥८॥

रावणके मनमें कुछ और ही है क्योंकि जो विधाताके मनमें बसती है उसे कौन मिटा सकता है ॥७॥ जो भगवान्‌से विरोध करके भला चाहे वह मूर्ख मोहके वश अज्ञानी है ॥८॥

दोहा–यहां दशानन दूतमुख, सुनि नारान्तक नास ॥
एकम दिन निजसेन लखि, चढ़ा समर बिनु त्रास ॥ २३५ ॥

रावण इस प्रकार दूतके मुखसे सेना समेत नरांतकका नाश सुनकर परिवाके दिन अपनी सेनाका निरीक्षण करके निर्भय रघुनाथजीसे स्वयं लड़नेको चढ़ा ॥ २३५ ॥

इति क्षेपक

इति श्रीरामचरितमानसे वि० वा० पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायां
लंकाकांडान्तर्गतदशमो विश्रामः ॥ १० ॥

दोहा-एकादश विश्राममें, किये समर दशशीश।
व्याकुल होइ लंका गयो, अतिदुख दियो कपीश ॥ ११ ॥

इहि विधि जलपत भा भिनुसारा ❋ लगे भालु कपि चारिहु द्वारा ॥१॥

सुभट बुलाय दशानन बोला * रण सनमुख जाकर मन डोला॥२॥

इस प्रकार रावणको बकते झकते सवेरा हो गया, चारों दरवाजों पर भालु, वानर आने लगे ॥ १ ॥ तब रावण योद्धाओंको बुलाकर कहने लगा कि जिसका मन लड़ाईसे डरता हो ॥२॥

सो अबहीं बरु जाइ पराई * रणसनमुख भागे न भलाई ॥३॥
निज भुज बल मैं वैर बढ़ावा * देइहौं उतर जो रिपु चढ़ि आवा॥४॥

वह अभी भाग जाय तो अच्छा है, परंतु युद्धके सन्मुख भागना अच्छा नहीं होगा ॥३॥ मैंने अपने भुजबलसे बैर बढ़ाया है, जो शत्रु चढ़कर आया है मैं उसे उत्तर दे दूँगा ॥ ४ ॥

अस कहि मरुतवेग रथ साजा * बाजहिं सकल जुझाऊ बाजा ॥५॥
चले वीर सब अतुलित बली * जनु कज्जल गिरि आंधी चली॥६॥

यह कहकर पवन-वेगके समान रथ सजाया और सब जुझाऊ बाजे बजने लगे ॥ ५ ॥ सब अतुलित बली वीर चले, मानो कज्जल गिरिकी आंधी चली ॥ ६ ॥

अशकुन अमित होहिं तेहि काला * गनै न भुजबल गर्व विशाला ॥७॥

उस समय बड़े बड़े अशकुन होने लगे, परंतु अपनी भुजाओंके बलके घमण्डसे कुछ नहीं गिनता ॥ ७ ॥

छन्द-अति गर्व गनत न शकुन अशकुन स्रवहिं आयुध हाथते ।
भट गिरहिं रथते वाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथते ॥
गोमायु गीध कराल खररव श्वान रोवहिं अति घने ।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं वचन परम भयावने ॥ ३१ ॥

रावण अति गर्वके मारे शकुन अशकुन नहीं गिनता, हाथसे आयुध छूट जाते हैं, योद्धा रथसे गिर पड़ते हैं, हाथी घोड़े चिक्कार कर साथसे भागे जाते हैं, गीदड़ गृध्र बड़े तीक्ष्ण शब्द करते हैं; कुत्ते ऊँचे स्वरसे रोने लगे । जिससे यही सूचित होता है कि रावणकी हार होगी और कालके समान उलूक परम भयावने वचन बोलते हैं ॥ ३१ ॥

दोहा-ताहि कि सम्पति शकुन शुभ, स्वप्नेहु मन विश्राम ॥
भूत द्रोहरत मोहवश, राम-विमुख रतकाम ॥ २३६ ॥

उनको सम्पत्ति, शुभशकुन और विश्राम स्वप्नमें भी प्राप्त नहीं हो सकते, जो प्राणियोंसे वैर करता; मोहके वशीभूत रामसे विमुख और कामी है ॥ २३६ ॥

चली निशाचर सेन अपारा * चतुरंगिनी अनी बहुधारा ॥१॥
विविध भाँति वाहन रथ याना * विपुल वरण पताकध्वज नाना ॥२॥

राक्षसोंकी अपार सेना चली । रथी, पैदल, सवार, हस्त्यारोही यह चार प्रकार की सेना अनेक धारा होके चली ॥ १ ॥ अनेक भाँतिके वाहन, रथ, सवारी वरणे नहीं जाते, अनेक वर्णकी ध्वजा पताका फहरा रही थीं ॥ २ ॥

चले मत्त गज यूथ घनेरे * प्रावृट-जलद मरुत जनु प्रेरे ॥३॥
बरण बरण वरदैतनिकाया * समरशूर जानहिं बहु माया ॥४॥

मतवाले हाथियोंके अनेक यूथ चले जैसे वायुकी प्रेरणासे वर्षाके बादल चलें ॥ ३ ॥ अनेक वर्णवाले बड़े वीर दैत्य चले, जो युद्धमें अनेक प्रकारकी माया जानते हैं ॥ ४ ॥

अति विचित्र वाहिनी विराजी * वीर वसन्त सेन जनु साजी॥५॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं * क्षुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥६॥

वीरोंकी सेना अनेक भाँति विराजती हैं अथवा वाहिनी नाम पहरावनी विचित्र मानो वीर वसंतने अपनी सेना सजायी है ॥५॥ सेनाके चलनेसे दिशाओंके हाथी डगमगाते हैं सागर क्षुभित हो गया, पर्वत डगमगाने लगे ॥ ६ ॥

उठी रेणु रवि गयउ छिपाई * पवन थकित वसुधा अकुलाई ॥७॥
पणव निशान घोर रव बाजहिं * महाप्रलयके जनु घन गाजहिं ॥८॥

धूरिके उड़नेसे सूर्य छिप गये, पवन थक गये, पृथ्वी अकुला गयी ॥७॥ ढोल निशानके बड़े घोर शब्द बजने लगे, मानो महा प्रलयके बादल गर्जते हैं ॥ ८ ॥

भेरि नफीर बाज शहनाई * मारू राग सुभट सुखदाई ॥९॥
केहरिनाद वीर सब करहीं * निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥१०॥

भेरी, नफीरी, शहनाई बजने लगीं; मारू राग गाने लगे, जो योद्धाओंको सुखदायक हैं ॥ ९ ॥ सब वीर सिंहनाद करते हैं, और अपने बल पौरुष उच्चारण करते हैं ॥ १० ॥

कहै दशानन सुनहु सुभट्टा * मर्दहु भालु कपिनके ठट्टा ॥११॥
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई * असकहि सनमुख फौज चलाई॥१२॥

रावण बोला—वीरों सुनो, तुम तो रीछ वानरोंके यूथोंका मर्दन करो ॥ ११ ॥ और मैं उन दोनों तपस्वियोंको मारता हूँ, ऐसा कह कर रावणने सम्मुख सेना चलायी ॥ १२ ॥

यह सुधि सकल कपिन जब पाई * धाये करि रघुवीर दुहाई ॥१३॥

ज्योंही यह सुध वानरोंने पायी कि रघुनाथजीकी दुहाई करते दौड़े ॥ १३ ॥

छन्द—धाये विशाल कराल मर्कट भालु काल समानते ।
मानहु सपक्ष उड़ाहिं भूधर वृन्द नाना बाणते ॥
नख दशन शैल महाद्रुमायुध सब लशंक न मानहीं ।
जय राम रावण मत्त गज मृगराज सुयश बखानहीं ॥ ३२ ॥

बड़े बड़े कराल वानर रीछ कालके समान दौड़े मानो पंखोंसहित पर्वतोंके समूह बाणोंके प्रेरे उड़े आते हैं। नख, दांत, पर्वत और वृक्षोंके आयुध प्रहार करते वे बड़े बली हैं इससे शंका नहीं मानते, जो मत्त हस्तीके समान रावणके मारनेको सिंहके समान हैं, उन रामचन्द्र-महाराजकी जय हो, ऐसा कहकर सुयशका बखान करते हैं ॥ ३२ ॥

दोहा—दुहुँ दिशि जयजयकार करि, निज निज जोरी जानि ॥
भिरे वीर इत रघुपतिहि, उत रावणहिं बखानि ॥ २३७ ॥

दोनों ओर 'जयजयकार' शब्द करते अपनी जोड़ीके साथ बीर युद्ध करने लगे। उधर रावण, इधर रघुनाथजीकी जय बखान करके युद्ध होने लगा ॥ २३७ ॥

राम–रावण युध्द.



दुहुं दिशि जयजयकार करि निज निज जोरि जानि । भिरे वीर इत रघुपतिहि उत रावणहि बखानि ।।

लंकाकण्ड पृ. १०५६

रावण रथी विरथ रघुवीरा ❀ देखि विभीषण भयउ अधीरा ॥१॥
अधिक प्रीति उर भा संदेहा ❀ वंदि चरण कह सहित सनेहा ॥२॥

रावण तो रथमें बैठा था और रघुनाथजी पैदल थे, देखकर विभीषण अधीर हो गया ॥ १ ॥ अधिक प्रीतिसे हृदयमें संदेह हुआ तब चरणोंमें दण्डवत् कर प्रेमसे बोला ॥ २ ॥

नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना ❀ केहि विधि जीतब रिपु बलवाना ॥३॥
सुनहु सखा कह कृपा-निधाना ❀ जेहि जय होय सो स्यंदन आना ॥४॥

हे नाथ ! न तो आपके पास रथ है, न पादत्राण न वर्म (बख्तर) मुझे संदेह है कि यह बलवान् शत्रु किस प्रकार जीता जायेगा ? ॥ ३ ॥ तब कृपानिधान रघुनाथजी बोले-सुनो सखा ! जिससे जय प्राप्त होता है वह रथ दूसरा है, उसे बताते हैं ॥ ४ ॥

शौरज धीरज तेहि रथ चाका ❀ सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥५॥
बल विवेक दम परहित घोरे ❀ क्षमा दया समता रजु जोरे ॥६॥

जिस रथमें शूरता और धीरताके दृढ़ पहिये लगे हैं सत्यता और शीलता के दृढ़ ध्वजा पताका हैं ॥ ५ ॥ बल कामादि शत्रु जीतनेका ज्ञान, दम (इंद्रियोंका जीतना) और परोपकार ये ही चार घोड़े हैं क्षमा, दया समताकी रस्सीमें वे घोड़े बँधे हैं, रस्सीकी तीन लड़ होती हैं वह प्रत्येकमें जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

ईश भजन सारथी सुजाना ❀ विरति चर्म संतोष कृपाना ॥७॥
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा ❀ वर विज्ञान कठिन कोदंडा ॥८॥

जिस पर ईश भजन वा शंकर भजन सुजान सारथी बैठा है, वैराग्यकी ढाल सन्तोषकी तलवार धरी है॥७॥दानरूपी फरसा और बुद्धिरूपी प्रचंड शक्ति, उत्तम ज्ञानका कठिन धनुष है ॥ ८ ॥

संयम नियम शिलीमुख नाना ❀ अमल अचल मन तूण समाना ॥९॥
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा ❀ इहिसम विजय उपाय न दूजा ॥१०॥

संयम (अनर्थोंका त्याग) और नियम (वेदविहित अर्थोंका पालन) ये ही बाण हैं, निर्मल और अचल मन तरकसके समान है ॥ ९ ॥ ब्राह्मणों और गुरुके चरणोंकी पूजा करनी यही अभेद्य कवच है, इसके समान विजयका कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ १० ॥

सखा धर्ममय अस रथ जाके ❀ जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥११॥

हे सखा ! जो पुरुष ऐसे रथमें बैठा है उसे जीतनेको कहीं कोई शत्रु नहीं ॥ ११ ॥

दोहा-महा घोर संसार रिपु, जीति सकै सो वीर ॥
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥ २३८ ॥

हे मतिधीर सखा ! सुनिये महाघोर संसाररूपी शत्रुको वही वीर जीत सकता है जिसके ऐसा दृढ़ रथ होगा ॥ २३८ ॥

दोहा-सुनत विभीषण प्रभु वचन, मुदित गहे पदकंज ॥
यहि मिस मोहि उपदेश किय, रामकृपा सुखपुंज ॥ २३९ ॥

विभीषणने प्रभुके वचन सुनकर प्रसन्न हो चरण कमल पकड़ लिये और समझा कि कृपासागर रघुनाथजीने इसी बहाने मुझे उपदेश दिया ॥ २३९ ॥

दोहा-उत प्रचार दशकंधर, इत अंगद हनुमान ॥
लरत निशाचर भालु कपि, कर निज निज प्रभु आन ॥२४०॥

इधर तो रावणने अपने वीरोंको ललकारा कि लड़ो, इधर अंगद और हनुमान्‌ने अपनी सेनाके वानरोंको ललकारा; दोनों ओरके वीर अपने अपने स्वामीकी जय और आन उच्चारण कर युद्ध करने लगे ॥ २४० ॥

सुर ब्रह्मादि सिद्धि मुनि नाना * देखत रण नभ चढ़े विमाना ॥१॥
हमहूँ उमा रहे तेहि संगा * देखत राम चरित रणरंगा ॥२॥

ब्रह्मादिक देवता, सिद्ध, मुनि ये आकाशमें विमानोंपर बैठकर कौतुक देखते थे ॥ १ ॥ हे पार्वती! उस समय मैं भी रघुनाथजीके रणरंगचरित्र देखनेको उन देवताओंके सहित आकाशमें स्थित था ॥ २ ॥

सुभट समर रस दुहुँ दिशि माते * कपि जय शील रामबल ताते ॥३॥
एक एकसन भिरहिं प्रचारहिं * एकन एक मर्दि महि डारहिं ॥४॥

दोनों ओरके बड़े योद्धा उस समयके रसपानसे मतवाले हो रहे हैं, उनमें वानर लोग रामप्रतापसे अति विजयशील हो रहे हैं ॥ ३ ॥ एक एकसे ललकार कर भिड़ते हैं और एकको मर्दन करके पृथ्वी पर डाल देते हैं ॥ ४ ॥

मारहिं काटहिं धरणि पछारहिं * शीश तोरि शीशन सन मारहिं॥५॥
उदर विदारहिं भुजा उपारहिं * गहिपद अवनि पटकि भट डारहिं॥६॥

मारते काटते पृथ्वीमें पटक देते हैं और शिर तोड़कर उन्हीं शिरोंसे मारते हैं ॥ ५ ॥ पेट फाड़ते भुजा तोड़ते तथा चरण पकड़ कर योद्धाओंको पृथ्वीमें पटक देते हैं ॥ ६ ॥

निशिचर भट गहि गाड़हि भालू * ऊपर डारि देहिं बहु बालू ॥७॥
वीर बलीमुख युद्ध विरुद्धे * देखिय विपुल काल जनु क्रुद्धे ॥८॥

रीछ लोग योद्धा राक्षसोंको पृथ्वीमें गाड़ देते हैं और ऊपरसे रेत डाल देते हैं ॥७॥ बड़े बली वानर महायुद्ध करने लगे, जैसे महाकाल क्रोध करने आया हो ॥ ८ ॥

छन्द-क्रुद्धे कृतान्त समान कपितनु स्रवत शोणित राजहीं।
मर्दहिं निशाचर कटक भट बलवन्त घन जिमि गाजहीं ॥
मारहि चपेटन डाँटि दाँतन काटि लातन मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छलबल करहिं जेहि खल छीजहीं ॥३३॥

बन्दर कालके समान क्रोध कर दौड़े जिनके शरीरसे रुधिर टपकता है, वे बलवान् योद्धा राक्षसोंकी सेनाको मर्दन करने लगे और इस प्रकारसे गर्जते हैं जैसे बादल। चपेट मारते दांतोंसे काटते लातोंसे मलते और डाटते हैं, रीछ वानर चिक्कारते और ऐसे छल बल करते हैं जिससे राक्षस नष्ट हो जायँ ॥ ३३ ॥

छन्द-धरि गाल फारहिं उर विदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रहलादपति जनु विविध तनु धरि समर अंगन खेलहीं ॥

धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही ॥
जय राम जो तृणते कुलिश कर कुलिशते तृण कर सही ॥ ३४ ॥

पकड़ पकड़ कर गाल फाड़ते हृदय विदीर्ण करके गलमें उनकी आंत पहनते हैं जिनकी ऐसी शोभा हो रही है मानो नृसिंहजी अनेक रूप धारण कर समरांगणमें खेलते हैं। पकड़ लो, मारो, काटो, पछाड़ो यही घोर वाणी पृथ्वी और आकाशमें परिपूर्ण हो रही थी, तब 'रघुनाथजीकी जय हो' जो तृणको वज्र और वज्रको तिनका करते हैं अर्थात् वानर तृण हैं वज्र हो गये, राक्षस वज्ररूप थे तृण हो गये (यह देवताओंने कहा) ॥ ३४ ॥

दोहा—निजदल बिचल विलोकि सब, बीस भुजा दश चाप ॥
चला दशानन कोपकरि, फिरहु फिरहु करि दाप ॥ २४१ ॥

तब अपनी सेनाको विचलती हुई देख कर बीसों हाथोंमें दश धनुष धारणकर रावण बड़ा क्रोधकर राक्षसोंकी ओर धावमान् हुआ और कहा कि फिरो फिरो ॥ २४१ ॥

धावा परम क्रुद्ध दशकन्धर * सनमुख चले हूह देइ बन्दर ॥१॥
गहि कर पादप उपल पहारा * डारहिं तेहिपर एकहि बारा ॥२॥

रावण बड़े क्रोधसे दौड़ा तब बन्दर उसके सामने 'हूहू' करते चले ॥ १ ॥ वृक्ष, पत्थर, पहाड़ ये सब हाथोंमें लेकर रावणके ऊपर एकही बार डाल दिये ॥ २ ॥

लागहिं शैल वज्रतनु तासू * खण्ड खण्ड होइ फूटहिं आसू ॥३॥
चला न अचल रहा रथ रोपी * रणदुर्मद रावण अति कोपी ॥४॥

उसके वज्रसे शरीरमें पहाड़ लड़कर शीघ्र खण्ड खण्ड हो फूट जाते हैं ॥ ३ ॥ रावणने अचल हो वहीं रथको खड़ा किया और युद्धके कठिन मदमें भरके महाकोप किया। एक तो मद पिये दूसरे रणका मद हो गया इससे दुर्मद कहा ॥ ४ ॥

इत उत झपटि डपटि कपि योधा * मर्दइ लाग भयउ अति क्रोधा ॥५॥
चले पराइ भालु कपि नाना * त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥६॥

रावण इधर उधर झपट कर वानरोंको डपट कर महाक्रोधसे मर्दन करने लगा ॥ ५ ॥ तब अनेक रीछ वानर भाग चले और अङ्गद हनुमान्‌की दुहाई बोलने लगे ॥ ६ ॥

पाहि पाहि रघुवीर गुसाईं * यह खल आवा कालकी नाईं ॥७॥
तेहि देखे कपि सकल पराने * दशहु चाप सायक सन्धाने ॥८॥

हे रघुनाथजी ! रक्षा करो, रक्षा करो यह दुष्ट कालकी नाईं आया है ॥ ७ ॥ बीसों हाथमें दश धनुष लिये और बाण चढ़ाये हुए उसे देखकर सब वानर भागने लगे। अथवा रावणने वानरोंको भागता देखकर दशों धनुषों पर बाण चढ़ाये ॥ ८ ॥

छन्द—संधानि धनु शर निकर छांड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं ॥
रहे पूरि शर धरणी गगन दिशि विदिश कहँ कपि भागहीं ॥
भा अति कुलाहल विकल दलकपि भालु बोलहिं आतुरे ॥
रघुवीर करुणा-सिंधु आरत बन्धु जनरक्षक हरे ॥ ३५ ॥

तब रावण धनुष चढ़ाकर बाणोंके समूहको छोड़ने लगा, जो वानरोंके शरीरमें सांपकी तरह उड़कर लगते हैं, पृथ्वी आकाशमें बाण भर गये दिशा विदिशामें वानर भागने लगे बड़ा कोलाहल मच गया, रीछ वानर व्याकुल हो पुकारने लगे, हे राम करुणासागर! दीनबन्धु! जनोंकी रक्षा करने वाले भगवन्! बचाओ बचाओ ॥ ३५ ॥

दोहा–विचलित देखा कपि कटक, कटि निषंग धनु हाथ ॥
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाइ रामपद माथ ॥ २४२ ॥

वानरोंके कटकको व्याकुल होते देखकर कमरमें तरकस, हाथमें धनुष लेकर लक्ष्मणजी रघुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर क्रोधित हो चले ॥ २४२ ॥

रे खल का मारसि कपि भालू ❋ मोहिं विलोकु तोर मैं कालू ॥१॥
खोजत रहेउँ तोहिं सुतघाती ❋ आजु निपाति जुड़ावौं छाती ॥२॥

लक्ष्मणजी बोले-अरे दुष्ट! रीछ वानरोंको क्या मारता है? मुझे देख मैं तेरा काल हूँ ॥१॥ तब रावण बोला–अरे पुत्रको मारने वाले! मैं तुझे बहुत दिनोंसे ढूँढ़ता था सो आज तुझे मारकर छाती ठंढी करूँगा ॥ २ ॥

अस कहि छांड़ेसि बाण प्रचण्डा ❋ लक्ष्मण किय शरहति शतखंडा ॥३॥
कोटिन आयुध रावण डारे ❋ तिल समान प्रभु काटि निवारे ॥४॥

यह कह कर रावणने बड़े तीक्ष्ण बाण छोड़े लक्ष्मणजीने बाण मारकर उनके सौ खण्ड कर दिये ॥ ३ ॥ रावणने करोड़ों आयुध मारे, परन्तु लक्ष्मणजीने तिलके समान काट कर सबका निवारण कर दिया ॥ ४ ॥

पुनि निज बाणन्ह कीन्ह प्रहारा ❋ स्यन्दन भंजि सारथी मारा ॥५॥
शत शत शर मारे दश भाला ❋ गिरि शृंगन जनु प्रविशहिं व्याला ॥६॥

फिर लक्ष्मणजीने अपने बाण प्रहार किये तो रावणका रथ तोड़कर सारथी मार दिया ॥ ५ ॥ फिर सौ सौ बाण एक एक मस्तकमें मारे ये उसके शरीरमें ऐसे प्रवेश कर गये जैसे पर्वतके शृङ्गोंमें सर्प प्रवेश कर जाते हैं ॥ ६ ॥

पुनि शत शर मारे उर माहीं ❋ परेउ अवनि तनु सुधि कछु नाहीं ॥७॥
उठा प्रबल पुनि मूर्छा जागी ❋ छांड़ेसि ब्रह्मदत्त जो सांगी ॥८॥

फिर सौ बाण हृदयमें मारे जिससे रावण पृथ्वीपर गिर गया, शरीर की कुछ सुधि न रही ॥७॥ फिर मूर्छा जागनेसे बड़े वेगसे उठा और ब्रह्माजीकी दी हुई अमोघ शक्ति लक्ष्मणजीको मारी ॥८॥

छन्द–सो ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परयो वीर विकल उठाव दशमुख अतुलबल महिमा रही ॥
ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक शिर जिमि रजकनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावण जान नहिं त्रिभुवन धनी ॥ ३६ ॥

वह ब्रह्माजीकी दी हुई प्रचंड शक्ति लक्ष्मणजीके हृदयमें पूरी लगी जिससे वीर लक्ष्मणजी व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, तब रावण जाकर उठाने लगा परंतु लक्ष्मणजी न उठे यह अतुल बलकी

महिमा रावणके सम्मुख रही, जिनके ऊपर सम्पूर्ण ब्रह्मांड रजके समान रहता है उनको मूढ़ रावण उठाना चाहता है, यह नहीं जानता कि ये त्रिलोकीके धारण करनेवाले हैं ॥३६॥

दोहा-देखत धावा पवनसुत, बोलत वचन कठोर ॥
आवत तेहि उरमहँ हनेउ, मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥ २४३ ॥

देखते ही महावीरजी रावणको दुर्वाक्य कहते हुए दौड़े, तब रावणने उनके ऊपर आते ही बड़े वेगसे एक मुष्टिक छातीमें मारा ॥ २४३ ॥

जानु टेकि कपि भूमि न परेऊ * उठा सँभारि बहुरि रिश भरेऊ ॥१॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा * परेउ शैल जिमि वज्र प्रहारा ॥२॥

महावीरजी जानुके द्वारा पृथ्वी स्पर्शकी परंतु गिरे नहीं, फिर महाक्रोध कर सँभल कर उठे ॥ १ ॥ और उसके एक घूँसा मारा, जिससे जैसे पर्वत वज्रसे टूटकर गिरे उसी प्रकार गिर पड़ा ॥ २ ॥

मूर्छा गई बहुरि सो जागा * कपिबल विपुल सराहन लागा ॥३॥
धिक धिक बल पौरुष धिक मोही * जो तैं जियत उठा सुर द्रोही ॥४॥

मूर्छाके जानेसे रावणको चेत हुआ तब यह महावीरजीके बड़े बलकी सराहना करने लगा ॥ ३ ॥ उस समय महावीरजी बोले—अरे देवताओंके शत्रु ! जो तू मेरे हाथसे पिटकर भी जीता उठा सो मेरे बल पुरुषार्थको धिक्कार है ॥ ४ ॥

अस कहि कपि लक्ष्मण कहँ ल्यायो * देखि दशानन विस्मय पायो ॥५॥
कह रघुवीर समुझि जिय भ्राता * तुम कृतान्त भक्षक सुर त्राता ॥६॥

ऐसा कह कर महावीरजी लक्ष्मणको ले आये, यह देख कर रावणको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजी बोले-भाई ! बार बार शक्तिकी व्यथा नहीं होनी चाहिये, समझ देखो तुम तो कालके भक्षण करने वाले हो; अपने बलको स्मरण करो ॥ ६ ॥

सुनत वचन उठि बैठ कृपाला * गगन गई सो शक्ति कराला ॥७॥
पुनि कोदंड बाण गहि धाये * रिपु सन्मुख अति आतुर आये ॥८॥

तब लक्ष्मणजी यह वचन सुनकर शीघ्रतासे उठ बैठे और कराल शक्ति आकाशमें चली गयी ॥ ७ ॥ फिर बाण लेकर दौड़े और शीघ्रतासे शत्रुके सम्मुख आये ॥ ८ ॥

छन्द-आतुर बहोरि विभंजि स्यंदन मारि तेहि व्याकुल कियो ।
गिरयो धरणि दशकंधर विकल तनु बाण शत वेध्यो हियो ॥
सारथी रथ घालि दूसर ताहि लंका लइ गयो ।
रघुवीर बन्धु प्रतापपुञ्ज बहोरि प्रभु चरणन नयो ॥ ३७ ॥

शीघ्रतासे लक्ष्मणजीने रथको तोड़ और बाण मार कर उसे व्याकुल कर दिया; तब रावण पृथ्वीपर व्याकुल हो गिर पड़ा, क्योंकि सौ बाणोंसे उसका हृदय वेध दिया था। तब सारथी

१. सवैया—जो दशशीश महीधर ईसको बीस भुजा खुलि खेलत हारो। लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमें सुनि साहस भारो। बीर बड़ो बरदैंत बली अजहूँ जग जानत जासु पवारो। सो हनुमान हन्यो मुठिका गिरिगो गिरिराज ज्यों गाजको मारो।

उसे दूसरे रथमें डालकर लंकामें ले गया, रघुनाथजीके प्रतापी भाई आकर रघुनाथजीके चरणोंमें पड़े ॥ ३७ ॥

दोहा-वहां दशानन जागिकरि, करन लाग कछु यज्ञ ॥
जय चाहत रघुपति विमुख, काल विवश शठ अज्ञ ॥ २४४ ॥

वहां दशानन जागकर (चैत्र कृष्णदशमीके दिन) कुछ यज्ञ करने लगा, वह मूर्ख रघुनाथजीसे विमुख होकर भी जय चाहता है, क्योंकि कालके वश होनेसे मतिहीन हो गया है कहीं 'जायकर' पाठ है ॥ २४४ ॥

इहाँ विभीषण सब सुधि पाई * सपदि जाय रघुपतिहि सुनाई ॥१॥
नाथ करै रावण इक यागा * सिद्ध भये नहिं मरहि अभागा ॥२॥

यहां विभीषणने मंत्रियोंसे समाचार पाकर शीघ्रतासे जाकर रामजीसे कहा ॥ १ ॥ हे नाथ ! रावण एक यज्ञ करता है वह सिद्ध हो गया तो फिर वह अभागा नहीं मरेगा ॥ २ ॥

पठवहु नाथ वेगि भट बंदर * करहिं विध्वंस आव दशकंधर ॥३॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाये * हनुमदादि अंगद सब आये ॥४॥

हे नाथ ! शीघ्र ही वानरोंको भेजो, इसका यज्ञ विध्वंस कर दें जिससे रावण फिर लड़ने आवे ॥ ३ ॥ प्रातःकाल होते ही प्रभुने योद्धा पठाये, हनुमान, अंगदादि सब चले ॥ ४ ॥

कौतुक कूद चढ़े कपि लंका * पैठे रावण-भवन अशंका ॥५॥
जबहीं यज्ञ करत तेहि देखा * सकल कपिन भा क्रोध बिसेखा॥६॥

कौतुकसे वानर लंकामें कूदकर चढ़ गये और निडर हो रावणके घरमें प्रवेश किया ॥५॥ जब उसको यज्ञ करते देखा तो सब वानरोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६ ॥

रणते भाजि निलज गृह आवा * इहां आइ बक ध्यान लगावा ॥७॥
अस कहि अंगद मारेउ लाता * चितव न शठ स्वारथ मन राता ॥८॥

अरे निर्लज्ज ! रणसे भागकर चला आया और यहां आकर बगलेके समान ध्यान लगाये बैठा है ! ॥ ७ ॥ यह कहकर अङ्गदने लात मारी परन्तु वह देखा भी नहीं क्योंकि उसका मन स्वार्थमें लवलीन था ॥ ८ ॥

छन्द-नहिं चितव जब कपि कोप तब गहि दशन लातन मारहीं ।
धरि केश नारि निकारि बाहर तेऽपि दीन पुकारहीं ॥
तब उठा कोपि कृतान्तसम गहि चरण बानर डारहीं ।
यह बीच कपिन्ह विध्वंस कृतमख देखि मनमहँ हारहीं ॥ ३८ ॥

जब रावण नहीं देखा तब वानर दातोंसे काटते लातोंसे मारते हैं, फिर बाल पकड़ उसकी स्त्रियोंको बाहर खींच लाये। तब वे अत्यंत दीन होकर पुकारने लगीं । तब रावण कालके समान क्रोध करके उठा और चरण पकड़ वानरोंको पटकने लगा । इसी बीच अवसर पाकर वानरोंको यज्ञ विध्वंस करते देख रावण मनमें हार गया ॥ ३८ ॥

दोहा-मख विध्वंस करि कपि सकल, आये रघुपति पास ॥
चला दशानन क्रोध करि, छांड़ि जिवनकी आस ॥ २४५ ॥

सब वानर यज्ञ विध्वंस कर रघुपतिके पास आये तब रावण क्रोधकर जीनेकी आशा त्याग चला । भाव यह कि अबतक तो तनुसे हारा था अब यज्ञका विध्वंस देख मनसे भी हार गया क्योंकि यज्ञ नाशसे उसका नाश यज्ञदेवने कहा था इस कारण जीनेकी आशा छोड़ चला ॥२४५॥

चलत होहिं तेहि अशुभ भयंकर ❋ बैठहिं गृध्र उड़ाहिं शिरन पर ॥१॥
भयउ कालवश काहु न माना ❋ कहेसि बजावहु युद्ध निशाना ॥२॥

चलते समय रावणको भयंकर अपशकुन होते हैं गृध्र शिरपर बैठकर उड़ते हैं । भयंकर अशकुन होनेका भाव यह कि जब लड़ने जाता था तब अशकुन होते थे,परन्तु अब भय-कारी मृत्युसूचक अशकुन हुए ॥ १ ॥ काल वश हो गया था इससे किसीका कहना नहीं माना और आज्ञा दी कि युद्धके बाजे बजाओ ॥ २ ॥

चली तमीचर अनी अपारा ❋ बहु गज रथ पदचर अशवारा ॥३॥
प्रभु सन्मुख खल धावहिं कैसे ❋ शलभ समूह अनल कहँ जैसे ॥४॥

राक्षसोंकी अपार सेना चली; बहुत हाथी घोड़े, रथ, पैदल सवार चले॥३॥वे दुष्ट रघुनाथ जीके सन्मुख ऐसे दौड़ते हैं जैसे पतंग (अपने नाशके निमित्त) अग्निमें प्रवेश करते हैं॥४॥

इहां देव सब विनती कीन्ही ❋ दारुणविपति हमहिं यहि दीन्ही॥५॥
अब जनि नाथ खेलावहु एही ❋ अतिशय दुखित होति वैदेही ॥६॥

इहाँ देवताओंने रघुनाथजीसे विनती की हमें इस दुष्ट रावणने बड़ा दुःख दिया है ॥ ५ ॥ हे नाथ ! अब आप इसे मत खेलाइये, जानकीजी बहुत दुःखी होती हैं ॥ ६ ॥

देव वचन सुनि प्रभु मुसुकाना ❋ उठि रघुवीर सुधारेउ बाना ॥७॥
जटाजूट बाँधी दृढ़ माथे ❋ सोहत सुमन बीच बिच गाथे ॥८॥

रघुनाथजी देवताओंके वचन सुनकर मुसकाये और उठकर बाण सुधारने लगे । मुसकाने का भाव यह है कि देवता अपना दुःख तो नहीं कहते हैं किंतु जानकीजीको कहते हैं ॥ ७ ॥ जटासमूह कसकर माथे पर बांधा जिसके बीचमें गुथे हुए फूल शोभित होते हैं ॥ ८ ॥

अरुण नयन वारिद तनु श्यामा ❋अखिल लोक लोचन अभिरामा॥९॥
कटिपट परिकर कसेउ निषंगा ❋ कर कोदंड कठिन सारंगा ॥१०॥

लाल नेत्र जल भरे मेघके समान श्याम शरीर सब संसारके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले ॥ ९ ॥ कमरमें दुपट्टा बांधे, ऊपर तरकस कसे और हाथमें कठोर शार्ङ्गधनुष लिए ॥ १० ॥

छन्द–सारंग कर सुन्दर निषंग शिलीमुखाकर कटि कस्यो ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहि प्रभु शर चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥ ३९ ॥

हाथमें शार्ङ्गधनुष लिये, सुन्दर कमरमें तरकस (जिसमें बाण रहते हैं) बांधे जिनके भुज-दंड बड़े दृढ़ और मनोहर चौड़े हैं हृदयमें भृगुजीका चरण शोभित है । तुलसीदासजी कहते हैं कि जब प्रभु धनुष बाणके ऊपर कर फेरने लगे तब सारा ब्रह्मांड, दिशाओंके हाथी, कच्छप, शेष, पृथ्वी, सागर और पर्वत, कांपने लगे ॥ ३९ ॥

दोहा–हर्षे देव विलोकि छबि, वर्षहिं सुमन अपार ॥
जय जय प्रभु गुण ज्ञानबल, धाम हरण महि भार॥ २४६ ॥

देवता छबि देख प्रसन्न हुए और फूलोंकी वर्षा करने लगे, प्रभुकी जय उच्चारण करने लगे, जो गुण, ज्ञान और बलके धाम हैं, पृथ्वीका भार दूर करने वाले हैं ॥ २४६ ॥

इहिके बीच निशाचर अनी ❋ कसमसाति आई अति घनी ॥१॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा ❋ प्रलयकालके जिमि घनघट्टा ॥२॥

इसी समय राक्षसोंकी घनी सेना संकीर्ण होनेके कारण कसमसाती हुई आयी ॥ १ ॥ उसे देखकर रीछ वानर भी राक्षसोंके सम्मुख ऐसे चले जैसे प्रलयकालमें मेघ समूह चले हों ॥२॥

शक्ति शूल तलवार चमक्कहिं ❋ जनु दशदिशि दामिनी दमक्कहिं॥३॥
गज रथ तुरँग चिकार कठोरा ❋ गर्जत मनहुँ बलाहक घोरा ॥४॥

शक्ति, शूल और तलवार ऐसे चमकती हैं जैसे दशों दिशाओंमें विजली चमकती हो॥३॥ हाथी, रथ, घोड़ोंका कठिन चीत्कार ऐसे होता था मानो घोर मेघ गर्जते हैं ॥ ४ ॥

कपि लंगूर विपुल नभ छाये ❋ मनहुँ इन्द्रधनु उयउ सुहाये ॥५॥
उठी रेणु मानहुँ जल धारा ❋ बाण बुन्द भइ वृष्टि अपारा ॥६॥

कपियोंकी लम्बी-लम्बी पूँछें आकाशमें छा रही हैं वे मानों सुन्दर इन्द्रधनुष हैं ॥ ५ ॥ धूलिका उठना जलधाराके और बाणोंकी अपार वर्षा बूँदोंके समान है ॥ ६ ॥

दुहुँ दिशि पर्वत करहिं प्रहारा ❋ बज्र पात जनु बारहिं बारा ॥७॥
रघुपति कोपि बाण झरि लाई ❋ घायल भे निशिचर-समुदाई ॥८॥

दोनों ओरसे जो पर्वतकी मार करते हैं वही मानो बारंबार वज्रपात(बिजलीका गिरना)होता है ॥७॥ रघुनाथजीने क्रोधकर बाणोंकी वर्षा की जिससे सब राक्षस घायल हो गये ॥ ८ ॥

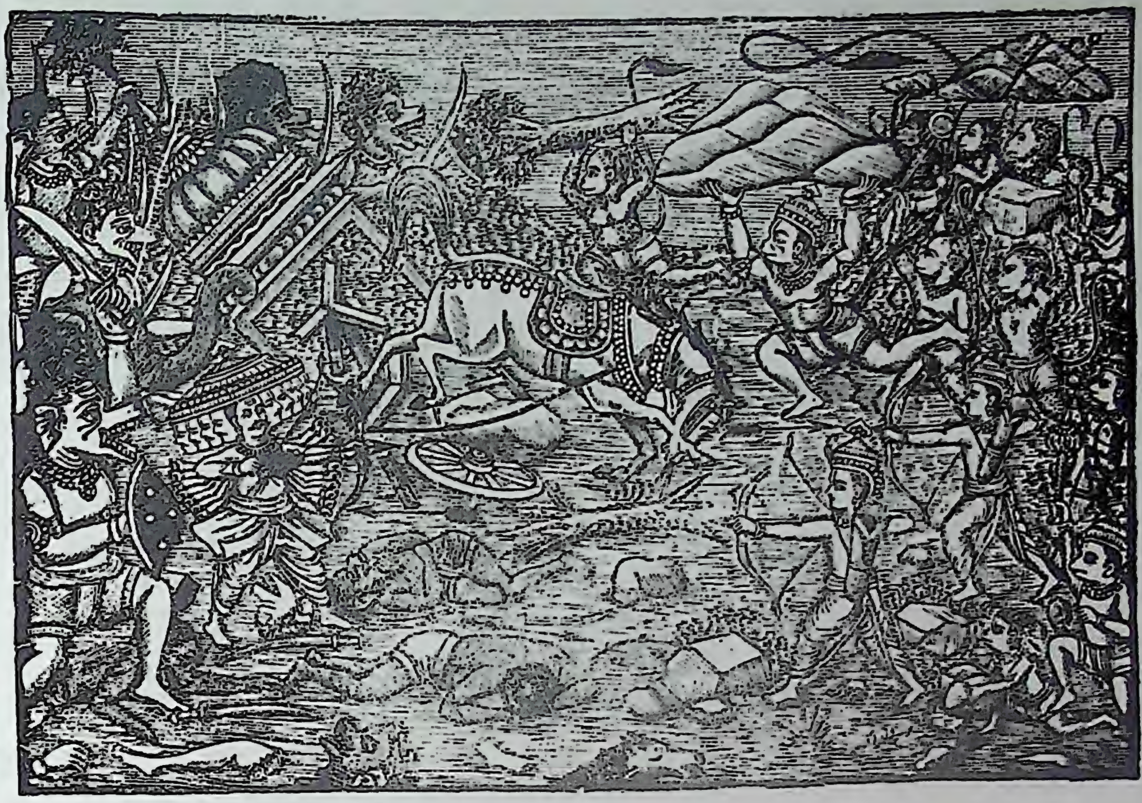
लागत बाण वीर चिक्करहीं ❋ घुर्मि घुर्मि अगणित महि परहीं ॥९॥
स्रवहिं शैल जनु निर्झरवारी ❋ शोणित सरि कादर भयकारी ॥१०॥

बाण लगते वीर चिंघाड़ते हैं और घूमकर अनगिनत पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं ॥ ९॥ राक्षसोंके शरीरसे रुधिर ऐसे बहता है मानो पर्वतोंसे झरना, यह रुधिरकी नदी कायरोंको भय दिखाती हुई बह चली ॥ १० ॥

छन्द–कादर भयंकर रुधिर–सरिता बाढ़ि परम अपावनी ।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी ॥
जलजन्तु गज पदचर तुरग रथ विविध वाहन को गनै ।
शर शक्ति तोमर परशु चाप तरंग चर्म कमठ घनै ॥ ४० ॥

कायरोंको भयदायक अपवित्र रुधिर नदी बड़े वेगसे बढ़ी भयंकर नदीमें दोनों दल दो किनारे हैं टूटे हुए रथ रेती हैं, पहिये भँवर हैं, हाथी घोड़े पैदल रथ आदि अनेक वाहन जो बहे जाते हैं वे ही जलजन्तु हैं। बाण, वर्छी, लोहबंदा, फरशा, धनुष लहरके समान और ढाल कछुएके समान हैं ॥ ४० ॥

राम रावण युद्ध



दोहा—वीर परहिं जनु तीर तरु, मज्जा बहु बह फेन ॥
कादर देखत डरहिं तेहि, सुभटनके मन चेन ॥ २४७ ॥

जो वीर गिरते हैं वे नदीके तीरके वृक्ष हैं, जो उसमें चरबी बहती है वही जलका फेन है इस घोर नदीको देखकर कायर डरते हैं और योद्धाओंके मनमें प्रसन्नता होती है ॥ २४७ ॥

मज्जहिं भूत पिशाच वेताला * केलि करहिं योगिनी कराला ॥१॥
काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं * एकते एक छीनि धरि खाहीं ॥२॥

उसमें आकर भूत पिशाच वैताल मज्जन करते हैं, कराल योगिनी आनन्द करती हैं॥१॥ कौए और गृध्र भुजा लेकर उड़ जाते हैं और एक एकसे छीन-छीन कर खा जाते हैं ॥ २ ॥

एक कहहिं ऐसिहु बहुताई * शठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥३॥
कहँरत भट घायल तट गिरे * जहँ तहँ मनहुँ अर्ध जल परे ॥४॥

एक बोले—अरे मूर्खो ! मुर्दोंकी ऐसी अधिकतामें भी तुम्हारा दरिद्र नहीं जाता ? ॥३॥ जहां तहां अनेक योद्धा घायल पड़े कहरते हैं, वे ऐसे दीखते हैं, मानो अर्धजलमें पड़े हैं अर्थात् जिस प्रकार प्राण निकलते समय आधे गंगामें और आधे बाहर हों ऐसे ही योद्धा रुधिरमें पड़े हैं॥४॥

खैंचहिं आंत गृध्र तट भये * जनु वंशी खेलत चित दये ॥५॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं * जिमि नावरि खेलहिं सरि माहीं॥६॥

तटपर गृध्र मरे राक्षसोंकी आंते खैंचते हैं, जैसे कोई नदीके किनारे वंशी खेलते हों। वंशी वह खेल है जो डोरमें कांटा बांध उसमें आटा लगाकर जलमें डालते हैं मछली आटेके धोखे उसे निगल जाती है, तब कांटा चुभ जाता है ॥ ५ ॥ उस नदीमें योद्धा मरे हुए बहे जाते हैं, उनपर पक्षी बैठे हुए ऐसे विदित होते हैं जैसे नदीमें नावपर चढ़ नावरि खेलते हैं ॥ ६ ॥

योगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं ❋ भूत पिशाच विविध विधि नंचहिं ॥७॥
भट कपाल करताल बजावहिं ❋ चामुण्डा नाना विधि गावहिं ॥८॥

योगिनी खप्पर भरकर रुधिर संचय करती हैं, भूत पिशाच अनेक प्रकारसे नाचते हैं॥७॥ योद्धाओंकी खोपड़ीसे ताल बजाते हैं, चामुण्डा अनेक प्रकारसे गाती हैं ॥ ८ ॥

जम्बुक निकर तहाँ कटकटहीं ❋ खाहिं अघाहिं हुआहिं दपटहीं ॥९॥
कोटिन रुण्ड मुण्ड बिनु डोलहिं ❋ शीश परे महि जय जय बोलहिं॥१०॥

वहां गीदड़ोंके समूह कट कट शब्द करते, खाते अघाते हुआते एक दूसरेको दपटते हैं (हुआना-हुआओ-हुआओ शब्द करना) ॥ ९ ॥ करोड़ों रुण्ड शिर विना मुण्डके डोलते हैं उनके शिर पृथ्वीमें पड़े 'जय जय' शब्द करते हैं ॥ १० ॥

छन्द-बोलहि जय जय रुण्ड मुण्ड प्रचंड बिनु शिर धावहीं ॥
परिणाम युद्ध अगुह्य जूझहिं सुभट सुरपुर पावहीं ॥
निश्चर वरूथ बिमर्दि गाजहिं भालु कपि दर्पित भये ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामशर निकरन हये ॥ ४१ ॥

मुंड जय जय शब्द बोलते और प्रचण्ड रुण्ड शिर विना जहां तहां दौड़ते हैं युद्धका परिणाम प्रकट है कि सम्मुख प्राण देनेसे स्वर्ग मिलता है इस कारण पराक्रमसे योद्धा जूझकर स्वर्गलोक पाते हैं। रीछ वानर भी बड़े मत्त होकर राक्षसोंके समूहोंका नाशकर गर्जते हैं। संग्रामभूमिमें अनेक योद्धा रघुनाथजीके बाणोंके मारे सोते हैं ॥ ४१ ॥

सोरठा-सप्त दिवस दिन राति, बाजेउ घंटा धनुष कर ॥
हरिपूजाकी भाँति, भये सुभट संहार सब ॥ १३ ॥

(यहांसे क्षे०)सात दिन सात रात्रि तक रघुनाथजीके धनुषका घण्टा बजता रहा,जैसे पूजाकी सामग्री सब ठाकुरजी पर चढ़ जाती है उसी प्रकार सब योद्धाओंका संहार हो गया ॥१३॥

दोहा-घंटाको परमान जब, सुनिये संगर बीच ॥
नाग अयुत दश लाख हय, रथी डेढ़शत मीच ॥ २४८ ॥

अब युद्धमें घन्टा बाजनेके शब्दकी संख्या करते हैं; जिस समय दश हजार हाथी सवार दश लाख घोड़सवार और डेढसौ रथी मर जायँ ॥ २४८ ॥

मरैं कोटि दश पैदर जबहीं ❋ नाचत इक कबंध रण तबहीं ॥१॥
नृत्य करहिं जब कोटि कबन्धा ❋ तब इक खेचर उठत निबंधा ॥२॥

जब दश करोड़ पैदल मर जाते हैं तब एक कबन्ध रणमें उठकर नाचता है॥१॥ इस प्रकार जब करोड़ कबन्ध नाचते हैं तब एक खेचर उठता है जो आकाशमें विना शिरके फिरता है ॥२॥

खेचर कोटि नचहिं निष्कंटा ❋ तब इक धनुपर बाजत घंटा ॥३॥

जब करोड़ खेचर उठते थे तब रघुनाथजीके धनुषका घण्टा बजता था ॥ ३ ॥

श्लोक-एवं सप्तदिनं नाशः स्वर्गे मर्त्ये रसातले ॥
आसीद् भूरि भटानां हि रामरावणसंगरे ॥ १ ॥

इस प्रकार सात दिन राम रावणके युद्धमें स्वर्ग मृत्यु तथा पाताललोकमें असंख्य वीरोंका नाश हो गया ॥ १ ॥

दोहा-हृदय विचारेसि दशवदन, भा निशिचर संहार ॥
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार ॥ २४९ ॥

तब रावण मनमें विचार करने लगा कि प्रायः सभी राक्षसोंका संहार हो गया, मैं अकेला हूँ और रीछ वानर बहुतसे हैं इस कारण अब मायाका विस्तार करूँ ॥ २४९ ॥

देवन प्रभुहिं पयादे देखा * उर उपजा अति क्षोभ बिसेखा ॥१॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा * हर्ष सहित मातलि लेइ आवा ॥२॥

देवता प्रभुको प्यादे देखकर हृदयमें बड़े क्षुभित हुए ॥ १ ॥ इन्द्रने तुरन्त अपना रथ भेज दिया, मातलि (इन्द्रका सारथी) बड़ी प्रसन्नतापूर्वक रथ ले आया। मातलिकी प्रसन्नता इस कारण हुई कि जब जब इन्द्र और रावणका युद्ध होता था तब तब इन्द्रकी हार होती थी, अब शूरशिरोमणि रघुनाथका सारथ्य पाकर प्रसन्न हुआ। मेघनादके मरनेसे देवता प्रसन्न हैं, निर्भय हो गये हैं, इस कारण रथ भेज दिया ॥ २ ॥

तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा * बिहँसि चढ़े कोशलपुर भूपा ॥३॥
चञ्चल तुरग मनोहर चारी * अजर अमर मानस गतिधारी ॥४॥

वह रथ बड़ा तेजवान् उज्ज्वल उपमारहित था, उस पर रघुनाथजी हँसकर चढ़े। हँसनेका कारण यह कि रामजीने विचारा, जब देवताओंने लंकाके सुभटोंको मरा देखा और रावणको अधमरा देखा तब रथ भेजा, पहिले रथ भेजनेका साहस न हुआ ॥ ३ ॥ उस रथमें चार चञ्चल घोड़े जुते थे, जो अजर अमर मनके समान वेगवाले थे (यह क्षेपक) है ॥ ४ ॥

रथारूढ रघुनाथहि देखी * धाये कपि बल पाय बिसेखी ॥५॥
सही न जाय कपिनकी मारी * तब रावण माया विस्तारी ॥६॥

रघुनाथजीको रथमें चढ़ा देख वानरोंका बल बढ़ गया और दौड़े ॥ ५ ॥ जब वानरोंकी मार रावणसे न सही गयी तब माया फैलायी ॥ ६ ॥

सो माया रघुवीरहि बाँची * सब काहू मानी करि साँची ॥७॥
देखी कपिन्ह निशाचर अनी * अनुजसहित बहु कोशल धनी ॥८॥

वह माया एक रघुनाथजीको छोड़कर सबने सच्ची जानी ॥ ७ ॥ कपियोंने क्या देखा कि निशाचरोंकी अपार सेना है उसमें राम लक्ष्मण भी अनेक हैं ॥ ८ ॥

छन्द-बहु राम लक्ष्मण देखि मर्कट भालु मन अति अप डरे।
जनु चित्र लिखित समेत लक्ष्मण जहँ सो तहँ चितवत खरे ॥
निज सेन चकित विलोकि हँसि शर चाप सजि कोशलधनी।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल मर्कट अनी ॥ ४२ ॥

बहुतसे राम लक्ष्मणको देखकर रीछ वानर मनमें बहुत डरे, जैसे कोई तस्वीर खैंच दी हो, उसी प्रकार लक्ष्मण सहित देखते रह गये। अपनी सेनाको चकित देख हँसके रघुनाथजीने धनुष चढ़ाकर एक पलमें एकही बाणसे माया नष्ट कर दी, जिससे सब वानर बड़े प्रसन्न हुए॥४२॥

दोहा-बहुरि राम सब तन चितै, बोले वचन गँभीर ॥
द्वन्द्व युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये सब बीर ॥ २५० ॥

फिर रघुनाथजी सब वानरोंकी ओर देखकर गम्भीरतायुक्त वचन बोले-हे वीरो ! तुम सब थक गये हो (अब एक स्थानमें खड़े होकर) हमारा और रावणका द्वंद्व युद्ध देखो ॥ २५० ॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा ❋ विप्र चरण पंकज शिर नावा ॥१॥
तब लंकेश क्रोध उर छावा ❋ गर्जत तर्जत सन्मुख आवा ॥२॥

फिर रघुनाथजीने यह कहकर रथ चलाया, ब्राह्मणोंके चरणकमलोंमें शिर नवाया ॥१॥ तब रावण हृदयमें बड़ा क्रोधकर गर्जता ललकारता रघुनाथजीके सम्मुख आया (और बोला ॥२॥

जीतेउ जे भट संयुगमाहीं ❋ सुनु तापस मैं तिनसम नाहीं ॥३॥
रावण नाम जगत यश जाना ❋ लोकपाल जेहि बन्दी खाना ॥४॥

हे तपस्वी ! सुनो जो योद्धा तूने युद्धमें जीते हैं, मैं उनके समान नहीं हूँ ॥ ३ ॥ मेरा रावण नाम है मेरे यशको जगत् जानता है कि लोकपाल (वरुणादिक) भी मेरे बन्दीखानेमें हैं॥४॥

खर दूषण विराध तुम मारा ❋ हतेउ व्याध इव वालि विचारा ॥५॥
निशिचर सुभट सकल संहारेउ ❋ कुम्भकर्ण घननादहि मारेउ ॥६॥

तुमने खर दूषण और विराधको मारा; व्याधके समान विचारे वालिको मारा ॥५॥ और भी अनेक योद्धा राक्षसोंका संहार किया, कुम्भकर्ण और मेघनादको भी मारा ॥ ६ ॥

आज वैर सब लेहुँ निबाहीं ❋ जो रणभूमि भागि नहिं जाहीं ॥७॥
आज करौं खलु काल हवाले ❋ परेउ कठिन रावणके पाले ॥८॥

आज सब वैर निबाह लूँगा, जो तुम रणभूमि छोड़कर भाग न जाओगे तो ॥७॥ निश्चय आज तुम्हें कालके हवाले कर दूँगा, अब कठिन रावणके पाले आ पड़े हो । कहीं 'खल' पाठ है वहां 'दुष्ट' अर्थ जानना ॥ ८ ॥

सुनि दुर्वचन काल वश जाना ❋ विहँसि वचन कह कृपानिधाना॥९॥
सत्य सत्य तव सब प्रभुताई ❋ जनि जल्पसि देखाउ मनुसाई॥१०॥

यह दुर्वचन सुनकर रावणको कालवश जान रघुनाथजी हँसकर बोले ॥ ९ ॥ सत्य है सत्य है तेरी प्रभुताई ऐसी ही है, परंतु प्रलाप क्यों करता है? वीरता दिखा ! अथवा जो कुछ तेरी सत्य प्रभुता है, हम सब देख लेंगे, वृथा बकवाद मत कर ॥ १० ॥

छन्द-जनि जल्पना करि सुयश नाशहि नीति सुनशठ करु क्षमा ।
संसारमहँ पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा ॥
इक सुमन प्रद इक सुमन फल इक फलै केवल लागहीं ।
इक कहहिं करहिं न करहिं कहि एक करहिं कहहिं न गावहीं॥४३॥

अरे वृथा बकवाद करके यशका नाश मत कर, रे मूर्ख ! क्षमाकर नीति सुन, संसारमें तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं-एक पाटलके समान जिसमें फूल लगता है फल नहीं इसी प्रकार वे कहते हैं करते नहीं । एक मनुष्य आमके समान होते हैं जो फूलता भी है और फलता भी है इसी प्रकार वे कहते और करते भी हैं और एक कटहरके समान हैं वह फलता है फूलता नहीं ऐसा ही वे कहते नहीं, करते ही हैं ॥ ४३ ॥

दोहा-राम वचन सुनि विहँसि कह, मोहि सिखावहु ज्ञान ॥
वैर करत तब नहिं डरे, अब लागत प्रिय प्रान ॥ २५१ ॥

रघुनाथजीके वचन सुनकर रावण हँसकर बोला-मुझे ज्ञान सिखाते हो ? तब तो वैर करते नहीं डरे अब प्राण प्यारे लगते हैं, इसीसे नीति कहते हो ? ॥ २९१ ॥

कहि दुर्वचन क्रुद्ध दशकंधर * कुलिश समान लाग छांड़े शर॥१॥
नानाकार शिलीमुख धाये * दिशि अरु विदिशि गगन महि छाये॥२॥

इस तरह दुर्वाक्य कहकर रावण क्रोधित हो वज्रके समान बाण छोड़ने लगा॥ १ ॥ अनेक प्रकारके बाण चले वे दिशा, विदिशा, पृथ्वी आकाशमें छा गये ॥ २ ॥

अनल बाण छाँड़े रघुवीरा * क्षणमहँ जरे निशाचर तीरा ॥३॥
छाँड़ेसि तीर शक्ति खिसियाई * बाण संग प्रभु फेरि पठाई ॥४॥

रघुनाथजीने अग्निबाण छोड़े, जिन्होंने क्षणमात्रमें रावणके तीर भस्म कर दिये ॥ ३ ॥ तब रावणने खिसियाकर (क्रोधसे) तीक्ष्ण शक्ति मारी, वह रघुनाथजीने बाणके साथही रावणके पास भेज दी ॥ ४ ॥

कोटिन चक्र त्रिशूल पँवारे * तिल समान प्रभु काटि निवारे ॥५॥
विफल होहि रावणशर कैसे * खलके सकल मनोरथ जैसे ॥६॥

रावणने करोड़ों त्रिशूल मारे, किन्तु रघुनाथजीने तिल समान उन्हें काट डाला ॥ ५ ॥ रावणके बाण कैसे निष्फल होते हैं जैसे दुष्टोंके मनोरथ निष्फल हो जाते हैं ॥ ६ ॥

तब शत बाण सारथिहि मारेसि * परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥७॥
राम कृपा करि सूत उठावा * तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा ॥८॥

तब रावणने (महाक्रोध कर) सौ बाण मातलिके मारे; वह 'जयराम' ऐसा कह पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥७॥ रघुनाथजीने कृपाकर (तुरंत) सूतको उठाया, तब प्रभुको महाक्रोध हुआ ॥ ८ ॥

छन्द-भये क्रुध युद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोण सायक कसमसे ।
कोदंड धुनि सुनि चण्ड अति मनुजाद भय मारुत ग्रसे ॥
मन्दोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे ॥
चिक्करहिं दिग्गज दशन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे ॥४४॥

जब रघुनाथजी युद्धमें रौद्ररसको प्राप्त हुए तब तरकसमें बाण स्वयं कसमसाने लगे अत्यंत प्रचंड धनुषका शब्द सुनकर राक्षस भयरूपी वायुसे ग्रसित हो गये, अर्थात् व्याकुल हो गिर गये मन्दोदरीका हृदय कांपा, कच्छप, पृथ्वी, पर्वत व्याकुल हो गये, दिग्पाल दांतोंसे पृथ्वीको पकड़ कर चिंघाड़ते हैं, यह कौतुक देख देवता हँसे कि अब रावणका वध होगा ॥ ४४ ॥

दोहा-तान्यो चाप श्रवण लगि, छांड़े विसिख कराल ॥
रघुनायक सायक चले, लहलहात जनु व्याल ॥ २९२ ॥

रघुनाथजीने कानतक धनुष चढ़ाकर बड़े तीक्ष्ण बाण छोड़े वे रघुनाथजीके बाण सर्पोंके समान लहलहाते चले ॥ २९२ ॥

चले बाण सपक्ष जनु उरगा * प्रथमहिं हते सारथी तुरगा ॥१॥
रथ विभंजि हति केतु पताका * गर्जा अति अन्तर बल थाका ॥२॥

वे बाण ऐसे चले जैसे सपक्ष सर्प पहिले ही सारथी और घोड़े मार दिये॥ १॥ रथको तोड़ केतु पताकाओंको चूर्ण कर दिया; तब रावण गर्जा तो परंतु उसका आंतरिक बल थक गया ॥२॥

तुरत आन रथ चढ़ि खिसियाना * छांड़सि अस्त्र शस्त्र विधि नाना ॥३॥
विफल होहिं सब उद्यम ताके * जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥४॥

तब रावण खिसियाकर दूसरे रथपर बैठा और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र छोड़े ॥ ३ ॥ परंतु रावणके सब उद्यम इस प्रकारसे निरर्थक होते हैं जैसे पराये द्रोहियोंके मनमें कार्य सिद्ध नहीं होते ॥ ४ ॥

तब रावण दश शूल चलाये * वाजि चारि महि मारि गिराये ॥५॥
तुरत उठाय कोपि रघुनायक * छांड़े अति कराल बहु सायक ॥६॥

तब रावणने दश त्रिशूल चलाये; जिससे चारों घोड़े पृथ्वीमें गिरा दिये ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजीने कृपादृष्टि से घोड़े उठाकर क्रोधकर अति कराल अनेक बाण छोड़े ॥ ६ ॥

रावण शिर सरोज वनचारी * चले रघुनाथ शिलीमुख धारी ॥७॥
दश दश बाण भाल दश मारे * निसरि गये चले रुधिर पनारे ॥८॥

रघुनाथजीके बाण रावणके शिररूपी कमलोंके वनमें भौंरोंके समान चले ॥ ७ ॥ दश दश बाण रावणके दशों शिरोंमें मारे, जिससे रुधिर पनारे बहने लगे ॥ ८ ॥

स्रवत रुधिर धावा बलवाना * प्रभु पुनि कृत शर धनु सन्धाना ॥९॥
तीस तीर रघुवीर पँवारे * भुजन समेत शीश महि डारे ॥१०॥

रुधिर चुवाते ही वह बलवान् फिर रघुनाथजी पर दौड़ा, उसे देखते ही फिर रघुनाथजीने धनुष चढ़ाया॥९॥ रामजीने तीस बाण मारे और भुजाओं समेत रावणके शिर पृथ्वी पर गिरा दिये॥१०॥

काटत ही पुनि भये नवीने * राम बहोरि भुजा शिर छीने ॥११
कटत झटिति पुनि नूतन भये * प्रभु बहु बार बाहु शिर हये ॥१२॥

काटते ही फिर नये हो गये रघुनाथजीने फिर भुजा और शिर काट दिये ॥११॥ काटते ही फिर तत्काल नये हो गये फिर रघुनाथजीने अनेक बार बाहु शिर काट दिये ॥ १२ ॥

पुनि पुनि प्रभु काटहिं भुजवीशा * अति कौतुकी कोशलाधीशा ॥१३॥
रहे छाय नभ अरु शिर बाहू * मानहुँ अमित केतु अरु राहू ॥१४॥

बड़े कौतुकी प्रभु रघुनाथजी बार बार भुजा और शिर काटते हैं॥१३॥ आकाशमें शिर और बाहु छा रहे हैं, मानो अनेक केतु और राहु हैं (राहु स्थानमें शिर, केतु स्थानमें बाहु है) ॥१४॥

छन्द-जनु राहु केतु अनेक नभपथ स्रवत शोणित धावहीं ।
रघुवीर तीर प्रचण्ड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥
इक एक शर शिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं ।
जनु कोपि दिनकर करनिकर जहँ तहँ विधुन्तुद पोहहीं ॥४५॥

मानो जहां तहां राहु और केतु अनेक आकाश मार्गमें रुधिर चुवाते धावमान होते हैं, रघुनाथजीके प्रचंड बाण उसमें लगते हैं जिससे कि वे पृथ्वीपर नहीं गिरने पाते; एक एक बाणमें

अनेक शिर छेद रहे हैं वे आकाशमें उड़ते हुए इस प्रकार शोभायमान होते हैं, मानो सूर्यने कोप करके अपनी किरणमें अनेक (राहुओंको) गुथ लिया है ॥ ४५ ॥

दोहा-जिमि जिमि प्रभु हर तासु शिर, तिमि तिमि होहिं अपार ॥
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥ २५३ ॥

जैसे जैसे प्रभु उसके शिर काटते हैं वैसे वैसे अनेक हो जाते हैं, जैसे विषयके सेवन करनेसे नित्य नवीन काम बढ़ता जाता है वा कामना बढ़ती है ॥ २५३ ॥

दशमुख देखि शिरनकी बाढ़ी * बिसरा मरण भई रिस गाढ़ी ॥१॥
गरजा मूढ़ महा अभिमानी * धायउ दशहु शरासन तानी ॥२॥

रावण अपने शिरोंका बढ़ना देखकर मरना भूल गया और बड़ा क्रोधित हुआ ॥ १ ॥ महा अभिमानी मूर्ख रावण गर्जकर दशों धनुष तानकर रघुनाथजीपर दौड़ा ॥ २ ॥

समर भूमि दशकन्धर कोपा * बरषि बाण रघुपति रथ तोपा ॥३॥
दण्ड एक रथ देखि न परेऊ * जनु निहार महँ दिनकर दुरेऊ ॥४॥

जब रणभूमिमें रावणने क्रोध किया तब बाण बरसाकर रघुनाथजीका रथ ढक दिया ॥ ३ ॥ एक घटी तो रथ दीखा ही नहीं, जैसे कुहरेमें सूर्य छिप जाता है ॥ ४ ॥

हाहाकार सुरन्ह सब कीन्हा * तब प्रभु कोपि धनुष कर लीन्हा॥५॥
शर निवारि रिपुके शिर काटे * ते दिशि विदिशि गगन महि पाटे॥६॥

सब देवताओंने हाहाकार किया;उस समय प्रभुने क्रोध करके धनुष हाथमें लिया ॥५॥ रावणके शिर निवारण कर उसके शिर काटे और उनसे दिशा विदिशा और आकाश पृथ्वी भर गये॥६॥

काटे शिर नभमारग धावहिं * जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥७॥
कहँ लक्ष्मण हनुमन्त कपीशा * कहँ रघुवीर कोशलाधीशा ॥८॥

कटे हुए शिर आकाशमार्गमें धावते हैं और जय जय शब्द करके डर उपजाते हैं॥७॥और इस प्रकार कहते हैं कि लक्ष्मण,हनुमान्,सुग्रीव, कहां हैं? और अयोध्याके राजा राम कहां हैं॥८॥

छन्द-कहँ राम कहि शिर निकर धावहिं देखि मर्कट भजि चले ।
संधानि धनु रघुवंशमणि तब शरनि शिर बेधे भले ॥
शिरमालिका गहि कालिका तहँ वृन्द वृन्दनि बहु मिलीं ।
करि रुधिरसरि मज्जन मनहुँ संग्रामवट पूजन चलीं ॥ ४६ ॥

रघुनाथजी कहां हैं ? यह कहकर शिर समूह दौड़ते हैं, यह देख वानर भाग चले तब रघुनाथजीने बाण संधान करके उन शिरोंके मुख अच्छे प्रकार वेध दिये । भगवती कालिका उन शिरोंकी माला बनाकर योगिनियोंसे मिलीं, तब ऐसी शोभा पाती हैं मानो रुधिरकी नदीमें स्नान कर संग्रामवटका पूजन करने जाती हैं, अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियाँ त्रिरात्रव्रत कर वट पूजने जाती हैं वैसे ही चलीं ॥ ४६ ॥

दोहा-पुनि रावण अति क्रोध करि, छांड़ी शक्ति प्रचण्ड ॥
सन्मुख चली विभीषणहि, मनहु कालको दंड ॥ २५४ ॥

फिर रावणने महाक्रोध करके तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, वह विभीषणके सम्मुख इस तरह चली मानो कालका धनुष है॥ २९४॥

आवत देखि शक्ति वर धारा * प्रणतारति हरि विरद सँभारा ॥१॥
तुरत विभीषण पाछे मेला * सन्मुख राम सह्यो सो सेला ॥२॥

तीक्ष्ण धारयुक्त शक्ति आती देख दीन रक्षक रघुनाथजीने अपना शरणागति वाना सँभाला जो विभीषणसे कहा था-"जौ सभीत आवा शरणाई । रखिहौं ताहि प्राणकी नाँई" सो इस बातसे पूरा करते हैं ॥ १ ॥ तुरंत विभीषणको तो पीछे ढकेल दिया और अपने सम्मुख वह सेल सहा ॥ २ ॥

लगी शक्ति मूर्छा कछु भई * प्रभुकृत खेल सुरन विकलई ॥३॥
देखि विभीषण प्रभु श्रम पायउ * गहिकर गदा क्रोध करि धायउ ॥४॥

शक्ति लगनेसे कुछ मूर्छा हुई प्रभुने तो एक खेल किया, देवता व्याकुल हो गये ॥ ३ ॥ जब विभीषण ने देखा कि रघुनाथजीको श्रम हुआ तब गदा लेकर क्रोधसे दौड़ा ॥ ४ ॥

रे अभाग्य शठ मन्द कुबुद्धे * तैं सुर नर मुनि नाग विरुद्धे ॥५॥
सादर शिव कहँ शीश चढ़ाये * एक एकके कोटिन पाये ॥६॥

और बोला-रे भाग्यहीन मूर्ख मन्दबुद्धि ! तूने देवता, नर, मुनि, नाग सबसे ही विरोध किया है ॥ ५ ॥ भगवान् शिवजीको आदरसे जो शिर चढ़ाये हैं उसीसे एक एकके करोड़ पाये हैं ॥ ६ ॥

तेहि कारण खल अब लगि बांचा * अब तव काल शीश पर नाचा ॥७॥
राम विमुख शठ चहसि संपदा * अस कहि हनेसि मांझ उर गदा ॥८॥

इसी कारण रे दुष्ट ! अबतक बचा है, परन्तु अब तेरा काल शिर पर नाचा ॥ ७ ॥ मूर्ख रामजीसे विमुख संपदा चाहता है, ऐसा कहकर उसके हृदयमें विभीषणने गदा मारी ॥८॥

छन्द-उर मांझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो ।
दशवदन शोणित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भरयो ॥
दोउ भिरे अतिबल मल्लयुद्ध विरुद्ध इक एकहि हने ।
रघुवीर बल गर्वित विभीषण घात नहि ताको गने ॥ ४७ ॥

हृदयमें घोर कठोर गदा प्रहार लगनेसे रावण पृथ्वीमें गिर पड़ा, दशों मुखसे रुधिर चुवाता हुआ फिर सँभल कर क्रोधमें भरकर दौड़ा,दोनों बलवान मल्लयुद्ध करने लगे,एकको एक मारने लगा । रघुनाथजीके बलसे दर्पित होकर विभीषण रावणकी मार कुछ नहीं गिनता है, किंतु उसे मारता है भाव यह है कि रावणने विचारा कि विभीषण भक्त है इसके शरीर स्पर्शसे चित्त शुद्ध हो जायगा, तब विभीषणसे कहा तू वीर नहीं वैरागी है । तब विभीषणने अस्त्र डालकर कहा यदि मेरी वीरतामें सन्देह है तो मल्ल युद्ध कर देखो, यह कह दोनों आयुध छोड़कर मल्लयुद्ध करने लगे । कहीं " घालि नहीं ताको गनै" पाठ है ॥ ४७ ॥

दोहा–उमा विभीषण रावणहिं, सन्मुख चितव कि काउ ॥
लरत सो काल समान अब, श्रीरघुवीर प्रभाउ ॥ २५५ ॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! विभीषण कभी रावणके सामने देख भी नहीं सकता था; वह अब कालके समान लड़ता है यह रामचन्द्रजीका प्रताप है ॥ २५५ ॥

देखा श्रमित विभीषण भारी * धायो हनूमान गिरि धारी ॥१॥
रथ तुरंग सारथी निपाता * हृदय मांझ मारेउ तेहि लाता ॥२॥

विभीषणको बहुत थकित देख महावीर पर्वत लेकर रावणके ऊपर दौड़े ॥ १ ॥ और उसके रथ, घोड़े तथा सारथी नाश करके रावणकी छातीमें लात मारी ॥ २ ॥

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता * गयउ विभीषण जहँ जन त्राता ॥३॥
पुनि रावण तेहि हतेउ प्रचारी * चलेउ गगन कपि पूछ पसारी ॥४॥

लात लगनेसे रावण का शरीर कांपने लगा; परन्तु खड़ा रहा विभीषण रघुनाथजीके पास चला आया ॥ ३ ॥ इधर रावणने ललकार कर कपिको मारा तब महावीरजी पूँछ पसार कर आकाशको उड़ गये ॥ ४ ॥

गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना * पुनि नभ भिरेउ प्रबल हनुमाना ॥५॥
लरत अकाश युगल सम योधा * हनत एक एकहि करि क्रोधा ॥६॥

पूँछ पकड़ कर रावण कपिके साथ उड़ गया, फिर प्रबल वेगसे आकाशमें हनुमानजी युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ आकाशमें दोनों समान योद्धा लड़ते हैं क्रोधकर एक दूसरेको मारते हैं ॥६॥

शोभित नभ छलबल बहु करहीं * कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं ॥७॥
बुधि बल निशिचर परै न पारा * तब मारुतसुत प्रभुहि सँभारा ॥८॥

दोनों आकाशमें युद्ध करते अनेक प्रकार छलबल करते ऐसे शोभित होते हैं मानो काले पर्वत और सुमेरु पर्वतसे युद्ध होता है ॥ ७ ॥ जब बुद्धि, बलसे राक्षसोंसे पार न पाया तब महावीरजीने रघुनाथजीका ध्यान किया ॥ ८ ॥

छन्द–सँभारि श्रीरघुवीर धारि प्रचारि कपि रावण हन्यो ।
महिपरत पुनि उठि लरत देवन युगल कहँ जय जय भन्यो ॥
हनुमन्त संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रणमत्त रावण सकल सुभट प्रचण्ड भुजबल दलमले ॥ ४८ ॥

श्री रघुनाथजीका स्मरण कर कपिने ललकार कर रावणको मारा; वह पृथ्वीमें गिरा और फिर उठकर लड़ने लगा, तब, देवताओंने 'जय जय' शब्द कह दोनोंकी बड़ाई की (यदि देवता यथार्थ न बोलें तो स्वर्गसे गिर पड़ें) महावीरजीको पीड़ित देख रीक्ष वानर सब क्रोधसे आतुर हो रावणके पास दौड़े परन्तु रावण ऐसा रणमत्त हो रहा था कि अनेक योद्धा वानरोंको अपने भुजबलसे मल डाला ॥ ४८ ॥

दोहा–राम प्रचारे वीर सब, धाये कीश प्रचण्ड ॥
कपिदल प्रबल विलोकि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड ॥ २५६ ॥

जब रघुनाथजीने वानरोंको प्रचारा कि वीरो! मार लो, तो ललकार सुनकर वे बड़ी शीघ्रतासे रावण पर दौड़े, तब तो कपिदलको प्रबल देखकर रावणने पाखंड प्रकट किया॥२५६॥

अन्तर्धान भयो क्षण एका * पुनि प्रगटेसि खलरूप अनेका ॥१॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते * जहँ तहँ प्रगट दशानन तेते ॥२॥

वह दुष्ट क्षण मात्र तो अन्तर्धान रहा, फिर अनेक रूप होकर प्रकट हुआ ॥ १ ॥ रामचंद्रजीके कटक(सेना) में जितने रीछ वानर थे, उतने ही रावण जहां तहां प्रकट हो गये॥२॥

देखे कपिन अमित दशशीशा * भागे भालु बिकल भट कीशा ॥३॥
चले बलीमुख धरहिं न धीरा * त्राहि त्राहि लक्ष्मण रघुवीरा ॥४॥

जब वानरोंने अनेक रावण देखे तब योद्धा रीछ वानर, व्याकुल होकर भागने लगे ॥३॥ धैर्य नहीं रहा और कहने लगे, हे लक्ष्मण रघुनाथजी! रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ४ ॥

दश दिशि कोटिन धावहिं रावन * गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥५॥
डरे सकल सुर चले पराई * जयकी आश तजहु अब भाई ॥६॥

दशों दिशाओंमें करोड़ों रावण दौड़ते हैं, घोर कठोर भयंकर शब्दसे गर्जते हैं ॥५॥ सब देवता घबड़ाकर भाग चले और बोले कि भाई! अब जीतने की आशा त्याग दो ॥ ६ ॥

सब सुर जिते एक दशकंधर * अब बहु भये तकहु गिरिकंदर ॥७॥
रहे विरंचि शम्भु मुनि ज्ञानी * जिन जिन प्रभु महिमा कछु जानी॥८॥

एक ही रावणने सब देवता जीत लिये थे अब अनेक हो गये; भाई, गिरि कंदरा ताको अर्थात् यहां से भागो ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, शिवजी, और ज्ञानी मुनि स्थित रहे, जिन जिनने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी ॥ ८ ॥

छन्द–जानेउ प्रताप ते रहेउ निर्भय कपिन रिपु मानेउ फुरे ।
दल विचल मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे ॥
हनुमन्त अंगद नील नल बलवन्त अति रण बांकुरे ।
मर्दहिं दशानन कोटि कोटिन कपट भूभट आंकुरे ॥ ४९ ॥

जिन्होंने प्रताप जाना था वे निर्भय रहे, कपियोंने सत्य ही जाना कि रावण बहुतसे हो गये हैं, इससे मर्कटोंमें हलचल मच गयी और सब कहने लगे कि हे कृपालु! भयसे दुःखी हुए हम लोगोंकी रक्षा करो। हनुमान, अङ्गद, नील, नल, आदि जो बड़े वीर भट हैं, वे कपटरूपी भूमिमें उत्पन्न हुए रावणकी कोटि संख्याको मल डालते हैं ॥ ४९ ॥

दोहा–सुर वानर देखे विकल, हँसे कोशलाधीश ॥
साजि शरासन निमिष महँ, हरे सकल दशशीश ॥ २५७ ॥

देवता तथा वानरोंको व्याकुल देख रघुनाथजी हँसे और अपना धनुष सजाकर क्षणमात्रमें सब रावणोंको हर लिया ॥ २५७ ॥

प्रभु क्षणमहँ माया सब काटी * जिमि रवि उदय जाय तम फाटी॥१॥
रावण एक देखि सुर हर्षे * विपुल सुमन पुनि प्रभु पर वर्षे ॥२॥

रघुनाथजीने क्षण मात्रमें सब माया काट दी; जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है॥१॥ तब एक रावण देखकर देवता प्रसन्न हुए और रघुनाथजीके ऊपर बहुतसे फूल बरसाये ॥ २ ॥

भुज उठाय रघुपति कपि फेरे * फिरे एक एकनि सब टेरे ॥३॥
प्रभुबल पाय भालु कपि धाये * तरल तमकि संयुग महि आये॥४॥

तब रघुनाथजीने भुजा उठाकर कपियोंको फेरा, तब एक दूसरेके बुलानेसे लौटे ॥३॥ रघुनाथजी का बल पाकर रीछ वानर दौड़े और बड़े वेगसे तमक कर युद्ध भूमिमें आये ॥ ४ ॥

करत प्रशंसा देवन देखे * भयउँ एक मैं इनके लेखे ॥५॥
शठहु सदा तुम मोर मरायल *अस कहि कोपि गगन पथ धायल॥६॥

रावणने देखा कि देवता इस बातकी प्रशंसा करते हैं कि रावण आपकी कृपासे एक रह गया तो कहने लगा मैं इनके लेखे एक हो गया हूँ ॥ ५ ॥ अरे मूर्खो ! सदा तुम मेरी मार खाते आये हो ऐसा कहकर क्रोधकर आकाश मार्ग को दौड़ा ॥ ६ ॥

हाहाकार करत सुर भागे * शठहु जाहु कहँ मोरे आगे ॥७॥
देखि विकल सुर अंगद धावा * कूदि चरण गहि भूमि गिरावा ॥८॥

देवता हाहाकार शब्द करते भागे तब रावण बोला-मूर्खो मेरे आगेसे कहां जा सकते हो ? ॥ ७ ॥ अङ्गदजी देवताओंको व्याकुल देख दौड़े और कूदकर चरण पकड़ रावणको पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ८ ॥

छन्द-गहि भूमि पाऱ्यो लात माऱ्यो बालिसुत प्रभुपहँ गयो ।
संभारि उठि दशकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो ॥
करि दाप चाप चढ़ाय दश संधानि शर बहु वर्षई ।
किये सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हर्षई ॥ ५० ॥

पकड़ कर पृथ्वीमें गिराके लात मार अंगद रघुनाथजीके पास गये, फिर रावण सँभाल कर उठा और बड़े कठोर शब्दसे गर्जा, बड़े घमंडसे दशों धनुष चढ़ाके अनेक शरवर्षण करने लगा और सब योद्धाओंको व्याकुल कर अपना बल देख प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥

दोहा-तब रघुपति लंकेशके, शीश भुजा शर चाप ॥
काटे भये बहोरि जिमि, कर्म मूढ़के पाप ॥ २५८ ॥

तब रघुनाथजीने रावणके शिर, भुजा, धनुष और बाण काट डाले, वे फिर वैसे के वैसे हो गये जैसे मूर्खोंके पापमय कर्म अधिक बढ़ते जाते हैं। अथवा जैसे तीर्थपर किये हुए पाप नये हो जाते हैं। अथवा जैसे तीर्थके किये पाप दिन दिन बढ़ते हैं ॥ २५८ ॥

शिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी * भालु कपिन रिसि भई घनेरी ॥१॥
मरत न मूढ़ कटे भुज शीशा * धाये कोपि भालु अरु कीशा ॥२॥

शत्रुके शिर भुजाओंकी बढ़ती देख रीछ वानरों को बड़ा क्रोध हुआ ॥ १ ॥ कहने लगे यह मूर्ख भुजा शिर काटनेसे भी नहीं मरता, यह विचार रीछ वानर महाक्रोध कर दौड़े ॥ २ ॥

बालितनय मारुति नल नीला * द्विविद मयंद महाबल शीला ॥३॥
विटप महीधर करहिं प्रहारा *सोइ गिरि तरु गहि कपिन सो मारा॥४॥

महाबली अंगद, महावीर, नल, नील, द्विविद ये सब योद्धा॥३॥वृक्ष और पर्वतोंका प्रहार करते हैं और रावण भी उन्हींके मारे वृक्षादिकोंको ले उनको मारता है ॥ ४ ॥

एक नखन रिपु वपुष विदारी * भागि चलहिं एक लातन मारी ॥५॥
तब नल नील शिरन चढ़ि गये * नखनि ललाट विदारत भये ॥६॥

एक नखोंसे उसके शरीरको विदीर्ण करते हैं, एक लात मारकर भाग जाते हैं ॥५॥ तब नल नील रावणके शिरपर चढ़ गये और नखोंसे मस्तक विदीर्ण करने लगे,भाव यह कि ये अग्निके अंश हैं, सो रावणकी मृत्यु माथा विदीर्ण करके देखते हैं कि किस प्रकार मरेगा? अथवा इन्होंने सुन रखा था कि रावणकी मृत्यु नर वानरोंके हाथ है,उसका निश्चय करनेको माथा देखते हैं॥६॥

रुधिर विलोकि सकोप सुरारी * तिनहिं गहनको भुजा पसारी ॥७॥
गहे न जाहिं करनपर फिरहीं * जनु युग मधुप कमलवन चरहीं ॥८॥

रुधिर देखकर रावणने बड़ा क्रोध किया और उन दोनोंको पकड़नेको भुजा फैलायी ॥७॥ ये दोनों पकड़े नहीं जाते हाथोंपर फिरते हैं मानो दो भौंरे कमल वनमें घूम रहे हैं ॥ ८ ॥

कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी * महि पटकत भगे भुजा मरोरी ॥९॥
पुनि सकोप दशधनु कर लीन्हे * शरन मारि घायल कपि कीन्हे॥१०॥

फिर रावणने क्रोधकर बड़ी कूदफांद करनेके पश्चात उन्हें पकड़ लिया; परन्तु पृथ्वी पर पटकते समय वे भुजा मरोड़के भागे ॥ ९ ॥ फिर क्रोधकर दशों हाथमें दश धनुष लेकर कपियोंको बाण मार व्याकुल कर दिया ॥ १० ॥

हनुमदादि मूर्छित कर बन्दर * पाय प्रदोष हर्ष दशकन्धर ॥११॥
मूर्छित देखि सकल कपि वीरा * जाम्बवन्त धावा रणधीरा ॥१२॥

हनुमदादि वानरोंको मूर्छित कर रात्रिका समय पाकर रावण (बहुत) प्रसन्न हुआ ॥ ११ ॥ यहां सब वीर वानरोंको मूर्छित देख रणधीर जाम्बवन्त दौड़ा ॥ १२ ॥

संग भालु भूधर तरुधारी * मारन लगे प्रचारि प्रचारी ॥१३॥
भयउ क्रुद्ध रावण बलवाना * गहि पद महि पटकै भट नाना॥१४॥

सङ्गमें रीछ वृक्ष और पर्वतोंको धारण कर चले और ललकार ललकार कर मारने लगे ॥ १३ ॥ तब बलवान रावण भी बड़ा क्रोधित हो चरण पकड़ पकड़ अनेक योद्धाओंको पृथ्वीपर पटकने लगा ॥ १४ ॥

देखि भालुपति निजदल घाता * तासु हृदय महँ मारेउ लाता ॥१५॥

जब जाम्बवन्तने अपना दल नष्ट होते देखा तो रावणके हृदयमें एक लात मारी ॥ १५ ॥

छन्द-उर लात घात प्रचण्ड लागत बिकल रथते महि गिरा ।
गहि भालु बीसहु मनहुकर कमलनि बसे निशि मधुकरा ॥
मूर्छित बहोरि विलोकि पद हति भालुपति प्रभुपहँ गयो ।
निशि जानि स्यन्दन घालि तेहि तब सूत यतन करत भयो ॥५१॥

रावण हृदयमें कठोर लात लगनेसे मूर्छित हो रथसे गिर पड़ा और काले रीछोंको

जो पटकनेके लिये मुट्ठीमें पकड़े था, उसकी मुट्ठीमें ऐसे शोभित होते हैं मानो रातको कमल मूँदनेसे भौंरे उसमें फँस कर रह गये हों, उसे मूर्छित देख जाम्बवन्त एक लात और मारकर रघुनाथजीके पास चले आये। रात जान सारथी दूसरे रथमें रावणको बैठाकर लंकामें ले जाकर (चैतन्य करनेके लिये) यत्न करने लगा ॥ ९१ ॥

दोहा-मूर्छा विगत भालु कपि, सब आये प्रभु पास ॥
सकल निशाचर रावणहिं, घेरि रहे अति त्रास ॥ २५९ ॥

मूर्छा बीतने पर सब रीछ वानर प्रभुके पास आये और लंकामें सब राक्षस अत्यन्त भययुक्त हो रावणको घेरे हुए हैं ॥ २५९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी-मिश्रकृत भावाटीकायां लंकाकांडान्तर्गत एकादशो विश्रामः ॥ ११ ॥

दोहा-यहि द्वादश विश्राममें, कृपासिंधु भगवान ।
वध दशकन्धरको कियो, दीन्हों पद निर्वान ॥ १२ ॥

तेहीं निशि सीतापहँ जाई * त्रिजटा कहि सब कथा बुझाई ॥१॥
शिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी * सीता उर भइ त्रास घनेरी ॥२॥

उसी रात्रिमें त्रिजटाने जानकीके पास जाकर सब कथा कह सुनायी कि रावण शिर काटने पर भी नहीं मरता॥१॥शत्रुके शिर और भुजाकी बढ़ती सुनकर जानकीजीके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ ॥२॥

मुख मलीन उपजी मन चिंता * त्रिजटा सन बोली तब सीता ॥३॥
होइहि काह कहसि किन माता * केहि विधि मरिहि विश्वदुखदाता ॥४॥

मुख मलीन हो गया, मनमें चिन्ता हुई तब त्रिजटासे जानकी बोलीं ॥ ३ ॥ माता! कहो तो कैसा होगा ? यह संसारको दुःख देनेवाला किस प्रकार मरेगा ? ॥ ४ ॥

रघुपति शर शिर कटेउ न मरई * विधि विपरीत चरित सब करई ॥५॥
मोर अभाग्य जियावत ओही * जेहि हौं हरिपद कमल बिछोही ॥६॥

रघुनाथजी उसका शिर काटते हैं तो भी नहीं मरता, जान लो कि यह सब चरित्र विधाताकी विपरीतताका है ॥ ५ ॥ मेरा अभाग्य उसको जिलाता है जिसने मुझे स्वामीके चरण कमलोंसे वियुक्त कर दिया है ॥ ६ ॥

जेहि कृत कपट कनक मृग झूँठा * अजहु सो दैव मोहिपर रूठा ॥७॥
जेहि विधि मोहिं दुख दुसह सहावा * लक्ष्मण कहँ कटु वचन कहावा ॥८॥

जिसने झूठा सोनेका मृग बनाकर मुझे छला, वह दैव मेरे ऊपर अब भी रूठा है ॥७॥ जिस विधाताने मुझे इतना कठिन दुःख सहाया और लक्ष्मणको कड़ुये वचन सुनाये ॥८॥

रघुपति विरह विषम शर भारी * तकि तकि बार बार मोहि मारी ॥९॥
ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना * सोइ विधि ताहि जियावन आना ॥१०॥

तथा जिसने रघुनाथजीके वियोगरूप बड़े भारी कठिन बाण बार बार तक तक कर मेरे मारे ॥ ९ ॥ ऐसे दुःखमें भी जिसने मुझे जीवित रखा है; वही दैव रावणको भी जिला रहा है अर्थात् यह और किसीका कर्तव्य नहीं ॥ १० ॥

बहुविधि करति विलाप जानकी * करि करि सुरति कृपानिधानकी॥११॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी * उर शर लागत मरिहि सुरारी॥१२॥

बहुत प्रकार जानकी रघुनाथजीका स्मरण कर विलाप करने लगीं ॥ ११ ॥ तब त्रिजटा बोली-सुनिये राजकुमारी ! यह राक्षस हृदयमें बाण लगनेसे मरेगा ॥ १२ ॥

ताते प्रभु उर हनहिं न तेही * इहिके हृदय बसति वैदेही ॥१३॥

इसी कारण रघुनाथजी उसे नहीं मारते हैं कि इसके हृदयमें जानकीजी वास करती हैं॥१३॥

छन्द-इहिके हृदय बस जानकी उर जानकी मम वास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बाण सबको नाश है ॥
अस सुनत हर्ष विषाद उर अति देखि पुनि त्रिजटा कहा ।
अब मरिहि रिपु इहि भांति सुन्दरि तजहु तुम संशय महा ॥९२॥

इसके हृदयमें जानकी वसती हैं और जानकीके हृदयमें मेरा वास है और मेरे उदरमें सब ब्रह्मांड रहते हैं तो वह बाण लगकर सब ब्रह्माण्डोंको नाश कर देगा, इस कारण उसे नहीं मारते! यह सुनते ही जानकीके हृदयमें हर्ष और विषाद दोनों अधिक देखकर फिर त्रिजटा बोली-हे सुन्दरी ! तुम सब संशय त्याग दो, अब जिस प्रकार शत्रु मरेगा (वह सुनो)॥९२॥

दोहा-काटत शिर होइहैं विकल, छुटि जाय जब ध्यान ॥
तब रावणके हृदय शर, मारिहिं कृपानिधान ॥ २६० ॥

जब रघुनाथजी बारंबार शिर काटेंगे तब व्याकुल होनेसे ध्यान छूट जायगा, उस समय रावणके हृदयमें रघुनाथजी बाण मारेंगे ॥ २६० ॥

अस कहि बहु प्रकार समुझाई * पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ॥१॥
राम-सुभाव सुमिरि वैदेही * उपजी विरह व्यथा अति तेही ॥२॥

ऐसा कह बहुत प्रकारसे समझाकर फिर त्रिजटा अपने स्थानको चली गयी ॥ १ ॥ रघुनाथजीका स्वभाव स्मरण कर जानकीके हृदयमें बड़ी विरह-व्यथा उपजी ॥ २ ॥

निशिहि शशिहि निंदति बहुभाँती * भइ युगसरिस सिराति न राती ॥३॥
करति विलाप मनहिं मन भारी * राम विरह जानकी दुखारी ॥४॥

रात्रि और चन्द्रमाको अनेक प्रकार दोष देने लगीं; युगके समान रात्रि हो गई,बीतती नहीं ॥ ३ ॥ मनही मनमें बड़ा विलाप करती हैं, रघुनाथजीके वियोगमें जानकी बड़ी दुःखी हैं॥४॥

जब अति भयो विरह उरदाहू * फरकेउ वाम नयन अरु बाहू ॥५॥
शकुन विचारि धरेउ उर धीरा * अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा ॥६॥

जब हृदयमें अधिक दुःख हुआ तब बाँया नेत्र वाम बाहु फड़कने लगे, (स्त्रियोंका वाम अंग फड़कना अच्छा होता है और पुरुषोंका दाहिना) ॥ ५ ॥ यह शकुन विचार कर हृदयमें धैर्य धारण किया कि अब भगवान् मिलेंगे ॥ ६ ॥

इहाँ अर्धनिशि रावण जागा * निज सारथिसन खीझन लागा ॥७॥

शठ रण भूमि छुड़ायहु मोहीं ❋ धिक धिक अधम मन्दमति तोहीं॥८॥

यहां रावण आधीरातके समय मूर्छासे जागकर अपने सारथीसे रिसाने लगा ॥ ७ ॥ मूर्ख रणस्थानसे मुझे भगा लाया ! अरे नीच मन्दमति ! तुझे धिक्कार है ॥ ८ ॥

तेहि पद गहि बहुविधि समुझावा ❋ भोर भये रथ चढ़ि पुनि आवा ॥९॥
सुनि आगमन दशानन केरा ❋ कपिदल खरभर भयउ घनेरा ॥१०॥

उसने चरण पकड़ कर बहुत प्रकार समझाया और प्रातःकाल होते रथ चढ़ फिर युद्ध करने के लिये आया ॥९॥ रावणका आना सुन कपियोंके दलमें बड़ी खलबली मच गई ॥ १० ॥

जहँ तहँ भूधर विटप उपारी ❋ धाये कटकटाय भट भारी ॥११॥

जहां तहां पर्वत और वृक्षोंको उखाड़ कर बड़े योद्धा वानर दौड़े ॥ ११ ॥

छन्द–धाये जो मर्कट विकट भालु कराल कर भूधरधरा ।
अतिकोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ॥
बिचलाय दल बलवन्त कीशनि घेरि पुनि रावण लियो ।
चहुँदिशि चपेटनि मारि नखन विदारि तेहि व्याकुल कियो॥९३॥

विकट रीछ वानर तीक्ष्ण पर्वतखण्ड लेकर दौड़े क्रोधसे मारने लगे, जिससे सब राक्षस भाग चले, इस प्रकार बलवान् वानरोंने राक्षसोंको भगाकर रावणको घेर लिया और चारों ओरसे चपेट मार तथा नखोंसे विदीर्ण कर व्याकुल कर दिया ॥ ९३ ॥

दोहा–देखि महामर्कट प्रबल, रावण कीन्ह विचार ॥
अन्तरहित होइ निमिष महँ, कृत माया विस्तार ॥ २६१ ॥

वानरोंको महाप्रबल देखकर रावणने मनमें विचार किया और अन्तर्धान होकर पलमात्रमें माया फैला दी ॥ २६१ ॥

छन्द–जब कीन्ह तेहि पाखण्ड, भये प्रगट जन्तु प्रचण्ड ॥
वैताल भूत पिशाच, कर धरे धनु नाराच ॥ १ ॥

जब रावणने पाखण्ड प्रकट किया तो अनेक प्रचंड जन्तु प्रगट हो गये; वेताल, भूत, पिशाच हाथमें धनुष बाण लिए प्रकट हुए ॥ १ ॥

योगिनि गहे करवाल, इक हाथ मनुज–कपाल ॥
करि सद्य शोणित पान, नाचहिं करहिं गुण गान ॥ २ ॥

योगिनी एक हाथमें तलवार लिए, एक हाथमें मनुष्योंकी खोपड़ी लिए तुरन्त रुधिर पान करने लगीं और नाच नाचकर गुण गाने लगीं ॥ २ ॥

धरु मारु बोलहिं घोर, रहि पूरि धुनि चहुँओर ॥
मुख बाइ धावहिं खान, तब लगे कीश परान ॥ ३ ॥

और पकड़ लो, मार डालो यह घोर ध्वनि चारों ओर छा गयी, मुँह फैलाकर खानेको दौड़ने लगीं, तो वानर भागने लगे ॥ ३ ॥

जहँ जाहिं मर्कट भागि, तहँ बरत देखहिं आगि ॥
भये विकल बानर भालु, पुनि लागि वर्षइ बालु ॥ ४ ॥

जहाँ वानर भाग कर जाते हैं वहाँ आग जलती देखते हैं; रीछ वानर इस प्रकार व्याकुल हो गये, फिर बालू बरसने लगी ॥ ४ ॥

जहँ तहँ थकित करि कीश, गर्जेउ बहुरि दशशीश ॥
लक्ष्मण कपीश समेत, भये सकल वीर अचेत ॥ ५ ॥

जहां तहां वानरोंको थकित करके रावण फिर गर्जा और लक्ष्मण सुग्रीवादि सहित सब वीर अचेत हो गये ॥ ५ ॥

हा राम हा रघुनाथ, कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
इहि विधि सकल बल तोरि, तेहि कीन्ह कपट बहोरि ॥ ६ ॥

हा राम ! हा रघुनाथ ! कहकर योद्धा हाथ मलते हैं । इस प्रकार सब रीछ वानरोंका बल तोड़कर रावणने फिर कपटकी माया रची ॥ ६ ॥

प्रगटेसि विपुल हनुमान, धाये गहे पाषान ॥
तिन घेरि रामहिं जाइ, चहुँ दिशि वरूथ बनाइ ॥ ७ ॥

अनेक महावीर प्रकट हो हाथमें पर्वत लिए हुए दौड़े उन्होंने अपना समूह बनाकर रघुनाथजीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

मारहु धरहु जनि जाइ, कटकटहि पूँछ उठाइ ॥
दशदिशि लँगूर विराज, तेहि मध्य कोशलराज ॥ ८ ॥

'मार लो, पकड़ लो, जाने न पावें' यह पूँछ उठा उठाकर कटकटाते हैं, दशों दिशाओंमें लँगूर विराजते हैं, बीचमें रघुनाथजी शोभित होते हैं ॥ ८ ॥ ५४ ॥

छन्द–तेहि मध्य कोशलराज सुन्दर श्यामतनु शोभा लही ।
जनु इन्द्रधनुष अनेक की वर बारि तुङ्ग तमालही ॥
प्रभु देखि हर्ष विषाद उर सुर वदत जय जय करी ।
रघुवीर एकहि तीर कोपित निमिष महँ माया हरी ॥ ५५ ॥

उनके बीचमें रघुनाथजी विराजमान थे; श्याम शरीरकी शोभा श्रेष्ठ हो रही है, जैसा इन्द्रधनुषके चारों दिशाओंमें अनेक वारी बनी है, उसके बीचमें ऊँचा तमाल वृक्ष शोभित है प्रभुको देखकर देवता मनमें हर्ष विषाद सहित हो 'जय जय' शब्द कहने लगे, तब क्रोधित हो रघुनाथजीने क्षणमात्रमें एक ही बाणसे रावणकी माया हर ली ॥ ५५ ॥

छन्द–माया विगत कपि भालु हरषे विटप गिरि गहि सब फिरे ।
शर निकर छाँड़ेउ राम रावण बाहु शिर पुनि महि गिरे ॥
श्रीराम रावण समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं ।
शत शेष शारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावहीं ॥ ५६ ॥

माया नाश होनेसे रीछ वानर बड़े प्रसन्न हुए और शिला वृक्षादिक लेकर दौड़े, महाराज रामचन्द्रजीने अनेक बाण छोड़े, जिससे रावणके शिर बाहु पृथ्वीमें गिर गये और फिर हो गये, श्रीरामचन्द्रजी और रावणका युद्ध चरित्र अनेक कल्पतक जो सौ शेष शारदा (सरस्वती) वेद तथा कवीश्वर गाते रहें तो भी पार न पावें ॥ ९६ ॥

दोहा–कहे तासु गुणगण कछुक, जड़मति तुलसीदास ॥
निज पौरुष अनुसार जिमि, मशक उड़ाहिं अकास ॥ २६२ ॥

उन परमात्माके गुणानुवाद अल्पमति तुलसीदासने ऐसे वर्णन किये हैं जैसे अपने पुरुषार्थके अनुसार मच्छर आकाशमें उड़ते हैं ॥ २६२ ॥

दोहा–काटे भुज शिर बार बहु, मरै न भट लंकेश ॥
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि, व्याकुल देखि कलेश ॥ २६३ ॥

अनेक बार रावणके शिर भुजा रघुनाथजीने काटे परन्तु वह नहीं मरा, प्रभु तो खेल करते हैं परन्तु मुनि सिद्ध प्रभुका क्लेश देखकर बड़े व्याकुल हैं, इस प्रकार रावणसे युद्ध होता रहा ॥ २६३ ॥

काटत बढ़हिं शीश समुदाई * जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥१॥
मरै न रिपु श्रम भयो बिशेखा * राम बिभीषण तन तब देखा ॥२॥

काटते ही फिर शीश समुदाय बढ़ जाते हैं जैसे लाभ होनेसे लोभ बढ़ जाता है अर्थात् जैसे किसीने सौ रुपयेकी इच्छा की तब उसकी प्राप्ति होनेसे फिर अधिक मिलनेकी तृष्णा बढ़ती जाती है वैसे ही रावणके शीश बढ़ते जाते हैं ॥१॥ फाल्गुन शुदी द्वादशीसे चैत कृष्ण चतुर्दशी तक महायुद्ध होता रहा, जिसकी कोई उपमा नहीं, महामुनि वाल्मीकिजीने भी यही लिखा है, कि–"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव" राम रावणका युद्ध राम रावणहीके समान है, अर्थात् उसकी उपमा नहीं, इस प्रकार युद्ध करते अष्टादश दिन बीते और शत्रु मरा नहीं तब रघुनाथजीको अधिक श्रम हुआ, उस समय विभीषण की तरफ देखा देखनेका भाव यह कि हमने इसे लंकाका राजा बनाया और यह दुष्ट मरता नहीं क्या होगा ? अथवा विभीषणको देख विचारते हैं कि वह भी इसीका भ्राता है इसमें इतना बल कहांसे आया ? अथवा पूछते हैं कि इसके मरनेका क्या उपाय है ? जो कोई सन्देह करे कि क्या आप नहीं जानते थे ? उसका उत्तर शिवजी कहते हैं ॥ २ ॥

उमा काल मरु जाकी इच्छा * सो प्रभु प्रीतिकि लेत परीच्छा ॥३॥
सुनु सर्वज्ञ चराचर–नायक * प्रणतपाल सुरमुनि सुखदायक ॥४॥

हे पार्वती ! जिनकी इच्छासे काल भी मर जाय, तो यह राक्षस क्या है ! परन्तु वे प्रभु विभीषणकी प्रीतिकी परीक्षा करते हैं; विभीषण बोले॥३॥हे प्रभो ! आप सब बातके ज्ञाता हो, इससे आपके लिए रावणकी मृत्यु जानना क्या वस्तु है ? जो कहो हम सब जानते हैं, परंतु ऐसे जप तप करनेवाले भटको मारा नहीं चाहते तो तुम चराचरके नायक हो और यह सबको दुःखदायक है उनके सुखके हेतु इसे मारो, जो कहो, कि और सब जीवोंके समान इस त्रैलोक्याधिपतिको भी जानिये ? तो तुम प्रणतपाल हो, हमसे दीनोंकी सहायताके निमित्त

इसको मारो । जो कहो इसकी माताको दुःख होगा तो तुम सुर मुनिके सुखदायक हो; सब जगत् प्रसन्न होगा तो एक न प्रसन्न हो तो क्या है ? जो कहो शिर भुज काटनेसे तो यह मरता नहीं उसका उत्तर सुनो ॥ ४ ॥

नाभी कुण्ड सुधा बस याके ❋ नाथ जियत रावण बल ताके ॥५॥
सुनत विभीषण वचन कृपाला ❋ हरषि गहे कर बाण कराला ॥६॥

हे नाथ ! ब्रह्मादिकोंके वरदानसे इसके नाभिमें अमृत कुण्ड है, उसीके बलसे यह जीता है ॥ ५ ॥ अर्थात् इसके शिर भुजा उपजते हैं (पहले उसे शोषो तो मरेगा) यह विभीषणके वचन सुनते ही कृपासागर रघुनाथजीने प्रसन्न हो हाथमें तीक्ष्ण बाण ग्रहण किया । कृपालु इस कारण कहा कि विभीषणको निष्कंटक राज देनेकी इच्छा की । अथवा सुर मुनिके दुःख मिटानेकी कृपा दिखाई । अथवा रावणका तामसी शरीर छुड़ाकर भक्तिको प्राप्त कराते हैं इससे कृपालु कहा । कठिन बाण इस कारण लिए कि इसका शरीर उग्र है । अब रावणका मृत्यु सूचक चिह्न वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

अशकुन होन लगे विधि नाना ❋ रोवहिं बहु श्रृगाल खर श्वाना ॥७॥
रोवहिं खग जग आरति हेतू ❋ प्रगट भये जहँ तहँ नभ केतू ॥८॥

उस समय महा अशकुन होने लगे और अनेक गीदड़, गधे, कुत्ते रोने लगे ॥ ७ ॥ काकादिकोंका रात्रिमें बोलना, उलूकादिकोंका दिनमें बोलना भयदायक है; यह दुःख देनेको बोलने लगे, आकाशमें बहुत केतू (पुच्छल तारे) जहां तहां उदय हो गये ॥ ८ ॥

दश दिशि दाह होन तब लागा ❋ भयउ पर्व विनु रबि उपरागा ॥९॥
मन्दोदरि उर कंपित भारी ❋ प्रतिमा स्रवहिं नयनमग बारी ॥१०॥

उस समय दशों दिशाओंमें दाह होने लगा, सबेरेको पूर्वमें सन्ध्याको पश्चिम दिशामें अधिक समय तक रक्तता होनी और अधिक होनी दिग्दाह कहाता है और विना पर्व(अमावस्या) के ही सूर्य ग्रहण पड़ने लगा ॥ ९ ॥ मन्दोदरीका हृदय कांपने लगा, मूर्तियोंकी आंखोंसे जल बहने लगा; मूर्तियोंसे जल बहे तो राज भङ्ग होता है, यही वेदमें लिखा है ॥ १० ॥

छन्द-प्रतिमा स्रवहिं पविपात नभ अतिवात बह डोलति मही ।
-वर्षहिं बलाहक रुधिर कच रज अशुभ अति सकको कही ॥

---

१. कहीं कहीं ऐसा लेख है कि लक्ष्मणने उस समय रावणसे राजनीतिकी शिक्षा ली थी, जिस समय रावणका मरण समय था, तब लक्ष्मणने रामकी आज्ञासे जाकर प्रश्न किया था, रावणने कहा जो काम करना हो उसे तत्काल करना चाहिये, कारण कि एक दिन नरकवासियोंका दुःख देख मैंने विचारा था इनको पाट दूंगा वह काम आलस्यसे आजतक न हो सका और मरण समय आ गया है। और एक दिन स्वर्ग के सुख देखकर विचारा कि विश्वकर्मासे सीढ़ी बनवाकर स्वर्ग जानेको सबके निमित्त सुभीता कर दूंगा, वह भी आलस्यसे रह गया, नहीं तो आजदिन हमारा यश पूर्ण हो जाता। तीसरी बात यह है कि पापकर्मको सहसा हृदयमें स्थान न दें यदि मैं सहसा जानकी हरण न करता तो जिस पापकर्मके करनेसे समूल राक्षसकुल ध्वंस हुआ सो न होता, कहते हैं कि उस समय रामने उसे विराटरूप दिखाया था ।

२. सामवेदके षड्विंश ब्राह्मणमें कहा है-"यदा देवतायतनानि कम्पन्ते देवताप्रतिमा हसंति रुदंति नृत्यन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति तदा इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढस्यपांसुरे ।" इति० सा० खंड १८ अ. १ सूत्र ३० ॥ जिस अवसरमें देवताओं के मंदिर कांपते हुए जाग्रत वा स्वप्नमें दीखें वा देवताओं की प्रतिमा रोवें, नांचे, विदीर्ण हों वा आंखे मिचती दीखें वा पसीना आवे तब जान लेना कि कोई महा अनिष्ट होगा इसके निवृत्त करनेको इदं विष्णु० इस मंत्रसे हवन करना इत्यादि विचार करे। जो महात्मा मूर्ति पूजन कल्पित और मिथ्या बताते हैं वे इस वेद विधानको देख लें ।

उत्पात अमित विलोकि नभ सुर विकल बोलहिं जय जये ॥
सुर सभय जानि कृपालु रघुपति चाप शर जोरत भये ॥ ९७ ॥

प्रतिमा जल स्रवने (टपकाने) लगीं आकाशसे बिजली गिरने लगी भयंकर आंधी चलने लगी पृथ्वी कांपने लगी, मेघोंसे रुधिर बाल धूरिकी वर्षा होने लगी, एवं अनेक दुर्निमित्त होने लगे, उन्हें कौन वर्णन कर सकता है ? अनेक उत्पात देखकर व्याकुल हो आकाशसे देवता 'जय जय' शब्द उच्चारण करने लगे, देवताओंको भयभीत जान दयालु रघुनाथजीने धनुषबाण चढ़ाये ॥ ९७ ॥

दोहा—आकर्षेउ धनु श्रवण लगि, छांड़े शर इकतीस ॥
रघुनायक सायक चले, मानहुँ काल फणीश ॥ २६४ ॥

कान पर्यन्त धनुष तानकर इकतीस बाण छोड़े, वे रघुनाथजीके बाण कालसर्पके समान चले ॥ २६४ ॥

सायक एक नाभिशर शोषा ❋ अपर लगे शिर भुजकरि रोषा ॥१॥
लेइ शिर बाहु चले नाराचा ❋ शिर भुजहीन रुण्डमहि नाचा ॥२॥

एक बाणने तो प्रथम नाभिकुण्ड शोष लिया, और बाण क्रोधसे शिर और भुजाओंमें लगे ॥ १ ॥ इस प्रकार वे बाण शिर भुजाओंको ले चले, तब शिर और भुजाहीन रावणका रुण्ड पृथ्वीमें नाचने लगा ॥ २ ॥

धरणि धसै धर धाव प्रचण्डा ❋ तब प्रभु शर हतिकृत युगखण्डा ॥३॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी ❋ कहां राम रण हतौं प्रचारी ॥४॥

जब दशाननका रुंड धावमान हुआ तब पृथ्वी धसकने लगी; उसी समय बाण मार उसके दो खण्ड कर दिये॥३॥मरते समय घोर शब्दसे गर्जा, कि युद्ध स्थलमें राम कहां हैं ?जो मैं उन्हें प्रचार कर मारूँ;अर्थात् यह प्राण निकलनेके समय कबंधसे शब्द हुआ, राम शब्द तो उसके शिरोंसे भी उच्चारण हो रहा है,जो आकाशमें उड़ रहे हैं कि प्रचार कर मारूँगा राम कहां हैं ? भाव यह है किऔर स्थानमें रावणने रामको तपस्वी कहा है यहाँ राम कहनेसे मुक्त हुआ ॥४॥

डोली भूमि गिरत दशकन्धर ❋ क्षुभित सिंधुसरि दिग्गज भूधर ॥५॥
परेउ भूमि युग खण्ड बढ़ाई ❋ चापि भालु मरकट समुदाई ॥६॥

दशाननके गिरते ही पृथ्वी डोल गयी; समुद्र सरोवर दिग्गज, पर्वत क्षुभित हो गये ॥ ५ ॥ रावण पृथ्वीमें अपने शरीरके दोनों खण्ड बड़े करके गिरा, जिसके नीचे बहुतसे रीछ वानर दब गये, (चैत्र सुदी चौदसके दिन उसकी मृत्यु हुई) ॥ ६ ॥

मन्दोदरि आगे भुज शीशा ❋ धरि शर चले जहां जगदीशा ॥७॥
प्रविशे सब निषंग महँ आई ❋ देखि सुरन दुन्दुभी बजाई ॥८॥

वे बाण रावणकी भुजा और शिरको मन्दोदरीके आगे धरकर रघुनाथजीके पास चले॥७॥ और आकर सब तरकसमें प्रवेश कर गये, यह देख देवताओंने दुन्दुभी बजायी। मन्दोदरीके पास उसके शिर इस कारण भिजवाये कि इस वीरके शिर गिद्धादिकोंके पगमें न लोटें और रावणकी रानी आदि जो कोई सती होना चाहें वे उसके साथ सती हो जावें ॥ ८ ॥

तासु तेज समान प्रभु आनन * हर्षे देखि शम्भु चतुरानन ॥९॥
जयध्वनि पूरि रही नवखण्डा * जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा ॥१०॥

उसका तेज प्रभुके मुखमें समा गया, जिसे देख शिव ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए, कि हमारे शिष्यकी मुक्ति हुई ॥ ९ ॥ नौ खण्ड पृथ्वीमें जयजयकारकी ध्वनि पूर्ण हो गयी कि रघुनाथ जीके प्रबल भुजदंडकी जय हो ॥ १० ॥

वर्षहिं सुमन देवमुनि वृन्दा * जयकृपालु जयजयति मुकुन्दा ॥११॥

देवता मुनियोंके वृन्द फूल बरसाते हैं, कृपालु मुकुंद ! 'आपकी जय हो' यह वारंवार कहते हैं मुकुंद कहनेका भाव यह कि हम विपत्तिकी डोरीमें बँधे थे, आपने कृपा कर छुड़ा दिया ॥ ११ ॥

छन्द—जय कृपाकन्द मुकुंद द्वन्द्वहरण शरण सुखप्रद प्रभो।
खलदल विदारण परमकारण कारुणीक सदा विभो ॥
सुर सुमन वर्षहिं हर्ष संकुल बाजि दुन्दुभि गहगही।
संग्राम अंगन रामअंग अनंग बहु शोभा लही ॥ ५८ ॥

हे कृपासागर मुकुंद दुःखहरण ! शरणागतसुखदायक प्रभु ! दुष्टोंके दलन करने वाले ! आप सदा करुणाके सागर तथा सर्वज्ञ हो यह कहकर देवता प्रसन्नतासे फूल बरसाते हैं, गहगहे नगाड़े बजाते हैं, कामदेवके समान सुन्दर अंगयुक्त रघुनाथजीने संग्रामके आंगनमें बड़ी शोभा पायी है ॥ ५८ ॥

छन्द—शिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अतिमनोहर राजहीं ।
जनु नील गिरिपर तड़ित पटल समेत उडुगण भ्राजहीं ॥
भुजदंड शरकोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।
जनु रायमुनि तमालपर बैठीं विपुल सुख आपने ॥ ५९ ॥

शिरपर जटाके मुकुट बने, उसके बीच बीचमें फूल अति मनोहर विराजते हैं, उसकी ऐसी शोभा है कि मानो नीलपर्वतके शृङ्गपर बिजली समेत अनेक तारागण उपस्थित होते हैं नीलगिरि के समान रघुनाथजीका शरीर है, जटा घन है, बिजलीके स्थानमें बालोंकी चमक है और पुष्प तारे हैं, हाथ धनुष और बाणके ऊपर फेरते हैं, शरीरके ऊपर रुधिरके कण पड़े हैं जिनकी ऐसी शोभा हो रही है मानो तमाल वृक्षपर 'रायमुनि' अर्थात् लाल पक्षी सुखपूर्वक बैठे हैं ॥ ५९ ॥

दोहा—कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृन्द ॥
हर्षे वानर भालु सब, जय सुखधाम मुकुन्द ॥ २६५ ॥

रघुनाथजीने कृपादृष्टिकी वर्षा कर देवताओंको निर्भय कर दिया, सब वानर रीछ बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि हे सुखके धाम रघुनाथजी ! आपकी जय हो ॥ २६५ ॥

पतिशिर देखत मन्दोदरी * मूर्छित विकल धरणि खसि परी ॥१॥
युवति वृन्द रोवति उठि धाईं * तेहि उठाय रावण पहँ लाईं ॥२॥

पतिका शिर देखते ही मन्दोदरी मूर्छित हुई व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १ ॥ और स्त्रियां भी बहुतसी रोती हुई उठ धायीं और उठाकर रावणके निकट ले गयीं ॥ २ ॥

पतिगति देखि ते करहिं पुकारा ❋ छूटे केश न देह सँभारा ॥३॥
उर ताड़ना करहिं विधि नाना ❋ रोवति करहिं प्रताप बखाना ॥४॥

मन्दोदरी विश्वास हेतु रणभूमिमें आयी कि कदाचित् फिर शिर जुड़ गए हों सो उसका सत्य मरना देखकर पुकारने लगी, बाल खुल गये, देहकी संभार नहीं रही ॥ ३ ॥ अनेक विधिसे हृदयको ताड़ना करने लगी और रोते-रोते प्रताप बखान करने लगी कि तुम्हारे वशमें सब देवता हो रहे थे ॥ ४ ॥

तव बल नाथ डोल नित धरणी ❋ तेजहीन पावक शशि तरणी ॥५॥
शेष कमठ सहि सकहिं न भारा ❋ सो तनु भूमि परा भरि छारा ॥६॥

हे स्वामी ! आपके बलसे नित्य पृथ्वी डोलती थी और अग्नि चन्द्रमा सूर्य तेजहीन हो गये थे ॥ ५ ॥ शेष कच्छप तुम्हारा भार नहीं सह सकते थे वह शरीर छार भरा पृथ्वीमें पड़ा है (शरीराभिमानियोंको समझना चाहिए जो थोड़ेसे जीवन पर इतरा उठते हैं यह थोड़े दिन रहनेवाला शरीर है, अतः अनीति न करें) ॥ ६ ॥

वरुण कुबेर सुरेश समीरा ❋ रण-सम्मुख धर काहु न धीरा ॥७॥
भुजबल जितेउ काल यम साईं ❋ आज परेउ अनाथकी नाईं ॥८॥

बरुण, कुबेर, इन्द्र,पवन इत्यादि देवताओंने कभी तुम्हारे सम्मुख धीरता नहीं धारण की ॥ ७ ॥ हे स्वामी ! आपने भुजाओंके बलसे काल, यमको भी जीत लिया, वे ही आप आज अनाथकी नाईं पृथ्वीमें पड़े हो ! अहो इस शरीरकी निस्सारता ॥ ८ ॥

जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई ❋ सुत परिजन बल वरणि न जाई ॥९॥
रामविमुख अस हाल तुम्हारा ❋ रहा न कुल कोउ रोवनिहारा ॥१०॥

तुम्हारी प्रभुताई जगद्विदित है, पुत्र कुटुम्बियोंका बल वर्णा नहीं जाता ॥ ९ ॥ इतने पर भी यह हाल तुम्हारा रघुनाथजीसे विरोध करनेके कारण हुआ है कि कोई कुलभरमें तुम्हारे निमित्त रोनेवाला नहीं रहा ! यहाँ पुत्र पौत्रोंको कहा है उनमेंसे कोई नहीं रहा । अथवा कोई कुलमें भी तुम्हारे निमित्त रोने वाले नहीं रहे और विभीषणादिक जो हैं वे तुम्हारे निमित्त रोने वाले नहीं किन्तु तुम्हारे मरनेसे प्रसन्न होनेवाले हैं अथवा जो देवकुल बन्धनमें पड़े थे उनके छूट जानेसे कोई रोनेवाला न रहा, यह गौण अर्थ है, अथवा तुम तक ही रोना रहा, तुम सबसे विरोध करके रुलाते रहे, अब कोई क्यों किसीसे वैर करके रुलावेगा ? ॥ १० ॥

तव वश विधि प्रपंच सब नाथा ❋ सभयदिशिप नित नावहिं माथा ॥११॥
अब तव शिर भुज जंबुक खाहीं ❋ रामविमुख यह अनुचित नाहीं ॥१२॥

---

१. एक समय राजा-मरुत यज्ञ करते थे उसी समय वहां रावण पहुंचा, तब यज्ञके देवताओंने पक्षी आदिके रूप धारण कर वहांसे गमन किया । यमराजने काग, इन्द्रने मोर, वरुणने हंस, कुबेरने गिरगिटका रूप धारण कर गमन किया । जब रावण यज्ञभूमि शून्य देख चला गया, तब देवताओंने रक्षक रूपोंको वर दिया । यमने कहा-श्राद्धमें कागको बलि मिलेगी, उससे मेरे लोकनिवासी तृप्ति पावेंगे बिना इसके श्राद्धान्न पितर न पावेंगे कौवा मारे बिना न मरेगा, रोगरहित होगा । इन्द्रने कहा-मोरको सर्पसे भय न होगा, मेघ बरसनेसे महाप्रसन्न होगा और मेरे सहस्रनेत्रके चिह्न इसके पंखों में होंगे । पहले हंस काले थे वरुणने कहा-हंसके जो पर काले रहते हैं सब श्वेत होंगे । कुबेरने कहा-गिरगिट सुवर्ण के रंगका हो जायगा और इसके शिरमें धन होगा ।

हे स्वामी ! विधाताका प्रपंच सब तुम्हारे वशमें था; डरके मारे सब दिशापति नित्य माथा नवाते थे ॥ ११ ॥ अब तुम्हारे शिर भुजा गीदड़ खाते हैं, रामजीसे विमुख होने पर यह बात अनुचित नहीं है ॥ १२ ॥

काल विवश पति कहा न माना * अग जगनाथ मनुजकरि जाना ॥१३॥

हे स्वामी ! कालके वश आपने कहना नहीं माना, सब लोकोंके पतिको मनुष्य करके जाना ॥ १३ ॥

छन्द–जाने मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयम् ।
जेहि नवत सुर ब्रह्मादि पिय तेहि भजेहु नहिं करुणामयम् ॥
आजन्मते परद्रोहरत पापौघमय तव तनु अयम् ।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम् ॥६०॥

हे नाथ ! जो राक्षसरूपी वनको जलानेके लिए अग्निरूप साक्षात् नारायण हैं उनको आपने मनुष्य जाना जिनको देवता ब्रह्मादिक शिर नवाते हैं, हे स्वामी ! तुमने उन करुणा-सागरका भजन नहीं किया, किन्तु जन्मसे लेकर तुमने पराया द्रोह किया और शरीरको पापमें डुबो दिया, तुमको भी रघुनाथजीने अपना धाम दिया, ऐसे दुःख रहित रामजीको मैं दण्डवत् करती हूँ ॥ ६० ॥

दोहा–अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिन्धुको आन ॥
मुनि दुर्लभ जो परमगति, तुमहि दीन्ह भगवान ॥ २६६ ॥

अहो ! आश्चर्य, रघुनाथजीके समान और कौन कृपासागर है ? जो मुनियोंको दुर्लभ गति है वह भगवान ने तुम्हें दी है ॥ २६६ ॥

मन्दोदरी रुदन सुनि काना * सुर मुनि सिद्ध सबहि सुख माना ॥१॥
आज महेश नारद सनकादी * जे मुनिवर परमारथवादी ॥२॥

मन्दोदरीका रोना कानोंसे सुनकर सुर, मुनि, सिद्ध सबने इस कारण सुख माना कि मन्दोदरीने ज्ञानपूर्वक रघुनाथजीको परब्रह्म सम्पादन किया । अथवा जैसे उनकी स्त्रियाँ रोयी थीं ऐसेही रावणकी स्त्री रोयी, इसे देख सुखी हुए ॥ १ ॥ शिवजी, ब्रह्मा, नारद, सनक सनंदनादि जो परमार्थज्ञाता मुनिराज थे वे ॥ २ ॥

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी * प्रेम मगन सब भये सुखारी ॥३॥
रुदन करत विलोकि सब नारी * गयउ विभीषण मन दुख भारी ॥४॥

नेत्र भरकर रघुनाथजीको देखकर प्रेममें मग्न हो सब महासुखी हुए ॥ ३ ॥ सब नारियोंको रोते देख विभीषण भी मनमें अधिक दुःखी हो उनके समीप गया ॥ ४ ॥

बन्धु दशा देखत दुख भयऊ * तब प्रभु अनुजहिं आयसु दयऊ ॥५॥
लक्ष्मण तेहि बहुविधि समुझायउ * सहित विभीषण प्रभुपहँ आयउ ॥६॥

भाईकी दशा देखकर विभीषणको बड़ा दुःख हुआ, तब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको आज्ञा दी ॥ ५ ॥ तब लक्ष्मणने अनेक प्रकारसे विभीषणको समझाया, फिर विभीषण सहित रघुनाथजीके पास चले आये ॥ ६ ॥

कृपादृष्टि प्रभु ताहि विलोका * करहु क्रिया परिहरि सब शोका ॥७॥
कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी * विधिवत देशकाल जिय जानी ॥८॥

रघुनाथजीने कृपा दृष्टिसे उसे निहारा और आज्ञा दी कि सब शोक त्याग रावणकी क्रिया करो ॥ ७ ॥ तब विभीषणने प्रभुकी आज्ञा मान विधिपूर्वक हृदयसे देशकालानुसार रावणकी क्रिया की ॥ ८ ॥

दोहा–मयतनयादिक नारि सब, देइ तिलांजलि ताहि ॥
भवन गईं रघुवीर गुण, गण वर्णत मनमाहि ॥ २६७ ॥

मन्दोदरी आदिक सब स्त्रियाँ उसे तिलांजलि देकर रघुनाथजीके अनेक गुण मनमें स्मरण करती चली गयीं ॥ २६७ ॥

आय विभीषण पुनि शिर नावा * कृपासिंधु तब अनुज बुलावा ॥१॥
तुम कपीश अंगद नल नीला * जाम्बवन्त मारुति नयशीला ॥२॥

फिर विभीषणने आकर शिर नवाया, तब दयासागर रघुनाथजीने लक्ष्मणजीको बुलाकर कहा कि ॥ १ ॥ तुम सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवन्त, नीतिमान् हनुमान् ॥ २ ॥

सब मिलि जाहु विभीषण साथा * सारेउ तिलक कहेऊ रघुनाथा ॥३॥
पिता वचन मैं नगर न जाऊँ * आपु सरिस कपि अनुज पठाऊँ ॥४॥

सब कोई मिलकर विभीषणके साथ (लंकाको) जाओ और इनको तिलक कर दो । रघुनाथजीने कहा ॥३॥ कि मैं तो पिताके वचन से नगरमें नहीं जाऊँगा परन्तु अपने समान वानर और भ्राताको भेजता हूँ ॥ ४ ॥

तुरत चले कपि सुनि प्रभु वचना * कीन्ही जाय तिलककी रचना ॥५॥
सादर सिंहासन बैठारी * तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ॥६॥

रघुनाथजीके वचन सुनते ही वानर तुरन्त चले और जाकर तिलककी रचना रची ॥ ५ ॥ आदरसे सिंहासन पर बैठाकर तिलक किया स्तुति की ॥ ६ ॥

जोरि पाणि सबही शिर नाये * सहित विभीषण प्रभुपहँ आये ॥७॥
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हे * कहि प्रिय वचन सुखी सब कीन्हे ॥८॥

सबने हाथ जोड़कर शिर नवाया, फिर विभीषण सहित प्रभुके पास आये ॥ ७ ॥ तब रघुनाथजीने सब वानरोंको बुलाया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया ॥ ८ ॥

छन्द–किये सुखी कहि वाणी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो ।
पायो विभीषण राज्य तिहुँ पुर यश तुम्हारो नित नयो ॥
मोहि सहित शुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं ।
संसारसिंधु अपार पार प्रयास विनु तरि जाइहैं ॥ ६१ ॥

रघुनाथजीने यह अमृतके समान वाणी सुनाकर सबको प्रसन्न किया कि मैंने तुम्हारे ही बलसे शत्रुको मारा और विभीषणने राज्य पाया, तीनों लोकोंमें तुम्हारा यश सदा नया बढ़ता

रहेगा; जो कोई मुझ समेत तुम्हारी शुभ कीर्ति परम प्रीतिसे गावेंगे वे विना परिश्रमके ही अपार संसारसे पार हो जायँगे ॥ ६१ ॥

दोहा–प्रभुके वचन श्रवण सुनि, नहिं अघात कपि पुञ्ज ॥
बारहिं बार विलोकि मुख, गहहिं सकल पदकञ्ज ॥ २६८ ॥

प्रभुके वचन कानोंसे सुनकर कपिगण अघाते नहीं हैं और सब बारंबार प्रभुका मुख देख कर चरणारविन्दोंको ग्रहण करते हैं ॥ २६८ ॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना ❋ लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥१॥
समाचार जानकिहि सुनावहु ❋ तासु कुशल लेइ तुम चलि आवहु ॥२॥

फिर रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा–हे तात ! (मेरे कार्यनिमित्त) लंकापुरीमें जाओ ॥१॥ हमारे समाचार जानकीजीको सुनाकर उनका कुशल ले तुम शीघ्र लौट आना ॥२॥

तब हनुमन्त नगरमहँ आये ❋ सुनि निशिचरी निशाचर धाये ॥३॥
पूजा बहु प्रकार तिन कीन्ही ❋ जनकसुतहि दिखाय पुनि दीन्ही ॥४॥

तब महावीरजी नगरमें आये, यह सुनकर (शुश्रूषा करने के लिए) राक्षस राक्षसी दौड़े ॥३॥ सबने महावीरजी की पूजा (सत्कार) अनेक प्रकारसे की, फिर जानकीजीको दिखा दिया ॥४॥

दूरिहिते प्रणाम कपि कीन्हा ❋ रघुपति-दूत जानकी चीन्हा ॥५॥
कहहु तात प्रभु कृपा निकेता ❋ कुशल अनुज कपिसेन समेता ॥६॥

महावीरजीने दूरसे ही प्रणाम किया, जानकी तुरंत पहचान गयीं कि ये रघुनाथजीके दूत हैं और बोलीं ॥ ५ ॥ हे तात ! कहो, कृपासागर हमारे स्वामी; लक्ष्मण और वानरोंकी सेना सहित कुशल हैं ! ॥ ६ ॥

सब विधि कुशल कोशलाधीशा ❋ मातु समर जीतेउ दशशीशा ॥७॥
अविचल राज्य विभीषण पावा ❋ सुनि कपि वचन हर्ष उर छावा ॥८॥

महावीरजी बोले–हे माता ! रघुनाथजी सब प्रकारसे कुशली हैं, युद्धमें रावणको जीत लिया अर्थात् रावण मारा गया ॥ ७ ॥ विभीषणको अविचल राज्य मिल गया । यह महावीरजीके वचन सुन जानकी मनमें (बहुत) प्रसन्न हुई ॥ ८ ॥

छन्द–अति हर्ष मन तन पुलक लोचन, सजल पुनि पुनि कह रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक्य महँ कपि किमपि नहिं वाणी समा ॥
सुनु मातु मैं पायउँ अखिल जगराज आज न संशयम् ।
रण जीत रिपुदल बन्धुयुत पश्यामि राम निरामयम् ॥ ६२ ॥

मनमें बड़े हर्षसे पुलकित शरीर नेत्रोंमें जल भर रमा (जानकीजी) बारंबार कहने लगीं, हे कपि ! मैं तुम्हें क्या दूँ ! इस वाणीके समान त्रिलोकी में कुछ वस्तु नहीं है, जो तुम्हारे देने योग्य हो । यह सुनकर महावीर बोले–सुनो माता ! आपके प्रसन्न हो जाने से मैंने आज सम्पूर्ण जगत्का राज्य पा लिया इसमें कुछ भी सन्देह नहीं; आज शत्रुको जीतकर भ्राता-सहित रोग दुःखरहित रामचंद्रजीको देखता हूँ इससे अधिक और क्या होगा ! यह सुन जानकी जी बोलीं ॥ ६२ ॥

दोहा-सुनु सुत सद्गुण सकल तव, हृदय बसहिं हनुमंत ॥
सानुकूल रघुवंशमणि, रहहिं समेत अनंत ॥ २६९ ॥

सुनो, पुत्र हनुमान्‌जी ! सब श्रेष्ठ गुण तुम्हारे हृदयमें वास करेंगे और लक्ष्मण सहित रघुनाथजी (सदा) तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे ॥ २६९ ॥

अब सोइ जतन करहु तुम ताता * देखौं नयन श्याम मृदु गाता ॥१॥
तब हनुमंत राम-पहँ आई * जनकसुताकी कुशल सुनाई ॥२॥

हे तात ! अब तुम वही यत्न करो जिससे श्यामल मृदुगात रघुनाथजीका दर्शन (अपने) नयनोंसे करूँ ॥१॥ तब महावीरजीने रामजीके पास आकर जानकीजीकी कुशल सुनाया ॥२॥

सुनि वाणी पतंग-कुलभूषण * बोलि लिये युवराज विभीषण ॥३॥
मारुतसुतके संग सिधावहु * सादर जनक सुतहिं लै आवहु ॥४॥

सूर्यकुलभूषणने यह वाणी सुनकर अङ्गद और विभीषणको बुलाकर कहा ॥३॥ तुम दोनों महावीरजीके साथ जाकर आदरसे जानकीको ले आओ । ऐसी आज्ञा पाकर ॥ ४ ॥

तुरतहि सकल गये जहँ सीता * सेवहिं सब निशिचरी विनीता ॥५॥
वेगि विभीषण तिनहिं सिखावा * सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा॥६॥

तुरन्त सब जानकीके पास गये, जहां राक्षसियाँ जानकीजीकी नम्रतासे सेवा कर रहीं थीं॥५॥ तुरंत विभीषणने उन्हें सिखा दिया,उन्होंने प्रेमादरसे जानकीजीको स्नान कराया ॥६॥

दिव्य वसन भूषण पहिराये * शिबिका रुचिर साजि पुनि लाये॥७॥
तेहि पर हर्षि चढ़ी वैदेही * सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥८॥

दिव्य भूषण और वस्त्र पहनाये और सुन्दर पालकी सजाकर ले आये ॥ ७ ॥ उस पालकीपर जानकीजी सुखके स्थान रघुनाथजीका स्मरण कर प्रसन्न हो चढ़ीं ॥ ८ ॥

बेतपाणि रक्षक चहुँ पासा * चले सकल मन परम हुलासा ॥९॥
देखन भालु कीश सब आये * रक्षक कोपि निवारण धाये ॥१०॥

चारों ओर बेत हाथमें लिये सब रक्षक मनमें बड़ी प्रसन्नतासे चले ॥९॥ रीछ और वानर जानकीजीको देखने दौड़े, तो जो पालकीकी रक्षामें थे उन्होंने कोपकर कहा—हटो अभी दर्शन नहीं होगा ॥ १० ॥

कह रघुवीर कहा मम मानहु * सीतहि सखा पयादेहि आनहु ॥११॥
देखहिं कपि जननीकी नाईं * विहँसि कहा रघुवीर गुसाईं ॥१२॥

रघुनाथजी बोले—विभीषण ! हमारी आज्ञा है कि जानकीको प्यादे पांव लाओ ॥ ११ ॥ माताकी नाईं सब वानर इनका अवलोकन करेंगे, यह बात प्रभुने मुसकाकर कही । हँसे इस कारण कि अब ये रक्षक हमारे ही वानरोंको नहीं देखने देते अर्थात् वानरोंको दर्शन करना मिष है, मन तो जानकीकी शुद्धिमें है ॥ १२ ॥

सुनि प्रभु वचन भालु कपि हर्षे * नभते सुरन सुमन बहु वर्षे ॥१३॥
सीता प्रथम अनल मह राखी * प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी॥१४॥

यह प्रभुके वचन सुन रीछ वानर (बड़े) प्रसन्न हुये और आकाशसे देवताओंने बहुत फूल बरसाये ॥ १३ ॥ पहले तो जानकीजीको अग्निमें रखा, क्योंकि अरण्यकांडमें अग्निको समर्पण कर दी थी, उनको निकालना चाहते हैं और आपको तो संदेह कुछ था नहीं क्योंकि यह सीताका प्रतिबिम्ब है, केवल मनुष्योंके समझानेके निमित्त कि सबको जानकी निष्कलंक विदित हो जाँय, अन्तर साखी प्रकट करना चाहते हैं वा अग्निके अन्तर साखी करके प्रकट करना चाहते हैं ॥ १४ ॥

दोहा–तेहि कारण करुणायतन, कहे कछुक दुर्वाद ॥
सुनत यातुधानी सकल, लागीं करन विषाद ॥ २७० ॥

इस कारण रघुनाथजीने जानकीजीको कुछ अपमान सूचक वचन कहे, जिन्हें सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं कि ऐसी प्रीतिमें यह वचन ! करुणायतन कहनेका भाव यह कि इन वचनोंसे जानकीका कलंक दूर करना चाहते हैं कि तुम्हारे शुद्ध होनेमें क्या प्रमाण है ! उसे कहो, नहीं तो मैं न रखूँगा ॥ २७० ॥

प्रभुके वचन शीश धरि सीता ❋ बोली मन क्रम वचन पुनीता ॥१॥
लक्ष्मण होहु धर्मके नेगी ❋ पावक प्रगट करहु तुम बेगी ॥२॥

प्रभुके वचन शिरपर धारण कर जानकी मन, वचन, कर्मसे पवित्र वचन बोलीं ॥ १ ॥ लक्ष्मण ! जब विवाहका समय होता है ब्राह्मणादिक अग्नि प्रकट करके विवाह करते हैं वैसा ही मेरा भी अग्निसे नया जन्म होगा तब प्रभुको वरूँगी, इस कारण अब तुम धर्मके नेगी (भागी) बनकर अग्नि शीघ्र प्रकट करो ॥ २ ॥

सुनि लक्ष्मण सीताकी वाणी ❋ विरह विवेक धर्म नय सानी ॥३॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ ❋ प्रभुसन कछु कहि सकत न ओऊ॥४॥

लक्ष्मण जी सीताकी वाणी सुनकर जो कि विरह, ज्ञान, धर्म और नीतियुक्त है । 'लक्ष्मण' यह आर्त वचन विरह सूचक है, 'होहु' मेरे कल्याणको उद्यत हो यह ज्ञान, 'धर्म नेगी' धर्म, और पावकको शीघ्र प्रकट करो, जिससे सब कोई मेरे सत्यसे अवगत हो जायँ यह नीति है ॥ ३ ॥ लक्ष्मण नेत्रोंमें जलभर दोनों हाथ जोड़ इस प्रकार खड़े रह गये, रघुनाथजीके डरके मारे कुछ नहीं कह सकते न और कोई कुछ कह सकता है । हाथ जोड़नेका भाव यह है कि सीतापर कृपा करने के निमित्त प्रभुसे विनती किया चाहते हैं परन्तु बोल नहीं सकते । अथवा दोनों हाथ जोड़नेसे दोनों आशय सूचित होते हैं,तुम पिता; सीता माता मैं क्या करूँ ? अथवा सीताके हरनेका दोष मेरे ही शिरपर आया अब जलानेमें भी मैं ही मुख्य हुआ, सो वह वचन भी भयसे माना था और अब भी व्याकुल हैं, परन्तु कुछ कह नहीं सकते ॥ ४ ॥

देखि राम रुख लक्ष्मण धाये ❋ पावक प्रगटि काठ बहु लाये ॥५॥
प्रबल अनल विलोकि वैदेही ❋ हृदय हर्ष कछु भय नहिं तेही॥६॥

तब रघुनाथजीका रुख देख लक्ष्मणजीने बहुतसे काष्ठ मँगाकर अग्नि प्रकट की ॥५॥ वैदेही प्रबल अग्नि देखकर मनमें प्रसन्न हुई, कुछ भय नहीं हुआ । वैदेही इस कारण कहा कि जिनकी दृष्टिमें देह भाव नहीं और रघुनाथजीके मिलने व सत्य शरीरके प्रकट होनेका आनन्द है ॥६॥

जो मन क्रम वच मम उरमाहीं * तजि रघुवीर आन गति नाहीं॥७॥
तौ कृशानु सबकी गति जाना * मोकहँ होउ श्रीखंड समाना ॥८॥

जो मन, वचन, कर्मसे मेरे हृदयमें रघुनाथजीको छोड़ दूसरे की गति नहीं है ॥७॥ तो हे अग्ने ! तुम सबके हृदयमें वास करती हो मुझे श्रीखंड (चंदन)के समान शीतल हो जाओ॥८॥

छन्द-श्रीखंड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु कहँ मैथिली ।
जयकोशलेश महेश वंदित चरण रज अति निर्मली ॥
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे ।
प्रभु चरित काहु न लखेउ नभ सुर सिद्ध मुनि देखत खरे ॥ ६३ ॥

मैथिली (श्रीजानकी) प्रभुको स्मरण करके अग्निमें प्रवेश कर गयीं, अग्नि तुरंत चन्दन-सम शीतल हो गई ! जानकी बोलीं-कोशलेशकी जय हो, जिनकी चरणरज अत्यन्त निर्मल है, जिसे शिवजी नमस्कार करते हैं । यहां जानकी चरणसे अपनी शुद्धता दिखाती हैं, वह माया का प्रतिबिंब और लौकिक कलंक सब प्रचंड अग्निमें जल गये, परंतु प्रभुका चरित्र किसीने नहीं देखा ! आकाशमें सुर, सिद्ध, मुनि सब देखते खड़े रहे ॥ ६३ ॥

छन्द-तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति विदित जो ।
जिमि क्षीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सोइ राम वामविभाग राजित रुचिर अति शोभा भली ।
नवनील नीरज निकट मानहु कनक पंकजकी कली ॥ ६४ ॥

तब अग्निने ब्राह्मणरूप बनाकर साक्षात् सीता जो वेद विदित सत्यस्वरूप है सो रघुनाथजीको ऐसे सौंप दी जैसे क्षीर सागरने लाकर लक्ष्मी भगवान्‌को सौंप दी थी; वे ही रघुनाथजीकी बाईं ओर अत्यन्त मनोहर शोभा युक्त विराज रही हैं; मानों नीले कमलके निकट सोनेके कमलकी कली है ॥ ६४ ॥

दोहा-हर्षि सुमन वर्षहिं विबुध, बाजहिं गगन निशान ॥
गावहिं किन्नर सुरवधू, नाचहिं चढ़ी विमान ॥ २७१ ॥

आकाशमें देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाते हैं बाजे बजाते हैं देवता किन्नर गाते हैं, उनकी स्त्रियाँ विमानोंमें चढ़ी नाचती हैं ॥ २७१ ॥

दोहा-श्रीजानकी समेत प्रभु, शोभा अमित अपार ॥
देखत हर्षे भालु कपि, जय रघुपति सुखसार ॥ २७२ ॥

श्रीजानकीजी समेत प्रभुकी अपरिमित अपार शोभा हो रही है, यह देखकर रीछ, वानर प्रसन्न हो बोले कि 'सुखके सागर रामकी जय हो' ॥ २७२ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पंडित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकायां लंकाकांडान्तर्गतो द्वादशो विश्रामः ॥ १२ ॥

दोहा-त्रयोदशक विश्राममें, लषण सिया सह राम ।
सुरवंदित हिय मुदित हो, चले अवध सुखधाम ॥ १३ ॥

तब रघुपति अनुशासन पाई * मातलि चलेउ चरण शिर नाई॥१॥

आये देव सदा स्वारथी ❋ वचन कहहिं जनु परमारथी ॥२॥

तब रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर मातलि चरणोंमें शिर नवाकर चला गया ॥ १ ॥ सदाके स्वार्थी देवता रघुनाथजीके पास आये ऐसी बातें कहने लगे मानो परमार्थी हैं ॥ २ ॥

दीनबन्धु दयालु रघुराया ❋ देव कीन देवनपर दाया ॥३॥
विश्वद्रोह रत यह खल कामी ❋ निज अघ गयउ कुमारग गामी॥४॥

हे दीनबन्धु दयालु कांतिमान् रघुनाथजी ! आपने देवताओं पर बड़ी दया की ॥३॥ यह संसारका द्रोही दुष्ट, कामी रावण जो कुमार्गमें चलता था सो अपने पापसे मर गया ॥४॥

तुम समरूप ब्रह्म अविनाशी ❋ सदा एकरस सहज उदासी ॥५॥
अकल अगुण अनवद्य अनामय ❋ अजित अमोघशक्ति करुणामय॥६॥

आपमें मरणादिक क्रिया नहीं बन सकती, क्योंकि तुम समरूप हो अर्थात् सबको समान रूपसे जाननेवाले हो, ब्रह्म हो अविनाशी (नाशरहित) हो सदा एकरस रहते हो स्वाभाविक उदासीन हो ॥५॥ कलारहित हो, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंसे परे हो, अनवद्य, (दोषरहित) हो, अनामय (अविद्यादिक रोगोंसे रहित) हो, अजित (कोई आपको जीत नहीं सकता), अमोघशक्ति (कभी निष्फल नहीं होती) तथा करुणाके सागर हो ॥ ६ ॥

मीन कमठ सूकर नरहरी ❋ वामन परशुराम वपु धरी ॥७॥
जब जब नाथ सुरन दुख पावा ❋ नाना तनु धरि तुमहि नसावा ॥८॥

हे नाथ ! आपनेही मत्स्य, कमठ, वराह, नृसिंह, परशुराम, वामनादि शरीर धारण किये हैं ॥७॥ हे स्वामी ! जब जब देवताओंने दुःख पाये हैं तब तब आपने अनेक शरीर धारण कर उनके दुःखोंका नाश किया है ॥ ८ ॥

रावण पापमूल सुर द्रोही ❋ काम लोभ मदरत अति कोही ॥९॥
सोउ कृपालु तव धाम सिधावा ❋ यह हमरे मन अचरज आवा॥१०॥

रावण पापका मूल देवताओंका द्रोही था, काम लोभ और मदमें प्रीति रखता था, बड़ा क्रोधी था॥९॥हे भगवन्! वह भी आपके लोकको गया यह हमारे मनमें बड़ा आश्चर्य आया ॥१०॥

हम देवता परम अधिकारी ❋ स्वारथ रत तव भक्ति बिसारी॥११॥
भव प्रबाह सन्तत हम परे ❋ अब प्रभु पाहि शरण अनुसरे॥१२॥

यद्यपि हम देवता आपके भजनके परम अधिकारी हैं परंतु स्वार्थके वशीभूत होकर आपकी भक्ति विसार दी है ॥ ११ ॥ संसाररूप जन्म मरणके प्रवाहमें निरंतर हम पड़े हैं, हे प्रभो ! अब हमारी रक्षा करो हम आपके शरणागत हैं ॥ १२ ॥

दोहा—करि विनती सुर सिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि ॥
अतिशय प्रेम सरोज भव, अस्तुति करत बहोरि ॥ २७३ ॥

विनती करके देवता सिद्ध जहाँ तहाँ हाथ जोड़कर खड़े हो गये; तब सरोजभव (ब्रह्माजी) बड़े प्रेमसे स्तुति करने लगे ॥ २७३ ॥

छन्द—जय राम सदा सुखधाम हरे, रघुनायक सायक चाप धरे ॥
भववारण दारण सिंह प्रभो, गुणसागर नागर नाथ विभो ॥१॥

हे राम ! हे हरे ! 'हरति दुःखानीति हरिः' जो दुःखको हरे, सदा सुखस्वरूप रघुनाथजी ! धनुष बाण धारण किये हुए आपकी जय हो, हे प्रभो ! आप संसाररूपी हाथीके नाश करनेको सिंह हो गुणोंके समुद्र तथा चतुर हो, हे नाथ ! आप सर्वव्यापक हो ॥ १ ॥

तनु काम अनेक अनूप छबी, गुण गावत सिद्ध मुनींद्र कवी ॥
यशपावन रावण नाग महा, खगनाथ यथा करि कोप गहा ॥२॥

आपके शरीरकी छबि अनेकों कामदेवके समान अनुपम है, मुनि, सिद्ध, कविराज आपका यश गाते हैं, पवित्र यशवाले आपने रावणरूपी महासर्पको गरुड़जीके समान क्रोधसे पकड़ कर मार डाला ॥ २ ॥

जनरंजन भंजन शोकभयम्, गत क्रोध सदा प्रभु बोधमयम् ।
अवतार उदार अपार गुनम्, महिभार विभंजन ज्ञानघनम् ॥ ३ ॥

भक्तोंके आनंददाता, शोक-भयनाशक, क्रोध रहित हे प्रभो ! आप सदा ज्ञानरूप हो,आपका अवतार उदार है, आपके अपार गुण हैं; आप पृथ्वीके भारनासक विज्ञानघन हो ॥ ३ ॥

अज व्यापकमेकमनादि सदा, करुणाकर राम-नमामि मुदा ।
रघुवंश विभूषण दूषणहा, कृत भूप विभीषण दीन रहा ॥४॥

आप सदा जन्मरहित, व्यापक एक अनादि हो, करुणाके खान, जगत्के रमानेवाले (राम) को मैं प्रेमसे प्रणाम करता हूँ, हे रघुवंशमें भूषणरूप ! आप दोषोंको दूर करनेवाले हो, दीन विभीषणको भी राजा बना दिया ॥ ४ ॥

गुणज्ञान निधान अमान अजम्, नित राम नमामि विभुं विरजम् ॥
भुजदण्ड प्रचंड प्रताप बलम्, खलवृन्दनिकंद महाकुशलम् ॥ ५ ॥

आप गुण और ज्ञानके निधान हो; मानरहित, अजन्मा हो; ऐसे व्यापक रजोगुण तमोगुण रहित रामको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ, भुजदंड जो आपके हैं इनका प्रताप और बल तीक्ष्ण है, ये भुज दुष्टोंके समूहको नाश करनेमें महाकुशल हैं ॥ ५ ॥

बिनु कारण दीनदयालु हितम्, छबिधाम नमामि रमासहितम् ।
भव-तारण कारण कायपरम्, मनसंभव-दारुण दोष हरम् ॥ ६ ॥

हे दीनदयालु ! आप कारण विना ही हित करते हो; हे छबिके मंदिर ! मैं सीता सहित आपको प्रणाम करता हूँ । भव (संसार) के तारनेवाले और जगत्के कारण हो तथा कायासे परे हो; "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमिति" यजुर्वेदमें लिखा है वह परमात्मा भौतिक शरीरवाला नहीं है, आप मनसे उत्पन्न हुए दारुण दोषोंको हरनेवाले हो कहीं 'काजपर' यह पाठ है, तो यह अर्थ करना कि आप संसारोद्धार करनेको कार्यपरायण हो वा कार्यसे परे सबके कारण हो ॥ ६ ॥

शर चाप मनोहर त्रोण-धरम्, जलजारुणलोचन भूपवरम् ।
सुखमन्दिर सुन्दर श्रीरमणम्, मद-मार महा-ममताशमनम् ॥ ७ ॥

आप निर्गुण होकर भी बाण धनुष तूणीर धारण किये हो, आपके कमलसे लाल नेत्र हैं, आप श्रेष्ठ राजा हो, सुखके स्थान हो, सुन्दर लक्ष्मीके साथ रमण करनेवाले हो और अहंकार, काम, ममत्वको शांत करने वाले हो ॥ ७ ॥

अनवद्य अखण्ड न गोचर गो, सब रूप सदा सब होइ न सो ॥
इति वेद वदंति न दंत कथा, रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा ॥८॥

हे भगवन् ! आप दोष रहित अखंड (सर्वत्र परिपूर्ण) इंद्रियोंसे परे हो; सब रूपमें और सदा सबसे भिन्न हो यह वेद कहता है कुछ हमने यह बात नहीं बना ली है, जैसे सूर्यसे धूप भिन्न है और धूप सूर्यका रूप है अर्थात् अलग नहीं है, इसी प्रकारसे आप हो यथाहि-"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" इति श्रुतिः। वह एक है,सर्वव्यापी परमात्मा है॥८॥

कृत कृत्य विभो सब वानर ये, निरखंत तवानन सादर जे ॥
धिग जीवन देव शरीर हरे, तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥ ९ ॥

हे व्यापक ! ये सब वानर कृतार्थ हैं, जो आदरसे आपका मुख देखते हैं, हे हरे देवताओंके शरीरको धिक् है, जो आपकी भक्ति छोड़कर संसारके विषयमें भूले पड़े हैं ॥ ९ ॥

अब दीनदयालु दया करिये, मति मोर विभेदकरी हरिये ॥
जेहिते विपरीत क्रिया करिये, दुख सो सुखमानि सुखी चरिये ॥१०॥

हे दीन दयालु ! अब मेरे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये भेद बुद्धि जाती रहे, क्योंकि द्वितीया द्वै भयं भवतीत श्रुतेः भेददृष्टि करनेवालेको दूरसे भय होता है 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' सर्वत्र एक ही देखनेवालेको मोह शोक नहीं होते और हे प्रभु ! जिसके द्वारा विपरीत क्रिया (कर्म) होते हैं, जिसके द्वारा दुःखको सुख माने फिरते हैं वह विपरीत मति जाती रहे। अथवा जितना त्रिगुण व्यवहार है उसमें आपको देखें, चैतन्यरूपकर्त्ता आप ही हो, चरणोंमें अखण्ड अनुराग बना रहे, जो कार्य सौंपा है उसमें 'अहंता न आये' जिससे विपरीत मति होती है वह मिट जाय, दुःख सुखमें समानसुखी होकर जगत्में विचरें और आपके भक्त जैसे आपको पाते हैं वैसे ही मुझे मिलो ॥ १० ॥

खलखण्डन मंडन रम्य क्षमा, पदपंकज सेवत शंभु उमा ॥
नृपनायक दे वरदानमिदम्, चरणाम्बुज प्रेम सदा शुभदम् ॥ ११ ॥

आपने दुष्टोंको मारकर क्षमा (पृथ्वी) शोभित कर दिया, आप इसके शोभा और शृङ्गार हो और शिवपार्वती आपके चरणकमलोंको सेवते हैं, हे नृपनायक (लोकपते) यह वरदान दीजिये कि सदा आपके चरणकमलोंमें सुखदायक प्रेम हो ॥ ११ ॥

दोहा-विनय कीन्ह चतुरानन, प्रेम पुलकि अति गात ॥
शोभासिंधु विलोकत, लोचन नाहिं अघात ॥ २७४ ॥

ब्रह्माजीने अत्यन्त प्रेमसे पुलकित शरीर हो प्रभुकी विनती की और शोभासागरको देखते हुए नेत्र तृप्त नहीं होते, अर्थात् प्रीति बढ़ती ही जाती है ॥ २७४ ॥

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये ❋ तनय विलोकि नयन जल छाये॥१॥
अनुज सहित प्रणाम प्रभु कीन्हा ❋ आशिर्वाद पिता तब दीन्हा ॥२॥

उसी अवसरमें महाराज दशरथजी (विमान पर बैठकर इन्द्रलोकसे) वहां आये और पुत्रको देखकर नेत्रोंमें जल छा गया ॥ १ ॥ लक्ष्मणसहित रघुनाथजीने प्रणाम किया, तब पिताने आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

तात सकल तव पुण्यप्रभाऊ * जीतेउँ अजय निशाचर राऊ ॥३॥
सुनि सुत वचन प्रीति अति बाढ़ी * नयन नीर रोमावलि ठाढ़ी ॥४॥

(रघुनाथजी बोले) पिताजी ! यह सब आपके पुण्यका प्रभाव है जो मैंने अजित निशाचरोंके राजाको जीता ॥ ३ ॥ यह पुत्रके वचन सुनते ही पिताकी बहुत प्रीति बढ़ी नेत्रोंमें जल भर आया, रोम खड़े हो गये ॥ ४ ॥

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना * चितै पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना॥५॥
ताते उमा मोक्ष नहिं पावा * दशरथ भेद भक्ति मन लावा ॥६॥

रघुनाथजी प्रथम प्रेमका अनुमान करके कि इन्होंने मेरा वियोग होते ही शरीर छोड़ दिया था, कदाचित् अब यह दिव्य शरीर भी त्याग दें, इस कारण प्रेमको घटा और ज्ञानको दृढ़ कर दिया अर्थात् अपनेको ईश्वर बताया ॥५॥ (दशरथजीकी मुक्ति अबतक न होनेका कारण शिवजी कहते हैं) हे पार्वती । दशरथजीकी मुक्ति इस कारणसे नहीं हुई कि उन्होंने भेद भक्तिमें मन लगाया था, स्वामी सेवक भावसे परमेश्वरको अपनेसे पृथक् जानकर भजन करनेका नाम भेदभक्ति है, परमेश्वरका श्यामस्वरूपादिसे भजन करना भेदभक्ति है, और सर्वरूप परमेश्वरको जानकर उपासना करना अभेद भक्ति है सो यह मुक्तिका कारण है ॥६॥

सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं * तिन कहँ राम भक्ति निज देहीं॥७॥
बार बार करि प्रभुहिं प्रणामा * दशरथ हर्षि गये निज धामा ॥८॥

सगुणरूपकी उपासना करने वाले मुक्ति नहीं चाहते,उनको रघुनाथजी अपनी भक्ति देते हैं सो दशरथजीकी भी भेदभक्ति थी । रघुनाथजीने विचारा कि यह पिता हैं; इनको सेवक कैसे करें ? इस कारण दृढ़ज्ञान देकर मुक्त कर दिया "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"॥७॥ बार बार प्रभुको प्रणाम कर दशरथजी प्रसन्नता पूर्वक अपने स्थानको गये अर्थात् कैवल्यपदको प्राप्त हुए ॥ यह ज्ञान होनेके कारण राममें पुत्रबुद्धि जाती रही और योगवसिष्ठमें ज्ञान सुनाते समय राजा दशरथजीने भी ज्ञान सुना था, उस ज्ञानसे इस कारण मुक्त नहीं हुए कि रघुनाथजीके प्रेमसे ज्ञान शिथिल हो गया था, और प्रारब्ध भी शेष था, अब ज्ञानसे मुक्त हुए किसीका यह मत है कि भक्तोंके सभी मनोरथ पूर्ण होने पर परमगति होती है; दशरथजीको रघुनाथजीका राज्य देखनेकी इच्छा थी सो अभिषेकका परमोत्साह देखकर रघुनाथजीके साथ ही साकेत लोकको प्राप्त होंगे अर्थात् मुक्ति हो जायगी ॥ ८ ॥

दोहा–अनुज जानकी सहित प्रभु, कुशल कोशलाधीश ॥
छबि विलोकि मन हर्ष अति, अस्तुति कर सुर ईश ॥ २७५ ॥

लक्ष्मण जानकी सहित श्रीरामजी आनन्दसे विराजते हैं, यह उनकी छबि देखकर देवराज इन्द्र मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो स्तुति करने लगे ॥ २७५ ॥

छन्द–जय राम शोभा धाम । दायक प्रणत विश्राम ॥
धृत तूण वर शर चाप । भुजदंड प्रबल प्रताप ॥ १ ॥
जय दूषणारि खरारि । मर्दन निशाचर धारि ।
यह दुष्ट मारेउ नाथ । भये देव सकल सनाथ ॥ २ ॥

हे शोभाके धाम रघुनाथजी ! आपकी जय हो, आप भक्तोंको विश्राम देनेवाले हो, तरकस और सुन्दर बाण धनुष धारण किये हो, आपकी भुजाओंका बड़ा प्रबल प्रताप है ॥१॥ दूषण और खरके मारनेवाले तथा निशाचरकी सेनाको मर्दन करनेवाले आपकी जय हो। हे नाथ ! आपने इस दुष्टको मारकर हम सबको सनाथ किया ॥ २ ॥

छन्द–जय हरण धरणी भार । महिमा अमित उदार ।
जय रावणारि कृपालु । किये यातुधान बिहालु ॥ ३ ॥
लंकेश अतिबल गर्व । किये वश्य सुर गंधर्व ।
मुनिसिद्ध खग नर नाग । हठि पंथ सबके लाग ॥ ४ ॥

हे पृथ्वीके भार हरनेवाले ! आपकी महिमा उदार और अपार है, हे रावणके शत्रु और उसपर कृपा करनेवाले आपकी जय हो, आपने राक्षसोंको बेहाल कर दिया है ॥३॥ (लंकेश) रावणको बलका बड़ा गर्व था, सब देवता और गंधर्वोंको अपने वशमें कर लिया था; मुनि सिद्ध, पक्षी, मनुष्य तथा नाग हठसे सबके पीछे पड़ा ॥ ४ ॥

छन्द–परद्रोहरत अति दुष्ट । पायो सो फल पापिष्ट ।
अब सुनहु दीन दयाल । राजीवनयन विशाल ॥ ५ ॥
मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान ।
अब देखि प्रभुपदकंज । गत मान मद दुखपुंज ॥ ६ ॥

रावण परद्रोही और महा दुष्ट था वैसा ही उस पापात्माने फल पाया, अब हे दीन दयालु ! कमलसे बड़े नयनवाले ! सुनिये ॥५॥ मुझे बड़ा अभिमान था कि कोई मेरे समान नहीं है, अब आपके चरणारविन्दको देख कर मेरा मान मद दुःख मिट गया ॥ ६ ॥

छन्द–कोउ ब्रह्म निर्गुण ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ।
मोहि भाव कोशल भूप । श्रीराम सगुण स्वरूप ॥ ७ ॥
वैदेहि अनुज समेत । मम हृदय करहु निकेत ।
मोहिं जानिये निजदास । दे भक्ति रमा निवास ॥ ८ ॥ ६६ ॥

कोई निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हैं जो अप्रकट है जिसे वेद गाते हैं, परन्तु मुझे तो अयोध्याके राजा श्रीरामका सगुणस्वरूप ही अच्छा लगता है॥७॥ जानकी लक्ष्मण सहित आप मेरे हृदयमें स्थान कीजिये और मुझे अपना दास जानकर हे रमारमण ! अपनी भक्ति दीजिये॥८॥६६॥

छन्द–दे भक्ति रमानिवास त्रासहरण शरणसुखदायकम् ।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकम् ॥
सुरवृन्दरंजनद्वंद्वभंजन मनुजतनु अतुलित बलम् ।
ब्रह्मादि शंकर सेव्य राम नमामि करुणा कोमलम् ॥ ६७ ॥

हे लक्ष्मीके हृदयमें निवास करनेवाले ! त्रास हरनेवाले ! शरणसुखदायक ! सुखके धाम रघुनाथजी ! आप हमको अपनी भक्ति दीजिये, आप सुखके धाम-जगतके रमानेवाले, अनेक

कामदेवकी छबियुक्त रघुकुलके नायक हो, देवताओंके सुखदायक, दुखनाशक मनुष्य-शरीर धारण किये अतुलित बली हो, ब्रह्मा शिवजी आपकी सेवा करते हैं, करुणामय कोमल स्वभाव रामकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६७ ॥

दोहा–अब करि कृपा बिलोकि मोहिं, आयसु देहु कृपालु ॥
काह करउँ सुनि प्रिय वचन, बोले दीन दयालु ॥ २७६ ॥

अब कृपा करके मेरी ओर देखिये, हे कृपासागर ! मुझे कुछ आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ ? यह प्यारे वचन सुनकर दीनदयालु रघुनाथजी बोले ॥ २७६ ॥

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे * परे भूमि निशिचर जे मारे ॥१॥
मम हित लागि तजे इन प्राना * सकल जियाउ सुरेश सुजाना ॥२॥

सुनो देवराज ये हमारे रीछ वानर राक्षसोंने जो मारे पृथ्वीमें पड़े हैं ॥ १ ॥ इन्होंने मेरे कारण प्राण त्यागे हैं ! हे सुजान सुरेश ! इन सबको जिला दीजिये। सुजान कहनेका तात्पर्य यह कि इन्द्रको शंका हुई कि अमृत बरसानेसे वानर और राक्षस दोनों जी उठेंगे इसी कारण रघुनाथजी कहते हैं कि इन्द्र ! आप जानते हो, राक्षस नहीं जीवेंगे, क्योंकि उनकी मुक्ति हो गयी और वानर देवांश हैं इस लिये वे जी जायँगे ॥ २ ॥

सुनु खगेश प्रभुकी यह बानी * अति अगाध जानहिं मुनिज्ञानी ॥३॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई * केवल शक्रहि दीन्ह बड़ाई ॥४॥

काकभुशुण्डजी बोले–हे खगेश ! सुनिये, यह प्रभुकी अगाध वाणी है, इसको बड़े ज्ञानी मुनि ही जान सकते हैं ॥ ३ ॥ प्रभु चाहें तो त्रिलोकीको मार कर जिला सकते हैं, परंतु केवल इन्द्रको यह बड़ाई दी है ॥ ४ ॥

सुधा वर्षि कपि भालु जिआये * हर्षि उठे सब प्रभुपहँ आये ॥५॥
सुधा वृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर * जिये भालु कपि नहिं रजनीचर ॥६॥

इन्द्रने अमृत बरसाकर रीछ वानरोंको जिला दिया, वे सब प्रसन्न हो उठे और रघुनाथजीके पास आये ॥५॥ अमृतकी वर्षा दोनों सेनाओं पर हुई किंतु भालु वानर जीवित हो गये, राक्षस नहीं जिये। कोई यों अर्थ करते हैं कि अमृतकी वर्षा रीछ वानर दो दलों पर हुई परंतु यह संगत नहीं बैठता, गोसाईंजी ही आगे लिखते हैं कि ॥ ६ ॥

रामाकार भये तिनके मन * गये ब्रह्मपद तजि शरीर रन ॥७॥
सुर अंशिक सब कपि अरुरिच्छा * जिये सकल रघुपति की इच्छा ॥८॥

राक्षसोंके मन रामाकार हो गये थे, कारण युद्धमें शरीर छोड़कर वे ब्रह्मपदको चले गये (वहां से अमृत भी ला नहीं सकता) ॥७॥ वानर और रीछ सब देव अंश हैं उनके प्राण उनके अंशमें अटके रह गये; अतः उनको अमृत फेर लाया, इन सबके ऊपर कहते हैं कि रघुनाथजीकी इच्छासे सब जी गये; जो अमृतको विष विषको अमृत कर देती है ॥ ८ ॥

राम सरिस को दीन हितकारी * कीन्हे मुक्त निशाचर झारी ॥९॥
खल मलधाम कामरत रावन * गति पाई जो मुनिवर पावन ॥१०॥

रघुनाथजीके समान दीन हितकारी कौन है ? जिन्होंने महाराक्षसोंको मुक्त पदवी दी ॥ ९ ॥ दुष्ट पापोंके स्थान काममें निरत रहनेवाले रावणको वह गति दी जो पवित्र मुनियों को मिलती है ॥ १० ॥

दोहा–सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान ॥
देखि सुअवसर रामपहँ, आये शंभु सुजान ॥ २७७ ॥

फूल बरसाकर सब देवता अपने सुन्दर विमानों पर बैठकर चले गये। तब एकान्तका अच्छा समय देखकर परम चतुर (देवाधिदेव) महादेवजी रघुनाथजीके पास आये। शंकरको सुजान इस कारण कहा कि संकोच है। कदाचित् रघुनाथजी उलाहना दें कि आपके चेलेसे हमको बड़ा दुःख हुआ, इस कारण एकान्तमें आये ॥ २७७ ॥

दोहा–परम प्रीति कर जोरि युग, नलिन नयन भरि बारि ॥
पुलकित तनु गद्गद गिरा, विनय करत त्रिपुरारि ॥ २७८ ॥

बड़े प्रेमसे दोनों हाथ जोड़कर कमलसे नेत्रोंमें जल भरकर शरीरसे पुलकित और गदगद वाणीसे शिवजी स्तुति करने लगे ॥ २७८ ॥

मामभिरक्षय रघुकुलनायक * धृत-वर-चाप-रुचिर करसायक ॥१॥
मोह महा घनपटल प्रभंजन * संशय-विपिन-अनल सुररंजन ॥२॥

हे रघुकुलनायक ! मेरी रक्षा कीजिये; आप अपने हाथमें सुन्दर धनुष बाणको धारण किये हो ॥ १ ॥ महा अज्ञानरूपी बादलोंके नाश करनेको आप पवन हो, संदेहरूपी वनके जलाने को अग्निरूप हो, देवताओंको आनन्द देते हो ॥ २ ॥

सगुण अगुण गुणमंदिर सुन्दर * भ्रमतम-प्रबल-प्रताप-दिवाकर ॥३॥
कामक्रोध-मद-गज-पंचानन * बसहु निरन्तर जनमन कानन ॥४॥

आप सगुण अगुण-गुणके मंदिर अर्थात् कारण हो। सुन्दर स्वरूप हो, भ्रमरूपी अंधकार के नाश करनेको आपका प्रताप (प्रचण्ड) सूर्य है ॥३॥ काम, क्रोध, मद जो हाथीरूप हैं उनके नाश करनेको आप सिंह हो और भक्तोंके मनरूपी वनमें सदा वास करते हो ॥ ४ ॥

विषय-मनोरथ पुंज-कंज-वन * प्रबल तुषार उदारपार मन ॥५॥
भव-वारिधि-मन्दर परमन्दर * वारय तारय संसृति दुस्तर ॥६॥

विषयोंके मनोरथ समूह कमलोंका वन है उनके नाश करनेको आप तुषार (पाला) हो और मनसे परे हो ॥५॥ संसाररूपी सागरको मथनेमें आप मंदराचल हो, परमन्दर (परमधाम) हो रक्षा कीजिये और हमारे चेलेसे आपको दुःख हुआ सो क्षमा कीजिये और जन्म मरण जो (दुस्तर) कठिनतासे तरने योग्य संसृतिरूप आवागमन है उससे भक्तोंको तारिये ॥ ६ ॥

श्याम-गात राजीव-विलोचन * दीनबन्धु प्रणतारति मोचन ॥७॥
अनुज जानकी सहित निरंतर * बसहु रामनृप मम उर अन्तर ॥८॥

श्याम गात कमलसे आपके नेत्र हैं, हे दीनबन्धु ! आप दीनोंके दुःख दूर करनेवाले हो ॥ ७ ॥ हे राजा राम ! आप लक्ष्मण जानकी सहित सदा मेरे हृदयमें वास कीजिये ॥ ८ ॥

मुनिरंजन महिमंडल-मण्डन * तुलसिदास प्रभु त्रास विखंडन ॥९॥

आप मुनियोंके आनन्ददाता, पृथ्वी मण्डलके (मण्डन) सुशोभित करनेवाले हो और हे तुलसीदासके प्रभु आप दुःख दूर करनेवाले हो ॥ ९ ॥

दोहा-नाथ जबहिं कोशलपुरी, होइहैं तिलक तुम्हार ॥
तब मैं आउब सुनहु प्रभु, देखन चरित उदार ॥ २७९ ॥

सुनिये नाथ ! जिस समय अयोध्यामें आपका तिलक होगा उस समय मैं आपका उदार चरित्र देखने आऊँगा ॥ २७९ ॥

करि विनती जब शम्भु सिधाये * तब प्रभु निकट विभीषण आये ॥१॥
नाय चरण शिर कह मृदुबानी * विनय सुनहु प्रभु शारंगपानी ॥२॥

जब विनती कर शिवजी चले गये तब श्रीरामचन्द्रजीके निकट विभीषण आये ॥ १ ॥ चरणोंमें शिर नवाकर कोमल वाणीसे बोले-हे शार्ङ्गधनुर्धारी प्रभु मेरी विनय सुनिये ॥ २ ॥

सकुल सदल प्रभु रावण मारा * पावन यश त्रिभुवन विस्तारा ॥३॥
दीन मलीन हीन मति जाती * मोपर कृपा कीन्ह बहु भाँती ॥४॥

स्वामिन् ! कुल और दल सहित रावणको मारकर आपने त्रिलोकीमें पवित्र यशका विस्तार किया ॥३॥ दीन मलीन नष्ट बुद्धि हीन जाति मेरे ऊपर भी आपने बहुत प्रकारसे कृपा की ॥४॥

अब जनगृह पुनीत प्रभु कीजे * मज्जन करिय समर श्रम छीजे ॥५॥
देखि कोष मंदिर सम्पदा * देहु कृपालु कपिन्ह कहँ मुदा ॥६॥

हे प्रभो ! अब दासका घर (चलकर) पवित्र कीजिये और स्नान कर युद्ध श्रम मिटाइये ॥५॥ हे कृपासागर ! खजाना मन्दिर संपत्ति देखिये और फिर प्रसन्न हो वानरोंको दीजिये ॥ ६ ॥

सब विधि नाथ मोहिं अपनाइय *पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय॥७॥
सुनत वचन मृदु दीनदयाला *सजल भये दोउ नयन विशाला॥८॥

हे नाथ ! सब प्रकारसे मुझको अपनाकर फिर मुझ सहित अयोध्यापुरी जाइये ॥ ७ ॥ दीनदयालुके दोनों बड़े बड़े नेत्रोंमें विभीषणके कोमल वचन सुनते ही जल भर आया (और बोले) ॥ ८ ॥

दोहा-तोर कोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुनु भ्रात ॥
दशा भरतकी सुमिरि मोहि, पलक कल्पसम जात ॥ २८० ॥

हे भाई ! सुनो, यह तुम्हारा खजाना, घर सब मेरा ही है सो सत्य है परन्तु इस समय मुझको भरत भ्राताकी दशा स्मरण होनेसे एक पलक कल्पके समान बीतता है ॥ २८० ॥

दोहा-तापस वेष शरीर कृश, जपत निरंतर मोहि ॥
देखउँ वेगि सो जतन करु, सखा निहोरउँ तोहि ॥ २८१ ॥

वह भरत तपस्वियोंका वेष बनाये कृशशरीरसे सदा मेरा भजन करते हैं अतः वही यत्न करो जिससे मैं उनको शीघ्र देखूँ, हे सखा ! तुम्हारा निहोरा करता हूँ, (पुष्पक विमानका लेना भी इस वचनसे सूचित होता है) ॥ २८१ ॥

दोहा-बीते अवधि जाउँ जो, जियत न पावउँ वीर ॥
प्रीति भरतकी समुझि प्रभु, पुनि पुनि पुलक शरीर ॥ २८२ ॥

जो अवधि बीतने पर जाऊँगा तो मैं वीर भ्राताको जीता नहीं पाऊँगा । इस प्रकार भरत की प्रीतिको स्मरण करके रघुनाथजी बारंबार पुलकित शरीर होते हैं ॥ २८२ ॥

दोहा-करहु कल्पभरि राज्य तुम, मोहि सुमिरेउ मनमाहिं ॥
पुनि मम धाम सिधाइहहु, जहाँ सन्त सब जाहिं ॥ २८३ ॥

एक कल्पतक तुम राज्य करो, मुझको मनमें स्मरण करते रहना । फिर मेरे धामको अन्त समय प्राप्त होगे, जहां सब संत जाते हैं ॥ २८३ ॥

सुनत विभीषण वचन रामके * हर्षि गहे पद कृपाधामके ॥१॥
वानर भालु सकल हर्षाने * गहि प्रभुपद गुण विमल बखाने ॥२॥

श्री रघुनाथजीके वचन सुनते ही विभीषणने प्रसन्न होकर कृपानिधानके चरण पकड़ लिये ॥ १ ॥ सब रीछ वानरोंने प्रसन्न होकर प्रभुके चरण पकड़ लिये और उनके विमल गुणोंका बखान करने लगे ॥ २ ॥

बहुरि विभीषण भवन सिधावा * मणिगण बसन विमान भरावा ॥३॥
लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा * हँसिकरि कृपा सिन्धु अस भाखा ॥४॥

फिर विभीषण घर आये और वस्त्र, मणिसमूह पुष्पक विमानमें भरवाये ॥३॥ वह पुष्पक विमान लेकर रघुनाथजीके आगे रखा, तब हँसकर रघुनाथजीने इस प्रकार कहा ॥ ४ ॥

चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषण * गगन जाइ वर्षहु पट भूषण ॥५॥
नभपर जाइ विभीषण तबही * वर्षि दिये पट भूषण सबही ॥६॥

सुनो मित्र विभीषण ! तुम विमानमें चढ़कर आकाशमें जाओ और वहांसे यह वस्त्र और गहने बरसा दो ॥ ५ ॥ आज्ञानुसार विभीषणने आकाशमें जाकर सब पट (वस्त्र) भूषण गहने बरसा दिये ॥ ६ ॥

जोइ जोइ मन भावा सोइ लेहीं * मणि मुखमेलि डारि कपि देहीं ॥७॥
हँसे राम सिय अनुज समेता * परमकौतुकी कृपानिकेता ॥८॥

जो जो जिसके मनमें भाता है वही वही लेते हैं, वानर मणि मुखमें डालकर फिर उगल देते हैं (वानर मणियोंको फल समझकर मुखमें डालते हैं और फिर पत्थर जानकर उगल देते हैं) ॥ ७ ॥ यह देखकर कौतुकी रघुनाथजी सीता और लक्ष्मण समेत हँसे ॥ ८ ॥

दोहा-ध्यान न पावहिं जासु मुनि, नेति नेति कह वेद ॥
कृपासिंधु सोइ कपिनसन, करत अनेक विनोद ॥ २८४ ॥

जिनको मुनि ध्यानमें भी नहीं पाते, वेद जिनको 'नेति नेति' कहता है वे ही कृपासागर वानरोंसे अनेक प्रकारसे विनोद (आनन्द) करते हैं ॥ २८४ ॥

दोहा-उमा योग जप दान तप, नाना व्रत मख नेम ॥
रामकृपा नहिं करहिं तसि, जस निष्केवल प्रेम ॥ २८५ ॥

शिवजी बोले-हे पार्वती ! अनेक प्रकारसे योग, जप दान तप अनेक व्रत यज्ञ नियम करने से भी भगवान् ऐसी कृपा नहीं करते जैसी केवल प्रीतिसे करते हैं ॥ २८५ ॥

भालु कपिन पट भूषण पाये ❋ पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये॥१॥
नाना जिनिसि देखि प्रभु कीशा ❋ पुनि पुनि हँसत कोशलाधीशा ॥२॥

रीछ वानरोंने वस्त्र और गहने पाये तब पहन पहन कर रघुनाथजीके पास आये ॥ १ ॥ नाना रंगके रीछ और वानरों को देखकर अयोध्यानाथ परमकौतुकी प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बारम्बार हँसते हैं ॥ २ ॥

चितै सबनि पर कीन्ही दाया ❋ बोले मधुर वचन रघुराया ॥३॥
तुम्हरे बल मैं रावन मारा ❋ तिलक विभीषण कहँ पुनिसारा ॥४॥

कृपादृष्टिसे देखकर रघुनाथजीने सब पर दया की और कोमल वचन बोले ॥ ३ ॥ मैंने तुम लोगोंके बलसे ही रावणको मारा और विभीषण को तिलक भी दिया ॥ ४ ॥

निज निज गृह अब तुम सब जाहू ❋ सुमिरेहु मोहि डरपेउ जनिकाहू ॥५॥
वचन सुनत प्रेमाकुल वानर ❋ जोरि पाणि बोले सब सादर ॥६॥

अब तुम अपने अपने घर जाओ, मुझे स्मरण करते रहना और किसीसे डरना नहीं (अथवा निज घरका भाव यह है कि अपने अपने देवताओंके अंशमें मिल जाओ क्योंकि देव अंश हो) ॥ ५ ॥ रघुनाथजीके वचन सुन वानर प्रेमसे व्याकुल हो आदरपूर्वक हाथ जोड़कर बोले ॥ ६ ॥

प्रभु जोइ कहहु तुमहिं सब सोहा ❋ हमरे होत वचन सुनि मोहा ॥७॥
दीन जानि कपि किये सनाथा ❋ तुम त्रैलोक्य ईश रघुनाथा ॥८॥

हे प्रभु ! आप जो कहो सब आपको सुहाता है, परंतु हमको वचन सुनकर मोह आता है ॥७॥ आपने दीन जानकर वानरोंको सनाथ कर दिया, हे रघुनाथजी ! आप तो त्रिलोकीके ईश्वर हो ॥८॥

सुनि प्रभु वचन लाज हम मरहीं ❋ मशक कबहुँ खगपति हित करहीं ॥९॥
देखि राम रुख वानर रिच्छा ❋ प्रेम मगन नहिं गृहकी इच्छा ॥१०॥

हम प्रभुके वचन सुनकर लाजों मरते हैं, भला कहीं मच्छरोंसे भी गरुड़का हित होता है ? ॥९॥ वानर रीछोंकी घरकी इच्छा नहीं थी; प्रेममें मग्न हो गये, परन्तु रामका रुख देखकर ॥१०॥

दोहा-प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, रामरूप उर राखि ॥
हर्ष विषाद समेत तब, चले विनय बहु भाखि ॥ २८६ ॥

प्रभु की प्रेरणासे सब रीछ और वानर रामके रूपको हृदयमें धारण करके हर्ष विषाद समेत बहुतसी विनती करके चले (प्रसन्नता घर जानेकी, विषाद रघुनाथजीके वियोगका) ॥२८६॥

दोहा-जाम्बवन्त कपिराज नल, अंगदादि हनुमान ॥
सहित विभीषण अपर जे, यूथप कपि बलवान ॥ २८७ ॥

जाम्बवन्त, सुग्रीव, नल, अङ्गदादि हनुमान् तथा विभीषणादि सहित जो बलवान् वानर यूथपति हैं ॥ २८७ ॥

दोहा-कहि न सकहिं कछु प्रेमवश, भरि भरि लोचन वारि ॥
सन्मुख चितवहिं रामतन, नयन निमेष विसारि ॥२८८॥

वे प्रेमके वशीभूत हो रहे, कुछ कह नहीं सकते; नेत्रोंमें बारबार जल भर लेते हैं और नेत्रोंके पलक बिसार कर रघुनाथजीके सम्मुख खड़े हुए उनको देखते हैं ॥ २८८ ॥

अतिशय प्रीति देखि रघुराई * लीन्हे सकल विमान चढ़ाई ॥१॥
मनमहँ विप्र चरण शिर नावा * उत्तर दिशिहि विमान चलावा ॥२॥

श्रीरघुनाथजीने उनकी अधिक प्रीति देखकर सबको विमानमें चढ़ा लिया ॥ १ ॥ और मनमें ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिर नवाकर उत्तर दिशाकी ओर विमान चलाया ॥ २ ॥

चलत विमान कोलाहल होई * जय रघुवीर कहहिं सब कोई ॥३॥
सिंहासन अति ऊच्च मनोहर * सिय समेत बैठे प्रभु तापर ॥४॥

विमान चलनेमें कोलाहल होता है, रघुनाथजीकी जय हो, ऐसा सब कोई कहते हैं (यह शब्द देवता और वानरोंका होता है) ॥ ३ ॥ उसके बीचमें अधिक ऊँचा मनोहर सिंहासन बना हुआ है सीता सहित रघुनाथजी उसी पर बैठे हैं ॥ ४ ॥

राजत राम सहित भामिनी * मेरुशृंग जनु घन दामिनी ॥ ५ ॥
रुचिर विमान चलेउ अति आतुर * कीन्हीं सुमनवृष्टि हरषे सुर ॥ ६ ॥

रघुनाथजी जानकी सहित सिंहासन पर ऐसे विराजते हैं जैसे सुमेरु शृङ्गपर बादल और बिजली शोभित होती है ॥ ५ ॥ सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रतासे चला देवताओंने प्रसन्न हो फूलोंकी वर्षा की ॥ ६ ॥

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी * सागर सर सरि निर्मल वारी ॥७॥
शकुन होहिं सुन्दर चहुँ पासा * मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ॥८॥

परम सुखदायक शीतल, मंद, सुगन्ध वायु चलने लगी, समुद्र, तालाब और नदियोंका जल निर्मल हो गया ॥ ७ ॥ सुन्दर सुन्दर शकुन चारों ओर होने लगे मनमें प्रसन्नता और आकाश और दिशाएँ निर्मल हो गयीं ॥ ८ ॥

कह रघुवीर देखु रण सीता * लक्ष्मण इहाँ हतेउ इन्द्रजीता ॥९॥
हनूमान अंगदके मारे * रणमहँ परे निशाचर भारे ॥१०॥

रघुनाथजी बोले--जानकी ! यह रणस्थल देखो, यहाँ लक्ष्मणजीने इन्द्रजीतको मारा था ॥ ९ ॥ यहां हनूमान् और अङ्गद के मारे रणमें अनेक भारी राक्षस पड़े हैं ॥ १० ॥

कुंभकरण रावण दोउ भाई * इहाँ हते सुरमुनि-दुखदाई ॥११॥

कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई जो देवता और मुनियोंको दुःख देनेवाले थे, उनको मैंने इस स्थान पर मारा था ॥ ११ ॥

दोहा-इहां सेतु बांधेउँ अरु, थापेउँ शिव सुख धाम ॥
सीतासहित कृपायतन, शंभुहि कीन्ह प्रणाम ॥ २८९ ॥

इस स्थान पर सागरमें पुल बांधा और शिवजीको स्थापित किया था, सीता समेत कृपा सागर रघुनाथजीने शिवजीको प्रणाम किया ॥ २८९ ॥

दोहा–जहँ जहँ कृपासिन्धु वन, कीन्ह वास विश्राम ॥
सकल दिखाये जानकिहि, कहि कहि सबके नाम ॥ २९० ॥

जहां जहां रघुनाथजीने वनमें वास विश्राम किये थे, वे सब स्थान नाम कह कहकर जानकीजीको दिखाये ॥ २९० ॥

सपदि विमान तहाँ चलि आवा * दंडकवन जहँ परम सुहावा ॥१॥
कुम्भजादि मुनिनायक नाना * गये राम सबके अस्थाना ॥२॥

शीघ्रतासे विमान वहां आया जहां परम शोभायमान दंडकवन है ॥ १ ॥ वहां अगस्त्य आदि जो मुनि श्रेष्ठ हैं, रघुनाथजी सबके स्थानोंमें गये ॥ २ ॥

सकल ऋषिन सन पाइ अशीशा * आये चित्रकूट जगदीशा ॥३॥
तहँ करि ऋषिनकेर संतोषा * चला विमान तहांते चोखा ॥४॥

सब ऋषियोंसे आशीष पाकर रघुनाथजी चित्रकूटमें आये ॥ ३ ॥ वहां ऋषियोंको सन्तोष दिया, वहांसे भी विमान शीघ्रता के साथ चला ॥ ४ ॥

बहुरि राम जानकिहि दिखाई * यमुना कलिमल हरणि सुहाई ॥५॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता * राम कहा प्रणाम करु सीता ॥६॥

फिर रघुनाथजीने जानकीजीको कलियुगके पाप हरनेवाली यमुना दिखायी ॥ ५ ॥ फिर पवित्र गङ्गाजीको देखकर रघुनाथजी–बोले, जानकी ! प्रणाम करो, (तुमने कहा था कि कुशल पूर्वक आऊँगी तो तुम्हारा पूजन करूँगी; इस प्रकार गंगा-यमुनाको प्रणाम कराया) ॥ ६ ॥

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा * देखत जन्मकोटि अघ भागा ॥७॥
देखु परमपावनि पुनि बेनी * हरनि शोक हरिलोक निसेनी ॥८॥

फिर हे सीते ! तीर्थराज प्रयागका दर्शन करो जिसके दर्शन मात्रसे ही करोड़ों जन्मके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ फिर पवित्र त्रिवेणीका दर्शन करो जो त्रिवेणी शोक दुःख दूर करनेवाली और विष्णुके लोककी सीढ़ी है ॥ ८ ॥

देखी अवधपुरी अति पावनि * त्रिविध-ताप भवरोग नशावनि॥९॥

फिर पवित्र अयोध्याजीका दर्शन किया, जो तीन प्रकारके ताप और संसार रोगका नाश करनेवाली है ॥ ९ ॥

दोहा–तब रघुनन्दन सिय सहित, अवधहिं कीन्ह प्रणाम ॥
सजल विलोचन पुलक तनु, पुनि पुनि हरषित राम ॥ २९१ ॥

तब रघुनाथजीने जानकी सहित अयोध्याको प्रणाम किया, नेत्रोंमें जल भर शरीर पुलकित हो गया, बारम्बार रघुनाथजी प्रसन्न होते हैं ॥ २९१ ॥

दोहा–बहुरि त्रिवेणी आय प्रभु, हर्षित मज्जन कीन्ह ॥
कपिन समेत महीसुरन्ह, दान विविध विधि दीन्ह ॥ २९२ ॥

फिर रघुनाथजीने त्रिवेणीमें आकर प्रसन्न हो स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये, (वानरोंके पास विभीषणके दिये जो रत्नादि थे सो दान किये)॥२९२॥

प्रभु हनुमन्तहिं कहा बुझाई * धरि बटुरूप अवधपुर जाई ॥१॥
भरतहि कुशल हमारि सुनायहु * समाचार लेइ तुम चलि आयहु ॥२॥

रघुनाथजीने महावीरजीसे समझाकर कहा कि तुम ब्रह्मचारीका रूप धरकर अयोध्याको जाओ ॥१॥ और भरतजीको हमारी कुशलता सुनाके उनकी कुशलताका समाचार ले तुम शीघ्र चले आओ। (शुभ समाचार मांगलिक शरीरसे सुनाना अच्छा होता है, इस कारण ब्राह्मणका रूप धरकर जानेको कहा अथवा तुमको भरतजी पहचानते हैं, कदाचित् तुम्हें अकेला देखकर जाने कि रघुनाथजीने इन्हें भेजा, स्वयं नहीं आये यह विचार कदाचित् प्राण त्याग दें कोई यह अर्थ करते हैं कि भरतके मनमें यदि राज्य करनेकी इच्छा हो तो हम अवधको न चलें परंतु यह असङ्गत है जैसा रघुनाथजीने कहा है कि–"भरतहि होय न राजमद" इत्यादि) ॥ २ ॥

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ * तब प्रभु भरद्वाज पहँ गयऊ ॥३॥
नाना विधि मुनि पूजा कीन्हीं * अस्तुति करि पुनि आशिष दीन्हीं॥४॥

महावीरजी यह वचन सुनते ही चले गये तब रघुनाथजी भरद्वाजजीके पास आये ॥३॥ भरद्वाज मुनिने रघुनाथजीकी अनेक प्रकारसे पूजा की और फिर स्तुति कर आशीर्वाद दिया ॥ ४ ॥

मुनि पद बंदि युगलकर जोरी * चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी ॥५॥
इहां निषाद सुना हरि आये * नाव नाव कहि लोग बुलाये ॥६॥

फिर मुनिके चरणोंमें दंडवत् कर दोनों हाथ जोड़े (आज्ञा पाकर) प्रभु विमानमें चढ़-कर चले ॥ ५ ॥ यहां निषादने यह सुना कि रघुनाथजी आये हैं तब नाव कहां है ? नाव कहां है ? यह कह कर लोगोंको बुलाया ॥ ६ ॥

सुरसरि लांघि यान जब आवा * उतरेउ तट प्रभु आयसु पावा ॥७॥
तब सीता पूजी सुरसरी * बहु प्रकार पुनि चरणन परी ॥८॥

जब विमान गङ्गाजीको लांघकर आया तब प्रभुकी आज्ञा पाकर किनारे पर उतरा ॥७॥ तब जानकीजीने गङ्गाजीका पूजन किया और बहुत प्रकारसे चरणोंमें पड़ी ॥ ८ ॥

दीन्ह अशीष मुदित मन गंगा * सुन्दरि तव अहिवात अभंगा ॥९॥
सुनतहि गुह धायउ प्रेमाकुल * आयउ निकट परमसुखसंकुल ॥१०॥

तब गङ्गाजीने प्रसन्न मन हो आशीष दी, हे सुन्दरि ! तुम्हारा सुहाग अचल रहेगा ॥९॥ रघुनाथजीका आना सुनते ही निषाद प्रेमसे व्याकुल हो दौड़ा और परम सुखसे पूरित हो रघुनाथजीके निकट आया ॥ १० ॥

प्रभुहि विलोकि सहित वैदेही * परेउ अवनि तनु सुधि नहिं तेही॥११॥
प्रीति परम विलोकि रघुराई * हरषि उठाय लियो उर लाई ॥१२॥

प्रभुको जानकी सहित देखकर पृथ्वी पर गिर गया, ऐसे प्रेममें मग्न हुआ कि शरीरकी सुधि नहीं रही, (वैदेही सहित इस कारण कहा कि निषादने जानकी हरण सुना था) ॥११॥ रघुनाथजी ने उसकी अधिक प्रीति देख प्रसन्न हो हृदयसे लगा लिया ॥ १२ ॥

छन्द–लिये हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती ।
बैठारि परम समीप पूछी कुशल सो करि बीनती ॥
अब कुशल पद पंकज विलोकि विरंचि शंकर सेव्य जे ।
सुखधाम पूरणकाम राम नमामि राम नमामि ते॥ ६८ ॥

कृपासागर सुजान लक्ष्मीपति राम गुहको हृदयसे लगाया परम निकट बैठाकर कुशल पूछने लगे । तब गुह विनती कर कहने लगा, हे महाराज ! आपके जिन चरणोंकी ब्रह्मा और शंकर सेवा करते हैं उनका दर्शन कर अब सब कुशल है, हे सुखके धाम पूर्णकाम रघुनाथ-जी ! आपको बार बार दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ॥ ६८ ॥

छन्द–सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लायऊ ।
मतिमन्द तुलसीदास सो प्रभु मोहवश विसरायऊ ॥
यह रावणारि-चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा ।
कामादिहर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ॥ ६९ ॥

विचार करो कि निषाद सब प्रकारसे महानीच था; परंतु श्रीरामचन्द्रजीने उसको भरतके समान हृदयसे लगा लिया । तुलसीदास अपनेको कहते हैं-हे मतिमन्द ! ऐसे स्वामीको मोहसे भूलता है । यह रावणके शत्रु रघुनाथजीका पवित्र चरित्र सदा श्रीरामचन्द्रजीके चर-णोंमें प्रीति देनेवाला है और काम, क्रोध, मोहादिक हरनेवाला तथा विज्ञानका करने वाला है इस चरित्रको देवता, सिद्ध, मुनि प्रसन्न हो सदा गाते हैं ॥ ६९ ॥

दोहा–समर विजय रघुवीरके, चरित जो सुनहिं सुजान ॥
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान ॥२९३॥

इस रघुनाथजीके युद्धमें विजय देनेवाले चरित्रको जो चतुर पुरुष प्रेमसे सुनते हैं उनको विजय (जीत) विवेक (विचार) विभूति (ऐश्वर्य) ये पदार्थ भगवान् सदा देते हैं ॥२९३॥

दोहा–यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचार ॥
श्रीरघुनायक नाम तजि, नहिं कछु आन अधार ॥२९४॥

यह कलिकाल पापका स्थान है, मनमें विचार करके देखो, श्रीरामचन्द्रजीके नामके अति-रिक्त और आधार नहीं (यही चार पदार्थ देता है) "ॐ नमो नारायणाय" ॥ २९४ ॥

श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलविजयसंपादनोनामषष्ठः सोपानः ॥ ६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे लंकाकाण्डे पं० सुखानन्दमिश्रसूनु-पं० ज्वालाप्रसादजी
मिश्रकृत भाषाटीकायां त्रयोदशो विश्रामः ॥ १३ ॥

भजन

जो यह चरित सुनै धरि ध्यान ॥

नित नूतन मंगल तेहिके घर, पावइ विजय महान ।
काम क्रोध लोभादिक शत्रु, जो अनंत दुखदान ॥ जो० ॥
तिनको जीतत राम कृपाते, भोगत सुख सुज्ञान ।
तासों त्यागि जगत्की ममता, करिये प्रभु गुणगान ॥ जो० ॥
भुक्ति मुक्तिके दाता येही, सुखानंदकी खान ।
यह ज्वालाप्रसादकी शिक्षा, मित्र लीजिये मान ॥ जो० ॥

★

टीकाकारकृत दोहे

★

राम लषण सियके चरण, प्रेम सहित मन लाय ।
युद्धकांडको तिलक यह, कीन्हों आज्ञा पाय ॥ १ ॥
पवन तनय संकट हरण, महावीर बलवान् ।
शुद्ध कीजिये प्रीति लखि, इष्टदेव हनुमान् ॥ २ ॥
संवत वसु श्रुति द्रव्य शशि, माघकृष्ण रविवार ।
तीज रुव्रत गणनाथको, दायक मंगलवार ॥ ३ ॥
पढ़िये सुनिये प्रीतिसे, ऋषि मुनिके संवाद ।
पावहु कृपा दयालुकी, नित ज्वालापरसाद ॥ ४ ॥

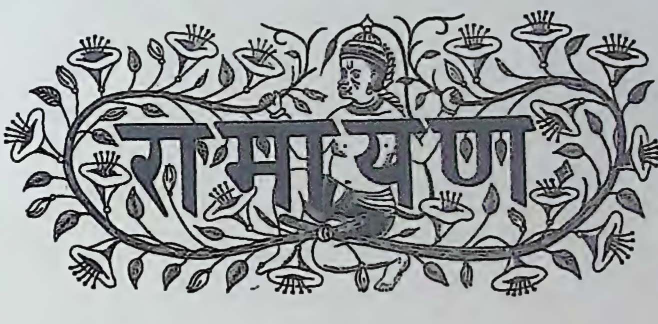
इति लंकाकाण्ड सम्पूर्ण

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत



उत्तरकाण्डम् ७.

★

विद्यावारिधि-

श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

दोहा–बार बार वर माँगौ, हर्षि देहु श्रीरंग ।
पदसरोज अनपायनी, भक्ति सदा सत्संग ॥



श्रीराम और भरत मिलन

उत्तरकाण्डम् ७

श्रीरामपञ्चायतन



चौपाई–जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुखसंपति नानाविधि पावहिं ।
सुरदुर्लभ सुख लहि जगमाहीं । अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



अथ श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासकृतरामायणस्य

उत्तरकाण्डम् ७.

सञ्जीवनीटीकासमेतम्

★

श्लोक-केकीकण्ठाभनीलं सुरवर-विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ॥
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥ १ ॥

अर्थ-'केकीकंठाभनीलम्' मोरके कंठके समान कांतिवाले, 'सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्' जो देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, जिनके हृदयमें महामुनिके चरण कमलका चिह्न अर्थात् भृगुलता विराजित है 'शोभाढ्यम्' शोभासे युक्त, 'पीतवस्त्रम्' पीत वस्त्र धारण किये 'सरसिजनयनम्' कमलसे नेत्रवाले 'सर्वदासुप्रसन्नम्' सदा प्रसन्न वदन 'पाणौ नाराचचापम्' हाथमें धनुष बाण लिये 'कपिनिकरयुतम्' अनेक कपियोंसे युक्त 'बंधुना सेव्यमानम्' भाइयोंसे सेव्यमान 'जानकीशम्' जानकीके पति 'रघुवरम्' रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ 'ईड्यम्' स्तुति योग्य 'पुष्पकारूढरामम्' पुष्पक विमान में बैठे हुए रामको 'अनिशम्' रातदिन 'नौमि' नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्यमनभृङ्गसंगिनौ ॥२॥

कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर कोमल चरण जिनको ब्रह्मा और शिवजी नमस्कार करते हैं तथा जो श्रीजानकीजीके कर कमलोंसे दुलारे हैं और 'चिंतकस्य' दासके 'मनभृंगसंगिनौ' मनरूपी भौंरेके संगी हैं (उन चरणोंको मैं प्रणाम करता हूं)। कहीं "कमलयोनिशिति कंठवंदितौ" पाठ है ॥ २ ॥

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरमम्बिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम् ॥
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमिशंकरमनंगमोचनम् ॥ ३ ॥

जिनका कुंदके पुष्प, चन्द्रमा और शंखके समान सुंदर गौर वर्ण है, जो अम्बिका (पार्वती) के पति और वांछित फलके दाता हैं और जिनके करुणा रससे भरे कमलसे उत्तम नेत्र हैं ऐसे 'अनंगमोचनम्' कामदेवके नाश करनेवाले शंकरको प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

टीकाकारकृत मङ्गलाचरण

★

दोहा–सीता लक्ष्मण कपिनयुत, रामचन्द्र भगवान् ॥
आये अवधअनंद भर, शोभित पुष्पक यान ॥ १ ॥
सकल कार्य कर्त्ता कृती, वन्दौं पवन कुमार ॥
जो रघुपतिके कार्यमें, नेक न लावत बार ॥ २ ॥
भरत चरण शिर नायके, रघुपतिके गुण गाय ॥
उत्तरकी टीका रचहुँ, कीजै आय सहाय ॥ ३ ॥
कौशल्यादिक मातु जे, ध्यान करत हिय राम ॥
तिनके चरण प्रणाम करि, सिद्ध होत सब काम ॥ ४ ॥
कर्म उपासन ज्ञानको, उत्तरमें विस्तार ॥
सो वेदनको मंत्र लिखि, कहिहौं मतिअनुसार ॥ ५ ॥
धर्मशास्त्र-सिद्धांत यह, कीन्हों दृढ़ निरधारि ॥
भजन करिय भगवान्को, कपट सयानि विसारि ॥ ६ ॥
जो कछु तुलसीदासने, लिख्यो तत्त्वको ज्ञान ॥
तैसो औरनमें नहीं, निश्चय लीजै जान ॥ ७ ॥
ब्रह्म अनामय अजित हरि, लियो सगुण अवतार ॥
कहे चरित तिनके ऋषिन,निज निज मति अनुसार॥ ८ ॥
कलिमें तुलसीदासने, जो कुछ लिख्यो चरित्र ॥
सो फैल्यो सब जगत्में, रघुपति कृपा विचित्र ॥ ९ ॥
भाषामें या ग्रन्थ सम, दूजो नाहिं लखात ॥
बाल वृद्ध वनिता करैं, रामायणकी बात ॥ १० ॥
प्रेम भक्ति गुणगानमें, सबहिनको शिरताज ॥
याही कारणसे रह्यो, घर घर यही विराज ॥ ११ ॥
सुगम अर्थके बोधको, टीका लिख्यो बनाय ॥
पढ़िये सुनिये प्रेमसे, तौ कछु तत्त्व लखाय ॥ १२ ॥
चार वेद छः शास्त्र अरु, षट तिन गुणे पुराण ॥
साररूप सबको यही, रामायण लो जान ॥ १३ ॥
चार पदारथ देत है, पढ़े सुने मन लाय ॥
फिर संशय किंचित् नहीं, भवसागर तरि जाय ॥ १४ ॥
अक्षरार्थ अरु भाव सब, लिखे तिलकमें शोधि ॥
भक्ति रत्न मिलि जाइ हैं, ढूँढ़ो प्रेम पयोधि ॥ १५ ॥
यह ज्वाला परसादकी, तुमप्रति विनय महान ॥
चित लगाय पढ़िये तुरत, रीझहिंगे भगवान ॥ १६ ॥

"यही रामायण तत्वको उपनिषद्रूप, मतको शास्त्ररूप है, उपासनाको भाष्यरूप है, अर्थको पुराणरूप है, उपमेय धर्मवाचक भाव भेद रसयुक्ति जो अनेक प्रकार हैं वह काव्यरूप है; छन्द प्रबन्धको पिंगलरूप है; वेद वाक्य, गुरुवाक्यमें प्रतीति करनेको श्रद्धारूप है, बहुत क्या? यही विदेह करनेको प्रेमा-पराभक्तिरूप है। इस प्रकार रामायणका प्रेम से जो सेवन करेगा उसके मनोरथ पूरे होंगे जैसे राममाताओंके तथा भरतके मनोरथ पूर्ण करनेवाली तथा आनंददायक कथा अगले दोहेसे गोसाईंजीने वर्णन की है" ॥

दोहा–सुभग प्रथम विश्राममें, भरत मिलाप बखान ॥
मंगल छायो अवधपुर, तीन लोक सुखदान ॥ १ ॥

दोहा--रहा एकदिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग ॥
जहँ तहँ शोचहिं नारिनर, कृश तनु राम वियोग ॥ १ ॥

रघुनाथजीके आनेकी अवधिमें केवल एक दिन अवशेष है, पुरवासी अधिक घबड़ा रहे हैं रघुनाथजीके वियोगसे कृश शरीरवाले स्त्री पुरुष जहां तहां शोच करते हैं। अति आर्तका भाव यह है कि चौदह वर्ष तक अवधवासी आर्त (दुःखी) रहे और जब एक दिन रह गया तब अत्यन्त आर्त हो गये;जहां तहांका यह भाव है कि जो नर नारी जिस स्थानमें हैं, वहां ही शोच-कर रहे हैं। इतनी शक्ति नहीं है कि उठकर पूछें, क्योंकि रघुनाथजीके वियोगसे कृशतनु हो रहे हैं। अथवा सब पुरवासियोंको जो अति आर्त करनेवाली अवधि है उसका एक दिन रह गया है, रघुनाथजीके वियोगसे तनु कृश अर्थात् दुबला हो गया है और वियोगकी अब मुक्ति हुआ चाहती है, इससे शोच सर्वथा नहीं है जहां तहां है इस आशासे कि अब अवधि पूरी हुई, रघुनाथजी आया चाहते हैं ॥ १ ॥

दोहा–शकुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर ॥
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर ॥ २ ॥

जो नगरके लोग अति आर्त (दुःखी) हुए उनके वचनेका उपाय लिखते हैं जो कि सब सुन्दर २ शकुन होते हैं यही उनके निमित्त रस है जो उनका मन प्रसन्न होता है वही रोगी का साध्य लक्षण है जो नगर रघुनाथजीके वियोगमें भयदायक था चारों ओरसे रमणीक हो रहा है मानो रघुनाथजीके आगमनको पुकारता है। चहुँ ओर इस कारण कहा है कि जो जहां पड़ा है वह उसी स्थानमें पुकारता है उठो रघुनाथजी आया चाहते हैं ॥ २ ॥

दोहा–कौशल्यादिक मातु सब, मन अनंद अस होइ ॥
आये प्रभु सिय अनुज युत, कहन चहत अब कोइ ॥ ३ ॥

कौशल्यादि सब माताओंके मनमें ऐसा आनंद होता है कि अब आकर कोई कहा चाहता है कि रामचन्द्र लक्ष्मण जानकी सहित आ गये। जानकी लक्ष्मण कहनेका भाव यह है कि सबने जानकीजीका हरण, लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेका वृत्तांत सुना था; इस कारण लक्ष्मण जानकी सहित देखा चाहते हैं ॥ ३ ॥

---

१. राग सोरठा–"बैठीं शकुन मनावति माता। कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बाता॥ दूध भातको दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं। जब सियसहित विलोकि नयन भरि, राम लखण उर लैहौं॥ अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी। गनक बुलाय पांय परि पूछति प्रेममगन मृदुबानी॥ तेंहि अवसर कोउ भरत निकटते, समाचार ले आयो। प्रभु आगमन सुनत तुलसी, जनु मीन भरत जल पायो॥"

दोहा-भरत नयन भुज दक्षिण, फरकत बारहि बार ॥
जानि शकुन मन हर्ष अति, लागे करन विचार ॥ ४ ॥

श्रीमान् भरतजीकी दाहिनी भुजा बांह और नेत्र बारंबार फड़कते हैं, बारंबार इस कारण कहा कि वे रघुनाथजीके वियोगमें अत्यन्त डूबे हैं एक बारके फड़कनेसे उनको चेत न होगा ! भरतजी अत्यन्त हर्षसे अच्छे शकुन जानकर मनमें विचार करने लगे । शकुन तीन प्रकारके हैं एक प्रत्यक्ष शकुन काक कोकिलके बोलनेका और उनके रूपका, सो यह शकुन रघुनाथजीकी बरातमें कहे हैं । दूसरे मानसिक जैसे महावीरजीने सुन्दर कांडमें कहा "होइ काज मन हर्ष विशेषी ।" तीसरा अंग फड़कनेका शकुन, सो यह तीनों शकुन ऊपके दोहेमें कह दिये हैं ॥४॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा * समुझत मन दुख भयउ अपारा॥१॥
कारन कवन नाथ नहिं आये *जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराये॥२॥

सबकी प्राणाधार जो अवधि थी उसमें एक दिन रह गया है अथवा अवधके आधार जो रघुनाथजी हैं उनके आनेमें एक दिन रह गया है सो जबतक अवधि थी तबतक उस दुःखका पार था, अब अवधि बीतनेको हुई तो उसे समझकर भरतजीको वह दुःख अपार हो गया ॥ १ ॥ (वे विचार करने लगे कि) क्या कारण है रघुनाथजी नहीं आये ? कुटिल जानकर मुझे विसार दिया ? ॥ २ ॥

अहह धन्य लक्ष्मण बड़भागी * राम पदारविन्द अनुरागी ॥३॥
कपटी कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा * ताते नाथ साथ नहिं लीन्हा ॥४॥

अहह ! और अहो ! इस चौपाईमें यह दोनों पद संघटित होते हैं, लक्ष्मणके भाग्यकी प्रशंसामें अहो आश्चर्यवाची और अपने दुःखकी अपेक्षासे खेद वाची पाठ संगत सो भरतजी कहते हैं लक्ष्मण बड़भागी हैं जो रघुनाथजीके चरण कमलमें प्रेम करते हैं । अथवा लक्ष्मणजीका स्मरण इस कारण करते हैं कि वे रघुनाथजीको फेर लावेंगे । अथवा लक्ष्मण रघुनाथजीके चरण अनुरागी वनमें बड़भागी बने बैठे हैं अपने देश भाई माता राज्यादिकमें अनुराग नहीं है; रघुनाथजीके स्वरूप अलभ्य पदार्थोंको अकेले लिये बैठे हैं, उन्हें बटानेके निमित्त यहां प्रभुको क्यों लावेंगे ? यह विचार कर लक्ष्मणकी ओरसे निराश हो भरतजी रघुनाथ-जीकी शरणमें आये वहां भी निर्वाह न देख अपने कर्तव्यका विचार करते हैं ॥ ३ ॥ कुटिल उसे कहते हैं जो प्रत्यक्ष दुःख दे, कपटी कुटिल पीछे बुराई करने वालेको कहते हैं, सो मैंने माताके वरदान मिषकी ओटसे राज्य लिया, इसी कारण रघुनाथजीने मुझे कपटी कुटिलों का स्वामी जानकर साथ नहीं लिया; यदि प्रभु और नाथ दोनों रघुनाथजीके विशेषण करें तो कुछ अधिकता नहीं पायी जाती ॥ ४ ॥

जो करणी समुझइँ प्रभु मोरी * नहिं निस्तार कल्पशत कोरी ॥५॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ * दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ ॥६॥

और मेरी करणी भी ऐसी है कि रघुनाथजी उसपर दृष्टि करें तो सौ कल्पतक मेरा निस्तार न होगा । करणी यह है कि महावीर लक्ष्मणके जगानेको संजीवनी लाते थे, तब मैंने

उन्हें बाण मारकर गिराया ॥ ५ ॥ अपना निस्तार न देख रघुनाथजीके स्वभावकी शरण हो कहने लगे, परन्तु वे प्रभुके भक्तका कोई अवगुण नहीं मानते क्योंकि दीनबन्धु और अत्यंत कोमल स्वभाव वाले हैं ॥ ६ ॥

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई * मिलिहहिं राम शकुन शुभ होई॥७॥
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना * अधम कवन जग मोहिं समाना॥८॥

मेरे मनमें यही दृढ़ भरोसा है, रघुनाथजी मिलेंगे, क्योंकि शकुन शुभ होते हैं ॥ ७ ॥ (इतनी दृढ़तापर भी वियोग ऐसा प्रबल है कि मनको अपनी ओर लाया, जिससे फिर शोचने लगे कि) जो अवधि बीतने पर भी मेरे प्राण रह जायँ तो जगत्‌में मेरे समान नीच कौन है ? (और मैंने प्रतिज्ञा की है जो अवधिमें एक दिन रहे न आओगे तो फिर मुझे जीता न पाओगे, जैसे गीतावलीमें लिखा है–"तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन, जौ रघुबीर न ऐहौ, तौ प्रभुचरण शरण सपथ फिर, जीवत मोहिं न पैहौ") ॥ ८ ॥

दोहा-रामविरह-सागर महँ, भरत मगन मन होत ॥
विप्ररूप धरि पवनसुत, आई गयउ जिमि पोत ॥ ५ ॥

रामके विरहरूपी समुद्रमें भरतका मन डूबना ही चाहता था, कि उसी समय ब्राह्मणका रूप धारण किये हुए महावीरजी ऐसे आ गये जैसे डूबते मनुष्यके निकालनेको नाव आ जाय । पवनसुत इस कारण कहा कि समुद्रमें नौका चलानेको पवन सहायक होता है । विप्ररूपका भाव यह है कि विप्र पितृरूप प्राणका रक्षक है और यह समय भरतकी प्राण-रक्षाका है । अथवा ब्राह्मणका दर्शन मङ्गलदायक है ॥ ५ ॥

दोहा-बैठे देखि कुशासन, जटामुकुट कृशगात ॥
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात ॥ ६ ॥

महावीरजीने देखा कि भरत कुशोंके आसनपर बैठे हैं, जटाओंका मुकुट, शरीर कृश, राम राम हे रघुपति जपते हैं और कमल सरीखे नेत्रोंसे जल निकलता जाता है, सारांश प्रेमकी, अलौकिक महिमा भरतजीमे विराज रही है ॥ ६ ॥

देखत हनूमान अति हर्षेउ * पुलकि गात लोचन जल वर्षेउ ॥१॥
मनमहँ बहुत भाँति सुख मानी * बोले श्रवण-सुधासम बानी ॥२॥

यह भरतकी दशा देख महावीरजी बड़े प्रसन्न हुए । वाल्मीकिने ऐसा लिखा है कि रघुनाथजीने महावीरजीसे कहा–यदि भरतका चित्त राज्यमें होगा तो हम अयोध्याको न चलेंगे, इस बातको सुन महावीरजीका मन कुछ मलिन हो गया था, परंतु अब यह दशा देख ऐसे प्रसन्न हुए कि शरीर पुलकित हो नेत्रोंसे जल बरसने लगे ॥ १ ॥ मनमें अनेक प्रकारसे सुख मानकर भरतजीके कानोंमें अमृतके समान वाणी बोले ॥ २ ॥

जासु विरह शोचहु दिन राती * रटहु निरन्तर गुण-गणपाती ॥३॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता * आवत कुशल देवमुनित्राता ॥४॥

जिसके वियोगमें रात दिन शोच करते हो जिसके गुणानुवादको लगातार रटते हो ॥ ३ ॥ वही रघुकुलतिलक, देवता मुनियोंके रक्षक (स्वधर्मपालक), सुजनोंके सुखदायक कुशल पूर्वक आ रहे हैं । रघुकुलतिलक इस कारण कहा कि कुलका धर्म निबाहा ॥ ४ ॥

रिपु रण जीति सुयश सुर गावत * सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥५॥
सुनत वचन बिसरे सब दूखा * तृषावन्त जिमि पाय पियूखा ॥६॥

उन्होंने शत्रुको रणमें जीत लिया, देवतायश वर्णन करते हैं, वे प्रभु सीता लक्ष्मणके सहित आ रहे हैं, इस थोड़े ही वचनमें महावीरजी ने लक्ष्मणादिका कुशल भी कह दिया ॥५॥ यह वचन सुनते ही भरतके सब दुःख मिट गये, जैसे प्यासेको अमृत मिल गया हो(बोले) ॥६॥

को तुम तात कहांते आये * मोहि परम प्रिय वचन सुनाये ॥७॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना * नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥८॥

हे तात ! आप कौन हो; कहांसे आये हो, मुझे बहुत प्यारे वचन सुनाये हैं (यह सुन महावीरजीसे बोले) ॥७॥ मैं पवनसुत हनुमान् वानर हूँ सुनो कृपानिधान ! यही मेरा नाम है ॥८॥

दीनबन्धु रघुपतिकर किंकर * सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ॥९॥
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता *नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥१०॥

दीनोंके पालक रघुनाथजीका मैं दास हूँ, सुनते ही भरतजी आदरसे उठकर मिले ॥ ९ ॥ मिलते समय प्रेम हृदयमें नहीं समाता, नेत्रोंसे जल टपकने लगा; शरीरके रोयें (प्रसन्नतासे) खड़े हो गये ॥ १० ॥

कपि तव दरश सकल दुख बीते * मिले आजु मोहि राम पिरीते॥११॥
बार बार पूछी कुशलाता * तो कहँ कहा देउँ सुनु भ्राता॥१२॥

और बोले–हे कपि ! आपके दर्शनसे सब दुःख नष्ट हो गये (भरतजीको चार दुःख थे, रघुनाथजीके न आनेके १, शत्रुकी लड़ाईका २, जानकीके हरणका ३, लक्ष्मणके शक्ति लगनेका ४, सो महावीरजीके वचनसे चारों मिट गये) जो आज आप रामके प्यारे मिले ॥ ११ ॥ वारंवार कुशल पूछ कहने लगे–भाई सुनो, आपको क्या दूँ ॥ १२ ॥

यहि संदेश सरिस जगमाहीं * करि विचार देखेउँ कछु नाहीं ॥१३॥
नाहिन तात उऋण मैं तोही *अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥१४॥

इस सन्देशके समान पुरस्कार मैंने सब जगतमें ज्ञानसे ढूँढ लिया पर कुछ नहीं मिलता ॥१३॥ हे तात! मैं आपसे उऋण नहीं हूँ अब आप मुझको रघुनाथजीके चरित्र सुनाइये ॥१४॥

तब हनुमान नाइ पद माथा * कहे सकल रघुपति गुणगाथा॥१५॥
कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं * सुमिरहिं मोहि दासकी नाईं॥१६॥

तब महावीरने, चरणोंमें शिर नवाकर रघुनाथजीके गुणानुवाद (रण चरित्र) वर्णन किये ॥ १५ ॥ (तब भरतजी बोले) महावीरजी ! कहिये तो कृपालु स्वामी कभी मुझको दासके समान स्मरण करते हैं ॥ १६ ॥

छन्द–निजदास ज्यों रघुवंशभूषण कबहुँ मम सुमिरन करचो ।
सुनि भरत वचन विनीत अति कपि पुलकतनु चरणन परचो ॥
रघुवीर निजमुख जासु गुणगण कहत अग जग नाथ जो ।
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सद्गुण पाथ सो ॥ १ ॥

अपने दासके समान रघुवंश तिलकने कभी मुझको स्मरण किया है ? भरतजीके यह अत्यंत विनीत वचन सुनकर महावीरजी पुलकित शरीर हो चरणोंमें पड़े (और बोले) जड़ चैतन्यके

स्वामी रघुनाथजीने अपने मुखसे जिनके गुण वर्णन किये, वे क्यों न ऐसे विनय सम्पन्न परमपवित्र सद्‌गुणोंके सागर हों ? ॥ १ ॥

दोहा–राम प्राणप्रिय नाथ तुम, सत्य वचन मम तात ॥
पुनि पुनि मिलत भरतसन, प्रेम न हृदय समात ॥ ॥ ७ ॥

हे नाथ ! आप तो रघुनाथजीको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हो, तात ! यह मेरा सत्य वचन है (इस प्रकार कहकर) भरतजीसे बार बार महावीरजी मिलने लगे, हृदयमें प्रेम नहीं समाता है ॥ ७ ॥

सोरठा–भरत चरन शिर नाय, तुरत गयउ कपि रामपहँ ॥
कही कुशल सब जाय, हर्षि चले प्रभु यान चढ़ि ॥ १ ॥

फिर भरतके चरणोंमें शिर नवाकर महावीरजी तुरंत रघुनाथजीके पास गये जाकर सब कुशल सुनायी, रघुनाथजी प्रसन्न हो विमानमें बैठकर चले ॥ १ ॥

हर्षि भरत कोशल पुर आये * समाचार सब गुरुहि सुनाये ॥१॥
पुनि मंदिरमहँ बात जनाई * आवत कुशल भरत समुझाई ॥२॥

भरतजी प्रसन्न हो अयोध्यामें आये, सब समाचार गुरुको सुनाये ॥ १ ॥ फिर मंदिरमें आकर यह बात रानियोंको सुनायी कि रघुनाथजी कुशलपूर्वक अयोध्यामें आते हैं ॥ २ ॥

सुनत सकल जननी उठि धाईं * कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं॥३॥
समाचार पुरवासिन पाये * नर अरु नारि हरषि उठि धाये॥४॥

सुनते ही सब माताएँ उठ दौड़ीं, भरतजीने प्रभुका कुशल कहकर सबको समझाया ॥३॥ ज्योहीं पुरवासियोंने समाचार पाया कि नर और नारी प्रसन्न हो उठ धाये ॥ ४ ॥

दधि दूर्बा रोचन फल फूला * नव तुलसीदल मंगल मूला ॥५॥
भरि भरि हेमथार वर भामिनि * गावत चलीं सिन्धुरगामिनि ॥६॥

दही, दूर्बा, गोरोचन (हल्दी चूर्ण, नारियल, सुपारी, आम्र, केला) फूल, नये तुलसी पत्र, गुलाब, कमल इत्यादि मंगलके पदार्थ ॥ ५ ॥ सोनेके थालोंमें भर कर हस्तीके समान चलनेवाली सुन्दरी स्त्रियें गाती हुई चलीं ॥ ६ ॥

जो जैसहि तैसइ उठि धावहिं * बाल वृद्ध कोउ संग न लावहिं॥७॥
एक एकसन पूछहिं धाई * तुम देखे दयालु रघुराई ॥८॥

जो लोग जैसे बैठे हैं वैसेही उठ दौड़ते हैं, बाल वृद्धको साथ नहीं लेते, बालकोंका छोड़ना स्वार्थ त्याग है;वृद्धका छोड़ना परमार्थ त्याग है, अर्थात् रघुनाथजीकी प्रीतिमें स्वार्थ परमार्थको छोड़ दिया। अथवा वृद्ध और बालक कहते हैं कि हमें संग ले लो तो उनको भी कोई साथ नहीं लेते ॥ ७ ॥ एक एकसे दौड़कर पूछते हैं–तुमने दयासागर रघुनाथजीको देखा है ? ॥ ८ ॥

अवधपुरी प्रभु आवत जानी * भई सकल शोभाकी खानी ॥९॥
भइ सरयू अति निर्मल-नीरा * बहै सुहावन त्रिविध समीरा ॥१०॥

श्री अयोध्याजी प्रभुको आते देखकर सब शोभाकी खानि हो गयी ॥ ९ ॥ सरयू अत्यन्त निर्मल जलवाली हो गयी शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलने लगा ॥ १० ॥

दोहा–हर्षित गुरु पुरजन अनुज, भूसुरवृन्द समेत ॥
चले भरत अति प्रेम मन, सन्मुख कृपानिकेत ॥ ८ ॥

मनमें परम प्रसन्न होकर गुरु वसिष्ठ, पुरवासी, शत्रुघ्न और ब्राह्मणोंके समूह समेत भरत जी प्रेमयुक्त मनसे कृपासिन्धुके सम्मुख चले ॥ ८ ॥

दोहा–बहुतिय चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन विमान ॥
देखि मधुर स्वर हर्षित, करहिं सुमंगलगान ॥ ९ ॥

बहुत सी स्त्रियां अटारियों पर चढ़कर आकाशमें विमानको देखती हैं और देखकर प्रसन्न हो मीठे स्वरों से मंगल गान करती हैं ॥ ९ ॥

दोहा–राकाशशि रघुपति पुरी, सिन्धु देखि हरषान ॥
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥ १० ॥

इस दोहेमें पूर्णोपमालंकार है, पूर्णोपमालंकारमें उपमा उपमेय वाचक और साधारण धर्म ये चारों बातें होती हैं। इसमें रघुनाथ, पुरी और स्त्री ये तीन उपमेय, और राकाशशि, सिंधु और तरंग ये उपमान हैं। जनुशब्द वाचक है, राकाशशि अर्थात् पूनोंके चन्द्रमाको देखकर समुद्रका बढ़ना यह साधारण धर्म है विलक्षणता यह है कि उपमान उपमेयकी समता है अर्थात् रघुनाथजी पुरुष और उनका उपमान चन्द्रमा और सिंधु दोनों पुरुष हैं। स्त्रीका उपमान तरंग है जैसे चन्द्रमा आकाशमें है ऐसे ही रघुनाथजी भी पुष्पक विमानपर आते हैं। चन्द्रमा रोहिणी और बुधके साथ है, इसी प्रकार रघुनाथजी सीता लक्ष्मण समेत हैं। चन्द्रमा नक्षत्रों समेत है रघुनाथजी वानरों सहित हैं चन्द्रमा चौदह तिथियोंके पीछे पूर्ण कलाको प्राप्त होता है तो रघुनाथजी भी चौदह वर्ष बिताकर पंद्रहवें वर्षमें भरत शत्रुघ्नसे मिलकर अवधिकी पूर्णता को प्राप्त हुए। चन्द्रमा राहुसे छूट कर शोभित होता है, ऐसे ही रघुनाथजी रावणको जीत कर शोभाको प्राप्त हुए चन्द्रमा घामकी गरमी मिटाता है रघुनाथजीने चौदहवर्षके विरह तापको दूर कर दिया इत्यादि। अगस्त्यसंहितामें लिखा है कि विमान इच्छाचारी स्फटिक मणिके समान श्वेत निर्मल है, उसमें विचित्र रंगके कहीं सात और कहीं तीन खण्ड हैं, कमलाकार बाहरका खण्ड बत्तीस दलका है मध्यका खण्ड सोलह दलका है। अन्तरखण्ड अष्टदल है सो भी कोण जानिये सब कोणोंमें मणियोंके डंडे लगे हैं। तीन खण्डोंमें चित्र विचित्र छतरी बनी है। विमानका अग्रभाग युग्महंसाकार है बाहरके खण्डमें असंख्य रीछ वानरोंकी सेना चढ़ी है, मध्य खण्ड कुछ ऊँचा है, उसमें सब यूथप बैठे हैं। मध्य खण्डसे कुछ ऊँचा अन्तर खण्ड है जहां सिंहासन है उस पर सीता सहित रघुनाथजी विराजते हैं। लक्ष्मण महावीर जाम्बवन्त आदि सेवामें प्रस्तुत हैं ऐसे विमानको अयोध्याकी नारी अटारी चढ़ी देखती हैं ॥ १० ॥

इहाँ भानुकुल-कमल दिवाकर ॥ कपिन दिखावत नगर मनोहर॥१॥
सुनु कपीश अंगद लंकेशा ॥ पावन पुरी रुचिर यह देशा ॥२॥

इधर सूर्यकुल कमलके दिवाकर अर्थात् सूर्यवंशरूपी कमलके खिलानेको सूर्यस्वरूप रघुनाथजी वानरोंको मनोहर नगर दिखाते आते हैं ॥ १ ॥ कह रहे हैं कि हे सुग्रीव, अंगद, विभीषण ! सुनो यह मेरी पुरी[1] अत्यन्त पवित्र है और यह देश भी सुन्दर है ॥ २ ॥

१. यह संपूर्ण शुभोंकी आकर है, यथा–"अयोध्या च परब्रह्म सरयूः सगुणः पुमान्। तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदामि ते" (पद्मपुराणे)

यद्यपि सब बैकुंठ बखाना * वेद पुराण विदित जग जाना॥३॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ * यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ ॥४॥

यद्यपि सब बैकुण्ठका बखान करते हैं जो वेद पुराणोंमें विदित है और जिसको जगत् जानता है ॥३॥परंतु मुझको अयोध्याके समान वह भी प्यारा नहीं, यह भेद कोई कोई जानते हैं ॥ ४ ॥

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि * उत्तर दिशि सरयू बह पावनि ॥५॥
जा मज्जनते विनहिं प्रयासा * मम समीप नर पावहिं वासा ॥६॥

यह मेरी जन्मभूमि शोभायमान पुरी है, जिसके उत्तर दिशामें पवित्र सरयू बहती है ॥ ५ ॥ इसमें जो व्यक्ति स्नान करते हैं वे मनुष्य विना प्रयास ही मेरे समीप वास करते हैं; (अथवा सरयूमें किसीका नाम लेकर जो स्नान करे तो उसको भी फल मिलता है) ॥ ६ ॥

अति प्रिय मोहि इहांके वासी * मम धामदा पुरी सुख रासी ॥७॥
हरषे कपि सुनि प्रभुकी बानी * धन्य अवध जेहि राम बखानी॥८॥

मुझको यहांके वासी बहुत ही प्यारे हैं, यह सुखरासी पुरी साक्षात् मेरे धाम (साकेत लोक) की देनेवाली है ॥७॥ प्रभुकी यह वाणी सुनकर सब वानर प्रसन्न हुए और कहने लगे कि भाई! अयोध्या धन्य है जिसका रघुनाथजीने अपने मुखसे बखान किया ॥ ८ ॥

दोहा–आवत देखे लोग सब, कृपासिंधु भगवान ॥
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान ॥ ११ ॥

कृपासिंधु भगवान्ने (भरतादि) सब लोगोंको आते देख नगरके निकट विमानको पृथ्वीमें उतरनेकी आज्ञा दी और भूमिमें उतरे ॥ ११ ॥

दोहा–बहुरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम कुबेरपहँ जाहु ॥
प्रेरित राम चलेउ सो, हर्ष विरह अति ताहु ॥ १२ ॥

फिर रघुनाथजीने पुष्पक विमानके अधिष्ठातृ देवतासे कहा कि आप कुबेर के पास जाइये वह रघुनाथजीकी प्रेरणासे चला, हर्ष विषाद उसको बहुत है अर्थात् रावणकी बंदी छूटनेका हर्ष और रघुनाथजीके वियोगका दुःख है ॥ १२ ॥

आये भरत संग सब लोगा * कृशतनु श्री रघुवीर वियोगा ॥१॥
वामदेव वसिष्ठ मुनि नायक * देखे प्रभु महि धरि धनुसायक ॥२॥

अब सब लोगोंके सहित भरतजी आये; श्रीरघुनाथजीके वियोगमें सब दुर्बल शरीर हैं ॥१॥ वामदेव, वसिष्ठ मुनिराजको देखते ही प्रभुने पृथ्वीपर धनुष बाण धर दिया, क्योंकि बड़ोंके प्रणाममें शस्त्र धारण नहीं करना चाहिये अथवा पृथ्वीका भार उतर चुका इस कारण धनुष बाण धर दिये ॥२॥

धाय धरे गुरु चरण-सरोरुह *अनुज सहित अतिपुलकतनोरुह॥३॥
भेंटे कुशल पूछि मुनि राया * हमरे कुशल तुम्हारिहि दाया ॥४॥

झपट कर गुरुके चरणकमल पकड़ लिए, लक्ष्मण सहित शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया ॥३॥मुनिराज कुशल पूछकर मिले रघुनाथजी बोले आपकी ही दयासे हमारे कुशल हैं ॥४॥

सकल द्विजन कहँ नायउ माथा * धर्म-धुरंधर रघुकुल-नाथा ॥५॥
गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज *नमत जिनहि शंकर सुर मुनि अज॥६॥

१. यथाह–"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" (भ० गी०)

धर्मके धुरधारी रघुकुलके स्वामी रघुनाथजीने सब ब्राह्मणोंको शिर नवाया और आशीर्वाद पाया ॥ ५ ॥ फिर भरतजीने उन चरण कमलोंको छूकर प्रणाम किया जिनको शिव, देवता, मुनि और ब्रह्मा प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥

परे भूमि नहिं उठत उठाये * बल करि कृपासिंधु उर लाये ॥७॥
श्यामल गात रोम भये ठाढ़े * नव राजीव नयन जलबाढ़े ॥८॥

ऐसे भूमिमें पड़ गये कि उठाये ही नहीं उठते हैं, तब कृपासागर रघुनाथजीने बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगाया ॥७॥ श्याम शरीरके रोयें खड़े हो गये, नवीन कमलसे नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८ ॥

छन्द-राजीव लोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी ।
अतिप्रेम हृदय लगाय अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मोपहँ जात नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिलत वर सुषमा लही ॥ २ ॥

कमलसे नेत्रोंसे जल टपकता है, पुलकावलि सुन्दर शरीरमें विराज रही है । त्रिलोकीके स्वामी प्रभु रामचन्द्रजी भरतको बड़े प्रेमसे हृदय लगाकर मिले, भरतजीसे मिलते समय प्रभुकी जो शोभा थी उसकी उपमा मुझसे नहीं कही जाती, मानो प्रेम और शृङ्गाररस दोनों शरीर धारण किये सुन्दर शोभा पाते हैं ॥ २ ॥

छन्द-पूछत कृपानिधि कुशल भरतहि वचन बेगि न आवई ।
सुनु शिवा सो सुख वचन मनते भिन्न जानि न पावई ॥
अब कुशल कोशलनाथ आरत जानि जन दर्शन दियो ।
बूड़त विरह वारीश कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ॥ ३ ॥

दयासागर रघुनाथजी भरतजीसे कुशल पूछते हैं, परंतु भरतजीसे बोला नहीं जाता । शिवजी बोले-हे पार्वती ! वह सुख वचन मनसे पृथक् है जाना नहीं जाता । तब भरतजी बोले-हे कोशलनाथ ! अब सब प्रकारसे कुशल है, जो आपने दीन दुःखी जानकर दासको दर्शन दिया, हे कृपानाथ ! मैं आपके विरह सागरमें डूबता था, आपने हाथ पकड़ मुझे निकाल लिया ॥३॥

दोहा-पुनि प्रभु हर्षि शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाय ॥
लक्ष्मण भरत मिले पुनि, प्रेम न हृदय समाय ॥ १३ ॥

फिर रघुनाथजी शत्रुघ्नको बड़े प्रेमसे हृदय लगाकर मिले, फिर लक्ष्मण और भरतजी मिले, उस समयका प्रेम हृदयमें नहीं समाता है अर्थात् महान् प्रेममें परिपूर्ण हो रहे हैं ॥१३॥

भरत अनुज तब लक्ष्मण भेंटे * दुसह विरह संभव दुख मेटे ॥१॥
सीता चरण भरत शिर नावा * अनुज समेत परमसुख पावा ॥२॥

तब लक्ष्मण और शत्रुघ्न मिले, अत्यंत कठिन विरहसे उत्पन्न हुआ दुःख मिटाया ॥ १ ॥ भरतजीने जानकीके चरणोंमें शिर नवाया और शत्रुघ्न सहित अत्यन्त सुख पाया ॥ २ ॥

प्रभु विलोकि हरषे पुरवासी * जनित वियोग विपति सब नासी ॥३॥

प्रेमातुर सब लोग निहारी * कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी ॥४॥

रघुनाथजीको देखकर सब पुरवासी प्रसन्न हुए और वियोगसे उत्पन्न हुई विपत्ति सब नष्ट हो गयी ॥ ३ ॥ सब लोगोंको प्रेमसे व्याकुल देख खरादिकोंके मारनेवाले दयालु रघुनाथजीने यह कौतुक किया (खरारि कहनेका भाव यह है कि बहुत शरीर धारण करनेका कौतुक खरके मारनेके समय किया था, वहां राक्षसोंको मारा; यहां पुरवासियोंकी विपत्ति दूर की, वहां ऋषियों पर दया की, यहां पुरवासियों पर दया की है) ॥ ४ ॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला * यथायोग्य मिलि सबहिं कृपाला ॥५॥
कृपादृष्टि रघुवीर बिलोकी * किये सकल नर नारि विशोकी ॥६॥

उसी समय अनेक रूप भगवान्‌के प्रकट हो गये और कृपासागर यथायोग्य सबसे मिले ॥ ५ ॥ श्रीरघुनाथजीने कृपादृष्टिसे सब लोगोंको निहार कर नारियोंको शोक रहित कर दिया । जो कौतुक है वह स्पष्ट करते हैं शंका समाधान पूर्व कर चुके हैं ॥ ६ ॥

क्षणमहँ सबहि मिले भगवाना * उमा मर्म यह काहु न जाना ॥७॥
इहि विधि सबहिं सुखी करि रामा * आगे चले शील-गुण-धामा ॥८॥

भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये, हे पार्वती ! किसीने यह मर्म (भेद) नहीं जाना ॥ ७ ॥ इस प्रकार सबको सुखी कर शील गुणके स्थान रघुनाथजी आगे चले । शील धाम इस कारण कहा कि सबका मनोरथ सिद्ध किया । गुण धाम इस कारण कहा कि इस लीला को किसीने नहीं जाना, किंतु तुलसीदासने गुरुकी कृपासे जाना ॥ ८ ॥

कौशल्यादि मातु सब धाईं * निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं ॥९॥

रघुनाथजीका आगमन सुनते ही कौशल्यादि सब माताएँ व्याकुल हो दौड़ीं जैसे बछड़े को स्मरण कर गाय दौड़ती है ॥ ९ ॥

छन्द—जनु धेनु बालक वत्सगृह तजि चरन वन परवश गईं ।
दिन अन्त पुररुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी वचन मृदु बहु विधि कहे ।
गइ विषम विपति वियोग भव तिन्ह हर्ष सुख अगणित लहे ॥४॥

जिस प्रकारसे बालक बछड़ेको घरमें छोड़कर माता गऊ, परवश वनमें चरनेको जाती हैं और दिनके अन्तमें घरको आते समय थनोंसे दुग्ध चुवता है हुंकार करती घरको आती हैं, ऐसे ही सब माताएँ रघुनाथजीके पास चलीं, रघुनाथजी बड़े प्रेमसे सब माताओंसे मिले और बहुत प्रकारसे (सुन्दर) कोमल वचन कहे, जिससे सब माताओंके वियोगसे उत्पन्न हुई विषम विपत्ति मिट गयी और प्रसन्न हो बड़ा सुख पाया, (यहां विपरीतालंकार है, क्योंकि बछड़े वनको गये और धेनु घरमें रही थीं और इस अर्थसे समुचित अलंकार भी हो सकता है कि, जहां राम रहें वही अवध और जिसको छोड़ दें वही वन है । लक्ष्य—"जहां राम तहँ अवध निवासू" ॥ ४ ॥

दोहा—भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरण रति जानि ॥
रामहिं मिलत कैकयी, हृदय बहुत सकुचानि ॥ १४ ॥

सुमित्राजी रघुनाथके प्यारे लक्ष्मणजीसे मिलीं और कैकेयी रघुनाथजीसे मिलते समय हृदयमें बहुत सकुचायी ॥ १४ ॥

दोहा–लक्ष्मण सब मातन्ह मिले, हरषे आशिष पाय ॥
केकयि कहँ पुनि पुनि मिले, मनकर क्षोभ न जाय ॥ १५ ॥

लक्ष्मणजी सब माताओंसे मिले और आशीष पाकर प्रसन्न हुए, कैकेयीसे बारंबार मिले परंतु मनका क्षोभ नहीं जाता, (अथवा कैकेयीको गुरु मानते हैं) जिसके द्वारा रघुनाथजीकी चरण सेवा मिली ॥ १५ ॥

सासुन सबहि मिलीं वैदेही * चरणन लागि हर्ष अति तेही ॥१॥
देहिं अशीष पूँछि कुशलाता * होहिं अचल तुम्हार अहिवाता॥२॥

सब सासुओंसे जानकीजी मिलीं और पांव पड़ीं मनमें बड़ी प्रसन्न हुईं ॥ १ ॥ सासुएँ कुशल पूछकर आशीष देती हैं कि तुम्हारा सौभाग्य (सुहाग) अचल हो ॥ २ ॥

सब रघुपति मुखकमल विलोकहिं * मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥३॥
कनक थार आरती उतारहिं * बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥४॥

सब माताएँ रघुनाथजीके मुखकमलको देखती हैं और प्रेमके मारे जो नेत्रोंमें जल आ गया है उसको मंगलका समय जानकर रोकती हैं ॥ ३ ॥ सोनेके थालमें आरती उतारतीं बार बार प्रभुका शरीर देखती हैं ॥ ४ ॥

नाना भाँति निछावर करहीं * परमानंद हर्ष उर भरहीं ॥५॥
कौशल्या पुनि पुनि रघुवीरहिं * चितवति कृपासिन्धु रणधीरहिं॥६॥

अनेक भांतिसे निछावर करती हैं, और बड़े आनन्दसे हृदयमें प्रसन्नता भरती हैं ॥ ५ ॥ कौशल्या बारंबार रघुनाथजीको प्रेमसे देखती हैं, रघुनाथजी कृपाके सागर और रणके धीर हैं ॥ ६ ॥

हृदय विचारति बारहिं बारा * कवन भाँति लंकापति मारा ॥७॥
अति सुकुमार युगल मम बारे * निशिचर सुभट महाबल भारे ॥८॥

(माता) बारंबार विचार करती हैं, मेरे कुँवरका तो बड़ा कोमल शरीर है इन्होंने लंकापति रावणको किस प्रकार मारा ? ॥ ७ ॥ ये दोनों मेरे लाल बहुत बारे (कोमल) हैं और राक्षस बड़े बली कठोर होते हैं (कैसे मारे गये ?) ॥ ८ ॥

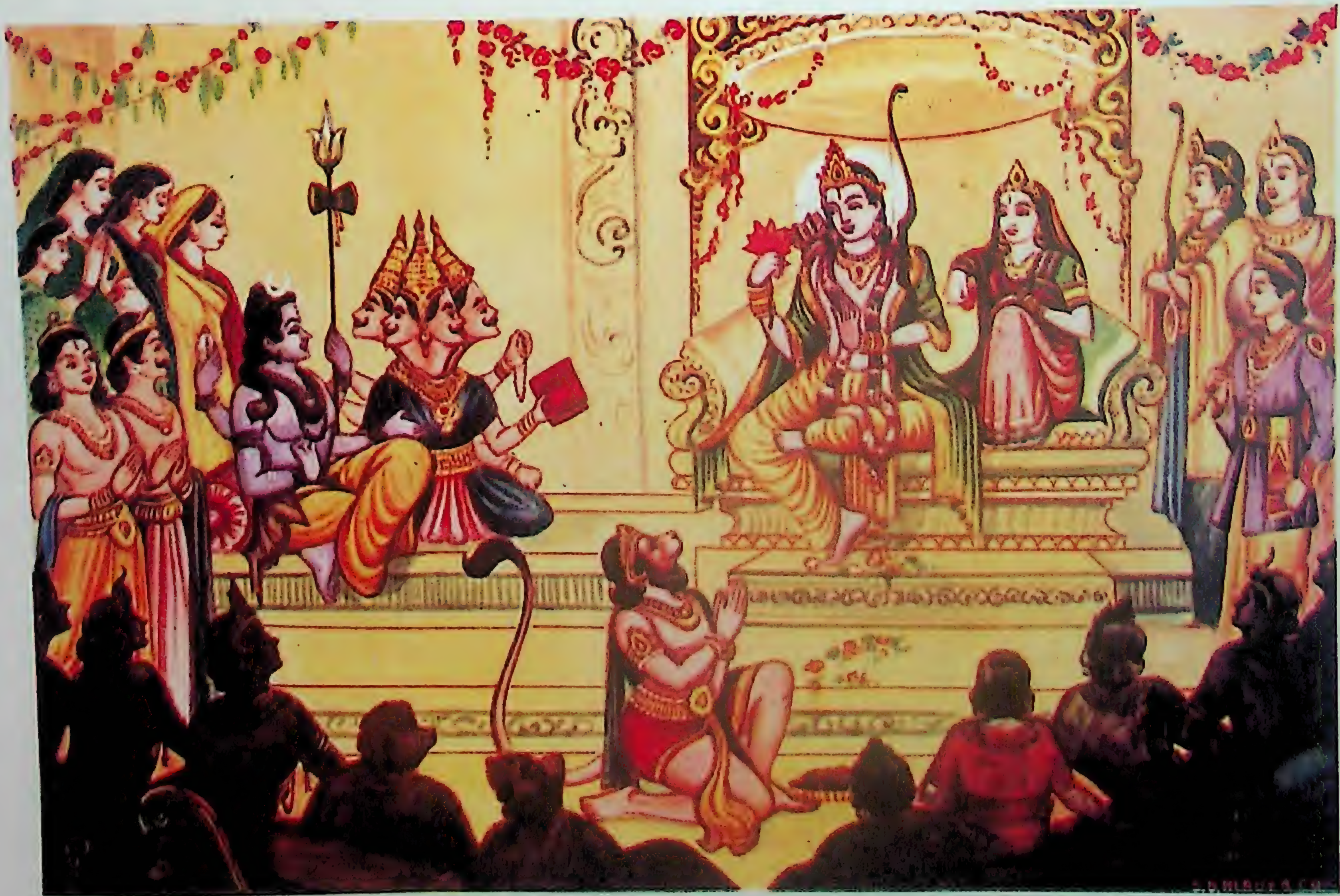
दोहा–लक्ष्मण अरु सीतासहित, प्रभुहिं विलोकहिं मात ॥
परमानन्द मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात ॥ १६ ॥

माताएँ रघुनाथजीको लक्ष्मण जानकी सहित अवलोकन करती हैं, उन सबका मन महाआनन्दसे मग्न हो रहा है, प्रसन्नतामें मग्न हो बारंबार पुलकित शरीर हो रही हैं ॥ १६ ॥

लंकापति कपीश नल नीला * जाम्बवन्त अंगद शुभशीला ॥१॥
हनुमदादि सब वानर वीरा * धरे मनोहर मनुज शरीरा ॥२॥

राम राज्याभिषेक

(स्तुति-रत भगवान् शंकर और चतुर्वेद-वक्ता ब्रह्माजी देव-देवाङ्गनाओंके साथ)



वैनतेय सुनु शंभु तब, आये जहँ रघुवीर।
विनय करत गद्गद् गिरा, पूरित पुलक शरीर।।

उत्तरकाण्ड पृ. ११३१

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवन्त, शुभशील अङ्गद ॥ १ ॥ हनुमान् आदि सब वानर परम मनोहर मनुष्य शरीर धारण किये हुए (सब पुरवासियोंकी प्रसन्नता अवलोकन करते हैं और मनमें प्रसन्न होकर) ॥ २ ॥

भरत सनेह शील व्रत नेमा * सादर सब बरनहिं अति प्रेमा ॥३॥
देखि नगर-वासिनकै रीती * सकल सराहहिं प्रभु पद प्रीती ॥४॥

भरतजीका स्नेह, शील, व्रत, नेम आदर सहित सब अत्यन्त प्रेमसे वर्णन करते हैं ॥३॥ वैसे ही नगरवासियोंकी रीति और इनकी प्रभुके चरणोंमें अधिक प्रीति देखकर सब सराहना करते हैं॥४॥

पुनि रघुपति निज सखा बुलाये * मुनिपद लागहु सबहिं सिखाये ॥५॥
गुरु वसिष्ठ कुलपूज्य हमारे * इनकी कृपा दनुज रण मारे ॥६॥

फिर रघुनाथजीने अपने सब सखाओंको बुलाकर इस प्रकारसे सिखाया कि तुम मुनिजीके चरणोंमें दंडवत् करो ॥ ५ ॥ क्योंकि ये गुरु वसिष्ठजी हमारे कुलपूज्य हैं इन्हींकी कृपासे हमने युद्धमें राक्षसोंको मारा ॥ ६ ॥

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे * भये समर-सागर कहँ बेरे ॥७॥
ममहित लागि जन्म इन हारे * भरतहुते मोहि अधिक पियारे॥८॥

(अब वसिष्ठजीसे कहते हैं) हे मुनिराज ! सुनिये, ये सब मेरे सखा हैं जो युद्धरूपी समुद्रसे तारनेको बेड़े हो गये अथवा समुद्र उतरने और लड़ाईके समय हमारे सखा हुए ॥ ७ ॥ इन्होंने मेरे निमित्त अपने जन्म हार दिये हैं अतएव ये मुझको भरतसे भी अधिक प्यारे हैं (क्योंकि भरतने तो राज्यकी और शरीरकी रक्षा की है) ॥ ८ ॥

सुनि प्रभु वचन मगन सब भये * निमिष निमिष उपजत सुख नये॥९॥

ये प्रभुके वचन सुनकर सब वानर प्रेममें मग्न हो गये पल पलमें नये सुख उपजते हैं ॥ ९ ॥

दोहा–कौशल्याके चरनन, पुनि तिन्ह नायउ माथ ॥
आशिष दीन्हीं हर्षि हिय, तुम प्रिय जिमि रघुनाथ ॥ १७ ॥

फिर सबोंने कौशल्याके चरणोंमें माथा नवाया कौशल्याजीने हृदयमें प्रसन्न हो आशीष देकर कहा कि तुम सब मुझे रामके समान प्यारे हो ॥ १७ ॥

दोहा–सुमन वृष्टि नभसंकुल, भवन चले सुखकंद ॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि नर वृन्द ॥ १८ ॥

आकाशसे फूलोंकी वर्षा होती है सुखके मूल रघुनाथजी घरको चले नगरके पुरुष स्त्रियोंके झुंड अटारियोंपर चढ़े हुए भगवान्का दर्शन करते हैं बाजारमें बड़ी भीड़ हो रही है ॥१८॥

कंचन कलस विचित्र सँवारे * सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥१॥
बन्दनवार पताका केतू * सबन्हि बनाये मंगल हेतू ॥२॥

सुन्दर सोनेके अद्भुत कलश सँवार कर सबने घरोंके द्वारे (शकुनके निमित्त) सजा कर रखा दिये ॥ १ ॥ बंदनवार, झण्डी, ध्वजा सबने मङ्गलके कारण बनाकर अपने घरोंके द्वारे लगायीं ॥ २ ॥

बीथिन सकल सुगन्ध सिंचाये * गजमणि रचि बहु चौक पुराये॥३॥
नाना भाँति सुमंगल साजे * हरषि निशान नगर बहु बाजे ॥४॥

सब गलियोंमें सुगंधित पदार्थ सिंचाये अर्थात् चोवा चन्दनका छिड़काव कराया; हाथियोंके शिरमेंसे निकले हुए मोतियोंसे जहां तहां बहुतसे चौक पुरवा दिये ॥ ३ ॥ अनेक २ प्रकारके सुन्दर मङ्गल साज सजाये और प्रसन्नतासे नगरमें बहुत निशान (नगाड़े) बजवाये ॥ ४ ॥

जहँ तहँ नारि निछावर करहीं * देहिं अशीष हर्ष उर भरहीं ॥५॥
कंचनथार आरती नाना * युवती साजि करहिं कलगाना ॥६॥

जहां तहां स्त्रियाँ न्योछावर करतीं और आशिष देकर मनमें बड़ी प्रसन्न होती हैं ॥५॥ सोनेके थालोंमें अनेक आरती सजाकर युवती स्त्रियाँ मनोहर स्वरोंमें मङ्गल गान करती हैं ॥ ६ ॥

करहिं आरती आरतहरकी * रघुकुल कमल विपिन दिनकर की॥७॥
पुर शोभा सम्पति कल्याना * निगम शेष शारदा बखाना ॥८॥

और स्त्रियाँ आरतहर अर्थात् दुःख हरनेवाले रघुनाथकी आरती करती हैं वे कैसे हैं कि रघुवंसियोंका कुलरूप जो कमलोंका वन है उसको खिलानेको सूर्य हैं ॥ ७ ॥ नगरकी शोभा, सम्पति, भलाई, वेद, शेष और सरस्वती यदि बखान करनेकी इच्छा करें तो ॥ ८ ॥

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं * उमा तासु गुण नर किमि कहहीं॥९॥

वे भी यह चरित्र देखकर ठगे रहें । हे पार्वती ! फिर मनुष्य उनके गुण कैसे कह सकते हैं ॥९॥

दोहा-नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति विरह दिनेश ॥
अस्त भये विकसित भईं, निरखि राम राकेश ॥ १९ ॥

अयोध्यारूपी सरोवरमें नारिरूप कुमुदिनी विरहरूपी सूर्य उदय होनेसे बंद थीं, जब वह वियोगका सूर्य छिपा और रामरूपी चन्द्रोदय हुआ तब उसको देख खिल गयीं ॥ १९ ॥

दोहा-होहिं शकुन शुभ विविध विधि, बाजहिं गगन निशान ॥
पुर नर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥ २० ॥

अनेक प्रकारके शुभ शकुन होते हैं, आकाशमें (अनेक) बाजे बजते हैं इस प्रकार पुरके नर नारियोंको सनाथ करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी घरको चले ॥ २० ॥

प्रभु जानी केकयी लजानी * प्रथम तासु गृह गयेउ भवानी ॥१॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा * तब निज भवन गवन प्रभु कीन्हा॥२॥

रघुनाथजीने जाना कैकेयी बहुत लजाई है इस कारण हे पार्वती ! पहले उसके घर गये ॥ १ ॥ उसे अनेक प्रकार समझा बुझा बहुत सुख दिया तब प्रभुने अपने घरको गमन किया ॥ २ ॥

कृपासिंधु निज मंदिर गये * पुर नर नारि सुखी सब भये ॥३॥
गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बुलाई * आजु सुघरी सुदिन शुभदाई ॥४॥

कृपासागर (जब) अपने मंदिरमें गये तब नरनारी सुखी हुए । (जिस कैकेयीके घर जानेसे वनवास हुआ था उसके घरमें रघुनाथजीको फिर जाते देखकर लोगोंको सन्देह हुआ, परंतु जब वहांसे कुशलपूर्वक अपने मन्दिरमें गये तब सुखी हुये) ॥३॥ तब गुरु वसिष्ठजीने सब ब्राह्मणोंको बुला लिया और कहने लगे आज अच्छी घड़ी और शुभदायक दिन है ॥ ४ ॥

सब द्विज देहु हरषि अनुशासन * रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन ॥५॥

मुनि वसिष्ठके वचन सुहाये * सुनत सकल विप्रन अति भाये॥६॥

सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर आज्ञा दें तो रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें ॥ ५ ॥ यह मुनिराज वसिष्ठके सुन्दर वचन सब ब्राह्मणोंको अच्छे लगे ॥ ६ ॥

कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका * जग अभिराम राम अभिषेका ॥७॥
अब मुनिवर विलंब नहिं कीजै * महाराज कहँ तिलक करीजै ॥८॥

तब वे अनेक ब्राह्मण कोमल वचन बोले कि रघुनाथजीका अभिषेक जगत्‌को सुखदायक है ॥ ७ ॥ हे मुनिराज ! अब देर मत कीजिये, महाराजको शीघ्र तिलक कर दीजिये ॥ ८ ॥

दोहा-तब मुनि कहेउ सुमन्तसन, तुरत चलेउ शिरनाइ ॥
रथ अनेक गज वाजि बहु, सकल सँवारेउ जाइ ॥ २१ ॥

तब मुनिराजने सुमन्तसे कहा, वे सुनते ही शिर नवाकर चले और अनेक रथ और बहुत से हाथी घोड़े सब जाकर सँवारे ॥ २१ ॥

दोहा-जहँ तहँ धावन पठै पुनि, मंगल द्रव्य मँगाय ॥
हर्ष समेत वसिष्ठ पद, पुनि नायउ शिर आय ॥ २२ ॥

फिर जहाँ तहाँ(तीर्थोंपर)दूतोंको भेजकर वहांसे मङ्गल द्रव्य मंगाये,फिर सुमन्तने प्रसन्नतासे आकर वसिष्ठजीके चरणोंपर शिर नवाया(और यह सुनाया कि सब वस्तुएँ प्रस्तुत हैं) ॥२२॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई * देवन सुमन वृष्टि झरि लाई ॥१॥
राम कहा सेवकन बुलाई * प्रथम सखन अन्हवावहु जाई ॥२॥

अयोध्याको बहुत सुन्दर बनाया, देवताओंने प्रसन्न हो फूलोंकी झड़ी लगा दी ॥ १ ॥ रघुनाथजीने अपने सेवकोंको बुलाकर कहा पहले हमारे सखाओंको स्नान कराओ ॥ २ ॥

सुनत वचन सब जहँ तहँ धाये * सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये ॥३॥
पुनि करुणानिधि भरत हँकारे * निजकर जटा राम निरुवारे ॥४॥

वचन सुनते ही सब जहां तहां दौड़ पड़े, तुरन्त सुग्रीव आदिको स्नान कराया ॥३॥ फिर करुणासागर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको बुलाकर अपने हाथसे उनकी जटायें खोलीं ॥ ४ ॥

अन्हवाये प्रभु तीनिहुँ भाई * भक्तवछल कृपालु रघुराई ॥५॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई * शेष कोटिशत सकहिं न गाई॥६॥

फिर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों भाइयोंको स्नान कराया, श्रीरामजी भक्तवत्सल और कृपालु हैं ॥५॥ भरतजीका भाग्य रघुनाथजीकी कोमलता सौ करोड़ शेषजी नहीं गा सकते॥६॥

पुनि निज जटा राम बिवराये * मुनि अनुशासन पाइ अन्हाये॥७॥
करि मज्जन भूषण प्रभु साजे * अंग अनंग कोटि छबि लाजे ॥८॥

फिर रघुनाथजीने अपनी जटा विसर्जित की और मुनिकी आज्ञा पाकर स्नान किया ॥७॥ स्नान करके प्रभुने अपने गहने पहने, अङ्गोंको देख करोड़ों कामदेवकी छबि लजा गयी ॥८॥

दोहा-सासुन सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ॥
दिव्य वसन वरभूषण, अँग अँग सजे बनाइ ॥ २३ ॥

सासुओंने आदर पूर्वक जानकीको तुरंत स्नान कराया और दिव्य वस्त्र तथा सुन्दर गहने अंग अंगमें बनाकर सजाये ॥ २३ ॥

दोहा–राम वाम दिशि शोभित, रमारूप गुणखानि ॥
देखि मातु सब हर्षित, जन्म सफल निज जानि ॥ २४ ॥

वह साक्षात् रूप गुणोंकी खान लक्ष्मी रामकी वाम ओर विराज रही हैं यह शोभा देख सब मातायें प्रसन्न हो अपना जन्म सफल मानती हैं ॥ २४ ॥

दोहा–सुनु खगेश तेहि अवसर, ब्रह्मा शिव मुनिवृन्द ॥
चढ़ि विमान आये सब, सुर देखन सुखकन्द ॥ २५ ॥

काकभुशुण्डजी बोले–हे गरुड़जी ! सुनो; उस समय ब्रह्मा, शिव और मुनिगण सहित विमानोंमें चढ़कर सब देवता सुखसागर रघुनाथजीका दर्शन करने आये ॥ २५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायामुत्तरकाण्डान्तर्गतः प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

श्रीरामराज्याभिषेक



दोहा–यहि दूजे विश्राममें, तिलक कीन्ह मुनिराज ।
राज मिलो रघुनाथको, पूरे सब मन काज ॥ २ ॥

प्रभु विलोकि मुनि मन अनुरागा ❋ तुरत दिव्य सिंहासन माँगा ॥१॥
रविसम तेज वरणि नहिं जाई ❋ बैठे राम द्विजन शिर नाई ॥२॥

प्रभुके देखते ही गुरु वसिष्ठजीका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और तत्काल बोल उठे कि दिव्य सिंहासन लाओ ॥ १ ॥ जिनका तेज सूर्यके समान है, वर्णन नहीं हो सकता, वे रघुनाथजी ब्राह्मणोंको शिर नवाकर बैठे ॥ २ ॥

जनकसुता समेत रघुराई * देखि प्रहर्षे मुनि समुदाई ॥३॥
वेदमन्त्र तब द्विजन उचारे * नभसुर मुनि जय जयति पुकारे॥४॥

जानकी सहित रघुनाथजीको सिंहासन पर बैठा देखकर मुनि बहुत प्रसन्न हुये ॥ ३ ॥ तब ब्राह्मण वेदमन्त्र उच्चारण करने लगे, आकाशसे देवता मुनि जयजयकार पुकारने लगे ॥ ४ ॥

प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा * पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा ॥५॥
सुत बिलोकि हर्षहिं महतारी * बार बार आरती उतारी ॥६॥

पहले मुनिवर वसिष्ठजीने तिलक किया; फिर सब ब्राह्मणोंको आज्ञा दी ॥ ५ ॥ पुत्रोंको देख माताएँ बड़ी प्रसन्न हुई और बार बार आरती उतारी ॥ ६ ॥

विप्रन दान विविध विधि दीन्हे * याचक सकल अयाचक कीन्हे ॥७॥
सिंहासनपर त्रिभुवनसाईं * देखि सुरन दुन्दुभी बजाईं ॥८॥

ब्राह्मणोंको अनेक प्रकार दान दिये सब याचकोंको अयाचक कर दिया ॥७॥ सिंहासनके ऊपर त्रिलोकीनाथको बैठा देख कर देवताओंने दुन्दुभी (नगाड़े बजाये) ॥ ८ ॥

छन्द–नभ दुन्दुभी बाजहिं बिपुल गन्धर्व किन्नर गावहीं ।
नाचहिं अप्सरावृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं ॥
भरतादि अनुज विभीषणांगद हनुमदादि समेतजे ।
गहे छत्र चामर व्यजन धनु असिचर्मशक्ति विराजते॥ ५ ॥

आकाशमें अनेक नगाड़े बजते हैं, अनेक गंधर्व किन्नर गाते हैं अप्सरायें नाचती हैं देवता मुनि परमानंद पाते हैं । भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न और १ विभीषण, २ अङ्गद,३ हनुमान्, ४ सुग्रीव, ५ दधिमुख, ६ द्विविद, ७ मयंद, ८ जाम्बवंत, ९ सुषेण, १० दरीमुख, ११ कुमुद, १२ नील, १३ नल, १४ गवाक्ष, १५ पनस, १६ गन्धमादन ये सोलह पार्षद परिचर्यामें हैं, जो सब किशोरावस्था युक्त हैं, सीता राममें अपना मन लगा रहे हैं । ऐसा अगस्त्यसंहितामें लिखा है ? यह सब छत्र, चामर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल, शक्ति लिए विराजमान हो रहे हैं ॥५॥

छन्द–सिय सहित दिनकरवंश भूषन काम बहु छबि सोहहीं ।
नव अम्बुधर वर गात अम्बर पीत मुनिमन मोहहीं ॥
मुकुटांगदादि विचित्र भूषण अङ्ग अङ्गन प्रति सजे ।
अम्भोज नयन विशाल उर भुज धन्य नर निरखंतजे ॥६॥

श्रीसीताजी सहित सूर्यकुल भूषण रघुनाथजी शोभित होते हैं अनेक कामसे भी अधिक छबि छा रही है, नये जल भरे बादलके समान श्याम शरीर और पीत वस्त्र ओढ़े हैं, जो मुनियोंके मनको मोहित करता है, मुकुट बाजूबन्द आदि विचित्र गहने प्रत्येक अंगपर सजाये हैं, कमलसे बड़े-बड़े नयन, हृदय चौड़ा और भुजाएँ लम्बी हैं जो मनुष्य उनका दर्शन करते हैं वे धन्य हैं॥६॥

दोहा–वह शोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेश ॥
बरणौं शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश ॥ २६ ॥

काकभुशुण्डिजी बोले–हे गरुड़जी ! वह शोभा और समाजका सुख वर्णन नहीं किया जा

१. वैशाखकृष्ण, सप्तमीके दिन रघुनाथजीका राजतिलक हुआ ।

सकता तो भी अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सरस्वती शेष वेद वर्णन करते हैं परंतु शिवजी उस रसको भली भांति जानते हैं ॥ २६ ॥

अथ क्षेपक

उठ्यो विभीषण तब सुख पाई * रत्नमाल कर लई उठाई ॥१॥
दीन्हि जलधि रावणको जोई * पुनः विभीषण पाई सोई ॥२॥

तब विभीषण सुख पाकर उठे और रत्नोंकी माला हाथमें उठा ली ॥ १ ॥ वह माला थी जो रावणको सागरने दी, वही विभीषणने पायी ॥ २ ॥

सोई रत्नमाल सुखकारी * दीनि जानकीके गल डारी ॥३॥
तासु ज्योति असि भई विशाला *सन्मुख लखि न सकत महिपाला॥४॥

तब विभीषण सुखदायक रत्नोंकी माला जानकीके गलेमें डाल दी ॥ ३ ॥ उसकी ऐसी विशाल ज्योति हुई कि कोई राजा सम्मुख दृष्टि करके नहीं देख सकता था ॥ ४ ॥

राज समूह अधिक तहँ सोहा * तेहि विलोकि सबका मन मोहा॥५॥
तेहि क्षण जनक सुता महरानी * चितइ रामतन कछु मुसुकानी ॥६॥

वहां राज समूह अधिक शोभित था, इस मालाको देखकर सबका ही मन मोहित हो गया ॥५॥ उसी क्षणमें महारानी जानकी रघुनाथजीकी ओर देखकर मुसुकाई ॥ ६ ॥

कह्यो कृपालु पिया सुनि लीजै * जो इच्छा जेहिको सो दीजै ॥७॥
सुनत वचन तब जनक दुलारी * सोई गलेसे माल उतारी ॥८॥

तब रघुनाथजी बोले—प्यारी सुनिये जो जिसे देनेकी इच्छा हो उसे दीजिये ॥ ७ ॥ यह वचन सुन जानकीने उस मालाको गलेसे उतारा ॥ ८ ॥

काहि देउँ यह हृदय विचारी * मारुत सुतकी ओर निहारी ॥९॥

किसे दूं ? यह मनमें विचार कर पवन सुत हनुमान्जीकी ओर देखा ॥ ९ ॥

दोहा—कृपादृष्टि लखि पवनसुत, हर्षि दंडवत कीन्ह ॥
रत्न माल सो जानकी, डारि गलेमें दीन्ह ॥ २७ ॥

कृपादृष्टि देख महावीरजीने प्रसन्न हो दंडवत किया, जानकीजीने वह रत्नमाला इनके गलेमें डाल दी ॥ २७ ॥

महावीर मनमाहिं विचारी * है कोइ गुण मालामें भारी ॥१॥
परमानन्द प्रेमरस पागे * मणिन सकल अवलोकन लागे॥२॥

महावीरजीने मनमें विचारा कि मालामें कोई बड़ा भारी गुण है ॥ १ ॥ परमानंद और प्रेम रसमें सराबोर हो गये और सब मालाके दाने दाने देखने लगे ॥ २ ॥

बिनु प्रकाश कछु और न तामे * मन लागे भक्तनको जामे ॥३॥
मणि भीतर कछु होइहैं सारा * मुक्ता एक तोरि तब डारा ॥४॥

प्रकाशके सिवा उसमें कुछ नहीं था जिसमें भक्तोंका मन लगे ॥ ३ ॥ कदाचित् इनके भीतर कुछ सार होगा यह विचार वानर महावीरजीने एक मोती तोड़ डाला ॥ ४ ॥

ताके मध्य विलोकन लागे * देखि लोग सब अचरज पागे ॥५॥
पुनि दूजो तोरयो हनुमाना * देखि निसार तज्यो बलवाना ॥६॥

उसके बीचमें देखने लगे, यह देखकर सब लोग बड़े आश्चर्यमें हुए ॥ ५ ॥ फिर बलवान् महावीरजीने दूसरा मोती तोड़ डाला और उसको भी निस्सार समझकर फेंक दिया ॥ ६ ॥

इहि विधि तोरत क्रम क्रम मोती ❋ पीर अधिक दर्शक गण होती॥७॥
कहन लगे निज निज मन माहीं ❋ जो कोई अधिकारी नाहीं ॥८॥

इस प्रकार महावीरजी क्रम क्रमसे मोती तोड़ने लगे और देखनेवालों के मनमें बड़ी पीड़ा होने लगी ॥ ७ ॥ वे दर्शक अपने मनमें कहने लगे कि जो कोई अधिकारी नहीं हो ॥ ८ ॥

ताको ऐसी वस्तु न दीजै ❋ नाहित यही दशा लखि लीजै॥९॥

उसको ऐसी वस्तु देनी उचित नहीं, जो देगा तो यही दशा होगी ॥ ९ ॥

दोहा-बोलि उठ्यो कोउ नृपति यह, कहा करत हनुमान ॥
क्यों तोरत हो माल तुम,सुन्दर रत्न सुजान ॥ २८ ॥

तब कोई राजा बोल उठा--महावीर ! यह आप क्या करते हो ? सुन्दर रत्नमाला चतुर होकर क्यों तोड़ते हो ॥ २८ ॥

वचन सुनत कह मारुति बानी ❋ देखहुँ राम नाम सुखदानी ॥१॥
नाम न यामहँ परत लखाई ❋ ताते तोरत डारत भाई ॥२॥

यह वचन सुनते ही महावीरजी बोले इसमें सुखदायक राम नाम देखता हूँ ॥ १ ॥ परंतु भाई इसमें राम नाम दृष्टि नहीं आता, इस कारण तोड़ता और फेंकता जाता हूँ ॥ २ ॥

कह कोउ सकल वस्तुके माहीं ❋ रामनाम कहुँ सुनियत नाहीं ॥३॥
कह मारुति न नाम जेहि माहीं ❋ सो तो काहु कामकी नाहीं ॥४॥

फिर कोई कहने लगा कि सब वस्तुमें रामका नाम तो नहीं सुना ॥ ३ ॥ तब महावीरजी बोले-जिसमें रामनाम नहीं वह वस्तु तो किसी भी कामकी नहीं ॥ ४ ॥

बोला सोइ सुनो बल धामा ❋ तव तनुमाहिं रामको नामा ॥५॥
सुनत वचन कह पवन कुमारा ❋ निश्चय तनु हरि नाम उदारा ॥६॥

तब वही बोला-हे बलवान् ! सुनिये, आपके शरीरमें भी रामका नाम होगा ॥५॥ सुनते ही पवन कुमार बोले निश्चय है कि मेरे शरीरमें भी रामका नाम होगा ॥ ६ ॥

अस कहि कपि निज हृदय विदारा ❋ रोम रोम प्रभु नाम उदारा ॥७॥
अंकित राम नाम सब ठाहीं ❋ लखि सब चकित भये मनमाहीं॥८॥

यों कहकर वानर महावीरजीने अपनी छाती विदीर्ण कर दी, तो रोम जितने स्थानमें होता है उतना स्थान भी रामके उदार नामसे खाली नहीं था ॥ ७ ॥ सब स्थानमें राम नाम लिखा था, यह देखकर सब कोई चकित हो गये ॥ ८ ॥

पुष्पवृष्टि नभ जयति उचारी ❋ कृपादृष्टि रघुनाथ निहारी ॥९॥

आकाशसे फूलोंकी वर्षा और जयजयकार शब्द हुआ रघुनाथजीने कृपा दृष्टि कर महावीरजीको निहारा ॥ ९ ॥

दोहा-अंग भयो पुनि कुलिश सम, उठि तुरंत भगवान ॥
वारि विलोचन पुलकि तनु, हिय लागे हनुमान ॥ २९ ॥

रघुनाथजीको देखते ही महावीरजी का अंग वज्रके समान हो गया; तब नेत्रोंमें जल भरकर पुलकित हो भगवान्ने तुरंत उठकर महावीरजीको हृदयसे लगाया ॥ २९ ॥

भयो तहां अचरज यह भारी * देवन जय जय जयति पुकारी॥१॥

वहां यह बड़ा भारी आश्चर्य हुआ देवताओंने जयजयकार किया (इति क्षेपक) ॥ १ ॥

दोहा–भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गये सुर निज निज धाम ॥
बंदि वेष धरि वेद तहँ, आये जहँ श्रीराम ॥ ३० ॥

पृथक् पृथक् स्तुति कर देवता अपने अपने स्थानको चले, तब बन्दी (गुणगायक) का वेष धारण कर (चारों) वेद भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के निकट आये ॥ ३० ॥

दोहा–प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान ॥
लखा न काहू मर्म कछु, लगे करन गुन गान ॥ ३१ ॥

प्रभु सर्वज्ञ हैं, उनका बहुत आदर रघुनाथजीने किया, किसीने यह भेद नहीं जाना और वे रघुनाथजीके गुण गाने लगे ॥ ३१ ॥

प्रथम सामवेद बोला

छन्द–जय सगुण निर्गुण रूप राम अनूप भूप शिरोमने ।
दशकन्धरादि प्रचण्ड निशिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार भार विभंजि दारुण दुख दहे ।
जय प्रणतपाल दयाल प्रभु संयुक्त शक्ति नमामहे ॥ ७ ॥

पहले सामवेद विनय करने लगा हे प्रभु ! आप (अनूप) उपमा रहित हो हे (भूपशिरोमणे) राजाओंके शिरमौर आपकी जय हो आपके दो रूप हैं सगुण और निर्गुण "द्वे एव ईश्वरस्य रूपे, मूर्तामूर्तश्चेति श्रुतेः" सत्व, रज, तम तीनों गुणोंसे संयुक्त हो, परमेश्वरका विराट् रूप सगुण है यही ब्रह्मा विष्णु शिवरूपसे प्रतीत होते हैं 'एकं रूपं बहुधा यः करोति' भक्तिके कारण सगुण रूप होते हैं और वही निर्गुण निराकार निर्विशेष सर्वव्यापक सर्वसाक्षी प्रेरक सबसे पृथक् हैं जैसे आकाश सर्वत्र परिपूर्ण एकरसदेशकालावच्छिन्न है तद्वत् व्यापक हैं और चैतन्यरूप हैं भक्तोंके निमित्त अवतार धारण करते हैं, क्योंकि करुणा सागर हैं। कवितामें नौ रस हैं परंतु इनमें शृङ्गार वीर करुणा प्रधान हैं जैसे भगवान्ने प्रतिज्ञा की है 'हरिहौं सकल भूमि गरुआई' यही इस ग्रन्थका मूल कारण है। वीर रस प्रधानवाली इस चौपाईको वीररस प्रधान कह कर रामायणको वीर रस प्रधान कहते हैं। करुणावालों का कथन है कि करुणासे ही भगवान्ने वीर रस की प्रतिज्ञा की। शृङ्गार वाले कहते हैं जब यह प्रतिज्ञा हुई उस समय भगवान् शृङ्गार धारण किये थे, वह रूप पहले था इससे शृङ्गाररस ही प्रधान हुआ। जो रस मुख्य होता है वही बीचमें होता है सो यहां वीर रस बीचमें है, परंतु करुणा रसवाले कहते हैं कि सिद्धांत सबसे पीछे होता है सो इस छन्दमें करुणारस पीछे कहा गया इससे वह प्रधान हुआ। अथवा जो आपके सगुण निर्गुण रूप हैं उन सब रूपोंका यह भूपरूप शिरोमणि रावणादि जो प्रचण्ड निशिचर हैं उन्हें अपनी भुजाओंके बलसे दलकर नाश करनेवाले हो, मनुष्यका अवतार धारण करके संसारके भारको उतार कर दारुण दुःखके दहने वाले हो, हे दीनोंके पालनेवाले दयालु प्रभु ! मैं शक्ति सहित आपको प्रणाम करता हूँ,

तथा च श्रुतिः राम तापनीयोपनिषदि–"ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्दात्मा यो ब्रह्मांडस्थान्तर्बहिर्व्याप्तो यो विराड् भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमोनमः" ॥७॥

पुनः यजुर्वेद बोला

छन्द–तव विषम माया वश सुरासुर नाग नर अग जग हरे ।
भव पन्थ भ्रमत अमित दिवस निशि काल कर्म गुणन भरे ॥
जे नाथ करि करुणा विलोके विविध दुख ते निर्वहे ॥
भव खेद छेदन दक्ष हम कहँ रक्ष राम नमामहे ॥८॥ (२)

हे हरे ! आपकी टेढ़ी माया अविद्या है जिसके वश होकर देवता, असुर, नाग, नर, जड़ चेतनादि अनादि कालसे संसार पंथमें भ्रमते भ्रमते थक गये हैं, पर उनके ऊपर कालकर्मरूपी गुणोंका भार धरा है, हे स्वामी ! जिनकी ओर को आप कृपादृष्टि करके देख लेते हैं उनके वे तीनों दुःख अर्थात् काल कर्म मिट जाते हैं, बोझा जाता रहता है, हे जगत्के दुःख दूर करनेमें चतुर राम ! हमारी रक्षा कीजिये; हम आपको बारंबार प्रणाम करते हैं, वेद दुःखी तो संसारको कहते हैं पर वे जगद्गुरु हैं, अतः अपनी रक्षाके निमित्त जगत्की रक्षा चाहते हैं ? अथवा वेद वाक्यका यह भी आशय है हमने जगद्वासियोंसे यह कह दिया है कि विपत्ति काटनेमें रघुनाथजी कुशल हैं सो इस हमारे वचनकी रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ (२)

पुनः अथर्ववेद बोला

छन्द–जे चरण शिव अज पूज्य रजशुभ परशि मुनि पत्नी तरी ।
नखनिर्गता मुनिवंदिता त्रैलोक्य पावनि सुरसरी ॥
ध्वज कुलिश अंकुश कंजयुत वन फिरत कंटक जिन लहे ।
पदकंज द्वन्द मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे ॥९॥ (३)

फिर अथर्ववेद बोला–जिन चरणोंको शिव ब्रह्माजी पूजते हैं तथा जिन चरणोंकी शुभ रजका स्पर्श कर मुनि पत्नी (अहिल्या) तर गई और जिन चरणोंके नखोंसे मुनि वन्दनीय त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथी निकली हैं तथा जिन चरणोंमें ध्वजा कुलिश अंकुश कमल का चिह्न है और जिन चरणोंमें वनमें फिरते समय कांटे गड़ गये हैं, हे लक्ष्मीपते राम ! उन आपके मुकुन्द अर्थात् मोक्ष और संसारसुखके देने वाले दोनों चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ ॥ ९ ॥ (३)

छन्द–जे ज्ञान-मान-विमत्त तव भवहरणि भक्ति न आदरी ।
ते पाय सुरदुर्लभपदादपि परत हम देखत हरी ॥
विश्वास करि सब आश परिहरि दास तव जे हो रहे ।
जपि नाम तव विनु श्रम तरहिं भव नाथ सोइ स्मरामहे॥१०॥(४)

हे भगवन् ! जो मनुष्य सम्पूर्ण मायाके मानसे परे हैं वे सर्वथा ज्ञानी हैं अनात्माको असत्य आत्माको सत्य जानते हैं आत्मा जीव अन्तर्यामी ब्रह्म एकही है "अयमात्मा ब्रह्मेति श्रुतेः" वासना संयुक्त जीव वासना ध्वंस होते ही ब्रह्म है; दो रूप कथन मात्र है, "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह

नानास्ति किंचन" यह सब ब्रह्म ही है यह अनेक भेदवाली वस्तु कुछ नहीं है ऐसी अभेद बुद्धि ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हर्ष शोक सुख दुःख शत्रु मित्र (कांचन) सुवर्ण इन सबमें समान दृष्टि करे तथाहि-"समदुःख सुखश्चैव समलोष्टाश्मकांचनः । तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः१ मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्योमित्रारिपक्षयोः। सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतःस उच्यते ॥२॥ गीतायाम" तथा जो ज्ञानके मानसे विमत्त होकर संसारको छुड़ानेवाली (मुक्तिकी देनेवाली देवताओंको भी दुर्लभ) आपकी भक्तिका आदर नहीं करते हैं वे देव दुर्लभ पद अर्थात् ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर भी फिर लौट आते हैं, अथवा हम वेदोंको रात दिन देखते रहते हैं, ज्ञानको प्राप्त हुए हैं भक्ति नहीं करते; फिर संसारमें गिर पड़ते हैं, तथाहि-येऽन्येऽरविंदाक्षविमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः । आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः॥१॥ भागवते" ॥"ये राम भक्तिममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्ट मार्गे । अरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खा अर्के भजन्ति सुभगे सुखदुग्ध हेतुम्" ॥ २ ॥ और विश्वास करके सम्पूर्ण आशा छोड़ कर जो अपने दास हो रहे हैं जहां तक लोक वेदके साधन हैं जो इन सब उपायोंको त्याग उपाय शून्य शरणागत हो केवल आपका नाम जपते हैं भवसागर तर जाते हैं, हे नाथ ! ऐसे कृपासागरका हम नित्य स्मरण करते हैं ॥ १० ॥ (४)

पुनः ऋग्वेद बोला

छन्द-अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कन्ध शाखा पंचविंश अनेक पर्ण सुमन घने ॥
फलयुगल विधि कटु मधुरवेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे ॥११॥ (५)

ऋग्वेद विनय करने लगा-हे महाराज! यह संसार आपकी विभूति है, इस आपकी विभूतिको हम दण्डवत् करते हैं, यह आपकी विभूतिरूप जो संसार है सो एक वृक्ष है, जड़ इसकी अव्यक्त (जो दीखें नहीं उसे अव्यक्त कहते हैं) तथा यह अनादिकालका है चार वल्कल अर्थात् त्वचा हैं; यह वेद शास्त्र कहते हैं अथवा मन बुद्धि चित्त अहंकार चार त्वक् हैं अथवा अन्तःकरण चतुष्टय, अथवा चारों अवस्था-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया यह इस वृक्षकी त्वचा हैं; कोई सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग कोई धर्म अर्थ काम मोक्ष, कोई अंडज जरायुज उद्भिज्ज, उष्मज कोई ऋक, यजु, साम, अथर्वको त्वक् कहते हैं क्योंकि उन्हींसे संसार है। छः स्कंद हैं, जो षट्धातु कहते हैं-रक्त मांस अस्थि आदि । कोई षट् विकार को कहते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार कोई-कोई जन्म, वृद्धि, विवरण, क्षीण, जरा, मरण यह छः वर्ग कहते हैं; कोई षट्शास्त्र वेदांत, मीमांसा, न्याय, पातञ्जल, सांख्य, धर्मशास्त्रको स्कंद कहते हैं कोई पांच ज्ञान इंद्रिय छठवें मनको कहते हैं, सुख दुःख शीत उष्ण ज्ञान अज्ञानको कहते हैं परंतु जिसमें पेड़ स्कंध शाखा पत्र सब मिल जायँ सो ठीक तो इस प्रकारसे विचारमें पांचों तत्त्व और छठा मन है, जो सब ओर फैल रहे हैं और स्कंधकी शाखा पांच पांच हैं, मनमें छोड़ कर इस प्रकार पांच पचे पचीस हुए आकाशतत्व स्कंधकी शाखा-काम क्रोध लोभ मद मान, पवन तत्त्वकी शाखा-फैलाना सिकोड़ना धावना उत्क्रमण, अग्नितत्त्वकी-क्षुधा कांति निद्रा आलस्य जँभाई, जल तत्त्वकी-वीर्य पित्त पशीना रक्त लार, पृथ्वी

तत्त्वकी-हाड, मास, चर्म, रोम, नस यही पचीस शाखा हैं और शुभाशुभ कर्म अनेक प्रकारके पत्र हैं, कर्मोंसे फलकी वासना करनी मूल है ! मतांतरमें पांच तत्त्व, पांच उनके विषय-रूप रस, गंध, स्पर्श, शब्द । दश इंद्रिय-पांच ज्ञानेंद्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन बुद्धि अहंकार चित्त और महत्तत्त्व यह पचीस शाखायें हैं अनेक प्रकारकी वासनाएँ पत्ते हैं झड़ते लगते रहते हैं, बहुत संकल्प फूल हैं, किसीमें फल लगता है, कोई वैसे ही झड़ पड़ता है, पापपुण्यरूपी दो प्रकारके फल हैं; एक मीठा एक कडुवा; इसपर बेल चढ़ रही है वही अविद्या माया है, उसमें नित्य पल्लव निकलते झड़ते रहते हैं, ऐसे संसाररूपी वृक्ष आपको प्रणाम करता हूँ, आप बड़े ऐश्वर्यवान् हो "पादोऽस्य विश्वभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' इतनी ही परमात्माकी विभूति नहीं है, यह तो एक चौथाई है इससे तिगुना आनन्द मोक्षावस्थामें वर्तमान है ॥ ११ ॥ (५)

छन्द-जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभव-गम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं ॥
करुणायतन प्रभु सत गुणाकर देहु यह वर माँगहीं ।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं ॥१२॥(६)

हे नाथ ! जो लोग आपको ब्रह्मरूप अजन्मा और माया रहित अद्वैत एक और अनुभवसे जानने योग्य मनसे परे ध्याते हैं सो इस रूपको वे ही लोग कहते हैं वे ही जानें और हम तो इसी सगुणको नित्य अर्थात् ब्रह्म कह कर गाते हैं, हे करुणाके स्थान ! हे प्रभो ! समीचीन गुणोंकी खान ! हे देव ! आपसे यह वर मांगते हैं कि मन वचन कर्मसे विकारको त्यागकर आपके अमल कोमल चरणकमलमें अनुराग हो । साक्षात् जानने योग्य परम तत्त्व आपही हो (नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनामेको बहूनां यो विदधाति कामान्) और (यस्यांशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्यकारणपरः परमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव) रामता० । वह नित्योंका नित्य चैतन्योंका चैतन्य है, वह एक अनेक कामनाओं का विधानकर्ता है, उस एकके ही अंशसे ब्रह्मादिक हुए हैं, वही कार्य कारणसे परे साक्षात् परब्रह्म राम दशरथके यहां अवतीर्ण हुए ॥ १२ ॥ (६)

दोहा-सबके देखत वेदन, विनती कीन्ह उदार ॥
अन्तर्धान भये पुनि, गये ब्रह्म आगार ॥ ३२ ॥

सबके देखते हुए वेदोंने उदार विनतीकी और फिर अन्तर्धान होकर ब्रह्माके स्थानमें चले गये॥३२॥

दोहा-वैनतेय सुनु शम्भु तब, आये जहँ रघुवीर ॥
विनय करत गद्गद गिरा, पूरित पुलक शरीर ॥ ३३ ॥

काकभुशुण्डजी बोले-गरुड़जी ! सुनिये, तब उसी समय रघुनाथजीके निकट शिवजी महाराज आये और गद्गद बाणी तथा शरीरसे पुलकित होकर विनय करने लगे ॥ ३३ ॥

छन्द-जय राम रमारमणंशमनं । भवताप भयाकुल पाहि जनम् ।
अवधेश सुरेश रमेश विभो । शरणागत माँगत पाहि प्रभो ॥
दशशीश विनाशन बीसभुजा । कृत दूरि महामहि भूरि रुजा ।
रजनीचर वृन्द पतंग रहे । शरपावक तेज प्रचण्ड दहे ॥१३॥

हे रमारमण राम ! आप भवताप (जरा मरणके भय) दूर करनेवाले हो, मैं उस तापके भयसे व्याकुल हूँ उससे मेरी रक्षा कीजिये, क्योंकि आप अवधेश हो और यही रूप आपका सुरेश है तथा रमेश और प्रभु हो अथवा आप अवधेश ही मेरी रक्षा कीजिये । यदि आप कहो कि तुम बड़े देवता हो, तो आप रमेश अर्थात् विष्णु हो और जो आप कहो कि तुम शंकर हो तो आप विभु हो ! जिससे तीनों देवता उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकारसे हो मेरी रक्षा कीजिये, मैं शरण हूँ आप मेरी रक्षा कीजिये । आपने दश शिर और बीस भुजावाले रावण का विनाश करके पृथ्वीके रोग जो अनेक राक्षस थे उनको दूर किया और जो निशाचरोंके समूह पतंग स्थानमें थे सो आपके बाणरूपी अग्निसे जल गये, आपकी जय हो ! ॥ १३ ॥

छन्द–महिमण्डलमंडन चारुतरं । धृतसायक चाप निषंगवरम् ।
मदमोहमहाममता रजनी । तमपुञ्ज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किये । मृगलोक कुभोग शरेण हिये ।
हतिनाथ अनाथनिपाहि हरे । विषयावन पामर भूलि परे ॥१४॥

आप पृथ्वीमंडलके मंडनकर्ता अर्थात् सुन्दर भूषण हो, श्रेष्ठ धनुष बाण तरकस धारण किये हो मद और मोह ममता की जो महारात्रि है उसके अन्धकार समूह दूर करनेको आप प्रचंड सूर्यके तेजके समान हो, मनजात (कामरूपी) बहेलियेने उन मृग लोगोंको जो अनाथ थे, कुभोगके बाण हृदयमें मारकर निपातित कर दिया है, उस भयसे मैं शरणागत होता हूँ आप मेरे स्वामी हो रक्षा कीजिए, जो मारे गए वे अधम विषय रूप वनमें भूले पड़े थे ॥ १४ ॥

छन्द–बहु रोग वियोगन्ह लोग हये । भवदंघ्रि निरादरके फल ये ।
भवसिंधु अगाध परे नर ते । पदपंकज प्रेम न जे करते ॥
अतिदीन मलीन दुखी नितहीं । जिनके पदपंकज प्रीति नहीं ।
अवलंब भवंत कथा जिनके । प्रियसंत अनंत सदा तिनके ॥१५॥

उनमें जो कोई बचे थे वे कोई रोग और मरे हुओंके वियोगमें नष्ट हुए आपके चरणकमलों के निरादरका यही फल है । जो मनुष्य आपके चरणकमलों पर प्रेम नहीं करते वे अगाध संसार सागरमें पड़े हैं जहांसे फिर छुटकारा नहीं होता । जिनकी आपके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं है वे सदा अत्यन्त दीन मलीन और दुःखी रहते हैं और जिनको आपकी कथा (जो संसारसे पीड़ा छुड़ानेवाली है) और आप अवलम्बन हैं वे सदा प्रसन्न हैं उनको अनंत सन्त सदा प्यारे हैं, क्योंकि उन्होंने कथाका अवलम्बन किया है ॥ १५ ॥

छन्द–नहिं राग न लोभ न मान मदा । तिनके सम वैभव वा विपदा ।
इहिते तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत योग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिये । पदपंकज सेवत शुद्ध हिये ।
सम मानि निरादर आदरहीं । सब भाँति सुखी विचरंति मही ॥१६॥

वे सन्त कैसे हैं कि उन्हें राग, लोभ, क्रोध, मान, मद, कुछ नहीं है, विपति सम्पत्ति समान है इसी कारण आपके सेवक मुनि आनंदमें रहते हैं, योगके भरोसेको त्याग देते हैं, निरन्तर नियम

धारण किये आपमें प्रेम करते शुद्ध हृदयसे चरणकमलकी सेवा करते हैं; इस प्रकार आदर निरादरको समान मानकर पृथ्वीमें सब तरह सुखी होकर विचरते हैं ॥ १६ ॥

छन्द–मुनिमानस पंकज भृंग भजे । रघुवीर महा रणधीर अजे ।
तव नाम जपामि नमामि हरी । भवरोग महामद मान अरी ॥
गुणशील कृपा परमायतनं । प्रणमामि निरन्तर श्रीरमनम्।
रघुनन्द निकन्दन द्वंद्वघनं । महिपाल विलोकिय दीनजनम्॥ १७॥

ऐसे मुनियोंके मानसपंकजको आप भौंरेरूप होकर भजते हो, हे रघुवीर ! आप महारणधीर और अजेय हो, हे हरे ! हम आपके नामको जपते हैं और आपको प्रणाम करते हैं, आप भवरोग, महामद और मानके शत्रु हैं । आप गुणशील कृपा और परम शोभाके घर हो ऐसे श्रीलक्ष्मीजीसे रमण करनेवाले आपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ । रावण कुम्भकर्णादिके नाश करनेवाले महिपाल रघुनाथजी ! इस दीन जनको देखिये ॥ १७ ॥

दोहा–बार बार वर माँगऊँ, हर्षि देहु श्रीरंग ॥
पदसरोज अनपायिनी, भक्ति सदा सतसंग ॥ ३४ ॥

हे (श्रीरंग) लक्ष्मीपते ! वारंवार यही वर मांगता हूँ आप प्रसन्न होकर दीजिये कि आपके चरणकमलकी अनपायनी भक्ति और सदा सत्संग बना रहे ॥ ३४ ॥

दोहा–बरनि उमापति रामगुण, हरषि गये कैलास ॥
तब प्रभु कपिन दिवाये, सब विधि सुखप्रद वास ॥ ३५ ॥

जिस समय महादेवजी स्तुति करके प्रसन्नतासे कैलासको चले गये, उस समय रघुनाथजी ने कपियोंको सब प्रकारसे सुखदायक वास दिलाये । इससे पाया जाता है कि जिस समय वेदादि स्तुति करते थे पहलेसे ही प्रभुका चित्त वानरोंमें था इसीसे महादेवजीने कहा इस दीन जनकी ओर देखिये हमसे आपकी सहायता कुछ न हुई ॥ ३५ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायामुत्तरकाण्डान्तर्गत द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

दोहा–महिमा प्रभुके राज्यकी, वरणी बहु विधि गाय ॥
सो तृतीय विश्राममें, सुनिये जन मन लाय ॥ ३ ॥

सुनु खगपति यह कथा सुहावनि * त्रिविध ताप भव दोष नशावनि ॥१॥
महाराजकर शुभ अभिषेका * सुनत लहहिं नर विरति विवेका॥२॥

हे गरुड़जी सुनिये यह कथा बड़ी सुन्दर है, तीनों ताप और संसारके दोषोंका नाश करनेवाली है ॥ १ ॥ महाराजके राज्य तिलककी सुन्दर कथाको जो सुनेंगे उनको विरति और ज्ञानकी प्राप्ति होगी (यह निष्काम सुननेका फल है) ॥ २ ॥

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं * सुखसंपति नानाविधि पावहिं ॥३॥
सुर दुर्लभ सुख करि जगमाहीं * अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥४॥

और जो इसको कामना पूर्वक सुनेंगे और गावेंगे वे विषयी भी अनेक प्रकारकी सुख सम्पत्ति पावेंगे ॥ ३ ॥ और देवताओंको भी जो सुख प्राप्त नहीं उसको संसारमें भोगकर अन्तकालमें रघुनाथजीके लोकको चले जायेंगे ॥ ४ ॥

सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषई ❋ लहहिं भक्ति गति संपति नितई॥५॥
खगपति राम कथा मैं बरणी ❋ स्वमति विलास त्रास दुख हरणी॥६॥

मोक्षकी चाहना करनेवाले ज्ञानी और विषयी पुरुष जो इस कथाको सुनेंगे वे सदा भक्ति और सुख सम्पत्ति पावेंगे अथवा इस कथाके सुननेसे विमुक्त (सनकादिक) भक्ति और विरति संसार त्यागनेकी वासनावाली गति और विषयी सदासंपत्तिको प्राप्त होंगे ॥५॥ हे गरुड़ ! यह रघुनाथजीकी कथा मैंने वर्णनकी, यह बुद्धि प्रकाश करनेवाली त्रास दुःख हरनेवाली है ॥ ६ ॥

विरति विवेक भक्ति दृढ़ करणी ❋ मोह नदी कहुँ सुन्दर तरणी ॥७॥
नित नव मंगल कोसलपुरी ❋ हर्षित रहहिं लोग सब कुरी ॥८॥

वैराग्य ज्ञान भक्तिको दृढ़ करनेवाली है। मोहरूपी नदीसे पार करनेको अच्छी नौका है॥७॥ अयोध्यापुरीमें नित्य नये मंगल होते हैं और सब जातिके मनुष्य आनंद पूर्वक रहते हैं ॥८॥

नित नव प्रीति रामपद पंकज ❋ सेवत जेहि शंकर सुर मुनि अज॥९॥
मंगन बहु प्रकार पहिराये ❋ द्विजन दान नाना विधि पाये॥१०॥

सबकी रघुनाथजीके चरणोंमें नित नई प्रीति है, जिसका शिव देवता मुनि ब्रह्मा सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ मँगताओंको अनेक प्रकारके वस्त्र पहनाये और ब्राह्मणोंने अनेक प्रकार के दान पाये ॥ १० ॥

दोहा-परमानन्द मगन कपि, सब कहँ प्रभुपद प्रीति ॥
जात न जानेउ दिवस निशि, गये मास षट बीति ॥ ३६ ॥

सब कपि बड़े आनंदसे मग्न रहते हैं सबकी प्रभु चरण कमलोंमें (अलौकिक) प्रीति है दिन-रात जाते नहीं जानते और छः महीने बीत गये (उन्हें एक दिन भी जाता नहीं विदित हुआ यह परमानन्दकी महिमा है) ॥ ३६ ॥

बिसरे गृह सपनेउ सुधि नाहीं ❋ जिमि परद्रोह सन्त मन माहीं॥१॥
तब रघुपति सब सखा बुलाये ❋ आय सबन्हि सादर शिर नाये॥२॥

सब घरको भूल गये, स्वप्नमें भी याद नहीं आती जैसे सन्त महात्माओं के मनमें पराया द्रोह नहीं आता ॥ १ ॥ तब रघुनाथजीने अपने सब सखाओंको बुलाया उन सबोंने आकर आदर पूर्वक शिर नवाया ॥ २ ॥

प्रेम समेत निकट बैठारे ❋ भक्तसुखद मृदु वचन उचारे ॥३॥
तुम अति कीन्ह मोर सेवकाई ❋ मुखपर केहि विधि करौं बड़ाई ॥४॥

रघुनाथजीने सबको प्रेमसे निकट बैठाया भक्तोंको सुख देनेवाले प्रभुने मनोहर वचन उच्चारण किये ॥ ३ ॥ तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, मुखपर किस प्रकारसे बड़ाई करूँ ॥ ४ ॥

ताते मोहि अति तुम प्रिय लागे ❋ मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥५॥
अनुज राज-सम्पति वैदेही ❋ देह गेह परिवार सनेही ॥६॥

इस कारण तुम मुझे बहुत प्यारे हो क्योंकि मेरे निमित्त तुमने अपना घर और सुख त्याग दिया है ॥ ५ ॥ छोटा भाई, राज्य, सम्पत्ति, जानकी, देह, परिवार और स्नेही जन ॥ ६ ॥

सब मोहिं प्रिय नहिं तुमहिं समाना * मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥७॥
सब कहँ प्रिय सेवक यह नीती * मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥८॥

तुम्हारे समान मुझे यह कोई भी प्यारे नहीं हैं, मेरी यह बान है, मैं झूठा नहीं बोलता ॥ ७ ॥ यद्यपि सेवक सबको नीतिसे प्यारा होता है, क्योंकि वह सेवा करता है, परन्तु मेरी दासके ऊपर अधिक प्रीति है, (दास उसे कहते हैं जो तन मन धन अर्पण कर दे कुछ न चाहे और सेवक केवल सेवा करनेवाला होता है) ॥ ८ ॥

दोहा-अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ॥
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम ॥३७॥

अब हे सखाओ ! तुम सब घर जाओ दृढ़ नियमसे मेरा भजन करते रहो, मुझको सर्वदा सर्वव्यापक और सबका हितकारी जानकर अत्यन्त प्रेम करते रहना यही हमारी परम सेवा है । यहां ईश्वरत्व प्राप्त है-"एकोदेवस्सर्वभूतेषु गूढः" ॥ ३७ ॥

सुनि प्रभु वचन मगन सब भये * को हम कहां बिसरि तनु गये ॥१॥
इकटक रहे जोरि कर आगे * कहि न सकत कछु अति अनुरागे॥२॥

प्रभुका वचन सुनकर वे सब कोई (प्रेममें) मग्न हो गये और उस समय हम कौन कहां हैं ? यह शरीरका ज्ञान भूल गये ॥ १ ॥ हाथ जोड़े एकटक आगे खड़े रह गये और अत्यन्त प्रेमके कारण मुखसे वचन न निकल सका ॥ २ ॥

प्रभु सम्मुख कछु कहै न पारहिं * पुनि पुनि चरण सरोज निहारहिं॥३॥
परमप्रीति तिन्ह करि प्रभु देखी * कहा विविध विधि ज्ञान विसेखी॥४॥

रघुनाथजीके आगे वे कुछ नहीं कहते अर्थात् ज्ञानोपदेशको स्वीकार नहीं करते इस कारण बारंबार चरणकमलोंको देखते हैं कि हम आपके चरणोंके सिवाय और कुछ नहीं चाहते ॥३॥ रघुनाथजीने उनकी परम प्रीति अवलोकन कर अनेक प्रकारसे ज्ञान-उपदेश किया ॥ ४ ॥

तब प्रभु भूषण वसन मँगाये * नाना रंग अनूप सुहाये ॥५॥
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये * भरत वसन निज हाथ बनाये ॥६॥

तब प्रभुने अनेक रंगके अनेक प्रकारके सुन्दर भूषण और वस्त्र मँगाये ॥ ५ ॥ प्रथम सुग्रीवजीको रघुनाथजीकी आज्ञासे भूषण और वस्त्र भरतने अपने हाथसे सजाकर पहराये ॥ ६ ॥

प्रभु प्रेरित लक्ष्मण पहिराये * लंकापति रघुपति मन भाये ॥७॥
अंगद बैठि रहे नहिं डोले * प्रीति जानिं प्रभु ताहि न बोले॥८॥

और लक्ष्मणजीने प्रभुकी आज्ञासे लंकापति (विभीषण) को पहराये और रघुनाथजीके मन को प्यारे लगे ॥ ७ ॥ अङ्गदजी बैठे रहे डोले नहीं;रघुनाथजीने भी प्रीति देखकर (इस कारण नहीं बुलाया कि इनकी प्रीति देखकर और वानर भी प्रीतिवश हो विदा न होंगे) ॥ ८ ॥

दोहा-जाम्बवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ ॥
हिय धरि रामस्वरूप सब, चले नाय पद माथ ॥ ३८ ॥

जाम्बवन्त नल नीलादि सबको रामजीने बस्त्र पहनाये, वे सब रामजीका स्वरूप हृदयमें धारण कर चरणोंमें शिर नवा कर चले (अनेक प्रकारसे रघुनाथजीके गुण स्मरण करने लगे)॥३८॥

दोहा--तब अंगद उठि नाइ शिर, सजल नयन कर जोरि ॥
अति विनीत बोलेउ वचन, मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥ ३९ ॥

तब अङ्गदजीने उठ कर (रघुनाथजीको) शिर नवाया और नेत्रोंमें जल भर हाथ जोड़ कर बड़े नीति भरे नम्रता युक्त वचन कहने लगे; मानो, वे वचन प्रेमरसमें बोर दिये हैं ॥ ३९ ॥

सुनु सर्वज्ञ कृपा-सुख-सिन्धो * दीन-दयाकर आरत-बन्धो ॥१॥
मरती बार नाथ मोहि बाली * गयो तुम्हारे कोछे घाली ॥२॥

हे सर्वज्ञ ! सुनिये, (आप मेरी सब अवस्थाको जानते हो) कृपा और सुखके सागर हो दीनदयालु हो, दुःखी जनोंके सहायक हो ॥ १ ॥ हे नाथ ! (यही गुण आपमें देखकर) वालि मुझको आपके चरणोंपर मरते समय डाल गया ॥ २ ॥

अशरण शरण विरद सँभारी * मोहि जनि तजहु भक्त भयहारी॥३॥
मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता * जाउँ कहां तजि पद जलजाता॥४॥

जिनका कहीं ठिकाना नहीं उन्हें शरण देते हो, वंशकी रीति रखनेवाले हो; हे भक्तोंके भय हरनेवाले। मुझे त्याग मत दीजिये ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! मेरे तो गुरु पिता माता सब तुमही हो तुम्हारे चरण छोड़कर कहां जाऊं ? मेरे तो पिता माता कहीं नहीं, जिनके हैं वे विदा हो गये, मेरे पिता तो आप हो; कारण कि तुम्हें सौंप गये हैं ॥ ४ ॥

तुमहि विचारि कहहु नर नाहा *प्रभु तजि भवन काज मम काहा॥५॥
बालक अबुध ज्ञान बल हीना * राखेहु शरण जानि जन दीना ॥६॥

हे नरनाह ! आपही विचार करके कहिये कि स्वामीको छोड़कर घरमें मेरा क्या काम है? (आप नरनाह हैं, राजाओंके व्यवहारको जानते हैं जिसका राज्य दूसरे के पास हो वह वहां जाकर क्या करे) ॥ ५ ॥ हे करुणा सागर ! बालक हूं मूर्ख हूं ज्ञान और बल मुझमें कुछ नहीं है अतः दीन जानकर शरणमें रक्खो ॥ ६ ॥

नीच टहल गृहकी सब करिहउँ * पदपंकज विलोकि भव तरिहउँ॥७॥
अस कहि चरण परेउ प्रभु पाहीं * अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं॥८॥

मैं घरकी नीच टहल सब करूँगा और आपके चरणकमलका दर्शन करते हुए संसार सागरसे पार हो जाऊँगा ॥ ७ ॥ यह कह कर अङ्गदजी प्रभुके चरणोंमें गिर गये और बोले- हे नाथ अब घर जानेको मत कहियेगा ॥ ८ ॥

दोहा-अंगद वचन विनीत सुनि, रघुपति करुणासींव ॥
प्रभु उठाय उर लायउ, सजल नयन राजीव ॥४०॥

अङ्गदकी विनययुक्त बातें सुनकर करुणासागर रघुनाथजीने अङ्गदको उठाकर हृदयमें लगाया और कमलसे नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ४० ॥

दोहा-निज उरमाल वसन मणि, बालितनय पहिराइ ॥
विदा किये भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ ॥ ४१ ॥

तब भगवान्ने अपने हृदयकी माला वसन मणि अङ्गदजीको पहराकर और अनेक प्रकारसे समझाकर बिदा कर दिया। माला गहने मणिसे यह सूचित किया कि हमने तुमको सारूप्य मुक्ति दी। अथवा अपनी अत्यन्त कृपा अंगदको दिखाते हैं कि जिसको हम अपनी माला पहनाते हैं उसके तन मन धनसे सहायक हो जाते हैं, हम तुम्हारे सहायक हैं तुम आदरपूर्वक युवराज सुख भोगो ॥ ४१ ॥

भरत अनुज सौमित्र समेता * पठवन चले भक्त कृत चेता ॥१॥
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा * फिरि फिरि चितवत प्रभुकी ओरा ॥२॥

तब भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न सहित प्रसन्न हो भक्तोंको सुख देनेवाले रघुनाथजी पहुँचाने चले ॥ १ ॥ अंगदके हृदयमें बहुत ही प्रेम था, बार बार प्रभुकी ओर देखते हैं। देखनेका भाव यह कि कदाचित अब भी कह दें कि हमारे यहां रहो ॥ २ ॥

बार बार करि दंड प्रणामा * मन अस रहन कहहिं मोहिं रामा ॥३॥
राम विलोकनि बोलनि चलनी * सुमिरि सुमिरि शोचत हँसि मिलनी ॥४॥

बार बार रघुनाथजीको दंड प्रणाम करते हैं मनमें यह भाव आता है कि रघुनाथजी अब भी मुझे रहनेको कहें ॥ ३ ॥ रघुनाथजीका देखना, बोलचाल, हँसकर मिलना यह स्मरण कर सोचते हैं ॥ ४ ॥

प्रभुरुख देखि विनय बहुभाखी * चलेउ हृदय पदपंकज राखी ॥५॥
अति आदर सब कपि पहुँचाये * भाइन सहित भरत फिरि आये ॥६॥

फिर रघुनाथजीकी बिदा करनेमें ही इच्छा देख बहुत प्रकारसे विनयकर हृदयमें चरण कमल धारण कर चले ॥५॥ अति आदरसे सब कपियोंको थोड़ी दूर पहुँचाकर भाइयों सहित भरतजी लौट आये ॥ ६ ॥

तब सुग्रीव चरण गहि नाना * भांति विनय कीन्ही हनुमाना ॥७॥
दिन दश करि रघुपति-पद सेवा * पुनि तव चरण देखिहौं देवा ॥८॥

तब महावीरने चरण पकड़ कर सुग्रीवजीसे अनेक प्रकार विनती की ॥७॥ और कहा कि देव! दश दिन रघुनाथजीके चरणोंकी सेवा करके फिर तुम्हारे चरणोंका दर्शन करूँगा ॥ ८ ॥

पुण्यपुंज तुम पवन कुमारा * सेवहु जाइ कृपा-आगारा ॥९॥
अस कहि कपि पति चले तुरंता * अंगद कहेउ सुनहु हनुमन्ता ॥१०॥

यह वार्ता सुन सुग्रीवजी कहने लगे-हे महावीरजी! तुम महापुण्यात्मा हो कृपासागरकी सेवा जाकर करो ॥९॥ यह कह कर सुग्रीवजी तुरंत चले; तब अंगदजी बोले महावीरजी! सुनो ॥ १० ॥

दोहा-कहेउ दंडवत प्रभुसन, तुमहि कहौं कर जोरि ॥
बार बार रघुनायकहि, सुरति करायउ मोरि ॥ ४२ ॥

मैं आपसे हाथ जोड़के प्रार्थना करता हूँ कि मेरा दंडवत रघुनाथजीसे कह देना और बारंबार रघुनाथजीको मेरा स्मरण कराते रहना ॥ ४२ ॥

दोहा-अस कहि चलेउ वालिसुत, फिरि आयउ हनुमंत ॥
तासु प्रीति प्रभुसन कही, मगन भये भगवन्त ॥ ४३ ॥

यह कहकर अंगद चले; तब महावीरजी लौट आये और आकर रघुनाथजीसे अंगदकी प्रीति वर्णन की, जिसे सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥

दोहा-कुलिशहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ॥
चित खगेश अस रामकर, समुझि परे कहु काहि ॥ ४४ ॥

काकभुशुण्डजी बोले-हे गरुड़जी ! जिस समय कठोर होता है उस समय वज्रसे भी अत्यन्त कठोर हो जाता है और जब कोमल होता है तो फूलसे भी अधिक कोमल होता है ऐसा रघुनाथजीका चित्त है; इनकी गति कौन समझ सकता है ? (अंगदके विदा करनेमें कठोरता दिखायी और प्रेम सुनकर मग्न हुए अंगद युवराज हैं अतः उनका राजा होना भी आवश्यक है इससे विदा ही किया) अथवा कठोरता वज्रमें और कोमलता फूलमें है राम-चन्द्रका चित्त इन दोनोंसे परे है ॥ ४४ ॥

पुनि कृपालु लिये बोलि निषादा * दीन्हे भूषण वसन प्रसादा ॥१॥
जाहु भवन मम सुमिरण करेहू * मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू ॥२॥

फिर दयालु रघुनाथजीने निषादको बुलाकर भूषण, वस्त्र प्रसन्नता पूर्वक दिये ॥१॥ और कहने लगे-अब घर जाओ और मेरा स्मरण करते रहना । मन, वचन, कर्मसे अपना धर्म ग्रहण किये रहना ॥ २ ॥

तुम मम सखा भरत सम भ्राता * सदा रहेउ पुर आवत जाता ॥३॥
वचन सुनत उपजा सुख भारी * परेउ चरण लोचन भरि वारी ॥४॥

हे भाई, तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो, सदा हमारे नगरमें आते जाते रहना; क्योंकि तुम्हारा घर निकट है ॥३॥ यह वचन सुनते ही निषादको बड़ा सुख हुआ नेत्रोंमें जल भर आया चरणोंमें पड़ा ॥ ४ ॥

चरणकमल उर धरि गृह आवा * प्रभु स्वभाव परिजनहिं सुनावा ॥५॥
रघुपति चरित देखि पुरवासी * पुनि पुनि धन्य कहहिं सुखरासी ॥६॥

रघुनाथजी के चरण कमल हृदयमें धारण कर निषाद घर आया और रघुनाथजीका स्वभाव अपने सब कटुम्बियोंको सुनाया ॥ ५ ॥ पुरवासी आनंदराशि रघुनाथजीके चरित्र देखकर बारंबार धन्य कहते हैं ॥ ६ ॥

राम राज्य बैठे त्रैलोका * हर्षित भयउ गयउ सब शोका ॥७॥
वैर न कर काहू सन कोई * रामप्रताप विषमता खोई ॥८॥

रघुनाथजी जिस समय गद्दीपर बैठे उस समय तीनों लोक आनंदित हुये और सब शोक मिट गये ॥७॥ कोई किसीसे वैर नहीं करता रामजीके प्रतापसे सबकी कुटिलता जाती रही ॥८॥

दोहा-वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग ॥
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ॥ ४५ ॥

चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र); चारों आश्रमी (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी) ये सब कोई अपने अपने वैदिक धर्मानुसार चलते हैं और सुख पाते हैं किसीको भय, शोक और रोग नहीं है ॥ ४५ ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा * रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा ॥१॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती * चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥२॥

दैहिक (देह सम्बन्धी), दैविक (विद्युदादि), भौतिक (जीवोंके दिये) ताप रामके राज्यमें किसीको नहीं व्यापे ॥ १ ॥ सब मनुष्य परस्पर प्रीति करते हैं और अपने अपने कुल धर्ममें तत्पर वेदानुसार चलते हैं ॥ २ ॥

चारिउ चरण धर्म जगमाहीं * पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥३॥
रामभक्ति रत नर अरु नारी * सकल परम गति के अधिकारी ॥४॥

(सत्य, शौच, दया, दान) इन चारों चरणोंमें धर्म जगत्में परिपूर्ण हो गया था, कहीं स्वप्नमें भी पापका लेश नहीं था ॥३॥ नर और नारी रघुनाथजीकी भक्तिमें तत्पर हैं अतः सब कोई परमगति (मुक्तिके) अधिकारी हैं ॥ ४ ॥

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा * सब सुन्दर सब विरुज शरीरा ॥५॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना * नहिं कोउ अबुध न लक्षण हीना ॥६॥

रामके राज्यमें अल्पमृत्यु (थोड़ी अवस्थामें मर जाना) अथवा और किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं थी, सब सुन्दर और रोग रहित थे ॥ ५ ॥ न कोई दरिद्री, न दुःखी, न दीन, न मूर्ख और न कोई लक्षणहीन था अर्थात् सब ही सर्वलक्षण सम्पन्न थे ॥ ६ ॥

सब निर्दम्भ धर्मरत घृणी * नर अरु नारि चतुर सब गुणी ॥७॥
सब गुणज्ञ सब पंडित ज्ञानी * सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥८॥

सबही मनुष्य पाखण्डरहित, धर्मरत दयावान हैं, नर और नारी सब चतुर और गुणी हैं ॥७॥ सब कोई गुणी, सब ज्ञानी पंडित हैं, सब कृत्यके जाननेवाले हैं कपट चतुराईसे रहित हैं ॥८॥

दोहा—रामराज्य विहँगेश सुनु, सचराचर जगमाहिं ॥
कालकर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥ ४६ ॥

काकभुशुण्डजी बोले—हे गरुड़जी ! सुनो, रघुनाथजीके राज्य समयमें चराचर जगत्में काल, कर्म, स्वभाव और गुणसे किया दुःख किसी प्राणीको नहीं व्यापता अर्थात् पूर्वजन्मादिके किये कर्म भी उस राज्यमें दुःख देनेको समर्थ न हुए । काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) गुण (सत्त्व, रज, तम) इन्हींके अनुसार कर्म स्वभाव, प्रारब्ध इनके होनेसे ही जन्म मरण होता है सो रामके राज्यमें किसी पर काल, कर्म, गुण की प्रबलता न रही ॥ ४६ ॥

भूमि सप्त सागर मेखला * एक भूप रघुपति कोशला ॥१॥
भुवन अनेक रोम प्रतिजासू * यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥२॥

सात द्वीपोंकी पृथ्वीकी समुद्र मेखला है वा सात समुद्ररूप मेखलावाली इस सारी पृथ्वीभरमें एकही रघुनाथजी सम्राट् थे ॥ १ ॥ शिवजी बोले—हे पार्वती ! जिसके रोम रोममें अनेक ब्रह्मांड लगे हैं उसके लिये यह महिमा कुछ अधिक नहीं है ॥ २ ॥

सो महिमा समुझत प्रभु-केरी * यह वर्णत हीनता घनेरी ॥३॥
यह महिमा खगेश जिन जानी * फिरि यहि चरित तिनहु रतिमानी ॥४॥

वह प्रभुकी महिमा स्मरण करनेसे इसके वर्णन करनेमें बड़ी हीनता आती है ॥ ३ ॥ परंतु हे गरुड़जी ! जिसने रघुनाथजीकी यह महिमा जानी है उसने भी सब कुछ त्याग रघुनाथजीके चरित्रमें ही निरन्तर प्रीति मानी है ॥ ४ ॥

सो जानेकर फल यह लीला * कहहिं महामुनिवर दमशीला ॥५॥
रामराज-कर सुख सम्पदा * वरणि न सकहिं फणीश शारदा ॥६॥

उस महिमाके जाननेका फल यह है कि उनके चरित्रमें प्रीति होनी यह बात जितेन्द्रिय महामुनि कहते हैं॥५॥ रघुनाथजीके राज्यकी सुखसम्पत्तिको सरस्वती शेष भी वर्णन नहीं कर सकते॥६॥

सब उदार सब पर उपकारी * द्विजसेवक सब नर अरु नारी ॥७॥
एक नारि-व्रत रत नर झारी * ते मन वच क्रमपति हितकारी ॥८॥

उस राज्यमें सब ही उदार, सब परोपकारी;सब नरनारी ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे॥७॥सबही मनुष्योंका एक नारी व्रत है और वे स्त्रियां भी मन,वचन,कर्मसे पतिकी सेवा करनेवाली थीं॥८॥

दोहा-दंड यतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज ॥
जीतें मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्रके राज ॥ ४७ ॥

रामचन्द्रजीके राज्यमें साम, दाम परिपूर्ण हैं और दंड प्रजाओंपर नहीं है केवल यतियोंके हाथमें रह गया और भेद नर्तकोंके नृत्यसमाजमें सुनायी देता था (रागभेद तालभेद इत्यादि) तथा मन रूप शत्रुके सिवाय और जीतनेके लिये कोई शत्रु नहीं रहा; जिसे जीते ॥ ४७ ॥

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन * रहहिं एक सँग गजपंचानन ॥१॥
खग मृग सहज वैर विसराई * सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥२॥

वृक्ष वनमें सदा फूलते फलते हैं, हाथी सिंह एक स्थलमें रहते हैं, ॥ १ ॥ सब खग मृगोंने स्वाभाविक वैर छोड़कर परस्पर प्रीति बढ़ायी ॥ २ ॥

कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा * अभय चरहिं वन करहिं अनन्दा ॥३॥
शीतल सुरभि पवन बह मन्दा * गुंजत अलि लै चलु मकरंदा ॥४॥

अनेक प्रकारके खगमृग समूह शब्द करते हैं, वनमें आनन्दपूर्वक अभय हो विचरते हैं ॥ ३ ॥ शीतल सुगंधसे युक्त (सदा) मंद २ पवन चलता है, भौंरे गुञ्जारते और कमलके मकरन्दको लेकर चलते हैं ॥ ४ ॥

लता विटप मांगे फल द्रवहीं * मन भावते धेनु पय स्रवहीं ॥५॥
सस सम्पन्न सदा रह धरणी * त्रेता भइ सतयुगकी करणी ॥६॥

लता और वृक्ष मांगनेसे फल देते हैं मनमाना गायें दूध देती हैं ॥५॥ सदा पृथ्वी धान्यसे परिपूर्ण रहती है त्रेतायुगमें सब सत्ययुगी कर्म हो गये। अथवा वह त्रेतायुग सतयुग हो गया ॥६॥

प्रगटे गिरि नाना मणि खानी * जतदातमा भूप जग जानी ॥७॥
सरिता सकल बहैं वर वारी * शीतल अमल स्वादु सुख कारी ॥८॥

पर्वतोंसे अनेक प्रकारकी मणियोंकी खाने जगतकी आत्मा रघुनाथजीको पहचान कर प्रगट हो गयीं॥७॥सब नदियोंसे सुन्दर जल बहने लगा जो बड़ा ठंढा,निर्मल,स्वादिष्ट सुखदायक था॥८॥

सागर निज मर्यादा रहहीं ❋ डारहिं रत्न तटनि नर लहहीं ॥९॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा ❋अति प्रसन्नदशदिशा विभागा॥१०॥

समुद्र अपनी मर्यादासे रहते थे, किनारोंपर रत्न डाल देते थे, जिन्हें मनुष्य ग्रहण करते थे ॥९॥ सभी सरोवर कमलोंसे युक्त रहते थे, सब दिशा विभाग बड़े निर्मल(मनोहर) थे ॥१०॥

दोहा--विधु महि पूर मयूखन्ह, रवि तप जितनहिं काज ॥
मांँगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज ॥ ४८ ॥

रामचन्द्रके राज्यमें विधु अर्थात् चन्द्रमा की किरणोंसे पृथ्वी पूर्ण रहती है, सूर्यका तेज प्रयोजन मात्र रहता है, बादल मांगने पर जल देते हैं ॥ ४८ ॥

कोटिन वाजिमेध प्रभु कीन्हे ❋ अमित दान विप्रन कहँ दीन्हे ॥१॥
श्रुति प्रतिपालक धर्म धुरंधर ❋ गुणातीत अरु भोग पुरंदर ॥२॥

प्रभुने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये, असंख्य प्रकारके दान ब्राह्मणोंको दिये ॥१॥ रामचंद्रजी वेदकी मर्यादा पालनेवाले धर्मधुरधारी; गुणोंसे परे और पुरन्दर (इन्द्र) भोगोंके हैं अर्थात् सगुण निर्गुण दोनों ही हैं ॥ २ ॥

पति अनुकूल सदा रह सीता ❋ शोभा खानि सुशील विनीता ॥३॥
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई ❋ सेवति चरण कमल मनलाई ॥४॥

शोभाकी खान सुशील और विनययुक्त जानकी सदा पतिके अनुकूल रहती हैं ॥ ३ ॥ रघुनाथजीकी प्रभुताको जानती हैं सदा मन लगाकर चरणकमलकी सेवा करती हैं ॥ ४ ॥

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी ❋ सब प्रकार सेवा विधि गुनी ॥५॥
निजकर गृहपरिचर्या करई ❋ रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥६॥

यद्यपि घरमें अनेक सेवक सेवकिनी हैं और वे सब सेवा करनेमें बहुत चतुर हैं, परंतु (जानकीजी) रामजीकी स्वयं सेवा करती हैं ॥ ५ ॥ अपने हाथसे घरकी सब टहल करती हैं रघुनाथजीकी आज्ञा पाकर मानती हैं ॥ ६ ॥

जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानहिं ❋ सोइकर सिय सेवाविधि जानहि॥७॥
कौशल्यादि सासु गृह माहीं ❋ सेवहिं सबनि मान मद नाहीं ॥८॥

जिस प्रकार दयासिंधु रघुनाथजी सुख माने उसी प्रकारसे जानकीजी सेवा करती हैं॥७॥ घरमें कौशल्यादि सब सासुओंकी (समान भावसे) सेवा करती हैं; मान मद कुछ नहीं है॥८॥

उमा रमा ब्रह्माणि वंदिता ❋ जगदम्बा सन्ततमनिंदिता ॥ ९ ॥

पार्वती लक्ष्मी तथा ब्रह्माणीसे वंदित जगत्की माता सदा निंदा रहित होती हैं ॥ ९ ॥

दोहा—जाकी कृपाकटाक्ष सुर, चाहत चितवनि सोइ ॥
राम पदारविंद रति, रहति स्वभावहि खोइ ॥ ४९ ॥

जिनकी कृपा कटाक्ष देवता चाहते हैं,वे अपने स्वभावको विसार रघुनाथजीके चरणकमलमें ध्यान लगाये रहती हैं। श्लोक "जयति जनकजायाः पादपद्मं च शुभ्रंहरिहर विधिवंद्यं साधकानां सुसेव्यम् । नखनिकरकांतं मुद्रिकानूपुराढ्यं हरिहरहृदि मध्ये योगियोगीशभाग्यम्" ॥ ४९ ॥

सेवहिं सानुकूल सब भाई * रामचरण रति अति अधिकाई ॥१॥
प्रभुमुख कमल विलोकत रहहीं * कबहुँ कृपालु हमहिं कछु कहहीं॥२॥
सब भाई अनुकूल होकर सेवा करते हैं, सबकी रघुनाथजीके चरणोंमें बड़ी प्रीति है ॥१॥ सदा रघुनाथजीके मुख कमल देखते रहते हैं, कि कब कुछ स्वामी हमें आज्ञा दें ॥ २ ॥
राम करहिं भ्रातन पर प्रीती * नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥३॥
हर्षित रहहिं नगरके लोगा * करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा ॥४॥
रघुनाथजी भी भाइयोंपर प्रीति करते हैं, अनेक प्रकारकी नीति सिखाते हैं ॥३॥ सब नगरके लोग प्रसन्न रहते हैं, सब कोई(अनेक)भोग भोगते हैं,जो देवताओंको भी नहीं प्राप्त होते हैं॥४॥
अहनिशि विधिहि मनावत रहहीं * श्रीरघुवीर चरण रति चहहीं ॥५॥
दुइ सुत सुन्दर सीता जाये * लवकुश वेद पुराणन गाये ॥६॥
और रात दिन यही विधातासे मनाते हैं कि रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति हो॥५॥ श्रीजानकी महारानीके सुन्दर लव, कुश नामवाले दो पुत्र (वाल्मीकिके आश्रममें) उत्पन्न हुए जिनका वेद और पुराणने यश गाया ॥ ६ ॥
दोउ विजई विनई गुणमंदिर * हरिप्रतिबिंब मनहुँ अति सुन्दर ॥७॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन केरे * भये रूप गुण सील घनेरे ॥८॥
दोनों विनय युक्त बड़े विजयी और गुणोंके मंदिर थे, मानो अत्यन्त सुंदर रघुनाथजीके प्रतिबिंब ही हैं ॥७॥ इसी प्रकार सब भाइयोंके दो दो पुत्र,रूप गुण और अधिक शीलयुक्त हुए (भरतके पुष्कल, तक्ष, लक्ष्मणके अंगद, चित्रकेतु, शत्रुघ्नके श्रुतिसेन, सुबाहु) ॥ ८ ॥
दोहा-ज्ञानगिरागोतीत अज, मन माया गुण पार ॥
सोइ सच्चिदानंद घन, कर नरचरित उदार ॥ ५० ॥
जो ज्ञान, वाणी और इंद्रियोंसे परे; अजन्मा मन और मायाके गुणोंसे परे हैं वे ही सच्चिदानंदघन रामचन्द्रजी उदार नर चरित्र करते हैं ॥ ५० ॥
प्रातकाल सरयू कर मज्जन * बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ॥१॥
वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं * सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं ॥२॥
प्रातःकाल सरयूमें स्नान करके ब्राह्मण सज्जनोंके संग सभामें बैठते हैं ॥ १ ॥ यद्यपि रघुनाथजी सब जानते हैं तथापि वेद पुराण वसिष्ठजी कहते हैं और वे बड़े प्रेमसे सुनते हैं ॥२॥
अनुजन्ह संयुत भोजन करहीं * देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥३॥
भरत शत्रुहन दूनउ भाई * सहित पवनसुत उपवन जाई ॥४॥
छोटे भाइयों सहित भोजन करते हैं सब मातायें देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं ॥ ३ ॥ भरत और शत्रुघ्न दोनों महावीरके साथ बागोंमें जाकर (बड़े प्रेम और आनन्दसे) ॥४॥
पूछहिं बैठि राम गुण गाहा * कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥५॥
सुनत विमल गुण अतिसुख पावहिं * बहुरि बहुरि करि विनय कहावहिं॥६॥

बैठकर महावीरजीसे रघुनाथजीकी कथा पूछते हैं और सुन्दर मतिके सागर महावीरजी वह चरित्र वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥ रघुनाथजी के श्रेष्ठ गुण सुनकर बड़ा सुख पाते हैं और बार बार विनय करके कहलवाते हैं ॥ ६ ॥

सबके गृह गृह होहिं पुराना * रामचरित सुन्दर विधि नाना ॥७॥
नर अरु नारि रामगुण गावहिं * करहिं दिवस निशि जात न जानहिं॥८॥

सब अयोध्यावासियोंके घर घर पुराणोंकी कथा होती है,सब अनेक प्रकारके सुन्दर रामचरित्र सुनते हैं ॥ ७ ॥ नर और नारी रामजीके गुण गाते हैं अतः रात दिन बीतते नहीं जानते हैं ॥८॥

दोहा—अवधपुरी—वासिनकर, सुख—सम्पदा समाज ॥
सहस शेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम विराज ॥ ५१ ॥

अवधपुरके रहनेवालोंकी सुखसम्पत्तिका समाज हजार शेषजी भी वर्णन नहीं कर सकते जहां साक्षात् राम राजा विद्यमान हैं (वहां किसी बातकी न्यूनता नहीं) ॥ ५१ ॥

नारदादि सनकादि मुनीशा * दर्शन लागि कोशलाधीशा ॥१॥
दिनप्रति सकल अयोध्या आवहिं * देखि नगर विराग विसरावहिं ॥२॥

नारदजी, सनकादि मुनिराज रघुनाथजीके दर्शन करने को ॥ १ ॥ प्रतिदिन सब कोई अयोध्यामें आते हैं और नगरको देखकर वैराग्य भूल जाते हैं ॥ २ ॥

रत्न जटित मणि कनक अटारी * नानारंग रुचिर गच ढारी ॥३॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर * रचे कँगूरा रंग रंग वर ॥४॥

रत्न और मणियोंसे जड़ी अटारी हैं अनेक रंगकी सुन्दर गच ढाली गयी हैं (पुष्ट समान स्थल चिकनी अथवा कचगीरी) ॥ ३ ॥ पुरके चारों ओर बड़ा सुन्दर कोट (परकोटाचहार-दिवारी) है; जिसमें रंग रंगके सुन्दर कंगूर बने हैं, जिनसे बड़ी शोभा हो रही है ॥ ४ ॥

नवगृह निकर अनोक बनाई * मनहुँ घेरि अमरावति आई ॥५॥
महि बहुरूप रुचिर गज कांचा * जो विलोकि मुनिवर मन रांचा ॥६॥

नये घरोंके समूह ऐसे बनाये हैं मानो अमरावती (इंद्रनगरी) ही आगयी है ॥ ५ ॥ अँगनाई गली चौहटे इत्यादि सम्पूर्ण भूमि शीशेसे (और मणियोंसे) बनी हुई हैं जिसे देखकर मुनिवरोंके मन मोहित हो जाते हैं ॥ ६ ॥

धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत * कलश मनहुँ शशि रवि द्युति निन्दत॥७॥
बहु मणि रचित झरोखा भ्राजैं * गृह गृह प्रति मणिदीप विराजैं ॥८॥

सुन्दर स्थान ऐसे ऊँचे हैं मानो आकाशको चूमते हैं और मन्दिरोंके ऊपरके कलशे सूर्य और चन्द्रमाकी कांतिका तिरस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ अनेक मणियोंसे रचे हुए झरोखे विराजते हैं घर घर मणियोंके दीपक जलते हैं ॥ ८ ॥

छन्द—मणिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रचीं ।
मणिखम्भभीति विरंचि विरची कनकमणिमरकत खचीं ॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर मणि फटिकन रचे ।

प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाय बहु वज्रन रचे ॥ १८ ॥

घर घर मणियोंके दीपक विराजते हैं मूंगोंकी बनी हुई देहलियाँ शोभित हैं, मणियोंके खंभ और दीवारें मानो ब्रह्माजीने सोने और मरकत मणिकी रची हैं पुरके मंदिर सब ही अति सुन्दर हैं लंबे चौड़े आँगन स्फटिक मणिके रचे हैं प्रत्येक द्वारपर पुरट (सोने) के सुन्दर किवाड़ लगे हैं, कीलोंके स्थानमें वज्रमणि (हीरे) जड़े हैं ॥ १८ ॥

दोहा-चारु चित्रशाला अमित, गृह प्रति रचे बनाइ ॥
राम चरित जे निरखत, मुनि मन लेत चुराइ ॥ ५२ ॥

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं-मुनि भरद्वाज ! घर घर अनेक सुन्दर चित्रशाला बनी हुई हैं जो कोई रघुनाथजीका चरित्र देखते हैं-उनके मन मोहित हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

सुमन वाटिका सबहिं लगाई ❋ विविध भाँति करि जतन बनाई ॥१॥
लता ललित बहु जाति सुहाई ❋ फूलहिं सदा बसंतकी नाई ॥२॥

सबने अपने अपने घरके समीप अनेक प्रकारके यत्न कर फुलवाड़ी बनायी हैं॥१॥जिनमें सुन्दर सुन्दर अनेक जातिकी शोभामय लताएँ हैं जो वसन्तकी तरह फूली ही रहती हैं ॥२॥

गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर ❋ मारुत त्रिविध सदा बह सुन्दर ॥३॥
नाना खग बालकन्ह जियाये ❋ बोलत मधुर उड़ात सुहाये ॥४॥

भौंरे आदि मनोहर स्वरोंसे शब्द करते हैं और सदा शीतल मंद सुगन्ध पवन चलती है॥३॥ अयोध्याके बालकोंने अनेक पक्षी पाले हैं जो सुन्दर बोलते और उड़ते शोभित होते हैं॥४॥

मोर हंस सारस पारावत ❋ भवनन्ह पर शोभा अतिपावत ॥५॥
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं ❋ बहुविधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥६॥

मोर, हंस, सारस, कबूतर महलोंपर बहुत शोभा पाते हैं ॥ ५ ॥ जहां तहां अपनी परछाहीं देखकर (मीठे स्वरोंसे) बोलते और अनेक प्रकार नृत्य करते हैं ॥ ६ ॥

शुक सारिका पढ़ावहिं बालक ❋ कहहु राम रघुपति जन पालक ॥७॥
राजद्वार सकल विधि चारू ❋ वीथी चौहट रुचिर बजारू ॥८॥

बालक तोते मैनाओंको पढ़ाते हैं और कहते हैं कि भक्तोंके पालनेवाले रघुनाथजीका नाम लो ॥७॥ राजद्वार तो बहुत ही सुन्दर बना था । गली, चौहट, बाजार सब सुन्दर थे ॥८॥

छन्द-बाजार रुचिर न बनै वर्णत वस्तु बिनु गथ पाइये ।
जहँ भूप रमानिवास तहँकी संपदा किमि गाइये ॥
बैठे बजाज सराफ वणिक अनेक मनहु कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि शिशु नरजरठ जे ॥ १९ ॥

बाजारकी शोभा नहीं वर्णी जाती, सब वस्तु बिनाही मूल्यके मिलती हैं; जहां साक्षात् रमा-निवास(लक्ष्मी पति)राजा हैं वहांकी संपत्तिका क्या वर्णन हो सकता है ? अनेक बजाज सराफ बनिये कुबेरके समान हैं सच्चरित युक्त नर नारी बालक बुड्ढे सब सुन्दर सुखी हैं ॥ १९ ॥

दोहा–उत्तर दिशि सरयू बह, निर्मल जल गम्भीर॥
बांधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर॥ ५३॥

उत्तर दिशामें निर्मल और गम्भीर सरयू बहती है, जहां तहां सुन्दर घाट बँधे हैं और वे ऐसे स्वच्छ बने हैं कि किनारे पर थोड़ी भी कीच नहीं है अर्थात् पवित्र स्थान हैं॥ ५३॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा * जहँ जल पियहिं बाजिगज ठाटा॥१॥
पनिघट परम मनोहर नाना * तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥२॥

स्नानके घाटसे दूर फराक (चौड़ा) वह घाट बना था जहां अनेक घोड़े हाथियोंके झुण्ड जल पीते हैं॥ १॥ पनिघट जहां स्त्री जल भरने आती हैं वह बड़ा मनोहर है वहां पुरुष स्नान नहीं करते हैं॥ २॥

राजघाट सबही विधि सुन्दर * मज्जहिं तहाँ वरण चारिउ नर॥३॥
तीर तीर देवनके मंदिर * चहुँदिशि जिनके उपवन सुंदर॥४॥

राजघाट सब प्रकार सुन्दर है, वहां चारों वर्णके लोग स्नान करते हैं॥ ३॥ घाटोंके किनारे देवताओंके मंदिर हैं उनके चारों ओर सुन्दर बाग हैं॥ ४॥

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी * वसहिं ज्ञानरत मुनि संन्यासी॥५॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई * बहु प्रकार सब मुनिन लगाई॥६॥

कहीं कहीं सरयूके किनारे ज्ञानी मुनि सन्यासी उदासी रहते हैं॥ ५॥ किनारे किनारे तुलसीके वृक्ष शोभित हो रहे हैं जो अनेक प्रकारसे मुनियोंने लगाये हैं (जिनकी शोभा निराली ही मनको हरण कर रही है)॥ ६॥

पुर शोभा कछु बरणि न जाई * बाहर नगर परम रुचिराई॥७॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा * बन उपवन वापिका तड़ागा॥८॥

पुरकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती, नगरके बाहर शोभा हो रही है॥ ७॥ पुरीके देखते ही सम्पूर्ण पाप भागता है। बड़े बड़े वन, उपवन बावड़ी तड़ाग, शोभित हो रहे हैं (ऋषि मुनियोंके समागमसे पापका नाम भी कोई नहीं लेता)॥ ८॥

छन्द–वापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनुपथिक हंकारहीं॥ २०॥

बावड़ी, तड़ाग, अनुपम कुएँ मनोहर शोभा दे रहे हैं उनकी सीढ़ियां बहुत सुन्दर बनी हैं सरयूका ऐसा निर्मल जल है कि जिसे देखकर देवता मुनि मोहित होते हैं। बहुत रंगके कमल सरोवर में खिल रहे हैं, अनेक पक्षी किनारों पर बोलते व भौंरे गुञ्जारते हैं और वन बागोंमें पपीहे कोयल मधुर स्वरोंसे बोलते हैं, मानो मुसाफिरोंको बुला रहे हैं (मुनियोंके मन इस कारण मोहित हैं कि यह सुख स्वर्गमें भी नहीं है)॥ २०॥

दोहा–रमानाथ जहँ राजा, सो पुर वरणि न जाइ ॥
अणिमादिक सुख संपदा, रहीं अवधपुर छाइ ॥ ५४ ॥

जहांके राजा साक्षात् लक्ष्मीपति हैं उस पुरकी शोभा कैसे वरणी जाय ? अयोध्यापुरीमें अणिमादि ऋद्धि सिद्धि सब छा रही हैं, जैसे सागर जलसे भरा पुरा रहता है उसी प्रकार अयोध्या धन जनसे परिपूर्ण है ॥ ५४ ॥

जहँ तहँ नर रघुपति गुण गावहिं * बैठि परस्पर इहै सिखावहिं ॥१॥
भजहु प्रणत प्रतिपालक रामहिं * शोभा–शीलरूप-गुण-धामहिं ॥२॥

जहां तहां मनुष्य रघुनाथके गुण गाते हैं और परस्पर बैठ कर अपने अपने बालबच्चोंको यही शिक्षा देते हैं ॥१॥ हे बालको ! दीनोंके पालक रघुनाथजीको भजो, रघुनाथजी शोभा, शील रूप, एवं गुणके धाम हैं ॥ २ ॥

जलज विलोचन श्यामल गातहिं * पलक नयन इव सेवक त्रातहिं ॥३॥
धृत शर रुचिर चाप तूणीरहिं * सन्त कंज वन रवि रणधीरहिं ॥४॥

कमल लोचन श्याम शरीर जो रघुनाथजी हैं उनका सेवन करो, वे सेवकोंकी ऐसी रक्षा करते हैं कि जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, कि किसी प्रकार कुछ नेत्रों को बाधा न हो ॥ ३ ॥ रघुनाथजी सुन्दर बाण धनुष और तरकस धारण किये हैं । सन्त रूपी कमलोंके वनको खिलानेके लिए सूर्य और रणमें धैर्य धारण करने वाले हैं ॥ ४ ॥

काल कराल व्याल खगराजहि * नमत राम अकाम ममता जहि ॥५॥
लोभ मोह मृगयूथ किरातहि * मनसिजकरिहरिजन सुखदातहि॥६॥

काल जो तीक्ष्ण व्याल सर्प है उसके मारनेको रघुनाथजी गरुड़ हैं, अर्थात् इनके नामसे कालका भय निवृत्त हो जाता है, अतः रघुनाथजी को दंडवत् करो जो कारण विना ही प्रीति करते हैं ॥५॥ यह राम ही लोभ मोहरूपी मृगयूथोंके मारनेको किरात हैं अर्थात् इनके स्मरणसे लोभ मोह जाते रहते हैं और कामरूपी हाथीके मारनेको सिंह एवं जनके सुखदाता हैं ॥६॥

संशय-शोक–निबिड़तम भानुहि * दनुज गहनवन दहन कृशानुहि ॥७॥
जनकसुता समेत रघुवीरहिं * कस न भजहु भवभंजन भीरहिं ॥८॥

संशय और शोकरूप अन्धकार दूर करनेको रामका नाम सूर्य है; राक्षसरूपी सघन वनके जलानेको अग्नि है ॥ ७ ॥ जानकी समेत रघुनाथजीका भजन करो, संसारके भय दूर करने वाले हैं तथाहि 'राम नाम जपतां कुतो भयम् सर्वतापशमनैकभेषजम्' इति ॥ ८ ॥

बहु वासना मशक हिम राशिहिं * सदा एक रस अज अविनासिहिं ॥९॥
मुनिरंजन भञ्जन महि भारहिं * तुलसिदासके प्रभुहि उदारहिं ॥१०॥

अनेक वासनारूपी मशक डंसोंके दूर करनेको (हिमराशि) बर्फ सदा एक रस अज अविनाशी हैं ॥९॥ मुनियोंके सुखदायक, पृथ्वीका भार दूर करने वाले हैं और तुलसीदास-जीके प्रभु उदार शील हैं, सब कुछ भक्तोंके मनोरथ उदारतासे पूर्ण करते हैं ॥ १० ॥

दोहा–इहि विधि नगर नारि नर, करहिं रामगुण गान ॥
सानुकूल सब पर रहहिं, सन्तत कृपानिधान ॥ ५५ ॥

इस प्रकार नगरके सब नारी नर रघुनाथजीके गुण गाते हैं,कृपाके सागर रघुनाथजी सदा सबके ऊपर प्रसन्न रहते हैं। वही प्रजा पालना है कि प्रजाके मनमें स्वयं प्रेम उत्पन्न हो जाय॥९५॥

जबते राम प्रताप खगेशा * उदित भयउ अति प्रबल दिनेशा॥१॥
पूरि प्रकाश रहेउ तिहुँ लोका * बहुतन सुख बहुतन मनशोका॥२॥

काकभुशुण्डजी बोले–हे गरुड़जी ! जबसे रघुनाथजीका प्रतापरूपी प्रचंड सूर्य उदय हुआ ॥ १ ॥ तबसे तीनों लोकमें उजाला फैल रहा है, कहीं अन्धकार नहीं, अतः बहुतोंके मनमें सुख और बहुतोंके मनमें शोक है ॥ २ ॥

जिनहिं शोक तिन कहउँ बखानी * प्रथम अविद्या निशा नशानी॥३॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने * काम क्रोध कैरव सकुचाने॥४॥

जिनको शोक है उनको बखान कर कहता हूँ–कि प्रथम तो अविद्यारूपी रात्रि नष्ट हो गयी ॥३॥ पापरूपी उल्लू जहां तहां छिप गये, कामक्रोधरूपी बबूले कुम्हला गये अर्थात् रघुनाथजीके राज्यमें कामक्रोधरूपी अविद्याका नाश हो गया,कहीं पाप दिखाई नहीं देता था॥४॥

विविध कर्म गुण काल सुभाऊ * ये चकोर सुख लहहिं न काऊ॥५॥
मत्सर मान मोह मद चोरा * इनकर हुनर न कवनिउँ ओरा॥६॥

अनेक प्रकारके कर्म गुण, काल स्वभाव यह चकोर कभी सुख नहीं पाते क्योंकि सूर्यके प्रकाशमें चकोर दुःख पाता है, चन्द्रमासे सुखी होता है ॥ ५ ॥ अभिमान, घमंड, मोह, मद, इन चारोंका कहीं पता नहीं लगता है और कहीं इनका कर्तव्य नहीं चलता। कहीं "इनके निबाहु न कवनिहुँ ओरा" पाठ है ॥ ६ ॥

धर्म तड़ाग ज्ञान विज्ञाना * ये पंकज विकसे विधि नाना॥७॥
सुख सन्तोष विराग विवेका * विपति शोक ये कोक अनेका॥८॥

अब जो सुखी हैं उनको वर्णन करते हैं–धर्म रूपी सरोवरमें ज्ञान विज्ञान अनेक प्रकारके कमल खिल गये ॥ ७ ॥ सुख सम्पत्ति वैराग्य तथा विवेक ये चकवा चकवी शोक रहित विचरते हैं अर्थात् रघुनाथजीके राज्यमें सुख,सम्पत्ति,वैराग्य,विवेक शोकरहित निर्बाध हैं॥८॥

दोहा–यह प्रताप रवि जाहिके, उर जब करै प्रकाश॥
पाछिल बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नाश॥ ९६॥

वही प्रतापरूपी सूर्य जब जिसके हृदयमें प्रकाश करता है उनके पिछले जो सुख, ज्ञान, वैराग्य हैं वे तो बढ़ते हैं और पहले पापादिक नष्ट हो जाते हैं इस कारण परमात्माका भजन करना सार है ॥ ९६ ॥

भ्रातन सहित राम इक बारा * संग परम प्रिय पवन कुमारा॥१॥
सुन्दर उपवन देखन गये * सब तरु कुसुमित पल्लव नये॥२॥

भाइयों सहित एक बार रघुनाथजी साथमें महावीरजीको लिये ॥ १ ॥ उपवन बागोंको देखने गये जहां नवीन पल्लवयुक्त सब वृक्ष फूल रहे हैं ॥ २ ॥

जानि समय सनकादिक आये * तेजपुञ्ज गुण शील सुहाये॥३॥
ब्रह्मानन्द सदा लवलीना * देखत बालक बहुकालीना॥४॥

ऐसे समयमें रघुनाथजीके निकट सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार मुनि आये ॥३॥ यह चारों मुनि सदा पांच वर्षके शरीरसे युक्त रहते हैं ब्रह्मानन्दमें मग्न रहते हैं देखनेमें तो बालक किंतु अवस्था लाखों वर्षकी है ॥ ४ ॥

धरे देह जनु चारिउ वेदा ❋ समदर्शी मुनि विगत विभेदा ॥५॥
आशा वसन व्यसन यह तिनहीं ❋ रघुपति चरित होय तहँ सुनहीं ॥६॥

ऐसे विदित होते हैं मानो वेद शरीर धारण किये हैं, वे मुनि समदर्शी, एवं भेद रहित हैं ॥ ५ ॥ दिशा ही जिनके वस्त्र हैं यही जिनको व्यसन है कि जहां कहीं रघुनाथजीका चरित्र होता है वहीं उसे सुनते हैं ॥ ६ ॥

तहाँ रहे सनकादि भवानी ❋ जहँ घटसंभव मुनिवर ज्ञानी ॥७॥
रामकथा मुनि बहुविधि वरणी ❋ ज्ञान योनि पावक जिमि अरणी ॥८॥

शिवजी कहने लगे—हे पार्वती! जिस समय यह सनकादिक मुनि अगस्त्यजीके आश्रममें थे ॥ ७ ॥ वहां अगस्त्यजीने, राम कथा अनेक प्रकारसे वर्णन की जो ज्ञानरूपी अग्निके उत्पन्न और प्रज्वलित करनेको अरणी लकड़ीके समान है (अरणीमें आग अधिक होती है, यज्ञकी आग इसीमें से निकालते हैं) ॥ ८ ॥

दोहा—देखि राम मुनि आवत, हर्षि दण्डवत कीन्ह ॥
स्वागत पूछी पीतपट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥ ५७ ॥

रघुनाथजीने मुनियोंको आते देख प्रसन्न हो दण्डवत् किया और कुशल पूछकर अपना पीताम्बर उनके बैठनेको बिछा दिया। आसन छोड़कर पीत पटके बिछानेका भाव यह है कि अपने दासोंको मैं स्वयं अपने ओढ़नेकी वस्तु बिछाने को देता हूँ ॥ ५७ ॥

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई ❋ सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥१॥
मुनि रघुपति छबि अतुल विलोकी ❋ भये मगन मन सके न रोकी ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीके प्रणाम करनेपर महावीर सहित तीनों भाइयोंने दण्डवत् किया और बड़े प्रसन्न हुए ॥१॥ मुनिराज रघुनाथजीकी छबि देख मग्न हो गये मन नहीं रोक सके ॥ २ ॥

श्यामल गात सरोरुह लोचन ❋ सुन्दरता मंदिर भव मोचन ॥३॥
इकटक रहे निमेष न लावहिं ❋ प्रभु कर जोरे शीश नवावहिं ॥४॥

जो श्याम शरीर कमलनेत्र सुन्दरताके मंदिर संसारके दुःख मोचन करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ इन रघुनाथजीको देख मुनि एकटक देखते रह गये, पलक नहीं लगाते हैं और रघुनाथजी हाथ जोड़े शिर नवाते हैं ॥ ४ ॥

तिनकी दशा देखि रघुवीरा ❋ स्रवत नयन जल पुलक शरीरा ॥५॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे ❋ परम मनोहर वचन उचारे ॥६॥

उनकी यह दशा देख रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल चला आता है शरीर पुलकित है अथवा मुनियोंकी दशा देख रघुनाथजीके नेत्रोंमें जल भर आया शरीर पुलकित हो गया ॥ ५ ॥ हाथ पकड़ कर मुनियोंको बैठाया और परम मनोहर वचन उच्चारण किये ॥ ६ ॥

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीशा ❋ तुम्हरे दरश जाहिं अघ खीशा ॥७॥

बड़े भाग्य पाइय सत-संगा * बिनहिं प्रयास होहि भव भंगा ॥८॥

हे मुनिराजो ! आज मैं कृतकृत्य हो गया, आपके दर्शनसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ आप समान सत्पुरुषोंकी संगति बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है, विना प्रयास ही आपकी संगतिसे मनुष्य भवसागरके पार हो जाता है ॥ ८ ॥

दोहा-सन्त संग अपवर्गकर, कामी भवकर पन्थ ॥
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रंथ ॥ ५८ ॥

सन्तोंका संग तो मोक्ष का मार्ग है और कामीजनोंका संग संसारमें डालनेका मार्ग है, यह बात सन्त, वेद और पुराण व अच्छे ग्रन्थ कहते हैं क्योंकि सन्तोंकी संगतिसे निर्विकल्प समाधियुक्त रहनेसे मोक्ष हो जाता है ॥ ५८ ॥

सुनि प्रभु वचन हर्षि मुनि चारी * पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी ॥१॥
जय भगवन्त अनन्त अनामय * अनघ अनेक एक करुणामय ॥२॥

ये प्रभुके वचन सुन चारों मुनि प्रसन्न हो शरीरसे पुलकामान हो, स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ भगवन्त ऐश्वर्ययुक्त अनन्त ! तुम्हारा कोई पार नहीं पाता, आप अनामय सदा कल्याणरूप हो पाप रहित हो सबमें व्यापक होनेसे अनेकवत् भासते हो, वास्तवमें एक हो, करुणा सागर हो ॥ २ ॥

जय निर्गुण जय जय गुणसागर * सुख मंदिर सुन्दर अतिनागर ॥३॥
जय इंदिरारमण जय भूधर * अनुपम अज अनादि शोभाकर ॥४॥

हे निर्गुण ! हे गुणसागर ! आपकी जय हो, आप सुखके मंदिर मनोहर और अति चतुर हो ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मीसे रमण करने वाले ! आपकी जय हो, हे पृथ्वीके धारण करनेवाले ! आप उपमा रहित एवं जन्म आदि रहित तथा शोभाकी खान हो ॥ ४ ॥

ज्ञान निधान अमान मानप्रद * पावन सुयश पुराण वेद वद ॥५॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता-भञ्जन * नाम अनेक अनाम निरंजन ॥६॥

आप ज्ञानके निधान मानरहित हो दूसरोंको मान देनेवाले हो आपका यश पवित्र है ऐसा पुराण और वेद कहते हैं ॥ ५ ॥ आप तत्त्वरूप और तत्त्वके वेत्ता हो, (कृतज्ञ) सबकी करनीको जानते हो अज्ञानके नाशकर्त्ता हो तुम्हारे अनेक नाम हैं और तुम निरंजन अर्थात् मायासे रहित हो ॥ ६ ॥

सर्व सर्व-गत सर्व उरालय * वससि सदा हम कहँ प्रतिपालय ॥७॥
द्वन्द्व विपति भव फन्द विभंजय * हृदि वसि राम काम मद गंजय ॥८॥

हे सर्व रूप, सर्वव्यापक, सबके हृदयमें वास करनेवाले ! आप हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ हे रघुनाथजी ! हमारे हृदयमें वास करके द्वन्द्व दुःख और संसारके फन्दको एवं काम-मद को भी नष्ट करिये ॥ ८ ॥

दोहा-परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम ॥
प्रेमभक्ति अनपायिनी, देहु हमहिं श्रीराम ॥ ५९ ॥

हे कृपासागर ! आप परमानन्द कृपाके स्थान हो, पूर्णकाम हो अथवा हमारे मनकी सब कामना पूर्ण करने वाले हो केवल आप अपनी अनपायिनी प्रेम भक्ति हमको दीजिये, हे श्रीराम, आप लक्ष्मीजीके साथ रमण करनेवाले हो ॥ ५९ ॥

देहु भक्ति रघुपति अति पावनि * त्रिविध ताप भवरोग नशावनि ॥१॥
प्रणतपाल सुरधेनु कल्पतरु * होइ प्रसन्न दीजिय प्रभु यह वरु ॥२॥

हे रघुनाथजी ! अतिपवित्र अपनी वह भक्ति हमको दीजिये जो तीनों ताप और भव-रोगका नाश करनेवाली है ॥ १ ॥ आप दीनोंके पालक, कामधेनु और कल्पवृक्ष स्वरूप हो, प्रभो ! प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिये ॥ २ ॥

भव-वारिधि कुंभज रघुनायक * सेवक सुलभ सकल सुखदायक ॥३॥
मन-सम्भव दारुण दुखदारय * दीनबन्धु समता विस्तारय ॥४॥

हे रघुनाथजी ! आप संसार समुद्रके सोखनेको अगस्त्य हैं आप सेवकोंको सुलभ हैं और सबको सुखदायक हैं ॥ ३ ॥ मनमें उत्पन्न हुए दारूण दुःखको आप दूर करनेवाले हैं । हे दीनोंके बन्धु ! आप समताके विस्तार करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

आश पाश ईर्ष्यादि निवारक * विनय विवेक विरति विस्तारक ॥५॥
भूप मौलि मणि मण्डन धरणी * देहि भक्ति संसृति सरितरणी ॥६॥

आशाकी (पाश) फांसी और ईर्षादिकके आप निवारण करने वाले हैं विनय विवेक और वैराग्यके विस्तार करने वाले आप ही हैं ॥५॥ राजाओंके आप मुकुट मणि हो, पृथ्वीके भूषण हो, जन्ममरणरूपी नदीसे तारनेको नौकारूप जो तुम्हारी भक्ति है सो हमको दीजिये ॥६॥

मुनि मन मानस हंस निरंतर * चरणकमल वंदित अजशंकर ॥७॥
रघुकुलकेतु सेतु श्रुति रक्षक * काल कर्म स्वभाव गुण भक्षक ॥८॥

आप मुनियोंके मनरूपी मान सरोवरके हंस हो,ब्रह्मा और शंकर आपके चरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ हे रघुकुलके केतु ! आप वेदोंके रक्षक और संसारकी मर्यादा रखने वाले हो, काल, कर्म स्वभावके गुण इनके भक्षक अर्थात् नाशक हो, मुक्ति पानेमें काल कर्म स्वभावके गुण आपकी ही कृपासे नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

तारण तरण हरण सब दूषण * तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषण ॥९॥

आप तारण तरण और सब दोष हरने वाले हो, तुलसीदासके स्वामी त्रिलोकीके भूषण स्वरूप हो ॥ ९ ॥

दोहा—बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित शिर नाइ ॥
ब्रह्म भवन सनकादिग, अति अभीष्ट वर पाइ ॥ ६० ॥

बार बार स्तुति करके प्रेमसहित शिर नवाकर, मन–इच्छित वर पाकर सनकादिक ऋषि ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ६० ॥

सनकादिक विधि लोक सिधाये * भ्रातन राम चरण शिर नाये ॥१॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं * चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥२॥

जब सनकादिक ब्रह्मलोकको चले गये तब भाइयोंने रामके चरणोंमें शिर नवाया ॥१॥

रघुनाथजीसे प्रश्न करनेमें सकुचाते हैं, सब कोई महावीरजीकी ओर देखते हैं कि इनके द्वारा रघुनाथजीसे प्रश्न करें ॥ २ ॥

सुना चहहिं प्रभु मुखकी बानी * जो सुनि होइ सकल भ्रमहानी ॥३॥
अन्तर्यामी प्रभु सब जाना * पूँछत काह कहहु हनुमाना ॥४॥

प्रभुके मुखकी वाणी सुनना चाहते हैं, जिसके सुननेसे सब भ्रम मिट जाते हैं ॥३॥ रघुनाथजी अन्तर्यामी हैं सब जान गये और कहा, कहो महावीरजी ! क्या पूछना चाहते हो ? ॥४॥

जोरि पाणि तब कह हनुमन्ता * सुनिये दीनबन्धु भगवन्ता ॥५॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं * प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ॥६॥

महावीरजी हाथ जोड़कर कहने लगे-हे दीनोंके रक्षक भगवन् ! सुनो ॥५॥ हे स्वामिन् ! कुमार भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं-परन्तु प्रश्न करते मनमें सकुचाते हैं अर्थात् आपके सामने लज्जा करते हैं ॥ ६ ॥

तुम जानहु कपि मोर स्वभाऊ * भरत मोहिं अन्तर नहिं काऊ ॥७॥
सुनि प्रभु वचन भरत गहि चरणा * सुनहु नाथ प्रणतारति-हरणा ॥८॥

तब रघुनाथजी बोले-हे पवननन्दन ! तुम मेरे स्वभावको जानते हो भरतमें और मुझमें कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ ७ ॥ यह प्रभुके वचन सुन चरण पकड़ कर भरतजी बोले-हे दीनोंके दुःख हरनेवाले प्रभु सुनिये ॥ ८ ॥

दोहा-नाथ न मोहिं संदेह कछु, स्वप्नेहु शोक न मोह ॥
केवल कृपा तुम्हारि प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ॥ ६१ ॥

हे नाथ ! मुझे कुछ सन्देह नहीं है स्वप्नमें भी शोक मोह नहीं है, केवल आपकी ही कृपासे परिपूर्ण हूँ, चैतन्य आनंदके पात्र भगवन् ! आप सर्वज्ञ हो ॥ ६१ ॥

करौं कृपानिधि एक ढिठाई * मैं सेवक तुम जन-सुखदाई ॥१॥
सन्तनकी महिमा रघुराई * बहुविधि वेद पुराणन्ह गाई ॥२॥

हे कृपासागर ! एक ढिठाई करता हूँ सो क्षमा करना, मैं सेवक हूँ और तुम जनोंके सुखदायक हो ॥ १ ॥ हे रघुनाथजी ! सन्तोंकी महिमा वेद और पुराण सबने अनेक प्रकार बहुत गायी है ॥ २ ॥

श्रीमुख तुम पुनि कीन्ह बड़ाई * तिनपर प्रभुहिं प्रीति अधिकाई ॥३॥
सुना चहहुँ प्रभु तिनकर लक्षण * कृपासिन्धु गुण ज्ञान विचक्षण ॥४॥

और आपने भी अपने मुखसे बड़ाई की है और उनपर आपकी प्रीति भी अधिक है॥३॥ हे स्वामिन् ! उन सन्तोंके लक्षण सुनना चाहता हूँ, हे कृपासागर! आप गुण ज्ञानमें चतुर हो॥४॥

सन्त असन्त भेद बिलगाई * प्रणत पाल मोहिं कहहु बुझाई ॥५॥
सन्तनके लक्षण सुनु भ्राता * अगणित श्रुति पुराण विख्याता ॥६॥

हे दीनोंके पालन करनेवाले प्रभो! आप सन्त और असन्तोंके भेद पृथक् २ मुझे समझा कर कहो ॥ ५ ॥ तब रघुनाथजी बोले-भाई सन्तोंके लक्षण सुनो, उनके गुण अनन्त हैं और वेदों तथा पुराणोंमें विख्यात हैं ॥ ६ ॥

सन्त असन्तनकी असि करणी * जिमि कुठार चन्दन आचरणी ॥७॥
काटै परशु मलय सुनु भाई * निज गुण देइ सुगन्ध बसाई ॥८॥

सन्त और असन्तोंकी ऐसी करनी है जैसे कुठारके साथ चन्दनका आचरण और चंदनके साथ कुठारका आचरण ॥ ७ ॥ देखो कुठार जिस समय चन्दनको काटता है तो मलय चन्दन इस कुल्हाड़ेमें अपनी सुगंधि बसा देता है, उसके साथ विरुद्धाचरण न करके सुगंधि ही देता है ॥ ८ ॥

दोहा-ताते सुर शीशन चढ़त, जग वल्लभ श्रीखंड ॥
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशुवदन यह दंड ॥ ६२ ॥

श्रीखण्ड चन्दन जो अहित के साथ भी हित करता है इससे देवताओंके शिर पर चढ़ता है और जगत्को भी प्यारा है और कुठार जो हित करनेपर अहित करता है (काटता) है, इससे आगमें जलाकर उसके मुखको निहाई पर धरकर घनसे पीटते हैं। यह उसको दंड मिलता है इसी प्रकार सन्त असन्त हैं। भाव यह कि खल सन्तोंको दुःख देते हैं तथापि वे उनका हित ही करते हैं उसका फल यह होता है कि सन्त स्वर्गमें जाते हैं असन्त यमके मुद्गरोंसे पीटे जाते हैं ॥ ६२ ॥

विषय अलंपट शील गुणाकर * परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥१॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी * लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी ॥२॥

साधुजन विषयोंसे भिन्न शील गुणकी खानि पराये दुःख से दुःखी और दूसरोंका सुख देखने पर सुखी होते हैं ॥ १ ॥ समदर्शी हैं और जिनका कोई शत्रु कभी नहीं है, जिनको विषयोंसे वैराग्य है और जिन्होंने लालच, क्रोध, प्रसन्नता और भयको त्याग दिया है ॥२॥

कोमल चित दीनन पर दाया * मन वच क्रम मम भक्त अमाया ॥३॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी * भरत प्राणसम मम ते प्रानी ॥४॥

कोमल चित्त, दीनोंके ऊपर दया करनेवाले, मन, वचन, कर्मसे माया रहित मेरे भक्त हैं ॥ ३ ॥ जो सबको मान देने वाले; और आप मान रहित हैं, हे भरतजी ! ऐसे प्राणी (भक्त) मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ४ ॥

विगत काम मम नाम परायन * शान्ति विरति विनती मुदितायन ॥५॥
शीतलता सरलता मइत्री * द्विजपद प्रेम धर्म जनयित्री ॥६॥

जो कामना रहित मेरे नाममें तत्पर रहते हैं,शांति त्याग नम्रता और हर्षके घर हैं॥५॥ द्विज पदमें प्रेम सबमें शीतलता सरलता और मित्रता रखते हैं, जो धर्मकी जनयित्री अर्थात माता हैं॥६॥

यह सब लक्षण बसहिं जासु उर * जानेहु तात सन्त सन्तत फुर ॥७॥
शम दम नियम नीति नहिं डोलहिं * परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥८॥

हे भाई भरत ! यह सब लक्षण जिनके हृदयमें बसते हैं उन्हें सदा पूरा संत जानो ॥७॥ जो (शम) शांत (दम) इन्द्रियोंके जीतनेके नियमसे रहकर नीति नहीं त्यागते और कभी कठोर वचन मुखसे नहीं बोलते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज ॥
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुणमंदिर सुखपुंज ॥ ६३ ॥

जो निन्दा और स्तुति दोनोंको समान जानकर मेरे चरण कमलोंमें प्रीति रखते हैं ऐसे सज्जन महात्मा मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं, वे गुणोंके मंदिर और सुखके पुञ्ज अर्थात् समूह हैं इन्हींको सन्त महात्मा साधु कहते हैं ॥ ६३ ॥

सुनहु असन्तन–केर सुभाऊ ❋ भूलेहु संगति करिय न काऊ ॥१॥
तिनकर संग सदा दुखदाई ❋ जिमि कंपिलहिं घालै हरहाई ॥२॥

सुनिये, अब असन्तोंके स्वभावका वर्णन करते हैं; ऐसे पुरुषोंकी संगति भूलकर भी नहीं करनी चाहिये ॥१॥ ऐसे पुरुषोंका संग सदा दुःखदायी है मनुष्योंकी ऐसी दशा हो जाती है, जैसे कपिला गायको हरहाई गऊके संग दंड होता है, हरहाईके संग कपिला हरा खेत खाने गयी हरहाई भाग गयी, कपिला पीटी गयी ॥ २ ॥

खलन हृदय अतिताप बिसेखी ❋ जरहिं सदा परसंपति देखी ॥३॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई ❋ हर्षहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥४॥

दुष्टोंके हृदयमें बड़ा ताप होता है; सदा परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं ॥३॥ और जहां कहीं परायी निंदा सुनते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो कहीं पड़ी हुई सम्पदा पा ली ॥४॥

काम क्रोध मद लोभ परायन ❋ निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥५॥
वैर अकारण सब काहूसों ❋ जो कर हित अनहित ताहूसों ॥६॥

काम, क्रोध, मद, लोभको सदा ग्रहण करते हैं। इसीका श्रवण मनन होता है; बड़े निर्दय कपटी कुटिल पापात्मा होते हैं ॥ ५ ॥ विना कारणके सबसे वैर करते हैं और जो कोई उनके साथ हित करे उससे भी वैर करते हैं ॥ ६ ॥

झूठै लेना झूठै देना ❋ झूठै भोजन झूठ चबेना ॥७॥
बोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा ❋ खाहिं महा अहि हृदय कठोरा ॥८॥

उन असन्तोंका झूठा ही लेना, झूठा ही देना, झूठा ही भोजन, झूठा ही चबेना है ॥७॥ वचन तो वे मोरोंके समान मीठे बोलते हैं और हृदयमें ऐसे कठोर हैं कि सर्पोंका भक्षण करते हैं अर्थात् मोरकी बोली मीठी, भोजन सर्प होता है, ऐसे ही असज्जन पुरुष होते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–परद्रोही परदाररत, परधन पर अपवाद ॥
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥ ६४ ॥

दूसरोंसे द्रोह करने वाले दूसरोंकी स्त्रीसे प्रीति करनेवाले पराया धन लेनेकी इच्छावाले, निन्दा करनेवाले अथवा अपवाद अर्थात् पराये धनके नाश करनेकी इच्छा है परन्तु अपवाद करके लेना चाहते हैं ऐसे मनुष्य पापमय (साक्षात् पापरूप) मानो देह धारण किये राक्षस ही हैं कारण विना ही धन दारा आदिको छीनते हैं, इससे मनुजाद कहा । अपवाद (झूठी निन्दा) ॥ ६४ ॥

लोभै ओढ़न लोभै डासन ❋ शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन ॥१॥

काहूकी जौ सुनहिं बड़ाई * श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥२॥

जिनका लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिछौना है; लिंग और उदर (पेट) की ही कथामें तत्पर रहते हैं अर्थात् जबतक जागें तबतक परनारियोंकी कथा और जैसे हो वैसे पेट भरनेका उपाय करना; यमका डर नहीं करते ऐसे ही पुरुषोंको यम लोकमें त्रास प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जब किसीकी भलाई सुनते हैं तो ऐसे श्वास लेते हैं जैसे जूड़ी बुखार (जाड़ा) आ गयी हो ॥ २ ॥

जब काहूकी देखहिं विपती * सुखी होहिं मानहुँ जग नृपती ॥३॥
स्वारथ-रत परिवार-विरोधी * लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥४॥

जब किसीकी विपत्ति देखते हैं तो ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो जगत्के राजा हो गये ॥ ३ ॥ ऐसे सब मतलबके गरजी कुटुम्बके विरोधी, व्यभिचारी, कामलोभसे युक्त, बड़े क्रोधी इत्यादि लक्षणवाले पुरुष असन्त ही जानने चाहिए ॥ ४ ॥

मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं * आपु गये अरु-घालहि आनहिं ॥५॥
करहिं मोहवश द्रोह परावा * संत--संग हरि कथा न भावा ॥६॥

माता, पिता, गुरु एवं ब्राह्मणोंको नहीं मानते, आप गये (डूबे) और दूसरेका भी सत्या-नाश करते हैं ॥ ५ ॥ वे अज्ञानके वशीभूत हो पराया द्रोह करते हैं उनको अच्छे पुरुषोंकी सङ्गति और नारायणकी कथा अच्छी नहीं लगती ॥ ६ ॥

अवगुण सिन्धु मंदमति कामी * वेद-विदूषक परधन-स्वामी ॥७॥
विप्रद्रोह परद्रोह विशेषा * दम्भ कपट जिय धरे सुवेषा ॥८॥

अवगुणोंके समुद्र बड़े मंदमति और कामी होते हैं तथा वेदमें दोष लगानेवाले अर्थात् वेदमें नियोगादि,रेल तार आदि विद्याको अज्ञान बतलाकर मूर्ति पूजन निषिद्ध ईश्वरका अवतार नहीं होता उसके नामसे पाप दूर नहीं होता इत्यादि अनर्थ वचन कहते हैं, आचमनसे कफ निवृत्ति बतलाते हैं और पराये धनके स्वामी बन बैठते हैं ॥७॥ब्राह्मणोंका द्रोह परद्रोह करनेवाले जीमें पाखंड कपट अधिक रखनेवाले दुष्ट होते हैं और सुन्दर साधुओंका वेष बनाये रहते हैं ॥८॥

दोहा-ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं ॥
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहैं कलियुग माहिं ॥ ६५ ॥

ऐसे दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेतामें नहीं हैं; द्वापरमें कहीं प्रगट होंगे; परंतु ऐसे वेदमें दोष लगानेवाले कलियुगमें बहुत होंगे;जहां तहां कपटकी मंडली बनाकर उपदेश करेंगे॥६५॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई * परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥१॥
निर्णय सकल पुराण वेदकर * कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥२॥

पराया भला करना इसके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरेको दुःख देनेके समान और अधमता नहीं है ॥१॥ यह सब वेद पुराणका सिद्धांत मैंने तुमको सुनाया है इसको पंडितजन जानते हैं, इस कारण परोपकार करना परमधर्म है-"परोपकाराय सतां विभूतयः" ॥ २ ॥

नर शरीर धरि जे पर पीरा * करहिं ते सहहिं महाभव भीरा ॥३॥

करहिं मोहवश नर अघनाना ❋ स्वारथ रत परलोक नसाना ॥४॥

मनुष्यका शरीर धारण करके जो दूसरोंको दुःख देते हैं, वे संसार दुःखमें पड़ते हैं–अर्थात् बारम्बार नीच योनियोंमें शरीर धरते मरते हैं ॥३॥ मनुष्य अज्ञानके वश होकर अनेक पाप करते अपने स्वार्थमें रहकर परलोकसे भ्रष्ट हो जाते हैं, उन्हें स्वर्ग नहीं मिलता ॥ ४ ॥

कालरूप मैं तिन कहँ भ्राता ❋ शुभ अरु अशुभ कर्म फलदाता ॥५॥
अस विचारि जे परम सयाने ❋ भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने ॥६॥

हे भाई भरत ! ऐसे ही पुरुषोंका मैं कालरूप हो संहार करता हूँ और शुभाशुभ कर्मफल को देता हूँ, जिससे वे अनेक योनियोंमें भ्रमते हैं ॥ ५ ॥ ऐसा विचार कर जो परम चतुर महात्मा हैं वे संसारको परम दुःखमूल जानकर मेरा भजन करते हैं ॥ ६ ॥

त्यागहिं कर्म शुभाशुभदायक ❋ भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक ॥७॥
सन्त असन्तनके गुण भाखे ❋ ते न परहिं भव जिन लखि राखे ॥८॥

हे भाई ! देवता, मनुष्य और मुनिराज शुभ अशुभ फल देनेवाले कर्मोंको त्याग सदा मेरा भजन करते हैं । अथवा कर्मफल त्यागकर कर्म करते हैं,यथाहि–"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय"सङ्ग(कर्मफल)त्याग कर कर्म करना चाहिये ॥७॥ ये तुमसे संत और असन्तोंके लक्षण कहे, जिन्होंने यह जान रखा है, वे दुष्टोंकी सङ्गतिसे संसारमें नहीं पड़ते ॥८॥

दोहा–सुनहु तात मायाकृत, गुण अरु दोष अनेक ॥
गुण यह उभय न देखिहि, देखिहि सो अविवेक ॥ ६६ ॥

हे भाई ! सुनो, मायाके किये हुए गुण और दोष अनेक हैं, गुण यह कि दोनोंको न देखो, जो देखते हैं वे मूर्ख हैं अर्थात् दोषादि देखना ही अज्ञान है ॥ ६६ ॥

श्रीमुख वचन सुनत सब भाई ❋ हरषे प्रेम न हृदय समाई ॥ १ ॥
करहिं विनय अति बारहिं बारा ❋ हनूमान हिय हर्ष अपारा ॥ २ ॥

सब भाई रघुनाथजीके मुखसे यह वचन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए,मनमें प्रीति नहीं समाती ॥१॥ बारम्बार रघुनाथजीकी विनय करने लगे, महावीरजीके मनमें अत्यंत प्रसन्नता हुई ॥ २ ॥

पुनि रघुपति निज मन्दिर गये ❋इहि विधि चरित करत नित नये ॥३॥
बार बार नारद मुनि आवहिं ❋ चरित पुनीत रामके गावहिं ॥४॥

फिर रघुनाथजी अपने मंदिरको गये, इस प्रकारके नित्य नये चरित्रोंको करते हैं ॥३॥ बारम्बार दर्शन करनेको मुनि नारदजी आते हैं और रघुनाथजीके पवित्र चरित्रोंको गाते हैं ॥ ४ ॥

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं ❋ ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥५॥
सुनि विरंचि अतिशय सुख मानहिं❋पुनि पुनि तात करहु गुणगानहिं ॥६॥

नित्य नये चरित्र मुनिराज देख जाते हैं और ब्रह्म लोकमें जाकर सब कथा देवताओंके सम्मुख कीर्तन करते हैं ॥ ५ ॥ सुनकर ब्रह्माजी बड़ा सुख मानते हैं और कहते हैं कि वत्स ! रघुनाथजीके और भी चरित्र सुनाओ ॥ ६ ॥

सनकादिक नारदहिं सराहहिं ❋ यद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं ॥७॥

सुनि गुणगान समाधि बिसारी * सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥८॥

सनकादिक नारदजी की सराहना करते हैं कि इन्हें प्रतिदिन रघुनाथजीका दर्शन होता है यद्यपि सनकादिक ब्रह्म–आत्मज्ञानपरायण हैं तथापि रामचरित्रके वर्णनमें मोहित हो जाते हैं ॥७॥ रघुनाथजीके गुणोंको समाधि छोड़कर परम अधिकारी जन आदरसे श्रवण करते हैं ॥८॥

दोहा–जीवनमुक्त ब्रह्मपर, चरित सुनहिं तजि ध्यान ॥
जे हरिकथा न करहिं रति, तिनके हिय पाषान ॥ ६७ ॥

देखिए जो ऋषि जीवन मुक्त हैं, ब्रह्मज्ञान युक्त निरंतर उसीका अनुशीलन करते हैं, वे भी ध्यानको छोड़कर रघुनाथजीके चरित्र श्रवण करते हैं, जो संसारी काम छोड़कर यह चरित्र नहीं श्रवण करते उनके हृदय पत्थरके समान ही जानो ॥ ६७ ॥

एक बार रघुनाथ बुलाये * गुरु द्विज पुरवासी सब आये ॥१॥
बैठे गुरु द्विजवर मुनि सज्जन * बोले वचन भक्त भय भंजन ॥२॥

एक बार रघुनाथजीके बुलानेपर गुरु, ब्राह्मण और सब पुरवासी आये ॥ १ ॥ गुरु, श्रेष्ठ ब्राह्मण, मुनि सज्जन बैठे, तब भक्तोंके भय दूर करने वाले रघुनाथजी वचन बोले (यहां प्रजा पर दयालुता प्रकट की है) ॥ २ ॥

सुनहु सकल पुरजन मम वानी * कहौं न कछु ममता उर आनी ॥३॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई * सुनहु करहु जो तुमहिं सुहाई ॥४॥

हे पुरवासियो ! तुम सब मेरी वाणी सुनो मैं कुछ ममतासे यह वचन तुमसे नहीं कहता हूँ ॥३॥ न तो कुछ अनीतिसे कहता हूँ, न प्रभुतासे यदि तुम्हें अच्छा लगे तो सुनो और करो ॥४॥

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई * मम अनुशासन मानै जोई ॥५॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई * तौ मोहि बरजेउ भय बिसराई ॥६॥

वही मेरा सेवक और प्रियतम प्यारा है, जो मेरी आज्ञा को मानेगा ॥५॥ हे भाइयो ! यदि मैं कुछ अनीतिसे कहूँ तो तुम भय त्यागकर मुझे वरज देना; अर्थात् कह देना कि यह बात ठीक नहीं है ॥६॥

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा * सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ॥७॥
साधन–धाम मोक्षकर द्वारा * पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥८॥

यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्यसे पाया है और श्रेष्ठ ग्रन्थ ऐसा कहते हैं कि यह देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ७ ॥ साधन का धाम, मोक्षका द्वार है, इस शरीरको पाकर जिसने परलोक नहीं सुधारा ॥ ८ ॥

दोहा–सो परत्र दुख पावइ, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय ॥ ६८ ॥

वह पीछे बड़ा दुःख पावेगा; सिर धुन धुनकर पछतायगा, काल कर्म और ईश्वरको मिथ्या दोष लगावेगा, जैसे कोई मनुष्य काम बिगड़ जाने पर कह देते हैं कि भाई! समयका प्रभाव ही ऐसा है कि भलाई करनेके बदले बुराई होती है, कोई काम बिगड़ने पर कह देते हैं, भाई ! सब कोई प्रारब्ध की गतिसे लाचार हैं, कर्माधीन हैं जैसा करो वैसा भरो और कोई काम बिगड़ने पर ईश्वरको दोष देते हैं कि जो नारायणकी मर्जी होती है वही होता है ॥ ६८ ॥

इहि तनुकर फल विषय न भाई * स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई ॥१॥
नरतनु पाइ विषय मन देहीं * पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं ॥२॥

भाई ! इस शरीर पानेका फल विषयरूप नहीं है, स्वर्ग भी पाना इसका फल नहीं है, क्योंकि स्वर्गको कुछ दिन भोग फिर संसारमें आना पड़ता है, अन्तमें दुःखदायी ही है ॥ १ ॥ जो मनुष्यका शरीर पाकर विषयमें मन लगाते हैं वे मूर्ख अमृत देकर विष ग्रहण करते हैं ॥२॥

ताहि कबहुँ भल कहै न कोई * गुंजा गहै परशमणि खोई ॥३॥
आकर चारि लाख चौरासी * योनि भ्रमत यह जिव अविनाशी ॥४॥

उसे कभी कोई अच्छा नहीं कहता, पारसमणिको त्याग कर चौंटली लेते हैं ॥ ३ ॥ चौरासी लाख जीवोंकी खाने हैं, कर्मानुसार यह अविनासी जीव अनेक योनियोंमें भ्रमता है ॥ ४ ॥

फिरत सदा मायाकर प्रेरा * काल कर्म स्वभावगुण घेरा ॥५॥
कबहुँक करि करुणा नरदेही * देत ईश विनु हेतु सनेही ॥६॥

यह जीव सदा मायाकी प्रेरणासे फिरता है, काल कर्म स्वभावके गुण इसको घेरे रहते हैं ॥५॥ कभी दया करके इस प्राणीको परमेश्वर मनुष्यका शरीर देते हैं, कारण कि वे विना कारण ही स्नेह करते हैं ॥ ६ ॥

नरतनु भव-वारिधि कहँ बेरो * सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥७॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा * दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥८॥

यह मनुष्य शरीर संसार सागरका बेड़ा है और बेड़ेके पार लगानेके लिये मेरा अनुग्रह अनुकूल पवन अर्थात् अनुकूल पवनसे जहाज चलता है ॥७॥ यह शरीर जबतक सद्गुरु नहीं मिला तबतक बेड़ा—जब सद्गुरु कर्णधार अर्थात् मांझी मिला तो यह शरीर पार उतरनेके योग्य दृढ़ नाव हो गया, जिससे उनके प्राप्त करनेसे दुर्लभ साजकी प्राप्ति होती है ॥८॥

दोहा—जो न तरै भवसागर, नर समाज असपाइ ॥
सो कृतनिन्दक मन्द मति, आतमहनगति जाइ ॥ ६९ ॥

जो ऐसा नर शरीर पाकर भवसागरको नहीं तरता वह कृतनिन्दक अर्थात् ईश्वरके अनुग्रहका निंदक है और मन्दमति है। अतएव वह अत्मघातककी गतिको पाता है; इस कारण मनुष्य शरीर पाकर भजन करने योग्य है। भलाई करनेपर बुराई करनेवालेको कृतनिंदक कहते हैं, आत्माके विरुद्ध कर्म करे, उसे नरकमें डालनेके कर्म करनेवालेको आत्मघाती कहते हैं ॥६९॥

जौ परलोक यहां सुख चहहू * सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू ॥१॥
सुलभ सुखद यह मारग भाई * भक्ति मोरि पुराण श्रुति गाई ॥२॥

जो परलोकमें और इस लोकमें सुख चाहते हो तो मेरे वचन श्रवण कर दृढ़ता धारण करो ॥ १ ॥ भाइयो ! जो कुछ मैंने कहा है वह सुलभ और सुखदायक मार्ग है। मेरी भक्ति करनी ही श्रेष्ठ है, यह पुराण और वेदोंमें गाया है ॥ २ ॥

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका * साधन कठिन न मन कहँ टेका ॥३॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ * भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ ॥४॥

और ज्ञान अगम है, अनेक प्रत्यूह (विघ्न) हैं, साधन कठिन है और मनका कोई अवलम्ब नहीं है ॥ ३ ॥ कोई अनेक कष्टसे इस मार्गको पाते हैं; परंतु भक्तिरहित होनेसे वे मुझे प्यारे नहीं हैं ॥ ४ ॥

भक्ति स्वतन्त्र सकल सुखखानी * बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥५॥
पुण्यपुञ्ज बिनु मिलहिं न संता * सतसंगति संसृति कर अन्ता ॥६॥

भक्ति स्वतंत्र है, सब सुखकी खान है, विना सत्‌संगके प्राणी नहीं पाते ॥ ५ ॥ जब तक पूर्वजन्मके अनेक पुण्य सहायक नहीं होते तबतक सन्तोंका दर्शन नहीं होता, विना सत्सं-गतिके संसारका आवागमन नहीं छूटता है ॥ ६ ॥

पुण्य एक जग महँ नहिं दूजा * मनक्रम वचन विप्र पद पूजा ॥७॥
सानुकूल तेहिपर मुनि देवा * जो तजि कपट करै द्विज सेवा ॥८॥

सबसे उत्तम पुण्य एक ही है ऐसे जगत्‌में दूसरा नहीं है कि आदरसे मन, वचन, कर्मसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करनी ॥ ७ ॥ उसके ऊपर देवता मुनि प्रसन्न रहते हैं जो कपट छोड़ कर ब्राह्मणोंकी सेवा करता है ॥ ८ ॥

दोहा-अवरौ एक गुप्त मत, सबहिं कहौं कर जोरि ॥
शंकर भजन विना नर, भक्ति न पावै मोरि ॥ ७० ॥

और एक गुप्त मत सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शिवजीके भजन विना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता, इस कारण मनुष्य शंकरका भजन अवश्य करे और शिव तथा विष्णु भग-वान्‌में कुछ भेद न समझे ॥ ७० ॥

कहहु भक्ति पथ कवन प्रयासा * योग न मख जप तप उपवासा ॥१॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई * यथा लाभ सन्तोष सदाई ॥२॥

मैं भक्तिका मार्ग कहता हूँ कहो तो भक्ति मार्गमें क्या कुछ परिश्रम होता है ? कुछ भी परिश्रम नहीं होता; योग यज्ञ जप तप व्रत नहीं करना पड़ता ॥१॥ सीधे स्वभाव वाला हो; मनमें कुटिलता न रखे, यथालाभ संतोष अर्थात् जैसी कुछ प्राप्ति हो उसमें ही संतोष रखना चाहिए॥२॥

मोर दास कहाय नर आशा * करै तो कहहु कहाँ विश्वासा ॥३॥
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई * इहि आचरण वश्य मैं भाई ॥४॥

जो मेरा दास कहाकर दूसरे (राजा अमीर धनी पुरुष) की आशा करे तो कहो उसे दासत्व का क्या विश्वास रहा ? मेरे दास होकर भी दूसरे की आशा करे तो वे मेरे नहीं हैं क्योंकि-"भोज-नाच्छादने चिंतां वृथा कुर्वंति वैष्णवाः । योऽसौविश्वम्भरो देवः स भक्तान्किमुपेक्षते" ॥ ३ ॥ बहुत कथाके बढ़ानेसे क्या है ? इस आचरणसे मैं मनुष्योंके वशमें हो जाता हूँ ॥ ४ ॥

वैर न विग्रह आश न त्रासा * सुखमय ताहि सदा सब आशा ॥५॥
अनारंभ अनिकेत अमानी * अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी ॥६॥

किसीसे वैर विग्रह नहीं करना, किसीसे कुछ आशा न भय करना ऐसे जनोंको सम्पूर्ण आशा अर्थात् दिशा सुखमय हैं ॥ ५ ॥ अनारंभ अर्थात् किसी उद्यमकी चेष्टा नहीं करना; अनिकेत (किसी स्थानकी ममता नहीं), अमानी (मानरहित), अनघ (पापरहित), अरोष (क्रोध-

रहित),दक्ष(निपुण) अर्थात् जैसे संगति आ पड़े वैसा ही बर्तें,विज्ञानी-अनुभव सहित हो॥६॥

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा ❋ तृणसम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥७॥
भक्ति पक्ष हठ नहिं शठताई ❋ दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥८॥

सदा सज्जनोंके संसर्ग (मिलाप) में प्रीति करना, जो स्वर्ग और मोक्षके विषय तृणके समान जानते हैं॥७॥भक्ति पक्षमें हठ करे तो शठता नहीं होती, यदि भक्ति पक्षमें हठ न हो तो उपासनामें दोष आता है, परन्तु सम्पूर्ण दुष्ट तर्कना दूर कर देना चाहिये। अथवा भक्तिपक्षमें न तो हठ करे और न शठता करे,क्योंकि ऐसा करनेसे मनको उद्वेग होता है इससे जिन पुरुषोंके संग क्लेश हो उनका संग त्याग दे। यह दूसरा ही अर्थ ठीक प्रतीत होता है। अथवा भक्ति पक्ष में शठतासे हठ नहीं करना, अवतारोंमें भेद नहीं मानना, स्वर्ग सुखको तृण समझना ॥ ८ ॥

दोहा-मम गुणग्राम नामरत, गतममता मद मोह ॥
ताकर सुख सोइ जानै, चिदानन्द सन्दोह ॥ ७१ ॥

मेरे ही गुणोंका गान करनेमें प्रीति रखे, ममता, मद, मोह, इन सबका त्याग करे, उसके सुखको वह आपही जानता है और वह परमानंदके सुखका पात्र हो जाता है ॥ ७१ ॥

सुनत सुधासम वचन रामके ❋ सबनि गहे पद कृपाधामके ॥१॥
जननि जनक गुरुबन्धु हमारे ❋ कृपा निधान प्राणते प्यारे ॥२॥

रघुनाथजीके अमृतके समान वचन श्रवण करके सबने कृपानिधानके चरण पकड़े ॥ १ ॥ कहने लगे आप हमारे माता पिता गुरु भाई हैं और आप कृपाके निधान प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ २ ॥

तन धन धाम राम हितकारी ❋ सब विधि तुम प्रणतारति हारी ॥३॥
असि सिख तुम बिन देइ न कोऊ ❋ मात पिता स्वारथ रत ओऊ ॥४॥

हे रामजी! आप हमारे तन,धन,धाम सर्वहितके करनेवाले हो,सब प्रकारसे तुम दीनोंके दुःख हरनेवाले हो ॥ ३ ॥ महाराज! तुम्हारे विना ऐसी शिक्षा कोई नहीं दे सकता, जो माता पिता हैं वे भी स्वार्थी हैं, परंतु आप स्वार्थ रहित हो परलोककी शिक्षा करते हो ॥ ४ ॥

हेतु रहित जग युग उपकारी ❋ तुम तुम्हार सेवक असुरारी ॥५॥
स्वारथ मीत सकल जगमाहीं ❋ सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीं ॥६॥

हे असुरारि! विना हेतु इस जगत्में युग अर्थात् दो ही उपकारी हो-एक आप और एक आपके सेवक ॥ ५ ॥ हे प्रभु! जगत्में सब स्वार्थके मित्र होते हैं और परमार्थका मित्र तो कोई स्वप्नमें भी नहीं होता ॥ ६ ॥

सबके वचन प्रेमरस-साने ❋ सुनि रघुनाथ हृदय हर्षाने ॥ ७ ॥
निज निज गृह गये आयसु पाई ❋ वर्णत प्रभु बतकही सुहाई ॥ ८ ॥

सबके वचन प्रेमरसमें सने हुए सुनकर रघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ आज्ञा पाकर रघुनाथजीकी सुन्दर कथा वर्णन करते हुए सब अपने घर गये ॥ ८ ॥

दोहा-उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप ॥
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन, रघुनायक जहँ भूप ॥ ७२ ॥

हे पार्वती ! अयोध्यावासी नर, नारी सब पुण्यरूप हैं कारण यह है कि ब्रह्म सच्चिदानंद-घन रघुनाथजी जहां हैं वहांके वासी क्यों न कृतार्थरूप हों ।।७२।।

एक बार वसिष्ठ मुनि आये * जहां राम सुख धाम सुहाये ॥१॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा * पद पखारि चरणोदक लीन्हा ॥२॥

एक बार वसिष्ठजी महाराज आये, जहां रघुनाथजी सुखके धाम विराजमान थे ॥ १ ॥ रघुनाथजीने बड़ा आदर किया, चरण धोकर चरणोदक लिया ॥ २ ॥

राम सुनहु मुनि कह करजोरी * कृपासिन्धु विनती कछु मोरी ॥३॥
देखि देखि आचरण तुम्हारा * होत मोह मम हृदय अपारा ॥४॥

हाथ जोड़कर मुनिवर कहने लगे-हे कृपासिंधो ! मेरी कुछ विनती सुनो ॥ ३ ॥ आपका आचरण देख देखकर मेरे मनमें बड़ा मोह होता है ॥ ४ ॥

महिमा अमित वेद नहिं जाना * मैं केहि भांति कहौं भगवाना ॥५॥
उपरोहिती कर्म अति मन्दा * वेद पुराण स्मृति कर निन्दा ॥६॥

आपकी अपार महिमा है, वेद भी नहीं जान सकते, हे भगवन् ! फिर मैं कैसे वर्णन करूँ ? ॥ ५ ॥ पुरोहितीकर्म अधिक नीच है, इसकी वेद, पुराण और स्मृति निंदा करते हैं क्योंकि यजमानके कर्मोंका भागी होना पड़ता है ॥ ६ ॥

जब न लेउँ मैं तब विधि मोहीं * कहा लाभ आगे सुत तोहीं ॥७॥
परमात्मा ब्रह्म नर रूपा * होइहैं रघुकुल भूषण भूपा ॥८॥

जब मैंने पुरोहितके कर्मको स्वीकार नहीं किया तब ब्रह्माजी मुझसे कहने लगे-पुत्र ! आगे तुझे लाभ होगा ॥ ७ ॥ क्योंकि परमात्मा परब्रह्म रघुकुलमें जन्म धारण करेंगे उनका तुमको दर्शन होगा ॥ ८ ॥

दोहा-तब मैं हृदय विचार किय, योग यज्ञ जप दान ॥
जेहि हित करिय सो पाइहौं, धर्म न इहि सम आन ॥ ७३ ॥

तब मैंने हृदयमें विचार किया कि योग, जप, दान, जिनके मिलनेके वास्ते किये जाते हैं यदि वही मिल जायँगे तो जिस कर्मसे उनकी प्राप्ति हो जाय उसके बराबर दूसरा धर्म नहीं है । तात्पर्य यह है कि जिसमें अपना कार्य अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति हो वही कर्म श्रेष्ठ है॥७३॥

जप तप नियम योग व्रत धर्मा * श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा ॥१॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन * जहँ लगि धर्म कहे श्रुति सज्जन ॥२॥

जप, तप, नियम, व्रत, धर्म और भी वेदसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके शुभ कर्म ॥ १ ॥ ज्ञान, दया, दम, तीर्थ स्नान जहांतक वेद और भी श्रेष्ठ पुरुषोंने धर्म कहे हैं ॥ २ ॥

आगम निगम पुराण अनेका * पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥३॥
तव पदपंकज प्रीति निरंतर * सब साधन कर फल यह सुंदर ॥४॥

हे प्रभु ! अनेक वेद शास्त्र पुराणके पढ़ने सुननेका एक ही फल है ॥ ३ ॥ कि आपके चरण कमलोंमें निरंतर प्रीति हो, सब साधनोंका सुन्दर फल है ॥ ४ ॥

छूटै मल कि मलहिके धोये * घृत कि पाव कोउ वारि विलोये॥५॥
प्रेम भक्ति जल बिनु रघुराई * अभ्यंतर मल कबहुँ न जाई ॥६॥

हे भगवन्! मलके धोनेसे मल नहीं छूटता; जलके बिलोनेसे कोई घी नहीं पाता ॥ ५ ॥ ऐसे ही हे रघुनाथजी ! प्रेम भक्तिरूप जल विना कभी हृदयका मल नहीं जाता ॥ ६ ॥

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित * सोइ गुणज्ञ विज्ञान अखंडित ॥७॥
दक्ष सकल--लक्षणयुत सोई * जाके पद सरोज रति होई ॥८॥

वही सर्वज्ञ आत्मज्ञानी पंडित है; वही गुणका जाननेवाला अखंड विज्ञानरूप है ॥ ७ ॥ वही स्वार्थ पदार्थके लक्षण जाननेवाला चतुर है; जिसकी आपके चरणारविंदमें प्रीति हो ॥८॥

दोहा-नाथ एक वर मांगौं, मोहिं कृपाकर देहु ॥
जन्म जन्म प्रभु पदकमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ ७४ ॥

हे नाथ ! एक वर मांगता हूँ सो मुझे कृपा करके दीजिये कि जन्म जन्मान्तर तक आपके चरण कमलोंमेंसे प्रीति न घटे ॥ ७४ ॥

अस कहि मुनि वसिष्ठ गृह आये * कृपासिन्धुके मन अति भाये ॥१॥
हनूमान भरतादिक भ्राता * संग लिये सेवक सुखदाता ॥२॥

यों कह कर वसिष्ठजी अपने घर आये और रघुनाथजीके मनको अधिक भाये ॥ १ ॥ सेवकके सुख देनेवाले रघुनाथजी हनुमान भरतादिको साथ लिये ॥ २ ॥

पुनि कृपालु पुर बाहर गयऊ * गज रथ तुरत मँगावत भयऊ ॥३॥
देखि कृपा करि सकल सराहे * दिये उचित जिन जिन जोइ चाहे॥४॥

फिर रघुनाथजीने पुरके बाहर जाकर हाथी घोड़े रथ मँगाये ॥ ३ ॥ उन सबकी वह दरेसी देख कर बड़ी सराहना की और जिस वस्तुकी इच्छाकी वह उसे दी ॥ ४ ॥

हरण सकल श्रम प्रभु श्रम पाई * गये जहाँ शीतल अमराई ॥५॥
भरत दीन्ह निज वसन डसाई * बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥६॥

सब श्रमके हरनेवाले प्रभु श्रम पाकर शीतल अमराईको गये । गिरिजाने शंकरसे नौ प्रश्न किये हैं-"प्रथम सो कारण कहौ विचारी । निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी" यहां प्रारंभ करके चार प्रश्नोंका उत्तर बालकांडमें, पांचवेंका अयोध्या, छठेका आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, सातवेंका लंका, आठवें प्रश्नका उत्तर राजगद्दी ही तक है और नवम प्रश्न जो इस प्रकारका था"प्रजासहित रघुवंशमणि, किमि गवने निजधाम ?" उसका उत्तर इसी चौपाईमें समाप्त है । यह तुलसीदासजीकी युक्ति है कि रघुनाथजीके परमधामकी यात्रा प्रकट लिखना उन उपासकोंकी उपासनाके प्रतिकूल होगा; जो श्रीरामचन्द्रजीको अयोध्यामें स्थित ध्यान करते हैं, इस कारण प्रश्नका उत्तर उसी भांति लिखा कि उपासना करनेवालोंकी उपासना भी बनी रही और पार्वतीका प्रश्न भी पूरा हो गया क्योंकि प्रत्यक्षमें अर्थ यह कि भरतादिकके संग ठण्ढे बागमें गये, गूढ़ आशय है कि सबके श्रम हरनेमें श्रमको प्राप्त होकर हनुमान भरतादिक

सम्पूर्ण सेवक और अवधवासी प्रजाओंका उनकी इच्छानुसार सवारी देखकर अपने साथ ले शीतल अमराई अर्थात् परमधामको गये ॥ ५ ॥ भरतजीने अपना दुपट्टा बागमें बिछा दिया, उसके ऊपर प्रभु बैठे, सब भाई सेवा करने लगे ॥ ६ ॥

मारुतसुत तब मारुत करई ❋ पुलक गात लोचन जल भरई ॥७॥
हनूमान समान बड़भागी ❋ नहिं कोउ राम चरण अनुरागी ॥८॥

तब महावीरजी पवन करने लगे, शरीर पुलकित, प्रेमके मारे नेत्रोंमें जल भर आया ॥७॥ महावीरजीके समान बड़भागी और रघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम करनेवाला और कोई नहीं है ॥८॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई ❋ बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥९॥

शिवजी बोले-हे पार्वती! जिसकी प्रीति और सेवकाई प्रभुने बारबार अपने मुखसे गायी है ॥९॥

दोहा-तेहि अवसर मुनि नारद, आये करतल बीन ॥
गावन लागे रामकल, कीरति सदा नवीन ॥ ७५ ॥

उसी अवसरमें हाथमें वीणा लिये नारदजी आये और श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर नवीन कीर्ति गाने लगे ॥ ७५ ॥

मामवलोकय पंकज लोचन ❋ कृपाविलोकनि शोक विमोचन ॥१॥
नील तामरस श्याम काम अरि ❋ हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥२॥

हे (पंकज लोचन) कमलसे नयन वाले रघुनाथजी ! कृपाकटाक्षसे मेरी ओर निहारिये, वह आपका कृपापूर्वक देखना सब शोकोंका दूर करनेवाला है ॥ १ ॥ हे रामजी ! आपका श्याम कमलके समान शरीर है और हे हरि ! आप शंकरके हृदयकमलके भ्रमर हो ॥ २ ॥

यातुधान वरूथ बल गंजन ❋ मुनि सज्जन रंजन अघ भंजन ॥३॥
भूसुर सस नव वृन्द बलाहक ❋ अशरण शरण दीन जन गाहक ॥४॥

राक्षसोंके समूहकी सेनाके आप नाश करनेवाले हैं। मुनि सज्जनोंको आप आनंद देनेवाले एवं पापके दूर करने वाले हो ॥३॥ ब्राह्मण जो नवीन खेतीरूप हैं उनके लिये आप बलाहक अर्थात् जल भरे हुए बादलोंके वृंद हो, अशरणोंको आप शरण देने वाले हो दीनजनोंके आप ग्राहक हो ॥४॥

भुजबल विपुल भार महि खंडित ❋ खरदूषण विराधवध पंडित ॥५॥
रावणारि सुखरूप भूपवर ❋ जय दशरथकुल कुमुद सुधाकर ॥६॥

भुजाओंके बलसे आप पृथ्वीका भार उतारनेवाले हो, खरदूषण और विराधके मारनेमें चतुर हो ॥ ५ ॥ आप रावणके शत्रु सुखके निधान, श्रेष्ठ राजा हो दशरथजीके कुलरूप बबूलेके खिलानेको आप चन्द्रमा हो आपकी जय हो ॥ ६ ॥

सुयश पुराण विदित निगमागम ❋ गावत सुर मुनि संत समागम ॥७॥
कारुणीक वाली मद खण्डन ❋ सब विधि कुशल कोशलामण्डन ॥८॥

आपका सुयश पुराण वेद और शास्त्रमें विख्यात है उसे देवता मुनि संतोंके समागममें गाते हैं और ॥७॥ आप दयासागर वालीका मद खण्डन करने वाले हो, सब प्रकारसे आप कुशलरूप और कोशलपुरीके भूषण हो ॥ ८ ॥

कलिमल मथन नाम ममताहन * तुलसिदास प्रभु पाहि प्रणतजन ॥९॥

आपका नाम कलियुगमें ममता आदि पापका नाश करनेवाला है और हे प्रभो ! तुलसीदास और प्रणत जनोंके रक्षक हो ॥ ९ ॥

दोहा-प्रेम सहित मुनि नारद, वरणि रामगुण-ग्राम ॥
शोभासिन्धु हृदय धरि, गये जहाँ विधि धाम ॥ ७६ ॥

मुनि नारद बड़े प्रेमसे रघुनाथजीके गुणग्राम गाकर और शोभासागर रघुनाथजीको हृदयमें धारण कर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ७६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायामुत्तरकांडान्तर्गतस्तृतीयो विश्रामः ॥ ३ ॥

दोहा-यहि चतुर्थ विश्राममें, काकभुशुण्ड चरित्र ।
मूल रमायणकी कथा, वर्णी परम पवित्र ॥ ४ ॥

गिरिजा सुनहु विशद यह कथा * मैं सब कही मोरि मति यथा ॥१॥
राम चरित शत कोटि अपारा * श्रुति शारदा न वरणै पारा ॥२॥

शिवजी बोले हे पार्वती ! यह उज्ज्वल कथा सुनो; मैंने जैसे मेरी मति थी वह तुम्हें सब सुनाई ॥ १ ॥ रामचन्द्रके चरित्र सौ करोड़ (अपार) हैं, वेद और सरस्वती भी जिनका पार नहीं वर्णन कर सकते फिर कोई क्या कहे ? ॥ २ ॥

राम अनन्त अनन्त गुणानी * जन्म कर्म अनन्त नामानी ॥३॥
जलसीकर महि रज गनि जाहीं * रघुपति चरित न वर्णि सिराहीं ॥४॥

राम अनन्त हैं औरगुण जन्म कर्म नाम भी अनन्त हैं ॥ ३ ॥ जलके बिन्दु और पृथ्वीके रज कण चाहे कोई गिन ले परंतु रघुनाथजीके चरित्र नहीं गिन सकता ॥ ४ ॥

विमल कथा यह हरिपद दायिनि * भक्ति होइ सुनि अति अनपायिनि॥५॥
उमा कहेउँ सो कथा सुहाई * जो भुशुण्डि खगपतिहि सुनाई॥६॥

यह उज्ज्वल कथा हरिके चरणोंकी प्रीति देनेवाली है; अथवा (हरिपद) वैकुण्ठको देनेवाली है, इसके सुननेसे भगवान्में अचल भक्ति होती है ॥ ५ ॥ हे पार्वती ! जो काकभुशुण्डजीने गरुड़जीको कथा सुनायी सो मैंने तुमसे सब वर्णन की ॥ ६ ॥

कछुक राम गुण कहेउँ बखानी * अब का कहौं सो कहउ भवानी ॥७॥
सुनि शुभ कथा उमा हर्षानी * बोली अति विनीत मृदुबानी ॥८॥

कुछेक रघुनाथजीके गुण आपसे बखान कर कहे हैं अब क्या कहूँ ? हे पार्वती ! कहो॥७॥ यह पवित्र कथा सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई और अति नम्रतासे कोमल वाणी बोलीं कि॥८॥

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी * सुनेउँ रामगुण भव भय हारी ॥९॥

हे पुरारि ! मैं धन्य हूँ, संसारके भय हरनेवाले रामके गुण श्रवण किये ॥ ९ ॥

दोहा-तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह ॥
जानेउँ रामप्रभाव प्रभु, चिदानंद सन्दोह ॥ ७७ ॥

हे कृपासागर ! तुम्हारी कृपासे मैं कृतकृत्य हो गयी, मोह नहीं रहा, हे प्रभो ! अब

मैंने उन रामचन्द्रजीका प्रभाव जाना; जो चिदानन्दके पात्र अर्थात् ब्रह्मानंदरूप है तथा परम प्रेमसे प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥

दोहा-नाथ तवानन शशि स्रवत, कथा सुधा रघुवीर ॥
श्रवण पुटन्ह मन पान करि, नहिं अघात मतिधीर ॥ ७८ ॥

हे नाथ ! आपका मुख चन्द्रमारूप है उससे रघुनाथजीकी कथा अमृतरूप हो बरसती है, उसे दोनेरूप कानोंसे मनमें पीकर धीर बुद्धि सज्जन नहीं अघाते ॥ ७८ ॥

रामचरित जे सुनत अघाहीं * रस विशेष जाना तिन नाहीं ॥१॥
जीवन मुक्त महामुनि जेऊ * हरिगुण सुनहिं निरंतर तेऊ ॥२॥

जो रघुनाथजीके चरित्र सुनकर तृप्त हो जाते हैं उन्होंने विशेष रस नहीं जाना ॥१॥ जो जीवनमुक्त महामुनि हैं वे भी भगवान्‌के गुण सदा श्रवण करते हैं ॥ २ ॥

भव सागर चह पार जो पावा * रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥३॥
विषयिन कहँ पुनि हरिगुण ग्रामा * श्रवण सुखद अरु मन विश्रामा ॥४॥

जो भवसागरसे पार होना चाहते हैं उनको रघुनाथजीकी कथा दृढ़ नौका है ॥३॥ और विषयी पुरुषों को यह हरिके गुणोंका गान कानोंको सुखदायक और मनको विश्राम देनेवाला है॥४॥

श्रवणवन्त अस को जग माहीं * जाहि न रघुपति चरित सुहाहीं ॥५॥
ते जड़ जीव निजातम घाती * जिनहिं न रघुपति कथा सुहाती ॥६॥

ऐसा कौन पुरुष जगमें कानवाला है जिसे रघुनाथजीके चरित्र प्यारे न हों ? ॥ ५ ॥ वे मूर्ख जीव अपनी आत्माका नाश करनेवाले हैं जिन्हें रघुनाथजीकी कथा नहीं सुहाती और विषयवासना अच्छी लगती है ॥ ६ ॥

हरि-चरित्र-मानस तुम गावा * सुनि मैं नाथ परम सुख पावा ॥७॥
तुम जु कही यह कथा सुहाई * काकभुशुण्डि गरुड़प्रति गाई ॥८॥

हे स्वामिन् ! आपने रामचरितमानस गाया; वह मैंने सुनकर बड़ा सुख पाया ॥ ७ ॥ तुमने यह जो सुन्दर कथा कही है कि काकभुशुण्डजीने गरुड़जीको सुनायी ॥ ८ ॥

दोहा-विरति ज्ञान विज्ञान दृढ़, रामचरित अति नेह ॥
वायसतनु रघुपति भगति, मोहि परम संदेह ॥ ७९ ॥

वैराग्ययुक्त ज्ञान विज्ञानमें दृढ़ रघुनाथजीके चरित्रोंमें परम स्नेही काकशरीरमें रघुनाथजी की भक्तिका होना इसका मुझे परम संदेह है कृपा करके यह भेद बताइये ॥ ७९ ॥

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी * कोउ एक होय धर्मव्रतधारी ॥१॥
धर्मशील कोटिन महँ कोई * विषय विमुख विरागरत होई ॥२॥

हे शिवजी ! हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्मव्रत धारी है ॥ १ ॥ और करोड़ों पुरुषोंमें एक धर्मशील होता है; जो विषयोंसे विमुख और वैराग्यमें प्रीतिवाला होता है ॥ २ ॥

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई * सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥३॥
ज्ञानवंत कोटिन महँ कोऊ * जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ ॥४॥

वेद कहता है कि कोटि विरक्तोंके बीचमें यथार्थ ज्ञान किसी एकको ही प्राप्त होता है ॥३॥ और करोड़ ज्ञानी पुरुषोंके बीचमें कोई एक पुरुष जीवनमुक्त होता है, क्योंकि जो अच्छे प्रकार शुद्ध हो जाता है और कर्मबन्धनसे छूट जाता है वही जीवनमुक्त होता है ॥ ४ ॥

तिन सहस्त्र महँ सब सुख खानी * दुर्लभ ब्रह्म-लीन विज्ञानी ॥५॥
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी * जीवन मुक्त ब्रह्मपर प्रानी ॥६॥

ऐसे जीवनमुक्त हजारमें ब्रह्ममें लीन विज्ञानी कोई एक होता है सो दुर्लभ है ॥५॥ धर्मशील ज्ञानी, विरक्त, जीवनमुक्त और ब्रह्म परायण ये सब उत्तरोत्तर एकसे एक श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

सबते सो दुर्लभ सुरराया * राम भक्तिरत गत-मद-माया ॥७॥
सो हरिभक्ति काक किमि पाई * विश्वनाथ मोहिं कहहु बुझाई ॥८॥

हे देवराज! सबसे अधिक वह मिलना कठिन है जो मद और माया रहित रघुनाथजीकी भक्ति करता है ॥७॥ सो काकने हरिकी भक्ति कैसे पाई है? हे विश्वनाथ! आप मुझे समझाकर कहो ॥८॥

दोहा-रामपरायण ज्ञानरत, गुणागार मतिधीर ॥
नाथ कहहु केहि कारण, पायहु काक शरीर ॥ ८० ॥

रघुनाथजीके प्रेमी ज्ञाननिष्ठ; गुणोंके आगार (स्थान) मतिमें धैर्य रखनेवाले महात्मा पुरुषने काकका शरीर कैसे पाया! सो तो कहो ॥ ८० ॥

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा * कहहु कृपालु काक कहँ पावा ॥१॥
तुम केहि भाँति सुना मदनारी * कहहु मोहिं अति कौतुक भारी ॥२॥

हे नाथ! यह प्रभुका शोभायमान पवित्र चरित्र कहो, काकने किस कारण पाया?॥ १॥ और हे कामदेवके शत्रु! तुमने किस प्रकार वह चरित्र उससे सुना, सो कहो, मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ २ ॥

गरुड़ महाज्ञानी गुणरासी * हरिसेवक अतिनिकट निवासी ॥३॥
तेहि केहि हेतु काकसन जाई * सुनी कथा मुनि निकर विहाई ॥४॥

गरुड़जी तो बड़े गुणोंकी राशि नारायणके सेवक और उनके बहुत निकट निवास करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ इन्होंने क्यों काकके पास जाकर अनेक मुनियोंको छोड़कर कथा सुनी ? ॥ ४ ॥

कहहु कवन विधि भा संवादा * दोउ हरिभक्ति काक उरगादा ॥५॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई * बोले शिव सादर सुख पाई ॥६॥

कहो तो सही, यह संवाद किस प्रकार हुआ ? दोनों हरिके भक्त काक और गरुड़जी किस प्रकार मिले ? ॥५॥ यह पार्वतीकी सीधी वाणी सुन शिवजी सुख पाकर आदर पूर्वक बोले ॥६॥

धन्य सती पावनि मति तोरी * रघुपति चरण प्रीति नहिं थोरी ॥७॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा * जो सुनि सकल शोक भ्रम नासा ॥८॥

सती, धन्य हो तुम्हारी मति बड़ी पवित्र है, तुम्हारी रघुनाथजीके चरणोंमें बड़ी प्रीति है ॥७॥ वह परम पवित्र कथा सुनो जिसके सुननेसे सम्पूर्ण शोक भ्रमका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

उपजइ राम चरण विश्वासा * भव निधितर नर बिनहिं प्रयासा ॥९॥

रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति उपजती है, विना ही प्रयास संसारसे नर तर जाता है ॥ ९ ॥

१. जीवन्मुक्त वे हैं जो संसार मे देह धारण किये हैं परंतु संसारसे मुक्त हैं अर्थात् जिनके हर्ष, शोक, दुख, सुख, हानि, लाभ, मान, अपमान, निन्दा, स्तुति, मित्र, शत्रु आदि देहाभिमान नहीं है ।

दोहा-ऐसेइ प्रश्न विहंगपति, कीन्ह काकसन जाइ ॥
सो सब सादर कहत हौं, उमा सुनहु चितलाइ ॥ ८१ ॥

ऐसे ही गरुड़जीने जाकर काकभुशुण्डजीसे प्रश्न किया है, वह सब आदरपूर्वक कहता हूँ, हे पार्वती! मन लगाकर सुनो ॥ ८१ ॥

मैं जिमि कथा सुनी भव मोचनि * सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥१॥
प्रथम दक्षगृह तव अवतारा * सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥२॥

हे सुमुखि! सुलोचनि! मैंने जैसे यह संसारके दुःख छुड़ानेवाली कथा सुनी सो कथा सुनो ॥ १ ॥ जब तुम्हारा पहले दक्षगृहमें अवतार था तब तुम्हारा नाम सती था ॥ २ ॥

दक्ष यज्ञ जब भा अपमाना * तुम अतिक्रोध तजे तब प्राना ॥३॥
मम अनुचरन कीन्ह मखभंगा * जानहु सो तुम सकल प्रसंगा ॥४॥

जब दक्षके यज्ञसे हमारा अपमान हुआ तब तुमने क्रोधसे शरीर त्याग दिया ॥३॥ मेरे सेवकोंने जाकर दक्षका यज्ञ भङ्ग किया सो सब प्रसंग तुम जानती हो ॥ ४ ॥

तब अति शोच भयउ मन मोरे * दुखित भयउँ वियोग प्रिय तोरे ॥५॥
सुन्दर वन गिरि सरित तड़ागा * कौतुक देखत फिरौं विरागा ॥६॥

हे प्रिये! मेरे मनमें बड़ा शोक हुआ, मैं तुम्हारे वियोगमें बड़ा दुःखी हुआ ॥५॥ विरहसे सुन्दर वन, पर्वत, नदी, तालाब इन स्थानोंमें एक मात्र कौतुक देखता फिरता था ॥ ६ ॥

गिरि सुमेरु उत्तर दिशि दूरी * नील शैल इक सुन्दर भूरी ॥७॥
तासु कनकमय शिखर सुहाये * चारि चारु मोरे मन भाये ॥८॥

सुमेरु पर्वतसे दूर उत्तर दिशामें एक अत्यंत सुंदर नील पर्वत है ॥ ७ ॥ उसके शिखर सोनेके हैं, वे सुन्दर और संख्यामें चार हैं मेरे मनको भाये अर्थात् अच्छे लगे ॥ ८ ॥

तिन्ह पर इक इक विटप विशाला * वट पीपर पाकरी रसाला ॥९॥
शैलोपरि सुन्दर सर सोहा * मणि सोपान देखि मन मोहा ॥१०॥

उन्हीं शृङ्गोंपर एक एक पेड़ वट, पीपल, पाकर और रसाल(आम) के हैं ॥९॥ पर्वतके ऊपर सुन्दर सरोवर है, मणियोंकी सीढ़ी बनी हुई है जिसे देखकर मन मोहित हो जाता है ॥ १० ॥

दोहा-शीतल अमल मधुर जल, जलज विपुल बहुरंग ॥
कूजत कलरव हंसगण, गुञ्जत मंजुल भृङ्ग ॥ ८२ ॥

जिस सरोवरका जल शीतल, निर्मल और मीठा है, अनेक रंगके कमल खिल रहे हैं, जिन पर सुन्दर हंस शब्द करते और सुन्दर भौंरे गुञ्जारते हैं ॥ ८२ ॥

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई * तासु नाश कल्पांत न होई ॥१॥
मायाकृत गुणदोष अनेका * मोह मनोज आदि अविवेका ॥२॥

उसी सुन्दर पर्वत पर वह खग वास करता है, कल्पांतमें भी उसका नाश नहीं होता ॥१॥ जितने मायाके किये हुए अनेक गुण, दोष, मोह, काम, अविवेक आदि हैं ॥ २ ॥

रहे व्यापि समस्त जगमाहीं * तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥३॥
तहँ वसि हरिहि भजे जिमि कागा * सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥४॥

यद्यपि यह गुण दोष सम्पूर्ण जगत्में व्याप रहे हैं, परंतु उस पर्वतके निकट कभी नहीं जाते ॥ ३ ॥ हे पार्वती ! उस स्थानमें वास करके काक जिस प्रकार नारायणका भजन करता है सो प्रेमसे सुनो ॥ ४ ॥

पीपर-तरुतर ध्यान सो धरई ❋ जाप यज्ञ पाकरितर करई ॥५॥
आम-छाहँ करि मानस पूजा ❋ तजि हरि भजन काज नहिं दूजा॥६॥

प्रथम प्रहरमें काकभुशुण्डिजी पीपलके तले सत्ययुगके अनुसार ध्यान करते हैं, दूसरे प्रहरमें पाकड़के नीचे त्रेतायुगके धर्मानुकूल जप यज्ञ करते हैं ॥ ५ ॥ तीसरे प्रहरमें आमके तले द्वापरके धर्मानुसार मानसिक पूजा करते हैं, चौथे प्रहरमें बड़के तले कलियुगके धर्मानुसार हरिका भजन करते हैं ॥ ६ ॥

वट-तर कह हरि कथा प्रसंगा ❋ आवहिं सुनइ अनेक विहंगा ॥७॥
रामचरित विचित्र विधि नाना ❋ प्रेम सहित कर सादर गाना ॥८॥

जिस समय वटके नीचे बैठकर राम कथा कहते हैं उस समय अनेक पक्षी सुननेको आते हैं ॥ ७ ॥ रघुनाथजीके जो विचित्र चरित्र हैं उन्हें प्रेमसे काकभुशुंडिजी गाते हैं ॥ ८ ॥

सुनहिं सकलमति विमल मराला ❋ बसहिं निरंतर जो तेहि ताला ॥९॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा ❋ उर उपजा आनन्द विशेखा ॥१०॥

उज्ज्वल मतिके वे सब हंस उन चरित्रोंको सुनते हैं जो सदा तालमें वास करते हैं ॥ ९ ॥ जब मैंने जाकर यह कौतुक देखा तब हृदयमें बड़ा आनंद हुआ ॥ १० ॥

दोहा-तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास ॥
सादर सुनि रघुपति चरित, पुनि आयउँ कैलास ॥ ८३ ॥

तब मैंने भी कुछ समय तक हंसका रूप धारण करके वहां निवास किया, इस प्रकार आदरसे रघुनाथजीके चरित्र श्रवण कर फिर मैं कैलाशमें चला आया ॥ ८३ ॥

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा ❋ मैं जेहि समय गयउँ खग पासा ॥१॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू ❋ गयउ कागपहँ खगकुल केतू ॥२॥

हे पार्वती ! तुमको मैंने यह सब कथा सुनाई, जिस समय मैं काकभुशुण्डिजीके पास गया ॥ १ ॥ अब वह कथा सुनो, जिस कारण काकके पास गरुड़जी गये और वार्ता हुई ॥ २ ॥

जब रघुनाथ कीन्ह रणक्रीड़ा ❋ समुझत चरित होत मोहि व्रीड़ा ॥३॥
इन्द्रजीत-कर आपु बँधावा ❋ तब नारद मुनि गरुड़ पठावा ॥४॥

जब रघुनाथजीने युद्धमें रण कौतुक किये थे, जिन चरित्रोंको विचारते, मुझे व्रीडा अर्थात् लज्जा आती है ॥ ३ ॥ कि मेघनादके द्वारा अपनेको बँधा लिया, यह देख नारदजीने नागफांस काटनेको गरुड़को भेजा ॥ ४ ॥

बन्धन काटि गयउ उरगादा ❋ उपजा हृदय प्रचण्ड विषादा ॥५॥
प्रभु बन्धन समुझत बहु भाँती ❋ करत विचार उरग आराती ॥६॥

गरुड़जी सब बंधन काट गये, परन्तु मनमें विषाद हुआ ॥ ५ ॥ रघुनाथजीका बंधनमें पड़ना देख अनेक प्रकारके विचार उरग आराती (गरुड़) अपने जीमें करने लगा ॥ ६ ॥

व्यापक ब्रह्म विरज बागीशा * माया मोह पार परमीशा ॥७॥
सो अवतार सुनेहुँ जगमाहीं * देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ॥८॥

जो ब्रह्मस्वरूप व्यापक और वाणीके पति हैं, माया मोहसे परे परम ईश्वर हैं ॥ ७ ॥ उनका अवतार जगत्में रघुनाथ रूप सुना था, सो उनमें कोई प्रभाव नहीं देखा, मुझे बन्धन काटनेको आना पड़ा ॥ ८ ॥

दोहा–भव बन्धनते छूटहिं, नर जपि जाकर नाम ॥
खर्व निशाचर बांधेउ, नाग पास सोइ राम ॥ ८४ ॥

मनुष्य जिनका नाम जपकर संसार बंधनसे छूट जाता है, उन रामको एक छोटेसे निशाचरने नागफांसमें बांध लिया, वे कैसे ईश्वर हैं ॥ ८४ ॥

नाना भाँति मनहिं समुझावा * प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा ॥१॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई * भयउ मोह वश तुम्हरिहि नाई ॥२॥

अनेक भाँतिसे मनको समझाया परंतु ज्ञान नहीं हुआ, हृदयमें भ्रम छा गया ॥ १ ॥ खेदसे दुखी हो मनमें तर्क बढ़ानेसे तुम्हारे ही समान वह मोह वश हो गया ॥ २ ॥

व्याकुल गयउ देवऋषि पाहीं * कहेसि जो संशय निज मनमाहीं ॥३॥
सुनि नारदहि लागि अतिदाया * सुनु खग प्रबल रामकी माया ॥४॥

तब व्याकुल हो नारदजीके पास गया और जो मनमें सन्देह था सो उनको कह सुनाया ॥ ३ ॥ यह सुनकर नारदजीको बहुत दया आयी और बोले–गरुड़जी ! रघुनाथजीकी माया बड़ी प्रबल है ॥ ४ ॥

जो ज्ञानिनकर चित अपहरई * बरिआई विमोह वश करई ॥५॥
जेहि बहु बार नचावा मोही * सोइ व्यापी विहँगपति तोही ॥६॥

जो ज्ञानियोंका चित्त हरण करके बरजोरीसे अज्ञानके वश कर देती है ॥ ५ ॥ हे गरुड़जी ! जिसने मुझे बहुत बार नचाया वही माया अब तुम्हें व्यापी है ॥ ६ ॥

महा मोह उपजा मन तोरे * मिटिहि न वेगि कहे खग मोरे ॥७॥
चतुरानन पहँ जाउ खगेशा * सोइ करेहु जो होइ निदेशा ॥८॥

हे गरुड़जी ! तुम्हारे मनमें महा अज्ञान उपजा है, मेरे कहनेसे शीघ्र नहीं मिटेगा ॥ ७ ॥ इस कारण हे गरुड़जी ! तुम ब्रह्माजीके पास जाओ, जो वे आज्ञा दें वही करना ॥ ८ ॥

दोहा–अस कहि चले देवऋषि, करत राम गुण गान ॥
हरिमाया बल वर्णत, पुनि पुनि परम सुजान ॥ ८५ ॥

यों कह कर रघुनाथजीके गुण गाते नारदजी चले गये और बारंबार नारायणकी मायाका बल वर्णन करते चले क्योंकि नारदजी परम चतुर हैं ॥ ८५ ॥

तब खगपति विरंचि पहँ गयऊ * निज संदेह सुनावत भयऊ ॥१॥
सुनि विरंचि रामहि शिर नावा * समुझि प्रताप प्रेम उर छावा ॥२॥

तब गरुड़जीने ब्रह्माजीके पास जाकर अपना सन्देह सुनाया ॥ १ ॥सुनते ही ब्रह्माजीने रामचन्द्रजीको शिर नवाया और उनका प्रताप स्मरण कर मनमें बड़ा ही प्रेम छा गया ॥२॥

मन महँ करत विचार विधाता * माया वश कवि कोविद ज्ञाता ॥३॥
हरि मायाकर अमित प्रभावा * विपुल बार जो मोहि नचावा ॥४॥

ब्रह्माजी मनमें विचार करने लगे कि मायाके वशमें कवि पंडित ज्ञानी सभी हैं ॥ ३ ॥ नारायणकी मायाका अमित प्रभाव है, जिसने अनेक बार मुझे नचा डाला है, जानकर भी फिर भूल जाता हूँ ॥ ४ ॥

अग जगमय जग मम उपराजा * नहिं आश्चर्य मोह खगराजा ॥५॥
पुनि बोले विधि गिरा सुहाई * जान महेश राम प्रभुताई ॥६॥

फिर स्थावर जंगमात्मक जगत् तो मेरा ही उपजाया हुआ है, यदि गरुड़जी मोह गये तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ५ ॥ फिर ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले कि शिवजी महाराज आदिदेव रामजीके माहात्म्यको सम्यक् प्रकारसे जानते हैं ॥ ६ ॥

वैनतेय शंकरपहँ जाहू * तात अनत पूछहु जनि काहू ॥७॥
तहँ होइहि तव संशय हानी * चले विहंग सुनत विधि बानी ॥८॥

हे गरुड़ ! तुम शिवजीके पास चले जाओ, और किसीसे मत पूछो ॥ ७ ॥ इन्हींसे तुम्हारे सब सन्देह मिट जायँगे यह ब्रह्माकी वाणी सुनते गरुड़जी वहां चले ॥ ८ ॥

दोहा–परमातुर विहंगपति, तब आयउ मम पास ॥
जात रहेउँ कुबेर गृह, उमा रहिहु कैलास ॥ ८६ ॥

तब गरुड़जी बड़ी आतुरतासे हमारे पास आये, हे पार्वती ! तुम तो उस समय कैलास पर थीं मैं कुबेरके घर जाता था ॥ ८६ ॥

तेइँ मम पद सादर शिर नावा * पुनि आपन सन्देह सुनावा ॥१॥
सुनि ताकरि विनीत मृदु बानी * प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ॥२॥

उसने आदरसे मेरे चरणोंमें शिर नवाया और अपना सन्देह सुनाया ॥ १ ॥ हे पार्वती ! गरुड़जीकी प्रेम सहित कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमपूर्वक उनसे कहा ॥ २ ॥

मिलेउ गरुड़ मारग महँ मोहीं * कवनि भाँति समुझावौं तोहीं ॥३॥
जब कछु काल करिय सतसंगा * तबहिं होइ सब संशय भंगा ॥४॥

गरुड़जी तुम मार्गमें मिले हो मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? ॥३॥ जब कुछ काल तक सत्संग करोगे तो तुम्हारा सब संशय दूर होगा ॥ ४ ॥

सुनिय तहाँ हरि–कथा सुहाई * नाना भाँति मुनिन जो गाई ॥५॥
जेहिं महँ आदि मध्य अवसाना * प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥६॥

कैसी भगवान्की कथा जो अनेक प्रकारसे मुनियोंने गायी है सो वहां सुनिये ॥ ५ ॥ कैसी यह कथा है कि जिसमें आदि मध्य अन्तमें रघुनाथजीका प्रतिपादन किया है जो भगवान् सबमें रम रहे हैं ॥ ६ ॥

नित हरि कथा होइ जहँ भाई ❋ पठवौं तोहि सुनहु तहँ जाई ॥७॥
जाइहि सुनत सकल सन्देहा ❋ होइहि रामचरण दृढ़ नेहा ॥८॥

इस कारण हे भाई ! जहां नित्य भगवान्‌की कथा होती है, तुझे वहां भेजता हूँ जाकर सुनो ॥७॥ सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह मिट जायगा; रघुनाथजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति होगी ॥८॥

दोहा-बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ॥
मोह गये बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥ ८७ ॥

विना सत्संगके नारायणकी कथा सुननेको नहीं मिलती और उस कथाके विना अज्ञान का नाश नहीं होता और जबतक अज्ञानका नाश नहीं होता तबतक रामके चरणोंमें प्रीति नहीं होती ॥ ८७ ॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा ❋ किये योग जप ज्ञान विरागा ॥१॥
उत्तर दिशि सुन्दर गिरि नीला ❋ तहँ रह काकभुशुण्डि सुशीला ॥२॥

विना प्रेमके राम नहीं मिलते; चाहे योग, जप, ज्ञान, वैराग्य कैसा भी करो ॥ १ ॥ उत्तर दिशामें जो सुन्दर नील पर्वत है वहां, बड़े शीलवान् काकभुशुण्डजी रहते हैं ॥ २ ॥

राम भक्तिपथ परम प्रवीना ❋ ज्ञानी गुणगृह बहुकालीना ॥३॥
राम कथा सो कहै निरंतर ❋ सादर सुनहिं विविध विहंगवर ॥४॥

वे राम भक्ति के मार्गमें परम चतुर हैं, गुणोंके घर बहुत समयके हैं ॥३॥ वे सदा रामकी कथा कहते रहते हैं अनेक प्रकारके पक्षी आदरसे उनकी कथा सुनते हैं ॥ ४ ॥

जाइ सुनहु तहँ हरिगुण भूरी ❋ होइहि मोह जनित दुख दूरी ॥५॥
मैं जब सब तेहि कथा बुझाई ❋ चलेउ हर्षि मम पद शिर नाई॥६॥

तुम भी वहां जाकर नारायणके अनेक गुण सुनो तो मोहसे उत्पन्न हुआ दुःख दूर हो जायगा ॥ ५ ॥ जब मैंने सब प्रसंग सुनाया तो प्रसन्न हो मेरे चरणोंमें शिर नवाकर गरुड़जी चले ॥ ६ ॥

ताते उमा न मैं समुझावा ❋ रघुपति कृपा मर्म मैं पावा ॥७॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना ❋ सो खोवै चह कृपानिधाना ॥८॥

हे पार्वती ! इस कारण मैंने उसे नहीं समझाया कि रघुनाथजीकी कृपासे उस बातका भेद मिल गया ॥ ७ ॥ कि गरुड़जीने कभी अभिमान किया होगा, उसे भगवान् खोना चाहते हैं जो मैं समझा दूँगा तो अभिमान न जायगा, इस कारण पक्षिराजका भ्रम काक द्वारा दूर कराऊँ तो अभिमान जाता रहेगा ॥ ८ ॥

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा ❋ खग समुझइ खगहीकी भाखा ॥९॥
प्रभु माया बलवन्त भवानी ❋ जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥१०॥

कुछ इस लिये भी मैंने नहीं रखा कि यह पक्षी है; पक्षीकी भाषा पक्षी समझेगा ॥ ९ ॥ हे पार्वती । भगवान्‌की माया बड़ी बलवती है, जिसे मोह न हो ऐसा इस जगत्‌में कौन ज्ञानी है ? ॥ १० ॥

दोहा–ज्ञानी भक्त शिरोमणि, त्रिभुवन पतिकर यान ॥
ताहि मोह माया प्रबल, पामर करहिं गुमान ॥ ८८ ॥

गरुड़जी बड़े ज्ञानी भक्तोंके शिरोमणि और त्रिभुवन पति (नारायण) के वाहन हैं उनको भी प्रबल मायाने मोह लिया, ऐसी मायासे जो कोई गुमान करते हैं वे महा मंद हैं ॥ ८८ ॥

दोहा–शिव विरंचि कहँ मोहइ, को है बपुरा आन ॥
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान ॥ ८९ ॥

यह माया शिव ब्रह्माको भी मोह लेती है दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? ऐसे जीमें जानकर मुनिजन मायापति भगवान्‌का भजन करते हैं ॥ ८९ ॥

गयउ गरुड़ जहँ बसत भुशुण्डी * मति अकुंठ हरि भक्ति अखंडी ॥१॥
देखि शैल प्रसन्न मन भयऊ * माया मोह शोक भ्रम गयऊ ॥२॥

गरुड़जी उस स्थान पर गये, जहां काकभुशुंडिजी रहते थे, जिनकी तीव्र मति और नारायणमें अखंड भक्ति है ॥ १ ॥ वह पर्वत देखते ही मन प्रसन्न हो गया और माया, मोह, शोक, भ्रम सब दूर हो गया ॥ २ ॥

करि तड़ाग मज्जन जलपाना * बटतर गयउ हृदय हर्षाना ॥३॥
वृद्ध वृद्ध विहंग तहँ आये * सुनै रामके चरित सुहाये ॥४॥

गरुड़जी सरोवरमें स्नान और जलपान करके हृदयमें प्रसन्न हो वटवृक्षके तले गये ॥३॥ उस स्थानमें बड़े बड़े (हंसादिक) पक्षी रघुनाथजीके चरित्र श्रवण करनेको आये ॥ ४ ॥

कथा अरम्भ करै सो चाहा * ताही समय गयउ खगनाहा ॥५॥
आवत देखि सकल खगराजा * हर्षेउ वायस सहित समाजा ॥६॥

काकभुशुंडिजी कथाका आरंभ करना ही चाहते थे कि उसी समय गरुड़जी गये ॥ ५ ॥ गरुड़जीको आते देख काकभुशुंडिजी सब समाज सहित बड़े प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥

अतिआदर खगपति कर कीन्हा * स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा ॥७॥
करि पूजा समेत अनुरागा * मधुर वचन बोलेउ तब कागा ॥८॥

गरुड़जीका बहुत आदर (सम्मान) कर कुशल पूछा सुन्दर आसन दिया ॥ ७ ॥ पूजा करके बड़े प्रेम से काकभुशुंडिजी मधुर वचन बोले ॥ ८ ॥

दोहा–नाथ कृतारथ भयउँ मैं, तव दर्शन खगराज ॥
आयसु होइ सो करौं अब, प्रभु आयहु केहि काज ॥ ९० ॥

हे स्वामिन् खगराज ! मैं आपके दर्शनसे कृतार्थ हो गया, आज किस निमित्त आगमन हुआ ? अब जो आज्ञा दो वह मैं करूँ ॥ ९० ॥

दोहा–सदा कृतारथ रूप तुम, कह मृदु वचन खगेश ॥
जाकी अस्तुति सादर, निजमुख कीन्ह महेश ॥ ९१ ॥

तब गरुड़जी मृदु वचनसे कहने लगे–महाशय ! तुम सदा कृतार्थ रूप हो, जिसकी स्तुति अपने मुखसे आदरपूर्वक शिवजीने की है ॥ ९१ ॥

सुनहु तात जेहि कारण आयउँ ❀ सो सब भयउ दरश तव पायउँ ॥१॥
देखि परम पावन तव आश्रम ❀ गयउ मोह संशय नाना भ्रम ॥२॥

हे तात ! सुनो जिस निमित्त मैं आया था वह मेरा कार्य तो आपके दर्शनसे ही सिद्ध हो गया ॥१॥ आपका यह परम पवित्र आश्रम देखकर मेरा मोह, संदेह अनेक भ्रम दूर हो गये ॥२॥

अब श्रीराम कथा अति पावनि ❀ सदा सुखद दुखपुञ्ज नशावनि ॥३॥
सादर तात सुनावहु मोही ❀ बार बार विनवौं प्रभु तोही ॥४॥

अब आप श्रीरामकी अत्यन्त पवित्र कथा, जो सदा सुखदायक और दुःखोंके समूहको नाश करती है ॥ ३ ॥ हे तात ! वह कथा मुझे आप आदरपूर्वक सुनाओ; मैं तुम्हारी बारंबार विनय करता हूँ ॥ ४ ॥

सुनत गरुड़की गिरा विनीता ❀ सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥५॥
भयउ तासु मन परम उछाहा ❀ कहै लाग रघुपति गुणगाहा ॥६॥

गरुड़जीकी नीतियुक्त सीधी सुखदायक परम पवित्र प्रेमभरी वाणी सुनकर ॥ ५ ॥ काकभुशुंडिजीके मनमें बड़ा उत्साह हुआ और रघुनाथजीके गुण वर्णन करने लगे । आगे 'मूलरामायण तुलसीकृत लिखते हैं' ॥ ६ ॥

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी ❀ रामचरित सर कहेसि बखानी ॥७॥
पुनि नारद कर मोह अपारा ❀ कहेसि बहुरि रावण अवतारा ॥८॥

हे पार्वती ! प्रथम तो बड़े प्रेमसे रामचरितमानस सरका वर्णन किया ॥ ७ ॥ फिर नारदजीका अपार मोह वर्णन करके फिर रावणके अवतारके वृत्तान्तका वर्णन किया ॥ ८ ॥

प्रभु अवतार कथा पुनि गाई ❀ पुनि शिशुचरित कहेसि मनलाई ॥९॥

फिर रघुनाथजीके अवतारकी कथा वर्णन करके उनके बालचरित्र प्रेमसे वर्णन किये ॥९॥

दोहा-बाल चरित कहि विविध विधि, मनमहँ परम उछाह ॥
ऋषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुवीर विवाह ॥ ९२ ॥

बालरूप काकभुशुंडिजीके इष्ट हैं इस कारण मनमें उत्साह पूर्वक उनका अनेक प्रकारसे वर्णन करके विश्वामित्र ऋषिका आगमन कह कर फिर सीताके संग रामका विवाह वर्णन किया ॥ ९२ ॥

बहुरि राम-अभिषेक प्रसंगा ❀ पुनि नृप वचन राजरस भंगा ॥१॥
पुरवासिन कर विरह विषादा ❀ कहेसि राम-लक्ष्मण-संवादा ॥२॥

फिर रघुनाथजीके राज्याभिषेक प्रसंग राजा दशरथके वचनसे राजरसका भङ्ग होना ॥१॥ पुरवासियोंका विरह दुःख और राम-लक्ष्मण संवाद वर्णन किया ॥ २ ॥

विपिन गमन केवट अनुरागा ❀ सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥३॥
वाल्मीकि प्रभु मिलन बखाना ❀ चित्रकूट जिमि बस भगवाना ॥४॥

रघुनाथजीका वनगमन, निषादका प्रेम, गङ्गाजीका उतरना, प्रयागमें रहना ॥३॥ वाल्मीकि और प्रभुका मिलाप, और चित्रकूटमें रघुनाथजीके वसनेका वृत्तांत वर्णन किया ॥ ४ ॥

सचिवागमन नगर नृप मरणा * भरतागमन प्रेम बहु बरणा ॥५॥
करि नृप क्रिया संग पुरवासी * भरत गये जहँ प्रभु सुख रासी ॥६॥

अयोध्यामें सुमन्तका-रामचंद्रजीको पहुँचा कर आना (राजाको सन्देश देना), राजाका शरीर त्यागना और भरतजीका आना तथा अत्यन्त प्रेमका वर्णन करना ॥ ५ ॥ फिर राजाकी क्रिया कर पुरवासियोंको साथ ले भरतजी सुखसागर रघुनाथजीके पास गये वह सब वर्णन किया ॥ ६ ॥

पुनि रघुपति बहुविधि समुझाये * लै पादुका अवधपुर आये ॥७॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी * प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि वरणी॥८॥

फिर रघुनाथजीने भरतजीको अनेक प्रकार समझाया और वे खड़ाऊँ लेकर अयोध्याजीमें आये ॥ ७ ॥ भरतजीका तपस्वीके वेषमें रहना फिर जयंतकी करणी कहकर राम और अत्रिकी भेंट वर्णन की ॥ ८ ॥

दोहा-कहि विराध वध जाहि विधि, देह तजी शरभंग ॥
बरणि सुतीक्षण प्रेम पुनि, प्रभु अगस्त्य सतसंग ॥९३॥

फिर विराध राक्षसका वध वर्णन कर शरभंग ऋषिके देह त्यागकी कथा कही फिर सुतीक्ष्ण का प्रेम वर्णन और रामजी तथा अगस्त्यका सत्संग वर्णन किया ॥ ९३ ॥

कहि दंडकवन-पावनताई * गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥१॥
पुनि प्रभु पंचवटी कृत वासा * भंजेउ सकल मुनिनकी त्रासा ॥२॥

फिर दण्डकवनकी पवित्रता कह कर गृध्रकी मित्रताका वर्णन किया ॥ १ ॥ फिर प्रभुके पञ्चवटीमें वास और मुनियोंके दुःख दूर करनेकी कथा वर्णन की ॥ २ ॥

पुनि लक्ष्मण उपदेश अनूपा * शूर्पनखा जिमि कीन्ह कुरूपा ॥३॥
खरदूषण वध बहुरि बखाना * जिमि सब मर्म दशानन जाना ॥४॥

फिर लक्ष्मणको जो सुन्दर उपदेश दिये, वे वर्णन किये फिर जैसा शूर्पणखाकी नाक काटी ॥३॥ फिर खरदूषणका वध और फिर जैसे रावणको खबर हुई वह सब वर्णन किया ॥४॥

दशकंधर मारीच बतकही * जेहि विधि भई सकल तेहि कही ॥५॥
पुनि माया सीताकर हरणा * श्रीरघुवीर-विरह कछु बरणा ॥६॥

रावण और मारीचकी बातचीत जिस प्रकार हुई वह सब कही ॥ ५ ॥ फिर मायाकी सीता हरण वर्णन करके श्रीरघुनाथजीका विरह वर्णन किया ॥ ६ ॥

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही*वधि कबन्ध शबरिहि गति दीन्ही॥७॥
बहुरि विरह वर्णत रघुवीरा * जेहि विधि गये सरोवर तीरा ॥८॥

फिर प्रभुने जिस प्रकार गृध्रकी क्रिया करके कबंधको मारा जैसे शबरीको मुक्ति दी ॥७॥ फिर रघुनाथजीका वर्णन करते-करते जैसे पम्पासरोवरके तीर पर गये वह वर्णन किया ॥८॥

दोहा-प्रभु नारद संवाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग ॥
पुनि सुग्रीव मिताई, वालि प्राण कर भंग ॥ ९४ ॥

फिर रामचन्द्रजीका नारदजीके सङ्ग समागम वर्णन करके महावीरजीके मिलनेका प्रसंग वर्णन किया फिर राम और सुग्रीवकी मित्रता वर्णन करके वालिका सुरपुर गमन सुनाया ॥९४॥

दोहा-कपिहि तिलक करि प्रभु कृत, शैल प्रवर्षण वास ॥
वरणत वर्षा शरद ऋतु, राम रोष कपि त्रास ॥ ९५ ॥

सुग्रीवको राज्य तिलक देना; रघुनाथजीका प्रवर्षण (वहां अधिक जल बरसता था इससे प्रवर्षण नाम हुआ) पर्वतपर वसना, वर्षा शरद्ऋतुका वर्णन करते करते जानकीजीकी सुधि न पानेसे सुग्रीवपर क्रोधित होना और कपिका भय पाना ॥ ९६ ॥

जेहि विधि कपि पति कीश पठाये * सीता खोज सकल दिशि धाये ॥१॥
विवर प्रवेश कीन्ह जेहि भाँती * कपिन्ह बहोरि मिला संपाती ॥२॥

तथा जिस प्रकार सुग्रीवने वानर भेजे और वे जानकीके ढूँढ़नेके निमित्त सब दिशाओंमें गये ॥ १ ॥ तथा जिस प्रकार प्यास लगने और मार्ग भूल जानेके उपरांत विवर प्रवेश किया और जैसे वानरोंको सम्पातीका मिलना हुआ ॥ २ ॥

सुनि सब कथा समीर कुमारा * लाँघत भयउ पयोधि अपारा ॥३॥
लंका कपि प्रवेश जिमि कीन्हा * पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा ॥४॥

जिस प्रकार जानकीजी की अशोकवाटिकामें रहने की खबर सुन महावीरजीने अपार सागर लांघा ॥ ३ ॥ सुरसा, सिंहिका, लंकिनीका दमन कर जिस प्रकार रात्रिसमय लंकामें प्रवेश कर विभीषणसे मिल जानकीजीको धैर्य दिया ॥ ४ ॥

वन उजारि रावणहिं प्रबोधी * पुर दहि लाँघेउ बहुरि पयोधी ॥५॥
आये कपि सब जहँ रघुराई * वैदेहीकी कुशल सुनाई ॥६॥

वन उजाड़ रावणको समझाया लंका जला कर फिर सागर लांघा ॥ ५ ॥ सब वानरों-सहित रघुनाथजीके पास आकर जानकीजीका कुशल सुनाया ॥ ६ ॥

सेन समेत यथा रघुवीरा * उतरे जाइ वारिनिधि तीरा ॥७॥
मिला विभीषण जेहि विधि आई * सागर-निग्रह-कथा सुनाई ॥८॥

जानकीजीके समाचार सुन जैसे सेना सहित रघुनाथजी सागरके तट पर जाकर उतरे॥७॥ जिस प्रकार रावणके चरण प्रहार करनेसे विभीषण आकर मिला, उसके सहित सागर निग्रह (अभिमान भङ्ग) करनेकी कथा सुनाई ॥ ८ ॥

दोहा-सेतु बाँधि कपिसेन जिमि, उतरी सागर पार ॥
गयो बसीठी वीर वर, जेहि विधि बालि कुमार ॥ ९६ ॥

सेतु बांध शिवजीकी स्थापना कर कपियोंकी सेनासहित रामजी जैसे सागर पार उतरे और डेरा करनेके उपरांत जैसे वीर श्रेष्ठ वालिकुमार दूत बनकर समझाने गया वह सब कथा कही॥९६॥

दोहा-निशिचर कीश लराई, बरनेसि विविध प्रकार ॥
कुम्भकर्ण घननाद कर, बल पौरुष संहार ॥ ९७ ॥

फिर राक्षस और वानरोंकी लड़ाई अनेक प्रकारसे वर्णन की, फिर कुम्भकर्ण, मेघनादका बल पुरुषार्थ वर्णन करके उनका संहार वर्णन किया, जैसे मेघनादके मरनेपर देवता प्रसन्न हुए हैं ॥ ९७ ॥

निशिचर निकर मरण विधि नाना * रघुपति रावण समर बखाना ॥१॥
रावण-वध मन्दोदरि-शोका * राज विभीषण देव अशोका ॥२॥

फिर राक्षसोंका अनेक प्रकार मरण वर्णन कर राम और रावणका युद्ध वर्णन किया ॥ १ ॥ फिर रावणका मरण, मन्दोदरीका शोक, विभीषणको राज्य और देवताओंको शोक-रहित होना कहा ॥ २ ॥

सीता-रघुपति मिलन बहोरी * सुरन्ह कीन्ह अस्तुति कर जोरी ॥३॥
पुनि पुष्पक चढ़ि सीय समेता * अवध चले प्रभु कृपा निकेता ॥४॥

फिर सीता और रघुनाथजीका मिलना, देवताओंका हाथ जोड़कर स्तुति करना ॥ ३ ॥ फिर पुष्पक विमानमें चढ़कर जानकी सहित कृपासागर प्रभु जिस प्रकार अयोध्यापुरीको चले वह वर्णन किया ॥ ४ ॥

जेहि विधि राम नगर निज आये * वायस विशद चरित सब गाये ॥५॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका * पुर वर्णन नृप नीति अनेका ॥६॥

फिर जिस प्रकारसे रघुनाथजी अयोध्यामें आये वह सब उज्ज्वल चरित्र गरुड़जीसे काकभुण्डजीने वर्णन किया ॥ ५ ॥ फिर रघुनाथजीको राज्य सिंहासन प्राप्ति, पुरका वर्णन राजनीति इन सबका वर्णन किया ॥ ६ ॥

कथा समस्त भुशुण्डि बखानी * जो मैं तुमसन कहा भवानी ॥७॥
सुनि शुभ राम कथा खगनाहा * कहत वचन मन परम उछाहा ॥८॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! जो कथा हमने तुमसे वर्णन की थी वही सब कथा काकभुशुण्डिजीने वर्णन की ॥७॥ इस प्रकार गरुड़जी रघुनाथजीकी कथा सुन बड़े प्रसन्न हुए और मनमें बड़े उत्साहित हो कहने लगे ॥ ८ ॥

सोरठा-गयउ मोर सन्देह, सुनेउँ सकल रघुपति चरित ॥
भयउ राम पद नेह, तव प्रसाद वायस तिलक ॥ २ ॥

रघुनाथजीका सम्पूर्ण चरित्र सुनकर अब मेरा सब सन्देह जाता रहा; रघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम हुआ परंतु, हे काककुलतिलक! यह सब आपकी कृपा है जिससे मैं संशय हीन हुआ ॥२॥

सोरठा-मोहि भयउ अति मोह, प्रभु बन्धन रणमहँ निरखि ॥
चिदानन्द सन्दोह, राम विकल कारण कवन ॥ ३ ॥

रघुनाथजीका रणमें नागफांससे बंधन देखकर मुझे बड़ा-भ्रम हुआ था कि जो सदा आनंदके पात्र हैं वे भगवान व्याकुल हुए, इसका क्या कारण है ? ॥ ३ ॥

देखि चरित अति नर अनुहारी * भयउ हृदय मम संशय भारी ॥१॥
सो भ्रम अब मैं हित करि जाना * कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥२॥

इस प्रकार साक्षात् मनुष्योंके समान चरित्र देखकर हृदयमें बड़ा सन्देह हुआ ॥१॥ वह भ्रम भी मैंने अब हित करके जाना, कृपानाथ रघुनाथजीने मेरे ऊपर बड़ी दयाकी ॥ २ ॥

जो अति आतप व्याकुल होई * तरु छाया सुख जानै सोई ॥३॥
जो नहिं होत मोह अति मोही * मिलतेउँ तात कवन विधि तोही ॥४॥

जो बहुत गरम धूपसे व्याकुल हो जाता है वही वृक्षकी छायाका सुख जानता है ॥ ३ ॥ हे तात ! जो मुझे अज्ञान न होता तो मैं तुमसे किस प्रकार मिलता, अर्थात् सत्सङ्ग कैसे होता ॥ ४ ॥

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई * अति विचित्र बहु विधि तुम गाई॥५॥
निगमागम पुराण मत येहा * कहहिं सिद्ध मुनि नहिं सन्देहा॥६॥

यह शोभायमान नारायणकी कथा सुननेको कैसे मिलती ? जो अति विचित्र कथा तुमने अनेक प्रकारसे गायी है ॥ ५ ॥ वेद शास्त्र पुराणोंका यही मत है, ऐसा सिद्ध मुनि कहते हैं; इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

संत विशुद्ध मिलहिं पुनि तेही * चितवहिं राम कृपा कर जेही ॥७॥
राम कृपा तव दर्शन भयऊ * तव प्रताप मम संशय गयऊ ॥८॥

फिर उसको शुद्धचित्त संत महात्मा मिलते हैं, जिसपर रघुनाथजी कृपा करके देखते हैं ॥७॥ मुझे रामकी कृपासे ही तुम्हारा दर्शन हुआ, तुम्हारी दयासे मेरा सब सन्देह मिट गया ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि विहंगपति वाणी, सहित विनय अनुराग ॥
पुलकगात लोचन सजल, मन हर्षेउ अति काग ॥ ९८ ॥

इस प्रकार गरुड़जीकी विनय और अनुराग युक्त वाणी सुनकर काकभुशुण्डजीके नेत्रोंमें जल भर आया, शरीरमें पुलकावली छा गयी, मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ९८ ॥

दोहा-श्रोता सुमति सुशील सुचि, कथा रसिक हरिदास ॥
पाइ उमा अति गोप्य मत, सज्जन करहिं प्रकाश ॥ ९९ ॥

हे पार्वती ! जिस अवसरमें अच्छी मतिवाले पवित्र श्रोता भगवान्‌के दास मिलते हैं, उनसे सज्जन पुरुष गुप्त मत भी प्रकाशन कर देते हैं ॥ ९९ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत-भाषाटीकायामुत्तरकांडान्तर्गतचतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

दोहा-भयो मोह जिमि काकको, सो सब चरित उदार ।
यह पंचम विश्राममें, वर्णहुँ मति-अनुसार ॥ ५ ॥

बोलेउ काकभुशुण्डि बहोरी * नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥१॥
सब विधि नाथ पूज्य तुम मेरे * कृपापात्र रघुनायक-केरे ॥२॥

फिर काकभुशुण्डजी कहने लगे, जिनकी गरुड़जीके ऊपर अधिक प्रीति है ॥१॥ हे नाथ ! तुम सब प्रकारसे मेरे पूज्य और रघुनाथजीके कृपापात्र हो ॥ २ ॥

तुमहि न संशय मोह न माया * मोपर नाथ कीन्ह तुम दाया ॥३॥
पठय मोह मिसु खगपति तोही * रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही ॥४॥

तुम्हें संशय मोह माया कुछ नहीं है केवल आप मेरे ऊपर दया करके पधारे हो ॥ ३ ॥ हे गरुड़जी ! मोहके बहानेसे तुमको भेजकर रघुनाथजीने मुझे बड़ाई दी है ॥ ४ ॥

तुम निज मोह कहा खगसाईं ❋ सो नहिं कछु आश्चर्य गुसांई ॥५॥
नारद शिव विरंचि सनकादी ❋ जे मुनिनायक आतम वादी ॥६॥

हे गरुड़जी ! तुमने जो अपना यह मोह सुनाया है कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ ५ ॥ नारद, शिव, ब्रह्मा, सनकादिक जो मुनि श्रेष्ठ आत्मज्ञानी हैं ॥ ६ ॥

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही ❋ को जग काम नचाव न जेही॥७॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा ❋केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥८॥

मोहने किस किसको अंधा नहीं किया ? अर्थात् प्रायः सबको ही मोह हो गया है और जगत्में ऐसा कौन है जिसको कामने नहीं नचाया है अर्थात् प्रायः सबको व्यापा है ॥७॥ तृष्णाने किसे बावला (उन्मत्त)नहीं किया और क्रोधने किसका हृदय दहन नहीं किया ॥८॥

दोहा-ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुण आगार ॥
केहिके लोभ विडंबना, कीन्ह न इहि संसार ॥ १०० ॥

इस संसारमें ऐसा ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पंडित, गुणोंका स्थान कौन है कि जिसको लोभने विडम्बना न की हो ॥ १०० ॥

दोहा-श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि ॥
मृगनयनीके नयन शर, को अस लाग न जाहि ॥ १०१ ॥

श्री (लक्ष्मी) के मदने किसको वक्र (टेढ़) नहीं किया ? और प्रभुताने किसको बधिर (बहरा) नहीं किया है अर्थात् प्रभुता पाकर सब कोई किसीकी नहीं सुनते और ऐसा कौन है कि जिसको मृगनयनी के नेत्रोंका बाण न लगा हो ॥ १०१ ॥

गुणकृत संनिपात नहिं केही ❋ को न मान मद तजेउ निबेही ॥१॥
यौवन ज्वर न काहि बलकावा ❋ममता केहि कर यश न नशावा॥२॥

भारी गुण पाकर सन्निपात किसे नहीं हो जाता अर्थात कौन सावधान रहता है ? किसके अनुकूल नहीं बोलता और मान मदको छोड़कर कौन निभ गया है, कौन एक रस रहा है ? ॥१॥ यौवनके ज्वरने किसे नहीं बलकाया है ममताने किसके यशका नाश नहीं किया ? ॥२॥

मत्सर काहि कलंक न लावा ❋ काहि न शोक समीर डोलावा ॥३॥
चिन्ता सांपिनि काहि न खाया ❋ को जग जाहि न व्यापी माया ॥४॥

मत्सर (ईर्षा), डाहने किसे कलंक नहीं लगाया, शोकरूपी पवनने किसे नहीं डुला दिया है ॥ ३ ॥ चिन्ता रूपी सर्पिणीने किसे नहीं खाया है ? जगत्में ऐसा कौन है जिसको माया न व्यापी हो अर्थात् सबको व्यापी है ॥ ४ ॥

कीट मनोरथ दारु शरीरा ❋ जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥५॥
सुत वित लोक ईषणा तीनी ❋ केहिकी मति इन्ह कृत न मलीनी॥६॥

मनोरथ मनके कीड़े हैं शरीर काठके समान है, ऐसा कौन धीर है जिसे मनोरथरूपी घुन न लगा हो ? ॥ ५ ॥ पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा–पुत्र, धन, लोक यह तीन इच्छाएँ हैं सो ऐसा कौन है जिसकी मति इन तीनोंने मलिन न कर दी हो ? ॥ ६ ॥

यह सब मायाकर परिवारा * प्रबल अमित को वरणै पारा ॥७॥
शिव चतुरानन जाहि डराहीं * अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥८॥

यह सब मायाका कुटुंब बड़ा प्रबल और असंख्य है, इसका पार कौन वर्णन कर सके॥७॥ जिस मायासे ब्रह्मा और शिव डरते हैं फिर जीव तो किस गिनतीमें है ॥ ८ ॥

दोहा–व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड ॥
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ॥ १०२ ॥

इस संसारमें मायाका प्रचण्ड कटक (सेना) व्याप रहा है, कामादि भट (योद्धा), दंभ और पाखण्ड सब सेनापति हैं ॥ १०२ ॥

दोहा–सो दासी रघुवीरकी, समुझे मिथ्या सोपि ॥
छुटे न रामकृपा विनु, नाथ कहौं प्रण रोपि ॥ १०३ ॥

सो माया रघुनाथजीकी दासी है और सोचने समझनेमें मिथ्या है, हे नाथ ! यह बात मैं प्रण करके कहता हूँ कि रामकी कृपाके विना यह माया नहीं छूटती ॥ १०३ ॥

जो माया सब जगहि नचावा * जासु चरित लखि काहु न पावा॥१॥
सोइ प्रभु भ्रूविलास खगराजा * नाच नटी इव सहित समाजा ॥२॥

जिस मायाने सब जगत् को नचा रखा है और जिसका चरित्र किसीने नहीं पाया अर्थात् भेद न पाया ॥ १ ॥ हे गरुड़जी ! वही माया प्रभुकी भौंहके (विलास) फेरनेसे समाज अर्थात् कामादिक सहित नटीके समान नाचती है ॥ २ ॥

सोइ सच्चिदानन्द घनश्यामा * अज विज्ञान रूप गुणधामा ॥३॥
व्यापक ब्रह्म अखंड अनन्ता * अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥४॥

वही सत् चित् आनंदरूप घनके समान श्याम हैं; (अजन्मा) माया रहित गुणरूप विज्ञानके धाम ॥ ३ ॥ सर्वत्र व्यापक, खण्ड रहित, अनंत हैं अखिल (संपूर्ण) अमोघ शक्तिवाले भगवान् हैं ॥ ४ ॥

अगुण अदम्भ गिरा गोतीता * समदर्शी अनवद्य अजीता ॥५॥
निर्मम निराकार निर्मोहा * नित्य निरंजन सुख सन्दोहा ॥६॥

गुण रहित, दंभरहित, गिरा (वाणी) और इंद्रियोंसे परे, समदर्शी, दूषण रहित, अजित ॥५॥ ममता रहित, आकार रहित, मोह रहित, नित्य निरंजन स्वरूप सुखके पात्र हैं ॥ ६ ॥

प्रकृतिपार प्रभु सब उरवासी * ब्रह्म निरीह विरज अविनासी ॥७॥
इहां मोहकर कारण नाहीं * रविसन्मुख तम कबहुँकि जाहीं॥८॥

प्रकृतिसे परे सबके हृदयमें वास करते हैं,ब्रह्म इच्छा रहित हैं,माया रहित अविनाशी हैं॥७॥

परमात्माके प्रसङ्गमें मोहका कुछ कारण नहीं है जैसे सूर्यके सम्मुख अन्धकार नहीं जाता ॥८॥

दोहा-भक्त हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप ॥
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥ १०४ ॥

राम भगवान् भक्तोंके कारण ही मनुष्य रूप धारण करते हैं और यह रूप धारण कर परम पवित्र चरित्र साधारण राजाओंके समान करते हैं इससे पंडित मोहित हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

दोहा-यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ ॥
सोइ सोइ भाव दिखावै, आपुन होइ न सोइ ॥ १०५ ॥

जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है और यह रूपके अनुसार वही वही सब भाव दिखलाता है परंतु जो धारण करता है वही आप नहीं हो जाता न जो स्वांग दिखाता वही सत्य है (केवल वस्त्रादिसे विपरीताभास है) ॥ १०५ ॥

असि रघुपति लीला उरगारी * दनुजविमोहनि जन सुखकारी ॥१॥
जे मतिमलिन विषय वश कामी * प्रभुपर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥२॥

हे सर्पशत्रु गरुड़जी ! ऐसी भगवान्‌की लीला है जो दैत्योंको मोहने और जनोंको सुख देने-वाली है ! भक्त उन्हें ईश्वर जानते हैं कुटिल बुद्धि राजपुत्र कहते हैं ॥ १ ॥ हे स्वामी ! जो मतिके हीन विषयके वशीभूत कामी हैं वे रघुनाथजी पर इसी प्रकार मोह धरते हैं ॥ २ ॥

नयन दोष जाकहँ जब होई * पीत बरन शशि कहँ कह सोई ॥३॥
जब जेहि दिशि भ्रम होइ खगेशा * सो कह पश्चिम उगेउ दिनेशा ॥४॥

जब जिसको नेत्रदोष होता है तब सर्वत्र पीला ही पीला देखकर चन्द्रमाको भी पीला कहने लगता है ॥ ३ ॥ अथवा जब किसीको परदेशमें जाकर, दिशाका भ्रम होता है तो वह कहने लगता है कि सूर्य पश्चिममें उदय हुआ है ॥ ४ ॥

नौकारूढ़ चलत जग देखा * अचल मोहवश आपुहिं लेखा ॥५॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी * कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ॥६॥

आप नौकापर चढ़कर जानता है कि यह सारा जगत् तो चल रहा है; परंतु मैं अचल हूँ ऐसा मोहवश मानते हैं ॥ ५ ॥ अथवा जैसे बालक घूमकर खड़े होते हैं तो उनको घर घूमते दृष्टि आते हैं, परंतु वास्तवमें बालक घूमते हैं घर नहीं घूमते, इसी प्रकार मिथ्यावादी परस्पर अन्यथा वचन कहते हैं ॥ ६ ॥

हरि विषयक अस मोह विहंगा * सपनेहुँ नहिं अज्ञान प्रसंगा ॥७॥
मायावश मतिमंद अभागी * हृदय जवनिका बहुविधि लागी ॥८॥

हरिके विषयमें जो मोह देखते हैं, उन्हींके निमित्त यह दृष्टांत है कि मोहमें पड़े तो आप हैं और राममें मोह देखते हैं, जिसमें अज्ञानकी चर्चा स्वप्नमें भी नहीं है ॥ ७ ॥ जो मतिमंद मायाके वश होकर मन्द और अभागी हो रहे हैं और हृदयमें बहुत प्रकारके आवरण सुत, नारी धनादिके लगे हुए हैं, (जवनिका-पर्दा) अथवा जो मनुष्य मतिमन्द अभागी हैं और हृदय पर मोहका परदा पड़ा है ॥ ८ ॥

ते शठ हठ वश संशय करहीं * निज अज्ञान रामपर धरहीं ॥९॥
वे मूर्ख हठके वश सन्देह करते अपना अज्ञान रघुनाथजी पर धरते हैं ॥ ९ ॥

दोहा–काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुखरूप ॥
ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़ परे तमकूप ॥ १०६ ॥
जो काम, क्रोध, मद लोभमें प्रीति करने वाले दुःख स्वरूप घरमें आशक्त हैं और अन्धकार रूप कुएँमें पड़े हैं वे मूर्ख रघुनाथजीको कैसे जान सकते हैं ॥ १०६ ॥

दोहा–निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जानै कोइ ॥
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनिमन भ्रम होइ ॥ १०७ ॥
निर्गुण रूप तो अत्यन्त सुलभ है सब कोई जान सकते हैं, परंतु सगुणको कोई नहीं जानता । निर्गुण इससे सुलभ है कि सदा एकरस रहता है और सगुणको नाना चरित्र सुगम और अगम हैं जैसे सेतुका बांधना जानकीजीका विरह आदि देखकर मनुष्योंको तो क्या मुनियोंके भी मतिको भ्रम होता है ॥ १०७ ॥

सुनु खगपति रघुपति प्रभुताई * कहौं यथामति कथा सुहाई ॥१॥
जेहि विधि मोह भयउ प्रभु मोही * सो सब चरित सुनावौं तोही ॥२॥
हे गरुड़जी ! सुनो मैं कुछ रघुनाथजीकी प्रभुता वर्णन करता हूँ और मति अनुसार सुन्दर सुन्दर कथा कहता हूँ ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जिस प्रकार मुझे अज्ञान हुआ था वह चरित्र मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ २ ॥

रामकृपा भाजन तुम ताता * हरि गुण प्रीति मोहिं सुखदाता ॥३॥
ताते कछु नहिं तुमहिं दुरावौं * परम रहस्य मनोहर गावौं ॥४॥
हे तात ! तुम रघुनाथजीके कृपाके पात्र हो हरिके गुणोंमें तुम्हारी प्रीति है अतः तुम मेरे सुख देने वाले हो ॥ ३ ॥ इस कारण हे तात ! मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाता हूँ परम गुप्त और मनोहर बात तुम्हारे सामने कहता हूँ ॥ ४ ॥

सुनहु रामकर सहज सुभाऊ * जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥५॥
संसृतिमूल शूलप्रद नाना * सकल शोकदायक अभिमाना ॥६॥
सुनो रघुनाथजीका यह सहज स्वभाव है कि अपने दासका अभिमान कभी नहीं रखते ॥५॥ क्योंकि यह अभिमान ही संसृति अर्थात् जन्म मरणका मूल है, जिससे अनेक शूल उत्पन्न होते हैं जो सकल शोकदायक हैं ॥ ६ ॥

ताते करहिं कृपानिधि दूरी * सेवकपर ममता अति भूरी ॥७॥
जिमि शिशु तन व्रण होइ गुसाईं * मातु चिराव कठिनकी नाईं ॥८॥
इस कारण कृपानिधि अभिमानको दूर कर देते हैं कि सेवकके ऊपर बहुत ममता रखते हैं ॥७॥ जैसे बालकके शरीरमें फोड़ा होता है तो माता कठिन हृदय करके उसको चिरा देती है ॥८॥

दोहा–यदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर ॥
व्याधि नाश हित जननी, गनै न सो शिशु पीर ॥ १०८ ॥

यद्यपि पहले बालक दुःख पाता और अधीर होकर रोने लगता है; व्याधि दूर होनेके निमित्त माता वह पीड़ा नहीं गिनती ॥ १०८ ॥

दोहा-तिमि रघुपति निजदासकर, हरहिं मान हित लागि ॥
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि, कस न भजसि भ्रम त्यागि ॥१०९॥

इसी प्रकार रामचन्द्रजी अपने दासोंके संग व्यवहार करते हैं जब उन्हें मान हो जाता है, तो उनके हितार्थ मानहर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं रे मन ऐसे प्रभुको भ्रम त्याग करके क्यों नहीं भजता ? ॥ १०९ ॥

राम कृपा आपनि जड़ताई * कहौं खगेश सुनहु मन लाई ॥१॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं * भक्तहेतु लीला बहु करहीं ॥२॥

हे गरुड़जी ! रघुनाथजीकी कृपा और अपनी मूर्खता मैं तुमसे कहता हूँ; तुम मन लगाकर सुनो ॥१॥ जब जब राम मनुष्य अवतार धारण करते हैं, भक्तोंके कारण अनेक लीला करते हैं॥२॥

तब तब अवध पुरी मैं जाऊँ * शिशुलीला विलोकि हर्षाऊँ ॥३॥
जन्म महोत्सव देखौं जाई * वर्ष पांच तहँ रहौं लुभाई ॥४॥

तब तब मैं अयोध्यापुरीमें जाता हू और उनकी बाललीला देखकर सुख पाता हूँ ॥३॥ जन्ममहोत्सव जाकर देखता हूँ, इस कारण प्रेमसे पांच वर्षतक भूला रहता हू ॥ ४ ॥

इष्टदेव मम बालक रामा * शोभा वपुष कोटिशत कामा ॥५॥
निज प्रभु वदन निहारि निहारी * लोचन सफल करौं उरगारी ॥६॥

बालक राम मेरे इष्टदेव हैं जिनके शरीरकी शोभा करोड़ों कामदेवके समान है ॥ ५ ॥ हे गरुड़जी ! उन अपने प्रभुका मुख देखकर नेत्र सफल करता हूं ॥ ६ ॥

लघुवायस-वपु धरि प्रभु संगा * देखौं बालचरित बहु रंगा ॥७॥

छोटासा कौवेका शरीर धारण करके प्रभुके साथ अनेक प्रकारके बाल चरित देखता हूँ॥७॥

दोहा-लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उड़ाउँ ॥
जूठन परै अजिरमहँ, सोइ उठाय करि खाउँ ॥ ११० ॥

वे लरिकाईमें जहां जहां घूमते हैं वहां वहां उनके साथ उड़ता हूँ, उनके हाथसे जूठन आंगनमें गिर पड़ता है उसे उठाकर खा जाता हूँ ॥ ११० ॥

दोहा-एक बार अतिशय प्रबल, चरित कीन्ह रघुवीर ॥
सुमिरत प्रभुलीला सोइ, पुलकित भयउ शरीर ॥ १११ ॥

एक समय रघुनाथजीने ऐसा प्रबल चरित्र किया कि प्रभुकी वह लीला स्मरण करनेसे शरीर पुलकित हो जाता है ॥ १११ ॥

कहै भुशुण्डि सुनहु खगनायक * राम चरित सेवक-सुखदायक ॥१॥
नृपमन्दिर सुन्दर सब भांती * खचित कनकमणि नाना जाती ॥२॥

काकभुशुण्डिजी बोले- गरुड़जी ! सुनो, रघुनाथजीके चरित्र सब भक्तजनोंको सुख देनेवाले हैं ॥ १ ॥ राजमंदिर सब भाँतिसे सुन्दर हैं जहां अनेक भाँतिसे सुवर्ण मणि जड़े हैं ॥ २ ॥

बरणि न जाइ रुचिर अँगनाई ❋ जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई ॥३॥
बाल विनोद करत रघुराई ❋ विचरत अजिर जननि सुखदाई ॥४॥

सुन्दर अँगनाई वर्णी नहीं जाती, जहां नित्य चारों भाई खेलते हैं ॥३॥ रघुनाथजी बाल लीला करते हैं माताके सुखदायक आंगनमें खेलते फिरते हैं ॥ ४ ॥

मरकत मृदुल कलेवर श्यामा ❋ अंग अंग प्रति छबि बहुकामा ॥५॥
नव राजीव अरुण मृदुचरणा ❋ पदजरुचिरनखशशि द्युतिहरणा ॥६॥

मरकत मणिके समान श्याम शरीर अति कोमल है जिनके प्रत्येक अंगमें कामदेवोंकी अनेक छबि है ॥ ५ ॥ नये कमलके समान लाल और कोमल चरण हैं, श्रेष्ठ अँगुली और नखोंकी बड़ी शोभा है नख चन्द्रमाकी कांतिको हरते हैं ॥ ६ ॥

ललित अंग कुलिशादिक चारी ❋ नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥७॥
चारु पुरट मणि रचित बनाई ❋ कटिकिंकिणि कलमुखर सुहाई ॥८॥

सुन्दर चरणोंमें वज्र अंकुश और यवके चिह्न हैं, नूपुरोंका सुन्दर शब्द मनोहर हो रहा है ॥ ७ ॥ पुरट (सोनेकी) रत्नोंसे जड़ी हुई कमरकी करधनीकी बड़ी शोभा है और रामचन्द्रजीके चलनेसे उसका बड़ा मनोहर शब्द होता है ॥ ८ ॥

दोहा-रेखात्रय सुन्दर उदर, नाभी रुचिर गंभीर ॥
उर आयत भ्राजत विविध, बाल विभूषण चीर ॥ ११२ ॥

उदरमें सुन्दर तीन रेखायें पड़ी हैं, नाभि गंभीर और हृदय चौड़ा है और अधिक शोभायमान है, बालकपन के गहने और वस्त्र पहरे हैं ॥ ११२ ॥

अरुण पाणिनख करज मनोहर ❋ बाहु विशाल विभूषण सोहर ॥१॥
कन्ध बालकेहरि दरग्रीवा ❋ चारु चिबुक आनन छबि सींवा ॥२॥

लाल लाल हाथ, उँगुली और नख हाथोंके बड़े मनोहर हैं बड़ी बड़ी बाहें सुन्दर गहने पहरे हुए हैं ॥ १ ॥ सिंहके बच्चेके समान ऊँचे कंधे, शंखसी गर्दन, सुन्दर ठोढ़ी, छबिकी सींव जिनका मुखारविंद है ॥ २ ॥

कलबल वचन अधर अरुणारे ❋ दुइ दुइ दशन विशद बर बारे ॥३॥
ललित कपोल मनोहर नासा ❋ सकल सुखद शशिकर सम हासा ॥४॥

कलबल वचन अर्थात् तोतरे बोल, लाल होंठ, दो दो दांत उज्ज्वल, ऐसे सुन्दर बालक हैं ॥ ३ ॥ सुन्दर कपोल मनोहर नासिका और सब प्रकार सुखका देने वाला चन्द्रमाके समान जिनका हास (हँसी) है ॥ ४ ॥

नीलकंज लोचन भव मोचन ❋ भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥५॥
विकटभृकुटि समश्रवण सुहाये ❋ कुंचित कच मेचक छबि छाये ॥६॥

नीले कमलके समान संसारके भय दूर करनेवाले नेत्र हैं, माथे पर गोरोचनका तिलक शोभित हो रहा है ॥ ५ ॥ टेढ़ी भौंहे कानोंतक शोभायमान हैं और काले घुंघुराले बालोंकी छबि हो रही है ॥ ६ ॥

पीत झीन झिंगुली तनु सोही ❋ किलकनि चितवनि भावति मोही ॥७॥
रूपराशि नृप-अजिर--विहारी ❋ नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥८॥

पीली पतली झिंगुली शरीरपर शोभा दे रही है वही उनकी किलकारी और चितवन मुझे भाती है ॥७॥ इस प्रकार रूपके स्थान राजाके आंगनमें विहार करनेवाले अपना प्रतिबिंब देखकर नाचते हैं ॥ ८ ॥

मोसन करहि विविध विधि क्रीड़ा ❋ वर्णत चरित होति मोहि व्रीड़ा ॥९॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं ❋ चलौं भाजि तब पूप दिखावहिं॥१०॥

और मुझसे भी अनेक प्रकारके खेल करते हैं जिनके वर्णन करनेमें मुझे लाज आती है ॥ ९ ॥ किलकारी मारकर जब मुझे पकड़नेको दौड़ते हैं और जब मैं भाग जाता हूँ तब पुआ दिखाते हैं कि आओ पुआ खाओ ॥ १० ॥

दोहा-आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं ॥
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितै पराहिं ॥ ११३ ॥

जब मैं समीप आता हूँ तब प्रभु हँसते हैं और भागते में रोते हैं और जब मैं समीप चरण पकड़नेको जाता तो फिर देखकर भागते हैं ॥ ११३ ॥

दोहा-प्राकृत शिशु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह ॥
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह ॥ ११४ ॥

साधारण बालकोंकीसी लीला देखकर मुझे मोह आगया कि प्रभु क्या चरित्र करते हैं वे तो सदा आनंदके समूह हैं क्या कारण है जो मेरे आनेसे हँसते और जानेसे रोते हैं ॥११४॥

इतना मन आनत खगराया ❋ रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥१॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं ❋ आन जीव इव संसृति नाहीं ॥२॥

हे गरुड़जी ! ज्योंही ऐसी बात मनमें आयी कि नारायणकी प्रेरणासे मुझे माया आ लिपटी ॥ १ ॥ सो माया मुझे दुःख देनेवाली न हुई क्योंकि और जीवोंकी तरह संसारमें जीवन मरणमें मुझे नहीं डाला ॥ २ ॥

नाथ इहां कछु कारण आना ❋ सुनहु सो सावधान हरियाना ॥३॥
ज्ञान अखंड एक सीतावर ❋ मायावश्य जीव सचराचर ॥४॥

हे नाथ ! यहां कारण कुछ और है, सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ सीतानाथ एक हैं अखण्ड ज्ञानरूप हैं और सर्वज्ञ शिरोमणि हैं और जीव तो चराचर सब मायाके वशमें हैं ॥४॥

जो सबके रह ज्ञान एक रस ❋ ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥५॥
मायावश्य जीव अभिमानी ❋ ईशवश्य माया गुण खानी ॥६॥

यदि सदा सबका ज्ञान एकरस रहे तो कहो फिर ईश्वर और जीवमें भेद क्या है ॥ ५ ॥ अभिमानी जीव मायाके वशमें है और गुणखान माया ईश्वरके वशमें है ॥ ६ ॥

परवश जीव स्ववश भगवन्ता ❋ जीव अनेक एक श्रीकन्ता ॥७॥
द्विधा भेद यद्यपि कृत माया ❋ बिनु हरिजाइ न कोटि उपाया ॥८॥

जीव परवश है और भगवान् स्वतन्त्र हैं, जीव अनेक हैं और ईश्वर एक है ॥ ७ ॥ "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" यद्यपि यह माया का किया दो प्रकारका भेद मिथ्या है पर विना ईश्वरकी कृपाके नहीं मिटता, चाहे करोड़ों उपाय करो ॥ ८ ॥

दोहा-रामचन्द्रके भजन विनु, जो चह पद निर्वान ॥
ज्ञानवंत अपि सो नर, पशु विनु पूँछ विषान ॥ ११५ ॥

रामचन्द्रके भजन विना जो चाहे कि मुक्ति प्राप्त हो जाय तो चाहे वह मनुष्य ज्ञानी ही क्यों नहीं परन्तु उसको विना सींग पूँछका पशु ही समझो ॥ ११५ ॥

दोहा-राकाशशि षोडश उगहिं, तारागण समुदाय ॥
सकल गिरिन दव लाइये, रवि बिनु राति न जाय ॥ ११६ ॥

चाहे चन्द्रमा सोलह कलासे उदय हो व सोलह चन्द्रमा उदय हों; सबही तारागण उदय हों, सारे पर्वतोंमें आग लगा दिया जाय, परंतु सूर्यके विना रात नहीं जाती ॥ ११६ ॥

ऐसेहि बिनु हरिभजन खगेशा * मिटै न जीवन केर कलेशा ॥१॥
प्रभु सेवकहि न व्याप अविद्या * प्रभु प्रेरित तेहि व्यापै विद्या ॥२॥

हे गरुड़जी ! इसी प्रकार नारायणके भजन विना जीवोंके क्लेश नहीं मिटते ॥१॥ प्रभुकी प्रेरणासे उन्हें विद्याही व्यापी रहती है, उनके सेवकको अविद्या नहीं व्यापती ॥ २ ॥

ताते नाश न होइ दासकर * भेद भक्ति बाढ़ै बिहँगवर ॥३॥
भ्रमते चकित राम मोहिं देखा * विहँसे सो सुनु चरित बिसेखा ॥४॥

हे गरुड़जी ! इसी कारण दासका नाश नहीं होता; भेद-भक्तिकी वृद्धि होती है (भेद भक्ति स्वामी सेवकका भाव) ॥ ३ ॥ जो रामने मुझे भ्रमसे चकित देखा तो हँसे, वह हँसनेका विशेष चरित्र सुनो ॥ ४ ॥

तेहि कौतुककर मर्म न काहू * जाना अनुज न मातु पिताहू ॥५॥
जानु पाणि धाये मोहि धरना * श्यामल गात अरुण मृदु चरना ॥६॥

इस कौतुकका भेद माता, पिता और छोटे भ्राता आदि किसीने नहीं जाना ॥५॥ घुटुओं घुटुओं मुझे पकड़नेको दौड़े, उनका श्याम शरीर है, मृदुल और लाल चरण हैं ॥ ६ ॥

तब मैं भागि चलेऊँ उरगारी * राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥७॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकाशा * तहँ हरिभुज देखौं निज पासा ॥८॥

हे गरुड़जी ! तब मैं भाग चला और रघुनाथजीने पकड़नेको भुजा फैलायी ॥७॥ मैं जैसे जैसे दूर आकाशमें जाता हूँ वैसे वैसे वहां रामजीकी भुजाओंको अपने पास देखता हूँ ॥८॥

दोहा-ब्रह्मलोक तक गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात ॥
युग अंगुलकर बीच रह, रामभुजहिं मोहिं तात ॥ ११७ ॥

हे तात ! तब मैं उड़ता उड़ता ब्रह्मलोक तक गया और वहां पीछे देखा कि रघुनाथजीकी भुजामें और मुझमें केवल दो अंगुलका बीच अर्थात् अन्तर है ॥ ११७ ॥

दोहा-सप्तावरण भेदकरि, जहँ लगि रहि गति मोरि ॥
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि ॥ ११८ ॥

सातों आवरण अर्थात् सात घेरे जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्व, प्रकृति इनको भेदन करके जहां तक मेरी गति थी वहां तक गया, परन्तु प्रभुकी भुजा पीछे ही रही, यह देखकर मैं व्याकुल होगया, अथवा भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य लोक ये सात आवरण हैं ॥ ११८ ॥

मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ * पुनि चितवत कोशलपुर गयऊँ॥१॥
मोहिं विलोकि राम मुसुकाहीं * विहँसत तुरत गयउँ मुखमाही ॥२॥

तब घबड़ाकर मैंने नेत्र मूँद लिये फिर जो आंख खोली तो देखा कि अयोध्यापुरीमें हूँ ॥ १ ॥ मुझे देखकर रघुनाथजी हँसे और एक ऐसी सांस ली कि मैं तुरन्त उनके मुखमें चला गया ॥ २ ॥

उदरमांझ सुनु अंडजराया * देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥३॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका * रचना अधिक एकते एका ॥४॥

हे अंडजराज(अंडेसे होनेवालोंके राजा)गरुड़जी ! सुनो,रामके उदरमें मैंने अनेक ब्रह्मांड देखे ॥३॥ अति विचित्र अनेक लोक अवलोकन किये, जिनमें एकसे एककी अधिक रचना थी ॥४॥

कोटिन चतुरानन गौरीशा *अगणित उडुगण रवि रजनीशा॥५॥
अगणित लोकपाल यम काला * अगणित भूधर भूमि विशाला ॥६॥

अनेक ब्रह्मा और शिव अवलोकन किये, अगणित तारे सूर्य चन्द्रमा देखे ॥ ५ ॥ अगणित लोकपाल, यम काल देखे; अगणित बड़े बड़े पर्वत पृथ्वी अवलोकन किये ॥ ६ ॥

सागर सरि सर विपिन अपारा * नाना भाँति सृष्टि विस्तारा ॥७॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर * चारि प्रकार जीव सचराचर ॥८॥

अनेक समुद्र, नदी, तालाब, वन देखे; अनेक भांतिसे सृष्टिका विस्तार देखा ॥७॥ देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर और अंडज, पिंडज, स्वेदज, जरायुज ये चार प्रकारके चर (चलनेवाले मनुष्यादि), अचर (नहीं चलनेवाले वृक्षादि) देखे ॥ ८ ॥

दोहा-जो नहिं देखा नहिं सुना, मनहूँ जो न समाइ ॥
सो सब अद्भुत देखेऊँ, वरणि कौन विधि जाइ ॥ ११९ ॥

जो कि कभी न देखा न सुना न मनमें आया न आ सके वह सब आश्चर्य वहां देखा किस प्रकारसे उसका वर्णन करूँ ? ॥ ११९ ॥

दोहा-एक एक ब्रह्माण्ड महँ, रहेउँ वर्ष शत एक ॥
इहि विधि मैं देखत फिरेउँ, अण्डकटाह अनेक ॥ १२० ॥

एक एक ब्रह्मांडमें एक एक सौ वर्ष रहा, इसी प्रकार मैं अनेक अण्डकटाह अर्थात् ब्रह्मांड रूपी कटाह देखता फिरा ॥ १२० ॥

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता * भिन्न विष्णु शिव मनुदिशि त्राता॥१॥
नर गन्धर्व भूत वैताला * किन्नर निशिचर पशु खग व्याला॥२॥

लोक लोकके पृथक् पृथक् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल देखे ॥ १ ॥ मनुष्य, गंधर्व, भूत, वेताल, किन्नर, पशु, व्याल (सर्प) ॥ २ ॥

देव दनुज गण नाना जाती * सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥३॥
महि सर सागर सरि गिरि नाना * सब प्रपंच तहँ आनहि आना ॥४॥

देवता, राक्षस अनेक प्रकारके और सब जीव भी अनेक प्रकारके देखे ॥ ३ ॥ पृथ्वी, ताल, सागर, नदी, अनेक प्रकारके पर्वत, यह सब प्रपंच और ही और प्रकारका देखा ॥ ४ ॥

अंडकोश प्रति प्रति निजरूपा * देखेउँ जिनिस अनेक अनूपा ॥५॥
अवधपुरी प्रति भुवन निहारी * सरयू भिन्न भिन्न नर नारी ॥६॥

प्रत्येक ब्रह्मांडमें अपना भी रूप देखा और अनेक जिनस अर्थात् नीलगिरि आदि निवास स्थानके चिह्न देखे और ॥ ५ ॥ प्रत्येक ब्रह्मांडमें अवधपुरी, सरयू वहांके नर नारी पृथक् पृथक् देखे ॥ ६ ॥

दशरथ कौशल्या सुनु ताता * विविध रूप भरतादिक भ्राता ॥७॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा * देखेउँ बाल विनोद अपारा ॥८॥

हे तात ! सुनिये, दशरथ कौशल्या और अनेक रूपसे भरतादि भाई ॥ ७ ॥ प्रत्येक ब्रह्मांडोंमें रामका अवतार और उनके अपार अनेक बालविनोद अर्थात् बाल चरित्र अवलोकन किये ॥ ८ ॥

दोहा–भिन्न भिन्न सब देखेउँ, अति विचित्र हरियान ॥
अगणित भुवन फिरेउँ मैं, राम न देखेउँ आन ॥ १२१ ॥

हे हरियान ! गरुड़जी पृथक् पृथक् सब विचित्र ही देखे और असंख्य ब्रह्मांडोंमें घूमता फिरा, परन्तु रघुनाथजीका दूसरा रूप नहीं देखा ॥ १२१ ॥

दोहा–सोइ शिशुपन सोइ शोभा, सोइ कृपालु रघुवीर ॥
भुवन भुवन देखत फिरेउँ, प्रेरित मोह शरीर ॥ १२२ ॥

वही बालपन, वही शोभा, वे ही कृपासागर रामचन्द्र मैं प्रत्येक ब्रह्मांडमें अज्ञानसे प्रेरित होकर देखता फिरा ॥ १२२ ॥

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका * बीते मनहु कल्प शत एका ॥१॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ * तहँ पुनि रहि कछु काल गवायउँ ॥२॥

मुझे अनेक ब्रह्मांडोंमें घूमते घूमते मानो सौ कल्प बीत गये ॥ १ ॥ फिरता फिरता मैं अपने आश्रममें आया और कुछ दिन पर्यन्त निवास किया ॥ २ ॥

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ * निर्भर प्रेम हर्षि उठि धायउँ ॥३॥
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई * जेहि विधि प्रथम कहा मैं गाई ॥४॥

वहां सुना कि अयोध्यामें प्रभुका जन्म हुआ तो बड़े प्रेमसे प्रसन्न हो उठ धाया ॥ ३ ॥ जन्म महोत्सव जाकर देखा, जिस प्रकारसे मैंने प्रथम गाकर कहा है ॥ ४ ॥

राम उदर देखेउँ जग नाना * देखत बनै न जात बखाना ॥५॥

तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना ❋ मायापति कृपालु भगवाना ॥६॥
रामके उदरमें अनेक जग देखे वह देखते ही बनता है; बखाना नहीं जाता ॥ ५ ॥ वहां भी रघुनाथजीका दर्शन किया, मायाके पति रघुनाथजी कृपा सागर भगवान् हैं ॥ ६ ॥

करौं विचार बहोरि बहोरी ❋ मोह कलितव्यापित मति मोरी॥७॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा ❋ भयउँ भ्रमित मन मोह विसेखा॥८॥
बार बार विचार करूँ परंतु (कलित) दुर्गम्य (मोह) अज्ञानसे मेरी बुद्धि व्याप्त थी, ज्ञान न हो ॥७॥ दो घड़ीमें ही सब कुछ देखा और चित्तमें भ्रम हो गया, मनमें बड़ा मोह हुआ ॥८॥

दोहा–देखि कृपालु विकल मोहिं, विहँसे तब रघुवीर ॥
विहँसत ही मुख बाहर, आयउँ सुनु मतिधीर ॥ १२३ ॥
तब कृपालु रघुनाथजी मुझे व्याकुल देखकर हँसे उनके हँसते ही मैं मुखसे बाहर आ गया, हे मतिधीर यह चरित्र उदरमें अवलोकन किया "वास्तवमें यह ब्रह्माण्ड भी विराट् पुरुषके उदरमें ही विराजता है" ॥ १२३ ॥

दोहा–सोइ लरिकाई मोहि सन, लगे करन पुनि राम ॥
कोटि भाँति समुझावौं, मन न लहै विश्राम ॥ १२४ ॥
फिर रघुनाथजी मुझसे वही लरिकाई करने लगे अनेक भांतिसे मैं चित्तको समझाने लगा परन्तु मनमें विश्राम नहीं होता ॥ १२४ ॥

देखि चरित यह सो प्रभुताई ❋ समुझत देह दशा बिसराई ॥१॥
धरणि परेउ मुख आव न बाता ❋ त्राहि त्राहि आरतजन त्राता ॥२॥
यह बाललीला चरित्र और वह प्रभुता जो रामके उदरमें देखी थी, समझकर देहकी दशा बिसर गयी ॥१॥ पृथ्वीमें गिर पड़ा, मुखसे बात नहीं निकली और कहने लगा कि हे दुःखी जनोंकी रक्षा करनेवाले ! मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥

परमाकुल प्रभु मोहिं विलोकी ❋ निज माया प्रभुता सब रोकी ॥३॥
करसरोज प्रभु मम शिर धरेऊ ❋ दीन दयालु दुसह दुख हरेऊ ॥४॥
तब प्रभुने मुझे परम व्याकुल देखकर अपनी मायाकी प्रभुता सब रोकी ॥ ३ ॥ अपना कमलसा हाथ मेरे शिर पर धरा और दीनदयालुने कठिन दुःख हर लिया ॥ ४ ॥

कीन्ह राम मोहिं विगत विमोहा ❋ सेवक सुखद कृपालु सन्दोहा ॥५॥
प्रभुता प्रथम विचारि विचारी ❋ मनमहँ हर्ष होइ अति भारी ॥६॥
रघुनाथजीने मुझे मोह रहित कर दिया, राम सेवकके सुखदाता, कृपाके समूह हैं ॥ ५ ॥ पहले प्रभुता विचार कर मेरे मनमें बहुत प्रसन्नता हुई ॥ ६ ॥

भक्तबछलता प्रभुकी देखी ❋ उपजा मम उर हर्ष विशेखी ॥७॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी ❋ कीन्ही बहु विधि विनय बहोरी ॥८॥
प्रभुकी भक्तवत्सलता (भक्तोंके दुःख हरने का स्वभाव) देखकर मनमें बहुत आनन्द हुआ ॥ ७ ॥ नेत्रोंमें जल, शरीर पुलकित, हाथ जोड़कर बहुत प्रकारसे विनती की ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि सप्रेममय बाणी, देखि दीन निजदास ॥
वचन सुखद गम्भीर मृदु, बोले रमानिवास ॥ १२५ ॥

प्रेम पूर्वक मेरी वाणी सुनकर मुझे दीन और अपना दास देख रमानिवास (लक्ष्मीपति) राम सुखदायक गम्भीर (मृदु) कोमल वचन बोले ॥ १२५ ॥

दोहा-काकभुशुण्डी माँगु वर, अति प्रसन्न मोहिं जानि ॥
अणिमादिक सिधि अपर ऋधि, मोक्ष सकल सुखखानि ॥१२६॥

हे काकभुशुण्डि ! वर मांग, मुझे अति प्रसन्न जान और अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमादिक सिद्धि और (ऋद्धि) सम्पत्ति आदिक तथा सब सुखोंकी खान मुक्ति जो चाहिये सो मांग ॥ १२६ ॥

ज्ञान विवेक विरति विज्ञाना ❋ मुनि दुर्लभ गुण जो जग जाना ॥१॥
आज देउँ सब संशय नाहीं ❋ मांगु जो तोहि भाव मन माहीं॥२॥

(ज्ञान) आत्मज्ञान, (विवेक) सत् असत्का ज्ञान, (विरति) ईश्वरमें प्रीति, (विज्ञान) अनुभव जो मुनियोंको भी दुर्लभ गुण हैं जिसे जगत् जानता है ॥ १ ॥ आज वह सब तुझे दूंगा मांग जो कुछ इच्छा हो ॥ २ ॥

सुनि प्रभु वचन बहुत अनुरागेउँ ❋ मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥३॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही ❋ भक्ति आपनी देन न कही ॥४॥

प्रभुके वचन सुन मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई उस समय मनमें अनुमान करने लगा ॥३॥ प्रभुने सकल सुख देने कहे परन्तु अपनी भक्ति देनी न कही ॥ ४ ॥

भक्तिहीन गुण सुख सब ऐसे ❋ लवण विना बहु व्यंजन जैसे ॥५॥
भक्तिहीन सुख कौने काजा ❋ अस विचारि बोलेउ खगराजा ॥६॥

और मैं जानता हूँ कि भक्तिके विना सब सुख ऐसे हैं जैसे नोन विना अनेक प्रकारके व्यञ्जन व्यर्थ होते हैं ॥ ५ ॥ हे गरुड़जी ! भक्तिके विना सुख किस कामका ? यह अपने मनमें विचार कर मैं बोला ॥ ६ ॥

जो प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू ❋ मोपर कृपा करिय अति नेहू ॥७॥
मन भावत वर मांगौं स्वामी ❋ तुम उदार उर अन्तर्यामी ॥८॥

हे प्रभो ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे वर देते हो और स्नेह कृपा करते हो ॥ ७ ॥ तो हे स्वामिन् ! मैं भी मनभावता वर मांगता हूँ, तुम उदार सबके अन्तरकी जाननेवाले हो ॥८॥

दोहा-अविरल भक्ति विशुद्ध तव, श्रुति पुराण जो गाव ॥
जेहि खोजत योगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥ १२७ ॥

आपकी शुद्ध भक्ति है, जिसको वेद पुराण गाते हैं, जिसको योगी मुनि ढूँढ़ते रहते हैं, स्वामीकी प्रसन्नतासे ही कोई उनको प्राप्त करता है ॥ १२७ ॥

दोहा-भक्त कल्पतरु प्रणतहित, कृपासिंधु सुखधाम ॥
सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु, देहु दया करि राम ॥ १२८ ॥

आप भक्तोंके कल्पवृक्ष हैं अर्थात् भक्तजन जैसी-जैसी इच्छा करते हैं वैसा-वैसा आप उनके लिए करते हैं, सो हे प्रभो ! जिस भक्तिके प्रभावसे भक्तोंकी ऐसी महिमा है सोई अपनी भक्ति कृपा करके आप मुझे दीजिये ॥ १२८ ॥

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक * बोले वचन परम सुखदायक ॥१॥
सुनु वायस तैं परम सयाना * काहे न माँगसि अस वरदाना ॥२॥

'ऐसा ही हो' यह कह कर रघुकुलके नायक रघुनाथजी परम सुखदायक वचन बोले ॥ १ ॥ हे वायस ! तुम परम चतुर हो, क्यों न ऐसा वरदान माँगो ? ॥ २ ॥

सब सुखखानि भक्ति तैं माँगी * नहिं कोउ तोहि समान बड़भागी॥३॥
जो मुनि कोटि यत्न नहिं लहहीं * करि जप योग अनल तनु दहहीं॥४॥

जो सब सुखोंकी खानि है वही भक्ति तुमने मांगी, तुम्हारे समान कोई बड़भागी नहीं ॥ ३ ॥ जिस भक्तिको करोड़ों यत्न करके भी मुनि नहीं प्राप्त होते जोकि जपयोग करते अग्निसे शरीर तपाते हैं ॥ ४ ॥

रीझेउँ तोरि देखि चतुराई * मांगेउ भक्ति मोहिं अति भाई॥५॥
सुनु विहंग प्रसाद अब मोरे * सब शुभगुण बसिहैं उर तोरे ॥६॥

तुम्हारी चतुराई देख कर मैं रीझ गया हूँ जो तुमने भक्ति मांगी सो मुझे बहुत अच्छी लगी ॥५॥ हे पक्षिराज ! अब मेरी प्रसन्नतासे सम्पूर्ण शुभ गुण तुम्हारे हृदयमें वास करेंगे ॥ ६ ॥

भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा * योग चरित्र रहस्य विभागा ॥७॥
जानब तैं सबहीकर भेदा * मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥८॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य योग चरित्रोंके रहस्य पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥ इत्यादि जो कुछ भी शास्त्रीय मर्म हैं तुम सबहीका भेद जानोगे, मेरे प्रसादसे किसी साधनमें खेद नहीं होगा ॥ ८ ॥

दोहा-मायासम्भव भ्रम सकल, अब न व्यापिहहिं तोहिं ॥
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुण गुणाकर मोहिं ॥ १२९ ॥

मायासे उत्पन्न सब भ्रम अब तुम्हें नहीं व्यापेंगे और मुझको ब्रह्म अनादि अजन्म अगुण और सगुणरूप जानते रहना, क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् हूँ इस कारण मुझमें सब संघटित होता है ॥ १२९ ॥

दोहा-मोहिं भक्ति प्रिय सन्तत, अस विचारि सुनु काग ॥
काय वचन मन मम चरण, करेहु अचल अनुराग ॥ १३० ॥

हे काक ! सुनो मुझे भक्ति सदा प्यारी है ऐसा विचार काय, वचन और मनसे मेरे चरणों में दृढ़ अनुराग अचल करना ॥ १३० ॥

अब सुनु परम विमल मम बानी * सत्य सुगम निगमादि बखानी॥ १॥
निज सिद्धांत सुनावौं तोहीं * सुनि मन धरु सब तजि भजु मोहीं॥२॥

अब तुम मेरी परम उज्ज्वल वाणी सुनो, जो सत्य और सुगम सहजसे ही प्राप्त होने योग्य और वेदादिने बखानी है ॥ १ ॥ मैं तुम्हें अपना सिद्धांत सुनाता हूँ तुम मन लगाकर सुनो सबको त्याग कर मेरा भजन करो ॥ २ ॥

मम माया सम्भव संसारा * जीव चराचर विविध प्रकारा ॥३॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये * सबतेअधिक मनुज मोहिं भाये ॥४॥

यह जितना संसार है सब मेरी मायासे उत्पन्न है जो कुछ अनेक प्रकारके चराचर जीव हैं ॥३॥ सब मेरे प्यारे और मेरे ही उपजाये हैं, उन सबमें मनुष्य मुझे अधिक प्यारे हैं ॥ ४ ॥

तिनमहँ द्विज द्विजमहँ श्रुतिधारी * तिनमहँ निगम नीति अनुसारी ॥५॥
तिनमहँ प्रिय विरक्त मुनि ज्ञानी * ज्ञानिहुते अति प्रिय विज्ञानी ॥६॥

उन सबमें ब्राह्मण अधिक और ब्राह्मणोंमें वेदपाठी अधिक प्यारे हैं और उनमें भी जो वेदानुसार नीति वर्तते हैं वह अधिक प्यारे हैं ॥ ५ ॥ उनमें विरक्त मुनिज्ञानी मुझे प्यारे हैं और ज्ञानियोंसे भी (विज्ञानी) आत्मज्ञानी मुझे अधिक प्यारे हैं ॥ ६ ॥

तेहिंते पुनि मोहि प्रिय निज दासा * जेहिं गति मोरि न दूसरि आसा ॥७॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं * मोहि सेवक समप्रिय कोउ नाहीं ॥८॥

उनमें मुझे अपने दास प्यारे हैं जिन्हें मेरी गति है, दूसरे की आशा नहीं ॥ ७ ॥ और फिर मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि सेवकके समान मुझे कोई प्यारा नहीं ॥ ८ ॥

भक्तिहीन विरंचि किन होई * सब जीवहु महँ अप्रिय सोई ॥९॥
भक्तिवन्त अति नीचौ प्राणी * मोहिं परम प्रिय यह मम वाणी ॥१०॥

भक्तिहीन चाहे ब्रह्मा भी क्यों न हों ? परंतु सब जीवोंमें वही मुझे अप्रिय है ॥९॥ भक्तिमान् चाहे नीचभी प्राणी हो तो भी मुझे परम प्यारा है, यह मेरी सत्यवाणी है ॥ १० ॥

दोहा–शुचि सुशील सेवक सुमति, कहु प्रिय काहि न लाग ॥
श्रुति पुराण कह नीति असि, सावधान सुनु काग ॥१३१॥

पवित्र सुशील बुद्धिमान् सेवक कहो किसको प्यारा नहीं लगता ? वेद पुराण ऐसी नीति कहते हैं, हे काक ! तुम सावधान होकर सुनो ॥ १३१ ॥

एक पिताके विपुल कुमारा * होइँ पृथक गुणशील अचारा ॥१॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता * कोउ धनवन्त शूर कोउ दाता ॥२॥

जैसे एक पिताके अनेक कुमार हों और सबके पृथक् २ गुण शील आचरण होते हैं ॥१॥ कोई पंडित, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूर, कोई दाता ॥ २ ॥

कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई * सब पर पितहिं प्रीति सम होई ॥३॥
कोउ पितु भक्त वचन मन कर्मा * स्वपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥४॥

कोई सर्वज्ञ,कोई धर्मात्मा हो, पर सबके ऊपर पिताकी बराबर प्रीति होती है ॥३॥ और कोई मन, वचन, कर्मसे पिताकी भक्ति करनेवाला हो–जो स्वप्नमें भी दूसरा धर्म न जानता हो ॥४॥

सो सुत प्रिय पितु प्राण समाना * यद्यपि सो सब भाँति अजाना॥५॥
इहि विधि जीव चराचर जेते * त्रिजग देव नर असुर समेते ॥६॥

वही पुत्र पिताको प्राणके समान प्यारा होता है यद्यपि वह सब प्रकारसे अजान है ॥ ५ ॥ इसी प्रकारसे जितने जगत्के चराचर जीव, पशु, पक्षी (जो अण्डेसे उत्पन्न होते हैं) और देवता, नर असुर जो कुछ हैं ॥ ६ ॥

अखिल विश्व यह मम उपजाया * सब पर मोरि बराबरि दाया ॥७॥
तिनमहँ जो परिहरि मदमाया *भजहिं मोहिं मनवच अरु काया॥८॥

यह सम्पूर्ण जगत् मेरा उपजाया है और सब पर मेरी बराबर दया है ॥ ७ ॥ और उनमें जो अहंकार और कपट छोड़ कर मन, वचन, कर्मसे मेरा भजन करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ ॥
भक्तिभाव भज कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोइ ॥ १३२ ॥

नारी नरके मध्य पुरुषत्वके सहित हो वा नपुंसक हो अथवा कोई चर, अचर, जीव हो सब भावसे कपट तजके जो मुझे भजता है वह मुझे परम प्यारा है ॥ १३२

सोरठा—सत्य कहौं खग तोहिं, शुचि सेवक मम प्राणप्रिय ॥
अस विचारि भज मोहिं, परिहरि आस भरोस सब ॥ ४ ॥

हे खग ! मैं तुझको सत्य कहता हूँ कि पवित्र सेवक मुझे प्राणोंके समान प्यारा है ऐसा विचार मेरा भजन कर और सब आशा भरोसा त्याग दे; केवल मेरा ध्यान करनेसे पवित्र होता है॥४॥

कबहूँ काल नहिं व्यापहि तोहीं * सुमिरेसि भजेसि निरंतर मोहीं॥१॥
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ * तनु पुलकित मन अतिहर्षाऊँ ॥२॥

हे काक ! तुझे कभी नहीं काल व्यापेगा, सदा (निरंतर) मेरा भजन करते रहना ॥१॥ प्रभुके यह वचनामृत सुनकर तृप्त हुआ, शरीरसे पुलकित मनमें बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ २ ॥

सो सुख जानै मन अरु काना * नहिं रसना पहँ जाइ बखाना ॥३॥
प्रभु शोभा सुख जानहिं नयना *कहि किम सकैं तिन्हैं नहिं बयना॥४॥

वह सुख मन और कान ही जानते हैं जीभसे बखाना नहीं जाता ॥३॥ प्रभुकी शोभाका सुख नेत्र ही जानते हैं, परन्तु कहें किस प्रकार उनके वाणी नहीं ॥ ४ ॥

बहुविधि राम मोहिं सिख देई * लगे करन शिशु कौतुक तेई ॥५॥
सजल नयन कछु मुखकरि रूखा * चितइ मातु लागी अति भूखा॥६॥

बहुत प्रकारसे रघुनाथजी मुझे शिक्षा देकर फिर वही बाललीला करने लगे ॥ ५ ॥ और नेत्रोंमें जल भरकर मुख कुछ रूखा करके माँ की ओर देखा कि अति भूख लगी है ॥ ६ ॥

देखि मातु आतुर उठि धाई * कहि मृदु वचन लिये उरलाई ॥७॥
गोद राखि कराव पय पाना * रघुबर चरित ललित करगाना॥८॥

माता देखकर शीघ्र उठ दौड़ी और कोमल वचन कहकर हृदयसे लगा लिया ॥ ७ ॥ गोदमें रखकर दूध पिलाने और रामके चरित्र गान करने लगी ॥ ८ ॥

सोरठा-जेहि सुखलागि पुरारि, अशुभ वेष कृत शिवसुखद ॥
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुखमहँ सन्तत मगन ॥ ५ ॥

जिस सुखके निमित्त त्रिपुरके शत्रु शिवजी महाराज अशुभ वेश किये रहते हैं अथवा रूप छिपाकर अवधमें जाते हैं, जो शिवजी सुखके देनेवाले हैं, अवधपुरीके नर नारी उसी सुखमें सदा मग्न रहते हैं, अथवा इसी सुखके निमित्त शिवजी योगी बन अवधमें जाते हैं ॥ ५ ॥

सोरठा-सोई सुख लवलेश, जिन, बारेक स्वप्नेहुँ लहेउ ॥
ते नहिं गनहिं खगेश, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति ॥ ६ ॥

उसी सुखका लवलेश जिसने स्वप्नमें भी एक बार पाया है, हे गरुड़जी ! वे सज्जन सुन्दर मतिवाले ब्रह्म सुखको कुछ भी नहीं गिनते ॥ ६ ॥

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला * देखेउँ बाल विनोद रसाला ॥१॥
राम प्रसाद भक्ति वर पायउँ * प्रभुपद वंदि निजाश्रम आयउँ ॥२॥

मैं भी कुछ दिनोंतक अयोध्यामें रहा और सुन्दर बालविनोद देखे ॥ १ ॥ रामके प्रसादसे भक्तिका वरदान पाकर प्रभुके चरण वंदन करके फिर मैं अपने आश्रमको चला आया ॥२॥

तबते मोहिं न व्यापी माया * जबते रघुनायक अपनाया ॥३॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा * हरि माया जिमि मोहिं नचावा॥४॥

तबसे मुझे माया नहीं व्यापी जबसे रघुनाथजीने मुझे अपनाया है ॥ ३ ॥ यह सब गुप्त चरित्र मैंने तुमसे कहा जिस प्रकार प्रभुकी मायाने मुझे नचाया था ॥ ४ ॥

निज अनुभव अब कहौं खगेशा * बिनु हरिभजन न जाहिं कलेशा॥५॥
रामकृपा बिनु सुनि खगराई * जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥६॥

हे गरुड़जी ! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना हरिभजनके क्लेश नहीं मिटते॥५॥ हे गरुड़जी ! सुनिये, रघुनाथजीकी कृपाके विना रामकी प्रभुता नहीं जानी जाती ॥ ६ ॥

जाने बिनु न होइ परतीती * बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥७॥
प्रीति विना नहि भक्ति दृढ़ाई * जिमि खगेश जलकी चिकनाई॥८॥

और जाने विना प्रतीति नहीं होती, प्रतीतिके विना प्रीति नहीं होती ॥७॥ प्रीतिके विना दृढ़ भक्ति नहीं होती, जिस प्रकार जलकी चिकनाई सदा दृढ़ नहीं रहती, सूखनेपर जाती रहती है, अथवा जैसे घी तेल जलमें डाल देनेसे प्रवेश नहीं होता ऊपर ही उतराया रहता है उसी प्रकार प्रीति विना भक्ति नहीं होती ॥ ८ ॥

सोरठा-बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु ॥
गावहिं वेद पुराण, सुखकि लहहिं हरिभक्ति बिनु ॥ ७ ॥

विना गुरुके क्या ज्ञान होता है ? और ज्ञानके विना वैराग्य नहीं होता, यह वेद और पुराण कहते हैं कि नारायणकी भक्तिके विना क्या कोई सुख पाता है ! नहीं पाता ॥ ७ ॥

सोरठा-कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु ॥
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि यतन पचि पचि मरिय ॥८॥

हे तात ! स्वाभाविक सन्तोषके विना कोई विश्राम पा सकता है ? अर्थात् नहीं पा सकता चाहे करोड़ यत्न कर कोई पच पच मरे तो क्या विना जलके नाव चल सकती है ? ॥ ८ ॥

बिनु सन्तोष न काम नशाहीं ❋ काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥१॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा❋थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥२॥

विना सन्तोषके कामनाओंका नाश नहीं होता; कामनाओंके होते हुए सुख स्वप्नमें भी नहीं (प्राप्त) होता ॥ १ ॥ रामके भजन विना क्या कामना मिटती है ? विना थल (पृथ्वी) के क्या वृक्ष जम सकता है ? ॥ २ ॥

बिनु विज्ञान कि समता आवे ❋कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावे॥३॥
श्रद्धा विना धर्म नहिं होई ❋ बिनु महि गन्ध कि पावे कोई ॥४॥

विना विज्ञानके क्या समता आती है अर्थात् नहीं आती ? और कोई आकाशके विना क्या अवकाश पा सकता है अर्थात् नहीं पा सकता ॥ ३ ॥ श्रद्धाके विना धर्म नहीं होता पृथ्वीके विना क्या कोई गंध पा सकता है ? "गंधवती पृथ्वी" यह न्यायका वचन है ॥४॥

बिनु तप तेज कि कर विस्तारा ❋ जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥५॥
शीलकि मिलु बिनु बुध सेवकाई ❋ जिमि बिनु तेज न रूप गुसांई॥६॥

विना तपके क्या किसीका तेज विस्तृत हो सकता है ? अथवा संसारमें क्या जलके विना रस हो सकता है ॥ ५ ॥ विना पंडितकी सेवा किये क्या शीलकी प्राप्ति हो सकती है ? जैसे विना तेजके रूप नहीं होता, (क्योंकि तेज अग्निका अंश है) ॥ ६ ॥

निज सुख बिनु मन होइकि थीरा ❋ परस कि होइ विहीन समीरा ॥७॥
कवनिउ सिद्ध कि बिनु विश्वासा ❋बिनु हरि भजन कि भव भय नासा॥८॥

अपना सुख अर्थात् रघुनाथजीकी प्रीति विना मन क्या स्थिर हो सकता है ? और क्या कोई वायुके विना स्पर्श कर सकता है ? "रूपरहित स्पर्शवान् वायुः"॥७॥ विश्वासके विना क्या कोई भी सिद्धि हो सकती है ? इसी प्रकार हरिके भजन विना क्या संसारका भय नष्ट हो सकता है॥८॥

दोहा–बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ॥
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ॥ १२३ ॥

विना विश्वासके भक्ति नहीं होती, भक्ति विना राम प्रसन्न नहीं होते, रामकी कृपाके विना स्वप्नमें भी जीवको विश्राम नहीं मिलता ॥ १२३ ॥

सोरठा–अस विचारि मतिधीर, तजि कुतर्क संशय सकल ॥
भजहु राम रघुवीर, करुणाकर सुन्दर सुखद ॥ ९ ॥

हे मतिमें धैर्य रखनेवाले ! ऐसा विचार सब कुतर्क और सन्देहको त्यागकर करुणासागर सुख निधान राम रघुनाथजीका भजन करो ॥ ९ ॥

निज मति सरिस नाथ मैं गाया ❋ प्रभु प्रताप महिमा खगराया ॥१॥
कहेउँ न कछु करि युक्त बिसेखी ❋ यह सब मैं निज नयनन देखी॥२॥

हे नाथ स्वामी खगपति ! मैंने (जो) अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभुके प्रतापकी महिमा

आपको गाकर सुनायी है ॥ १ ॥ सो कुछ विशेष युक्तिसे बनाकर नहीं कही है, बल्कि यह मैंने अपनी आंखोंसे देखी है ॥ २ ॥

महिमा नाम रूप गुण गाथा * सकल अमित अनन्त रघुनाथा ॥३॥
निज निज मति मुनि हरिगुण गावहिं * निगम शेष शिवपार न पावहिं ॥४॥

हे गरुड़जी ! रघुनाथजीकी महिमा नामरूप गुण सब अनंत हैं और रघुनाथजी भी (आदि अन्त मध्य रहित) अनंत हैं ॥ ३ ॥ मुनिजन अपनी मति अनुसार हरिके गुण गाते हैं परन्तु वेद शेष शिवजी भी पार नहीं पा सकते ॥ ४ ॥

तुमहिं आदि खग मशक प्रयंता * नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥५॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा * तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥६॥

देखो गरुड़जी ! आपसे लेकर पक्षी मच्छर तक जैसे आकाशमें उड़ते हैं परन्तु उसका अन्त नहीं पाते ॥ ५ ॥ हे तात ! इसी प्रकार रघुनाथजीकी महिमा अथाह है क्या उसकी थाह कभी कोई पा सकता है ? ॥ ६ ॥

राम कामशत कोटि सुभग तन * दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन ॥७॥
शक्रकोटिशत सरिस विलासा * नभशत कोटि अमित अवकाशा ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजी करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाले हैं और करोड़ों दुर्गाके समान अनेक शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ करोड़ों इन्द्रके समान उनका विलास है और करोड़ों आकाशके समान अवकाश है (आकाश अनंत है) ॥ ८ ॥

दोहा-मरुत कोटिशत विपुल बल, रविशत कोटि प्रकाश ॥
शशि शतकोटि सुशीतल, शमनसकल भव त्रास ॥ १३४ ॥

रघुनाथजीमें सौ करोड़ वायुके समान अति बल है और सौ करोड़ सूर्यके समान प्रकाश है, सौ करोड़ चन्द्रमाके समान परम शीतल हैं, सब संसारके दुःखोंके शांत करने वाले हैं ॥ १३४ ॥

दोहा-काल कोटिशत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत ॥
धूमकेतु शतकोटि सम, दुराधर्ष भगवन्त ॥ १३५ ॥

सौ करोड़ कालके समान अत्यंत (दुस्तर) तरनेके अयोग्य (दुर्ग) कठिनतासे प्राप्त होने योग्य और (दुरंत) जिनका अन्त पाना दूर है और सौ करोड़ धूमकेतु (अग्नि) के समान भगवान् (दुराधर्ष) कठिनतासे धारण करने योग्य हैं ॥ १३५ ॥

प्रभु अगाध शतकोटि पताला * शमन कोटिशत सरिस कराला ॥१॥
तीरथ अमित कोटिसम पावन * नाम अखिल अघपुञ्ज नशावन ॥२॥

सौ करोड़ पातालके समान प्रभु अगाध हैं, सौ करोड़ यमराजके समान भयंकर हैं अर्थात् यमराजसे भी अधिक कठोर हैं ॥ १ ॥ सौ करोड़ तीर्थोंके समान पवित्र जिनका नाम सब पाप समूहको नष्ट करता है ॥ २ ॥

हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा * सिन्धु कोटिशत सरिस गँभीरा ॥३॥
कामधेनु शतकोटि समाना * सकल कामदायक भगवाना ॥४॥

सौ करोड़ हिमालयके समान रघुनाथजी अचल हैं और सौ करोड़ सिंधुके समान गंभीर हैं ॥ ३ ॥ इच्छित सब कामना देनेको रघुनाथजी सौ करोड़ कामधेनुके समान हैं ॥ ४ ॥

शारद कोटि अमित चतुराई * विधि शतकोटि सृष्टि निपुणाई॥५॥
विष्णु कोटिशत पालन कर्त्ता * रुद्र कोटिशत सम संहर्त्ता ॥६॥

प्रभुमें सौ करोड़ सरस्वतीके समान असीम चतुराई है, सौ करोड़ ब्रह्माके समान सृष्टिके रचनेकी निपुणता है ॥ ५ ॥ सौ करोड़ विष्णुके समान पालने और सौ करोड़ रुद्रके समान संहार करनेकी शक्ति है ॥ ६ ॥

धनद कोटिशत सम धनवाना * माया कोटि प्रपंच निधाना ॥७॥
भार धरण शत कोटि अहीशा * निरवधि निरुपम प्रभु जगदीशा॥८॥

सौ करोड़ कुबेरके समान धनवान् और करोड़ों मायाके समान प्रपंचके निधान हैं ॥ ७ ॥ भूमिका भार धारण करनेको सौ करोड़ शेषजीके समान हैं । अवधि रहित, उपमा रहित जगत्के ईश्वर हैं, स्वामी हैं, (यह सब "शिवसंहिता" में लिखा है) ॥ ८ ॥

छन्द-निरुपम न उपमा आन राम समान निगमागम कहे ।
जिमि कोटिशत खद्योत रविसम कहत अतिलघुता लहे ॥
इह भाँति निज निज मति विलास मुनीश हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भावगाहक अति कृपालु सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥२१॥

भगवान् राम उपमा रहित हैं उन्हें और उपमा नहीं, रामके समान राम ही हैं यह वेद शास्त्र कहते हैं उनको उपमा देनी ऐसी है जैसे सौ करोड़ पटवीजनोंको सूर्यके समान कहनेसे मनुष्यकी अत्यन्त लघुता प्रकट होती है इस प्रकार अपनी बुद्धिके अनुसार मुनिजन हरिका बखान करते हैं, स्वामी राम तो भावके ग्राहक अत्यन्त दयासागर हैं, प्रेमके वचन सुनकर सुख मानते हैं ॥ २१ ॥

दोहा- राम अमित गुणसागर, थाह कि पावै कोइ ॥
सन्तनसन जस कछु सुनेउँ, तुमहिं सुनायउँ सोइ ॥ १२६ ॥

रघुनाथजी अपार गुणोंके सागर हैं क्या कोई उनकी थाह पा सकता है ? जैसा मैंने सन्तोंसे सुना था वैसा आपको सुना दिया ॥ १२६ ॥

सोरठा-भाववश्य भगवान, सुखनिधान करुणा भवन ॥
तजि ममता मदमान, भजिय सदा सीतारमन ॥ १० ॥

सुखके घर करुणाके सागर भगवान् (भाव) प्रेमके ही वशमें हैं इस कारण उचित है कि ममता मद मान छोड़कर सदा सीतारमण श्रीरामचन्द्रजीका भजन करें ॥ १० ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी-मिश्रकृत भाषाटीकायामुत्तरकांडान्तर्गतो पंचमो विश्रामः ॥ ५ ॥

दोहा-श्रीभुशुण्डिके जन्मकी, पूर्व कथा सुखधाम ।
अरु कलियुगके चरित सब, यही षष्ठ विश्राम ॥ ६ ॥

सुनि भुशुण्डिके वचन सुहाये * हर्षित खगपति पंख फुलाये ॥१॥
नयन नीर मन अति हरषाना * श्रीरघुपति प्रताप उर आना ॥२॥

(शिवजी बोले-हे पार्वती !) काकभुशुण्डिके यह सुन्दर वचन सुन प्रसन्न हो गरुड़जीने पंख फुलाये (अर्थात् रोमांच हो गया) ॥ १ ॥ नेत्रोंमें जल भर आया, मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप हृदयमें समाया ॥ २ ॥

पाछिल मोह समुझि पछिताना ❀ ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना॥३॥
पुनि पुनि काक चरण शिरनावा ❀ जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥४॥

पिछला मोह समझकर गरुड़जीको पछतावा आया कि मैंने अनादि ब्रह्मको मनुष्य करके जाना ॥ ३ ॥ बारंबार काकके चरणोंमें शिर नवाया और श्रीरामचन्द्रजीके समान जानकर (बहुत) प्रेम बढ़ाया ॥ ४ ॥

गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई ❀ जौ विरंचि शंकर सम होई ॥५॥
संशय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता ❀ दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता ॥६॥

गुरुके बिना कोई संसार सागर पार नहीं होता चाहे वह ब्रह्मा और शिवजीके समान ही क्यों न हो ? ॥ ५ ॥ हे तात मुझको संशयरूपी सर्पने ग्रस लिया था इस कारण अत्यन्त दुःखदायक उस विषकी लहर आती रही कुतर्करूपी बावलापन था ॥ ६ ॥

तव स्वरूप गारुड़ि रघुनायक ❀ मोहि जियायहु जनसुखदायक॥७॥
तव प्रसाद मम मोह नशाना ❀ राम रहस्य अनूपम जाना ॥८॥

सो जनोंके सुखदायक रघुनाथजीने आप सरीखे गारुड़ी मंत्रवेत्ताओंके पास भेजकर मुझे जिला लिया, (यह अवरेब कविता है) ॥ ७ ॥ आपके प्रसादसे मेरा मोह नष्ट हो गया और श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर अनुपम रहस्य जान लिया ॥ ८ ॥

दोहा-ताहि प्रशंसि विविध विधि, शीश नाइ कर जोरि ॥
वचन विनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥ १३७ ॥

काकभुशुण्डिकी अनेक बातोंसे प्रशंसा करके शिर नवाया हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक नीतिसे भरे हुए कोमल वचन गरुड़जी बोले ॥ १३७ ॥

दोहा-प्रभु अपने अविवेकते, बूझेउँ स्वामी तोहि ॥
कृपासिंधु सादर कहहु, जानि दास निजमोहि ॥ १३८ ॥

हे स्वामी ! अपने अज्ञान वश मैं आपसे पूँछता हूँ आप मुझको अपना दास जानकर हे कृपासागर आदर पूर्वक कहिये ॥ १३८ ॥

तुम सर्वज्ञ तज्ञ तम पारा ❀ सुमति सुशील सरल आचारा ॥१॥
ज्ञान विरति विज्ञान निवासा ❀ रघुनायकके प्रिय तुम दासा ॥२॥

आप सर्वज्ञ, ब्रह्मरूप और अज्ञानसे परे हो, सुन्दरमतियुक्त; सुशील और सरल आचरण वाले हो ॥ १ ॥ आप ज्ञान, वैराग्य और विज्ञानके निवास (घर) हो, और रघुनाथजीके आप प्यारे दास हो ॥ २ ॥

कारण कवन देह यह पाई ❀ तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥३॥
रामचरित सर सुन्दर स्वामी ❀ पायहु कहां कहहु नभगामी ॥४॥

फिर क्या कारण है जो आपने यह देह पायी ! हे तात ! मुझको समझा कर कहिये ॥ ३ ॥

आकाशमें चलने वाले हे स्वामी ! यह रामचरितरूपी सुन्दर सरोवर आपने कहां पाया ? सो भी मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

नाथ सुना मैं अस शिव पाहीं ❁ महाप्रलयहु नाश तव नाहीं ॥५॥
मृषा वचन ईश्वर नहिं कहही ❁ सो मेरे मन संशय अहही ॥६॥

नाथ ! मैंने शिवजीसे यह बात सुनी है कि महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता॥५॥ ईश्वर कभी झूठ वचन नहीं कहते, सो इस बातका मेरे मनमें संशय है ॥ ६ ॥

अग जग जीव नाग नर देवा ❁ नाथ सकल जग काल कलेवा ॥७॥
अण्डकटाह अमित लय कारी ❁ काल सदा दुरितक्रम भारी ॥८॥

वृक्ष पर्वतादि और चलनेवाले जीव जितने नाग, नर, देव आदि हैं हे नाथ ! यह सब जगत कालका कलेवा है॥७॥ और काल अनेकों ब्रह्मांडोंका नाश करनेवाला बड़ा भारी कठिन है॥८॥

सोरठा–तुमहि न व्यापत काल, अतिकराल कारण कवन ॥
सो मोहि कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाव कि योग बल ॥ ११ ॥

किन्तु वह अति कराल काल आपको नहीं व्यापता है; इसका क्या कारण है ? हे नाथ कृपासागर ! सो मुझसे कहिये, यह ज्ञानका प्रभाव है कि योग का बल ॥ ११ ॥

दोहा--प्रभु तव आश्रम आयउँ, मोर मोह भ्रम भाग ॥
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग ॥ १२९ ॥

हे प्रभु ! आपके आश्रममें आते ही मेरा भ्रम जाता रहा, इसका क्या कारण है ? हे नाथ सो अब आप प्रेमसहित वर्णन कीजिये ॥ १२९ ॥

गरुड़ गिरा सुनि हर्षेउ कागा ❁ बोले उमा सहित अनुरागा ॥१॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी ❁ प्रश्न तुम्हार मोहि अति प्यारी॥२॥

हे पार्वती ! गरुड़की वाणी सुनकर काकभुशुण्डजी (बहुत) प्रसन्न हुए और बड़े प्रेमसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे गरुड़जी ! आपकी मति को बारंबार धन्यवाद देता हूँ; आपके प्रश्न मुझको बहुत प्यारे लगते हैं ॥ २ ॥

सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई ❁ बहुत जन्मकी सुधि मोहिं आई ॥३॥
अब निज कथा कहहुँ मैं गाई ❁ तात सुनहु सादर मन लाई ॥४॥

आपके प्रेमसहित सुन्दर प्रश्न सुनकर मुझको बहुत जन्मोंकी सुधि आगयी ॥ ३ ॥ मैं अपनी सब कथा गाकर कहता हूँ हे वत्स ! आप आदर पूर्वक मन लगाकर सुनिये ॥ ४ ॥

जप तप व्रत मख शम दम दाना ❁ विरति विवेक योग विज्ञाना ॥५॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा ❁ तेहि बिनु कोउ न पावे क्षेमा ॥६॥

जप,तप,व्रत, यज्ञ, शम, दम, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान ॥५॥ सबका फल यही है कि रघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम हो क्योंकि उसके विना कोई क्षेम(विश्राम)को नहीं प्राप्त होता है ॥६॥

इहि तनु राम भक्ति मैं पाई ❁ ताते मोहि ममता अधिकाई ॥७॥
जेहिते कछु निज स्वारथ होई ❁ तेहिपर ममता कर सब कोई ॥८॥

इस शरीरसे मैंने रामकी भक्ति पायी है; इस कारण यह शरीर मुझको अधिक प्यारा है ॥७॥ क्योंकि जिससे कुछ अपना स्वार्थ होता है उसपर सब कोई ममता करते हैं ॥ ८ ॥

सोरठा--पन्नगारि असि नीति, श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं ॥
अतिनीचहुसन प्रीति, करिय जानि निज परम हित ॥१२॥

हे गरुड़जी ! यह नीति वेदसम्मत है और सज्जन पुरुष भी कहते हैं कि अपना जिससे परम हित हो उस अत्यन्त नीचसे प्रीति करनी चाहिये ॥ १२ ॥

सोरठा--पाट कीटते होइ, तेहिते पाटम्बर रुचिर ॥
कृमि पालैं सब कोइ, परम अपावन प्राण सम ॥ १३ ॥

हे तात ! देखिये; रेशम कीड़ेसे होता है और उससे सुन्दर पाटम्बर बनता है; यद्यपि वह कीड़ा अति अपवित्र है परन्तु हितकर जानकर सब कोई उसको प्राणोंके समान पालते हैं॥१३॥

स्वारथ सांच जीव कहँ येहा * मन क्रम वचन राम-पद नेहा ॥१॥
सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा * जो तनु पाय भजे रघुवीरा ॥२॥

जीवनका सच्चा स्वार्थ यही है कि मन कर्म-वचनसे रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति करना ॥१॥ वही पवित्र और वही सुन्दर शरीरवाला है; जो शरीरको पाकर रघुनाथजीका भजन करे ॥ २ ॥

राम विमुख लहि विधिसम देही * कवि कोविद न प्रशंसहिं तेही ॥३॥
राम-भक्ति यहि तन उर जामी * ताते मोहिं परम प्रिय स्वामी ॥४॥

रामसे विमुख होकर यदि विधाताके समान भी देह मिले तो कवि और पंडित उसकी बड़ाई नहीं करते ॥ ३ ॥ इस मेरे शरीर तथा हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न हुई है; इस कारण हे स्वामिन् यह मुझको बहुत प्यारा है ॥ ४ ॥

तजउँ न तनु निज इच्छा मरना * तनु बिनु वेद भजन नहिं वरना ॥५॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा * राम विमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥६॥

इसी कारण शरीर नहीं त्यागता हूँ और वैसे ही मेरी इच्छासे मृत्यु है वेदने कहा है कि शरीरके विना भजन नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ पहले तो मुझको भी मोहने बहुत दुःख दिया और श्री रामचन्द्रजीसे विमुख होनेके कारण मैं कभी सुखसे नहीं सोया ॥ ६ ॥

नाना जन्म कर्म पुनि नाना * किये योग जप तप मख दाना ॥७॥
कवनि योनि जन्मेउँ जहँ नाहीं * मैं खगेश भ्रमि भ्रमि जगमाहीं ॥८॥

अनेक जन्म लिये और कर्म भी अनेक किये, फिर योग, जप,तप, यज्ञ, दान किये ॥७॥ हे गरुड़जी ! ऐसी कौनसी योनि है जिसमें जन्म लेकर मैं जगत्‌में नहीं भ्रमा हूँ ॥ ८ ॥

देखेउँ सब करि कर्म गुसांई * सुखी न भयउँ अबहिंकी नाई ॥९॥
सुधि मोहि नाथ जन्म बहुकेरी *शिव प्रसाद मति मोह न घेरी ॥१०॥

हे गोसाईं ! मैंने सब कर्म कर देख लिया है परन्तु इस समयकी नांई कभी नहीं हुआ ॥ ९ ॥ मुझको बहुत जन्मोंका स्मरण है क्योंकि हे नाथ ! शिवजीके प्रसादसे मोहने मेरी मति नहीं घेरी है ॥ १० ॥

दोहा-प्रथम जन्मके चरित अब, कहउँ सुनहु विहँगेश ॥
सुनि प्रभुपद रति उपजै, जाते मिटहिं कलेश ॥ १४० ॥

पहिले जन्मके चरित अब वर्णन करता हूँ, हे गरुड़जी ! सुनिये जिसके सुननेसे प्रभुके चरणोंमें प्रीति उपजे और क्लेश मिट जायँ ॥ १४० ॥

दोहा-पूर्व कल्पमहँ एक प्रभु, युग कलियुग मल मूल ॥
नर अरु नारि अधर्मरत, सकल निगम प्रतिकूल ॥ १४१ ॥

हे प्रभो ! पहिले कल्पमें एक युग कलियुग नामक पापका मूल था, उसमें नर और नारी अधर्ममें प्रीति करने वाले सब वेद शास्त्रके प्रतिकूल थे ॥ १४१ ॥

तेहि कलियुग कोशलपुर जाई * जन्मत भयउँ शूद्रतनु पाई ॥१॥
शिव सेवक मन क्रम अरु बानी * आन देव निन्दक अभिमानी ॥२॥

उसी कलियुगमें अयोध्यापुरीमें जाकर मैं शूद्रका शरीर पाकर जन्मा ॥१॥ मैं शिवजीका मन कर्म और वचनसे सेवक था किंतु अन्य देवताओंका निंदक और अभिमानी था ॥ २ ॥

धनमद मत्त परम वाचाला * उग्रबुद्धि उर दंभ विशाला ॥३॥
यदपि रहेउँ रघुपति-रजधानी *तदपि न कछु महिमा तव जानी॥४॥

धनके मदसे मत्त और बहुत बोलने वाला था, तीक्ष्ण बुद्धि और हृदयमें बड़ा पाखण्ड था ॥३॥ यद्यपि मैं रामजीकी राजधानी में रहा था, परंतु तो भी मैंने रघुनाथजीकी महिमा कुछ भी नहीं जानी ॥ ४ ॥

अब जाना मैं अवध प्रभावा * निगमागम पुराण अस गावा ॥५॥
कवनेहुँ जन्म अवध वस जोई * राम परायण सो फुर होई ॥६॥

अब मैंने अयोध्याका प्रभाव जाना; जो वेद पुराण शास्त्रने ऐसा गाया है कि ॥५॥ किसी जन्ममें भी जो कोई अयोध्यामें जाकर वास कर ले वह निश्चय रामपरायण अर्थात् रघुनाथ-जीका पूरा प्रेमी हो जाता है ॥ ६ ॥

अवध प्रभाव जान तब प्रानी * जब उर बसहिं राम धनुपाणी ॥७॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी * पाप परायण सब नर नारी ॥८॥

ये प्राणी अयोध्याका प्रभाव तब जानते हैं जब हृदयमें धनुष बाण लिये श्रीरामचन्द्रजी वास करते हैं ॥७॥ हे गरुड़जी वह काल कठिन था उसमें सब नर नारी महापापिष्ठ थे ॥८॥

दोहा-कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ ॥
दंभिन निजमति कल्प करि, प्रगट कीन्ह बहुपंथ ॥ १४२ ॥

कलिके पापोंने सब धर्मोंको ग्रस लिया, अच्छे ग्रन्थ लुप्त हो गये और पाखण्डियोंने अपने मनकी कल्पना करके बहुतसे पंथ निकाल लिये अर्थात कोई नवीन पंथी कोई चरण-दासी वेद त्यागी समाज हो गये ॥ १४२ ॥

दोहा-भये लोग सब मोह वश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म ॥
सुनु हरियान ज्ञाननिधि, कहहुँ कछुक कलि धर्म ॥ १४३ ॥

सब लोग मोहके वश हो गये, लोभने अच्छे कर्म ग्रस लिये, हे ज्ञानसागर गरुड़ ! सुनिये कलियुगके कुछ धर्म कहता हूँ ॥ १४३ ॥

वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी * श्रुतिविरोध रत सब नर नारी ॥१॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन * कोउ नहिं मानु निगम अनुशासन॥२॥

कलियुगके वर्ण-ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र, इनके धर्म और आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ये नहीं रहते, सब नर नारी वेदोंसे विरोध करने वाले होते हैं ॥१॥ ब्राह्मण तो वेदके वंचक और राजा प्रजाको लूटने वाले हैं वेद शास्त्रकी कोई आज्ञा नहीं मानना ॥ २ ॥

मारग सोइ जाकहँ जो भावा * पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥३॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई * ताकहँ संत कहै सब कोई ॥४॥

मार्ग जो जिसको अच्छा लगे वह वही ग्रहण कर लेता है और जो बहुत गाल बजावे वही पंडित समझा जाता है ॥ ३ ॥ जो झूठ बोले पाखण्ड रचे अर्थात् बातें बनावे अनेक प्रकारसे वेष बनावे , सब कोई उसे ही सन्त कहते हैं ॥ ४ ॥

सोइ सयान जो परधन हारी * जो करु दंभ सो बड़ आचारी ॥५॥
जो कछु छूठ मसकरी जाना * कलियुग सोइ गुणवंत बखाना ॥६॥

जो पराया धन हरना जाने वही बड़ा चतुर और जो पाखण्ड विस्तार करके लोगोंके दिखानेके निमित्त कर्म करे वही बड़ा आचारी कहलाता है ॥ ५ ॥ जो कोई झूठ और मसखरापन करना जानता है कलियुगमें वही बड़ा गुणी कहा जाता है ॥ ६ ॥

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी * कलयुग सोइ ज्ञानी वैरागी ॥७॥
जाके नख अरु जटा विशाला * सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥८॥

जो आचार वेद मार्ग त्यागनेवाले हैं अर्थात् नियोगकी आज्ञा देनेवाले हैं वे ही कलियुगमें ज्ञानी वैरागी कहे जाते हैं ॥ ७ ॥ जिसके नाखून और जटा बड़ी हों, कलियुगमें वही तपस्वीके नामसे प्रसिद्ध होता है ॥ ८ ॥

दोहा-अशुभ वेष भूषण धरे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं ॥
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं ॥ १४४ ॥

जो कुत्सित वेष और भयंकर भूषण खोपड़ी लटकाये; भक्ष्याभक्ष्यके खानेवाले भ्रष्ट हैं वे ही मनुष्य कलियुगमें सिद्ध और योगी कहलाकर पूजित होते हैं ॥ १४४ ॥

सोरठा-जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान बहु ॥
मन क्रम वचन लबार, ते वक्ता कलिकाल महँ ॥ १४ ॥

और जिन पुरुषोंका पराया अपकार (बुरा) कहना ही आचरण है उनको कलियुगमें बहुत गौरव और मान्यता होती है और मन वचन कर्म से लम्पट हैं वे कलियुगमें वक्ता (कथा कहने वाले हैं) ॥ १४ ॥

नारि विवश नर सकल गुसाईं * नाचहिं नट मर्कटकी नाईं ॥ १ ॥
शूद्र द्विजन्ह उपदेशहिं ज्ञाना * मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥ २ ॥

हे गरुड़जी ! सब मनुष्य स्त्रियोंके वशमें रहते हैं और जैसे नटके अधीन बन्दर नाचते हैं। उसी प्रकार नारीके वश पुरुष नाचा करते हैं ॥ १ ॥ शूद्र ब्राह्मणोंको ज्ञान उपदेश करते और यज्ञोपवीत पहनकर कुदान लेते हैं ॥ २ ॥

सब नर काम लोभ रत क्रोधी ❋ देव विप्र गुरु सन्त विरोधी ॥३॥
गुण-मंदिर सुन्दर पति त्यागी ❋ भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥४॥

सबही मनुष्य काम, क्रोध, लोभके वश देवता, ब्राह्मण, गुरु और सन्तोंके विरोध करने वाले ॥३॥ गुणोंके मंदिर सुन्दर पतिको त्याग कर अभिमानी स्त्रियां पर पुरुषका भजन करती हैं अर्थात् व्यभिचारमें प्रवृत्त होती हैं ॥ ४ ॥

सौभागिनी विभूषन-हीना ❋ विधवन के शृंगार नवीना ॥५॥
गुरु शिष बधिर अंध कर लेखा ❋ एक न सुनै एक नहिं देखा ॥६॥

सुहागिनियें गहनेसे रहित हैं, विधवा स्त्रियोंके नित्य नये शृङ्गार हैं ॥ ५ ॥ गुरु और चेले बहरे अन्धेके समान हैं एक सुनता नहीं और एक देखता नहीं, चेलेके अवगुणों को लोभवश हो गुरु नहीं देखते और शिष्य भी उन्हें द्रव्य देकर उनके उपदेशको नहीं सुनते उलटे गुरुको ही अपना शिष्य बनाते हैं ॥ ६ ॥

हरै शिष्यधन शोक न हरई ❋ सो गुरु घोर नरक महँ परई ॥७॥
मातु पिता बालकन बोलावहिं ❋ उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥८॥

जो गुरु शिष्योंके धनको हरता है और शोक नहीं हरता वह गुरु घोर नरकमें पड़ता है (शिष्यके सामने तो मीठी बातें बना दीं पर पीछे बुराई, जिसने चार पैसे और न्यौता दे दिया उसकी बड़ाई और जो न दे उसकी बुराई) ॥ ७ ॥ माता पिता बालकों को बुलाते और जिससे पेट भरे वही धर्म उनको सिखाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-ब्रह्मज्ञान विनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात ॥
कौड़ी लागि लोभ वश, करहिं विप्र गुरु घात ॥ १४५ ॥

ब्रह्मज्ञानके विना नर नारी दूसरी बात नहीं करते अर्थात्, अहं ब्रह्म, साधनके विना केवल शब्दब्रह्म कहते फिरते हैं और आचरण यह है कि कौड़ीके लोभसे ब्राह्मण और गुरुका घात करते हैं, (कलियुगमें जहां तहां ब्रह्मज्ञानी ही दृष्टि आते हैं) ॥ १४५ ॥

---

१. एक नगरमें नाम मात्रके अनेक ब्रह्मज्ञानी थे। एक वैद्य उस नगरमें आये। जिसके निकट जाकर बैठे, कुछ अपनी आजीविकाकी बात करें तो वे मनुष्य कहें 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' किसीका लेना न देना। औषधि रोगादि सब कुछ ब्रह्म ही है। वैद्यजी निराश हो घूमने लगे। काल क्रमसे उस देशका राजा रोगी हुआ और दूसरे वैद्योंकी औषधिने गुन न किया ये भी पहुंचे, हरिइच्छासे इनकी औषधियों से राजाको आरोग्यता होने लगी तब राजा बोले शीघ्र बल आवे ऐसी कोई औषधि दो तब वैद्य बोले– जिस औषधिकी आवश्यकता है वह आपके नगरमें बहुत है मँगाइये, राजा बोले वह क्या। वैद्यजी बोले एक ब्रह्मज्ञानीको मँगाओ उसका तेल निकाला जायगा। राजा बोला वह क्या? हमारे नगरमें बहुत हर्ष शोक रहित अनेक ब्रह्मज्ञानी हैं, चौकीदार भेजो, चौकीदार जाकर बाजारमें बोला भाई दुकानदार ! तुम ब्रह्मज्ञानी हो? वह बोला हां; चौकीदार- तो चलो राजा बुलाते हैं, दुकानदार बोला क्यों ? चौकीदार– ब्रह्मज्ञानीका तेल निकाला जायेगा, दुकानदार—भाई हँसीसे कहा था कि मैं ब्रह्मज्ञानी हूं, मेरा तो पड़ोसी भी ब्रह्मज्ञानी नहीं, क्षणभरमें यह बात नगरमें फैल गयी, जिससे पूछे वही कहे हम क्या ? हमारे तो बाप दादा भी ब्रह्मज्ञानी नहीं थे। चौकीदार ने राजासे कहा — आपके नगरमें कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं है। तब वैद्य बोले, चलो हम पहिचानते हैं वैद्यके आते ही वे ब्रह्मज्ञानी भेंटकर कहने लगे महाराज ! इस दुःखसे छुड़ाइये, बड़ा अपराध किया वैद्य हँसकर बोले, वह ब्रह्मज्ञानकी चर्चा कहां गई ? लोग बोले–महाराज ! अब तो कृपा कीजिये और जो चाहे सो लीजिये वैद्य भेंट ले फिर गये और राजासे कहा कि बिना ब्रह्मज्ञानीके औषधि बन जायगी, वैद्यने औषधि बनाकर आरोग्य किया। ऐसे कच्चे ब्रह्मज्ञानी कलियुगमें जहां तहां मिलते हैं।

दोहा–बादहिं शूद्र द्विजनसे, हम तुम ते कछु घाटि ॥
जानै ब्रह्म सो विप्रवर, आँख दिखावहिं डाटि ॥ १४६ ॥

शूद्र ब्राह्मणोंसे विवाद करते हैं कि क्या हम आपसे कुछ कमती हैं ? अरे भाई ! "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" जो ब्रह्मको जाने वही श्रेष्ठ ब्राह्मण, (जाति पांति कैसी ? कर्मसे वर्ण है जन्म से नहीं यह कहकर घुड़क कर आंख दिखाते हैं, सभी वैश्य शूद्र अपनेको क्षत्रिय कहकर वर्मा लिखते हैं और कर्म देखो तो म्लेच्छोंके करते हैं) ॥ १४६ ॥

परत्रिय-लंपट कपट सयाने * मोह द्रोह ममता लपटाने ॥१॥
तेइ अभेद बादी ज्ञानी नर * देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥२॥

बहुधा (जो मनुष्य) परायी स्त्रियोंको ठगनेवाले और कपटसयानता करनेवाले और मोह, द्रोह, वैर तथा ममतामें लिपटे हुए हैं ॥ १ ॥ वे मनुष्य अभेदवादी अद्वैत वेत्ता ज्ञानी कहलाते हैं, यह कलियुगका (अलौकिक) चरित्र देखा ॥ २ ॥

आपु गये अरु आनहिं घालहिं * जो कोउ श्रुति मारग प्रतिपालहिं॥३॥
कल्प कल्प भरि इक इक नर्का * परहिं जे दूषहिं श्रुतिकरि तर्का॥४॥

आप तो नष्ट हुए ही परंतु दूसरोंको भी नष्ट करनेका उद्योग करते हैं । जो कोई वेदमर्यादा पालन करे उसका जप तप छुड़ा दें ॥३॥ ऐसे मनुष्य एक एक कल्पतक नरकमें (जाकर) पड़ेंगे, जो वेदमें तर्क द्वारा मिथ्या दोष लगाते हैं अर्थात् अपना प्रयोजन सिद्ध करनेको अर्थ बदलते हैं ॥ ४ ॥

जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा * श्वपच किरात कोल कलवारा ॥५॥
नारि मुई घर सम्पति नासी * मूँड़ मुड़ाय होइँ सन्यासी ॥६॥

जो वर्णोंमें नीच–तेली, कुम्हार, चाण्डाल, किरात, कोल, कलवार हैं ॥ ५ ॥ ऐसे पुरुषोंकी जहां स्त्री मरी और घरकी सम्पत्ति नष्ट हुई अर्थात् खानेका ठीक घरमें न देखा तो मूँड़ मुँड़ा कर संन्यासी हो गये ॥ ६ ॥

ते विप्रनसन पाँव पुजावहिं * उभय लोक निज हाथ नशावहिं॥७॥
विप्र निरक्षर लोलुप कामी * निराचार शठ वृषली स्वामी ॥८॥

वे ब्राह्मणोंसे पैर पुजवाते और दोनों लोक अपने हाथसे नष्ट करते हैं ॥७॥ फिर ब्राह्मण भी तो निरक्षर भट्टाचार्य, लोभी, कामी, आचार रहित, शठ और दासीके स्वामी बन बैठते हैं ॥८॥

शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना * बैठि वरासन कहहिं पुराना ॥९॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा * जाइ न वरणि अनीति अपारा॥१०॥

शूद्र जप, तप, व्रत, दान करते हैं, अच्छे आसनों पर बैठकर पुराण बांचते हैं ॥ ९ ॥ सब मनुष्य अपने मनमाने आचरण करते हैं, वह अपार अनीति वरणी नहीं जाती, (जिससे जगत् भरकी दुर्दशा हो रही है) ॥ १० ॥

दोहा–भये वर्णसंकर कलिहि, भिन्न सेतु सब लोग ॥
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज शोक वियोग ॥ १४७ ॥

कलियुगमें बहुत तो वर्णसंकर (दोगले) हो गये और सब मर्यादा रहित होकर पाप करते हैं उसीके कारण भय, शोक, वियोग आदि दुःख पाते हैं (परंतु पाप करनेसे विरत नहीं होते) ॥ १४७ ॥

दोहा—श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ, संयुत विरति विवेक ॥
ते न चलहिं नर मोहवश, कल्पहिं पंथ अनेक ॥ १४८ ॥

जो वेद सम्मत नारायणकी भक्तिका मार्ग वैराग्य और विवेकयुक्त है, मनुष्य उस पर तो नहीं चलते किंतु अज्ञान वश होकर अनेक नवीन पंथ कल्पित करते हैं(इसीसे सदा दुःख भोगते हैं) ॥१४८॥

तोमर छन्द—बहु दाम सवारहिं धाम यती । विषया हरि लीन रही विरती ।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलिकौतुक तात न जात कही ॥२२॥
कुलवंति निकारहिं नारिसती । गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ।
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं । अबलानन दीख नहीं जबलौं ॥२३॥

यती अर्थात् संन्यासी जिनको घर और धन दोनों वर्जित हैं बहुतसे दाम धाम (दोनों) सँवारते हैं और उनका वैराग्य विषयोंने हर लिया है । तपस्वी तो धनी और गृहस्थी दरिद्र हैं, हे तात ! कलियुगका कौतुक कहा नहीं जाता ! अच्छे कुलकी पतिव्रता स्त्रीको घरसे निकालते हैं, और चेरी दासी नीच जातिको घरमें ले आते हैं, कुलकी परंपरागतिको दूर कर देते हैं । बेटे माता पिताको तबतक ही मानते हैं जबतक स्त्रीका मुख नहीं देखते ॥ २२ ॥ २३ ॥

ससुरारि पियारि लगी जबते । रिपुरूप कुटुम्ब भये तब ते ।
नृप पाप परायण धर्म नहीं । करि दंड विडम्ब प्रजा नितहीं ॥२४॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ।
नहिं मान पुराणहिं वेदहिं जो । हरिसेवक संत सही कलिसो ॥२५॥

तबसे (और सब) कुटुम्ब शत्रुरूप हो गये जबसे ससुराल प्यारी लगने लगी, राजा लोग पापमें प्रीति करनेवाले हो गये और प्रजाको नित्य ही दण्ड करके पीड़ित करते हैं, धनवान् कुलीन हो गये, कुलीन मलिन हो गये; ब्राह्मणका चिन्ह (पूजा जप) छोड़ एक यज्ञोपवीत मात्र रह गया, उघड़े रहना ही तपस्वीका चिन्ह रह गया, जो वेद और पुराणोंको नहीं मानते वे ही कलिमें हरिके सेवक और सन्त हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

कविवृन्द उदार धुनी न सुनी । गुणदूषक बात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परैं । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं ॥२६॥

श्रेष्ठ कवियोंके समाजकी ध्वनि तो सुनायी नहीं देती किंतु गुणमें दोष निकालनेवाले ही रह गये हैं, कलियुगमें बार बार दुकाल पड़ता है विना अन्नके दुःखित सब लोग मरते हैं ॥ २६ ॥

दोहा—सुनु खगेश कलि कपट हठ, दम्भ द्वेष पाखण्ड ॥
मान मोह मारादि मद, व्यापि रहे ब्रह्मंड ॥ १४९ ॥

सुनो गरुड़जी ! कलियुगमें कपट, दंभ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, काम, मद, आदि जगत्में व्याप रहे हैं ॥ १४९ ॥

दोहा—तामस धर्म करहिं सब, जप तप मख व्रत दान ॥
देव न वरषै धरणि पर, बये न जामहिं धान ॥ १५० ॥

मनुष्य सब धर्म-जप, तप, यज्ञ, व्रत दान, तामसी करते हैं (दूसरोंके अपकार वा छल कपटके निमित्त हिंसायुक्त कर्म तामसी हैं, सब मारण उच्चाटन करते हैं) इसी कारण मेघ पृथ्वी पर नहीं बरसता और बोये हुये धान भी नहीं जमते ॥ १५० ॥

छन्द-अबलाकच भूषण भूरि क्षुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥२७॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान विरोध अकारणहीं ।
लघु जीवन संवत पञ्चदशा । कल्पान्त न नाश गुमान अशा ॥२८॥

स्त्रियोंके पास बालमात्र ही भूषण और बड़ी भूख है, लोग धन न होनेसे बहुत दुःखी हैं परन्तु ममता बहुत है । मूर्ख सुख तो चाहते हैं परन्तु धर्ममें प्रीति नहीं करते (इससे दुःख पाते हैं) थोड़ी मति है वह भी कठोर है जिसमें कोमलता नहीं । मनुष्य रोगोंसे पीड़ित हैं भोग सुख कहीं भी नहीं, अभिमान वैर विना कारण ही सबसे करते हैं । थोड़ा जीना दश पांच वर्षका कलियुगमें होगा परन्तु अहंकार ऐसा कि कल्पांतमें भी हमारा नाश नहीं होगा वा मनुष्योंका लघु जीवन होगा ॥ २७ ॥ २८ ॥

छन्द-कलिकाल विहाल किये मनुजा । नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ।
नहिं तोष विचार न शीतलता । सब जाति कुजाति भये मँगता ॥२९॥
इरषा परुषा छल लोलुपता । भरिपूरि रही समता विगता ।
सब लोग वियोग विशोक हये । वर्णाश्रम धर्म अचार गये ॥३०॥

कलिकालने मनुष्योंको विहाल कर रखा है, कोई बेटी बहनको नहीं मानता, संतोष विचार शीतलता किसीमें नहीं रही सब जाति कुजाति मँगता हो गये । ईर्षा, कठोरता, छल और अति लोभादि परिपूर्ण हो रहे हैं और समता (मित्रता) जाती रही सब लोग वियोग और शोकसे मारे गये और वर्ण व आश्रमोंका आचार जाता रहा ॥ २९ ॥ ३० ॥

दम दान दया नहिं जानपनी । जड़ता परवंचकताऽतिघनी ॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे । पर निन्दकते जगमें बगरे ॥ ३१ ॥

इंद्रियोंका जीतना, दान, दया (जानपन) चातुर्य नहीं, जड़ता और परवंचकता बहुत है, अथवा इंद्रियदमन दान दयाका ज्ञाता कोई नहीं मिलता, सब स्त्री पुरुष अपने शरीरका पोषण करनेवाले हैं और पराई निंदा करनेवाले जगत्में फैले हैं ॥ ३१ ॥

दोहा-सुनु व्यालारि कराल कलि, मल अवगुण आगार ॥
गुणहु बहुत कलिकाल कर, विनु प्रयास निस्तार ॥ १५१ ॥

हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी ! यद्यपि यह कराल कलिकाल पाप और अवगुणका घर है, तो भी कलियुगमें बड़ा गुण है, विना प्रयास निस्तार हो जाता है ॥ १५१ ॥

दोहा-कृत युग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग ॥
जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग ॥ १५२ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें पूजा यज्ञ और योगसे जो गति होती है वह कलियुगमें केवल हरिके नाम लेनेसे लोग पाते हैं ॥ १५२ ॥

कृतयुग सब योगी विज्ञानी ❋ करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ॥१॥
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं ❋ प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ॥२॥

सतयुगमें तो सब योगी विज्ञानी होते थे और भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके संसारसे तरते थे ॥ १ ॥ त्रेतामें अनेक प्रकारके यज्ञ करके उसका फल प्रभुको समर्पण करके मनुष्य संसार सागरके पार हो जाते हैं ॥ २ ॥

द्वापर करि रघुपतिपद पूजा ❋ नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥३॥
कलियुग केवल हरि गुण गाहा ❋ गावत नर पावहिं भव थाहा ॥४॥

द्वापरमें रघुनाथजीके चरणोंकी पूजा करके मनुष्य संसार सागरसे पार हो जाते हैं; दूसरा उपाय नहीं है ॥ ३ ॥ कलियुगमें केवल हरिके गुणगान करने (और स्मरण करने) से ही मनुष्य संसार का थाह पा लेते हैं ॥ ४ ॥

कलियुग योग यज्ञ नहिं ज्ञाना ❋ एक अधार रामगुण गाना ॥५॥
सब भरोस तजि जो भज रामहिं ❋ प्रेम समेत गाव गुणग्रामहिं ॥६॥

कलियुगमें योग, यज्ञ, ज्ञान कुछ नहीं है, एक श्रीरामचन्द्रजीके गुणगान मात्रका ही आधार है ॥ ५ ॥ सब भरोसा छोड़ कर जो श्रीरामचन्द्रजीका भजन करते हैं और प्रेम समेत गुणसमूहका गान करते हैं ॥ ६ ॥

सो भव तर कछु संशय नाहीं ❋ नाम प्रताप प्रगट कलिमाहीं ॥७॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा ❋ मानस पुण्य होइ नहिं पापा ॥८॥

वे संसारसे तर जायँगे इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि कलियुगमें नामका प्रताप प्रकट है ॥७॥ कलियुगका एक पवित्र प्रताप है कि मनका किया हुआ पुण्य तो लग जाता है किंतु पाप नहीं लगता ॥ ८ ॥ "कृते यद्ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्" भागवते ॥

दोहा—कलियुग समयुग आन नहिं, जो नर कर विश्वास ॥
गाइ रामगुण गण विमल, भव तर विनहिं प्रयास ॥ १५३ ॥

कलियुगके समान दूसरा युग नहीं है जो मनुष्य विश्वास करे तो श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल गुणानुवादका गान करके विना श्रमके ही संसारसागरसे पार हो जावे केवल परमेश्वर के नामसे ही सब सिद्धि है; गीतामें कहा भी है—"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" ॥ १५३ ॥

दोहा—प्रगट चारि पद धर्मके, कलि महँ एक प्रधान ॥
येन केन विधि दीन्हे, दान करै कल्यान ॥ १५४ ॥

हे तात ! धर्मके चार चरण (सत्य, शौच, दया, और दान) प्रकट हैं, पर कलियुगमें एक ही प्रधान है कि जिस किसी विधिसे दान किया जाय, वही कल्याण करता है, यथा—"तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे" ॥ १५४ ॥

नितयुग होइँ धर्म सब केरे ❋ हृदय राम मायाके प्रेरे ॥१॥
शुद्ध सत्त्व समता विज्ञाना ❋ कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥२॥

हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीकी मायाकी प्रेरणासे सबको नित्य युगके धर्म होते रहते हैं ॥ १ ॥ जिस समय शुद्धता, सत्यता, मित्रभाव और विशेष ज्ञान अर्थात् अनुभव और मन प्रसन्न होता हो जानिये कि हमारे हृदयमें सतयुग वर्तता है ॥ २ ॥

सत्त्व बहुत कछु रज रति कर्मा * सब विधि शुभ त्रेताकर धर्मा ॥३॥
बहु रज सत्त्व स्वल्प कछु तामस * द्वापर धर्म हर्ष भय मानस ॥४॥

और जब सत्त्वगुण बहुत हो तथा कुछ रजोगुण भी आ जाय और सब प्रकार मन सुखी रहे तो जानिये कि त्रेताका धर्म वर्तता है ॥३॥ और जब रजोगुण अधिक, सत्त्वगुण थोड़ा हो तथा कुछ उसमें भी तमोगुण मिल जाय, और मनमें हर्ष शोक दोनों हों तो जानिये कि द्वापरका धर्म वर्तता है ॥ ४ ॥

तामस बहुत रजो गुण थोरा * कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥५॥
बुध युग धर्म जानि मनमाहीं * तजि अधर्मरति धर्म कराहीं ॥६॥

जब तमोगुण बहुत एवं थोड़ासा रजोगुण हो और (मनमें) चारों ओरसे विरोध सूझे तो जानिये कि यह कलियुगका धर्म है ॥ ५ ॥ पंडित लोग मनमें युगका धर्म विचार कर अधर्मसे प्रीति छोड़कर धर्म करते हैं (दूसरे युगका धर्म नहीं करते; अर्थात् असाध्य जानकर केवल रामनामको जपते हैं उनका चरित कहते सुनते हैं) ॥ ६ ॥

कलि अधर्म नहिं व्यापै ताही * रघुपति चरण प्रीति अति जाही॥७॥
नटकृत कपट विकट खग राया * नट सेवकहिं न व्यापइ माया ॥८॥

कलियुगके अधर्म उसको नहीं व्यापते, जिसकी रघुनाथजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति है ॥ ७ ॥ हे गरुड़जी ! जैसे नटका किया हुआ कपटका विकट चरित्र उसके चेलेको नहीं व्यापता, (वैसे ही कलियुगका कपट चरित्र हरिदासोंको नहीं व्यापता) ॥ ८ ॥

दोहा–हरिमायाकृत दोषगुण, विनु हरि भजन न जाहिं ॥
भजिय राम सब काम तजि, अस विचारि मनमाहिं ॥ १५५ ॥

हरिकी मायाके किये हुए दोष और गुण हरिके भजन विना नहीं जाते। इस प्रकार मनमें विचार सब कामना त्यागकर श्रीरामचन्द्रजीका भजन ही करना चाहिए ॥ १५५ ॥

दोहा–तेहि कलिकाल वर्ष बहु, बसेउँ अवध विहँगेश ॥
परेउ दुकाल विपत्ति वश, तब मैं गयउँ विदेश ॥ १५६ ॥

हे गरुड़जी ! कलियुगमें बहुत वर्ष तक मैं अयोध्याजीमें वास करता रहा, जब दुकाल पड़ गया तब दुःखी हो परदेशको चला गया ॥ १५६ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पंडित–ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायामुत्तरकांडान्तर्गतः षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

दोहा–जेहि विधि शिवको शाप भो, सो सप्तम विश्राम ॥
लोमसजीको शाप पुनि, कृपा सुमिरि श्रीराम ॥ ७ ॥

गयउँ उजैन सुनहु उरगारी * दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥१॥
गये काल कछु संपति पाई * तहँ पुनि करउँ शम्भु सेवकाई ॥२॥

हे गरुड़जी ! सुनिये तब मैं दीन मलिन दरिद्री दुःखी होकर उज्जैनको गया ॥ १ ॥ कुछ दिन वहां रहने पर थोड़ीसी सम्पत्ति पायी और फिर वहां शिवजीकी सेवकाई करने लगा॥२॥

विप्र एक वैदिक शिव पूजा ❋ करै सदा तेहि काज न दूजा ॥३॥
परम साधु परमारथ-विंदक ❋ शंभु उपासक नहिं हरि निंदक ॥४॥

वहां एक वैदिक ब्राह्मण सदा शिवजीकी पूजा किया करता था, उसको दूसरा काम नहीं था ॥ ३ ॥ अत्यंत साधु परमार्थका जाननेवाला शिवजीका उपासक था, किन्तु हरिकी भी निंदा नहीं करता था (जैसे अज्ञानी वैष्णव शिवकी और अज्ञानी शैव विष्णुकी निन्दा करते हैं) ॥ ४ ॥

सेवौं मैं तेहिं कपट समेता ❋ द्विज दयालु अति नीति निकेता ॥५॥
बाहिर नम्र देखि मोहिं साईं ❋ विप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥६॥

मैं उनको कपटपूर्वक सेवन करता था, किन्तु ब्राह्मण अतिदयालु नीतिके स्थान थे ॥५॥ वे ब्राह्मण देवता मुझको बाहरसे नम्र देखकर पुत्रकी नाईं पढ़ाते थे (और बड़ा प्यार करते थे)॥६॥

शंभु मन्त्र मोहिं द्विजवर दीन्हा ❋ शुभ उपदेश विविध विधि कीन्हा ॥७॥
जपउँ मंत्र शिव मंदिर जाई ❋ हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥८॥

(ॐ नमः शिवाय) यह शिवका मन्त्र मुझे श्रेष्ठ ब्राह्मणने दिया और भी अपने अनेक प्रकारके सुन्दर उपदेश दिये ॥ ७ ॥ मैं शिवके मंदिरमें बैठकर मन्त्र जपता था हृदयमें पाखण्ड और अहंकार अधिक था ॥ ८ ॥

दोहा—मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति वश मोह ॥
द्विज हरिजन देखत जरउँ, करउँ विष्णुकर द्रोह ॥ १५७ ॥

एक तो दुष्ट दूसरे पाप युक्त बुद्धिवाला; नीच जाति, मोहके वशीभूत होकर ब्राह्मण और हरि-भक्तको देखकर जलता था और विष्णुका द्रोह करता था (ऐसी कलुषित मति थी) ॥१५७॥

सोरठा—गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम ॥
मोहि उपजै अति क्रोध, दंभिहि नीति की भावई ॥ १५ ॥

गुरु मुझको नित्यप्रति समझाते और मेरे आचारणोंको देखकर बहुत दुःखी होते थे, किन्तु मुझको बड़ा क्रोध उपजता था क्योंकि पाखण्डी पुरुषोंको नीति नहीं भाती ॥ १५ ॥

एक बार गुरु लीन्ह बुलाई ❋ मोहिं नीति बहुभाँति सिखाई ॥१॥
शिव सेवाकर फल सुत सोई ❋ अविरल भक्ति रामपद होई ॥२॥

एक बार गुरुने बुलाकर अनेक प्रकारसे मुझको नीति सिखायी ॥ १ ॥ और कहने लगे हे पुत्र ! शिवजीकी सेवा करनेका यही फल है कि रघुनाथजीके चरणोंमें अचल भक्ति हो ॥२॥

रामहिं भजहिं तात शिव धाता ❋ नर पामरकर केतिक बाता ॥३॥
जासु चरण शिव अज अनुरागी ❋ तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥४॥

हे तात ! रामको तो शिव ब्रह्मा भी भजते हैं पामर मनुष्योंकी बात ही कितनी है ? ॥ ३ ॥ जिनके चरणोंमें शिव ब्रह्माजी प्रेम करते हैं उनसे द्रोह करके अभागे ! तू सुख चाहता है ॥४॥

हर कहँ हरिसेवक गुरु कहेऊ ❋ सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥५॥
अधम जाति मैं विद्या पाये ❋ भयउँ यथा अहि दूध पियाये ॥६॥

शिवजीको नारायणका सेवक जब गुरुने कहा तो हे गरुड़जी ! सुनते ही मेरा हृदय जलने लगा ॥५॥ नीच जाति मैं विद्या पाकर ऐसा उद्धत हो गया जैसे दूध पिलानेसे सांप हो जाता है॥६॥

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती * गुरुकर द्रोह करौं दिन राती ॥७॥
अतिदयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा *पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥८॥

मैं अभिमानी, खोटा, कुभाग्य, कुजाति रात दिन गुरुसे द्रोह करता था॥७॥ किंतु गुरुजी अति दयालु थे, थोड़ा भी क्रोध नहीं था, बारंबार मुझको उत्तम ज्ञान सिखाते थे ॥ ८ ॥

जेहिते नीच बड़ाई पावा * सो प्रथमहिं हठि ताहि नशावा॥९॥
धूम अनल संभव सुनु भाई * तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥१०॥

परंतु नीच पुरुष जिससे बड़ाई पाते हैं पहले निश्चय ही उसीका नाश करते हैं ॥ ९ ॥ हे भाई ! सुनिये (दृष्टांत है) कि अग्निसे ही धुआँ उत्पन्न होता है, परंतु जब वही धुआं बादलकी उपाधिको धारण करता है तब उसी अग्निको बुझा देता है ॥ १० ॥

रज मग परी निरादर रहई * सब कर पद प्रहार नित सहई॥११॥
पवन उड़ाइ प्रथम तेहि भरई *पुनि नृप नयन किरीटन्ह परई॥१२॥

धूलि मार्गमें निरादृत पड़ी रहती है और नित्य प्रति सबके चरण प्रहारको सहती है॥११॥ (दुःख देख) पवन जब उड़ाकर ऊपर ले जाता है तो पहले उसको भर देती है फिर राजाओंके नेत्र और मुकुटोंमें पड़ कर दुःख देती है ॥ १२ ॥

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा *बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥१३॥
कवि कोविद गावहिं असि नीती *खलसन कलहन भल नहिं प्रीती॥१४॥

सुनो गरुड़जी ! यह प्रसङ्ग समझकर पंडित जन नीचोंका संग त्याग देते हैं ॥१३॥ कवि पंडित ऐसी नीति वर्णन करते हैं-दुष्ट से विरोध और प्रीति दोनों अच्छी नहीं होती ॥ १४ ॥

उदासीन नित रहिय गुसाईं * खल परिहरिय श्वानकी नाईं॥१५॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई * गुरुहित कहहिं न मोहिं सुहाई॥१६॥

हे गुसाईं ! नित्यप्रति उदासीन भाव अवलम्बन किये रहे और दुष्टको कुत्तेकी नाईं (अशुचि जानकर) त्याग देवे ॥१५॥ मैं दुष्ट हृदय, मेरे कपट कुटिलाई बहुत थी, गुरु हित की कहते थे पर मुझे वह अच्छी नहीं लगती थी ॥ १६ ॥

दोहा-एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ शिव नाम ॥
गुरु आये अभिमानते, उठि नहिं कीन्ह प्रणाम ॥ १५८ ॥

एक बार मैं शिवजीके मंदिरमें शिवका मन्त्र जप रहा था उसी अवसरमें गुरुजी आ गये किंतु मैंने अभिमान के कारण उठकर प्रणाम नहीं किया (जी में यह विचार किया, इस समय तो शिवजीके मन्दिरमें बैठा हूँ जप करता हूँ प्रणाम करना ही नहीं चाहिये) ॥१५८॥

दोहा-गुरु दयालु नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेश ॥
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सकेउ महेश ॥ १५९ ॥

परन्तु गुरुजी बड़े दयालु थे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा और न हृदयमें क्रोध ही किया परन्तु गुरुको प्रणाम न करनेसे जो बड़ा पाप हुआ उसको शिवजी नहीं सह सके ॥१६९॥

मन्दिर माँझ भई नभ बानी ❋ रे हत भाग्य अधम अभिमानी॥१॥
यद्यपि तव गुरु स्वल्प न क्रोधा ❋ अतिकृपालु चितसम्यक बोधा॥२॥

सो मंदिरमें यह आकाशवाणी हुई–अरे हतभाग्य ! नीच ! अभिमानी ! ॥१॥ यद्यपि तेरे गुरु को थोड़ा सा भी क्रोध नहीं है, क्योंकि चित्तसे बड़ी कृपा करते हैं और पूर्ण ज्ञानी हैं (ज्ञानीको मान अपमान समान होते हैं) ॥ २ ॥

तदपि शाप देइहउँ शठ तोही ❋ नीति विरोध सुहाय न मोही ॥३॥
जौ नहिं दंड करउँ शठ तोरा ❋ भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥४॥

हे मूर्ख ! तो भी मैं तुमको शाप दूँगा, नीतिसे विरोध करनेवाला मुझको नहीं सुहाता ॥३॥ रे दुष्ट ! जो मैं तुमको दण्ड नहीं करूँगा तो मेरा वैदिक मार्ग भ्रष्ट हो जायगा, क्योंकि वेदकी आज्ञा है कि गुरुका सम्मान करना ॥ ४ ॥

जे शठ गुरुसन ईर्षा करहीं ❋ रौरव नरक कल्प शत परहीं ॥५॥
त्रिजग योनि पुनि धरहिं शरीरा ❋अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥६॥

जो मूर्ख गुरुसे ईर्षा (डाह) करते हैं, वे सौ कल्पतक रौरव नरकमें पड़ते हैं ॥५॥ फिर तिर्यक् योनि अर्थात् पक्षी आदिक शरीर धारण करके दश हजार वर्ष तक कष्ट पाते हैं ॥ ६ ॥

बैठि रहेसि अजगर इव पापी ❋ सर्प होइ खलमलमति व्यापी ॥७॥
महा विटप कोटर महँ जाई ❋ रहु अधमाधम अधगति पाई ॥८॥

रे पापी ! अजगरके समान (गुरुको) देखकर बैठा रहा इस कारण सर्प होगा, अरे दुष्ट ! तेरी बुद्धि में पाप समा गया ॥ ७ ॥ नीचातिनीच ! बड़े पेड़के खखोड़लेमें जाकर तू महानीच गतिको प्राप्त होकर रहेगा ॥ ८ ॥

दोहा–हाहाकार कीन्ह गुरु, सुनि दारुण शिव शाप ॥
कंपित मोहि विलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥१६०॥

यह शिवजीका महा कठिन शाप सुनकर गुरुजीने हाहाकार किया और मुझे कांपता हुआ देखकर उनके मनमें बड़ा दुःख उपजा ॥ १६० ॥

दोहा–करि दण्डवत सप्रेम गुरु, शिव सन्मुख कर जोरि ॥
विनय करत गद्गद गिरा, समुझि घोर गति मोरि ॥१६१॥

प्रेमपूर्वक गुरुजी दंडवत् करके शिवजीके सन्मुख हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे मेरी घोर गति समझकर विनती करने लगे (जो कुछ ब्राह्मणने विनतीकी है वही यह "रुद्राष्टक" के नामसे प्रसिद्ध है) ॥ १६१ ॥

छन्द–नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्॥

हे(ईशान)ईश्वरोंके ईश्वर ! मुक्तिरूप ! आप विभु अर्थात् समर्थ व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप हो, स्वयं प्रकट होनेवाले, गुणोंसे रहित, निर्विकल्प अर्थात् एक रस रहनेवाले और (निरीह)

इच्छारहित, सूक्ष्म और महान आकाशमें वास करनेवाले जिसमें आकाश बसता है वा आकाशके समान निर्मल हो वा चिन्मय महाकाशवत् सर्व व्यापक हो ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ ॥

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं । गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ॥
करालं महाकालकालं कृपालं । गुणागार संसार पारं नतोऽहम् ॥

आकारसे रहित, ओंकारके मूल और तुरीय अर्थात् जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिसे परे तुरीय, स्वरूप वचन ज्ञान और इंद्रियोंसे परे, ईश कैलाशके स्वामी और कराल जो महाकाल है उसके भी आप काल हैं, कृपालु हैं, गुणके स्थान, गुण और संसारसे परे आप हैं; ऐसे (शिवजीको) मैं नमस्कार करता हूँ ॥

तुषाराद्रिसंकाशगौरं गम्भीरं । मनोभूतकोटि प्रभाश्रीशरीरम् ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगंगा । लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥

आप हिमालय पर्वतके समान गौरवर्ण हैं, करोड़ों कामदेवके समान आपके शरीरकी शोभा है, मस्तक पर तरंगवाली सुंदर गंगा शोभित हैं, ललाटमें दोयजका चन्द्रमा शोभित होता है और कंठमें सर्प शोभाको प्राप्त हो रहे हैं आपका अलौकिक चमत्कार प्रकट होता है ॥

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् ॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरंसर्वनाथं भजामि ॥

कानोंमें कुण्डल डोल रहे हैं, और बड़े उज्ज्वल नेत्र हैं, आप प्रसन्न मुख नीलकंठ और दयाके घर हैं; सिंह चर्म और मुण्डोंकी माला आपको प्रिय है, ऐसे सबके नाथ आप शंकर अर्थात् कल्याणकारकको मैं भजता हूँ ॥

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखण्डं अजं भानुकोटि प्रकाशम् ॥
त्रयःशूल निरमूलनं शूलपाणिं । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥

आप प्रचंड तीक्ष्ण और अत्यन्त प्रौढ़, ईश्वर, अखंड, जन्म रहित और करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हो और (दैहिक-दैविक-भौतिक) तीनों शूलोंका नाश करनेवाले त्रिशूल आप हाथमें लिये हो, आप भावसे प्राप्त होते हो भवानी पति हो मैं आपको भजता हूँ ॥

कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी । सदा सज्जनानन्ददातापुरारी ।
चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥

आप कलासे परे कल्याण और कल्पांत (प्रलय) के करनेवाले हो, सदा सज्जनोंको आनंद देनेवाले, त्रिपुरासुरके शत्रु और चैतन्य आनन्दके पात्र, अज्ञानके हरण करनेवाले, कामदेवके नाश कर्त्ता प्रभो ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न होइये ॥

न यावत् उमानाथपादारविंदं । भजंतीह लोके परे वा नराणाम् ॥
न तावत्सुखं शांतिसन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम् ॥

हे उमानाथ ! जबतक (सब जीवोंसे सेवित) आपके चरणारविंदोंका भजन नहीं किया जाय तबतक इस लोक वा परलोकमें लोगोंको सुख वा शांति नहीं होती और न सन्तापका नाश होता है हे प्रभो ! आप सब प्राणियोंमें (अधिवास) स्थान हो, मुझपर आप प्रसन्न होइये ॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ॥
जराजन्मदुःखौघ तातप्यमानं । प्रभोपाहिआपन्नमामीशशंभो ॥ ३२ ॥

हे शंभो ! मैं योग, जप, पूजा नहीं जानता, केवल सदा सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ और वृद्धावस्था (बुढ़ापा) और जन्म मृत्युके दुःखोंसे मैं दुःखी हो आपकी शरणमें हूँ मेरी (और मेरे चेलेकी शापसे) रक्षा कीजिये; मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३२ ॥

श्लोक-रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ॥
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ १ ॥

ब्राह्मणने यह रुद्राष्टक बनाकर शिवको सन्तुष्ट किया जो मनुष्य इसको भक्तिसे पढ़ते हैं उनपर शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

दोहा-सुनि विनती सर्वज्ञ शिव, देखि विप्र अनुराग ॥
पुनि मन्दिर नभ वाणी, भइ द्विजवर वर मांग ॥ १६२ ॥

सर्वज्ञ श्रीशिवजी महाराज ब्राह्मणकी इस प्रकार विनय सुनकर और अपनेमें अत्यन्त प्रेम देखकर प्रसन्न हुए तो मंदिरमें आकाश वाणी हुई; हे ब्राह्मण ! तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ अब वर मांग ॥ १६२ ॥

दोहा-जो प्रसन्न प्रभु मोपर, नाथ दीनपर नेहु ॥
निजपद भक्ति देहु प्रभु, पुनि दूसर वर देहु ॥ १६३ ॥

(ब्राह्मण बोला) हे प्रभु ! जो आप मुझपर प्रसन्न हो और दीनोंपर प्रेम रखते हो तो हे नाथ ! एक तो अपने चरण कमलकी दृढ़ भक्ति दीजिये और दूसरा वर यह दीजिये कि ॥ १६३ ॥

दोहा-तव मायावश जीव ज़ड़, संतत फ़िरहिं भुलान ॥
तिन्हपर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिंधु भगवान ॥ १६४ ॥

यह मूर्ख जीव आपकी मायाके वश होकर सदा भूले फिरते हैं हे प्रभो ! कृपाके सागर भगवान् ऐश्वर्यवान् ! आप ऐसे जीवोंके ऊपर क्रोध न किया करें (क्योंकि एक तो वे स्वयं ही आपकी मायासे भ्रमते हैं, फिर क्रोध करनेसे कहां ठिकाना है ?) ॥ १६४ ॥

दोहा-शंकर दीनदयालु अब, यहि पर होहु कृपालु ॥
शापानुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरही कालु ॥ १६५ ॥

हे कल्याणकर्त्ता ! दीनोंके ऊपर दया करनेवाले ! आप उसपर दया कीजिये, हे स्वामिन् ! ऐसा यत्न कीजिये जिससे इसका थोड़ेही समयमें शापानुग्रह हो जाय ॥ १६५ ॥

इहि कर होइ परम कल्याना * सोइ करहु अब कृपा निधाना ॥१॥
विप्र गिरा सुनि परहित सानी * एवमस्तु इति भइ नभ बानी ॥२॥

हे दयासागर ! ऐसी कृपा कीजिये जिससे इस मेरे शिष्यका परम कल्याण हो ॥१॥ ब्राह्मण की परोपकार युक्त वाणी सुनकर 'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही हो यह आकाशवाणी हुई ॥२॥

यदपि कीन्ह यह दारुण पापा * मैं पुनि दीन्ह कोप करि शापा ॥३॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी * करिहउँ इहिपर कृपा विशेखी ॥४॥

यद्यपि इसने यह दारुण पाप किया है और फिर भी क्रोध करके शाप दिया है ॥ ३ ॥ तो भी तुम्हारी साधुता देखकर इसपर विशेष कृपा करता रहूँगा ॥ ४ ॥

क्षमाशील जे पर उपकारी ❋ ते द्विज प्रिय मोहि यथा खरारी॥५॥
मोर शाप द्विज व्यर्थ न जाइहि ❋ जन्म सहस्र अवशि यह पाइहि॥६॥

क्योंकि जो क्षमाशील अर्थात् क्षमा करते हैं (कोई दुर्वाक्य कहे, उसे सह लेते हैं) और जो पराया उपकार करते हैं वे ब्राह्मण मुझको रघुनाथजीके समान प्यारे हैं ॥५॥ हे ब्राह्मण ! मेरा शाप झूठा नहीं होगा; सहस्र जन्म तो यह अवश्य पावेगा ॥ ६ ॥

जन्मत मरत दुसह दुख होई ❋ इहि कहँ स्वल्प न व्यापै सोई ॥७॥
कौनेहु जन्म मिटै नहिं ज्ञाना ❋ सुनहु शूद्र मम वचन प्रमाना ॥८॥

किन्तु जन्मते मरते बड़ा दुःख होता है सो इसको वह दुःख किंचिन्मात्र भी नहीं व्यापेगा ॥ ७ ॥ (हे गरुड़ ! फिर मुझसे कहा) किसी जन्ममें तेरा आया ज्ञान नहीं मिटेगा, सुन शूद्र ! यह मेरे वचनका प्रभाव है ॥ ८ ॥

रघुपति पुरी जन्म तव भयऊ ❋ पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ ॥९॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे ❋ राम भक्ति उपजहि उर तोरे ॥१०॥

तेरा जन्म रामचन्द्रजीकी पुरीमें हुआ और फिर तूने मेरी सेवामें मन दिया है ॥ ९ ॥ अतः पुरीके प्रभाव और मेरे अनुग्रह (तेरे हृदयमें रामकी अविचल) भक्ति उत्पन्न होगी ॥ १० ॥

सुनु मम वचन सत्य अति भाई ❋ हरितोषक व्रत द्विज सेवकाई ॥११॥
अब जनि करेसि विप्र अपमाना ❋ जान स्वतन्त्र अनंत समाना ॥१२॥

भाई ! अब मेरे वचन जो परम सत्य और साररूप हैं सुन, ईश्वरको संतुष्ट करनेवाला यही व्रत है कि ब्राह्मणकी सेवा करना ॥ ११ ॥ अब कभी ब्राह्मणका निरादर मत करना; उनको सदा स्वतंत्र और ईश्वरके समान जानना ॥ १२ ॥

इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला ❋ काल दण्ड हरिचक्र कराला ॥१३॥
जो इनकर मारा नहिं मरई ❋ विप्र-रोष पावक सो जरई ॥१४॥

चाहे कोई इंद्रके वज्र, मेरे त्रिशूल, यमराजके दंड और नारायणके कराल चक्रसे ॥ १३ ॥ नहीं मरे; परंतु वह ब्राह्मणके क्रोधकी अग्निसे भस्म हो जाता है ॥ १४ ॥

अस विवेक राखेउ मन माहीं ❋ तुम कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥१५॥
औरउ एक आशिषा मोरी ❋ अप्रतिहत गति होइहि तोरी॥१६॥

ऐसा ज्ञान मनमें रखना, तुझको जगत्में कुछ दुर्लभ न रहेगा ॥ १५ ॥ और भी एक मेरा आशीर्वाद है कि तेरी गति स्वच्छंद होगी, अर्थात् तू चाहे जहां जा सकेगा कोई रोक टोक न होगी ॥ १६ ॥

दोहा—सुनि शिव वचन सप्रेम गुरु, एवमस्तु इति भाखि ॥
मोहि प्रबोधि गयउ गृह, शम्भुचरण उर राखि ॥ १६६ ॥

गुरुजी शिवजीके प्रेमके भरे वचन सुन 'एवमस्तु' ऐसा कहकर और मुझे (बहुत) समझाकर शिवजीके चरणोंको हृदयमें धारण किये घर चले गये ॥ १६६ ॥

दोहा—प्रेरित काल विंध्य गिरि, जाइ भयउँ मैं व्याल ॥
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउ गये कछु काल ॥ १६७ ॥

कालकी प्रेरणासे विंध्याचलमें जाकर मैं सर्प हुआ, कुछ समय बीतने पर विना प्रयास ही वह शरीर त्याग दिया ॥ १६७ ॥

दोहा—जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि, अनायास हरियान ॥
जिमि नूतन पट पहिरइ, नर परिहरइ पुरान॥१६८॥

हे हरियान गरुड़जी ! जो शरीर धारण करूँ वही अनायास त्याग कर दूँ शरीर धारण करनेमें कुछ भी क्लेश नहीं होता था, जैसे मनुष्य पुराना कपड़ा उतारकर नया पहन लेता है॥१६८॥

दोहा—शिव राखेउ श्रुतिनीति अरु, मैं नहिं पाव कलेश ॥
यहि विधि धरउँ विविध तनु, ज्ञान न गयउ खगेश ॥ १६९ ॥

शिवजीने वेदकी नीति रखी और मैंने कोई क्लेश भी नहीं पाया, इस प्रकार अनेक शरीर धारण किये, परंतु हे गरुड़जी ! ज्ञान नहीं गया (सम्पूर्ण बना रहा) ॥ १६९ ॥

त्रिजग योनि जोइ जोइ तनु धरऊँ * तहँ तहँ रामभगति अनुसरऊँ ॥१॥
एकशूल मोहि बिसर न काऊ * गुरुकर कोमल शील सुभाऊ ॥२॥

पक्षी आदिकी योनियोंमें जो जो शरीर धारण किये, वहां वहां रघुनाथजीकी भक्तिका अनुसरण करता रहा ॥ १ ॥ एक दुःख तो मुझको किसी समय भी नहीं बिसरता था, जो कि मेरे गुरुका कोमल शील स्वभाव था, (उनकी याद बहुत आती थी) ॥ २ ॥

चरम देह द्विजकर मैं पाई * सुर दुर्लभ पुराण श्रुति गाई ॥३॥
खेलउँ तहां बालकन मीला * करउँ सकल रघुनायक लीला ॥४॥

फिर चरम (अन्तकी) देह ब्राह्मणकी मैं पायी; जो देवताओंको भी दुर्लभ वेद पुराण कहते हैं ॥३॥ वहां बालकोंके संग मिलकर खेलता था और सम्पूर्ण रघुनाथजीकी लीला करता था॥४॥

प्रौढ़ भये मोहि पिता पढ़ावा * समुझउँ सुनहुँ गुनहुँ नहिं भावा॥५॥
मनते सकल वासना भागी * केवल रामचरण लय लागी ॥६॥

बड़े हुए पर मुझको पिताने पढ़नेको बैठाया तो समझूँ, सुनूँ, गुनूँ पर वह मेरे मनमें न भावे ॥ ५ ॥ सब वासना मनकी जाती रही; केवल रामके चरणोंमें लय लग गयी ॥ ६ ॥

कहु खगेश अस कवन अभागी * खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥७॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सुहाई * हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई ॥८॥

हे गरुड़जी ! कहो ऐसा कौन अभागी है जो कामधेनुको छोड़कर गधीका सेवन करेगा ? (भक्ति छोड़कर संसारी बात पढ़ेगा) ॥ ७ ॥ मैं प्रेममें मग्न रहूँ, कुछ अच्छा न लगे, पिता पढ़ा पढ़ाकर हार गये ॥ ८ ॥

भये कालवश जब पितु माता * मैं वन गयउँ भजन जनत्राता ॥९॥
जहँ जहँ विपिन मुनीश्वर पावउँ * आश्रम जाइ जाइ शिर नावउँ॥१०॥

१. "पूजा कोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः । जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः" ॥ १ ॥

जब माता पिता कालवश हो गये तब मैं जनकी रक्षा करनेवाले श्रीहरिका भजन करनेके निमित्त वनको गया ॥ ९ ॥ जहां जहां वनमें मुनीश्वरके आश्रम मिले वहीं मैं उनके पास जाकर शिर नवाऊँ ॥ १० ॥

पूँछौं तिनहिं रामगुण गाहा * कहहिं सुनौं हर्षित खगनाहा॥११॥
सुनत फिरउँ हरिगुण अनुवादा * अव्याहत गति शम्भु प्रसादा॥१२॥

हे गरुड़जी ! उनसे रघुनाथजीके गुणोंकी कथा पूँछू वे जो कहें मैं वह सुनूँ और प्रसन्न रहूँ ॥११॥नारायणके गुणानुवाद सुनता फिरूँ शिवजीके प्रसादसे मेरी स्वच्छंद गति तो थी ही॥१२॥

छूटी त्रिविध ईषणा गाढ़ी * एक लालसा उर अति बाढ़ी॥१३॥
रामचरण पंकज जब देखउँ *तब निज जन्म सफलकरिलेखउँ॥१४॥

हे तात ! तीन प्रकारकी लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा बड़ी गाढ़ी इच्छा है सो यह तीनों छूट गयीं और एक इच्छा अधिक बढ़ गयी ॥ १३ ॥ कि जब श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल देखूँ तब अपना जन्म सफल जानूँ ॥ १४ ॥

जेहि पूछउँ सोइ मुनि अस कहई * ईश्वर सर्वभूतमय अहई ॥१५॥
निर्गुण मत नहि मोहिं सुहाई * सगुण ब्रह्मरति उर अधिकाई॥१६॥

जिस मुनिसे पूँछू वही यही बात कहे, कि दर्शन क्या ईश्वर तो सबमें वर्तमान है ॥१५॥ यह निर्गुणका मत मुझको अच्छा न लगे, क्योंकि मेरे हृदयमें सगुण ब्रह्मकी अधिक प्रीति थी॥१६॥

दोहा-गुरुके वचन सुरति करि, रामचरण मन लाग ॥
रघुपतियश गावत फिरउँ, क्षण क्षण नव अनुराग ॥ १७० ॥

गुरुके वचन स्मरण करके मेरा मन रघुनाथजीके चरणोंमें लवलीन हो गया रघुनाथजीका यश गाता फिरूँ, क्षण क्षणमें नया अनुराग प्रेम हो ॥ १७० ॥

दोहा-मेरु शिखर वट छाया, मुनि लोमश आसीन ॥
देखि चरण शिर नायउँ, वचन कहेउँ अतिदीन ॥ १७१॥

सुमेरु पर्वतके ऊपर वट वृक्ष है,उसकी छायामें लोमश ऋषि बैठे हुए थे,देखते ही उनके चरणोंमें शिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन बोला(एक प्रलयमें उनका एक रोम गिरता है) ॥१७१॥

दोहा-सुनि मम वचन विनीत मृदु, मुनिकृपालु खगराज ॥
मोहि सादर पूंछत भये, द्विज आयउ केहि काज ॥ १७२ ॥

हे गरुड़जी ! मेरे कोमल और नीतियुक्त वचन सुनकर वे कृपालु मुनि आदरपूर्वक मुझको पूछने लगे, हे ब्राह्मण ! किस निमित्त आये हो ? ॥ १७२ ॥

दोहा-तब मैं कहेउँ कृपानिधि, तुम सर्वज्ञ सुजान ॥
सगुण ब्रह्म आराधना, मोहि कहहु भगवान ॥ १७३ ॥

तब मैंने कहा हे कृपासागर ! आप सर्वज्ञ अर्थात् सब जानते हो और चतुर हो, हे भगवन् ! आप मुझसे सगुण ब्रह्मकी आराधना कहिये ॥ १७३ ॥

तब मुनीश रघुपति गुणगाथा * कहे कछुक सादर खगनाथा ॥१॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि विज्ञानी * मोहि परम अधिकारी जानी ॥२॥

हे गरुड़जी ! तब मुनिराजने आदरसे श्रीरामचन्द्रजीके कुछ थोड़ेसे गुण सुनाये ॥ १ ॥ परंतु वे विज्ञानी मुनि ब्रह्मज्ञानमें प्रीति रखनेवाले थे, मुझको परम अधिकारी जानकर कि यह समझेगा ॥ २ ॥

लागे करन ब्रह्म उपदेशा ❋ अज अद्वैत अगुण हृदयेशा ॥३॥
अकल अनीह अनाम अरूपा ❋ अनुभव गम्य अखण्ड अनूपा ॥४॥

ब्रह्मका उपदेश करने लगे ब्रह्म, अज, अद्वैत, अगुण है सबके हृदयमें बसता है ॥३॥ कला रहित, इच्छा रहित, अनाम, रूप रहित, अखण्ड, अनूप और अनुभवसे जाना जाता है ॥४॥

मन गोतीत अमल अविनाशी ❋ निर्विकार निरवधि सुखराशी ॥५॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा ❋ वारि वीचि इव गावहिं वेदा ॥६॥

मन इंद्रियोंसे परे पापरहित नाशरहित विकार रहित, (जन्म, बुद्धि, विवर्ण, क्षीण, जरा, मरण यह छः विकार हैं) आदि अंत रहित और आनन्दस्वरूप है ॥ ५ ॥ वही तू है उसमें और तुझमें भेद नहीं, जैसे वेदके प्रमाणसे जल और लहर एक है वैसे जीव ब्रह्म एक है (अयमात्मा ब्रह्म; और सगुण निर्गुण एक हैं) ॥ ६ ॥

विविध भाँति मोहि मुनि समुझावा ❋ निर्गुण मत मम हृदय न आवा ॥७॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद शीशा ❋ सगुण उपासन कहहु मुनीशा ॥८॥

मुनिने मुझको अनेक प्रकार समझाया परंतु निर्गुण मत मेरे मनमें न आया ॥ ७ ॥ मैंने चरणोंमें शिर नवाकर फिर कहा—हे मुनिराज ! मुझसे तो आप सगुण उपासना कहिये ॥ ८ ॥

रामभक्ति जल मम मन मीना ❋ किमि बिलगाय मुनीश प्रवीना ॥९॥
सोइ उपदेश करहु करि दाया ❋ निज नयनन देखेउँ रघुराया ॥१०॥

रामके भक्तिरूपी जलमें मेरा मन मीन हो रहा है हे चतुर मुनिराज ! सो क्या पृथक् हो सकता है ?॥९॥ दया करके वही उपदेश कीजिये जिसके द्वारा अपने नेत्रोंसे रामजीका दर्शन करूँ॥१०॥

भरि लोचन विलोकि अवधेशा ❋ तब सुनिहउँ निर्गुण उपदेशा ॥११॥
मुनि पुनि कहि हरि कथा अनूपा ❋ खंडि सगुण मत अगुण निरूपा ॥१२॥

पहले मैं नेत्र भरकर रघुनाथजीका दर्शन कर लूँ तब निर्गुण उपदेश सुनूँगा ॥ ११ ॥ हे गरुड़जी ! मुनिराजने फिर हरिकी श्रेष्ठ कथा वर्णन की और सगुण मतका खण्डन करके निर्गुण मतका ही निरूपण किया ॥ १२ ॥

तब मैं निर्गुण मत करि दूरी ❋ सगुण निरूपउँ करि हठ भूरी ॥१३॥
उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा ❋ मुनि तन भये क्रोधके चीन्हा ॥१४॥

तब मैं निर्गुण मतको दूर करके हठपूर्वक सगुणका ही निरूपण करने लगा॥१३॥ मुनिराजकी बात पर मैंने उत्तर दिया तब श्रीलोमशजीके शरीरमें क्रोध चिह्न दिखाई पड़ने लगे ॥ १४ ॥

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये ❋ उपज क्रोध ज्ञानिहुके हिये ॥१५॥
अति संघर्षण करै जो कोई ❋ अनल प्रगट चन्दनते होई ॥१६॥

हे प्रभु गरुड़जी ! सुनो; बहुत तिरस्कार करनेसे तो ज्ञानीके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो जाता है ॥ १५ ॥ जब कोई बहुत बलसे रगड़े तो चन्दनसे भी आग प्रकट हो जाती है ॥ १६ ॥

दोहा-बारहिं बार सकोप मुनि, करहिं निरूपण ज्ञान ॥
मैं अपने मन बैठि तब, करउँ विविध अनुमान ॥ १७४ ॥

बार बार क्रोध करके मुनि ज्ञानका निरूपण करने लगे, तब मैं बैठा-बैठा अपने मनमें अनेक प्रकारसे अनुमान करने लगा ॥ १७४ ॥

दोहा-क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान ॥
मायावश परिछिन्न जड़, जीवकी ईश समान ॥ १७५ ॥

हे गरुड़जी ! मैंने विचारा कि यह मुनि क्रोध करते हैं, सो द्वैत बुद्धिके विना क्रोध नहीं होता और विना अज्ञानके द्वैत नहीं होता यद्यपि जीव ईश्वरका अंश है सजातीय है परंतु मायामें पड़नेसे अल्पज्ञ परिच्छिन्न हो गया इससे जीव ईश्वरके समान कैसे हो सकता है लोमशसे ज्ञानियोंको जब क्रोध है तो जीव ईश कैसे हो सकता है ? ॥ १७५ ॥

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके * तेहिके दरिद्र परसमणि जाके ॥१॥
कामी पुनि कि रहै अकलंका * परद्रोही कि होइ निःशंका ॥२॥

जो सब जीवोंका हित करता है उसको तो कभी दुःख होता ही नहीं जिसके पास पारस मणि है क्या वह दरिद्री हो सकता है ? (जब ईश्वरमें लय हो तो सब गुण उसको सदृश हैं फिर क्रोध क्यों ?) ॥ १ ॥ फिर क्या कामी निष्कलंक रह सकता है ? पराया द्रोही क्या निःशंक हो सकता है, नहीं हो सकता ॥ २ ॥

वंश कि रह द्विज अनहित कीन्हे * कर्म कि होइ स्वरूपहिं चीन्हे ॥३॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी * शुभ गति पाव कि परतियगामी॥४॥

क्या ब्राह्मणका बुरा करनेसे वंश रह सकता है ? जो अपने स्वरूपको पहचान जाय; क्या फिर उसके शुभाशुभ कर्म रह सकते हैं ॥ ३ ॥ दुष्टकी संगति करनेसे क्या कभी किसीको सुमति प्राप्त हुई है ? क्या किसी परस्त्री गामीको शुभ गति प्राप्त हुई ? अर्थात् नहीं हुई ॥४॥

राज कि रहै नीति बिनु जाने * अघ कि रहै हरि चरित बखाने ॥५॥
भव कि परहिं परमारथ विंदक * सुखी कि होहिं कबहुँ परनिंदक॥६॥

विना नीतिके जाने क्या राज्य रह सकता है ? नारायणका चरित्र बखानेसे क्या पाप रह सकता है ॥ ५ ॥ परमार्थके जाननेवाले क्या कभी संसारमें पड़ते हैं ? क्या कभी पराई निंदा करनेवाले सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

पावन यश कि पुण्य विनु होई * विनु अघ अयश कि पावै कोई॥७॥
लाभ कि कछु हरिभक्ति समाना * जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥८॥

क्य विना पुण्यके पवित्र यश होता है ? विना पापके क्या कोई अपयश पाता है ? ॥ ७ ॥ हरिकी भक्तिके समान क्या कोई दूसरा लाभ है जिस भक्तिकी महिमाको वेद, संत और पुराण गाते हैं ॥ ८ ॥

हानि कि जग इहि सम कछु भाई * भजिय न रामहिं नर तनु पाई॥९॥
अघ कि होइ तामस सम आना * धर्म कि दया सरिस हरियाना॥१०॥

हे भाई ! क्या जगत्‌में इस वस्तुके समान कुछ और हानि है; मनुष्य शरीर पाकर नारायणका भजन नहीं करते ? ॥९॥ क्या तामस अर्थात् क्रोधके समान कोई और पाप है ? गरुड़जी ! क्या दयाके समान कोई धर्म है ? क्योंकि "अहिंसा परमो धर्मः" ॥ १० ॥

इहि विधि अमित युक्ति मन गुनऊँ * मुनि उपदेश न सादर सुनऊँ ॥११॥
पुनि पुनि सगुन पक्ष मैं रोपा * तब मुनि बोले वचन सकोपा ॥१२॥

इस प्रकारकी अनेक युक्ति मनमें विचार करता रहा कि जीव ब्रह्म नहीं हो सकता और मुनिकी शिक्षा आदर पूर्वक न सुनी ॥ ११ ॥ बारंबार मैंने सगुण पक्षका आरोपण किया, तब तो मुनिराज क्रोध करके कहने लगे ॥ १२ ॥

मूढ़ परमसिख देउँ न मानसि * उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥१३॥
सत्य वचन विश्वास न करही * वायस इव सबही सन डरही ॥१४॥

रे मूर्ख ! अत्यन्त श्रेष्ठ शिक्षा तुझे देता हूँ परंतु नहीं मानता है और बराबर उत्तर प्रत्युत्तर करता है ॥१३॥ सत्य वचनका विश्वास नहीं करता और कौवेकी नाईं सभीसे डरता है ॥१४॥

शठ सपक्ष तव हृदय विशाला * सपदि होउ पक्षी चण्डाला ॥१५॥
लीन्ह शाप मैं शीश चढ़ाई * नहिं कछु भय न दीनता आई॥१६॥

मूर्ख ! तेरे हृदयमें पक्ष है इस कारण तू चाण्डाल पक्षी शीघ्र हो जा ॥ १५ ॥ यह मुनिका शाप मैंने शिरपर चढ़ा लिया और मनमें कुछ भय और दीनता न आयी ॥ १६ ॥

दोहा—तुरत भयउँ मैं काक तब, पुनि मुनि पद शिर नाइ ॥
सुमिरि राम रघुवंशमणि, हर्षित चलेउँ उड़ाइ ॥ १७६ ॥

तुरंत ही मैं काक हो गया फिर मुनिके चरणोंमें शिर नवाकर रघुवंशमणिका स्मरण कर प्रसन्न हो उड़ चला ॥ १७६ ॥

दोहा—उमा जे राम चरणरत, विगत काम मद क्रोध ॥
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहिसन करहिं विरोध ॥ १७७ ॥

शिवजी कहने लगे—हे पार्वती ! जिनकी रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति होती है; वे काम, मद (अहंकार) और क्रोधसे पृथक् रहते हैं, सब जगत्‌को अपने प्रभुमें देखते हैं; फिर वे किससे वैर करें ? ॥ १७७ ॥

सुनु खगेश नहिं कछु ऋषि दूषण * उर प्रेरक रघुवंश विभूषण ॥१॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी * लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी ॥२॥

हे गरुड़जी ! ऋषिका कुछ भी दोष नहीं यह रघुनाथजीकीही प्रेरणा है क्योंकि वे सबके अन्तः प्रेरक हैं ॥१॥ कृपासागर रघुनाथजीने मुनिकी भोली मति करके मेरे प्रेमकी परीक्षाली थी ॥२॥

मन वच क्रम मोहि निजजन जाना * मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥३॥
ऋषि मम सहनशीलता देखी * राम चरण विश्वास विसेखी ॥४॥

मन वचन कर्मसे मुझे अपना दास जानकर भगवान्‌ने मुनिकी मति फेरी ॥ ३ ॥ परंतु ऋषिने मेरी सहनशीलता और रघुनाथजीके चरणोंमें विशेष विश्वास देख कर ॥ ४ ॥

अति विस्मय पुनि पुनि पछिताई * सादर मुनि मोहि लीन्ह बुलाई ॥५॥
मम परितोष विविध विधि कीन्हा * हर्षित राममन्त्र मोहि दीन्हा ॥६॥

अति आश्चर्ययुक्त होकर बारंबार पछताकर आदरसे बुला लिया ॥५॥ और अनेक प्रकार मुझे समझा कर परितुष्ट किया और प्रसन्न होकर मुझे रामका परम मन्त्र दिया, जो षडक्षर मन्त्र है ॥ ६ ॥

बालक रूप रामकर ध्याना * कहेउ मोहिं मुनि कृपानिधाना ॥७॥
सुन्दर सुखद मोहिं अति भावा * सो प्रथमहि मैं तुमहिं सुनावा ॥८॥

और कृपानिधान मुनिराजने मुझे रामका ध्यान करना बताया ॥७॥ वह सुन्दर सुखका देनेवाला रूप मेरे मनको बहुत भाया, सो मैंने प्रथम ही तुमको सुना दिया ॥ ८ ॥

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा * रामचरित मानस सब भाखा ॥९॥
सादर यह मोहिं कथा सुनाई * पुनि बोलेउ मुनि गिरा सुहाई ॥१०॥

मुनिने मुझको बहुत कालतक वहां रखा और रामचरित मानस सम्पूर्ण वर्णन किया ॥९॥ आदरसे यह सातों काण्डयुक्त कथा मुझको सुनाई और फिर मुनि शोभायमान वाणी बोले ॥१०॥

रामचरित सर गुप्त सुहावा * शम्भुप्रसाद तात मैं पावा ॥११॥
तोहिं निजभक्त रामकर जानी * ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥१२॥

हे तात ! यह रामचरित सर अति गुप्त और शोभायमान है, शिवजीकी कृपासे मैंने पाया है ॥११॥ तुम्हें रामका निज भक्त जानकर—मैंने सब बखान कर कहा (इसे समझो) ॥ १२ ॥

राम भक्ति जिनके उर नाहीं * कबहुँ न तात कहिय तिनपाहीं ॥१३॥
मुनि मोहिं विविध भाँति समुझावा * मैं सप्रेम मुनि पद शिर नावा ॥१४॥

हे तात ! जिनके हृदयमें रामकी भक्ति नहीं है, उनसे यह कभी मत कहना ॥१३॥ मुनिने मुझे अनेक प्रकारसे समझाया और मैंने प्रेमसे मुनिके चरणोंमें शिर नवाया ॥ १४ ॥

निज करकमल परशि मम शीशा * हर्षित आशिष दीन्ह मुनीशा ॥१५॥
रामभक्ति अविरल उर तोरे * बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे ॥१६॥

मुनिराजने अपना कमलसा हाथ मेरे शिरपर धरकर प्रसन्न हो मुझे आशीर्वाद दिया ॥१५॥ कि अब मेरी कृपासे तेरे हृदयमें सदा निश्चल रामकी भक्ति वास करेगी ॥ १६ ॥

दोहा—सदा रामप्रिय होउ तुम, शुभगुण भवन अमान ॥
कामरूप इच्छा मरण, ज्ञान विराग निधान ॥ १७८ ॥

तुम सदा रघुनाथजीके श्रेष्ठ गुणोंके मंदिर हो; मानरहित हो, कामरूप अर्थात् जैसी इच्छा करोगे वैसा रूप धर सकोगे, इच्छा मरण अर्थात् स्वाधीन मृत्यु होगी, यानी जब चाहोगे तब शरीर त्याग कर सकोगे, ज्ञान वैराग्य के निधान होगे ॥ १७८ ॥

दोहा—जेहि आश्रम तुम बसिहि पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त ॥
व्यापहि तहँ न अविद्या, योजन एक प्रयन्त ॥ १७९ ॥

और जिस आश्रममें तुम भगवान्‌का स्मरण करते वास करोगे वहां तुम्हारे स्थानसे एक योजन (चार कोश) अविद्या नहीं व्यापेगी ॥ १७९ ॥

काल कर्म गुण दोष सुभाऊ * कछु दुख तुमहिं न व्यापहिं काऊ ॥१॥
राम रहस्य ललित विधि नाना * गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ॥२॥

काल, कर्म, गुण,दोष,स्वभाव इत्यादिक कभी तुम्हें कुछ भी दुःख न व्यापेगा॥१॥ रामजीके अनेक सुन्दर चरित्र जो कुछ गुप्त प्रगट हैं सम्पूर्ण इतिहास और पुराण इन सबका भेद॥२॥

बिनु श्रम तुम जानब सब सोऊ * नित नव नेह रामपद होऊ ॥३॥
जो इच्छा करिहहु मनमाहीं * हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥४॥

तुम विना श्रम इन सबको जान सकोगे,नित्य नया प्रेम रघुनाथजीके चरणोंमें तुम्हारा होगा ॥३॥ जो कुछ तुम मनमें इच्छा करोगे, ईश्वरके प्रसादसे कुछ तुमको दुर्लभ न होगा ॥ ४ ॥

सुनि मुनि आशिष सुनु मति धीरा * ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा ॥५॥
एवमस्तु तव वच मुनि ज्ञानी * यह मम भक्त कर्म मन बानी ॥६॥

हे मतिधीर गरुड़! सुनो,मुनिके आशीर्वादको श्रवण करके गंभीर वाणी आकाशसे हुई॥५॥ हे ज्ञानी मुनि ! यह तुम्हारे वचन सफल होंगे क्योंकि यह कर्म मन वाणीसे मेरा भक्त है ॥६॥

सुनि नभ गिरा हर्ष मोहि भयऊ * प्रेम मगन सब संशय गयऊ ॥७॥
करि बिनती मुनि-आयसु पाई * पदसरोज पुनि पुनि शिरनाई ॥८॥

यह आकाशवाणी सुनकर मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई प्रेममें मग्न हो गया, सब सन्देह जाते रहे ॥७॥ विनती करके मुनिकी आज्ञा पाय उनके चरण कमलोंमें बार २ शिर नवाकर॥८॥

हर्ष सहित इहि आश्रम आयउँ * प्रभु प्रसाद दुर्लभ वर पायउँ ॥९॥
इहां बसत मोहि सुनु खगईशा * बीते कल्प सात अरु बीसा ॥१०॥

प्रसन्न होकर इस आश्रममें आया और स्वामीकी कृपासे दुर्लभ वर पाया॥९॥ हे गरुड़जी! यहां रहते रहते मुझको सत्ताइस कल्प बीत गये हैं (इकहत्तर चौकड़ी युगका एक मन्वन्तर और चौदह मन्वन्तरका कल्प अर्थात् ब्रह्माका एक दिन होता है) ॥ १० ॥

करौं सदा रघुपति गुण गाना * सादर सुनहिं विहंग सुजाना ॥११॥
जब जब अवधपुरी रघुबीरा * धरहिं भक्तहित मनुज शरीरा॥१२॥

यहां सदा रघुनाथजीके गुणोंका गान करता हूँ, चतुर पक्षी(हंसादिक)आदरसे सुनते हैं॥११॥ जब जब भक्तोंके हित करनेके निमित्त रघुनाथजी मनुष्य शरीर अयोध्यामें धारण करते हैं॥१२॥

तब तब जाइ रामपुर रहऊँ * शिशु लीला विलोकि सुख लहऊँ॥१३॥
पुनि उर राखि रामशिशु रूपा * इहि आश्रम आयउँ खग भूपा ॥१४॥

तब तब मैं रामपुर(अयोध्या)में जाकर रहता हूँ और बाललीला देखकर सुख पाता हूँ॥१३॥ हे खगराज ! फिर रघुनाथजीके बालरूपको हृदयमें धारण कर यहां चला आता हूँ ॥१४॥

कथा सकल मैं तुमहिं सुनाई * काकदेह जेहि कारण पाई ॥१५॥
कहेउँ तात सब प्रश्न तुम्हारी * रामभक्ति महिमा अति भारी॥१६॥

वह सब कथा मैंने आपको सुना दी जिस कारण काककी देह पायी है ॥१५॥ हे तात! आपके सब प्रश्न वर्णन किये, रामभक्तिकी महिमा बहुत भारी है यह(यहां सिद्धांत जानो)॥१६॥

दोहा-ताते यह तनु मोहिं प्रिय, भयउ रामपद नेह ॥
पुनि प्रभु दर्शन पायउ, गयउ सकल सन्देह ॥ १८० ॥

इस कारण यह शरीर मुझको बहुत प्यारा है कि इस शरीरसे रामके चरणोंमें अधिक प्रेम हुआ है, अपने प्रभुका दर्शन भी इसी शरीरसे पाया और सम्पूर्ण सन्देह जाते रहे ॥१८०॥

दोहा-भक्तिपक्ष हठ करि रहेउँ, दीन्ह महाऋषि शाप ॥
मुनि दुर्लभ बर पायउँ, देखहु भजन प्रताप ॥ १८१ ॥

भक्ति पक्षका हठ किया, इस कारण ऋषियोंने महाशाप दिया, फिर जो मुनियोंको दुर्लभ है वह वर पाया, देखिये यह सब भजनका ही प्रताप है (भजन ही सार है) ॥१८१॥

इति श्रीरामचरितमानसे पण्डित ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-भाषाटीकायामुत्तरकाण्डान्तर्गतः सप्तमो विश्रामः ॥७॥

दोहा-ज्ञानदीप रघुपति सुमिरि, यहि अष्टम विश्राम ।
जाके जाने मुक्तिवर, प्राप्त होत सुख धाम ॥ ८ ॥

जे असि भक्ति जानि परिहरहीं * केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥१॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी * खोजत आक फिरहिं पयलागी ॥२॥

जो ऐसी भक्ति जानकर भी छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान की ही खोजमें श्रम करते हैं॥१॥ वे मूर्ख मानो कामधेनु गौको घरमें छोड़कर दुग्धके निमित्त आकके वृक्षको ढूँढ़ते फिरते हैं॥२॥

सुनु खगेश हरिभक्ति विहाई * जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥३॥
ते शठ महासिंधु बिनु तरणी * पैरि पार चाहहिं जड़ करणी ॥४॥

सुनो गरुड़जी! जो पुरुष नारायणकी भक्तिको छोड़कर दूसरे उपायसे सुख चाहते हैं ॥३॥ वे मूर्ख महासागरको अपनी जड़ करनीसे पैरकर विना नौकाके ही पार होना चाहते हैं ॥४॥

सुनु भुशुण्डिके वचन भवानी * बोलेउ गरुड़ हरषि मृदुबानी ॥५॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं * संशय शोक मोह भ्रम नाहीं ॥६॥

हे पार्वती! यह भुशुण्डजीके वचन सुनकर गरुड़जी प्रसन्न होकर कोमल वाणी बोले ॥५॥ हे प्रभु! अब आपके प्रसादसे मेरे हृदयमें सन्देह शोक मोह भ्रम कुछ नहीं है ॥ ६ ॥

सुनेउँ पुनीत राम गुण ग्रामा * तुम्हरी कृपा लहेउँ विश्रामा ॥७॥
एक बात पूछौं मैं तोहीं * कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं ॥८॥

रघुनाथजीके पवित्र गुणानुवाद सुन लिये, आपकी कृपासे विश्रामकी प्राप्ति हुई ॥७॥ हे प्रभु मैं आपसे एक बात पूछता हूँ, कृपासागर! वह भी आप मुझको समझाकर कहिये॥८॥

कहहिं सन्त मुनि वेद पुराना * नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ॥९॥
सोइ मुनि तुम सन कहेउ गुसाईं * नहिं आदरेउ भक्तिकी नाईं ॥१०॥

सन्त, मुनि, वेद, पुराण ऐसा कहते हैं कि ज्ञान समान दुर्लभ (कठिनता प्राप्त होनेके योग्य) कोई वस्तु नहीं हैं ॥ ९ ॥ हे गुसाईं! मुनिने आपसे वही सम्पूर्ण ज्ञान समझाकर कहा था, परंतु आपने भक्तिके समान उसका आदर नहीं किया ॥ १० ॥

ज्ञानहि भक्तिहि अन्तर केता * सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥११॥
सुनि उरगारि वचन सुख माना * सादर बोलेउ काक सुजाना ॥१२॥

तो हे कृपाके स्थान प्रभु! ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है? आप वह सब समझाकर मुझसे कहिये॥११॥ यह गरुड़जीके वचन सुन सुख मानकर आदर पूर्वक चतुर काकभुशुण्डिजी बोले॥१२॥

भक्तिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा * उभय हरहिं भवसंभव खेदा ॥१३॥
नाथ मुनीश कहहिं कछु अन्तर * सावधान होइ सुनु विहंगवर ॥१४॥

हे तात ! भक्ति और ज्ञानमें कुछ भेद नहीं है; दोनों संसारसे उत्पन्न हुए दुःखको हरते हैं ॥ १३ ॥ परंतु जितना कुछ अन्तर मुनिजन वर्णन करते हैं उसको हे पक्षी श्रेष्ठ ! आप सावधान होकर सुनिये ॥ १४ ॥

ज्ञान विराग योग विज्ञाना * ये सब पुरुष सुनहु हरियाना ॥१५॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती * अबला अबल सहज जड़ जाती॥१६॥

हे गरुड़जी ! सुनिये, ज्ञान वैराग्य योग विज्ञान ये तो सब पुरुष हैं ॥१५॥ पुरुष तो प्रताप से सब प्रकार प्रबल होते हैं, किन्तु स्त्री निर्बल स्वाभाविक जड़जाति कहाती हैं ॥ १६ ॥

दोहा—पुरुष त्यागि सक नारिहि, जो विरक्त मति धीर ॥
नतु कामी विषयावश, विमुख जो पद रघुवीर ॥ १८२ ॥

जो मतिधीर विरक्त पुरुष हैं वे स्त्रीको त्याग सकते हैं, (क्योंकि वे काम और विषयके विशेष वश्य नहीं हैं) और जो कामी तथा विषयोंके वशमें हैं और रघुनाथजीके चरणकमल से भी विमुख हैं वे स्त्री को नहीं त्याग सकते ॥ १८२ ॥

सोरठा—सोउ मुनि ज्ञान निधान, मृगनयनी विधुमुख निरखि ॥
विकल होहिं हरियान, नारि विष्णुमाया प्रगट ॥ १६ ॥

जो मुनि ज्ञानके निधान हैं वे भी चन्द्रमुखको देखकर विकल हो जाते हैं, हे गरुड़जी ! यह नारी विष्णुकी माया (विश्वमें) प्रकट है ॥ १६ ॥

इहां न पक्षपात कछु राखउँ * वेद पुराण सन्त मत भाखउँ ॥१॥
मोह न नारि नारिके रूपा * पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥२॥

हे तात ! यहां कुछ पक्षपात नहीं रखता हूँ, जो (यथार्थ) वेद, पुराण सन्तोंका मत है वह कहता हूँ ॥१॥ नारी नारीके रूपसे मोहित नहीं होती हे पन्नगारि ! यह अनोखी नीति है किन्तु (सीतास्वयंवरके स्थलमें गोस्वामीजी जो लिख आये हैं जानकीजी रंगभूमिमें आयीं तो 'देख रूप मोहे नर नारी' सो जानकीजी आदि शक्ति जो हैं अतः साधारण स्त्रियोंकी कोटिमें नहीं आ सकतीं, इस कारण जानकीके विषयमें यह शंका कर्तव्य नहीं) ॥ २ ॥

माया भक्ति सुनहु प्रभु दोऊ * नारिवर्ग जानहिं सब कोऊ ॥३॥
पुनि रघुवीरहि भक्ति पियारी * माया खलु नर्तकी विचारी ॥४॥

हे प्रभो ! माया और भक्ति दोनों स्त्री संज्ञक हैं ऐसा सभी जानते हैं ॥३॥ फिर रघुनाथजीको इन दोनोंमें भक्ति अधिक प्यारी है दुष्ट माया तो नर्त्तकीके समान है ॥ ४ ॥

भक्तिहि सानुकूल रघुराया * ताते तेहि डरपइ अति माया ॥५॥
रामभक्ति निरुपम निरुपाधी * बसै जासु उर सदा अबाधी ॥६॥

भक्तिपर रघुनाथजी कृपा करते हैं, इस कारण उससे माया बहुत डरती फिरती है ॥ ५ ॥ रामकी भक्ति उपाधि रहित उपमारहित बाधारहित जिसके हृदयमें सदा बास करती है ॥६॥

तेहि बिलोकि माया सकुचाई * करि न सकै कछु निज प्रभुताई ॥७॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी * याचहिं भक्ति सकल सुखखानी ॥८॥

उसको देखकर माया सकुचाती है और अपनी प्रभुता कुछ नहीं कर सकती ॥७॥ ऐसा विचार कर जो विज्ञानी मुनि हैं वे सम्पूर्ण सुखोंकी खानि भक्तिकी चाहना करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-यह रहस्य रघुनाथकर, वेगि न जानै कोइ ॥
जानेते रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ ॥ १८३ ॥

रघुनाथजीका यह रहस्य कोई शीघ्र नहीं जान सकता और रघुनाथजीकी कृपासे जानलेने पर स्वप्नमें भी मोह नहीं होता ॥ १८३ ॥

दोहा-अवरउ ज्ञानभक्ति कर, भेद सुनहु सुप्रवीन ॥
जो सुनि होइ रामपद, प्रीति सदा अवछीन ॥ १८४ ॥

हे अत्यन्त चतुर ! आप और भी ज्ञान भक्तिका भेद सुनिये, जिसके सुननेसे श्रीरामचन्द्र के चरणोंमें सदा अखण्ड प्रीति होती है ॥ १८४ ॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी * समुझत बनै न जात बखानी ॥१॥
ईश्वर-अंश जीव-अविनाशी * चेतन अमल सहज सुखराशी ॥२॥

हे तात ! यह अथक कहानी सुनिये, समझते ही बनती है, बखानी नहीं जाती ॥ १ ॥ यह जीव अविनाशी ईश्वरका ही अंश है, जो चेतन पापरहित स्वाभाविक ही सुख निधान है । जैसे गीतामें लिखा है,-"ममैवांशो जीव लोके जीव भूत सनातनः" ॥ २ ॥

सो मायावश भयउ गुसाईं * बँधेउ कीर मर्कटकी नाईं ॥३॥
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परिगई * यदपि मृषा छूटत कठिनई ॥४॥

हे गोसाईं ! उसी मायाके वश होकर जीव ऐसा बँध गया जैसे तोता और वानर स्वयंही बँध जाते हैं (वानर संकीर्ण वासनमें हाथ डाल मुट्ठी बाँधनेपर फिर नहीं खोलता इसी कारण फँस जाता है, तोता नलकीमें फँसता है; जैसे तोता और बन्दर चैतन्यरूप होकर जड़ वस्तु पींजरे और रस्सीसे नहीं निकल पाते वैसे ही जीव मायामें ग्रंथित होकर नहीं छूट सकता) ॥ ३ ॥ जड़ (माया) और चेतन (जीव) में गाँठ पड़ गई; यद्यपि जीवनमें माया की ग्रंथि मिथ्या है परंतु छूटना कठिन है ॥ ४ ॥

तबते जीव भयउ संसारी * छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ॥५॥
श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई * छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥६॥

तभीसे यह जीव संसारी हो गया है न ग्रंथि छूटती है, न सुखी होता है ॥५॥ यद्यपि वेद पुराणों ने बहुत उपाय कहे हैं परंतु छूटती नहीं, बल्कि अधिक उलझती जाती है (क्योंकि साधन सावधानीसे नहीं करता, अपनी करणीसे अधिक लिपट जाता है) ॥ ६ ॥

जीव हृदय तम मोह बिसेखी ❋ ग्रंथि छूटि किमि परै न देखी ॥७॥
अस संयोग ईश जब करई ❋ तबहुँ कदाचित् सो निरुवरई ॥८॥

जीवके हृदयमें तम (जो अज्ञान) और मोहका अधिक अँधेरा है, उसमें गांठ खुलती नहीं किंतु और उलझ जाती है; क्योंकि उसे दिखाई नहीं पड़ता ॥ ७ ॥ जो कभी ईश्वर ऐसा संयोग करें तभी वह कदाचित् छूट सके ॥ ८ ॥

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ❋ जो हरिकृपा हृदय बस आई ॥९॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा ❋ जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा॥१०॥

(छूटनेका उपाय) जो नारायणकी कृपासे सत्वगुणी श्रद्धा हृदयमें सुन्दर गौ बनके वास करे ॥९॥ और जप, तप, व्रत, संयम, नियम जो अनेकों प्रकारके हैं और जितने वेदने शुभ धर्म और आचार वर्णन किये हैं ॥ १० ॥

ते तृण हरित चरै जब गाई ❋ भाव वत्स शिशु पाइ पन्हाई ॥११॥
नोइ निवृति पात्र विश्वासा ❋ निर्मल मन अहीर निज दासा॥१२॥

वे ही शुभ कर्मादि रूपी हरी घास हैं जब इनको वह सत्वगुणरूपी गऊ खाय और भाव अर्थात् प्रेमरूपी बछरेको पाकर पन्हाय जावे (सत्य, शौच, दान, दया यही चार थन हैं) ॥ ११ ॥ निवृत्तिमार्गकी रस्सीसे गायको बांध कर विश्वासके पात्रमें दूध दुहा जाय और निर्मल मन निज दास (अर्थात् अपने अधीन मनरूपी) अहीर उसको दुहे ॥ १२ ॥

परम धर्म मय पय दुहि भाई ❋ अवटै अनल अकाम बनाई ॥१३॥
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै ❋ धृति सम जामन देइ जमावै॥१४॥

हे भाई ! परम धर्मरूपी दूधको दुहकर अकामरूपी अग्निद्वारा सावधानीसे औटावे ॥१३॥ सन्तोष और क्षमारूपी पवनसे उसको ठण्ढा कर और धैर्यका जामन देकर उसे जमावे (तात्पर्य यह है कि इस प्रकार आचरण करे) ॥ १४ ॥

मुदिता मथै विचार मथानी ❋ दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥१५॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ❋ विमल विराग सुपरम पुनीता ॥१६॥

प्रसन्नतापूर्वक मथनेवाली विचाररूपी मथानीसे मथे और दम अर्थात् इंद्रियोंका जीतना

---

१. गुसाईंजीने ज्ञानदीपक और भक्तिरूप मणिका वर्णन इतनी सरलतासे किया है कि सर्वसाधारण को शीघ्रतासे उसका ज्ञान हो जाय और असली बात न खो जाय, ज्ञानकी बड़ा सुंदर अलंकार बांधा है, इसीसे हमने टीकामें इसका विस्तार नहीं किया कि उसकी सरलता बनी रहे और असली बात न खो जाय, ज्ञानकी सात भूमिका हैं। ज्ञानको प्रथम (सात्त्विक) सत्वगुणी श्रद्धा, जप, व्रत, तप, नियम, शुभ धर्म, सदाचार, गुरु वेदान्त के वचनोंमें विश्वास करके मनको अपने वश रखना चाहिये यह होने पर ज्ञानकी दूसरी भूमिकामें परमधर्म-किसीका मन न दुखाना, किसी कर्मके फलकी इच्छा न करना, संतोषी और क्षमाशील होना उचित है। तीसरी भूमिकामें धृति धैर्य चराचरमें समान दृष्टि रखना, आत्मस्वरूपको संभालना चाहिये, यह तीसरी भूमिका है चौथीमें विरागका वर्णन करते हैं कि अन्तरके आनंद विचार, इन्द्रियों की विषयोंसे निवृत्ति। पांचवीं भूमिकामें यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधिरूप, योगाभ्यास, ज्ञानाग्निमें शुभाशुभ कर्मोंका हवन, देहके संग ममताके व्यवहारका त्याग करे, योग क्रियासे आत्मरूपको पहिचानो, संसारकी असारता, साररूप आत्माका ग्रहण यह आचरण है । छठी भूमिकामें जब शुद्ध आत्मरूपकी पहिचान हो जाय तब आत्मा परमात्माकी एकताका दर्शन वा बुद्धिसे उनकी एकताका विचार करे। ममता, अहंकारकी निवृत्ति ब्रह्म में लीनता, आत्मरूपका अखंड चिंतन है, यही दीवट पर घीका भरा दीपक है। तीनों अवस्था जाग्रत, स्वप्न-सुषुप्ति, और तीनों गुण सत् रज तमसे परे तुरीयामें शुद्ध आत्मतत्वका अनुभव प्रकाश देखना। सातवीं भूमिकामें 'सोऽहमस्मि !' वह मैंही हूं, अस्मिके चार अक्षर, अ, स, म, इ अंतर्यामी, जीव, प्रकृति, विद्या, अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया अथवा मुक्त मुमुक्षु, बद्ध, जीव यह सबमें ही होता हुआ सब शुद्ध मुक्त स्वप्रकाश स्वरूप हूं, यह अखंड आत्म बोध निज स्वरूपकी प्राप्ति ही मुक्ति है इस प्रकार ज्ञानदीपकका भाव है ।

यह आधार खम्भा है, सत्य और प्रियवाणी (मथने) की रस्सी हो ॥ १५ ॥ इस प्रकार दही को मथकर विमल वैराग्यरूपी सुन्दर परम पवित्र मक्खनको निकाल ले ॥ १६ ॥

दोहा–योग अग्नि करि प्रकट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ ॥
बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥१८५॥

फिर योगकी अग्नि प्रकट करके शुभ अशुभ कर्मकी लकड़ीको लाकर उसमें जलावे और बुद्धिसे ठंडा करके ज्ञानरूपी घृत निकाल ले जब ममता रूपी मट्ठा जल जाय ॥ १८५ ॥

दोहा–तब विज्ञान निरूपिणी, बुद्धि विशद घृत पाइ ॥
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिवटि बनाइ ॥ १८६ ॥

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उज्ज्वल घृतको पाकर चित्तरूपी दीपकमें दृढ़तासे भरे और समताकी दीवटको बनाकर ऊपर धर दे ॥ १८६ ॥

दोहा–तीनि अवस्था तीनि गुण, तेहि कपासते काढ़ि ॥
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥ १८७ ॥

जब जाग्रत,-स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाके फलसे कपासको निकाल कर सत्वगुण रजो गुण और तमोगुण विनौलोंको उसमेंसे निकाल डाले और तुरीया अवस्था रूईकी कड़ी बत्ती बनावे (मुक्त अवस्थाको तुरीय कहते हैं, यह चौथी है) ॥ १८७ ॥

सोरठा–यहि विधि लेसइ दीप, तेज राशि विज्ञान मय ॥
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक शलभ सब ॥ १७ ॥

इस प्रकारसे उस तेज पुंज विज्ञानमय दीपकको लेकर जलावे, जिसके पास जानेसे ही मदादिक पांखी जल जाती हैं ॥ १७ ॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा * दीप शिखा सोइ परम प्रचण्डा ॥१॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा * तब भवमूल भेद भ्रम नाशा ॥२॥

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमिति श्रुतेः" अर्थात् वह मैं ही हूँ, यही अखण्डवृत्ति उस दीपककी प्रचंड शिखा है ॥ १ ॥ उस समय आत्माका अनुभव ही उसका प्रकाश है; तब भ्रमसे जो भेद बुद्धि हो रही है अर्थात् अपनेको और ईश्वरको पृथक् जानना, जो संसार का मूल है उसका नाश हो जाता है ॥ २ ॥

प्रबल अविद्याकर परिवारा * मोह आदि तम मिटै अपारा ॥३॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारी * उर गृह बैठि ग्रंथि निरुवारी ॥४॥

उस समय अविद्याका अपार और प्रबल परिवार मोहादिक अंधकार यह सब नष्ट हो जाते हैं ॥३॥ तब वही बुद्धि उजियाला पाकर हृदयमें बैठ उस गांठको खोलने लगती है ॥ ४ ॥

छोरन ग्रंथि पाव जो कोई * तौ यह जीव कृतारथ होई ॥५॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया * विघ्न अनेक करै तब माया ॥६॥

जो कोई वह गांठ खोल सके तो यह जीव कृतार्थ हो जाता है ॥ ५ ॥ हे गरुड़जी ! गांठको खुलती हुई जानकर उस समय माया अनेक प्रकारके विघ्न करती है (इस कारण इससे सावधान रहना चाहिये) ॥ ६ ॥

ऋद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई * बुद्धिहि लोभ दिखावै जाई ॥७॥
कलबल छल करि जाय समीपा * अंचल बात बुझावै दीपा ॥८॥

उस समय यह माया (ऋद्धि) राज्य धन आदि (सिद्धि) योगबल आदिको उठाके बुद्धिको लोभ दिखाती है ॥ ७ ॥ किसी कलासे छलबल करके निकट जाके अंचलकी पवन से दियेको बुझा देती है ॥ ८ ॥

होइ बुद्धि जो परम सयानी * तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥९॥
जो तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी * तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥१०॥

जो बुद्धि परम चतुर होती है तो उनको अहित जानकर उनकी ओर नहीं देखती ॥ ९ ॥ जो उस मायाके विघ्नोंसे ज्यों त्यों करके बचे तो फिर देवता उपद्रव करते हैं अर्थात् लोभ दिखाते हैं, कि हमारे देवलोकमें सब उत्तम पदार्थ हैं वहीं चलकर भोगो, देवता कहां हैं सो कहते हैं ॥ १० ॥

इंद्रिय द्वार झरोखा नाना * तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥११॥
आवत देखहिं विषय बयारी * ते हठि देहिं कपाट उघारी ॥१२॥

जो इंद्रियोंके द्वार और रोमादिक अनेक झरोखे हैं, उनमें देवता अपना स्थान किये बैठे हैं ॥११॥ जब उस विषयके पवनको आते देखते हैं, तो वे हठपूर्वक किंवाड़ खोल देते हैं ॥१२॥

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई * तबहिं दीप विज्ञान बुझाई ॥१३॥
ग्रंथि न छूट मिटा सो प्रकाशा * बुद्धि विकल भई विषय बतासा ॥१४॥

जब वह विषयरूपी पवन हृदयरूपी घरमें जाता है, तब ही विज्ञानके दीपको बुझा देता है ॥ १३ ॥ तब ग्रंथी तो छूटी नहीं और वह प्रकाश मिट गया, विषय रूपी वायुके लगनेसे बुद्धि विकल हो गयी ॥ १४ ॥

इंद्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई * विषय भोगपर प्रीति सदाई ॥१५॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी * तेहि विधि दीप को बार बहोरी ॥१६॥

इंद्रियोंके देवताओंको ज्ञान नहीं सुहाता, विषय भोगमें निरंतर बहुत प्रीति रखते हैं (मुखका देवता अग्नि, जीभका वरुण, आंखका सूर्य, नाकका अश्विनीकुमार, कानका दिशा, हाथका इन्द्र, चरणके विष्णु, मनका चन्द्रमा इत्यादि सम्पूर्ण अंगके देवता हैं) ॥ १५ ॥ जब विषयके पवनने बुद्धिको बावली कर दिया तो फिर उस प्रकारसे दीपकको कौन जलाये ? ॥ १६ ॥

दोहा-तब फिर जीव विविध विधि, पावै संसृति क्लेश ॥
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाय विहँगेश ॥ १८८ ॥

तब फिर जीव जन्म मरणके अनेक अनेक क्लेशोंको पाता है, हे गरुड़जी ! परमात्माकी माया बहुत दुस्तर (कठिन) है, तरी नहीं जाती ॥ १८८ ॥

---

१. कर्णके दिशा, त्वचाके पवन, नेत्रोंके सूर्य, जिह्वाके वरुण, नाकके अश्विनीकुमार, वह शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध विषयोंको अनुभव करते हैं। इस प्रकार वाणीके अग्नि, हाथके इन्द्र चरणोंके विष्णु गुदाके यम और उपस्थके ब्रह्मा यह वाक्य ग्रहण, चलन त्याग और आनन्द अनुभव करते हैं। चन्द्रमा, ब्रह्मा, शिव और विष्णु यह चार मन बुद्धि अहंकार चित्त इन चार इन्द्रियोंसे अहंकार और चैतन्यका अनुभव करते हैं।

दोहा-कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक ॥
होइ घुणाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ १८९ ॥

ज्ञान कहनेमें कठिन है, समझनेमें कठिन है और साधनमें भी कठिन है, जो घुणाक्षर न्याय हो अर्थात् जैसे घुनसे अकस्मात् अक्षर बन जाता है वैसे इन तीनों विघ्नों से निकल जाय तो फिर आगे भी अनेक प्रत्यूह अर्थात् विघ्न खड़े हो जाते हैं ॥ १८९ ॥

ज्ञानके पंथ कृपाणकी धारा * परत खगेश होइ नहिं बारा ॥१॥
जौ निर्विघ्न पंथ निर्वहई * सो कैवल्य परमपद लहई ॥२॥

ज्ञानका मार्ग तलवारकी धारके समान है हे गरुड़जी ! ऐसे पन्थमें गिरते देर नहीं होती है तथा च श्रुतिः "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति हि" ॥१॥ जो कोई, निर्विघ्न उस मार्गसे पार हो जाय तो वह कैवल्य अर्थात् मुक्तिको प्राप्त हो जाता है इसको परमपद कहते हैं ॥ २ ॥

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद * सन्त पुराण निगम आगम वद ॥३॥
राम भजत सो मुक्ति गुसाईं * अनइच्छित आवैं बरिआईं ॥४॥

कैवल्य परमपद-अर्थात् मुक्तिका मार्ग अति दुर्लभ है ऐसा सन्त पुराण वेद शास्त्र कहते हैं ॥ ३ ॥ हे गुसाईं ! रामका भजन करते वह मुक्ति बिना इच्छा किये ही बरजोरी चली आती है ॥ ४ ॥

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई * कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥५॥
तथा मोक्षसुख सुनु खगराई * रहि न सकै हरिभक्ति बिहाई ॥६॥

जैसे थल अर्थात् पृथ्वीके आधार विना जल नहीं रह सकता, चाहे कोई करोड़ भांतिसे उपाय करे ॥ ५ ॥ इसी प्रकार हे गरुड़जी ! मुक्तिका सुख हरिकी भक्तिको छोड़कर कहीं रह नहीं सकता अर्थात् जो भक्तिमान् हैं वे ही मुक्तिका सुख अनुभव करते हैं ॥ ६ ॥

अस बिचारि हरिभक्ति सयाने * मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने ॥७॥
भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा * संसृति मूल अविद्या नाशा ॥८॥

ऐसा विचार कर जो नारायणके चतुर भक्त हैं वे मुक्तिको छोड़कर भक्ति करनेमें तत्पर रहते हैं ॥७॥ भक्ति करते ही विना यत्न और श्रमके जन्म-मरणकी मूल अविद्याका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

भोजन करिय तृप्ति हित लागी * जिमि सो अशन पचव जठरागी ॥९॥
असि हरिभक्ति सुगम सुखदाई * को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥१०॥

जैसा भोजन तृप्तिके लिये किया जाता है और पेटकी अग्नि उसको पचा देती है; उसी प्रकार रामके भक्त जो कर्म करते हैं भक्ति उसको पचा देती है "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे" ॥ ९ ॥ ऐसी सुगम सहज और सुखदायी नारायणकी भक्ति है ऐसा कौन मूर्ख है जिसको वह नहीं सुहाती ? ॥ १० ॥

दोहा-सेवक सेव्य भाव विनु, भव न तरिय उरगारि ॥
भजहु रामपदपंकज, अस सिद्धांत विचारि ॥ १९० ॥

हे गरुड़ ! सेव्य सेवकभावके विना अर्थात् जबतक अपनेको सेवक और रघुनाथजीको स्वामी (सेवा करनेके योग्य) नहीं जानता तबतक संसारसे पार नहीं होता ऐसा सिद्धान्त विचार कर रघुनाथजीके चरणकमलोंमें भक्ति करके भजन कीजिये ॥ १९० ॥

दोहा-जो चेतन कहँ जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य ॥
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिं जीव ते धन्य ॥ १९१ ॥

हे गरुड़जी ! जो जड़को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कर सकता है ऐसा सामर्थ्य रघुनाथजीमें ही है, जो उनका भजन करते हैं, वे जीव धन्य हैं (देखो आप जो चैतन्य थे सो जड़ हो गये और मैं जड़ था सो भक्ति गुणने मुझको चैतन्य कर दिया) ॥ १९१ ॥

कहेउँ ज्ञान सिद्धांत बुझाई * सुनहु भक्तिमणिकी प्रभुताई ॥१॥
राम भक्ति चिंतामणि सुन्दर * बसै गरुड़ जाके उर अन्दर ॥२॥

यह ज्ञानका सिद्धांत समझाकर कह दिया, अब भक्तिरूपी मणिकी बड़ाई सुनिये ॥ १ ॥ यह रामभक्तिरूपी मणि जो सुन्दर चिन्तामणि (इच्छित वरदान देनेवाली) है हे गरुड़ ! जिसके हृदय अन्तरमें वास करती है ॥ २ ॥

परमप्रकाशरूप दिन राती * नहिं कछु चहिय दिया घृतबाती॥३॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा * लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥४॥

यह मणि दिनरात परमप्रकाश रूप है, उसके निमित्त दिया बत्तीकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ३ ॥ उसके होनेसे मोहरूपी दारिद्य समीप नहीं आता और लोभरूपी पवन उसको बुझा नहीं सकता है ॥ ४ ॥

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई * हारहिं सकल शलभ समुदाई ॥५॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं * बसै भक्ति मणि जेहि उरमाहीं॥६॥

जिसके पास यह मणि होती है उसका अविद्या रूपी कठिन अन्धकार मिट जाता है और उसके निकट पतंगे नहीं आ सकते। अथवा उसके निकट पतंगे आते हुए डरते हैं ॥ ५ ॥ जिसके हृदयमें भक्तिरूपी मणि वास करती है उसके निकट दुष्ट काम क्रोध आदिक नहीं जा सकते हैं ॥ ६ ॥

गरल सुधासम अरिहित होई * तेहि मणि विनु सुख पाव न कोई॥७॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी * जिनके वश सब जीव दुखारी ॥८॥

जिस भक्ति मणिके प्रभावसे विष अमृत होता है, शत्रु मित्र बन जाते हैं, उस मणिके विना सुख कोई नहीं पाते हैं। (यह काकभुशुंडिजी अपनेमें दृष्टांत देते हैं कि लोमशका शापरूप विष अमृत हो गया और शाप देनेवाले मुनिने शत्रुसे मित्र बन उपदेश किया) ॥ ७ ॥ (जिसके हृदयमें यह मणि होती है) उसको बड़े बड़े जो मनके रोग हैं वे नहीं व्यापते जिसके वशीभूत होकर सब जगतके जीव दुखी हो रहे हैं ॥ ८ ॥

राम भक्ति मणि उर बस जाके ❋ दुख लवलेश न सपनेहुँ ताके ॥९॥
चतुर शिरोमणि ते जगमाहीं ❋ जे मणिलागि सुयत्न कराहीं ॥१०॥

जिसके हृदयमें रामभक्तिरूपी मणि वास करती है उसको स्वप्नमें भी लेश मात्र दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥ वे ही पुरुष इस जगत्में चतुर पुरुषोंके शिरोमणि हैं जो इस मणिके प्राप्त होनेके निमित्त सुन्दर उपाय करते हैं ॥ १० ॥

सो मणि यदपि प्रगट जग अहई ❋ रामकृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥११॥
सुगम उपाय पाइबे केरे ❋ नर हत भाग्य देहिं भट भेरे ॥१२॥

यद्यपि वह मणि जगत्में प्रगट है परन्तु रामकी कृपाके विना किसीको प्राप्त नहीं होती ॥ ११ ॥ इस मणिके प्राप्त होनेके उपाय सुगम (और बहुत) हैं परंतु अभागे मनुष्य उसको ठुकरा देते हैं । अथवा मनुष्योंको भये भेरे अर्थात् काम क्रोधादि (भट) धक्का देकर दूर कर देते हैं । अथवा भट भेरे नाम विघ्न प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

पावन पर्वत वेद पुराना ❋ रामकथा रुचिराकर नाना ॥१३॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ❋ ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥१४॥

वेद पुराण सब पवित्र पर्वत हैं,इन पर्वतोंमें रामकथारूपी अनेक सुन्दर खानि हैं॥१३॥गरुड़ इसके भेद जाननेवाले सज्जन सुन्दर बुद्धिरूपी कुदारी ले और ज्ञान वैराग्यके नेत्रोंसे देखकर।१४।

भाव सहित जो खोजइ प्रानी ❋ पावभक्ति मणि सब सुख खानी॥१५॥
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा ❋ रामते अधिक रामकर दासा॥१६॥

जो प्राणी प्रेमसे उन खानोंमें रामकी भक्तिरूपी मणिको खोजते हैं वे सब सुखोंकी खानि भक्तिरूपी मणिको पाते हैं ॥ १५ ॥ हे प्रभु ! मेरे मनमें ऐसा विश्वास है कि रामसे रामका दास अधिक है । इसमें यह दृष्टांत है कि समुद्रसे जल कहीं नहीं पहुँचता बादल उसीसे जल लेकर सब स्थानोंमें बरसाते हैं । जैसे चन्दनके वृक्षकी सुगन्ध उसीमें रहती है और पवन उसको लेकर चारों ओरके वृक्षोंको सुगंध से चन्दन कर देता है ॥ १६ ॥

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा ❋ चन्दन तरुहरि सन्त समीरा ॥१७॥
सबकर फल हरिभक्ति सुहाई ❋ सो विनु सन्त न काहू पाई ॥१८॥

राम तो सागर हैं सज्जन धीर पुरुष बादल हैं जो सागरसे जल ले चारों ओर बरसा देते हैं, प्रभु चन्दनके वृक्ष हैं, सन्त समीर (पवन) हैं, जो सुगंध ले जाकर अन्य वृक्षोंको भी चंदन कर देते हैं ॥ १७ ॥ सबका फल यही है कि नारायणकी सुन्दर भक्ति करनी, सो वह सन्तोंके विना किसीको प्राप्त नहीं होती ॥ १८ ॥

अस विचारि जोइ कर सतसंगा ❋ रामभक्ति तेहि सुलभ विहंगा ॥१९॥

ऐसा विचार जो सत्संग करते हैं हे गरुड़जी ! उनको रामकी भक्ति सरलतासे प्राप्त हो जाती है ॥ १९ ॥

दोहा–ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान सन्त सुर आहि ॥
कथा सुधा मथि काढ़इ, भक्ति मधुरता जाहि ॥ १९२ ॥

ब्रह्म अर्थात् वेदरूपी जो क्षीरका समुद्र है उसको संतरूपी देवताओंने ज्ञानरूपी मंदराचलसे

मथके कथारूपी अमृतको निकाल लिया है; जिसमें भक्तिरूपी मिठास भरी है ॥ १९२ ॥

दोहा–विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि ॥
जय पाइय सोइ हरि भगति, देखु खगेश विचारि ॥ १९३ ॥

हे खगेश ! विचार कर देखो कि जिन्होंने वैराग्यरूपी ढाल ज्ञानरूपी तलवारसे मद लोभ मोहरूपी शत्रुओंको मारकर हरि भक्तिरूपी जयको प्राप्त किया है वे ही श्रीरामके भक्त हैं ॥ १९३ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृतभाषाटीकायामुत्तरकाण्डान्तर्गतोऽष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

दोहा–सात प्रश्न खगनाथके, कहे भुशुण्डि विचार ।
भई पूर्णता ग्रन्थ की, नव विश्राम निहार ॥ ९ ॥

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ * जौ कृपालु मोहि ऊपर भाऊ ॥१॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी * सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी ॥२॥

फिर प्रेम पूर्वक गरुड़जी कहने लगे–हे कृपालु ! जो मेरे ऊपर आप प्रेम करते हो ॥ १ ॥ तो हे नाथ ! मुझको अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्न बखान कर कहिये ॥ २ ॥

प्रथमहि कहहु नाथ मतिधीरा * सबते दुर्लभ कवन शरीरा ॥३॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी * सो संक्षेपहि कहहु विचारी ॥४॥

स्वामिन् मतिधीर प्रथम तो यह बताइये कि सबसे दुर्लभ कौनसा शरीर है ॥ ३ ॥ और इस संसारमें सबसे बड़ा दुःख क्या है ? और सबसे बड़ा सुख क्या है ? सो संक्षेपसे ही विचार करके वर्णन कीजिये (यहां तक तीन प्रश्न हुये) ॥ ४ ॥

संत असन्त मर्म तुम जानहु * तिनकर सहज सुभाउ बखानहु ॥५॥
कवन पुण्य श्रुति विदित विशाला * कहहु कवन अघ परम कराला ॥६॥

आप संत (सत्पुरुषों) और असंत (दुष्टों) का भी मर्म जानते हो अतः उनका सहज स्वभाव वर्णन कीजिये ॥५॥ वेदोंमें सबसे बड़ा पुण्य क्या है ? और सबसे घोर पाप कौनसा है कहिये ॥६॥

मानस रोग कहहु सब गाई * तुम सर्वज्ञ कृपा अधिकाई ॥७॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती * मैं संक्षेप कहहुँ यह नीती ॥८॥

और सम्पूर्ण मानस रोग वर्णन कीजिये आप सर्वज्ञ हो, अर्थात् सब कुछ जानते हो मेरे ऊपर आपकी कृपा भी बहुत है ॥७॥ (काकभुशुण्डिजी कहने लगे) हे तात ! आदरपूर्वक और परम प्रीतिसे इस भेदको सुनिये । मैं यह नीति आपसे संक्षेपमें वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥

नरतनु सम नहिं कवनिउ देही * जीव चराचर याचत जेही ॥९॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी * ज्ञान विराग भक्ति सुखदेनी ॥१०॥

मनुष्य देहके समान तो कोई देह नहीं क्योंकि सभी चराचर जीव इसकी चाहना करते हैं ॥९॥ यही मनुष्य देह नरक स्वर्ग और अपवर्ग (मुक्ति) की सीढ़ी है । यही ज्ञान वैराग्य भक्तिकी सुख देनेवाली है इसीसे सब कुछ होता है–"धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरंसाधनंस्मृतम्" ॥१०॥

सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर * होइँ विषयरत मंद मंदतर ॥११॥
कांच किरिच बदले ते लेहीं * करते डारि परसमणि देहीं ॥१२॥

सो ऐसे शरीरको धारण कर जो मनुष्य भगवान्‌का भजन नहीं करते और विषयमें प्रीति लगाते हैं वे मन्दसे भी मन्द हैं ॥ ११ ॥ उनकी यह दशा है कि वे मूर्ख पारस पत्थरको हाथ से डाल देते हैं और उसके बदलेमें कांचका किनका ग्रहण करते हैं ॥ १२ ॥

नहिं दरिद्रसम दुख जगमाहीं * सन्त मिलनसम सुख कछु नाहीं ॥१३॥
पर उपकार वचन मन काया * सन्त सहज स्वभाव खगराया ॥१४॥

जगत्‌में दरिद्रताके समान कोई दुःख नहीं है और सन्तोंके मिलनेके समान कोई सुख नहीं है ॥ १३ ॥ हे पक्षिराज ! मन वचन और कर्मसे परोपकार करना यह सन्तोंका सहज स्वभाव है–"परोपकाराय सतां विभूतयः" ॥ १४ ॥

सन्त सहहिं दुख परहित लागी * परदुख हेतु असन्त अभागी ॥१५॥
भूर्ज तरू सम सन्त कृपाला * परहित सह नित बिपति विशाला ॥१६॥

सन्त पराये हितके कारण अपने ऊपर दुःख सहते हैं अभागे असन्त पराये दुःख देनेके कारण होते हैं ॥ १५ ॥ (दयामय सन्त सज्जन पुरुष) भोज पत्रके वृक्षके समान हैं कि पराये हितके निमित्त अनेक प्रकारकी महाविपत्ति सहते हैं; (भोजपत्रका वृक्ष दूसरोंको सुख देनेके निमित्त अपनी खाल खिंचवाता है)॥ १६ ॥

सन इव खल परबन्धन करई * खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥१७॥
खल विनु स्वारथ पर अपकारी * अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥१८॥

और दुष्ट पुरुष सनकी नाईं दूसरोंके बन्धनके निमित्त होते हैं अपनी खाल निकलवाकर तो मर ही जाते हैं परंतु दूसरे का बन्धन करते हैं ॥ १७ ॥ हे गरुड़जी ! सुनो, दुष्ट पुरुष विना प्रयोजन ही दूसरेका अनभल करते हैं, जैसे सर्प काट लेता है उसको कुछ लाभ नहीं पर दूसरे के प्राण जाते हैं । मूसा वस्त्र काट डालता है परन्तु उसको लाभ कुछ नहीं होता ॥ १८ ॥

पर संपदा विनाशि नशाहीं * जिमि कृषि हति हिम उपल बिलाहीं ॥१९॥
दुष्ट उदय जग आरत हेतू * यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥२०॥

दुष्टजन परायी सम्पदाका नाश करके आपही नष्ट हो जाते हैं, जैसे बरफके ओले खेतीका नाश करके आप नष्ट हो जाते हैं ॥१९॥ दुष्टोंका उदय जगतके दुःख देनेके ही निमित्त होता है जैसे ग्रहोंमें अधम केतुका जब उदय होता है तब दुर्भिक्ष आदि पड़ते हैं ॥ २० ॥

सन्त उदय संतत सुखकारी * विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥२१॥
परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा * परनिंदासम अघ न गरीसा ॥२२॥

संतोंका उदय सदा सुखके निमित्त होता है जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य जगत्‌के सुख देनेके निमित्त उदय होते हैं॥२१॥ वेदोंमें परम धर्म अहिंसा कहा गया है यथा–अहिंसापरमोधर्मः, अर्थात किसी प्राणीका चित्त न दुखाना । पराई निंदाके समान कोई बड़ा पाप नहीं है ॥ २२ ॥

हरि गुरु निन्दक दादुर होई * जन्म सहस्र पाव तनु सोई ॥२३॥
द्विज निन्दक बहुनरक भोग करि * जग जनमइ वायस शरीर धरि ॥२४॥

जो भगवान् गुरुकी निंदा करता है वह दादुर (मेढ़क) होता है और हजार जन्मतक वह मेढ़कका ही शरीर पाता है॥२३॥ ब्राह्मणोंकी निंदा करनेवाले नरकमें बहुत दुःख भोगकर फिर जगत्‌में काकका शरीर धारण कर लेते हैं ॥ २४ ॥

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी ❀ रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥२५॥
होहिं उलूक सन्त निन्दा रत ❀ मोह निशा प्रिय ज्ञान भानुगत॥२६॥

जो अहंकारी पुरुष देवता और वेदोंकी निंदा करनेवाले हैं वे प्राणी रौरव नरकमें (जाकर) पड़ते हैं ॥ २५ ॥ सन्तोंकी निन्दा करनेवाले उल्लू होते हैं, जिनको मोह रूपी रात प्यारी है, किंतु ज्ञानरूपी सूर्य नहीं ॥ २६ ॥

सबकी निन्दा जे जड़ करहीं ❀ ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥२७॥
सुनहु तात अब मानस रोगा ❀ जेहिते दुख पावहिं सब लोगा॥२८॥

जो मूर्ख सबकी निंदा करते हैं वे (दूसरे जन्ममें) चमगादुर होकर जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ हे तात ! अब मनके रोग सुनिये, जिनसे सब लोग दुःख पाते हैं ॥ २८ ॥

मोह सकल व्याधिनकर मूला ❀ तेहि ते पुनि उपजहिं बहुसूला॥२९॥
काम वात कफ लोभ अपारा ❀ क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥३०॥

यह मोह ही सम्पूर्ण रोगका मूल है, इसीसे फिर अनेक प्रकारके बहुत शूल उत्पन्न होते हैं ॥ २९ ॥ कामरूपी वात, लोभरूपी कफ और क्रोधरूपी पित्त सदा मनुष्यकी छाती जलाता रहता है (धैर्य, क्षमा, सन्तोष औषध हैं) ॥ ३० ॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ❀ उपजै संनिपात दुखदाई ॥३१॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना ❀ ते सब शूल नाम को जाना ॥३२॥

जो ये तीनों भाई, काम क्रोध लोभरूपी बात, पित्त, कफ परस्पर प्रीति करें अर्थात् मिल जायँ तो महादुःख देनेवाला सन्निपात उत्पन्न होता है (उससे प्राणी मर जाता है) ॥३१॥ अनेक विषयोंके मनोरथ जो कठिन हैं वे सब प्रकारसे शूलप्रद हैं उनके नाम कौन जान सकता है॥३२॥

ममता दाद कण्डु इरषाई ❀ हरष विषाद गहरु बहुताई ॥३३॥
परसुख देखि जरन सोइ छई ❀ कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलई ॥३४॥

ममता ही दादका रोग है, इर्षा खुजलीका रोग है, हर्ष विषाद बहुत भारी गहरू रोग है (यह गहरू घेवा रोग है इसमें गला फूलता है, और मांस लटक आता है) ॥३३॥ पराया सुख देखकर जलना ही छईका रोग है, दुष्टता और मनकी कुटिलता कुष्ठ रोग है ॥ ३४ ॥

अहंकार अतिदुखद डमरुआ ❀ दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥३५॥

अहंकार अत्यन्त दुःखका देनेवाला डमरू रोग है जिसमें पेट फूलकर डमरूसा हो जाता है यह भेद वृद्धि है और दम्भ कपट मद नहरुआ रोग है जो पैरमें नस निकल आती है॥३५॥

तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी ❀ त्रिविध ईषणा तरुण तिजारी ॥३६॥
युग विधिज्वर मत्सर अविवेका ❀ कहँ लगि कहउँ कुरोग अनेका॥३७॥

तृष्णा करना यह बड़ा भारी पेट बढ़नेका (जलन्धर) रोग है तीन प्रकारकी इच्छा लोक धन और पुत्रकी लालसा करना ही तीक्ष्ण तिजारी है ॥३६॥ (मत्सर) पराई भलाईका न देखना और अविवेक (अज्ञान) यह द्वन्द्वज दोषके ज्वर हैं अर्थात् वात पित्त या पित्त-कफ अथवा कफवात है कहां तक कहूँ (इस प्रकार) अनेक कुरोग हैं ॥ ३७ ॥

दोहा–एक व्याधि वश नर मरहिं, ये असाध्य बहु व्याधि ॥
सन्तत पीडहिं जीव कहँ, सो किमि लहहिं समाधि ॥ १९४ ॥

मनुष्य तो एक ही व्याधिसे मर जाते हैं किन्तु ये बहुत रोग हैं और असाध्य हैं, सदा जीवको पीड़ा देते हैं फिर वह कैसे ईश्वरको स्मरण करे और कैसे सुख पावे ? ॥ १९४ ॥

दोहा–नेम धर्म आचार तप, ज्ञान यज्ञ जप दान ॥
भेषज पुनि कोटिन नहीं, रोग जाहिं हरियान ॥ १९५ ॥

हे गरुड़ ! नियम, धर्म आचार (श्रेष्ठ आचरण), तपस्या, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि करोड़ों औषधियोंसे भी फिर ये रोग नहीं जाते ॥ १९५ ॥

इहि विधि सकल जीव जग रोगी ❋ शोक हर्ष भय प्रीति वियोगी ॥१॥
मानस रोग कछुक मैं गाये ❋ हैं सबके लखि बिरलन्ह पाये ॥२॥

इस प्रकार से जगत्के सब जीव रोगी हैं और शोक, भय, प्रीति, वियोग (बिछुड़ना) यह सबके पीछे लगा है ॥ १ ॥ मैंने थोड़ेसे यह मनके रोग वर्णन किये हैं, यह सबको होते हैं परन्तु इनकी पहिचान विरले ही करते हैं ॥ २ ॥

जाने ते छीजहिं कछु पापी ❋ नाश न पावहिं जन–परितापी ॥३॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे ❋ मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥४॥

वे पापी दुष्ट रोग जाननेसे कुछ छीजते अर्थात् घट जाते हैं, परन्तु वे मनुष्योंको दुःख देनेवाले निर्मूल नहीं होते ॥३॥ ये रोग विषयरूपी कुपथ्यको पाकर बढ़ते हैं और मुनियोंके हृदयमें भी अंकुरित होते हैं फिर साधारण मनुष्योंकी बातही क्या है ? ॥ ४ ॥

रामकृपा नाशहिं सब रोगा ❋ जो इहि भांति बनै संयोगा ॥५॥
सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा ❋ संयम यह न विषय कर आसा ॥६॥

जो इस प्रकार संयोग बने तो श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे सब रोग नष्ट हो जायँ ॥ ५ ॥ सद्गुणी श्रेष्ठ गुरुरूपी वैद्य हो, उनके वचनमें प्रतीति हो अर्थात् गुरुके वचन माने और किसी प्रकार विषयोंकी आशा न करे, यही संयम अर्थात् पथ्य है ॥ ६ ॥

रघुपति भक्ति सजीवन मूरी ❋ अनूपान श्रद्धा अति रूरी ॥७॥
इहि विधि भलेहि सो रोग नशाहीं ❋ नाहित यत्न कोटि नहिं जाहीं ॥८॥

रघुनाथजीकी भक्ति सजीवन-मूरी है, उसके श्रद्धाका बहुत बड़ा अनुपान है, उसे ॥ ७ ॥ जो इस प्रकार सेवन करे तो कदाचित भले वे उसके कुरोग नष्ट हो जायँ; अन्यथा करोड़ों यत्न करनेपर भी नहीं जाते ॥ ८ ॥

जानिय तब मन बिरुज गुसांई ❋ जब उर बल विराग अधिकाई ॥९॥
सुमति क्षुधा बाढ़ै नित नई ❋ विषय आश दुर्बलता गई ॥१०॥

हे गोसाईं ! तब मनको रोग रहित जानना चाहिए जब हृदयमें वैराग्यका बल परिपूर्ण हो ॥ ९ ॥ सुन्दर बुद्धिरूपी क्षुधा नित्य नयी बढ़ती जाय और विषयकी आशारूपी दुर्बलता सब जाती रहे ॥ १० ॥

विमल ज्ञान जल पाइ नहाई * तब रह राम भक्ति उर छाई ॥११॥
शिव अज शुक सनकादिक नारद * जे मुनि ब्रह्म विचार विशारद ॥१२॥

जब यह पुरुष उज्ज्वल ज्ञानका जल पाकर स्नान करे तब हृदयमें रामकी भक्ति प्राप्त होती है ॥११॥ महादेव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादिक, नारदमुनि जो ब्रह्मके विचारमें कुशल हैं ॥१२॥

सब कर मत खगनायक येहा * करिय रामपद पंकज नेहा ॥१३॥
श्रुति पुराण सद्ग्रंथ कहाहीं * रघुपति भक्ति विना सुख नाहीं ॥१४॥

हे गरुड़जी ! सबका यही मत है कि रघुनाथजीके चरण कमलोंमें स्वाभाविक स्नेह करना ॥१३॥ वेद पुराण सद्ग्रंथ यही कहते हैं कि रघुनाथजीकी भक्तिके विना सुख नहीं मिलता॥१४॥

कमठ पीठ जामहिं वरु बारा * वंध्या सुत बरु काहुहि मारा ॥१५॥
फूलहिं नभ बरु बहु विधि फूला * जीव न लहसुख हरि प्रतिकूला ॥१६॥

चाहे कछुएकी पीठ पर बाल जमि आवें चाहे वंध्या (बांझ) स्त्रीका पुत्र किसीको मार डाले ॥१५॥ चाहे आकाशमें (आधार विना) अनेक प्रकारके फूल फूलें, परंतु जीव परमात्मासे प्रतिकूल रहकर सुख नहीं पा सकता ॥ १६ ॥

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना * बरु जामहि शश शीश विषाना॥१७॥
अन्धकार बरु रविहि नशावै * राम बिमुख न जीव सुख पावै॥१८॥

चाहे मृगजल (रेतेमें भ्रांतिके जल) पीने से किसी की प्यास जाती रहे, चाहे खरगोशके शिरपर सींग जम आवे ॥ १७ ॥ अन्धकार सूर्यका नाश करदे, यह विपरीतता हो सकती है, परंतु रामके विमुख होनेसे जीव कभी सुख नहीं पा सकता ॥ १८ ॥

हिमते अनल प्रगट बरु होई * विमुख राम सुख पाव न कोई ॥१९॥

चाहे महाशीतल पालेमें अग्नि प्रगट हो जाय परंतु रघुनाथजीसे विमुख होकर कोई सुख नहीं पा सकता ॥ १९ ॥

दोहा–वारि मथे बरु होइ घृत, सिकताते बरु तेल ॥
विनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥ १९६ ॥

चाहे जल विलोनेसे घी निकल आवे और चाहे रेतेसे तेल निकल आवे, आश्चर्य व्यापार हो जाय, परन्तु परमेश्वरके भजन विना कोई संसार सागरको तर नहीं सकता यह सिद्धान्त निश्चय किया हुआ अपेल (अमिट) है सब शास्त्रोंका सार है ॥ १९६ ॥

दोहा–मशकहि करहिं विरंचि प्रभु, अजहि मशकते हीन ॥
अस विचारि तजि संशय, रामहि भजहिं प्रवीन ॥ १९७ ॥

रघुनाथजी मच्छरको ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्माको मच्छरसे भी हीन कर सकते हैं ॥ १९७ ॥ ऐसा विचार सब सन्देह त्यागकर चतुर पुरुष रघुनाथजीका भजन करते हैं।

नगस्वरूपिणी–विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे ॥
हरिं नरा भजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते ॥ १ ॥

हे गरुड़जी ! मैं यह निश्चय सिद्धान्त कहता हूँ, मेरा वचन झूठ नहीं कि जो मनुष्य रामका भजन करते हैं वे निश्चय भवसागरके पार हो जाते हैं ॥ १ ॥

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा ❋ व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥१॥
श्रुति-सिद्धांत इहै उरगारी ❋ राम भजिय सब काम बिसारी ॥२॥

हे स्वामिन् ! यह मैंने श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र जो उपमा रहित हैं व्यास अर्थात् विस्तारसे और समास (संक्षेप) से अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किये हैं। अयोध्याकाण्डतक विस्तार है और शेष पांच काण्डमें संक्षेप है॥ १ ॥ हे गरुड़जी ! सम्पूर्ण वेदोंका यही सिद्धान्त है कि सब कामना विसार कर रामका भजन करिये ॥ २ ॥

प्रभु रघुपति तजि सेइय काही ❋ मोसे शठ पर ममता जाही ॥३॥
तुम विज्ञान रूप नहिं मोहा ❋ नाथ कीन्ह मोपर अति छोहा ॥४॥

हे स्वामिन् ! रघुनाथजीको छोड़कर किसका सेवन करना चाहिये कि जिन्होंने मुझसे शठ (मूर्ख) पर भी कृपा की है ॥३॥ हे गरुड़जी ! तुम साक्षात् विज्ञानरूप (आत्मज्ञान स्वरूप) हो तुम्हें मोह नहीं है। हे नाथ ! आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥ ४ ॥

पूछेहु राम-कथा अति पावनि ❋ शुक सनकादि शम्भु मन भावनि॥५॥
सतसंगति दुर्लभ संसारा ❋ निमिष दण्ड भरि एकौ बारा ॥६॥

आपने अति पवित्र रामकी कथा मुझसे पूछी है; शुकदेव, सनकादिक और शिवजीके भी मनको भाती है ॥ ५ ॥ संसारमें सत्संगति दुर्लभ है, एक पल, घड़ी अथवा एक बार भी (सत्संगति करनेसे मनुष्य परमपदका अधिकारी हो जाता है) ॥ ६ ॥

देखु गरुड़ निज हृदय विचारी ❋ मैं रघुवीर भजन अधिकारी ॥७॥
शकुनाधम सब भाँति अपावन ❋ प्रभु मोहिं कीन्ह विदित जगपावन॥८॥

हे गरुड़जी ! अपने मनमें यह तो विचार कर देखो कि क्या मैं रघुनाथजीके भजनका अधिकारी हूँ ! ॥ ७ ॥ पक्षियोंमें नीच सब भाँति से अपवित्र हूँ, परन्तु प्रभुने मुझे जगत्में प्रसिद्ध और पवित्र कर दिया ॥ ८ ॥

दोहा-आजु धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सब विधि हीन ॥
निज जन जानि राम मोहिं, सन्त समागम दीन ॥ १९८ ॥

यद्यपि मैं सब प्रकार हीन हूँ परंतु आज तुम्हारे समागमसे कृतार्थ हो गया हूँ, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीने मुझे अपना परमदास जानकर सन्तका समागम दिया(समागम-मेल)॥१९८॥

दोहा-नाथ यथामति भाषेउँ, राखेउँ कछु नहिं गोइ ॥
चरित सिन्धु रघुनाथके, थाह कि पावै कोइ ॥ १९९ ॥

हे नाथ ! यह मैंने मतिके अनुसार कथा वर्णन की कुछ छिपा नहीं रखी, रघुनाथजीके चरित्र समुद्र हैं, किसे सामर्थ्य है जो उनकी थाह पावे ! ॥ १९९ ॥

सुमिरि रामके गुणगण नाना ❋ पुनि पुनि हर्ष भुशुण्डि सुजाना ॥१॥
महिमा निगम नेति करि गाई ❋ अतुलित बल प्रताप प्रभुताई ॥२॥

रघुनाथजीके अनेक प्रकारके गुणोंको स्मरण करके काकभुशुंडिजी बारम्बार प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ जिन रामकी महिमा वेदोंने 'नेति नेति' करके गायी है । जिनका अपरिमित बल है, प्रताप है और बड़ी महिमा है ॥ २ ॥

शिव अज पूज्य चरण रघुराई ❋ मोपर कृपा परम मृदुलाई ॥३॥
अस सुभाव कहुँ सुनहुँ न देखौं ❋ केहि खगेश रघुपतिसम लेखौं ॥४॥

जिन रघुनाथजीके चरणोंकी शिवजी और ब्रह्माजी भी पूजा करते हैं उन्होंने भी मेरे ऊपर कृपा की उनकी कोमलता तो देखो ॥ ३ ॥ ऐसा स्वभाव तो मैं कहीं किसीका नहीं देखता न सुनता हूँ, हे गरुड़जी ! रामके समान किसे कहूँ यही वेद भी कहता है–"न तस्य प्रतिमाह्यस्ति यस्य नाम महद्यशः" उसके समान कोई नहीं जिसका नाम बड़ा यशस्वी है ॥ ४ ॥

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी ❋ कवि कोविद विरक्त संन्यासी ॥५॥
योगी शूर सुतापस ज्ञानी ❋ धर्म निरत पंडित विज्ञानी ॥६॥

साधक, सिद्ध, मुक्त, उदासी, कवि (छन्द बनानेवाले); विद्वान्, विराग, संन्यासी ॥ ५ ॥ योगी, शूर, तपस्वी, ज्ञानी धर्मात्मा, पंडित, विज्ञानी ॥ ६ ॥

तरहिं न बिनु सेयं मम स्वामी ❋ राम नमामि नमामि नमामी ॥७॥
शरण गये मोसे अघराशी ❋ होहिं शुद्ध नमामि अविनाशी ॥८॥

विना मेरे स्वामी रघुनाथजीकी सेवा किये कोई नहीं तर सकता ऐसे अपने स्वामीको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ॥७॥ जिनकी शरणमें जानेसे मुझसे पापी भी शुद्ध हो जाते हैं, ऐसे पवित्र अविनाशी रामजीको दंडवत् प्रणाम करता हूँ ॥८॥

दोहा–जासु नाम भव भेषज, हरण तापत्रय शूल ॥
सो कृपालु मोहिं तोहिं पर, सदा रहहिं अनुकूल ॥ २०० ॥

जिसका नाम संसारके (आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक) इन तीनों तापोंसे छूटनेकी औषधि है अनेक प्रकारके (शूल) दुःखोंके जो हरनेवाले हैं वे कृपा सागर मेरे और तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न रहें ॥ २०० ॥

दोहा–सुनि भुशुण्डिके वचन वर, देखि रामपद नेह ॥
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड़ विगत संदेह ॥ २०१ ॥

काकभुशुंडिजीके यह श्रेष्ठ वचन सुन और रघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति देख गरुड़जी संदेह रहित होकर प्रेम सहित कोमल वाणी बोले ॥२०१॥

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी ❋ सुनि रघुवीर भक्तिरस सानी ॥१॥
रामचरण नूतन रति भई ❋ माया जनित विपति सब गई ॥२॥

मैं तुम्हारी वाणीसे कृतकृत्य हो गया हूँ अर्थात् अपनेको कृतकार्य मानता हूँ क्योंकि रघुवीरजीकी रस भरी भक्ति सुनकर मेरा मन प्रसन्न हो गया ॥ १ ॥ रामके चरणोंमें नवीन प्रीति हुई, मायासे उत्पन्न हुई सब विपत्ति जाती रही ॥ २ ॥

मोह जलधि बोहित तुम भयऊ * मोकहँ नाथ विविध सुख दयऊ ॥३॥
मोसन होइ कि प्रति उपकारा * बन्दौं तव पद बारहिं बारा ॥४॥
मोहरूपी सागरके पार करनेको तुम जहाजरूप हो गये, हे नाथ ! तुमने मुझे अनेक प्रकार से सुख दिया ॥ ३ ॥ मुझसे तुम्हारा प्रत्युपकार नहीं होगा, अतः तुम्हारे चरणोंको बारंबार दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

पूरण काम राम-अनुरागी * तुम सम तात न कोउ बड़भागी ॥५॥
संत विटप सरिता गिरि धरणी * परहित हेतु सबन्हकी करणी ॥६॥
आप पूर्णकाम हो, रघुनाथजीसे प्रेम करनेवाले हो तुम्हारे समान कोई बड़भागी नहीं है ॥ ५ ॥ सन्त (महात्मा), वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी इनकी करनी पराये निमित्त ही है अर्थात् अपनी विभूतिसे ये सब पराया उपकार करते रहते हैं ॥ ६ ॥

संत-हृदय नवनीत समाना * कहा कविन्ह पै कहइ न जाना ॥७॥
निज परिताप द्रवै नवनीता * परदुख द्रवहिं सुसन्त पुनीता ॥८॥
सन्तोंके हृदय मक्खनके समान होते हैं यह उनका स्वभाव बड़े बड़े कवियोंने कहा; परंतु कहते नहीं बना ॥७॥ क्योंकि मक्खन तो अपने ही तापसे द्रवित होता है अर्थात् जब उसे अग्निपर धरो तब पिघलता है परंतु सज्जन पुरुष तो पराये दुःखको देखकर द्रवते(पसीजते) हैं॥८॥

जीवन जन्म सफल मम भयऊ * तव प्रसाद सब संशय गयऊ ॥९॥
जानेहु मोहि सदा निज किंकर * पुनि पुनि उमा कहै विहंगवर॥१०॥
मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया, तुम्हारे प्रसादसे मेरे सब सन्देह दूर हो गये ॥९॥ मुझे सदा अपना दास जानिये ऐसा बार बार गरुड़जीने काकभुशुंडिजीसे वर्णन किया ॥१०॥

दोहा-तासु चरण शिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर ॥
गयउ गरुड़ वैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुवीर ॥ २०२ ॥
उसके चरणोंमें मतिधीर (धैर्यवान्) गरुड़जीने प्रेमपूर्वक शिर नवाया और श्रीरघुवीर सुख-सागर जगत् उजागर तारणतरण सङ्कटहरण सुखकरणको हृदयमें धारण करके वैकुण्ठको चले गये ॥ २०२ ॥

दोहा-गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन ॥
बिनु हरि कृपा न होइ सो, गावहिं वेद पुरान ॥ २०३ ॥
शिवजी बोले-हे पार्वती ! संत महात्माओंके समागमके समान और कुछ लाभ नहीं है सो वह सत्संगति विना रामकी कृपाके प्राप्त नहीं होती, ऐसा वेद पुराण गाते हैं ॥ २०३ ॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा * सुनत श्रवण छूटहि भव पासा ॥१॥
प्रणत कल्पतरु करुणापुञ्जा * उपजै प्रीति राम पदकञ्जा ॥२॥
हे पार्वती!यह परम पवित्र इतिहास-रघुनाथजीकी कथा तुमको सुनायी;इसके श्रवण करतेही मनुष्य संसार रूपीपास(फाँस)से छूट जाते हैं॥१॥जो दीनोंके कल्पवृक्ष अर्थात् इच्छित पदार्थ देनेवाले; करुणाके राशि हैं उनके चरण कमलोंमें उसके श्रवण करनेसे प्रीति होती है ॥ २ ॥

मन वचकर्म-जनित अघ जाई ॥ सुनहिं जे कथा श्रवण मनलाई ॥३॥
तीर्थाटन साधन समुदाई ॥ योग विराग ज्ञान निपुणाई ॥४॥

इस कथाको मन लगाकर श्रवण करने पर मन वचन कर्मसे उत्पन्न पाप जाते रहते हैं ॥३॥ तीर्थोंकी यात्रा और अनेक प्रकारके साधन योग वैराग्य ज्ञानकी निपुणता ॥ ४ ॥

नाना कर्म धर्म व्रत दाना ॥ संयम नियम यज्ञ जप नाना ॥५॥
भूत-दया द्विज-गुरु-सेवकाई ॥ विद्या विनय विवेक बड़ाई ॥६॥

अनेक प्रकारके कर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, यज्ञ, जप आदि अनेक प्रकारके विधेय कर्म ॥ ५ ॥ प्राणियोंके ऊपर दया, ब्राह्मण-गुरुकी सेवा, विद्या, विनय (नम्रता), ज्ञान, बड़ाई ॥ ६ ॥

जहँ लगि साधन वेद बखानी ॥ सबकर फल हरि भक्ति भवानी ॥७॥
सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई ॥ राम-कृपा काहू एक पाई ॥८॥

जहांतक वेदने साधन बखान कर कहे हैं, हे पार्वती ! सबका फल नारायणकी भक्ति ही है ॥ ७ ॥ वह रघुनाथजीकी वेदविहित भक्ति रामकी कृपासे किसी एकने ही पायी है अर्थात् भक्ति किसी एकको ही प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

दोहा-मुनि दुर्लभ हरि भक्ति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास ॥
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि विश्वास ॥२०४॥

मुनियोंको भी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य नारायणकी भक्ति, वे मनुष्य विना परिश्रम ही पावेंगे जो इस कथाको सदा विश्वास मानकर सुनेंगे ॥ २०४ ॥

सोइ सर्वज्ञ गुणी सोइ ज्ञाता ॥ सोइ महिमण्डित पण्डित दाता ॥१॥
धर्म परायण सोइ कुल-त्राता ॥ रामचरण जाकर मन राता ॥२॥

वही सर्वज्ञ गुणी है, वही ज्ञानी है, वही पृथ्वीका भूषण है, वही पंडित और दाता है ॥१॥ वही धर्म परायण अर्थात् धर्म करने वाला और वही कुलकी रक्षा करनेवाला है जिसका मन श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें रम रहा है ॥ २ ॥

नीति निपुण सोइ परम सयाना ॥ श्रुतिसिद्धांत नीक तेइँ जाना ॥३॥
सोइ कविकोविद सोइ नर धीरा ॥ जो छल छांड़ि भजै रघुवीरा ॥४॥

वही पुरुष नीतिमें चतुर वही परम प्रवीण और वही वेदका सिद्धांत अच्छी प्रकार जानता है ॥ ३ ॥ वही पुरुष कवि (छन्द रचनेवाला) है, वही पंडित है और वही धैर्य धारण करनेवाला है जो सम्पूर्ण छलको त्यागकर श्रीरघुनाथजीका भजन करता है ॥ ४ ॥

धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥ धन्य सो देश जहां सुरसरी ॥५॥
धन्य सो भूप नीति जो करई ॥ धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥६॥

वही स्त्री धन्य है जो पतिव्रत धर्मका आचरण करती है, वह देश धन्य है जहां गंगाजी हैं ॥ ५ ॥ वे राजा धन्य हैं जो राजनीति वर्तते हैं, वे ब्राह्मण धन्य अर्थात् बड़ाईके योग्य

हैं जो अपना धर्म कर्म नहीं छोड़ते (पढ़ना,-पढ़ाना, दान लेना-देना, यज्ञ करना-कराना यह ब्राह्मणके छः कर्म हैं) ॥ ६ ॥

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी * धन्य पुण्यरत मति सोइ पाकी ॥७॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा * धन्य जन्म द्विज भक्ति अभंगा ॥८॥

वह धन धन्य है जिसकी प्रथम गति है । धनकी तीन गति हैं अर्थात् दान, भोग और नाश । इनमें पहली गतिका धन श्रेष्ठ है जो दान दिया जाता है । जिस मतिमें पुण्यकी प्रीति दृढ़ हो गई है वह बुद्धि धन्य है ॥ ७ ॥ वह घड़ी धन्य है कि जब सत्सङ्गति होती है उसका जन्म धन्य है जिसकी ब्राह्मणके चरणोंमें दृढ़ प्रीति है ॥ ८ ॥

दोहा–सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ॥
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज विनीत ॥ २०५ ॥

हे पार्वती ! सुनो वह कुल धन्य जगत्पूज्य और परम पवित्र है, जिस कुलमें नम्रता और शीलसे युक्त श्रीरामचन्द्रजी महाराजका उपासक मनुष्य जन्म लेता है ॥ २०५ ॥

मति अनुरूप कथा मैं भाखी * यद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥१॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई * तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥२॥

शिवजी कहने लगे हे पार्वती ! यद्यपि प्रथम मैंने यह कथा गुप्त कर रखी थी· परन्तु अब मतिके अनुसार वर्णन की ॥ १ ॥ आपके मनमें अधिक प्रीति देखकर तब मैंने रघुनाथजीकी कथा सुनायी है ॥ २ ॥

यह नहिं कहिय शठहीं हठशीलहिं * जो मन लाइ न सुनु हरि लीलहिं ॥३॥
कहिय न लोभिहिं क्रोधिहि कामिहिं * जो न भजे सचराचर स्वामिहिं ॥४॥

यह कथा मूर्ख और हठीके आगे नहीं कहनी चाहिये जो मन लगाकर नारायणकी लीलाको न सुने उससे भी न कहे ॥३॥ लोभी, कामी, क्रोधीसे यह कथा न कहे अथवा जो चराचर (स्थावर जंगम) के स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको न भजे उसको भी न सुनावे ॥ ४ ॥

द्विजद्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ * सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥५॥
राम कथाके ते अधिकारी * जिनके सत्संगति अति प्यारी ॥६॥

चाहे इन्द्रके समान भी राजा हो यदि वह ब्राह्मणोंसे द्रोह करता हो तो वह कथा उसको कभी न सुनावे ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुननेके तो वे ही अधिकारी हैं जिनको सत्संगति बहुत प्यारी है ॥ ६ ॥

गुरुपद प्रीति नीति रत जेई * द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥७॥
ताकहँ यह विशेष सुखदाई * जाहि परम प्रिय श्रीरघुराई ॥८॥

जो गुरुके चरणोंमें प्रीति करनेवाला नीतिवान् ब्राह्मण सेवक हो वही इस कथाके सुननेका अधिकारी होता है ॥ ७ ॥ और उसको तो यह कथा अत्यन्त ही सुखदायक है जिसको श्री रघुनाथजी अत्यन्त प्यारे हैं ॥ ८ ॥

दोहा-राम चरणरति जो चहइ, अथवा पद निर्वान ॥
भाव सहित सो यह कथा, करइ श्रवणपुट पान ॥ २०६ ॥

जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति चाहे अथवा निर्वाणपद (मुक्ति) के प्राप्त होनेकी जिसको इच्छा हो वह प्रेमसहित यह कथा कानरूपी दोनेसे पान करे ॥ २०६ ॥

राम कथा गिरिजा मैं बरणी * कलिमलशमन मनोमल हरणी ॥१॥
संसृति--रोग--सजीवन--मूरी * राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥२॥

शिवजी कहने लगे-हे पार्वती ! मैंने श्रीरामचन्द्रजीकी कथा वर्णन की, जो कलियुगके पाप शांत करने वाली और मनकी मैल हरनेवाली है ॥ १ ॥ जीवन-मरणरूपी रोगके दूर करनेको सजीवन मूरिके समान है, वेदके जानने वाले ऐसा कहकर रामजीकी कथाको गाते हैं ॥ २ ॥

यहि महँ रुचिर सप्त सोपाना * रघुपति भक्तिकेर पन्थाना ॥३॥
अति हरि कृपा जाहिपर होई * पाँव देइ यहि मारग सोई ॥४॥

इसमें सुन्दर सात सीढ़ी (कांड) हैं जो रघुनाथजीकी भक्ति प्राप्त होनेके मार्ग हैं ॥ ३ ॥ जिसके ऊपर नारायणकी बहुत कृपा होती है वही इस मार्गमें चरण देता है ॥ ४ ॥

मन कामना सिद्ध नर पावा * जो यह कथा कपट तजि गावा ॥५॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं * ते गोपद इव भव निधि तरहीं ॥६॥

जो मनुष्य कपट त्यागकर इस गाथाको गाते हैं; उनकी मनोकामनायें सिद्ध हो जाती हैं ॥५॥ जो इसको कहते सुनते हैं, अनुमोदन कर श्रोता वक्ताकी प्रशंसा करते हैं वे गो-पदके समान संसार सागरको तर जाते हैं ॥ ६ ॥

सुनि शुभ कथा हृदय अति भाई * गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥७॥
नाथ कृपा मम गत सन्देहा * रामचरण उपजेउ नवनेहा ॥८॥

हृदयको अति प्यारी यह श्रेष्ठ कथा श्रवण करके पार्वती शिवजीसे शोभायमान वाणी बोलीं ॥७॥ हे नाथ ! अब आपकी कृपासे मेरा सब सन्देह जाता रहा और श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें नया प्रेम उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

दोहा-मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद विश्वेश ॥
उपजी रामभक्ति दृढ़, बीते सकल कलेश ॥ २०७ ॥

हे संसारके ईश्वर ! अब आपकी कृपासे कृतकृत्य हो गया, (मुझे कुछ करनेको न रहा) क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी दृढ़ भक्ति उत्पन्न हुई और सम्पूर्ण क्लेश जाते रहे (यहां तक शिवपार्वतीजीका संवाद पूर्ण हो चुका) ॥ २०७ ॥

यह शुभ शंभु-उमा संवादा * सुख संपादन शमन विषादा ॥१॥
भव भञ्जन गञ्जन सन्देहा * जनरञ्जन सज्जन प्रिय एहा ॥२॥

याज्ञवल्क्यजी कहने लगे-हे भरद्वाज ! यह शिव पार्वतीका शुभ संवाद सुख उपजाने और विषादको शान्त करने वाला है ॥ १ ॥ संसारके भयको छुड़ानेवाला और सन्देहको दूर करने वाला है यह महात्मा सज्जनोंको आनंद देनेवाला और उनका प्यारा है ॥ २ ॥

राम उपासक जे जगमाहीं * इहि सम प्रिय तिनकहँ कछु नाहीं ॥३॥
रघुपति कथा यथामति गावा * मैं यह पावन चरित सुहावा ॥४॥

जितने जगत्‌में रामके उपासक हैं, इसके समान प्यारा उनको और कुछ है नहीं ॥ ३ ॥ मैंने यह सुन्दर पवित्र चरित्र श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे वर्णन किया, (यह कह पूजा पाकर याज्ञवल्क्यजी बिदा हुए) ॥ ४ ॥

इहि कलिकाल न साधन दूजा * योग यज्ञ जप तप व्रत पूजा ॥५॥
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं * सन्तत सुनिय रामगुण ग्रामहि ॥६॥

(गुसाईंजी कहते हैं) इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजादिक दूसरा साधन नहीं है ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीका ही स्मरण कीजिये, श्रीरामचन्द्रजीके ही गुण गाइये और सदा श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंको ही सुनिये ॥ ६ ॥

जासु पतितपावन बड़ बाना * गावहिं कवि श्रुति सन्त पुराना ॥७॥
ताहि भजिय तजि मन कुटिलाई * राम भजे गति केहि नहिं पाई ॥८॥

जिस परमात्माकी यह बड़ी बान है कि पतितों (पापियों) को पवित्र करते हैं; ऐसा कवि वेद संत और (अष्टादश) पुराण गाते हैं ॥७॥ उस परमात्माका मनकी कुटिलता त्याग कर भजन करना चाहिये, रामचन्द्रजीका भजन करनेसे किसने गति नहीं पायी ? ॥ ८ ॥

छन्द-पाई न गति केहि पतित पावन राम भजि सुनु शठ मना ।
गणिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर यवन किरात खश श्वपचादि अति अघ रूप जे ।
कहि नाम बारेक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥ २८ ॥

किसने गति नहीं पायी अर्थात् सबने गति पायी; हे मूर्ख मन ! पतितोंके पवित्र करनेवाले रामको तू क्यों नहीं भजता ? गणिका (पिंगला वेश्या) कोई विषयी न आनेसे एक ही रातमें प्रेमसे भजन करनेसे, अजामिल मरते समय पुत्रका नाम 'नारायण'लेनेसे, गृध्र जटायु दर्शनसे, व्याध बाण मारनेसे, गज एक कमलका फूल महा संकटमें भेंट करनेसे इसी तरह सब तर गये और भी आभीर, यवन, किरात, खश, श्वपच, चांडालादि जो अतिपापरूप थे वे भी एक बार नाम उच्चारण करनेसे पवित्र हो गये हैं, श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

छन्द-रघुवंश भूषण चरित यह नरकहहिं सुनहिं जे गावहीं ॥
कलिमल मनोमल धोय बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ॥
सतपञ्च चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरैं ॥
दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुपति हरैं ॥ २९ ॥

अब इस धर्म संहिताका माहात्म्य कहते हैं:-रघुवंश विभूषण रघुनाथजीका यह चरित्र जो मनुष्य कहें, सुनें और गावें वे कलिके मल और मनके मल धोकर विनाही श्रम रामके धामको सिधार जायेंगे जो उसकी पांच सात मनोहर चौपाइयोंको जानकर हृदयमें धारण करते

हैं, उनके काम क्रोधादि कठिन अविद्यासे उत्पन्न पञ्चविकारको रघुनाथजी हर लेते हैं। अथवा इससे गुसाईंजी अपनी चौपाइयोंकी संख्या वर्णन करते हैं कि "अंकानां वामतो गतिः" इससे शत पंचके और सौकी बांई ओर पाँच लिखनेसे सिद्ध होते हैं अर्थात् ५१०० पाँच हजार एकसौ हुए लगभग इतनी ही चौपाइयां गुसाँईजीने रामायणमें कही हैं। अथवा यह चौपाइयां यह पंच अर्थात् सच्चे पञ्च हैं इनको हृदयमें जो धरते हैं श्रीरघुनाथजी अनेक लोभादि विकारको हर लेते हैं। अथवा यह चौपाइयां पंचदेवके उपासना करनेवालोंका विवाद मिटानेको पञ्चके समान हैं, जिसका जैसा माहात्म्य है उसका निर्णय करती हैं। शंकरकी उपासना- "इच्छित फल बिनु शिव अवराधे। लहइ न कोटि योग जप साधे॥ जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भक्ति हमारी" शक्तिकी उपासना- "भव-भव-विभव-पराभव कारिणि। विश्व-मोहिनिस्ववशविहारिणि॥ नहिं तव आदि मध्य अवसाना। महिमा अमित वेद नहिं जाना॥ जग-संभव पालन-लयकारिणि। निज इच्छा लीलावपुधारिणि" पञ्चदेवताओंकी उपासना- "करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गणपति गौरि पुरारि तमारी॥ रमारमण पद वंदि बहोरी। विनवहिं अंजुल अञ्जलि जोरी" इत्यादि वाक्योंसे सर्वसम्मत रामायण है; यही सिद्धांत है कि सम्पूर्ण पञ्चोंका निबटारा रघुनाथजीके हाथ है, इसका कारण यह है कि पञ्चोंका निबटारा उनके अध्यक्ष ही किया करते हैं अथवा यह सतपञ्च हैं जो प्रश्न चाहो पूँछकर निबटारा कर लो। अथवा सतपंच चौपाई मूल रामायणकी हैं उन्हें जो पाठ करेंगे उनके सम्पूर्ण मनो-रथ सिद्ध होंगे। बहुत महात्माओंका कथन है प्रायः सभी चौपाइयोंमें रकार मकार हैं। अथवा एक सौ पांच चौपाई मुख्य हैं उनके पढ़नेसे पाप दूर हो जाता है॥ २९॥

छन्द-सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथपर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्वानप्रद सम आनको॥
जाकी कृपा लवलेशते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥ ३०॥

जो सुन्दर सुजान और कृपाके निधान हैं, जो दीनोंके ऊपर प्रीति करने वाले हैं, सो ऐसे राम ही हैं। जो कोई कामना नहीं रखते परंतु अपने जनको अति प्रिय माननेवाले एवं मुक्ति के देनेवाले हैं, उनके समान दूसरा कौन है? जिसकी लवलेश अर्थात् अतिसूक्ष्म कृपासे मतिमन्द तुलसीदासने भी परम विश्राम पाया है; (इस कारण सर्व शास्त्रसम्मत और मेरी समझमें) रामके समान कृपालु ऐसे प्रभु कहीं नहीं हैं॥ ३०॥

दोहा-मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुवीर॥
अस विचारि रघुवंशमणि, हरहु विषम भवभीर॥ २०८॥

हे श्रीरघुनाथजी! अनेक कष्ट, दुःख, भय, त्रास, मृत्युपाससे छुड़ानेको आप वीर हो मेरे समान तो कोई दीन दुःखी शोक मोहसे पीड़ित नहीं है और आपके समान कोई दीनोंका हित-कारी नहीं है, ऐसा विचार कर हे रघुवंशमणि! कठिन संसारके दुःखोंकी पीड़ा हर लीजिये। "पापिनामहमेकोऽग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः। दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये।" अगले दोहेका अर्थ स्पष्ट समझ कर नहीं लिखा॥ २०८॥

दोहा–कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ॥
तिमि रघुबीर निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥ २०९ ॥

शार्दूलवि०–यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ॥
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्नोतु रामायणम् ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमश्शान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ १ ॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं,
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्,
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्याऽवगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोर–किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥ २ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुष विध्वंसने विमलविज्ञानसम्पादनो नाम सप्तमः सोपानः समाप्तः ॥ ७ ॥

श्रीमान् तुलसीदासजी संक्षेपतः रामायण-माहात्म्य कहते हैं–पूर्व समयमें जिस रामायणको समर्थ सुकवि श्रीशंकरजी ने विरचित किया था, उसको ही सर्व साधारण मनुष्योंके लिये क्लिष्ट जानकर जिसमें श्रीरामचंद्रजीके चरणारविंदकी संपूर्ण भक्ति निरंतर भरी है वह (रामायण) प्राप्त हो ऐसा मानकर इसी प्रकार जिसमें रघुनाथजीका नाम (चरित) परिपूर्ण है ऐसे मानस रामायणको अपना हृदयान्धकार नष्ट होनेके लिये भाषानिबद्ध करके तुलसीदासजीने बनाया ॥१॥ (फिर कैसा यह मानसरामायण है) पुण्यरूप पापको हरनेवाला, सर्वदा कल्याणकारक विज्ञान और भक्तिका देनेवाला मलरूप माया और मोहका नाशक, सुन्दर निर्मल प्रेमरूप जलसे पूर्ण और शुभ है, इस रामचरित्र रूप मानसरोवरमें भक्तिसे जो स्नान करते हैं वे मनुष्य संसार रूपी सूर्यकी कठोर (कर्मरूपी) किरणोंसे दग्ध नहीं होते अर्थात् सदैव सुखरूप रहते हैं ॥२॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने मुरादाबाद निवासी पंडित सुखानंद मिश्रात्मज–
पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायामुत्तरकाण्डान्तर्गतो नवमो विश्रामः ॥ ९ ॥

दोहा–शरण सुखद आनन्दघन, सीयलषनयुत राम ॥
कृपादृष्टिकी वृष्टि कर, करहु हृदय विश्राम ॥ १ ॥
रमारमण साकेतपति, दीनबन्धु भगवान् ॥
निजजन जान दयानिधे, देहु भक्ति सुखदान ॥ २ ॥
केवल कृपा तुम्हारि प्रभु, जग मंगल दातार ॥
सो चाहत सन्तत सदा, सन्तन प्राण अधार ॥ ३ ॥
प्रभु ढिग नित सेवा निरत, वीर अञ्जनीलाल ॥
सो सब काज सुधारिहैं, करिकै कृपा विशाल ॥ ४ ॥
सकल सुमंगलदायक, उमा–शम्भु सम्वाद ॥
भाषा टीका करि कह्यो, द्विज ज्वालापरसाद ॥ ५ ॥

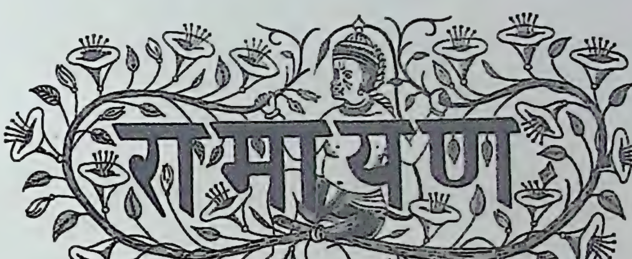
इति उत्तर काण्ड समाप्त

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



अथ

श्रीयुत गोस्वामितुलसीदासजीकृत



रामाश्वमेध-लवकुशकाण्डम् ८.

★

विद्यावारिधि-

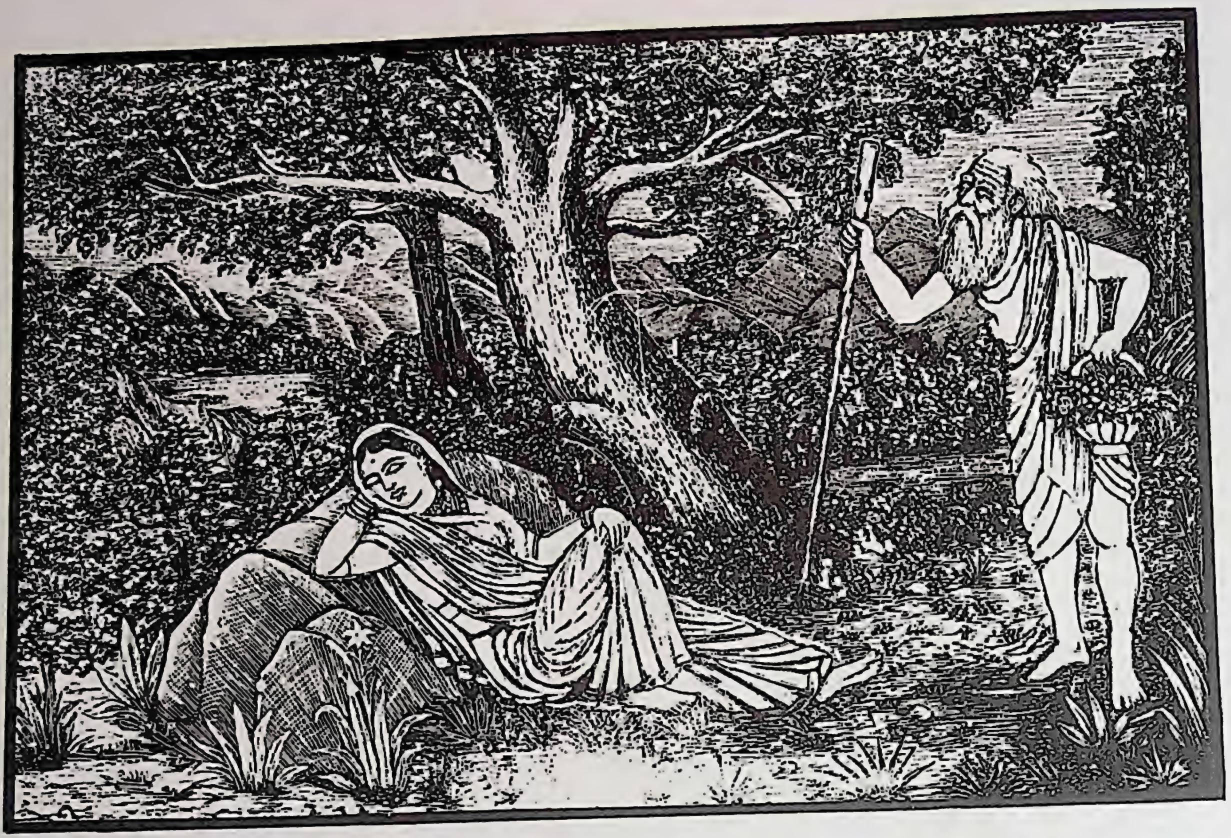
श्रीयुत पण्डित-ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत

सञ्जीवनी टीका सहित



खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

चौपाई–सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई, राम कृपा काहू एक पाई।
मन क्रम वचन जनित अघ जाई, सुनहिं जे कथा श्रवण मनलाई॥



दोहा–मुनिदुर्लभ हरिभक्ति नर, पावहिं विनहि प्रयास।
जो यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि विश्वास॥

लवकुशकाण्डम् ८.



श्रीरामपंचायतन

श्रीः

श्रीवेंकटेशो विजयतेतराम्

अथ रामाश्वमेध

लवकुश काण्डम् ८.

*

मङ्गलाचरणम्

श्लोक-जयति रघुवंशतिलकः कौशल्याहृदयनन्दनो रामः ॥
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥ १ ॥

कौशल्याके हृदयको आनंद देनेवाले, रघुवंशमें तिलकस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जिन श्रीरामचन्द्रजीने रावणको मारा है जो दशरथजीके पुत्र और कमल लोचन हैं (उनकी जय हो) ॥ १ ॥

दोहा-जीवित भा द्विजराजसुत, लवणासुर कर घात।
अश्वमेध लवकुश समर, सुभगकाण्ड विख्यात ॥ १ ॥

दोहा-सुनि भुशुंडिके वचन मृदु, देखिरामपद नेह ॥
बोलेउ प्रेम सहित गिरा, गरुड़ विगत सन्देह ॥ १ ॥

काकभुशुंडिके कोमल-वचन सुन और श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति देख गरुड़जी सन्देह रहित हो प्रेम सहित-बाणी बोले ॥ १ ॥

छन्द-नमामीशघनज्ञानरघुवंशदासं । सदानंददातासुविद्याप्रकाशम् ॥
विशदशैलनीलं कृपालुं निवासं । चरणांबुजं सेवितं पापनाशम् ॥१॥

हे ज्ञानसागर रघुनाथजीके दास ! हे गुरो ! आप को मैं नमस्कार करता हूँ आप सदा आनंद के दाता और श्रेष्ठ विद्यासे प्रकाशित हो ! हे कृपालु ! आपका इस सुंदर नील पर्वतपर निवास है, और आपके चरणकमल जो पापोंको दूर करनेवाले हैं सो वे सेवन करने योग्य हैं ॥१॥

गत मोहमारादिशूलं विशालं । हरंतापसन्ताप-भवशोकजालम् ॥
नमो काकपादं सुबुद्धिं सुशीलं । सदाभक्तवात्सल्यवासाद्रिनीलम् ॥२॥

आपके दर्शनसे मोह और कामादि बड़े बड़े शूल नष्ट हो गये; आप ताप संताप और संसारसागरसे उत्पन्न शोक दुखके दूर करनेवाले हो ! आप सुबुद्धि और सुशीलताके घर हो, आपके चरणोंको नमस्कार है । सदा भक्तोंके ऊपर कृपा करते हुए आप इस नील पर्वतपर वास किया करते हो ॥ २ ॥

प्रसन्नाननं नीलवदनं सुश्यामं । नमो पाहि शरणं सुरामाभिरामम् ॥
भाष्यो उमानाथ यशनाथनामं । देख्यो कृपासिन्धुको रामधामम् ॥३॥

आपका सुन्दर नील श्याम शरीर और प्रसन्न मुख है; आपको नमस्कार है, आप शरणमें आये पुरुषको अद्वितीय सुख देनेवाले हो, आप मेरी रक्षा कीजिये । आपने शिवके स्वामी

श्रीरामचन्द्रजीका (संकट काटनेवाला) नाम और यश मुझे कहा है कि जिस नामके प्रभावसे कृपासिंधु श्रीरामचन्द्रजीके परमधामको (मैं अपने ज्ञाननेत्रोंसे) देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

इच्छावपुष काक कल्याणकारी । जिन्हैं एक आशा अयोध्याविहारी ॥
भागी सकल वासना त्रास-भारम् । दयानाथ कीन्हो अविद्या-प्रहारम् ॥४॥

हे कल्याण करनेवाले काकराज ! आपने अपनी इच्छासे अपना शरीर धारण कर रखा है जिनको केवलमात्र अयोध्याविहारी श्रीरामचन्द्रजीकी सदा आशा है। हमारी संपूर्ण वासना और भयसे भार मिट गये । हे दयानाथ ! आपने (ज्ञान देकर) मेरी सब अविद्या दूर करदी ॥४॥

सगुण ब्रह्म लीला धराभारनाशं । सुन्यो रामअवतार मोहं विनाशम् ॥
जान्यो दनुजनाशनं विश्ववासं । चिदानन्द संदोहभक्ति विलासम् ॥५॥

भगवान्के सगुण अवतारकी लीला पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त होती है मैंने मोहका दूर करनेवाला श्रीरामचन्द्रजीका अवतार सुना । जिसका सम्पूर्ण विश्वमें निवास है उन दैत्योंके नाश करनेवालेके चरित्रोंको मैंने जाना कि वे सच्चिदानंदस्वरूप शक्तिके निमित्त लीला किया करते हैं ॥ ५ ॥

अचल-ज्ञानगोतीत मन्त्रं विशालं । पायो कृपानाथ निजभाग्यमालम् ॥
विगत षष्ठरोगं अयोगं दयालुं । नमो पाहि शरणं नमामी कृपालुम् ॥६॥

हे अचल ज्ञानवाले ! इंद्रियोंसे अगोचर जिनका मन्त्र है;आप विशालस्वरूप और दयालु हो मैं आपकी शरण हूँ कृपासे मेरी रक्षा कीजिये; मैंने बड़े भाग्यसे आपको पाया है । हे दयानिधे ! जो आपकी कृपासे मेरे कुयोग और इन्द्रियोंके कामादि छः रोग मिट गये, मैं आपकी शरण हूँ मेरी रक्षा कीजिये; आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥

दोहा-सुरसरिसम पावन भयउ, नाथ हृदय अब मोर ॥
जन्म जन्म छूटै नहीं, कबहुँ पदाम्बुज तोर ॥ २ ॥

हे नाथ ! अब मेरा हृदय गङ्गाजीके समान पवित्र हो गया, आपके चरणकमल मुझसे जन्म जन्मान्तर कभी नहीं छूटे ॥ २ ॥

सुने सकल गुणगण प्रभु केरे * पूजे नाथ मनोरथ मेरे ॥१॥
तव प्रसाद वायस-कुल नाथा * हृदय वसहिं अब प्रभु गुणगाथा ॥२॥

हे स्वामी ! मैंने प्रभुके गुणानुवाद सब सुने और मनोरथ पूर्ण हुए ॥ १ ॥ हे वायसकुल तिलक ! आपकी कृपासे अब प्रभुके गुणानुवाद हृदयमें वसेंगे ॥ २ ॥

मन सन्तोष न हृदय अघाहीं * यथा उदधि सरिता सब जाहीं ॥३॥
पशु पक्षी जड़ जंगम जाती * चर अरु अचर वरण किहि भाँती ॥४॥

मनमें ऐसा सन्तोष है परन्तु हृदय अघाता नहीं; जैसे समुद्रमें सब नदी जाती हैं किन्तु वह भरता नहीं ॥ ३ ॥ पशु पक्षी जितने चर अचर हैं उनका वर्णन कैसे हो सकता है ? जो जड़ और जङ्गम जातिके हैं ॥ ४ ॥

सकल अवधवस प्रभु सुखधामा * लिये संग सादर श्रीरामा ॥५॥
तजि सब अवध गये सह देहा * यह मोहि नाथ परम संदेहा ॥६॥

जो सब अयोध्यापुरीमें वास करते थे सुखके धाम श्रीरामचन्द्रजीने आदरसे उनको अपने साथ लिया ॥ ५ ॥ सब अयोध्याको छोड़ सदेह (वैकुण्ठको) चले गये हे नाथ ! यह मुझको बड़ा सन्देह है ! ॥ ६ ॥

अब प्रभु मोहि कहहु समुझाई * जानि पिता मैं करउँ ढिठाई ॥७॥
यह इतिहास पुनीत कृपाला *जिमि मख कीन्ह राम महिपाला ॥८॥

हे प्रभो ! मैं आपको पिता जानकर ढिठाई कर कहता हूँ कि मुझको यह भेद समझाकर कहिये ॥ ७ ॥ हे कृपालु ! यह इतिहास अतिपवित्र है (सो कहिये) कि श्रीरामचन्द्रजीने किस प्रकार अश्वमेध यज्ञ किया ? ॥ ८ ॥

दोहा-अस कहि गद्गद कण्ठ मृदु, पुलकावली शरीर ॥
सुनि सप्रेम हरि विशद यश, वायसकुल मतिधीर ॥ ३ ॥

ऐसा कहते जब गद्गद कण्ठ हो गया, शरीरमें पुलकावली छा गयी तब वायसकुलके तिलक मतिधीर काकभुशुंडिजी सप्रेम प्रभुयश सम्बन्धी (प्रश्न) सुनकर कहने लगे ॥ ३ ॥

राम कृपा तुम्हरे मन माहीं * संशय शोक मोह भ्रम नाहीं ॥१॥
धन्य धन्य धनि तुम खगराया * कीन्हेउ अमित मोहि पर दाया ॥२॥

हे गरुड़जी ! श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे आपके मनमें संशय, मोह, भ्रम, (कुछ) नहीं है॥१॥ हे गरुड़जी ! आपको बारम्बार धन्यवाद है, मेरे ऊपर आपने बड़ी कृपा की ॥ २ ॥

अति प्रिय वचन रहस्य तुम्हारे * लागत नाथ मोहि अति प्यारे ॥३॥
तव मन प्रीति देखि खगराया *मिटहिं अमंगल कोटि अमाया ॥४॥

स्वामी आपके यह रस भरे अत्यन्त प्यारे वचन मुझको बहुत अच्छे लगते हैं ॥ ३ ॥ हे गरुड़जी ! श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें आपके मनमें ऐसी प्रीति देख, (मैं बड़ा प्रसन्न) हूँ जिससे अनेक अमङ्गल माया आदि मिट जाते हैं ॥ ४ ॥

सुनु अब राम रहस्य अनूपा * चरित अनूप अवधपुर भूपा ॥५॥
अज अरु द्वैतविगत अविनाशी *रहित सकल कलिमल भव फांसी॥६॥

अब आप श्रीरामचन्द्रजीके गुप्त उपमारहित चरित्र सुनिये; जो अवध पुरके महाराजने किये हैं ॥ ५ ॥ जो अजन्मा, द्वैत रहित तथा अविनासी अर्थात् नाश रहित हैं, जो कलिके सम्पूर्ण पाप और संसारके कर्मबन्धन से रहित हैं ॥ ६ ॥

रुद्र सहस्र वर्ष खग ईशा * कीन्ह चरित रहि पुर जगदीशा ॥७॥
सो सब विशद कथा विस्तारी * कहउँ सुनहु जगहित उरगारी ॥८॥

हे गरुड़जी ! ग्यारह हजार वर्षतक अयोध्यामें रहकर भगवान्‌ने जो चरित्र किये ॥ ७ ॥ हे सर्पशत्रु ! जगत्‌का उपकार करनेके निमित्त मैं वह सब सुन्दर कथा विस्तारसे कहता हूँ आप सुनिये ॥ ८ ॥

दोहा-विधिवर वचन सम्हारि उर, राजत करुणा ऐन ॥
युग जोरी शोभा निरखि, लजित कोटिशत मैन ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीके सुंदर वचन हृदयमें धारण किये करुणासागर विराजते हैं, जानकी और रघुनाथजीकी शोभा देखकर सैकड़ों करोड़ कामदेव लज्जित होते हैं ॥ ४ ॥

अनुज सचिव प्रभु प्रजा बुलाये * गुरु गृह सादर मुनि सँग आये ॥१॥
मकर मास रविपर्व सुहावा * विदा मागि प्रभुपद शिर नावा ॥२॥

प्रभुने एक समय सब छोटे भाई, मन्त्री तथा प्रजाको बुलाया आदरसे सब मुनिसहित गुरुके घरमें आये ॥ १ ॥ मकरकी सक्रांति सूर्यपर्व होनेसे (सबने) रघुनाथजीके सहित गुरुजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उनसे जानेकी आज्ञा मांगी ॥ २ ॥

काशी क्षेत्र धर्म जग जाना * चले सकल सब सजि सजि याना ॥३॥
चतुरंगिनी अनी सब साथा * यहि विधि गमन कीन्ह रघुनाथा ॥४॥

जैसा काशी धर्मक्षेत्र है यह बात जगत् जानता है सो सब कोई अपने अपने वाहन सजा कर चले ॥ ३ ॥ चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीने काशी को पयान किया ॥ ४ ॥

बीच वास करि शिवपुर आये * सादर पुरिहि शीश तिन नाये ॥५॥
आये सुरसरि कीन्ह प्रणामा * अमित अमित सुख पायो रामा ॥६॥

बीचमें वास करते करते काशीजीमें आये और आदरपूर्वक काशीको उन सबने शिर नवाया ॥ ५ ॥ फिर आकर श्रीगंगाजीको प्रणाम किया और रघुनाथजीने बड़ा सुख पाया ॥ ६ ॥

महिसुर दण्ड यती संन्यासी * पूजे कृपासिंधु सुख-रासी ॥७॥
दीन दान कछु बरणि न जाई * धनद कुबेर सुरेश लजाई ॥८॥

वहां रघुनाथजीने ब्राह्मण, दंडी, यती, संन्यासियोंका पूजन किया और (पुनः) उन कृपासागर सुख निधानने ॥ ७ ॥ इतना दान दिया जो कुछ भी वर्णन किया नहीं जाता, उसको देखकर धनपति, कुबेर और इंद्रजी भी लज्जित होते हैं ॥ ८ ॥

दोहा-यहि विधि रहि प्रभु विपुल दिन, सुखी किये मुनिवृन्द ॥
आये पुनि निज नगर महँ, हर्षित करुणा कन्द ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे रघुनाथजी वहां बहुत दिनों तक रहे और मुनियोंको प्रसन्न तथा सुखी किया और फिर प्रसन्न होकर करुणानिधान अपनी अयोध्यापुरीमे आये ॥ ५ ॥

प्रति दिन अवध अनंद उछाहू * दान देहिं प्रति दिन नर नाहू ॥१॥
हठ परपंच न दुख दिन काहू * कुवचन कबहुँ न सुन खगनाहू ॥२॥

अयोध्यामें प्रतिदिन आनन्द और उत्साह रहता है, राजा राम प्रतिदिन दान देते हैं ॥ १ ॥ हे गरुड़जी ! हठ प्रपंच दुःख किसीको नहीं था और कहीं कोई किसीको कुवचन कहते नहीं सुना गया ॥ २ ॥

सुनहिं जहाँ तहँ वेद पुराना * दूसर धर्म न काहू जाना ॥३॥
दिन दिन प्रीति देखि भगवाना * अति आनंद सकल पुर जाना ॥४॥

सब कोई घर घर वेद पुराण सुनते थे और दूसरा धर्म कोई नहीं जानता था ॥ ३ ॥ दिनों-दिन रघुनाथजीकी अपने ऊपर प्रीति देख सब प्रजा लोग अत्यन्त आनंदित होते थे ॥४॥

शिव संवत परमानु हमारी * भये शोच वश राम खरारी ॥५॥
अश्वमेध मख करहुँ सुहाई * गाय तरहिं भव नर समुदाई ॥६॥

तब खरके मारनेवाले रघुनाथजी सोचने लगे कि अब हमको ग्यारह हजार ११००० वर्ष यहाँ रहना है ॥५॥ अतएव सुन्दर अश्वमेध यज्ञ करूँ, जिसको गाकर सब मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जायँ ॥ ६ ॥

पुनि निज धामहिं तुरत सिधावौं * विधिवर वचन न बिलम लगावौं ॥७॥
प्रात जाय गुरु भवन सप्रीती * कहउँ करउँ सब सुन्दरि नीती ॥८॥

फिर अपने धामको तुरंत चला जाऊँगा, ब्रह्माके श्रेष्ठ वचनमें विलम्ब नहीं करूँगा ॥७॥ अब प्रातःकाल ही गुरुजीके मन्दिरमें प्रसन्नतापूर्वक जाकर सम्पूर्ण बात कहूँगा और नियम से अश्वमेध यज्ञ करूँगा ॥ ८ ॥

दोहा-अस विचारि उर राखि निज, कृपासिंधु मतिधीर ॥
करत चरित नाना अमित, हरन शोक भवभीर ॥ ६ ॥

धैर्यवान् कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीने यह विचार (संकल्प) अपने हृदयमें रखा, भक्तोंके शोक हरने और संसारसागरके भय दूर करनेवाले प्रभु अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं ॥६॥

कहहुँ सुनहु रघुपति-प्रभुताई * जो पुराण ऋषि नारद गाई ॥१॥
राम राज्य जस निर्मल भयऊ * सो सब वालमीकि मुनि कहउ॥२॥

सुनिये, मैं श्रीरामचन्द्रजीकी वह प्रभुताई कहता हूँ जो पुराणोंमें देवर्षि नारदजीने गायी है ॥ १ ॥ जैसा श्रीरामचन्द्रजीका राज्य हुआ और जो निर्मलता हुई अर्थात् कीर्ति फैली वह सब विस्तारसे (आदिकवि) मुनिवर वाल्मीकिजीने कही है ॥ २ ॥

मैं अतिलघु बरनउँ केहि भाँती * सोहइ बक कि हंसकी पाँती ॥३॥
सुनिय न पुहुमि कतहुँ अघकाना * पढ़हिं चतुर नर वेद पुराना ॥४॥

फिर अतितुच्छ (मतिहीन) क्या वर्णन कर सकता हूँ ? बगुला हंसोंकी पंक्तिमें कहीं शोभित हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ रामके राज्यके समय पृथ्वी पर पापका नाम कभी कानोंसे भी सुना जाता नहीं था, चतुर मनुष्य नित्य पुराण पढ़ते थे ॥ ४ ॥

गावहिं प्रभु गुण भवभयहारी * निंदहिं अमर लोक नर नारी ॥५॥
आज्ञा मातु पिता गुरु करहीं * जप तप दान सदा अनुसरहीं ॥६॥

संसार सागरके भय दूर करनेवाले प्रभुके गुणानुवाद गाते हैं और देवलोकके स्त्री पुरुषोंको अपनी भक्तिसे तिरस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ माता, पिता गुरुकी आज्ञा सब पालन करते और जप, तप, दान, आचरण करते हैं ॥ ६ ॥

प्रजा अनंद राज्य प्रभु केरे * मानहुँ इन्द्र कुबेर घनेरे ॥७॥
राजहिं सब रनिवास अनंदा * सुखी चकोर शरद लखि चन्दा ॥८॥

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें सब प्रजा आनंदसे रहती थी, मानो अनेक इन्द्र और कुबेर हैं ॥७॥ सारा रनिवास आनंदसे ऐसा हो रहा था जैसे शरदके चन्द्रको देखकर चकोर प्रसन्न होता है ॥८॥

छन्द--जिमि शरद चन्द्र चकोर देखति मातु प्रभु मुख जोहहीं ।
तिमि भरत लक्ष्मण शत्रुसूदन वेष लखि मन मोहहीं ॥
नित जात प्रभु चौगान खेलन साथ लै चतुरंगिनी ।
जब गये भूतल--भार टारन संग मर्कट लै अनी ॥ ४ ॥

जिस प्रकारसे शरदऋतुके चन्द्रमाको चकोरी देखती है, उसी प्रकार माताएँ प्रभुके मुखको देखती हैं उसी भांति भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इनका भी वेष देख कर उनका मन मोहित होता है, नित्यप्रति चार प्रकारकी सेना साथ लेकर प्रभु चौगान (गेंद) खेलनेको जाते हैं, परन्तु जब पृथ्वीका भार उतारने गये थे तब वानरोंकी सेना साथ लेकर गये ॥ ४ ॥

छन्द--चढ़ि वाजि गज रथ नगर देखहिं श्रमित पुनि गृह आवहीं ।
सारंग हेम विलोकि सादर त्रान बिनु प्रभु धावहीं ॥
कहुँ कुसुम कंटक अंग लागत मोरि मुख मुसुकावनी ।
सो शत्रु सन्मुख सही तीक्षण शक्ति असि रिपुदावनी ॥ ५ ॥

हाथी, घोड़े, रथपर चढ़कर नगर देखते हुए जाते हैं और थक कर फिर (सन्ध्या समय) घर आते हैं और जहां पीत रङ्गका मृग देखते हैं तत्काल प्रभु बाहन छोड़ उसके सम्मुख धावमान होते हैं और फिरते हुए वनमें कहीं जब फूलोंके कांटे अङ्गमें लगते हैं तब मुख मोड़कर मुसकाते हैं (अहो) वहां तो ऐसी कोमलता और वहां लङ्काके युद्धमें वैरीके सामने महाभयङ्कर शत्रुघातिनी तीक्ष्ण शक्तिको भी सह लिया ॥ ५ ॥

छन्द--निशि नींद वासर भूख साधत वर्ष चौदह सारहीं ।
सहजात संग लै करत क्रीडा खेलते खेलवारहीं ॥
व्यञ्जन बनत षटरस अमित घृतमधुर बिनु जेवँत नहीं ।
निज भक्त हेतु समेत लक्ष्मण बैठि रिपु मार्यो सही ॥ ६ ॥

जिन प्रभुने अपने भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये चौदह वर्षतक भूख और नींद का साधन किया वे प्रभु अब अनेक प्रकारसे षटरस व्यञ्जनोंको देखकर विना घी और मीठे के नहीं जीमते, भाइयोंको सङ्ग लेकर क्रीडा और लीला करते हैं, अपने भक्तोंके ही कारण लक्ष्मणजीने संग्राम भूमिमें महाशत्रु मेघनादको मार डाला ॥ ६ ॥

दोहा--रघुवरराज विराज अति, सकल अवनि अघ भाग ॥
विचरहिं मुनि कानन विपुल, प्रीति सहित अनुराग ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका राज्य ऐसा परम शोभायमान था कि जिसके होनेसे सब पृथ्वीका पाप भाग गया, अत्यन्त प्रेमानंदसे वनोंमें अनेक मुनि विचरते हैं ॥ ७ ॥

भूमि सुहावनि कानन चारू * खगमृग एक सँग करहिं विहारू ॥१॥
वैर न करिय रामके राजा * रहैं वैर बिनु सुनु खगराजा ॥२॥
पृथ्वी शोभायमान तथा वन सुंदर हो गये और पशु पक्षी एक साथ क्रीड़ा करने लगे ॥१॥ हे गरुड़जी ! सुनिये; श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें वैर नहीं सुना था; सभी विना वैर रहते थे ॥२॥
सुख सम्पति गृह गृह प्रगटाई * गाइ न सकहिं राम प्रभुताई ॥३॥
शारद चतुरानन गौरीशा * कोटि कोटि अनगनित अहीशा ॥४॥
घर घर सुख और सम्पति प्रगट हुई, श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ाई गा नहीं सकते ॥ ३ ॥ सरस्वती, ब्रह्माजी, शम्भु और करोड़ों अगणित शेषजी भी ॥ ४ ॥
कवि कोविद जहँ लगि जग माहीं * रामराज्य गुण वरणि न जाहीं ॥५॥
असित आदि कज्जलगिरि भूरी * पयनिधि पात्र सारतारूरी ॥६॥
कवि पंडित जहां तक जगत्में हैं किसीसे रामके राज्यका गुण वर्णन नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ जो कज्जल पर्वतकी स्याही बनायी जाय और स्याही घोलनेके निमित्त समुद्रका पात्र (दावात) बनाया जाय ॥ ६ ॥
करहिं लेखनी सुरतरु भारी * सप्त द्वीप महि पत्र विचारी ॥७॥
वाणी हरि हर विधि समुदाई * सहस कल्पशत लिखहिं बनाई ॥८॥
कल्पवृक्षकी कलम बनायी जाय और सातों द्वीप पृथ्वीको कागज बनाया जाय ॥ ७ ॥ सरस्वती, विष्णु, शिव ये हजार कल्पतक यदि श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंको बनाकर लिखें ॥८॥
सोरठा–तदपि न पावहिं पार, रामराज्य कौतुक अमित ॥
सुनु अब चरित अपार, जस खगपति आगे भयउ ॥ ४ ॥
तो भी श्रीरामचन्द्रजीके राज्यकी अपार लीलाओंका पार नहीं पा सकते, हे गरुड़जी ! अब वह अनेक चरित्र सुनिये जो आगे हुए हैं ॥ ४ ॥
राजत राजसभा सब भ्राता * तहँ आयो एक द्विज बिलखाता ॥१॥
कटुक कहत मुख करत पुकारा * हंस-वंश बूड़ेउ संसारा ॥२॥
सब भाई राजसभामें विराजमान हैं, वहां एक ब्राह्मण विलाप करता हुआ आया ॥ १ ॥ मुखसे दुर्वचन कहता और पुकार करता हुआ कहने लगा कि संसारमें सूर्यवंश डूब गया ॥२॥
रघु दिलीप शिबि सगर भुवारा * अमित प्रभाव को जानन हारा ॥३॥
पितु जीवित सुत त्यागे प्राना * प्रभु अन्तर्यामी सुनु काना ॥४॥
रघु, दिलीप, शिबि, सगर राजा इनके बड़े प्रभाव थे, उनको कौन जानता है ॥३॥ (परंतु ऐसा कभी नहीं हुआ) जो पिताके जीते हुये पुत्र मरा हो, प्रभु अन्तर्यामीने सब कानोंसे सुना ॥४॥
नरलीला करि राम कृपाला * लगे विचार करन तेहि काला ॥५॥
कारन कवन मृतक सुत भयऊ * द्विज कहँ देखि विकल प्रभु भयऊ ॥६॥
कृपा सागर श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य लीला करके उस समय विचार करने लगे ॥५॥ क्या कारण जो इसका पुत्र मर गया है ? ब्राह्मणको देखकर प्रभु व्याकुल हो गये ॥ ६ ॥

प्रभु चित देखि गगन भइ बानी * शूद्र तपहि सुनु शारँगपानी ॥७॥
विन्ध्याचल गँभीर वनमाँहा * द्विजसुत हेतु मरन नर नाहा ॥८॥

प्रभुका चित (विचारमें) देखकर आकाश वाणी हुई आपके राज्यमें (एक) शूद्र तपस्या करता है ॥ ७ ॥ हे राजन् विंध्याचलके गंभीर वनमें वह (तप करता है) इसी कारणसे ब्राह्मणका पुत्र मर गया ॥ ८ ॥

छन्द-यहि हेतु द्विजसुतमृतक सुनि रथ साजि प्रभु आतुर चले ।
दोउ परम शैल विलोकि पावन मुदित होइ सम्मुख भले ॥
शुचि रुचिर आश्रम वेदिका तहँ देखि मुनि मन भावनी ।
बहु बाग सुभग तड़ाग गुंजत मंजु मधुकर सावणी ॥ ७ ॥

इसी कारण ब्राह्मणका पुत्र मरा, यह सुनते रामचन्द्रजी रथ पर चढ़ तुरंत चले, वहां दो पवित्र पर्वत सामने देखकर मनमें प्रसन्न हो गये । मुनियोंके मनको मोहने वाली वहां पवित्र सुन्दर वेदी और आश्रमको भी देखा, जहां बहुतसे सुन्दर बाग तथा सरोवर थे और वृक्षों-पर सुन्दर भौंरे मधुर गुंजार कर रहे हैं ॥ ७ ॥

छन्द-पिक मोर हंस चकोर किलकहिं कीर शोभा पावहीं ।
बन वृद्ध कोल किरात सादर सर्वदा तहँ आवहीं ॥
तकि क्रोध शक्ति विशिख छाँड़ेउ माथ लै सुरपुर गयो ।
वर भक्ति आरत जानि तेहि तहँ आपु तीरथ व्रत कियो ॥ ८ ॥

पपीहे, मोर, हंस, चकोर किलकारी मार रहे हैं; तोते शोभा पा रहे हैं; उस वनमें वृद्ध कोल किरात सदा आदरसे आते हैं (वनमें देखाकि एक शूद्र उलटा होकर तप करता है) तब श्रीरामचन्द्रजीने क्रोध करके एक तीक्ष्ण बाण छोड़ा; जो उस शूद्रका माथा लेकर सुर-पुरको चला गया और उसकी श्रेष्ठ भक्ति जान और दुःखी देखकर अपना लोक दिया फिर आपने वहां तीर्थ व्रत किया ॥ ८ ॥

दोहा-द्विजवर मृत बालक तुरत, उठि बैठेउ हरषाय ॥
आये पुर रघुपति भगत, भय भंजन सुखदाय ॥ ८ ॥

उसी समय वह ब्राह्मण श्रेष्ठका मरा हुआ बालक प्रसन्न होकर जी उठा और सुखको देनेवाले भक्तोंका भय दूर करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी अपने नगरमें आये ॥ ८ ॥

तेहि औसर एक श्वान पुकारी * पाहि पाहि प्रणतारतिहारी ॥१॥
बिनु अघ नाथ कृपालु खरारी * हतेउ मोहि द्विज अतिबल भारी ॥२॥

उसी समय एक कुत्तेने पुकारकी-हे दीनोंके दुःख दूर करने वाले ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ! ॥ १ ॥ हे स्वामी कृपासागर रामचन्द्रजी ! विना अपराध ही मुझको इस अत्यंत बली ब्राह्मणने मारा ॥ २ ॥

सुनि सो वचन दीन प्रभु काना * सपदि दूत पठवा भगवाना ॥३॥
आनेउ विप्र तुरत तेहि काला * कहे वचन इमि दीन दयाला ॥४॥

यह वचन सुनतेही प्रभुने ध्यान दिया और ब्राह्मणके बुलानेको शीघ्रही दूत भेजा ॥३॥ उसी समय ब्राह्मणको बुला लाया; तब दीनदयालु रामचन्द्रजीने उससे इस प्रकार वचन कहे ॥४॥

हनेउ श्वान कहु केहि अपराधा * सुनु सर्वज्ञ न कछु व्रत बाधा ॥५॥
क्रोध विवश प्रभु विनहिं विचारा * नाथ प्रबल मैं याकहँ मारा ॥६॥

कहो किस अपराधसे आपने कुत्तेको मारा?ब्राह्मणने कहा-हे सर्वज्ञ ! सुनिये, इसने मेरा कुछ भी अपराध नहीं किया ॥५॥ हे प्रभु ! क्रोधके मारे विना विचारके ही मैंने इसे जोरसे मारा ॥६॥

कहहु दण्ड द्विज सकल समाजा * विप्र अदंड देव रघुराजा ॥७॥
उचित दण्ड तस देव बनाई * कहौ श्वान जस तुमहिं सुहाई ॥८॥

प्रभुने सब समाजसे कहा कि इसको क्या दंड दिया जाय ? तब सभासद बोले-हे देव रामचन्द्रजी ! ब्राह्मण तो दंडके योग्य है नहीं परंतु ॥७॥ जो आप उचित समझें सो दंड दीजिये तब रामचन्द्रजीने कुत्तेसे कहा-जो दंड तुझको अच्छा लगे तो बता मैं वही दंड इसको दूँ ॥८॥

दोहा-करिये मठपति याहि प्रभु, मन भावत सुख ऐन ॥
तुरत मँगावा पीत पट, गज कुण्डल सुखदैन ॥ ९ ॥

तब श्वानने कहा-हे भगवन् ! इसको मठपति कर दीजिये, हे सुखसागर !यह इसमें सुखी है और इच्छा भी करता है, श्रीरामचन्द्रजी तुरंत पीला वस्त्र, हाथी और कुण्डल मँगाये ॥ ९ ॥

पूजि चरण गज विप्र चढ़ायो * दुंदुभि बाजत मठहि पठायो ॥१॥
कहहिं परस्पर सब नर नारी * देखहु श्वान दण्ड अति भारी ॥२॥

ब्राह्मणके चरण पूजकर उसको हाथी पर चढ़ाया, नगाड़े बजाते मठको भेज दिया ॥१॥ सब पुरुषस्त्री परस्पर मिलकर कहते हैं कि देखो तो श्वानने कैसा अत्यन्त कड़ा दंड दिया ? ॥२॥

कीन्ह रंकते राउ कृपाला * कीन्ह चरित यह कौन दयाला ॥३॥
बिनती अधिक श्वान जब कीन्हा * उचित सुफल प्रभु वैसहि दीन्हा ॥४॥

श्रीरामचंद्रजीने उसको कंगालसे राजा बना दिया,यह दया सागरने क्या चरित्र किया?॥३॥ जब श्वानने अधिक विनतीकी तो उसको प्रभु वैसाही उचित और श्रेष्ठ फल दिया ॥ ४ ॥

तासु अनंद देखि नर नारी * कहिय दण्डफल कृपा खरारी ॥५॥
पूछो ताहि कहेउ सो बाता * पूरब सब प्रसंग सुखदाता ॥६॥

नर और नारी उस कुत्तेको आनंदित देखकर बोले-हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस दंडका फल तो बताइये ॥५॥ उन्होंने कहा कुत्तेसे ही पूछो (पूंछनेपर) वह सब पहला प्रसंग कहने लगा ? ॥६॥

कौलाधिप कालिंजर माहीं * भयेउँ विप्र मैं संशय नाहीं ॥७॥
देवधान्य अनुचित मैं पायउँ * सुरद्विज भाग सदा मन लायउँ ॥८॥

मैं ब्राह्मण जाति कलिंजर देशमें कौल मठका अधिपति एक जन्ममें था, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ जो देवताओंके देनेका द्रव्य था मैं देवताओंको न देकर अनुचित रूपसे आप भोजन कर लेता था, इस प्रकार देवता और ब्राह्मणोंका भाग स्वयं सदा खाया करता था ॥ ८ ॥

दोहा-विविध भाँति भोजन करत, नित सेयों सुरभाग ॥
भ्रमत फिरेउँ योनिन विविध, मिटत न सो अनुराग ॥ १० ॥

विविध भांतिके भोजन करके नित्य देवभाग स्वयं खा जाता था, इस कारण उस पापसे अनेक योनियोंमें भ्रमता फिरा और अभी तक अनुराग (पाप) न मिटा ॥ १० ॥

राजसभहि शिर नाइ बहोरी * चला श्वान मन त्रास न थोरी ॥१॥
उठि मध्याह्न कीन्ह रघुनन्दन * पूजि पुरारि भक्त उर चन्दन ॥२॥

फिर राजसभाको शिर नवाकर मनमें कुछ भी दुःख न मानता हुआ कुत्ता चला गया ॥१॥ श्रीरामचंद्रजीने उठकर संध्या की और भक्तोंके प्रसन्न करनेवाले शिवजीका पूजन किया ॥२॥

भोजन शयन जगतपति कीन्हा * निज निज धाम सबन पग दीन्हा ॥३॥
रहा दिवस जब घटिका चारी * जुरी सभा तब आय खरारी ॥४॥

फिर जगत्पतिने भोजन करके कुछ देर शयन किया और सब सभा भी अपने स्थानको प्रस्थान कर गयी ॥ ३ ॥ जब चार घड़ी दिन रहा तब श्रीरामचन्द्रजीकी सभा फिर आकर उपस्थित हुई ॥ ४ ॥

सुनि पुराण सब अनुज समेता * संध्या भई दान सब देता ॥५॥
सब ही सन्ध्यावदन कीन्हा * भवन चले प्रभु आयसु लीन्हा ॥६॥

सब भाइयों समेत पुराण सुनने लगे और सन्ध्या हो गई तो सबने दान दिया ॥ ५ ॥ सबने सन्ध्यावंदन किया और प्रभुकी आज्ञा लेकर अपने घरको गये ॥ ६ ॥

नित्य कोटि चर अवध सिधावहिं * साँझ समय सब खबरि सुनावहिं॥७॥
पृथक पृथक सुनि चरबर बानी * बोल न एक सो सुनहु भवानी ॥८॥

अनेक दूत (श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे) अयोध्यामें (अथवा और देशोंमें) फिरते हैं संध्याके समय आकर सब समाचार सुनाते हैं ॥ ७ ॥ हे पार्वती ! सुनो, अलग-अलग दूतोंकी श्रेष्ठ वाणी सुने, परंतु उनमेंसे एक नहीं बोला ॥ ८ ॥

छन्द–कछु कहि न सक तेहि पूछ सादर वचन बेगि न आवई ।
एक रजक पत्निहि कहत डाटत व्यंग कहि समुझावई ॥
सुनि वचन कृपानिधान चरके मध्य उर राखे हरी ।
निशि सपन देखत जगतपति पुनि जागि दारुण दुखकरी ॥९॥

जब वह कुछ न कह सका तब श्रीरामचन्द्रजीने आदर पूर्वक पूछा, सो उससे शीघ्र वचन न आये, फिर जी कड़ा करके बोला भगवन् ! एक धोबी अपनी धोबिनसे डाटकर दुर्वचन कह रहा था कि मैं राम नहीं हूँ जो उन्होंने पराये घरमें रही हुई जानकीको रख लिया तू मेरे घरसे निकल जा । यह दूतके वचन सुनकर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजीने उसको हृदयमें रख लिया रात्रिको स्वप्नमें भी यही देखा, फिर जागे तो वे महादुःख करने लगे ॥ ९ ॥

दोहा–बीती अवधि प्रमाण युग, कीन्ह विचार कृपाल ॥
एक सहस पितुराज शुचि, करउँ सत्य यहि काल ॥ ११ ॥

जब अयोध्यामें रहते एक युग प्रमाण समय बीत गया तो कृपा सागर रघुनाथजीने विचारा कि अब एक हजार वर्षतक और भी पिताका पवित्र राज्य करना चाहिए ॥ ११ ॥

त्यागउँ जनक सुता वनमाहीं * राखउँ श्रुति पथ धर्म न जाहीं ॥१॥

मन प्रण करि पुनि सिय पहँ आये ❋ सादर बोले वचन सुहाये ॥२॥

जानकीजीका वनमें त्याग कर दूँगा और वेदका मार्ग रखूँगा जिससे धर्म न जाय ॥ १ ॥ मनमें प्रतिज्ञा कर फिर जानकीजीके पास आये और आदरसे सुन्दर वचन बोले ॥ २ ॥

सुमुखि न कछु मांगेहु केहि काला ❋ हँसि कह कृपा निकेत दयाला ॥३॥
निज छाया महि राखि विनीता ❋ रहहु जाय निज धाम पुनीता ॥४॥

हँसकर कृपाके सागर श्रीरामचन्द्रजीने कहा हे सुन्दरि ! आजतक कभी तुमने मुझसे कुछ नहीं मांगा ॥३॥ (यह भी कार्य करो कि) अपनी छाया पृथ्वीमें रखकर अपने पवित्र धाममें जा रहो ॥ ४ ॥

प्रभुपद वंदि गई नभ सोई ❋ जीव चराचर लखेउ न कोई ॥५॥
तासन प्रभु अस कहेउ बुझाई ❋ मन भावत माँगहु सुखदाई ॥६॥

यह सुनते ही जानकी प्रभुके चरणोंमें नमस्कार कर आकाशको चली गयी इस बातको चर अचर किसी जीवने नहीं जाना ॥ ५ ॥ (मायाकी सीतासे) श्रीरामजीने यह बात समझाकर कही कि तुम अपना मनमाना सुखदायक वर मांगो ॥ ६ ॥

नाथ साथ मुनि धाम सुहाई ❋ आई तजि गृह मन सकुचाई ॥७॥
मुनित्रिय भूषण सकल सुहाये ❋ पहिराउँ प्रभु जो मन भाये ॥८॥

जानकीजी बोलीं कि मुनियोंके सुन्दर स्थानको छोड़कर आपके साथ अब आनेसे मनमें बड़ा संकोच हुआ है ॥ ७ ॥ मेरी इच्छा है कि स्त्रियोंके पहरने योग्य सब सुन्दर गहने मन भाये मुनि पत्नियोंको पहराऊँ ॥ ८ ॥

हँसि कह कृपा निकेत सकारे ❋ पूजहि मन अभिलाष तुम्हारे ॥९॥

हँसकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—कि प्रातःकाल तुम्हारे मनोरथ पूरे हो जायँगे, अर्थात् तुम मुनि कन्याओंको वस्त्रादिक ले जाना ॥ ९ ॥

दोहा—होत प्रात जब जगतपति, जागे रमा निवास ॥
याचक जन गावत मुदित, लखि मुखकंज प्रकाश ॥ १२ ॥

प्रातःकाल होते ही जब जगत्पति लक्ष्मी निवास जागे तब रघुनाथजीके मुखकमलका प्रकाश देखकर याचक गण आनंदित होकर प्रभुके गुणानुवाद गाने लगे ॥ १२ ॥

भरत शेष रिपुदमन समेता ❋ आये प्रभु जहँ कृपा निकेता ॥१॥
कीन्ह प्रणाम माथ महि लाई ❋ बोले कछु नहिं श्रीरघुराई ॥२॥

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, जहां प्रभु श्री रामचन्द्रजी थे वहां आये ॥ १ ॥ उन्होंने पृथ्वीपर शिर धरकर प्रणाम किया, किंतु श्रीरामचन्द्रजी कुछ न बोले ॥ २ ॥

वदन विलोकि सशंकित अंगा ❋ श्रीहत सकल वपुष कर रंगा ॥३॥
थर थर कांपत तीनिहुँ भाई ❋ जानि न जाय चरित रघुराई ॥४॥

प्रभुका मुख व्याकुल और सब शरीरका रंग विवर्ण कांतिहीन तथा अङ्ग शंकित देखकर ॥ ३ ॥ तीनों भाई थर थर कांपने लगे, श्री रघुनाथजीका चरित जाना नहीं जाता ॥ ४ ॥

लेइँ श्वास तकि समुझि सुजानी * बोलेउ गूढ़ मनोहर बानी ॥५॥
वचन मोर उर राखउ भ्राता * लै वन जाउ जानकी ताता ॥६॥

श्वास लेकर और फिर समय विचार कर श्रीरामचन्द्रजी मनोहर गूढ़ वाणी बोले ॥ ५ ॥ हे भाई ! मेरा वचन हृदयमें धारण करके जानकीजीको वनमें ले जाओ ॥ ६ ॥

सूखि सहमि सुनि वचन कराला * जरे गात उपजी उर ज्वाला ॥७॥
हँसत कि सत्य कहत रघुराया * असमंजस उर सुनु खगराया ॥८॥

यह तीक्ष्ण वचन सुन भाई सहम कर, सूख गये, शरीर जलने लगा और हृदयमें ज्वाला उत्पन्न हो गयी ॥ ७ ॥ हे गरुड़जी ! सुनो उनके मनमें यह दुविधा हुई कि श्रीरामचन्द्रजी हँसी करते हैं या सत्य कहते हैं ? ॥ ८ ॥

दोहा—भरत आदि व्याकुल अनुज, नहिं आवत कहि वैन ॥
जोरि युगल कर शत्रुहन, कहत नीर भरि नैन ॥ १२ ॥

भरत आदि सब भाई व्याकुल हो गये और मुँहसे कोई वचन नहीं निकला। तब शत्रुघ्नजी हाथ जोड़ नेत्रोंमें नीर भरकर कहने लगे ॥ १२ ॥

सुनु प्रभु वचन हृदय बिलगाना * जगत जननि सिय सब जग जाना ॥१॥
जगत् पिता प्रभु सब उर वासी * सत चेतन घन आनँद रासी ॥२॥

हे प्रभो ! आपका वचन सुनकर हृदय बिखर गया कि सीता जगत्की माता हैं यह सब कोई जानता है ॥ १ ॥ आप जगत्के पिता प्रभु सबके हृदयमें वास करनेवाले और सच्चिदानन्द घन आनंदकी राशि हैं ॥ २ ॥

कारण कवन जानकी त्यागी * मन वच क्रम तव पद अनुरागी ॥३॥
सुनु सर्वज्ञ सुगर्भिणि जानी * रिस परिहास कि सत्यसुबानी ॥४॥

क्या कारण है जानकीजीका त्याग किया ? वे तो मन वचन कर्मसे आपके चरणोंकी अनुरागिणी हैं ॥३॥ सर्वज्ञ ! सुनिये, गर्भिणी जानकर यह हँसीमें कहा है या सत्य है ? ॥४॥

पंकज नयन नीर भरि आये * कहे वचन मृदु अनुज सुहाये ॥५॥
आयसु मोर जो टारहु ताता * रहहिं न प्राण तात मम गाता ॥६॥

दैत्योंके मारनेवाले प्रभुके कमलसे नेत्रोंमें जल भर आया और कोमल वचन बोले॥५॥ हे भाई ! मेरी आज्ञा उल्लंघन कर दोगे तो मैं अपने शरीरमें प्राण नहीं रखूँगा ॥ ६ ॥

हरि-इच्छा भावी बलवाना * तुम कहँ तात सदा कल्याना ॥७॥
यह मम वचन पालि लघु भाई * प्रात जानकिहि जाहु लिवाई ॥८॥

नारायणकी इच्छा होनहार बलवती है, हे भाई ! तुमको सदा मंगल है ॥ ७ ॥ हे छोटे भाई यही हमारी आज्ञा मानो कि प्रातःकाल होते ही जानकीको लिवा जाओ ॥ ८ ॥

सोरठा—सुनि प्रभु वचन कठोर, भरत जोरि कर कहन लिय ॥
नाथ हमहिं मति भोर, सुनिय विनय सर्वज्ञ प्रभु ॥ २ ॥

यह कठोर वचन सुन भरतजी हाथ जोड़कर बोले—हे सर्वज्ञ प्रभु ! हमारी मति तो भोली है, आप हमारी विनती सुनिये ॥ २ ॥

हंस वंश जगमहँ विख्याता * दशरथ पितु कौशल्या माता ॥१॥
त्रिभुवन पति प्रभु सब जग जाना * गावहिं जाहि शेष श्रुतिनाना ॥२॥

यह सूर्यवंश जगत्में विख्यात है, दशरथजी आपके पिता और कौशल्याजी माता हैं ॥ १ ॥ प्रभु ! आप तीनों भुवनके पति हो; यह बात जगत् जानता है जिनके यशको अनेक प्रकारसे शेष और वेद गाते हैं ॥ २ ॥

सत्य शक्ति तव प्रगट गुसांई * वरणि न सकहिं वेद अहिराई ॥३॥
शोभाखानि जनककी जाता * रहित अमंगल मंगलदाता ॥४॥

हे स्वामी ! आपकी सत्य शक्ति जो प्रकट है उसको वेद और शेषजी वर्णन नहीं कर सकते ॥३॥ जनकनन्दिनी जानकी शोभाकी खान, अमंगल रहित और मंगलकी देने वाली हैं॥ ४ ॥

छाया जासु पतिव्रत धरहीं * ते नारी भवकूप न परहीं ॥५॥
सीता विपिन अकेलि न रहहीं * तुम्हैं विहाय छिनक किमि जियहीं॥६॥

पतिव्रता स्त्री जिसकी छाया ग्रहण करे अर्थात् उनकी छायासे भी स्त्रियां पतिव्रत धर्म ग्रहण करेंगी वे संसाररूपी कुएँमें नहीं गिरेंगी ॥५॥ सीता वनमें अकेली नहीं रहेंगी, आपको छोड़कर क्षणमात्र भी कैसे जियेंगी ! ॥ ६ ॥

जल बिनु मीन कि जिये कृपाला * होयकि कृषि बिनु वारिदमाला ॥७॥
अस तुम बिन छिन जियैं न सीता * ज्ञानवंत अति निपुण विनीता ॥८॥

हे कृपालु ! जलके विना मीन क्या जी सकती है ? और विना मेघके क्या खेती हो सकती है ? ॥ ७ ॥ इसी प्रकार आपके विना ज्ञानयुक्त अतिचतुर विनीत जानकी क्या क्षण-मात्र भी जी सकती हैं ? ॥ ८ ॥

सुनि करुणामय वचन सप्रीती * कही भरत तुम सुन्दर नीती ॥९॥

श्रीरामजीने भरतजीके करुणा और प्रेम भरे यह वचन सुनकर उनसे कहा कि भरत ! तुमने नीति तो सुन्दर कही ॥ ९ ॥

दोहा-तदपि नृपहि चाहिय सदा, राजनीति धन धर्म ॥
वसुधा पालहि शोच तजि, वचन प्रीति शुचि कर्म ॥ १४ ॥

तो भी राजाको सदाही राजनीति पूर्वक धन और धर्मकी रक्षा करनी चाहिये। शोच रहित होकर प्रीतिके वचन और धर्म कर्मसे पृथ्वीका पालन करना उचित है ॥ १४ ॥

दूत चरित जस सुनेउ सो कहऊ * कुल कलङ्क यह दारुण भयऊ ॥१॥
तरणिवंश नृप अमित अपारा * एक ते एक जान संसारा ॥२॥

तब दूतने जो कुछ कहा था वह श्रीरामचन्द्रजीने सुन कर कहा कि यह कुलमें बड़ा भारी कलंक लगा ॥१॥ सूर्यवंशमें अनेक राजा हुए हैं, एकसे एक बड़े थे इस बातको संसार जानता है ॥२॥

रघु दलीप स्वायंभुव जाना * सगर भगीरथ वेद बखाना ॥३॥
दशरथ विदित जान जग नीके * वचन न टारेउ लालच जीके ॥४॥

रघु, दिलीप, स्वायंभुव, मनु, सगर और भगीरथ जिनकी वेदने प्रशंसा की है ॥ ३ ॥ और राजा दशरथको तो जगत्में सब कोई जानते हैं जिन्होंने प्राण छोड़ दिया पर वचन नहीं जाने दिये ॥ ४ ॥

तेहि कुल रंचक सुनत कलंकू ❋ रहइ जीव तौ अधम अशंकू ॥५॥
सुनु सर्वज्ञ सकल अघहारी ❋ रहित कलंक विदेह कुमारी ॥६॥

उस कुलमें थोड़ासा भी कलंक सुनते ही जो प्राण रह जायँ तो जानो बड़े नीच और निशंक हैं ॥५॥ भरतजी बोले—हे सर्वज्ञ! सबके पाप दूर करनेवाले! विदेहकुमारी जानकीजी कलंक रहित हैं ॥६॥

विधि हरि हर दिवि देखि सुनाई ❋ पावक अवटि कनक सम भाई ॥७॥
जे सुर नर मुनि सपनेहु माहीं ❋ यहि चरित्र जग लखि हरषाहीं ॥८॥

हे भाई! ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि सब देवताओंने सुन्दर रीतिसे देखा और अग्निमें तपाकर आपने भी भली भांति परीक्षा करली है ॥ ७ ॥ जो देवता, मनुष्य मुनि हैं उनमें ऐसा कोई भी नहीं है जो स्वप्नमें उस चरित्रको देखकर संसारमें प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

दोहा—ते शठ रौरव नरक महँ, कोटि कल्प करि वास ॥
रहहिं कल्प शत रोगवश, भोगहिं नरक निवास ॥ १५ ॥

और वे मूर्ख रौरव नरकमें करोड़ों कल्पतक वास करके और सौ कल्पतक रोगोंके वश रहकर नरक भोगेंगे ॥ १५ ॥

रिसि रुख देखि नयन करि तीछे ❋ आयउ भरत लषणके पीछे ॥१॥
सुनु सौमित्रि छांड़ि हठ शोचू ❋ जग भल कहै कहौ किन पोचू ॥२॥

तीक्ष्ण नेत्र कियेका रुख देखकर भरतजी तो लक्ष्मणजीके पीछे हुए ॥१॥ तब श्रीरामचंद्रजी बोले—लक्ष्मण! शोच छोड़ कर सुनो संसार चाहे भला कहे या बुरा ॥ २ ॥

तजि आज्ञा प्रति उत्तर करिहौ ❋ मोहि बिनु सोच जन्म भरि मरिहौ ॥३॥
जनक सुतहि रथ तुरत चढ़ाई ❋ गंग समीप फिरहु पहुँचाई ॥४॥

जो आज्ञा छोड़कर प्रत्युत्तर (जवाबदेही) करोगे तो फिर मेरे न रहनेसे जन्म भर सोचमें बिताओगे ॥३॥ जानकीको तुरन्त रथपर चढ़ाकर गङ्गाके समीप पहुँचाकर लौट आओ ॥४॥

अति गह्वर वन जहँ नहिं कोई ❋ छांड़उ तात यतन कर सोई ॥५॥
फेरहु तुम मति वचन उदासा ❋ मरण ठानकर चले निरासा ॥६॥

हे तात! बड़े घने वनमें जहां कोई न हो वहां जानकीको यत्न सहित छोड़ आओ ॥५॥ जब प्रभुने यह कहा कि तुम उदास होकर वचनोंको मत फेरो, तो लक्ष्मणजी निराश होकर अपना मरना मनमें ठानकर चले ॥ ६ ॥

सुभग विमान सीय बैठारी ❋ पट भूषण बहु धरे सँवारी ॥७॥
अति आनन्द मन चली जानकी ❋ अतिशय प्रिय करुणानिधानकी ॥८॥

सुन्दर विमानमें जानकीको बैठाया और बहुतसे वस्त्र तथा गहने भी सँभाल कर रख लिया ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी अत्यन्त प्यारी जानकीजी मनमें प्रसन्न होकर चलीं ॥ ८ ॥

दोहा—विवरण लखन निहार करि, शोच विकल भइ बाल ॥
हृदय विचार न कहि सकति, मणि विनु व्याकुल व्याल ॥ १६ ॥

जानकीजी लक्ष्मणजीको उदास देखकर सोचमें ऐसी व्याकुल हुई जैसे मणि बिना सर्प व्याकुल होता है और हृदयमें विचारती हैं कह नहीं सकतीं ॥ १६ ॥

उतरि देवसरि यान सुहावा ❋ देखत घन वन मन भय पावा ॥१॥

कारण अपर जानि भयभीता * बोली वचन मनोहर सीता ॥२॥

गङ्गाजीसे उतर सुन्दर विमानको घने वनमें देखकर बहुत भयभीत हुई ॥ १ ॥ और ऐसे ही अनेक कारण जान भयभीत हो जानकीजी बोलीं ॥ २ ॥

लखि नहिं परत मुनिनके धामा * जात कहाँ प्रभु अनुज सकामा ॥३॥
खग मृग जीव विविध हरि व्याला * करि केहरि वृक बाघ शृगाला ॥४॥

हे स्वामीके छोटे भाई ! यहां मुनियोंके धाम तो दीखते नहीं तुम कहां जाते हो ? ॥३॥ पशु, पक्षी, हिरण, सिंह, हाथी, बंदर, भेड़िये, बाघ, गीदड़ ये अनेक तरहके जीव यहां फिरते हैं॥४॥

कोउ मुनि मिलत न आवत जाता * निकसत प्राण तात मम गाता ॥५॥
सीय विकल लखि मनहिं अहीशा * कीन्ह कहा विधि हरि गौरीशा ॥६॥

हे लक्ष्मण ! न कोई मुनि ही आता-जाता मिलता है अब तो शरीरसे प्राण निकलना चाहते हैं ॥ ५ ॥ सीताजीको व्याकुल देखकर मनमें लक्ष्मणजी कहने लगे—कि हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश ! आपने यह क्या किया ॥ ६ ॥

मूर्छित रथते भये विकरारा * भूमि गिरत तब आप सँभारा ॥७॥
सिय विलोकि मन धीरज आना * तृषा विना अब निकसत प्राना ॥८॥

मूर्छित होकर बेकरार हो गये और रथसे पृथ्वीपर गिरने लगे, फिर आपही सँभल गये॥७॥ सीताजीको देख कर मनमें धैर्य किया और कहने लगे कि प्यासके मारे प्राण निकलने चाहते हैं॥८॥

दोहा—धरणिसुता व्याकुल निरखि, प्राण कंठगत जानि ॥
तजन चहत तनु शेष तब, धिक धिक जीवन मानि ॥ १७ ॥

लक्ष्मणजीके प्राणोंपर संकट देखकर जानकीजी बहुत व्याकुल हुईं कि लक्ष्मण शरीरका त्याग करना चाहते हैं, मेरे जीवनको वारंवार धिक्कार है ॥ १७ ॥

देखि लषण सिय मूर्छा आई * गगन गिरा तब भई सुहाई ॥१॥
सुनि सौमित्रि जाहु सिय त्यागी * जनक पुत्रिका जियहि सभागी ॥२॥

लक्ष्मणजीको देखकर सीताजीको मूर्छा आगई; तब फिर उसी समय आकाशवाणी हुई ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! सुनो जानकीजीको त्यागकर चले जाओ यह भाग्यवती जनककुमारी जीती रहेंगी ॥ २ ॥

गगन गिरा सुनि धीरज कीन्हा * हाथ जोरि परदक्षिण दीन्हा ॥३॥
लै रथ चरण बंदि सिय केरे * चले अवध उर त्रास घनेरे ॥४॥

आकाशवाणी सुनकर लक्ष्मणजीने धैर्य धारण किया, हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा की॥३॥ और रथ लेकर जानकीके चरणोंको नमस्कार करके अयोध्याको चले परंतु मनमें बड़ाही दुःख था॥४॥

जागी सिया सकल दिशि देखा * नहिं रथ अश्व नहीं कहिं शेखा ॥५॥
सहि दुख प्रथम रहे हैं प्राना * पुनि सोइ चहत न करत पयाना ॥६॥

जब जानकीजी मूर्छासे जागीं तो चारों ओर देखने लगीं, वहां रथ घोड़े और लक्ष्मणजी नहीं थे ॥ ५ ॥ जानकीजी कहने लगीं इन प्राणोंने पहलेसे दुःख सह रखा है; इसी कारण इस दुःखपर भी निकलना नहीं चाहते और फिर वही दुःख सहना चाहते हैं ॥ ६ ॥

करुणा करति विपिन अति भारी * वालमीकि आये बनचारी ॥७॥
पुत्री वालमीकि कह ज्ञानी * वन आवन निज चरित बखानी॥८॥

जानकीजी वनमें अनेक प्रकार विलाप कर रही थीं कि उसी समय वनमें विचरते हुए वाल्मीकिजी आये ॥७॥ ज्ञानी वाल्मीकिने कहा--हे पुत्री ! वनमें अपने आनेका सब चरित्र बखान कर कहो ॥ ८ ॥

दोहा-मुनि पुत्री मैं जनककी, राम प्रिया जग जान ॥
त्यागन हेतु न जान कछु, विधि गति अति बलवान ॥ १८ ॥

हे मुनिराज ! मैं जनककी कन्या, श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हूँ इस बातको जगत् जानता है परंतु मैं अपने त्यागनेका हेतु कुछ नहीं जानती, विधाताकी गति बलवती है ॥ १८ ॥

देवर लखन गये पहुँचाई * तब सब हेतु लखेउ मुनिराई ॥१॥
सुनु सीता मिथिलापति मोरा * परम शिष्य मम औ पितु तोरा॥२॥

देवर लक्ष्मणजी मुझको यहां पहुँचा गये हैं, तब मुनिवरने ध्यानस्थ हो सब कारण जान लिया ॥ १ ॥ वाल्मीकिजी कहने लगे-हे पुत्री सुनो मिथिलाके पति जनकजी तुम्हारे पिता हमारे बड़े भक्त शिष्य हैं ॥ २ ॥

चिंता अब जनि करसि कुमारी * मिलिहहिं तोहि शेष हितकारी ॥३॥
सादर पर्ण कुटी सिय आनी * करि मज्जन पुनि सब गति जानी ॥४॥

हे कुमारी ! मनमें चिंता मत करो, अन्तमें तुम्हारा मंगल होगा श्रीरामचन्द्रजी मिलेंगे ॥ ३ ॥ वाल्मीकिजी जानकीको आदरसे अपनी पर्णशाला में ले आये और मज्जन करके फिर गति जान ली ॥ ४ ॥

विविध भाँति मुनि धीरज दीन्हा * सिय तब सुरसरि मज्जन कीन्हा ॥५॥
सुमिरि राम मूरति उर राखी * दीन्हे फल मुनि आयसु भाखी ॥६॥

मुनिने जानकीजीको अनेक प्रकारसे धैर्य दिया; तब जानकीजीने गंगामें स्नान किया॥५॥ और रामचन्द्रजीका स्मरण कर उनकी मूर्ति हृदयमें धारणकी, आशीर्वाद पढ़कर फल दिये (जो कि जानकीजीने खाये) ॥ ६ ॥

मुनिवर कथा अनेक प्रसंगा * कहहिं सुनहिं सियसंग विहंगा ॥७॥
ज्ञान अनेक प्रकार दृढ़ाये * लक्ष्मण सुनो अवध जब आये ॥८॥

मुनीश्वर अनेक प्रकारकी कथा कहते हैं,जानकीजी, पक्षियोंके सहित श्रवण करती हैं ॥७॥ अनेक प्रकार उनमें ज्ञान दृढ़ किया । अब लक्ष्मणजी, अयोध्यापुरी आये सो सुनिये ॥ ८ ॥

छन्द-आये जो लक्ष्मण त्यागि सीतहिं विकल निज आश्रम गये ॥
बहु भाँति रोदन मातुसन कहि सीय दारुण दुख दये ॥
सुनि सहमि मूर्छित मातु वरणी विकल फणि जिमि मणि गये ॥
तिमि मातु विलपति जानि व्याकुल कौशलहि दुखवश भये ॥१०॥

लक्ष्मणजी जानकीजीको त्याग कर जब आये तो व्याकुल होते हुए अपने मंदिरमें गये

और अनेक प्रकारसे माताओंके सामने रोने लगे कि जानकीजीको बड़ा कष्ट दिया, माताएँ लक्ष्मणजीकी यह वाणी सुनकर ऐसे सहम कर मूर्छित हो गयीं जिस प्रकार साँपकी मणि जाती रहने पर वह व्याकुल होता है और माताओंको इस प्रकारसे व्याकुल और रोती देख कर सब अयोध्यावासियोंको अथवा उनके स्वामीको दुःख हुआ ॥ १० ॥

छन्द—रोदति वदति बहुभाँति को कह विपति यह दारुण अये ।
सुनि शोर राउर सहित लछिमन राम निज मंदिर गये ॥
निज ज्ञान दै समुझाय तेहिं तब खुले पट अन्तर नये ।
हम जानि तुम सुत मानि प्रभु जग भूलि भ्रम फन्दन भये॥११॥

माताएँ बहुत भांतिसे रोती हुई कहती हैं, अरे ! इस दारुण आपदाको कौन कह सकता है ? इस प्रकारका कोलाहल सुनकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणको संग ले अपने मंदिरमें आये और जब माताओंको अपना ब्रह्मज्ञान देकर समझा दिया तब उनके हृदयके किवाड़ खुल गये और कहने लगीं कि हे स्वामी!हम आपको अपना पुत्र समझकर भूलसे भ्रमके फन्देमें पड़ी थीं॥११॥

छन्द—अब कृपा करि जगदीश रघुवर देहु भक्ति सुहावनी ।
जेहि खोज मुनि योगीश तापस परम अविचल पावनी ॥
वर चहेउ जोइ सोइ दियो मातन कारुणीक रघुपति तबै ।
तनु शोधि करि निज योग पावक तजे तनु सादर सबै ॥ १२ ॥

हे जगदीश श्रीरामचन्द्रजी । अब कृपा करके अपनी सुन्दर अचल तथा परमपवित्र भक्ति दीजिये, जिसको योगी मुनि तपस्वी खोजते हैं । माताओंने जो वर चाहा वही करुणासागरने उनको दिया और उनसे शुद्ध अन्तःकरण करके आदरपूर्वक योगकी अग्निमें शरीर त्याग दिया ॥ १२ ॥

दोहा—योग अग्नि तनु भस्म करि, सकल गईं पति धाम ॥
भरत शत्रुसूदन लषण, शोक भवन श्रीराम ॥ १९ ॥

योगाग्निमें शरीर भस्म करके सब पतिलोकको चलीं गयीं । भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्रजीको शोक हुआ ॥ १९ ॥

विधिवत किये कर्म श्रुति गाये * प्रभुतें गुरु सादर करवाये ॥१॥
दीन्ह दान पुनि कोटि प्रकारा * को अस जग जो वरणै पारा ॥२॥

जैसा वेदमें लिखा है, प्रभुने उनके सब कर्म यथाविधि किये और गुरुने भगवान्से आदरपूर्वक करवाये ॥ १ ॥ फिर अनेक प्रकारसे दान भी दिये, ऐसा जगत्में कौन है जो उनका पार वर्णन कर सके ? ॥ २ ॥

धेनु वसन मणि हाटक हीरा * हय रथ गो मुक्तावर चीरा ॥३॥
दीन्ह कीन्ह द्विज पूरण कामा ॥४॥
पुनि परलोक हेतु धन धामा *

१. भजन—"कैकेयी जौलौं जियति रही । तौलौं बात मातुसों मुहभरि भरत न भूलि कही ॥ मानी राम अधिक जननीते, जननिहु गँसन गही । सीय लषन रिपुदमन राम रुख लखि सबही निबही । लोक वेद मर्याद दोष गुण, गतिचित चखन चही । तुलसी भरत समुझि सुनि राखी, रामसनेह सही ।"

धेनु, वस्त्र, मणि, सोना, हीरा, घोड़ा, हाथी, मोती और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ वस्त्र ॥३॥ परलोकके लिए धन और स्थान देकर ब्राह्मणोंको पूर्णकाम (तृप्त) कर दिया ॥ ४ ॥

रही न चाह याचकन केरी * रंक धनद पदवी जनु हेरी ॥५॥
वेद पढ़हिं द्विज देहिं अशीशा * चिर जीवहु कोशलपुर ईशा ॥६॥

माँगने वालोंको फिर कुछ लेनेकी इच्छा न रही, मानो कंगाल कुबेर हो गये ॥५॥ ब्राह्मण वेद पढ़कर आशिर्वाद देने लगे कि अयोध्यापति हमारे (स्वामी) बहुत काल तक जियें ॥६॥

गृह द्विज याचक सकल सिधाये * अमित प्रकार राम सुख पाये ॥७॥
विप्रदण्ड तापस वध कीन्हा * सुरपुर वास मात कहँ दीन्हा ॥८॥

ब्राह्मण और याचक सब कोई अपने घरोंको चले गये और श्रीरामचन्द्रजीने अनेक प्रकार सुख पाया ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे उस ब्राह्मणको मठाधिपतिरूप दंड दिया तथा शूद्र तपस्वी को दंड दे ब्राह्मणका पुत्र जिलाया और माताओंको सुरपुर पठाया ॥ ८ ॥

दोहा–करौं अक्ष मख एक पुनि, अश्वमेध जग जान ॥
कलुष सकल संताप हर, जगत परम सुख दान ॥ २० ॥

फिर एक समय श्रीरामचन्द्रजीने विचार किया कि अब एक अक्षय और जगद्विख्यात अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये, जो सब पापों और सन्तापोंको दूर करके अत्यंत सुख देनेवाला है ॥२०॥

एक वार गुरुगृह सुखपाई * गे सँग अनुज सचिव रघुराई ॥१॥
कीन्ह दण्डवत पद शिर नाई * सादर हर्षि मिले मुनिराई ॥२॥

एक बार सुखदायक श्रीरामचन्द्रजी भाई और मंत्रियोंके सहित गुरुके गृह गये ॥१॥ और गुरुके चरणोंमें शिर नवाकर दंडवत् किया, मुनीश्वर आदर सहित हर्षसे मिले ॥ २ ॥

पूछी कुशल देखि मृदु गाता * कुशल देखि तव पद जलजाता ॥३॥
गुरुपद वंदि द्विजन शिर नाई * बैठे प्रभु वर आशिष पाई ॥४॥

कोमल गात श्रीरामचन्द्रजीको देखकर गुरुजीने कुशल पूछा। तब रघुनाथजी बोले आपके चरणकमल देखकर कुशल है ॥ ३ ॥ फिर गुरुके चरणारविंदोंको नमस्कार और ब्राह्मणोंको दंडवत् कर शिर नवाकर सुंदर आशीर्वाद पाकर प्रभु बैठे ॥ ४ ॥

कहत पुराण नवल इतिहासा * सुनत कृपानिधि परम हुलासा ॥५॥
भाइन अमित राम सुख दीन्हा * मुनितन लखेउ प्रेमकर चीन्हा ॥६॥

गुरुजी पुराण और नये इतिहास कहने लगे, जिनको श्रीरामचन्द्रजी परम प्रसन्न होकर सुनने लगे ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीने भाइयोंको अपार सुख दिया और प्रेमके चिह्न देखकर मुनीश्वरकी ओर देखा ॥ ६ ॥

दोउ कर जोरि सच्चिदानन्दा * बोले वचन भानुकुल चन्दा ॥७॥
नाथ सकल तव चरण प्रसादा * भइ जग विपुल मोरि मर्यादा ॥८॥

सच्चिदानन्द सूर्य कुलके चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर बोले ॥७॥ हे नाथ! आपके चरणारविंदके प्रसाद द्वारा सब जगत्में मेरी मर्यादा अच्छे प्रकारसे हो गई ॥ ८ ॥

दोहा–समय समुझि करुणायतन, सादर वचन बहोरि ॥
प्रभु अन्तरयामी करहु, सकल कामना मोरि ॥ २१ ॥

फिर दयासागर श्रीरामचन्द्रजी समयानुसार आदरपूर्वक वचन कहे; अन्तर्यामी गुरुजी ! अब एक और मेरी मनोकामना पूरी कीजिये ॥ २१ ॥

तव प्रसाद जप यज्ञ अनेका * कीन्हे अमित एकते एका ॥१॥
नाथ सकल पुरजन मनमाहीं * देखा अश्वमेध प्रभु चाहीं ॥२॥

हे नाथ ! मैंने आपकी कृपासे अनेक एकसे एक उत्तम जप और यज्ञ किये हैं ॥ १ ॥ अब सब अयोध्याके वासी अश्वमेध यज्ञको चाहते हैं ॥ २ ॥

प्रगट भरत नहिं तुमहिं सुनावहिं * डर राउर मत मोहिं जनावहिं ॥३॥
जस कछु आयसु दीजिय नाथा * सो सब करउँ नाय पद माथा ॥४॥

डरके मारे भरतजी आपसे तो कहते नहीं हैं पर अपना मत मुझसे कहा करते हैं ॥३॥ जैसी कुछ आप आज्ञा दें मैं वह सब आपके चरणोंमें माथा नवाकर करूँ ॥ ४ ॥

सुनि पुलके मुनि वचन सप्रीती * कस न कहहु तुम सुन्दर नीती ॥५॥
पूजहिं विधि अभिलाष तुम्हारा * उठहु भरत अब करहु सँभारा ॥६॥

यह प्रेमसे वचन सुनकर मुनीश्वर बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे–कि हे रामजी ! आप क्यों न सुन्दर नीतिसे वचन कहो ? ॥ ५ ॥ परमात्मा आपकी आभिलाषा पूरी करेंगे। हे भरतजी ! उठो और सब तयारी करो ॥ ६ ॥

सुनि मुनि वचन भरत रिपुदमनू * हरषि सचिव लछिमन गृह गमनू ॥७॥
विविध प्रकार चरण करि सेवा * चले भरत सँग सब महिदेवा ॥८॥

मुनिके वचन सुनकर भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण मंत्रियों समेत घरको बिदा हुए ॥७॥ और अनेक प्रकारसे (गुरुके) चरणोंकी सेवा करके भरतजीके संगमें बहुतसे ब्राह्मण चले ॥८॥

दोहा–सेवक पुरजन सचिव सब, सादर तुरत बुलाय ॥
हाट बाट पुर द्वार गृह, रचहु बितान बनाय ॥ २२ ॥

सेवक, पुरवासी, मन्त्री सबको आदरपूर्वक तुरंत बुलाकर यह आज्ञा दी कि नगरके बाजार मार्ग, द्वार और घरोंको सजाओ और स्थान स्थानपर मंडप बनाओ ॥ २२ ॥

चले सकल सेवक सुनि बानी * सुनि राउरि हरषीं सब रानी ॥१॥
रचे वितान अनेक प्रकारा * देखि अवध निज मन विधि हारा ॥२॥

यह वाणी सुनकर सब सेवक चले और रानियां भी इस समाचारको सुनकर प्रसन्न हुईं ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके मंडप बनाये; उस समय अयोध्याजीको देख ब्रह्माजी भी चकित हो अपने मनमें हार गये ॥ २ ॥

लगे सँवारन रथ गज वाजी * सुनि मख गगन दुन्दुभी बाजी ॥३॥
सुनत सचिव चर तुरत बुलाये * कहि जयजीव माथ तिन नाये ॥४॥

पुरवासी लोग रथ, हाथी, घोड़े सँवारने लगे यज्ञका (विधान) सुनकर आकाशमें नगाड़े बजने

लगे ॥ ३ ॥ फिर मंत्रीने तुरंत दूतोंको बुलाया, उन्होंने 'जयजीव' कहकर माथा नवाया ॥४॥

जाहु मुनिनके थल वनमाहीं * सादर निवत देहु सब काहीं ॥५॥
उहाँ राम पूछेउ गुरु देवा * आज्ञा होइ करउँ सो सेवा ॥६॥

उनको आज्ञा दी कि वनमें मुनीश्वरोंके आश्रमों पर जाओ, सादर सबको न्योता दे आओ ॥५॥ इधर श्रीरामचन्द्रजी गुरुसे पूछने लगे कि जो आज्ञा हो वही सब सेवा मैं करूँ ॥ ६ ॥

प्रभु मनकी गति मुनिवर जानी * बोले अति सनेह मय बानी ॥७॥
पठवहु दूत जनकपुर आजू * आवहिं जनक समेत समाजू ॥८॥

मुनिराज प्रभुके मनकी गति जानकर अत्यंत स्नेहसे कोमल वाणी बोले ॥७॥ कि आज ही जनकपुरको दूत भेज दो; तो जनकजी भी समाज सहित यहां पर आवें ॥ ८ ॥

दोहा-सुनहु राम रघुवंशमणि, न्योत सकल पुर जाति ॥
वरुण कुबेर सु इन्द्र यम, मुनि महिसुर गुरु ज्ञाति ॥ २३ ॥

हे (रघुवंशमणि) रामचन्द्रजी ! सुनिये, सब पुरकी जातियों का न्योता दो; वरुण, कुबेर, इंद्र, यम, मुनि, ब्राह्मण और जातिके लोगोंको भी न्योता दो ॥ २३ ॥

गुरु समेत प्रभु अवधहि आये * देखि बनाव बहुत सुख पाये ॥१॥
मिथिला पुर चर तुरत सिधाये * देश देशके नृपति बुलाये ॥२॥

फिर गुरुजीके समेत श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यामें आये और बनाव देखकर बहुत सुख पाया ॥१॥ उसी समय मिथिलापुरीको तुरन्त दूत चले और देश देशके राजा बुलाये गये ॥ २ ॥

जाम्बवंत सुग्रीव विभीषण * अरुनलनील द्विविद कुल भूषण ॥३॥
आये सब जहँ राम कृपाला * वरुण कुबेर इन्द्र यम काला ॥४॥

कुलके भूषणरूप जाम्बवंत, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, द्विविद ॥ ३ ॥ जहां कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी थे वहां आये और वरुण, कुबेर, इंद्र, यम, काल आदि भी आये ॥ ४ ॥

चढ़ि विमान सुर नारि सिहाई * करहिं गान कलकण्ठ लजाई ॥५॥
आये मुनिवर यूथ घनेरे * देहिं कृपानिधि सुन्दर डेरे ॥६॥

देवताओंकी स्त्रियाँ विमानोंपर चढ़ी बड़ाई करती हैं और इस प्रकार गाती हैं जिनको सुनकर कोयलका कण्ठ भी लजाता है ॥ ५ ॥ मुनीश्वरोंके यूथ के यूथ आते हैं और सबको श्रीरामचंद्रजी सुन्दर स्थान देते हैं ॥ ६ ॥

शशि रवि हरिहर विधि सनकादी * आये सुर जे परम अनादी ॥७॥
विश्वामित्र संग मुनि झारी * सहस सात ऋषि इच्छाचारी ॥८॥

चन्द्रमा, सूर्य, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, सनक, सनंदन सनातन सनत्कुमार ये अनादि कालके सब देवता आये॥७॥ विश्वामित्रजीके संगमें सात हजार अपनी इच्छासे विचरनेवाले मुनि आये॥८॥

दोहा-पाराशर भृगु अंगिरा, नारद व्यास अगस्त्य ॥
आये यूथप सकल मुनि, देवल सहित पुलस्त्य ॥ २४ ॥

मुनियोंके यूथप पाराशर, भृगु, अंगिरा, नारद, व्यास, अगस्त्य सब मुनियोंके समूह आये और देवल, पुलस्त्यजी भी आये ॥ २४ ॥

मख थल वर अति दीख सुहावा * नाना भाँति देखि सुख पावा ॥१॥
मिथिलापुर जे दूत पठाये * देखि नगरवासिन सुख पाये ॥२॥

यज्ञका स्थान बहुत शोभायमान् देखकर अनेक प्रकारसे सुख पाया ॥१॥ मिथिलापुरमें जो दूत गये थे उन्हें देखकर अनेक अनेक प्रकारसे सुख पाया ॥ २ ॥

द्वारपाल सब खबरि जनाई * अवध नगरते पाती आई ॥३॥
सुनि विदेह सहसा उठि धाये * तन मन पुलक नयन जल छाये ॥४॥

तब द्वारपालोंने राजाको खबर दी कि अयोध्यासे पत्री आयी है ॥ ३ ॥ सुनते ही जनकजी सहसा ही उठ आये, तन मनसे पुलकित हो नेत्रोंमें जल छा गया ॥ ४ ॥

भयउ भूपमन आनँद जेता * कहि न सकै शारद अहि तेता ॥५॥
शिथिल अंग नृप द्वारे आये * देखि दूत अतिशय सुख पाये ॥६॥

राजाके मनमें जितना आनंद हुआ उसको सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते ॥५॥ शिथिल अंग होकर महाराज दरवाजे पर आये दूतको देखकर बड़ा सुख पाया ॥ ६ ॥

कहहु कुशल रघुपति सब भाई * पत्री दइ सब प्रश्न सुनाई ॥७॥
हृदय राखि पुनि नयन लगाई * गद्गद कण्ठ न कछु कहि जाई ॥८॥

कहो श्रीरामचन्द्रजी सब भाइयों समेत कुशल हैं!दूत बोले—पत्री सब प्रश्नोंका उत्तर कह देगी ॥७॥ पत्रीको छातीसे लगा फिर नेत्रोंसे लगाया; गद्गद वाणी हो गई कुछ कहा नहीं जाता ॥८॥

दोहा—भूप नेह तेहि समय जस, तस न कहहिं मति धीर ॥
तुलसी भयउ उछाह वश, जय जय शब्द गँभीर ॥ २५ ॥

उस समय राजाका जैसा स्नेह था मतिधीर (कवि) उसको वर्णन नहीं कर सकते तुलसीदासजी कहते हैं कि आनंदके वश होकर सब कोई गंभीर जय जय शब्द करने लगे ॥ २५ ॥

बाँचत प्रेम न हृदय समाता * चरवर बोलि कहेउ हँसि बाता ॥१॥
नगर गाउँ पुर मंगल साजहु * बाजन अमित अपार बजावहु ॥२॥

पत्री बांचते हुए प्रेम नहीं समाता है, अपने चतुर दूत बुलाकर हँसकर यह बात कही ॥१॥ नगर गाँवपुरमें मंगल सजाओ और अनेक प्रकारसे बड़े अगणित बाजे बजवाओ ॥ २ ॥

सचिव बोलि नृप पाती दीन्ही *उठि कर जोरि विनय करि लीन्ही॥३॥
पढ़ी सचिव अति प्रेम अनन्दा * सुमिरि राम कोशलपुर चन्दा ॥४॥

फिर महाराजने मन्त्रीको बुलाकर पत्री दी, तब मन्त्रीने उठ हाथ जोड़ विनती कर उसको लिया ॥ ३ ॥ मंत्रीने बड़े प्रेम आनंदसे पढ़ा और कोशलपुरके चंद्रमा श्रीरामचंद्रजीको स्मरण किया ॥ ४ ॥

घर घर खबरि व्यापि छनमाहीं * मंगल कलश धरे सब काहीं ॥५॥
भये अनंद न जाय बखाना * दीन्हेउ विविध भांति नृप दाना ॥६॥

क्षण भरमें घर घर खबर व्याप गयी और सब किसीने घर घरमें माङ्गलिक कलश धरे ॥ ५ ॥ जो आनंद हुआ वह बखाना नहीं जाता, राजाने अनेक भांतिसे दान दिये ॥ ६ ॥

धरि तनु देव अमित नभवासी * आये भूप नगर सुखरासी ॥७॥
कहहिं वचन नृपके हितकारी * चलहु अवध सब काज विसारी ॥८॥

आकाशमें रहनेवाले बहुतसे देवता शरीर धारण करके सुखदायक नगरमें आये ॥ ७ ॥ और राजासे हितकारी वचन कहने लगे कि सब काम त्यागकर अयोध्याको चलो ॥ ८ ॥

दोहा–कहि कहि सुर सादर चले, वाहन रुचिर बनाइ ॥
जोरि युगल कर मुकुटमणि, अस्तुति करहिं सुहाइ ॥ २६ ॥

यह कह देवतागण सुंदर विमान सजाकर आदरसे चले और दोनों हाथ जोड़कर भगवान्की सुन्दर स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

छन्द–सुमिरत चरण श्रीराम श्रीरघुचन्द सीतानायकम् ।
सिय सहित अनुज समेत सुस्थिर बसहु मम उरलायकम् ॥
अम्भोज नयन विशाल भाल कृपाल दशरथनन्दनम् ।
शतकोटि मार उदार शोभा अतुल बल महिमण्डनम् ॥ १३ ॥

देवता करुणाके सागर सीतापति रघुवंशमें चन्द्रमा स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके ध्यान करके यह प्रार्थना करने लगे–कि हे प्रभो ! आप सीता और लक्ष्मण समेत हमारे हृदयमें निश्चल होकर वसिये, आपके कमलसे नेत्र और विशाल मस्तक है, आप दशरथ कुमार कृपाके सागर हैं, सौ करोड़ कामदेवके समान आपकी शोभा है, आपका अपार अनन्त बल है और आप इस पृथ्वीके भूषण हैं ॥ १३ ॥

छन्द–सजि तूण कटि कर शर शरासन कपटमृगमदगञ्जनम् ।
वैदेहि अनुज समेत कृपा निकेत जनमनरंजनम् ॥
मम हृदय वास निवास कुरु करुणायतन करुणामयम् ।
महिमा न कोउ जन जान सुनु हरियानज्ञानविशालयम् ॥ १४ ॥

जो कमरमें तरकस बांधे हाथमें धनुषबाण लिए कपटके मृगका अहंकार तोड़नेवाले हैं, वे कृपाके सागर भक्तोंको आनन्द देनेवाले जानकी लक्ष्मण सहित करुणाके घर करुणामय हमारे हृदयमें वास करें। हे गरुड़जी ! आप बड़े ज्ञानी हो, भगवान्की महिमा कोई पुरुष नहीं जान सकता ॥ १४ ॥

छन्द–सो हेतु कर वृषकेतु प्रभु खर दूषणादि निकन्दनम् ।
नर अधम पामर कामवशमति भजत नाहिं रघुनन्दनम् ॥
तव ललित लीला बसहिं जेहि उर सगुण प्रभु धरणीधरम् ।
कहि सक न शारद शेष नारद जान किमि जन बापुरम् ॥ १५ ॥

शिवजी महाराजके हितकारी और खरदूषण आदिके मारनेवाले उन रामजीको ये मनुष्य जो बड़े अधम और कामके वसमें हैं क्यों नहीं भजते ? हे पृथ्वीके धारण करनेवाले प्रभु रामजी ! आपके गुण व मनोहर लीला जिसके हृदयमें बसती है उसकी महिमा नारद, शेष और शारदा भी नहीं कह सकतीं तो साधारण मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है ? अर्थात् वह क्या जान सकता है ? ॥ १५ ॥

छन्द-सोइ आनि तुलसीदास निज उर शरण अब काकी गहौं।
सुख पाय मन वच काय नहिं गति दूसरी सपने लहौं॥
सब कुशल पूछि महीप सादर बिहँसि आनँद उर छयो।
मन भाय वचन सुनाय विधिपद दान बहु विप्रन दियो॥ १६॥

यह तुलसीदास उस महिमाको अपने हृदयमें धारण करके अब किसकी शरणमें जाय ? सुख पाकर मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी मैं दूसरी गति नहीं चाहता। श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति समाप्त होने पर सादर कुशल पूछकर महाराजका चित्त प्रसन्न हुआ और मनमें आनंद छा गया और मनवांछित मनोरथ पाकर विधाताके चरणोंमें शिर नवाके विनती कर ब्राह्मणोंको बहुत सा दान दिया॥ १६॥

छन्द-गज वाजि भूषण भूमि सुरभी वस्तु नाना को गनै।
एक बार लै नृपद्वार दीन्हो कहहु कवि कैसे भनै।
सन्मानिकै परितोष कीन्हो सबै आदर भावसों॥
मन हर्ष पुलकित कहहिं जय जय सुनहु खगपति रावसों॥१७॥

हाथी, घोड़े, गहने, पृथ्वी, गऊ और अनेक प्रकार की वस्तुएँ ब्राह्मणोंको दी गयीं कि जिसकी कौन गिनती कर सकता है ? इतने असंख्य दान एक बेरमेंही राजद्वार पर दे दिया, तो उनकी संख्या कौन कवि कर सकता है ? बड़े आदर सम्मानसे सबको संतुष्ट कर दिया हे गरुड़जी ! सुनो, राजासे सब कोई प्रसन्न और शरीरसे पुलकित हो 'जय जय' वाणी उच्चारण करने लगे॥ १७॥

दोहा-पूजे विविध प्रकार नृप, सादर दूत हँकारि॥
गुरु गृह गवनेउ मुकुटमणि, पाय पदारथ चारि॥ २७॥

राजाने दूतोंको भी आदरसे बुलाकर अनेक प्रकार सम्मान किया, फिर राजाओंमें शिरोमणि जनकजी मानो चारों पदार्थ पाकर गुरुजीके घर गये॥ २७॥

सकल कथा महिपाल सुनाई * शतानन्द आनँद अधिकाई॥१॥
चलहु नृपति मख देखिय जाई * साजहु जाय सकल कटकाई॥२॥

सब कथा राजाने गुरुको सुनाई, शतानन्दके मनमें बड़ा आनन्द हुआ॥ १॥ वे बोले राजन् ! चलिये यज्ञ देखिये और सारा कटक अभी जाकर सजाइये॥ २॥

करि विनती नृप मंदिर आये * सादर सेवक सकल बुलाये॥३॥
सजहु सेन चतुरंग सुहाई * भवन गये सबही समुझाई॥४॥

विनती करके राजा मंदिरमें आये, आदर करके सब नौकरोंको बुलाया॥३॥ और कहा- सुन्दर चतुरंगिणी सेना शीघ्रतासे सजाओ, सबको ऐसी आज्ञा देकर राजा मंदिरमें गये॥४॥

पत्री सहित नारि गृह आये * बाँचि नृपति पुनि सकल सुनाये॥५॥
आनँद सब रनिवास बुलाई * दिये दान महिदेवन आई॥६॥

पत्री हाथमें लिये हुए रनिवासमें आये फिर महाराजने वह सबको बांचकर सुनाई॥५॥ सब रनिवासने प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको बहुत सा दान दिया॥ ६॥

बहु धन द्रव्य याचकन दीन्हे ❋ सादर बोलि युगल चर लीन्हे ॥७॥
बिलग बिलग सब पूछत बामा ❋ सुनहिं रामके पूरण कामा ॥८॥

बहुतसा धन द्रव्य जाचकोंको दिया और आदरसे दोनों दूतोंको बुलाया ॥ ७ ॥ रानी अलग अलग सब बातें पूछती हैं और श्रीरामचन्द्रजीके गुणानुवाद सुनती हैं ॥ ८ ॥

छन्द-सब काम पूरण रामके सुनि विपुल बाजन बाजहीं ।
पुर द्वार घर रखवार राखे सेन भट सब साजहीं ॥
दश सहस रथसिन्धूर षट शत वाजि पदचर को गने ।
जगमगति पाखर जटितजीन विलोकि कवि कैसे भने ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सब काम पूर्ण सुनकर (सारे नगरमें) आनंदके बहुतसे बाजे बजने लगे, पुर और घर और द्वारोंमें रखवाले रखकर और सब सेनाके योद्धा सजा लिये । दस हजार रथ, छः सौ हाथी, घोड़े पैदलोंकी तो गिनती कौन करे ? जिसके ऊपर जड़ाऊ जीन और पाखर जगमगा रही हैं, जो देखते ही बनते हैं उनकी कवि कैसे बड़ाई कर सके ? ॥ १८ ॥

छन्द-चढ़ि शूर नवल प्रवीन जे अस सब चलत सादर भये ।
सुखपाल परम विशाल युग चढ़ि गुरुहि लै सादर नये ॥
महि डोल धसकत कमठ अहि दल देखि अमित विदेहको ।
रथ यूथ पदचर अमित वर्णहि जगत अस कवि मूढ़को ॥१९॥

नये चतुर शूरमा चढ़कर सब चलने लगे, और दो सुखपाल जो बहुत बड़े हैं उनमें एक के ऊपर चढ़कर तो गुरुजी आदरसे चले और दूसरे सुखपाल पर राजा चढ़कर चले, जिस समय राजा जनकका कटक चला, उस समय पृथ्वी कांपने लगी, कमठ और शेषजी धसकने लगे, उस सेनामें अच्छे योद्धाओंके पैदलोंके समूह इतने अपार हैं कि उनका लेखा कौन मूर्ख कवि कर सकता है ॥ १९ ॥

दोहा-चलेउ राउ मुनिगण सहित, विपुल बजाइ निसान ॥
प्रात तीसरे पहरको, अवध नगर नियरान ॥ २८ ॥

इस प्रकारसे राजा जनकजी मुनियोंके सहित अनेक बाजे बजाकर चले, सबेरे तीसरे पहर अयोध्याके निकट आये ॥ २८ ॥

दोहा-नृप आगमन विचारि प्रभु, सादर आये लेन ॥
मिले परस्पर प्रीति अति, चले सुथल थल देन ॥ २९ ॥

राजा जनकका आना विचार कर श्रीरामचन्द्रजी आदरसे आगे लेनेको आये और परस्पर बड़े प्रेमसे मिलकर फिर अच्छे स्थानमें डेरा देनेके निमित्त चले ॥ २९ ॥

पुर बाहर सरयू शुचि तीरा ❋ वास दीन्ह हरषित रघुवीरा ॥१॥
सौंपि अनुज कहँ राजसमाजू ❋ आये प्रभु जहँ नृप मणिराजू ॥२॥

पुरके बाहर पवित्र सरयूके किनारे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी ने उनको वास दिया ॥१॥ फिर सब छोटे भाइयोंको राजसमाज सौंपकर श्रीरामचन्द्रजी राजा विदेहके पास आये ॥ २ ॥

मिलि पुनि नृपति निकट बैठारे * गद्गद ह्वै मृदु वचन उचारे ॥३॥
बदन चूमि देखे सब गाता * आनँद उमँग न हृदय समाता ॥४॥

राजाने मिलकर श्रीरामचन्द्रजीको निकट बैठाया और गद्गद होकर कोमल वचन बोले ॥ ३ ॥ मुख चूम कर सब शरीर देखा, आनंद उमड़ा वह हृदयमें नहीं समाया ॥ ४ ॥

प्रभु विनती करि सब सेवकाई * सचिव भरत पुनि लीन्ह बुलाई ॥५॥
नृप-सेवा सब भरत सँभारी * सुनु खगपति जस कीन्ह खरारी ॥६॥

प्रभुने विनती और सेवकाई करके फिर मन्त्री और भरतको बुलाया ॥ ५ ॥ राजाकी सेवा सब भरतने सँभाली और गरुड़ ! भगवान्‌ने जैसा किया वह आप सुनिये ॥ ६ ॥

आय गुरुहिं सादर शिर नाई * मन भावत वर आशिष पाई ॥७॥
फिरि प्रभु सकल देव गुरु वन्दे * अभिमत आशिष पाइ अनन्दे ॥८॥

आकर गुरुको आदरसे शिर नवाया, मन भावता बर और आशीर्वाद पाया ॥७॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण देवता और गुरुओंको नमस्कार कर मनोवांछित आशीर्वादको पाकर आनन्दित हुए ॥ ८ ॥

दोहा-दश सहस्र मुनिवर सहित, आये प्रभु मख धाम ॥
बोले वचन विनीत गुरु, मन्त्र सुनहु मम राम ॥ ३० ॥

दश हजार मुनियोंके समेत गुरु श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञ स्थानमें आये और अत्यंत नीति भरे वचन बोले कि हे रामचन्द्रजी ! हमारी सम्मति सुनिये ॥ ३० ॥

धर्म सकल जेहि वेद बखाने * संत पुराण लोक सब जाने ॥१॥
विनु तिय सफल न होहिं खरारी * अब चाहिय मिथिलेश कुमारी ॥२॥

जो सब धर्म वेदने वर्णन किये हैं और जिनको संत, पुराण तथा सब लोग जानते हैं ॥१॥ हे खरारी ! सो विना स्त्रीके यज्ञ सफल नहीं होता, और इस कारण अब जानकीजीका होना आवश्यक है ॥ २ ॥

सुनि मुनि वचन मष्ट ह्वै रहेऊ * सत्य असत्य न एकौ कहेऊ ॥३॥
मम प्रण विरद जान मुनिराया * रहै सुकृत जेहि करहु सो दाया ॥४॥

मुनिके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो रहे, सत्य असत्य कुछ नहीं बोले ॥३॥ फिर कहने लगे-कि हे मुनिराज ! मेरे प्रण और कुलकी कीर्तिको तो आप जानते ही हो, अब वह जिस प्रकार रहे सो कृपा करके कहिये ॥ ४ ॥

दोउ गुरु मिलि नारद सनकादी * वचन कहेउ सुनु पुरुष अनादी ॥५॥
कनक जटित मणि सुन्दरि बाला * रचि सिय रूप सुशील विशाला ॥६॥

दोनों ओरके गुरु, नारद और सनकादिकने मिलकर वचन कहे कि हे अनादि पुरुष! सुनिये॥५॥ सुवर्णकी मणियोंसे जड़ी सुन्दर तरुण स्त्री जानकीके रूपके समान बड़ी सुशील बनायी जाय॥६॥

अंग अंग सब भूषण साजे * तासु रूप लखि रतिपति लाजे ॥७॥
सहसा लखि न सकहिं नर नारी * सिय देखेउ सब अचरज भारी ॥८॥

(आज्ञानुसार तुरंत वैसी ही जानकी बनाकर) उसके अङ्गमें सब आभूषण ऐसे सजाये कि जिनका रूप देखकर कामदेव भी लजाये ॥ ७ ॥ नर नारी भी एकाएक उनकी पहिचान नहीं कर सकते थे और जानकीको देखकर बड़े अचम्भेमें हुए ॥ ८ ॥

दोहा–तेहि अवसर शोभा अमित, को कवि वरणै पार ॥
जगदाधार कृपालु प्रभु, कीन्हे चरित अपार ॥ ३१ ॥

उस अवसरकी असीम शोभाका पार कौन कवि वर्णन कर सकता है ? जगत् के आधार कृपासागर प्रभुने अपार चरित्र किये ॥ ३१ ॥

जटित कनक सुन्दर मृगछाला * तेहि आसन आसीन कृपाला ॥१॥
सीय सहित लखि सुर मुसुकाई * कीन्ह प्रणाम सबन हरषाई ॥२॥

सुवर्णसे जड़ी हुई शोभायमान मृगछालाके ऊपर कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी बैठे ॥ १ ॥ जानकी समेत श्रीरामचन्द्रजीको बैठे देखकर देवता हँसने लगे और प्रसन्न होकर प्रणाम किया ॥ २ ॥

भीर अमित लखि गुरु विज्ञानी * ऋधि सिधि बोलि सकल सनमानी ॥३॥
कहा जाहु जो उचित सो करहू * जो जेहि चहिय सकल अनुसरहू ॥४॥

विज्ञानी गुरुने बहुत मनुष्योंकी अत्यंत भीड़ देख सब ऋद्धि और सिद्धियोंको बुलाकर सम्मान किया ॥ ३ ॥ और कहा कि जाओ यथायोग्य कार्य करो और जिसको जो चाहिये वह उसे दो ॥ ४ ॥

सुनि रजाइ रघुपति रुख पाई * रचे कोटि गृह विधिहि सिहाई ॥५॥
सुर सुरभी सुर तरु सुखखानी * शारद शेष न सकहि बखानी ॥६॥

आज्ञा सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीका रुख पाकर करोड़ों गृह सिद्धियोंने बना दिये जिनको देखकर ब्रह्माजी भी बड़ाई करने लगे ॥ ५ ॥ कामधेनु और कल्पवृक्ष सुख देनेवाले सबके घरोंमें हो गये जिनका शारदा और शेषजी भी बखान नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

पुर गृह बाहर गली अटारी * भरि सुगंध सब रची सँवारी ॥७॥
रहे तहाँ दिगपाल अनेका * जो परमारथ निपुण विवेका ॥८॥

नगर, घर, बाहर, गली, अटारी सब अच्छी तरह सँभाल कर सुगंधिसे भर दिये ॥ ७ ॥ वहां अनेक दिक्पाल भी थे जो परमार्थके बड़े चतुर थे ॥ ८ ॥

छन्द–जे निपुण परम विवेक पावन भरत लै राखे तहीं ।
निज भाग्य प्रबल सराहि निदरहिं धनदकी पदवी सही ॥
आये त्रिलोकी नाग खग सुर असुर जे विधिके रचे ।
सनमानि सकल सनेह सादर रामसन कोउ नहिं बचे ॥२०॥

जो बड़े निपुण थे, ज्ञानमें परम पवित्र थे,उनको ही भरतने उस स्थानपर रखा । वे अपने भाग्यकी सराहना करके कुबेरके पदकी भी निंदा करते हैं ? त्रिलोकीमें नाग, खग, सुर, असुर जो विधाताके रचे हुए थे वे सब आये सबका आदरपूर्वक सम्मान किया । इनमें ऐसा कोई भी न बचा था जिनका रामचन्द्रजीने सम्मान करके कुशल न पूछा हो ॥ २० ॥

दोहा–बाण सहस जे विप्रवर, सुन्दर परम प्रवीन ॥
जानहिं श्रुति कर मत सकल, रह मखसंग अधीन ॥ ३२ ॥

पांच हजार श्रेष्ठ सुन्दर और परम चतुर ब्राह्मण, जो वेदके मतको सब जानते थे वे उस यज्ञके अधीन किये गये थे ॥ ३२ ॥

मकर मास ऋतु शिशिर सुहाई ❋ मख–मण्डप बैठे रघुराई ॥१॥
तब बोले गुरु वचन सुहाये ❋ आनहु बाजि जो वेद बताये ॥२॥

मकर मास सुन्दर शिशिर ऋतुमें श्रीरघुनाथजी महाराज यज्ञमंडपमें बैठे ॥ १ ॥ तब गुरुजीने शोभायमान वचन कहे कि जिस घोड़ेको वेदने बताया है उसको लाओ ॥ २ ॥

लक्ष्मण सुनि गुरु वचन अनन्दे ❋ बार बार पदवारिज वन्दे ॥३॥
हयशाला सादर चलि आये ❋ विविध विभूषण तेहि पहिराये ॥४॥

लक्ष्मण गुरुके वचन सुनकर बड़े आनंदमें हुए और बार बार गुरुके चरणकमलकी वंदना की ॥३॥ आदरसे घुड़शालामें आये और अनेक प्रकारके आभूषण उस घोड़ेको पहनाये ॥४॥

श्वेत वर्ण सुन्दर श्रुति कारे ❋ रविहय लजित मनोज सँवारे ॥५॥
जीन जराव न जाइ बखाना ❋ चढ़ि रविरथ आवत जग जाना ॥६॥

जिसका सफेद वर्ण है और सुन्दर काले कान हैं, जिसको देखकर सूर्यके घोड़े भी लज्जित होते हैं, मानो कामदेवने ही सँवारे हैं ॥५॥ जड़ाऊ जीन है, जिसका बखान नहीं कर सकते, (उसको देखकर जगत्में ऐसा विदित होता था) मानो सूर्य नारायण रथपर चढ़े आ रहे हैं ॥६॥

माथे मोर पंख मणि लागे ❋ सोइ नभ नखत देव अनुरागे ॥७॥
सेवक चारु पाटमय डोरी ❋ दामिनि दमकि निपट अतिथोरी ॥८॥

उनके माथेपर मोरपुच्छ और रत्न जगमगा रहे हैं, मानो आकाशमें तारे चमक रहे हैं जिनको देखकर देवता प्रीति करने लगे ॥ ७ ॥ अच्छे चतुर सेवक संगमें हैं, रेशमकी बाग-डोर है कि जिसके सामने बिजलीकी भी चमक बहुत थोड़ी है ॥ ८ ॥

दोहा–षष्टि सहस दश वीर वर, रामानुज रणधीर ॥
मध्य ताहि आनेउ तहां, जहां राम रघुवीर ॥ ३३ ॥

रणधीर लक्ष्मणजी साठ हजार और दस बड़े वीर योद्धाओंके बीचमें करके उस (सुन्दर श्याम कर्ण) घोड़ेको श्रीरामचन्द्रजीके समीप लाये ॥ ३३ ॥

पूजेउ प्रभु हय जग जय हेतू ❋ जस कछु कहेउ गाधिकुलकेतू ॥१॥
दीन्ह विविध विधि दान अनेका ❋ लिखेउ पत्र सो करि अभिषेका ॥२॥

श्रीरामचन्द्रजीने जगत्में जयके हेतु उस घोड़ेका पूजन किया, जैसा कुछ विश्वामित्र-जीने कहा ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके बहुतसे दान देकर प्रभुने घोड़ेका अभिषेक किया और एक पत्र लिखा ॥ २ ॥

---

१. श्यामकर्ण घोड़ेका लक्षणः— दोहा—श्यामकर्ण तनु मोर वर, पुच्छ पीत मुख लाल । तरुण सुलक्षण सर्वगत, बली तुरङ्ग विशाल । यथा प्र० रा० अ० "गङ्गाजलसमानेन वर्णेन वपुषा शुभः ॥ कर्ण श्यामो मुख रक्त पीत-पुच्छे सुलक्षितः ॥ १ ॥ मनोवेगः सर्वगतिरुच्चैः श्रवस्समप्रभः । वाजिमेधे हयः प्रोक्त शुभलक्षणलक्षितः ॥ २ ॥

एक वीर कोशलपुर माहीं * अरिदल दलन सुरेश सकाहीं ॥३॥
जेहि बल होय गहै सो वाजी * देहु दण्ड वन जाहु कि भाजी ॥४॥

एक वीर योद्धा अयोध्यापुरमें हैं, जो शत्रुओं के दलको मारनेवाले हैं और जिससे इंद्र भी डरते हैं, जिसमें बल हो वह इस घोड़ेको पकड़े नहीं तो कर दो या जंगलको भाग जाओ ॥३॥४॥

लिखि बांधेउ हय शीश सँवारी * यह सुनि वचन चले मुनिचारी ॥५॥
भार्गव आदि सकल मुनि संगा * रहे जहां रघुवंश-पतंगा ॥६॥

ऐसा पत्र लिखकर और सँभाल कर घोड़ेके शिरमें बांधा गया, यह वार्ता सुनकर बहुतसे मुनि चले॥५॥भार्गव आदि सब मुनि इकट्ठे होकर रघुकुलके सूर्य श्रीरामचन्द्रजीके पास आये ॥६॥

कथा सकल लवणासुर केरी * मुनिन त्रास जिन दीन्ह घनेरी ॥७॥
सुनि ऋषि वचन नयन जल छाये * बहुरि राम निज त्रोण मंगाये ॥८॥

और सब लवणासुरकी कथा सुनायी, जिसने मुनियोंको बड़ा दुःख दिया था ॥७॥ऋषियोंके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें जल भर आया और फिर तुरंत अपना तरकस मँगाया ॥८॥

दोहा-दीन्हे रिपुसूदनहिं सो. बाण अमोघ कराल ॥
मन्त्र मोर पढ़ि ताहि हति, जीतेउ सकल भुवाल ॥ ३४ ॥

उसमेंसे शत्रुघ्नको अमोघ तीक्ष्ण बाण निकाल कर दिया और कहा, हे भाई ! मेरा मंत्र पढ़ (इस बाणसे) दैत्यको मार और भी राजाओंको जीतना ॥ ३४ ॥

बहुरि विभीषण राम बुलाये * सादर आय माथ तिन्ह नाये ॥१॥
लवणासुरके चरित अपारा * पूछेउ दिन मणि वंश उदारा ॥२॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको बुलाया उसने आकर आदरसे श्रीरामचन्द्रजीको शिर नवाया ॥ १ ॥ लवणासुरके सम्पूर्ण चरित्र रामचन्द्रजीने विभीषणसे पूछे ॥ २ ॥

कर युग जोरि निशाचर नाहा * सत्य कहउँ अब सुनु अवगाहा ॥३॥
भगिनि विमात्र नाथ सो मोरी * कुम्भीनसि तिहि नाम बहोरी ॥४॥

निशाचरोंके राजा विभीषण दोनों हाथ जोड़कर बोले-हे भगवन् ! सत्य कहता हूँ अब सब सुनिये ॥३॥ हे प्रभु ! मेरी एक सौतेली बहन थी जिसका कुम्भीनसी नाम था ॥ ४ ॥

मधु दानवको रावण दीन्ही * बहु विनती करि तेहि तब लीन्ही ॥५॥
तनय तासु लवणासुर भयऊ * शिव सेवा सादर मन दयऊ ॥६॥

रावणने उसे मधुदानवको बहुतसी विनती प्रार्थना करके ब्याह दिया था ॥ ५ ॥ उस कुम्भीनसीसे लवणासुर नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने आदरपूर्वक शिवजीकी सेवा (तपस्या) में मन लगाया ॥ ६ ॥

अगम तासु तप शंकर जाना * दीन्ह शूल सुनु कृपानिधाना ॥७॥
जेहि कर रहै शस्त्र सो भारी * चौदह भुवन जीत सब झारी ॥८॥

हे दयानिधे ! सुनिये शिवजीने उसकी बड़ी तपस्या जानकर एक शूल उसको दिया और कहा ॥ ७ ॥ जिसके हाथमें यह शस्त्र रहेगा वह सम्पूर्ण चौदह भुवनोंको जीत लेगा ॥ ८ ॥

दोहा–तेहि बल प्रभु सो नहिं गिनहि, अमर दनुज नर नाग ॥
जीति सकल निज वश किये, पथ सबहीके लाग ॥ ३५ ॥

हे स्वामी ! वह दैत्य उसी त्रिशूलके बलसे देवता, दैत्य, नर, नाग किसीको कुछ नहीं गिनता है, और इन सबको जीतकर अपने वशमें कर लिया, सबके पीछे पड़ा रहता है ॥३५॥

तासु चरित सुनि मन मुसुकाने * रिपुहंतहि बल दै सनमाने ॥१॥
सेन संग चतुरंग बनाई * लिये साथ दोउ तनय सुहाई ॥२॥

उसके चरित्र सुन कर प्रभु मनमें मुसकाये और शत्रुघ्नको अपना बल दे उनका सम्मान किया ॥१॥ उन्होंने संगमें वीरोंकी चतुरंगिणी सेना सजायी और साथमें दोनों सुन्दर कुमार भी लिए॥२॥

सुनि प्रभु वचन निशान अपारा * तीनि सहस्र हने इकबारा ॥३॥
धसके वसुधा कुञ्जर गाजहिं * दश सहस्र रथ रविरथ लाजहिं ॥४॥

प्रभुके मुखसे जानेकी आज्ञा ज्यों ही सुनी कि एक संग तीन हजार नगाड़े बाजे ॥ ३ ॥ पृथ्वी धसकने लगी, हाथी चिघाड़ने लगे, दस हजार रथ सूर्यके रथको लजाते हैं ॥ ४ ॥

पूरेउ शंख चलेउ दल साजी * अमित अकाश दुन्दुभी बाजी ॥५॥
पुर बाहर सब अनी सँभारी * तनय युगल लखि परम सुखारी ॥६॥

दल सजाकर शंख बजाकर चले, उस समय आकाशमें अनेक नगाड़े बजने लगे ॥ ५ ॥ पुरके बाहर सब सेना सजाकर खड़ी की और अपने दोनों पुत्रोंको (संग चलते) देखकर शत्रुघ्न जी परम प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥

द्वादश दिवस वास मगमाहीं * पहुँचे जाय यमुन तट पाहीं ॥७॥
दिन प्रति दान देहिं बहुभाँती * पूजहिं हरिपद दिन अरु राती ॥८॥

बारह दिन मार्गमें विश्राम करके यमुनातट पर जा पहुँचे ॥७॥ दिन दिन वहां ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान देते और रातदिन प्रभुके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं ॥ ८ ॥

दोहा–रवितनया मज्जन कियो, सादर पूजि पुरारि ॥
चलेउ शत्रुसूदन सुमिरि, साहब राम खरारि ॥ ३६ ॥

यमुनाजीमें स्नान करके आदरसे शिवजीका पूजन किया और फिर शत्रुसूदन अपने स्वामी खरदूषणके मारनेवाले श्रीरघुनाथजीका स्मरण कर चले ॥ ३६ ॥

चमू चपल अति सुभट जुझारा * घेरेउ नगर वीर बरियारा ॥१॥
विपुल निशान हने तेहि काला * सुनि निशिचरपति गर्व विशाला ॥२॥

इनके संगमें सेना बड़ी चपल थी और सब योद्धा बड़े जुझार थे, इन सब वीरोंने लवणासुरका नगर बरजोरी घेर लिया ॥ १ ॥ उसी समय अनेक नगाड़े बजने लगे, जिनको सुनकर उस राक्षसको बड़ा अभिमान हुआ ॥ २ ॥

षष्टि सहस वर शूर जुझारा * लवणासुर सँग अनी अपारा ॥३॥
सुभट प्रचारत गर्जत आवा * देखि कटक निज अति सुख पावा ॥४॥

लवणासुरके दलमें बड़े लड़ाके और अच्छे साठ हजार शूर थे, वह उस अपार सेनाको संग लिए ॥ ३ ॥ उन योद्धाओंको ललकारा और गर्जता हुआ आया तथा अपने कटकको (सुशोभित) देख बहुत ही प्रसन्न हुआ ॥ ४ ॥

मारहु धाय धरहु नृप बाँधहु * जेहि जय होय यतन सोइ साधहु ॥५॥
अस कहि सम्मुख सेन चलाई * कज्जल गिरि जनु आँधी आई ॥६॥

कहने लगा मार डालो, दौड़ो इस राजाको पकड़ कर बाँध लो, जिस प्रकारसे हमारी जय हो वही यत्न करो ॥५॥ ऐसा कह कर सम्मुख सेना चलायी, मानो कज्जल पर्वत से आँधी आई ॥६॥

मारू शब्द सुनहिं भट गाजहिं * विपुल बाजने दुहुँ दिशि बाजहिं ॥७॥
निज प्रभु कहि जय जोरी जानी * हरषि भिरे भट हठ मन ठानी ॥८॥

मारू शब्द सुनकर योद्धा गर्जने लगे और दोनों ओर अनेक युद्धके बाजे बजने लगे ॥७॥ अपने अपने प्रभुकी जय जयकार करते, अपनी अपनी जोड़ी जानकर दोनों ओरके वीर प्रसन्न हो मनमें हठ ठानकर युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

छन्द-हठ ठानि शूर प्रवीन जे असि भिरे रिपु अति प्रबलसे ।
एक मल्लयुद्ध सराहि रोकहिं एक एकन कर खसे ॥
शर शक्ति तोमर शूल परशु कृपान शूर चलावहीं ।
कर चरणशिर हति तीर धारहिं भूमिजान न पावहीं ॥ २१ ॥

हठ ठानकर जो वीर तलवारमें चतुर हैं वे अत्यन्त बली शत्रुसे भिरे, कोई मल्लयुद्धकी प्रशंसा करते करते एक दूसरेका हाथ पकड़ कर रोकते हैं, शूरगण-बाण शक्ति तोमर शूल फरसे तलवार (परस्पर) चलाते हैं और जो हाथ पैर शिर कटकर गिरते हैं उनको तीरपर धारण कर लेते हैं, वे पृथ्वी पर नहीं गिरने पाते ॥ २१ ॥

छन्द-भट गिरहि पुनि उठि लरहिं पुनि पुनि करहिं माया अतिघनी ।
प्रभु तनय-सुन्दर वीर बाँके हनहिं रिपु निशिचर अनी ॥
देखहिं परस्पर युद्ध कौतुक सुभट एकहि एक हने ।
सजि कोटि रथ सुर आय नभपथ सुमन झरि जय जय भने ॥२२॥

योद्धा शस्त्र लगनेसे गिर कर फिर उठकर लड़ने लगते और बारंबार बड़ी माया करते हैं, इधर प्रभुके सुन्दर और बाँके वीरपुत्र राक्षसोंकी सेनाओंको मारते हैं और जब श्रेष्ठ योद्धा परस्पर युद्धका तमाशा देखते हुए दूसरेको मारने लगे तब देवता गण सजे हुए करोड़ों रथोंपर बैठकर आए और आकाशमार्ग से पुष्पवृष्टि करते हुए जयजयकार करने लगे ॥ २२ ॥

दोहा-विचलित अनी विलोकि निज, लवणासुर बरबंड ॥
संग तनय मातंग भट, दूसर केतु अखण्ड ॥ ३७ ॥

जब बरबंड लवणासुरने देखा कि मेरी सेना चलायमान हो गयी तब अपने साथमें मातंग और दूसरे अखण्डकेतु नामक योद्धा पुत्रोंको लाया ॥ ३७ ॥

प्रभु सुत ज्येष्ठ सुबाहु विशाला * भिरचो मतंगहि जनु दुइ काला ॥१॥
यूपकेतु अरु केतु प्रचारी * लरहिं सुखेन न मानहिं हारी ॥२॥

शत्रुघ्नजी के बड़े पुत्र सुबाहुसे मातंगका युद्ध होने लगा मानो दो काल लड़ते हैं ॥ १ ॥ यूपकेतु और केतु ललकार कर सुखपूर्वक लड़ते हैं किंतु हार नहीं मानते ॥ २ ॥

लवणासुर रिपुहन बल भारी * कौतुक करहिं प्रचारि प्रचारी ॥३॥
अनी समूह जानि निज जोरी * अस्त्र शस्त्र गहि भिरे बहोरी ॥४॥

लवणासुर और शत्रुघ्नजी इन महाबलवानोंको ललकार २ कर कौतुक युद्ध करने लगे ॥३॥ सारी सेना अपनी अपनी जोड़ीसे अस्त्र-शस्त्र लेकर पुनः (घोर) संग्राम करने लगी ॥४॥

विषम युद्ध लखि देव सकाने * पूछा सुरगुरु कहि मुसुकाने ॥५॥
जनि जिय सोच अमरपति करहू * रामप्रताप सुमिरि उर धरहू ॥६॥

बड़ा भयंकर युद्ध देखकर देवता डरे और गुरु बृहस्पतिजीसे पूछने लगे किसकी जय होगी ? उन्होंने हँसकर कहा कि ॥ ५ ॥ हे इन्द्रजी ! तुम अपने मनमें शंका मत करो क्षणमात्र श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप अपने हृदयमें धरो ॥ ६ ॥

यूपकेतु करि कोप अपारा * हरि रिपु केतु खण्ड महिडारा ॥७॥
इहां सुबाहु मतंगहि मारी * कर पद काटि अवनि महँ डारी ॥८॥

इसी अवसरमें यूपकेतुने बड़ा क्रोधकर केतुको मार कर पृथ्वीमें सुला दिया ॥ ७ ॥ और सुबाहु कुमारने मातंगको मारा, उसके हाथ पांव काटकर पृथ्वीमें डाल दिये ॥ ८ ॥

छन्द–महि डारि कर पद शीश आतुर त्रोण शर प्रविशत भये ।
रविवंशके अवतंस दोउ महि समर महँ शोभित भये ॥
सुनि मरण युगसुत विकल निशिचर भूमिपर घुर्मित भये ।
पुनि जागि शूल सँभारि प्रभुके समर सम्मुख सो भिरो ॥ २३ ॥

इस प्रकार कुमारके बाण शत्रु पुत्रके हाथ पैर शिर काट फिर शीघ्रतासे तरकसमें आकर प्रवेश कर गये और सूर्यकुलके भूषण दोनों कुमार संग्रामभूमिमें शोभित हुए। अपने पुत्रोंका मरना सुनकर वह राक्षस व्याकुल होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा और फिर (मूर्छासे) जाग त्रिशूल सँभाल कर युद्धमें शत्रुसूदनके सम्मुख जा भिड़ा ॥ २३ ॥

छन्द–दोउ प्रबल वीर प्रताप निशिचर सेन दुहु दिशि मुरि चली ।
शिर बाहु चरण उड़ात नभपथ योगिनी आनँद भली ॥
बहु रुधिर मज्जन करहिं सादर गुहहिं नरशिर मालिका ।
आनंदमें मन मुदित गावहिं गीत खेचर कालिका ॥ २४ ॥

दोनों महापराक्रमी योद्धाओंको मार दोनों ओरकी सेना पीछे हटीं। शिर, बाहु, चरण आकाशमार्गमें उड़ने लगे, योगिनी प्रसन्न होने लगीं। आदर सहित बहुतसे रुधिरमें स्नान करती हैं, मनुष्यके शिरकी माला गूथती हैं और आनंदसे मनमें प्रसन्न आकाशचारी कालिका (भवानी) गीत गाती हैं ॥ २४ ॥

छन्द–धुनि बढ़हि शंख मृदंगकी सुनि शूर हर्ष बढ़ावहीं ।
गति लेत नृत्यत प्रेततिय शिर माल हरषि चढ़ावहीं ॥
कहुँ करत पान प्रमाण नर कहुँ भरी शोणित शाकिनी ।
सब मेद मांस अहार करि नभ मुदित डोलहिं डाकिनी ॥२५॥

शंख मृदंग ध्वनि (सेनामें) बढ़ने लगी जिसको सुनकर शूरोंका आनंद बढ़ने लगा, प्रेतोंकी स्त्रियाँ प्रसन्नतासे गतिके साथ नृत्य करने लगीं, और आनंदित होकर शिरोंकी मालाओंको अपने ऊपर चढ़ाने लगीं। कहीं शाकिनी उस युद्धमें मनुष्योंको पानके समान चबाने लगीं, कहीं लोहूसे भरे हुए मनुष्यके रक्तको शाकिनी पीने लगीं, कहीं डाकिनी मेद और मांसका आहार करके प्रसन्न हो आकाशमें विचरने लगीं ॥ २४ ॥

दोहा-मारे रघुवर वीर बहु, परे समर रण-धीर ।
छिनमहँ निशिचर वध निरखि, अन्तर ह्वै बलवीर ॥ ३८ ॥

शत्रुघ्नजीने अनेक रणधीर वीरोंको युद्धमें मार डाला यह देखकर महाबली राक्षसगण क्षणमात्रमें अन्तर्धान हो ॥ ३८ ॥

करि छल प्रगटेसि विबुध वरूथा * अस्त्र शस्त्र गहि सब सुर यूथा ॥१॥
धाये अज अरु शिव सनकादी * जे मुनि अपर रहे श्रुतिवादी ॥२॥

और कपटरूप धरकर सब देवताओंके रूपमें अस्त्र शस्त्र लेकर प्रकट हो गये ॥ १ ॥ ब्रह्मा और शिव, सनकादिक तथा और भी अनेक वेदवादी मुनिगण ॥ २ ॥

शक्ति शूल असि चर्म सुहाये * गदा परशु धनु बाण बनाये ॥३॥
धरु धरु मारु मारु सुर कहहीं * लरहिं न भट विस्मित ह्वै रहहीं ॥४॥

शक्ति, शूल, सुन्दर ढाल, गदा, फरसा, धनुष बाण धारण कर ॥३॥ पकड़ो-पकड़ो, मारो मारो इस प्रकार देवता कहने लगे, पर योद्धा युद्ध नहीं करते, अचम्भेमें हो रहे हैं ॥ ४ ॥

निशिचर प्रबल भये रघुनाथा * केतिक वीर मलहिं निज हाथा ॥५॥
सेन विकल लखि नारद आये * समाचार सब कहि समुझाये ॥६॥

जब रघुनाथ (शत्रुघ्नसे) राक्षस प्रबल हो गये तब अनेक वीर (शत्रुघ्नकी ओरके) अपने हाथ मलने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार सेनाको व्याकुल देखकर नारदजी आये और उन्होंने समाचार कह कर समझाया कि यह राक्षसकी माया है ॥ ६ ॥

रिपुसूदन प्रभु विशिख सँभारी * मारेउ सुमिरि समर त्रिपुरारी ॥७॥
जिमि तम अचवै तरणि गो सोई * समर अमर नहिं देखिय कोई ॥८॥

तब शत्रुघ्नने नारदजीके वचन श्रवण कर रघुनाथजीका दिया हुआ बाण सँभाल कर धनुषमें जोड़ शिवजीका स्मरण कर उसको चलाया ॥ ७ ॥ जिस प्रकारसे सूर्यके निकट गये हुए अन्धकार को सूर्य पी लेता है अर्थात् नाश करता है उसी प्रकारसे युद्धमें (राक्षसी मायाका) कोई भी देवता दिखाई नहीं देने लगा ॥ ८ ॥

दोहा-मन्त्र प्रेरि चल कोटि शर, रह नभ जहँ तहँ छाय ॥
मनहुँ बलाहक प्रबल बहु, मारुत देव बिलाय ॥ ३९ ॥

जब शत्रुघ्नने मन्त्र पढ़कर बाण चलाया तो उससे करोड़ों बाण जहां तहां निकल पड़े (उनसे राक्षसी माया) ऐसे बिला गयी जैसे वायु अनंत बादलोंको उड़ाकर लय कर देता है ॥३९॥

सुर समाज कतहूँ नहिं देखा * चलेहु सुबाहु काल जनु बेखा ॥१॥
खल संभारु गहु शूल सुरारी * असि कहि गदा कोपि उर मारी ॥२॥

जब देवताओंका समाज कहीं नहीं देखा तब सुबाहु काल के समान युद्ध करनेको चले ॥ १ ॥ और जाकर उस राक्षस से कहा, अरे दुष्ट ! देवताओंके वैरी ! सँभालकर शूल धारण कर, यह कहकर बड़े क्रोधसे हृदयमें गदा मारी ॥ २ ॥

सहि न सकेउ सो तेज अपारा * मूर्छित अवनि परेउ विकरारा ॥३॥
निजपति विकल देखि भट भारी * धाये बहुकर शस्त्र सँभारी ॥४॥

उस गदाके अपार तेज अर्थात् प्रहारको वह राक्षस न सह सका और व्याकुलतासे मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ३ ॥ अपने स्वामीको व्याकुल पृथ्वीमें पड़ा देख, हे गरुड़जी ! उस समय बहुतसे वीर राक्षस हाथमें शस्त्र सँभाल कर युद्ध करनेको दौड़े ॥ ४ ॥

कैटभ नाम वीर बलवाना * मूर्छित लवणासुर मन जाना ॥५॥
तीन सहस्र लिये रण गाढ़े * आइ सुबाहु सामुहे ठाढ़े ॥६॥

एक कैटभ नामक महावीर दैत्य अपने मनमें लवणासुरको मूर्छित जानकर ॥५॥ तीन हजार वीर दैत्योंको सङ्ग ले लड़ाईमें सुबाहुके सम्मुख (युद्ध करनेको) आ खड़ा हुआ ॥ ६ ॥

कटुक वचन कहि छाँडेसि बाना * काटे प्रभु सुत तीव्र कृपाना ॥७॥
तब खिसियान शूल लै धावा * यूपकेतुके सन्मुख आवा ॥८॥

और दुर्वचन कह कर बाण छोड़ने लगा, वे सब बाण शत्रुघ्नकुमार सुबाहुने तीक्ष्ण तलवार से काट डाले ॥ ७ ॥ तब खिसियाया हुआ वह राक्षस शूल लेकर झपटा और यूपकेतु के सामने आया ॥ ८ ॥

सोरठा–मारेसि हृदय सँभारि, गिरे जपत करुणा अयन ॥
मूर्छित बेर पुकारि, रामचन्द्र दिन मणि तिलक ॥ ३ ॥

वह त्रिशूल सँभाल कर यूपकेतुने हृदयमें मारा (जिससे उनके आघात लगा) और वे करुणासागर रघुवंशकुलतिलक श्री रामचन्द्रजीको पुकारते और जपते हुए मूर्छित होकर गिरे ॥३॥

मूर्छित बन्धु सुबाहु विलोकी * भइ रिसि अमित रहत नहिं रोकी ॥१॥
कठिन बान करि क्रोध अपारा * छाँड़े तीन कोटि एक बारा ॥२॥

सुबाहुने अपने भाईको मूर्छित देखकर महाक्रोध किया जो कि रोकेसे न रोक सका ॥१॥ बड़ा क्रोध कर एक बार तीन करोड़ कठिन बाण छोड़े (जिससे कैटभ व्याकुल हो गया) ॥२॥

ताहि विकल करि अनुज समीपा * आतुर आये निज कुलदीपा ॥३॥
लागेउ बाण तासु तनुमाहीं * परेउ अवनितल सुधि कछु नाहीं ॥४॥

उसको व्याकुल करके अपने कुलके दीपक सुबाहु भाईके पास शीघ्रतासे आये ॥ ३ ॥ उनके शरीरमें ऐसे बाण लगे थे कि जिससे उनको पृथ्वी पर गिरते ही तनिक भी सुध न रही थी; अर्थात् बेहोश पड़े थे ॥ ४ ॥

खैंचि शूल उर बाहर कीन्हा * रामनाम वर औषधि दीन्हा ॥५॥
उठि शुचि अंग अनुजके संगा * लीन्ह विहँसि धनुबाण निषंगा ॥६॥

तब सुबाहुने उनके हृदयसे शूल खैंचकर बाहर किया और रामनामरूपी सुंदर औषधि दी ॥ ५ ॥ फिर भाईके मंत्र सुनते ही सुंदर अङ्ग हो गया और उन्होंने उठकर भाईके साथ हँसते हुए धनुष-बाण और तरकस (हाथमें) लिया ॥ ६ ॥

आय समर महि सुभट प्रचारे * बाणन विपुल देव-अरि मारे ॥७॥
मूर्छागत कैटभ बलवाना * तेहि चढ़ाय रथ तुरत सिधाना ॥८॥

युद्ध भूमिमें आकर योद्धाओंको ललकारा और बाणोंसे अनेक देवशत्रुओंको मारा ॥७॥ बलवान् कैटभको मूर्छित देख लवणासुर रथपर चढ़कर तुरंत ले गया ॥ ८ ॥

दोहा-करि उपाय रथ राखि तेहि, भवन पठै रणधीर ॥
आय समर गर्जत भयउ, संग महाबल धीर ॥ ४० ॥

उपाय करके उसे रथमें डाल घर भेज दिया और आप साथमें महाबलवान् योद्धाओंको ले आकर समरभूमिमें गर्जने लगा, कारण कि महारणधीर था ॥ ४० ॥

जागेउ निशिचर पुनि घर जाई * आयउ कुमक संग निज भाई ॥१॥
सुर वैरी तेहि काल सकाई * हारेउ समर सुनहु खगराई ॥२॥

कैटभ (मूर्छासे) जागा और फिर घर जाकर अपने भाई कुमुकको साथ लेकर आया ॥ १ ॥ काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुड़जी ! सुनो वह वीर देवशत्रु ऐसा बलशाली था; कि उसको देखकर काल डरता था, किंतु वह भी इस युद्धमें हार गया ॥ २ ॥

जानेउ कैटभ जाम्यक आवा * समर धीर नहिं चलै चलावा ॥३॥
नायउ माथ आनि करि जोरी * तात समर रुचि पूजेउ मोरी ॥४॥

कैटभने जाना कि जाम्यक आया; जो समरमें धीर और अचल है ॥३॥ आकर कैटभने हाथ जोड़ शिर नवाया और कहा, हे तात ! आज मेरी युद्धमें रुचि पूरी हुई है ॥ ४ ॥

रावण-रिपु लघु भ्राता जानू * तनय तासु बलशील निधानू ॥५॥
कोटिन शूर समर हम मारे * बालक नृपति निरखि हिय हारे ॥६॥

जो रावणके शत्रु रामचन्द्रजीके छोटे भाईके दोनों पुत्र हैं बल और शीलकी खानि हैं ॥ ५ ॥ हमने युद्धमें अनेक शूर वीरोंको मारा है; परंतु उन राजपुत्रोंको देखकर हृदयमें हार गये ॥ ६ ॥

रिपु बल सुनि करि उर अतिदापू * कहेउ करउ जनि हृदय विलापू ॥७॥
रवितनया गहि सेना डारउँ * तनय अनुज समेत रिपु मारउँ ॥८॥

शत्रुका बल सुन हृदयमें अत्यंत घमण्ड कर कहा—मनमें विलाप मत करो ॥ ७ ॥ मैं उनकी सब सेना यमुनामें डालकर पुत्रोंके समेत शत्रुघ्नको भी मार डालूँगा ॥ ८ ॥

छन्द-रिपु अनुज मारउँ सेन यमुनहिं डारि नृप शिर नावऊँ ॥
तजि सोच सेन सँवारि चलु भट बेगि जो अरि पावऊँ ॥

दोउ मत्त गर्व विशाल निशिचर आय रण गर्जत भये।
इत यूपकेतु सुबाहु धनु शर हाथ ले आतुर गये॥ २६॥

मैं शत्रुको भाई सहित मार उसकी सेनाको यमुनाजीमें बहाकर राजाको शिर नवाऊँगा, शोच त्याग सेनाको सँभाल कर योद्धा चला और जल्दी ही शत्रुओंके पास जा पहुँचा, वे दोनों मतवाले बड़े भारी योद्धा राक्षस ऐसा कह युद्धमें आ गर्जने लगे और इधर यूपकेतु तथा सुबाहु हाथमें धनुष बाण ले शीघ्रतासे गये॥ २६॥

छन्द–भट भिरे निज निज जयति कहि निज जानि जोरी समरकी।
शिर कटत खण्डन चरन योगिनि खात बालक बालकी॥
हठि गीध जम्बुक काक शोणित पियहिं अति सुख पावहीं।
बहु दान देहिं अनेक विधि मन विहँसि मंगल गावहीं॥ २७॥

अपनी २ युद्धमें जोड़ी देखकर योद्धा अपनी अपनी जय करते हुए युद्ध करने लगे, शिर चरण कटके गिरते हैं, उनको योगिनी व उनके बालक बालिकायें खाते हैं, गीध, गीदड़, काक, रुधिर पीकर अधिक सुख पाते हैं रुधिरका बहुत दान देते और हँसते हुए मंगल गाते हैं॥२७॥

दोहा–भिरे शूर सहरोष अति, फिरे सकाने कूर॥
लागे लोहे हठि रहे, समर वीर बलपूर॥ ४१॥

युद्धमें अत्यन्त क्रोध पूर्वक शूर लड़े किन्तु कायर भागने लगे लोहा, बजने लगा और जो युद्धमें धीर श्रेष्ठ शूरवीर थे वे रह गये॥ ४१॥

कहहिं सुशूर होत किन ठाढ़े * फिरइँ लजाय क्रोध करि गाढ़े॥१॥
फिरे प्रचारि सुभट समुदाई * भयो युद्ध अति बरणि न जाई॥२॥

अच्छे योद्धा शूर (भागते हुओंको देखकर) कहते हैं कि खड़े क्यों नहीं होते? तब फिर यह भागते हुए योद्धा अत्यन्त लज्जित हो और मनमें क्रोध बढ़ाकर लौटे॥१॥ सब योद्धा ललकार कर भिड़ गये और बड़ा युद्ध हुआ जो वर्णा नहीं जाता॥ २॥

बरषहिं समर शूर शर कैसे * प्राविट समय जलद जल जैसे॥३॥
हय पग उठी धूरि नभ छाई * भयउ प्रदोष मनहुँ निशि आई॥४॥

योद्धा बाणोंकी ऐसी झड़ी लगा रहे हैं कि जैसे चौमासेमें बादल जल वर्षाते हैं॥ ३॥ घोड़ोंके खुरोंसे उठी धूरि आकाशमें छा गई और अंधेरा छा गया जैसे रात आ गई हो॥४॥

समर खेत रिपु प्रबल चलाये * प्रभु समीप सादर सुत आये॥५॥
देखि तनय बल विपुल विशाला * रिपुहन हर्ष मनुज सुर व्याला॥६॥

युद्धमें वैरियोंका प्रबलदल भाग चला और ये दोनों पुत्र (शत्रुघ्नजी) के पास आदर पूर्वक आये॥५॥ अपने पुत्रोंका अत्यन्त महान बल देख शत्रुघ्न, देवता तथा सर्प प्रसन्न हुए॥६॥

यातुधान बल बुद्धि गँवाई * निजपुर गये पराजय पाई॥७॥
निशि निशिचर सब बात विचारी * होत प्रात पुनि लरब गुहारी॥८॥

राक्षसगण बल और बुद्धि गवांकर पराजित हो अपने नगरमें चले गये॥ ७॥ रात्रिके समयमें राक्षसने सब बात विचारी की प्रातःकाल युद्ध आरंभ करेंगे॥ ८॥

दोहा-साजि वाजि गज वाहनी, गहि गहि हने निशान ॥
आयो समर सकोप अति, लवणासुर बलवान ॥ ४२ ॥

हाथी, घोड़ोंकी सेना सजाकर बड़े बड़े बाजे बजवाता हुआ बड़ा क्रोधित होकर बलवान् लवणासुर युद्धमें आया ॥ ४२ ॥

सुमिरि शिवहि गहि शूल विशाला * रिपुदल परेउ मनहुँ यम काला ॥१॥
छिनक माहिं मारेसि बहु योधा *चले सकोच अनुज करि क्रोधा ॥२॥

शिवजीका स्मरण कर वह विशाल त्रिशूल उठाके शत्रुदलपर ऐसा झपटा मानो साक्षात् कालरूप यमराज है ॥ १ ॥ और एक क्षणमें बहुतसे योद्धाओंको मार डाला तब श्रीरामचन्द्रजीके अनुज (शत्रुघ्न) क्रोध करके चले ॥ २ ॥

आवत शूल हनेसि प्रभु छाती * घुर्मित धरणि परेउ अरिघाती ॥३॥
मूर्छित देखि खड्ग लै धावा * निरखि सुबाहु क्रोध उर छावा ॥४॥

आते ही उसने त्रिशूल प्रभुकी छातीमें मारा; जिसके लगतेही शत्रुघ्नजी घूमकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥३॥ उनको मूर्छित देख दैत्य खड्ग ले झपटा तब सुबाहुके मनमें क्रोध हुआ ॥४॥

प्रबल गदा रथ सारथि भंजेउ * विहँसि महाबल रिपु दल गंजेउ ॥५॥
रथविहीन व्याकुल मनमाहीं * मूर्छित अवनि परेउ सुधि नाहीं ॥६॥

प्रबल गदा मारकर सुबाहुने लवणासुरके रथ और सारथीको चूर्ण कर दिया और हँसते-हँसते महाबलवान् वैरीकी सेनाको नष्ट करने लगा ॥ ५ ॥ रथ रहित मनमें व्याकुल होकर लवणासुर पृथ्वीपर गिरकर मूर्छित हो गया उसको कुछ सुधि न रही ॥ ६ ॥

पुनि उठि गर्जि सकोप सुरारी * अस्त्र सँभारि क्रोध करि भारी ॥७॥
विस्मित विकल देव जब जाने * रामबाण रिपुहन तब आने ॥८॥

फिर लवणासुर उठ महा क्रोध कर गर्जता हुआ अस्त्र सँभाल चला ॥७॥ जब शत्रुघ्नजीने देवताओंको व्याकुल तथा विस्मित देखा तो श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुये बाणको लिया ॥८॥

दोहा-सुमिरि अवधपति चरणयुग, छांड़ेउ तीव्र नराच ॥
परेउ अवनितल भिन्न ह्वै, व्याकुल विकट पिशाच ॥ ४३ ॥

और श्रीरामचन्द्रजीके दोनों चरणोंको स्मरण कर तीव्र बाण छोड़ा कि जिसके लगनेसे वह भयंकर राक्षस व्याकुल और शरीरसे खण्ड होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४३॥

तासु मरण लखि सब सुर यूथा * चढ़ि विमान नभ सकल वरूथा ॥१॥
बाजहिं दुंदुभि वर्षहिं फूला * आज नाथ बीते सब शूला ॥२॥

उसका मरण देख देवताओंके अनेक समूह आकाशमार्गमें विमानों पर चढ़कर ॥१॥ दुंदुभी बजा बजाकर फूल बरसाने लगे और बोले-हे स्वामिन् आज सब दुःख बीत गये ॥ २ ॥

जय जय धुनि सब देव सुकरहीं * वेद मंत्र पढ़ि आशिष वरहीं ॥३॥
यातुधानपति दीन विलोकी * कैटभ पुनि रिस सकेउ न रोकी ॥४॥

लवकुश द्वारा अश्वावरोध!



वीर बली हय देखेउ आई । पत्र बंधेउ शिर बाचेउ धाई ॥
घोडा तिन तुरन्त बाँधेउ । नेक विचार न उरमें साधेउ ॥
गमाश्वमेध लवकुशकाण्ड पृ० १२८२

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

सब देवता जय जयकी ध्वनि करने लगे और वेदके मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद देने लगे ॥३॥ लवणासुरकी दीन (मरण) दशा देखकर फिर कैटभ अपने क्रोधको नहीं रोक सका ॥ ४ ॥

करि किलकार गर्जि अति घोरा ❋ शिला एक मेला बहु जोरा ॥५॥
शर हति शैल सुबाहु प्रचारी ❋ काटी दुष्ट भुजा महि डारी ॥६॥

किलकारी मार घोर गर्जना कर बड़े वेगसे शिला उठाकर चलायी॥५॥सुबाहुने बाण मार उस शिलाको चूर्ण कर दिया और ललकार कर उस दुष्टकी भुजा काट पृथ्वीमें डालदी ॥ ६ ॥

वदन पसारि ताहि तकि धावा ❋ बाण बेधि महि माथ गिरावा ॥७॥
मरत धरणि करि घोर चिकारा ❋ कठिन कृपाण खण्ड करि डारा ॥८॥

जब वह दैत्य मुख फैलाके सुबाहुको तक कर दौड़ा किन्तु इन्होंने बाण मार उसका शिर गिरा दिया ॥ ७ ॥ जब वह मरते समय घोर चिक्कार कर पृथ्वी पर गिरा तब खड्गसे कुमारने उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ८ ॥

दोहा–मारि असुर रघुवंशमणि, देवन अति सुख दीन्ह ॥
बरषि सुमन आकाशतें, सुरगण जय जय कीन्ह ॥ ४४ ॥

रघुवंशमणि सुबाहुने कैटभको मारकर देवताओंको अति सुख दिया और देवताओंने भी आकाशसे फूलोंकी वर्षा करके जयजयकार किया ॥ ४४ ॥

बाजहिं निकर निशान सुहाये ❋ जय जय जय करि सुर सब गाये ॥१॥
पढ़हिं वेद मुनि आशिष देहीं ❋ बन्दी जन निवछावरि लेहीं ॥२॥

अनेक प्रकारके सुन्दर नगाड़े बजने लगे, सब देवता जयजयकार कर गुण गाने लगे ॥१॥ मुनिगण वेद पढ़कर आशीष देने लगे, बन्दी जनोंको निवछावर मिलने लगा ॥ २ ॥

देहिं दान जो जेहि मन भायो ❋ सुनासीर आतुर चलि आयो ॥३॥
जोरि युगल कर अति अनुरागे ❋ बोले वचन प्रेम रस पागे ॥४॥

जो जिसे भाया वह उसको दान दिया, उस समय इंद्रभी शीघ्रतासे आये ॥ ३ ॥ दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नता पूर्वक प्रेमरसमें पगे वचन कहने लगे ॥ ४ ॥

अस्तुति योग्य जीभ नहिं नाथा ❋ अदिति–पुत्र सब कीन्ह सनाथा॥५॥
सुर सुरपति लखि प्रभु–लघुभाई ❋ कीन्ह प्रणाम माथ महि लाई ॥६॥

हे नाथ! आपकी स्तुति करने योग्य हमारी जिह्वा नहीं, आपने हम सब अदितिके पुत्रोंको सनाथ किया ॥ ५ ॥ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजीने देवता और इन्द्रको देख पृथ्वीमें माथा धरकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥

तव प्रताप हति खल समुदाई ❋ रामकृपा हम जय जग पाई ॥७॥
अस्तुति विनय शक्र बहु कीन्हीं ❋ बारबार अति आशिष दीन्हीं ॥८॥

(और कहने लगे) आपके ही प्रतापसे हमने सब दुष्टोंको मार कर श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे जगत्में जय पायी ॥ ७ ॥ यह सुनकर इंद्रने भी बहुत विनती और स्तुति करके बारंबार अत्यन्त आशीर्वाद दिया ॥ ८ ॥

दोहा-देवन सहित सुदेवगुरु, आये जहँ मखधाम ॥
समाचार सादर सकल, कहे सबनके नाम ॥ ४५ ॥

तब फिर देवताओंके साथ देवगुरु यज्ञस्थानमें आये और आदर पूर्वक सारा वृत्तांत तथा नाम वर्णन किये ॥ ४५ ॥

तहँ युग नगर रचे अति रूरे * राखे तनय युगल बलपूरे ॥ १ ॥
मथुरा नाम जगत यश जाना * दूसर विदित जु वेद बखाना ॥ २ ॥

शत्रुघ्नजीने वहाँ दो सुन्दर नगर रचे, जिनमें पूर्ण बलवान दोनों पुत्र रखे अर्थात् वहांका राज्य दोनों कुमारोंको दे दिया ॥ १ ॥ एक नगरका नाम "मथुरा" है जिसके यशको जगत् जानता है और दूसरेका नाम "विदित" है जिसकी (महिमा) वेदने गाई है ॥ २ ॥

ज्येष्ठ तनय बल बुद्धि विशाला * नाम सुबाहु विदित महिपाला ॥३॥
राख्यो यमुना तट बल भूरी * विदित नगर पश्चिम दिशि दूरी ॥४॥

सुबाहु नामवाला बड़े कुमारको जिसमें बल और बुद्धि अधिक है, मथुरा नगरीका राज्य दिया ॥ ३ ॥ और बड़े बलयुक्त यूपकेतु कुमारको विदित नगरका राज्य दिया । यह नगर यमुनाके पश्चिम तटपर है ॥ ४ ॥

यूपकेतु पुनि साथ रखावा * राजनीति दोउ सुत समुझावा ॥५॥
सौंपि नगर बहु आशिष दीन्हीं * नृपमणि गवन विजय कहँ कीन्हीं ॥६॥

फिर यूपकेतुको साथ रखा और (शत्रुघ्नजीने) दोनों कुमारोंको राजनीति समझायी ॥५॥ और नगर सौंप अनेक आशीर्वाद दे राजाओंके मुकुटमणि शत्रुघ्नजी विजय करने को चले ॥६॥

चिरंजीव कहि हने निशाना * दक्षिण अश्व चला जग जाना ॥७॥
सचिव समेत राखि सुत संगा * उतरे सब जल यमुन तरंगा ॥८॥

"चिरंजीव" यह शब्द उच्चारण कर बाजे बजाये, सो दक्षिण दिशाको घोड़ा चला जिसको जगत् जानता है ॥७॥ मन्त्री सहित बेटोंको छोड़ सब यमुनाजीकी लहरोंके पार हुए ॥ ८ ॥

दोहा-रवितनया पद वंदिके, चली सैन हय संग ॥
हर्षहिं शूर समूह अति, निरखि अनी चतुरंग ॥ ४६ ॥

सूर्य तनया-यमुनाका पद वंदन कर सेना चली; योद्धाओंके समूह चतुरंगिणी सेना देखकर अत्यन्त प्रसन्न होने लगे ॥ ४६ ॥

वाल्मीकि थल सैन्य समेता * कानन घन गे कृपा निकेता ॥१॥
सिय सुत युगल वीर बरबंडा * भुजबल अमित दिनेश प्रचण्डा ॥२॥

चलते चलते सब दिशा घूम कर वाल्मीकि मुनिराजका सघन वनमें जहां आश्रम था वहां पहुँचे ॥ १ ॥ वहां जानकीजीके महाबली दोनों पुत्र थे, जिनकी भुजाओंका बल सूर्यके समान प्रचण्ड था ॥ २ ॥

वीर बली हय देखउ आई * पत्र बँधेउ शिर बांचेउ धाई ॥३॥
घोड़ा तिन तुरंत तरु बाँधेउ * नेक विचार न उरमें साँचेउ ॥४॥

कसि कटि तूण हाथ धनु तीरा ❋ समर हेतु बैठे बलवीरा ॥ ५ ॥

उन बलवान् दोनों वीरोंने उस घोड़ेको आकर देखा और उसके शिरपर जो पत्र बँधा था उसको बाँचा ॥३॥ उन्होंने तुरंत घोड़ेको एक पेड़से बांध दिया कोई विचार मनमें न लाये ॥४॥ कमरमें तरकस कसकर हाथमें धनुष ले युद्ध करनेके निमित्त दोनों बलवीर स्थित हुए ॥ ५ ॥

सूर सहस्र सहायक साथा ❋ आय गये जहँ रघुकुल नाथा ॥६॥
तरु पर बाँध्यो वाजि विलोकी ❋ बालक जानि सकल रिस रोकी ॥७॥

तब उस घोड़ेके रक्षक हजार वीर दोनों कुमारोंके पास आगये ॥६॥ उन सबने घोड़ेको वृक्ष के नीचे बँधा हुआ देख उन कुमारोंको बालक जान क्रोध रोका ॥ ७ ॥

दै तुरंग गृह जाहु सहाये ❋ धन्य मातु पितु जिन्ह तुम जाये॥८॥
मांगहु भीख समर चढ़ि भाई ❋ क्षत्रिय कुलहि कलंक लगाई ॥९॥

तब उन बीरोंने कहा कि तुम घोड़ा देकर अच्छी तरह घर चले जाओ, उन माता-पिताको धन्य है जिन्होंने तुमको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ तब कुमार बोले-भाई ! समरमें चढ़कर भीख मांगते हो और क्षत्रियकुलको कलंक लगाते हो ? ॥ ९ ॥

छन्द-जनि क्षत्रिय कुलहि कलंक लावहु समर शूर सुहावने ।
बलहीन तुरंग प्रवीन छांड़हु धरा बिनु भट जानने ॥
सुनि वचन कटुक कठोर बालक जानि भट धावत भये ।
शर तानि एकहिं बाण लव हँसि हने तनु जर जर किये ॥२८॥

हे सुन्दर समरमें सुहावने शूरो ! क्षत्रिय कुलको कलंक मत लगाओ, हे चतुरो ! तुमने जो विना बलके ही घोड़ा छोड़ दिया सो क्या भूमिको योद्धाओं से शून्य जाना था ? यह कडुवे और कठोर वचन सुनते ही वे योद्धा बालक जानकर उनके ऊपर दौड़े तब लवने धनुष तान और हँसते हँसते एक ही बाण मार उन वीरोंके शरीर जर्जर कर डाले ॥ २८ ॥

छन्द-महि गिरे पुनि कछु भिरे योधा जाय रिपुहन सौं कहा ।
मुनिबाल हति संग्राम सेनहि बाजि लै रणमें रहा ॥
सुनि कोप करि अति शत्रुहन तब सैन लै धावत भयो ।
रणमाहिं गाजत वीर बांके वेष लखि लाजत नयो ॥२९॥

कुछ योद्धा तो पृथ्वीपर गिरे, कुछ फिर भिड़ गये अर्थात् लड़ने लगे और फिर शत्रुघ्नजीसे जाकर कहा कि हे महाराज ! मुनिके बालकोंने घोड़ेको पकड़ कर युद्धमें बहुत सी सेनाको मार डाला, तब शत्रुघ्नजी क्रोधकर सेना लेकर उनके ऊपरको झपटे वे दोनों बाँके वीर युद्धमें गर्ज रहे थे शत्रुघ्नजी उस वेषको देखकर लज्जित हुए कि मैं इनसे कैसे युद्ध करूँ ? क्योंकि यह तो बालक हैं ॥ २९ ॥

सोरठा-सुनु मुनि बाल मराल, देहु अश्व निज कोप तजि ॥
पूजि तुमहिं तेहि काल, करहिं सफल निज जन्म प्रभु ॥ ४ ॥

तब (शत्रुघ्नजी बोले) हे हंस समान मुनियोंके छोटे बालको ! सुनो, अपना क्रोध छोड़ कर घोड़ेको दे दो, उस समय तुम्हारा भी पूजन करके प्रभु अपना जन्म सफल करेंगे ॥ ४ ॥

कौन नाम नृप केहि पुरवासू * फिरहु विपिन निजसेन प्रकासू ॥१॥
छांड़ेउ वाजि हेतु केहि लागी * लिखेउ पत्र बांधेउ भय त्यागी ॥२॥

तब कुमार बोले-हे नृप ! आपका क्या नाम है किस पुरमें वास करते हो, जो वनमें अपनी सेना लिये प्रकाश करते फिरते हो ? ॥ १ ॥ किस कारण आपने यह घोड़ा छोड़ा है ? और निडर हो पत्र लिखकर किस हेतु बाँधा है ? ॥ २ ॥

नहिं तव तनु बल पौरुष भाई * छांड़हु पत्र वाजि गृह जाई ॥३॥
सुनि रिपुहन कटु गिरा लजाने * गहहु अस्त्र अस कहि मुसकाने॥४॥

हे भाइयो ! जो आपके शरीरमें बल पौरुष नहीं है तो इस पत्र और घोड़ेको छोड़कर घर चले जाइये ॥ ३ ॥ कटु वाणी सुनकर शत्रुघ्न लज्जित हुए हँसकर बोले कि अच्छा हाथमें अस्त्र धारण करो ॥ ४ ॥

हमहिं प्रचारत नृप बल भारी * डरपहिं सिंह बजाये तारी ॥५॥
अस कहि धनुष बाणकर लीन्हे * मुनिवर विनय चरण चित दीन्हे ॥६॥

(लवकुश यह वचन सुनकर कहने लगे कि) यह ऐसे बलवान् राजा हैं कि हमको भी ललकारते हैं; भला कहीं ताली बजानेसे सिंह डरते हैं ? ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर धनुष बाण हाथमें लिया और मुनिराजके चरणोंमें विनयपूर्वक मन लगाया ॥ ६ ॥

मारेन्हि रथ सारथी तुरंगा * कोटिन बाण हने सब अंगा ॥७॥
कर मूर्छित सब कटक सँहारा * खाहिं मांस खग गिद्ध करारा ॥८॥

शत्रुघ्नजीके रथ, सारथी, घोड़ोंको मारा और सब शरीरमें एक ही बार अनेक बाण मारे ॥ ७ ॥ और सब कटकको मूर्छित करके संहार कर दिया । विकराल स्यार, गिद्धादि उनके मांसको भक्षण करने लगे ॥ ८ ॥

दोहा-एकहिं एक प्रचार कर, हने सकल रण शूर ॥
आये सब रघुवीर पहँ, कायर करणी धूर ॥ ४७ ॥

एक एक को ललकार सब शूरवीरोंका लड़ाईमें संहार कर दिया, तब वे कायर अपनी करनीको धूल करके श्रीरामचन्द्रजीके पास आये ॥ ४७ ॥

पूछेउ सबहिं भानुकुल नाथा * रिपुके सबन कहे गुणगाथा ॥१॥
मुनि बालक सुनि विकल खरारी * पुनि साहस करि कहेउ हँकारी ॥२॥

श्रीरघुनाथजीने उन सबसे समाचार पूछे तब उन सबने शत्रुके गुणोंका बखान किया ॥१॥ युद्ध करनेवाले मुनिकुमार हैं यह सुनकर रघुनाथजी व्याकुल हुए किंतु फिर धैर्य धरकर तुरन्त सबको बुलाकर कहा ॥ २ ॥

लछिमन सङ्ग जाहु तुम भाई * मुनि बालक बांधेउ बरियांई ॥३॥
मारेहु जनि आनेहु पुरमाहीं * ऋषिसुत वध न उचित नहिं काहीं ॥४॥

हे भाइयो ! तुम सब लक्ष्मणके साथ जाओ और बल पूर्वक मुनिके बालकोंको बाँध लाओ ॥ ३ ॥ उनको किसी प्रकारसे मारना नहीं; पुरमें ले आना, क्योंकि ऋषि-कुमारोंको मारना कहीं उचित नहीं है ॥ ४ ॥

चली लखन सँग सेन अपारा ❀ आये तुरत समर जहँ भारा ॥५॥
समरभूमि देखे भट जाई ❀ परे अवनि जनु मूर्छा आई ॥६॥

लक्ष्मणजीके संग (आज्ञा पाकर) अपार सेना चली और शीघ्रतासे जहां संग्राम हो रहा था वहां आयी॥५॥योद्धाओंको युद्धभूमिमें जाकर देखा कि मानो सब मूर्छा खाये वहां पड़े हैं॥६॥

लै घर जीव जाहु मुनि-बालक ❀ दिनकर वंश देव द्विज पालक ॥७॥
आंखिन ओट होहु अब ताता ❀लखि अति कोप बढ़त मम गाता॥८॥

तब लक्ष्मणजी उन कुमारोंसे बोले-हे बालको ! तुम प्राण लेकर अपने घर चले जाओ सूर्यवंश देवता ब्राह्मणोंका पालन करता है ॥ ७ ॥ अब हे बालको ! अब तुम आंख ओट हो जाओ क्योंकि तुम्हें देखकर मेरे शरीर में बहुत क्रोध बढ़ता आता है ॥ ८ ॥

दोहा-सुनि लछिमनके वचन तब, विहँसे बालक वीर ॥
अनुज विलोकहु आइ अब, प्रबल महारणधीर ॥ ४८ ॥

यह लक्ष्मणके वचन सुनकर वे दोनों वीर बालक हँसे और कहने लगे-हे महारणधीर ! तुम अपने छोटे भाईकी ओर देखकर लजाते हुए घर चले जाओ ॥ ४८ ॥

अनुज विलोकि वचन सुनि काना ❀ धनुष चढ़ाय गहे कर बाना ॥१॥
वेष विलोकि बाल मुनि जानी ❀निज कुल समुझि करहुँ मनकानी॥२॥

लक्ष्मणने वचन सुनते ही धनुष चढ़ाकर हाथमें बाण लिये और बोले ॥ १ ॥ वेष देख बालकोंको मुनिपुत्र जान अपने कुलकी मर्यादाको विचार मनमें संकोच करता हूँ ॥ २ ॥

निज सहाय शठ आनु बुलाई ❀ केवल तोहि न हते भलाई ॥३॥
सुनि कुश कठिन बाण संधाने ❀ काँपी पुहुमि शेष अकुलाने ॥४॥

रे शठ तू अपने सहायकोंको बुला ला, केवल तेरे ही मरनेसे भलाई न होगी ॥ ३ ॥ सुनते ही कुशने कठिन बाण चढ़ाये जिससे पृथ्वी कांपी, शेषजी व्याकुल हुए ॥ ४ ॥

छूटे विशिख रहे नभ छाई ❀ बाण भानु प्रतिबिंब छिपाई ॥५॥
रिपुहि प्रबल लखि चले सकोपी ❀ मुरे न मनहिं रहे रथ रोपी ॥६॥

वे बाण छूटते ही आकाशमें छा गये, जिन बाणोंसे सूर्य भी छिप गये ॥ ५ ॥ शत्रुको प्रबल देखकर लक्ष्मणजी क्रोध करके चले। मानों तनिक भी व्याकुल न हुए, संग्राममें रथ खड़ा कर दिया ॥ ६ ॥

काटहिं विशिख विशिख सन भाई ❀ कौतुक करहिं विविध खगराई ॥७॥
झपटि गदा लछिमन तब मारी ❀ गिरेउ भूमि कुश मूर्छित भारी ॥८॥

हे पक्षिराज ! उनके बाण आपसमें एक दूसरेके बाणोंको काटते हैं अनेक प्रकारके कौतुक करते हैं ॥ ७ ॥ तब लक्ष्मणजीने झपटकर एक गदा बड़े वेगसे मारी, जिससे कुश अत्यन्त व्याकुल और मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ८ ॥

दोहा-मूर्छित कुशहि निहारिकै, धाये लव करि शोर ॥
आवत ही शर उर हनेउ, परेउ न महि बल जोर ॥ ४९ ॥

कुशको मूर्छित देख लव बड़ा शब्द करते धावमान हुए और आते ही एक बाण लक्ष्मणजीकी छातीमें मारा, परंतु वे अपने प्रभावसे पृथ्वीपर न गिरे ॥ ४९ ॥

मल्लयुद्ध दोउ भिरे प्रचारी ❋ लरहिं सुखेन न मानहिं हारी ॥१॥
करहिं उपाय विपुल बल करहीं ❋ गिरतहि धरणि बहुरि उठि लरहीं॥२॥

फिर दोनों मल्लयुद्ध करने लगे और सुखपूर्वक लड़ने लगे हार नहीं मानते हैं ॥ १ ॥ युद्ध करनेमें उपाय करते हैं, पृथ्वीपर गिरने पर फिर उठ भिड़ते हैं ॥ २ ॥

विकल सैन सब मानि सँहारी ❋ सुमिर कोशलाधीश खरारी ॥३॥
मारेउ बाण लवहिं क्षित डारा ❋ मूर्छित होय गिरेउ विकरारा ॥४॥

सब सेनाको व्याकुल और मरा हुआ समझकर लक्ष्मणने अवधनाथ श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया ॥ ३ ॥ और लवको बाण मार भूमिपर गिरा दिया, सो वह व्याकुल और मूर्छित होकर गिर गया ॥ ४ ॥

सुमिरि सिया मुनिचरण सुहाये ❋ गत मूर्छा कुश आतुर आये ॥५॥
विकल विलोकि बन्धु लघु जानी ❋ चलेउ वीर मन बहुत गलानी ॥६॥

सीता और वाल्मीकिजीके सुन्दर चरणोंका स्मरण कर मूर्छासे उठ कुश शीघ्र आये ॥५॥ और लघुभ्राताको व्याकुल हुआ देखकर वह योद्धा मनमें अत्यन्त ग्लानि मानकर चला॥६॥

लक्ष्मण देखि वीर वर धाये ❋ धनुष बाण धरि आगे आये ॥७॥
शक्रजीत-अरि जे शर मारे ❋ ते बालकन काटि महि डारे ॥८॥

लक्ष्मणजीने देखा कि बहुत अच्छा वीर आया तो धनुष बाण लेकर आगे आये ॥७॥ मेघनादके वैरी लक्ष्मणजीने जो बाण मारे उन सबको बालकोंने काट कर पृथ्वीमें डाल दिया॥८॥

दोहा–राम अनुज विस्मित विकल, देखि सकल आराति ॥
सीय त्याग उर शोच बड़, प्राण देन वर भाति ॥ ५० ॥

इस प्रकार बालकोंको (सबल बलवान्) देखकर लक्ष्मणजी विस्मित और व्याकुल हुए । सीताजीके त्यागनेका मनमें बड़ा शोच हुआ और प्राण त्यागना ही अच्छा लगा ॥ ५० ॥

कुशकरि क्रोध विशिख सो लीन्हा ❋ मन्त्र प्रेरि मुनिवर जो दीन्हा ॥१॥
नाक रसातल भूतल माहीं ❋ यह शर छुटे बचै कोउ नाहीं ॥२॥

तब इसी अवसरमें कुशने बड़ा क्रोधकर ब्रह्मास्त्र[१] धारण किया जो वाल्मीकिजीने सिखाया था ॥ १ ॥ जिसके छोड़नेसे पृथ्वी, आकाश, पातालमें कोई नहीं बच सकता ॥ २ ॥

मोहन बाण नाम तेहि जानो ❋ विष्णु विरंचि शम्भु जेहि मानो ॥३॥
मारेउ ताकि शेष उर माहीं ❋ परे धरणितल सुधि कछु नाहीं ॥४॥

उस मोह करनेवाले बाणको सब जगत् जानता है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसका सम्मान करते हैं ॥ ३ ॥ सो ताककर लक्ष्मणजीके हृदयमें कुशने मारा, जिसके लगते ही लक्ष्मणजी पृथ्वीमें गिर पड़े और शरीरकी सुध नहीं रही ॥ ४ ॥

चली भाजि सब अनी अपारा ❋ कोशलपुर महँ जाय पुकारा ॥५॥

---

१. श्रीरामचन्द्रजीको जो अस्त्र विश्वामित्रने दिये थे वे सब लव कुश को प्राप्त थे ।

बरणी सकल युद्धकी करणी * लक्ष्मण वीर परे जिमि धरणी ॥६॥

और सम्पूर्ण सेना भाग चली, अयोध्यापुरीमें जाकर पुकारकी ॥ ५ ॥ (दूतने) सम्पूर्ण युद्धकी करणी वर्णन की, जिस प्रकार लक्ष्मणजी पृथ्वीमें गिरे (सो कहा) ॥ ६ ॥

जेहि विधि सकल कटक संहारा * निज लोचन हम नाथ निहारा ॥७॥
वय किशोर दोउ बाल अनूपा * तुव प्रतिबिम्ब मनहुँ सुरभूपा ॥८॥

और फिर कहने लगे–हे नाथ ! जिस प्रकार कटकका संहार हुआ वह सब हमने अपनी आंखोंसे देखा है ॥ ७ ॥ हे देवराज ! दोनों सुन्दर बालक किशोर अवस्था वाले ऐसे हैं मानो आपकी परछांही हो ॥ ८ ॥

काक पक्ष शिर धरे बनाई * बालक बीर बरणि नहिं जाई ॥९॥

वे बालक शिरपर सुन्दर काकपक्ष ((लटूरिया) धारण कर रहे हैं और ऐसे योद्धा हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

दोहा–भरत जोरि कर कहेउ तब, वचन अमित बिलखाइ ॥
सीय त्याग फल दीन्ह विधि, प्रभु कहि देखहु जाइ ॥ ५१ ॥

तब भरतजीने दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त व्याकुल हो यह वचन कहे कि यह विधाताने जानकीजीके त्यागका फल दिया है यह सुन रघुनाथजी बोले–कि तुम जाकर देखो ॥ ५१ ॥

अनुज समर महँ तुम हिय हारे * साजहु हय गय रथ मतवारे ॥ १ ॥
रहौ यज्ञ रिपु देखहु जाई * बालक रावणके दुखदाई ॥ २ ॥

हे भ्रातः ! तुम युद्धसे जीमें हार गये हो ? मतवाले हाथी, घोड़े और रथ सब (सेना) तैयार कराओ ॥ १ ॥ यज्ञ भले ही रह जाय पर प्रथम शत्रुओंको जाकर देखो, हो न हो वे रावणके दुखदायी बालक हैं ॥ २ ॥

तीव्र वचन सुनि भरत लजाने * बहुत भाँति रघुपति सनमाने ॥३॥
प्रथम सखा सब लेहु बुलाई * हनुमदादि अंगद समुदाई ॥४॥

यह रघुनाथजीके तीव्र वचन सुन भरतजी लज्जित हुए, तब रघुनाथजीने बहुत भांतिसे उनका बड़ा सम्मान किया ॥३॥ हनुमान्, अङ्गदादि जो पहिले मित्र थे उन सबको बुला लो ॥४॥

जाम्बवंत कपिराज विभीषण * द्विविद मयन्द नील नल भूषण ॥५॥
रिपुहि मारिकै समर भगाई * तात अनुज दोउ आनहु जाई ॥६॥

जाम्बवन्त, बानरराज सुग्रीव, विभीषण, द्विविद, मयन्द, नील नल जो (कुलके) भूषण हैं ॥५॥ हे तात ! इनको साथले शत्रुको मार या युद्धसे भगाकर तुम दोनों भाइयोंको साथ ले आओ ॥६॥

चले भरत उर उपजी ज्वाला ॥७॥
माथ नाय सँग कटक विशाला *
शोणित सरिता समर विलोकी * डरपेउ वीर आश रण रोकी ॥८॥

यह सुन भरतजी माथा नवाकर संगमें महासेना ले चले और हृदयमें महाक्रोध उपजा ॥ ७ ॥ युद्ध स्थानमें जाकर रुधिरकी सरिता (नदी) भरतजीने देखी, जिसको देख वीर डरे और युद्धकी इच्छा त्याग दी ॥ ८ ॥

दोहा-समर सीयसुत वीर दोउ, आय गये बलवान ॥
देखि डरे सब भालु कपि, तब पूछेउ हनुमान ॥ ९२ ॥

उसी अवसरमें महाबली दोनों वीर जानकीके कुमार आगये उनको देखकर सब रीछ बानर डरने लगे तब महावीरजीने पूछा ॥ ९२ ॥

धन्य मातु पितु जेहि तुम जाये * युगल पुरुष गृह जाहु सुहाये ॥१॥
समर विमुख सुनि भट विलखाने * हनुमतसन बोले रिस साने ॥ २ ॥

हे बालको ! उन तुम्हारे माता पिता को धन्यवाद है ! जिन्होंने तुम्हें उत्पन्न किया है, तुम दोनों सुन्दर कुमार घरको चले जाओ ॥ १ ॥ यह समाचार समरमें विमुख होनेके सुन लव और कुश अधीर हो क्रोधकर महावीरजीसे बोले ॥ २ ॥

नहिं बल होय जाहु गृह भाई * हतउँ न खेत जो रण कदराई ॥३॥
भाखे वचन भरत सुनि काना * लेहु सँभारि बाल धनु बाना ॥४॥

हे भाई ! आपको सामर्थ्य नहीं है तो घर चले जाओ, जो युद्धसे डरते हो हम कदापि आपको न मारेंगे ॥३॥ भरतजीने कानोंसे यह सुनते ही कहा-हे बालको ! धनुष बाण सँभालो ॥४॥

कटकटाय कपि भालु समूहा * लीन्ह उपारि शैल तरु जूहा ॥५॥
एकहि बार सकल मिलि मारा * सकल काटि लव रज करिडारा ॥६॥

यह सुनते ही रीछ बानरोंके समूहने महाकटकट शब्द कर पर्वत वृक्षादिक समूह उखाड़ लिये ॥ ५ ॥ और सबने मिलकर एक ही बार प्रहार किया, परन्तु लवने सब पर्वत वृक्षोंको काटकर रजके समान कर दिया ॥ ६ ॥

रिपु शर काटि निमिष इक माहीं * यथा मनोरथ खल मिटि जाहीं ॥७॥
करि लव क्रोध बाण फटकारे * मारे वीर निमिष महि डारे ॥८॥

शत्रुके बाण एक निमिषमें काट डाले, वे बाण ऐसे लय हो गये जैसे दुष्टके मनोरथ मिट जाते हैं ॥ ७ ॥ जब लवने क्रोध कर वेगसे बाण चलाये तो उन बाणोंसे अनेक वीर मरकर पृथ्वीमें गिर गये ॥ ८ ॥

छन्द-गज वाजि घने रथ भूमि परे । तहँ शोणित वीर वरूथ भरे ॥
लव तानि शरासन बाण भले । रिपु संगर वीर प्रचारि दले ॥ ३० ॥
कहुँ झूमहिं कुंजर पुंज खरे । महि लोटहिं शोणित भार भरे ॥
शर लागत घायल वीर गिरे । कहँ हाँक उठे रण धीर धरे ॥३१॥

पृथ्वीमें अनेक रथ हाथी घोड़ा मरकर गिरने लगे शूर वीरोंके समूह रुधिरसे भर गये लवने धनुष तानकर ऐसे बाण मारे कि जिससे बहुत वीर संग्राममें व्याकुल हो गिरे ॥ ३० ॥ कहीं हाथियोंके समूह खड़े हुए झूम रहे हैं, कहीं रुधिर से भरे पृथ्वीमें लोट रहे हैं कहीं बाण लगनेसे वीर घायल पड़े हैं कहीं गिरकर वीर हांक दे दे उठते हैं ॥ ३१ ॥

छन्द-उर लगत शक्तिवर वीर गिरे । झझकें उठिके तहँ धीर धरे ॥
रणवीर वरूथन भालु कटे । गिरिसे जनु मेदनिखण्ड परे ॥३२॥

रण शोणितकी सरिता उमड़ी। अति तीक्षण धार अपार बड़ी॥
तहँ योगिनि भूत पिशाच घने। पलभक्षक कंक कराल बने॥३३॥

हृदयमें शक्ति बाण लगते ही श्रेष्ठ वीर गिर जाते हैं; कोई झिझक कर फिर उठते हैं धैर्य धरके पांव धरते हैं, युद्धके वीर अनेक वानर भालुओंका संहार हो गया, जिससे वे पृथ्वीपर पंख कटे पर्वतके समान पड़े दृष्टि आते थे॥३२॥ युद्धमें रुधिरकी नदी बह चली, जिसकी धार बड़ी तीक्ष्ण और अपार थी, वहां बहुतसी योगिनी भूत पिशाच अनेक प्रकारके आकर अघाते हैं और कराल चील्ह कौए गिद्धादि मांस खा रहे हैं॥ ३३॥

छन्द-पल भखहिं कंक कराल जहँ तहँ गिद्धगण प्रफुलित भये।
तहँ प्रेत भूत समाज सोहत व्याह प्रति मंगल ठये॥
तहँ डाकिनी मन मुदित डोलहिं शाकिनी शोणित भरी।
दोउ करनि खैंचहि कालिका शिव प्रेत प्रतिकीरति करी॥३४॥

चील्ह और गिद्ध अपना भक्ष्य पाकर जहां तहां प्रसन्न हो मांस खा रहे हैं उसी समय वहाँ भूत प्रेतोंका समाज भी आकर प्राप्त हुआ, जैसे कि कोई विवाह मंगलमें किसीके यहां आते हैं उस स्थानमें डाकिनी शाकिनी शोणितसे लिप्त हो संग्राममें फिरने लगीं; कालिका और शिवजीके प्रेतगण दोनों ओर मृतकोंको खैंचते और बड़ाई करते हैं॥ ३४॥

छन्द-अन्तावरी गहि गर लपेटहिं पियत शोणित आतुरे।
गज खाल खैंचहिं भूत शंकर प्रेत संगर चातुरे॥
वैताल वीर कराल करिवर करी कर यक कर धरे।
है भार रुधिर प्रवाह पूरण पान करत हरे हरे॥ ३५॥

पक्षी अन्तावरी लेकर उड़ते हैं मानो खेल करते हैं, आतुर होकर रुधिर पान करते हैं, संग्राममें चतुर शंकरके प्रेतगण रणमें हाथीका चर्म खैंचते हैं, वेताल वीर हाथीकी शूंड़े हाथमें धरकर नृत्य करते हैं उनसे जो रुधिर निकलता है उसे हरे हरे कहकर पान करते हैं॥ ३५॥

छन्द-रघुवंश समर सराहि दुहुँ दिशि करहिं निज मनभावने।
गज बाजि नर कपि भालु जहँ तहँ गिरे महिशुभ पावने॥
दोउ रामतनय प्रचार बहु विधि निकट कोउ न आवहीं।
जे त्रसित व्याकुल त्राहि त्राहि सुवीर निज गुहरावहीं॥ ३६॥

दोनों रघुवंशकुमार संग्राममें मन भावते सराहने योग्य शुभदायक पवित्र चरित्र करते हैं, हाथी, घोड़े, रीछ, वानर, जहां तहां संग्राममें आकर गिर गये, दोनों रघुनाथजीके पुत्र अनेक प्रकारसे प्रचार कर युद्धको बुलाते हैं, उनके निकट कोई नहीं आता, वीरोंके चित्त व्याकुल हो गये एक दूसरेको पुकारते हैं॥ ३६॥

दोहा-विषम युद्ध दोउ बन्धु करि, जीते कपि संग्राम॥
आये पुनि तहँ नृप भरत, सुमिरि विधाता वाम॥ ५२॥

दोनों भाइयोंने बड़ा भयंकर युद्ध कर कपियोंको संग्राममें जीत लिया तब भरतजी प्रतिकूल विधाताका स्मरण कर संग्रामभूमिमें आये॥ ५२॥

कपिभालुहि व्याकुल सब आवहिं * बाणत्रास मन अतिदुख पावहिं॥१॥
जाम्बवन्त कपिराज बुलाये * अंगद हनूमान सुनि आये ॥२॥

देखे तो सब रीछ वानर व्याकुल हुए हैं, बाणके त्राससे मनमें बड़ा दुःख पाते हैं ॥ १ ॥ भरतने जाम्बवन्त और सुग्रीवको बुलाया, सुनते ही अङ्गद और हनुमान् आये ॥ २ ॥

सब मिलि सहित निशाचर राजा * धरि आनहु दोउ बाल समाजा॥३॥
आय जुटे कपि भालु भवानी * तिन कछु प्रभु महिमा नहिं जानी॥४॥

भरतने कहा-तुम और विभीषण सब मिलकर जाओ और बालकोंको समाज सहित पकड़ लाओ ॥ ३ ॥ हे पार्वती ! यह सुनते ही सब रीछ आकर लड़ने लगे, उन्होंने भगवान्की कुछ महिमा नहीं जानी ॥ ४ ॥

बोले कुश सुनु वालि कुमारा * तव बल विदित जान संसारा ॥५॥
पितहि मराइ मातुपर हेली * सकल लाज आये तुम ठेली ॥६॥

कुशने कहा—वालिकुमार अङ्गद ! तेरा बल संसारमें विदित है ॥५॥ तूने अपने पिताका वध कराकर माता दूसरेको दे दी, इसपर भी सम्पूर्ण लाजको तिलांजलि देकर तुम यहां युद्ध करने आये हो ? ॥ ६ ॥

सो फल लेहु समर महि आजू * त्यागहु सकल कलंक समाजू ॥७॥
सुनत क्रोध अंगद उर छावा * गहि गिरि एक ताहिपर धावा ॥८॥

सो उसका फल आज तुम लो, आज तुम्हें कलंकका, सब समाज त्यागना होगा ॥ ७ ॥ सुनते ही अङ्गदजीको बड़ा क्रोध हुआ और एक पर्वतका खंड लेकर उनपर दौड़े ॥ ८ ॥

दोहा—आवत शैल विशाल लखि, तिल सम शर हत कीन्ह ॥
जस अंगद बल गर्व अति, तस प्रभु उत्तर दीन्ह ॥ ५४ ॥

उस विशाल पर्वत खण्डको आते देखकर कुशने एकही बाण चलाकर तिलके समान कर पृथ्वीमें डाल दिया जैसा अङ्गदजीने गर्व किया था वैसा ही उसका प्रभुने उत्तर दिया ॥५४॥

तमकि ताकि कुश बाण चलावा * अंगद नील अकाश उड़ावा ॥१॥
आवत जानि पुहुमि कपि भारी * मारे बाण प्रचारि प्रचारी ॥२॥

फिर एक बाण कुशने ऐसा ताक कर मारा, कि उससे अंगद और नील आकाशको उड़ गये ॥ १ ॥ और फिर वे जब पृथ्वीपर आये तब प्रचार प्रचार कर फिर बाण मारने लगे ॥ २ ॥

इत उत जान कतहुँ नहिं पावै * पवन वहे जिमि महि नहिं आवै ॥३॥
छिन अकाश छिन भूतल ओरा * बोलेउ शरण नाथ अब तोरा ॥४॥

इन बाणोंके प्रहारसे वे दोनों कहीं नहीं जाने पाते हैं जिस प्रकार पवनसे बाल आकाशमें रहते हैं ऐसे ही यह आकाशमें रहे ॥ ३ ॥ छिन आकाशमें और छिन पृथ्वीकी ओर आते हैं तब बोले—हे प्रभो आपकी शरण हैं ॥ ४ ॥

रहेउ गर्व हमकहँ भगवाना * अगजगनाथ न हम पहिचाना ॥५॥
पांच बाण वेधेउ कपि दोऊ * दीन जानि त्यागे हँसि सोऊ ॥६॥

हे कृपानिधान ! हमें बलका बड़ा गर्व था; हे सब जगत्के स्वामिन् ! आपकी महिमा हमने नहीं जानी ॥ ५ ॥ इधर कुशने पांच बाणसे दोनों कपियोंको वेध दिया और दीन जान हँसकर त्याग कर दिया ॥ ६ ॥

परे भरतके सन्मुख जाई * दशा देखि कपि दशा भुलाई ॥७॥
जाम्बवन्त हनुमान कपीशा * धाये गिरि तरु लै बहु कीशा ॥८॥

फिर ये दोनों भरतके सामने आये, यह दशा देखकर कपि सुध भूल गये ॥७॥ उसी समय जाम्बवंत हनुमान सुग्रीव आदि बहुत वानर वृक्ष और शिला लेकर लड़नेको दौड़े ॥ ८ ॥

दोहा–हँसेउ कुमार देखि कपि, अनुजहि कहेउ बुझाइ ॥
आजु समर जितिहहुँ भरत, भालु कपिन बिलगाइ ॥ ५५ ॥

तब कुमार कुश वानरोंको देखकर हँसे और छोटे भाईसे समझाकर कहा कि रीछ वानरोंको अलग कर दो मैं आज भरतजीको संग्राममें जीतूँगा ॥ ५५ ॥

प्रभुसुत समर कीन्ह जस करनी * निगम शेष शारद नहिं बरनी ॥१॥
चरित तासु सुनु शैलकुमारी * मारेउ समर शूर कपि भारी ॥२॥

श्रीरामजीके पुत्र लव और कुशने जो युद्धमें करनी की उसे शेष शारदा कोई नहीं वर्णन कर सकते ॥१॥ हे पार्वती ! उसके चरित्र श्रवण करो बड़े २ वीरोंको मार रणक्षेत्रमें गिरा दिया ॥२॥

समर धीर दोउ बाल विराजे * निरखि भालु कपि मन अतिलाजे ॥३॥
खैंचि धनुष गुण छांड़ेउ सायक * कपि पति आदि हने कपि नायक ॥४॥

समरमें धीरतासे दोनों बालक विराजमान हुए इन्हें देख रीछ वानरोंको मनमें बड़ी लज्जा लगी ॥३॥ कुशने धनुष चढ़ाके बाण छोड़ और सुग्रीवादि अनेक कपिश्रेष्ठोंको मारा ॥ ४ ॥

मूर्छित सेन परी महिमाहीं * बचेउ न कपि घायल जो नाहीं ॥५॥
देखि भरत सब सेन निपाती * कोपि बाण मारेउ लव छाती ॥६॥

सब सेना मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर गयी, कोई वानर घायल हुए विना नहीं बचा ॥५॥ जब भरतजीने देखा कि सब सेना गिर गयी, क्रोध कर लवकी छातीमें बाण मारा ॥ ६ ॥

मूर्छित विकल परेउ महिमाहीं * अति अचेत तनकी सुधि नाहीं ॥७॥
दुखित देखि कुश बहुत रिसाना * चाप चढ़ाय बाण संधाना ॥८॥

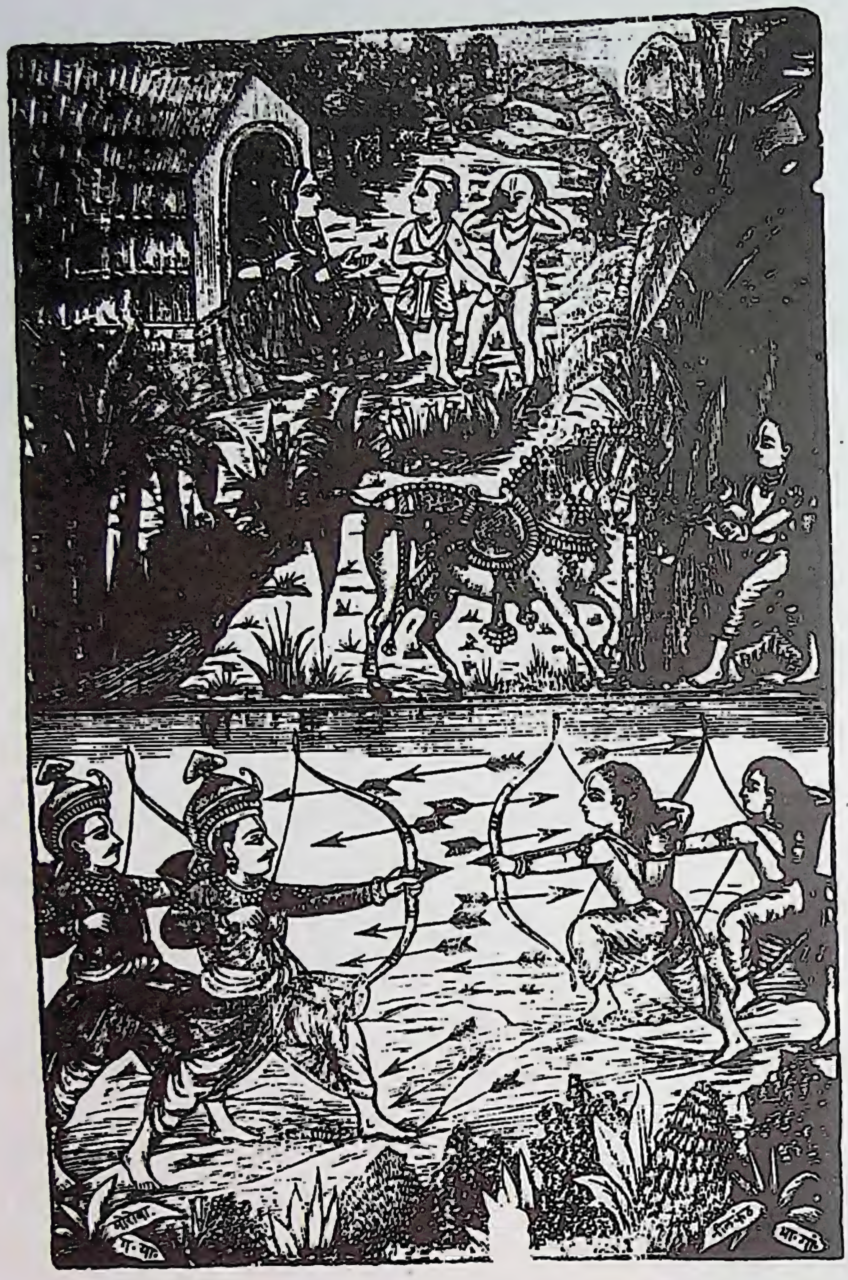
जिसके लगते ही लव मूर्छित और व्याकुल हो पृथ्वीमें ऐसा अचेत गिरा कि तनकी भी खबर न रही ॥७॥ दुःखी देख कुशने अत्यन्त क्रोध करके धनुष बाण संधान किया ॥८॥

दोहा–समरभूमि सोये भरत, लवहि लीन्ह उर लाय ॥
सुमिरि मातु गुरुचरण युग, रहे समर जय पाय ॥ ५६ ॥

उन बाणोंके लगनेसे भरतजी रणभूमिमें सो गये अर्थात् मूर्छित हो पृथ्वीमें गिर गये। जब सचेत हुए तो कुशने लवको छातीसे लगा लिया, फिर वे दोनों भाई माता और गुरुके चरणोंका स्मरण कर युद्धमें विजयी हो खड़े रहे ॥ ५६ ॥

आये खबर लेन चर चारी * भरत सेन तिन सकल निहारी ॥१॥
शोणित-सरिता देख डराने * हय गय बहे जात रथ जाने ॥२॥

वाल्मीकाश्रममें लवकुशका घोड़ा पकड़ना और रघुवंशियोंसे कठिन संग्राम करना।



चार दूत युद्धके समाचार लेने आये थे उन्होंने भरतके सब कटककी यह दशा देखी ॥ १ ॥ और रुधिर की नदी बहती देखी जिसमें हाथी घोड़े रथ बहे जाते हैं बड़ा डर माना ॥ २ ॥

ग्राह नाक झष जंतु घनेरे * देखि दूरिते तिन मुहँ फेरे ॥ ३ ॥
लहरि तरंग वीर सब जाहीं * घायल परे तीर लपटाहीं ॥ ४ ॥

सो यह जीव ऐसे विदित होते हैं मानो बहुतसे ग्राह, नाके और मच्छ बहे जाते हैं देखकर दूतोंने दूरसे ही मुख फेर लिया ॥ ३ ॥ लहरों और तरंगोंमें वीर बहे जाते हैं कहीं घायल वीर किनारों पर पड़े बहे हुओंसे लिपटते हैं ॥ ४ ॥

फिरे दूत कोशलपुर आये * समाचार सब राम सुनाये ॥५॥
चरवर वचन सुनत दुख पावा * त्यागेउ मख निज कटक बनावा ॥६॥

दूत अयोध्यामें लौट आये, युद्धके सब समाचार श्रीरामजीको कह सुनाये ॥५॥ रामचन्द्रजीने दूतोंके वचन सुनते ही दुःख पाकर अपना कटक सजाया और यज्ञ पुरोहितोंके आधीन किया ॥६॥

चले सकोप कृपालु उदारा * आये प्रभु जहँ कटक सँहारा ॥७॥

मुनि बालक वर देखि सुहाये * शर निवारि प्रभु निकट बुलाये ॥८॥
कृपासागर रघुनाथजी क्रोध कर चले और वहां आये जहां कटक मारा गया था ॥ ७ ॥ वहां मुनिके श्रेष्ठ सुन्दर बालक देखकर प्रभुने अपने बाणोंका चलाना निवारण कर उन दोनोंको अपने निकट बुलाया ॥ ८ ॥

दोहा–पूछेउ पास बुलाय दोउ, कहहु मातु पितु नाम ॥
देश ग्राम निज कहहु सब, बड़ जीतेउ संग्राम ॥ ५७ ॥
उन दोनों बालकोंको बुलाकर प्रभु बोले–तुम अपने माता पिताका नाम कहो और जहां रहते हो उस देश तथा नगरका भी नाम कहो, तुमने बड़ा संग्राम जीता है ॥ ५७ ॥

गहहु अस्त्र जनि कहहु कहानी * पूछेउ नाम गाँव कह जानी ॥१॥
समर बात बहु अति कदराई * छांड़ि शोच अब करहु लराई ॥२॥
यह सुन लव कुश बोले आप शस्त्र धारण कीजिये,नाम ग्राम क्या जानकर पूछते हो ॥१॥ युद्धमें बहुत सी बातें करना अत्यन्त कायरपन है, सो अब सोच त्यागकर युद्ध कीजिये ॥२॥

वंश नाम बिनु पूछे ताता * हतउँ न बाल मनोहर गाता ॥३॥
माता सीय जनककी जाता * वाल्मीकि मुनि पालेउ ताता ॥४॥
रामचन्द्र बोले तुम मनोहर शरीर वाले बालकोंका वंश और नाम पूछे विना मारना उचित नहीं ॥ ३ ॥ रामचन्द्रके यह वचन सुन वे बोले जनक पुत्री जानकी हमारी माता और मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकिजीने हमें पाला है ॥ ४ ॥

पिता वंश नहिं जानहुँ आजू * लवकुश नाम विपिन कर काजू ॥५॥
सुनि सब कथा राखि मनमाहीं * बाल विलोकि वधब भल नाहीं ॥६॥
पिताका नाम वंश तो अभीतक हम जानते नहीं परंतु हमारा नाम लव,और कुश है; वनमें बस मुनिके काम करते हैं ॥ ५ ॥ यह सब कथा सुन मनमें रखकर अपने बाल जान रघुनाथजीने उनपर कठिन बाणका प्रहार करना उचित न जाना ॥ ६ ॥

आवत सुभट समूह हमारे * लरिहहिं तुम सन समर सुखारे ॥७॥
अस कहि अंगद नील उठावा * जाम्बवन्त कपिपतिहि बुलावा ॥८॥
(यह विचार प्रभु कहने लगे) कि पीछे हमारी सेनाके लोग हैं; वे तुमसे सुखपूर्वक युद्ध करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर अङ्गद तथा नीलको रघुनाथजीने उठाया और जाम्बवंत सुग्रीव, को बुलाया ॥ ८ ॥

छन्द–कपिराज अंगद जाम्बवंतहि बोलि निशिचर नायकम् ।
हनुमन्त द्विविद मयंद नीलहि सुभट जे अति लायकम् ॥
तव हरण शूलहि पापनाशन कह्यो हँसि रघुनन्दनम् ।
भरतादि रिपुहन सहित लछिमन परे खलमदगञ्जनम् ॥३७॥
सुग्रीव अङ्गद जाम्बवंत तथा विभीषणको बुलाकर एवं हनुमान्,द्विविद, मयन्द, नील जो बड़े योग्य सुभट थे उनसे पाप और दुःख हरनेवाले रघुनन्दनने हँसकर कहा कि भरत और शत्रुघ्न सहित लक्ष्मण युद्धमें मूर्छित पड़े हैं; जो पराये दलके मर्दन करनेवाले हैं ॥ ३७ ॥

छन्द-लंकेश आदिक सुभट मारे वीर जे महिमण्डनम् ।
ते आजु बालक विप्रसो रण परे रिपु-मदगञ्जनम् ॥
कुलकानि अब निजजानि लरहु सो शैलतरुबहु लै चले ।
दै हूह वानर जूह पर्वत डारि पुनि रण मुरि चले ॥ ३८ ॥

जिन्होंने लड़ाईके बड़े बांके रावणादिक बीरोंका संहार कर दिया था वे आज मुनियोंके बालकोंके मारे पृथ्वीमें पड़े हैं। जो शत्रुओंका दल नाश करनेवाले हैं सो अब तुम अपने कुलकी कानि जानकर लड़ो; (यह सुन) योद्धा बहुतसे वृक्ष और पर्वत लेकर चले और वानरोंके समूह 'हूहू' शब्द करके पर्वत डालनेके लिये फिर लौट चले ॥ ३८ ॥

दोहा-सावधान धनु बाण लै, धायउ लव बलवान ॥
सम्मुख आइ विभीषणहि, बोले बहुत रिसान ॥ ५८ ॥

पीछे बलवान् लव सावधान हो धनुष बाण लेकर दौड़े और विभीषणके सम्मुख आकर बहुत रिसाकर बोले ॥ ५८ ॥

सुनु शठ समरहि बन्धु जुझाई * शत्रुहि मिलेउ परम कदराई ॥१॥
पिता समान बन्धु बड़ तोरा * नारि तासु लै धरि बरजोरा ॥२॥

हे मूर्ख विभीषण ! सुन समरमें अपने भाईको मरवा शत्रुसे मिले तूने अधिक कायरता की है॥१॥जो तेरा बड़ा भाई पिताके तुल्य था,बलात्कारसे तूने उसकी स्त्री घरमें रखली ॥२॥

पापी मातु कहेउ कै बारा * सो पत्नी यह धर्म तुम्हारा ॥३॥
बूड़ि मरहु सागर-महँ जाई * मरु गर काटि अधम अन्याई ॥४॥

पापी! उस मन्दोदरीको रावणके सम्मुख कईबार माता कहा है,उसे ही स्त्री बनाया, क्या यही तेरा धर्म है॥३॥अरे अधर्मी अन्यायी ! तू समुद्रमें जाके डूब मर,या गला काटकर मर जा॥४॥

समर भूमि मम सम्मुख आवा * लाज होत नहिं गाल बजावा ॥५॥
आखिन आगे ते टरि जाई * नाहित मृत्यु निकट खल आई ॥६॥

अब तू समर भूमिमें सम्मुख आया है ? गाल बजाते लाज नहीं आती ? ॥ ५ ॥ शीघ्र मेरी आंखोंके आगेसे टल जा; नहीं तो खल ! अपनी मृत्यु निकट ही आयी जान ॥ ६ ॥

सुनिखिसियान गदा तेहि लीन्ही * शरहति खंड खंड लव कीन्हीं ॥७॥
सात बाण मारेउ करि क्रोधा * गिरेउ धरणि शर लागत योधा ॥८॥
गिरत कोप करि शूल चलावा * लव तनु तड़ित समान समावा ॥९॥

यह कटु वचन सुनतेही विभीषणने खिसियाकर गदालीसो लवने बाण मारकर खंड खंडकर दी ॥७॥ क्रोध करके सात बाण मारे, उनके लगनेसे योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ा॥८॥विभीषणने गिरते गिरते कोपसे त्रिशूल मारा कि वह बिजलीके समान लवके शरीरमें समा गया ॥९॥

दोहा-दूरि शूल करि बंधु युग, शर मारेउ पुनि दाप ॥
जाम्बवन्त कपिराज नल, अंगद करहिं विलाप ॥ ५९ ॥

तब उन दोनों भाइयोंने तुरन्त शूलको निकाल डाला और फिर घमण्डसे बाण मारे (यह देख) जाम्बवंत, सुग्रीव नल और अंगदजी विलाप करने लगे ॥ ५९ ॥

जो गिरि तरु कपि डारहिं आई ॥ रजसम करि तेहिं देहिं उड़ाई ॥१॥
निज बाणन कपि घायल कीन्हे ॥ जेहि जस उचित सो तस फल दीन्हे॥२॥

जो पर्वत वृक्ष कपि आकर डालते हैं उनको ये दोनों भ्राता धूलिके समान करके उड़ा देते हैं ॥ १ ॥ इस प्रकार लव कुशने अपने बाणोंसे सब वानरोंको घायल किया और जिसको जैसा उचित था उसे वैसा ही फल दिया ॥ २ ॥

रघुकुल तिलक प्रचारित पाछे ॥ वीर धुरीण बने अति काछे ॥३॥
अंगद हनूमान भट भारी ॥ ते धाये तरु शैल उपारी ॥४॥

पीछेसे रघुवंशतिलकने प्रधान प्रधान वीरोंको जो बड़े बली वीर साज सजे थे ललकारा ॥ ३ ॥ अङ्गद हनुमान् ये बड़े योद्धा भी वृक्ष और शैल उखाड़ कर धावमान हुए ॥ ४ ॥

डारि शैल दुइ भिरे रिसाई ॥ खडगन हने वीर वरिआँई ॥५॥
कपिन कोप भरि उर हत तेहीं ॥ जिमि खगमशक चोटगज देहीं॥६॥

यह दोनों उन पर्वतोंको डाल उनसे क्रोध पूर्वक जा भिड़े और उनको वीर कुमारोंने तलवारोंसे मारा ॥ ५ ॥ फिर उन दोनों वानरोंने क्रोधसे उनके हृदयमें बड़े वेगसे आघात किया परन्तु हाथीपर मच्छरके प्रहारके समान चोट न लगी ॥ ६ ॥

हति दोनों कपि भूमि गिराये ॥ जाम्बवंत कपिपति पहँ आये ॥७॥
यहि तनु कोटिक समर लड़ाई ॥ जीते लरे बहुत हम भाई ॥८॥

फिर उन दोनों बालकोंने अपने प्रहारसे अंगद हनुमान्‌को पृथ्वीपर गिरा दिया, यह देख जाम्बवन्त सुग्रीवके पास आकर कहने लगे कि ॥ ७ ॥ भाई ! इस शरीरसे हमने करोड़ों संग्राम जीते हैं अनेक योद्धाओंको मार डाला और अनेकोंको जीता ॥ ८ ॥

दोहा—यह बालक त्रिभुवन बली, जीत सकै नहिं कोय ॥
चलहु प्राण दीजै समर, अमर जगत नहिं होय ॥ ६० ॥

पर ये त्रिलोकीमें बली बालक हैं; उनको कोई नहीं जीत सकता चलो अब युद्धमें हम भी प्राण दे दें; क्योंकि संसारमें कोई अमर तो है ही नहीं ॥ ६० ॥

आये भालु बली भट नाना ॥ तानि शरासन सर संधाना ॥१॥
हृदय ताकि लव मारयो सायक ॥ योजन सात गयो कपिनायक ॥२॥

तब तो अनेक बली योद्धा रीछ वानर आये धनुष तानकर सर सन्धान किये ॥ १ ॥ सो लवने तककर हृदयमें ऐसा बाण मारा कि सुग्रीव सात योजन उड़ गये ॥ २ ॥

घायल भालु लिपटे जाई ॥ मल्लयुद्ध कुश कीन्ह तहाँई ॥३॥
निजबल भालुहि अवनि पछारा ॥ दोउ कर चरण बांधि विकरारा ॥४॥

तो घायल रीछ वानर लिपटने लगे सो कुशने उनसे मल्लयुद्ध किया ॥ ३ ॥ अपने बलसे जाम्बवंतको कुशने पृथ्वीमें छोड़ दिया और दोनों हाथ पैर बांधकर व्याकुल कर दिया ॥४॥

हनुमन्तहिं बांधेउ पुनि धाई ॥ राखेउ निकट अश्व थल आई ॥५॥
रखवारी लव छाँड़ेउ वीरा ॥ आप गयउ रघुनायक-तीरा ॥६॥

फिर हनुमान्‌जीको दौड़कर लवने बांध लिया और घोड़ेके निकट लाकर बैठाया ॥ ५ ॥ रखवारी करनेके लिये वीर लवको छोड़ कुश रघुनाथजीके पास गये ॥ ६ ॥

देखेउ रथपर श्रीपति सोये ❋ फिरेउ वीर कुश लाज विगोये ॥७॥
सुभग अस्त्र पट भूषण नाना ❋ चले अश्व धरि लै हनुमाना ॥८॥

देखा तो रघुनाथजी रथमें सो गये हैं उन्हें देख कुश लाजसे पीछे लौट गये ॥ ७ ॥ सुन्दर अस्त्र, अनेक वस्त्र तथा गहने घोड़े पर रखकर कुश हनुमान्‌जीको लिये घरको चले ॥ ८ ॥

छन्द-शुभ अस्त्र पट भूषण सुमर्कट ऋच्छ सँग हय घर चले ।
सिय निकट नायो माथ दोउ सुत भेंट भूषण जे भले ॥
पहिचानि दोउ भट निरखि भूषण सहमि सिय धरनी परी ।
यहि बीच मुनिवर सघन आये सियहि अति विनती करी ॥३९॥

सुन्दर अस्त्र, वस्त्र गहने हनुमान् तथा रीछोंके साथ घरको चले जानकीके निकट आ माथा नवा दोनों पुत्रोंने भेंट दी। दोनों वीरोंको पहचाना, भूषणादि देख जानकी सहम कर पृथ्वीमें गिर पड़ीं। उसी समय मुनिराज वनसे आये और सीताने विनती की॥ ३९ ॥

छन्द-हनुमन्त भालुहि छोरि वेगहि त्यागि बहु समुझायऊ ।
रिपुदमन लछिमन सहित भरत राम समर सुवायऊ ॥
सुत कीन्ह कर्मकलंक कुलमहँ मोहि विधि विधवा करी ।
तजि शोच चंदन अगर आनहु जाउँ पियसँग अब जरी ॥ ४० ॥

हनुमान्, जाम्बवंतको शीघ्र छोड़ो यह कहकर बहुत समझाया कि तुमने लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न व रामको युद्धक्षेत्रमें सुला दिया। पुत्र तुमने कुलमें कलंक लगाया मुझे विधाताने विधवा किया अब शोच त्याग चन्दन, अगर लाओ, मैं अपने स्वामीके सङ्ग जल जाऊँगी ॥ ४० ॥

छन्द-मुनि धीर जानकि देइ लव कुश सँग लै सादर चले ।
रण देखि बालक चरित देखत बिहँसि मन प्रमुदित चले ॥
रण देखि यह पहिचानि प्रभुकहँ जाय मुनि आगे भये ।
उठि बैठ कोशलनाथ आरत तनय तब आगे छये ॥ ४१ ॥

धीर मुनिराज वाल्मीकिजी जानकीको धैर्य देकर कुमारोंको सादर तथा साथ लेकर रण-भूमिको चले। युद्धको देख बालकोंके चरित्र निहार हँसकर मनमें अति प्रसन्न हुए, फिर रथ देखकर घोड़ोंकी पहिचान कर मुनि प्रभुके पास जाकर खड़े हुए और कहा हे रघुनाथजी उठ बैठो, यह आपके दोनों पुत्र आगे खड़े हैं ॥ ४१ ॥

सोरठा-सुनि मुनिवर बर बैन, जागे रघुपति भय हरण ॥
बिहँसि उघारे नैन, लीन्हे हृदय लगाय मुनि ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ मुनिकी अच्छी वाणी सुनकर भयके हरनेवाले प्रभु जागे और हँसकर ज्योंही नेत्र खोले कि मुनिने हृदयसे लगा लिया ॥ ५ ॥

प्रभुहि देखि मुनि अति हरषाने ❋ बार बार निज भाग्य बखाने ॥१॥
जेहि विधि शेष सीय वन आनी ❋ मुनिवर सो सब कथा बखानी ॥२॥

प्रभुको देखकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए और वारम्वार अपने भाग्यकी बड़ाई की ॥ १ ॥ जिस प्रकारसे लक्ष्मणजी वनमें जानकीको छोड़ गये थे, मुनिराजने वह कथा सब वर्णन की ॥२॥

लवकुश कथा सकल मुनि भाखी * शिव विरंचि सूरज करि साखी ॥३॥
मिले तनय दोउ हृदय लगाये * सुधा वरषि सुर सेन जियाये ॥४॥

लवकुशकी कथा मुनिने सब वर्णन की और शिव, ब्रह्मा तथा सूर्यकी साक्षी दी कि यह आपके पुत्र हैं ॥ ३ ॥ रघुनाथजीने अपने पुत्रोंको हृदयसे लगाया और अमृत वर्षा कर देवताओंने सब सेनाको जिला दिया ॥ ४ ॥

भरत आदि जागे सब भ्राता * लछिमन चले जहाँ सियमाता ॥५॥
बहुरि राम लछिमनहिं बुलाई * सुनहु तात मम वचन सुहाई ॥६॥

भरत आदि सब भाई जागे और जहां माता जानकीजी थीं वहां लक्ष्मणजी चले ॥५॥ फिर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको बुलाकर कहा हे तात ! हमारे यह सुन्दर वचन सुनो ॥ ६ ॥

तात वचन मम मानहु भाई * सिय सन शपथ लेहु तुम जाई ॥७॥
लछिमन जाय शीश सिय नावा * कुशल कही बहुविधि समुझावा ॥८॥

हे तात ! मेरी बात सुनो और तुम जाकर जानकीजीसे शपथ लो ॥ ७ ॥ सो लक्ष्मणजीने जाकर सीताके चरणोंमें शिर नवाया और कुशल कहकर अनेक प्रकारसे समझाया ॥ ८ ॥

हरि इच्छा सियमन अस भावा * शेष सहसफणि आनि दिखावा ॥९॥

नारायणकी इच्छासे सीताजीके मनमें भी शपथ करनेको आगयी और उन्होंने हजार मुख वाले भगवान् शेषनाग को साक्षात् लाकर दिखा दिया ॥ ९ ॥

जाय सभामें जनक दुलारी * सत्यरूप अस गिरा उचारी ॥१०॥
मन वच कर्म बिना भगवाना * सपनेहुँ पुरुष न जानउँ आना ॥११॥

तब जानकीजीने सभामें जाकर यह सत्यरूपवाणी कही ॥१०॥ जो मन वचन कर्मसे भगवान् आर्यपुत्र श्रीरामचन्द्रजीके अतिरिक्त दूसरे पुरुषोंका मैंने स्वप्नमें भी ध्यान नहीं किया हो॥११॥

तौ धरणी माता सुनि लीजै * निजमहँ ठौर मोहि अब दीजै ॥१२॥
जब सीता असि गिरा उचारी * बिदरी भूमि शब्द भा भारी ॥१३॥

तो हे धरणी माता ! सुनिये मुझको अब अपनेमें रहनेके लिये स्थान दीजिये ॥१२॥ जब जानकीजीने यह वचन कहा तब बड़ा शब्द हुआ और पृथ्वी फट गयी ॥ १३ ॥

तामेंते अति शुभ्र सुहायो * निर्मल सिंहासन प्रगटायो ॥१४॥
ताको सर्प रहे करि धारण * बैठी वसुधा सब जग तारण ॥१५॥

उसमेंसे बड़ा मनोहर निर्मल एक सिंहासन प्रकट हुआ ॥ १४ ॥ उसको (सहस्र मुख) शेष आदि सर्प धारण कर रहे थे और सब जगत्की तारनेवाली पृथ्वी देवी उस पर शरीर धारण किये बैठी थी ॥ १५ ॥

---

१. पद—"धरणी सुनिये विनय हमारो । माता तुम घटघटकी जानति, सकल विश्वधारणहारी ॥ १ ॥ अपनी पुत्रीकी यह विपत कैसे तोपै जात निहारी ॥ २ ॥ जौ मन वचन कर्म रघुपति, बिन नहीं औरकी ओर निहारी ॥ ३ ॥ तो तुम फटो बीच दो मोको सहि न जाइ विपदा अब भारी ॥ ४ ॥ मैया गोद पसारि उठाले, करि दीजै इस जगसे न्यारी ॥ ५ ॥ राम बिना पतिदेव न दूजा, तौ फटि जा सत वचन विचारो ॥ ६ ॥"

तुरत गोद सीता तेहि लीन्ही * सावधान करि आशिष दीन्ही ॥१६॥
पुत्री सहे दुःख तुम भारी * चलो लोक मम होहु सुखारी ॥१७॥

उसने जानकीजीको तुरंत गोदीमें लिया और सावधान कर आशीष दी ॥ १६ ॥ हे पुत्री तुमने बड़े दुःख सहे, अब हमारे लोकमें चलकर सुख भोग करो ॥ १७ ॥

दोहा-जटित मणिन सिंहासन, आदर सीय चढ़ाय ॥
भयो अलोप पताल महँ, महिमा किमि कहि जाय ॥ ६१ ॥

भूदेवीने मणि जटित सिंहासनके ऊपर आदरपूर्वक सीताजीको चढ़ाया । वह सिंहासन पातालमें लोप हो गया, वह महिमा कैसे कही जाय ? ॥ ६१ ॥

लछिमन चरित देख सब ठाढ़े * नयन प्रवाह चलत अति गाढ़े ॥१॥
सकल चरित सुनि कृपा निधाना * चलत हमार सीय मन जाना ॥२॥

लक्ष्मणादि यह सब चरित्र देखते खड़े रह गये; सबके नेत्रोंमें अत्यन्त जल भर आया ॥ १ ॥ यह सब चरित देख सुन श्रीरामचन्द्रजीने विचार लिया कि सीता हमारे मनकी जान गयी । हमको भी अपने धाममें चलना उचित है । (रामचन्द्रजीने वहां क्रोध करके पृथ्वीसे कहा था कि जानकीजीको लौटा दे नहीं तो खण्ड खण्ड कर दूँगा, तब ब्रह्माने आकर समझाया यह ऐसा ही होना था अब परम धाम चलनेकी तयारी कीजिये) ॥ २ ॥

तनय सहित प्रभु निजपुर आये * दान दीन्ह शुभ यज्ञ कराये ॥३॥
जेहि जेहि विधिसुर आयसु दीन्हे * कोटि कोटि विधि प्रभु सोइ कीन्हे ॥४॥

(यह विचार) पुत्रोंसहित अयोध्यामें आये और शुभ यज्ञ पूर्ण कर अनेक दान किये ॥३॥ जिस प्रकार देवताओंने आज्ञा दी सो प्रभुने करोड़ करोड़ प्रकारसे वही किया ॥ ४ ॥

कोटिन धेनु धाम धन धरणी * दीन्ह कृपानिधि को सक वरणी ॥५॥
भोजन विविध भांति करवाई * विदा किये मुनिवृन्द बुलाई ॥६॥

अनेकों गौ, धाम, धन, भूमिका रघुनाथजीने दान दिया सो कौन कह सके ? ॥ ५ ॥ अनेक प्रकारके भोजन करवाकर मुनि वृन्दोंको दक्षिणा दे विदा किया ॥ ६ ॥

जनकहि पूजि विदा प्रभु कीन्हा * दोउ गुरु पूजि पदोदक लीन्हा ॥७॥
आये जनक गुरुहि पहुँचाई * बैठे प्रभु महिसुरन बुलाई ॥८॥

जनकजीका भी पूजन कर प्रभुने बिदा कर दिया और दोनों गुरुओंका पूजन कर चरणामृत लिया ॥७॥ जनक और गुरुको जब पहुँचा आये तब ब्राह्मणोंको बुलाकर बैठे ॥ ८ ॥

---

१. पद—"पुत्री जीमें दुख न लाओ ॥ हो तुम शुद्ध शपथ सब सांची, अब मत मर्त्यलोक दुख पाओ ॥ १ ॥ तुमसी सती रामसे भर्ता, सुने नहीं जग शोच भुलाओ ॥ २ ॥ चलो नित्य आनंद लोकमें, अब मत बेटी देर लगाओ ॥ ३ ॥ दर्शन करि लो अपने पतिके अब साकेत लोकको आओ ॥ ४ ॥

दोहा–लक्ष लक्ष वर धेनु धन, पूजि पूजि द्विज पाय ॥
एक एक विप्रन दई, हर्षित कोशल-राय ॥ ६२ ॥

सब ब्राह्मणोंके चरणोंका पूजन कर प्रभुने प्रसन्न होकर एक एक लाख सुन्दर गाय और धन एक एक ब्राह्मणको दिया ॥ ६२ ॥

गे सब मुनि सज्जन निज धामा * पाये अमित परम सुख रामा ॥१॥
पुरवासी आये सब झारी * सुनहिं पुराण सो होहिं सुखारी ॥२॥

वे मुनि सज्जन सब अपने २ धामको चले गये और रघुनाथजीने बड़ा सुख पाया ॥१॥ सम्पूर्ण पुरवासी प्रभुका दर्शन करने आते हैं और वे पुराण सुनकर प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

जे जड़ चेतन जीव घनेरे * सचर अचर कोशलपुर केरे ॥३॥
तिन पटतर सुख नहिं सुरराया * करहिं विनोद विहाय अमाया ॥४॥

जितने जड़ चेतन जीव स्थावर जङ्गम अयोध्यापुरीके हैं ॥ ३ ॥ उनके बराबर इन्द्रको भी सुख नहीं है, वे माया कपट छोड़ आनंद करते हैं ॥ ४ ॥

यहि विधि विपुल काल चलि गयऊ * निज पुर गमन सुअवसर भयऊ ॥५॥
बीती अवधि ब्रह्म जब जानी * नारद मुनिसन कहा बखानी ॥६॥

इसी प्रकारसे बहुत समय बीत गया और रघुनाथजीका अपने लोकमें जानेका समय आ गया ॥५॥ यहां जब ब्रह्माजीने जाना कि अब रघुनाथजीका अपने लोकमें रहने की ग्यारह हजार वर्षकी अवधि बीत गयी तब नारदजीसे बखान कर कहा ॥ ६ ॥

निज पुर आवन चहत खरारी * धर्मराज कहँ कहेउ हँकारी ॥७॥
विनती बहु विरंचि जब भाखी * चलेउ धर्म रघुपति उर राखी ॥८॥

और अब वे अपने पुरमें आना चाहते हैं, तब धर्मराजको बुलाकर ब्रह्माजीने कहा–रघुनाथजीसे कहो कि अब अवधि बीत चुकी है ॥ ७ ॥ जब ब्रह्माजीने बहुतसी विनती की तो धर्मराज हृदयमें रघुनाथजीको रख चले ॥ ८ ॥

दोहा–आयो यम रघुवीरपुर, मुनिवर वेष बनाय ॥
तेजपुञ्ज सुन्दर तरुण, कटि मृगचर्म सुहाय ॥ ६३ ॥

यमराज मुनिका वेष बना कर श्रीरामचन्द्रजी के नगरमें आये, जो तेजस्वी और सुन्दर युवावस्था युक्त थे, कमरमें मृगचर्म शोभित था ॥ ६३ ॥

द्वारपाल लक्ष्मण कहँ जानी * बोलेउ तापस अति मृदुबानी ॥१॥
तुरत शेष तब खबरि जनाई * सुनत वचन आये रघुराई ॥२॥

उस समय लक्ष्मणको द्वारपाल जान उनसे तपस्वीने अत्यन्त कोमल वाणी द्वारा कहा (कि श्रीरामचंद्रजीसे हमारे आनेका समाचार कहो) ॥ १ ॥ तब तुरंत लक्ष्मणजी ने खबर जनायी और श्रीरामचंद्रजी मुनिका आगमन सुनते ही द्वारपर आये ॥ २ ॥

मुनिहि निरखि प्रभु कीन्ह प्रणामा * सादर उचित कहेउ श्रीरामा ॥३॥
अर्घ्य दीन्ह आसन बैठारी * मुनिवर सादर गिरा उचारी ॥४॥

मुनिको देखते ही प्रभु श्रीरामचंद्रजीने प्रणाम किया और आदरसे उचित वचन कहे ॥ ३ ॥ फिर आसन पर अर्घ्य दिया और मुनिने आदरसे वाणी उच्चारण की ॥ ४ ॥

सुनु सर्वज्ञ कृपालु दिनेशा * आयउँ मैं मुनिवरके वेषा ॥५॥
मैं तुम रहउँ अवर नहिं कोई * तिसरे सुनत नाश तेहि होई ॥६॥

हे सर्वज्ञ कृपासागर सूर्यकुल तिलक रघुनाथजी ! सुनिये, मैं मुनिवरका वेष बनाकर आया हूँ ॥ ५ ॥ (मैं समाचार उस समय कहूँगा जब इस स्थानमें) मेरे और आपके सिवाय कोई तीसरा न रहेगा और जो तीसरा सुनेगा उसका नाश हो जायगा ॥ ६ ॥

सुनहि वचन तेहि देहहुँ शापू * शिव विधि हरि जो आवहिं आपू ॥७॥
सुनहु लषण बैठहु चलि द्वारे * नहिं कोउ आवन गिरा उचारे ॥८॥

जो और कोई मेरे वचन सुनेगा उसको शाप दूँगा । जो शिव, ब्रह्मा, विष्णु सुनेंगे उनको भी शाप दूँगा ॥ ७ ॥ तब रघुनाथजीने कहा सुनो लक्ष्मण ! तुम द्वारे जाकर बैठो; और न कोई आवे, न इस अवसरमें बोले ॥ ८ ॥

इतनेहु पर आवे पुनि कोई * मरिहहि सत्य मृषा नहिं होई ॥९॥

इतने पर जो आवेगा उसका वध होगा यह सत्य है झूठ नहीं है ॥ ९ ॥

दोहा-बोलेउ तापस वचन मृदु, पाहि पाहि रघुनाथ ॥
कहा सकल इतिहास मुनि, कहि पुनि नायउ माथ ॥ ६४ ॥

(तब निर्जन स्थानमें) तपस्वी कोमल वचन बोले-हे भगवन् ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, अपने धामको चलनेका सब चरित्र सुनकर जानेको कह कर बार बार शिर नवाकर ॥६४॥

प्रभु इच्छा भावी बलवाना * दुर्वासा मुनि आइ तुलाना ॥१॥
मुनिहि देखि लछिमन चलि आगे * गये निकट विनती अनुरागे ॥२॥

हरि इच्छा और होनहार बलवान् है उस समय दुर्वासा ऋषि आकर प्राप्त हुए ॥ १ ॥ मुनिको देख लक्ष्मणजी आगे लेनेको आये, निकट जाकर प्रेमसे विनती की ॥ २ ॥

पूछा मुनि कहँ रघुकुल ईशा * तहाँ जाब मैं सुनहु अहीशा ॥३॥
जो प्रति उत्तर करिहो आजू * भस्म करउँ तव घर पुर राजू ॥४॥

तब दुर्वासा ऋषि बोले हे लक्ष्मण ! बताओ रघुनाथजी कहां हैं ? मैं उनके पास जाना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ और जो कुछ तुम इस समय प्रत्युत्तर करोगे तो तुम्हारा घर पुर राज्य भस्म कर दूँगा ॥ ४ ॥

कांपे लषण सुनत मुनि बानी * निज वध ठानिसु चले भवानी ॥५॥
दोउ कर जोरि गही प्रभुपाहीं * दुर्वासा मुनि आवन चाहीं ॥६॥

हे पार्वती ! मुनिकी वाणी सुनते ही लक्ष्मणजी कांप गये, वे अपना मरण ठान श्रीरामचंद्रके पास चले ॥५॥ दोनों हाथ जोड़कर रघुनाथजीसे कहा-दुर्वासा मुनिजी आना चाहते हैं ॥६॥

तात कीन्ह अति अवगुण भारी * काल कर्म अति टरै न टारी ॥७॥
कीन्ह वचन दिनकर कुलकेतू * सुनु खग अपर कथाकर हेतू ॥८॥

तब रघुनाथजी बोले भाई ! तुमने यह क्या किया जो भीतर चले आये काल और कर्मकी गति किसीसे टारे नहीं टरती ॥ ७ ॥ रघुनाथजीने अपना वचन पूरा किया, अन्य कथाका जो कारण है सो हे गरुड़ ! सुनो (धर्मराज तो तुरंत चले गये) ॥ ८ ॥

दोहा-तुरत कहेउ मुनि आनहु, सादर कृपानिधान ॥
चलिये वेगि मुनिनाथ अब, कहा राम भगवान ॥ ६५ ॥

तब कृपानिधानने लक्ष्मणसे कहा कि मुनिराजको तुरंत आदर सहित लाओ । लक्ष्मणने जाकर कहा-चलिये मुनिराजजी ! अब भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा है ॥ ६५ ॥

छन्द-अति तेजपुंज विलोकि प्रमुदित उचित उठि आसन दियो ।
जल आनि सादर चरण धोये सुभग पादोदक लियो ॥
जन जानि मुनिवर देहु आयसु बेगि सो आदर करौं ।
बहुकाल क्षुधित कृपायतन अब अशन बिनु भूखों मरौं ॥४२॥

अति तेजस्वी मुनिको आते देख रघुनाथजीने प्रसन्नतासे उठकर उचित आसन दिया और जल लाकर आदरसे चरण धोकर सुन्दर चरणोदक लिया और बोले-हे मुनिराज मुझको अपना दास जानकर आज्ञा दीजिये, वही मैं तुरंत प्रेमसे करूँगा । तब मुनिराज बोले-हे दयामय भगवन् ! मैं बहुत दिनोंसे भूखा हूँ और भोजनके विना मर जाता हूँ ॥ ४२ ॥

छन्द-मनभाव भोजन दीन्ह रघुपति बहुत विधि विनती करी ।
सन्तोष पाय मुनीश् अस्तुति विनय करि आशिष भरी ॥
करि विदा मुनिवर देखि लक्ष्मण हृदय दारुण दुःख भये ।
भरतादि अनुज समेत पुरजन ताहि छिन देखन गये ॥ ४३ ॥

यह सुनते ही रघुनाथजीने मुनिको मन भाये भोजन देकर बहुत प्रकारसे विनती की ! फिर मुनीश्वरने सन्तुष्ट हो स्तुति और प्रार्थना कर अशीर्वाद दिया । तब प्रभुने मुनिवरको विदा कर दिया और लक्ष्मणको देखकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें महादुःख हुआ; जिनको भरतादि भाइयोंके सहित सब पुरवासी उसी क्षण देखने गये ॥ ४३ ॥

छन्द-पद बंदि ठाढे जोरि कर दोउ वदन लखि अति काँपही ।
भरि नयन पंकज नीर आरत भरतसन प्रभु सब कही ॥
अब गुरुहि आनहु बेगि सादर दुखित अति आतुर गये ।
सब कथा गुरुहि सुनाय आरत यान चढ़ि आवत भये ॥ ४४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणवन्दनपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर खड़े हुए और उनका मुख देख (भरत शत्रुघ्न) अत्यन्त कांपने लगे, तब कमलसे नेत्रोंमें जल भरकर दुःखी हो प्रभुने भरतजीसे यह वार्ता कही कि भाई ! तुम बहुत शीघ्र गुरुको आदरसे बुला ले आओ । वे सुनते ही दुःखित हो शीघ्रतासे चले गये और सब समाचार गुरुको सुनाये; वे रथपर चढ़कर शीघ्रतासे चले आये ॥ ४४ ॥

छन्द–आये वसिष्ठ विलोकि रघुपति विकल उठि चरणन परे।
संवाद सुनि मुनि समय जानेउ त्यागि हैं हमको हरे॥
सुनि वचन शेष विचार निज उर राम बिनु धिग जीवनो।
गहि चरण सरयूतीर आये देखि जल शुभ पीवनो॥ ४५॥

गुरुको आया देखकर रघुनाथजी व्याकुलतासे उठकर (उनके) चरणोंपर गिरे (और रघुनाथजीने अपनी प्रतिज्ञा और लक्ष्मणके उस समय आनेका व्योरा सुनाया) यह समाचार सुन गुरुजीने जाना कि अब यह भगवान् हमको छोड़ना चाहते हैं (विचार कर मुनि बोले सज्जनोंका त्यागही वधके बराबर है) सुनते ही लक्ष्मणने अपने मनमें विचारा कि रामके विना जीना धिक्कार है, सो उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरण छूकर सरयूके तटपर आके सुन्दर जलको देख आचमन किया॥ ४५॥

दोहा–कटि प्रयन्त जल मध्यमें, कीन्हेउ ध्यान अखण्ड॥
योग यत्न करि राम कहि, फोड़यो निज ब्रह्मण्ड॥ ६६॥
दोहा–रामधाम पहुँचे तुरत, लषण चतुर्थ सुभाग॥
सुनि व्याकुल रघुपति भरत, मिटेउ सकल अनुराग॥ ६७॥

और कमर तक जलमें खड़े होकर अखण्ड ध्यान किया योगके साथ आत्मरूप रामका ध्यान करते करते अपने ब्रह्माण्डको फोड़ दिया॥ ६६॥ श्रीरामचन्द्रजीके चौथे अंश लक्ष्मणजी तुरंत रामके धाम जाकर प्राप्त हुए, सुनकर रघुनाथ तथा भरतजी बड़े व्याकुल हुए और उनकी सब प्रसन्नता मिट गयी॥ ६७॥

मैं नहिं तज्यों तज्यो मोहिं ताता * अब करु यत्न सो देखेउँ भ्राता॥१॥
करहु भरत पुर राज्य सुखारी * सुनत गिरे महि व्याकुल भारी॥२॥

मैंने लक्ष्मणको नहीं त्यागा; उन्होंने ही मुझको त्याग दिया, सो अब यत्न करो कि भाईको देखूं॥ १॥ भरत ! तुम आनंदसे पुरका राज्य करो। यह सुनते ही भरत अत्यन्त व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २॥

चलन चहत अब प्राण गुसाईं * प्रभु लछिमन बिनु रहि न सकाईं॥३॥
तात चलहु कहि तनय बुलाई * कीन्ह तिलक बहु नीति सिखाई॥४॥

और बोले–हे भगवन् ! अब प्राण पयान करना चाहते हैं प्रभो ! हम लक्ष्मणके विना एक क्षण भी नहीं रह सकते॥ ३॥ श्रीरामचंद्रजी बोले तो भाई ! चलो ऐसा कह कुमारोंको बुलाकर तिलक किया और राजनीति सिखायी॥ ४॥

भरत तनय सुतक्ष जेहि नामा * दक्षिण नगर दीन्ह तेहि रामा॥५॥
दूसर पुष्कर जेहि जग जाना * पुहकर नगर दीन्ह भगवाना॥६॥

रघुनाथजीने भरतके 'सुतक्ष' नामक पुत्रको दक्षिण नगरका राज्य दिया॥ ५॥ दूसरा पुत्र 'पुष्कर' जिसका नाम जगत् जानता है उसको भगवान्‌ने पुष्कर नगरका राज्य दिया॥६॥

प्रथम दैत्य हति तहाँ बसाये * दीन्ह कृपानिधि जेहि मन भाये॥७॥

शुचितन चित्रांगद रणधीरा ॐ लछिमन तनय सुभग गम्भीरा ॥८॥
प्रथम दैत्योंको मार जहां अनेक नगर बसाये थे उनके राज्य भरतके पुत्रोंको उनकी इच्छा से कृपासागरने दिया ॥७॥ जो बड़े सुघर 'चित्रकेतु' और 'चित्रांगद' नामक लक्ष्मणके कुमार बड़े गम्भीर रणधीर थे ॥ ८ ॥

दोहा-पश्चिम देश पिशाच बहु, जीति हते संग्राम ॥
तहँ राखे सुत सरिस दोउ, बिलग बिलग कहि नाम ॥ ६८ ॥

पश्चिमके सब दैत्योंको मार कर संग्राममें पराजित कर वहां उन दोनों कुमारोंको रख उन नगरोंके पृथक् पृथक् नाम रखकर वहांका राज्य पुत्रके समान उन कुमारोंको दिया ॥६८॥

अवध नृपतिकुश कीन्ह बहोरी ॐ सिखै नीति पुनि कह्यो निहोरी ॥१॥
भ्रातन पर सुत दया करेहू ॐ राजनीति उरमाहिं धरेहू ॥२॥
फिर कुशको अयोध्याका राजा किया और अनेक प्रकारसे राजनीति सिखाकर निहोरेसे कहा ।१। हे पुत्र! अपने सब भाइयोंको कृपादृष्टिसे देखना और राजनीतिको हृदयमें धारण किये रहना ।२।

उत्तर नगर सु उत्तर दूरी ॐ सुख सम्पदा जहाँ अति भूरी ॥३॥
लव कहँ दीन्ह कृपानिधि सोई ॐ पटतर अवध नगर नहिं कोई ॥४॥
उत्तरखण्डमें जो वहांसे कुछ दूर है, जहां सुख सम्पति बहुत अधिक है ॥३॥ वही दयामय श्रीरघुनाथजीने लवको दिया (उन्होंने वहां लवपुर नगर बसाया, जो इस समय लाहौर कहलाता है) जिसके समान कोई दूसरा नहीं ॥ ४ ॥

आठ सहस रथ तुरङ्ग पचासा ॐ दश सहस्र गज मत्त विलासा ॥५॥
जलहिं इन्द्रगज तिनहिं विलोकी ॐ दिगपालन जिन प्रभुता रोकी ॥६॥
आठ हजार रथ और पचास हजार घोड़े, दस हज़ार मतवाले हाथी ॥ ५ ॥ जिसको देख कर इन्द्रके हाथी भी लज्जित होते थे और जिन्होंने दिक्पालोंकी बड़ाई लघु कर दी ॥६॥

इक इक सुतन दीन्ह रघुराया ॐ वरणि को सकै सुनहु खगराया ॥७॥
धनद कोटिसम भरे भँडारा ॐ यथायोग्य करि भाग उदारा ॥८॥
हे गरुड़जी! सुनिये एक एक पुत्रको रघुनाथजीने जितनी जितनी सेना दी सो कौन वर्णन कर सके? ॥ ७ ॥ जिनके यहां करोड़ कुबेरके समान भण्डार भर रहा है उन सबका रघुनाथजीने यथायोग्य विभाग (बँटवारा) कर दिया ॥ ८ ॥

दोहा-सकल तनय परितोषकै, बिदा कीन्ह रघुवीर ॥
विप्रवृन्द याचक सकल, लिये बोलि मतिधीर ॥ ६९ ॥

सब पुत्रोंको सन्तोष देकर रघुनाथजीने बिदा किया और फिर मतिधीर प्रभुने ब्राह्मण और सब याचकोंको बुला लिया ॥ ६९ ॥

धेनु वसन धरणी धन धामा ॐ दीन्ह द्विजन किय पूरण कामा ॥१॥
याचक तबै अवधके वासी ॐ बोले प्रभु सुनु अज अविनासी ॥२॥
गो, वस्त्र, धरणी, धन, धाम यह ब्राह्मणोंको देकर पूर्ण काम किये ॥ १ ॥ और तब जितने अयोध्यावासी याचक थे वे बोले-हे प्रभो अजन्मा अविनाशी सुनिये ॥ २ ॥

हम भरि जन्म चरण अनुरागी * अन्तकाल अब होत अभागी ॥३॥
जो जन जानि लेहु प्रभु साथा * करहु कृपानिधि सबहि सनाथा ॥४॥

हम जो जन्मपर्यन्त आपके चरणोंके अनुरागी हैं सो अब अन्तकालमें अभागे होते हैं ॥३॥ आप अपना दास जानकर हमको अपने साथ लोगे तो हे कृपासागर! सब सनाथ हो जायँगे॥४॥

सुनि सनेहमय वचन सुहाये * चलहु कहेउ प्रभु अतिसुख पाये ॥५॥
समय जानि कपिपति तहँ आवा * अंगद राज्य दीन्ह सुनु पावा ॥६॥

उन पुरवासियोंके यह स्नेहमय सुन्दर वचन सुन प्रभुने परम सुख पाकर सुखी होकर कहा कि अच्छा भाई! चलो ॥५॥ समय जानकर सुग्रीवजी भी वहां आये और किष्किन्धाका राज्य अंगदजीको दिया ॥ ६ ॥

जाम्बवंत लंकापति वीरा * नल अरु नील द्विविद रणधीरा ॥७॥
कोटिन कीश जे सुर अवतारी * आये जहाँ कृपालु खरारी ॥८॥

जाम्बवंत, लंकापति वीर विभीषण, नल, नील और रणधीर द्विविद ॥७॥ जो करोड़ों वानर देवांशसे अवतार धारण करके आये थे, वे सब वहां आये जहां दयामय श्रीरामचन्द्रजी थे ॥८॥

सोरठा--कह प्रभुसुनु लंकेश, राज्य करहु इककल्प तुम ॥
वचन अचल मम शेष, अन्त अमरपुर गमन कुरु ॥ ६ ॥

रघुनाथजीने कहा—सुनो विभीषण! तुम कल्पतक लंकापुरीका राज्य करो, यह मेरा वचन सत्य मानो, अन्तमें तुम देवलोकको प्राप्त होगे (यह सागरके अन्तरमें लंका को निर्माण कर रहने लगे) ॥ ६ ॥

जाम्बवन्त सुनु मम मृदु बानी * रह द्वापर भरि अस जिय जानी ॥१॥
कृष्णरूप धरि मिलिहउँ तोही * समरभूमि तब जानेसि मोही ॥२॥

और जाम्बवन्तसे कोमल वचन कहा—तुम द्वापरयुग पर्यन्त भूलोकमें रहो ॥१॥ (उस युगके बीच) जब मैं कृष्णरूप धारण कर तुमसे संग्राम करूँगा तब मुझको पहचान लेना ॥ २ ॥

सब कहँ सब विधि धीरज दीन्हा * आप गमन सरयूतट कीन्हा ॥३॥
दक्षिण भरत वाम रिपु दमनू * पुरवासी सब निजकुल तरनू ॥४॥

इस प्रकार सबको सब धैर्य देकर स्वयं रघुनाथजीने सरयूके किनारे चले गये ॥ ३ ॥ जिनकी दाहिनी ओर भरत और बांई ओर शत्रुघ्न और अवधवासी मंत्री आदि सब पीछे मुक्तिके निमित्त चले ॥ ४ ॥

अग्नि वेद गायत्री छन्दा * धरि निज रूप चले सुरवृन्दा ॥५॥
पीताम्बर पट सुन्दर धारी * जड़ चेतन चर अचर सुखारी ॥६॥

उस समय अग्नि, वेद, गायत्री, छन्दादि सब ब्राह्मणोंका रूप धारण करके ब्राह्मणोंके समूहमें चले ॥५॥ सुन्दर पीताम्बर वस्त्र धारण करके चेतन चर अचर सब सुख पूर्वक चले ॥ ६ ॥

अमररूप धरि सुन्दर आई * जस कछु कीन्ह सो सुनु खगराई ॥७॥
समय जानि तब पवन कुमारा * बोले वचन कृपा आगारा ॥८॥

सब देवता सुंदर रूप धरकर वहां आये, अब जो कुछ प्रभुने किया सो हे गरुड़जी ! आप वह सब सुनो ॥७॥ तब समय जानकर महावीरजीसे कृपासागर रघुनाथजी बोले ॥८॥

दोहा-चिरंजीव सुत रहहु तुम, जब लगि रवि शशि शेष ॥
तुहि सेवत मिटिहहिं सकल, दुस्तर कठिन कलेश ॥ ७० ॥

हे पुत्र ! तुम बहुत कालतक चिरंजीव रहो, जबतक सूर्य चंद्रमा शेषजी हैं । जो मनुष्य तुम्हारा सेवन करेंगे उनके सब कठिन क्लेश मिट जायँगे ॥ ७० ॥

चतुरानन-पहँ धर्म सिधाये ❋ सरयू तीर जगतपति आये ॥१॥
चले देव अज भव सनकादी ❋ जे मुनि अपर अलोकि अनादी ॥२॥

यहां धर्मराजने ब्रह्माजीके पास आकर कहा कि जगन्नाथ रघुनाथजी (महायात्राके निमित्त) सरयूके किनारे आ गये हैं ॥ १ ॥ यह सुनते ही ब्रह्माजी, महादेव, सनकादिक एवं और अनादि ब्रह्मलोक निवासी मुनि चल दिये ॥ २ ॥

कोटिन रथ बाहन विधि नाना ❋ अरुण अकाश न जाइ बखाना ॥३॥
नभपर जय जय जय धुनि होई ❋ पावहिं वर सुर याचहिं जोई ॥४॥

अनेक रथों और विमानोंमें चढ़कर आकाशमें आये विमानोंसे आकाश लाल हो गया जो वर्णा नहीं जाता ॥ ३ ॥ आकाशमें देवताओंके जयजयकारकी ध्वनि होने लगी, जो वर मांगते हैं वही देवता पाते हैं ॥ ४ ॥

देखि नाकरथ मग परिछाहीं ❋ जिमि गिरि कृमि नभ पंथ उड़ाहीं ॥५॥
करहिं परश जल जो तनुधारी ❋ पाय चतुर्भुज रूप सुखारी ॥६॥

आकाशके रथोंकी तथा विमानोंकी परछाहीं टीड़ीके समान उड़ती हुई दृष्टि आती थी ॥ ५ ॥ उस समय जो अयोध्यावासी सरयूके जलका स्पर्श करते हैं वे तुरंत चतुर्भुज रूप धारण कर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

चढ़ि विमान प्रभु धाम सिधाये ❋ सकल अमरपति कहँ सकुचाये ॥७॥
सुमनवृष्टि नभ होत अपारा ❋ होइ नाद विधि वेद उचारा ॥८॥

वे विमानमें चढ़कर प्रभुके धामको चले गये और अपने ऐश्वर्यसे उन सबोंने इन्द्रको भी संकुचित किया ॥७॥ आकाशसे फूलोंकी अपार वर्षा और (सरयूपर) वेदध्वनि हो रही है॥८॥

छन्द-उच्चरत वेद प्रसन्न भरत कृपालु हँसि सादर लयो ।
जल परसि कर रिपुदमन सादर पद्मवन राजा भयो ॥
कपि आदि यूथप राखि उर प्रभु सकल निजलोकन गये ।
सुग्रीव प्रभुपद वंदि बारहि बार रविमण्डल छये ॥ ४६ ॥

वेदका उच्चारण करते हुए भरतजी प्रसन्न हो आदरसे हँसते हुए श्रीरामचंद्रजीके स्वरूपमें लीन हो गये और जलका स्पर्श कर शत्रुघ्नजी भी आदरसे पद्मवनके राजा हुए । वानर आदिकों के सब सेनापति भगवान्‌को हृदयमें रखकर अपने अपने लोकको चले गये और सुग्रीव प्रभुके पदोंको बारंबार प्रणाम करते हुए सूर्यलोकको गये ॥ ४६ ॥

छन्द-सुर सहित दिनकर वंश भूषण आइ जल आश्रित रहे ।
तेहि समय बोलि अनादि प्रभु जू वचन पावनमय कहे ॥

इक मास रहि यहि तीर तुम मम पुरी जीव जे आवहीं।
तिन्ह सुभग देहु विमान पद निर्वाण जो मम पावहीं ॥४७॥

इस प्रकार देवताओं सहित रघुनाथजी जलके समीप आकर ब्रह्मादिके प्रति यह पवित्र वचन कहने लगे कि एक मास तक आप सरयूके तटपर रहो। जो कोई यहां हमारी पुरीमें आवें उन्हें हमारे धामको पहुँचा दो और ऐसा सुन्दर विमान जो समस्त ऐश्वर्य पूर्ण हो उसपर चढ़कर वे साकेत लोकको आवें अर्थात् निर्वाण पद प्राप्त करें ॥ ४७ ॥

छन्द–यह परम पावन भूमि सरयू एक पल जे आवहीं।
तरि जात सुरपुर सकल सादर सर्वदा तेहि पावहीं ॥
यह जन्म भरि मम संग वासी रहे निशिवासर सदा।
ते तुरत आनहु सहित आदर सुनहु मम वाणी मुदा ॥ ४८ ॥

और उस परम पवित्र सरयू भूमिमें जो कोई एक पलके निमित्त आवेंगे वे सब सादर (स्नान मात्र करने पर) तर जायँगे और अन्तमें निश्चय उनको वैकुण्ठकी गति प्राप्ति होगी और जितने अयोध्यावासी मेरे संग रात दिन जन्म भर रहे हैं उन सबको आदर पूर्वक अभी वैकुण्ठ ले आओ यह प्रसन्नतायुक्त मेरी वाणी अङ्गीकार करो ॥ ४८ ॥

छन्द–कहि वचन अन्तर्धान प्रभु जिमि दामिनी घनमें धँसे।
नभ जयति जय जयकार जय जय जयतिकर लै सुर लसे ॥
यहि भाँति रघुपति सह चराचर लै गये निज धामको।
सो कह्यो उमहिं कृपायतन उर राखि सादर रामको ॥ ४९ ॥

यह वचन कहकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे अन्तर्धान हो गये जैसे बिजली बादलमें लय हो जाती है, आकाशसे देवता जयजयकार करने लगे। इस प्रकार रघुनाथजी चराचर(स्थावर जंगम प्राणीमात्र) को साथ लेकर अपने धामको चले गये, सो वही कथा श्रीरघुनाथजी की हृदयमें धारण कर कृपासागर शिवजीने आदर पूर्वक पार्वतीसे वर्णन की है ॥ ४९ ॥

दोहा–गिरिजा सन्तसमागम, सम न लाभ कछु आन ॥
बिनु हरिकृपा न होइ सो, गावहिं वेद पुरान ॥ ७१ ॥

इतनी कथा सुनाकर शिवजी बोले–हे पार्वती! सन्तोंके समागमके समान और कुछ जगत्में लाभ नहीं है। सो वेद पुराण कहते हैं कि विना नारायणकी कृपासे संतजन नहीं मिलते ॥७१॥

दोहा–यहि विधि सब संवाद सुनि, प्रफुलित गरुड़ शरीर ॥
बार बार तेहि चरण गहि, जानि दास रघुवीर ॥ ७२ ॥

इस प्रकार काकभुशुण्डिजीसे सब संवाद सुन गरुड़जीका शरीर प्रफुल्लित हो गया और बारंबार उनके चरणोंका श्रीरघुनाथजीका प्रेमी भक्त जानकर वन्दन किया ॥ ७२ ॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा * सुनत श्रवण छूटहिं भव त्रासा ॥१॥
प्रणत कल्प तरु करुणापुंजा * उपजै प्रीति रामपदकंजा ॥२॥

शिवजी बोले–हे पार्वती ! मैंने यह पवित्र इतिहास वर्णन किया, इसके सुनते ही सांसारिक दुःख मिट जाते हैं ॥ १ ॥ और जो दीनोंका दुःख दूर करनेवाले करुणासागर भगवान् हैं उनके चरणोंमें प्रीति उपजती है ॥ २ ॥

मन क्रम वचन जनित अघ जाई ॥ सुनहिं जो कथा श्रवण मनलाई ॥३॥
तीर्थ अटन साधन समुदाई ॥ योग विराग ज्ञान निपुणाई ॥४॥

जो यह कथा मन लगाकर सुनते हैं उनके मन, कर्म, वचनसे उत्पन्न हुये पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जितने तीर्थ तथा साधन हैं योग, वैराग्य, ज्ञान, चतुरता ॥ ४ ॥

नाना कर्म धर्म व्रत दाना ॥ संयम दम तप जप मख नाना ॥५॥
भूत दया द्विज गुरु सेकाई ॥ विद्या विनय विवेक बड़ाई ॥६॥

अनेक कर्म, व्रत, संयम, दम, जप, तप अनेक यज्ञ ॥ ५ ॥ प्राणियों पर दया, गुरु ब्राह्मणकी सेवा, विद्या, विनय, ज्ञान, बड़ाई ॥ ६ ॥

जहँ लगि साधन वेद बखानी ॥ सब कर फल हरिभक्त भवानी ॥७॥
सो रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई ॥ रामकृपा काहू एक पाई ॥८॥

पार्वती ! जहांतक वेदने साधन बखान कर कहे हैं उन सबका फल नारायणकी भक्ति है ॥७॥ सो वही रघुनाथजीकी भक्ति, जिसे वेदोंने गाया है रामकी कृपासे किसी एकने ही पायी है ॥८॥

दोहा–मुनि दुर्लभ हरि भक्ति नर, पावहिं विनहिं प्रयास ॥
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि विश्वास ॥ ७३ ॥

किंतु मुनियोंको भी दुर्लभ नारायणकी भक्ति वे मनुष्य विना प्रयास ही पावेंगे जो निरंतर इस कथाको विश्वास मानकर सुनेंगे ॥ ७३ ॥

दोहा–गयउ गरुड़ वैकुण्ठ इमि, भयो सुभग संवाद ॥
अश्वमेध टीका करी, द्विज ज्वाला परसाद ॥ ७४ ॥

गरुड़जी वैकुण्ठको गये; इस प्रकार यह सुन्दर संवाद हुआ । अश्वमेधकांडको शोधकर ज्वालाप्रसाद मिश्रने इसकी सरल टीका बनायी है ॥ ७४ ॥

दोहा–उन्निससै पंचास शुभ, सम्वत् सरल विचार ॥
द्वितीया शुद्धाषाढ़की, पूर्ण कियो शनिवार ॥ १ ॥
भजिय सदा श्रीरामको, सुनिये चरित महान ॥
श्रोता वक्ताके करैं, प्रभु सब विधि कल्याण ॥ २ ॥
वैश्य शिरोमणि श्रेष्ठ श्री, खेमराज जग जान ॥
कृपादृष्टि तिन पर करहिं, रामचन्द्र भगवान ॥ ३ ॥
महावीर संकट हरण, कीजिय सदा सहाय ॥
द्विज ज्वालापरसादकी, सुरति विसरि जनि जाय ॥ ४ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने मुरादाबाद निवासी पण्डित सुखानन्दमिश्रात्मज–पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत–भाषाटीकायां विमलविज्ञान वैराग्यसंपादनो नाम लवकुशकांडे अष्टमः सोपानः ॥ ८ ॥

इति लवकुशकांड समाप्तः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीरामायणजीकी आरती

★

आरति श्रीरामायणजीकी * कीरति कलित ललित सियपीकी ॥टेक॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद * वाल्मीकि विज्ञान विशारद ॥
शुक सनकादिक शेष अरु शारद * बरणि पवनसुत कीरति नीकी ॥१॥

श्रीरामायणजीकी आरती करते हैं, कैसा रामायण है कि सीता पति श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर कीर्ति वर्णन की है जिसको ब्रह्मा आदि मुनिवर नारद तथा बड़े विज्ञानी बुद्धिमान् वाल्मीकि, शुकदेव, सनकादिक शेष और सरस्वती वर्णन करते हैं, और जिसमें महावीरजीकी भी सुन्दर कीर्ति वर्णन की है ॥ १ ॥

सन्तत गावत शम्भु भवानी * अरु घटसंभव मुनि विज्ञानी ॥
व्यास आदि कविपुंग बखानी * काक भुशुण्डि गरुड़के हीकी ॥२॥

उस चरित्रको शिव पार्वती और विज्ञानी मुनि अगस्त्यजी सदा गाते रहते हैं, व्यास आदि कविश्रेष्ठोंने इसका बखान किया है तथा यह कथा काकभुशुण्डि और गरुड़जीके हृदयमें सदा ही विराजती है २ ॥

चारिउ वेद पुराण अष्टदश * छहों शास्त्र सब ग्रन्थनको रस ॥
तन मन धन सन्तनको सर्बस * सार अंश सम्मत सबहीकी ॥३॥

चारों वेद, अठारह पुराण, छहों शास्त्र और सब ग्रन्थोंका रस इसमें विद्यमान है, यह संत महात्माओंका तन मन धन सर्वस्व है तथा सबकी सारभूत और सम्मत है ॥ ३ ॥

कलिमल हरणि विषय रस फीकी * सुभग सिंगार मुक्ति युवतीकी ॥
हरणि रोग भव मूरि अमीकी * तात मात सब विधि तुलसीकी ॥४॥

यह कथा कलिके पापोंको हरनेवाली और संसार विषयवासनासे रहित है, मुक्ति रूपी युवतीका सुन्दर शृङ्गार है, संसार के अनेक रोग हरनेको यह अमृतकी जड़ीके समान है और सब प्रकारसे तुलसीदासजीके पिता माता हैं ॥ ४ ॥

श्लोक-यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यैतु रामायणम् ।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमश्शान्तये,
भाषा बद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ १ ॥

जो अति दुर्गम रामायण पूर्वकालमें श्रेष्ठकवि शिवजीने निर्मित किया है अथवा सुकवि वाल्मीकिजीने जो कथन किया, निरंतर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविंदोंकी भक्तिसे प्राप्त होनेके निमित्त प्रार्थना करके जो रामायण शंकरकी कृपासे प्रादुर्भूत हुआ है उसको श्रीरामनाम-

निरव; हृदयका अन्धकार दूर करनेवाला जानकर इस मानस (रामायण) की तुलसीदासने भाषामें छन्द प्रबंध द्वारा वर्णन किया है ॥ १ ॥

श्लोक—पुण्यम्पापहरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्तिप्रदं,
मायामोह भयापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,
ते संसारपतंग घोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥ २ ॥

यह रामचरित्र मानस पुण्यस्वरूप है, पापहारक है, सदाकल्याण करनेवाला, विज्ञान भक्तिका देनेवाला मायासे मोहके भयका हरनेवाला, उज्ज्वल प्रेमरूपी जलका प्रवाह है, उसमें जाकर भक्ति पूर्वक जो अवगाहन (स्नान) करते हैं वे संसाररूपी सूर्यकी घोर वासनारूपी किरणोंसे नहीं जलते हैं ॥ २ ॥

श्लोक—यःपृथ्वीभरणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः,
संजातः पृथ्वीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ॥
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद ब्रह्मत्वमाद्य स्थिरां,
कीर्तिम्पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥ ३ ॥

जो चिन्मय, अव्ययस्वरूप, परमात्मा पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त देवताओंकी प्रार्थना करनेपर मायासे पृथ्वीपर सूर्यकुलमें मनुष्यरूपसे प्रकट हुए और सम्पूर्ण राक्षसोंको मारा फिर पापको हरनेवाली कीर्तिको जगत्में स्थापन कर अपने ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए, ऐसे जानकी पति श्रीरघुनाथजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ३ ॥

भजन

श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति

वंदौं चरणकमल रघुनन्दन ॥
जिनकी कृपा सकल सुख सम्पति, पावत जन भक्तन उर चन्दन ।
अवधपुरी प्रभु नित्य विराजत, जनकसुतायुत दुष्ट निकन्दन ॥
तीन ताप अरु जन्म मरण भय, दूर करत छिनमें जनरंजन ।
"मिश्र" नमत चरणनमें भगवन्, कृपा करिय सेवक भय भंजन ॥१॥

महादेवजीकी स्तुति

वंदौं पार्वती शिव शंकर ॥
रामचरित मानसके कर्त्ता दयासिन्धु दाता अहिशशिधर ॥
वेद महामहिमा नित गावत, त्रिपुरासुर सर्वोपर ।
आशुतोष औढर दानी प्रभु, भक्तनको नित देत अभय वर ॥
कालपास नाशत निज जयकी, मृत्युंजय भयहर हर हर ।
त्र्यम्बक यजन करत जे प्राणी, पुष्टि सुगन्धि लहहिं नित सो नर ॥

बन्धन कठिन मृत्युभयसे अब, मोहि छुड़ावहु लखि निज किंकर ।
"मिश्र" ध्यान जो करैं भक्त नित ताके भागि जात सबही डर ॥

श्रीमहावीरजीकी स्तुति

वंदौं महावीर हनुमाना ॥

इन सम बड़भागी कोउ नाहीं, प्रभुने जेहि यश आप बखाना ।
अजर अमर गुणनिधि बलधारी, दियो जानकी यह वरदाना ॥
सकल रामके काज सँवारे, लक्ष्मणको दीन्हे पुनि प्राना ।
रामचरित सुनिबेको प्रेमी, वीर धुरीण महा जग जाना ॥
यमको त्रास निवारणकर्ता, दुखहर्ता जनरक्षक बाना ।
कृपा रावरीसों यह टीका, रची करहु स्वीकार सुजाना ॥
कृपादृष्टि करि मोहि निहारो, "मिश्र" तुम्हारो दास अयाना ।
राखहु शरण सबै दुःख टारो, भक्त तुम्हारो भाव न आना ॥ ३ ॥

आदिशक्तिकी स्तुति

वंदौं आदिशक्ति जगतारिणि ॥

जग संभवपालनलयकारिणि, निज इच्छा लीलावपुधारिणि ॥
पार न ब्रह्मादिक मुनि पावत, विश्वविमोहनि स्ववश विहारिणि ।
कमला रमा भैरवी आदिक, दशविधि रूप धारि भयटारिणि ॥
दैहिक दैविक भौतिक संकट, बानी मन तनके अघ हारिणि ।
दैत्य कालदुख जो दासनके, सिंहवाहिनि नित्य विदारिणि ॥
विद्या विनय सकल सुख सम्पति, देइ सदाजनमन अनुसारिणि ।
कृपा "मिश्र" पर करिय भवानी, विनय सुनिय सन्मार्ग प्रचारिणि ॥४॥
वंदौं सरस्वती गणराऊ ॥

जिनकी कृपा मूक अति बोले, पंगु लाँघि गिरि जात सुभाऊ ।
रत्नमाल गलमें अति राजत, मोदक भोजनमें बड़ चाऊ ॥
सद्गुणखानि सुजान होत सो, नेक ध्यान महँ आवत काऊ ॥
सरस्वती युत जो नर सुमिरैं, होत बुद्धि बल सींव अथाऊ ।
दास जानि 'ज्वालाप्रसाद' पर कीजिय कृपाकटाक्ष पसाऊ ॥ ५ ॥

इति भजन सम्पूर्ण

श्री गणेशाय नमः

अथ श्रीरामचन्द्रजीके चतुर्दशवर्ष वनवासका तिथिपत्र

★

दोहा-सुमिरि राम सिय चरण शुभ, सकल सुमंगल दानि ॥
अग्निवेश मत कहउँ कछु, तिथि वनवास बखानि ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और जानकीके सुन्दर चरणोंको स्मरण करके सम्पूर्ण मंगलके देनेवाले अग्नि वेशके मतानुसार कुछ वनवासकी तिथिका वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

चैत्रशुक्ल नवमी जग जानी * तेहि हित जन्म लियो सुखदानी ॥१॥
वर्ष चतुर्दश चारिहु भाई * बालचरित्र किये सुखदाई ॥२॥

जगत्प्रसिद्ध चैत्र शुक्ल नवमी के दिन सुखदायक रघुनाथजीने जन्म लिया ॥१॥ चौदह वर्षतक चारों भाइयोंने आनन्ददायक (अनेक प्रकार के) बाल चरित्र किये ॥ २ ॥

वर्ष पञ्चदश-माहिं सुहाये * विश्वामित्र बुलावन आये ॥३॥
पन्द्रह दिवस संग मुनिनाथा * काज सँभारे श्रीरघुनाथा ॥४॥

जब सुन्दर श्रीरघुनाथजी की पन्द्रह वर्षकी अवस्था थी तब विश्वामित्र बुलानेको आये थे ॥३॥ उसी अवस्थामें मुनिके सङ्ग राम लक्ष्मण गये और पन्द्रह दिनतक मुनिका काम सँभाल अर्थात् मारीच सुबाहुका दमन किया ॥ ४ ॥

पुनि प्रभु जब मिथिलापुर आये * जनक रायके दर्शन पाये ॥५॥
धनुष भंग कर जय जिमि पाई * पन्द्रह दिवस रहे रघुराई ॥६॥

फिर (गौतम नारीको तार) रघुनाथजी जब जनकपुरीमें आये जनकरायने उनका दर्शन पाया ॥ ५ ॥ रघुनाथजीने धनुष तोड़ जय रूपी जानकी पायी और पन्द्रह दिन वहाँ रहे ॥६॥

हिमऋतु अगहन मास सुहावन * शुक्ल पक्ष पाँचे तिथि पावन ॥७॥
मीन लग्न वृश्चिकके भानू * भयो व्याह आनन्द निधानू ॥८॥

हिमऋतु अगहनका सुन्दर महीना शुक्लपक्षकी पंचमी तिथि जो अति पवित्र है ॥ ७ ॥ वृश्चिकके सूर्य लग्नमें आनन्द निधान श्रीरघुनाथजीका विवाह हुआ ॥ ८ ॥

वर्ष पंचदशके भगवाना * सीय वर्ष छः की जग जाना ॥९॥

उस समय श्रीरघुनाथजी पूर्ण पंचदश वर्षके थे और जानकीजी छः वर्षकी थीं, जगत् जानता है॥९॥

दोहा-करि विवाह आये घरहिं, मंगल मोद अपार ॥
द्वादश वर्ष विलासयुत, रहे कृपा आगार ॥ २ ॥

जब कृपानिधान विवाह करके घर आये तब महामंगल और आनंद हुआ और बड़े आनन्दसे बारह वर्षतक अयोध्यामें रहे ॥ २ ॥

वर्ष सताइसमें रघुनाथा * कीन्ह गमन वन लक्ष्मण साथा ॥१॥
तीन दिवस बीते जलपाना * कियो राम सीता जग जाना ॥२॥

सत्ताईस वर्षकी अवस्थामें रघुनाथजीने लक्ष्मणके साथ वनको प्रस्थान किया ॥ १ ॥ तीन दिनके उपरांत राम और सीताने जलपान किया था यह जगत् जानता है (वैशाख कृष्ण छठके दिन रघुनाथजी वनको चले) ॥ २ ॥

चौथे दिवस लषण रघुराई * शृंगवेर पुर फल कछु खाई ॥३॥
पँचयें दिन श्रीकृपानिधाना * सुरसरि उतरि चले भगवाना ॥४॥

चौथे दिन लक्ष्मण राम जानकी शृङ्गवेरपुरमें कुछ फल भोजन किये ॥ ३ ॥ पाचवें दिन श्रीकृपानिधान भगवान् गङ्गाजी उतर कर चले ॥ ४ ॥

भरद्वाज आश्रम सुख दाई * रहे तहाँ एक दिन रघुराई ॥५॥
वाल्मीकिसे मिलि सुख पाई * चित्रकूटमें कुटी बनाई ॥६॥

भरद्वाजके सुन्दर आश्रममें एक दिन श्रीरामचन्द्रजी रहे ॥ ५ ॥ वाल्मीकिजीसे मिल और चित्रकूटमें कुटी बनाकर श्रीरामचन्द्रजी रहने लगे ॥ ६ ॥

तहँ जयन्त सिख दीन्ह रमेशा * वास कीन्ह कछु दिन अवधेशा ॥७॥

वहां जयंतको शिक्षा देकर कुछ समय तक श्रीरघुनाथजी रहे ॥ ७ ॥

दोहा–चित्रकूटसे चलि बहुरि, वध विराध कर कीन्ह ॥
मिलि सुतीक्ष्ण शरभंगसे, ऋषि अगस्त्य सुख दीन्ह ॥ ३ ॥

फिर चित्रकूटसे चल विराध राक्षसको मार सुतीक्ष्ण शरभंग से मिले और अगस्त्य ऋषिको बड़ा सुख दिया ॥ ३ ॥

इहि विधि द्वादश वर्ष बिताये * पुनि प्रभु पँचवटीमें आये ॥१॥
वर्ष त्रयोदश भयो प्रवेशा * खरदूषण वध कीन्ह रमेशा ॥२॥

इस प्रकार बारह वर्ष बिताकर रघुनाथजी पंचवटी आये ॥ १ ॥ जब तेरहवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ तब (शूर्पणखाकी नाक काटी और) खरदूषणका रामने वध किया ॥ २ ॥

माघ शुक्ल आठैं जब आई * दिन मध्याह्न दशानन जाई ॥३॥
छल करि हरी सीय महरानी * ले गयो निज लंका रजधानी ॥४॥

माघ शुक्ल अष्टमी मध्याह्नके समय रावण आकर ॥ ३ ॥ मारीचके छल कपटसे महारानी जानकीजीको हर अपनी लंकापुरीमें ले गया ॥ ४ ॥

पुनि जटायुको करि उद्धारा * दुष्ट कबन्ध निशाचर मारा ॥५॥
शबरिहि गति दै पंचम मासा * मिलि आषाढ सुग्रीव हुलासा ॥६॥

फिर रघुनाथजीने जटायुकी क्रिया कर दुष्ट कबंध राक्षसको मारा ॥ ५ ॥ शबरीको गति दी, पंचम आषाढ़ मासमें आनन्दपूर्वक सुग्रीवसे मित्रता हुई ॥ ६ ॥

बालिहि मारि मास तहँ चारी * रहे प्रवर्षण पर असुरारी ॥७॥
पुनि सीतहि खोजन कहँ वानर * जेहि विधि चले बुद्धिबल आगर ॥८॥

बालिको मार चार महीने प्रवर्षण पर्वत पर रामचन्द्रजी रहे ॥७॥ फिर जानकीजीको ढूँढ़नेके निमित्त बड़े बुद्धिवाले वानर चले ॥ ८ ॥

दोहा—मार्गशीर्ष कृष्णा सुभग, हरिवासर हनुमान ॥
सिंधु लाँघि लंकहि चले, महाधीर बलवान ॥ ४ ॥

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीके दिन महाधैर्यवान् बलवान् महावीरजी सागर लांघकर लंकाको चले ॥ ४ ॥

त्रयोदशी ढूँढ़े हनुमाना ॥ पुनि अशोक वनमाहि समाना ॥१॥
जनकसुताके दर्शन पाई ॥ मुद्री प्रभुकी दीन्ह गहाई ॥२॥

तेरसके दिन महावीरजीने सारी लंकापुरी ढूँढ़ी और फिर अशोक वाटिकामें पहुँचे ॥१॥ जनकसुताके दर्शन करके रघुनाथजीकी मुद्रिका जानकीजीको देदी ॥ २ ॥

पुनि अशोकवन सकल उजारा ॥ चौदशको अक्षय कहँ मारा ॥३॥
लंक दाह करि सिय तट आई ॥ चूडामणि लै चले सुहाई ॥४॥

फिर सब अशोकवनको उजाड़ कर चौदसको अक्षयकुमारको मारा ॥ ३ ॥ लंका जला-कर जानकीजीके पास आकर सुन्दर चूड़ामणिको लेकर चले ॥ ४ ॥

बारिधि लाँघि सेन निज आये ॥ समाचार सुनि सब हर्षाये ॥५॥
चले तहाँ ते सब सुख पाई ॥ पाँच दिवस मगमाहि बिताई ॥६॥

फिर सागरका लंघन करके अपनी सेनामें आये और समाचार सुनकर सब प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ वहांसे सब सुख पाकर चले और पांच दिन मार्गमें लगे ॥ ६ ॥

अगहन शुक्ला छठ सुखदाई ॥ किष्किन्धा सब पहुँचे आई ॥७॥
शुक्रवार सप्तमी सुहाई ॥ जनकसुताकी सुधि प्रभु पाई ॥८॥

अगहन सुदि छठके दिन सब कोई किष्किन्धामें आ पहुँचे ॥ ७ ॥ शुक्रवार सुन्दर सप्तमीके दिन जानकीजीकी सुधि प्रभुने पायी ॥ ८ ॥

दोहा—अगहन शुक्ला अष्टमी, सेन सहित भगवान ॥
उत्तराफाल्गुनि नखतमें, लंकहि कीन्ह पयान ॥ ५ ॥

अगहन सुदि अष्टमीके दिन सेना सहित भगवान्ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें लंकाको प्रस्थान किया ॥ ५ ॥

सात दिवस मगमाहिं बिताये ॥ पूनौको वारिधि तट आये ॥१॥
पौष तृतीया तक सुखरासा ॥ तीन दिवस तहँ कीन्ह निवासा ॥२॥

मार्गमें सात दिन लगे और पूनोंके दिन सागरके किनारे आये ॥ १ ॥ फिर पौष कृष्ण तीजतक तीन दिन रघुनाथजीने वहां निवास किया ॥ २ ॥

पौष चतुर्थी कृष्ण सुहाई ॥ आये शरण विभीषण धाई ॥३॥
पौष अष्टमी तक रघुराई ॥ विनय कीन्ह सागर तट आई ॥४॥

पौष कृष्ण सुन्दर चतुर्थीके दिन विभीषण रघुनाथजीकी शरणमें आये ॥ ३ ॥ पौष कृष्ण अष्टमीतक रघुनाथजीने सागरकी विनयकी ॥ ४ ॥

नवमी विप्ररूप धरि सागर ❋ आयो शरण राम नयनागर ॥५॥
दशमी पौष सेतु दृढ़ भारी ❋ दश योजन कपि रचेउ विचारी ॥६॥

नौमीके दिन सागर ब्राह्मणका रूप धरकर नीतिके जाननेवाले रामकी शरणमें आया ॥५॥ दशमीके दिन सागरका पुल वानरोंने दश योजन समझ कर बांधा ॥ ६ ॥

एकादशि कहँ योजन वीसा ❋ बारस तीस बँधेउ वारीसा ॥७॥
चालिस योजन तेरस बासर ❋ रचेउ सेतु नल नील उजागर ॥८॥

एकादशीको बीस और द्वादशीको तीस योजन पुल बांधा ॥ ७ ॥ तेरसके दिन नल नीलने चालिस योजन पुल बांधा, (यह विधि अग्निवेशकी है, नहीं तो पहले दिन १४ फिर २०,२१,२२,२३ इस प्रकार पांच दिनमें रचना हुई) ॥ ८ ॥

दश योजन आयत रचि दीन्हा ❋ शत योजन विशाल कपि कीन्हा ॥९॥

वानरोंने दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा पुल बांधा ॥ ९ ॥

दोहा-चौदशसे द्वितिया तलक, उतरे सागर पार ॥
दशमी तक गढ़ लंक कहँ, घेरेउ सहित विचार ॥ ६ ॥

चौदशसे शुक्ल द्वितीया तक सेना सागरके पार उतरी और दशमी तक लंकापुरीको विचारपूर्वक घेर लिया ॥ ६ ॥

पौष शुक्ल हरिवासर आई ❋ शुक सारण कपि सेन दिखाई ॥१॥
द्वादशिमें यह प्रभु मन भावा ❋ चारि भाग निज कटक बनावा ॥२॥

पौष सुदि एकादशीके दिन शुकसारणने (रावणको) कपियोंकी सेना दिखाई ॥ १ ॥ द्वादशीको प्रभुने विचार करके अपनी वानर सेना चार भागमें बांट दी ॥ २ ॥

छत्र मुकुट रावणके जोई ❋ काटे प्रभु ताही दिन सोई ॥३॥
सेन दशाननकी दिन तीनी ❋ भइ सन्नद्ध युद्ध रंग भीनी ॥४॥

और रावणके छत्र मुकुट भी रामचन्द्रजीने उसी दिन काट कर गिरा दिये ॥ ३ ॥ फिर तीन दिनमें रावणकी सब सेना युद्ध करनेको तैयार हुई ॥ ४ ॥

माघ कृष्ण प्रतिपद जब आई ❋ अंगद फिर आये समुझाई ॥५॥
द्वितियासे नवमी तक आई ❋ दोउ दल कीन्ह युद्ध हरषाई ॥६॥

माघ कृष्ण प्रतिपदाके दिन अङ्गदजी रावणको समझाकर लौट आये ॥ ५ ॥ फिर माघ कृष्ण द्वितीयासे नौमी तक दोनों सेनाओंने परस्पर प्रसन्नता पूर्वक घोर युद्ध किया ॥ ६ ॥

नागफाँस घननाद चलाई ❋ दशमी गरुड़ काटि गये आई ॥७॥
द्वादशितक कर युद्ध अपारा ❋ मरेउ धूम्रलोचन बलभारा ॥८॥

मेघनादने जो नागफांस चलाई थी उसको गरुड़जी दशमीके दिन आकर काट गये ॥ ७ ॥ द्वादशीतक बड़ा युद्ध करके महाबलवान् धूम्रलोचन मर गया ॥ ८ ॥

दोहा-मावस तक कपिसेनने, मारे दैत्य सुधीर ॥
माघशुक्लकी चौथतक, लरेउ दशानन वीर ॥ ७ ॥

अमावसतक वानरोंकी सेनाने अनेक दैत्य मारे, फिर माघ शुक्लकी चौथतक वीर रावणने युद्ध किया ॥ ७ ॥

पाँचैंसे आठैं तक आई ❋ कुम्भकरण कहँ दियो जगाई ॥१॥
नौमीसे चौदशि तक आई ❋ लरेउ मृत्यु रघुपतिते पाई ॥२॥

पंचमीसे अष्टमीतक कुम्भकरणको जगा दिया ॥ १ ॥ फिर नवमीसे चौदशतक आकर कुम्भकर्णने युद्ध करके श्रीरामचन्द्रजीसे मृत्यु पाई ॥ २ ॥

माघ शुक्ल पूनो दिन पावन ❋ लरेउ न शोक ग्रसित रह रावन ॥३॥
फाल्गुन पाँचैं तक भगवाना ❋ कियो नरान्तक वध बलवाना ॥४॥

माघ शुक्ल पूनोंके दिन रावण शोकाकुल रहा, लड़ा नहीं ॥ ३ ॥ फाल्गुन पञ्चमीतक रघुनाथजीने बलवान् नरान्तकका वध किया ॥ ४ ॥

पुनि आठैं तक दैत्य अपारा ❋ मारे श्रीरघुवीर उदारा ॥५॥
कुम्भ निकुम्भ दैत्य बलवाना ❋ तेरस तक मारे भगवाना ॥६॥

फिर अष्टमी तक उदार श्रीरामचन्द्रजीने अनेक दैत्य मारे ॥ ५ ॥ फिर बलवान् कुम्भ निकुम्भ दैत्योंको भगवान्ने तेरस तक मारा ॥ ६ ॥

पुनि शुक्ला द्वितिया जब आई ❋ मारेउ जम्बुक दैत्य रघुराई ॥७॥
फाल्गुन शिव तेरसि घननादा ❋ मारेउ भा देवन अहलादा ॥८॥

फिर शुक्ल द्वितीयाके दिन जंम्बुक दैत्यको रघुनाथजीने मारा ॥ ७ ॥ फाल्गुन शुक्ल तेरसके दिन मेघनाद मारा गया, देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ८ ॥

चौदशको शोकित दशभाला ❋ युद्ध कियो नहिं दुःख विशाला ॥९॥

चौदशको रावणने शोकके मारे युद्ध नहीं किया इसी दिन अहिरावणका वध हुआ था ॥९॥

दोहा—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, लरन चलेउ दशशीश ॥
मारे सब सेनापति, आठैं तक जगदीश ॥ ८ ॥

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके दिन रावण लड़नेको चला और चैत्र कृष्ण अष्टमीतक श्रीरामचन्द्रजीने रावणके सब सेनापति मार डाले ॥ ८ ॥

चैत कृष्ण नवमी जब आई ❋ मारी शक्ति लषणके जाई ॥१॥
पुनि हनुमान सजीवनि लाये ❋ मूर्छित लषण चेत तब पाये ॥२॥

चैत्रकृष्ण नवमीके दिन (रावणने) लक्ष्मणको शक्ति मारी ॥ १ ॥ फिर उसी दिन महावीरजी सजीवन लाये और मूर्छित लक्ष्मणको जिलाया । (यह दूसरी शक्ति थी) ॥ २ ॥

दशमी दिवस युद्धअति भारी ❋ कीन्हेउ रावणसे असुरारी ॥३॥
मातलि हरिवासर कहँ आयो ❋ सुरपतिको रथ प्रभु हित लायो ॥४॥

दशमीके दिन रघुनाथजीका रावणसे बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ एकादशीके दिन मातलि प्रसन्न हो रघुनाथजीके निमित्त इन्द्रका रथ लाया ॥ ४ ॥

द्वादशि रथारूढ़ भगवाना ❋ आये सेनसहित मैदाना ॥५॥

तेहि दिनसे अष्टादश वासर * रावणसे भयो युद्ध भयंकर ॥६॥

द्वादशीके दिन भगवान् रथपर चढ़ सेनासहित संग्राममभूमिमें आये ॥ ५ ॥ उस दिनसे लेकर अठारह दिनतक रावणसे महाभयंकर युद्ध हुआ ॥ ६ ॥

चैत्र शुक्ल चौदशि जब आई * मरेउ दशानन जग दुखदाई ॥७॥
पूनौंके दिन देह दशानन * दाह विभीषण कियो दुखित मन॥८॥

चैत्र शुक्ल चतुर्दशीके दिन संसारको दुःख देनेवाला रावण मारा गया ॥ ७ ॥ पूर्णिमाके दिन विभीषणने दुःखी मनसे रावणकी अग्नि क्रिया की ॥ ८ ॥

दोहा—प्रतिपद कहँ वैसाखकी, इन्द्र अमिय वरषाय ॥
भालु कीश जे रण परे, तिनको दियो जियाय ॥ ९ ॥

वैसाख कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको इंद्रने अमृत वर्षा कर जो रीछ और वानर मरे पड़े थे उनको जिला दिया ॥ ९ ॥

पुनि द्वितियाके दिन भगवाना * राज्य विभीषण दीन्ह सुजाना ॥१॥
तृतियाको श्री जनकदुलारी * आय अनलमें प्रविशि सुखारी ॥२॥

फिर दोयजके दिन सुजान भगवान्‌ने विभीषणको राज्य दिया ॥१॥ तीजके दिन जानकीजी अनलमें प्रवेश कर सुखपूर्वक निकल आयीं ॥ २ ॥

निकसि अनल ते अवनि कुमारी * भयउ कपिन मन अचरज भारी॥३॥
दिन दश और मास दशचारी * रहीं लंकमें सीय दुखारी ॥४॥

अग्निसे निकली हुई सीताजीको देखकर वानरोंके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥ चौदह महीने और दश दिनतक लंकामें जानकीजी दुःखी रहीं ॥ ४ ॥

चौथि कपिन सँग बैठि विमाना * कीन्ह अवध कहँ राम पयाना ॥५॥
पंचैं तिथि प्रयाग अन्हाई * छठको मिले भरत सन आई ॥६॥

चौथके दिन कपियोंके साथ विमानमें बैठकर रघुनाथजीने अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ ५ ॥ पंचमीके दिन प्रयाग स्नान करके छठके दिन भरतसे आकर मिले ॥ ६ ॥

यहि विधि वर्ष चतुर्दश बीते * आये राम भये मनचीते ॥७॥
कृष्ण सप्तमी माधव मासा * सबके मन अतिभयउ हुलासा ॥८॥

इस प्रकार चौदह वर्ष बीत गये, रामके अयोध्यापुरीमें आनेसे सब मनचेते कार्य हुए ॥ ७ ॥ वैशाख कृष्ण सप्तमीके दिन सबके मनमें अत्यन्त आनंद हुआ ॥ ८ ॥

दोहा—इकतालिसवें वर्षमें, रामचन्द्र भगवान ॥
आयू बत्तिस वर्षकी, जनक सुता गुणखान ॥ १० ॥

जब वनसे आये थे उस समय इकतालीस वर्षकी अवस्था तो रघुनाथजीकी और बत्तीस वर्षकी अवस्था गुणवती जानकीजीकी थी ॥ १० ॥

तेहि दिन सिंहासन भगवाना * बैठे राजतिलक जग जाना ॥१॥
भादौंकी नवमी जब आई * गर्भवती भइ सीय सुहाई ॥२॥

उसी दिन रघुनाथजी सिंहासन पर बैठे, राज्यतिलक हुआ यह सब जगत् जानता है ॥१॥ भादोंकी नवमीके दिन सुन्दरी सीताजी गर्भवती हुई ॥ २ ॥

चैत्र द्वादशी शुक्ल दुखारी ❋ आज्ञा लषण राम उर धारी ॥३॥
जनक सुताके त्यागे जाई ❋ आश्रम वालमीकि मुनिराई ॥४॥

चैत शुक्ल द्वादशीके दिन लक्ष्मणजी दुःखी होकर रघुनाथजीकी आज्ञा हृदयमें धारण कर ॥ ३ ॥ वनमें जाकर जानकीजीको मुनिवर वाल्मीकिके आश्रमके निकट छोड़ आये ॥ ४ ॥

वालमीकि तहँ रक्षा कीन्ही ❋ पुत्री सम सीतहि तिन्ह लीन्ही ॥५॥
नवमी मास अषाढ़ मनोहर ❋ जन्मे लव कुश दोउ सुन्दर वर ॥६॥

वहां वाल्मीकिजीने जानकीजीकी रक्षा की और पुत्रके समान उनको पाला ॥५॥ आषाढ़ मास नवमीके दिन अत्यन्त श्रेष्ठ सुन्दर मनोहर लव और कुशका जन्म हुआ ॥ ६ ॥

तापस वेष बनाय दुखारी ❋ रहीं विपिन महँ जनक दुलारी ॥७॥
ग्यारह सहस वर्ष भगवाना ❋ कीन्हेउ राजधर्म विधि नाना ॥८॥

तपस्विनीका वेष किये वनमें जानकीजी दुःखी रहीं ॥ ७ ॥ ग्यारह हजार वर्षतक रघुनाथजीने अनेक प्रकारसे धर्मपूर्वक राज्य किया ॥ ८ ॥

पुनि लव कुशको दीन्हेउ राजू ❋ गये लोक साकेत समाजू ॥९॥

फिर लव और कुशको राज्य देकर रघुनाथजी साकेत लोकको प्रस्थान कर गये। (कुशने कुशावती लवने लवपुर अर्थात् लाहौर बसाया) ॥ ९ ॥

दोहा-अग्निवेषको सारलै, द्विज ज्वालापरसाद ॥
वर्णउ रामचरित्र कछु, जेहि सुनि मिटहि विषाद ॥ ११ ॥

अग्निवेष ऋषिके रामायणका सार लेकर ज्वालाप्रसाद मिश्रने वनवासकी तिथि वर्णनकी जिसके श्रवण करनेसे विषाद भ्रम मिट जायगा ॥ ११ ॥

दोहा-श्रीगुरु ज्वालानाथके, चरण कमल मन लाय ॥
वरणी तिथि वनवासकी, सुनि संशय भ्रम जाय ॥ १२ ॥

श्रीयुत परमपूज्य पंडित ज्वालानाथ गुरुजीके चरणकमलोंमें मन लगाकर यह वनवासकी तिथि वर्णन की, जिसके सुननेसे संशय मिट जाते हैं ॥ १२ ॥

दोहा-श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज सुखदान ॥
तिन कहँ दीन्ही भेंट यह, याहि न छापैं आन ॥ १३ ॥

श्रीयुत श्रीकृष्णदासात्मज सुखदायक खेमराजजीको यह ग्रन्थ भेंटकर दिया है अतः इसे कोई दूसरा न छापे। (श्रीरघुनाथजी श्रोता वक्तापर कृपा करें) ॥ १३ ॥ शुभमस्तु ॥

इति श्रीरामचरितवनवासतिथिपत्रं मुरादाबाद-निवासी कात्यायनगोत्रोत्पन्न श्रीयुत पं० सुखानन्द-मिश्रात्मज-विद्यावारिधि-पंडित ज्वालाप्रसादजीमिश्रविरचितं सम्पूर्णम् ।

टीकाकारकृत दोहें

श्रीरघुनायक चरण गहि, अति हित वारंवार ॥
तुलसीकृत टीका रच्यो, निजमतिके अनुसार ॥ १ ॥
जो कछु भूल अजानसे, रही होय यहि माहिं ॥
क्षमा करहिं सो भक्तजन, रोष करैं मन नाहिं ॥ २ ॥
मैं अजान इकदास हूँ, तुम सब गुण आगार ॥
प्रीति रीति लखि सुजनता, देखहु पढ़हु विचार ॥ ३ ॥
श्रीसंवत वसु वेद ग्रह, चन्द्र फाल्गुन मास ॥
शिव तेरसि भृगुवासरे, भक्ति-रत्न सुखरास ॥ ४ ॥
अज अनादि अव्यक्त प्रभु, रामचन्द्र गुणधाम ॥
द्विज ज्वाला प्रसाद पर, कृपा करहु श्रीराम ॥ ५ ॥
मङ्गल श्रोताके भवन, मङ्गल वक्ता गेह ॥
चार पदारथ पावहीं, करि हरिभक्ति सनेह ॥ ६ ॥
महादेव शङ्कर चरण, प्रेमसहित मन लाय ॥
सम्पूरन टीका करी, याहि पढ़े भ्रम जाय ॥ ७ ॥

शुभमस्तु

ॐ शन्नो मित्रः शंवरुणः । शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्नइन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नोविष्णुरुरुक्रमः ॥
ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥

अथ छत्रबन्ध

या
या रा या
या रा घु रा या
या रा घु र घु रा या
या रा घु र रि र घु रा या
या रा घु र रि हु रि र घु रा या
या रा घु र रि हु ब हु रि र घु रा या
या रा घु र रि हु ब ले ब हु रि र घु रा या
या रा घु र रि हु ब ले च ले ब हु रि र घु रा या
या रा घु र रि हु ब ले च गे च ले ब हु रि र घु रा या
या रा घु र रि हु ब ले च गे आ गे च ले ब हु रि र घु रा या
ऋ
ष्य
मू
क
प
र्व
त
नि
य
रा
या

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया ॥

इति छत्रबन्ध।

❋ प्रभुकी दीनवत्सलता ❋

श्रीमद्गोस्वामी तुलसिदास जी द्वारा 'विनय पत्रिका' में संपूर्ण रामचरित मानस के प्रमुख कथाभाग का प्रथम पद में अतीव संक्षिप्त एवं सुन्दर ढंग से वर्णन एवं अंतिम दो पदों में हरि-भजन की सार्थकता दिखायी गयी है ।

ऐसे राम दीन हितकारी !
अति कोमल करुणानिधान बिनु कारण पर उपकारी ।।
साधनहीन दीन निज अघवश शिला भई मुनि नारी ।
गृहतें गवनि परसि पद पावन घोर शापतें तारी ।।
हिंसारत निषाद तामस वपु पशु समान वनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाय प्रेमवश नहिं कुल जाति विचारी ।।
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि शोक हत शरण गये भय टारी ।।
विहँग योनि आमिष अहारवश गीध कवन व्रत धारी ।
जनक समान क्रिया ताकी निजकर सब बात सँवारी ।।
अधम जाति शबरी योषित शठ लोक वेदतें न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरश कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ।।
कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल आयो शरण पुकारी ।
सहि न सके दारुण दुःख जनके हत्यो बालि सहि गारी ।।
रिपुको बन्धु विभीषण निशिचर कौन भजन अधिकारी ।
शरण गये आगे ह्वै लीन्ह्यो भेंट्यो भुजा पसारी ।।
अशुभ होय जिनके सुमिरन तें वानर रीछ विकारी ।
वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ।।
कहँ लगि कहौं दीन अगणित जिनकी तुम विपति निवारी ।
कलिमल ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा विसारी ।।

मन पछितैहैं अवसर बीते !
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु ही तें ।।
सहसबाहु दशबदन आदि नृप बचे न काल बली तें ।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीतें ।।
सुत वनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीं तें ।
अन्तहु तोहिं तजेंगे पामर तू न तजहि अब हीं तें ।।
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़ त्याग दुराशा जीतें ।
बुझै न काम अग्नि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घीतें ।।

जो पै जिय जानकीनाथ न जाने !
तौ सब कर्म धर्म श्रमदायक ऐसइ कहत सयाने ।।
जे सुर सिद्ध मुनीश योग विद वेद पुराण बखाने ।
पूजा लेत देत पल्टे सुख हानि लाभ अनुमाने ।।
काको नाम धोखेहूं सुमिरत पातक पुंज सिराने ।
बिप्र वधिक गज गृद्ध कोटि खल कौनके पेट समाने ।।
मेरु से दोष दूरि करि जनके रेणुसे गुण उर आने ।
तुलसिदास तेहिं सकल आश तजि भजहिं न अजहुं अयाने ।।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर"-प्रेस, कल्याण-बम्बई.

श्रीः

अथ रामायणकोष

✻✻✻

सज्जन महाशय ! आपकी जो रामायण के कोष छपने की बहुत दिनों से रुचि थी, सो लीजिये वह कोष भी अद्वितीय तैयार हो गया है । इसमें आप रामायण के शब्दों का अर्थ सोदाहरण पावेंगे अर्थात् कौन शब्द रामायण में कहां पर आया है, वह रामायण की चौपाई लिखकर विवरण कर दिया गया है और काण्डों की पहिचान के निमित्त उसका एक-एक अक्षर लिख दिया गया है । जैसे बालकाण्ड का (बा०), अयोध्याकाण्ड का (अ०), आरण्यकाण्ड का (आ०), किष्किन्धाकाण्ड का (कि०), सुन्दरकाण्ड का (सु०), लंकाकाण्ड का (लं०), उत्तरकाण्ड का (उ०) और क्षेपक कथा का (क्षे०) लिखा गया है और इस कोष में यह भी विचार रक्खा है कि, जिससे और भी भाषा तथा छोटी-छोटी संस्कृत पुस्तकों का भी अर्थ मिल सकता है । यदि इससे आप का उपकार हुआ तो फिर एक बृहत् कोष निर्माण किया जायगा । इसमें (ब, व) यह अक्षर भाषा में एक से होने के कारण उनका विवरण नहीं किया गया है, (क्ष) और (छ) के शब्द दो बार आ गये हैं, जैसे (क्षोभा) और (छोभा) यह दोनों स्थानों में मिलेंगे । आपके प्रसन्न होने पर परिश्रम सफल होने की आशा है ।

दोहा– ध्यान रामका कीजिये, जो मङ्गलदातार ।।
लषण जानकी सहित नित, सुमिरहु पवनकुमार ।। १ ।।

(अ)

अ– विष्णु
अकथ– न कहने के योग्य।
[अकथ अलौकिक तीरथराऊ (बा०)]
अकथ्य– जो किसी प्रकार वर्णन न हो सके।
अकथनीय– जो कहने की ताकत से बाहर हो ।
अकनि– सुन करके ।
अकरण– विनाकारण।
[मैं अकरण कोही परशुरामवाक्यम् (बा)]
अकल– हाथ पाव आदि अंगविना।
[अकल अनीह अभेद (बा०)]
अकसर– अकेला।
[अकसर आयउ तात (लं०)]
अकाजेउ– अकाज किया ।
अकाम– कामनारहित ।
अकाल– बेसमय।
अकंटक– कांटे से रहित, विघ्नरहित।
[आये करन अकंटक राज (अ०)]
अकिंचन– धनहीन ।
अकुल– जिसके कुल न हो।
अकुलाना– व्याकुल होना।
अकुठ– कडा जो टूट न सके।
अकूपार– समुद्र ।
अखय– नाशरहित ।
अक्षय– जो क्षय न हो, नाश न हो ।
अखण्ड– टूटे नहीं, पूरा।
[दिखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड (बा०)]
अखारा– खेलने की जगह या स्थान, नाच, कुश्ती और कसरत करने की जगह।
अखिल– सब ।
[अखिल लोककर राऊ (लं०)]
अग– जो न चल सके, पर्वत, वृक्ष।
[अग जग जीव नाग नग देवा (लं०)]
अगणित– जिसकी गिनती न हो सके।
अगम– अथाह, जहां जा न सके ।
अगर– एक प्रकार का सुगंधित काष्ठ।
अगरु– एक प्रकार का सुगंधित काष्ठ।
अग्र– आगे।
[चली अग्र करि प्रिय सखि सोई (बा०)]
अगहुड – पहिले पहल ।
अगाध– जिसकी थाह न हो।
अगुण– गुणहीन
अगोचर– इन्द्रिय ज्ञान के बाहर या परे, इन्द्रियों की गति से बाहर ।
अघ–पाप।
[भये सकल अघरूप (बा०)]
अघटित– जो नहीं हुआ ।
अघात– चोट, छेदन।
[बून्द अघात सहहिं गिरि कैसे (कि०)]
अघाती– तृप्त होती ।
अचगरी– नटखटी ।
अचल– पर्वत, जो चल न सके।
अचला– पृथ्वी।
अचंचल– शांत।
अछत– होते।
[आपु अछंत युवराजपद, रामहि देहिं नरेश (अ०)]
अज– जिसका जन्म नहीं, ब्रह्मा।
अजर– बुढापारहित ।
अजामिल– एक पापी ब्राह्मण ।
अजित– जो जीता नहीं गया।
अजिन– मृगछाल।
अजिर– आंगन।
अजय– न जीतने योग्य।
अज्ञ– मूर्ख।
अज्ञता– मूर्खता।
अटन– फिरना।
[चले राम वन अटन पयादे (लं०)]
अट्टहास– ठठा के हँसना।
[अट्टहास शठ कीन्हा (लं०)]
अणु– सूक्ष्म।
अनंक– डर, काल।
अतनु– कामदेव।
अतर्क– जिसमें तर्क न हो सके।
अतिशय – विशेष, बहुत ही।
अतीत– त्यागी।
अतुलित– जिसकी तुलना नहीं ।
[अतुलित बल अतुलित प्रभुताई]
अत्र– इसमें, यहां।
अत्रिप्रिया– अनसूया, अत्रि ऋषि की पत्नी का नाम ।
अथाई– बैठक।
अदभ्र– बहुत।
आश्चर्यित– आश्चर्य दिखानेवाला।
अदिति– दक्षप्रजापति की कन्या।
अदेय– न देने योग्य।
[तुमको नहीं अदेय कछु मोरे (बा०)]
अदृश्य– छिपा हुआ ।
अद्भुत्– विचित्र।
अद्रि– पहाड।
अद्वैत– जिसके समान दूसरा नहीं।
अध– नीचे।
अधगो– नीचे की इन्द्रिय।
अधर– नीचे का होठ।
[सूखहि अधर लागि मुहलाटी (अ०)]
अधिकारी– मालिक।
अधिप– राजा।
आधिवास– ठहरने का स्थान।
अधीश– मालिक, स्वामी।
अनअहिवात– विधवापन।
अनइस– खराब, बुरा।
[भलौ कहत जो अनइस लागा (अ०)]
अनख– कुढन।

अनघ– पापरहित।
अनट– अनुचित।
अनत– दूसरी जगह।
अनपायिनी– नित्य।
अनन्य– जो एक के सिवाय दूसरे का आश्रय न करे।
अनमनी– उदास।
[कसि अनमनि हंसि हंसि कह रानी(अ)]
अनल– आग ।
[हुने अनलमें बार बहु (लं०)]
अनवद्य– दोषरहित।
अनयास– विनायत्न।
अनायास– विनापरिश्रम।
अनहित– बुरा।
अनाथ– जिसका कोई सुध लेनेवाला नहीं।
अनादर– निरादर।
अनादि– जिसका आदि नहीं।
अनामय– रोगरहित।
[ब्रह्म अनामय अज भगवंता (लं०)]
अनिन्दित– निन्दारहित।
अनमनी– उदास।
अनिल– पवन।
अनिर्वाच्य– जो कहा न जा सके।
अनी– फौज।
अनीक– सेना।
[रिपु अनीक नाना विधि आई (लं०)]
अनिप– सेनापति।
अनीश– स्वामीरहित।
अनीह– चेष्टारहित, इच्छाहीन।
अनु– ऊपर, पीछा, समान।
अनुकथन– वारंवार कहना।
अनुकम्पा– दया, कृपा।
अनुकरण– नकल।
अनकूल– प्रसन्न, अनुसार।
[योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल (बा०)]
अनुगामी– आज्ञाकारी।
अनुग– दास।
अनुग्रह– कृपा।
अनुचर– सेवक।
[अंगद हनुमत अनुचर जाके (लं०)]
अनुचरी– दासी।
अनुज– छोटा भाई।
अनुजा– छोटी बहिन।
अनुदिन– सर्वदा।
अनुपम– जिसकी उपमा नहीं।
अनुभव– ज्ञान।
अनुमान– अन्दाज, अटकल।
[करौं विविध अनुमान (लं०)]
अनुमानी– अटकल से।
अनुमोदन– आनन्दपूर्वक।
अनुराग– स्नेह, प्रेम।

अनुरूप– सदृश, अनुसार।
[वर अनुरूप बरात न भाई (बा०)]
अनुरोध– उपरोध (रोंक)।
अनुवाद– उल्था।
अनुभाऊ– महिमा।
अनुशासन– आज्ञा।
[तब रघुपति अनुशासन पाई (लं०)]
अनुसन्धान– ढूंढना।
अनुसारी– पीछे-पीछे चलनेवाला।
अनुहर– सादृशी, अनुसार।
अनुहार– सादृशी, अनुसार।
अनृत– झूठ, असत्य।
अनेक– बहुत।
अनैसे– कुदृष्टि से।
[बन्धु तव चितव अनैसे (बा०)]
अनङ्ग– विनाशरीर का। (कामदेव का नाम)
अन्यथा– दूसरी तरह।
अन्वह– निरन्तर।
अपकार– निरादर।
अपकीर्ति– अपयश।
अपडर– झूंठा डर।
अपत– अप्रतिष्ठा।
अपभय– अपडर।
[अपभय कुटिल महीप डराने (बा०)]
अपर– दूसरा।
अपलोक– अपयश ।
अपवर्ग– मोक्ष।
[तातस्वर्ग अपवर्ग सुख (सुं०)]
अपबाद– अयश, कलंक।
अपहरना– दूर करना, हरण करना।
अपहारी– चुरानेवाला।
अपान– गुदा में रहनेवाला वायु।
अपि– भी।
अपेल– जो हिल न सके।
[प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई (स०)]
अपंडित– मूर्ख।
अप्रतिहस– अपीडित, विनारोक।
अर्प्या– दिया हुआ।
अफल– निष्फल।
अबला– स्त्री।
अबाधा– जिसमें किसी प्रकार रोक न हो।
अबुध– अज्ञानी, निर्बुद्धि।
अवध्य– न मारने योग्य।
अभय– भयरहित।
[अभय भई भरोस जिय आवा (बा०)]
अभि– सब ओरसे।
अभिअन्तर– भीतर, अन्तःकरण।
अभिजित– नक्षत्र विशेष।
अभिनन्दन– सेवा १, संतोष २, गुणों की प्रशंसा का अनुमोदन।
[गुरु के वचन सचित्र अभिनंदन (अ०)]

अभिमत– वांछित।
अभिराम– सुन्दर।
अभिषेक–राजसिंहासन का तिलकस्नान
[राजहि देखौं अब नयनभर, भरत राज्यअभिषेक (अ०)]
अभीष्ट– अभिलाषित।
अभृतरिपु– शत्रुरहित।
अभेद– भेदरहित, न छिपे।
अभंगू– जो न टूटे।
अमर– देवता।
अमरता– देवत्व, न मरनापन।
[सुधा सराही अमरता (बा०)]
अमराई– आम की वारी।
अमरावती– इन्द्रपुरी।
अमान– प्रमाण से बाहर, अहंकाररहित।
अमानुष– जो मनुष्य से न हो सके।
[सकल अमानुष तुम्हरे (बा०)]
अमित– बहुत।
अमिय– अमृत।
अमोघ– सफल।
अम्बर– आकाश, वस्त्र।
अम्बा– माता, दुर्गा।
[जो सिय वन रहै कह अम्बा (अ०)]
अमंगल– बुरा।
अय– लोहा।
अयन– घर।
[करुणा अयन (बा०)]
अयं– यह।
अयुत– १०००० दश हजार।
अरगाई– चुप होकर।
[कहि अस वचन रहा अरगाई (लं, क्षे)]
अरगानी– चुप हुई।
अरध– आधा।
अरधंग– आधा शरीर।
अर्णव– समुद्र, उदधि।
अरनी– अग्नि मथने की लकडी।
अरि– वैरी, शत्रु।
[उदासीन अरि मीतहित (बा०)]
अरुण– लाल।
अरुणचूड– मुर्गा।
अरुणारे } – लाल, सुर्ख।
अरुनारे } – [अधर अरुनारे (बा०)]
अरुणशिखा– मुर्गा।
अलक– बालों की लट जो गालोंपर झूलती है।
अलखित– जो लिखा न जाय ।
अलक्षित– जो न दीखे।
अलच्छि– दरिद्री।
अलान– जंजीर।
[राज अलान समान (अ०)]
अलि– भौंरा १, सखी २।
अलिनि – भ्रमरी १, सखियां २।
[गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी(बा०)]

अलीक– असत्य।
अलीहा– झूठा।
[एक कहहिं यह बात अलीहा (अ०)]
अलुझि– उलझकर।
अलोल– चंचलतारहित।
अलौकिक– लोक से बाहर।
अलंकृत–शोभित,भूषित,अलंकारयुक्त
[आखर अर्थ अलंकृत नाना (बा०)]
अवकलित– निश्चय किया हुआ।
अवगति– ज्ञान।
अवगाह– अथाह।
अवघट– अडबड।
अवचट– औचक, अचानक।
अवज्ञा– अपमान।
अवडेरि– त्याग करके।
[पुनि अवडेरि मराइन ताही (बा०)]
अवढर–नीच पर भी दया करनेवाला।
औढर– नीच पर दया करनेवाला।
अवतंस–शिरोभूषण, मस्तक का गहना
[हंसवंश अवतंस (अ०)]
अवध– अयोध्यापुरी, सीमा।
अवधि– सीमा।
अवनि– पृथ्वी।
अवनिप– पृथ्वीपति, राजा।
अवराधक– सेवक।
[कहहिं संत तव पद अवराधक (आ०)]
अवराधना– सेवा करना।
अवरेखी– लिखी।
अवरेव–तिरछा,उलटके पद को जोडना
औरेब– ध्वनियुक्त।
अवलोकय– देख।
अवसान– नाश, मरन।
अवशि– निश्चय करके।
अवशेषित– बचा हुआ।
अवसेरी– विलम्ब।
[भये बहुत दिन अति अवसेरी]
अबाधी– बाधारहित।
अविकारी– विकाररहित, जन्ममरणादि विकारशून्य।
अविगत– चराचर में व्याप्त।
अविचल– स्थिर।
अविछीन– निरन्तर, जो कभी बीच में न टूटे।
अविद्या– मुर्खता, अज्ञान।
[विद्या अपर अविद्या दोऊ (उ)]
अविद्यापंच– देह में आत्मबुद्धि।
अविनय– ढिठाई।
अविनाशी– जिसका कभी नाश न हो।
अविरत– निरन्तर।
[अविरत भक्ति मांगवर (अ०)]
अविरोध– विरोध रहित।
अविवेक– विवेकशून्य।
अव्यक्त– प्रकृति, ईश्वर, गुप्त।

अव्याहत– न रोकने योग्य।
[अव्याहत गति होईहि तोरी (उ०)]
अष्टादश– १८ अठारह।
अशन– आहार।
अशनि– वज्र।
अशिष– कल्याणरहित, अमंगल।
अशेष– शेषरहित, सम्पूर्ण।
अस– ऐसा।
असमय– कुसमय, अकाल।
असमसर– कामदेव।
असमंजस– दुविधा।
[असमंजस पक्ष भये रघुराई (अ०)]
असहाई– बिना सहायका।
असाधी / **असाध्य** – जिसके दूर होने की आशा नहीं।
असि– तलवार १, है २, ऐसी ३।
[शीतल निशि तव असिवर धारा]
असित– श्याम।
असुर– दैत्य।
असुरसेन– राक्षसों की सेना।
अशौच– अशुद्धि।
अस्थिमात्र–केवल हाड़।
[अस्थिमात्र रहि गयउ शरीरा (बा०)]
असंभावना– अनिश्चय।
असम्मत– प्रतिकूल।
अह– दिन।
अहमति– अहंकार।
अहह– अत्यंत खेद में प्रयोग करने का शब्द।
अहि– सर्प।
अहिनी– साँपिनी।
अहिराज– नागराज।
अहिवात– सौभाग्य, सुहाग।
अहेर– शिकार।
अहेरी– शिकारी।
अहो– यह शब्द आश्चर्य, बडे भाग्य, अति दुःख में आता है।
[अहो भाग्य मम अमित अति (सुं०), अहो धन्य लक्ष्मण (अ०)]
अहं– हम, अहंकार।
अंक– अक्षर, गोदी, चिह्न।
[कुअंक भालके (बा०), लगे सुमित्रा अंका (उ०)]
अंकित–चिह्नित,हस्ताक्षर, किया हुआ
अंग– शरीर।
अंगरी– वख्तर।
अंगवनि– सहना।
अंचल– आंचल, पल्ला।
अम्ब– माता।
अम्बक– आँख, नेत्र, माताका।
अम्बर– वस्त्र, आकाश।
अम्बरीष– एक राजा का नाम।
[सुचि करि अंबरीष दुर्वास(आ०)]

अम्बु– जल
अंबुधर– जलधर।
अम्बुधि– समुद्र।
अम्बुपति– वरुण।
अंभोज– कमल।
अंजि– अंजन लगाकर।
अंगलि– अंगुरी।
अंजलिगत–अंजली में आये या गये।
अंड– अण्डा, ब्रह्माण्ड।
अंडकटाह– ब्रह्माण्ड।
अंतर– बीच।
अंतर्यामी–हृदय का जाननेवाला, ईश्वर।
[तुम अंतर्यामी भगवाना (लं०, क्षे०)]
अंतर्धान– गुप्त होना।
अंतरहित– गुप्त।
अंतावरि– आंत।
अंवा– अबा।
[अंवा इव सुलगै छाती (अ०)]

(आ)

आइ– आयकर।
आकर– खान, जहां धातु वा उपधातु रत्नादि खोदने से प्राप्त होते हैं।
आकुल– पूर्ण, व्याकुल।
आकृति– आकार, सूरत।
आखर– अक्षर।
[आखर मधुर मनोहर दोऊ (बा०)]
आगर– पूर्ण, चतुर।
आगरी– चतुरी।
आगार– घर।
आगिल– अगली।
[आगिल कथा समास समेता (लं, क्षे)]
आचरण– करतूति।
आचरणी– करतूति।
आचरहीं– आचरण करते हैं।
आतप– भूप।
आत्महन– आत्महत्यारा।
आतुर– उतावल।
आदिकवि– वाल्मीकि।
[मुनि जान आदि कवि नाम प्रतापू(बा०)]
आदेश– आज्ञा।
आन– शपथ, कसम।
आनन– मुंह।
[तासु तेज समान प्रभु आनन (लं०)]
आनवी– लाइयो।
आपन्न– आपत्ति में पड़ा हुआ।
आभीर– अहीर, गोप।
आमलक– आंवला।
आयत– चौड़ा।
आयतन– घर।
आयसु– आज्ञा।
आयुध– शस्त्र।
[आयुध अनेक प्रकार (आ०)]

आरज–**आर्य्य**– श्रेष्ठ, बड़े लोग।
आरजसुत– (आर्यपुत्र) पति।
[आरजसुत पद कमलविनु (अ०)]
आरत–**आर्त्त**– अत्यन्त दुःखी।
आरति– पीडा, दीनता, अतिप्रीति।
आराति– वैरी।
आराधन– सेवा।
आराध्य–जिसकी आराधना की जाय।
आराम– सुख १, बगीचा २, उपवन।
[परमरम्य आराम वह, जो रामहिं सुख देत (बा०)]
आरूढ– चढा हुआ।
आरोप– अन्य, कल्पना।
आरोपण– चढाना।
आर्त्त– पीडित, व्याकुल।
आलय– घर।
[सदा सर्वगत सर्व उरालय (आ०)]
आलवाल– थांबला।
आव– आता।
आवर्त्त– भवंर।
आवलि– पंक्ति।
आवाहन– बुलावा, मन्त्रादि से देवताओं को बुलाना।
आश्रित– आश्रय लिये हुये, सहारा लिये हुये।
आश्रमी– ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यस्त।
आसक्त– मोहित।
आसावसन– दिगम्बर।
आसीन– बैठा हुआ।
आसु– जलदी।
आंक– अंक (अक्षर)।
आंकुरे– अंखुआ निकले,उत्पन्न हुए।

(इ)

इकअङ्ग– एक ओर का शरीर।
इच्छित– वांछित।
[इच्छित फल विन शिवअवराधे (बा०)]
इत– इस।
इतराई– इतरानी।
इम – **(इमि)**– इस तरह से।
इदमित्थम्– ऐसे हो, यह इतना ही।
[इदमित्थं कहि जात न सोई (बा०)]
इष्टदेव–उपास्य देवता, जिसके समान दूसरे को न मानता हो।
इह– यह निश्चयात्मक शब्द, उंगली निर्दिष्ट, लक्ष किंया हुआ।
इन्दिरा– लक्ष्मी।
[नमामि इन्दिरापतिम् (आ०)]
इन्दु– चन्द्रमा।
इन्द्रजाल– बाजीगरी।
[सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला (उ०)]
इन्द्रजीत– रावण का पुत्र।

इति– अतएव, सीना, ऐसा।

(ई)

ई– लक्ष्मी।
ईशान– ईश्वर, शिव, पूर्व उत्तर।
ईषना– लालसा।
ईश– मान्त्रिक, ईश्वर।
[अव ईश आधीन जगत (अ०)]

(उ)

उ– शिव।
उकठि– सहारा लेके, बिगडा हुआ, काष्ठ।
उकसहिं– उपर उचकना।
उग्र– तीव्र, भयानक।
[उग्र बिलोकनि प्रभुहि विलोका (लं०)]
उघरे– खुले।
उचाटु– उखडना, चित्त न लगना।
उचित– योग्य।
उछंग– गोदी।
[सखी उछंग बैठ पुनि जाई (बा०)]
उजागर– विख्यात।
उज्जैनी– उज्जैन नगर।
उडु– तारा।
उक्ति– वचन।
उत्कण्ठा– चित्त की लालसा।
उत्कर्ष– बडा, बडी।
उत्पात– उपद्रव।
[अस उत्पात तात विधि कीन्हा (अ०)]
उत्सव– उछाह, प्रसन्नता।
उतङ्ग– ऊंचा।
उदक– जल।
उद्घाटी– उघारा, उदयाचल।
[तब महिमा उदघाटी (बा०)]
उदधि– समुद्र, सिन्धु, जलनिधि, बारीश
उद्भव– उत्पत्ति।
उदयगिरि– उदयाचल।
उदर– पेट।
उद्वेग–भय।
[सुनि उद्वेग न पावै कोई]
उदार– दानी, बड़ा, श्रेष्ठ।
उदास– आशारहित।
उदासी– संसार से विरक्त।
उदासीन– शत्रु–मित्र भावरहित।
उपचार– उपाय, पूजा की सामग्री।
उपधान– तकिया।
उपनिषद्– ज्ञानकाण्ड के ग्रन्थ।
उपपातक– छोटा पाप।
[जे पातक उपपातक अह (अ०)]
उपवन – विहार करने की वाटिका।
उपरागा– यन्त्रणा, ग्रहण।
[भयउ पर्वबिन रवि उपरागा (लं०)]
उपल– पत्थर।

उपबरहन– तकिया।
उपराजा– उत्पन्न किया।
उपवासा–उपास, व्रत करना, भूखे रहना
उपवीत– जनेऊ।
उपहार– सौगात, भेंट।
उपाटी– उखाड के।
[लीन्हेउ तेहि एक शैल उपाटी (लं०)]
उपाधि– उपनाम, उपद्रव।
उपाये– उत्पन्न किये।
उपारे– उखाडे।
उपाया– उपजाया।
उपासा– उपवास, व्रत।
उपासक– भक्त।
उपासना– भक्ति।
उबरे– बच गये।
उबारा– बचाय लिया।
[यहि अवसर को हमहिं उबारा (लं०)]
उभय– दो, दोनों।
उभौ– दो, दोनों।
उमा– श्रीपार्वती।
उगेउ– उदय हुआ।
उर– हृदय।
उरग– सर्प, सांप।
उरगाद– गरुड।
उरू– जांघ।
उरविजा– भूमिसुता।
[जो पृथ्वी से उत्पन्न हुई जानकीजी।]
उलूक– उल्लू।
उहार– उछार।
ऊना– कमती, खेद।
[सुनु कपि जियजनि मानसी ऊना(कि)]

(ऋ)

ऋक्षेश– रीछों के राजा, जाम्बवन्त।
[बूढ भयउँ अब कहै ऋक्षेशा (कि०)]
ऋतुराज– वसन्तऋतु।
ऋषि– सूक्ष्मदर्शी मुनि।
ऋषिनायक– ऋषियों में श्रेष्ठ, बडे।

(ए)

एकाकिह्न– अकेला।
एकाकी– अकेला, एक ही, मात्र।
[रथ चढि तुरत एकाकी आया (लं०)]
एतादृश– ऐसा।
एवमस्तु– ऐसा ही हो।
[एवमस्तु कहि रमानिवासा (आ०)]

(ऐ)

ऐ – शिद।
ऐक – अटकल।

(ओ)

ओब– समूह।
ओड़नखांडे– रोकने का ढाल।
ओडिअहि– आढ, रोको।
ओदन– भात।
[दधि ओदन लपटाय (बा०)]
ओधे– धसे।
ओर– अन्त, छोर।
ओरे– बनौरियां, ओले।

(क)

क– ब्रह्मा, विष्णु, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, आत्मा, राजा, जल।
कइकई– राजा दशरथ की रानी, कैकयी
कच– बार, बाल।
कच्छप– कछुआ।
कज्जलगिरि– कालापहाड।
[जनु सपक्ष कज्जलगिरि वैसा (सुं०)]
कटक– दल।
कटाह– कडाहा।
कटि– कमर।
कटिसूत्र– करधनी, मेखला।
कटु– कडुआ।
कडिहारू– कर्णधार, मल्लाह, धीवर।
कत– क्यों।
कति– कितना।
कथनीय– कहने लायक।
कदली– केला।
[काटेपर कदली फलै (सुं०)]
कदम्ब– कदम का वृक्ष, समूह।
कद्रू–नागों की माता,कश्यपमुनि की स्त्री
कनककशिपु– हिरण्यकशिपु।
[कनककशिपुअरु हाटकलोचन(लं०)]
कनकलोचन– हिरण्याक्ष दैत्य।
कनी– कनिका।
कपटभूमि– मायाभूमि।
कपाट– किंवाड़।
कपाल– खोपरी।
[जरत विलोकेउँ जबहि कपाला(लं०)]
कपासू– कपास।
कपि– बंदर।
कपिकुञ्जर– बंदरों में बडा।
कपिन्दा– बंदरों का सरदार अथवा सुग्रीव।
कपिल– पीला रंग, सांख्यदर्शन के कर्ता मुनि का नाम।
कपोत– कबूतर।
कपोल– गाल।
कबांरू– हुनर।
कमठ– कच्छप।
कमनीय– सुघर, सुन्दर।
कमला– लक्ष्मी।
कर– किरन१, हाथ२, सूंड३, महसूल४
[रविकर निकर निहारि१,
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना २,
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा ३,
तुम सब कर मांगत दशशीशा ४]
करक– दर्द।
करज– अंगुली।
करतरी– हथेली।
करतल– हथेली पर।
[करतल गत न परहिं पहिचाने (बा०)]
करतव्य– करने लायक।
करतूती– करतूत।
[जनु इतनी विरंचि करतूती (बा०)]
करन– करना, कारण, कान।
करनीया– करने लायक।
करवर– विपद।
[ईश अनेक करवरे टारी (बा०)]
करम– कार्य।
कर्षा– ईर्षा, वैर।
करषि– खींचकर।
करारा– करार, कराल।
कराल– भयंकर।
करि– हाथी, करके।
[प्रभु भुज करि कर सम (लं०),
करि न जाय सर मज्जन पाना (बा०)]
करिनी– हथिनी।
करीला– करील का वृक्ष, जिसमें पत्ता नहीं होता।
करुई– कडुई, टूंटीदार लुटिया।
[करुई मैं माई (अ०)]
करुन– दया।
करुणा– **करति**– गुण वर्णन कर विलाप करती है।
कर्णधार– पतवारी, मल्लाह।
कल– अव्यक्त, मधुर ध्वनि।
कलकंठ– कोयल, पिक, मिठबोली
कलप– कल्प, ब्रह्मा का दिन, रचना
[पलक कल्पसम जात (लं०)]
कल्पतरु– कल्पवृक्ष।
कलपना– तर्क १, लालसा २, कष्ट ३, रचना ४।
[तजहु तात अब वृथा कलपना १,
मोरे हृदय परम कलपना २,(लं०)]
कलपि– दुःखी होकर।
कलपित– मिथ्या, बनाया हुआ, कल्पना किया हुआ।
कलबल– कलछल, तोतले।
[कलबल वचन कहत (बा०)]
कलभ– हाथी या उंट का बच्चा।
कलमले– कुलबुलाये।
[अहि शेष कूरम कलमले (बा०)]
कलश– घड़ा।
कलहंस– राजहंस।
कला–चन्द्र का सोलहवाँ भाग, अंश, अठारह निमिष की एक काष्ठा, विद्या की ६४ कला।
[सकल कला सब बिद्या हीना(बा०)]
कलाप– समूह।
कलि– कलियुग।
कलिकवि– कलिकाल के कवि।
कलित– पहिरा हुआ, सुन्दर।
कलिमलसरि– कर्म्मनाशा नदी।
कलिल– पंक, कीचड।
कलुष– पाप।
कलेवर– शरीर।
कलेश– दुःख।
कलंक– अपयश।
कल्लोलिनी– तरंगवाली नदी।
[कल्लोलिनी चारु गंगा (उ०)]
कवल– ग्रास।
कवि– कविता करनेवाला।
[कवि न होंउ नहिं चतुर कहाऊं(बा०)]
कवित्त– छन्द विशेष।
कबन्ध– दैत्य विशेष का नाम।
कश्यप– ऋषि का नाम है जो सृष्टि के करता हुए हैं।
कसे– कसकर, कसौटीपर रगड़ा वा कसौटीपर रगड़ने से।
[कटिपट कसे (बा०)१,
कसे कनक मणि पारखि पाये २]
कहानी– कथा।
काऊ– कबहूं।
काक– कौआ।
काकपक्ष– शिर के पट्टे।
काकु– व्यंगवचन।
काखासोती–दोनों कन्धे से कुक्ष पर्यन्त
[पीत उपरना कांखासोती (बा०)]
काछे– पहरे।
कानन– वन, दोनों कान।
[चौथे पनहिं जाय नृप कानन १ (लं०),
कानन कुण्डल सोहत नीके (बा०)]
कानी– संकोच, लज्जा।
काम– कामना, कामदेव, सुन्दर।
कामद– मनोरथ का देनेवाला।
कामद गाई– कामधेनु।
कामना– इच्छा।
कामरूप– जैसा चाहे वैसा रूप धरनेवाला।
[कामरूप जानहिंय सब माया(बा०)]
कार्मुक– धनुष।
कारक– करनेवाला।
कारज– कार्य, काम।
कारण– प्रयोजन।
कारणकरण– कारण के करनेवाले, ईश्वर।
कारी– काली।
काल– समय, मृत्यु।
कालकूट– विष।

कालराति– प्रलय की रात्रि।
[कालराति निश्चरकुल केरी (लं०)]
कालिका– कालिकादेवी।
काली– श्यामवर्णवाली,कालिकादेवी।
कांजी– राई का खमीर।
कांधी– कन्धेपर धारण किया।
किन– क्यों नहीं।
किन्नर– देवजाति।
किमपि– कुछ भी।
किमि– क्योंकर।
किंवा– क्या तो।
किरातिन– वनजाति विशेष, भिल्लिन।
किरिच– टुकडा।
किरीट– मुकुट।
किलकिला– एक प्रकार का वानरों का शब्द।
किशलय– कोमल पत्ते, फूल की पंखडियां।
[नूतन किशलय मनहु कृशानू (सुं०)]
किसु– किसका।
किशोर– सोलह वर्ष की अवस्थावाला।
किंकर– सेवक।
किंकरी– दासी।
किंकिणी– करधनी, तगडी।
किंकिनी– करधनी, तगडी।
किंशुक– टेसू।
[कुसमित किंशुकके तरु जैसे (लं०)]
कीट– कीडा।
कीर्ती– कीर्ति।
[जासु सफल मंगलमय कीर्ती]
कीर्ति– यश, नामवरी।
कीर– तोता।
कील– खरका।
कीश– वानर।
कु– निन्दा, पृथ्वी, बुरा।
कुकाठू– बुरा काष्ठ।
[जिमि उकठ, कुकाठू (अ०)]
कुचाह– बुरा समाचार।
कुजोगा– कुचला, बुरे योगवाला।
कुयोगी– योगी के प्रतिकूल।
कुटीर–कुटी।
[राजत पर्णकुटीर (अ०)]
कुठारी– कुल्हाडी।
कुठाहर– बुरा स्थान।
कुतर्क– नीच विचार।
कुदृष्टि– पापदृष्टि, खोटी चितवन।
कुधातु– बुरी धातु।
कुपथ– खोटा रस्ता।
कुपथ्य– अयोग्य भोजन।
कुवलय– कमल।
[कुवलयविपिन कुन्त वन सरिसा(सुं०)]
कुविहंग– बुरा पक्षी।
कुमार– बठुक, कुआरा, अवस्थाविशेष
कुमारी– कन्या, बिना व्याही।
कुमुद– बबूला, कोई, १ वानर विशेष का नाम २
[कुमुदबन्धुकरनिन्दक हासा (बा०), कुमुद नाम कपि वानर(लं०)]
कुमुदबन्धु– चन्द्रमा।
कुररी– एक चिडिया जलाशय पर रहनेवाली।
कुराई– पांव फसँने जोग।
कुरी– सब जाति।
कुरुचि– खोटी वासना।
कुरंग– बुरा रंग १, हरिन २
[जेहि विधि कपट कुरंग संग २(आ०)]
कुल– वंश।
कुलह– टोपी, शिरपर धारण करने का वस्त्र विशेष सिला हुआ।
[कुमति विहंग कुलह जनु खोली (अ०)]
कुलि– सब।
कुलिश– वज्र, हीरा।
कुशली– सुखी।
कुशकेतु– राजा जनक के भाई का नाम है।
कुशल– कल्याण।
कुसमउ– आपद काल में भी।
कुसुमित– फूला हुआ।
कुम्हड– कोंढा, सीताफल।
कुंकुम– केशर।
[मृगमद सुन्दर कुंकुम सींचा (बा०)]
कुंचित– लिपटे हुए, बल खाये हुए।
कुंजर–हाथी।
कुन्द– श्वेत पुष्प, विशेष फूल का नाम चमेली।
[कुंद इन्दु सम देह (बा०)]
कुम्भ– हाथी का मस्तक, घडा।
कुम्भकर्ण– रावण के भाई का नाम, घडे समान कानों वाला।
कुम्भज– जो घडे से जन्मे, अगस्तमुनि।
कुंत– बरछी।
कुँवर– राजकुमार।
[राजकुँवर तेहि अवसर आये (बा०)]
कूजहिं– गुञ्जार करते।
कूट – पहाड की चोटी, हँसी, श्लेषयुक्त कविता।
कूटी– व्यङ्ग वचन।
कूप– कुआँ।
कूर– मूर्ख, कपटी।
कूल– किनारा, समीप।
[तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ (लं०)]
कूडि– लडाई में पहने की लोहे की टोपी
कृत– करतूति, किया हुआ उपकार।
कृतकृत्य– पूर्ण काम।
कृतांत– यमराज।
[तुम कृतान्त भक्षक सुनु भ्राता (लं०)]
कृतनिन्दक– किये हुए की निंदा करनेवाला
कृतज्ञ– उपकार को मानने वा समझनेवाला
कृपाण– तलवार।
कृमि– कीडा।
कृष– दुबला, दुर्बल।
कृषी– खेती।
केकी– मोर।
केतु– ध्वजा१, राहु का भ्राता २
[वंदनवार पताका केतु १, अधम ग्रह केतु २]
केर– यथा।
केलि– खिलवाड।
केवट– मल्लाह निषाद।
केवल– एक ही।
केसरी– हनुमानजी के पिता, केशर का रंग, सिंहविशेष।
केहरी– केसरी, सिंह।
[शशिकेहरी गगनबनचारी (सुं०)]
कैकय– कैकयदेश, काश्मीर।
कैटभ–दैत्यविशेष,मधु नाम दैत्य का भाई
कैर– कोई।
कैरव– कुमुद, सफेद कमल।
[पति रविकुल कैरव बिपिन (अ०)]
कैवल्य– मुक्ति।
कोक– चकवा।
कोका– चकई, चकवा।
[निशि दिन नहीं अवलोकहिं कोका(बा)]
कोछे– कोख।
कोट– किला, करोड, १०००००००
कोकनद– लालकमल।
कोकी– चकई।
कोटर– वृक्ष का फोफला।
कोटि– सौलाख।
कोदण्ड– धनुष।
[विहंति कठिन, कोदंड चढावा (आ०)]
कोदव– कोदों।
कोपर– पात्र विशेष, कोंपल।
कोपी– कोई भी, क्रोधी।
कोविद– पण्डित, विद्वान।
कोये– आंख का संपूर्ण श्वेतडला वा आंख का कोना।
कोरि– खुरचकर।
कोरी– करोड १, जाति विशेष २।
[रघुपति विमुख यतनकर कोरी (उ०)]
कोल– शूकर, सूअर, जाति विशेष।
कोलाहल– गुल गपाडा।
कोष– कमल का मध्य, खजाना, तलवार का म्यान।
कोशल– देश विशेष का नाम।
कोशला– अयोध्यापुरी।
[एकभूप रघुपति कोशला (उ)०]
कोशलपुरी– अयोध्यापुरी।
कोह– क्रोध।
कोहवर– वह स्थान जहां विवाह में स्त्रियां वर को ले जाकर कौतुक रहस्य करती है और भोजन कराती हैं।
कोहाव– रूठना।
[तुमहि कोहाब परमप्रिय अहई (अ०)]
कोही– क्रोधी, तामसी।
कौ– पृथ्वी।
कौतुक– खिलवाड।
कौतुहल– तमासा।
कौमुदी– चन्द्रमा की उजियाली वा चांदनी।
कौर– ग्रास।
कौल– बामाचारी।
[कौलकामवश कृपण विमूढा (लं०)]
कौशल– अयोध्यापुरी।
कौशलेश– अयोध्या के राजा दशरथ वा राम।
कौशिक– विश्वामित्रमुनि, इन्द्र।
कंक– कुही, कौवा।
कंकण– कंगना।
[नूपुर कंकण किंकिणि धुनि (बा०)]
कंचन– सोना।
कंचुकी– अंगिया, चोली।
कंज–कमल।
[सरविकसे बहुकंज (कि०)]
कंटक– कांटा।
कंठ– गला।
कंटाभ– कंठ के तुल्य।
कंडु– खुजली।
कंत– पति।
कंद– कन्दमूल, कमल आदि की जड, मिष्टान्नविशेष।
कंदरा– पहाड की गुहा वा गुंफां।
कंदुक– गेंद।
कंधरा– गला।
कंध– कन्धा।
कंप– कपकपी।
कंपति– समुद्र १, कांपता है २,
[थरथर कंपति पुर नर नारी (बा०)]
कंबल– प्रसिद्ध ऊन वस्त्र।
कंबु– शंख।
[रिखारुचिर कंबु कलग्रीवा (बा)]

(ख)

ख– स्वर्ग।
खग– पक्षी।
खगा– चन्द्र।
खगकेतु– गरुड १, आकाश गरुडध्वज भगवान २।
[वरणि न जाय समर खगकेतू (लं०)]
खगहा– गेंडा।

खगेश– गरुड।
खचित– जडाऊ, बना हुआ।
खची– जडाऊ बनी हुई।
खटाहिं– स्थिर रहते हैं।
[कबहुँ किनारि खटाहिं (बा०)]
खद्योत– पटवीजना।
खनि– खान।
खप्पर– साधुओं का पात्र विशेष।
खर्पर– पीट।
खर्व– छोटा, एक संख्या जो शत अरब के तुल्य है।
खँभारू– छोभ।
खर– दूषण का भाई।
खरभर– क्षोभ, उथलपुथल।
[खरभर देखि बिकल नरनारी (बा०)]
खरारि– रामचन्द्र, खर राक्षस के शत्रु।
खरी– गदही, चोखी।
[तुरतहिं खोज खरी ले आई (लं०,क्षे०)]
खरो– तृण भी, चोखा आदि, गधा भी।
खल– कपटी, दुष्ट।
खलु– निश्चय करके।
खस– जाति विशेष,सुगंधिमय तृणविशेष
खसी– गिरि।
[खसी माल मूरति मुसकानी (बा०)]
खसेऊ– गिरा।
खांगे– कमती।
खानिक– जो खान से पैदा हुआ।
[गुप्त प्रगट जहँ जो जेहिखानिक (बा०)]
खानी– खानि।
खाले– नीचे, गडहे में।
खिन्न– उदास, दुःखिया।
खीन– दुर्बल।
खीस– घटना।
खुटानी– पूरी हो गई।
[सो जान जनु आयु खुटानी (बा०)]
खेत– समरभूमि, अन्न बोने का स्थान।
क्षेत्र– योनि, खेत।
खेद– दुःख।
खेरे– पुर, गाँव।
खेलवार–खेल।
[मुनि आयसु खिलवार (अ०)]
खोरी– दोष।
खोरे– लंगडे।
खोह– गुफा।
खौर– तीन रेखा का तिलक।
खंजन– चिडिया विशेष, खजरीट।
खंड– टुकडा।
[मनहुँ अखण्डन खण्ड (लं०,क्षे०)]

(ग)

ग– स्वर्ग, सुमेरु, गणेश।
गगन– आकाश।
गज– हाथी।
गजानन– हाथी का शिर, गणेशजी।
[सुमिरि गजानन कीन पयाना (बा०)]
गजारि– सिंह हाथी का वैरी।
गत– बीता हुआ।
गति– चाल १, मुक्ति २, रस्ता ३, दशा ४, उपाय ५।
[कवि गति अलख १(अ०),
पाई न गति केहि २(उ०),
कछु बिन दिय नहीं गति आछी ३(बा)
भइ गति साँप छछूंदर कैसी ४ (अ०),
हमरे तौ अब ईश गति ५ (अ०)]
गथ– दाम।
गदगद– आनन्द युक्त, पुलकित।
[गदगद वचन कहत महतारी (अ०)]
गन– सेवक, शिव के प्रमथ आदि गण समूह।
गणराऊ– गणेशजी।
गणराज– गणों के राजा गणेशजी।
गनि– गन करके।
गणक– ज्योतिषी।
गणिका– वेश्या।
गनी– बनी १, विचारकी २।
[गनी गरीब १,(बा०),
गनी जनकके गनकन २(बा०)]
गन– गिनें हुये।
गणेश– पार्वती के पुत्र।
गावत– अभिमानी।
[गर्वित भरत मातुबल पीके (अ०)]
गभुवारे– गर्भ के बाल, गुच्छेदार बाल।
गम– गमन।
गम्य– जाने लायक, समझने योग्य।
गय– हाथी।
नयंद–हाथी।
[नव नयंद रघुवंश मणि (अ०)]
गरल– विष।
गरुता– भारीपन।
गरह– ग्रह, गंठिया।
गरहिं– गल जाते हैं।
गलित– गला हुआ।
गवहिं– गंवसे, जाते हैं।
गवासा– कसाई।
[मरु मालव महिदेव गवासा (बा०)]
गहगह– नगारे का शब्द।
गहन– बिकट, घना।
गह्वर– सघन १, घनावन २, शोचयुक्त३
[गहवरहिय कह कोशला (अ०)]
गहरू– देरी।
गाइगोठ– गोशाला।
गाजन– नाश करनेवाला, गर्जन।
गाड– गहडा, चुभन।
गाडर– खस का भेद।
गाढा– घना, आनत्ति।
गात– शरीर।
गाथा– कविता, कहानी।
गाथे– गुंथे।
[मुक्तामणि गाथे (बा०)]
गादुर– चमगीदड।
गाधि– विश्वमित्र के पिता।
गाधिसुवन– विश्वामित्र।
[गाधिसुवन कह हृदय हंसि (बा०)]
गाना– गीत गाना।
गामी– गमन करनेवाला।
गारुडी– विष हरनेवाला, सपेरा।
गालव– ऋषि का नाम।
गालबजाई– बात सुनकर।
[वृथा मरहु कत गाल बजाई (बा०)]
गाहा– कथा १, ग्रहण करनेवाला २।
[रघुपति गुण गाहा १ (बा०)]
गिरा– सरस्वती।
गिरि– पहाड।
गिरिजा– पार्वतीजी।
गिरिनाथ– महादेवजी।
गिरिराज– सुमेरुपर्वत, हिमालय पर्वत।
गिरीश– महादेवजी, हिमालय पर्वत।
गिरिन्दा– सुमेरु पर्वत।
गिलई– निगल जावे।
[तिमिरतरुणतरणिहिसकगिलई (अ०)]
गीध– गृध।
गुंजा – चौंटली।
गुदरत– जानता है, प्रकाश करता है।
गुन– सत्व, रज, तम, डोरा।
गुनहु– विचारो।
[गुनहु लषण कर हम पर रोसू (बा०)]
गुणज्ञ– गुण का जाननेवाला।
गुणातीत– गुण से परे।
गुनि– मन में समझकर।
गुनिय– विचारिये।
गुरु– उपदेश करनेवाला।
गुरुजन– बडे लोग।
[गुरुजन लाज समाज बडि (बा०)]
गुसाई– स्वामी।
गुह– निषाद।
गुहा– पहाड की गुफा।
गुहारी– सहायक, सहायार्थ।
गूढ– छिपा हुआ।
गृध्रराज– जटायु।
गृहादि– गृह आदि लेके।
गृही– गृहस्थ।
[तपसीधनवन्त दरिद्रगृही (उ०)]
गृहीत– पकडा हुआ।
गे– गये।
गेह– घर।
गो– सूर्य, विष, स्वर्ग।
गोई– छिपी हुई।
गोए– छिपे हुए।
गोचर– जो इन्द्रियों द्वारा मालूम हो।
[गोगोचर जहंलगि मनजाई (आ०)]
गोदावरी– नदी विशेष।
गोपद– चहले में गाय का खुर।
गोप्य– छिपाने योग्य।
गोमायु– गीदड।
गोलक– आंख।
गोविन्द– ईश्वर का नाम।
गोसाईं– गुरु, राजा।
गौतम– हनुमान के नाना।
[एक ऋषि का नाम]
गौतमनारी– अहल्या।
गौन–जाना।
[सुनत रामबनगौन (अ०)]
गौर– गोरा।
गौरव– यश, बडाई।
गौरीश– शिव।
गौरोचन– गोलोचन।
गंजन– नाश करनेवाला।
गंजा– नाश किया।
[तोहिं समेत नृपदल मद गंजा (आ०)]
गंभीर– गहरा, शांत, धैर्यवान।
ग्रह– नक्षत्र।
ग्रहदशा– ग्रहों की दशा।
[जनु ग्रहदशा दुसह दुखदाई (अ०)]
ग्रहै– पकडे।
ग्राम– गाँव, समूह।
ग्राही– इकट्ठा करनेवाला।
ग्रीवा– कण्ठ (गर्दन)
ग्रीषम– गरमी।
ग्रंथ– पोथी।
ग्रंथि – गांठ।
[जड चेतनहि ग्रंथि परिगई (उ०)]

(घ)

घ– घंटा।
घट– हृदय, घडा।
घटज – अगस्त्य ऋषि।
घटव – बनावेंगे।
घटा– समूह, बदली, अन्धेरा।
घटाटोप– अति अन्धकार।
[घटाटोप करि चहुं दिशि घेरी (लं०)]
घटि– कमति, बनाकर।
घटिहि– करैगी, होगी।
घन– बादल, लोहे का घन।
घमोर– एक तरह का कटीला पेड। भड भांड बांस, घमिरा भृगराज।
[वेणुवंश सुत भयसि घमोई (लं०)]
घरनी – स्त्री, घरवाली।
घवरि – गुच्छा, एकत्र होकर।
घाऊ – घात १, चोट २।
[यह सुनि परा निशानन घाउ (बा०)]
घात– धोका।
घातिनि– मारनेवाली।

घालक– मारनेवाला।
घाला– नाश किया।
[चित्रकेतुकर घर उन घाला (बा०)]
घालिके– मारके।
घाली– डाली।
घुनाक्षर– लकडी के घुन से काटी हुई अक्षराकार लकीरे।
घुम्मरहिं– नगारे की आवाज की नकल, घूमते हैं।
[निदारि घनहिं घुम्मरहिं निशाना(बा०)]
घूमति– घूम करके।
घृत– घी।
घ्रान– नाक, गन्धि।

(च)

च– पूर्ण चन्द्रेश्वर।
चक्कवै– चक्रवर्ती राजा।
[ससुर चक्कवै कौशल राऊ (अ०)]
चकित– आश्चर्ययुक्त।
चक्र– पहिया, सुदर्शनचक्र।
चक्रवाक– चकई, चकवा।
चख– आंख।
चतुरंग– चार हिस्सों में बटी हुई सेना यथा- हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल।
चतुरानन– ब्रह्मा।
[चतुरानन पहँ जाहु खगेशा (उ०)]
चपरि– शीघ्र, घुसकर।
चपल– चंचल।
चपेटा– तमाचा।
चर– दूत।
चरकराहिं– तडफड़ाते हैं।
चरणपीठ– खडाऊ।
[चरणपीठ करुणानिधानके (अ०)]
चरम– अंत।
चराचर– चल अचल, चैतन्य जड आदि
चरित– व्यवहार।
चरु– यज्ञ में हवन करने की वस्तु।
चवई– चुवें।
चहुंयुग– चारों युग, यथा- सत्‌युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग।
चाव– आनन्द, प्यार।
चाका– पहिया।
चांकी– दबाकर।
चाख– नीलकण्ठ पक्षी, चखके।
[चार चाख वामदिशि लेई (बा०)]
चाप– धनुष, दाबा।
चापन– दबाना।
चापी– दबाई।
[कुबरी दशन जीभ तब चापी (अ०)]
चामर– चवँर।
चामुंडा– योगिनी का नाम।
चार– दूत, चतुर।
[चार चले तिरहूत (अ०)]
चारि पद– सत्य शौच तप दान चार पैरवाला।
चार अवस्था– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय।
चारि भाँति भोजन– चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय वा लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य
[चारि भाँति भोजन विधि गाई (बा०)]
चारी– चार, चलनेवाला।
चालति– चलाती।
[चालति न भुजवल्ली विलोकति(बा०)]
चारु– सुन्दर।
चाहि– देखकर, इच्छा।
चाही– देखने की इच्छा की।
चिक्करहिं– चिंघार करते हैं।
चिंत– मंन, चित्त।
चितचेता– सावधान हुआ, मन के जाननेवाला।
[पठवन चले भक्त चितचेता (उ०)]
चितव– देखता है।
चिन्तक– चिंता करनेवाला।
चित्रकेतु– राजा का नाम।
चिंतामणि– एक मणि जिसमें से प्रतिदिन कुछ सुवर्ण झरता, वा जो मन में इच्छा करो सो देती है।
[चिन्तामणि किमि उपल दशानन (लं०)]
चितेरा– तसबीर खींचनेवाला।
चिदाकाश– चैतन्य, आनन्दरूप।
चिदानन्द– चैतन्य, आनन्दरूप।
चिराना– बहुत दिन का।
चिरंजीवी– चिरकाल जीनेवाला, मार्कण्डेयऋषि, हनुमान।
चीर– कपडा, चीरकर।
चुनौती– ललकार।
[मनहुँ चुनौती दीन (आ०)]
चुम्बत– चूमता है।
चूडाकरन– मुण्डन।
चूडामणि– शिर का गहना।
चेता– चित्त सावधान हुआ।
चेरा– चाकर।
चेरी– किंकरी।
चोखा– अच्छा।
चोप– उछाह।
चौगान– खेलने का स्थान, गेंद।
[खेलहिं भालु कीश चौगाना (लं०)]
चौतनी– चौगोशी टोपी।
चौथपन– बुढापा।
चौहट – चौराहा।
चंग– पतंग, एक प्रकार का बाजा, हठ।
चंचरीक– भौंरा।
[चंचरीक जिमि चंपकबागा (अ०)]
चंड– तेज, क्रोध।
चंदिनी– चांदनी।
चन्द्रमौलि– शिव।
चन्द्रमामुनि– अत्रि के पुत्र।
चंद्रहास– तलवार।
[चंद्रहास हरु मम परितापा (सुं०)]
चन्द्रिका– चांदनी।

(छ)

छ– निर्मल।
छई– एक रोग जिसमें कलेजे से मुँह के, द्वारा लहू गिरता है, छाँहीं।
छत– फोडा।
[पाके छत जनु लाग अगारा (अ०)]
छति– क्षति, हानि।
छन्न– ढपा, ढकां।
छबि– शोभा, छटा।
छबिगन– शोभा का झुण्ड।
छबीले– सुन्दर।
छमा– (क्षमा)-पृथ्वी, सहन।
छमि– (क्षमि)- सहन करके।
छरे– छटे, अलग।
[छरे छबीले छैल सब (बा०)]
छत्रक– कुकुरमुत्ता।
[तोरौं छत्रक दंड जिमि (बा०)]
छत्रबंधु– क्षत्रिय जाति में नीच।
छाके– उन्मत्त, छके हुए।
छाछी– मठ्ठा।
[चहिय अमी जग जुरै न छाछी (बा०)]
छाजा– शोभित हुआ।
छारा– राख।
छांड़ा– छोड़ दिया।
छिति– (क्षिति) धरती।
छिद्र– छेद, दोष।
छिप्र– जलदी, शीघ्र।
छीजहिं– घटते हैं।
[छीजहिं निशिचर दिन अरु राती (लं०)]
छीना– दुबला।
छीने– काटे।
छीर– दुग्ध।
छुद्र– (क्षुद्र)- छोटा, तुच्छ।
छुधित– (क्षुधित)- भूखा।
छुभे– (क्षुभे)- डरे।
छुहे– चित्रित।
छूछ– खाली।
[ताते परेऊ मनोरथ छूछे (अ०)]
छेका– घेरा।
छेमकरी– एक चिड़िया।
[छेमकरी विशेषी (बा)]
छेमा– (क्षेमा)- सुख, मंगल।
छेत्र– (क्षेत्र)- भूमि, खेल।
छैल– छैला, बांका।
छोनिप– राजा।
छोभा– घबराहट।
[सहज पुनीतमोर मन छोभा (बा०)]
छोहा– प्रीति।
छौना– बच्चा, बालक।

(ज)

ज– शिव।
जग– संसार।
जगजांनी– ब्रह्मा, संसार को उत्पन्न करनेवाला।
जगत्– संसार।
जगदीश– ईश्वर।
जगदंबा– जगत की माता।
जटाजूट– जटा का जूडा।
[जटाजूट बांधी दृढ माथे (लं०)]
जाटिल– जटाधारी, जो सहज ही समझने में न आवे, बटवृक्ष, ब्रह्मचारी।
जठर– पेट।
जठरी– बूढी।
जड़– मूर्ख।
जड़जन्तु– मूर्खजीव।
[जनि जलपसि जड जन्तु कपि (लं०)]
जड़ताई– मूर्खता।
जती– (यति) संन्यासी।
जन– मनुष्य, दास।
[कृपा करहु जन जानि (बा०)]
जनक– पिता, सीताजी के पिता।
जनकौरा– जनकसंबंधी।
[कौशलपतिगति सुनि जनकौरा (अ०)]
जनयित्रि– माता।
जन्मांतर– दूसरा जन्म।
जनि– नहीं, मत, उत्पन्न कर।
जनित– उत्पन्न हुआ।
जनेत– बरात
[पहुँची आज जनेत (बा०)]
जपंति– जपते हैं, स्मरण करते हैं।
जपामि– मैं जपता हूँ।
जम– यमराज, अहिंसा आदि।
जमुना– जमुना नदी।
जमदग्नि– परशुराम के पिता।
जयति– जयशाली।
[जयति राम भ्राता सहित, जाय लक्ष्मण बलवान (लं०)]
जयऊ– जीत लिया।
जयंत – इन्द्र के पुत्र का नाम, जिसने कौआ बनकर सीताजी के चोंच मारी थी
जर– ज्वर।
जरठ– बुढापा।
जरि– जड, जलकर।
जर्जर– झांझर, निर्बल।
जलअलि– जलभौंरा।
जलकुक्कुट– जलमुर्गा।
जलचर– जल में चलने या रहनेवाले मछली आदि जंतु।
[जलचर थलचर नभचर नाना (बा०)]
जलज– कमलफूल।

जलयान– नाव,जहाज।
[सिंधुबिना जलयान]
जलद– बादल।
जलधर– मेघ, बादल।
जलधि– समुद्र।
जलमल- जल का मैल।
जलराशि – समुद्र, जल का समूह।
जलरुह– कमल।
जलविहंग– जलपक्षी।
जलाशय– तालाब।
जलंधर– दैत्य विशेष का नाम।
जल्पक– बोलनेवाला।
जल्पसि– तू बकता है।
[जनि जल्पसि देखब मनुसाई (लं०)]
जल्पहिं– बकवाद करते हैं।
जवनिका– परदा।
जश– (यश) प्रशंसा।
जशोमति– (यशोमति) श्रीकृष्ण की माता
जेहि– जिसे।
जाई– पैदा हुई।
जाग– (याग) यज्ञ, जागी।
[लगे करन बड़याग (बा०)]
जागी– जाहिर हुई, नींद ले उठि।
जाचक– (याचक) मांगनेवाला।
जाचत – (याचत) मांगता।
जाचा– (याचा) मांगा।
जातकर्म–पुत्रके जन्म समय नान्दीश्राद्ध आदि वैदिक तथा लौकिक रीति
[जातकर्म सब कीन (बा०)]
जातना– (यातना) पीड़ा।
जातरूप– सोना।
जातुधान– (यातुधान) राक्षस।
जान– ज्ञान।
जानु– घुटना।
[जानु टेक कपि भूमि न परेऊ]
जापक– जप करनेवाला।
जाम– (याम)
जामाता– जमाई।
जामिक– (यामिक) पहरुआ।
जामिनी– (यामिनी) रात।
जाय– वृथा, चला जाय।
जाया– स्त्री।
जारा– जलाया।
जाल– समूह, झरोखा।
जावक– (यावक) महाबर।
[जावकयुत पद कमल सुहाये (बा०)]
जाबालि– एक ऋषि का नाम।
जिनस– वस्तु।
जिमि– जैसे।
जियाये– पाले।
[शुक सारिक जानकी जियाये (बा०)]
जीव– जीते रहो।
जीवन– आजीविका, जीना।
जीह– जीभ।
जुग– (युग) दो, जोड़ा, सत्ययुगादि चार युग।
जुगल– (युगल) दोनों।
जुगविधि– (जुग) दोनों प्रकार।
जुझारा– लड़नेवाला।
[सब सुभट जुझारा (लं०)]
जुटत– मिलते हैं, लड़ते हैं।
जुडाने– ठंड भये।
[राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने (बा०)]
जुवती– (युवती) जंवान औरत।
जुवराज– (युव) कुँवर, राज्याधिकारी।
जुवा– (युवा) जवान, तरुण।
जुवानू– जवान पुरुष।
जुवारा– जुआ खेलनेवाला।
जूझा– लडा, युद्ध किया।
[हमहु आजु लगि कीन न जुझा(लं, क्षे)]
जूथ– (यूथ) समूह।
जूथफ– (यूथप) सेनापति।
जून– समय, पुराना।
जुनी– इकट्ठा करके, सरदी।
जूहा– (यूहा) यूथ।
जेई– भोजन करके।
जोईं– देख।
जोऊ– देखो, जो।
जोग– (योग) अष्टांग, मिलाप।
जोगवत–परेखत, खबरदार करते हुये।
जोजन– (योजन) चार कोस।
जोती– प्रकाश, उजेला।
[श्रीगुरु पदनख मणिग जोती (बा०)]
जोनी– (योनि) कारण, जाति, गुह्यस्थान।
जोवा– देखा।
जोहारे– प्रणाम किया।
[गवहिं जुहार जुहार (अ०)]
जोही– देख करके।
जंगम– चलने वाला।
जंतु– छोटे जीव।
जंत्रित– (यंत्रित) ताला दिये हुये, बंधे हुये।
जंत्री– (यंत्री) वश किया, तार खैचने का यन्त्र।
[भरतभक्ति सबकी मति जंत्री (अ०)]
जंबु– गीदड़।
जंबुक– गीदड़।
ज्याये– पाले।

(झ)

झ– वृहस्पति।
झँगुलिया– बालकों का कुरता।
झटिति– जलदी।
झषकेतु– कामदेव, मीनकेतु।
झारी – समूह झाड़ी लोटा।
[गनहिं मृत्युवश शठ झारी (आ०)]
झाखा– झंखना।
झोटिंग– केश पकड़कर लटकना।
झेई– आंख के आगे अंधेरा।
झंपेउ– छिप गया।
[झंपेउ भानु कहहिं कुविचारी (बा०)]
झोंटी– चोटी।

(ट)

ट– शब्द।
टकोर– टंकार।
[लक्ष्मण चाप टकोर सुनि (लं०)]
टिट्टिभि– टिटिहरी।
टेई– टेयके।
टेक– हट, प्रतिज्ञा।
टेकी– हट करके, निश्चय करके।
टेच– स्वभाव, बान।
टेर– पुकार।

(ठ)

ठ– महादेव।
ठकुर– ठाकुर।
ठट्ठा– समूह।
[देखेऊ आय कपिनके ठट्ठा (लं०)]
ठिठुकि– अटककर।
ठयठ– ठाना।
ठवनि– चाल, उठने की रीति।
[सिंहठवनि इतउत चितै (लं०)]
ठाट– रचना।
ठाना– किया, दृढ विचार किया।
ठाहरू– स्थान।
ठीका – निश्चय, उचित।
[असविचारि मन दीन्हेउ टीका (अ०)]
ठाऊं– जगह, घर।

(ड)

ड– महादेव।
डगै– हिले।
डमरुआ– पेट का बढना, डौंलसा।
डसि– डसके, काटके।
डहकि– ठगके।
[डहकि डहकि परके सब काहू (बा०)]
डाढे– जलै।
डाबर– गडहा।
डासन– बिछौना।
डासी– बिछाकर।
डिंडिमी– एक प्रकार का बाजा।
डिठा– देखा।
[पितुवैभवविलास मैं डीठा (अ०)]
डीठी– दृष्टि, नजर।
डोल– डोलना, कुए में पानी भरने का पात्र।
डोली– गई, चलायमान हुई।

(ढ)

ढ– ध्वनि।
ढरी– खोजी गई।
ढनमनी– ढुलकी, लुढक गई।
[ढरनी ढनमनी (लं०)]
ढाबर– मैला।
[भूमि परत भा ढाबर पानी (कि०)]
ढिग– समीप।
ढेक– सारसपक्षी।
ढोटा– बेटा।
ढोर– ढोलक।

(त)

त– रत्न।
तकि– जानके, ताकके।
तज– छोडके, औषधिविशेष।
तर्जनी– अँगूठे के पास की अंगुली, पहिली अंगुली।
तज्ज्ञ– ईश्वर को जाननेवाला।
तट– किनारा।
तड़ाग– तालाब।
तडित– बिजली।
[तड़ितविनिंदक पीत पट (बा०)]
तत्पर– सुचेत, लगा हुआ।
तत्त्व– सारवस्तु।
तथा– तैसे।
तथापि– तो भी।
तदपि– तब भी।
तन– ओर।
तनकाऊ– थोड़ा भी।
तनय– बेटा।
तनु – शरीर।
तनुजा– बेटी।
[नहीं मानत कौउ अनुजा तनुजा (उ०)]
तनोतु– विस्तार करे।
तनोरुह– शरीर का रोम वा रोंवा।
तप– पुजा।
तपोधन– तपस्वी, जिसका तपस्या ही धन हो।
तम– अंधेरा, अत्यंत।
तमकि– तमक के, त्यूरी बदल के
[तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं (बा०)]
तमारि– सूर्य।
तमा–वृक्षविशेष, जिसकी आडू की सी पत्ती और लसौड़े के सा फल होता है।
तमी– रात।
तमीचर– राक्षस, अंधेरे में घूमनेवाले।
तरक– विचार (तर्क)।
तरकेउ– कूदा, तड़का।
[तरकेउ पयनतय बल भारी (सुं०)]

तरजत– तड़पता है।
तरज– तड़प।
तरजन– झिझकारना।
तरनतारन– जो आप तरे और दूसरे को तारे।
तरनी– नौका १, सूर्य २।
[तरनिउं मुनिधरनी होइ जाई (अ०), भयहु प्रकाश तरनि सम (लं०)]
तरपहिं– तड़पते हैं।
तरपन– तृप्त करना, मन्त्र द्वारा पितरों को जल देना।
तरल– पतला, चंचल।
तरु– वृक्ष।
तरुण– जवान, नवीन।
तरुणी– जवान औरत।
तरुणाई– जवानी।
तरेरे– घूरके, बड़ी-बड़ी आंखें निकाल घूरे नेत्र से डाटा।
[नयन तरेरे राम (बा०)]
तरंग– लहर।
तरंगी– मौजी।
तरंगिन– नदी।
तल्प– शय्या, बिछौना।
ताकि– देखके।
ताग– डोरा।
ताजी– अश्वविशेष।
ताटंक– तरकी, करनफूल।
[मंदोदरी श्रवणताटंका (लं०)]
ताडत– पीटता है।
तात– पुत्र, पिता, भाई, सखा, प्यारा, गरम।
तापस– तपस्वी।
ताये– तपे।
तामरस– कमल।
[श्याम तामरस दाम शरीरं (आ०)]
तामस– क्रोध, तमोगुणी।
तारक– मन्त्र, रामनाम, दैत्यविशेष, तारकासुर।
तारा– बालि की स्त्री का नाम, तार दिया।
ताल– ताड़ का पेड़।
तालू– तालवृक्ष, मुख के भीतर जिह्वा के ऊपर का भाग।
तिमिर– अंधकार।
तिमुहानी– जहां तीन नदी या रास्ता मिले हों।
[त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी (बा०)]
तिय– स्त्री।
तिरहुति– मिथिला देश।
तिलक– टीका।
तिष्ठे– रहे।
तिहुँलोक– तीनों लोक।
तीछे– तीक्ष्ण।

तीन काल– भूत, भविष्य, वर्तमान होगा, हो गया है।
[त्रिभुवन तीनि काल जगमाहीं (अ०)]
तीरथपति – प्रयाग।
तीरथराज– प्रयाग।
तीव्र– तीक्ष्ण।
तुभ्यं– तुम्हारे लिये।
तुरंग– घोडा।
[तुरंग उठाव कोपि रघुनायक (लं०)]
तुराई– तोसक, जलदी से, तुड़ाकर।
[प्रियसेज तुराई (अ०)]
तुला– तराजू।
तुसार– पाला, बरफ।
तुहिन– पाला, बरफ।
तूणीर– तरकस, जिसमें तीर रहता है।
तूरी– समान।
तूल– रुई।
[कहो तूल केहि लेखे माही (बा०)]
तूबडी– तूमड़ी, सर्पवालों का बाजा।
तृजन– तिर्यच, चींटी आदि जीव।
तृण– तिनका।
तृषित– प्यासा।
ते– वे, तेरे लिये, तेरा।
तेज– प्रताप।
तति– वे, बहुत।
तोप्यो – तोपा।
[वरषि शस्त्र रघुपति रथ तोपा (लं०)]
तोमर– शस्त्रविशेष।
तोयनिधि– समुद्र, जल का बडा खजाना
तोरण– बन्दनवार।
तोशावति– वेगवाली।
[तुरावति वारा (अ०)]
तोष– संतोष।
तोषये– प्रसन्नता के लिये।
त्वचा– छिलका।
त्वदंध्रि– तुम्हारा चरण।
[त्वदंध्रिमूल ये नराः]
त्वदीय– तुम्हारा।
त्रयरेखा– तीन लकीर।
[उदर त्रय रेखा (बा०)]
त्रसित– डरे हुए।
त्राता– रक्षक, रक्षा करनेवाला।
त्रातु– रक्षा करो।
[त्रातु सदा नो भवखग बाज (अ०)]
त्रास– डर।
त्रासक– भयंकर,जिसे देखकर डर लगे
[त्रिविध ताप त्रासक विमुहानी (बा०)]
त्राहि–रक्षा करो।
[त्राहि त्राहि रघुवीर गुसाईं (लं०)]
त्रिकाल– भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल
त्रिधा– तीन प्रकार से।

त्रिपुर– त्रिपुरासुर।
त्रिपुण्ड्र–तीन रेखा का तिलक।
[भाल विशाल त्रिपुण्ड्र बिराजा (बा०)]
त्रिविक्रम– विराट्‌रूप जो पृथ्वीनापने के समय धारण किया, बावन।
त्रिविध– मन, क्रम,वचन वयार के संग में शीतल मन्द सुगंध।
त्रिय– स्त्री।
त्रोण– तरकश।

(थ)

थ– पर्वत।
थकित– थका हुआ।
थल– स्थल।
थलचर– थलचारी, पृथ्वीपर घूमनेवाले
थाना– स्थान, ठिकाना।
थिति– ठहराव।
थोरा– अचल, तनक।

(द)

द– दाता।
दक्ष–प्रजापति, चतुर।
[दक्ष सकलनिज सुता बुलाई]
दक्षसुत– दक्षप्रजापति के पुत्र।
दक्षसुता– सती, महादेवजी की स्त्री।
दत्त– दिया गया।
दधि– दही।
दधीचि– एक ऋषि का नाम जिनकी हड्डी से इन्द्र का वज्र बना।
दनुज– दैत्य, दानव।
दम– इन्द्रियों को विषय से रोकना।
दमक– चमक।
दमनीय– दमन के योग्य, तोडनेवाला।
दमन– नाश करनेवाला।
दम्पत्ति– स्त्री पुरुष।
[बल बिलोकि दम्पति अनुरागे (आ०)]
दर– शंख, छेद स्थान।
दरबार– सभा, दरवाजा।
[गयो सभादरबार रिपु, सुमरि रामपदकंज(लं०)]
दरश– दर्शन।
दरशी– देखनेवाला।
दर्पा– अभिमान।
दर्भ– कुशा।
[बैठे कपि सब दर्भ डसाई (कि०)]
दल– नाशकर, पत्ता, सेना।
दलकि– दहलकर।
[दलकि उठिसुनि बचन कठोरा।(अ०)]
दलमले– पीस डाले।
दलन– नाश करना।
[अरिदल दलन चले रघुनाथा (लं०)]
दलित– टूटा हुआ।
दव– बन की आग।

दवारि– दावानल।
दशन– दांत।
[दुइ दुइ दशन अधर अरुणारे (बा०)]
दहन– आग।
दा– देनेवाला।
दाडिम– अनार।
दातार– देनेवाला।
[राजन राउर नामयश, सब अभिमत दातार (बा०)]
दादुर– मेंडक।
दाप– गर्व।
दाम– रस्सी, रुपया।
[ज्वालसम दाम (आ०), लहै न कौडीदाम]
दामिन– बिजली।
दायक– देनेवाले।
दारन– फाड़ना।
दारव– नाश करो।
दारा– स्त्री।
दारिद– दरिद्रता।
दारिका– कन्या।
दारु– हलदी, लकड़ी।
[उमादारु योषितकी नाईं (कि०)]
दारुण– घोर।
दारुनारी– कठपुतली।
[शारद दारु नारिसम स्वामी (आ०)]
दावन– दमन करनेवाला, पल्ला।
दाह– जलन।
दियासे– दीपक के समान।
दिगंबर– वस्त्रहीन, नंगा।
दितिसुत– हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु आदि दैत्यमात्र।
दिनकर– सूर्य।
दिनदानी–अतिउदार, दीनों को देनेवाला
[प्रणवउं दीनबन्धु दीनदानी (बा०)]
दिनमानि– सूर्य।
दिनेश– सूर्य।
दिशिप– इन्द्र, कुबेर आदिक दिग्पाल, दिशाओं के अधिपति।
दिवस– दिन।
दिव्यतनु–दिव्यदेह जरामरण रहित शरीर
दिव्यदृष्टि– अलौकिक ज्ञान, हृदय की आंखें।
दिश– दिशा।
दिशि– दिशा।
दिशिराज– इन्द्र आदि।
दीक्षा– मन्त्रोपदेश।
दीनता– गरीबी।
दीप्ति– प्रकाश।
दीसा– देखा।
[पितुवैभवविलास मैं दीसा (अ०)]
दुकूल– रेशमी चिकना और बारीक कपडा।

दुर्ग– गढ।
दुर्गम– दुर्लभ, दुष्प्राप्य।
दुर्घट– जाने योग्य नहीं।
दुनी– दुनिया।
[कविवृन्द उदार दुनी न सुनी (उ०)]
दुर्वचन– दुष्टवचन, गाली, खोटी बोली
दुर्वाद– बुरी बोली।
दुर्वासा– एक ऋषि का नाम।
दुर्वासस – बुरे कपड़ेवाला।
दुरंत– अत्यंत कष्टदायक।
दुरतिक्रम– दुस्तर, कठिनता से पार होने योग्य।
दुराधर्ष– जो शत्रु से नहीं दबता।
दुराराध्य– दुःख से सेवन के योग्य।
[दुराराध्य पै अहहिं महेशू (बा०)]
दुराव– छिपाना।
दुरावा– छिपाया।
दुरित– पाप।
दुसह– जो सहने योग्य नहीं।
दुस्सह– जो सहने योग्य नहीं।
दुष्टजतु– सर्प।
दुहाई– सौगन्ध, शरण की पुकार।
दुहि– कामना, साग्रहण करके।
दुन्दुभि– नगारा, एक दैत्य का नाम।
दूधमुख– बालक, दूध के दांतवाला।
[सूधदूध सुख करिय न काहू (बा०)]
दूषण– दोष।
दृग– आँख।
दृगअंचल– पलक।
[जनु तजेउ दृगंचल (बा०)]
देव– देओ, देवता।
देवक– देवता, देवका।
देवतरु– कल्पवृक्ष।
देवधुनि– गंगा, आकाशवाणी।
देवऋषि– नारदादि।
देवसर– मानसरोवरादि।
देहिं– देते हैं, देंगे।
द्वैत– भेदबुद्धि।
[क्रोध कि द्वैतक बुद्धि बिनु (उ०)]
दोष– काम-क्रोधादि दूषण।
दण्ड– लकड़ी, राजदण्ड, छड़ी।
दण्डक– राजा, छन्दविशेष, दण्डकारण्य
दंभ– पाखण्ड, झूठा व्यवहार।
दंस– वनमाछी।
द्रवै– पिघलै।
द्रुम – पेड़।
द्रव्य– वस्तु।
द्वंद्व– सुख दुःख, भला बुरा, राग द्वेष।
द्वादश– बारह।
[द्वादशाक्षर मंत्र वर (बा०)]
द्विजराजू– ब्राह्मणश्रेष्ठ, चन्द्रमा।

(ध)

ध– धनी।
धन– द्रव्य।
धनद– कुबेर, धन का देनेवाला।
धनिक– धनी।
धनी– स्वामी, धनवान।
धनु– धनुष।
धनेश– कुबेर।
धनेशा– कुबेर।
धन्या– भाग्यवती स्त्री।
[गोदावरि धन्या (अ०)]
धन्वी– धनुषधारी, छोटा धनुष्य।
धर्म्मध्वज– पाषण्डी, जिसके धर्म की ध्वजा फहरती हो।
धर– शरीर, पकड़।
धरणी– पृथ्वी।
धरषि– दबाकर।
धरा– भूमि।
धरासुर– ब्राह्मण।
धवल– सफेद।
[धवल धाम मणिजटित (बा०)]
धाता– ब्रह्मा।
धाम– घर, वैकुण्ठादि, प्रकाश।
धारि – सेना।
[जमकर धारि]
धारी– धारनेवाला।
धावन– दूत।
[धावन पहुंचे आय (बा०)]
धिग– धिक्कार।
धुआं– धूम।
धुनि– (ध्वनि) शब्द।
धुर– बोझा, सीमा।
धुरीन– बोझा धरनेवाला।
धूति– ठण करके।
धूम्रकेतु– अग्नि, केतु ग्रह।
धृति– धीरता।
धेनु– गाय।
धेनुमति– गोमती नदी।
[पहुँचे जाय धेनुमति तीरा (बा०)]
धोरी–मुख्य १, बैल २, कपिला गौ ३, सफेद ४, धुरी का उठानेवाला।
धंधक– धंधा।
[धिक धर्मध्वज धंधक धोरी (बा०)]
धौं– किया तो, क्या जाने।
[किधौं वरीआता (बा०)]
ध्रुव–राजा उत्तानपाद के पुत्र१, अचल२

(न)

न– नहीं।
नई– नदी, नवीन, नम्र हुई।
नए– झुके।
नकुल– शंकरन्योला, राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई का नाम।
नक्र– नाका, मगर।
नटत– नाचता है।
नतरु– नहीं तो।
नति– प्रणाम, नम्रता।
नफीरी– सहनाई।
नभग– पक्षी।
[नभगनाथ पर प्रीति न थोरी (उ०)]
नभगेश– गरुड, पक्षिराज।
नभचर– पक्षी आदि।
नमत– नमस्कार करता है।
नमामहे– हम लोग प्रणाम करते हैं।
[संयुक्तशक्ति नमामहे (उ०)]
नमामि– मैं प्रणाम करता हूँ।
नमित– नया हुआ।
नम्र– झुका।
नय– नीति।
नयन– आंख।
नयनपट– पलक।
नरहरि– नरसिंहजी।
[नरहरि किये प्रगट प्रह्लादा (बा०)]
नर्तक– नाचनेवाला।
नर्तकी– नाचनेवाली।
नालिन– कमल।
नर्मद– सुख देनेवाला।
नलिनि– कमलिनी।
नव– नया, नौ, ९।
नवजल– वर्षा का पानी।
नवधा– नवप्रकार।
नवनीता–मक्खन।
[काढि नवनीता (उ०)]
नवभक्ति– नव प्रकार की भक्ति अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन।
नवरस– श्रृंगार, बीर, करुणा, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र, शान्त, किसी मत में वात्सल्य।
नवल– नवा।
नवमास– नव और सात अर्थात् सोलह १६ जाबक, केश सुधारना, मांग में सेंदुर भाल, अंग में अरगजा। आदि (सोलह श्रृंगार की वस्तु भी हैं।)
नस– नाड़ी।
नसाय– नाश हो।
नशावा– नास किया।
नश्वर– नाश होनेवाला।
नखत– तारें।
नहरुआ– एक प्रकार की बीमारी।
नाहरू– चाम का टुकडा, व्याघ्र।
[नाहरू लागी (अ०)]
नाई– नवाकर, डालकर।
नाई– समान।
नाऊँ– नाम।
नाक– स्वर्ग, नासिका।
नाकनटी– अप्सरा।
[नाकनटी नाचहि करि गाना(बा०)]
नाग– हाथी १, साँप २।
[सुमनमाल जिमि कंठते गिरत न जानैं नाग (कि०) १, जनु छूटहिं नागा (लं०) २]
नागर– चतुर।
नागरिपु– सिंह।
नाटी– नष्ट हुई, बुरी, छोटी।
नाद– शब्द।
नाना– बहुत।
नानाकर– अनेक आकार।
नामी– नामवाला।
नामानि– नाम का समूह।
नायक– स्वामी।
नायो– झुकाया।
[कहिं शिव नायउ माथ (बा०)]
नारकी– पापी, नरक का अधिकारी।
नाराच– तीर।
नाल– डंडी।
[जिमि गज पंकज नाल (बा०)]
नावरि– नाव घुमाना।
नाह– पति।
निकर– समूह।
निकाई– भलाई।
निकाम– बहुत, कामनारहित।
निकाय– झुंड।
निकेत– घर।
निकेतन– घरों में।
निकेवल– एक ही।
निकंद– नाश।
निकन्दन–नाश करनेवाला।
[असुरसैनसम नरक निकंदनि (बा०)]
निगम– वेद।
निगूढा– अतिगुप्त।
निग्रह– क्रोध, दंड।
निघटत– घटता है।
निज– अपना।
निजगति– अपनी गति। [मुक्ति]
निजतंत्र– स्वेच्छाचारी।
निजधर्म्म– अपना धर्म।
निजानंद– ब्रह्मानन्द।
निजसुख– अपना सुख।
निजसंधि– अपना छिद्र।
नित– सदा।
नितम्ब– कटि के पीछे का हिस्सा वा चूतड़, पर्वत का मध्यभाग।
नित्य– सदा।
निदान– अन्तकरण, आदिकारण।
निदरि– निरादर करके।
निधन– मरण।
निधान– आधार, कोष।

निधि– बहुत धन।
निपट– बहुत।
निपाता– नाश किया।
निपुणाई– चतुराई।
[जनु विरंचि सब निज निपुणाई (बा०)]
निःपापा– बिनापाप।
निबिड– घना।
निवेरी– निबटाय दी।
निवेही– निर्वाह की।
निमुकि– छुटाकर, झुककर।
[निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी(सुं)]
निवृत्ति– संसार का त्याग।
निभ– सदृश।
निमि– एक राजा का नाम।
निमेष– पलक का गिरना, जितने काल में एक दफे पलक गिरता है।
नियराई– निकट पहुंचे।
नियोग– आज्ञा।
निरत– लगा हुआ।
निरबहई– निर्वाह करे।
निरबह– निवहा।
निरवाह– निर्वाह, समाई।
निरखि– भलीभाँति देखकर।
निरस– बिना स्वाद का।
निर्गता– निकली हुई।
निर्झर– झरना।
निर्दम्भ– अहंकार रहित।
निर्द्वन्द्व– बेखटके।
निर्लेप– सबसे अलग।
[जे विरंचि निरलेप उपाये (बा०)]
निर्विकल्प– अभेद।
निर्वहा– बीत गया। [निवाह]
निर्वाण– मुक्ति।
निर्भर– पूर्ण, अतिशय।
निर्मयउ– बनाया।
निर्मूल– मूल रहित।
निरामिष– मांस बिना।
निरीश– स्वामी रहित।
निरुपाधि– उपाधिरहित।
निरुवारे– खोलने से।
निरूपन– बिस्तार से वर्णन।
[ब्रह्मनिरूपन धर्मविधि, वर्णहिं तत्त्व विभाग (बा०)]
निरंकुश– निर्भय, निडर।
निरंबु– जलहीन।
निरंजन– अविद्यारहित, रागरहित, मायारहित।
निराचार– आचाररहित।
निवारक– दूर करनेवाला।
निवारण– दूर करना।
निवास– घर, रहने का स्थान।
निवेदित– अर्पण किया।
निषाद– मल्लाह।

निषंग – तरकश।
[कटि निषंग धनु हाथ (लं०)]
निकेबल– अकेला।
निसरी– निकली।
निसागत– रात आये वा रात गयी।
निसाना– नगारा, झंडा। [लक्ष्य]
निशि– रात।
निशिचर– राक्षस।
निशित – तीखा।
निसेनी– सीढी।
[जनु सुरलोक निसेनी लाई (लं०, क्षे०)]
निसेस– पूरा।
निसोत– शुद्ध, केवल, खालिस।
निहारा– देखा।
निहार– पाला, देखकर।
निहोर– विनती कर।
[सखा निहोरौ तोहि (लं०)]
नीक– अच्छा।
नीच– छोटी जात।
नीड– घोलका।
नीर– पानी।
नीरज– कमल, जल से उत्पन्न हुआ।
निरधर– बादल।
नील – श्याम रंग।
नीलकण्ठ– पक्षी विशेष, शिवजी।
[नीलकण्ठ लावण्यनिधि, सोह भाल विधु बाल (बा०)]
नीलोपल– नीलमणि।
नेइँ– जड़।
नेऊ– थोड़ासा।
नेग– पुरोहित आदिकों का कर।
नेति– नहीं ऐसा, नहीं इतना।
[नेति नेति कहि जासु गुण, करहिं निरन्तर गान (बा०)]
नेपथ्य– शृङ्गार, घर, मार्ग।
नेम– संतोष, प्रतिज्ञा, आधार।
नैहर– स्त्री के माता-पिता का घर।
नोई– दुहने केसमय जिस रस्सी से गाय के पैर बांधते हैं।
नौमि– मैं स्तुति करता हूं।
नंदिनी– आनन्द देनेवाली, लडकी।
नांदीमुख– एक श्राद्ध जो बालक के जन्मसमय किया जाता है।
[तब नांदीमुख श्राद्ध करि (बा०)]

(प)

पगु– पाँव।
पटल– समूह।
पटतर– उपमा।
पट– कपड़ा।
पटु– चतुर।
पटोरे– रेशमी कपड़े।
पटली– पंगति।

पचि– पच्ची, घुसकर।
पताका– ध्वजा, छोटी झंडी।
पति– राजा, स्वामी, लज्जा।
पतिदेवता – पतिरूप देवता, पतिव्रता।
[पतिदेवता सुतीयमहं, मातु प्रथम तव रेख (बा०)]
पतिलोक– हिमाचल, भर्ता का लोक, गौतम ऋषि का निवास।
पतंग– सूर्य१, क्षुद्रजीव २।
[कौतुक देख पतंग भुलाना १ (बा०), होहिं रामसर अनलमहं, जनि कुल सहित पतंग]
पतति– गिरते हैं।
पत्र– चिट्ठी, पत्ता।
पथिक– बटोही।
पंथ– मार्ग।
पद– पांव, अधिकार, भजन।
पदचर– पैदल।
पदज– पांव की, अंगुरी।
पदचारी– प्यादे।
पदत्राण– जूता।
[नहिं पदत्रान शीश नहिं छाया (अ०)]
पदपीटा– खडाऊं।
पदाति– प्यादे।
पदादपि– पद से भी।
[पाय सुरदुर्लभ पदादपि (उ०)]
पदारथ– सब चीज।
पदिक– जडाऊ चौकी, हृदयपर लटकाकर पहरने का भूषण।
पदुम– कमल, संख्या विशेष।
पदुमराग – लालमणि।
पन– प्रतिज्ञा १, अवस्था २।
[कीनकवनपन सुनहु कृपाला (बा०)१ चौथे पनहिं जाय नृप कानन (लं०)२]
पनव– ढौल।
पनस– कटहर।
पनिघट– पानी भरने का स्थान या घाट
पय– दूध, पानी।
पयद– घन १, बादल २।
पयनिधि– क्षीरसमुद्र।
पयाना– यात्रा, गाना।
पयोधि– समुद्र।
पयोनिधि– समुद्र।
पर– परे।
परछिद्र– पराये का दोष।
परत्र– परलोक।
परधाना– प्रधान।
परना– पत्ता।
परब– पर्व, गांठ।
परभा– बहुत शोभा।
[बैठे फटिक शिला परभाधर (आ०)]
परम– बडा, अति।
परमिति– मर्य्यादा।

परमान–यथार्थ, नियम, निश्चय का हेतु
परमारथ– तत्व, धर्म।
[रीति नीति परमारथ स्वारथ (अ०)]
परस– छूकर।
परसि– छू करके।
परशु– फरसा।
परशुधर– परशुराम,फरसा धारण करनेवाले।
पराई– भागी, दूसरे की।
परागा– फूल की रज।
[वंदौ गुरुपद पदुम परागा (बा०)]
पराभव– निरादर १, प्रलय २।
[भवभव विभव पराभव कारिणि]
परावर– ब्रह्मादि और मनुष्यादि।
परि– अति, चारों ओर।
परिकर– कमर।
[परिकर बांधि उठे अकुलाई (बा०)]
परिघ– मूशलाकार, शस्त्र विशेष।
परिचर्चा– सेवा।
परिचारक– सेवक।
परिचारिका– दासी।
परिछिन्न– घेरा गया।
परिताप– दुःख।
[मिटहु तात जनक परितापू (बा०)]
परितापी– दुःख देनेवाला।
परितोष– संतोष।
परित्राता– रक्षक।
परिधान– पहिरावा।
परिणाम– अन्तफल।
परिपाका– भलीभाँति पकाना।
[तसफल देहुं उन्हहिं परिपाका (अ०)]
परिपाटी– परम्परा की रीति।
परिहरहीं– छोडते हैं।
परिहरि– छोड करके।
परिहास–व्यंगवचन के साथ निंदा, हँसी
[खलपरिहास होइ हित मोरा (बा०)]
परुष– कठोर।
परे– परलोक में, पीछे।
परेश– परमेश्वर, परलोक का स्वामी
पलोटत– धीरे से पाँव दाबता है।
[पांव पलोटत भाय (बा०)]
पल्लव– नया पत्ता।
पल्लवित– रोमांचित १, नये पत्ते के साथ २।
[पुलक पल्लवित देह(बा०)]
पवन– वायु।
पवारे– डाल दिये, मारे।
[बाण रघुवीर पवारे (लं०)]
पवि–वज्र।
[पविते कठिन विशेष (अ०)]
पश्यंति– देखते हैं।
पश्यामि– मैं देखता हूं।
पखाउज– मृदंग।

पखारे– धोये ।
पखवारा– पन्द्रह दिन ।
पसाऊ– प्रसन्नता ।
पायक– पियादा ।
[जाके हनूमानसे पायक (लं०)]
पाक– रसोई, एक असुर का नाम ।
पाकरिपु– इन्द्र, पाक दैत्य का शत्रु ।
पाकी– पक्की ।
पागे– खावे ।
पाट– रेशम ।
पाटमहिषी– पटरानी ।
[जनक पाटमहिषी जब आयी (बा०)]
पाटल– सफेद, लाल मिला रंग वा पाढल ।
पाटे– पाट दिया ।
[ते दिशि विदिश गगनमहि पाटे (लं०)]
पाठ– संस्था ।
पाठक– पढानेवाला ।
पाठीन– पठिना नाम की मछली ।
[मीन पीनपाठीन पुराने (अ०)]
पातक– पाप ।
पात्र– बरतन, योग्य ।
पाथ – जल, मार्ग ।
पाथोज– कमल ।
पाथोद– मेघ, जल को देनेवाला ।
पायोधि– समुद्र ।
[कौतुक ही पायोधि बंधाये (लं०)]
पादप– वृक्ष ।
पान– पीना ।
पानि– हाथ ।
पायस– खीर ।
पारथिव– मट्टी का शिवलिंग, राजा
पारस– एक पत्थर जिसके स्पर्श से धातुमात्र सोना हो जाता है ।
[पारसपरशि कुधातु सहाई (बा०)]
पारहिं– पाते हैं, पूरा करते हैं ।
पारा– गिराया, समर्थ, पार ।
पारावत– कबूतर ।
पाले– आधीन किये, पोषण किया ।
पावक– अग्नि ।
[पावकमय शशि प्रगट न आगी (सुं०)]
पावन– पवित्र ।
पावस– वर्षाऋतु, बरसात ।
पाश– फांसी ।
पाहन– पत्थर ।
[पाहनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ (अ०)]
पाहुन– अतिथि ।
पांवर– नीच ।
पांवरी– खड़ाऊं ।
[प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्ही (अ०)]
पांवड़े– पाव के तले बिछाने की वस्तु
[देत पांवड़े अर्घ्य सुहाये (अ०)]
पाहि– रक्षा करो ।

पाहीं– समीप ।
पिक– कोयल ।
पिनाक– महादेवजी का धनुष्य ।
पिपीलिका– चींटी ।
पिरीते– प्यारे ।
[समय पाय रिपु होत पिरीते (अ०)]
पिरोजा– पीले रंग की मणि ।
पिसुन– चुगल ।
पी– पिव, पति ।
पीठ– आसन, पृष्ठभाग ।
पीन– मोटा ।
पीयूष– अमृत ।
पीवर– मोटा ।
पुट– दोना ।
पुटी– कोपीत ।
पुनी– पवित्र ।
पुर– नगर ।
पुरट– सोना ।
[धवल धाम मणि पुरट (बा०)]
पुरान–पुराण, भागवतादि अठारह पुराण
पुराकृत– पहिले का किया हुआ ।
[पुण्य पुराकृत भूरि (बा०)]
पुरारि– शिव, महादेव ।
पुरुष– मनुष्य ।
पुरोडास– यज्ञभाग ।
[पुरोडास यह रासन खाबा (अ०)]
पुरोधा– पुरोहित ।
पुरन्दर– इन्द्र ।
पुलक– रोमांच ।
पुलस्त– एक ऋषि का नाम जिनके वंश में रावण ने जन्म लिया ।
पुंज– ढेर ।
पुहमि– भूमि ।
पुङ्गव– श्रेष्ठ, बडा ।
[व्यास आदि कविपुंगव नाना (बा०)]
पुग– सुपारी ।
पूजनीय– पूजा के योग्य ।
पूजिहि– पूर्ण होगा ।
पूजी– भरपूर हुई ।
पूतरी– काष्ठ की पुतरी, आंख की पुतरी
[करहुँ तोहिं चख पूतरी आली (अ०)]
पूप– मालपुआ ।
[चलहुं भाजि तब पूप दिखावहिं (उ०)]
पूरे– पूरा ।
पूरुष– बडे, लोग ।
पूवन– सूर्य ।
पृथक– अलग ।
पृथुराज– एक राजा का नाम ।
पृष्ठ– पीठ ।
पेलिहहिं– त्याग करेंगे ।
पेखन– देखना ।
पेषिय– देखो ।
पैसार– प्रवेश ।

[नगर करौं पैसार (सुं०)]
पोच– नीच ।
पोत– जहाज, बालक
[आय गये जिमि पोत (उ०)]
पोतक– बचा ।
पोषत– पुष्ट करता है ।
पोषा– पाला ।
पंकरुह– कमल ।
पंगु– लूला ।
पंचकवरि– पंच ग्रास ।
[पंचकबरि करिजीमन लागे (बा०)]
पंचदश– पंद्रह ।
[नैन पंचदश अतिप्रिय लागे (बा०)]
पंचशब्द– पांच बाजे ।
[घंटा, शंख, झांझ, मृदंग, शहनाई]
पंजर– शरीर का पंजर ।
पंथ– मार्ग ।
प्रकार– रीति ।
प्रकाशक– प्रकाश करनेवाला ।
[जगत् प्रकाश्य प्रकाशक रामू (उ०)]
प्रकाश्य– प्रकाश करने योग्य ।
प्रकृति– माया, स्वभाव ।
प्रकृष्ट– उत्तम ।
प्रगल्भ– शास्त्रविजयी, धृष्ट ।
प्रचार– विस्तार ।
प्रचारा– फैलाया ।
प्रचारी– ललकार के ।
[दोऊ दल भिरहि प्रचारि प्रचारी(लं०)]
प्रजारी– जलाके ।
प्रजासन– प्रजा का भोजन ।
प्रजेश– दक्षप्रजापति ।
प्रति– पास, सामने ।
प्रतिउपकार– उपकार का बदला ।
[प्रतिउपकार करौं का तोरा (सुं०)]
प्रतिकूला– विमुख ।
प्रतिछांही– परछांही ।
प्रतिपाद्य– वर्णन के योग्य ।
प्रतिभट– समान वीर, बराबर का योद्धा
प्रतिमा– मूर्ति । [समान]
प्रतिमूरति– परछांहीं ।
[निजफणिमणिमय देखि प्रति मूरति (बा०)]
प्रत्यूह– विघ्न
[पुनि प्रत्यूह अनेक (उ०)]
प्रथम– पहले ।
प्रथमगति– पहिली गति ।
प्रद– दाता ।
प्रदेश– भूमि का एक बडा खंड,परदेश ।
प्रदोष– रात्रि का प्रारम्भ ।
[यातुधान प्रदोष बल पाई (लं०)]
प्रधान– मंत्री, मुख्य ।
प्रणत– झुका हुआ ।
प्रणय – प्रेम ।

प्रणओं– प्रणाम करता हूं ।
[प्रणवों परिजन सहित विदेहू (बा०)]
प्रपंच– झूठा व्यवहार ।
प्रबंध– रचना ।
प्रवीण– चतुर ।
प्रबोध– ज्ञान, अच्छी तरह समझना ।
प्रबोधक– प्रबोध करनेवाला ।
[उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी (बा०)]
प्रभा– चमक ।
प्रभाऊ– प्रताप ।
प्रभु– स्वामी, पति ।
प्रभंजन– पवन ।
प्रमदा– स्त्री ।
प्रमादु– असावधानता ।
प्रयांति– प्राप्त होते हैं ।
[प्रयांति ते गतिंस्वकां (आ०)]
प्रलम्ब–बडा, अतिलम्बा, एक असुर का नाम ।
प्रलाप– बकबाद ।
प्रसन्न– हर्षित ।
प्रसव– उत्पत्ति ।
प्रसाद– दया ।
प्रसीद– प्रसन्न हो ।
प्रसूति– उत्पन्न हुई, उत्पन्न किया, जननेहारी ।
[मंजुल मंगल मोद प्रसूती (बा०)]
प्रशंसक– सराहनेवाला ।
प्रशंसा– स्तुति ।
प्रस्थिति– यश, मरण के पश्चात् स्थित रहनेवाली बडाई, यात्रा ।
प्रहार– मारना ।
प्राकृत– माया का विकार १, साधारण २, संसारी ३ ।
[जे प्राकृत कवि परम सयाने (बा०)]
प्राकृतकवि– सूरदास, चन्द्र कवि आदि भाषा के कवि ।
प्राची– पूर्व दिशा ।
प्रात– सबेरा ।
प्रातकृति– सन्ध्या, वन्दन आदि प्रातःकाल के कर्तव्य कर्म, शौचादि ।
प्रातक्रिया– प्रातःकाल के कर्म ।
प्राणनाथ– पति, प्राणेश्वर ।
प्राविट– बरसात ।
[प्राविट प्रलयपयोद घनेरे (लं०)]
प्रिया– प्यारी ।
प्रियतम– अत्यंन्त प्रिय ।
प्रीता– मित्र, प्रिय ।
प्रेत– योनिविशेष, मुर्दा ।
[प्रेत पितर गन्धर्व (बा०)]
प्रेतनिवास– स्मशान ।
प्रेरक– आज्ञा करनेवाला ।
प्रेरित– आज्ञा किया हुआ,भेजा हुआ ।
[हरि प्रेरित ताहि अवसर (सुं०)]

प्रेरे– पठाये ।
प्रोक्त– कहा गया या कहा हुआ ।
प्रौढ– पुष्ट, चतुर ।
[प्रौढ सुजन जन जानहिं मनकी (बा०)]
प्रौडि– अभिमान का बोल ।

(फ)

फटिक– बिल्लोर, पत्थल ।
फनि– (फणि) फनवाला सर्प ।
फणिक– सांप, फनवाला सर्प ।
फल– धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि, नतीजा, मेवा ।
[लहहिं चारि फल अछत तनु (बा०)]
फलित– फले हुए ।
फहराई– फहराते हैं ।
फाबी– मजबूत, भली लगी ।
फुर– सत्य, सांच ।
फुलवाई– फुलों का बगीचा ।

(ब) (व)

बक– बगुला ।
वक्ता– कहनेवाला ।
वकुल– मौलसिरी ।
वक्र– टेडा ।
बगमेल– बाग मिलाके या हल्ला करके
[कछुक चले बगमेल (बा०)]
वगरे– फैले ।
वच– वचन ।
वचसि– वात में ।
वच्छ– वत्स ।
वच्छल– दयायुत ।
वज्र– इन्द्र का शस्त्र ।
वट– बड़ का पेड ।
बटु– ब्रह्मचारी ।
[मुनि बटु चारि बोली तब लीन्हे (अ०)]
बटोही– राह चलनेवाला ।
वडवानल– समुद्र की आग ।
बतकही– बातचीत ।
बतिया– कोमल फल ।
[यहां कुम्हड बतिया कोउ नाहीं]
वद– कहिये ।
वदति– कहता है ।
वदन– मुंह ।
[करत वदन पर भरत बडाई (अ०)]
वदर– वैर ।
वदि– कहकर, वादकर ।
वधिक– व्याध ।
बधिर– बहिरा ।
वधू– स्त्री, पुत्रवधू ।
वधूटी– नवीन बहू ।
बंधुजीव– दुपहरिया का वृक्ष ।
बंधुर– दुपहरिया का वृक्ष ।
बंध– बंधन ।

वन– जंगल ।
वनचर– वानर, वनवासी ।
वनज– कमल, अथवा जो जंगल में उत्पन्न हो, फल मूलादि ।
वनमाला– फूल और पत्ते की माला, गले से पैरोंतक लम्बी,जो तुलसीकुन्द, मंदार,पारिजात और कमल की बनी होती है ।
वनिक– (वणिक)- बनियां ।
वनी– मजदूरी का धन, सजी हुई ।
वपु– शरीर ।
वपुष– देह ।
वमत– छांट या कै करता है ।
वमन– उवान्सि ।
वयस– उमर ।
वयारि– हवा ।
वर– पति, दूल्हा, श्रेष्ठ, वरदान ।
वरन– अक्षर, नहीं तो ।
वरनी– वर्णन की ।
वरनों– कहता हूं ।
वरवरनी– श्रेष्ठ रंगवाली ।
वरबस– जोरावरी ।
[वरबस रोक विलोचनवारी (सुं०)]
वरहिं– वर को, वर मांग ।
बराई– बचाकर ।
बराए– बचाये से ।
वराह– सुअर ।
वरि– व्याह करके ।
बरिआर– जोरावर ।
विरियां– बेला ।
वरिवंड– बलवान ।
[प्रमुख मर्कट बरिवंड (सुं०)]
वरी– व्याही ।
वरीसा– वर्ष ।
[जियहु सखी सत लाख वरिसा (अ०)]
वरु– बल्कि, चाहे ।
[बरु पावक प्रगटै शशिमाहीं (बा०)]
वरुण– जल के अधिष्ठाता देवता ।
वरूथ– समूह ।
वरोह– सुन्दर जांघवाली ।
[जानसि मोरस्वभाव वरोरू (अ०)]
बरेखी– दुलहा ठहराना ।
[रहि नजाय बिन किये बरेखी (बा०)]
वर्ग– समूह, पक्ष ।
वर्नर– अधम, वाचाल ।
[रे कपि बर्बर खर्वखल (लं०)]
वर्म– बख्तर ।
वर्य– उत्तम ।
वर्षाशना–वर्ष दिन में भोजन करनेवाली
बल– जोर, सेना ।
बलकल– छाल ।
बलहा– बलनाशक ।
बलकावा– उन्मत्त किया ।

बलाक– बगुला ।
बलाका– बगलों की श्रेणी ।
बलाकह– बादल, मेघ ।
बलि– बलिहारी १, राजा बलि २, बलिदान ३ ।
[जेहिं बलि वांध सहसभुज मारा (लं०)]
बलित– घेरा हुआ, युक्त ।
बलीमुख– वानर, वीर ।
[बलीमुख पाय प्रकाशा (लं०)]
वल्ली– वेलि ।
बखाना– वर्णन किया ।
बसत– रहता है ।
वसन– कपड़ा ।
वसवर्ती– आधीन ।
[दशमुख वशवर्ती नरनारी (बा०)]
वससि– तू बसता है ।
वसह– बैल ।
वसीठी– दूत ।
[दशमुख मैं न वसीठी आयउं (लं०)]
वसुधा– पृथ्वी ।
वस्य– आधीन ।
वह– चलता है, बहता है ।
बहरावा– सुनकर के न सुना ।
वहहिं– ढोते हैं ।
[भार वहहिं खरवृन्द (लं०)]
बहाना– फेकना ।
बहुकालीन– बहुत दिनों का ।
[देखत बालक बहुकालीना (उ०)]
बहुधा– बहुत प्रकार से ।
बहुवादू– बहुत बकवाद ।
बहुरहिं– फिरे ।
बहुरि– फिर ।
बहुरना– फिरना ।
बहू– वधू ।
बहोरी– फिर ।
[राम लषण सिय मिलहिं बहोरी (अ०)]
वाउ– वाह, धन्य, पवन ।
[बाउ कृपा मूरति अनुकूला (बा०)]
वाऊ– वायु, पवन ।
वाग– वाणी, बागडोरी ।
वागीशा– आकाशवाणी, हयग्रीव भगवान ।
[सफल होन हित निज बरगीशा (अ०)]
वागुरि– जाल ।
[वागुरि विषमतुराब मनहु भाग मृग भागिवश (अ०)]
वाचाल– अधिक बोलनेवाला ।
बाजा– लडा, जूझा, बजाने के यन्त्र ।
[तिनहि निपाति ताहि सन बाजा(अ०)]
वाजिमेध– अश्वमेध यज्ञ ।
[कोटिन्हि वाजिमेध प्रभु कीन्हा (उ०)]
वाजि– घोडा ।
वाट– राह ।

वाट परै– रोजगार जाय ।
[वाट परैं मोरि नाव उडाई (अ०)]
वाटिका– फुलवारी ।
वात– पवन ।
वाति– बत्ती ।
[दीपवाति नहिं टारन कहेऊं (अ०)]
वातुल– पागल, बावला ।
[वातुल भूत विवस मतवारे (अ०)]
वादले– बादल ।
वादि– वृथा ।
वादिनी– बोलनेवाली ।
[वा प्रिय वादिनी सिख दीन्हेउ तोंहिं(अ०)]
वादी– कहनेवाला, शत्रु ।
बाधक– रोकनेवाला ।
बाधा– विघ्न ।
बाण– बाणासुर १, तीर २ ।
[रावण बाण महाभट मारे (बा०) १, तव चले वाण कराल (आ०)२]
वानैत– वीर, बटेबाज ।
वापिका– बावड़ी ।
वापुरो– तुच्छ, बेचारा ।
वाम– स्त्री, बायां, प्रतिकूल ।
बाय– पसार करके, वायु ।
बायन– नेबता ।
[भले भनन अब बायन दीन्हा (बा०)]
वायस– कौवा ।
बाएं– वाम ओर ।
वार– बार बार, दिन, समूह, देर, केश, काल, द्वार, बालक, जल ।
[भूप सहस दश एकहिं बारा १ (बा०), यशुदा बार बार यों भाषै, सूरसागर, इसमें यह सब अर्थ लगते हैं]
वारन– हाथी १,रोकना २ ।
[भवबारण दारन सिंह प्रभो १(लं०), करिय जतन जेहि होय निवारन२(अ०)]
वायर– दूर करो, रोको ।
वारहवाट– तितर बितर ।
बारेहिंते– लड़कपन से ।
[बारेहिंते निज हित पति जानी (बा०)]
वारि– जल, निछावर करके ।
वारिचर– जल में रहनेवाला जीव, मछली आदि ।
वारिचरकेतु– कामदेव ।
वारिज– कमल ।
वारिद– बादल ।
वारिधर– बादल ।
वारीश–समुद्र ।
[उदधि सिंधु वारी (लं०)]
वारिदनाद– मेघनाद ।
वारी– पानी, फुलवारी, बालिका, निछावर करी ।
वारुनी– (वारूणी) मदिरा ।

वारे– बालक, रोके।
बाल– बालक, केश, स्त्री।
बाला–सोलह वर्षतक अवस्था की स्त्री
वासन– बरतन, निवास।
वासर– दिन।
वासव– इन्द्र।
वाहन– असवारी।
वाहिनी– सेना, बहनेवाली।
[अतिथि विचित्र वाहिनी विराजी (आ)]
विकट– भयंकर।
विकरार– विकराल, भयंकर।
विकसे– फले।
[विकसे सन्त सराज सब (बा०)]
विकार– अवगुण।
विक्रम– पराक्रम, बल।
विगत– रहित।
विगोये– नाश किये।
विग्रह– विरोध।
विख्यात– प्रसिद्ध।
विघटन– तोडना।
विचरहिं– फिरते हैं।
विचक्षण– चतुर।
विचित्र– आश्चर्यरूप।
विचेतन – अचेतन।
विजयी–विशेष जयवाला, जीतनेवाला
[सो विजयी विनयी गुणसागर (लं०)]
विज्ञान– पदार्थो का तत्त्व जानना, शास्त्रज्ञान, शिल्पशास्त्र।
विटप– वृक्ष।
विटपी– वटवृक्ष।
विडरी– जहां तहां हुई।
विडारी– भगाकर।
विडंब– छल, तिरस्कार, नकल।
विढई– कमा करके।
वित्त– धन।
वितान– चंदवा, विस्तार।
विथकहिं– चकित हो।
[विथकहिं बिबुध विलोकि विलासू (बा०)]
बिथकि– तन्मय होकर, आश्चर्य में आकर।
विथुरे– फैले, बिखरे।
[बिथुरे नभ मुक्ताहल तारा (सुं०)]
विद– ज्ञाता।
विंदक– पानेवाला।
विदग्ध– पंडित।
विदरेउ–विदीर्ण हुआ।
[हृदय न विदरेउ पंकजिमि, बिछुरत प्रीतम नीर(अ०)]
विदारे– विदीर्ण किया।
विदारहिं– फाडते हैं।
विदित– प्रसिद्ध।
विदिशि– दिशा का कोना।

विदुषन– पण्डितों ने।
[विदुषन प्रभु विराटमय दीसा (बा०)]
विदूषक– भांड, हँसानेवाला।
विदूषहिं– निंदा करते हैं।
विदूषना– निंदा करना।
विदुषी– पण्डिता।
विदेह– देह विना, राजा जनक।
विद्यमान– वर्तमान।
विद्या– शिक्षा, ज्ञान।
विद्रुम– मूगा।
विधवा–जिस स्त्री का स्वामी मर गया हो
विधाता– ब्रह्मा।
विधात्री– ब्रह्माणी।
विधि– ब्रह्मा, कर्म, रीति।
विधिअंड– ब्रह्माण्ड, जगत्।
विधिवत्– यथाविधि।
विधु– चन्द्रमा।
विधुंतुद– राहु।
विनता– गरुड़जी की माता का नाम, कश्यप मुनि की पत्नी, दक्ष की कन्या
विनय– विनती।
विनयी– प्रार्थी, शिक्षित।
विनव– विनती की।
विनीत– नम्र।
विनोद– खेल।
[यहि विधि शिशुविनोद प्रभु कीना (बा)]
विपरीत– उलटा।
विपिन– वन।
विपुल– बहुत।
विप्रचरण– भृगुलता, ब्राह्मण के पद।
विवर– बिल।
[भूमि विवर एक कौतुक पेखा (कि०)]
विवरन– वेरंग, अलग, बिगड़ा हुआ, विवेचन।
विवर्द्ध– बहुत बडा।
विवस– विकल।
विवाकी– नाश।
[सहित सेन सुत कीन विवाकी (बा०)]
विविवत– एकान्त, प्रकट।
विबुध– देवता।
विबुधवन– नन्दनवाटिका।
विबुधवैद– अश्विनीकुमार।
विवेक– ज्ञान, सत्य असत्य का विचार
विभव– ऐश्वर्य, धन।
विभाग– बांट।
विभाती– प्रकाशित होती है।
वि(व्य)भिचारी– परस्त्रीगामी।
विभु– प्रभु, सर्वव्यापी।
विभूती– सम्पदा।
[सुकृत शंभु तनु बिमल विभूती (बा०)]
विभेद– दुर्भाव।
विभंजन– नाश करनेवाला।
विभंजनी– तोड़नेवाली।

विमल– मलरहित।
विमाता– सौतेली माता।
विमात्र– सौतेली मां का बेटा।
विमुख– बहिर्मुख।
वियोगी– बिछड़ा हुआ।
विरक्त– उदास, त्यागी।
विरचि– रचना करके।
[विरचि विश्व कहँ प्रगट दिखाई (बा०)]
विरज– रजरहित, अयोनिणात।
विरत– प्रीतरहित, विरागी।
विरति– उदासीनता, त्याग।
विरथ– रथ रहित।
विरद–विनादांत,प्रतिज्ञा,प्रशंसा, भक्त।
[प्रणतपाल बिरदावली, जिन चरणनकी बान (अ०)]
विरव– विरवा, छोटा पेड़।
विरहित– विशेष करके रहित।
विराग– वैराग्य।
विराजित– विराजती है।
विराट– विश्वरूप।
विरुज– निरोगी (रोग रहित)
विरुदैत– बानावाले वीर, भक्तपाल।
विरुद्ध– विरोधयुक्त, प्रतिकूल।
विरंचि– ब्रह्मा
विलग– अलग।
विलगाहीं– अलग होते हैं।
विलपाता– विलाप करते हुए।
विलखि– उदास होकर।
[विलखि कहेउ मुनिनाथ (अ०)]
विलखाइ– विषाद करके।
विलास– क्रीडा।
विलासिनी– विलास करनेवाली, प्रसन्नमन।
विलाहीं– नष्ट हो जाते हैं।
विलोकि– देखके।
विलोचन– दोनों नेत्र।
विषम– टेढा, कठिन, असम।
विषमता– दारुण कलेश, वैषम्य।
विषय– शब्द,रूप, रस, गंध, स्पर्श।
विषयक– विषय में।
विषयी– व्यभिचारी।
विषाद– दुःख, कलेश।
विषाना– सीग।
विश्वास– निश्चय, भरोसा।
विष्ठा– मल, गोबर।
विशद– निर्मल, विशाल।
[वरणों रघुवर बिशद यश (अ०)]
विस्मय– अचंभा।
विस्मित– चकित।
विशारद– चतुर।
[बालमीकि विज्ञान विशारद (बा०)]
विशाल– बडा।
विशिख– तीर।

विसूरति– चिंता करती है।
[जनु करुणा बहु वेष विसूरति (अ०)]
विशेष– अधिक।
विशोक– शोक रहित।
विश्व– संसार।
विस्तर– बिस्तार, बिछौना।
विश्वरूप– सर्वरूप।
[विश्वरूप रघुवंशमणि (लं०)]
विहंग– पक्षी।
विहरति– विहार करती है।
विहरत– क्रीड़ा करता है।
विहरु– फाट जा।
[ऐसिउ मति उर बिहरु न तोरा (लं०)]
विहाइ– छोडकर, सिवाय।
विहान– प्रातःकाल, बीत गया।
[जायहु होत विहान (बा०)]
विहार– क्रीड़ा, खेल।
विहीना– बिना।
वीथी– गली।
वीर– भाई, वीररस, बलवान।
वीरभद्र– शिवजी के गण।
[वीरभद्र करि कोन पठाये (बा०)]
बुझाई– समुझायकर।
बुध– पण्डित, चन्द्रमा का पुत्र।
बूता– बल।
वृक– भेडिया।
वृषकेतु– महादेवजी।
वृष्टि– वर्षा।
[कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृंद (लं०)]
वृष– बैल।
वृषभ– बैल।
वृषली– शूद्रा।
वृन्दारका– देवता।
[वृंदारका गण सुमन वर्षहि राउ जनवासेहि चले (बा०)]
वेत– आकाश,बांस की जाति विशेष।
वेद– ऋक,यजु,साम,अथर्वण चारों वेद
वेदिका– कर्मकाण्ड वा यज्ञार्थ रेणु निर्मित छोटासा चौतरा।
वेध– छेद।
वेनी– वेणी।
वेनु– वेणु, बंसी, एक प्रसिद्ध राजा का नाम।
वेरे– वेडे।
वेसर– खच्चर, स्त्री का भूषण।
बेहड़– बिकट स्थान।
वेहू– छिद्र।
वैतरनी– यमलोक की नदी।
[ता कहँ नदी विबुध वैतरणी (आ०)]
वैदिक – वेदपाठी, वेद का पढनेवाला।
वैदेही– विदेह की कन्या।
वैनतेय– गरुड़।

वैना– बात।
वैभव– ऐश्वर्य।
वैष्णव– विष्णुभक्त।
वैखानस– वानप्रस्थ।
[वैखानस सोइ शोचन्योगू (अ०)]
वैस– अवस्था।
वैसा– बैठा, उस प्रकार।
वोहित– जहाज।
व्योम– आकाश।
बौरा– मंजली।
बंगा– लुच्चा।
[राम मनुज कस रे शठ बंगा (लं०)]
वंचक– ठग।
वंचन– धोखेबाज़ी।
वंदन– प्रणाम।
वंदनीय– वंदन करने योग्य।
वंद्य– प्रणाम करने योग्य।
बंधु– बंधुआ।
वंश– कुल।
व्रज– जा।
[व्रजति ते परां गतिं (आ०)]
व्रण– फोड़ा।
ब्रह्मगिरा– ब्रह्मा की वाणी।
[ब्रह्मगिरा भइ गगन गंभीरा (बा०)]
ब्रह्मधाम– ब्रह्मा के रहने का स्थान।
ब्रह्मभवन– ब्रह्मा का घर।
ब्रह्मानंद– स्वरूपानन्द।
व्रात– समूह।
व्रीडा– लज्जा।
व्यग्र– विकल।
व्यजन– वीजना।
व्यथा– दुःख, कलेश, रोग।
व्यलीक– अप्रिय, झूठ।
व्यसनी– बुरी आदतवाला, शौकीन।
व्याज– बहाना।
व्याप्य– व्याप्त होने योग्य।
व्याधि– रोग।
व्याधू– वहेलिया, चिड़ीमार।
व्याल– सर्प, दुष्ट हाथी।
व्याली– सांप का मन्त्र जाननेवाला।
व्यास– विस्तार, एक मुनि जिसने १८ पुराण तथा वेदान्त सूत्र की रचना की
[व्यास समास सुमति अनुरूपा(उ०), व्यास आदि कविपुंगव नाना (उ०)]

(भ)

भ– नक्षत्र, ग्रह, राशि, शुक्राचार्य।
भक्त– तत्पर, दास।
भक्तवत्सल–भक्तपर अनुग्रह करनेवाला
भक्ति– पूज्य के प्रति श्रद्धा।
भग– ऐश्वर्य, अभ्युदय, सौभाग्य, संसार से उदासीन, शान्ति।
भगवान– ऐश्वर्यादि षड्गुण, विशिष्ट पूज्यमान।
भगिनी– बहिन।
भजई – सुमिरे या सेवे।
भजन– सेवा।
[तुम्हरे भजनप्रताप अधारी (आ०)]
भजामि– मैं भजता हूँ।
[भजामि भाववल्लभं (आ०)]
भजामहे– हम भजते हैं।
भजी– अंगीकार किया।
भजे– मैं भजता हूँ।
भट– योद्धा।
[भटमहँ प्रथम रेख जग जासू (बा०)]
भटमेरे– धक्का खाते फिरते हैं।
भडिहाई– चोरी।
[इत उत चितै चला भडिहाई (आ०)]
भणित– कहा हुआ।
भदेस– गँवारी, भद्दी।
भद्र– कल्याण।
भनई– पढता है, कहता है।
भणिति– कविता।
[भणिति मोरि सब गुणरहित, विश्व विदित गुण एक (बा०)]
भनी– कहकर।
भनु– कह।
भने– कहे।
भनन्ता– कहते हैं।
भभरि– घबराकर।
[भभरि भगान (अ०)]
भभरा– घबराया।
भयानक – भयंकर।
भयावह– डरानेवाला।
भर– बोझा।
भरन– पोषण।
भरनी– एक नक्षत्र का नाम,भरनेवाली
भरि– पूरण करके।
भव– संसार, शिव, उत्पत्ति।
भवद्रंघ्रि– आपका चरण।
भवन– घर।
भवंत– आप की।
भवमोचन– संसार से छुटानेवाला।
भवांबुनाथ– संसार, समुद्र, संसार सागर के स्वामी।
[भवाम्बुनाथ मन्दरम् (आ०)]
भवँर–भौरा।
भा– प्रकाश।
भाउ– प्रेम, स्वभाव।
भाग– हिस्सा।
भाजन – पात्र।
भाथा – तरकस।
[कर सारंग विशिख कटि भाथा (लं०)]
भानु– सूर्य।
भांडे– बरतन, बिगाड़े।
भामा– स्त्री।
भामिनी– स्त्री।
[जनकसुताकी सुधि कछु भामिनी(आ)]
भायप– भाईपना।
भाये– सुन्दर लगे।
भारती– सरस्वती।
भाल– माथा।
भावता– सोहता।
भावी– होनहार।
[तस मति फिरी अहै जस भावी (अ०)]
भाषा– कहा।
भिन्न– अलग।
भिन्दिपाल– ढेलवास।
[गहि कर भिन्दिपाल वर सांगी (लं०)]
भीती– दीवार।
भीम– भयंकर।
भीरा– बोझा, डर।
भीरु– डरपोक।
भुजंग– सांप।
भुवन– ब्रह्माण्ड।
भुवाल– भूपाल, राजा।
भुवि– पृथ्वी।
भूंजब– भोग करेगा।
भूत– जीव, पिशाच।
भूतल– पृथ्वी।
भूति– धन।
भूधर– पहाड़।
भूप– राजा।
भूमिनाग– पृथ्वीपर के सर्प।
[भूमिनाग शिर धरै कि धरणी (अ०)]
भूरि– अनेक।
भूर्जतरु– भोजपत्र का वृक्ष।
भूषित– भूषण युक्त।
भूसुर– ब्राह्मण।
भृकुटि– भौह।
भृगुनाथ– परशुराम।
भे– हुए।
भेई– गीली, भिगोयी।
भेऊ– भेद।
भेक– मेंडक।
[निकर निशाचर भेक (सुं०)]
भेट– मिलाप।
भेद– जुदाई।
भेरी– बडा नगारा।
भेष– भेस, बना स्वरूप।
भेषज– दवाई।
[जिमि सीता सुधि भेषज आनी (लं०)]
भोग– सुगन्धादि भोग, सेवन।
भोगवति– सर्प की नगरी, श्रीगंगाजी की उस धार का नाम जो पाताल में हैं।
भोजनखानी– रसोई का घर।
[भूप गये जहँ भोजनखानी (बा०)]
भोरा– भोला, भूल, सबेरा।
भोरी– भोली।
भोरे– भूलके भी।
भौम– मंगल ग्रह, भूमि से उत्पन्न।
भंग– नाश, विजय।
भंजन– नाश करने वाला।
भृंग– भौरा।
[भइ गतिकीट भृंगकी नाई, (आ०)]
[यह वह कीडा है कि, जिसको पकड ले जाता है उस जीव को अपना स्वरूप बना लेता है।]
भृङ्गी– महादेव का गण।
भ्रम– भूल।
भ्रू– भौं।

(म)

म– शिव, चन्द्र, चौथा राग।
मइके– माता के घर।
[ससुरे मइके सकल सुख (अ०)]
मकर– मगर, राशि नाम।
मकरकेतन– कामदेव।
मकर– मकडी,मच्छी।
[सरपैठत कपिपद गहेउ मकरी अति अकुलान (लं०)]
मकरन्द– फूल का रस।
मख– यज्ञ।
मग– मार्ग।
मगन– लवलीन, प्रेम में डूबा।
मघवा– इन्द्र।
मज्जहिं– स्नान करते हैं।
मज्जा–चरबी
[मज्जा वह जनुफेन (लं०)]
मंजीर– नूपूर।
मंजु– सुन्दर, उज्ज्वल।
मंजूषा– पिटारी।
मझारी– मध्य में।
मत– बुद्धि, राय।
मत्सर– ईर्षा।
मद– अहंकार।
मदन– कामदेव।
मधु– चैत महिना १, सहद २।
[नौमी भौमवार मधुमासा (बा०)]
मधुकर– भौंरा।
मधुप– मधुपान करनेवाला, भौंरा।
मधुपर्क– कांसी के वासन में दही, शहद, घी आदि मिलाकर देना।
मधुर– मीठा, सुन्दर।
मध्यगति– उदासीन।
मध्यदिवस– दोपहर।
[मध्यदिवस जिमि शशि सोहई]
मध्यम– उदासीन, बिचौला।
मन्मथ– कामदेव।
मनमारे– उदास।

मनसहिं – मन में।
[प्रभु मनसहिं लवलीन (बा०)]
मनसा– इच्छा।
मनसिज– कामदेव।
मनाक– थोडासा।
[तदपि मनाक नहीं मन पीरा]
मणि– सर्प के शिर की मणि।
मनियार– मणिधर, सर्प या पर्वत।
मनु– ब्रह्मा के पुत्र, धर्मशास्त्र बनानेवाले मुनि।
मनुज– मनुष्य।
मनुजा– राक्षस।
[खल मनुजाद जो आमिषभोगी (लं०)]
मनुसाई– पुरुषार्थ।
मनोज– कामदेव।
मनोभव– मन से उत्पन्न काम।
मनोरथ– अभिलाष।
मनोरम– सुन्दर।
मम– मेरा।
मय– सहित, असुर विशेष।
मयत्री– मित्रता।
मयन– कामदेव।
[करहु कृपा मर्दन मयन (बा०)]
मयूष– किरण।
मयंक– चन्द्रमा।
मरकत– नीलमणि।
मरकट– बन्दर।
मरजाद– कायदा, रीति, अवधि।
मरम– भेद, हृदय आदि।
मराल– हंस।
[चलि जनु वाल मराल (बा०)]
मरु– निर्जल, देख।
मर्दन– मलना।
मर्दि– मलकर।
मर्मी– भेद जाननेवाला।
[सखी मर्मी गुप्त शठ क्षत्री (लं०)]
मल– मैल, पाप।
मलय– सफेद चन्दन, मलय पर्वत।
मलीन– मैला, उदास।
मलिन– उदास, मैला।
मष्ट– चुप।
मसक– मच्छर।
मसि– स्याही।
महती– बडी।
महा– बडा।
महागद– कठिन रोग।
महान– बडा।
महामणि– मणियों में श्रेष्ठ, जिससे सर्प का विष उतर जाता है।
[मंत्र महामणि विषमव्याल के]
महामोह– अज्ञान।
महिदेव– ब्राह्मण।
[असकहि सब महिदेव सिधाये (बा०)]

महिपाल– राजा।
महिषी– बड़ीरानी, भैस।
महिषेश–महिषासुर।
[महामीह महिषेश विशाला (बा०)]
महि– पृथ्वी।
महीधर– पहाड़।
[महामहीधर तमकि उपारे (लं०)]
महीपति– राजा।
महीसुर– ब्राह्मण।
महेश– महादेव।
महोत्सव– बडा उत्सव।
महोष– एक प्रकार का पक्षी।
माजा–वर्षा के नये जल का फेन, कांटा
[माजा मनहु मीन कहँ व्यापा (अ०)]
मांझ– बीच।
मातलि– इन्द्र के सारथी का नाम।
मातहि– मतवाले को, माता की।
मात्र– इतना ही, केवल।
माधुरी– मिठाई।
मान– अहंकार।
मानस– सरोवर, मन।
मानसमूल– सरयूनदी।
[मानसमूल मिली सुरसरिही (बा०)]
मानसिक– मन का।
माणिक– जवाहिर।
मान्यता– पूज्यता।
मापा– व्यापा, व्याकुलता।
मापी– मतवारी।
माया– क्षोभ, झूठा प्रपंच।
मायापति– श्रीरामचन्द्र भगवान।
[मायापतिके अनुजसन माया करत अयान (लं०, क्षे०)]
मायिक– मिथ्या, मायाकर्ता।
मार– कामदेव।
[विहंसि कह्यो अस मार (बा०)]
मारगन– बाण, ढूंढना।
मारीच– एक राक्षस का नाम जो विश्वमित्र के यज्ञ में बाण द्वारा फेका गया और मृग के छल कपट में रामबाण से मारा गया।
मारुत– पवन।
[मारुत श्वास निगम निजवाणी (लं०)]
मारुति– श्रीहनुमान।
[मारुतसुत मैं कपि हनुमाना (उ०)]
माल– माला, मल्ल, द्रव्य।
मालव– मालवदेश।
माला– पाँति, हार, समूह।
माखे– क्रोधे।
माखी– क्रोधित हुई।
मासा– मास, महीना।
माहुर– जहर।
[मर्म पोछि जनु माहुर देई (अ०)]
मां– (माम्) मुझको।

मिति– मर्यादा।
मिथिला– जनक राजा की नगरी, जनकपुर।
मिथिलेसि– मिथिला की रानी।
मिलित– युक्त, मिला हुआ।
मिसु– बहाना।
[तियमिसु मीच शीशपर नाची (बा०)]
मीच– मौत।
मीन– मछली।
मीला– मिलकर।
मुकुता– मोली।
मुकुताहल– मोती।
[विखरेनभ मुकलताहल तारा (लं०)]
मुकुर– दर्पण।
मुकुन्द– मुक्ति को देनेवाला, भगवान श्रीकृष्ण।
मुखर– अधिक बोलनेवाला।
[गिरा मुखर तनु अर्ध भवानी (बा०)]
मुखागर– मुह, जबानी।
मुठभेरी– मुक्के की मार।
मुद– आनन्द।
मुदित– प्रसन्न।
मुद्रिका– अँगूठी।
[यह मुद्रिका मातु मैं आनी (सुं०)]
मुधा– मिथ्या।
मुनिपट– मुनियों के वस्त्र।
[मुनिपट भूषण भाजन आनी (अ०)]
मुनिराजू– वसिष्ठ मुनि।
मुनिवर– मुनिश्रेष्ठ।
मुनिन्द्रा– मुनियों में इन्द्रवत्।
मूक– गूंगा।
मूरि– जडी, बूटी।
[अमिय मूरिमय चूरण चारू (बा०)]
मूल– जड, कारण, हेतु।
मूलक– मूली।
[सकौं मेरू मूलक इव तोरी (बा०)]
मूषक– चूहा।
मृगपति– मृगों का राजा, सिंह।
मृगजल– मृगतृष्णा।
मृगमद– कस्तूरी।
मृगया– आंखेट, शिकार।
मृगराज– सिंह।
मृगाधीश– सिंह।
[मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं (उ०)]
मृदु– कोमल।
मृणाल– कमल की दण्डी।
मृषा– झूठ।
मेकलसुतो– नर्मदा नदी।
[मेकलसुता गोदावरि धन्या (अ०)]
मेखल– करधनी।
मेघडंबर– बड़ा भारी छाता, डेरा, मेघ के समान।
मेचक– श्याम।

मेदिनी– पृथ्वी।
[हतै मेदिनी पूछ भँवाई (लं०)]
मेधा–बुद्धि।
[मेधा महिगत सो जल पावन]
मेरु– सुमेरु पर्वत।
मेली– डाली।
मेष– मेंढा।
मैना– पार्वतीजी की माता।
मैनाक– एक पर्वत का नाम।
[तुरत उठे मैनाक तब (सुं०)]
मोई– मोही, भिगोई।
मोचन– छोडना।
मोद– प्रसन्नता।
मोदक– लडुवा।
मोरपच्छ– मोरपंख, मेरा पक्ष।
मोरहुति– मेरी ओर से।
मोह– अज्ञान।
मोहमय– झूठा।
मौलि– माया।
[उरधरि चंद्रमौलि वृषकेतू (बा)]
मंगलद्रव्य– पुष्प, कुकुंम, कलश, पल्लव, मंगलसूचक।
मंगलमय– आनन्दमय।
मंच– मंचान।
मंजीर– पायजेब, नूपुरादि, बाजा।
मंजुल– सुन्दर।
मंडन– भूषक।
मंडल– चौरस, गोल, समूह।
मंडली– सभा।
मंडलीक– मंडली का दरबार।
[मंडलीक महिरावण, राज्य करै निजमंत्र (बा०)]
मंडित– शोभित।
मंत्र– गुरु का उपदेश।
मंत्रराज– रामतारक मन्त्र, रामनाम मन्त्र
[मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा]
मंद– नीच।
मंदतर– अतिनीच।
मंदर– मंदराचल पर्वत।
[बाल मराल कि मंदर लेही (बा०)]
मंदाकिनी– स्वर्ग की गंगा।

(य)

य– वायु, यश।
यहु– यह।
यथा– जैसे।
यथाथित– जैसे पहले था।
[भयउ यथाथित सब संसारू (बा०)]
यथोचित– जैसा चाहिये।
यमी– नियमी।
ययाति– एक राजा का नाम।
[सुरपुरसे जनु खसेउ ययाति (अ)]
यश– बड़ाई।

यक्ष– कुबेर के अनुचर।
यक्षपति– कुबेर।
यज्ञोपवीत– जनेऊ।
यातुधान– राक्षस।
[यातुधान सुनि रावणवचना (सुं०)]
याम– पहर।
यावत– जब तक।
युग–दो, वा सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग
युवराज– राज्य का उत्तराधिकारी।
यूथ– समूह।
यूथप– सेनापति।
योषिता– स्त्री।
[यदपि योषिता अन अधिकारी (बा०)]
यं– जिसको।

(र)

र– अग्नि।
रघुनाथ– रघुकुल के स्वामी।
रघुराज– रघुकुल में राजा।
[राजसभा रघुराज विराजा (अ०)]
रक्षक– रखवाला।
रज– धूर।
रजक– धोबी।
रजत– रूपा-चांदी।
[रजत सीपमहँ भास जिमि (बा०)]
राजधानी– जहाँ राजा रहते हैं।
रजनी– रात।
रजनीचर– राक्षस।
रजनीमुख– प्रदोष।
रजाई– आज्ञा, छुट्टी।
रजायसु– आज्ञा।
[पाय रजायसु (अ०)]
रजु– रज्जू, रसरी।
रट– धुन बांध के बोलना।
रतनारे – लाल रंग के।
रति – प्रीति, कामदेव की स्त्री।
रथांग–चकई,चकवा।
[पिक रथांग शुक सारिका,
चातक हंस चकोर (अ०)]
रथी– रथ का स्वामी।
रद– दांत।
रदपुट– होठ।
[रदपुट फरकत नैन रिसौंहैं (बा०)]
रण– युद्ध, लड़ाई।
रनिवास– रानियों के रहने का स्थान।
रवि– सूर्य।
रविनन्दिनी– यमुना नदी।
[कर्मकथा रविनन्दनि वरणी (बा०)]
रमन– पति, खेल।
रंभा– अप्सरा, केला।
रमा– लक्ष्मी।
रम्य– सुन्दर।
रय– वेग।
रये– रंगे।
रवनी– रमणी।
रविगणि– सूर्यकांत मणि।
रस– विषय, प्रेम, शृंगारादि नव रस।
रसना– जीभ।
रसा– पृथ्वी।
[रसा रसातल जाइहि तबहीं (अ०)]
रसाल– मीठा, आम।
रसिक– रस का जाननेवाला।
रहसी– हर्षि, एकान्त।
[रहसी रानि रामरूख पाई (अ०)]
रहस्य– गुप्त भेद।
[यह रहस्य काहू नहिं जाना (बा०)]
राउत– सरदार।
राउर– आपका।
[राजन राउर नाम यश,
सब अभिमतदातार (बा०)]
राऊ– राजा, स्वामी।
राका– पूर्णमासी का रात।
राकेश– पूर्णिमा का चन्द्र।
[जनु राकेश उदय भये तारे (बा०)]
राचा– लगाया, प्रिय लगा।
राजत– सोहता है।
राजनय– राजनीति।
राजी– पंक्ति, विराजमान हुई।
राजीव– कमल।
राजे– प्रसन्न हुए।
राजेन्द्र– प्रधान राजा, कई राजाओं का भी राजा।
राता– प्रीतियुक्त।
रामायुध– धनुष बाण।
राय– श्रेष्ठ राजा।
रायमुनी– लाल नामक पक्षी।
[जनु रायमुनि तमालपर बैठी (लं०)]
रार– झगड़ा।
रासभ– गधा।
राहु– ग्रह विशेष।
रिपु– बैरी।
रिपुसूदन– शत्रुहन।
[रिपुसूदन पदकमल नमामी (बा०)]
रिसानी– क्रोधित हुई।
रीते– खाली, निरर्थक।
रुख– सन्मुख, इच्छा।
रुज– रोग।
रुह– उत्पन्न, रोम।
रुंड– धड।
रूंधहु– कांटों से घेरो, वा रोकी।
रूरी– सुन्दरी।
रेख– लकीर।
रेता– रेती, काटा।
रेनु– (रेणु) धूर।
रेसू– ईर्षा।
रेंगाई– चलाई।
रोचन– गन्ध, हलदी, गोरोचन।
रोदन– रोना।
रोदति– रोती है।
[रोदति बदति बहुभांति करुणा करत शंकर पहँ गई (बा०)]
रोमपाट– ऊनी कपड़ा।
रोष– क्रोध।
रोहिणी– चन्द्रमा की स्त्री।
रोहू– रोकना, मछली की एक जात।
रौताई– सरदारी।
रंक– निर्धन।
रंगभूमि– धनुषयज्ञ की भूमि, उत्सव का स्थान।
[रंगभूमि जब सिय पगुधारी (बा०)]
रंजन– खुश करना।
रंतिदेव– एक राजा का नाम।
रंध्र– छेद।

(ल)

ल– इन्द्र।
लकुट– लकड़ी।
लगि– वास्ते, तक।
लघु– हलका।
लघुता– हलकाई, नीचपन।
लघु तापस– लक्ष्मण।
[लघु तापस कर बाग बिलासा (सुं०)]
लक्ष– निशान, लाख, १०००००।
लच्छा– लाख,१०००००।
लच्छि– लक्ष्मी, लक्ष्य।
लटत– लटता हैं, गिरता है।
लय– तन्मय, राग।
ललना– सुन्दरी, स्त्री।
ललाट– माथा।
ललाम– सुन्दर।
ललित– सुन्दर।
लव– अंश, रामचन्द्र के छोटे पुत्र।
[लव निमेष परिमाण युग,
वर्ष कल्प शर चण्ड (लं०),
लव कुश वेद पुराणन गाये (उ०)]
लवन– नोन।
लवनसिंधु– खारा समुद्र।
[असकहि लवनसिंधु तट आई (कि०)]
लवा– एक छोटी चिड़िया।
लवाई– नयी ब्याई।
लखाऊ– पहिचान, दिखाब।
लसत– शोभा देता है।
लाउब– लावेंगे।
लागू– सहारा।
[सोहत दिये निषादहि लागू (अ०)]
लाघव– शीघ्र, बिना प्रयास।
लाला– लज्जा।
लाटी– कंठशोष, झुक गई।
[सूखहि अधर लागि मुह लाटी (अ०)]
लालसा– इच्छा।
लाली– दुलारी, लाल।
लावक– लवा।
लावण्य– सुन्दरता।
लाहु– लाभ।
[लेहू किन लोचन लाहू (बा०)]
लांघे– पार हुए।
लिलार– माथा।
[जो विधि लिखा लिलार (बा०)]
लीका– मर्यादा, लकीर।
लीलहिं– निगल जाते हैं।
लुठत– लोटता है।
लुव्धक– लोभी।
लूक– उल्का।
[दिनहिं लूक परन विधि लागे (लं०)]
लेखई– समझता है।
लेखा– रेखा, हिसाब, देवता।
लेश– थोड़ासा।
लोई– लोग।
लोक– संसार।
लोकप– लोकपाल।
लोना– सुन्दर।
लोनाई– सुन्दरता।
[हृदय सराहत सीय लुनाई (बा०)]
लोयनि– आँख।
लोला– लोल, चंचल।
लोलुप– लम्पट,किसी विषय का अति लालची।
[लोभी लोलुप कीरति चहुई (बा०)]
लोवा– लोमड़ी।
[लोबा फिरि फिरि दरश दिखावा(बा)]
लोह– लोहा।

(श)

शक्ति– बल।
शक्र– इन्द्र।
[वहाँ शक्र जहँ मुनि सरभंगा (आ,क्षे)]
शची– इन्द्राणी।
शमन– नाश करनेवाला।
[शमन पाप संताप शोकके (बा०)]
शव– मुरदा, प्राणरहित शरीर।
शशा– खरगोश।
शशक– खरगोश।
शशि– चन्द्रमा।
[कह प्रभु शशिमहँ मेचकताई (लं०)]
शाकवणिक– कुंजड़ा, शाक बेचनेवाला।
[शाकवणिक मणि गुणगण जैसे (बा०)]
शाखामृग– बन्दर।
[शठ शाखामृग जोरि सहाई (लं०)]
शाखोच्चार– कुल के वेद की शाखायुक्त कथन।
[शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करे (बा०)]

शाल– दुःख, डाह।
शालक– दुःख देनेवाला।
[खल शालक बालक (आ०)]
श्यामकरन–यज्ञ का घोड़ा जिनके कान काले और सब शरीर सफेद हो।
शिल्प– कारीगरी।
[शिल्पकर्म जानत नल नीला (लं०)]
शिव– महादेवजी।
शिवशैल– कैलास पर्वत।
[जेहिं कौतुक शिवशैल उठावा (बा०)]
शिवि– एक राजा का नाम।
शिविका– पालकी।
शिशिर– माघ, फाल्गुन की ऋतु।
शिशु– बालक।
शिंशुवा– शीशम का पेड़।
शिश्न– लिंगेन्द्रिय।
शृगाल– गीदड़।
शुक– शुकदेवजी, तोता।
शुक्र– वीर्य, शुक्राचार्य।
शुचि– पवित्र।
शुभ– अच्छा।
शुभ्र– स्वच्छ।
शूल– दुःख, दर्द, त्रिशूल।
शैल– पर्वत।
शैलजा– पार्वती।
[जाय विवाही शैलजहि यह मोहिं माँगे देहु (बा०)]
शैलराज– हिमालय।
शोणित– लोहू।
[तव शोणित की प्यास (लं०)]
शौच– पवित्रता।
शं– कल्याण।
शंकर– शिव।
शांति– संतोष।
शृंग– पर्वत की चोटी।
श्रम– मेहनत।
श्रमविन्दु– पसीने की बूंदें।
श्रमित– थका हुआ।
[देखा श्रमित विभीषण भारी (लं०)]
श्रवण– कान।
श्री– लक्ष्मी, जानकीजी।
श्रीपति– विष्णुभगवान्।
श्रीफल– नारियल।
श्रीवत्स–लक्ष्मी का चिह्न जो विष्णु के बायीं ओर हृदय में विराजमान है।
श्रीरंग– लक्ष्मीपति।
[बारबार वर मांगो हरष देहु श्रीरंग (उ०)]
श्रुति– कान १, वेद २, सुनना ३।
[श्रुति कुंडल लोला (बा०), जस श्रुति वरनी (अ०)]
श्रुवा– हवन करने का पात्र, रमचेसा।
[चाप श्रुवा शर आहुति जानू (बा०)]
श्रेनी– पंक्ति।
श्वपच– चांडाल।

(स)

सक– संदेह, सामर्थ्य।
[राम चाप तोरब सक नाहीं (अ०)]
सकरुण– दयायुक्त।
सकल– सब।
सकाना– डरना।
सकानी– सकुचानी।
[कोलाहल सुनि सीय सकानी (बा०)]
सकिलि– सरक कर।
सकुनि– पक्षी विशेष, सकुचवाला।
सकृत– एक बार।
सकेलि– बटोरकर।
[आयउ यहाँ समाज सकेली (अ०)]
सखर– खराई लिये, कठोर, खर नाम राक्षस के सहित।
[सखर सकोमल मंज(बा०)]
सगरे– सब।
सगर्भ– तात्पर्ययुक्त, अभिमानी।
[नारद वचन सगर्भ सहेतु (बा०)]
सगलानि– ग्लानि के साथ।
सगाई– नाता।
सचान– सिकरा, बाज।
[जनु सचानवन झपेठउ लावा (अ०)]
सचिव– मंत्री।
सचु– मुख, सच, प्रिय।
सचेता– सावधान।
सजग– सावधान।
सजनी– सखी।
सजाई– दंड, रचना की।
सजिस– सुख से जीना, जिन्दा।
सजीवन– बलयुक्त।
सठ– (श) मूर्ख।
सड़सिह्न– सनसियों से, संन्यासी।
[प्रतिउत्तर सड़सिह्न मनहुं काढत भट दशशीश (लं०)]
सत– भला, सत्य।
सतपंच– सात पाच, पांच सौ पैंतीस।
[सत पञ्च चौपाई मनोहर जानि, जो नर उर धरैं (उ०)]
सतरूपा–स्वायम्भुवमनु की स्त्री का नाम
सति– सूधा, सत्य, रहनेपर।
सती– पतिव्रता, दक्ष की पुत्री, शिवजी की स्त्री।
सत्यलोक– ब्रह्मलोक।
सद– श्रेष्ठ।
सदन– घर।
सदय– दयायुक्त।
सदाचार– श्रेष्ठ आचरण।
सदैव– सदा ही।
सन– से, जिसकी रस्सी होती है।
सनकादि– सनकादि चार ब्रह्मा के पुत्र, सनक, सनन्दन, सनातन,सनतकुमार।
सनकारे– इशारा किया, बुलाये।
[सनकारे सेवक सकल (अ०)]
सनाथ– स्वामी सहित।
सनाह– बख्तर सहित।
सपक्ष– पंख सहित।
सपथ– सोगंध।
सपदि– जलदी।
सपर्व– गांठ के साथ।
सपेला– साँप का बच्चा।
सप्त– सात, ७।
सप्तावरन– प्रकृति आदि सात आवरन, सात आवृत्ति।
सभीत– डर के साथ।
सम– बराबर।
समदरशी– बराबर देखनेवाला।
[करिहैं अभय तोहिं समदरशी (सुं०)]
समदि– पूजा करके।
समरस– वीररस।
समर्पे– सौंपे।
समस्त– सब।
सम्यक– भलीभाँति।
समागत– भलीभाँति, आये हुए।
समाज– सभा।
समाधि– सुख, प्राणनिरोध।
समान– बरोबर १, समाय गया २।
[यद्यपि सलिल समान (अ०)]
समिध– लकडी पलाशादि।
समास– संक्षेप।
समीती– मिताई, समेटा।
समीप– धोरे।
समीर– पवन।
समीहा– इच्छा।
समुदाई– समूह।
[घेरि रहे निशिचर समुदाई (आ०)]
समुहानी– सामने हुई।
[रामस्वरूपसिंधु समुहानी (बा०)]
सयन– शय्या, इशारा।
सर– तालाब।
सरद– (शरद) क्वार, कार्तिक, शरदऋतु, गीला।
सरपि– घी।
[सूपोदन सुरभी सरपि (बा०)]
सरल – सीधा, सहज।
सरबरि– बराबरी, विवाद।
[हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथो (बा०)]
सरवरी– रात।
सरस– प्रेमसहित।
सरसई– सरस्वती नदी।
सरसीरुह– कमल।
सरासन– धनुष।
[डगै न शम्भुशरासन कैसे (बा०)]
सरासुर– बाणासुर।
सरि– नदी।
सरित– नदी।
सरिस– बराबर।
सरुज– रोगी।
सरुष– क्रोधसहित।
सरोज– कमल।
सरोरुह– कमल।
सरौं– दण्ड, सरसौं, बराबर।
[सरौं करे पायक फहराई (बा०)]
सर्व– सब।
सर्वकाल– सबदिन।
[तुम कहं सर्वकाल कल्याना (बा०)]
सर्वज्ञ– सब जाननेवाला।
सर्वदा– सदा।
सलभ–(**शलभ**)– भुनगा, पांखी, उड़नेवाले छोटे कीड़े।
सलिल– जल।
सलोक– यश।
सलोने– सुन्दर।
सबीज– बीज के सहित।
सह– सहित, समेत।
सहगामिनी– सती, जो पति के साथ जलै, साथ चलनेवाली।
[सहगामिनी विभूषण जैसे (लं०)]
सहज– स्वाभाविक, सरल।
सहनी– सेनापति।
सहम– भय, संकोच।
सहरोषा– क्रोध सहित।
सहस– हजार।
सहसबाहु– सहस्रबाहु, सहस्रार्जुन, एक राजा का नाम।
सहसा– विना विचारे।
[सहसा करि पांछे पछिताई (आ०)]
सहसाखी– साखी सहित, साक्षीयुक्त।
[जे पर दोष लखहिं सहसाखी (बा०)]
सहसानन– हजार मुँहवाले, शेष।
सहाया– साथी, मदद।
सही– निश्चय।
सहेली– सखी।
सहोदर– एक पेट से जन्मे, सगे।
[मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता (लं०)]
साई– स्वामी।
साउज– मृगादि बनजंतु।
सागर– समुद्र।
साज– सामग्री, शृङ्गार।
साढसाती– शनैश्चर की दशा जो साढेसात वर्ष रहती है।
[अवध साढसाती जनु बोली (अ०)]
साथरी– आसनी, बिछौना।
साखा– (शाखा) - डार।
सादर– आदर के सहित।
साधक– साधन करनेवाला।

साधन– उपाय।
[यज्ञके साधन कहौं बखानी (उ०)]
साधा– मिलाया, साधन किया।
साधु – सज्जन।
साधुमत– शिष्टाचार, अच्छी राय।
साध्य– साधना के योग्य।
सान– बाढ, धार।
[धरी कूबरी सान बनाई (अ०)]
सापत– शाप देता हुआ।
[ताडत शापत पुरुष कहंता (आ०)]
साबर– किरात के वेष में शिवकृत मन्त्र आदि, मृगविशेष।
सामध– समधियों का मिलना, समधौरा।
सायक– बाण, तीर।
सायुज्य– ब्रह्म में लीन।
[सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि (लं०)]
चार मुक्तियों में से एक प्रकार की मुक्ति।
सारद–(शारद)– सरस्वती।
[शारद दारू नारि सम स्वामी(बा०)]
सारदी–(शारदी)– जो शरद ऋतु में होती है, सरदी।
सारस– एक बडा पक्षी।
सारा– पाला, सब, किया, लगाया।
सारी– मैना, साले की बहन।
सारंग– धनुष।
[कर सारंग विशिख कटि भाथा (लं०)]
सालक– दुःखदायी, चुभानेवाला।
साली– यान, युक्त।
सावक– मृग तथा चिडिया आदि का बच्चा।
सावकाश– काम से छुट्टी।
[सावकाश सुनि सबसिय सासू (अ)]
सास्वर्त– अमर, निरन्तर।
सिकता– बालू।
सिखिन– मोरनी।
सित– सफेद।
सिथिल– आलसी, ढीला।
सिद्ध– अणिमादि सिद्धि को प्राप्त।
सिधारी– चली गई।
सिधि– अणिमादि, पूर्णता।
सिमटे– इकट्ठे हुए।
सिय– सीताजी।
सियन– सिलाई।
[सियनि सुहाबनि टाट पटोरे (बा०)]
सियरे– शीतल।
[सियरे बचन सूखि गये कैसे (अ०)]
सिरानी– बीती, फुरसत हुई।
सिरावे– ठंढ करै।
[बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत (उ०)]
सिराहिं– वीतते हैं।
सिरजा– रचा।
[सावर मंत्रजाल जिन सिरजा (बा०)]

सिलीमुख– (शि) बाण, भौंरा।
सिराहीं– प्रशंसा करे।
सीकर– छीटा, सूक्ष्म बिन्दु।
सीत– (शीत) - जाड़ा।
सीदहिं– दुःखी होते हैं।
सीपी– सीप।
सृष्टि– संसार।
सुआर– रसोई बनानेवाला।
[लगे परोसन निपुण सुआरा (बा०)]
सुअञ्जन– अच्छा अञ्जन।
सुक– (शु) तोता।
सुकर्कश– अति कठोर।
सुकृत– पुण्य।
सुकृती– धर्मात्मा।
[तुम सुकृती हम नीच निषादा (अ०)]
सुकेतु– यक्ष विशेष,ताड़का का पिता।
सुकंठ– सुग्रीव।
सुखमा– शोभा।
सुखासन– सुखपाल।
सुक्र– वीर्य, शुक्राचार्य।
सुगाई– शक करके, सुन्दर गैया।
सुघटित–अच्छा बना हुआ।
[सुघटित नाना जाति (बा०)]
सुचाई– सुधाई, पवित्रता।
सुचिन्तित– भलीभांति विचारा हुआ।
[शास्त्र सुचिन्तित पुनि पुनि देखिय (आ०)]
सुजन– भला आदमी।
सुजान– चतुर।
सुटुकि– कोड़ा मारके।
सुठि– बहुत, निरन्तर।
सुत– बेटा।
सुदेसु– सुन्दर देश।
सुदेसे– अच्छी वस्तु देनेवाला।
सुधा– अमृत।
सुधाकर– चन्द्रमा।
[लिखित सुधाकर लिखिगा राहू (अ०)]
सुनयना– जनकजी की स्त्री।
सुनासीर– इन्द्र।
सुपास– सुख।
सुभ्र– शोभायुक्त।
सुभाउ– अच्छा भाव।
सुभुज– सुवाहु दैत्य, सुन्दर हाथ।
सुमन– फूल।
सुमिरत– ध्यान करता हुआ, स्मरण करते ही।
[सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना]
सुमृति– स्मृतिग्रन्थ, धर्मशास्त्र।
सुरभि– गाय, सुगंध।
सुरमणि– चिन्तामणि।
सुररूख– मंदार आदि पांच वृक्ष, कल्पवृक्ष।
सुरसर– मानसरोवर।

सुरसरि– गंगा नदी।
सुरसेनप– कार्तिकेय।
[सुरसेनप उर बहुत उछाहू (बा०)]
सुरवीथी– देवताओं का मार्ग।
सुरा– मदिरा।
[संतत सुरा नीक हितजेही (बा०)]
सुराई– शूरता।
सुरुचि– अच्छी रुचि।
सुरंगा– सुन्दर वर्ण।
सुलभ– विना कठिनता के मिलने योग्य
सुवन– पुत्र।
सुवास– सुगंध।
सुवासिनी– सुहागिनी स्त्री।
सुहाई– सुन्दर लगी।
सूकरखेत–वाराहक्षेत्र।
[मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सुसूकरखेत (बा०)]
सुवेल– समुद्र का किनारा, एक पर्वत का नाम।
[यहां सुबेल शैल रघुवीरा (सुं०)]
सूच– जानना।
सूचक– जतानेवाला।
सूचत– जताता है।
सूत्रधार– पुतरी नचानेवाला, नाटककर्ताओं का अधिष्ठाता।
सूपकार– रसोई करनेवाला।
सूप– दाल, छाज, पछोरने का पात्र।
सेतु– पुल।
सेनप– सेनापति।
सेला– बरछी, भाला।
सेवी– सेवक।
[तुम गुरु बिप्र धेनु सुरसेवी (बा०)]
सेष– (शे) शेषनाग, बाकी।
सोचनीय– सोचने योग्य।
सोधा– शुद्ध किया, ढूंढा।
[तात धर्ममग तुम सम सोधा (अ०)]
सोधेउ– खोजा, ढंढा।
[सोधेउ तिन मिलि कटक सब(लं,क्षे)]
सोन– सोनभद्र नदी, सोना।
सोपान– सीढी।
सोपि– वह भी।
सोम– चन्द्रमा।
सोरा– जोर की आवाज।
सोवत– सोया हुआ।
सोह– शोभा देता है।
सोहमस्मि– वही मैं हूं।
[सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा (उ०)]
सौध– राजा का मकान, मंदिर।
सौमित्र– लक्ष्मण।
[सुनु सौमित्र विभीषण (लं०)]
सिंह– शेर।
सींव– सीमा।
सुन्दरी– सुन्दर स्त्री।

स्फुरत– याद होता है।
स्मरामहे– हम स्मरण करते हैं।
स्यामल– सांवला।
स्यामा– (श्या) एक चिड़िया का नाम, सोलह वर्ष की स्त्री।
स्यंदन– रथ।
सृजत–बनाता है।
[सृजत वहोरी (अ०)]
स्व– निज, अपना।
स्वच्छता– सफाई, निर्मलता।
स्वच्छन्द– स्वाधीन।
स्वपच– (श्व)– चांडाल।
स्वयं– आप ही।
स्वयंभू– मनु, एक राजा का नाम जिससे सृष्टि प्रारंभ हुई।
स्वल्प– छोटा।
स्ववश– अपने वश।
[स्ववश अनन्त एक अधिकारी (बा०)]
स्वसेव्य– अपने सेवा करने के योग्य।
स्वागत– शिष्टाचार।
स्वाती– नक्षत्र विशेष।
स्वान– कुत्ता।
स्वामिधर्म– मालिक का धर्म।
स्वामी– राजा, मालिक।
स्वारथ– अपना अर्थ।
स्वेद– पसीना।
सौरभ– आम का पेड़ १, सुगन्धि २।
[सौरभ पल्लव मदन विलोका(बा०)]
सौरज– शूरता।
संकट– विपदा।
संकाश– समान प्रकाश।
[तुषाराद्रि संकाशगौरं गभीरम् (उ०)]
संकुल– पूर्ण।
संगा– साथ।
संग्रह– एकत्र करना।
संघट– संयोग, मेल।
[यह संघट तब होय जब, पुण्य पुराकृत भूरि (बा०)]
संघर्षण– रगड़।
[अति संघर्षण करै जो कोई (उ०)]
संघात– संबंध, मेल।
संयम– ध्यान, समाधि।
संजात– उत्पन्न।
संयुग– बडाई।
[सुभट संयुग महि मुरे (बा०)]
संयोग– बराबर, मिलाप।
सतत– निरन्तर, सर्वदा।
संदोह– समूह, ढेर।
संधाने– निशानेपर लगाये।
संपुट– हाथ जोड़ के।
संभव– होने योग्य।
संभावित– संभावना का विषय।
[संभावितको अपयश लाहू (अ०)]

संभूत– जन्मा हुआ।
संमत– सलाह, एका।
संबल– राह का खर्चा।
[जे श्रद्धा संबलरहित (बा०)]
संबुक– (श) घोघा।
[संबुक भेक सिवार समाना (बा०)]
संसर्ग– साथ, मेल।
संसृति– संसार, विश्व।
सामत– कठिन पीड़ा, दुर्भाग्य।
सिंघल– उपद्वीप विशेष, सिंहलद्वीप।
[जनु सिंहल बासिन भयहु,
विधिवशसुलभ प्रयाण (बा०)]
सिंधु– समुद्र।
सिंधुर– हाथी।
[मत्त सहस दश सिंधुर साजे (बा०)]

(ह)

ह– कष्ट, शोक।
हई– नाश की।
हए– नाश किये।
हकरावा– बुलवाया।
[मेघनाद कहँ पुनि हकरावा (बा०,क्षे०)]
हट्ट– दुकान, बाजार।
हते– मारे।
हथवासहु– हाख में लो पतबार।
[हथवासहु वोरहु तरनि (अ०)]
हनत– मारता है।
हनू– हनुमान, ठोढी।
हने– मारे, बजाये।
हय– घोडा।
हयगृह– अस्तबल।
हयो– मारा।
हर– ले जाना, चोरी, शंकर।
हरषत– प्रसन्न होता है।
हरगिरि– कैलास पर्वत।
[हरगिरि मथन निरखु मम बाहू (लं०)]
हरति– हरता है।
हरद– हलदी।
हरासू– दुःख, शोक, ज्वर।
हरि– विष्णु, वानर, सिंह।
हरिचंद– अयोध्या के प्रसिद्ध राजा का नाम।
हरियाना– विष्णु की असवारी, गरुड।
हरित– चुराया हुआ १, हरा २।
[हरितमणिनके पत्र फल (बा०)]
हरी– हरे रंग की, चुराई।
हरु– हलका १, हर लो २।
[हरु विधि वेगि जनक जड़ताई (बा०)]
हलधर– बलदेव।
[जीह यशोमति हरि हलधरसे (बा०)]
हवि– खीर।
हस्त– हाथ।
हहरि– घबराकर।
[हहरि मरत सिय राम वियोगा (अ०)]
हा– खेद।
[हा सघुनंदन प्रेमपिरीते]
हाटक– सोना।
हानि– नाश, नुकसान।
हि– दृढ।
हिके– अन्तःकरण के।
हित– मित्र।
हिम– ऋतु विशेष, पाला। (अगहन, पौष)
हिमउपल– ओला, पत्थल।
[जिमि हिमउपल कृपीदल गरहीं (बा०)]
हिमकर– चन्द्रमा।
हिमालय– एक पर्वत।
हिमवंत– हिमाचल।
[हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहि(बा०)]
हिय– हृदय।
हिसिका– बराबरी।
हृदयनिकेत– हृदय में घर है जिसका।
हृदयेसा– अन्तर्यामी।
हुनर– चतुराई।
हुने– होम किया।
[हुने अनल महँ बारबहु
हर्षित साखि गिरिश (लं०)]
हुमकि– कूदकर।
[हुमकि लात रिपुसूदन मारा (अ०)]
हुलसी– तुलसीदासजी की माता प्रसन्न हुई।
[शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी (बा०)]
हुलासू– आनन्द।
हेति– अस्त्र, व्यवहारी।
हेतु– कारण।
[रामजन्म कर हेतु (बा०)]
हेम– होना।
हेरि– देखकर।
हेला– खेल।
[जेहि बारीश वंधायहु हेला (लं०)]
हंकारी– बुलाकर।
हंसा– हंस।
हाती– नाश किया।
हिंस– घोड़े का शब्द।
हिंहिंनाहीं– हिनहिनाते हैं।
[देखि दखिन दिशि हय हिंहिंनाहीं(अ)]
हींचै– दबै।
[कहत शारदहुकै मति हींचै (अ०)]
ह्रद– तालाब।

(क्ष)

क्षुद्र– छोटा।
क्षुधित– भूखा।
क्षेम– कल्याण।
क्षेत्र– खेत।
क्षोभा– घबराना।
[सहज पुनीत मोर मन क्षोभा (बा०)]

(ज्ञ)

ज्ञ– बुद्धि।
ज्ञाति– जाति के लोग।
ज्ञान– यथार्थ जानना।
ज्ञात– जाना हुआ।
ज्ञानी– तत्त्व का जाननेवाला।
ज्ञापक– ज्ञान देनेवाला, बतानेवाला।

• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •

दोहा

रामचंद्र को ध्यानधर, रामकोष सुखमूल।
किय ज्वालापरसादने, राम रहैं अनुकूल।।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष / फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट, पुणे - ४११०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
(ज्योति बिल्डिंग के पीछे,)
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष / फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

पुस्तक मिलने का ठिकाना- खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" छापखाना- मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास